2993

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

015.2mN44 2971
G9.17.2
Mishra, Krishnabihari
& Others, Ed.
Madhuri.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

0152mN44 2971
G9.17.2

APPROVED FOR USE IN SCHOOLS, COLLEGES & LIBRARIES IN U. P., C. P., C. I., PUNJAB.
MEWAR & BIHAR.

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

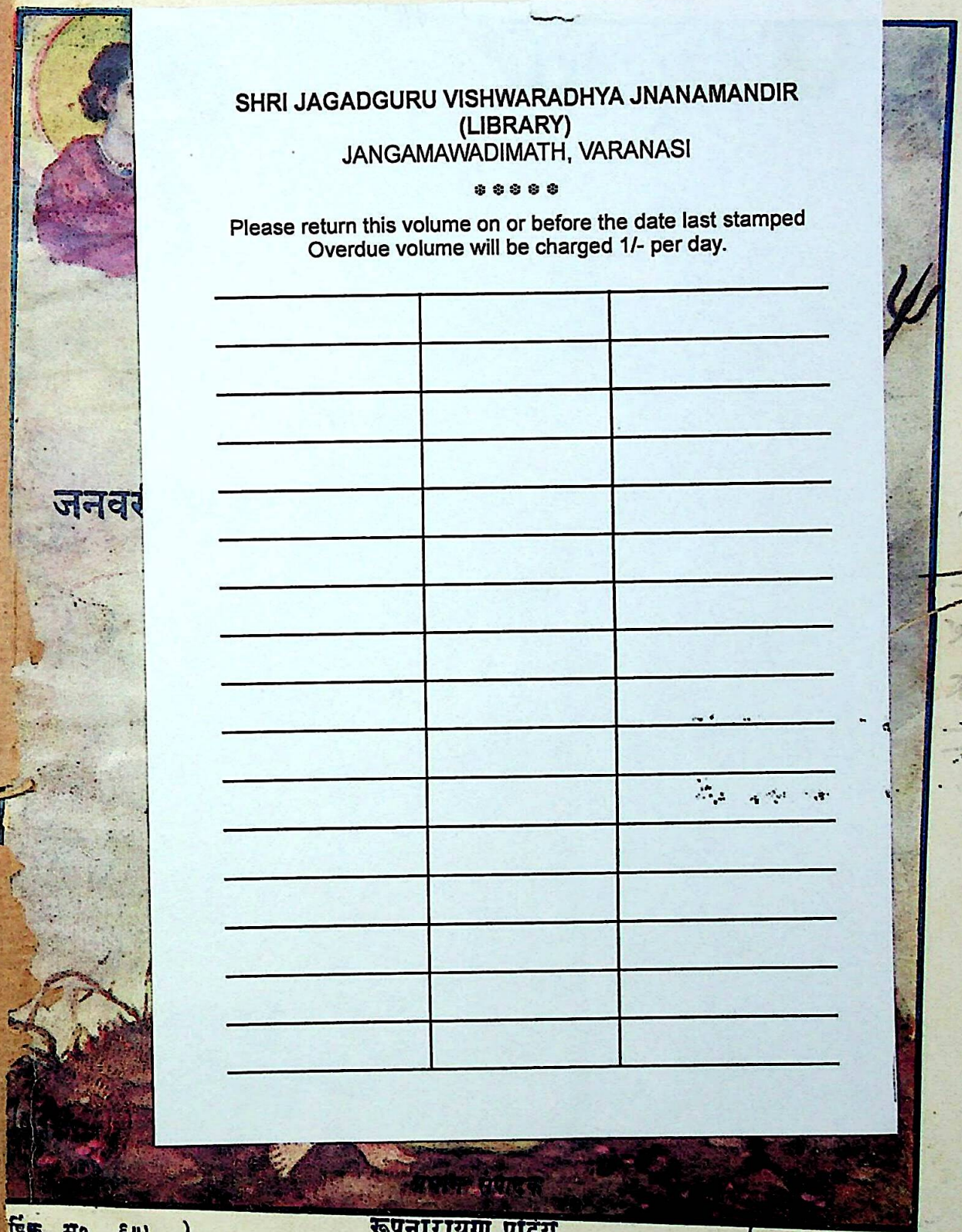

जनवर

रूपनारायण पांडेय
नन्दकिशोर तिवारी
भारत में एक अंक का मूल्य ॥=)

विदेश में वा० १०)
एक प्रति का १)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन तीनों बातों में

१ खर्च की औसत
२ मृत्यु-संख्या
३ ब्याज की दर

जिन पर

बीमा कम्पनियों की उन्नति निर्भर है,

स्वदेशी भारत की सभी कम्पनियों से आगे है।

0152 mN44
G9172

कहने को तो सभी कम्पनियाँ यही बात कहेंगी,

पर

आँकड़ों का मुक़ाबिला करने पर स्वदेशी ही आगे मिलेगी।

क्यों

इसलिए कि (१) इसका ख़र्च का औसत दिन पर दिन घट रहा है।
(२) मृत्यु-संख्या बहुत कम है।
(३) ब्याज की औसत सबसे ज्यादा है।

अतएव आप अपना बीमा स्वदेशी ही में कराइए।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamawadi Math, Varanasi
Acc. No. 2971

स्वदेशी की एक नई योजना

घातक दुर्घटना पालिसी

एक बार क़रीब रु० २५) देकर रु० १०००) का आजीवन बीमा कराइए।

एक व्यक्ति पाँच हज़ार रुपये तक का बीमा करा सकता है।

विशेष विवरण के लिये लिखिये :

श्रीचन्द दोनेरिया, मैनेजिंग डाइरेक्टर

स्वदेशी बीमा कम्पनी लिमिटेड, आगरा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेख-सूची

विषय	पृष्ठ
१. अनिरुद्ध (कविता)—[लेखक, श्री-केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' एम्० ए० ...	२६३
२. महाकाव्य—[लेखक, श्रीयुत शिव-प्रसाद डबराल एम्० ए०	२६४
३. इक्का—[लेखक, प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०	२८३
४. जारज (कहानी)—[लेखक, श्रीइलाचन्द्र जोशी	२९४
५. सौन्दर्य (छन्दोबद्ध कहानी)—[लेखक, श्रीआरसीप्रसादसिंह	३०३
६. क्या आप रोज़गार करना चाहते हैं?—[लेखिका, कुमारी शान्तिदेवी टंडन	३१३

बवासीर का काल

क्या इस दवा के रहते भी आप ख़ूनी या बादी बवासीर से कष्ट उठाते ही रहेंगे? कैसा ही पुराना हो २१ दिन में जड़ से आराम न हो तो दूना दाम वापस। मू० ५) रु०।

स्वप्नदोष और सूजाक

सिर्फ़ १५ दिन इस अमोघ वनौषधि के सेवन करने से सदा के लिये दूर हो जाता है। मू० २) रु०।

महावीर औषधालय,
नं० ५ दरभंगा।

कुछ अद्भुत शक्तिशाली औषधियाँ

किसी औषधि को बेफ़ायदा साबित करने पर १००) इनाम जिन्हें विश्वास न हो ५) का टिकट भेजकर शर्त लिखा लें।

श्वेतकुष्ठ की वनौषधि—महात्मा प्रदत्त इस सफ़ेदी की दवा से तीन दिन में पूरा फ़ायदा। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों विज्ञापनदाताओं की दवा से निराश हो चुके हों तो इसे लगाकर आराम होवे। मूल्य २)

सन्तति-निग्रह—सन्तान-निग्रह की यह अचूक दवा है। दवा व्यवहार बन्द कर दें गर्भधारण हो जावेगी। प्रतिमास दवा तीन दिन व्यवहार करना पड़ता है। वर्ष भर की दवा मू० २) दूसरी दवा जो जीवन भर के लिये वन्ध्या बनाती है। मू० २) दोनों दवाओं के व्यवहार से स्वास्थ्य में किसी तरह की हानि नहीं होती।

स्तम्भक वटी—एक गोली शाम को खा लें तो इसके अद्भुत चमत्कार को देखें। एक घंटे तक स्तम्भन कर ग़ज़ब ढा देगी। मू० १६ गोली १)

बहरापन-नाशक—यह कर्णरोग की अद्भुत दवा बहरापन, कान की आवाज़, पीब बहना सदा के लिए आरोग्य करता है। बहरा आदमी भी साफ़-साफ़ सुनने लगता है। मू० २)

अर्श-नाशक—इस दवा से अन्दरूनी, बाहरी, ख़ूनी, बादी बवासीर जल्द आराम होता है। ख़ून गिरना, दर्द, जलन, जल्द आराम कर पाख़ाना साफ़ लाती है। मू० खाने की दवा) लगाने की ५)

उपदंश-नाशक—इस औषधि से गुप्त इन्द्रिय, बदन का ज़ख़्म, फुंसन, जलन, पीब बहना, ख़ून आना, बदन के चकत्ते घण्टे गठिया को आरामकर नवजीवन प्रदान करता है। खाने की दवा मू० ३) लगाने की १)

सुजाक की दवा—यह अधमरे को नया जीवन प्रदान कर नया या पुराना सुज़ाक (गनोरिया) कड़क, जलन, पीब बहना, फुलना, बूंद-बूंद पेशाब आना, दर्द आदि को १ दिन में फ़ायदा करता है। मू० २)

महा सुगन्धित—कायाकल्प तेल के मालिस से ७० वर्ष का बूढ़ा भी नवजवान, बलशाली, वीर्यवान, स्त्रियों को प्यारा हो जाता है। बाँझ स्त्री को गर्भ रहता है। कोढ़ नाशता है। कुरूप बेडंगा मोटा आदमी सुन्दर और सुडौल हो जाता है। १०० वर्ष की आयु हो जाती है। मूल्य ३)

पता—वैद्यराज अखिलकिशोरराम नं० ३८ पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
७. राष्ट्रीय इतिहास का स्वरूप और इतिहास-लेखक की मनोरचना—[लेखक, श्रीगोपाल-दामोदर तामस्कर एम्० ए०	३१८
८. प्रेम-संगीत का तलपट—[लेखक, श्रीशिवशेखर द्विवेदी	३२३
९. कार्टून-फ़िल्मों का महत्त्व—[लेखक, श्रीबालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव ...	३३५
१०. तुलसी का आरोग्य में उपयोग—[लेखक, आयुर्वेदाचार्य पं० वासुदेव मेहता शास्त्री	३३६
११. नीनी (कहानी)—[लेखक, श्री 'पहाड़ी'	३३९
१२. समाजवाद और स्वाधीनता—[लेखक, श्रीछविनाथसिंह	३४३
१३. भारतीय कृषि का आर्थिक दृष्टिकोण (१)—[लेखक, प्रो० घनश्यामलालजी एल्० ए-जी०	३४७
१४. स्वप्न—[लेखक, श्रीसुधीरकुमार दे ...	३५७
१५. जादूगर नर्तकी (धारावाहिक उपन्यास)—[लेखक, श्रीसाधुशरण	३५८
१६. मैं (कविता)—[लेखक, श्रीचिरंजीलाल 'एकाकी'	३६५
१७. पादरी साहब (कहानी)—[लेखक, श्रीमहावीर	३६७

पारा की अद्भुत गोली

गर्म दूध में डालकर पीने से दूध अन्दर जाक कदापि नहीं फटेगा. सेरों ख़ून पैदा करती औ ताक़त देती है। ज़रूरत के समय मुँह में रखने से स्वर्गीय आनन्द देती है तथा आयु भ के लिये एक ही गोली काफ़ी है। मूल्य केवल १॥ खास गोली ५) बड़ी गोली २०) डा० ख० ह एक का ॥=)

फोड़ा-फुंसी तथा खारिश

और सर्व प्रकार के रक्तविकार तथा चर्मरोग को जादू की भाँतिवत् दूर करने तथा साफ़ व नय ख़ून पैदा करने के लिये जड़ी-बूटियों से तय्यार की गई "सार्सप" गोलियां हर औसत में सर्वोत्तम लाभदायक प्रमाणित हो चुकी हैं। मूल्य एक शीशी केवल १) डा० ख० ॥=)

पता—विराट कम्पनी (हैल्थ डिपार्टमेंट) अमृतसर

आर्डर के साथ आधे दाम पेशगी भेजें।

१) में पूरे बत्तीस आना

सुन्दरता, पायदारी व सुरीलेपन में सर्वोत्तम साबित हो जाने के कारण सर्व सभा, सुसाइटी, राग-विद्यालय, देवालय, नाटक तथा क्लब इत्यादि स्थानों में हमारे ही बाजे सुशोभित हो रहे हैं। और अनेकों प्रशंसापत्र प्राप्त हो चुके हैं। डबल स्वर, जर्मन रीड्स, तालेदार ढकना, सुन्दर बक्स तथा नापसंद होने पर वापसी की शर्त सहित असली दाम ३५) अब केवल १७॥) ; अपना नाम, पता व रेलवे स्टेशन साफ़ २ लिखें।

पता—जी० सी० आहूजा एण्ड सन्ज (M. L.) कटड़ा घनइयाँ अमृतसर।

विषय	पृष्ठ
१८. पुस्तक-परिचय—[लेखक, पं० राम-बहोरी शुक्ल एम्० ए०, साहित्यरत्न	३७१
१९. शान्ताराम और उनकी कला—[लेखक, श्रीयुत उमेश, सम्पादक साहित्य-"कलरव"...	३७३
२०. जो एक के लिए अमृत है, वही दूसरे के लिए विष है—[लेखक, श्रीसन्तराम बी० ए०	३७६
२१. वसन्त—[लेखक, श्रीमहेशचन्द माहेश्वरी विशारद, बी० ए०, सी-टी० ...	३७९
२२. व्यवधान (कहानी)—[लेखक, श्री-सुविद्याकुमारी सिनहा	३८१
२३. हमारा दृष्टिकोण	३८४

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. बुद्ध-वैराग्य

२. पनिहारिन

सादे चित्र अनेक

अभ्युदय का मूल आरोग्य

आप पहले अपने आरोग्य की अभिलाषा करें।

आरोग्य से ही अभ्युदय की अभिलाषा सफल होगी। आरोग्य का लाभ लेने के लिए

आतंकनिग्रह गोलियाँ

ही प्रशस्त साधन हैं।

क़ीमत—३२ गोलियों की डिब्बी का १) एक रुपया

आतंकनिग्रह औषधालय
जामनगर, काठियावाड़

लखनऊ एजेंट—इंदरचंद एण्ड ०, चौक

बवासीर, कांच, भगन्दर

कष्टरहित, हानिरहित, स्थाई चिकित्सा

८ वर्ष में भारतवर्ष के सब स्थानों से सहस्रों रोगी ठीक हो चुके हैं, काँच तो ४८ घन्टे बाद निकलनी बन्द हो जाती है। केवल देहली हस्पताल में मार्च १९३९ तक ८३४ रोगी चिकित्सा कराकर लाभ उठा चुके हैं। आगरा और बनारस में भी स्थाई ब्रांच हस्पताल स्थापित कर दिये गये हैं। नियम मुफ़्त।

पता—

डा० आर० आर० गुप्ता एन्ड सन्स,
नई सड़क, देहली

नक़ालों से सावधान!

ख़िज़ाब को छोड़ो

इस तेल से बाल का पकना रुककर और पका बाल काला पैदा होकर यदि ६० वर्ष तक काला न रहे तो दूना मूल्य वापस की शर्त लिखा लें। एकाध बाल पका हो तो २) इससे अधिक पका हो तो ३॥) या कुल पका हो तो ५) का तेल मँगवा लें।

पता—मृत्युञ्जय-सुधा-औषधालय,
नं० ३८, पो० कतरीसराय (गया).

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जादू का चकित करनेवाला खेल

केवल बतलाने के दाम लेते हैं—खेल मुफ़्त ही दे देते ह।

इन खेलों का आनंद मँगाकर देखने ही से आवेगा, खिलाड़ी इनको दिखाकर अमीरों से सैकड़ों रुपए क्षण भर बटोर लेते हैं और धनी लोग सभा में स्वयं खेल करके सबको मोहित कर सकते हैं। छपा हुआ विवरण हर खेल के साथ भेजेंगे। २) से कम का पार्सल नहीं भेजा जाता। आर्डर के साथ आधा दाम पेशगी भेजें। पूरे दाम पेश आने पर डाकख़र्च माफ़।

खेल नं० १—यह ताश के पत्ते पहली बार हाथ फेरने से इक्के, दूसरी बार ख़ाली, तीसरी बार पंजे बन जाते हैं; ॥)

खेल नं० २—ख़ाली पत्ते दिखाकर हाथ फेरो अट्ठे बन जायँगे, फिर हाथ फेरो तो ख़ाली; ॥)

खेल नं० ३—इस ताश को सबके सामने फेंटो और फिर खींच-लो बाज़ा बन जायगा; ॥)

खेल नं० ४—ताश के पत्ते दिखाकर हाथ फेरो, छोटे हो जायँगे, फिर और छोटे, फिर और छोटे, फिर गुम हो जायँगे। २)

खेल नं० ५—एक रंग की बेगम है, जो सबके सामने दूसरे रंग की हो जायगी, फिर वही हो जायगी; ॥)

खेल नं० ६—ताश हाथ में रक्खो, कोई आदमी एक पत्ता देखकर बीच में मिला दे, उसी के आवाज़ देने पर पत्ता कूदकर बाहर आ जायगा अत्युत्तम खेल है। १)

खेल नं० ७—पहले कुछ पत्ते दिखा कर ताश में रखकर ग्लास में रख दें आवाज़ देने से यह बारी-बारी निकलेंगे। १॥)

खेल नं० ८—ताश का एक पत्ता बोतल के मुँह पर खड़ा करके ऊपर ग्लास रख दें। १)

खेल नं० ९—ताश फेंटते-फेंटते बीच में से फूल या मेवा निकल आता है १॥)

खेल नं० १०—ताश का नहला है, सबको दिखा दो और हाथ फेरो पंजा बन जायगा; ॥)

खेल नं० ११—यह एक थैला है सबके सामने इसमें ग्लास रक्खें, जो झटका देने से गुम हो जायगा और फिर उसी में से निकलेगा; १)

खेल नं० १२—एक टीन की मेज़ है, सबके सामने एक पत्ता जलाकर या फाड़कर रक्खें, साबित हो जायगा १॥)

खेल नं० १३—ख़ाली डिब्बे में अंडा डालो। अंडे के बदले कबूतर निकलेगा; २)

खेल नं० १४—सुर्मेदानी की-सी एक डिबिया है, इसमें एक गोला है, यह गोला आज्ञा पाते ही कभी अंदर से गुम होता और कभी बीच ही से निकल आता है। १॥)

खेल नं० १५—इस डिबिया में पूरे ताश रक्खें, लेकिन उसी समय रूमाल बनकर निकलेंगे। १॥)

खेल नं० १६—एक रंग के दो जुड़े हुए रेशमी रूमाल हैं हाथ फेरने से रंग बदल जायगे। ५)

खेल नं० १७—रूमाल में रुपया लपेटकर किसी के हाथ में दें रूमाल ख़ाली हो जायगा। और फिर रूमाल पकड़नेवाले की जेब से रुपया निकलेगा जिस पर बड़ा मज़ाक़ होगा। १)

खेल नं० १८—एक बैल है जो क्षण भर में कई शक्लें बदलता है; ॥)

खेल नं० १९—लकड़ी का गेंद धागे में पिरोया हुआ आज्ञानुसार चलता है और खड़ा होता है; ॥)

खेल नं० २०—कपड़े की थैली कोई चीज़ डालो गुम हो जायगी, फिर आज्ञा पाने पर अंदर से ही निकलेगी; ॥)

खेल नं० २१—दियासलाई की डिबिया सबको भरी हुई दिखाओ और फिर उसी समय ख़ाली; ॥)

खेल नं० २२—एक चक्कर फूँक मारने से चलता है लेकिन दूसरा फूँक मारे तो आपकी आज्ञा से मुँह उसका काला कर दे। २॥)

खेल नं० २३—एक ताश का पत्ता दिखावें जो उसी समय दियासलाई की डिबिया बन जायगी। ॥)

खेल नं० २४—एक ख़ाली जैंपसन दिखा दो और झटका मारो रूमाल काग़ज़ आदि निकल आवेंगे; २)

खेल नं० २५—किसी की टोपी सबको ख़ाली दिखाओ और फिर लंबी-लंबी बेलें निकालते जाओ; १)

खेल नं० २६—सबके सामने ख़ाली मुँह दिखाकर छोटे-छोटे टुकड़े काग़ज़ के मुँह में डालो जो लंबे होकर निकलेंगे; ॥)

खेल नं० २७—किसी की टोपी ख़ाली दिखाओ फिर जलेबी निकालकर ढेर लगा दो; १॥)

खेल नं० २८—किसी की टोपी लेकर सबको ख़ाली दिखाएँ, फिर बहुत लंबा हंटर निकाल दें। ॥)

खेल नं० २९—किसी की टोपी लेकर कहो कि तुम्हारी टोपी फटी। वह कहेगा नहीं, फ़ौरन् उँगली मारकर फाड़ दो उँगली निकालो तो फिर साबित; ॥)

खेल नं० ३०—सबके सामने रुपया हाथ पर नाचने लगता है। लोग दंग होते हैं; १)

खेल नं० ३१—यह लकड़ी के गोले हैं पहले एक होता है फिर उसी के दो बनते हैं फिर ३ व ४ बनकर फिर घटते-घटते एक रह जाता है। २)

खेल नं० ३२—रूमाल में अँगूठी लपेटकर दूसरे के हाथ में दें, रूमाल ख़ाली हो जायगा और अँगूठी उसी दर्शक की जेब में से निकल आवेगी। बड़ा पुरमज़ाक़ खेल है; १)

खेल नं० ३३—सबको दिखाकर पूरा ताश का बंडल रखकर खड़े हो जिस-जिस पत्ते को आवाज़ दोगे, वह कूदकर बाहर आ जायगा; ३॥)

खेल नं० ३४—किसी के हाथ से पानी के ग्लास में ताश का पत्ता डुबवा दो, रूमाल उठावें पत्ता ग़ायब। १)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No.....2971

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

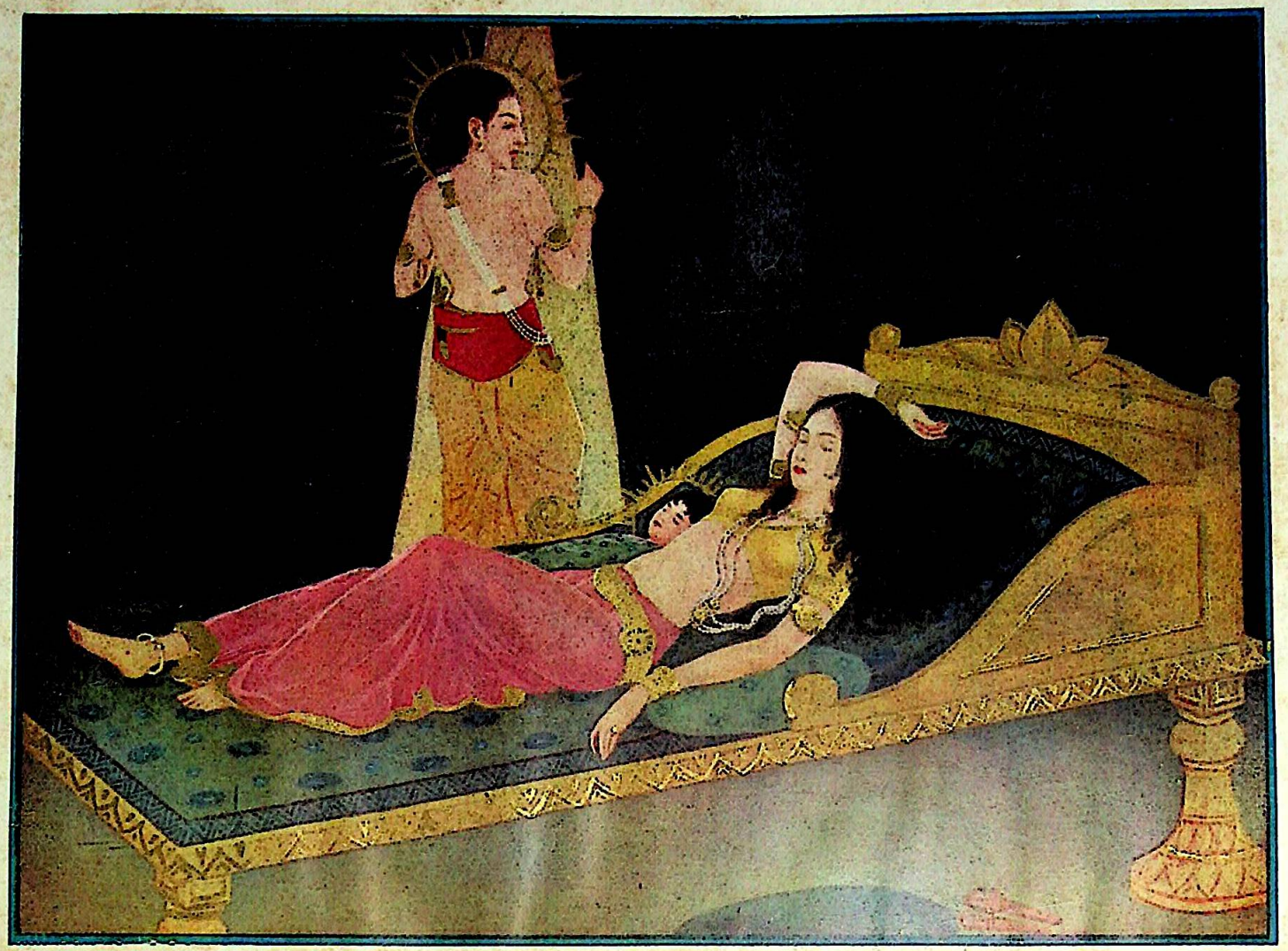

बुद्ध-वैराग्य

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

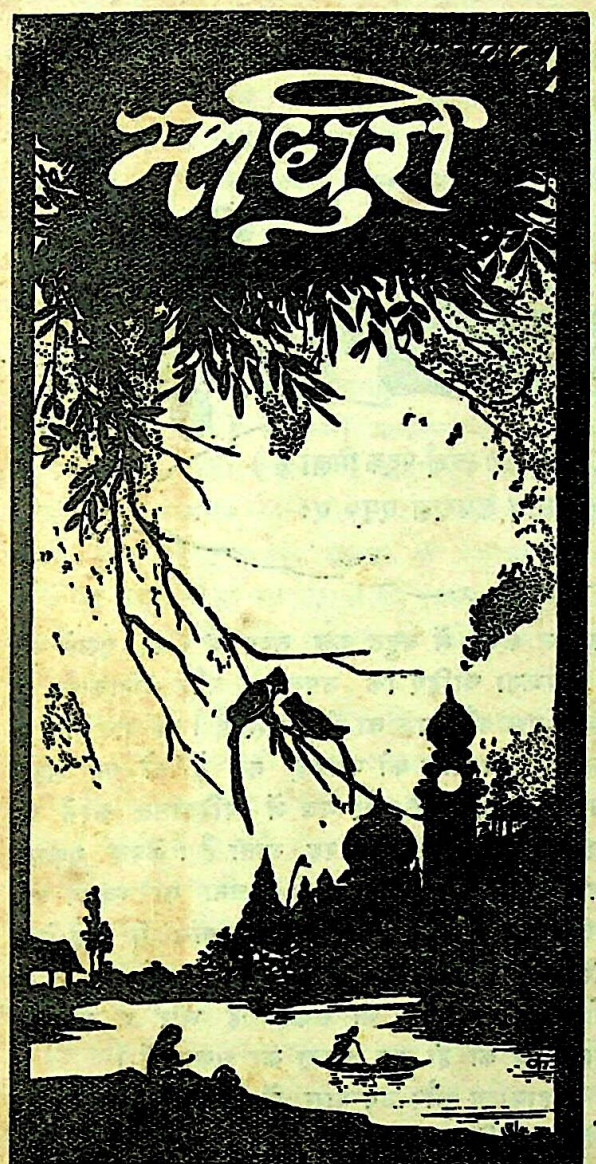

अप्रैल, १९३९

संपादक { रूपनारायण पांडेय
नन्दकिशोर तिवारी

वर्ष १७] चैत्र, सं० १९९६ [खंड २

अनिरुक्त

श्रीकेदारनाथ मिश्र 'प्रभात' एम्० ए०

आदि से लघु अन्त का यह तार क्या मिल जायगा प्रिय ?
कंज-सा मेरा हृदय मृदु
वेदनाओं के प्रलय में,
गूँजकर आराधना - सा
विरह की चिर-सजल-लय में—
क्या तुम्हारे स्पर्श के मधुवात से हिल जायगा प्रिय ?
मरण की चिनगारियों में
चमक सोने की किरण-सा,
एक ही पल में बिखर फिर
विरल-अविरल-अश्रु-कण-सा—
उस असीम-प्रियत्व में जीवन न क्या खिल जायगा प्रिय ?

संख्या ३] तुलसी-संवत् ३१५ [पूर्ण संख्या २०१

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

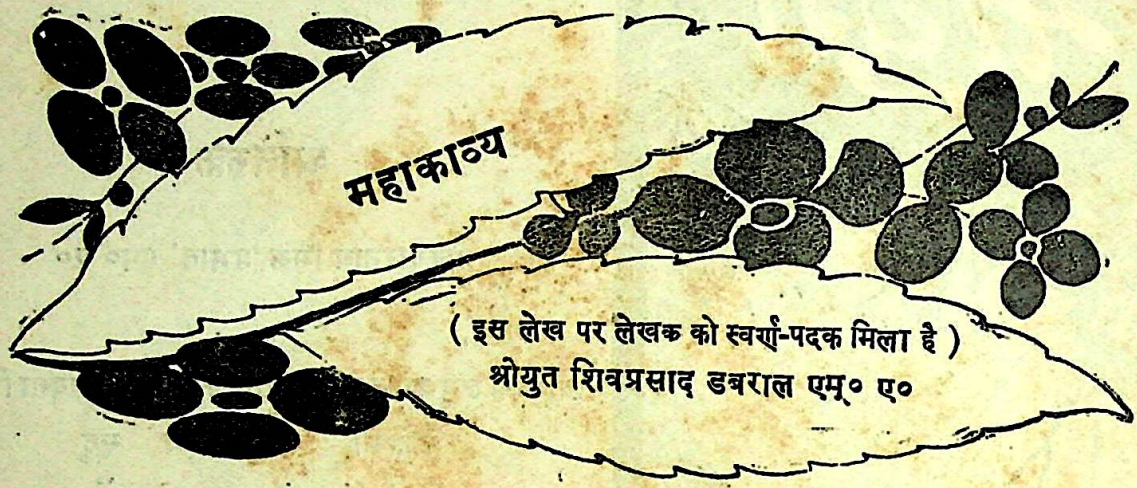

(इस लेख पर लेखक को स्वर्ण-पदक मिला है)

श्रीयुत शिवप्रसाद डबराल एम्० ए०

मानव-व्यापार में 'अनुरक्ति' मनुष्य की एक स्वाभाविक मनोवृत्ति है, जो उसे अन्य मनुष्यों के जीवन, उनके कार्य-कलाप, भाव-विचार, राग-द्वेष और उत्थान-पतन से परिचित होने के लिए उत्सुक करती है। इस उत्सुकता की पूर्ति के लिए साधारण जन-समाज में नाना प्रकार के आख्यान, कथा-कहानी या क़िस्सों का प्रचार होता है और साहित्य में उन कई प्रकार के काव्यों का निर्माण होता है, जिनमें किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के चरित्र का वर्णन रहता है। इन काव्यों के अन्तर्गत सब प्रकार के दृश्य-काव्य तो आते ही हैं, साथ ही श्रव्य-काव्यों का अधिकांश भी इसी वर्ग में गिना जा सकता है। कविता के क्षेत्र में ऐसे काव्य महाकाव्य, खंड-काव्य, जीवनवृत्त, आख्यान और कथा कहलाते हैं और गद्य के क्षेत्र में उपन्यास, आख्यायिका और कहानी।

महाकाव्य और उपन्यास

कविता के क्षेत्र में महाकाव्य का वही स्थान है, जो गद्य के क्षेत्र में उपन्यास का। कुछ विद्वान् आलोचक तो यहाँ तक कहते हैं कि महाकाव्य के पतन पर ही उपन्यास का विकास हुआ है—"The Novel arose at the wreck of the Epic" *। इसमें सन्देह नहीं कि इस कथन में बहुत कुछ तथ्य है। पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपन्यास और महाकाव्य में केवल गद्य और पद्य का ही अन्तर है। यह बात नहीं है कि यदि उपन्यास को पद्यबद्ध कर दें तो वह महाकाव्य बन जाता है और गद्य में परिवर्तित करने पर महाकाव्य उपन्यास-मात्र रह जाता है। केवल गद्यमय या पद्यबद्ध हो जाने से ही रचना का स्वरूप नहीं बदल जाता। महाकाव्य और उपन्यास में कुछ ऐसी भीतरी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण न तो महाकाव्य को उपन्यास बनाया जा सकता है और न उपन्यास महाकाव्य का ही रूप धारण कर सकता है।

महाकाव्य और उपन्यास में सबसे पहला अन्तर तो यह है कि उपन्यास की रचना रचयिता की कल्पना पर निर्भर रहती है। उपन्यासकार अपनी इच्छा के अनुसार उपन्यास का स्वरूप स्थिर कर सकता है। उपन्यास की कथावस्तु और पात्रों का भाग्य-विधाता वह स्वयं ही होता है। वह चाहे तो अपने उपन्यास में घोर पापियों से लेकर अत्यन्त धर्मात्मा तक, दीन भिक्षुक से लेकर राजा-महाराजा तक, बिल्ली से भी डरनेवालों से लेकर एक ही वार से सिंह को मार डालनेवाले तक को एक साथ चित्रित करके चरित्र-वैचित्र्य दिखला सकता है; पात्रों के जीवन में क्रमागत परिवर्तन दिखाकर चरित्र-विकास के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत कर

* Encyclopædia Britannica. के नवीनतम संस्करण 'Epic'-शीर्षक लेख।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकता है और सारे व्यापारों को इच्छानुसार संचालित करके निश्चित उद्देश्य तक पहुँचा सकता है। महाकाव्यकार को यह स्वतंत्रता नहीं है। वह अपनी वस्तु और पात्रों का विधाता नहीं होता। अपनी रचना के लिए वह या तो किसी पौराणिक या ऐतिहासिक आख्यान को चुनता है, या किसी ऐसी कहानी को, जो बहुत समय से जन-समाज में प्रचलित होकर पौराणिक रूप धारण कर चुकी हो। † दोनों अवस्थाओं में प्रायः सभी पात्र, उनके जीवन की घटनाएँ और उद्देश्य तथा चरित्र-विकास दिखाने के सभी अवसर पहले ही से स्थिर रहते हैं। ऐसी अवस्था में कथावस्तु लेकर महाकाव्यकार इधर-उधर कहीं थोड़े-से परिवर्तन भले ही कर ले और इतिवृत्तात्मक कहानी में रसात्मकता ले आये, पर बहुत सीमा तक कहानी का स्वरूप वही रहेगा; उसकी रूप-रेखाओं और उद्देश्य में कोई अन्तर न आने पावेगा।

उपन्यासकार को नूतनता की सृष्टि करने की जितनी स्वतंत्रता होती है, उतनी महाकाव्यकार को नहीं। यही कारण है कि हम नित्य जिन नये-नये उपन्यासों का प्रकाशन देखते हैं, उनकी कथावस्तु, पात्र, व्यापार, देश-काल और उद्देश्य में बहुत कम साम्य पाया जाता है। पर एक ही पौराणिक-ऐतिहासिक वृत्त को लेकर जिन महाकाव्यों की रचना होती है, उनकी कथावस्तु आदि में बहुत कम अन्तर दिखाई देता है।

इस दृष्टि से महाकाव्यकार का कार्य उपन्यासकार के कार्य से बहुत कठिन होता है। उसके लिए सारा ढाँचा प्रस्तुत रहता है और उसी पर उसे प्राण-प्रतिष्ठा करनी होती है। कल्पना-क्षेत्र का रचयिता होने से उपन्यासकार को विभिन्नता, विशेषता या नूतनता लाने में पूरी-पूरी सफलता मिल सकती है; पर महाकाव्यकार को उस मार्ग पर चलना होता है, जिस पर पहले के कवि चल चुके हैं, और ऐसा करते हुए भी अपने काव्य में कुछ न कुछ विशेषता लाने की ओर प्रयत्नशील रहना पड़ता है। वह न तो बोतल बदल सकता है और न मदिरा। उसका कार्य तो इतना ही है कि मदिरा को बोतल में इस प्रकार भरे कि वह पूरी तरह समा जाय और उसमें अब कुछ विशेषता-सी दिखाई देने लगे।

उपन्यास वर्तमान युग की वस्तु नहीं तो कम से कम वर्तमान युग के अनुकूल अवश्य है। परिस्थिति की अस्थिरताओं से चंचल होकर मनुष्य जितनी उत्सुकता से एक ओर ज्योतिषियों, भविष्य-वक्ताओं आदि के सम्मुख जन्मपत्री रखता या हथेली पसारता है, उतनी ही व्यग्रता से दूसरी ओर उपन्यास-कथा-कहानियों को पढ़ जाना चाहता है। जिन वस्तुओं या लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए हम जीवन भर तपड़ते ही रह जाते हैं, उन्हीं को प्राप्त करते हुए जब हम कल्पलोक के निवासियों को देखते हैं तो हमें एक प्रकार का वेदनापूर्ण सन्तोष हुआ करता है। * अस्तु, ज्यों-ज्यों वर्तमान परिस्थिति अधिकाधिक उग्र रूप धारण करती जायगी, त्यों-त्यों उपन्यास, कथा-कहानियों और चित्रपटों का अधिकाधिक प्रचार होगा।

महाकाव्य के विषय में सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि वह वर्तमान की वस्तु नहीं, वरन् भूत का अनुकरण है। † गत कई वर्षों से हिन्दी, बँगला, गुजराती आदि वर्तमान भाषाओं में किसी अच्छे महाकाव्य की रचना न होना इसका एक प्रमाण है। दूसरा प्रमाण यह है कि कवि लोग धीरे-धीरे उन रूढ़ियों और नियमों की अवहेलना करते जा रहे हैं, जिन्हें सभी देशों और भाषाओं के कवि चिरकाल से पालते और मान्य समझते आये हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभ से उन रूढ़ियों और नियमों का विरोध आरंभ होने लगा था और अब उनका पालन 'अन्धविश्वास और मूर्खता' में गिना जाने लगा है। वैज्ञानिक युग में प्रायः सभी बन्धन ढीले होने लगते हैं। पर धर्म और कविता का

† "इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्जनाश्रयम्"—साहित्यदर्पण, परि० ६, श्लोक ३१८। इस सम्बन्ध में अग्निपुराण, अध्याय ३३७ और भामहः, परिच्छेद १ भी द्रष्टव्य हैं।

* 'पुष्पपात्र' (बँगला) पत्र के वैशाख १३३९ के अंक में प्रकाशित श्रीकालिदास राय का एक लेख।

† Encyclopædia Britannica.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सौन्दर्य तो तभी तक रह सकता है, जब उनमें उन सब सिद्धान्तों को मान्य समझ लिया जाय, जिन्हें अब तक मान्य समझा गया है। भाषा और भाव दोनों प्रकार के सौन्दर्य और वैचित्र्य से पूर्ण 'मेघनाद-वध' से भी अधिक उच्च स्थान रामचरितमानस को इसी लिए दिया जाता है कि रूढ़ियों का पूरा-पूरा पालन करने से उसमें जो माधुर्य भर गया है, वह रूढ़ियों की बहुत कुछ अवहेलना करने से "मेघनाद-वध" को नसीब न हो सका। अपने समसामयिक कवियों से चासर इसी लिए उच्च हो सके हैं कि 'उनकी उन सब रूढ़ियों में बच्चे की-जैसी श्रद्धा थी, जिन्हें अन्य कवि छोड़ते चले जा रहे थे।' ‡

महाकाव्य और समाज

महाकाव्य राष्ट्रीय भावना से पूर्ण एक महान् काव्य होता है, जिसे सारा राष्ट्र या जाति सदा अपनी अमूल्य संपत्ति समझती है। हिन्दू-जीवन को वर्तमान रूप में ढालने का श्रेय श्रुति और उपनिषदों या स्मृति और शास्त्रों को उतना नहीं दिया जा सकता, जितना पुराण-काव्यों और महाकाव्यों को; क्योंकि पहले प्रकार के ग्रन्थों में 'आदर्श क्या होना चाहिए' केवल इसी का उल्लेख रहता है; पर दूसरे प्रकार के ग्रन्थों में यह दिखलाया जाता है कि उक्त आदर्श तक पहुँचने के लिए किसी व्यक्ति-विशेष ने क्या किया, यह भी रहना आवश्यक है। यही कारण है कि महाकाव्यों का प्रभाव स्थायी होता है और धार्मिक या सामाजिक सिद्धान्तों में परिवर्तन हो जाने पर भी उनके प्रति राष्ट्र या जाति की वही श्रद्धा बनी रहती है। ईसाई-जगत् ने प्राण-पण से यूनानी धर्म का बहिष्कार किया और अन्त में उसे निर्मूल बनाकर ही छोड़ा। पर होमर के यूनानी महाकाव्य की सारा ईसाई-योरप कितनी श्रद्धा-भक्ति से पूजा और अनुकरण करता आ रहा है, यह सभी जानते हैं। रामायण की रचना हो जाने के पीछे भारत में न-जाने कितने मत-मतान्तरों का प्रचार हुआ; पर आज तक कोई ऐसा काल नहीं आया, जब कि समाज पर से रामायण का प्रभाव कम हुआ हो। श्रुति-स्मृतियों की निन्दा करनेवाले बौद्धों और जैनों ने भी इधर-उधर थोड़ा-सा परिवर्तन करके रामायण की कहानी को अपना लिया। आज भी प्रत्येक भारतीय माता-पिता की आज्ञा के पालन के लिए राम का, भ्रातृप्रेम के लिए भरत और लक्ष्मण का और स्वामी-भक्ति के लिए हनुमान् का आदर्श अपने सम्मुख रखता है, चाहे वह अपनी दुर्बलताओं के कारण उन तक पहुँचने में असफल ही रहे। और कौन कह सकता है कि गत २५०० वर्षों के अन्तर्गत सहस्रों क्या, करोड़ों व्यक्ति ऐसे नहीं हुए, जो उक्त आदर्शों तक पहुँचने पर भी प्रसिद्धि प्राप्त न कर सके?

महाकाव्य का लक्ष्य

ऐसे स्थायी प्रभाव डालने में सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि महाकाव्य में किसी ऐसे उच्च आदर्श की सृष्टि की जाय, जो राष्ट्र या जाति को सदा पथ-प्रदर्शन करता रहे। इसी विचार से आचार्यों ने कुछ ऐसे दृढ़ नियम बना दिये हैं, जिनका पालन करना आवश्यक माना गया है, और जिनके कारण महाकाव्य अपने लक्ष्य—अर्थ, धर्म, काम या मोक्ष का आदर्श स्थापित करने—में सफल हो सके।* राष्ट्रीय या जातीय स्वरूप युक्त होने के कारण महाकाव्य शीघ्र ही धार्मिक रूप धारण कर लेता है। आर्य-जाति के सबसे श्रेष्ठ दो महाकाव्य—रामायण और रामचरितमानस, पूरा-पूरा धार्मिक स्वरूप धारण कर चुके हैं। वास्तव में सौंदर्य-सृजन और बिम्ब-ग्रहण की दृष्टि से धर्म और कविता में कोई अन्तर नहीं होता। पर इससे यह न समझना चाहिए कि महाकाव्यों को धर्म-संहिताओं में गिना जा सकता है। धर्मग्रन्थ दण्ड-शैली का आश्रय लेते हैं; पर महाकाव्यों में काव्यशैली का प्रयोग होता है। परलोक में पाप-दण्ड का भय या

‡ Encyclopædia Britannica.
—नवीनतम संस्करण

* "चत्वारस्तस्य वर्गाः स्युस्तेष्वेकं च फलं भवेत्।"—साहित्यदर्पण परि० ६, श्लो० ३१८। मिलाइए—'धर्मार्थकाममोक्षेषु'—इत्यादि भामहः; 'इह शिष्टानुशिष्टानां'—दण्डी और 'काव्यं यशसे...'—मम्मट।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुण्य-फल का लोभ दिखाकर धर्मग्रन्थ उसी लक्ष्य तक पहुँचने का प्रयत्न करते हैं, जिस पर पहुँचने के लिए महाकाव्य एक आदर्श चित्र को चित्रित करते हैं।

महाकाव्य एक वर्णनात्मक प्रबन्धकाव्य है। अस्तु, उसके सम्बन्ध में विचार करने के लिए उन छः तत्वों—कथावस्तु, कार्य, पात्र, भावव्यंजना, देशकाल और शैली—पर ध्यान देना आवश्यक है, जो आलोचकों ने वर्णनात्मक प्रबन्धकाव्यों में माने हैं।

महाकाव्य की कथावस्तु

कथावस्तु का विचार आरम्भ करते ही सबसे प्रथम यह प्रश्न उठता है कि उसका मूलाधार क्या है? अर्थात् जिस कहानी को लेकर महाकाव्य की रचना की गई है, वह कहाँ से ली गई है? अपने आदिम या वास्तविक स्वरूप में वह कहानी कैसी थी? और महाकाव्य का विषय बनाने के लिए कवि को उसमें कुछ काट-छाँट या परिवर्तन करने की आवश्यकता तो नहीं पड़ी? यदि कवि ने कुछ काट-छाँट या परिवर्तन किया है तो उससे कहानी का स्वरूप कितना परिवर्तित हुआ है? ऐसा तो नहीं हुआ कि कहानी कुछ की कुछ हो गई हो? महाकाव्य के विषय में आचार्यों का कथन है कि उसकी कथावस्तु कल्पित नहीं होनी चाहिए। कल्पित कथावस्तु को लेकर जिस काव्य की रचना होगी, उसे कथा ही कहा जायगा, महाकाव्य नहीं। महाकाव्य की कथावस्तु ऐसी होनी चाहिए, जो बहुत समय से समाज में प्रचलित होकर उसके जीवन के साथ हिल-मिल गई हो। जाति की स्थायी सम्पत्ति होने और कालान्तर तक उसे प्रभावित करने में सफल होने के लिए यह आवश्यक है कि महाकाव्य के लिए ऐसी कहानी चुनी जाय, जो समाज का प्रेम और आदर प्राप्त कर सके। प्राचीन और प्रचलित कथाओं के लिए हमारे हृदय में वासनारूप में स्थित जो परम्परागत श्रद्धा का भाव होता है, वह किसी नई और कल्पित कथा को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी लिए आचार्यों ने यह नियम बनाया है कि महाकाव्य की कथावस्तु का ऐतिहासिक या पौराणिक आधार होना चाहिए। बहुत-सी कहानियाँ किसी पुराण में लिपिबद्ध न होने पर भी शतकों से समाज में प्रचलित होकर जनता का कंठहार बन चुकी हैं, और उन्हें पौराणिक स्वरूप मिल चुका है। इनमें भी कई कहानियाँ ऐसी निकल आयेंगी, जिन्हें महाकाव्य के लिए चुना जा सकता है।

पौराणिक आधार लेने से कवि का उत्तरदायित्व बहुत कुछ कम हो जाता है। कथावस्तु की रूप-रेखाएँ और ढाँचा पहले ही से निश्चित रहते हैं, इसलिए उसे अतिरंजित कल्पना आदि के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता, चाहे वस्तुतः वह उसकी कथावस्तु हो ही। हंस के द्वारा संदेश भेजने, पर्वत को शिर पर लादकर आकाश में उड़ने, समुद्र को लाँघ जाने आदि अतिरंजित कृत्यों को बहुत दिनों से विश्रुत और परिचित होने के कारण पौराणिक स्वरूप प्राप्त हो चुका है। इसलिए नल-दमयन्ती या सीता-राम के चरित्र को लेकर काव्य-रचना करनेवाले कवियों को ऐसे अतिरंजित कृत्यों की कल्पना के लिए दोषी नहीं ठहराया जाता। पर इस दृष्टि से महाकाव्यकार के लिए जितनी सरलता उत्पन्न होती है, उतनी ही कठिनता भी। उसे उन सब बातों से परिचित होना पड़ता है, जिनका वर्णन हम 'देश-काल' के सम्बन्ध में करेंगे।

महाकाव्य में जीवन की व्याख्या

किसी लोकप्रिय कहानी के चयन से ही कथावस्तु पूरी नहीं हो जाती। महाकाव्य की रचना के लिए यह आवश्यक है कि कथावस्तु का संचालन इस प्रकार किया जाय कि उसके द्वारा मानव-जीवन की पूरी-पूरी व्याख्या हो जाय। इसके लिए यह देखना आवश्यक होता है कि जीवन का एक पूर्ण चित्र उपस्थित करने के लिए किन-किन उपादानों का उपयोग किया गया है। दीन भिक्षुक से लेकर सम्राट् तक, घोर मूर्ख से लेकर उद्भट विद्वान् तक, बालक से लेकर वृद्ध तक, अशक्त क्षीणकाय से लेकर बली भीमसेन तक न जाने जीवन की कितनी सीढ़ियाँ और अवस्थाएँ हैं, जिनमें विभिन्नता ही विभिन्नता दिखलाई देती है। पर इन सबके अन्तर्गत सामान्य मनुष्यता का एक ही भाव छिपा रहता है, जो हमारे हृदयों में एक ही प्रकार की अभिलाषा या राग उत्पन्न करता है। संकट, रोग, दारिद्र्य और इष्टनाश आदि में सब एक ही प्रकार से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आँसू बहाते हैं और सुख, स्वास्थ्य, संपत्ति और इष्ट-साधन के अवसर पर सब एक ही प्रकार से प्रसन्न होते हैं। काव्य का उद्देश्य जीवन की नाना परिस्थितियों और उत्थान-पतन के बीच उत्पन्न होनेवाली सामान्य मनुष्यता के भावों का चित्रण करना है। जीवन की पूरी-पूरी व्याख्या करना साधारण कौशल का कार्य नहीं। कवि को प्रतिक्षण इस बात के लिए सचेष्ट रहना पड़ता है कि कहीं मानव-जीवन में सर्वदा व्याप्त रहनेवाले मूल-भावों की उपेक्षा न हो जाय और कुछ ऐसी तुच्छ बातों का समावेश न हो जाय, जो साधारण या अनावश्यक हों। अन्य काव्यों के लिए तो जीवन के अंशों को चुनने के लिए उतनी अधिक सतर्कता की आवश्यकता नहीं होती, पर महाकाव्य और नाटक के लिए उसी जीवन को चुना जा सकता है, जिसमें अधिक से अधिक परिस्थितियों को दिखाने और संघर्ष को चित्रित करने का अवसर मिल सके, * और सब रसों का वर्णन करने का अवसर मिले। †

इस बात की ओर संकेत करते हुए प्राचीन आचार्यों ने जीवन के प्रायः सभी प्रधान अंगों को गिनकर महाकाव्य में उनका वर्णन आवश्यक कर दिया है। देश-कालादि के वर्णन के अतिरिक्त विवाह या स्वयंवर, विप्रलम्भ और संयोग-शृंगार, पुत्रोदय, आखेट तथा रणप्रयाण और मन्त्रणा आदि का वर्णन प्रत्येक महाकाव्य में होना चाहिए। ‡ इसमें सन्देह नहीं कि इन वर्णनों को आवश्यक बनाने का तात्पर्य यही है कि महाकाव्य में जीवन का एक पूर्ण चित्र हो और उसमें किसी महत्त्वपूर्ण अंग का वर्णन छूटने न पावे। ध्यानपूर्वक देखने से पता चलेगा कि उपर्युक्त सभी विषय ऐसे हैं, जिन्हें मानव-जीवन में सबसे अधिक भावुक-स्थल कहा जा सकता है। इन स्थलों का वर्णन परिस्थिति के अनुसार जहाँ तक हो सके, सांगोपांग करना चाहिए। ×

प्रबन्धकल्पना

कथावस्तु के अन्तर्गत गिनी हुई इन सब बातों का वर्णन करते समय इस बात का ध्यान रखना आवश्यक है कि उन्हें उसी स्वाभाविक क्रम में रक्खा जाय, जिसमें उन्हें व्यक्ति के जीवन में पाया जाता है। मौलिकता लाने में प्रयत्नशील कुछ कवि प्रबन्ध की घटनाओं

---

* Car—"Epic and Romance.

† "अंगानि सर्वेऽपि रसाः"—साहित्य-दर्पण, परि० ६, श्लोक ३१७।

‡ संभोगविप्रलम्भौ.....। रणप्रयाणोपयममंत्र-पुत्रोदयादयः।"—साहित्यदर्पण—परि० ६, ३२३.

× "वर्णनीया यथायोगं सांगोपांगा अमी सह।"—साहित्यदर्पण—परि० ६, ३२४.

'विवाहे—स्नानशुभ्रांग भूषालूलुत्रयीरवाः। वेदी-सीमन्ततारेक्षा लाजामंगलवर्तनम्।"

"स्वयंम्बरे - शचीरक्षामंचमण्डपसज्जता। राजपुत्री नृपाकारान्वयचेष्टाप्रकाशनम्।"

"विरहे तापानि श्वासचिन्ता मौनं कृशांगता। अब्जशय्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्मता।"

"सुरापाने—विकलता स्खलनं वचने गतौ। लज्जा मानच्युतिः प्रेमाधिक्यं रक्तेक्षणभ्रमाः।"

"पुष्पावचये—पुष्पावचयः पुष्पार्पणार्थिने दयिते। मानः द्यं गोत्रस्खलनेर्ष्या वक्रोक्तिसंभ्रमाश्लेषाः।"

"जलकेलौ—सरः क्षोभश्चक्रहंसापसर्पणम्। पद्म-ग्लानिः पयःक्षेपो दृग्रागो भूषणच्युतिः।"

"सुरते—सात्त्विका भावाः सीत्कार कुड्मलाक्षता। काञ्चीकंकणमंजीररवोऽधरनखक्षते।"

"मृगयायां—स्वसंचारो वागुरा नीलवेषता। भट-ढक्कामृगत्रासः सिंहयुद्धं त्वरागतिः।"

"प्रयाणे—भेरिनिस्वानभूकम्पबलधूलयः। कर-मोक्षध्वजच्छत्रवर्णिकृच्छ्रकटवेशराः।"

"अश्वे—खरखुरोत्खातरजः स्वल्पक्षणस्थितिः। तेजोवेगित्वमौन्नत्यं जातिर्धारा प्रपञ्चनम्।"

"गजे—सहस्रयोधित्वमुच्चत्वं कर्णचापलम्। अरि-व्यूहविभेदित्वं कुम्भमुक्ता मदानिलः।"

"युद्धे—तुवर्मबलवीररजांसि तूर्यविश्वासनादश-रमण्डपरक्तनद्यः। छिन्नातपत्ररथचामरकेतुकुम्भि-मुक्तासुरीवृतभटामरपुष्पवर्षाः।" इत्यादि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को अपने स्वाभाविक क्रम में न रखकर इधर-उधर बखेर देते हैं। वे कभी मध्यभाग को आरम्भ में रख देते हैं और आरम्भिक अंश को मध्य में। कुछ अंशों का वर्णन प्रबन्धकाव्य की वर्णनात्मक शैली से करते हैं और कुछ अंशों को सुनाने के लिए दूत या पथिक आदि को रंगमंच पर लाते हैं। जहाँ कुछ वश नहीं चलता, वहाँ स्वप्न, छाया-दर्शन, भविष्यवाणी या देव-संकेतों के द्वारा अथवा किसी महामुनि के प्रभाव से व्योमचित्र की कल्पना करते हैं। उसी कहानी को नये ढंग से कहने का यह रोग पहलेपहल योरप से बँगला में आया और बँगला से हिन्दी में। कुछ लोग माइकेल-मधुसूदन को बँगला में इस रोग को फैलाने का दोषी ठहराते हैं; पर वास्तव में माइकेल के 'मेघनादवध' में उतनी असम्बद्धताएँ नहीं हैं, जितनी उनकी नक़ल करनेवाले हिन्दी-कवियों के काव्यों में पाई जा रही हैं। कवियों को महाकवि बनने की सनक सवार है। वे इधर-उधर की पचासों असम्बद्ध बातें भी अपने काव्य में इसलिए ठूँस देना चाहते हैं कि उनका पोथा महा-काव्य बन ही जाय। काव्यक्षेत्र में 'भार-बाँधकर मेरे बैल के पाँच रुपये' की धींगाधींगी ठीक नहीं। मौलि-कता के लिए यह आवश्यक नहीं कि टाँगें काटकर सिर पर लाद दी जायँ, या टोपी पाँवों में पहन ली जाय। अन्य काव्यों में भले ही इस शैली को स्थान मिल जाय, पर महाकाव्य एक वर्णनात्मक प्रबन्धकाव्य है। उसमें इसके लिए स्थान नहीं। प्रबन्धकाव्यों की दृष्टि पूरे प्रबन्ध पर होती है, उसके अंश विशेष पर नहीं। प्रबन्धकाव्य जीवन का एक पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है। स्वेच्छानुसार उसके टुकड़े-टुकड़े कर उन्हें फिर नये रूप में नहीं गूँथ सकता।

इतिवृत्त और रसात्मक स्थल

कथावस्तु को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) इतिवृत्त और (२) रसात्मक स्थल। प्रायः सभी वर्णनात्मक काव्यों का अधिकांश इतिवृत्त-मात्र होता है। इतिवृत्त के साथ-साथ जब बीच-बीच में रसात्मक स्थल आते हैं, तभी रचना को काव्य का स्वरूप मिलता है। विना रसात्मक स्थलों के योग के केवल इतिवृत्त का निर्वाह करने-मात्र से काव्य-रचना नहीं हो सकती। * गुलबकावली, बैताल-पचीसी, हातिमताई आदि की कहानियाँ इतिवृत्तमात्र हैं, उन्हें काव्य नहीं कहा जा सकता। इन कहानियों से पाठक या श्रोता का मनोरंजन तो होता है, पर उनमें रसो-द्बोधन की शक्ति नहीं होती। रसात्मक प्रसंगों में हृदय लीन होता है; इतिवृत्त से जिज्ञासा बढ़ती है, कौतूहल उत्पन्न होता है, पर हृदय मग्न नहीं होता। रसात्मक उक्ति को सुनकर श्रोता फिर सुनाने की प्रार्थना करेगा, पर इतिवृत्तात्मक कहानी सुनते हुए श्रोता बार-बार पूछेगा फिर क्या हुआ? फिर क्या हुआ? आख्यो-पन्यास की कहानियाँ जब तक पूरी न हो गईं, बादशाह को चैन नहीं हुआ। इधर सूरदास के एक-एक गीत को वल्लभाचार्य जब तक पचीस बार न सुन लेते, तब तक आगे बढ़ने से इनकार कर देते थे। इन किम्वदन्तियों में यदि तथ्य की मात्रा अधिक न भी हो तो भी इतना स्पष्ट है कि काव्य में श्रोता का हृदय रमता है, लीन हो जाता है, पर इतिवृत्त पर श्रोता का हृदय थोड़ी देर के लिए भी नहीं लगता, वह आगे की बात जानने के लिए उत्सुक रहता है।

प्रबन्धकाव्य में इतिवृत्त का निर्वाह इस प्रकार होना चाहिए कि उसके बीच-बीच में हृदय को उन विभिन्न भावों में रमानेवाली दशाएँ पड़ जायँ, जो सामान्य रूप से प्रत्येक मनुष्य के हृदय में स्थिर रहते हैं। सच्चा कवि वही है, जो ऐसे भावुक स्थलों को पहचानता है। तुलसी की भावुकता और केशव की 'हृदय-शून्यता' पर बहुत स्याही का अपव्यय किया जा चुका है †। इस विषय में अधिक कहने की आवश्यकता नहीं। इन भावुक स्थलों पर कुछ देर रुककर, कहानी के प्रवाह को कुछ विराम देकर रसात्मकता लाई जाती है। इसमें सन्देह नहीं कि यदि इन स्थलों को छोड़ भी दिया जाय तो भी वृत्त खण्डित नहीं हो सकता।

---

* यदि कवेरतिवृत्तनिर्वाहमात्रेणात्मपदलाभः—ध्वनिकार।

† ना० प्र० प० में डा० बड़थ्वाल का 'महाकवि केशवदास' लेख; पं० रामचन्द्र शुक्ल का गोस्वामी तुलसीदास आदि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर ऐसा करने से काव्य का माधुर्य नहीं आ सकता। जब तक घटना-शृंखला के बीच-बीच में श्रोता या पाठक के हृदय में वासनारूप में स्थित भावों को जाग्रत् करने में समर्थ वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्बग्राही चित्रण न होगा, तब तक कहानी में रसात्मकता न आवेगी।

रसात्मकता लाने के लिए कवि को कहीं तो घटना का संकोच करना पड़ता है और कहीं विस्तार। घटना-संकोचवाले स्थलों का न तो विवरण देकर बिम्ब-ग्रहण कराया जाता है, और न उनमें पात्रों के हृदयस्थ भावों की व्यंजना की जाती है। वे इतिवृत्त-मात्र होते हैं। मुक्तक के क्षेत्र में इतिवृत्त के लिए कोई स्थान नहीं, पर प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत इतिवृत्त एक मुख्य विशेषता रखता है। कुछ देर तक इतिवृत्त का निर्वाह करके जब रसात्मक स्थल लाये जाते हैं तो उनका महत्त्व और भी बढ़ जाता है। इतिवृत्त का वर्णन श्रोता के हृदय को धीरे-धीरे उन भावुक परिस्थितियों के लिए प्रस्तुत करता है, जिनमें वह पात्र के हृदय की अवस्था का अनुमान अपनी सहृदयता के अनुसार कर सकता है। ऐसे अवसर पर यदि पात्र के भाव या व्यापार परिस्थिति के अनुकूल हुए तो थोड़े ही शब्दों या संकेत-मात्र से भी पूरी व्यंजना हो जाती है। पर यदि भाव या व्यापार परिस्थिति के अनुकूल न हुए तो विभाव-अनुभाव-संचारी आदि रस-उत्पादक बहुल सामग्री का ढेर भी व्यर्थ होता है। मुक्तक में तो रस-उत्पादक सामग्री का योग ही पर्याप्त समझ लिया जाता है, पर प्रबन्धकाव्य में परिस्थिति का भी ध्यान रखना पड़ता है। पात्र की परिस्थिति का वर्णन ही सहृदय श्रोता के हृदय में रस का संचार कर देता है और जब पात्र भी उन्हीं भावों को व्यंजना करने लगता है, जो परिस्थिति के कारण श्रोता के हृदय में जाग्रत् हो रहे हैं तो रस की गहरी अनुभूति होती है। सागर से घिरी हुई शत्रु-नगरी के बीच स्त्री से वियुक्त राम के सम्मुख शत्रु ने उनके भाई लक्ष्मण को मार डाला, यह इतिवृत्त सहृदय पाठक के हृदय को उस शोक के अनुभव के लिए प्रस्तुत करता है, जिसकी व्यंजना राम अपने विलाप में करते हैं।

पर यह आवश्यक नहीं कि यह व्यंजना केवल शब्दों से ही हो। केवल भंगिमा या व्यापार के द्वारा भी गहरे भावों की व्यंजना हो सकती है। अपने प्यारे बच्चे के छीने जाने पर पीछे-पीछे आनेवाली हरिणी के अश्रु-सिक्त नेत्रों में सुबुक्तगीन ने करुणा-भिक्षा की इतनी गहरी व्यंजना देखी कि उसका हृदय पिघल गया और उसने बच्चे को छोड़ दिया। दृश्य-काव्य के अन्तर्गत इसी लिए भावभंगिमा या व्यापारों को इतना महत्त्व दिया गया है।

जिन भंगियों या व्यापारों को दृश्य-काव्य का पात्र अभिनय द्वारा दिखलाता है, वे इतिवृत्त की कोटि में ही गिने जायँगे। प्रबन्धकार स्वयं पात्र की उन भंगियों या व्यापारों का वर्णन करके रसात्मक स्थल तक ले जायगा। इस प्रकार उन व्यापारों के वर्णन (इतिवृत्त) में भी रसवत्ता आ जायगी। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर विश्वनाथ कविराज ने कहा है कि प्रबन्ध के रस से नीरस पद्यों में भी रसवत्ता मानी जाती है।*

प्रबन्धकल्पना और उद्देश्य

प्रबन्धकल्पना पर विचार करते समय इस बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है कि कवि घटनाओं के ऊपर कितना शासन रखना चाहता है। क्या वह उनका संचालन स्वाभाविक रीति से करके छोड़ देना चाहता है, या उन सबको किसी निश्चित आदर्श परिणाम तक ले जाकर रोकना चाहता है? यदि कवि पहले से ही अपना उद्देश्य सत्-असत् का परिणाम दिखाकर उपदेश देना बनावेगा तो वह प्रत्येक पात्र को अन्त में उस अवस्था में दिखलावेगा, जो उसे न्याय-नीति की दृष्टि से उचित जँचती है। इस प्रकार के नपे-तुले परिणाम काव्य-कला की दृष्टि से कृत्रिम दिखाई देते हैं। मुद्राराक्षस में वे सारी घटनाएँ, जो एक-एक करके सभी चाणक्य के पहले ही से सोचे हुए परिणाम के अनुसार होती हैं, वे चाणक्य की विचक्षणता का परिचय देनेवाली भले ही मान ली जायँ, पर उनकी अस्वाभाविकता खटके बिना नहीं रह सकती।

* "रसवत्पद्यान्तर्गतनीरसपदानामिव पद्यरसेन, प्रबन्धरसेनैव तेषां रसावत्ताङ्गीकारात्।"
—साहित्यदर्पण, परि० १

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाकाव्य में सम्बन्ध-निर्वाह

महाकाव्य में प्रबन्ध-कल्पना का जो महत्त्व है, वही सम्बन्ध-निर्वाह का भी है। प्रबन्धकाव्यों में—जैसा कि उनके नाम से ही प्रकट होता है—घटनाओं का क्रम इस प्रकार होना चाहिए कि एक प्रसंग से दूसरे प्रसंग की शृंखला बराबर जुड़ी हुई रहे। कहानी का प्रवाह अखण्ड रूप से चलता रहे और कहीं ऐसा न जान पड़े कि घटनाएँ आपस में सम्बन्धित नहीं हैं, उन सबमें अन्योन्याश्रित भाव नहीं है। वे ऐसी उखड़ी-सी न दिखाई दें, जैसी रामचन्द्रिका में दिखाई देती हैं, जो अभिनय के लिए चुने हुए पद्यों का संग्रहमात्र-सी जान पड़ती हैं। मुक्तक के क्षेत्र में अप्रासंगिकता का दोष नहीं होता; पर प्रबन्धकाव्य में तनिक-सी त्रुटि भी बहुत खटकती हैं। इसलिए प्रबन्धकार को प्रतिक्षण सचेष्ट होकर अप्रासंगिकता को हटाना पड़ता है।

आधिकारिक और प्रासंगिक कथानक

महाकाव्य की कथावस्तु प्रायः सम्मिश्र या संश्लिष्ट हुआ करती है। उसमें मुख्य कथानक के अतिरिक्त उन कई गौण कथानकों को भी स्थान दिया जाता है, जो मुख्य कथानक के अंग होते हैं और जिनके बिना मुख्य कथानक अपने लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकता। इन गौण कथानकों को उन कथानकों से भिन्न समझना चाहिए, जो बृहत्कथा, अलिफ़लैला या पंचतंत्र आदि में मुख्य कथानक के अन्दर घुसेड़ दिये गये हैं। ये कथाएँ मुख्य कथानक का कलेवर चाहे जितना बढ़ा लें, उसका अंग नहीं मानी जा सकतीं। इन्हें इच्छानुसार मुख्य कथानक से अलग कर देने पर भी मुख्य कथानक में कोई अन्तर नहीं आ सकता। पर महाकाव्यों के अन्तर्गत जो गौण कथानक आते हैं, वे मुख्य कथानक के अंग होते हैं। जिस प्रकार देह से हाथ-पैर को अलग नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार मुख्य कथानक से वे भी अलग नहीं किये जा सकते। रामायण में मुख्य कथानक रामचन्द्र जी की जीवन-गाथा है, सुग्रीववाला कथानक गौण है। पर बिना सुग्रीव के कथानक के राम का कथानक पूर्ण हो ही नहीं सकता। मुख्य कथानक का कार्य रावणवध तभी सिद्ध होता है, जब गौण कथानक का नायक सुग्रीव सीता की खोज में सफल होता है।

साहित्यशास्त्र में मुख्य कथानक को 'आधिकारिक' कहते हैं और गौण को 'प्रासंगिक'। संबंध-निर्वाह पर विचार करते समय सबसे पहले यह देखना पड़ता है कि आधिकारिक वस्तु के साथ प्रासंगिक वस्तु का अंगांगी संबंध है या नहीं। यदि प्रासंगिक वस्तु की योजना आधिकारिक वस्तु की गति में किसी प्रकार की सहायता पहुँचाने के लिए हुई है, तब तो उसका होना आवश्यक कहा जा सकता है; अन्यथा नहीं। प्रासंगिक वस्तु गौण होने पर भी बहुत महत्त्व रखती है। वह आधिकारिक वस्तु की गति में सहायता तो पहुँचाती ही है, साथ ही बहुत सीमा तक उसका मार्ग भी निर्धारित करती है। बहुधा ऐसा होता है कि आधिकारिक कथावस्तु अपनी स्वाभाविक गति से अग्रसर होती रहती है। सहसा प्रासंगिक वस्तु का प्रवेश होता है। दोनों कुछ काल तक एक दूसरे से दूधपानी की तरह मिलकर एक साथ चलते हैं। पर साथ-साथ चलते समय प्रासंगिक वस्तु अपना कार्य चुपके-चुपके करती रहती है और कुछ समय के पीछे आधिकारिक कथावस्तु एक नवीन मार्ग की ओर मुड़ती दिखाई देती है। आधिकारिक कथावस्तु की गति में इतना परिवर्तन कर चुकने पर प्रासंगिक वस्तु का कार्य पूरा हो जाता है, उसकी फिर कोई आवश्यकता नहीं रहती। आधिकारिक वस्तु उसे वहीं छोड़कर उसके द्वारा निर्धारित मार्ग पर अग्रसर होती है।

रामचरितमानस में आधिकारिक कथानक का 'कार्य' रावणवध है, जो बिना सीता की प्राप्ति के पूरा नहीं हो सकता। इसलिए आधिकारिक कथानक का पहला लक्ष्य सीता-प्राप्ति होना चाहिए। बालकांड के मध्य तक इस ओर कोई प्रयत्न नहीं दिखाई देता। राजा दशरथ अपने चारों पुत्रों को देखकर हर्ष में मग्न हैं, सहसा विश्वामित्र आते हैं और प्रयत्न और हठ से राम-लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं। यहाँ राम-लक्ष्मण को अस्त्र-शिक्षा मिलती है और सुबाहु-ताड़का-वध में उसकी परीक्षा ली जाती है। सीता जनकपुर में हैं। जनकपुर तक पहुँचने और सीता प्राप्त करने तक मुख्य कथानक प्रासंगिक कथानक द्वारा निर्धारित मार्ग पर चलता रहता है; पर सीता की प्राप्ति होते ही फिर विश्वामित्र के प्रासंगिक कथानक की आवश्यकता नहीं रहती। अस्तु, हमें फिर विश्वा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मित्र नहीं दिखाई देते। इसी प्रकार एक के पीछे दूसरी प्रासंगिक कथावस्तुएँ आती-जाती रहती हैं। रामचरित-मानस में प्रासंगिक कथानकों की भरमार है।

महाकाव्य में प्रत्येक प्रासंगिक कथानक का कुछ न कुछ महत्व अवश्य होता है। बिना उसके आधिकारिक वस्तु का मार्ग पूरी तरह निरूपित नहीं हो सकता। जिन प्रासंगिक कथानकों से आधिकारिक वस्तु की गति में कुछ बाधा या सहायता नहीं पहुँचती, उन्हें महाकाव्य में स्थान नहीं दिया जा सकता, चाहे उनमें भावुकता कितनी ही हो। उर्मिला का विरह भावुक हृदय के लिए बहुत महत्वपूर्ण है; पर उसे भी वाल्मीकि या तुलसी-जैसे कविकुलगुरु अपने महाकाव्यों में इसी लिए स्थान न दे सके कि उसका आधिकारिक कथावस्तु की गति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

सारी राम-कथा में केवल अहल्या का आख्यान ऐसा है, जिसका राम के गुणों या शक्ति की अतिरंजितता दिखाने के अतिरिक्त अन्य कोई महत्व नहीं है। ऐसे प्रासंगिक कथानकों को निकाल देने पर भी आधिकारिक कथावस्तु की गति में कोई अन्तर नहीं आ सकता, पर तुलसीदासजी ने अत्यन्त सूक्ष्म सूत्र के द्वारा इस असंबद्ध कथानक को दूसरे संबद्ध प्रासंगिक कथानक से संयुक्त करके महान् काव्यकौशल का परिचय दिया है। केवट अहल्या के कथानक का आश्रय लेकर ही राम को नाव पर चढ़ाने के पूर्व उनके पाँव धोने का आग्रह करता है। इतना करने पर भी तुलसीदासजी रामचरितमानस में इस प्रसंग पर उतना अधिक मर्म-स्पर्शी चित्र न उतार सके, जितना कवितावली में। इसका कारण यही है कि महाकाव्य में किस कथानक को कितना स्थान देना चाहिए, इस बात को वे अच्छी तरह समझते थे।

महाकाव्यकार की दृष्टि केवल प्रासंगिक कथानक पर ही नहीं रह सकती। वह सारे काव्य के सिर से एड़ी तक दृष्टि डालकर उसके प्रत्येक अंग का महत्व देखता है और उसी के अनुसार उसे स्थान देता है। उसे प्रत्येक समय इस बात का ध्यान रहता है कि प्रासंगिक कथावस्तु को केवल आधिकारिक कथावस्तु की गति में सहायता करने के लिए लाया गया है। वह अंग है, अंगी नहीं। सुफल महाकाव्यकार कभी साढ़े तीन हाथ के महाकाव्य की एक हाथ लम्बी नाक नहीं बना सकता। किसी भी महाकाव्य में मेघदूत-जैसे लम्बे दूतकाव्य को नहीं घुसेड़ा जा सकता। यदि महाकाव्य में ऐसे असम्बद्ध प्रसंगों को स्थान दिया जा सकता तो जो कालिदास मेघदूत की कल्पना कर सकते थे, वे रघुवंश में भी बड़ी कुशलता से एक दूतकाव्य घुसेड़ सकते थे।

व्यक्तिप्रधान और घटनाप्रधान महाकाव्य

आधिकारिक कथावस्तु पर विचार करते समय सबसे पहले यह प्रश्न उठता है कि उसमें नायक के जीवन की—आदि से लेकर अन्त तक की—सभी बातों का समावेश होना चाहिए या नहीं। संस्कृत के महाकाव्यों पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि रघुवंश, बुद्धचरित विक्रमांक-देवचरित आदि में नायक के सारे जीवन का विवरण दिया गया है। इन काव्यों को व्यक्तिप्रधान कहा जा सकता है। इनमें और चरितकाव्यों में केवल इतना ही अन्तर होता है कि चरितकाव्यों में सत्य का—ऐतिहासिक सत्य का—पूर्णतया पालन किया जाता है; पर व्यक्तिप्रधान काव्यों में नायक के गौरव की रक्षा या वृद्धि के विचार से कुछ अतिरंजितता भी लाई जाती है।

दूसरे प्रकार के काव्य किरातार्जुनीय, शिशुपालवध, कुमारसंभव आदि हैं; जिन्हें घटना प्रधान कहा जा सकता है, जिनमें सारा वस्तु-विन्यास केवल उस अन्तिम घटना तक पहुँचने के लिए होता है।

यहाँ हम यह फिर भी कह देना चाहते हैं कि इन दोनों प्रकार के महाकाव्यों के वस्तु-विन्यास के विषय में सबसे मुख्य बात यह है कि उसे उसी स्वाभाविक क्रम में होना चाहिए, जिस रूप में वह जीवन में पाया जाता है।

घटनाप्रधान महाकाव्यों और दृश्यकाव्यों के स्वरूप में बहुत कुछ समानता हुआ करती है; क्योंकि दृश्य-काव्य भी घटनाप्रधान हुआ करता है। घटनाप्रधान महाकाव्यों और दृश्यकाव्यों का वस्तु-विन्यास एक-सा होता है। प्रत्येक घटनाप्रधान काव्य में—चाहे वह दृश्य हो या श्रव्य—सारी घटनाओं का संचालन एक मुख्य घटना तक पहुँचने के लिए होता है, जिसको

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साहित्यशास्त्र की भाषा में कार्य कहते हैं। रामचरित-मानस के अन्दर रावणवध 'कार्य' है और उस तक पहुँचने के लिए ही सारी घटनाओं की आयोजना हुई है।

घटनाप्रधान काव्यों में पूर्ण सम्बद्धता और एकता (Unity) हुआ करती है। उनके अन्तर्गत उन सब अप्रासंगिक वृत्तान्तों को स्थान नहीं दिया जा सकता, जो कार्य तक पहुँचने में किसी प्रकार की सहायता या बाधा उत्पन्न नहीं करते। इन साधनस्वरूप वृत्तों को स्थान देते समय इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि उनकी आवश्यकता किस स्थान पर और कितनी है। जिस समय उनकी आवश्यकता पड़ती है, बिना किसी पूर्व परिचय के उन्हें रंगमंच पर आने दिया जाता है, पर ज्यों ही उनका कार्य पूर्ण हो जाता है, त्यों ही उन्हें चले जाने दिया जाता है।

महाकाव्य में कार्य

प्रबन्ध-पटु कवि सर्वदा ऐसी घटनाओं को ही अपने काव्य में स्थान देते हैं, जिनका 'कार्य' से कोई न कोई निकट या दूर का संबंध होता है। ऐसी कोई घटना महाकाव्य के अन्दर नहीं आ सकती, जिसका 'कार्य' से कोई संबंध न हो। महाकाव्य के 'कार्य' का महत्त्व इसी से सिद्ध हो जाता है। उसी पर पहुँचने के लिए सारे व्यापारों का संचालन होता है। यहाँ यह कह देना आवश्यक है कि यदि किसी व्यक्ति के जीवन के व्यापार इधर-उधर बिखरे हुए हों और उनका आपस में कोई सम्बन्ध न होने के कारण उन्हें किसी सूत्र में बाँधा न जा सके, तो उसके जीवन को महाकाव्य का विषय नहीं बनाया जा सकता। श्रीकृष्ण के बालजीवन की घटनाओं का आपस में कोई एक वास्तविक संबंध नहीं है। उसमें किसी एक मुख्य 'कार्य' तक पहुँचानेवाली क्रमशृंखला नहीं है। यही कारण है, आज तक कृष्ण के बालजीवन पर महाकाव्य लिखने में कोई कवि सफल न हो सका, और न हो सकेगा। जिन तुकड़ों या अतुकड़ों ने महाकवि बनने के लोभ में इस विषय पर लेखनी उठाई, वे विराट्-काय काव्य लिखने पर भी महाकाव्य न लिख सके।

भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य की रचना का लक्ष्य एक उच्च और प्रभावपूर्ण आदर्श की स्थापना करना माना है। इसी लिए उन्होंने कहा है कि महाकाव्य का 'कार्य' बहुत महत्त्वपूर्ण होना चाहिए। इसी दृष्टि से महाकाव्य के नायक का धीरोदात्त होना आवश्यक माना गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे आचार्यों के मत में किसी महापुरुष के जीवन या जीवन की मुख्य घटना को लेकर ही महाकाव्य की रचना हो सकती है। किसी साधारण व्यक्ति के जीवन की साधारण-सी घटना को महाकाव्य का 'कार्य' नहीं बनाया जा सकता। योरप के प्राचीन आचार्य भी इसी सिद्धान्त को मानते थे। पर कूपर, वर्न्स और वड्स्वर्थ के प्रभाव से अँगरेज़ी समीक्षकों में अब यह सिद्धान्त मान्य हो गया है कि दृश्यकाव्य के लिए दीन जीवन भी उपयुक्त हो सकता है और साधारण विषयों को भी 'कार्य' बनाया जा सकता है। इसके विरोध में प्राचीन सिद्धान्त के पक्षपाती प्रसिद्ध काव्य-मर्मज्ञ मैथ्यू आरनाल्ड के शब्द ध्यान देने योग्य हैं। अपनी कविताओं की भूमिका में वे लिखते हैं—

'मैं यह नहीं कहता कि कवित्वशक्ति का विकास साधारण से साधारण कार्य के वर्णन में नहीं हो सकता या नहीं होता। पर खेद तो इस बात का है कि ऐसा करने में विषय से शक्ति और रोचकता प्राप्त करके अपनी प्रभविष्णुता द्विगुणित करने का अवसर मिलना तो दूर रहा, स्वयं कवि को ही अपनी कवित्वशक्ति से विषय में ज़बरदस्ती शक्ति और रोचकता भरनी पड़ती है।" *

पाश्चात्य आलोचना-जगत् में महाकाव्य का लक्ष्य, पात्र और विषय के संबंध में कोई निश्चित सिद्धान्त न होने के कारण आरनाल्ड को अपने मत को दृढ़तापूर्वक कहने का साहस न हो सका। पर भारत में, जहाँ शताब्दियों पूर्व महाकाव्य के सारे स्वरूप के विषय में निश्चित नियम निर्धारित हो चुके हैं, 'कार्य' के संबंध में प्राचीन नियमों का ही पालन होना चाहिए।

कुछ लोगों को यह भ्रम है कि पाश्चात्य आलोचकों ने "Epic" के सम्बन्ध में जिन सिद्धान्तों को निर्धारित किया है, वे सभी 'महाकाव्य' के सम्बन्ध में ठीक हो सकते हैं। इस भ्रम का कारण यह है कि वे अँगरेज़ी के "Epic" शब्द को 'महाकाव्य' का पर्यायवाची शब्द समझते हैं। पर वास्तव में "Epic" शब्द पुराणकाव्य

* Mathew Arnold.—Introduction to the Poems.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का पर्यायवाची है, महाकाव्य का नहीं। भारतीय महाकाव्यों और पुराणकाव्यों में बहुत अन्तर होता है। इस बात को पश्चात्य संस्कृत-विद्वानों ने भी स्वीकृत किया है। उन्होंने महाकाव्यों को "Court Epic" नाम दिया है और उनकी विशेषताओं को अच्छी तरह समझा है। †

महाकाव्य में 'कार्यान्वय'

घटनाओं का उचित विन्यास 'कार्यान्वय' कहलाता है। महाकाव्य के 'कार्यान्वय' के सम्बन्ध में यवनाचार्य का कहना है कि कथावस्तु को तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है—(१) 'आदि' (२) 'मध्य' और (३) 'अन्त'। इन तीनों भागों को स्फुट होना चाहिए। 'आदि' से आरम्भ होकर कथा का प्रवाह धीरे-धीरे 'मध्य' की ओर बढ़ना चाहिए। 'मध्य' में जाकर प्रवाह को कुछ ठहरा हुआ-सा दिखाई देना चाहिए। और फिर शीघ्र ही 'अन्त' की ओर मुड़ जाना चाहिए, जिसकी सीमा 'कार्य' होती है। रामचरितमानस की कथावस्तु में उपर्युक्त तीनों विभाग पूरी तरह स्पष्ट हैं। रामजन्म से लेकर धनुष-भंग होने तक को कथाप्रवाह का 'आदि' कहा जा सकता है। इस अंश की सारी घटनाएँ विवाह की ओर उन्मुख हैं। विवाह से लेकर राजतिलक के प्रयत्न तक को 'मध्य' के अन्तर्गत गिना जा सकता है। इसमें उत्सव और सुखभोग विरामस्वरूप हैं। 'अन्तिम' अंश का आरम्भ राम के वनवास से होता है और उस समय से सारी घटनाएँ रावण-वध की ओर उन्मुख हैं, जो कि रामचरितमानस में 'कार्य' है।

महाकाव्य में सन्धियाँ

आचार्यों का कहना है कि महाकाव्य में नाटक की सब सन्धियों का होना आवश्यक है *। यह एक ऐसी कसौटी है, जो ५ हाथ लम्बे समासवाले मन भर वज़नी विराट्काय पोथों को काव्य होने पर भी महाकाव्य की कोटि से निकाल बाहर करती है। महाकाव्य की प्रबन्धकल्पना और सम्बन्ध-निर्वाह की अन्तिम परीक्षा यही है। इस सिद्धान्त को ध्यान में रखकर हम कह सकते हैं कि खड़ी बोली में अभी तक कोई महाकाव्य नहीं लिखा गया, चाहे महाकवियों की संख्या दो दहाई से ऊपर पहुँच चुकी हो।

नाटक में पाँच संधियाँ होती हैं। (१) मुख-सन्धि, (२) प्रतिमुख-सन्धि, (३) गर्भ-सन्धि (४) अवमर्श या विमर्श-सन्धि और (५) निर्वहण-सन्धि। मुख-सन्धि के अन्दर काव्य का वह अंश आता है, जिसमें किसी सूक्ष्म 'बीज' को लेकर कथा आरम्भ करके धीरे-धीरे उसका विस्तार किया जाता है। इसमें 'फल' की ओर 'उत्सुकता' दिखाई देती है। प्रतिमुख-सन्धि में लक्ष्य और अलक्ष्य रीति से मुख-सन्धि में दिखलाये हुए बीज का उद्भेद होता है। उसमें प्रधान फल का साधक इतिवृत्त कभी गुप्त और कभी प्रकट होता है। फलप्राप्ति के लिए शीघ्रता से उद्योग किया जाता है। कथा अविच्छिन्न रहकर आगे बढ़ती है। प्रतिमुख-सन्धि में मुखसन्धि में आरम्भ व्यापार का कुछ सीमा तक विकास होता है। तीसरी सन्धि 'गर्भ-सन्धि' है, जिसमें दूसरी सन्धि में प्रकाशित बीज का बार-बार आविर्भाव-तिरोभाव और अन्वेषण होता रहता है। इसमें सफलता के साथ विफलता की आशंका भी बनी रहती है। प्रधान फल को सिद्ध करनेवाला प्रासंगिक वृत्तान्त रहता है, और प्रत्याशा अवस्था होती है। अवमर्श या विमर्श-सन्धि में बीज की तीसरी सन्धि की उपेक्षा और अधिक विस्तार होता है, पर उसके फलोन्मुख होने में शाप, क्रोध, विपत्ति या विलोभन के कारण बाधा उत्पन्न होती है। इसमें नियताप्ति अवस्था होती है। निर्वहण-सन्धि में चारो सन्धियों में विकसित वस्तु का प्रधान प्रयोजन की सिद्धि के लिए समाहार होता है। इसमें फलागम अवस्था होती है और कथावस्तु का उद्देश्य पूर्ण हो जाता है। †

† Kieth—History of Sanskrit Lit. ; Macdonell—India's Past.

* सर्वे नाटकसंधयः—साहित्य-दर्पण, परिच्छेद ६

† श्यामसुन्दरदास—रूपक-रहस्य। साहित्यदर्पण, नाट्यशास्त्र भी द्रष्टव्य हैं। इस विषय को विशेष रूप से स्पष्ट करने के लिए सन्धियों पर मैं एक लेख लिख रहा हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन सन्धियों के कई अंग, उपांग और सन्ध्यन्तर भी गिनाये गये हैं। महाकाव्य में सब सन्धियों का होना आवश्यक ठहराकर इस बात पर ज़ोर दिया गया है कि कथावस्तु के अंगों का विकास अनुपात से होना चाहिए। उसके सब अंगों के महत्त्व पर ध्यान दिया जाना चाहिए। प्रेमगाथा काव्यों का आधे से अधिक भाग केवल भूमिका या प्रथम सन्धि में ही व्यर्थ समाप्त हो जाता है। वीरगाथाओं में अंग और अंगी के अनुपात का ध्यान नहीं रक्खा जाता। प्रासंगिक कथानक आपस में अच्छी तरह सम्बद्ध नहीं रहते हैं। पुराणकाव्यों में भी सन्धियों का ध्यान नहीं रक्खा जाता। पर महाकाव्य की रचना बिना सन्धियों पर दृष्टि रक्खे नहीं हो सकती।

कार्यान्वय पर पाश्चात्य आलोचक

यहाँ पाश्चात्य साहित्य-शास्त्रियों के उन सिद्धान्तों का उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा, जो उन्होंने घटनाप्रधान महाकाव्य या दृश्यकाव्य के कार्यान्वय के विषय में निर्धारित किये हैं। उनका कहना है कि महाकाव्य और रूपक का मूलतत्त्व किसी न किसी प्रकार का संघर्ष होता है। वे बहुत-सी अवस्थाएँ, जिनमें होकर संघर्ष आगे बढ़ता है, कथावस्तु के विश्लेषण से स्पष्ट हो सकती हैं। सबसे प्रथम कोई आदिम व्यापार होता है, जो सारे संघर्ष का कारण होता है। प्रायः क्रोध, द्वेष, शोक आदि के भावों की तीव्रता के साथ इस संघर्ष का विकास और विस्तार होता है। संघर्ष बढ़ते-बढ़ते उस स्थान पर पहुँचता है, जिसे 'प्रवर्तक बिन्दु (Turning Point) कहते हैं। यहाँ संघर्ष करनेवाले एक दल या सिद्धान्त दूसरे से आगे बढ़ जाते हैं, जिसके फलस्वरूप धीरे-धीरे जय या पराजय होती है। अन्त में वस्तु का अन्तिम अंश आता है, जिसमें संघर्ष के अवश्यम्भावी फल या प्रभाव की प्राप्ति होती है। इन अवस्थाओं को प्रायः 'रूपक-रेखा' (Dramatic Line) के द्वारा इस प्रकार प्रदर्शित किया जाता है। *

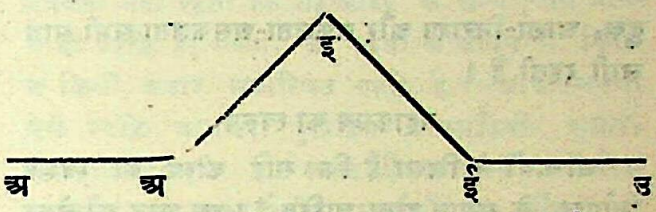

अ—आ—आरम्भिक घटना, जिसके संघर्ष का उत्पत्ति होती है।

आ—इ—संघर्ष का विकास और विस्तार।

इ—प्रवर्तक बिन्दु (Turning Point)।

इ—ई—धीरे-धीरे जय या पराजय।

ई—उ—अन्तिम अवस्था, जिसमें संघर्ष का अवश्यम्भावी फल प्राप्त होता है।

इस रेखाचित्र के द्वारा व्यापार-शृंखला की गति की सामान्य दिशा का ज्ञान हो सकता है। इसमें संघर्ष की उन अनेक दशाओं को नहीं दर्शाया गया है, जो उस अवस्था में उत्पन्न होती हैं, जब व्यापार-शृंखला की गति अनिश्चित रूप से रुक-रुककर आगे बढ़ती है। वह कभी तो अत्यन्त तीव्र हो जाती है और कभी अत्यन्त मन्द। उसमें कभी फलप्राप्ति की आशा होती है तो कभी निराशा छा जाती है। यह अवस्था प्रायः संघर्ष के विकास और विस्तार में (चित्र में आ—इ) पाई जाती है। प्रवर्तक बिन्दु के पीछे प्रायः ऐसी अनिश्चितता अधिक नहीं उत्पन्न होती, और व्यापार-शृंखला की गति में अधिक रुकावट नहीं होती। जिस व्यापार-शृंखला में बराबर सफलता पर सफलता मिलती जाती है, उससे दर्शकों के विभिन्न भावों को प्रायः बहुत कम उत्तेजना मिलती है। † सभी सफल कलाकार काव्य-रचना करते समय इस बात का ध्यान रखते हैं कि उस संकटमय काल से, जिसमें आशा और निराशा आती-जाती रहती हैं, निरन्तर सफलता के निश्चय की अवस्था की अपेक्षा बहुत अधिक भावोद्दीपन होता है। मुद्राराक्षस की अपेक्षा मृच्छकटिक को अधिक स्वाभाविक इसी लिए माना जाता है कि उसमें इस तथ्य का ध्यान रक्खा गया है कि जीवन में सुख-

* Entwistle—"A Study of Poetry" का Drama-शीर्षक अंश।

† मिलाइए—"Encyclopædia Britannica" में Drama, Tragedy और "Theory of Drama." लेख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुख, आशा-निराशा और सफलता-असफलता सभी साथ लगी रहती हैं।

महाकाव्य का स्वरूप

आचार्यों ने लिखा है कि सारे काव्य का स्वरूप 'गोपुच्छ' के समान होना चाहिए ‡। इस शब्द को लेकर नाना प्रकार की टीका-टिप्पणियाँ और खींच-तान की गई हैं। पर इसका सीधा-सादा भाव यह है कि काव्य को किसी सूक्ष्म आधार या 'बीज' से आरम्भ करके धीरे धीरे उसका विकास करना चाहिए। लगभग मध्य में पहुँचते-पहुँचते व्यापार बहुत विस्तृत हो जाते हैं। फिर कुछ समय तक व्यापारों का विस्तार एक ही रूप में रहता है। इसके पश्चात् धीरे-धीरे सारे व्यापार पूँछ या अन्त की ओर उन्मुख होते हैं और अन्त में 'कार्य' पर पहुँचते हैं। 'गोपुच्छ' के चित्र से यह स्पष्ट हो जायगा। यावनाचार्य का कार्यान्वय के सम्बन्ध में जो सिद्धान्त है, वह गोपुच्छ पर पूरी तरह घटता है। इस चित्र में पाँचों सन्धियों को भी देख सकते हैं और उनके विस्तार के अनुसार कथावस्तु के विकास का अनुमान लगा सकते हैं।

महाकाव्य के पात्र

'कथावस्तु' और 'कार्य' के अनन्तर 'पात्रों' और 'भाव-व्यञ्जना' पर दृष्टि जाती है। कथावस्तु में जिन व्यापारों या घटनाओं का वर्णन होता है, उनके सहन या सम्पादन करनेवाले पात्र ही होते हैं। काव्य की सफलता और महत्ता केवल कथावस्तु के उचित संचालन पर ही निर्भर नहीं होती। उसमें पात्रों और उनकी भाव-व्यञ्जना पर भी बहुत ध्यान देना आवश्यक होता है। बहुत-से क़िस्सों में घटनाओं के वैचित्र्य को इतना महत्त्व दिया जाता है कि पात्र उनके सम्मुख अपने महत्त्व को खो बैठते हैं। वे व्यापारों के सहन या सम्पादन करने वाले न रहकर उनके संयोजक का कार्य करते हैं। इन क़िस्सों से स्पष्ट हो जाता है कि लेखक की दृष्टि में घटना-वैचित्र्य ही मुख्य वस्तु है और उसी को प्रदर्शित करने के लिए उसने पात्रों की सृष्टि की है। ऐसे क़िस्सों के आधार पर महाकाव्य नहीं रचे जा सकते। महाकाव्य आदि सभी वर्णनात्मक काव्यों का उद्देश्य चरित्र-चित्रण होता है। अस्तु, उसके उपयुक्त वही कहानी हो सकती है, जिसमें घटना-वैचित्र्य की अपेक्षा पात्रों पर अधिक ध्यान दिया गया हो।

महाकाव्य अपनी कथावस्तु प्रायः पौराणिक आख्यानों से लिया करते हैं। इन आख्यानों में, जहाँ तक मानवीय सृष्टि का सम्बन्ध है, प्रायः सभी अवस्थाओं, विचारों और परिस्थितियों के मनुष्य कार्य करते दिखाई देते हैं। पर मनुष्यों के अतिरिक्त पशु-पक्षी, भूत-प्रेत, दैत्य-राक्षस और देवी-देवता सभी प्रकार के वास्तविक और कल्प-सृष्टि के जीव साथ-साथ संघर्ष में लग्न दिखाई देते हैं। हंस संदेश भेजते हैं, भालू-बन्दर युद्ध करते हैं, राक्षस मनुष्यों की स्त्रियाँ चुरा ले जाते हैं, अप्सराएँ मुनियों का तपोभंग करती हैं, नागकन्या मनुष्यों पर मुग्ध होती हैं, मछलियाँ मनुष्य के संसर्ग से गर्भ धारण करती हैं, दैत्य मनुष्यों पर राज्य करते हैं, देवता वेष बदलकर मनुष्यों की स्त्रियों से व्यभिचार करते हैं। मनुष्येतर सृष्टि के ये सब अतिरंजित कृत्य बहुत समय से समाज में प्रचलित होकर पौराणिक रूप धारण कर चुके हैं। अस्वाभाविक होने पर भी श्रोता इन्हें स्वाभाविक-सा ही समझने लगते हैं। मनुष्येतर सृष्टि का मनुष्य-सृष्टि के साथ-साथ वर्णन करने का आरम्भ सम्भवतः जन्म-मृत्यु-चक्र (Cycle of life and death) पर दृढ़ विश्वास होने से हुआ और धीरे-धीरे वह भारतीय साहित्य की एक प्रधान विशेषता हो गई।*

महाकाव्य का नायक

पात्रों में जो सबसे मुख्य होता है, जिसके वृत्त को लेकर आधिकारिक कथावस्तु का विकास होता है और प्रासंगिक कथावस्तु को जिसके चरित्र के विकास के लिए उपस्थित किया जाता है, उसे महाकाव्य का नायक कहते हैं। नायक के जीवन का विकास ही महाकाव्य में दिखलाया जाता है। 'बीज' से लेकर 'कार्य' तक जितनी घटनाएँ होती हैं, उनका नायक के

‡ धनञ्जय-दशरूप। मिलाइए बा० श्यामसुन्दर दास के रूपक-रहस्य में "गोपुच्छ" की व्याख्या।

* Macdonell—India's Past. Kieth—History of Sanskrit Literature.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवन से कुछ न कुछ संबंध होता है। नायक के जीवन को अधिक से अधिक विभिन्न परिस्थितियों में दिखलाने का प्रयत्न किया जाता है। भारतीय आचार्यों ने महाकाव्य का 'कार्य' कोई महत्त्वपूर्ण घटना माना है। इसी सिद्धान्त को दृष्टि में रखकर उन्होंने कहा है कि महाकाव्य का नायक या तो कोई देवता होता है या कोई आदर्श स्वभाववाला सद्वंशजात राजा †। किसी चोर, चाँई या प्रसिद्ध गुण्डे के अद्भुत कृत्यों को महाकाव्य में स्थान नहीं दिया जा सकता। भारतीय सभ्यता के अनुसार साहित्य का धर्म से बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। महाकाव्य को सारे राष्ट्र की सम्पत्ति बनाने के लिए देवता के पश्चात् यदि कोई अन्य महापुरुष उसका नायक बनाया जा सकता है तो केवल राजा। भारतीय सभ्यता के बीच राजा धर्मशक्ति-स्वरूप है, पारस और बाबुल के बादशाहों के समान केवल धन-बल और बाहुबल की पराकाष्ठामात्र नहीं। यहाँ राजा सेवक और सेना के होते हुए भी शरीर से अपने धर्म का पालन करता हुआ दिखाई पड़ता है। यदि प्रजा की पुकार संयोग से उसके कान में पड़ती है, तो वह आप ही रक्षा के लिए दौड़ता है; ज्ञानी महात्माओं को सामने देखकर सिंहासन छोड़कर खड़ा हो जाता है। प्रतिज्ञा के पालन के लिए शरीर पर अनेक कष्ट झेलता है, स्वदेश की रक्षा के लिए रण-क्षेत्र में सबसे आगे दिखाई पड़ता है, प्रजा के सुख-दुःख का साथी होता है, ईश्वरांश माना जाने पर भी मनुष्यांश नहीं छोड़ता। वह प्रजा के जीवन से दूर बैठा हुआ, उसमें किसी प्रकार का योग न देनेवाला खिलौना या पुतला नहीं है। प्रजा अपने सब प्रकार के उच्च भावों का, त्याग का, शील का, पराक्रम का, सहिष्णुता का, क्षमा का प्रतिबिंब उसमें देखती है।" *

महाकाव्य में अन्य पात्र

नायक को राजा मान लेने पर यह कहने की आवश्यकता नहीं रहती कि महाकाव्य के अन्य पात्र प्रायः वे ही व्यक्ति हो सकेंगे, जो राजा के जीवन से किसी न किसी प्रकार सम्बन्धित रहते हैं। साधारणतया ऐसे व्यक्ति आमात्य, पुरोहित, राजमहिषी, कुमार, सेनापति इत्यादि हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त सगोत्रीय या अन्यगोत्रीय राजाओं का जीवन भी किसी राजनीतिक अथवा घरेलू कारण से सम्बन्धित हो सकता है। पर सफल महाकवि ऐसे कथानक चुना करते हैं, जिनमें नायक रंगमहल की चारदीवारी के अन्दर घिरा हुआ भोगविलास में मग्न न रहकर विस्तृत मानव-जीवन में प्रवेश करता है और जीवन की नाना परिस्थितियों से संघर्ष करनेवाले मनुष्यों के साथ-साथ चलता है। यदि आधारस्वरूप पौराणिक आख्यान में मनुष्येतर सृष्टि के पात्र हुए तो उन्हें भी महाकाव्य में उचित स्थान देना पड़ेगा।

पर पात्र चाहे मनुष्य-सृष्टि हों या मनुष्येतर सृष्टि, उन्हें सर्वदा इस प्रकार दिखलाया जायगा कि वे नायक से छोटे ही प्रतीत हों, उनके चरित्र में ऐसी कोई विशेषता न आ जाय, जो उन्हें नायक से श्रेष्ठ दिखाने लगे। इन पात्रों के जीवन पर महाकवि की प्रधान दृष्टि नहीं रहती। उनके जीवन का केवल उतना ही अंश महाकाव्य में दिखलाया जाता है, जितना नायक के जीवन से सम्बन्धित होता है। इन पात्रों में एक अपनी ही विशेषता होती है, जो नायक के चरित्र को स्पष्ट करने में सहायक होती है। मन्थरा या शूर्पणखा के चरित्र को, बहुत कम होने पर भी, रामायण से निकाला नहीं जा सकता। ये दो ऐसे पात्र हैं, जो अत्यन्त नीच और तुच्छ होने पर भी रामायण में सबसे मुख्य घटनाओं का प्रवर्तन करते हैं।

महाकाव्य में किसी न किसी प्रकार का संघर्ष हुआ करता है। पात्रों के दो दल हुआ करते हैं, जो एक दूसरे के विरोधी होते हैं। विरोधी दल के प्रमुख पात्र को प्रतिनायक कहा जाता है। प्रायः उसका चरित्र भी नायक के चरित्र से कुछ निम्न-कोटि का दिखाया जाता है।

नायक के पक्ष के स्त्री-पात्रों में सबसे प्रधान नायिका होती है। प्रेमगाथा, वीरगाथा और महाकाव्यों में

† "तत्रैको नायकः सुरः। "सद्वंशक्षत्रियोवापि (धीरोदात्त गुणान्वितः)" साहित्यदर्पण. परि० ६, ३१५-१६ पृष्ठ

* पं० रामचन्द्र शुक्ल—गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ ४६–४७।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नायिका का जीवन बहुत अधिक महत्त्व रखता है। द्रोपदी और सीता के कारण ही महाभारत और रामायण की रचना हुई है। भारतीय महाकाव्यों में नायिका नायक की प्रेमिका या स्त्री के रूप में ही दिखाई देती है; पर पाश्चात्य महाकाव्यों में ऐसा कोई बन्धन नहीं देखा जाता। यूनान के आदि महाकाव्य ईलियड की नायिका हेलेन है; पर उसका नायक हेलेन का पति मेनेलोप नहीं माना जाता।

महाकाव्य में भाव-व्यंजना

पात्रों के स्वभाव का चित्रण करने के लिए भाव-व्यंजना का आश्रय लिया जाता है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, भावों की व्यंजना, व्यापार और कथोपकथन दोनों से हो सकती है। दृश्यकाव्य में भावव्यंजना के लिए कथोपकथन और अभिनय दोनों का प्रयोग होता है। यद्यपि दृश्यकाव्य का अधिकांश प्रश्नोत्तर या कथोपकथन ही होता है, पर उसके साथ-साथ जो अभिनय दिखलाया जाता है, उसका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं कहा जा सकता। इससे कहा जा सकता है कि दृश्यकाव्य में अपने चरित्र को स्पष्ट करने के लिए पात्र स्वयं कथोपकथन और अभिनय का लगभग समानरूप से ही व्यवहार करते हैं। पात्रों के भाव-व्यंजना करने के लिए सबसे अधिक स्वतन्त्रता और सरलता उपन्यासकार को होती है। वह पात्रों के व्यापार और कथोपकथन को अंकित करने के साथ उनके स्वगत भावों को भी व्यक्त कर सकता है और यथास्थान अपनी ओर से टीका-टिप्पणी करके उसे और अधिक स्पष्ट कर सकता है। प्रबन्धकाव्य में पात्रों के भावों की व्यंजना अधिकतर कर्म या व्यापारों से ही होती है। यद्यपि कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत कथोपकथन भी दिया जा सकता है, पर उसमें न तो 'स्वगत' भावों (जिन्हें पात्र गुप्त रखना चाहता है) को स्थान दिया जा सकता है और न उपन्यासकार की भाँति मनोवैज्ञानिक विश्लेषण दिया जा सकता है। महाकाव्यकार पात्र के व्यापारों का वर्णन और उसके कथोपकथन बिना किसी टीका-टिप्पणी के श्रोता या पाठक के सम्मुख रख देता है, और उन्हें स्वयं ही पात्र के विषय में अपनी सम्मति निश्चित करनी होती है।

महाकाव्यकार एक ओर तो घटनाओं और व्यापारों का वर्णन करके पात्र के जीवन को नाना प्रकार की परिस्थितियों के बीच दिखाता हुआ उसके स्वभाव की कसौटी उपस्थित करता है, और दूसरी ओर उन भावों को अंकित करता है, जिन्हें उक्त नाना परिस्थितियों में पड़कर पात्र शब्दों द्वारा व्यक्त करता है। ऐसा करते समय कवि विभिन्न भावों और गूढ़ मानसिक विचारों को व्यक्त करने के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखता है कि किस भाव को कितने उत्कर्ष तक पहुँचाना चाहिए। विभिन्न भावों और गूढ़ मानसिक विचारों को दिखलाने के लिए यह आवश्यक है कि कवि की अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि हो और वह विभिन्न परिस्थितियों के बीच उत्पन्न होनेवाली मानसिक अवस्थाओं का विश्लेषण कर सके। भावों का उत्कर्ष दिखाने के लिए ज़बरदस्ती विभाव-अनुभाव आदि को ठूँसकर रस की पूरी क़वायद दिखलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रबन्ध में रसोद्दीपन बहुत कुछ प्रसंग पर निर्भर होता है और साधारण संकेतों से भावों का उत्कर्ष दिखलाया जा सकता है। प्रबन्धकार की भावुकता को देखने के लिए सबसे अच्छा अवसर आख्यान के अन्तर्गत आनेवाले मर्मस्पर्शी स्थलों को पहिचानने में है। भावुक कवि की दृष्टि उसी व्यापार पर जाती है, जो अन्य बहुत-से व्यापारों में सबसे अधिक प्राकृतिक होता है, और इसी लिए हृदय को सबसे अधिक स्पर्श करता है। इस मर्मस्पर्शी स्थल पर यदि कवि उचित रूप से भावों का उत्कर्ष दिखा सका तो सारे इतिवृत्त में रसात्मकता आ जाती है।

महाकाव्य में कथोपकथन

पात्र जिन शब्दों के द्वारा अपने भावों को व्यक्त करते हैं, उन्हें 'कथोपकथन' के अन्तर्गत गिना जाता है। कथोपथन का उचित प्रयोग काव्य को बहुत आकर्षक बना देता है। इसके द्वारा पात्रों के आन्तरिक भावों का पता तो चलता ही है, साथ ही इसके द्वारा श्रव्यकाव्य में भी दृश्यकाव्य की रोचकता, सजीवता और वास्तविकता आ जाती है। कुछ काल तक वर्णन करने के उपरान्त जब पात्र स्वयं रंगमंच पर आकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वार्तालाप करने लगते हैं तो कवि और श्रोता या पाठक को एक प्रकार का विश्राम प्राप्त होता है। इस कार्य में सबसे निपुण यूनानी महाकवि होमर हैं। उनका काव्य इतना सुन्दर बना है कि उसमें दृश्य और श्रव्य दोनों काव्यों का आनन्द आने लगता है।

कथोपकथनों के विषय में इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि उनका प्रयोग केवल उसी समय होता है, जब पात्र के भावों को उसी के शब्दों द्वारा व्यक्त करने की आवश्यकता पड़ती है। कभी-कभी अपनी विद्वत्ता या जानकारी दिखलाने के लिए कवि लोग ऐसे लम्बे-चौड़े दास्तान छेड़ बैठते हैं, जो पात्र के प्रस्तुत भावों से सर्वदा असम्बद्ध हुआ करते हैं। यद्यपि ये दास्तान किसी न किसी पात्र के मुँह से कहलाये जाते हैं तो भी इन्हें कथोपकथन नहीं कहा जा सकता। विवाह के समय बाजा न बजने पर जायसी ने जो लम्बा-चौड़ा वार्तालाप दिया है, उसे चरित्र-चित्रण की दृष्टि से कथोपकथन नहीं कह सकते। इसी प्रकार जायसी ने यात्रा-विचार के सम्बन्ध में जो ज्योतिष के सिद्धान्त दिये हैं और तुलसीदासजी ने स्थान-स्थान पर जिन लम्बे-चौड़े दार्शनिक प्रसंगों को छेड़ा है, वे भी महाकाव्य में स्थान नहीं पा सकते।

जब दार्शनिक, धार्मिक या नैतिक विचारों को चरित्र-चित्रण की दृष्टि से पात्रों द्वारा कहलाया जाता है तो उनका स्वरूप सिद्धान्तों का-सा नहीं रहता। वे पात्र के अन्तःकरण की कुंजी के रूप में होते हैं और उसके चरित्र का वास्तविक स्वरूप दिखलाते हैं।* ऐसी उक्तियों को अवश्य कथोपकथन के अन्तर्गत गिना जायगा। बालि के प्रश्न पर राम का यह उत्तर—

"अनुज-वधू, भगिनी, सुत-नारी;
सुनु शठ, ये कन्या-सम चारी।
इन्हैं कुदृष्टि बिलोकै जोई;
ताहि बधे कछु पाप न होई।"

कथोपकथन के अन्तर्गत आवेगा; क्योंकि अपने इसी दृढ़ नैतिक या धार्मिक विश्वास पर राम ने बालि का वध किया है। किन्तु जब ऐसी उक्तियों का लक्ष्य किसी सिद्धान्त का प्रचार करना होता है तो उन्हें कथोपकथन के अन्तर्गत नहीं गिना जा सकता।

कथोपकथन मात्रा का परिस्थिति पर निर्भर होनी चाहिए। बुद्ध भगवान् पूर्वजन्म में एक ब्राह्मण थे। एक बार एक भूखी बाघिन को मरणासन्न देखकर उन्हें बड़ी दया आई और उसको अपनी देह समर्पित करने के लिए वे उसके निकट आ गये।

"उतरि करारे सों बाघिन ढिग पहुँचे जाई।
बोले—'ले यह मातु! मांस तेरे हित आयो।'
भूखी बाघिन झपटि तिन्हैं तहँ तुरत गिरायो।"

यदि यहाँ 'ले यह मातु! मांस तेरे हित आयो।' से अधिक कथोपकथन दिया जाता तो परिस्थिति के अनुकूल न होता। भूखी बाघिन अपने सम्मुख भक्ष्य को देखकर भी लम्बे-चौड़े कथन को न सुनती रहती।

महाकाव्य में चरित्र-चित्रण

सम्पादित व्यापारों के वर्णन और कथोपकथन के द्वारा जो चरित्र-चित्रण किया जाता है, उसे हम तीन रूपों में पाते हैं—पहला वह, जिसमें आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए पात्र के चरित्र की गौरव-रक्षा का ध्यान रखते हुए कुछ अतिरंजन लाया जाता है। आदर्श रूप के अन्तर्गत अच्छी और बुरी दोनों प्रकार की मनोवृत्तियों का उत्कर्ष आ सकता है। पर दोनों अवस्थाओं में उत्कर्ष चरम सीमा तक दिखलाया जाता है। राम और रावण दोनों आदर्श-चरित्र हैं; एक सात्त्विक वृत्ति और दूसरा तामसी वृत्ति का। दूसरे प्रकार का चरित्र-चित्रण वह है, जिसमें हमें पात्र के जातिगत स्वभाव से परिचित होते हैं। ब्राह्मणों का त्याग, अहिंसा या परोपकार की भावना; क्षत्रिय का क्रोध या प्रतिकार-वासना आदि जातिगत स्वभाव है। इसी के अन्तर्गत स्त्री का सपत्नी के प्रति ईर्ष्या-भाव भी आ सकता है। आचार्यों ने महाकाव्य के नृप, महामात्य, पुरोहित आदि के जो गुण गिनाये हैं, वे जातिगत स्वभाव के अन्दर आवेंगे।*

* Benedetto Croce—Aesthetic.

* देखिए साहित्यदर्पण (निर्णयसागर प्रे०) पृ० ३७३, टिप्पणी सं० २।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"त्यागी कृती कुलीनः सुश्रीको रूपयौवनोत्साही ।
दक्षोऽनुरक्तलोकस्तेजोवै२ग्ध्यशीलवान्नेता ॥"
सा० द० परि० ३, ३०

होना नायक का जातिगत स्वभाव है। इसी प्रकार महाकाव्य के नायक का—जिसका धीरोदात्त होना आवश्यक माना गया है †—जातिगत स्वभाव इस प्रकार होगा—

"अविकत्थनः क्षमावानतिगम्भीरो महासत्वः ।
स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तोदृढव्रतः कथितः ॥"
सा० द० परि० ३, ३२

चरित्र का विधान करने का तीसरा प्रकार व्यक्तिगत स्वभाव का चित्रण करना है। इसके अन्तर्गत उन बातों का वर्णन आता है, जो पात्र की अपनी मुख्य विशेषताएँ होती हैं। यह व्यक्तिगत स्वभाव प्रत्येक व्यक्ति का भिन्न-भिन्न होता है। धनुषयज्ञ के पूर्व राम और लक्ष्मण की वीरता, धैर्य आदि को जातिगत स्वभाव के रूप में दिखलाया गया है, जिसमें दोनों समान ही दिखाई देते हैं। पर जनक के परिताप पर जो उग्रता और परशुराम की बातों के उत्तर में जो चपलता लक्ष्मण में दिखाई देती है, वह उनका व्यक्तिगत स्वभाव है। इसी प्रकार राम की धीरता और गम्भीरता का, जो कि उनका व्यक्तिगत स्वभाव है, पता उस समय लगता है, जब हम राम को परशुराम की क्रोधपूर्ण उक्तियों का बड़ी धीरता और गम्भीरता से उत्तर दे पाते हैं। व्यक्तिगत स्वभाव के विषय में यह ध्यान रखना चाहिए कि हम उसे केवल एक ही अवसर पर नहीं पाते। जीवन के अनेक अवसरों पर उसका परिचय मिलता रहता है। किसी परिस्थिति-विशेष में पड़कर पात्र अपने स्वभाव से भिन्न जो कार्य कर बैठता है, उसे व्यक्तिगत स्वभाव के अन्तर्गत नहीं गिना जा सकता। जब हम किसी व्यक्ति के विषय में उसके स्वभाव से भिन्न किसी काम के करने की बात सुनते हैं तो हमें विश्वास नहीं होता। हम कहते हैं—उसने ऐसा कभी नहीं किया होगा, उसकी ऐसी प्रकृति नहीं है। इस अविश्वास का कारण उसका व्यक्तिगत स्वभाव है, जिससे हम पूर्ण रूप से परिचित हैं।

इसी व्यक्तिगत स्वभाव की विशेषता दिखलाना पाश्चात्य आलोचकों ने सबसे श्रेष्ठ माना है, और इसी दृष्टि से उन्होंने नाटक को सबसे उच्च काव्य बतलाया है ‡। पर ये व्यक्तिगत विशेषताएँ विचित्रताएँ नहीं होतीं। उन सबके अन्तर्गत वही सूक्ष्म सूत्र होता है, जिसे हम सामान्य मनुष्यता के रूप में पाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि लक्ष्मण का मूर्च्छा पर राम के विलाप और रावण की मृत्यु पर विभीषण के विलाप में बहुत अन्तर है, तो भी यह कौन कह सकता है कि दोनों में से किसी ने भी ऐसा कार्य किया है, जिसे उन्हीं परिस्थितियों में मनुष्य नहीं किया करता है। व्यक्तिगत स्वभाव की विशेषताओं के अन्तर्गत गुप्त रूप से पहुँचे हुए इसी मानवता के सूक्ष्म सूत्र के द्वारा साधारणीकरण होता है।

महाकाव्य में देशकाल

जिस स्थान और जिस समय पात्र अपनी जीवन-लीला करते रहते हैं, उसका वर्णन देशकाल के अन्तर्गत किया जाता है। पौराणिक या ऐतिहासिक आधार पर काव्य-रचना करने के कारण देशकाल की दृष्टि से महाकाव्यकार का कार्य बहुत कठिन हो जाता है। यदि कोई कवि ऐतिहासिक काल के किसी महापुरुष, जैसे स्कन्दगुप्त के चरित्र को लेकर महाकाव्य की रचना करना चाहता है तो उसे उस काल की सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक आदि सभी स्थितियों को पूरी तरह जानना चाहिए। उस काल के राजा-रानी, कुमार-कुमारी कैसा जीवन व्यतीत करते थे, राजपुरुषों के अधिकार कैसे थे, साधारण प्रजा के दिन कैसे बीतते थे, सेनाओं का संचालन कैसे होता था, शासन के ढंग कैसे थे, राजा-प्रजा का सम्बन्ध कैसा था, मध्यम श्रेणी के लोग दिन किस प्रकार बिताते थे, समाज में क्या व्यवस्था थी, जनता के विचार और विश्वास कैसे थे, बिना यह सब जाने उस काल पर लेखनी उठाना

† तत्रैको नायकः.....धीरोदात्तगुणान्वितः—साहित्यदर्पण, परि० ६, श्लोक ३१५-१६

‡ "Highest Drama which is Nature itself." Encyclopædia B—Poetry-शीर्षक लेख।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुस्साहस है, "अपनी मूर्खता प्रकट करते हुए ऐसा चित्र उपस्थित करना है, जो वास्तविकता से कोसों दूर होगा और जिसके कारण मिथ्या ज्ञान का प्रचार होगा।" * जिस कवि को देशकाल का ध्यान होगा वह न तो राम को जनकपुरी जाते समय 'ताल, तमाल, हिंताल मनोहर, लवंग' दिखलायगा और न उद्धव को व्रज जाते समय करील की झाड़ियों के स्थान में 'निम्ब, दाड़िम, कदम्ब' आदि के बाग़ में घुमावेगा। इसी बात का ध्यान रखकर आचार्यों ने स्पष्ट कहा है कि कवि कभी देशकाल के विरुद्ध लिखने की भीषण ग़लती न कर बैठे †।

महाकाव्यों के नायक को केवल घर की चहारदीवारी के अन्दर नहीं रहना चाहिए। उसे बाहर निकलकर प्रकृति के विस्तृत क्षेत्र में विचरण करना चाहिए। वन-पर्वत, मुनि-आश्रम, सागर-सरिता आदि ईश्वर की दिव्य विभूतियों का दर्शन करना चाहिए। इसी ओर संकेत करके महाकाव्य में वन-पर्वतादि और सन्ध्या, प्रातःसूर्य, चन्द्र आदि का वर्णन आवश्यक ठहराया गया है ‡। खेद है कि कई कवियों को महाकवि बनने का शौक़ तो हुआ, पर प्रकृति के प्रति प्रेम न होने के कारण उन्होंने इन संकेतों का निर्वाह लीक पीटकर ही किया। वाल्मीकि और कालिदास के पीछे कवियों ने प्रकृति का बिम्ब ग्रहण कराना छोड़कर आलंकारिक कौशल दिखाने के लिए प्रकृति का गला घोटना आरंभ कर दिया। इस बुरी प्रथा का प्रभाव प्राकृतों तक ही सीमित न रहकर हिन्दी में भी चला आया।

महाकाव्य की शैली

किसी काव्य-विशेष की शैली के विषय में कहते हुए शैली के उन सामान्य तत्त्वों पर कुछ नहीं कहा जा सकता, जो प्रायः सभी प्रकार के काव्यों में किसी न किसी रूप में पाये जाते हैं। उस समय तो केवल उन्हीं बातों को बतलाया जा सकता है जो उस काव्य-विशेष की शैली की विशेषताएँ होती हैं। महाकाव्य की शैली के विषय में भी केवल विशेषताएँ ही बतलाई जायँगी। महाकाव्य को एक जातीय या राष्ट्रीय सम्पत्ति माने जाने के कारण उसे आरम्भ करने की कुछ पद्धतियाँ निर्धारित की गई हैं, जिनका पालन करना आवश्यक माना गया है। महाकाव्य का आरम्भ करते समय देववंदना या मंगलाचरण किया जाता है। इस बात को पाश्चात्य महाकाव्यों में भी देखा जाता है। ल्यूट, हार्प या वीणा को सम्बोधन करना भी देवस्तुति का ही दूसरा रूप है। आरम्भ करने का दूसरा प्रकार किसी को आशीर्वाद देना है। वस्तुनिर्देश करके अथवा सज्जनों की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा से भी महाकाव्य प्रारम्भ किये जाते हैं। * तुलसीदासजी ने आशीर्वाद को छोड़कर अन्य तीनों प्रथाओं को अपनाया है। जिस महान् भूमिका से रामचरितमानस आरम्भ होता है, वह इस महाकाव्य की महत्ता के बिलकुल अनुकूल है। आजकल के कवि इसे अन्धपरम्परा का निर्वाहमात्र मानते हैं। किन्तु जैसा हम पहले कह चुके हैं, महाकाव्य वर्तमान की वस्तु नहीं, भूत का अनुकरण है।" उसमें सभी नियमों का पालन आवश्यक है।

महाकाव्य की कथावस्तु अनुपात के अनुसार कई सर्गों में विभाजित होनी चाहिए। ये सर्ग ८ से अधिक हो सकते हैं। इन्हें उचित आकार का होना चाहिए और इनमें से प्रत्येक में नया-नया वृत्तान्त होना चाहिए। व्यर्थ का पिष्टपेषण महाकाव्य में स्थान नहीं पा सकता †। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द का प्रयोग होना चाहिए। प्रबन्धकाव्य में क्षण-क्षण में छन्द बदलते रहने से कहानी के प्रवाह में कितनी बाधा उत्पन्न होती है, यह रामचन्द्रिका के सभी पाठक अच्छी तरह जानते हैं। सर्ग के अन्त में छन्द बदल देना चाहिए। यह

---

* बाबू श्यामसुन्दरदास—साहित्यालोचन।

† "देशकाल (कला लोकन्यायागमविरोधि च)। इति दोषा (दश) वैते वर्ज्याकाव्येषु सूरिभिः।"—दण्डिन्।

‡ "सन्ध्यासूर्येन्दुरजनीप्रदोषध्वान्तवासराः। प्रातर्मध्याह्नमृगयाशैलर्तुवनसागराः"। साहित्यदर्पण

* "आदौ नमस्क्रियाशीर्वा वस्तुनिर्देश एव वा। क्वचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुणकीर्तनम्।" सा० द०।

† "सर्गबन्धो महाकाव्य...नातिस्वल्पा नाति दीर्घा सर्गा अष्टाधिका इह।" सा० द०।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नियम उस काल की ओर संकेत करता है, जब श्रव्य काव्य 'श्रव्य' मात्र थे; क्योंकि इस प्रकार श्रोताओं को सर्ग के अन्त का पता तो लगता ही है, साथ ही वक्ता और श्रोता दोनों को एक प्रकार का विश्राम-सा मिलता है *। लगभग चौथी शताब्दी ईस्वी से किसी एक सर्ग में अनेक वृत्तों का प्रयोग करने में अपना कौशल दिखाने की परिपाटी चल पड़ी †। सर्ग के अन्त में भावी सर्ग की घटनाओं की ओर संकेत करने का भी निर्देश है ‡। संस्कृत-काव्यों में सर्ग के अन्त में उसका और कवि का नाम देने की प्रथा संस्कृत से हिन्दी आदि वर्तमान भाषाओं में भी आई है। इसका आरम्भ उस युग में हुआ था, जब श्रव्यकाव्य 'श्रव्य' मात्र थे और कवि के नाम को स्मरण रखने को एक यही युक्ति थी। अब इसका प्रचार घट रहा है।

आचार्यों ने महाकाव्यों में कुछ विषयों का वर्णन करने का निषेध किया है। दण्डी ने लिखा है कि काव्य में कभी प्रचलित शास्त्रीय सिद्धान्तों के विरुद्ध कोई बात नहीं आनी चाहिए। इसके अतिरिक्त नाटक में जो बातें वर्जित हैं, उन्हें महाकाव्य में भी स्थान नहीं देना चाहिए। भारतीय आचार्यों ने काव्यों को दुःखान्त बनाने का निषेध किया है। महाकाव्य अन्य सब रसों के होते हुए भी उसका प्रधानरस शृंगार, वीर या शान्त ही होना चाहिए। *

अन्त में इतना कह देना आवश्यक है कि चाहे आप साधारण तुकड़ होने पर भी अपनी स्त्री के सामने अपने को महाकवियों में गिनकर भले ही ऐंठ लें, पर जब कोई काव्य मुद्रण-यंत्र से बाहर निकल पड़ता है, तब आपको कोई अधिकार नहीं कि उसे यों ही 'महाकाव्य' कह बैठें।

---

* "एकवृत्तमयैः पद्यैरवसानेऽन्यवृत्तकैः।" सा० द० शेक्सपियर दृश्य का अन्त दिखाने के लिए तुकान्त छन्द रखते थे।

† नानावृत्तमयः क्वापि सर्गः कश्चन दृश्यते।" सा० द०।

‡ सर्गान्ते भावि सर्गस्य कथायाः सूचनं भवेत्।" सा० द०।

* "शृंगारवीरशान्तानामेकोऽङ्गी रस इष्यते। अंगानि सर्वेऽपि रसाः।" साहित्यदर्पण, परि० ६; ३१ पृ०

नोट—इस लेख को लिखने में मैंने सबसे अधिक सहायता साहित्यदर्पण और आचार्य पं० रामचन्द्र शुक्ल की 'जायसी ग्रन्थावली की भूमिका' और 'गोस्वामी तुलसीदास' से ली है। इसके लिए मैं गुरुवर शुक्लजी का चिरऋणी रहूँगा।

—लेखक

पहले आराम, पीछे दाम

सफ़ेद कोढ़ (फुलवहटी) का शर्तिया इलाज करते हैं। टिकट ⁻) का भेजकर पत्र-व्यवहार करें।

मैनेजर—ब्रह्म औषधालय, बावरा बाजार, रोहतक।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

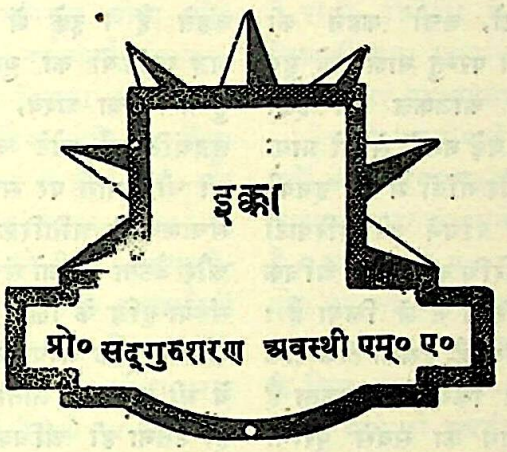

हिंद-प्रान्त के प्रमुख नगरों में इस वाहन से लोग भली प्रकार परिचित हैं। जन-साधारण की मनुहार रखने के लिए ऐश्वर्यशाली वर्ग ने जिस निकम्मी वस्तु को विश्वास के साथ त्यागा है, वह समानान्तर युग्म चक्रवाली यही अश्ववाहिनी सवारी है। दो हाथ लम्बे व्यासवाली काष्ठ-परिधि अपने केंद्र की छोटी लौह-परिधि से काष्ठ-शलाकाओं द्वारा आबद्ध रहती है। ये ही चक्र कहलाते हैं। चक्र-द्वय का आवर्तन एक सशक्त लौह-दंड पर समानान्तर स्थिति से हुआ करता है। लोग कहते हैं कि इक्का चलता है। इसी लौहदंड पर धनुषाकार दो शलाकाएँ ऊर्ध्वमुखी आबद्ध रहती हैं। इनमें भार सम्हालने के लिए लोच रहता है। समूचा मंच इन्हीं पर रखा रहता है। मंच का भार, यात्रियों का भार तथा छत्र का भार यही लौह-धनुष सहन करता है। मंच पर लगे हुए चारों किनारों पर के चार लकड़ी के खंभों पर ही छत्र आश्रित रहता है। छत्र पर मढ़े हुए वस्त्र की यदि सीवन उधेड़कर उसे पृथक् कर दिया जाय तो लोहे के पतले पत्रों के ताने-बाने का बना हुआ छत्र-कंकाल दिखाई देने लगेगा। मंच तो बिना पैर की काठ की चौकी है, जिस पर मोटी गद्दी चढ़ी रहती है। बैठा हुआ बटोही प्रसन्न होता है। जल से, आतप से, प्रकृति के दूसरे उत्पातों से तो छत्र बचाने का प्रयत्न करता है और कर्कश स्पर्श तथा मार्ग के हदके से गद्दी और धनुष सम्हालते हैं।

इक्के को एक एकाकी घोड़ा चलाता है। कदाचित् इसी लिए इस वाहन को इक्का कहते हैं। जिस ढाँचे का वर्णन ऊपर किया गया है, उसका सम्बन्ध घोड़े के साथ दो सशक्त काष्ठ-दंड करते हैं। ये लगभग पाँच हाथ लंबे होते हैं। इनका चिकना स्पर्श घोड़े को प्रतिकूल नहीं मालूम होता। ये इक्के के ढाँचे से समानांतर रूप में आबद्ध होकर अपने बीच में घोड़े को बंदी रखते हैं। घोड़ा चर्म-रज्जुओं में बँधा रहता है। उसके पृष्ठ-भाग पर मोटी चर्मपीठ पड़ी रहती है। मुख में पड़ी हुई मोटी लोहे की एक कीली दोनों ओर चमड़े की अथवा सूत की लंबी रज्जुओं से बँधी होती है। रज्जु के दूसरे छोर इक्कावान के हाथ में रहते हैं। संचालन, विराम, अवरोध, मार्गांतर, गतिशैथिल्य तथा गतिवेग सबका संकेत अश्व इन्हीं से ग्रहण करता है। सूत्रधार के धीमे से धीमे झटके को पशु पहचानता है और उसकी महीन से महीन ध्वनि पर वह काम करता है।

आज के इक्के अपने पूर्वजों का गर्व नहीं कर सकते। वे अधिक असभ्य, कर्कश और ऐंठू होते थे। उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोनों चक्र लौह-परिधि से जड़े होते थे। पुरानी ऊबड़-खाबड़ सड़क पर संघर्ष लेते हुए जब वे इक्के घड़घड़ाहट के साथ भागते थे, तब वाहक और वाहन से बँधी हुई क्षुद्रघंटिकाएँ अपनी टनटनाहट से बड़ी दूर तक के वायु-मंडल को हिला देती थीं। 'हटो, बचो' कहने की आवश्यकता ही न रह जाती थी। परन्तु नाल जड़े हुए चरमराते चमरौदे जूते की भाँति आजकल इन इक्कों की संख्या बहुत कम हो गई है। बड़े नगरों से तो प्रायः लुप्त ही हो गये हैं, छोटे नगरों और गाँवों में भी इनकी संख्या विरल हो गई है। घंटियाँ बाँधने की परिपाटी पुरानी समझी जाती है; लौह-परिधि का स्थान अधिक कोमल सुखकर, अमुखर, रबर-परिधि ने ले लिया है।

इक्के के विकास का इतिहास क्या है, इसका ठीक-ठीक पता लगाना कठिन है। अनुमान किया जा सकता है कि रथ के बाद अथवा उसके साथ का सबसे पुराना भारतीय वाहन बैलगाड़ी है। भारवाही पशुओं की पीठ से उतरकर मनुष्य ने जब अपने लिए अधिक सुविधा-जनक वाहन आविष्कार किया होगा तो रथ और बैल-गाड़ी की सृष्टि हुई होगी। खरारोहन मानवता की वेगवती गति के साथ-साथ न चल सका। खच्चर भी थोड़े काल के पश्चात् धीमे ज्ञात होने लगे। पीठ पर लदे रहने के व्यापार को भी हर घड़ी कष्ट से रिक्त समझना कठिन था। अतएव स्वार्थी चेतना के कारण अश्वों को मुँह में कौलें लेनी पड़ीं और बलीवर्दों के नथने छेदे गये। उन्हें पौरुषहीन बनाकर बस में किया गया। बैलगाड़ी के इतिहास में बैल का इक्का कोई पुराना वाहन नहीं है। उसका स्वरूप-निर्धारण दो बैल की गाड़ी के बाद में ही हुआ है। कल्पना यह कहने को उकसाती है कि द्वैतवादी चेतना के स्थान पर जब अद्वैतवादी भावना की प्रतिष्ठा हुई, तभी से इस भारतवर्ष के धीमे छकड़े—बैलगाड़ी—का संचालन करनेवाला पशुद्वय भी अद्वैत कर दिया गया। वैसे दो बैल की बैलगाड़ी बहुत प्राचीन है और उसका आदर्श योद्धाओं का परम प्रिय वाहन रथ ही रहा होगा। घोड़े के इक्के का ऊपरी भाग भी हलके दो चक्रोंवाले रथ के ऊपरी भाग का ही परिवर्तन रूप है। पर रथ-अश्व अकेला कभी नहीं रहता। यही एक विशेष परिवर्तन है।

हिंद-प्रांत में ही इक्के का चलन है। वह भी सर्वत्र नहीं। प्रत्येक बड़े नगर के इक्के अपनी विशेषताएँ रखते हैं। काशी में छत्रहीन इक्के अधिक संख्या में मिलते हैं। स्थानिक अभिधान (कोष) में इन्हें ठूँठिया इक्का कहते हैं। इक्के में परिभ्रमण करनेवाले उत्सवप्रिय भद्र व्यक्तियों का युग अभी काशी में व्यतीत नहीं हुआ। ऊँचा अश्व, आरक्त सूत्रद्वय, झनझनाती हुई क्षुद्रघंटिकाएँ मोटे चक्रवालवाला ठूँठिया इक्का किसी भी चौड़े मार्ग पर सरपट दौड़ता हुआ मिल जायगा। संचालक के अतिरिक्त इस पर केवल एक ही व्यक्ति और बैठता है, जो संचालक का भी संचालन करता है। संख्या-वृद्धि के लिए इसमें स्थान ही नहीं होता। रास को बलपूर्वक भरपूर हथेलियों से पकड़े रहने के कारण वे भी लाल हो जाती हैं। जितना ही सशक्त पशु होता है, उतना ही अधिक फेना उसके मुँह से निकलता है और उतना ही अधिक स्वामी का अनुराग सूत्रधार-संचालक की हथेलियों से फूट निकलता है। वह बेचारा कसे हुए लँगोट के ऊपर एक लाल अँगौछा बाँधे हुए घोड़े की पूँछ के पास जमा हुआ बैठा रहता है। ऊपरी भाग को अर्द्धनग्न अवस्था से कुछ बचाता हुआ एक रेशमी दुपट्टे से आवृत कर लेता है। ललाट पर तेल चूते हुए काले घुँघराले बाल लटकते रहते हैं। विधना के पाटव पर एक लाल बिंदु और पैर पर बनारसी जूते उसकी वेश-भूषा को अन्य नगरों के इक्केवालों से बिल-कुल पृथक् कर देते हैं। इस ठूँठिये इक्के की सवारी बहुधा वार्निश-पंप का काला जूता और बहुमूल्य महीन धोती के ऊपर झिलमिल बनियाइन को आधा प्रकट करता हुआ और आधा छिपाता तनज़ेब का कुरता पहने रहती है। रोली का गोल टीका, बनारसी कढ़ी हुई टोपी और बनारसी दुपट्टा भी अवश्य होता है। कभी दशाश्वमेध-घाट पर गंगा मैया के दर्शन, कभी विश्व-नाथ बाबा के दरबार की उपस्थिति, कभी अनमने मन को बहलाने का प्रयोजन, कभी इक्कों की दौड़ का निरी-क्षण और कभी केवल सैरसपाटा और हवाख़ोरी, ये ही कारण कभी एक, कभी कई और कभी सब मिल जाते हैं और ठूँठिये इक्कों की चाल की परीक्षा होती है। 'हट जाओ, दब जाओ' नागरिक इक्केवालों की साधारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उक्तियाँ हैं। वैसे तो ऐसे-वैसे व्यक्ति को देखकर यह भी कहते सुने गये हैं—'मरवा का ?' 'जान देवो का ?' 'सरवा सुनत नाहीं।' ठूँठिया इक्कों के अतिरिक्त काशी में छतरीदार इक्के भी हैं, जो यात्रियों को टके-टके में इधर-उधर पहुँचाया करते हैं। मरियल घोड़ा और अड़ियल स्वभाव, सड़ियल गद्दी, दुर्गंधपूर्ण इक्कावान, टूटा साज, बुझ-बुझ जानेवाले लैंप, हिलता हुआ ढाँचा और हदके से चरमरा जानेवाले पहिये, ऐसे इक्के किस नगर की विभूति नहीं हैं ? वर्ष भर में दो-तीन बार इनका निरीक्षण होता है। वार्षिक कर के बराबर ही निरीक्षकों के घर यदि पहुँच जाय तो फिर कौन पूछनेवाला है। म्युनिसिपैल्टी के इस विभाग के कर्मचारियों से किराया माँगना भी प्रत्येक इक्केवान के लिए सरल नहीं। उत्कोच की छाया में चलनेवाले इक्के जनसाधारण के ही काम अधिक आते हैं। कम पैसे में पट जाते हैं।

मिर्ज़ापुर की बात यदि छोड़ दी जाय तो इक्कों का दूसरा केन्द्र प्रयागराज है। यहाँ भी इक्कों का प्रेम है। पर केवल पंडों में। उनके पास 'जानदार' घोड़े हैं। कुछ ठूँठियें भी हैं। धनी होने पर भी ये इक्कों ही का प्रयोग करते हैं। भाँग-बूटी छानकर और कभी ठंढाई का सामान साथ लेकर अपने-अपने इक्कों पर ही ये लोग निकलते हैं। झूसी और नैनी तो इनके पाँव तले रहते हैं। इसी लंबे मार्ग में दौड़ भी होती है। दौड़ में ठूँठिया की उपयोगिता सबसे अधिक रहती है। वह उलटता नहीं।

प्रयाग के साधारण इक्के काशी के साधारण इक्कों से कुछ अच्छे होते हैं। अँगरेज़ी शिक्षितों की अधिकता के कारण इक्का पूरी तरह से केवल जनसाधारण के उपयोग में आता है। त्रिवेणी-स्थान का ऐसा प्रबल आकर्षण है कि सभी इक्के अपनी आजीविका उपलब्ध कर लेते हैं। प्रयाग का इक्का सुन्दर नहीं कहा जा सकता। इक्कावान भी अधिकतर दरिद्र ही दिखाई देता है। वह परस्पर चढ़ा-ऊपरी करता है, पर गुंडा नहीं होता। पदातियों से उसका व्यवहार भी अशिष्ट नहीं होता। सावधानतासूचक सम्बोधन भी लगनेवाले नहीं होते। उपहास, व्यंग, उपालंभ और तिरस्कार की कोई स्पष्ट अभिव्यक्ति उनमें नहीं मिलती। इलाहाबादी इक्कावान गाते हुए इक्का नहीं चलाता। वह अपने कनपुरिये भाई-बंदों की भाँति सिगरेट, बीड़ी, कोकीन और ताड़ी का आदी नहीं होता। वह टाकीज़ के व्यसनी, रेल के यात्री, भरद्वाज आश्रम के दर्शक, अक्षयवट के पुजारी, हाईकोर्ट के रोगी, त्रिवेणी के भक्त, विश्वविद्यालय के निर्धन विद्यार्थी तथा स्वराज्य भवन के अतिथि—इन सबको भली प्रकार पहचानता है।

रेल से उतरनेवाले यात्रियों को प्रयाग में कई स्वागतों को झेलना पड़ता है। उतरते ही कृष्णवस्त्राभूषित भारवाहकगण ललकते हुए नेत्रों से सामान ढूँढने लगते हैं। कभी-कभी एक गठरी के लिए बोझ से झुके हुए होने पर भी धक्का-मुक्की करते हैं। यात्री को कुछ भला-मानुस देखकर होटलवाला धीरे से अपने यहाँ ठहरने के लिए कान में प्रार्थना करता है। उसे निराश करके टिकट बाबू को अपनी अस्तेय साधना का परिचय देता हुआ यात्री ज्यों ही स्टेशन के बाहर आता है, इक्केवान उसे घेर लेते हैं। यदि यात्री की वेश-भूषा साधारण हुई तो ताँगेवाले दूर खड़े रहते हैं, अन्यथा इक्केवानों के टकों पर उनकी भी टकटकी लगी रहती है। संघर्ष अधिकतर इक्कों में ही होता है। यात्री बैठा नहीं कि 'टिक-टिक' का शब्द सुनाई दिया और घोड़े ने रेंगना आरम्भ कर दिया। प्रयाग नगर के व्यस्त मार्ग लखनऊ अथवा कानपुर के मार्गों की भाँति अच्छे नहीं हैं, फिर भी काशी के मार्गों से अच्छे ही हैं। इसी कारण गति-वैषम्य भी दिखाई देता है।

फ़तेहपुर ग्राम का उल्लेख कोई विशेष महत्त्व नहीं रखता। वहाँ के इक्कों में प्राचीनता अभी तक विद्यमान है। खड़खड़ाहट उनका साथ अभी तक नहीं छोड़े है। फ़तेहपुर नगर में उनका उतना उपयोग नहीं होता, जितना आस-पास के उपनगरों और ग्रामों के यातायात के लिए। यहाँ के इक्के केवल व्यावसायिक ही हैं। उनके अश्व छोटे, पुष्टकाय, तेज़ और परिश्रमशील होते हैं। इक्के भी खड़खड़ाते अवश्य हैं, पर सशक्त होते हैं। ऊबड़-खाबड़ कच्ची-पक्की सड़कों और गलियों में वे बेरोक-टोक चलते चले जाते हैं।

इक्कों की यदि अनेकरूपता देखनी है तो कानपुर नगर के इक्कों को देखना चाहिए। उनकी छोटी-सी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुनिया नगर के कोलाहल में अपना मुखर अस्तित्व रखती है। आकारलघुता और स्वरूपदीर्घता, रूपरेखा की समता और प्रकार-विभिन्नता, एकवर्णप्रधानता और अनेक-वर्णसांकर्य यह तो मिलता ही है, साथ ही साथ अत्यंत स्वच्छ आवरण-वस्त्र के धवलित तथा अत्यंत दुर्गंधपूर्ण आवरण-वस्त्र से मलिन, क्वणनशील अनेक उपकरणों से युक्त तथा अश्वपदाघातजन्य शब्द के अतिरिक्त पूर्णरूपेण निश्शब्द, छत्रदार तथा अछत्री, सब प्रकार के इक्के इसी सटी बस्ती में मिलेंगे। यहाँ ऐसे इक्के भी मिलेंगे, जो अपनी जाति की सच्ची संतान प्रतीत होते हैं और ऐसे भी मिलेंगे, जो स्पष्ट वर्णसंकर ज्ञात होते हैं। इक्का-ताँगा, इक्का-फिटन, इक्का-टमटम इस प्रकार की जारज संतति दूर से ही मालूम हो जाती हैं। कहीं नाटा आकार और चौड़ा फैलाव ताँगे की उनहार प्रकट करता है; कहीं पतली तीलियों के चक्रद्वय में फिटन की प्रतिच्छाया स्पष्ट दिखाई देती है और कहीं अश्व के उभय ओरवाले क्षीणकाय परन्तु पुष्ट लौहदंडों में टमटम का उत्तराधिकार परिलक्षित होता है।

वाहन की भाँति वाहक पशु भी न-जाने कितने प्रकार के होते हैं। नाटे किंतु सशक्त, अपने वित्त से अधिक चलनेवाले, छोटी 'इकिया' को लेकर हवा हो जानेवाले अश्व भी देखे जाते हैं; और लम्बे-चौड़े इक्के के साथ खूँदते हुए दर्प से चलनेवाले बड़े घोड़े भी दिखाई देते हैं। लाल, काले, उज्ज्वल, चितकबरे, बादामी, गेंहुए और न-जाने कितने रंग के मेलवाले घोड़े मिलेंगे। परंतु जिन लीचड़ इक्कों की भरमार है, उनमें गेहुँए रंगवाले अथवा ईषत् बादामी रंगवाले घोड़े ही प्रायः दिखाई देते हैं।

कानपुर के इक्के साधारणतया दो वर्गों के मिलेंगे। कुछ इक्के तो धनिकों की रुचि-साधना की सृष्टि हैं। कुछ धनी लोग मोटर रखने के स्थान पर इक्का रखना अधिक अच्छा समझते हैं। इनकी यह रुचि केवल परंपरा-पालन-विधायिनी है। पूर्वज लोग जिस साधारण वाहन का प्रयोग कर रहे थे, उससे ऊँचा वाहन, अधिक धनी होकर भी, इनके लिए काम में लाना अधर्म है। कृपणता का उतना प्रभाव नहीं है, जितना दोष अनुदार अपरिवर्तनशील बुद्धि का है। यदि नये प्रकाशवाले पुत्रों के कारण घर में मोटर आ भी गई तो भी दादा इक्के ही पर चढ़ेंगे। 'तीन प्राणियों को पालने का पुण्य मुझे मिलता है'—यह उक्ति बात-बात में सुनावेंगे। "अश्व, अश्व-संचालक और अश्वसेवक सभी मुझे और मेरी संतान को आशीर्वाद देते हैं।"

यदि किसी घर में नवीनता ने प्राचीनता को पूर्ण रूप से अपदस्थ कर दिया है और घर का इक्का हटा ही दिया गया तो भी प्राचीन लीक के पुजारी बूढ़े लालाजी मोटर पर न चढ़कर साधारण सड़ियल इक्के ही पर बाहर निकलेंगे। कानपुर के ऐसे लक्षाधिपों को मैं जानता हूँ, जो मोटर रहते हुए भी इक्कों पर ही चढ़ना अपना गौरव समझते हैं। कालेजों और स्कूलों को लाखों रुपये देनेवाले लाला भी मैली मिरजई, घुटनों के ऊपर चढ़ी हुई धूमिल धोती, कई गंधों की दुर्गंधवाला अँगोछा लेकर नितांत साधारण इक्के पर चढ़कर प्रतिदिन गंगास्नान को जाया करते थे। प्राचीन परिपाटी के संरक्षकों के पास जो इक्के-घोड़े हैं भी, उनमें कोई विशेषता नहीं। जैसे घर की और सब बातें वैसे ये भी चला करते हैं।

दूसरे प्रकार के महाजनी इक्के उन महानुभावों के पास हैं, जो इक्केबाज़ हैं। महाजनी इक्कों से अभिप्राय उन इक्कों से है, जो किराये पर नहीं चलते। कानपुर में ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत न्यून नहीं, जो इक्के के बड़े प्रेमी हैं। उनके पास मोटरें भी हैं तथा और-और वाहन भी, पर समय निकालकर वे जब तक इक्के पर नहीं घूम लेते, उनका चित्त शांत नहीं होता। पास बैठे हुए व्यक्ति से कभी अपने घोड़े की 'दुलकी', कभी 'रवाल', कभी 'सरपट' भाग की प्रशंसा करते रहेंगे। मार्ग में घोड़ेवाले जितने वाहन मिलेंगे, उनसे आगे अपना इक्का निकालना इनका कर्तव्य है। यदि दैवयोग से इनका घोड़ा किसी दिन भी 'नरम' पड़ा तो मकनपुर के मेले तक इक्का न दिखाई देगा और जब सबसे बढ़िया दूसरा घोड़ा आ जायगा तो तनकर बैठे हुए 'मालिक' को लेकर 'दून' की हाँकता हुआ इक्कावान घोड़े की रास कसकर पकड़े हुए परिचित मार्गों में फिर दिखाई देगा।

इन महाजनी इक्कों के घोड़े बड़े सजे-बजे रहते हैं। अच्छा से अच्छा मूल्यवान् साज इनके ऊपर रक्खा रहता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। उसकी पीतल चमचम चमकती है। इक्के में सावधान घोषणा के लिए घंटी लगी रहती है। गद्दी के कपड़े प्रतिदिन बदले जाते हैं। इक्कावान या तो 'ग़नी' या 'इलाही' होता है। 'कल्लू' और 'महँगू' तक काम चल जाता है; परन्तु 'बिहारी' या 'शिवदीन' इस काम के लिए उपयुक्त कम होते हैं। इन महाजनी इक्कों की संख्या अब विरल हो रही है। प्राचीन परंपरावादी लालाओं के साथ-साथ पहले प्रकार के इक्के तो समाप्त ही हो रहे हैं, दूसरे प्रकार के इक्के भी बिगड़ैल धनिक इक्कावाज़ों की रुचि-परिवर्तन के साथ कम हो रहे हैं। कबूतर-बाज़ी, पतंगबाज़ी, बटेरबाज़ी, कोकीनबाज़ी की भाँति इक्कावाज़ी भी जनमत की स्वीकृति अब उतनी नहीं पाती। इक्कों का स्थान मोटरें ले रही हैं, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कोकीन, भाँग, चंडू का स्थान शराब ले रही है।

कानपुर में इक्केवालों का एक तीसरा वर्ग भी है। कुछ इक्के आधे महाजनी और आधे किरायेवाले हैं। कुछ लोगों को इक्का अपने व्यवसाय के लिए परमावश्यक है, पर वह उसका पूरा व्यय सहन नहीं कर सकते। अतएव किसी के यहाँ गंगास्नान के लिए अथवा बालकों को स्कूल पहुँचाने के लिए उसका प्रयोग कर लिया जाता है और उससे उसका व्यय निकल आता है। ये इक्के स्वच्छ और सुन्दर दिखाई देते हैं। कभी-कभी एक के स्थान पर दो इक्के बना लिये जाते हैं। एक पूरी तरह से किराये पर ही चलता है और दूसरा स्वामी के काम में रहता है। दोनों का व्यय निकलता आता है। बड़ा घोड़ा खाता अधिक है, अतएव पुष्ट और द्रुतगामी होता है; छोटा घोड़ा छोटी इक्किया के साथ महाजनी बना लिया जाता है। लोग सिकुड़-सिकुड़ाकर दिल में कसमसाते हुए प्रेमी के अरमानों की भाँति बैठे रहते हैं।

किराये के इक्के भी दो प्रकार के देखे गये हैं। कुछ तो बहुत ही अच्छे, ऊँचे घोड़ेवाले, स्वच्छ गद्दी और दूर से सुनाई देनेवाली घंटी से सुसज्जित और कुछ नितांत फूहड़ शुद्ध किराये के लिए। पहले प्रकार के इक्के बहुत थोड़ा परिश्रम करते हैं और भरपूर पारिश्रमिक लेते हैं। ये अपने संरक्षकों को दूर से पहचान लेते हैं। उनसे मोल-तोल नहीं करते। संतोषप्रद मज़दूरी काम करने के बाद मिल जाती है। यदि दूसरे लोग इन्हें कहीं टोक-दें तो उनकी ओर नेत्रछोर ही न करेंगे और उत्तर भी यदि देंगे तो बड़े उदासीन भाव से, जैसे कंचन-मृग खोज रहे हों और यदि देखेंगे भी तो अशिष्ट और अनागरिक मुद्रा से। शिष्टता और नागरिकता से वे नितान्त परिचित हैं, पर उसका प्रयोग वे केवल अपने चुने हुए ग्राहकों तक ही सीमित रखना चाहते हैं। पारिश्रमिक की दर वे स्वयं तय करते हैं। म्यूनिसिपल बोर्ड की दर की तो वे हँसी उड़ाते हैं। वे घूमते रहेंगे, पर काम न लेंगे। सिंह भूखों मर जायगा, पर घास न खायगा। यदि कहीं उभय पक्ष के भ्रम के कारण पहले से बिना निश्चय किये हुए कोई यात्री किसी इक्के पर बैठ गया तो इक्केवान की बन आई। बाद में मनमाना माँगता है। नंगेपन पर उतारू हो जाता है। बेचारे यात्री को प्राण बचाना कठिन हो जाता है।

इन इक्कों के सबसे सरल ग्राहक धनिकों की बिगड़ैल संतान हैं। पूर्वपुरुषों द्वारा कसकर कोठरी में बन्द की हुई लक्ष्मी जब झाँक-झाँककर बाहर निकल आती है और प्राचीन स्थान को गिरते हुए पुराने घर की तरह छोड़ने पर तुल जाती है, तब ऐसी संतान उत्पन्न होती है। इक्केवाला चुपके से उन्हें बिठाकर लगाम ढीली करके घोड़े को वेग के साथ उड़ाता हुआ कोठों-कोठों की यात्रा कराया करता है। मज़दूरी भरपूर मिलती है।

इन इक्कों के दूसरे प्रकार के ग्राहक चोर, लुच्चे और गुण्डे होते हैं। किसी को ठगकर भागना हुआ, किसी की बहू-बेटी को उड़ाना हुआ, किसी भोले यात्री को फँसाना हुआ, कहीं भारी घमासान करना हुआ, कहीं पुलिस के वीरों से सामना हुआ तो यही इक्के बुलाये जाते हैं। जिस प्रकार इनका प्रयोग पाप के लिए होता है, उसी प्रकार पुण्य के लिए भी होता है। तपेश्वरी मय्या, आनन्देश्वर बाबा, जाजमऊ के अधीश्वर, गंगा महरानी, जोगेश्वर महराज, खेरेपति स्वामी, कहीं भी जुआरियों, चोरों और विहाड़ों को जाना होगा तो यही इक्के बुलाये जायँगे। इन लोगों में और इक्केवानों में बिरादरी का भाईचारा रहता है। नगर के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऐसे स्थान, जिनका सौन्दर्य रात के दस बजने के पश्चात् आरम्भ होता है, इन इक्कों के अड्डे हैं। एक छैला को बिठाये किसी पानवाले की दूकान पर सींक पर रक्खी हुई सफ़ेद औषधि को पान में रखने के लिए खड़े मिलेंगे। इक्कावान पैर थपथपाते हुए घोड़े पर एक हाथ से थपकी देता हुआ दिखाई देगा और दूसरे हाथ से सूत्रद्वय को हाथ से पकड़े रहेगा। इक्कारोही पानवाले के सामने प्रसारितकर होता हुआ भी ऊर्ध्वदृष्टि ही रहेगा।

कानपुर नगर को रक्षा के लिए एक नई धारा का निर्माण हुआ। उत्पात करनेवाले प्रमुख धूम्रकेतु या तो छिप गये या कुछ काल के लिए बहिष्कृत कर दिये गये। इसके पूर्व किसी भी सायंकाल को एक साँवला भारी-सा पुष्टकाय व्यक्ति सरसैयाघाट की ओर वेग से भागते हुए अच्छे इक्के की एक ओर बैठा दिखाई दिया करता था। यह काला वार्निश का जूता पहने उसी प्रकार की चमकती हुई काले मख़मली किनारे की धोती कसे हुए तना बैठा रहता था। धोती के दो फेंटे कटि में बाँधने के कारण उसे घुटनों तक पहुँचने का अवकाश कठिनता से मिलता था। जंघों पर एक मोटी लम्बी लाठी, जिसका एक छोर मोटे लौह गुल्म के गठित था, शरीर पर चिकन का महीन कुरता, सिर पर लखनवी पल्के की टोपी। इसे वायुवेग से इक्के पर जाते देखकर कोई कहता—'भइये राम-राम।' कोई कहता—'गुरू, पायलागन।' यह भी कुछ न कुछ कहता चलता। 'मौज करो बेटे', 'जीता रह मेरा भइया।'

चलते-चलते किसी से पूछने लगता, 'क्या रंगत है महतो ?' किसी से कह उठता, 'क्यों बे, कल आया क्यों नहीं ?' पर इक्का एक क्षण के लिए भी नहीं रुकता। कड़ी पृथ्वी पर घोड़े के पदाघात का शब्द निरन्तर सुनाई देता। पहलवान के रक्ताभ नेत्रों से निडर कुछ मुँह लगे छोकरे यहाँ तक कह डालते, 'बड़े नकसे हैं गुरू', 'कसे रह बरेक गुरू।' बैठा हुआ सिंह मुसकिराकर दूसरी ओर देखने लगता। भर्राई हुई वाणी से इक्कावान कह उठता, 'सामने से हटता क्यों नहा है ?'

आततायियों का व्यवसाय क्षीण हो गया है और प्रतिदिन क्षीण होता जा रहा है। अतएव इस प्रकार के इक्के भी कम हो रहे हैं। अब तो केवल शुद्ध किराये का इक्का अधिक देखने में आता है। इसकी संख्या कानपुर में बहुत है। नगर की जनता का यही एक वाहन है। इसका किराया और उसकी आय का मेल है। इक्के का स्वामी कभी-कभी स्वयं ही इक्कावान भी बन जाता है और कभी-कभी इस काम के लिए एक अलग सेवक रखता है। पर इक्कों को किराये पर चलाने का व्यवसाय सबसे नहीं सपरता। यदि किसी अनजान व्यक्ति ने दो-चार सहस्र रुपये फँसाकर इक्कों को किराये पर चलाना आरम्भ भी कर दिया तो उसकी बुरी गति होती है।

बुद्धू कहता है—'मालिक, घोड़े ने बम तोड़ दिया है, लगवा दीजिए।'

कल्लू कहता है—'नालों की बदली जल्दी होनी चाहिए।'

महमद कहता है—'भइया, गद्दी फिर से बननी चाहिए।'

इलाही कहता है—'घोड़े ने साज की जोत तोड़ दी है, उसे बदलवाना है। रासें भी लगे हाथ बदल जायँ तो अच्छा है। सरकार के बड़े नाम हैं।'

सेवकों की ये माँगें कहाँ तक सुनी जायँ। कहीं यह टूटा, कहीं वह टूटा। कहीं घोड़ा बीमार, कहीं उसकी पीठ लगने लगी, कहीं पैर लंग करता है तो कहीं रबर निकल-निकल जाता है। बस, ये ही बातें सायंकाल सुनने और देखने को मिलती हैं। मज़दूरी के नाम पर लगभग सभी के मुँह से यही निकलता है, "सरकार! आज न-जाने किस कम्बख़्त का मुँह देखा कि अड्डे पर खड़े-खड़े दिन ख़तम हो गया। यह चवन्नी अभी-अभी मिली है। इसमें क्या सरकार को दें और क्या घोड़े को खिलावें ?' अभिप्राय यह कि इक्का घिसता और रद्दी होता जायगा, घोड़ा बूढ़ा और लद्धड़ होता जायगा और उसकी आमदनी कुछ वृत्ति के रूप में और कुछ घोड़े के नाम से उन्हीं सेवकों के पास पहुँच जायगी। किसी भी दिन मधु निचोड़े हुए मधुमक्खी के छत्ते की भाँति अश्वकंकाल और जर्जर इक्का स्वामी के द्वार के सामने खड़ा हुआ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिखाई देगा और सेवक का पता न होगा। यदि हार मानकर स्वामी ने इन इक्कों को अलग कर दिया तो यही नौकर ले लेंगे और उसी दिन से इक्का ठीक-ठीक चलने लगेगा। इक्के किराये पर चलाने का व्यवसाय कोई कुशल व्यक्ति ही कर सकता है, जिसे इन नौकरों के मनोभाव का पूरा परिचय हो।

कानपूर के किरायेवाले ये इक्के अजायबघर में संग्रह करने की वस्तु हैं। वैचित्र्य के दैनिक साहचर्य से अद्भुत की उत्पत्ति नहीं होती, पर यदि कोई सीधे विदेश से आया हुआ व्यक्ति इन इक्कों को देखे तो आश्चर्य में अवश्य पड़ जायगा। छोटा अथवा सँझोला टट्टू उतने ही पैर आगे रखता है, जितने कशाघात उस पर होते हैं। टूटा हुआ साज धोती के किनारों से अथवा बान के टुकड़ों से किसी न किसी प्रकार कसा रहता है। फिर भी ऐसे अवसर आ जाते हैं, जब इक्कावान उतर-उतरकर उसे कसता है। घोड़ा कहीं पाँव से लँगड़ाता है, कहीं पीठ कट जाने के कारण रुक-रुककर खचा-संकोच करता है। दो-चार बार मल-मूत्र-विसर्जन करता है और एकाध बार पानी पीता है। हिनहिनाने की उसमें शक्ति नहीं। भागना अथवा चौंककर कान खड़े करना उसकी जाति का लक्षण नहीं। अग्नि बुझानेवाला अथवा मार्ग कूटनेवाला इंजन, घंटी बजाता हुआ हाथी, उद्ग्रीव ऊँट ये तो प्रतिदिन के साधारण दृश्य हैं, वैसे भी इस घोड़े में विश्व की कोई भी अलौकिक घटना या मूर्ति को देखकर भड़कने के लिए जान नहीं है। हाँ, स्थान-स्थान के चौराहों और इक्कों के अड्डों पर अड़ जाना इसका प्रमुख लक्षण है।

जिस समय भरपूर सामान के साथ पूरी सवारियाँ इस इक्के पर हचककर बैठती हैं, यह चरमरा जाता है। घोड़ा खच्चरी सीधेपन के साथ खड़ा रहता है। गूदड़ों की गद्दी पर चीथड़े पहने हुए यात्रियों को बिठाकर कन्धाधारी इक्कावान टिक-टिक करते हुए इक्के को हाँकता है। कहीं भूला-भटका सफ़ेदपोश यात्री भाग्य का मारा इस इक्के पर बैठ गया और उसे इक्केवान के पार्श्व पर स्थान मिला तो इक्केवान का पसीना और घोड़े की बार-बार निस्सृत अपान-वायु के कारण वह अपनी नासिका से अपने रूमाल को एक क्षण के लिए भी हटा नहीं सकता। इक्कावान यात्रियों की मनुहार ताड़ा करता है। यदि किसी ने गति-शैथिल्य की ओर साधारण संकेत भी किया तो कशा वर्षावेग से बढ़ जाती है। यदि इससे भी कोई परिवर्तन न हुआ तो वह कहने लगता है—

"हुज़ूर नौकर ने इस घोड़ी का सत्यानाश मार दिया। लाख टके की घोड़ी थी। हवा से बातें करती थी। एक ज़माना था कि इसे दस सेर दाना मिलता था। घी भी दिया जाता था। मगर मुआफ़ कीजिए, उस वक़्त सवारी भी सख़ीदिल आया करती थीं। थोड़ा घूमे और एक रुपया फेंक दिया। अब मुफ़लिसी तबाह किये है। आप ही क्या करें।"

बातों की झोंक में मार्ग कट जाता। यात्री बेचारे चुप हो जाते। घड़ी की टिकटिक की समता करता हुआ इक्का आगे बढ़ता जाता। यात्री यदि कहीं साधारण कोटि के व्यक्ति हुए और उन्होंने धीमी चाल के लिए कुछ कहा तो इक्कावान झट बिगड़कर कहने लगता है, "ऐसी जल्दी थी तो मोटर पर चढ़ते। यह तो जनावर है, मन से ही चलेगा। पंख थोड़े ही इसके लगे हैं। दोगे तो तीन ही पैसे। जैसा गुड़ डालोगे वैसा मीठा होगा।"

इतना कहकर प्रत्युत्तर को अवकाश न देते हुए सामने के पैदल यात्रियों पर बिगड़ जायगा। उनकी तनिक भी असावधानी से उनके कुटुम्ब से अपना नाता जोड़ने लगेगा। इस प्रकार अपशब्द कहते अपशब्द सुनते आगे बढ़ता जायगा। ठेलेवालों से तो इसका सहज बैर है। उनके साथ की हँकरा-तुकरी तो प्रतिदिन की विशेषता है।

कानपुर के इन इक्कों का इक्कावान जिह्वा से बड़ा गतिसम्पन्न है। परन्तु वह गति अधोगामिनी है। उसके हटो, बचो, सावधानी-सूचक संबोधनों में अंधा 'बेवकूफ़' से लेकर अश्लील से अश्लील अपशब्दों का प्रयोग किया जा सकता है। उसके पास न मान है और न वह दूसरे की मान-रक्षा से वास्ता रखता है। उसके वस्त्र केवल ईद-बकरीद में परिवर्तित होते हैं। उन्हीं दिनों ख़ाँ साहब, सैयद साहब, बड़े मियाँ, हाजीजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहकर लोग इन्हें पुकारते हैं। साटन की तहमत अथवा तीन किनारे की मख़मली पाड़ की तहमतनुमा धोती, चौड़ी तड़कीली धारीदार रेशम का घुटनों तक लंबा कुरता, काला बार्निश का जूता न सही तो काला रबर का जापानी जूता, तुर्की टोपी, भद्दर गर्मी में भी ग्रीवा गुलूबन्द से परिवेष्टित, पैर में मोज़े, ऊपरी जेब के ऊपर निकला हुआ रंग-बिरंगी अतर छिड़का हुआ रेशमी रूमाल, यदि कोट हुआ तो रेशमी मफ़लर, यह इनकी त्योहारी सजावट है। बच्चों की-सी वस्त्र-संबंधी रुचि और गुण्डों की-सी व्यवहार-संबंधी प्रेरणा इनकी विशेषताएँ हैं। यदि हिन्दू हुए तो भी वही बात। हाँ, वस्त्र का चमन दूसरे प्रकार का होगा और केवल होली के समय उसकी आवश्यकता पड़ेगी।

लखनऊ के इक्केवान अधिक शिष्ट और मिष्टभाषी हैं। 'हुज़ूर' और 'सरकार' का प्रयोग उनके लिए साधारण है। बेचारे पदातियों को दबा देने की धमकी भी ये नहीं देते। पर लखनऊ में इक्केबाज़ी की रुचि बिलकुल नहीं है। यही कारण है कि यहाँ अच्छे इक्के नहीं मिलते। नवाबों और अवध के रईसों ने इस वाहन को कभी नहीं अपनाया। अन्यथा बटेर, बुल-बुल, तीतर, पतंग, कबूतर की व्याख्या की भाँति इसकी भी व्याख्या मिलती, अन्यत्र न सही तो चंडूख़ाने में तो अवश्य मिलती।

अभद्रता, कुरूपता, मलिनता तथा अलसगति में लखनऊ के इक्के शुद्ध किरायेवाले कानपुर के इक्कों के ही कुटुम्बी हैं। नगर-विस्तार के अनुसार इनकी उपादेयता अधिक है, अतएव इनकी संख्या भी अधिक है। लखनऊ में ऐसे इक्केवान भी हैं, जो अपना वंश सीधे प्राचीन नवाब शासकों से जोड़ते हैं। दो-चार पाई वृत्ति भी मिलती है। दूसरे इक्केवालों के बीच में वक्षःस्थल उठाकर चलने के लिए यह पर्याप्त है। गंगा-स्नान न नसीब होनेवाले व्यक्ति घर के पंथ में स्नान करके उसकी पतली जलधार को ही गंगोदक के नाते कूपजलस्नान करनेवाले ग्रामीणों के समक्ष डींग मारते हैं। नवाबों के राजकुटुंब के साथ अपना सम्बन्ध दिखाते हुए भी ये इक्केवाले अमीनाबाद, बनारसीबाग़, हज़रतगंज, चौक, नाकाहिंडोला, नख़ास, चारबाग़ स्टेशन, कैसरबाग़, बारादरी, युनिवर्सिटी, बड़ा अस्पताल, कौंसिल-भवन इत्यादि-इत्यादि स्थानों के लिए दो-दो पैसों में यात्रियों को ढूँढा करते हैं।

बड़े नगरों के अतिरिक्त छोटे-छोटे उपनगरों में भी इक्कों की बड़ी चाल है। उन्नाव में इक्कों की संख्या कम नहीं है। शफ़ीपुर, रंजीतपुरवा, मौरावाँ तक आसपास के ग्रामों और तहसीलों को लेकर न-जाने कितने इक्के आते-जाते रहते हैं। मौरावाँ और उन्नाव के बीच पहले इक्कों की ख़ूब दौड़ होती थी, परंतु मोटरबसों ने यह होड़ समाप्त कर दी। फ़तेहगढ़ के साधु लोग इक्कों के विशेष प्रेमी हैं। ये लोग धनी भी हैं और व्यापार-कुशल भी। बड़े-बड़े चौड़े इक्के और ऊँचे-ऊँचे घोड़े इनको बहुत प्रिय हैं। इसी प्रकार हिंद प्रान्त के और स्थानों में भी इक्कों के केंद्र हैं और उनकी अपनी निजी विशेषताएँ हैं।

नगर के इक्केवानों और ग्राम के इक्केवानों में बड़ा अंतर है। ग्राम के इक्केवान ग्राम के अन्य निवासियों की ही भाँति हैं, पर नगर के इक्केवानों का एक विशिष्ट वर्ग ही नहीं, बरन् एक पृथक् जाति निश्चित हो गई है। उनके प्रत्येक व्यवहार में विलगाव है। उनके गानें पृथक् हैं, उनकी ध्वनि और उनके राग भिन्न हैं। उनकी संभाषण-प्रणाली पृथक् है। भोजन, वस्त्र, आमोद, प्रमोद सब निराले हैं। बहुधा लोग कहते हुए सुने गये हैं कि क्या इक्केवालों का राग अलापने लगे? क्या इक्केवालों की-सी गालियाँ देते हो? नई-नई ठुमरियाँ और ग़ज़लें आया और जाया करती हैं। थोड़े दिनों तक सरदी में इक्का हाँकनेवालों के मुँह पर एक गान रहता है और फिर दूसरा आ जाता है। चाहे टाकी के चबन्नीवाले स्थान पर देखिए, चाहे चायवालों की प्यालियों पर, चाहे गाँजा-भाँग के ठेके पर, चाहे ताड़ीवाले की दूकान पर, बीड़ी मुँह में दाबे हुए इक्केवाला दूर से ही पहचाना जा सकता है। कांतिहीन पीले-पीले नेत्र, मलिन दुर्गंधपूर्ण वस्त्र, फटा हुआ शिरवस्त्र, हाथ और उँगलियों में लगे हुए चिलम पीने के पीले-पीले चिह्न, सूखे केश, शरीर की प्रत्येक अंग-संधि पर लगा हुआ मल, बड़े और काले नख, सूखी झुर्रियोंवाली आकृति, प्रत्येक इक्केवाले की पहचान है। दो-एक बार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के लम्बे अथवा छोटे कारावास की लम्बी-चौड़ी बातें यदि वह सुना सकता है तो अपनी जाति में उसका सम्मान और अधिक होता है।

इक्कों की संख्या उत्तरोत्तर घट रही है अथवा बढ़ रही है, यह ठीक-ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता। पर इक्के का अन्य वाहनों से एक महान् संघर्ष चल रहा है। तारकोल से सँवारी हुई अथवा कांक्रीट-सीमेंट की चिकनी तारकोल-सड़कों ने चिकनी नालवाले घोड़ों के लिए रपटकर गिरना सरल कर दिया है। किसी बड़े नगर की भी सड़क पर किसी भी दिन रपटकर अस्त-व्यस्त लेटा हुआ मरियल घोड़ा दिन-भर के भारी परिश्रम से अपने लिए अवकाश की व्यवस्था निकाल लेता है। इक्कावान बड़बड़ाता हुआ घोड़े को और पीटने लगता है। यात्री गिरते-पड़ते, चोट खाते और सोहराते हुए उठ खड़े होते हैं और इक्के के वाहन को कोसने लगते हैं। दर्शकों की भीड़ घोड़े की श्वास-रक्षा के लिए तंग रस्सियाँ काटने लगती हैं। यात्री का चित इसी व्याधि के कारण इक्के से उखड़ता जाता है। केवल आर्थिक दृष्टि से ही वह अभी तक अपना पग जमाये है।

ऊँटगाड़ी से उसकी बड़ी प्राचीन होड़ थी। अपनी गति के कारण उसे तो वह परास्त कर चुका है। बेचारी रात भर चलनेवाली यह गाड़ी अब निशाचर-रावण के वंशधरों की भाँति अप्राप्य है। बैलगाड़ी के साथ भी इक्के की तनातनी रही, परन्तु गतिमत्ता होने पर भी यह उसे परास्त न कर सका। बैलगाड़ी के ऐसे उपयोग भी हैं, जिनके लिए इक्का सर्वथा अनुपयुक्त है। बलीवर्द खेत जोतते हैं। यह खाद ढोती है। नगरों में और बड़ी-बड़ी हाटों में माल ढोकर ले जाती है। यह ऐसी-ऐसी कच्ची राह पर चली जाती है, जहाँ इक्के का पहुँचना दुस्साध्य है। ग्रामसुधार-आंदोलन यदि ग्राम के छोटे-बड़े सब मार्गों को पक्का कर दे और उनमें लारियाँ उतनी ही मजूरी पर माल ढोने लगें तो संभव है कि बैलगाड़ी की सृष्टि को धक्का पहुँचे।

नगर के पड़ोसवाले इक्कों का बड़ा भारी संघर्ष किराये की मोटरों से चल रहा है। उन्होंने पक्के-चौड़े मार्ग पर बसे हुए ग्रामों और उपनगरों में तो इक्कों का व्यवसाय बिलकुल चौपट कर दिया है। घनी बस्ती-वाले नगरों में अभी उनकी कम पुसाती है। किराये की कमी और शीघ्र पहुँचने का लालच यात्रियों को इक्के से पराङ्मुख करके मोटर-बसों पर अधिक से अधिक संख्या में बिठा रहा है। अपनी स्थिति के संकट से बचने के लिए इक्कों ने नगर में ही शरण ली है। यहाँ उसके कट्टर शत्रु ताँगे, मोटरें, ट्रामगाड़ियाँ और बग्घियाँ हैं। ट्रामगाड़ियाँ तो केवल कानपुर में ही थीं और यहाँ से भी इक्कों के सौभाग्य से उनका अन्त हो गया है। उनकी स्मृति आयुसंपन्न व्यक्तियों की कल्पना में रक्षित अवश्य है। इस स्मृति के आलंबनरूप में ट्राम जीवन-काल के लगे हुए खंडित स्तंभ और कहीं-कहीं दो-चार हाथ लम्बी पृथ्वी में धँसी हुई ट्राम-पटरियाँ, जिन्हें मार्गों का पुनरुद्धार करनेवाले अभी खोद नहीं पाये, अवश्य दृष्टिगोचर होती हैं। बग्घी का अवसान अकालमृत्यु नहीं कहा जा सकता। उसका चरमराता हुआ ढीला-ढीला ढाँचा, खड़खड़ाते हुए पहिये, कच्छप की अलसगतिवाला उनका क्षीण-काय अश्वयुगल, बंद बैठक और ढचर-ढचर का राग प्राचीनता के पुजारी, सुस्ती के प्रतिरूप, किसी प्रकार से समय काटने के इच्छुक धनिकों का मनबहलाव कर सकता था। उनकी मनोवृत्ति में द्रुतगति का संचार और मोटरों का आविर्भाव दोनों ने मिलकर बग्घी को समाप्त कर दिया। डाक ले जाने के लिए भी अब उसके स्थान में मोटर-लारी का ही प्रयोग चल निकला है। बड़े-बड़े नगरों में अब बग्घियाँ ढूँढ़े से नहीं मिलतीं। दो-एक कहीं यदि स्टेशनों पर मिल गईं तो वे प्राचीन जर्जर धवल दाढ़ीवाले यात्रियों का मुँह देखा करती हैं, अथवा अधिक बोझवाले यात्री की मितव्ययिता का परितोष करती हैं। तीन ताँगों का भार अपनी छत पर रखकर यात्री के पैसे बचाती हैं।

हिंद-सूबे के नगरों की बस्ती अधिक फैली न होने के कारण मोटर बसें यहाँ पनप नहीं पातीं, अन्यथा बंबई-कलकत्ते की भाँति अन्य सभी वाहनों को वे भगा देतीं। इक्के के लिए यह बड़े सौभाग्य की बात है। टैक्सी अधिक मजूरी लेती है। अतएव उसका भी यहाँ प्रचार अभी तो नहीं बढ़ सकता; परन्तु इक्के का सबसे बड़ा शत्रु ताँगा है। रात-दिन उसी के साथ इसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संघर्ष चला करता है। साहबी ठाट-बाटवाले कोट, पैंट, हैट धारण करके लोग इक्के पर चढ़ना अपनी हजो समझते हैं। वे ताँगे की ही प्रतीक्षा किया करते हैं। यदि पैसा बचाने के भाव से लुक-छिपकर समय-बे-समय वे इक्के पर बैठ भी गये तो लोग उनकी ओर घूरते हैं। ताँगे की गति भी इक्के से द्रुततर होती है। फिर भी यदि इक्के नगरों में जमे हैं तो इसका कारण शुद्ध आर्थिक है। इक्का जनता का वाहन है। कम पैसे में

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए

एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सूज़ाक (गनोरिया) की हुकमी दवा

डा० जसानी का

जगत्-विख्यात

'गोनोकिलर' [रजिस्टर्ड]

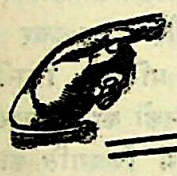

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने व निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर एक ऐसी ही आश्चर्यजनक दवा है जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता। डाक्टरों की दवा और इंजेक्शन (टीका) लेकर आप परेशान हो गये हों, अँगरेज़ी और अमेरिकन पेटेंट दवाओं में फ़िज़ूल पैसा बरबाद करके बिलकुल नाउम्मेद हो गये हों, तब आख़िरी इलाज हमारा 'गोनोकिलर' बेखटके इस्तेमाल कीजिए। चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को "गोनोकिलर" जड़ से नष्ट कर देता है।

मूल्य ५० गोलियों की शीशी का ३) रु० डाक-व्यय आठ आना अलग।

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
दवा का नाम गोनोकिलर
और मुर्ग़ा छाप सीलबंद
पैकेट देख लीजिये

एकमात्र बनानेवाला—डाक्टर डी० एन० जसानी, (M.L.) बिट्ठल भाई पटेल रोड मुंबई नं० ४

एजेंट—किंग मेडिकल हाल अमीनाबाद पार्क, लखनऊ] हरएक दवाफ़रोश के यहाँ बिकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसका उपयोग किया जाता है। साधारण जनता को वह इसी हेतु प्रिय है।

इक्के के समूल विनाश के कारण ढूँढना सरल नहीं। यदि किसी को ज्योतिषी बनने की धुन है तो वह कुछ कह सकता है। अनुमान साधारणतया यह किया जा सकता है कि यदि साम्यवाद का पदार्पण वाहन-संसार में भी हुआ और उनका भी वर्ग-हीन समाज बना, जिसके कारण ताँगों को नीचे उतरकर इक्कों की मजूरी अपनानी पड़ी तो इक्कों का कहीं पता न लगेगा। साथ ही साथ यह भी अनुमान किया जा सकता है कि यदि कहीं कलकत्ते और बम्बई की भाँति यहाँ भी 'बस' चल निकली तो इक्के और ताँगे दोनों अज़ायबघरों में ही मिल सकेंगे। जीवों की रक्षा का मोह उनके जीवन को रोके नहीं रह सकता। परन्तु अभी ऐसी आशंका नहीं है।

स्त्रीपुरुष सबके लिये ताक़त ताज़गी से भरा हुआ

सुमधुर

भंडू द्राक्षासव

अवश्य सेवन कीजिए

चाँदनी जैसी शीतल

भंडू की (शिलाजीत युक्त)

चन्द्रप्रभा गुटी

मूत्र रोग और धातुविकार की

अद्वितीय औषधि है

भंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बक्स नं० ५५१३ बंबई नं० १५।
यू० पी० एजेंट—कांतिलाल, आर० पारेख, चाँदनी चौक, दिल्ली।
लखनऊ एजेंट—माताबदल पन्सारी, अमीनाबाद।
लखनऊ स्टाकिस्ट—कौशिक आयुर्वेदिक स्टोर्स, श्रीराम रोड।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जारज

श्रीइलाचन्द्र जोशी

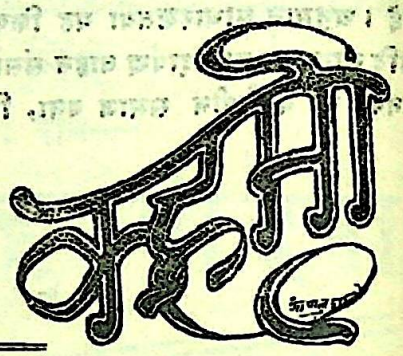

रामप्रसाद के जन्म का इतिहास दीर्घकाल तक पास-पड़ोस के प्रायः सभी लोगों के लिए रहस्यमय रहा। वह स्वयं वर्षों तक इस सम्बन्ध में वास्तविकता से अपरिचित रहा। उसकी माता रामकली बहुत छोटी अवस्था में विधवा हो गई थीं। विधवा होने पर गो-ब्राह्मण की सेवा, व्रत, पूजा आदि में उनका समय बीतने लगा। वह अत्यन्त नियम तथा संयमपूर्वक रहा करती थीं और नित्य तुलसीकृत रामायण, सूरसागर तथा गीता का पाठ किया करती थीं। दो वर्ष तक उनका धार्मिक जीवन अत्यन्त कठोर साधना के साथ व्यतीत हुआ। इसके बाद गाँव में अचानक एक साधु महात्मा का आविर्भाव हुआ। साधु बाबा का स्वास्थ्य सुन्दर, शरीर सुपुष्ट शील-स्वभाव मनोहर, पारमार्थिक ज्ञान अस्पष्ट किन्तु सांसारिक ज्ञान स्पष्ट था। गाँव के सीमाप्रान्त में, नदी के किनारे अपने लिए एक झोपड़ा निर्माण करके, धूनी रमाकर उन्होंने अच्छा खासा आश्रम-सा प्रतिष्ठित कर लिया था। गाँव की स्त्रियाँ किसी भी पुण्य-पर्व के अवसर पर उनके "आश्रम" में भीड़ लगा देती थीं और बाबाजी की चरणधूलि मस्तक पर धारण करके अपने को कृतार्थ समझकर चली जाती थीं। प्रारम्भ में साधारण अवसरों पर भी बाबाजी के यहाँ दर्शनार्थियों की भीड़ कुछ कम नहीं रहती थी। पर धीरे-धीरे लोगों का कौतूहल उनके सम्बन्ध में घटने लगा और उनके अनुरक्त भक्तों की संख्या घटते-घटते दो-चार तक ही सीमित रह गई। इन दो-चारों में रामकली का स्थान अग्रगण्य था।

रामकली को बाबाजी की सेवा में एक अपूर्व तथा अलौकिक हर्ष का अनुभव प्राप्त होने लगा था। घर के ज़रूरी कामों को छोड़कर भी वह बाबाजी की सेवा के लिए समय निकाल लेती थीं। उनके सौभाग्य से विधवा होने के बाद भी अन्न-वस्त्र के प्रश्न ने उनके आगे विकट रूप धारण नहीं किया था। पति की पैतृक सम्पत्ति का बटवारा होने पर उन्हें जो भाग मिला, उससे वह अपने लिए नोन, तेल और लकड़ी का प्रबन्ध भली भाँति कर सकती थीं। इस कारण बाबा के दर्शनों के लिए उन्हें पर्याप्त समय मिल जाता था। उनकी ससुरालवालों को उनकी यह अत्यधिक साधु-भक्ति बिलकुल पसन्द न थी। पर रामकली किसी की परवा करनेवाली स्त्री न थीं। ससुरालवाले जब परोक्ष रूप से अपनी नापसन्दगी ज़ाहिर करते तो वह ऐसे कटु शब्दों में अपना वक्तव्य सुनातीं कि उन लोगों को हार मानकर चुप रह जाना पड़ता था।

एक दिन अकस्मात् रामकली साधु बाबा के साथ गायब हो गईं। ससुरालवालों को यद्यपि रामकली की धार्मिक निष्ठा की सहृदयता के सम्बन्ध में यथेष्ट सन्देह था, पर इस हद तक उनकी कल्पना कभी स्वप्न में भी नहीं दौड़ी थी कि लोकलाज तथा कुलकानि को इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नग्न धृष्टता से तिलांजलि देकर वह अपने सम्बन्धियों के मुखों में कालिख पोतकर बाबा के साथ भागकर चली जायँगी। तब से रामकली ने उस गाँव में कभी पाँव न रक्खा।

साधु बाबा रामकली को लेकर एक अज्ञात स्थान में चले गये। वहीं रामप्रसाद का जन्म हुआ। उसके जन्म के साल भर बाद साधु बाबा मेरठ के पास एक क़स्बे में आकर रहने लगे। तब से बाबा पक्के गृहस्थ बन गये। पर गेरुआ वस्त्र धारण किये रहे। अन्तर केवल यही था कि अब वह साधारण योगी न रहकर पक्के कर्मयोगी बन गये थे और संन्यास-धर्म के बदले गीता के अनासक्ति योग का प्रचार लोगों में करने लगे। वह कहा करते थे कि सच्चा योगी वही है, जो संसार के स्वाभाविक कर्मों से मुँह न मोड़कर निःसंग रूप से सहस्र सांसारिक बंधनों के बीच में रहकर बन्धनहीन जीवन बिताता चला जाय। फल यह हुआ कि उनके चेले-चाटियों की संख्या इस नई स्थिति में भी कुछ कम न रही। उन्होंने स्पष्ट रूप से यह बात किसी को न बताई कि रामकली के साथ उनका क्या सम्बन्ध है और रामप्रसाद के जन्म का रहस्य क्या है, तथापि संसार के नाना चक्रों के सम्बन्ध में अनुभव-प्राप्त विज्ञजनों से वास्तविकता छिपी न रही।

रामप्रसाद का शारीरिक गठन अपनी माता के ही अनुरूप क्षीण तथा दुर्बल था। छुटपन में वह रोता-झीखता बहुत था और अक्सर बीमार रहा करता था। जब वह कुछ बड़ा हुआ तो उसका स्वास्थ्य यद्यपि वैसा ही असन्तोषजनक बना रहा, तथापि उसके स्वभाव में कुछ स्थिरता आ गई। जब वह अक्षर पहचानने लगा और थोड़ा-बहुत पढ़ना-लिखना सीख गया तो रामकली उसे रामायण पढ़ाने लगीं। बाबा उसे "हे हे यशोदे तव बालकोऽसौ मुरारिनामा वसुदेवसूनुः" आदि श्लोक रटाने लगे। रामप्रसाद बड़े चाव से पढ़ने और रटने लगा। इस प्रकार धार्मिक विषयों की ओर उसकी रुचि बचपन से ही प्रबल हो उठी। बाबा ने उसके लिए एक पंडित नियुक्त कर दिया, जो उसे अपनी योग्यता के अनुसार हिन्दी तथा संस्कृत सिखाने लगे। धीरे-धीरे जब वह रामायण को बिना किसी की सहायता के स्वयं पढ़ने में समर्थ हो गया तो वह बाक़ायदा उसका अध्ययन करने लगा और बाबा तुलसीदास की धार्मिक तथा नैतिक सूक्तियों का भावार्थ अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुसार लगाकर अपने जीवन का आदर्श स्वयं प्रतिष्ठित करने की चेष्टा करने लगा। वह भावुक था, उसकी स्मरणशक्ति भी अच्छी थी और अपनी रुचि के विषय में पूर्ण मनोयोग देना भी वह जानता था। फल यह हुआ कि सोलह वर्ष की उम्र में वह परम नीतिनिष्ठ, पक्का आदर्शवादी तथा कट्टर धार्मिक बन गया।

स्त्री-जाति से वह बचपन से ही बहुत डरता था। उसने अपने दुष्ट-चरित्र साथियों से स्त्री-पुरुषों की घनिष्ठता के भयंकर परिणामों के सम्बन्ध में स्पष्ट तथा अस्पष्ट रूप से कितनी ही रोमांचकारी बातें सुन रक्खी थीं। पता नहीं, छोटी उम्र में ही उसके बचपन के साथी कैसे ऐसी आतंकोत्पादक बातों से परिचित हो गये थे। उनकी बातें रामप्रसाद को भूतों की कहानियों की तरह लोमहर्षक और भयावनी लगती थीं और साथ ही वैसी ही रोचक भी। अपनी धार्मिक तथा नीतिनिष्ठ प्रकृति के कारण इस प्रकार की बातों से उसका मन घृणा से भर जाता था, पर उसकी भावुक प्रकृति में विकृति का जो कीड़ा अज्ञात रूप से वर्तमान था, वह इस प्रकार के घृणित विषयों की चर्चा के पंकिल रस में निमज्जित होने के लिए चंचल हो उठता था। पर वह अपनी इस चंचलता को कभी किसी पर प्रकट न होने देता और अपनी अन्तर प्रकृति के किसी अज्ञात कोने में छिपे हुए घुन को अज्ञात ही रहने देना चाहता था, यद्यपि वह घुन उसकी आत्मा के सार को भीतर ही भीतर चाटता चला जाता था।

ज्यों-ज्यों वह घुन उसे अलक्ष्य में निःशक्त करता जाता था, त्यों-त्यों उसकी नैष्ठिक प्रकृति स्त्री-जाति के प्रति उसके मन में घृणा के भाव को उग्र से उग्रतर बनाती जाती थी। बाबा के पास जो स्त्रियाँ भक्ति-भाव से आया करती थीं, उनमें से कुछ इस लज्जाशील किशोर कुमार के मुख में अभिव्यक्त यौवनाभास से आकर्षित होकर उसकी पीठ पर हाथ फेरकर उससे स्नेह की दो-दो बातें कर जातीं। उनके स्नेहालाप तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मोह-स्पर्श से रामप्रसाद का सारा शरीर कण्टकित हो उठता था और एक विचित्र तिक्त-मधुरस्वाद से उसकी आत्मा की जिह्वा जर्जरित हो उठती थी। इस स्वाद को बदलने के लिए आध्यात्मिक रस का स्वाद लेना उसके लिए अत्यन्त आवश्यक हो जाता और वह इस विषय की पुस्तकों के अध्ययन द्वारा इस रस की ओर अधिकाधिक झुकता चला जाता था। रामप्रसाद के साथियों ने उसका नाम भोंदू रख दिया था और वे बात-बात में उसे बनाते और उसकी खिल्ली उड़ाते। उसके साथियों में केवल एक ही व्यक्ति ऐसा था, जिसके साथ वह आन्तरिक घनिष्ठता का सम्बन्ध स्थापित कर पाया था। इस लड़के का नाम था काशीप्रसाद। काशीप्रसाद के पिता कथावाचक भी थे और ज्योतिषी भी। हरिद्वार में ऋषिकुल में उन्होंने शिक्षा पाई थी, पर उनकी बनती अधिक थी गुरुकुल के छात्रों से। कथावाचक और ज्योतिषी तो वह उदरनिमित्त बने थे, पर वास्तव में उनकी महत्वाकांक्षा कुछ दूसरी ही थी, जो उनकी आर्थिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के कारण सफल नहीं हो पाई। उनके विचार उग्र सुधार-पंथी थे। वह अपने छात्र-जीवन में जात-पाँत-तोड़क, मूर्ति-मुण्ड-फोड़क और धर्म-गति-मोड़क बनने का स्वप्न देखा करते थे। पर ऐसे सांसारिक फेर में पड़ गये कि कुछ बन न पाये। फिर भी उनके विचारों में कोई अन्तर न आया; यद्यपि वह पूर्णतः एक कट्टर सनातनी का जीवन व्यतीत करते थे।

काशीप्रसाद योग्य पिता का योग्य पुत्र था। आचार में वह कट्टर सनातनी था, पर विचार में पक्का आर्यसमाजी। रामप्रसाद के साथ उसके बहुत-से विचारों में मतभेद रहता था। वह तुलसीदास की रामायण को पोप-पंथियों की पोथी बताया करता था और हृदय की भावुकता की अपेक्षा बुद्धि की विचक्षणता को अधिक स्थान देता था। दोनों की प्रकृतियों में इस प्रकार मूलगत अन्तर होने पर भी न-जाने किस रहस्यमय अज्ञात बन्धन से दोनों में घनिष्ठता का बन्धन ऐसा दृढ़ हो गया था कि देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक था।

काशीप्रसाद के संसर्ग में आकर रामप्रसाद को हिन्दी में प्रकाशित विभिन्न विषयों की पुस्तकों को पढ़ने का चस्का लग गया और धीरे-धीरे उसके मन में लेखक तथा वक्ता बनने की इच्छा उत्पन्न होने लगी, यहाँ तक कि वह कविता भी करने लगा। काशीप्रसाद उसके इस गुण से और अधिक मुग्ध हो गया। रामप्रसाद ने धार्मिक, नैतिक तथा साहित्यिक विषयों पर लेख लिखने शुरू कर दिये और २२-२३ वर्ष की उम्र में ही उसने हिन्दी-जगत् में अच्छा नाम पैदा कर लिया। उसका ज्ञान एकदम अपरिपक्व होने पर भी उसकी भावुकता में एक ऐसी सहृदयता थी, जिसका प्रभाव पाठकों पर पड़े बिना रह नहीं सकता था।

हिन्दी-जगत् में अपनी थोड़ी-बहुत धाक जमते देखकर रामप्रसाद अपनी महत्ता के गर्व से फूला न समाने लगा। पर इस बीच एक ऐसी घटना घट गई, जिसने उसके हृदय पर भयंकर रूप से आघात किया। उसकी मा अकस्मात् किसी घातक रोग से चार-पाँच दिन तक पीड़ित रहकर इस लोक से चल बसीं। माता के शोक से बहुत दिनों तक विह्वल रहकर जब वह कुछ शान्त हुआ तो बाबा ने एक दिन उसे बुलाकर उसके जन्म का सच्चा इतिहास कह सुनाया। रामप्रसाद को जब यह मालूम हुआ कि वह जारज है तो उसे वर्णनातीत रूप से धक्का पहुँचा। माता की जीवितावस्था में यह धक्का और अधिक उग्र रूप से आता, पर माता की मृतावस्था में उसका प्रभाव इतना ज़बर्दस्त न रहा। फिर भी उससे रामप्रसाद की विचारधारा बहुत बदल गई और उसके आदर्शवाद का रूप ही कुछ दूसरा हो गया।

दो वर्ष बाद बाबा की भी मृत्यु हो गई और रामप्रसाद का इस संसार में अपना कहने को कहीं कोई जीवित न रहा। अपने अकेलेपन की अनुभूति पहले रामप्रसाद को अनन्तव्यापी शून्य के विकराल जबड़ों की तरह उसे निगलने के लिए उद्यत-सी जान पड़ने लगी। वह कहीं एकान्त में बैठकर 'मा-मा!' कहकर बच्चों की तरह जी भरकर रोया करता। अपनी दुःखिनी, कुल-कलंकिनी माता के निःस्वार्थ और ऐकान्तिक स्नेह का ख़याल करके उसके प्रति जैसा प्रेम-भाव उसके हृदय में अब उमड़ने लगा, वैसा पहले कभी उसने अनुभव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं किया था। धीरे-धीरे उसके किसी अज्ञात संस्कार ने उसे सँभलने के लिए सामर्थ्य तथा प्रेरणा दी। वह मेरठ चला गया और वहाँ एक पुस्तक-विक्रेता की दूकान में 'सेल्समैन' बन गया, और साथ ही पत्र-पत्रिकाओं में लेख तथा कविताएँ छपाता चला गया। लेखों से उसे तीन-चार महीने के भीतर दस-पाँच रुपये मिल जाते थे। उसके मन में यह संस्कार जमा हुआ था कि लेखक होने के नाते वह संसार के सब व्यक्तियों के सम्मान का पात्र है। पर वास्तविक जीवन का अनुभव होने पर वह देख रहा था कि अधिकांश लोग उसके प्रति अवज्ञा का भाव प्रदर्शित करते हैं। जब से उसे मालूम हुआ कि वह जारज है, तब से उसे अपने प्रति लोगों की अवज्ञा तथा घृणा के भाव स्पष्ट दिखाई देते हुए-से जान पड़ते थे। अब जो कोई भी व्यक्ति उससे बातें करता अथवा जिस किसी की दृष्टि उस पर पड़ती, उससे अत्यन्त शंकित होकर वह मन में यह कल्पना करने लगता कि उसे उसके जारज होने की बात का पता लग गया है। जिस दूकान में वह काम करता था, उसके मालिक अक्सर उसे डाँटा करते और बात-बात में उसकी त्रुटियाँ दिखाते रहते थे। ऐसे अवसरों पर वह मन ही मन इस प्रकार का जवाब देने का विचार करता—"आपको जानना चाहिए कि मैं एक साधारण 'सेल्समैन' नहीं, बल्कि एक लेखक हूँ। मुझे डाँट बताने का कोई अधिकार आपको नहीं है। आपको शायद मालूम हो गया है कि मैं जारज हूँ, पर मैं जारज होना कोई लज्जा की बात नहीं समझता। कर्ण से लेकर कबीर-जैसे महात्मा तक जारज रहे, पर इस बात से उन लोगों की प्रतिभा का महत्त्व बिलकुल नष्ट नहीं हुआ।" इससे भी लम्बा-चौड़ा उत्तर वह मन ही मन तैयार कर लेता था, पर स्वभाव का वह इतना दुर्बल था कि मालिक की किसी भी अन्यायपूर्ण उक्ति के विरोध में उसने कभी एक शब्द मुँह से न निकाला।

एक बार काशीप्रसाद के पिता के पास उनके किसी आर्य-समाजी मित्र का पत्र आया, जिसमें उन्होंने अपनी लड़की के योग्य वर ढूँढने के लिए लिखा था। काशीप्रसाद के पिता को न-मालूम क्यों, तत्काल राम-प्रसाद की याद आई। उन्होंने चट एक कार्ड रामप्रसाद को भेजा और दो-चार पंक्तियों में उसे जीवन में विवाह का क्या महत्त्व है, यह बात समझाते हुए लिखा कि कन्या अत्यन्त सुन्दरी तथा शिक्षिता है। इस पत्र से रामप्रसाद के मस्तिष्क में भयंकर आलोड़न-विलोड़न मचने लगा। उसकी अवस्था उस समय २९-३० के क़रीब हो चुकी थी। अपने जीवन में वह स्त्रियों के साथ कभी किसी सूत्र से घनिष्ठ सम्पर्क में नहीं आ पाया था। इतने वर्षों तक विवाह न होने से वह स्त्रियों से अपनी आत्मा के दूरत्व को स्वाभाविक समझने लगा था। काशीप्रसाद के पिता का पत्र पाते ही वह समझ गया कि इतने वर्षों तक उसका जीवन अत्यन्त अस्वाभाविकता में बीता है। उसकी अतल-व्यापी सुप्त भावनाएँ तलमलाने लगीं और विवाह के लिए उसका चित्त अत्यन्त उत्सुक हो उठा। पर अपनी आर्थिक तथा सामाजिक स्थिति को देखते हुए वह समझ गया कि उसके जीवन में विवाह का प्रश्न उत्पन्न होना भी अस्वाभाविक ही है। उसने काशीप्रसाद के पिता को अपनी आर्थिक स्थिति का उल्लेख करते हुए लिखा कि उसे विवाह का उपदेश देना उसका परिहास करना है। प्रायः दस दिन बाद काशीप्रसाद के पिता का पत्र फिर आया कि कन्यापक्ष आर्थिक पहलू को महत्त्वपूर्ण नहीं समझते। वे सम्पन्न हैं। उन्हें केवल एक गुणवान् वर की आवश्यकता है। दहेज़ भी वे यथेष्ट देने को राज़ी हैं।

इस उत्तर से रामप्रसाद की छाती पर से एक बड़ा भारी पत्थर हटा। अब वह विशेष उत्साहपूर्वक अपने विवाह के प्रश्न पर गम्भीर रूप से विचार करने लगा। अपने गुणवान् होने के विषय में उसे तनिक भी संदेह नहीं था। पर उसके भावुक हृदय में दुर्बल सत्य का जो अंश छिपा हुआ था, वह भविष्य की अज्ञात आशंका के कारण जाग पड़ा। उसने देखा कि उसका स्वास्थ्य विशेष अच्छा नहीं है। विवाह होने पर उसकी पत्नी को यदि किसी बात का धोखा मिला तो वह ठीक न होगा। इसलिए उसने काशीप्रसाद को इस सम्बन्ध में सूचना देते हुए लिख दिया कि यदि इस बात को ध्यान में रखते हुए भी कन्या के पिता को उसके साथ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपनी लड़की का विवाह करने में कोई आपत्ति न हो तो उसे भी कोई आपत्ति नहीं है।

कन्या के पिता को इस बात की सूचना यथासमय काशीप्रसाद के पिता द्वारा मिली और तत्काल उन्होंने एक पत्र सीधे रामप्रसाद को लिखा। उसमें उन्होंने अपना यह मत प्रकट किया कि रामप्रसाद के जिन अपूर्व गुणों की सूचना उन्हें मिली है, उन्हें ध्यान में रखते हुए वह अन्य किसी बात को विशेष महत्त्व नहीं देना चाहते और अपनी लड़की का विवाह शीघ्रातिशीघ्र उसके साथ करने के लिए उत्सुक हैं। वर बिना देखे और उसके सम्बन्ध में कोई विशेष परिचय प्राप्त किये बिना ही कन्यापक्षवालों की यह शीघ्रता रामप्रसाद-जैसे कल्पनालोक में विचरनेवाले जीव को भी कुछ अस्वाभाविक-सी मालूम हुई। उसके मन में यह सन्देह हुआ कि लड़की देखने में अत्यधिक कुरूपा होगी, इसी लिए वह उसके मत्थे मढ़ दी जा रही है। उसने साहस करके लड़की का फोटो मँगाया। यथासमय फोटो पहुँचा, जिसे देखकर उसके हर्ष का पारावार न रहा। ऐसी सुन्दर, स्वस्थ तथा सुगठित अंगोंवाली स्त्री उसने अपने जीवन में पहले कभी नहीं देखी थी। उसके अंग-अंग में नव-यौवन की उमंग तरंगित हो रही थी। उसकी वेश-भूषा से सुरुचि तथा शालीनता का परिचय प्राप्त होता था। उसे देखकर उसके मन में यह आशंका फिर नये सिरे से जागरित होने लगी कि उसका शरीर, स्वास्थ्य तथा सांसारिक परिस्थितियाँ इस अनुपम सुन्दरी, शिक्षिता और सम्पन्न कुलवाली ललना के योग्य नहीं हैं। वह बहुत हिचकिचाया, पर अन्त में उसका लोभी मन नहीं माना और वह राज़ी हो गया।

यथासमय आर्य-पद्धति तथा वैदिक नियमों के अनुसार शुभ-विवाह सम्पन्न हुआ। विवाह होने के कुछ ही दिन बाद रामप्रसाद के कानों तक इस अफ़वाह की भनक गई कि जिस शिक्षिता सुन्दरी से उसका विवाह हुआ है, उसका सम्बन्ध पहले किसी अन्य पुरुष से रह चुका है। केवल सम्बन्ध ही नहीं, उससे उसको गर्भ भी रह चुका है, जिसके फलस्वरूप उसने गुप्त रूप से अस्पताल में पुत्र-प्रसव किया है और बच्चा अनाथालय के सुपुर्द कर दिया गया है। इस समाचार से रामप्रसाद अत्यन्त आतंकित हुआ, पर पत्नी का स्वास्थ्य, सौंदर्य और मस्ती देखकर वह ऐसा मुग्ध हो गया था कि उसके प्रति उसके मन में किसी भी कारण से घृणा का भाव उत्पन्न होना असम्भव-सा जान पड़ा। विवाह के पहले उसके बाह्य चेतन में स्त्री-जाति के प्रति घृणा का जो भाव वर्तमान था, विवाह के बाद उसके अन्तश्चेतन में निहित उत्कट वासना ने प्रबल वेग से उमड़कर उस भाव को बहा दिया।

रामप्रसाद की पत्नी का नाम मोहिनी था। उसकी आयु २२ वर्ष से कम न थी। विवाह के समय रामप्रसाद ने उसके मुख में जो सलज्ज और सुसंयत भाव देखा था, वह उसका बनावटी रूप था, यह बात रामप्रसाद को दूसरे ही दिन मालूम हो गई। रामप्रसाद उसे अपने साथ मेरठ ले गया। दहेज में उसे पाँच सौ रुपये नक़द मिले थे। उसे यद्यपि अधिक मिलने की आशा दी गई थी, तथापि वह इतने से ही प्रसन्न था; क्योंकि इतनी बड़ी रक़म एकमुश्त उसे अपने जीवन में पहले कभी नहीं मिली थी। नौकरी से उसे जितना मिलता था, उससे उसकी शिक्षिता पत्नी का गुज़ारा नहीं हो सकता, यह बात वह भली भाँति जानता था। पर उसने सोचा कि कुछ महीने पाँच सौ रुपयों से कट जायँगे; उसके बाद देखी जायगी।

मोहिनी ने पहले ही दिन से रामप्रसाद पर ऐसा रोब गाँठना शुरू कर दिया कि वह भयभीत हो उठा। पर जितना ही वह भीत होता था, उतना ही मोहिनी के प्रति आकर्षित भी होता था। मोहिनी अपने पति के साथ प्रथम दिन के ही अनुभव से उसके प्रति उत्कट रूप में विमुख-सी हुई जान पड़ती थी। वह कभी किसी दिन एक क्षण के लिए भी रामप्रसाद के साथ प्रसन्नता से न बोली। हर वक़्त खीझकर, झिझककर और झिड़ककर बातें करती थी। उसने कभी एक दिन के लिए भी अपने हाथ से खाना नहीं बनाया। रामप्रसाद नित्य दोनों जून स्वयं पकाकर उसे खिलाता था। मोहिनी कभी सन्तुष्ट मन से खाना नहीं खाती थी। कभी दाल में नमक ज़्यादा बताती और कभी कहती कि रोटी कच्ची रह गई। बात-बात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में किसी कारण से अथवा अकारण ही उसे डाटती रहती। बेचारा सब समय भय से थर-थर काँपता रहता और भरसक उसे प्रसन्न रखने की चेष्टा करता। दीन भाव से, करुण आँखों से दया-भिक्षा माँगता। पर उसकी कातरता मोहिनी के मन में करुणा उत्पन्न करने के बदले उसे अधिक क्रुद्ध कर देती थी। रामप्रसाद मौक़े-बेमौक़े उसका अंग-स्पर्श करने के लिए लालायित हो उठता, पर मोहिनी उसे दुतकार देती और भरसक उसे कभी किसी समय अपने पास फटकने न देती। वह ऊँची एड़ी के जूते पहना करती थी। रामप्रसाद कभी-कभी अवसर देखकर उसके जूते उतारने के बहाने उसका चरण स्पर्श करके अपने को धन्य समझता था। उस समय उसके सारे शरीर में ऐसा रोमांच हो आता कि वह काशीप्रसाद के पिता को मन ही मन अपने विवाह के लिए धन्यवाद देता। मोहिनी उससे किसी समय कुछ प्रसन्न रहती तो सिर्फ़ जूते उतारने के समय।

एक बार रामप्रसाद ने मोहिनी का रुख़ कुछ अच्छा देखकर कवित्त-छन्द में रची हुई अपनी एक करुणरसात्मक कविता उसे सुनाई। सुनकर मोहिनी मारे हँसी के लोट-पोट हो गई। जब स्थिर हुई तो बोली—"वाह रे भाँड़! यदि रईसों की महफ़िलों में जाते तो सेल्समैनी से अच्छा ही कमाके लाते।" इस अपमान को भी रामप्रसाद हँसकर पी गया।

एक बार शहर में कोई आर्य-समाजी नेता आये हुए थे। किसी सभा में उनकी प्रशंसा में एक ऐसी अच्छी कविता रामप्रसाद ने पढ़ी कि वह अत्यन्त प्रसन्न हो गये। फल यह हुआ कि उनके सदुद्योग से रामप्रसाद देहरादून से प्रकाशित होनेवाले किसी आर्य-समाज से सम्बन्धित पत्र का सम्पादक नियुक्त कर लिया गया। वेतन पचास रुपया प्रतिमास निश्चित हुआ।

मेरठ में मोहिनी का हाल बड़ा बुरा था। वहाँ उसके परिचित बन्धु-बांधवों की संख्या बहुत कम थी। पर देहरादून में उसके पूर्व-परिचित स्त्री-पुरुषों (विशेष करके पुरुषों) का समूह सुविस्तृत था। रामप्रसाद के डेरे में इन पूर्व-परिचित सज्जनों ने अपना अड्डा बना लिया। वह जब अपने सम्पादकीय कार्य से छुट्टी पाकर, वेद-वेदान्त के सम्बन्ध में गुरुगम्भीर तथा सारगर्भित लेख लिखने के बाद थका-माँदा घर आता तो उसे अपनी पत्नी की आज्ञा से उसके मित्रों के लिए चाय बनानी पड़ती और जलपान के लिए बाज़ार से गरमागरम समोसे (यह पकान्न उसकी पत्नी को विशेष रूप से प्रिय था) लाने पड़ते। एक दिन गरम समोसे किसी दूकान में प्राप्त न हुए। मोहिनी ने इस बात पर सब मित्रों के सामने ऐसी फटकार बताई कि बेचारा खीसें निकालकर घोर दुष्कर्म में पकड़े गये अपराधी की तरह दीवार के सहारे दुबककर खड़ा हो गया। चाय जब कभी अच्छी न बनती तो मोहिनी 'मूर्ख' और 'गधा' कहकर सबके सामने उसे दुतकार देती। रामप्रसाद रोनी-सी सूरत बनाकर सिर झुकाकर चुप रह जाता। पर आश्चर्य की बात यह थी कि पत्नी के इस प्रकार के व्यवहार से उसके प्रबल व्यक्तित्व की तेजस्विता का परिचय पाकर वह उसके प्रति-अधिकाधिक आकर्षित होता जाता था।

निहालचन्द-नामक एक अपलोक पंजाबी डाक्टर से मोहिनी की विशेष रूप से घनिष्ठता हो गई थी। वह अक्सर उनके यहाँ जाती थी और डाक्टर साहब भी उससे दिन में दो-तीन बार मिलने आते थे। दो-एक बार वह उनके साथ मसूरी हो आई थी। यात्रा में कोई तीसरा व्यक्ति उन दोनों के साथ नहीं था। पर रामप्रसाद ने इस बात से ईर्ष्यान्वित होने के बदले अपने को गौरवान्वित समझा था; क्योंकि डाक्टर निहालचन्द काफ़ी नामी थे और देहरादून में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। इसके अलावा एक बात और थी। एक बार डा० निहालचन्द ने एकान्त में रामप्रसाद से मिलकर उसके कम वेतन और अधिक व्यय की बात की चर्चा चलाकर उसके प्रति सहानुभूति प्रकट करते हुए उसके हाथ में सौ-सौ के दो नोट थमा दिये थे। रामप्रसाद कृतज्ञतावश पुलकित और गद्गद होकर उनके पैरों पर गिर पड़ा था।

केवल डा० निहालचन्द ही नहीं, जिन-जिन प्रतिष्ठित व्यक्तियों से मोहिनी को थोड़ी-बहुत भी घनिष्ठता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

थी, उनसे रामप्रसाद को आर्थिक तथा व्यावहारिक दृष्टि से लाभ ही होता था। अपनी पत्नी के (और फलतः अपने) इन मित्रों की कृपा तथा सलाह के फलस्वरूप उसने एक ख़ासा अच्छा मकान किराये पर ले लिया और उन्हीं सज्जनों की कृपा से बढ़िया-बढ़िया फ़र्नीचर से उसे सजा दिया। अपने लिए उसने एक ख़ासा अच्छा कमरा चुन लिया था, जहाँ बढ़िया आफ़िस-चेयर पर बैठकर काले कपड़े से मढ़े हुए एक टेबिल में ध्यानमग्न अवस्था में झुककर वह पारमार्थिक तथा आध्यात्मिक विषयों पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख लिखा करता, जब कि उसकी पत्नी डा० निहालचन्द अथवा पण्डित दीनदयालु शर्मा अथवा सेठ चिम्मनलाल के यहाँ राग-रंग की बातों में व्यस्त रहती थी।

इस प्रकार सारे संसार में अपने को दीन, अनाथ तथा असहाय समझनेवाला रामप्रसाद अब पत्नी की कृपा से अपने को हर तरह से सनाथ, सुसंरक्षित तथा सुखी मानकर परम संतोषमय वैदान्तिक जीवन बिता रहा था। पर जब कभी उसकी अन्तरात्मा उससे सहसा यह प्रश्न कर बैठती कि "मोहिनी को तुम किस दृष्टि से अपनी पत्नी मानते हो?" तो वह कोई भी निश्चित उत्तर देने में समर्थ नहीं था। वैदिक मन्त्रों द्वारा मोहिनी उसकी पत्नी अवश्य घोषित की गई थी, और वह उसके साथ एक ही मकान में रहती भी थी; पर इसके अतिरिक्त व्यावहारिक, नैतिक अथवा आध्यात्मिक—किसी भी दृष्टिकोण से मोहिनी ने एक दिन के लिए भी शायद ही उसके साथ पत्नी का सम्बन्ध निबाहा हो। संध्या को जब मोहिनी अपने मित्रों से मिलने चली जाती तो रामप्रसाद उसके परित्यक्त वस्त्रों को हाथ में लेकर उनके स्पर्शानुभव से पुलकित होता था, जिस पलँग पर वह सोती थी उसकी धूल झाड़कर रोमांचित होता उसके किसी रूमाल में लगी हुई सुगन्धि के घ्राण से मुग्ध होता। इस प्रकार अपने अशक्त प्राणों की अतृप्त आकांक्षा को किसी हद तक चरितार्थ करके उसे सन्तुष्ट रहना पड़ता।

एक बार मोहिनी बिना कुछ सूचना दिये ही लगातार तीन दिन तक ग़ायब रही। इसके पहले जब उसे कभी रात को घर नहीं आना होता तो वह रामप्रसाद से कह जाती थी। पर इस बार वह कुछ कह नहीं गई थी। रामप्रसाद बड़ा बेचैन हो उठा। उसने सभी परिचित स्थानों में जाकर पता लगाया, पर कोई फल नहीं हुआ। जब तीसरे दिन भी मोहिनी नहीं आई तो वह विह्वल होकर बिलख-बिलखकर रोने लगा। रात को ग्यारह बजे के क़रीब किसी ने किवाड़ा खटखटाया। हड़बड़ाकर रामप्रसाद ने दरवाज़ा खोला। हाँ, वह उसी की प्यारी मोहिनी थी। मोहिनी बिना एक भी शब्द बोले ऊपर चली गई। उसे देखकर रामप्रसाद की आँखों में बरबस हर्ष के आँसू निकलने लगे थे। उसकी ओर निदारुण घृणा की दृष्टि से देखकर मोहिनी ने कटु शब्द से कहा—"नादान बच्चों की तरह रुलाई आ रही है! शरम नहीं आती? क्लीब!....मैं कुछ समय के लिए कहीं सुख, शान्ति स्वतन्त्रता में रहूँ, यह इनसे देखा नहीं जाता। जब से विवाह हुआ तब से मुझे परेशान कर रक्खा है। मेरे सुख के जीवन में तुमसे बड़ा कण्टक और कोई नहीं है, मैं साफ़ बात कहना जानती हूँ। या तो मैं जल्दी मर जाऊँ या तुम। तभी छुटकारा है।"

यह कहकर वह फनफनाती हुई अपने पलँग के पास चली गई और जूते उतारकर कपड़े बदलकर सोने की तैयारी करने लगी। रामप्रसाद काठ के पुतले की तरह स्तब्ध खड़ा था, जैसे किसी ने कील ठोंककर उसके पाँवों को ज़मीन पर जकड़ दिया हो। उसके चारो ओर सारा कमरा चक्कर लगाने लगा। कमरे की सब चीज़ें बड़े वेग से भों-भों शब्द करके घूमती हुई मालूम पड़ रही थीं। मोहिनी की सभी कर्कश बातों में से एक शब्द विशेष करके उसके कानों में गूँज रहा था—"क्लीब!" इस शब्द का प्रयोग मोहिनी पहले भी कई बार उसके लिए कर चुकी थी। उसे स्मरण हो आया कि मोहिनी को नित्य 'लण्डन-रहस्य', 'अनोखा आशिक', 'काशी का दलाल' आदि और भी इसी कोटि की पुस्तकों को पढ़ते देखकर एक दिन जब उसने उसकी रुचि बदलने के उद्देश्य से अपने सम्पादकत्व में निकलनेवाले पत्र का कोई अंक उसे देकर—उसमें प्रकाशित लेखों को पढ़ने की सलाह दी थी तो मोहिनी ने लेखों की सूची पढ़ते हुए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दो लेख ऐसे देखे, जिनमें लेखक के नाम के स्थान पर रामप्रसाद का नाम छपा था। लेखों के शीर्षक थे—'वैदिक संस्कृति' और 'हिन्दू-जाति की रक्षा।' मोहिनी ने पत्र को ज़मीन पर पटककर कटु व्यंग के साथ कहा था—"हूँ! 'वैदिक संस्कृति'! 'हिन्दू-जाति की रक्षा!' तुमको तो क्लीव-धर्म पर लेख लिखना चाहिए। वैदिक संस्कृति को क्यों नाहक़ कीचड़ में ढकेलते हो! और जो आदमी अपनी पत्नी की रक्षा करने में असमर्थ है, उसे हिन्दू-जाति की रक्षा की चर्चा करते हुए शर्म आनी चाहिए। पर नपुंसकों को लज्जा से कोई वास्ता हो तब तो!"

इस पुरानी बात की तिक्त स्मृति से दग्ध और आज की नई कटूक्ति के बाण से विद्ध होकर रामप्रसाद का मस्तिष्क घूर्णित हो रहा था। कुछ देर तक वह आँख बन्द किए खड़ा रहा। उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि 'क्लीव' और 'नपुंसक' ये दो शब्द अग्नि के अक्षरों में लिखे गये हैं और उसके सिर के चारो ओर आतिशबाज़ी की तरह चक्कर खा रहे हैं। किसी तरह अपने को सँभालकर वह बड़ी कठिनाई से अपने पलँग पर जाकर लेट गया। लेटने के कुछ ही देर बाद वह सिसकियाँ भरने लगा। मोहिनी का पलँग दूसरे कोने पर था। वहाँ से वह रामप्रसाद के सिसकियाँ भरने का शब्द स्पष्ट सुन रही थी। वह बड़बड़ाती हुई पलँग पर से उठी और रामप्रसाद के पास आकर झिड़ककर बोली—"बात क्या है? क्या हुआ? सोने भी दोगे या नहीं? तुम्हारे बौड़मपन के कारण सुबह से शाम तक नाकों दम है। उफ़!"

रामप्रसाद कुछ देर तक चुप रहा, पर मोहिनी के बार-बार डाँटने और कारण पूछने पर वह उठ बैठा और उसका एक पाँव पकड़कर उस पर अपना सिर रखकर भर्राई हुई आवाज़ में बोला—"मोहिनी, मुझे क्षमा करो! तुमने मुझसे जो कुछ कहा वह सही है। मैं दर-असल वैसा ही हूँ। पर तुम मुझ पर दया करो! मैं तुम्हारी शरण में हूँ। तुम्हारे सिवा इस संसार में मेरा अपना कहने को और कोई नहीं है।" यह कहकर उसने दो-एक बूँद आँसू अपनी पत्नी के पैर पर गिरा दिये।

मोहिनी ने असह्य घृणा तथा क्रोध से अपना पाँव छुड़ाते हुए कहा—"उफ़! अजब परेशानी है! ऐसे आदमी से पाला पड़ा है कि जीवन में एक क्षण के लिए भी चैन नहीं।" यह कहकर वह अपने पलँग पर वापस चली गई।

इस घटना के प्रायः पन्द्रह दिन बाद अचानक रामप्रसाद की तबियत बहुत ख़राब हो गई। डाक्टर निहालचन्द ने पेचिश की शिकायत बताई। रक्त चिन्ताजनक परिमाण में निकल रहा था। तीन रोज़ तक असह्य कष्ट सहन करने के बाद उसके हृदय की गति बन्द हो गई। पास-पड़ोस के लोग आपस में कानाफूसी करने लगे कि मोहिनी ने डा० निहालचन्द से मिलकर संखिया देकर रामप्रसाद को मार डाला है।

मई का महीना था। जिस समय रामप्रसाद की अर्थी श्मशान में पहुँचाई गई, उस समय रात हो चुकी थी। पश्चिम की तरफ़ से आकाश में काली घटा उमड़ रही थी और उस पर रह-रहकर बिजली कौंध रही थी। पर पूर्व की तरफ़ आकाश बिलकुल परिष्कार-परिच्छन्न था और तारे टिमटिमा रहे थे। घटा पश्चिम से पूर्व की ओर बढ़ती चली जाती थी। प्राकृतिक घटनाएँ भी कभी-कभी घड़ी और पल गिनकर ठीक समय में किस प्रकार अपना कुचक्र चलाती हैं, यह देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है। ज्यों ही चिता सजाकर उस पर रामप्रसाद का मृत शरीर रक्खा गया त्यों ही बड़े ज़ोरों से आँधी आनी शुरू हुई और आँधी के साथ मूसलधार पानी बरसने लगा। आँधी का वेग ऐसा ज़बर्दस्त था कि अनुभवी वृद्धों के कथनानुसार वैसी आँधी देहरादून में पहले कभी नहीं आई थी। उसे यदि प्रलय-झंझा कहा जाय तो कुछ अनुचित न होगा। मालूम होता था कि दुबले-पतले आदमी उसके ज़ोर से हवा में उड़ने लगेंगे। वर्षा भी प्रलय-वृष्टि से कुछ कम नहीं थी। क्षण-क्षण में बिजली चमक रही थी, जो पृथ्वी और आकाश को पल भर में एक रूप में मिला देती थी। जो लोग अर्थी लेकर आये वे सब अपनी-अपनी जान बचाने के उद्देश्य से चिता में आग लगाये बिना ही भागे। बादल रुद्र-रोष से गरज रहे थे, जैसे एक अशक्त मानव-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राणी पर किये गये अत्याचार का बदला लेने के लिए अधीर हों।

प्रायः ३०-४० मिनट तक आँधी-पानी का ज़ोर रहा। जब पागल-प्रकृति कुछ शान्त हुई तो लोग चिता के पास आये। पर सबके आश्चर्य की सीमा न रही, जब उन्होंने चिता को शून्य पाया। रामप्रसाद की लाश वहाँ नहीं थी।

इस प्रकार रामप्रसाद के जन्म की तरह उसकी मृत्यु का क़िस्सा भी चिरकाल तक गहन रहस्य से आच्छादित रहा।

× × ×

रामप्रसाद की मृत्यु के प्रायः बारह वर्ष बाद की बात है। मोहिनी किसी एक शहर में उन दिनों एक विधवाश्रम की प्रधान व्यवस्थापिका के पद पर नियुक्त थी। आश्रम में कुछ दिनों से एक नया भंगी काम कर रहा था। उसकी अवस्था ४४–४५ वर्ष के क़रीब मालूम होती थी। यह भंगी किसी से अधिक बातें न करता था और चुपचाप अपना काम किये जाता था। पर जब कभी वह मोहिनी की ओर देखता था, तो एक अज्ञात रहस्यमय भय की अनुभूति से ठिठक-कर रह जाती थी। एक दिन वह रात को अपने कमरे में एक उपन्यास पढ़ते-पढ़ते बत्ती बिना बुझाये ही सो गई थी। प्रायः आधी रात को जब उसकी नींद टूटी और आँखें खुलीं तो उसने अपने सामने जो दृश्य देखा, उससे वह अर्द्ध-स्फुट कण्ठ से चीख़ उठी। वह रामप्रसाद को उसकी मृत्यु के पहले जिस वेश में और जिस रूप में देखा करती थी, ठीक उसी वेश में और उसी रूप में इस समय भी उसने उसे अपने सामने खड़ा पाया। भय की भ्रान्ति से वह तत्काल मूर्च्छित होकर गिर पड़ी।

दूसरे दिन आश्रमवासियों ने मोहिनी को प्रबल ज्वर के कारण बेहोशी की-सी हालत में पाया। तीसरे दिन ज्वर कुछ कम हुआ। मोहिनी ने आँख खोलकर डाक्टर से पूछा—"वह क्या अभी तक यहीं है?" डाक्टर ने कहा—"कौन?" "मेरे पति! मेरे पति! और कौन? वह क्या अभी तक यहीं हैं?"

बंगाली डाक्टर ने सदय सहृदयता का भाव दिखाते हुए कहा—"वह तो यहाँ नहीं हैं। तुम्हारा माथा अभी कुछ गरम है। बरफ़ की थैली से ठीक हो जायगा, घबराओ नहीं।"

मोहिनी ने कहा—"तुम लोग सब पागल हो और मुझे भी पागल बनाना चाहते हो।" यह कहकर वह करवट बदलकर फिर लेट गई।

जिस दिन रात को मोहिनी ने अपने पति को सजीव अवस्था में देखा था, उसके दूसरे ही दिन से नवागत भंगी भी आश्रम से लापता हो गया था। मोहिनी उस दिन से फिर पलँग पर से न उठी और प्रायः सप्ताह दिन तक बीमार रहकर बदहवासी की हालत में पागलों की तरह अंड-बंड बकती हुई एक दिन चल बसी।

लोगों में यह अफ़वाह गरम हो उठी कि रामप्रसाद को जब चिता में लिटाया गया था तो उसमें जीवन के कुछ चिह्न वर्तमान थे, यद्यपि स्पष्ट नहीं थे। जब तूफ़ान आया तो लोग भाग गये। इस बीच कोई साधु-महात्मा आकर उसकी लाश को उठा ले गये और जड़ी-बूटियों के प्रयोग से उन्होंने उसकी आँतों से संखिया का विषैला प्रभाव दूर करके उसमें फिर से जीवन-संचार किया। बारह वर्ष तक इधर-उधर भटकता हुआ रामप्रसाद विधवाश्रम में भंगी के वेश में आ उपस्थित हुआ और मौक़ा पाकर एक दिन उसने मोहिनी को अपना वास्तविक रूप दिखा दिया। इस अफ़वाह में सचाई किस हद तक है, हम कह नहीं सकते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जर्मनी का प्रसिद्ध अभिनेता श्री० एमिल जेनिंग्स

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

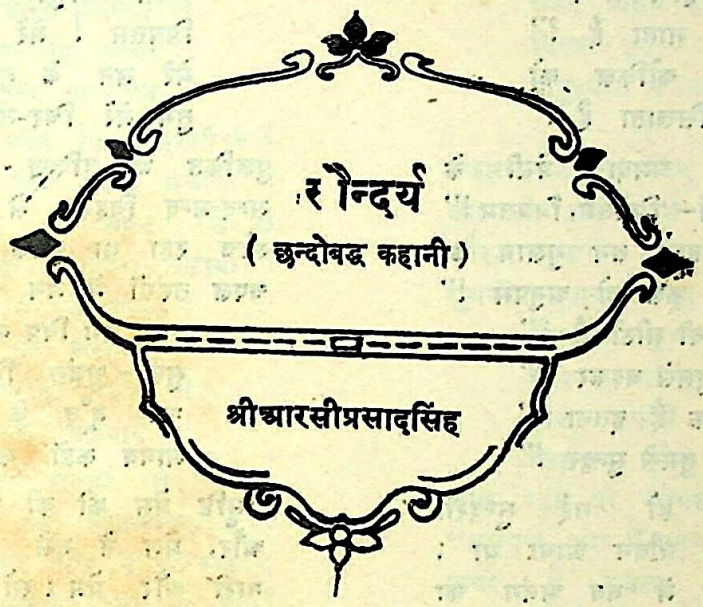

सौन्दर्य

(छन्दोबद्ध कहानी)

श्रीआरसीप्रसादसिंह

(१)

नव वसन्त की मादक संध्या
तरु-कुंजों में उतर चुकी थी !
जला शुक्र का दीप आरती
ले कर में दिग्वधू झुकी थी !

तरुणी - तरुण प्रफुल्ल हृदय से
देख रहे थे यह अनुपम छवि ;
जिसका वर्णन कर छन्दों में
श्रान्त न होता प्रियदर्शी कवि !

उपवन में सस्मित कुसुमों से
कौतुक करता था कुसुमाकर ;
छू प्रेमी के वक्षःस्थल को
कहा प्रेमिका ने मुसकाकर—

"प्रियतम, सच बोलो; क्या मुझको
करते हो तुम प्यार हृदय से ?
अथवा भ्रम में डाल रहे हो
मुझे प्रणय के इस अभिनय से ?"

"अभिनय ?" बोला प्रेमी हँसकर—
"सरले, यह तुम क्या कहती हो ?
तुम मेरे प्राणों में निशि-दिन
संज्ञा-सी घुल-मिल रहती हो।"

"प्रेम किया क्यों तुमने मुझसे ?
मुझमें कौन, कहो आकर्षण ?"
कहा तरुण ने—"सखी, तुम्हारी
अतुलित सुन्दरता के कारण !"

"सुन्दर तो होता हिमकर भी,
क्यों न खींच वह तुमको लेता ?"
"पूर्ण-चन्द्र इतने समीप तुम,
कौन ध्यान तब उस पर देता !"

"और, मेघ-माला को प्रियतम !
क्या न कहोगे तुम आकर्षक ?"
"पर, उसकी क्यों मुझे चाह हो ;
खुले तुम्हारे कुन्तल जब तक ?"

"किन्तु, सुधा तो परम मधुर प्रिय !"
"दुर्लभ जग में अमृत-कलश है !
पाया मैंने प्रिये, तुम्हारे
अधरों का मायावी रस है !"

विह्वल होकर बोली युवती—
"प्रियतम ! तुम कितने सुन्दर हो !"
कहा युवक ने—"प्रिये, स्वयं ही
सुन्दर हो तुम, सुन्दरतर हो !"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"क्या मेरा स्वर" कहा प्रिया ने—
"प्राणेश्वर तुमको भाता है ?"
"देवि, वही तो कोकिल को
पंचम में गान सिखाता है !"

लेट गई प्रमदा प्रेमी के
मृदुल अंक में—"प्रियतम, प्रियतम !"
"प्रिये, तुम्हारा तन गुलाब का
मानो, एक फूल हो अनुपम !"
"क्या कोयल इतनी मीठी है ?"
"नहीं ; नहीं वह तुमसे बढ़कर !"
"क्या गुलाब मोहक है इतना ?"
"अधिक नहीं वह तुमसे सुन्दर !"

रोमांचित हो गई सुन्दरी,
अभी-अभी यौवन आया था ;
अंग - अंग में नव अनंग का
अद्भुत उद्दीपन पाया था !
सन्ध्या - पुंजीभूत हुई, वन-
उपवन में बढ़ चला अँधेरा ;
एक कालिमा के अंचल ने
आ सम्पूर्ण जगत् को घेरा !

"प्रिय, पुरुषों की सहज मुखरता पर
मुझको विश्वास न होता !"
"प्रिये, तुम्हारे उर से बहता
जो जीवन का पावन सोता ;
"उसके निर्मल वारि - कणों से
मेरे प्राण हुए हैं शीतल !"
"तुम मेरे मन की वीणा हो !"
"तुम वीणा की झंकृति कोमल !"

"किन्तु, तुम्हारे लिए देव ! यह
विपुल विधाता की रचना है !"
"और तुम्हारे बिना व्यर्थ - सा
हृदयेश्वरि, पाषाण बना है !"
तरुणी शिथिल पड़ी थी सम्मुख ;
और तरुण निश्चेष्ट अचल था !
किन्तु, न जाने किस रहस्यमय
सुख से उसका हृदय विकल था ;

"प्रेम - बाँसुरी बजा रहे तुम
प्रियतम ! मेरे मनमोहन हो !
मेरे मन के तुम अधिकारी ;
तुम मेरे चिर-जीवन-धन हो !"

पुलकित था दक्षिण - समीर के
मन्द-मन्द विहरण से तरु-वन ;
सोच रहा था युवक भाव की
चपल तरंगों में मन ही मन !
"यह जग विष की लतिका, जिसमें
सुख - भुजंग लिपटे रहते हैं ;
एक बूँद के लिए अभागे
मानव कष्टों को सहते हैं !"

"सृष्टि प्रेम की की नारी ने ;
और, प्रेम ने उसे बनाया !
नारी और प्रेम ; सो ही तो
इस संसार-चक्र की माया !
"होती कहीं न नारी तो, क्या
फल पाता नर जग में जीकर ?
प्रेम न होता, तो मर जाता
मानव घूँट गरल का पीकर !

"पुरुष खिलौना बने तुम्हारे
हाथों में, तुम उन्हें नचातीं !
लीलामयि, तुम मृग-मरीचिका में
नर को वन - वन भटकातीं !
"यह अपूर्व सौन्दर्य मिला सखि,
जिस दिन तुमको विधि के कर से ;
उसी रोज़ से काँप रहा नर
थर-थर सर्वनाश के डर से !

"तुमने छवि का जाल बिछाया,
पुरुष ज्ञान है अपना खोता ;
प्रेम - प्रेम रटता है पागल,
लौह - शृंखलाओं में तोता !
"और, अबोध पुरुष ने समझा
उसी क़ैद को सच्चा जीवन ;
उन कड़ियों को देख बढ़ाया
हाथ, समझ फूलों का बन्धन !"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"यह मानव की कायरता है ?
या प्रेमी का आत्म-समर्पण ?
पुरुषों को वन्दीगृह भाया ;
नारी को नर का आकर्षण !

"पाप न कौन किया पुरुषों ने ?
नारी के हित प्रलय मचाया !
नाम प्रेम का लेकर रण में
अपना ही विध्वंस कराया !

"वही रक्त शोणित की धारा ;
सुन ललनाओं की ललकारें !
पुरुष जाति पर ही पुरुषों ने
और, उठाईं तब तलवारें !

"नारी के नयनों में चंचल
महाप्रलय के वशीकरण हैं !
लंका-काण्ड और भारत-रण ;
ये दो जलते उदाहरण हैं !

"परम्परा के प्रति पुरुषों ने
जब-जब रण-विद्रोह किया है !
नारी ने तब-तब आगे बढ़
वीरों का पथ रोक लिया है !

"मोहित नर, रथ वापस करता ;
नारी शय्या - स्वप्न सजाती !
और, गले में बाँह डालकर
मधुर प्रेम का गीत सुनाती !

"नारि, चिरन्तन रूपमयी हो ;
तुम न कन्यका, भगिनी, माता ;
इस जग से सुकुमारि, तुम्हारा
एक प्रेयसी का ही नाता !"

मृदु रसाल-तरु से इतने में
कोई चपल कुहकिनी बोली !
'कुहू-कुहू' की अविकल प्रतिध्वनि
विकल-विकल वन-वन में डोली !

पुष्पों को मकरन्द - सुरभि को
लाया मलय समीर उड़ाकर,
नव - गुलाब की पंखड़ियों से
परिमल का उपहार चुराकर !

"देखो !" चौंकी रमणी—"प्रियतम !
आज समय है कितना सुन्दर ;
विवश हुई जाती हूँ मैं तो,
बाहु-पाश में लो मुझको भर !"

(२)

प्रथम-प्रथम उस दिन ऋतुपति ने
जग के आँगन में था झाँका ;
और, मलय की उँगली से
सुमनों पर प्रणय-चिह्न था आँका !

निकला शुक्ल-पक्ष दशमी का
शशि धीरे - धीरे उज्ज्वल !
पीले - पीले पत्ते डोले ;
किसलय नीले - नीले कोमल !

सोच रही थी कोयल मन में
"सचमुच क्या मैं इतनी सुन्दर ?
पाया है केवल मैंने ही
क्या विधि से सुन्दरता का वर ?

"मैं सुन्दर हूँ ; सुन्दरतम हूँ ;
सबसे मीठा मेरा स्वर है !
सबसे ऊँचे पर मैं रहती ;
आसमान में मेरा घर है !"

और बग़ीचे के कोने में
वह गुलाब खिलखिला रहा था !
अन्तरिक्ष के तारों को
पृथ्वी के तल से मिला रहा था !

थी फैली सर्वत्र चाँदनी
मक्खन-सी मृदु फल-फूलों पर !
लहरें खेल रही थीं निर्मल
सरिता के दोनों कूलों पर !

देख चाँदनी रात मनोहर
जगी लालसा उसके मन में !
कोयल उड़ती - उड़ती आई
अनायास ही उस उपवन में !

'कुहू - कुहू !' डोली कानन की
लता वल्लरी, डाली - डाली !
आँखमिचौनी लगी खेलने
कौन, न - जाने, काली - काली !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मृदु गुलाब ने सुना, आह ! यह
इतनी किसकी मीठी बोली ?
इतने में फिर वह मतवाली
'कुहू-कुहू !' चिल्लाकर डोली !

"आज कौन मेरे आँगन में
यह मधु का सन्देश सुनाता ?
मुझे प्रेम की सुरा पिलाकर
आज कौन बेहोश बनाता ?
"मैं बेसुध - सा, मैं विह्वल-सा ;
मेरे प्राण हुए हैं चंचल !
खींच रहा है कौन मुझे यों
छू - छूकर मेरा अन्तस्तल !"

अब गुलाब से रहा न जाता ;
कहता वह—"आ जाओ, रानी !
बैठो मेरे पास आज तुम ;
मुझे सुनाओ प्रेम - कहानी !"
"आज रात कितनी मादक है !"
कोयल पास खिसककर आई ;
"इसी लिए, तो भर दो प्रेयसि !
दोनों के अन्तर की खाई !"

कोयल भी उस दिवस विवश थी ;
कारण का कुछ पता नहीं था !
किसने चुम्बक बनकर खींचा ?
हृदय कहीं, मन और कहीं था !
मंजरि - भरी आम की डाली
से उतरी व्याकुल होकर !
और, टहनियों पर गुलाब की
बैठ गई वह सुध - बुध खोकर !

इतना मीठा ; इतना मादक ;
लगा कि जैसे शीतल चन्दन !
पहली बार, भरे जीवन में
आज खिला था उसका नन्दन !
एक सुन्दरी का नव यौवन,
इतना निकट, प्रवाह निराला ;
नारी का इतने समीप से
स्पर्श, कहें क्या इसको ज्वाला ?

ज्वाला से कोमल गुलाब की
लगी विकल रोमावलि जलने !
एक अपूर्व पुलक से पीड़ित
होकर कहा चकित कोयल ने—

"प्रिय, देखो तो कितनी सुन्दर
मैं हूँ ; मेरा मोहक स्वर है !
नारी के सम्मुख, सच कहती,
लगता कितना भद्दा नर है !"

जगा पुरुष का दर्प, कहा
हँसकर गुलाब ने तब अभिमानी !
"मेरी सुन्दरता के आगे
ठहर सकेगी क्या तू रानी ?

"मैं सुन्दर हूँ, मैं मंजुल हूँ ;
मेरे अंग - अंग हैं कोमल !
वैसे तो कर भी न तुम्हारे,
जैसा मेरा सुन्दर पद - तल !
"मेरी लाली से ईश्वर ने
कामिनियों का गाल रचा है !
यह तो वह अनुराग, जगत् को
देकर जो अवशेष बचा है !"

बोली कोयल—"मेरे स्वर से
दुनिया यह उपमा पाती है !
मैं जाती हूँ जब कुंजों में,
जगती विह्वल हो जाती है !
"मेरी एक तान में पागल !
जितनी व्याकुल मादकता है ;
शत-शत गन्ध - भार क्या तेरा !
उसकी समता कर सकता है ?"

"अरी नर्त्तकी, समझा, तुम हो
मीठी तान सुनानेवाली ;
किन्तु, ज़रा दर्पण में देखो
अपनी सूरत तो यह काली !"
"धृष्ट !" कहा कोयल ने जलकर—
"अरे, तुम्हारा इतना साहस !"
"जाने दे इन बातों को अब ;
रानी, ले ले जीवन का रस !"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोयल किन्तु, तिनककर बोली—
"मूर्ख ! तुम्हें किसने बहकाया ?"
"सखि !" गुलाब ने कहा—"तुम्हीं ने
तो है मुझको प्रेम सिखाया !"

"सचमुच ?" "हाँ, क्या तब मैं तुमसे
इन घड़ियों में झूठ कहूँगा ?
किन्तु, तुम्हारा गर्व देखकर
मैं चुप भी बैठा न रहूँगा !"

"तो, जाओ....मैं चली !" "चंचले,
ठहरो, तनिक ठहर तो जाओ !
आज, एक क्षण मेरे प्राणों में
तुम बैठ गीत कुछ गाओ !"

"दुष्ट ! बुलाकर तुमने मेरा
आज घोर अपमान किया है !
हटो, मुझे जाने दो...." "पगली,
कहाँ ?....प्रेम का घूँट पिया है !

"प्रेम - कलह को तुमने रूपसि,
क्यों विवाद का रूप दिया है ?"
"तिरस्कार की विकट आग से
किन्तु, यहाँ जल रहा हिया है !"

कोयल उड़ी ; बाँधना चाहा
तब गुलाब ने उसको कसकर ;
"आज, चली जाओगी कैसे
प्यारी, इन आँखों में बसकर ?"

उड़ी कि, सहसा चीख़ उठी
कोयल काँटों में आह, उलझकर !
लिपट गया अपनी ही छाया से
गुलाब प्रेमिका समझकर !

विस्मित होकर उसने निर्मल
ज्योत्स्ना में कोयल को देखा ;
निकट आम्र - पल्लव में चमकी
एक चपल कज्जल - सी रेखा !

"कौन अधिक सुन्दर है, पहले
आज इसी का हो ले निर्णय ;
फिर, हम दोनों में सम्भव है
प्रेम-मिलन या परिणय-परिचय !"

(३)

और, उधर तरुणी विभोर थी
चिन्ता में—"क्यों नर है निष्ठुर ?
दिया विधाता ने क्यों इतना
हाय नारियों को कोमल उर ?

"नर ने नारी पर सदियों से
दुर्दम अत्याचार किया है !
क्षमा-शील नारी ने पुरुषों को
बदले में प्यार किया है !

"बहनों की ममता दी उसने,
और, अपत्यों की वत्सलता ;
प्रतिहिंसक मानव - समाज को
दी नारी ने निज कोमलता !

"करुणा, प्रेम, दया को लेकर
आज बना जो उन्नत मानव ;
नारी अगर न होती, तो नर
निश्चय ही हो जाता दानव !

"अपने अन्तर के प्रकाश से
उसने दी पुरुषों को आशा
और, बुझाई हृदय - रक्त से
उसकी भीषण युद्ध - पिपासा !

"नारी ने ही रखा नरों को
पशु की श्रेणी से मानव में ;
और, नहीं तो उन्हें पूछता
कौन आज इस विस्तृत भव में ?

"उर के नील - रत्न - मणियों से,
पुरुषों का शृंगार किया है !
कौन गिनावे, नारी ने
कितना नर का उपकार किया है !

"अपने आँसू से पुरुषों का
नारी ने अभिषेक किया है ;
नर जो सिंह बना है, वह तो
जननी का ही दूध पिया है !

"इन चीज़ों के बदले नारी ने
लेकिन, नर से क्या पाया ?
पुरुष बना, शासक ; नारी ने
उनके आगे शीश झुकाया !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"लोहे के बल पर पुरुषों ने
नारी पर अधिकार जमाया ;
दुर्बल नारी ने उनकी
प्रभुता का गीत प्रेम से गाया !

"और, प्रेम के सम्बोधन से
नर ने उसको भ्रम में डाला ;
श्यामा-सी पुरुषों ने नारी को
चिर-कारा-गृह में पाला !

"हुआ न जब सन्तोष, स्वर्ण से
तब नख-शिख तक उसे सजाया !
मुख से हृदयेश्वरी बोलकर,
पैरों से उसे ठुकराया !

"पतिव्रता हो नारी ; लेकिन,
नर की मुक्त-प्रणय लीला हो !
और, सती भी नारी ही हो ;
पर, न पुरुष का दृग गीला हो !

"बैठ गईं रमणियाँ चिता पर ;
औ' पुरुषों ने आग लगाई !
अश्रु बहाया जब नारी ने,
तब पुरुषों ने बीन बजाई !

"नूपुर दिया मधुर चरणों में,
भाँति-भाँति का रूप बनाया ;
और, पुरुष ने काम-वासना में
अतृप्त आनन्द उठाया !"

अर्द्ध-रात्रि के मध्य-गगन में
झूम रहा था चन्द्र निराला ;
कली-कली को चूम रहा था
वन में मलयानिल मतवाला !

बजा रहा था कोई वंशी
मधुर तान से नदी-किनारे ;
अपलक देख रहे थे वन की
शोभा को अम्बर से तारे !

उन तारों की शीतल छाया में
खोई-सी थी सुकुमारी !
सहसा आ रख दिया कण्ठ में
बाहु-पाश प्रेमी ने—"प्यारी !"

"प्रियतम ! पावन प्रेम-सूत्र में
हम दोनों बँध जायेंगे कल !"
"बना रही उसकी स्मृति लेकिन,
मुझे अभी से सुख से विह्वल !

"हाय, प्रेम क्यों इतना चंचल ?
सुन्दरता क्यों है क्षण-भंगुर ?"
"सूख न जाये जिससे मानव-
कुल की इच्छाओं का अंकुर !"

"प्रियतम ! वहाँ किसी अभिमानी
मानव का कंकाल पड़ा है !
और उसी के निकट गर्व से
यह कदम्ब का पेड़ खड़ा है !

"छोड़ो आज मौत की चर्चा ;
प्रिये, प्रेम का दान करो तुम !
रजनी आज चन्द्रिका-पुलकित ;
चिर-यौवन का गान करो तुम !"

"क्या न हमारा मधुर-प्रेम का
बन्धन होगा अमर, प्राणधन ?"
"हाय, नारि ! कब रही धरा में
सदा एक ही वस्तु चिरन्तन !

"कभी एक दिन जो कानन में
रस की धारा बरसाती है !
ऋतुपति के जाते ही कोयल
चीख़-चीख़कर मर जाती है !

"और, गुलाब विजन में रोता ;
झड़ जातीं सारी पंखड़ियाँ !
वीथि-वीथि में आग लगाती
आतीं सर्वनाश की घड़ियाँ !"

"रुक न सकेगा हाय, हमारा
क्षण-भर भी क्या उन्मद यौवन ?"
"मुग्धे, कौन समर्थ, रोक दे
जो यह काल-स्रोत का प्लावन ?"

"यह संसार पतन के अभिमुख
प्रतिपल बढ़ता ही जाता है !
एक-एक क्षण महा-मृत्यु को
निकट खींचता-सा लाता है !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"जिस दिन मरण स्वयं मर
जायेगा, न अमृत की धार बहेगी ;
मैं न रहूँगा, तुम न रहोगी ;
उस दिन यह दुनिया न रहेगी !
"महाकाश में यह जो सुन्दर
विमल चन्द्र का पुष्प खिला है ;
हाय, इसे भी चिर - परिवर्तन
का दारुण अभिशाप मिला है !
"लेकिन, हमें मृत्यु की चिन्ता
क्यों हो ? जग में प्रेम अमर है !
प्रेम-नगर में सखि, न किसी को
मरने की शंका है, डर है !"
धधक उठी उस पार नदी के
तट पर एक चिता-सी तत्क्षण !
और, शृगालों ने हा - हा की
ध्वनि से मुखरित किया महा-वन !
तरुणी हो भयभीत तरुण के
वक्षःस्थल में गई समा - सी !
एक बार गुंजित हो नीड़ों में
सो रहे विहग वज्रवासी !

(४)

फाल्गुन - वन में मन्द - मन्द था
डोल रहा उन्मत्त समीरण ;
सुन पड़ता था दूर किसी के
चल चरणों का नूपुर-शिंजन !
और, उधर से मलयानिल का
एक सरस - सा झोंका आया !
"सुनो, सुनो !" कोयल ने सहसा
मृदु - गुलाब को चटुल जगाया !
सोया था बेख़बर प्रकृति के
अंचल में गुलाब दीवाना ;
जब गुलाब ने आँखें खोलीं,
तब कोयल का स्वर पहचाना ?
"इतनी रात ? अकेली तुम री,
कैसे यहाँ चली आई हो ?
इस एकान्त तपोवन में यह
कैसी मादकता लाई हो ?
"आओ, ज़रा पास तो बैठो ;
समाचार बतलाओ अपना !"
"अरे, देख कर आई हूँ मैं,
एक दृश्य, जैसे हो सपना !"
इतना कहकर लगी विहँसने
कोयल एक मधुर चितवन से !
औ' गुलाब को लगा, उड़ा सा
जाता हो ज्यों मुक्त गगन से !
छन - छनकर आ रही चाँदनी
भी पत्तों से कुंज-भवन में !
तृष्णा का बाज़ार लगा था,
औ' गुलाब के व्याकुल मन में !
रंग - बिरंगी दुनिया बनती
और बिगड़ती थी क्षण-क्षण में !
यौवन की थी छिड़ी रागिनी
उपवन में, वन के कण-कण में !
"सो, क्या ? सो, क्या ?" तब गुलाब ने
कहा चौंककर अति - विस्मय से !
"अरे, वही तो मैं कहती हूँ ;
मरो न तुम संशय से, भय से !"
"संशय, भय ?....मुझको ?....हिश !.... जाओ ;
तुम भी अद्भुत हास्य - कुशल हो !
हाँ, फिर कहो....कहो, क्या देखा ?"
"प्राणेश्वर ! तुम तो पागल हो !
"नदी - किनारे अभी - अभी मैं
बैठी थी उन्मन कदम्ब पर ;
दो तरुणी - तरुणों को देखा,
शुभ्र-चन्द्रिका में अति सुन्दर !"
"अति सुन्दर थे क्या वे दोनों ?"
"नहीं, चाँदनी थी अति सुन्दर !
और, नदी की लहरें आपस में
कलोल करती थीं तट पर !
"एक दूसरे के दर्शन में
दोनों मग्न मौन थे निश्छल !
मैंने देखा, और वहीं पर
जल-प्रवाह करता था कल - कल !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"मानव कितने प्रेमी होते ;
आओ, हम भी प्रेम करेंगे !
कैसे प्रेम किया जाता है ;
हम मानव को शिक्षा देंगे !"

"तुम्हें सुमति दे ईश्वर ऐसी,
मरता हूँ मैं अहह ! विरह से ;
समझ लिया था उस दिन मैंने,
रूठ गई तुम प्रेम - कलह से !"

"तो क्या सचमुच मैं कुरूप हूँ ?"
कहा कोकिला ने चिल्लाकर !—
"नदी - किनारे जिसको देखा,
मैं उस नारी से हूँ सुन्दर !"

"और, मुझे क्या कुत्सित कहती
हो ?" गुलाब बोला मुसकाकर—
"नदी किनारे जिसको देखा,
मैं उस नर से भी हूँ सुन्दर !"

"चुप-चुप !" कहा पिकी ने—"किस की
आहट यह वन-पथ से आई ?"
इतने में आवाज़ किसी के
हँसने की पड़ गई सुनाई !

"ओ गुलाब ! लो मुझे सँभालो ;
दो शरीर का सुखद सहारा !"
उसी समय सुकुमार किसी ने
डाली से 'पी कहाँ !' पुकारा !

प्रेमी और प्रेमिका - दोनों
ही आये इस ओर टहलते !
एक दूसरे के - हाथों में
हाथ परस्पर देकर चलते !

"यह गुलाब कितना सुन्दर है !"
तरुणा ने जब कहा विकल हो,
खींच वक्ष के निकट पिकी को
बोला तब गुलाब चंचल हो—
"सुनो, सुनो ! वह क्या कहती है ;
मैं सचमुच कितना सुन्दर हूँ !"
कोयल की आँखों में आँसू
भर आये—"तो क्या मैं जड़ हूँ ?"

इतने में फिर कहा युवक ने—
"और, सुनो तो कोयल का स्वर !
कितनी मीठी इसकी बोली ;
कितनी मादक, कितनी सुन्दर !"
"हे गुलाब ! क्या सुना न तुमने ?"
कोयल तरुण बोली खिलकर—
क्या कहता वह तरुण, अरे मैं
मीठी हूँ, मादक हूँ, सुन्दर !

"कर सकते हो क्या तुम स्पर्द्धा
मेरी ?" कोयल सुख - समोद है !
"हाँ !" गुलाब ने कहा—"तुम्हारा
प्रियम्बदे, अच्छा विनोद है !"

(५)

युवती और युवक दोनों बँध
जायेंगे परिणय - बन्धन में !
"क्या दूँ मैं उपहार ?" युवक यह
सोच रहा था अपने मन में !

सहसा याद उसे हो आया—
"यह गुलाब कितना सुन्दर है !"
यह तो उसके ही जीवन की
सदा-संगिनी का प्रिय स्वर है !
स्मृति की रक्षा के हित इससे
बढ़कर कौन मिलेगा प्यारा ?
मुग्ध न हो क्यों कान्ता मेरी,
जिस पर मोहित भूतल सारा !

और, पड़ी थी उधर सोच में
नवल प्रेमिका—"मैं क्या पाऊँ ?
जिसे आज अपने प्रियतम की
सेवा में, पूजा में लाऊँ !
"सुना, उन्हें मीठी लगता है
बहुत - बहुत कोयल की बोली !
उन्हें भेंट में दूँगी निश्चय ;
आज रहेगी एक ठठोली !"

सुबह - सुबह ही बजी द्वार पर
मधुर भैरवी की शहनाई !
नृत्य - गीत - छन्दों से उस दिन
गूँज उठी सारी अमराई !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दोनों ने अपनी चिर - इच्छित
वस्तु मनोवांछित थी पाई ;
बजे मृदंग, नगाड़े गरजे ;
नाचे घर के लोग - लुगाई !

मधुकर भी न अभी आया था,
पूरब में न कनक की थाली ;
आँखें खोली थीं गुलाब ने,
सुबह - सुबह ही पहुँचा माली !

उसके हाथों में डाली थी
फूलों की, जिसमें बहुरंगी
फूल पड़े थे ताज़े - ताज़े ;
सिसक रहे थे साथी - संगी !

काँप उठा माली को लखकर
नव-विकसित गुलाब का तन-मन ;
हाय, तोड़ने के पहले ही
कुम्हला गया गुलाबी आनन !

"दया ! दया ! मुझको जीने दो ;
माली आह न मुझको तोड़ो !
सुन्दर मैं, शृंगार तुम्हारे
उपवन का मैं, मुझको छोड़ो !

"दो दिन भी तो हाय, निठुर ! हँस
लेने दो मुझको कानन में ;
कर लेने दो इस सुन्दरता का
उपभोग तनिक उपवन में !"

पर, न वधिक को करुणा होती ;
छिन्न गुलाब हुआ तरु - वर से !
और, रखा वह गया सजाकर
डाली में माली के कर से !

वकुल, चमेली और मोतिया ;
बेला, जुही, केतकी, चम्पक !
वहाँ और भी कितने सुन्दर
रोते थे सुमनों के कोरक !

इस कानन से उस कानन में,
इस तरु से उस तरु पर गिरती ;
विपिन - विपिन में कूक - कूककर
कोयल भागी - भागी फिरती !

आख़िर, कब तक उड़ती रहती
वधिकों के हाथों से बचकर ?
थककर एक डाल पर बैठी,
अस्त हुआ ज्यों नभ से दिनकर !

परमानन्दित हुई हृदय में
युवती कितना उसको पाकर !
और, उसे रख दिया प्रेम से
सोने के पिंजड़े में लाकर !

युवती की सुन्दर ग्रीवा में
नव गुलाब का हार सुहाया !
और, युवक ने मधुर - मधुर
उपहार एक कोयल का पाया !

मिलन - सेज पर जहाँ - जहाँ
प्रेमी के कर प्रमदा पर पड़ते !
मसल - कुचल जाता गुलाब का
तन, कल-कोमल-दल झड़ पड़ते !

भीनी - भीनी गन्ध - वायु की
लहरों से था कक्ष हिलोरित ;
पर, गुलाब का जीवन क्षण - क्षण
झंझानिल - सा था झकझोरित !

इधर मची थीं मधु - रँगरलियाँ ;
और, उधर कलियाँ मरती थीं !
हा ! गुलाब के मृत्यु-शयन पर
घड़ियाँ भी क्रीड़ा करती थीं !

बन्द हुई युवती की आँखें,
श्रम से शिथिल नींद में खोई ;
सोने के पिंजड़े में जैसे,
तड़प उठी घायल - सी कोई !

"गा, कोयल ! तू चुप क्यों बैठी ?"
कहा युवक ने उत्सुक होकर !
"एक बूँद दो....प्यास ! प्यास !....मैं
मरती !" बोली कोयल रोकर !

किन्तु, युवक उन्मत्त बना था ;
सुनी नहीं उसने वह वाणी !
"गा, कोयल ! तू चुप क्यों बैठी ?
यह सुहाग की रजनी, रानी !"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"पानी....निर्मम ! कीर नहीं मैं....
ओ गुलाब, क्या तुम रोते हो ?
सचमुच तुम सौभाग्य - शील हो ;
उसकी बाँहों में सोते हो !"
"नहीं, नहीं ; तुम सुन्दर हो !"
बोला गुलाब यों आँसू भरकर !
कहा पिकी ने—"मैं अभागिनी ;
तुम निश्चय प्रियतम हो, सुन्दर !"
प्रीति - रीति में रजनी बीती ;
युवती के दृग खुले मनोहर !
आकुल हो मुख - चन्द निहारा ;
सालस, खिन्न युवक ने उठकर !

"हँसो, गुलाब !" कहा तरुणी ने—
"गा, कोयल !" बोला प्रेमी नर !
दोनों ने दोनों को देखा,
चिर अवाक्, विस्मय में भरकर !
छिन्न हार ; थी सूखी माला ;
था गुलाब का मुँह कुम्हलाया !
और, उधर कोयल के तन पर
पड़ी विवर्ण मरण की छाया !
"यह परिणाम रूप का मोहक ;
यह सुन्दरता का कटु फल है !"
विरह - व्यथित रो रहा आज भी
वनवासी पथिकों का दल है !

ताक़त और तन्दुरुस्ती के लिए
बच्चों को
डोंगरे
का
बालामृत
देना चाहिये।
के० टी० डोंगरे कं० गिरगाँव—बम्बई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

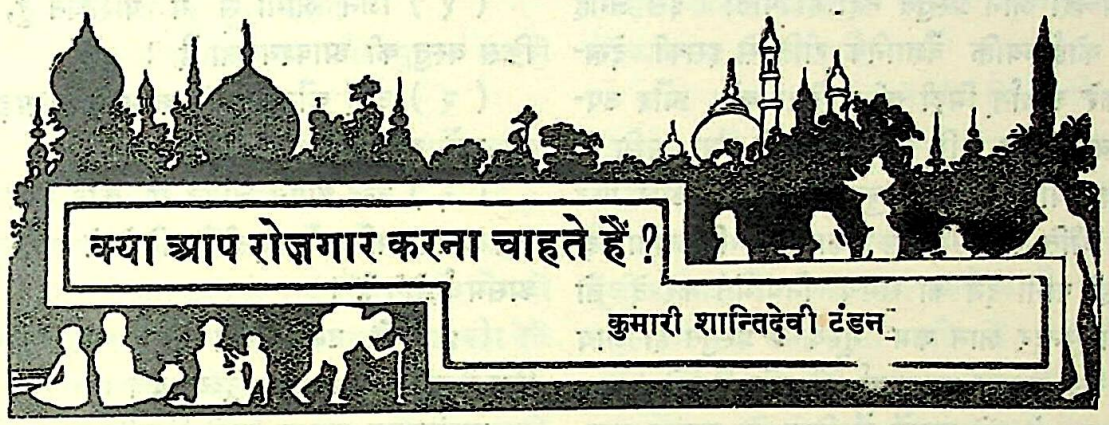

क्या आप रोज़गार करना चाहते हैं ?

कुमारी शान्तिदेवी टंडन

एक मनुष्य बहुत वर्षों से जेल में क़ैद था।

एक दिन उसे कोठरी की खिड़की का ध्यान आया। वह चट खिड़की खोलकर निकल गया। इसी क़ैदी की भाँति अनेक मनुष्य अपनी उधेड़-बुन के क़ैदख़ाने में क़ैद हैं, परन्तु उनके पास ऐसा कोई व्यावसायिक उपाय नहीं, जिससे वे इससे निकलकर सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकें।

उपाय तथा व्यवसाय हैं अवश्य, पर ढूँढे नहीं मिलते। ईश्वर ने उन्हें हृष्ट-पुष्ट शरीर, सुन्दर नेत्र, कर्ण तथा विशाल बुद्धि दी है, पर वे नौकरी की तलाश में ऐसे मतवाले फिरते हैं कि व्यवसाय उन्हें दिखाई ही नहीं पड़ता, उनके चारों ओर काम ही काम उपस्थित हैं ; केवल खिड़की खोलकर उन्हें निकलना अवश्य है। परन्तु वह खिड़की ही उन्हें नहीं दिखाई देती।

प्रायः लोग कहते हैं कि व्यवसाय तब चले, जब कोई क्रम हो और क्रम को ही वे कठिन और असाध्य बताते हैं। पर मेरे विचार से क्रम बड़ा सरल होता है, उसमें ऐसी कोई विशेषता तथा जटिलता नहीं होती। नीचे लिखे क्रमों पर ध्यान दीजिए—

अपने चारों ओर अर्थात् अपने मुहल्ले में अथवा शहर में तथा देश में ध्यान से देखो कि तुम्हारे पड़ोसियों को, तुम्हारी जातिवालों को, या किसी भी विशेष व्यवसाय को किस वस्तु की आवश्यकता है, जिसके अभाव से उसे कष्ट होता है। जहाँ कहीं भी ऐसी आवश्यकता या कष्ट दृष्टिगोचर हो, बस, क्रम स्वयं मिल गया।

बहुत समय व्यतीत हुआ, एक मनुष्य ने देखा कि उसके शहर के बँगलों में पेड़ व गमले ठीक नहीं रहते थे। बँगले के धनी-मानी आदमियों को एक तो इतना अवकाश ही नहीं कि उनकी स्वयं देख-रेख कर सकें और यदि अवकाश भी हुआ तो वे इस काम से अभिज्ञ नहीं। बस, उसने अपना क्रम इसी में लगा लिया और अच्छी व्यावसायिक उन्नति की।

बँगलों के लान की देख-रेख भी एक जटिल प्रश्न है। बड़े शहरों में बँगलों के रहनेवाले लान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को रखना चाहते हैं, परन्तु उसके रखने के नियम से अनभिज्ञ होने से उसे रख नहीं पाते ; रख भी पाते हैं तो ख़र्च एक का चार पड़ता है और फिर भी अच्छा लान प्रस्तुत नहीं हो पाता। इस जगह अगर कोई व्यक्ति वैज्ञानिक रीति से इसकी देख-रेख करे अर्थात् मिट्टी की परीक्षा करे, और उपयुक्त खाद देकर भूमि तैयार करा दे तथा भूमि के अनुसार घास का बीज चुनकर बोआवे और फिर उचित रीति से उसमें से कूड़ा-घास निकलवा दे, साथ ही पानी देने का समय नियमित कर दे तो कितना सुन्दर लान कम मूल्य में प्रस्तुत हो जाय और उस मनुष्य का कार्य भी चल निकले।

भारत के बड़े शहरों में मिल के मज़दूर प्रायः घर से कटोरदान में भोजन ले जाते हैं, अन्य देशों में इसकी आवश्यकता नहीं पड़ती। काग़ज़ या पतली चीड़ के डिब्बे में ताज़ा अच्छा स्वच्छ भोजन कम मूल्य में प्रत्येक स्थान में अवश्य प्राप्त हो जाता है और नहीं तो मिलों के पास अवश्य ही मिल जाता है। हमारे देश में हलवाइयों के यहाँ पूड़ी-मिठाई मिलती है। उसे अगर चार दिन बराबर खा लें तो बीमार अवश्य पड़ जायँ। मज़दूर अपनी मज़दूरी से जाय। फिर जितने पैसे में एक वक़्त पूड़ी-मिठाई खायँ, तीन वक़्त अपने घर में उतने ही पैसे से स्वास्थ्यप्रद स्वच्छ भोजन खा लें। इस कारण यदि यहाँ भी अच्छा स्वस्थ भोजन उतने ही मूल्य में प्रत्येक स्थान तथा मिल के द्वार पर मिलने लगे तो मज़दूर अपने घर से बाँधकर खाना क्यों लावें।

ऊपर ये दो साधारण नियम बताये गये हैं। इसी प्रकार तेल, साबुन, तथा खेती आदि नियमों को जानकर लोग अपना व्यापार चला सकते हैं। व्यापार अनेक हैं। केवल उन्हें सुचारु रूप से चलाकर उनसे लाभ उठानेवालों की संख्या कम है। जिस मनुष्य की इच्छा हो कि वह अपना व्यवसाय करे, उसे चाहिए कि अपने मन में ऐसे प्रश्न करे—

(१) जिन लोगों से मैं परिचित हूँ, उन्हें किस वस्तु की आवश्यकता है।

(२) उन्हें कौन-से ऐसे काम करने पड़ते हैं, जो उन्हें रुचिकर नहीं।

(३) उन्हें अपने जीवन में कौन ऐसी अड़चन अथवा ग्रन्थियाँ पड़ती हैं, जिसे वे सुलझाने में असमर्थ होते हैं।

(४) मैं उनके लिए क्या कर सकता हूँ, जिससे उनका समय या द्रव्य बचे।

दुर्भाग्यवश मनुष्य इससे विपरीत ही चलते हैं। वे प्रश्न करते हैं (१) मेरी क्या इच्छा होती है? (२) मुझे कौन कार्य रुचिकर है? इस पर विचार ही नहीं करते कि किसी दूसरे को उस काम की आवश्यकता भी है कि नहीं। कितना अच्छा हो कि वे पहले विचार करें कि अन्य व्यक्तियों को किस वस्तु की आवश्यकता है। वे उसी वस्तु को प्रस्तुत करने में तन-मन-धन से उद्यत हो जायँ ; देखिए, कैसी सफलता उपलब्ध होगी।

नवीन कार्य आरम्भ करने के पूर्व मनुष्य को यह विचार कर लेना चाहिए कि दूसरों के मुक़ाबले वह नीचे लिखी बातों में से कम से कम एक में अवश्य अग्रसर रहेगा—

(१) दूसरों से उत्तम कार्य कर सकेगा, या अच्छी वस्तु प्रस्तुत कर सकेगा।

(२) अन्य व्यवसायियों से कम मूल्य में काम करेगा या वस्तु निर्मित करेगा।

(३) दूसरे से कम मूल्य में माल घर पहुँचा देगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(४) दूसरों से अच्छी पैकिंग में बाँधकर सामान को पहुँचावेगा।

(५) उसकी वस्तु दूसरों की आवश्यकता या इच्छा को अधिक पूर्ण करेगी।

(६) वह ठीक समय पर और सुचारु रूप से काम करेगा।

(७) लोगों पर अपना विश्वास रखकर वह कम मूल्य में उन्हें धोका न देगा।

नवीन कार्य करने के आरम्भ में प्रायः मनुष्य ऐसी त्रुटियाँ किया करते हैं। वे विना छोटे पैमाने पर परीक्षा किये हुए बेहिसाब अपना काम बढ़ा देते हैं। जिस प्रकार नदी में स्नान करनेवालों को स्नान के पूर्व उसकी थाह ले लेनी चाहिए और तब आगे बढ़ना चाहिए, उसी प्रकार व्यवसायियों को थाह लेना आवश्यक है। वे माल की आवश्यकता, उसका क्रय-विक्रय, खर्च तथा लाभ-हानि पर पूर्ण रीति से मनन कर ही माल मँगावें तथा कार्य आरम्भ करें। प्रायः लोग दूकान-भाड़ा, अपने परिश्रम, नौकरों के वेतन को हिसाब में जोड़ना ही भूल जाते हैं। उन्हें यह ध्यान ही नहीं रहता कि चीज़ बन जाने पर या माल मँगा लेने पर उसे चालू करने में, निकालने में, उसके विज्ञापन में भी कुछ खर्च पड़ता है। वे यही भूल जाते हैं कि दूसरे लोग भी यही काम प्रारम्भ कर देंगे और उनका सामना भी करना पड़ेगा। उनके ध्यान से यही उतर जाता है कि दूकान जमने में भी कुछ समय लगेगा।

व्यवसायी या तो कम रुपये से काम आरम्भ कर देते हैं या बहुत अधिक से। इन त्रुटियों के कारण व्यवसायियों की अवनति हो जाती है और वे उल्टा दोष व्यवसाय को देते हैं। प्रायः अधिक रुपये से ही व्यवसायी असफल होते हैं। आप चौंकें न! उन्हें रुपये का अजीर्ण हो जाता है। अधिक पूँजी रहने से उन्हें व्यय की चिन्ता नहीं रहती, और वे व्यर्थ व्यय करने के अभ्यासी हो जाते हैं, जिसके कारण अच्छे से अच्छा व्यवसाय संसार में असफल हो जाता है।

प्रायः मनुष्य यह कहते हैं कि रुपये हों तो व्यवसाय करें। रुपये ही नहीं हैं; नहीं तो एक क्षण में यह कर डालते, वह कर डालते, मानो आकाश में चकती लगा देते, परन्तु क्या करें, अपने पास पूँजी ही नहीं है। यह रोना व्यर्थ का है। प्रत्येक स्थान में ऐसे धनी-मानी व्यक्ति हैं, जो विश्वास-योग्य और परिश्रमी मनुष्य पर अपना रुपया लगा देंगे, यदि वे उन्हें समझा सकें कि आपका रुपया लाभदायक स्थान में लगा दिया जायगा। रोज़गार तो सब दूसरों ही के रुपये पर चलता है और रुपयेवाले को तो सदैव स्वयं ऐसे आदमी की खोज रहती है, जो उसके रुपये से कुछ पैदा कर सके और स्वयं भी लाभ उठावे, तथा उसे भी ब्याज दे। हाँ, उसे समझा पाने की आवश्यकता है कि आपका काम लाभप्रद है। मैं उसे दृढ़ता से करूँगा। ईमानदारी से आपके रुपये का ब्याज आपको देता रहूँगा। अब आप यदि एक भी धनी मनुष्य के हृदय में अपना या अपने काम का विश्वास नहीं पैदा कर सकते तो अनेक ग्राहकों को कैसे विश्वास दिला सकते हैं। इसके अतिरिक्त बहुत काम तो कौड़ियों में प्रारम्भ हो सकते हैं और कौड़ियों के काम में प्रायः लाभ ही होता है। केवल इस बात का ध्यान रहे कि विचार, परिश्रम, साहस, दृढ़ता तथा उत्साह में कौड़ी भर कमी न हो। इन बातों में किंचित् त्रुटि हुई कि काम नष्ट-भ्रष्ट हुआ। ऐसी त्रुटि से तो कभी न कभी उस परिस्थिति का प्रत्यक्ष सामना करना पड़ेगा ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि हाय, भूल नहीं, भारी भूल हुई। उस दशा में टाट उठाओ और बिना किसी को अपना मुख दिखाये शहर से निकल जाओ ही सूझ पड़ेगा। ऐसी विकट अवस्था में अर्थात् वेतन बाँटने को रुपया नहीं है या अग्नि ने सब भस्म कर राख मात्र शेष छोड़ी है या किसी से मुक़दमा ही लड़ना पड़ रहा है तथा माल ही नष्ट हो गया है—यही समय सच्ची परीक्षा का होगा। अगर उस समय को दृढ़तापूर्वक पार कर ले गया तो दोहरा सन्तोष होगा।

(१) अगर ये अड़चनें न होतीं तो प्रत्येक मनुष्य ही व्यवसाय कर लेता और उसे प्रत्येक मनुष्य का ही सामना करना पड़ता। यही अड़चनें ऐसी हैं, जो बहुतों को उस व्यवसाय से भगा देती हैं।

(२) डरने और रोने से काम नहीं चलता, कठिनाई का सामना करने से वह सरल हो जाती है। कठिनाई सरल करने को अथवा ग्रन्थियाँ सुलझाने ही को रोज़गार कहते हैं। प्रारम्भ की कठिनाइयाँ जिसने पार कर लीं, उसका हौसला बढ़ जाता है और वह फिर आगे आनेवाली कठिनाइयों से निडर हो सामना करता है। बड़ी से बड़ी आपत्ति उसे विचलित नहीं कर पाती, प्रत्युत वह उससे और भी उत्साहित होता है।

लोग कहते हैं कि आजकल बाज़ार ख़राब है, रोज़गार नहीं चलता; पर मैं तो समझती हूँ, ऐसे समय में साथ ही नवीन कार्य करने में बहुत लाभ भी तो हैं। लोगों के पास रुपया ख़ाली पड़ा है, फलस्वरूप रुपया कम ब्याज पर मिल जायगा। लोगों के पास कोई व्यवसाय नहीं है, वे ख़ाली हैं। बुद्धिमान्, चतुर, सेवक भी कम वेतन में मिलेंगे, मकान-दूकान का भाड़ा भी कम लगेगा। कांग्रेस की प्रधानता के कारण देश में स्वदेशी वस्तुओं की माँग भी बहुत है, अतः सफलता अवश्य होगी।

जिस व्यक्ति का ध्यान व्यवसाय की ओर हो, वह निम्नलिखित पाँच बातों से अपनी सफलता पर विचार करे तो उसे परिणाम का पता अवश्य लग जायगा—

(१) क्या वह नवीन व्यवसाय इसलिए करना चाहता है कि अपना उपस्थित कार्य, नौकरी या व्यवसाय उसे पसन्द नहीं, उसमें उसका जी नहीं लगता? यदि ऐसा है तो साधारणतः वह सफल नहीं हो सकता। रोज़गार उसका ही सफल होता है, जिसे खाते-पीते सोते-जागते प्रत्येक क्षण जिस कार्य में हो उसी का ध्यान रहता है और जो सदैव उसे अपना धर्म समझकर करता है।

(२) क्या वह समझता है कि नौकरी से रोज़गार में कम परिश्रम पड़ेगा या वह अधिक निश्चिन्त रहेगा अथवा उसे अवकाश अधिक मिलेगा? तो वह बड़े भ्रम में है। उसे व्यवसाय में कहीं अधिक परिश्रम करना पड़ेगा, साथ ही ज़िम्मेदारी का बोझ तो चौबीस घंटे लदा ही रहेगा। हाँ, यदि वह अपनी धुन का पक्का हो तो उसे ज्ञात भी न होगा कि उसने कितनी देर काम किया। ऐसे परिश्रम से ही यथार्थ में उसका व्यवसाय चमक उठेगा।

(३) क्या वह अपनी आमदनी से अधिक व्यय करने का अभ्यासी है और सदैव ही ऋणी रहता है? ऐसे आदमी का व्यवसाय किंचित् नहीं चलेगा। जो स्वयं अपना व्यय क्रमानुसार नहीं कर पाता है, ऋणी रहता है, वह दूकान का हिसाब क्योंकर रख सकेगा। हाँ, पूँजी खोकर भीख माँगने के उपयुक्त अवश्य हो जायगा।

(४) क्या वह स्वामी की देख-रेख या कहे बिना अपना काम स्वयं नहीं करता, या समय से काम पर नहीं जाता? जिस मनुष्य को अपने व

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपने समय पर इतना ध्यान नहीं कि बिना दूसरे के दबाव के काम न कर सके, वह अपने निजी व्यवसाय में सफल नहीं हो सकता। वहाँ उसकी देख-रेख कौन करेगा?

(५) क्या वह साधारण हिसाब-किताब से अभिज्ञ है? रोज़गार से तात्पर्य ही हिसाब-किताब से अभिज्ञ होने का है। माल, उसकी क़ीमत, दूकान का भाड़ा, नौकरों के वेतन इत्यादि का जोड़ना और विक्रय के दामों से उसे घटाना और फिर टैक्स आदि निकालकर लाभ बचा लेने ही को व्यवसाय कहते हैं।

यदि यह विचारकर आपकी इच्छा व्यवसाय करने की है तो किसी भाँति से दूसरों के किसी कष्ट के निवारण की विधि सोच डालिए या जो काम और लोग करते हैं, उसे उनसे कुछ अच्छा करने की विधि सोचिए और श्रीगणेश कर दीजिए। लाभ अवश्य होगा।

आपके दाँतों के लिए

दन्त-मुक्ता (Regd.)

(दन्तरोग-नाशक सुगंधित मंजन)

इसके व्यवहार से

दाँत मोती के समान सफ़ेद और चमकीले होते हैं।

स्थानीय हमारे एजेंट से ख़रीदिये।

डाबर (डा० एस० के० बर्मन) लि०

विभाग नं० १३१, पोस्ट-बक्स ५५४, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राष्ट्रीय इतिहास का स्वरूप और इतिहास-लेखक की मनोरचना

श्रीगोपाल-दामोदर तामस्कर एम्० ए०

१. भारतवर्ष के इतिहास के भिन्न-भिन्न भाषाओं में जो ग्रन्थ हैं, उनमें बहुतेरे ऐसे हैं, जिनसे बहुतेरे भारतवासियों को सन्तोष नहीं है। इसका प्रधान कारण यह है कि उनमें बहुतेरे ग्रन्थ विदेशियों ने लिखे हैं। कई बार यह ध्वनि उठ चुकी है कि भारतवर्ष का सच्चा इतिहास भारतवासी ही लिख सकता है। इस आवश्यकता का एक कारण यह बताया जाता है कि विदेशी लोग भारतवासियों को हीन दिखलाने का और योरपीय लोगों के आक्षेपयोग्य कार्यों को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। कुछ अंश में यह बात ठीक भी है, तथापि कुछ समझदार लोग साथ ही यह भी कहते हैं कि वे पक्षपातहीन होने पर भी, निष्पक्षपात होने की उत्कट इच्छा रखने पर भी, किसी भी तथ्य को न दबाने पर भी, स्वाभाविकतया भारतवासियों को हीन दिखला जाते हैं और अर्थ का अनर्थ कर बैठते हैं। इन समझदार लोगों की समझ के अनुसार इसका एकमात्र कारण यह है कि वे विदेशी हैं। वे भारतवर्ष का इतिहास ठीक ढंग से नहीं लिख सकते, और वास्तव में यह भी कारण पहले कारण के समान ही ठीक है। इसी प्रकार उपर्युक्त अनुमान अन्य देशों के सम्बन्ध में भी ठीक है। देश कोई भी हो और विदेशीय कोई भी कैसा ही पक्षपातहीन, सत्यान्वेषी, सत्यप्रेमी, विद्वान् क्यों न हो, विदेशीय होने के कारण ही यह उस देश का इतिहास लिखने के लिए अनुपयुक्त हो जाता है। संसार के बहुतेरे निष्पक्षपात, सत्यान्वेषी, सत्यप्रेमी, विद्वान् इतिहास-लेखकों ने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष यह बात स्वीकार भी की है। हाँ, उनमें से कुछ जब कभी स्वयं विदेशों का इतिहास लिखने बैठते हैं तो उपर्युक्त सर्वमान्य सत्य को भूल जाते हैं, पर जब वे विदेशियों द्वारा लिखा अपने देश का इतिहास पढ़ते हैं, तब इस सर्वमान्य सत्य की दुहाई अवश्य देते हैं और कभी साफ़-साफ़ कह देते हैं कि विदेशीय किसी देश का सच्चा इतिहास नहीं लिख सकता।

२. इसलिए प्रश्न उत्पन्न होता है कि विदेशी पुरुष द्वारा लिखा इतिहास क्योंकर सदोष हो जाता है? इस पर कुछ लोग कह बैठेंगे कि इसका एक प्रधान कारण इसी लेख में प्रारम्भ में ही आ चुका है। विदेशीय लोग, विशेषकर यदि वे जीते हुए तो, दूसरे देश के लोगों को हीन बताने के लिए, उन्हें सदैव अपने अधीन बनाये रखने के लिए, इतिहास पर जान-बूझकर झूठा रंग चढ़ा देते हैं, जान-बूझकर झूठी बातें लिख देते हैं और सच्ची बातें छिपा देते हैं। इसके उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं है। विन्सेंट स्मिथ के लिखे ग्रन्थ इसी श्रेणी के हैं। पर यह मुख्य प्रश्न नहीं है; क्योंकि अब सत्यापलाप अथवा छिद्रान्वेषण का कार्य बहुत दिन तक नहीं चल सकता। लेखक के स्वदेश के लोगों में भले ही स्वार्थी लोग उसकी वाहवाही करें, पर अन्य लोग तो उसकी हँसी ही उड़ावेंगे। मुख्य प्रश्न यह है कि विदेशीय यदि पक्षपातहीन, सत्यान्वेषी, सत्यप्रेमी, विद्वान्, बुद्धिमान् भी हुआ, तब भी वह क्यों विदेश का 'सच्चा इतिहास' नहीं लिख सकता। इसे समझने के लिए पहले यह समझ लेना चाहिए कि 'सच्चा इतिहास' किसे कहते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। इस पर साधारण लोग यही कह बैठेंगे कि सच्चे इतिहास का अर्थ यह है कि जो घटना जैसी हुई, वैसी ही वह बताई जाय। पर इतने से प्रश्न हल नहीं होता। यह उत्तर बहुत छिछले मन का, केवल हाईस्कूल के विद्यार्थियों के योग्य है; विचारवान् और विद्वान् इसे उस प्रश्न का सच्चा उत्तर नहीं मान सकते; क्योंकि, जैसा ऊपर बता चुके हैं, सब बातें सच्ची लिखने पर भी, कुछ भी सत्यापलाप या छिद्रान्वेषण न करने पर भी, सर्वलभ्य सामग्री प्राप्त होने पर भी, कोई विदेशीय किसी देश का 'सच्चा इतिहास' नहीं लिख सकता। इस स्थिति में 'सच्चे इतिहास' का क्या अर्थ है? इस स्थिति में 'सच्चे इतिहास' का यही अर्थ हो सकता है कि जिस दृष्टि से कोई पुरुष अपने देश के इतिहास को जान-समझ सकता है, देख सकता है और बता सकता है, उस दृष्टि से विदेशीय नहीं देख सकता। हम अपनी जाति के, अपने राष्ट्र के इतिहास को 'जातीय', 'राष्ट्रीय' दृष्टि से देख सकते हैं। हमारी जाति की, हमारे राष्ट्र की, विशेषता क्या है, उसके लिए अथवा उसके विरुद्ध समय-समय पर जो आन्दोलन हुए, उनका क्या अर्थ था, उनके क्या परिणाम हुए, इसे हम जान सकते हैं, पर विदेशीय हमारे राष्ट्र की आत्मा को नहीं पहचान सकता, नहीं जान सकता। माता जिस दृष्टि से अपने बच्चे को देखती है, उस दृष्टि से उसे विमाता नहीं देख सकती। भाई को देखकर भाई के मन में जो भाव उठते हैं, वे भौजाई के हृदय में उसी पुरुष को उसी समय देखकर नहीं उठते। बस, यही बात इतिहास के सम्बन्ध में भी ठीक है।

३. इसे उदाहरण देकर अधिक स्पष्ट करना होगा। भारतवासियों का दावा है कि भारतवर्ष धर्म-प्रधान देश है। इसका क्या अर्थ है? क्या इसका यही अर्थ नहीं कि हम अनेक कार्यों को करते हुए धर्म को नहीं भूल सकते हैं, हम जो अनेक कार्य करते हैं उनमें धर्म की पुट लगी रहती है, हमारी धार्मिक प्रवृत्ति का उन पर प्रभाव पड़ा है और पड़ता है, 'सर्वदेव-नमस्कारः केशवं प्रतिगच्छति' के समान ही 'सर्वकार्य समुद्योगः धर्मञ्च प्रतिगच्छति' ठीक है? योरप भौतिकता-प्रधान समझा जाता है। इसका यही अर्थ है कि योरपीय लोगों का मुख्य उद्देश्य भौतिक है, भौतिक उन्नति की ही ओर उनकी सारी कृतियों की महानदी बहती है, भौतिक समृद्धि को ही वे अपने जीवन का प्रधान उद्देश्य समझते हैं; पर इसका यह मतलब नहीं कि धर्म ने योरप से डेरा-डण्डा उठा दिया है या धर्म का योरप के इतिहास पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। न इसका यही मतलब है कि भारतवासियों ने धार्मिक उन्नति के वश होकर भौतिक उन्नति की ओर कुछ भी ध्यान न दिया अथवा नहीं देते। इसी प्रकार, यूनान अपने तत्त्वदर्शन के लिए और रोम अपनी राजकीय व्यवस्था के विकास के लिए प्रसिद्ध है। इन थोड़े-से उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रत्येक राष्ट्र के इतिहास में कोई न कोई प्रभावकारी विशेषता रहती है। अन्य सब कार्यों पर इस विशेषता का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। जिस इतिहास में यह विशेषता ठीक-ठीक चित्रित है, वही इतिहास घटना और अर्थ दोनों दृष्टियों से सच्चा है, वही राष्ट्रीय इतिहास है।

४. 'राष्ट्रीय' या 'सच्चे' इतिहास का स्पष्टीकरण और एक दृष्टि से आवश्यक है। आजकल इतिहास का एक ही अर्थ हो गया है। राजाओं के कार्यों का, बहुत हो गया तो राजकीय घटनाओं का, सिलसिलेवार वर्णन देश का इतिहास बन गया है। भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में यह बात बहुत अधिक ठीक है। पर कोई भी समझदार यह जान सकता है कि राजाओं के कार्यों का अथवा राजकीय घटनाओं का वर्णन ही देश का, लोगों का, इतिहास नहीं होता। वह लोगों का इतिहास तभी होगा, जब उसमें लोगों के समष्टि रूप से किये कार्यों का और समष्टि-सम्बन्धी घटनाओं का वर्णन होगा। समष्टि के कार्य और समष्टि-सम्बन्धी घटनाएँ विविध होती हैं, वे केवल राजकीय नहीं होतीं। राष्ट्र के जीवन के सब महत्त्वपूर्ण अंगों का जिसमें वर्णन नहीं है, वह राष्ट्र का इतिहास नहीं है और इन सब अंगों का वर्णन उपर्युक्त राष्ट्रीय विशेषता को ध्यान में रखकर लिखना चाहिए। सब कार्यों का प्रवाह जिस दिशा में बह रहा है, सब कार्यों पर जिस विशेषता का प्रभाव पड़ा है, उसे स्पष्ट किये बिना जो वर्णन होगा, वह 'राष्ट्रीय इतिहास' की पदवी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न पा सकेगा, वह स्वदेशियों को 'सच्चा' इतिहास न जँचेगा।

५. अब यह स्पष्ट हो सकता है कि विदेशीय क्योंकर किसी देश का इतिहास नहीं लिख सकता, विदेशीय में क्योंकर किसी देश का इतिहास लिखने की योग्यता नहीं रहती। पहली बात यह है कि वह किसी दूसरे राष्ट्र की भावनाओं को समझ ही नहीं सकता, दूसरे राष्ट्र की दृष्टि, दूसरे राष्ट्र की आत्मा उसमें समा नहीं सकती। जब तक किसी भी वर्ण्य राष्ट्र की आत्मा नहीं समाती, तब तक उसमें उस राष्ट्र के इतिहास को लिखने की योग्यता नहीं आती। तब तक उस राष्ट्र की कई बातें विचित्र, कई बातें अज्ञेय या गूढ़ ही मालूम होंगी। उदाहरणार्थ, हिन्दुओं का धर्म और दर्शनशास्त्र विदेशियों के लिए केवल गूढ़ रहस्य है। एक भारतीय अपने जीवन के साथ-साथ धर्म की जो गूढ़ बातें अनायास जान जाता है, समझ लेता है, उन्हें समझ लेना एक विदेशीय विद्वान् के लाख प्रयत्न करने पर भी उसके लिए कठिन होता है। वह बौद्ध-धर्म अथवा जैन-धर्म के उत्थान, प्रचार और पतन को ठीक रीति से नहीं जान सकता, जाति-विकास को विचित्र संस्था समझता रहता है, वह धर्म को राजकीय, सामाजिक, आर्थिक संस्थाओं और आन्दोलनों से पृथक् करने का प्रयत्न सदैव करता है। धर्म के लिए उसके पास एक अध्याय है, राजकीय घटनाओं और आन्दोलनों के लिए दूसरा, सामाजिक संस्थाओं के लिए तीसरा, इसी प्रकार प्रत्येक अंग के लिए वह अलग-अलग अध्याय रखता जाता है। यह यद्यपि सुविधाजनक योजना जान पड़ती है, पर 'राष्ट्रीय इतिहास' का प्रवाह उसमें स्पष्ट नहीं देख पड़ता। उसमें 'राष्ट्रीय इतिहास' के प्रवाह की एक बड़ी धारा बनने के बदले अनेक समानान्तर प्रवाह देख पड़ते हैं। और यदि यह भी मान लिया कि लेखक की सुविधा के लिए यह योजना ग्रहण योग्य है, पर जब तक उन धाराओं का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट नहीं होता, तब तक इतिहास के सच्चे स्वरूप का दिग्दर्शन नहीं हो पाता। यह कर सकने के लिए राष्ट्र की आत्मा की प्रवृत्ति उसमें देख पड़नी चाहिए। पर जैसा ऊपर बता चुके हैं, यह आत्मा रोम-रोम में मिले बिना, मस्तिष्क और हृदय में समाये बिना, कोई भी उसकी प्रवृत्ति के अनुसार लिख-बोल नहीं सकता। जो बात हमने भारतवर्ष के इतिहास के लेखन के सम्बन्ध में कही है, वही अन्य देशों के इतिहास के लिए भी ठीक है। जिन संस्थाओं और तत्त्वों का वर्णन इतिहास में है, उन्हें भली भाँति समझे बिना कोई उनका वर्णन कर ही नहीं सकता। यही क्यों, उन संस्थाओं और तत्त्वों को समझे बिना इतिहास ही समझ में नहीं आता। जो भारतीय योरप के मध्यकालीन इतिहास को पढ़ते हैं, वे इसका यथेष्ट अनुभव करते हैं। धर्म के अनेक नियमों और तत्त्वों का राजकीय, आर्थिक और सामाजिक संस्थाओं पर बड़ा ही प्रभाव देख पड़ता है, पर उन नियमों और तत्त्वों को समझे बिना उनके परिणाम और प्रभाव समझ में नहीं आते। फिर, जो लेखक इतिहास में वर्ण्य संस्थाओं, तत्त्वों, कार्यों को भली भाँति, बिलकुल उनके भीतर घुसकर नहीं समझ सकता, वह उनका वर्णन क्योंकर 'सहानुभूति'-पूर्वक कर सकता है। सारांश, वर्ण्य राष्ट्र की संस्थाओं, विचारों, कार्यों को 'सहानुभूति'-पूर्वक समझ सकना इतिहास-लेखक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। यह 'सहानुभूति' विदेशीय में आना बहुधा असम्भव रहता है। इसी लिए विदेशीय लेखक की लेखनी से इतिहास विकृत हो जाता है। राष्ट्रीय इतिहास बहुधा स्वदेशीय लेखक की लेखनी से ही निकल सकता है, विदेशीय लेखक की लेखनी से नहीं।

६. यह तो हुआ इतिहास-लेखक की मनोरचना का प्रथम गुण। इसके सिवा किसी भी इतिहास-लेखक के लिए अन्य गुणों की आवश्यकता है। इतिहास मनुष्य के कार्यों का वर्णन है और मनुष्य के कार्य उसके स्वभाव के दिग्दर्शन होते हैं। इसलिए इतिहास-लेखक को मनुष्य के स्वभाव से भली भाँति परिचित होना आवश्यक है। अन्यथा, वह व्यष्टि और समष्टि के कार्यों का सुसम्बद्ध तथा सत्य वर्णन नहीं कर सकता। वह कई कार्यों का वर्णन विकृत किये बिना नहीं रह सकता। हाँ, यह मानना होगा कि यह बात सभी लेखकों पर लागू होती है। जिस देश का वर्णन लिखना है, उस देश की सब मुख्य भाषाओं को जानना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहिए। कोई कहे कि संस्कृत जाने विना प्राचीन भारत का वर्णन करूँ तो उसे दूसरों के वर्णन पर अवलम्बित रहना होगा। उसका वर्णन नितान्त मौलिक कभी नहीं हो सकता। उसी प्रकार, फ़ारसी जाने विना, कदाचित् अरबी भी जाने विना, भारत के मुसलमान काल का वर्णन नहीं हो सकता। मराठी जाने विना मरहठों का वर्णन कोई नहीं लिख सकता। यही बात भिन्न-भिन्न भागों के इतिहास के विषय में ठीक है। कोई इस पर कहे कि ऐसा पुरुष तो कोई नहीं हो सकता कि जो सभी भाषाओं को जाने-समझे। फिर तो भारतवर्ष-जैसे देश का इतिहास लिखना ही असंभव होगा। इस पर उत्तर यह है कि हाँ, यह कार्य एक का नहीं, अनेकों का है। भारतवर्ष का अथवा योरप का मौलिक इतिहास एक ही पुरुष नहीं लिख सकता। वह अनेकों के सहयोग से ही तैयार हो सकता है। दूसरों-दूसरों के भरोसे लेखनी चलाकर भारतवर्ष-जैसे देश का इतिहास तैयार करने के बदले अनेकों के सहयोग से समूचा इतिहास तैयार करना अधिक श्रेयस्कर होगा। माना कि इसमें भी कुछ दोष पैदा होंगे। इसमें परस्पर सम्बन्ध कम देख पड़ेगा, असंगति उत्पन्न हो जायगी, पुनरुक्तियाँ बहुत होंगी, महत्त्व के अनुसार आकार न रहेगा, इत्यादि-इत्यादि। यह आक्षेप ठीक तो है, पर ये दोष दूर करने का उपाय इस काल में कठिन नहीं है। एक अच्छे विद्वान् की सूचनाओं के अनुसार चलने से, सबकी कृति का उसके हाथ से परस्पर विचार-विनिमय-पूर्वक सम्पादन करवा लेने से, ये दोष दूर हो जाते हैं, या वे बहुत घट जा सकते हैं। पर एक के कार्य की विकृति का दोष दूर करना उतना सरल नहीं है। इसलिए सहयोग की रीति श्रेयस्कर है।

इतिहास-लेखन के लिए राज्यशासन, नीतिशास्त्र, धर्म, समाज-शास्त्र, सम्पत्ति-शास्त्र आदि अनेक मानवीय शास्त्रों का भी जानना आवश्यक है; क्योंकि इन सबका कम अधिक सम्बन्ध इतिहास से होता है। इतिहास समझने के लिए जब इन सब शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक होता है, तब एक लेखक के लिए इन शास्त्रों का ज्ञान कितना आवश्यक है, यह कोई भी समझदार मनुष्य जान सकता है। जिस अंग को वह नहीं जानेगा, उस अंग के अथवा उसके प्रभाव के वर्णन में कमी आये विना न रहेगी। लिख तो सब ही जाते हैं, पर अपनी कमज़ोरी लेखक को मालूम रहती है, और इसी लिए वे कुछ का कुछ लिख मारते हैं। भारतवर्ष के इतिहास की जो सैकड़ों पुस्तकें हैं, उनसे यह बात भली भाँति प्रकट हो जाती है। यह कहना बिलकुल ठीक है कि पूरे भारतवर्ष का कोई ऐसा इतिहास-ग्रन्थ नहीं, जिसमें बड़े-बड़े दोष न हों। सहयोग की रीति से जो इतिहास-ग्रन्थ तैयार भी हुए हैं, वे सब विदेशियों के, और 'सहानुभूति'-विरहित विदेशियों के, सम्भवतः प्रचार का भीतरी उद्देश्य रखकर, लिखे हुए हैं। इसलिए उनमें भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न कालों का, विशेषकर प्राचीन कालों का, सच्चा वर्णन नहीं मिल सकता। इतिहास-लेखक को अन्ध देशभक्त न होना चाहिए, पर 'सहानुभूति-' पर अवश्य होना चाहिए। पर जब अज्ञान के कारण इतिहास का कोई अङ्ग ही समझ में नहीं आता, तब 'सहानुभूति' की आशा कैसे की जा सकती है? इतिहास के सब अङ्गों को समझ सकने के लिए, उनसे तन्मय होने के लिए, हृदय में 'सहानुभूति' उत्पन्न होने के लिए, स्वदेशीय पुरुष तो चाहिए ही, पर उसका विद्वान् होना भी आवश्यक है। वेदों को पढ़े विना वेदों का वर्णन करने से उन्हें गड़रियों के गीत कहना ही पड़ता है। बौद्ध-धर्म का वर्णन करने के लिए केवल बौद्ध-धर्म की मौलिक सामग्री का उपयोग करने से काम न चलेगा, उसे वैदिक धर्म और साहित्य को भरपूर आत्मसात् करना होगा। केवल अनुवादों पर अवलम्बित रहकर और सात समुद्र दूर रहकर इतिहास-लेखन करना 'विनायकं प्रकुर्वाणो रचयामास वानरम्'-जैसा ही है। आजकल तो इतिहास-लेखन का शास्त्र इतना विकसित हो चुका है कि मुद्राशास्त्र-जैसे मानवी शास्त्रों का ही नहीं, किन्तु ज्योतिःशास्त्र, भूस्तर-शास्त्र-जैसे अनेक भौतिक शास्त्रों का ज्ञान आवश्यक हो गया है। प्राचीन इतिहास की रचना इनकी सहायता के विना नहीं हो सकती। केवल मानवी शास्त्रों को जानने से काम नहीं चलता, भौतिक शास्त्रों को भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानना आवश्यक है। और जब भौतिक समृद्धि का वर्णन करना हो, तब तो भौतिक शास्त्रों के ज्ञान के विना काम ही नहीं चल सकता।

अब स्पष्ट हो गया होगा कि राष्ट्रीय इतिहास लिखना कितना कठिन कार्य है और उसके लिए लेखक की मनोरचना कैसी होनी चाहिए।

सितार-मार्ग (प्रथम भाग)

लेखक—श्रीपद वंद्योपाध्याय

इस पुस्तक में बहुत-से अच्छे-अच्छे उस्तादों की गतें तोड़े, झाले और आलाप के साथ दी गई हैं। संगीतशास्त्र की पारिभाषिक व्याख्या और सितार-सम्बन्धी सभी बातें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। मूल्य २) मात्र।

मिलने का पता—मैरिस म्यूज़िक कालिज, लखनऊ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

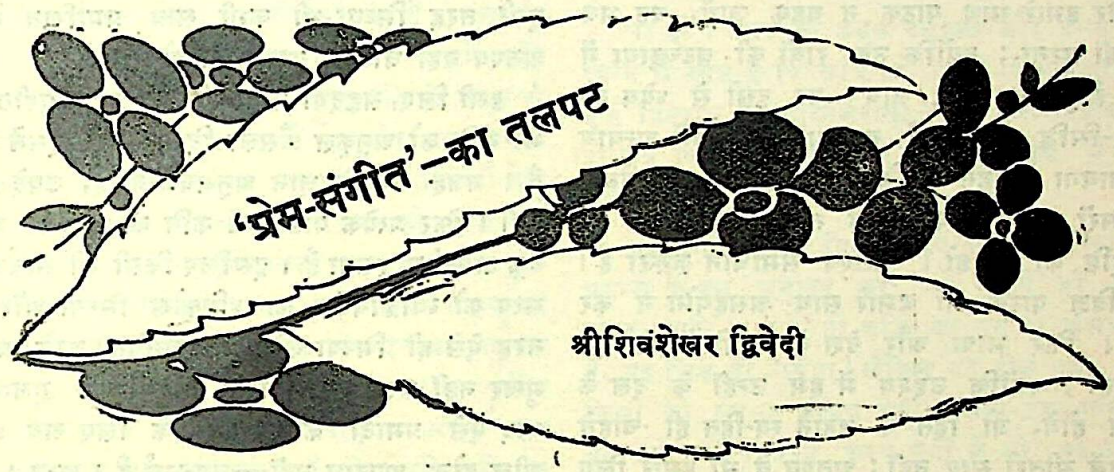

"वर्माजा के प्रेम-सम्बन्धी विचार भी अपना दृष्टि-कोण रखते हैं।....आपकी कल्पना में सूफिया और नवीन (!) वेदान्त की कल्पना है।....यद्यपि प्रेम को आप शायद (!) क्षण-भंगुरताशील समझते हैं, यद्यपि उसे मोहक, मादक और लोकोत्तरानंददायक अनुभव करते हैं। आपका विचार-केन्द्र वैराग्यमूलक प्रतीत होता है। आप जीवन को शून्यता और असफलतामय समझते हैं। (इसके अलावा) जीवन में विद्रोह की ज्वालामाला है; प्रेम आह्लाद-प्रदायिनी घटना है।"—श्रीरामप्रसाद त्रिपाठी डी० लिट्

"कुछ लोगों ने मुझमें निराशा देखी; कुछ ने जीवन की निस्सारता देखी; कुछ ने झुलसा देने-वाली आग देखी; कुछ ने प्रलाप की अनर्गलता देखी।" (१)

"मेरा एक निजी दृष्टिकोण है और मेरा यह दृष्टि-कोण उन कविताओं में मिलेगा, जिन्हें हम विचारात्मक कह सकते हैं।" (२)

"प्रेम-संगीत भावना-प्रधान है।...कल्पना की (इसमें) मादकता भर है।" (३)

"मैं तो जिसमें भाषा तथा भाव की स्पष्टता न हो, उसे सफल काव्य मानने को तैयार नहीं; क्योंकि ऐसा हालत में तो कला के ध्येय की हत्या ही हो जाती है।" (४)

"सीधे-सादे ढंग से बात कहकर उसको रसमय तथा पूर्ण प्रभावमय बनाना बहुत अधिक कठिन काम है और यही काव्य की सफलता की चरम सीमा है।" (५)

"मैं कविता को कृत्रिम मानते हुए भी भावना-प्रधान मानता हूँ।....यदि कविता पढ़ते समय अस्वाभाविक गुत्थियाँ खड़ी हो जायँ, तो वह कवि की कमज़ोरी है।" (६)

"लिखता हूँ इसलिए कि लिख सकता हूँ और विश्वास है कि जो कुछ लिखता हूँ स्पष्ट है।" (७)

—श्रीभगवतीचरण वर्मा

कवि के प्रयास-संभव काव्य पर, ऊपर आठ रायें उद्धृत हैं। सबसे ऊपर, एक डी० लिट् की—इतिहास-मर्मज्ञ की—कवि के लोक-प्रिय काव्य की प्रशंसा में है; शेष सात रायें कवि की निजी हैं। अपने सम्बन्ध में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपनी राय सचमुच दूसरों की अपेक्षा अधिक लागू होती है।

अतएव, गंभीरतापूर्वक ऊपर की दलीलें पढ़ लेने के बाद, कवि और उसके काव्य के सम्बन्ध में किसी तरह के भ्रम-विवाद की कोई गुंजाइश नहीं रहती। लेकिन सौभाग्य-लब्ध अपाथेय काव्य का पैदल तीर्थयात्रा में हम और हमारे साथ पाठक न बहक जायँ, यह भय भी नहीं छूटता; क्योंकि उक्त रायों की वटच्छाया में सम्भव है, थकन मिट जाय; पर इसी से ध्येय की अभीष्ट-सिद्धि भी हो गई, यह मान लेना भी अन्याय कहा जायगा। बहुत मुमकिन है, अज्ञानियों के कोमल कच्चे सिरों पर ज्ञान का पहाड़ तोड़कर ही रायों की उपलवृष्टि की गई हो। अतएव समाधान ज़रूरी है। यहाँ विज्ञ पाठक भी हमारे साथ असहयोग न कर सकेंगे। फिर भाषा और देश के हितैषियों से हमें भय नहीं; क्योंकि उद्देश्य में हम उन्हीं के दल के साबित होंगे, जो हित के बहाने स्व-हित ही चाहते हैं, उनमें भीतरी सत्य नहीं; अतएव वे भी हमारे लिए भय का कारण नहीं। फिर यहाँ तर्क की ठोस-भूमि में लड़खड़ाकर गिर जाने की कोई पुश्तैनी कमज़ोरी-रोग-दोष भी नहीं। बस, इस पक्ष-मीमांसा के लिए यहाँ अब ज़रूरी है कि हम कवि की एक बहु-पठित, बहु-श्रुत, बहु-प्रसिद्ध और बहु-प्रशंसित रचना उद्धृत करें। ऊपर की रायों पर कड़ी नज़र रक्खें, और तब, उसके काव्यगत यथार्थ-मर्म काव्यार्थ-चमत्कार के समझने-सीखने की कोशिश करें।

मुमकिन है, सोलह आने में धेला भर भी कवि के साथ हमारा मेल न हो; न सही। इससे हुआ क्या? लेकिन नहीं; जब हमने पाठकों को जज मान लिया है और ज़माना देखते वे ख़ुद भी सहज ही जज बन बैठे हैं, तो, वादी-प्रतिवादी की दलीलें सुनकर अन्तिम फ़ैसला देने की अपनी पवित्र मर्यादा को निश्चय ही बरक़रार रखने के लोभ में वे इन्साफ़-पसंद और मुस्तैद साबित होंगे। हालाँकि दीर्घकाल से भारत की अदालतों में सच-झूठ का फ़ैसला महज़ सुबूतों की सुव्यवस्था पर ही निर्भर है और जनता इसी की अभ्यासिनी भी। लेकिन अब ज़माना बदल चला है। मोह की नींद टूटने लगी है। लोग आज़ादी के सुनहले प्रकाश की झिलमिलाहट भी देखने लगे हैं। फिर यहाँ (साहित्य में) किसी भौतिक ऐश्वर्य की छानबीन नहीं हो रही; यहाँ तो ज्ञान का सौदा है, जो सुबूतों की जोड़-गाँठ से न तो सत्य हो सकता है, न मिथ्या। यानी सत्य हमेशा सत्य है, मिथ्या नहीं। इसी तरह मिथ्या भी कभी सत्य प्रमाणित नहीं। अतएव यहाँ धाँधली कारगर न होगी।

इसी लिए, सहृदयों की सच्ची मैत्री की संगृहीत रायें भी कवि को अनुकूल फ़ैसला दिला देंगी, इसमें संदेह है। वजह यह कि ज्ञान अनुभवजन्य है, उपदेशजन्य नहीं। फिर प्रत्येक पाठक भी कवि की तरह ही अपना एक दृष्टिकोण रखता है। इसलिए किसी भी सार्वजनिक सत्य को व्यक्तिविशेष का दृष्टिकोण मिथ्या और इसी तरह ऐसे ही मिथ्या को सत्य घोषित करके प्रचार-मुखर नहीं कर सकता। फिर सदियों की ग़ुलामी के बाद ऐसे प्रमादों को दूर करने के लिए अब प्रयत्नशील होना अपराध नहीं—युग-धर्म है। अस्तु।

लेकिन कविता पर धारा-प्रवाह विचार करने के पहले यह जान लेना भी ज़रूरी है कि कवि के प्रयास-कौशल का सार्थक प्रयोजन क्या है? शास्त्रों ने कहा है—

"विषयः संशयश्चैव विचारो निर्णयस्तथा;
प्रयोजनेन सहितमेतत्स्यादंगपंचकम्।"

"यानी विषय उपस्थित हो, फिर उसमें संशय पैदा हो, फिर उनका समाधान (खंडन-मंडन) हो; तब कहीं निर्णय हुआ और यदि इसके बाद प्रयोजन की सिद्धि हुई, तो रचना निस्संदेह निर्दोष हुई। कवि का महत्त्व बढ़ा—अन्यथा...."

अतएव, ऐसी जाँच के बाद ही किसी रचना और उसके रचयिता की ख़ूबी-ख़राबी का फ़ैसला हो सकता है।

यहाँ अपनी इसी पुष्टि में कवि की स्वानुभूति की दो-तीन और लाइनें उद्धृत करके हम उन्हें निबंध की भूमिका माने लेते हैं; क्योंकि इससे हमारे विचारों को अनायास ही सच्ची प्रगति मिलेगी—"मैं समझता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हूँ कि जीवन एक गति है।...फिर बनना और फिर बिगड़ना यही संसृति की गति है, नियम है। गति ही जीवन है, और गतिहीनता ही मृत्यु।"
—श्रीभगवतीचरण वर्मा

हमारी कारिका अब शुरू होती है।

कवि जीवन और मृत्यु का रहस्य भले प्रकार समझता है। मानव-जीवन का भी यही ध्येय है (शास्त्रमत से)। इसी अबोधगम्य रहस्य का परिचय हमें कवि उदारतापूर्वक निजी जीवन की चपल गति के रूपक से अपनी प्रत्येक पंक्ति में दे रहा है। अर्थात् वह अपनी लोक-कल्याणकारिणी पवित्र अनुभूति हम निरीहों तक पहुँचाकर अनवरत अपने पुण्य-भंडार को वृद्धि-पूर्ण कर रहा है। ("अनुभूतिजन्य ज्ञान ही मोक्ष का साधक है।"—रामानुजाचार्य) कवि तथा लेखक की हैसियत से इस समय पारस्परिक लेन-देन का माध्यम भौतिक पदार्थ—ऐश्वर्य ही है। तब, भला कहिए अमूल्य पदार्थों के बदले निर्मूल-पदार्थों का संचयी क्या कभी बुद्धिमान् कहा जा सकेगा? फिर यदि कवि को जीवन में भौतिक ऐश्वर्य की सिद्धि-वृद्धि ही अभीष्ट हुई, तो उसकी लोक-कल्याणकारिणी रचना का आख़िर अर्थ क्या हुआ?

एक बात और।

ज्ञान जब गम्भीर और अति क्रिया-कष्टसाध्य है, तब वह सार्वजनीन कैसे होगा? तर्क भूमि की आड़ में आजकल सार्वभौमिक विकास और ज्ञान-प्रकाश की जो चर्चा चल रही है, सच कहें, तो उसमें मानवी दुर्बलताओं की जानकारी के सहारे स्वार्थ—लौकिक-पारलौकिक—ही निहित है। अवश्य सोदाहरण मीमांसा यहाँ संगत नहीं। ज्ञान सचमुच ही कष्ट-साध्य है; क्योंकि क्रिया-मात्र कष्ट-कारिणी हैं। सहज जो कुछ है, वह फल-प्राप्ति के बाद। अथवा यों कहिए कि साहित्य में सहजत्व क्रियानुष्ठान से स्वानुभूति की अभिव्यक्ति में भाषा-सौष्ठव और शैली का रहस्य है। शैली स्वयं ही एक ऐसा स्वतंत्र विषय है, जिसका भी यहाँ विस्तारपूर्वक विवेचन अप्रासंगिक क़रार दिया जायगा। मतलब यह कि सरल-सुबोधत्व की डींग किसी कवि या लेखक की सफलता का कोई चामत्कारिक लक्षण नहीं। मुमकिन है, कोई चमक हो, पर चंदरोज़ा; क्योंकि इसकी वजह महज़ दिमाग़ी ग़ुलामी है, जो अब तेज़ी से बदल रही है और बहुत जल्द बिना प्रमाण प्रयास के ही एक दिन दूर हो जायगी, जैसे धूप से कुहरा; क्योंकि ज्ञान की यही महिमा है। कहा भी है—"सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म।"

जो हो। ऊपर की उद्धृत दलीलों और उनकी अर्थ-ध्वनि से स्पष्ट है कि कवि को निजी चिन्ताशक्ति पर पूर्ण विश्वास है, आत्मभरोसा भी। निस्संदेह ये दोनों ही सूत्र विजय के हैं और हिन्दू-समाज में चिर-प्रसिद्ध भी।

तब, कवि के ऐसे विराट् सत्य का यदि बिना किसी प्रमाण के हम अनादर करें, तो अनर्थ ही साबित होगा। यदि न करें, तो कवि का मत ही असल सत्य है, यह सिद्ध हो जायगा। लेकिन यह ठीक नहीं, क्योंकि किसी को सहसा प्रत्यक्ष-दर्शी—सत्य-द्रष्टा मान लेना युग-धर्म नहीं। फिर अन्य युगों में भी यह प्रमाण-सापेक्ष्य ही रहा है। हाँ, संदेह न करने से विपक्षी की अकारण जीत होगी और साथ ही हमारा क़लम उठाना भी व्यर्थ। यदि संदेह करते हैं, यानी ख़ुद को कवि से अधिक ज्ञान-गम्भीर समझ लेते हैं, तो पक्षान्तर के कुछ सहृदय महाजनों को अकारण और कुछ को सकारण एतराज़ होगा। यही नहीं, कवि का काव्य भी व्यर्थ हो जायगा। कारण कोई भी रचना (जैसा कि लोक-व्यवहार में देखा जाता है) किसी न किसी तरह के ज्ञान की वृद्धि के लिए ही पढ़ी जाती है। तब यदि कवि के काव्य-पाठ से हमारा ज्ञान अणु-मात्र भी नहीं बढ़ता तो पढ़ना बेकार।

इस तरह संशयाच्छन्न हम इस नतीजे पर पहुँचे कि जब तक हम कवि की किसी सर्वश्रेष्ठ रचना के अर्थ-गौरव, पद-सौष्ठव, सौंदर्य-विदग्धता और अति आधुनिक तर्ज़ से भाव-निर्वाह एवं शैली-चमत्कारादि से किसी सुरक्षित चौरस भूमि पर न पहुँच जायँ, तब तक न तो हम ख़ुद कोई राय क़ायम कर सकते हैं और न दूसरों के साथ कवि की ही सलाह मान सकते हैं। अतएव इसी उलझी को सुलझाने के लिए हम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीचे उद्धृत कवि-रचना पर ग़ौर विवेचन करने के लिए बाध्य हैं—

हम दीवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले;
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते चले।
आये बनकर उल्लास अभी,
आँसू बनकर बह चले अभी;
सब कहते ही रह गये, अरे
तुम कैसे आये, कहाँ चले? (१)

किस ओर चले?—यह मत पूछो,
चलना है, बस इसलिए चले,
जग से उसका कुछ लिये चले,
जग को अपना कुछ दिये चले;
दो बात कहीं, दो बात सुनीं।
कुछ हँसे और कुछ रोये।
छककर सुख-दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिये चले। (२)

हम भिखमंगों की दुनिया में
स्वच्छन्द लुटाकर प्यार चले;
हम एक निशानी-सी उर पर
ले असफलता का भार चले;
हम मान-रहित, अपमान-रहित
जी भरकर खुलकर खेल चुके;
हम हँसते-हँसते आज यहाँ
प्राणों की बाज़ी हार चले! (३)

हम भला-बुरा सब भूल चुके,
नत मस्तक हो मुख-मोड़ चले;
अभिशाप उठाकर होठों पर
वरदान दृगों से छोड़ चले;
अब अपना और पराया क्या?
आबाद रहें रुकनेवाले!
हम स्वयं बँधे थे और स्वयं
हम अपने बंधन तोड़ चले! (४)

कवि निजी रायों के पहले नम्बर में ख़ुद ही उल्लेखालंकार का उदाहरण सिद्ध हो गया है। अब हमारी देखने में वह किस अलंकार का उदाहरण साबित होगा, अलंकारशास्त्री जानें। हम तो अब पहले बन्द के अर्थ-चमत्कार का मज़ा लूटते हैं—

"हम दीवानों की क्या हस्ती, (कंठध्वनि के नियमानुसार—"कुछ नहीं," यानी हस्ती है ही नहीं। लेकिन यहाँ (हस्ती के बाद) (,) है। अतएव कारणवाचक 'क्योंकि' का निश्चय ही अध्याहार है। अर्थात् 'हस्ती' इसलिए नहीं कि, (क्योंकि)—आज यहाँ हैं, कल वहाँ (के लिए) चले! यहाँ काव्यगत मंत्रपूत सम्पूर्ण अभागी जाति का अस्वाभाविक भूत छुड़ाने की इच्छा से व्याकुल कवि स्वेच्छा से निजी दुर्बलता का ही एक नया भूत लादकर अति निरीह विश्वासी जनता में महाभूतेश्वर का तांडव कर बैठा है! इसी लिए 'हस्ती' की व्यापक भावना को क्रिया-लोप के संकोच-कौशल से महत्त्व देकर कवि ने बाद की लड़ी के दो स्वतंत्र साधारण वाक्यों को 'पूरक' साबित किया है; क्योंकि कंठध्वनि के अनुसार "नहीं है" मान लेने से हिन्दू-संस्कृति को अनायास करारा धक्का लगता है। साथ ही जीवन-मरण का कवि का रहस्य-बोध भी साफ़ हुआ जाता है। वजह समाधिस्थ योगियों में गति नहीं होती। इसी से उन्हें मुर्दा समझा जाय, तो कैसे?—जबकि यथार्थ महानंद के वे ही भोक्ता सिद्ध हैं। उनकी 'हस्ती' भी बरक़रार ही है। 'हस्ती' का अर्थ—सत्ता-स्थिति है। दीवाना शरीरवाला पदार्थ है, अतएव उसका 'हस्ती'—सत्ता-स्थिति है। यही कवि का अभिप्रेत भी है। तब, 'हस्ती' नहीं कैसे? अथवा है या नहीं, यह संदेह कैसा? और भी। दीवाने में दीवाना-पन—पागलपन ही उसकी 'हस्ती'—सत्ता-स्थिति है। यदि नहीं, तो अर्थ हुआ कि वह अस्थिर नहीं, यानी स्थिर है। और तब उसकी 'हस्ती' ज्ञानमय हुई। अर्थात् दीवानापन, जो उसकी एक अवस्था-विशेष है, ग़ायब हुआ, 'हस्ती' नहीं। इस तरह कवि की 'हस्ती' का अर्थ 'दीवाना' नहीं हुआ। लेकिन यही कविता का विषय है। तब विषय से एकदम हट जाना—बहक जाना भी क्या योरपीय संस्कारों से उत्पन्न कोई नई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पनिहारिन

[चित्रकार—श्रीरामगोपाल विजयवर्गीय]

N. K. Press, Lucknow

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कला है ? चंचल होना—चलते-फिरते रहना, कभी यहाँ, कभी वहाँ भटकना आदि ही दीवाने के सहज-धर्म हैं। अतः 'हस्ती' के बाद यदि संयोजक (कि) की कल्पना कर लें, तो 'पूरक' की संगति बैठ जाती है। और यह सिद्ध हो जाता है कि "हम दीवानों की क्या हस्ती"—(अर्थात् 'क्या' के सार्थक उत्तर में 'हस्ती' इसलिए कुछ नहीं कि दीवाना—) आज यहाँ है, कल वहाँ (के लिए) चला ! लेकिन यह भी ठीक न हुआ। वजह, दीवाना आज-कल का कोई हिसाब ही नहीं रख सकता। फिर 'यहाँ-वहाँ' के साथ भी उसका कोई प्रीतिकर संबध नहीं देखा जाता। अज्ञानजन्य चिर-प्रसन्नता, रोना-धोना, नाचना-गाना आदि नाना क्रियाएँ ही तो उसकी स्थिति की परिचायिका हैं; क्योंकि दीवाना एक प्रत्यक्ष और स्थूल-पदार्थ है और दीवानगी-दीवानापन उसी के सहारे सूक्ष्म-पदार्थ। तब 'हस्ती' की "है या नहीं" यह चर्चा ही काव्यगत धर्म में बाधक है। यानी यहाँ 'हस्ती' की पद-योजना ही कवि की अभिव्यक्ति को एकदम निरर्थ कर देती है। सम्भव है, 'यहाँ-वहाँ' के ज़िक्र में कवि की आत्मध्वनि हो। अर्थात् वह अपनी उस मानसिक पीड़ा का संकेत कर रहा हो, जो उसे अप्रिय है। मतलब यह, वह कहीं एक जगह जमकर रहना चाहता है, लेकिन उसके भीतर का दीवानापन ऐसा विचित्र प्रेरक है कि कहीं ठहरने ही नहीं देता। इसी लिए 'हस्ती' का उसे क़तई विश्वास नहीं। पर यह भी ठीक नहीं। वजह, हिन्दू-धर्म में वर्णाश्रम-धर्म की महिमा अमान्य नहीं। जो थोड़ी-बहुत गड़बड़ी इस समय है, वह ख़याली, अतएव निराधार है। ऐसे मत-पोषकों और प्रचारकों की कोई ज्ञानजन्य निजी अनुभूति नहीं; उनकी भित्ति तो भौतिक आमोद है। और वे परस्पर ईर्ष्या-द्वेष, क्षोभादि दुर्गुणों की अबाध वृद्धि के लिए मनमाने ढंग से दलीलें पेश करते हैं। इन दलीलों में इतिहास की साक्षी सबसे प्रबल है। पर, बहस में विरोधियों का मुँह बन्द करने के लिए, बौद्धकालीन उत्कर्ष के अपकर्ष की परिणति का कारण बताने की जगह मौनावलम्बन के अलावा वे कुछ भी पेश नहीं करते। राष्ट्रीयता की सच्ची मैत्री, सच्चा उत्कर्ष सचमुच बौद्धयुग में हुआ था, यदि मान लें, (यह सच है, उस समय यही राजधर्म भी था) तो यह सब होते हुए भी आख़िर वर्ण-व्यवस्था पूरे बल से पुनः भारत के सिर क्यों चढ़ बैठी ? मज़ा यह कि वर्ण-व्यवस्था आज भी घातक ही क़रार दी जा रही है। ख़ैर, छोड़िए इसे। असल चर्चा तो दीवाने की हस्ती की है। इसलिए ऊपर के तर्कानुसार यदि कविमत को मान लें, यानी 'यहाँ-वहाँ' भटकने के कारण ही 'हस्ती' नहीं, तो अद्वितीय विद्वान्, अखंड ब्रह्मचारी, महातपस्वी, महात्यागी अवतार शंकराचार्य-जैसे महापुरुषों का जन्म ही पृथ्वी पर व्यर्थ हुआ जा रहा है; क्योंकि वे संन्यासी थे। आश्रम-धर्मानुसार वे कहीं डेरा ही नहीं जमा सकते थे। पर उनकी 'हस्ती' है, और जब तक हिन्दू-समाज भूमण्डल पर बरक़रार रहेगा, तब तक अक्षुण्ण रहेगी। शरीर नित्य पदार्थ है, अतएव शंकर की देह नष्ट हुई। 'हस्ती' अनित्य-पदार्थ है। अतएव 'शंकर' की 'हस्ती'—ज्ञानजन्य स्थिति आज भी है। 'अमरत्व' की भी यही परिभाषा है। फिर पागल का पागलपन अज्ञान-जन्य है, एक प्रकार का वात-विकार है। अतएव वह नाशवान् है, अतः यह 'हस्ती' नहीं। यानी, यदि इसी सिद्धान्त के अनुसार कि 'अज्ञान' नाशवान् है, दीवाने का पागलपन भी नाशवान् है, मान लें, तो फिर चित्र क्या होगा ? वजह, यहाँ पागल और पागलपन ही काव्य-चित्र हैं। पागल चित्र है; पागलपन ही चित्रत्व। अतएव यही उसकी 'हस्ती' है। फिर जब पागलपन है, तो 'हस्ती' नहीं कैसे ? इस तरह 'हस्ती' की कवि की कल्पना भित्तिहीन और व्यर्थ हुई। 'यहाँ-वहाँ' का झगड़ा 'हस्ती' के लिए कदापि लागू नहीं; क्योंकि 'हस्ती' के लिए शरीर का होना ही काफ़ी है। और भी—

"हम जहाँ (ज्यों ही अथवा जहाँ के लिए) धूल उड़ाते (हुए) चले; (कि) साथ मस्ती का आलम भी चला !"

ख़याल कीजिए। काव्य में चित्र-चित्रण का अर्थ विषय-विषयी के सहज-धर्मों का उत्कर्ष अथवा अपकर्ष है। यहाँ दीवाने का चित्र खींचा जा रहा है। अवश्य शीर्षक की जगह कोष्ठक में 'बीस' है और यह कविता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का संख्यावाचक विशेषण है। अतएव कवि की इच्छा से इसका भी शीर्षक हुआ 'प्रेम-संगीत'; यानी प्रेम का पागल प्रेम-गीत गा रहा है। जैसे पागल कुत्ते के काटने पर घायल उसी के स्वर में भूँकता हो।

यहाँ हमें भी यह मान लेने में उज्र नहीं कि कवि का दीवाना प्रेम-दीवाना है और वह कोई और नहीं, स्वयं कवि है। यथा—"हम दीवानों की क्या हस्ती—" आदि।

'हस्ती' के अभाव-बोध से झुँझलाकर ही वह यत्र-तत्र धूल उड़ाता फिरता है, और उसके इस अद्भुत व्यापार के साथ 'मस्ती' का आलम पूरी सहानुभूति रखता है, साथ है। अर्थात् वह अकेला नहीं—जब कि दुनिया में दीवाने को एकाकी ही देखा जाता है। फिर आख़िर यह मस्ती है क्या बला? क्या यह वही है, जिसके परिचय में—"जब आशिक़ मस्त फ़क़ीर हुए, तब क्या दिलगीरी है बाबा!"—लिखकर भी उर्दू का प्रसिद्ध कवि 'फ़क़ीरी' और 'दिलगीरी' के शब्द-न्यास से 'मस्ती' को विशुद्ध-पूत क़रार देकर साधु-स्वभाव सिद्ध हो गया है? हमारे मुग्ध हिन्दी के कवि ने भी तो 'मस्ती' का अर्थ-चमत्कार यहीं से (इसी भाषा से) ग्रहण किया है। लेकिन यहाँ उसके कौशली प्रयोग में, भावना-प्रधान होते हुए भी, (कवि ने ऐसा ही घोषित किया है) किसी पवित्रता का संकेत नहीं मिलता; क्योंकि यह दीवाने की मस्ती है। अतएव, अज्ञानजन्य और अपवित्र है। फिर कवि के धूल उड़ाने और 'मस्ती' की संगति भी सद्यःस्नात हस्ति-झुंड के निदर्शन के सिवा और क्या हुई? यदि कहो, यह 'दीवाना' है, अतएव अपनी 'मस्ती' को आलम समझता है; धूल भी इसीलिए उड़ाता है, तो सचमुच दीवानापन सार्थक है; क्योंकि किसी भी प्रत्यक्ष पदार्थ को विकृतबुद्धि से विकृत अथवा भिन्न रूप में देखना ही उसका स्वभाव-धर्म है। लेकिन नहीं, यह भी ठीक न हुआ; क्योंकि 'मस्ती' ही जब आलम है, तो इसमें "अहं ब्रह्म" "द्वितीयो नास्ति" आदि महावाक्यों का तत्त्वार्थ ही निहित हुआ जाता है, जो पागल का नहीं, चेतन का धर्म है। साथ ही 'पागलपन'—'हस्ती'—स्थिति भी मिटती है! फिर जब 'मस्ती' और 'आलम' एक हैं, तो आर्य-समाजी कवियों की तरह—"तुम्हीं गो हो तुम्हीं फूल हो" तो "भगवान् को भगवान् पर क चढ़ाऊँ मैं।" आख़िर दीवाना कहाँ और किस पर धू उड़ावेगा? यही नहीं, 'साथ' अव्यय और 'चल क्रिया भी निरर्थक!—जब कि ये सभी सार्थक शब्द-पदांश हैं। फिर यदि 'मस्ती' में यह तमाम दुनि को साथ समझता है, तो नशा उतरने पर अकेला समझेगा। यदि ऐसा ही है, तब तो पागलपन औ चैतन्य धर्म में भयानक असंगति होगी। यही नहीं वेदान्तधर्म का, अनंत ज्ञान का महानंददायी निस्संग एकाकीपन अकेलापन का अनायास, अकारण और वि प्रमाण के ही बाध हो जायगा! अतएव, मस्ती के सा आलम का होना भी कवि-कल्पना का कोई चमत्क न हुआ। हाथी, गाय, ब्राह्मण, चांडाल आदि सा सृष्टियों को एक निगाह से ज्ञानी ही देखता है, पाग नहीं; क्योंकि पागलपन बराबर अस्थिर करनेवा अज्ञान की स्थिति है। इसलिए भी 'मस्ती' औ 'आलम' का साथ यहाँ चामत्कारिक नहीं, बल्कि प्रमा जन्य दोष है। ख़ैर।

अब तक हमें तीन बातें मिलीं—'हस्ती, मस्त और धूल उड़ाना'। अर्थात् इस बंद में ये ही विध हैं। इनके अभिधेय, लक्ष्य और व्यंग्यार्थों की खो ही संशय; तार्किक खंडन-मंडन समाधान; निर्णो निर्णय और प्रयोजन ग़ायब! यानी 'हस्ती' नहीं (क्योंकि कवि ने शुरू में ही संदेह किया है), ह ही आधार है। 'मस्ती' आधेय। यदि हस्ती न तो मस्ती भी नहीं। 'हस्ती', 'मस्ती' नहीं, तो 'धू उड़ना' क्या हुआ? यदि 'हस्ती' 'मस्ती' है, तो 'धू उड़ाना' होली के मज़ाक़, देहात की कच्ची सड़कों मोटरों, दूसरी गाड़ियों के सरपट दौड़ने के अला और कुछ नहीं, और इस तरह की धूल से दुनिया किसी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती। यदि 'धू उड़ाने' को महावरा क़रार दे दें, तो कविता से भयान अभद्रत्व की गन्ध फूट निकलेगी। अतएव, या चुपचाप यह मान लेने में ही अधिक कल्याण है 'धूल उड़ाने' का प्रयोग यहाँ महावरे के रूप में कहीं नहीं हुआ। यदि इसे निदर्शनालंकार का अंग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चमत्कार मान लें, तो भी फ़िज़ूल ही हुआ। यानी हाथी के धूल उड़ाने की कल्पना का चित्र फाड़कर हवा में उड़ा देने के अलावा और कुछ भी क़ीमत नहीं रखता।

अभी मंज़िल दूर है। ज़रा क़दम उठाइए।

"अभी उल्लास बन आये। अभी आँसू बनकर बह चले!"

चलो छुट्टी हुई! आख़िर यह महाअनर्थ कैसा? (याद रहे, कवि ने कल्पना की है और कल्पना में मादकता भर है! अर्थात् कवि सज्ञान है—अज्ञान, दीवाना नहीं; नहीं तो कविता लिखता कैसे?) उल्लास बनकर कौन आया? आँसू बनकर कौन बहा? यदि कहो. धूल उड़ानेवाला, जिसके साथ मस्ती का आलम है, जो आज यहाँ तो कल वहाँ भटकता फिरता है; वही उल्लास बनकर आया और तुरत ही आँसू बनकर बह गया, तो कैसे? वजह, दीवाना स्थूल-पदार्थ शरीरी है। उल्लास सूक्ष्म, परोक्ष और अशरीरी पदार्थ है और शरीरी के अधीन है। अर्थात् उल्लास शरीरादि क्रिया-चेष्टाओं से अभिव्यक्त होता है। मतलब यह कि यह एक भाव है। (कवि की लड़ी से भी यही सिद्ध है।) इसी तरह रोने के विकार आँसू भी। लेकिन 'उल्लास' और 'रुदन' यदि काव्यगत भाव हैं, तो विभाव—आलम्बन-उद्दीपन, अनुभाव और संचारी आदि के बिना उनकी सिद्धि न होगी। यदि आँसुओं के संचारित्व से किसी तरह जबरन् भाव मान भी लें, तो उल्लास बनकर आनेवाले भाव के बाद ही बिना किसी दुर्घटना के आँसू आना कैसे सिद्ध हुआ? यदि कहो, पागल है; इसलिए कभी हँसता, कभी रोता है, तो ठीक नहीं; क्योंकि उसके हँसते-हँसते रोने लगने के 'भय' आदि नाना कारण हैं। यदि कहो हँसते-हँसते रोने लगना हास्य की ही एक स्थिति-विशेष है, तो यह भी ठीक नहीं; क्योंकि कवि के वाक्य-निवेश से ही स्पष्ट है कि उसके आँसू हास्य के अन्तर्गत नहीं, स्वतंत्र हैं। हाँ, मुग्धादि नायिकाएँ पति-समागम में रस से अनभिज्ञा होने के कारण ज़रूर रो उठती हैं, लेकिन यहाँ भी उनकी मानसिक स्थितिजन्य भय कारण है। अतएव (रुदन से आँसुओं की स्वतंत्र सत्ता के लिए) उल्लास (हास्य) और आँसुओं (रुदन-विकार) के बीच कोई ऐसी दुर्घटना अवश्य होनी चाहिए, जो उल्लास के हास्य को रुदन में बदल सके। इसी को सुगम करने के लिए पुराने भारतीय साहित्याचार्यों ने दो विरोधी (यहाँ 'उल्लास' हास्य-रस का और 'आँसू' कार्य के कारण-भाव से 'रुदन' करुण-रस का सूचक है। ये दोनों रस परस्पर शत्रु हैं।) रसों की मैत्री में—संधि में—अद्भुत-रस की सृष्टि को ग्रहण-महत्व दिया है। इसलिए, ऐसे दो रसों की मैत्री का मध्यस्थ यदि अद्भुत नहीं, तो कवि निश्चय ही रस-परिपाक में असफल हुआ, यही क्यों, साहित्य-सृष्टि में अपराधी भी।

माना, कवि प्राचीनता का नहीं, नवीनता का उपासक है। हमें कोई एतराज़ नहीं; क्योंकि हम सहधर्मी और सहकर्मी तो नहीं, (क्योंकि कवि दीवाना है, और हमें दीवानापन अभीष्ट नहीं) पर सहयोगी ज़रूर हैं। अतएव सवाल है कि घर और देश की एक लम्बी रक़म फूँककर यदि कवि किसी शुभ दिन में सात समुद्र पार से आई कोई ज्ञान की पिटारी ख़रीद चुका है, तो उसी को कुछ सच्ची करामात दिखाने की कोशिश करे कि 'उल्लास' वह कैसे बना और फिर तुरत ही आँसू बनकर कैसे बह गया!

और मज़ा देखिए—

"सब कहते ही रह गये—अरे! तुम कैसे आये? कहाँ चले?"

'हस्ती' नहीं है, इसलिए कि वह यत्र-तत्र भटकता फिरता है। धूल उड़ाता है। साथ में मस्ती का आलम भी है। फिर न-जाने कैसे, वह शरीर-मोह छोड़कर उल्लास बन जाता है। (अर्थात् उल्लास बन गया, तो शरीर न रहा। जब शरीर नहीं, तो उल्लास का आधार क्या होगा? क्योंकि उल्लास शरीराधीन एक मनोविकार ही है।) फिर तुरत ही आँसू बनकर बह जाता है। (यानी उल्लास बनकर अशरीरी होकर—वह पुनः शरीरी हुआ, फिर आँसू बनकर शरीरी और बहकर पुनः अशरीरी!) जब 'हस्ती' ही नहीं, तब ये सब नाना व्यापार हुए कैसे? यदि कहो, हस्ती थी, यानी पागलपन की नहीं, सयानपन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की तो ज्ञान की मस्ती में धूल उड़ाना क्या होगा ? गोकि ऐसे व्यापार परमहंसों में पाये जाते हैं, पर यहाँ वे कविता का विषय नहीं । साधारण ज्ञान से चलने-वाली दुनिया में 'धूल उड़ाना' यदि 'मस्ती' का व्यापार है, तो पागलपन ज़रूर सूचित है । लेकिन पागल के किसी भी व्यापार से दुनिया का कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । फिर यहाँ इस निष्प्रयोजन-कथन में भी कवि की उक्ति से उत्पन्न कोई चमत्कार नहीं । फिर संदिग्ध 'हस्ती' में 'मस्ती' और 'धूल उड़ाना' आदि का आरोप भी फ़िज़ूल है । अतएव, बन्द का बन्द ही निस्सार हुआ । और भी । शरीरी से अशरीरी होने के कवि के विचित्र इन्द्रजाल से जब दीवाना शरीरी (आँसुओं के रूप में ; क्योंकि आँसू को एक शकल है ।) होकर भी बहकर पुनः अशरीरी हुआ, तब न-जाने कवि की किस गुप्त-सिद्ध माया से वह पुनः मूर्ति-मान् होकर जनता के सामने हाज़िर हुआ ! जनता को आश्चर्य हुआ और यह स्वाभाविक था । इसलिए उसने साश्चर्य पूछा, "अरे कैसे आये ?" फिर वह भागा तो उसने पूछा, "अरे ? कहाँ चले ?" यहाँ उच्छ्वसित हास्य को होठों से बाँध देने में अफरा का भय है । यदि यह मानें कि आँसू से ही एक जड़-मूर्ति बन गई, (क्योंकि आँसू जड़ हैं और मनोविकार के इस जड़त्व का विकार भी जड़ ही होगा, यानी आँसुओं की मूर्ति जड़ मूर्ति ही होगी) तो भी संभव नहीं । वजह, जड़-विज्ञान के इस युग में भी अभी तक किसी भी सर्द मुल्क से किसी वैज्ञानिक ने ऐसी करामाती क्रिया को कोई सूचना नहीं प्रकाशित कराई कि आँसू भी जम जाते हैं ! तब मूर्ति हम कैसे गढ़ें ? जब जड़-मूर्ति ही नहीं गढ़ सकते, तो प्राण-प्रतिष्ठा भी संभव नहीं और मुर्दों को कहीं बातचीत करते देखा ही नहीं जाता । तंत्र-मंत्र की कल्पना भी यहाँ इसलिए संभव नहीं कि वे सभी कविता के अविषय हैं । अस्तु ।

अब ध्यान दीजिए बंद के हमारे अर्थ पर ; कवि के भाव, शब्दन्यास, निर्वाह, शैली और कवित्व-कल्पना पर ; फिर ध्यान दीजिए शुरू में उद्धृत डी० लिट्० महोदय और कवि की ख़ुद की नं० ३, ४, ५ और ७ वीं रायों पर । सबका सामंजस्य देखिए । अन्त में कहिए, क्या यहाँ कवि कवि की एक भी दलील अकारण और बिना प्रमाण के व्यर्थ हुई है ?

दूसरे बन्द का चमत्कार देखिए—

"(मैं) कहाँ (किधर) जा रहा हूँ, यह न पूछो चलना है, इसलिए चले ; (दीवाना है सही, लेकिन कैसा ज्ञान छाँट रहा है !) जग से उसका कुछ लिए चले ; जग को अपना कुछ दिये चले । दो बात (बात नहीं ?) कही ; दो बात (?) सुनी ; (फिर) कुछ (ज़रा-सा) हँसे ; कुछ (ज़रा-सा) रोये । छककर (!) सुख-दुःख के घूँटों को (!) हम एक भाव से पिये चले !"

जब दीवाना बहकर पुनः जनता के सामने आया तो उसने साश्चर्य पूछा । लगातार 'हस्तियाँ' बदलते-बदलते मुमकिन है, उसे कहीं कूल-किनारा मिल गया हो ; वह बच गया हो । लेकिन यह ठीक नहीं । वजह, वह आँसू बनकर बहा था । आँसू जड़ पदार्थ थे, बहनेवाला चेतन । जड़ का विकार जड़ होता है, अतएव चेतन का बहना दीवानापन हुआ । यानी आँसू बनकर बहने के बाद फिर मूर्तिमान् होना असिद्ध है । इसलिए यह कल्पना निस्सार, किन्तु कवि की अद्भुत माया हुई । फिर दीवाना होकर भी, जो वह ज्ञानियों की तरह सकारण और ज्ञानमय उत्तर दे रहा है, तब असल चित्र बिगड़ा । यानी यहाँ भावना विषय-विरुद्ध हुई, और इस विरोध में ख़तरे की घंटी बजाकर भी कवि कला की फाँसी से अपने ध्येय के प्राण न बचा सका ।

बंद की पहली लड़ी में 'उसका' जग का सर्वनाम है । अतएव, ज्ञान के साथ पागल का लेन-देनवाला व्यापार—हस्ती, मस्ती, धूल उड़ाना, उल्लास और आँसू बनना, फिर आना, फिर जागा, कुछ लेना, कुछ देना—आदि सभी सिद्ध होकर भी असिद्ध हैं ; क्योंकि ये सब कृत्य पागल के हैं । और दुनिया में कहीं भी पागल को अपना-पराया कहकर लेन-देन करते नहीं देखा जाता । यदि इसे ('उसका' को) प्रेम-दीवाने का सार्वनामिक विशेषण मानें, तो, संभव है, पद-योजना से दान करने की कवि-लीला किसी हद तक सार्थक हो जाय ; लेकिन यह ठीक नहीं । वजह, दुनिया में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदमीयत का तक़ाज़ा बड़ी चीज़ है। अर्थात् जिसका चाव से कुछ लिया, बदले में उसे ही कुछ देना भी चाहिए। यहाँ 'उसका' यदि प्रेम-दीवाने का सार्वनामिक विशेषण है, तो निश्चय ही दीवाने ने उसी से कुछ लिया; लेकिन बदले में वह उसे नहीं, जग को देता है! यहाँ देने में दो अर्थ हैं। एक तो लेनेवाला कृतघ्न साबित होता है, दूसरे अक्षम। और इन दोनों ही अर्थों से साफ़ है कि वह दुनिया को कुछ नहीं दे सकता; क्योंकि दुनिया विशाल है। उसकी माँग भी विशाल। जो लेकर भी एक को ही कुछ नहीं दे सकता, वह समूची दुनिया को भला क्या देगा? यदि कहो दीवाना है, उसकी वृत्ति संचयशीला नहीं, तो दानशीला कैसे हुई? यदि दीवाने को संन्यासियों की राह उतार दें, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि संन्यासी किसी से कुछ लेते ही नहीं, जो कुछ लेते हैं, वह किसी को भार नहीं; फिर बदले में अखंड-ज्ञान और परोक्ष पुण्य का एक ऐसा चमत्कार दाता के लिए छोड़ जाते हैं कि जिसको प्राप्ति कठिन तप के विना उसे हो ही नहीं सकती। फिर यहाँ दुनिया को कुछ मिला, यदि यह मान लें, तो सिवा पागलपन के आख़िर इस कविता से और क्या मिला, जब कि दुनिया को पागलपन अभीष्ट नहीं। फिर दाता किसी का ऋणी नहीं होता। दान करने के लिए वह कभी लेन-देन का हिसाब लेकर नहीं बैठता। संचयी भी नहीं होता। किसी भी प्रकार यदि उसके पास कुछ है, तो याचक को वह उसी समय दे देगा, यदि इस दान में उसे रक़म क़र्ज़ लेनी पड़ी है, तो वह उसे बाहुबल से ही अदा करेगा—किसी छल-प्रपंच से नहीं। भारत के दानधर्म का यही विधान है। कवि की हैसियत से महाकवि रहीम का नाम ही यहाँ उदाहरण के लिए यथेष्ट है।

अतएव जब पूरी सचाई से कवि ही कहे दे रहा है कि उसने 'उसका' कुछ लिया है, तो सन्देह की ज़रूरत क्या? रही देने की, तो इसे तो विना ख़ास सुबूत के माना ही नहीं जा सकता; क्योंकि दुनिया ने कवि की अदालत में माँग की बाबत कोई दरख़्वास्त पेश नहीं की; यदि करती, तो, उसी दुनिया के एक सदस्य की हैसियत से इस जानकारी से आख़िर हम महरूम कैसे रहते? अतएव, 'कुछ दिये चला', यह सफ़ेद झूठ हुआ। यदि कहो, पागल है, इसलिए कहा; तो फिर ज्ञान बघारने का अर्थ? आख़िर यह स्वाभाविक गुत्थी कैसे सुलझे?

फिर तमाम बन्द व्याकरण की छीछालेदर के लिए जिस तरह खड्गहस्त है, उसे देखते तो अब हमें और अधिक विचार की फ़ुरसत नहीं, कह देना ही अच्छा; क्योंकि यह हिन्दी के एक प्रमुख युवक कवि की साधना का अब तक का प्रशंसा-मुखर परिचय है।

यहाँ उपान्त्य की लड़ी का 'छककर' एकदम ही चौपट है। घूँटों का पीना भयानक चित्र है। ख़ास कर तब जब दुःख के घूँटों के अलावा सुख में भी आँसुओं के ही घूँट और एक भाव से—न सस्ते, न महँगे—कवि को पीने पड़ते हैं। यदि अलग-अलग 'सुख-दुःख' को ही घूँट मान लें तो आँसू व्यर्थ और मज़ा यह कि एक भाव की संगति तो किसी हालत में भी नहीं बैठती! फिर कवि 'एक भाव से' कहता है, अतएव, सुख-दुःख का स्वभाव-सिद्ध अलगाव भी व्यर्थ होता है। अतएव, अलग-अलग स्थितियों में घूँटों का पीना संभव नहीं। लेकिन 'सुख' और 'दुःख' स्वभाव से ही दो भिन्न पदार्थ हैं। अतएव एकता संभव नहीं। यदि हँसते-हँसते आँसू आ जाते हैं, और उन्हें ही कवि पीने लगा, यह मानें, तो अघोरी-भाव आता है, जो विना जितेन्द्रिय हुए, संभव नहीं। आँसू रोने की तो सम्पत्ति ही हैं, लेकिन ऐसी स्थिति में भी किसी चेतन को आँसू पीते नहीं देखा जाता! अवश्य, ऐसा हो, तो पागलपन सिद्ध होगा; पर उसे तब सुख-दुःख का अलग-अलग ज्ञान कैसे होगा? अतएव, यह पागल के लिए भी लागू नहीं। फिर आँसुओं के घूँटों से छकना भी बेजड़ है। यदि सुख-दुःख से लक्ष्यार्थ लें, तो भी सिद्ध नहीं; यदि व्यंग्य का चिराग़ लेकर कवि-कल्पना के घने अंधकार में खोई सुई की तरह अर्थ ढूँढें, तो भी सिद्धि न होगी; क्योंकि यहाँ हर हालत में आँसू कार्य का कारण दुःख ही होगा। यानी सुख में भी दुःख ही आँसू फेंकेगा। यदि आनंदाश्रु की संगति बैठावें, तो शरीरी के अधीन यह एक विकार है। अर्थात् शरीरी के अभाव में आँसू संभव नहीं। इस तरह यहाँ दीवाने का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आँसू होना ही नहीं सिद्ध होता—यानी विकार भर होता है, अतएव कोई संगति नहीं। फिर ये आनंदाश्रु हैं नहीं। वजह, यहाँ कविता का विषय निराशा है, जो दुःख की परिचायिका है। अतएव सिद्ध हुआ कि कवि का सुख भी उसका तथाकथित दुःख है। यानी यहाँ अलग-अलग—सुख-दुःख दो नहीं, एक—दुःख ही हैं। कवि स्वेच्छा से इसी के घूँटों से छककर चल पड़ा है। यह भी ठीक नहीं। 'छकने' का अर्थ 'भर-पेट' है। (कवि को भी यही अभीष्ट है।) देखा जाता है, पेट भर जाने के बाद चलने की नहीं, आराम की सूझती है। अतएव, यह भी एक उलझी हुई स्वाभाविक गुत्थी हुई, जो कला के ध्येय को संकटापन्न कर रही है।

तीसरा बंद देखिए—

"हम भीख माँगनेवालों की दुनिया में स्वच्छन्द प्यार लुटाकर चले; हम उर पर एक निशानी-सी असफलता का भार ले चले; हम मान-रहित (और) अपमान-रहित (होकर) जी भर खुलकर खेल चुके; हम हँसते-हँसते (ख़ुशी से) आज यहाँ प्राणों की बाज़ी हार चले!"

दीवाना भीख माँगनेवालों की दुनिया में स्वच्छन्द प्यार लुटाकर चला है! ('दरिद्रान् भर कौन्तेय'—कहा भी है।) लेकिन यह स्वच्छन्द प्यार क्या बला है? प्यार तो दो दिलों के बीच का सौदा है। और; जब सौदा तै हो जाता है, तो देखा जाता है कि दोनों प्रेमी परस्पर एक दूसरे के अधीन हो जाते हैं। यदि कहो, निःस्वार्थ प्रेम है, यानी कवि प्यार लुटाता है, बदले में कुछ नहीं चाहता, तो दूसरे बंद से विरोध होता है—("जग को अपना कुछ दिये चले" आदि) फिर दीन-दुखियों को प्रेम लुटाने का अर्थ है 'दया' करना और यह वात्सल्य हुआ। दयालु को बदले में कुछ नहीं मिलता, ऐसा भी नहीं; क्योंकि दया दिखाने में एक अभूतपूर्व आनंद मिलता है और इसके आलम्बन दीन-दुखिया ही हैं। अतएव, निःस्वार्थ न हुआ। स्वार्थ भी बहुत बड़ा है, पुण्य की वृद्धि और तज्जन्य लौकिक एवं पारलौकिक भोग। अतएव, स्वार्थ है, पर यह पवित्र स्वार्थ हुआ। फिर ब्रह्म-प्रेम में भी अधीनता है। भले ही वह निर्गुण-सगुणोपासना हो। यथा—"प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा"; "हौं तो राम को गुलाम"; "अब तो नाच्यौ बहुत गोपाल"; "हरि बिन कौन साँकरे काको"; "मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई"; कार्पण्य-दोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्म-संमूढचेताः; यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्।" आदि। (अतएव, "कवि का विचार-केन्द्र वैराग्यमूलक प्रतीत होता है," इतिहास-मर्मज्ञ डी० लिट्० की यह राय एकदम ग़लत हुई।)

ऊपर संत-वाणियों एवं गीता-पंक्तियों के उद्धरण से सिद्ध है, प्रेम स्वच्छन्द नहीं। अतः यहाँ कवि की स्वच्छन्दता का अर्थ प्रसादजन्य उच्छृङ्खलता हुआ। ऐसी स्वच्छन्दता किसी भी सभ्य समाज के लिए श्रेयस्कर नहीं। न कोई मनीषी ऐसी अमंगल-कारिणी भावना का प्रचार ही अंगीकार कर सकता है। फिर देखिए, असफलता का भार कैसा? असफलता तो सफलता की कुंजी है; क्योंकि असफलता में बाधक कमज़ोरियों का सच्चा परिचय मिलता है। इसके बाद देखा जाता है कि थोड़ी चेष्टा साधना से सफलता हमेशा हाथ जोड़े ही खड़ी रहती है। अतएव, असफलता भार नहीं। हाँ, सफलता भार हो सकती है, लक्षणा से; क्योंकि इसमें ज़िम्मेदारी बढ़ जाती है, अतएव भार हुई। उदाहरण में यह काव्य ही लीजिए। मित्रों ने तारीफ़ की। कवि ने विश्वास किया। सच-झूठ की परख न हुई। नतीजा यह, सफलता-असफलता का फ़ैसला करने के पहले ही तड़ातड़ रायों का ताँता बाँधकर काव्य-सरिता पर एक पुल तैयार किया गया। पिपीलिकाएँ झमाझम पार होने लगीं; लेकिन ज्यों ही नर-केसरी का क़दम पड़ा कि "सो चलि गयो पताल तुरंता!" अर्थात् कुछ सिद्ध न हुआ। ऐसी सफलता ही भार है; क्योंकि यह सच्ची सफलता नहीं।

फिर जब मान-मोह नहीं, तब अपमान-मोह कैसा? दुनिया में कहीं मान, कहीं अपमान हुआ ही करता है। कहीं मान नहीं हुआ, इसी लिए सर्वत्र अपमान होगा, अथवा कहीं अपमान हुआ, इसी लिए सर्वत्र सम्मान होगा, ऐसा नहीं; फिर पागल से और मानापमान से मतलब? यदि है, तो देखा जाता है, कहीं भी उसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्मान नहीं। और खेल तो मानापमान-बोध के बिना संभव ही नहीं; क्योंकि यह क्रिया ही रजोगुण की है, और पराकाष्ठा में पहुँचते ही तमोगुणमयी हो जाती है। ऐसी हालत में मानापमान भूलकर तो खेल से अलग सिर्फ़ दर्शक बना जा सकता है, जी भर खेला नहीं। फिर खेल में प्राणों की बाज़ी हारने का मतलब? यदि कहो, प्रेम का खेल है, यानी "तरवार की धार पर धावनो है" है; अर्थात् इस खेल में प्राण ही देने पड़ते हैं, जैसा कि महात्मा कबीर ने भी कहा है—"शीश उतारै भुइँ धरै—" आदि; तो ठीक। लेकिन तब, 'स्वच्छन्द प्यार' और 'प्राणों की बाज़ी हार चला' में संगति क्या होगी; फिर प्रेमी के प्राण देने की संकल्प-क्रिया में एक अजीब शराफ़त है, और स्वच्छंदता में ठीक इसी का विरोधी भाव!

ख़ैर। घबराइए नहीं, मंज़िल तै हो आई है।

"हम भला-बुरा सब भूल चुके (हैं); सिर झुकाकर मुँह भी मोड़ चुके हैं। होठों तक अभिशाप (का कुत्सित संकल्प) लाकर (रह गये) (क्योंकि—) आँखों से वरदान (टपक) पड़ा! अब (न) (कोई) अपना है, (न) पराया। (जो) रुकनेवाले हैं, (यानी अब ऊबकर 'मस्ती का आलम' भी कवि के साथ से अलग हो गया है!) (वे) आबाद रहें। हम स्वयं बँधे थे, (अब) स्वयं (ही) बंधन तोड़ (कर) चले।"

अच्छा है। जाइए। हम भी रोकना नहीं चाहते। लेकिन चलते-चलाते कुछ बतलाते तो जाइए। यह क्या! इतने दिनों की दुनिया की मैत्री को महज़ हस्ती-मस्ती के झगड़े में धूल उड़ाकर ही साफ़ कर देंगे? वाह! अच्छे मिले! बैठिए, ज़रा मीठी-मीठी बातें करें। फिर अपनी-अपनी राह लें। दुनिया के साथ आख़िर दीवानों का इससे अधिक लेन-देन ही क्या है? फिर दीवाना भी ऐसा कि भला-बुरा भी भूल गया है! (जो कि यह सरासर झूठ है।) यदि सच है, तो फिर सिर झुकाने की ज़रूरत? भला-बुरा भूलने के बाद तो झुकना भी तन जाता है! यदि कहो शर्म खा गया है, तो यह मर्दों का ढंग नहीं और मुँह मोड़ना तो निहायत भद्दी बात है। होठों पर अभिशाप लाना बुरा नहीं; क्योंकि दुनिया जानती है कि दीवाना महर्षि दुर्वासा, राजर्षि विश्वामित्र अथवा देवर्षि नारद नहीं। यानी उसके अभिशाप से कुछ आना-जाना नहीं। वरदान की बात भी फ़िज़ूल है; क्योंकि वर देने की क्षमता के लिए एकान्त में कड़ी तपस्या करनी पड़ती है। यह कोई हँसी-खेल नहीं। फिर बंधनों में दीवाना स्वेच्छा से नहीं बँधा; यह तो कर्म-सृष्ट हैं। और कर्म-बंधन ज्ञान-वैराग्य से ही छूटते हैं (ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन—गीता।) अतएव, कर्मों को जब तक ज्ञानाग्नि में भस्म न किया जाय, बंधन न छूटेंगे। इसके लिए दीर्घ और पवित्र साधना की ही ज़रूरत होती है। अर्थात् कबीर गाने से कहीं मतलब नहीं हल होता।

प्रेम-संगीत का यही जमा-ख़र्च हुआ।*

---

* 'वर्तमान काव्य-साहित्य' नामक अप्रकाशित ग्रंथ के एक अध्याय का एक अंश।—ले०

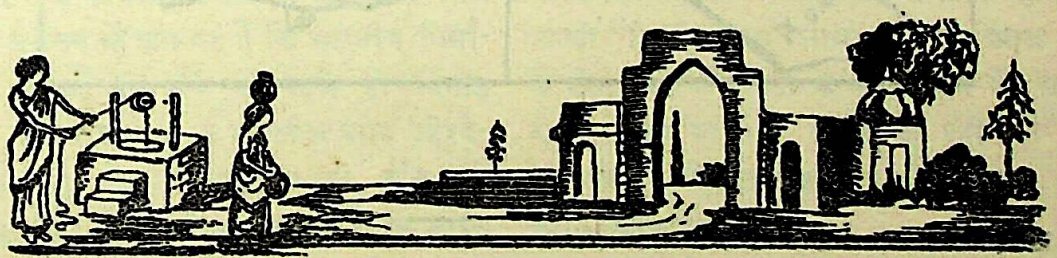

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निरक्षरता की दशा में

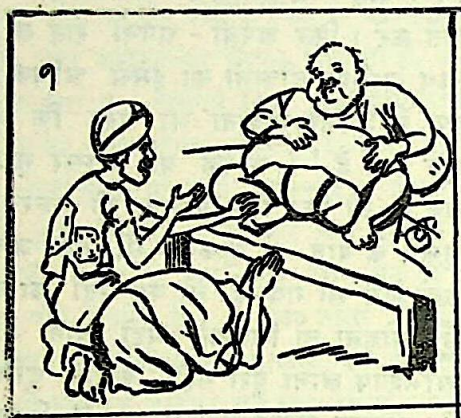

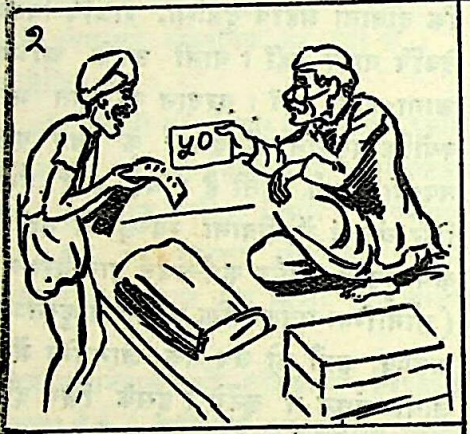

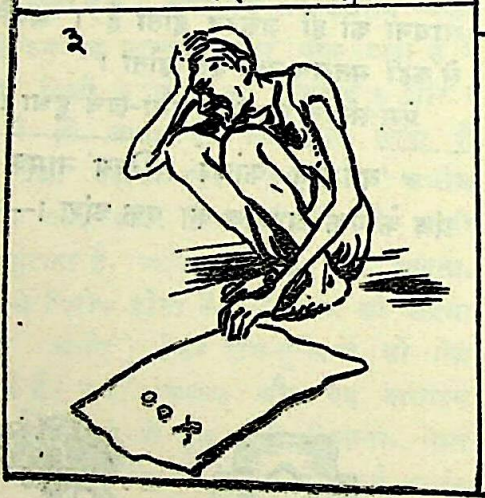

साक्षरता-प्रचार की दशा में

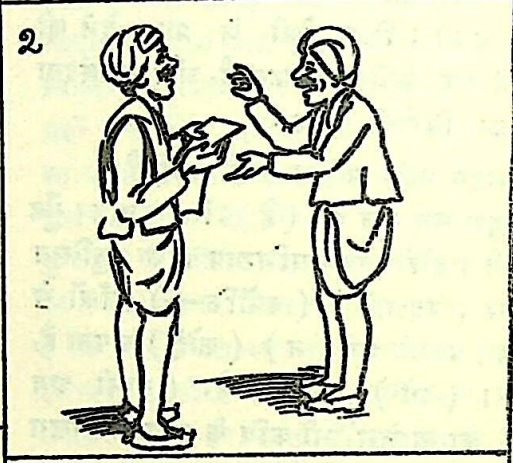

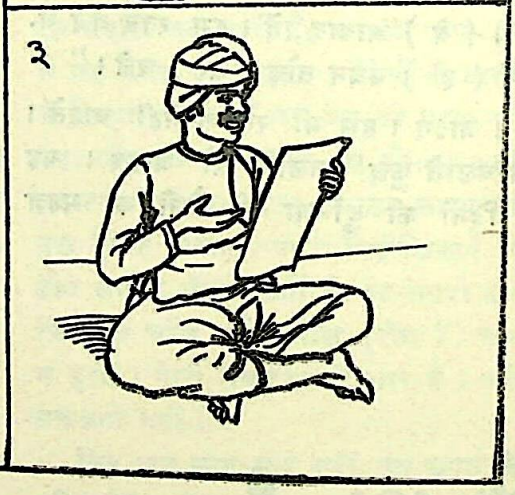

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कार्टून-फ़िल्मों का महत्त्व

श्री बालगोविन्दप्रसाद श्रीवास्तव

चित्रमय जगत् में कार्टून-फ़िल्मों का आविष्कार रहस्यमय तथा आश्चर्यजनक है। इन फ़िल्मों में सजीव मूर्त्तियाँ काम नहीं करतीं। इन फ़िल्मों में चित्रकार की कारीगरी का अधिक महत्त्व है। भारतीय निर्माताओं में इस ओर प्रभात सिनेटोन का ध्यान सर्वप्रथम आकर्षित हुआ था, और एक कार्टून-फ़िल्म का उन्होंने निर्माण भी किया था; किन्तु जनता की ओर से उन्हें कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। फिर और कई निर्माताओं ने इस ओर ध्यान दिया, और कुछ ने तो दो-एक कार्टून-फ़िल्मों का निर्माण भी किया; किन्तु उन्हें आशातीत सफलता नहीं मिली।

विदेशों में दर्शक तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—वृद्ध, बालक, नवयुवक तथा नवयुवतियाँ। कार्टून-फ़िल्मों से सभी श्रेणियों के दर्शकों का मनोरंजन होता है।

हमारे भारतीय दर्शकों की रुचि का अन्दाज़ ठीक-ठीक नहीं मिलता। यहाँ के अधिकांश दर्शक स्टंट फ़िल्मों को देखना पसन्द करते हैं। निर्माताओं को उनकी रुचि की फ़िल्मों को देने से अधिक लाभ होता है। वास्तव में बात यह है कि भारतीय निर्माताओं ने दर्शकों की रुचि को पहले ही बिगाड़ दिया है। अपने आरम्भ के अश्लील और उद्देश्यहीन चित्रों का प्रदर्शन करके उनकी रुचि को ख़राब कर दिया है। यही एक कारण है कि भारत की शिक्षित जनता भारतीय सिनेमा से सर्वथा उदासीन है।

यहाँ के अधिकांश दर्शक अपढ़ और निम्नश्रेणी के होते हैं। वे चाहते हैं—मारकाट, भागदौड़, सुरीले गाने, ख़ूबसूरत चेहरे और तिरछी चितवन का कटाक्ष। फिर वे कार्टून के उन निर्जीव चित्रों को कब पसन्द करने लगे?

अब आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय फ़िल्म-निर्मातागण कार्टून-फ़िल्मों की ओर दर्शकों का ध्यान आकर्षित करें, और सुन्दर कार्टून-फ़िल्मों का निर्माण करें।

कार्टून-फ़िल्मों के कथानक छोटे, किन्तु बड़े मनोरंजक होते हैं। कहानी के योग्य इन फ़िल्मों की दृश्यावलि (Scenario) तैयार की जाती है। कार्टून-फ़िल्म का एक रील ७०० से ८०० फ़ीट लम्बाई का होता है।

वास्तव में कार्टून-फ़िल्म बनाने के लिए चित्रकार और म्यूज़िक डाइरेक्टर की सहयोगिता तथा केमरामैन के अनुभवी होने की अत्यावश्यकता है।

अमेरिकन कार्टून-फ़िल्में बनानेवालों में मि० वाल्ट डिसने का नाम सदा गर्व से लिया जाता है। उनकी "मिकी माउस" नामी सीरियल आज संसार के कोने-कोने में जनता के मनोरञ्जन के साथ ही वाल्ट डिसने का नाम अमर कर रही है। आशा है, भारतीय निर्मातागण शीघ्र ही इस ओर अपना ध्यान आकर्षित करेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुलसी का आरोग्य में उपयोग

आयुर्वेदाचार्य पंडित वासुदेव मेइता शास्त्री

भारतवर्ष वनस्पतियों का भांडार है। प्रकृति ने यहाँ अनेक आरोग्यवर्धक चमत्कारी दिव्य वनस्पतियाँ उत्पन्न की हैं। अनेक वृक्ष, लता, तुप प्रतिवर्ष पैदा होते हैं। पर उनका उपयोग अनभिज्ञता के कारण नहीं किया जाता। वे फिर प्रकृति में मिल जाते हैं। भारतवर्ष का दुर्भाग्य है कि ऐसी दिव्य चमत्कारी प्राणरक्षक विना ख़र्च के प्राप्त वनस्पतियों का हम पूर्ण उपयोग नहीं करते, उन पर श्रद्धा नहीं रखते। विदेशी लोग उन्हें पानी के मोल यहाँ से विदेश पहुँचा देते हैं; और वहाँ से वही दवा के रूप में—तड़क-भड़कदार शीशियों में यहाँ आती हैं। उन्हें हम ख़रीदते और उनकी प्रशंसा करते हैं।

इस लेख में हम तुलसी की उपयोगिता पर प्रकाश डालेंगे। तुलसी भारतवर्ष का सर्वप्रसिद्ध धार्मिक पूज्य वृक्ष माना गया है। प्रत्येक धार्मिक पुरुष के घर में इसका वृक्ष प्राप्त हो सकता है, परन्तु नवीन सभ्यता के साथ धार्मिक श्रद्धा की शिथिलता के कारण इसका आदर भी कम हो रहा है। अनेक नव्य सभ्यताभिमानी जन इसको हिंदुओं की अंधश्रद्धा कहकर उपहास करते हैं। परन्तु उनके मोह-पटल को दूर करने के लि आज विज्ञान से भी सिद्ध हो चुका है कि तुलसी आरोग्य-वर्धक, रोग-नाशक विशिष्ट शक्ति मौजूद है। हमारे प्राचीन महर्षियों ने दूरदर्शिता के साथ इस उद्देश्य से तुलसी को धार्मिक वृक्ष माना है। घर-आ में इसे लगाने का उपदेश दिया है। यहाँ तक इसक महत्त्व दिया है कि नित्य भगवान् को तुलसीदल चढ़ाना चरणामृत के साथ सेवन करना, तुलसी का पूजन प्रदक्षिणा करना शुभ-फलदायक माना है। यह इसी लिए कि नित्य तुलसी का संपर्क रहे। इसी कारण नगरों की अपेक्षा ग्रामों में, गृहों की अपेक्षा देव-मंदिरों अब भी तुलसी के वृक्ष अधिक प्राप्त हो सकते हैं। आरोग्य की दृष्टि से तुलसी में अपूर्व रोगनाशक, आरोग्यवर्धक वायु-शोधन का गुण है। हर समय तुलसी से प्राण वायु (आक्सिजन) निकलकर आसपास के दूषित वायु को शोधित कर देती है, अतः आरोग्य की दृष्टि से तुलसी का वृक्ष घर में रखना अत्यन्त आवश्यक है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुलसी का सामान्य परिचय

तुलसी से भारत के आबालवृद्ध सभी परिचित हैं। संभवतः अब नव्य सभ्य समाज अपरिचित हो। तुलसी का वृक्ष हाथ-डेढ़ हाथ ऊँचा होता है। यह सभी ऋतुओं में रहता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—श्वेत और कृष्ण। श्वेत रामा तुलसी तथा कृष्ण कृष्णा तुलसी के नाम से प्रसिद्ध है। श्वेत की अपेक्षा कृष्णा गुण की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी गई है। इसमें मंजरी आती है और उसमें बीज रहते हैं। सूखने पर बीज बिखर जाते हैं। इन बीजों से बराबर नये वृक्ष उगा करते हैं। गमले में लगाने से यह बारहों महीने सुरक्षित रहती है। इन गमलों को रहने के मुख्य स्थान पर रख देना चाहिए। इस प्रकार रखने से दूषित वायु घर में प्रवेश नहीं कर पाती और घर का स्वास्थ्य उत्तम आरोग्यपूर्ण रहता है।

तुलसी का शास्त्रीय गुण

तुलसी—कटु, उष्ण, तीक्ष्ण, सुगन्ध, तुरी, रुचिकर, हृद्य, अग्निदीपक, पित्तकर और लघु है। दूषित वायु, कफ, सूजन, कृमि, वमन, श्वास, कास, हिचकी, ज्वर, विषम ज्वर, दुर्गन्ध, कुष्ठ, पार्श्वशूल, विषदोष, मूत्रकृच्छ्र, रक्तदोष, अग्निमान्द्य, मलावरोध [क़ब्ज़], संसर्गज रोग, शूल, भूतबाधा, सुस्ती आदि को दूर करती है। प्लेग, हैज़ा आदि सांसर्गिक रोग इसके रहने से सहसा आक्रमण नहीं कर पाते।

स्वदेशी आरोग्यप्रद चाय

१. तुलसी का दैनिक उपयोग—१ तोला तुलसी के गीले या सूखे पत्ते को लेकर आध सेर पानी डालकर उबालना चाहिए। थोड़ी देर बाद उसमें इतने ही परिमाण में दूध डालकर उसमें तीन-चार इलायची पीसकर डाल दें। फिर थोड़ी-सी शक्कर डालकर नीचे उतारकर छान लें। बस, उत्तम भारतीय चाय बन गई। इस चाय का एक प्याला पीने से आलस्य, सुस्ती, अरुचि, दाह, वातविकार, मंदाग्नि, क़ब्ज़ आदि विकार दूर होते हैं, और शरीर में स्फूर्ति, उत्साह, रुचि, भूख तथा आरोग्य बढ़ता है। यह तुलसी की चाय निस्सत्व, रक्तशोषक, धातु-दौर्बल्यकारक, क़ब्ज़कारक, द्रव्यनाशक चाय से कहीं अधिक श्रेष्ठ, सरल, सस्ती और आरोग्यकारक है। अतः उस चाय की अपेक्षा इसी का नित्य उपयोग करना चाहिए।

तुलसी का औषधि-प्रयोग

२. विषम ज्वर पर—काली तुलसी के रस में १ तोला प्रमाण में आधा माशा काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से विषम ज्वर जाता है।

३. वायुनाशक चूर्ण—काली तुलसी ६ भाग, नेगड़ बीज ४ भाग, भाँगरा ६ भाग, वायुवरणा १ भाग। इन सबका चूर्ण बनाकर उसमें से ३ माशा नित्य शहद के साथ चाटने से वायुदोष दूर होता है।

४. रक्तातिसार पर—तुलसी के बीज को रात्रि को भिगो दें। प्रातःकाल छानकर मिसरी मिलाकर पीने से ख़ून के दस्त बन्द होते हैं।

५. बालक के वमन पर—काला अगर तुलसी के रस में शहद मिलाकर पिलाना चाहिए। वमन शान्त होता है।

६. बालक के दाँत-उलटी पर—काला अगर, श्वेत तुलसी के बीज गाय के दूध में पीसकर पिलाना चाहिए।

७. दाद पर—शुद्ध मिट्टी में कृष्ण तुलसी के पत्ते मिलाकर पीसकर दाद पर लगाना चाहिए।

८. वृश्चिक-दंश पर—बिच्छू के काटे स्थान पर तुलसी का रस चुपड़ना चाहिए।

९. बलवान् वातरोग पर—तुलसी का रस, अदरख का रस, दोनों मिलाकर शहद डालकर पीना चाहिए। अथवा तुलसी के रस में काली मिर्च का चूर्ण मिलाकर शहद के साथ चाटने से बलवान् वायुरोग दूर होता है।

१०. नेत्र के तिमिर रोग पर—काली तुलसी के पत्तों का रस १४ दिन तक २-२ बूँद रोज़ डालने से तिमिर (रतौंधी) दूर होता है।

११. मन्थरज्वर पर—काली तुलसी का रस, बन-तुलसी का रस, पुदीना का रस, तीन अथवा सात दिन तक पिलाना चाहिए।

१२. शीतपित्त पर—तुलसी का स्वरस शरीर में चुपड़ने से शीतपित्त (पित्ती उठना) दूर होता है।

१३. दाद पर—तुलसी का स्वरस, गोघृत, चूना, काँसे के बरतन में पीसकर दिन में दो बार दाद पर लगाना चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१४. शीतला पर—तुलसी का स्वरस पिलाना चाहिए।

१५. चूहे के विष पर—तुलसी के रस में अफ़ीम मिलाकर चूहे के काटे स्थान पर मलना चाहिए।

१६. आगन्तुक ज्वर पर—तुलसी के पत्ते, सोंठ तथा शक्कर का काढ़ा बनाकर पीना चाहिए। इससे चोट, भय, शोक आदि से उत्पन्न ज्वर शांत होता है।

१७. कर्णपाक पर—काली तुलसी तथा भाँगरे का रस मिलाकर कान में डालना चाहिए।

१८. रक्तस्राव पर—तुलसी के पत्तों का लेप करना चाहिए।

१९. त्रिदोषज वमन पर—तुलसी के रस में इलायची का चूर्ण मिलाकर खाना चाहिए।

२०. वातशोथ पर—तुलसी-रस में काली मिर्च तथा घृत मिलाकर पिलाना चाहिए।

उपर्युक्त प्रयोग शास्त्रोक्त अनुभवसिद्ध हैं। पाठक समयानुसार उपयोग कर योग्य लाभ प्राप्त करेंगे।

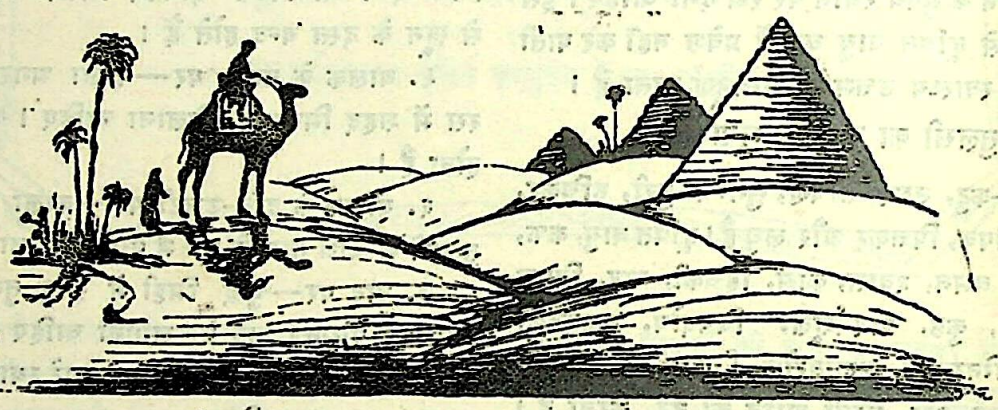

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें ।) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)

वैद्यराज—पं० महावीर पाठक, नं० ५, दरभंगा

C. B. 15.

खिज़ाब छोड़ो

इस तेल से पका बाल जड़ से काला पैदा होकर यदि स्थायी-काला न रहे तो दूना दाम वापस की शर्त। इसकी सत्यता सैकड़ों प्रशंसा-पत्रों से प्रमाणित हो चुकी है। बाल कम पका है तो ५), चौथाई से अधिक पका है तो ७) रु० का तेल मँगा लें।

पता—हजरा एण्ड को०, पो० बिहार नरसरी (दरभंगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नीनी

आ० 'पहाड़ी'

"सुरेश बाबू आ गये।" यह नौकरानी के मुँह से सुन स्वामी के सिरहाने से उठकर नीनी बाहर चली गई। दरवाज़े पर वह ठिठकी, देखा कि अपना हैण्डबैग एक ओर मेज़ पर धरे, हाथ में स्टॉथस्कोप लिये आरामकुर्सी पर सुरेश बैठा हुआ है। वह ज़रा उलझी, अटकी, फिर आगे बढ़कर बोली, "आप आ गये।'

सुरेश ने सावधानी से 'हाँ' कहा, कुछ देर चुप रह आख़िर बोला, "पहले तो विश्वास ही न हुआ कि पत्र आपका है। आपकी पाँच साल पुरानी लिखावट याद कर लेने में भी काफ़ी वक़्त लग गया था, पहचान गया और आना पड़ा।"

दस साल पुरानी 'आप' पाकर नीनी स्तब्ध रह गई। पाँच साल पुराने 'तुम' का कहीं भी पता नहीं था। कुछ सोचता सुरेश बोला, "मिस्टर माथुर कहाँ हैं?"

नीनी चैतन्य हुई। कहा, "अन्दर हैं, चलो।"

सुरेश ने स्टॉथस्कोप उठाया और नीनी के साथ हो लिया। कमरे में जाकर देखा, योगेश बाबू पलँग पर लेटे हुए हैं। उनको बेकार उठने की चेष्टा करते देख टोका, "आप लेटे रहिए, अब आपकी तबियत कैसी है?"

नीनी दरवाज़े की ओट में खड़ी थी। सुरेश अपने डॉक्टरी कर्तव्य के साथ सब कुछ पूछ रहा था। वह समझ गया कि क़स्बे के डाक्टरों की वजह से रोग बढ़ गया है।

नौकर आकर बोला, "चाय तैयार है।"

नीनी दरवाज़े से आगे बढ़ी, पास आकर बोली, "रास्ता बहुत ख़राब है, थक गये होंगे। पाँच मील तो बैलगाड़ी का ही सफ़र है, कुछ नाश्ता कर लो।"

बाथरूम से निपट, सुरेश चाय पीने लग गया। नीनी चुपचाप एक ओर खड़ी थी। नीनी ने सुरेश और डाक्टर सुरेश में भारी अन्तर पाया। ज़रूरत से ज़्यादा बातें करना जैसे कि वह भूल गया था। सुरेश चाय पी चुका था कि नीनी ने 'प्रिसक्रिपशन' की फ़ाइल और टेम्परेचर का चार्ट लाकर दिया। सावधानी से सब कुछ देखकर सुरेश बोला, "डर की कोई भी बात नहीं है। आप तो बेकार घबरा गई थीं।"

'आप' फिर नीनी को डस गया। वह कुछ नहीं बोली, बिलकुल चुप रह गई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"किस डॉक्टर का इलाज है ?"

"बोस का।"

कुछ सोचकर सुरेश बोला, "कोई अच्छा दवाख़ाना भी है ?"

"काम-चलाऊ एक दूकान है।"

एक काग़ज़ पर कुछ लिख वह बोला, "यह अभी मँगवा लीजिए। कुछ दवा बाहर से मँगवाये लेता हूँ।"

नीनी बाहर चली गई। ज़रा सुरेश ने नीनी पर सोचा। सुलझी और गम्भीर वह लगी। व्यवहार के भीतर है। ठीक और सही बात में मतलब नहीं गिनती है। पिछले पाँच साल तक जिससे कोई सम्बन्ध नहीं रहा, पति की बीमारी की वजह से उसे बुलाने को वह मजबूर हो गई थी।

"भाभी! भाभी!!" पुकारती एक युवती कमरे में आई और डरकर भाग गई। सुरेश चुपचाप फ़ाइल देखने लगा।

नीनी कमरे में आकर बोली, "घूमने जाओगे, यहाँ तो पूरा देहात है, मन शायद ही लगे, लाचारी है, प्रभा को तो नहीं जानते हो ?"

"प्रभा ?"

"ठीक, लो बुलाये लेती हूँ। प्रभा! प्रभा!!"

वही युवती भीतर आई। नीनी बोली, "मेरी नन्द है। अकेले जी नहीं लगा, इसे बुला लिया। शहर का जीव देहात से घबराता है। वही इसका भी हाल है।"

दो सप्ताह गुज़रे। योगेश बाबू की हालत बिगड़ती जा रही थी। नीनी उनमनी और घबराई रहती थी। प्रभा चन्द्र दिनों में ही सुरेश को पहचान गई। भाई की बीमारी की वजह से उसे अपने को सुरेश के आगे परदे से ढकना उचित नहीं लगा। बड़ी-बड़ी रात तक वह और सुरेश रोग और रोगी की व्यवस्था पर विचार करते रहते थे। अपनी अस्तव्यस्तता के आगे नीनी को किसी का भी ख़याल नहीं था। स्वामी के आगे वह दुनिया को भूल चुकी थी। प्रभा के आगे ढेर से सवाल रहते थे। डॉक्टर उठा या नहीं, आज देर क्यों हुई, चाय ठंडी तो नहीं है, साँझ को खाना कम क्यों खाया है! साथ ही ज़बरदस्ती वह साँझ को उसे घूमने भी साथ ले जाती थी। बस्ती के बाहर तीन-चार बँगलों की उनकी कॉलोनी थी। पास ही रिसर्च-इन्स्टीट्यूट की बड़ी इमारत थी। इधर-उधर बड़े-बड़े हरे-हरे फैले हुए खेत थे।

सुरेश को मरीज़ के बाद प्रभा की बातों में ख़ूब आनन्द आता था। रोगी के साथ जो सम्बन्ध था, उसी में वह व्यस्त रहता, कई-कई बार टेम्परेचर और पल्स देखता, दवा के नुस्ख़े बदलता। थक जब जाता, प्रभा आती थी। कई बार वह प्रभा को ग़लतियों पर झिड़क भी दिया करता था। रोज़ ही प्रभा अपना सारा भार निभाती। अपनी क़समें दे-देकर रोग का सही हाल पूछा करती थी।

तीसरा सप्ताह कटने को था कि एक दिन सुरेश ने गोल कमरे में प्रभा और नीनी को बुलाकर कहा, "अब कोई डर नहीं है। मुझे जाने की इजाज़त मिल जानी चाहिए।"

प्रभा मुरझा गई। नीनी ने कुछ दिन और रुक जाने को कहा। सुरेश कुछ कह नहीं सका।

एक दिन सुबह को सुरेश अकेले ही बाहर घूमने को निकल गया था। सुरेश पर प्रभा और नीनी बातें कर रही थीं। प्रभा बोली, "भाभी, डॉक्टर अजीब आदमी है। एक लड़की से उसने प्रेम किया था....."

"प्रभा ?"

"सच बात है।"

नीनी दवा देने के बहाने बाहर चली गई।

उस रात्रि सब सोये थे, दो का घण्टा बजा। नीनी सुरेश के कमरे का दरवाज़ा खोल भीतर आ बोली, "डॉक्टर बाबू!"

आँखें मलता सुरेश उठकर बोला, "क्या है ?"

"प्रभा से अपनी सारी बातें कहने का आपको क्या हक़ था।"

"नीनी!"

अपना नाम पाकर नीनी का सारा ग़ुस्सा पिघल गया। "तुमने वह पत्र क्यों लिखा था। इतना लिखना। अपने मरीज़ों को छोड़कर आना पड़ा, इस तरह घबरा जाना अनुचित है। गृहस्थी के भीतर तो यह हमेशा ही लगा रहता है।"

"ओ भाभी!" पुकारती प्रभा कमरे में दाख़िल हुई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आकर बोली, "भैया की तबियत फिर ख़राब हो गई है।"

सुरेश ने चुपचाप पाँव में जूता डाला और वहाँ पहुँचे। योगेश बाबू अनर्गल बक रहे थे। टेम्परेचर भी बढ़ गया था। सुरेश ने 'इन्जक्शन' दिया, अब कहा, "डर की कोई बात नहीं है। बेकार दिन को तुम लोग ताश खेलते रहे हो, आराम चाहिए।"

सुरेश को फिर नींद बड़ी देर में आई। सुबह उसकी नींद टूटी, देखा कि नौकरानी चाय लेकर आई थी। प्रभा आज नहीं आई थी। उसने पूछा, "प्रभा कहाँ है?"

"बीबी?"

"हाँ।"

"वह तो तड़के घूमने चली गई हैं।"

उसे चाय पीने का उत्साह नहीं रहा। चुपचाप कुछ सोच रहा था कि नीनी आकर बोली, "चाय ठंडी हो रही है।"

चाय पीता सुरेश बोला, "प्रभा की नाख़ुशी पर सोच रहा था।"

"वह कहाँ चली गई?"

"अकेले घूमने।"

"अब मुझे जाना है।"

"हमें भी यह देहात अच्छा नहीं लगता, लेकिन क्या करें?"

"ठीक ही है।"

"कमाई का क्या हाल है?"

"पैसा मिल जाता है।"

"कब तक अकेले ही रहने का इरादा है?"

"नीनी!"

"ठीक, मुझे पूछने का कोई अधिकार नहीं है, न।"

"नीनी।"

"वह हक़ माँगे मिल भी तो नहीं सकता।"

"फिर तुमने मुझे ही क्यों बुलाया था? इतने डॉक्टर दुनिया में हैं।"

"मेरा अपना विश्वास था कि तुम आओगे। हमारी भले ही लड़ाई हुई थी, मन में मैल जमा करना नहीं सीखे थे।"

"यह सब मैं व्यवहार नहीं मानता।"

"तब एक दिन बहती गंगा में कूदकर मुझे क्यों बचाया था।"

"कर्तव्य था वह। अज्ञेय सबकी रक्षा सीखा था।"

"और आज।"

"मौत को भी देखता हूँ, मरीज़ को भी। स्वार्थ को पहचानता हूँ और....."

"क्या डॉक्टर?"

"एक दिन चाहना उठी थी कि तुम्हारे स्वामी की ज़िम्मेदारी लेना ग़लत बात है। एक छोटे इन्जक्शन से उनको निपटा सकता था। तब क्या होता?"

"डॉक्टर।" दोनों की चार आँखें हुईं। नीनी सिहर उठी। मन्थर गति से बाहर चली गई!

नौकर ने आकर एक लिफ़ाफ़ा दिया। सुरेश ने पढ़ा—"ग़ैरज़िम्मेदार तुम हो। आदमी की कमज़ोरी के साथ अपने कर्तव्य को तुम भूल जाते हो। तुम्हारा विश्वास मन से उठ गया। ख़याल ग़लत निकला, तुम भी सिर्फ़ पुरुष हो।—प्रभा"

दोपहर को नीनी ने प्रभा से पूछा, "तू डॉक्टर से प्रेम करती है?"

"झूठ है भाभी।"

"झूठ।"

"भाभी!"

"प्रभा।"

"झूठ है, झूठ है!"

"आज सुबह डॉक्टर ने चाय नहीं पी। तेरा इन्तज़ार करता रहा।"

"तब तुम जाकर क्यों नहीं पिला आईं भाभी।"

"प्रभा।"

"भाभी क्या तुम अपना कर्तव्य भूल गईं? एक दिन तुमने ज़रा अव्यवहार पर इसी डॉक्टर को धमकी दी थी। उसको अपने घर में बुलाने का बहाना पाकर तुम सब कुछ भूल गईं। असमर्थ तुम हो।" कहकर प्रभा चुपके बाहर खिसक गई।

संध्या को प्रभा की एक चिट सुरेश को मिली। लिखा था—"रात को एक बजे बड़े शहतूत के पेड़ के पास मिलना। एक ज़रूरी बात कहनी है।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खा-पीकर सब लोग बैठे थे। प्रभा बोली—"भैया, मैं तो कल जाने की सोच रही हूँ।"

"देहात से ऊब गईं?" योगेश बाबू बोले।

"अपनी किताबें लाना भूल गई हूँ।"

"हाथ के हाथ तो इन्तज़ाम हो नहीं सकेगा?"

रात्रि को अपने कमरे में सुरेश बैठा हुआ था। नीनी ने आकर सुरेश को सौ-सौ के चार नोट देते हुए कहा—"उनके कहने से देने आई हूँ।"

"नीनी, मैं पेशेवाला डॉक्टर बनकर नहीं आया था।"

"तुम अपनी बात के पूरे निकले। पाँच साल में एक बार भी नहीं आये। ख़त भी नहीं दिया।"

"वक़्त कहाँ था। फिर डर था कि कहीं तुम!"

"डॉक्टर, लाचार न करो।"

"समझने में तुमने ग़लती की।"

"नहीं, और यह तो तुम भी मानोगे कि तुम्हारी ज़्यादती थी। मेरी व्यक्तिगत बातों को तुम क्यों जान लेना चाहते थे? क्यों तुमने वह लम्बी चिट्ठी लिखी थी?"

"लेकिन तुम्हारी धमकी।"

"ठीक वह बात थी।"

"नीनी।"

"हाँ, पिताजी यदि 'पिस्टल' घर छोड़ जाते, मैं तुम्हारा ख़ून कर डालती।"

बड़ी रात गुज़र चुकी थी। नीनी चली गई। सुरेश ने ओवरकोट पहन लिया और बाहर निकला ही कि देखा, प्रभा तेज़ी से भीतर चली गई। उसने पुकारा—"प्रभा!"

प्रभा बढ़कर चली ही गई। वह अवाक् खड़ा ही रह गया।

दूसरे दिन सुबह उसकी नींद टूटी, देखा कि प्रभा खड़ी थी। वह अचकचाकर बोला—"प्रभा।"

"डॉक्टर बाबू, माफ़ी माँगने आई हूँ।"

नीनी कमरे में आई, प्रभा बाहर चली गई। नीनी बोली—"कल शाम को जाओगे?"

"हाँ।"

"फिर कब आओगे?"

"देखो।"

"इन्तज़ाम करवाये देती हूँ।" कह नीनी चली गई।

अपने कमरे में आकर नीनी ने देखा कि प्रभा की चिट्ठी उसके बिस्तर में फेंककर भाग गई है। उसे खोलकर पढ़ा, "भाभी, मैं डॉक्टर को प्यार करती हूँ। कल रात इरादा किया था कि उसे पिस्टल से मार डालूँगी, किन्तु असमर्थ रही।"

बाहर आकर नीनी ने पुकारा—"प्रभा।"

देखा प्रभा गुमसुम खड़ी थी। वह बोली—"क्या है प्रभा?"

प्रभा की आँखें लाल थीं।

"तू बीमार है।" कह नीनी ने प्रभा का हाथ अपने हाथ में लिया। देखा, उसे भारी बुख़ार था। सुरेश आया, देखकर बोला—"निमोनिया हो गया है।"

प्रभा बुख़ार में बक रही थी, "भाभी तुम पापिन हो। स्वामी को भूल गईं....."

प्रभा सो गई थी। नीनी अपने कमरे में आई, एक चिट्ठी लिखी और सुरेश के हैण्डबैग में रख आई।

आधी रात में पिस्टल की आवाज़ सुनकर सुरेश उठा, आकर देखा, नीनी मरी पड़ी थी।

प्रभा आकर बोली—"डॉक्टर, मेरी भाभी को बचा लो।"

"वह मर गई है।" सिर झुकाये सुरेश बोला।

"भाभी मर गई।" प्रभा बेहोश हो गई थी।

कमरे में आकर सुरेश ने हैण्डबैग खोला। चिट्ठी पढ़ी—

"सुरेश,

तुमको, पति को, प्रभा को धोखा देने के बाद एक दिन मैंने अपने को भी धोखा दे दिया।

तेरी ही"

सुरेश ने चुपचाप अपना हैण्डबैग उठाया। स्टॉथस्कोप लिया और बाहर अन्धकार में रास्ता टटोलता बढ़ गया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

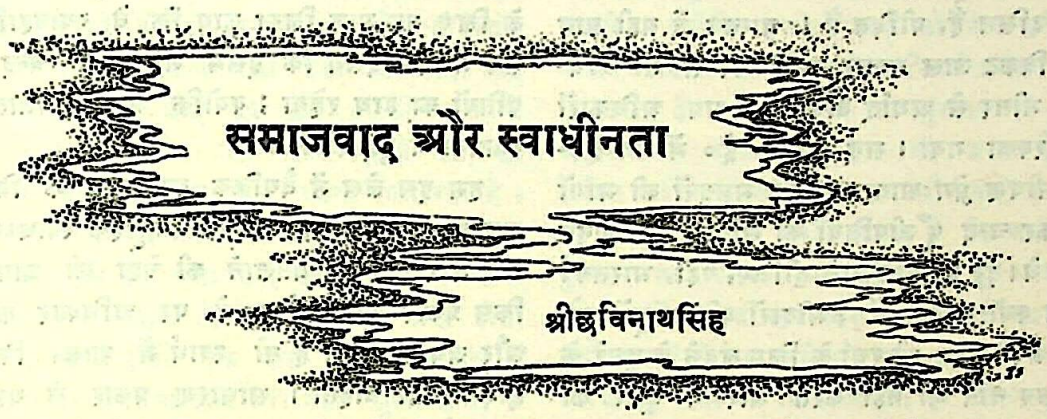

समाजवाद और स्वाधीनता

श्रीछविनाथसिंह

योरप ने अभी कुछ दिन पहले प्रजातन्त्र का जो एक हौवा खड़ा किया था, उसकी पोल अब इन दिनों धीरे-धीरे मालूम होने लगी है। वास्तविक रूप में वहाँ की साधारण प्रजा किस हद तक अपना अधिकार देश के शासन-सम्बन्धी कार्यों में रखती थी या रखती है, यह बात तो उसी समय भली भाँति मालूम हो सकती है, जिनको यह अनुभव हो कि किस प्रकार दलित वर्ग की माँगें ऐसे देशों में निष्ठुरता के साथ ठुकरा दी जाती हैं और क़ानून की माया में चन्द पूँजीपतियों की अभिलाषाएँ पूरी की जाती हैं। इन देशों में सबके लिए बालिग़ मताधिकार होते हुए भी यह हम नहीं मान सकते कि शासन में सर्वसाधारण का भी हाथ रहता होगा; क्योंकि चुनाव के वर्तमान पहलू से यह आशा नहीं की जाती कि इस संघर्ष में किसी ग़रीब की भी कुछ चलती होगी। फल यह होता है कि चन्द पूँजीपति ही इन चुनावों से निर्वाचित होकर पार्लियामेंट या चेम्बरों में जाते हैं। तभी तो इन लोगों ने देखा कि उनके माल की बिक्री उनके ही देशों में नहीं हो सकती, तब इन लोगों ने दुनिया के अन्य अनुन्नत देशों में आर्थिक साम्राज्यवाद की नींव डाली, जिसका परिणाम यह हुआ कि ये एशिया का अधिकांश भाग, सारा आफ़्रिका, आस्ट्रेलिया और अमेरिका को हथिया लेने में तनिक भी न हिचके। इन लोगों के प्रजातन्त्र-प्रेमी होने का यही नमूना है!

पार्लियामेन्टरी तरीक़ा जो व्यवहार में लाया गया, उसका अर्थ प्रजातन्त्र नहीं होता। वह तो केवल थोड़े से लोगों की सुविधा के लिए इसलिए बनाई गई थी, जिससे ऊपर से तो मालूम हो कि प्रजा का राज्य है, लेकिन व्यावहारिक पहलू से यह तरीक़ा रईसतन्त्र का ही है, और बात भी सच है; क्योंकि जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि केवल थोड़े ही से लोगों के हाथ में शासन की बागडोर रहती है। सच तो यह है कि जब तक आर्थिक प्रजातन्त्र स्थापित नहीं होता, तब तक आजकल के राजनीतिक प्रजातन्त्र की वर्तमान प्रणाली द्वारा वास्तविक प्रजातन्त्र की स्थापना करना न केवल कठिन ही, बल्कि असम्भव भी है। जब कि योरप के अनेक देशों में दस प्रतिशत आदमी नब्बे प्रतिशत धन के स्वामी हों तो भला ऐसे देशों में प्रजातन्त्र का क्या रूप होगा, यह हम भली भाँति सोच सकते हैं। वास्तव में यदि बाक़ी नब्बे प्रतिशत आदमियों का अपने देशों के शासन में हाथ रहता तो हम यह उम्मीद न करते कि आफ़्रिका, भारतवर्ष, चीन आदि साम्राज्यवाद के शिकार बने होते। वे प्रजातन्त्र कहलानेवाले राज्य वास्तव में न तो लोगों के लिए रहते हैं, न लोगों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से रहते हैं और न लोगों के रहते हैं। सचमुच ये योरप के राज्य चन्द लोगों के लिए और चन्द लोगों की ओर से रहे हैं। इसलिए ऐसे देशों को, प्रजातन्त्र राज्य कहना न केवल भूल होगी, बल्कि उन्हें धोखे में डालना होगा, जो दलित हैं, पीड़ित हैं। वास्तव में यही बात हुई भी। विकट जाल रचकर उन्हें ऊपर से तो अधिकारी, पर भीतर से अर्थात् वास्तव में सब अधिकारों से वञ्चित रक्खा गया। सन् १३४८ ई० में जब इँगलैण्ड में भीषण प्लेग आया था, तब मज़दूरों की माँगों को कुचलकर चन्द पूँजीपतियों की सुविधा के क़ानून बनाये गये थे। दूर की बात जाने दीजिए, यहीं, भारतवर्ष में ही, हम क्यों न देख लें ज़मींदारों की करतूतों को, जो सिवा अपने हित की रक्षा के लिए लड़ने के दूसरे के हित के लिए बातें भी नहीं करते और न दूसरे की सुनने की चेष्टा ही करते हैं। हमारे कहने का केवल इतना ही मतलब है कि जहाँ कहीं पूँजीपतियों का दख रहेगा—चाहे वह हिन्दुस्तान में हो या इँगलैण्ड में—अपने स्वार्थों की रक्षा का यत्न करता रहेगा और जब तक वह अपने में शक्ति रक्खेगा, तब तक अपने स्वार्थों को ठेस न लगने देगा। आर्थिक दबाव के कारण ऐसे देशों में वैयक्तिक स्वाधीनता नहीं हो सकती और जब तक वैयक्तिक स्वाधीनता मानव को न प्राप्त होगी, वह स्वाधीनता के अमृतमय रस का स्वाद चखने से सर्वदा वञ्चित ही रहेगा।

पूँजीवाद के देश में हम स्वाधीनता के मूल्य को थोड़े में आँक चुके। अब समाजवाद के पहलू से स्वाधीनता की बात को देखना है। यदि हम नकारात्मक तरीक़े से यह कहें कि यदि जिस बात की वजह से वास्तव में मानव की सामूहिक स्वाधीनता नहीं रह पाती, तो यदि उसी वजह को हम मिटा दें तो हर एक देश में स्वाधीनता अपने असली रूप में स्थापित हो सकती है। और, सचमुच हमारा यह कहना बहुत ही थोड़े में है। किन्तु थोड़ा इस बात को विस्तृत तरीक़े से कहे बिना हमारी समझ में बात ठीक-ठीक जँच नहीं सकती। जिस अप्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की प्रणाली का ज़िक्र ऊपर किया गया है और उसमें वास्तविक स्वाधीनता भी नहीं पाई जाती कही गई है, यदि लोग उसके दोष को मिटाने के लिए प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र की सलाह दें तो कैसा हो। ग्रीस आदि देशों में ऐसे ही प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र राज्य क़ायम थे, जो केवल नगर-राज्य थे। पहले तो यह प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र सम्भव नहीं है, दूसरे थोड़े समय के लिए यह मान लिया जाय कि वे व्यावहारिक हैं, तब भी हम देखेंगे कि इसमें भी उन्हीं चन्द पूँजीपतियों का हाथ रहेगा; क्योंकि आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना न हुई रहेगी।

हम इस लेख में वैयक्तिक स्वतन्त्रता के विषय में कुछ कहना नहीं चाहते, केवल सामूहिक स्वाधीनता को दृष्टि में रखकर यह बतलाने की चेष्टा की जायगी कि किस प्रकार एक वर्ग दूसरे पर अधिकार करता है और जब कर लेता है तो स्वार्थ में आकर फिर उसे छोड़ना नहीं चाहता। साधारण प्रकार से यही कहा जाता है कि जिस देश पर किसी दूसरे देश का प्रभाव न हो, वह स्वाधीन है। फिर हम सोच सकते हैं कि जब वह स्वाधीन है तो सुखी है; क्योंकि जिस सुख की भावना से स्वाधीनता प्राप्त की जाती है, वह उसे प्राप्त है। फिर क्या वजह है कि रूस में या फ्रांस में क्रांति हुई? इसी वजह से तो हम यहाँ यह कहना चाहते हैं कि स्वाधीनता दलितों-पीड़ितों ही के लिए है और होनी चाहिए। ऊपर हमने जो फ्रांस का उदाहरण दिया है, उसके अर्थ यह नहीं कि वहाँ आर्थिक प्रजातन्त्र की स्थापना की जा चुकी है। उसे अपने उदाहरण में लाने का हमारा केवल यही मतलब है कि एक वर्ग का अत्याचार जब दूसरा वर्ग, जो पीड़ित होता है, पचा नहीं सकता तो वह क्रय कर देता है। एकतन्त्र से रईसतन्त्र और फिर वर्तमान प्रजातन्त्र का विकास होता रहा, जो वास्तव में उस कोटि का नहीं है। अब दुनिया को आवश्यकता इस बात की पड़ी कि न तो एक का दूसरे के ऊपर दबाव हो और न एक अपने नाजायज़ तरीक़े से दूसरे का जोंक की तरह शोषण करके ख़ून चूसता रहे। वास्तव में ग़रीबों को स्वाधीनता का स्वाद इसी पहलू से मीठा लगता है; क्योंकि दूसरे देशवाले न सही, पर अपने ही देशवाले यदि ग़रीबों का शोषण करते जायँ, तो वे यही कहेंगे कि 'कोउ नृप होय हमैं का हानी, चेरी छाँड़ि न होबे रानी।' प्रसंगवश और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनोरंजनार्थ यहाँ पर मैं कुछ साल पहले 'सैनिक' में प्रकाशित किये गये एक लेख का सारांश फ़ुटनोट में देता हूँ। * इसको मैंने यों ही नहीं लिखा है। इसमें यह टटोलने की कोशिश की जाय कि स्वराज्य हम इसी लिए चाहते हैं कि सुराज्य हो और पीड़ितों, दलितों को राहत मिले। ऐसी दशा में धोबी यह समझता है कि चाहे कोई नृप हो, उसकी दशा में परिवर्तन होने का नहीं। उसे खाने-पहनने को वही मिलेगा, जो वह कुछ साल पहले खाता-पीता रहा है। ऐसी हालत में हम आजकल के देशों की स्वाधीनता का मूल्य आँक सकते हैं। समाजवाद की दुनिया में धोबी जैसी स्वाधीनता चाहता है, उसे वैसी ही प्राप्त होती है। इस पर लोग हँसेंगे कि वाह! ऐसी हालत में धोबी या धोबी-जैसा आदमी क्यों नहीं सुखी होगा? लेकिन संसार के धोबी-जैसे लोग दया की भिक्षा माँगना नहीं चाहते। वास्तव में उनका लक्ष्य तो दुनिया की मारकाट, हड़पनेवाली नीति, चूसनेवाला यन्त्र ही मिटा देना है, जिनके द्वारा कुछ लोग ऐश और आराम में सारे मानव-समाज को गहरी खाई की ओर लिये जा रहे हैं। इस समय बहुत कुछ धोबी-जैसे लोग बहुत हो रहे हैं। देखें, नवीन मानव-सभ्यता के निर्माण में ये कहाँ तक सफल होते हैं।

स्वाधीनता के बाद मानव में जो सुख की भावना छिपी रहती है, वह पूँजीवाद के युग में कभी सम्भव नहीं हो सकती; क्योंकि जिस परम्परा से ये लोग अधिकारी हुए हैं, उस परम्परा को ही छोड़ना नहीं चाहते; क्योंकि इनके स्वार्थ को ठेस लगेगी। यह बात निश्चित है कि अधिकारिवर्ग हमेशा नवीनतम से डरता है और समाज को पुरातन की ओर सदा घसीटने की चेष्टा करता है। वह डरता है कि कहीं हमारा अधिकार न छिन जाय और कहीं हमारे स्वार्थ को धक्का न लगे। यही कारण है कि नवीनतम और पुरातन का झगड़ा बना ही रहता है। यह झगड़ा वास्तव में स्वाधीनता और परतन्त्रता का होता है। दूसरे शब्दों में हम इसे यों कह सकते हैं—एक अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए लड़ता है और दूसरा अपने स्वार्थ का अपहरण हो जाने की वजह से लड़ता है। समाज की यही गति प्राचीन काल से चली आ रही है। एक सोचता है कि किस प्रकार हम लाखों-करोड़ों को कुचलकर आगे बढ़ जायँ और दूसरा सोचता है कि किस दिन ऐसी मुसीबत दुनिया से उठ जायगी, और सारे मानवों का कष्ट दूर होगा। कुछ लोग कहते हैं कि इसी दौड़ में मानव की उन्नति निहित है। ऐसी तरक़्क़ी की रक्षा ईश्वर ही करे, जो लाखों की बलि चढ़ाकर की गई हो। हम पूछना चाहते हैं कि क्या इसी होड़ में अबीसीनिया की बलि नहीं चढ़ाई गई? क्या हर हिटलर इसी होड़ में पड़कर कितनों का गला अभी घोटने को तैयार नहीं हैं? हर हिटलर और मिस्सोलिनी की ये महत्त्वाकांक्षाएँ और होड़ क्या लाखों-करोड़ों को रौंदकर चलनेवाली नहीं हैं? अब दूसरी ओर की होड़ का प्रश्न लीजिए। एक ग़रीब मज़दूर या किसान किससे होड़ करता है? उसकी महत्त्वाकांक्षाएँ कितनी ऊँची होती हैं? क्या हम कुछ अन्दाज़ लगा सकते हैं? उनके लिए तो संसार के इस विकट संघर्ष और चक्की में अपना अस्तित्व ही क़ायम करना कठिन हो रहा है। जब किसी का पैर ही न जम सका तो वह आगे कैसे बढ़ेगा और इस कारण जीवन की धुड़दौड़ में उसका आगे हो जाना कठिन है। जब वह अपने पेट ही की

---

* मैं—महादेव, तुम स्वराज्य लेना चाहते हो?

उसने कहा—मैं स्वराज्य लेकर क्या करूँगा?

मैं—स्वराज्य मिलने पर हम सबको पेट भर खाने को मिलने लगेगा। सबको काम करने को मिलने लगेगा और इस प्रकार हम सभी लोग थोड़ा अधिक सुख से रहने लगेंगे।

उसने कहा—पर मैं धोबी का धोबी ही तो रहूँगा।

मैंने कहा—इससे क्या. धोबी का काम बुरा थोड़े ही है। तुम धोबी अपनी इच्छानुसार तब भी रहना। खाने-पीने को जैसा औरों को मिले वैसा तुम्हें भी मिले तो स्वराज्य लोगे या नहीं?

उसने कहा—तब क्यों न लूँगा। स्वराज्य बढ़िया चीज़ है। इत्यादि.....

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समस्या सुलझाने में दिन-रात लगा रहता है, तो वह किस प्रकार संसार-क्षेत्र में उतरकर अपने को परख सकता है और वह देखने की कैसे क्षमता रक्खे कि लोग किस तरह जीवन की घुड़दौड़ में दौड़े चले जा रहे हैं। अतएव शताब्दियों से वह जहाँ का तहाँ पड़ा हुआ है। कोई नहीं कह सकता कि उसने जीवन-क्षेत्र में इतनी तरक़्क़ी की। यही ऐसे लोगों की स्वतन्त्रता का रहस्य है। अभी हाल ही में हमारी मज़दूरिन कह रही थी कि मेरा लड़का कलकत्ते की एक मिल में काम करता है; लेकिन वह आना चाहता है, पर आ नहीं सकता। यह दोष हम केवल उस मिल-मालिक को नहीं देते, बल्कि ऐसे ही मिल-मालिकों और ज़मींदारों को देते हैं, जिनके हाथों में सरकार रहती है। अब हम यही कहकर ख़तम करते हैं कि इन सभी अड़चनों और दलों तथा विभिन्न स्वार्थों के लड़ाई-झगड़े आदि सभी ख़तम करके समाजवाद मानव को वास्तविक स्वाधीनता दिलाना चाहता है।

श्रीचपलादेवी वैद्या के दो तिलिस्मी हीरे

(१) वन्ध्याकारक दवा

अगर आपकी स्त्री, पुत्री, बहिन, पड़ोसिन या किसी भी स्त्री को सन्तान हर साल होती हो। वह कमज़ोर हो, बच्चा जनने के कष्ट को बर्दाश्त न कर सकती हो, गर्भ गिराने के महापाप से बचना चाहती हो तो आप उसे "श्रीचपलादेवी वैद्या" की "वन्ध्याकारक दवा" केवल ५ दिन सेवन करावें। इस दवा से गर्भ न रहेगा। स्त्री गर्भ गिरानें के महापाप से बचेगी और आप पुण्यभागी होंगे। मूल्य मय डाक ४॥)

(२) स्त्रीसुखकर चूर्ण

स्त्री के गुप्त अंग से लाल, पीला, सफ़ेद, लिब-लिबा, बदबूदार, ख़ून गिरना वग़ैरा बन्द करने की लाजवाब दवा। २० दिन सेवन करने से रोग निश्चय ही चला जाता है। मूल्य १॥) डाक-ख़र्च अलग।

स्त्रीसुखकर चूर्ण

मँगाते समय रोग का पूरा हाल। रोग कब से है, बुख़ार तो नहीं होता वग़ैरा ज़रूर-ज़रूर लिखें।

औरत ही औरतों के मर्ज़ को ठीक तरह समझ सकती है। स्त्री के गुप्त रोगों का इलाज कराना हो तो रोग का पूरा हाल साफ़ हिन्दी में लिखकर भेजें। उत्तर के लिए -) का टिकट भेजें।

पता—श्रीचपलादेवी वैद्या,
चपला भवन, लाल दरवाजा, गली रावलिया, मथुरा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय कृषि का आर्थिक दृष्टिकोण (१)

श्रीयुत प्रो० धन्नालालजी एल्० ए-जी०

भारतीय खेती

(१)

जीवन के लिए संसार में अनाज बहुत ज़रूरी वस्तु है। यह अनाज उत्पन्न करने का साधन खेती है। मनुष्य पैसा अथवा धन किसी भी रीति से और कितने भी परिमाण से क्यों न कमाता हो, परन्तु उसके पेट की भूख अन्न के सिवा कभी शान्त नहीं हो सकती। कृषि पर देश का वाणिज्य - व्यवसाय, कला-कौशल, उद्योग - धन्धे, कल - कारख़ाने, सभी आश्रित हैं। इसी के भले-बुरे पर, व्यापारी, उद्योगी, सेठ, साहूकार, आढ़तिया, बैंक एवं विदेशों को माल भेजने और मँगानेवाले, सबकी उन्नति का आधार है। इसी से हमें खेती की आवश्यकता अच्छी तरह समझ में आ जाती है। हिन्दुस्थान में खेती का महत्त्व दिखाने के लिए कहावत भी है कि "उत्तम खेती, मध्यम बान; निकृष्ट चाकरी भीख निदान।" इतना होते हुए भी खेती की ओर उन्हीं लोगों का ध्यान अधिक रहता है, जो रात-दिन उसी में अपना जीवन व्यतीत करते हैं। दूसरे व्यवसायों द्वारा धन कमानेवाले लोग खेती की उतनी परवा नहीं करते। पानी यदि बेमौक़े बरस गया तो किसान ही रोवेगा; बाक़ी लोगों को उससे कोई मतलब नहीं; यद्यपि वे जानते हैं कि किसान की ही उपज पर उनका भी जीवन है। ऐसी ग़फ़लतों के कारण हिन्दुस्थान दुर्दशा को पहुँच चुका है। डॉ० कल्स्टन ने, जो कि गवर्नमेंट आफ़ इण्डिया के एग्री-कल्चर एडवाइज़र थे, कहा है कि हिन्दुस्थान में गिरी हुई जातियाँ हैं, गिरा हुआ रोज़गार है, और दुर्भाग्य-वश काश्तकारी भी उसी गिरी हुई हालत में है। भारतीय खेती की वर्तमान दशा को देखते हुए हम में से कई एक डॉ० कल्स्टन के निराशाजनक कथन का कुछ अंशों में समर्थन करने के लिए बाध्य होते हैं; पर हर्ष की बात है कि अब सरकार और जनता, दोनों का ध्यान कृषि व ग्रामसुधार की ओर अधिकाधिक बढ़ता जाता है। रायल कमीशन ने अपना लक्ष्य इन शब्दों में प्रकट किया है—"हमारा उद्देश, संक्षेप में ग्रामीण जातियों को, पूर्णत्व-प्राप्ति की वृद्धि में सहायक होनेवाले साधन और उपाय बताना है।" इस नीति का परिणाम हमारे सामने ग्रामसुधार या Village up-lift संस्था की स्थापना है।

किसी भी काम में उन्नति करने के पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि वह काम कौन-सी स्थिति में है। गाँव-खेड़ों में उन्नति करने के पहले यह जान लेना ज़रूरी है कि वहाँ के मुख्य धन्धों की क्या दशा है। ग्रामीण व्यवसायों में कृषि के मुख्य होते हुए भी हमें सभी धन्धों की उन्नति करनी होगी। परन्तु उद्योग-प्रेमी कभी उद्योग को कृषि से ऊँचा स्थान देने की भूल न करें। हाँ, पैदावार के साथ-साथ उद्योग की वृद्धि होना भी ज़रूरी है। पर कृषि को भुलाकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उद्योग की ओर झुक जाना बड़ी भारी भूल होगी। यदि पैदावार ही न होगी, तो उद्योग भी किसके बल पर बढ़ेगा। जिन पाश्चात्य देशों ने उद्योग की तो बेहद वृद्धि कर ली, पर जीवनोपयोगी पदार्थों के लिए दूसरे देशों पर अवलम्बित हैं, उन्हें अब खाद्य पदार्थों के लिए बड़ी चिन्ता है। यह बात आज नहीं, बहुत पहले ही जर्मनी ने जान ली थी। जर्मनी में पहले ही यह विचार उठ खड़ा हुआ था कि उद्योग बहुत बढ़ रहा है। इसलिए सबसे पहले सस्ते खाद्य पदार्थ की प्राप्ति हो, इस बात की नहीं, पर खाद्य पदार्थ की प्राप्ति का मार्ग निश्चित और निरापद हो, इस बात की सबसे अधिक आवश्यकता है।

महायुद्ध के पूर्व योरप की स्वनिर्वाह-शक्ति मिट चुकी थी। वह खाद्य पदार्थ और कच्चे माल के लिए बाहरी दुनिया का आश्रित बन चुका था। इसी कारण मि० हूवर ने कहा था कि १९१८ में, युद्ध-काल के योरप में, जितनी जन-संख्या का वह अपनी पैदावार पर निर्वाह कर सके, उससे १० करोड़ जन-संख्या अधिक थी। इसलिए महायुद्ध ने कृषि की ओर केवल ध्यान ही आकर्षित नहीं किया, वरन् इसकी उन्नति करने के लिए भी योरप के नेत्र खोल दिये। महायुद्ध के पूर्व ग्रेट ब्रिटेन अपनी ज़रूरत से आधे से भी कम खाद्य पदार्थ पैदा करता था, जिसमें केवल एक पंचमांश गेहूँ होता था। पर आजकल वहाँ कृषि-सुधार का प्रश्न सबसे अधिक महत्त्व रखता है, और भूमिसंबंधी क़ानून में सुधार किया गया है, जिससे कृषि के लिए भूमि सुलभ हो गई है; केवल खेल आदि के लिए ज़मीन को रोक रखने में रुकावट डाल दी गई है।

इस भाँति कृषकों की स्थिति में सुधार किया गया है। पूँजी की प्राप्ति के लिए बैंक-प्रणाली और कृषि-संबंधी यंत्रादि की खेवा-बेंची में सुबीता आदि प्रत्येक बात से कृषि को पूर्ण उत्साह दिया जा रहा है। इस भाँति आज योरप की जातियाँ चारों ओर से उन्नति के लिए घोर प्रयत्न कर रही हैं, जिससे उन्हें किसी भी बात के लिए दूसरे पर अवलम्बित न रहना पड़े। उद्योग का योरप में इतना प्राबल्य है, पर वहाँ आज उसकी भी बुराइयाँ समझकर उसे घटाने और उसके स्थान में कृषि को बढ़ाने की प्रबल चेष्टा रही है।

हर्ष की बात है कि हमारा देश ऐसी जगह में जहाँ रोज़गार बढ़ाये जा सकते हैं, और खेती भी उन्नति की जा सकती है।

अब मैं आप लोगों को भारतीय खेती-विषयक बताऊँगा। यह तो एक कहावत-सी हो गई है भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ के रहनेवालों उपजीविका का मुख्य साधन खेती है। यह साधन पुराने ज़माने से चला आ रहा है, इस समय भी है, और बहुत समय तक वही रहेगा।

यद्यपि यहाँ पर जीवन-निर्वाह के और भी साधन हैं; परन्तु उन सबका सरताज खेती है। हिन्दुस्थान की आबादी सन् १९३१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार ३५२९८६८७६ है। इतने बड़े जन-समूह में प्रति चार मनुष्य में से तीन से कुछ अधिक मनुष्य खेती में ही लगे रहते हैं। सन् १९२१ की मर्दुमशुमारी के अनुसार ७२·८ प्रतिशत और सन् १९३१ के अनुसार ७१ प्रतिशत मनुष्यों की उपजीविका का साधन खेती बतलाया गया है। इसमें से ६७ बिलकुल खेती ही के भरोसे पर हैं।

इस बात को सिद्ध करने के लिए बतलाया गया कि ८९ प्रतिशत मनुष्य ग्रामीण हैं, अर्थात् गाँव-खेड़ों में रहते हैं। इसका अर्थ यही है कि जन-संख्या का एक बड़ा भाग खेती के भरोसे पर है। दूसरे व्यवसायों पर केवल ११ प्रतिशत जनता निर्भर है, जिसमें प्रतिशत तो केवल छोटे घरेलू उद्योगों में लगी हुई है। बड़े-बड़े उद्योगों अर्थात् कल-कारख़ानों से तो सिर्फ २ प्रतिशत जनता का निर्वाह होता है। व्यापार में ६ और उसके वाहन में २ प्रतिशत जनता लगी हुई है। इससे यह तात्पर्य निकलता है कि इतनी मिलों और कल-कारख़ानों के होते हुए भी कृषि ही भारतीय जीवन और जीविका में प्रधान है। बंगाल में पाट की मिलों और कोयले की खानों, बिहार-उड़ीसा में कोयले की खानों और जमशेदपुर में लोहे की भारी पैदावार होते हुए भी, जनता बहुत बड़े परिमाण में खेतिहर है। ख़ासकर बिहार-उड़ीसा की जनता तो भारत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अन्य किसी भी प्रान्त की अपेक्षा खेती पर अधिक आश्रित है। हाँ बम्बई, पंजाब, संयुक्तप्रान्त की जनता अन्य प्रान्तों की अपेक्षा उद्योग-सम्बन्धी कार्यों में अधिक लगी हुई है। पर यह अधिक परिमाण बड़ी-बड़ी मिलों के कारण ही नहीं, केवल घरेलू उद्योगों के कारण ही है। सारांश यह कि प्रत्येक प्रान्त में कृषि ही सर्वप्रधान स्थान रखती है।

दूसरे देशों से तुलना करने पर यह बात और भी पक्की हो जाती है—

देश का नाम	प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या
अमेरिका	४८
इँगलिस्तान	२२
फ़्रांस	५७
जर्मनी	५४

हिन्दुस्थान में खेती पर की निर्भरता कई सालों से बढ़ती आ रही है—

सन् १८९१ में	पूर्ण जन-संख्या का	६१	प्रतिशत भाग	खेती पर निर्भर था
,, १९०१	,,	६६	,,	,,
,, १९११	,,	७१	,,	,,
,, १९२१	,,	७२.८	,,	,,
,, १९३१	,,	७१	,,	,,

शहरों की धीमी तरक्की से भी इस बात का पता लगता है। सन् १८९१ से लेकर १९२१ तक यानी ३० साल में शहरों की आबादी एक प्रतिशत से भी कम बढ़ी है।

बड़े शहर छोटे शहरों की हा जन-संख्या खींचकर बढ़े हैं। गाँव-खेड़ों की आबादी को वे अधिक संख्या में नहीं खींच सके। इसके विपरीत परिस्थिति पश्चिमीय देशों में देखी गई है।

जर्मनी में सन्	१८९० में	९०	प्रतिशत ग्रामीण	मनुष्य थे
,, ,,	१९३० ,,	४९	,,	,,
आस्ट्रिया में ,,	१८४३ ,,	९१	,,	,,
,, ,,	१९१० ,,	२७.२	,,	,,

दूसरे देशों में रोज़गार या इंडस्ट्रीज़ बढ़ने के कारण जन-समूह शहरों की तरफ़ बढ़ गया। परन्तु हिन्दुस्थान में जो कुछ भा दूसरे धंधे थे, वे भी मारे गये और लोग खेती की तरफ़ झुक पड़े। परिणाम यह हुआ कि खेती पर अवलंबित रहनेवालों की संख्या ख़ूब ही बढ़ गई और कृषि पर भारी बोझ आ पड़ा।

अब देखना चाहिए कि कृषि की उपज या पैदावार के हिसाब से भारतीय खेती की क्या परिस्थिति है।

संसार भर में यूनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका), रूस, अर्जंटाइन, हिन्दुस्थान और चीन, ये पाँच देश कृषि-व्यवसाय में मुख्य माने जाते हैं। हिन्दुस्थान सभी के आगे समझा जाता है। यहाँ पर सबसे अधिक जोती जानेवाली ज़मीन, जिसका कि क्षेत्रफल ३९३९२०००० एकड़ है, पाई जाती है। अमेरिका में ऐसी ज़मीन का क्षेत्रफल ३५९८२५००० एकड़ है, और इसका दुनिया में दूसरा नंबर माना जाता है। बाक़ी के तीनों देशों के आँकड़ों का हमें पता नहीं। परन्तु इतना अवश्य कह सकते हैं कि ये भी हिन्दुस्थान से किसी प्रकार कम नहीं हैं।

हिन्दुस्थान में धान्य (Cereals) बोई जानेवाली ज़मीन का क्षेत्रफल १९४९९७५०० एकड़ है। दुनिया में इसका दूसरा नम्बर है। पहला नंबर अमेरिका का है, जहाँ कि ऐसी ज़मीन का क्षेत्रफल २१०३७७५०० एकड़ है।

अब हम मुख्य फ़सलों के हिसाब से हिन्दुस्थानी खेती की परिस्थिति देखेंगे—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१) चावल—हिन्दुस्थानियों का असल भोजन है। बोई जानेवाली ज़मीन का ३० प्रतिशत हिस्सा चावल की खेती में रहता है। सन् ३३-३४ में चावल की काश्त के लिए ८ करोड़ ३१ लाख एकड़ ज़मीन थी, और उसमें ३ करोड़ १० लाख टन चावल की पैदावार हुई। सन् ३४-३५ में ८ करोड़ १० लाख एकड़ ज़मीन थी, और उसमें २ करोड़ ९८ लाख टन चावल की पैदावार हुई। संसार भर को चावल की खेती का ४० प्रतिशत भाग हिन्दुस्थान में है, और यह परिमाण दूसरे देशों में चावल भेजनेवाले देशों से सबसे अधिक है। परन्तु यहाँ से चावल की कुल उपज का ७ या ८ प्रतिशत भाग ही बाहर भेजा जाता है। सन् ३३-३४ में हिन्दुस्थान से १७ लाख ४४ हज़ार टन चावल, जिसकी क़ीमत १० करोड़ ८६ लाख रुपये थी, भेजा गया। सन् ३४-३५ में १६ लाख टन या १० करोड़ ३७ लाख रुपये का माल बाहर भेजा गया। कम माल भेजने के कारण गिरे हुए भाव और व्यापार की हीन अवस्था बतलाया जाता है।

साथ ही यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हिन्दुस्थान में चावल का आयात सन् ३४-३५ में बढ़कर ३ लाख ९४ हज़ार टन हो गया, जिसकी क़ीमत २६ लाख २७ हज़ार रुपये थी। इसके पहले सन् ३३-३४ में इसका आयात सिर्फ़ ८८ हज़ार टन और क़ीमत ५ लाख ९० हज़ार रु० थी।

हमारे देश में चावल का आयात प्रायः स्याम और फ्रेंच इंडो चाइना ही से हुआ।

धान कूटने के व्यवसाय में बचा हुआ टूटा चाव प्रायः मद्रास ही में आया। जिस भाव से यह चाव बेचा गया, उससे स्थानीय अच्छे चावल की दर बहुत धक्का पहुँचा। दर की इस घटती को रोकने लिए सरकार ने १२ आना प्रतिमन विशेष कर लगा दिया है।

जिस प्रकार दूसरी फ़सलों में उन्नति की जा है, उसी प्रकार छत्तीसगढ़ में भी चावल की उन्नति लिए एक योजना बनाई गई है, जिसके अनुस मध्यप्रदेश की कृषि-अनुसंधान-समिति के द्व Rice Research Scheme का एक केन्द्र राय में खोला गया है। इसका अभिप्राय यह है कि छत्तीस में चावल की खेती का सुधार किया जाय। इससे आशा की जा सकती है कि निकट-भविष्य में छत्तीस में भी इसकी विशेष उन्नति दिखाई देगी, और के किसानों को उससे लाभ पहुँचेगा।

(२) गेहूँ—चावल के बाद दूसरा नंबर गेहूँ है। जोती हुई ज़मीन के १० प्रतिशत हिस्से में गे बोया जाता है। यह भोजन का असल पदार्थ है। काल महोदय के कथन के अनुसार हिन्दुस्थान का नंबर गे की खेती की दृष्टि से संसार में तीसरा है। महायुद्ध समय इसका रक़बा २ करोड़ ८४ लाख एकड़ से करोड़ ५४ लाख एकड़ तक हो गया था। अब इस रक़बा ३ करोड़ ४४ लाख एकड़ है। नीचे दी हुई सू से ज्ञात होगा कि हिन्दुस्थान में इन पाँच सालों में गे की पैदावार, निर्यात तथा क़ीमत कितनी रही—

सन्	पैदावार	निर्यात (Export)	क़ीमत
३०—३१	९३ लाख टन	१ लाख ९७ हज़ार टन	१९५ लाख रु०
३१—३२	९० लाख ,,	२० ,, ,,	१९ लाख
३२—३३	९४ लाख ,,	२ ,, ,,	९५ हज़ार
३३—३४	९४ लाख ,,	२ ,, ,,	९५ ,,
३४—३५	९७ लाख ,,	११ ,, ,,	१०½ लाख

इससे यह सिद्ध होता है कि अब विदेशों में गेहूँ बहुत कम भेजने लगे हैं। इसके विपरीत अगली सूची पर दृष्टि डालने से हमें ज्ञात होगा कि बाहरी देशों से हिन्दुस्थान में गेहूँ आने लगा है—

सन् ३३-३४ में १८ हज़ार ३ सौ टन या १३ लाख रुपये

सन् ३४-३५ में ७ हज़ार ४ सौ टन या ५ लाख रुपये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गेहूँ के आयात से कुछ विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि हिन्दुस्थान में गेहूँ की खपत ज़्यादा होने लगी है। सर फ्रैंक नोयेस ने इसकी खपत ८५ लाख टन बतलाई है। दूसरे देशों की ओर ध्यान देने से हमें यह भी ज्ञात होता है कि गेहूँ की खेती में उन्होंने आश्चर्य-जनक सुधार किये हैं। लेकिन हमारा देश अभी तक पिछड़ा हुआ है।

(३) ज्वार और बाजरा—ये भी खेती की मुख्य फ़सलें हैं। मद्रास, बम्बई और हैदराबाद में अधिकतर खाने के काम में आती हैं। इनसे जानवरों को भी भोजन मिलता है। सन् ३०-३१ में ज्वार की खेती का क्षेत्र-फल ३ करोड़ ३० लाख और बाजरे की खेती का १ करोड़ ३७ लाख एकड़ था। ये माल अधिक परि-माण में बाहर नहीं भेजे जाते। सन् २९-३० में १५ हज़ार टन ज्वार और बाजरा, जिसकी क़ीमत २५·१३ लाख रु० थी, भेजा गया। सन् ३०-३१ में ७००० टन, जिसकी क़ीमत ८ लाख रु० थी, भेजा गया। इसके बाद इनका बाहर भेजना और भी कम हो गया है।

(४) जौ—यह ख़ासकर संयुक्त प्रान्त और बिहार में बोया जाता है। देश में ही इसकी माँग बहुत अधिक होने के कारण यह बाहरी देशों में कम भेजा जाता है। सन् २९-३० में इसका निर्यात घटकर १ हज़ार टन रह गया, जिसकी क़ीमत १ लाख रुपये थी। इसे आदमी और जानवर दोनों खाते हैं।

(५) गन्ना—न्यूयार्क के विलेट तथा ग्रे महोदयों के कथन के अनुसार सन् ३३-३४ में शक्कर की उपज २ करोड़ ५४ लाख टन हुई। इसमें से १६·७ लाख टन गन्ने से और ८·७ लाख टन बीट (चुक़न्दर) से बनाई गई। इसमें से हिन्दुस्थान में ८ लाख ८६ हज़ार टन पैदा हुई। यद्यपि हिन्दुस्थान गन्ने का घर समझा जाता है, और क्षेत्रफल के हिसाब से इसका नम्बर संसार में दूसरा है, फिर भी यहाँ पर प्रति एकड़ शक्कर की उपज क्यूबा की अपेक्षा एक-तिहाई, जावा के छठे हिस्से और हवाई द्वीप के सातवें हिस्से से भी कम है। परिणाम यह है कि हिन्दुस्थान को अभी विदेशों से २ करोड़ ११ लाख रुपयों की शक्कर मँगानी पड़ती है। सरकार का ध्यान इसकी खेती की ओर अच्छी तरह आकर्षित हुआ है। हिन्दुस्थानी शक्कर का व्यापार बढ़ाने के लिए कई योजनाएँ बन रही हैं।

सन्	क्षेत्रफल	शक्कर की पैदावार	शक्कर का आयात परिमाण	क़ीमत
२९-३०	२५ लाख एकड़	३ लाख टन	९ लाख ३९ हज़ार टन	१५½ करोड़ रु०
३०-३१	२८ ,, ,,	३ ,, ,,	९ लाख टन	१०½ ,, ,,
३१-३२	२९ ,, ,,	४ ,, ,,	५ लाख १६ हज़ार टन	६ करोड़
३२-३३	३३ ,, ,,	६ ,, ,,	३ लाख ७० ,, ,,	४ करोड़ १२ लाख
३३-३४	३३ ,, ,,	८ ,, ,,	२ लाख ६१ ,, ,,	२ करोड़ ७० लाख
३४-३५	३४ ,, ,,	९ ,, ,,	२ लाख २३ ,, ,,	२ करोड़ ११ लाख

यदि इस प्रश्न पर ध्यान दें और गन्ने की खेती की विशेष रूप से वृद्धि करें तो इन २ करोड़ ११ लाख रुपयों की और बचत हो सकती है।

(६) कपास—कपास की खेती में पहला नम्बर अमेरिका का और दूसरा नम्बर हिन्दुस्थान का है। इसकी उन्नति ख़ूब हो रही है। Indian Central Cotton Committee नाम की संस्था अपनी सारी शक्ति इसी में लगा रही है। कपास का क्षेत्रफल धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। सन् १८९५ से १९०० तक औसत रक़बा १ करोड़ ३८ लाख एकड़ रहा। सन् २५–२६ में वह २ करोड़ ८४ लाख, सन् ३०–३१ में २ करोड़ ३८ लाख, सन् ३३–३४ में २ करोड़ ८० लाख और ३४–३५ में २ करोड़ ३० लाख एकड़ था। इस क्षेत्रफल में रक्षित राजों का रक़बा भी शामिल है। कपास की ६० प्रतिशत फ़सल विदेशों में भेजी जाती है। हिन्दुस्थान के कपास को उपयोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में लानेवाले मुख्य देश जापान और योरप हैं। सन् २५–२६ में ७ लाख ४० हज़ार टन या ९५ करोड़ रुपये का कपास बाहर देशों में भेजा गया, जिसमें से केवल जापान ने ४७ करोड़ ४७ लाख रुपये का माल ख़रीदा। सन् २६ के बाद से कपास का बाहर भेजना कम होता जा रहा है, और निर्यात का क़ीमत भी बिलकुल घट गई है। सन् ३०–३१ में दूसरे देशों की, ख़ासकर जापान और चीन की, माँग कम हो जाने और देश की माँग बढ़ जाने के कारण कपास का निर्यात कम होकर ७ लाख १ हज़ार टन हो गया, जिसकी क़ीमत ४६·३३ करोड़ थी। सन् ३३–३४ में २६·५९ करोड़ रुपये का कपास बाहर भेजा गया। सन् ३४–३५ में ३४·५० करोड़ रुपये का कपास बाहर भेजा गया। हिन्दुस्थान की मिलों में ही इसकी अधिक खपत हो रही है। हिन्दुस्थान का कपास मोटा और छोटे रेशेवाला होता है। आजकल मज़बूत, नरम और लम्बे रेशेवाले कपास की माँग अधिक है। इसको सूडान, मिसर और ब्रेजिल देश पूरा करने की कोशिश कर रहे हैं।

यदि इस तरफ़ ध्यान नहीं दिया गया तो विदेशों में हमारे कपास की माँग बहुत ही घट जायगी। मध्य-प्रदेश के कृषि-विभाग ने भेरम कपास का प्रचार किया है। किसानों ने इसे बोना शुरू कर दिया है। अब यह आशा होती है कि कपास की खेती में अवनति की अपेक्षा उन्नति ही दिखाई पड़ेगी।

(७) जूट—जूट की तो हिन्दुस्थान ही को, ख़ास-कर बंगाल को, मनापली है। हिन्दुस्थान के सिवा दूसरा कोई भी देश इसे पैदा नहीं करता। १.२ प्रति सैकड़ा रक़बे में जूट बोया जाता है। विदेशी व्यापार के हिसाब से कपास के बाद इसी का नम्बर है। जूट की क़ीमत और व्यापार में कमी हो जाने के कारण इसकी खेती का रक़बा अब कुछ घट गया है। सन् ३३–३४ में १४ लाख टन अर्थात् ३२ करोड़ ३४ लाख रुपये का जूट विदेशों में भेजा गया। सन् ३४–३५ में १४ लाख ३७ हज़ार टन अर्थात् ३२ करोड़ ३० लाख का माल बाहर भेजा गया।

(८) तेलहन या तेल के बीज—इनमें अलसी, तिल्ली, मूँगफली, करंडी, अंडी इत्यादि शामिल हैं। ३१–३२ में १ करोड़ ५८ लाख एकड़ में इसकी खेती हुई थी। हर साल इसका निर्यात एक बड़ी तादाद में होता है। इसके इतने निर्यात से यह मालूम होता है कि हिन्दुस्थान के विदेशी व्यापारों में इसका नम्बर ५वाँ है। सन् ३३–३४ में ११ लाख टन या १३ करोड़ ६६ लाख रुपये का माल बाहर गया। ३४–३५ में ९ लाख टन या १० करोड़ ५४ लाख रुपये का माल बाहर गया। इन अंकों से प्रकट होता है कि दूसरे तेलहन की खेती का रक़बा तथा निर्यात घट गया है। सिर्फ़ अलसी और मूँगफली की खेती में कोई विशेष कमी नहीं हुई है। बल्कि उनके निर्यात में कुछ वृद्धि ही हुई है।

सन्	अलसी	मूँगफली
३२–३३	७२ हज़ार टन	४ लाख ३३ हज़ार टन
३३–३४	३ लाख ८० ह० टन	५ लाख ४७ हज़ार टन
३४–३५	२ लाख ३८ ह० टन	५ लाख ११ हज़ार टन

ओटावा के समझौते के अनुसार हिन्दुस्थान की अलसी को इँगलैंड में १० प्रतिशत प्रेफ़रेंस दिया गया है। इसके सिवा अर्जंटाइन की अलसी की दो फ़सलें लगातार बैठ गईं। इन्हीं दोनों कारणों से हिन्दुस्थान की अलसी दूसरे देशों में फिर से उतनी ही जाने लगी, जितनी कि महायुद्ध के पहले जाती थी। इसके सिवा यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हमारे देश की अलसी में ७ प्रतिशत तेल अधिक निकलता है। अत-एव हमारे लिए यह उचित है कि इस उपयोगी फ़सल की ओर विशेष ध्यान दें, जिससे हमारे देश के ग़रीब किसानों को अधिक पैसा मिल सके।

(९) चाय—चीन को छोड़कर हिन्दुस्थान ही एक ऐसा देश है, जहाँ चाय की खेती होती है। सन् ३३-३४ में चाय की खेती ८ लाख एकड़ में की गई। सन् ३२-३३ में ३ करोड़ ७८ लाख पौण्ड या १७ करोड़ रुपये की चाय विदेशों में भेजी गई। सन् ३३-३४ में ३ करोड़ १८ लाख पौण्ड या १९ करोड़ रुपये की चाय विदेशों में भेजी गई। दूसरी चीज़ों की तरह चाय को भी कम माँग से धक्का पहुँचा है। अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारों पर प्रतिबन्ध लग जाने से भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाय के व्यापार को नुक़सान पहुँचा है। फिर भी दूसरी वस्तुओं के समान चाय के व्यापार में कोई विशेष कमी नहीं आने पाई।

(१०) काफ़ी—सन् ३०-३१ में काफ़ी की खेती का रक़बा १ लाख ६० हज़ार एकड़ था। अब उसका निर्यात १ करोड़ २ लाख से घटकर ७३ लाख रुपये का हो गया है।

(११) तमाखू—यों देखा जाय तो तमाखू सारे देश में होती है; पर बंगाल, बिहार, बम्बई, मद्रास और बरमा में इसकी खेती विशेष रूप से की जाती है। कच्ची तमाखू का निर्यात २ करोड़ ६० लाख पौण्ड से घटकर २ करोड़ ६० लाख पौण्ड हो गया है, जिससे उसकी क़ीमत ६० लाख रुपये से घटकर ७८ लाख रु० हो गई। पूसा के Agriculture Research Institute के वनस्पतिशास्त्र के विभाग ने हिन्दुस्थानी तमाखू को उन्नत करने के प्रश्न की ओर विशेष ध्यान दिया है। आशा है, हमारे देश के किसान इससे फ़ायदा उठावेंगे, और तमाखू की खेती की ओर विशेष ध्यान देंगे।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दुस्थान खेती की उपज विदेशों में भेजने में अच्छा स्थान रखता है। सन् २६-२७ में ३०१ करोड़ रुपये का माल विदेशों में भेजा गया। इसमें से खेती की उपज २१३ करोड़ रुपये की भेजी गई।

खेती की कुल उपज का अन्दाज़, शाह और कम्बाटा महाशयों के कथनानुसार, सन् २१-२२ के लिए लगभग ३००० करोड़ रुपये का है। बैंकिंग इनक्वायरी कमेटी सन् ३०-३१ के लिए १२५० करोड़ रुपये के आँकड़े बतलाती है।

हिन्दुस्थानी खेती की विशेषताएँ—अर्थात कैसी परिस्थिति में फ़सल पैदा की जाती है—

(१) पहली विशेषता तो यह है कि यहाँ पर किसानी बहुत-से छोटे-छोटे काश्तकार करते हैं। उनके खाते (Holdings) बहुत ही छोटे हैं। हिन्दुस्थान के एक औसत खाते का औसत रक़बा ५ एकड़ है; परन्तु ५ एकड़ से भी कम रक़बे के खातों की संख्या बहुत ज़्यादा है, और ५० एकड़ के ऊपरवालों की संख्या तो बहुत ही कम है। उदाहरण के लिए मध्य-प्रदेश के दुर्ग ज़िले के आँकड़े पेश करता हूँ—

पाँच एकड़ से कम रक़बेवाले खाते ७४३४० हैं।
पाँच से दस एकड़ से कम रक़बेवाले खाते ३५९८ हैं।
१० से २० ,, ,, ,, २४७०४ हैं।
२० से ५० ,, ,, ,, १७००० हैं।
५० के ऊपर ,, ,, ,, ५१११ हैं।

इसके सिवा ये खाते छोटे-छोटे टुकड़ों में गाँव भर में तितर-बितर रहते हैं। छत्तीसगढ़ में एक १० एकड़ के खाते में कुछ नहीं तो ४० छोटे-छोटे टुकड़े (Plots) होंगे, और ये टुकड़े गाँव भर में पाये जायँगे। खातों का रक़बा और भी कम होता जा रहा है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में इसके विपरीत परिस्थिति पाई जाती है। वहाँ पहलेपहल जब विभाजन करके ज़मीन बाँटी गई तो प्रत्येक किसान को ६४० एकड़ का रक़बा मिला। आजकल जन-संख्या बढ़ जाने के कारण एक खाते में १६० एकड़ या पहले से ¼ ज़मीन पाई जाती है। ८० एकड़ के नीचे तो कोई भी खाता देखने में नहीं आता।

हिन्दुस्थान में खातों का रक़बा इतना कम है कि उसमें से किसान अपने भरण-पोषण तक के लिए उपयुक्त पैदावार नहीं कर सकता। ५ या इससे कम एकड़ ज़मीन में किसान कैसे अपने कुटुम्ब का पालन कर सकता है, जिसमें ५ या ७ मेंबर रहते हैं। बहुत-से खातों में तो खेती में लगाया हुआ ख़र्च भी नहीं निकल सकता। एक कुटुम्ब ही खेती का घटक (Unit) समझा जाता है। यानी एक खाते में से कुटुम्ब के अनुसार पैदावार होनी चाहिए। किसान ही खाते का मालिक होता है। वही जो कुछ पूँजी उसके पास है, उसे लगाता है। इँगलैण्ड की खेती में यह विशेषता है कि वहाँ पर खाते या फ़ार्म का मालिक किसान को सब खेती के उपयुक्त पूँजी देता है। किसान को अपने पास की पूँजी लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। हिन्दुस्थानी किसान ग़रीब होने के कारण खेती में इतनी पूँजी नहीं लगा सकता कि उससे अच्छी पैदावार कर सके।

(२) यहाँ की खेती की दूसरी विशेषता यह है कि वह विस्तृत (Extensive) प्रकार की होती है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसान थोड़ी ज़मीन में से अधिक फ़सल नहीं पैदा कर पाता। इसके लिए उसे अधिक ही ज़मीन चाहिए। जापान, जर्मनी इत्यादि देशों में भी खातों का रक़बा कम है। परन्तु वहाँ की विशेषता यह है कि किसान थोड़े ही रक़बे में से अधिक ही फ़सल पैदा करने का प्रयत्न करता है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि हिन्दुस्थानी किसान खेती में बहुत ही कम पूँजी लगाता है। एक जोड़ी बैल (बखर या नागर) और थोड़े से कुछ दूसरे औज़ार, यही उसकी पूँजी होती है। आधुनिक काल के खेती करने के यंत्र बहुत ही कम देखने में आते हैं। खेती के सभी काम हाथ से किये जाते हैं। कभी-कभी औज़ारों की सहायता ली जाती है। परन्तु ये औज़ार बहुत ही कम दर्जे के होते हैं। इस प्रकार किसान हीन परिस्थिति में होकर ज़मीन में से जितना हो सकता है, उतनी फ़सल पैदा करने का प्रयत्न करता है। दूसरे कृषि-प्रधान देशों में खेती से फ़सल पैदा करने का सब काम यंत्र करते हैं। यंत्र द्वारा काम सस्ते में ख़ूबसूरती के साथ होता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि खेती यहाँ के मनुष्यों का मुख्य धंधा होते हुए भी वह संतोषजनक अवस्था में नहीं किया जाता। इसका परिणाम यह है कि यहाँ की मुख्य फ़सलों की उपज दूसरे देशों के हिसाब से बहुत कम है। इस बात के समर्थन के लिए मैं गेहूँ, चावल, कपास, चीनी, तमाखू और अलसी को लेकर उनकी तुलना दूसरे देशों की फ़सलों से करूँगा, जिससे आप लोगों को यह ज्ञात हो जायगा कि हमारा देश दूसरे देशों से कितना पीछे है।

फ़सल का नाम		
गेहूँ		
(१) भारत	७८० पौंड	प्रति एकड़ उपज
(२) डेन्मार्क	२३४० ,,	,,
(३) इँगलिस्तान	१८६० ,,	,,
(४) मिसर	१४४६ ,,	,,
(५) जापान	१३५० ,,	,,
(६) जर्मनी	१२३० ,,	,,
(७) फ़्रांस	१०४० पौंड	प्रति एकड़ उप
(८) कनाडा	१०६८ ,,	,,
(९) इटली	८३४ ,,	,,
(१०) युक्तराष्ट्र अमेरिका	८४६ ,,	,,
चावल		
(१) भारत	८७६ पौंड	प्रति एकड़ उपज
(२) स्पेन	५१४६ ,,	,,
(३) इटली	३५०६ ,,	,,
(४) मिसर	२६६८ ,,	,,
(५) युक्तराष्ट्र अमेरिका	१७४२ ,,	,,
(६) कोरिया	१५०६ ,,	,,
(७) इंडोचाइना	१००५ ,,	,,
कपास		
(१) भारत	११० पौंड (रुई)	प्रति एकड़ उपज
(२) मिसर	३५० ,,	,,
(३) युक्तराष्ट्र अमेरिका	१५९ ,,	,,
(४) ब्रेजिल	२२१ ,,	,,
चीना		
(१) भारत	२३९७ पौंड	प्रति एकड़ उपज
(२) क्यूबा	४३९० ,,	,,
(३) जावा	९२२९ ,,	,,
(४) हवाई	११११० ,,	,,
तमाखू		
(१) भारत	८०० पौंड	प्रति एकड़ उपज
(२) जर्मनी	२६३९ ,,	,,
(३) फ़्रांस	१४२६ ,,	,,
(४) इटली	९१७ ,,	,,
अलसी		
(१) भारत	३८९ पौंड	प्रति एकड़ उपज
(२) अर्जेंटाइन	६२५ ,,	,,
(३) आयर्लैंड	६०० ,,	,,

अपने यहाँ हावर्ड साहब ने बताया है कि संयुक्त प्रान्त में गन्ने की फ़सल के बाद यदि गेहूँ बोया जाय तो उसकी ३७ मन प्रति एकड़ तक उपज होती है। नागपुर फ़ार्म पर १९३०-३१ में ३५२ पौण्ड प्रति एकड़ के हिसाब से रुई हुई है। इस साल में भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब कि किसानों के यहाँ की उपज ६४ पौण्ड रुई हुई है, तब नागपुर फ़ार्म पर २१० पौण्ड रुई प्रति एकड़ के हिसाब से पैदा हुई है।

इसी तरह गेहूँ की फ़सल नागपुर फ़ार्म पर सन् ३३-३४ में ९६५ पौण्ड हुई, जब कि किसानों के यहाँ की उपज केवल २९५ पौण्ड हुई है।

इससे यह सिद्ध होता है कि यदि हमारे किसान अपनी खेती को नवीन वैज्ञानिक ढंग से करें, तो उन्हें भी सफलता अवश्य मिलेगी। वे भी दूसरे देशों की तरह अपनी पैदावार को बढ़ाने में समर्थ होंगे।

(३) तीसरी विशेषता यह है कि किसान पेट भरने के लिए खेती कर रहा है। वह उसे व्यापार या रोज़गार समझकर उसमें से नफ़ा निकालने का प्रयत्न नहीं करता। इसका व्यवसाय उसे किसी भी तरह जीवित रखने के लिए हो रहा है।

किसान खाने के लिए अन्न ही अधिक उत्पन्न करता है। ८१.२० प्रतिशत क्षेत्रफल इन्हीं चीज़ों से भरा जाता है। दूसरी खेती की चीज़ें या पैसा कमाने-वाली फ़सलों—जैसे कपास, सन, तेल के बीज इत्यादि—का रक़बा १८.३ प्रतिशत रहता है। इन आँकड़ों से अच्छी तरह पता चलता है कि किसान का प्रयत्न उन्हीं चीज़ों के पैदा करने में होता है, जो उसके जीवन-निर्वाह में सहायता पहुँचाती हैं।

मुख्य फ़सलों के रक़बे देखने से हिन्दुस्थान की खेती की विशेषता ज्ञात होती है, और मालूम पड़ता है कि पेट की भूख शांत करने के लिए हिन्दुस्थान अपने ही पैरों पर खड़ा है। उसे दूसरों का मुँह नहीं ताकना पड़ता। खाने के अनाजों के सिवा और जो दूसरी फ़सलें हैं, उनका रक़बा, बढ़ती हुई क़ीमतें होने के कारण, बढ़ना शुरू हुआ था; परन्तु यह हालत अब नहीं रही।

हिन्दुस्थान के बहुत-से गाँवों में किसान को जिन चीज़ों की आवश्यकता पड़ती है, वह उनकी पूर्ति गाँव में ही करता है। अपनी खेती की फ़सल देकर वह जीवन के लिए दूसरी चीज़ें—जैसे कपड़ा, नमक, तेल इत्यादि—बदल लेता है। पैसे का उसे अधिक काम नहीं पड़ता।

(४) यहाँ की खेती की चौथी विशेषता यह है कि वह बरसात पर निर्भर है। यदि बरसात अच्छे परिमाण में और समय-समय पर फ़सल की आवश्यकता के अनुसार हो गई तो खेती पक जायगी, वर्ना देश-भर में क़हर मच जायगा। आज चार-पाँच साल से अपने प्रान्त में ही इस कथन का सबसे बढ़िया प्रमाण मिल रहा है। यह कहने में कोई हर्ज न होगा कि मौसमी हवा या मानसून ही पैदावार की कुंजी अपने हाथ में रखता है। प्राकृतिक बरसात पर निर्भर रहने के कारण फ़सलों की बोनी दुविधा में रहती है। मध्यप्रान्त के ही उदाहरण लीजिए। कपास के लिए ज़मीन तैयार की जायगी; परन्तु बरसात की परिस्थिति के कारण उसमें ज्वार बोई जायगी। ज्वार के लिए तैयार की गई ज़मीन में तिल बोना पड़ता है। ख़रीफ़ की फ़सल के बदले में रबी की फ़सल बोनी पड़ती है। इस प्रकार साल भर में ज़मीन से केवल एक ही फ़सल ली जा सकती है।

केवल २० प्रतिशत ज़मीन में आबपाशी होती है। इस रक़बे का अधिक भाग पंजाब में ही पाया जाता है। दूसरे प्रान्तों में आबपाशी नहीं के बराबर है। इसका फल यह है कि यदि मानसून फ़ेल हो गया, तो खेती जली हुई दिखेगी।

हिन्दुस्थानी खेती की यह विशेषता अर्थ-शास्त्र की दृष्टि से एक बड़ी भारी कमज़ोरी है। यदि पानी न बरसा तो खेती का सारा ढाँचा टूट-फूट जाता है। जनता और सरकार दोनों को दुःख-सागर में ग़ोते खाने पड़ते हैं।

इस प्रकार खेती की मुख्य बात उसकी डगमगाती हुई स्थिति और उसकी उपज के आँकड़ों का बदलना है। सन् १९१२ से सन् १९२१ तक फ़सलों की उपज का आँकड़ा मध्य प्रान्त के लिए औसत का ४२ प्रतिशत से ११२ प्रतिशत के बीच में बदलता रहा। याने सबसे अच्छे और सबसे बुरे सालों का अन्तर ७२ प्रतिशत रहा। सन् १८९० से १९२७ तक याने ३७ सालों में कपास की जो २३ फ़सलें लीं गईं, वे साधारण (Normal) फ़सल से नीचे थीं, और बाक़ी १३ साधारण या उसके ऊपर थीं। गेहूँ की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२२ फ़सलें साधारण से नीचे और १५ साधारण या उसके ऊपर रहीं।

इससे अब हम अच्छी तरह से कह सकते हैं कि या तो हमारे यहाँ बरसात की अधिकता हो जाती है या वह बहुत ही कम होती है। ५ सालों में दो साल बिलकुल ख़राब जाती है। २ मामूली और केवल १ अच्छी होती है। इसके सिवा क़ीमतें भी बहुत गिर गई हैं। हमें अपना नुक़सान पूरा कर लेने के लिए समय ही नहीं मिल पाता। परिणाम-स्वरूप ग़रीबी हमारे सामने हमेशा मुँह फैलाये खड़ी रहती है। हम प्रतिदिन हीन अवस्था के गढ़े में पैर बढ़ाये चले जाते हैं।

अब देखना चाहिए कि हमारी खेती पर आवागमन के मार्गों का क्या परिणाम पड़ता है।

वैज्ञानिक आविष्कार ज्यों-ज्यों बढ़ते और फैलते जाते हैं, त्यों-त्यों आधुनिक सभ्यता के बहुत-से पहलू हमारी ग्रामीण जनता के सामने आते जाते हैं। काश्तकारी करने के नये सिद्धान्त, नवीन कृषि-यंत्र, खाद इत्यादि उन जगहों में, जहाँ कुछ साल पहले कोई स्वप्न में भी न सोचता था, पहुँचते जा रहे हैं। विज्ञान की सहायता लेकर निकाली हुई फ़सलों के निराले तरीक़े बुद्धिमान् कृषकों का और उनकी सहकारिता का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। अब नये-नये आविष्कार काम में लाये जा रहे हैं। जिस समय हमारे यहाँ आवागमन के साधन—जैसे रेल, सड़कें इत्यादि—नहीं थे, उस समय किसान स्वयं पूर्ति के निमित्त या ख़ुद के लिए ही खेती करते थे। वे उन्हीं चीज़ों की खेती करते थे, जिनसे जीवन में उन्हें सहायता पहुँचती थी। अनाज बेचने से उसके कोई अच्छे दाम हाथ न लगते थे। इसके प्रमाण में नीचे दी हुई ३ सालों की क़ीमतें देखिए—

सन्	गेहूँ	चना	चावल	दूध
१८५७	एक रु० का ३९ सेर	५१½	७५	१६०
१८९०	,, २५ ,,	२८	२५	६४
१९१८	,, ५½ ,,	७	१२	४

इन आँकड़ों से भली भाँति जान पड़ता है कि व्यापारिक दृष्टि से खेतों की पैदावार कोई विशेष क़ीमत की न थी।

सन् १८७० में स्वेज़ की नहर खुल जाने से हिन्दुस्थान का संबंध दूसरे देशों से बढ़ने लगा, और हमारे यहाँ उत्पन्न होनेवाली चीज़ों की माँग विदेशों में होने लगी। यह माँग इतने परिमाण तक पहुँची कि ३ वस्तु हमारे यहाँ रुपये की २ मन (गेहूँ सन् १८५७ के पहले) के हिसाब से बिकती थी, वही बाद में १ मन हो गई।

मध्यप्रान्त में नर्मदा नदी की तराई का गेहूँ जब विदेशों में नहीं भेजा जाता था, तब यहाँ के लोगों के खाने में बहुत कम आता था। वह मज़दूरी पटाने के काम में आता था, और बहुत कम रक़बे में बोया जाता था। जब विदेशों में उसकी क़ीमत होने लगी तो थोड़े दिन पहले उसका रक़बा ख़ूब ही बढ़ गया। गेहूँ के बदले में बाहर से अच्छी-अच्छी चीज़ें यहाँ आने लगीं।

बरार में गये कई सालों का रक़बा देखा जाय तो पता चलता है कि कपास का रक़बा सन् १८७० के बाद धीरे-धीरे बढ़ता ही गया है। जिस समय कपास का भाव २५) या ३००) खंडी तक पहुँचा, उस समय तो लोगों ने दूसरी फ़सलों का रक़बा एकदम ही कम कर दिया और कपास की खेती ख़ूब ही बढ़ा दी। भाव के हिसाब से कपास सन् १९०० के पहले ३०) या ३५) रुपया खंडी के ऊपर कभी नहीं बिका। आजकल इतनी गिरी हुई हालत होने पर भी उसका भाव ६०) रुपये के नीचे बहुत ही कम गया है।

छत्तीसगढ़ में पहलेपहल धान काट लेने के बाद दुफ़सली के बतौर कोई भी फ़सल शायद ही लेते थे। जब से अलसी की माँग बढ़ गई, तब से धीरे-धीरे धान के बाद अलसी बोना शुरू हो गया। सन् १९००-१ पहले अलसी का रक़बा धान के बाद ३५ प्रतिशत, सन् १९१२ में ३१ प्रतिशत, सन् १९२२ में ४० प्रतिशत और सन् १९३३ में ४७ प्रतिशत तक बढ़ गया।

यह सब बतलाने का अर्थ यही है कि आवागमन और व्यापार के मार्गों में उन्नति होने से कृषिविशेषज्ञ (Specialized) रूप को प्राप्त होती है और किसानों का दृष्टिकोण भी व्यापारिक हो जाता है। किसान वही फ़सलें पैदा करना शुरू कर देते हैं, जिससे उन्हें अधिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पैसा मिल सके। इस विषय की चर्चा विशेष रूप से अगले लेख में की जायगी। उदाहरण के लिए बरार की ज़मीन और जलवायु कपास के लिए उपयुक्त है तो किसान को चाहिए कि वहाँ पर दूसरी फ़सलें न बोकर कपास की ही फ़सल विशेष रूप से बोवे। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ के किसान धान और उत्तरीय मध्य-प्रदेश के किसान गेहूँ बोवें। यही कारण है कि इन भागों में या सी० पी० और बरार में कपास, धान और गेहूँ की फ़सलें पाई जाती हैं।

स्वप्न

श्रीसुधीरकुमार दे

निद्रादेवी की गोद में सो रहा था—किसी ने मुझे पुकारा—गृह से निकलकर पथ पर आया—किसी को नहीं पाया—केवल शीत का धुँधला प्रभात।

किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे सागर की ओर खींचा—मैं उस ओर चल पड़ा—शीत का धुँधला प्रभात मुझे डराने लगा—वृक्ष मुझ पर हँस रहे थे—निस्तब्धता मुझे आलिंगन कर रही थी—परन्तु मैं चलता ही रहा—अन्त में अथाह सागर के किनारे जा पहुँचा।

मैं खड़ा-खड़ा सागर की ध्वनि सुनने लगा। अचानक सागर के उस पार एक ज्योति दृष्टिगोचर हुई। वह ज्योति कुछ नहीं—केवल तुम्हारी मनोज्ञ मूर्ति थी।

मैं लालसा के झूले में पेंग मारने लगा।

क्यों ?—तुम्हारे पास पहुँचने के लिए।

परन्तु सागर के किनारे कोई नाविक न था—थी केवल एक टूटी-फूटी डोंगी।

मुझे साहस हुआ—मैं उस पर जा चढ़ा।

परन्तु खेने के लिए पतवार कहाँ ?

एकाएक लहरों के एक समूह ने डोंगी को कुछ आगे ढकेला और फिर चला गया। इसी प्रकार अनेकों लहरें आईं और डोंगी को कुछ-कुछ ढकेलकर आगे बढ़ाने लगीं।

अन्त में मैं सागर के पार हो गया—डोंगी से उतरा और तुम्हारी ओर बढ़ने लगा।

परन्तु यह क्या ?—मैं जितना ही आगे बढ़ता हूँ, तुम उतना ही पीछे हटते हो।

परन्तु मैं आशा-पथ का पथिक था। इसलिए मुझे अधिक दुःख न हुआ—मैं तुम्हारी ओर बढ़ता ही गया और अन्त में तुम्हारे निकट जा पहुँचा।

हाथ बढ़ाकर तुम्हें पकड़ना चाहा—स्वप्न टूट गया—आँखें खुल गईं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

२२ फ़सलें साधारण से नीचे और १५ साधारण या उसके ऊपर रहीं।

इससे अब हम अच्छी तरह से कह सकते हैं कि या तो हमारे यहाँ बरसात की अधिकता हो जाती है या वह बहुत ही कम होती है। ५ सालों में दो साल बिलकुल ख़राब जाती है। २ मामूली और केवल १ अच्छी होती है। इसके सिवा क़ीमतें भी बहुत गिर गई हैं। हमें अपना नुक़सान पूरा कर लेने के लिए समय ही नहीं मिल पाता। परिणाम-स्वरूप ग़रीबी हमारे सामने हमेशा मुँह फैलाये खड़ी रहती है। हम प्रतिदिन हीन अवस्था के गढ़े में पैर बढ़ाये चले जाते हैं।

अब देखना चाहिए कि हमारी खेती पर आवागमन के मार्गों का क्या परिणाम पड़ता है।

वैज्ञानिक आविष्कार ज्यों-ज्यों बढ़ते और फैलते जाते हैं, त्यों-त्यों आधुनिक सभ्यता के बहुत-से पहलू हमारी ग्रामीण जनता के सामने आते जाते हैं। काश्तकारी करने के नये सिद्धान्त, नवीन कृषि-यंत्र, खाद इत्यादि उन जगहों में, जहाँ कुछ साल पहले कोई स्वप्न में भी न सोचता था, पहुँचते जा रहे हैं। विज्ञान की सहायता लेकर निकाली हुई फ़सलों के निराले तरीक़े बुद्धिमान् कृषकों का और उनकी सहकारिता का ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। अब नये-नये आविष्कार काम में लाये जा रहे हैं। जिस समय हमारे यहाँ आवागमन के साधन—जैसे रेल, सड़कें इत्यादि—नहीं थे, उस समय किसान स्वयं पूर्ति के निमित्त या ख़ुद के लिए ही खेती करते थे। वे उन्हीं चीज़ों की खेती करते थे, जिनसे जीवन में उन्हें सहायता पहुँचती थी। अनाज बेचने से उसके कोई अच्छे दाम हाथ न लगते थे। इसके प्रमाण में नीचे दी हुई ३ सालों की क़ीमतें देखिए—

सन्	गेहूँ	चना	चावल	दूध
१८५७	एक रु० का ३९ सेर	५१½	७५	१६०
१८९०	,, २५ ,,	२८	२५	६४
१९१८	,, ५½ ,,	७	१२	४

इन आँकड़ों से भली भाँति जान पड़ता है कि व्यापारिक दृष्टि से खेतों की पैदावार कोई विशेष क़ीमत की न थी।

सन् १८७० में स्वेज़ की नहर खुल जाने से हिन्दुस्थान का संबंध दूसरे देशों से बढ़ने लगा, और हमारे यहाँ उत्पन्न होनेवाली चीज़ों की माँग विदेशों में होने लगी। यह माँग इतने परिमाण तक पहुँची कि जो वस्तु हमारे यहाँ रुपये की २ मन (गेहूँ सन् १८५७ के पहले) के हिसाब से बिकती थी, वही बाद में १ मन हो गई।

मध्यप्रान्त में नर्मदा नदी की तराई का गेहूँ जब विदेशों में नहीं भेजा जाता था, तब यहाँ के लोगों के खाने में बहुत कम आता था। वह मज़दूरी पटाने के काम में आता था, और बहुत कम रक़बे में बोया जाता था। जब विदेशों में उसकी क़ीमत होने लगी तो कुछ दिन पहले उसका रक़बा ख़ूब ही बढ़ गया। गेहूँ के बदले में बाहर से अच्छी-अच्छी चीज़ें यहाँ आने लगीं।

बरार में गये कई सालों का रक़बा देखा जाय तो पता चलता है कि कपास का रक़बा सन् १८७० के बाद धीरे-धीरे बढ़ता ही गया है। जिस समय कपास का भाव २५) या ३००) खंडी तक पहुँचा, उस समय तो लोगों ने दूसरी फ़सलों का रक़बा एकदम ही कम कर दिया और कपास की खेती ख़ूब ही बढ़ा दी। भाव के हिसाब से कपास सन् १९०० के पहले ३०) या ३५ रुपया खंडी के ऊपर कभी नहीं बिका। आज इतनी गिरी हुई हालत होने पर भी उसका भाव १५ रुपये के नीचे बहुत ही कम गया है।

छत्तीसगढ़ में पहलेपहल धान काट लेने के बाद दुफ़सली के बतौर कोई भी फ़सल शायद ही लेते थे। जब से अलसी की माँग बढ़ गई, तब से धीरे-धीरे धान के बाद अलसी बोना शुरू हो गया। सन् १९००-१ में पहले अलसी का रक़बा धान के बाद ३५ प्रतिशत, सन् १९१२ में ३१ प्रतिशत, सन् १९२२ में ४० प्रतिशत और सन् १९३३ में ४७ प्रतिशत तक बढ़ गया।

यह सब बतलाने का अर्थ यही है कि आवागमन और व्यापार के मार्गों में उन्नति होने से कृषिविशेष (Specialized) रूप को प्राप्त होती है और किसान का दृष्टिकोण भी व्यापारिक हो जाता है। किसान वही फ़सलें पैदा करना शुरू कर देते हैं, जिससे उन्हें अधि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पैसा मिल सके। इस विषय की चर्चा विशेष रूप से अगले लेख में की जायगी। उदाहरण के लिए बरार की ज़मीन और जलवायु कपास के लिए उपयुक्त है तो किसान को चाहिए कि वहाँ पर दूसरी फ़सलें न बोकर कपास की ही फ़सल विशेष रूप से बोवे। इसी प्रकार छत्तीसगढ़ के किसान धान और उत्तरीय मध्य-प्रदेश के किसान गेहूँ बोवें। यही कारण है कि इन भागों में या सी० पी० और बरार में कपास, धान और गेहूँ की फ़सलें पाई जाती हैं।

स्वप्न

श्रीसुधीरकुमार दे

निद्रादेवी की गोद में सो रहा था—किसी ने मुझे पुकारा—गृह से निकलकर पथ पर आया—किसी को नहीं पाया—केवल शीत का धुँधला प्रभात।

किसी अज्ञात शक्ति ने मुझे सागर की ओर खींचा—मैं उस ओर चल पड़ा—शीत का धुँधला प्रभात मुझे डराने लगा—वृक्ष मुझ पर हँस रहे थे—निस्तब्धता मुझे आलिंगन कर रही थी—परन्तु मैं चलता ही रहा—अन्त में अथाह सागर के किनारे जा पहुँचा।

मैं खड़ा-खड़ा सागर की ध्वनि सुनने लगा। अचानक सागर के उस पार एक ज्योति दृष्टिगोचर हुई। वह ज्योति कुछ नहीं—केवल तुम्हारी मनोज्ञ मूर्ति थी।

मैं लालसा के झूले में पेंग मारने लगा।

क्यों ?—तुम्हारे पास पहुँचने के लिए।

परन्तु सागर के किनारे कोई नाविक न था—थी केवल एक टूटी-फूटी डोंगी।

मुझे साहस हुआ—मैं उस पर जा चढ़ा।

परन्तु खेने के लिए पतवार कहाँ ?

एकाएक लहरों के एक समूह ने डोंगी को कुछ आगे ढकेला और फिर चला गया। इसी प्रकार अनेकों लहरें आईं और डोंगी को कुछ-कुछ ढकेलकर आगे बढ़ाने लगीं।

अन्त में मैं सागर के पार हो गया—डोंगी से उतरा और तुम्हारी ओर बढ़ने लगा।

परन्तु यह क्या ?—मैं जितना ही आगे बढ़ता हूँ, तुम उतना ही पीछे हटते हो।

परन्तु मैं आशा-पथ का पथिक था। इसलिए मुझे अधिक दुःख न हुआ—मैं तुम्हारी ओर बढ़ता ही गया और अन्त में तुम्हारे निकट जा पहुँचा।

हाथ बढ़ाकर तुम्हें पकड़ना चाहा—स्वप्न टूट गया—आँखें खुल गईं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धारावाहिक उपन्यास—

जादूगर नर्तकी

श्रीसाधुशरण

[वेश्यापुत्री देवसेना अपने को दूषित वेश्यावृत्ति में फँसने से बचाकर, विवाह करके, पवित्र जीवन बिताना चाहती है। दूसरी ओर उसकी मा—मुक्ताबाई—पेशा चलाने के लिए उसको कुशल नर्तकी के रूप में तैयार कर रही है। उसने उसके लिए एक श्रीसम्पन्न प्रेमी—अपनी रियासत के राजकुमार—को फँसा लिया है। लेकिन देवसेना को, अपने हृदय की प्यास के कारण, यह पसन्द नहीं। वह एक अनजान युवक को प्यार करने लगी है और उसका परिचय जानने तथा उससे घनिष्ठता स्थापित करने के लिए उसके प्राण व्यग्र हो उठे हैं। पिछले दिन जब वह अपनी सहेलियों के साथ कृष्णघाट पर स्नान करने गई थी, संयोगवश उस युवक के पास पहुँचने का उसे अवसर मिल गया। वहाँ उसने गूढ़ शब्दों में उससे कुछ संकेत कर दिया और उस संकेत के अनुसार...]

(२)

राजपरिवार के मनोरंजन के लिए नर्तकियाँ रखने की प्रथा कृष्णगढ़ में बहुत पुराने समय से चली आ रही थी। इसके लिए उन्हें बड़ी-बड़ी जागीरें दी जाती थीं, लंबी-लंबी तनख़्वाहें बाँध दी जातीं और उनकी संतानों के लालन-पालन एवं संगीत-शिक्षा में हज़ारों रुपये ख़र्च कर दिये जाते थे। उनके मान-सम्मान की रक्षा के लिए भी राज्य से हर तरह की सहायताएँ दी जाती रहती थीं। वर्तमान समय की मुख्य नर्तकी मुक्ताबाई थी। उसकी पुत्री देवसेना के लिए भी बहुत कुछ ख़र्च किया गया था, और अब मुक्ताबाई की जगह उसकी उसी पुत्री को दी जानेवाली थी। उसी नियुक्ति के लिए आज राजमहल में देवसेना के नृत्य का प्रदर्शन होने जा रहा था।

महाराज की संगीतशाला में नृत्यसभा लगाई गई थी। एक तो राज्य के निमंत्रण, दूसरे देवसेना की ख्यातियों से बड़ी भीड़ इकट्ठी हो गई थी। उस लंबे चौड़े आँगन में ठेलमठेल दर्शक भरे थे। एक ओर बूढ़े नृपति का सिंहासन और उनके मित्र राजा सुशोभित थे; दूसरी ओर राज्य के उत्तराधिकारी राजकुमार—आनंदवर्द्धन, कई अन्य राज्यों के राजकुमार तथा राजपरिवार के दूसरे लोग विराजमान थे; तीसरी ओर राज्य के कर्मचारियों तथा नगर के रईसों की मंडली थी; चौथी ओर सर्वसाधारण नागरिकों की भीड़ थी; बीच में देवसेना, उसके साजिंदों तथा नृत्य के दौड़ के लिए यथेष्ट जगह छोड़ी गई थी। ऊपर की मंज़िल में स्त्रियों के लिए प्रबंध था।

देवसेना अभी नृत्यसभा में आई नहीं थी। वह संगीतशाला के शृंगार-भवन में अपने वस्त्राभूषण पहन रही थी। महाराज के सभा में पधारने की देर थी। प्रतीक्षा में लोग अधीर-से हो रहे थे। सबका हृदय उत्सुकता से भर उठा था, आँखें चंचल थीं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सहसा बंदूक़ की आवाज़ हुई—धड़ाधड़ सलामी दागी गई और महाराज ने सभा में प्रवेश किया। लोगों ने उठकर महाराज का अभिवादन किया और महाराज ने आसन ग्रहण किया। इसके बाद ही दूसरी ओर से देवसेना ने झमझम करके सभा में प्रवेश किया। चारो ओर आनन्द बरस पड़ा। उसने झुककर एक बार बूढ़े नृपति को सलाम किया, फिर चारो ओर घूमकर सारी सभा को। सभा में आते उसकी आँखें बिलकुल चंचल, उत्सुक और व्यग्र होकर किसी को ढूँढने लग गईं; पर जिसको वे ढूँढ रही थीं, वह कहीं दिखाई न पड़ा। देवसेना का मुख सूख गया। वह बिलकुल खिन्न, मलिन, चिंतित और हतोत्साह-सी होकर बैठ गई। उसके मानस में विचारों की धारा-सी बहने लगी—"क्या वह नहीं आया! क्यों नहीं आया? क्या वह मेरे निमंत्रण को समझा नहीं? मैंने तो स्पष्ट शब्दों में कह दिया था। अगर इतना भी संकेत नहीं समझ सकता, फिर प्रेमी कैसा! नहीं, समझ ज़रूर गया होगा। फिर क्यों नहीं आया? क्या संतरियों ने आने नहीं दिया? नहीं, आज तो सारे नगर के लिए खुला प्रदर्शन है, फिर एक वही क्यों न आने दिया जायगा! फिर क्यों नहीं आया? क्या यशोदा की बातों से वह डर गया? अगर इतनी-सी बात से वह डर गया, तो फिर प्रेमपथ के आगे के काँटों को कैसे पार करेगा! जब उसमें आत्मबलिदान करने का साहस ही नहीं, तब प्रेम क्या करने चला है! यह तो वह नगरी है, जहाँ प्राणों का कुछ मूल्य ही नहीं। यह तो वह देश है, जहाँ ग्रहण का नाम ही नहीं—बस त्याग है, समर्पण है, विसजन है! इस नगरी में पाँव देने पर तो रोने ही में आनन्द मिलता है! सताये जाने पर ही सुख की सच्ची अनुभूति होती है। फिर क्यों नहीं आया? हाय! जाओ मेरे प्राणों के....तुमने कुछ भी नहीं किया! मेरा सारा सुख मिट्टी में मिला दिया! एक छोटी-सी भूल से तुमने मेरे हृदय को टूक टूक कर डाला!....लेकिन अभी तो दर्शक आते ही जा रहे हैं! कौन जाने, आ ही जाय! आ जाओ, मेरे मनमंदिर के....! यदि वास्तव में तुम मुझसे प्रेम करना चाहते हो, तो मेरे हृदय की इस व्यग्र पुकार को सुनकर आ जाओ—फ़ौरन् आ जाओ...."

देवसेना कला को सजीव करनेवाले कुछ बड़े सुन्दर रत्नजटित आभूषण और कामदानी की बड़ी मूल्यवान् एवं नेत्ररंजक पेशवाज़ पहने थी। चुस्त कंचुकी पर कारचोबी का मख़मली बाडी और दामी रेशमी दुपट्टा उसके सौंदर्य को जगमग बना रहा था। रेशमी मोज़े, चिपकी जाँघिया! उसके पाँवों में छोटे-छोटे दानों के घुँघरू बँधे थे और हाथों में सुवासित रूमाल था। उसके बालों में कुछ ताज़े खिले प्राकृतिक और कुछ भारत के शिल्पियों के नाम को अमर करनेवाले रत्नों के कृत्रिम फूल लगे थे; गले में फूलों का सुन्दर गजरा था। वह सभा के बीच में अपनी पेशवाज़ फैलाये बैठी थी और उसके पीछे उसके साजिंदे साज मिला रहे थे।

अपनी पंक्ति में राजकुमार आनन्दवर्द्धन, जो देवसेना को एकमात्र अपनी प्रेमिका समझते थे और उसको अपने प्राणों के समान प्यार करते थे—जिन्होंने देवसेना पर अपने लाखों रुपये ख़र्च कर डाले थे और न-जाने कब की उसके सुख और सुविधाओं की सब व्यवस्थाएँ कर डाली थीं, बड़े ठाट-बाट से छैल-छबीले दूल्हा बने बैठे थे। आज वह बड़े प्रसन्न थे। इसलिए कि आज भगवान् ने उनको अपनी प्रेमिका के नृत्य, गान और वाद्य का कौशल जी-भर देखने का अवसर दे दिया है। दूसरा इसलिए कि मुक्ताबाई ने तो देवसेना को उनके हाथों में सौंप ही दिया था, लेकिन स्वयं देवसेना अब तक उनके हाथों में नहीं आई थी। उसको रिझाने के लिए उन्होंने न-जाने कितने उद्योग कर लिये थे, न-जाने कितनी चालें चल डाली थीं; पर वह, यद्यपि वेश्यापुत्री थी, उनसे अलग ही अलग छिटकी फिरती थी। अतः वह प्रसन्न थे कि शायद आज के उनके ठाट-बाट को देखकर देवसेना उन पर रीझ जाय। वह देवसेना पर बड़ी ही उत्सुक और तृषित दृष्टि गड़ाये हुए थे।

साजिंदों के पीछे देवसेना की माता मुक्ताबाई कई अन्य वेश्याओं के साथ बैठी थी। आज उसके समान प्रसन्न शायद संसार में कोई भी और नहीं था।

महफ़िलों ही में तो इनको अपना पेशा चलाने के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शिकार करने का यथेष्ट अवसर और यथेष्ट क्षेत्र मिलता है। उसको ऐसा जान पड़ता, जैसे पुत्री जनमाने का फल उसको आज भगवान् देने जा रहे हैं। उसके अंतर में नई-नई आशाओं, कामनाओं और उमंगों का मेला-सा लगता चला जा रहा था—"मैं अपनी लड़की के लिए एक राजकुमार को फँसाने में व्यग्र थी; आज न-जाने कितने उसके रूप-यौवन पर लट्टू हो जायँगे और कल ही से मेरे दरवाज़े पर धरना देंगे। यदि देवसेना ने मेरे उपदेशों से काम लिया, तो एक आनंद-वर्द्धन क्या, कल न-जाने कितने उस पर अपने प्राण देने लगेंगे। और आनंदवर्द्धन—यदि देवसेना ने मेरी शिक्षाओं पर ध्यान दिया, तो वह कल ही मेरे पाँवों पर नाक रगड़ेंगे, और जितना मैं माँगती हूँ उतना क्या, उसका दूना देकर संबंध-स्थापन के लिए जल्दबाज़ी करने लगेंगे। अब देवसेना का जीवन सुखी हो जायगा, और मेरा...." कभी-कभी वह शंकित भी हो उठती थी—"देखें, देवसेना क्या करती है! महाराज उसके नृत्य से प्रसन्न होते हैं या नहीं।"

और देवसेना—जो कुछ वह नहीं चाहती थी, जिसके नाम से उसे घृणा थी, आज वही कार्यरूप में परिणत होने जा रहा था। अतः उसका हृदय रो रहा था, प्राण तड़प रहे थे। उसकी चिर-चिर की प्रार्थनाएँ और ईश-स्तुतियाँ आज निष्फल हो रही थीं। उसकी कामनाएँ छटपटा रही थीं, आशाएँ तड़फड़ा कर जान दे रही थीं और उमंगों पर जैसे वज्र गिर गया था। उसकी रौनक क्षीण हो गई थी। वह ऐसी हो रही थी, जैसे फाँसी पर लटकाई जाने के लिए लाई गई हो। इतनी बड़ा महफ़िल में और इतने लोगों के बीच यह उसके नाचने आने का पहला ही अवसर था, अतः वह जब-तब लज्जा के बोझ से गड़-सी जाती थी। उसके जी में आता था, वह नाचने से इनकार कर दे और उठकर कहीं भाग जाय; लेकिन ऐसा कर ही कैसे सकती थी। जो कुछ उसकी मा चाहती है, उससे भिन्न करके वह कहाँ की रहेगी!

नृत्यसभा में पूर्ण शांति थी। सब लोग शांत, मौन और अपलक बैठे देवसेना पर दृष्टि गड़ाये हुए थे—कहीं एक सींक भी न हिलती, साँसों की ध्वनि भी न होती। सबके हृदय उत्सुकता से फूल रहे थे। सब चाह रहे थे कि देवसेना उठे और उसका नाच देखें

साजिंदे साज मिला चुके थे, खड़े होकर बजाने लगे। देवसेना का हृदय रो रहा था, लेकिन गले जो ढोल पड़ गया था, उसे तो बजाना ही था। अपने हृदय को धैर्य बँधाकर वह उठ खड़ी हुई। उसने एक बार झुककर बूढ़े नृपति को सलाम किया, फिर चारों ओर घूमकर एक बार सारी सभा को, फिर सीधी खड़ी होकर एक बार सभा में चारो ओर दृष्टि दौड़ाई। उसके उठते और घूमते हुए पाँव धम्म और धम्म से गिरे और उसके आघात से उसके घुँघरू गुंजार कर उठे—झम, झम-झम, झम, और तब जैसे मुर्दों में जान आ गई, सारी सभा के लोग चौकन्ने हो उठे। जो लोग ऊघ रहे थे, हड़बड़ाकर उठ बैठे और आँखें फाड़-फाड़कर देवसेना को निहारने लग गये। दर्शकों पर दृष्टि दौड़ाते हुए सहसा देवसेना चौंक-सी पड़ी। जिसके दर्शनों के लिए उसके प्राण व्यग्र थे और जिसको बुलाने के लिए उसने अपने हृदय में न-जाने कितना आवाहन किया था, उसने देखा, वह युवक संन्यासी अपना सितार लिये सर्वसाधारण नागरिकों की भीड़ के एक कोने में बैठा उसी तरह अपलक भाव से उस पर दृष्टि गड़ाये हुए है। देवसेना का हृदय आनंद से उछल पड़ा और उसके भीतर आप ही आप प्रश्न होने लगे—"क्या मेरे प्रेम ने इसको यहाँ खींच लिया? इसको भुलाकर मैं अपने नृत्य को सफल बनाने के लिए अपनी पीड़ा को मिटाने का उद्योग कर रही हूँ क्या ईश्वर ने मेरी उसी पीड़ा को फिर से हरा करने के लिए इसको यहाँ भेज दिया है? तो क्या यही मेरा वह प्रिय है, जिसके लिए मैं चिर-चिर से ईश्वर से प्रार्थनाएँ करती चली आ रही हूँ? तो क्या मैंने इसको पा लिया है? नहीं, पा कैसे लिया। न-नहीं पाया; फिर भी इसको जी-भर देखने, इसके सम्मुख अपने हृदयोद्गार को खुलकर प्रकट करने तथा अपनी कला और प्यार से क्षण-भर इसको प्रसन्न करने का अवसर तो भगवान ने मुझे अवश्य दे ही दिया है।" पल-भर में उसके हृदय का कुल रोदन, प्राणों की कुल तड़पन न-जाने कहाँ चली गई। उसका मुख खिल उठा। उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कामनाएँ फिर सजग हो उठीं, आशाएँ फिर लहलहा उठीं और उमंगों में फिर जान आ गई। एक नये उल्लास से उसका रोम-रोम पुलकाकुल हो उठा, मुख की मुरझाई रौनक फिर चमकने लगी। उसने एक बार अपने पाँवों से एक गति की और गर्व से अपना मस्तक ऊँचा कर दिया। उसके घुँघरू बोल उठे—झम-झम, झम-झम-झम, झम ; और तब, जैसे इस महफ़िल में स्वर्ग से कोई अप्सरा उतर आई हो—सबके हृदय पर आनंद बरस पड़ा, आँखें सौंदर्य के सागर में डूब गईं, होठों पर स्मिति छा गई।

देवसेना ने उस युवक को फिर देखा और फिर। वह उत्तरोत्तर आनंद में शराबोर होती जा रही थी। उसने देखा, युवक बहुत दीन परिस्थिति का मालूम होता है; वह संन्यासी नहीं, कोई भिखारी है। उसके कपड़े यत्र-तत्र फटे और सिले हुए थे—गुदड़ियों-से; गैरिक धोती, नारंगी चोगा, केसरिया साफ़ा, बग़ल में लाल झोला और सितार—उसके गायक और विचित्र प्रकृति के होने की सूचना दे रहे थे। उसके सिर में पट्टी बंधी हुई थी, जैसे कहीं घाव लग गया हो।

साज़िंदों ने साजों पर गाना आरम्भ कर दिया था। देवसेना ने पहले एक तिल्लाना गाया। इसका शुरू करना था कि उसकी बुलन्द आवाज़ से राजमहल गरज उठा। महफ़िल के लोग अकचका उठे और बाहर के लोग—जैसे उन पर कोई जादू कर दिया गया हो, कुछ चकित होकर राजमहल की ओर दृष्टि दौड़ाने लगे, कुछ दौड़ भी पड़े। तिल्लाना के बाद देवसेना ने एक ईशस्तुति गाई, फिर उस युवक संन्यासी से आँखें मिलाईं, फिर मिलाईं और फिर, और मुसकिराकर गाना आरम्भ कर दिया—

"बाँके रसीले तोरे नैना हो। बाँके० ॥"

वह संन्यासी अब तक बिलकुल शान्त, मौन, मलिन और भयभीत-सा बैठा था। देवसेना के गाना आरम्भ करते और आँखें मिलाकर मुसकिराते उसके हृदय पर आनन्द बरस पड़ा, होठों पर हठात् मुसकिराहट दौड़ गई, सारी मलिनता न-जाने कहाँ चली गई। वह कुछ और सजग होकर बैठ गया। देवसेना पूर्ण उल्लास, उत्साह, आनन्द और अनुराग से भरी हुई हृदय खोलकर नाचने और गाने लगी। अपने नृत्य में कभी वह मंडलाकार सरकती, कभी त्रिभुजाकार, कभी साधी और कभी एक केन्द्र पर चक्रनृत्य करने लगती थी। उँगलियों को मिलाकर भुजाओं का मंडलाकार घेरा बनाये कभी दर्शकों की इस पंक्ति के आगे से थिरकती सरक जाती, कभी उस पंक्ति के आगे से; और, नाचते-नाचते और गाते-गाते वह जब-तब अपनी प्रेममदमाती आँखें उस युवक की आँखों से मिला लेती थी—इतनी कुशलता से कि रहस्य किसी पर भी प्रकट न हो; और तब, पल-भर में ही दोनों की आँखें आपस में न-जाने कितनी बातें कर लेती थीं; एक बार दोनों के होठों पर अस्पष्ट मुसकान खेल जाती, युवक एक बार संतोष की साँस लेता और देवसेना अपनी मुसकानों को छिपाकर फुर्ती से अपने नृत्य में तन्मय हो जाती थी। दर्शक पत्थर की मूर्तियों से स्तंभित बैठे थे; उसकी पाँवों की चंचलता, मोहिनी स्वरमाधुरी और नृत्य की अभूतपूर्व कुशलता पर हृदय-प्राण से निछावर हो रहे थे। वह आनन्द से उछलती हुई पूर्ण तन्मयता से नाच रही थी और गा रही थी—

बाँके रसीले तोरे नैना हो।
जब से देखी सुरतिया तुम्हरी,
पल ना पड़त मोहे चैना हो।
जब से पिय तुम नेहवा लगाय गये,
तड़पत हूँ दिन रैना हो।
बाँके रसीले तोरे नैना हो।

प्रत्येक कड़ी को वह उस युवक को संबोधित कर ही गाती थी, लेकिन इतनी कुशलता से कि कोई भी इस रहस्य को ताड़ नहीं पाता था। नृत्य के साथ जब वह सरकने लगती, उसके पाँवों की गति और अंगों के संचालन पर दर्शकों के पलकों की गतियाँ रुक जाती थीं। धनुषाकार कभी वह आगे को झुकती, कभी पीछे को, कभी इस बग़ल, कभी उस बग़ल। उसकी थिरकन और चेष्टाएँ कभी इतनी धीमी होतीं कि दर्शकों को उसके पाँवों की गति और अंगों का कम्पन भी न ज्ञात होता था, और कभी इतनी तीव्र कि उसके गतिकुशल पाँव कब उठते, कैसे उठते और कब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहाँ कैसे गिरते हैं, इसको उद्योग करके भी लोग देख नहीं पाते थे। कभी धीरे-धीरे बैठती, कभी उठती, कभी ढुरकती। और, चारो ओर से नाचकर हर बार वह उस युवक के आगे आ जाती और अपने प्यारों से उसको नहलाकर—उसके हृदय-प्राण पर आनन्द बरसाकर फिर आगे निकल जाती थी। उसके लास्य की सुकुमारता, करण और अंगहार क्रियाओं के कौशल, कटि, वक्ष, पार्श्व और भ्रू की चेष्टाओं का सौकुमार्य और भुजाओं की आवेष्टित एवं उद्वेष्टित क्रियाओं को देखकर लोग दाँतों उँगली दबा रहे थे। एक तो अप्सराओं को लज्जित करनेवाला अलौकिक सौंदर्य, दूसरे गुलाब की सद्यःविकसित कलिका-सा, अबोध लज्जा और चपल सुकुमारता से भरा, अभिनव यौवन, उस पर लाखों का दामी साज-शृंगार और सबके ऊपर गान, वाद्य और नृत्य की माधुरी का ऐसा अभिन्न सहयोग—फिर क्या था, युवकों के हृदयों पर साँप लोट रहे थे। उसकी विद्युत् की-सी चंचलता और लता की-सी लचक देखकर लोग दंग रह जाते थे। जब वह थिरकने लगती, साजिंदों के साज दूर, उसके घुँघरू से एक मधुर ध्वनि उठती, जो किसी दिव्य संगीत-सी हृदय-हृदय में चुभने लग जाती थी; जैसे उसके घुँघरू भी उसके स्वर में स्वर मिलाकर गा रहे हों। प्रेमद्रवित कंठ से उद्भूत होती स्वर-लहरियों पर प्रत्येक का हृदय कम्पित हो उठता था। और, यह सब था उस युवक संन्यासी के वहाँ होने के कारण। देवसेना का रोम-रोम उसके प्रेम में अनुरंजित हो उठा था। उसकी स्वरमाधुरी उसके प्रेम में आर्द्र थी, उसके भावों में उसके प्रेम की पुट थी, और उसके अंगसंचालन की प्रत्येक गति, प्रत्येक क्रिया एवं प्रत्येक चेष्टा में उसे प्रसन्न देखने की आकुल प्रेम-पीड़ा भरी हुई थी। पर और तो और, स्वयं देवसेना भी इस रहस्य से अनभिज्ञ थी। नृत्यसभा में चारो ओर आनन्द बरस रहा था। लोग मस्त हो रहे थे। यों तो सबकी आँखें देवसेना पर गड़ी थीं, पर ख़ास तौर से एक ओर इस राज्य के राजकुमार आनन्दवर्द्धन बैठे उस पर आँखें गड़ाये हुए थे, दूसरी ओर वह दीन भिखारी। राजकुमार की आँखें चंचल थीं, हृदय आकुल था। उनकी कामनाएँ बड़ी व्यग्रता से रो रही थीं कि एक बार देवसेना मुझसे आँखें मिलावे, मेरी ओर मुड़कर नाचे, मेरे आगे बैठे; पर देवसेना को उनकी इन कामनाओं पर ध्यान कहाँ! वह अपने ही सुख में मस्त थी, अपने सर्वस्व के साथ अपने प्रिय में लय थी। उसे किसी और के सुख की चिन्ता कहाँ? सहसा राजकुमारों की पंक्ति से उठकर कंचनगढ़ के राजकुमार देवसेना के पास दौड़ आये और उसी के-से हाथ-पाँव घुमाकर, भाव बता-बताकर, वैसा ही नाच और गाने लगे। सभा में एक अस्फुट कोलाहल छा गया। आनन्द, आश्चर्य, कौतूहल और आशंका के भाव प्रत्येक के मुख पर खेलने लगे। किसी को हँसी आ गई, कोई घबरा-सा गया, कोई टकटकी बाँधकर अपने को भूल ही-सा गया। आनन्दवर्द्धन ने दौड़कर अपने मित्र को पकड़ लिया और खींचकर फिर अपने पास बैठाया। लेकिन उस राजकुमार की दशा अब कुछ विचित्र-सी हो गई थी। वह जैसे अपनी सुध-बुध में नहीं थे। अनेकों के रोकते रहने पर भी वह सभा से उठकर नाचते और गाते हुए बाहर निकलकर भाग खड़े हुए और लाख पकड़ते रहने पर भी किसी की पकड़ में न आये। कंचनगढ़ के राजकर्मचारी लज्जा और किसी अनिष्ट की आशंका से घबरा-से गये। वे भी उठ-उठकर अपने राजकुमार के पीछे दौड़े। नृत्यसभा की शान्ति भंग हो गई। मुख-मुख पर चिन्ता, भय और शोक की छाया दौड़ गई। कृष्णगढ़-नरेश ने सभा-भंग करने की आज्ञा दे दी; लेकिन जैसे दर्शकों के प्राणों में देवसेना घुस गई हो और सभी उसको अपने प्राणों के समान प्यार करने लगे हों, उसको देखने की ओट करने के ध्यान ही से सबके हृदय तड़फड़ा उठे। महाराज के सभा-भंग की आज्ञा दे देने पर भी किसी ने सभा से उठने का नाम नहीं लिया; सब लोग पत्थर की मूर्तियों-से ज्यों के त्यों शान्त, मौन और अविचल बैठे ही रहे, जैसे किसी मंत्रशक्ति से स्तंभित कर दिये गये हों। महाराज की आज्ञा के विरुद्ध किसी को कुछ कहने का साहस नहीं होता था; लेकिन सबकी मौन चेष्टाएँ और मुख के करुण भाव स्पष्ट व्यक्त कर रहे थे कि सब महाराज से प्रार्थना कर रहे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं कि कुछ देर और नृत्य होने दिया जाय। कितनों ने लम्बी साँसें खींचकर कह भी दिया—"आह! जमते ही रंग में भंग हो गया!" आख़िर महाराज के कुछ मित्रों और उच्च-पदाधिकारियों ने कुछ देर और नृत्य जारी रखने के लिए अनुरोध कर ही दिया। विवश होकर महाराज ने आज्ञा दे दी। फिर सभा में आनन्द बरस पड़ा और दर्शकों के मुखों पर फिर प्रसन्नता छा गई।

साजिंदों ने फिर बजाना शुरू किया। इधर देवसेना ने भी एक बार संतोष की साँस ली। रूमाल से अपना पसीना पोंछते हुए उसने फिर उस युवक से आँखें मिलाकर उस पर अपना प्रेम प्रकट किया; फिर आँखें मिलाईं और फिर; और उसी को संबोधित करके एक बार मुसकिराकर फिर नाचना और एक ग्राम्य गीत गाना आरंभ कर दिया—

मैं नहीं मानूँगी बालम! कँगनवाँ ला दो।
आँगी मँगा दो, डुपट्टा मँगा दो;
धानी बनारस की साड़ी मँगा दो।
सोने की चौकी पर गोटी बिछाऊँ,
चलो प्रेम-पाशा सिखा दो॥ मैं नहीं०॥

वह युवक भी मुसकिरा उठा, और इस बार दोनों की मुसकानें स्पष्ट प्रकट थीं—औरों ने न भी देखा हो, पर राजकुमार आनंदवर्द्धन ने देवसेना को उस युवक की ओर और उस युवक को देवसेना की ओर देखकर मुसकिराते और प्रसन्न होते स्पष्ट देख लिया। किसी और ने तो इस बात को कुछ महत्त्व नहीं दिया, लेकिन आनंदवर्द्धन क्रोध से जल-से उठे। लेकिन देवसेना का इनके क्रोध की ओर ध्यान कहाँ! वह आनंद से उछलती हुई नाच रही थी और गा रही थी—

मैं नहीं मानूँगी बालम! कँगनवाँ ला दो।
तोशक मँगा दो, गलैचा मँगा दो;
पाटा व रेशम की डोरी मँगा दो।
अमवा की बगिया में झूला लगाऊँ,
चलो मुझे पैंगें खिला दो॥ मैं नहीं०॥

जब-तब एक अस्फुट हर्षध्वनि से सारा भवन ध्वनित हो उठता था और लोग आपस में साँय-फुस करने लग जाते थे—"वाह! ऐसा नृत्य तो जन्म पाके अब तक कभी देखा ही नहीं; इसने तो कमाल कर दिया। इसी अवस्था में जब यह हाल है, आगे चलकर न-जाने क्या करेगी। अप्सराओं के नृत्य का केवल नाम सुना करते थे, इसने तो आँखों दिखला दिया; भई, वाह! इसने तो मर्त्यलोक को ही स्वर्ग बना डाला।"

इधर देवसेना पूर्ण तन्मयता, उल्लास और उत्साह के साथ नाच रही थी और गा रही थी। इसी बार उसका नृत्यकौशल पूर्णतः प्रस्फुटित हुआ था, अंगोपांगों की क्रियाओं में सौकुमार्य और स्वर में वास्तविक माधुर्य आया था। अनुरागरंजित स्वरलहरी से वायुमंडल गरज उठा था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे उसका अपने प्रिय के प्रति का चिर-चिर का संचित अनुराग आज फूटकर उसके रोम-रोम से प्रवाहित हो उठा हो, उसका उल्लास साकार होकर तांडव कर रहा हो, उसकी वर्षों की छिपी प्रेम-वेदनाएँ आज प्रकट होकर रो रही हों और वह अधीर होकर अपने प्रिय से लिपट जाने के लिए दौड़ पड़ी हो। साजिंदे बड़ी मधुरता से उसके स्वर में साजों के स्वर मिलाये हुए थे। सारंगी बड़ी तीव्र गति से रुनुरुनु कर रही थी, तबला शोख़ी के साथ धिनिक-धिन-धिनिक-धिन बोलने में मस्त था और मजीरे किटकिट-किटकिट-टाँय किट-किट-टाँय की झड़ी लगा रहे थे। घुँघरू की मधुर ध्वनि से आँगन गूँज उठा था।

लेकिन खेद! अधिक से अधिक सतर्क होने और सावधानी रखने पर भी देवसेना इस बार अपने प्रेम-रहस्य को अप्रकट न रख सकी। अनेक लोगों ने ताड़ लिया, उसके संकेत और चेष्टाएँ उस सितारवाले युवक की ओर हैं। एक-एक कर लोगों की आँखें उस युवक को घूरने लगीं। राजकुमार आनंदवर्द्धन क्रोध से जल-कर आगबबूला हो उठे। उन्हीं की सभा में, उन्हीं के ख़र्च से पलने और शिक्षा पानेवाली एक नर्तकी एक साधारण व्यक्ति की ओर इस तरह आकर्षित हो और उनकी ओर एक बार भी आँख न उठावे—यह उनके लिए असह्य था। उनकी जलती आँखें उस युवक को भस्म कर देने के लिए उस पर गड़ गईं। उन्होंने देवसेना पर अपना इतना अधिक ख़र्च करके ही क्या पाया, जब वह एक साधारण युवक—एक तुच्छ भिखारी पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपना इतना अधिक प्रेम प्रकट करे और उनकी ओर कभी भूलकर भी एक बार न देखे ! राजकुमार आपे से बाहर हो रहे थे। यदि पिता के सम्मुख और भरी सभा में न होते, तो न-जाने क्या कर गुज़रते। फिर भी उन्होंने अपने एक शरीर-रक्षक से उस संन्यासी की ओर संकेत करके कहा—"वह युवक कौन है, कहाँ रहता है, क्या करता है, इसका पता लो। उस पर पहरा बैठाओ और नृत्यसभा के भंग होने पर उसको पकड़कर मेरे पास ले आओ।" इधर बूढ़े नृपति की भी भौंहें तन गईं—उनकी सभा में एक नर्तकी, कुल बड़े-बूढ़ों की लाज-लिहाज त्यागकर, एक युवक की ओर इस तरह से आकर्षित हो, अपने संकेतों और चेष्टाओं से उसके सम्मुख अपना प्रेमोद्गार प्रकट करे, ऐसी भरी सभा में सबका ध्यान भुलाकर उसे रिझाने के लिए अनेक अश्लील एवं धृष्ट चेष्टाएँ करने लगे—यह उनकी सभा के सम्मान का अपमान था. सभ्यता पर स्पष्ट कलंक था। देवसेना की माता भयकंपित और उसके साजिंदे शंकित हो उठे थे। उन्होंने उसका ध्यान आकर्षित करने तथा उसे सावधान करने के लिए अनेक मौन संकेत किये, अनेक बार आँखें दिखाईं; पर देवसेना का उनके संकेतों और आँखों की ओर ध्यान कहाँ। वह तो अपने प्रिय के प्रेम में पगली हो उठी थी। उसे अपने ही तन की सुध नहीं थी। इस समय वह ऐसी हो रही थी, जैसे कोई अबोध बच्चा किसी खिलौने के लिए मचल पड़ा हो और अपने किसी स्वजन के सम्मुख नाच-नाचकर अपना हठ प्रकट कर रहा हो। वह बार-बार उस युवक से आँखें मिलाती, कभी उसके सम्मुख हाथ जोड़ लेती, कभी बैठ जाती, कभी गलबँहियाँ देने का भाव बताती और कभी अपने करतलों को फैला कर गाती थी—

"मैं नहीं मानूँगी बालम, कँगनवाँ ला दो।
जूही मँगा दो, सोनजूही मँगा दो;
बेला व चम्पा-चमेली मँगा दो।
फूलों में चंदन की शय्या सजाऊँ,
चलो भर बय्याँ सुला दो। मैं नहीं०॥"

जब किसी भी मौन संकेत से देवसेना का ध्यान न खिंचा, तो मुक्ताबाई ने उसे पुकारा—"देवसेना!"

लेकिन कौन सुनता है! देवसेना का इस ओर ध्या कहाँ! उसे तो नृत्यसभा में होने का भी ज्ञान न था। वह ऐसी बेसुध हो रही थी, जैसे किसी एक स्थल में नाच रही है, जहाँ एक वह है और दूस उसका प्रिय। जब नाचती थी, उसका अंचल बार-बा गिर जाता था और तरुणाई के नशे में बेसुध वक्षःस्था तथा दूसरे अंग बेपरद हो उठते थे; जब चक्र म मयूरी नृत्य करती थी और उसकी पेशवाज़ मयूर पंखों की तरह फहरा उठती थी, तब उसकी जंघाएँ ब खुल जाती थीं; लेकिन उसको इनकी परवा नहीं नृत्य की गति कहीं और जा रही थी, साजिंदों साजों का मीलित स्वर कहीं और; उसके संगीत स्वर कहीं और जा रहा था, तो घुँघरू की ध्वनि भ और! उधर हमारा युवक संन्यासी भी बेसुध देवसेना में पूर्णतः लय था।

और, अब यह दृश्य कृष्णगढ़-नरेश के लिए असह्य था। उन्होंने देवसेना को सावधान करने के लिए एक बार स्वयं पुकारा—"देवसेना!" लेकिन जब इस पर भी देवसेना का ध्यान न खिंचा, तब वह गरज उठे—"बस, हो गया। बंद करो नाच। यह धृष्ट गंधर्वकन्या राजमहल की नर्तकी होने के योग्य नहीं; निकालो इसको जल्दी नृत्यसभा से।" इधर से मुक्ताबाई क्रोध से विभूत हो उठ खड़ी हुई और महाराज के सामने ही उसी भरी सभा में, देवसेना के गाल पर ज़ोरों की एक चपत लगा दी।

सहसा चारो ओर सन्नाटा छा गया। देवसेना हक्का-बक्का-सी हो उठी। जब उसको अपनी सुध आई और वर्तमान दुर्घटना का ज्ञान हुआ, काटो तो ख़ून नहीं। लज्जा से वह ज़मीन में गड़-सी गई। उसने एक बार अपना सिर गाड़ा, सो फिर नहीं उठाया। उसका सारा शरीर पसीने से तर था।

कृष्णगढ़-नरेश उठ पड़े। सभा भंग हो गई।

(क्रमशः)

* सर्वाधिकार लेखक के अधीन।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैं

चिरंजीलाल, 'एकाकी'

मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

मैं व्यथित बादलों की पुकार, उनके उफने दिल का गुबार,
मैं मौन विचुम्बित केश-पाश, मैं उलझा-सा हूँ एक प्यार।
मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

पागलपन की सिहरन अपार, पीड़ा का लेकर विपुल भार,
रो-रोकर करता यह पुकार, मैं जली चिता, बुझता अँगार।
मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

पग-पायल की अंतिम रुनझुन, जर्जर वीणा का मौन तार,
जो सुना चुकी हैं मदिर गान, उन आँखों का ढलता खुमार।
मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

मैं श्वास-तप्त बहता समीर, अलसित पलकों का नेह नीर,
जो बिखर चुके विद्रुम अजान, उनमें लिपटा-सा मूक प्यार।
मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

जो बहक चुकी है बार-बार, मेरी धड़कन का तोड़ द्वार,
उस विह्वलता का करुण राग; गत स्वप्नों की छाया असार।
मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

उर्मिल विहान का म्लान हास, मैं सान्ध्य-क्षितिज की क्षीण ज्योति,
जिसमें रहता नित तिमिर वास, उस कुटिया की आकुल पुकार।
मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

जो नयनों से रिसता प्रतिपल, उस जीवन का बुझता चिराग़,
जिस पर न चढ़ा फिर कभी फूल, ऐसे दिल का टूटा मज़ार।
मैं अश्रु-बिन्दु सा निराधार।

स्वप्निल बिहाग की मूक साध, उजड़ी समाधि का हरा दाग़,
जिसमें बिखरा था कभी प्यार, उस खँडहर का अति दीन द्वार।
मैं अश्रु-बिन्दु-सा निराधार।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शराबबंदी के पहले

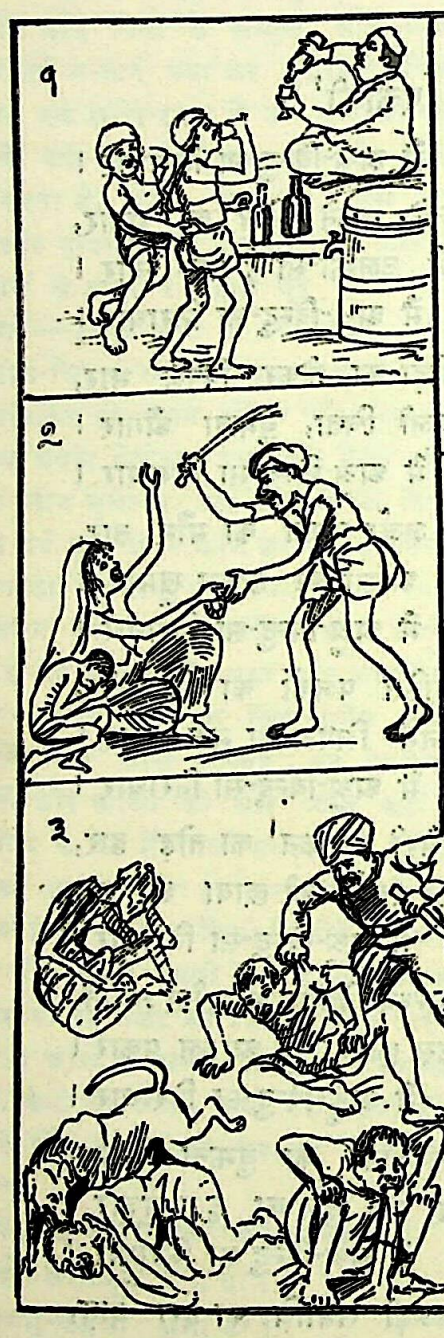

शराबबंदी के बाद

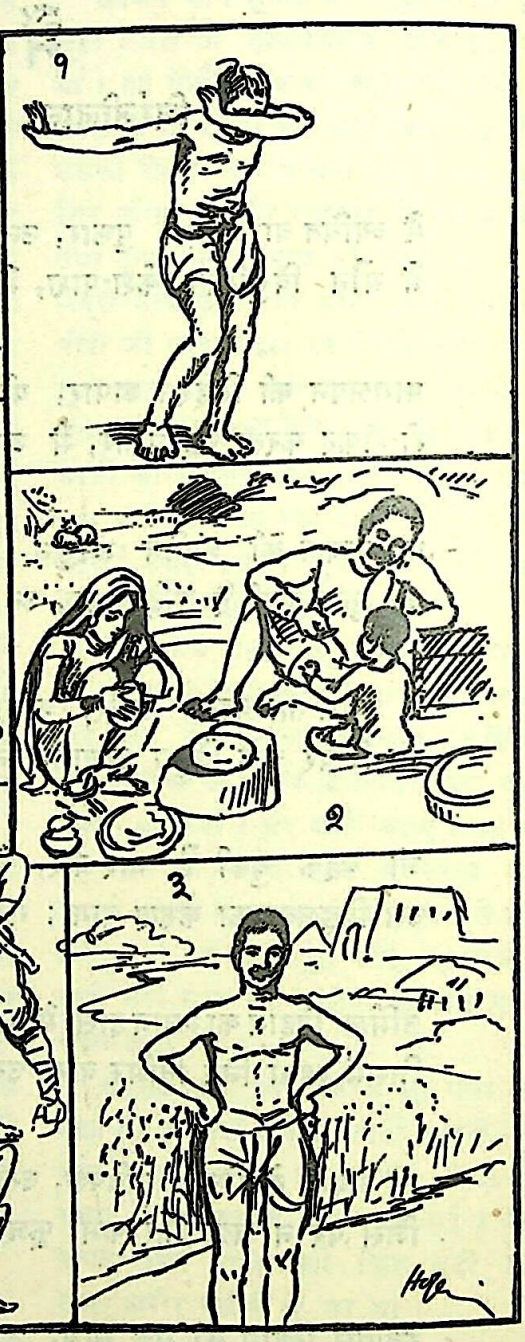

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

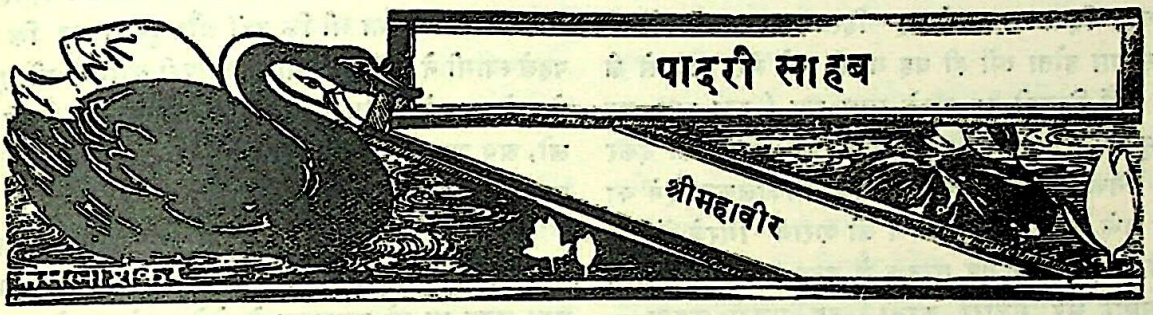

दूसरे दिन अपने आपको ख़तरे से बाहर न समझकर मैं वहाँ से भागा और मकदा जा पहुँचा। पुराने पापों के कारण, वहाँ एक पादरी से मेरा सम्बन्ध हो गया। मैंने उससे भिक्षा माँगी। उसने पूछा, क्या तुम गिरजे में प्रार्थना के वक़्त मेरी मदद करने के योग्य हो? मैंने 'हाँ' में जवाब दिया; क्योंकि उस बूढ़े ने ऐसी बुरी तरह रखकर भी मुझे कई अच्छी बातें सिखला दी थीं और उनमें से यह भी एक थी। पादरी ने मुझे वहीं पर नौकर रख लिया।

उसके पास एक बड़ा भारी पुराना-सा सन्दूक़ था जिसकी ताली वह हमेशा कमर में बाँधे रहता था। जब गिरजे से दान में मिली हुई रोटी आती, तो वह अपने हाथ से उसे सन्दूक़ के हवाले करता और बड़े ध्यान से चाबी घुमाता।

सारे घर में खाने को तिनका भी न था। खाने की जैसी चीज़ें और घरों में होती हैं, उनको देखने से ही मुझे कुछ सांत्वना मिलती। लेकिन यहाँ तो घर में कुछ प्याज़ ही खाने के लिए थे और वह भी ताले में! हर चौथे दिन मुझे एक प्याज़ मिलता। जब मैं वह लेने के लिए चाबी माँगता, तो पादरी चेतावनी भरे स्वर में कहता, "यह लो, पर वापस जल्दी कर देना; क्योंकि मन्त्रमुग्ध कर देनेवाले उस कमरे में जाने के बाद आने की सुध ही नहीं रहती।" मैं सोचता—"क्या कहने हैं! आख़िर दुनिया भर की मिठाइयाँ जो वहाँ पड़ी हैं!" पर वह तो धागे में पिरोये उन प्याज़ों का भी हिसाब रखता। अगर कहीं मैं ज़रा ज़्यादा ले लेता तो मुझ पर प्रलय ही आ जाता।

इस तरह मैं तो भूख के कारण मर ही जाता। अपने आप पर तो वह फिर कुछ न कुछ ख़र्च करने को निकाल लेता था। पाँच पाई का मांस उसके भोजन के लिए पर्याप्त होता था। उसमें से वह मेरे साथ हिस्सा बाँटता था। परन्तु अपना हिस्सा अगर मैं मुँह में डालने के बजाय आँख में डाल लेता तो भी कुछ पता नहीं चलता। पर कई बार तो मेरे सौभाग्य से मुझे रोटी का एक छोटा-सा ग्रास भी मिल जाता। वहाँ इतवार को भेड़ का सिर खाने की रस्म थी। वह भी एक मँगाता था। जब वह पक जाता तो उसे वह तब तक न छोड़ता जब तक चुटकी भर भी मांस उस पर रहता। सूखी हड्डियाँ वह मेरी तरफ़ सरका देता—"लो रे खाओ। बड़ा भाग्य है तुम्हारा। ऐसी मौज तो पोप को भी नहीं है।" "परमात्मा करे उसे भी ऐसी ही मौज हो—" मैं अपने आपसे कहता।

जब मुझे पादरी के पास तीन सप्ताह हो गये तो मैं भूख से इतना सूख गया था कि कठिनाई से खड़ा रह सकता। समझ गया कि मैंने क़ब्र का रास्ता पकड़ लिया है और अगर परमात्मा या मेरी अपनी बुद्धि मुझे न बचायेगी तो मैं वहाँ पहुँच भी जाऊँगा। उस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बूढ़े के यहाँ मुझे कुछ तो सुयोग मिलता था। पर इस कमबख़्त पादरी की तो नज़र भी बहुत तेज़ थी।

जिस वक़्त हम गिरजे में होते, तब एक दमड़ी भी इसकी दृष्टि से न बच पाती। इसकी एक आँख लोगों पर होती और दूसरी मेरी उँगलियों पर। जब दान दिया जाता तो वह हिसाब रखता। ज्यों ही वह समाप्त होता त्यों ही वह थाली को मेरे हाथ से ले लेता। मैं जितनी देर उसके साथ रहा (रहा क्या, वह तो भूखों मरना था !) एक सिक्का भी उसे धोका देकर नहीं निकाल सका। उसे शराब निकालकर देने का काम मुझे कभी नहीं मिला। जो शराब गिरजे में बच जाती, उसे लाकर वह सन्दूक़ में बन्द कर देता। उसी पर सप्ताह भर गुज़ारा करता। वह मुझसे कहता—"देखो न भाई, पादरियों को खाने के बारे में बहुत खुला नहीं होना चाहिए। मैं तो औरों की तरह खाने-पीने में जुटना बुरा समझता हूँ।" यह कहकर वह झूठ बकता ; क्योंकि लोगों की अर्थियाँ दबाने के बाद वह उनके यहाँ जानवरों की तरह खाता। और अर्थियाँ ! परमात्मा बचावे ! मैंने कभी मनुष्य जाति से शत्रुता नहीं की, पर उन दिनों में मैं करता भी क्या ? उन्हीं अवसरों पर तो मुझे भोजन मिलता था।

हर रोज़ मैं आशा लगाता और प्रार्थना करता कि परमात्मा जिन्हें चाहता है उठावे ! जब भी हम बीमारों के लिए प्रार्थना करने जाते तो पादरी सबको प्रार्थना में शामिल होने के लिए कहता ही, पर मैं सच्चे दिल से प्रार्थना करता कि हे प्रभु ! बीमार को दुःख से मुक्त करो, उसे संसार के मायाजाल में डालकर नहीं, बल्कि दुनिया भर के पापों से छुटकारा दिलाकर। अगर कहीं उनमें से कोई अच्छा हो जाता तो मैं उसे नष्ट होने के लिए दुआ देता, परन्तु जो मर जाता उसके लिए दी हुई असीसों में सबसे सच्ची मेरी होती।

जितनी देर मैं वहाँ था, क़रीब बीस लोगों ने ईश्वर का ऋण चुकाया और वे सब, मुझे विश्वास है, मेरी प्रार्थनाओं से मरे या मैंने मारे। मेरी हालत ऐसी थी कि मैं मानता था कि विधाता मुझे जीवन देने के लिए औरों को मृत्यु देता है। परन्तु लाचारी की कोई दवा न थी। मृत्यु-भोज के पश्चात् चौथे दिन के बाद फिर एक प्याज़ पर आना मेरे लिए सम्भव न था। इसलिए मुझे तो काल में ही सुख मिलने लगा। मैंने कई बार अपने मेहरबान स्वामी को छोड़ भागने का इरादा भी किया, पर दो विचारों के कारण मैं उसे कार्यरूप में परिणत न कर सका। पहला यह कि मैं अपनी कमज़ोरी के कारण भाग सकूँगा भी कि नहीं और दूसरा यह कि मेरे पहले स्वामी ने मुझे भूखों मारने की पूरी कोशिश की, दूसरे ने मुझे क़ब्र के किनारे तक पहुँचाने में कामयाबी भी पा ली, अब अगर कहीं तीसरा भी ऐसा ही मिला तो वह क़ब्र में धकेल ही देगा।

मैं हर घड़ी यही प्रार्थना करता कि कोई मुझे इस मुसीबत से बचावे। एक दिन जब कम्बख़्त स्वामी बाहर गया हुआ था तो परमात्मा के भेजे हुए देवता ने दरवाज़े पर खटका किया और पूछा—"क्या आपको कोई चीज़ मरम्मत करवानी है ?"

एकाएक मुझे एक विचार आया। मैंने कहा, "दुर्भाग्य से इस सन्दूक़ की चाबी खो गई है। मुझे डर है कि मेरा मालिक मुझे मारेगा। देखो, अगर तुम लगा सको तो मैं तुम्हें इनाम दूँगा।"

उस दैवी-दूत ने चाबियों का एक बड़ा गुच्छा निकाला और लगाने लगा। मैंने भी उसके प्रयत्नों को अपनी प्रार्थनाओं से और बढ़ाया। दोनों के परिणामस्वरूप सन्दूक़ का ढकना खुल गया। रोटी के उन फुलकों में मुझे प्रभु का चमत्कार दिखा। "मेरे पास पैसा कोई नहीं", मैंने अपने त्राता से कहा, "पर तुम चाबी मुझे दे दो और हाथ मार लो।" उसने अच्छी सी रोटी ले ली और ख़ुश-ख़ुश चला गया। मैं उससे कई गुना अधिक ख़ुश था। मैंने उस वक़्त तो कुछ न खाया कि कहीं पादरी ताड़ न जाय। अपने आपको इतने से ही सान्त्वना दी कि मेरे पास इतना मसाला पड़ा देख क्या मजाल है भूख की जो मेरे पास फटके।

मेरा मालिक लौटा और प्रभु की कृपा से मेरे देवता को दिये हुए भोग के बारे में वह कुछ न जान सका। दूसरे दिन जब वह बाहर गया तो मैं उस स्वर्ग में पहुँचा और एक फुलका हाथ और दाँतों में दबाते-दबाते निगल गया। फिर मैंने अपने ख़ज़ाने में ताला लगा दिया और इधर-उधर ऐसे ख़ुश कूदता फिरा, जैसे कोई राजा हो—यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सोचकर कि मेरी पुरानी ज़िंदगी बदलनेवाली है। दो-तीन दिन ऐसे ही बीते, परन्तु मेरे भाग्य में ऐसे रहना न लिखा था। मेरा मालिक सन्दूक़ की देखभाल कर रहा था; फुलकों को बार-बार गिन रहा था।

कुछ देर गिनने और सोचने के बाद वह बोला—"अगर मुझे इस ताले पर विश्वास न होता तो मैं समझता कि किसी ने मेरी रोटी चुराई है, फिर भी, सारा संदेह दूर करने के लिए मैं आगे से इन्हें गिन लिया करूँगा।"

"जहन्नुम के भिखमंगे, तुम पर प्रलय पड़े।" मैंने उसे आशीर्वाद दिया। भूख ने मुझे फिर तंग करना शुरू कर दिया था। उसे करना भी था; क्योंकि मैं फिर अपनी पुरानी हालत पर पहुँच गया था। वह बाहर गया ही था कि मैंने संदूक़ खोला। मेरी आँखों में प्रशंसा का प्रकाश आ गया, जिसे भोजन के ग्रास ही ला सकते थे। मैंने उन्हें ध्यान से गिना कि वह कम्बख़्त कहीं परमात्मा की मेहरबानी से कम गिनकर गया हो, पर वह तो बड़ा उस्ताद था। अपने प्रेम के उन लच्यों को मैंने हज़ारों बार चूमा। जहाँ-तहाँ ज़रा-ज़रा सा खुरचकर मुँह में डालकर ही मुझे सन्तोष करना पड़ा। दिन इसी तरह गुज़र गया। मेरी पहले की प्रसन्नता तो काफ़ूर हो ही गई।

लेकिन ज्यों-ज्यों भूख बढ़ती गई, वह मुझे पहले से भी अधिक तंग करने लगी; क्योंकि कुछ दिन मौज बहार लूटी थी। मैं सन्दूक़ को खोलने, बंद करने और अन्दर की चीज़ों के बारे में सोचने के सिवा कुछ न कर सकता था। फिर भी विधि ने, जो मर्त्यों को ऐसे कुसमय पर नहीं भूलती, मेरे दुःख को कुछ कम करने का रास्ता तो दिखा ही दिया। मैंने सोचा, "यह संदूक़ बहुत बड़ा और पुराना है और कई जगह थोड़ा-थोड़ा टूटा भी हुआ है। यह भी ख़्याल किया जा सकता है कि चूहे घुसकर रोटी कुतर गये। एक सारी रोटी तो लेना ठीक नहीं, पर दूसरा तरीक़ा अच्छा है। मैंने सभी से छोटे-छोटे टुकड़े कुतरे और जीने के लिए कुछ सहारा बना लिया।

पादरी आया और रोटी खाने के लिए संदूक़ खोलकर बैठा। नुक़सान देखकर वह बहुत निराश-सा हुआ। जैसा मैं चाहता था, उसने वह चूहों का काम समझा और इधर-उधर छोटे-छोटे छेद ढूँढ़ निकाले, जिनमें से वे अन्दर जा सकते थे।

उसने मुझे बुलाकर कहा—"देखो तो आज रात हमारी रोटी को क्या-क्या किया गया।" मैं ऊपर से बहुत हैरान था; पूछा, "हो किसका काम सकता है यह।"

"अरे, चूहे ही तो हैं। बदमाश कहीं के—उनसे कुछ नहीं बचता।"

खाने में भी मुझे मौज रही; क्योंकि उसने जहाँ-जहाँ भी 'चूहे' खा गये थे वहाँ-वहाँ से तोड़कर रोटी मुझे दी—"लो—खा लो—चूहे बड़े साफ़ जानवर होते हैं। तुम्हें भी साफ़ बना देंगे।"

इस तरह मुझे निर्वाह-योग्य साधन तो मिल गये। परन्तु अब मैंने उसे लकड़ी के टुकड़े लिये छेदों को भरते देखा। उसने लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े कीलों से ठोक दिये।

"हे प्रभो!" मेरी आँखों में आँसू आ गये, "एक तरीक़ा मुझे कुछ दिन सहारा देता नहीं कि छिन जाता है। क्या क़िस्मत है हम आदमियों की भी इस संसार में।"

उस मिस्री ने एक छेद भी नहीं छोड़ा था। अब उसमें मच्छर भी नहीं घुस सकता था। मेरी चाबी असहाय थी। अब?

ज़रूरत हर बात सिखला देती है। मेरी हालत मुझे दिन-रात छूटने के तरीक़ों में जुटाये रखती। जो भी बुरी से बुरी और नीच से नीच स्कीमें हो सकती थीं वे मेरे दिमाग़ में आईं। "अभाव से आदमी ठग बनते हैं और अधिकता से मूर्ख।" एक रात मेरा मालिक सोया हुआ था और मैं संदूक़ से दोस्ती बढ़ाने का सर्वोत्तम रास्ता निकाल रहा था कि मुझे एक ख़याल आया। मैं धीरे-धीरे उठा और एक पुराना-सा चाक़ू लेकर संदूक़ में छेद निकालने लगा। इतनी उमर से कमज़ोर हुई लकड़ी में जल्दी ही छेद हो गया। मैंने रोटी फिर वैसे ही खाई। जब पेट को कुछ मालूम हुआ तो वापस दरी पर आ पहुँचा।

दूसरे दिन पादरी ने मेरा काम ढूँढ निकाला—"इसका क्या मतलब है? मुझे इतनी देर यहाँ हो गई है। इस घर में चूहे कभी नहीं आये।" आते भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्यों ? सारे राज्य में खाद्य पदार्थों से शून्य कोई भी ऐसा घर न होगा।

हम यही करते रहे। जब वह एक सूराख़ बन्द कर देता तो मैं रात में दूसरा निकाल लेता। कुछ ही दिनों में संदूक़ में असली लकड़ी देखने को भी न रही। सब जगह मरम्मत ही हो गई। बेचारे पादरी ने अपनी महान् बुद्धि नाकाम देखी तो कहा कि हमें चूहों का ही इलाज करना चाहिए। एक चूहादानी वह किसी से माँग लाया। पनीर के कुछ टुकड़े, जो पड़ोसियों से माँगे गये थे, लगाकर उसने पिंजरा रख दिया।

रात को मुझे और भी आनन्द आया, जब मैंने रोटी के साथ पनीर खाया। दूसरी सुबह जब उसने रोटी के अतिरिक्त पनीर भी ग़ायब देखा तो उसका दिमाग़ ही घूम गया। वह पड़ोसियों के पास दौड़ा-दौड़ा गया और पूछने लगा कि ऐसा कौन-सा जानवर हो सकता है जो पिंजरा साफ़ कर जाय, लेकिन फँसे न ? सभी की राय थी कि चूहा यह काम नहीं कर सकता। एक आदमी, जिसका दिमाग़ ज़रा तेज़ था, कह उठा—"मैंने एक बार तुम्हारे घर के पास एक साँप देखा था। मैं तो समझता हूँ कि उसी की शरारत है। वहा बिना अन्दर घुसे खा भी सकता है।" साँप का नाम सुनकर तो पादरी महोदय काँप ही उठे।

अब उसे नींद न आती। थोड़ा-सा भी खटका होता तो वह डंडा हाथ में लेकर इतने ज़ोर से संदूक़ के इधर-उधर मारता कि पड़ोसी भी उठ बैठते। वह इस तरह उस साँप को कुकर्म करने से रोकना चाहता था। वह मुझे बिस्तर पर से उठाकर घास-फूस और कंबलों में देखता कि कहीं वहाँ तो वह पापी नहीं है। उसने सुन रक्खा था कि साँप सरदी में गर्म जगहों पर होते हैं और लोगों को बिस्तर में काट भी लेते हैं।

अब वह इतना सतर्क हो गया कि साँप महाशय को भी काम बन्द करना पड़ा। पर जब वह सुबह गिरजे को जाता तो साँप को फिर वक़्त मिल जाता।

वह इतना घबरा गया कि रात को कई बार घूमा करता। मुझे डर लगा कि कहीं मेरी चाबी को, जिसे मैं बिस्तर के पास रखता था, वह न पा ले, इसलि सावधान होने के लिए मैंने उसे मुँह में रखना शु कर दिया। यह मेरी आदत ही थी; क्योंकि उस बू अन्धे के पास नौकरी के समय यही एक जगह थी जहाँ मैं कुछ पैसे रख लेता, जेब वग़ैरह तो वह देखता रहता था।

लेकिन दुर्भाग्य के आगे कौन ठहर सकता है ? एक बार रात को सोये हुए, मेरा मुँह कुछ खुला था। चाबी ऐसी जगह पहुँच गई कि ज़ोर की सीटी की आवाज़ हुई। मालिक ने इसे उसी साँप की आवाज़ ख़याल किया जो उसका इतना नुक़सान करता था। वह अपना डंडा लेकर धीरे-धीरे आया और मेरे सिर पर तड़ाक से एक धर दिया। मुझे बेहोश करने के लिए वह काफ़ी था। जब उसने देखा कि जिसे प्रसाद मिला है वह साँप नहीं है तो उसने मुझे पुकारा और छूकर देखा। ख़ून पाकर वह दौड़ा गया और रोशनी लाया। मैं कराह रहा था, पर चाबी मेरे मुँह में ही थी। वह दिखाई दे रही थी। मेरी परवाह न करते हुए उसका ध्यान चाबी पर ही गया।

"शुक्र है परमात्मा का", वह दुष्ट, साँप का शिकारी बोला, "साँप और चूहे जो मुझे तंग कर रहे थे और मेरा सारा माल खा जाते थे आख़िर मिल ही गये।"

तीन दिन मुझे मालूम नहीं क्या हुआ—मुझे होश ही न था। चौथे दिन मैं अपनी स्थिति देखकर हैरानी से चिल्लाया—"यह सब क्या है ?"

पादरी की तरफ़ से जवाब मिला, "कुछ नहीं। बस, मैं साँप और चूहे ही ढूँढ़ता रहा हूँ, जिन्होंने मुझे नष्ट कर डाला है।"

यहाँ चारपाई पर पड़े-पड़े मुझे कुछ खाने को तो मिला; क्योंकि मैं भूख से मर रहा था। चौदह-पन्द्रह दिन बाद जब मैं चलने के योग्य हुआ तो मेरे मान्य स्वामी ने मुझे दरवाज़े से बाहर करके कहा—"भई, अब तुम कोई नया स्वामी ढूँढो। मुझे तुम्हारे-जैसे सुयोग्य और चतुर नौकर की आवश्यकता नहीं।"

उसने मेरी तरफ़ पीठ करके किवाड़ बन्द कर दिये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीश्रीसद्गुरुसंग * (प्रथम खण्ड)—अनुवादक, श्रीपण्डित लक्ष्मीप्रसाद पाण्डेय। बंगाल के ब्राह्मसमाज में श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी (संवत् १८९८—१९५६) अत्यन्त प्रतिष्ठित और प्रभावशाली महापुरुष हो गये हैं। उनके व्यक्तित्व में जादू का-सा असर था। जो उनके सम्पर्क में आता था, उनका भक्त हो जाता था। ढाका-ब्राह्म-समाज में आचार्य होते हुए भी, उनकी प्रतिदिन की उपासना और प्रार्थना में वैष्णव-भक्ति का प्रवाह उमड़ा करता था और उसमें अवगाहन कर हिन्दू ही नहीं, ब्राह्म, मुसलमान और ईसाई तक मानसिक शांति पाया करते थे। गोस्वामीजी के अगणित शिष्य और भक्त थे। उनमें से प्रमुख श्रीकुलदानंदजी ब्रह्मचारी को बहुत दिन तक उनकी सेवा करने और बराबर उनके पास रहने का अवसर मिला था। ब्रह्मचारीजी गोस्वामीजी के विशेष कृपापात्र भी थे। उनको अपने सद्गुरु के महत्त्व को भली भाँति देखने का अवसर सदा मिलता था। वही नित्य वे अपनी डायरी में लिख लिया करते थे। इस प्रकार उनकी डायरी में एक सिद्ध पुरुष की सच्ची जीवनी पाई जाती है। ब्रह्मचारीजी की डायरियों की समस्त सामग्री बंगाली भाषा में, 'श्रीश्रीसद्गुरुसंग' नाम से पाँच भागों में प्रकाशित हो चुकी है। वे सब बहुत ही लोकप्रिय हैं। उन्हीं में से पहले भाग का हिन्दी-अनुवाद इस समय मेरे सामने है। मैंने इसको ध्यानपूर्वक पढ़ा है। मैंने डायरी के रूप में लिखी हिन्दी की कुछ कहानियाँ और दो-एक उपन्यास अवश्य देखे हैं; परन्तु तिथिक्रम से व्योरेवार किसी विशेष उद्देश्य का विवरण देनेवाली डायरी छपी हुई नहीं देखी। इस दृष्टि से भी प्रस्तुत पुस्तक हिन्दी में एक अभाव को पूरा करती है। जिस स्वाभाविक, अकृत्रिम एवं सुन्दर ढंग से श्रीब्रह्मचारीजी ने इसमें आप-बीती और देखी बातों का वर्णन किया है, उससे इस पुस्तक की

* श्रीमदाचार्य श्रीश्रीविजयकृष्ण गोस्वामीजी की देहाश्रित अवस्था का कुछ समय का वृत्तान्त तदीय कृपापात्र स्वर्गीय श्रीकुलदानन्द ब्रह्मचारी द्वारा ज्यों का त्यों लिखा गया। प्रकाशक—श्रीगौराङ्गसुन्दर ता २० नं० दर्माहाटा स्ट्रीट, बड़ा बाज़ार, कलकत्ता। श्रीगोस्वामीजी एवं अन्य कई महात्माओं के और पवित्र स्थलों के चित्रों से युक्त। मूल्य १।); प्रकाशक के अतिरिक्त श्रीअच्युत कुमारनंदी, ठाकुरबाड़ी, पुरी (उड़ीसा) और श्रीमैनेजर, ताराप्रिंटिंग वर्क्स, कमच्छा, बनारस से भी प्राप्य। छपाई, कपड़े की जिल्द आदि सब आवश्यक बहिरंग सुन्दरता यथेष्ट।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रोचकता किसी अच्छे उपन्यास से कम नहीं है। इतना ही नहीं, उपन्यास का कथानक कल्पित होने से वह स्थायी और चरित्र को सुधारनेवाला प्रभाव डाल ही नहीं सकता जो श्रीश्रीसद्गुरुसंग में वर्णित सच्चा वृत्तान्त डालता है।

आध्यात्मिक अनुभूतियाँ एक तो इने-गिने लोगों को होती हैं, दूसरे वे हर एक से बतलाई भी नहीं जा सकतीं। इस कारण धूर्त्तों की बन आती है, जो श्रद्धालु भक्तों की आँख में धूल झोंककर अपना उल्लू सीधा किया करते हैं। फलतः पाखंड का प्रचार होता है और लोगों में इन विषयों के प्रति अरुचि ही नहीं, घृणा भी उत्पन्न होती है। हर्ष का विषय है कि श्रीश्रीसद्गुरु-संग से भारतीय अध्यात्म के भव्य रूप की झलक देखने को मिलेगी और लोग उसकी ओर आकृष्ट होंगे। इसमें इस मार्ग पर चलनेवालों को पग-पग पर आनेवाली बाधाओं का ऐसा निष्कपट और सच्चा विवरण मिलेगा जिससे साधकों को बड़ा बल प्राप्त होगा। इसमें कभी कठिनाइयों से विचलित होने के प्रसंग मिलते हैं, तो कभी दृढ़ता के दृश्य भी देखे जाते हैं। इस ग्रंथरत्न को पढ़ते समय श्रीश्रीब्रह्मचारीजी की सरलता, तत्परता, लगन और मानसिक तथा भौतिक द्वन्द्व का सच्चा चित्र देखा जाता है, और साथ ही उनके पूज्य सद्गुरु के यौगिक तेज तथा असीम करुणा और वत्सलता के प्रभावशाली चमत्कार भी एक दूसरी ही दुनिया का परदा खोलते हैं। जो भगवान् के भरोसे अपनी जीवन-नैया इस भव-सागर में छोड़ देते हैं उन्हें कैसे सद्गुरु-खेवैया प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से पार लगाया करते हैं, यह इस ग्रंथ में जगह-जगह देखा जाता है। श्रीब्रह्मचारीजी को स्वप्नावस्था में भी श्रीसद्गुरु के द्वारा आगे होने-वाली घटनाओं की सूचना मिलती थी, कर्त्तव्य का आदेश मिलता था; प्रत्यक्ष तो उनके मुख से उपदेश सुनने के सुअवसर मिलते ही थे। उनके विस्तृत विवरण यदि हम सामान्य लोगों के आदर्श बन जायँ तो, आध्यात्मिक उन्नति की बात मैं अपने अनुभव के आ मैं उतने ज़ोर से नहीं कह सकता, जितने ज़ोर से कह सकता हूँ कि हमारे नित्यप्रति के सांसा जीवन में निश्चय ही महत्ता और शान्ति की प्रा हो जाय। इस सम्बन्ध के उद्धरण देकर इस परिच आकार बढ़ाने के लिए यहाँ स्थान नहीं है। इसलि मैं इतना ही कहूँगा कि इस पुस्तक के पढ़ने से बहलेगा, कुतूहल वृत्ति की उत्तरोत्तर वृद्धि होने से समाप्त करने तक पढ़ने का चाव निरन्तर बढ़ता जा और इसमें मिलेगी ऐसी सामग्री जो अपने पुरातन के प्रति आस्था उत्पन्न करेगी, उसके भव्य रू दिखावेगी और कमज़ोरियों से न घबराकर उ विजय पाने का उत्साह मन में बढ़ावेगी। इसके आ रिक्त जीवन को सन्मार्ग पर अग्रसर करेगी।

काशी के गवर्नमेंट संस्कृत कालेज के भूतपूर्व आ महामहोपाध्याय श्रीगोपीनाथ कविराज, एम्० ए० ने ग्रंथ में प्राक्कथन लिखकर इसका परिचय इसके हि पाठकों को कराया है। जैसा सब जानते हैं कि कवि जी ने निर्विघ्न आध्यात्मिक साधन करने में अपना जीवन बिताने के लिए पूरे समय तक प्रिंसिपल-प रहने के बहुत पहले ही, कुछ दिन हुए, अवसर प्र कर लिया है। ऐसे आध्यात्मिक ज्ञान और अनु सम्पन्न विद्वान् कहते हैं कि 'यह ग्रंथ आध्यात्मि उन्नति चाहनेवाले सभी साधकों को प्रिय लगता मेरी धारणा है कि इसको जो कोई भी पढ़ेगा, उसका प्रिय होगा। इसीलिए मेरा निवेदन है कि पढ़ने के लिए आवश्यक समय और धन का सदुप प्रत्येक आत्मकल्याण के इच्छुक व्यक्ति को करना चाहि पुस्तक निश्चय ही जीवन-संगिनी होगी।

आशा है, इस उपयोगी पुस्तक का खूब प्र होगा, जिससे हिन्दी में इसके अगले खंडों का प्रका भी सुगम हो।

रामबहोरी शुक्ल एम्० ए०, साहित्यरत्न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

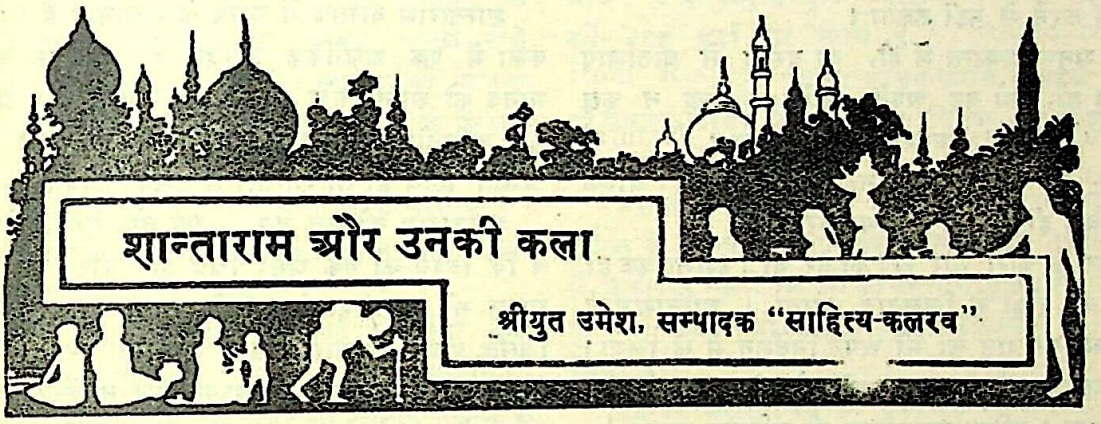

शान्ताराम और उनकी कला

श्रीयुत उमेश, सम्पादक "साहित्य-कलरव"

शान्ताराम 'प्रभात' फ़िल्म-कम्पनी के कुशल निर्देशक हैं। आपने अब तक 'अग्नि-कंकण', 'रानी साहब', 'अयोध्या का राजा', 'सिंहगढ़', 'सैरन्ध्री', 'माया मच्छीन्द्र', 'चन्द्रसेना', 'अमृत-मंथन', 'महात्मा', 'अमर-ज्योति' तथा 'दुनिया न माने' आदि मौलिक कलापूर्ण तथा महान् उद्देश्य से पूर्ण फ़िल्मों का निर्देशन किया है। प्रभात के ये सब चित्र सर्वोत्कृष्ट हैं। सन् १९२१ से १९३८ तक के अल्पकाल में ही शान्ताराम ने भारतीय फ़िल्म-चित्रयुग में प्रभात का नाम अमर कर दिया। शान्ताराम ने ख़ूब अच्छी तरह से भारतीय आत्मा को पहचाना है, एवं उनका दृष्टिकोण सदैव भारतीयता की ओर रहता है। भारतीयता की छाप उनके हृदय पर हर वक़्त रहती है। मानवता का सजीव प्रतिबिम्ब उनके प्रत्येक चित्र में रहता है। सैकड़ों व्याख्यान, हज़ारों पुस्तकें हमारे नवयुवकों के हृदयों पर भारतीयता की छाप लगाने में विफल होती हैं; पर शान्ताराम के चित्र हमारे युवकों के हृदयों पर एक विशेष छाप लगा देते हैं, जिससे युवक-हृदयों में क्रान्ति मच जाती है।

शान्ताराम सिनेमा-संसार में एक महान् आत्मा हैं। उनके हृदय-पटल पर कला की वास्तविकता का चित्र असफल नहीं होता और वह सिनेमा-इतिहास में अपना एक ख़ास स्थान बना लेता है। भारतीय कला, भारतीय संस्कृति तथा आदर्श का चित्रण करने में शान्ताराम ने उच्चातिउच्च स्थान ग्रहण कर लिया है। जहाँ पर शान्ताराम कला का आरम्भ करते हैं, वहाँ भारत के अन्य निर्देशक अपनी कला ही को समाप्त कर देते हैं। शान्ताराम सिनेमा के उद्यान में गुलाब का फूल हैं, जिनका सौरभ आज मानव-समाज में भारतीयता का सन्देश लेकर बस रहा है।

शान्ताराम की कला के विषय में कुछ लिखना सूर्य के सम्मुख दीपक दिखाना है, पर फिर भी हम प्रस्तुत लेख में उनकी कला पर सूक्ष्म प्रकाश डालेंगे। शान्ताराम की कला आज हमारे जीवन में पथ-प्रदर्शक बनने में सहायक हो रही है, अतः प्रत्येक मानव उनकी कला का अच्छी तरह अध्ययन करे, जिससे आत्मबल की उन्नति हो।

शान्ताराम कला के दिग्दर्शन में बड़े ही निपुण हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूक्ष्म से सूक्ष्म बात इनके निर्देशन से बाहर नहीं जाती। उदाहरण के तौर पर देखिए—'अमर-ज्योति' में सौदामिनी दुश्मनों के पंजे में फँस गई है। शेखर और रेखा सौदामिनी की बाट जोह रहे हैं। दोनों के आसपास पत्थर के रोड़े पड़े हुए हैं। शेखर उन्हीं टुकड़ों पर बैठा है। रेखा प्रश्न करती है, वह उसका जवाब दे देता है; पर उसका हाथ रोड़े के ढेर से खेलवाड़ करने से नहीं रुकता।

जब मनुष्य एकान्त में हो, या दूसरों से वार्तालाप कर रहा हो, तो वह अपने हाथों से कुछ न कुछ Natural actions अवश्य करता रहेगा। Natural actions को जान-बूझकर नहीं किया जाता; बल्कि स्वाभाविक ही Actions हुआ करता है।

शेखर के चारों ओर रोड़े का ढेर था। स्वाभाविक ही था कि वह रोड़ों से खिलवाड़ करता। शान्ताराम ने इस सूक्ष्म-सी बात को भी अपने निर्देशन में ले लिया। अन्य कलाकार ऐसी तुच्छ बातों को उपेक्षा करता हुआ छोड़ जाता। देखिए शान्ताराम की मस्तिष्क-चातुरी!

शान्ताराम की निर्देशन-शैली प्रत्येक खेल में उच्च कोटि की रही है। आप ही ने 'अमृत-मंथन'-सा महान् चित्रपट बनाया। 'अमृत-मंथन' में आपने दिखाया है कि 'पशुबलि और नरबलि को रोकना चाहिए।' इस चित्र को देखकर जनता दंग रह गई। नई दृश्यावली, नया संगीत तथा दृष्टिकोण हमारे सामने आया। भारतीय आदर्श, भारतीय संगीत और भारतीय कला का अनिर्वचनीय सुन्दर चित्र देश-भर में बड़ी सफलता से चला। चन्द्रमोहन वाटल, शान्ता आप्टे, नलिनी तर्खड आदि कलाकारों की झाँकी हमको 'अमृत-मंथन' में ही दिखाई दी। शान्ताराम ने इन सब कलाकारों को अपने सुन्दर निर्देशन से प्रसिद्ध बनाया। वास्तव में यह कलाकार शान्ताराम ही की देन है। देश उनका कृतज्ञ है।

'महात्मा' एक अछूतोद्धार का अपूर्व चित्र है। इसमें बाल गन्धर्व, मा० छोटू, के० नारायण काले तथा वासन्ती संसार की बाल-अभिनेत्रियों तथा बाल-अभिनेताओं में सर्वश्रेष्ठ हैं। इसका श्रेय शान्ताराम को है; क्योंकि यह उन्हीं की निर्देशन कला की सर्वोत्तमता का एक नमूना है। 'महात्मा' को देखकर लोग कल्पना कर रहे थे कि शान्ताराम का निर्देशन इस चित्र से अच्छा चित्र न दे सकेगा। पर जब 'चन्द्रसेना' चित्रपट लोगों ने देखा तो दाँतों तले उँगली दबाने लगे। एक महान् चित्रपट था। इस चित्रपट में शान्ताराम ने पाताल के इतने मनोहर, स्वाभाविक तथा कलापूर्ण दृश्य दिखाये हैं कि लोग उनकी कल्पना ही न कर सकते थे।

शान्ताराम वास्तव में ग़ज़ब के कलाकार हैं। उनकी कला में एक अलौकिक सौन्दर्य है, जो कि बरबस मानव को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। प्रभात को अद्वितीय बनानेवाले शान्ताराम ही हैं। अगर 'प्रभात' हृदय है, तो शान्ताराम उसका जीवन।

शान्ताराम को कब चैन! वह तो ऐसी खोज में थे कि विश्व को एक अमर चित्र दें, और वह इसमें सफल भी हुए। हमारे सामने आया 'अमर-ज्योति' जिसके प्रकाश से सारा संसार जगमगा उठा। उसमें था—'स्त्री बनकर सब अत्याचार सह न लेना चाहिए। कर्तव्य के सामने प्रेम को भूल जाना चाहिए।' इस चित्र ने विश्व में खलबली मचा दी। संसार की सर्व फ़िल्मों में यह सर्वश्रेष्ठ गिनी जाने लगी। नाच, गान, हास्य तथा दृश्य कमाल के थे, जिनके कारण अनेकों ने इसे अनेक बार देखा और फिर भी उनकी तृप्ति न हुई। दुर्गा खोटे जब भारत की प्रायः तमाम फ़िल्म कम्पनियों में चक्कर काट चुकीं, तो फिर 'प्रभात' में आ गईं और शान्ताराम के निर्देशन द्वारा अमर हो गईं। दुर्गा खोटे का आरम्भ तथा अन्तिम विकास शान्ताराम द्वारा ही हुआ है। चन्द्रमोहन वाटल की कला का अन्तिम तथा सर्वश्रेष्ठ सुसंस्कृत-रूप हम 'अमर-ज्योति' में ही देख सके। इतना अनूठा तथा अनुपम चित्र किसी भी निर्देशक ने नहीं बनाया और न कोई भविष्य में बना सकेगा। कम-से-कम इन पंक्तियों के लेखक का तो यही विश्वास है।

शान्ताराम कला के पुजारी हैं। प्रत्येक चित्र के साथ एक नवीन कला तथा नवीन आदर्श का सृजन करते हैं। उनके चित्रों में तथ्य, लालित्य, माधुर्य, हृदय को गुदगुदाने की शक्ति एवं स्थायित्व रहता है। उनका प्रत्येक चित्र ओजमय, अनूठा तथा मौलिक होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शान्ताराम सामाजिक चित्र के निर्देशन में भी सिद्ध-हस्त हैं और इसका प्रमाण 'दुनिया न माने' है। इस फ़िल्म का निर्माण करके शान्ताराम ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। 'प्रभात' की यह प्रथम सामाजिक कृति होते हुए भी, १९३८ की सर्वश्रेष्ठ तथा अभूतपूर्व रचना साबित हुई। शान्ताराम ने इस चित्र का निर्माण कर मानव-समाज का एक बड़ा भारी उपकार किया है। वह इस चित्रपट के बनाने में सफल ही नहीं हुए, बल्कि सबको पीछे छोड़ दो क़दम आगे बढ़ गये हैं। यह हमको मानना पड़ेगा कि शान्ताराम के इस नवीनतम सामाजिक फ़िल्म-चित्र 'दुनिया न माने' ने आज तक के बने हुए सामाजिक चित्रों को भुला दिया है। और यह सब क्यों? यह सिर्फ़ शान्ताराम के सामाजिक स्थिति को अच्छी तरह अध्ययन करने का फल है।

'दुनिया न माने' फ़िल्म का कोई भी भाग ऐसा नहीं, जो अप्रयोजनीय, अरुचिकर अथवा अनुपयोगी हो। उसमें प्रत्येक वस्तु दर्शनीय एवं मानव-समाज के लिए हितकर है। इस चित्रपट को देखकर कोई भी बूढ़ा मनुष्य शादी करने के लिए लालायित न रहेगा। यदि अभिलाषा की भी तो उसके सामने निर्मला-जैसी नारी का चित्र अवश्य चित्रित हो जायगा।

इस 'फ़िल्म-चित्र' के संवाद भी बड़े आकर्षक, ओजमय तथा मनोहर हैं। उदाहरणार्थ—'बूढ़ों ने जब अपनी लज्जा खो दी, अपना कर्तव्य छोड़ दिया तो छोटे व्यक्ति ही उनकी शर्म क्यों करें.....?'

निर्मला का उक्त उत्तर वास्तव में ठीक भी है। बूढ़े मनुष्य अनुचित कार्य करें और फिर भी उन्हें लज्जा न आवे—वे ही मनुष्य छोटे व्यक्तियों से लज्जा करने को कहें—यह कहाँ का न्याय है? Respect comes from Respect. अर्थात् इज़्ज़त कराने के पहले दूसरों की इज़्ज़त करनी होती है। सारा फ़िल्म ऐसे ही प्रभावशाली संवादों का कोष है।

'प्रभात' की दो कृतियाँ अन्तर्राष्ट्रीय फ़िल्म-प्रदर्शनी, वेनिस में जा चुकी हैं। शान्ताराम के ही तत्त्वावधान में 'तुकाराम'-जैसी फ़िल्मों का निर्माण हुआ है, जिनको दुनिया-भर की पहली तीन फ़िल्मों में स्थान मिला है।

अब निर्विवाद सिद्ध हो चुका कि शान्ताराम भारत के सर्वश्रेष्ठ निर्देशक हैं, और वक़्त आनेवाला है, जब शान्ताराम संसार के निर्देशकों में अग्रणी होंगे। भारत अपने इस होनहार कलाकार पर गर्व करेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो एक के लिए अमृत है, वही दूसरे के लिए विष है

श्रीसन्तराम बी० ए०

उस दिन सबेरे लाहौर की लारेन्स-वाटिका में वायुसेवनार्थ घूमते समय एक ओर "कुत्ता प्रदर्शिनी" का फट्टा लगा देख कौतूहल-सा हुआ। फट्टे पर लिखा था, भीतर जाने का टिकट एक रुपया। उसे पढ़कर मैं विचार-सागर में डूब गया। सोचने लगा, एक ओर तो इन नागरिक लोगों की विलासिता है जो कुत्तों को एक घंटा भर देखने के लिए ही एक रुपया ख़र्च कर देते हैं, और दूसरी ओर भारत के कोटि-कोटि कंगाल ग्रामीण हैं जो एक रुपये के आटे से महीना काट लेते हैं। राजे-महाराजे, जिनको उड़ाने के लिए मुफ़्त में प्रचुर धन मिल जाता है और हज़ार-हज़ार, डेढ़-डेढ़ हज़ार रुपया मासिक वेतन पानेवाले भारतीय सरकारी नौकर देश की अवस्था पर आँखें मीचकर ऐसी निरर्थक बातों में धन उड़ाते हैं। किसी लोकोपकार के काम के लिए इनसे दान माँगने जाइए, आपको अपने ख़र्चों की इतनी लम्बी-चौड़ी सूची सुना देंगे कि मानो अभी इनका दिवाला निकला जा रहा है।

विदेशी शासन का भारत पर एक बहुत बुरा प्रभाव यह हुआ है कि हम बिना सोचे-समझे—अपनी राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति का कुछ भी विचार न करके—अंधाधुन्ध अँगरेज़ों की नक़ल करने लगे हैं। यह नहीं समझते कि जो चीज़ एक मनुष्य के लिए अमृत है, वही दूसरे के लिए विष हो सकती है। स्वस्थ मनुष्य के लिए घृत अमृत है, परन्तु ज्वराक्रान्त के लिए वह विष के समान है। पराधीन मनुष्य यदि स्वाधीन मनुष्य के चोचलों की नक़ल करने लगे तो उसका अकल्याण ही है। स्वाधीन देशों में सिनेमा, नाटक, रेडियो, नाच-गान जहाँ मनोरंजन का काम देते हैं वहाँ साथ ही ज्ञान और चातुरी को भी बढ़ाते हैं। सिनेमा और नाटक ने अँगरेज़ों को एक अच्छे नट की जाति बना दिया है। उनको कोई काम दे दीजिए, वे निपुण अभिनेता के सदृश उसे करके दिखला देंगे। किसी अँगरेज़ डिप्टी कमिश्नर को देखिए, किसी राजनीतिज्ञ से मिलिए, किसी राजदूत को बातचीत करते सुनिए, आपको मेरे उपर्युक्त कथन की सत्यता का विश्वास हो जायगा। जिनको अँगरेज़ अधिकारियों से काम पड़ता है वे बताते हैं कि वे भीतर से अतीव दुखी होने पर भी आपसे हँस-हँसकर बातें करते हैं, भीतर से हँसते हुए भी बाहर से रोना दिखला सकते हैं, अभी आप पर लाठी-प्रहार कर रहे थे और काँग्रेसी युवकों को पकड़-पकड़कर जेलों में ठूँस रहे थे, लाठी-प्रहार बंद कर देने की आज्ञा पाते ही, फ़ौरन् आपसे ऐसे प्रेम से हाथ मिलावेंगे, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। काबुल के अमीर अमानुल्लाखाँ का एक ओर तो इँगलैंड में भारी स्वागत-सत्कार हो रहा था, ठीक उसी समय दूसरी ओर अफ़ग़ानिस्तान में उसकी जड़ों को काटने के लिए जनता को भड़काया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जा रहा था। सारांश यह कि अपने व्यक्तिगत भावों को दबाकर वे, उनको हँसने-रोने, प्रेम या घृणा करने का जो भी पार्ट दिया जाय, उसे भली भाँति करके दिखा सकते हैं। यह गुण वे नाटक-सिनेमा से सीख-कर राजनीति में उसका उपयोग करते हैं। सिनेमा द्वारा वे बच्चों को भौगोलिक शिक्षा देते हैं। परन्तु हम-जैसी पराधीन जातियाँ सिवा विषय-वासना और विलास-प्रियता को बढ़ाने के और क्या सीखती हैं?

अब रेडियो को लीजिए। दूसरे स्वाधीन देशों में रेडियो द्वारा जहाँ थके-माँदे श्रमजीवियों और किसानों का, स्वदेश-रक्षा-निमित्त युद्ध की चिन्ता में लीन जनता का मनोरंजन होता है वहाँ राजनीति, अर्थशास्त्र और भौतिक विज्ञान पर विशेषज्ञों के भाषण सुनाकर उनको देश-सेवा के लिए तैयार भी किया जाता है। इसके विपरीत भारत में बहुसंख्यक निर्धन ग्रामीण लोगों का रुपया बड़े-बड़े रेडियो स्टेशनों के निर्माण में लगाकर सरकार थोड़े से नगर-निवासी धनी लोगों का मनोरंजन करती है। हमारे रेडियो स्टेशनों पर प्रायः तमाचा जानों और मौलाबख्शों के गानों के सिवा देशोद्धार की बात कुछ भी नहीं होती। किसी पराधीन राष्ट्र का सबसे प्रथम कर्तव्य यह होना चाहिए कि वह सब राग-रंग और प्रेम-प्रणय की बातों को छोड़कर अपना सारा ध्यान स्वराज्य-प्राप्ति में ही लगावे। इधर-उधर की निरर्थक रंगरेलियों में लिप्त रहने से फिर वह अपने ध्येय को भूल जाता है और यह बात उसके लिए घातक होती है।

रूस के, इटली के और जर्मनी के जो समाचार हम पढ़ते हैं, उनसे ऐसा जान पड़ता है, मानों वहाँ के नगर और ग्राम अब नागरिक लोगों के आवास नहीं, वरन् सैनिक छावनियाँ हैं, जहाँ बच्चे से बूढ़े तक सब को फ़ौजी ढंग से जीवन बिताना पड़ता है। रूस के किसान को काम करते देखकर आपको फ़ौजी सिपाही का भ्रम होता है। वहाँ लड़के-लड़कियाँ सब फ़ौजी क़वायद करती हैं। उनके अध्यापक, अध्यापिकाएँ, राज-नीतिज्ञ, व्याख्याता, उपदेशक, सिनेमा, थियेटर, पत्र, रेडियो, सब उनमें यही भाव भरते रहते हैं कि तुम्हारा राष्ट्र चारों ओर से शत्रुओं से घिरा है; यदि तुम तनिक भी ग़फ़लत करोगे तो वे तुम्हें आकर दबा लेंगे। ऐसे देशों की जनता कभी आलस्य, प्रमाद और विलासिता में समय और धन नष्ट करना सहन नहीं कर सकती। इसके विपरीत हमारे कालेजों के पढ़े-लिखे युवक और युवतियाँ अँगरेज़ी उपन्यास पढ़-पढ़कर सिवा उन लोगों की विलासिता और हँसी-दिल्लगी के और कुछ नहीं सीखतीं। हमारे यहाँ योग्य और नेता वह समझा जाता है, जो वेश-भूषा और भाषा में अँगरेज़ों की अधिक नक़ल कर सकता है। लाहौर के गवनमेंट-कालेज के अध्यापकों और विद्यार्थियों के व्यवहार और रहन-सहन को देखिए। आपको ऐसा जान पड़ेगा, मानों अभी विलायत से भारत में पधारे हैं। पराधीन भारत में रहते हुए भी ये चोचले स्वाधीन अँगरेज़ों की तरह करते हैं। डेढ़-डेढ़ दो-दो हज़ार रुपये वेतन-भोगी प्रोफ़ेसर अपना सारा समय हाकी खिलाने और थियेटर बनवाने में गँवाते हैं। ये टीमें लेकर आस्ट्रेलिया और स्विट्ज़रलैंड आदि देशों में घूमते फिरते हैं। इन खेल-तमाशों की उपयो-गिता के पक्ष में लंबे-चौड़े लेख लिखे जा सकते हैं, और कहा जा सकता है कि इनसे स्वास्थ्य-रक्षा और ज्ञान-वृद्धि होती है, परन्तु वास्तव में बात यह है कि ये सब चोचले हैं, जो पराधीन राष्ट्र के नवयुवकों का ध्यान अपनी पराधीनता को दूर करने की चिन्ता से हटाकर निरर्थक और गौण बातों में लगाने का काम करते हैं। स्वाधीन राष्ट्र ऐसी बातों के लिए समय निकाल सकें तो कोई बुरी बात नहीं, परन्तु हमने कभी नहीं देखा कि जापान, जर्मनी, इटली, रूस, फ़्रांस या टरकी की कोई टीम भारत में हाकी या फ़ुटबाल के मैच करने आई है। वे लोग सब अपनी-अपनी उन्नति में लगे हैं और हमारे युवक और नहीं तो हाकी में ही दिग्विजय कर रहे हैं। इँगलैंड या आस्ट्रेलिया की जब कोई टीम यहाँ आ जाती है तो बस समूचे भारत का ध्यान उसी में लग जाता है। स्वास्थ्य-उन्नति की दृष्टि से तो हमारे गाँव में पुराने समयों में जो दंगल या कबड्डी के मैच होते थे, उनसे सामान्य जनता के स्वास्थ्य को अधिक लाभ पहुँचता था और व्यय भी उतना नहीं होता था। ये मैच, ये खेल-तमाशे, ये रेडियो स्वाधीन देशों के लिए लाभदायक होते हुए भी पराधीन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता की प्राप्ति में बाधक हैं। ये हमारी दृष्टि को हमारे ध्येय से परे हटाने का काम करते हैं।

लाहौर में लिटररी लीग नाम की एक संस्था है। नाम साहित्य-गोष्ठी होने पर भी इसका कार्यक्रम प्रायः लाहौर के धनी-मानी लोगों के मनोरंजन के सिवा कुछ और क्वचित् ही होता है। वहाँ ऊँचे घरानों की हिन्दू लड़कियाँ गाती और नाचती हैं। इन गाने-बजाने-वालियों में मुसलमान लड़कियों का नाम आज तक कभी पढ़ने को नहीं मिला। हाँ, दर्शकों और श्रोताओं में मुसलमान युवक अवश्य होते हैं। अच्छा-खासा इन्द्र का अखाड़ा होता है। "उस कुमारिका की कविता चुम्बन के समान ही छोटी है", इत्यादि वाक्यावली से इन नवयुवती कवयित्रियों की रचनाओं की दाद दी जाती है। इस संस्था की कोई आलोचना न कर सके, इसके लिए इसके संचालक कभी किसी हाईकोर्ट के जज को, कभी गवर्नर को और कभी किसी दूसरे उच्चाधिकारी को लाकर प्रधान के आसन पर बैठा देते हैं। उनके आकर्षण से छोटे-मोटे कई दूसरे सेकण्ड क्लासिए सरकारी कर्मचारी और सेठ भी आ जाते हैं। ऐसी संस्थाएँ स्वतंत्र देशों में सचमुच लाभदायक हो सकती हैं, परन्तु भारत-जैसे पराधीन देश और हिन्दुओं-जैसी गिरी हुई जाति के लिए तो ये निश्चित रूप से अनिष्टकर हैं।

नारी-स्वातंत्र्य कोई बुरी चीज़ नहीं, परन्तु उसके लिए भी अवस्था और समय का अनुकूल होना आवश्यक है। पराधीन हिन्दू-जाति, जो अपनी स्त्रियों को गुण्डों से रक्षा नहीं कर सकती, अपनी स्त्रियों को बे-मुहार ऊँट की तरह घूमने-फिरने की आज्ञा देकर सुख नहीं पा सकती। इस विषय में स्वाधीन अँगरेज़ जाति की नक़ल करने में उसकी घोर हानि है। परन्तु अवस्था यह है कि जितना बंधन इटली, जर्मनी और जापान आदि स्वतंत्र राष्ट्र अपनी स्त्रियों की गति-विधि पर लगाये हुए हैं, हमारे राष्ट्रवादा हिन्दू अपनी बहू-बेटियों पर उतना भी लगाने को तैयार नहीं। वे अपनी अवस्था और परिस्थिति को भूल जाते हैं। इस आत्म-विस्मृति के दुष्परिणाम हिन्दू-लड़कियों के अपहरण और धर्मान्तर में स्पष्ट देख पड़ते हैं।

इसी प्रकार स्वराज्य की पहली क़िस्त जो प्रान्तिक स्वाधीनता के रूप में भारत को मिली है, वह दूसरे प्रान्तों के लिए सुखद होते हुए भी, मुसलमानों की प्रधानता के कारण, पंजाब के हिन्दुओं के लिए विदेशियों की दासता से भी बदतर है। मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं की हत्या, हिन्दी का नाश, बूचड़ख़ानों का खुलना, सीमा-प्रान्त में मुसलमानों द्वारा हिन्दू-बालकों और लड़कियों का अपहरण, हिन्दुओं का लूटा जाना, हिन्दुओं की आजीविका का नाश करनेवाले काले बिलों का पास होना इत्यादि अनिष्ट जितने अब होते हैं, उतने पंजाब में पहले न होते थे।

इसी लिए कहना पड़ता है जो एक के लिए अमृत है, वही दूसरे के लिए विष है।

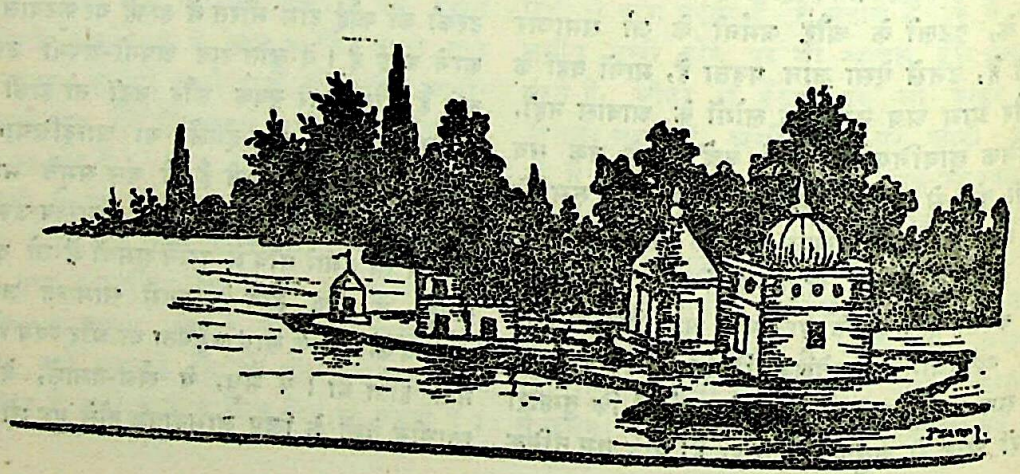

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

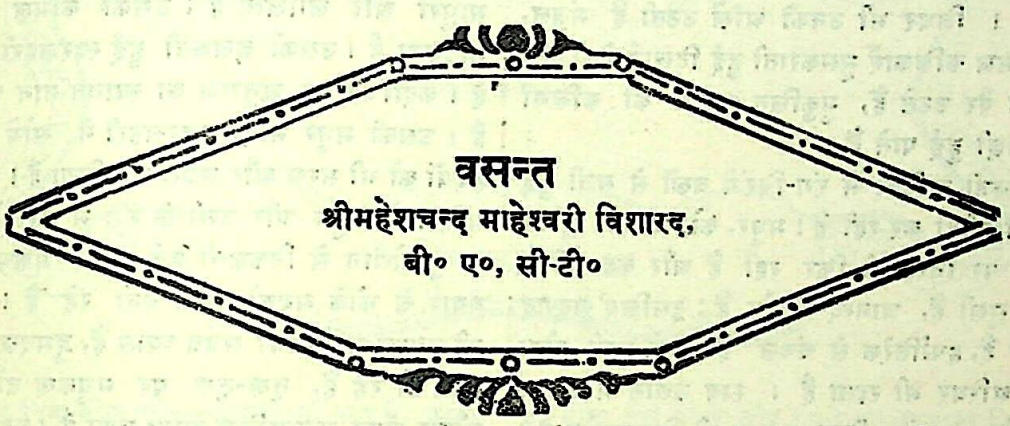

वसन्त

श्रीमहेशचन्द माहेश्वरी विशारद,
बी० ए०, सी-टी०

वसन्त आ गया। शिशिर का शीत शीतल समीरों में परिवर्तित हो गया। धूल उड़ानेवाला प्रखर पवन फूल चढ़ानेवाला मलय हो गया। वह अपनी मस्ती के साथ सौरभ से अठखेलियाँ कर रहा है। आम के बौरों पर बौराई हुई कोयल पंचम का अलाप भरने में बेसुध है।

प्रकृति का वह उजड़ा हुआ उद्यान आज सरस हो गया है; सूखी टहनियाँ, पत्रहीन वृक्ष और लताएँ पल्लवित हो उठी हैं; वे नूतन किसलयों से लद गई हैं। उनका अश्रुपात उनकी सुख-सामग्री जुटाने का साधन हो गया है, उनका पत्रदान आज फलीभूत हुआ है, उनकी निर्जीवता और रूखापन आज सजीवता और सरसता में परिणत हो गये हैं। प्रकृति अति सुरम्य वेष धारण किये हुए है। वह हरे रंग का नया परिधान सजाये हुए है। सामने हरियाली ही हरियाली लहलहा रही है। उसमें पीले-पीले फूल उसकी सुन्दरता को बढ़ा रहे हैं। पीली-पीली सरस सरसों से भरे हुए खेतों को देख मनुष्य के मुँह से अचानक निकल पड़ता है कि आज 'ऋतुराज' आया है। अनाज के लहलहाते हुए खेत देख किसानों के मन-मयूर नाचने लगे हैं, उनका म्लान मुखमंडल खिल उठा है। याद करने लगे हैं अपनी-अपनी चिर संचित आशाओं को, क्योंकि यही है उनकी समस्त शक्ति, सम्पूर्ण उत्साह और स्फूर्ति का स्रोत। वन, पर्वत और उपत्यका सर्वत्र ही रसराज का राज्य है। उसी की तूती बोल रही है, उसी की सुन्दरता प्रतिबिंबित हो रही है। यह प्रकृति का यौवनकाल है। उसके अंग-प्रत्यंग यौवन के आलोक से आलोकित और दीप्तिमान् हो रहे हैं। सारी प्रकृति, प्रसन्नता से प्रसन्न है और सौंदर्य के झूले में झूल रही है।

उपवनरूपी हाट में मल्लिका के पुष्पों की ठेलमठेल है। मल्लिकाएँ अपने यौवन की, सौरभ की भीनी-भीनी सुवास बिखराकर उन्मत्त मधुपों का मन अपनी ओर हठात् आकर्षित कर रहीं हैं। विकल मधुप मल्लिकाओं के निकट जाते और मदमाती कलिकाएँ सुरीली गान गा उन्हें रिझाती हैं। हरे, नीले, बैंजनी, गुलाबी, पीले, सप्तरंगी, शतरंगी और सहस्ररंगी पुष्प खिले हुए हैं। कमनीय कुसुमों की कोमलता, सरसता और स्निग्धता मन को मोहित कर लेती है और उनके रस, रूप,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रंग और सुगंध की मादक मदिरा से मत्त मधुप सुरीले राग अलाप रहे हैं, उनके स्वर में स्वर मिला रहे हैं। उन्हें इस असार संसार की निस्सारता का किंचित् भी ध्यान नहीं। भूले हुए हैं अपनापन, न्योछावर किये हुए हैं अपना सर्वस्व। आज उनके हर्षोल्लास का पारावार नहीं। उनके हृदय-सागर में आनन्द की उत्ताल तरंगें तरंगित हो रही हैं। जिधर भी उनकी आँखें उठती हैं मंजुल, नवीन कोमल कलिकाएँ मुसकराती हुई दिखाई देती हैं; जिधर भी पैर उठते हैं, मुकुलित गुलाब की कलियाँ पथ में बिछी हुई पाते हैं।

सजी-धजी वाटिका में रंग-बिरंगे वस्त्रों से सजी हुई तितलियाँ क्रीड़ा कर रही हैं। मधुर, कोमल और सुन्दर पुष्पासनों पर विराजती फिर रही हैं और कह रही हैं कि हम सुखी हैं, आनन्द-विभोर हैं; इसलिए गद्‌गद नाच रही हैं, हर्षातिरेक से चंचल हैं। जो सुखी होता है, वही अस्थिर भी रहता है। रम्य उद्यान में उनका स्वतंत्र और स्वच्छंद विचरण बड़ा ही चित्ताकर्षक है। दर्शक मंत्रमुग्ध-सा रह जाता है।

सुकुमार लतिकाएँ मृदुल पवन के झकोरों से आनन्दित हो खिलखिला कर हँस रही हैं। सुमनों के पल्लवित गुच्छे गर्वान्वित हो रहे हैं, जिनके सौरभ-भार से लदा हुआ मलय धीरे-धीरे साँस ले रहा है। उसने उस सौरभराशि को ढोकर जगती के अंचल में भर दिया है। वह सुवासित हो उठी है और सन्निकट वातावरण को सुवासित कर दिया है।

मंजरीयुक्त रसीले रसाल, नम्र पुरुषों के स्वभाव का आदर्श बने हुए हैं। मधुर आम्र-डालों पर बैठी हुई कोकिल कभी-कभी कलकंठ से कुहू-कुहू की सरस सुहावनी, सुरीली तानें उड़ा देती है। उसके संगीत में माधुरी और लालित्य है। उसकी कोमल काकली में मादकता है। उसकी छलकती हुई स्वरलहरी में मदिरा है। कदाचित् वह ऋतुराज का स्वागत-गान अलाप रही है। उसकी मधुर मादक स्वरलहरी ने सोये हुए नीरस हृदयों को भी सरस और सजग कर दिया है। वह सौंदर्य-मदिरा से बेसुध और उसी के रंग में शराबोर है।

पुष्पोद्यान से निकलती हुई मन्द मलय, वासन्ती बयार के झोंके सबको मस्त बना रहे हैं। विहगगण की उत्फुल्ल रागिनियाँ सर्वत्र व्याप्त हैं, द्रुमदल मधु पीकर मस्त हो रहे हैं, तृण-तृण पर मधुकण डोल रहे हैं। सौरभ लेकर मलयानिल आया हुआ है। तरु, लता और विटप वसुधा के पग चूम-चूमकर अभिनन्दन कर रहे हैं। आज वसुधातल का अभिषेक हो रहा है और सुर-बालाएँ मधु-वितरण कर रही हैं। आज हर एक की प्रसन्नता निस्सीम, कल्पना असीम और हृदय उत्कंठित है। ईश्वर करे, हम और हमारा देश सदैव इसी तरह फूले-फले।

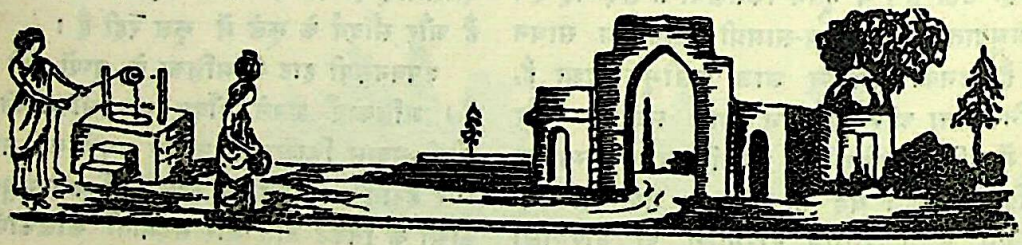

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

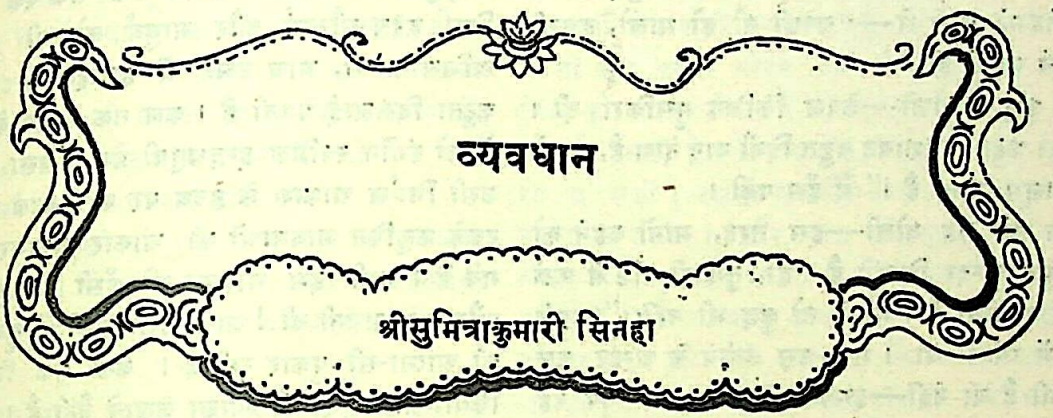

व्यवधान

श्रीसुमित्राकुमारी सिनहा

बहुत दिन बीत गये—धुँधली-सी याद है, जब मैं उससे मिली थी। स्थिर चाँदनी रात सोती हुई पृथ्वी के सिरहाने बैठी हुई जग रही थी। ग्रीष्म-क्लिष्ट भवन में टकराती हुई हल्की-हल्की वायु आ रही थी। जब मैं उससे मिली थी—तारिकाएँ गुपचुप हँस रही थीं, और वह भी मेरे पास मुझसे सटकर ही निःशब्द आ बैठी थी! उसका नाम था मल्लिका। मुझे उसका नाम बड़ा प्रिय लगा, उसकी देह-छटा ही कुछ हृदयग्राही जान पड़ी। मेरे अन्तः-प्रदेश में जैसे गूँज गया, उसकी सुरीली वाणी द्वारा बताया हुआ नाम—मल्लिका! और तभी मैं उसे प्रेम-दीपक के प्रखर प्रकाश में निहार बैठी। उसका प्रेम जीवन के तार-तार में व्याप्त हो गया। उसका संगीत हृदय-तन्त्री में झंकार कर उठा।

वह मुझे लाडो कहती थी। मैं उसे प्यार से मालो कहा करती थी। इस जन्म के प्रथम परिचय से ही मेरा उसका अपनपौ बढ़ा। कैसे सुन्दर थे वे दिन! हम दोनों साथ बैठतीं, साथ लेटतीं, साथ खातीं, साथ ही नहातीं। घंटों पानी में भीगते हमारी अठखेलियाँ होतीं, घंटों हमारी बातों का तार न टूटता। कैसी मौज थी, कैसा उछाह था! एक दूसरे की आँखें मिलते ही हृदय हँस पड़ते और ख़ुशी का ख़ज़ाना मिल जाता था। कितनी एकान्त रातों की चाँदनी की चमक में, प्रभात के आलोक में, संध्या की स्वर्ण-प्रभा में और वसन्त की शोभा में, बरसात की रंगीनी में, शरद् की छवि में हम दोनों ने प्रेम की डोरी में कसकर अपने कोमल हृदयों को बाँधा था। कितनी बार अँधेरे कमरे में एक साथ सोईं, कितनी रातें जागकर बिताईं. कितनी ऊषा की गुलाबी हवा में कविताएँ गाईं और कितनी ही सूनी दुपहरी में विरह-मिलन की कहानियाँ पढ़ी थीं!

वियोग के दिनों के उसके भेजे हुए गुलाबी लिफ़ाफ़े—जिनके अन्दर काग़ज़ पर वह अपने हृदय को निकालकर भेजती थी—आज भी मेरे ड्राज़ में मूकभाव से लेटे हैं। कैसे सुन्दर थे वे सरल प्रेम के पत्र—जिनमें एक दूसरे को कभी न भूल सकने की भारी भूल भरी हुई थी, जिनको पढ़कर स्वयं अपने को मैं भूल जाती थी।

आज स्वयं वह मुझे भूल गई है। उस प्रेम का बन्धन टूट गया है, उस प्यार का विच्छेद हो गया है। फूल जैसे देखते-देखते मुरझा गया। इन्द्रधनुष की रंगीनी जैसे दिखाई पड़ी, विलीन हो गई। आज कहीं कुछ नहीं। सब कुछ जैसे एक भ्रम था, एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिडम्बना थी ! केवल—देखने भर का प्रेम—जैसे उसके भीतर कुछ था ही नहीं। जैसे भूलना चाहते ही सब कुछ भूला जा सकता है। दिन-रात हृदय में बसनेवाला प्रेम भी खो जाता है।

हाँ—उसी मल्लिका से एक दिन भेंट हुई। मैंने पूछा स्नेहभरे स्वरों से—"अच्छी तो हो मालो, दुबली क्यों देख पड़ती हो ?"

वह कुछ न बोली—केवल किंचित् मुसकिरा दी। मैंने फिर कहा—"शायद बहुत दिनों बाद देखा है, इससे फ़र्क़ मालूम पड़ता है।" मैं हँस पड़ी।

अब की वह बोली—इस तरह, मानों कहने को बहुत कुछ अन्दर छिपाये है, "हाँ, तुम्हारी दृष्टि में फ़र्क़ अवश्य हो गया है। मेरे में तो कुछ भी नहीं।" उसके कथन में व्यंग्य था। मैं—उस व्यंग्य के अन्दर कुछ सत्य भी है या नहीं—इसकी चिन्ता न कर चुप रह गई। किन्तु मेरा जी जैसे भारी हो गया। इतने दिनों बाद मिलने की ख़ुशी जैसे बुझ गई।

इतने में आ गई मल्लिका की बड़ी बहन सरला। मुझे देखकर, मेरे हाथ को अपने हाथ में लेते हुए मुसकिराकर बोली—"तुम्हें क्या हो गया है लाडो, इतनी कमज़ोर क्यों हो ?"

मैंने उस प्रश्न की व्यर्थता को हटाते हुए धीमे स्वर में कहा—"नहीं दीदी, मैं तो सदा से ऐसी हूँ। मुझे कुछ नहीं हुआ !" मल्लिका ने फिर व्यंग्य छोड़ा—"अरे दीदी, यह देखने को ही ऐसी हैं। अन्दर बड़ा ज़ोर है। और फिर ठहरी कवयित्री। दुबला-पतला होना क्या बुरा है ? कविगण इन्हीं की प्रशंसा में कह गये हैं—कनक-छरी-सी कामिनी।"—वह कहते-कहते अट्टहास कर उठी।

मेरे चोट खाये हुए हृदय में कितनी वेदना घनीभूत हो गई ! किन्तु अपनी व्यथा को सहलाते हुए उच्छ्वास के साथ अपने स्वर में बनावटी मधुरता लाते हुए मैंने कहा—"काश मनुष्य के अन्दर की सब बातें मनुष्य जान लेता।"

मैंने स्थिति की कठोरता को कोमल बनाकर पी जाना चाहा, पर निशाना जम न सका। सारा कमरा जैसे मेरा उपहास-सा करता हुआ प्रतीत हुआ। काल्पनिक जगत् में विचरण करनेवाला मेरा भावुक हृदय वास्तविक जगत् का खिलौना बन गया। दुनिया की आँखें मुझे देखकर मेरा तिरस्कार करती हैं। कल तक जिस मल्लिका को प्राण का पड़ोसी जाना था, आज वही मुझ पर तीर चलाती है। कल तक एक दूसरे के जिस हृदय-सौन्दर्य और माधुर्य को पी जाने की अभिलाषा थी, आज उसी में हलाहल से भी तीव्र कटुता दिखलाई पड़ती है। कल तक जीवन के आकाश में जो रंगीन स्वप्निल इन्द्रधनुषी प्रेम खिला था, आज उसी निर्मल आकाश के हृदय पर काले-काले बादल के टुकड़े कलुषित भावनाओं का आकार बनाकर खड़े हो गये हैं। कभी इस मल्लिका की हँसी कितनी स्वच्छ और मधुर लगती थी ! आज उसी हँसी में घृणा विद्रूप की आत्मा-सी पुकार रही है। कल तक जिसने प्रेम किया, आज घृणा की ज्वाला जलाये बैठी है। कुटिलता और अपमान की ज़ंजीरों से कसकर बाँध देने की उसकी इच्छा—कैसी अद्भुत पहेली है।

किन्तु अपमान का प्रयोजन इसी एक बात में ही—इसी जगह नहीं समाप्त हुआ। इससे भी बड़ा—बहुत अधिक अपमान मेरे भाग्य में रक्खा हुआ था।

जब उसने कहा—"लाडो, कवि को अपनी स्थिति से कभी सन्तोष क्यों नहीं होता ?"

मैंने कहा—"क्यों ? तुम्हारा मतलब क्या है मालो !"

उसने कहा—"तुम्हारी रचनाओं में असफल प्रेम की व्यथा की ही अभिव्यक्ति क्यों रहती है ? हृदय की कभी न मिटनेवाली प्यास ही क्यों वर्तमान रहती है ? हृदय के रोदनमय गीत ही क्यों मूर्त रहते हैं ?"

मैंने कहा—"विश्व के समस्त काव्य के मूल में इसी चिर-वेदना का रहस्य छिपा है मालो, भाव-बहुल हृदय ही इसकी अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं।"

उसने फिर व्यंग्यभरे स्वर में कहा—"हाँ, एक तुम्हारा हृदय भाव-बहुल है और एक 'शेखर' का।" (शेखर से उसका अभिप्राय अपने पति से था।)

मैं तिलमिला उठी—"मुझ पर व्यर्थ आक्षेप क्यों करती हो मालो, मैं जो कुछ हूँ सो हूँ ही। शेखर के लिए तुम मुझसे ऐसा क्यों कहती हो ?"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"इसलिए, कि तुम्हारी असीम सहानुभूति और अबाध प्रेम उनके प्रति है।"

"मालो, तुम इतनी कठोर हो सकती हो, इस पर मुझे आश्चर्य है। मानव की मानव के प्रति सहानुभूति ही क्या अनौचित्य की सूचक है? किसी में हृदययुक्त व्यक्तित्व का निदर्शन पाकर उसकी ओर आकृष्ट होना ही क्या पाप है? किसी की वेदना या उल्लास के भावों की कुछ पंक्तियाँ किसी व्यथित या पुलकित आत्माओं में प्रवेश कर उन्हें अनुप्राणित कर दें, तो उसे क्यों विडम्बना का रूप दिया जाय मालो?"

मल्लिका कुछ कहने को हुई। तब तक सज-धजकर आ गया सुभाष। बोला—"लाओ, चलो, आज सिनेमा चलना है न? कल सुबह ही घर चले जायँगे।"

× × ×

मेरे बहुत कहने पर भी मल्लिका मेरे साथ सिनेमा चलने को तैयार न हुई।

कार पर मैं और सुभाष सिनेमा-हाउस को चल दिये। मोटर हवा में धूल उड़ाती हुई चली जा रही थी। मेरे हृदय में विचारों का झंझावात चल रहा था। मस्तिष्क विचारों से बुरी तरह उलझ रहा था।

अतीत का आवरण उठ रहा था। यही मल्लिका, जो मुझे प्रेम करती थी, शेखर के मेरे जीवन में आ जाने से ही आज ऐसी बदल गई? ऐसी बातों से, मेरे हृदय में और इस शिथिल-से सम्बन्ध में यह इस तरह का झटका दे रही है! स्पष्ट करने पर भी शायद वह सुरक्षित न रह सका। ठीक है, जीवन में सभी बातों का अन्त अच्छा थोड़े ही होता है। ऊपर से सब ठीक, परन्तु स्पष्ट बात में भी रहस्य, दुनिया को छिपा ही मालूम देता है। मनुष्य मनुष्य के ही प्रेमपूर्ण हृदय के जीवन में उसके पाप और दुःखों को लेकर व्यर्थ के उपहास अथवा घृणा से कुरेदता है। प्रेम के कोमल चिह्नों को निर्दयतापूर्वक कुचला जा सकता है। मेरे और मल्लिका के बीच आज एक पर्दे का व्यवधान है। वह मुझसे खुल नहीं सकती। वह परदा मृत्यु की तरह चिरस्थायी है और मृत्यु से भी बढ़कर वेदना-प्रद है। एक तो मैं वैसे ही निस्तब्ध नीरव प्रकृति हूँ, उस पर पर्दे की निस्तब्धता मुझे दूनी असह्य हो गई। यह भारी परिवर्तन मेरे जीवन से लिपटकर मानों मुझे चार कर देगा। रात-दिन पास रहते हुए भी कुछ दिनों के अन्तर से मैं मल्लिका से इतनी दूर चली गई कि मानों अब कभी उस तक पहुँच ही न सकूँगी।

तो क्या इसके भीतर यही सत्य नहीं है कि मैंने शेखर को अपने जीवन में प्रेमपूर्वक हँसते हुए पाया, और मैं उसकी प्रेम-स्निग्ध दृष्टि से अपना मुँह फेरकर रह न सकी। उसकी मूक-प्रेम-याचना को कठोरता से ठुकरा न सकी। और आज मल्लिका ही क्यों, सारा संसार मुझे घृणा से देखता है, मेरे हृदय का उपहास करता है, मुझे व्यंग्य से कुरेदता है। मैं अपने छोटे-से कोमल हृदय को कैसे समझाऊँ कि संसार क्या है? उसका ज्ञान क्या है? उसकी दृष्टि में प्रेम की दृष्टि का मूल्य क्या है?

बिलकुल मुफ़्त

आवश्यक ज्योतिष-विषयों से भरपूर

सम्वत् १९९६ का

पंचांग

अपने गाँव के ५ पूरे पते भेजकर

बिलकुल मुफ़्त मँगाइये

मदनमंजरी फार्मसी, जामनगर.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

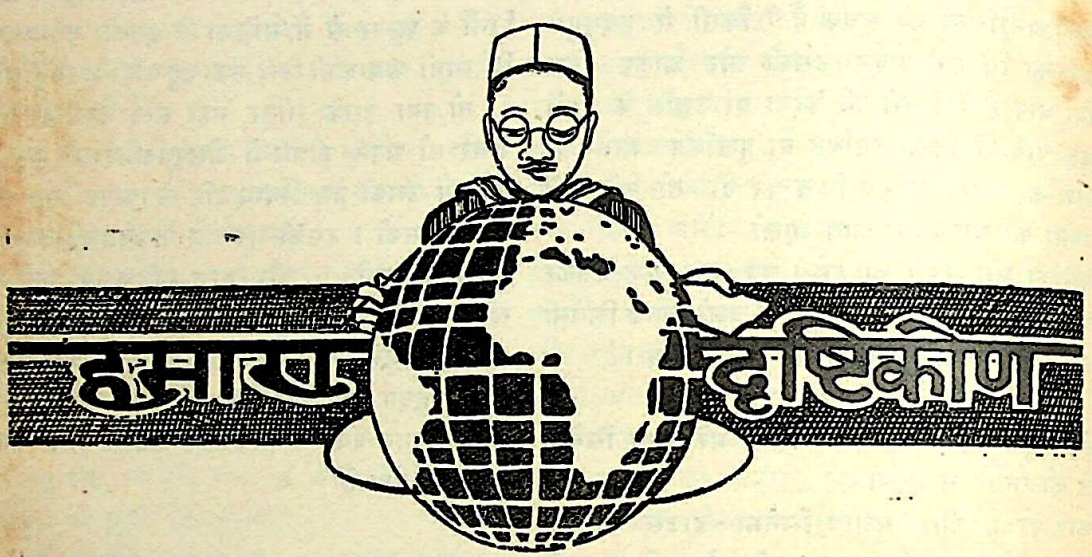

१—बिहार-मंत्रिमंडल का अनुकरणीय आदर्श

कांग्रेस वर्किङ्ग कमेटी के आदेशानुसार अशोक एवं चन्द्रगुप्त की प्राचीन वैभवशाली भूमि बिहार में भी कांग्रेस-सरकार २०वीं जुलाई, सन् १९३७ को स्थापित हुई। यहाँ पर हम उसके वैधानिक एवं शासन-संबंधी कतिपय अनुकरणीय कार्यों का उल्लेख करना अपना परम कर्तव्य समझते हैं; विशेषकर उस स्थिति में, जब कि आज भारत के सात प्रान्तों में कांग्रेस की सरकारें सम्राट् का शासन-प्रबन्ध चला रही हैं।

अपने शासन-काल के लगभग इन दो वर्षों में बिहार की कांग्रेस-सरकार ने देश की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक समस्याओं को जिस सुन्दर ढंग से हल करने का शुभ प्रयत्न किया है, वह केवल अन्य प्रांतीय सरकारों के इतिहास में ही नहीं, वरन् समस्त भारत के राजनीतिक परिवर्तनों के इतिहास में एक चिर-स्मरणीय वस्तु रहेगी। हमें यह कहते तनिक भी संकोच नहीं कि बिहार-मन्त्रिमण्डल ने कांग्रेस की चुनाव-घोषणा तथा फ़ैज़पुर के प्रस्ताव के अनुसार अपनी निर्माणशक्तियों का सुन्दरतम उपयोग करते हुए दो दिशाओं में आदर्श सफलता प्राप्त की है। प्रथम यह कि इसने जनता की गिरी हुई दशा के सुधार तथा उसकी उन्नति के निमित्त नाना प्रकार के वैधानिक एवं शासन-सम्बन्धी क़ानूनों का निर्माण किया है। साथ ही साथ इसने दूसरी ओर कांग्रेस के मुख्य उद्देश्य देश की स्वतन्त्रता को जनता के अधिक निकट लाने की प्राणपण से चेष्टा की है और हमें यह बात प्रकट करते हुए अभिमान होता है कि देश की समस्त कांग्रेसी सरकारों में बिहार-सरकार का भी अपना एक विशिष्ट स्थान है और इसका समस्त श्रेय देशरत्न बाबू राजेन्द्र-प्रसाद तथा बिहार के मन्त्रिमण्डल को है। बाबू राजेन्द्रप्रसाद देश के उन नर-रत्नों में हैं, जिनका व्यक्तिगत जीवन उनके महान् सार्वजनिक जीवन से कहीं अधिक निर्लेप एवं तपस्यापूर्ण है। जो लोग राजेन्द्र बाबू को निकट से जानते हैं, वे इस बात को अस्वीकार नहीं कर सकते कि राजेन्द्र बाबू देश की उन विभूतियों में हैं, जिनका निजी एवं आन्तरिक जीवन उनके महान् राजनीतिक जीवन से अधिक पवित्र, अधिक साधनापूर्ण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

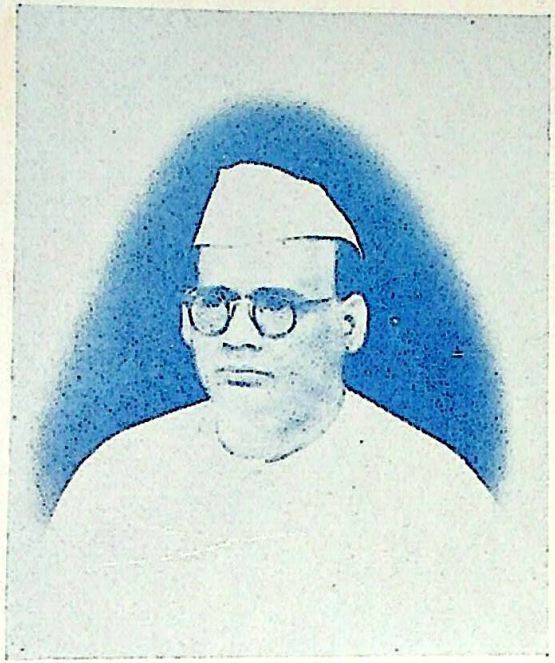

बिहार के कुशल प्रधान मन्त्री माननीय बाबू श्रीकृष्णसिंहजी, जिनकी अपार निष्ठा और अदम्य उत्साह से बिहार-मन्त्रिमण्डल जनता जनार्दन की सेवा का अनुकरणीय दृष्टान्त उपस्थित कर रहा है।

बिहार के सुयोग्य अर्थमन्त्री माननीय बाबू अनुग्रहनारायणसिंहजी—आप केवल एक प्रसिद्ध देश-सेवक तथा सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री एवं क़ानूनज्ञ ही नहीं हैं, वरन् आपकी रचनात्मक विचक्षणता से बिहार-सरकार पूर्णतया लाभ उठा रही है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा अधिक महान् है। पर साथ ही इस स्थान पर हम बिहार के आदर्श मन्त्रिमण्डल को भूल नहीं सकते—विशेषतः हमारे सामने सर्वश्री माननीय बाबू श्रीकृष्णसिंह, बाबू अनुग्रहनारायणसिंह तथा डाक्टर सैयद महमूद की रचनात्मक प्रतिभा तथा महान् देश-सेवा के अनेकानेक उदाहरण मौजूद हैं।

अपने थोड़े दिनों के शासन-काल में बिहार-सरकार ने जिन उपयोगी वैधानिक धाराओं का निर्माण किया है, वे इस प्रकार हैं—

[क] कृषक-सम्बन्धी क़ानून—(१) बिहार टिनेन्सी (एमेण्डमेंट) ऐक्ट १९३७; (२) बिहार टिनेन्सी (एमेण्डमेंट) ऐक्ट १९३८; (३) लगान में कमी करने तथा बकाश्त ज़मीनों का कृषकों को लौटानेवाला क़ानून; (४) छोटा नागपुर टिनेन्सी (एमेण्डमेंट) ऐक्ट १९३८; और (५) चम्पारन ऐग्रेरियन (एमेण्डमेंट) ऐक्ट १९३८।

इन सब धाराओं की परमोपयोगिता इनके पृथक्-पृथक् विश्लेषण से पूर्णतः स्पष्ट हो जायगी।

(१) इसका निर्माण पुराने टिनेन्सी क़ानून की असामयिकता के कारण अत्यन्त असुविधापूर्ण परिस्थिति में कष्ट झेलते हुए रैयतों की कई कठिनताओं को तत्काल दूर करने के निमित्त हुआ। इसके द्वारा दानाबन्दी बन्द हो गई; बाक़ी लगान पर ब्याज की दर में कमी की गई; ग़ैरक़ानूनी वसूलियाँ दण्डनीय क़रार दी गईं; कई परिस्थितियों में लगान में कमी कर दी गई; बक़ाया लगान की पूर्ति के लिए समूची ज़मीन नीलाम कर देने की प्रथा रोक दी गई; और बाक़ी लगान के लिए क़ैद की सज़ा उठा दी गई।

(२) इसके द्वारा पुराने क़ानून की वह धारा हटा दी गई, जिससे ज़मींदारों को बाक़ी लगान के लिए सार्टीफ़िकेट जारी करने का अधिकार हासिल था; खेतों में लगाये गये वृक्षों पर और ऐसे ही अन्य विषयों में रैयत के उचित अधिकारों को स्वीकार किया गया; और लगान-सम्बन्धी झगड़ों के निपटारे की व्यवस्था सुलभ कर दी गई।

(३) इसके द्वारा बकाश्त ज़मीनों को रैयतों को लौटा देने की व्यवस्था की गई। ये ज़मीनें ज़मींदारों द्वारा अनुचित रूप से बाक़ी लगान की पूर्ति में ले ली गई थीं। परन्तु अब यदि रैयत एक सुविधाजनक अनुपात से लगान दे देगा तो ज़मींदार को उसकी ज़मीन वापस करनी होगी। इससे कुछ विशेष परिस्थितियों में लगान में भी कमी की गई है।

(४) १९०८ में निर्मित छोटा नागपुर टिनेंसी ऐक्ट की कई धाराओं से जनित रैयतों की कठिनाइयों के निराकरण के लिए इसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। अब इसके पास हो जाने से यहाँ भी बिहार के और भागों की तरह ही दानाबन्दी-प्रथा मिट गई; और जंगल काटकर बनाये गये नये "कोरकर" खेतों का लगान डिपुटी कमिश्नर द्वारा उचित दर पर निर्धारित किया जायगा।

(५) इसके द्वारा उस आवश्यकता की पूर्ति हो गई, जो स्वयं महात्मा गाँधी द्वारा संचालित आन्दोलन के बाद बने क़ानून के बावजूद भी असन्तोषजनक ही रह गई थी। अब इसके पास हो जाने के बाद "नील-वृद्धि" (Indigo Enhancements) का कुपरिणाम सर्वांश में लुप्त हो गया। केवल नील बोने की पाबन्दी से छुटकारा पाने के लिए रैयतों ने लगान में बहुत अधिक वृद्धि स्वीकार की थी—अब यह वृद्धि सन्सूख़ कर दी गई है।

[ख] सामाजिक क़ानून—मद्य-निषेध के लिए क़ानून बनाना किसी भी कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल के लिए सबसे पहला कर्तव्य है। परन्तु यद्यपि इस क़ानून के कट्टर शत्रु भी इसके औचित्य में शंका नहीं करते, फिर भी इसका सच्चा हिमायती भी इसके कारण अवश्यम्भावी आर्थिक क्षति की सम्भावना से निरुत्साह हो जाता है। बिहार-सरकार की आमदनी यों ही बहुत कम है। उस पर मद्य-निषेध की योजना जब जारी हुई तो उसमें और कमी हुई और उधर अनेकानेक ख़र्चीली सुधार-योजनाएँ भी कार्यान्वित की जाने लगीं। इन कारणों से सन्तुलित बजट की आशा प्रायः नहीं-सी रह गई थी। परन्तु बिहार के डा० शाट् (Dr. Schacht), माननीय बाबू अनुग्रहनारायणसिंहजी की जितनी तारीफ़ की जाय, थोड़ी है—जिन्होंने प्रान्त को ऐसी विषम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आर्थिक कठिनाइयों के बीच से सही-सलामत निकालने की असामान्य विचक्षणता दिखलाई है। अब तो यहाँ तक सफलता मिली है कि क्रमशः मद्य-निषेध की योजना बढ़ाई ही जा रही है।

[ग] आर्थिक क़ानून—किसानों के ऋण-भार को हल्का करना लोक-कल्याणकारी कांग्रेस-मन्त्रि-मण्डल के लिए लाज़िमी था। इसका उपाय इस क़ानून द्वारा समुचित रूप से किया गया है। इस क़ानून के अनुसार अब ब्याज किसी भी हालत में १२ प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकता, न वह मूल के द्विगुण से ही अधिक हो सकता है। स्पष्टतः अब वे दिन लद गये, जब पाँच रुपये के ऋणशोध के लिए किसान पुश्त दर पुश्त सूदख़ोर की ग़ुलामी करता मर जाता था, पर मूल से शतगुण अधिक देने पर भी उऋण नहीं हो पाता था।

[घ] औद्योगिक—बिहार में चीनी का व्यवसाय अभी पनप ही रहा है। पर उसके भविष्य में किसी को सन्देह नहीं हो सकता। किन्तु क़ानूनी नियन्त्रण नहीं रहने से इस व्यवसाय में लगे पूँजीपतियों के मध्य अनर्थकारी प्रतिद्वन्द्विता और किसानों के शोषण की नीति बहुत हानिकारक सिद्ध हो रही थी। अब संयुक्तप्रान्त के सहयोग से इस क़ानून द्वारा उत्पादन पर नियन्त्रण रखकर, ऊख का कम से कम मूल्य निर्धारित कर, और चीनी का बिक्री के प्रबन्ध से, इस व्यवसाय को नवजीवन मिला है।

[ङ] कर-सम्बन्धी क़ानून—(१) कृषि-जन्य आय-कर क़ानून; (२) मनोरंजन-कर और (३) बिहार स्टाम्प एमेंडमेंट ऐक्ट।

(१) द्वारा पाँच हज़ार रुपये से अधिक कृषि-जन्य आय पर कर लगाया गया है। प्रान्तीय सरकार की आमदनी बढ़ाने का यह उपाय माननीय बाबू अनुग्रह-नारायणसिंह की मौलिक सूझ का फल है, जिसका अनुकरण अब अन्य प्रान्तों में भी होने जा रहा है। इसकी विशेषता यह है कि इसके द्वारा बहुत दिनों से रूढ़ ज़मींदारी-प्रथा के विनाश के बिना ही ज़मींदारों के अनुचित आर्थिक लाभ में जहाँ एक ओर पर्याप्त कमी हुई है, वहाँ रचनात्मक कार्यों के लिए भी सहायता मिली है। साम्यवाद का अभीष्ट है अमीरों और ग़रीबों की दशाओं के भेद को मिटा देना। परन्तु इस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए साम्यवादी जिस प्रणाली को अख़्तियार करना चाहते हैं, उससे देश में व्यर्थ का वर्ग-वैमनस्य फैलेगा। हमारा निश्चित मत है कि इस प्रशंसनीय लक्ष्य पर क्रम से पहुँचने के लिए मा० बाबू अनुग्रहनारायणसिंह की यह वैधानिक नीति व्यावहारिक दूरदर्शिता का सफल उदाहरण है।

(२) और (३) से भी रचनात्मक कार्यों को सफलता से चलाने के लिए सरकारी आमदनी में वृद्धि करने का सफल प्रयत्न किया गया है।

[च] इस विभाग में सामान्य लोकोपकारी धाराओं का उल्लेख कर हम बिहार-मंत्रिमण्डल के वैधानिक सुधारों का अध्ययन समाप्त करेंगे। इनमें जो धाराएँ हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं, वे हैं फ़ौज के लिए बेगार-प्रथा को बन्द कर देने के लिए, मंत्रियों के अत्यल्प वेतन के निर्धारण के लिए और अकाल-पीड़ितों के सहायतार्थ सुरक्षित कोष की स्थापना के लिए। कहना न होगा, इन सब धाराओं की अवतारणा से मंत्रिमण्डल की जागरूक लोकहितैषिता का पूर्ण परिचय मिलता है।

अब यहाँ इस प्रशस्त मंत्रिमण्डल के शासन-सम्बन्धी अनेकानेक कार्यों का विश्लेषण भी समीचीन होगा। पदारूढ़ होने के बाद से ही मंत्रिमण्डल का ध्यान आतङ्कवादी राजबन्दियों की रिहाई की ओर लगा हुआ था, परन्तु इसमें गवर्नर अड़चन लगाते गये और अन्ततः मंत्रिमण्डल के सामने दो ही रास्ते रह गये—या तो देश की उचित माँग को राजबंदियों को रिहा कर पूरा करना या पद-त्याग! चूँकि यह सर्व विदित ही नहीं, सिद्ध बात है कि कांग्रेस के मन्त्रियों ने पदग्रहण केवल जनता की भलाई के लिए ही किया है, इसमें उनका कोई अपना स्वार्थ नहीं निहित है, इसलिए जैसे ही उन्हें मालूम हो गया कि गवर्नर ब्रिटिश-सरकार के आदेशानुसार राजबंदियों की रिहाई के आज्ञापत्र पर हस्ताक्षर नहीं करेंगे, वैसे ही उन्होंने इस्तीफ़े दाख़िल कर दिये। जिसका फल यह हुआ कि ब्रिटिश-सरकार को अपने प्रतिनिधियों द्वारा एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्मानपूर्ण समझौता कर मंत्रिमण्डल की इस नीति को स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

ऐसी ही भावनाओं से प्रेरित होकर, अन्य कांग्रेस-मंत्रिमण्डलों की तरह, बिहार के मंत्रिमण्डल ने भी स्वदेशी विधान-निर्मात्री परिषद् को माँगसम्बन्धी संघयोजना को ठुकरानेवाले और पदवियों के प्रति अपने विरोध को सूचित करने के लिए कई प्रस्ताव पास कराये।

पुलीस-विभाग में फैली घूसखोरी रोकने के लिए एक कमेटी बैठाई गई और इस विभाग के कर्मचारियों को अपने को जनता का सेवक समझ सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करने के लिए बाध्य किया गया।

वर्तमान शिक्षा-पद्धति से लाभ उठाने के लिए ग़रीब और मेधावी छात्रों के निःशुल्क अध्यापन का और अधिकाधिक छात्रवृत्तियों के प्रबन्ध का आदेशपत्र जारी हो गया है। परन्तु मंत्रिमण्डल का ध्यान वस्तुतः बालिग़ जनता को शिक्षित करने की ओर केंद्रित रहा है और इसमें साक्षरता-आन्दोलन चलाकर ग्राम-पुस्तकालयों को प्रोत्साहित कर स्तुत्य सफलता प्राप्त की जा रही है। सैनिक-शिक्षा और स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए भी मंत्रिमण्डल सचेष्ट है।

उद्योग और गृह-शिल्प के सुचारु संचालन और प्रसार के लिए मंत्रिमण्डल सतत प्रयत्नशील है। खादी को सरकारी सहायता मिल रही है, चीनी आदि व्यवसायों के व्यवस्थित-विकास के लिए मंत्रिमण्डल की सचेष्टता का उल्लेख किया जा चुका है; कृषि और विज्ञान की शिक्षा को प्रोत्साहित कर बिहार-मंत्रिमण्डल ने प्रान्त के विद्युत्करण, बाढ़-समस्या को हल करने की योजना आदि कार्यों के द्वारा युवकों की बेकारी के प्रश्न का भी समाधान किया है; फिर लेबर-कमिटी और लेबर-आफ़िसरों की नियुक्ति कर कटुता फैलानेवाले श्रमिकों से संबद्ध प्रसङ्गों का पहले से ही प्रबन्ध कर रक्खा गया है। ग्रामोद्योग का तो अलग विभाग ही खोला गया है। अस्तु।

कहना न होगा कि अपने शासन की इस थोड़ी अवधि में बिहार-सरकार की सेवाएँ महत्त्वपूर्ण और किसी भी प्रान्तीय सरकार के लिए अनुकरण को वस्तु हैं और इन समस्त सेवाओं का श्रेय बिहार के कुशल प्रधान मन्त्री माननीय बाबू श्रीकृष्णसिंह, सुयोग्य अर्थमन्त्री बाबू अनुग्रहनारायणसिंह तथा शिक्षामन्त्री माननीय डाक्टर सैयद महमूद को है। हम आशा करते हैं कि जनता जनार्दन की सेवा की इस होड़ में बिहार-मंत्रिमण्डल अन्य प्रान्तीय मंत्रि-मण्डलों के लिए एक अनुकरणीय आदर्श छोड़ जायगा।

× × ×

२—हिन्दू लोग आत्मरक्षा कर सकते हैं

आजकल हिन्दुओं पर प्रायः आक्रमण होने का एक कारण यह भी है कि हिन्दुओं में एकता, सहयोग और आत्मविश्वास की कमी है। हिन्दुओं पर हमला कर बैठनेवाले चाहे गुण्डे हों और चाहे धर्मोन्मादग्रस्त भले आदमी, वे यह जानते हैं कि हिन्दुओं में दलबद्ध और संगठित होकर उनका मुक़ाबला करने का माद्दा नहीं के बराबर है। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दू लोग अब अपनी इस कमी को समझकर उसे दूर करने का प्रयत्न करने लगे हैं और निश्चय ही वे अपने ऊपर होनेवाले अत्याचारों को स्वयं रोक सकेंगे। आज दिन मुसलिमलीग हिंदुओं के विरुद्ध विषवमन करने में प्रसिद्ध है। पर शांतिप्रिय हिन्दू उससे उत्तेजित न होंगे; हमें इसका पूर्ण विश्वास है और इसी में देश की भलाई है। इस सम्बन्ध में प्रवासी पत्र के सम्पादक ने वैशाख की संख्या में एक नोट दिया है। हम उसका सारांश यहाँ पर देते हैं—

"वर्तमान समय में दो दलों में हिन्दुओं के प्रति विरोध की भावना देखी जाती है। एक साम्राज्य-भक्त (इम्पीरियलिस्ट) अँगरेज़ और दूसरे साम्प्रदायिकता-ग्रस्त मुसलमान। ब्रिटेन के कुल अधिवासियों की संख्या ५ करोड़ से कम है। भारतवर्ष में हिन्दुओं की संख्या २३ करोड़ ६१ लाख ६५ हज़ार १४६ है। भारत के बाहर भी कुछ हिन्दू हैं। भारत के बौद्धों, जैनों और सिखों का शुमार इसमें नहीं किया गया। ब्रिटेन के अँगरेज़ी भाषा बोलनेवाले लोगों के अलावा अन्य अँगरेज़ी भाषा बोलनेवाले (जैसे अमेरिका के लोग) अँगरेज़ों के साथ मिलकर हिन्दुओं का विरोध करेंगे, इसकी सम्भावना कम है। अगर वे ऐसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करें तो भी उनकी संख्या कुल २० करोड़ है। यह संख्या हिन्दुओं की संख्या से कम ही है। हिन्दू लोग बुद्धि और साहस में अँगरेज़ों से कम नहीं हैं। हाँ, शिक्षा और दलबद्धता में उनसे हीन हैं। इसका प्रतिकार हो सकता है और हो भी रहा है। भारतवर्ष में मुसलमानों की संख्या ७ करोड़ ७६ लाख ७७ हज़ार ५४५ है। सम्पूर्ण पृथ्वी के मुसलमानों के हिन्दू-विरोधी होने की सम्भावना कम है। अगर सभी हिन्दुओं के विरोधी हो जायँ तो भी उनकी संख्या विटेकर्स अलमनक के अनुसार २० करोड़ ६० लाख २० हज़ार, अर्थात् हिन्दुओं की संख्या से कम हैं। हिन्दू लोग केवल दलबद्धता में मुसलमानों से हीन है। इस विषय में हिन्दू लोग उन्नति कर सकते हैं और शायद कर भी रहे हैं। ब्रिटेन के अँगरेज़ और भारत के मुसलमान समष्टि रूप में हिन्दुओं से कम हैं।" कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दू लोग किसी के विरोध की पर्वा न करके, स्वयं किसी के प्रति विरोध और वैर का भाव न रखकर अपने में आत्मविश्वास की मात्रा बढ़ाकर, अपने ही बल-बूते पर अपनी रक्षा और उन्नति के साथ देश की, समाज की उन्नति और भलाई कर सकते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

× × ×

३—स्वर्गीय लाला हरदयाल

भारत का एक और नररत्न चल बसा। लाला हरदयाल भारत की एक विभूति थे। आपकी विद्वत्ता अपार और देशभक्ति प्रशंसनीय थी। आप अपने उग्र विचारों के कारण भारत से बाहर चले गये थे और अर्से से अमेरिका के फिलाडेल्फिया शहर में रहते थे। गत मार्च में वहीं सोते समय हृद्रोग से आपका स्वर्गवास हो गया। आपकी जन्मभूमि पंजाब में थी। विद्यार्थी अवस्था से ही आप भारत की स्वाधीनता चाहते थे। केवल चाहते ही नहीं थे, वह तन-मन से देशभक्त थे। कार्यतः भी आगे चलकर उन्होंने बहुत कुछ किया। यह दूसरी बात थी कि उनकी कार्यपद्धति समयोपयोगी न थी। वह विशेष मेधावी और विद्वान् छात्र थे, इसलिए उन्हें State Scholarship (छात्रवृत्ति) गवर्नमेंट ने दी थी और उसी से वह आक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय में पढ़ने विलायत गये थे। किन्तु "विदेशी सरकार की दी हुई" वह वृत्ति उन्होंने त्याग कर दी। इसके बाद भारत से ब्रिटिश-शासन को हटाने के लिए उन्होंने बहुत कुछ छिपे तौर से काम किया। इस प्रकार विद्रोही हो जाने पर सरकार ने उनका भारत आना रोक दिया। पहले वह ब्रिटेन के विरोधी और जर्मनी के पक्षपाती थे, पर बाद को उनका मत बदल गया था। सर तेजबहादुर सप्रू ने उनके भारत लौटने के बारे में अनुकूल सम्मति प्रकट की थी। अमेरिका में कुछ दिन रहकर उन्होंने भारत लौटने की इधर इच्छा भी प्रकट की थी और वह आते भी थे, क्योंकि सरकार ने प्रतिबन्ध हटा लिया था। परन्तु इसके पहले ही उनकी मृत्यु हो गई। वह कई भाषाएँ अच्छी तरह जानते थे। संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। योरप और अमेरिका के कई विश्वविद्यालयों में बहुत-से व्याख्यान दिये थे। विभिन्न धर्म-संप्रदायों के बारे में उनका ज्ञान बहुत गहरा था। इस विषय पर उन्होंने एक बहुत अच्छी पुस्तक लिखी है। दर्शनशास्त्र, अर्थ-नीति, समाजविज्ञान में उनका असाधारण पाण्डित्य था और इन विषयों पर उन्होंने बढ़िया खोज की थी। मरने के कई वर्ष पहले से वह बौद्धमत के विशेष पक्षपाती हो गये थे। वह भारत के और विदेशों के कई पत्रों में सारगर्भ लेख लिखा करते थे। उनका पहनावा और चालचलन बहुत सीधा-सादा था। उन्होंने नार्वे में रहने के समय एक नार्वेजियन महिला से ब्याह कर लिया था। अमेरिका में उनकी मृत्यु के उपलक्ष में जो भारी सभा हुई थी, उसमें विभिन्न धर्मावलम्बी लोगों ने उनके गुणों का बखान और शोक-प्रकाश किया था। इसमें सन्देह नहीं कि लालाजी एक असाधारण पुरुष थे। यह उनका दुर्भाग्य था कि वह भारत में पैदा हुए। अगर किसी दूसरे स्वतन्त्र देश में उनका जन्म होता तो निस्सन्देह वह एक बहुत बड़े आदमी समझे जाते। देश का भी यह दुर्भाग्य था कि ऐसे असाधारण पुरुष को जन्म देकर वह उनसे विशेष लाभ न उठा सका। हम स्वर्गीय लालाजी के प्रति सादर श्रद्धांजलि अर्पण करते हुए ईश्वर से उनकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मा के लिए शान्ति और सद्गति की प्रार्थना करते हैं।

× × ×

४—काशीनरेश का कैलाशवास

यह समाचार पढ़कर हमें हार्दिक दुःख हुआ कि ६४ वर्ष की अवस्था में काशीनरेश का कैलाशवास हो गया। महाराज प्रजावत्सल और उदार थे। आपकी प्रजा में इधर बेचैनी पैदा हो गई थी। आपने प्रजा के आन्दोलन को शान्त करने के लिए शासन में कुछ परिवर्तन की घोषणा कर दी थी और उससे प्रजा की बेचैनी घट गई थी। इधर आप बीमार पड़ गये और अचानक आपकी मृत्यु हो गई। काशीनरेश होने के कारण हिन्दुओं की आप पर विशेष श्रद्धा थी। आपके पुत्र अभी १४ वर्ष के ही हैं। आप ही गद्दी के उत्तराधिकारी क़रार दिये गये हैं। हमें आशा है, नवयुवक नरेश आगे चलकर प्रजा को प्रसन्न रखने की चेष्टा करेंगे। हम स्वर्गीय महाराज की पूत आत्मा के लिए शान्ति की कामना प्रकट करते हुए आपके परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना रखते हैं।

× × ×

५—स्वर्गीय पहाड़ीजी

हिन्दी के लेखक-समाज से एक एक करके अनेक अच्छे लेखक स्वर्गवासी होते जा रहे हैं। उस दिन भारत में यह समाचार पढ़कर हम दंग रह गये कि हिन्दी के उदीयमान कहानी-लेखक पहाड़ीजी का अलीगढ़ में हृद्रोग से अचानक स्वर्गवास हो गया: पहाड़ीजी अभी नवयुवक थे। आपकी अवस्था मुश्किल से २७-२८ वर्ष की होगी। इसी अवस्था में आप एक अच्छे लेखक बन चुके थे। आपकी कहानियाँ सुन्दर होती थीं। आपकी "अधूरा चित्र" नाम की कहानी पहलेपहल माधुरी के विशेषांक में हमने छापी थी। उस कहानी को हमारे पाठकों ने बहुत पसंद किया था। आपकी नीनी कहानी इसी अंक में छपी है। इसे आप स्वयं हमको दे गये थे। बस, वही अन्तिम साक्षात्कार था। पहाड़ीजी का नाम रमाप्रसाद गिडग्याल था। आप पहाड़ी थे, इसी से आपने अपना उपनाम पहाड़ी रक्खा था। आप बड़े मिलनसार, हँसमुख और विनोदी थे। आपकी मृत्यु से हमें उतना ही शोक हुआ है, जितना किसी अपने सगे भाई की मृत्यु पर होता। निःसंदेह आपकी मृत्यु से हिन्दी की विशेष क्षति हुई है। पर हम शोक-प्रकाश के सिवा कर ही क्या सकते हैं? काल से किसका वश चला है?

× × ×

६—रूस की युद्ध की तैयारी

रूस के राष्ट्रनायक स्टेलिन ने निश्चय कर लिया है कि जर्मनी, इटली और जापान, इन तीन शक्तियों के साथ एक दिन उन्हें युद्ध करना ही होगा। किन्तु सभी देशवासी जब तक रूस के नेताओं की सहायता करने को तैयार न हों, तब तक इन तीन सबल राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध करके रूस विजयी नहीं हो सकता। कुछ दिनों से रूस में ज़ोर से धरपकड़ जारी थी और बहुत-से आदमियों को, जिनमें अनेक प्रभावशाली व्यक्ति थे, स्वदेशद्रोह का अपराध लगाकर कठोर दण्ड दिये गये—बहुतों को प्राणदण्ड दिया गया और कुछ को स्वास्थ्य-नाशक स्थानों में निर्वासित कर दिया गया। सोवियट सरकार के हर्ता-कर्ता-विधाता स्टेलिन ने संदिग्ध व्यक्तियों को ज़ारशाही के निहिलिस्टों की तरह कठोरता के साथ नेस्तनाबूद कर दिया। लेकिन इधर कुछ दिनों से यह नीति छोड़ दी गई है। रूस के दूरदर्शी अधिवासियों की धारणा यह है कि शत्रु के आक्रमण करने पर देशवासी लोग रूस के नेताओं की सहायता करेंगे—वे देश की रक्षा के लिए राष्ट्रीय झंडे के नीचे एकत्र हो जायँगे, इसी आशा से स्टेलिन कठोर नीति और उसके अत्याचारों को बन्द करके देशवासियों के विश्वासपात्र बनने की चेष्टा कर रहे हैं। यह लोगों का अनुमान मिथ्या नहीं है। गत मार्च मास के प्रथम सप्ताह की एक घटना से यह अनुमान सत्य सिद्ध होता है। रूस के पुलीस-विभाग के डिपुटी चीफ़ पुलीस आफ़िसर क्लीपैंड और उनके मातहत तीन पुलीस कर्मचारियों ने पश्चिम साइबेरिया के प्रधान नगर लेनिनस्क-कुजानेटास्की के १६० छात्रों को बहुत सताया और उन-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पर अत्याचार किया था। इस अपराध के लिए इन्हें ५ से १० वर्ष तक की कड़ी क़ैद की सज़ा दी गई है। जिन पुलीस कर्मचारियों ने इन बालकों पर अत्याचार किया था, उन्हें "नर-राक्षस" लिखकर पत्रों ने उनके प्रति घृणा प्रदर्शित की थी। इन पत्रों में जो विवरण छपा है, उससे मालूम होता है कि इन पुलीस कर्मचारियों ने बालकों को गिरफ़्तार कर उनके विचार के लिए जो एक सामरिक विचारालय खोला गया था, वहाँ हाज़िर किया। इन बालकों की अवस्था दस से बारह वर्ष तक की थी। पर उनके विचार में देर होती गई, इसलिए उन्हें आठ महीने तक जेल में रहना पड़ा। जेल में उन बच्चों को उनसे अपराध क़बूल कराने के लिए उन पर बड़ी-बड़ी सख़्तियाँ की गईं। उन्हें खुली ज़मीन पर रात को सुलाया गया और भी तरह-तरह की यन्त्रणाएँ दी गईं। पुलीस उनसे यह क़बूल कराना चाहती थी कि उन्होंने फ़ासिस्ट विप्लवी दल का संगठन किया है। इन बच्चों में वोलोडिया नाम का एक दस साल का बालक था। उसे तीन दिन तक साधारण कारागार में भयानक प्रकृति के लुटेरों और ख़ूनियों के बीच रक्खा गया। चौथे दिन रात को उसे सोते से जगाकर एक गुप्त कोठरी में ले जाया गया। वहाँ पुलीस कर्मचारियों ने उससे तरह-तरह की जिरह की। पुलीस 'विभीषिकावाद', 'फ़ासिस्टदल के लिए छात्रसंग्रह' आदि जो बातें उससे पूछती थी, उनका अर्थ ही वह बच्चा नहीं समझता था। वह उत्तर क्या देता? पुलीस के सिखाने-पढ़ाने का फल यह हुआ कि अदालत में जाकर उस बच्चे ने सिखाई और रटाई हुई बातें कहना शुरू कर दिया। एक अख़बार ने मज़ाक़ के तौर पर लिखा है कि इस बालक ने सरकार के ख़िलाफ़ जो अपराध किया है, उसे उसने इस जन्म के पहले ही शुरू कर दिया था। इन बालकों को सताने के अपराध में पुलीस कर्मचारियों को कठोर दण्ड देने के बाद राजनीतिक कारण से दण्डित क़ैदियों को साइबेरिया की जेल से बराबर छोड़ा जा रहा है। इससे यह निश्चय होता है कि देशवासियों का विश्वास प्राप्त करने के लिए ही यह नीति बरती जा रही है। लाल सेना का संगठन करने के बाद हाल में जो उसका इक्कीसवाँ वार्षिक उत्सव किया गया है, उसमें सैनिकों ने जो शपथ ली है, उसकी भाषा में भी परिवर्तन कर दिया गया है। पहले उनको यह शपथ लेनी पड़ती थी कि वे पृथ्वी पर विप्लव करने के लिए अपना जीवन उत्सर्ग करेंगे; किन्तु अब उन्हें यह शपथ लेनी पड़ी है कि वे मातृभूमि की रक्षा के लिए जीवन उत्सर्ग करेंगे। इसके सिवा सोवियट सरकार को जलसेना के वाइस कमीशर (Naval Vice Commissar) एडमिरल आइवान स्टिवानोविच इसाकाफ अमेरिका इसलिए भेजे गये हैं कि वह वहाँ जाकर रूस के लिए क्रूज़र और बड़े जंगी जहाज़ बनवाने की व्यवस्था करें। रूस के युद्ध-विभाग के कमिश्नर क्लेमेंट एफ़्रीमोविच डोरोसीलफ् ने घोषणा की है कि हम भविष्य में शत्रुओं के ख़िलाफ़ जो लड़ाई शुरू करेंगे, उसमें पहले गैस का व्यवहार किया जायगा। गैस की लड़ाई समाप्त होने पर आधुनिक विज्ञान की सहायता से बनाये गये अस्त्र-शस्त्रों से युद्ध किया जायगा। इसीलिए उन्होंने यह घोषणा की है कि रूस देश में जो "Military Academy for Chemical Warfare" नाम की संस्था स्थापित हुई है, उसका आकार तिगुना बढ़ा दिया जायगा। इस सैनिक शिक्षा की संस्था में रूस के सभी प्रदेशों के रासायनिक और वैज्ञानिक विद्वानों को शीघ्र ही शामिल होना होगा। इस संस्था में रूस के सैनिकों को केवल गैस के इस्तेमाल के बारे में ही सब तरह की अभिज्ञता प्राप्त करनी होगी। शिक्षा समाप्त करके वे सरहद पर आकर कुछ रसायनशास्त्र के जाननेवाले कर्मचारियों की सहायता से युद्ध की तैयारी करेंगे। पृथ्वी के भीतर उनका जो अड्डा बनाया जायगा, वह साधारणतः लेबोरेटरी के आदर्श पर बनेगा। यह दल गैस के बादल पैदा करके सरहद की रक्षा करेगा। रूस के सामरिक कर्मचारी गैस के युद्ध का अभ्यास कर रहे हैं। वे कहते हैं—रूस ने जो गैस को रोकनेवाली नक़ाबें बनाई हैं, वे सभी देशों की ऐसी नक़ाबों से श्रेष्ठ हैं। गैस की लड़ाई में वे प्रबल से प्रबल शत्रुसेना को परास्त कर सकते हैं। रूस के विधाताओं की यह धारणा है कि उनकी युद्ध की तैयारी बिलकुल नई है और वे अजेय हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेख-सूची

विषय	पृष्ठ
१. दुई का सोच (कविता)—[लेखक, पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	३९१
२. हिन्दी-पुस्तकों का वर्गीकरण—[लेखक, श्रीश्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी०	३९३
३. प्रसादजी के काव्य में रंग—[लेखक, श्रीदयानन्द शुक्ल बी० ए०, एल्-एल्० बी०	४०२
४. प्राचीन भारत में स्त्रियों का स्थान—[लेखिका, कुमारी अन्नपूर्णा टांग्री बी० ए०	४०८
५. देहात-चर्चा (ग्रामीणों की होली)—[लेखक, श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज	४१२
६. आत्मगौरव—[लेखक, श्रीकनक-मूर्ति	४१७
७. शेख साहब का फ़ैसला (कहानी)—[लेखक, श्रीविजयबहादुर श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०	४१८
८. कविवर प्रसादजी के कुछ संस्मरण—[लेखक, श्रीरघुवीरसिंह एम्० ए०, एल्-एल० बी०, डी० लिट्०	४२२
९. पशु-जीवन और मनुष्य-समाज—[लेखक, श्रीशचीन्द्रनाथ सान्याल	४२८
१०. वाग्भूषणकाव्य और उसका परिचय—[लेखक, साहित्याचार्य श्रीरामेश्वर शास्त्री, विद्यालंकार	४३४
११. समाजवाद और उसकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि—[लेखक, श्रीगंगाप्रसाद	४३७
१२. जर्मन-साम्राज्यवाद—[लेखक, श्रीकान्त एम्० ए०	४४३
१३. डा० जानसन—[लेखक, श्रीप्रेमनारायण टंडन विशारद	४५४
१४. जीवन का रहस्य (कहानी)—[लेखक, श्री० 'मुकुल'	४६२
१५. तुलाराम शास्त्री (कहानी)—[लेखक, श्रीअमृतलाल नागर	४६६
१६. ग्रामीणों का रहन-सहन कैसे ऊँचा हो ?—[लेखक, श्रीहरशरण शर्मा विशारद	४७०
१७. प्रेम-ज्योति (कहानी)—[लेखिका, कु० उषा वोरीकर; अनु०, रविनाथ	४७४

बवासीर का काल

क्या इस दवा के रहते भी आप ख़ूनी या बादी बवासीर से कष्ट उठाते ही रहेंगे ? कैसा ही पुराना हो २१ दिन में जड़ से आराम न हो तो दूना दाम वापस। मू० २) रु०।

स्वप्नदोष और सूजाक

सिर्फ़ १५ दिन इस अमोघ वनौषधि के सेवन करने से सदा के लिये दूर हो जाता है। मू० २) रु०।

महाबीर औषधालय,
नं० ५ दरभंगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
१८. उत्तम काव्य-रचना का आदर्श—[लेखक, पं० रामनारायणदत्त शास्त्री "राम"	४८२
१९. संसार का बेजोड़ व्यक्ति स्व० लाला हरदयाल—[लेखक, सरदार अर्जुन-सिंह साहित्याचार्य	४९८
२०. पुस्तक-परिचय—[लेखक, पं० इन्द्र-दत्त शर्मा साहित्यशास्त्री	५०२
२१. क्षणभंगुर जीवन (कविता)—[लेखक, महाकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय	५०५
२२. महाकवि धोयी और उनका पवनदूत—[लेखक, आचार्य श्रीराधारमण शर्मा शास्त्री, साहित्यभूषण, काव्यतीर्थ ...	५०७
२३. हमारा दृष्टिकोण	५१३

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. वीर-रमणी झाँसी की रानी

२. रूपमती और बाजबहादुर

सादे चित्र अनेक

बवासीर, कांच, भगन्दर

कष्टरहित, हानिरहित, स्थाई चिकित्सा

८ वर्ष में भारतवर्ष के सब स्थानों से सहस्रों रोगी ठीक हो चुके हैं, काँच तो ४८ घन्टे बाद निकलनी बन्द हो जाती है। केवल देहली हस्पताल में मार्च १९३९ तक ८३४ रोगी चिकित्सा कराकर लाभ उठा चुके हैं। आगरा और बनारस में भी स्थाई ब्रांच हस्पताल स्थापित कर दिये गये हैं। नियम मुफ़्त।

पता—

डा० आर० आर० गुप्ता एन्ड सन्स,

नई सड़क, देहली

नक़ालों से सावधान !

खिजाब को छोड़ो

इस तेल से बाल का पकना रुककर और पका बाल काला पैदा लेकर यदि ६० वर्ष तक काला न रहे तो दूना मूल्य वापस की शर्त लिखा लें। एकाध बाल पका हो तो २) इससे अधिक पका हो तो ३॥) या कुल पका हो तो ५) का तेल मँगवा लें।

पता—मृत्युञ्जय-सुधा-औषधालय,

नं० ३८, पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वीर-रमणी झाँसी की रानी

[चित्रकार—श्रीरामनाथ गोस्वामी]

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

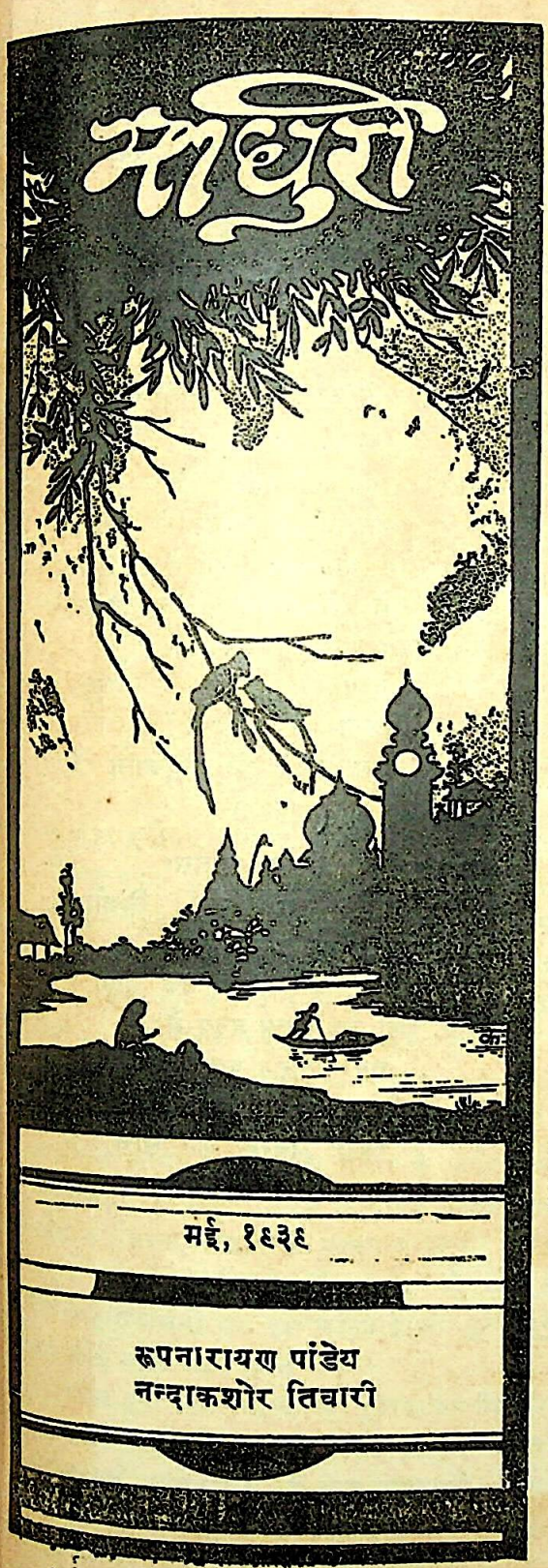

वर्ष १७] वैशाख, सं० १९९६ [खंड २

दुई का सोच

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

(१)

मैंने कहा ज़रा झुक आओ
और इधर इस बार,
अतिकम्पित इस वक्षःस्थल पर
सिर रख लो, सरकार,
खड़े-खड़े यों बने हुए बुत,
क्यों देखो हो, प्रान ?
मेरे जीवन में छिटका दो
मन्द - मन्द मुसकान ;

(२)

ठुमुक पधारे हो आँगन में
अजब रूप धर आज,
भर-भर लाये हो नयनों में
स्वप्न, जागरण, लाज,
सघन मेघ सम केश-पाश में
चपला से, साकार,
झूम-झूमकर ख़ूब कर रहे
हैं ताटङ्क बिहार . ;

(३)

बोलो, मालिक, क्यों न
बलाएँ लूँ आकर नज़दीक ?
वे बोले कि चटपटी इतनी
नहीं ज़रा भी ठीक ;
अब तो ज़रा होश में आओ ;
प्रेम नहीं संयोग ;
फिर, इतनी आतुरता ?
यह तो नहीं नेह के जोग ;

संख्या ४] तुलसी-संवत् ३१५ [पूर्ण संख्या २०२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(४)

नेह निभाना है तो सीखो
आत्म - विस्मरण - सार,
नेह निभाना है तो छोड़ो
शारीरिक व्यापार ;
अपने को खो देने ही में
है सनेह का सार ;
ज्यों ही मिटी अहंता त्यों ही
मिटा विरह - व्यापार ;

(५)

जब तक हस्ती की मस्ती में
शराबोर है स्नेह ;
द्वैत भाव तब तक है,
जब तक नहीं सनेह-विदेह ;
जब तक द्वैत भाव है
तब तक है यह हाहाकार,
हा - हा - कार जहाँ है
वाँ फिर कैसा प्रेम-विचार ?

(६)

हममें तुममें आज भेद है,
यह परदे का खेल ;
परदा हटते ही हो जायेगा
हम - तुममें मेल ;
कहाँ रहोगे 'तुम' जब
होगा मोह - आवरण दूर ?
तब तो स्वयं कहोगे
"सोऽहं" ; चमक उठेगा नूर ।

(७)

काल - उदधि में आदि
प्रेरणारूपी ढेला एक—
पड़ा ; उसी से लहराई
हैं लहरें यहाँ अनेक ;
यही लहर-भवरें बल खातीं
बनी सृष्टि का जाल ;
इसी जाल में उलझ गया है
जीवन का जंजाल ;

(८)

लहरें समझ रही हैं
हम तो हैं सागर से भिन्न,
इसी लिए तो उमड़ रही हैं
वे यों निशि - दिन खिन्न,
हम कहते हैं ; एक रूप हो,
देखो होकर शान्त,
मिलनोत्सुकता से होते हो
तुम क्यों यों उद्भ्रान्त ?

(९)

जब तक है यह मिलन-लालसा
तब तक यहाँ विछोह,
केवल उस छिन तक ही तड़पन
है जिस छिन तक मोह ;
उतर चुका जब अक्स हृदय में
तब फिर क्या संकोच ?
दुई मिटी ; अरमाँ बर आये ;
मिटा विरह का सोच ;

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दी-पुस्तकों का वर्गीकरण

श्रीश्यामनारायण कपूर बी० एस्-सी०

पुस्तकालयों में पुस्तकों का वर्गीकरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य है। महत्त्वपूर्ण होने के साथ ही यह कार्य बहुत कठिन भी है। पुस्तकों का ठीक-ठीक वर्गीकरण न होने से पुस्तकालयों में अक्सर बहुत-सी पुस्तकें बिना पढ़ी ही रह जाती हैं और कुछ व्यवहार में आने पर भी उपयुक्त पाठकों तक नहीं पहुँच पातीं। इससे पुस्तकालय के मूल सिद्धान्त 'पुस्तकें व्यवहार के लिए हैं' के पालन करने में भी बड़ी अड़चन होती है। पुस्तकालय के ज्ञान-प्रचार और प्रसार के उद्देश्य की भी पूर्ति नहीं हो पाती। इसके अतिरिक्त पुस्तकों का ठीक-ठीक वर्गीकरण न होने से प्रबन्ध-सम्बन्धी अनेक कठिनाइयाँ भी पैदा हो जाती हैं। खेद की बात है कि हिन्दी-पुस्तकालयों की इस कठिनाई को दूर करने के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया गया।

वर्गीकरण ही नहीं, हिन्दी में पुस्तकालय-विज्ञान-सम्बन्धी साहित्य का ही सर्वथा अभाव है। पुस्तकालय-आन्दोलन एवं पुस्तकालय-विज्ञान-सम्बन्धी शायद कोई पुस्तक नाम लेने को भी प्रकाशित नहीं हुई। पुस्तकालयों का प्रबन्ध कैसे किया जाय? उनका संचालन कैसे हो? उनकी पुस्तकों को अधिक से अधिक व्यक्तियों तक पहुँचाने और उनका अधिक से अधिक व्यवहार कराने के लिए क्या उपाय काम में लाये जायँ? इन सब बातों की ओर अभी तक हिन्दी के विद्वज्जनों का ध्यान शायद आकर्षित नहीं हुआ। पुस्तकालयों के संचालन में कार्यकर्ताओं को जो विभिन्न कठिनाइयाँ पड़ती हैं, उन्हें दूर करने के लिए भी कोई संगठित प्रयत्न नहीं हुआ। वास्तव में जब पुस्तकालय ही उपेक्षा की दृष्टि से देखे जाते रहे हैं तो उनके प्रबन्ध-सम्बन्धी साहित्य का निर्माण हो भी कैसे सकता था?

इस सम्बन्ध में हिन्दी-साहित्य मराठी, गुजराती, बंगाली और तामिल, तेलगू, भाषाओं के साहित्य से भी पिछड़ा हुआ है। इन सभी भाषाओं में पुस्तकों के वर्गीकरण के लिए विशिष्ट वर्गीकरण-पद्धतियों का निर्माण हो चुका है। इन पद्धतियों की सहायता से वहाँ के छोटे-बड़े सभी श्रेणियों के पुस्तकालयों का कार्य बहुत कुछ सुगम हो गया है। मराठी और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुजराती भाषाओं में वर्गीकरण-पद्धति का निर्माण करने में बड़ौदा-राज्य के पुस्तकालय-विभाग ने सराहनीय कार्य किया है। बँगला में भी विश्वभारती शान्ति-निकेतन के पुस्तकाध्यक्ष श्रीयुत पी० के० मुकर्जी बँगला-पुस्तकों की वर्गीकरण-पद्धति का निर्माण कर चुके हैं। वहाँ के पुस्तकालय इन पद्धतियों को व्यवहार में भी लाने लगे हैं। हिन्दी में अभी तक किसी लोक-प्रिय पद्धति का निर्माण नहीं हुआ है।

प्रामाणिक विधि आवश्यक

पाँच वर्ष पूर्व काशी के श्रीयुत सतीशचन्द्र गुह ने अपनी 'प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति' द्वारा हिन्दी-पुस्तकों के वर्गीकरण के लिए उल्लेखनीय प्रयत्न किया था। परन्तु अभी तक हिन्दी-पुस्तकालयों में यह पद्धति लोक-प्रिय नहीं हो पाई। हिन्दी के अधिकांश पुस्तकालय अपनी सुविधा के अनुसार अलग-अलग ढंग से पुस्तकों का वर्गीकरण करते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि समस्त हिन्दी-पुस्तकालयों के लिए एक लोकप्रिय, सरल और सुबोध वर्गीकरण-पद्धति का निर्माण किया जाय। वह पद्धति हिन्दी-पुस्तकालयों के लिए प्रामाणिक मानी जाय और देश के अधिक से अधिक पुस्तकालय इसे व्यवहार में लावें। परन्तु ऐसी वर्गीकरण-पद्धति का निर्माण किसी एक व्यक्तिविशेष द्वारा नहीं हो सकता। लोकप्रिय और प्रामाणिक वर्गीकरण-पद्धति के निर्माण के लिए हिन्दी के विभिन्न विद्वानों, पुस्तकालय-विज्ञान में अभिरुचि रखनेवाले व्यक्तियों तथा हिन्दी-पुस्तकालय के कार्यकर्ताओं एवं पुस्तकाध्यक्षों के सहयोग की आवश्यकता है। पुस्तकालयों का कोई अपना निज का संगठन न होने के कारण यह कार्य अभी तक उपेक्षा की दृष्टि से देखा गया है। आवश्यकता इस बात की है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन इस ओर अग्रसर हो और हिन्दी-पुस्तकों की एक प्रामाणिक वर्गीकरण-पद्धति का निर्माण करावे।

प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति

प्रस्तुत लेख में हम श्रीयुत सतीशचन्द्र गुह की प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति का संक्षिप्त विवरण देने के साथ ही वर्गीकरण की कुछ और महत्त्वपूर्ण पद्धतियों का भी संक्षिप्त विवरण देंगे। इन विवरणों से हिन्दी के लिए अपनी एक विशिष्ट पद्धति के विवरण में सहायता मिलेगी। श्रीयुत गुह महाशय ने अपनी वर्गीकरण-पद्धति के निर्माण में प्राच्य और पाश्चात्य दोनों ही विचारों का समावेश किया है। प्राचीन हिन्दू विचारों के अनुकूल विद्या के चार 'वर्ग' माने हैं—(१) धर्म, (२) अर्थ, (३) काम और (४) मोक्ष। प्रत्येक विषय और विभाग इन चारों वर्गों में से एक न एक के अन्तर्गत अवश्य आ जाता है। इन चारों प्रमुख वर्गों को विषयों के अनुसार ९ भागों में बाँट दिया गया है।

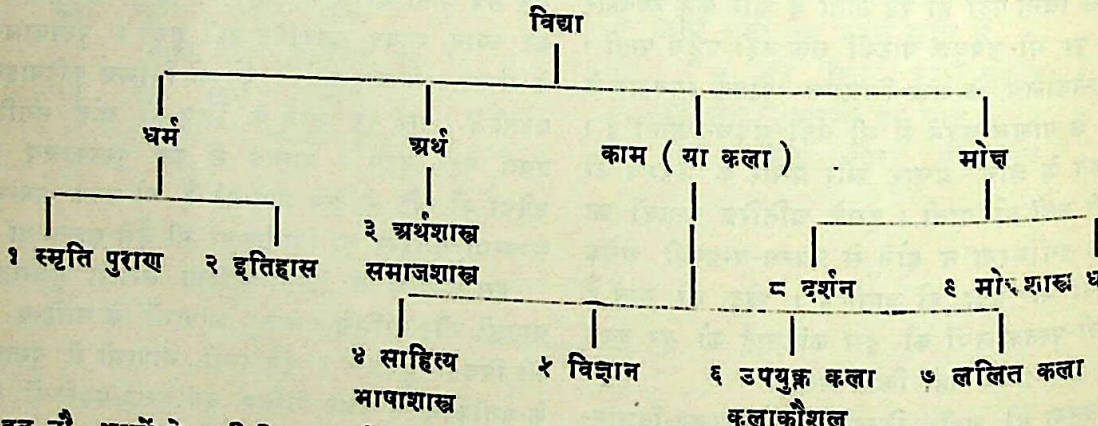

इन नौ भागों के अतिरिक्त, 'सर्व' नाम से एक दसवाँ भाग और भी निर्धारित किया है। वास्तव में विषयों के वर्गीकरण के लिए तो विद्या के उपर्युक्त ९ भाग ठीक कहे जा सकते हैं, परन्तु पुस्तकालयों में जब विषयों का नहीं, वरन् पुस्तकों का वर्गीकरण करना होता है तो एक नई कठिनाई पैदा हो जाती है। कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुस्तकें—जैसे ज्ञानकोष, साधारण कोष, ग्रन्थपञ्जियाँ, साधारण सामयिक पत्र-पत्रिकाओं आदि को किसी विषय विशेष में नहीं रक्खा जा सकता। इन पुस्तकों में प्रायः विभिन्न विषयों की चर्चा रहती है। इसी लिए इनके लिए एक अलग भाग 'सर्व' निर्धारित किया गया है। इस प्रकार गुह महाशय की प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति के अनुकूल समस्त विषय और पुस्तकें इन दस भागों के अन्तर्गत आ जाती हैं। वर्गीकरण करते समय प्रत्येक भाग का निर्देशन उसके साथ लिखे हुए अंक से किया जाता है। जैसे अर्थशास्त्र का ३ से, विज्ञान का ५ से और ललित कला का ७ से।

विभाग

वर्गीकरण-पद्धति को और अधिक आसान एवं व्यापक बनाने के लिए उपर्युक्त १० भागों में से प्रत्येक को १० भागों में भी बाँटा गया है। इस प्रकार सब भाग मिलकर १०० विभागों में बँट जाते हैं। प्रत्येक विभाग का निर्देशन दो अंकों की संख्या से किया जाता है। नीचे दी हुई तालिका से यह विभाजन अधिक स्पष्ट हो जायगा—

००. सर्वसाधारण
०१ प्रदर्शनी (ज्ञानचक्र, मानचित्रादि)
०२ ग्रन्थागार विद्या (Library Science)
०३ विश्वकोष
०४ कोषातिरिक्त सामान्य पुस्तकादि
०५ सामयिक पत्रादि
०६ परिषदादि (Societies)
०७ समाचार-पत्र
०८ ग्रन्थावली
०९ वृत्तान्तसंग्रह (गज़ेटियर, सरकारी रिपोर्टें, कांग्रेस रिपोर्टें, संस्था-विवरण आदि)
१० धर्मशास्त्र
११ स्मृति
१२ धर्मसूत्रकार (Law givers)
१३ आचारधर्म नीतिधर्म
१४ व्यवहारधर्म (Law-क़ानून)
१५ रामायण
१६ महाभारत
१७ पुराण
१८ उपपुराण
१९ अन्य
२० इतिहास
२१ भूमण्डल
२२ एशियाखण्ड
२३ भारतवर्ष
२४ अफ़्रीका
२५ योरप
२६ अमेरिका
२७ सामुद्रिकी तथा अन्य
२८ भूगोल, भ्रमणवृत्तान्त
२९ जीवन-चरित्र
३० अर्थशास्त्र
३१ संख्या विद्या (Statistics)
३२ राष्ट्रनीति (राजनीति=Politics)
३३ अर्थनीति (Economics)
३४ समाज-नीति (Sociology)
३५ शासन-नीति (Administration)
३६ संस्था
३७ शिक्षा
३८ वाणिज्य
३९ रीति-परिच्छद, जनश्रुति, उपाख्यान
४० साहित्य तथा भाषाशास्त्र
४१ काव्य
४२ नाटक
४३ उपन्यास
४४ कथा-साहित्य (गल्प=Stories)
४५ गद्य
४६ वक्तृता
४७ पत्रावली
४८ हास्यात्मक लेख (Satire)
४९ भाषाशास्त्र (Philology)
५० विज्ञान
५१ गणित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५२ ज्योतिष
५३ पदार्थ-विज्ञान
५४ रसायन
५५ भूतत्त्व
५६ जीवन प्रलतत्त्व (Paleontology)
५७ जीवतत्त्व (Biology)
५८ उद्भिद्तत्त्व (Botany)
५९ प्राणितत्त्व (Zoology)
६० उपयुक्त कला (Useful Arts)
६१ वैद्यकशास्त्र (ओषधिविज्ञान)
६२ पूर्त (Engineering)
६३ कृषि
६४ गार्हस्थ्य विद्या
६५ सम्बन्ध (Communications)
६६ वस्तुनिर्माण (Manufacture)
६७ शिल्पकौशल (Mechanic art)
६८ गृहनिर्माण (Building)
६९ अन्य
७० ललित कला (Fine arts)
७१ प्राच्य (साधारण)
७२ स्थापत्य (Architecture)
७३ भास्कर्य (Sculpture)
७४ अंकनविभूषण (Drawing, Decoration, Design)
७५ चित्र विद्या (Painting)
७६ तक्षण (Engraving)
७७ छायाचित्र (Photography)
७८ संगीत
७९ विनोदन (Amusement)
८० दर्शन
८१ न्याय-वैशेषिक
८२ सांख्य-योग
८३ पूर्व मीमांसा
८४ वेदान्त
८५ शैव, शाक्त
८६ वैष्णव
८७ बौद्ध जैन
८८ पाश्चात्य
८९ अन्य
९० धर्ममत-समूह (Religious)
९१ तुलनात्मक
९२ सनातनधर्म (हिन्दूधर्म, भारतीय धर्म)
९३ तदुत्पन्न (बौद्धजैनातिरिक्त)
९४ बौद्ध जैन
९५ मोहम्मदीय
९६ पारसीक=जरथुष्ट्रीय
९७ कन्फ्यूशियन (Confucian)
९८ खृष्टीय (Christian)
९९ अन्य

उपविभाग

वर्गीकरण की उपर्युक्त रूपरेखा में बतलाये गये प्रत्येक विभाग को दस उपविभागों में बाँटा जा सकता है। इन उपविभागों को दशमलव अंकों द्वारा निर्देशित किया जा सकता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट हो जायगी—

गुह की पद्धति के अनुसार २३ संख्या से भारतीय इतिहास का निर्देशन होता है। जिन पुस्तकालयों में भारतीय इतिहास पर बहुत-सी पुस्तकें हों, वे निम्न प्रकार से उनका वर्गीकरण कर सकते हैं—

२३·०—भारतीय इतिहास (साधारण)
२३·१—इतिहास बंगाल का
२३·२—गुजरात, बम्बई, महाराष्ट्र
२३·३—आंध्र, मद्रास, तामिल-नाडु
२३·४—संयुक्तप्रान्त
२३·५—पंजाब
२३·६—बर्मा
२३·७—सिंधिला, मगध, बिहार, उत्कल
२३·८—अन्य भाग—पांडिचरी, गोआ प्रभृति
२३·९—देशी राज्य

गुह महाशय ने प्रत्येक विभाग को इसी प्रकार दस उपविभागों में बाँटा है। यहाँ केवल एक उदाहरणमात्र दिया गया है। वास्तव में छोटे पुस्तकालयों में पुस्तकों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का वर्गीकरण करते समय इन उपविभागों की आवश्यकता भी न पड़ेगी। उनका काम साधारणतया १०० विभागों ही से चल जायगा। बड़े पुस्तकालयों में भी आरम्भ में समस्त पुस्तकों को केवल १०० विभागों ही में बाँटना ठीक रहेगा। बाद में जैसे-जैसे पुस्तक-संख्या बढ़ती जाय या अधिक उपविभागों की आवश्यकता प्रतीत हो, पुस्तकों को उपविभागों में बाँटा जा सकता है। पुस्तकालय इन उपविभागों को भी १० और भागों में—विषयांगों में—बाँट सकते हैं। निम्नलिखित उदाहरण से यह क्रिया भी स्पष्ट हो जायगी—

विषयांग

.०० मूल
.०१ टीका
.०२ भाषान्तर
.०३ सूची (Index concordance)
.०४ लेख, निबन्ध
.०५ सामयिक पत्रादि
.०६ परिषदादि (Societies)
.०७ शिक्षा (Education)
.०८ ग्रन्थावली-संग्रह (Polygraphy)
.०९ वृत्तान्त (History)

वर्गीकरण के मूल १०० विभागों के अनुसार ८४ संख्या वेदान्त का निर्देशन करती है। वेदान्त की समस्त टीकाएँ ८४.०१ से निर्देशित की जायँगी। इसी प्रकार वेदान्त-समाज अथवा वेदान्त-कानफ्रेंसों की कार्यवाहियाँ ८४.०६ से सूचित होंगी। वेदान्त के इतिहास से सम्बन्ध रखनेवाली पुस्तकों का निर्देशन ८४.०९ से होगा। इसी प्रकार १६ संख्या से निर्देशित की जानेवाली महाभारत-सम्बन्धी पुस्तकों का वर्गीकरण करने पर १६.०२ से महाभारत के अनुवाद सूचित किये जायँगे।

उपर्युक्त वर्गीकरण के अतिरिक्त गुह महाशय ने अपनी पद्धति में प्रत्येक पुस्तक के प्रकाशित होने की तिथि आदि का निर्देशन करने की विधि भी बतलाई है। पुस्तकों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में और भी कई उपयोगी बातों पर प्रकाश डाला है। परन्तु यहाँ हम उन सबकी विशेष चर्चा न करके पुस्तकालयों की कुछ विशेष शाखाओं और विभागों की पुस्तकों के वर्गीकरण पर प्रकाश डालेंगे।

विशेष संग्रह

प्रत्येक सामान्य पुस्तकालय में कुछ विशेष संग्रह अवश्य होते हैं। ये विशेष संग्रह अनेक कारणों से स्वतंत्र विभागों के रूप में अलग अलमारियों अथवा स्थानों में रक्खे जाते हैं। जहाँ सुविधा होती है, उन्हें अलग कमरों में स्थान दिया जाता है। इस प्रकार की विशेष विभागों में रखी जानेवाली पुस्तकों को भी उपर्युक्त वर्गीकरण-पद्धति के अनुसार विभिन्न विषयों में बाँटा जा सकता है। हाँ, इन विभिन्न संग्रहों का, उनके विषयों अथवा नामों के अनुसार विशेष प्रकार से निर्देशन किया जा सकता है। जैसे—

शि=शिशु-पाठ्यसंग्रह
स्त्री=स्त्री-पाठ्य (महिलोपयोगी) संग्रह
पु=पुस्तिका-संग्रह (Collection of leaflets)
उ=उद्धृत संकलन (Collection of newspaper cuttings)
ह=हस्तलिखित पुस्तकसंग्रह
दु=दुष्प्राप्य पुस्तकसंग्रह
क्र=क्रमशः प्रकाश्य पुस्तकादि
नि=निषिद्ध (वर्ज्य, अश्लील) पुस्तकादि
प=पर्याय प्रकाशन ग्रन्थ गोष्ठी (Series)
वि=विशिष्ट उपहारादि (Special gifts)

इनके अतिरिक्त ऐसी पुस्तकें, जिनका वर्गीकरण न हुआ हो, अथवा जो पुस्तकालय में नई आई हों उनका निर्देशन 'अवर्गीकृत पुस्तकों' के नाम से किया जा सकता है।

अन्य भाषाओं की पुस्तकें

जिन पुस्तकालयों में हिन्दी के अतिरिक्त, अँगरेज़ी, उर्दू, मराठी, बँगला और गुजराती प्रभृति भाषाओं की भी पुस्तकें हों, वे भी इस वर्गीकरण-पद्धति का बहुत आसानी से अनुसरण कर सकते हैं। वर्गीकरण के बाद विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का निर्देशन उनके नाम के अनुसार करना होगा। हिन्दी के लिए 'हि', उर्दू के लिए 'उ', मराठी के लिए 'म', गुजराती के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'ग' तथा अँगरेज़ी के लिए 'अँ' का व्यवहार किया जा सकता है। इस निर्देशन के अतिरिक्त भी विभिन्न भाषाओं के लिए विभिन्न रंग के लेबिल काम में लाये जा सकते हैं। रंगीन लेबिल व्यवहार में लाने के साथ ही यदि उपर्युक्त निर्देशन विधि भी काम में लाई जायगी तो पुस्तकालय के पाठकों और कार्यकर्ताओं, दोनों ही को बहुत सहूलियत हो जायगी। जिन पुस्तकालयों में पुस्तकों के सूचीपत्र कार्डों में रक्खे जायँ, वहाँ विभिन्न रंग के कार्ड व्यवहार में लाये जा सकते हैं।

बहुमूल्य और दुर्लभ पुस्तकें

साधारण व्यवहार में लाई जानेवाली पुस्तकों के अतिरिक्त प्रत्येक पुस्तकालय में कुछ बहुमूल्य और दुर्लभ पुस्तकें भी रहती हैं। इन्हें साधारणतया बहुमूल्य और दुष्प्राप्य होने के कारण आम तौर पर व्यवहार में नहीं लाया जाता अथवा इन्हें व्यवहार में लाने के नियम कुछ कड़े होते हैं। ऐसी पुस्तकों का वर्गीकरण करने के बाद उनके लेबिल पर तथा सूचीपत्र में कोई विशेष चिह्न लगा देना अधिक उपयुक्त होगा।

डेवी की दशमलव-पद्धति

इस प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति के निर्माण में भारत के विभिन्न पुस्तकालयों में प्रचलित पद्धतियों के साथ ही डेवी की दशमलव-वर्गीकरण-पद्धति (Dewey's Decimal classification) से भी समुचित सहायता ली गई है। संसार के प्रायः सभी प्रमुख पुस्तकालयों में आम तौर पर डेवी की दशमलव-वर्गीकरण-पद्धति ही का अनुसरण किया जाता है। अक्षरों के बजाय अंकों द्वारा विभिन्न विषयों का निर्देशन करने की पद्धति ने इसे सार्वभौमिक रूप प्रदान किया है। यहाँ हम डेवी की पद्धति के सम्बन्ध में डेवी ही के कुछ वाक्यों को उद्धृत करेंगे—

विद्या अथवा ज्ञान ९ भागों अथवा वर्गों में विभक्त है। इनमें से प्रत्येक भाग का १ से ९ के अंकों द्वारा निर्देशन किया जाता है। ज्ञानकोष, सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ आदि इनमें से किसी एक विषय-विशेष में नहीं रक्खी जा सकतीं। इनमें प्रायः सभी विषयों की चर्चा रहती है। अस्तु, इनका एक स्वतन्त्र भाग किया जा सकता है। इन साधारण पुस्तकों का निर्देशन शून्य से किया जाता है। इस तरह विद्या के कुल दस भाग हो जाते हैं। प्रत्येक भाग फिर ९ विभागों में बाँटा जाता है। प्रत्येक भाग की साधारण पुस्तकों का निर्देशन, उस भाग का निर्देशन करनेवाले अंक के सामने शून्य लगाकर किया जाता है। इन विभागों को भी इसी प्रकार ९ उपविभागों में बाँटा जाता है और यह क्रिया जितनी बार आवश्यक हो, दोहराई जा सकती है। उदाहरण के लिए ५१२ का तात्पर्य है वर्ग ५ (विज्ञान), विभाग १ (गणित), उपविभाग २ (बीजगणित); अस्तु। बीजगणित की प्रत्येक पुस्तक का निर्देशन ५१२ से होगा।

(The field of knowledge is divided into nine main classes and these are numbered by the digits 1 to 9 Cyclopœdias, periodicals etc., so general in character as to belong to no one of these classes, are marked nought and form a tenth class. Each class is similarly separated into 9 divisions, general works belonging to no division having nought in place of the division into 9 sections and the process is repeated as often as necessary. Thus 512 means class 5 (Natural science), Division 1 (Mathematics) section 2 (Algebra); and every Algebra is numbered 512.")

डेवी की वर्गीकरण-पद्धति में पहले समस्त पुस्तकों आदि को १० वर्गों अथवा भागों में बाँटा जाता है। इनका निर्देशन ० से ९ के अंकों से किया जाता है। इन दस वर्गों में से प्रत्येक को दस विभागों में बाँटने पर १०० विभाग बन जाते हैं, और इन सौ विभागों को दस-दस भागों में बाँटने पर १००० उपविभाग बन जाते हैं। इनका निर्देशन ००० से ९९९ की संख्याओं से किया जाता है।

अमेरिकन कांग्रेस-पुस्तकालय की पद्धति

संसार के अधिकांश पुस्तकालयों में डेवी की दशम-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लव-वर्गीकरण-पद्धति अथवा उसका अपनी आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुकूल परिष्कृत किया हुआ रूप व्यवहार में लाया जाता है। डेवी की पद्धति के अलावा और भी बहुत-सी पद्धतियाँ प्रचलित हैं। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका की कांग्रेस के पुस्तकालय में विभिन्न विषयों का निर्देशन अँगरेज़ी के अक्षरों द्वारा किया जाता है, और उस वर्ग अथवा विषय के विभागों का निर्देशन एक साथ दो अक्षरों द्वारा। सर्व अथवा साधारण पुस्तकें अँगरेज़ी अक्षर 'A' से सूचित की जाती हैं। इस विषय के विभागों का निर्देशन A के सामने C, D,...I...Z प्रभृति अक्षर लिखकर किया जाता है। इस पद्धति में इस प्रकार समस्त पुस्तकें पहले २३ मूल वर्गों में बाँटी जाती हैं और आवश्यकतानुसार इन वर्गों के सैकड़ों विभाग कर लिये जाते हैं।

बड़ौदा-राज्य

बड़ौदा-राज्य के पुस्तकालयों में भी अमेरिका की कांग्रेस के पुस्तकालय की इसी वर्गीकरण-पद्धति का अनुसरण किया गया है। समस्त विषयों को अँगरेज़ी-वर्णमाला के अनुसार २६ भागों अथवा वर्गों में बाँटा गया है। इन विभिन्न भागों को १० विभागों में बाँटा जाता है। इन विभागों का निर्देशन उस विषय-विशेष के अक्षर के सामने १ से ९ अंक लिखकर किया जाता है।

कुदालकर की मराठी वर्गीकरण-पद्धति

श्रीयुत जनार्दन सखाराम कुदालकर ने मराठी-पुस्तकों के वर्गीकरण में भी इसी पद्धति का अनुसरण किया है। उन्होंने अँगरेज़ी-वर्णमाला के अक्षरों को व्यवहार में लाने के बजाय देवनागरी-वर्णमाला के अक्षरों का व्यवहार किया है। देवनागरी अक्षरों के अनुसार उन्होंने समस्त ग्रन्थों को ३६ वर्गों में बाँटा है। साधारण ग्रन्थों का निर्देशन अ, आ, इ, ई, आदि स्वरों से किया है। प्रत्येक वर्ग के विभागों का निर्देशन उस अक्षर की बारहखड़ी द्वारा किया है। नीचे के उदाहरण से यह बात अधिक स्पष्ट होगी—

कुदालकर की मराठी वर्गीकरण-पद्धति में प-वर्ग से साहित्य व वाङ्मय का बोध होता है और 'प' से भाषाशास्त्र का। भाषाशास्त्र के विभिन्न विभागों का निर्देशन निम्न प्रकार किया जाता है—

प—भाषा-शास्त्र
पा—सर्वसाधारण
पि—हस्तलिपि
पी—व्युत्पत्ति
पु—शब्दकोष (Vocabulary)
पू—व्याकरण
पे—छंद
पै—ग्रन्थरचना (Composition)
पो—तुलनात्मक भाषा-शास्त्र
पौ—भाषान्तर

इसी प्रकार फ से अलंकार, व से काव्य (प्राचीन व आध्यात्मिक), भ से काव्य (आधुनिक व रसिक), म से नाट्य (गद्य संगीत रूपान्तरित), य से कादम्बरी (अर्थात् उपन्यास, गल्प आदि), र से गद्य वाङ्मय (निबन्धटीका व०), ल से भाषान्तरित वाङ्मय, व से विनोदात्मक वाङ्मय का निर्देशन होता है। इसी प्रकार अन्य विषयों का भी विभाजन किया गया है।

विभिन्न पद्धतियों की समानता

ऊपर पुस्तकों की वर्गीकरण-पद्धतियों के केवल थोड़े से उदाहरण दिये गये हैं। इन समस्त पद्धतियों में एक बात समान है। सभी पद्धतियों में पुस्तकों का वर्गीकरण उनके विषयों के अनुसार किया जाता है। विभिन्न पद्धतियों में विषयों का निर्देशन विभिन्न रूप से किया जाता है। निर्देशन करने के लिए आमतौर पर तीन विधियाँ व्यवहार में लाई जाती हैं—

(१) विषयों का निर्देशन अंकों द्वारा किया जाता है—जैसे डेवी की दशमलव-पद्धति और प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति।

(२) वर्णमाला के अक्षरों द्वारा, जैसे अमेरिकन कांग्रेस के पुस्तकालय की वर्गीकरण-पद्धति और कुदालकर की मराठी पुस्तक-वर्गीकरण-पद्धति।

(३) अंकों और वर्णमाला के अक्षरों को मिलाकर, जैसे वेस्ट राइडिंग एजुकेशन कमेटी की वर्गीकरण-पद्धति।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुह की प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति में प्रथम विधि व्यवहार में लाई गई है। विषयों का निर्देशन पूर्ण अंकों द्वारा और विभागों, उपविभागों एवं विषयांगों का निर्देशन दशमलव अंकों द्वारा किया गया है। यह निर्देशन पद्धति सबसे पहले १८७६ ई० में सुप्रसिद्ध अमेरिकन विद्वान् डा० मेल्विल डेवी ने चलाई थी। बाद में अमेरिका ही नहीं, और भी बहुत-से देशों में इसी पद्धति का अनुसरण किया गया।

अमेरिकन और अँगरेज़ी पुस्तकालयों में डेवी की मूल पद्धति काम में लाई जाती है, परन्तु दूसरे देशों में इस पद्धति में अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन कर लिये गये हैं। जापानी पुस्तकालयों में भी दशमलव-पद्धति ही व्यवहार में लाई जाती है। परन्तु वहाँ इसके तीन रूप प्रचलित हैं। इन तीनों पद्धतियों में विभिन्न विषयों का निर्देशन शून्य तथा १ से ९ के अंकों द्वारा किया जाता है। इनके अतिरिक्त वहाँ रोमन वर्णमाला के द्वारा भी विषयों का निर्देशन किया जाता है। टोकियो की इम्पीरियल यूनिवर्सिटी लाइब्रेरी में यही पद्धति काम में लाई जाती है। चीन में अँगरेज़ी और दूसरी विदेशी पुस्तकों का डेवी की दशमलव-पद्धति द्वारा तथा चीनी भाषा की पुस्तकों का एक नवीन पद्धति द्वारा वर्गीकरण किया जाता है।

हिन्दी-पुस्तकालय

हिन्दी में अभी तक पुस्तकों के वर्गीकरण के लिए कोई भी प्रामाणिक पद्धति नहीं बन सकी है। विभिन्न पुस्तकालय अपनी आवश्यकताओं और पुस्तकों के अनुसार पुस्तकों का वर्गीकरण कर लेते हैं। आम तौर पर पुस्तकालयों में विषयों के अनुसार वर्गीकरण होता है। बहुत-से पुस्तकालय पुस्तकों के लेखकों अथवा उनके नामों के अनुसार भी वर्गीकरण करते हैं। कभी-कभी एक ही पुस्तक विभिन्न पुस्तकालयों में विभिन्न विषयों में देखने में आती है। यदि समस्त हिन्दी-पुस्तकालयों के लिए एक प्रामाणिक वर्गीकरण-पद्धति बनाई जा सके तो पुस्तकालयों के कार्यकर्ताओं को बहुत सुबीता हो जाय।

डेवी की दशमलव-वर्गीकरण-पद्धति इस कार्य के लिए उपयुक्त अवश्य है। परन्तु हिन्दी-पुस्तकालयों के लिए उनकी आवश्यकताओं और परिस्थितियों को देखते हुए इसका सरल और सुबोध रूप प्रचलित किया जाना चाहिए। गुह की 'प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति' का निर्माण हिन्दी की आवश्यकताओं को देखते हुए डेवी की पद्धति के आधार पर प्राच्य ढंग से किया गया है। इस नवीन परिष्कृत पद्धति को छोटे-बड़े सभी पुस्तकालय काम में ला सकते हैं। जिन पुस्तकालयों में थोड़ी पुस्तकें हों, वे उन्हें केवल ९ भागों में बाँट सकते हैं और जैसे-जैसे उनकी संख्या बढ़ती जाय, वे उन्हें विभागों और विषयांगों में बाँट सकते हैं।

लेखक-नाम-चिह्न

वर्गीकरण के बाद जो संख्या बनेगी, वह पुस्तक की वर्ग-संख्या कहलाती है। परन्तु इस विधि से एक विषय की समस्त पुस्तकों का निर्देशन एक ही संख्या से होगा। अंकगणित की समस्त पुस्तकें ५१०१ द्वारा और बीजगणित की समस्त पुस्तकें ५१०२ द्वारा निर्देशित होंगी। इसी प्रकार अन्य विषयों में भी होगा। उपन्यास की समस्त पुस्तकें ४३ संख्या द्वारा और कथा-साहित्य की ४४ द्वारा निर्देशित की जावेंगी। परन्तु एक ही संख्या द्वारा निर्देशित पुस्तकों की विभिन्नता को स्पष्ट करने के लिए वर्ग-संख्या के साथ पुस्तक के लेखक के नाम का चिह्न और जोड़ देने से एक विशिष्ट पुस्तक का निर्देशन करनेवाली संख्या बन जाती है। इस संख्या को अँगरेज़ी में 'काल नम्बर' (Call number) कहते हैं। पंजाब-विश्वविद्यालय, बड़ौदा के राजकीय पुस्तकालय तथा कुदालकर की मराठी-वर्गीकरण-पद्धति में पुस्तकों के लेखकों के नामों की तालिकाएँ भी तैयार कर ली गई हैं। कहीं-कहीं विभिन्न लेखकों के नामों का निर्देशन भी, वर्गों के समान अंकों द्वारा ही होता है। विलियम ए० बोर्डन ने रोमनलिपि में विभिन्न नामों का निर्देशन करने के लिए १०० से ९९९ तक की संख्याओं का व्यवहार किया है। इसी प्रकार कुदालकर महोदय ने भारतीय नामों का निर्देशन करने के लिए नागरी-अंकों का व्यवहार किया है। परन्तु अंकों द्वारा लेखकों के नामों का निर्देशन करने से पुस्तक-संख्या को समझना बहुत कठिन हो जायगा। इस कठिनाई को हल करने के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुह महाशय ने अपनी वर्गीकरण-पद्धति में एक सर्वथा नवीन विधि का व्यवहार किया है।

श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त की पुस्तक पृथ्वी-प्रदक्षिणा का निर्देशन, यात्रा-सम्बन्धी पुस्तक होने के कारण, २८ संख्या से किया जायगा। यात्रा-सम्बन्धी दूसरी पुस्तकों का निर्देशन भी इस संख्या द्वारा होगा। अस्तु, पृथ्वी-प्रदक्षिणा अथवा यात्रा-विषयक किसी और पुस्तक का निर्देशन करने के लिए वर्ग-संख्या के साथ लेखक-चिह्न और जोड़ना आवश्यक है। लेखक-चिह्न को और दूसरी पद्धतियों के समान अंकों द्वारा व्यक्त करने के बजाय लेखक के पूरे नाम का संक्षिप्त रूप व्यवहार में लाया जा सकता है। श्रीयुत शिवप्रसाद गुप्त के लिए, गुप्त, शि० प्र० अथवा गुप्त (शि० प्र०) व्यवहार में लाया जा सकता है। परन्तु इन तीनों का व्यवहार विभिन्न परिस्थितियों पर निर्भर होगा। यदि यात्रा-सम्बन्धी पुस्तकों के लेखकों में गुप्त अथवा शिवप्रसाद नाम के कुछ और व्यक्ति भी हैं, तब इन नामों की विभिन्नता के लिए उपर्युक्त संक्षिप्त रूपों में से एक जैसे गुप्त (शि० प्र०) काम में लाना होगा। यदि एक लेखक की एक ही वर्ग में कई पुस्तकें हों तो लेखक के नाम के साथ ही पुस्तक का संक्षिप्त नाम अथवा उसके नाम का प्रथम अक्षर लेखक-चिह्न के बाद लिख देना आवश्यक होगा। इस प्रकार पृथ्वी-प्रदक्षिणा का निर्देशन करने के लिए "२८ गुप्त (शि० प्र०—पृ०)" पुस्तक-संख्या बनेगी। जिस पुस्तक के कई भाग हों, उसका भी निर्देशन इसी प्रकार किया जा सकता है। उसमें वर्ग, अंक, लेखक-चिह्न और पुस्तक के नाम का प्रथम अक्षर देने के साथ ही उसके भाग की संख्या भी देनी होगी। यदि कई पुस्तकों के नाम का प्रथम अक्षर एक ही हो तो प्रथम दो अक्षरों से पुस्तक के नाम का निर्देशन करना होगा। इस प्रकार जो संख्या बनेगी, वह पुस्तक की पूर्ण संख्या होगी और पुस्तक के लेबिल पर अंकित की जावेगी। अँगरेज़ी में इसी पूर्ण संख्या को 'काल-नम्बर' (Call number) कहते हैं।

इस लेख में हमने गुह महोदय की 'प्राच्य वर्गीकरण पद्धति' की केवल संक्षिप्त चर्चा की है। इस विषय में अभिरुचि रखनेवाले पाठक ग्रन्थगोष्ठी, गैबी, बनारस से उनकी इसी नाम की पुस्तक मँगाकर इस पद्धति का विस्तृत ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। गुह महोदय की यह पुस्तक १९३२ में प्रकाशित हुई थी। अँगरेज़ी में प्रकाशित होने के कारण ही शायद हिन्दी-पुस्तकालयों में इसका विशेष प्रचार न हो सका। प्राच्य वर्गीकरण-पद्धति में एक विशेषता और है। हिन्दी-पुस्तकों के वर्गीकरण के अतिरिक्त इसकी सहायता से अन्य भारतीय भाषाओं तथा अँगरेज़ी आदि की पुस्तकों का भी वर्गीकरण किया जा सकता है। विभिन्न विषयों का निर्देशन अंकों द्वारा करने के कारण यह पद्धति और भी सरल हो जाती है। परन्तु इससे हमारा यह तात्पर्य नहीं है कि समस्त हिन्दी-पुस्तकालय बिना सोचे-समझे इस पद्धति का अनुसरण कर लें। परन्तु इतना हम अवश्य कहेंगे कि इस पद्धति पर विचार करके इसके आधार पर अथवा स्वतन्त्र रूप से एक प्रामाणिक और सर्वमान्य पद्धति का निर्माण अवश्य किया जाय।

पहले आराम, पीछे दाम

सफ़ेद कोढ़ (फुलवहटी) का शर्तिया इलाज करते हैं। टिकट ८) का भेजकर पत्र-व्यवहार करें।

मैनेजर—ब्रह्म औषधालय, बावरा बाजार, रोहतक।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

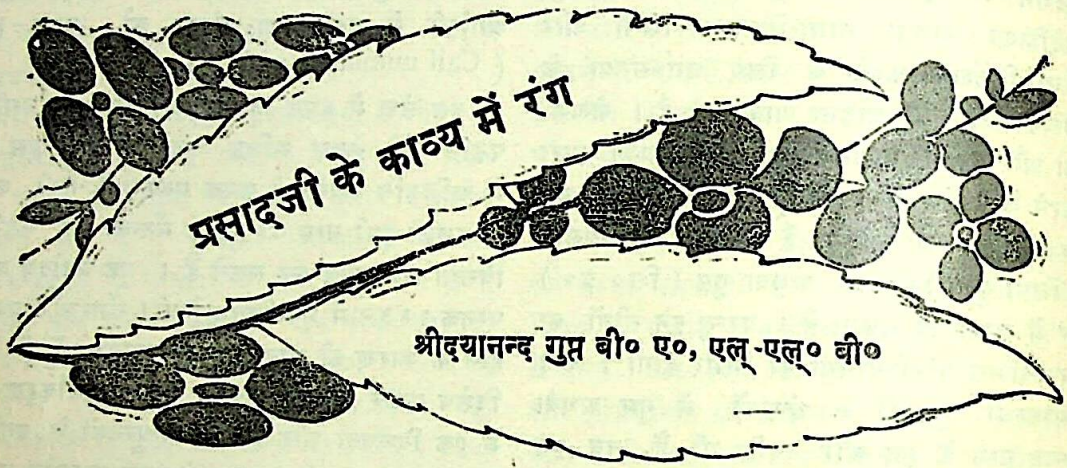

प्रसादजी के काव्य में रंग

श्रीदयानन्द गुप्त बी० ए०, एल्-एल्० बी०

काव्य में भाव, कल्पना, संगीत तथा भाषा के समान रंग का भी एक प्रमुख स्थान है। वर्णनात्मक काव्य में रंग का स्थान महत्त्वपूर्ण होता है और उसके उचित प्रयोग के बिना काव्य-चित्र भड़कीले या फीके हो जाते हैं। भावात्मक काव्य में रंग का चित्रण गौण विषय रहता है, लेकिन वहाँ भी उसका उपयुक्त पुट देना ही पड़ता है। वर्णनात्मक काव्य का तो रंग जीवन-शृंगार है। कलाकार के लिए रंगों का ज्ञान अनिवार्य है। वर्णनात्मक काव्य में उपमाएँ अधिकांश विषय के रंग का सहारा लिये हुए चलती हैं। उन उपमाओं में विषय के रंग की झलक काव्य का मूल्य बढ़ा देती है और चित्र सच्चा बन जाता है। रंग बाह्य वस्तु है, सबसे पहले उसी का बोध होता है, लेकिन विषय के वर्णन में उसके अनुकूल उपमाओं का लाना कल्पना का कार्य है, और यहीं पर कलाकार की रंगों के देखने की तीक्ष्ण दृष्टि का पता लगता है। यही उसके रंग-चित्रण की कसौटी है। कलाकार की आँखों को साधारण दर्शक की आँखों से समानता नहीं दी जा सकती। अपने विषय के पूर्ण पण्डित की तरह पहली ही दृष्टि में वह उसकी सर्वसुन्दर तथा आकर्षक बातों को मनःपट पर खींच लेता है। अन्वेषण और विश्लेषण के बाद वह उन अवयवों के योग का कार्य-सम्पादन करता है। इसमें उसके साधन स्मृति, कल्पना तथा शब्द होते हैं। इस प्रकार कुशल कलाकार सुन्दर चित्र अंकित करने में समर्थ होता है।

प्रत्येक विषय का वर्णन दो प्रकार का होता है। उस वस्तु का अपने हृदय पर पड़े हुए प्रभाव का वर्णन भावात्मक शैली कहलाती है और उस वस्तु को ज्यों का त्यों कह डालना वर्णनात्मक शैली। किसी वस्तु से पैदा हुई अपने हृदय की भावनाओं का चित्रण प्रथम शैली के अन्तर्गत आता है, तथा उस वस्तु का बाह्य अंकन अन्तिम श्रेणी की शैली में। द्वितीय शैली में स्थूल पदार्थों की उपमाओं की अधिकता रहती है। यहाँ कवि उपन्यास-लेखक या नाटककार की भाँति अपने पात्रों से अलग रहता है, और अपने प्रतिबिम्ब से उन चित्रों को बचाये रखता है। 'प्रसादजी' की कविता 'रूप' इस दूसरी शैली का उपयुक्त निदर्शन है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"ये बंकिम भ्रू, युगल कुटिल कुन्तल घने.
नील नलिन से नेत्र—चपल मद से भरे.
अरुण रागरंजित कोमल हिमखण्ड से—
सुन्दर गोल कपोल, सुढर नासा बनी.
धवल स्मित जैसे शारद घन बीच में—
(जो कि कौमुदी से रंजित है हो रहा)
चपला-सी है ग्रीवा हंसी से बढ़ी।
रूप-जलधि में लोल लहरियाँ उठ रहीं।
मुक्तागण हैं लिपटे कोमल कम्बु में।
चंचल चितवन चमकीली है कर रही—
सृष्टिमात्र को, मानो पूरी स्वच्छता—
चीनांशुक बनकर लिपटी हैं अंग में।
अस्तव्यस्त है वह भी ढक ले कौन-सा
अंग; न जिसमें कोई दृष्टि लगे उसे।
कोमल फूलों के रस से सींचे हुए
पंख तितलियों के करते हैं व्यजन से।"

उक्त रचना में बाह्य सौन्दर्य अंकित किया गया है, उपमाएँ भी स्थूल वस्तुओं से दी गई हैं। कवि ने उसमें अपना अस्तित्व देखने का प्रयास नहीं किया और न उसकी झलक ही पाई जाती है। कथित वस्तु से उसने कोई अपना सम्बन्ध नहीं जोड़ा, तटस्थ रह-कर दर्शक की भाँति रूप की माधुरी व्यक्त की है। अपनी उठी हुई भावनाओं को, हृदय पर पड़ी हुई छाप को इस रचना का विषय नहीं बनाया है। यहाँ पर कवि ने अवैयक्तिक (Impersonal) शैली को अप-नाया है। कवि इसमें आत्म-दर्शन की चेष्टा नहीं करता। इस शैली में अनुभूतियों की करुणा, कसक, उल्लास, उन्माद या अनुराग की लहरें न पाकर हमें बाह्य सौंदर्य के चित्र मिलेंगे। यौवन का उभार, कपोल और ओठों का पद्मराग अंजन, सुघर कम्बुग्रीवा, सुन्दर शुक-नासिका और श्यामल मेघ-कुन्तल आदि स्थूल छवि, शारीरिक सौंदर्य के चित्रण की बहार वर्णनात्मक शैली में देखने को मिलती है। इसको अवैयक्तिक शैली भी कहा जाता है। इन चित्रों की स्थूल रेखाएँ होती हैं, और उनमें रंगों का समावेश होता है। इस शैली में रंगों की सहायता के बिना कोई चित्र नहीं खींचा जा सकता, किसी न किसी रूप में रंग का रंजन अवश्य मिलेगा। यदि यह कहा जाय कि वे रेखा-चित्र हो सकते हैं तो निस्सन्देह ऐसा हो सकता है; लेकिन वे रेखाएँ भी तो किसी न किसी रंग की होंगी। जिस रंग का पट होगा, उसी रंग की रेखा उस पर खींची नहीं जा सकती। अतः दूसरे रंग का प्रयोग अनिवार्य रहेगा। इससे यह स्पष्ट है कि रंग के बिना दूसरी शैली निर्जीव, निष्प्रभ तथा रूपहीन होगी। यही काव्य में रंग की आवश्यकता है।

चित्रकला में रंगों का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। प्रत्येक कवि चित्रकार भी होता है और कल्पना की कूची से रंग भरकर उसे चित्रों की रेखाएँ खींचनी पड़ती हैं। शिल्पकला में रंग विशेष प्रशंसनीय स्थान नहीं रखते, लेकिन चित्रकार रंगों के बिना एक क़दम भी आगे बढ़ने का साहस नहीं कर सकता। इसी प्रकार कवि को चित्र अंकित करते समय रंगों को आहत करना ही पड़ता है। कोरे भाव-चित्र कवि की कला को आकर्षक नहीं रख सकते। उसी तरह रंगों का अनवरत चित्रण कोरा मायाजाल ही जान पड़ता है। कलाकार की कला इन दो अतियों का सुन्दर बचाव है; न वह भावुक की उड़ान की तरह सबसे आगे है और न चित्रकार की तूलिका की भाँति मन्दगामी। उसका आदर्श स्वर्णिम मध्य मार्ग है। वेदना में आमस्तक डूबा हुआ तथा वेदना से सर्वथा अलग—ऊपर,—दोनों ही जिस प्रकार सुन्दर काव्य का निर्माण नहीं कर सकते, उसी तरह केवल रंग-रेखा-जाल-ग्रस्त तथा भावावेशी व्यथा-प्रवण कलाकार, दोनों ही असफल कवि रहते हैं। विजयमाल उभय गुणग्राही के कण्ठ में ही पड़ती है। यही रंगों के कवि की कुशल कला की कसौटी है। कवि चित्रकार भी है, लेकिन उसकी और चित्रकार की रंगों की कार्य-प्रणाली में सैद्धान्तिक अन्तर है। दोनों के आधार-पृष्ठ ही भिन्न-भिन्न होते हैं। रंगों की क़दर कवि की अपेक्षा चित्रकार अधिक करता है। दोनों के रंग एक ही आदर्श पर पहुँचने के लिए भी दो भिन्न-भिन्न मार्गों का अनुसरण करते हैं। दोनों में अपने-अपने गुण हैं, यद्यपि बहुत दूर तक पथसाम्य भी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रसादजी बहुत ही संकोची और शान्त प्रकृति के पुरुष थे। उनके प्राइवेट जीवन के विषय में हिन्दी-संसार को बहुत कम ज्ञान है। कहा नहीं जा सकता कि जीवन में रंगों के देखने का उनका क्या तर्ज़ था। गेटे के लिए यह कहा जाता है कि वह विभिन्न रंगों के चश्मे लगाकर प्रकृति को देखा करता था और तब अपने काव्य में उनके रंगीन चित्र खींचा करता था। प्रसादजी का भी अपना कोई तरीक़ा अवश्य रहा होगा। उनके काव्य से इतना स्पष्ट है कि या उनकी स्मृति चिर वसन्त की भाँति दीर्घ काल तक हरी-भरी रहती थी, जिससे उसमें असीम मस्ती, आनन्द और वैभव लबालब भरा मिलता है, या वे कवि शेली (Shelley) की भाँति किसी वस्तु के निरीक्षण के बाद उसके गरम जोश में ही तत्काल लिख डालते थे। इन दोनों बातों में से पहली बात अधिक सत्य मालूम होती है; क्योंकि लिखते समय वायु में परिमल की भाँति वे स्वयं बहते हुए नहीं दिखलाई देते हैं। उनमें प्राप्त किया हुआ प्रवाह, संचार किया हुआ उद्रेक, निर्मुक्त कल्पना, एक क्षण रुकने का संकेत तथा विचार करने की गहनता झलक जाती है। उनकी स्मृति में प्रभात की ताज़गी साँस लेती हुई दिखलाई देती है। अन्यथा उनके रंगों की कल्पना में इतनी तेज़ी, इतनी चटक, इतना ओज और उल्लास न भरा हुआ होता। जीवन के मरु में आनन्द-स्रोत लहराने की शक्ति युवक-हृदय ही में हो सकती है। अनन्त यौवन उनके रंगों में हिलोरें मारा करता है, जैसे—

"काली आँखों में कैसी
यौवन के मद की लाली,
मानिक मदिरा से भर दी
किसने नीलम की प्याली।"

श्यामल नेत्रों में तरुणाई की अरुणाई की कल्पना कितनी मादक, सत्य तथा अनुभवगम्य है। ऐसी आँखें मानिक मदिरा से भरी हुई नीलम की प्यालियाँ मालूम होती हैं। यहाँ पर यह बात ध्यान देने योग्य है कि दो रंगों के विभेद से सौन्दर्य की सृष्टि की गई है। नीले पात्र में अरुण तरल पदार्थ को ढालने पर अमृत और विष, जन्म तथा मरण की विषमता का सौन्दर्य प्राण धारण कर लेता है। हिन्दी-काव्य में आँखों की छटा पर प्रत्येक कवि ने लेखनी चलाई है, और अब इस विषय की कल्पना की गहराई लगभग नापी भी जा चुकी है। इसमें नई सूझ का क्षेत्र परिमित-सा हो गया है। भाव सबके लगभग मिलते-जुलते ही होंगे। हाँ, कहने का अपना-अपना ढंग है। चुभते हुए मार्मिक ढंग से जो कह गया, वह सफल समझा जाना चाहिए। 'प्रसादजी' की ज़बान इसमें अत्यन्त मीठी और कोमल है।

इससे आगे पुतलियों के आकार तथा सीमाओं की कल्पना मिलती है। सीमाएँ भी रंग के इशारे से बताई जाती हैं—

"तिर रही अतृप्ति जलधि में
नीलम की नाव निराली;
काला-पानी बेला-सी
है अंजन-रेखा काली।"

पिछले चरण के विपरीत यहाँ एक ही रंग दृष्टि-गोचर होता है, वातावरण से साम्य-साधन के कारण। कल्पना मौलिक तथा नवीन है।

अधिकांश काव्य में लाल रंग ही वरदान-विजय पाये हुए मालूम होता है। यह रंग प्रसादजी का सर्व-प्रिय रंग है। जितनी अनुभूति की अधिकता इस रंग की उनके काव्य में पाई जाती है, उतनी किसी अन्य रंग की नहीं। इस रंग की सहायता से जितने सुन्दर चित्र उनके काव्य में मिलते हैं, उतने किसी और आधुनिक कवि की कृतियों में नहीं। इस रंग के सहज सहस्र संवाद पृथ्वी से फूटते हुए सोतों की तरह उनके चित्रों में सुनाई देते हैं—

"जवा-कुसुम-सी उषा खिलेगी
मेरी लघु-प्राची में,
हँसी भरे उस अरुण अधर का
राग रँगेगा दिन को।"

उषा की अरुणिमा का कितना सजीव चित्र है और "जवा-कुसुम" की कल्पना "अरुण अधर" व "राग रँगेगा" शब्दों की योजना के साथ प्राण धारण किये

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुए-सी नेत्रों के सामने उठ खड़ी होती है। कहीं पर इसी लाल रंग ने कवि की दृष्टि में मादकता और यौवन का आलस्य भर दिया है—

"उषा अरुण प्याला भर लाती
सुरभित छाया के नीचे—
मेरा यौवन पीता सुख से
अलसाई आँखें मीचे।"

प्रसादजी के साथ लाल रंग का बड़ा ही निकट नाता जुड़ा हुआ है। लाल रंग की मंजूषा में उनके अनेकों रहस्य छिपे हुए हैं और उसके उद्घाटन में उनके काव्य में कभी छाया-ग्रहण की अधीरता, अरुण मदिरा की तरुण मस्ती, झरनों की किलकार, माया की मोहकता, सिन्धु का ज्वार तथा यौवन-अँगड़ाई की अलसता आ जाती है। अधिकतर यह पाया जाता है कि जहाँ भी प्रसादजी ने अरुण रंग के चित्रित करने को तूलिका उठाई, वहीं मधु-मोहकता-मादकता मसी बन गई। लाल रंग उनके लिए मस्ती का बोधक और यौवन का दूत है, जैसे—

"लाली न सुनहली संध्या मानिक मदिरा से जिनकी,
वे कब सुननेवाले हैं दुख की गाथा भी दिन की।"

जिन पर रंग चढ़ा हुआ है, उनके सामने दूसरों का रंग फीका हो जाता है, और फीके रंगवाले की सुनता ही कौन है? इस रंग के सामने प्रसादजी के और रंग फीके जँचते हैं।

यदि मैं प्रसादजी को प्रभाववादी (Impressionist) कवि कहूँ तो उनके प्रति अन्याय न होगा। अपने हृदय पर पड़े हुए प्रभाव को वे शीघ्र दूर नहीं कर सकते, जैसे पत्थर पर लकीरें खिंच गई हों। वस्तु का आकार ग्रहण न करते हुए वे उसके रंगों पर ही अधिक ज़ोर देते हैं; इसी में उनकी दुर्बलता और शक्ति, दोनों का रहस्य छिपा हुआ है। यही कारण भी है कि उनको उषा, कपिशा, राका, प्रभात, इन्द्रधनुष आदि रंगीन विषय अधिक प्रिय हैं; लेकिन उक्त रंग कभी-कभी कुछ अलस तन्द्रा लिये हुए उनकी कल्पना में आते हैं, या यह कहना और भी सत्य होगा कि ऐसे सुन्दर रंगों को देखते-देखते उनके प्रभाव में वे अपने को इतना भूल जाते हैं कि विस्मृति का अलस सौन्दर्य उनके काव्य में आ जाता है। उनका लाल रंग सदैव मस्ती लिये हुए मिलेगा। ऐसा तरुण-हृदय कवि हिन्दी में अभी तक कोई नहीं हुआ—

"आँखों में अलस जगाने को
यह आज भैरवी आई है।
ऊषा-सी आँखों में कितनी
मादकता भरी ललाई है।"

और भी—

"कहता दिगन्त से मलय पवन
प्राची की लाज भरी चितवन,
है रात घूम आई मधुवन,
यह आलस की अँगड़ाई है।"

इन छन्दों से भी कवि के तरुण हृदय का पता चलता है। लाल रंग सदैव कवि को तरुण बनने में सहायता देता है। उक्त छन्द में "लाज" शब्द लाली के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है, यद्यपि उसमें लज्जा का गुण भी भरा गया है। लज्जा और लाली के समावेश के लिए 'लाज' कहकर छोड़ दिया गया है। कहीं पर "अधरों में राग अमन्द पिये" मिलता है तो कहीं पर—

"नूपुरों की झनकार घुली-मिली जाती थी
चरण अलक्तक की लाली से।"

प्रसादजी के काव्य में लाली एक विशेष अर्थ रखती है। यह उनके रंग-चित्रण-रहस्य की महत्त्वपूर्ण कुंजी है।

लाल रंग के बाद उनके सर्वप्रिय रंग श्याम और नील हैं। इन रंगों की उपमाएँ व चित्र उनके काव्य में भरे पड़े हैं। इन रंगों के उल्लास के साथ उनमें कभी-कभी करुणरस का भी संचार हो जाता है। श्याम और नील रंग अधिकतर उनकी कविताओं में मेघ और आँखों का रूपक लिये हुए होते हैं। श्याम रंग के मेघ कभी करुणा के अश्रु बरसा जाते हैं, जैसे—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"घिर जातीं प्रलय-घटाएँ
कुटिया पर आकर मेरी,
तमचूर्ण बरस जाता था
छा जाती अधिक अँधेरी।"

तो कभी वही मेघमाला अमृत की संजीवनी शक्ति रखती है, जिससे कवि के हृदय की कलियाँ मुसकरा उठती हैं—

"मकरन्द मेघमाला-सी
वह मदमाती स्मृति आती;
इस हृदय-विपिन की कलियाँ
जिसके रस से मुसक्यातीं।"

मेघमाला के साथ हरियाली का आना स्वाभाविक कल्पना है। बरसात में सारी पृथ्वी लहलहा उठती है, उसके हरे परिधान से ढका बादलों से मिलन-संकेत करता हुआ यौवन सिहर उठता है। कवि ने इसी ऋतु के श्यामल और हरे संसार का चित्र खींचा है—

"नव नील पयोधर नभ में काले छाये,
भर-भरकर शीतल जल मतवाले धाये;
लहराती ललित लता सुबाल लजीली
लहि संग तरुन के सुन्दर बनी सजीली।
बुलबुल कोयल हैं मिलकर शोर मचाते,
बरसाती नाले उछल-उछल बल खाते।
वह हरी लताओं की सुन्दर अमराई,
बन बैठी है सुकुमारी-सी छवि छाई।"

'नील, काले, लता, तरुन, बुलबुल, कोयल, हरी लताओं और अमराई'—ये सब शब्द श्याम और हरित रंग के जातिवाचक हैं। इन दो रंगों के सामंजस्य से कवि ने बरसात का सुन्दर वातावरण बनाया है। इन पंक्तियों में कोई और रंग देखने को नहीं मिलता। कहीं-कहीं पर कवि ने 'श्याम' और 'श्वेत' दो विरोधी रंगों को लेकर सफल चित्र बनाये हैं। कल्पना इन दो विरोधी वर्णों का सहारा पाकर सवाक् हो उठी है। दृश्य कितना हृदयहारी है—

"नील गगन-सम राम, अहा अंक में चन्द्रमुख;
अनुपम शोभाधाम, आभूषण थे तारका।
खुले हुए कचभार, बिखर गये थे बदन पर;
जैसे श्याम सिवार, आसपास हो कमल के।"

और भी—

"ताराओं की माला कबरी में लटकाये चन्द्रमुखी,
रजनी अपने शांति राज्य-आसन पर आकर बैठ गई।"

रजनी की काली कबरी में ताराओं की उज्ज्वल हीरक माला लटकाई हुई है और श्यामलवर्णा रजनी का मुख चन्द्रमुखी कहकर श्वेत आभायुत बतलाया गया है। और भी—

"बाँधा है विधु को किसने
इन काली जंजीरों से;
मणिवाले फणियों का मुख
क्यों भरा आज हीरों से।"

गौरवर्ण आनन से काली लटकती हुई अलकों की तुलना काले नाग के मुख में हीरों के भरने से कितनी मोहक जान पड़ती है। दो विरोधी रंगों के मिलन का कितना सजीव सुन्दर चित्र है।

प्रसादजी के रंगों के चित्रण से दृश्यों की सजीव कल्पनाएँ जैसे कुहासे में से उषा की छिटकती हुई छवि आँखों के सामने आ खड़ी होती है। रात में पानी बरसने के बाद उषाकाल में आकाश की दशा का सच्चा चित्रण हम उनकी रचना 'पावस-प्रभात' में पाते हैं। यहाँ भी केवल रंगों का सहारा लेकर कवि ने अपनी कुशल कला का परिचय दिया है। यहाँ पर रंगों को उद्देश्य रखते हुए फीका किया गया है, बरसात की सच्ची कल्पना इसका कारण है। यहाँ पर भी श्यामल और श्वेत रंग के सहारे चित्र बनाया गया है, लेकिन उनमें पहली-सी मस्ती, तेज़ी और चटक नहीं है, न होनी ही चाहिए।

"नव तमाल श्यामल नीरद माला भली
श्रावण की राका रजनी में घिर चुकी।
अब उसके कुछ बचे अंश आकाश में
भूले-भटके पथिक-सदृश हैं घूमते॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

... ...
... ...
क्लान्त तारकागण की मद्यप-मण्डली,
नेत्र निमीलन करती है फिर खोलती।
रिक्त चषक-सा चन्द्र लुढ़ककर है गिरा,
रजनी के आपानक का अब अन्त है।"

बरसात में चन्द्रमा और नक्षत्रों का रंग फीका होता है। कवि ने उसी रंग का अनुभव करते हुए कितने सुन्दर ढंग के साथ कह डाला है। थके हुए शराबी नक्षत्रगण कभी नेत्र बन्द कर लेते हैं और कभी खोलते हैं। सामने ख़ाली मदिरा-पात्र की तरह चन्द्रमा लुढ़का पड़ा है। रात्रि के अब आसव-उत्सव का अन्त है।

प्रसादजी के रंगों में पीले रंग को सबसे कम महत्त्व मिला है। यद्यपि मधु और मदिरा की इस रंग में कमी नहीं है, लेकिन वासन्ती रंग उन्हें अधिक प्रिय नहीं जान पड़ता। इस रंग के चित्रण में उन्होंने अधिक कल्पना व्यय नहीं की है और न वह उनकी प्रायः प्रिय जीवन-शक्ति ही उसमें दिखाई देती है। कहीं-कहीं पर तब भी कुछ सुन्दर बात कह दी है, जैसे—

"सरसों के पीले काग़ज़ पर वसन्त की आज्ञा पाकर।
गिरा दिये वृक्षों ने सारे पत्ते अपने सुखलाकर।"

वासन्ती रंग का चित्रण प्रसादजी अधिक आकर्षक नहीं बना सके हैं, पर तब भी यह बात अविवाद है कि रंगों का आश्रय लेकर कल्पना को मादक और मोहक बनाने की शक्ति प्रसादजी में जितनी अधिक दिखलाई देती है, उतनी किसी आधुनिक कवि में शायद नहीं है।

प्रसादजी की मृत्यु से हिन्दी-संसार का एक जगमगाता हुआ हीरा टूट गया है। हिन्दी-आकाश में उस हीरे का आदरणीय मूल्य था, उसकी आभा के विरले ही हीरे थे। जितनी क्षति हिन्दी काव्य, नाटक, उपन्यास को पहुँची है, वह शब्दों में नहीं कही जा सकती। उनके काव्य, नाटक, उपन्यास तथा अन्य रचनाओं के सुगम प्रचार व सर्वसाधारण के अध्ययन के लिए उनकी कृतियों का सम्पूर्ण संग्रह एक ही ग्रन्थ के काव्य, नाटक, उपन्यास, तीन भागों में प्रकाशित करना चाहिए, जिससे हम उनके प्रति न्याय कर सकें।

सितार-मार्ग (प्रथम भाग)

लेखक—श्रीपद वंद्योपाध्याय

इस पुस्तक में बहुत-से अच्छे-अच्छे उस्तादों की गतें तोड़े, झाले और आलाप के साथ दी गई हैं। संगीतशास्त्र की पारिभाषिक व्याख्या और सितार-सम्बन्धी सभी बातें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। मूल्य २) मात्र।

मिलने का पता—**मैरिस म्यूज़िक कालिज, लखनऊ**

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

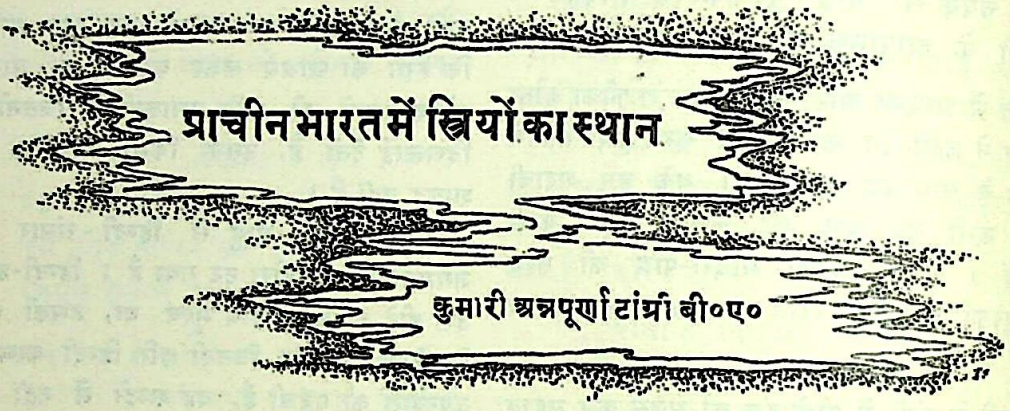

प्राचीन भारत में स्त्रियों का स्थान

कुमारी अन्नपूर्णा टांग्रा बी०ए०

आधुनिक काल में भारतीय नारियों की गिरी हुई दशा देखकर कौन ऐसा सहृदय मनुष्य न होगा, जो दो-चार अश्रु अवश्य न गिरा दे। आजकल हमारी देवियों का न तो समाज ही में कोई महत्त्वपूर्ण स्थान है, न तो धर्म ही में। किन्तु यदि हमारी प्राचीन पुस्तकों का ध्यानपूर्वक अध्ययन या निरीक्षण किया जाय तो पूर्ण रूप से पता लगेगा कि प्राचीन समय में हमारी देवियाँ अत्यन्त उच्च और महान् स्थान ग्रहण किये हुए थीं। प्रत्येक क्षेत्र ही में उनकी सहायता की आवश्यकता थी। कोई कार्य उनके विना भाग लिये पूर्ण कहा ही नहीं जा सकता था। सामाजिक, धार्मिक अथवा विद्या-सम्बन्धी प्रति क्षेत्र ही में उनका आधिपत्य था। इस कथन को पूर्ण रूप से प्रमाणित करने के लिए शास्त्रों का अध्ययन आवश्यकीय है। देखिए, हमारे धर्म-शास्त्र क्या कहते हैं।

इससे पूर्व कि किसी अन्य धर्मलेखक या धर्मशास्त्र की ओर दृष्टि डाली जाय, क्यों न अत्यन्त प्रसिद्ध और माननीय मनु की ओर ध्यान दिया जाय। अत्यन्त स्पष्ट और सुचारु रूप से मनु का कथन है—

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।" अर्थात् देवता सदा उसी स्थान और उसी समाज में विहार और रमण करते हैं, जहाँ पर और जिस समाज में स्त्रियों का हृदय से आदर और सत्कार होता है। यह कथन पूर्ण रूप से यह भी प्रमाणित करता है कि वास्तव में वही समाज और देश सभ्य कहा जा सकता है, जहाँ पर स्त्रियाँ अबला नहीं, किन्तु सबला मानी जाती हैं; जहाँ पर नारी सेविका या दासी नहीं, पर देवियों का आसन ग्रहण करती हैं। समानरूपेण वेद में भी स्त्रियों को अति उच्च स्थान दिया गया है। वेद में नारी शब्द अत्यन्त गूढ़ अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। 'नेतृ' शब्द के आधार पर यह शब्द प्रयोग में लाया गया है। नेतृ के अर्थ हैं जो दूसरों को सन्मार्ग पर ले जाय। "नयति इति नेतृ" अर्थात् नारी का यह कर्तव्य है कि अपने पवित्र आचरण और सद्व्यवहार से गृह में सदैव ही शान्ति स्थापित रक्खे और गृह के अन्य मनुष्यों को अपने शीलस्वभाव से सुन्दर और मानवोचित कार्यों को करने के लिए प्रेरित करे।

Gods live in joy when women are revered,

यही नहीं, नारी के चरित्र और शरीर के गठन को और भी पवित्र और पावन स्थान देने के लिए हमारे पुरातन ऋषि और मुनियों ने वेदी को भी स्त्री का ही रूप दिया है। स्त्री के शरीर के अंग-प्रत्यंग से वेदी के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रत्येक भाग की समानता दी है। वेदी जब बनाई जाय तो उसका पूर्वीय भाग चौड़ा होना चाहिए। मध्य में पतली और पश्चिमीय भाग पुनः चौड़ा होना चाहिए। इस तरह से वेदी पूर्ण रूप से एक स्त्री की मूर्ति से समानता रखती थी। वेदी की पवित्रता से प्रत्येक पाठक परिचित ही है, अतः बुद्धिमान् पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि स्त्रियों के प्रति कितनी पूत भावनाएँ हम लोगों के पूर्वजों के हृदय में भरी थीं।

पुनः वेद में उषा का स्वागत "संसार की महाराज्ञी" कहकर किया गया है। उषा के द्वारा ही भारत की प्रत्येक नारी को आकर्षण की शक्ति प्राप्त होती है। सारा सौंदर्य, सारी मनोहरता और मधुरता का केन्द्र उषाकालीन लालिमा ही है। कितना सुन्दर भाव भरा है इन निम्नलिखित अल्प पंक्तियों में, जो कि उषा देवी के स्वागत में वेदकालीन स्त्रियों के द्वारा कही गई हैं—

"Though sweetly smilest, Goddess fair,
Disclosing all thy youthful grace,
Thy bosom bright, thy radiant face,
and lustre of thy golden hair."

अतः इन एक-दो उदाहरणों ही के द्वारा यह पूर्णतः प्रमाणित हो गया कि स्त्रियाँ समाज में अति आदरणीय अथवा स्वाभाविक सौंदर्य की पूर्ण प्रतिमा मानी जाती थीं। यही नहीं, आजकल की नाईं अनमेल विवाह, अविद्या तथा अज्ञान आदि उनके जीवन को अन्धकारमय नहीं बनाये हुए थे। सामाजिक बन्धन उनके अधिकारों में तथा ज्ञानवृद्धि में अड़चनें नहीं डालते थे। विवाह उस समय एक शाप न था, बल्कि दो आत्माओं का स्वच्छन्दतापूर्वक स्वर्गीय मिलाप था। पूर्ण युवावस्था प्राप्त होने पर माता-पिता अपनी पुत्री को अपने मनोनीत वर का वरण करने की सहर्ष आज्ञा देते थे। किन्तु इस आज्ञा देने के पहले माता-पिता इसे अपना सर्वप्रथम और अति आवश्यक कर्तव्य समझते थे कि पुत्री को विद्यादान करके इस योग्य बना दें कि विचारपूर्वक अपने अनुरूप पति वह चुन सके। बालकों की नाईं बालिकाओं को भी युवावस्था में पदार्पण करने के पूर्व पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण करके विद्याध्ययन करना पड़ता था। यह नहीं कि आधुनिक काल की नाईं अज्ञानरूपी कूप में पड़ी हुई बालिकाएँ, जिसके साथ भी माता-पिता ने बाँध दिया, बँधी हुई गाय की नाईं चली गईं।

यह स्वयंवर की प्रथा बहुत समय तक भारत में प्रचलित रही है। कौन ऐसा पाठक होगा, जिसने दमयन्ती और सावित्री की स्वयं वरण की कथा न सुनी होगी। "महाभारत" की ओर दृष्टि डालिए। द्रौपदी के स्वयं वरण का जीता-जागता ज्वलन्त उदाहरण फिर नेत्रों के सामने आवेगा। वह अत्यन्त ओज के साथ स्त्रियोचित लज्जा को धारण करती हुई अपने माता-पिता के सम्मुख कर्ण से विवाह करना अस्वीकार कर देती है। इस भाँति स्वयंवर की प्रथा "स्मृति-काल" तक रही। ब्राह्मण-सभ्यता के उदय होने के साथ-साथ इस प्रथा का लोप होने लगा।

स्वयंवर की प्रथा के अतिरिक्त अन्य सामाजिक बन्धन भी आधुनिक सामाजिक बन्धन के समान कठोर न थे। आधुनिक काल में स्त्री ने तनिक भी कोई त्रुटि की तो वह या तो समाज से बहिष्कृत कर दी गई अथवा उसके पति ने उसको त्याग दिया। इस तरह बेचारी अबला नारियों का जीवन सदा के लिए कष्टमय और लांछनापूर्ण हो जाता है। पर प्राचीन काल में ज़रा-सा अपराध इतना अक्षम्य न माना जाता था। 'स्मृति' में स्पष्ट रूप से वर्णन है कि यदि कोई स्त्री अज्ञानवश पतिव्रतधर्म से च्युत हो जाय, अथवा कोई और पापमय कार्य कर बैठे अथवा चोरों के द्वारा हरण कर ली जाय तो वह पुनः पति के द्वारा ग्रहणीय है। त्यागने के स्थान में पति का कर्तव्य है कि उसे ग्रहण करके कुमार्ग से सुमार्ग पर लावे। यह सत्य है कि रामायण में सबसे प्रथम हम लोगों को एक उदाहरण मिलता है, जहाँ पर पतिव्रता प्रातःस्मरणीया माता जानकी राम के द्वारा त्यागी गई हैं, और इस त्यागने का एकमात्र कारण यह है कि सीता रावण के यहाँ रही थीं; पर राम का यह कार्य सर्वमान्य न था।

उपर्युक्त बातों से यह तो पूर्ण रूप से प्रमाणित हो गया कि स्त्रियों का समाज में अत्यन्त उच्च और पूज्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थान था। पर इसके साथ ही यदि यह कहा जाय कि अधिकांश स्त्रियाँ इस आदर के उपयुक्त थीं और आजकल की स्त्रियों में व उन स्त्रियों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर था तो यह कथन अतिशयोक्तिमात्र न होगा। वास्तव में हमारी प्राचीन माताओं और बहनों के कर्तव्य हमारे मनुष्य-समाज को बाधित करते थे कि उनको वे उच्च स्थान दें। उन लोगों के जीवन का एकमात्र उद्देश्य यही था कि अपनी सन्तान के सम्मुख वे लोग एक आदर्श रक्खें। उनके कर्तव्यों में सर्वप्रथम कर्तव्य था पतिव्रतधर्म अथवा पतिसेवा। उनका जीवन ही उनके पति के सुख के लिए था। चाहे उनका पति उनके योग्य हो अथवा अयोग्य, किन्तु उनको तो अपना जीवन उत्सर्ग करना था प्रेम की वेदी पर—पतिप्रेम पर। क्या सती अरुन्धती का नाम हर भारतीय स्त्री की जिह्वा पर नहीं है, जिसने सारे स्वार्थ को भूलकर पति-प्रेम को निबाहने का ही दृढ़ संकल्प कर लिया। एक वैदिक काल की स्त्री बिना किसी ईर्ष्याभाव के अपने पति के सुख का ही एकमात्र ध्यान रख-कर उसे वेश्या के यहाँ ले जाती तथा उसकी इच्छाओं को यथाशक्ति पूरा करने का भरसक यत्न करती है। धन्य है ऐसी सती नारी को। फिर कहाँ का गया-बीता होगा मनुष्य-समाज, जो ऐसी ललनाओं का आदर न करेगा। कहाँ हैं अब सती अरुन्धती-सी नारियाँ और कहाँ है समाज में उनका वह आदरणीय और उच्च स्थान। किन्तु यदि वास्तव में ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो भारतीय स्त्रियों का इसमें कोई दोष नहीं है। उनमें न तो अब इतना ज्ञान है कि वे समझ सकें कि पतिव्रतधर्म क्या है और न बाल्यावस्था में उन्हें इसकी शिक्षा ही दी जाती है। बेचारी पड़ी हुई हैं अज्ञान के कूप में। उनमें इतनी बुद्धि कहाँ कि वे समझ सकें कि उनके कर्तव्य क्या-क्या हैं। अस्तु। यह तो रहा उनका स्थान समाज में। अब दूसरा प्रश्न जो आप ही आप हृदय में उठता है, वह है "क्या धार्मिक क्षेत्र में भी वे इसी तरह समानरूप से प्रतिष्ठा धारण किये हुए थीं।" चतुर पाठक स्वयं ही विचार सकते हैं कि जिस समाज का मुख्य अंग स्त्रियाँ थीं, वह समाज धार्मिक विषयों में उन्हें कैसे अलग कर सकता है। निश्चय ही धार्मिक कार्यों में भी वे समान रूप से भाग ले सकती थीं। आधुनिक समय की तरह पाखण्डी ब्राह्मणों का राज्य न था, जिनका कथन है कि स्त्रियों को वेदाध्ययन करने का अधिकार ही न था, और न है। ये कितनी निर्मूल और निरर्थक धारणाएँ हैं। वेदकालीन विद्वान् और स्त्रियाँ दोनों ही आजकल के इन धूर्त पंडितों और इन कुबुद्धि अबलाओं से भिन्न हैं। वेद का यदि भली भाँति अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि अनेकों ऐसी स्त्रियाँ उस समय विद्यमान थीं, जिन्होंने अति सुन्दर वैदिक छन्दों की रचना की। उदाहरणस्वरूप महर्षि अम्भरण की कन्या वाच ने देवीसूक्त के विषय में अपने विचार अति मधुर और सुन्दर छन्दों में प्रकट किये। स्त्रियाँ यज्ञों में भी समान रूप से भाग लेती थीं। कई स्थानों पर तो स्त्रियाँ पुरोहित का आसन ग्रहण किये हुए यज्ञ-भूमि में दृष्टिगोचर होती हैं। यही नहीं, ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण किये हुए वे लोग अकेले भी वैदिक यज्ञ कर सकती थीं और बलि दे सकती थीं। वेद में एक स्थान में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि विश्ववारा-नामक एक सुन्दरी प्रातःकाल उठकर अकेले ही यज्ञ कर रही है।

समान रूप से कोई भी युवा विवाह हो जाने पर कोई धार्मिक कार्य अकेले नहीं कर सकता था। स्त्री का भाग लेना आवश्यक था। देवता एक अविवाहित युवा के हाथ की दी हुई बलि को स्वीकार ही न करते थे। पति बिना भार्या के अनुसरित स्वर्ग तक नहीं प्राप्त कर सकता। स्वर्गलाभ के लिए पत्नी को पति का अनुसरण करना अनिवार्य रूप से आवश्यक था (S. Br. r. 2. 1. 8)। पति की नाईं पत्नी को एक विशेष प्रकार के यज्ञ के समय उपनयन करवाना पड़ता था। इस विशेष प्रकार के यज्ञ के करने के समय यज्ञ-भूमि पर पत्नी को अपनी अलग झोपड़ी बनानी पड़ती थी और जब तक यज्ञ समाप्त न हो जाय, अपनी एक गाय के साथ वहीं निवास करना पड़ता था। यही नहीं, यदि पति कहीं बाहर गया हो तो स्त्री अनेकों यज्ञ अपने आप कर सकती थी। उदाहरणस्वरूप राम के राज्याभिषेक के दिन राम की माता कौशल्या अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुत्र के सुख के लिए "स्वस्तियाग" करती हुई दिखाई देती हैं। बालि के युद्धक्षेत्र में प्रस्थान करने के समय उसकी स्त्री तारा ने भी स्वस्तियाग किया था।

यदि पति गृह पर हो तो दोनों साथ-साथ। किन्तु यह प्रथा C. 500 B. C. तक ही रही, सूत्रकाल के बाद अनेकों परिवर्तन हुए।

प्राचीन नारियाँ केवल यज्ञ में भाग ही नहीं ले सकती थीं; किन्तु कुछ ऐसी यज्ञ-आहुतियाँ थीं, जिनको केवल स्त्रियाँ ही कर सकती थीं। उदाहरणस्वरूप "सीता-बलि" जिसका एकमात्र उद्देश्य कृषि की वृद्धि था। दूसरी इसी भाँति की बलि "रुद्रबलि" थी। इसको भी केवल स्त्रियाँ ही कर सकती थीं। इसका एक-मात्र उद्देश्य और ध्येय, देश को धनधान्य से पूर्ण करना और पशुओं को स्वास्थ्य देना ही था। विवाह सफलीभूत हो और बालिका अपने पति के गृह में जाकर सुखी और आनन्दित रहे, इस ध्येय की पूर्ति के लिए स्त्रियाँ एक "रुद्रयाग"-नामक यज्ञ को विधिपूर्वक करती थीं। अतः संक्षेप रूप में यह भली भाँति कहा जा सकता है कि स्त्रियों को धार्मिक क्षेत्र में भी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र के अतिरिक्त स्त्रियाँ मनुष्यों के साथ विहार, रमण तथा क्रीड़ादि में भी भाग ले सकती थीं। बल-वीरता में भी वे मनुष्यों के समान थीं। अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पर हमारे भारत की देवियाँ रणक्षेत्र में भी गई हैं। आधुनिक समय की नाईं उनका कार्यक्षेत्र संकुचित न था, अथवा न तो उनमें पर्दा आदि की विनाशिनी कुरीतियाँ ही थीं। नेत्रों की लज्जा ही मुख्य समझी जाती थी। राज्ञी विश्पपत्ला युद्धभूमि में वीरोचित साज से सज्जित होकर जाती है और वहाँ पर सहर्ष लड़ती हुई अपना एक पैर खो देती है। समान रूप से द्रौपदी ने भी वीरोचित वीरता रणक्षेत्र में दिखाई है।

आजकल की ही भाँति पिता के धन पर विवाह हो जाने पर पुत्री का कोई अधिकार नहीं रह जाता था। किन्तु दहेज़ में पुत्री को पिता के धन का अधि-कांश भाग मिल जाता था। अतः ये सब कथन भली भाँति प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन भारत में हमारी नारियाँ अत्यन्त उच्च स्थान पर आरूढ़ थीं। जितनी हेय दृष्टि से आजकल की स्त्रियाँ देखी जाती हैं, उतनी ही श्रद्धा की दृष्टि से हमारी माता और बहनें देवियों की नाईं पूजी जाती थीं।

बिलकुल मुफ़्त

आवश्यक ज्योतिष-विषयों से भरपूर

सम्वत् १९९६ का

पंचांग

अपने गाँव के ५ पूरे पते भेजकर

बिलकुल मुफ़्त मँगाइये

मदनमंजरी फार्मसी, जामनगर.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थान था। पर इसके साथ ही यदि यह कहा जाय कि अधिकांश स्त्रियाँ इस आदर के उपयुक्त थीं और आजकल की स्त्रियों में व उन स्त्रियों में पृथ्वी-आकाश का अन्तर था तो यह कथन अतिशयोक्तिमात्र न होगा। वास्तव में हमारी प्राचीन माताओं और बहनों के कर्तव्य हमारे मनुष्य-समाज को बाधित करते थे कि उनको वे उच्च स्थान दें। उन लोगों के जीवन का एकमात्र उद्देश्य यही था कि अपनी सन्तान के सम्मुख वे लोग एक आदर्श रक्खें। उनके कर्तव्यों में सर्वप्रथम कर्तव्य था पतिव्रतधर्म अथवा पतिसेवा। उनका जीवन ही उनके पति के सुख के लिए था। चाहे उनका पति उनके योग्य हो अथवा अयोग्य, किन्तु उनको तो अपना जीवन उत्सर्ग करना था प्रेम की वेदी पर—पतिप्रेम पर। क्या सती अरुन्धती का नाम हर भारतीय स्त्री की जिह्वा पर नहीं है, जिसने सारे स्वार्थ को भूलकर पति-प्रेम को निबाहने का ही दृढ़ संकल्प कर लिया। एक वैदिक काल की स्त्री बिना किसी ईर्ष्याभाव के अपने पति के सुख का ही एकमात्र ध्यान रख-कर उसे वेश्या के यहाँ ले जाती तथा उसकी इच्छाओं को यथाशक्ति पूरा करने का भरसक यत्न करती है। धन्य है ऐसी सती नारी को। फिर कहाँ का गया-बीता होगा मनुष्य-समाज, जो ऐसी ललनाओं का आदर न करेगा। कहाँ हैं अब सती अरुन्धती-सी नारियाँ और कहाँ है समाज में उनका वह आदरणीय और उच्च स्थान। किन्तु यदि वास्तव में ध्यानपूर्वक विचार किया जाय तो भारतीय स्त्रियों का इसमें कोई दोष नहीं है। उनमें न तो अब इतना ज्ञान है कि वे समझ सकें कि पतिव्रतधर्म क्या है और न बाल्यावस्था में उन्हें इसकी शिक्षा ही दी जाती है। बेचारी पड़ी हुई हैं अज्ञान के कूप में। उनमें इतनी बुद्धि कहाँ कि वे समझ सकें कि उनके कर्तव्य क्या-क्या हैं। अस्तु। यह तो रहा उनका स्थान समाज में। अब दूसरा प्रश्न जो आप ही आप हृदय में उठता है, वह है "क्या धार्मिक क्षेत्र में भी वे इसी तरह समानरूप से प्रतिष्ठा धारण किये हुए थीं।" चतुर पाठक स्वयं ही विचार सकते हैं कि जिस समाज का मुख्य अंग स्त्रियाँ थीं, वह समाज धार्मिक विषयों में उन्हें कैसे अलग कर सकता है। निश्चय ही धार्मिक कार्यों में भी वे समान रूप से भाग ले सकती थीं। आधुनिक समय की तरह पाखण्डी ब्राह्मणों का राज्य न था, जिनका कथन है कि स्त्रियों को वेदाध्ययन करने का अधिकार ही न था, और न है। ये कितनी निर्मूल और निरर्थक धारणाएँ हैं। वेदकालीन विद्वान् और स्त्रियाँ दोनों ही आजकल के इन धूर्त पंडितों और इन कुबुद्धि अबलाओं से भिन्न हैं। वेद का यदि भली भाँति अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट रूप से मालूम होता है कि अनेकों ऐसी स्त्रियाँ उस समय विद्यमान थीं, जिन्होंने अति सुन्दर वैदिक छन्दों की रचना की। उदाहरणस्वरूप महर्षि अम्भरण की कन्या वाच ने देवीसूक्त के विषय में अपने विचार अति मधुर और सुन्दर छन्दों में प्रकट किये। स्त्रियाँ यज्ञों में भी समान रूप से भाग लेती थीं। कई स्थानों पर तो स्त्रियाँ पुरोहित का आसन ग्रहण किये हुए यज्ञ-भूमि में दृष्टिगोचर होती हैं। यही नहीं, ब्रह्मचर्य-व्रत को धारण किये हुए वे लोग अकेले भी वैदिक यज्ञ कर सकती थीं और बलि दे सकती थीं। वेद में एक स्थान में स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि विश्ववारा-नामक एक सुन्दरी प्रातःकाल उठकर अकेले ही यज्ञ कर रही है।

समान रूप से कोई भी युवा विवाह हो जाने पर कोई धार्मिक कार्य अकेले नहीं कर सकता था। स्त्री का भाग लेना आवश्यक था। देवता एक अविवाहित युवा के हाथ की दी हुई बलि को स्वीकार ही न करते थे। पति बिना भार्या के अनुसरित स्वर्ग तक नहीं प्राप्त कर सकता। स्वर्गलाभ के लिए पत्नी को पति का अनु-सरण करना अनिवार्य रूप से आवश्यक था (S. Br. r. 2. 1. 8)। पति की नाईं पत्नी को एक विशेष प्रकार के यज्ञ के समय उपनयन करवाना पड़ता था। इस विशेष प्रकार के यज्ञ के करने के समय यज्ञ-भूमि पर पत्नी को अपनी अलग झोपड़ी बनानी पड़ती थी और जब तक यज्ञ समाप्त न हो जाय, अपनी एक गाय के साथ वहीं निवास करना पड़ता था। यही नहीं, यदि पति कहीं बाहर गया हो तो स्त्री अनेकों यज्ञ अपने आप कर सकती थी। उदाहरणस्वरूप राम के राज्याभिषेक के दिन राम की माता कौशल्या अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुत्र के सुख के लिए "स्वस्तियाग" करती हुई दिखाई देती हैं। बालि के युद्धक्षेत्र में प्रस्थान करने के समय उसकी स्त्री तारा ने भी स्वस्तियाग किया था।

यदि पति गृह पर हो तो दोनों साथ-साथ। किन्तु यह प्रथा C. 500 B. C. तक ही रही, सूत्रकाल के बाद अनेकों परिवर्तन हुए।

प्राचीन नारियाँ केवल यज्ञ में भाग ही नहीं ले सकती थीं; किन्तु कुछ ऐसी यज्ञ-आहुतियाँ थीं, जिनको केवल स्त्रियाँ ही कर सकती थीं। उदाहरणस्वरूप "सीता-बलि" जिसका एकमात्र उद्देश्य कृषि की वृद्धि था। दूसरी इसी भाँति की बलि "रुद्रबलि" थी। इसको भी केवल स्त्रियाँ ही कर सकती थीं। इसका एक-मात्र उद्देश्य और ध्येय, देश को धनधान्य से पूर्ण करना और पशुओं को स्वास्थ्य देना ही था। विवाह सफलीभूत हो और बालिका अपने पति के गृह में जाकर सुखी और आनन्दित रहे, इस ध्येय की पूर्ति के लिए स्त्रियाँ एक "रुद्रयाग"-नामक यज्ञ को विधिपूर्वक करती थीं। अतः संक्षेप रूप में यह भली भाँति कहा जा सकता है कि स्त्रियों को धार्मिक क्षेत्र में भी पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र के अतिरिक्त स्त्रियाँ मनुष्यों के साथ विहार, रमण तथा क्रीड़ादि में भी भाग ले सकती थीं। बल-वीरता में भी वे मनुष्यों के समान थीं। अनेकों उदाहरण मिलते हैं, जहाँ पर हमारे भारत की देवियाँ रणक्षेत्र में भी गई हैं। आधुनिक समय की नाईं उनका कार्यक्षेत्र संकुचित न था, अथवा न तो उनमें पर्दा आदि की विनाशिनी कुरीतियाँ ही थीं। नेत्रों की लज्जा ही मुख्य समझी जाती थी। राज्ञी विश्पपला युद्धभूमि में वीरोचित साज से सज्जित होकर जाती है और वहाँ पर सहर्ष लड़ती हुई अपना एक पैर खो देती है। समान रूप से द्रौपदी ने भी वीरोचित वीरता रणक्षेत्र में दिखाई है।

आजकल की ही भाँति पिता के धन पर विवाह हो जाने पर पुत्री का कोई अधिकार नहीं रह जाता था। किन्तु दहेज़ में पुत्रों को पिता के धन का अधि-कांश भाग मिल जाता था। अतः ये सब कथन भली भाँति प्रमाणित करते हैं कि प्राचीन भारत में हमारी नारियाँ अत्यन्त उच्च स्थान पर आरूढ़ थीं। जितनी हेय दृष्टि से आजकल की स्त्रियाँ देखी जाती हैं, उतनी ही श्रद्धा की दृष्टि से हमारी माता और बहनें देवियों की नाईं पूजी जाती थीं।

बिलकुल मुफ़्त

आवश्यक ज्योतिष-विषयों से भरपूर

सम्वत् १९९६ का

पंचांग

अपने गाँव के ५ पूरे पते भेजकर

बिलकुल मुफ़्त मँगाइये

मदनमंजरी फार्मसी, जामनगर.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

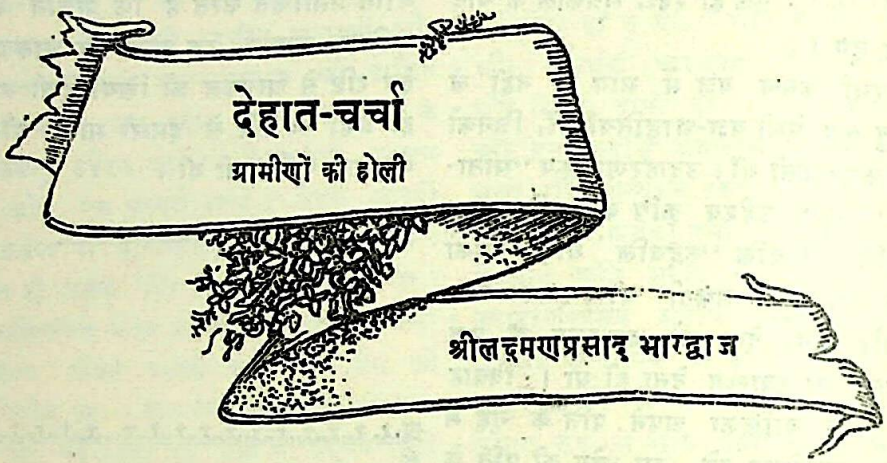

यों तो हम भारतीयों के जीवन की नीरसता प्रसिद्ध है ही, फिर गाँवों की दशा तो बड़ी ही शोचनीय है। भारतवर्ष के ग्रामों में रहनेवाला ग़रीब किसान मुर्ग़े की बाँग के साथ उठता है और फिर रात को दो पहर रात से पहले कभी सोना जानता ही नहीं। सोने और उठने के बीच की जितनी घड़ियाँ बीतती हैं, वे कठिन परिश्रम की होती हैं। इस काल में उसे विश्राम की फ़ुरसत नहीं मिलती—आराम का नाम नहीं। हर समय काम ही काम—कभी खेत में हल चला रहा है तो कभी फ़सल काट रहा है—कभी अनाज बरसा रहा है तो कभी अपनी एकमात्र सम्पत्ति अपने जानवरों के लिए चारा तैयार कर रहा है—कभी अपने खेतों में पानी देने के लिए दाल पर परोहे डाल रहा है तो कभी कुआँ चला रहा है—ग़रज़ यह कि कभी कुछ और कभी कुछ; उसे दम मारने की—ख़ाली बैठकर सुस्ताने की फ़ुरसत नहीं मिलती। नगरों में रहनेवाले श्रीमानों को—मोटर में इधर से उधर घूमनेवाले पूँजीपतियों को—दफ़्तर में काम करनेवाले और ऊँची तनख़्वाहें प्राप्त करनेवाले अफ़सरों को—निर्धन, निस्सहाय तथा निराश्रय नथुआ किसान के जीवन की व्यस्तता का अनुमान नहीं हो सकता। स्कूल के विद्यार्थी और अध्यापक बीच की छुट्टी (Interval) में बैठकर सुस्ता लेते हैं—साहब लोग दफ़्तर के बीच में ही टिफ़िन या लंच खाने चले जाते हैं—अख़बार का सम्पादक रविवार को अपने काम से छुट्टी पा जाता है, किन्तु भारत के ९०फ़ीसदी गाँवों में रहनेवाले जन-समुदाय को न 'हाफ़-टाइम' मिलता है और न रविवार। अँगरेज़ी विद्वान् लैम्ब (Lamb) के मतानुसार—Rise with the lark and lie down with the lamb—की उक्ति उठने और सोने के सम्बन्ध में अनुकरणीय मानी गई है; पर भारतीय कृषक के साथ इस उक्ति का पूर्वार्द्ध तो ठीक बैठता है, पर उसके सोने का समय उक्त सिद्धान्त के उत्तरार्द्ध से मेल नहीं खाता। पिछले दिनों कांग्रेस के नेता प्रायः अपने भाषणों में किसान की बेकारी पर ज़ोर दिया करते थे। यहाँ तक कि महात्मा गांधी तक यह कहते हुए न थकते थे कि किसान वर्ष के छः मास निठल्ला हाथ पर हाथ धरे बैठा रहता है, उसे उन दिनों कुछ कार्य करके अपनी आय में वृद्धि करनी चाहिए। पर यह बात बिलकुल ग़लत थी और हमारे नेताओं का अपने किसानों के जीवन के विषय में कितना असत्य ज्ञान था—इस बात की द्योतक थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन दिनों नेताओं का भी किसानों से सीधा सम्पर्क उतना ही था, जितना कि नौकरशाही का। जो व्यक्ति भारत के उन असंख्य ग्रामीणों के बीच कंधे से कंधा भिड़ाकर रहता है, वह ऐसी युक्ति सुनकर हँसे बिना रह नहीं सकता। ग़रीब किसान कहे जानेवाले उन निर्धन प्राणियों का जीवन कितना शुष्क है—इसका अनुमान उनकी हालत को अपनी आँखों से बिना देखे ठीक-ठीक नहीं हो सकता। आदि से लेकर अन्त तक उनका जीवन एक विशाल मरुभूमि है, जिसमें जल की बूँद का नाम नहीं—जहाँ जीवन के आनन्द और विनोद की हरियाली कभी छिटकती ही नहीं। नगरों में रेडियो, नाटक, सिनेमा आदि मनोविनोद के साधनों का उसे स्वप्न भी नहीं हो सकता। कम से कम ये बातें उसके इस जीवन से तो कोई सम्बन्ध रखती मालूम नहीं देतीं, अगले जीवन की भगवान् जाने।

राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने 'जीवन की कहानी' में हिन्दुओं के विवाहोत्सवों का वर्णन करते हुए यद्यपि इन अवसरों पर रुपये को पानी के समान बहानेवाली नीति की कड़ी निन्दा की है, पर साथ ही इस बात को हर्ष से स्वीकार भी किया है कि इन विवाहों का सामाजिक मूल्य भी बहुत है। उन्होंने इन उत्सवों को परस्पर मेल-जोल, आमोद-विनोद तथा विचारों के आदान-प्रदान का सर्वोत्तम साधन ठहराया है। उनके कथनानुसार ऐसे अवसर हम लोगों के जीवन की मरुस्थली में ओसिस के समान हैं। जो भी थोड़ा-बहुत हमारे जीवन में आवेश तथा समुल्लास—प्रमोद और प्रफुल्लता—का पुट आ जाता है, वह अधिकांश में इन्हीं उत्सवों के कारण होता है। यह बात हमारे देहातों के साथ तो और भी अधिक सत्यता के साथ लागू होती है। किसी के बाल-बच्चे का विवाह हुआ तो सूखी हड्डियों में जान आ गई। इस बहाने ढोल-ताशे का बाजा सुन लिया—थोड़ा बहुत गाना-बजाना हो गया। अन्यथा उन लोगों के जीवन और मृत्यु में कुछ विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता। कोई ब्याह-शादी निकल आई तो मानों रोटी और अस्तित्व के लिए जो तुमुल युद्ध उनके साथ हर समय चलता रहता है, वह किसी क्षणिक संधि के कारण अल्प काल के लिए स्थिर हो गया।

ब्याह-शादियों के अतिरिक्त एक और भी अवसर है, जो हमारे ग्राम्यनिवासियों के जीवन की विषमता को सरसता में परिवर्तित कर देता है। वह अवसर है—होली का त्योहार। आह्लादित होने की उन लोगों की वर्ष भर की चिरसंचित अभिलाषा वसन्त आते ही मार्ग पाकर फूट निकलती है। यों तो वसन्तऋतु सब श्रेणियों के लोगों के लिए सुखदायी होती है, पर किसानों के लिए उसका महत्व विशेष है। इस ऋतु में जब किसी दिन वह काम-धंधे से छुटकारा पाकर अपने खेतों की ओर जंगल में निकल जाता है तो अनाज से लदी हुई उन बालियों को देखकर उसकी बाछें खिल जाती हैं—हृदय आनन्दातिरेक से नाच उठता है। वह कवि 'ग्वाल' के स्वर में स्वर मिलाकर कह उठता है—

"सरसों के खेत में बिछायत बसंती बनी,
तामें खड़ी चाँदनी बसंती रतिकंत की;
सोने के पलँग पर बसन बसन्ती साज,
सोनजुही माले हाले हिय हुलसंत की।
ग्वाल कवि प्यारो पुखराजन को प्याला पूर,
प्यावत प्रिया को करै बात बिलसंत की;
राग में बसन्त बाग-बाग में बसन्त फूल्यो,
लाग में बसंत क्या बहार है बसंत की।

इसी वसन्त की बहार में होली का हर्षोत्पादन त्योहार आता है। बस, नर-नारी, बालक बच्चे, बूढ़े और जवान होली के रंग में रँग जाते हैं। इन दिनों वे अपनी चिन्ताओं को भूल जाते हैं। वसन्तपंचमी से लेकर चैत्र की रामनवमी तक के वे दिन सचमुच ही ग्राम्यजीवन के सुनहले दिन होते हैं। दिन भर के हारे-थके लोग शाम को चौपाल पर जमा हो जाते हैं। कोई अपने साथ डफ़ ले आते हैं, कोई खँजरी, कोई ढोलक और कोई करताल। होली का साज सज जाता है। डफ़ और ढोलक की तान पर गाई जानेवाली होलियों में कितना आनन्द आता है, इसे वही जान सकता है, जिसने स्वयं इन होलियों को उन्हीं लोगों के मुख से सुना हो। उनमें विशुद्ध साहित्य और संगीत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भी है। आइए, पाठकवृन्द! इन ग्रामीणों की एक-दो होली सुनें—

लागे री निमाने नैना।
जब लागे तब किनहुँ न जाने,
अब लागे दुख दैना ॥ लागे री...
कौन सुघड़ तेरी पटियाँ पारीं,
कौन गुहे तेरे बैना ॥ लागे री...
सासु सुघड़ मेरी पटियाँ पारीं,
तो ननद गुहे मेरे बैना ॥ लागे री...

कोई तरुणी अपनी किसी सहेली से नयनों की शिकायत कर रही है। पारस्परिक प्रेम का जन्म पहले दोनों नयनों की पुतलियों में ही तो होता है। प्रेम की वह अवस्था कैसी होती है और उसका परिणाम क्या होता है, इसका बड़ा अच्छा वर्णन—

'जब लागे तब किनहूँ न जाने
अब लागे दुख दैना'

में है। एक दूसरी होली सुनिए—

जल कैसे भरूँ जमुना गहरी।
ठाढ़े भरूँ राजा राम लखत हैं,
न्हौरि भरूँ भीजै चुँदरी ॥ जल कैसे भरूँ...
हौले चलूँ घर सासु रिसायगी,
धमकि चलूँ छलकै गगरी ॥ जल कैसे भरूँ...

होली का सबसे बड़ा खिलाड़ी—वह कन्हैया व्रज-भूमि में पैदा हुआ था। अतः ग्रामों की अनेक होलियों में भी उस बनवारी की लीलाओं का वर्णन है।

"होरी खेलन आयौ श्याम,
सखी री या पै रंग क्यों न डार्‌यो री।"

या

"नयो होरी को खिलार,
मुखड़ा माँजन दै के।"

अथवा

"मेरो लाग्यो ना है दाव,
सुघड़ रंग डारि गयो है।"

से आरम्भ होनेवाली प्रत्येक होली में भगवान् कृष्ण की ही जीवन-लीला की ओर संकेत है।

होली एक पक्का राग है। इसे गाने के लिए पक्के गले की भी ज़रूरत है। फिर उनमें स्थान-स्थान पर राम-कृष्ण, सीता-राधा आदि का नाम आने के कारण धार्मिक और भक्ति का पुट भी आ जाता है। अतः होलियाँ गाँव के बूढ़े और अधेड़ लोगों को ही प्रिय होती हैं। शेष पुरुष-समाज तीन प्रकार के गाने अधिक गाता है, जिनके नाम हैं—रसिया, साखी और जिकड़ी। विशेषकर रसिया ग्राम के युवक-समाज की प्यारी चीज़ है। जोधपुरी साफ़ा बाँधे हाथों में करताल लेकर इन ग्रामीण युवकों का दल होली या धुलहड़ी के दिन गाँव की गलियों में रसिया गाते हुए निकलता है, वह दृश्य देखने योग्य होता है। इन रसियों का विषय स्त्री-पुरुष का प्रेम, यौवन, विरह आदि होना स्वाभाविक ही है। किसी में पति के बालक होने पर युवती स्त्री अपनी सखी-सहेलियों को आप-बीती सुनाती है, किसी में पति के परदेश होने पर और होली पर भी न आने पर तार भेजकर बुलाने का इरादा ज़ाहिर किया जाता है और किसी में यौवनावस्था में अधिक से अधिक आनन्दित रहने का उपदेश होता है। भाभी-देवर का प्रेम तो इन रसियों का प्रधान विषय हो होता है। एक-दो नमूने की टेक सुनिए—

"काँटो लाग्यौ रे देवरिया मोपै गैल चल्यो ना जाय।"
"दिल्ली में जुर्‌यो है दरबार दिखाइला देवरिया।"
"कैसे आयो मेरी बाखरि में बताइ दै कान्हा मोय।"
"सुनि-सुनिकै देह पजरि गई बालम बाँझ बतावै मोय।"

× × ×

साखियाँ होली के इन दिनों में ख़ूब गाई जाती हैं। व्रज और उसके आसपास के देहातों और ज़िलों में इनका बड़ा रिवाज है। जब ग्रामीण लोग एक धुन में इन साखियों को गाते हैं तो बड़ा ही सुहावना लगता है। हम यहाँ साखियों के कुछ नमूने देते हैं—

(१)

"मेरे बगर बसाइ दै रँगरेज,
रँगाइ दै पँचरँग चूँदरी ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

याके ढिंग-ढिंग लिखि दै पपिया मोर,
बीच में लिखि दै कूबरी ।
जोड़ा लिखि दै राधाकृष्ण,
पटजोरा लिखि दै गूजरी ॥"

इस साखी में भक्त की भावना का प्रदर्शन है । मेरे पड़ोस में रँगरेज़ को बसा दे जो मेरी चूनरी को पँचरंग रँग दे । उसके किनारे पपिया और मोर बना दे तथा बीच में राधाकृष्ण सहित कूबरी का चित्र छाप दे और चारों कोनों पर गूजरी लिख दे ।

(२)

"मेरे बनकूँ खँदह दए लछिमन राम,
अजुध्या सूनी है गई ।
राजा दसरथ तजे हैं प्रान,
बैरिन तो कैकई है गई ।"

महारानी कौशल्या का राम-बन-गमन के बाद का विलाप है । अर्थ स्पष्ट ही है ।

(३)

"मेरे छूटे ना हरदिया के दाग,
सहेली नाहूँ गई सासु कें ।
बारी बैस मर्‌यो है भरतार,
जोबन तो ना हैं मेरे हाथ में ।"

किसी युवती का पति भरी जवानी में स्वर्ग सिधार गया है । वही करुणकथा है ।

(४)

"बरुआ हौलै-हौलै बैंन बजाय,
बामी में सोय रही नागिनी ।
तोकूँ जागत ही डसि जाय,
घर रोइ मरेगी तेरी कामिनी ।"

इन साखियों को स्त्री और पुरुष दोनों ही बड़े प्रेम से गाते हैं ।

× × ×

अब हम जिकड़ियों पर आते हैं । ये ही ग्राम के होली संगीत की प्रधान चीज़ होती हैं । डफ़, ढोल, झाँझ, करतार, मँजीरा, थाली, घण्टा आदि बाजों के साथ जिकड़ियों का गान होता है । किसी-किसी ग्राम में बम्ब भी बजती है । बम्ब एक प्रकार का बड़ा नगाड़ा होता है, जिसे दो या चार आदमी खड़े होकर डंकों से बजाते हैं । चन्द्रदेव की चारु चाँदनी छिटकी होती है । गाँव भर के शौक़ीन—छरहरे जवान—होली गाने के लिए किसी चौक में एकत्रित हो जाते हैं । दूसरी ओर ग्रामीण स्त्रियों तथा बालिकाओं की पंक्ति लगी रहती है । सब तैयारी हो चुकने पर मंगलाचरण शुरू होता है । तीन-तीन या दो-दो गवैयों के दो दल बन जाते हैं । एक दल शुरू करता है और दूसरा दल उसी को दोहराता है । मंगलाचरण की कुछ पंक्तियाँ सुनिए—

"सुमिरि सारदा माय गुरू कूँ सीस नवाऊँ ।
पंचन कूँ सिर नाय गवरि के सुतहि मनाऊँ ॥
(एजी) सुमिरि सारदा माय, सुमिरि सारदामाय ।
हे ए ए ए ए ... ।
सकल सभा के बीच में, मोपै सारद भई सहाय ।
रखि आजु लाज महारानी ॥ टेक ॥

इस टेक के गाते ही बाजों का बजना शुरू हो जाता है । बीच-बीच में इसी टेक को गानेवाले बार-बार गाते हैं । झाँझों की झन-झन, बम्ब की गड़गड़ाहट, डफों की ढप-ढप, ढोल की ढम-ढम, घंटे की टन-टन और फूल की थाली की झनझनाहट के बीच ग्राम के इस उत्सव में वहाँ के नर-नारी एक दूसरे ही लोक में पहुँच जाते हैं । जब तक बाजा बजता रहता है, तब तक ग्राम की बहुएँ अपने-अपने देवरों को पुरुषों की भीड़ में से पल्ला पकड़कर खींच ले जाती हैं और उनसे होली खेलती हैं । किन्हीं ग्रामों में, जहाँ पर जाटों की आबादी विशेष होती है, इस होली में स्त्रियों द्वारा पुरुषों की मरम्मत भी ख़ूब होती है ; क्योंकि भाभियों के हाथों में लकड़ी होती है, जिससे वे होली खेलनेवाले देवर को पीटती भी जाती हैं, उसको भी नचाती हैं और स्वयं भी नाचती हैं ।

जब मंगलाचरण के सब छन्द समाप्त हो जाते हैं तब कोई रामायण, पुराण अथवा महाभारत आदि की कोई कथा ली जाती है । महाराज 'दशरथ-मरण' लीला में से हम यहाँ कुछ जिकड़ियों के छन्द उद्धृत करते हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१)

असगुन सगुन होहिं मारग में जानें कही न छोटे बन्धते;
मन में करत बिचार, मृगमाला गई काटि अगारी,
जाके बोले सिमाने पै स्यार।
भ्यंकर रूख मिल्यो मारग में जापै काग बसेरो करिरहे॥
मँडराय रहे काग पुरी पै॥ (टेक)
सोचतु जातु चल्यौही निकरे।
हाट बजार रही ना सोभा, सोग में डूबि रही नगरी।
कनक-भवन में काग बिराजें, सोभा जातिरही सबरी॥
पाँइ धरे पीछे कूँ लौटे खातु पछार सिड़ी पै॥
मँडराय रहे काग पुरी पै॥ १॥

स्थानाभाव के कारण यहाँ यह पूरी कथा, जो जिकड़ियों में गाई जाती है, उद्धृत नहीं की जा सकती। फिर भी यहाँ एक छन्द और पाठकों की सेवा में पेश करने के लोभ का संवरण नहीं कर सकता। ऊपर के छन्द में उस समय के दृश्य का वर्णन किया गया है, जब भरत-शत्रुघ्न दोनों भाई राम-वन-गमन और महाराज दशरथजी के मरण के पश्चात् अयोध्या नगरी को वापस ननिहाल से आये हैं। आगे के छन्द में कौशल्याजी भरतजी से कहती हैं—

मेरे डारे पंख उखारि करयो जाने मन को चीतो।
मेरो चन्दन डारयो काटि जरयो जाइ मेरो पीतो॥
मोपै दिन न कटे और राति, बानि न छोड़ी सौत ने
जाने करि डारयो अपघात;
तेरे जूझे पिता बिगरि गई बनता,
मोइ बिकट उजारौ लखतु है।
दैजा सुत दागु पिता ऐ॥ (टेक)
बार-बार रानी समुझावे।
तेरे जूझे पिता डरे तरनी पै काया बिगरै डरी-डरी;
किरिया-करम बिमान सजाइदै, जोसुत हैया तोहिपरी।
दैकें आँच चिता में बेटा धरि दै कौशिल्या ऐ—
दैजा सुत दागु पिता ऐ॥ १॥

इन पंक्तियों का अर्थ यहाँ देने की आवश्यकता नहीं। ग्रामीण कवि की कविता का अर्थ शब्दों की कठिनाई के कारण छिपा हुआ नहीं रह सकता। उसके पास ऐसे शब्द आये ही कहाँ से? वह तो सीधे-सादे गँवारू शब्दों में अपने मन की बात कह डालना चाहता है। यहाँ भी उसने अपने मन को किस प्रकार काग़ज़ पर उडेला है—

"दैकें आँच चिता में बेटा धरि दै कौशिल्या ऐ" कैसी चुभती हुई पंक्ति है। महारानी कौशल्या के हृदय का विषाद प्रकट करने के लिए कवि ने कैसा सुन्दर ढंग ढूँढ निकाला।

यदि कोई ढूँढनेवाला हो और कोई क़द्र करनेवाला हो तो हमारे साहित्य का एक अमूल्य अंग इन ग्रामीण गीतों में छिपा पड़ा है। पर अभी तो हम लोगों का इधर ध्यान ही नहीं गया। समय आ गया है कि हम अपने ग्रामीणों के इन उत्सवों को बढ़ावा दें और उनकी रक्षा करने के प्रयत्न ढूँढ निकालें।

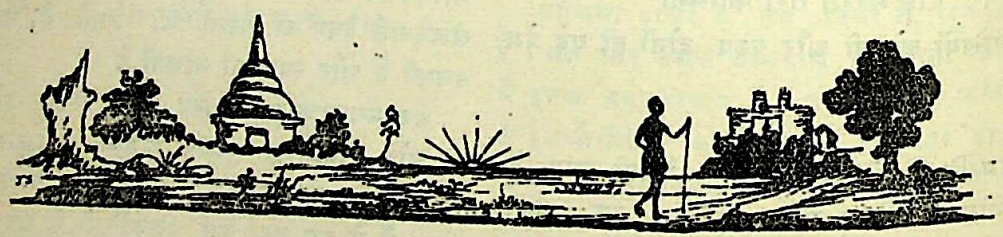

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मगौरव

श्रीकनक-मूर्ति

इस संसार में आत्म-मर्यादा का उचित रूप से पालन करना 'आत्मगौरव' कहलाता है। 'आत्म' शब्द से 'जीवात्मा' समझना भूल होगी। 'आत्म' शब्द का तात्पर्य 'अपना' ही लेना चाहिए। इस शब्द को सभ्य-अर्थ में 'स्व' 'निज' शब्दों से समझाया जाता है। 'गौरव' का अर्थ यद्यपि भारीपन लिया जाता है, तथापि 'आत्म' शब्द के सहयोग से 'पार्थिव भारीपन' न लेकर आत्मिक अथवा मानसिक भारीपन लिया जाता है। इसी आत्मिक अथवा मानसिक भारीपन का नामकरण 'मान' शब्द से किया गया है। जब 'मान' का दुरुपयोग होता है, तो उसे 'अभिमान' समझा जाता है और उस 'मान' के अभाव में 'अपमान' तथा समुचित रूप में 'सम्मान' शब्दों का प्रयोग होता है। इस 'सम्मान' को सर्व-साधारण को समझाने के लिए 'आत्मगौरव' शब्द की रचना की गई है।

ऊपर के विवरण में एक शब्द आया है 'मर्यादा'। इस मर्यादा से क्या प्रयोजन है? कभी-कभी इस 'मर्यादा' की सीमा विस्तृत हो जाती है कि जिससे 'मान' अर्थात् 'आत्मगौरव' की रक्षा असम्भव तो नहीं; दुष्कर अवश्य हो जाती है। 'मर्यादा' की भी मर्यादा बाँधना ही होगी।

ऊपर की पंक्तियों में 'आत्म' का अर्थ 'स्व' और 'निज' इन पर्याय शब्दों में व्यक्त हो चुका है। इसे सर्व-साधारण जनता 'अपना-पन' इस शब्द से समझ सकती है। अपने-पन की मर्यादा "अपना वाक्य, अपना धर्म, अपना यश, अपना गुण, अपनी स्वतन्त्रता, अपनी देह, अपना परिवार, अपनी जाति, अपना देश, अपना राष्ट्र" इन सभी को व्यक्त करती है। इसी अपने-पन की मर्यादा को 'मान' अर्थात् 'आत्मगौरव' की विभूति मानकर, इसकी रक्षा के लिए मनस्वी सदा उद्युत रहते हैं।

अपने वाक्यों की रक्षा के लिए राजा हरिश्चन्द्र ने क्या किया? दशरथ ने शरीर का तृणवत् त्याग क्यों किया? पद्मिनी अपने धर्म की रक्षा क्यों कर सकी थी? मयूरध्वज की अपने यश की रक्षा क्या किसी को भूल सकती है? स्वतन्त्रता का अनन्य पुजारी प्रताप वनों में क्यों भटकता रहा? क्या इन्होंने अपने-पन की मर्यादा से सीमित 'इति' की रक्षा नहीं की?

उपर्युक्त महान् व्यक्तियों ने 'आत्म'-सम्पर्कित प्रत्येक वस्तु की रक्षा की है। तभी तो उनका नाम अब तक विद्यमान और नित्य नूतन है। माना, अपने-पन की रक्षा करनेवालों ने बड़ी-से-बड़ी आहुतियाँ दीं, पर वे आहुतियाँ 'आत्मगौरव' के सम्मुख क्या महत्त्व रखती हैं?

जब मनुष्य 'आत्मगौरव' अर्थात् 'मान' की यथा-विधि रक्षा करता हुआ कर्तव्य-सिन्धु में कूद पड़ता है तो उसे उँची-से-ऊँची विपत्तरंग भी डुबाने में अशक्त होती है। वह—आत्म-गौरव-पालन—कर्तव्य-सिन्धु को लाँघने में प्रतिपल पुलकायमान होता हुआ एक अवर्णनीय एवं असीम आनन्द का अनुभव करता है। वह आनन्द ब्रह्मानन्द के समान अकथ्य, अतर्क्य तथा अननुमेय है।

जिस प्रकार जीवात्मा के बिना इस देह का नाम 'शव' रख दिया जाता है, उसी प्रकार 'आत्मगौरव' के बिना सामाजिक जीवन भी असार है। समाज में हिल-मिलकर रहनेवाले मानव को 'आत्मगौरव' की रक्षा करनी ही होगी। 'आत्मगौरव' की उपलब्धि से महदानन्द की प्राप्ति ही नहीं होती, अपितु समाज में बड़प्पन का स्तूप सदा के लिए खड़ा हो जाता है। जब किसी मानव की वास्तविकता की टटोल करनी हो तो उसकी 'आत्मगौरव' के प्रति लगन एवं वैध श्रम की परीक्षा करनी चाहिए। 'आत्मगौरव' प्रत्येक मनुष्य का जीवन है, प्राण है, ऐश्वर्य है, सम्पत्ति है और है अक्षय धन। 'आत्मगौरव' को बड़प्पन की एक निशानी घोषित करते हुए किसी ने क्या ही सुन्दर कहा है—

"मानो हि महतां धनम्"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शेख़ साहब का फ़ैसला

श्रीविजयबहादुर श्रीवास्तव,
बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०

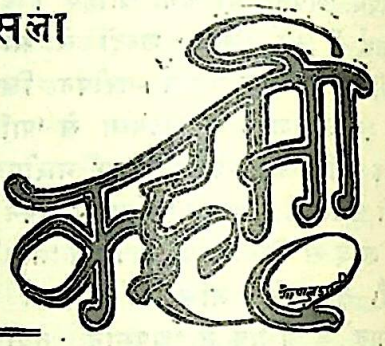

शेख़ महमूद इब्नमूसा अरब के बड़े काफ़िले-वालों में से थे। उनके पास नब्बे ऊँट और कुछ गधे और घोड़े थे। इन सबमें शेख़ साहब को एक सफ़ेद रंग का बड़ा-सा गधा बहुत प्यारा था। वह उस पर ख़ुद सवारी करते थे और रात को उसे अपने ही तम्बू में, अपने बिस्तर के नज़दीक, बाँधकर सोया करते थे। काफ़िले के साथ उसके इन्तज़ाम को केवल उन्नीस आदमी थे। वे सब अपढ़ सीधे-सादे पक्के रेगिस्तानी अरब थे। उन्हें शेख़ साहब का हुक्म ही क़ानून था और उनके अलफ़ाज़ ही क़ुरान शरीफ़ की आयतें थीं। बड़ी ख़ुशी से वे अपने मालिक की सज़ाओं को मंज़ूर करते थे और उनके पुरस्कार को ग्रहण करते थे। मैं कई दिनों से काफ़िले के साथ सफ़र कर रहा था। उनके आतिथ्य और स्वागत से मैं बहुत प्रसन्न था। मेरे पास बहुत धन तो था नहीं, केवल अस्सी लीरा (सोने की इटेलियन मोहरें) थे। इन्हें मैं हमेशा अपने हैण्डबैग में रखता था। रात के समय अपने सिरहाने रखकर सोया करता था।

एक दिन अचानक मेरी थैली ग़ायब हो गई। मेरे होश-हवास गुम हो गये। मैं फ़ौरन् इब्नमूसा के पास गया और उससे कहा—"शेख़ महमूद इब्नमूसा, आपके पास मैं आठ दिन से हूँ और आपकी ख़ातिरदारी से बहुत ख़ुश हूँ। इसके लिए मैं बार-बार आपका शुक्रिया अदा करता हूँ।"

इब्नमूसा ने झुककर अपना दाहना हाथ छाती से लगाया और बड़ी मिन्नत के साथ बोले—"जनाब, हर अरब का फ़र्ज़ है कि वह अपने मेहमान की फ़रिश्तों की-सी क़दर व ख़ातिर करे। अरब को सबसे ज़्यादा ख़ुशी दूसरों की तबीयत ख़ुश करने में ही होती है।

मैंने फिर कुछ हिचकते हुए कहा—"शेख़जी, मुझे थोड़ी-सी शिकायत आपसे करनी है, जिसके लिए मुझे सख़्त अफ़सोस है। मेरी ख़ुशी की रोशनी पर और आपकी ख़ातिरदारी पर शैतान की छाया पड़ गई है। चूँकि आपका मैं मेहमान हूँ, इसलिए मुझे मजबूरन् ज़ाहिर करना पड़ता है कि आज किसी ने मेरी मोहरों की थैली चुरा ली है।"

शेख़ ने मेरी बात चुपचाप सुनी और फिर बड़ी देर तक दाढ़ी सहलाते हुए बैठे रहे। फिर सोच-विचारकर कहने लगे—"आज हम लोग सफ़र नहीं करेंगे। डेरा यहीं रक्खेंगे। हमारे तीन गधों की नालें निकल गई हैं और ज़ीनों की भी मरम्मत करनी है। आप ख़ातिर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जमा रखिए कि शाम होने के पहले ही आपकी मोहरें आपको वापस मिल जायँगी।"

क़रीब एक घंटे के बाद शेख़जी बाहर गये और दोपहर तक ग़ायब रहे। बाद को उन्होंने आकर सबको हुक्म दे दिया कि कोई भी शख़्स किसी भी हालत में डेरा छोड़कर एक क़दम भी बाहर न जाय। फिर आप तम्बू में दाख़िल हो गये और दरवाज़ा बन्द कर लिया। क़रीब तीन घंटे तक वह भीतर ही रहे।

इस बीच में मेरी घबराहट बहुत बढ़ गई। केवल एक व्यक्ति मेरा धन मुझे वापस दिला सकता था और वही शख़्स बेफ़िक्री से ख़र्राटे ले रहा था। अब तो मुझे ख़ुद शेख़ साहब पर ही अविश्वास होने लगा। तरह-तरह की भावनाएँ मन में उठने लगीं। किन्तु इसी बीच में तम्बू का दरवाज़ा खुला और शेख़ महमूद इब्नमूसा साहब बाहर तशरीफ़ लाये। उस वक़्त उनकी झाँका देखने लायक़ थी। बड़ा शानदार और चमकदार जामा और पाजामा पहने हुए थे। उनकी पगड़ी भी शाही ताज का मुक़ाबला कर सकती थी। दाढ़ी बहुत साफ़ और शानदार हो रही थी। चेहरे पर अजीब रौनक़ और रोशनी थी। आँखें गम्भीरता की झलक से मतवाली हो रही थीं। चाल में एक ख़ास शाहीपन था, जिससे क़दम आहिस्ता-आहिस्ता उठते थे और बहुत वज़न के साथ धीरे से गिरते थे। सारांश यह कि शेख़जी आज धर्मराज का अरबी संस्करण अथवा आबू हनीफ़ा का साक्षात् अवतार बन आये थे।

बाहर आकर उन्होंने दस्तरख़ान बिछाने का हुक्म दिया। नौकरों ने बहुत जल्दी भोजन का पूरा प्रबन्ध कर डाला। पैलेस्टाइन के खजूर, तुर्की बकरों का गोश्त और मीठे-मीठे शर्बत, सभी मौजूद थे। क़रीब एक घंटे तक हमारा खाना-पीना होता रहा; लेकिन शेख़जी ने चोरी के बारे में एक भी लफ़्ज़ मुँह से नहीं निकाला। खाना ख़तम होने पर वह चुपचाप उठे और डेरे के बीच में रक्खे हुए सामान के ढेर पर जाकर विराजमान हो गये। इशारे से मुझे अपने पास आकर बैठने का आदेश दिया। मैंने उनसे कुछ दूरी पर अपना स्थान ग्रहण किया। फिर ख़ूब बलन्द आवाज़ में सब काफ़िलेवालों को फ़ौरन् इकट्ठा होने का हुक्म दिया गया। सबके सब बात की बात में शेख़जी के सिंहासन के आसपास इकट्ठे हो गये।

उन्होंने अर्धवृत्ताकार पंक्ति में अपने स्थान ग्रहण किये। जब दरबार इस प्रकार भर गया, तब शेख़जी ने बड़े ग़ौर से हर शख़्स को नीचे से ऊपर तक कई बार देखा। इस समय उनकी मुखमुद्रा अत्यन्त गम्भीर और दृष्टि अत्यन्त क्रूर थी। क़रीब पाँच मिनट तक वे अपने नौकरों को निगाहों से नापते-तोलते रहे। प्रत्येक काफ़िलेवाला आदमी उनकी ओर बिना हिले-डुले अपनी दृष्टि लगाये रहा। सबके चेहरे शंकित थे और हाव-भाव से भय टपका पड़ता था। वे अनुमान तक नहीं कर सकते थे कि कौन-सी बला सिर पर आनेवाली है। शेख़जी एकाएक अत्यन्त सतर्कतापूर्ण तथा गिने हुए शब्दों में बोलने लगे।

उन्होंने फ़रमाया—"कमबख़्तो, आज तुम लोगों ने इस मेहमान के सामने मेरी आँख नीची कर दी है और मेरे नाम पर बट्टा लगा दिया है। आज मेरे डेरे में किसी शैतान के बच्चे ने चोरी तक करने की हिम्मत कर ली है। चोरी एक ऐसा गुनाह है, जिसे इन्सान हराम से भी बदतर समझता है और जिसके लिए ख़ुदा हमेशा के लिए जहन्नुम के सबसे सख़्त तहख़ाने की सज़ा देता है। लेकिन जब कोई शख़्स अपने ही मेहमान की चोरी करता है, तब उसका गुनाह सात गुना और भी बढ़ जाता है। ऐसे आदमी के लिए दुनिया में कोई भी सज़ा काफ़ी नहीं।" वह फिर बोले—"इन साहब ने मेरे ऊपर बड़ी मेहरबानी की कि मेरा यक़ीन किया। मेरे काफ़िले के साथ अपनी ख़ैरियत समझकर इतनी मंज़िलें तय करते हुए यहाँ तक आये। इन्होंने हर क़िस्म की तकलीफ़ें सहीं और हमारा रूखा-सूखा रेगिस्तानी खाना भी खाते रहे; लेकिन ज़रा भी शिकायत नहीं की। मगर आज तुममें से हर शख़्स को सख़्त अफ़सोस करना चाहिए कि किसी हरामज़ादे ने इनकी थैली चुरा ली है। कोई भी शख़्स हमारे डेरे में बाहर से नहीं आया, और न मैंने किसी को बाहर ही जाने दिया है। इसलिए वह शैतान इस वक़्त मेरी आँखों के सामने मौजूद है। वह सोचता है कि उसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जुर्म छिप जायगा। लेकिन किस बदमाश में दम है कि नब्बे ऊँटों के काफ़िलेवाले शेख़ महमूद इब्नमूसा से अपनी हरकतें छिपा सके। अल्लाहताला की मर्ज़ी से अभी चन्द मिनटों में वह शैतान पकड़ा जायगा।"

इसके बाद शेख़जी अपनी गम्भीरता और उच्च पद को कुछ क्षणों के लिए भूल-से गये। उनके मुख से ताबड़तोड़ गालियों का फ़ुहारा-सा छूट पड़ा। फिर वह चुप हो गये, घुटना मोड़ बैठकर नीचा सिर कर लिया और आँखें मूँद लीं। कुछ देर तक वह इसी अवस्था में ध्यानावस्थित रहे। फिर एकाएक जागकर मुँह और दाढ़ी पर हथेलियाँ फेरते हुए उन्होंने आँखें खोलीं। ऐसा चित्र खींचा, जैसे आप अभी तक ईश्वर से भीतर ही भीतर बातचीत करते रहे हों। वह बोले—"ख़ुदा ने इस काफ़िले को देखकर चेहरा छिपा लिया है। जब तक कि इस मेहमान का पैसा वापस नहीं मिल जायगा, ख़ुदा इसकी तरफ़ देखना तक मंज़ूर नहीं करता। वह मुझे हुक्म देता है कि मैं फ़ौरन् वह सोना वापस दिला दूँ।" यह कहते हुए शेख़जी की आवाज़ बहुत बलन्द हो गई। वह फिर बोले—

"सामने के तम्बू में मेरा सफ़ेद गधा बँधा हुआ है। तुम सब जानते हो कि वह कितना पाक और समझदार है। वह ख़ास पैग़म्बर मुहम्मद साहब की सवारी के गधे, दूध-जैसे रंगवाले, अलबुरक की औलाद है। अलबुरक को पैग़म्बर साहब की सवारी में सातों आसमानों पर जाने का मौक़ा नसीब हुआ था। इस गधे में भी अपने ख़ानदानी ख़ून के सबब अलबुरक की सब ख़ासियतें मौजूद हैं। यह सब बातों का जाननेवाला और नापाक इन्सानों से नफ़रत करनेवाला है। जो-जो बातें ख़ुदा की निगाह में सच्ची होती हैं, उन्हें यह फ़ौरन् ज़ाहिर करता है। सच बात तो यह है कि अपने प्यारे गधे अलबुरक की औलाद होने से पैग़म्बर साहब इस पर ख़ास मेहरबानी रखते हैं। इसलिए यह गधा अभी बतला देगा कि वह बदमाश कौन है।"

यह कहकर शेख़जी ने फिर अपनी नौकर-मण्डली की ओर देखा। लेकिन किसी भी आदमी को आगे आते हुए नहीं पाया। इसलिए वह फिर बोले—"गधा बोल तो सकता नहीं; क्योंकि वह हैवान है और उसका गला भी गधे का ही गला है। लेकिन उसकी रूह हमारी और तुम्हारी से हज़ार दर्जा साफ़ और पाक है। वह ख़ुदा से हमेशा मतलब और ताल्लुक़ रखता है। इसलिए वह अपनी ही ज़बान में बदमाश का पता बतलावेगा। मैं तुममें से हर एक को हुक्म देता हूँ कि तुम, एक के बाद एक मेरे तम्बू में दाख़िल होओ। उसका दरवाज़ा बन्द कर लो। फिर उस पाक गधे की दुम पकड़ो। जब कोई मामूली आदमी उसकी पूँछ पकड़ेगा, तो वह चुपचाप रहेगा। लेकिन ज्यों ही वह चोर उसकी दुम से हाथ लगावेगा, त्यों ही वह बड़े ज़ोर से रेंकेगा और अपनी दुलत्तियों से उस शैतान की ख़ातिर करेगा। तब हम उस बदमाश को पकड़कर ख़ुदा के हुक्म के माफ़िक, तुम सबके सामने क़त्ल कर देंगे।"

उस अर्धगोलाकार पंक्ति के अन्तिम व्यक्ति को सबसे पहले तम्बू में प्रवेश करने का आदेश हुआ। वह अत्यन्त शान्ति के साथ उठा और स्थिर गति से निर्दिष्ट तम्बू में प्रविष्ट हो गया। उसका द्वार धीरे-धीरे बन्द कर लिया गया। कुछ क्षणों तक पूर्ण निस्तब्धता रही। सब मनुष्य गर्दभ-ध्वनि की आशंका से व्यग्र-से थे। किन्तु थोड़ी ही देर में दरवाज़ा खुला और भीतर का व्यक्ति बाहर आया। सबके जी में जी आया। इसी प्रकार एक, दो, तीन, चार व्यक्ति गये और वापस आये। प्रत्येक के जाने के साथ आशंका और बाहर निकलने पर सन्तोष-सा होता था। यद्यपि मेरा धन खो गया था और मैं उसे प्राप्त भी करना चाहता था; किन्तु किसी व्यक्ति का उस थोड़े-से अपराध के लिए रक्तपात नहीं कराना चाहता था।

आठ आदमी भीतर जा चुके थे; किन्तु अभी तक गर्दभदेव का सप्तम-स्वर अविश्रुत ही रहा। धीरे-धीरे नौ, दस, ग्यारह, बारह आदमी हो आये। किंतु परिस्थिति वही रही। लो, सोलहवाँ व्यक्ति भी वापस आ गया और यह सत्रहवाँ भी आ रहा है। अब केवल दो ही व्यक्ति शेष रहे। उस कमबख़्त गधे का रेंकना अब सुन पड़ता था न तब। आख़िर को गधा, गधा ही तो था, चाहे वह अलबुरक की औलाद हो, चाहे अफ़लातून का नाती। मैं शेख़जी की नासमझी पर रो रहा था। कैसा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बेवक़ूफ़ आदमी है, मेरे सोने को गधे की दुम से बाँधने बैठा है और बतलाता है कि गधा ख़ुदा की दुम है।

इसी बीच में उन्नीसवाँ आदमी भी वापस आ गया। अब तो मेरे दुःख और क्रोध का ठिकाना न रहा। जी में आता था कि शेख़जी की दाढ़ी नोच डालूँ और पूछूँ कि शेख़जी, कहाँ गई तुम्हारे गधे की पैग़म्बरी? लेकिन किसी प्रकार मन मारे बैठा रहा।

शेख़जी ने धीरे से मुझसे कहा कि मामला बिलकुल ठीक है। तुम ज़रा चुप रहो। नौकरों को सम्बोधित करते हुए वे बोले—"तुम सब खड़े हो जाओ। अपने दोनों हाथ पसार लो। हथेलियाँ खोल लो और उन्हें ऊपर की ओर कर लो। जब तक मेरा हुक्म न मिले, इसी तरह खड़े रहो।"

सब आदमियों ने शेख़जी की आज्ञा के अनुसार ऐसा ही किया। शेख़जी उठे। पहले आदमी के पास गये। ज़रा खड़े हुए। उसके चेहरे को अपनी दृष्टि से टटोला। फिर झुके और अपनी नाक उसकी हथेलियों के नज़दीक ले गये। दो-चार बार सूँघा, फिर उस आदमी को हटा दिया। इसी प्रकार दूसरे से किया और फिर तीसरे और फिर चौथे से। क़रीब-क़रीब पाँच-पाँच सेकण्ड वह हर आदमी की हथेलियाँ सूँघते थे और उसे क़तार के बाहर निकाल देते थे। बारहवें आदमी के पास वह पहुँचे और उसकी हथेलियों पर नाक लगाकर सूँघा। फिर वह सीधे खड़े हो गये और अपनी नाक को मलकर उसे साफ़-सा किया। फिर वह झुके और अच्छी तरह से फिर सूँघा। एकाएक वह एक क़दम पीछे हट गये और अपनी बाईं ओर से तलवार खींच ली। उस आदमी को एक लात मारी, और बोले—"अबे चोर, फ़ौरन् जा और वह सोना लाकर हाज़िर कर। हरामज़ादे, मैं इस तलवार से अभी तेरा पेट फाड़ डालूँगा।"

वह आदमी उनके सामने ज़मीन पर औंधा गिर पड़ा और गिड़गिड़ाने लगा। एक-दो लातें और खाने पर वह उठा और भागकर डेरे के बाहर ऊँटों के समूह से कुछ दूर चला गया। उसने एक चौड़ा-सा पत्थर हटाया और उसके नीचे की मिट्टी को खोदा। उसमें से फ़ौरन् उसने मेरी थैली निकाली और लाकर काँपते हुए हाथों से शेख़जी के सामने पेश की। शेख़ ने हुक्म दिया कि यह थैली मेहमान साहब को वापस दे दो। थैली मुझे दे दी गई। मैं बहुत ख़ुश हो रहा था।

शेख़जी ने दो आदमियों को बुलाया और चोर को उनके हवाले कर दिया। उन्हें हुक्म दिया कि इसकी ख़ूब मरम्मत करो। उसके दो-चार ही घूँसे पड़ पाये थे कि मैंने शेख़जी से उसे माफ़ करने की प्रार्थना की। वह छोड़ दिया गया।

यद्यपि मेरा धन मिल गया था, और चोर को भी कोई बेजा सज़ा नहीं दी गई थी, पर मैं यह जानना चाहता था कि शेख़जी ने उसे पकड़ा कैसे? इसलिए जब दूसरे दिन हम लोग साथ-साथ जा रहे थे, तो मैंने शेख़जी से पूछा, आख़िर तुमने उसे पकड़ा कैसे? वह ज़रा मुस्किराये और बोले—"भाई, तुम मेरे आदमियों को बतलाना मत। मैंने गधे की पूँछ ख़ुशबूदार पानी में डुबोकर सुखा दी थी। उस चोर ने गधे की दुम को पकड़ा ही नहीं। इसलिए उसके हाथ में ख़ुशबू नहीं थी। मैंने उसे पहचान लिया।"

मैंने कहा—"माशाअल्ला, ख़ुदा मेहरबान था।"

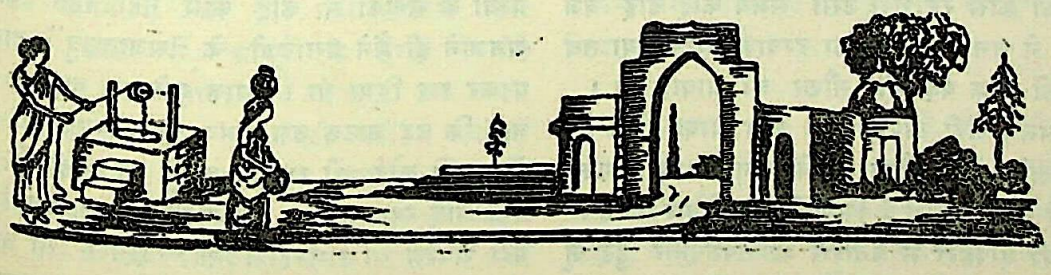

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कविवर प्रसादजी के कुछ संस्मरण

श्रीरघुवीरसिंह एम्० ए०, एल्-एल्० बी०, डी० लिट्०

"ज़रा किवाड़ खोलकर देख तो सही कि आज इस बेवक़्त कौन दरवाज़ा खटखटा रहा है ?"—प्रसादजी ने आश्चर्यभरी आवाज़ में नौकर से कहा।

सन् १९३५ का साल था। १९ मई को दोपहर के समय अपने पुराने मकान में लकड़ी के तख़्त पर एक तैमद बाँधे एक पतला-सा कपड़ा शरीर पर डाले प्रसादजी नींद को बुलाने का प्रयत्न कर रहे थे। लू चल रही थी एवं किवाड़ बन्द थे, फिर भी गरमी के मारे उन्हें नींद नहीं आ रही थी ; पसीना टपक रहा था, जी घबरा रहा था, आँखें बंद कर-कर खोल रहे थे और बनारस की गर्मी को कोस रहे थे। उसी समय कोई ढाई बजे जब किसी ने उनके मकान का दरवाज़ा खटखटाया तब तो प्रसादजी चौंक पड़े और नौकर को आवाज़ दी।

"इस समय भरी दोपहरी में कौन आया होगा ?" किवाड़ खोलते हुए नौकर कहने लगा, "लू लगकर आज तो दो-तीन पुलीस के सिपाही भी तो मर गये हैं।"

उस भरी दोपहरी में बनारस की तपतपाती हुई लू में राय कृष्णदासजी, डाक्टर मोतीचंद चौधरी के साथ एक अपरिचित नवयुवक को अपने दरवाज़े पर खड़ा देखकर प्रसादजी अचकचा गये। "इस वक़्त....." प्रसादजी अधिक पूछ न सके। रायसाहब ने आगे बढ़कर प्रसादजी से मेरा परिचय कराया।

× × ×

अपने उस कौतूहलपूर्ण कौमार्य में जब हाथ लगने पर प्रत्येक पुस्तक को पढ़ डालने की उतावली होती थी और जब कहानियों, उपन्यास और नाटकों के लिए विशेष आकर्षण होता था—और आज भी यह आकर्षण किसी भी प्रकार घटा नहीं है—जब उनके कथानक एवं घटना-वैचित्र्य की ओर ही दृष्टि रहती थी, उन ग्रन्थों के लेखकों से कोई काम नहीं रहता था, तब अनजाने ही मैंने प्रसादजी के "अजातशत्रु" नाटक को पढ़कर रख दिया था। आज मुझे इस बात का स्मरण नहीं कि वह नाटक उस समय कैसा भाया था ; बाद में उसकी कोई भी स्मृति बाक़ी नहीं रही थी, केवल यही याद रहा था कि "अजातशत्रु"-नामक कोई नाटक पढ़ा अवश्य था। उन्हीं दिनों "विशाख" भी छपा था, उसकी प्रति भी हाथ लगी थी ; परन्तु वह शुष्क प्रतीत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुआ और जब उससे मनोरंजन नहीं हुआ तो उसे अधूरा ही छोड़ दिया। प्रसादजी की महत्ता, उनकी कृतियों की उच्चता एवं उनको जानने की उत्सुकता तब हृदय में स्थान नहीं पा सकी, उनका ख़याल भी नहीं आया।

किन्तु जब बरसों बाद सन् १९२७ में खड़ी बोली के कट्टर विरोधी एवं उसके साहित्य को तुच्छ समझने-वाले भी "सुधा" के प्रथम अंक में समालोचक द्वारा उद्धृत "प्रसाद" के "आँसू" के कुछ छन्दों को पढ़कर उस कवि की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सके, तब तो सहसा प्रसादजी के प्रति श्रद्धा का संचार हुआ और उनके "आँसू" को अनेक बार पढ़ा। नवयुवकों के जीवन में एक वह समय आता है, जब वे प्रेम के प्यासे होते हैं, दूसरों का प्यार पाने को ललचाते हैं, उसके लिए भरसक प्रयत्न करते हैं; जब उनकी नन्हीं-नन्हीं छातियों में भावुकता का सागर हिलोरें मारता है, उनका छोटा-सा दिल छोटी-छोटी सी बातों से ही आहत हो जाता है; जब अपने दिल की बात दूसरों से कहने को, अपने छोटे से तुच्छ भेदों को दूसरों को बताने को वे तड़पने लगते हैं; जब अपने प्यारों से वियोग की आशंका-मात्र से ही जो तड़प उठता है, एकबारगी गला रुँध जाता है, आँखों में आँसू छलछला आते हैं और जी अनमना हो जाता है, तब जिस जल्दी के साथ मित्रता होती है, कुछ ही क्षणों में अभिन्नहृदयता स्थापित हो जाती है, एक-दूसरे में प्रगाढ़ विश्वास पैदा हो जाता है, और उतने ही वेग से शत्रुता भी ठन जाती है, बिना किसी ख़ास कारण के एक दूसरे में खिंच जाती है, जीवन भर के लिए मनोमालिन्य हो जाता है, जब ज़रा-ज़रा सी बात पर रूठने में हिचक नहीं होती और जब मानने में भी देरी नहीं लगती, उस भावुकतापूर्ण काल में "आँसू" के छन्दों ने मेरे दिल पर गहरा रंग जमाया और जो छाप उस समय दिल पर बैठी, वह आज भी मिटी नहीं। अब भी जब कभी जीवन में सूनेपन का-सा अनुभव होता है, जी अनमना हो जाता है, पहलू में कुछ तड़प-सी मालूम होती है, प्रेम में जब विरक्ति का संचार होता है और दूसरों की बेरुख़ी, उनकी वह स्वार्थ-भावना जब दिल पर चोट पहुँचाती है, तब अनजाने आँखों में आँसू भर आते हैं; होंठ आप ही आप कहने लगते हैं—

"अवकाश भला है किसको
सुनने को करुण-कथाएँ;
बेसुध जो अपने सुख से
जिनकी हैं सुप्त व्यथाएँ।"

और जब दिल आँसू का एक घूँट पीकर सन्तोष कर लेता है, तब "आँसू" की कुछ पंक्तियाँ ही दिल को तसल्ली देती हैं।

यही कारण था कि अपने मित्रों को भी अपनी प्यारी वस्तु भेंट करने को जी चाहने लगा था, एवं तब "आँसू" की कई प्रतियाँ मँगवाकर उन्हें अपने मित्रों में बाँटा, उनके सम्मुख उस कवि की भावुकता की व्याख्या की, अपने दिल पर होनेवाले प्रभाव एवं शान्ति को भी पूरी तरह बताया। उस सब प्रचार का क्या प्रभाव हुआ, किसने प्रसादजी की क़द्र की, किन-किन दिलों को प्रसादजी के "आँसू" द्रवित कर सके या शान्ति-सुधा पिला सके, यह जानने की इच्छा नहीं हुई। तब भी था और आज भी मेरा यही मत है कि प्रसादजी के "आँसू" का भारतीय साहित्य में बहुत ही उच्च स्थान है। हिन्दी-साहित्य की वह अमूल्य निधि और उस कवि की एक अमर कृति है। ऐसी सुन्दर कृति का वह साधारण गेट-अप देखकर खेद होता है। उसका दूसरा संस्करण अधिक अच्छा छपा है; परन्तु उसे भी सुन्दर नहीं कहा जा सकता। मुझे तो उससे भी असन्तोष है। उमर ख़ैयाम के सुन्दर सजे हुए सचित्र संस्करण देखकर "आँसू" को भी वैसे ही सचित्र स्वरूप में देखने को जी ललचाता है। प्रसादजी के उस अमर काव्य के एक-एक पद पर सुन्दर भावपूर्ण चित्र बन सकते हैं।

× × ×

किन्तु इतना सब होने पर भी प्रसादजी की अन्य कृतियों के प्रति विशेष आकर्षण नहीं हुआ; उनकी कहानियाँ और उनके नाटक पढ़े जाने पर भी मेरे लिए अज्ञात वस्तु ही रहे। सन् १९२८ के जनवरी मास में "सरस्वती" का प्रथम और साथ ही साथ शायद अंतिम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वार्षिकांक निकला। उसमें प्रसादजी की "आकाशदीप" कहानी को सर्वप्रथम स्थान दिया गया था। प्रेमचन्दजी उस समय मेरी श्रद्धा एवं आदर के पात्र बन चुके थे; अतएव उनसे भी पहले प्रसादजी की कृति को स्थान पाते देखकर आश्चर्य हुआ। "आकाशदीप" को एक-दो बार पढ़ा; परन्तु उस समय न तो उस प्रकार की कहानी की सुन्दरता एवं उसके कथानक के तारतम्य को समझने की बुद्धि ही थी और न उसके लिए प्रयत्न करने का धैर्य ही। "सरस्वती" द्वारा प्रसादजी की कहानी को सर्वप्रथम स्थान दिये जाते देखकर प्रसादजी के प्रति श्रद्धा अवश्य बढ़ी; परन्तु तब भी उनकी महत्ता को नहीं समझ सका। प्रसादजी तब भी जन-समाज के कहानी-लेखक नहीं बन पाये थे। प्रसादजी की प्रारम्भिक कहानियाँ इसी कारण भावपूर्ण एवं सुन्दर होते हुए भी साधारण पाठकों के मनोरंजन की वस्तु नहीं बन सकीं। बरसों बाद जब प्रसादजी ने उपन्यास-रचना के लिए हाथ बढ़ाया, तब उनकी कहानी-लेखन-कला में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। प्रसादजी की भावुकता, विशिष्ट भाषा-शैली एवं काव्य के प्राधान्य ने तब भी अपना प्रभाव नहीं छोड़ा, किन्तु तब घटना-वैचित्र्य, कथानक में एक अबाध प्रवाह एवं भाषा की सरलता आये बिना नहीं रह सकी। "आकाशदीप" और "आँधी" की कहानियों में पाई जानेवाली विशिष्ट विभिन्नताओं का यही मुख्य कारण है।

यद्यपि इधर पिछले चार सालों से मैं यदा-कदा हिन्दी में लेख लिखने लगा था और हिन्दी की ओर मेरा झुकाव भी बढ़ने लगा था, परन्तु सन् १९३० के अन्तिम महीनों में ही मैंने प्रथम बार प्रसादजी की कृतियों का पूरा-पूरा परिचय प्राप्त किया। आधुनिक हिन्दी-साहित्य से परिचय प्राप्त करने एवं हिन्दी-गल्प-साहित्य का पूरा-पूरा अध्ययन करने का मैंने निश्चय किया था। तभी मैंने तब तक प्रकाशित प्रसादजी की सब कृतियों को मँगवाया और उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ा। तब जाकर प्रसादजी के महत्त्व का कुछ-कुछ ज्ञान हुआ। प्रसादजी की कहानियों का पूरा-पूरा अध्ययन किया और उसी जोश में मैंने प्रसादजी की कहानियों के सद्यः प्रकाशित गल्प-संग्रह "आकाशदीप" की एक विस्तृत आलोचना भी लिख डाली। उन्हीं दिनों पं० बनारसी-दासजी चतुर्वेदी ने "आकाशदीप" की आलोचना करते समय "विशाल भारत" में कई ऐसी बातें लिख डाली थीं, जो मुझे तो पूर्णतया ऊटपटाँग ही जान पड़ीं और यह भी ख़याल हुआ कि चतुर्वेदीजी ने प्रसादजी के प्रति अन्याय किया था। तब प्रसादजी की कला एवं उनकी कहानियों के ठीक-ठीक महत्त्व को बताने एवं कूतने का मैंने प्रयत्न किया था। वह आलोचना "सुधा" में प्रकाशित हुई थी। उस प्रारम्भिक जोश में लगे हाथ उस समालोचना की एक प्रति प्रसादजी के पास भेज देने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं हुई। परन्तु, जैसा कि प्रसादजी का नियम था, वे अपने गम्भीर मौन को बनाये रहे और यदाकदा श्रीयुत विनोदशंकरजी व्यास के द्वारा ही प्रसादजी की कुछ ख़बर पाकर मुझे सन्तोष कर लेना पड़ा।

प्रसादजी अपने इस अज्ञात, अपरिचित समर्थक की ओर भी मौन रहे, यह बात दिल को अखरी; परन्तु बाद में प्रसादजी का मेरे प्रति रुख़ बदल गया, और कुछ ही वर्षों बाद, शायद सन् १९३४ ई० से ही, उन्होंने यह नियम बना लिया था कि ज्यों ही उनकी कोई नई पुस्तक छपकर तैयार होती, उसकी एक प्रति पर हस्ताक्षर कर मेरे पास भिजवा देते थे। उन्होंने इसमें कभी भूल नहीं की, अपने प्रकाशकों तक को उन्होंने इस बात की हिदायत कर दी थी एवं कई बार दो-दो प्रतियाँ आ जाती थीं। प्रसादजी की वे सप्रेम भेंटें मेरी एक अमूल्य निधि हैं। बीमार पड़े थे, स्वास्थ्य दिन पर दिन बिगड़ता जा रहा था—और वही बीमारी उनकी अन्तिम बीमारी हुई—तथापि प्रसादजी ने यथानियम अपने अन्तिम एवं सर्वश्रेष्ठ काव्य 'कामायनी' की एक प्रति पर अपने हस्ताक्षर कर भेज दी थी। प्रसादजी की इस कृपा को, उनके इस स्नेह को, मैंने आशीर्वाद के रूप में ही स्वीकार किया था।

प्रसादजी अपनी कृतियाँ मेरे पास बराबर भिजवाते रहे; परन्तु वे पत्र कम लिखते थे। इधर पिछले एक-दो वर्षों में ही उनके कुछ पत्र आये थे। वे व्यर्थ के पत्र-व्यवहार से पूर्णतया बचते रहते थे। जो पत्र उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आते थे, वे बहुत ही संक्षिप्त और नपे-तुले शब्दों के होते थे। प्रसादजी ने इन ऊपरी बातों को कभी महत्त्व नहीं दिया और यही कारण था कि जो व्यक्ति उनसे कभी मिला न हो, उसके हृदय में प्रसादजी के प्रति ग़लत भावना हो जाना एक अनहोनी बात न थी।

प्रसादजी के समान लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति से मिलने को कौन उत्सुक न होगा? परन्तु प्रसादजी हमेशा बाहरी आडम्बर एवं ऊपरी दिखावट से दूर ही रहे, जिससे एक अनजान व्यक्ति के लिए उनके व्यक्तित्व में विशेष आकर्षण नहीं हो सकता था। यही कारण था कि प्रसादजी से मिलने के लिए मुझे विशेष उत्सुकता नहीं थी। बनारस जाकर भी प्रसादजी से मिलने की न सोचना एक भयंकर अपराध से कम नहीं था। परन्तु यही ख़याल जी में घर कर गया था कि प्रसादजी बहुत ही रूखे-सूखे, एकान्त-सेवी साहित्यिक व्यक्ति हैं। "आँसू" के लेखक को एक हृदय-विहीन व्यक्ति मानना कुछ असम्भव-सा प्रतीत होता था; परन्तु प्रसादजी की वह संस्कृत-प्रधान भाषा और उनके वे बौद्ध-कालीन नाटक मुझे संस्कृत के कट्टर पंडितों और मुँडे हुए सिरवाले भिक्षुकों की याद दिलाते थे। उन पंडितों की वह नीरसता, अपनी विद्वत्ता पर उनका अगाध अभिमान, दूसरों को निरन्तर उपदेश देने की वह प्रवृत्ति एवं संस्कृत न जाननेवालों के प्रति उनका तीव्र तिरस्कार एकबारगी याद आ जाता था। प्रसादजी के व्यक्तित्व के साथ उनका सम्बन्ध-सा जान पड़ता था और आप ही आप प्रसादजी के पास जाने में कुछ हिचक पैदा होने लगती थी।

पुनः प्रसादजी के जो चित्र देखने को मिले थे—श्रीयुत व्यासजी की कृपा से प्रसादजी का एक चित्र उनके हस्ताक्षर समेत मुझे भी प्राप्त हो गया था—उनसे प्रसादजी की गम्भीरता ही प्रदर्शित होती थी। प्रसादजी तक पहुँचकर कोई भी मनोरंजन होने की सम्भावना नहीं देख पड़ती थी। प्रसादजी से मिलने के बाद मेरा यह निश्चित मत हो गया कि प्रसादजी का जो चित्र, उनका जो व्यक्तित्व हमें उनकी कृतियों या उनकी तस्वीरों में देखने को मिलता है, वह उनके सच्चे व्यक्तित्व से बहुत ही भिन्न था। ऐसा प्रतीत होता है कि अपना चित्र उतरवाते समय प्रसादजी हमेशा Camera conscious हो जाते थे—चित्र उतरवाने के ख़याल से ही वे गम्भीर बन जाते थे। प्रसादजी का वह हँसमुख चेहरा, उनकी वह आनन्दभरी बातचीत एवं वह प्रफुल्ल व्यक्तित्व उनसे मिलनेवालों एवं उनके परिचितों तक ही सीमित रहा। जिन्हें कभी उनसे मिलने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ था, उनके लिए प्रसादजी के स्वभाव का ठीक-ठीक अन्दाज़ लगाना कठिन ही नहीं, असम्भव था।

"भारत-कला-भवन" को देख चुकने के बाद जब लौट रहे थे, तब रायसाहब ने पूछा—"क्या प्रसादजी से मिले हो?"

मैंने जवाब दिया—"नहीं" और साथ ही पूछा भी कि "क्या वे यहीं हैं?"

"प्रसादजी बनारस छोड़कर कहीं नहीं जाते। क्यों न अभी चले चलें?"

सो उस भरी दोपहरी में "भारत-कला-भवन" से हम सब निकले, कुछ दूर तक मोटर में गये और गली के कोने पर मोटर को छोड़कर प्रसादजी के मकान की ओर पैदल ही बढ़े। प्रसादजी का दरवाज़ा खटखटाया। जब रायसाहब ने प्रसादजी से मेरा परिचय कराया, तब तो उन्होंने अपने नये मकान को खुलवाने के लिए नौकर दौड़ाया और हमारा आतिथ्य करने के लिए भी वे प्रयत्नशील हुए। तीसरा पहर हो रहा था, ताज़े अनार का शरबत बनवाया और भारत-प्रसिद्ध बनारसी पान की गिलौरियाँ भी आईं।

वहीं उस नये मकान में बैठकर कोई दो घंटे तक प्रसादजी से बातचीत होती रही। प्रसादजी से मेरी वही प्रथम और अन्तिम भेंट थी। उस समय तो कभी यह ख़याल भी नहीं हो सकता था कि वह भेंट ही मेरी अंतिम भेंट होगी। प्रसादजी को मेरे "आकाश-दीप"-वाले लेख का स्मरण हो आया और उसका उन्होंने उल्लेख भी किया। उसी सिलसिले में मैंने इस बात का प्रयत्न किया कि प्रसादजी से उनके स्वयं के बारे में कुछ बातचीत हो, परन्तु प्रसादजी उसे टाल गये, और विशेषतया मेरे ही बारे में पूछते रहे। रायसाहब ने तब बताया कि किस प्रकार प्रसादजी को मेरे "ताज",

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"एक स्वप्न की शेष स्मृतियाँ" आदि लेख पसन्द आये थे और प्रसादजी ने ही रायसाहब का ध्यान उन लेखों की ओर आकर्षित किया था।

इधर-उधर की बातचीत होती रही और तब रायसाहब ने इस बात का विशेष आग्रह किया कि प्रसादजी अपने महाकाव्य "कामायनी" के अंश मुझे सुनावें। "कामायनी" के कई अंश यत्र-तत्र प्रकाशित हो चुके थे, उनकी बहुत कुछ प्रशंसा भी हुई थी। जहाँ तक मुझे याद है, उस समय तक "कामायनी" के नौ सर्ग लिखे जा चुके थे। रायसाहब प्रसादजी से आग्रह कर रहे थे कि वे इस महाकाव्य को समाप्त कर दें और प्रसादजी का विचार था कि जितना भी अंश तैयार हो गया था, उसे पहले भाग के रूप में छपवा दें। मेरी निजी राय यह थी कि सारा महाकाव्य एक साथ ही छपे, और यही बात मैंने प्रसादजी से भी कही, तो वे अपनी अस्वस्थता एवं अन्य घरेलू झंझटों का ज़िक्र करने लगे। इस प्रकार "कामायनी" के बारे में बातचीत होती रही। उस समय भी मेरा निश्चित मत यही था और अब तो वह दृढ़तर होता जा रहा है कि प्रसादजी का यह महाकाव्य इस युग की एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कृति है। हिंदी के लिए यह एक सौभाग्य की बात थी कि प्रसादजी अपनी इस महान् कृति को सम्पूर्ण कर गये। इन पिछले बरसों में कई व्यक्तियों ने खड़ीबोली में अनेकानेक महाकाव्यों की रचना की है, परन्तु उनमें से कितने महाकाव्य स्थायी साहित्य में स्थान पा सकेंगे, यह समय ही बता सकेगा। परन्तु इस बारे में कभी दो मत नहीं हो सकते कि "कामायनी" को अमर साहित्य में स्थान मिलेगा। वह हिन्दी-साहित्य की ही नहीं, विश्व-साहित्य की एक अमूल्य निधि है।

"कामायनी" के बारे में बातें होती रहीं और प्रसादजी उसकी हस्तलिखित प्रति हाथ में दबाये बैठे रहे। रायसाहब के आग्रह को वे टाल गये, परन्तु जब मैंने विशेष आग्रह किया, तब उन्होंने सकुचाते हुए उस हस्तलिखित प्रति को खोला और कुछ शब्दों में उसके कथानक को समझाने के बाद वे उस महाकाव्य के प्रारम्भिक अंश पढ़ने लगे। प्रसादजी पढ़ते जाते थे और हम सब शांत सुन रहे थे। मैं बैठा-बैठा प्रसादजी को ताक रहा था; उनको निकट से देखने का, उनके व्यक्तित्व को ठीक तरह जानने और उसका पूर्ण परिचय पाने का अवसर मिला था। कवि के ही मुख से उसी द्वारा रचे गये महाकाव्य को सुनने का अवसर कितनों को प्राप्त होगा? "कामायनी" को सुनते-सुनते मुझे अँगरेज़ी भाषा के महाकवि मिल्टन एवं उसके अमर काव्य "पैराडाइज़ लास्ट" का ख़याल आया। प्रलय-प्रवाह में से निकलती हुई पृथ्वी एवं पुनः उसके बसने की कथा भारतीय साहित्य का वह अमर तपस्वी गा रहा था और मैं बैठा सोच रहा था कि मनु का वर्णन करते समय प्रसादजी स्वयं का कितना अच्छा वर्णन लिख गये हैं—

"तरुण तपस्वी-सा वह बैठा,
साधन करता सुर-श्मशान;
नीचे प्रलय-सिन्धु-लहरों का,
होता था सकरुण अवसान।"

पवित्र भगवती गंगा के किनारे वाराणसी में बैठा वह युवा तपस्वी, देवी सरस्वती का वह वरद पुत्र, धूनी रमाये अपने अमर गान गा रहा था। उस किनारे पर साहित्यिकों तथा तपस्वियों के उस श्मशान में बैठा वह अमर गायक देखता था कि वासनाओं का तुमुल अन्धड़ उठ-उठकर फैल रहा था; भौतिकता का वह प्रलयंकर प्रवाह भीषण वेग के साथ उमड़ रहा था और भावुकता की वे सुकुमार सुन्दर तरंगें जड़ जगत् के कठोर तट पर टकरा-टकराकर छिन्न-भिन्न हो रही थीं और वह तपस्वी—

[वह] "पुरुष भीगे नयनों से
देख रहा था प्रलय-प्रवाह।"

× × ×

समय अधिक हो गया था, साढ़े चार बजनेवाले थे; उधर मोटरवाला स्टेशन पर लौटने के लिए जल्दी मचा रहा था। प्रसादजी से बिदा ली और लौटते समय इस बात का मन ही मन अनुभव किया कि यदि प्रसादजी से मिलना न होता तो एक बहुत ही बड़ा सुअवसर खो देता। आज उन घड़ियों को स्मरण कर रायसाहब को धन्यवाद

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिये बिना नहीं रहा जाता। उस दिन रायसाहब ने प्रेमचन्दजी के लिए भी पूछताछ की थी; परन्तु ज्ञात हुआ कि वे अपने गाँव चले गये थे। उस दिन प्रेमचन्दजी से न मिल सका और बाद में दूसरा अवसर नहीं आया। अगर उस दिन प्रसादजी से न मिलता तो फिर उनसे भी मिलने का अवसर नहीं मिलता। प्रेमचन्दजी से न मिलने का खेद रह गया है और तब प्रसादजी के भी दर्शन न कर सकने का अफ़सोस रह जाता। प्रसादजी से जिनका निजी परिचय था, वे ही जानते हैं कि प्रसादजी से एक बार मिलते ही किस प्रकार अनजाने ही उनके प्रति प्रेम, आदर और श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी।

"कामायनी" छपकर प्रकाशित हो गई और उसकी प्रति पाकर उस महान् रचना के लिए महाकवि को बधाई भी दी, परन्तु तब कौन जानता था कि वह ग्रन्थ ही प्रसादजी की सर्वश्रेष्ठ हो नहीं, अन्तिम कृति भी होगा। उस समय प्रसादजी बीमार होकर बिस्तर पर पड़ चुके थे। प्रसादजी की अस्वस्थता की ख़बरें अख़बारों में छपने लगीं और उनके मित्रों, प्रेमियों और प्रशंसकों ने प्रसादजी से बार-बार आग्रह किया कि वे अपना समुचित इलाज करवावें और बनारस छोड़कर हवा बदलने को किसी दूसरे स्थान को चले जावें। परन्तु, नहीं। प्रसादजी को बनारस छोड़ना मंज़ूर न था। उन्होंने किसी की न सुनी और न मौत ने ही किसी की प्रार्थना पर ध्यान दिया। बीच में आशा होने लगी थी कि वे अच्छे हो जायँगे, परन्तु "आँसू" का वह गायक अनुभव कर रहा था कि—

"चेतना लहर न उठेगी
जीवन-समुद्र थिर होगा।
संध्या हो सर्ग प्रलय की
विच्छेद मिलन फिर होगा।"

प्रसादजी के मित्रों ने, प्रेमी साथियों ने, उनको धीरे-धीरे मरते देखा। उनका बरसों का साथ छूट रहा था, वे बेबस बैठे देख रहे थे। उन्हें शायद यह ज्ञात हो गया था कि अब प्रसादजी कुछ ही दिनों के मेहमान हैं। परन्तु जो बनारस से सैकड़ों कोस दूर थे, जिन्हें पूरी-पूरी हालत का पता न था, उन्हें फिर भी आशा थी। परन्तु जब अचानक एक दिन वह दुःसंवाद अख़बार में पढ़ने को मिला तो जी धक से रह गया; जीवन में सूनेपन का अनुभव हुआ और पुनः उन घड़ियों की याद आई, जब "आँसू" ने जी को यदा-कदा तसल्ली दी थी। महीनों के उन चिन्तापूर्ण दिनों की—

"जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई
दुर्दिन में आँसू बनकर
वह आज बरसने आई।"

दो आँसू ढलक पड़े और एकान्त में जाकर मैं उस दुर्घटना की बात सोचने लगा।

× × ×

"नहीं! नहीं! मैं नहीं मानता।"

एक साल भर के बाद अभी इँगलैण्ड से लौटे हुए मेरे छोटे भाई ने कहा—"मैं नहीं मान सकता कि प्रसादजी मर गये।"

"मानो या न मानो, यह एक कठोर सत्य है कि अब प्रसादजी नहीं रहे।"

"सचमुच! तुमने तो मुझे इस बात की सूचना नहीं दी। किसी भी पत्र में इसका कोई उल्लेख नहीं किया।"

"तुम्हीं बताओ कि किस दिल से इस बात का ढिंढोरा पीटता।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

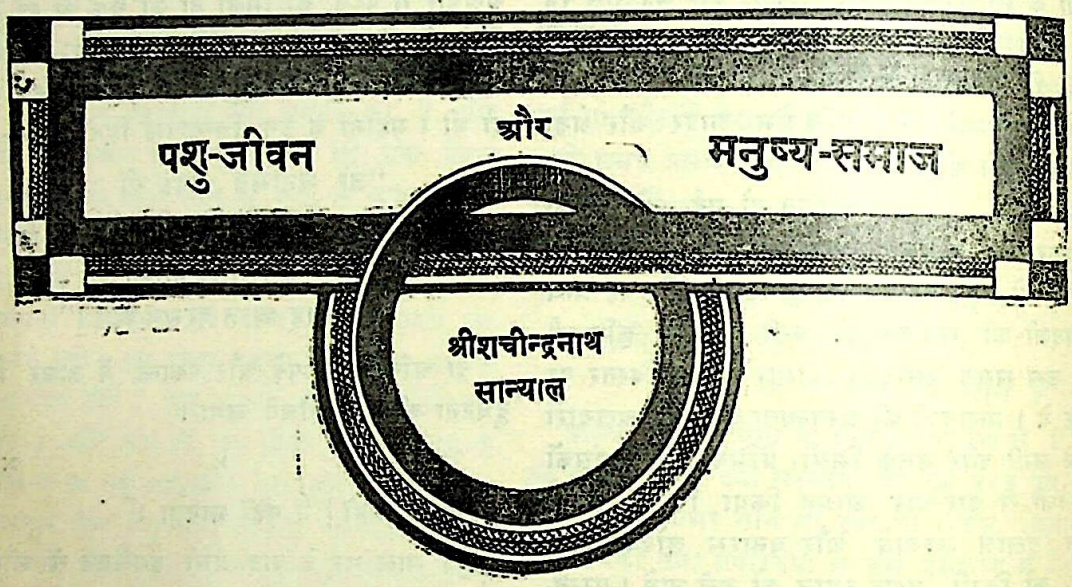

(४)

पशुओं में सतीत्व का रिवाज

पाश्चात्य आदर्श की टक्कर से भारतीय समाज में विशेष चांचल्य की सृष्टि हुई है। राजनीति की दृष्टि से भारतीय समाज पाश्चात्य समाज से बहुत पिछड़ा हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। लेकिन सामाजिक दृष्टि से भारतीय समाज पाश्चात्य समाज से कई बातों में आगे बढ़ा है, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। पर इस बात को प्रमाणित करने के लिए जिस वैज्ञानिक प्रणाली का अनुसरण करना आवश्यक है, वह इस लेख में सम्भव नहीं। तथापि पशु-जीवन से जितनी सहायता हमें मिल सकती है, उतनी चेष्टा इस लेख में अवश्य की जायगी।

पशु-जीवन की आलोचना करने पर हमें निःसंशय रूप से यह पता चलता है कि पशु-समाज में ऐसे दृष्टांत बहुत मिलते हैं कि एक पति के बहुत पत्नियाँ हों एवं ऐसे दृष्टांत कम नहीं मिलते, जिनमें एक पत्नी के बहुत पति हों। पशुओं में इस प्रकार के जोड़े बनते हैं, जिनमें दाम्पत्य जीवन अन्त समय तक बना रहता है, और ऐसे भी बहुत-से दृष्टान्त मिलते हैं, जिनमें पुरुषों और स्त्रियों का मिलन बहुत ही अल्प समय के लिए होता है। लेकिन यह प्रायः देखा गया है कि सामाजिक जीवों में पति-पत्नी का मिलन मरते दिन तक बना रहता है। इससे यह अनुमान लगाना अस्वाभाविक नहीं कि जैसे प्राणी असामाजिक जीव से क्रमशः सामाजिक जीव में परिणत होता है, एवं जैसे-जैसे सामाजिक प्रवृत्तियाँ दिन-प्रतिदिन अधिक से अधिक बढ़ती हैं, एवं पुष्ट होती जाती हैं, तैसे-तैसे जीवों में यौन सम्बन्ध को स्थायी बनाने की प्रवृत्ति भी बढ़ती जाती है।

पाश्चात्य शिक्षा पर अभिमान करनेवाले व्यक्तियों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का यह भी कहना है कि एक व्यक्ति जो बहुविवाह करता है, उसका कारण यह है कि वह स्त्री को अपनी जायदाद की तरह विषय-भोग की सामग्री के समान समझता है, अर्थात् उनका यह कहना है कि संपत्ति-ज्ञान के उद्भव के साथ-साथ मनुष्य स्त्री का भी सामग्री के रूप में व्यवहार करने लग गया है। लेकिन पशु-जीवन में हम यह देखते हैं कि जिन पशुओं में सामग्री-संग्रह करने की प्रवृत्ति नहीं उत्पन्न हुई है, उनमें भी एक पुरुष बहुत स्त्रियों को लेकर जीवन बिताता है। उदाहरणार्थ घोड़े का दृष्टांत ले लीजिए। एशिया के घोड़े झुण्ड बाँधकर रहा करते हैं। एक-एक झुण्ड में एक-एक घोड़े के साथ बहुत-सी घोड़ियाँ रहती हैं। ज़ेब्रों (Zebras) का भी यही हाल है। यदि घोड़ा अथवा नर ज़ेब्रा मर जाता है, तो उसकी स्त्रियाँ दूसरे झुण्ड में चली जाती हैं। कभी-कभी दो-तीन झुण्ड एक साथ मिलकर भी घूमा-फिरा करते हैं; लेकिन यह मिलन क्षणभंगुर होता है; थोड़े कारणों से ही ये विभिन्न झुण्ड अलग-अलग हो जाते हैं। लेकिन इस अल्प-काल-स्थायी मिलन के अवसर पर प्रत्येक नर अपनी स्त्रियों के प्रति तीव्र ईर्षापूर्ण दृष्टि रखता है। ज़ेब्रों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि ज़ेब्रों में संतान-उत्पादन का कोई नियत समय नहीं है। साल के किसी समय में भी इनके सन्तान उत्पन्न हो सकती है।

घोड़ों की यह प्रवृत्ति केवल वन्य अवस्था में ही नहीं पाई जाती, बल्कि दक्षिण अमेरिका में भी, जहाँ बहुसंख्या में घोड़े पाले जाते हैं, एक घोड़े के पीछे १२ से १८ घोड़ियाँ रहती हैं। कर्म-संयोग से जब कभी इन घोड़े तथा घोड़ियों के झुण्ड एक साथ हाँके जाते हैं, उस समय भी अवसर पाने पर ही प्रत्येक घोड़ा अपनी-अपनी घोड़ियों का दल लेकर अलग हो जाता है। बहुत दिनों से पले हुए घोड़ों में भी बहुत-सी घोड़ियों को अपने साथ रखने की तीव्र प्रवृत्ति विशेष रूप से पाई जाती है। इन अवसरों पर घोड़ियाँ कभी घोड़े के विरुद्ध आचरण नहीं करतीं। जंगली अवस्था में एक घोड़े के पीछे साधारणतः ५ से १५ घोड़ियाँ रहती हैं। इस प्रकार नर और मादा के मिलन के सम्बन्ध में विशेष-विशेष मानसिक प्रवृत्तियाँ काम करती हैं; स्वार्थ के वश अथवा सम्पत्ति बनाने की ग़रज़ से एक पुरुष बहुत स्त्रियों से नहीं मिलता। स्वाभाविक प्रेरणा के वश में आकर ऐसा मिलन हुआ करता है। अवश्य मनुष्य-समाज में प्रवृत्ति के नियन्त्रण के परिणाम में बहुत-सी स्वाभाविक प्रवृत्तियों को अपने आदर्श के अनुकूल बनाया जा सकता है। इस आदर्श की विभिन्नता के कारण मनुष्य के विभिन्न समाजों में विभिन्न रीतियाँ दिखाई देती हैं।

ऊपर जैसे घोड़ों का दृष्टान्त दिया गया है, वैसे ही जंगली गधों और कँगारुओं में भी वैसा ही सामाजिक नियम दिखाई पड़ता है, लेकिन गधों में एक ख़ूबी यह पाई जाती है कि गधा उमर में जितना बढ़ता जाता है, उतना ही अधिक गधियों को वह अपने साथ रखने लगता है। गधियों की संख्या इस प्रकार से ३ से लेकर ५० तक पहुँच जाती है। [देखिए—"Social life in the animal world—by Alverdes, Ph. 45, 46]

कुछ श्रेणियों के बन्दरों में भी पूर्वोक्त सामाजिक रीति पाई जाती है। बन्दरों के झुण्ड में एक नर के पीछे १० से लेकर ५० तक बँदरिया रहती हैं। इन दलों का नेता अपने दल के पास दूसरे दल के नेताओं को आने नहीं देता और अपने दल में यदि कोई बँदरिया किसी प्रकार से भी विद्रोह करती है तो उसे ख़ूब नोच-खोंचकर ठीक किया जाता है। किसी पेड़ पर चढ़ते समय अथवा एक स्थान से दूसरे स्थान को जाते समय जिस रास्ते से अथवा जिस ओर से बन्दर जाता है, दल की प्रत्येक बँदरिया उसी रास्ते से या उसी तरफ़ से सर्वदा चलती है। इस प्रकार बन्दरों के दल किसी एक स्थान पर ठीक एक ही प्रकार से घूमते हैं। यदि दल का नेता मारा जाता है, तो वह दल तितर-बितर हो जाता है। भोजन की खोज करते समय दल का नेता पहरेदार का काम करता है, और आवश्यकता पड़ने पर अपने दल को सूचित कर देता है कि शंका का कारण उपस्थित हो गया है। यह सूचना पाकर दल भाग खड़ा होता है।

प्रायः यह भी देखा गया है कि बन्दरों का प्रत्येक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दल एक निर्दिष्ट स्थान पर जमा रहता है। उस स्थान पर दूसरा दल आने पर घोर संघर्ष होता है। दो दलों में संघर्ष उत्पन्न होने पर दोनों दलों के नेता ही प्रायः लड़ते हैं। लेकिन उनमें से यदि एक सांघातिक रूप से घायल हो जाता है तो दोनों दल के सभी बन्दर उस संघर्ष में जुट जाते हैं। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि एक दल को, दूसरा दल आकर, उसके स्थान से बलपूर्वक हटा देता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पशुओं में भी सम्पत्ति का ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है।

जिस प्रकार पशु-जीवन में एक पुरुष बहुत स्त्रियों को अपने पास रखता है, उसी प्रकार उनमें ऐसे भी बहुत-से दृष्टान्त मिलते हैं, जहाँ एक पुरुष एक ही स्त्री के साथ मरण-पर्यन्त रहता है; किसी भी अवस्था में एक दूसरे को प्राण रहते तक छोड़ता नहीं। इन जीवों में गोरिल्ला एवं शिम्पांज़ी-नामक अतिकाय वन्य बन्दर अथवा वनमानुष की गिनती है। आफ्रिका में गोरिल्ला के दल पाये जाते हैं; पश्चिम आफ्रिका में एक-एक दल में दस से बीस तक और पूर्वी आफ्रिका में बीस से तीस तक गोरिल्ला रहते हैं। दिन में ये गोरिल्ले बहुत दूर-दूर तक फैल जाते हैं; लेकिन शाम तक सब निश्चय ही एकत्र हो जाते हैं। रात के लिए गोरिल्ला अपना स्थान शयनोपयोगी बना लेता है। सयाना गोरिल्ला एक दूसरे के बीच सोते समय कुछ स्थान छोड़ देता है। स्त्री गोरिल्ला अपने बच्चों को साथ लेकर भूमि से कुछ ऊपर किसी पेड़ में रात्रि में सोने के लिए अपना स्थान बना लेती है, लेकिन दक्षिणी आफ्रिका में काफ़ी ऊँचे स्थान में रात्रि के लिए निवासस्थान बनाती हैं। नर यों ही ज़मीन पर पड़े रहते हैं। लेकिन वर्षा से बचने के लिए ये वनमानुष कोई प्रयत्न नहीं करते। प्रति रात्रि नये सिरे से ये आवास-स्थान बनाते हैं। एक रात्रि उसे व्यवहार में लाकर दूसरे दिन प्रातःकाल उसे छोड़ देते हैं। शिम्पांज़ी और गोरिल्ला दल बाँधकर रहते हैं। किसी दल में ५ परिवारों से अधिक नहीं रहते। प्रत्येक परिवार में पुरुष, स्त्री और उसके बच्चे रहते हैं। रात्रि के आवास-स्थानों को देखकर यह पता चला है कि उनकी रात में रहने की व्यवस्था नियम के अनुसार होती है। एक परिवार के सभी व्यक्ति बहुत ही पास-पास सोते हैं और विभिन्न परिवारों के रहने के बीच यथेष्ट स्थान छोड़ दिया जाता है। प्रत्येक परिवार के विश्रामस्थल में दो बड़ी-बड़ी शय्याओं की तरह दिखाई देती हैं। इससे यह अनुमान लगाया जाता है कि पिता और माता के लिए ये दो विशिष्ट स्थान होते हैं। बाल्यावस्था में गोरिल्ला अपनी मा के पास रहता है, और उसकी मा कुछ ऊँचाई पर अपने बच्चों के लिए विशेष कोमल शय्या बनाती है। बड़े हो जाने पर बच्चे अलग रहने लगते हैं। वृद्धावस्था में गोरिल्ला अकेले रहने लगता है, और उस समय उसे पत्ता की आवश्यकता नहीं होती। इस प्रकार अकेले रहने के कारण, क्रमशः वृद्ध गोरिल्ला अपने झुण्ड से अलग हो जाता है।

शिम्पांज़ी भी झुण्ड में रहा करता है, लेकिन जहाँ गोरिल्ले रहते हैं, वहाँ शिम्पांज़ी नहीं रहते। देखनेवालों का कहना है कि गोरिल्लों और शिम्पांज़ियों में यौन सम्बन्ध नहीं पाया जाता। कुछ ऐसी जनश्रुति है कि गोरिल्ला औरतें पकड़कर ले जाता है, लेकिन अभिज्ञ व्यक्तियों का कहना है कि यह बात बिलकुल झूठ है। गोरिल्लों की तरह शिम्पांज़ी भी प्रति रात्रि शयनोपयोगी शय्या बनाता है, लेकिन शिम्पांज़ी उच्च वृक्षों की चोटी पर रात्रि-वास के लिए अपना स्थान बनाता है। यह स्थान भूमि से लगभग २० से ३० फ़ीट की ऊँचाई पर होता है। गोरिल्ला वर्षा से बचने के लिए कोई तैयारी नहीं करता, लेकिन शिम्पांज़ी वृक्ष-शाखा तोड़कर अपनी पीठ पर रखकर पानी से बचने की चेष्टा करता है। शिम्पांज़ी २० से ३० तक एक झुण्ड में रहते हैं।

शिम्पांज़ी या गोरिल्ला अपने झुण्ड की संख्या के अनुसार एक निर्दिष्ट सीमा के बीच विचरण करते हैं। ये अपनी निर्दिष्ट सीमा के अन्दर किसी दूसरे को आने नहीं देते।

दर्शकों का कहना है कि नर गोरिल्ला अपनी मादा और बच्चों से अपने भोजन की सामग्री का संग्रह कराता है, और यदि वे आज्ञा-पालन नहीं करते तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नर बच्चों और अपनी स्त्री के कान ऐंठ देता है। गोरिल्ला और शिम्पांज़ी फल एवं वृक्ष के कोमल पत्ते खाया करते हैं। एक स्थान में भोजन-सामग्री समाप्त होने पर ये दूसरे स्थान को चले जाते हैं। इस प्रकार कुछ समय बीत जाने पर फिर पहले स्थान पर आ पहुँचते हैं।

गोरिल्ला और शिम्पांज़ी को छोड़कर बन्दर की बहुत-सी दूसरी जातियों में भी एक पुरुष एक ही स्त्री के साथ रहता है। दक्षिण अमेरिका में बन्दर की एक जाति है, जिसमें स्त्री कभी-कभी एक साथ तीन बच्चों को पैदा करती है। समय-समय पर यह स्त्री अपने पति से बच्चों को लादने के लिए अनुरोध करती है। पति भी इस अनुरोध को टालता नहीं।

पालतू "गिनीपिगों" में भी एक पुरुष एक ही स्त्री के साथ जीवन बिताता है। जोड़ा बनने के पहले तो अवश्य एक स्त्री के लिए दो पुरुषों में संघर्ष हो सकता है; लेकिन एक बार जोड़ा बन जाने के बाद एक पुरुष दूसरे की स्त्री के साथ अथवा एक स्त्री दूसरे पुरुष के साथ फिर संभोग नहीं करती। "गिनीपिग" की तरह "पैटागोनियन" भी झुंड में रहता है। नर अपनी स्त्री के प्रति इतना आसक्त रहता है कि महीनों तक बलपूर्वक अलग रक्खे जाने पर भी यह आसक्ति नहीं मिटती। छोड़े जाने पर पुरुष अपनी स्त्री से फिर मिल जाता है। यदि इनकी स्त्री को भी दूसरे पुरुष के साथ अलग बन्द कर दिया जाता है, तो स्त्री भी अपने पति के प्रति आसक्त रहती है। पुरुष की तरह छोड़े जाने पर यह स्त्री भी फिर अपने पति से सम्मिलित होती है। इन जीवों से मनुष्यों को शिक्षा लेनी चाहिए।

जंगली ख़रगोशों में भी एक पुरुष एक ही स्त्री के साथ जीवन बिताता है, यद्यपि इनके पुरुष कभी-कभी दूसरी स्त्री के सा थसंभोग करते हैं। इनका दाम्पत्य-जीवन कई साल तक स्थायी रहता है।

जो चिड़ियाँ झुंड में रहा करती हैं, उनमें प्रायः एक स्त्री एक ही पुरुष के साथ जीवन बिताती है। इनका दाम्पत्य जीवन प्रायः मरण-पर्यन्त स्थायी होता है। यदि कभी ऐसा न भी हो, तो कुछ जातियों में बहुत सालों तक अवश्य ही यह दाम्पत्य जीवन स्थायी होता है।

तोते की प्रत्येक जाति में जीवन भर एक पुरुष एक ही स्त्री के साथ रहता है। मृत्यु के पहले तक इनमें विच्छेद नहीं होता। यदि कोई शिकारी तोते की जोड़ी में से किसी एक को मार डालता है, तो दूसरा तोता भी प्रायः, भागने की चेष्टा न करने के कारण, शिकारी के हाथ आ जाता है।

इसी प्रकार "हिरन" में भी स्त्री और पुरुष मरण-पर्यन्त एक साथ रहते हैं। इनमें इस नियम का व्यक्तिक्रम कभी नहीं पाया गया।

एक जाति के "पेनगुइनों" में, लाखों की संख्या में एकत्र रहने पर भी, स्त्री-पुरुष कभी अपने जोड़े से अलग नहीं होते।

"स्टारलिंग" में भी उपर्युक्त नियम पाया जाता है। मेरठ की तरफ़ इन्हें गुलसर कहते हैं। इनकी मादा जब अंडों पर बैठती है तो उसका पति दिन भर इसे खिलाया करता है। रात्रि में स्त्री अंडे पर बैठी रहती है, पुरुष मीलों दूर जाकर रात बिताता है, और फिर प्रातःकाल अपनी स्त्री के पास चला आता है। गौरैए भी प्रायः एक पत्नी रखते हैं, यद्यपि समय-समय पर स्त्रियों के अंडों पर बैठने अथवा बच्चा पालने के समय इनके नर दूसरी स्त्रियों के पास जाते हैं। इन अवसरों पर इनकी स्त्रियाँ इनसे लड़ा करती हैं, एवं दूसरे पुरुष भी इनको मारते हैं।

"बटन क्वेयलूस" में भी स्त्री-पुरुष एक दूसरे को छोड़कर दूसरों के पास नहीं जाते। इनमें एक प्रकार की और चिड़ियाँ हैं, जिन्हें अँगरेज़ी में "फेलारोप" कहते हैं। इनमें स्त्रियाँ पुरुषों से कहीं अधिक बलिष्ठ, बड़ी एवं देखने में सुन्दर होती हैं। इन जातियों में स्त्रियाँ ही पुरुष को पाने के लिए आपस में लड़ा करती हैं। इनकी स्त्रियाँ पुरुषों के सामने जाकर नाचा करती हैं। अंडे देने के बाद इनके पुरुष ही अंडों पर बैठते हैं और स्त्रियाँ पुरुषों को अन्न-संग्रह करके खिलाया करती हैं।

"पेनगुइन"-नामक चिड़ियाँ भूमि पर ही रहती हैं। इनके निवास-स्थान में बाक़ायदा रास्ते बने होते हैं। एक रास्ता दूसरे रास्ते को समकोण में ही काटता है। इस प्रकार चार रास्तों के मध्य में जो स्थान होता है, उस पर एक ही जोड़ा अपना अधिकार जमा लेता है। इन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्थानों के लिए आपस में ख़ूब लड़ाई होती है। लेकिन एक बार स्थान अधिकृत हो जाने के बाद फिर लड़ाई बन्द हो जाती है। इनके निवास-स्थान कभी तो भूमि के ऊपर ही होते हैं, और कभी-कभी ये भूमि के अन्दर नीचे की ओर अपना घोंसला बनाती हैं। भूमि के नीचे-नीचे एक घोंसले से दूसरे घोंसले को जाने का रास्ता होता है। इनके घोंसलों में भाँति-भाँति के सुन्दर और गोल पत्थर जमा रहते हैं। कभी-कभी ये चिड़ियाँ एक दूसरे के घोंसले से बिल्लौर चुरा लेती हैं। उनके जीवन व्यतीत करने की रीति-रिवाज, रहन-सहन का फोटो लिया गया है।

कबूतर सदा ४ से ८ जोड़ों के झुंड में रहते हैं। यदि इससे कम संख्या में इन्हें रक्खा जाय तो ये उड़कर दूसरे झुंड में चले जाते हैं। एक बार जोड़ा बन जाने के बाद स्त्री कबूतर प्रायः अपने पति के प्रति आसक्त रहती है। लेकिन इनके पुरुष अपनी स्त्रियों के प्रति उतने सच्चे नहीं रहते, जितना उनकी स्त्रियाँ रहती हैं। तथापि ये पुरुष अपनी स्त्रियों के प्रति कर्त्तव्य-पालन में त्रुटि नहीं करते। बच्चों के पालन-पोषण के समय पुरुष कबूतर अपनी स्त्रियों के साथ पूर्ण रीति से सहयोग करता है। किसी कारणवश जोड़ा टूट जाने के बाद पुरुष कबूतर बहुत शीघ्र ही दूसरी स्त्री को ले आता है, लेकिन कबूतरी यह काम इतनी शीघ्रता से नहीं कर पाती। यदि कबूतर के जोड़े को बलपूर्वक अलग कर दिया जाय, तो पहला अवसर पाते ही ये फिर दूसरे से आकर सम्मिलित हो जाते हैं। लोगों का कहना है कि कबूतरों में दाम्पत्य जीवन मरण-पर्यन्त स्थायी नहीं होता।

जंगली बत्तकों में स्त्रियाँ कदापि दूसरे पुरुषों को यौन लालसा से प्रलोभित नहीं करतीं। जोड़ा बनने के समय पुरुष ही स्त्री के पास आता है, लेकिन स्त्री बत्तक ही अंत तक अपने पति का निर्वाचन करती है। एक बार जोड़ा बनने के बाद फिर ये एक दूसरे के प्रति प्रायः सदा के लिए सच्चे रहते हैं। जोड़ा बनते समय यदि किसी पुरुष की प्रार्थना स्त्री बत्तक स्वीकार नहीं करती, तो वह पुरुष दूसरी अविवाहिता स्त्री के पास जाता है, विवाहिता स्त्री के पास कभी नहीं जाता। इनमें यह सम्भव नहीं कि कोई पुरुष किसी स्त्री बत्तक को बलपूर्वक अपनी संगिनी बनावे। पति-निर्वाचन में स्त्री बत्तक कभी यह नहीं देखती कि दो पुरुष में कौन-सा अधिक बलिष्ठ है। बत्तकों में अविवाहित पुरुष सदा विवाहित स्त्रियों को बहकाने की चेष्टा करता है। यदि उस स्त्री का पति बलवान् होता है, तो आगन्तुक को मार भगाता है। लेकिन कभी-कभी यह भी देखा गया है कि यदि आगन्तुक अधिक बलवान् हुआ, तो वह विवाहिता स्त्री पर बलात्कार करता है, और उस समय पति के काटने-झपटने का उस पर कुछ असर नहीं होता। पति बेचारा विवश होकर उच्चस्वर से चीत्कार करता है। बच्चा पैदा होने पर पुरुष बत्तक कभी-कभी अविवाहिता स्त्री के पास चला जाता है, लेकिन बच्चा बड़ा होने पर फिर अपनी स्त्री के पास आ जाता है।

पशुओं की कुछ और विचित्र बातें

"मर्गस"-नामक एक प्रकार की चिड़िया सामूहिक रूप में जीवन बिताती है। इस जाति की दो-तीन स्त्रियाँ एक ही घोंसले में अंडे देती हैं, एक साथ अंडों पर बैठती हैं एवं बच्चे पैदा होने पर एक साथ सब बच्चों का पालन-पोषण करती हैं। इस काम में वे यह नहीं देखती हैं कि कौन-सा अंडा किसका है, या कौन-सा बच्चा किसका। इसी प्रकार की एक और चिड़िया की जाति है, जिसका वैज्ञानिक नाम म्यूनिआमैलावैरीका (Munia Malabarica) है। इनमें भी उपर्युक्त रीति पाई जाती है। एक दूसरी जाति का नाम "क्रोटोफागा-आनी" (Crotophagaani) है। इनमें लगभग ६ स्त्रियाँ एक ही घोंसला बनाती हैं, और इन स्त्रियों में २-३ स्त्रियाँ एक ही साथ अंडों पर बैठती हैं। फिर ये २-३ स्त्रियाँ एक साथ चुगने जाती हैं, और फिर दो-तीन स्त्रियों की दूसरी टोली अंडों पर बैठती है। इनके यौन सम्बन्ध के बारे में विशेष कुछ पता नहीं चला।

"टर्पन" (Tarpan)-नामक एक घोड़े की जाति योरप में पाई जाती थी। आजकल ये लुप्त हो गये हैं। ये घोड़े कई सौ की संख्या में एकत्रित रहकर झुंड में जीवन बिताया करते थे। इन झुण्डों में कई परिवार रहते थे। एक-एक परिवार में एक पुरुष के पीछे कई स्त्रियाँ रहती थीं। बच्चे बड़े हो जाने पर, पिता, नर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सन्तानों को अलग कर देता था। एक परिवार में दो पुरुष नहीं रहते थे। इनमें एक विचित्र बात यह देखी गई थी कि जंगली अवस्था में रहने पर भी, ये घोड़े पालत घोड़ियों को भगा ले जाते थे। इसलिए रूस के दक्षिणी भाग में किसान इन जंगली घोड़ों को पकड़ने के लिए जाल बिछा दिया करते थे।

बन्दरों में भी कुछ ऐसी जातियाँ हैं, जिनमें बहु-विवाह की प्रथा पाई जाती है। इनमें सयाने बन्दर के साथ कई स्त्रियाँ होती हैं। इनके बच्चे जब तक बड़े नहीं होते, तब तक परिवार के साथ रहते हैं। पुरुष बन्दर अपनी स्त्री के पातिव्रत्य की ओर तीव्र दृष्टि रखता है। सतीत्व का उल्लंघन होते देखकर पुरुष बन्दर अपनी स्त्री को ख़ूब नोचता, काटता और कसकर कान ऐंठता है। इस प्रकार के कई परिवार मिलकर एक समूह बनता है। इन परिवारों के सरदार मिलकर सामूहिक रूप में झुण्ड का रक्षणावेक्षण करते हैं।

इस स्थान पर एक विशेष महत्त्वपूर्ण बात की ओर पाठकों की दृष्टि आकर्षित करना चाहता हूँ। डाक्टर ग्रलूहडिंज़ का यह स्पष्ट कहना है कि बन्दरों में भी अनियमित अथवा अनियन्त्रित यौन सम्बन्ध नहीं होता। इसके विपरीत लोगों में जो धारणा है, वह नितान्त भूल है। यह बात अवश्य सत्य है कि मनुष्यों की तरह बन्दरों में भी कभी-कभी व्यभिचार के दृष्टांत पाये जाते हैं। लेकिन यह नियम नहीं, नियम का व्यतिक्रम है। अर्थात् बन्दरों में भी साधारण नियम यही है कि उनमें स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध नियमपूर्वक होते हैं; यह नहीं कि जहाँ भी स्त्री और पुरुष एकत्र हो गये तो उनमें यौन सम्बन्ध हो जाना स्वाभाविक है; बल्कि उनमें वैसा सम्बन्ध होना स्वाभाविक नहीं है।

एक और बात पर भी ध्यान देना आवश्यक है। ईर्ष्या की प्रवृत्ति जैसी मनुष्यों में पाई जाती है, वैसी ही पशुओं में भी। अपनी स्त्री के साथ अन्य पुरुषों का मिलना किसी पति को अच्छा नहीं लग सकता। आजकल योरप और अमेरिका में स्त्री-पुरुषों के अबाध मिलन की ओर झुकाव बढ़ रहा है और योरप में जो झुकाव दिखाई देने लगा है, आधुनिक रूस में उसी को क़ानूनी रूप दिया जा रहा है। अर्थात् योरप में जो बातें साधारण नियम के रूप में नहीं दिखाई दी हैं, वही बातें सोवियट रूस में साधारण नियम के रूप में दिखाई देने लगी हैं। उन देशों में वेश्याओं के पास जाना या वेश्यावृत्ति करना बुरी बात समझी जाती है। लेकिन युवक और युवतियों में बेरोक-टोक के मिलना-मिलाना, अथवा उनमें अनियमित रूप से यौन सम्बन्ध का स्थापित होना बुरी बात नहीं समझी जाती। बहुत-से कम्यूनिस्टों का भी यह कहना है कि विवाह की पद्धति के साथ यह धारणा अनिवार्य रूप से युक्त है कि स्त्री, पति की विषय-भोग की सामग्री है। आधुनिक युग में स्त्री और पुरुष, दोनों के अधिकार बराबर समझे जाते हैं। इसलिए उनका कहना है कि पुरुष और स्त्री के सम्बन्ध बराबरी के आधार पर बनने चाहिए। लेकिन युवक-युवतियों के अबाध मिलन का परिणाम समाज के लिए कहाँ तक अमंगलजनक है, इसमें भी क्या कोई सन्देह है?

पशु-समाज में ऐसी भी जातियाँ हैं, जिनमें श्रेणी-विभाग पाये जाते हैं। जैसे, चींटी, दीमक, मधु-मक्खियाँ इत्यादि। इनके सामाजिक जीवन इतने विचित्र एवं शिक्षाप्रद हैं कि इनके बारे में यथार्थ परिचय कराने के लिए एक पूर्ण ग्रंथ लिखने की आवश्यकता है। हिन्दू जाति एवं प्राचीन ग्रीक जाति में वर्ण-व्यवस्था पाई जाती है। लेकिन पशुओं के समाज में, जहाँ वर्ण-व्यवस्था है, श्रेणी-विभाग हिन्दुओं की अपेक्षा कहीं अधिक कठोर एवं पेचीदा नियमों के अधीन है।

शिम्पांज़ी एवं कुछ अन्य प्रकार के पशु-पक्षियों को लेकर बहुत-सी परीक्षाएँ हुई हैं। इन परीक्षाओं से पता चलता है कि बुद्धिवृत्ति किस प्रकार पशु-जीवन में भी व्यक्त होने लगी है; अर्थात् पशु और मनुष्यों में मात्रा का ही अन्तर है।

(क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

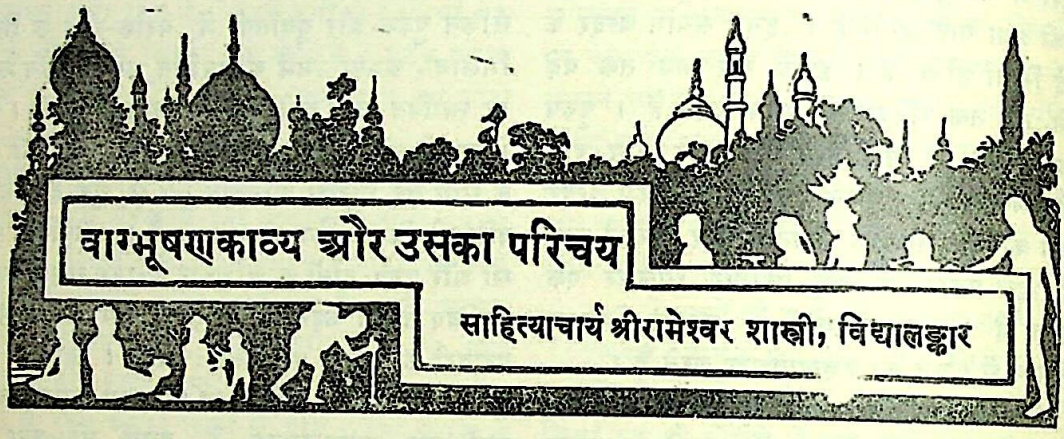

वाग्भूषणकाव्य और उसका परिचय

साहित्याचार्य श्रीरामेश्वर शास्त्री, विद्यालङ्कार

संस्कृत-साहित्य विश्व के समस्त भाषा-साहित्यों की अपेक्षा विशाल समुन्नत, विविध विषयों से विभूषित और समस्त भाषाओं का उद्गम-स्थान है। भारतीय साहित्य-विशारद विद्वानों ने जहाँ इस बात को मुक्तकण्ठ से स्वीकार किया है, वहाँ आर्यभाषा-भिज्ञ वैदेशिक विद्वानों ने भी नत-मस्तक हो इस बात को स्वीकार करने में अपनी गुणग्राहकता का परिचय दिया है। प्रो० मैक्समूलर, प्रो० मैकडोनल्ड, डा० वेलेन्टियन, मि० बोप आदि कई पाश्चात्य विद्वान् तो इस साहित्य की गुणगरिमा से अत्यन्त विमुग्ध और प्रभावित हुए हैं। विश्व में सबसे पहले ज्ञान-विज्ञान की चमकीली किरणों का प्रकाश फैलानेवाला "ऋग्वेद" समझा जाता है, जो कि इसी साहित्य-वृक्ष का प्रथम पुष्प है। इस भाषा के साहित्य ने तभी बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी, जब अन्य भाषाओं के साहित्यों का या तो जन्म ही नहीं हुआ था, और अगर हुआ भी तो तब वे अन्धकार के गहरे गर्त में विलीन थे। दुनिया में हज़ारों आघातों को सहकर, समुद्र-गर्भ में ढकेला जाकर, बहुत दिनों तक लगातार अग्नि-ज्वाला में प्रज्वलित होकर, विदेशी भाषाओं के करारे थपेड़ों को सहन करके भी यदि कोई साहित्य अब भी अपना गौरवमय मस्तक ऊँचा करनेवाला है तो वह संस्कृत-साहित्य ही है। इस साहित्य में यह भी एक ख़ूबी है कि इतना पुराना और कई व्यक्तियों की दृष्टि में "Dead language" (मृत भाषा) साहित्य होने पर भी आधुनिक उन्नत से उन्नत साहित्यों से प्रतिस्पर्धा करने की पूर्ण शक्ति रखता है। इस साहित्य के कई विषय तो इतने पूर्ण हैं कि उनकी प्राथमिक अवस्था तक भी अन्य भाषाओं के साहित्य नहीं पहुँचे हैं, हमें यह कहने में भी संकोच नहीं है। यदि पहले की तरह इस साहित्य के निर्माण की अबाध गति रहती, वैदेशिक विधर्मियों द्वारा इस भाषा के साहित्य का विनाश न किया जाता, और इस देश के निवासी अपनी इस प्रोन्नत देशभाषा से पूर्ण प्रेम रखते, तो आज यह भाषा समस्त भूमण्डल की भाषा होती, और इसका साहित्य सर्वोत्कृष्ट और सर्वमान्य होता।

अब भी यदि इस साहित्य की खोज की जाय, इधर-उधर बिखरे हुए जवाहरातों को एकत्र किया जाय, तो इसमें प्रत्येक विषय के यथेष्ट ग्रन्थ मिल सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्राप्त ग्रन्थों में भी इतना मसाला भरा पड़ा है कि हम इसकी किसी भी उन्नतिशील साहित्य से तुलना कर सकते हैं। जहाँ इस साहित्य के आध्यात्मिक ज्ञान-प्रदर्शक ग्रंथ सबके मार्ग-प्रदर्शक हैं, वहाँ योग, काव्य, व्याकरण, न्याय आदि विषयों के ग्रन्थ भी सर्वोत्कृष्ट और सर्वमान्य हैं। इस भाषा के कई ग्रंथ-रत्न तो ऐसे हैं, जो बीसवीं सदी में भी अप्रकाशित पड़े हैं। इसका कारण कुछ तो संस्कृत-पंडितों की उपेक्षा, कुछ संकीर्ण विचार, कुछ हद तक धनाभाव और कुछ आधुनिक शिक्षितों का अपनी सर्वमान्य मातृ-भाषा संस्कृत के प्रति उदासीनता है। घर-घर जाकर यदि अब भी खोज की जाय तो कुछ ऐसे ग्रन्थ मिल सकते हैं, जिनके द्वारा विलुप्त ज्ञान-विज्ञान का उद्धार हो सकता है। मैंने अभी अपनी ब्यावर (राजपूताना) की यात्रा में पंडित रामप्रतापजी शास्त्री, प्रोफ़ेसर नागपुर-कॉलेज, के मुँह से सुना था कि एक जर्मन-विद्वान् भरद्वाज मुनि-प्रणीत, संस्कृत-पद्यों में लिखित, एक ग्रन्थ दिखलाने लाया था, जिसमें ३५ प्रकार के आकाश-यान (हवाई जहाज़ों का) क्रियात्मक वर्णन लिखा हुआ था। कहने का तात्पर्य यह कि संस्कृत-भाषा का साहित्य अपूर्ण नहीं है; केवल उसके बारे में तात्त्विक अनुसन्धान करने की और उसे क्रियारूप में प्रदर्शित करने की आवश्यकता है। इसी उद्देश से प्रेरित हो घर की हस्त-लिखित पुस्तकों को ढूँढते हुए मुझे 'वाग्भूषणकाव्यम्' की एक प्रति मिली। यह काव्य जयपुर के काग़ज़ों में काली स्याही से लिखा हुआ है। इसको हमारे पूज्य पितामह-तुल्य सीकर-निवासी पं० रामप्रतापजी जोशी ने १९१७, माघकृष्ण पञ्चमी, गुरुवार के दिन लिखवाया था। ऐसा उन्होंने इस पुस्तक के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है—

"संवत् १९१७ की मिती माघकृष्णा पञ्चमी गुरु लिखाइतं रामप्रतापजी"

परन्तु इस काव्य का निर्माण कई सौ वर्ष पहले हुआ प्रतीत होता है। यह इसकी भाषा और निर्माण-शैली देखने से प्रकट होता है।

इस काव्य के निर्माता पाण्ड्य-देशवासी रामचन्द्र नाम के कविवर हैं। इसकी टीका करनेवाले भी इन्हीं कविजी के शिष्य, समाननामा पं० रामचन्द्रजी ही हैं। यह बात टीकाकार के आदि-अन्त में लिखे हुए श्लोकों से व्यक्त होती है। स्वयं कवि ने पुराने संस्कृत-कवियों की तरह अपना कोई परिचय नहीं दिया है। टीकाकार के वे श्लोक इस प्रकार हैं—

"नत्वा गुरुं राममभीष्टदेवं
भक्तस्तयोस्तेन कृतस्य तन्वीम्;
काव्यस्य वाग्भूषणसंज्ञकस्य
व्याख्यां करोति स्म स रामचन्द्रः।"

"पाण्ड्ये परिडतमण्डली मलयजा श्रीताम्रपर्णीजले
पूते निर्वृतिसम्भवेन गुरुणा श्रीरामचन्द्रेण नः;
इत्थं गूढपदं मतिप्रदमदोवाग्भूषणाख्यं कृतं
काव्यं व्याक्रियतेऽत्र येन विदुषा तं तं नमामो वयम्।"

इन श्लोकों से केवल कवि का देश और नाम ही मालूम होता है, किन्तु किस समय पांड्य-देश के किस गाँव में कवि का जन्म हुआ था, और किस समय में कवि ने इस काव्य की रचना की थी, इस बात का पता नहीं लगता। अन्य कवियों ने भी इस कवि का कहीं अपने बनाये ग्रन्थ में वर्णन नहीं किया, और न जनमुख से ही इसके सम्बन्ध की कोई किम्वदन्ती ही सुनी जाती है। ऐसी हालत में कवि के सम्बन्ध में कुछ वास्तविक बात कह देना अत्यन्त कठिन है। तथापि इस काव्य की भाषा और वर्णन-शैली को देख-कर और इस ग्रन्थ में भक्ति-रस-प्रधान वर्णन होने के कारण यह कहा जा सकता है कि यह कवि-मुकुटमणि श्रीतुलसीदासजी के समसामयिक होगा।

सम्वत सौरह सौ असी, असी गंग के तीर;
सावन शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो सरीर।

इस दोहे के अनुसार तुलसीदास का निधन-काल माना जाता है। अतः यह भी सोलहवीं शताब्दी के अन्त भाग में अनुमानतः रहा होगा। तुलसीदासजी के ज़माने में भारतवर्ष में भक्तिरस का प्रवाह प्रवाहित हो रहा था। सबकी ज़बान में रामनाम ने घर कर लिया था। हमारे चरित्र-नायक कविवर भी सब विद्या-विशारदों को फटकार बताते हुए समस्त शास्त्रों के सारभूत रामनाम-स्मरण की ही महत्ता स्थापित करते हैं। यथा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"व्यर्थं नैयायिकास्ते घटपटनटनां शाब्दिकाठग्ठजेयं
तद्वन्मीमांसका ये जगदिदमहरं कर्मजन्यं वदन्ति ;
शून्यंवेदान्तिनस्ते जगदहह वृथा वादिनोऽन्यानभिज्ञान्
शास्त्राण्यालोड्य सर्वे वयमिह निपुणा रामनामं स्मरामः।

इस काव्य का "यः पूतनामारणलब्धकीर्तिः" यह श्लोक पूर्णचन्द्र दे संगृहीत उद्भटसागर-नामक ग्रन्थ में भी प्राप्त होता है। यह संग्रह १९वीं शताब्दी में किया गया था। इससे यह साबित होता है कि यह ग्रन्थ उससे बहुत पुराना है।

इस काव्य के बहुत-से क्लिष्ट श्लोक कई लोगों को अब भी याद हैं, किन्तु उन्हें यह नहीं मालूम कि ये श्लोक किस काव्य के और किसके बनाये हुए हैं।

इस ग्रंथ के बारे में पूर्ण रूप से जनता परिचित हो जाय, इसलिए उसका संक्षिप्त विवरण पाठकों की सेवा में भेंट किया जाता है।

इस काव्य में १०२ श्लोक हैं। उनमें सूर्यशतक, चण्डीशतक आदि शतकों की भाँति किसी एक देवता की स्तुति नहीं की गई है। किन्तु निम्नलिखित रीति से प्रायः प्रत्येक देवता से शुभाशंसा की गई है—

१ गणेशस्तव, २-९ नवग्रहस्तव, ९-१९ दशावतार-स्तव, १९-२२ त्रिमूर्तिस्तव, २२-२५ त्रिशक्तिस्तव, २५-३५ दशदिक्पालस्तव, ३५-४८ मातृस्तव, ४८-५४ सतीस्तव, ५४-५९ ब्राह्मणस्तव, ५९-६६ काम-निरूपणं, स्त्रीस्तवात्मकम्, ६६ से ७९ धर्मनिरूपणं भगवत्स्तवात्मकम्, ७९-८८ अर्थनिरूपणं नमस्कारा-त्मकम्, ८८-१०१ मोक्षनिरूपणं शरणागतिरूपम्, १०१-१०२ काव्यकर्तृपरिचयः।

इस तरह देखने में छोटा-सा भी यह काव्य सहृदय मनोरंजन में अपनी अद्भुत क्षमता रखता है। कवि ने कई जगह प्रसादगुणमण्डित कविता की है; किन्तु कई श्लोकों में अत्यन्त गूढ़पदों का निवेश करके अपने अक्षर पाण्डित्य का भी परिचय दिया है। शब्दों में चमत्कारपूर्ण चातुर्य है। अर्थ में तो अपेक्षाकृत गाम्भीर्य भरा हुआ है। कवि को महाकवि श्रीहर्ष की भाँति घमण्ड है कि मैंने यह ऐसा गूढ़पद काव्य बनाया है कि इसकी व्याख्या करना कोई हँसी-खेल नहीं। अगर कोई कर देगा तो श्रीपण्डितराज जगन्नाथजी की "निर्मत्सरो यदि समुद्धरणं विदध्यात् तस्याहमुज्ज्वल-मतेश्चरणौ वहामि" की तरह "तं तं नमामो वयम्" नतमस्तक हो जाऊँगा।

पाठकों की सेवा में इसके कुछ क्लिष्ट पद्यों का नमूना पेश किया जाता है। इनको देखकर विचारें कि हमारा कहना कहाँ तक ठीक है—

"विप्राधिपारिरिपुसूनुविरोधितातो,
मित्रात्मजारिजनकारिसुतांकसंस्थः ;
पार्थाग्रजाग्र्यजनकाशनशत्रुपत्र,
ज्येष्ठो ददातु कुचमध्यमुखः शुभं वः।"

कल्पना-शक्ति को बढ़ाने के लिए क्रमिक मित्र-शत्रु, पिता-पुत्र के ज्ञान की आवश्यकता है। वह आवश्यकता-पूर्ति ही इस श्लोक के अर्थ लगाने में सहायक हो सकती है। अर्थ-ज्ञान होने पर कवि की इस संघटन-चातुरी के लिए बरबस दाद देनी पड़ेगी।

"यः सुध्युपास्योऽवतु सध्वरिर्हरि-
धात्रंशभूतो भवतोऽथ लाकृतिः ;
क्रय्यस्तदर्थं भजनेन किल्बिषं
क्षय्यस्तु जय्यो भजतामरींश्च सः।"

इस श्लोक में पाणिनि के 'इकोयणचि' 'क्रय्यस्तदर्थे' 'क्षय्यजय्यौशक्यार्थे' इन तीन सूत्रों के उदाहरण बड़े अनूठे ढंग से सजाये गये हैं।

इस प्रकार जहाँ इसमें क्लिष्ट पद्यों का सन्निवेश किया गया है, वहाँ कुछ माधुर्यगुणगुम्फित सरस रस सहित पद्यों का भी अच्छा चुनाव हुआ है।

ब्राह्मणों से रक्षा की प्रार्थना करते हुए कवि ने क्या ही अच्छा श्लोक लिखा है, जिसमें ब्राह्मणों के समस्त कृत कार्यों का उल्लेख हो गया है—

"चन्द्रो यैस्तु कृतः क्षयी जलनिधिः क्षारो विडौजा भगी
लिंगं पातितमैश्वरं मधुरिपुस्तिर्यक्तु क्षौद्रे यमः ;
स्वर्गाद् यैर्विनिपातितश्च नहुषो वेणः प्रमत्तो गिरा
द्विज्या यैरुरगाः शुचौ किल हुतास्ते ब्राह्मणाः पांतु नः।"

पाठकों को इसका विशेष परिचय तो ग्रन्थ के देखने से ही प्राप्त होगा। अभी इसका प्रकाशन न होने के कारण यह ग्रन्थ दुष्प्राप्य है। किन्तु सहृदय पाठकों को इससे यदि कुछ भी आनन्दानुभूति होगी, तो हम इसके प्रकाशन के लिए उद्योग करेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समाजवाद और उसकी आध्यात्मिक पृष्ठभूमि

श्रीगंगाप्रसाद

आजकल की बढ़ती हुई राजनीतिक चेतना के साथ ही हमारे देश में 'समाजवाद' की काफ़ी चर्चा होने लगी है। भले ही समाजवादी नीति और कार्यक्रम के हिमायती आज आसानी से गिने जा सकते हों, पर उनकी तादाद तेज़ी से बढ़ती जा रही है। हमारे गाँवों में भी आज इसके सम्बन्ध में चार बातें हो ही जाती हैं, लोग इसके पक्ष-विपक्ष में जी खोलकर बहस कर लेते हैं। समाज की वर्तमान व्यवस्था से व्यथित-हृदय समाजवाद की मधुर कल्पना से सँभलने की चेष्टा करता है। आज वह हमारी कल्पना को उत्तेजित कर रहा है। अतः यह स्पष्ट है कि इस नवीन विचार-धारा में कुछ आकर्षक अवयव अवश्य हैं। किसी भी कार्य को हम लें, यह निर्विवाद है कि पहले वह विचार-संसार में अवतीर्ण होता है और लोकमत की कसौटी पर कसे जाने के बाद यदि वह खरा उतरा, तो कार्यरूप में अवश्य परिणत होता है। यदि हमें कोई ऐसी व्यवस्था मिल जाय, जिसमें समाज के वर्तमान रोगों को निर्मूल करने की शक्ति हो तो हम पुरानी ज़ंजीर को तोड़ फेकने और नवीन व्यवस्था को अंगीकार करने में थोड़ा भी विलम्ब न करेंगे।

समाज की व्यवस्था में परिवर्तन कोई बायें हाथ का खेल नहीं। एक व्यक्ति समाज से रुष्ट होकर इसका नवनिर्माण नहीं कर सकता। परिवर्तन प्रकृति का सदा से चला आनेवाला नियम है। इसी का दूसरा नाम क्रांति है। परिवर्तन की दो जातियाँ हैं—एक प्रत्यक्ष और दूसरी अन्तर्हित। स्थूल प्रकृति में हमें यह स्पष्ट दिखाई देता है। वर्षा, धूप, सर्दी, गर्मी आदि के कारण पृथ्वी की सतह में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं। दूसरी जाति है अकस्मात् परिवर्तन। हम जिसकी पहले से कुछ भी आशा नहीं रखते, वह अचानक विस्फोट की तरह हमारे सामने आ जाता है। भूगर्भ में निरन्तर परिवर्तन होते रहते हैं; हमको इनका ज्ञान नहीं रहता। यही जब भूकम्प अथवा ज्वालामुखी के रूप में प्रकट होता है तो तहलका मच जाता है और क्षणभर में भूतल में महान् परिवर्तन कर देता है। नित्यप्रति होनेवाले परिवर्तनों को हम विहंगम दृष्टि से देखते हैं; पर जब यह समाज के किसी ख़ास अंग को निरन्तर दलित करने लगता है तो लोगों के कान खड़े हो जाते हैं। उत्पीड़ित चुम्बक की भाँति एक दूसरे को खींचते हैं और अचानक क्रांति की आग भड़क उठती है। पानी जब आग पर चढ़ाया जाता है तो पहले उसमें गर्मी आती है, तब गति और अंत में वह खौलने लगता है। वही बात हमारे समाज की भी है। क्रांति अचानक नहीं होती, इसके कारण बहुत पहले से अपना काम करते रहते हैं।

मनुष्य सामाजिक जीव है और समाज वह संगठन है, जिसमें लोग परस्पर के सहयोग पर अवलम्बित, श्रम-सूत्र से सम्बद्ध तथा एक दूसरे के कामों का प्रतिफल स्वभावतः अंगीकार करते रहते हैं। जिन लोगों से श्रम-सम्बन्ध तथा सहयोग का अभाव है, वे समाज में नहीं आ सकते। परिस्थिति का प्रभाव समाज पर और समाज और परिस्थिति दोनों का प्रभाव व्यक्तियों पर पड़ता है।

संसार के विशाल जनसमुदाय को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं, एक वे जो इस संसार में नीतिमत्ता के सहारे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते हैं जो सब प्रकार पूर्ण हो, और दूसरे वे, जो इस भौतिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संसार से परे की स्थिति में विश्वास रखते हैं और उसी की प्राप्ति की आशा रखते हैं । दूसरे शब्दों में इन्हें हम भौतिकवादी (Materialist) और आत्मवादी (Spiritualist) कह सकते हैं । भौतिकवादी नीतिमत्ता द्वारा सुख-शांति की स्थापना करना चाहते हैं । ये संसार से परे की अवस्था में विश्वास नहीं रखते । आत्मवादी जो इस संसार के एक पग आगे जाकर परे की अवस्था में विश्वास रखते हैं, वे भी इस भौतिक साधन से इनकार नहीं करते ; बल्कि यह बतलाते हैं कि उस पद की प्राप्ति के लिए शारीरिक, नैतिक और आत्मिक विकास की परम आवश्यकता है और इनमें से एक की भी कमी होने पर उस स्थिति की प्राप्ति में बाधा होती है । आत्मवादियों की परमपद की प्राप्ति के पूर्व इस संसार में एक स्थिति मानी गई है, जिसे त्रिगुणातीत, ब्राह्मी स्थिति अथवा भक्त की अवस्था कहते हैं । जो किसी से द्वेष नहीं करता, जो अभय है, जिसको शत्रु-मित्र समान है, जो ममता-रहित है, जो स्थिरमति है, जो सुख-दुःख में सम रहता है, जो निःस्पृह है, वही भक्त अथवा त्रिगुणातीत है । ऐसे लोगों को भी लोक-संग्रह के लिए काम करना पड़ता है, अन्यथा समाज के लिए उनका अस्तित्व निरर्थक है । समाज में ऐसे व्यक्ति आदर्श माने जाते हैं और लोग उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक समझते हैं । समाज के विषय में भौतिकवादी और आत्मवादी एकदम सहमत हैं, जैसा कि नीचे के तुलनात्मक उल्लेख से स्पष्ट है—

'अध्यात्मवाद'

१—आत्मवादी संसार को ईश्वर की माया समझता है अथवा इसे ईश्वरकृत समझता है और इसी की सेवा में ईश्वर की सेवा की कल्पना करता है ।

२—आत्मवादी समाज के लिए यज्ञ (कर्म) को सबसे बड़ा स्थान देता है और मनुष्य-जीवन के स्थायित्व के लिए इसे आवश्यक समझता है ।

३—कर्म प्रकृतिजन्य है और प्रकृति लोगों से बलपूर्वक काम कराती है ।

४—गीता में कहा गया है—प्रारम्भ में यज्ञ के साथ-साथ प्रजा को उत्पन्न करके ब्रह्मा ने कहा—"इस (यज्ञ) के द्वारा तुम्हारी वृद्धि हो, यह यज्ञ तुम्हारे लिए कामधेनु हो । इससे तुम देवताओं (भूतमात्र) को संतुष्ट करते रहो और वे तुम्हें संतुष्ट करते रहें । इस प्रकार एक दूसरे को संतुष्ट करते हुए परम कल्याण प्राप्त करो ।"

गी० अ० ३, श्लो० १०-११

५—यज्ञ से संतुष्ट होकर देवता लोग तुम्हें इच्छित भोग देंगे । उन्हीं का दिया हुआ उन्हें वापस न देकर जो स्वयं अकेला उसका उपभोग करता है, वह चोर है ।

गी० अ० ३, श्लो० १२

'समाजवाद'

१—समाजवादी ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानता ; परन्तु मनुष्य के अधिकार को पूर्णतः स्वीकार करता है । इसका सिद्धान्त है—हर व्यक्ति से सामर्थ्य के अनुसार श्रम लेना और आवश्यकता के अनुसार हर व्यक्ति को जीवन की सुविधाएँ देना । (यहाँ लोकसेवा का पूरा रंग है और लोकसेवा ईश्वरभक्ति का एक अंग है ।)

२—समाजवादी श्रम को सबसे बड़ा स्थान देता है और मनुष्य-जीवन के स्थायित्व (Stability) के लिए इसे आवश्यक मानता है ।

३—मनुष्य प्राकृतिक जीव है और प्रकृति के पंजे से इसे कभी छुटकारा नहीं मिल सकता । भले ही प्रकृति पर वह आंशिक शासन करे, फिर भी उसकी अन्तिम शरण प्रकृति ही है ।

४—श्रम से प्रकृति की निहित शक्ति समाज को मिलती है और समाज उसे पाकर विकास पाता है । मनुष्य एक दूसरे से सामाजिक श्रम (Social labour) द्वारा सम्बद्ध है । जब कभी यह श्रमसूत्र ढीला अथवा कड़ा हो जाता है, समाज में अशांति हो जाती है ।

५—जो दूसरों के श्रम पर अपनी चालबाज़ी से आराम-चैन करता है, वह परोपजीवी (Parasite) है । उसकी इस चालाकी की जड़ खोद देनी चाहिए और उससे उचित श्रम लेना चाहिए ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मवादी संसार को अनावश्यक उलझन नहीं समझता, बल्कि आदर्श स्थिति की प्राप्ति के लिए इसे आवश्यक अंग समझता है। अध्यात्मवाद और समाजवाद में मूलतः यदि विरोध है तो यही कि अध्यात्मवादी चेतन से प्रकृति का उद्भव मानते हैं और समाजवादी प्रकृति में ही चेतन की उत्पत्ति मानते हैं, चेतन का प्रकृति से अलग अस्तित्व क़बूल नहीं करते। पर समाज का जहाँ तक सरोकार है, दोनों का निशाना एक ही स्थान पर होता है।

ईश्वर का अस्तित्व एक ऐसा प्रश्न है, जिसे कोई शब्दों से सिद्ध नहीं कर सकता; क्योंकि जितनी बातें पक्ष में कही जायँगी, ठीक उतनी ही दलीलें विपक्ष में भी पेश की जा सकती हैं। यह श्रद्धा का विषय और अनुभवसाध्य है। आस्तिकों में भी विरले ईश्वर का अनुभव कर पाते हैं, अधिकांश श्रद्धा और विश्वास की शरण लेते हैं। हम ईश्वर में विश्वास रखते हुए भी समाजवादी कहा सकते हैं, समाजवाद के सिद्धान्तों को अपनी रक्षा के लिए अपना सकते हैं। यह झूठी कल्पना है कि हम यदि समाजवाद के सिद्धांतों को अपनावें तो हमें अपनी चिर-अर्जित संस्कृति—जिसका हमें गौरव है—खो देनी होगी। हमारा समाजवाद ईश्वर को रद्दी के टोकरे में फेकने को नहीं होगा। अध्यात्म का हृदय इतना विशाल है कि इसमें सभी नई विचारधाराओं का समावेश स्वतः हो जाता है।

हम भौतिकवादी (Materialist) हों अथवा अध्यात्मवादी (Spiritualist), यह ज़रूर चाहते हैं कि समाज के वे रोग, जो हमें भौतिक पूर्णावस्था अथवा आदर्श स्थिति की प्राप्ति में बाधक हों, रोड़े अटकानेवाले हों, हम दूर करें; क्योंकि हमारा समाज ऐसा होना चाहिए, जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण विकास का अवसर मिले। आत्मवादी अव्यवस्थित, अशांत, दारिद्र्यपीड़ित समाज में ईश्वर की ओर नहीं बढ़ सकता। भला जहाँ पेट पर आफ़त होगी, वहाँ परलोक की कौन चिन्ता करेगा! जो शरीर से रोगी होगा, वह योग की प्रक्रियाएँ कैसे कर सकेगा! अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि हम एक ऐसा समाज चाहते हैं, जिसमें हमें अन्न-वस्त्र का कष्ट न रहे, हमें पूरी शिक्षा मिले, जिससे हम नैतिक या आत्मिक उन्नति कर सकें, हमारे अधिकारों पर दूसरे आक्रमण न करें, हमें सबों की तरह अच्छी से अच्छी परिस्थिति मिले और नैतिक नियमों को छोड़ हमें किसी की अधीनता न रहे, हमें कोई हिक़ारत की नज़र से न देखे। हमें ये सब सहूलियतें जिस व्यवस्था से मिलेंगी, उसका हम अवश्य समर्थन करेंगे।

प्राणिमात्र स्वतंत्रता के प्रेमी हैं; पर प्रकृति उन्हें अपने घेरे के बाहर नहीं जाने देती। यह हो भी नहीं सकता; क्योंकि जब तक शरीर है, प्रकृति का शासन रहेगा ही। हमारे समाज में एक कल्पित आदर्श स्थिति की प्राप्ति के लिए सदा से सहयोग और संघर्ष होते आये हैं। हमारी कामना हमें चैन से बैठने नहीं देती। जब हम मनोनुकूल एक स्थिति पा लेते हैं तो प्रकृति उसमें परिवर्तन करा देती है; क्योंकि परिवर्तन उसका लक्षण है। यह हमें खटकने लगता है और जब हमारे लिए यह असह्य हो जाता है तो हम इसे जड़मूल से उखाड़ फेकने की कोशिश में लग जाते हैं। यह कार्य-कारण का सम्बन्ध है, हम जो कुछ आज कर लेते हैं वही कल होकर दूसरे कार्य का कारण हो जाता है। समाज की अवस्था में न कभी स्थायित्व रहा है और न रहेगा; क्योंकि यह परिस्थिति के अधीन है और परिस्थिति सदा बदला करती है।

मनुष्य-जीवन के तीन प्रधान अङ्ग हैं—(१) जीवन की समस्या, (२) शिक्षा अथवा ज्ञान और (३) अधिकार। मानव-जीवन इन तीनों के बिना पूर्ण नहीं हो सकता। समाज के स्वस्थ रहने के लिए इन तीनों के सामंजस्य की आवश्यकता है। किसी एक का आलम्बन समाज को छिन्न-भिन्न कर देगा। विशेष परिस्थिति में जब किसी एक की प्रधानता बढ़ जाती है और शेष का लोप होने लगता है तो समाज की दशा बिगड़ जाती है और इसे पुनः व्यवस्थित करने की आवश्यकता आ पड़ती है। इस प्रकार समाज की ३ अवस्थाएँ (Phases) हो सकती हैं—(१) साम्यावस्था—जीवन की समस्या, शिक्षा और अधिकार में साम्य; (२) ऊर्ध्वगति—अर्थात् इन तीन अङ्गों में किसी एक की प्रधानता और शेष का पीछे पड़ जाना और (३)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधोगति—अर्थात् इन तीनों अङ्गों में किसी एक का ह्रास होने लगना और शेष का अपने स्थान पर बना रहना। इनमें पहले से समाज में सुख और शान्ति का साम्राज्य रहता है और शेष दो अवस्थाओं में विषमता आ जाती है। इस प्रकार समाज के जिस अंग में कमज़ोरी पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है, वहीं से प्रतिक्रिया आरम्भ होती है और यह प्रतिक्रिया तब तक शान्त नहीं होती, जब तक यह स्वयं उलटी गति से दूसरे छोर पर पहुँचकर फिर समाज को उतना ही विषम न बना दे। प्रकृति की यह खींचातानी निरन्तर हुआ करती है और चूँकि ये परिवर्तन कालान्तर में होते हैं, साधारणतः हम लोग इस बात को शीघ्र नहीं समझते कि समाज के किस अंग में कमज़ोरी अपना अड्डा बना रही है।

हमारा समाज विषमता की नदी में तैर रहा है, शिक्षा और अधिकार हमसे छिनकर मुट्ठी भर लोगों के हाथ लग गये हैं और हमारे जीवन की समस्या कठिन हो गई है। इसी वैषम्य की दवा समाजवाद है। इस वैषम्य को हटाकर समाज में साम्य लाना इसका काम है। इस वैषम्य का मूल कारण उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार है। रोग बाहरी उपचार से थोड़े दिनों के लिए भले ही दब जाय; पर जब तक मूल पर आघात न होगा, बीमारी दूर न होगी। उत्पादन के साधनों पर से व्यक्तिगत अधिकार हटा कि रोटी की समस्या हल हो जायगी। सम्पत्ति का स्रोत मुट्ठीभर लोगों के हाथ से समाज के हाथ चला आवेगा और तब विकास का द्वार सभी के लिए स्वतः खुल जायगा। कोई व्यक्ति भेड़-बकरी न बना रहेगा, बल्कि शक्ति और संस्कृति के अनुसार बहुत आगे निकल जायगा। प्रतिभा और योग्यता अर्थ की फेरी में पड़कर मिट्टी में न मिल सकेंगी। स्वतन्त्र वातावरण में उनका पूर्ण विकास होगा और उनसे संसार का महान् उपकार होगा।

सारा मनुष्य-समाज श्रमसूत्र से सम्बद्ध है। जहाँ यह सूत्र ढीला पड़ा अथवा कड़ा हुआ, समाज में अशांति होगी ही। व्यावसायिक क्रांति के साथ-साथ इस विचारधारा का जन्म है और ज्यों-ज्यों पूँजी का प्राबल्य बढ़ता गया, यह विचारधारा भी बढ़ती गई। पूँजीपतियों ने मशीनों द्वारा कारीगरों की दस्तकारी छीन ली; क्योंकि मशीन और हाथ एक गति से नहीं चल सकते। कारीगरों की कारीगरी का लोप होने लगा और इन्हें मजबूर होकर अपना श्रम बेचना पड़ा। पूँजीपतियों ने इनकी विवशता का नफ़ा उठाया और माँग और पूर्ति (Demand and supply) का नग्न नृत्य होने लगा। श्रम, जो पहले कारीगरों की वैयक्तिक सम्पत्ति था और जिससे वे अपना भरणपोषण करते थे, अब साधारण माल की तरह बिकने लगा। अब उनकी आवश्यकताओं का विचार कौन करता? उन्हें तो प्रतिद्वन्द्विता में जो मिला, उसी पर सन्तोष करना पड़ा; क्योंकि बेकार रहने पर उपवास और मृत्यु का सामना करना पड़ता। उधर पूँजीपतियों ने—उनका तो कहना ही क्या—जिधर हाथ घुमाया, घी ही मिला। मज़दूरों से पूरा काम लिया, रोब जमाया और श्रम का मूल्य कूता गया माँग और पूर्ति के समतूल पर। फिर क्या था, जितनी पूँजी लगाई और अधिक संख्या में मज़दूरों को फँसाया, आय उसी हिसाब से बढ़ चली। नतीजा यह हुआ कि मुट्ठी भर लोगों के हाथ सम्पत्ति इकट्ठी हो गई और लाखों के भाग्य में दारिद्र्य सट गया। समाजवाद इसको सभ्यता के वेष में बर्बरतापूर्ण चालबाज़ी कहता है। वह मनुष्य के साथ मनुष्य का मनुष्य का-सा व्यवहार चाहता है। वह ऐसे समाज का नवनिर्माण करना चाहता है, जिसमें श्रम की प्रधानता हो और उसी की पूजा हो। वह सबसे योग्यतानुसार श्रम लेना चाहता है और सबको आवश्यकता के अनुसार देना चाहता है।

समाजवाद के विरोधियों के अनेक आक्षेप हैं। ये आक्षेप करनेवाले वे ही लोग हैं, जिन्हें आधुनिक व्यवस्था में सारे साधन प्राप्य हैं। चूँकि साम्यवाद उनके स्वार्थ को हिंसापूर्ण बताता है, उनका चिढ़ना और भय खाना स्वाभाविक है। चूँकि वे परोपजीवी हैं, पराये श्रम पर मज़े उड़ाते हैं, वे श्रम से समाज की सेवा करना कब चाहेंगे। धनी तो चाहते ही हैं कि समाज में आवश्यकता से पीड़ित लोग रहें, दरिद्र और मूर्ख रहें; क्योंकि इनके अभाव में धन का कोई मूल्य ही न रहेगा। पैसेवाले पैसेवालों की कब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खुशामद करने लगे। इसलिए धनी लोगों की सदा से रीति रही है कि ये राजसत्ता पर अधिकार बनाये रक्खें और इसके सहारे ऐसे नियम और क़ानून बनावें, जिसमें समाज से मूर्खता और दारिद्र्य कभी दूर ही न हो।

ये पूँजीपति और धनीमानी लोग राष्ट्र के बड़े हिमायती हैं, पर अपने स्वार्थ के आगे राष्ट्र को भूल जाते हैं। देश के धन को अपनाकर और श्रम की क़ीमत कम देकर ये राष्ट्र की शक्ति क्षीण करते जा रहे हैं। ये श्रमिकों की शक्ति का नाश कर रहे हैं, जिसका फल श्रमिकों की वंशपरम्परा पर पड़ता जा रहा है और इनमें श्रमशक्ति अनुदिन क्षीण होती जा रही है। सन्तान पर माता-पिता और परिस्थिति का कितना प्रभाव पड़ता है, यह हमसे छिपा नहीं। इसलिए किसी भी रूप में पूँजी पर निर्वाह करनेवाले लोग राष्ट्र की श्रमशक्ति का अपहरण कर देश के विनाश की तैयारी कर रहे हैं। ये यह भी नहीं विचारते कि इन्हें इन्हीं दरिद्रों के समाज में रहना है; यदि इन श्रमिकों में भोजन की कमी से कोई संक्रामक रोग फैले तो वह इन्हें भी साथ लेता जायगा। स्वार्थ की आँधी में इनकी आँखें बन्द हैं। इनसे राष्ट्र के हित की क्या आशा की जाय।

अच्छा तो इनके आक्षेप ये हैं—

१—निजी जायदाद की प्रथा हटा देने पर आदमी किसी चीज़ को अपनी नहीं समझेंगे, और चूँकि वैयक्तिक लाभ का स्थान नहीं रहेगा, इसलिए आलसी हो जायँगे।

२—यह प्रकृति के प्रतिकूल है; क्योंकि मनुष्यों में प्रतिभा और शक्तियाँ न्यूनाधिक होती हैं।

३—यह ईश्वर के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता, इस कारण यह हमारी संस्कृति के विरुद्ध है।

पर ये आक्षेप निराधार हैं। क्योंकि—

(१) एक ऐसे समाज में, जिसमें हम पले हैं, ऐसा सोचना ठीक है कि लोग किसी चीज़ को अपनी नहीं समझेंगे और चूँकि वैयक्तिक लाभ का स्थान नहीं है, इसलिए आलसी हो जायँगे। ऐसा हम इसलिए सोचते हैं कि आधुनिक समाज वैयक्तिक लाभ को प्रोत्साहित करता है। जब समाज श्रम को बड़ा स्थान देगा तो वैयक्तिक लाभ का प्रश्न समाप्त हो जायगा। यदि श्रम में प्रतिष्ठा और यश की प्राप्ति होगी तो लोग अधिक प्रतिष्ठा और यश पाने की लालसा में आलसी न बनेंगे। इसके अतिरिक्त आज तक जितने महान् व्यक्ति हुए हैं; किसी ने धन की लिप्सा से काम नहीं किया; उन्हें यश की कामना थी, उनमें सेवा का भाव था। वैज्ञानिकों को अपने अन्वेषणों से सिवा यश के और क्या मिला! उनकी कृतियों से तो पूँजीपतियों ने ही लाभ उठाया। यह तो समाज के हाथ में है, चाहे वह सोने का मूल्य बढ़ा दे, अथवा श्रम का स्थान ऊँचा कर दे। परिवार में सभी व्यक्तियों का परिश्रम समान नहीं होता। फिर जिस भावना से एक परिवार के सभी व्यक्ति एक ही सा जीवन बिताते हैं, उसी प्रकार समाजवाद में यह पारिवारिक घेरा बढ़कर समाज में चला जाता है। तब हमारी 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की उक्ति सार्थक होगी। हाँ, कुछ ऐसे लोग होंगे, जो स्वभावतः आलसी होंगे। आधुनिक समाज में भी ऐसे लोग हैं, पर तब आजकल की तरह उन्हें तकलीफ़ न सहने दी जायगी, उन्हें निष्क्रिय जीवन भी बिताने न दिया जायगा, वरन् अनिच्छित रहने पर भी उनसे काम लिया जायगा।

(२) अब दूसरे आक्षेप का खोखलापन देखिए। यह सत्य है कि भिन्न-भिन्न मनुष्यों में भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं, पर शक्ति भिन्न होने के कारण समाजवादी प्राणों का मोल भिन्न-भिन्न नहीं करते। एक वैज्ञानिक और एक मज़दूर की शक्तियों में विभिन्नता क़बूल करते हैं; पर उनकी जान का मूल्य वे समान लगाते हैं। दूसरी बात यह है कि वे प्रतिभा से इनकार नहीं करते, बल्कि उनका कहना है कि कितनी प्रतिभाएँ परिस्थिति से विवश होकर अज्ञात विलीन हो जाती हैं। आधुनिक समाज ऐसे व्यक्तियों के लिए विकास का दरवाज़ा रोककर संसार का महान् अपकार कर रहा है। इसलिए समाज की ऐसी व्यवस्था आवश्यक है कि प्रत्येक व्यक्ति के विकास का मार्ग खुल जाय। न जाने कितने मनोहर सुकुमार कुसुमों को रेतीली वायु के झोंकों से झुलसते देखकर टामस ग्रे ने कहा था—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"Full many a gem of purest ray serene
The dark unfathomed caves of ocean bear;
Full many a flower is born to blush unseen,
And waste its sweetness on the desert air."

(३) तीसरा आक्षेप कि समाजवाद ईश्वर के अस्तित्व को क़बूल नहीं करता और हमारे चिर-अर्जित ज्ञान का विनाश करना चाहता है, निराधार है। इसके सम्बन्ध में पहले चर्चा की जा चुकी है। हिन्दुस्तान में बोलशेविज़्म की नक़ल करने की आवश्यकता नहीं है। समाजवादी अंधविश्वासी नहीं होते। वे तो उन सारी बातों को बनाये रखना चाहते हैं, जिसमें वे समाज का कल्याण देखते हैं। उनका उद्देश्य तो ग़रीबों पर होनेवाले अन्यायों का दमन करना है और सबको अपना असली हक़ दिलाना है। जो सारे मनुष्यमात्र के साथ समता का व्यवहार चाहता है, जो मनुष्य पर मनुष्य द्वारा किये जानेवाले अत्याचार को निर्मूल करना चाहता है, जो सबको सुखी और शिक्षित देखना चाहता है, जो सबके विकास का मार्ग खोलना चाहता है, जो वर्तमान वैषम्य को दूरकर सुख और शान्ति की स्थापना करना चाहता है, वह समाज अनीश्वरवादी क्योंकर कहा जा सकता है। ईश्वर के अस्तित्व को अस्वीकार करने के बदले यह कहना विशेष उपयुक्त होगा कि यह वेदान्तधर्म के अनुकूल है। देखिए ये उपनिषद् वाक्य—

"सोऽकामयत। बहुस्यां प्रजायेयेति। स तपोऽतप्यत। स तपस्तप्त्वा इदꣳ सर्वं असजत यदिदं किंच। तत्सृष्ट्वा तदेवानुप्राविशत। (तै० ३०—२।६।१)"

अर्थात्—उस परमात्मा ने कामना की कि "मैं बहुत हो जाऊँ, अर्थात् मैं उत्पन्न हो जाऊँ।" अतः उसने तप किया। उसने तप करके ही यह सब जो कुछ है, इसकी रचना की। इसे रचकर इसी में अनुप्रविष्ट हो गया।

ॐ ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
(ईशा० उ०—१)

अर्थात्—जगत् में जो कुछ स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर के द्वारा आच्छादनीय है। (अर्थात् उसे भगवत्स्वरूप अनुभव करना चाहिए।)

यदि उपर्युक्त उक्ति में हमें विश्वास है, तो हम सारे प्राणियों में उसी एक ईश्वर को पावेंगे। इस प्रकार जब सबमें एक ही ब्रह्म भिन्न-भिन्न रूपों में वर्तमान है तो वैषम्य का स्थान क्यों रहेगा ? तब तो हमें कहना होगा कि यह हमारा अज्ञान है, जो हमें वैषम्य के गर्त में डाले हुए है। यदि हम दूसरों के श्रम से आप लाभ उठाते हैं तो हम अपने साथ अन्याय करते हैं। यदि हम ईश्वर की सत्ता में विश्वास रखते हैं और उसके अतिरिक्त और किसी का अस्तित्व नहीं मानते तो हमें उपनिषद् का यह मन्त्र सदा जपना ही चाहिए—

ॐ ईशावास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥
(ईशा० उ०—१)

अर्थात्—जगत् में जो कुछ स्थावर-जंगम संसार है, वह सब ईश्वर द्वारा आच्छादनीय है (अर्थात् उसे भगवत्स्वरूप अनुभव करना चाहिए)। उसी के दिये हुए से तू अपना पालन कर ; किसी के धन की इच्छा न कर।

समाजवाद को कर्मफल के सिद्धान्त से भी विरोध नहीं। प्रकृति हमसे काम कराती है और जो जैसा करता है, प्रकृति के नियम के अनुकूल उसे फल मिल जाता है। ईश्वर किसी को कर्मफल नहीं देता ; क्योंकि उसमें कभी विक्षेप नहीं होता। कर्म प्रकृतिजन्य है और उसी में इसका लय होता है। कर्मफल ग्रहण करनेवाला चित्त है। चित्त में जब तक अज्ञान है, तभी तक यह सुख-दुःख ग्रहण करता है। चित्त जब ईश्वर का साक्षात्कार करता है, तब इसका नाश हो जाता है; फिर कर्मफल ग्रहण करे तो कौन ? इसी लिए वेदान्त ने कर्मफल अज्ञानियों के लिए बताया है, ज्ञानियों के लिए नहीं। इसलिए धनी-ग़रीब का विभाजन ईश्वर-प्रदत्त आशीर्वाद अथवा अभिशाप नहीं है। ईश्वर में विक्षेप ही नहीं आता, फिर वह इस झमेले में क्यों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पड़ने लगा। यह हमारी भूल है कि हम धनी-ग़रीब होने का भार ईश्वर पर लादते हैं। सीधा तो यह है कि अब तक हमने वैयक्तिक रूप से काम किया और वैयक्तिक फल पाया। आर्थिक मामलों में हमने वैयक्तिक काम किया; फलस्वरूप प्रतिभावान्, धूर्त धनी हो गये और सीधे-सादे मूर्ख लोग ग़रीब हो गये। हम जिस दिन कर्मफल के सिद्धान्त को जिस हद तक सामूहिक रूप दे देंगे, उसी दिन से उसी हद तक हमें सामूहिक फल भी मिलने लगेगा। प्रयोजन यह कि यदि हम उत्पादन के साधनों को वैयक्तिक सम्पत्ति न समझकर समाज की सम्पत्ति समझें और सामूहिक श्रम करें तो हमें सामूहिक फल मिलेगा और समाज से धनी-ग़रीब का भेद स्वतः दूर हो जायगा।

समाजवाद कोई भयावनी चीज़ नहीं। कोई 'वाद' जो समाज की भलाई की कामना करता है, समाजवाद है। हमें अन्धविश्वास दूर फेंकना चाहिए और लोक-कल्याण जिसमें हो, उसे ही करना चाहिए। यदि हम समझते हैं कि राष्ट्रों का विनाशकारी युद्ध, आपस का यह वैमनस्य, दारिद्र्य का अभिनव आदि सबके लिए हमारी वर्तमान समाज-व्यवस्था दोषी है तो हमारा यह पवित्रतम कर्तव्य है कि हम यथाशीघ्र इसमें आमूल परिवर्तन उपस्थित कर दें।

गर्मियों में व्यवहार करिये

केश-राज

(Regd.)

इसकी मनोहर और स्थायी सुगन्ध से आपका चित्त हर समय प्रसन्न और उत्साहित रहेगा।

इसके व्यवहार से आपके बाल लम्बे, काले और चमकीले होंगे। सिर में तरावट रहेगी।

(केश तेलों का राजा)

स्थानीय हमारे एजेंट से ख़रीदिये

डाबर (डा: एस. के. बर्मन) लि:

विभाग नं० १३१ पोष्ट बक्स ५५४, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जर्मन-साम्राज्यवाद

श्रीकान्त एम्० ए०

सन् १८७६ में जर्मनी के सुविख्यात प्रधान मंत्री बिस्मार्क ने कहा था—"मैं उपनिवेशों को बिलकुल चाहता ही नहीं हूँ। उनकी एकमात्र उपयोगिता केवल कार्यहीन पदों का क्षेत्र बनाना है।" इसलिए उसने जर्मन-उपनिवेशों की स्थापना की ओर कोई ध्यान नहीं दिया। वह उपनिवेशों के प्रश्न को केवल दूसरे योरपीय राष्ट्रों में वैर पैदा कराने का एक सुगम साधन समझता था। अतः वह जर्मन-उपनिवेश निर्माण करने के स्थान पर यही प्रयत्न करता रहा कि फ्रांस और ब्रिटेन के विद्वेषी भावों को बढ़ावे और औपनिवेशिक प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर उनको एक दूसरे का शत्रु बना दे। इस प्रकार वह जर्मनी की योरपीय प्रधानता को स्थायी और अक्षुण्ण बनाने का प्रयत्न करता रहा।

लेकिन जर्मनी का युवक-दल इस नीति के विरुद्ध था। इन लोगों की इच्छा बड़े से बड़ा विश्व-साम्राज्य स्थापित करने की थी। उनकी धारणा थी कि प्रत्येक राज्य का यह धर्म है कि अपनी शक्ति में वृद्धि करे और इस कर्तव्य की पूर्ति में अन्य बातों की परवा न करे। इस नीति का प्रबल समर्थक ट्रीट्सके था। उसके विचारों का प्रभाव इस समय जर्मन-जनता पर बहुत अधिक पड़ रहा था। इस नीति के अनुसार जर्मनी का उद्देश्य केवल व्यापारिक या व्यावसायिक हित सम्पादन के लिए उपनिवेशों का प्राप्त करना नहीं था, वरन् उनकी प्राप्ति द्वारा एकाधिकार स्थापित करके दूसरे प्रतिद्वंद्वी राष्ट्रों को अशक्त और आश्रित बनाना था। ऐसी ही विचार-धारा फ्रांस और कुछ हद तक ब्रिटेन में भी प्रभावशाली थी, लेकिन जर्मनी में इसका सबसे अधिक प्रभाव पड़ा।

दूसरे, इस युग में योरप के अधिकांश राष्ट्रों की नीति दूसरे देशों के विरुद्ध चुंगी की दीवारें खड़ी करने की थी। वे चाहते थे कि अपने देश का ऐसा व्यावसायिक संगठन करें कि उन्हें किसी दूसरे राष्ट्र पर किसी आवश्यक पदार्थ के लिए आश्रित न रहना पड़े। जर्मनी में भी इस विचार के लोग थे। वे लोग अपने कारख़ानों के लिए कच्चा माल, अपने देश-वासियों के लिए भोजन और अपने निर्यात व्यापार के लिए बाज़ार प्राप्त करने के लिए उपनिवेश-निर्माण करना चाहते थे।

तीसरे, इस काल में प्रायः सभी राष्ट्र उपनिवेशों को सैनिक दृष्टि से भी आवश्यक समझते थे। उपनिवेश न होने पर उनकी जन-वृद्धि से पीड़ित जनता दूसरे देशों में चली जाती थी और इस प्रकार हमेशा के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपनी मातृभूमि से अलग हो जाती थी। उपनिवेशों में बसाकर ये लोग राष्ट्र की सेवा के लिए अक्षत रक्खे जा सकते थे। दूसरे, बहुधा इस काल में किसी राष्ट्र की शक्ति उसके सैनिक बल के परिमाण के आधार पर आती जाती थी। उपनिवेश होने पर ग़ैर-योरपियन लोगों को कमख़र्च पर योरप के ढंग की शिक्षा देकर सैनिक शक्ति बढ़ाई जा सकती थी। जर्मनी ने इस विचार-धारा से प्रभावित होकर भी उपनिवेश प्राप्त करना चाहे, क्योंकि फ़्रांस अपने उपनिवेशों में ऐसी सेनाओं का निर्माण कर रहा था। अतः जर्मनी ने भी इसे आवश्यक समझा।

चौथे, जर्मन-राष्ट्र समझता था कि यद्यपि वह योरप में प्रधान था, लेकिन उसकी शक्ति तभी स्थायी हो सकेगी, जब दूसरे देशों की भाँति वह भी साम्राज्य का स्वामी हो। अतः केवल सम्मान बढ़ाने की दृष्टि से भी उपनिवेशों का प्राप्त करना आवश्यक प्रतीत होने लगा।

इस प्रकार जर्मनी ने यह दिखावा नहीं किया कि वह सभ्यता फैलाने के लिए उपनिवेशों को प्राप्त करना चाहता है। उसका उद्देश्य विशुद्ध साम्राज्यवादी भावनाओं की स्वार्थपूर्ण पूर्ति के लिए उपनिवेश प्राप्त करना था। लेकिन एक बार जब उन्होंने इस नीति को ग्रहण कर लिया तो उन्होंने इसे सफल बनाने के लिए घोर प्रयत्न किया और जर्मन-साम्राज्य विद्युत्-गति से बढ़ने लगा :

सन् १८८४ में बिस्मार्क को अपनी नीति के विरुद्ध उपनिवेशों को प्राप्त करने की चेष्टा करनी पड़ी। सन् १८९० में उसके पतन के पश्चात् इस नीति में और तबदीली हुई। अब क़ैसर विलियम द्वितीय और उसके मंत्रियों के लिए उपनिवेश-प्राप्ति सर्वोच्च ध्येय हो गया। लेकिन इस काल तक अधिकतर भूभाग किसी न किसी राष्ट्र के अधिकार में आ चुका था। इसलिए जर्मनी को वृहत् साम्राज्य-निर्माण करने के लिए बल का प्रयोग करना आवश्यक प्रतीत हुआ। इसी कारण महायुद्ध हुआ।

सन् १८८४ और १९१४ के बीच में जर्मनी ने निम्नांकित उपनिवेश प्राप्त किये—

(१) आफ़्रिका में—(i) टोगोलैण्ड—१८८४
(ii) कैमरून—१८८४-१९११
(iii) जर्मन दक्षिण-पश्चिम आफ़्रिका—१८८४-१८९०
(iv) जर्मन पूर्वी आफ़्रिका—१८८५

(२) चीन में क़ियाओचाऊ का बंदरगाह—१८९७

(३) प्रशान्त महासागर में—
(i) बिस्मार्क द्वीपसमूह
(ii) न्यूगिनी का उत्तरी पूर्वी चतुर्थांश
(iii) मार्शलद्वीपशिया (छोटे-छोटे द्वीप)
(iv) समोआ

जर्मनी इन उपनिवेशों से संतुष्ट नहीं हो सकता था; क्योंकि उसकी इच्छा विश्वव्यापी शक्ति की स्थापना थी। ट्रीट्सके और उसके अनुयायियों ने अपनी पुस्तकों तथा अपने लेखों में बराबर ज़ोर दिया कि ब्रिटेन ने अपना विश्व-व्यापी साम्राज्य कूटनीति द्वारा प्राप्त किया है। वह शक्ति-संतुलन की चाल द्वारा योरप के राष्ट्रों को आपस में लड़ाता रहा और उसी काल में यह साम्राज्य प्राप्त कर लिया। लेकिन ब्रिटेन इस साम्राज्य की रक्षा करने के लिए असमर्थ है। प्रथम प्रबल प्रहार ही उसका नाश कर देगा; क्योंकि उसका साम्राज्य सुव्यवस्थित या सुसंगठित नहीं है और आर्थिक शोषण की नीति के कारण जनता में असंतोष है। इन निर्बलताओं से लाभ उठाकर जर्मन-प्रभाव और साम्राज्य सुगमता से बढ़ाया जा सकता है। इस विचार-धारा से प्रभावित होकर क़ैसर ने अपनी शक्ति बढ़ाना प्रारम्भ की और कई एक योजनाएँ तैयार की गईं। उनमें निम्न मुख्य हैं—

(१) टर्की को अपने प्रभाव-क्षेत्र में लाना और धीरे-धीरे उसका साम्राज्य प्राप्त कर लेना। जर्मनी ने इस उद्देश्य से टर्की से व्यापारिक संबंध बढ़ाया। जर्मन-सैनिकों ने उसकी सेना और शासन-प्रणाली का संगठन किया। जर्मनी ने रेलवे कंपनियों के ऊपर फ़्रांस और ब्रिटेन का प्रभाव नष्ट कर दिया और स्वयम् एकाधिकार प्राप्त किया। जर्मनी और टर्की के सम्पर्क को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घनिष्ठतर बनाने के लिए उसने बर्लिन-बग़दाद रेलवे निर्माण की।

(२) हालैण्ड के निवासियों को जर्मन जाति का बताया गया और इस नाते उसके साम्राज्य को और उसे जर्मन-साम्राज्य के अंतर्गत लाने का निश्चय किया गया। इस नीति के अनुसार डच लोगों के सहायक और संरक्षक बनने का प्रयत्न करते हुए जर्मनी ने ट्रांसवाल में प्रेसीडेण्ट क्रूजर को ब्रिटेन के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया। लेकिन अँगरेज़ी जहाज़ी बेड़े की शक्ति के कारण वह ऐसा नहीं कर सका।

(३) आफ़्रिका के उपनिवेशों के आसपासवाले अन्य राष्ट्रों के उपनिवेशों को प्राप्त करने के लिए उसने अपने उपनिवेशों में सैनिक संगठन, और उनमें असंतोष फैलाने का प्रयत्न किया।

(४) दक्षिण अमेरिका में ब्राज़िल के कुछ भाग को जर्मन-साम्राज्य के अंतर्गत लाने का प्रयत्न किया गया और मध्य अमेरिका में भी इस नीति के अनुसार कार्य करने की चेष्टा की गई, लेकिन संयुक्तराज्य अमेरिका की 'मनरो डाक्ट्रिन' और ब्रिटेन के जहाज़ी बेड़े की शक्ति ने इसे भी पूरा न होने दिया।

(५) क्रियाओचाऊ लेने के पश्चात् चीन के अशक्त साम्राज्य में से कुछ भाग जर्मनी के अंतर्गत लाने की इच्छा जापान-ब्रिटेन-संधि (१९०२) ने पूरी न होने दी।

इस प्रकार टर्कीवाली योजना के अतिरिक्त प्रायः सभी योजनाएँ असफल होती दिखाई पड़ीं। उनकी सफलता के लिए दो बातों की आवश्यकता थी—ब्रिटेन से लोहा लेने योग्य एक सशक्त जहाज़ी बेड़ा और एक सफल युद्ध। जर्मनी साम्राज्य-प्राप्ति के लिए यह दोनों ही कार्य करने को तैयार था। उसे भय था कि यदि उसका साम्राज्य विस्तीर्ण न हुआ तो पुर्तगाल, हालैण्ड, बेलजियम की भाँति उसे भी ब्रिटेन, रूस, फ़्रांस आदि की अपेक्षा छोटे दर्जे का राष्ट्र रहना पड़ेगा। उसका असन्तोष अपने साम्राज्य की न्यूनता और उनके साम्राज्य के अतुल विस्तार के कारण उभड़ा और अपनी शक्ति पर विश्वास होने के कारण उबल पड़ा। १९१४ में दूसरे प्रमुख राष्ट्रों के साम्राज्य की सीमा के आँकड़ों से इस असन्तोष का कारण स्पष्ट हो जाता है। वे इस प्रकार हैं—

(१) ब्रिटेन—एक करोड़ बीस लाख वर्गमील,
(२) रूस—पचासी लाख वर्गमील,
(३) फ़्रांस—पचास लाख वर्गमील,
(४) संयुक्तराज्य—तीस लाख वर्गमील और
(५) जर्मनी पन्द्रह लाख वर्गमील।

इस असन्तोष के बढ़ते रहने पर भी मि० जोज़ेफ़ चेम्बरलेन सन् १८९८ तक जर्मनी, ब्रिटेन और संयुक्तराज्य के संघ द्वारा विश्व-शांति की रक्षा करने की नीति का प्रतिपादन कर रहे थे। लेकिन १९०० के बाद जब जर्मनी ने अपना जहाज़ी बेड़ा बढ़ाना प्रारम्भ किया, उसकी योजनाओं का पता चला, और क़ैसर की शान्तिप्रियता का आधार जर्मन-महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति मालूम हुई, तो महायुद्ध की तैयारी होने लगी।

महायुद्ध में जर्मनी, आस्ट्रिया-हंगरी, टर्की और बलगेरिया का गुट, ब्रिटेन, फ़्रांस, रूस तथा सर्विया और बाद में इटली, जापान, संयुक्तराज्य तथा योरप के तमाम छोटे-छोटे राज्यों के गुट के विरुद्ध पराजित हुआ। साम्राज्यवादी विचारों के प्रेरक और पोषक निर्वासित तथा अपमानित हुए। जर्मनी का साम्राज्य उससे छीन लिया गया और राष्ट्रसंघ की अध्यक्षता में उसका बन्दरबाँट कर लिया गया; क्योंकि जर्मनी को उपनिवेशों पर उचित शासन करने के लिए अयोग्य बताया गया।

इस अयोग्यता को प्रमाणित करने के लिए बहुत-सी बातें कही गईं। जर्मनी ने अपने उपनिवेशों के निवासियों के रीति-रवाजों, अधिकारों तथा मनोभावों को बर्बरतापूर्वक कुचलते हुए उनको जर्मन ढंग के कड़े शासन-संगठन के अन्तर्गत रखने का प्रयत्न किया। इसके पक्ष में कैमरून्स में २५ वर्ष के भीतर ४६ विद्रोहों, दक्षिणी-पश्चिमी आफ़्रिका के विद्रोहों और पूर्वी आफ़्रिका के हेरेरोज़ (Hereros) पर किये हुए अत्याचारों का वर्णन किया गया * । इसके अलावा

* Governor, General Von Trotha का १९०४ का वक्तव्य—"हेरेरो लोगों को निश्चय हुए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह भी कहा गया कि जर्मन-राष्ट्र में उपनिवेशों को उन्नत बनाने की क्षमता का अभाव है ; क्योंकि केवल १८००० जर्मन उपनिवेशों में गये थे और वह भी राज्य की ओर से बहुत अधिक प्रोत्साहन देने पर । तीसरे, यह भी कहा गया कि यदि वे उपनिवेश उनके पास रहेंगे तो वह फिर उनको सैनिक अड्डे बनाने का प्रयत्न करेगा, न कि व्यावसायिक हित के सफल साधन ।

जर्मन-साम्राज्य का यह अपमानजनक अंत जर्मन-राष्ट्र ने परिस्थितियों से विवश होकर सहन किया । उसने प्रेसीडेण्ट विलसन की १४ शर्तों का हवाला देकर अपने उपनिवेशों को अपने अधिकार में रखने की माँग पेश की, लेकिन प्रतिहिंसा की ज्वाला और विजयोन्माद के कारण मित्रराष्ट्रों ने स्वार्थसिद्ध का अवसर देखकर इस पर ध्यान ही नहीं दिया ।

उन्होंने जर्मनी की शक्ति को सदा के लिए कम करने के अभिप्राय से उसके ऊपर महाकाय हरजाने की रक़म लाद दी और उसकी सैनिक शक्ति नगण्य कर दी । साथ ही उसके योरपीय राज्य में से भी चारों ओर टुकड़े काट लिये गये और उसके पड़ोसी राष्ट्रों को दे दिये गये या उन्हें स्वतन्त्र कर दिया गया । कुछ भागों को शस्त्रहीन रखने की शर्त लगा दी गई । इस प्रकार निम्नांकित मुख्य तबदीलियाँ हुईं—

(१) फ्रांस को अलसेस लोरेन का प्रान्त, जो जर्मनी ने सन् १८७१ में उससे छीन लिया था, वापस दे दिया गया । उसकी कोयले की खानों की क्षति की पूर्ति के लिए उसे सार प्रदेश १५ वर्ष के लिए दे दिया गया और १५ वर्ष के बाद उसका जर्मनी या फ्रांस में मिलना उसकी जनता के वोटों पर निर्भर किया गया ।

(२) बेल्जियम को यूपेन और मलमेडी प्रान्त मिले ।

(३) पोलैण्ड एक नई रियासत बनी और उसे गैलीशिया प्रान्त तथा दूसरा भाग, जो जर्मनी ने १८वीं सदी में पोलैण्ड से छीना था, दे दिया गया । जर्मन नगर डैंज़िग को स्वतन्त्र बन्दरगाह बना दिया गया और पोलैण्ड को उसके प्रयोग का अधिकार दिया गया। Polish Corridor द्वारा पूर्वी प्रशन को अवशेष जर्मनी से अलग कर दिया गया ।

(४) डेन्मार्क को उत्तरी श्लेसविग मिला ।

(५) मेमेल प्रान्त स्वाधीन कर दिया गया और लिथुआनिया को उसके प्रयोग का अधिकार दिया गया ।

(६) हेलिगोलैण्ड और राइनलैण्ड को अशस्त्र कर दिया गया ।

इन धाराओं से भी संधि के सूत्रधारों की अदूरदर्शिता स्पष्ट प्रकट होती है । जर्मन राष्ट्र ने एक ज़ोरदार माँग पेश की कि जिस प्रकार दूसरे लोगों को यह निश्चय करने का अधिकार दिया गया है कि वे किस राज्य के अन्तर्गत रहेंगे, उसी प्रकार इन प्रदेशों को भी जनता के मत-प्रकाशन के आधार पर ही जर्मनी से अलग करना चाहिए । उसने नवनिर्मित आस्ट्रिया और ज़ेकोस्लोवाकिया के सुडेटन जर्मन प्रान्त की जनता का मत जर्मनी से मिलने के प्रश्न पर लेने की अपील की । लेकिन यह भी अस्वीकृत हुई ।

१९१९-१९३४ के काल में जर्मनी ने बहुत कष्ट सहे, लेकिन उसने धैर्य का परित्याग नहीं किया । हिटलर की अध्यक्षता में नाज़ीदल का संगठन हुआ, जो कि १९२०-१९३३ के तेरह वर्ष के अल्प-काल में इतना सशक्त हो गया कि जनवरी १९३३ में हिटलर जर्मनी का प्रधान मन्त्री नियुक्त हुआ और प्रेसीडेण्ट हिंडेनबर्ग की मृत्यु के पश्चात् वह प्रेसीडेण्ट भी हो गया । इस प्रकार उसने नाज़ी तानाशाही की स्थापना की ।

नाज़ी साम्राज्यवादी नीति बहुत अंशों में क़ैसर विलियम द्वितीय की साम्राज्यवादी नीति से मिलती है और कुछ अंशों में भिन्न भी है । इसके प्रधान अंग दो हैं ।

भूभाग को छोड़ देना पड़ेगा । जर्मन-राज्य की सीमा के अन्दर प्रत्येक हेरेरो, चाहे वह सशस्त्र हो चाहे अशस्त्र, चाहे पशु आदि का स्वामी हो चाहे पशु-हीन, गोली से मार दिया जायगा । मैं स्त्रियों या बच्चों को अब अपनी शरण में न लूँगा, वरन् उन्हें उनके सम्बन्धियों के पास वापस भगा दूँगा या उन पर गोली चलने दूँगा ।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाज़ी जर्मनी अपने पुराने उपनिवेशों को वापस चाहता है। उसका कहना है कि विलसन की शर्तों को तोड़कर उनके उपनिवेशों को छीन लेना बहुत ही अनुचित कार्य था। उन्हें वापस कर देना ही उचित और न्यायसंगत है। अन्यथा जर्मन-रीश उन्हें प्राप्त करने के लिए ऐसे साधनों का अवलम्बन करेगी, जिनके द्वारा उसकी न्यायपूर्ण माँग पूरी हो सके और उसका उत्तरदायित्व वर्तमान न्यायविरुद्ध अधिकारियों के ऊपर हो। वह उपनिवेश केवल इसी लिए वापस नहीं चाहती कि वे १९१९ तक उसके अधिकार में थे। वह इसके लिए और भी दलीलें पेश करती है।

हालैण्ड, बेल्जियम, पुर्तगाल आदि छोटे-छोटे राष्ट्रों के पास उपनिवेश होते हुए जर्मनी का उनका स्वामी न होना उसकी सरकार को असह्य अपमान प्रतीत होता है। दूसरे, हिटलर कहता है कि उसके बने हुए माल की खपत विदेशों में होना उसकी स्थिति के लिए अनिवार्य है। फ्रांस, ब्रिटेन तथा संयुक्त-राज्य ने ऐसी नीति का अनुसरण किया है, जिसके कारण उसका व्यापार स्वतंत्रतापूर्वक नहीं बढ़ पाता। वे उसकी औद्योगिक और व्यावसायिक उन्नति का गला घोंटने के लिए उसे चारों ओर से घेरना चाहते हैं। इस जाल से बचने के लिए उसके पास उपनिवेश अवश्य होने चाहिए। तीसरे, जर्मनी की आबादी बढ़ रही है और यहूदियों को निकालने के बाद भी उसके अंदर सब जर्मनों के रहने भर के लिए स्थान नहीं है। महायुद्ध के पहले उसके नागरिक अमेरिका तथा दूसरे देशों में जाकर बस जाते थे। इसी कारण उस समय अधिक जर्मन उपनिवेशों में नहीं गये। लेकिन अब दूसरे देश जर्मनों को बसने नहीं देते। इसलिए उनके रहने के लिए उपनिवेशों का होना आवश्यक है। चौथे, दूसरों देशों का यह भय कि जर्मनी अपने उपनिवेशों को पाकर उन्हें सैनिक अड्डे बनाकर फिर विश्व-शान्ति को भंग करने का प्रयत्न करेगा, सर्वथा निर्मूल है; क्योंकि यद्यपि जर्मनी का यह विश्वास है कि युद्ध का अंत होते ही मानव-सभ्यता का पतन प्रारम्भ होगा, लेकिन इस समय उसकी नीति शान्ति की है और वह २५ वर्ष के लिए Non-agression Pact करने को तैयार था; लेकिन फ्रांस और ब्रिटेन ने उसे स्वीकार नहीं किया। पाँचवें, जर्मनी के उपनिवेशों को जब्त करने की वजह चूँकि उसकी अयोग्यता बताई गई थी, इसलिए उनका वापस लेना उसके राष्ट्रीय सम्मान के लिए आवश्यक है। छठे, यह कहना कि जर्मनी को उनसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा; क्योंकि १९१४ तक उसे लाभ के स्थान पर १० करोड़ पौण्ड का घाटा हुआ था, बिलकुल लचर दलील है। यदि उपनिवेश लाभदायक नहीं हैं, तो दूसरे ही उन्हें क्यों लिये हुए हैं। जर्मनी को उस काल में घाटा इसलिए हुआ था कि उसने दूसरे राष्ट्रों की भाँति केवल बनियागीरी की दृष्टि से काम न करके उपनिवेशों को शीघ्रातिशीघ्र वैज्ञानिक साधनों द्वारा उन्नत बनाने का श्लाघ्य प्रयत्न किया था। उन साधनों का लाभ दूसरों ने उठाया और उठा रहे हैं। इस प्रकार नाज़ीदल का दावा है कि उनके उपनिवेश उन्हें अवश्य मिल जाना चाहिए; क्योंकि जो लोग उन्हें लिये हुए हैं, उनको इसका कोई अधिकार नहीं है और जर्मनी की आवश्यकताओं की पूर्ति उनके बिना नहीं हो सकती।

दूसरे, वे बिस्मार्क और क़ैसर विलियम द्वितीय की भाँति मध्य-योरप तथा बाल्कन राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं। जर्मनी को विश्व-राष्ट्र बनाने की योजना हिटलर की पुस्तक 'मेरा युद्ध' में रक्खी गई है। इसके लिए उसने कई सीढ़ियाँ रक्खी हैं। पहली सीढ़ी जर्मन-राष्ट्र को तानाशाही शासन द्वारा सशक्त बनाना है और इस नवसंगठित शक्ति के आधार पर वार्साई-संधि की जर्मनीविरोधी धाराओं को नष्ट करना है। दूसरी सीढ़ी योरप-स्थित जर्मन-प्रदेशों का जर्मन-रीश के अंतर्गत लाना है *। तीसरी सीढ़ी

* ये प्रदेश निम्नलिखित हैं—

(१) आस्ट्रिया, (२) हालैण्ड, (३) सुडेटन प्रान्त, (४) मेमेल, डैंज़िका और उनके पास की भूमि, (५) यूनेन और मलमेडी, (६) उत्तरी श्लेसविग, (७) 'पोलिशकारी डोर', (८) हंगेरी और रूमानिया का जर्मन प्रधान भाग, (९) अलसेस और लोरेन, (१०) स्विट्ज़रलैण्ड का ½ भाग और (११) इटली का उत्तरी-पूर्वी जर्मन प्रधान भाग।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रूमानिया के तेल और अन्न तथा खनिज पदार्थ, यूक्रेन के खनिज पदार्थ और अनाज, तथा स्कैण्डीनेविया के कच्चे लोहे पर एकाधिकार स्थापित करना है। चौथी सीढ़ी फ्रांस को द्वितीय श्रेणी के राष्ट्र में परिणत करके १९१९ की हार का बदला लेते हुए योरप में अपने को सबसे सशक्त बनाना है।

पाँचवीं सीढ़ी जापान से मिलकर रूस को अशक्त करना है। छठी सीढ़ी ब्रिटिश-साम्राज्य की क़ब्र खोदते हुए उसकी व्यापारिक तथा सैनिक महत्ता को नष्ट करना है। अंतिम सीढ़ी दक्षिणी और मध्य अमेरिका में अपना प्रभाव बढ़ाते हुए संयुक्त-राज्य की शक्ति को कम करके नई दुनिया में अपना प्रभुत्व स्थापित करना है।

इस महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए एक विशिष्ट नीति निर्धारित की गई है। जर्मनी की हवाई शक्ति इतनी बढ़ा दी गई है कि शायद सिवा रूस के और कोई भी राष्ट्र उसकी समता न कर सके। जर्मन-कारख़ाने लगभग १२०० हवाई जहाज़ प्रतिमास बनाते हैं। रूस १२५० प्रतिमास बना सकता है। दोनों ही इसमें और वृद्धि कर रहे हैं। नव-शक्ति को बढ़ाने के अभिप्राय से विनाशक-विभाग की ओर विशेष ध्यान दिया गया है; क्योंकि जर्मनी की किसी विस्तृत साम्राज्य की रक्षा तो करना नहीं, उसे केवल अपने विरोधियों के साम्राज्य-रक्षक जहाज़ों को नष्ट करना है। वह अब ब्रिटेन के बराबर पनडुब्बी नावें बना रहा है। घातक गैसों के निर्माण में भी बहुत उन्नति की गई है। अपनी सीमा को अभेद्य बनाने के लिए बड़ी मज़बूत क़िलेबंदी की गई है और सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता के लिए सैनिक शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है। इस प्रकार उसकी सैनिक शक्ति बहुत बढ़ गई है।

आइसलैण्ड में उसके इंजीनियरों ने हवाई अड्डे बनाना आरम्भ किये हैं और स्पेनीय मोरक्को तथा स्पेन के बंदरगाहों के निकट जर्मन-हवाई अड्डे बन चुके हैं। इन स्थानों से ब्रिटेन, अमेरिका तथा फ्रांस के जल-मार्गों को सुगमता से रोका जा सकता है और उनको भारी क्षति पहुँचाई जा सकती है।

अपने भावी विपक्षियों की शक्ति को कम करने के लिए उसने 'सार्वभौमिक रक्षा' की नीति का उपहास करके दो-दो राष्ट्रों के बीच में अलग-अलग संधि करने की योजना रक्खी है। इस प्रकार अशक्त राष्ट्रों को सबल राष्ट्रों के संरक्षण से वंचित करके उन्हें सुगमता से नाज़ी प्रभाव-क्षेत्र में लाया जा सकता है और फिर उनकी राजनीतिक स्वतंत्रता अपहरण की जा सकती है।

एक विशिष्ट आर्थिक नीति का अनुसरण किया गया है। जर्मनी दूसरे देशों का कच्चा माल अन्य ख़रीदारों की अपेक्षा अधिक मूल्य पर लेने को तैयार रहता है और जिस माल की उन्हें आवश्यकता होती है, उसे दूसरे राष्ट्रों की अपेक्षा कम दाम पर बेचता है। लेकिन इसमें ख़ास बात यह है कि वह ख़रीदे हुए माल का मूल्य अपने माल के स्वरूप में ही अदा करने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार उसकी औद्योगिक आवश्यकताएँ भी पूरी हो जाती हैं और उसका व्यापार भी बढ़ता जाता है, जिससे कारख़ानों की वृद्धि होती जाती है और बेकारों को रोज़ी का साधन सुगम होता जाता है। इस नीति द्वारा किसी भी राष्ट्र के व्यापार पर एक बार अपना प्रभुत्व स्थापित करके उस पर ऐसा दबाव डालने की योजना है, जिससे वह भविष्य में कभी दूसरे प्रतिद्वंद्वी राष्ट्र से न मिल सके। इसी काल में इस देश के अंदर नाज़ी विचारों को फैलाने का प्रयत्न करना चाहिए और इस नये दल को सब तरीक़ों से गुप्त सहायता देकर प्रबल बनाना चाहिए। फिर उस पर अत्याचार किये जाने का झूठा-सच्चा अपराध लगाकर उसके आमंत्रण के आधार पर उस देश की सरकार को धमकाकर या बलपूर्वक पूर्णतया अपने अधिकार में कर लेना चाहिए।

जो राष्ट्र व्यापारिक चंगुल में न फँसें, उन्हें धमकाना चाहिए और उनकी सरकार के विरुद्ध किसी न किसी को देश के भीतर ही बढ़ावा देना चाहिए और फिर शान्ति तथा दलित वर्गों के अधिकारों के संरक्षक की तरह उस पर आक्रमण करके उसे धीरे-धीरे अपने वश में कर लेना चाहिए।

प्रारम्भिक दशा में ब्रिटेन से मैत्री रखने पर ज़ोर दिया गया है और उसे उदासीन बनाकर छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता अपहरण करके मध्य तथा दक्षिणी-पूर्वी योरप को अपने वश में करने की योजना रक्खी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गई है । सन्धियों को केवल सामयिक सुविधा का साधन बताया गया है। कोई भी संधि किसी समय तोड़ी जा सकती है, यदि ऐसा करने से जर्मन-रीश को लाभ पहुँचने की सम्भावना हो। अपने शत्रुओं को एक-एक करके दबाना चाहिए और मौक़ा पाते ही उन पर इतनी शीघ्रता और वेग के साथ टूट पड़ना चाहिए कि विरोध असम्भव हो जाय। किसी भी राष्ट्र को अपना सच्चा मित्र न समझना चाहिए ; क्योंकि वह किसी न किसी समय जर्मनी के मार्ग में पड़ सकता है । इसलिए किसी भी राष्ट्र की शक्ति बहुत अधिक न बढ़ने देना चाहिए, वरन् दूसरों की स्थिति से लाभ उठाकर अपनी शक्ति बराबर बढ़ाते रहना चाहिए।

पिछले ६ वर्षों में जर्मनी ने इस नीति का बड़ा सतर्कता के साथ पालन किया है । हिटलर ने पहले सभी प्रधान राष्ट्रों से निःशस्त्रीकरण के लिए अपील की, यद्यपि वह जानता था कि इसे कोई स्वीकार नहीं करेगा। उसने कहा कि १९१९ के बाद अकेले जर्मनी का निःशस्त्रीकरण करना अनुचित था। इसलिए यदि वे उसकी प्रथम अपील नहीं मानते, इसलिए वह भी शस्त्रीकरण करने के लिए बाध्य है । उसने अपनी सैनिक शक्ति बहुत तेज़ी से बढ़ा ली। फिर वह राष्ट्र-संघ से भी अलग हो गया । सार प्रान्त उसे वापस मिल गया। उसने राइनप्रदेश में शस्त्रीकरण की ठानी। उसने कहा कि या तो फ़्रांस और बेल्जियम भी अपने राज्य की सीमा का उतना ही भाग निःशस्त्र रक्खे, अन्यथा वह भी राइनप्रदेश को सशस्त्र बनावेगा। इस बार भी उसकी विजय हुई और राइनप्रदेश में उसने अभेद्य क़िलेबन्दी की। इसी प्रकार हेलिगोलैण्ड को भी अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित किया गया।

इसके बाद उसने फ़्रांस की शक्ति कम करने के लिए मुसोलिनी से मैत्री की और अबीसीनिया-विजय के समय उसे परोक्ष सहायता दी। फिर जब १९३५ में फ़्रैंको सोवियट पैक्ट हुआ तो उसने पोलैण्ड को रूस का भय दिखाकर फ़्रांस की ओर से तोड़कर अपनी ओर कर लिया। रूस का बढ़ता हुआ प्रभाव जर्मनी की भावी उन्नति के लिए एक कण्टक था, इसलिए उसने उसके विरुद्ध 'साम्यवाद-विरोधी गुट' की स्थापना की। इस गुट में इस समय इटली, जर्मनी, जापान, मंचूकुओ और हंगेरी हैं। उसने ब्रिटेन को उदासीन रखने के लिए हरबान रिबनट्राप-जैसे योग्य व्यक्ति को जर्मन-दूतावास का अध्यक्ष बनाकर भेजा। इटली की मैत्री को सुदृढ़ बनाने और रूम सागर में अपना प्रभाव बढ़ाने के इरादे से उसने फ़्रैंको को गृहयुद्ध में सहायता दी।

इस काल में जर्मनी के बाहर नाज़ी प्रोपेगैण्डा ख़ूब किया गया और इसका प्रभाव जर्मनों पर ख़ूब डाला गया। उनको जर्मन-रीश में मिलने के लिए प्रोत्साहित किया गया और सहायता का वचन दिया गया। इसका प्रभाव सबसे पहले आस्ट्रिया पर पड़ा ; क्योंकि आस्ट्रिया एक जर्मन-प्रधान छोटी रियासत थी । डा० सीसइनक्वार्ट की अध्यक्षता में नाज़ीदल ने डा० शुशनिग की सरकार के विरुद्ध विद्रोह किया। डा० सीस-इनक्वार्ट ने हिटलर को अपनी सहायता के लिए आमन्त्रित किया और प्रधान मन्त्री की हैसियत से आस्ट्रिया को उसके हाथों में सौंप दिया। यह १३ मार्च, सन् १९३८ की बात है। हिटलर ने हंगेरी को मैत्री का आश्वासन दिया और कहा कि वह उसकी स्वतन्त्रता का सम्मान करेगा।

इसके बाद ज़ेकोस्लोवाकिया-स्थित सुडेटन प्रान्त के जर्मनों को हेरहेनलियन की अध्यक्षता में भड़काया गया। डा० बेंस को फ़्रांस और रूस से सहायता मिलने की आशा थी, इसलिए वह जर्मन-आक्रमण का विरोध करने के लिए तैयार थे। जर्मनी ने अपनी हवाई शक्ति का ख़ूब प्रदर्शन किया और मि० चेम्बरलेन ने अज्ञात राष्ट्र के लोगों के लिए युद्ध करना व्यर्थ समझा। अस्तु, म्यूनिक के स्थान पर उन्होंने फ़्रांस और ज़ेकोस्लोवाकिया को हिटलर की शर्तें मानने के लिए बाध्य किया और इस प्रकार २६ सितम्बर, १९३८ को सुडेटन प्रान्त जर्मनी के अधिकार में आ गया । जर्मनी की सैनिक धमकी की नीति की यह दूसरी विजय थी।

हिटलर ने उपनिवेशों की माँग द्वारा ब्रिटेन और फ़्रांस को घबराहट में डाले रखने का प्रयत्न किया, साथ ही रूस को म्यूनिक के समझौते से अलग रखकर उसको ब्रिटेन और फ़्रांस की ओर से खिन्न कर दिया। अब उसने हालैण्डवालों को एक ही जाति का होने के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कारण रीश के अन्तर्गत लाना चाहा। इसके लिए जर्मन-दूतावास पर जो गोली चलाई गई थी और जिससे केवल एक होटल की खिड़की का एक शीशा टूट गया था, राई का पहाड़ बनाने का प्रयत्न किया गया। हालैण्डवालों ने अपनी रक्षा के लिए तमाम नहरें बनाई हैं, जिनके द्वारा वे अपने देश के कुछ भाग को समुद्र में परिणत करके अपनी रक्षा करेंगे। लेकिन जर्मन-आक्रमण इस कारण नहीं रुका। उसका कारण ब्रिटेन की स्पष्ट घोषणा थी कि वह हालैण्ड की रक्षा अवश्य करेगा।

अतः हिटलर पूर्व की ओर मुड़ गया और उसने हंगेरी, पोलैण्ड, रूमानिया तथा ज़ेकोस्लोवाकिया में अपना प्रभाव बढ़ाने का प्रयत्न किया। हंगेरी से उसका मेल बढ़ा और व्यापारिक सम्बन्ध इतना घनिष्ठ हो गया कि उसने साम्यवाद-विरोधी गुट में आना स्वीकार कर लिया। लेकिन पोलैंड जर्मनी के मंतव्यों का शाकी हो गया और वह फिर फ्रांस की ओर झुकने लगा। उसने रूस के विरुद्ध होने के स्थान पर उससे एक व्यापारिक सन्धि कर ली। इस कारण हिटलर उससे अप्रसन्न हो गया और उसे दबाने का उपाय सोचने लगा। रूमानिया पर भी उसका काफ़ी प्रभाव नहीं बढ़ा।

इन दोनों पर अधिक प्रभाव डालने के लिए और डैन्यूब की तराई के व्यापार को पूर्णतया अपने अधिकार में लाने के लिए हिटलर ने ज़ेकोस्लोवाकिया को नष्ट करने का निश्चय किया। प्राग की सरकार पर डा० कुंड ने जर्मनों पर अत्याचार करने का दोष लगाया और जर्मनी में उसके विरुद्ध ख़ूब प्रोपेगैण्डा किया गया। स्लोवाकिया को स्वतंत्र होने के लिए उकसाया गया। जब प्राग की सरकार ने इस विद्रोह को शान्त करने के लिए स्लोवाकिया की सरकार को बरख़ास्त कर दिया और एक नई सरकार नियुक्त की तो पदच्युत मंत्री जर्मनी आये। १४ मार्च, १९३९ को हिटलर की आज्ञानुसार स्लोवाकिया की पार्लियामेंट की बैठक की गई और उसे अपना भविष्य निश्चित करने का पूर्ण अधिकार दिया गया। उसकी बैठक के पहले ही नई सरकार ने त्यागपत्र दे दिये। पदच्युत प्रधान मंत्री के व्याख्यान के बाद उसने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। डा० हाचा ने हिटलर से समझौता करना आवश्यक समझकर बर्लिन के लिए प्रस्थान किया। जब वह मार्ग में थे, उसी समय जर्मन-फ़ौजें तीन नगरों में पहुँच गईं। डा० हाचा को जर्मन-संरक्षण स्वीकार करने पर विवश किया गया और १५ मार्च को प्राग में जर्मन-फ़ौजों ने अपना अधिकार कर लिया। मोरेविया और बोहीमिया प्रान्त इस प्रकार जर्मन-साम्राज्य के अंग हो गये। इसके एक सप्ताह बाद स्लोवाकिया को भी जर्मन-संरक्षण में आना पड़ा। हंगेरी को फ़िलहाल रूथेनिया ले लेने दिया गया।

इस विजय से लोग बहुत चौकन्ने हुए हैं; क्योंकि यह नाज़ी जर्मनी का प्रथम सफल साम्राज्यवादी हमला है। Divide and rule के नियम का यह सुन्दर नमूना है। हिटलर ने इसके पक्ष में तीन बातें कही हैं—प्राग में ही पहले जर्मन-सम्राट् का अभिषेक हुआ था, इसलिए उस पर जर्मनी का अधिकार होना ऐतिहासिक सत्य है; प्राग की सरकार अपने नागरिकों की रक्षा करने में असमर्थ थी, इसीलिए उसने स्वतंत्रता-पूर्वक जर्मनी का संरक्षण स्वीकार किया है और प्राग की सरकार की निर्बलता से लाभ उठाकर साम्यवाद अपना विष योरप में फैला रहा था, जिसे रोककर उसने योरप की सभ्यता की रक्षा की है।

ब्रिटेन में इसके विरुद्ध बहुत आन्दोलन हुआ। मि० ईडन, मि० चर्चिल, मि० ऐटली, मि० लायड जार्ज आदि ने जर्मन-साम्राज्यवादी प्रवृत्तियों को रोकने की नीति का प्रबल समर्थन किया। मि० चेम्बरलेन को त्यागपत्र देने के लिए धमकाया गया, जिसका प्रभाव यह हुआ कि उन्होंने बरमिंघम में भाषण देते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न करने पर भी कि उनकी म्यूनिक की नीति स्तुत्य थी, यह स्वीकार किया कि जर्मनी विश्वास करने योग्य नहीं है; क्योंकि उसने म्यूनिक के समझौते और अपने बनाये हुए नियमों का उल्लंघन किया था। लार्ड हैलीफ़ैक्स ने लार्डसभा में भाषण देते हुए कहा कि जर्मनी को अपने इस कार्य के लिए पछताना पड़ेगा; क्योंकि उसने इतिहास की शिक्षा को ठुकराने का प्रयास किया है। फ्रांस में भी ऐसी ही बातें कही गईं। फ्रांस, रूस और ब्रिटेन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने इसके विरुद्ध मत प्रकट किया, लेकिन हिटलर ने इसको राजनीतिक तथा नैतिक कारण से हीन बताकर ठुकरा दिया।

इस सफलता के मुख्य कारण दो हैं। जर्मनी ने अपनी सैनिक शक्ति का भय दिखाकर अपना उल्लू सीधा कर लिया। फ्रांस और ब्रिटेन ने २६ सितम्बर, १९३८ के समझौते के फलस्वरूप जो आश्वासन ज़ेकोस्लोवाकिया की सीमा की रक्षा के सम्बन्ध में दिया था, उसके अनुसार उन्होंने कार्य नहीं किया। यद्यपि, जैसा मो० दलादियर के उत्तर से स्पष्ट है, फ्रांस और ब्रिटेन को ११ मार्च से इसकी सूचना थी कि जर्मनी बलप्रयोग द्वारा ज़ेकों की स्वतन्त्रता अपहरण करनेवाला है और यद्यपि डा० हाचा के बर्लिन पहुँचने के पहले ही जर्मन-फ़ौज के सिपाही ज़ेक-राज्य के तीन शहरों में पहुँच चुके थे, लेकिन उन्होंने अपनी कमज़ोरी से प्रभावित होकर यही कहा कि वे उसकी रक्षा के लिए बाध्य नहीं हैं; क्योंकि जर्मनी और इटली ने उस आश्वासन को देने से इन्कार कर दिया था। दूसरे, जर्मनी ने आक्रमण भी नहीं किया; उसने केवल संरक्षण में ले लिया है।

इस विजय से हिटलर को लाभ यह हुआ कि उसको १००० सुन्दर हवाई जहाज़, बहुत-सा लड़ाई का सामान और दो बड़े-बड़े लड़ाई का सामान बनानेवाले कारख़ाने मिल गये हैं। साथ ही उसे बहुत-सा सोना भी मिल गया है और पोलैण्ड तथा रूमानिया पर दबाव डालने के लिए उचित क्षेत्र प्राप्त हो गया है। अस्तु, उसने रूमानिया को जर्मनी के हाथों अपनी व्यापारिक स्वतन्त्रता बेचने के लिए कहा। सम्राट् कैरोल ने रूस, ब्रिटेन, फ्रांस तथा बाल्कन राज्यों की सहायता प्राप्त करके इसको रोकने का प्रयत्न किया। लेकिन जब फ्रांस और ब्रिटेन से केवल हल्के आश्वासन मिले तो उन्होंने संधि कर ली, जिसके द्वारा जर्मनी का क़रीब-क़रीब एकाधिकार स्थापित हो गया है। रूमानिया के व्यापार तथा व्यावसायिक संगठन में उसका प्रभाव बढ़ जायगा। वह रूमानिया का तेल, अनाज और खनिज-पदार्थों का अधिकांश प्राप्त कर सकता है। उसने कुछ 'स्वतन्त्र क्षेत्र' भी प्राप्त कर लिये हैं, जिनमें नाज़ी प्रोपेगैण्डा करके रूमानिया को पूर्णतया मातहत राज्य बनाने का प्रयत्न किया जायगा। ब्रिटेन और फ्रांस ने यदि कैरोल से उचित संधि कर ली तो इसमें अड़चन पड़ेगी।

इसके बाद रिबनट्राप लिथुआनिया गये और उसकी राजधानी कौनास को हवाई जहाज़ों द्वारा नष्ट करने की धमकी देकर २२ मार्च को उससे मेमेल प्रान्त छीन लिया *। इसके विरुद्ध तो किसी ने एक शब्द भी नहीं कहा, यद्यपि मि० चेम्बरलेन ने म्यूनिक के बाद यह कहा था कि जर्मनी का मेमेल में स्थायी नियमों के विरुद्ध हस्तक्षेप क्षम्य न होगा।

अब हिटलर पोलैण्ड को वश में करने और Polish Corridor को प्राप्त करके पूर्वी प्रशा तथा मेमेल-प्रदेश को अवशेष जर्मन-साम्राज्य से मिलाना चाहता है। उसने पोलैण्ड को तीन ओर से घेर लिया है और यद्यपि अब उसकी सीमा हंगेरी और रूमानिया को छूती है, लेकिन हिटलर उसको डैन्यूब की तराई के प्रदेश के व्यापार-क्षेत्र से अलग कर सकता है। उसने डैंज़िग और उसके पासवाले प्रदेश को माँगना शुरू कर दिया है। वह अब तक आक्रमण करके उसे छीन भी चुका होता, लेकिन ब्रिटेन और फ्रांस ने पोलैंड को यह आश्वासन देकर कि यदि जर्मनी के किसी कार्य को उसने अपनी स्वतन्त्रता का विरोधी समझा और उसके लिए युद्ध किया तो वे उसकी सब तरह से सहायता करेंगे, बाधा डाल दी। मि० लायड जार्ज ने इस कार्य के लिए रूस से समझौता करने पर ज़ोर दिया।

इससे हिटलर अब अधिक सतर्क हो गया है और उसने ब्रिटेन की न्यायप्रियता की दिखावट की हँसी उड़ाई है। साथ ही वह डैंज़िग को बराबर माँग रहा है। पोलैंड बहुत घबराया हुआ है; क्योंकि यदि डैंज़िग उसके हाथ से निकल जाय तो उसका बाल्टिक सागर का रास्ता बन्द हो जायगा। साथ ही इस माँग का विरोध करना भी कठिन है;

* लिथुआनिया ने मेमेल को सन् १९२४ में अपनी राजधानी विलना के पोलैण्ड द्वारा जीते जाने पर अपने राज्य में मिला लिया था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्योंकि १९१९ के पहले वह जर्मन नगर था और इस समय भी ३½ लाख की जनसंख्या में ३ लाख से अधिक जर्मन हैं और पोल केवल ३५ हज़ार हैं। उसे दूसरा भय जर्मनी की यूक्रेन-निर्माण-योजना से है। इस राज्य में वह पोलैण्ड का दक्षिणी-पूर्वी यूक्रेनियन प्रधान देश, रूथेनिया, रूमानिया का कुछ भाग और रूस का यूक्रेन प्रान्त मिलाना चाहता है। इसको बनाने में सहायक होने के कारण उसका प्रभाव इस राज्य पर आसानी से जम जायगा और इस प्रकार उसकी भोजन की समस्या हल हो जायगी।

ब्रिटेन और फ्रांस जर्मन-साम्राज्यवादी आक्रमणों को रोकने के लिए रूस, संयुक्तराज्य, डोमिनियन्स तथा योरप के छोटे-छोटे राष्ट्रों को मिलाकर एक Anti-Aggression Pact बनाना चाहते हैं। रूस को ब्रिटेन और फ्रांस पर विश्वास नहीं है। स्टैलिन ने २०वीं साम्यवादी कांग्रेस में भाषण देते हुए कहा था कि वे दोनों राष्ट्र रूस को जर्मनी से लड़ाकर अपनी स्वार्थ-सिद्धि करना चाहते हैं। इस समय भी वह समझता है कि पोलैण्ड से जो समझौता किया गया है, वह शायद दूसरे म्यूनिक का पथप्रदर्शक है।

जर्मनी ने इस गुट को न बनने देने के अभिप्राय से मुसोलिनी की अलबानिया पर आक्रमण करने की बात मान ली। ९ अप्रैल को अलबानिया विजय द्वारा मुसोलिनी पूर्वी रूमसागर पर अपना प्रभाव बढ़ाना चाहता है। साथ ही वह ग्रीस और यूगोस्लेविया को जर्मनी विरोधी गुट से अलग रखने का प्रयत्न करेगा।

इस प्रकार जर्मन-साम्राज्यवाद नाज़ी नीति के अनुसार अपने क़दम आगे बढ़ा रहा है। विरोधी राष्ट्र कमज़ोर और असंगठित हैं। साथ ही वे जर्मनी की विनाशक सैनिक शक्ति से डरते भी हैं। लेकिन जब तक ब्रिटेन के कर्णधार चेम्बरलेन-साइमन-होर हैं, तब तक जर्मनी का विरोध केवल उसी दशा में होगा, जब वह सीधा ब्रिटेन के हितों पर आक्रमण करे। दूसरी कठिनाई यह है कि इनके रहते ब्रिटेन को संयुक्तराज्य, भारतवर्ष तथा योरप के छोटे-छोटे राज्यों का पूर्ण सहयोग प्राप्त होना भी असंभव है।

लेकिन जर्मनी को अभी अपने प्रायः सभी खोये हुए प्रदेश लौटाना बाक़ी हैं। इसलिए फ्रांस, ब्रिटेन, डोमिनियन्स, बेल्जियम, डेन्मार्क, पोलैण्ड और संयुक्त-राज्य को जर्मनी से भय होना चाहिए। इनके अतिरिक्त हालैण्ड, स्कैण्डीनेविया, हंगेरी, रूमानिया तथा रूस के यूक्रेन प्रान्त को भी शीघ्र ही अपनी स्वतंत्रता के लिए शंकित होना पड़ सकता है। यदि ये सब राष्ट्र अपने हितों की रक्षा के लिए एक गुट बना लें और जैसा कि रूस का विचार है, 'सार्वभौमिक रक्षा' की नीति का अनुसरण करें तो संभव है, जर्मनी अपनी नीति बदल दे। यदि इसमें देर हुई और जर्मनी का अधिकार रूमानिया पर पूरी तौर से जम गया तो फिर उसकी शक्ति बहुत बढ़ जायगी। हिटलर सावधानी के साथ अपनी शक्ति बढ़ा रहा है। उसने जिस ढंग का अवलम्बन किया है, वह वर्तमान परिस्थिति में ख़ूब सफल हो रहा है। 'साम्यवाद-विरोधी-गुट' का निर्माण और ब्रिटिश-साम्राज्य के अंदर ब्रिटेन के विरुद्ध प्रोपेगैण्डा करके वह अपनी शक्ति बढ़ा रहा है। उसकी उन्नति नेपोलियन से भी अधिक चमत्कारिक है। पर उसका पतन उससे अधिक दर्दनाक और आकस्मिक हो सकता है।

अभ्युदय का मूल आरोग्य

आप पहले अपने आरोग्य की अभिलाषा करें।

आरोग्य से ही अभ्युदय की अभिलाषा सफल होगी। आरोग्य का लाभ लेने के लिए

आतंकनिग्रह गोलियाँ

ही प्रशस्त साधन हैं।

क़ीमत—३२ गोलियों की डिब्बी का १) एक रुपया

आतंकनिग्रह औषधालय
जामनगर, काठियावाड़

लखनऊ एजेंट—इंदरचंद एण्ड कं०, चौक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डा० जानसन

श्रीप्रेमनारायण टंडन विशारद

इस लेख की विशेषताएँ—

(१) पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी और जानसन के जीवन में बहुत कुछ साम्य है। द्विवेदीजी को अनेक बार हिन्दी का जानसन कहा गया है।

(२) जानसन के प्रादुर्भाव के समय अँगरेज़ी की जो दशा थी, वही आज हिन्दी की है। अँगरेज़ी भाषा की उन्नति किस तरह हुई, यह हम समझ सकेंगे।

(३) जानसन का अध्ययन
(४) उसकी कवित्व शक्ति } पर प्रकाश पड़ता है।

(५) लार्ड मेकाले के कथनानुसार आज तक संसार की किसी भी भाषा में ऐसा जीवनचरित नहीं लिखा गया है। उसी का संक्षिप्त भावानुवाद यहाँ है।

(१)

डाक्टर जानसन ने अनेक व्यक्तियों—विशेषकर कवियों—के जीवनचरित लिखने में अकथ परिश्रम किया और उन्हें संसार में सदा के लिए अमर कर दिया, परन्तु वह प्रायः कहा करता था कि यथार्थ और पूर्ण जीवनचरित तभी तैयार किया जा सकता है, जब मनुष्य स्वयं ही उसे लिखे। यह सत्य है कि यदि डाक्टर जानसन ने अपनी शक्तियों को, अपनी विद्वत्ता और विवेचन-शैली को अपनी आत्मकथा लिखने में लगाया होता तो वह साहित्य की अमूल्य और अनुपम निधि होती। पर उसने ऐसा नहीं किया। यद्यपि समय-समय पर उसने अपने मस्तिष्क के विकास और भाग्य के फेर के विषय में कुछ घटनाएँ लिख डाली थीं, तथापि उनको संकलित करने की उसने कभी कोई चेष्टा नहीं की। फल यह हुआ कि उसके विषय में बहुत-सी बातें आज लोगों को मालूम ही नहीं हैं। इसका एक कारण यह भी है कि डाक्टर ने अपने बहुत-से काग़ज़-पत्र मृत्यु से कुछ दिन पहले जला दिये थे। फिर भी उसके परम मित्र बासवेल ने बड़े परिश्रम से जानसन के मित्रों के पास दौड़-धूप कर मसाला इकट्ठा करके और स्वयं डाक्टर से अनेक विषयों पर वार्तालाप करके विस्तारपूर्वक जो जीवन-चरित लिखा है, वह अद्वितीय है। डाक्टर से बासवेल ने अपनी यह अभिलाषा स्पष्ट कर दी थी और जानसन ने भरसक उसकी शंकाओं का समाधान किया। यही कारण है कि संसार में कोई दूसरा लेखक बासवेल के लिखे हुए जानसन के जीवनचरित के समान, इसी विषय को, कोई ऐसी पुस्तक नहीं लिख सका। अपने समस्त जीवन में यह एक पुस्तक लिखकर ही बासवेल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

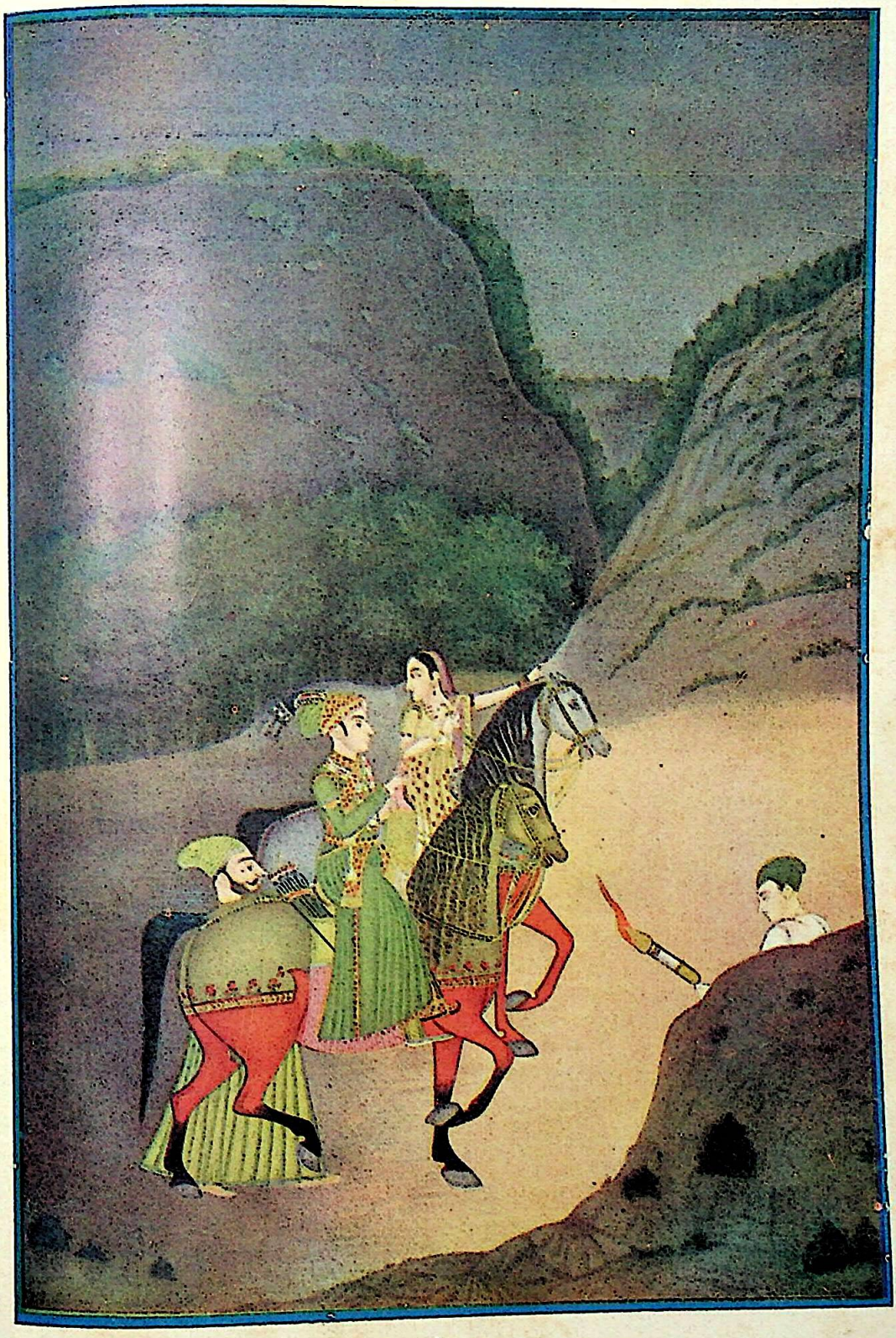

रूपमती और बाजबहादुर
[एक प्राचीन चित्र]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने डाक्टर जानसन को और अपने को तो अमर कर ही दिया, साथ ही ऐसे अनेकानेक स्त्री-पुरुषों को भी अमर कर दिया, जिनको इस समय भी किसी प्रकार की प्रसिद्धि नहीं प्राप्त हुई थी ; बहुतों का तो नाम भी लोग नहीं जानते थे।

(२)

बालक सैमुएल जानसन का जन्म १८ सितंबर, १७०९ को हुआ था। उसके पिता का नाम माइकेल जानसन था। लिचफ़ील्ड-नामक स्ट्रैफोर्डशायर के एक गाँव में उसकी पुस्तकों की एक दूकान था। जानसन की माता का नाम सराफोर्ड थी। जब जानसन के माता-पिता का विवाह हुआ था, उस समय उनकी अवस्था बहुत काफ़ी थी। उनके दो पुत्र हुए। बड़े का नाम सैमुएल था और छोटे का नैथेनील, जिसकी मृत्यु २५ वर्ष की अवस्था में ही हो गई।

(३)

बाल्यकाल से ही सैमुएल जानसन की स्मरणशक्ति बहुत अच्छी थी। जब वह केवल पढ़ना ही जानता था, तब एक दिन उसकी माता ने एक "प्रार्थना" उसके हाथ में देकर कहा—"शाम तक आज इसे ज़रूर याद कर लेना।" माता यह कहकर ऊपर चली गई। परन्तु ज्यों ही वह उसे पढ़ते हुए छोड़कर छत पर पहुँची, त्यों ही बालक जानसन भी वहाँ आ गया। माता ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा और पूछा—"क्या बात है?" जानसन ने सरल भाव से उत्तर दिया—"मुझे प्रार्थना याद हो गई" ; और उसने वह माता को सुना दी। माता को प्रार्थना सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने प्यार से पुत्र का मुँह चूम लिया।

(४)

जानसन को पढ़ाने का भार पहले एक विधवा को सौंपा गया था। वह विधवा बालकों के एक स्कूल की अध्यापिका थी। जानसन के विद्यार्थी-जीवन समाप्त करने के बहुत दिन बाद एक बार जब वह अध्यापिका वहाँ से जाने लगी तो स्नेह के कारण जानसन के लिए बिसकुट लेती गई। उसका विचार था कि जानसन अब भी वैसा ही बालक होगा। बातचीत होने पर उस अध्यापिका ने जानसन की तीव्र बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की और कहा—जानसन की तरह का दूसरा विद्यार्थी उसने नहीं देखा। जानसन को जीवन भर उसके इस कथन पर बड़ा गर्व रहा।

(५)

अपने विद्यार्थी-जीवन के अध्ययन के विषय में जानसन ने बहुत-सी बातें कही हैं। एक बार उसके भाई ने कुछ फल कहीं छिपाकर रख दिये। जानसन उन्हें ढूँढने के लिए एक अलमारी पर चढ़ा। वहाँ उसे फल तो न मिले, परन्तु इटली के एक अत्यन्त प्राचीन विद्वान् की एक पुस्तक मिल गई। इस विद्वान् के विषय में जानसन ने बहुत-कुछ सुन रक्खा था। अतः उसकी पुस्तक पढ़ने पर जानसन को बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने पुस्तक का अधिकांश उसी समय पढ़ डाला। प्रायः हमारे बालक अपने विद्यार्थी-जीवन में शेख़चिल्लियों की कहानियाँ या जासूसी, ऐयारी उपन्यास पढ़कर ही अपना मनोरंजन करते हैं ; कभी-कभी खोज या भ्रमण-सम्बन्धी एक-आध पुस्तक भी देख डालते हैं। पर जानसन ऐसी रुचि का विद्यार्थी नहीं था। अपने विद्यार्थी-जीवन को उसने व्यर्थ की पुस्तकें पढ़ने में नहीं गँवाया ; वरन् यूनान और इटली के प्रसिद्ध विद्वानों की पुस्तकों का—ठोस साहित्य का—भली भाँति अध्ययन किया। परिणाम यह हुआ कि जिस समय उसने विश्वविद्यालय में प्रवेश किया, उसके अध्यापक ने बड़े आश्चर्य से कहा—विश्वविद्यालय के समस्त विद्यार्थियों में जानसन ही सबसे योग्य और तेज़ है।

(६)

जानसन का पिता अपने पुत्र की योग्यता और प्रतिभा को समझता था और कई बार उसने मित्रों से उसकी प्रशंसा करते हुए कहा था कि वह विद्वान् और लैटिन भाषा में कविता भी किया करता है। यद्यपि जानसन की रहन-सहन और वेशभूषा विचित्र थी, परन्तु विद्यालय में वह अत्यन्त सभ्यता और नम्रता का व्यवहार करता था। पहली बार जब वह अपने दर्जे में बैठा हुआ था और पढ़ाई हो रही थी, तब उसने विषय के अनुकूल, एक पुराने लेखक की कुछ पंक्तियाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पढ़कर अपने अध्यापक और समस्त सहपाठियों को चकित कर दिया था। उसकी इस विद्वत्ता का प्रधान कारण उसका विस्तृत अध्ययन था, जिसकी ओर विश्वविद्यालय के विद्यार्थी स्वप्न में भी ध्यान नहीं देते।

जानसन का ज्ञान इतना विस्तृत था कि उसने दर्जे में जाकर अध्ययन करने की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी। एक बार वह चार दिन तक लगातार स्कूल से ग़ायब रहा। पाँचवें दिन जब वह दर्जे में पहुँचा, तब अध्यापक ने स्कूल न आने का कारण पूछा। जानसन ने शान्तभाव से उत्तर दिया—श्रीमन्! मैं बाग़ में घूमता रहा।

बहुत दिन बाद जानसन ने यह बात अपने मित्र बासवेल से कही। मित्र ने बड़े आश्चर्य से कहा—वास्तव में आपने बड़ी निर्भयता का परिचय दिया, जो अध्यापक को ऐसा उत्तर दिया।

जानसन ने उसी क्षण कहा—निर्भयता नहीं, वह मेरी मूर्खता थी।

(७)

युवक और विद्यार्थी होते हुए भी जानसन की धर्म पर पूरी श्रद्धा थी। ७ सितम्बर, १७३६ को उसका २७वाँ वर्ष पूरा हुआ और उसने २८वें में पदार्पण किया। उस दिन उसने विनीत भाव से ईश्वर को धन्यवाद दिया और प्रार्थना की—भगवन्! मुझे सद्बुद्धि दे, जिससे मैं अपने जीवन में सत्कर्म कर सकूँ।

(८)

जानसन का विद्यार्थी-जीवन बड़े संकट में कटा। उसके पिता की आर्थिक दशा इतनी शोचनीय थी कि बेचारा अपने पुत्र की शिक्षा के समय उसे भोजन और वस्त्र के लिए भी धन न दे सका। जानसन का एक मित्र एक दूसरे कालेज में पढ़ता था। उस कालेज के अध्यापक जानसन के अध्यापक से अधिक विद्वान् थे। अतः जानसन अपने मित्र के पास दर्जे में लिखाये हुए नोट्स लिखने जाया करता था। उस समय उसके वस्त्र गन्दे थे और जूता तो बिलकुल फट गया था। उस कालेज के अन्य विद्यार्थी उसकी सहायता करना चाहते थे; वे जानसन के स्वाभिमान-सम्बन्धी भावों से भी परिचित थे। अतः उन्होंने एक दिन एक नया जूता उसके कमरे में जाकर रख दिया। परन्तु जानसन ने जूता उठाकर बाहर फेंक दिया। इतने ही से उस आत्माभिमानी के भावों को इतनी ठेस पहुँची कि दूसरे दिन से उसने अपने मित्र के पास जाना ही बन्द कर दिया।

(९)

निर्धनता के कारण १७३१ में तीन साल और कुछ महीने विश्वविद्यालय में रहकर जानसन ने बिना डिगरी लिये ही कालेज छोड़ दिया। दुर्भाग्य से पिता का व्यापार तो समाप्त हो ही गया, उनकी मृत्यु भी उसी वर्ष हो गई। जानसन पर यों आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा।

(१०)

इस समय उसके सामने जीविकोपार्जन की समस्या थी। उसके भाग्य से उसे एक स्कूल में जगह मिल गई। स्कूल काफ़ी दूर था। जानसन के पास इतना भी धन नहीं था कि वह रास्ते के लिए किसी सवारी का इन्तज़ाम भी कर सके। इसलिए उसे पैदल ही जाना पड़ा। स्वच्छंदताप्रिय कविहृदय जानसन के लिए अब जीवन भार हो गया। एक-एक दिन काटना पहाड़ हो गया। व्याकरण के विषय रटने और बालकों को पढ़ाने में उसे किसी प्रकार का भी आनन्द नहीं मिलता था। इसके अतिरिक्त उस स्कूल के संरक्षक महोदय का व्यवहार भी बहुत कठोर और अशिष्टतापूर्ण था। फल यह हुआ कि जानसन को कुछ ही दिनों में स्कूल छोड़ देना पड़ा।

फिर भी इस नौकरी से जानसन को एक लाभ हुआ। स्कूल में रहकर प्रायः अध्यापक अपना समय व्यर्थ खोया करते हैं; बहुत-से सोचते हैं, अब तो हम मास्टर हो गये। पर जानसन में यह बात नहीं थी। वह अपना समय अध्ययन और मनन करने में ही बिताता था। दूसरों पर उसकी विद्वत्ता का बड़ा प्रभाव पड़ा। अतः ज्यों ही उसने स्कूल की नौकरी छोड़ी, त्यों ही एक मित्र ने उसे अपने यहाँ बुला लिया। उसका मित्र एक पत्र का संपादक था और उसे आशा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

थी कि जानसन के विद्वत्तापूर्ण लेख पत्र में प्रकाशित होने पर उसे काफ़ी लाभ होगा। जानसन अपने मित्र के पास लगभग छः महीने रहा और वहाँ उसकी जान-पहचान बहुत बड़े-बड़े लोगों से हो गई। यों उसकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी।

(११)

जो व्यक्ति धर्मानुसार अपना आचरण सुधारे रहता है और इच्छाओं के वशीभूत नहीं होता, वह समय आने पर किसी एक से ही प्रेम करता है। उसका वह प्रेम असीम होता है; कारण, उसकी प्रेमिका ही उसकी समस्त कामनाओं और अभिलाषाओं का केन्द्र बन जाती है। यह बात जानसन के विषय में बिलकुल सत्य है। मिस्टर पोर्टर की मृत्यु के उपरान्त उसकी स्त्री से जानसन का एक दिन परिचय हो गया। जानसन की सूरत-शक्ल बहुत अच्छी न थी; उसके चेहरे पर चेचक के-से दाग़ भी थे; दुबला-पतला भी वह बहुत था। यहाँ तक कि उसकी हड्डियाँ बाहर से दिखाई देती थीं। कपड़े भी वह बहुत भद्दे पहनता था। परन्तु उसकी बातचीत में इतनी विद्वत्ता थी; उसके शब्दों में इतनी शक्ति थी; उसके विचार इतने स्पष्ट और दृढ़ थे कि मिसेज़ पोर्टर का ध्यान उक्त दोषों की ओर गया ही नहीं और वह मंत्रमुग्ध-सी जानसन की बातें सुनती रही। जानसन के लौट आने पर उसने अपनी पुत्री से कहा—आज तक मैंने जितने भी व्यक्ति देखे हैं, उनमें यह सबसे बुद्धिमान् है।

यद्यपि मिसेज़ पोर्टर की उम्र जानसन से लगभग दूनी थी और वह कुछ सुन्दरी भी न थी, तथापि जानसन उस पर मुग्ध हो गया। मिसेज़ पोर्टर भी उससे विवाह करने को तैयार हो गई। तब जानसन अपनी माता से आज्ञा लेने के लिए लिचफ़ील्ड गया। माता को उसके ऐसे भद्दे विवाह का प्रस्ताव सुनकर कुछ प्रसन्नता न हुई। परन्तु वह अपने पुत्र के स्वभाव से भली भाँति परिचित थी, अतः अन्त में उसने पुत्र की प्रसन्नता के लिए विवाह की आज्ञा दे दी।

(१२)

१७३६ में जानसन ने विद्यार्थियों को ग्रीक और लैटिन भाषाएँ पढ़ाने के लिए एक स्कूल खोला, जो लगभग डेढ़ वर्ष तक चलता रहा। इस स्कूल में केवल तीन विद्यार्थी पढ़ने आये। उनमें गैरिक नाम का एक विद्यार्थी था। उसका कथन है कि ये विद्यार्थी जानसन का आदर नहीं करते थे, वरन् उसका मज़ाक़ उड़ाया करते थे। जानसन को अपनी स्त्री से बहुत प्रेम था। पर उसकी स्त्री न तो सुन्दरी थी और न युवती। इसलिए जानसन का उससे प्रेम करना, उसको मनाना उसके विद्यार्थियों को बहुत भद्दा लगता था। प्रायः वे दरवाज़े की दराज में से उन दोनों का प्रेमालाप सुना करते थे। आपस में उन दोनों की नक़ल करके वे हँसा करते थे।

(१३)

स्कूल बंद करने के बाद जानसन ने लंदन जाकर अपने भाग्य का निर्णय करना चाहा। लंदन कर्मवीरों का कर्मक्षेत्र है और प्रतिभासंपन्न व्यक्तियों के लिए उन्नति का स्थान। वहाँ जाते समय उसके पास केवल ८ पेंस थे। परन्तु वह बड़ा मितव्ययी था। मार्ग में एक होटल में उसने खाना खाया। बहुत-से और भी आदमी उस होटल में ठहरे हुए थे। उन लोगों ने शराब-कबाब में एक शिलिंग खर्च कर दिया, परंतु जानसन ने ७ पेंस में ही अपने भोजन में ख़र्च किये और बचा हुआ एक पेंस नौकर को दे दिया। बहुत दिन बाद उसने इस बात को दोहराते हुए कहा—एक शिलिंग ख़र्च करके भी उन्होंने इतना लाभ नहीं उठाया, जितना मैंने केवल ८ पेंस से; क्योंकि उन्होंने नौकर को कुछ भी न दिया।

(१४)

जानसन की साहित्य-सेवा का उद्देश्य इस समय प्रसिद्धि-प्राप्त करना नहीं, केवल जीविकोपार्जन करना था। परन्तु १७३८ के मई के महीने में उसने "लंदन" नाम की एक कविता लिखी। यह कविता लोगों को बहुत ही पसंद आई।

(१५)

लंदन में रहकर तीन वर्ष तक वह पार्लियामेंट के व्याख्यानों को लिखने का काम करता रहा। ये व्याख्यान वास्तव में यथार्थ और वास्तविक नहीं थे। बात यह थी कि जानसन ने व्याख्यानदाताओं के विचारों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का अध्ययन किया था और वह सुनी-सुनाई बातों के आधार पर कल्पनाशक्ति के द्वारा स्वयं उनके व्याख्यान तैयार कर लिया करता था। परन्तु जिस दिन उसे यह ज्ञात हुआ कि साधारण जनता उन व्याख्यानों को बिलकुल सत्य समझती है और वह परोक्ष रूप से उसे भ्रम में डाल रहा है, उसी दिन से उसने उस प्रकार के व्याख्यान लिखना बंद कर दिया।

(१६)

१७४४ में उसने "रिचर्ड सैवेज" का जीवनचरित प्रकाशित किया। रिचर्ड जानसन का साथी था और हमेशा विद्वानों और राजनीतिज्ञों के साथ रहा करता था। उसके जीवन को उसे अनेक दृष्टियों से देखने-समझने का अवसर मिला था। इसी से जानसन को उसकी बातचीत में बड़ा आनंद आता था। साथ रहने का एक कारण यह भी था कि दुर्भाग्य से दोनों की आर्थिक दशा बड़ी शोचनीय थी और दोनों केवल अपने पेट के लिए ही लिखा करते थे। दोनों की निर्धनता इतनी बढ़ गई थी कि उनके पास रहने के लिए स्थान भी न था और रात दोनों को प्रायः सड़क पर घूम-घूमकर बितानी पड़ती थी। फिर भी रिचर्ड ने अपने बीते जीवन के विषय में बहुत-सी बातें जानसन को बता दी थीं। यही कारण है कि जानसन की लिखी हुई रिचर्ड की जीवनी बहुत सुन्दर पुस्तक बन सकी।

(१७)

बहुत दिनों से जानसन की अभिलाषा अँगरेज़ी भाषा का एक कोष तैयार करने की थी। १७४१ में, ३८ वर्ष की अवस्था में, जानसन ने अपना यह विचार प्रकाशित कर दिया। उसको विश्वास था कि लगभग तीन वर्ष में यह कार्य पूरा हो जायगा।

विज्ञप्ति प्रकाशित करने के कुछ दिन पश्चात् से ही जानसन अपने काम में जुट गया। एक दिन एक सज्जन उससे मिलने गये। जानसन उस समय अपना काम कर रहा था। आश्चर्य से उन्होंने पूछा—बड़ा भारी भार तुमने अपने ऊपर ले रक्खा है। इसे कैसे पूरा करोगे? और फिर केवल तीन वर्ष में!

जानसन ने सामने की अलमारी में रक्खी हुई पुस्तकों की ओर संकेत करते हुए मुस्कराकर कहा—मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं अपने काम में सफल हो जाऊँगा।

सज्जन ने फिर शंका करते हुए पूछा—परन्तु फ्रेंच अकेडमी ने पूरे ४० वर्ष में अपना कोष पूरा किया है और उस अकेडमी में ४० सदस्य हैं।

जानसन इस पर हँस दिया; बोला—सुनिए, ४० को ४० से गुणा करने पर आता है ४०,००० और ३ और ४०,३०० का वही अनुपात (Proportion) है जो एक अँगरेज़ और एक फ्रांसीसी का है।

इतना कहकर जानसन खिलखिलाकर हँस पड़ा।

वास्तव में वह इतना महत्त्वपूर्ण कार्य जो इतने थोड़े समय में पूरा कर सका, उसका रहस्य यही था कि वह शांतिपूर्वक और प्रसन्नता के साथ सदा अपने काम में संलग्न रहता था। काम को कभी उसने भार नहीं समझा।

(१८)

सन् १७४९ के जनवरी मास में उसने "मानवी इच्छाओं का दम्भ" (The Vanity of Human Wishes) नाम की कविता प्रकाशित की। उसकी स्त्री का स्वास्थ्य उस समय ठीक नहीं था और वह प्रायः देहात में रहा करती थी। इस कविता का अधिकांश वहीं लिखा गया था। इतनी शीघ्रता से इस कविता की रचना हुई थी कि विश्वास नहीं होता। एक बार स्वयं जानसन ने कहा था—"इस कविता की ७० पंक्तियाँ मैंने बना लीं, परन्तु लिखी एक भी नहीं। काग़ज़ पर मैंने उसे तभी लिखा, जब सारी कविता पूरी हो गई।

बासवेल ने खेद प्रकट करते हुए कहा—मुझे दुःख है कि आपने वैसी कविताएँ और नहीं लिखीं।

जानसन ने शांतभाव से उत्तर दिया—वैसी ही कविताएँ मेरे मस्तिष्क में घूम रही हैं और मैं उन्हें किसी भी समय लिख सकता हूँ।

कवि जानसन को "मानवी इच्छाओं का दम्भ" लिखने से अधिक आर्थिक लाभ नहीं हुआ। उस समय इँगलिस्तान के निवासी अपने कवियों और लेखकों का विशेष आदर करना नहीं सीखे थे। जानसन को "लन्दन"-शीर्षक कविता के लिए केवल दस गिनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(लगभग १००)) मिले थे। यह कविता उस समय लिखी गई थी, जब जानसन को बहुत-से लोग नहीं जानते थे। परन्तु इस समय, जब वह प्रसिद्ध हो चुका था, अपनी "मानवी इच्छाओं का दम्भ"-शीर्षक कविता के लिए केवल पाँच ही गिनी अधिक मिलीं*।

(१९)

सन् १७४४ में उसके पुराने शिष्य और मित्र गैरिक ने एक नाटक-कम्पनी साझे में ख़रीदी। उसके उद्घाटन के समय डाक्टर जानसन ने प्रस्तावना के ढंग पर जो अभिभाषण लिखा था, वह अँगरेज़ी-साहित्य में अद्वितीय है।

कुछ समय पश्चात् गैरिक ने जानसन के लिखे हुए दुःखांत नाटक का अभिनय कराने का प्रस्ताव उसके सामने रक्खा। जानसन की आर्थिक स्थिति उस समय अच्छी नहीं थी; इसी से गैरिक ने उस नाटक को खेलना चाहा। यह दुःखांत नाटक बहुत दिनों से लिखा हुआ पड़ा था, परन्तु न तो कोई खेलने को तैयार होता था, और न प्रकाशित करने को ही। अतः जानसन ने गैरिक का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। परन्तु जानसन ने अपनी विद्वत्ता और प्रतिभा से जो नाटक लिखा, वह साहित्यिक दृष्टि से तो बहुत ही उच्च कोटि का था, पर गैरिक उसको अभिनय के योग्य नहीं समझता था। अतः उसने जानसन से स्पष्ट कह दिया कि नाटक में बहुत परिवर्तन और संशोधन की आवश्यकता है और अभिनेता की सम्मति से कई बातें उसमें से निकाल भी देनी होंगी।

आरम्भ में जानसन उसकी बात सुनकर बहुत बिगड़ा और अपने साहित्यिक नाटक की एक पंक्ति भी बदलने को तैयार न हुआ, पर जब उसे ज्ञात हो गया कि बिना परिवर्तन किये वह अभिनय-योग्य हो ही नहीं सकता, तब विवश होकर उसे गैरिक की बात माननी पड़ी और कुछ परिवर्तन उसे स्वीकार करने पड़े।

नाटक का अभिनय आरम्भ होने के पहले हाल ठसाठस भरा था। ख़ूब शोर-गुल हो रहा था, पर ज्यों ही अभिनय आरम्भ हुआ, चारों ओर शान्ति हो गई, जो अन्त तक बनी रही। नाटक के अन्तिम भाग में नायिका को रंगमंच पर ही फाँसी दी जाने-वाली थी और उसके पहले उसे दो पंक्तियाँ कहनी थीं। उस समय रंगमंच पर वध करने के पक्ष में अँगरेज़ी जनता नहीं थी। फल यह हुआ कि लोगों ने "वध" "वध" चिल्लाना शुरू कर दिया। नायिका को दो पंक्तियाँ कहने का अवसर ही न मिला और विवश होकर उसे रंगमंच पर से चले जाना पड़ा। बाद में, नाटक से यह स्थल बिलकुल निकाल ही दिया गया।

यद्यपि इस नाटक को जनता ने बहुत पसन्द नहीं किया, फिर भी गैरिक निराश न हुआ और नौ बार वह खेला गया। उस समय के नियमानुसार तीन बार खेलने से वस्त्राभूषण और सजावट का ख़र्च निकालने के बाद जो लाभ हुआ था, वह जानसन को दे दिया गया और १०० पौंड उसे देकर एक प्रकाशक ने प्रथम संस्करण का अधिकार उससे ले लिया।

नोट—हिन्दी में सुन्दर नाटकों की कमी को दूर करने के लिए यदि हमारे यहाँ भी इसी प्रकार की नाटक-कम्पनियाँ हों तो, सम्भव है, उन्हें घाटा भी न उठाना पड़ेगा और साथ ही उच्चकोटि के अभिनय-योग्य नाटक भी लिखे जाने लगेंगे।

(२०)

सन् १७४९ में जानसन ने एक अर्द्धसाप्ताहिक पत्र चलाया। इसका पहला अंक २० मार्च (मंगलवार) को निकला था और १७ मार्च, १७५२ तक बराबर

* इँगलिस्तान में जो दशा लेखकों और कवियों की उस समय थी, प्रायः वही आज भारत में हिन्दी-लेखकों और कवियों की है। अँगरेज़ अब लेखकों और कवियों का आदर करना सीख गये हैं; शब्द गिनकर उन्हें पारिश्रमिक देते हैं, पर हमारे कवियों और लेखकों को माँगने पर भी उतना प्रति पेज नहीं मिलता, जितना वहाँ शायद चौथाई पृष्ठ पर ही मिल जाता है। खेद है, हमने उनकी उन बातों की तो नक़ल कर ली, जिनसे हमें हानि पहुँचेगी; किन्तु कोई ऐसी बात शायद ही सीखी हो, जिससे हम उन्नति कर सकें। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सप्ताह में दो बार (मंगलवार और शनिवार को) वह प्रकाशित होता रहा। इससे एक बड़ी महत्त्वपूर्ण बात मालूम होती है, जो जानसन ने स्वयं ही एक बार कही थी—लेखक यदि दृढ़निश्चयी है तो किसी भी समय लिख सकता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि स्वास्थ्य बहुत अच्छा न होने, आलस्य में फँसे रहने और पूर्व विज्ञप्ति के अनुसार अपने कोष को पूरा करने के काम में जुटे रहने पर भी वह बराबर तीन वर्ष तक दो बार अपने साप्ताहिक पत्र के लिए सारा सामान तैयार करता रहा। लिखनेवाले उस समय थे नहीं, अतः लगभग ३ साल के सब अंकों में केवल ४ छोटे-छोटे लेखों को छोड़कर सब स्वयं जानसन ने लिखे हैं और साथ ही कोष का भी काम किया है *।

उसके साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित प्रायः सभी लेख साहित्यिक दृष्टि से बड़े उच्चकोटि के हैं और इनकी लोगों ने बड़ी प्रशंसा की है। वास्तव में यह कोई बड़े आश्चर्य की बात नहीं है। परन्तु यह जानकर हमें अवश्य ही चकित होना पड़ेगा कि ये लेख प्रेस के बार-बार खटखटाने पर बड़ी जल्दी में लिखे गये थे और उसे उन्हें दोहराने का भी अवसर न मिलता था। यह बात जानसन ने स्वयं ही कही है, अतः इसे सत्य मानने में किसी को आपत्ति न होगी। उसकी इस अद्भुत विद्वत्ता का कारण यह था कि गम्भीर अध्ययन, विचारपूर्वक मनन और जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण करके अपने मस्तिष्क को उसने संसार के ठोस ज्ञान का भंडार बना रक्खा था। फलतः उसमें किसी भी विषय पर सफलतापूर्वक लिखने की क्षमता थी। इसके लिए उसने वर्षों परिश्रम और लिखने का अभ्यास किया, तब उसके विचारों में स्पष्टता और शब्दों में शक्ति आई। एक बार एक महाशय ने उससे पूछा—आपके लेखों में अद्भुत वास्तविकता और भाषा में विचित्र प्रवाह रहता है। इसका कारण क्या है?

जानसन ने शांतभाव से उत्तर दिया—मैंने अपने बाल्यकाल में इस बात का दृढ़ निश्चय कर लिया था—अपने जीवन का यह नियम बना लिया था—कि चाहे कैसा ही विषय हो, यदि मैं लिखूँगा तो अपनी सारी शक्ति, बुद्धि और विद्वत्ता अपने लेख में भर दूँगा। भाषा और विचारों में सदैव ओज, शक्ति और प्रवाह का ध्यान रखता था। वर्षों तक मैंने इसका अभ्यास किया और इस नियम के पालन में कभी असावधानी नहीं की; कभी एक शब्द या वाक्यांश व्यर्थ (Superfluous) नहीं आने दिया; अपने विचारों को कभी अस्तव्यस्त नहीं होने दिया। वर्षों के अभ्यास और परिश्रम के उपरांत आज मेरी भाषा में प्रवाह, विचारों में स्पष्टता और क्रम, शब्दों में शक्ति और शैली में ओज साधारण बातें हो गई हैं *।

(२१)

जानसन की स्त्री काफ़ी पढ़ी-लिखी थी। जानसन के साप्ताहिक पत्र में प्रकाशित लेख वह बड़े चाव से पढ़ा करती थी। एक बार उसने जानसन से बड़े प्रेम से कहा—विवाह के पहले भी मैं आपको विद्वान् समझती थी, परन्तु स्वप्न में भी मैंने यह न सोचा था कि आप इतना सुन्दर लिख सकते हैं।

अपनी प्रशंसा दूसरों के मुख से सुनकर सभी को प्रसन्नता होती है, परन्तु जो हमारे निकटतम संबंधी हैं, वे यदि हमारी तारीफ़ करते हैं तो हमारी प्रसन्नता का ठिकाना नहीं रहता। यही बात जानसन के लिए भी सत्य है। अपनी स्त्री के—जिससे वह बहुत ही प्रेम करता था उसी स्त्री के—मुख से अपनी विद्वत्ता की प्रशंसा सुनकर वह आनंद से गद्गद हो गया। प्रायः लिखने में जो वह बहुत उत्साह दिखाया करता था, उसका एक कारण यह भी कहा जा सकता है।

(२२)

सन् १७५२ में साहित्यिक कार्य वह अधिक नहीं कर सका। इसका प्रधान कारण यह था कि १७ मार्च को उसकी जीवनसंगिनी का—जिसको वह हृदय से

* अपने संपादन-काल के प्रथम दो-तीन वर्षों में पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदीजी ने भी ऐसा ही विकट परिश्रम किया था।

* हिन्दी के कितने लेखकों का ऐसा निश्चय या विचार है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चाहता था और जो उसे प्रत्येक कार्य में उत्साहित किया करती थी, उसी सहचरी का—देहांत हो गया।

(२३)

स्त्री के मरने पर जानसन ने एक बड़ी करुणाजनक प्रार्थना लिखी है। इस प्रार्थना से जानसन की चरित्र की सरलता और कोमलता पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। उस प्रार्थना का भाव इस प्रकार है—

२६ अप्रैल, १७५२

(२५ की रात आधी से अधिक बीत चुकी है)

ईश्वर! पृथ्वी और स्वर्ग के शासक! यदि मृत प्राणियों की आत्माओं को जीवित प्राणियों का निरीक्षक बनाते हों तो कृपा करके मेरी स्त्री को मेरा संरक्षक बना दें, जिससे मैं उसकी शुभ सम्मति से लाभ उठा सकूँ। कृपया मेरे अभिमान को क्षमा कर और मेरी अज्ञानता को दूर कर। मुझ पर अपनी कृपा रख।

वास्तव में जानसन अपनी स्त्री को बहुत चाहता था। अपने जीवन के शेष लगभग ३० वर्षों में उसका स्मरण करके कई बार नोट—प्रार्थनाएँ और संस्मरण—लिखे हैं। ये उसकी प्रसिद्ध पुस्तक "Prayers and Meditations" (प्रार्थनाएँ और विचार) में संकलित हैं। उनमें से एक का भाव इस प्रकार है—

मार्च २८, १७५३—हृदय में स्मृति और आँखों में आँसू लेकर आज मैं उसकी बर्षी करता हूँ। सायंकाल के समय मैंने उसकी आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना की।

स्त्री की मृत्यु के पश्चात् जानसन ने अपने विवाह की अँगूठी, जीवन भर बड़ी सावधानी से एक डिबिया में रक्खी, जिस पर उसने लैटिन भाषा में अपने हाथ से लिखकर एक काग़ज़ चिपका रक्खा था। काग़ज़ में लिखा था—आह! एलिज़ेबेथ जानसन

विवाह, ९ जूलाई, १७३६

आह मृत्यु! १७ मार्च, १७५२

(क्रमशः)

ताक़त और तन्दुरुस्ती के लिए

बच्चों को

डोंगरे

का

बालामृत

देना चाहिये।

के० टी० डोंगरे कं० गिरगाँव—बम्बई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

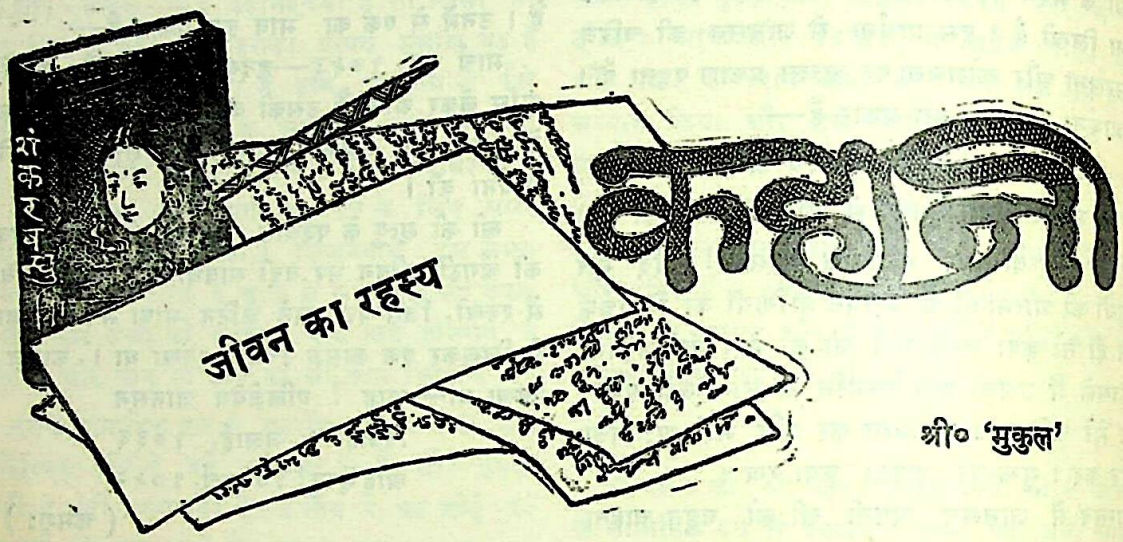

श्री० 'मुकुल'

'वसन्त' छाया अपने में गुनगुनाई। कुछ कहीं भार हल्का लगा। जैसे अवज्ञा-मात्र वह कर रही हो। झूठी ख़ैरख़्वाही में डूबी आँखें बिखरती, सरसता उँडेल अपने में खो वहीं रहतीं। उलझी-उलझी, काली-काली सोई भर। अन्दर एक धुँधला चित्र। ज़रा साफ़ क़ायदे से लगा—वह चित्र हँसता, मुसकराता लगता कहता—'छाया! मैं हूँ—मैं हूँ।' और बाहर कुछ अलग-अलग एक धोखा—बड़ा-सा हल्ला। दुनिया की समझदारी में हल्का पड़ता। पीड़ा बाँट, खो कहीं चुप ही होता। दूर-दूर एक भ्रम....! ज़िन्दगी फीकी कहाँ थी, हाँ, उचाट-उचाट जी में था कुछ कमी, अभाव से खेल। वहीं गुब्बार.....मनुष्य के बनाये क़ानून....कोर्ट के फ़ैसले की तरह धीरे-धीरे फैलते। ज़हर उड़ेल आगे आते, समाज के दायरे में सिखाते—

चुप, चुप, चुप!

बात अपने में न आती। कुछ कहीं पर छू अलग ही हो रह जाती, दूर-दूर; कहती—कहती—

झूठ, झूठ, झूठ!

झूठ! अब छाया चौंकी। अपने को पकड़ चाहा कि ख़ूब समझ ले। उत्तरदायित्व की याद आई। उठी, किताब ले स्वामी के निकट पहुँची। समय काटने लायक़ थी वह किताब। मनबहलाव वह किये जा रही थी कहाँ? और चारपाई पर लेटे स्वामी ने देखा—एक बुझी-उलझी, हल्की नारी। लाल साड़ी सफ़ेद-सफ़ेद बिन्दियों से लगी। हाथों में हरी चूड़ियाँ—लाल—बीच....और आगे फिर हरी, गोल, गोल, किताब के ऊपर सधी, रुकी। सब, सब। ख़ूब बुझाती लगी। खिली-खिली कि छाया ने गड़ी-गड़ी कहा—

"मन नहीं लगता।"

मन?

स्वामी चौंका। दिमाग़ भर गया। वहाँ रेल की निपट खटर-खटर पाई उसने। बाहर दूर-दूर हरे-हरे खेत। उनसे लगे गाँव। वह लाल धोती पहने, ज़रा गन्दी लड़की सिर पर पीतल की कलसी, और सामने टेढ़ी-मेढ़ी साफ़-साफ़ भागती पगडंडी। उसी पर आगे बढ़ती—फिर—

खटर-खटर।

हरे खेतों के उस पार वह घूमती चलती। गाड़ी आगे बढ़ती। अन्दर डिब्बे की दीवार में छोटे-छोटे छेद। उन्हीं में क़ायदे से लगाई चिट्ठियाँ, रजिस्ट्री,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बीमा, सब-सब। सुझाते—एक उचाट। उसी में लगा एक हल्ला। और उचाट और हल्ले के बीच एक हँसी, परेशानी के पास-पास। क्लर्की-जीवन में बँधी ड्यूटी—वहाँ छाया हल्की लगी। बात पकड़ कहा—

"घर जाओगी ?"

छाया शिथिल हो खुल गई। चाहा, कुछ कहे। मैल धो उसी में रह जाय। वह चुप रही—फिर बोली

"और आप ?"

अपनाव की बात उलझी। फिकर-फिकर में किसी को समझाती वह आगे आई हैं। और मन में काली-काली वह वनहटी कहाँ है। एक पत्थर-सी जमी वह वहीं पर है। ज़िन्दगी का अख़ौल उड़ा अपने को परख, पसार जो चारों ओर उड़ी—तो फिकर ही तो वह है। ख़ूब समझा-बुझा एक अभाव चला। क़िस्मत का फ़ैसला लेता। तीन दिन पहले। वह नीले सूट की सफ़ेद-धारियाँ....मन से खेलतीं एक उलझी अवहेलना बिखेर वहीं रहतीं लम्बी-लम्बी। जैसे मन-बुझाव का मोह हो सोया। कुछ कहीं खेल न था जो समझ लेती। उनके बीच वसन्त....! उसकी पीड़ा, घाव-दुःख और आँसू...कुछ लोग उसे उठाकर घर ले आये थे। अपना कर्तव्य निभा वह ठीक जँची थी। जब सन्नाटा आया तो वह बोला था—

"छाया, ज़रा पट्टी ढीली कर दो, बड़ा दर्द है।" और छाया ने पट्टी खोली, ढीली कर एक गाँठ दे बोली—

"बस !"

वसन्त कुछ बोला न था।

सामने तत्परता में पसरी छाया। नीली साड़ी ख़ूब सजी। बालों में हरा फीता। कमरे में ठीक एक पहाड़ी लड़की-सी लगती। ख़ूब देख बोला—

"ज़रा बोतल दे दो, बड़ा गहरा घाव है।"

मन में सन्नाटा, वहाँ बन्दूकों की धाँय-धाँय। दूर-दूर रेत पर छुपे झुण्ड....फिर

धाँय !

वे आगे बढ़ते लाल-लाल साफ़ों में और,

धाँय ! धाँय !!

पास में धुआँ उड़ता। सफ़ेद-सफ़ेद। ऊँचे उठ कहता—

धोखा, धोखा, धोखा !

पहाड़ा-खन्दक के पास वह हिन्दुस्तानी टुकड़ी का कमान्डर था। पिछली घटना के दो दिन बाद आये। एक घाव बना दिल में पसरे। वह घाव अब दर्द देता कसक-कसक। हल्के बात उठती—

'सोफ़ी, सोफ़ी !'

बड़ी रात गये कहीं खुड़खुड़ाहट खेली थी। फिर—

'धाँय !' एक फ़ायर।

'धाँय, धाँय !!' दो फ़ायर।

'धाँय, धाँय, धाँय' तीन फ़ायर।

खन्दक चारों ओर से घिरी पाई उसने। सब समझ गया वह। उलझन ठीक से पकड़ी। सब-सब सामने आया ठीक-ठीक।

चट्टानों में छुपी टुकड़ी ज़िन्दगी में हारी।

दस-दस, साथ।

आगे, बीस-बीस।

पीछे, पाँच-पाँच।

सब शान्त में सोया। केवल मन-बुझाव करने कराहनामात्र थी वहाँ। आगे दूर-दूर खेतों में वे खो गये।

"सोफ़ी !"

किसी ने कहा था।

वह भोला, सरल-मुख घुटने तक फ़्राक, बालों में एक नीला रूमाल—ठीक-ठीक लगी। अन्दर गुद-गुदी। वह बाहर रही।

"ज़रा कसकर बाँध दो....!"

अपने कर्तव्य को निभा सोफ़ी बढ़ी थी। पास उसके आ हल्के-घाव छू बोली थी—

"तुम यू० पी० का है ?"

"और तुम ?"

बात को न पकड़ सोफ़ी हँस दी थी। बोली फिर—

"मैं.....?"

सोफ़ी की हँसी ज़रा अन्दर आई। वहीं पसरी रही। करवट ले सोचा—यह सोफ़ी भली-भली। हँसती-हँसती। और वह ज़िन्दा क्यों रहा—अपने को धोखा दे गोली लगी एक घाव बना, ख़ून बहा पार चली—सन्-सन्-सन्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और अब वह इस नई सोफ़ी में क्यों उलझ रहा है। विचारों में सोफ़ी उलझी। ज़रा ऊपर घर....र.... र....।

पास में हवाई जहाज़।

सोफ़ी चिल्लाई—

"भागो-भागो!"

ख़तरे से परिचित थी वह।

पास में धूलि। रेत बैठी....एक बम गिरा। सोफ़ी चीखी उसने आँखें बन्द कर लीं। दूर पर थोड़ी-थोड़ी रेत उड़ रही थी। सोफ़ी का कहीं पता न था।

छाया का भ्रम आया। बूझता—इस नारी में वह सोफ़ी को क्यों टटोल रहा है। बड़े अफ़सर ने घर जाने की इजाज़त दे दी थी। चलने से एक दिन पहले सुना था—'एक हिन्दुस्तानी कमान्डर की जान बचाते समय सोफ़ी ने अपनी जान दे दी।'

वह नारी महँगी लगी।

दूर पर बादलों के पास उसे देख वह भ्रम में चौंका—

"सोफ़ी, सोफ़ी!"

छाया पास आई। बोतल दे वहीं रही। बोली—

"बड़ा गहरा घाव है?"

'गहरा—?' वसन्त ने बात दुहराई।

सोफ़ी ने भी तो कहा था—घाव गहरा है। ठीक से रखना। बात न समझ हँस दिया। छाया मन के निकट चली—पास-पास कुछ सुझाती। वहीं रही—पीड़ा बाँटती। सोफ़ी से मिलान कर सुलझा। बात उठी—यह छाया....और वह सोफ़ी....नाम का नपा-तुला फ़ासला—कमरे की सरल नारी छाया में फैलती लगी। उसी में रहा—ज़रा अन्दर। और बाहर एक काला परदा—भ्रम का।

फिर कई दिन वह उसके घर पर रहा था। उसके मित्र की बहन होने के नाते वह निभ गई ख़ूब। कुछ स्वस्थ हुआ तो एक दिन गाने की ठहरी।

हरी-हरी घास। पास खिले फूल। बहता नाला। छाया अपनी सखियों के साथ थी। ख़ूब सजी—खिली-खिली।

घास के उस पार वसन्त!

दूर-दूर।

साँझ हो चुकी थी। चाँदनी में स्वप्न-सी छाया—भागती सखियाँ। सब-सब बुझाती लगी—

"ख़ूब! ख़ूब!!"

और मेड़ पर वसन्त। देखा—छाया है। बच्चों के से लापरवाही से कपड़े। साड़ी ज़रा उलझी। दागों से बची। कहने लगी—

'वसन्त, वसन्त!'

जब गाना ख़त्म हुआ, तब और भी रात हो गई थी। खेल-खेल में सखियाँ आगे रहीं। मेड़ के पास छाया को देख वह बोला—

"छाया?"

छाया चौंकी। वसन्त को देख हँसी थी। ख़ूब निहार बोली थी—

"इतनी रात....आप....यहाँ, चलो, घर चलें।"

छाया आगे रही....बढ़ी। वसन्त को आते न देख वह ठिठकी—? फिर वहीं से कहा—

"आइए चलिए न!"

वसन्त बैठा रहा, चुपचुप, गुम-सुम। पास के नाले से खेलता—लहरें उठाता। सोचता—ज़िन्दगी कितनी थोड़ी है—उसमें सोफ़ी, बन्दूक़ की गोली, घाव, छाया और लहरों से उसका हाथ छू गया। ज़रा ठंढा लगा—ऊपर भिगोता। जैसे यह सब बातें अवज्ञा लिये हों उसमें। बोला—

"मन नहीं करता छाया!"

छाया सुझाती लगी—कुछ कहीं पर।

वापस आ पास से बोली थी—

"ऐसा भी क्या....मैं कहती हूँ....चलो।"

फिर हँस, आगे बढ़ उसका हाथ पकड़ घास से भरी पगडंडी पर आई।

छाया साथ-साथ। एक हाथ का हल्का सहारा। सारा अज्ञान हटा-सा लगा। चलते वह बोला था—

"छाया, मुझे याद न करना, ज़िन्दगी बन्दूकों के सहारे आगे बढ़ती है। उसी में रह चलती नहीं। टिकी-टिकी मनुष्यों की लड़ाई में ख़ून बहा—एक धाँय—; बड़ा-सा दम्भ—; यही मैंने जाना है। पत्र कभी न लिखना, अच्छा।"

छाया चुप रही थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह सोच रही थी—मनुष्य कितना स्वार्थी है। अपनी बुद्धि के सहारे दूसरे का पक्ष ले मनुष्य का ख़ून बहाना उसके लिए कितना सरल है। बोली थी—"वसन्त, यह अपने बस की बात नहीं है।"

तीन दिन पहले के वे काले-काले सधे-सधे दो अक्षर मेज़ की बनावट से मिले-मिले सफ़ेद काग़ज़ पर, सामने आये। कहती रही—

"आप यह न लिखा करें—मेरा नाम—और आप.....।" फिर हँस बोली—"जी में आया था—उसे मिटा दूँ....परन्तु.....।"

और वसन्त का मूड बिगड़ा। एक अवज्ञा वहाँ पाई उसने—निरा सूनापन। मन में उलझा।

बात पकड़ बोला—

"इतना भी अधिकार आपको अखरता है।"

आगे चुप हो रहा।

घर आ गया था। छाया नमस्ते कर आगे रही।

अगली सुबह उसे जाना था। छाया न कर सकी नहीं। मन से दूर-दूर चला—वहाँ रुका नहीं।

तीन महीने पहले छाया स्वामी के घर से आई थी। हँसी बाँट, वसन्त में खो हल्की हो वहीं रह गई थी।

मन बहलानेमात्र का साधन था, वह भी गया।

कहता—कहता—

'सच, सच, सच!'

छाया कुछ न बोली। अपना मन समेट, पुस्तक ले चली कहती-कहती—

"बिना आपके मैं कैसे रहूँगी....!"

तभी पास में वसन्त की चीख़....; धाव—; उसका नीला-सूट मन से खेला—बुझाता—

'छाया—ओ छाया!'

दूर पर बादल उड़ रहे थे।

कमरे के बीच कुर्सी पर बैठी वह सोच रही थी.... वसन्त यदि स्वामी हो सकता....और स्वामी....!

बड़ी उलझन थी।

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें -) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)

वैद्यराज—पं० महावीर पाठक, नं० ५, दरभंगा

C. B. 15.

ख़िज़ाब छोड़ो

इस तेल से पका बाल जड़ से काला पैदा होकर यदि स्थायी काला न रहे तो दूना दाम वापस की शर्त। इसकी सत्यता सैकड़ों प्रशंसा-पत्रों से प्रमाणित हो चुकी है। बाल कम पका है तो ५), चौथाई से अधिक पका है तो ७) रु० का तेल मँगा लें।

पता—हजरा एण्ड को०, पो० बिहार

नरसरी (दरभंगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुलाराम शास्त्री

श्रीअमृतलाल नागर

कहानी के सिलसिले में एक लतीफ़ा याद आ गया। सुनिए—

एक सिविलियन साहब थे—ताज़े-ताज़े विलायत से आये हुए। बेचारे हिन्दुस्तानी भाषा न समझ सकने के कारण बड़े परेशान थे। साथ ही अपने हिन्दुस्तानी 'बेअरर' से भी, इसी कारण से तंग आ चुके थे।

एक दिन साहब के एक और सिविलियन मित्र आये। साहब ने अपना रोना गाया। दोस्त ने एक नेक सलाह दी—'जब आपको दरवाज़ा बन्द करवाना हो तो कहिए, There was a banker, और जब खुलवाना हो तो There was a cool day।'

मगर मुश्किल तो यह है कि न तो हम ही सिविलियन साहब हैं और न हमारे तुलाराम शास्त्री पेटी-चपरासवाले 'बैरा'। बेचारे देहाती ठहरे; मुझे बजाय 'हुज़ूर' के 'भैया' कहनेवाले। और मैं भी उन्हें 'डैम फूल' न कहकर 'शास्त्री' 'सास-तेरी' अथवा 'तुलारामजी' कहकर सम्बोधन करता हूँ। मेरा बड़ा लड़का भी अक्सर अपने दोनों चचाओं की देखादेखी, लहज़े से उन्हें आवाज़ देता है—'तू-ला-रामजी-रे!'

तुलारामजी ज़ात के 'गुड़िया' कहार हैं। आज पाँच वर्षों से हमारे यहाँ काम कर रहे हैं। तब से अब तक उनकी हुलिया काफ़ी तौर पर बदल चुकी है। घुटी खोपड़ी के बजाय अब सिर पर अँगरेज़ी फ़ैशन के बाल हैं, जिनमें रोज़ 'भैया' की चमेली के तेल की शीशी से, चुपके से, ज़रा-सा तेल निकालकर चुपड़ा जाता है। और अब तो आप बीड़ी से भी शौक़ करने लगे हैं।

हाँ, उनकी एक विशेषता अब भी अपरिवर्तनशील है—मुस्कराहट। चौबीसों घण्टे आपके सामने के दो दाँतों के बीच का क़ुदरती ठूँठ मुस्कराया ही करता है, और यह आशा भी की जाती है कि आप उम्र-भर इसी तरह मुस्कराते ही रहेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जी हाँ, लखनऊ आकर उनके पास भी अब एक नन्हा-सा दिल हो गया है। आप अब थोड़ा-थोड़ा इश्क़ करना भी जान गये हैं। नौटंकी के नगाड़ों ने उन्हें 'ज़हरे-इश्क़' का काफ़ी परिचय दे दिया है।—आप 'मूस' से प्रेम करते हैं।

'मूस' नाम के पीछे भी एक इतिहास छिपा है। 'सोहनी' हमारे यहाँ काम करनेवाली कहारिन की बारह-तेरह बरस की लड़की का नाम है। ख़ूबसूरती में वह 'लैली' से कुछ बीस ही होगी। 'उमर' जी भी एक बार उसकी ख़ूबसूरती की दाद दे चुके हैं।

एक बार का ज़िक्र है। गर्मी का ज़माना था; दोपहर का वक़्त। मैं ठंडक की वजह से तहख़ाने में सोने जा रहा था। नीचे दरवाज़ा खुलने का खटका हुआ। ऊपर से माताजी ने पूछा—'सोहनी, देख तो, नीचे कौन है?'

नल के पास बैठकर बर्तन माँजती हुई सोहनी ने ज़रा झाँककर, इतमीनान से जवाब दिया—'कोई नहीं, मूस रहा।'

मेरे भारी-भरकम शरीर के लिहाज़ से अगर कोई मुझे 'गणेश' कह दे, तो किसी हद तक सहन भी कर लूँगा—हालाँकि, अक्सर अख़बार में छपी हुई मेरी तस्वीर देखकर यह तो आप भी दिल पर हाथ रखकर कह सकते हैं कि नाक के स्थान पर मेरे 'सूँड़' नाम की कोई चीज़ वाक़ा नहीं हुई—केवल नाक ही है, अपने साधारण रूप में। मगर सोहनी द्वारा अपने को गणेश महाराज की सवारी क़रार दिये जाते देख मुझे काफ़ी क्रोध चढ़ आया।

उसी दिन से, आपकी दुआ से, मैं तो अमृतलाल नागर ही बना रहा, मगर वह बेचारी सोहनी से 'मूस' हो गई। और अब तो वह इसी नाम से प्रसिद्ध हो चुकी है—यहाँ तक कि उसकी मा भी अब उसे बजाय 'सोहाना' के 'मूसा' पुकारती है।

जी हाँ, तो इसी मूसा से हमारे शास्त्रीजी प्रेम करते हैं। प्रेम करने की प्रणाली भी उनकी अजीब है। छत पर अकेले बिस्तर बिछाती हुई मूसा की पीठ में घूँसा जमाकर, मुस्कराते हुए कहते हैं—'मूसा रानी!'

और मूसा रानी उनके सात्त्विक प्रेम की गहराई न समझकर, फिक-फिक रो देती है।

एक बार मैंने भी उनकी यह प्रेम-सम्बन्धी 'थीसिस' जाँचकर उन्हें 'शास्त्री' की उपाधि दे दी।

सिविलियन साहब न होने पर भी, मेरी सीधी-सादी हिन्दुस्तानी भाषा भी, वह अक्सर नहीं समझ पाते हैं।—बस, इसी से परेशान रहता हूँ।

यह तो कह ही नहीं सकता कि तुलारामजी के पास दिमाग़ ही नहीं है। कभी-कभी छुट्टी न मिलने पर, चचा के दस्तों की तीमारदारी का बहाना कर वह रात में नौटंकी देखने जाते हैं; कभी अपनी मौसी की सास के दर्शन करने जाकर वह बकरी-बन्दर का नाच भी देख लेते हैं।

एक बार, पैर दबवाते वक़्त, मैंने उन्हें ठीक तरह से एड़ी की 'चुटकी' दबाने को कहा। उस तरह चुटकी दबाने से दाबनेवाले के अँगूठे पर काफ़ी ज़ोर पड़ता है। शास्त्रीजी एक बार उस तरह चुटकी दबाना समझकर भी फिर भूल गये; और बाद में, मेरे लाख बार समझाने पर भी उस तरह से चुटकी दाबना सीख न पाये। Some thing is better than nothing के ख़याल से मैंने संतोष कर लिया।

पैर दाबने से छुट्टी पाकर, थोड़ी देर बाद, तुलारामजी वहाँ से चले गये। शाम का वक़्त था, माताजी खाना पकाने में दत्तचित्त थीं और मेरी अन्धी दादी उन्हीं के पास रसोई-घर में बैठी हुई बातें कर रही थीं। दोनों भाई घूमने चले गये थे। उस वक़्त कोई ख़ास काम था नहीं। तुलारामजी ऊपर छत पर चले गये। मैंने समझा, बीड़ी पीने गये होंगे।

थोड़ी देर बाद, संयोग से, मुझे भी सिगरेट पीने ऊपर जाना पड़ा। ऊपर जाकर देखा, तुलारामजी चारपाई पर लेटकर बीड़ी पीते हुए मूसा से पैर दबवा रहे हैं।

घूँघट की आड़ में छिपे हुए घासलेट को देख-देखकर चुपके-चुपके प्रसन्न होने की आदत मेरी नहीं; और न आदर्शवाद की पगड़ी पहनकर मैं, बक़ौलशख़्से, मारवाड़िनों के खुले हुए तोंद पर ही, मन ही मन मरता हूँ। 'आध्यात्मिक' प्रेम या प्रेमिका से भी मुझे चिढ़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। परन्तु, उस समय छिपकर ही शास्त्रीजी का यह स्वर्गीय वैभव देखने की इच्छा हुई।

किवाड़ की आड़ में खड़े होकर मैंने देखा शास्त्रीजी मूसा की खोपड़ी पर एक प्रेम-पूर्ण तमाचा रसीद कर फ़रमा रहे थे—'गदही, ऐसे नहीं—ऐसे !'

इसके बाद उन्होंने चुटकी दाबने की विधि बताई।

तीन बार भरसक चेष्टा करने पर भी मूसा उस तरह चुटकी न दबा सकी। तंग आकर कहने लगी—'हमसे इस तरह नहीं दबता।'

दूसरी बीड़ी जलाकर, इतमीनान से धीरे-धीरे मुस्कराते हुए कहा—'जरा कोसिस करो। बड़ा नीक लगता है।—हाँ, दबाओ तो, मेरी मूसा रानी !'

चौथी बार प्रयत्न करते हुए मूसा रानी ने जिज्ञासा की—'यह रोज़-रोज़ नये ढंग कहाँ से सीख आते हो ?'

बीड़ी का कश खींचते हुए, तुला ने गम्भीरतापूर्वक उत्तर दिया—

'भैया, ऐसे ही दबवाते हैं।'

आग को देखकर आग भड़कती है। सोचने लगा, अगर मेरी श्रीमतीजी बजाय मेरे बच्चों की मा होने के मेरी प्रेमिका रही होतीं तो इसी तरह पैर दबवाता। मगर यह सम्भव न होने के कारण मैं शास्त्रीजी का यह सुख फूटी-आँखों भी न देख सका।

दूसरा कारण यह भी था कि बीड़ी को देखकर सिगरेट पीने की तलब और भी ज़ोरों से भड़क उठी थी। इसलिए धड़धड़ाते हुए किवाड़ खोले। शास्त्रीजी चौंककर उठ बैठे और मुस्कराते हुए तकिया का ग़िलाफ़ चढ़ाने लगे, और मूसा ने मुस्कराकर छत पर पानी छिड़कना शुरू कर दिया।

उसी दिन की बात है। रात के साढ़े आठ बजे थे। मैं घर में एक ज़रूरी काम बता, कानपूर जाने का बहाना कर, मसान में चुड़ैल सिद्ध करने जाने की सोच रहा था। सिद्धि-प्रयोग में रसायन की आवश्यकता मुझे कभी-कभी महसूस होती है। ग्रेट इंडियन होटल घर से काफ़ी दूर पड़ता था। धोती मैली हो रही थी, धोबी कपड़े धोकर लाया न था। इसलिए मैं धोती में साबुन लगाने बैठा और तुलारामजी के हाथ में दस रु नोट रख, एक पर्चे में दवा का नाम लिखकर दे दिया।

मैंने कहा—'थैले में रखकर लाना।'

शास्त्रीजी ने मुस्कराकर धीरे से कहा—'अच्छा!'

मैंने फिर कहा—और जल्दी आना, समझे!

तुलाराम गर्दन हिलाकर मुस्कराये। मैं धोती में साबुन लगाने बैठा।

तुलाराम फिर पलटे, पूछा—'भैया !'

मैंने झुँझलाकर कहा—'क्या है रे ?—अभी तू गया नहीं ?'

शास्त्रीजी बुत की तरह चुप।

मैंने फिर कहा—'क्या बात है ?'

तुलारामजी ने डरते-डरते पूछा—'भैया, क्या लावें?'

मैं खीझ उठा, बोला—'अबे लायेगा क्या, मेरा सिर ?—जाके, दवाई ले आ।'

तुलाराम हाथ में नोट और परचा लिये हुए फिर चुप।

मैंने ग़ुस्से में भरकर कहा—'अब यहाँ क्यों खड़ा है ?'

'भैया, इन्दरचन्द कम्पनी से ले आवें ?'

हद हो गई थी। एक बार क़ायदे से, ग्रेट इंडियन होटल का पता बता चुका था। इसलिए बेहद ग़ुस्सा आ आया। उस ग़ुस्से में मेरी सूरत, बक़ौल पण्डित बनारसीदासजी चतुर्वेदी के, महामना पण्डित श्रीकृष्ण-दत्तजी पालीवाल की तरह—रीछ-सी हो गई। मैं चीख़कर कहा—'अबे जाता या नहीं—ग्रेट इंडियन होटल। और जल्दी आना, मुझे रेल पर जाना है। समझा ?—भाग यहाँ से।'

शास्त्रीजी चले गये।

मैंने धोती में साबुन लगाकर उसे सुखा दिया। उसके बाद अपने मैले चेहरे की सफ़ाई की। कपड़े पहने और ग़ज़ल गुनगुनाता हुआ इन्तज़ार करने लगा।

नौ बजे, साढ़े नौ, दस भी हस्ब-मामूल बज गये—मगर हज़रत का कहीं पता नहीं।

छोटे भाई ने पूछा—'भाई साहब, आप तो कानपूर जा रहे थे, न ?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैंने झुँझलाकर कहा—'जा रहा था के क्या मानी ? अब भी जा रहा हूँ।'

'मगर अब तो आपको गाड़ी मिल नहीं सकती। क्या किसी चीज़ का इन्तज़ार कर रहे हैं ?'

मैंने मुँह फुलाकर कहा—'तुला को दिल के दर्द की दवा लाने भेजा था। अभी तक आया नहीं, कमबख़्त। ग्रेट इंडियन—'

होटल कहते-कहते रुक गया। वरना वह पूछ ही बैठता—'वहाँ दिल के दर्द की दवा कहाँ ?'

फिर भी उसने पूछा—'ग्रेट इंडियन क्या ?'

मैंने कहा—'ग्रेट इंडियन मेडिकल स्टोर्स। क़ैसरबाग़ के चौराहे पर अभी नया ही खुला है।'

'मगर इन्दरचन्द कम्पनी से क्यों नहीं मँगा ली ?'

'वहाँ यह दवा इस वक़्त नहीं है।'

'तो और कहीं पासवाली दूकान से मँगा लेते। आपने भी तो उसे लंका के छोर पर भेज दिया।'

मैंने झुँझलाकर उत्तर दिया—'यहाँ कहीं भी यह दवा अच्छी नहीं मिलती।'

भाई चुप हो रहा। मैं इन्तज़ार करते-करते ऊब गया था। कानपूरवाला बहाना भी अब नहीं चल सकता था। लिहाज़ा, बजाय मसान की चुड़ैल सिद्ध करने के मैंने ग़ुस्से से आग हो, बर्फ़ का ठण्डा पानी पी-पीकर अपने प्रेत को उतारना शुरू कर दिया।

साढ़े दस बजे शास्त्रीजी लौट आये।

'होटल नहीं मिला।' उन्होंने सीधा-सा उत्तर दे दिया।

दूसरे दिन, संयोग से, मैंने सुना, तुलाराम शास्त्री मूसा को छत पर खड़े-खड़े 'शंकरगढ़-संग्राम' के चौबोले सुनाकर कह रहे थे—'कल रात भैया ने होटल में दवा लाने भेजा। चौराहे पर नौटंकी हो रही थी। मैं नहीं गया—नचनिया गा ख़ूब रहा था।'

स्त्रीपुरुष सबके लिये ताक़त ताज़गी से भरा हुआ

सुमधुर

झंडु द्राक्षासव

अवश्य सेवन कीजिए

चाँदनी जैसी शीतल

झंडू की (शिलाजीत युक्त)

चन्द्रप्रभा गुटी

मूत्ररोग और धातुविकार की

अद्वितीय औषधि है

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बक्स नं० ५५१३ बंबई नं० १४।
यू० पी० एजेंट—कांतिलाल, आर० पारेख, चाँदनी चौक, दिल्ली।
लखनऊ एजेंट—माताबदल पन्सारी, अमीनाबाद।
लखनऊ स्टाकिस्ट—कौशिक आयुर्वेदिक स्टोर्स, श्रीराम रोड।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग्रामीणों का रहन-सहन कैसे ऊँचा हो ?

श्रीहरशरण शर्मा विशारद

प्रकृति में विकास का क्रम सनातन है, शाश्वत है और अनादि है। उस विकास का परिणाम ही मानव की परिवर्तित अवस्था है। मनुष्य जब से पृथ्वी पर आया, तब से अपनी अतृप्ति के गीत गाता रहा। किसी भी परिस्थिति में पहुँचकर मानव संतुष्ट नहीं रहना चाहता। उसकी इस असन्तोष की भावना से ही विश्व में संघर्ष की सृष्टि हुई। प्रकृति के रहस्य को ध्यानपूर्वक देखने से यह पता चलता है कि पारस्परिक संघर्ष के कारण मानव को अनेक आविष्कारों का आश्रय लेना पड़ा। उन आविष्कारों से आकुल होकर मानव ने अपनी पशुता को पहचाना।

उसे ज्ञान हुआ कि मानवता उसकी विकासोन्मुखी प्रतिभा है और पशुता है उसके पतन की परिछाईं। अस्तु, उसे उस दिशा की ओर अग्रसर होना पड़ा, जहाँ पशुता पर मानवता विजय प्राप्त करे।

मैं पहले ही निवेदन कर चुका हूँ कि द्वन्द्व-वाद से पूर्ण निखिल सृष्टि है। जब मानवता के प्रकाश पर पशुता के बादल छा जाते हैं, उस समय मानव की प्रवृत्ति हिंसात्मक प्रयोगों का प्रश्रय लेती है। उसी समय मानवों में परस्पर संघर्ष उत्पन्न हो जाते हैं। उन संघर्षों के विद्युत्प्रवाह में मानव अतृप्ति की ओर बढ़ जाता है। उसकी चित्तवृत्तियाँ भौतिक अभिव्यंजना का मूर्त रूप धारण कर लेती हैं। यही कारण है कि सनातन से एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अपना युद्ध-कौशल दिखलाता आ रहा है। परन्तु जब वे बादल हटते हैं और मानवता का प्रकाश पुनः आलोकित होता है, जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है, तब पशुता पर विजय प्राप्त करने के लिए महात्माओं के सत्य के प्रयोग मानव को दूसरी दिशा की ओर ले जाना चाहते हैं।

भारत का गाँधीवाद उसी प्रयत्न का फल है। वह पशुता के अन्धकार से खींचकर मानव को सत्य के प्रकाश में लाना चाहता है, जहाँ आकुल मानव विश्व-बन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत हो जाय। इसी से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभावित होकर आज इस भावना का उद्रेक हुआ है कि ग्रामीणों की रहन-सहन में मानवता का पूर्ण विकास किन साधनों के द्वारा हो सकता है।

इस बात से कोई भी शिक्षित और सम्भ्रान्त उदासीन नहीं रहना चाहता कि ग्रामीण एक ओर अपना पाशविक जीवन बिताकर राष्ट्रोन्नति में बाधक बने रहें। सभी हृदय से उनकी अवस्था में एक समयोचित परिवर्तन चाहते हैं। परन्तु यह चेष्टा कैसे सफलीभूत हो, इसी विचारधारा से इस समय के मनीषियों का मस्तिष्क और हृदय परिप्लावित है।

यह तो मानना ही होगा कि आवश्यकताओं की वृद्धि के साथ-साथ इस युग के रहन-सहन का माप-दंड ऊँचा हो सकता है।

आवश्यकताओं की वृद्धि ही ऐहिक आराधना है, जो जीवन को गति प्रदान करती है, पर इस बात को कभी न भूल जाना चाहिए कि आवश्यकताओं की वृद्धि के साथ हमारी आर्थिक उन्नति वांछनीय नहीं है। इसी बात को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि आर्थिक उन्नति की अभिलाषा ही इस युग की एक प्रधान क्रियाशीलता है।

भारत की आध्यात्मिक भावना, जीवन की सतत क्रियाओं को एक परोक्ष-सत्ता की भेंट करती है; जो अज्ञात है; अदृश्य है; किन्तु अन्य देश भौतिक आराधना में ही तन्मय होकर मानव-जीवन को अधिक से अधिक उन्नत अवस्था में देखना चाहते हैं। विश्व की इस गतिशीलता में हम पीछे न रह जायँ; इसी दृष्टिकोण को काम में लाकर आये दिन हमारे देश में भी अन्य देशों की उपर्युक्त भावना उद्दीप्त हो उठी है और हमारा आध्यात्मिक अनुभव अपनी दिशा बदल रहा है, केवल सत्य के प्रयोग के लिए क्षेत्र तैयार करने की लिप्सा से। इसलिए हमें इस दिशा की ओर आना पड़ा है, जहाँ हम यह प्रयत्न करते दिखलाई पड़ते हैं कि मानवता का स्टैण्डर्ड कैसे ऊँचा हो; क्योंकि जब तक हम ग्रामीणों का रहन-सहन उन्नत न कर लेंगे। कहने का प्रयोजन यह कि जब तक हम उन्हें समयोचित रहन-सहन से परिचित न करा देंगे, तब तक हमारी भारतीय आध्यात्मिकता का वह विकास उनमें न हो सकेगा, जिसे हम विश्व के सम्पर्क में रखना चाहते हैं।

इसी विचारधारा का प्रभाव ग्रामों में नागरिकता की सृष्टि कर रहा है। किसी भी मानव को हम नागरिक तभी कह सकते हैं, जब उसमें जीवन को उन्नत और प्रगतिशील बनाने की सदिच्छाओं का पूर्णतम विकास होता है। उन्हीं सदिच्छाओं की अभिव्यक्ति में आज का मानव प्रयत्नशील दिखलाई पड़ता है। उसके प्रयत्न के मूल में भाँति-भाँति की शिक्षा-योजनाएँ मर्म-सी समाई हुई हैं।

इस युग की आध्यात्मिक भावना भजन-पूजन, आत्म-चिन्तन से हटाकर मानव को लोक-सेवा की ओर अग्रसर करती है। इसी भावना से प्रेरित होकर हमें ग्रामों में सामयिक शिक्षा का पूर्ण विकास करना होगा। शिक्षा जीविका के साधनों से समन्वित हो, इसके लिए शिक्षा के साथ-साथ उद्योगधन्धों का विकास जीवन के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हो रहा है।

यह तो आज कहने-सुनने की बात नहीं रही, वर्षों से इस पर एक उग्र विचारधारा अपना प्रभाव डाल रही है। कुछ अंशों में उसके प्रति किये गये प्रयत्न सफल भी हुए हैं, किन्तु पूर्णांश में पहुँचने के लिए अभी हमारा अखण्ड प्रयत्न अवशिष्ट है।

कृषि उन गाँवों का, जिनको हम सभ्यता के उस ऊँचे धरातल पर ले आना चाहते हैं, जहाँ से वे विश्व की सभ्यता को देख सकें, प्रधान व्यवसाय है। उस व्यवसाय को उन्नत बनाने और उसे सामयिकता का जामा पहनाने के लिए हमें प्रत्यक्ष विज्ञानवाद की शरण लेनी होगी। हम अपने भौतिक जीवन की उपेक्षा करके कभी उन्नति नहीं कर सकते।

मनुष्य की आर्थिक परतन्त्रता ही उसकी सच्ची परतन्त्रता है।

हमें अपनी उस आर्थिक परतन्त्रता को मिटाने के लिए उन छोटे-छोटे कल-कारख़ानों का, जिनमें उन गाँवों की उत्पादित वस्तुओं की खपत हो सकेगी, आश्रय लेना होगा।

मैं इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि "कर बढ़ाकर मानव को विलासिता के गर्त से बचाया जा सकता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है।" यह बात ठीक है, परन्तु विलासिता मेरे ख़याल से उन आवश्यकताओं की पूर्ति को कहते हैं, जो अस्वाभाविक हैं, असंगत हैं। जीवन-यापन के जिन साधनों से हममें सदिच्छाओं का विकास हो, वे विलासिता के साधन नहीं कहे जा सकते। अस्तु, हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि राष्ट्र के ज़मींदार, सेठ-साहूकार तथा इतर वैभववान् मनुष्यों का कर्तव्य है कि वे अपनी पूँजी ग्रामों में लगाकर ऐसे साधन उपस्थित करें, जिनका उपयोग ग्रामीण अपने जीवन में कर देकर भी कर सकें। उसका फल यह होगा कि वे अधिक से अधिक उत्पादन करके उसके द्वारा विना किसी प्रकार का कष्ट उठाये अधिक से अधिक कर देकर भी सुखी और सम्पन्न रह सकते हैं।

भूमि के क्षेत्र-फल के विचार से वहाँ बीजशालाएँ खोलनी चाहिए, जिससे किसान समय पर बीज बो सकें और पैदावार के अनुपात में वृद्धि हो। ऐसे हल संगठित प्रयत्नों द्वारा रक्खे जायँ, जो आधुनिक आविष्कार के फल हैं, जिनसे आवश्यकता के अनुसार किसान उन्हें अपने उपयोग में लाकर उपज में वृद्धि कर सकें।

आये दिन बड़े परिमाण में लारी और मोटरों का उपयोग बढ़ रहा है। यदि उधर से ध्यान हटाकर वही पूँजी हम कृषि के आवश्यक साधनों के जुटाने में ख़र्च करें, तो पूँजीपतियों को भी लाभ हो और किसान भी सम्पन्न हो जायँ। आवश्यकता है केवल विचार-विनिमय की।

जीवन के उपयोग में तीन वस्तुओं की अनिवार्य आवश्यकता है। एक तो भोजन। दूसरे वस्त्र। तीसरे शिक्षा के लिए पुस्तकें और समाचारपत्र। भोजन के लिए इस युग का भारतीय अथक श्रम करता है, परन्तु कपड़े की ओर से वह उदासीन है। इसके लिए यह आवश्यक जान पड़ता है कि प्रत्येक किसान में कपास के उत्पादन की ओर रुचि उत्पन्न की जाय। ऐसे साधन, जैसे कताई-बुनाई के छोटे-छोटे कार्यालय, जिनमें गाँव की कपास खप सके, उपस्थित किये जायँ, जिससे उस कपास के बदले उन्हें कपड़े प्राप्त हो सकें। अब रही तीसरी बात शिक्षा की, इसकी उन्नति के लिए हमें अपने समय को कुछ दिन ग्रामों में लगाना होगा।

जिन गाँवों में पाठशालाएँ हैं, उनमें तो कुछ ऐसे वाचनालय खोलने से आसपास की शिक्षित जनता का काम चल सकता है, जो पढ़ने में प्रेम रखती है, परन्तु अधिकांश में ऐसे लोग हैं जो निरक्षर हैं, उनके रहन-सहन और विचारों को उच्च बनाने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक आविष्कार काम में लाये जायँ। जैसे मैजिक लैनटर्न का उपयोग किया जाय, तथा समाचारपत्रों को सुना-सुनाकर दूर-दूर देशों की चमत्कारी घटनाओं से परिचित कराया जाय। अच्छा तो यह हो कि संगीत के द्वारा उनमें प्रगतिशीलता के भाव भरे जायँ।

रहन-सहन को उच्च बनाने में स्वच्छता का स्थान सबसे ऊँचा है। इसके लिए ग्रामों में म्यूनिसिपलटियों का विकास किया जाय, जिनके अन्तर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य और सफ़ाई का प्रबन्ध रहे। ग्राम की म्यूनिसिपलटियाँ शहरों के वातावरण से अलग अपना रचनात्मक कार्य कर सकें, जिनमें सादगी और मितव्ययिता का विशेष ध्यान रक्खा जाय। इनके संगठित हो जाने से ग्रामों की रहन-सहन उच्च बनाने में बड़ी सहायता मिल सकती है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि इन सब कामों के लिए धन कहाँ से आवे। ऊपर मैंने पूँजी लगाने के तरीक़ों का वर्णन किया है। यहाँ यह बताने का प्रयत्न करता हूँ कि शिक्षा का विकास कैसे हो, इसके लिए ग्राम में आये हुए कर से कुछ स्वल्प वैतनिक कर्मचारी रखकर काम सुविधापूर्वक चलाया जा सकता है। आवश्यकता है इस ओर दृष्टि डालने और प्रयत्न करने की। कार्यक्षेत्र में उतरने पर अनेकों साधन उपलब्ध हो जाते हैं; क्योंकि "आवश्यकता आविष्कार की जननी है।"

ग्राम-सुधार का कार्य करनेवाले कार्यकर्त्ता इस बात का प्रयत्न करते रहें कि ग्राम की संगठित संस्थाएँ और उसके पदाधिकारी अपना काम सुरुचिपूर्वक संपादित करते हैं या नहीं।

प्रत्येक ग्राम का मुखिया, जो ग्रामीणों की विवेक-बुद्धि के आधार पर चुना गया हो, प्रत्येक संस्था से इस प्रकार संबंधित रक्खा जाय, जैसे किसी देश का शासक उस देश की संस्थाओं से। वह सबकी प्रगतिशीलता का निरीक्षण करता रहे। इसके उपलक्ष्य में उसे राष्ट्र के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुधारवादी अर्थ-कोष से योग्यतानुकूल ऐसा वेतन दिया जाय, जिससे वह स्वयं अपना रहन-सहन ऐसा उच्च रख सके, जिससे गाँव में अच्छे आदर्श की सृष्टि हो सके। उपर्युक्त प्रत्येक विचार को कार्यरूप में परिणत करने के लिए हमें अपनी आर्थिक और बौद्धिक परतंत्रता का मलोच्छेद करना होगा, जो राष्ट्र के उदार शासकों, पूँजीपतियों और शिक्षित वर्गों के संगठित प्रयत्नों से हो सकता है, अन्यथा कोरी कल्पना से ये स्वप्न साकार न होंगे।

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए

एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सूज़ाक (गनोरिया) की हुकमी दवा

डा० जसानी का

जगत्-विख्यात

'गोनोकिलर' [रजिस्टर्ड]

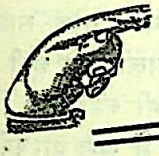

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने व निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर एक ऐसी ही आश्चर्यजनक दवा है जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता। डाक्टरों की दवा और इंजेक्शन (टीका) लेकर आप परेशान हो गये हों, अँगरेज़ी और अमेरिकन पेटेंट दवाओं में फ़िज़ूल पैसा बरबाद करके बिलकुल नाउम्मेद हो गये हों, तब आख़िरी इलाज हमारा 'गोनोकिलर' बेखटके इस्तेमाल कीजिए। चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को "गोनोकिलर" जड़ से नष्ट कर देता है।

मूल्य ५० गोलियों की शीशी का ३) रु० डाक-व्यय आठ आना अलग।

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
दवा का नाम गोनोकिलर
और मुर्ग़ा छाप सीलबंद
पैकेट देख लीजिये

एकमात्र बनानेवाला—डाक्टर डी० एन० जसानी, (M.L.) बिट्ठल भाई पटेल रोड मुंबई नं० ४

एजेंट—किंग मेडिकल हाल अमीनाबाद पार्क, लखनऊ] हरएक दवाफ़रोश के यहाँ बिकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम-ज्योति

लेखिका—कु० उषा बोरीकर ; अनुवादक—रविनाथ

मेरा नाम रोशन, जाति मुसलमान। मुसलमान-समाज में मेरी ख़ूबसूरती पर तारीफ़ के पुल बँधा करते थे। मेरे एक माने हुए चाचा थे, वह तो मुझे नूरजहाँ ही कहकर पुकारते थे। उन्हें रातो-दिन यही चिंता रहती थी कि न जाने कौन-सा जहाँगीर मेरी नूरजहाँ के लिए ख़ुदावंद करीम ने क़िस्मत में लिख रखा है।

आज अगर मेरे चाचा मेरे जहाँगीर को देखने को ज़िन्दा होते तो शायद मुझे नूरजहाँ कहना ही छोड़ जाते।

मेरा रंग गुलाब-जैसा गोरा था। मेरे चाचा वग़ैरह जब मेरी ख़ूबसूरती की तारीफ़ करते, तब मैं मदहोश हो आईने में अपना बार-बार मुख देखकर फूली न समाती थी। मकतबी तालीमयाफ़्ता होने से, मैंने अपने लिबास में भी फ़र्क़ कर दिया था, वही गुजराती फ़ैशन की साड़ियाँ वग़ैरह मेरा लिबास था।

मेरे वालिद मालदार नहीं थे, फिर भी हमें खाने-पाने की कोई कमी नहीं थी। मुझसे बड़ा एक भाई था। वह भी मेरे-जैसा ख़ूबसूरत नौजवान था।

मैंने उमर के १७वें साल में मैट्रिक पास किया। सामाजिक प्रतिबंधों के कारण चाचा को मेरी शादी की फ़िक्र हुई। कारण, अब वे मुझे अधिक दिन तक क्वाँरी रखना नहीं चाहते थे। मैट्रिक पास होते ही मेरी सगाई एक मुसलमान ज़मींदार के साथ तय हुई।

बाबा (पिताजी) मुझसे हमेशा कहा करते, बेटी, अब्बास कोई ग़ैर नहीं, तू क्यों फ़िक्र करती है, और वाक़ई अब्बास कोई ग़ैर नहीं था। हमारा और उसके ख़ानदान का क़दीमी दोस्ताना था। तीन साल लगातार मैट्रिक फ़ेल होने पर वह तालीम से छुट्टी ले चुका था। अब्बास विशेष ख़ूबसूरत भी नहीं था, फिर भी मैंने उसका विरोध नहीं किया। मैं ख़ुश थी; क्योंकि वह मालदार था और था इस्लाम का कट्टर अभिमानी। उस शहर में धर्माभिमानी दो ही व्यक्ति थे—एक मेरे बाबा, दूसरे अब्बास के वालिद। जल्द ही हम दोनों उल्फ़त में दीवाने हो गये।

अब्बास-जैसा पति पाने से मेरी सहेलियाँ मेरी तक़दीर की तारीफ़ किया करती थीं। शायद यही वजह थी कि मैं अब्बास के प्रेम में दिनोदिन डूबी जा रही थी।

हमारे शहर में एक हिन्दू डाक्टर को आये एक महीना हो गया था। एक ही महीने की प्रैक्टिस में उसकी शोहरत सारे शहर में फैल गई थी। मेरे सिर में दर्द होने के कारण अब्बास मुझे उसी डाक्टर के यहाँ ले गया।

दवाख़ाने के सामने मोटर खड़ी होते ही, अब्बास और मैं नीचे उतरे। अब्बास को देखते ही डाक्टर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने कुर्सी से उठते हुए बड़ी तहज़ीब से, अब्बास से हाथ मिलाते हुए कहा—Good morning, Mr. Abbas. मुझे भी उसने Good Morning. किया। शायद तहज़ीब को देखते हुए उसने मुझसे हाथ नहीं मिलाया। मेरी इच्छा थी, अगर डाक्टर मुझसे भी हाथ मिलाते। मैंने कुर्सी पर बैठते हुए पूछा, How did you know Abbas ? Doctor. डाक्टर ने कहा, Does it strike wonderful, well, I think there is no one in this town who knows Mr. Abbas.

लेकिन अब्बास की तारीफ़ से मुझे अभिमान नहीं हुआ। मैं क्यों न ख़ुश हुई ? इसके पहले अब्बास की तारीफ़ सुनकर मैं फूली नहीं समाती थी। डाक्टर अब्बास की स्तुति में लगे हुए थे, और मेरा मन डाक्टर की स्तुति कर रहा था। मेरी नज़र डाक्टर की चाँद-जैसी सूरत पर जमी हुई थी। उसका प्रत्येक अवयव कितना कला-पूर्ण था। ऊँचा, गोरा बदन। मदभरी आँखों ने मुझे दीवाना बना दिया था।

कितनी देर से मैं उसे निहार रही थी। जब अब्बास चलने लगा तब मेरी नज़र उस पर से हटी। डाक्टर बोला—I expect you once more here. लेकिन अब्बास का ध्यान इस ओर नहीं था। अब्बास को मालूम हुआ कि डाक्टर ने मुझे ही कहा। इसलिए अब्बास बोला—Thanks Doctor। डाक्टर की नज़र मेरी ओर थी। मैं सिर्फ़ उसे देख मुस्कराई।

मोटर शुरू होते-होते मैंने फिर एक बार डाक्टर को देखा। नज़र से नज़र मिली। उल्फ़त से चमकनेवाली आँखों ने मुझे दिव्य संदेश दिया। मुझे ख़्याल है कि उतने ही साफ़ दिल से मेरी आँखों ने उसका जवाब दिया। "आज, ऐसा क्यों होता है" मैंने विचार किया। कुंडलाकार हवा के झकोरों में काग़ज़ के टुकड़े फँसकर जिस प्रकार ऊपर को उड़ते चले जाते हैं, वैसा ही अनुभव मुझे हो रहा था। डाक्टर ने ऐसी ही कुंडलाकार हवा तैयार की थी, जिसमें मैं ऊपर को उठी जा रही थी। किसी भी युवक की कला में मैं आज तक नहीं फँसी थी, लेकिन डाक्टर ने मेरे अभिमान को चूर कर दिया था। न-जाने कौन-सा जादू था उसके पास ? लेकिन यह अनुभव सुखदायक होते हुए भी मुझे दुःख-दायक प्रतीत हुआ। मैंने अपनी भावनाओं का पृथक्-करण किया कि "ऐसा क्यों होता है ?" मेरे मन ने जवाब दिया—"प्रेम के कारण"। प्रेम से ?—मेरा सर्व शरीर कंपायमान हो गया।

मैं सोच रही थी कि कितनी मूर्ख हूँ मैं। अब्बास, डाक्टर-जैसा ख़ूबसूरत नहीं है तो क्या हुआ। एक वर्ष बाद शादी होगी। सारी ज़िन्दगी उसके साथ गुज़ारनी होगी। डाक्टर से प्रेम करने से क्या फ़ायदा ?

मन की अस्वस्थता लिये घर लौटी। बिस्तर पर पड़े-पड़े उक्त कल्पनाओं पर ही मैं विचार कर रही थी। दो व्यक्ति मेरे सामने थे—एक अब्बास, दूसरे डॉक्टर।

मैंने बहुत प्रयत्न किया कि डाक्टर दिनेश की याद को भुला दूँ, परन्तु व्यर्थ। मैंने विचार किया, शायद एकान्त में रहने से उसकी याद रह-रहकर उठती है। उन्हीं विचारों का दमन करने के लिए मैंने अब्बास को बुलवा लिया। अब्बास के आने पर भी डाक्टर की याद न छोड़ सकी। अब्बास मेरे पलँग पर बैठे-बैठे कह रहा था—रोशन, क्यों घबराती हो ? जल्द ही ठीक हो जाओगी। मैंने कहा—वैसा ही होगा। कितनी ख़ुश होती हूँ अब्बास तुम्हें देखकर। ग़रीब बेचारे अब्बास को क्या मालूम कि रोशन किस मर्ज़ से परेशान है। उसने मेरा चुम्बन लिया, कितने गर्म थे ओठ, उनका स्पर्श भी उसे सहन न हो सका। अब्बास बोला—रोशन, मर्ज़ बढ़ रहा है। डाक्टर को बुलवाना ही अच्छा होगा। रोशन, दिनेशचन्द्र को बुलवाऊँ ? मैंने सोचा, दिनेश ही क्यों और दूसरा डाक्टर नहीं ? लेकिन मेरी अस्वस्थता का कारण तो दिनेश ही था।

मनुष्य की कभी-कभी कितनी विचित्र अवस्था हो जाती है। उसे मालूम होता है कि फ़लाँ बात न करो, यह घातक है। परन्तु मन निर्णय नहीं कर पाता और आख़िर विजय मन के अट्टहास ही की होती है। यही अनुभव मुझे प्राप्त हुआ। मुझे मालूम था कि डा० दिनेश न हों, परन्तु मन के आगे मुझे हार खानी पड़ी। न मालूम कैसे मेरे मुँह से निकल गया "हाँ, दिनेश को बुलाओ।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हसन-हसन, अब्बास ने नौकर को आवाज़ दी और कहा—शोफर को अभी भेजकर डाक्टर दिनेश को बुला लाओ। वह बुलाने चल दिया। कितने विचित्र होते हैं मन के झटके, जो मन को ऊपर-नीचे झुलाया करते हैं। डाक्टर के जाने के बाद मैंने पुनः विचार किया कि अब डाक्टर का मुँह भी न देखा जाय, लेकिन नहीं, मेरे मन ने पुनः हार खाई।

रामचन्द्र ने अहिरावण को मारने के लिए बाण छोड़े; परन्तु अहि के एक-एक रक्तबिन्दु से हज़ारों अहि निर्माण हुए और इस प्रकार अहि को मारने का कार्य रामचन्द्र के लिए कितना कठिन हो गया। यही हालत मेरी हो गई थी। डाक्टर को भुलाने का जितना प्रयत्न किया गया, उतनी ही तीव्रता से उसका विरोध हुआ। विजय दिनेश ही की हुई। मेरे दिल में दिनेश की अभिलाषा घर कर गई।

रोज़ ही दिनेश मेरे घर देखने आया करते थे। आज भी दिनेश आये। मेरे कमरे में कोई नहीं था। उसी एकान्त से मेरी भावना प्रदीप्त हो उठी। दिनेश के मेरे माथे पर हाथ रखते ही मैंने डा० दिनेश को अपने बाहुपाश में भर लिया। दिनेश, मुझे सुखी रखोगे?—मैंने पूछा। हाँ-हाँ रोशन, दो प्रेमी हृदय एक दूसरे के लिए स्वर्ग निर्माण करते हैं। रोशन, ईश्वर ने हमें एक दूसरे के लिए ही पैदा किया है।

यह सुनते ही मैंने पूछा, सच दिनेश, हम एक दूसरे के लिए ही हैं। "कल शाम को दवाख़ाने आना, आओगे?" मैंने वचन लिया।

"दिनेश, डाक्टरी पेशा छोड़ना पड़ेगा।" मैंने मज़ाक में उससे कहा। "क्योंकि कोई सुन्दर स्त्री पेशेन्ट आने पर—"

दिनेश हँस पड़ा। वह बोला—रोशन, शंका न करो। रोशन, तेरे सिवा किसी अन्य से प्रेम करूँगा? रोशन, तू मेरी जीवनलता है, तुझे मैं आजीवन नहीं छोड़ सकता।

"सच कह रहे हो दिनेश?" "हाँ, बिलकुल सच रोशन" उसने कहा। "अच्छा तो वचन दो"—मैंने हाथ आगे बढ़ाते हुए कहा। उसने मेरे हाथ पर हाथ रखकर वचन दिया और धीरे ही से मेरे हाथ का चुम्बन लिया। प्रेमानन्द के असंख्य बिन्दु मेरे सर्वशरीर पर बरस गये। उसके हाथ मेरे घुँघराले बालों को सहला रहे थे।

दूसरे दिन शाम को मैं दिनेश के दवाख़ाने गई। वह मेरी बाट जोह रहा था। मैं उसके बाहुपाश में पूर्णतया गस गई।

कितना आनन्द था उस प्रेम-मिलन में। दिनेश या अब्बास? मन कह रहा था दिनेश। फ़िज़ूल मेरी शादी अब्बास से तय हुई।

चलते समय दिनेश बोला, रोशन We are tied together to day. मैंने कहा, हाँ But you know Denesh I am tide to another man by Religion. I am betrothed to Abbas. दिनेश बोला, Never mind Roshan. प्रेम का बन्धन दूसरे बन्धनों से सहस्रगुना प्रभाव रखता है। मैं वहाँ से चल दी।

मुझे दिनेश के सिवा चैन ही न पड़ता था। किसी न किसी बहाने मैं दिनेश के पास जाती और प्रेम-सुख की प्यास तृप्त करती। इसी अवस्था में कई दिन बीत गये।

कभी-कभी यह विचार उठता कि पिताजी से कह दूँ कि मैं डाक्टर से प्रेम करती हूँ और उनसे शादी की इजाज़त दी जाय, परन्तु उसी क्षण उसका उत्तर मिलता, पिताजी हिन्दुओं के कट्टर दुश्मन हैं। अगर उन्हें पता चल जाता कि मैं दिनेश से प्रेम करती हूँ, तो एक बड़ा संकट अवश्य खड़ा कर देते। मेरी शादी अब्बास से तय पा चुकी थी, और वह टूट जाय, यह मेरी इच्छा थी। मुझे अब्बास पर भी दया आती थी। कारण, वह सौन्दर्य का दीवाना था। लेकिन इससे लाभ? मेरा जिस पर हार्दिक प्रेम है, उससे मुझे शादी करने की इजाज़त चाहिए थी।

अब्बास से मेरा बर्ताव रूखा होता जा रहा था। एक दिन अब्बास ने कहा भी, रोशन कितना रूखा बर्ताव हो गया है आजकल तेरा। रोशन तेरे लिए तो मैं अपनी जान भी क़ुर्बान कर सकता हूँ।

लेकिन मेरे लिए क़ुर्बान होनेवाले व्यक्ति की मुझे ज़रूरत नहीं थी। मुझे उसकी आवश्यकता थी, जिसके लिए मैं क़ुर्बान होना चाहती थी। अपने जीवन को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धोखे में डालकर मैं दिनेश से प्रेम कर रही थी। अगर हमारे प्रेम की सुगन्ध उड़ती तो मेरे जीवन में वह बाधा हो जाती। मैं दिनेश की पत्नी बनने के लिए ख़ुदा से दुआ माँगा करती थी। लेकिन—?

हमारे शहर के पास ही हिन्दू-मुस्लिम-दंगा शुरू हुआ। रोज़ अख़बारों में उसकी ख़बरें छपती थीं। कई लोगों का बलिदान रोज़ हो रहा था। मैं दिनेश के प्रेम में इतनी दीवानी बन गई थी कि मुझ पर इस दंगे का कुछ भी असर नहीं हुआ। दंगे की ख़बरें पढ़कर मेरे बाबा और अब्बास वग़ैरह का ख़ून खौल उठता था। फिर भी मैं शान्त थी। एक बार अब्बास ने मुझसे पूछा भी, रोशन तुझे कुछ भी नहीं मालूम होता इस दंगे के बारे में? "क्या मालूम होना चाहिए अब्बास?" मैंने पूछा। "मुसलमानों का ख़ून होते देख मुसलमानों का ख़ून उबलना चाहिए। कल ही मैंने ३०००. रुपये मुसलमानों की मदद के लिए भेज दिये हैं।" अ....सिर्फ़ यही शब्द मेरे मुँह से निकला। मैं अभी तक शान्त थी। दिनेश के प्रेम ने मेरे दिल को बन्दी बना लिया था।

परन्तु एक दिन दंगे का बड़ा भीषण रूप प्रकट हुआ, जब दिनेश बोला कि मुझे अपने भाइयों की मदद के लिए जाना होगा। मैंने दिनेश से कहा, मुझे छोड़कर मत जाओ। परन्तु उसके हिन्दू उधर मर रहे थे, उनकी मदद करना उसका कर्त्तव्य था।

उस दिन मैं उससे मिलने गई। मैं उसे देखते ही उससे लिपट गई। नेत्रों से अश्रुधाराएँ चल रही थीं। उद्विग्न हुआ मेरा मस्तिष्क उसके वक्षःस्थल पर रखा हुआ था। यह क्या, रोशन पागल तो नहीं हो?—दिनेश बोला। मैं जल्दी वापस आ जाऊँगा। "दिनेश, तुम्हें जल्दी आना ही पड़ेगा। तुम्हारे हिज्र में मैं कैसे ज़िन्दा रह सकूँगी?" मैंने अपने आपको उसके महान् वक्षःस्थल में छिपाने की कोशिश की।

"वही हालत रोशन, मेरी भी है।" मेरे बालों पर उसके गाल टिके हुए थे। दिनेश कह रहा था—तुम क्या यह समझती हो रोशन कि तुम्हारे सिवा मुझे भी दिन काटना आसान होगा? मैं जल्दी वापस आ जाऊँगा। मैं ख़ुदा से प्रार्थना करने लगी कि दिनेश के बाल को भी चोट न पहुँचे।

मेरे पिता और अब्बास रोज़ अख़बार पढ़ा करते थे। मैं भी पढ़ा करती थी कि कहीं मेरे दिनेश के बारे में तो कोई ख़बर नहीं छपी। अख़बार उठाते ही हाथ कँप जाते और शुभ वार्ता पढ़ते ही दिल शान्त हो जाता।

मुसलमानों से हिन्दू अधिक मारे जाने पर पिताजी व अब्बास कितने ख़ुश होते थे और मुसलमानों की हार सुनकर उनका ख़ून खौल उठता था। मैं फिर भी शान्त थी।

दूसरी जगह की आग ठंडी होकर हमारे शहर में दंगा शुरू हुआ, और १-२ दिन में उस ज्वाला ने हमारे शहर को ग्रसित करना आरम्भ किया। हिन्दू-मुस्लिम - दंगा क्या है, क्यों होता है, मैं नहीं जानती थी। लेकिन अब पता चला और यह भावना बन गई कि अगर हिन्दुओं से द्वेष नहीं किया गया तो मुसलमान की सच्ची संतान नहीं। अल्पसंख्यक मुसलमान हार खाते, फिर भी यही प्रण करके निकलते कि मारेंगे या मरेंगे। मेरे पिता और भाई ज़ख़्मी होकर २रे दिन ही स्वर्गवासी हो गये। हिन्दुओं के हाथ से हुए दो ख़ून—मेरे पिताजी और मेरा भाई—मेरे हिन्दू - द्वेष के कारणीभूत हो गये। मैंने प्रण किया कि इसका बदला मैं हिन्दुओं से अवश्य लूँगी। लेकिन मैं अबला थी, उनकी मृत्यु का बदला मैं नहीं ले सकती थी। मैं रो रही थी। मेरी अंतरात्मा शान्त नहीं हुई, वह बिना हिन्दू-रक्त पिये कैसे शान्त होती? इस द्वेष की अग्नि प्रज्वलित होने का एक कारण और भी हुआ। हिन्दूद्वेष से और पिताजी और भाई की मृत्यु से मैं बिस्तर पर पड़ी तड़प रही थी और न जाने मुझे कब नींद लग गई। भीषण कोलाहल और गरमी के कारण मेरी नींद खुली। मैंने देखा, मेरे चारों ओर अग्नि की लपटें उठ रही थीं। मेरे घर को सत्य ही किसी हिन्दू ने आग लगा दी थी। मैं कुछ न सोच सकी। मेरा दिल घबरा रहा था। मैं अब्बास करके चिल्लाई। थोड़ी ही देर में आवाज़ आई, रोशन। एक युवक मेरे सामने खड़ा था। कौन दिनेश? नहीं हो सकता। हिन्दू, मुसलमान की जान बचाने आवेगा? नहीं हो सकता। एक हिन्दू का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भासमान चित्र मेरे सामने आया। मैं धर्म से कितनी बेईमान हो गई थी।

मैंने नेत्र खोल दिये। दिनेश खड़ा है, ऐसा भास हुआ। मेरे और उसके बीच अग्नि की लपटें उड़ रही थीं। मैं स्पष्टतया न देख सकी कौन था। मुझे होश आया, तब अब्बास खड़ा था।

अब्बास, मुझे जीवनदान देनेवाला अब्बास। उसने मुझे अपने हृदय से लगा लिया। लेकिन प्रेम-क्रीडा का वह समय नहीं था। उसके नेत्रों से अग्नि-जैसी लपटें निकल रही थीं। वह हिन्दुओं से बदला लेने निकल पड़ा।

अब मैं निराधार हो गई थी, मेरा सर्वनाश हो गया था। पिताजी, भाई, घर का सर्वनाश हो चुका था। केवल दो बातें बची रह गई थीं—एक द्वेष, दूसरा अब्बास।

प्रातःकाल ख़बर लगी कि अब्बास गिरफ़्तार हो गया। मुझे बहुत बुरा मालूम हुआ कि मैंने एक हिन्दू के साथ प्रेम करके क्या पाया। जले घर में इस आशा से प्रवेश किया कि शायद कुछ बचा हो। लेकिन वहाँ क्या था, केवल राख-पड़ी थी। किसी ने मुझे पुकारा, रोशन।

मैंने देखा, दिनेश खड़ा था। उसे देखते ही मेरा द्वेष उबल पड़ा। क्रोध के कारण शरीर काँप उठा। मैंने क्रोध से कहा—क्यों आये यहाँ!

कितना उदास हो गया दिनेश यह वाक्य सुनते ही। लज्जा से वह चूर हो रहा था। हम पागल हैं रोशन। जानती हो रोशन, धर्म-धर्म का झगड़ा, मानव जाति का कितना बड़ा कलंक है? लेकिन रोशन तू मेरी है और आजीवन हम-तुम एक रहेंगे। रोशन, हम एक दूसरे के लिए ही पैदा हुए हैं। मैं हिन्दू हूँ, शायद इसीलिए तू तिरस्कार कर रही है? लेकिन प्रेम तिरस्कार से हज़ारगुना प्रभावशाली होता है। रोशन, एक दिन वह होगा, जब हम समझेंगे कि हिन्दू व मुसलमान एक ही मातृभूमि की संतान हैं।

दिनेश गई बातों के मुर्दे उखाड़ने के सिवा तुम्हारे पास क्या है? मैं ग़ुस्से में कह रही थी। करना—दिनेश मेरी ख़ूब रुसवाई करना, सारी दुनिया से कहना कि एक मुसलमान छोकड़ी ने मुहब्बत के पीछे अपनी अस्मत को एक हिन्दू के क़दमों में रख दिया। मुझे इसकी कोई परवा नहीं। तुम क्या समझते हो कि इन बातों से मैं तुम्हारे साथ भाग चलूँगी? बेवक़ूफ़ कहीं का, जा। निकल जा। निकल। सारी दुनिया में मेरी बदनामी करना। मैं क्रोधावेश में बक रही थी और उसी आवेश में मैंने दिनेश के चाँटा जड़ दिया। दिनेश को ग़ुस्सा आया, लेकिन नहीं बोला। उसका चेहरा फिर दया से चमक उठा। खीसे से नोटों का बंडल निकालकर मेरे हाथों में देते हुए बोला—रोशन, तू निराधार है, इसलिए इतनी दीवानी बनी। यह नोट ले। यह आँधी उतरते ही मेरे प्रेम को पहचानेगी। मुझे विश्वास है कि मुझसे जितना तू प्रेम करती है, अन्य किसी से नहीं।

पागल हो तुम दिनेश। ग़ुस्से में मैंने नोट लेकर पास की जलती हुई अँगीठी पर रख दिये। मैंने कहा, तुम क्या समझते हो दिनेश कि मेरी अस्मतफ़रोशी की क़ीमत देकर ख़ुद को बेजबाबदार साबित करना! तुम बेईमान हो। साँप को दूध पिलाने से ज़हर ही उगलता है। मुझे पैसों की ज़रूरत नहीं। दुश्मन हिन्दू के पैसों को हाथ लगाने के बजाय भीख माँगना कहीं अच्छा है। जा दिनेश, अपना मुँह काला कर। मेरी क्रोधाग्नि बढ़ती जा रही थी।

फिर भी दिनेश स्तब्ध खड़ा था। तुम नहीं जाओगे दिनेश—मैंने कहा। और पास ही पड़ी हुई ईंट उठाकर दिनेश के सिर में मार दी। दूसरे ही क्षण वह सुन्दर देह नीचे गिर पड़ी। ओफ़! केवल इतना ही स्वर निकला। ख़ून की नदी बह उठी। उस दृश्य को देखकर बदला लेने की आसुरी लालसा से उन्मत्त हुआ मेरा हृदय शान्त हुआ। एक हिन्दू से मैंने बदला लिया।

मेरी अस्मत लूटी और उसकी क़ीमत यह ख़ून! पैसे की ज़रूरत नहीं थी, ख़ून की ज़रूरत थी। मैं हँस रही थी।

पड़े-पड़े दिनेश ने अपना हाथ सिर पर फिराया। रोशन, इस रक्त में भी तेरा प्रेम दिखाई देता है, लेकिन तुझे नहीं दिखाई देगा; क्योंकि तेरी आँखों पर नशा चढ़ा है, द्वेष का नशा।—उसने कहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"दीवाना—धर्म और प्रेम के विषय में बोलने के पहले यह देख लेना चाहिए कि मुझमें कितनी पात्रता है।" मैं वहाँ से चल दी।

भागते-भागते वही शब्द मेरे कानों में घूम रहे थे, "रोशन, इस रक्त में भी तेरा प्रेम दिखाई देता है।" वह रक्तमय दिनेश की मूर्ति मेरे सामने खड़ी हो गई। मेरे पैर भारी हो गये। दिनेश को देखने की लालसा हुई। मैं लौट पड़ी, लेकिन दिनेश वहाँ नहीं था। एक महीने तक दिनेश की याद ने मुझे पुनः सताया।

× × ×

एक महीने बाद मुझे पता चला कि मैं गर्भवती हूँ। मुझे बड़ा दुःख हो रहा था कि एक हिन्दू के रक्त से परिपूर्ण गर्भ का मैं पोषण कर रही थी। मुझे दुःख हो रहा था, लेकिन प्रकृति अपना हक़ क्यों छोड़ने लगी। मेरा द्वेष यहाँ तक तीव्र हो गया था कि बालक के जन्म लेते ही उसे जान से मार दूँगी। लेकिन मैं वैसा न कर सकी। कारण, वात्सल्य प्रेम था। मुझे कन्या हुई। बिलकुल दिनेश-जैसी सुन्दर। मैंने उसका नाम अमीना रक्खा। कितनी सुन्दर थी वह।

मुझे अमीना प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। जैसी-जैसी वह बड़ी होती जाती, दिनेश की आकृति उसमें स्पष्ट दिखाई देने लगी। इतना होने पर भी मैं अमीना से प्रेम करती थी। अमीना के जन्म के बाद नागपुर से दिनेश का एक पत्र आया। उसमें लिखा था—"रोशन, अब भी मैं तुझे नहीं भूला हूँ। मेरे हृदय पर अंकित हुई तेरी मूर्ति आजीवन नहीं मिट सकती। अगले महीने मैं जर्मनी को डाक्टरी की उच्चशिक्षा प्राप्त करने जा रहा हूँ और मेरी इच्छा है कि हम शादी कर लें। तेरे दिमाग़ से धर्म का द्वेष निकल गया होगा। मेरे प्रेम को तू अवश्य स्वीकार करेगी।"

मुसलमान स्त्री की हिन्दू युवक से शादी? दंगे के दृश्य मेरे नेत्रों के सामने आ गये। हिन्दू का लिखा पत्र भी घर में रखना पाप है, यह समझकर मैंने उस पत्र को जला दिया, और नीचे लिखा पत्र मैंने लिखवाकर उसे भिजवा दिया।

"दिनेश—एक महीना हो गया। रोशन की मृत्यु हो गई। उसकी एक सहेली
मुमताज़"

उस पत्र का उत्तर आया। उसका आशय इस प्रकार था—"कितना दुःख हुआ रोशन की मृत्यु सुनकर। रोशन मेरी जीवनलता थी। रोशन गई, मैं भी मरा-जैसा हूँ। रोशन की आत्मा मेरी आत्मा थी।" पत्र पढ़कर मुझे ख़ुशी हुई। चलो, एक बला टली, अब वह क्यों मुझे ढूढ़ने इधर आने लगा।

तीन साल के बाद अब्बास जेल से मुक्त हुआ। वह मेरे यहाँ आया। अमीना को देखते उसके नेत्र लाल हो गये। वह बोला—रोशन, यह क्या किया? मुझे पहले ही शंका थी कि तू डाक्टर से प्रेम करती है। वह सच निकली। सच बोल रोशन, यह डाक्टर की संतान है या नहीं? एक दुश्मन के ख़ून का यह बच्चा है या नहीं? बोल रोशन, और उसने अमीना को उठा लिया। मैं डर गई कि कहीं अमीना को पटककर उसके प्राण न ले ले। मैंने अमीना को उससे छुड़ा लिया। अब्बास—प्यारे अब्बास, मैं तुमसे प्रेम करती हूँ। अब्बास, मैं तुमसे शादी करने को तैयार हूँ। उसका ग़ुस्सा शांत हो रहा था।

वह बोला, रोशन एक बात माननी पड़ेगी। इसे (अमीना) तू अनाथाश्रम में भिजवा दे। रोशन, जब तक यह रहेगी, मुझे स्वस्थता प्राप्त नहीं हो सकेगी। रोशन, यह हिन्दू-रक्त का द्योतक है। मैंने कहा—नहीं, अब्बास अब यह न कहो। अमीना को दूर करना मुझे दूर करना होगा।

अब्बास शादी को तैयार हो गया था। मुझे भास था कि अब्बास से मुझे सुख मिलेगा। लेकिन नहीं, वह मृगतृष्णा थी। एक हिन्दू की रखैल स्त्री की दृष्टि से वह मुझे देखता था। अमीना और दिनेश का साम्य देखकर ही उसका द्वेष बढ़ता जा रहा था। इन सब कारणों को देखते हुए मेरा मन पुनः दिनेश की ओर जाने लगा। मैंने उसका पता भी निकलवाया, लेकिन दिनेश का पता न चला।

अब्बास ने कभी अमीना से प्रेम नहीं किया। वह क्यों करने लगा? वह कौन? उसका पिता था। एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिन अमीना के हाथ से फ़्लावर पॉट फूट जाने पर अब्बास ने अमीना को ख़ूब पीटा। मैं नीचे गृह-कार्य में लगी हुई थी। अमीना के चिल्लाने की आवाज़ सुनकर मैं ऊपर गई। अमीना मा-मा करके ज़ोर से चिल्ला रही थी। मैंने अमीना को छुड़ा लिया। "अब्बास, मुझे कल्पना भी नहीं थी कि तुम इतने हृदय-हीन होगे।" मैं अमीना को लेकर नीचे आ गई। उस दृश्य को मैं कभी नहीं भूल सकती। कितनी निष्पाप थी अमीना। वह क्या जाने, किस द्वेष का प्रायश्चित्त वह इस रूप में पा रही है।

धर्म के पागलपन में मनुष्य कितना क्रूर बन जाता है। सभ्यता तो उसमें नाममात्र को भी नहीं रहने पाती। मैंने अमीना को पलँग पर लिटा दिया। कितना दुःख हो रहा था अमीना की हालत देखकर। मैं सोच रही थी कि क्या इसका दिनेश इसकी इतनी दुर्दशा करता?

थोड़ी देर बाद अब्बास नीचे आया। "रोशन! माफ़ करना। तू इसे अनाथाश्रम क्यों नहीं भिजवाती? इसे देख मेरा ख़ून खौल उठता है। न जाने किस दिन क्या हो जाय। मुझे ख़ुद पर भी भरोसा नहीं।" शायद मेरी खिन्न मुद्रा देखकर वह बोला—अच्छा रोशन, दुखी न हो। मैं अमीना से प्रेम करने की कोशिश करूँगा।

लेकिन यह सब ढोंग थे अब्बास के, और यही [मालूम करने के लिए कितना मूल्य मुझे देना पड़ा।

अमीना जाग पड़ी, वह रोते-रोते कह रही थी—मा, बाबा बहुत ख़राब है। मने उसे प्यार से समझाया—"नहीं बेटी।" "तो क्यों मुझे वे मारते हैं?" "नहीं अमीना, तू उनके पास जाया कर, फिर नहीं मारेंगे।"

× × ×

एक दिन अमीना खेलते-खेलते रास्ते पर चली गई। उधर से अब्बास मोटर लिये वेग से चला आ रहा था। उस नराधम ने न हॉर्न वग़ैरह बजाया, सीधी मोटर अमीना पर चढ़ा दी। कारण, अमीना को उसे शायद बलि लेना था। उसकी चीख़ सुनते ही मैं दौड़ी। अमीना को उठाकर, डाक्टर को दिखाया। डाक्टर ने जाँच करके कहा—मेरे क़ाबू का यह केस नहीं। यहाँ का कोई भी डाक्टर इस केस को ठीक नहीं कर सकेगा। इतने में अब्बास भी अन्दर आ गया था। क्या डाक्टर कोई भी नहीं?—हाँ, नहीं, "It requires a very delicate operation and it requires a more expert hand than mine." मैंने पूछा, "Who is the Doctor?" उसने कहा, Doctor Jagdish from Bombay. ऑपरेशन के लिए वह प्रख्यात हैं। यह केस वे ज़रूर लेंगे। वे बड़े सज्जन हैं और ग़रीबों से पैसे भी कम लेते हैं। पैसे का नाम निकलते ही मैंने अब्बास की ओर देखा। वह स्तब्ध खड़ा था।

मैं एक पैसा भी नहीं दे सकता रोशन, अब्बास बोला। कितना क्रूर था उसका चेहरा। मैं पैसे किसके लिए ख़र्च करूँ? एक हिन्दू से पैदा बच्चे के लिए?

"लेकिन अब्बास, वह क़ुसूर तेरा था, अमीना का नहीं। उसे इसकी सज़ा क्यों?" इतने में डाक्टर बोला—चलो-चलो मैं ले चलता हूँ। अमीना को उठाकर मैंने डाक्टर की मोटर में रख दिया।

"रोशन, याद रखना इस घर से बाहर जाने पर मेरा तुझसे कोई रिश्ता न रहेगा"—अब्बास बोला। मैंने ग़ुस्से में कहा—"मुझे आपकी परवा नहीं, वह रिश्ता तो कभी का टूट चुका। तुम क्या समझते हो कि जिसका इतना पत्थर-जैसा कलेजा हो, उसके साथ मैं अपनी ज़िन्दगी बिताऊँ? दिनेश मेरा प्रेमी, अमीना का सच्चा पिता।" इसको यही सिखाऊँगी कि दिनेश तेरा पिता है।

यह तो मैं पहले ही जानता था। जलते हुए घर से निकालनेवाला दिनेश ही था। अपनी जान की परवा न करते हुए क्यों फ़िज़ूल कोई किसी की जान बचाने दौड़ता। मुझे मालूम था कि तू एक काफ़िर की मुहब्बत में फँस चुकी है।

"दिनेश काफ़िर? उससे ज़्यादा तू काफ़िर। धर्म के पागलपन में फँसकर मानव जाति से तुम उठ गये। मुझे धर्म की ज़रूरत नहीं, मुझे दिनेश की ज़रूरत है। मैं दिनेश की स्मृति पर ही जीवित रहूँगी।" "यह बात!" उसने ग़ुस्से में कहा। हाँ, यही बात—मैंने कहा। मुझे जीवन-दान देनेवाला दिनेश"—Don't wait lady. Be quick." डाक्टर बोला।

मैं मोटर में बैठकर स्टेशन पर आई। डाक्टर ने १०० रुपये के नोट मुझे दिये और स्टेशन पर एम्बुलेन्स कार पहुँच जाने के लिए उसने तार दिया। मुझे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक-एक मिनट रेल में यात्रा करना भारी हो रहा था। कब स्टेशन आवे और मेरी अमीना की जान बचे।

एम्बुलेन्स कार स्टेशन पर मिली। दुपहर के ११ बजे मैं "रोशन अस्पताल" पहुँची। कितनी भव्य इमारत थी वह। आदमियों की रेलपेल थी वहाँ। इमारत पर तिरंगा झंडा लगा हुआ था और नीचे लिखा था—"रोशन हॉस्पिटल"। मैंने वहाँ क्लर्क से पूछा कि डाक्टर कहाँ है? वह बोला—वे ऑपरेशन रूम में हैं। १०—१५ मिनट में आते होंगे। आप शाम को आना। वे अब मरीज़ नहीं देखेंगे। उनका तो घर जाने का समय हो गया। लेकिन मेरी अमीना तब तक कैसे ज़िन्दा रह सकेगी, यह सोचते ही मैं रो पड़ी। इतने ही में मेरी नज़र फोन पर गई। उसके नीचे लिखा था To Operation Room. मैंने फोन उठाया। इतने में एक नर्स ने मुझे रोका। वह बोली—डाक्टर ऑपरेशन कर रहे हैं, उन्हें मत सताओ। लेकिन मैंने नहीं माना। मैंने फोन किया। हलो—अन्दर से उत्तर आया "वे ऑपरेशन कर रहे हैं। एक मिनट ठहरो।" एक मिनट बाद डाक्टर फोन पर आये। "Who are you ?" मैंने कहा, एक ग़रीब स्त्री हूँ। मेरी लड़की मरणासन्न अवस्था में पड़ी है। आप मुफ़्त इलाज कर सकेंगे? उत्तर आया, कितनी पागल हो तुम। मैंने सिर्फ़ तुम्हारा नाम पूछा था। मेरा नाम रोशन है, मैं बोली। कौन रोशन? "Are you Cheating me यानी क्या डाक्टर? "All right, I am coming।" थोड़ी देर बाद मैंने देखा डा० दिनेश मेरे सामने खड़े थे। माथे पर वह इंटवाला निशान अब भी क़ायम था। मैं एकदम डर गई। कौन दिनेश? वह दिनेश था। उसने मुझे बाहुपाश में भरकर कहा—तू ज़िन्दा है रोशन? हाँ, दिनेश मैं ज़िन्दा हूँ। लेकिन आपकी और मेरी अमीना मर रही है। थोड़ी ही देर में दिनेश ऑपरेशन में लग गये। एक घण्टे के बाद अमीना ने नेत्र खोले। मुझे कितनी ख़ुशी हुई, अमीना को जीवित देखकर। मैं अमीना के पास जाने लगी। लेकिन दिनेश ने रोक दिया। वह बोला—उसे न हिलाओ। मैं दूर से ही बातें करने लगी। अमीना मेरी ओर देख रही थी। मैंने कहा—बेटी, मेरी तरफ़ क्या देखती है, उस ओर देख, तेरे बाबा खड़े हैं और उसी वक़्त दिनेश उसे प्यार करने लगा।

४ महीने हो गये। मैंने दिनेश से पूछा—दिनेश, तुमने अपना नाम क्यों बदला? "मुझे पता लगा कि रोशन इस संसार को छोड़ गई।"—दिनेश बोला।

धर्म के पागलपन में फँसकर मैंने तुम्हारे प्रेम को ठुकराया दिनेश, लेकिन उस प्रेम की ज्योति मेरे हृदय में जल रही थी।

बुझाने का प्रयत्न करने से प्रेम की ज्योति नहीं बुझा करती रोशन। धर्म के दीवाने लड़ें, राष्ट्रों में युद्ध हो। इनमें सर्वनाश हो सकता है, परन्तु प्रेम-ज्योति का नाश नहीं होता है। तेरी मृत्यु का पत्र पाकर कितना दुःख हुआ था, रोशन। जर्मनी से वापस आने पर यहाँ प्रैक्टिस शुरू की। तेरी स्मृति को ताज़ा रखने के लिए मैंने इस अस्पताल का नाम "रोशन हॉस्पिटल" रक्खा। मैंने धर्म को तिलांजलि दे दी। मानव जाति का नाश करनेवाली कोई वस्तु है तो धर्म और देव। यही मनुष्य को मानवता से परे ले जाते हैं। मैं किसी से द्वेष नहीं करता तो क्यों मेरा कोई द्वेष करने चला। तभी से मैं मानव जाति का प्यारा बना। ("सत्यकथा" से)

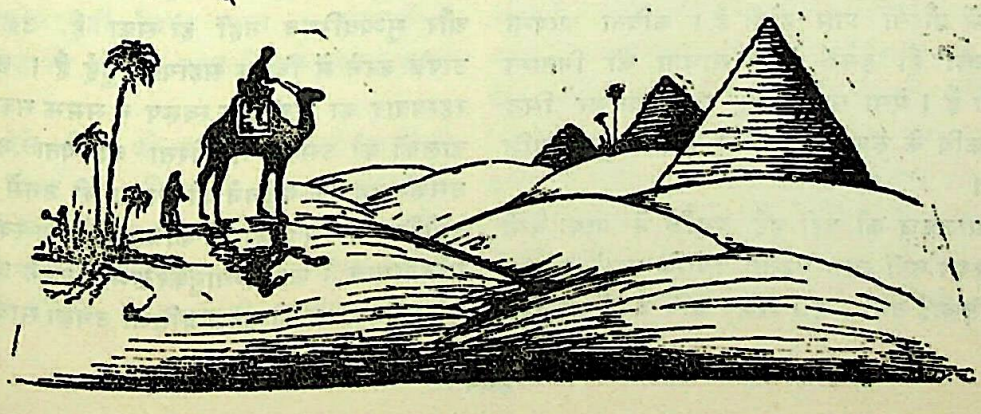

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

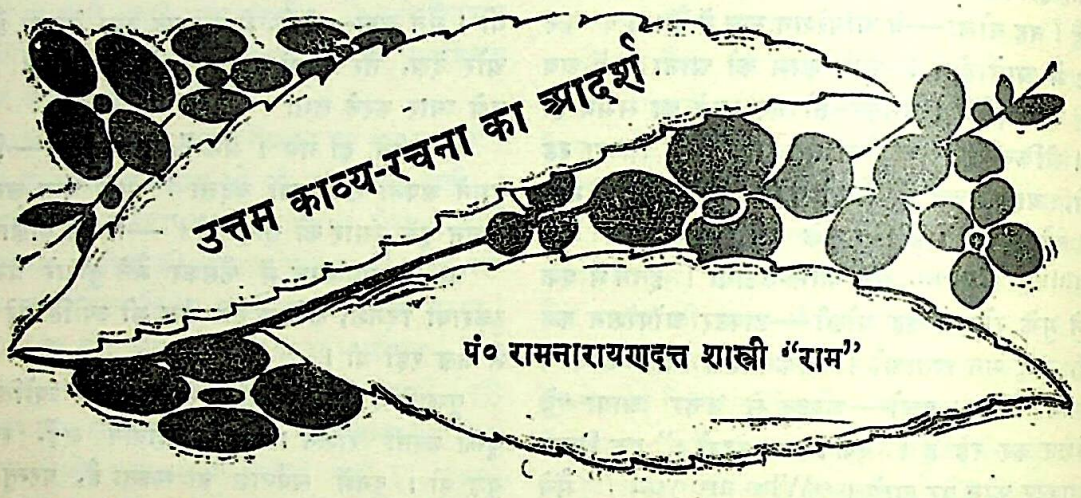

आजकल लोगों में कविता करने की प्रवृत्ति विशेष रूप से बढ़ रही है। ऐसी प्रवृत्ति यदि भावुक हृदय की सच्ची प्रेरणा से हुई हो तो अभ्युदय का चिह्न है। शुद्ध अन्तःकरण से प्रेरित व्यक्ति सहसा काव्य-रचना करने या कवि कहलाने के लिए उतावली नहीं करता। वह काव्य-तत्त्व की जिज्ञासा से किसी अधिकारी गुरु की सेवा में रहकर काव्य का अध्ययन और उसके तत्त्व को समझने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार कविता-संबंधी आवश्यक नियमों का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करके गुरु के तत्त्वावधान में ही काव्य-रचना का अभ्यास करने से उस कला में प्रौढ़ता प्राप्त होती है। कविता अत्यन्त सुकुमार कला है, इसके लिए साधना की नितान्त आवश्यकता है। ऐसा साधक ही आगे चलकर सिद्ध या सफल कवि के रूप में संसार में अपनी सुयश-राशि फैलाता है।

परन्तु आजकल की बढ़ी हुई प्रवृत्ति में प्रायः वैसी सात्त्विक प्रेरणा नहीं जान पड़ती, क्योंकि उसके अनुरूप कार्य नहीं दिखाई देता। इस समय कवि बनने को नहीं, कवि कहलाने की धुन सवार है। कवि-सम्मेलनों में अत्यन्त साधारण रचना सुनानेवाले की भी कविरूप में विशेष अभ्यर्थना होते देख प्रायः अपरिपक्व बुद्धिवाले अर्धशिक्षित छात्र अनायास ही कवि कहलाने का लोभ नहीं संवरण कर पाते। पत्रिकाओं में कविता छपाने या कविरूप में अपना नाम मुद्रित देखने की आन्तरिक लालसा भी पद्य-रचना के प्रति, वह हठात् आकृष्ट पदों की संयोजना-मात्र ही क्यों न हो, आकर्षण उत्पन्न कर रही है। हिन्दी-कविता की नवीन धारा भी, जिसका काव्योचित मार्ग प्रशस्त और मनोरम होने पर भी अभी सर्वगम्य और सुव्यवस्थित नहीं हो सका है, उक्त परिस्थिति उत्पन्न करने में विशेष सहायक हुई है। छायावाद या रहस्यवाद का ठीक-ठीक स्वरूप न समझ सकने के कारण बालकों को उसकी गम्भीरता का पता नहीं चलता, उसकी तह तक पहुँचने की क्षमता भी उनमें नहीं होती। इसीलिए वे उस शैली की कविता के बाह्य स्वरूप (शब्द-योजनामात्र) का अन्धानुकरणमात्र करने लग जाते हैं। ऐसे समय में उनकी सहज प्रतिभा उनका साथ नहीं देती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वे उद्देश्य-रहित होकर अनन्त की ओर चल पड़ते हैं। उनकी गति लक्ष्यहीन होती है, उद्गार अस्वाभाविक जान पड़ता है। इस तरह वे स्वयं तो अन्धकार में भटकते ही हैं, दूसरों के लिए भी अनुचित आदर्श उपस्थित करते हैं। उनकी अनुकृति-मूलक कृतियाँ न तो स्थायित्व प्राप्त कर सकती हैं और न उनसे साहित्य की कुछ भी श्रीवृद्धि ही होती है।

दो-एक व्यक्ति यदि इस अन्धानुकरण-पथ से सफल हो गये हों तो भी उस सफलता में उनकी स्वाभाविक प्रतिभा ही कारण हो सकती है। अन्धानुकरण का पथ कभी प्रशस्त नहीं माना जा सकता। इससे चलनेवाले अधिकांश व्यक्ति असफलता के ही गर्त में गिरते हैं। काव्योचित विशेषताओं से परिचित होकर कविता करनेवाले व्यक्तियों को अपनी सफलता या असफलता का ज्ञान स्वयं भी होता है। किन्तु अनुकरण-पद्धति का अनुसरण करनेवाले लोग प्रारम्भिक अवस्था में भी अपनी कमी का अनुभव नहीं कर पाते, उनमें मिथ्याभिमान की मात्रा बढ़ती जाती है। यदि उनके गले में कुछ लोच है, तो कवि-सम्मेलनों में किन्नर-कण्ठ से गाकर श्रोताओं के साधुवाद से उछलकर सहसा सफलता के शिखर पर पहुँच जाते हैं। इससे श्रोता (यदि वे काव्य-मर्मज्ञ हैं तो) भ्रम में नहीं पड़ते। कवि ही उस साधुवाद से, जो संभवतः कविता का नहीं, उसके कोकिलकण्ठ का उपहार है, प्रसन्न होकर अपने में मिथ्या सफलता का आरोप कर धोखे में रह जाता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उचित-अनुचित सभी तरह के उपायों द्वारा अपने इसी महाकवित्व का प्रोपेगैंडा किया जाता है और इसके लिए लब्ध-प्रतिष्ठ महाकवियों को भी यदि खरी-खोटी सुनानी पड़े तो उसमें भी संकोच नहीं किया जाता। दलबन्दी के द्वारा आत्म-विज्ञापन की यह प्रणाली इस समय बढ़ती जा रही है।

कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो काव्योचित विशेषताओं से पूर्ण परिचित होकर भी कविता के उत्तम आदर्शों के अनुसार रचना करने के लिए प्रयत्नशील नहीं देखे जाते। लोक-रंजन की दृष्टि से निम्नश्रेणी की तुकबंदियाँ लिखने में ही वे अपनी प्रतिभा का अवांछनीय उपयोग कर रहे हैं। हास्यरस के नाम पर कविता की दुर्दशा की जा रही है, अश्लील या अस्वाभाविक चित्र-चित्रण के द्वारा जनता को हँसाने का प्रयत्न होता है। कहीं-कहीं तो कविता में हास्य-विनोद की बिल्कुल ही सामग्री न होने पर भी कवि अपनी विकृत चेष्टाओं और अनूठी भाव-भंगियों के द्वारा लोगों को हँसाकर हास्यरसाचार्य की पदवी से विभूषित होना चाहता है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है, वह किसी पर आक्षेप करने के विचार से नहीं। हमारा तात्पर्य इतना ही है कि उपर्युक्त पद्धति काव्य-रचना के लिए उत्तम आदर्श नहीं है। साहित्य-क्षेत्र में किसी भी दृष्टि से जो अवतीर्ण होते हैं, हम उनका हृदय से स्वागत करते हैं। साथ ही उनसे हमारा विनम्र निवेदन भी है कि वे कविता के लोभ में पड़कर अपनी शिक्षा अधूरी न रक्खें। पूर्ण शिक्षित होकर कवि और काव्य के आदर्शों से परिचित होने का प्रयत्न करें। जो लोग परिचित हों, वे यथा-साध्य उत्तम आदर्शों के अनुकूल ही काव्य-रचना की चेष्टा करें।

वेद में परमात्मा को कवि कहा गया है, 'कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूः।' अतः 'कवि'-पद बड़े ही महत्त्व और उत्तरदायित्व का पद है। शास्त्रों में 'कवि'-शब्द की दो तरह की व्युत्पत्ति उपलब्ध होती है। एक तो काव्य-रचना करनेवाला कवि है, दूसरा क्रान्तदर्शी कवि है। क्रान्त का अर्थ है अतीत। जो बीती बातों का ज्ञान रखता हो। श्रीशङ्कराचार्यजी ने क्रान्त शब्द को तीनों काल का उपलक्षण मानकर यह बताया है कि जो तीनों काल का ज्ञान रखनेवाला हो, वही कवि है। परमात्मा जगत् की रचना करता है और सर्वज्ञ होने के कारण तीनों कालों का ज्ञाता है, इसलिए उसका नाम कवि है। कवि में भी ये दोनों बातें होती हैं। रचनात्मक कार्य तो उसका प्रसिद्ध है ही। वह त्रिकालदर्शी भी होता है। भूतकाल का ज्ञान वह इतिहासादि और लोक-परम्परा से प्राप्त करता है, वर्तमान का प्रत्यक्ष निरीक्षण करता है और इसी अनुभव के आधार पर भविष्य जगत् के स्वरूप का निर्धारण करता है। कई दृष्टियों से कवि की रचना विधाता की रचना से महत्त्वपूर्ण होती है। विधाता की सृष्टि नियति—प्रारब्ध के बंधन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में बँधी होती है, पर कवि का संसार उसकी इच्छा के अनुकूल होता है। उस पर प्रारब्ध आदि का नियन्त्रण नहीं, रुकावट नहीं। प्राकृत जगत् में अवांछनीय दुःख, हाहाकार, अविश्वास, दैन्य, अनाचार आदि भी देखे जाते हैं; परन्तु काव्य-जगत् में आकर सभी लोकोत्तर आनन्द में मग्न रहते हैं। वहाँ आदर्श संसार की झाँकी मिलती है। दुःख का नामो-निशान नहीं, सदा चैन की वंशी बजती है। प्रेम की मन्दाकिनी बहती रहती है। इस दुनिया की विघ्न-बाधाओं से ऊबकर कवि अपने लिए—सभी सहृदयों के लिए नूतन संसार की सृष्टि करता है, जहाँ पूर्णतया सुख-शान्ति और सभी तरह की सुविधाएँ सुलभ होती हैं।

कवि केवल नूतन सृष्टि ही नहीं रचता, वह इस प्राकृत जगत् के स्वरूप को भी बहुत कुछ परिवर्तित और परिष्कृत कर सकता है। कवि अपने युग का प्रतिनिधि होता है। वह अपनी वाणी से—अपने दिव्य संदेश से मानव-हृदय पर जादू-सा असर पैदा करता है। यदि उसका आदर्श ऊँचा है तो यह जगत् भी ऊँचे आदर्श का बन सकता है। यदि नहीं तो वह अपने ही साथ जगत् को भी ले डूबता है। शिवाबावनी और वीर-सतसई लिखकर आज भी कवि शिवाजी और राणा प्रताप-जैसे वीर पैदा कर सकता है, किन्तु यदि वह हाला, प्याला और मधुशाला की ही महिमा में अपनी प्रतिभा का उपयोग करने लगे तो सारी दुनिया दीवानी होकर साक़ी के इशारों पर नाचती हुई शराब की मस्ती में ही डूबी रह जायगी। ऐसा कवि संसार के लिए एक अभिशाप है।

इसलिए कवि का कर्तव्य है कि वह अपने पद की मर्यादा को समझे, अनुभव करे और उसके पालन में सदा सचेष्ट रहे। वह कोई भी ऐसा उद्गार न प्रकट करे, जो आत्मा को पतन की ओर ले जानेवाला हो। मीठा विष और भी प्राणघातक होता है; क्योंकि सभी उसे चाह से पीते हैं। उसके स्वाद का अनुभव किये बिना रहा नहीं जाता; किन्तु भयंकर परिणाम जब सामने आता है तो चेत होता है, पर समय पर चूक जाने के बाद। काव्य की सरस भाषा में वासना को उत्तेजित करनेवाले भाव सुनते समय अवश्य हृदय को मुग्ध कर लेते हैं, किन्तु उनका देश और समाज पर कितना विषम प्रभाव पड़ता है, यह किसी से छिपा नहीं। कवि का आचरण भी आदर्श होना चाहिए। कविता में उत्तम से उत्तम संदेश देनेवाला कवि भी यदि स्वयं वैसा आचरण नहीं करता या किसी प्रकार की निन्द्य वृत्ति का आश्रय लेता है तो उससे जगत् को लाभ के बदले हानि होती है। उसकी अच्छी वाणी का भी प्रभाव नहीं पड़ता। सुरा का स्वयं सेवन करने-वाला व्यक्ति यदि दूसरों को उसके त्यागने का उपदेश दे अथवा परस्त्री में आसक्त पुरुष यदि ब्रह्मचर्य-पालन और सतीत्व की महिमा का वर्णन करे, तो उसका यह कथन निरा ढोंग और पाखण्ड प्रतीत होता है, उसका किसी के हृदय पर असर नहीं होता; क्योंकि 'अन्तःकरण की बात ही अन्तःकरण में पैठती है।'

अतः बाह्य और अन्तःकरण की वृत्तियों पर संयम रखकर देश, जाति और समाज को ऊँचे उठाने की भावना से ही कवि को अपना सरस उद्गार व्यक्त करना चाहिए। इस प्रकार विचार करने पर कवि में तीन बातों का होना परम आवश्यक प्रतीत होता है—प्रशस्त आचरण, अधिक ज्ञान तथा काव्य-रचना की सहज और प्रखर प्रतिभा। प्रशस्त आचरण की बात ऊपर बताई जा चुकी है। ज्ञान से अभिप्राय है यथासाध्य सभी विद्याओं और कलाओं का विशेष अध्ययन। रचना की प्रतिभा तो होनी ही चाहिए। वस्तु के विषय में विशेष ज्ञान और उसके वर्णन की प्रतिभा होने के कारण ही वह कवि कहलाता है—'दर्शनाद्वर्णनाच्चाथ रूढा लोके कविश्रुतिः।'

आचार्य मम्मट ने उत्तम काव्य-रचना के लिए तीन हेतु * बताये हैं—१. स्वाभाविक शक्ति, २. लोक, शास्त्र और काव्य आदि की पर्यालोचना के द्वारा अच्छी योग्यता की प्राप्ति और ३. काव्यमर्मज्ञ गुरु की सेवा में रहकर उसकी शिक्षा से काव्य-रचना का अभ्यास। ये तीनों ही साधन होने पर कवि उत्तम काव्य का

* शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्रकाव्याद्यवेक्षणात्।
काव्यज्ञशिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे॥
(काव्य-प्रकाश)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रणयन कर सकता है। लोक के अध्ययन का कुछ व्यापक अर्थ है। लोक की भौगोलिक स्थिति का अवलोकन, लोक के विभिन्न प्रदेशों में होनेवाली जातीय और सामाजिक परिस्थितियों तथा रीति-रस्मों का पूर्ण परिचय, लोकगत सामयिक विचारों का सूक्ष्म अध्ययन आदि अनेक बातें लोक-निरीक्षण से सम्बन्ध रखनेवाली हैं। मेघ-दूत, रघुवंश का दिग्विजय और स्वयंवर आदि प्रसंग देखने से कालिदास के लोकज्ञान की बहुलता का स्पष्ट परिचय मिलता है। पूर्व कवियों के काव्य का अध्ययन करने से मन में कविता के संस्कार उत्पन्न होते हैं, सोई हुई प्रतिभा जाग उठती है, साथ ही काव्य-रचना की शैली का भी अनुभव होता है। शास्त्राध्ययन की उपयोगिता तो स्पष्ट ही है, उसके बिना तो सारा ज्ञान ही अधूरा है। शास्त्रज्ञ कवि ही अपने काव्य को ऐसा बना सकता है, जो काव्यानन्द के साथ ही शास्त्रीय जिज्ञासाओं की भी पूर्ति कर सके। सबसे प्रधान बात है—सुयोग्य गुरु की सेवा में काव्य-रचना का अभ्यास। इसके बिना कवि में सफलता नहीं आती। इसीलिए आचार्य भामह सलाह देते हैं—

अधीत्य शास्त्राण्यभियोगयोगा-
दभ्यासवश्यार्थपदप्रपञ्चः ।
तं त विदित्वा समयं कवीनां
मनःप्रसत्तौ कवितां विदध्यात् ॥

'पहले तो अनेकों शास्त्रों का अध्ययन करे, फिर धीरे-धीरे पद-पदार्थों को जोड़कर काव्य-रचना का अभ्यास करे, इस अभ्यास को यहाँ तक बढ़ावे कि पद-पदार्थ उसके अधीन हो जायँ—हाथ बाँधे खड़े रहें। अपने मनोभाव को ठीक-ठीक व्यक्त करने के लिए उसे घंटों बैठकर शब्द का अन्वेषण न करना पड़े। पद-पदार्थों पर पूरा अधिकार हो जाने पर कवि-समय का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके मन की प्रसन्नावस्था में कविता करनी चाहिए।'

कवि-समाज में किसी वस्तु के विषय में जिन-जिन बातों का जिस-जिस प्रकार वर्णन करने की परम्परा है, उसको कवि-समय कहते हैं। जैसे यश का कोई स्वरूप नहीं है, अतः उसमें कोई रंग नहीं हो सकता। तो भी 'यश' का रंग श्वेत माना जाता है। इसी प्रकार आकाश में नीलापन और नदी में कमल आदि का वर्णन भी कवियों द्वारा अनुमोदित है। इन सब बातों का ज्ञान साहित्य-शास्त्र के अनुशीलन से प्राप्त कर लेना चाहिए। वैचित्र्य और सौन्दर्य आदि की अनुभूति के लिए कवि-कल्पना और वस्तुस्थिति में वैलक्षण्य भी हुआ करता है। यदि मन में किसी कारण से खेद या चिन्ता हो तो उस समय कविता लिखने का हठ न रखना चाहिए; क्योंकि हठात् लिखी हुई कविता उत्तम नहीं हो सकती, इसीलिए 'मनःप्रसत्तौ कवितां विदध्यात्' कहा है।

उपर्युक्त रीति से पूर्ण योग्यता और व्यापक ज्ञान संचित करके प्रसन्नचित्त होकर काव्य-निर्माण करनेवाला कवि ही उत्तम काव्य उपस्थित कर सकता है। काव्य की उत्तमता का परीक्षण दो दृष्टियों से किया जाता है। पहली दृष्टि यह है कि अमुक काव्य में लोक, जाति और समाज के लिए उपयोगी आदर्शों का कहाँ तक समावेश हो सका है, उससे किन-किन विषयों का व्यापक ज्ञान हो सकता है?—इस प्रकार पर्यालोचना करने पर वाल्मीकीय रामायण और रामचरितमानस सर्वोत्तम काव्य सिद्ध होंगे। किन्तु लोकोपयोगी विषयों का समावेश होने से ही कोई ग्रंथ काव्य नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसी बात न हो तो इतिहास तथा धार्मिक निबन्ध भी काव्य हो जायँगे। यद्यपि उनमें भी यत्र-तत्र काव्य का दर्शन होता है, तथापि वे सर्वात्मना काव्य नहीं हैं। इतिहास में काव्य होने पर भी इतिहास इतिहास ही है और काव्य में इतिहास की उपलब्धि होने पर भी काव्य काव्य ही है। रामायण को काव्य कहने का और ही कारण है।

उपयोगी विषयों के समावेश से ग्रंथ की उत्तमता और उपादेयतामात्र बढ़ती है, इतने ही से वह काव्य नहीं कहा जाता। अतः काव्य-परीक्षण की जो पहली दृष्टि है, वह काव्य की गम्भीरता, व्यापकता और उपादेयता का ही दर्शन कराती है। उसमें काव्यत्व या उत्तम काव्यत्व क्या है—इसकी परीक्षा के लिए दूसरी ही दृष्टि है, जो इस प्रकार है—उत्तम काव्य का सामान्य या विशेष लक्षण क्या है और उसके अनुसार अमुक ग्रन्थ 'काव्य' की श्रेणी में रक्खा जा सकता है या नहीं?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूसरी दृष्टि से विचार आगे किया जायगा। अभी यहाँ पहली दृष्टि से ही 'काव्य में क्या-क्या विषय होने चाहिए?' इस बात का विचार किया जा रहा है। किसी भी वस्तु की उपयोगिता समझकर ही कोई भी व्यक्ति उससे लाभ उठाने का प्रयत्न करता है। प्राचीन साहित्यकारों ने उत्तम काव्य से जो महान् लाभ बताया है, उस पर दृष्टिपात करने से काव्य में निवेश करने योग्य विषयों का बहुत कुछ ज्ञान हो जाता है। आचार्य भामह कहते हैं—

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।
करोति कीर्तिं प्रीतिं च साधुकाव्यनिबंधनम्॥'

'यदि उत्तम काव्य का निर्माण हो तो वह मनुष्य को चारों पुरुषार्थों के साधन में प्रवीण और कलाकोविद बनाने के साथ ही उसके आनन्द और सुयश का विस्तार करता है।'

वेद, वेदाङ्ग, दर्शन और इतिहास-पुराणादि जितने भी शास्त्रग्रन्थ हैं, वे सभी उपर्युक्त चारों पुरुषार्थों में से ही किसी न किसी के प्रतिपादक हैं। यदि केवल काव्य के परिशीलन से सभी पुरुषार्थों के साधन में पटुता होती है तो यह स्पष्ट है कि उस काव्य में उपर्युक्त सभी शास्त्रीय विषयों का समावेश है। एक के ही साधे सब सध जाता है। यदि कहें, शास्त्रीय विषयों का ज्ञान तो उन-उन शास्त्रों के अध्ययन से ही हो जायगा, फिर उन्हीं के लिए काव्य की क्या आवश्यकता है, तो इसका उत्तर यह है कि अन्यान्य शास्त्रों में उन विषयों का कोरा उपदेशमात्र है, जो नीरस प्रतीत होता है। काव्य में उनके विन्यास का क्रम सरस, सुकुमार और मनोरम होता है, उसके अध्ययन से जी नहीं ऊबता, उत्तरोत्तर रस की अनुभूति होती है। इसीलिए काव्य का उपदेश कान्तासम्मित कहा गया है। उपदेश तीन प्रकार के होते हैं—प्रभुसम्मित, सुहृत्सम्मित और कान्तासम्मित। वेद का उपदेश प्रभुसम्मित है, जैसे स्वामी अधिकार-पूर्वक अपनी आज्ञा का अक्षरशः पालन करने के लिए भृत्य को विवश करता है, उसी प्रकार वेद की आज्ञा अनिवार्य और शब्द-प्रधान होती है, उसकी आनुपूर्वी का परिवर्तन नहीं किया जा सकता। ऐसी आज्ञा के पालने में प्रायः स्वतः प्रवृत्ति नहीं होती, विवश होकर ही उसका पालन किया जाता है। इतिहास-पुराणादि का उपदेश सुहृत्सम्मित होता है। जैसे हितचिन्तक सुहृद् प्रेमपूर्वक किसी बात के लिए सलाह देता है, उसमें आज्ञापालन कराने का कोई भाव नहीं रहता। इसी प्रकार पुराणादि के आदेश हैं, उनका तात्पर्य शब्द में नहीं, अर्थ में होता है। इसके पालन के लिए भी मानव-हृदय में कोई विशेष आकर्षण नहीं होता। काव्य इन शब्दार्थप्रधान वेद-पुराणादि से विलक्षण वस्तु है। इसका उपदेश कान्तासम्मित होता है। जैसे कामिनी अपनी सरस भाव-भंगियों के द्वारा प्रियतम को सर्वथा अनुकूल करके लजीली चेष्टाओं से ही अपने मनोभावों को व्यक्त करती है और सहृदय नायक अपनी प्रिया की उस मनोभिलाषा को बड़ी चाह से पूरी करता है, उसी प्रकार काव्य के उपदेश हैं। इसका तात्पर्य न शब्द में होता है और न अर्थ में। इन दोनों को गौण करके इनसे ही व्यक्त होने-वाले रस के अङ्गभूत व्यञ्जना-व्यापार के द्वारा सहृदय को रस-मग्न करके वह अपने लिए उसके हृदय में विशेष आकर्षण उत्पन्न कर देता है। इसी से मनुष्य मुग्ध की भाँति काव्य के अध्ययन में प्रवृत होता है। फिर राम-रावण आदि की जीवनचर्या का परिणाम देख वह राम के अनुसार जीवन बनाने का प्रयत्न करता है।

पूर्व काल में मस्तिष्क के परिश्रम से घबराकर शास्त्राध्ययन से विमुख रहने के कारण, जिनकी मनो-वृत्ति उच्छृङ्खल हुआ करती थी, उन राजकुमारों को सदुपदेश देकर राह पर लाने में काव्य ही सफल हो सके हैं। वक्रोक्तिजीवितकार लिखते हैं—

'राजपुत्राः खलु समासादितस्वविभवाः समस्त-जगतीव्यवस्थाकारितां प्रतिपद्यमानाः श्लाघ्योपदेश-शून्यतया स्वतन्त्राः सन्तः समुचितसकलव्यव-हारोच्छेदं प्रवर्तयितुं प्रभवन्तीत्येतदर्थमेतद्व्युत्पत्तये व्यतीतसच्चरितराजचरितं तन्निदर्शनाय निबध्नन्ति कवयः। तदेवं शास्त्रातिरिक्तं प्रगुणमस्त्येव प्रयोजनं काव्यबन्धस्य।'

अर्थात्—'राजपुत्रगण जब अपने राजवैभव पर अधि-कार प्राप्त कर लेते हैं और समस्त जगत् की शासन-व्यवस्था का भार उन पर आ पड़ता है, उस समय यदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वे उत्तम उपदेश से शून्य हैं तो स्वतन्त्र—उच्छृङ्खल होकर सम्पूर्ण उचित व्यवहारों का उच्छेद कर सकते हैं, इसलिए उनको उचित-अनुचित—कर्तव्य-अकर्तव्य—का विवेक कराने के लिए कविगण पूर्ववर्ती सच्चरित्र राजाओं के चरित्रों का उदाहरण के तौर पर उल्लेख करते हैं, जिससे वे उन्हीं के सद्गुणों का अनुसरण कर सकें। इस प्रकार अन्य शास्त्रों की अपेक्षा काव्य का विशिष्ट प्रयोजन है ही।'

समाज के एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए, एक गृह, एक कुटुम्ब के भीतर रहनेवाले प्राणियों को परस्पर कैसा बर्ताव करना उचित है, इन सब बातों का भी सुन्दर ज्ञान उत्तम महाकाव्य के अध्ययन से ही होता है। कहानी और आख्यायिकाओं से भी व्यावहारिक शिक्षा मिलती है, किन्तु उनमें उस रस, उस आनन्द की अनुभूति नहीं होती, जो काव्य में पद-पद पर प्रतीत होता है। राजानक कुन्तक ने भी इस बात का समर्थन किया है—

व्यवहारपरिस्पन्दसौन्दर्यव्यवहारिभिः ।
सत्काव्याधिगमादेव नूतनौचित्यमाप्यते ॥
(वक्रोक्तिजीवित)

इसी तरह काव्य के अध्ययन से कलाओं में भी प्रवीणता प्राप्त होती है—वैचक्षण्यं कलासु च। इस प्रकार के विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि वही काव्य महत्त्वपूर्ण है, जिससे समस्त शास्त्रीय विषयों का ज्ञान होने के साथ ही व्यवहार-ज्ञान और कला-ज्ञान भी पर्याप्त मात्रा में हो सके। यह तभी सम्भव है, जब कवि बहुज्ञ हो और इन सभी विषयों का काव्य में समावेश कर सके। इससे कवि पर कितना बड़ा उत्तर-दायित्व है, इसका सहज ही अनुमान हो सकता है। कवि के इस महान् भार का अनुभव करते हुए आचार्य भामह कहते हैं—

न स शब्दो न तद्वाच्यं न स न्यायो न सा कला ।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भारो महान् कवेः ॥

'कोई भी ऐसा शब्द, अर्थ, न्याय अथवा कला नहीं है, जो काव्य का अंग न हो सके। अहो! कवि के ऊपर बहुत बड़ा भार है!'

दूसरे-दूसरे शास्त्र केवल अपने-अपने विषय के प्रतिपादक होते हैं, परन्तु काव्य सभी शास्त्रों का प्रतिनिधित्व अकेला ही करता है। साथ ही अपना स्वतन्त्र अस्तित्व भी अक्षुण्ण बनाये रखता है। दर्शन की भाषा में जो विषय अत्यन्त गहन और दुर्बोध प्रतीत होता है, वही काव्य की रसमयी मधुर भाषा में सरल और सुबोध हो जाता है। इसलिए प्रत्येक कवि का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह जहाँ तक सम्भव हो, अपने में विविध विषयों का ज्ञान-संचय करके ऊपर बताये अनुसार महत्त्वपूर्ण महाकाव्य प्रस्तुत करने का प्रयत्न करे। जो अशिक्षित या अर्धशिक्षित रहकर ही हठात् कविता करने या अपने को कवि घोषित करने का व्यर्थ प्रयास करते हैं, उन्हीं के प्रति इस प्रकार का व्यंग्य किया गया है—

स्वाधीनं रसनाञ्चलं परिचिताः शब्दाः कियन्तः क्वचित्
क्षोणीन्द्रो न नियामकः परिषदः शांताः स्वतंत्रं जगत्।
तद्यूयं कवयो वयं वयमिति प्रस्तावना हुंकृति-
स्वच्छन्दं प्रतिसद्म गर्जत वयं मौनव्रतालम्बिनः ॥

'जीभ अपने वश में है, कुछ शब्दों से परिचय भी हो ही गया है। कोई राजा या शासक किसी तरह का प्रतिबन्ध भी नहीं लगाता, विद्वानों की गोष्ठी भी शांत है, सारा जगत् स्वतन्त्र है, जो चाहे करे कोई कुछ कहनेवाला नहीं है। ऐसी दशा में तुम सभी लोग अपने-अपने घर में बैठे-बैठे 'हम कवि हैं, हम कवि हैं' इस प्रकार स्वच्छन्दतापूर्वक गर्जना किया करो; हम लोग चुपचाप हैं—कुछ न बोलेंगे।'

कवि को ऐसे व्यंग्य का लक्ष्य न बनना पड़े, इसके लिए उसे पूर्ण प्रयत्नशील होना चाहिए।

यहाँ तक उपयोगिता की दृष्टि से, जो काव्य-परीक्षा की पहली दृष्टि है, काव्य की उत्तमता का विचार किया गया। इस दृष्टि से वाल्मीकीय रामायण और रामचरितमानस आदि महाकाव्य सर्वोत्तम सिद्ध होते हैं—यह भी बताया जा चुका है। अब दूसरी दृष्टि से, जो काव्य की समीक्षा के लिए मुख्य दृष्टि है, उत्तम काव्य के स्वरूप का विचार किया जाता है।

प्राचीन काल से ही काव्य की दो शैलियाँ प्रचलित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं—पद्य और गद्य। नाना प्रकार के छन्दों में बँधी हुई संगीतमयी रचना 'पद्य' कहलाती है। छन्दोविहीन कविता को गद्यकाव्य के नाम से व्यवहार करते हैं। आजकल कविता शब्द से प्रायः पद्यमयी रचना की प्रतीति होती है। पद्यहीन रचना केवल गद्यकाव्य ही कहलाती है। किन्तु काव्य और कविता में कोई अर्थतः भेद नहीं है, अतः यहाँ काव्य और कविता—दोनों ही शब्द दोनों ही प्रकार की रचना के लिए सामान्य रूप से प्रयुक्त हुए हैं। साहित्यदर्पणकार ने गद्य का स्वरूप चार प्रकार का माना है—मुक्तक, वृत्तगन्धि, उत्कलिकाप्राय और चूर्णक। समासरहित रचना मुक्तक है। जिसके वाक्यांश में पद्य की गन्ध हो अर्थात् पद्य का आंशिक भानमात्र होता हो, उसे वृत्तगन्धि कहते हैं। जिसमें लम्बे-लम्बे समास हों, वह उत्कलिकाप्राय है और छोटे-छोटे समास-वाली रचना चूर्णक कहलाती है। हिन्दी-गद्य में अधिक पदों का समास प्रायः नहीं प्रयुक्त होता; अतः उसमें उक्त भेदों में से तीन ही भेद हो सकते हैं।

यहाँ यह स्मरण रखना चाहिए कि गद्य और पद्य, ये काव्य की दो कल्पित जातियाँ हैं। इनमें जो काव्यत्व है, वह और ही कारणों से है। जहाँ काव्य का लक्षण संघटित हो, वही काव्य है; जहाँ संघटित न हो, वह रचना—पद्य हो या गद्य—वास्तव में काव्य की श्रेणी में नहीं रक्खी जा सकती। काव्य का वास्तविक स्वरूप क्या है? इसका विवेचन करने के पहले पद्य के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक निवेदन किया जाता है—

कुछ आलोचक विद्वान् कविता में नाना प्रकार के छन्दों का उपयोग अनावश्यक समझते हैं। उनका कथन है कि छन्द आदि के बन्धन में बँधकर कवि को पर-तन्त्र हो जाना पड़ता है। कविता का क्षेत्र संकुचित हो जाता है। अन्त्यानुप्रास, मात्रा और दीर्घ-लघु की व्यवस्था का निर्वाह करते हुए अपने भावों को—स्वाभाविक उद्गारों को ठीक-ठीक व्यक्त करने में कवि को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ता है। यदि भाव-विहङ्गम छन्द के जाल में न जकड़ा जाय तो वह काव्य-कानन में स्वच्छन्दता-पूर्वक पंख फैलाकर उड़ता, थिरकता और अपने कोमल कलरव से रसिकों का मन मुग्ध कर सकता है। संभवतः इसी लिए छन्दों से हीन कविता लिखने की प्रथा बढ़ती जा रही है। ऐसी रचना पद्य न होने पर भी उसके पढ़ने और लिखने में प्रायः पद्य की शैली का ही अनुसरण किया जाता है। एक पङ्क्ति में दो शब्द लिखते हैं तो दूसरी में दस। इस प्रकार पूरी कविता अनियमित और अव्यवस्थित ढंग से लिखी जाती है। मानो किसी छन्द की एक टाँग तोड़कर दूसरे में जोड़ दी गई हो। इस तरह की रचना को कुछ लोग रबर छन्द कहते हैं; उपहास के लिए इससे अच्छा कोई दूसरा नाम शायद ही मिले।

यद्यपि काव्य के सभी अंगों में व्यंग्यरस ही जीवनाधायक होता है तो भी पद्य में गद्य की अपेक्षा अधिक रमणीयता और मधुरता की अनुभूति होती है। इसका प्रधान कारण है, उसका संगीतमय होना। कविता का आनन्द तो सहृदयों को ही प्राप्त होता है, किन्तु संगीत के प्रति मनुष्यमात्र का आकर्षण हुआ करता है। मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी और सर्प आदि भी संगीत की मोहक तान सुनकर उन्मत्त हो उठते हैं। जड़ वस्तुओं में भी द्रव होने लगता है। मनुष्य तो जन्म से ही संगीत का प्रेमी होता है। संगीत की गति-लय पर उसके हृदय का तार-तार झंकृत हो उठता है। अंग-अंग में चपलता, रोम-रोम में उल्लास भर जाता है। ऐसे आकर्षक संगीत के साँचे में ढलकर कविता का सौन्दर्य अनन्त-गुना बढ़ जाता है। चित्त पर अधिक प्रभाव डालने की शक्ति पद्यमयी रचना में ही अधिकता होती है। स्मरण रखने के लिए भी गद्य की अपेक्षा पद्य ही सुगम है। इस प्रकार अनेकों दृष्टियों से पद्य की उपयोगिता गद्य से कहीं बढ़कर है; अतः पद्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

जिनकी छन्दोबद्ध कविता लिखने की रुचि न हो, उनके लिए गद्यकाव्य का मार्ग खुला है। वे रुचि के अनुसार गद्य में ही अपनी भावना को व्यक्त कर सकते हैं। किन्तु व्यक्तिगत कठिनाई से ऊबकर स्वतन्त्रता के नाम पर छन्दोबद्ध रचना का विरोध या काव्योपयोगी किसी भी नियम की अवहेलना करना निरा ढोंग है। संसार के सभी महापुरुष प्रायः सामयिक नियम के बन्धन में बँधे रहते हैं। हम सभी लोग समाज और सदाचार के ऐसे बन्धनों में बँधे हैं, जिनका अतिक्रमण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करके हम पशु से भी गये-बीते हो जा सकते हैं। ऐसे नियम या बन्धन आत्मा के अभ्युत्थान के लिए ही होते हैं। उनका अतिलङ्घन करना स्वातन्त्र्यप्रियता नहीं, अवांछनीय उच्छृङ्खलता है।

छन्द कविता का दूषण नहीं, भूषण है। वहाँ बंधन में ही सौन्दर्य है। बन्धन से भयभीत होकर पद्यमयी रचना से मुँह मोड़नेवाले लोग गद्यकाव्य भी नहीं लिख सकते; क्योंकि वहाँ भी काव्योपयोगी नियमों का निर्वाह अनिवार्य है। कविता में छन्द आच्छादन (दुकूल) का काम देता है। उससे छन्द को अलग करना तो दूर रहा, गुरु-लघु या मात्रा की नियत व्यवस्था में भी ज़रा-सा भी अन्तर पड़ने पर वह कविता फटे दुकूल से ढकी हुई कामिनी की भाँति अपने कान्त कवि की दीनता एवं शक्तिहीनता का ही परिचय देती है। छन्द के बहिष्कार का अर्थ है पद्यात्मक काव्य-शैली के मूलोच्छेद का प्रयत्न, जो एक निन्दास्पद कार्य है।

एक समय ऐसा था, जब वेदों के सिवा अन्यत्र (लौकिक भाषाओं में) छन्दोबद्ध रचना उपलब्ध नहीं होती थी। राजशेखर की काव्य-मीमांसा में इस बात का उल्लेख है कि सर्वप्रथम सरस्वती-पुत्र काव्य-पुरुष ने उत्पन्न होते ही एक श्लोक * द्वारा माता का अभिवन्दन किया। उस समय माता सरस्वती ने आश्चर्य और आनन्द में निमग्न होकर कहा था—"बेटा, तू छन्दोमयी वाणी का निर्माता है, तूने आज अपनी मा को भी, जो समस्त वाङ्मय शास्त्र की जननी है, जीत लिया। तुमसे पहले के विद्वानों ने गद्य ही देखा था, पद्य नहीं। अब तुमसे ही छन्दोमयी वाणी का प्रचार होगा †।"

सम्भव है, यह वर्णन रूपक अथवा अर्थवाद हो, परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि लोकभाषा में सर्वप्रथम जो पद्य-रचना हुई, वह गायन के अनुकूल होने के कारण विशेष लोकप्रिय हुई। उसकी तरफ़ जनता का अधिक आकर्षण हुआ और वाद की परम्परा में भी पद्य का ही विशेष आदर होता आया। यही कारण है कि संस्कृत-साहित्य में गद्य-काव्यों की विरलता और पद्य-काव्यों का बाहुल्य है। किन्तु ज्यों-ज्यों इस काव्य-पद्धति का प्रचार बढ़ता गया, त्यों-त्यों सहृदय समालोचक उसमें विशेषताओं का अनुसन्धान करने लगे। इस प्रकार धीरे-धीरे पद्य को उत्कृष्ट काव्य बनाने के लिए उसे माधुर्यादि गुणों, शब्दार्थगत अलंकारों तथा वैदर्भी‡ आदि रीतियों से सजाया जाने लगा।

इस प्रकार की सजावट से काव्य के बाह्य सौन्दर्य की अभिवृद्धि अवश्य हुई, पर अभी तक काव्य की आत्मा का दर्शन नहीं होता था। जिस प्रकार जड़ प्रतिमा को अलंकारों से विभूषित करने पर भी उसमें चैतन्य का आभास नहीं होता—यही दशा काव्य की थी। उसके बाह्य शरीर शब्द-अर्थ को ही अलंकृत करने की ओर कवियों का ध्यान था। काव्य में अनुप्रास, उपमा, रूपक और यमक आदि की ही छटा अधिक दिखाई देती थी। यद्यपि अधिक प्रतिभाशाली और सरस्वती के कृपापात्र कालिदास आदि महाकवियों के काव्य में बाह्य सौन्दर्यों के साथ ही काव्य के आत्मा-रस आदि की भी पूर्ण अभिव्यक्ति होती थी, उनकी रचनाओं में पर्याप्त सजीवता थी, तथापि इन आंतरिक विशेषताओं को उस समय के समालोचक नहीं देख पाते थे। शब्द के वाच्य और लक्ष्य-अर्थ तक ही उनकी पहुँच थी। वाच्य और लक्ष्य के अतिरिक्त कोई व्यंग्य[3] अर्थ भी है, जो इनकी अपेक्षा अधिक चमत्कार-

---

* यदेतद्वाङ्मयं शास्त्रमर्थमूर्त्या विवर्तते।
सोऽस्मि काव्यपुमानम्ब पादौ वन्देय तावकौ॥

† वत्स! सच्छन्दस्काया गिरः प्रणेतः! वाङ्मय-मातरमपि मातरं मां विजयसे।.....त्वत्तः पूर्वे हि विद्वांसो गद्यं ददृशुर्न पद्यम्। त्वदुपज्ञमथातः छन्दस्त्वद्वचः प्रवर्त्स्यति।

‡ देशभेद से रीति मानने पर अनन्त रीतियाँ हो जायँगी; क्योंकि देश अनन्त हैं, यह दोष बता कर राजानक कुन्तक ने काव्य के सुकुमार, विचित्र और मध्यम—ये तीन रूप स्वीकार किये हैं।

१. २. ३.—अर्थ तीन प्रकार के होते हैं—वाच्य, लक्ष्य और व्यंग्य। इनको व्यक्त करने के लिए क्रमशः तीन प्रकार के व्यापार होते हैं—अभिधा, लक्षणा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कारी और आनन्ददायी है—इसकी कल्पना तक वे नहीं कर सके थे। रस का निश्चय तो उन्हें प्रसंग से ही होता था। उसके शब्द और अर्थ से व्यंजना-व्यापार के द्वारा ध्वनित होनेवाले लोकोत्तर चमत्कार का उनका हृदय अनुभव नहीं कर सका था।

ईसा की नवीं शताब्दी के प्रारम्भ में कुछ सहृदय आलोचकों ने इस ध्वनि (व्यंग्यार्थ-प्रधान) काव्य के चमत्कार का अनुभव किया और उस समय के विद्वानों

और व्यंजना। इन तीनों को स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक् समझने के लिए एक उदाहरण दिया जाता है—जैसे कोई कहे कि हमारा घर तो गंगा में ही है। गंगा शब्द का वाच्य (मुख्य) अर्थ है गंगा का प्रवाह, किन्तु पानी के प्रवाह में किसी का घर नहीं हो सकता; अतः यहाँ गंगा का मुख्य अर्थ बाधित होता है। मुख्य अर्थ बाधित होने पर लक्षणा वृत्ति के द्वारा लक्ष्य-अर्थ का बोध कराया जाता है। यहाँ गंगा का लक्ष्य अर्थ है गंगा का तट। अर्थात् उसके कथन का अभिप्राय यह है कि हमारा घर गंगा के तट पर है। अब प्रश्न होता है—'गंगा में घर है' ऐसा क्यों कहा? 'गंगा-तट पर घर है' यही कहते तो लक्षणा नहीं करनी पड़ती; तो इसका उत्तर यह है कि उसके वैसा कहने में विशेष प्रयोजन है। वह अपने घर में अधिक ठंडक और अधिक पवित्रता का होना व्यक्त करना चाहता है। अर्थात् गंगा के सम्पर्क से हमारा घर इतना पवित्र, इतना शीतल है, मानो गंगा में ही है। यदि सीधे यही कहते कि 'मेरा घर गंगा-तट पर है' तो उतनी अधिक पवित्रता और शीतलता की व्यंजना नहीं होती, जितनी 'गंगा में ही घर है' ऐसा कहने पर होती है। अधिक पवित्रता और अधिक शीतलता रूप जो अर्थ है, वह व्यंग्य-अर्थ है, और इसी को व्यक्त करने के लिए व्यंजना-व्यापार का आश्रय लेना पड़ता है। इस विषय को यहाँ संक्षेप में बताया गया। लक्षणा के और भी बहुत-से भेद होते हैं, उन्हें समझने के लिए शास्त्रों का अध्ययन आवश्यक है।

में इसकी चर्चा भी चलाई। परन्तु झेंप से या हठ-धर्मिता के कारण अधिकांश विद्वानों ने ध्वनि की सत्ता स्वीकार न की; उलटे ध्वनिवादियों का मखौल उड़ाया जाने लगा, उन्हें जड़—विवेकशून्य घोषित किया गया *। किन्तु इससे ध्वनिवादी हताश न हुए। यथा-संभव विद्वानों के आगे ध्वनि की सत्ता और महत्ता के सम्बन्ध में अपने विचार रखते रहे। आगे चलकर नवीं शताब्दी के मध्य भाग में काश्मीर में आचार्य श्रीआनन्दवर्धन बहुत बड़े विद्वान् हुए। उन्होंने ध्वनि का तत्त्व विशेष रूप से हृदयंगम किया और ध्वन्यालोक की रचना करके उसमें अपने समकालिक विद्वानों के आक्षेपों का प्रबल प्रमाणों और युक्तियों से बड़ी प्रौढ़ता के साथ खण्डन करके ध्वनि की स्थापना की।

जो लोग व्यंग्यार्थ को वाच्यार्थ से भिन्न नहीं मानते थे, उन्हें दृष्टान्तपूर्वक समझाते हुए श्रीआनन्दवर्धनाचार्य ने बताया—

प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम्;
यत्तत्प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवाङ्गनासु।
(ध्वन्यालोक)

'जैसे रमणी के शरीर में लावण्य उसके अङ्गों से भिन्न कोई और ही वस्तु है जो रसिकों के नेत्र में सुधा की वृष्टि करता है, उसी प्रकार महाकवियों की वाणी में प्रतीयमान (व्यङ्ग्य) रसादि रूप अर्थ वाच्य से बिलकुल भिन्न वस्तु है। यह सहृदयों के लिए वाच्य की अपेक्षा अधिक चमत्कारजनक एवं मनोरम है।'

यह व्यङ्ग्यरस आदि ही काव्य की आत्मा हैं—काव्यस्यात्मा स एवार्थः (ध्वन्यालोक)। इस काव्यात्मा की जहाँ पूर्ण रूप से अभिव्यक्ति हो, वही उत्तम—वही सजीव काव्य है। ऐसे काव्य की रचना के लिए सभी शब्द उपयोगी नहीं हो सकते। ध्वनिकार कहते हैं—

सोऽर्थस्तद्व्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ तौ शब्दार्थौ महाकवेः॥

---

*यस्मिन्नस्ति न वस्तु किञ्चन मनःप्रह्लादि सालंकृति
व्युत्पन्नैरचितं न चैव वचनैर्वक्रोक्तिशून्यं च यत्।
काव्यं तद्ध्वनिना समन्वितमिति प्रीत्या प्रशंसञ्जडो
नो विद्मोऽभिदधाति किं सुमतिना पृष्टः स्वरूपं ध्वनेः॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स व्यङ्ग्योऽर्थस्तत्प्रकाशनसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन न सर्वः। तावेव शब्दार्थौ महाकवेः प्रत्यभिज्ञेयौ। व्यङ्ग्यव्यञ्जकाभ्यामेव हि सुप्रयुक्ताभ्यां महाकवित्वलाभो महाकवीनां न वाच्यवाचकरचनामात्रेण।'

(ध्वन्यालोक)

अर्थात्—'व्यङ्ग्य-अर्थ और उसको ठीक व्यक्त करने में समर्थ कोई ही कोई शब्द उत्तम काव्य के अङ्ग हो सकते हैं। ऐसे शब्द और अर्थ का यत्नपूर्वक ज्ञान प्राप्त करना चाहिए; क्योंकि वे ही शब्द-अर्थ महाकवि के हैं। व्यङ्ग्य-व्यञ्जक का ही सुन्दर रूप में प्रयोग करने से महाकवियों को महाकवित्व की प्राप्ति होती है, केवल वाच्य-वाचक की रचना से नहीं।'

वक्रोक्तिजीवितकार भी यही कहते हैं—

'अर्थः समर्थवाचकासद्भावे स्वात्मना स्फुरन्नपि मृतकल्प एवावतिष्ठते। शब्दोऽपि वाक्योपयोगिवाच्यासम्भवे वाच्यान्तरवाचकः सन् वाक्यस्य व्याधिभूतः प्रतिभाति।'

अर्थात्—'जो अर्थ बतलाना अभीष्ट है, उसे ठीक-ठीक व्यक्त करने की क्षमता रखनेवाला शब्द यदि नहीं प्रयुक्त हुआ है, किसी साधारण शब्द द्वारा उस अर्थ की प्रतीति कराई गई है तो वह अर्थ स्वतः ज्ञात होने पर भी मुर्दा-सा ही रह जाता है, उसमें जीवन नहीं दिखाई देता। इसी प्रकार जो शब्द वाक्योपयोगी अर्थ बताने में असमर्थ-सा होकर किसी अन्य अर्थ की प्रतीति कराने लगता है, वह भी प्रस्तुत वाक्य के लिए रोग-सा ही जान पड़ता है।'

अतः उत्तम काव्य के लिए चुने हुए शब्द-अर्थ ही उपयोगी हो सकते हैं। शब्द-अर्थ के चुनाव में कवि को पूर्ण सावधान होना चाहिए; अन्यथा काव्य में जीवन नहीं आता, आत्मा की—रस की अनुभूति नहीं होती। इस प्रकार आनन्दवर्धनाचार्य के समय में सर्वप्रथम काव्य का पूर्ण स्वरूप—सजीव आकार दृष्टिगोचर हुआ। ध्वनिकार के उक्त मत का आचार्य अभिनवगुप्त ने अपने ग्रन्थ में विशद विवेचन किया, फिर उसी को और भी परिष्कृत एवं सुव्यवस्थित करके आचार्य मम्मट ने काव्यप्रकाश में रक्खा। ध्वनिकार से पूर्व जो काव्य के लक्षण मिलते हैं, वे अधूरे हैं। उन्होंने ही उनमें पूर्णता लाने का सफल प्रयत्न किया। ध्वनिकार के ही भाव लेकर परवर्ती आचार्यों ने काव्य के भिन्न-भिन्न लक्षण बनाये। वक्रोक्तिजीवितकार ने तो ध्वनि के ही भेदोपभेदों को विभिन्न वक्रोक्तियों के रूप में रखकर ध्वनि का नाम उड़ा देने की कोशिश की और 'वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्' का ही ढिंढोरा पीटना आरम्भ कर दिया। उनकी प्रतिपादन-शैली में एक नवीनता और प्रौढ़ता होने पर भी ध्वनि के प्रकारों का ही शब्दान्तर से प्रतिपादन देख सूक्ष्मदर्शी विद्वान् उनके चकमे में नहीं आ सके। परवर्ती आचार्यों ने जो काव्य के सामान्य या विशेष लक्षण माने हैं, उनमें काव्यप्रकाशकार का ही लक्षण अधिक पूर्ण और प्रामाणिक है। इन्हीं आचार्यचरणों की मान्यता के आधार पर यहाँ काव्य के सामान्य और विशेष स्वरूप का उदाहरण सहित उल्लेख किया जाता है—

सामान्यतः सरस और अनूठी उक्तियों में कुछ कहना किसी वस्तु का वर्णन करना ही काव्य है। काव्यप्रकाश में आचार्य मम्मट ने काव्य के सामान्य स्वरूप का प्रायः इसी प्रकार निर्देश किया है। वे लिखते हैं—'लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्मकाव्यम्।' किसी वस्तु का अलौकिक प्रकार से—अनूठे ढंग से वर्णन करने में निपुण कवि के वर्णनात्मक कर्म को काव्य कहते हैं। कवि के अतिरिक्त सभी लोग, विद्वान् हों या गँवार, किसी वस्तु का जिस प्रकार से वर्णन करते हैं, कवि के वर्णन का ढंग उससे अनूठा होता है। साधारण लोग किसी बात को जिस रूप में सामने रखते हैं, कवि वैसे नहीं रखता। उसके कथन में कुछ वक्रता, कुछ वैचित्र्य, कुछ निरालापन होता है। दो-एक उदाहरण देखिए—

विरक्त संन्यासी कहता है—'जीवन असार है, नाशवान् है, आज है, कल न रहेगा।' इसमें कोई अनूठापन नहीं है—यह लोक में अनुभव-सिद्ध बात है। इसी भाव को कवि कैसे मार्मिक ढंग से व्यक्त करता है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैं दर्दभरी दुख की बदली
परिचय इतना इतिहास यही
कल उमड़ी थी मिट आज चली!
(महादेवी वर्मा)

जीवन के क्षणिक उत्थान-पतन का कितना सजीव, कैसा दर्दभरा चित्रण है!

'आँखें किसे देखने लगीं? आँसू क्यों आये?'—यही बात कवि के शब्दों में—

किस छवि की ओर दृगों ने उड़ने को पंख पसारा,
किसके पावन पग धोने बह चली प्रणय की धारा।
(राम)

नदी पर्वत से निकलती है, उसके जल से सभी प्राणियों का उपकार होता है—यही भाव कवि की वाणी में कितना सरस, मधुर और मनोरम जान पड़ता है? पढ़िए—

इस-रंगिणि! तेरे दयार्द्र स्वभाव का,
देखने में कहीं सानी न आया;
तट-से गया लौट अतृप्त ही जो,
वहाँ ऐसा कभी कोई प्रानी न आया।
चिज़-नाम से तू कहलाती नदी,
पर काम ने है तुझे दानी बनाया;
निरे पत्थर की तनया है परन्तु,
प्रिये! तुझे प्रेम ने पानी बनाया।
(राम)

अस्तु। काव्य का विशेष लक्षण इस प्रकार है—गुण और अलंकारों से युक्त निर्दोष शब्द और अर्थ काव्य हैं। काव्यप्रकाशकार को यही लक्षण स्वीकृत है *। वास्तव में उत्तम काव्य होना ही ऐसा चाहिए। साहित्यदर्पणकार ने अपनी अदूरदर्शिता के कारण जो इसका खण्डन किया है, वह युक्तियुक्त नहीं है। उनका कथन है कि 'ऐसा लक्षण मानने पर काव्य का ठीक उदाहरण मिलना ही असम्भव हो जायगा। अथवा इस लक्षण के अनुसार विरला ही काव्य, काव्य कहा जा सकेगा।' यह आपत्ति वास्तव में इस लक्षण की महत्ता को ही प्रकट करती है। उत्तम काव्य थोड़ा हुआ ही करता है और उत्तम कवि भी उँगलियों पर गिने जा सकते हैं। जिस कवि के काव्य में जितने कम या अधिक दोष मिलें, उसकी उत्तमता और अधमता का तारतम्य उन्हीं के अनुसार हो सकता है। साहित्य-दर्पणकार ने रसात्मक वाक्य को काव्य माना है। काव्यप्रकाशकार आदि पूर्ववर्ती आचार्य भी व्यंग्य-रस को काव्य की आत्मा मानते हैं, अतः उनकी मान्यता में कोई नवीनता या विलक्षणता नहीं है। एक दोष अवश्य है, जो सभी समझ सकते हैं। किसी वस्तु का लक्षण करते समय उसके बाह्य स्वरूप का ही निर्देश किया जाता है, आत्मा का नहीं। मनुष्य की पहचान बताते समय उसके बाह्य आकार-प्रकार का ही निर्देश किया जाता है, यह नहीं बताया जाता कि जिसकी आत्मा नित्य हो वह मनुष्य है; क्योंकि आत्मा अव्यक्त वस्तु है। इसी प्रकार काव्य का स्वरूप या लक्षण बताते समय उसके बाह्य शरीर शब्द-अर्थ का ही निर्देश करना उचित है। वाक्य भी शब्द-अर्थ से ही बनता है, अतः लक्षण में वाक्य की चर्चा न करके शब्द-अर्थ का ही उल्लेख आवश्यक है। इसीलिए पण्डितराज जगन्नाथ ने 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' ऐसा माना है। इस प्रकार गुणालंकार-विशिष्ट निर्दोष शब्द-अर्थ ही काव्य का विशेष लक्षण है। दोष त्याज्य हैं और गुण-अलंकार ग्राह्य। इनका विशेष ज्ञान शास्त्रों के अनुशीलन से प्राप्त कर लेना उचित है। आचार्य मम्मट ने काव्य को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—उत्तम, मध्यम और अधम। जहाँ व्यंग्य-अर्थ प्रधान हो, चमत्कारजनक हो, वही ध्वनि-नामक काव्य उत्तम है। जहाँ उसकी अप्रधानता हो, वह गुणीभूत व्यंग्य मध्यम काव्य है। व्यंग्यार्थ-शून्य काव्य अधम है। ध्वनि तथा गुणीभूत व्यंग्य के बहुत-से अवान्तर भेद हैं। उनकी चर्चा के लिए यहाँ स्थान और समय नहीं। यदि कभी अवसर मिला तो उनके प्रत्येक भेद का रसास्वाद पाठकों को कराया जायगा।

हम ऊपर बता आये हैं कि उत्तम काव्य में चुने

* तददोषौ शब्दार्थौ—
सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि। (काव्यप्रकाश)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुए शब्द-अर्थ का ही उपयोग हो सकता है; अतः उनका चुनाव किस प्रकार किया जाय? इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डालना आवश्यक जान पड़ता है। राजानक कुन्तक ने शब्द-अर्थ की परीक्षा का सुन्दर प्रकार यों बताया है—

शब्दो विवक्षितैकार्थवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि।
अर्थः सहृदयाह्लादकारिस्वस्पन्दसुन्दरः ॥

कवि जिस अभिप्राय को व्यक्त करना चाहता हो, उसके वाचक अन्य बहुत-से शब्द रहते हुए भी जो शब्द ख़ास तौर पर एकमात्र वाचक समझा जाय, वही काव्योपयोगी शब्द है; अर्थात् जिसका परिवर्तन करके उसकी जगह समानार्थक दूसरा शब्द देने पर वह चमत्कार, वह आनन्द न रह जाता हो, जो स्वयं उस शब्द के रखने पर होता था, वही शब्द काव्य में प्रयुक्त होने योग्य है। उदाहरण के लिए निम्नांकित श्लोक है। पार्वती देवी के प्रेम की परीक्षा के लिए भगवान् शंकर उनकी कुटी पर, जहाँ वे तपस्या करती थीं, ब्रह्मचारी के वेष में आते हैं और उनसे पूछते हैं—"देवि, यह कठोर तप किसलिए कर रही हो?" पार्वती कहती हैं—"मैं भगवान् शंकर को पतिरूप में प्राप्त करना चाहती हूँ।" यह सुनकर पार्वती को उनके निश्चय से हटाने के लिए ब्रह्मचारी शंकर व्यंग्यपूर्वक कहते हैं—

द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां
समागमप्रार्थनया कपालिनः।
कला च सा कान्तिमती कलावत-
स्त्वमस्य लोकस्य च नेत्रकौमुदी ॥

'कपाली—शंकर के सम्पर्क में रहने की प्रार्थना करके संसार में दो वस्तुएँ इस समय शोचनीय हो गई हैं। एक तो चन्द्रमा की वह कान्तिमती कला और दूसरी इस जगत् के नेत्रों के लिए चाँदनी-जैसी तुम।'

अब इस श्लोक के शब्दों पर ध्यान दीजिए—यहाँ शिव के अर्थ में कपाली शब्द का प्रयोग हुआ है। शिव के बहुत-से नाम हैं, यदि 'कपालिनः' को हटाकर उसके स्थान में महेश्वर अर्थ का वाचक 'महेशितुः' आदि शब्द रख दें तो वह चमत्कार नहीं रहता, जो 'कपालिनः' रखने पर है; क्योंकि 'कपालिनः' के बिना कवि का अभिप्राय स्पष्ट नहीं होता। कोई अच्छी चीज़ यदि अयोग्य के पास पड़ जाय तो उसी के लिए सज्जनों को शोक होता है। जो महेश्वर है, ईश्वरों का भी ईश्वर है, उसके समागम की प्रार्थना तो सभी को होनी ही चाहिए, फिर पार्वती और चन्द्रमा शोचनीय क्यों होंगे? अतः 'महेशितुः' शब्द रहने पर भाव स्पष्ट नहीं होता। 'कपालिनः' शब्द रहने पर यह दोष नहीं आता। कपाली का अर्थ है, कपाल (मुर्दों का मुण्ड) धारण करनेवाला। कपाल घृणित वस्तु है, उसे रखनेवाला घृणा का पात्र है। ऐसे बीभत्स व्यक्ति के पास क्या चन्द्रकला और पार्वती-जैसी लोकोत्तर रमणीय वस्तुएँ शोभा पा सकती हैं? अतः उनका शोचनीय होना उचित ही है। इसी प्रकार सम्प्रति (इस समय) और द्वयम् (दो वस्तुएँ)—इन शब्दों से यह व्यक्त होता है कि पहले केवल चन्द्रमा की कला ही दुर्व्यसन के कारण दूषित होकर सत्पुरुषों की शोचनीय हुई थी, इस समय उसके अनुचित उद्योग में तुम सहायता-सी करने लगीं। प्रार्थना-शब्द में भी चमत्कार है—अकस्मात् दैववश यदि कोई कुसंग में पड़ जाय तो वह उतना निन्दनीय नहीं माना जाता, किन्तु जान-बूझकर स्वयं प्रार्थना—याचना करके यदि ओछी संगति स्वीकार की गई तो यह कितने कलंक की बात है! 'सा च त्वं च' (वह और तुम) इन शब्दों से दोनों में लोकोत्तर लावण्य की अभिव्यक्ति होती है। 'कलावतः' और 'कान्तिमती'—इनमें जो तद्धित मत्वर्थीय प्रत्यय है, उससे दोनों की प्रशंसा प्रतीत होती है। इस प्रकार उपर्युक्त श्लोक में सभी शब्द किसी न किसी विशेष अभिप्राय को लेकर प्रयुक्त हुए हैं। इनमें किसी भी शब्द को परिवर्तित करके शब्दान्तर से उनके अभिप्रायों को नहीं व्यक्त किया जा सकता। यह है महाकवि कालिदास की प्रतिभा का चमत्कार! इसी विशेषता के कारण वे महाकवि हैं।

यह तो हुआ काव्योपयोगी शब्द के चुनाव का प्रकार। अर्थ कैसा हो? इसके लिए पूर्वोक्त कारिका के उत्तरार्ध पर दृष्टि डालें—'अर्थः सहृदयाह्लादकारि-स्वस्पन्दसुन्दरः।' जो सहृदयों को आनन्द देनेवाला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एवं स्वभावतः सुन्दर हो, वह अर्थ काव्य में उपयोगी है। इसका भी उदाहरण निम्नांकित है—

मेघ विरहिणी यक्ष-पत्नी से कहता है—

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
तत्संदेशाद्धृदयनिहितादागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि॥

'हे सुहागिन! तू मुझे अपने स्वामी का प्यारा मित्र मेघ जान। मैं उसका संदेश हृदय में धारण कर तेरे निकट आया हूँ। तू मुझे जानती होगी, मैं थके हुए परदेशी पथिकों को, जो अपनी प्रियतमाओं से मिलने को उत्कण्ठित रहते हैं, मधुर-मनोरम शब्दों से शीघ्र घर पहुँचने के लिए प्रेरणा किया करता हूँ।'

इस श्लोक में अर्थ की उपयोगिता पर ध्यान दें। विरहिणी के कातर हृदय में प्रायः अपने चिर-प्रवासी प्रियतम के जीवन की ही आशङ्का बनी रहती है। वह सबसे पहले किसी के मुँह से यही सुनना चाहती है कि 'उसके प्राणनाथ जीवित तो हैं, उसका सुहाग सुरक्षित तो है?'—इस आशङ्का को पहले ही दूर कर देने के लिए चतुर दूत संबोधन करता है—'हे अविधवे! हे सुहागिन!' अर्थात् तुम्हारा पति जीवित है। इससे उसके हृदय में सान्त्वना होती है। 'मैं तुम्हारे स्वामी का मित्र हूँ, वह भी साधारण नहीं, प्रिय मित्र' इस कथन से वह अपनी उपादेयता व्यक्त करता है। इस प्रकार उसको अपनी ओर आकृष्ट करके अब प्रासंगिक बात छेड़ता है—'मैं तेरे स्वामी का संदेश हृदय में लेकर तेरे निकट आया हूँ।' हृदय में धारण करने से उसकी सावधानता व्यक्त होती है। यदि कहो 'किसी और को क्यों नहीं भेजा?' तो दूसरों की अपेक्षा इस कार्य में मैं ही विशेष कुशल हूँ; क्योंकि मेरा नाम अम्बुवाह (मेघ) है। मैं प्रिय का संदेशरूप जल प्रियतमा के पास सदा ही पहुँचाता रहता हूँ। विरही और विरहिणियों का दुःख दूर करना ही मेरा काम है। यदि कहो कैसे? तो सुनो—मैं वह हूँ, जो परदेशी पथिकों को जल्दी घर पहुँचने के लिए प्रेरित किया करता है। वह भी ऐसे पथिकों को, जो रास्ते में थके हुए हैं—जल्दी-जल्दी चलने में असमर्थ हो रहे हैं। ऐसा होने पर भी जो अपनी अबलाओं की वेणी खोलने को उत्कण्ठित हैं—सुरत-संग्राम में प्रियतमाओं के केशबन्धन ढीले कर देने को उत्सुक हैं। इससे यह सूचित होता है कि उनका मन अबलाओं में ही अनुरक्त है—आसक्त है। अबला का अभिप्राय है—जो विरह से कृश होकर अबला—निर्बल हो गई हैं, अब उनमें विरह का दुःख झेलने की शक्ति नहीं रह गई है। मैं एक-दो पथिकों को ही नहीं, पथिकों के वृन्द को—समुदाय को प्रेरित किया करता हूँ। इससे यह व्यक्त हुआ कि अधिकतर यह काम करने से मुझे इसका पूरा अभ्यास हो गया है। कैसे प्रेरित करता हूँ? यह भी सुनो—मधुर मनोरम ध्वनि करके। अर्थात् चतुर दूत की भाँति मधुर और रोचक बातें बनाकर। इस प्रकार सम्पूर्ण श्लोक का भाव यह हुआ कि 'जिन पर विधाता के विधान से विरह का कष्ट आ पड़ा है तथा जो परस्पर अनुरक्त हैं—ऐसे प्रेमीजनों को परस्पर मिलाकर उन्हें प्रिय समागम का रसास्वादन करा देना—यह मित्र का परम धर्म है; ऐसे धर्म का पालन करने के लिए मैं सदा ही कटिबद्ध रहता हूँ।'

उपर्युक्त श्लोक में जो अर्थ कवि ने निबद्ध किया है, वह सब स्वभावसुन्दर एवं अवसरोपयोगी है। इसके प्रत्येक वाक्य से मेघ का विदग्ध दूतत्व प्रतिपादित होता है। ऐसा ही अर्थ सहृदयों को परम आनन्द देनेवाला हो सकता है। यदि वर्णनीय वस्तु के स्वभाव के अनुकूल अर्थ रखने में ज़रा-सी भी भूल हुई तो अत्यन्त रमणीय काव्य भी सहृदयों को खटकने लगता है। उदाहरण के लिए एक ऐसा श्लोक उद्धृत किया जा रहा है, जिसकी रचना अत्यन्त सुन्दर होने पर भी कवि की तनिक-सी ही असावधानी के कारण अपना महत्त्व खो बैठी है। वनवास के समय राम, लक्ष्मण और सीता जब घर से बाहर होते हैं, उस समय सीता की अवस्था का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

सद्यः पुरीपरिसरेऽपि शिरीषमृद्वी
सीता जवात् त्रिचतुराणि पदानि गत्वा।
गन्तव्यमस्ति कियदित्यसकृद् ब्रुवाणा
रामाश्रुणः कृतवती प्रथमावतारम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'शिरीषपुष्प के समान कोमलाङ्गी सीता घर से निकलकर अभी नगरोद्यान से बाहर भी न हुई थीं, तभी दो-चार क़दम चलकर श्रीरामचन्द्रजी से बार-बार पूछने लगीं—नाथ! आज अभी कितनी दूर और चलना है?—यह सुनकर रामचन्द्रजी की आँखों से पहलेपहल आँसू गिरे।'

कितनी सुन्दर कल्पना है। किन्तु यहाँ सीता के मुँह से जो बार-बार यह प्रश्न कराया गया है कि 'आज अभी कितना चलना है? कितना चलना है?' इससे उनके स्वभाव की गम्भीरता और महत्ता नहीं व्यक्त होती तथा यह प्रश्न बार-बार होने पर करुणरस का पोषक भी नहीं होता; क्योंकि सीता-जैसी आदर्श सती नारी, जो पति के ही सुख में सुख और उन्हीं के दुःख में दुःख का अनुभव करती थीं, जो अपने शारीरिक कष्ट की परवा न करके किसी सहज औचित्य के कारण पति के साथ जाने को तैयार हुई थीं, अपनी स्वाभाविक गम्भीरता नहीं त्याग सकती थीं। यदि अत्यन्त सुकुमारता के कारण उनके हृदय में ऐसा प्रश्न स्फुरित भी हो तो वह सहज संकोच छोड़कर उसे ज़बान पर ला सकती हैं—इस बात की संभावना कोई सहृदय नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त सीता के बार-बार प्रतिक्षण प्रश्न करते रहने के बाद श्रीरामचन्द्रजी के नेत्रों से पहलेपहल आँसू निकले—यह कल्पना भी संगत नहीं जान पड़ती। श्रीरामचन्द्रजी-जैसे करुणामय स्वामी के नेत्रों से सीता के पहले ही प्रश्न पर आँसू बह सकते थे—वे अधीर हो सकते थे। यहाँ 'असकृत्' (बार-बार) पद हटाकर 'अवशम्' (विवश होकर) ऐसा पाठ कर दिया जाय तो श्लोक में जीवन आ जाय। 'गन्तव्यमद्यकियदित्य-वशं ब्रुवाणा।' अर्थात् सुकुमारी सीता जब दो ही चार क़दम चलकर थक गईं तो उनके मुँह से विवश होकर सहसा निकल पड़ा—'नाथ! आज अभी कितनी दूर चलना है?' और इसे ही सुनकर श्रीरामचन्द्रजी के नेत्रों में आँसू आ गये।

उपर्युक्त विवेचन से यह सिद्ध हुआ कि कवि को शब्द-अर्थ के चुनाव में बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए। अब हम ऊपर बताये हुए तीन प्रकार के काव्यों में से मध्यम और अधम की चर्चा छोड़कर उत्तम ध्वनि-काव्य के दो-एक उदाहरण देकर इस निबन्ध को समाप्त करना चाहते हैं—

तुम जानत राधा है छोटी
हमसों सदा दुरावति है यह बात कहै मुख चोटी-पोटी
नँदनन्दन याही के बस हैं बिबस देखि बेंदी छबि चोटी
सूरदास प्रभु वै अति खोटे यह उनहू ते अति ही खोटी

इसका वाच्य-अर्थ थोड़े में इतना ही है कि श्रीकृष्ण बड़े ही खोटे और राधा उनसे भी बढ़कर खोटी हैं। यदि यहाँ कवि का इतना ही अभिप्राय हो तो इसमें कोई चमत्कार नहीं, कोई रस नहीं रह जाता और उसके बिना इसे काव्य नहीं कहा जा सकता। पर बात ऐसी नहीं है, रसिक सूर की रचना में सहृदयों के लिए रस का सागर भरा है। राधा और कृष्ण का परस्पर अत्यन्त अनुराग देख राधा की प्रिय सखी परिहासात्मक व्यङ्ग्य या विनोद के भाव से कहती है—तुम्हारे जानने में राधा अभी बिलकुल छोटी है, निरी बालिका—अबोध। वह रस या अनुराग की बातें क्या जाने? मेरे सामने भी उसका यही भोलापन रहता है, मुझसे भी सदा ही दुराव रखती है, दिल की नहीं बताती—गूढ़ प्रेम की चर्चा नहीं करती। पूछने पर इधर-उधर की चिकनी-चुपड़ी बातें बनाकर बहका देती है। किन्तु वास्तविक बात तो यह है कि इसकी बेंदी की शोभा देखकर सुन्दर वेणी निहारकर नन्दनन्दन इसी के वश में रहते हैं, सिर्फ़ इसी के! और किसी के नहीं। रसिक श्यामसुन्दर बड़े खोटे हैं और यह तो उनसे भी बढ़कर है! देखने में भोलीभाली गँवार, पर जो किसी के बश में नहीं होता, उसे भी वश में रखती है!

अब प्रत्येक वाक्य में व्यङ्ग्य का चमत्कार देखिए—'तुम जानत राधा अति छोटी' इसके द्वारा राधा का सयानापन व्यंजित होता है। शरीर से छोटी होने पर भी वह अक़्ल की बड़ी है। 'हमसों सदा दुरावति' इस वाक्य द्वारा राधा की लज्जाशीलता, विदग्धता और उसके हृदय की गम्भीरता व्यक्त होती है। उच्च कुल की कुमारी कन्या के लिए अपने गूढ़ प्रेम की बात छिपाना स्वाभाविक है, इससे उसके सहज संकोच का पता चलता है। लज्जा स्त्री का भूषण है, अतः राधा में उसका होना उसकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महत्ता के अनुकूल ही है। साथ ही वह बड़ी चतुर, बड़ा विदग्ध है। प्रियतम से अनुराग रखते हुए भी ऊपर से ऐसी भोली बनी रहती है कि क्या मजाल कोई ज़रा भी भाँप सके—इसका किसी के साथ लगाव है—यह किसी से मिलती-जुलती है। साधारण बालिकाओं की तरह वह छिछोरी या चञ्चल नहीं, जो अपने प्रेम का ढोल पीटती फिरे, उसका हृदय गम्भीर है।

यह भी नहीं कि बात चलाने पर या पूछने पर रंज हो जाय या ग़ुस्से में भरकर कुछ बोले ही नहीं। बात का उत्तर देती है, पर चातुरी नहीं छोड़ती—'बात कहै मुख चोटी-पोटी।' मुँह से चिकनी-चुपड़ी इधर-उधर की बातें बनाकर बहका देती है, दिल का पता किसी को नहीं देती। 'नँदनंदन याही के बस हैं' इसके द्वारा राधा से सपत्नी-भाव (सौत की-सी ईर्ष्या) रखनेवाली अन्य कामिनियों के प्रति चोट की गई है—तुम लोग लाख कोशिश करो, श्रीकृष्ण तुम्हारे वश में न होंगे। इसका सौभाग्य तो केवल राधा को ही प्राप्त है। 'बिबस देखि बेंदी छबि चोटी' इस वाक्य से यह व्यञ्जित किया गया है कि तुम लोग गहनों और कपड़ों से लदी हुई तरह-तरह के फ़ैशन बनाये आती हो श्रीकृष्ण को मोह लेने के लिए, अपने वश में कर लेने के लिए। किन्तु वे तुम्हारी तरफ़ आकृष्ट नहीं होते। किन्तु राधा के ललाट की बेंदी और बालों की वेणी ही देखकर वे विवश हो जाते हैं, उस पर लट्टू रहते हैं। इससे राधा में अकृत्रिम लोकोत्तर सौंदर्य का होना सूचित होता है।

'प्रभु वै अति खोटे' यह भी सपत्नियों के प्रति चुटीला व्यङ्ग्य है। जो तुम-जैसी प्रेमिकाओं के वश में न हो, उससे बड़ा खोटा और कौन हो सकता है? और यह राधा, यह तो उनसे भी बढ़कर खोटी निकली। यही तुम्हारे रास्ते में काँटा बिछा रही है। तुम्हारे प्रियतम को प्रेमपाश में बाँधने का दुःसाहस यह करे? इसकी इतनी जुर्रत? सचमुच ही यह बड़ी नटखट है।

यहाँ अभिधामूलक ध्वनि के अन्तर्गत असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य शृंगार की प्रधानता है; अतः यह शृंगाररसात्मक काव्य है। सखी की यह विनोदभरी उक्ति उसके आन्तरिक हर्ष को व्यक्त करती है और इस हर्षरूप संचारीभाव से सखी का अपनी स्वामिनी राधा के प्रति रतिभाव सूचित होता है। इसी प्रकार श्रीकृष्ण को राधा में आसक्त जानकर सपत्नियों के हृदय में ईर्ष्या-मूलक विप्रलम्भ की पुष्टि होती है।

ध्वनिकाव्य की एक दूसरी बानगी देखिए—पति-परित्यक्ता विरहिणी कामायनी अपने आकुल प्राणों को स्वयं ही धैर्य बँधा रही है—

आज सुनो केवल चुप होकर कोयल जो चाहे कह ले
पर न परागों की वैसी है चहल-पहल जो थी पहले;
यह पतझड़ की सूनी डाली और प्रतीक्षा की संध्या
कामायनि! तू हृदय कड़ा कर धीरे-धीरे सब सह ले।

—जयशंकरप्रसाद

प्रतीक्षा में बैठी हुई विरहिणी का हृदय वियोग की ज्वाला में झुलस रहा है। विरह का एक-एक क्षण युग के समान बीत रहा है। ऐसे समय में कोयल रह-रहकर कूक उठती है। वह मादक संगीत—प्रकृति का वह उद्दीपन राग सुनकर वियोगिनी के प्राण सौ-सौ अभिलाषाएँ लिये उन्मत्त हो उठते हैं। उसकी उस समय की असीम वेदना अजीब बेचैनी का चित्रण किन शब्दों में हो सकता है? इस अवर्णनीय दशा का वर्णन कवि कितने मार्मिक ढंग से कर रहा है—'आज सुनो केवल चुप होकर कोयल जो चाहे कह ले।' जो चाहे कह ले, जितना मन चाहे सता ले, अपने को तो केवल चुप होकर सुन लेना है। कितनी दयनीय विवशता है केवल चुप होकर सुन लेने में। और विरहिणियों की भाँति, जैसा कि कुछ कवियों ने चित्रित किया है, वह बदला लेने के लिए 'रसनाविहीन कैहौं कोकिल नकारे को' इत्यादि कहकर कोयल की जीभ उखाड़ने, उसका घोंसला जला देने या अमराइयों को ही कटा देने का विचार मन में नहीं लाती। वह तो चुप होकर सुनेगी और कर ही क्या सकती है? आज परागों की पूर्ववत् चहल-पहल होती तो न-जाने कोयल क्या-क्या करती, किन्तु इस पतझड़ की सूनी डाली में परागों की चहल-पहल कैसी? फिर भी कोयल चैन नहीं लेने देती। 'पतझड़ की सूनी डाली' से उन्मादक वसन्त का आगमन तथा मलय-समीर का शीतल स्पर्श आदि उद्दीपन-सामग्री की सत्ता सूचित होती है। और यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतीक्षा की सन्ध्या कितनी ही अनुभूत बातों का स्मरण कराकर हृदय में अनन्त व्यथा भर देती है। यह मिलन की मधुर वेला आज केवल प्रतीक्षा की सन्ध्या बनकर उत्कण्ठित प्राणों की लालसा को और भी तीव्र किये देती है। 'यह' शब्द से ध्वनित होता है कि ये सब प्रत्यक्ष सन्ताप दे रहे हैं, इनसे कैसे बचूँ? यहाँ उसकी व्यग्रता पराकाष्ठा को पहुँची हुई प्रतीत होती है। किन्तु इस सारी व्यथा को—'कामायनि! तू हृदय कड़ा कर धीरे-धीरे सब सह ले।' धैर्य धारण का कितना करुण प्रयास है! 'हृदय कड़ा कर' इस कथन से उसकी पीड़ा की असह्यता ध्वनित होती है। एकबारगी तो इस वेदना को सह लेना कठिन ही नहीं, असम्भव है, अतः 'धीरे-धीरे सह ले।' अभ्यास से सब कुछ साध्य हो जाता है। 'सब सह ले' इससे आनेवाली व्यथाओं के भी सहने का प्रयास व्यक्त होता है।

इस प्रकार इस वर्णन में भी प्रवास-निमित्तक विप्रलम्भ शृंगाररस की पूर्णतया पुष्टि हुई है। ऐसे ही अन्यान्य रसों की भी अभिव्यंजना होती है। रचना किसी भी रस की क्यों न हो, केवल वाच्यार्थ-प्रधान होने से उसमें चमत्कार का अनुभव नहीं होता। व्यंग्य, रसभाव आदि ही काव्य के जीवन हैं। ध्वनि के अन्य भेद-प्रभेदों का उदाहरण यहाँ विस्तार-भय से नहीं दिया गया। विशेष-जिज्ञासा की पूर्ति के लिए साहित्यशास्त्र का अनुशीलन करना चाहिए।

हमारी इन दो औषधियों को

संसार भर में लाखों लोगों ने व्यवहार में लाकर उत्तम गुणकारी पाया

❀ सुधासिंधु ❀

(जर्मन व भारत-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड)

कफ, खाँसी, दमा, हैज़ा, शूल, संग्रहणी, व आँवलोहू के दस्त आदि पेट की बीमारियों की बिना अनुपान की दवा. दाम ।।) फ़ी शीशी.

❀ बालसुधा ❀

(भारत-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड)

दुबले, पतले व कमज़ोर बच्चों को हृष्टपुष्ट व बलवान् बनानेवाली मीठी दवा.

क़ीमत फ़ी शाशी ।।).

यह दवाइयाँ प्रायः सब दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलती हैं

उनके यहाँ न मिलने पर हमसे मँगाइये

व्यापारी भाव व एजेन्सी के नियम पत्र लिखकर मँगाइये

सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा, यू० पी०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संसार का बेजोड़ व्यक्ति स्व० लाला हरदयाल

सरदार अर्जुनसिंह साहित्याचार्य

उस दिन अमेरिका का यह समाचार पत्रों में बड़े दुःख के साथ पढ़ा गया कि वहाँ प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारी और देशभक्त डाक्टर हरदयाल का विगत ४ मार्च, १९३९ को हृदय की गति रुक जाने से देहान्त हो गया। और इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि लाला हरदयाल की मृत्यु का समाचार अभागे भारतीयों को ठीक एक मास पश्चात् मिला। कितने आश्चर्य की बात है कि सुप्रसिद्ध देशभक्त, महान् त्यागी, अद्वितीय विद्वान् और विश्वविख्यात लाला हरदयाल जैसे व्यक्ति की मृत्यु का समाचार पाताल-देश अमेरिका से परतंत्र भारत में पूरे एक मास में पहुँचा। क्या यह राय्टर के संवाददाता के लिए लज्जा की बात नहीं है ? साधारण गोरे लोगों के मरने की ख़बर देनेवाले रायटर के संवाददाता को यह बात शोभा नहीं देती। संभवतः वह ऐरे-गैरे पचकल्यानी गोरों के मरने-गिरने की ख़बर देने में लाला हरदयाल को भूल गया। ख़ैर, कोई बात नहीं। यह हम भारतीयों की पराधीनता के ही कारण है। यदि कहीं लाला हरदयाल किसी स्वतंत्र देश में जनमे होते तो संसार में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर लेते। आज वे अद्वितीय महापुरुष लाला हरदयाल, जिन्होंने स्वदेश को स्वतन्त्र कराने का बीड़ा उठाया था, इस लोक में नहीं हैं। निरन्तर तीस वर्षों तक निर्वासित जीवन व्यतीत करने के पश्चात् उन्हें स्वदेश लौटने की आज्ञा भारत-सरकार से प्राप्त हो गई थी। परतंत्र भारत अपने तीस वर्षों के छिने नररत्न, कोहनूर की आँखें फाड़े हुए प्रतीक्षा कर रहा था। परन्तु स्वदेश को प्रस्थान करने के पूर्व लालाजी किसी मुख्य कार्यवश अमेरिका चले गये और वहाँ अचानक उनका देहान्त हो गया।

देशभक्त लाला हरदयाल की आकस्मिक और असामयिक मृत्यु से भारतीयों को भारी धक्का लगा है, इसलिए नहीं कि वे भारतीय क्रान्ति के जन्मदाता थे, अपितु इसलिए कि वे संसार के सबसे बड़े दिमाग़ी थे। अर्थात् उनका मस्तिष्क दुनिया में सबसे बड़ा था। भारत का शिक्षित-समुदाय इस बात से भली प्रकार परिचित है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्मरण रहे कि भूमंडल में अद्वितीय माने जानेवाले नर-रत्नों के पैदा करने का सौभाग्य सदैव पराधीन भारत को ही प्राप्त हुआ है। आधुनिक संसार के सबसे बड़े कवि श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर, विज्ञान के स्वर्गीय सर जगदीशचन्द्र बोस, राजनीति के महात्मा गांधी, शारीरिक बल (पहलवान) में गामा, गणित में गणेशप्रसाद और विभिन्न अर्थात् सब विषयों में असाधारण पांडित्य रखनेवाले डाक्टर हरदयाल थे। क्या यह परतन्त्र भारतीयों के लिए कम गर्व की बात है? विदेशियों को भारत की इस महत्ता पर सदैव डाह रहा है। यहाँ तक कि अनेक विदेशी विद्वान् समय-समय पर उपर्युक्त महापुरुषों के प्रति कि वे उनके देशों में क्यों न जनमे, सिहाते रहे हैं। वास्तव में हमारे चरितनायक स्वर्गीय डाक्टर हरदयाल (All sided) सब विषयों के प्रकांड पंडित थे। यही कारण था कि वे संसार के सर्वश्रेष्ठ अध्यापक माने गये। केवल दुःख इस बात का है कि परतन्त्र भारत उनके विचित्र मस्तिष्क से कुछ लाभ न उठा सका। इसका कारण उनका निरन्तर तीस वर्षों तक निर्वासित रहना था, अन्यथा वे स्वदेश में किसी न किसी को अपना उत्तराधिकारी अवश्य बना जाते। इसको भी भारत का अभाग्य ही कहा जा सकता है।

लाला हरदयाल का जन्म भारत की राजधानी दिल्ली नगर में १८८५ में एक सुखी माथुर कायस्थ परिवार में हुआ। आपको बचपन से ही पढ़ने-लिखने का बड़ा चाव था और आपकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। यहाँ तक कि वे अपने विद्यार्थी-जीवन में कभी पढ़ते नहीं पाये गये, केवल स्कूल में ही एक बार पुस्तकों पर दृष्टि डाल लेते थे। आपकी स्मरणशक्ति बड़ी तेज़ थी। उन्हें कोई भी पुस्तक पढ़ते-पढ़ते याद हो जाती थी। इस लेख का लेखक बहुत दिनों तक दिल्ली में निवास करता रहा है। लाला हरदयाल के सह-पाठियों के कथनानुसार, जो अब काफ़ी बुड्ढे हो चुके हैं, लाला हरदयाल अपने विद्यार्थी-जीवन में कभी पाठ याद नहीं करते थे और वे प्रारम्भ से अन्त तक अपनी कक्षा में सदैव प्रथम रहे। यहाँ तक बताया जाता है कि विभिन्न भाषाभाषी २५-२५ व्यक्तियों को वे अपने चारों ओर खड़े करके उनसे विभिन्न विषयक प्रश्न कराते थे और उन सबके प्रश्नों का उत्तर एक साथ दे देते थे। लाला हरदयाल किसी भी पुस्तक को, जो उन्होंने कभी नहीं पढ़ी और न सुनी थी, एक बार पढ़कर उसे अक्षरशः ज़बानी सुना डालते थे। विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में आपने रिकार्ड तोड़कर अधिकारियों को चक्कर में डाल दिया था। एम्० ए० की परीक्षा उन्होंने लाहौर के डी० ए० वी० कालेज से दी। वहाँ आपने अपनी विचित्र स्मरणशक्ति का परिचय दिया। वहाँ आपने एक बार एक खेल किया और एक ही समय में कई कार्य किये। हिसाब का एक सवाल किया, खिलाड़ी को शतरंज की चाल बताई। कुछ लोगों ने बीच में अरबी और लैटिन के वाक्य बोले, जिनको उन्होंने याद रक्खा और बाद में दुहरा दिया। सौ के लगभग नामों की एक सूची सुना दी और नामों का क्रम भी जैसे का तैसा ही रहा। बाद में उन्होंने बताया कि एक घंटे तक तो मन को अत्यधिक एकाग्र रखना पड़ा और बाद में उनकी हालत बड़ी शिथिल हो गई।

ऑक्सफ़ोर्ड में शिक्षा

१९०५ में भारत-सरकार ने आपको स्टेट स्कालरशिप की छात्रवृत्ति देकर उच्चशिक्षा प्राप्त करने के लिए इँगलैण्ड भेजा। ऑक्सफ़ोर्ड-विश्वविद्यालय की परीक्षा में आप सर्वप्रथम रहे और स्वर्णपदक और भारत-मन्त्री लार्ड मौर्ले की ख़ास सनद प्राप्त की। वहाँ पढ़ते-पढ़ते ही आपका परिचय प्रसिद्ध भारतीय क्रान्तिकारी सर्वश्री श्यामजीकृष्ण वर्मा और भाई परमानन्द से हुआ। इनके विचारों से आप बड़े प्रभावित हुए। १९०६ में श्रीविनायक दामोदर सावरकर भी इँगलैण्ड आ गये। इनसे भी लालाजी का परिचय हुआ। श्रीसावरकर श्रीश्यामजीकृष्ण वर्मा के दाहने हाथ थे। लालाजी भी इनके कामों में पूर्ण रूप से सहयोग दिया करते थे। इसी बीच में भारत में बंग-भंग का आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। इसका प्रभाव इण्डिया-हाउस पर भी पड़ा। इँगलैण्ड के राजनीतिज्ञ भारतीय विद्यार्थियों को सन्देह की दृष्टि से देखने लग गये। १९०७ में पंजाबकेसरी लाला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह को भारत से निर्वासित कर दिया गया। लन्दन में इनके निर्वासन का बड़ा प्रभाव पड़ा। वहाँ इन लोगों की निगरानी होने लगी और ये अन्त में लन्दन छोड़ने के लिए तैयार हो गये। श्रीश्यामजीकृष्ण वर्मा १९०७ में फ़्रांस की राजधानी पेरिस चले गये और उनके पश्चात् लाला हरदयाल भी। वहाँ ये लोग भारत के स्वातंत्र्य आन्दोलन को ख़ूब ज़ोर-शोर से चलाने में जुट गये। इन्होंने इंडियन सोशलिस्ट-नामक एक पत्र भी निकाला, जो अभी तक बराबर इँगलैण्ड में ही छपता था। ब्रिटिश-सरकार ने १९०९ में इस पत्र पर मुक़दमा चलाकर इसका प्रकाशन इँगलैण्ड में बन्द कर दिया। इसके पश्चात् यह पत्र पेरिस में ही छपने लगा।

भारत-वापसी

१९०८ में लाला हरदयाल भारत लौट आये। यहाँ आकर आप दिल्ली के सेंट स्टीफ़न्स कालेज में अर्थशास्त्र और इतिहास के अध्यापक नियुक्त हुए। थोड़े ही दिनों में आपकी विद्वत्ता की धाक चारो ओर बैठ गई। आपने उत्तरी भारत और विशेषकर पंजाब में अपने भाषणों और लेखों द्वारा आग फूँक दी। इससे भारत-सरकार घबरा गई। लालाजी असहयोग के कट्टर समर्थक थे। उन्हें अँगरेज़ों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गई। यहाँ तक कि आपने ब्रिटिश-सरकार के टिकट पत्रों पर लगाने और रेल में बैठने का बहिष्कार कर दिया। वायसराय की कौंसिल में इस बात की चर्चा चली कि इनके कार्यों का अन्त कर दिया जावे। निस्संदेह लालाजी के भारत आने से विप्लववाद को बड़ा बल मिला। उत्तर-भारत के विप्लवी कार्यकर्ताओं में इस समय लाला हरदयाल, मास्टर अमीरचन्द (बन्दर-मास्टर) और लाला हनुमंतसहाय प्रमुख समझे जाते थे। भारत-सरकार इनकी कड़ी निगरानी कर रही थी।

१९०८ में लाला हरदयाल फिर भारत से बाहर चले गये। पहले आप पेरिस गये और उसके पश्चात् आफ़्रिका। आफ़्रिका-निवासी आपको बहुत असभ्य जँचे, इस कारण आप वहाँ अधिक न ठहरकर पुनः पेरिस लौट आये। कुछ दिनों बाद आप अमेरिका के फ़्रेंच द्वीप माटिनीक में चले गये। वहाँ पर आपका रहन-सहन बड़ा साधारण रहा। आप अपने हाथों ही भोजन बनाते थे। इस प्रकार उनके भोजन-व्यय में १०-१२ रुपये मासिक ही लगते थे। आप यहाँ पहाड़ों की कन्दराओं में जाकर मनन और अध्ययन करते थे। इस समय आपके सामने महात्मा बुद्ध का आदर्श था।

अमेरिका में

१९०९ में लाला हरदयाल अमेरिका के सैनफ़्रेंसिस-नामक स्थान में चले गये। यहाँ पर भारतीय सिख और हिन्दू मज़दूरों ने आपको दावत दी। आप सैनफ़्रेंसिस-विश्वविद्यालय में हिन्दू-दर्शनशास्त्र के अध्यापक नियुक्त हुए। इसी बीच में आपने हिन्दू-दर्शन पर अनेक भाषण दिये। इससे अमेरिका भर में आपकी योग्यता की धाक बैठ गई। यहाँ से आप स्वीडन के गोथनबर्ग - नामक विद्यालय में इतिहास के अध्यक्ष होकर चले गये। आपने अपना अध्ययन बराबर जारी रक्खा। आपने विज्ञान, इतिहास, नीति और दर्शनशास्त्र आदि में अपूर्व योग्यता हासिल की। स्वीडन में रहते हुए आपने कुमारी आगाद ऐरिवसन के साथ विवाह कर लिया। आपने अमेरिका के अनेक दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों में भारत की राजनीतिक और सामाजिक समस्याओं पर बहुत-से लेख लिखे। आपका 'बोधिसत्व-सिद्धान्त'-नामक संस्कृत का ग्रंथ बड़ा महत्त्वपूर्ण माना जाता है। १९०४ में आपने 'हिस्ट्री आफ़ कल्चर'-नामक पुस्तक की रचना की। यों तो आपने कितनी ही पुस्तकें लिखी हैं; जिन्हें देखने का मुझे सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। आपकी 'बुद्धवाद' (Buddhism)-नामक पुस्तक भी बड़ी महत्त्वपूर्ण है। आपने सबसे बाद में '१२ धर्म और आधुनिक जीवन' पुस्तक लिखी, जो १९३२ में प्रकाशित हुई। अमेरिका में रहते हुए भारत की पराधीनता का शूल आपके हृदय में सदैव चुभता रहता था। इसको सहन न कर आप गत महासमर में ब्रिटेन के शत्रु क़ैसर विलियम के परामर्शदाता बन गये थे। यदि यह भी कह दिया जाय कि जर्मनी का सम्राट् क़ैसर विलियम निरन्तर सात वर्ष तक ग्रेट ब्रिटेन से लाला हरदयाल के ही मस्तिष्क के बलबूते पर टक्कर लेता रहा तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्युक्ति न होगी। यदि परतन्त्र भारत कहीं ब्रिटेन को महायुद्ध में सहायता न देता तो निस्सन्देह जर्मनी विजयी होता। विश्वव्यापी महासमर की समाप्ति के पश्चात् लाला हरदयाल का ध्यान मनुष्यता की सेवा की ओर आकर्षित हुआ और वे मनुष्यमात्र के एकीकरण के लिए भाँति-भाँति के प्रयत्न करने लगे। इसके फलस्वरूप आप कई अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं के सदस्य बने। विदेशों में रहते हुए आप समय-समय पर भारतीय पत्रों के लिए भी कुछ न कुछ लिखते रहते थे। अभी कुछ मास पूर्व देश के प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में आपका 'हिन्दूधर्म और पुरोहितशाही'-शीर्षक लेख प्रकाशित हुआ था। विदेशों में आपकी असाधारण योग्यता की ऐसी धाक जमी कि समस्त राष्ट्रों ने आपको एकस्वर से संसार का सबसे बड़ा मस्तिष्कधारी स्वीकार कर लिया। यहाँ तक सुनने में आया था कि जर्मनी के वैज्ञानिकों ने आपके मस्तिष्क का मूल्य बारह लाख रुपये लगा दिया था। अर्थात् वे लालाजी के विचित्र दिमाग़ को उनकी मृत्यु के पश्चात् खोलकर देखना चाहते थे। जर्मनी के वैज्ञानिक अद्भुत बातों की खोज में अपने जीवन की बलि तक दे डालते हैं। सम्भव है, उपर्युक्त बात किसी सीमा तक सत्य हो।

ब्रिटेन में वापसी

१९२७ में लाला हरदयाल अपने घनिष्ठ मित्र और ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री श्रीरैम्ज़ेमैकडानल्ड के प्रयत्न से इँगलैण्ड आ गये। आपने इस समय राजनीतिक कार्यों में भाग लेना छोड़ दिया था और पूर्ण रूप से अध्ययन में जुट गये। आप लन्दन की यूनिवर्सिटी में प्राचीन संस्कृति, धर्म तथा इतिहास के अध्यक्ष बने। लाला हरदयाल का यह दावा था कि उन्होंने संसार भर का प्रकाशन पढ़ रक्खा है। यों तो देखा जाय तो यह बात सर्वथा असत्य है। पर उनको कोई भी पुस्तक एक बार देखते ही याद हो जाती थी, इस प्रकार उनका दावा सही था। लालाजी के बड़े भाई लाला विशनदयालु माथुर भूतपूर्व एडवोकेट दिल्ली और लालाजी की पुत्री, जो ग्रेजुएट हैं, के दिमाग़ों में भी विचित्रता पाई गई। अब से आठ वर्ष पूर्व तक उनके दिल्ली के चेलपुरी मोहल्ले में रहने का मुझे ध्यान है।

लाला हरदयाल महात्मा गांधी से बड़े चिढ़ते थे। वे इन्हें राजनीति से शून्य मानते थे। लालाजी ने आपने जीवन के शेष दस वर्ष लंदन के विश्वविद्यालय में विज्ञान, इतिहास और नीति की गवेषणा में व्यतीत किये।

आप प्रायः सभी विदेशी भाषाओं के ज्ञाता थे। वे स्वदेश की अनेक प्रचलित भाषाओं के मर्मज्ञ थे। आपको स्वदेश लौटाने के लिए भारतीय व्यवस्थापिका सभा में अनेक बार प्रश्न उठे, परन्तु कुछ सुनाई नहीं हुई। अन्त में आपको कांग्रेसी सरकारों के घोर प्रयत्नों से भारत लौटने की अनुमति मिल गई थी, पर न आ सके। अभागे परतन्त्र भारतीय उस नररत्न के अन्तिम दर्शन न कर सके। विगत ४ मार्च को अमेरिका के फिलाडेल्फिया-नामक स्थान में उनका देहान्त हो गया। मृत्यु के समय आपकी आयु ५४ वर्ष की थी। लालाजी की अर्थी के साथ हर सम्प्रदाय के व्यक्ति मौजूद थे। लालाजी अपने पीछे अपनी विधवा पत्नी और एक विवाहिता पुत्री छोड़ गये हैं। अन्त में मैं बड़े सम्मान और श्रद्धा के साथ उस स्वर्गीय आत्मा के प्रति अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हुआ उनके दुखी परिवार के साथ समवेदना प्रकट करता हूँ।

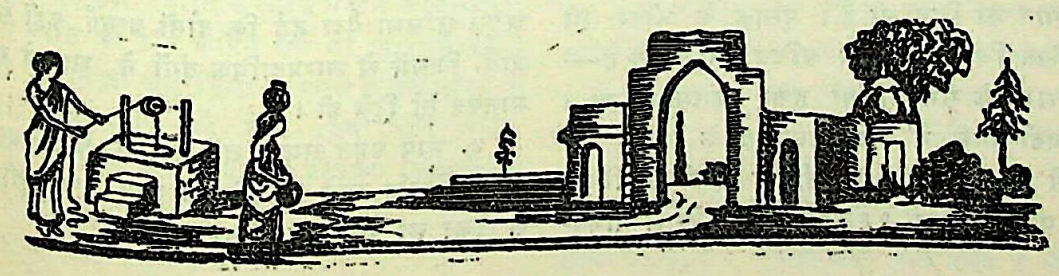

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारत-पारिजातम्—२६ सर्ग, ५३२ पृष्ठ और १८३२ श्लोकों का यह महाकाव्य, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र अयोध्यावासी श्रीभगवताचार्य ने विजयादशमी १९९३ को पूरा किया था। जन्म के कुछ पहले से लेकर अन्त्यज उद्धार तक महात्मा गांधीजी का पवित्र चरित्र इसमें लिखा गया है। पुस्तक के मुखपृष्ठ पर एक वृत्त के रूप में भारतवर्ष का नक़शा और उसी के बीचोबीच सूर्य-मण्डल तथा मण्डल में महात्माजी का बस्टफ़ोटो है। इसके नीचे चरखा, हल, बैल, झोपड़ी, हाथ में लम्बे-लम्बे झाड़ू लिये बच्चे के साथ एक अस्पृश्य दम्पति तथा किसान का चित्र भी है। पुस्तक के भीतर भी निम्नलिखित चित्र पुस्तक को सचित्र बता सकते हैं—एक गोलसभा के समय लिया हुआ महात्माजी का। दूसरा कण्डी ग्राम में नमक-सत्याग्रह के समय, जब महात्माजी गिरफ़्तार हुए थे। तीसरा दाँडी के निकट सागरतट पर ६ एप्रिल, १९३० को लहरानेवाले मानव-सागर का। पुस्तक की भूमिका स्वयं स्वामीजी ने ही लिखी है, जिससे कुछ बातों का ठीक-ठीक पता चलता है।

१. यह कि—स्वामीजी व्याकरण, न्याय, तथा अन्य दर्शन, साहित्य और उर्दू तथा हिन्दी के पर्याप्त विद्वान् हैं। शिक्षक का कार्य भी कर चुके हैं।

२. यह कि—साम्प्रदायिक मामलों में पड़कर आपको अनेकानेक संग्राम जीतने पड़े।

३. सत्याग्रह-आश्रम में जब आपने महात्माजी के दर्शन किये तो उनके मानपत्र और चक्कियों को देखकर अपूर्व लालसा पैदा हुई कि दोनों वस्तुएँ कहीं से मिल जायँ, जिसमें से साम्प्रदायिक दंगों ने आपको बहुत-से मानपत्र तो दिये ही।

४. आप बहुत समय तक चरखा चला करके ही अपना निर्वाह करते रहे, जिससे आपकी आय तीन पैसे से लेकर छः पैसों तक ही रही।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५. इस महाकाव्य के लिखते समय सब तरह के विघ्न उपस्थित हुए। परन्तु स्वामीजी का साथ साहस ने न छोड़ा।

६. कई कारणों वश इस महाकाव्य का समर्पण न तो गांधीजी को ही किया जा सका और न किसी दूसरे सज्जन को ही।

७. कई कारणों वश इस महाकाव्य की सृष्टि संस्कृत में ही करना उनका कर्तव्य था। (मैं यह न समझ सका कि स्वामीजी इसे और किस भाषा में लिखना चाहते थे।)

पुस्तक की दो बातें मुझे बहुत पसन्द हैं। एक, संस्कृत में महात्माजी की जीवनी अवश्य होनी चाहिए। दूसरे यह कि लेखक से जो कुछ बन पड़ा, जो कुछ उनके बूते का था, उन्होंने कुछ बाक़ी न रक्खा।

यों तो मानवमात्र, ख़ैर यह न सही तो संस्कृत-विद्वत्समाज अवश्य स्वामीजी का आभारी है। संस्कृत के विद्यार्थियों को चाहिए, चाहिए तो पूरा ख़ैर न सब हो सके तो इसके चुने-चुने अंश अवश्य कंठाग्र कर लें और भारतवर्ष की अगुणग्राहिता तथा संस्कृत-विद्वानों की भाग्यहीनता का रोना इससे अधिक क्या रोया जाय कि यह ग्रन्थरत्न स्वामीजी को स्वयं अपने पैसों से छपाना पड़ा। विनम्र मैं अधिक विवेचना न कर पाऊँगा।

उपर्युक्त महाकाव्य में कितना महाकाव्यत्व है, किन-किन अंशों में काव्याङ्गों का समुचित समावेश है, रसपरिपाक कैसा है, भावाभिव्यंजन कितना है, यह कोई सुधी विद्वान् स्वयं देख सकता है। हाँ, उसे देखते समय इतना ध्यान अवश्य रखना चाहिए कि महात्माजी-जैसे जनता का भार वहन करनेवाले महापुरुष का बोझ लादने से, राजनीति के रेतीले मैदान में स्वामीजी-जैसे कृश व्यक्ति की टाँगें काँपने लगें तो आश्चर्य नहीं। फिर भी उन्होंने जो कुछ किया है, इससे वे धन्यवादार्ह हैं ही। हाँ, इसका मूल्य साढ़े तीन रुपया और प्राप्ति-स्थान—भारत-पारिजात-कार्यालय, धौलका, अहमदाबाद गुजरात है।

× × ×

प्रतिशोध—प्रस्तुत नाटक श्रीहरिकृष्ण "प्रेमी"जी ने ऐतिहासिक घटनाओं पर लिखा है। भारतवर्ष के इतिहास में ऐसी सत्य घटनाओं की कमी नहीं कि अनन्त काल तक कवि-कोविदों द्वारा प्रत्यह गुथ जाने पर भी वीरों और वीरांगनाओं के यशस्तूप कुछ भी चुकें। 'प्रेमी'जी ने भी अपनी लेखनी को इसी पुण्यसलिला वीरगाथा में स्नान कराकर अपने मानसिक वीर स्नेह को कायिक रूप दे डाला है। वस्तुतः उनका प्रेम-साहस प्रशंसनीय है। संसार में तलवार से कम लेखनी का स्थान कभी नहीं। तलवार शरीररक्षक है, लेखनी आत्मपोषक। किसी एक समय में उपस्थित हुई वीरों की हुंकृतियों को जब लेखनी अपने अंचल में ले लेती है तो भावी समाज सदा अपने पूर्वजों का प्रत्यक्ष-सा दर्शन पा लेता है और पा लेता है अपने कालकवलित दिनों की एक मधुर स्मृति।

हरिकृष्ण प्रेमीजी वास्तव में एक बार सफल हो सके हैं, इसलिए कि, एक बार छत्रसाल, शिवाजी और प्राणनाथ प्रभु के फिर दर्शन करा दें। मैं स्पष्ट रूप से कह सकता हूँ कि उनकी लेखनी ने जन्मभूमि और उसके वीर सेवकों की अवश्य याद दिला दी। हमारे साहित्य को, वर्तमान लोकमत देखते हुए ऐसी पुस्तकों की बड़ी आवश्यकता है। प्रतिशोध नाटक प्रत्येक भारतानुरागी व्यक्ति को पढ़ना चाहिए।

भूमिका में उन्होंने लिखा है, "यह नाटक बुँदेलखंड के अमरवीर छत्रसाल के ऐतिहासिक कथानक पर लिखा गया है। मेरा जन्म स्थान गुना (राज्य ग्वालियर) बुँदेलखंड और मालवा की सीमाओं की संधिस्थल पर हुआ है। बचपन से मैं बुँदेलों की उद्दण्ड वीरता की कहानियाँ सुनता आया हूँ। इस युग में भी अनेक बुँदेले ठाकुरों को तलवार की कमाई खाते हुए मैंने देखा है। दारिद्र्य से तंग आकर नौकरी करने के स्थान पर डाके डालना स्वाभिमानी मन को ज़्यादा भाता है। विपरीत परिस्थितियों के आगे सिर झुका देने की कमज़ोरी अभी तक इस जाति में नहीं आई। इसका कारण इसका प्राचीन उज्ज्वल इतिहास ही है।" इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि जाति-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गत वीरता ने लेखक के मन में भली प्रकार अपना स्थान पाया है।

एक बात उन्होंने और कही है—"नाटक कैसा बन पड़ा है, इस विषय में कुछ कहने के बजाय सुनना अधिक पसन्द करता हूँ।"

मैं कहता हूँ, उनका नाटक पढ़कर विवेचक-बुद्धि लँगड़ी-सी होने लगती है। नाटक में इतिहास और वीरता की इतनी नदियाँ बही हैं कि नाटक के सुकोमल प्रान्तर का कलेवर डूब गया। पुस्तक उपन्यास बन गई। नाटक में अभिव्यंजना का प्राधान्य रहता है। परन्तु प्रतिशोध अपने नाम के समान सारी बातें अकड़-अकड़कर सामने रखता है। यह नाटक नहीं, यह तो लड़ाई है। नाटक के पात्र, अंक, दृश्य, कथोपकथन, गायन, आदि समस्त सामग्री उसे साहित्य के सामान्य स्तर से काफ़ी ऊँचा उठाये रखती है। केवल परिच्छेदों के स्थान पर अंक और दृश्य तथा पृष्ठ के दाहने सिरे पर वक्ता का नाममात्र लिखने से कोई पुस्तक नाटक नहीं बन सकती। नाटक में, चाहे जो रस हो, चाहे जो सन्देश हो, परन्तु हो साथ उदात्तता के। अन्यथा वह नाटक चिरजीवी स्थान नहीं पाता। नाटक की कला नाटक का सन्देश अवगुण्ठित रखती है; क्योंकि इसी में उसका नाट्यत्व निहित है।

आशा है, हरिकृष्णजी भविष्य में नाटकीय कला को ध्यान में रक्खेंगे; क्योंकि हमें उनसे बहुत कुछ पाने की आशा है।

× × ×

ईश्वर-सिद्धि—प्रस्तुत पुस्तक रामगोविन्द त्रिवेदी और गौरीनाथ झा द्वारा लिखी गई है। पृष्ठ-संख्या २६७, काग़ज़ सादा, छपाई अष्ट, परन्तु ग्रन्थ अत्यन्त उपादेय है। भारतीय अध्यात्म-विषयक तत्त्वचर्चा में लेखक-द्वय ने स्तुत्य परिश्रम किया है। "दो शब्द" में इन लोगों ने जैसा, "कुछ दिन हुए हम लोगों ने विचार किया कि यदि इन वादविवादों के आधार पर, अपनी सूझों और तर्कयुक्तियों के साथ ईश्वर-विषयक एक ऐसा ग्रंथ तैयार किया जाय, जिसमें शास्त्रीय प्रमाणों, वैज्ञानिक अन्वेषणों, विभिन्न भाषा के विद्वानों की युक्तियों, उच्चकोटि के तर्कों और महापुरुषों के अनुभवों से ईश्वर-सत्ता की सिद्धि की जाय तो क्या हर्ज़? कुछ दिनों में इस विचार ने उग्रता का रूप धारण कर लिया, जिसका परिणाम यह ग्रन्थ है।" कहा है, उस कथन का विकास ग्रंथ में उत्तरोत्तर बहुत अच्छा बन पड़ा है। जिन विषयों की चर्चा जनता में होती है, उनका प्रचार साधारण जनता से लेकर विद्वत्समाज तक बना रहता है। अध्यात्म के व्यापी प्रसार में कल्याण तथा गीता-प्रेस से प्रकाशित अन्यान्य पुस्तकों ने अधिक मात्रा में परिश्रम किया है। उसी के फलस्वरूप कई स्थानों से भी अध्यात्म-विषयक पुस्तकें निकल चुकी हैं। इस पुस्तक में भारतीय दर्शनमत का सूक्ष्म एवं रोचक निरूपण बहुत सुन्दर है। पाश्चात्य वैज्ञानिकों ने भी जो कुछ ईश्वर नाम की वस्तु पर अनुसन्धान के सूत्र बिछाये हैं, उनसे भी "ईश्वर-

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४१ रागों के आरोह, अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०८ प्रसिद्ध गायनों के स्वर-तालयुक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी सहित, तृतीय आवृत्ति, पृष्ठसंख्या २२२, क़ीमत १॥) रुपया, डाक-ख़र्च ॥), विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइये।

लेखक—कै. गुरुजी भास्कर गणेश भिडे इन्दौरकर

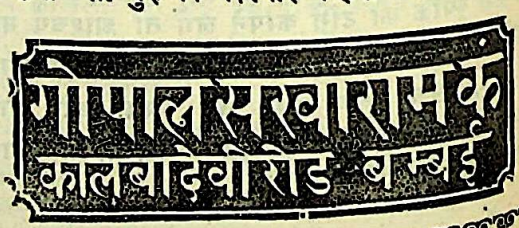

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिद्धि" में सहायता ली गई है। वस्तु-निरूपण के अवसर पर विद्वान् लेखकों ने क़लम पर क़ाब रखकर काम किया है। साधारण रीत्या कोई उद्धरण देकर हम पुस्तक का सौन्दर्य-प्रदर्शन करने में असमर्थ हैं।

आध्यात्मिक ग्रन्थों की तब तक कोई ठीक-ठीक आलोचना नहीं हो सकती, जब तक उनकी परिधि सीमित न हो। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि लेखकों ने किस मत से किस वस्तु की सिद्धि की है। उदाहरणार्थ, मीमांसा कर्म को ईश्वर मानती है, तर्क कर्ता को। योग और सांख्य का संसाध्य ईश्वर इन दोनों से पृथक् है। इसी तरह उत्तर मीमांसा (वेदांत) पूर्व की विरोधिनी है। इस तरह दर्शनों की विभिन्नता का रहस्य जैसे गीता में खोला गया है, उस तरह की पुष्टि तो इस ग्रन्थ में है नहीं, परन्तु "ईश्वर-सिद्धि" के नाम पर किया हुआ परिश्रम बहुत मूल्यवान् है।

आशा है, पाठकगण इस पुस्तक का स्वागत करेंगे। पुस्तक अच्छी है।

इन्द्रदत्त शर्मा 'साहित्यशास्त्री'

क्षणभंगुर जीवन

महाकवि पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय

चौपदे

तब क्यों नहीं आँख खुलती है होश क्यों नहीं आता।
जब कि पलक मारते काल का रंग पलट है जाता।
तब किसलिए अधमता करते नहीं धड़कती छाती।
जब घन की छाया-समान है काया क्षणिक कहाती।१।
तब क्यों लोग दूसरों को दुख देते नहीं अघाते।
जब जीवन के दिवस भोर के तारे हैं बन जाते।
तब किसलिए अहित की धारा हृदयों में है बहती।
जब बहु छिद्रवान घट-जल-सम आयु छीजती रहती।२।
तब क्यों पीड़ित करे उरों को कह नितान्त कटु वाणी।
जब बालू की भीत के सदृश पतनशील है प्राणी।
तब किसलिए किसी का कोई क्यों है गला दबाता।
ओले के समान जब जन-तन है गलता दिखलाता।३।
तब क्यों बार-बार कलछल कर है बलवान कहाता।
जब बुलबुले-समान बात कहते है मनुज बिलाता।
उथल-पुथल किसलिए मचाता है तब कोई पल-पल।
चलदल दलगत सलिल-बिंदु-सम जब जीवन है चंचल।४।

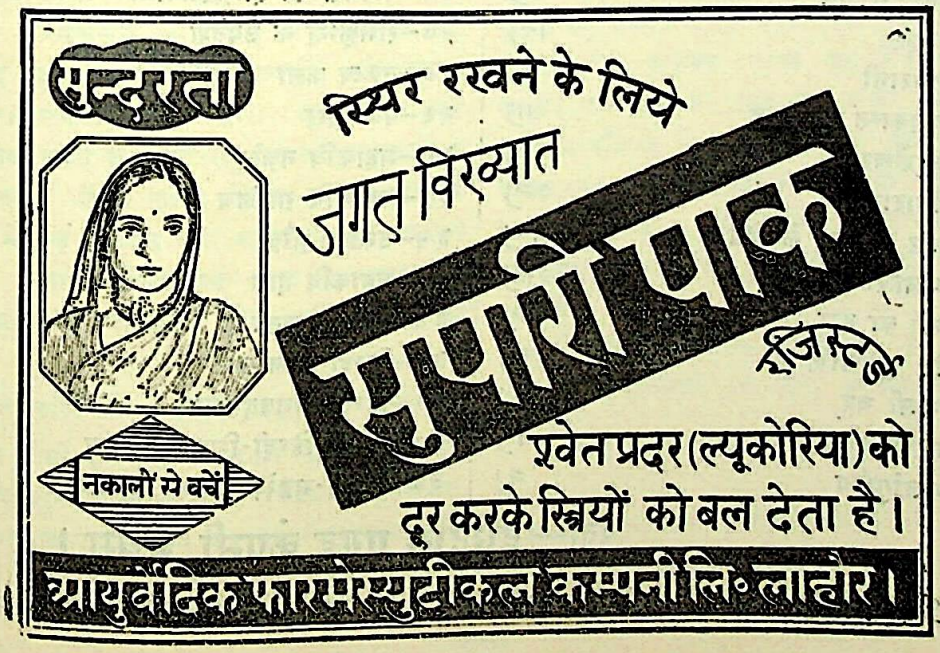

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुष्य मात्र के देखने-पढ़ने योग्य—

नसीहतआमेज़, शिक्षाप्रद, लाजवाब उपन्यास और अन्य पुस्तकें।

यों तो आजकल उपन्यासों की भरमार है, पर उनके पढ़ने से पढ़नेवालों के दिमाग़ ताज़ा नहीं होते, दिल ख़ुश नहीं होते, नतीजा कुछ नहीं निकलता। उनके पढ़ने से स्त्री-पुरुष सिनेमा की तरह कुमार्गगामी बनते हैं, पर हमने इस बात का ख़ूब ध्यान रखा है, इसी से हमारे उपन्यासों की स्त्री-पुरुष सबमें क़द्र है। आप इन्हें ज़रूर ख़रीद लीजिये। ग़रीबों के लिए—

आधी क़ीमत कर दी गई है!

	आधी क़ीमत		आधी क़ीमत
१—नदीना	॥।=)	२०—बालगल्पमाला	।=)
२—अभागिनी	॥=)	२१—कपाल कुंडला	॥=)
३—लवंगलता	॥)	२२—अभिमानिनी	१)
४—रजनी	॥-)॥	२३—बिछुड़ी दुलहिन सचित्र	॥)
५—अंजलि	॥)	२४—सुहागिनी सचित्र	१॥=)
६—विरागनी	॥=)	२५—शान्ति-सुख	।=)
७—द्रौपदी सचित्र	१)	२६—बीरबल की हाज़िरजवाबी	।=)
८—लवकुश	।=)	२७—रामकृष्ण के उपदेश	=)
९—राधारानी	=)	२८—वक्तृत्व कला	=)
१०—कृष्णकान्त की बिल	॥)	२९—पत्रोपहार	)
११—चन्द्रशेखर	१)	३०—महाकवि नज़ीर	॥)
१२—सीताराम	१=)	३१—महाकवि ग़ालिब	)
१३—अदृष्ट (भाग्य के खेल)	१॥=)	३२—उस्ताद ज़ौक़	=)
१४—रूपलहरी	॥)	३३—महाकवि दाग़	॥)
१५—फूलों का हार	॥=)	३४—सूक्तिमुक्तावली	॥।=)
१६—वीर चूड़ामणि	।=)	३५—हिन्दी गुलिस्ताँ	१)
१७—मँझली बहू	=)	३६—हिन्दी भगवद्गीता	१॥)
१८—पाण्डव-वनवास	१)	३७—बंगला-हिन्दी-शिक्षा ३ भाग	१॥=)
१९—युगलांगुरीय	=)	३८—हिन्दी-अङ्गरेज़ी-शिक्षा ५ भाग	४।=)

पता—हरिदास एण्ड कंपनी, मथुरा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाकवि धोयी और उनका पवनदूत

आचार्य श्रीराधारमण शर्मा शास्त्री, साहित्यभूषण, काव्यतीर्थ

अपनी अनुपम विचक्षणता, प्रखर प्रतिभा, एवम् कमनीय कल्पना के द्वारा जिन लोगों ने त्रिभुवनवन्दिता देवी शारदा के वन्दनीय पादारविन्दों की सेवा कर अपने को तात्कालिक जगत् में धन्य और वरेण्य बना लिया, जिनकी कृति-विभा की स्निग्ध-माधुरी ने प्रेक्षकों को आनन्दविभोर कर दिया, और 'कीर्तिर्यस्य स जीवति' के अनुसार जिन लोगों को मृत्यु मार न सकी, उनमें महाकवि धोयी भी एक और अन्यतम हैं। महाकवि धोयी ने अपनी असाधारण विद्वत्ता और कुशल कवित्व द्वारा सम्राट् लक्ष्मणसेन की सभा में राजकवि का सम्मान्य पद प्राप्त किया, 'कवि-चक्रवर्ती' की दुर्लभ उपाधि पाई, अपनी रचना द्वारा सुरभारती की सराहनीय सेवा करते हुए सुधी-समुदाय को समुल्लासित किया, 'पवनदूत' जैसा काव्य लिख संस्कृत-साहित्य के भाण्डार में एक उज्ज्वल और महामूल्य रत्न स्थापित किया, और फिर सर्वशक्तिमान् काल के प्रभाव से संसार की आँखों से ओझल, लोक-स्मृति से दूर हो गये।

'पवनदूत' और उसके प्रणेता महाकवि धोयी

महाकवि धोयी की इस अन्यतम कृति 'पवनदूत' को संसार या सुधी-समूह के समक्ष सर्वप्रथम समुपस्थित करने का श्रेय महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री को है, जिन्होंने सन् १९०५ में इसकी चर्चा अपनी "नोटिसेज* आफ़ संस्कृत मैनस्क्रिप्ट" में की। उक्त चर्चा की ओर सबसे अधिक ध्यान बंगाल के ख्यातनामा विद्वान् श्रीमनमोहन चक्रवर्ती ने दिया, और उन्होंने इसकी एक सर्वथा अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति प्राप्त कर, आवश्यक परिचय के साथ, इसे रायल† एशियाटिक सोसाइटी आफ़ बंगाल के मासिक पत्र में प्रकाशित की। किन्तु उक्त मासिक पत्रिका में प्रकाशित पवनदूत पूर्ण होने पर भी अनेक स्थलों में कुछ ऐसी भूलों से भरा था, जिनका परिशोधन हुए बग़ैर उसकी उपयोगिता पूर्ण न हो पाती। दूसरी बात—मासिक पत्रिका के पृष्ठों तक ही ऐसे अनुपम काव्य को सीमित रहने देना कदापि उचित न था, अतः इन बातों को लक्ष्य कर साहित्य-परिषद् ने एक शुद्ध और सुसंस्कृत संस्करण निकालकर इस काव्य को अमर बना दिया, जिसके लिए परिषद् और उसके पदाधिकारी समस्त साहित्यानुरागियों की अशेष प्रशंसा और धन्यवाद के पात्र हैं।

कविताकामिनीकान्त कालिदास के अमर काव्य 'मेघदूत' के प्रणयन के बाद, उसका अनुकरण कर

* Notices of Sanskrit Mss. Vol. I pp. 221=222.

† Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal, 1905.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिन कवियों ने दूतकाव्य की रचना की, जिनकी संख्या २०-२५ से कभी कम न होगी, उनमें महाकवि धोयी का यह पवनदूत सर्वश्रेष्ठ रहा—यह बात निर्विवाद कही जा सकती है। साथ ही इस दूतकाव्य की दूसरी और सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस काव्य का कथानक अन्य दूतकाव्यों के कथानक की भाँति राधा-कृष्ण की बहुवर्णित पुरानी प्रेमकहानी नहीं, एक ऐतिहासिक सम्राट् लक्ष्मणसेन की प्रेमकहानी है, जिनकी राजसभा में यह रहते थे।

१४वीं शताब्दी में उत्पन्न राजा कुम्भ ने महाकवि जयदेव के गीतगोविन्द की स्वरचित रसिकप्रिया-नामक टीका में, गीतगोविन्द के चौथे श्लोक—'वाचः पल्लवयत्युमापतिधरः०'—की टीका करते हुए लिखा है—"ये छः अर्थात् उमापतिधर, जयदेव, शरण, गोवर्द्धन, श्रुतिधर और धोयी सम्राट् लक्ष्मणसेन की सभा के रत्न थे।" इस तरह जहाँ यह पता लगता है कि महाकवि धोयी सम्राट् लक्ष्मणसेन के सभा-पण्डित थे, वहाँ यह भी मालूम हो जाता है कि उनका अस्तित्व १२वीं शताब्दी में था; क्योंकि लक्ष्मणसेन का शासनकाल ऐतिहासिकों की गवेषणा के अनुसार १२वीं शताब्दी का प्रथम भाग माना गया है। इस बात की पुष्टि इस तरह भी होती है कि महाकवि धोयी के फुटकर श्लोक "सदुक्तिकर्णामृत"-नामक काव्यसंग्रह में मिलते हैं, जिसकी रचना १२०५ ईस्वी में हुई थी। इसी तरह उनके स्फुट श्लोक "सुभाषितमुक्तावली" और "शार्ङ्गधर-पद्धति"-नामक ग्रन्थों में भी उपलब्ध होते हैं, जिनकी रचना क्रमशः १३वीं और १४वीं शताब्दी में हुई थी। धोयी का जन्मस्थान कहाँ था, अथवा किस वंश में उन्होंने जन्म लिया, आज इसका कुछ भी पता नहीं चलता। इस सम्बन्ध में अधिक से अधिक जो कुछ जाना जा सका है, वह—महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री के शब्दों में—यह है कि वे राधेय ब्राह्मण और काश्यप गोत्री थे। पर जन्मस्थान के सम्बन्ध में वे भी कुछ बता नहीं सके। जहाँ तक मुझे पता है, उपर्युक्त "सदुक्तिकर्णामृत"-नामक काव्यसंग्रह का सम्पादन करने के समय मेरे पूज्य श्वशुर महामहोपाध्याय पं० रामावतार शर्मा एम्० ए० साहित्याचार्य ने भी धोयी के जन्मस्थान और वंशादि के सम्बन्ध में काफ़ी छानबीन की थी, पर उन्हें भी इसमें कोई विशेष सफलता नहीं मिली।

महाकवि धोयी ने कितने काव्यों की रचना की—आज इसका भी कुछ ठीक पता नहीं मिलता। उपर्युक्त काव्यसंग्रहों में पाये जानेवाले स्फुट श्लोकों के अलावा आज उस कवि की एक ही कृति हम लोगों को प्राप्त है, और वह है—पवनदूत! यद्यपि यह बात थोड़ी आश्चर्यजनक ज़रूर मालूम होती है कि ऐसे महाकवि ने केवल एक ही काव्य और थोड़े फुटकर श्लोकों की ही रचना क्यों की; फिर भी जब उनके रचित अन्य ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं तो यह सोचने के बजाय, कि उक्त महाकवि ने एक काव्य और थोड़े स्फुट श्लोकों का ही निर्माण किया, यह सोचना अधिक समीचीन मालूम होता है कि उक्त महाकवि के अन्य ग्रन्थ कालकवलित हो गये। ऐसा सोचने का एक और भी ज़बरदस्त कारण है। उन्होंने पवनदूत में एक स्थान पर स्वयम् लिखा है—

'वाक्सन्दर्भाः कतिचिदमृतस्यन्दिनो निर्मिताश्च'
(श्लोक १०४)

अर्थात् मैंने कई सुधास्रावी ग्रंथों का निर्माण किया है। इसलिए यह निश्चित-सा है कि दुर्भाग्यवश उक्त महाकवि के अन्य ग्रन्थ लुप्त हो गये, आज एक 'पवनदूत' ही बच रहा!

पवनदूत निस्सन्देह कविताकामिनीकान्त कालिदास के मेघदूत का अनुकरण है, किन्तु अनुकरण होते हुए भी यह काफ़ी सफल हुआ है, और इसमें अन्य वरेण्य काव्य-गुणों के अलावा मौलिकता भी पूरी मात्रा में है। कई ऐसे स्थलों में, जहाँ धोयी ने कालिदास के भावों या उक्तियों की नक़ल की है, वहाँ भी उन्होंने कुछ नवीनता ला दी है। इस सिलसिले में दो-चार उद्धरणों को दे देना, मैं समझता हूँ, उत्तम होगा, जिससे संस्कृतज्ञ पाठक स्वयम् मेरे कथन की सार्थकता समझ लें—

"श्रोष्यत्यस्मात् परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनाम्
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात् किञ्चिदूनः।"
(उत्तर-मेघदूत ३६)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"त्वत्तः श्रोष्यत्यवहितमनाः सोऽनुरक्ताऽङ्गनानाम्,
जायन्ते हि प्रणयिनि सुधावीचयो वाचिकानि।"
(पवनदूत ९६)

और—

"गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजातैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारैः
नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्।"
(उत्तर-मेघदूत ११)

भ्राम्यन्तीनां तमसि निबिडे वल्लभाकांक्षिणीनाम्,
लाक्षारागाः चरणपतिताः पौरसीमन्तिनीनाम्।
रक्ताशोकस्तवकललितैः बालभानोर्मयूखैः,
नालक्ष्यन्ते रजनिविगमे पौरमार्गेषु यत्र॥
(पवनदूत ४३)

इत्यादि।

अन्य कवियों की तरह निश्चय ही धोयी भी अपने को गतानुगतिकत्व (Conventionalism) से मुक्त नहीं रख सके हैं, और पवनदूत की नायिका कुवलयवती के विरह-ताप-वर्णन के अवसर पर उन्होंने भी उन्हीं चिरवर्णित कमल, केसर, चन्दन आदि का आश्रय लिया है, जिनका आश्रय लिये बग़ैर किसी भी कवि का काम ही नहीं चलता। किन्तु अपनी विचक्षणता से उन्होंने इनका भी प्रयोग कुछ ऐसे ढंग से किया है कि पढ़कर मुग्ध रह जाना पड़ता है। इसलिए पवनदूत के ३१ श्लोकों—यानी ६४वें श्लोक से ९४वें श्लोक तक—में उन्होंने जिन शब्दों में कुवलयवती के विरह-ताप का वर्णन किया है, वह संस्कृत-साहित्य की एक बहुमूल्य वस्तु है।

पवनदूत का कथानक और उसकी ऐतिहासिकता

मलयाचलनिवासिनी गन्धर्वकन्या कुवलयवती किस प्रकार गौड़देश (बंगाल) के राजा लक्ष्मणसेन के प्रति उस समय अनुरक्त हुई, जब वे दिग्विजय करते हुए दक्षिण पहुँचे और उनके चले जाने के बाद किस प्रकार विरह-वह्नि के प्रखर-ज्वाल से सन्तप्त हो उसने वसन्त आने पर वासन्ती पवन को अपना दूत बनाकर राजा के पास भेजा—इसी का सरस और चित्ताकर्षक वर्णन पवनदूत में है। इस तरह पवनदूत से पता चलता है कि दिग्विजय करते हुए राजा लक्ष्मणसेन दक्षिण (Deccan) पहुँचे और वहाँ जाकर दाक्षिणात्य नरेशों को पराजित किया। इसके बाद वे मलाया (Malaya Range) तक जीतते चले गये। अब इस स्थान पर यह प्रश्न स्वभावतः उठता है कि ये बातें कवि-कल्पना-मात्र हैं, या इनमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी है।

सेनवंशीय राजाओं के सम्बन्ध में अब तक प्राप्त शिलालेखों, ताम्रपत्रों या हस्तलिखित प्राचीन पुस्तकों अथवा इतिहास के द्वारा इस दिग्विजय का कोई स्पष्ट पता नहीं मिलता। हाँ, बंगाल के मधयनगर (मध्यनगर ?) में प्राप्त ताम्रपत्र द्वारा इस पर कुछ प्रकाश ज़रूर पड़ता है। उक्त ताम्रपत्र में आये हुए वाक्य (१) "यस्य कौमारकेलिः कलिंगांगनाभिः", और (२) "येनासौ काशिराजः समरभुवि जितः" से स्पष्ट पता मिलता है कि राजा लक्ष्मणसेन ने अपना कौमार्य कलिंगदेशीय स्त्रियों के साथ बिताया था, और (२) उन्होंने युद्ध में काशी के राजा को पराजित किया था। इसी तरह राजा लक्ष्मणसेन के पुत्र विश्वरूपसेन के लिखाये हुए एक ताम्रपत्र में एक श्लोक मिलता है, जिसका उल्लेख Journal and Proceedings of the Asiatic Society of Bengal. के सन् १८९६ के अंक में हुआ था। उक्त श्लोक—"वेलायां दक्षिणाब्धेः मुसलधरगदापाणिसंवासवेद्या-मित्यादि०"—का अर्थ यों है—"जिन्होंने (राजा लक्ष्मणसेन ने) दक्षिण-समुद्र के उस तट पर, जहाँ मुसल और गदा धारण करनेवाली बलराम और विष्णु (कृष्ण) की मूर्तियों से युक्त मन्दिर है; उस पवित्र वाराणसी (काशी) क्षेत्र में, जहाँ असी और वरुणा नदियाँ गंगा से मिलती हैं और विश्वनाथ की मूर्ति है; और त्रिवेणी के उस तीर पर (प्रयाग में) जहाँ ब्रह्मा ने यज्ञ किया था, यज्ञस्तम्भों के साथ ही अपने विजयस्तम्भ (Pillars of Victory) गड़वाये।" इस तरह पवनदूत में वर्णित राजा लक्ष्मणसेन के दिग्विजय की बात कवि-कल्पना-मात्र नहीं, ऐतिहासिक तथा तथ्यपूर्ण मालूम होती है। इन बातों की पुष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवपालदेव द्वारा लिखवाये हुए उस ताम्रपत्र से भी होती है, जो खुदाई में मुंगेर में मिला है।

पवनदूत की भौगोलिकता

पवनदूत का भौगोलिक महत्त्व भी किसी क़दर कम नहीं है। मेघदूत आदि अन्य दूतकाव्यों की तरह पवनदूत द्वारा भी तात्कालिक भौगोलिक स्थिति का अच्छा परिचय मिलता है। वासन्ती वायु को गन्धर्व-कन्या कुवलयवती के आदेश से, उसका संदेश लेकर, मलयपर्वत से लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर (बंगाल) जाना था, अतः मलयपर्वत से सुदूर विजयपुर तक का भौगोलिक वर्णन पवनदूत में हुआ है—निश्चय ही क्रमबद्ध नहीं! कारण, अन्य दूतकाव्यों की तरह पवनदूत-प्रणेता ने भी रास्ते में पड़नेवाले उन्हीं नगरों, पर्वतों, सरों आदि का वर्णन किया है, जो प्रमुख थे, या जिनके वर्णन के मिस वे अपनी प्रतिभा अपने कवित्व का भी प्रदर्शन कर सकते थे।

अच्छा, कुवलयवती का सन्देश लेकर पवनदूत अब मलयपर्वत से रवाना होता है। सबसे पहले उसे पाण्ड्यदेश जाने का आदेश मिलता है, जो मलय से महज़ चार कोस पर था। पाण्ड्यदेश की राजधानी थी—उरगपुर, जो ताम्रपर्णी नदी के ऊपर बसा हुआ था।

"श्रीखण्डाद्रेः परिसरमतिक्रम्य गव्यूतिमात्रम्,
गन्तव्यस्ते किमपि जगतीमण्डनं पाण्ड्यदेशः।
तत्र ख्यातं पुरमुरगमित्याख्यया ताम्रपर्ण्या-
स्तीरे मुग्धक्रमुकतरुभिर्बद्धरेखे भजेथाः॥
(पवन ८)

उक्त ताम्रपर्णी नदी का वर्णन महाकवि कालिदास ने भी अपने रघुवंश (सर्ग ६, ५९—६० श्लोकों) में किया है। वहाँ से पवनदूत को थोड़ा घूमते हुए रामेश्वरम् जाना है, जहाँ उसे भगवान् राम द्वारा स्थापित शिव का पुण्य दर्शन प्राप्त होगा। रामेश्वरम् के बाद नम्बर है काञ्चीपुर का; जो आज काञ्जीवरम् के नाम से विख्यात है। पवनदूत के १३वें श्लोक से पता चलता है कि काञ्चीपुर सुवाला नदी के तट पर अवस्थित था। खेद है, आज उस नदी के अस्तित्व का कोई पता नहीं मिलता; पर भौगोलिक तत्त्ववेत्ताओं का ख़्याल है कि आज जिस नदी का नाम वेगवती है, वही तब सुवाला के नाम से विख्यात थी। सम्भव है, सुवाला की तेजधारा को देख लोगों ने उसका नाम पीछे वेगवती रख दिया हो। काञ्ची के बाद पवनराम को कावेरी नदी के सहारे आगे बढ़ना है। मेघदूत में महाकवि ने मेघ-दूत को बराबर पहाड़ों के सहारे आगे बढ़ने की सम्मति दी है, और पवनदूत में धोयी ने पवनदूत को नदियों के सहारे; यह बात मार्क करने की है। कारण, स्वभावतः पहाड़ों से बादलों का और नदियों से हवा का सम्बन्ध होता है। इसलिए कावेरी के सहारे आगे बढ़ने की बात स्वाभाविक होती हुई भी कुछ खटकती है; क्योंकि काञ्ची से कावेरी दक्षिण ओर है, और रास्ते में भी नहीं है। किन्तु आगेवाले श्लोकों से पता चलता है कि पवनदूत को कावेरी के दक्षिणीतट को पकड़कर इसीलिए जाने को कहा गया है, जिसमें थोड़ा घूमघुमाव होने पर भी वह सुन्दर 'केरल' प्रदेश को भी 'विज़िट' कर सके। वहाँ से पवनदूत को माल्यवान्, जो मुद्गलदेश में है, जाना है और वहाँ से अपनी रमणीयता के लिए प्रसिद्ध पञ्चाप्सर सरोवर (Lake)। यह सरोवर विदर्भ—वर्तमान बरार—(Berar) में था। ये माल्यवान् पर्वत और पञ्चाप्सर सरोवर वही हैं, जिनका ज़िक्र रामवनवास के सिलसिले में रामायण आदि में हुआ है, पर विस्मय की बात है कि रामवनवास से सम्बन्धित दो प्रमुख स्थान—जनस्थान और दण्डकवन—का वर्णन पवनदूत में नहीं हुआ।

पञ्चाप्सर सरोवर की सैर करने के बाद गोदावरी की धारा से स्निग्ध आन्ध्रप्रदेश होते हुए पवनदूत को "कलिङ्गनगरी" जाना है, जो कलिङ्गदेश की राजधानी थी। पवनदूत के २२वें श्लोक से पता चलता है कि यह राजधानी समुद्र से ज़्यादा दूर पर नहीं थी। यह बात कालिदास के रघुवंश के छठे सर्ग के ५३ और ५६वें श्लोक में किये वर्णन से पूरी तरह सिद्ध हो जाती है। वर्तमान गञ्जाम ज़िले का मुखलिंगम् गाँव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही उस समय कलिङ्गनगरी था *। वहाँ से पवनदूत को ययातिनगरी जाना है, जो महानदी के ऊपर बसी थी †। ययातिनगरी में अधिकतर केरलवासी ही रहते थे। इतिहास और पुरातत्त्व के अधिकारी विद्वान् डा० भाण्डारकर ने 'आत्रेय आरण्यक' के आधार पर बतलाया है कि ये केरली पहले मगध के पास ही कहीं—सम्भवतः यू० पी० के मिर्ज़ापुर ज़िले में रहते थे, बाद मालवार में जा बसे। ययातिनगरी में केरलों या केरलियों के होने के सम्बन्ध में डा० एच्० सी० राय चौधरी का ख़याल है कि ये वहाँ निवासी के रूप में नहीं, ययातिराज के (और की) सभासद् के रूप में थे, (और थीं) ‡।

ययातिनगरी से पवनदूत को 'सुह्म' जाना है। उस समय बंगाल जिन भागों (Divisions) में बँटा हुआ था, सुह्म उनमें एक था; और वह दक्षिण-पश्चिम बंगाल का भाग था। दूसरे भाग पुण्ड्र और वंग थे। सुह्म का वर्णन करते हुए पवनदूत-प्रणेता ने शिव, सूर्य और अर्द्धनारीश्वरों के मन्दिरों का भी वर्णन किया है, जिनका पता लगाना आज कठिन है। साथ ही इसी सिलसिले में उन्होंने पवनदूत के ३१वें श्लोक में उस पुल का भी ज़िक्र किया है, जिसे बंगाल के एक राजा वल्लालसेन ने बनवाया था। वहाँ से पवनदूत को त्रिवेणी (हुगली ज़िला) जाना है। यहाँ एक बात उल्लेख योग्य है—पवनदूत के रचयिता ने सप्तग्राम-नामक उस समुद्रतट का कोई ज़िक्र नहीं किया, जो यातायात के लिए, बंगाल से सीलोन जाने के लिए, एक ज़माने तक सुप्रसिद्ध रहा है। सम्भव है, राजा लक्ष्मणसेन के समय तक वह उतना प्रसिद्ध न हो सका हो।

इसी के बाद पवनदूत अपना अन्तिम गन्तव्य स्थान (Goal) लक्ष्मणसेन की राजधानी विजयपुर पहुँचता है। पवनदूत के अनुसार विजयपुर राजधानी और स्कन्धावार (Capital and camp or cantonment) दोनों था। इस विजयपुर को लेकर विद्वानों में काफ़ी वाद-विवाद हुए हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि वर्तमान राजशाही ज़िले का विजयनगर* ही उस समय विजयपुर था, जब कि अन्य विद्वानों का विचार है कि बंगाल का वर्तमान नदिया ज़िला ही उस समय विजयपुर † था। मुसलमानी तवारीख़ "तबक़्क़ाते नासिरी" का भी यही ख़्याल है। इस तरह बहुमत नदिया के ही पक्ष में है।

पवनदूत की कविता

पवनदूत की कविता में प्रसादगुण प्रचुर मात्रा में पाया जाता है, जो किसी भी शृंगाररसात्मक काव्य का उत्कृष्ट गुण माना जा सकता है, और जिसके कारण ही चित्ताकर्षकता आती है। साथ ही वह अलंकारों से अलंकृत भी है, लेकिन गाँव की औरतों की तरह नहीं, जो शरीर के एक-एक इंच में भारी-भरकम गहने डालकर अपने शरीर को सजाने के बजाय बिगाड़ डालती हैं, उसे और भी बदसूरत बना लेती हैं; बल्कि नागरिक रमणियों की तरह, जो दो-चार अप-टू-डेट गहनों से ही अपना सौन्दर्य, अपनी कमनीयता सौगुना और हज़ारगुना बढ़ा लेती हैं। इसीलिए जहाँ कहीं उन्होंने उत्प्रेक्षा, विशेषोक्ति, सन्देह या विभावना का प्रयोग किया है, वहाँ वह पूरी तरह 'फ़िट' हुआ है। मेरा यह निबन्ध, मैं समझता हूँ, अपूर्ण ही माना जायगा, यदि मैं इसे समाप्त करने के पूर्व पवनदूत की कविता के एक-दो उदाहरण न दे दूँ।

---

* इस तथा अन्य अनेक महत्त्वपूर्ण सूचनाओं के लिए लेखक श्री सी० एच० चक्रवर्ती एम्० ए० काव्यतीर्थ का अतिशय ऋणी है।

† Vide Epigraphica Indica, Vol. III, p. 355.

‡ Dr. H. C. Ray Choudhary moreover makes an alternative suggestion according to which the mention of Kerali in Yayatinagar may only be a reference to a settlement of Kerali courtesans there. Asoka p. 41.

* देखिए, गौड़राजमाला, पृष्ठ ७५

† Vide Journal and Proceedings of Asiatic Society of Bengal, 1905.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"मुष्टिग्राह्यं किमपि विधिना कुर्वता मध्यभागम्
मन्ये बाला कुसुमधनुषो निर्मिता कार्मुकाय ।
राजन्नुच्चैः विरहजनितक्षामभावं वहन्ती,
जातासम्प्रत्यहह सुतनुः सा च मौर्वी लतेव ॥"
(पवनदूत ६६.)

[विधाता ने उस रमणी का मध्यभाग इसलिए मुष्टिग्राह्य (मुट्ठी में आ जाने लायक़) बनाया था, जिसमें वह कामदेव के धनुष बनने के काम में आ सके। किन्तु, राजन्! आपके विरह की ज्वाला से सन्तप्त हो अब तो वह इतनी दुर्बल हो गई है कि सिवा कामदेव के धनुष की डोरी बनने के वह और किसी मसरफ़ में आ ही नहीं सकती।]

"कीदृक् कान्तः कथय तरले! वर्तते यः कृतान्तः,
यन्नादित्थं सुभग बहुशः पृष्टयालीजनेन ।
निश्वस्योच्चैः कथमपि तया स्तम्भिताश्रुप्रवाहा,
न्यस्ता दृष्टिः लिखितमदने भित्तिभागे गृहस्य ॥"
(पवन ६७.)

[सखियों ने कुवलयवती से बारम्बार आग्रह कर पूछा—सखि! आख़िर बताओ तो वह कौन है, जो तुम्हारा कान्त (प्रेमी) होने के बजाय तुम्हारा कृतान्त (यमराज) हो रहा है? इस पर उसने एक दीर्घ निश्वास लिया, और आँखों से बहते हुए अश्रु-प्रवाह को क्षण भर के लिए किसी क़दर आँखों में ही रोककर, दीवार पर बने हुए कामदेव के चित्र की ओर देखने लगी।] बलिहारी!

विज्ञ पाठकों का यदि इससे कुछ मनोरंजन हुआ, और अवकाश एवम् श्रीमान् माधुरी-सम्पादक की कृपा रही, तो कई अन्य स्वर्गीय रत्नों की भी प्रभा-माधुरी माधुरी-पाठकों को भेंट करूँगा।

कुछ अद्भुत शक्तिशाली औषधियाँ

किसी औषधि को बेफ़ायदा साबित करने पर १००) इनाम जिन्हें विश्वास न हो ।) का टिकट भेजकर शर्त लिखा लें।

श्वेतकुष्ठ की वनौषधि—महात्मा प्रदत्त इस सफ़ेदी की दवा से तीन दिन में पूरा फ़ायदा। यदि सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों विज्ञापनदाताओं की दवा से निराश हो चुके हों तो इसे लगाकर आराम होवे। मूल्य २)

सन्तति-निग्रह—सन्तान-निग्रह की यह अचूक दवा है। दवा व्यवहार बन्द कर दें गर्भधारण हो जावेगी। प्रतिमास दवा तीन दिन व्यवहार करना पड़ता है। वर्ष भर की दवा मू० २) दूसरी दवा जो जीवन भर के लिये वन्ध्या बनाती है। मू० २) दोनों दवाओं के व्यवहार से स्वास्थ्य में किसी तरह की हानि नहीं होती।

स्तम्भक वटी—एक गोली शाम को खा लें तो इसके अद्भुत चमत्कार को देखें। एक घंटे तक स्तम्भन कर ग़ज़ब ढा देगी। मू० १६ गोली १)

बहरापन-नाशक—यह कर्णरोग की अद्भुत दवा बहरापन, कान की आवाज़, पीब बहना सदा के लिए आरोग्य करता है। बहरा आदमी भी साफ़-साफ़ सुनने लगता है। मू० २)

अर्श-नाशक—इस दवा से अन्दरूनी, बाहरी, ख़ूनी, बादी बवासीर जल्द आराम होता है। ख़ून गिरना, दर्द, जलन, जल्द आराम कर पाख़ाना साफ़ लाती है। मू० खाने की दवा २) लगाने की १)

उपदंश-नाशक—इस औषधि से गुप्त इन्द्रिय, बदन का ज़ख़्म, फुलन, जलन, पीब बहना, ख़ून आना, बदन के चकत्ते धब्बे गठिया को आरामकर नवजीवन प्रदान करता है। खाने की दवा मू० २) लगाने की १)

सुजाक की दवा—यह अधमरे को नया जीवन प्रदान कर नया या पुराना सुज़ाक (गनोरिया) कड़क, जलन, पीब बहना, फुलना, बूँद-बूँद पेशाब आना, दर्द आदि को १ दिन में फ़ायदा करता है। मू० २)

महा सुगन्धित—कायाकल्प तेल के मालिस से ७० वर्ष का बूढ़ा भी नवजवान, बलशाली, वीर्यवान, स्त्रियों को प्यारा हो जाता है। बाँझ स्त्री को गर्भ रहता है। कोढ़ नाशता है। कुरूप बेढंगा मोटा आदमी सुन्दर और सुडौल हो जाता है। १०० वर्ष की आयु हो जाती है। मूल्य ३)

पता—वैद्यराज अखिलकिशोरराम नं० ३८ पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१—भारत और ब्रिटेन का व्यापारिक समझौता

सन् १९३२ में २० अगस्त को ओटावा-समझौता हुआ था। यह भारतवासियों को पसंद नहीं आया था। इसमें ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्यान्य देशों के साथ भी परस्पर वाणिज्य करने की शर्त थी। केवल भारत ही नहीं, अधिकांश ब्रिटिश-उपनिवेशों ने भी इस समझौते के ख़िलाफ़ अपनी राय ज़ाहिर की थी। भारतवासी लोग पक्षपातपूर्ण कर लगाने का सदा से विरोध करते आये हैं। फ़िज़कल-कमीशन ने भी इस समझौते का समर्थन नहीं किया था। लार्ड कर्ज़न के अमल में भारत-सरकार ने भी इसे आवश्यक नहीं समझा था। इस ओटावा-समझौते के मंज़ूर करने के समय भारत की तरफ़ से जो लोग इस प्रस्ताव से सहमत हो आये थे, उनमें से किसी को भी भारत के सर्वसाधारण ने नहीं चुना था, और न वे भारत के जनमत से परिचित ही थे। ख़ैर, उस समझौते की अवधि पूरी हो गई थी, इसी से यह नया समझौता चटपट कर डाला गया है। उस समय सरकार ने कहा था कि जब तक ओटावा-समझौते के ही समान दूसरा भारत के साथ ब्रिटेन का समझौता न हो, तब तक भारत के साथ ओटावा-समझौते के अनुसार काम होता रहेगा। इस बारे में भारत के लोगों की कुछ भी राय नहीं ली गई। कहना न होगा, इसके बाद आज लगभग तीन वर्ष से ब्रिटिश-व्यापारियों के साथ भारतीय व्यापारियों का एकमात्र समझौता करने की चेष्टा चल रही थी। भारत-सरकार के वाणिज्य-सचिव मान्यवर सर ज़फ़रुल्लाख़ाँ और उनके भारतीय सलाहकार कई बार विलायत गये-आये, लंकाशायर के जुलाहों के प्रतिनिधि भी शिमले में आकर कुछ समय तक ठंडी हवा खा गये, किन्तु दोनों पक्षों की पूर्ण सम्मति से इँगलैंड और भारत में वाणिज्य-संधि की कोई शर्त ठीक न हो सकी। मंचेस्टर भारत में अपना कपड़ा अधिक परिमाण में बेचना चाहता है, पर भारतवासी लोग नहीं लेना चाहते। सन् १९३५ से यही द्वन्द्व चला आ रहा था। इसके बाद यह मालूम हुआ कि भारत-सरकार के साथ ब्रिटिश-सरकार की इंडो-ब्रिटिश वाणिज्य-संधि हो गई। इस समझौते की १६वीं शर्त का सारांश दैनिक पत्रों में कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिन पहले प्रकाशित हुआ था। समझौते की सब शर्तें पहले प्रकाशित कर दी जातीं तो देश के सब लोगों को उन पर विचार करने की सुविधा होती। इस समझौते में सूती कपड़ों के संबंध की शर्तें ही मुख्य हैं। ये शर्तें इस प्रकार हैं। भारतवर्ष को इस साल (अगले दिसम्बर के अन्त तक) विलायत से ३५ करोड़ गज़ कपड़ा मँगाकर ख़रीदना ही पड़ेगा। किन्तु सब मिलाकर (कोरा और छपा हुआ) भारतवासियों को ४२ करोड़ गज़ विलायती कपड़ा ख़रीदना ही होगा। ग्रेट ब्रिटेन से मँगाये जानेवाले कोरे कपड़े पर उसकी क़ीमत के हिसाब से फ़ीसदी बीस रुपये के हिसाब से कर लिया जाता था, उसमें पाँच रुपये सैकड़े की और छपे कपड़े पर ढाई रुपये सैकड़े के हिसाब से कमी कर दी गई है। अर्थात् अब कोरे कपड़े पर केवल १५) रु० सैकड़े के हिसाब से सरकार कर लेगी। केवल छपे कपड़े की क़ीमत पर विलायती जुलाहों को १७॥) रुपये की दर से कर देना पड़ेगा। मँगाये जानेवाले विलायती कपड़े की तादाद अगर ३५ करोड़ गज़ तक न हुई तो और भी ढाई रुपया फ़ीसदी कर कम कर दिया जायगा। हाँ, अगर किसी साल विलायती कपड़ा भारत में ५० करोड़ गज़ से अधिक मँगाया गया तो उस पर फिर अधिक कर बिठाया जा सकेगा। लेकिन साथ ही अगर उसका आयात ४२ करोड़ गज़ से कम हो जायगा तो फिर कर कम कर दिया जायगा।

भारत के लिए तो यह शर्त हुई। ग्रेट ब्रिटेन को इस साल भारत की रुई की ५ लाख गाँठें ख़रीदनी होंगी। अगले साल साढ़े पाँच लाख गाँठें वह ख़रीदेगा। फिर हर साल ६ लाख गाँठ भारत की रुई ग्रेट ब्रिटेन मोल लेगा। अगर इस साल और अगले साल ४ लाख गाँठ से कम भारत की रुई लंकाशायर के जुलाहे ख़रीदेंगे तो उनके कपड़े की चुङ्गी बढ़ाई जा सकेगी। लेकिन लंकाशायर के मिलवालों के लिए भविष्य में भारत से और अधिक रुई ख़रीदने की कोई शर्त इस समझौते में नहीं है।

भारतवासियों ने सन् १९३६ में विलायत से ३५ करोड़ गज़, सन् १९३७ में २८ करोड़ ५० लाख गज़ और सन् १९३८ में २७ करोड़ गज़ कपड़ा मँगाया था। उसके बाद इस सन्धि के अनुसार भारतवासियों को अनिवार्य रूप से ४२ करोड़ गज़ विलायती कपड़ा मँगाना ही होगा। अर्थात् अब लगभग दूना विलायती कपड़ा भारत को ख़रीदना होगा। स्वदेशी शिल्प को इस तरह पंगु बनाना घोर अन्याय है, इस बात को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। दूसरी ओर विलायत के मिलवालों ने सन् १९३६ में ५ लाख ८० हज़ार गाँठ और सन् १९३८ में ३ लाख ९४ हज़ार गाँठ रुई ख़रीदी थी। इससे यह स्पष्ट है कि वे अब जो भारत से ४ या ४॥ लाख गाँठ रुई या कपास ख़रीदने को बाध्य किये गये हैं, इससे भारत को विशेष कुछ लाभ नहीं होगा। विलायती जुलाहों को ही इस समझौते से विशेष सुविधा और लाभ होगा। केवल यही नहीं, पहले विलायत से भारत आनेवाले कपड़े पर फ़ीसदी २५) के हिसाब से कर लिया जाता था। सन् १९३६ में फ़ीसदी पाँच रुपये घटाया जा चुका है। अब फिर और पाँच रुपये घटा दिये गये। लेकिन यह कर भी और घटाया जा सकता है। अगर भारत ने इस साल ३५ करोड़ गज़ विलायती कपड़ा न ख़रीदा तो ढाई रुपये सैकड़ा और कम कर दिया जायगा। मतलब यह कि हमें २० करोड़ गज़ कपड़ा अधिक ख़रीदना होगा। पर यह असंभव है। कारण, भारत के कपड़े के व्यापारियों के पास इस समय बहुत-सा विलायती कपड़ा जमा है। सरकार यह बात जानती है। अतएव ढाई रुपये सैकड़ा कर और घटाने का यह गुप्त कौशलमात्र है। ओटावा-कमेटी की रिपोर्ट में सर अब्दुर्रहीम, मि० सीताराम राव और दीवान बहादुर हरविलास शारदा ने अल्पसंख्यक सदस्यों की अलग रिपोर्ट दाख़िल की थी, उसमें भी उन्होंने लिखा था कि पक्षपातमूलक कर (Preferential Tariff) की व्यवस्था भारत के लिए हानिकारक है। लार्ड कर्ज़न के अमल में भारत-सरकार ने और उसके बाद फ़िज़कल-कमीशन ने उसे उठा दिया था। किन्तु इस समय लंकाशायर और मंचेस्टर के मिलवालों के लाभ के लिए भारत-सरकार ने ब्रिटिश-सरकार के इशारे पर यह व्यवस्था फिर की है।

भारत-सरकार के वाणिज्य-सचिव सर मुहम्मद ज़फ़रुल्ला ने व्यवस्थापरिषद् में इस असंगत समझौते के प्रस्ताव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को पास कराने के लिए उपस्थित करते समय जो वक्तृता की थी, उसे किसी ने ठीक नहीं समझा। न्याय से जिसका समर्थन नहीं हो सकता, उसका समर्थन किसे पसन्द आ सकता है? उन्होंने कहा था—महायुद्ध के बाद से भारत में विलायती कपड़े का आयात घटता आ रहा है और भारत की रुई का निर्यात विलायत में बढ़ता जा रहा है। इसलिए लंकाशायर के मिलवालों का कपड़ा अधिक परिमाण में भारत में आना चाहिए और इसके लिए उनकी सहायता करना आवश्यक है। इस कथन की सार्थकता कम से कम कोई भारतीय तो स्वीकार नहीं कर सकता। हमारे देश में जैसी बेकारी की समस्या और अन्य संकट उपस्थित हैं, वैसा और किसी देश में नहीं। पहले उसे दूर करके तब विलायत की बेकारी पर भारत-सरकार या ब्रिटिश-सरकार को ध्यान देना चाहिए था। विलायत के व्यापारी भारत की रुई सस्ती होने के कारण ख़रीदते हैं, कुछ भारत पर एहसान नहीं करते।

वाणिज्य-सचिव के इस प्रस्ताव पर तीन संशोधन व्यवस्था-परिषद् में पेश किये गये थे—

(१) श्रीयुत अखिलचन्द्र दत्त ने प्रस्ताव किया कि व्यवस्था-परिषद् के आगामी शिमला-अधिवेशन तक इस प्रस्ताव को स्थगित कर दिया जाय। इस बीच में इस समझौते के प्रस्ताव के फलस्वरूप कृषि, शिल्प और वाणिज्य करनेवालों पर क्या असर पड़ता है, इसकी जाँच एक कमेटी के द्वारा करानी चाहिए।

(२) मिस्टर ऐकमैन का प्रस्ताव भी इसी प्रकार का था। केवल कमेटी के गठन के संबंध में कुछ भेद था।

(३) सरदार सन्तसिंह ने प्रस्ताव किया कि "विलायती जुलाहे इस साल ६½ लाख गाँठ और उसके बाद तीन वर्ष तक १० लाख गाँठ कपास भारत से लें। इसमें फ़ीसदी लंबे रेशेवाली और छोटे रेशेवाली रुई का परिमाण क्रमशः ३० और ७० अंश होना चाहिए।" मूल प्रस्ताव में इसकी व्यवस्था की जाय।

इस प्रस्ताव पर बड़ी बहस रही। अन्त को मेम्बरों ने ९९ वोटों से वाणिज्य-सचिव के प्रस्ताव को नामंज़ूर कर दिया। मुसलिम-लीग के मेम्बर तटस्थ रहे। योरपियनों और सरकारी मेम्बरों ने प्रस्ताव का समर्थन किया। इनकी संख्या ४७ थी। सुतराम् २८ मार्च को यह समझौते का प्रस्ताव केंद्रीय परिषद् में रद्द कर दिया गया। सरकार को यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जनता के सच्चे प्रतिनिधि इस समझौते के ख़िलाफ़ हैं। केंद्रीय परिषद् में इस प्रस्ताव के पास न होने पर माननीय वायसराय महोदय ने अपनी क्षमता का यद्यपि प्रयोग नहीं किया, तथापि ३० मार्च को राष्ट्रीय परिषद् में अधिकांश वोटों से यह प्रस्ताव पास हो गया है और १ एप्रिल से यह अमल में आ गया है। अगर भारतवासी यह समझें कि भारत में विलायती कपड़े का फिर से अधिक प्रचार करना ही इस प्रस्ताव का असली मंशा है, तो कोई उनको दोष नहीं दे सकता।

× × ×

२—भारत में सरकारी वेतन

हमारे इस ग़रीब देश में सरकारी अमलों का वेतन बहुत अधिक है, यह बात इस देश के लोग बहुत दिनों से कहते आ रहे हैं। इस वेतन और फ़ौजी ख़र्च की बढ़ती के कारण सरकार के बजट में बराबर घाटा बना रहता है और किसी जन-हितकर कार्य के लिए उसके पास पैसा नहीं बचता। इस बात को विदेशी लोग भी स्वीकार करते हैं कि अन्यान्य धनाढ्य देशों के सरकारी अमलों के वेतन की तुलना में ग़रीब भारत के सरकारी अमलों का वेतन अत्यन्त अधिक है। कांग्रेसी मंत्रियों ने इस देश की ग़रीबी का ख़याल करके जो वेतन कम लेने की चाल चलाई है, उसकी सभी प्रशंसा करते हैं और उनका यह स्वार्थत्याग और सरकारी अमलों के लिए अनुकरणीय है। पर हम देखते हैं, अपनी इच्छा से वेतन कम लेने की कौन कहे, सरकारी अमलों की तनख़्वाह पर यू० पी० में जो १०) रुपया सैकड़ा कर लगाने का प्रस्ताव पेश है, उससे बहुवेतनभोगियों में उथलपुथल मच गई है। जिनके स्वार्थ को धक्का लगा है, वे और उनके संगी-साथी आकाश-पाताल एक किये डालते हैं और जी भर-कर कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल को कोस रहे हैं। इस नोट में हम एक विदेशी सज्जन का दृष्टिकोण दिखाने की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चेष्टा करते हैं। हाल में ही लियोनार्ड एम्० स्किफ़ नाम के एक सज्जन ने भारत की वर्तमान अवस्था के सम्बन्ध में एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में उन्होंने भारतीय सरकारी अमलों के वेतन के साथ अन्य बहुत-से धनी देशों के सरकारी अमलों के वेतन की तुलना करके यह दिखलाया है कि भारत में अत्यन्त अधिक वेतन सरकारी अमलों को दिया जाता है। मिस्टर लियोनार्ड स्किफ़ ने जापान के प्रधान मन्त्री के वेतन के साथ बंगाल के प्रधान मंत्री के वेतन की तुलना की है। जापान-साम्राज्य में जितने लोग रहते हैं, बंगाल में उसके आधे भी लोग नहीं रहते। जापानी लोग भी बंगालियों की अपेक्षा धनी हैं। तथापि जापान के प्रधान मंत्री का वेतन ६२२) मासिक है और बंगाल के प्रधान मंत्री का ३०००) मासिक! अन्य जापानी मंत्री ४४०) माहवार वेतन पाते हैं और बंगाल के अन्य मंत्री २५००) रु० मासिक वेतन फटकारते हैं! जापान के सेक्रेटरी ३७५) मासिक पाते हैं। भारत के नवनिर्मित उड़ीसा-प्रान्त के चीफ़ सेक्रेटरी का वेतन २१५०) मासिक है और बंगाल के चीफ़ सेक्रेटरी का मासिक वेतन ५३३३) है। कोरिया का प्रधान शासक ४४०) मासिक वेतन पाता है और पंजाब के गवर्नर ८३३३) मासिक पाते हैं। जापान का सरकारी कर्मचारी ३३४) मासिक ले सकता है, लेकिन बम्बई का ज़िला मैजिस्ट्रेट ११५०) से कम नहीं ले सकता। इसी ग्रन्थकार ने लिखा है कि जापान के साम्राज्यवाद के बारे में चाहे जो कहा जा सकता है, लेकिन उन्होंने यह शिकायत कभी नहीं सुनी कि अन्य देशों की अपेक्षा जापान में नीचता या घूस लेने की चाल अधिक है। इसके बाद स्किफ़ महोदय ने योरप के देशों के साथ भारत के अमलों के वेतन की तुलना करते हुए यह दिखलाया है कि भारत के सभी प्रदेशों में अमलों को और देशों की अपेक्षा कहीं अधिक वेतन दिया जाता है। सुनिए, पोलैंड हमारे बिहार से कहीं अधिक धनी देश है। वहाँ की लोकसंख्या भी बिहार से कहीं कम है। फिर भी पोलैंड का प्रेसीडेंट १५६०) रु० मासिक पाता है, और बिहार के गवर्नर का वेतन ८३३३) रु० है। भारत के ज़िला मैजिस्ट्रेट भी पोलैंड के प्रेसीडेंट की अपेक्षा अधिक वेतन पा सकते हैं। पोलैंड में १२ से अधिक सरकारी कर्मचारी १०००) मासिक से अधिक वेतन नहीं पा सकते; लेकिन बिहार में हज़ार रुपये से अधिक तनख़्वाह पानेवाले अमले १५६ हैं। इसके बाद मि० लियोनार्ड ने अमेरिका के सरकारी अमलों की तनख़्वाह के साथ भारतीय सरकारी अमलों के वेतन की तुलना की है। अमेरिका महादेश भारत की अपेक्षा—बल्कि सारे संसार के देशों की अपेक्षा—कहीं अधिक धनाढ्य देश है। वहाँ के लोगों की औसत आमदनी भारत के लोगों की आमदनी से कम-से-कम बाईसगुनी है। अगर देश के अमलों का वेतन उस देश की आमदनी के अनुपात से लगाया जाय तो भारत के सरकारी अमलों का वेतन अमेरिका के सरकारी अमलों के वेतन का बाईसवाँ हिस्सा होना चाहिए। लेकिन होता ठीक इसका उलटा है। अमेरिका का एक होशियार कारीगर महीने में ३००) से ४५०) रुपये तक तनख़्वाह ले सकता है। यहाँ का होशियार से होशियार कारीगर हद से हद १००) रुपये पा सकता है। भारत की आबादी अमेरिका की आबादी से कहीं अधिक है और आमदनी बहुत कम। अमेरिकन-सरकार का राजस्व भारत-सरकार के राजस्व से दसगुना है। ऐसी अवस्था में भारत के वायसराय के वेतन के साथ अमेरिका के प्रेसीडेंट के वेतन की तुलना कुछ असंगत न होगी। अमेरिका का प्रेसीडेंट महीने में १७ हज़ार ७२ रु० पाता है; किन्तु हमारे मान्यवर बड़े लाट साहब का मासिक वेतन २१ हज़ार ४१२ रुपये है। अमेरिका की मन्त्री-सभा का प्रत्येक सदस्य ३४१२) रु० मासिक वेतन पाता है; पर बड़े लाट की मन्त्री-सभा का प्रत्येक सदस्य मासिक ६६६७) रु० पाता है। अमेरिका के न्यूयार्क स्टेट का शासक ५६६७) मासिक पाता है; पर युक्तप्रान्त के गवर्नर महोदय का वेतन ६०००) मासिक है। अमेरिकास्थित दक्षिण-डाकोटा का शासक ६६२) रु० मासिक पाता है; दिल्ली के कमिश्नर साहब ३०००) माहवार पाते हैं। अमेरिका के प्रधान जज की दक्षिणा मासिक ४५५०) रु० है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और बंगाल के चीफ़ जज का वेतन ६०००) रुपये! इसके बाद इन ग्रन्थकार महाशय ने विलायती अमलों की तनख़्वाह के साथ भारतीय अमलों के वेतन की तुलना की है। भारत की जन-संख्या के अनुपात से विलायत की जन-संख्या फ़ीसदी १२ है। भारत के राजस्व की अपेक्षा विलायत की सरकार का राजस्व ३१७ गुना अधिक है। किन्तु विलायत के प्रधान मन्त्री भारत के बड़े लाट के वेतन का लगभग आधा वेतन पाते हैं। भारतीय राजस्व का हज़ार में एक हिस्सा बड़े लाट की तनख़्वाह है, और विलायत के राजस्व का एक लाख में एक हिस्सा विलायत के प्रधान मन्त्री लेते हैं। विलायत के सिविलियनों का अधिक से अधिक वेतन ३३३३) रु० है। सो भी इतना वेतन बहुत कम ही सिविलियन पाते हैं। विलायत के अधिकांश सिविलियन ७७७) से १०००) रु० तक वेतन पाकर ही सन्तुष्ट हैं। विलायत के मन्त्री-सभा के कोई-कोई सदस्य ५५५५) रु० पाते हैं। अब हमारे पाठक ही भारत के राज-कर्मचारियों की भारी तनख़्वाह के साथ इसका मुक़ाबला करें और सोचें कि युक्तप्रान्त के राजकर्मचारियों की तनख़्वाह पर १०) रु० सैकड़ा कर लगाकर हमारे माननीय प्रधान मन्त्री क्या कोई अनुचित काम कर रहे हैं? या इसके लिए कांग्रेसी कैबिनेट को कोसना कहाँ तक उचित है?

× × ×

३—तलाक़-बिल

व्यवस्थापरिषद् में हिन्दूजाति में तलाक़ के चलन के लिए एक बिल पेश किया गया है। इस क़ानून की कोई आवश्यकता नहीं देख पड़ती। हिन्दू-समाज में विवाह एक धर्म-संस्कार माना जाता है। जो लोग नई रोशनी के फेर में नहीं पड़े हैं, वे भी विवाह-संस्कार की इज़्ज़त करते हैं। तात्पर्य यह कि शिक्षित-सम्प्रदाय में कुछ लोग विवाह को अच्छा समझते हैं और कुछ लोग केवल गतानुगतिक न्याय से उसका बन्धन स्वीकार करते हैं। हाँ, अँगरेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय 'साहब' लोग विवाह को धर्म-संस्कार मानने के लिए तैयार नहीं हैं। किन्तु ऐसे नक़ली साहबों की संख्या कितनी है? जिस सम्प्रदाय के पुरुषों में फ़ीसदी १२ या अधिक से अधिक १५ केवल लिखना-पढ़ना जानते हैं, उस सम्प्रदाय में यथार्थ शिक्षितों की संख्या उँगलियों पर गिनी जा सकती है, इसमें सन्देह नहीं। केवल लिख-पढ़ लेनेवाले अल्पशिक्षित या अर्धशिक्षित पुरुष ऐसे महत्त्व के विषय पर स्वयं कुछ विचार करके कोई सिद्धान्त स्थिर करने की क्षमता नहीं रख सकते। फिर अभी यह भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि इन थोड़े-से शिक्षितों का बहुमत विवाह-विच्छेद के अनुकूल है या प्रतिकूल! हमारी धारणा यह है कि जाँच करने से अधिकांश 'शिक्षित' हिन्दू भी तलाक़ के प्रतिकूल ही निकलेंगे। इसका कारण यह है कि पुरुष के लिए तलाक़ की कोई ज़रूरत नहीं है। कारण, हिन्दू-समाज की व्यवस्था के अनुसार मर्द एक से अधिक विवाह कर सकता है। केवल स्त्री एक पुरुष के रहते दूसरा विवाह नहीं कर सकती। असुविधा केवल स्त्री को है, पुरुष को नहीं। स्त्री का पुनर्विवाह, सो भी एक पति के जीवित रहते समाज और शास्त्र, दोनों ने वर्जित ठहराया है। यह सच है कि इसी कारण कोई-कोई दुष्ट स्वामी अपनी पत्नी पर अत्याचार करते पाये जाते हैं। स्त्री पर अत्याचार करने के और भी कारण हो सकते हैं। पर ऐसे अत्याचारी पतियों की संख्या समाज में बहुत कम है।

अब प्रश्न यह है कि तलाक़ का चलन हो जाने पर इन सब उत्पीड़ित—सताई जानेवाली नारियों को सुविधा होगी या नहीं? हमारा विश्वास है कि तलाक़ से उन्हें सुविधा न होगी। इस देश के लोगों की मनोवृत्ति ऐसी है और यहाँ काँरी लड़कियाँ जितनी सुलभ हैं, उससे यह निश्चित है तलाक़ के बाद उस स्त्री से कोई ब्याह करना नहीं चाहेगा। हाँ, जिन स्त्रियों के पास यथेष्ट धन होगा या जो कमसिन और सुन्दरी होंगी, उनसे लोग ब्याह करने को राज़ी भी हो सकते हैं। पर ऐसी स्त्रियाँ कितनी होंगी? और जिनके पास रूप या धन, दोनों में से कुछ भी नहीं है, जो स्वयं गलग्रह होंगी, उनकी गति क्या होगी? साधारणतः सुन्दरी या पिता के धन को अधिकारिणी स्त्रियों के पति उनके साथ बुरा व्यवहार या उन पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अत्याचार नहीं करते। ग़रीब या रूपहीना नारियाँ विवाह-विच्छेद की शरण लेने के बाद हिन्दू-समाज में सम्मान नहीं पावेंगी। इस दारुण जीवन-संग्राम और बेकारी के ज़माने में भाइयों के यहाँ भी उनकी क़दर या निर्वाह न होगा। अगर लोकलाज के कारण भाइयों ने उन्हें रख भी लिया तो वहाँ भी उन्हें विशेष लांछना और अनादर के साथ गुज़र करना पड़ेगा। सुधार की सनक रखनेवाले इस अत्यन्त अनावश्यक आईन के लिए चेष्टा करके लाभ के बदले हानि ही पहुँचावेंगे।

इस बिल की पहली व्यवस्था यह है कि पुरुषत्व नष्ट होने पर विवाह-विच्छेद हो सकेगा। पुरुषत्व का लोप एक ऐसी व्याधि है, जिसको चिकित्सा से अच्छा किया जा सकता है। प्रश्न यह है कि यह रोग चिकित्सा से असाध्य होने पर स्त्री अदालत को दौड़ेगी या इसकी शुरुआत के साथ ही विवाह-विच्छेद चाहेगी? इस बिल के विधाता डा० देशमुख महाशय ने पाण्डुलिपि में इसे स्पष्ट नहीं किया। इस व्यवस्था से क्या धर्मशास्त्रानुमोदित विवाह का आदर्श नष्ट न होगा? इस व्यवस्था से हिन्दुओं का विवाह धर्ममूलक न रहकर काममूलक हो जायगा।

दूसरी व्यवस्था यह है कि स्वामी अगर दूसरा धर्म ग्रहण कर ले तो तलाक़ हो सकेगी। इस देश में प्रायः स्वामी के धर्म बदलने पर स्त्री भी उसी के साथ धर्म बदल डालती है। यहाँ पर विचारणीय यही है कि अगर पति के साथ धर्म को न बदले तो क्या हो? ऐसी अवस्था में स्त्री के लिए तो विवाह-विच्छेद करने का प्रयोजन न होगा। वह अलग रहकर अपने धर्म का पालन करेगी; हाँ, पुनर्विवाह नहीं कर सकेगी।

तीसरी व्यवस्था यह है कि कोई पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री को ग्रहण करेगा तो यह भी उसकी पहली स्त्री के लिए तलाक़ की अर्ज़ी देने का कारण होगा। हिन्दू-शास्त्र में कुछ दशाओं में ऐसा विधान है कि पुरुष एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर सकता है। हिन्दूशास्त्रों ने ही ऐसा विधान नहीं दिया है, महायुद्ध के बाद जर्मनी में प्रत्यक्ष न सही, परोक्ष भाव से पुरुष के लिए कई स्त्रियाँ रखने का अनुमोदन किया गया था।

चौथी व्यवस्था यह है कि स्वामी अगर तीन साल तक बराबर अनुपस्थित रहे तो स्त्री विवाह-विच्छेद की दरख़्वास्त दे सकती है। अर्थात् कोई युवक अगर ब्याह करके विलायत पढ़ने चला जाय तो स्त्री चाहेगी तो चट तलाक़ की दरख़्वास्त दाख़िल कर देगी। अथवा अगर कोई पुरुष राजनीतिक कारण से तीन साल की सज़ा पावे तो उसकी भी पत्नी विवाह-विच्छेद कर बैठेगी। यही इस बिल का सार है। मज़ा यह है कि यह क़ानून केवल हिन्दुओं पर ही लागू होगा, मुसलमानों पर नहीं। क़ानून में भी सांप्रदायिकता चलेगी? इस बिल का विरोध प्रत्येक हिन्दू को करना चाहिए। हमारे त्रिकालदर्शी शास्त्रकार महर्षियों ने ऐसी सुन्दर व्यवस्था की है कि हमारा समाज सुनियंत्रित होने से ही चिरस्वाधीन रहा है और रह सकता है। शास्त्र ही हिन्दू-समाज का नियन्त्रण कर सकता है; व्यवस्था-परिषद् नहीं। आशा है, अन्त तक यह बिल रद्द होकर रद्दी की टोकरी में ही स्थान पावेगा।

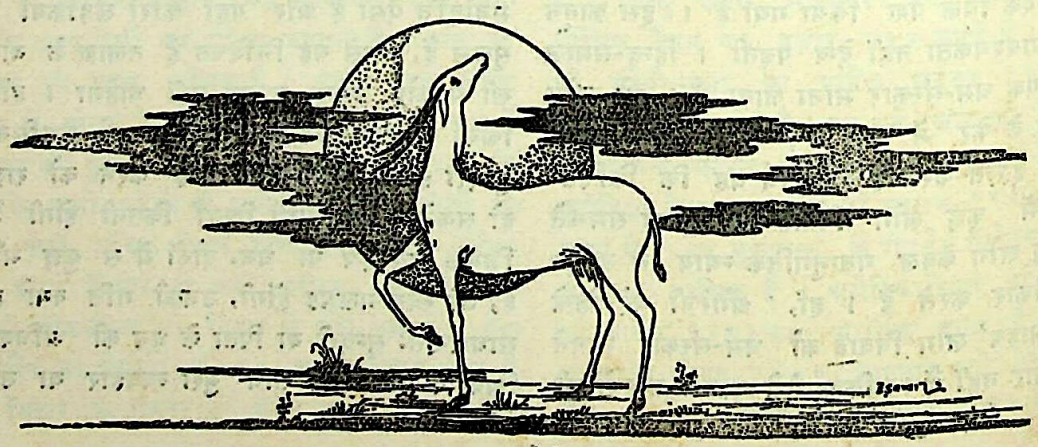

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेख-सूची

विषय	पृष्ठ
१. विद्या की महिमा (कविता)—[लेखक, रूपनारायण पाण्डेय	५१६
२. अधिकार-वंचित हिन्दुओं का भविष्य—[लेखक, श्रीरामनारायण 'यादवेंदु' बी० ए०, एल्-एल्० बी०	५२०
३. "प्रसादजी" की काव्य-धारा—[लेखक, श्रीइलाचन्द्र जोशी	५३२
४. सौभाग्य का तारा (कहानी)—[लेखक, श्रीआरसीप्रसादसिंह	५४३
५. सिनेमा और देश का भविष्य—[लेखक, श्रीभोलेश्वर शुक्ल विद्यार्थी	५५३
६. 'साकेत' में 'ऐनेक्रॉनिज़्म'—[लेखक, श्रीकन्हैयालाल सहल बी० ए० ...	५५८
७. घनश्याम (कविता)—[लेखक, श्रीयुत आरसीप्रसादसिंह	५६१
८. शिष्टाचार और वेश-भूषा—[लेखक, श्रीनरसिंहराम शुक्ल	५६४
९. तुम्हारा प्रेम (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत दयानन्द गुप्त बी० ए०, एल्-एल्० बी०	५६६
१०. मैथिल ग्राम-साहित्य में करुणरस—[लेखक, श्री० रामइक़बालसिंह 'राकेश'	५७६
११. जादूगर नर्तकी (उपन्यास)—[लेखक, श्रीसाधुशरण	५८४
१२. ओ री प्रतिगामिनी (कविता)—[लेखक, श्रीमंगलामोहन	५९२
१३. इस्लाम का ख़ूबियाँ--[लेखक, श्रीकृपाशंकर निगम	५९३
१४. छाया—अछूत-कन्या—[लेखक, श्रीयुत 'वहीं'	५९७
१५. आचार्य-श्रद्धांजलि (कविता)—[लेखक, श्रीवेणीराम त्रिपाठी "श्रीमाली" ...	६०३
१६. शक्कर का व्यवसाय और टैरिफ़ बोर्ड की रिपोर्ट—[लेखक, श्रीयुत प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द मलहोत्रा	६०४
१७. समस्या का समाधान—[लेखक, श्री लक्ष्मीनाथ श्रीवास्तव 'प्रशान्त' बी० ए०	६०७
१८. भक्तिभाव—[लेखक, श्रीचन्द्रबली पाण्डेय एम्० ए०	६१०
१९. व्यायाम—[लेखक, कविराज श्रीभि० गो० कौशिक वैद्य आयुर्वेदाचार्य ...	६१४

गारंटी के साथ अच्छा करते हैं—सूज़ाक, गर्मी व नामर्दी

हज़ारों लाभ उठा चुके; सैकड़ों डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों से निराश हुए रोगी दूर-दूर से यहाँ आकर पूर्ण फ़ायदा उठाते हैं। जो यहाँ नहीं आ सकते वे घर बैठे मेरी औषधि मँगा कर इन रोगों को जड़ से नष्ट करें। मूल्य औषधि सूज़ाक नया का २॥) पुराना ५) गर्मी नई २॥) पुरानी ५) नामर्दी थोड़े दिन की हो तो ५) अधिक दिन की हो तो ९) डाकख़र्च ॥-)

शुक्रा टानिक पिल्स—धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, नामर्दी और बीसों प्रमेहों को नाश कर स्तम्भनशक्ति को बढ़ाकर नई जवानी पैदा करती है। ४० गोलियों का मू० २)

लक्ष्मीविलास गोलियाँ—इससे इन्द्रियशिथिलता, थोड़ी उत्तेजना से धातु का गिरना, धातु का पतलापन, दिशा-पेशाब के साथ वीर्य का निकल जाना, दिमाग़ कमज़ोर, सिरदर्द कमर-दर्द, स्वप्नदोषादि बीसों प्रमेहों को आराम कर वृद्ध मनुष्य भी रक्त, मांस, धातु से परिपूर्ण; हृष्ट-पुष्ट; अपार वीर्यवाला तथा महाकामी होता है। स्तम्भनशक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है। मूल्य ६० गोलियों का ५), पोस्टख़र्च ॥-)

नपुंसकताहरण तिला कस्तूरीमिश्रित—यह कस्तूरी नामर्दी, ढीलापन, बाँकपन, को नाश कर असली ताक़त पैदा करता है, मूल्य ५) फ़ी शीशी डा० ख़र्च ।≡)

पता—पं० अयोध्याप्रसाद वैद्यशास्त्री, शुक्ल आयुर्वेदिक औषधालय,
निशातगंज, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
२०. 'मिस्टर ४२०' (एकांकी नाटक)—[लेखक, श्रीकुँअर मोहनसिंह सेंगर	६१६
२१. भारत में इतिहास का निर्माण और उसका अध्ययन—[लेखक, श्रीयुत हरिमोहनलाल वर्मा बी० ए० ...	६२५
२२. समाधि (कहानी)—[लेखक, श्रीशिलीमुख एम्० ए०	६२८
२३. अलबेरूनिया—[पं० रामअनन्त पाण्डेय	६३५
२४. सम्पादक के नाम एक पत्र—[लेखक, कालिदास कपूर एम्० ए०, एल्-टी०	६४०
२५. हमारा दृष्टिकोण	६४१

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. भगवान् कृष्ण

२. पुजारिन

सादे चित्र अनेक

बवासीर, काँच, भगन्दर

कष्टरहित, हानिरहित, स्थाई चिकित्सा

८ वर्ष में भारतवर्ष के सब स्थानों से सहस्रों रोगी ठीक हो चुके हैं, काँच तो ४८ घन्टे बाद निकलनी बन्द हो जाती है। केवल देहली हस्पताल में मार्च १९३९ तक ८३४ रोगी चिकित्सा कराकर लाभ उठा चुके हैं। आगरा और बनारस में भी स्थाई ब्रांच हस्पताल स्थापित कर दिये गये हैं। निवम मुफ़्त।

पता—

डा० आर० आर० गुप्ता एन्ड सन्स,

नई सड़क, देहली

बवासीर का काल

क्या इस दवा के रहते भी आप ख़ूनी या बादी बवासीर से कष्ट उठावे ही रहेंगे ? कैसा ही पुराना हो २१ दिन में जड़ से आराम न हो तो दूना दाम वापस। मू० २) रु०।

स्वप्नदोष और सूजाक

सिर्फ़ १५ दिन इस अमोघ वनौषधि के सेवन करने से सदा के लिये दूर हो जाता है। मू० २) रु०।

महाबीर औषधालय,

नं० ५ दरभंगा।

४ घड़ियाँ १८९७ बढ़िया चीज़ें १।॥) रुपये में

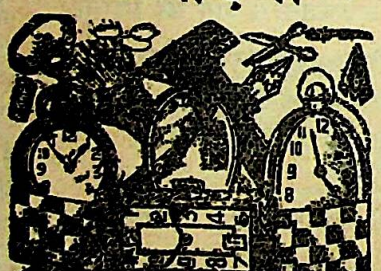

जो लोग हमारी निकल केस, मज़बूत मशीनरी २६ घंटे ठीक समय देनेवाली १० साल गारंटी की लिवर पाकेट घड़ी १।॥) में ख़रीदेंगे उन्हें ये चीज़ें मुफ़्त मिलेंगी:—१ निकल केस सुन्दर डमी रिस्टवाच, ५०० फ़ीट फोकस की एक चोरबत्ती, १४ कैरेट गोल्ड गिल्ट निब की एक फ़ौंटन्टेन पेन, एक छोटी डमी वी टाईमपीस घड़ी, एक सेफ़्टी रेज़र, एक शेविंग ब्रश, एक साबुन, ४ रोल्ड गोल्ड गिल्ट बटन और अन्य २४० सुन्दर तसवीरें। पैकिंग पोस्टेज ख़र्च ।॥=)

मँगाने का पता—जर्मन वाच कम्पनी, पोस्ट बक्स नं० २७

(M. M. L.) अमृतसर। AMRITSAR (India)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

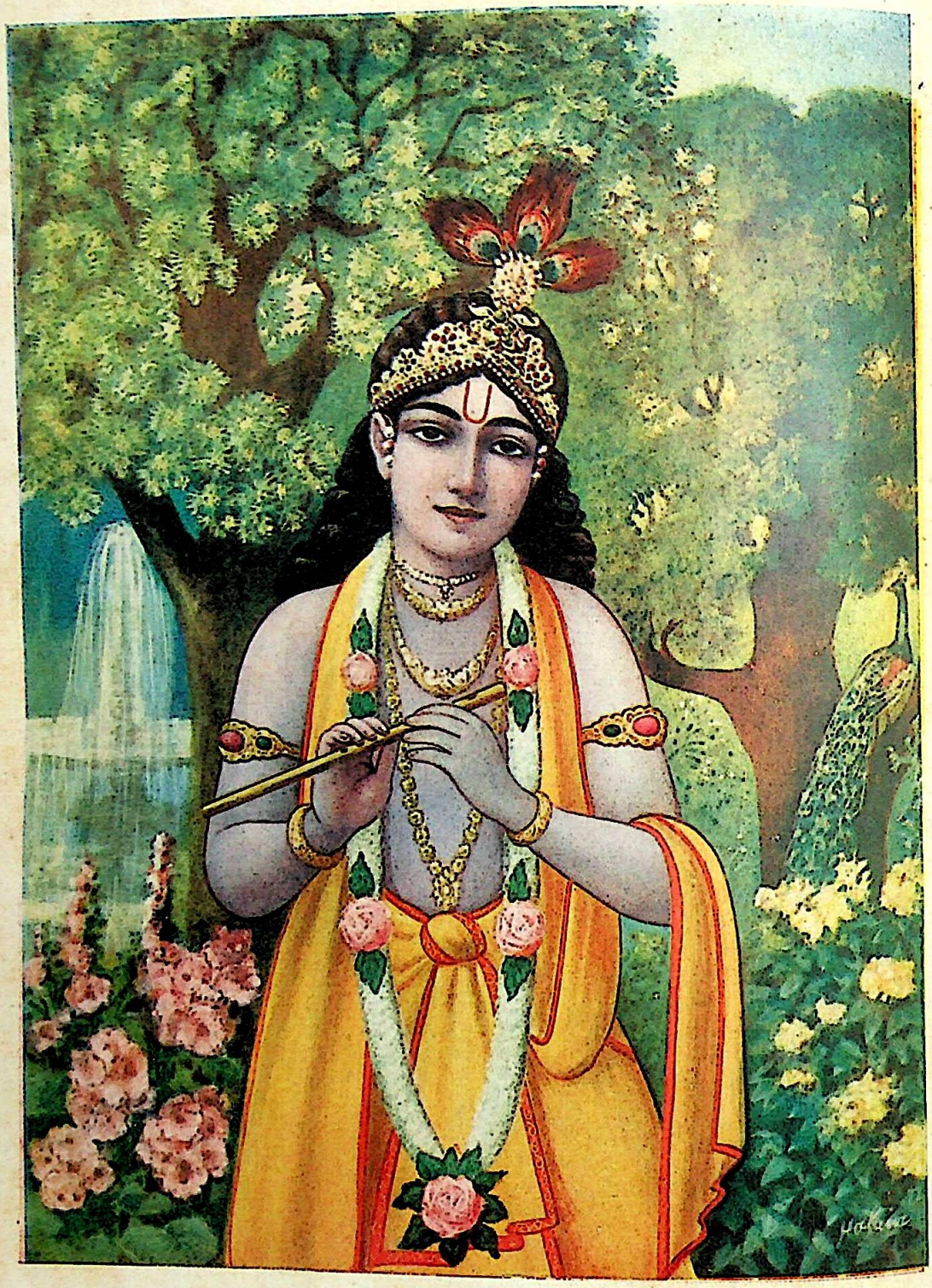

भगवान कृष्ण

(चित्रकार—श्रीमोहम्मद हकीम)

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

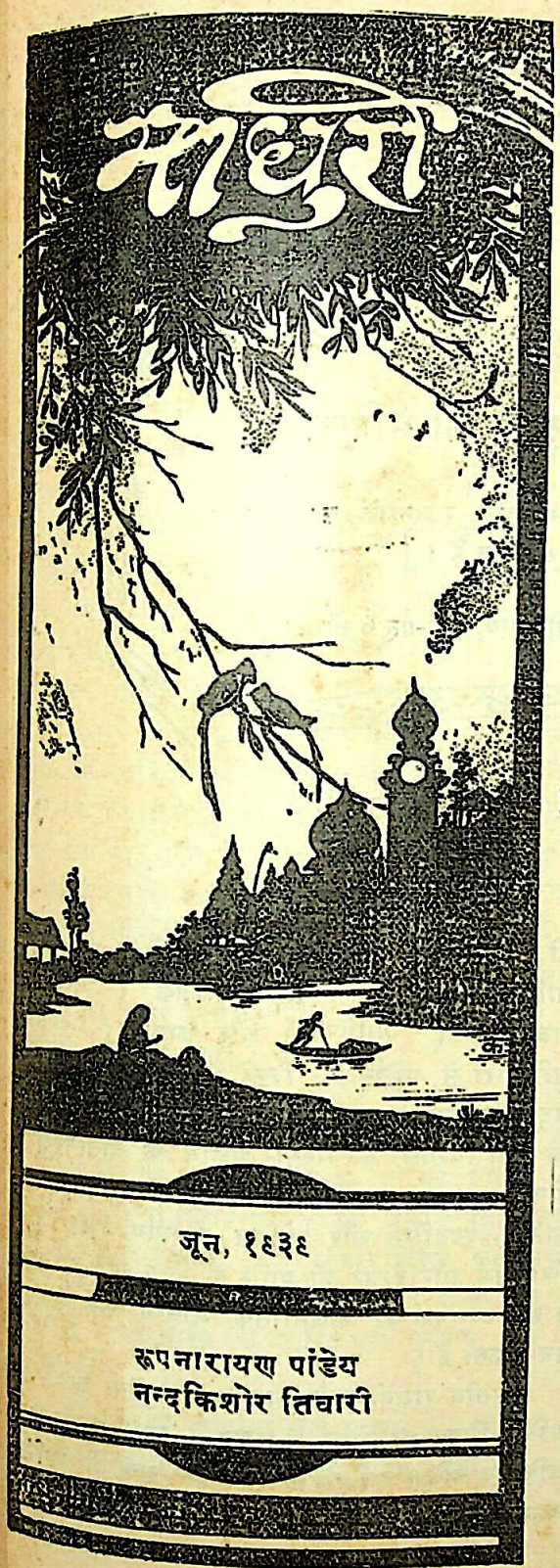

वर्ष १७] ज्येष्ठ, सं० १९९६ [खंड २

विद्या की महिमा

रूपनारायण पाण्डेय

चोर चुरा सकते नहीं विद्याधन, सच मान ;
कोई भी दौलत कभी इसके नहीं समान ।
जितना खरचो तुम इसे उतना बढ़ता जाय ;
विद्याधन ही सब जगह होता सदा सहाय ।
विद्या से मिलते हमें भोग और यश-मान ;
नरपति से भी है अधिक इस जग में विद्वान ।
विद्या गुरुओं की गुरू, मिलता इससे ज्ञान ;
यही दिलाती है हमें सभा-बीच सम्मान ।
विद्याबन्धु विदेश में कभी न छोड़े साथ ;
विपत पड़े पर हर तरह पकड़े रहती हाथ ।
राजों के दरबार में धनियों का क्या मान ;
पूजा पाता है वहाँ गुनी और विद्वान ।
कर देती नर को अमर विद्या अमृत-समान ;
अपढ़जनों का हर जगह होता है अपमान ।
अनपढ़ नर पशुतुल्य है सींग-पूँछ से हीन ;
हित-अनहित के ज्ञान से रहित रहे नित दीन ।
इससे विद्या को पढ़ो, बढ़ो ज्ञान की राह ;
उन्नति-चोटी पर चढ़ो, जो हो सुख की चाह ।

संख्या ५] तुलसी-संवत् ३१५ [पूर्ण संख्या २०३

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधिकार-वंचित हिन्दुओं का भविष्य

[यह लेख लेखक की 'आज की भारतीय राजनीति' का एक अंश है। इसके सर्वाधिकार लेखक के लिए सुरक्षित हैं।]

श्रीरामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल्-एल्० बी०

They to whom you deny advancement,
themselves shall block your progress.
—Ravindranath Tagore.

आज देश के सामने अधिकार-वंचित हिन्दुओं * के उत्कर्ष की विकट समस्या मौजूद है। भारतवर्ष की ३५ करोड़ की जन-संख्या का एक विशाल भाग, जो ५ करोड़ २½ लाख है, अनेक सदियों से उन समस्त धार्मिक (Religions), सामाजिक (Social), राजनीतिक (Political) और क़ानूनी (Legal) अधिकारों से वंचित है, जिन्हें हिन्दूसमाज का प्रत्येक सदस्य स्वाधीनता-पूर्वक भोग करता रहा है। जिस देश की ऐसी विशाल जन-संख्या अज्ञान के वातावरण में पोषण प्राप्त करे, वर्णाभिमानियों द्वारा पद-पद पर अपमानित, पददलित और शोषित की जाय, और जिसके लिए धर्म और ईश्वर की प्राप्ति के लिए कोई अधिकार न हो, उस देश का राजनीतिक भविष्य कब उज्ज्वल बन सकता है।

भारतीय राजनीति के साथ इस समस्या का सबसे अधिक निकट का संबंध है। अपनी प्रारम्भिक दशा में अधिकार-वंचित जातियों की समस्या भले ही धार्मिक या मानवतापूर्ण आदर्शों (Religious and humani-

---

* यह हिन्दू-मात्र के लिए ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक भारतीय के लिए अतीव लज्जा-जनक है कि आज इस युग में जब कि भारत-वासी स्वाधीनता के लिए संग्राम कर रहे हैं, इस देश में ५ करोड़ नर-नारी जात्यभिमानी और मानवता के शत्रुओं द्वारा 'अछूत' 'दलित' 'हरिजन' आदि घृणित नामों से पुकारे जाते हैं। जब सुधारक नेता इन्हें हिन्दू मानते हैं और ये हिन्दू हैं, तब इन्हें, ऐसे अपमानजनक नाम देना क्या मानवता के प्रति अन्याय नहीं है। वास्तव में ये लोग अधिकार-वंचित हैं—सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अधिकारों से वंचित हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

tarian ideals) से प्रभावित रही हो। परन्तु कालान्तर में इस समस्या ने राजनीतिक और आर्थिक स्वरूप ग्रहण कर लिया है।

धार्मिक

इस समस्या पर आज तक जो कुछ भी विचार प्रकट किये गये हैं, उनसे यह तो सिद्ध हो जाता है कि हिन्दू धर्म-शास्त्रों अर्थात् वेद, उपनिषद्, गीता, दर्शन, मनुस्मृति आदि में आज की प्रचलित जन्म-परक अस्पृश्यता का विधान नहीं है। यदि हम भारत के अतीत-काल के इतिहास पर एक दृष्टि डालें, तो हमें किसी भी युग में वैसी अस्पृश्यता की भावना का अस्तित्व नहीं मिलेगा, जैसी भावना का अस्तित्व वर्तमान युग में मिलता है। वेदों में, शास्त्रों में और मनुस्मृति में वर्ण-विधान अवश्य पाया जाता है। वैदिक वर्ण-व्यवस्था समाज की एक व्यवस्था है, जिसके अनुसार श्रम-विभाजन किया गया है—व्यक्ति-विभाजन नहीं। यह वैदिक वर्ण-व्यवस्था गुण, कर्म और स्वभाव के आधार पर है। वर्ण-धर्म के अनुसार समाज में व्यक्तियों के कर्त्तव्य-उत्तरदायित्वों और अधिकारों का निर्धारण किया गया है। वर्ण का व्यक्ति के वंश, कुल या जन्म से कोई सरोकार नहीं। वर्ण के संबंध में दूसरी महत्त्वपूर्ण स्थापना यह है कि वर्ण एक परिवर्तन-शील स्थिति है। जो स्थिति व्यक्ति के गुण (Qualifications), कर्म (Functions) और स्वभाव (Nature) पर निर्भर हो, उसमें परिवर्तन-शीलता तो आरोपित हो ही जाती है।

वैदिक वर्ण-सिद्धान्त के अनुसार कोई भी व्यक्ति शूद्र पिता के कुल में जन्म पाकर यदि ब्राह्मण के समान गुण, कर्म एवं स्वभाव से युक्त हो जाय, तो वह ब्राह्मण हो सकता है। इसी प्रकार जो व्यक्ति ब्राह्मण-पुत्र बनकर भी ब्राह्मण के कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों का पालन नहीं करता, तो वह ब्राह्मणत्व से पतित होकर शूद्र हो जाता है। महाभारत के शान्ति-पर्व, अध्याय ७२ में लिखा है—

न विशेषोऽस्ति वर्णानां सर्वं ब्राह्ममिदं जगत्।
ब्रह्मणा पूर्वसृष्टं हि कर्मणा वर्णतां गतम् ॥

"वर्णों की कोई विशेषता नहीं है। यह सारा जगत् एक ब्रह्म का रचा हुआ है। जब ब्रह्म इसको रच चुका तब कर्मों के भेद से यह भिन्न-भिन्न वर्णों को प्राप्त हुआ।" अतः वैदिक सिद्धान्तानुसार मनुष्यसमाज को गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर चार भागों में बाँटा गया *। इन चारों वर्णों के अतिरिक्त पाँचवाँ कोई वर्ण मौजूद नहीं था। वैदिक-काल में यह वर्ण-व्यवस्था मौजूद थी, ऐसा कहा जाता है।

जब तक उपर्युक्त चारों वर्णों के लोग अपने-अपने कर्त्तव्यों और दायित्वों का पालन यथोचित रूप से करते रहे तब तक समाज में व्यवस्था भी गुण, कम, स्वभाव के आधार पर स्थिर रही। परन्तु जैसे ही वर्ण के अन्तर्गत जन-समुदाय अपने कर्त्तव्य-कर्मों की ओर से विमुख होता गया और उससे सम्बद्ध विशेषाधिकार की सुरक्षा के लिए अधिक उत्साहित होने लगा, तो समाज में लोक-सेवा, त्याग, बलिदान और परोपकार की भावना का लोप होने लगा और उसकी जगह स्वार्थ, अहंकार, आत्म-श्रेष्ठता के भाव प्रबल होने लगे। सबसे पूर्व ब्राह्मणत्व का पतन हुआ और जब समाज का मस्तिष्क बिगड़ गया, तब उसके समस्त अंग भी अस्त-व्यस्त हो गये।

समाज में व्यक्तियों की इस भावना ने कि जिन अधिकारों का भोग हमारे पिता करते थे, उनका भोग हमें भी करने का अधिकार है, समाज में जन्म-परक व्यवस्था को जन्म दिया। अब जब व्यक्तियों में गुण, कर्म, स्वभाव की हीनता घर करने लगी, तो उन्हें स्वभावतः अपने पूर्वजों के गौरव को बनाये रखने के लिए, उनके सामाजिक पद को क़ायम रखने के लिए

* चार वर्ण इस प्रकार हैं। १. ब्राह्मण २. क्षत्रिय ३. वैश्य और ४. शूद्र। ब्राह्मण वह है जो वेद पढ़े-पढ़ावे, यज्ञ करे यज्ञ करावे, दान दे तथा दान ले। क्षत्रिय का कर्तव्य यह है कि वह प्रजा की रक्षा करे; शासन तथा राज्य-कार्य संचालन करे। वैश्य का कार्य यह है कि वह धन-धान्य पैदा करे और शूद्र का कार्य शरीर से श्रम करना है। शूद्र में विद्या नहीं होती, इसलिए वह अपने शरीर से, बुद्धि की अपेक्षा अधिक सेवा करता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चिंतित होना पड़ा। बस, इसी भावना ने जात-पाँत के रिवाज को जन्म दिया।

आज का हिन्दू-धर्म जात-पाँत की इसी भावना पर स्थिर है। "हिन्दुओं के नीति-शास्त्र पर जाति का जो प्रभाव पड़ा है, वह बहुत करुणाजनक है। जाति ने सार्वजनिक भावना का नाश कर दिया है। जाति ने जनता की पुण्य-भावना का विनाश कर दिया है। जाति ने लोकमत को असम्भव बना दिया है। एक हिन्दू की जनता उसकी निज जाति है। उसका उत्तर-दायित्व केवल निज जाति के प्रति है। उसकी देश-भक्ति निज जाति तक सीमित है। सद्गुण जाति-बन्धन में बँध गया है और सदाचार भी जाति-बंधनों से जकड़ा हुआ है। योग्य के लिए कोई सहानुभूति नहीं है। गुणवान् की कोई प्रशंसा नहीं करता। जिसको आवश्यकता है, उसके लिए न कोई दान है और न पुण्य। त्याग का कोई प्रतिदान नहीं। पुण्य तो है, पर उसका आरम्भ जाति के साथ होता और अन्त भी उसी के साथ हो जाता है। सहानुभूति तो है, परन्तु दूसरी जाति के पुरुषों के लिए नहीं है। ....." इन ज़ोरदार शब्दों में धुरन्धर विद्वान् डाक्टर भीमराव अम्बेदकर बैरिस्टर ने "जाति-प्रथा का विनाश" नामक पुस्तक में जात-पाँत की बुराइयों का जो ज्वलन्त चित्र खींचा है, वह, कुछ व्यक्तिगत अपवादों को छोड़कर, अधिकांश में सत्य है।

जाति-भावना की दो मूल विशेषताएँ हैं। पहली यह कि जाति समाज में कृत्रिम और अप्राकृतिक विभाजन पैदा करती है, जो सामाजिक संगठन और एकता में बाधक है। दूसरी विशेषता यह कि प्रत्येक जाति यह अभिमान करती है कि (और कुछ मामलों में निम्नता की भावना का अनुभव करती है) वह दूसरी जाति से उच्च है, श्रेष्ठ है, महान् है। प्रत्येक जाति दूसरी जाति को अपने से निम्नतर समझती है। इस जाति-प्रथा को—इस जाति-संगठन को दो संस्कार अक्षुण्ण बनाये रखते हैं। वे हैं विवाह और भोजन। यद्यपि भोजन संस्कार नहीं है, किन्तु जाति-भावना ने उसे 'संस्कार' ही बना दिया है। विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट ही विदित हो जाता है कि विवाह और भोजन का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। पहले का सम्बन्ध समाज और दूसरे का सम्बन्ध स्वास्थ्य और शरीर से है। भोजन आत्म-रक्षा (Self-preservation) का एकमात्र प्राकृतिक साधन है और विवाह प्रजनन या सृष्टि-सम्वर्द्धन (Creation) का मूल साधन। व्यक्ति का सबसे बड़ा शत्रु है अस्वास्थ्यकर भोजन, अशुद्ध जलपान और समाज का सबसे बड़ा शत्रु है यौन-सम्बन्धी दोष, (Sexual) एवं अतिशयता। प्रसिद्ध डा० भगवान्दास के शब्दों में—

"अन्तर्जातीय भोज (Inter-Caste Dining) और अन्तर्जातीय विवाह (Inter-Caste Marriage) के विरुद्ध जो अन्ध-विश्वास प्रचलित है, वह केवल सन्तति-विज्ञान के सिद्धान्त को ठीक रूप में न समझने के कारण ही है। भोजन की शुद्धता की ओर ध्यान देने से व्यक्तिगत स्वास्थ्य की रक्षा और विवाह के सम्बन्ध में स्वभाव-साम्य की ओर ध्यान देने से जातीय स्वास्थ्य की रक्षा होती है। इन दो वैज्ञानिक नियमों को यथोचित रूप में न समझने के कारण हम हिन्दुओं के अतिरिक्त दूसरे लोगों की दृष्टि में उपहास के पात्र बनते हैं। आज का हिन्दुत्व प्रायः ३००० जातियों एवं उपजातियों में बँटा हुआ एक समुदाय है, जो विवाह और भोजन के संबंध में परस्पर एक दूसरे के लिए अछूत हैं *।"

वर्णों के व्यभिचार (Corruption) से ३००० जातियाँ बनीं और इन जातियों के पारस्परिक ऊँच-नीच के भेद-भाव ने 'अछूतपन' को जन्म दिया। इसलिए अस्पृश्यता का जात-पाँत से प्रत्यक्ष-संबंध है। जब तक हिन्दू-समाज जात-पाँत को ज्यों का त्यों क़ायम रक्खेगा, तब तक यह संभव नहीं कि समाज से ऊँच-नीच की भावना का विनाश हो जाय।

---

* केन्द्रीय असेम्बली में 'अन्तर्जातीय विवाह-बिल' (Inter Caste Marriage Validation Bill) को लोकमत के लिए प्रचलन का प्रस्ताव पेश करते समय डा० भगवान्दास M. L. A. ने अपने १७ एप्रिल, सन् १९३६ को अपने भाषण में ये शब्द कहे थे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु यह चिन्तनीय है कि 'हरिजन-आन्दोलन' के प्रवर्तक महात्मा गांधी जात-पाँत और अछूतपन में कोई सम्बन्ध नहीं देखते। महात्मा गांधीजी की दिव्य दृष्टि में अस्पृश्यता तो हिन्दू जाति का कलंक है, पाप है, किन्तु अस्पृश्यता की जननी जात-पाँत की संस्था समाज के लिए कलंक नहीं है। महात्मा गांधीजी ने लिखा है—

"भारतवर्ष में अगणित जातियाँ हैं। ये सामाजिक संस्थाएँ हैं। ये व्यापार-समितियाँ (Trade guilds) हैं, जैसा कि स्वर्गीय सर विलियम विल्सन हंटर ने कहा है। किसी समय इन जातियों ने एक बड़ा उपयोगी कार्य किया था, जैसा कि शायद अब भी वे कुछ सीमा तक उपयोगी कार्य कर रही हैं।" आगे फिर एक स्थान पर गांधीजी ने लिखा है—

"मेरा यह विश्वास नहीं कि जात-पाँत एक घृणित और विषैला सिद्धांत है। उसमें दोष हैं और मर्यादाएँ भी। पर उसमें कलंक की कोई बात नहीं है। अतः अस्पृश्यता जात-पाँत की उपज नहीं है; परन्तु उसकी उत्पत्ति तो उस ऊँच-नीच के भेद से हुई है, जिसका प्रवेश हिन्दू-धर्म में हुआ।.....इसलिए अस्पृश्यता पर आक्रमण 'ऊँच-नीचपन' पर आक्रमण है*।

महात्मा गांधी 'ऊँच-नीचपन' (High and lowness) पर आक्रमण करके अस्पृश्यता का निवारण करना चाहते हैं। यह ठीक है, परन्तु इस 'ऊँच-नीचपन' के भाव का मूल स्रोत क्या है? यदि इस समस्या पर थोड़ा विचार किया जाय तो यह जानने में कोई कठिनाई न होगी कि जात-पाँत की प्रथा ने ही इस ऊँच-नीचपन के भाव को पैदा किया है। इसलिए हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि जब तक इस ऊँच-नीचपन के भाव की जननी जात-पाँत की संस्था का विनाश नहीं किया जायगा, तब तक अछूतपन की भावना का, जो आज प्रचलित है, उन्मूलन सम्भव नहीं।

यद्यपि आज की सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति में विशाल अन्तर है, तथापि महात्मा गांधी वर्ण-धर्म की पुनःस्थापना का स्वप्न देख रहे हैं। अँगरेज़ी 'हरिजन' पत्र में उन्होंने एक स्थान पर लिखा है—"आज ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र केवल नाममात्र के हैं। वर्ण के सम्बन्ध में नितान्त भ्रम है और मैं यह चाहता हूँ कि समस्त हिन्दू अपने को शूद्र कहना शुरू कर दें। यही एक उपाय है, जिससे ब्राह्मणत्व का प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता है, और इसी उपाय से वर्ण-धर्म का यथार्थ रूप में पुनर्जीवन किया जा सकता है।"

यह किसी भी दशा में, किसी भी युग में सम्भव नहीं कि समस्त हिन्दू अपने को शूद्र कहने लगें। आजकल की जन्म-परक वर्ण-व्यवस्था में विश्वास करनेवाले द्विज अपने को शूद्र क्यों कहने लगे। यदि यह कल्पना की जाय कि महात्माजी के प्रभाव से समस्त द्विज लोग अपने को शूद्र कहने लग जायँ तो क्या केवलमात्र कहने से वर्ण-व्यवस्था पुनर्जीवित हो जायगी। वर्ण तो गुण, कर्म और स्वभाव पर निर्भर हैं। फिर जिस व्यक्ति में ब्राह्मण के गुण हों, उसे शूद्र कहना भी सत्य पर आवरण डालना है।

प्राचीन समय में वर्ण-व्यवस्था का आधार धर्म था। परन्तु आज अखिल विश्व में राजनीतिक और सामाजिक जीवन का मूल आधार अर्थ है। इसलिए धर्म के आधार पर बनी वर्ण-व्यवस्था इस युग के लिए उपयुक्त नहीं है। इस युग में तो ऐसी सामाजिक प्रणाली की आवश्यकता है, जो आर्थिक आधार (Economic basis) पर निर्मित की गई हो। श्रीसम्पूर्णानन्दजी मन्त्री शिक्षा-विभाग संयुक्तप्रान्त ने अपनी 'समाजवाद' नामक पुस्तक में भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये हैं। उन्होंने लिखा है—

"मनुष्यों का विभाग केवल मनोविज्ञान के आधार पर ही नहीं किया जा सकता। आर्थिक और राजनीतिक वस्तुस्थिति, चाहे वह हमारी समझ में गर्हित ही क्यों न हो, भुलाई नहीं जा सकती।.....बहुत-से ऐसे पद हैं, जिनमें शासन भी होता है और व्यवस्थापन भी। उन पर जो लोग नियुक्त होंगे, वे ब्राह्मण कहलायेंगे या क्षत्रिय? धन उपार्जन करने का क्या अर्थ है? जो स्वयं खेती करता है, गऊ पालता है, या दूकान पर बैठता है और अपना पेट काटकर पूँजी जमा करके उसे व्यवसाय में लगाता है, या खान से खनिज

* Mahatma Gandhi: Harijan 11-2-33.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निकलवाता है, वह तो धन का उपार्जन करता है, पर बड़े-बड़े बैंकर, पूँजीपति, कम्पनियों के मैनेजर क्या करते हैं ? ये तो दूसरों के रुपयों का प्रबन्ध करके पूँजी बनाते हैं। फिर वैश्य माने जायँ या क्षत्रिय ?"

वर्तमान समय में जीवन इतना जटिल हो गया है कि वैदिक वर्ण-व्यवस्था के अनुसार वर्णों का निर्धारण सम्भव नहीं है। आजकल के भेद अर्थ के आधार पर हैं। उनमें सेवा, त्याग और परमार्थ की वह भावना नहीं है, जो वैदिक वर्ण-व्यवस्था की मूल प्रेरक-शक्ति है। हमारे कथन का सारांश यह है कि वैदिक वर्ण-व्यवस्था आज के आर्थिक युग के लिए उपयुक्त नहीं है। इसलिए ऐसी परिस्थिति में वर्ण-व्यवस्था के पुनर्जीवन के लिए उद्योग का अर्थ है जात-पाँत के कट्टर-पंथियों को प्रोत्साहन देना। अस्पृश्यता के विनाश के लिए यह आवश्यक नहीं कि वर्ण-व्यवस्था की पुनःस्थापना की जाय ; प्रत्युत जात-पाँत की प्रथा का नाश ही अस्पृश्यता के निवारण का अमोघ उपाय है।

पाँच करोड़ व्यक्तियों को आध्यात्मिक और धार्मिक लाभ से वंचित रखकर वास्तव में हिन्दू-समाज ने ईश्वर और धर्म के प्रति महान् अपराध एवं पाप किया है और महात्मा गांधी के शब्दों में 'हरिजनों' का उत्थान ही इस पाप का प्रायश्चित्त है। जब से हिन्दुओं ने ईश्वर और धर्म को देवमन्दिरों की चहारदीवारी में आबद्ध कर दिया, तब से हिन्दू-पुजारियों का पतन आरम्भ हो गया और इन पाँच करोड़ व्यक्तियों के लिए उनमें प्रवेश का निषेध करके उन्हें धार्मिक अधिकार से वंचित किया गया।

लेखक का यह विश्वास है कि सच्चा धर्म तो मनुष्य के लिए हर स्थान, हर समय और हर देश में प्राप्य है। ऐसे हज़ारों व्यक्ति हैं, जो नित्यप्रति गंगा-स्नान कर, तिलक-छापे लगाकर नित्य प्रातः-सायं देवमन्दिर में 'भगवान्' के दर्शन करने जाते हैं, दिन में पाँच बार मसजिद में नमाज़ पढ़ते हैं, रविवार को गिर्जाघर में जाकर ईश्वर का भजन करते एवं ईसा के उपदेश सुनते हैं। परन्तु उनका दैनिक जीवन अपराधों और पापों की कहानी होता है। ऐसे लाखों व्यक्ति हैं, जिनकी पहुँच मन्दिरों, मसजिदों और गिर्जों तक नहीं, परन्तु वे अपने जीवन में धर्म का साक्षात्कार करते हैं।

हमारी अपनी यह धारणा है कि केवलमात्र मंदिरों के द्वार खोल देने से अधिकार-वंचित जातियाँ सच्चे धर्म और अध्यात्म-शास्त्र का लाभ नहीं उठा सकतीं। मन्दिर अंधभक्ति, अंधश्रद्धा, अंधविश्वास और अज्ञान के गढ़ ही नहीं, पापाचार, पाखण्ड और पतन के पोषण-गृह हैं। इन देवमन्दिरों में वह धर्म की ज्योति कहाँ, जो धर्म के आलोक से उनके जीवन को प्रकाशमान कर दे। परन्तु फिर भी हिन्दू होने के नाते उन्हें यह अधिकार तो मिलना ही चाहिए कि वे इन मन्दिरों में प्रवेश कर सकें। उनके प्रवेश से ये मन्दिर भ्रष्ट या अपवित्र न समझे जायँ। देवमन्दिर में धर्म के आबद्ध हो जाने से धार्मिक कट्टरपन, धार्मिक पवित्रता और धार्मिक वातावरण दैनिक जीवन में प्रतिफलित होने के बजाय मन्दिरों में केन्द्रीभूत हो गये हैं। इसलिए मन्दिरों में प्रवेशाधिकार के मिल जाने से धार्मिक कट्टरपन के कम हो जाने की सम्भावना है और इसके साथ अस्पृश्यता की उग्र भावना में भी कुछ परिवर्तन हो जाना सम्भव है। महात्मा गांधी ने मन्दिर-प्रवेश को अतिशय महत्ता दी है। दक्षिण में अनेकों मन्दिरों के द्वार खोल दिये गये हैं। ट्रावनकोर के महाराजा ने अपने राज्य के समस्त मन्दिरों में हिन्दूमात्र को प्रवेशाधिकार देकर वास्तव में एक आदर्श उपस्थित किया है। हिन्दू-इतिहास में यह एक क्रांतिकारी कार्य है। हाल में इन्दौर के महाराजा ने भी इस कार्य एवं नीति का अनुसरण करके एक महान् कार्य किया है।

सामाजिक

अधिकार-वंचित हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति अत्यन्त हीन है। ये लोग ऐसे व्यवसाय करते हैं, जो समाज की दृष्टि में हीन हैं, घृणास्पद हैं। परन्तु अधिकांश लोग ग्रामों में रहते हैं। इस कारण वे या तो खेती करते हैं या कृषि-सम्बन्धी अन्य कोई व्यवसाय। ग्रामों में इन लोगों के रहने के लिए जो भाग होता है, वह उच्चवर्ण के कहलानेवाले हिन्दुओं के निवासस्थान से दूर होता है। नगरों में भी इनके मुहल्ले दूसरे हिन्दुओं से अलग होते हैं। जो लोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शहरों अथवा औद्योगिक नगरों में रहते हैं, वे मिल, कारख़ाने आदि में मज़दूरी करते हैं। अधिकांश शहर के रहनेवाले शिल्पी होते हैं। वे चमड़े आदि के घरेलू धन्धे करते हैं। शिक्षा के अभाव और धन की कमी के कारण इन्हें अपने जीवन में लाख अपमान और अन्याय-अत्याचार सहने पड़ते हैं। इनका दैनिक जीवन अत्याचारों की रामकहानी है। ग्रामों में ज़मींदार इन पर नाना प्रकार के ज़ुल्म करते हैं; उनसे बेगार लेते हैं। जब वे अपनी मज़दूरी माँगते हैं, तो उन्हें अमानुषिक ढंग से सताया जाता है, उन पर पुलीस से मिलकर मिथ्या अभियोग लगाये जाते हैं, उनकी फ़सलें बरबाद करा दी जाती हैं, मवेशी क़ुर्क़ कर लिये जाते हैं और उनकी जीविका का एकमात्र साधन खेत उनसे छीन लिये जाते हैं।

इस प्रकार की यातनाएँ, अपमान और अन्याय वे सदियों से मूक पशु की भाँति चुपचाप सहन करते आये हैं। इसलिए वे इनके सहन करने के अभ्यस्त भी हैं। उनका न अपना कोई देवता है जिसकी वे पूजा करें; न उनकी कोई महत्त्वाकांक्षा है, जिसके पूरा करने के लिए प्रयत्नशील बनें। उनका न कोई राजनीतिक ध्येय ही है, जिसकी पूर्ति के लिए वे उद्योग करें। आर्थिक दृष्टि से वे हिन्दू-समाज में सबसे पिछड़े हैं। शिक्षा की दृष्टि से भी वे सबसे अधिक पिछड़े हैं; वे अविद्या के साम्राज्य में जन्म लेते हैं, पोषण पाते हैं और मर जाते हैं। उनकी यह हीन सामाजिक स्थिति उनकी आर्थिक अवनति का कारण है। अपनी सामाजिक दुरवस्था के कारण वे ऐसे व्यवसायों, उद्योगधन्धों को नहीं कर सकते, जिनसे समाज के उच्च, धनिक-वर्ग का सम्पर्क होता है।

नगरों में ग्रामों की अपेक्षा इनके लिए कम आपत्तियाँ हैं। अलबत्ता ज़मींदारों और ताल्लुक़ेदारों के अत्याचारों का दौरदौरा यहाँ नहीं। परन्तु उनकी जगह सूदख़ोर महाजन हैं। महाजन, बोहरे और काबुली लोग बुरी तरह निर्दयता से इन लोगों का अर्थ-शोषण करते हैं। इन लोगों पर कैसे भीषण अत्याचार किये जाते हैं, यह लिखना हमारी शक्ति से बाहर है। परन्तु यहाँ हम बम्बई के अँगरेज़ी दैनिक समाचार-पत्र 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' के ४ जनवरी, सन् १९२८ ई० के अंक से एक घटना का वृत्तान्त देते हैं, जिससे पाठकों को यह ज्ञान हो जायगा कि इन जातियों की सामाजिक स्थिति प्राचीन काल के दासों से और आधुनिक युग के 'अमेरिकन हबशियों' से भी अधिक ख़राब है।

इन्दौर राज्य में कनारिया, त्रिचौली आदि १५ गाँवों के उच्चवर्ण के हिन्दुओं ने (कलौत, राजपत, ब्राह्मण, पटेल, पटवारी आदि) अपने-अपने गाँव के बलाइयों को यह सूचना दी कि यदि वे उनके गाँव में रहना चाहते हैं, तो उन्हें (बलाइयों को) निम्नलिखित नियम मानने पड़ेंगे—

"१. बलाइयों को ऐसी पगड़ी नहीं पहननी चाहिए, जिसके किनारे सुनहरी कामदार हों।

२. उन्हें ऐसी धोती न पहननी चाहिए, जिसके किनारे रंगीन या फ़ैंसी हों।

३. यदि किसी हिन्दू की मृत्यु हो जाय तो उसकी रिश्तेदारी में—चाहे वह कितनी ही दूर क्यों न हो—सूचना देनी चाहिए।

४. प्रत्येक हिन्दू के विवाह में बलाइयों को बाजा बजाना चाहिए।

५. बलाई स्त्रियों को सोने-चाँदी के गहने न पहनने चाहिए।

६. बलाई स्त्रियों को हिन्दुओं के घरों में दाई का काम करना चाहिए।

७. बलाइयों को बिना मज़दूरी लिये हिन्दुओं के यहाँ काम करना चाहिए और जो कुछ भी हिन्दू ख़ुशी से दे, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए।

८. यदि बलाई इन शर्तों को न मानें तो उन्हें चाहिए कि वे गाँव ख़ाली कर दें।"

बलाइयों ने इन शर्तों को नहीं माना। हिन्दुओं ने उनके विरुद्ध कार्यवाही करना शुरू कर दिया। उन्हें कुँओं से जल न भरने दिया गया; खेतों में उनके मवेशियों को चरने से रोका। उन्हें उस ज़मीन पर होकर आने-जाने से रोका, जो हिन्दुओं की थी। बलाई अपने खेतों पर भी न जा सके। हिन्दुओं ने अपने मवेशी बलाइयों के खेतों में फ़सल नष्ट करने को छोड़ दिये। अन्त में उन्होंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दरबार को अर्ज़ी दी। पर कुछ भी न्याय नहीं मिला। उन्हें अपने गाँव छोड़ने पड़े।

ऐसी घटनाएँ केवल देशी रियासतों में ही नहीं, प्रत्युत ब्रिटिश राज्य में भी नित्य देखी जाती हैं। सन् १९३५ में अहमदाबाद ज़िले के कविथा ग्राम की घटना तो देश में काफ़ी प्रसिद्धि पा चुकी है। सन् १९३६ में जयपुर रियासत के चकवारा गाँव को घी में बने मालपूए खाने से रोका गया और फलस्वरूप वहाँ ख़ूब उपद्रव मचा।

श्री० ए० बी० ठक्कर, मंत्री हरिजन-सेवक-संघ देहली ने संघ की रिपोर्ट में उच्चवर्णाभिमानियों द्वारा किये गये अत्याचारों का वर्णन इस प्रकार किया है—

"राजपूताना में अस्पृश्यता अत्यन्त अत्याचार-पूर्ण रूप में प्रचलित है। मरु-भूमि में एक कुँआ बनाने में २-३ हज़ार रुपये लग जाते हैं। सब कुँए हरिजनों द्वारा उच्च जाति के हिन्दुओं के लिए बनाये जाते हैं, और वे हरिजनों को कुँओं का प्रयोग नहीं करने देते। हरिजनों की करुणाजनक दशा की कल्पना ही की जा सकती है; उसका वर्णन उतने अच्छे ढंग से नहीं किया जा सकता। इसलिए उन्हें बाध्य होकर पीने तथा अन्य कामों के लिए पानी उस 'खेल' (मवेशियों के पीने के लिए यह पानी होता है, जो एक कुंड में भरा रहता है।) से लेते हैं, जो शौचादि तथा कपड़े धोने के काम में बरता जाता है। राजपूताना में सबसे भयंकर अस्पृश्यता का रूप तो यह है कि वहाँ हरिजनों को निम्नलिखित वस्तुओं के प्रयोग का अधिकार नहीं है—सुवर्ण व चाँदी के आभूषण, साफ़ और अच्छे वस्त्र, घी और शक्कर की मिठाई, घोड़ा या साइकिल की सवारी, खाट और छाता, ख़ास प्रकार के वाद्य यंत्र, विशेष आकार-प्रकार के मकान बनाना, मकानों के दर्वाज़ों में दो-पल्ले के किवाड़ * ।"

अधिकार-वंचित हिन्दू-वर्ग की सामाजिक दशा का उपर्युक्त चित्रण सर्वथा सत्य है। उच्चाभिमानी हिन्दू इन लोगों के साथ कोई सामाजिक सम्पर्क नहीं रखते। फलतः ये बिल्कुल अलग-से हो गये हैं। कोई भी उच्चाभिमानी हिन्दू इन लोगों के द्वारा स्पर्श किये हुए जल या अन्न को ग्रहण नहीं करता। होटलों में, सार्वजनिक भोजनालयों में और धर्मशालाओं में इन लोगों को कोई स्थान नहीं दिया जाता। बाज़ारों में किसी दूकान पर बैठकर अन्य लोगों की तरह ये लोग भोजन नहीं कर सकते। शर्बत-पान की दूकानों पर इन लोगों को गिलास नहीं दिया जाता। नाई, धोबी तथा हिन्दू चूड़ीवाले इनके बाल नहीं बनाते, कपड़े नहीं धोते और इनकी स्त्रियों को चूड़ियाँ नहीं पहनाते। इनके लिए पृथक् स्कूल हैं, जिनमें ये शिक्षा पाते हैं। जो विद्यार्थी विश्वविद्यालय या कालेज में पढ़ते हैं, उनको होस्टलों में तो स्थान दे दिया जाता है; परन्तु उनके भोजनालयों में उनका प्रवेश निषिद्ध है।

कहार थाली में भोजन उनके कमरों में दूर से उनके बर्तनों में डालकर चले जाते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि ऐसा दुर्व्यवहार केवल मात्र अशिक्षित, ग़रीब लोगों के साथ ही नहीं किया जाता, प्रत्युत शिक्षित, सुसंस्कृत और धनी अधिकार-वंचित व्यक्तियों के साथ भी ऐसा ही दुर्व्यवहार किया जाता है।

'हरिजन' साप्ताहिक अँगरेज़ी पत्र में महात्मा गांधी के प्राइवेट मंत्री श्रीमहादेव देसाई ने बम्बई के सुप्रसिद्ध, विद्वान् नेता डा० बी० आर० अम्बेदकर से वार्तालाप करने के बाद एक लेख लिखा, जिसमें से यह अवतरण यहाँ दिया जाता है—

"मेरे पिता एक अवकाश-प्राप्त (retired) फ़ौजी अफ़सर थे, जिन्हें ४०) रुपये महीना पेंशन मिलती थी। इस लिहाज़ से वह मध्यम श्रेणी के बहुत-से हिन्दुओं से ज़्यादा प्रतिष्ठित थे, लेकिन इतने पर भी हम किसी नाई से बाल नहीं बनवा सकते थे। कुटुम्ब के पाँच-छः जनों की हजामत मेरी बहन ही बनाया करती थी।"

महाराजा बड़ौदा से छात्रवृत्ति पाकर अमेरिका जाने और कोलम्बिया विश्वविद्यालय से पी-एच्० डी० की डिग्री प्राप्त करके बड़ौदा में जब डा० अम्बेदकर आये तो उनका कैसा स्वागत किया गया, यह भी आप उन्हीं के शब्दों में पढ़िए—

"बड़ौदा-जैसे बड़े शहर में मेरे रहने को कोई कमरा या मकान न मिल सका। मैंने चाहा कि मुझे कालेज का प्रोफ़ेसर बना दिया जाय, जिससे रहने को सरकारी

* Annual Report—All India Harijan Sewak Sangh 1935-36. p. 7.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मकान मिल जाय, किन्तु श्रीमान् बड़ौदानरेश ने मुझे राजस्व-विभाग में ही रखना पसंद किया। ···अतः अपने लिए मकान तलाश करने का काम मुझ पर छोड़ दिया गया। इसके लिए मैं इधर-उधर बहुत-कुछ भटका, लेकिन कोई नतीजा न निकला। आख़िर बहुत दौड़-धूप के बाद एक पारसी धर्मशाला में जाकर टिका। जहाँ का चौकीदार इस शर्त पर मुझे वहाँ टिकाने को तैयार हुआ कि मैं अपना कोई फ़र्ज़ी पारसी नाम वहाँ के लिए रख लूँ। यही मैंने किया भी, लेकिन शीघ्र ही पारसियों को इस बात का पता लग गया और एक दिन लाठियाँ लिये हुए उनकी एक भीड़ आ पहुँची। उन्होंने मुझे यह धमकी दी कि मैं तुरन्त ही यह धर्मशाला छोड़ दूँ, नहीं तो मुझे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा।....." *

ऐसा दुर्व्यवहार किया जाता है एक विद्वान्, सुशिक्षित और सुसंस्कृत व्यक्ति के साथ; तब एक साधारण व्यक्ति के साथ तो इस अत्याचार की पराकाष्ठा हो जाना संभव है।

सन् १९३२ ई० से महात्मा गांधीजी ने 'हरिजन-आन्दोलन' प्रारम्भ किया है और समस्त देश में हरिजन-सेवक-संघ की शाखाएँ स्थापित कर दी हैं। देहली में अखिल भारतीय-हरिजन-सेवकसंघ का मुख्य कार्यालय है और उसके अध्यक्ष भारत के कुबेर श्रीघनश्यामदास बिरला हैं। इस संघ की ओर से साहित्य और प्रचार द्वारा इन जातियों के उत्थान के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। 'हरिजन-बन्धु', 'हरिजन', 'हरिजन-सेवक' आदि पत्र क्रमशः गुजराती, अँगरेज़ी और हिन्दीभाषा में प्रकाशित हो रहे हैं। छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं; कुँए बनवाये जाते हैं; देव-मन्दिर बनवाये जाते हैं। यह सब इसलिए किया जा रहा है कि 'हरिजन' हिन्दू-अत्याचारों से ऊबकर ईसाई या मुसलमान न बन जायँ, अन्यथा हिन्दू जाति की बड़ी अधोगति होगी। निःसन्देह हरिजन-सेवक-संघों ने इन जातियों की सेवा की है और इनके उत्थान के लिए प्रयत्न भी किया है और कर रहे हैं। परन्तु अभी तक इस आन्दोलन ने हिन्दू-हृदय को स्पर्श नहीं किया है। हिन्दू अपने पाप, अपने अपराध का प्रायश्चित्त नहीं करते; वे तो यह समझते हैं कि देश से अस्पृश्यता का निवारण कर वे अपने इन पीड़ित-भाइयों के प्रति उपकार कर रहे हैं और एक ऐसा अहसान कर रहे हैं, जिसके लिए इन्हें आजन्म—सदियों तक—हिन्दुओं का आभारी रहना चाहिए। गांधीजी जैसा चाहते हैं, वैसा हृदय-परिवर्तन (change of heart) अभी दिखाई नहीं देता।

'प्रान्तीय स्वराज्य' की स्थापना के बाद सात प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें शासन-संचालन कर रही हैं। इन कांग्रेसी मंत्रि-मण्डलों का यह उत्तरदायित्व है कि वे इन्हें सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक समानाधिकार (Equal Rights) प्रदान करने के लिए यथोचित प्रभावकारी क़ानून बनावें। अब तो लोकमत उनके नियंत्रण में है। शिक्षा-प्रसार के लिए कोई निश्चित योजना भी तैयार की जाय, जिससे इनका अज्ञान मिटाया जा सके।

राजनीतिक

जो समुदाय धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक-क्षेत्र में इतना पिछड़ा हो, इतना हीनतर हो, वह राजनीतिक-क्षेत्र में प्रगतिशील कैसे बन सकता है। मोंटेग्यू-चेम्सफ़ोर्ड के शासन-सुधारों के अन्तर्गत इस समुदाय को नामज़दगी द्वारा प्रांतीय कौंसिलों, केन्द्रीय असेम्बली, और स्थानीय स्वायत्त-संस्थाओं में एक-एक या दो-दो स्थान दिये गये थे।

केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में इस समुदाय की ओर से—समस्त ब्रिटिश-भारत की ओर से—केवल एक ही प्रतिनिधि नामज़द किया जाता रहा है। मद्रास के श्री० एम्० सी० राजा सन् १९३७ तक गवर्नर जनरल द्वारा नामज़द किये जाते रहे। अब उनके स्थान में कोई अन्य मद्रासी सज्जन नामज़द किये गये हैं। प्रत्येक प्रांतीय कौंसिल में भी इस समुदाय की ओर से केवल एक सदस्य मनोनीत किया जाता था। यह प्रणाली ३१ मार्च, सन् १९३७ तक जारी रही। यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि यह प्रतिनिधित्व केवल नाममात्र का प्रतिनिधित्व था। यथेष्ट और यथोचित तो किसी भी दशा में नहीं था।

* देखिए 'हरिजन-सेवक' (देहली) में 'सोच में डाल देनेवाली कहानी' पृ० ८९; ९ मई १९३६ ई०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गवर्नर जनरल या गवर्नर जिस व्यक्ति को योग्य समझता था, उसे ही वह नामज़दगी द्वारा असेम्बली या कौंसिल का सदस्य नियुक्त कर देता था। इसलिए कौंसिलों में वही व्यक्ति, चाहे वह शिक्षा और योग्यता की दृष्टि से कितना ही अयोग्य क्यों न हो, नामज़द किया जाता था, जो ब्रिटिश-सरकार का प्रशंसक, राजभक्त और सरकार के पक्ष का होता था। कौंसिल के अधिवेशनों में वह सरकार के संकेत पर 'वोट' देता था, और सरकार की नीति के अनुसार ही कार्य करता था।

जिन दिनों नवीन शासन-विधान की रचना की जा रही थी, उन दिनों इन अधिकार-वंचित हिन्दुओं में भी राजनीतिक अधिकारों की माँगें प्रस्तुत करने के लिए आन्दोलन हो रहा था। बम्बई के डा० अम्बेदकर और मद्रास के रावबहादुर एम्० सी० राजा ने इस आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण किया।

लन्दन में गोलमेज़-परिषद् (Round Table Conference) के द्वितीय अधिवेशन में अल्प-संख्यक जातियों का समझौता (Minorities Pact) हुआ, जिसके अनुसार 'दलितवर्ग' को निम्न प्रकार सीटें प्रत्येक प्रान्त में दी गईं—

नाम प्रांत	कुल संख्या	हिन्दू	'दलितवर्ग'
आसाम	१००	३८	१३
बंगाल	२००	३८	३५
बिहार-उड़ीसा	१००	५१	१४
बम्बई	२००	८८	२८
मद्रास	२००	१०२	४०
पंजाब	१००	....	१०
संयुक्तप्रान्त	१००	४४	२०
मध्यप्रांत	१००	५८	२०
	११००	....	१८०

अगस्त ४, सन् १९३२ को ब्रिटिश-सरकार की ओर से तत्कालीन प्रधान मंत्री (Premier) मि० रेमज़े मैकडानल्ड ने प्रांतीय व्यवस्थापिका सभाओं में सीटों के बँटवारे के सम्बन्ध में निर्णय प्रकाशित किया, जो 'साम्प्रदायिक निर्णय' (Communal Award) के नाम से प्रसिद्ध है। इस निर्णय के अनुसार 'दलितवर्ग' को निम्न प्रकार प्रान्तीय व्यवस्थापिकाओं में स्थान दिये गये—

नाम प्रान्त	कुल संख्या	साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार 'दलितवर्ग'
आसाम	१०८	४
बंगाल	२५०	१०
बिहार-उड़ीसा	१७५	७
बम्बई	२००	१०
मद्रास	२१५	१८
पंजाब	१७५	....
संयुक्तप्रान्त	२२८	१२
मध्यप्रान्त	११२	१०
	१४६३	७१

'अल्प-मत-समझौता' के अनुसार कुल प्रान्तों में ११०० स्थानों में से १८० स्थान 'दलितवर्ग' को देना निश्चय किया गया। परन्तु ब्रिटिश-सरकार के निर्णय के अनुसार १४६३ स्थानों में से ७१ स्थान ही इन्हें दिये गये।

'साम्प्रदायिक निर्णय' के अनुसार यह निश्चय किया गया कि 'दलितवर्ग' के लिए उनके मतदाताओं का एक 'विशेष निर्वाचन-क्षेत्र' (Special Constituency) होगा और जो सदस्य 'दलितवर्ग' का होगा, वही इसमें मतदाता होगा और उसे उम्मीदवार चुनने का अधिकार होगा। परन्तु वह सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र (General Constituency) में भी मत देने का अधिकारी होगा। इस प्रकार 'दलितवर्ग' को विशेष निर्वाचन-सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया और साथ-साथ उन्हें सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र में भी मताधिकार दिया गया। गोलमेज़-परिषद् में सन् १९३१ में जब महात्मा गांधी कांग्रेस की ओर से सम्मिलित हुए, तब उन्होंने 'अल्प-मत-समिति' की बैठक में भाषण करते हुए यह कहा था कि—

"हम अपने रजिस्टर या मनुष्य-गणना-रिपोर्ट में दलितों को पृथक् वर्ग के रूप में रखना नहीं चाहते।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे हिन्दू-समाज में विभाजन पैदा हो जायगा, जिसे मैं सन्तोषजनक नहीं समझता। इसलिए मैं पूरे ज़ोर के साथ यह कहना चाहता हूँ कि इसका विरोध करने के लिए अगर मैं अकेला ही व्यक्ति रहा, तो मैं इसका विरोध अपने जीवन का बलिदान करके भी करूँगा।"

जब 'साम्प्रदायिक निर्णय' भारत में प्रकाशित हुआ तो महात्मा गांधीजी यरवदा-जेल में थे। उन्होंने जेल से एक पत्र प्रधान मंत्री के लिए इँगलैंड भेजा, जिसमें यह सूचना भी दी गई कि वह २० सितम्बर, १९३२ को दोपहर से 'दलितवर्ग' को पृथक् निर्वाचन दिये जाने का विरोध आमरण व्रत से करेंगे। २० सितम्बर को जेल में व्रत रक्खा। सारे देश ही नहीं, इँगलैंड की दृष्टि यरवदा की ओर लग गई। देश में एक विशेष चिन्ता और व्याकुलता व्याप्त हो गई। हिन्दू-नेता बम्बई में एकत्रित होने लगे। अन्त में 'दलितवर्ग' के नेताओं और हिन्दू नेताओं के सत्प्रयत्न से महात्मा गांधी की इच्छा पूरी हुई। 'पूना-पैक्ट' सबने स्वीकार किया।

'दलितवर्ग' के प्रतिनिधित्व का तुलनात्मक अध्ययन

प्रान्त	स्थान अल्पसंख्यक जातियों के पैक्ट के अनुसार	स्थान साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार	स्थान पूना-पैक्ट के अनुसार
मद्रास	४०	१८	३०
बम्बई	२८	१०	१५
पंजाब	१०	....	८
बिहार-उड़ीसा	१४	७	१८
मध्य-प्रान्त	२०	१०	२०
आसाम	१३	४	७
बंगाल	३५	१०	३०
संयुक्तप्रान्त	२०	१२	२०
कुल	१८०	७१	१४८

इस प्रकार 'दलितवर्ग' को अल्प-मत-पैक्ट के अनुसार १८०, साम्प्रदायिक निर्णय के अनुसार ७१, और पूना-पैक्ट के अनुसार १४८ स्थान प्रान्तीय असेम्बलियों में दिये गये। नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत बिहार और उड़ीसा के अलग-अलग हो जाने से ३ स्थान अधिक मिल गये हैं। इस प्रकार 'दलितवर्ग' को कुल १५१ सीटें प्राप्त हैं *।

पूना-पैक्ट ने 'दलितवर्ग' के लिए केवल सीटें ही नहीं बढ़ाई हैं; प्रत्युत उनके लिए पृथक् निर्वाचन की जगह संयुक्त निर्वाचन को स्वीकार किया है। उनके लिए द्वैध चुनाव (Double Election) का विधान बनाया गया है।

दलितवर्ग के सब मतदाता सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र के मतदाता होंगे और उन सबका एक निर्वाचन-क्षेत्र होगा। दलितवर्ग के मतदाता अपने निर्वाचन-क्षेत्र से चार उम्मीदवारों को चुनेंगे। दलितवर्ग के लिए प्रत्येक सुरक्षित स्थान (Reserved seat) के लिए ४ उम्मीदवारों का 'पेनल' चुना जायगा। यह चार व्यक्ति संयुक्त चुनाव में खड़े हो सकेंगे। सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र (General Constituency) में जिस दलितवर्गीय उम्मीदवार को सबसे अधिक मत प्राप्त होंगे, वही चुन लिया जायगा। यह पैक्ट १० वर्ष तक क़ायम रहेगा। यदि इससे पूर्व हिन्दू और दलितवर्ग मिलकर कोई और निर्णय कर लेंगे, तो यह पैक्ट ख़त्म हो जायगा।

'पूना-पैक्ट' के सम्बंध में काफ़ी वाद-विवाद और बहस हुई और डा० अम्बेदकर ने इसमें परिवर्तन कराने के लिए भी महात्माजी से परामर्श किया। परन्तु पैक्ट आज तक क़ायम है। विगत वर्ष (सन् १९३७) में समस्त ब्रिटिश-भारत में जो प्रान्तीय चुनाव हुए थे, वे इस पैक्ट के अनुसार ही हुए हैं। इस पैक्ट के दो मूल उद्देश हैं;—यह सबने स्वीकार किया है। प्रथम यह कि 'दलितवर्ग' के हितों का संरक्षण हो और द्वितीय यह कि हिन्दू-समाज में विभाजन न हो जाय। इसलिए

* अपर-चेम्बरों में दलितवर्ग के प्रतिनिधि नामज़दगी से नियुक्त किये जायँगे। प्रत्येक अपर-चेम्बर में कितने सदस्य होंगे, इसका उल्लेख नहीं है। परन्तु इस समय १-१ प्रतिनिधि लिया गया है। संघीय असेम्बली में १९ प्रतिनिधि और राज्य-परिषद् में ६ सदस्य होंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस पैक्ट का उद्देश यह था कि दलितवर्ग 'प्राथमिक चुनाव' (Primary Election) द्वारा अपनी पसंद के चार उम्मीदवार चुन सकें और अन्तिम संयुक्त चुनाव (Final Joint Election) में 'दलितवर्ग' और 'हिन्दू-जाति' के मत-दाता स्वतंत्रता से दोनों वर्गों के उम्मीदवारों को राय दे सकें।

प्रान्तीय चुनाव और पूना-पैक्ट

विगत प्रान्तीय चुनावों में पूना-पैक्ट की जो परीक्षा हुई है, वह केवलमात्र सैद्धांतिक परीक्षा नहीं है, प्रत्युत इस पैक्ट का क्रियात्मक परीक्षण है। इस पैक्ट के अनेक दोष, जो उसके निर्माण के समय किसी व्यक्ति को ज्ञात नहीं थे, वे प्रकट हो गये। इस पैक्ट के कुछ मास पश्चात् डा० अम्बेदकर महात्मा गांधी से मिले और उनको यह सुझाया कि दो चुनावों की जगह एक संयुक्त चुनाव (Joint Election) कर दिया जाय और 'हरिजन' उम्मीदवार के लिए 'हरिजन' वोटों की न्यून से न्यून संख्या निर्धारित कर दी जाय। अर्थात् हरिजन उम्मीदवार की सफलता के लिए यह आवश्यक हो कि वह निर्धारित संख्या के अनुसार 'हरिजन' वोट प्राप्त करे।

डा० अम्बेदकर की इस योजना को महात्मा गांधी ने पसन्द नहीं किया। इस योजना के विरुद्ध महात्मा गांधीजी का सबसे बड़ा आक्षेप यह था कि जो हरिजन उम्मीदवार केवल हरिजनों की नियत संख्या में वोट प्राप्त करके सफलता प्राप्त कर सकता है, उसे हिन्दू वोटरों के वोट की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। इस प्रकार यह संयुक्त चुनाव ही नहीं रहेगा।

इस लेख में महात्मा गांधीजी ने प्राथमिक चुनाव के सम्बन्ध में यह लिखा कि—

".....The panel system amply provides for the selection in the first instance of the right kind of Harijan candidate—right, I mean, from the purely Harijan point of view.

"But the alternative seems to be fraught with grave danger. As the very first choice will be general, unscrupulous political parties will put their own Harijan candidates and create division among the Harijan ranks with the greatest ease and demoralise the candidates and the Harijan electorate."

"So far as I can see and so long as the system of reservation prevails, the panel system is the best adapted for securing the selection, only of those candidates who in the Harijan opinion are best fitted to serve their special interests." *

"प्राथमिक चुनाव समुचित प्रकार के हरिजन उम्मीदवार के चुनाव (Selection) की यथेष्ट व्यवस्था करता है—समुचित से मेरा मतलब विशुद्ध हरिजन दृष्टिकोण से समुचित है।.....

"किन्तु इसके स्थान में जो योजना (डा० अम्बेदकर ने बतलाई है) प्रस्तावित की है वह भयंकर ख़तरे से पूर्ण प्रतीत होती है। प्राथमिक चुनाव के न होने और केवल एक ही सामान्य संयुक्त निर्वाचन होने से राजनीतिक दल अपने हरिजन उम्मीदवार खड़े करेंगे और सहज ही हरिजन-जनता में भेद-भाव पैदा कर देंगे तथा हरिजन उम्मीदवारों एवं हरिजन-निर्वाचन-मण्डल को पतनोन्मुख बना देंगे। जहाँ तक मैं विचारता हूँ, जब तक सुरक्षित स्थानों की प्रणाली जारी रहेगी, तब तक उन उम्मीदवारों के चुनाव (Selection) के लिए 'पेनल' प्रणाली सर्वोत्तम है, जो हरिजन-लोकमत के अनुसार उनके विशेष हितों की रक्षा के लिए सबसे अधिक योग्य है।"

'पूना-पैक्ट' में, जैसा कि महात्मा गांधी ने उपर्युक्त शब्दों द्वारा स्वीकार किया है, प्राथमिक चुनाव (Primary election) या पेनल-प्रणाली को स्थान इसलिए दिया गया था कि प्रथम चुनाव में 'हरिजन' स्वयं अपनी पसन्द के उम्मीदवारों को चुन सकें या खड़े कर सकें। हरिजनों के अतिरिक्त अन्य

* Vide Mahatma Gandhi's article on "The Yarwada Pact" in The Harijan, 29-4-1933.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राजनीतिक दल उनके प्राथमिक चुनावों में हस्तक्षेप न करें—अथवा वे अपने-अपने दल के 'दलित' उम्मीदवार खड़े न करें।

विगत चुनाव-संग्राम ने पैक्ट के इस ध्येय को विफल कर दिया। कांग्रेस-दल तथा अन्य राजनीतिक दलों ने पैक्ट के प्रतिकूल प्राथमिक चुनाव से पूर्व ही अपने-अपने 'दलित' उम्मीदवार खड़े कर दिये। उन्हें हर प्रकार की सहायता और सुयोग दिये गये। प्राथमिक चुनाव में कांग्रेस के नेताओं ने 'हरिजन' मतदाताओं में कांग्रेसी हरिजन उम्मीदवारों के लिए कन्वेसिंग किया और हर प्रकार से अपना प्रभाव डालने की चेष्टा की। कांग्रेस-दल के इस हस्तक्षेप का विरोध कई दलितवर्ग के नेताओं ने किया, परन्तु चुनाव के तूफ़ान में इस विरोध का कुछ भी असर न पड़ा। कांग्रेस-दल तथा अन्य राजनीतिक दलों ने जो 'दलित उम्मीदवार' खड़े किये, वे स्पष्टतः, उनके विशेष हितों की रक्षा की दृष्टि से खड़े नहीं किये गये थे, प्रत्युत वे अपने-अपने दलों की संख्या और शक्ति में वृद्धि करने के उद्देश से खड़े किये गये। दलित-समुदाय की ओर से कांग्रेस-दल ने जो उम्मीदवार खड़े किये, वे ऐसे उम्मीदवार नहीं थे, जिन्हें महात्मा गांधी के शब्दों में 'हरिजन-लोकमत' ने पसन्द किया हो या जो उनके विशेष हितों की रक्षा के लिए सबसे योग्य व्यक्ति हों। एक महत्वपूर्ण तथ्य भी विचारणीय है—

विगत प्रान्तीय चुनावों से पूर्व 'दलितवर्ग' की जनता की नीति वही थी, जो भारत में पूर्वावस्था में कांग्रेस और आज लिबरल-पार्टी की है। अर्थात् वह सरकार से सहयोग करके अपने अधिकार प्राप्त करना चाहती थी और आज भी चाहती है। परन्तु इन चुनावों में कांग्रेस ने अपने उम्मीदवार इस समुदाय में से खड़े करके स्पष्ट रूप से फूट और भेद-भाव का बीजारोप कर दिया।

कांग्रेस-दल ने इस समुदाय में से ऐसे उम्मीदवारों को खड़ा करके अपनी शक्ति के आधार पर चुनवा दिया, जो सर्वथा व्यवस्थापिका की सदस्यता तो क्या, एक 'टाउनएरिया कमेटी' की मेंबरी के योग्य भी नहीं। ऐसे-ऐसे उम्मीदवारों को खड़ा किया गया, जिनका अपने समुदाय में कोई प्रभाव नहीं, जिन्होंने अपने जाति-हित के लिए कोई कार्य अब तक नहीं किया, अथवा जिन्होंने राजनीति की वर्णमाला भी नहीं सीखी। इस नीति का यह प्रभाव हुआ है कि अधिकार-वंचित हिन्दुओं को पूना-पैक्ट ने जो कुछ दिया, वह उनसे बुरी तरह वापस ले लिया गया। आज की व्यवस्थापिका-असेम्बलियों में उनका सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं है। असेम्बलियों के 'हरिजन' कांग्रेसी सदस्य अपने समुदाय के विशेष हितों की रक्षा करने में असमर्थ हैं। न वे अपने निर्वाचन-क्षेत्रों के प्रति ही उत्तरदायी हैं। उनका उत्तरदायित्व तो कांग्रेस के प्रति है।

अधिकार-वंचित हिन्दुओं का भविष्य

इस समुदाय की आज जैसी धार्मिक, सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति है, उससे यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि उनकी आर्थिक दशा भी अत्यन्त शोचनीय है। इस समुदाय में शिक्षा का विशेष अभाव तो है ही; तिस पर भी जो शिक्षितवर्ग है, उसे सरकारी पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता। यद्यपि शासन-विधान अथवा देश का कोई क़ानून सम्राट् के अधीन सरकारी पदों पर नियुक्ति के सम्बंध में किसी जाति-भेद या वर्ण तथा धर्म को स्वीकार नहीं करता। परन्तु फिर भी सरकार का इस ओर उपेक्षा का भाव रहा है। इससे जहाँ वे इस नागरिक अधिकार से वंचित रहते हैं, वहाँ उनमें निराशा अपने Inferiority Complex की भावना भी पैदा हो जाती है। यद्यपि आज की और अब से २० वर्ष पहले की स्थिति में बहुत अन्तर हो गया है; परिवर्तन भी अनेक हो गये हैं; परन्तु अभी इस समुदाय के उज्ज्वल भविष्य की कल्पना वर्त्तमान स्थिति के आधार पर नहीं की जा सकती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

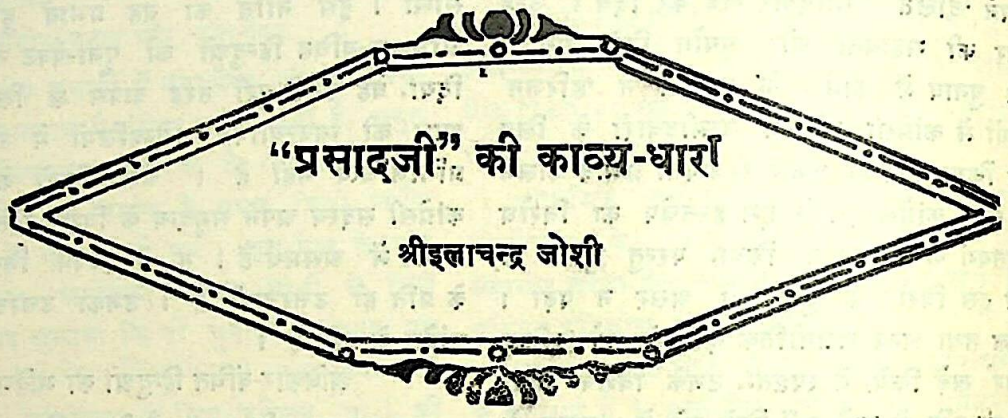

"प्रसादजी" की काव्य-धारा

श्रीइलाचन्द्र जोशी

हिन्दी-काव्य-रस की जो रुद्ध धारा एक संकीर्ण आवर्त के भीतर आबद्ध होकर उसके चारों ओर घूर्णित होती रहती थी, और उस घोर अंधकूप के बाहर निकलने का कोई पथ न पाकर अपनी दुर्गंध से अपने-आप भाराक्रांत हो रही थी, प्रसादजी ने अपनी प्रबल प्रतिभा के प्रताप से उसका अवरोध विदीर्ण करके उसके मुक्त स्रोत को शत-शत धाराओं में उच्छ्वसित होकर एक विशाल झरने की तरह अप्रतिहत प्रवेग से वह निकलने का मार्ग सुगम कर दिया। जिस प्रतिभा ने युग-युगव्यापी जड़ता से तमसाच्छन्न हमारे साहित्य-जगत् के आकाश में नवीन प्रकाश तथा उन्मुक्तोल्लास का संचार कर दिया, वह कैसी असाधारण रही होगी, इसका अनुमान भावुकजन भली भाँति कर सकते हैं।

बचपन में 'कविता-कुसुम-माला' में संगृहीत कविताओं में निम्न कोटि की पंक्तियाँ पढ़ने को मिली थीं—

"ब्रह्मन्! तजें पुस्तक-प्रेम आप
देता तुम्हें हूँ यह राज्य सारा"—
मुझसे कहे यों यदि चक्रवर्ती,
"ऐसा न राजन्! कहिए", कहूँ मैं।
× × ×
अहा, ग्राम्य-जीवन भी क्या है!
क्यों न इसे सबका मन चाहै!
× × ×
क्यों पाप-पुण्य पचड़ा जग-बीच छाया?

इस श्रेणी की कविताओं के विचित्र कुसुमों का आघ्राण करते-करते जब सिर में दर्द होने लगा, तो एक दिन 'इन्दु' की एक फ़ाइल कहीं से मिल गई। उसके पृष्ठों को उलटते हुए अकस्मात् एक कविता की निम्न पंक्तियों पर आँखें गड़ गईं—

आकाश श्री-सम्पन्न था,
नव नीरदों से था घिरा।
संध्या मनोहर खेलती थी,
नील पट तम का गिरा॥
यह चंचला चपला दिखाती—
थी कभी अपनी कला।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्यों वीर-वारिद की प्रभामय
रत्नवाली मेखला ॥
हर ओर हरियाली विटपि-डाली
कुसुम से पूर्ण है।
मकरन्दमय, ज्यों कामिनी के
नेत्र मद से घूर्ण हैं॥
यह शैलमाला नेत्रपथ के
सामने शोभा भली।
निर्जन प्रशान्त सुशैल-पथ में
गिरी कुसुमों की कली॥
इत्यादि

इन पंक्तियों के आविष्कार से ऐसा अनुभव होने लगा, जैसे तत्कालीन हिन्दीकविता के निश्चल जगद्दल पाषाण की जड़ता को भेदकर गद्गद-प्रवेग से निर्झर-स्रोत फूट निकला है और उसका अविरत-प्रवाह हृदय के प्रान्त-प्रान्त को अपनी स्निग्ध सरसता से अभि-सिञ्चित कर रहा है।

यह कविता पीछे प्रसादजी की अन्यान्य कविताओं के साथ 'कानन-कुसुम'-नामक संग्रह में सङ्कलित हो गई थी। 'कानन-कुसुम' की कविताओं में छायावाद का आभास उसी प्रकार स्पष्ट दिखाई देता है, जिस प्रकार प्रयाग के सङ्गम में गङ्गाजल के ऊपर यमुना की नीली धार स्पष्ट दिखाई देती है। इस संग्रह ने छायावाद के आगमन की सर्वप्रथम सूचना पाठकों को दी। उदाहरण के लिए इस संग्रह की एक और कविता "प्रथम प्रभात" शीर्षक हम उद्धृत करते हैं, जिससे हमारा वक्तव्य और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा—

मनोवृत्तियाँ खग-कुल-सी थीं सो रही,
अन्तःकरण नवीन मनोहर नीड़ में।
नील गगन-सा शान्त हृदय भी हो रहा,
बाह्य आन्तरिक प्रकृति सभी सोती रहीं।
स्पंदनहीन नवीन मुकुल-मन तुष्ट था
अपने ही प्रच्छन्न विमल मकरन्द से!
अहा! अचानक किस मलयानिल ने तभी,
(फूलों के सौरभ से पूरा लदा हुआ)—
आते ही कर स्पर्श गुदगुदाया हमें,
खुली आँख, आनन्द दृश्य दिखला दिया।
मनोवेग मधुकर-सा फिर तो गूँज के
मधुर-मधुर स्वर्गीय गान गाने लगा॥
वर्षा होने लगी कुसुम-मकरन्द की,
प्राण-पपीहा बोल उठा आनन्द में।
कैसी छवि ने बाल-अरुण-सी प्रकट हो
शून्य हृदय को नवल-राग-रंजित किया।

हिन्दीकाव्य भावनाहीन तुकबन्दी के कठोर कारागार में बन्दी-अवस्था में पड़ा-पड़ा कराह रहा था। प्रसादजी ने उसकी शृङ्खलाओं को तोड़कर उसे अपने मन के भव्य प्रासाद से संलग्न रम्य हृदयोद्यान में लाकर, मुक्त वातावरण में विचरने को छोड़ दिया, जहाँ वह चिदानन्दमय रस के मानस में डूबता-उतराता हुआ मधुर मोह-माया की मग्नता का अनुभव करने लगा। ऊपर उद्धृत की गई 'प्रथम प्रभात' शीर्षक कविता प्रायः २५ वर्ष पहले लिखी गई थी; अर्थात् वह उस युग में लिखी गई थी, जब हिन्दी की तुकबन्दी का युग एक ओर पराकाष्ठा तक पहुँच चुका था और दूसरी ओर उसके नीचे से मिट्टी खिसकने लगी थी। तुकबन्दी की उस सुदृढ़ नींव को ढहाने में प्रसादजी का प्रमुख हाथ रहा है।

'कानन-कुसुम' में छायावादी कविता का जो स्रोत फूट निकला था, वह आगे बढ़कर निर्झर के राशि-राशि जल-प्रपात की तरह "झरना" के रूप में बहने लगा। "झरना" शीर्षक कविता-संग्रह में विशुद्ध छायावाद का रस हिन्दीसाहित्य में प्रथम बार परिपूर्ण रूप से छलकता हुआ दिखाई दिया। झरने पर यदि तुकबन्दी-युग का कोई 'कवि' कविता करने बैठता तो लिखता—

झरने! तेरा कल-कल-नाद,
मन को पहुँचाता आह्लाद।
तेरा स्वच्छ सुशीतल नीर,
मन को करता हर्ष अधीर॥
अहो! शैल के पुत्र महान्!
मुनिगण तुझमें करते स्नान।
कहाँ तुम्हारा तीर्थ-स्थान?
किस सरिता का तुमको ध्यान?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धन्य-धन्य हो तुम निर्झर ।
बहते हो नित झर-झर-झर ।

पर प्रसादजी ने उसी युग में झरने पर जो कविता की, वह इस प्रकार है—

मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी ।
न है उत्पात, छटा है छहरी ॥
मनोहर झरना ;
कठिन गिरि कहाँ विदारित करना ।
बात कुछ छिपी हुई है गहरी ;
मधुर है स्रोत, मधुर है लहरी ।

कल्पनातीत काल की घटना ।
हृदय को लगी अचानक रटना ॥
देखकर झरना ;
प्रथम वर्षा से इसका भरना ।
स्मरण हो रहा शैल का कटना ;
कल्पनातीत काल की घटना ।
कर गई प्लावित तन-मन सारा ।
एक दिन तव अपांग की धारा ॥
हृदय से झरना—

बह चला, जैसे दृगजल ढरना ।
प्रणय-वन्या ने किया पसारा ।
कर गई प्लावित तन-मन सारा ॥

प्रेम की पवित्र परछाईं में ।
लालसा-हरित विटपि झाईं में ॥
बह चला झरना,
तापमय जीवन शीतल करना ।
सत्य यह तेरी सुघराई में ।
प्रेम की पवित्र परछाईं में ॥

प्रसादजी का यह झरना हृदय के अन्तस्तल की गिरिगुहाओं को विदीर्ण करता हुआ प्रेम-रस के प्लावन से विह्वल होकर बह रहा है। यह पार्थिव जगत् का वह झरना नहीं है, "जिसमें करते मुनिगण स्नान!" व्यक्ति की अन्तःप्रकृति के भावों के दोलन, उद्वेलन, संघूर्णन तथा विस्फूर्जन का प्रदर्शन हम हिन्दी-कविता में पहलेपहल प्रसादजी की कविता में ही पाते हैं। वस्तुजगत् के झरने को अन्तर्जगत् के प्रेमोद्वेलन का रूपक बनाकर उसके कल-कल-क्रंदन को भाव-तरंगों के उच्छल उद्वेग में परिणत कर देने का अर्थ है पाठ्य-पुस्तकों की तुकबंदी की जड़ता को चेतनोत्सारिणी कविता का रूप दे देना। छायावादी कविता की विजय इसी बात पर है। प्रसादजी की प्रतिभा का विशेषत्व भी इसी में है।

प्रसादजी के इस झरने से रवीन्द्रनाथ के 'निर्झर' का तुलना की जा सकती है। रवीन्द्रनाथ का मन-रूपी निर्झर अपने अन्तर की अंधगुहा के तमसाच्छन्न कारागार में आबद्ध रहने के बाद जब अकस्मात् एक दिन प्रबल वेग से उमड़ता हुआ मुक्त आलोक में प्रवाहित होने लगता है तो अपने विजयोल्लास को इस प्रकार के स्वच्छन्द छन्द की गति में व्यक्त करता है—

आजि ए प्रभाते रविर कर
केमने पशिलो प्राणेर पर,
केमने पशिलो गुहार आँधारे
प्रभात पाखीर गान !
जागिया उठेछे प्राण
ओरे उथलि उठेछे वारि,
ओरे प्राणेर वासना, प्राणेर आवेग
रुधिया राखिते नारि !
थरथर करि काँपिछे भूधर,
शिला राशि-राशि पड़िछे खसे,
फूलिया-फूलिया फेनिल सलिल
गरजि उठिछे दारुण रोषे ।
भाङ्रे हृदय भाङ्रे बाँधन,
साधरे आजि के प्राणेर साधन,
लहरीर परे लहरी तूलिया
आघातेर परे आघात कर ।
मातिया जखन उठेछे पराण
किसेर आँधार, किसेर पाषाण,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उथलि जखन उठेछे वासना
जगते तखन किसेर डर !
आमि ढालिबो करुणा-धारा,
आमि भाङ्बिो पाषाण-कारा,
आमि जगत् प्लाविया वेड़ाबो गाहिया
आकुल पागल पारा ।
रविर किरणे हासि छड़ाइया दिबो रे पराण ढालि,
हेसे खलखल, गेये कलकल ताले-ताले दिबो तालि ।

अर्थात्—"आज के इस प्रभात में रवि की किरणें मेरे हृदय में कैसे प्रवेश कर गईं! मेरे भीतर की अंधकार गुहा में प्रभात-विहग के गान की तान कैसे आ पहुँची। आज मेरे प्राण जाग पड़े हैं। अरे, मेरे हृदय में जलराशि उमड़ पड़ी है; अब मैं अपने हृदय की वासना और हृदय के आवेग को रोक नहीं सकता।

"भूधर थरथर करके काँप रहा है, ढेर के ढेर शिलाखंड खिसकते जा रहे हैं; फेनिल जल फूल-फूल-कर दारुण रोष से गरज उठता है।

"हे हृदय! आज बन्धन को छिन्न करके अपने हृदय की अभिलाषा पूरी कर ले। लहर पर लहर उठाकर आघात पर आघात करता चला जा। जब प्राण उन्मत्त हो उठे हैं, तो कहाँ का अन्धकार और कैसा पाषाण! जब वासना उद्वेलित हो उठी है तो संसार में अब किसका भय है!

"मैं करुणा-धारा बहाऊँगा। मैं पाषाण-कारा तोड़ डालूँगा। मैं समस्त जगत् को प्लावित करते हुए आकुल होकर पागलों की तरह गाता चला जाऊँगा। सूर्य की किरणों में अपना हास बिखेरकर अपने प्राणों का रस ढाल दूँगा। खिलखिलाकर हँसूँगा, कलकल शब्द से गाऊँगा, और ताल-ताल में ताली बजाऊँगा।"

रवीन्द्रनाथ के इस 'निर्झर' में और प्रसादजी के 'झरने' में साम्य यह है कि दोनों भाव-प्रधान हैं। दोनों मानस-निर्झर हैं, न कि किसी वास्तविक गिरि-प्रान्त से सम्बन्ध रखनेवाले पार्थिव निर्झर। अन्तर केवल यही है कि रवीन्द्रनाथ के निर्झर की धारा अधिक प्रखर तथा वेगवती है और प्रसादजी का झरना करुण तथा क्लान्त गति से बह चला है। मानव-मन को झरने के रूपक में बाँधकर दोनों की गतिशीलता तथा उत्ताल तरंगाघात की समता का प्रदर्शन मनोहर छन्द-संगीत तथा ध्वन्यात्मक शब्द-प्रवाह द्वारा अत्यन्त सम्यक् रूप से करना छायावाद के किसी आचार्य का ही काम है। प्रसादजी इस कला के विशेषज्ञ थे।

तथापि 'झरना' में हम प्रसादजी को उनके वास्तविक रूप में नहीं पाते। इस संग्रह की अधिकांश कविताओं में हम रवीन्द्रनाथ की 'गीतांजलि' की छाप पाते हैं और वह भी कुछ विशेष सुन्दर रूप में नहीं। उदाहरण के लिए विभिन्न कविताओं की कुछ पंक्तियाँ नीचे उद्धृत की जाती हैं—

मन्द पवन बह रही अँधेरी रात में ।
आज अकेले निर्जन गृह में क्लांत हो—
स्थित हूँ, प्रत्याशा में मैं तो प्राणधन !
शिथिल विपंची मिली विरह-संगीत से
बजने लगी उदास पहाड़ी रागिनी ।
कहते हो—"उत्कंठा तेरी कपट है ।"
नहीं, नहीं, उस धुँधले तारे को अभी,—
आधी खुली हुई खिड़की की राह से
जीवन-धन मैं देख रहा हूँ सत्य ही ।

× × ×

स्वप्नलोक में आज जागरण के समय
प्रत्याशा की उत्कंठा में पूर्ण था
हृदय हमारा, फूल रहा था कुसुम-सा ।
देर तुम्हारे आने में थी, इसलिए
कलियों की माला विरचित की थी कि, हाँ
जब तक तुम आओगे ये खिल जायँगी ।
आँख खोल देखा तो चन्द्रालोक से
रंजित कोमल बादल नभ में छा गये,
जिस पर पवन-सहारे तुम हो आ रहे ।
हाय कली थी एक हृदय के पास ही
माला में वह गड़ने लगी, न खिल सकी ।

× × ×

जीवन - नाव अँधेरे अंधड़ में चली ।
अद्भुत परिवर्तन यह कैसा हो गया ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्मल जल पर सुधा-भरी है चन्द्रिका,
बिछल पड़ी मेरी छोटी-सी नाव भी।
वंशी की स्वर-लहरी नीरव-व्योम में
गूँज रही है परिमल-पूरित पवन भी—
खेल रहा है, जल-लहरी के संग में।
नौका मेरी द्विगुणित गति से चल पड़ी।
किन्तु किसी के मुख की छवि-किरणें घनी
रजत-रज्जु-सी लिपटी नौका से वहीं,
बीच नदी में नाव किनारे लग गई।
उस मोहन-मुख का दर्शन होने लगा।

इस प्रकार की कविताओं में 'गीताञ्जलि' का प्रभाव स्पष्ट लक्षित है, पर वे न तो 'गीताञ्जलि' की कविताओं की तरह मार्मिक हो पाई हैं, न वैसी प्राञ्जल। क्लिष्ट कल्पना के कारण उनकी अस्पष्टता भी जटिल हो गई है।

पर जिन कविताओं में रवीन्द्रनाथ का प्रभाव नहीं है, वे अपने सहज-सौरभ के विकास से स्वयं आमोदित हैं। उदाहरण के लिए—

शून्य हृदय में प्रेम-जलद-माला
कब फिर घिर आवेगी ?
वर्षा इन आँखों से होगी,
कब हरियाली छावेगी ?
रिक्त हो रही मधु से,
सौरभ सूख रहा है आतप से,
सुमन-कली खिलकर कब
अपनी पंखड़ियाँ बिखरावेगी ?
लम्बी विश्व-कथा में
सुखनिद्रा-समान इन आँखों में
सरस मधुर छवि शान्त तुम्हारी
कब आकर बस जावेगी ?

इन पंक्तियों में कृत्रिम काव्य-कल्पना की क्रीड़ा नहीं, बल्कि अन्तर के सच्चे भावों का मर्मोद्गार व्यक्त होता है।

'झरना' की फेन-तरङ्गित धारा को हम आगे जाकर 'आँसू' की पावस-सरिता के रूप में गद्गद होकर उमड़ते हुए पाते हैं। 'आँसू' की गीतिमय वेदना में प्रसादजी के हृदय की विह्वल भावुकता उच्छ्वल कल-क्रन्दन के साथ अभिनव रूप में व्यक्त हुई है। निर्झर जब उत्तुङ्ग गिरि-शृङ्ग से नीचे घाटी पर उतरता है तो वह जिस मन्थर, तथापि अधीर कलरोल से बहने लगता है, वह 'आँसू' के प्रारम्भिक पदों से ही ध्वनित हो उठा है—

इस करुणा-कलित हृदय में
अब विकल रागिनी बजती;
क्यों हाहाकार - स्वरों में
वेदना असीम गरजती ?

मानस - सागर के तट पर
क्यों लोल-लहर की घातें ?
कलकल - ध्वनि से हैं कहतीं
कुछ विस्मृत बीती बातें ?

आती है शून्य क्षितिज से
क्यों लौट प्रतिध्वनि मेरी ?
टकराती बिलखाती - सी
पगली - सी देती फेरी ?

क्यों व्यथित व्योम-गंगा-सी
छिटकाकर दोनों छोरें;
चेतना - तरंगिनि मेरी
लेती है मृदुल हिलोरें !

प्रसादजी ने अपनी विकल वेदना से अभिसिंचित प्यार की विस्मृत बातों को पुनः स्मृति में लाते हुए जो करुणा-कलित गान गाया है, पूर्वोक्त पदों द्वारा उसकी प्रस्तावना में उसके गद्गद भाव की क्रन्दनोच्छ्वल फेनिलता से अत्यन्त सुन्दरता छलक उठी है। इस तरल उच्छ्वास की प्रेरणा कवि को जिस अव्यक्त व्यक्ति से मिली है, उसके सम्बन्ध में वह कहता है—

मैं अपलक इन नयनों से
निरखा करता उस छवि को;
प्रतिभा डाली भर लाता
कर देता दान सुकवि को।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निर्झर-सा झिर-झिर करता
माधवी-कुञ्ज-छाया में ;
चेतना बही जाती थी
हो मन्त्र-मुग्ध-माया में ।

शशि-मुख पर घूँघट डाले
अन्तर में दीप जलाये ;
जीवन की गोधूली में
कौतूहल से तुम आये !

घन में सुन्दर बिजली-सी,
बिजली में चपल चमक-सी,
आँखों में काली पुतली
पुतली में श्याम झलक-सी ।

माना कि रूप-सीमा है
सुन्दर ! तव चिर-यौवन में ;
पर समा गये थे, मेरे
मन के निस्सीम गगन में ।

इन पदों में कवि ने अपने चित्त-गगन के नीलम-निभ असीम प्याले में अपने प्रिय पात्र के प्रति उमड़े हुए स्नेह-रस को लबालब भरकर उसे प्याले के बाहर भी छलका दिया है । इस स्पर्शनातीत सौन्दर्य-सुधा का पान करने तथा अशरीरी प्रेम की पुलक का परिपूर्ण अनुभव करने के बाद वह सहसा एक दिन अपने चिर-पूरित प्याले को रिक्त पाता है । इस रिक्तता-जनित सूनेपन की वेदना 'आँसू' के कण-कण में समा गई है—

लहरों में प्यास भरी है
है भँवर पात्र से ख़ाली ;
मानस का सब रस पीकर
लुढ़का दी तुमने प्याली ।

व्याकुल उस मधु-सौरभ से
मलयानिल धीरे-धीरे ;
निःश्वास छोड़ जाता है
अब विरह-तरंगिनि नीरे ।

चुम्बन-अंकित प्राची का
पीला कपोल दिखलाता ;
मैं कोरी आँख निरखता
पथ, प्रात समय सो जाता ।

शीतल समीर आता है
कर पावन परस तुम्हारा ;
मैं सिहर उठा करता हूँ
बरसाकर आँसू-धारा ।

यह अरण्यरोदन केवल इसलिए नहीं है कि प्रेमरस से भरी जीवन की प्याली ख़ाली हो गई । सबसे अधिक दुःख कवि को इस बात का है कि काल का क्रूर चक्र मानस-सागर के तट पर अभिनव तथा अलौकिक रस-रङ्ग में निमग्न प्राणों को अकूल समुद्र में बहाकर अनन्त शून्यता में लाकर छोड़ गया—

नाविक ! इस सूने तट पर
किन लहरों में खे लाया ;
इस बीहड़ बेला में क्या
अब तक था कोई आया ?

प्रत्यावर्तन के पथ में
पद-चिह्न न शेष रहा है ;
डूबा है हृदय मरुस्थल
आँसू-नद उमड़ रहा है ।

अवकाश शून्य फैला है
है शक्ति न और सहारा ;
अपदार्थ तिरूँगा मैं क्या,
हो भी कुछ कूल किनारा !

अज्ञात असीम सागर की विक्षुब्ध लोल-लहरियों के उत्ताल तरंगाभिघात में मनोनौका के टकरा जाने पर जो उद्दाम हाहाकार प्रसादजी के आँसू-भरे पदों में व्यक्त हुआ है, उसकी पुराध्वनि हम विख्यात फ्रेंच कवि लामार्तिन (Lamartine) की Le Lac (सरोवर) शीर्षक कविता में पाते हैं ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लामार्तिन चिर-विरह की भावना से विकल होकर लिखता है—

"हाय, समय ईर्ष्यापरायण है। हे अनन्त! हे काल के गहन तामसिक गर्त! तुम हमारे आनन्द के जिन क्षणों को निगल जाते हो, उन्हें लेकर तुम क्या करते हो? कहो, क्या तुम हमारे उन अभिनव पुलकों को नहीं फिराओगे, जिन्हें तुम हमसे चुरा ले जाते हो?

"हे सरोवर! हे स्तब्ध पाषाण! गहन अरण्य! हे भुवनमोहिनी, मायाविनी प्रकृतिदेवी के अनुचरो! कम-से-कम आज रात के लिए मेरे विगत आनन्द के दिनों की मधुर स्मृति को तो जाग्रत् रहने दो!

"हाय, यह मंजुल वायु, जो मन्द-मन्द प्रवाहित हो रही है, यह नरकुल जो आहें भर रहा है, यह मधुर-स्निग्ध सौरभ जो पवन में व्याप्त हो रहा है, जो कुछ भी मैं देख रहा हूँ, सुन रहा हूँ, निःश्वास द्वारा ग्रहण कर रहा हूँ, सो सब यही कहते हुए जान पड़ते हैं—"वे लोग प्यार कर चुके!"

प्यार कर चुके! अब वह प्यार कभी नहीं लौटेगा, क्योंकि—

निर्मोह काल के काले
पट पर कुछ अस्फुट लेखा;
सब लिखी पड़ी रह जाती
सुख-दुखमय जीवन-रेखा।
दुख-सुख में उठता-गिरता
संसार तिरोहित होगा;
मुड़कर कभी न देखेगा
किसका हित-अनाहत होगा।

इस अनन्त विश्व की चिर-संसरणशील लीला निर्मम काल के काले पट पर सुख-दुःखमय जीवन की चिह्नरेखा स्मृतिरूप में भले ही छोड़ जाय, पर जिस वास्तविकता को वह काल की गति के साथ ढो ले जाती है, वह फिर कभी नहीं लौटती। विस्मृति की चिर-निद्रा में उसका स्वप्न आ सकता है, पर वह स्वयं सजीव तथा सप्राण रूप में नहीं आ सकती। प्रसादजी के 'आँसू' में चिदानन्दमय मिलन के वास्तविक क्षणों को खोने की वेदना के साथ-साथ स्वप्न की सान्त्वना भी पाई जाती है; पर लामार्तिन की तरह उस सान्त्वना से कवि की अन्तरात्मा को स्वयं तोष नहीं होता। कारण, वास्तविकता वास्तविकता ही है और स्वप्न स्वप्न।

प्रसादजी की लहर उनके अतल सागर-समान "मानस की गहराई" से उठी है। मानस की यह गहराई कैसी है?—

ओ री मानस की गहराई!

तू सुप्त शान्त कितनी शीतल—
निर्वात मेघ ज्यों पूरित जल!
नवमुकुर नीलमणि फलक-अमल
ओ पारदर्शिका! चिर-चंचल—
यह विश्व बना है परछाँई!

तेरा विषाद द्रव तरल-तरल
मूर्छित न रहे ज्यों पिये गरल,
सुख-लहर उठा री सरल-सरल
लघु-लघु सुन्दर-सुन्दर अविरल।
तू हँस जीवन की सुघराई!

इस लघु, सुन्दर, अविरल, सरल लहर की धारा तरल विषाद-द्रव के मधुर सम्मिश्रण के साथ "लहर" की कविताओं में उमड़ चली है। प्रारम्भिक कविता में इस लहर का चित्रण किञ्चित् विशद रूप से किया गया है—

उठ-उठ री लघु-लघु लोल लहर!
करुणा की नव अँगराई-सी
मलयानिल की परछाँई-सी
इस सूखे तट पर छिटक छहर!

शीतल, कोमल चिर-कम्पन-सी,
दुर्ललित हठीले बचपन-सी,
तू लौट कहाँ जाती है री—
यह खेल खेल ले ठहर-ठहर!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उठ-उठ गिर-गिर फिर-फिर आती,
नर्तित पद-चिह्न बना जाती,
सिकता की रेखाएँ उभार—
भर जाती अपनी तरल सिहर!
तू भूल न री पंकज-वन में,
जीवन के इस सूनेपन में
ओ प्यार-पुलक से भरी दुलक!
आ चूम पुलिन के विरस अधर!

यह लहर कुछ दूसरे ही ढंग की है। इसकी अठखेलियों में इठलाने का वह भाव, वह नृत्योल्लास, वह वंकिम भङ्गिमा, वह चपल भङ्गिमा, वह मरोर, सौ-सौ छन्दों नवयौवन के विभ्रम से स्वच्छन्द थिरकने की वह ला नहीं पाई जाती, जो हम पन्तजी के 'पल्लव'वाले ीचि-विलास' में पाते हैं। इसमें पाया जाता है जीवन दीर्घ अनुभव के श्रम से श्रान्त पथिक के सूखे और ने विश्राम-तट पर "करुणा की नव अँगराई" के साथ घु-लघु लोल लहर के छहरने का भाव। पन्तजी के ीचि-विलास में जीवनोन्माद है और इसमें श्लथ करुणा ा अलस आवेदन। तथापि यह अपना निजी महत्त्व खती है। 'लहर' की सब कविताओं में आसन्न जीवन-ज्ञा का मधुर विषाद किसी रहस्यमयी गुरु-गम्भीर ाया से आवृत है। 'लहर'-युग के प्रसादजी को हम ीवन और मृत्यु के सङ्गमस्थल में पहुँचा हुआ पाते हैं, हाँ कवि विपुल श्यामल पृथ्वी के सीमित छोर पर खड़ा कर विशाल जलधि के नील अङ्क में निस्सीम व्योम-ल की प्रतिच्छाया देख रहा है और रवीन्द्रनाथ की रह कहता है—

ए नहे मुखर वन - मर्मर - गुञ्जित
ए जे अजागर गरजे सागर फूलिछे।

—"यह मुखर वन का मर्मर गुञ्जन नहीं है, यहाँ ी विराट् अजगर की फुफकार की तरह सागर का क्षुभित गर्जन सुनाई देता है।" जीवन-मरण की ा संगम-लीला के सम्बन्ध में कवि कहता है—

हे सागर-संगम अरुण-नील!
अतलान्त महागम्भीर जलधि—
तजकर अपनी यह नियत अवधि,
लहरों के भीषण हासों में
आकर खारे उच्छ्वासों में,
युग-युग की मधुर कामना के
बन्धन को देता जहाँ ढील।
हे सागर-संगम अरुण-नील!

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि केवल जीवन-लहरों के फेनिलोच्छ्वास से ही क्रीड़ा करना नहीं चाहता, वह उनके उद्गम की तह तक ग़ोता लगाने के लिए उत्सुक है। इस संगमतट से कवि जब इस पार की ओर निहार कर विगत जीवन के स्मृति मंथन से आलोड़ित हो उठता है तो एक विचित्र सृष्टि-सौंदर्य की झाँकी उसके मन में उदित हो जाती है, और उसकी कल्पना कहती है—

श्यामा-सृष्टि युवती थी
तारक खचित नील-पट परिधान था
अखिल अनन्त में
चमक रही थीं लालसा की दीप्त मणियाँ
ज्योतिर्मयी, हासमयी, विकल विलासमयी।
बहती थी धीरे-धीरे सरिता
उस मधु-यामिनी में
मदकल मलय पवन ले ले फूलों से
मधुर मरन्द-विन्दु उसमें मिलाता था।
चाँदनी के अंचल में
हरा-भरा पुलिन अलस नींद ले रहा।
सृष्टि के रहस्य-सी परखने को मुझको
तारकाएँ झाँकती थीं।
शत शतदलों की
मुद्रित मधुर गन्ध भीनी-भीनी रोम में
बहाती लावण्य-धारा

कवि की इस कलित कल्पना में तरलोल्लसित जीवन की कल्पनावसित छाया का प्रतिरूप स्पष्ट झलक रहा है। पर जब वह सामने उस पार की ओर देखता है तो एक अव्यक्त विषादमय हाहाकार से उसका हृदय हहरा उठता है। वह गाता है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चिर-तृषित कण्ठ से तृप्ति-विधुर
वह कौन अकिंचन अति आतुर
अत्यन्त तिरस्कृत अर्थ-सदृश
ध्वनि कम्पित करता बार-बार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।
सागर-लहरों-सा आलिंगन
निष्फल उठकर गिरता प्रतिदिन
जल-वैभव है सीमा-विहीन
बह रहा एक कन को निहार,
धीरे से वह उठता पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार।
पागल रे! वह मिलता है कब
उसको तो देते ही हैं सब
आँसू के कन-कन से गिनकर
यह विश्व लिये है ऋण-उधार,
तू क्यों फिर उठता है पुकार—
मुझको न मिला रे कभी प्यार?

अन्तिम छः पंक्तियों में जो अतल नैराश्य-भरी करुण वेदना निदारुण मार्मिकता के साथ व्यञ्जित हो उठी है, उसकी तुलना वसुधा के अञ्चल पर टकरानेवाली उन सागर-लहरियों के युगयुगान्तव्यापी कल-क्रन्दन से की जा सकती है, जो पृथ्वी से कभी अपनी प्रीति का प्रतिदान नहीं माँगतीं और अपने अविरल रोदन को ही अपने उद्देश्य की सार्थकता मानती हैं। मानवात्मा के निष्काम प्रेम की चिर-करुण कहानी की मर्म ध्वनि उक्त पदों में व्यक्त हुई है।

प्रसादजी के 'झरने' से 'आँसू' की बूँदें छहरकर जिस सागर-संगमोन्मुखी 'लहर' में मिलकर एकाकार हुई हैं, वे 'कामायनी' के महासागर में जाकर विलीन हो गई हैं। इस महासागर में केवल प्रसादजी की ही अन्य सब रचनाएँ नहीं समा गई हैं, बल्कि वर्तमान छायावादी युग के प्रायः सभी कवियों की काव्य-सरिता-धाराएँ इसकी अतलव्यापी गम्भीरता में आकर विलीन हो गई हैं। 'कामायनी' को पढ़ने के बाद प्रसादजी की अन्य सब पिछली रचनाएँ अत्यन्त हलकी, फीकी और ओछी जान पड़ने लगती हैं। ऐसा बोध होने लगता है, जैसे कवि जीवन और मृत्यु की सब शक्तियों के रहस्य से परिचित है और उन शक्तियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्राप्त करके उन्हें एक-एक करके तीर की तरह काव्य के अन्तर्जगत् के विशाल प्राङ्गण में फर्राटे के साथ फेंक रहा है। उसके एक-एक तीर के सम्बन्ध में हम उसी की भाषा में कह सकते हैं—

अस्तित्व चिरन्तन धनु से कब यह
छूट पड़ा है विषम तीर—
किस लक्ष्यभेद को शून्य चीर!

'कामायनी' के सम्बन्ध में मैंने 'भारत' में लिखा था कि उसकी रचना मानवात्मा की उस चिरन्तन पुकार को लेकर हुई है, जो मानव-मन में आदि काल से जड़ीभूत अन्धतमिस्र-पुञ्ज का विदारण कर जीवन के नव-नव वैचित्र्यपूर्ण आलोक-पथों से होते हुए अन्त में चिर-अमर आनन्द के अन्वेषण की आकांक्षा से व्याकुल है। इस दुर्दम आकांक्षा की चरितार्थता के प्रयत्न में उसे जिन संकट-संकुल गिरि-पथों, जिन जटिल-जाल-जड़ित गहन अरण्य-प्रान्तरों तथा घनघोर कुज्झटिकाच्छन्न कराल रात्रियों का सामना करना पड़ता है, उनके संघात की वेदना 'कामायनी' में बिजली के शब्द से कड़कती हुई बोल उठी है।

आत्मोत्कर्ष (Self-culture) की प्रेरणा उक्त स्वार्थ से प्रणोदित भले ही हो, पर है वह स्वार्थ ही। प्रतिभाशाली पुरुषों के अन्तरतम प्रदेश में यह प्रवृत्ति जड़ पकड़े हुए रहती है। पर इसी जड़ के पास ही एक दूसरी प्रवृत्ति का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बीज पनपने की व्याकुलता व्यक्त करता रहता है। यह है विश्वात्मा के अनन्त प्रेम-सागर में अपनी आत्मा को विलीन कर देने की प्रवृत्ति। इन दो प्रवृत्तियों के संघर्ष के धूम्रोद्गीरण से जो विश्व-कुहर आत्म-गगन को आच्छादित करता हुआ दिखाई देता है, उसमें नियति-नटी के इन्द्रजाल की निर्मम क्रीड़ा चला करती है। जब प्रलय के बाद सृष्टि में क्रान्ति की उथल-पुथल मच जाने पर मनु अपनी अन्तरंग प्रतिभा की सहज स्फूर्ति से मानवी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ष्टि के लिए प्रेरित होकर श्रद्धारूपिणी कामायनी के थ सम्बन्धित हुए तो वह भी आत्मोत्कर्ष तथा आत्म-मझन—इन्हीं दो प्रवृत्तियों के द्वन्द्व के शिकार बने ौर इस संघर्ष में श्रद्धा को खो बैठे । उनके आत्म-ान में फिर से चिर-पुरातन अन्धकार का रौद्रालोड़न लने लगा और वह आर्तभाव से पुकार उठे—

इस विश्वकुहर में इन्द्रजाल
किसने रचकर फैलाया है
ग्रह तारा विद्युत् नखतमाल
सागर की भीषणतम तरंग-सा
खेल रहा वह महाकाल
तब क्या इस वसुधा के
लघु-लघु प्राणी को करने को सभीत
उस निष्ठुर की रचना कठोर
केवल विनाश की रही जीत
तब मूर्ख आज तक क्यों समझे हैं
सृष्टि उसे जो नाशमयी
उसका अधिपति होगा कोई,
जिस तक दुख की न पुकार गई
सुख नीड़ों को घेरे रहता
अविरत विषाद का चक्रवाल
किसने यह पट है दिया डाल !

× × ×

जीवन-निशीथ के अन्धकार !
तू घूम रहा अभिलाषा के
नव ज्वलन-धूम-सा दुर्निवार
जिसमें अपूर्ण लालसा, कसक,
चिनगारी - सी उठती पुकार
यौवन मधुवन की कालिन्दी
बह रही चूमकर सब दिगन्त
मन शिशु की क्रीड़ा नौकाएँ
बस दौड़ लगाती हैं अनन्त
कुहकिनि अपलक दृग के अंजन !
हँसती तुझमें सुन्दर छलना
धूमिल रेखाओं से सजीव
चंचल चित्रों की नव-कलना
इस चिर-प्रवास श्यामल पथ में
छाई पिक - प्राणों की पुकार
बन नील प्रतिध्वनि नभ अपार ।

जीवन-निशीथ के इसी अंधकार के बारे में फ्रेंच कवि विक्टर ह्यूगो (Victor Hugo) ने अपनी 'La Destinee' शीर्षक कविता में लिखा है—

Moi Qu'on nomme le poete,
Je suis dans la nuit muette
L'escalier mysterieux ;
Je suis l'escalier tenebres,
Dans mes spirales Funebres
L' ombre ouvre ses vagues yeux

अर्थात्—"मैं कवि की तरह नीरव रजनी के रहस्य-मय गहन तमसाच्छन्न सोपानों की तरह हूँ ; मेरे तमो-जालपूर्ण चक्रवाल में छाया-नटी अपने नेत्र गह्वरों को विदारित किये रहती है ।"

'कामायनी' की सारी कविता में निखिल सृष्टि के ऊपर इसी माया-कुहेलिका द्वारा छाये हुए अन्धकारमय आवरण-पट को विदीर्ण करके चिरमुक्त आलोक में प्रवेश करने की जीवात्मा की उत्कंठा प्रतिध्वनित हुई है । आत्म-विलास की स्वार्थमयी वासना के धूम्र-मलिन सङ्कीर्ण हवन - कुण्ड से उदार प्रेमालोकित विश्व-मानवाकाश के चिदानन्दमय भास में उड़ान भरने की जो चिर-आकांक्षा मनुष्य के अज्ञात मन में सन्निहित है, उसी को कवि ने अपने इस अमर नाट्य-काव्य में रूपक के रूप में अत्यन्त सुन्दरता से प्रदर्शित किया है ।

मनु की प्रतिभा आत्म-विलास की स्वार्थगत भावना से प्रसूत होती है । श्रद्धा के संयोग से मनु की आत्मा में हृदय की संवेदनात्मिका छाया पड़ती है । पर चूँकि इस छाया से मनु के आत्मोत्कर्ष की सुख-साधना में बाधा पहुँचती है, इसलिए वह उसे बहिष्कृत कर देते हैं । इसके बाद इड़ा के सहयोग से उनके अन्तर में बुद्धि का तर्कजाल प्रसारित होने लगता है । आत्मोत्कर्ष की प्रवृत्ति, समवेदनमयी भावना तथा बुद्धि की तार्किकता—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ये तीनों विश्व की महाशक्तियाँ हैं। पर जब ये शक्तियाँ एक दूसरे से विच्छिन्न होकर परस्पर विरोधी रूप में अपने-अपने विकास में निरत होती हैं तो विश्व-नियम में घोर वैषम्य, संघर्ष तथा अशान्ति उत्पन्न करती हैं। और, जब ये तीनों एक रूप में मिलित होकर पारस्परिक सहयोग द्वारा विश्व की मूल शक्ति के साथ एकप्राण हो जाती हैं तो विश्व के शाश्वत मन्दिर में चरम कल्याण की प्रतिष्ठा कर देती हैं।

मनु अपने जीवन की अंधशक्तियों के नाना घात-प्रतिघातों के बाद अन्त में इस महासत्य को समझ गये थे। बुद्धि को तार्किक छुरिका द्वारा क्षत-विक्षत अपने जीवन में उन्होंने श्रद्धा को फिर से वरण कर लिया और वरण करते ही उन्हें अनुभव हुआ कि—

सत्ता का स्पन्दन चला डोल,
आवरण-पटल की ग्रन्थि खोल;
तम-जलनिधि का वन मधुमंथन,
ज्योत्स्ना-सरिता का आलिंगन;
वह रजत-गौर उज्ज्वल जीवन,
आलोक पुरुष! मंगल चेतन!
केवल प्रकाश का था कलोल,
मधु-किरणों की थी लहर लोल।

श्रद्धा और इड़ा (हृदय और बुद्धि) का मंगलमय सम्मिलित सहयोग प्राप्त करके मनु सत्ता के सतत-उज्ज्वल शाश्वत सत्य के लोक में प्रवेश करके समरसता के पुण्यप्रेममय सागर में डुबकियाँ लगाने लगे।

हमें खेद है कि 'कामायनी' के महासागर की एक साधारण लहरी की लीला से भी हम पाठकों को परिचित न करा सके। वास्तव में इस महासागर का पूर्ण परिचय इस लेख में देना असम्भव है। एक पूर्ण पुस्तक भी उसके लिए कम है। 'कामायनी' का हमने एक नाट्यात्मक काव्य कहा है। प्रसादजी अपने नाटकों के लिए विख्यात हैं। पर वास्तव में उनके नाटकों में कोई महत्त्वपूर्ण विशेषता वर्तमान नहीं है। उनमें बंगाल के डी० एल्० राय प्रमुख हलके ढंग के भावुक नाटककारों तथा संस्कृत के 'मुद्राराक्षस' की कोटि के नाटक-रचयिताओं की छाप पाई जाती है, और वास्तविक नाटकीय कला के दृष्टिकोण से उनमें कई त्रुटियाँ वर्तमान हैं। किन्तु 'कामायनी' में उन्होंने मानवात्मा की विभिन्न प्रवृत्तियों के घात-प्रतिघातों में जिस नाटकीय निपुणता का परिचय दिया है, वह गेटे की विश्व-विख्यात रचना फ़ाउस्ट (Faust) से टक्कर लेती है।

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें ⌐) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)

वैद्यराज—पं० महावीर पाठक, नं० ५, दरभंगा

C. B. 15.

खिज़ाब छोड़ो

इस तैल से पका बाल जड़ से काला पैदा होकर यदि स्थायी काला न रहे तो दूना दाम वापस की शर्त। इसकी सत्यता सैकड़ों प्रशंसा-पत्रों से प्रमाणित हो चुकी है। बाल कम पका है तो ५), चौथाई से अधिक पका है तो ७) रु० का तैल मँगा लें।

पता—हजरा एण्ड को०, पो० बिहार
नरसरी (दरभंगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

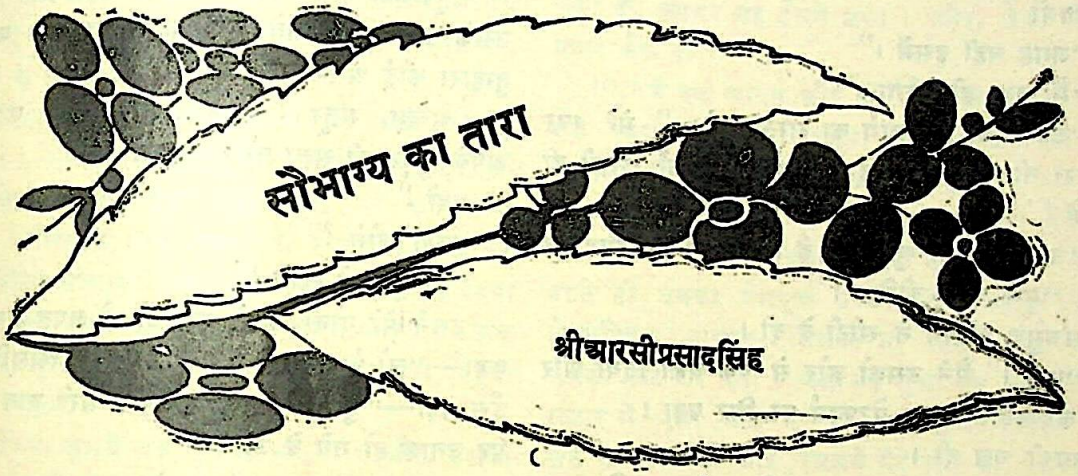

(१)

चार वर्षों के बाद उस दिन जब अचानक मोहन से भेंट हुई, तो मैं चौंक पड़ा—अरे, मोहन!

"हाँ, भाई !" उसने दीर्घ निःश्वास छोड़कर उत्तर दिया।

"मैं माफ़ी चाहता हूँ।" मैंने मुसकाने की कोशिश करते हुए कहा, "बड़ी ग़लती की। मुझे माफ़ करो।"

"अजी, माफ़ी कैसी ?" वह मुझसे लिपट गया, "यह तुमने एक ही कही !"

"मैं तो वाक़ई तुम्हें बिलकुल ही नहीं पहचान सका। मैं बहुत शर्मिन्दा हूँ, मोहन !"

"पहचानते क्यों ? इतने बड़े आदमी जो हो !" वह फीकी हँसी हँसकर बोला, "और अगर पहचान ही जाते, तो आख़िर इतना बड़ा काण्ड होते-होते बच जाता कैसे ?"

"क्या कहूँ दोस्त ! तुम इतने दिनों पर मिले हो कि मैं तुम्हें देखकर विस्मय से अवाक् हो रहा हूँ !"

"और यही हालत मेरी भी है।"

"आओ, बैठो भी !" मैंने अपना बिस्तर ठीक करते हुए कहा, "यों खड़े कब तक रहोगे ?"

"बैठो" कहकर उसने सूटकेस नीचे रख दिया।

मैंने उसका हाथ पकड़कर ज्यों ही खींचा, त्यों ही वह निरवलम्ब-सा, परिश्रान्त-सा, हतोत्साह-सा बेंच पर गिर पड़ा और शून्य दृष्टि से मेरी ओर एकटक देखने लगा।

पंजाब-एक्सप्रेस अपनी पूरी रफ़्तार से जा रही थी, और, उसके पहियों की निरर्थक, किन्तु तालयुक्त झंकृति से मेरे मस्तिष्क में एक विचित्र प्रकार की उन्मादना का संचार हो रहा था।

एकाएक गाड़ी रुकी।

इलाहाबाद स्टेशन था।

देखा, सर्यास्त हो चुका था और संध्या के गोधूलि-मय भूमण्डल पर शनैः-शनैः किसी तमोमयी सुन्दरी का अधिकार हो रहा था।

मैं घबराकर उठ बैठा।

इतने में देखा, कोई दुबला-पतला नौजवान जल्दी-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जल्दी मेरे कम्पार्टमेंट का दरवाज़ा खोल, अन्दर घुसने की चेष्टा कर रहा है।

उसके हाथ में चमड़े का एक छोटा-सा सूटकेस था। बाल बढ़े हुए, चेहरा रूखा और आँखें कोटरों में धँसी हुई थीं।

मैंने विकृत-स्वर में कहा, "आगे जाओ।"

"क्यों ?"

"जगह नहीं इसमें।"

"मैं खड़ा ही रहूँगा।"

"कह दिया कि आगे का रास्ता लो।" मेरे स्वर में ज़रा तीक्ष्णता आ गई, "सारे डिब्बे तो ख़ाली ही पड़े हैं!"

"जनाब, गाड़ी खुल रही है।" उसने गिड़गिड़ाकर कहा, "मुझे चढ़ने दीजिए।"

सचमुच एञ्जिन ने सीटी दे दी।

"नहीं।" मैंने उसको ज़ोर से एक धक्का दिया और वह लड़खड़ाता हुआ प्लेटफ़ार्म पर गिर पड़ा।

गाड़ी चल दी।

उसे चोट आई ज़रूर, मगर फिर भी वह सँभलकर उठा और दौड़कर उसी डिब्बे को पकड़ा।

ट्रेन तब तक साँप की तरह रेल की पटरियों पर सरसराने लगी थी और वह लोहे के डण्डे को पकड़कर पावदान पर खड़ा था।

तब तक मेरी ख़ुमारी भी टूट चुकी थी और मैं मन ही मन परिस्थिति की भयंकरता का अनुमान कर काँप-सा रहा था।

इतने में जब उसने करुणा की मूर्ति बनकर भीतर झाँका और ज्यों ही बिजली की सफ़ेद रोशनी उसके चेहरे पर पड़ी, त्यों ही मैं विस्मय से चौंक पड़ा—"अरे, मोहन! तुम हो ?"

"हाँ, भाई!" उसने कहा और मैंने झट से दरवाज़ा खोल दिया।

वह बैठ गया।

"तुम तो अब पहचाने भी नहीं जाते!" मैंने मौन-भंग करते हुए कहा, "ऐसी सूरत क्यों बना रक्खी है तुमने ?"

"मेरी परेशानियों का बहुत लम्बा क़िस्सा है!"

"क्या मैं उसे सुन सकता हूँ ?"

"शौक़ से।"

मैंने उसके हाथ में एक अधबुझा सिगरेट पकड़ा दी—"दियासलाई है तो ?"

"अरे भाई, मैं बीड़ी पीता हूँ।" वह बोला, "सिगरेट क्यों ख़र्च करते हो ?"

"चुपचाप पिये चल!" मैंने ज़बरदस्ती सिगरेट उसके लबों पर रखते हुए कहा, "इनकार करने का तुम्हारा कोई अख़्तियार नहीं!"

"अच्छा, मंज़ूर!" वह बोला, "मगर पहले तुम अपने क़ुसूर की सज़ा तो भुगत लो।"

"दो!"

"क्या लोगे ?"

"जो तुम्हारी ख़ुशी!"

उसने मेरे दोनों गालों पर दो-दो चपत लगाते हुए कहा—"लो! यह लो!!".....और, खिलखिलाकर हँस पड़ा—"तुम तो आज सचमुच मेरी जान ही लेने पर उतारू हो गये थे जी!"

(२)

सिगरेट का धुआँ गोल-गोल चक्कर लगाता हुआ कमरे-भर में फैल गया और हवा के झोंके आ-आकर मोहन के बिखरे बालों से आँखमिचौनी खेलने लगे।

मैं एकटक मोहन के चेहरे की ओर देख रहा था। पल-पल पर उसकी मुखाकृति में परिवर्तन हो रहा था। कभी-कभी उसके शुष्क अधरों पर मुसकान की चंचल रेखा लहरों-सी दौड़ जाती और बुदबुद-सी मिट जाती।

एकाएक उसने जैसे गम्भीर-निद्रा से जगकर कहा, "हाँ; तो, सुनो।"

"कहो!" मैंने अनुमोदन किया।

"कहाँ से शुरू करूँ ?"

"जहाँ से तुम्हारा दिल चाहे!"

"अच्छा, यह तो तुम जानते ही हो कि बी० ए० आनर्स में मैंने अँगरेज़ी ले रक्खी थी!"

"हाँ।" मैंने कहा, "और मैं यह भी जानता हूँ कि आनर्स की फ़ाइनल परीक्षा में तुम सेकेण्ड क्लास फ़र्स्ट हुए थे।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"उस साल फ़र्स्ट-क्लास किसी को नहीं मिला।"

"हाँ। बात ऐसी ही थी।"

"ख़ैर; इतना तुम्हें मालूम है।" उसने धुएँ का एक लहरदार बवंडर छोड़ते हुए कहा, "इसके बाद मैंने अँगरेज़ी लेकर एम्० ए० में नाम लिखाया। कॉलेज में मेरी बड़ी इज़्ज़त थी। छात्रों से लेकर प्रोफ़ेसर तक मेरी धाक मानते। जिस सभा-सोसाइटी में मैं पहुँचता, वहाँ हलचल मच जाती। सभी मेरी प्रतिभा के क़ायल थे।

"अँगरेज़ी में व्याख्यान देना तो मेरे बायें हाथ का खेल था। एक बार शेली और कीट्स पर मैंने जो तुलनात्मक समालोचना पढ़ी, तो, मेरे कॉलेज के अँगरेज़ प्रिन्सिपल मि० लैम्बर्ट ने, सभापति के आसन से, डिबेटिंग-सोसाइटी की भरी-सभा में ही कह दिया कि अब तक इसके सिवा किसी अन्य भारतीय छात्र का इतना सुन्दर और गवेषणा-पूर्ण लेख मेरी नज़रों से नहीं गुज़रा!

"लेकिन, मुझमें एक दुर्गुण भी था। और, उसको स्वीकार करते हुए आज मुझे बड़ी ख़ुशी मालूम हो रही है। मैं सिनेमा का हद से ज़्यादा शौक़ीन था। यह मुमकिन नहीं कि शहर में कोई फ़िल्म आवे और मैं उसे न देखूँ!

"किसी-किसी फ़िल्म को तो मैं एक ही दिन में दो-दो बार तीन-तीन बार देखता और दुबारा आने पर, फिर भी, देखने से बाज नहीं आता।

"उस वक़्त मिस प्रभा की बड़ी धूम थी। मूक-चित्रपट में उसने बहुत काम किया था और अब मुखर-चित्रों में भी उसकी ऐक्टिंग वैसी ही लाजवाब हो रही थी। ख़ूबसूरती तो थी ही; परन्तु, साथ ही शोख़ी, चुलबुलाहट और नज़ाकत ने उसके सौंदर्य में चार चाँद लगा दिये थे। और यद्यपि उसकी उम्र तीस की सीमा पार कर गई थी, फिर भी उसे देखकर सहसा यह कहने का कोई साहस नहीं कर सकता था कि उसकी जवानी अपनी पहली मंज़िल तै कर चुकी है!

"एक दिन उसकी एक नवीनतम कृति आई। सारे शहर में पहले से ही इसका शोर था। एलफ़िन्स्टन-पिक्चर-पैलेसवालों ने इसका विज्ञापन भी बड़ी धूम-धाम से किया था। और, फ़िल्म आते ही उसको देखने के लिए जनता की भीड़ टिकट-घर पर उसी तरह टूट पड़ी, जिस तरह काले-काले गाँधी-टोपीवालों पर गोरों की फ़ौज या किसी राह चलते नये फ़ैशन की स्त्री पर दर्शकों की तिरछी चितवनें!.....

"गुड़ पर चींटे की मिसाल तो बहुत पुरानी हो चुकी है" कहकर वह हँसने लगा। और, जली सिगरेट बाहर फेंक दी।

"मुझमें एक आदत और थी" उसने फिर कहना शुरू किया, "मशहूर-मशहूर सिनेमा-स्टारों को ख़त लिखने की। अँगरेज़ी तो मेरी अच्छी ही थी और भाव भी काफ़ी थे। ऐसी लच्छेदार भाषा में चिट्ठी लिखता कि अभिनेत्रियाँ फड़क उठतीं और अगले हफ़्ते ही उनका प्रेमपूर्ण उत्तर पहुँच जाता। गेटे, शेक्सपियर, बाइरन, जिसकी जो लाइनें याद पड़तीं, सबको कोट कर देता। फल यह हुआ कि सारे फ़िल्म-संसार में ऐसी कोई सुन्दरी नहीं रही, जिसको मैंने ख़त न लिखा हो और जिसने मेरे ख़त का जवाब न दिया हो!

"सो, उस दिन मिस प्रभा की प्रधान भूमिका थी। एक चंचल प्रेमिका के रूप में वह आई और अन्त तक दर्शकों के दिल को अपनी मुक्त हँसी से गुदगुदाती रही। उसकी भाव-भंगी, उसका नृत्य-कौशल और उसके चंचल-मुक्त हास्य ने मुझ पर कुछ ऐसा जादू किया कि रात में ही मैंने उसके नाम का एक पत्र लिख डाला।

"प्रेम और प्रशंसा के जितने सुन्दर शब्द मुझे मिले, सबका मैंने उसमें समावेश किया; और अपने भावों को जितने प्रकार से अभिव्यक्त कर सकता था, सबका व्यवहार किया।

"रात-भर में ख़त का मज़मून लिखा गया और सुबह ही पोस्ट कर दिया। सवेरे का सबसे पहला काम मेरा यही था।

"पाँच ही रोज़ के अन्दर मिस प्रभा का उत्तर आ गया। ख़ूबसूरत, वल्वेट-कलर का लिफ़ाफ़ा; रंगीन काग़ज़; कोने में सोने के हरूफ़ों से लिखा हुआ—'मिस प्रभा।' और, सारा लिफ़ाफ़ा विलायती लैवेन्डर की तेज़ ख़ुशबू में बसा हुआ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"उसे पाकर मुझे जितनी ख़ुशी हुई, उतनी, सच कहता हूँ, दोस्त, बी० ए० आनर्स में फ़र्स्ट-पोज़ीशन पाने पर भी नहीं हुई थी !"

"क्या था लिखा उस ख़त में ?" मैंने उत्सुक होकर पूछा।

"ज़बानी कह दूँ ?" वह बोला, "या ख़त ही देख लोगे ?"

"ख़त है पास में क्या ?" मैंने प्रसन्नता से पुलकित होकर कहा।

"हाँ, है तो।"

इतना कहकर वह अपना सूटकेस खोलने लगा और क्षण ही भर में एक सुन्दर पत्र मेरी हथेली पर रख दिया। पत्र की लिखावट बहुत साफ़ और ख़ूब आकर्षक थी। मैं उसे पढ़ने लगा।

और, मोहन अपना सिर खिड़की के बाहर निकालकर ठंडी-ठंडी हवा का आनन्द लेने लगा।

गाड़ी दैत्य की तरह, अँधेरी रात में उस मैदान को चीरकर दौड़ी जा रही थी।

आकाश में तारे चमेली के फूल की तरह खिले हुए थे और उनके बीच में एक प्रखर ज्योतिष्मान् नक्षत्र चमक रहा था, जैसे नील-सरोवर में श्वेत-पद्म।

(२)

मैं पढ़ने लगा। पत्र में लिखा था—

प्रिय महाशय,

आपका ख़त मिला। पढ़कर बहुत ख़ुशी हुई। आपने जिन शब्दों में मेरी प्रशंसा की है, मैं उसके योग्य अपने को नहीं समझती। यह आपकी अत्यधिक उदारता और भावुकता ही है, जो मैं आपको याद आ गई।

ख़ैर, आपके कोमल शब्दों ने मुझे मोह-सा लिया है। मैं आपको एक बार देखना चाहती हूँ।

आपसे मिलकर मैं बहुत प्रसन्न होऊँगी।

क्या आप एक बार कष्ट कर बम्बई आवेंगे ?

सौ रुपये का यह नोट सेवा में स्वीकार कीजिए और शीघ्र दर्शन दीजिए।

आपकी,
(मिस) प्रभा

पत्र पढ़कर मैंने कहा—"वाह ! तुम्हारे सौभाग्य का तारा तो एकबारगी सातवें आसमान पर चमक उठा।"

"बेशक !" मोहन ने एक लंबी साँस ली और फिर कहना शुरू किया, "मिस प्रभा के उस ख़त को पाकर बेशक मैं उछल पड़ा। ज़िन्दगी में मैंने कितनी ही फ़िल्म-स्टारों से पत्र-व्यवहार किया ; परन्तु ऐसी मुहब्बत की बात किसी ने नहीं की। मैं यह सोचकर ख़ुशी के मारे पागल हो गया।

"प्रभा के भेजे हुए कुल रुपयों से तो मैंने एक बढ़िया रेशमी सूट बनवाया, दो चमड़े के बड़े-बड़े अटैचीकेस लिये, कुछ इधर-उधर का सामान ख़रीदा और एक सौ नक़द अपने एक दोस्त से चन्द दिनों के लिए उधार ले लिया।

"दूसरे ही दिन मैं बम्बई के लिए चल पड़ा। रास्ते में दिल्ली से एक एक्सप्रेस-टेलिग्राम भिजवा दिया कि आ रहा हूँ। स्टेशन पर मोटर भेज दीजिएगा।

"जिस दोस्त से रुपये मैंने उधार लिये, उसने चलते वक़्त टोका भी—अरे यार, चार महीने के बाद इम्तिहान है। तुम इस तरह कहाँ जा रहे हो ? मैंने बात छिपा दी—ससुराल जा रहा हूँ। बीवी बीमार है। ज़रूरी तार आया है। तुम किसी बात की चिंता मत करो, मदन ! मैं बहुत जल्द चला आऊँगा।

"और उधर ज्यों ही मैं बम्बई-जंकशन पर उतरा, त्यों ही मेरी अक्ल दंग रह गई। इतना वैभव, इतना कोलाहल, इतना ऐश्वर्य, इतना विलास !!

"स्टेशन से बाहर निकलते ही एक भीमकाय रायल्स-रायल दिखाई पड़ी, जिसके रंग-ढंग से ही यह बात मालूम हो गई कि यह मिस प्रभा की कार है। मैंने पहचान लिया और तुरन्त शोफ़र से जाकर कहा—मेरा नाम मोहनलाल है। मैं पटने से आ रहा हूँ। मिस प्रभा ख़ैरियत से तो हैं ?

"इतना सुनते ही ड्राइवर ने बड़े अदब के साथ मुझे सलाम किया और क़ुली के सिर से सारा बोझ उतारकर, कार के पिछले हिस्से में लाद लिया।

"गाड़ी चल पड़ी। रास्ते के दृश्य का वर्णन मैं क्या करूँ मेरे मित्र ? जीवन में प्रथम बार बम्बई देखने का अवसर मिला था। इसके विषय में पढ़ा तो था

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कई बार ; परन्तु इस दफ़े प्रत्यक्ष इन आँखों से देखकर जो अनुभव प्राप्त हुआ, वह विशेष प्रभावोत्पादक रहा।

"बड़े-बड़े आलीशान मकान, बड़े-बड़े होटल, बड़ी-बड़ी सड़कें, यानी हर एक चीज़ बड़ी ही बड़ी थी। छोटी का तो नाम भी मत लो।

"कुर्रकों करती, सड़कों को लाँघती और कितनी गलियों को पार करती, उछलती-कूदती मोटर एक भव्य बँगले की बरसाती में रुकी और कार से नीचे उतरते ही मैंने अनुभव किया, किसी का मक्खन-सा मुलायम हाथ अपने उष्ण स्पर्श से मुझे रोमांचित कर रहा है—हलो, मि० मोहन ! हाउ आर यू ?

"वह थी मिस प्रभा।"

"यह मिस प्रभा कौन थी, साहब ?" किसी ने बीच ही में मोहन को रोक दिया, "क्या नाम कहा—बम्बई ? बम्बई ! हाँ, वह तो सचमुच बहुत बड़ा शहर है। हमारे वालिद....."

हम दोनों ने चौंककर देखा, बग़ल की बेंच पर बैठे एक मुसलमान सज्जन बड़े ग़ौर से हमारी तरफ़ देख रहे हैं और कहानी का लुत्फ़ लेने की कोशिश कर रहे हैं।

मोहन चुप रहा। परन्तु मुझसे ख़ामोशी अख़्तियार न की गई और मैंने कह ही तो दिया—"आप कोई हों, न आपके वालिद से हमें ज़रूरत और न मिस प्रभा तथा बम्बई से आपको ताल्लुक़। आख़िर, हम लोगों की बातचीत में आप दख़ल देनेवाले हैं कौन ?"

बेचारे की जवानी कब की बिदा माँग चुकी थी और अब बुढ़ापा आग की तरह उनकी सन-सी सफ़ेद दाढ़ी पर जल रहा था—धक् धक्।

उनकी मुँह की बात मुँह में ही रह गई।

मैंने मोहन से कहा, "हाँ, अब कहो !"

मोहन ने कहा—"ज़रा ठहर जाओ।"

(४)

"मालाबार-हिल में ठीक समुद्र के किनारे मिस प्रभा का सुन्दर बँगला था। मकान के आगे क्यारियों में नाना प्रकार के पुष्प तथा लताओं के गमले सजे हुए थे और पीछे दिन-रात अनन्त तक समुद्र हाहाकार करता रहता। मैं खिड़की से घण्टों यह भुवन-मोहन दृश्य देखता।

"वहाँ मेरे आराम में किसी तरह की कमी नहीं थी। नौकरों से तो मैं ख़ुद ही परेशान रहता ; क्योंकि मेरे पास उतना काम ही नहीं ! मोटर मेरी मर्ज़ी पर थी। जेब-ख़र्च के लिए अढ़ाई सौ रुपये अपनी तनख़्वाह से मिस प्रभा प्रतिमास मुझे देती और वे ख़र्च होते ताजमहल होटल के मासिक बिल चुकाने में।

"कोई तकलीफ़ नहीं थी मुझे वहाँ पर। बढ़िया खाना, बढ़िया पहनना और बढ़िया तरीक़े से रहना। ज़िन्दगी में और चाहिए ही क्या ?

"फिर भी कोई काम नहीं ! मुझे तअज्जुब हो रहा था कि बात क्या है ?

"सच पूछो तो मैं वहाँ इस आशा से गया था कि प्रभा की दया से फ़िल्म-लाइन में कोई नौकरी मिल ही जायगी। मैं सिनेमा के संसार में प्रवेश पाना चाहता था और उसमें अभिनय करने की मेरी प्रबल इच्छा थी।

"और मिस प्रभा के कृपा-पत्र को पाकर मैंने यह ख़याल किया कि अब मेरा भाग्य-देवता प्रसन्न हुआ। मैं अब आसानी से फ़िल्म-लाइन में प्रवेश कर सकूँगा और कुछ ही दिनों में एक श्रेष्ठ कलाकार बनकर यथेष्ट वैभव और ऐश्वर्य का अधिकारी बन सकूँगा।

"परन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते, त्यों-त्यों मेरी उत्कंठा और आश्चर्य बढ़ते जाते।

"प्रभा प्रतिदिन मुझसे मिलती ; तरह-तरह की बातें करती ; देश, समाज, धर्म, विवाह आदि प्रश्नों पर बहस करती ; अपने साथ स्टूडियो भी ले जाती ; परन्तु सिनेमा-सम्बन्धी न कभी कोई चर्चा करती, और न उस विषय की कोई बात ही मुझसे बतलाती।

"यहाँ तक कि स्टूडियो में मुझे ठहरने तक नहीं देती। इधर-उधर थोड़ा-बहुत दिखला-सुनाकर फ़ौरन् बँगले पर भेज देती।

"मैं वापस होने के लिए लाचार था।

"एक दिन मिस प्रभा मुसकिराती हुई मेरे पास आई—इधर आओ मोहन ! एक व्यक्ति से तुम्हारा परिचय करा दूँ।

"मैं गया उसके साथ।

"उस बँगले से क़रीब एक फ़र्लांग पर एक छोटी-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सी, लेकिन ख़ूबसूरत इमारत थी और उसमें भी उसी तरह की फूल-पत्तियों की मनोहर क्यारियाँ बनी हुई थीं।

"मिस प्रभा धड़धड़ाती हुई ऊपर चढ़ गई; परन्तु मैं आधी सीढ़ियाँ तय करके ही आगा-पीछा करने लगा।

"चले आओ बेधड़क—आवाज़ मिस प्रभा की थी, जो ऊपर की मंज़िल पर पहुँच, मेरी हिचकिचाहट को देखकर बेतरह हँस रही थी। मैं चला उसके पीछे।

"एक कमरे में कोई लड़की एक बेशक़ीमती सोफ़े पर आराम से लेटी हुई थी और शायद कोई अँगरेज़ी का उपन्यास पढ़ रही थी; क्योंकि मैंने देखा, किताब के टाइटिल पेज पर सुनहले अक्षरों में कुछ टेढ़ा-मेढ़ा-सा, वैसा ही लिखा हुआ था।

"लड़की की उम्र होगी लगभग सत्रह साल की और रंग-रूप साधारण। सौन्दर्य में कोई ज़बरदस्त आकर्षण नहीं होने पर भी उसके व्यवहार, बातचीत एवं वेशभूषा में विशेष खिंचाव था।

"मिस-प्रभा के साथ मुझे आते देख, वह अकचकाकर उठी और लज्जा का अभिनय करती हुई अपने अंचल और बालों को ठीक करने लगी।

"इतने में प्रभा ने कहा—बैठो, बैठो; कोई हर्ज नहीं। यह भी अपने ही आदमी हैं। इनका नाम है मि० मोहनलाल शर्मा। और मि० मोहन, यह हैं कुमारी कमला!

"मैंने कहा, क्या इनका इतना ही परिचय यथेष्ट है?

"मिस प्रभा बोली—नहीं। और भी बातें हैं, जिन्हें मैं पीछे कहूँगी। मैं समझती हूँ, अब आप लोग एक-दूसरे से परिचित हो गये और मैं चाहती हूँ कि आप लोगों में शीघ्र ही मित्रता हो जाय!

"चलते-चलते मिस प्रभा ने कहा—अच्छा, अब मैं स्टूडियो जा रही हूँ। दो-तीन घण्टों में आ जाऊँगी। कमला, मि० मोहन को चाय पिलाना। यह चाय के बड़े शौक़ीन हैं।

"जब प्रभा चली गई, तो, मैंने पाया उस कमरे में कमला को शर्माती-सी, सकुचाती-सी; सिहरती-सी, झेंपती-सी।

"थोड़ी ही देर की बातचीत से मालूम हो गया कि कमला बहुत ही लजीली और सीधी-सादी लड़की है! बहुत कम बोलती और उससे भी कम हँसती।

"मैं बिना चाय पिये ही वहाँ से लौट आया—सिर्फ़ आधे घण्टे में!

"दिन-भर यही सोचता रहा कि आख़िर कमला से ज़बरदस्ती मेरा परिचय कराने की ज़रूरत? और, इतना ही नहीं—एकान्त कमरे में हम दोनों को मुक्त आलाप और स्वच्छन्द व्यवहार का अवसर देने का प्रयोजन?"

इतने में गाड़ी खड़खड़ाती हुई रुक गई। देखा, मोग़लसराय स्टेशन!

मोहन चुप हो गया।

रात काफ़ी बीत चुकी थी और वह प्रकाशवान् तारा हम लोगों के ठीक ऊपर आ गया था।

मोहन ने उँगली से उसकी ओर इशारा करते हुए कहा—"वह देखो!"

मैंने कहा, "हाँ।"

बाहर चायवाला ज़ोर-ज़ोर से चिल्ला रहा था—"गरम चाय!"

"चाय पी लो, मोहन!" मैंने कहा।

"कमला ने चाय नहीं दी, तो, आओ—मैं ही तुम्हें पिलाऊँ!"

मैंने पुकारा—अबे, ओ चाय!

"जी!"

"दो कप!"

(५)

"यह न समझो कि कमला से मुझे प्रेम हो गया और.....यदि थोड़ी देर के लिए उसे प्रेम भी कह लो, तो, कोई हर्ज नहीं; क्योंकि, उन दिनों हम लोगों के परिचय ने काफ़ी घनिष्ठता का रूप धारण कर लिया था।

"मिस प्रभा इसमें बराबर योगदान ही देती रही।

"इस तरह बम्बई में रहते मुझे चार महीने हो गये। इस बीच में कॉलेज-भर में मेरे एकाएक ग़ायब हो जाने का शोर हो गया। किसी ने कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अटकल लगाई, किसी ने कुछ ; परन्तु, जब कहीं मेरा पता नहीं लगा, तो, उन्होंने मेरे घर पर ख़बर भिजवा दी।

"पिताजी ने मेरा पता लगाने की बहुत कोशिश की ; परन्तु, मैं ऐसे स्थान पर था, जहाँ उस दुनिया का प्रकाश पहुँचना कठिन नहीं, तो, असम्भव अवश्य था। और, मैं मज़े में था।

"तब तक मैं सब-कुछ भूल चुका था। पढ़ाई, कॉलेज, क्लास, सभी की याद मेरे दिमाग़ से उतर गई थी और मैं अपने एक बिलकुल ही नये संसार में मनसूबों का हवाई क़िला तैयार कर रहा था।

"कमला मुझसे बहुत-कुछ हिल-मिल गई थी। रोज़ शाम को हम दोनों मोटर पर निकलते और समुद्र के किनारे-किनारे मौजों की बहार देखते अथवा शीतल जल-बयार का लुत्फ़ उठाते।

"मिस प्रभा हमारी आपस की मैत्री से बहुत ही प्रसन्न दिखाई पड़ती थी। परन्तु, मैं इसका रहस्य नहीं समझ पाता। वह, न-जाने, क्यों मुझे एक संदिग्ध, अज्ञेय और भेद-भरी रमणी मालूम पड़ती, जिसकी गति-विधि का पता लगाना मुश्किल था।

"एक दिन, चाँदनी रात में, मिस प्रभा ने मुझे बुलाया। मैं उसके साथ मोटर पर बैठ गया। गाड़ी बड़ी तेज़ी से सी-कोष्ट की ओर उड़ी!

"सामने किनारे पर एक छोटा-सा टीला था। मोटर रुकी और हम लोग उसी चट्टान पर बैठ गये। समुद्र की उद्दाम लहरों पर चन्द्रमा टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया था और आगे अनन्त बालुका-राशि पर चाँदनी तरल-तुषार-सी बरस रही थी।

"मिस प्रभा उस दिन विशेष प्रसन्न थी। उसका मुख-मण्डल किसी अज्ञात सुख की कामना से पुलकाकुल हो रहा था और वह कुछ कहना चाहती थी।

"मैं युवक था ; हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर और स्वस्थ। उसके चाञ्चल्य और लावण्य ने एक बार मुझे सिर से पैर तक हिल्लोलित कर दिया।

"लहरें चट्टान के नीचे पानी-पानी होकर लोट रही थीं और उनके संघर्ष से उत्पन्न फेन-समूह व्याकुल होकर हमारे पैरों पर बिछले से पड़ते थे।

"मैंने विस्मय-विमुग्ध-दृष्टि से मिस प्रभा की ओर देखा।

"मिस प्रभा बोली—मि० मोहन, आज तुमसे एक बात कहनी है!

"मैंने कहा, यह तो मैं आपके उत्सुक वदन और प्रस्फुटित अधरों से पूर्व ही जान गया था।

"प्रभा ने कहा—तो, कहो, कमला कैसी है?

"मैंने वशीकृत प्राणी के समान कहा—बहुत सुन्दर।

"मिस प्रभा बोली—मेरा मतलब यह है कि तुम उसे पसन्द कर सकोगे क्या?

"मैंने उत्तर दिया—आपका मतलब? मैं आपका मतलब नहीं समझ सका। मुझे माफ़ कीजिए।

"मिस प्रभा ने किंचित् हँसकर कहा—अच्छा ; सुनो।

(६)

"आजकल टाकी का ज़माना है। परन्तु, मैं जिस समय फ़िल्म-संसार में आई, उस समय साइलेन्ट मोशन-पिक्चरों का ही बोलबाला था।

"और, तब मैं पूने की किसी दूसरी ही कम्पनी में काम करती थी।

"उस कम्पनी में एक मद्रासी युवक था। वह भी मेरे ही साथ काम करता था। जिस चित्र-पट में मैं नायिका के रूप में उतरती, अवश्य ही वह उसमें नायक की भूमिका में आता।

"और, इस तरह दिनोंदिन हम लोगों का सौहार्द बढ़ने लगा।

"आज तुमसे मैं यह बात क्यों छिपाऊँ कि मैं वास्तव में उस युवक से प्रेम करने लगी और कुछ ही रोज़ के बाद तो मैंने उससे विवाह का प्रस्ताव भी कर दिया!

"युवक बहुत ही सुशील और संयमी था। मेरी बात से वह घबराया नहीं ; वरन् सीधे और साफ़ शब्दों में कह दिया कि वह विवाहित है और घर पर उसकी बुढ़िया मा, जवान स्त्री और एक छोटी बच्ची भी है!

"मैं कुमारी थी, युवती थी और थी उमंगों से भरी हुई। सबसे पहले मैंने उसी युवक से प्रेम किया, उसी को अपने हृदय का सर्वस्व दान कर दिया और वह विफल रहा। मैं निराश हो गई। मैंने निश्चय कर लिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कि अब शादी नहीं करूँगी और इसी तरह चिर-कुमारी ही अपने जीवन-नाटक को समाप्त कर दूँगी।

"इसके चन्द महीनों के बाद ही शूटिंग के वक़्त फ़िल्म-कम्पनी के एक पालतू शेर ने बिगड़कर उस पर आक्रमण कर दिया और वह अस्पताल जाते-जाते चल बसा।

"मरते वक़्त उसने मुझे बुलाकर कहा—देखो, प्रभा! मैं तो जा रहा हूँ। अब बच नहीं सकता। परन्तु मेरे परिवार का भार तुम्हीं पर रहा। मैं तुम पर विश्वास करता हूँ। उन्हें, मेरे पीछे कोई तकलीफ़ न हो!

"उसकी मृत्यु का इतना गहरा प्रभाव मुझ पर पड़ा कि यदि वह अपने परिवार का बोझ मेरे सिर पर नहीं लाद जाता, तो मैं ज़रूर फ़िल्म-लाइन को छोड़ देती और किसी देहात में शान्तिपूर्वक अपना एकान्त-जीवन व्यतीत करती।

"परन्तु, उसके अन्तिम शब्द को मैं कैसे भूल जाती?—'मेरे पीछे उन्हें कोई कष्ट न हो!' और, सच पूछो तो, सिर्फ़ इसी लिए मैंने इस पतित और नारकीय जीवन को अपनाया है।

"मैंने तत्काल उसके परिवार की खोज की। और, सबसे पूना चलने का आग्रह किया। उसकी बुढ़िया मा तो किसी तरह आने को राज़ी नहीं हुई; क्योंकि, उसके कुल ख़यालात सोलहवीं सदी के थे। हाँ, कमला की मा आने के लिए तैयार हो गई। और, अब देखते हो, वे दोनों उस बँगले में रहती हैं!

"मैं दुर्भाग्य से ऐंग्लो-इंडियन हूँ और ये लोग ठहरे कट्टर ब्राह्मण! मेरा छुआ कौन खाय—मेरे स्पर्श तक से ये लोग परहेज़ रखते। मैंने इन लोगों के लिए अलग मकान बनवा दिया। रसोइया, नौकर आदि ठीक कर दिये। और, अब ये सुख से अपनी ज़िन्दगी बिता रहे हैं—यह देखकर मैं फूली नहीं समाती!

"मगर, वह बुढ़िया अब भी उसी गाँव में रहती है। मैं प्रतिमास एक निश्चित रक़म उसके पास भेज दिया करती हूँ।

"कमला की शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध भी मैंने किया और इस साल उसने बम्बई-विश्वविद्यालय की मैट्रिकुलेशन-परीक्षा फ़र्स्ट-डिवीज़न में पास की है।

"अब मेरी एकमात्र इच्छा यही रह गई है कि उसे किसी सुयोग्य पात्र के हाथों में सौंपकर निश्चिन्त हो जाऊँ। इंटर-क्लास-मैरेज की बात रहती, तो मुझे इतनी फ़िक्र नहीं करनी पड़ती। परन्तु, उसकी मा चाहती है कि कमला का व्याह किसी ब्राह्मण-युवक से ही हो!

"कमला की शादी हो जाने से मेरे जीवन का एक बहुत बड़ा बोझ उतर जायगा और तब मैं भी अपने इस घृणित व्यवसाय को छोड़कर ग्रामों में चली जाऊँगी और वहीं प्रकृति के अंचल में दीन-दुखी ग्रामीणों की सेवा में शेष जीवन को सफल करूँगी।

"फ़िल्म-संसार का मुझे अत्यन्त कटु अनुभव है। और, इसीलिए मैंने तुम्हें भी इस हवा से उतना ही दूर रखने का प्रयत्न किया, जितना कमला को! और, कमला तो इससे बिलकुल अछूती है! मैं हरगिज़ नहीं चाहूँगी कि तुम लोग इस ज़िन्दगी की कामना करो!

"मैं बहुत दिनों से कमला के लिए एक उत्तम वर की तलाश में थी और आज मैं सचमुच प्रसन्न हूँ कि मेरी मनोकामना पूर्ण हो गई। और, यह जानकर तो मुझे और भी हार्दिक आनन्द हुआ कि तुम दोनों एक दूसरे को उतना ही प्यार करते हो, जितना करना चाहिए।

"मैंने तुम लोगों को बनने-बिगड़ने का मौक़ा दिया और अब मैं बहुत जल्द तुम्हें विवाह-सूत्र में बँधा देखना चाहती हूँ।

(७)

"मिस प्रभा जब तक कहती रही, मैं बराबर उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनता रहा और ज्यों ही उसकी कहानी ख़त्म हुई, त्यों ही मैंने कहा—मगर.....

"मिस प्रभा व्याकुल होकर बोली—मगर क्या?

"मैंने कहा—मगर, मेरी शादी तो.....

"मिस प्रभा ने घबराकर वाष्प-व्याकुल कंठ से कहा—क्या कहा? तुम्हारी शादी हो चुकी है!.....

"मैंने कहा—हाँ।

"मिस प्रभा चिल्लाकर बेहोश हो गई और चट्टान पर से नीचे लुढ़कने ही वाली थी कि मैंने उसे पकड़ लिया।"

इतना कहकर मोहन ने आसमान की ओर देखा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परब की तरफ़ से बादल का एक टुकड़ा उड़ा आ रहा था। देखते-देखते क्षण ही भर में वह ज्योतिष्मती तारिका मेघों से घिर गई।

मैंने कहा, अब शेष कहानी भी झटपट कह ही डालो। मैं बहुत बेचैन हूँ।

(८)

मोहन ने कहना शुरू किया—"रात किसी तरह कट गई। सुबह उठते ही, मैंने देखा कि ब्येरा चाय के बदले तश्तरी में काग़ज़ का एक टुकड़ा ले आया है। मैं देखते ही समझ गया, अवश्य ही कोई दुर्घटना होगी। धड़कते हुए दिल और काँपते हुए हाथ से मैंने उस टुकड़े को उठाया। सौ रुपये का एक नोट फिसलकर नीचे गिर पड़ा और एक चिट्ठी भी थी। मिस प्रभा ने लिखा था। मैं पढ़ने लगा—

प्रिय महोदय,

अब आपकी यहाँ कोई ज़रूरत नहीं रही। जितना जल्द हो सके, आप मेरे मकान को छोड़कर चले जाइए। और यह लीजिए—राह-ख़र्च के लिए एक सौ रुपये का नोट। मैं उम्मीद करती हूँ कि इतने से आप सकुशल घर पहुँच जायँगे।

आपकी,
(मिस) प्रभा

"इसके बाद ही मैं वहाँ से भागा। डर और शर्म के मारे कॉलेज नहीं गया और घर जाता किस मुँह से? बम्बई से छूटते ही पुरी आया और वहाँ से बरमा और फिर कलकत्ता। जो कुछ रुपया बचा था, उसे कलकत्ते में फूँक दिया। और, जब जेब में धेले से भी कम रह गया, तो उपवास की नौबत आने लगी।

"एक दिन चौरंगी की सड़क पर मैं यों ही घूम रहा था कि पिताजी आते दिखाई पड़े। मैंने भागकर एक गली में घुसना ही चाहा कि पिताजी ने पुकारा—मोहन! भागते कहाँ हो? ठहरो!

"लपककर वह मेरे पास पहुँच गये। मैं उनके पैरों पर गिर पड़ा। आँखों से आँसू छलछला आये।

"पिताजी ने बड़े प्रेम से मुझे उठाया और कहना शुरू किया कि तुम मुझे यहाँ देखकर आश्चर्य मत करो। मिस प्रभा की एक चिट्ठी तुम्हारे प्रिंसिपल के पास पहुँची थी, जिसे उन्होंने मेरे निकट भी भेज दिया था। पीछे तुम्हारे ही एक परिचित दोस्त से मुझे मालूम हुआ कि आजकल तुम कलकत्ते में हो। मुझे सारे समाचार विदित हैं।

"अन्त में पिताजी ने कहा—ख़ैर, कोई चिन्ता नहीं। जो हो गया, सो हो गया। मैं तुम्हें चार दिनों से तलाश कर रहा हूँ। चलो, अब घर लौट चलें।

"मैं घर आया। और इसके बाद कॉलेज। जगह-जगह मेरी शोहरत थी—मेरी ही चर्चा। पहले तो कसकर मेरा मज़ाक़ उड़ाया गया। मैंने गधे-सा सब कुछ सह लिया।

"फिर सालाना इम्तिहान के कुल बारह दिन बाक़ी थे। जितनी मेहनत हो सकी, की; जितना पढ़ सका, पढ़ा; परन्तु फ़र्स्ट क्लास फ़र्स्ट होने के बदले मैं मुश्किल से तीसरी श्रेणी में पास हो सका।

"पिछला केरियर मेरा बहुत अच्छा था। पिताजी ने बड़ी कोशिश की और प्रिंसिपल साहब ने भी भरसक मेरी मदद की और उसी साल साठ रुपये की एक नौकरी मुझे मिल गई।

"अब मैं सेक्रेटियट में एक क्लर्क हूँ। बीबी है। दो बच्चे हैं। किसी तरह गुज़र हो जाती है।"

(९)

मोहन की कहानी शेष हो चुकी थी। मैंने पूछा—अच्छा, तो इस वक़्त तुम जा कहाँ रहे हो?

"पटना!"

मैंने घड़ी देखकर कहा—वाह! तब तो तुम बिलकुल नज़दीक पहुँच गये हो। इसके बाद ही तो पटना है!

"तुम भी उतरो न!" मोहन ने आरज़ू के साथ कहा, "सिर्फ़ एक दिन अपने ग़रीब दोस्त के यहाँ रहकर चले जाना।"

मैंने कहा—भाई मोहन! इस बार माफ़ करो। एक ज़रूरी काम से कलकत्ते जा रहा हूँ।

"एक ही दिन में कौन-सा काम बिगड़ जायगा?" मोहन बोला, "कल शाम को तो मैं तुम्हें छोड़ ही दूँगा। ज़रा भाभी के हाथ की बनी पूरियाँ तो चख लो!"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"मैंने कहा, लौटती बार आऊँगा।"

"आओगे ?" मोहन ने अपना सूटकेस सँभालते हुए कहा, "तो प्रतिज्ञा करो कि ज़रूर आओगे।"

"हाँ; भाई, ज़रूर आऊँगा।"

"अच्छा; तो, तुम्हें इसी शर्त पर रिहा करता हूँ। धोखा मत देना। मैं तुम्हारा इन्तिज़ार करूँगा।"

पटना जंक्शन आ गया।

"नमस्ते" कहकर वह उतर पड़ा।

मैंने कहा, एक बात का जवाब तो देते जाओ, मोहन!

"कहो, क्या कहते हो ?"

"इधर मिस प्रभा का कोई ख़त आता है कि नहीं ?"

"नहीं!"

"और, वह—कुमारी कमला याद करती है या नहीं ?"

"अरे, धत्!"

स्त्रीपुरुष सबके लिये ताक़त ताज़गी से भरा हुआ

सुमधुर

झंडू द्राक्षासव

अवश्य सेवन कीजिए

चाँदनी जैसी शीतल

झंडू की (शिलाजीत युक्त)

चन्द्रप्रभा गुटी

मूत्ररोग और धातुविकार की

अद्वितीय औषधि है

झंडू फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बक्स नं० ५५१३ बंबई नं० १४।
यू० पी० एजेंट—कांतिलाल, आर० पारेख, चाँदनी चौक, दिल्ली।
लखनऊ एजेंट—माताबदल पन्सारी, अमीनाबाद।
लखनऊ स्टाकिस्ट—कौशिक आयुर्वेदिक स्टोर्स, श्रीराम रोड।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

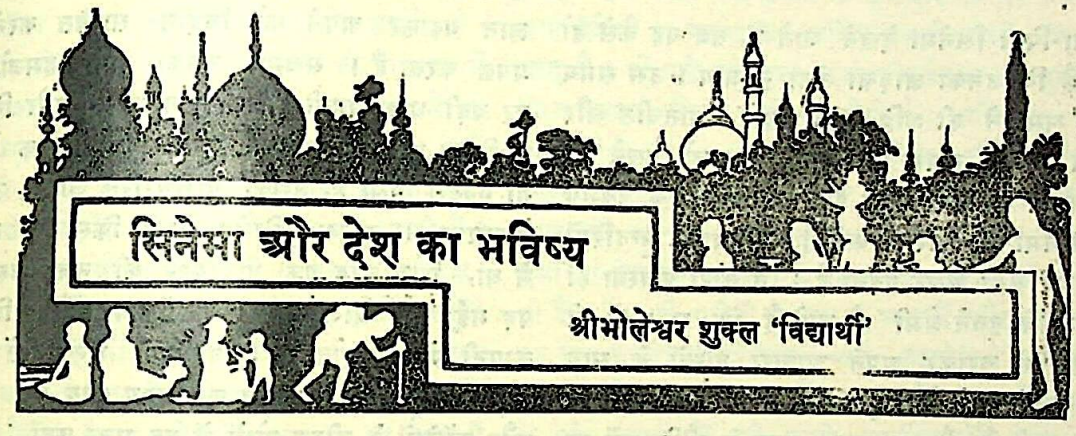

सिनेमा और देश का भविष्य

श्रीभोलेश्वर शुक्ल 'विद्यार्थी'

यह दुहराना मूर्खता होगी कि देश का भविष्य, सुख-दुःख, उन्नति-अवनति इत्यादि सब निर्भर है उस देश के नन्हें बालकों पर। वृद्धसमाज मृत्यु की राह में है, युवकसमूह जैसा भी बन चुका, अपने बचपन में, उसका जैसा चरित्र-गठन हो चुका, वह मिटने का नहीं। रह जाती है बात बालकों पर। बच्चे के जन्म से, या कहिए गर्भ में आते ही, बुद्धि, चरित्र, स्वास्थ्य सबका निर्माण शुरू हो जाता है। उसके बनने-बिगड़ने की सारी ज़िम्मेदारी रहती है, पहले माता-पिता पर, फिर औरों पर, शिक्षक और उसके चारों ओर के वातावरण पर।

कौन नहीं चाहता कि हमारी प्यारी मातृभूमि उन्नति-शालिनी, ऐश्वर्यवान् और प्रसिद्ध हो। साथ ही प्रत्येक मनुष्य की इच्छा रहती है अपनी संतान को उन्नत और सुखी देखने की भी। आज हमारा बाल-समाज किस दशा में है, यह तो किसी से छिपा नहीं। पहले तो यहाँ बालकों के जन्मते ही उनकी मृत्यु का आरम्भ हो जाता है; लड़के कुछ बड़े होते ही कुसंगति और कुशिक्षा के कारण अपना सर्वनाश करने लगते हैं। मुझे कहने दीजिए कि आजकल शायद ही कोई ऐसा लड़का निकले, जो पवित्र आचरण और विचारोंवाला हो। स्वास्थ्य चौपट हो जाता है और शरीर रोगों का घर होकर अकाल में ही काल का ग्रास होता है। यह सब माता-पिता की अशिक्षा और लापरवाही का परिणाम होता है और इसका प्रतिकार शिक्षा द्वारा ही हो सकता है। जो हो, बालवृन्द तो पतन के गर्त में जा ही रहे हैं और कह सकते हैं कि ढकेले जा रहे हैं—केवल अपनी स्वार्थपरता और अज्ञान के कारण। सब साधन भी मौजूद हैं, तब बेचारे उनका उपयोग करने से क्यों चूकें?

मेरा मतलब है यहाँ 'फ़िल्मों का बालकों पर क्या असर पड़ता है' यह दरसाना। अगर उपर्युक्त 'बालकों को पतन की ओर खींच ले जानेवाले' साधनों में से एक हम सिनेमा को कह दें तो, मेरी बुद्धि के अनुसार, बुरा न होगा। इस ज़माने में गाँवों तक में सिनेमा का प्रचार हो रहा है। अशिक्षित, गँवार और भरपेट भोजन न पानेवाले मज़दूर भी फ़िल्म की अभिनेत्रियों के नामों से अच्छी तरह परिचित होते जा रहे हैं। एक हँसी का मसाला है उन अशिक्षितों के मुँह से सिनेमा की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अभिनेत्रियों के हाव-भाव, गायन इत्यादि की अश्लील आलोचना और उनके विषय की बातचीत सुनना। कौन ऐसा अभागा है, जो सिनेमावाले शहर में जाकर सिनेमा देखे विना लौट आवे। सिनेमा की एक एक बात इतनी आकर्षक होकर देहातों में नशे की तरह लोगों में फैल रही है कि आश्चर्य होता है। इसमें अत्युक्ति नहीं है।

माता-पिता सिनेमा देखने जाते हैं, तब यह कैसे हो सकता है कि उनका लाड़ला बेटा न जाय। उस समय बच्चों में समझने की शक्ति नहीं रहती। बातचीत और हावभाव तो कुछ समझ नहीं पाते; पर जो देखते हैं, वह हृदय में घर कर जाता है। तब उन्हें एक विशेष शक्ति सिनेमा की ओर खींचती है। सिनेमा की सुन्दरियों का उन पर बड़ा असर पड़ता है। वे छोटी अवस्था ही में सिनेमा के इतने प्रेमी हो जाते हैं कि मा-बाप की चोरी से, पैसे चुराकर अपने आवारा दोस्तों के साथ सिनेमा देखने जाते हैं। बुरी सोहबत भी प्रायः ऐसी ही जगह मिलती है और इस तरह भारत के नौनिहालों का स्वास्थ्य, चरित्र, माता-पिता और स्वदेश की सारी आशाएँ चौपट हो जाती हैं। मैंने छोटे-छोटे बच्चों को भी सिनेमा के दृश्यों, अभिनेत्रियों और नर्तकियों की बातें करते सुना है। कइयों के नाम उन्हें अच्छी तरह याद रहते हैं। नहीं मालूम, किस तरह ये बातें उनके हृदय में भी पैठ जाती हैं, जिनको 'काला अक्षर भैंस बराबर है'। वे दिन भर क्या सोचते रहते होंगे और कैसे विचार उनके हृदय में उथलपुथल मचाते रहते होंगे, यह आप सोच सकते हैं। स्कूल के विद्यार्थियों की भी ज्यों-ज्यों बुद्धि और ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों सिनेमा-प्रेम भी बढ़ता जाता है। सिनेमा देखकर न जाने कितनी और किस तरह की विचार-तरंगें उठा करती हैं। स्कूल में भी वही सिनेमा दिमाग़ में चक्कर लगाता रहता है। मास्टर साहब की चाकपेंसिल बोर्ड पर सुन्दरियों के नृत्य-सी प्रतीत होती है और उनके व्याख्यान प्रेम-सम्भाषण और गीतों-जैसे। सिनेमा के गायन—विशेषकर प्रेमसम्बन्धी—बच्चे-बच्चे की ज़बान पर हैं। वे जो देखते हैं, उसे कार्यरूप में करने की धुन सवार हो जाती है। अपरिपक्व बुद्धि और युवावस्था का जोश सर्वनाश में सहायक होता है। फ़िल्म-कम्पनी में जाने के मंसूबे बाँधना तो युवकों का रोज़ का काम है। ऐसा अभागा कौन होगा, जिसकी इच्छा सिनेमा में काम करने की न हो। प्रत्येक युवक की महत्त्वाकांक्षा होती है फ़िल्म-कम्पनी में ऐक्टर बनने की। सिनेमा की चर्चा तो प्रतिदिन के आवश्यक कार्यों में से एक है। प्रत्येक अपना सिनेमा-सम्बन्धी ज्ञान बढ़ाकर अपने को विद्वान् साबित करने का प्रयत्न करता है। सचमुच उसकी अपने हमजोलियों पर बड़ी धाक रहती है, जो वाक्पटु हो और सिनेमा के विषय की सच-झूठ बातें सुना सके। अमुक ऐक्टर या ऐक्ट्रेस ऐसी है, उसका पारिवारिक जीवन, उसकी गुणगाथा। अमुक अभिनेता पहले किस बुरी हालत में था, किस तरह एक डाइरेक्टर की नज़र उस पर पड़ गई और आज इस तरह विख्यात है। फ़िल्म-कम्पनी में क्या होता है? वहाँ की अन्य बातें और अपने मंसूबे। यही जीवन का मुख्य ध्येय है। स्कूल और कॉलेजों के नीरस पोथों में यह मज़ा कहाँ?

विद्यार्थियों की ही बदौलत तो आजकल सिनेमा-पत्रों की इतनी खपत है। मूर्ख लोग और बालकगण भी प्रेम की परिभाषा जानने लगे हैं। भोले-भाले युवक नहीं जानते कि प्रेम कुछ और ही वस्तु है। उनके विचारों से बिलकुल भिन्न। सिनेमा से वे प्रेम नहीं, 'वासना' सीख सकते हैं। कॉलेजों में तो दैनिक आवश्यक कार्यों में सिनेमा का प्रमुख स्थान है। सिनेमा में युवक जो देखते हैं, उसे अपने जीवन में घटित करना चाहते हैं। उनकी चालढाल, हावभाव सबमें कृत्रिमता आ जाती है। वे सिनेमा-लोक की सृष्टि करने लग जाते हैं। आगे क्या होता है? रोमांस की तलाश तो स्कूल से ही शुरू हो जाती है। भावुक युवक प्रेम के अवतार बन बैठते हैं। अब चरित्र की बात आप ही सोचिए।

भिन्न-भिन्न बातों का भिन्न-भिन्न आयुवाले बालकों पर अलग-अलग असर पड़ता है। मैं विशेष ज़ोर देकर कह सकता हूँ—और अधिकार-सहित—कि प्रत्येक बच्चे से लेकर वृद्ध तक के मन में सिनेमा देखकर नाना विचार उठते ही हैं। वह अवश्य एक नये लोक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में विचरण करने लगता है। अवश्य कुछ समय तक उसके हृदय में सिनेमा का असर बना रहता है। कइयों को आदत-सी पड़ जाने से, साधारण-सी बात हो जाने से या उसे समझ न पाने से, कई पर उतना प्रभाव भले ही न पड़े; पर अधिकांश सरलहृदय नवयुवकों के सामने सिनेमा ख़तम होते ही अंधकार छा जाता है। जी चाहता है, वही देखता रहे। वे दृश्य आँखों से अलग न हों। जीवन की धारा बदलने लगती है। कम से कम प्रेम के फेर में, रोमांस की तलाश में फिरना अवश्य शुरू हो जाता है। 'काश! मैं भी सिनेमा का कोई प्रसिद्ध अभिनेता होता' और यही मंसूबे, यही हवाई क़िले, जो बनना शुरू हो जाते हैं, सर्वनाश की जड़ हैं। बुरी लतें शुरू हो जाती हैं। पतन अपना काम शुरू कर देता है। फल? सर्वनाश। बालकों के मनोविज्ञान के पंडितों को इसमें अत्युक्ति न दिखेगी। कोई भी लड़का एक बार सिनेमा जाकर बार-बार जाना चाहता है। एक बात और, बालकों में कम टिकट लेकर बैठना तो घोर अपमान की बात है और सिनेमा देखने न जाना, दोस्तों के साथ मज़े न उड़ाना ही दुराचार है। जिस देश में प्रत्येक मनुष्य की प्रतिदिन की आय है केवल -)॥, उसी देश के आशा-रूप विद्यार्थियों को रोज़ सिनेमा देखने के लिए कितना चाहिए? उधर पिताजी फ़ाक़ेमस्ती करके बेटे को शिक्षित देखने के लिए धन देते हैं। फिर सिनेमा देखने जाते हैं तो शान के ख़िलाफ़ है नीची सीट पर बैठना। साथ में मित्र भी होते हैं। अन्य ख़र्च भी तो लगे ही रहते हैं। इस तरह वे अपनी सबसे अमूल्य वस्तु चरित्र तो खोते ही हैं, सम्पत्ति भी बरबाद करते हैं। अपने पिता-माता की आशाओं को यों कुचलते हैं। मज़ा यह कि पैसा देकर अपने ही सर्वनाश का साधन, अपनी ही मृत्यु ख़रीदी जाती है। जिस समय हमें भोजन के लाले पड़े हैं, उस समय यह फ़िज़ूलख़र्ची! उस देश की भगवान् ही रक्षा करें, जहाँ बालकों और युवकों की यह दशा है और हमारे आदरणीय अभिभावक और अधिकारी अग्रगण्य सज्जन तमाशा देख रहे हैं। अगर आपके देखते यह सब हो रहा है तो इस सबका उत्तरदायित्व—करोड़ों के—साथ ही देश के—विनाश का पाप किस पर है? कौन नहीं चाहता कि हमारा बेटा आगे चलकर उन्नति करे, हमें सुख पहुँचावे? किसकी इच्छा है कि हम दासता में पड़े दूसरों की जूतियाँ चाटने और जी-हुज़ूरी में अपना सम्मान समझें और बूट की ठोकर खाकर कृतार्थ हों? मगर मुक्ति का साधन है एक—और वह सबको मालूम है। अब उस उपाय के कर्णधार जो हैं, उनकी दशा देखिए। मनुष्य का चरित्र उसकी सबसे अमूल्य वस्तु है। जो उसे खो चुका, उसका सर्वनाश हो चुका। आज आपकी संतान वही खो बैठी है। और वह भी आप ही के द्वारा। बुरा न मानें तो कह दूँ कि आप अपने लड़कों की गर्दन पर छुरी फेर रहे हैं। बालहत्या का—नरहत्या का पाप है आपके सिर पर। इसलिए देश की अवनति के लिए उत्तरदायी भी आप ही हैं। देश की ग़रीबी के कारण आप हैं और ग़रीबों का ख़ून चूसनेवाले मोटेमल—बड़े कहानेवाले लक्ष्मीपति—जो देश की 'नाक' हैं। बालकों के चरित्रनाश के कई साधन हैं, जो उनके शुभचिन्तकों द्वारा ही प्रस्तुत होते हैं। उनमें प्रमुख है—'सिनेमा'। मेरी समझ से सिनेमा को दूसरा नाम दिया जा सकता है 'अश्लीलता के अड्डे'। मैं तो नहीं समझता कि किसी भी सदाचारी से सदाचारी—जो आजकल अपवाद-स्वरूप शायद हज़ार में एक निकले—पर सिनेमा के नग्न अश्लील दृश्यों और गानों का असर न पड़ता होगा। इस उक्ति के अपवाद भी कुछ चित्रपट हैं। कुछ सिनेमा की फ़िल्में ऐसी भी हैं, जो बहुत कुछ अश्लीलता के प्रदर्शन से बची हैं और विद्यार्थियों के देखने योग्य हैं। अब यह प्रश्न सामने आता है कि क्या विद्यार्थी सिनेमा देखने ही न जायँ? कौन ऐसा मनहूस विद्यार्थी होगा, जो ऐसा कहनेवाले को गालियाँ न दे। कम से कम मूर्ख अवश्य कहेगा। इसका उत्तर यही होगा कि सिनेमा अवश्य देखना चाहिए, किन्तु वही, जो तुम्हारे योग्य हैं—अश्लीलतारहित हैं, दिल पर अच्छा असर डालनेवाले हैं। प्रश्न है कि अच्छे सिनेमा न हों तो क्या हो? इसी के लिए मैं सिनेमा-संचालकों, व्यवसायियों, देश के अग्रगण्य सज्जनों एवं विद्वानों तथा पाठकों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हाँ, तो यह सब रोकने का सरल उपाय आप सोचेंगे कि सिनेमा ही बन्द हो जाय तो सब बखेड़ा मिटे। पर भला जब संसार उन्नति कर रहा है तो भारतवर्ष ही क्यों पीछे रहे? वर्तमान समय में सिनेमा-व्यवसाय का अन्त होना असम्भव है। अन्य देशवासी जहाँ सिनेमा का उपयोग अपनी, अपने देश की और साथ ही देश के भविष्य—बालकों—की उन्नति में कर रहे हैं, वहाँ हम वासना में लिप्त, बिलकुल उनसे उल्टे हैं। हमारे यहाँ भी सिनेमा में बुरे और भद्दे चित्रपट बनाना बन्द करके सिनेमा का उपयोग देश और समाज की भलाई और उन्नति के लिए होना चाहिए और यह काम चित्रपट बनानेवाली कम्पनियों के डाइरेक्टर ही कर सकते हैं। यहाँ तो हमारे देश के पूँजीपति पैसा कमाने के उद्देश से धर्म, सभ्यता और देशप्रेम को तिलांजलि दे, कला का गला घोंट, वासनामय प्रेम और नग्न सौन्दर्य के प्रदर्शनरूपी महायज्ञ में केवल भगवान् नगदनारायण की प्राप्ति के लिए अबोध बालकों और भारतमाता की बलि देने को तत्पर हैं।

मनुष्य 'बुरे' का प्रेमी है। वही वह जल्दी सीखता है; क्योंकि वही पसन्द करता है। सिनेमा के विधाताओं को ज़रूरत है रुपये की, और अच्छी वस्तु से शायद वह प्राप्त होने का नहीं। बेचारे अपना कर्तव्य-पालन (?) करते हैं। सस्ते उत्तेजनापूर्ण कथानक जब उन्हें मिलते हैं, तो विद्वान् लेखकों से व्यर्थ पैसा ख़र्च कर 'अच्छी' वस्तु लेने की ज़रूरत? जिन दर्शकों से आमदनी अधिक है, उनकी रुचि का ख़याल रखना ही उन्हें अभीष्ट है। फिर 'बड़े-बड़े' अपना बड़प्पन जताने के लिए ऊपर से भले ही किसी फ़िल्म की निन्दा कर दें, मगर मन में तो उसकी क़द्र करते ही हैं। बताइए, 'आदर्श' उपस्थित करने की किसी को क्या पड़ी है कि जान-बूझकर रुपया कमाने की घुड़दौड़ में पिछड़ जाय?

कथानक प्रायः सब फ़िल्मों का एक ही रहा करता है। प्रत्येक में एक प्रेमी और एक प्रेमिका चाहिए ही। कुछ फ़िल्मों में कई कष्ट झेलने के पश्चात् दोनों का विवाह होता है, कई में मिलन होता ही नहीं। अधिकांश फ़िल्म अस्वाभाविक और अश्लीलता से परिपूर्ण रहते हैं। उद्देश तो उनके प्रदर्शन का मनोरंजन है, सो आश्चर्यजनक बातों और उत्तेजक दृश्य, नृत्य, गान के सिवा क्या रहेगा। प्रायः सभी फ़िल्मों में यही परिपाटी है। अगर ज़रा-सा ही देशहित का ख़याल रखकर कुछ अधिक धन ख़र्च किया जाय तो उपयोगी अच्छे चित्रपट बन सकते हैं। जो बात हम बड़ी मेहनत से हृदयंगम नहीं करा सकते, वही सिनेमा द्वारा स्थायी प्रभाव डालती है। मनोरंजक बातों का अभाव तो होना ही नहीं चाहिए; पर क्या प्रेम-प्रदर्शन के सिवा अन्य रस के फ़िल्म नहीं बनाये जा सकते? प्रेम भी परहेज़ की चीज़ नहीं, एक पवित्र वस्तु है। क्या फ़िल्म द्वारा पवित्र प्रेम के भाव बालकों के हृदय में नहीं भरे जा सकते? क्या फ़िल्म द्वारा उन्हें विश्व-प्रेम का, देश-प्रेम का, मातृ-प्रेम का आदर्श नहीं दिखलाया जा सकता? जहाँ प्रेम-प्रेम चिल्लानेवाले शिक्षित युवक माता-पिता का गालियों से आवाहन और जूतों से पूजन करते हैं, वहाँ क्या इसकी आवश्यकता नहीं है? उनके हृदय में 'प्रेम' पैदा कीजिए, पर वासनामय, अश्लील उत्तेजक फ़िल्मों द्वारा क्यों उनके सर्वनाश पर तुले हैं? क्या भारत की प्राचीन कीर्ति, सभ्यता और आदर्श को उनके सामने रखना असम्भव है? पौराणिक फ़िल्मों को भी आजकल कलुषित वातावरण से अपवित्र कर प्रदर्शित किया जाता है, जो और भी अधिक प्रभाव डालती हैं धर्म-भीरु मूर्खों पर। वे विषैलेपन और गंदगी से देश का सर्वनाश करती हैं, साथ ही हमारा धर्म भी बदनाम हो रहा है। क्यों न अन्य मतावलम्बी हमारा उपहास करें? हम कृष्ण और राम को महापुरुष के रूप में अपने बच्चों के सामने रख सकते हैं। अभिमन्यु, ध्रुव, प्रह्लाद के चरितों को, वीरवर प्रताप, शिवाजी के पुनीत आदर्शों और वीरतामय कार्यों को फ़िल्म द्वारा ही सबसे उत्तम रूप में प्रकट कर सकते हैं, जो एक बच्चे के ख़ून में भी जोश ला दे। उसे अपनी प्राचीन सभ्यता, वीरता का परिचय मिले, आज की पतितावस्था का पता लगे। मगर आज तो आपके बच्चे नहीं जानते कि राम कौन थे? वे पूर्वजों को मूर्ख और बर्बर कहते हैं। पाश्चात्य सभ्यता और साहित्य के भक्त हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पवित्र हास्य और व्यंग्य से हम वह कार्य कर सकते हैं, जो अन्य किसी भी साधन से न हो सके। पूर्ण मनोरंजन के साथ ही वह मर्मस्थल पर ऐसी चोट करता है कि कभी भुलाये नहीं भूल सकता। तीर की तरह चुभ जाता है। इसी के द्वारा हमें अपनी त्रुटियाँ ज्ञात हो सकती हैं, हमारे सामाजिक और नैतिक पतन का चित्र सामने रक्खा जा सकता है। साधारण व्यक्ति भी इसे समझ जाता है और इसके द्वारा सबसे अधिक कार्य हो सकता है।

शिक्षा के लिए दूसरे देशों में सिनेमा का उपयोग किया ही जाने लगा है। भूगोल और इतिहास की शिक्षा तो बहुत उत्तम रीति से दी जा सकती है। अपने यहाँ वह असम्भव है। जहाँ की शिक्षा बुद्धि को तीव्र करने के बदले कुण्ठित कर देती है, कर्मशील बनाने के बदले अकर्मण्य, तेजस्वी बनाने की अपेक्षा कांतिहरण कर लेना ही उत्तम समझती है और सदाचारी बनाने के बजाय चरित्र का पहले ही अपहरण कर लेती है, वहाँ भी क्या यह आशा की जा सकती है? अगर देश शिक्षित हो जाय तो फिर सिनेमा के संचालकों—छोटे-मोटे सेठों—का उसको चूसना असम्भव है। ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो अपने ही व्यवसाय द्वारा ऐसे साधन उपस्थित कर अपने पाँव पर कुल्हाड़ी मार ले, जिनसे उसकी आमदनी में बाधा पड़े? फिर गंदे सिनेमा देखने ही कौन जायगा?

सिनेमा से कोई भी देश सचमुच उन्नति कर सकता है। ज्ञान-विस्तार के कार्य के लिए सिनेमा अच्छा काम कर सकता है। जगह-जगह के प्रसिद्ध स्थान, दूसरे स्थानों के सुन्दर आश्चर्यजनक दृश्य, कौतूहलवर्धक वस्तुएँ, दूसरों की सभ्यता, युद्ध के दृश्य, सेवाकार्य के उदाहरण और साधारण शिक्षा इसके द्वारा उत्तमता से दी जा सकती है।

अगर हमारे भारत में भी नेताओं, विद्वानों एवं धनिकों का ध्यान वर्तमान सर्वनाशकारी सिनेमा-प्रदर्शन की हानियों की ओर जाय और इसको बंदकर उच्चकोटि के आदर्श फ़िल्म बनाने की ओर प्रयत्न हो तो कितना अच्छा हो? यदि थोड़ा भी परिश्रम और समय का व्यय इस तरफ़ किया जाय तो अपरिमित लाभ हो। साथ ही जनता को भी इस तरफ़ कुछ ध्यान देना चाहिए। सच जानिए, देश के बच्चों के अन्धकारमय भविष्य के लिए सिनेमा को ही सबसे अधिक दोष दिया जा सकता है। अन्त में सत्य की विजय होगी। अगर हमारे लिए कोई कुछ त्याग करेगा तो हम क्या उसकी कुछ क़ीमत न समझेंगे? उसका आभार न मानेंगे? अभी हम पतित होकर भी इतने गिरे नहीं कि अच्छाई और बुराई न समझ सकें। अच्छी चीज़ की अवश्य क़दर की जायगी। अच्छे उपयोगी फ़िल्मों का अच्छा प्रचार होगा, इसका प्रमाण न्यूथिएटर्स के कुछ सामाजिक फ़िल्म हैं। *

---

* यह लेख एक सहृदय और देशप्रेमी विद्यार्थी का लिखा हुआ है, इसलिए हमने प्रकाशित किया है। इसमें की बहुत-सी बातें कुछ कड़ी होने पर भी सच हैं। हमें स्वयं इसका अनुभव है कि सिनेमा के आधे से अधिक दर्शक स्कूल-कॉलेज के लड़के होते हैं। हमने सिनेमा-हाल में उनकी उच्छृङ्खलता भी प्रायः देखी है। उन पर सिनेमा का एक नशा-सा छा जाता है। सिनेमा का प्रचार देश में दिन-दिन बढ़ता जाता है। पर अच्छे फ़िल्म इने-गिने ही बनते हैं। यहाँ शिक्षा और उपयोगी ज्ञान बढ़ानेवाले फ़िल्मों की बड़ी कमी है। अन्य देश इधर ध्यान दे रहे हैं। भारत-सरकार और देश के कर्णधारों को चाहिए कि वे सिनेमा-व्यवसाय का नियंत्रण कर वही, अश्लील फ़िल्मों का प्रचलन बंद करने का उद्योग करें और उत्तम उपयोगी फ़िल्मों को प्रोत्साहन दें। साथ ही फ़िल्म-निर्माता लोगों को भी केवल आमदनी को ही प्रमुख स्थान न देकर देश के हानि-लाभ पर भी दृष्टिपात करना चाहिए। यही इस लेख का मतलब और महत्त्व है।

—माधुरी-सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

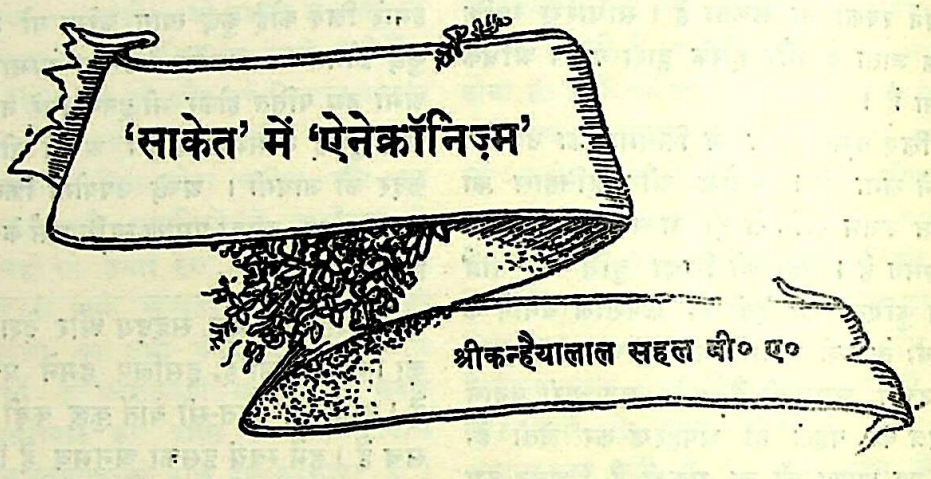

'साकेत' में 'ऐनेक्रॉनिज़्म'

श्रीकन्हैयालाल सहल बी० ए०

ऐनेक्रॉनिज़्म (Anachronism) के लिए हिंदी में कौन-सा शब्द प्रयुक्त होता है, इसका मुझे पता नहीं। मुझे तो इसमें भी शक है कि इस शब्द का अभी तक किसी ने हिन्दी में प्रयोग किया हो। इसलिए प्रारम्भ में ही इस शब्द की व्याख्या कर देना आवश्यक जान पड़ता है। Webster's Dictionary में इस शब्द की यह परिभाषा दी गई है—

"Anachronism is a misplacing or an error in the order of time : an error in chronology by which events are misplaced in regard to each other especially one by which an event is placed too early."

अर्थात् "ऐनेक्रॉनिज़्म एक प्रकार का काल-व्यतिक्रम, ऐतिहासिक घटनाक्रम का विपर्यय है, विशेषतः जब उत्तरकाल की ऐतिहासिक घटनाओं का पूर्वकाल में ही वर्णन कर दिया जाता है।" इसको एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट कर देना अच्छा होगा। 'अल्लाहो अकबर' की अभिवादन-प्रणाली का प्रारम्भ शायद अकबर के समय से हुआ होगा। इसलिए यदि कोई उपन्यासकार अथवा नाट्यलेखक बाबर-कालीन घटनाओं में किसी पात्र के मुख से 'अल्लाहो अकबर' का प्रयोग करवा दे तो यह ऐतिहासिक व्यतिक्रम (Anachronism) का उदाहरण होगा।

जैसा कि लेख के शीर्षक से ही प्रकट है, प्रस्तुत लेख का विषय 'साकेत' में से एकआध 'ऐनेक्रॉनिज़्म' का उदाहरण उपस्थित करना है। साकेत के निम्नलिखित छंद को लीजिए—

'कण्ठ - कण्ठ गा उठा,
शून्य-शून्य छा उठा—
सत्य काम सत्य है,
रामनाम सत्य है।'
(सप्तम सर्ग, पृष्ठ २०१)

महाराज दशरथ के दाह-संस्कार के समय कवि ने कंठ-कंठ से 'रामनाम सत्य है' की ध्वनि लगवाई है। किंतु प्रश्न यह उठता है कि इस वाक्य का प्रयोग दशरथ की मृत्यु के समय से कैसे होने लगा ? 'राम-नाम सत्य है' कहने की प्रथा कब से चली ? इस संबंध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में श्रीरामदास गौड़ ने 'श्रीरामचरितमानस की भूमिका' में लिखा है—

"एक बार कोई ब्राह्मण मर गया था। उसकी स्त्री शृंगार किये सती होने को जा रही थी। राह में उस स्त्री ने गोस्वामीजी को देखकर प्रणाम किया। गोस्वामीजी ने असीस दी—"सौभाग्यवती हो।"

स्त्री रोकर बोली—"भगवन्, मैं तो अभागिन हूँ। अपनी असीस सफल करो कि पति मिले। सती होने जा रही हूँ। मेरे नाथ तो चले गये।" गोस्वामीजी रुक गये। सारा समाचार सुना। उस दीन विधवा को रोककर कहा—"राम की मरज़ी थी, सो हुई। असीस अनजानते में निकल गई। तुम राम का भजन करके शेष जीवन काटो। सतीत्व से स्वर्ग ही मिलेगा। स्वर्ग का लालच न करो। स्वर्ग से फिर इसी मर्त्यलोक में लौटना होता है।" पतिव्रता बोली—"भगवन्, स्वर्ग नहीं चाहिए, मुझे पतिदेव चाहिएं, सती होने से मैं उन्हीं के पास जाऊँगी।" गोस्वामीजी बोले—"तो राम-नाम जपने से स्वामी भी मिलेंगे और सब स्वामियों के स्वामी राम मिलेंगे। तू राम-राम जपती शेष जीवन काट दे, सती मत हो। राम भला करेंगे।" स्त्री और साथी राम-राम कहते गंगा-किनारे पहुँचे। लाश ले जानेवालों ने घाट तक पहुँचा दिया था। यहाँ वह ब्राह्मण जी उठा। लोग बन्धन खोल रहे थे। उस घटना से सबको रामनाम पर विश्वास हो गया। शायद तभी से मुर्दे के साथ 'रामनाम सत्य है' कहने की प्रथा चल पड़ी है।" किन्तु इस प्रकार की दन्त-कथाओं पर तो श्रद्धालु भक्तों का ही विश्वास जम सकता है। इसलिए इस सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता कि 'रामनाम सत्य है' की प्रथा कब से चली। किन्तु इतना तो सभी स्वीकार करेंगे कि इस प्रथा का प्रारम्भ दशरथ की मृत्यु से नहीं माना जा सकता। हिन्दू राम को ईश्वर का अवतार समझते हैं, और रामनाम को बहुत अधिक महत्व देते हैं। अभी कुछ दिनों पहले साधुप्रवर टी० एल० वासवानी ने लिखा था—

"When a Hindu meets a Hindu, he says:—'Ram Ram'. And when a dead body is carried to the burning ground, the words recited are 'Ram nam satya hai.' Ram's name is often on our lips."

ऐसा मालूम होता है कि लोगों ने भगवान् रामचन्द्र के नाम को अत्यधिक महत्त्व देने के लिए शव को दाह-संस्कार के लिए ले जाते समय भी इसका प्रयोग करना शुरू कर दिया। राम का नाम तो वैसे भी अजर-अमर है ही; किंतु हिन्दू लोग शव को दाह-संस्कार के लिए ले जाते समय भी कण्ठ-कण्ठ से 'रामनाम सत्य है' की ध्वनि लगाकर रामनाम को और भी चिरस्मरणीय बना देते हैं। यह प्रथा या तो भगवान् रामचन्द्र के मनुष्य-शरीर छोड़ देने के समय से चली हो अथवा भावुक भक्तों ने रामनाम के महत्त्व को प्रतिपादित करने के लिए ऐसा करना शुरू कर दिया हो। किन्तु महाराज दशरथ के देह-त्याग से इसका सम्बन्ध जोड़ना किसी भी तरह युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता। इसलिए दशरथ के दाह-संस्कार के समय कवि द्वारा 'रामनाम सत्य है' का प्रयोग ऐतिहासिक व्यतिक्रम का ही उदाहरण समझा जाना चाहिए।

ऐतिहासिक व्यतिक्रम का एक और उदाहरण देकर हम यह लेख समाप्त करेंगे। सीता की निम्नलिखित उक्ति को लीजिए—

"नाथ न भय दो तुम हमको
जीत चुकी हैं हम यम को।"
(साकेत, चतुर्थ सर्ग, पृ० १०३)

यहाँ दूसरी पंक्ति में स्पष्ट ही सावित्री की ओर संकेत है, यद्यपि कवि ने उसका नाम-निर्देश नहीं किया है। रामायण-काल की सीता के मुख से महाभारत-काल की सावित्री का उदाहरण दिलवाना ऐतिहासिक व्यतिक्रम है; क्योंकि रामायण का समय महाभारत के समय से बहुत पहले पड़ता है। सावित्री तो सीता के बाद हुई है, न कि पहले। प्रश्न यह है कि गुप्तजी ने सीता के मुख से "जीत चुकी हैं हम यम को" यह उक्ति क्यों कहलवाई? वास्तव में अनेक महाकवियों के काव्यों में ऐसी घटनाओं का उल्लेख पाया जाता है, जिसमें ऐतिहासिक काल के घटना-क्रम का समाधानता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथवा असमीचीनता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई वाक्य स्वतः ही, विना प्रयास, कवि के मुख से निकल पड़ता है, और उस वाक्य के ज़ोरदार होने के कारण ऐतिहासिक घटनाओं के औचित्य अथवा अनौचित्य पर कवि का ध्यान ही नहीं जाता। कवि का उद्देश्य पाठकों के सामने अपने भावों को स्पष्टतया व्यक्त करने और उनको अधिक प्रभावित करने का रहता है। यही बात गुप्तजी के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। 'जीत चुकी हैं हम यम को' यह उक्ति प्रभावशालिनी तो है ही। हमें भय किसका, हम मृत्यु को ही क्या, मृत्यु के देवता तक को जीत चुकी हैं! यह कथन कितना ज़ोरदार है।

इसी प्रकार दशरथ के दाह-संस्कार का दृश्य उपस्थित करते समय कवि को इस बात का ख़याल नहीं रहा कि 'रामनाम सत्य है' इस वाक्य का रूढ़िगत अर्थ में प्रयोग दशरथ के देहावसान के समय कैसे किया जा रहा है; और यदि कदाचित् रहा भी हो तो भी कवि लोग जान-बूझकर अपने वर्णन को अधिक प्रत्यक्ष और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ऐतिहासिक व्यतिक्रम की परवा नहीं करते। किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है। यदि 'रामनाम सत्य है' को " " में रख दिया जाता तो अधिक उपयुक्त होता और पाठक इसको पढ़ते ही ऐतिहासिक व्यतिक्रम (Anachronism) समझ जाते।

इस लेख के लिखने का हमारा यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि गुप्तजी ने ऐतिहासिक व्यतिक्रम के उदाहरण उपस्थित कर कुछ अनुचित किया है; किन्तु हमारी दृष्टि से तो इस प्रकार के साधनों द्वारा काव्य में अधिक प्रभावोत्पादकता उत्पन्न होती है और इस दृष्टि से, जब तक ऐसे उदाहरण सीमोल्लंघन न करें, उनका स्वागत किया जाना चाहिए।

लकड़ी की चित्रकारी की उपयोगिता

(सचित्र)

लेखक, श्रीयुत आर० के० भार्गव, यहियागंज, लखनऊ। यह पुस्तक एजुकेशनल बुकडिपो, ४७, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ से ⟩॥ में मिलती है। इसमें आठ सफ़े हैं। लेखक ने लकड़ी पर चित्रकारी के काम को, जिसे अँगरेज़ी में फ़्रेट वर्क कहते हैं, लड़कों और लड़कियों का मनोरंजक होने के साथ ही आमदनी का भी एक ज़रिया बतलाया है। वास्तव में यह दस्तकारी ऐसी है कि लड़के-लड़की इसमें काफ़ी दिलचस्पी लेकर लाभ उठा सकते हैं। हमें आशा है, यह सस्ता और उपयोगी पैंफ़लेट हमारे घर-घर में स्थान पावेगा। ऐसी उपयोगी और अच्छी, साथ ही सस्ती पुस्तक लिखने और उसका प्रचार करने के लिए लेखक महोदय बधाई के पात्र हैं।

रानीकटरा,
लखनऊ
२७-५-३९

रूपनारायण पाण्डेय
माधुरी-सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

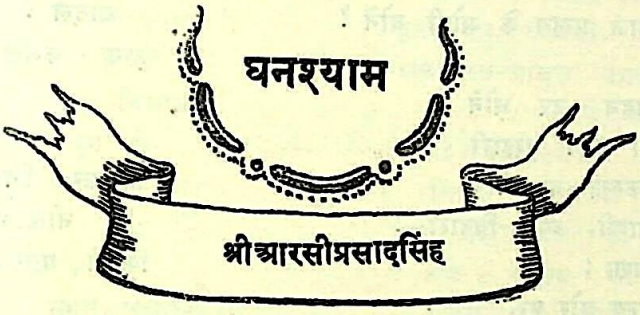

सजल, हे सुन्दर, हे घनश्याम ;
उतरो मेरे आँगन में
कर लो क्षण-भर विश्राम !
नीलाम्बर में नीलाम्बर-सा लहराकर,
उमड़-उमड़, घन ! घुमड़-घुमड़, घहराकर ;
तुम आते हो,
बरसाते हो ;
जीवन - जल की धारा !
बरस-बरस जाते हो जग में
जग - लोचन के तारा !
आकुल कूल - किनारा !
हे असीम के अश्रु, गगन के शोक,
किसी के विरह - विषाद ;
प्रलय - घन के अनन्त आह्लाद !
करो निनाद, विश्व के उर में
भरो विजय का भाव ;
आत्म - गौरव, पौरुष - सम्मान ;
वीर - रण - गान !
उठो, उठो ; कर शंख-घोष,
जग जायँ विश्व के प्राण !
अभ्र - भेदी हुङ्कार ;
काँपता किसलय का संसार !
तुम्हारे क्षितिज - कंठ में मंजु
डोलता इन्द्र-धनुप का हार !
अन्तरिक्ष के यमुना-तट पर ;
बजी मुरलिका—कलिका थर-थर
चपला की सुकुमारी ;
ओ बनवारी, नटवर !
वारि - धूम - गिरिधारी !
नर्तन कर अशेष अम्बर में,
भर-भर अमृत-माधुरी स्वर में ;
करते किसका आह्वान ?
फैला देते हो नव-जल-धर !
राशि-राशि तरु-लता-तृणों पर,
हरित-भरित, कर कुसुमित,
शीतल - निर्मल,
उज्ज्वल मुक्ता - दाम ;
हे सुन्दर घनश्याम !
दूर देश के मेरे पथिक सलोने !
चले कहाँ इस भाँति करुण - स्वर से तुम रोने ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अथवा असमीचीनता की ओर उतना ध्यान नहीं दिया जाता। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई वाक्य स्वतः ही, विना प्रयास, कवि के मुख से निकल पड़ता है, और उस वाक्य के ज़ोरदार होने के कारण ऐतिहासिक घटनाओं के औचित्य अथवा अनौचित्य पर कवि का ध्यान ही नहीं जाता। कवि का उद्देश्य पाठकों के सामने अपने भावों को स्पष्टतया व्यक्त करने और उनको अधिक प्रभावित करने का रहता है। यही बात गुप्तजी के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। 'जीत चुकी हैं हम यम को' यह उक्ति प्रभावशालिनी तो है ही। हमें भय किसका, हम मृत्यु को ही क्या, मृत्यु के देवता तक को जीत चुकी हैं! यह कथन कितना ज़ोरदार है।

इसी प्रकार दशरथ के दाह-संस्कार का दृश्य उपस्थित करते समय कवि को इस बात का ख़याल नहीं रहा कि 'रामनाम सत्य है' इस वाक्य का रूढ़िगत अर्थ में प्रयोग दशरथ के देहावसान के समय कैसे किया जा रहा है; और यदि कदाचित् रहा भी हो तो भी कवि लोग जान-बूझकर अपने वर्णन को अधिक प्रत्यक्ष और प्रभावोत्पादक बनाने के लिए ऐतिहासिक व्यतिक्रम की परवा नहीं करते। किन्तु इस सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है। यदि 'रामनाम सत्य है' को " " में रख दिया जाता तो अधिक उपयुक्त होता और पाठक इसको पढ़ते ही ऐतिहासिक व्यतिक्रम (Anachronism) समझ जाते।

इस लेख के लिखने का हमारा यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि गुप्तजी ने ऐतिहासिक व्यतिक्रम के उदाहरण उपस्थित कर कुछ अनुचित किया है; किन्तु हमारी दृष्टि से तो इस प्रकार के साधनों द्वारा काव्य में अधिक प्रभावोत्पादकता उत्पन्न होती है और इस दृष्टि से, जब तक ऐसे उदाहरण सीमोल्लंघन न करें, उनका स्वागत किया जाना चाहिए।

लकड़ी की चित्रकारी की उपयोगिता

(सचित्र)

लेखक, श्रीयुत आर० के० भार्गव, यहियागंज, लखनऊ। यह पुस्तक एजुकेशनल बुकडिपो, ४७, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ से ॥) में मिलती है। इसमें आठ सफ़े हैं। लेखक ने लकड़ी पर चित्रकारी के काम को, जिसे अँगरेज़ी में फ़्रेट वर्क कहते हैं, लड़कों और लड़कियों का मनोरंजक होने के साथ ही आमदनी का भी एक ज़रिया बतलाया है। वास्तव में यह दस्तकारी ऐसी है कि लड़के-लड़की इसमें काफ़ी दिलचस्पी लेकर लाभ उठा सकते हैं। हमें आशा है, यह सस्ता और उपयोगी पैंफ़लेट हमारे घर-घर में स्थान पावेगा। ऐसी उपयोगी और अच्छी, साथ ही सस्ती पुस्तक लिखने और उसका प्रचार करने के लिए लेखक महोदय बधाई के पात्र हैं।

रानीकटरा,
लखनऊ
२७—५—३९

रूपनारायण पाण्डेय
माधुरी-सम्पादक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

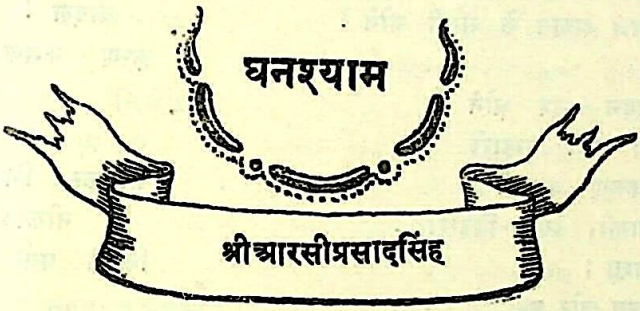

सजल, हे सुन्दर, हे घनश्याम ;
उतरो मेरे आँगन में
कर लो क्षण-भर विश्राम !
नीलाम्बर में नीलाम्बर-सा लहराकर,
उमड़-उमड़, घन ! घुमड़-घुमड़, घहराकर ;
तुम आते हो,
बरसाते हो ;
जीवन - जल की धारा !
बरस-बरस जाते हो जग में
जग - लोचन के तारा !
आकुल कूल - किनारा !
हे असीम के अश्रु, गगन के शोक,
किसी के विरह - विषाद ;
प्रलय - घन के अनन्त आह्लाद !
करो निनाद, विश्व के उर में
भरो विजय का भाव ;
आत्म - गौरव, पौरुष - सम्मान ;
वीर - रण - गान !
उठो, उठो ; कर शंख-घोष,
जग जायँ विश्व के प्राण !
अभ्र - भेदी हुङ्कार ;
काँपता किसलय का संसार !
तुम्हारे क्षितिज - कंठ में मंजु
डोलता इन्द्र-धनुष का हार !
अन्तरिक्ष के यमुना-तट पर ;
बजी मुरलिका—कलिका थर-थर
चपला की सुकुमारी ;
ओ बनवारी, नटवर !
वारि - धूम - गिरिधारी !
नर्तन कर अशेष अम्बर में,
भर-भर अमृत-माधुरी स्वर में ;
करते किसका आह्वान ?
फैला देते हो नव-जल-धर !
राशि-राशि तरु-लता-तृणों पर,
हरित-भरित, कर कुसुमित,
शीतल - निर्मल,
उज्ज्वल मुक्ता - दाम ;
हे सुन्दर घनश्याम !
दूर देश के मेरे पथिक सलोने !
चले कहाँ इस भाँति करुण - स्वर से तुम रोने ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन्द्रचाप-से सुन्दर, सजकर,
अहे अशनि-ध्वनि, गरज-गरजकर !
वायु - वेग से, शून्य - व्योम में,
किधर उड़े जाते तुम अपना गौरव खोने ?
कहाँ पहुँचकर,
कहो, कौन-से जग में जाकर,
किस निर्मम के वज्र-वक्ष से टकराकर,
हाय ! चले तुम आज प्रणय के मोती बोने ?
अश्रु-वारि से
प्रिय, किसका पाहन - उर धोने ?
कौन सुनेगा वहाँ तुम्हारी
करुण - कहानी ?
मन की वाणी, व्योम-विहारी !
केवल एक निराशा ;
दूर, क्षितिज के शून्य छोर पर,
करुणा-कातर,
क्रन्दन करती अन्तःपुर में,
आकुल खिन्न पिपासा !
यहाँ किसको इतना अवकाश ?
कभी जो बैठ तुम्हारे पास,
सुने, दो क्षण भी हाय, सप्रेम
तुम्हारे जीवन का इतिहास ?
खोओ यों न तपस्वी ! अपने
नयनों का अनमोल रतन-धन !
हृदय-हीन जग के मरु-वन में,
तृष्णा के कानन में !
यदि विषाद ही तुम्हें सुहाता,
और, रुदन ही भाता,
तो, आओ प्रियवर ! आ जाओ ;
मेरे इस एकान्त भवन में,
एकाकी, चिर-शून्य सदन में ;
चिल्लाकर या मौन - भाव से,
स्नेह - चाव से,
जितना जी चाहे,
तुम रोओ वारिद, रोओ !
विलख-बिलखकर, फूट-फूटकर,
निशि - दिन, आठो याम ;

हे सुन्दर घनश्याम !
किस पावन प्रदेश से चलकर,
पवन-अंक में सादर, पल कर ;
एक निमिष में,
तुम दिशि-दिशि में,
घेर गगन, घिर-घिर दिगन्त में,
जाते हो हँसकर !
बादल !
कृष्ण - कमल से महाव्योम के
सरवर में सुन्दर ;
कज्जल !
फैलाकर निज कोटि - कोटि
नीलाभ दलों को ऊपर !
कितने पर्वत, देश, पारकर,
सागर - प्रान्तर,
तुम आये हो हे पथ-चारी !
मंगल-ध्वनि करने आँगन में मेरे,
आज सवेरे ;
वन-विहङ्ग-कुल के गीतों में,
अपना सुमधुर कंठ मिलाकर,
प्रेमभरी रस-कजरी गाकर ;
किसे सुनाने ?
कहो, कहाँ वह तरुणी शैल-कुमारी ?
सावन के मन-भावन,
हे मेरे वनमाली !
रूप तुम्हारा चित्र-विचित्रित ;
लीला सदा निराली !
आओ !
मन का भेद बताओ ;
आज, सुनाओ !
आज, सुनाओ मेघ ! मनोहर
मेघ ! प्रिया का उन्मन ;
विरही का सन्देश करुण-तम,
प्रेम-मिलन !
वह गोपन अनुराग हृदय का
पुनः प्रणय का राग ;
फिर से आये नूतन पल्लव,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जीवन के तरुओं में ;
और, पुनः हो जाय अंकुरित
दूर्वादल अभिराम ;
हे सुन्दर घनश्याम !
अतिथि, आज मेरे नभवासी ;
विद्युत्-हासी !
सुनो, सुनो, तुम चले यहाँ से प्रिय,
यों ही मत जाओ !
आओ, मेरी पूजा पाओ ;
कर लो कुछ विश्राम !
श्रान्त पांथ हे, निरवधि युग से
माप रहे तुम महाकाल का
वक्ष वृकोदर !
आओ, सत्वर ;
व्यजन-पवन से श्रम-कण सदय, सुखाओ !
सुख पाओ तुम, चिर-सुन्दर !
तुम्हें पुकार रहे हैं चातक ;
मंजु - नृत्य कर रहे कलापी !
जलद बनो न किसी के प्राणों के तुम घातक ;
लोग कहेंगे तुमको पापी !
उतरो, उतर पड़ो अम्बर से ;
व्याकुल वसुधा में, बादल !

शुष्क जलाशय ;
तृपित झील, नद, नदी, रसालय !
वट, अर्जुन, अश्वत्थ, उदुम्बर ;
पुलकित तनु - रोमांकुर, कातर,
देख रहे हैं दीन-भाव से आज तुम्हारी ओर
हे चित-चोर,
आम्र-मंजरी, शालि-पर्ण की माला ;
कृषक-वधू, वनदेवी, निर्झर-वाला !
उत्कण्ठित-आकुल जगती के प्राणी ;
हे अभिमानी !
बरसो तुम, बरसाओ जल घनघोर !
विकल राधिका, गोप-गोपिका ;
सूख रही व्रज की हरियाली ;
नव - कदम्ब की डाली-डाली !
हुलस उठे कालिन्दी का मन,
विकसित हो जाये वृन्दावन ;
कुंज - कुंज से उमड़े रस की
धारा चंचल-शीतल !
जीवनमय धरणी - तल !
मधुर - मधुर गिरि - वन - उपत्यका,
सुमधुर गोकुल - ग्राम ;
हे सुन्दर घनश्याम !

स्वप्नदोष निवारक

इसके सेवन से सुपने में वीर्य निकल जाना अथवा जाग्रतावस्था में मैथुन करते ही वीर्य का जल्दी स्खलित हो जाना, सब प्रकार के प्रमेह, स्वप्नदोष, धातुविकार, मूत्रदोष, वीर्य का पतलापन आदि रोग नष्ट होकर शरीर हृष्टपुष्ट हो जाता है। मूल्य ३० खुराक १) रु० डाकव्यय ।=)

पता—गंगेरवाल आफ़िस (म) अलीगढ़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

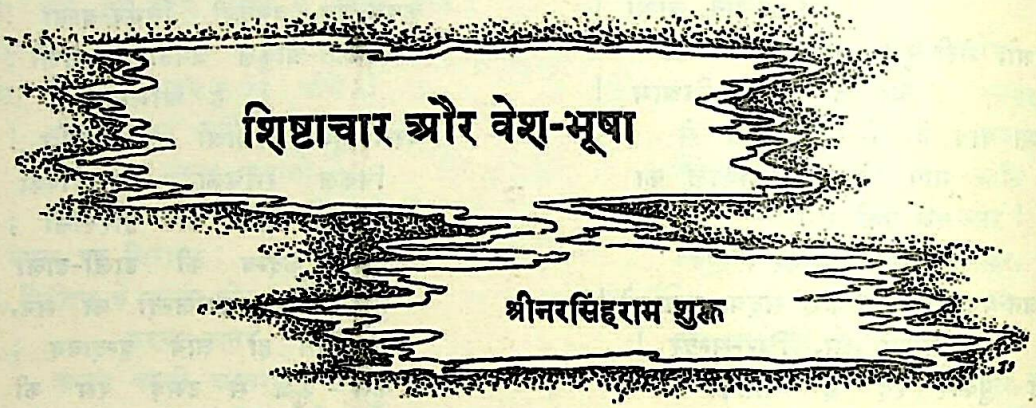

शिष्टाचार और वेश-भूषा

श्रीनरसिंहराम शुक्ल

शिष्टाचार से हमारा अभिप्राय यहाँ सभ्यता से है। सभ्यता एवम् वेश-भूषा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। आज के युग में किसी जाति या देश की सभ्यता पहचानने के लिए वेश-भूषा ही कसौटी समझी जाती है, और यह किसी-किसी अंश में सच भी है। उदाहरण के लिए अपने यहाँ 'दिहाती' और 'शहराती' 'कल्चर्ड' (सभ्य) एवम् रूड (गँवार) की पहचान उनकी वेश-भूषा देखकर की जाती है।

इतिहासकारों ने लिखा है कि 'मनुष्य'-समुदाय अपनी आरंभिक अवस्था में जंगलों या पहाड़ों पर रहा करता था। उस समय उसमें नग्न रहने का ही अधिक प्रचार था। धीरे-धीरे उसने सभ्यता की ओर पैर बढ़ाया। मनुष्य-समुदाय के सभ्य होने का प्रमाण उसके रहन-सहन के परिवर्तन से लिया जाता है। बंदरकालीन (ऐप-युग) सभ्यता को पारकर आज मनुष्य जिस सभ्यता के युग में पहुँचा है, उसे हम 'मनुष्य-कालीन' सभ्यता कह सकते हैं; क्योंकि इस युग में सर्वत्र मनुष्य की ही प्रतिभा दृष्टि-गोचर हो रही है। जल, थल, वायु, भूगर्भ, वन, पर्वत, शिखर, जल-राशि के अन्तस्तल आदि सभी स्थानों में मनुष्य पदार्पण कर चुका है। सुदूरस्थित कल्पित ग्रहलोकों को छोड़कर मनुष्य ने सर्वत्र अपना राज्य-विस्तार कर लिया है एवम् प्रायः प्रत्येक प्राकृतिक वस्तु पर उसने मनुष्यता की छाप लगा दी है। इन निरन्तर अनादि काल से झरनेवाले निर्झर एवम् प्रपातों से उसने चमचमाती हुई बिजली प्राप्त कर समस्त संसार में कृत्रिम प्रकाश फैला दिया। यदि आज के युग में सूर्य भगवान् मनुष्य जाति पर अप्रसन्न होकर दो-चार दिन के लिए अदृश्य हो जायँ तो भी 'सभ्य' देशों के कामकाज में कोई बाधा नहीं पड़ सकती।

हाँ, तो हम वेश-भूषा के सम्बन्ध में कह रहे थे। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है, आज मनुष्य पूर्ण रूप से सभ्य हो गया है, और यदि वह वास्तविक रूप में सभ्य नहीं हुआ है तो इससे क्या। वह अपने को सभ्यता के शिखर पर पहुँचा हुआ मान रहा है। दुनिया के प्रत्येक खण्ड में विभिन्न संस्कृतियों का प्रचार है। हर एक जाति अपनी संस्कृति को सर्वोच्च समझती है। आफ़्रिका के हबशी भी, जिन्हें सारा संसार एकस्वर से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बर्बर कहता है, अपनी संस्कृति को किसी से हेय नहीं समझते। ऐसी दशा में किसी देश-विशेष को अपना गुरु नहीं माना जा सकता। किसी देश-विशेष के आदर्श, शिष्टाचार एवम् सभ्यता को उदाहरण मानकर उसका अनुसरण करने की सलाह नहीं दी जा सकती। इस सम्बन्ध में भगवान् कृष्ण का सदुपदेश बड़ा काम करता है।

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

सभ्यता एवम् संस्कृति की दृष्टि से आज के भारत की तुलना एक छोटे महाद्वीप से की जा सकती है। आज इस देश में 'भारतीय सभ्यता' नाम की कोई सभ्यता नहीं है। जब हम 'भारतीय सभ्यता' का नाम लेते हैं, तो उसका अर्थ होता है "आर्य-सभ्यता", जिसे हिन्दू-सभ्यता भी कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त मुसलिम, पारसी, ईसाई आदि जातियों की अपनी निजी संस्कृति एवम् सभ्यता है। इन सबके अतिरिक्त उत्तर भारत एवम् दक्षिण भारत की सभ्यता में उतना ही अन्तर है, जितना कि उत्तर अमेरिका और दक्षिण अमेरिका में। इस देश में विभिन्न प्रकार की सभ्यता एवम् संस्कृति का प्रचार करने का बहुत कुछ श्रेय यहीं के जल-वायु एवम् बाहरी जातियों द्वारा होनेवाले आक्रमण को है।

ऐसी परिस्थिति में इस देश के निवासियों की वेश-भूषा में तारतम्य (युनिफ़ार्मिटी) की आशा करना निरा स्वप्न देखना है।

प्राचीन प्रागैतिहासिक एवम् ऐतिहासिक युग में बौद्धकालीन, मौर्यकालीन, गुप्तकालीन भारत में कैसी और किस प्रकार की वेश-भूषा का प्रचार था, इसका अभी तक इतिहासकारों को शृंखलाबद्ध ज्ञान नहीं। अब तो "प्राचीन" शब्द के सम्बन्ध में भी यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि किस युग के लिए इस विशेषण का प्रयोग किया जाय। कल तक हम बुद्ध-कालीन भारत को 'प्राचीन' समझते थे। परन्तु जब से सिन्धु नदी की तलहटी में प्रागैतिहासिक सभ्यता से सम्बन्ध रखनेवाली वस्तुएँ मिली हैं, तब से "प्राचीन" शब्द के प्रयोग में भी काफ़ी उलटफेर हो गया है।

गौतमबुद्ध की गुप्तकालीन मूर्तियों को देखने से पता चलता है कि उस समय धोती और दुपट्टा, ये दो वस्त्र पुरुषों के वेश के प्रधान वस्त्र थे। स्त्रियों की मूर्तियाँ तो इस ढंग की मिली हैं कि उनके वेश के सम्बन्ध में कोई ठीक निर्णय नहीं किया जा सकता। कमर के नीचे साड़ियाँ देख पड़ती हैं, परन्तु कमर से ऊपर अधिकतर मूर्तियाँ नंगी हैं।

वस्त्रों एवम् आभूषणों के अतिरिक्त शरीर की स्वाभाविक सजावट के सम्बन्ध में भी उस समय अधिक ध्यान दिया जाता था। बाल ख़ूब सँवारे जाते थे। भाँति-भाँति के उबटन, लेप एवम् चन्दन आदि का उस समय प्रचुर मात्रा में प्रयोग होता था।

सर्वांश में न सही, अधिकांश में, आज अपने देश के भिन्न-भिन्न भागों में जो वेश प्रचलित हैं, वे प्राचीन भारत के वेश के अवशिष्ट अवश्य हैं। राजपूताने का घाँघरा और चुनरी संभवतः अत्यन्त प्राचीन ढंग की भूषा है, जो आज तक प्रचलित है।

परन्तु अब समय की गति ने हमारी वेश-भूषा में पर्याप्त परिवर्तन कर दिया है। पुरुषों की पोशाक और स्त्रियों की पोशाक कोई भी शुद्ध भारतीय नहीं है, और अब रह भी नहीं सकती। आज की भारतीय वेश-भूषा की संज्ञा "खिचड़ी पोशाक" हो सकती है।

किसी की पोशाक में तारतम्य (युनिफ़ार्मिटी) नहीं देख पड़ता। कहावत तो यह है कि "जैसा देश, वैसा वेश"। परन्तु आज दिन यह कहावत भी झूठी हो रही है। स्त्रियाँ 'मेम' बन रही हैं और पुरुष 'साहब'। अब आप "फ़्लैट का मज़मून लिफ़ाफ़ा देखकर नहीं भाँप सकते।"

मैं किसी देश की वेश-भूषा को अच्छा या बुरा नहीं कहता। इस सम्बन्ध में तुलना भी नहीं की जा सकती। फिर भी जो सत्य है, उस पर परदा नहीं डाला जा सकता। वस्त्रों का चुनाव और पहनने का ढंग, इन दो बातों का भी कला से सम्बन्ध है। सुन्दर वस्त्र पहनना या चुनना भी एक कला है। सब जाति या सब देश इस कला के ज्ञाता नहीं हो सकते। 'बन्दर क्या जाने अदरक का सवाद'। आफ़्रिका के कांगो की तलहटी की रहनेवाली युवती, बनारसी सारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को किस तरह पहनना चाहिए, यह नहीं जान सकती। और वही क्यों, सभ्यता के शिखर से चिल्लाकर अपने को सभ्य घोषित करनेवाली पैरिशियन रमणी भी कलापूर्ण ढंग से साड़ी को नहीं पहन सकती। उसे तो घुटने या घुटने से भी ऊपर तक के फ़्राक एवम् केवल वक्षःस्थलमात्र को ढकनेवाली चोली चाहिए। परन्तु विशेषता तो यह है कि आफ्रिकन युवती जिस प्रकार नरकंकालों के आभूषण को सर्वश्रेष्ठ आभूषण समझती है, उसी प्रकार वह पैरिशियन युवती भी अपने अर्ध-नग्न वेश को सभ्यता की चरम सीमा की पोशाक समझकर पहने हुए इतराती फिरती है।

भगवान् कृष्ण की मूर्तियों एवं चित्रों में उन्हें जो पोशाक पहनाई जाती है, ठीक वैसी ही पोशाक वे पहनते थे या नहीं, यह ठीक नहीं कहा जा सकता। फिर भी उसमें एक अपूर्व कला झलकती है। भगवान् कृष्ण 'सोलहों कला' के अवतार माने जाते हैं। उन कलाओं में वेश-भूषा की भी एक कला है।

जिस स्त्री या पुरुष के वेश में कला नहीं, जिसे कला-पूर्ण ढंग से कपड़े पहनने का ज्ञान नहीं, उसे 'अधकचरा' समझना चाहिए।

'कला' और 'आवश्यकता' में बहुत अन्तर नहीं है। यदि चतुर स्त्री को भोजन बनाने के लिए ख़राब सामान दे दिया जाय, तो वह उस ख़राब सामान से भी रुचिकर भोजन तैयार कर सकती है, परन्तु फूहड़ स्त्री अच्छे से अच्छे सामान से भी रुचिकर भोजन नहीं तैयार कर सकती। ठीक इसी तरह साधारण वस्त्रों को भी कलापूर्ण ढंग से पहना जा सकता है।

वस्त्रों का 'शिष्टाचार' से बहुत कुछ सम्बन्ध है। यह कोई आवश्यक नहीं कि वस्त्र क़ीमती हों या सस्ते। उनके पहनने का ढंग अच्छा और आकर्षक होना चाहिए।

आजकल लोगों का ध्यान इस ओर बहुत कम है। देश में इतनी अशांति, दुःख एवम् दरिद्रता फैल गई है कि लोगों का ध्यान इस ओर नहीं जाता। जब भरपेट भोजन मिलना कठिन हो रहा है, तब कला-पूर्ण वस्त्र और वेश-भूषा की बात करना निरा हास्यास्पद मालूम होता है।

परन्तु सुख और दुःख का किसी भी समय में पूर्ण रूप से अभाव नहीं रहा। यदि कभी राम-राज्य था तो वहीं, उसी युग में 'रावण-राज्य' भी था। यदि कभी कृष्ण एवम् युधिष्ठिर-सरीखे नेता एवम् धर्मराज रहते थे तो वहीं कंस एवम् दुर्योधन-सरीखे स्वार्थी व्यक्ति भी थे।

क्या पाश्चात्य देशों में दुःख, अशांति या कलह नहीं है? क्या वहाँ निर्धनता नहीं है? परन्तु इन सबके होते हुए भी वहाँ के निवासी अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करते ही हैं। एक साधारण श्रमजीवी भी दिन भर में तीन-चार बार वेश बदलता है। भोजन के समय वह भिन्न वेश पहनता है, और बाज़ार जाने का उसका अलग वेश होता है। वह "कला" या "शौक़" का ग़ुलाम नहीं है, वरन् वह आवश्यकता का अनुभव करता है। खेद है, हमारे देश में लोग इस प्रकार का 'अनुभव' नहीं करते।

अपने देश की वेश-भूषा को छोड़ना उचित नहीं। हमारे शरीर का वास्तविक सौन्दर्य उसी में प्रतिभासित होता है। जैसे किसी अँगरेज़ के शरीर पर भारतीय पोशाक भद्दी लगती है, ठीक उसी तरह एक भारतीय के शरीर पर अँगरेज़ी पोशाक भद्दी लगती है।

यह भद्दापन स्त्रियों के सम्बन्ध में तो और भी विकृत रूप धारण कर लेता है। एक भारतीय स्त्री के लिए भारतीय वेश ही पहनना उचित है, न कि पाश्चात्य। इस सम्बन्ध में अधिक लिखना व्यर्थ है। हम आयेदिन समाचारपत्रों में पाश्चात्य लोगों के मुँह से भारतीय स्त्रियों की वेश-भूषा, विशेषतः साड़ी की प्रशंसा पढ़ते रहते हैं।

योरपियन वेश-भूषा के सम्बन्ध में एक और बात स्मरण रखने की आवश्यकता है। वह यह कि अधिकांश भारतवासी ठीक तौर से उसका प्रयोग नहीं जानते। नेकटाई और बो लगाने का ज्ञान अधिकांश योरपियन पोशाक पहननेवाले भारतीयों को नहीं होता। लगभग नब्बे प्रतिशत भारतीयों को यह अच्छी तरह नहीं मालूम कि किस समय कौन-सा 'सूट' पहनना चाहिए। क्रिकेट-सूट पहनकर लोग दावत में सम्मिलित हो जाते हैं; आफ़िस-सूट पहनकर सायङ्काल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टहलने निकल जाते हैं। एक हिन्दुस्तानी इस दोष को नहीं लख पाता; परन्तु अँगरेज़ झट समझ लेते हैं और हँसी उड़ाने लगते हैं। उदाहरणार्थ जिस प्रकार पूजा की पीताम्बरी पहनकर दफ़्तर जाना बेहूदा समझा जाता है, ठीक उसी तरह क्रिकेट के समय का वेश धारण करना किसी से मिलने जाने में अशोभन है।

किस समय कौन-सा वेश धारण किया जाय, इस बात पर ध्यान देने के उपरान्त दूसरी बात ध्यान में रखने की यह है कि "सूट" अच्छा होना चाहिए। प्रायः लोग 'सूट' का अर्थ समझने में भूल कर दिया करते हैं और सूट के माने—पैंट, कोट, वेस्ट कोट समझने लगते हैं। सूट के शाब्दिक माने हैं 'तारतम्य'। एक समय शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में जितने कपड़े पहने जा सकें, वे 'सूट' कहलाते हैं। कुरता, टोपी, धोती, ज़ाकेट भी एक सूट हैं। आवश्यकता इस बात की है कि सारे वस्त्र एक दूसरे से तारतम्य रखते हों। कुरते पर टाई या हैट पहनना किसी 'सूट' का अङ्ग नहीं है। कुरते के साथ, दुपलिया या किश्तीनुमा टोपी, पैर में चप्पल या खुले मुँह के जूते ही ठीक जँचते हैं। धोती पर केवल कमीज़ पहनना भी भद्दापन है। कमीज़ पर कोट पहनना कभी न भूलना चाहिए।

वस्त्र चाहे सस्ते हों, या महँगे, उनकी सिलाई, धुलाई ठीक होनी चाहिए। वे शरीर में ख़ूब फ़िट उतरते हों। आजकल की दुनिया में अब तड़क-भड़क का ही बोलबाला है। सीधा-सादा रहनेवाला व्यक्ति बेवक़ूफ़ समझा जाता है। आज यदि कोई नवयुवक साधारण वस्त्र पहनकर कहीं नौकरी ढूँढने जाय, तो दफ़्तरों के फाटक पर बैठनेवाले चपरासी उसे भीतर भी न घुसने देंगे। इस प्रकार का प्रतिबन्ध केवल दफ़्तरों या अँगरेज़ी ठाटबाट रखनेवालों के ही यहाँ नहीं, वरन् जीवन के हर एक क्षेत्र में है। अच्छा वस्त्र पहनकर आप मोटर-लारियों में अच्छी सीट पा सकते हैं—रेल के डिब्बों में पैर फैलाकर सो सकते हैं, आतिथेय के सत्कार का भाजन बन सकते हैं।

त्यागियों और बैरागियों का युग भारतवर्ष से उठ गया। सन् १९३२ की एक घटना है। गांधीजी का वेश पहनकर दो मद्रासी नवयुवक एक दिन अपने दफ़्तर में काम करने के लिए उपस्थित हुए। 'साहब' को उनके इस वेश-परिवर्तन पर बड़ा 'क्षोभ' हुआ और वे दोनों नवयुवक दफ़्तर से बाहर कर दिये गये। साहब का 'निर्णय' शिष्टाचार की दृष्टि से बहुत ही ठीक था। गांधीजी की पोशाक चाहे कितना ही महत्त्व क्यों न रखती हो, परन्तु एक ऐसे स्थान पर, जहाँ सभी सूटबूट में हों, दो आदमी लँगोटी पहनकर आ जायँ तो क्या भद्दा न जँचेगा! गांधीजी की तरह पोशाक पहनकर अपनी सत्ता तथा रोब क़ायम रखने के लिए उनका-सा ही त्याग और तप भी करना पड़ेगा।

मुसलमानी शासन-काल में हमने मुसलमानी वेश-भूषा अपनाई, और जब अँगरेज़ आये तो पूरे इँगलिश-मैन बन गये। इस तरह हम लोगों ने 'अपनापन' खो दिया है। यह निर्विवाद सत्य है कि कोई 'अपनापन' खोकर सम्मान नहीं पाता। अमेरिका की धर्म-सभा में यदि स्व० स्वामी विवेकानन्दजी काषाय वस्त्र एवम् पगड़ी में न जाते तो उतना आकर्षण कदापि न प्राप्त कर सकते थे। हमें इँगलिश वेश-भूषा से घृणा नहीं, परन्तु वह हमारे देश के जलवायु एवम् शिष्टता के ठीक विपरीत है। यह हम ऊपर लिख भी चुके हैं कि अधिकांश भारतवासी उनका ठीक-ठीक उपयोग भी नहीं जानते। किसी अँगरेज़ से बैठकर बातचीत करते समय हैट उतारकर हाथ में ले लेना चाहिए, अथवा पैर के नीचे, या खूँटी पर लटका देना चाहिए, परन्तु यदि आप साफ़ा बाँधे हों तो इस नियम का पालन करना आवश्यक नहीं। उनके यहाँ हैट न उतारना अशिष्टता है और हमारे यहाँ पगड़ी उतारना अपमानजनक समझा जाता है।

निम्नलिखित वेश-भूषा देखनेवालों को भद्दी लगती है—

धोती पर टाई, कुरते पर हैट, धोती पर मोज़ा, चूड़ीदार पायजामे पर अँगरेज़ी सूट का कोट, अधिक अवस्थावालों के लिए चमचमाते कपड़े। दर्ज़ी के यहाँ से ताज़ा आया हुआ सूती सूट धुलवाकर ही पहनना चाहिए।

भारतीय दृष्टि से वेश-भूषा की सजावट को कोई महत्त्व नहीं। पंडित मदनमोहन मालवीय की अचकन,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पगड़ी और दुपट्टा, गांधीजी की काछनी, रवीन्द्र बाबू का लम्बा कुरता, तड़क-भड़क की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण चाहे न हों, परन्तु उनमें आकर्षण है, जिसका होना नितान्त आवश्यक है। हर एक के वेश में आकर्षण होना चाहिए। बिना 'भेख के भीख' भी नहीं मिलती।

अपने कपड़ों को बार-बार देखने से हँसी होती है, और ऐसा करना यह प्रमाणित करता है कि आपको अपने वेश पर गर्व है।

भोजन एवम् वस्त्र के सम्बन्ध में एक दिहाती कहावत प्रचलित है—"आप रुचि भोजन पर रुचि श्रृङ्गार"। आपकी वेश-भूषा जब औरों को आकर्षित कर सके तो उसकी उपयोगिता है, अन्यथा नहीं। और यही सच भी है। यदि आज यह ख़्याल उठ जाय कि आपके अमुक वेश को देखकर लोग क्या कहेंगे तो कल ही फ़ैशन के बाज़ार में ताला पड़ जाय।

गांधी-युग की बहुत-सी देनों में एक देन हमारी वेश-भूषा में परिवर्तन भी है, और यह देन बहुत महत्त्वपूर्ण है। तड़क-भड़क की जगह पर सादगी का प्रचार हो गया है और यह भी थोड़ी-थोड़ी आशा हो चली है कि थोड़े ही दिनों में देशवासियों की वेश-भूषा में एक तारतम्य आ जायगा। उस तारतम्य का क्या प्रकार होगा, यह बताना कठिन है। कुरता, धोती, जवाहर जाकेट, गांधी टोपी एवम् चप्पल अब कुछ-कुछ अधिक व्यापक हो चले हैं। वेश-भूषा की एकता से देश की एकता पर बहुत बड़ा प्रभाव पड़ता है। टर्की के कमाल-पाशा या अमानुल्ला एवम् ईरान के रज़ाशाह पहलवी को यह अच्छी तरह मालूम था कि जब तक देश-वासियों का वेश एक-सा नहीं होता, तब तक वास्तविक एकता नहीं आ सकती। एक वेश का होना, आर्थिक एवम् राजनीतिक दोनों दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण है।

आशा है, हमारे देश के सभ्य एवम् पढ़े-लिखे लोग इस बात का प्रयत्न करेंगे कि समस्त देश में एक प्रकार की वेश-भूषा का प्रचार हो, और उस प्रचार का आधार अपने देश की संस्कृति एवम् आर्थिक अवस्था हो। *

* "भारतीय शिष्टाचार" नामक अप्रकाशित पुस्तक से।

प्रदर, प्रसूतिरोग, वंध्यत्व, रजदोष आदि स्त्रीरोग की अचूक औषधिः—

गर्भामृत चूर्ण

यह चूर्ण स्त्रियों के रज कम, अधिक या कष्ट से आने को नियमित करता है। रक्त या श्वेतप्रदर को मिटाता है और पेडू या कमर का दर्द, पेशाब में जलन, गर्भाशय की सूजन आदि स्त्रियों के सर्वरोग नष्ट करके शरीर सम्पूर्ण तन्दुरुस्त बनाता है। इस दवा को गर्भवती स्त्रियाँ भी चौथे मास से सेवन कर दीर्घायु और हृष्ट-पुष्ट सन्तान का मनोरथ सिद्ध कर सकती हैं। क़ीमत १० तोले के डिब्बा के २) रुपया।

राजवैद्य नारायणजी केशवजी हेडआफ़िस जामनगर (काठियावाड़)

लखनऊ—निगम मेडिकलहाल अमीनाबाद रोड फ़तेहगंज।

इलाहाबाद—बलभद्रदास के० जोन्स्टनगंज।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

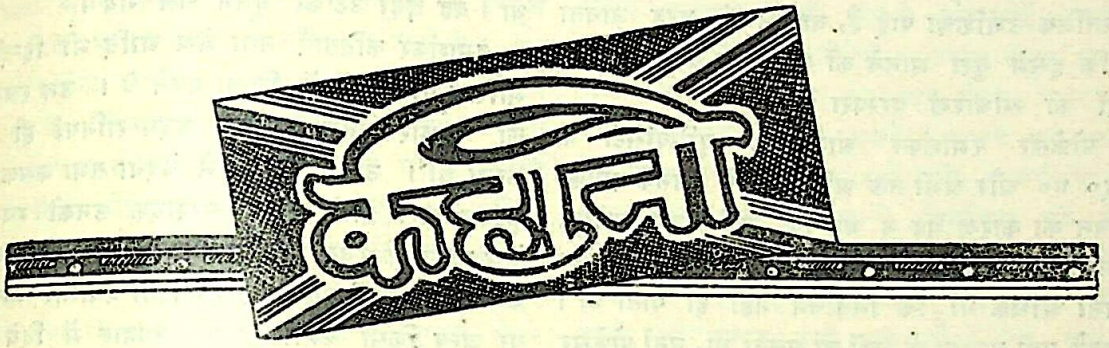

तुम्हारा प्रेम

श्रीदयानन्द गुप्त बी० ए०, एल्-एल्० बी०

श्रीयुत रमाशंकर के समान सहृदय व्यक्ति संसार में बहुत कम होंगे। प्रेम की उनकी अपनी परिभाषा तथा व्याख्या थी। विश्व की नीरसता पर उन्हें आश्चर्य होता था। काव्य तथा सुरा उनके हृदय के प्रेम-पात्र को लबालब रखते थे। सौन्दर्य की उपासना में उनकी बराबरी करनेवाला संसार में शायद ही कोई माई का लाल पैदा हुआ हो। रूप पर मिटने की अतृप्त लालसा सदैव उनके हृदय में जलती रहती थी। जिसे देखा, उसी पर मोहित, उसी की प्रशंसा, साधना तथा ध्यान। किन्तु कब तक ? जब तक कि वह रूप आँखों से ओझल न हो और दूसरा चित्र दृष्टि-पट पर अंकित न हो। उनका हृदय इन्द्र की वासना, विश्वामित्र की पराजित साधना तथा नारद की अपूर्ण कामना से मिलकर बना था। आवागमन-सिद्धान्तवादी उन्हें पिछली योनि का मधुकर निःशंक मान सकते हैं। चन्द्रमा की परिवर्तित कलाओं पर रीझनेवाले सिन्धु के समान उनका स्वभाव था।

वे मानते थे कि कर्त्ता ने नारी को कोकिल का कण्ठ, मयूर का वर्ण, पुष्प का मधु, सर्प का विश्वासघात, मगर का कपट, लोमड़ी का चातुर्य, शशि का परिवर्तन, शृगाल की कायरता, संसार की ईर्ष्या, नभ का प्रसार, वसुन्धरा की तितिक्षा, तितली का शृंगार, मकड़ी की माया, गिरगिट की काया, रति का आकर्षण, अश्रु का शासन तथा स्नेह का आसन देकर बनाया है। आदिम नर ने नारी को उसके पिता से लेकर तंग आकर फिर उसी को सौंप दिया होगा; किन्तु फिर उससे उसके बिना न रहा गया होगा। जब आदि-पुरुष का जीवन ही उसके प्रेम के बिना सार्थक नहीं हुआ तो यदि उनसे भी न रहा जाय तो उसमें उनका अपराध ही क्या हो सकता था ? यहाँ पर श्रीयुत रमाशंकर से परिचय के लिए यह कह देना पर्याप्त होगा कि वे 'क'— विश्वविद्यालय में अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर हैं तथा उसके अद्वितीय, धुरन्धर, उद्भट विद्वान् भी। काव्य तो उनके जीवन का अमृत अंग है। बी० ए० तथा एम्० ए० की कक्षाओं में काव्य ही पढ़ाते हैं। पढ़ाते समय वे स्वयं कवि बन जाते थे। उनके मुख से शब्दों का उच्चारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भावों का बोधक बन जाता था। विद्यार्थियों ने उन्हें 'दिल-फेंक' का सुन्दर विशेषण दे रक्खा था। जिसने वास्तविक उच्चशिक्षा पाई है, वह अच्छी तरह जानता है कि इसमें बुरा मानने की कोई बात नहीं। यह तो वहाँ की साधारण परम्परा है।

प्रोफ़ेसर रमाशंकर आक्सफ़ोर्ड - यूनिवर्सिटी के एम्० ए० और अभी तक अविवाहित थे। उनके एकाकी जीवन का कारण यह न था कि उन्हें उनके उपयुक्त सुन्दरी मिलती न थी। कारण यह था कि उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि निर्वाचन नहीं हो पाता था। सबको पत्नी बनाया ही नहीं जा सकता था, वर्ना प्रोफ़ेसर साहब अवश्य ऐसा ही करते।

एक दिन उनकी वृद्धा जननी ने डबडबाई आँखों से कहा—"बेटा, मैं बहुत दिन न जियूँगी। मेरी साध है कि मरने से पहले तेरा ब्याह देख लेती।"

"मैंने तो तुम्हारे कहने से समाचारपत्रों में विज्ञापन देकर चित्र भी मँगवाये; पर कुछ ठीक ही न हो सका। अधिक चित्रों में पसन्द करना कठिन हो जाता है", उन्होंने हँसते हुए उत्तर दिया।

"चित्रों की बात तो जाने दे। उनमें धोका भी हो सकता है। वह जो नीली सारी पहने लड़की आती है; भला उसका क्या नाम है?"

"लीला।"

"लीला? ठीक है। उससे विवाह कर ले। वह तुझे पसन्द है?"

"हाँ-हाँ, अच्छी है।"

"अगर वह न पसन्द हो तो श्यामा।"

"वह भी सुन्दरी है।"

"और वह लड़की, जो कल हमारे यहाँ भोजन कर गई थी?"

"क्या बुरी है?"

"तू तो यों ही कह देता है। तेरा भेद ही समझ में नहीं आता। अपने मन की सुन्दरी फिर तू ही ढूँढ ले", मा ने खीझते हुए कहा।

"मा, तुम तो नाराज़ हो गईं?"

"तू भी तो सभी के लिए 'हूँ—हाँ' करता चला जाता है। तू ही बता कि तुझे कौन-सी पसन्द है?"

उत्तर में प्रोफ़ेसर साहब हँस दिये। उनके पास कोई उत्तर होता तो देते। बात समाप्त हो गई। सन्ध्या काल था। वह छड़ी उठाकर घूमने चले गये।

रमाशंकर कविताएँ तथा लेख आदि भी हिन्दी की मासिक पत्रिकाओं में लिखा करते थे। उन रचनाओं का आधार उनकी क्षणिक हृदय-रानियाँ ही हुआ करती थीं। उन कविताओं में वेदना तथा कसक कूट-कूटकर भरी होती थी। सम्पादक उनकी रचनाओं के साथ उनके चित्र भी छापा करते। वे अंक किरण, कमलिनी, कुमुदिनी, शीला, लीला, श्यामा, मनोरमा या अन्य किसी कुमारिका को उपहार में दिये जाते थे। प्रेम व्यक्त करने का यह मार्ग कितना स्वाभाविक तथा सुगम होता है। कोई भी इस पर आपत्ति नहीं कर सकता। जो कुमारियाँ इनके घनिष्ठ सम्पर्क में आ चुकी थीं, उनको साड़ियाँ, अँगूठियाँ, क्रीम, हैज़लीन, स्नो, पाउडर, इत्र तथा लिपस्टिक आदि भी भेंट होते थे। कभी-कभी सिनेमा भी साथ-साथ जाना हो जाता था। स्थानीय गर्ल्स-कॉलेज की अध्यापिकाओं तथा छात्राओं की एक बड़ी संख्या से उनका प्रेम-परिचय था।

जुलाई का महीना था। यूनिवर्सिटी खुले हुए कुछ ही दिन बीते होंगे। एम्० ए० में कई नवीन छात्राओं का मधुर प्रवेश हुआ था। उनमें से कुछ निपट भोली तथा अनजान थीं। प्रोफ़ेसर साहब की कक्षा में शेली (Shelley) के विरह-गीतों पर व्याख्यान हुआ। वे काव्य के मर्मज्ञ थे; फिर वे अपने प्यारे विषय पर बोल रहे थे। विषय में डूबकर पनडुब्बे की भाँति उन्होंने विरह-गीतों के गुण-रत्न प्रकट किये। उनकी वाणी से सुन्दर शब्द-सुधा-निर्झर विद्यार्थिनियों के ध्यान को अटूट बाँधे रहा, व्याख्यान समाधि-संगम-सा बन गया। घंटा बजा; लेकिन वे न थमे। दूसरा प्रोफ़ेसर आया; लेकिन द्वार पर से ही झाँककर चला गया। उन्होंने डेढ़ घंटा लगकर व्याख्यान दिया। आज की कक्षा पर अगाध प्रभाव पड़ा। सब विद्यार्थी उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

आगामी रविवार को कुछ छात्र तथा छात्राएँ उनसे साहित्यिक परामर्श के लिए उनके बँगले पर आये।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनकी अपनी सुन्दर साहित्यिक लाइब्रेरी थी। इबसन, शा, मोलियर, ह्यूमा, अनातोले फ्रांस, गेटे, वर्डस्वर्थ आदि महान् विश्व-साहित्यिकों के सम्पूर्ण ग्रंथ उनके अध्ययन-कक्ष में सजे हुए रक्खे थे। इस समय प्रोफ़ेसर महोदय सेल्मा लेगरलाफ़ की रचनाएँ पढ़ रहे थे। किताब हाथ में लिये हुए ही अपने शिष्यों से मिलने बाहर निकल आये। उनके घर में उनकी मा के सिवा कोई भी न था। आगन्तुकों का उद्देश्य जानकर वे उन्हें अपने अध्ययन-कक्ष में लिवा लाये। बहुत देर तक साहित्यिक संगम हुआ। अन्त में कुछ शिष्य तथा शिष्याएँ उनसे अध्ययन हेतु पुस्तकें लेकर विदा हुए। इनमें से प्रमदा, लीला तथा प्रमिला अपने नाम को सार्थक करनेवाली कुमारियाँ भी थीं।

वे उत्सव-सी आईं, पतझार-सी छोड़कर चली गईं, प्रोफ़ेसर महोदय को आकाशीय कल्पना में उलझाकर। उन्हें उनका स्मृति-स्वप्न कितना मोहक माया-जाल जान पड़ा। उनके प्राणों में संगीत हो रहा था, आँखें मद-भार-मुग्ध थीं और बाँहें चपल क्रीड़ा करने को उठी-सी। उन्हें जिधर देखो, उधर मस्ती का आलम दिखाई देता था। इसी को जीवन कहते हैं। उनके दिल में जवानी थी, आज नस-नस में नवोत्साह, एक नई फड़क थी। उन्होंने चिर-अमर यौवन का सार पा लिया था। अवसर पाकर उन छात्राओं से प्रोफ़ेसर महाशय ने घनिष्ठता स्थापित कर ली तथा अपना प्रेम भी व्यक्त कर दिया; लेकिन वे अब तक इनके स्वभाव से परिचित हो चुकी थीं। वे उनके प्रेम-प्रस्तावों पर अवहेलना से हँस देती थीं।

कई मास बाद की बात होगी। शिशिर-काल बीतनेवाला था। प्रदर्शिनी हो रही थी। विद्युत् के सैकड़ों कुमकुमे दिवाली का पर्व उपस्थित कर रहे थे। अपार जन-संख्या नई-नई वस्तुएँ देखने दूर-दूर से आई हुई थी। बड़ी-बड़ी दूकानों के अद्भुत ठाठ-बाट थे। रंग-बिरंगी सारियों में महिलाएँ इस प्रकार चमक रही थीं, जैसे वह इन्द्रलोक हो। तरुण विद्यार्थी झुण्ड बनाकर घूमने आते थे या आँखें सेकने। रूप, ज्योति तथा रंग की अनुपम त्रिवेणी वहाँ बह रही थी। श्रीयुत रमाशंकर भी सन्ध्या-काल में मन बहलाने वहाँ चले आया करते थे। उनके नेत्रों को नवीन-नवीन दृश्य वहाँ देखने को मिल जाते थे। कोई यौवन उभारकर चल रहा है तो कोई दबाकर। प्रदर्शिनी यौवन-प्रदर्शिनी थी। उनका दिल हर बार चोरी जाता; लेकिन हर बार मिल जाता था। एक सायंकाल को वे घूमते-घामते एक कृत्रिम लता-कुञ्ज के पास आकर ठहर गये। पत्ती-पत्ती पर लघु विद्युत्-दीप तारागण-से टिमटिमा रहे थे। तीरवर्ती सरोवर के जल में विद्युत्-कुमकुमों के प्रतिबिम्ब बड़े हृदयहारी प्रतीत होते थे। लेकिन इससे भी सुन्दर उन्हें एक और दृश्य वहाँ पर दिखलाई दिया। दो युवतियाँ वहाँ खड़ी हुई थीं। उनमें से एक इनकी पूर्व-परिचिता प्रमदा थी। दूसरी को यह न जानते थे। उन्हें यह ज्ञान न था कि उनके सौन्दर्य के दृश्य को भी कोई देख रहा है। यौवन उभरा हुआ, मुख पूर्ण खुला हुआ अपनी ही आभा में कमल-सा लीन। आँखें सर-कुमकुमों को तृषित मीन-सी देख रही थीं। प्रमदा से सुन्दरतर उसकी सहेली थी। लेकिन प्रोफ़ेसर महोदय के अनुभव में वह सुन्दरतम थी। उन्हें अपना जीवन यहाँ पर थका-सा जान पड़ा और उसकी गति स्थिर-सी। लुब्ध भ्रमर की चपलता जड़ हो गई, सर्वनिष्ठा विद्युत्-हत-सी थी। प्रमदा ने उन्हें देखा, पहचाना तथा सकुचाते हुए नमस्ते की। वैसा ही उसकी साथिन ने भी किया। नमस्ते का उत्तर देकर उन्होंने कहा—"कितना सुन्दर दृश्य है!"

"मुझे भी यह बड़ा ही सुहावना मालूम होता है। जैसे प्रदर्शिनी की सारी छवि यहीं सिमटकर आ बैठी है।"

"इस कृत्रिम सरोवर के किनारे यह लता-कुञ्ज प्रदर्शिनी की सर्वोत्तम मणि के सदृश मालूम होता है। (प्रमदा की साथिन की ओर संकेत करते हुए) आपको भी पसन्द आया?"

"हाँ, बहुत ही सुन्दर स्थान है", लजाते हुए उसने उत्तर दिया।

(प्रमदा से) "इनका परिचय?"

"ये मेरी सहेली हैं और यहीं एफ़० ए० में पढ़ती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। आपका शुभ नाम तिलोत्तमा है। तिलोत्तमा, आप हमारे प्रोफ़ेसर हैं।"

"आपसे मिलकर चित्त प्रसन्न हुआ", प्रोफ़ेसर महाशय ने तिलोत्तमा से मुस्कराते हुए कहा। लेकिन वह सलज्ज भोली बालिका-सी मूक रह गई। उन्होंने फिर कहना प्रारम्भ किया—"इस बार प्रदर्शिनी उतनी बड़ी और शानदार नहीं है, जितनी सन् १९१६ में थी।"

इस बार उसने पूछा—"आपने देखी थी?"

"नहीं, मैं उस ज़माने में आक्सफ़ोर्ड में पढ़ता था; लेकिन मैंने सुना है, उसमें विदेश की अनेकानेक खेल-तमाशों की कम्पनियाँ आई थीं तथा अदृष्टपूर्व वस्तुओं का संकलन किया गया था। वह इससे कई गुना बड़ी थी। गवर्नमेंट ने उसमें बहुत अधिक रुपया ख़र्च किया था।"

तीनों विभिन्न विषयों पर बहुत समय तक वार्तालाप करते और प्रदर्शिनी में घूमते रहे। प्रोफ़ेसर महोदय को समय भागता हुआ मालूम होता था। तिलोत्तमा को एक सारी ख़रीदनी थी। वह एक बड़ी दूकान के सामने रुक गई। उसने प्रमदा की सहायता से एक बहुमूल्य सारी पसन्द की; लेकिन उसके दाम प्रोफ़ेसर महोदय ने उसे नहीं देने दिये। स्वयं ख़रीदकर उसे भेंट कर दी। यदि कोई और स्थान या अवसर होता तो वह कभी उपहार स्वीकार न करती। उसने कई बार मना किया; लेकिन प्रोफ़ेसर साहब अपने हठ पर अड़े हुए थे। दूकानदार भी उन्हीं की हाँ में हाँ मिला रहा था, शायद उसे भी मज़ा आ रहा था। फिर कई युवक दूकान पर खड़े आँखों ही आँखों में इशारा करते हुए सब बातें सुन रहे थे। अधिक आग्रह-अनुरोध में भीड़ इकट्ठी हो जाने का भय था। स्वभाव ही से वह अधिक लज्जाशील थी। हारकर उसे उपहार स्वीकार ही करना पड़ा। उन्होंने उसका फिर भी पीछा न छोड़ा। विदा होते समय अपनी मोटरकार पर उन्हें बिठलाकर उन दोनों के घर तक छोड़ आने का उन्होंने सफल आग्रह किया।

प्रमदा ने अधिक सना नहीं किया। फिर उस अकेली की क्या चलती? पहले उन्होंने प्रमदा को उसके घर पर उतारा, फिर तिलोत्तमा को। तिलोत्तमा से उन्होंने बिदा होते समय कल साथ प्रदर्शिनी चलने का प्रस्ताव किया और सहगल, सान्याल आदि कुशल गायकों का संगीत सुनने का। उसने उत्तर दिया—"आज आपने मुझे सबके सम्मुख अत्यंत लज्जित किया।"

"आप मुझे क्षमा करें। मुझे अत्यन्त खेद है।"

"आप अपनी बात के सामने किसी की चलने नहीं देते। मैं पुनः वैसी परिस्थिति आने देना नहीं चाहती।"

"मुझे इसका स्वयं ध्यान रहेगा। अब आपको रुष्ट होने का कोई कारण नहीं मिलेगा।"

"लेकिन मैं अकेली नहीं जा सकती।"

"रास्ते में प्रमदा को भी लेते चलेंगे।"

"मैं अभी कुछ नहीं कह सकती।"

"आप मुझ पर अत्यन्त अनुग्रह करेंगी।"

"देखा जायगा। अब मैं जाती हूँ।"

"सुनिए तो। (तिलोत्तमा रुक गई) आशा है, आप प्रयत्न अवश्य करेंगी। वचन दीजिए।"

"देखा जायगा।"

"तो मैं कल दोपहर के बाद ज़रूर आऊँगा।"

"नहीं, मैं सूचित कर दूँगी—प्रमदा को।" इतना कहकर वह घर में चली गई। प्रोफ़ेसर महाशय भारी हृदय लिये हुए लौटे।

आज अपने साधारण नियम के विपरीत मार्ग में और युवतियों के मिलने पर भी रमाशंकर तिलोत्तमा को नहीं भूल सके। उसकी मोहिनी मूर्ति उन्हें क्षण-क्षण में व्याकुल कर देती थी। हृदय में मीठा-मीठा दर्द उसके लिए होता था, एक टीस, एक हूक उठती थी। ऐसा अनुभव उनको आज तक हुआ न था। इस बार उन्हें एक परिवर्तन दिखलाई दे रहा था। उसके लिए उन्हें बेचैनी हो रही थी। तिलोत्तमा के स्वप्नों में उलझते-सुलझते उनकी रात बीती।

दूसरे दिन कॉलेज आये। उनमें एक नई बात हो गई थी। वे पहले से बहुत गम्भीर हो गये थे। वे अपने दर्जे में बैठे एक पुस्तक के पन्ने उलट रहे थे कि उन्हें प्रमदा दिखलाई दी। झपटकर वे उठे और प्रमदा के पास पहुँच गये। प्रमदा ने उनमें एक नई बात देखी। एक उदासी की हवा उनके चेहरे पर खेल रही थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन्होंने उससे धीमे स्वर में पूछा, "प्रमदा ! आज प्रदर्शिनी में संगीत सुनने चलोगी ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"मुझे एक जगह दावत में जाना है।"

"और तिलोत्तमा ?"

"उसने मुझसे यह सूचित करने को कह दिया है कि वह भी आपसे क्षमा चाहती है।"

"क्षमा !"

"हाँ, मैं उसी के शब्द दोहरा रही हूँ।"

"आपसे केवल एक बात और पूछना चाहता हूँ।"

"अवश्य पूछिए।"

"क्या रात की बात ही से वह नाराज़ हो गई हैं ?"

"मैं ठीक-ठीक नहीं कह सकती। सम्भव है, ऐसा ही हो।"

"एक बात और। वह किस समय कॉलेज से लौटेगी ?"

"तीन बजे के बाद। अब मैं जाती हूँ।"

"बस, एक बात और।"

"नहीं, अब कुछ नहीं।"

"बस, एक बात।"

"कहिए।"

"तुमसे मिलती हुई जाएगी ?"

"नहीं।"

"धन्यवाद !"—कहकर प्रोफ़ेसर महोदय अपने दर्जे में लौट आये। प्रमदा ने रमाशंकर को इतना गम्भीर आज से पहले कभी नहीं देखा था। वह किसी नई घटना के होने की आशा कर रही थी। उसने देखा, प्रोफ़ेसर महोदय पुस्तक उठाकर दर्जे से बाहर चले गये। उसके नेत्र उनका पीछा कर रहे थे। उसने देखा, रमाशंकर अपनी मोटरकार के पास पहुँचकर रुक गये, जैसे कुछ सोच रहे हों। उसकी उत्सुकता और भी बढ़ गई। उसने फिर देखा, मोटर की घर-घर के बाद वह वहाँ से रवाना हो गये।

रमाशंकर को तिलोत्तमा के घर पर पहुँचते देर न लगी। उनका अनुमान ठीक उतरा। वह अभी तक कॉलेज नहीं गई थी, जाने की तैयारी ही कर रही थी। उन्होंने उसके सेवक से उसे बाहर बुलवाया। वह उन्हें देखकर सिटपिटा गई। उसने प्रोफ़ेसर महोदय से दृढ़ स्वर में पूछा—"कहिए ?"

"कोई विशेष काम तो नहीं है।"

"तो जाइए" कहकर वह अन्दर जाने का उपक्रम करने लगी।

"ठहरिए, ज़रा ठहरिए। वहाँ चलिएगा ?"

"नहीं", वह फिर अन्दर जाने लगी।

"मेरी केवल एक बात सुनती जाइए।"

तिलोत्तमा सुनने के लिए ठहर गई। उन्होंने कहना प्रारम्भ किया—

"मैं रात की घटना के लिए आपसे हृदय से क्षमा चाहता हूँ। सच बात यह है कि आपकी अप्रसन्नता, अब अधिक क्या कहूँ, आप स्वयं कल्पना कर लें।"

"स्पष्ट कहिए, मैं ऐसी सांकेतिक भाषा नहीं जानती।"

"क्षमा कीजिएगा, आपकी अप्रसन्नता मेरे जीवन का विनाश कर सकती है।"

"हाँ, ठीक है। प्रमदा मुझे आपकी आदत बता चुकी है।" उसने ताने के स्वर में उत्तर दिया।

"उसे कहने दीजिए। मैं सत्य ही कह रहा हूँ।"

"अब मुझे अवकाश नहीं। कॉलेज जाना है", कहकर तिलोत्तमा सीधी भीतर चली गई।

कॉलेज में जैसे-तैसे उन्होंने समय काटा। घर आने पर उन्होंने एक पत्र प्रमदा व दूसरा तिलोत्तमा को भेजा। तिलोत्तमा ने तो उत्तर ही नहीं दिया और प्रमदा ने उन्हें उलटा डाँटा और धमकाया भी। अब घोर निराशा की बारी आई। उन्हें जीवन भार जान पड़ता था। प्रमदा ने कितना दुष्कार्य किया था। उनका किसी भी काम में मन नहीं लगता था। वे प्रदर्शिनी भी न गये। उनकी रात जागकर करवटें बदलते-बदलते बीती। अब वे सोच रहे थे कि शायद सच्चा प्रेम यही है। उनके आगे प्रेम का रहस्य धीरे-धीरे खुल रहा था।

उन्होंने एक पत्र फिर तिलोत्तमा को लिखा। उसमें अपनी सफ़ाई भी दी, क्षमा भी माँगी और अपने सच्चे प्रेम की घोषणा भी की। उस पत्र में उसे धमकी भी थी कि वे अन्यथा आत्महत्या कर लेंगे या पागल हो जायँगे, और इसका कारण उसका प्रेम ही होगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेकिन कोई उत्तर ही न आया। प्रतीक्षा का एक-एक क्षण उन्हें पहाड़-सा जान पड़ता था। आशा और निराशा रह-रहकर उनके दुर्बल हृदय को सताती थीं। उन्होंने कॉलेज से छुट्टी ले ली। धीरे-धीरे तीन दिन बीत गये। अब प्रलय के दृश्य उनकी आँखों के सामने नाचने लगे, मृत्यु बीभत्स अट्टहास करने लगी। कॉलेज में न जाने किस तरह उनके प्रेम की कहानी धुनी हुई रुई की तरह फैल गई। प्रोफ़ेसर तथा विद्यार्थी उन्हें देखने आने लगे। वे सचमुच उन्हें कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दे सकते थे। वास्तव में वे पागल हुए जा रहे थे। उन्होंने बुद्धि से इस मामले में काम लेना चाहा; लेकिन इस क्षेत्र में उनकी बुद्धि बार-बार हृदय के सामने परास्त होती थी। उन्होंने अपनी स्थिति का विश्लेषण करना चाहा; लेकिन बुद्धि ने जवाब दे दिया। अपने दुःख का कोई भौतिक कारण उनकी समझ में न आया, सूक्ष्म मनोजगत् का निरीक्षण उनकी भटकती हुई बुद्धि के बाहर था। अपने दुःख-कष्ट का कारण वे अपने ही भ्रम को मानते थे; लेकिन उसके सुधार की इच्छा करने पर भी सफल न हो पाते थे। उन्हें अपनी बौद्धिक शक्तियों का ह्रास देखकर अपनी दुर्बलता का भयावह ज्ञान होता जा रहा था, और जितना अधिक ज्ञान होता था, उतनी ही शीघ्रता से उनकी शक्ति का ह्रास होता जा रहा था। ऐसी दशा में वे सोचते थे कि वे अपने को पागल के सिवा क्या समझें। जगत् को अपनी दशा समझाते थे; लेकिन उसकी समझ में कुछ न आता था। हारकर उन्होंने अपने को पागल ही मान लिया। अब तो उनके कार्यों में सबको पागलपन की पूरी झलक आने लगी। सब उन्हें पागल कहने लगे। अब वे पूरे पागल हो गये। वे इतना अधिक सोचते थे कि उनकी कार्य-शक्ति नष्ट हो गई। सोचते-सोचते भी उन पर पागल-पन सवार हो गया। केवल उनके विचार-जगत् में एक बात—बस एक बात—कीली की तरह गड़ी रह गई। यदि कभी उनकी हृदय-रानी के उन्हें दर्शन हुए तो वे उससे अपनी दशा का कारण पूछे जाने पर स्पष्ट कह देंगे कि 'तुम्हारा प्रेम', बस यही कारण है। बस, अब उनकी बुद्धि इसी कीली पर घूमने लगी।

वृद्धा जननी के दुःख का वारपार न था। उसका इकलौता बेटा पागल हो गया था। उसने बड़े-बड़े डाक्टरों को बुलाया। निरीक्षण के बाद मानसिक आघात ही सब उसका कारण बतलाते थे, जिसकी कोई चिकित्सा उनके यहाँ नहीं थी। अब जो कोई भी छात्रा-कुमारी उन्हें देखने आती और उनसे कारण पूछती तो बस वे एक ही संक्षिप्त उत्तर देते—"तुम्हारा प्रेम।" उनके प्रेम-आख्यान की नायिकाओं को इस उत्तर पर निरुत्तर रह जाना पड़ता था। वृद्धा जननी के सम्मुख उन्हें जलती हुई भट्टी में परीक्षा का अनुभव होता था। वृद्धा की उनकी ओर उठी हुई आँखें मूक होकर भी कुछ ऐसी बात कह देती थीं कि वे कई दिन तक उन आँखों को न भूल सकती थीं। अब वे अपने ही कारण उनकी इस दशा को देखकर उनका प्रेम सच्चा मान रही थीं और उनकी सेवा के लिए तैयार थीं। कुछ ने घर आकर अपने सच्चे प्रेमी की ऐसी दशा देखकर दो-चार आँसू भी चढ़ाये।

रमाशंकर की कहानी अब उड़ती-उड़ती प्रमदा और तिलोत्तमा के कानों में भी पहुँच चुकी थी। प्रमदा उन्हें देखने का साहस न कर सकी; लेकिन तिलोत्तमा की आत्मा उसे ही दोषी ठहराती थी। हृदय उसे धिक्कारता था। उसे अब रमाशंकर के प्रेम पर पूर्ण विश्वास होने लगा था और प्रमदा से घृणा। एक दिन उसने प्रमदा से कह ही दिया कि वह उसके पिछले कृत्य पर घृणा करती है। अब दोनों में रहा-सहा बन्धन भी छिन्न-भिन्न हो गया।

एक दिन तिलोत्तमा रमाशंकर को देखने स्वयं ही पहुँच गई। उसका हृदय उन्हें दूर ही से देखकर विगलित हो गया। उसे अपने कर्म पर पश्चात्ताप होने लगा। उसने निकट आकर उनसे पूछा—"आपने अपनी यह दशा क्यों कर ली?"

उत्तर मिला—"तुम्हारा प्रेम!"

तिलोत्तमा उत्तर सुनकर चुप रह गई।

उसने वृद्धा से पूछा—"इनकी कब से ऐसी दशा हुई?"

जननी ने रोते हुए उत्तर दिया—"तुमादश के ज़माने से।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

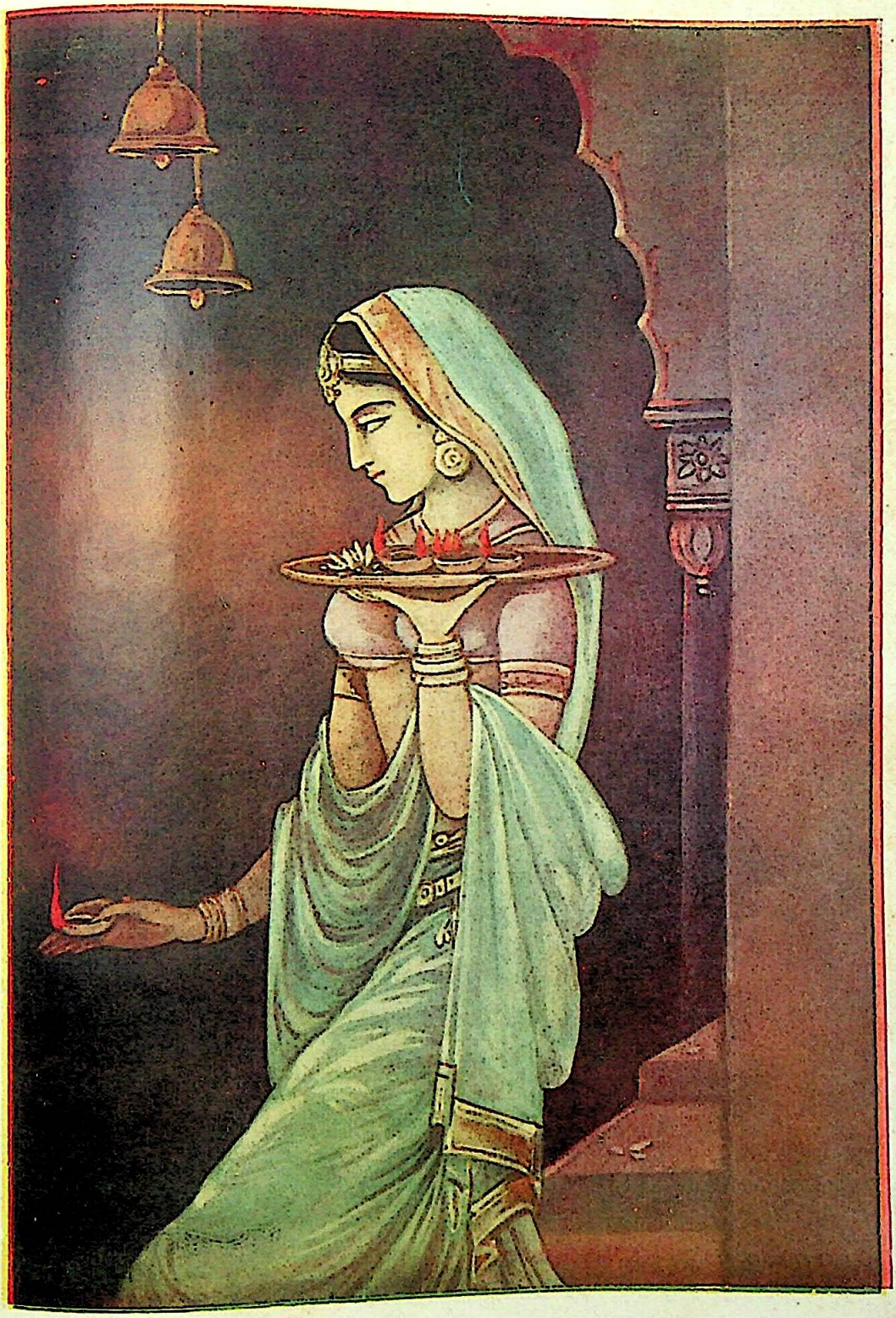

पुजारिन

(चित्रकार—श्रीरामगोपाल विजयवर्गीय)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तिलोत्तमा को अब दृढ़ विश्वास हो गया। उसने फिर पूछा—"तभी से यह हालत है।"

"हाँ, तभी से।"

रमाशंकर की लुप्त बोधशक्ति तिलोत्तमा का स्वर पहचानकर कुछ-कुछ फिर आने लगी। वे आँखें फाड़कर उसे देख रहे थे, जैसे उसे पहचानने का प्रयत्न कर रहे हों। उन्होंने एकाएक चिल्लाकर पूछा—"कौन?"

"मैं हूँ तुम्हारी तिलोत्तमा। पहचानते हो?"

वे उत्तर सुनकर तत्काल उसे पकड़ने उठ खड़े हुए; लेकिन लड़खड़ाकर अचेत गिर पड़े।

कुछ दिन बाद प्रोफ़ेसर महोदय अपनी लाइब्रेरी में एक पुस्तक पढ़ रहे थे कि एक तरुणी ने उनके कक्ष में प्रवेश किया। उन्होंने उसे आदरपूर्वक एक कुर्सी पर बिठलाया और पुस्तक सामने की मेज़ पर उलटकर रख दी। उसने प्रश्न किया—

"आप अच्छी तरह तो हैं?"

"आपकी कृपा है।"

"मुझे मेरे कठोर व्यवहार के लिए क्षमा कीजिएगा।"

रमाशंकर आश्चर्यान्वित हो उसकी ओर देखते रह गये। उसने फिर कहा—"सच मानिए, मैं आपके हृदय को पहचान न सकी थी। आपके प्रेम पर इससे पूर्व विश्वास ही न हुआ था।"

"मुझे आपसे कोई भी शिकायत नहीं, कुमुद!"

"आप मुझे अधिक क्यों लज्जित करते हैं? मुझे आपका दो शब्दों का उत्तर अभी तक याद है। तभी से मैं पश्चात्ताप में जल रही हूँ।"

"पागलपन में कोई ग़लत बात निकल गई होगी।"

"नहीं, वह तो आपके हृदय की बात थी।"

"मैं आपको धोका नहीं देना चाहता। आप उन्माद में कही हुई किसी बात का भी विश्वास न करें।"

"अर्थात् आपने जो मुझसे कहा था, वह सत्य नहीं था।"

"नहीं।"

"मैं क्षमा चाहती हूँ। मुझे फिर भी धोका ही हुआ।"

कुमुद आवेश में उठकर चली गई, रमाशंकर क्षमा-याचना ही करते रह गये। वे उदास बैठे हुए इस घटना पर सोच ही रहे थे कि प्रमिला ने उनके कक्ष में प्रवेश किया। वे कुमुद की तरह तपाक से उसका स्वागत नहीं कर सके, जिससे उसे और भी अधिक भ्रम हुआ। उसने कहा—"आप उदास क्यों हैं? मैं आपके लिए अपना जीवन भी दे सकती हूँ।"

"नहीं, मैं ही अपने ऐसे जीवन से ऊब गया हूँ।"

"आप बीती बातों को भूल जाइए। मुझसे ग़लती हुई।"

"मुझे आपके कारण कोई भी कष्ट नहीं हुआ।"

"आप न कहें, मेरा हृदय तो कहता है। मैं अपने अपराध को नहीं भूल सकती।"

"नहीं, नहीं; आप ऐसा न कहें। मैं आपसे बिलकुल प्रेम नहीं करता। मैं तिलोत्तमा ही को चाहता हूँ। पागलपन में ऐसा सबसे कह गया—" प्रोफ़ेसर महोदय ने ये सब बातें एक साँस में घबराते हुए कह डालीं। "ओह! यह सब क्या सच है?'

"बिलकुल सच है।"

"आपने मेरी अपने ही घर पर Insult (बेइज़्ज़ती) की। धोका, उफ़!"

प्रोफ़ेसर महोदय उसकी बात पर अवाक् रह गये। वह तेज़ी से बाहर चली गई। वे भी घबराये हुए अपनी प्रेमिका के पास भाग गये। उन्हें भय था कि कहीं ऐसी कोई और न आ टपके।

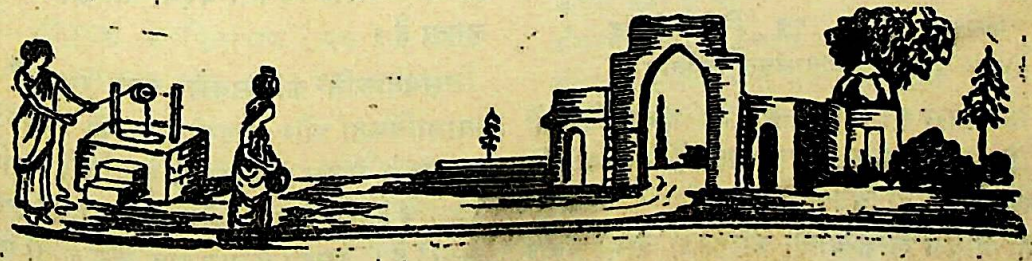

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैथिल ग्राम-साहित्य में करुणरस

श्री० रामइक़बालसिंह 'राकेश'

मिथिला का ग्राम-साहित्य करुणरस से ओत-प्रोत है। करुणरस के इतने गीत शायद ही संसार के किसी प्राचीन अथवा नवीन ग्राम-साहित्य में हों। कविता के आदि अस्तित्व का मूल कारण भी करुणाजनक परिस्थिति ही है।

"मा निषाद ! प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः।
यत् क्रौञ्चमिथुनादेकमवधीः काममोहितम् ॥"

वाल्मीकि मुनि का यह करुण श्लोक करुणाजनक घटना का ही परिणाम है।

भवभूत ने भी करुणरस को ही मुख्य माना है, जैसा कि उन्होंने लिखा है—

"एकोरसः करुण एव निमित्तभेदाद्
भिन्नः पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्।"

एक करुणरस ही निमित्त-भेद से शृंगारादि रसों के रूप में पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है। शृंगारादि रस करुणरस के ही विवर्त्त हैं।

यों तो मैथिल लोक-वाणी की प्रायः सभी प्रकार की गीत-शैलियों में कुछ न कुछ करुणात्मक चित्रण हैं, लेकिन इस दृष्टि से 'समदाऊनि' का सर्वप्रथम स्थान है। दूल्हा-दुलहिन के विवाह-संस्कार की समाप्ति के बाद जब दुलहिन डोले में बैठकर अपनी ससुराल जाने की तैयारी करती है, उस समय 'समदाऊनि' गाया जाता है। उस वक्त दुलहिन की मा, बहन, भावज, उसकी हमजोलियाँ सब उसके गले लिपटकर रोती हैं। उस समय उनके समवेदनाशील—असरपज़ीर गीतों को सुनकर पाषाण-से कठोर हृदय-वालों की आँखें भी सावन-भादों की झड़ी लगा देती हैं, और उनकी वियोग-वेदना से हृदय-पटल फटने लगता है।

'समदाऊनि' का सबसे बड़ा गुण है—उसकी स्वाभाविकता और सादगी। इसका शृंगार प्रेम और करुणा के सजल मोतियों से हुआ है। इसका वर्णन झरने के माफ़िक साफ़ और भाषा सीधी तथा साफ़-सुथरी है। इसका कलाम पाक ख़यालातों से भरा है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और इसकी चुभती हुई मार्मिक पंक्तियाँ दिल पर रहस्यमयी लकीरों को अंकित करती चलती हैं। वास्तव में कविता वही है, जो पढ़ने और सुननेवालों के दिल पर असर करे।

यहाँ मिथिला के कुछ करुणरस के गीत दिये जाते हैं--

[१]

जखन चलल हरि मधुपुर सजनि गे
कै देल व्रज के उदास
केही विधि हरि बिनु रहु हम सजनि गे
केकर करुअ हम आस
छन-छन दिन-सम हरि-बिनु सजनि गे
पहर लागत एक मास
अब केही मुरली अधर बिच सजनि गे
बजबैत उर लेत बास
केकरा स कहबो कठिन दुख सजनि गे
कै देल मोहन निरास
जिअबो मैं कोना हम पिय बिनु सजनि गे
करबो तन के बिनास
व्रजनारी संग लै वृन्दावन
अब के रचत नित रास
राधिका कहत सब सखी मिलि सुनहु हे
मिलत कन्हैया तोही पास

वियोगाकुल राधा श्रीकृष्ण के विरह में विलाप कर रही है—

हे सखी, जिस समय श्रीकृष्ण मधुपुर चले गये, सारा व्रज शोक-सागर में उतराने लगा।

हे सखी, मैं श्रीकृष्ण के विना कैसे रहूँ? अब मैं किसकी आशा करूँ?

हे सखी, श्रीकृष्ण के विना एक-एक क्षण दिन की तरह, और एक-एक पहर एक-एक महीने की तरह प्रतीत होता है।

हे सखी, अब कौन होठों के बीच मुरली रखकर वंशी का मधुर शब्द सुनावेगा, और मेरे हृदय में कौन रमेगा?

हे सखी, मैं अपना यह कठिन दुःख किससे कहूँ?

हाय! श्रीकृष्ण ने मेरी आशा पर पानी फेर दिया।

हे सखी, अब प्रियतम श्रीकृष्ण के विना मैं कैसे जिऊँगी। अब तो इस शरीर का विनाश कर देना ही उचित है।

हाय! अब व्रजांगनाओं को लेकर वृन्दावन में कौन रास-क्रीड़ा करेगा?

इस प्रकार राधिका को विरह-कातर देखकर सभी सखियाँ मिलकर उसे सान्त्वना देने लगीं—

'हे राधे, श्रीकृष्ण तुम्हारे पास हैं। वह तुम्हें अवश्य मिलेंगे।'

इस 'समदाऊनि' में कवि ने विरह की यंत्रणा और निराशा के थपेड़ों से घबराई हुई राधा का वियोग-चित्रण जिस शायराना ढंग से किया है, वह देखने क़ाबिल है। उर्दू-साहित्य के सिद्धहस्त शायर मीर असर ने भी वियोग का करुण-चित्र कुछ इसी प्रकार खींचा है--

'दिन कहाँ चैन, रात ख़्वाब कहाँ,
बिन तेरे आये दिल को ताब कहाँ?
अब न दिन ही कटे, न रात कटे,
किस तरह असर, हयात कटे?

कविवर मीर साहब की उपर्युक्त पंक्तियों और एक ग्रामीण कवि की निम्न पंक्तियों--

'छन-छन दिन-सम हरि-बिनु सजनि गे
पहर लागत एक मास'

का पाठक तुलनात्मक दृष्टि से मुलाहज़ा फ़र्मावें।

[२]

जइती बड़ी हे दूर
लगती बड़ी हे बेर
अँगने-अँगने बुलु हँसइते यमाय
धीआ हे समोधु सासु मन चित्त लाय
गैया के बँधितो मैं खुटा में लगाय
बछिया के लेल जाइय भागल यमाय
जइती बड़ी हे दूर
लगती बड़ी हे बेर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गैया जे हुँकरे दुहान केर बेर
बेटी क माए हुँकरे रसोइया केर हे बेर
बाट रे बटोहिया कि तुहीं मोरा भाई
एही बाटे देख लो में धीआ धी यमाय
जइती बड़ी हे दूर
लगती बड़ी हे बेर
देख लो में देख लो अशोकवा तर हे ठाढ़
धीआ हे हकन कानु हँसइय यमाय
धीअवा के कनइते में गंगा बहि गेल
दमदा के हँसइते में चदरिया उड़ि गेल

हाय! बहुत दूर जाऊँगी! बड़ी देर लगेगी।

आँगन में मेरे हँसते हुए दामाद चहलक़दमी कर रहे हैं।

दामाद कहता है—

'हे सास, अपनी बेटी को अच्छी तरह समझा-बुझा दो।'

सास कहती है—

'गाय को खूँटे में बाँधा जाता है। लेकिन बछिया को कौन बाँधता है? हाय! मेरा दामाद मेरी बेटी को लिये भागा जाता है!'

हाय! बहुत दूर जाऊँगी। बड़ी देर लगेगी।

दूध दुहने के समय गाय हुङ्कारती है और बेटी की मा बेटी की जुदाई में रसोई खाने के समय बिसूर रही है।

हे राह चलते हुए पथिक, तुम मेरे भाई हो। क्या तुमने रास्ते में मेरी बेटी और दामाद को देखा है?

पथिक ने उत्तर दिया—

'हे बहन, रास्ते में मैंने अशोक वृक्ष के नीचे तुम्हारी बेटी और दामाद को देखा है। तुम्हारी बेटी की आँखों से सावन-भादों की झड़ी लग गई है, और तुम्हारे दामाद क़हक़हा लगा रहे हैं। तुम्हारी बेटी इस तरह बिसूर-बिसूर कर रोती है कि उसके रोने से गंगा नदी उमड़ बही है, और तुम्हारे आनन्द-विह्वल दामाद के हँसने से मेरी चादर उड़ गई है।'

यह गीत 'समदाऊनि' का सुन्दरतम उदाहरण है। इस गीत में कवि ने बेटी की जुदाई में बिसूरती हुई मा, और मा की याद में तड़पती हुई बेटी—दोनों के हृदय निकालकर रख दिये हैं। इन पंक्तियों—

धैया के बँधितो में खुटा में लगाय
बछिया के लेल जाइय भागल जमाय'

और

'धीअवा के कनइते में गंगा बहि गेल
दमदा के हँसइते में चदरिया उड़ि गेल'

के शब्द-शब्द से करुणा फूट बही है। 'बेटी के रोने से गंगा नदी उमड़ बही, और दामाद के क़हक़हा लगाने से राह चलते हुए पथिक की चादर उड़ गई' में कवि ने कैसी युक्तिपूर्ण एवं कवित्वमय कल्पना की है। भोली-भाली ग्राम-देवियों के सरल कंठ से इन पंक्तियों को सुनकर मैं कई बार अश्रु-भरी आँखों में डूब चुका हूँ, और कवीन्द्र रवीन्द्र के 'स्मरण' की निम्न पंक्तियाँ मेरे कानों में गूँजने लगी हैं—

'जाग रे जाग रे चित्त जाग रे
जोआर एसे छे अश्रुसागरे!
कूल ता'र नाहि जाने,
बाँध आर नाहि माने,
ताहारि गर्ज्जनगाने जाग रे!
तरी तोर नाचे अश्रुसागरे।'

[२]

नयन नीर अविरल किये ढारल
कह-कह सुन्दरि नारि
कंचन-तन झामरि-सन देखिए
के धनी पड़लक गारि
केहन चकमक चानक शोभा
सुरभित अलस समीर
चारि दिशा अछि मदनक बेढल
तिख-तिख पुहुपक तीर
की दुख पड़लह कह-कह नागरि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आब तेजह अनुताप
कनइत देखि सेज पर सूतलि
मोर मन थर-थर काँप
आजु सुनिए पति मात-पिता-मुख
हेरल सपनेहि माँझ
छोटि मोर बहिन भाय मन पारल
कछमछ काटल साँझ
माइक नेह जखन मन पारल
जे देलक प्रतिपालि
तिनका कनइत तेजि कतैछी
केहन जगतक चालि
पिता-भाय जते सखिगन सब छल
सब सौं कएलहुँ कात
से सब चरचा करइत होयत
हिय भेल पीपरक पात
भरि दिन छोटि बहिन कोरहिं कै
केहन बिहुँसि खेलाय
अबइत काल निठुर मोर भाऊजि
कर सौं लेलन्हि छोड़ाय
अबइत काल बबा की कहलनि
लेलनि पैर छोड़ाय
थर-थर हमर हृदय छल कँपइत
रथ पर लेल चढ़ाय
तखनुक ध्यान अपन घर-आँगन
परिजन सकल समाज
आजुक सपन सकल मन पारल
तैं उदास चित आजु
शैशव आओर किशोर वयस जहँ
संग-संग जीवन बिताय
तहि ठाँ सौं कथिलै सुनु हे पति
आनल सबके कनाय
चुप रहु चुप रहु कामिनी सुनु-सुनु
काल्हिहिं आवत कहारि
रथ चढ़ि जाएब नइहर सुन्दरि
कथि लै रुदन पसारि
मातु-पिता ओ भाय-बहिनि सब
देखब सुन्दर नारि
कुमर भनहीं पुन घर घुरि आएब
रहि नइहर दिन-चारि

कोई नायक अपनी बिसूरती हुई नायिका से कह रहा है—

'हे सुन्दरी, कहो तुम्हारी आँखों से इस तरह लगातार आँसुओं की झड़ी क्यों लग रही है? तुम्हारा यह कुन्दन-सा दमकता हुआ शरार मैला क्यों हो गया? हे प्रियतमे, क्या तुम्हें किसी ने गाली दी है?

देखो, आसमान में किस तरह चमकते हुए चाँद की मन्द मुसकान छा गई। सुगन्ध से तर ठंडी हवा मन्द-मन्द झोंके लेने लगी, और दिशा-विदिशाएँ मदन के तीखे फूल के बाणों से घिर गईं। हे सुन्दरी, कहो इस समय तुम्हारे हृदय में कौन ऐसी पीर है, जो तुम इस प्रकार सेज पर बिसूर-बिसूर कर विलाप कर रही हो? हाय! सेज पर सोये हुए तुम्हें इस तरह बिसूरते देखकर मेरा मन थर-थर काँपता है।'

नायिका ने कहा—

'हे सजन, सुनो। आज मैंने स्वप्न में माता-पिता का दर्शन किया है। अपनी छोटी बहन और प्रिय भाई की याद भी ताज़ी हो आई है, जिससे यह रात बड़ी बेचैनी में कटी है। अपनी नेहमयी मा के निःस्वार्थ स्नेह की सुध हो आई है, जिसने मुझे प्रेम से पाल-पोसकर बड़ा किया। हाय! ऐसी नेहमयी मा को भी विलाप करती हुई छोड़कर मैं आज कहाँ आ गई? हाय! इस संसार की लीला कैसी है?

हे प्रियतम, मा-बाप, भाई-बहन और मेरी सभी सखियों से तुमने मुझे जुदा कर दिया। हाय! आज वे सब मेरा स्मरण कर रहे होंगे। मेरा हृदय पीपल के पत्ते की तरह काँप रहा है।

हाय! मैं प्रतिदिन अपनी छोटी बहन को गोद में लेकर पुचकारती थी। लेकिन वहाँ से बिदा लेने के समय मेरी निर्मम भावज ने उसे भी मेरे हाथ से छीन लिया। वहाँ से बिदा लेने के समय न मालूम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरे पिता ने क्या कहा ? शायद उन्होंने अपना पैर छुड़ा लिया। मेरा हृदय थर-थर काँपता था, और हे प्रियतम, तुमने मुझे झपटकर डोली में बिठा लिया।

हे प्रियतम, आज के स्वप्न ने बिदा-समय की (घर-आँगन, हित-कुटुम्ब और मेरे परिजनों की) सभी स्मृतियाँ मेरे हृदय-पटल पर एक-एक कर अंकित कर दी हैं। इसीलिए आज मेरा मन उदास है।

हे प्रियतम, जिस मैके में मैंने अपने प्रिय कुटुम्बों के साथ शैशव और किशोरावस्था बिताई, उस मैके से (मेरे प्रिय बन्धु-बान्धवों को बिसूरते हुए छोड़कर) तुमने मुझे क्यों जुदा किया ?'

नायक ने कहा—

'हे प्रियतमे, चुप रहो। कल मैं कहार बुलाऊँगा, और तुम डोले पर सवार हो मैके चली जाना। इस प्रकार तुम क्यों बिसूरती हो ? तुम्हारी अपने मा-बाप, भाई-बहन और सभी हित-कुटुम्बों से फिर भेंट होगी। 'कुमर' कवि कहते हैं कि तुम वहाँ दो-चार दिन सुखपूर्वक रहकर फिर घर लौट आना।'

इस मार्मिक और करुणापूर्ण गीत में कवि ने मैके से बिछड़ी एक नवोढ़ा रमणी का हृदय निकालकर रख दिया है। इसकी पंक्ति-पंक्ति में शिशिर-ऋतु के प्रभात में जलाशयों से उठनेवाले कुहरे-सी धूमिल आह है। वर्णन की दृष्टि से देखा जाय तो इसमें प्रेम, करुणा, मर्म-वेदना आदि मनोविकारों का कवि ने ऐसा स्वाभाविक अंकन किया है कि देखते ही बनता है।

[४]

केम्हर से डाँरी आयल
कहाँ रे के ले जाय
उत्तर से डाँरी आएल
दक्खिन के हे ले जाय
जबे डाँरी चलल लो उत्तर राज हे देश
बाबा मन पड़ि गेल हे माई
बाबा मोरा रखितन पगरी के फेंच जकी
अबे डारी जयेतन ससुरदेश हे राज
दूध के माछिए होयबो हे ॥ १ ॥
जबे डाँरी चलल पूरुब राज
बाबू मन पड़िय गेल हे
बाबू मोरा रखितन धोतिया के फेंच जकी
अबे डारी जयेतन ससुरदेश हे राज
घर के बढ़निया होयबो हे ॥ २ ॥
जबे डाँरी चलल दखिन राज
अमा मन पड़ी गेल हे
अमा मोरा रखितन पिंजरा के सुगा जकी
अबे डारी चलल ससुर-घर हे देश
घर के पोतन होयबो हे ॥ ३ ॥
जबे डाँरी चलल पछिम राज
भऊजी मन पड़ी गेल हे
भऊजी मोरा रखितन बसिया जे भात जकी
अबे डारी चलखि ससुर-घर हे देश
घर के चालन होयबो हे ॥ ४ ॥

कहाँ से यह डोली आई है, और कहाँ जायगी?

उत्तर से यह डोली आई है, और दक्खिण जायगी।

जब डोली उत्तर की ओर चली, तब अपने बाबा की याद ताज़ी हो आई। मेरे बाबा मुझे पगड़ी के पेंच (तह) की तरह रखते थे। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ मैं दूध की मक्खी हो जाऊँगी ॥ १ ॥

जब डोली पूरब की ओर चली, तब अपने पिता की याद तड़पाने लगी। मेरे पिता मुझे धोती की पेंच की तरह रखते थे। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ मैं घर की झाड़ू हो जाऊँगी ॥ २ ॥

जब डोली दक्खिण की ओर चली, तब मुझे अपनी मा की याद ताज़ी हो आई। मेरी मा मुझे पिंजड़े के सुग्गे की तरह रखती थी। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के देश में ले जायगी, जहाँ मैं घर की पोतन (मोटे कपड़ों का तह किया हुआ एक क़िस्म

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का झाड़ू, जिसको भिंगोकर आँगन लीपा जाता है) हो जाऊँगी ॥ ३ ॥

जब डोली पश्चिम की ओर चली, तब अपनी भावज की याद ताज़ी हो आई। मेरी भावज मुझे बासी भात की तरह रखती थी। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के देश में ले जायगी, जहाँ मैं घर की चलनी (आटा चालने के लिए झीने-झीने छेदवाला बाँस के खपाचों का बुना एक पात्र) हो जाऊँगी ॥ ४ ॥

इस गीत के एक-एक शब्द बेबसी और करुणा में शराबोर हैं। इसमें कवि ने मैके से जुदाई और ऐसी जुदा कि अब जीतेजी दो-चार बार ही मैकेवालों से मिलने की आशा हो—एक वियोगाकुल रमणी की मनोदशा का चित्रण बड़े ही स्वाभाविक ढंग से किया है।

'मेरे पिता मुझे धोती के पेंच की तरह रखते थे। लेकिन हाय! अब यह डोली मुझे ससुर के राज्य में ले जायगी, जहाँ मैं घर की झाड़ू हो जाऊँगी।' इन पंक्तियों को पढ़कर कौन ऐसा सहृदय है, जिसकी आँखों से अश्रु प्रवाहित न हो जाय।

[५]

निम्नलिखित गीत विवाह-संस्कार की समाप्ति के बाद बेटी की बिदाई के अवसर पर गाया जाता है—

गंगा उमड़ि गेल यमुना उमड़ि गेल
उमड़ल घोंघा ओ सेमार हे
एक नहीं उमड़ल बाबा कौन सिंह बाबा
अइली धर्म केर बेर हे
आहे कहितीत आहे बेटी तमुआ तनइती
औरो रेशमक ओहार हे
आहे कहितीत आहे बेटी सूरुज अरोधती
गोरे बदन न कुम्हलाय हे
कथी लागी आहे बाबा तमुआ तनाएब
कथी लागी रेशमी ओहार हे
कथी लागी आहे बाबा सूरुज अरोधब
जएबो सुन्दर बर पास हे
आहे हमे भइया मिली एके कोखे जनमल
पिअली सोरहिया के दूध हे
भइया के लिखइन बाबा एगे चऊपड़िया
हमरो लिखल परदेश हे
केकरही कनले में नम्र लोग कानये
केकरही दहलले भुइँ हे
आहे कौने निरबुधिया के आंगी टोपी भींजल
केकर हृदय कठोर हे
बाबा के कनले में नम्र लोग कानये
अमा के कनले दहलल भुइँ हे
भइया निरबुधिया के आंगी टोपी भींजल
भऊजी के हृदय कठोर हे
केही जे कहये गे बेटी नित हे बोलायब
केही कहये छौ मास हे
केही जे कहये एतही भए रहत
केही कहये दूर जाऊ हे
बाबा जे कहथ नित हे बोलायब
भइया कहए छौ मास हे
अमा जे कहए एतही भए रहत
भऊजी कहए दूर जाऊ हे

गंगा उमड़ गई। यमुना उमड़कर बह चली। यहाँ तक कि घोंघा और सेंमार भी उमड़ बहा। हाय! धर्म का मुहूर्त्त आया, लेकिन अमुक सिंह पिता नहीं उमड़े।

पिता ने कहा—

'हे बेटी, अगर तुम कहो तो मैं शामियाना तना दूँ, रेशम का पर्दा लगा दूँ और सूर्य की आराधना करूँ कि वह अपनी चिलचिलाती हुई धूप से तुम्हारा गोरा बदन काला न करें।'

बेटी ने उत्तर दिया—

'हे पिता, आप क्यों शामियाना तनावेंगे, क्यों रेशम का पर्दा लगावेंगे और क्यों सूर्य की आराधना करेंगे; क्योंकि मैं विना किसी कठिनाई के ही अपने सजन के पास चली जाऊँगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हे पिता, मेरा और मेरे भाई का एक ही कोख से जन्म हुआ। हमने एक ही साथ कामधेनु गाय का दूध पिया। लेकिन विधाता ने मेरे भाई की क़िस्मत में यह चौपाल लिखी, और मेरी क़िस्मत में परदेश।'

कन्या कहती है—

'हाय! किसके रोने से सारे गाँव के लोगों ने रो दिया?

किसके रोने से पृथ्वी दहल उठी?

किस निर्बुद्धि के विलाप करने से उसके शरीर की मिरजई और टोपी भींग गई, और किसका हृदय पाषाण-सा कठोर है?'

'पिता के रोने से सारे गाँव के लोगों ने रो दिया।

मा के रोने से पृथ्वी दहल उठी।

मेरे निर्बुद्धि भाई के रोने से उसके शरीर की मिरजई और टोपी भींग गई, और मेरी भावज का हृदय पाषाण-सा कठोर है।'

किसने कहा—'नित्य बुलाऊँगा।'

किसने कहा—'छः महीने पर बुलाऊँगा।'

किसने कहा—'नित्य यहीं रहो।'

और, किसने कहा—'आँखों से ओझल हो जाओ।'

पिता ने कहा—'नित्य बुलाऊँगा।'

भाई ने कहा—'छः महीने पर बुलाऊँगा।'

मा ने कहा—'नित्य यहीं रहो।'

और भावज ने कहा—'आँखों से ओझल हो जाओ।'

कैसा मर्म-वेधी चित्रण है! कोई भी तूलिका इस कवि की तूलिका से ईर्ष्या कर सकती है।

[६]

कथिलै रुदन पसारह नागरि
कमल-नयन मुरझाय
केकी कहलक सुन्दरि कहु-कहु
सोचहिं हँस सुखाय
कथिलै रुदन पसारव हे पति
नइहर जाएब आसे
मातु-पिता-मुख देखब कखनहि
किछु दिन नइहर बासे
कते दिन लै परतारव हे पति
आब मरब विष खाय
काल्हिक भामिनी भाग हुनक भल
सब जनि नइहर जाय

हे सुन्दरी, तुम क्यों विलाप कर रही हो? तुम्हारे कमल-नयन क्यों मलिन हो रहे हैं?

हे सुन्दरी, कहो तुम्हें किसने क्या कहा जो तुम्हारे प्राण कंठगत हो रहे हैं?

नायिका ने उत्तर दिया—

'हे प्रियतम, भला मैं किसलिए विलाप करूँ? मुझे नैहर जाने की इच्छा है। हाय, मैं कुछ दिन नैहर में रहकर अपने मा-बाप का दर्शन कब करूँगी? हे प्रियतम, आप मुझे और कितने दिनों तक दिलासा देंगे? अब यदि आपने मुझे नैहर जाने की अनुमति नहीं दी तो मैं विष-पान कर शरीर त्याग दूँगी; क्योंकि जो सुहागिन हमसे पीछे श्वसुर-गृह आई, वह सौभाग्यवती भी अपने नैहर चली गई।'

यह उक्ति अपनी जन्मभूमि और बन्धु-बान्धवों का परित्याग कर श्वसुर-गृह में बसी हुई नवोढ़ा नायिका की मनोदशा को खूब दर्शाती है।

[७]

जखन गगन घन बरसल सजनि गे
सुनि हहरत जिऊ मोर
प्राणनाथ दुर देश गेल सजनि गे
चित भेल चन्द्र-चकोर
हमहुँ एकाकिनि कामिनी सजनि गे
दामिनी दमकि चहुँ ओर
दामिनि कतेक दुखौलक सजनि गे
अब ने बचत जिऊ मोर
झींगुर झंझकत चहुँ दिशि सजनि गे
कोयल कुहुकत मोर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से सुनि जिय घबरायल सजनि गे
यौवन कएलक थोर

हे सखी, जिस समय आकाश से बादल बरसते हैं, उस समय मेरा कलेजा काँप उठता है।

हे सखी, मेरे प्राणनाथ दूर देश में जा विराजे हैं, और मेरा चित्त चन्द्र के चकोर-सा अधीर हो रहा है।

मैं एकाकिनी अबला हूँ, और यह दामिनी दशो दिशाओं में रह-रहकर दमक उठती है।

हे सखी, इस दामिनी ने मेरा दिल कितना दुखाया। हा! अब मेरा जीना कठिन जान पड़ता है।

हे सखी, चारों ओर झींगुर और मयूर शोर कर रहे हैं, और कोयल कुहु-कुहु की आवाज़ दे रही है जिसे सुनकर मेरा मन विचलित हो रहा है।

हाय! मेरी जवानी ने मेरी बड़ी दुर्गति की।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, जिनकी रंगीन पार्श्वभूमिका में रूप और उद्दाम यौवन के करुणतम चित्र निहित हैं। कोई-कोई गीत तो इतने मधुर हैं कि उनसे रस छलका पड़ता है। उत्कृष्ट उत्प्रेक्षाएँ, सुन्दर उपमाएँ और सांगरूपक स्थान-स्थान पर हीरे की तरह जड़े हैं। अभी स्थानाभाववश लेख संक्षिप्त कर दिया गया है। यदि समय मिला तो फिर कभी पाठकों की सेवा में उपस्थित हूँगा।

स्नान का आनन्द

केश-राज (Regd.)

केशों का शृंगार

केशते का राजा

स्थानीय हमारे एजेंट से खरीदिये।

डाबर (डा: एस. के. बर्मन) लि:

विभाग नं० १३१ पोष्ट बक्स ५५४, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जादूगर नर्तकी

श्रीसाधुशरण

(अप्रैल के अंक से आगे)

[३]

पिछले प्रदर्शन के बाद से कृष्णगढ़ के राजनगर में एक हलचल-सी मची हुई थी—जिधर देखिए, उसी का चर्चाएँ ; जिधर सुनिए, देवसेना की बातें। कोई देवसेना की कला की प्रशंसा करता, कोई नृत्यसभा का बखान, तो कोई उस युवक संन्यासी की ही कहानियाँ सुनाने लगता—

"देवसेना ने तो कमाल कर डाला ! ऐसा नृत्य तो न कभी आँखों देखा था, न कानों सुना था।"

"देवसेना बड़ी भारी जादूगर है। वह अपने जादू ही के बल से नाचती है। इसी से उसका नृत्य इंद्रपुरी की अप्सराओं के नृत्य को भी मात कर देता है ; वहीं तो आदमी में—ख़ासकर एक इतनी छोटी लड़की में इतनी शक्ति कहाँ कि ऐसा सुन्दर नृत्य कर सके !"

"देवसेना अपने जादू के बल से लोगों के मन ही मोह लेती है, इसी से उसका नृत्य देखने से किसी का जी ही नहीं भरता। तभी तो नाच बंद हो जाने पर भी किसी का उसके पास से हटने को जी नहीं चाहता। हटो, तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे कलेजा निकला जा रहा है।"

"और, जादू कहाँ सीखा, यह जानते हो ? असल में वह युवक संन्यासी ही बड़ा भारी जादूगर है। उसी ने देवसेना को जादू सिखाया है।"

"नहीं यार, देवसेना अपनी मा के साथ कामरू-कामाख्या गई थी, वहीं से जादू सीख आई है। उस युवक संन्यासी से तो उसका काफ़ी परिचय भी नहीं। अगर परिचय होता, जानते हो, राजकुमार क्या कर डालते !"

"जहाँ से भी सीख आई हो, लेकिन भई, देवसेना जादूगर है ज़रूर। उसने अपने जादू के ही बल से तो कंचनगढ़ के राजकुमार को भरी सभा में अपने पास खींच लिया था—खींच ही नहीं लिया, अपने ही जैसा उनको महफ़िल में नचा दिया। सुनता हूँ, बेचारा राजकुमार तभी से पागल हो गया है। इससे कंचनगढ़-नरेश देवसेना पर बहुत अप्रसन्न हैं। वह उसे दंड देने के लिए क्रुद्ध हो उठे हैं और इस सम्बन्ध में हमारे कृष्ण-गढ़-नरेश से लिखा-पढ़ी भी कर रहे हैं।"

"नहीं यार, पागल-वागल कुछ नहीं हो गये। सब झूठी अफ़वाहें हैं। कल ही तो मैंने देखा था, वह राज-कुमार आनन्दवर्द्धन के साथ प्रसन्नचित्त टहलने जा रहे थे। उस समय उन पर नृत्य का एक नशा-सा चढ़ गया था, इसी से नाचने लगे थे। हाँ, यह मैं मानता हूँ कि देवसेना जादूगर ज़रूर है। तभी तो इतनी ही छोटी उमर में वीणा, सितार, सरोद, सारंगी, तंबूरा, रबाब, ढोल, मृदंग, तबला, वंशी, शहनाई, अलगोजा—जिस किसी बाजे का भी नाम लो, सब बजाना जानती है और ऐसा कि सबमें एक ही कमाल ! अगर जादू न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानती होती, तो यह सब कैसे सीख लेती। उसकी संगीत-शाला में जाकर देखो। इन सब बाजों का ढेर लगा हुआ है। देखकर बुद्धि चकरा जाती है।"

"भई, मेरा तो ख़्याल है, देवसेना स्वर्ग की कोई अप्सरा है, शापभ्रष्ट होकर मुक्ताबाई की कोख में पैदा हुई है। जब शाप की अवधि पूरी हो जायगी, फिर उड़कर स्वर्ग में चली जायगी। सुन्दरता नहीं देखते। ओफ़! इतनी सुन्दर! रूप देखकर आँखें चौंधिया जाती हैं।"

एक दूसरे मुहल्ले की कुछ बातें सुनिए—

"भई, वह युवक संन्यासी तो देवसेना का बहुत पुराना और पक्का प्रेमी है। उन दोनों में तो दिल-दिल का सम्बन्ध है। सुनता हूँ, उद्यानों में दोनों एक दूसरे के गले में हाथ डाले देर तक साथ-साथ टहलते हैं, घंटों बेंचों पर बैठकर ख़ूब घुल-घुलकर बातें करते हैं। देवसेना उसके गले में भुजाएँ डालकर गाने गाती है, वह सितार बजाता है; कभी वह गाता है, तो देवसेना बजाती है।"

"नहीं यार, यह बात नहीं। अगर यह बात होती, तो क्या राजकुमार आनन्दवर्द्धन चुप बैठे होते? जानते हो, देवसेना तो उनकी प्रेमिका है, उसके लिए तो वह जान देने को तैयार रहते हैं।"

"राजकुमार को कुछ मालूम भी तो हो! मुक्ताबाई को कुछ कम धूर्त समझते हो! वह राजकुमार के कुल आदमियों को साधे हुए है। कुछ मालूम ही नहीं होने देता।"

"और भई, राजकुमार देवसेना को अपनी प्रेमिका बनाये हुए है, क्या यह बात उनके पिता को मालूम है?"

"नहीं यार, अगर यह बात उनको मालूम होती, तो अब तक न-जाने क्या अनर्थ हो गया होता। महाराज तो बड़े पवित्र विचार के पुरुष हैं। उनको ऐसा आचरण पसन्द कहाँ! उनको मालूम हो जाय, तो सबसे पहले तो वह राजकुमार को राज्याधिकार से ही वंचित कर डालें। इसके अलावा न-जाने और कौन कठोर दंड दें।"

"और, वह युवक संन्यासी नृत्यसभा में घुसा कैसे था, यह तो तुम लोगों को मालूम न होगा?"

"नहीं। क्या कोई नई बात हुई?"

"मत कुछ पूछो। जब नृत्यसभा भर गई—उसके भरने में देर ही कितनी लगी, दस मिनट में तो हज़ारों आदमी भीतर घुस पड़े—तब अध्यक्ष ने संतरियों को हुक्म दे दिया कि अब किसी को भी भीतर न आने दो; जो आवें, उनसे प्रार्थना करके बतला दो कि अब जगह नहीं है, किसी और प्रदर्शन में आने की कृपा करें। फिर क्या था। संतरियों ने लोगों का घुसना बंद कर दिया। इधर बाहर अभी हज़ारों की भीड़! घुसने के लिए लोग व्यग्र हो उठे थे। इसी भीड़ में वह संन्यासी भी था। जब अनेक उद्योग करने पर भी संतरियों ने उसको भीतर नहीं जाने दिया, तब वह राजमहल के चारों ओर टहलने लगा, और न-जाने कैसे—जानते ही हो, महल का प्राचीर कितना ऊँचा है—उतनी ऊँची चहारदीवारी पर चढ़ गया और प्राणों का मोह छोड़कर भीतर कूद पड़ा।"

"अरे! तो क्या पकड़ा नहीं गया?"

"सुनो तो, पकड़ा तो गया ही। बेचारे का सिर फट गया था और ख़ून की धारा बह रही थी। जब वह पकड़कर अध्यक्ष के सामने लाया गया, तो बेहोश-सा हो गया। उसकी दशा देखकर अध्यक्ष को उस पर बड़ी दया लगी। उन्होंने अपने सामने उसकी मरहम-पट्टी कराई और भीतर जाने का हुक्म दे दिया। यों तो वह भीतर जा पाया था।"

इधर प्रदर्शन से लौटने के बाद से देवसेना की दशा कुछ विचित्र-सी हो उठी थी। अब वह पहले-जैसा न तो किसी से हँसती-बोलती, न खेलती-कूदती, न गाने-बजाने में जी लगाती; न पहले-जैसी रुचि और प्रसन्नता से बनाव-शृंगार, न खाना-पीना! बस, सदा चिंतित और उदास पड़ी विचारों में मग्न रहती। उसकी सहेलियाँ आतीं और उसे प्रसन्न करने के लिए अनेक हास-परिहास तथा मनोरंजन की बातें सुनातीं, पर देवसेना में कोई परिवर्तन नहीं। शायद अब वह अपने भविष्य की यह गुत्थी सुलझाने में व्यस्त रहती थी कि आगे अब उसे कैसे और क्या करना चाहिए।

यशोदा आई; उसने प्यार के साथ देवसेना के गले में हाथ डाल दिया और मुसकिराकर कहा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"अरी, क्या लोगों की बातें सच हैं ? क्या तू सचमुच उस संन्यासी के ऊपर मरने लगी है ?"

देवसेना मौन। वह विस्फारित नेत्रों से यशोदा का मुख देखने लगी।

"अरी पगली, तुझे कुछ अपना भला-बुरा तो सोचना चाहिए। भला उस संन्यासी में क्या है कि तू उस पर लट्टू हो गई। सोच तो, राजकुमार के ठुकरा देने पर तेरा कितना बड़ा नुक़सान हो जायगा। जान-बूझकर तो तुझे अपने एक ऐसे प्रेमी को हाथ से न खोना चाहिए।"

"यशोदा।"—देवसेना ने व्यथित स्वर में कहा—"तुम मुझसे ऐसी बातें न करो। जान लो, एक तुम्हारे ही प्रेम के बल पर मैं जी रही हूँ ; नहीं, कब की मर गई होती।"

उधर मुक्ताबाई का जीवन शोकसंतप्त हो उठा था। न-जाने कितनी आशा से, कितने उल्लास से वह देवसेना के नृत्य का प्रदर्शन कराने गई थी ; वहाँ का यह हाल ! देवसेना ही उसकी एकमात्र संतान थी, वही उसकी लाखों की सम्पत्ति की एकमात्र उत्तराधिकारिणी थी। अतः वह उसको अपने प्राणों के समान प्यार करती थी। देवसेना का लालन-पालन और शिक्षा-दीक्षा बड़े लाड़-प्यार में हुआ था। उसके अपराध भी मुक्ताबाई के सम्मुख अपराध न होते थे। फिर उसका कोई अनिष्ट उसके लिए कब सह्य होता। प्रदर्शन के पहले तक उसने देवसेना को कभी डाँटा भी नहीं था ; लेकिन वहाँ से लौटने के बाद तो उसने देवसेना की कुल दुर्दशाएँ कर डाली थीं—घूसे तक लगाये थे ; केवल यह जानने के लिए कि वह युवक, जिसकी ओर वह नृत्यसभा में उतना अधिक आकर्षित हुई थी, कौन है, कहाँ का रहनेवाला है; उससे उसका कैसे परिचय हुआ, कब का परिचय है तथा उसकी ओर वह उतनी अधिक आकर्षित क्यों हुई थी। उसको इसका कहाँ पता कि यह वही व्यक्ति है, जो दिन-रात में चार-चार, पाँच-पाँच बार उसकी गलियों में फेरी लगाया करता था। उधर देवसेना ने भी उससे उसके सम्बन्ध में एक शब्द नहीं कहा ; बस, बिलकुल मौन। भोली कहे तो क्या ; वह तो स्वयं ही उससे अनजान थी—अपरिचित थी। मुक्ताबाई सदा चिन्ताओं में मग्न रहती—"भगवान् ने कैसा अनर्थ कर डाला। लड़की की एक छोटी-सी ग़लती से उसका पुश्त-दरपुश्त का राजाश्रय दम-भर में हाथ से निकल गया। राजकुमार की कृपा और प्रेम का—इसकी क्या आशा ! आज जब नई लगन है, नई उमंग है, नई प्यास है, उनके लिए देवसेना ही सब कुछ हो रही है ; जब प्यास मिट जायगी, फिर कौन पूछता है। जब तक कुँआरे हैं, सब कुछ है ; जब विवाह हो जायगा, फिर अपनी रानी को पूछेंगे या इसको ? इसके लिए तो राजाश्रय ही सब कुछ था। वही भगवान् ने छीन लिया। जब राजकुमार राजा होंगे... तब की कौन जाने, फिर राजाश्रय मिल सकेगा या नहीं। वह भी, कौन जानता है, कब राजा होंगे—हों या न हों।" मुक्ताबाई के शोकसंतप्त रहने का एक और भी कारण था—उस प्रदर्शन में आनंदवर्द्धन भी देवसेना से अप्रसन्न हो गये थे। यों तो उनको प्रसन्न कर लेना मुक्ताबाई के बायें हाथ का खेल था—अपनी जवानी में उनके-जैसे न-जाने कितने युवकों को उसने नकेल पकड़कर नचाया था, न-जाने कितने बुद्धिशालियों की बुद्धि पर पल-भर में पानी फेर दिया था ; फिर भोले-भाले राजकुमार उसके आगे किस गिनती में थे ! अपनी चालों और बातों से उनको प्रसन्न तो उसने तुरत ही कर लिया था ; लेकिन मन की आशंका तो नहीं मिटती थी—कौन जाने राजकुमार फिर अप्रसन्न हो जायँ, उनको कोई और नई बात मालूम हो जाय। अतः वह इस आनेवाले अनर्थ को आज ही निर्मूल कर देना चाहती थी। इसीलिए वह उस दुर्घटना के कारणों की खोज में जी-जान से लग गई थी ; स्वयं ही नहीं, कई अन्य व्यक्तियों को भी इस काम पर नियुक्त कर दिया था।

आजकल नगर में देवसेना के संबंध में जो चर्चाएँ चल रही थीं ; वे मुक्ताबाई के कानों तक भी आती थीं। यद्यपि आजकल वह स्वयं दुखी थी, फिर भी पुत्री की प्रशंसा की ऐसी बातें सुनकर उसका हृदय आनंद से फूल उठता था। लेकिन उसी आनंद के बीच में आज जो बात उसके कानों में पड़ी थी, उसने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ो उसके हृदय को चीर ही डाला था। पहले तो वह वयं ही उसका अनुसंधान करती रही थी, फिर जब समें उसको सचाई का कुछ अंश मालूम हुआ, तब वह झुँझलाई हुई देवसेना के पास पहुँची और पूछा—

"देवसेना, यह क्या सुन रही हूँ ?"

"क्या है ?"—देवसेना ने शंकित होकर पूछा।

"राजतिलक कौन है ?"

देवसेना का कलेजा धकधक करने लगा, मुख स्याह ड़ गया। वह मौन रह गई।

"बोल न, वह कौन है ? मैंने तो सब पता लगा लिया है। वही तो है वह युवक, जिसकी ओर नृत्यसभा में तू उस दिन उतनी अधिक आकर्षित हुई थी ? यह वही भिखारी तो है, जो इस सड़क से अक्सर सितार बजाकर फेरी लगाता हुआ निकलता था ?"

देवसेना मौन।

"पगली, बतलाती क्यों नहीं ?"

"क्या बात है, कहो भी तो।"

"सुनती हूँ, तू उसके हाथ में हाथ देकर उद्यानों में टहलती है, साथ-साथ बेंच पर बैठती है, उसके गले में बाँह डालकर बातें करती है, गाने सुनाती है, उसे देखकर आनंद से फूल उठती है—ये कैसी बातें हैं ?"

"सब झूठी बातें हैं। लोग मुझे बदनाम करने के लिए तुमसे झूठी बातें लगा जाते हैं और तुम चुपचाप विश्वास कर लेती हो।"

"पगली, अगर झूठी बातें हैं, तो मैं पूछती हूँ, जब वह नीचे सड़क पर सितार बजाता हुआ निकलता था, तब तू उसे देखने के लिए छज्जे पर क्यों दौड़ जाती थी ?"

देवसेना मौन।

"बोल न, अगर ये झूठी बातें हैं, तो उस दिन नृत्य-सभा में तू उसकी ओर उतना अधिक आकर्षित क्यों हुई थी ?"

देवसेना मौन, सिर झुकाये हुए।

"शैतान, बोल न, ये बातें सच्ची हैं या नहीं ?"

"हाँ, सच्ची हैं—बिलकुल सच्ची।"—देवसेना ने भोलेपन के साथ झुँझलाकर कहा—"मैं उसके पास जाती हूँ, उसके साथ ख़ूब हँसती हूँ, खेलती हूँ, उसके साथ बेंच पर ही नहीं, उसकी गोद में बैठती हूँ।"

"हतभागी, गोद में नहीं बैठती, तो उसके पास जाने ही की तुझे कौन ज़रूरत है ? वह तेरा कौन है ?"

"वह मेरा सब कुछ है। मेरा हृदय है, मेरा प्राण है, मेरा प्यारा है, मेरा दुलारा है, मेरा मालिक है, मेरा देवता है। मैं उससे प्रेम करती हूँ। लो ! और कुछ पूछोगी ?"

"हे भगवान्, हे भगवान् ! पिशाचिन को न जाने क्या हो गया है ! यह तो मेरा सर्वनाश ही करने पर तुल गई है। मुँहजली को आँखें ही लगानी थीं, तो एक ऐसे से लगाई, जो किसी भी योग्य नहीं। हे ईश्वर....।"

सहसा एक परिचारिका बाहर से दौड़ी हुई आकर बोली—"देवसेना ! देवसेना ! जल्दी सावधान हो जाओ। राजकुमार आ रहे हैं—राजकुमार !"

इतना सुनना था कि पल-भर में मुक्ताबाई ऐसी शांत, प्रसन्न और हँसमुख हो उठी, जैसे कुछ हुआ ही नहीं था—अभी कोई बात ही नहीं चल रही थी। उसके घर स्वयं उसके राज्य के राजकुमार पधारें, आज उसके समान भाग्यवान् और कौन था ! उसने आनन्द-वर्द्धन के स्वागत में पलकें बिछा दीं और दौड़कर बड़े ही अनुरागरंजित स्वर में मुसकिराकर कहा—"आइए मेरे राजा, हमारे धन्य भाग्य कि आपने इस गरीबिन के घर को पवित्र किया। देवसेना कल ही से आपके लिए रो रही है—न-जाने कितना समझाती हूँ, रो-रोकर प्राण दे रही है।"

गुलाबी रेशमी सारी पहने देवसेना कुछ शंकित-सी पलँग पर लेटी थी। राजकुमार को देखते ही उसने उठ-कर बड़े अदब के साथ उनको प्रणाम किया, फिर सिर झुकाकर खिन्न-सी मौन बैठ गई।

राजकुमार की बग़ल में एक ओर लम्बी तलवार, दूसरी ओर छः नली पिस्तौल लटक रही थी। उन्होंने देवसेना को देखा और मुसकिरा उठे; देवसेना ने उनको देखा और सहम उठी। आनंदवर्द्धन ने आते ही देवसेना का हाथ पकड़ लिया और कहा—"देवसेना, उठो चलो।"

देवसेना ने एक बार बड़ी कातर दृष्टि से राजकुमार का मुख देखा और भीत स्वर में पूछा—"कहाँ ?"

"जहाँ भी राजा ले जायँ।"—मा ने बड़े प्यार के साथ देवसेना की ठुड्डी में हाथ लगाकर कहा—"जाओ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरी रानी, जो अपना सर्वस्व है, उसके साथ न जाओगी, उससे न हँसो-बोलोगी, तो और किससे बोलोगी ? सबेरे से तो 'राजकुमार - राजकुमार !' की रट लगा रही थीं।"

देवसेना असहाय-सी मा का मुख देख रही थी—"कहाँ ?"

"यह पूछने की तुम्हें कौन ज़रूरत है ? जहाँ भी राजा ले जायँ, जाओ ; और अब राजा से खुलकर हँसो-बोलो।"

मुक्ताबाई ने फिर राजकुमार के आगे हाथ जोड़कर कहा—"मेरे राजा, आप अपने मन में दूसरा कुछ न सोचेंगे। देवसेना की अभी अवस्था ही क्या है। बच्ची है, इसी से डरती है। अभी यह क्या जाने, प्रेम क्या चीज़ है। कुमारी को जब तक पुरुष के प्यार का ज्ञान नहीं हो जाता, सभी इसी तरह डरती हैं। दो-चार दिन साथ में घूमेगी-फिरेगी, हँसेगी-बोलेगी, बस स्वयं हिल जायगी। पीछे मैं तो आपके लिए बहुत व्याकुल रहती है ; सामने न-जाने क्यों ऐसी हो जाती है।"

देवसेना की मा की बातों ने राजकुमार के हृदय पर एक ठंडा मरहम-सा लगा दिया। उन्होंने मुसकिराकर देवसेना को खींचते हुए कहा—"उठो चलो ; टहलने चल रहा हूँ।"

इधर से मा ने भी सहारा दिया।

"मैं नहीं जाऊँगी।"—देवसेना ने छुड़ाने के लिए अपना हाथ ऐंठते हुए कहा—"मेरी तबियत अच्छी नहीं है।"

"चलो, खुली हवा में टहलने से मन प्रसन्न हो जायगा, तबियत अच्छी हो जायगी।"

"नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।"

"देवसेना !"—उसकी मा ने कहा—"जाओ। जो अपना सर्वस्व है, मालिक है, रक्षक है, पालक है, उसके साथ न जाओगी, तो और किसके साथ जाओगी।"

"नहीं, मेरी तबियत अच्छी नहीं है।"—कहकर देवसेना ने ऐंठकर राजकुमार के हाथों से अपना हाथ छुड़ा लिया और वहाँ से हटकर मा के पास खड़ी हो गई।

"जाओ।" मा ने आँखें दिखाकर कहा—"बहाना न करो।"

राजकुमार ने बढ़कर फिर उसका हाथ पकड़ लिया और खींचते हुए कहा—"चलो, टहलने से जी हलका हो जायगा।"

"नहीं।"—देवसेना ने एक बार कातर दृष्टि से राजकुमार को देखकर कहा—"मेरी तबियत अच्छी नहीं है, मुझे बुख़ार है, मेरा सिर दर्द कर रहा है।"

"बुख़ार ?"—राजकुमार ने मुसकिराकर कहा—"बुख़ार की यही देह है ? कहाँ देह गरम है ?"

"देवसेना, जाओ।"—मुक्ताबाई ने डाँटकर कहा—"आज राजा पहले-पहल तुम्हारे यहाँ पधारे हैं, कुछ ख़याल तो करो।"

"नहीं, मैं मर जाऊँगी, मुझे छोड़ दो।"

"मेरे राजा, यह मेरी बात न मानेगी, आप स्वयं इसे समझा-बुझाकर ले जाइए। मैं जाती हूँ।"—कहकर मुक्ताबाई कमरे से बाहर निकल चली।

देवसेना व्याध के हाथों में पड़ी डरी-सी भयभीत हो रही थी। उसने मुड़कर मा को कमरे से निकलते देखा और तड़फड़ा उठी। उसके आँसू भरे हुए थे। उसने एक बार और कातर दृष्टि से राजकुमार को देखा। वह मुसकिरा रहे थे। "मुझे छोड़ दो, न सताओ।"—कहकर देवसेना ने ऐंठकर उनके हाथों से फिर अपना हाथ छुड़ा लिया और दौड़कर कमरे से निकलती हुई मा की कमर से लिपट गई। उसकी मा भी मुसकिरा पड़ी और राजकुमार भी।

"अच्छा देवसेना !"—आनन्दवर्द्धन ने मुसकिराकर कहा—"कहीं बाहर न चलो ; अपनी फुलवारी में चलो। मैं तुमसे कुछ बातें करना चाहता हूँ।"

"जाओ मेरी रानी !"—मुक्ताबाई ने प्यार के साथ देवसेना की ठुड्डी में हाथ लगाकर कहा—"अब क्या है ! अपनी फुलवारी में जाने में क्या है। राजा तो तुम्हें इतना अधिक प्यार कर रहे हैं और तुम ऐसी घिमन-सी हो रही हो, यह कैसी बात है। सोचो तो, राजा ने तुम्हारे लिए क्या-क्या और कितना किया है।" मुक्ताबाई ने बड़े प्यार के साथ देवसेना के होठों को चूम लिया, उसके कपोलों पर हाथ फेरे, बाल सहलाये और हर तरह से प्यार करके कहा—"जाओ। डरती क्यों हो ? राजा तो तुम्हें हर तरह प्रसन्न ही रखेंगे।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देवसेना मुसकिराने लगी। आनन्दवर्द्धन उसका थ पकड़कर प्रसन्नमुख आगे बढ़े।

"बैठो।"—फुलवारी में पहुँचकर आनन्दवर्द्धन ने क बेंच पर बैठते हुए कहा।

"नहीं, मैं बैठूँगी नहीं। जो पूछना है, पूछो; हीं, मैं जाती हूँ।"

"बैठो तो।"—कहकर आनन्दवर्द्धन ने उसको अपने ास बिठा लिया और प्यार के साथ उसके सुकुमार थों को अपने हाथों में लेकर देखने लगे।

"हाँ बोलो, क्या पूछना चाहते हो?"—देवसेना ने क बार आँखें मिलाकर कहा।

"एक बात बतलाओ"—आनन्दवर्द्धन ने देवसेना के ले में अपना एक हाथ डालकर कहा—"उस दिन त्यसभा में सितारवाले जिस व्यक्ति को देखकर तुम ुसकिराई थीं, वह कौन है, कहाँ रहता है और क्या रता है?"

देवसेना का कलेजा काँप उठा, मुख धूमिल हो उठा और अंग-अंग से आशंका, भय और कातरता के भाव झलकने लगे। उसने भोलेपन से राजकुमार के हाथ को अपने गले से अलग कर दिया और अपनी आम की फाँक-सी बड़ी-बड़ी निर्मल आँखें उनके मुख पर गड़ा दीं। वह बिलकुल निस्तब्ध हो उठी।

"हाँ बोलो, वह कौन था?"

"मैं उसको नहीं जानती।"

"नहीं जानती! जानती कैसे नहीं। उस दिन के उसके और तुम्हारे भावों को देखने से तो स्पष्ट पता लगता था कि तुम्हारा और उसका बहुत पहले का परिचय है—वह तुमको और तुम उसको अच्छी तरह जानती हो?"

"नहीं, मैं उसको नहीं जानती।"

"तुम डरो नहीं। इसके लिए मैं तुमसे कुछ भी नहीं कहता—ज़रा भी रंज नहीं होता। तुम मुझे केवल इतना बतला दो कि वह कौन है, कहाँ रहता है और क्या करता है?"

"मैं उसको बिलकुल जानती ही नहीं, बतला क्या दूँ?"

"अगर तुम उसको नहीं जानतीं, तो मैं पूछता हूँ, उससे उस तरह आँखें मिलाकर तुम मुसकिराई क्यों थीं?"

"मैं किसी ख़ास व्यक्ति को देखकर न मुसकिराई थी, न किसी ख़ास व्यक्ति से आँखें मिलाई थीं। वह मेरे नृत्य की कला थी। मैं उसको नहीं जानती।"

"अगर कला थी, तो किसी और को देखकर तुम उतना प्रसन्न क्यों न हुईं? किसी और के सम्मुख अपना उतना अधिक प्रेम क्यों न प्रकट किया?"

"मैं नाच रही थी; जिसने मेरी कला का आदर किया, मेरे नृत्य की बारीकियों को पहचाना और मेरे ऊपर अपनी प्रसन्नता प्रकट की, उसको देखकर मैं भी प्रसन्न हुई, उस पर मैंने भी अपना प्रेम और आदर प्रकट किया।"

राजकुमार मौन!

"अब मैं जाती हूँ।"—कहकर देवसेना उठकर खड़ी हो गई। आनंदवर्द्धन ने उसको फिर पकड़कर बिठा लिया और कहा—"अच्छा, एक बात बतलाओ। मैं तो तुम्हें इतना अधिक प्यार करता हूँ, तुम्हारे सुख और आराम के लिए सब व्यवस्थाएँ कर डाली हैं, हमेशा तुम्हारे ऊपर अपने प्राण देने के लिए तैयार रहता हूँ, तुम्हें प्रसन्न रखने के सब उपाय करता रहता हूँ, और तुम्हारा मेरे ऊपर ज़रा भी प्रेम नहीं, इसका कारण?"

देवसेना मौन। उसने अपनी आँखें झुका लीं।

"हाँ, बोलो, क्या बात है?"

"राजकुमार!"—देवसेना ने उनकी आँखों में आँखें डालकर कहा—"किसी के हृदय में ज़बरदस्ती प्रेम नहीं पैदा किया जा सकता।"

"ज़बरदस्ती! ज़बरदस्ती कैसी? मैं तो तुम्हें अपने प्राणों से भी बढ़कर प्यार करता हूँ, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए अपना सब कुछ खोने के लिए सदा तैयार रहता हूँ, फिर ज़बरदस्ती कैसी? क्या मेरा प्रेम तुम्हारे हृदय में प्रेम नहीं पैदा कर सकता? ज़बरदस्ती तो तब होती, जब मैं तुम्हें प्यार न करता होता और तुम्हें मुझसे प्रेम करने के लिए विवश किया जाता होता।"

देवसेना मौन, आँखें झुकाये हुए।

"बोलो। इसके बतलाने में तुम डरो बिलकुल ही

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं, न किसी तरह का कोई संकोच करो। मैं तुम्हारे हृदय की सच्ची-सच्ची बात जानना चाहता हूँ। तुम जानती हो, तुम्हारी मा ने तुम्हें मेरे हाथों में सौंप दिया है और मुझसे तुम्हारा सब ख़र्च लेती हैं; तुम जानती हो, मैं तुम्हारे राज्य का राजकुमार हूँ—यदि मैं चाहूँ, तुम्हें ज़बरदस्ती घसीटकर अपने साथ टहलाने के लिए जहाँ चाहूँ, ले जा सकता हूँ; यदि मैं चाहूँ, तुम्हें अपने आदमियों से घसीटवा कर ज़बरदस्ती अपने महल में बुलवा सकता हूँ; लेकिन देवसेना, मैं तुम्हें अप्रसन्न करना नहीं चाहता, तुम्हारी इच्छा के विरुद्ध कुछ करना नहीं चाहता। यह मैं ज़रूर चाहता हूँ कि जिस तरह हँसकर और प्यार से मैं तुमसे बोलता हूँ, उसी तरह प्यार से और हँसकर तुम भी मुझसे बोलो; जिस तरह मैं तुम्हारे ऊपर जान देने के लिए तैयार रहता हूँ, उसी तरह तुम भी मेरे ऊपर जान देने के लिए तैयार रहो; लेकिन ऐसा मैं तुमसे ज़बरदस्ती कराना नहीं चाहता, तुम्हारे हृदय को दुखाकर तुमसे प्रेम पाना नहीं चाहता। इससे मैं तुम्हारे हृदय की सच्ची-सच्ची बात जानना चाहता हूँ। तुम इसके बतलाने में ज़रा भी कोई डर या संकोच न करो।"

"राजकुमार!"—देवसेना ने एक बार अपना सिर ऊपर उठाया और आँखें मिलाकर कहा—"क्या मैं अपने हृदय की सच्ची-सच्ची बात बतला दूँ?"

"हाँ, बतला दो।"

"तुम रंज तो नहीं हो जाओगे?"

"नहीं, बिलकुल नहीं—ज़रा भी नहीं।"

"और, इस बात को मेरी मा से कहोगे तो नहीं?"

"नहीं।"

"मुझे वचन देते हो?"

"हाँ, देता हूँ।"

"मेरे मान्य राजकुमार!"—देवसेना ने हाथ जोड़कर कहा—"जब तुम मेरे हृदय की बात जानने पर तुल गये हो तो आज मैं अपने हृदय की सच्ची-सच्ची बात तुम्हें बतला ही दूँगी—मैं तुम्हें प्यार नहीं कर सकती—बिलकुल ही नहीं। तुम्हारे हाथों में तलवार है, पिस्तौल है, ताक़त है; मैं तुम्हारी प्रजा हूँ—इस सत्य के लिए चाहे तुम मेरे प्राण ले लो, मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर डालो या जो भी चाहो दंड दो; लेकिन मैं तुम्हें अपने हृदय से प्यार नहीं कर सकती—ज़रा भी नहीं, इस जन्म में नहीं।"

आनन्दवर्द्धन का मुख प्रभाहीन हो उठा; फिर भी उन्होंने पूछा—"क्यों?"

"राजकुमार, प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का एक लक्ष्य होता है, एक कामना होती है, एक तड़पन होती है। मेरे भी जीवन का कोई लक्ष्य है, कोई कामना है, कोई तड़पन है। मैं अपने इस पेशे से घृणा करती हूँ, यह नीच व्यवसाय मुझे पसन्द नहीं। मैंने सोच लिया है, किसी योग्य युवक के साथ अपना विवाह करूँगी और उसके साथ कहीं किसी गाँव में अपनी गृहस्थी स्थापित करके एक पवित्र गृहवधू की तरह सुख से अपना जीवन बिताऊँगी।"

"तो ऐसा तो तुम मेरे साथ भी कर सकती हो?"—आनन्दवर्द्धन ने प्रसन्न होकर कहा—"मैंने भी तो तुम्हारी मा से कह दिया है कि मैं देवसेना के साथ अपना विवाह करूँगा, उसको अपनी पत्नी बना लूँगा।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता। यह सब धोखे की बातें हैं। यह संभव ही नहीं।"

"क्यों?"

"मैं जानती हूँ। तुम मुझे अपनी बैठाई या ख़ास वेश्या बनाकर रक्खोगे, अधिक से अधिक रखेली या अपनी प्रेमिका का पद दोगे। अगर तुम मेरे साथ अपना विवाह भी कर लो, तो भी संसार मुझे वेश्या ही कहेगा, पतित ही समझेगा।"

"तो क्या मेरे इस प्रेम का—तुम्हें इतना अधिक प्यार करने का मुझे तुमसे कुछ बदला नहीं मिलेगा?"

"राजकुमार, मैं मजबूर हूँ—अपने जीवन के उद्देश्य, अपने अंतर की कामना और अपने हृदय की तड़पन से बिलकुल लाचार हूँ। मुझे माफ़ करो।"

देवसेना उठकर खड़ी हो गई; राजकुमार भी उठ पड़े। सहसा पीछे की एक झाड़ी से 'हिप-हिप-हुर्रे हाहा-हाहा-हिहि-हिहि' की आवाज़ आई। दोनों ने चौंककर पीछे देखा; राजकुमार का विदूषक बिलकुल

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आँखें चढ़ाये, मुँह बनाये, सिर हिला-हिलाकर एक दूसरे से कह रहा था—"भई, लोहे और पत्थर के एक विशालकाय दुर्ग पर विजय कर लेना बिलकुल आसान है, लेकिन एक युवती के फूल-से कोमल हृदय पर विजय कर लेना आसान नहीं।"

दोनों मुसकिराने लगे। (क्रमशः)

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए

एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सूज़ाक (गनोरिया) की हुक्मी दवा

डा० जसानी का जगत्-विख्यात **'गोनोकिलर'** रजिस्टर्ड

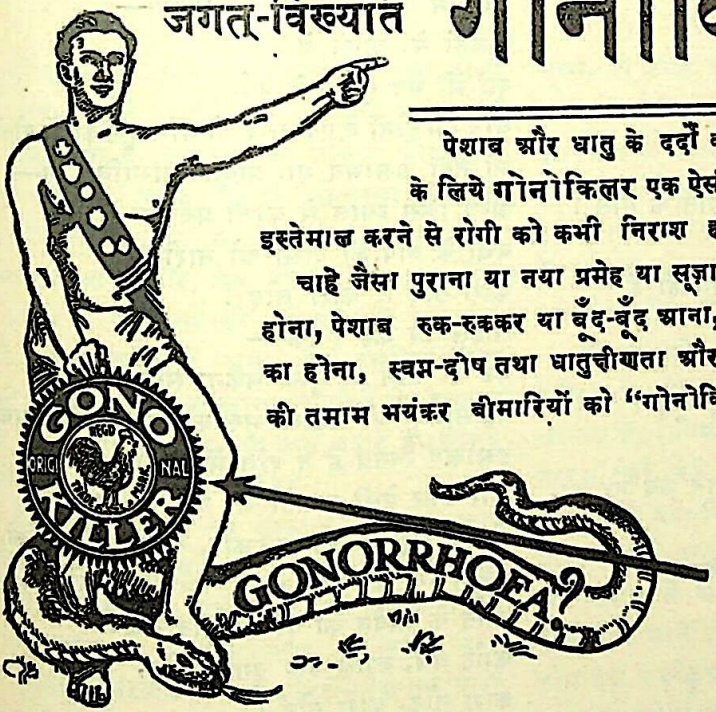

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने व निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर एक ऐसी ही आश्चर्यजनक दवा है जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता।

चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को "गोनोकिलर" जड़ से नष्ट कर देता है।

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
दवा का नाम गोनोकिलर
और मुर्ग़ा छाप सीलबंध
पैकेट देख लीजिये

मूल्य ५० गोलियों की शीशी का दाम ३) रु० वी० पी० डाक व्यय आठ आना अलग

एकमात्र बनानेवाले—डॉ० डी० एन० जसानी M. L. गिरगाँव बैंक रोड, बंबई नं० ४

लखनऊ स्टाकिस्ट—किंग मेडिकल हाल अमीनाबाद पार्क।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

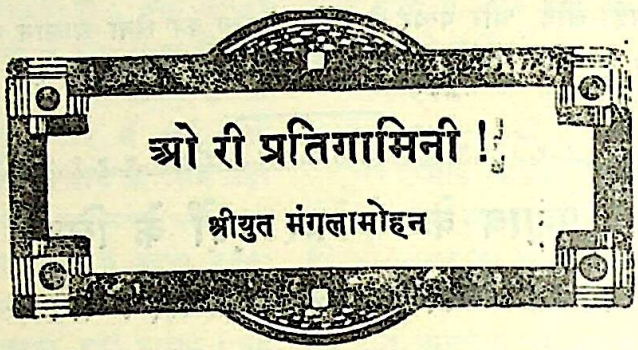

ओ री प्रतिगामिनी !

श्रीयुत मंगलामोहन

ओ री प्रतिगामिनी,
इतने विश्वासघात, इतनी प्रवंचना को—
साँसों के तार में पिरोये चली जा रही है !
दम भी घुटता नहीं है ?
कहती हो ज्ञात न था—
नारी से माँग क्या है नर की ;
और जब जान पाई बनी प्रतिगामिनी ?
मिथ्या है ! छल है ! प्रवंचना है !
अपने प्रति, जग के प्रति, विश्व की प्रगति के प्रति ।
साहस है ? कह तो दो—
मेरे पास पड़े हुए पत्र सारे, कोरी कल्पना ही हैं ?
केवल कविता ही हैं ?
और वह रस-भीनी कविता भी—
काम-ईषणा की अभिव्यक्ति से अलग है कुछ ?
कायर ! भला कह तो—
प्रेम के अभिनय में बरबस खींचा था तूने जब नर को,
तेरी क्या माँग थी उससे ?
क्या न था वह पेट से तुष्ट एक नारी के—
बेबस की अतुष्टि का प्रदर्शन ?
क्या न थी वह मन-रति ?
और क्या शरीर-रति से वह कुछ भिन्न है ?
और फिर, सूझता है आज तुझे यह सब—
जब तेरे बन्धनों के स्वामी को,
रोटी के दाता को,
बच्चों के बाप को,
ज्ञात हो गया है तेरा गुप्त प्रेम-व्यवहार ?
तब तुम बैठी हो अपने को छलने—
लेखनी से, वाणी से.....?
पूछूँ मैं, भेद खुलने के पर्व,
यदि हम दोनों ने एक-दूसरे की माँग पूर्ण कर दी होती तो—
जो नहीं असम्भव था, प्रत्युत स्वाभाविक था—
अन्य किस व्याज से करती प्रवंचना तू ?
बच्चों के बाप की दासी ओ नारी तू !
कारा तोड़ ! कारा तोड़ !
साहस कर कह दे कि—
पेट की आग जो बुझा सकेगा साथी,
वह भावना औ' तर्क की भूख को नहीं भी मिटा सकता है।
इसलिए स्वतंत्र है तू रति में, विरति में ।
और फिर ऐसी दासता भी बस पेट-हित ?
छिः ! छिः ! उठ झकझोर, तोड़ दे बंधनों को,
'रिनझिन' का मोह त्याग, 'मुग्धा' से ऊँचे उठ—
जगत् के जीवन की पूरी भागीदार बन,
कर्मठ बन, कमल-दल चुगना छोड़,
कारा तोड़, कारा तोड़ ।
फिर तो स्वतन्त्र है त रति में, विरति में ।
पग को मिलाये चल युग की प्रगति से ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

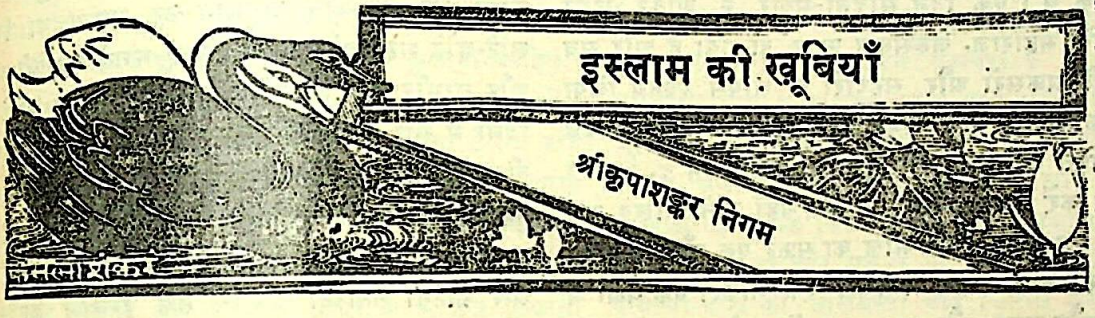

कभी-कभी जब एक घर के रहनेवाले भाइयों में लड़ाई होने लगती है तो जब तक दोनों ख़ून गर्म रहता है, एक दूसरे को जाबेजा और बुरा-ला कहा करते हैं; परन्तु जैसे ही जैसे ग़ुस्सा दूर होता ता है और ख़ून में ठंडक आती जाती है, वैसे ही वैसे हलेवाला भ्रातृभाव और प्रेम दिल के अन्दर फिर मड़ने लगता है, एक दूसरे की ख़ूबियाँ और भलाइयाँ ाँखों के सामने फिर आने लगती हैं। इसलिए आज म अपने पाठकों को यह बतलाना चाहते हैं कि इस्लाम संसार की सभ्यता में क्या-क्या बातें बढ़ाई हैं, जिनके ए हमें उसे धन्यवाद देना चाहिए।

अरब देश, जहाँ इस्लाम का जन्म हुआ था, विस्तार भारतवर्ष से थोड़ा ही छोटा है; परन्तु इसकी आबादी ारतवर्ष की आबादी का केवल साठवाँ हिस्सा अर्थात् गभग ७२ लाख है। इसके मध्य का सारा भाग बकुल निर्जल रेगिस्तान है, जहाँ हज़ारों मील तक चारों ोर बालू ही बालू नज़र आती है। बहुत दूर-दूर पर धर-उधर इस निर्जन मरुस्थल में छोटे-छोटे से पुरवे बसे ए हैं, जिनमें थोड़े से ताड़ के पेड़ों की छाया के नीचे दस-ीस घर असभ्य बद्दुओं के होते हैं, जो उन मुसाफ़िरों ो, जो उनके गाँव में कभी-कभी आ जाते हैं, रूखा-सूखा, जो उनके घर में होता है, खाना खिलाते हैं, उनके प्यासे ऊँटों और घोड़ों को पानी पिलाते हैं और इस सेवा से जो कुछ उनको मिल जाता है, उसी पर गुज़र करते हैं। सारे मरुस्थल में केवल यही बद्दू बसे हुए हैं। ये बड़े ग़रीब, परन्तु सच्चे और बहादुर होते हैं। इनकी बहादुरी और सचाई के विषय में अनेक कथाएँ प्रचलित हैं—

दक्षिणी और पश्चिमी तट से मिली हुई आबादी अधिक है और यहाँ पर चार-छः छोटे-छोटे शहर भी आबाद हैं, जिनकी महिमा उनके धन या व्यवसाय के कारण नहीं, बल्कि इसलिए है कि उन्हीं शहरों में इस्लाम के बड़े-बड़े नेता और महापुरुषों ने जन्म लिया था, जिन्होंने इस्लाम को ऐसे उन्नत पद पर पहुँचाया और संसार में अपनी कीर्त्ति फैलाई। ये सब शहर अब तीर्थस्थान माने जाते हैं और यहाँ सब देशों से हाजी लोग हज करने आते हैं।

अरब लोगों का सारा जीवन मेहनत और परिश्रम करते गुज़रता है; क्योंकि जल की कमी के कारण अन्न बड़ी कठिनाई से पैदा होता है—कन्द, मूल, फल आदि भी खाने को नहीं मिलते। इसलिए लोग अधिक-तर ग़रीबी और तकलीफ़ में ही अपने दिन काटते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। मीठे फलों में उनके यहाँ केवल छुहारा या खजूर है। उस देश में यह बड़ा रसीला और स्वादिष्ट होता है और जब उनको मीठा खाने की इच्छा होती है, तब वे इसी को खाकर संतोष करते हैं।

मुहम्मद साहब की मृत्यु के बाद जब मुसलमानों का विभव बढ़ने लगा और सब ओर उनकी विजय होने लगी, तब हज़रत उमर ख़लीफ़ा अर्थात् सबके हाकिम और शासक थे। एक दिन साँडनी-सवार ने आकर ख़बर दी कि महाराज, जेरूसलम फ़तह हो गया है और सब फ़ौजी अफ़सरों और सरदारों ने आपसे विनय किया है कि या तो आप स्वयम् वहाँ पधारकर शासन-प्रबंध स्थापित करें या जैसी आज्ञा या अनुशासन दें, वैसा वे लोग करें। यह सुनकर वह स्वयं वहाँ जाने के लिए चल खड़े हुए और ६०० मील का सफ़र एक ऊँट पर सवार होकर किया। साथ में केवल एक नौकर, एक थैली में जौ और खजूर और एक मशक में पानी था। थोड़ी दूर तक ऊँट पर आप सवार होते थे और नौकर पैदल चलता था और थोड़ी दूर तक नौकर को ऊँट पर सवार कर देते थे और आप पैदल चलते थे। कहते हैं, जब जेरूसलम शहर के अन्दर दाख़िल हुए, तब नौकर के चढ़ने की बारी थी। आपने नौकर को ऊँट पर बिठा दिया और आप स्वयं ऊँट की नकेल पकड़े हुए पैदल चलने लगे। जैसे ही इनके शहर में दाख़िल होने की ख़बर पहुँची तो इनके सब अफ़सर और सरदार बड़ी अच्छी-अच्छी ज़री और रेशम की पोशाकें पहन-पहनकर इनकी अगवानी को आये। उनकी यह शान-शौकत देखकर यह बेहद नाराज़ हुए और सामने जो ढेले पड़े हुए थे, उनको उठा-उठाकर उन अफ़सरों को मारने लगे। इससे पता चलता है कि उनके ख़यालात कैसे थे।

सातवीं शताब्दी के आरम्भ तक अरब देश का नाम संसार में कोई न जानता था। मक्का बीस हज़ार की आबादी का एक छोटा-सा क़सबा था और "काबा" नाम के एक मन्दिर के लिए प्रसिद्ध था, जिसमें नाना रूप की मूर्त्तियाँ रक्खी हुई थीं, जिनकी पूजा करने के लिए अरब लोग आया करते थे। इस मन्दिर का सारा इंतज़ाम बहू लोगों के हाथ में था। वे ही लोग इसकी सब चढ़ावे की आमदनी लिया करते थे। मदीना मुहम्मद साहब का निवास-स्थान था। वह मक्का से बड़ा और देखने में सुन्दर और अच्छा था। यहाँ एक बड़ा अच्छा ताड़ों का बाग़ था, जो अपनी मनोहरता के लिए दूर-दूर तक प्रसिद्ध था। इसकी आबादी २५ हज़ार थी। इसी शहर में मुहम्मद साहब ५१ वर्ष की आयु तक रहे। इन्हीं दोनों छोटे शहरों में इस्लाम की बुनियाद पड़ी और शुरू के लड़ाई-झगड़े हुए। उस समय भला यह कौन अनुमान कर सकता था कि ये छोटे-छोटे शहर और इनके लड़ाई-झगड़े एक ऐसे महान् और गम्भीर धर्म की बुनियाद डालेंगे, जो थोड़े ही दिनों में सारे संसार को हिला देगा और जिसका डंका तीन-चौथाई एशिया और आधे योरप में बजेगा। मुहम्मद साहब की मृत्यु के २५ ही वर्ष के अन्दर फ़ारस, आर्मिनिया, शाम और मिसर, सब फ़तह हो गये और आठवीं शताब्दी के मध्य तक इस्लाम का झंडा सिंधु नदी से लेकर स्पेन तक और काशग़र से लेकर चीन तक फहराने लगा।

इस धर्म की इतनी शीघ्रता से वृद्धि होने के कई कारण थे। पहला कारण तो यह था कि रोम के विशाल साम्राज्य का अब धीरे-धीरे अधःपतन हो चला था। उसके साथ-साथ उसकी प्राचीन सभ्यता का भी लोप होना शुरू हो गया था। पुराने धर्म और पुराने रस्म-रवाज अब धीरे-धीरे बदलने लगे थे और उनके स्थान पर नये धर्मों और नई पद्धतियों का आविष्कार होने लगा था—दूसरा कारण यह था कि उस समय तक की सारी शासन-प्रणालियाँ और सारे समाजों के संगठन साम्राज्य-पद्धति (Imperialistic type) के थे। राजा लोग भगवान् के अवतार समझे जाते थे और उन्हीं की तरह सर्व-शक्तिमान् थे। उनकी आज्ञा का मनसा-वाचा-कर्मणा प्रतिपालन करना प्रजा का परम धर्म समझा जाता था। उनके आदेशों में न्याय और अन्याय की विवेचना करना प्रजा के लिए महापाप था। राजा लोग दिन-रात अपने महलों के अन्दर पड़े हुए हर तरह के घृणित रास-विलास में निमग्न रहते थे और प्रजा के सुख-दुःख की रत्ती भर परवा नहीं करते थे। सरकारी कर्मचारी मनुष्यों पर नाना प्रकार के अत्याचार करते थे और उनकी दिन-रात्रि की मेहनत और परिश्रम से पैदा किये हुए धन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को छीनकर स्वयं मज़ा उड़ाते थे। अब नये युवकों के दिलों में इन सब बातों को देखकर घृणा उत्पन्न होने लगी थी और वे सोचने लगे थे कि राजा यदि दुराचारी और अन्यायकारी हो तो उसके आदेशों का प्रतिपालन करना हमारा धर्म नहीं।

ऐसी सामाजिक अशान्ति और आन्दोलन के समय में इस्लाम का सिंह-नाद इन नवयुवकों के कानों में सुनाई पड़ा, जो यह कहता था कि ईश्वर सबका एक है। केवल उसी के सामने हमको अपना मस्तक झुकाना चाहिए। किसी सांसारिक राजा या महाराजा के सामने नहीं। ईश्वर ने सब मनुष्यों को समान पैदा किया है। न कोई राजा है, न प्रजा। अमीर और ग़रीब उसकी निगाह में बराबर हैं। सबसे बड़ा वह मनुष्य है, जो सदाचारी और धर्मात्मा है, न कि वह, जो धनवान् या बली है। हमको अपना मस्तक केवल ईश्वर के सम्मुख झुकाना चाहिए, किसी मनुष्य के सम्मुख कभी नहीं झुकाना चाहिए। इत्यादि।

अब आप समझ सकते हैं कि इन सार्वजनिक साम्यवादी डिमोक्रैटिक शिक्षाओं का असर इन अत्याचार-पीड़ित अशान्त-हृदय युवकों पर क्या हुआ। उन लोगों ने फ़ौरन् बड़े जोशोख़रोश के साथ संसार के दुःख और अत्याचार से मोक्ष देनेवाले इस धर्म को ग्रहण किया और इसके प्रचार और विजय में अपना तन-मन-धन निछावर करने को तैयार हो गये। इस धर्म की पताका की छाया में खड़े होकर ग़रीब से ग़रीब आदमी, महानीचकुलोत्पन्न, किसी भी देश का क्यों न हो, संसार के बड़े से बड़े राजा या महाराजा की बराबरी कर सकता था। इस्लाम की छाया पड़ते ही राजा और प्रजा, ग़रीब और अमीर सब बराबर हो जाते थे। कुल और जाति का सारा अभिमान मिट जाता था। बड़ा केवल वही माना जाता था, जो सबका सेवक, सदाचारी और धर्मात्मा हो।

इस्लाम के जन्म के पहले भी कई एक धर्मों में यही शिक्षाएँ दी गई थीं। परन्तु उन धर्मों में ये शिक्षाएँ केवल विचाररूप में रहीं, कार्यरूप में परिणत नहीं हुईं। मुसलमानों ने इन शिक्षाओं को अपने समाज के अन्दर कार्यरूप में परिणत करके इनको अपने व्यवहारों और रोज़ के कामों में अमल करके दिखला दिया। यही इस्लाम की और सब धर्मों से विशेषता है। ग़रीब से ग़रीब आदमी नीच से नीच कुल में जन्म पाकर बड़े से बड़े मुसलमान बादशाह या हाकिम के बराबर खड़ा होकर एक साथ मसजिद में एक ही इमाम के पीछे नमाज़ पढ़ेगा और केवल एक उसी ईश्वर के सम्मुख मस्तक झुकावेगा, जिसके सामने बादशाह सिर झुकाता है। सबके साथ वह एक ही दस्तरख़्वान पर बैठकर खाना खायगा। ईद के दिन बराबरी के साथ सबसे बग़लगीर होगा और शादी-ब्याह या रिश्तेदारी में बराबरी का दावा रक्खेगा। यह सच्ची डिमोक्रेसी, सच्ची समता, सच्चा भ्रातृभाव जो इस्लाम ने संसार में करके दिखला दिया, वह किसी धर्म ने नहीं दिखलाया, वेदान्त और फ़िलासफ़ी और मकड़ी के जालों से भी बारीक ख़याली तारों की जालबन्दी चाहे जितनी करके दिखलाई हो। यही इस्लाम की ख़ूबी है और संसार की सभ्यता के लिए यही उसका उपहार है।

इस्लामी समाज पर इन सब शिक्षाओं का प्रभाव यह पड़ा कि नाना देशों और नाना कुलों के मनुष्य मुसलमान होकर अपने-अपने सारे भेदभावों को भूल गये और एक नेशन—एक समाज बन गये, जिनके हृदयों में अपने नये धर्म, नये समाज का इतना प्रेम और जोश भर गया कि उनके सम्मुख कोई भी धर्म और कोई भी राज्य न ठहर सका। सब ओर उनकी विजय होने लगी और थोड़े ही दिनों के बाद सारे संसार में उनका डंका बजने लगा।

इस्लाम के हरदिल-अज़ीज़ होने का एक कारण और भी था। उसकी शिक्षाएँ ऐसी सीधीसादी और सरल थीं कि सारे मनुष्य, मूर्ख हों या पंडित, उनको आसानी से समझ सकते थे। न तो उनमें कोई वेदान्त के जैसे ईश्वर और जीव-सम्बन्धी मकड़ी के जाले काते गये थे, और न उनमें कोई धार्मिक ढकोसले या आडम्बर थे। कोई मनुष्य किसी देश का या किसी जाति का हो, यदि उसने ईश्वर को एक मान लिया और मुहम्मद को ईश्वर का रसूल मान लिया, तो वह पूरा मुसलमान हो गया। फिर सारे मुसलमान उसको छाती से लगा लेंगे और अपने में और उसमें कोई भेद न समझेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दूधर्म में और इस्लाम में इस जगह पर कितना भेद है ! एक ब्राह्मण और एक नाई हिन्दूधर्म की बिलकुल एक ही बातें मानता है। परन्तु हिन्दूसमाज उन दोनों में कितना भेद करता है, यह रोज़ आप देखते ही हैं। मुहम्मद साहब की प्रधान शिक्षा यही थी कि हर मुसलमान का सबसे प्रथम कर्तव्य यह है कि हर एक मुसलमान को अपना भाई माने और अपने बराबर समझे। (क्रमशः)

हमारी इन दो औषधियों को

संसार भर में लाखों लोगों ने व्यवहार में लाकर उत्तम गुणकारी पाया

❀ सुधासिंधु ❀

(जर्मन व भारत-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड)

कफ, खाँसी, दमा, हैज़ा, शूल, संग्रहणी, व आँवलोहू के दस्त आदि पेट की बीमारियों की बिना अनुपान की दवा. दाम ॥) फ़ी शीशी.

❀ बालसुधा ❀

(भारत-गवर्नमेंट से रजिस्टर्ड)

दुबले, पतले व कमज़ोर बच्चों को हृष्टपुष्ट व बलवान् बनानेवाली मीठी दवा.

क़ीमत फ़ी शीशी ॥).

यह दवाइयाँ प्रायः सब दवा बेचनेवालों के यहाँ मिलती हैं

उनके यहाँ न मिलने पर हमसे मँगाइये

व्यापारी भाव व एजेन्सी के नियम पत्र लिखकर मँगाइये

सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा, यू० पी०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

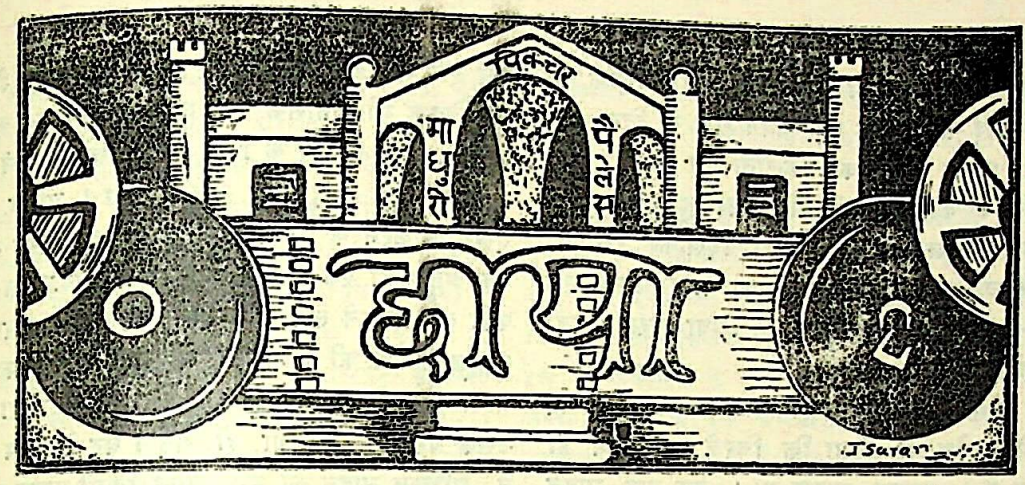

अछूत-कन्या

श्रीयुत 'वही'

मित्रों ने कहा—"आजकल 'अछूत - कन्या' कई दिनों से चल रहा है—देख क्यों नहीं आते ?"

मैंने उत्तर दिया—"भाई ! बॉम्बे टॉकीज़ का फ़िल्म किस योग्य होगा ? न्यू थियेटर्स का होता तो देख भी आता।"

लेकिन हृदय में एक आकांक्षा जग पड़ी। उस दिन जब चलने को तैयार हुआ तो पिताजी ने दरवाज़े पर से रोक दिया। कहा—"आजकल बहुत जाड़ा पड़ रहा है। रात में बाहर रहना ठीक नहीं।" का मानना पड़ा। क्या करता ? फिर तो 'अछूत - कन्या' से दिल उचट गया। उसके प्रति एक प्रकार की घृणा भी उत्पन्न होने लगी।

कुछ दिनों बाद ही घर के सब लोग 'अछूत-कन्या' देखने जाने लगे। उन सबने मुझे भी अपने साथ घसीटना शुरू किया। मेरा जी नहीं चाह रहा था। ऐसी चीज़ को क्या देखना, जिससे कि जी उचट गया हो। पर इस बार भी दूसरों के मन की ही करनी पड़ी। लोग पकड़ ही तो ले गये।

'अछूत - कन्या' एक सुन्दर फ़िल्म है। एक ग्राम का पूर्ण चित्र और हिन्दू-समाज का नग्न प्रतिबिम्ब है। हमारे यहाँ कुछ दिनों पहले प्रेम-सम्बन्धी इतने वाहियात चित्रपट बनते थे कि देखकर तबियत घृणा से भर जाती थी। इधर कुछ दिनों से जनता की रुचि सुन्दर कलापूर्ण वस्तु का आदर करने की ओर प्रवृत्त हुई है, अतः जो नये चित्रपट इन एक-दो वर्षों में बने हैं, वे वास्तव में कलापूर्ण और शिक्षाप्रद हैं।

'अछूत-कन्या' का कथानक एक बंगाली सज्जन की लेखनी का सफल प्रयास है। न-जाने क्यों बंगाली उपन्यासकारों की कहानियाँ चित्रपटों में असाधारण सफलता प्राप्त करती हैं। हमारी हिन्दी का कोई ऐसा लेखक नहीं हुआ, जिसका चित्रपट शरत्चन्द्र के 'देवदास' और 'मंज़िल' के समान सुन्दर और प्रसिद्ध हुआ हो। न तो प्रेमचन्दजी ही अधिक सुनने में आते हैं और न सुदर्शनजी ही।

कथानक बड़ा ही सरल, सुन्दर व चित्ताकर्षक है। जैसा कि डॉ० धीरेन्द्र वर्मा का विचार है—"इस चित्र-पट में एक विशेषता यह है कि सम्पूर्ण कथानक केवल एक गाँव व उस गाँव की रेल की चौकी से ही सम्बन्ध रखता है।" अतः सब घटनाएँ उसी एक गाँव में घटित होती हैं और इसीलिए सम्पूर्ण कथानक में स्थान की एकता बड़ी भली मालूम होती है।

चित्रपट का आरम्भ बहुत सुन्दर व आकर्षक है। दर्शकगण प्रारम्भ से ही उत्सुकता का अनुभव करने लगते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक छोटा-सा गाँव था। उसमें मोहन-नामक एक ब्राह्मण पंसारी की दूकान कर अपने सुख के दिन काट रहा था। प्रताप मोहन का इकलौता पुत्र था।

उसी गाँव की रेल की चौकी पर दुखिया अछूत असंख्य बार लाल और हरी झंडी दिखाकर रेल को रुकते और चली जाते हुए देख चुका था। उसके एक पुत्री थी—कस्तूरी। उन दोनों के सिवा उस झोंपड़ी में और कोई न था।

मोहन ब्राह्मण था और दुखिया एक अछूत। पर दोनों में ऐसा प्रेम था, जैसा कि बिरले भाइयों में ही पाया जाता है। इसका कारण था। एक बार मोहन को साँप ने काट लिया। उस समय दुखिया ने अपनी जान की परवा न कर उसका सारा ज़हर चूस लिया। मोहन के प्राण इस प्रकार बच गये।

जब पिता-पिता में प्रेम हुआ तो उनके बालकों में भी ऐसा होना स्वाभाविक था। प्रताप और कस्तूरी दोनों सदैव साथ रहते, साथ खेलते। कहीं जाते तो साथ-साथ और कुछ काम करते तो दोनों मिलकर। ये कोमल क्रीड़ाएँ उन दोनों के हृदय में एक कोमल बंधन का सृजन कर रही थीं—यह दोनों ही नहीं समझ पाये। उनका खेल देखकर मोहन और दुखिया गद्‌गद हो जाते थे।

मोहन और दुखिया का प्रेम, प्रताप और कस्तूरी का खेल और ब्राह्मण का एक अछूत के प्रति स्नेह समाज से न देखा गया। गाँववाले चर्चा करने लगे। गाँव के सर्वमान्य एक वैद्यजी थे। इन बाबूलाल वैद्य का कहना था कि—'हमारे बाप-दादा पन्द्रह पीढ़ी से वैद्यक करते आये हैं।' मोहन ने ज्वरपीड़ित ग्रामवासियों को कुनैन बाँटना शुरू कर दिया था, अतः वैद्यजी की दवा बिकना कम हो गया था। इस बात पर वैद्यजी जले-भुने बैठे थे। वे मोहन से अपना बदला चुकाने के लिए उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में थे।

उधर यौवनावस्था ने प्रताप और कस्तूरी दोनों के मस्तक का चुम्बन किया। मोहन और दुखिया भी दोनों के लिए उपयुक्त वर-वधू की खोज करने लगे। वे जानते थे कि प्रताप और कस्तूरी एक-दूसरे को कितना चाहते हैं; पर समाज के बंधनों को तोड़कर उन दोनों का विवाह कर देने की हिम्मत नहीं कर सकते थे। अंत में प्रताप का विवाह मीरा-नामक एक रूपवती ब्राह्मण-कन्या से हो गया और कस्तूरी के लिए भी वर खोजा जाने लगा।

इसी बीच में दुखिया बीमार पड़ा। मोहन उसकी देखभाल करने के लिए उसको अपने घर लिवा लाया। एक अछूत का एक ब्राह्मण के घर में निवास समाज के पंडों को अखरने लगा। उन्होंने उद्दंड रूप धारण कर, बाबूलाल वैद्य की अध्यक्षता में मोहन के मकान पर धावा बोल दिया। मोहन का सिर फोड़ दिया गया, उसके घर में आग लगा दी गई। घर के सब लोगों ने मूर्च्छित मोहन को साथ लेकर किसी प्रकार भागकर अपनी जान बचाई।

समाज के तिलक-धारियों का झगड़ा पुलिस का आह्वान कर चुका था। बाबूलाल वैद्य और उसके साथियों पर मुक़दमा चला और उन्हें अपने दुष्कर्मों का फल भोगना पड़ा।

मोहन जीवित बच गया और मरणासन्न दुखिया के भी प्राण लौट आये; पर एक दिन वह रेल की नौकरी से अलग कर दिया गया। उसे चौकी ख़ाली करने की आज्ञा मिली। पर चौकी का नवीन अधिकारी मन्नू दुखिया के एक पुराने मित्र का पुत्र निकला। उसके साथ कस्तूरी की सगाई भी बहुत पहले हो चुकी थी। अतः दुखिया और कस्तूरी, दोनों मन्नू के साथ ही उसी चौकी में रहने लगे। पर मन्नू की एक विवाहिता स्त्री भी थी। मन्नू के कई बार बुलाने पर भी उसके माता-पिता ने कजरी को अपनी ससुराल नहीं जाने दिया था। अंत में तंग आकर, मोहन और दुखिया की अनुमति से मन्नू का कस्तूरी से विवाह हो गया।

प्रताप का विवाह हो चुका था और कस्तूरी का भी, पर वे दोनों प्रसन्न न थे। उनके नवीन जीवन-साथी उन्हें इष्ट न थे। भला कहीं बचपन का स्नेह और प्यार भुलाया जा सकता है? मीरा सदैव अपने पति को प्रसन्न करने के बारे में सोचा करती और मन्नू कस्तूरी के मुख पर हँसी देखने की लाखों तदबीरें करता; पर सब चेष्टाएँ अंत में बेकार होतीं।

इस स्थान पर कथानक में कजरी (मन्नू की पहली स्त्री) का पुनरागमन उसको बड़ा और घटनात्मक बना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देता है। कजरी अब सयानी हो चुकी थी। वह नहीं चाहती थी कि कस्तूरी उसका अधिकार उससे छीन ले। अतः अपने मा-बाप के मना करने पर भी वह अपने पति के पास आई, पर मन्नू ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। कजरी जल उठी। उसने अपने मार्ग के कंटक कस्तूरी को दूर करने का विचार किया।

मीरा यह जानती थी कि प्रताप कस्तूरी के कारण ही खिन्न रहता है, अतः वह अपने पति की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को तैयार थी। कजरी ने उसको फुसलाया। उन दोनों ने यह तय किया कि कस्तूरी को किसी प्रकार गाँव के मेले में ले जाकर वहाँ छोड़ आया जाय। गाँव में प्रताप भी अपनी दूकान ले गया है। वहाँ कस्तूरी को अकेला पाकर प्रताप उसे अपने पास रख लेगा। फिर गाँव में आकर यह ख़बर उड़ा दी जाय कि कस्तूरी प्रताप के साथ रह गई। मन्नू यह सुनकर कस्तूरी को त्यागकर कजरी को पुनः अपना लेगा और उधर प्रताप भी मनोवांछित वस्तु पाकर सुखी होगा। इस प्रकार मीरा और कजरी, दोनों के ध्येय पूर्ण होंगे।

दोनों ने जैसा सोचा था, वैसा ही किया। मन्नू ने यह ख़बर पाते ही प्रताप का ख़ून करने का निश्चय कर लिया। उधर प्रताप कस्तूरी को साथ लेकर उसे चौकी तक पहुँचाने आ रहा था। रेलवे लाइन के बीच में ही दोनों की मुठभेड़ हो गई। इधर कजरी और मीरा ने भी अपने भयानक षड्यन्त्र के परिणाम का आभास पा लिया था। वे प्रताप और मन्नू को बचाने दौड़ीं। इस समय रेलवे लाइन के बीच में ही बैलगाड़ी खड़ी थी, और वहीं पर तीन स्त्रियाँ व दो पुरुष गुत्थमगुत्था कर रहे थे।

ऐसे समय में एक्सप्रेस आ गई। कस्तूरी ने पटरी पर से बैलगाड़ी हटाने का प्रयत्न किया, पर बैल अड़ गये। क्षण भर में रेल और बैलगाड़ी लड़ने का दृश्य और सैकड़ों मनुष्यों की लाशें कस्तूरी की आँखों के सामने नाच गईं। उसने तय कर लिया। एक्सप्रेस चली आ रही थी। वह उसकी ओर हाथ उठाकर चिल्लाती हुई बेतहाशा दौड़ी—एक्सप्रेस चली आ रही थी। ड्राइवर ने कुछ सुना। ब्रेक लगा दिया गया, पर गाड़ी कुछ दूर तक चली आई। कस्तूरी उसके नीचे दबने से बच न सकी।

लोगों ने कस्तूरी को निकाला; पर वह तो केवल मृत देह थी। 'उसने अपनी जान दी लाखों की जानें बचाने के लिए।'

अतः कथानक दुःखान्त है—पर आरंभ व अंत में एक छोटा-सा कथानक जो और जोड़ दिया गया है, वह अनावश्यक-सा प्रतीत होता है। अंत में तो इसकी बिलकुल आवश्यकता न थी। यदि कस्तूरी की लाश रेल से निकालने के पश्चात् ही कथानक का अंत हो जाता तो वह अधिक प्रभावशाली और तीव्र होता। दर्शकगण अपने हृदय में एक ऐसे घाव का अनुभव करते, जो कुछ देर तक हरा रहता। यहाँ पर आगे का दृश्य देखने की उत्सुकता में कर्तव्य पर बलिदान का दृश्य कुछ भूल-सा जाता है।

कहानी सुन्दर है। पुरानी कही-सुनी बातों का समावेश होने पर उसमें एक ख़ास अनोखापन और नवीनता है। दर्शकगण के हृदय में उत्सुकता की जागृति अच्छी तरह होती है। यह प्रेम-कहानी एकदम अंत में जाकर आदर्शपूर्ण हो जाती है। अंत में एक क्षण में कुछ का कुछ ऐसा हो जाता है कि दर्शकगण कुछ समझ ही नहीं पाते; पर सब कुछ स्वाभाविक रूप में ही होता है।

पात्र-पात्री

मोहनलाल

मोहनलाल एक सच्चा ब्राह्मण था। एक अछूत के प्रति उसका प्रेम सराहनीय है। वह कर्तव्य को सबसे बढ़कर मानता था। ब्राह्मण और अछूत में कुछ भेद भी है, यह वह नहीं समझ सकता था। दुखिया को दुःख में देखकर उसने उसकी कितनी सेवा की, यह आदर्शपूर्ण है। दुखिया के लिए उसने अपनी जान तक की पर्वा न की। उसे अपना सिर फुड़वा लेना मंज़ूर था; पर बीमार दुखिया को घर से निकाल बाहर करना उसके लिए असम्भव था। वह कितना सहनशील था और था कितना महान्!

जाति-पाँति के भेदभाव को न मानते हुए भी, प्रताप और कस्तूरी के अगाध प्रेम का आभास पाकर भी वह प्रताप का कस्तूरी से विवाह न होने दे सका।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कारण, वह अपने समाज के विरुद्ध बहुत कुछ कार्य कर चुका था। अब उसके हृदय में समाज के प्रति भी अपने कुछ कर्तव्यों का ध्यान आया। कारण यह नहीं था कि वह समाज से डरता था।

मोहन में एक बात सबसे पहले दृष्टिगोचर होती है। मोहन का हँसमुख स्वभाव सराहनीय है। हँस-खेलकर दो-चार बातें कर जाने के सिवा इस संसार में है ही क्या? हँसी - मज़ाक़ करने की आदत के साथ-साथ मोहन के दयापूर्ण कार्य उसको बहुत ऊपर उठा देते हैं। गाँववालों पर वह भाई के समान स्नेह रखता था—उनकी सहायता करने को वह सदैव प्रस्तुत था। यही विचारकर उसने ज्वरपीड़ितों को कुनैन बाँटना प्रारम्भ कर दिया था। वह गाँववालों को बाबूलाल वैद्य के हथकंडों से भी बचाना चाहता था। उसके हृदय के उद्गार शिक्षाप्रद और मीठे होते थे।

दुखिया

दुखिया भी मोहन के ही अनुरूप था। मोहन पर उसकी अगाध श्रद्धा थी। मोहन यद्यपि छूतछात का विचार तनिक भी न करता था; पर दुखिया अपनी हीन स्थिति और जाति को बराबर समझता रहा। अपने ऊपर एक ब्राह्मण का इतना स्नेह उसके लिए एक अनोखा अनुभव था। तभी तो उसका रोम-रोम उस उच्च ब्राह्मण के लिए सेवाभाव से पुलकित होता रहता था।

दुखिया यद्यपि बूढ़ा था, पर उसमें साहस और दृढ़ता का पूर्ण समावेश था। शरीर का वह कमज़ोर था, पर अपनी हार्दिक प्रेरणा के लिए काफ़ी मज़बूत था। अफ़सरों के सम्मुख उसकी स्वाभाविक सरलता और उसका भय उसके मुँह पर खेलने लगते थे। जब उसको चौकी ख़ाली करने की आज्ञा दी गई, तब उसने यह भी न पूछा कि मेरा क्या अपराध है। वह इतना विनम्र था! आरम्भ से ही हमारे हृदय में दुखिया के प्रति सहानुभूति की एक क्षीण रेखा अपना घर कर लेती है।

प्रताप

प्रताप एक उच्छृंखल युवक था। जैसा कि ग्रामों में प्रायः पाया जाता है, उस पर किसी प्रकार की रोक-टोक न थी। वह स्वयं सीधा और सरल था। उसे एक साथी की आवश्यकता थी और उस स्थान की पूर्ति उसकी बालसंगिनी कस्तूरी ने की थी। यद्यपि उस समय तक वह भली भाँति नहीं समझ सका था कि प्रेम क्या है, पर कस्तूरी के प्रति उसके हृदय में प्रेम उत्पन्न हो चुका था। चाहे जहाँ जाता, चाहे जो काम करता, कस्तूरी का साथ होना उसके लिए आवश्यक था।

प्रताप के मन में इस बात का कभी विचार ही न आया कि मैं ब्राह्मण हूँ और कस्तूरी एक अछूत बालिका। उसने कई बार कस्तूरी के हाथ का बना खाना खाया था। मैत्री में जाति-पाँति की बाधा उसको स्वीकार न थी। वह क्षण-भर भी कस्तूरी के बिना नहीं रह सकता था। पर उसने अन्य युवक प्रेमियों की भाँति कस्तूरी के पीछे अपने माता-पिता को दुःख नहीं दिया। वह एक आज्ञाकारी पुत्र था। गाँव का सरल बालक अपने माता-पिता को ही सब कुछ समझता था। अपने पिता के कामों में हाथ बटाना उसने अपना कर्तव्य समझा।

इसी आज्ञापालन की प्रवृत्ति के कारण वह अपने माता-पिता के आगे सिर न उठा सका। उसका विवाह मीरा के साथ कर दिया गया, पर उसने कुछ न कहा। उसका जीवन दुःखमय हो गया, कस्तूरी उससे छीन ली गई, पर उसने किसी से इस बात की चर्चा तक न की। उसने केवल अपने भाग्य को धिक्कारा और दुखी हृदय ने आँसू बहाये। कस्तूरी के विवाह की भी चर्चा उसने सुनी। पर उसने केवल इतना ही कहा—"कस्तूरी! तुम्हें अच्छा वर मिले।" ये पाँच शब्द कितनी वेदना लिये हुए थे।

प्रताप का जीवन दुःखमय हो गया। वह मीरा के प्रति अपने कर्तव्यों से परिचित था; पर न तो मीरा से वह स्वयं ही प्रसन्न हो सका और न मीरा को ही सुखी बना सका। उसने कस्तूरी से मिलना-जुलना बन्द कर दिया था; पर बचपन की क्षीण-स्मृति अपने हृदय से न हटा सका। उसका जीवन वास्तव में एक दुःखपूर्ण पहेली है, जिसको केवल सहृदयजन ही समझ सकेंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कस्तूरी

कस्तूरी ने केवल अपने पिता का प्यार पाया था। अपि उसकी मा नहीं थी, पर उसे मा का अभाव निक भी न खटका। उसने अपने पिता से बातें रने में कभी लज्जा का अनुभव नहीं किया। कारण, ता-पुत्री में भेद की कोई बात ही न थी। तभी तो ह अपने विवाह के विषय में अपने पिता से बहुत छ कह सकी। वह एक सरल बालिका थी। घर कामकाज और अपने पिता के सुख का उसे सदैव यान रहा। चौकी के फाटक पर बहुत बार उसने पने पिता की जगह रेल को हरी झंडी दिखाई थी। चित्रपट में ये दृश्य बड़े हृदयग्राही हुए हैं।

प्रताप उसके बचपन का साथी था। प्रताप को वह चाहने लगी थी। प्रताप के साथ खेलकूद करने में उसकी रुचि थी। उनकी लड़कपन की क्रीड़ाएँ चित्रपट में बड़े ही चित्ताकर्षक रूप में प्रकट की गई हैं। प्रताप के साथ उसने कभी इस बात का अनुभव नहीं किया कि मैं अछूत हूँ, पर बाद में वह इस बात को पूर्ण रूप से समझने लगी थी। जब उसने सुना कि प्रताप का विवाह होनेवाला है, तब उसके हृदय में एक ठेस-सी लगी; पर उसने सब कुछ छिपा लिया। कितने आँसुओं को दबाकर, कितने हृदयस्थ मनोभावों का दमन कर उसने प्रताप से कहा—"तुम्हें सुन्दर वधू प्राप्त हो।"

कस्तूरी एक आदर्श बालिका थी। पिता की आज्ञा का पालन करना उसका एकमात्र कर्तव्य था। उसका भी विवाह तय हुआ। पिता की आज्ञा से उसने मन्नू से विवाह किया; पर वह प्रताप की याद न भुला सकी। मन्नू के प्रति उसका क्या कर्तव्य है, यह वह जानती थी। पति को देवता के समान पूजना उसका धर्म था। अपनी सौत कजरी तक से वह घृणा नहीं कर सकी; क्योंकि उसका स्वभाव ही ऐसा था।

कस्तूरी प्रेम-कहानी की एक पात्री से एक आदर्श-काव्य की नायिका के रूप में अधिक स्पष्ट है। चित्रपट के अंत में हमें पूर्ण रूप से उसकी महत्ता और उसके उच्च कर्तव्य के दर्शन होते हैं। वह हमारी दृष्टि में बहुत ऊपर उठ जाती है—एक देवी से भी अधिक ऊपर।

अंतिम दृश्य में वह प्रताप और मन्नू के भयानक झगड़े को सुलझाना चाह रही थी। मन्नू सशस्त्र था, अतः प्रताप के मारे जाने की अधिक संभावना थी। वह प्रताप को बचाना चाहती थी; क्योंकि प्रताप उसका मित्र ही था, वैरी नहीं। इसी समय एक्सप्रेस आ गई। रेल का बैलगाड़ी से लड़ जाना निश्चित था। अतः उसने प्रताप को बचाने की चेष्टा छोड़ दी। अपने प्रेम को कर्तव्य पर बलिदान कर दिया। उसने "अपनी जान दी, लाखों की जानें बचाने के लिए।"

अभिनय

देविकारानी

देविकारानी का एक ग्राम-बालिका के रूप में अभिनय प्रशंसनीय हुआ है। उनका खिलखिलाकर हँसना और अशोक के साथ उनके खेलकूद, स्वच्छंद ग्राम-बालिका की मनोवृत्ति के पूर्ण परिचायक हैं। समयानुसार मुद्रा धारण करने की पटुता आपके अभिनय को स्वाभाविक बना देती है। आपका बात कहने का ढंग बड़ा ही प्रभावशाली और चित्ताकर्षक है।

हम देविकारानी के साहस और उनकी निर्भयता की तारीफ़ अवश्य करेंगे। जब वे धड़धड़ाकर आती हुई रेल की ओर दौड़ती हैं, तब दर्शक तक थर्रा जाते हैं। उस समय का उनका साहसपूर्ण अभिनय एक महान् कार्य हुआ है।

सुन्दर अभिनय-कला के साथ ही सुरीला गला पाने के लिए आप अवश्य बधाई के योग्य हैं। गानों में नई-नई तर्ज़ और सुरीलापन सराहनीय है। वास्तव में देविकारानी चित्रपट-कानन की एक फूलती हुई कलिका हैं।

अशोककुमार

हिन्दी के सिनेमा-संसार के इनेगिने अभिनेताओं में अशोककुमार भी एक उच्चस्थान के अधिकारी हैं। आपका अभिनय अधिकांश में स्वाभाविक ही प्रतीत होता है। 'अछूत-कन्या' में एक ग्राम-बालक के रूप में वे पूर्ण रूप से सफल हुए हैं। आप स्वयं बड़े सरल प्रतीत होते हैं। तभी तो आपके अभिनय में 'सरलता' एक बड़ी भारी विशेषता है। आपकी हँसी दर्शकगण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को प्रसन्न कर देती है। आपका दुःख उन्हें रुला देता है। अभिनय में आपके विचार-परिवर्तन आपके चेहरे से साफ़ प्रकट होते हैं।

गाने में आपको कमाल हासिल है—पहाड़ी सान्याल के समान आपके गाने भी कुछ अधिक कलापूर्ण होने पर हम सबके हृदयहारी हो जायँगे।

कामताप्रसाद

समस्त चित्रपट में हमें आपका अभिनय सबसे अधिक स्वाभाविक जँचा। दुखिया का पार्ट आपने बड़ी कुशलता से निबाहा है। वृद्ध दुखिया के भिन्न-भिन्न मनोभावों को समयानुकूल प्रकट करने में आप बहुत सफल हुए हैं। जब दुखिया बीमार पड़ता है, तब आपके चेहरे से यह साफ़ प्रकट होता है कि उस समय दुखिया कितना दुबला और कमज़ोर हो गया था। हमारे चित्रपटों में यह बात बहुत खटक जाती है। कोई पात्र बीमार पड़ता है। कठोर बीमारी के बाद भी वह क़रीब-क़रीब उतना ही स्वस्थ दिखाई देता है, जैसा कि वह साधारण दशा में स्वस्थ होता है। केवल एक इसी दिशा में हमारे अभिनेताओं को अभी बहुत कुछ सीखना है। कामताप्रसाद का प्रयास इस विषय में आशातीत सफलता प्राप्त करेगा।

मोहन का पार्ट भी बड़ी सुन्दरता से निभाया गया है। पीथावाला ने मोहन के हँसमुख स्वभाव को पूर्ण रूप से अपना बना लिया है। उनके अभिनय में एक ब्राह्मण का बड़प्पन और एक मनुष्य का प्रेम स्पष्ट झलकता है।

मन्नू के पार्ट के विषय में भी हमें कुछ कहना है। मन्नू का पार्ट यद्यपि थोड़ा है, पर उसका स्थान गौण रूप में नहीं है। यहाँ पर हमारा तो यह विचार है कि मन्नू का पार्ट एक मुसलमान युवक (अनवर) को नहीं देना चाहिए था। मन्नू के चेहरे से मुसलमानीपन साफ़ प्रकट होता है, जो कि चित्रपट में एक भद्दापन ला देता है। दूसरे अनवर का अभिनय भी कुछ अच्छा प्रतीत नहीं होता।

'अछूत-कन्या' के गाने उसकी एक विशेषता है। अशोक और देविकारानी के गाने सुन्दर हुए हैं। उनमें सरलता है—प्रकृति के प्रति अनुराग है, और साथ ही साथ वे काफ़ी प्रभावशाली भी हैं। पर चन्द्रप्रभा का एक गाना ही इन सबसे बाज़ी मार ले जाता है। 'कित गये हो खेवनहार.....नैया डूबती' में न-जाने कहाँ का दर्द भर दिया गया है। इस गाने का कलाकार के जीवन से बड़ा ही प्रभावशाली सामंजस्य दिखाया गया है।

चित्रपट में एक ग्राम का पूर्ण चित्रण है—यह हम पहले ही कह चुके हैं। कई स्त्रियों का मिलकर चक्की पीसना, धान कूटना, नाज बीनना गाँव का एक ख़ास काम है। इस एक दृश्य का चित्रण 'अछूत-कन्या' में पहली बार हुआ है और वह भी बड़े ही स्वाभाविक रूप में। अभी तक चित्रपटों में प्रायः बड़े-बड़े शहरों के दृश्य ही देखने में आते थे। अब जनता को ग्राम-जीवन से भी परिचित कराने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस दिशा में बॉम्बे टॉकीज़ के 'अछूत-कन्या' और 'जन्मभूमि' दोनों चित्रपट अन्य चित्रपट-निर्माणकर्ताओं के लिए आदर्श हैं।

'अछूत-कन्या' में वस्त्रों व अन्य उपकरणों का प्रदर्शन बड़ा ही स्वाभाविक हुआ है। ग्रामों के दृश्य, ग्रामवासियों के कपड़े-लत्ते और उनका सरल व्यवहार दर्शकों के सम्मुख एक साधारण ग्राम का चित्र उपस्थित कर देता है।

सारांश यह कि यह चित्रपट सर्वथा सुन्दर बन पड़ा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

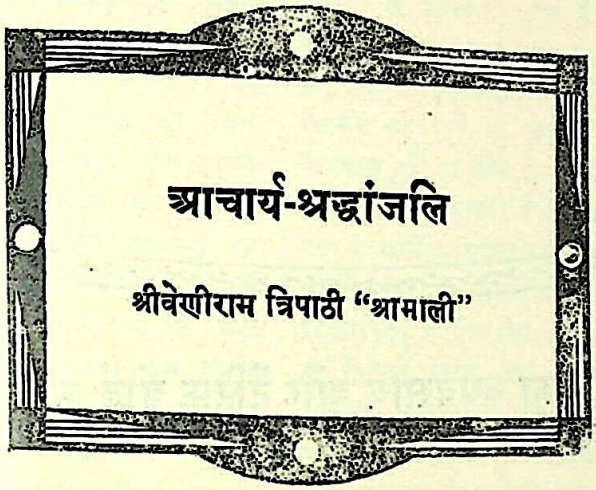

आचार्य-श्रद्धांजलि

श्रीवेणीराम त्रिपाठी "आमाली"

देश जब हिंद यह हिंदी से कहीं दूर रहा,
राष्ट्रभाषा का भवन ध्वस्त रहा, चूर रहा ;
जब कि हिंदी का कहीं शूर नहीं, वीर रहा,
तब हुआ वह ही जो भगवान् को मंज़ूर रहा ।
मातृभाषा की तब संतान महावीर हुए ;
गद्य के, पद्य के अभिमान महावीर हुए ।
आन, सम्मान, अजब शान महावीर हुए ;
ज्ञान-भंडार से विद्वान् महावीर हुए ।
धाम फिर कर दिया निर्माण खड़ीबोली का ;
कर दिया क्षेत्र अपरिमाण खड़ीबोली का ।
लेखनी से किया कल्याण खड़ीबोली का ;
वह था श्रीहर्ष, सुकवि बाण खड़ीबोली का ।
देवभाषा के भी विद्वान् थे प्रतिभाशाली ;
उनके संस्कार ने संस्कृत की भी रक्खी लाली ।
काव्य-उपवन की उठी लहलहा डाली-डाली ;
ऐसा सहृदय था विचक्षण वह बड़ा माली ।
आज हिंदी के सपूतों का वह घमंड कहाँ ;
हैं वे आचार्य कहाँ, उनका वह कोदंड कहाँ ।
ज्योति दी जिसने हमें तेज वह प्रचंड कहाँ ;
मातृभाषा के गगन-बीच का मार्तंड कहाँ ।
ग़म से तटिनी भी पटक देती है तट पर आ, सर ;
पूछता चीखकर अंबर से यही है सागर ।
बोल आकाश ! कहाँ लुप्त है तेरा भास्कर ;
किंतु वह मौन है, देता नहीं इसका उत्तर ।
वाटिका अब रही हिंदी की कहानी होकर ;
वृक्ष उपवन में गिरे जाते हैं खाकर ठोकर ।
शुष्क लतिकाएँ हुईं अंग के ज़ेवर खोकर ;
धो रहे मुँह को हैं आँसू से सुमन रो-रोकर ।
हाय माली जो गया बाग़ की लाली भी गई ;
लाल के साथ मा ! अनुराग की लाली भी गई ।
ध्येय का गर्व, परित्याग की लाली भी गई ;
साथ आचार्य के बस आग की लाली भी गई ।
किंतु क्या ज़ोर है, क्या वश है, क्या विवाद यहाँ ;
चलता आया है सदा काल का फ़साद यहाँ ।
तोषसूचक यही विश्वास या प्रमाद यहाँ ;
है न वह वीर, किंतु वीर का प्रसाद यहाँ ।
हो गये आप अमर, कीर्ति का विस्तार तो है ;
दे गये दान जो, उस दान का आधार तो है ।
है निराकार जो, उसका कोई आकार तो है ;
वे न संसार में, उनका मगर संसार तो है ।
भाग्यशाली हैं वे, जिनका कि रहे काम सदा ;
बाद मरने के भी दुनिया में अमर नाम सदा ।
उनके रहने के लिए स्वर्ग का है धाम सदा ;
उनको करते हैं सभी भक्ति से प्रणाम, सदा ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शक्कर का व्यवसाय और टैरिफ़ बोर्ड की रिपोर्ट

श्रीयुत प्रोफ़ेसर प्रेमचन्द मलहोत्रा

शक्कर के उद्योग ने गत वर्षों में अपूर्व उन्नति की है। संरक्षण की नीति शक्कर के लिए अति लाभदायक प्रमाणित हुई है। आज से दस वर्ष पहले भारत में प्रतिवर्ष १५ करोड़ रुपये की शक्कर विदेश से आती थी। देश में शक्कर के व्यवसाय की वृद्धि के कारण १९३६–३७ में शक्कर का आयात एक करोड़ रुपये से भी कम था। संसार के ईख पैदा करनेवाले देशों में भारत एक मुख्य देश है। यहाँ साल में ६० करोड़ रुपये का गन्ना पैदा होता है। अतः इसकी ईख-उत्पादक-शक्ति समृद्ध शक्कर-व्यवसाय का साधन बन सकती है।

१९३१ में आयात-कर-निर्णय-बोर्ड (Tariff Board) ने सरकार से सिफ़ारिश की थी कि शक्कर का उद्योग कृषि-सम्बन्धी होने से संरक्षण की नीति का विशेष अधिकारी है। भारतीय सरकार ने इस निर्णय को स्वीकार किया और ३० जनवरी, १९३२ से विदेशी खाँड पर ७।) प्रतिटन कर लगाया गया। फलस्वरूप शक्कर तैयार करने की मिलें बड़ी तेज़ी से खुलने लगीं। मिलों की गणना १९३१–३२ में ३२ थी। वह १९३६–३७ में १५४ हो गई। १९३१–३२ में कुल ४,७२,००० टन खाँड बनती थी; पर १९३६–३७ में १२,००,००० टन खाँड बनी। वास्तव में शक्कर पर आयात-कर ९–) प्रतिटन रहा; क्योंकि सितम्बर, १९३१ के बजट के अनुसार आयात-कर २५ प्रतिशत बढ़ाया गया। १९३७ के बजट के अनुसार शक्कर पर आयात-कर ९।) प्रतिटन था। पर यह भी यहाँ बताना उचित होगा कि १९३४ में देशी शक्कर पर १।–) प्रतिटन देशी कर (Excise duty) लगाया गया और १९३७ में यह कर २) प्रतिटन कर दिया गया।

शक्कर के उद्योग को १५ वर्ष के लिए संरक्षण दिया गया था। परन्तु सात वर्ष के पश्चात् शक्कर के उद्योग पर संरक्षण जारी रखने का निर्णय फिर होना था।

१९३७ में कर-निर्णय-बोर्ड नियुक्त हुआ। इस जाँच-बोर्ड के सदस्य तीन थे—सर जी० टी० एच्० ब्रेकन, मिस्टर एफ़्० आई० रहमतउल्ला और डाक्टर एल्० सी० जैन। रिपोर्ट दिसम्बर, १९३७ में तैयार हो गई।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस शक्कर की जाँच-कमेटी की सिफ़ारिशों की समालोचना हम इस लेख में करेंगे।

रिपोर्ट एकमत से इस निर्णय पर पहुँची है कि संरक्षण को जारी रक्खा जाय। खाँड का उद्योग सार्वजनिक रूप से लाभदायक हुआ है। धन लगानेवाले, उपभोक्ता, कर देनेवाले, किसान तथा सरकार, सबके हितों के लिए खाँड का उद्योग उपयोगी रहा है। संरक्षण की नीति के विरोध में प्रायः यह कहा जाता है कि इससे गाहकों को अधिक दाम देने पड़ते हैं और उन्हें चीज़ महँगी मिलती है। इस दलील का शक्कर के व्यवसाय के उपलक्ष्य में रिपोर्ट ने खंडन करते हुए उल्लेख किया है—गाहक एक मन खाँड पर १९३०–३१ की क़ीमत के मुक़ाबले में १ रु० १५ आ० ३ पा० कम दे रहे हैं, यद्यपि खाँड को १ रु० ७ आ० ६ पा० प्रतिमन देशी कर देना पड़ता है। गाहकों को संरक्षण की नीति के लिए कृतज्ञ होना चाहिए।

१९३४–३५ में देश के १२½ करोड़ रुपये बचे; क्योंकि देश ही में काफ़ी खाँड बनने लगी। इस रुपये का वितरण इस प्रकार है—क़रीब ६ करोड़ रु० गन्ने की क़ीमत; १ करोड़ २० लाख रु० गन्ना बोने की लागत (यह गाड़ीवालों और रेल ने कमाया); ३ करोड़ रुपया मज़दूरों का वेतन और ५० लाख रु० तनख़्वाह।

जाँच-कमेटी का यह दृढ़ विश्वास है कि भारत केवल देश की सम्पूर्ण आवश्यकता के लिए ही खाँड नहीं बना सकता, बल्कि वह विदेशों में भी खाँड भेज सकता है। इस उपलक्ष्य में जाँच-कमेटी ने शक्कर के अन्तरराष्ट्रीय समझौते (International Sugar Convention) की आलोचना की है। इस समझौते के अनुसार भारत बरमा के अतिरिक्त किसी और विदेश में खाँड नहीं बेच सकता। खाँड का व्यवसाय इतनी तेज़ी से बढ़ा है कि अब खाँड के प्रत्युत्पादन की शंका है और बाहर भेजने की रोक से खाँड के धंधे को अवश्य हानि की संभावना है।

शक्कर का उद्योग कृषि के लिए विशेष रूप से उपयोगी प्रमाणित हुआ है। गन्ने की खेती की ज़मीन १९३१ में ३०,००,००० एकड़ से कम और १९३७–३८ में ४०,००,००० एकड़ से अधिक थी। यदि हम यह बात स्मरण रक्खें कि खाँड की आधी क़ीमत किसान को गन्ने के रूप में मिल जाती है तो हमें विश्वास हो जायगा कि खाँड का धंधा किसानों के लिए अति हितकारी है। शक्कर पर सरकार ने आयात-कर ८ आने प्रतिटन कम कर दिया है। संरक्षण-कर बजाय ७।) के ६॥।) रहेगा। यह जाँच-कमेटी की सिफ़ारिशों के विपरीत है। इस असन्तोषजनक फ़ैसले से विदेशी खाँड देश में फिर बिकने लगेगी। यह अनुमान लगाया है कि जावा हमारे देश के बंदरगाहों पर २।≡) प्रतिटन के हिसाब से खाँड बेच सकता है। इस अनुमान के आधार पर जाँच-कमेटी का यह निर्णय था कि आयात-कर ७।) प्रतिटन और देशी चुंगी २) प्रतिटन अर्थात् कुल ९।) होना चाहिए।

रिपोर्ट में शीरे के उपयोग के बारे में भी लिखा है। उनके विचार में शीरे का सबसे लाभदायक उपयोग तो शीरे में से शराब और अन्य मद्यसार-सम्बन्धी चीज़ें बनाना है। शीरे के अन्य उपयोग कई एक हैं, जैसे खाद के काम में लाना, सड़क के कोलटार (Coal Tar) बनाने में लगाना इत्यादि-इत्यादि। गन्ने की सीठी (Bagasse) काग़ज़ बनाने में काम आ सकती है।

रिपोर्ट में देशी कर या चुंगी की भी आलोचना की है। सदस्यों की राय में खाँड के उद्योग की १९३७ की मुसीबतों का एक कारण यह चुंगी भी थी।

रिपोर्ट दिसम्बर, १९३७ में लिखी जा चुकी थी। सरकार ने उस पर निर्णय करने में सवा वर्ष लगा दिया और अब यह बताया जा रहा है कि रिपोर्ट की सिफ़ारिशें पुरानी हो गई हैं। विदेशी खाँड पर आठ आने प्रतिटन कर कम होने से देश में खाँड के उद्योग की निश्चय ही हानि होगी।

१९४२ में शक्कर के उद्योग पर एक और जाँच-कमेटी बैठेगी। बार-बार कमेटियों के जाँच करने से उद्योग में हलचल और अनिश्चय उत्पन्न होता है और इससे व्यवसाय की उन्नति में बाधा पड़ती है। रिपोर्ट में शक्कर के उद्योग की उन्नति के लिए एक यह परामर्श है कि १९४२ की जाँच-कमेटी इस प्रस्ताव पर विचार करे कि सरकारी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सहायता (Subsidy) से देशी खाँड की इँगलैण्ड में खपत हो। २) देशी कर में से यदि ≡) शक्कर के अनुसन्धान में लगाये जायँ तो उद्योग की उन्नति से कई एक नये साधन निकल सकते हैं।

सरकार कमेटी को जाँच का काम तो सौंप देती है और कमेटी के सदस्य विशेषज्ञ और उच्चकोटि के योग्य पुरुष भी होते हैं; पर इस दशा में उनकी सिफ़ारिशों को न मानना एक अनुचित बात है। आगे भी कई एक बार सरकार टैरिफ़ बोर्ड की सिफ़ारिशों को रद कर चुकी है। काँच के उद्योग की जाँच-कमेटी ने संरक्षण की सिफ़ारिश की थी; पर सरकार ने उसकी इस बात को अस्वीकार किया। यह हमारे देश की आयात-निर्यात-कर-नीति में एक भारी दोष है। यह तो वैसा ही हुआ, जैसे सरकार मुक़दमा एक जज को सौंप दे और उसके निर्णय को न माने। ऐसा करने से जज के फ़ैसले और उसकी सत्ता पर बट्टा लगता है।

हमारी धारणा है कि संरक्षण नीति तथा कर-निर्णय करने के लिए विशेष योग्यों की कमेटी बनाई जाया करे, और उसकी सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करना सरकार के लिए अनिवार्य हो। संरक्षण नीति की स्थायिता के लिए एक स्थायी बोर्ड की आवश्यकता है। अभी तक तो जैसे-जैसे संरक्षण कर की जाँच कराने की आवश्यकता होती है, वैसे-वैसे उसी जाँच के लिए एक बोर्ड नियुक्त कर दिया जाता है। इन अस्थायी बोर्डों से संरक्षण की नीति के अस्थिर होने की सम्भावना होती है और इससे व्यवसायों को धक्का पहुँचता है।

शास्त्रीय हिन्दी हार्मोनियम गाईड

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४१ रागों के आरोह, अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०८ प्रसिद्ध गायनों के स्वर-तालयुक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी सहित, तृतीय आवृत्ति, पृष्ठसंख्या २२२, क़ीमत १॥) रुपया, डाक-ख़र्च ॥), विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइये।

लेखक—कै. गुरुजी भास्कर गणेश भिडे इन्दौरकर

गोपाल सखाराम कं
कालबादेवी रोड बम्बई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

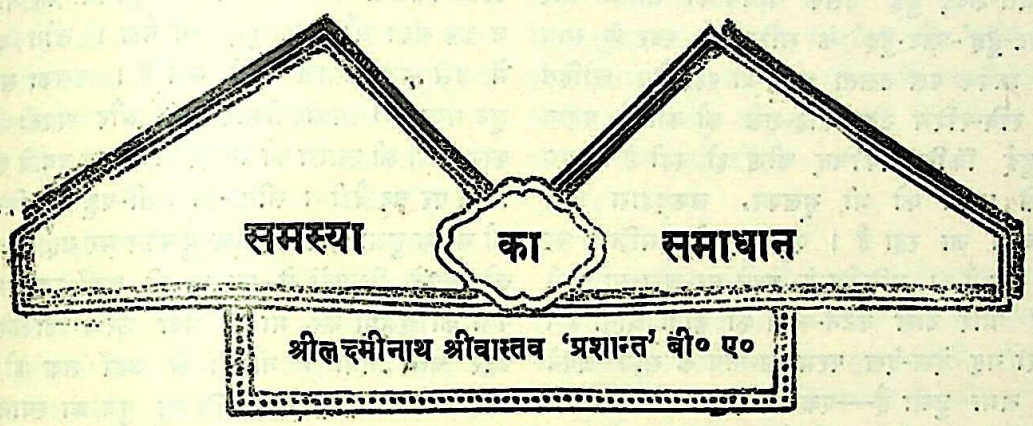

श्रीलक्ष्मीनाथ श्रीवास्तव 'प्रशान्त' बी० ए०

धीरे-धीरे टहलते हुए दार्शनिक ने नीचे-ऊपर और फिर पार्श्व के विस्तीर्ण वन-प्रान्तर की ओर देखा। सामने नदी का किनारा था। लहरें उछलती-कूदती, इठलाती-बल खाती भागी जा रही थीं और उस पार वन-कुक्कुटों के झुंड के झुंड दियारे के अनाजों का भक्षण कर रहे थे। अपराह्न का पीलापन संध्या की लालिमा में शनैः-शनैः परिवर्तित हो रहा था। मन्द मधुर हवा चल रही थी।

दार्शनिक बेचैन था। प्रकृति की सुषमा उसे फीकी लग रही थी और उसका मन दूर-अतिदूर, न जाने किस समस्या के सुलझाव में दौड़ लगा रहा था। यही उसका जीवन था। दर्शन की जटिल गुत्थियों से मन-मस्तिष्क को उलझाकर वह अपने अन्तर को सदा आलोड़ित करता और अपने सिद्धान्तों के बल पर जीवन की अंधाधुन्ध दौड़ में कूदना चाहता। पर सदा अपने को अक्षम, अज्ञानी-सा पाता और आत्मा उसकी बेचैन रहती। कितने ही महान् ग्रंथों की रचना उसने कर डाली और प्रसिद्धि प्राप्त की। अन्दर की बेकली तो भी नहीं मिटी। सिद्धा की व्याकुल आत्मा मानो उसके उर-अभ्यंतर में पैठ वसुधा के दुःख-दैन्य का दमन करवाना चाहती और वह दर्शन की गहन गुत्थियों से उलझा रहता।

पूर्वजों की अर्जित सम्पत्ति हो और मस्तिष्क में सोचने की शक्ति, फिर दर्शन की गवेषणा क्यों न हो।

खिन्न-मन वह इधर-उधर टहलता रहा। समस्या का समाधान नहीं। वह क्या करे, कहाँ जाय, और क्या सोचे। गहन विचार-सरिता में पड़ी मन की नैया को कहीं किनारा नहीं, कोई सहारा नहीं। प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों के 'वाद'-बवंडर में पड़कर यह डगमगाती नाव और भी डूबने-डूबने को हो आती है और निर्णय-उपकूल दूर चला जाता है।

दार्शनिक के मस्तिष्क को उस समय अनेक विचारों ने मथ रक्खा था। 'जीवन का लक्ष्य क्या है? परम शान्ति का मार्ग कहाँ मिलेगा और जगत् के जंजाल का सुलझाव कहाँ है?' और इन्हीं समस्याओं में तल्लीन वह आत्म-विस्मृत-सा इधर-उधर ताक रहा था। अचानक विचारों में व्याघात हुआ और बेचैनी में आगे बढ़ते हुए उसने देखा—एक पाकड़ के पुराने पेड़ की मोटी डाल को एक लकड़हारा काट रहा है। 'खट-खट', 'खट-खट' की तीक्ष्ण-कर्कश आवाज़ वन की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विजन निस्तब्धता को भंग कर रही है। डाल कुछ कटी है, कुछ कटने को बाक़ी है। कुल्हाड़ी अबाध, अथक गति से चल रही है और लकड़हारा पसीने से लथपथ है। हाँफ रहा है। प्रतिक्षेप पर 'खट' की आवाज़ के साथ उसके मुख से अनायास ही निकल जाता है, एक श्रमित-शब्द 'हुँह' उसके थकान का द्योतक और इस 'खट-हुँह'-'खट-हुँह' के सम्मिलित स्वर के साथ दिन का प्रत्येक पल ढलता चला जा रहा है। लोहित वर्ण की रवि-रश्मि उस लौह-शस्त्र को कान्ति प्रदान करती हुई किंचित्-किंचित् क्षीण हो रही है। सब कुछ जैसे अपने को भी भूलकर, लकड़हारा डाल काटता चला जा रहा है। एक-एक क्षेप मंज़िल का एक-एक डग है। प्रतिक्षेप के पड़ने पर ज़रा-सा चुन्नी उड़ती है और डाल कटने-कटने को होती आती है। लकड़हारा यह देख-देख परम सन्तोष के साथ अपने काम में लगा हुआ है—एक मन-एक प्राण। मानो उसके जीवन की यही साधना है। उसे ही पूर्ण पाकर वह सब-कुछ पा जायगा। और कुछ उसकी चाहना नहीं, और कोई भावना नहीं।

कुल्हाड़ी की कटु-शुष्क आवाज़ और चकमक से चाँव-चाँव करतीं चिड़ियाँ पेड़ के इर्द-गिर्द मँडरा रही हैं। दार्शनिक उन्हें देख रहा है, देख-देखकर कुढ़ रहा है। अपने विचारों में व्याघात वह सह नहीं सकता और बिना विचारे रह भी नहीं सकता। विचार, विचार, विचार। उसे विचार चाहिए। जीवन में और है ही क्या। उसे कौन समझावे। वह चिढ़कर वहाँ से चला जाना चाहता है। घर जाकर अपने कमरे के सभी दरवाज़ों और खिड़कियों को बन्द कर वह एक मक्खी को भी वहाँ नहीं रहने देगा और वहीं खूब विचारेगा। व्याघात वह सह नहीं सकता और बिना विचारे रह भी नहीं सकता, विचारों ही में डूबा वह घर चला जाता है।

× × ×

दस वर्ष बीत जाते हैं। दार्शनिक की आर्थिक स्थिति बिलकुल ख़राब हो जाती है। वह पैसे-पैसे को मोहताज हो जाता है। पूर्वजों की अर्जित हज़ारों की सम्पत्ति, कुछ कारिन्दों के हाथ, और कुछ सम्बन्धियों के पेट में चली जाती है। दुनिया आपके सिद्धान्तों और विद्वत्ता के अतिरिक्त आपके व्यवहार-नैपुण्य को भी चाहती है। दुनिया में मज़े से रहने के लिए आपको विद्वान्, आचारवान् बनने के पहले दुनियादार बनना चाहिए। आप इसको भुलायें तो आपको वह ठोकरें खिलवा देगी। दार्शनिक दुनिया की माँग पूरी न कर सका और सब कुछ खो बैठा। लोग बातचीत में उसे अब कंगाल कहने लगे हैं। उसका सब कुछ लुट गया है। पत्नी बीमार पड़ी और अपनी कुत्सित कामनाओं की ज्वाला को अन्दर ही अन्दर दबाये एक दिन चिता पर चढ़ बैठी। सीता-सी सती-बहू का वियोग माँ को असह्य हुआ और वह घुल-घुलकर मर गई। दार्शनिक को अपने विचारों से फ़ुरसत ही कहाँ रहती थी कि पत्नी की सुश्रूषा करे, माँ की सेवा करे। डाक्टर आया और चला गया। नौकरों से जहाँ तक हो सका, उन्होंने किया, पर नौकर पति या पुत्र का स्थान नहीं ले सकता। दुनिया के लोगों को बहुत-से रोग ऐसे भी होते हैं, जिनमें दवा के बदले और कुछ की ज़रूरत पड़ती है। दार्शनिक के शुभेच्छुओं से मालूम हुआ है, उसके पत्नी को भी ऐसी ही कुछ चीज़ की ज़रूरत थी। पर दुनिया अजीब है। सबकी ज़रूरत सब कोई पूरा नहीं कर सकता।

दार्शनिक के परिवार में अब केवल दो प्राणियों का बसेरा है। एक स्वयं उसका और दूसरा उसके एक-मात्र सप्तवर्षीया कन्या का। वैभव के स्मृति-स्वरूप, दाम्पत्य की धरोहर-सी। और, इस छोटी-सी बच्ची को लेकर न जाने उसके सूखे-से हृदय में कहाँ की रस-सरिता फूट पड़ी है। उसका सब कुछ अब वह नन्ही बालिका है। अबोध बच्ची, बे माँ की। और, मानव-हृदय के निरन्तर हाहाकार की ध्वनि अब दार्शनिक के उर-तारों में भी गूँज पैदा कर देती है। वह सरस हो उठा है। कोमल, मधुर, सरस। पर बसन्त बीत जाने पर सुरभित मंजरियों का सुवास कहाँ मिल सकता है। उसके जीवन का समस्त प्रेम अब उस बालिका की ओर प्रधावित हो चला है। पत्नी और माता के प्रेम की देन भी वात्सल्य के रस में घोलकर वह उस बालिका को पिला देना चाहता है। ब्याज के साथ। दर्शन की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गुत्थियाँ उसे अब नहीं उलझातीं। उसकी अबोध बच्ची है, वे माँ की, उसे खाना चाहिए, कपड़ा चाहिए और पिता का प्यार चाहिए। दार्शनिक के जीवन की अब यही एक साधना है। केवलमात्र। वह सदा शारीरिक कामों में लिप्त रहता है। मेहनत कर पैसे कमाने पड़ते हैं। बहुत सोच-समझकर उसने लकड़ी काटने का काम ले रक्खा है और उससे मज़े से दो प्राणियों का गुज़ारा हो जाता है। नित्य वह जंगल में लकड़ियाँ काटता और बाज़ार में उन्हें बेचकर उन पैसों से अपने और अपनी बच्ची के खाने-पीने की सामग्री ख़रीदता। भीड़-भक्कड़ के कामों से उसका जी भागता है और दुनिया के झंझटों से दूर वह अपनी एकान्त कुटिया में शान्ति-पूर्वक वास करता है। परम सन्तोष की रेखा उसके आनन पर खेलती रहती है। न किसी बात की चिन्ता है, न किसी समस्या का उद्वेलन। शाम को जिस आह्लादित उत्सुकता के साथ वह लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ अपनी झोपड़ी की ओर प्रधावित होता है, उसे लिखकर व्यक्त नहीं किया जा सकता। मनुष्य-हृदय की कितनी ही अनुभूतियाँ प्रकाश के परे हैं। लड़की कभी कोई पुस्तक पढ़ती है, कभी तितलियों के पीछे दौड़ती फिरती है और कभी झोपड़े को फूल-पत्तों से सजाकर, ख़ुश होती हुई, पिता को घूम-घूमकर दिखाती है। दस क़दम दूर ही से पिता की गोद से जा चिमटती और पिता-पुत्री प्यार-दुलार की बातें किया करते हैं। खा-पीकर जब दोनों निश्चिंत होते हैं तो बेटी कहती है—बाबू! एक कहानी कहो! दार्शनिक बड़े प्रेम से राम-सीता की, नल-दमयन्ती की कहानियाँ सुनाया करता है और यों ही हँसते-बोलते दोनों प्रगाढ़ निद्रा में विलीन हो जाते हैं। दिन भर तो दार्शनिक को कुछ सोचने-समझने का अवसर नहीं मिलता, रात्रि की बेहोशी में, कभी-कभी मधुर स्वप्न की तरह, अतीत की एक हल्की स्मृति उसके उर-अंतर में कोमल हिल्लोल-सी उठा जाती है। वह एक क्षण को व्यस्त होता है, पर दूसरे ही पल में अपनी अमूल्य निधि, उस भोलीभाली बच्ची को ओर देखता है—निर्मल चाँदनी के सुहासित प्रकाश में उसकी मुँदी पलकों पर जगत् की सुषमा विराजती होती और उस निर्दोष सुन्दर आनन की आभा में दार्शनिक के विस्मृत वैभव और प्रत्याशित प्रणय की छाया-सी लोटती होती। वह सब कुछ भूल जाता। हृदय के रस से भीगी पलकों से वह अपने जिगर के टुकड़े को निहारता और उसी में सब कुछ पाकर एक स्वर्गीय सन्तोष की साँस लेता। पवन के पंखों के सहारे प्रकृति का शान्ति-सन्देश उसे पुनः थपकियाँ देकर सुला जाता। उसके नियमित और कठोर जीवन की ये कोमल घड़ियाँ रूखे भोजन में चटनी का काम करतीं, और विश्व की प्रवंचनाओं से विलग उसके एक-एक दिन कटते होते।

× × ×

"खट-खट"—"खट-खट"

नदी का किनारा है और उसके पार्श्व का वन-प्रान्तर। पाकड़ के पुराने पेड़ की मोटी डाल को एक लकड़हारा तल्लीनतापूर्वक काट रहा है। कुछ कटी है, कुछ कटने को बाक़ी है। वह पसीने से लथपथ है और हाँफ रहा है। प्रतिक्षेप पर 'खट' की आवाज़ के साथ उसके मुँह से अनायास ही एक श्रमित शब्द निकल जाता है—'हुँह'—उसके थकान का द्योतक। और इस "खट-हुँह"-"खट-हुँह" के सम्मिलित स्वर के साथ दिन का प्रत्येक पल ढलता चला जा रहा है। लोहित वर्ण की रवि-रश्मि उस लौह शस्त्र को कान्ति प्रदान करती हुई किञ्चित्-किञ्चित् क्षीण हो रही है और सब कुछ, जैसे अपने को भी भूलकर वह डाल काटता चला जा रहा है। हृदय के किसी निभृत-कोण में विद्युत्-प्रकाश की नाईं एक विचार-लहर कभी-कभी दौड़ जाती है—बाप की प्रतीक्षा में ताकती हुई प्यारी बेटी, नीरव-एकान्त कुटिया, अनन्त मनुहारोंमय बाप-बेटी का दुलार भरा कथोपकथन और दूने उत्साह से वह लकड़ी काटने लगता है।

सुहावनी संध्या और रात प्रकृति के किसी एकान्त कोने से शनैः-शनैः खिसकते-खिसकते चले आ रहे हैं और कुल्हाड़ी का प्रत्येक क्षेप मंज़िल का एक-एक डग है।

कई वर्षों पहले की समस्या, जब दर्शन की गुत्थियों से मन-मस्तिष्क को उलझाये, एक खिन्न-हृदय दार्शनिक पसीने से लथपथ किसी लकड़हारे को देख रहा था, शायद हल हो गई थी—शायद।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

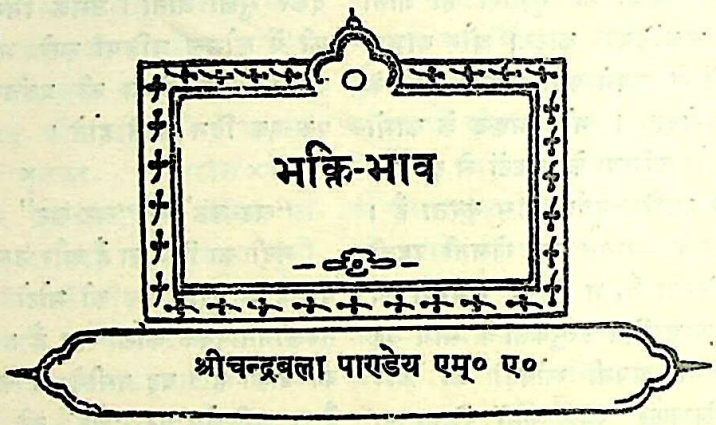

भक्ति-साहित्य के शास्त्रीय समीक्षण में भक्त-विशेष के भक्ति-भाव को निर्दिष्ट करना समीचीन समझा जाता है। अतएव प्रत्येक समीक्षक किसी भक्ति-काव्य की समीक्षा में दास्य, सख्य, वात्सल्य, माधुर्य और शांत आदि भक्ति-भावों में से किसी एक भाव को उस काव्य का मुख्य भाव बताता है और अन्य भावों को उसका सहायक अथवा अंग समझता है। विचार करने की बात है कि भक्ति-भावों का इस प्रकार का निर्देश कहाँ तक ठीक है। हमारी समझ में भक्ति-भावों का इस प्रकार का वर्गीकरण ठीक नहीं। शांतभाव किसी प्रकार भी अन्य भावों के साथ मेल नहीं खाता। यदि रस की दृष्टि से विचार करें तो स्पष्ट अवगत होगा कि शांतरस का स्थायी भाव निर्वेद अथवा शम है, जो किसी प्रकार रति-नामक स्थायी भाव का अंग नहीं कहा जा सकता। यदि ईश्वर की अनुरक्ति अथवा देवपरक परम रति को ही भक्ति कहते हैं तो निश्चय ही शांतभाव वस्तुतः भक्ति-भाव का कोई विभाग नहीं है। उसमें परमात्मा के अनुध्यान की भी उतनी प्रतिष्ठा नहीं है, जितनी संसार से उदासीन होने का आग्रह। अतएव हमारा कहना है कि शांत-भाव को दास्य आदि भक्ति-भावों से अलग कर देना चाहिए, और उस पर एक दूसरी स्वतंत्र दृष्टि से विचार करना चाहिए। माधुर्यभाव के संबंध में भी हमें कुछ निवेदन करना है। हमारी धारणा है कि सख्य, वात्सल्य आदि भक्ति-भावों के साथ माधुर्यभाव का उल्लेख करना भूल या प्रमाद है, किसी चिन्तन का फल नहीं। वास्तव में शास्त्रीय विवेचन में सख्य और वात्सल्यभाव भी उसी प्रकार माधुर्यभाव के भीतर गिने गये हैं, जिस प्रकार कांतभाव। यह बात दूसरी है कि जनसाधारण में माधुर्यभाव कांतभाव का पर्याय हो गया है और लोग उसे कांतभाव का स्थानापन्न समझने लग गये हैं, नहीं तो वास्तव में हमारे यहाँ के आचार्यों ने ऐश्वर्य और शांतभाव के साथ माधुर्यभाव की गणना की है, सख्य और वात्सल्यभाव के साथ नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि ईश्वर की अनुरक्ति अथवा हमारी परम रति यदि ईश्वर के ऐश्वर्य पर अवलंबित होती है तो हमारी भक्ति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भावना ऐश्वर्यभाव की हो जाती है, और यदि भगवान् के मधुर रूप अथवा सौन्दर्य पर अवलंबित होती है तो वह माधुर्यभाव की हो जाती है। अनुरति के अतिरिक्त जब हम परमात्मा के अनुध्यान में मग्न होने के लिए शेष सृष्टि से उदासीन हो कुछ-कुछ आत्मग्लानि में लग जाते हैं, और हम में निर्वेद छा जाता है, तब हम शांतभाव के उपासक हो जाते हैं और परमात्मा का साक्षात्कार किसी निर्विकल्प रूप में करना चाहते हैं, किसी लीलाविस्तारी रूप में नहीं। लीलाविस्तारी रूप पर जितना टिकाव माधुर्यभाव का होता है, उतना ऐश्वर्यभाव का भी नहीं। ऐश्वर्यभाव के लिए परमात्मा का सगुण होना पर्याप्त है; पर माधुर्यभाव के लिए भगवान् को अवतार लेकर अपनी लीला का विस्तार करना पड़ता है और भक्तों के बीच नाना प्रकार के अभिनय करने पड़ते हैं। यही कारण है कि माधुर्यभाव का जैसा सुन्दर प्रसार किसी अवतार के तत्कालीन भक्तों में पाया जाता है, वैसा परवर्त्ती भक्तों में नहीं। कदाचित् इसी प्रेरणा से सांप्रदायिकों ने माधुर्यभाव की पूरी प्रतिष्ठा के लिए कितने ही भक्तों को कृष्ण के सखाओं अथवा संबंधियों का अवतार मान लिया है, और उनकी उपासना को माधुर्यभाव के भीतर गिन लिया है। नहीं तो भला यह किस प्रकार संभव था कि सूरदास माधुर्यभाव के उपासक माने जाते, ऐश्वर्यभाव के नहीं।

माधुर्यभाव को ऐश्वर्यभाव से भिन्न समझने के लिए कुछ आचार्यों ने माधुर्यभाव को रागानुग एवं ऐश्वर्यभाव को एक वैधीभाव कहा है। इसमें संदेह नहीं कि उनका यह वर्गीकरण बहुत कुछ उक्त भावों के विभेद को स्पष्ट कर देता है और हमारे सामने एक ऐसी कसौटी रख देता है, जिससे हम किसी भी भक्त की भक्ति-भावना को सहज में समझ सकते हैं। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि ऐश्वर्यभाव के उपासक कट्टर विधानवादी होते हैं और परमात्मा के 'प्रसाद' पर विश्वास ही नहीं करते। नहीं, कदापि नहीं। इसका सारांश केवल इतना ही है कि ऐश्वर्यवादी मर्यादा का पालन करते हैं, और माधुर्यवादी उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। माधुर्यभाव के उपासक के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि उसका उपास्य मर्यादापुरुषोत्तम हो। उसके लिए तो इतना पर्याप्त है कि उसका उपास्य इतना मनोरम और मधुर हो कि उसकी मनोवृत्तियाँ उसमें परितः रम सकें, और कभी किसी मर्यादा के कारण उससे विचलित न हों, प्रत्युत सदैव उसी में लिपटी रहें। निदान हम देखते हैं कि ऐश्वर्यभाव की उपासना सदैव मर्यादा को साथ लिये चलती है और माधुर्यभाव की उपासना केवल रागात्मक संबंध पर ध्यान रखती है। माधुर्यवादी की दृष्टि में मर्यादा का यदि कोई महत्त्व है तो वह उसकी सांप्रदायिक मर्यादा के भीतर ही, लोक-मर्यादा की सामान्य भाव-भूमि के व्यापक क्षेत्र में नहीं।

माधुर्यवादी कहने को चाहे कुछ भी कहे, पर इतना तो निर्विवाद है कि सेवक-सेव्य-भाव के बिना भक्ति हो नहीं सकती। माधुर्यभाव के भीतर सख्य, वात्सल्य और कांतभाव की गणना की जाती है। सख्यभाव के उपासकों में अर्जुन प्रधान हैं। अर्जुन को जब भगवान् के सच्चे स्वरूप का बोध हो जाता है, तब वे अपने को सर्वथा समर्पित कर देते हैं, और भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि सखा मानकर जो कुछ उनसे कहा-सुना गया है, उसको वह क्षमा कर दें, और अर्जुन को अपना शिष्य अथवा दास मान लें। मतलब यह कि वस्तुतः दास्यभाव ही एक ऐसा भाव है, जिसे हम सर्वत्र भक्ति-भाव में सुरक्षित पाते हैं। चाहे आप अर्जुन को लें, चाहे सुदामा अथवा उद्धव को, चाहे आप नन्द-यशोदा को लें चाहे गोपिकाओं को, सर्वत्र आपको यही दिखाई देगा कि सभी अपने को अपने उपास्य का सेवक मानते हैं। यह बात दूसरी है कि अपने-अपने उपास्य को वे अलग-अलग अपने-अपने संबंध अथवा नाते से देखते हैं, और उसे पाने के लिए उसी नाते की सनद भी पेश करते हैं; पर मानते सभी हैं अपने को सेवक या दास। अतएव हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होता कि सख्य, वात्सल्य और कांतभाव के मूल में भी वस्तुतः दास्य भाव ही रहता है, जो उनमें अपने शुद्ध रूप में प्रकट न होकर सखा, वत्सल और कांत का बाना धारण कर लेता है, और मोटे तौर पर माधुर्यभाव का विधायक बन जाता है। हम उसे नये लिबास में देखकर ऐश्वर्यभाव से सर्वथा भिन्न समझ लेते हैं और उसके आस्वादन में मग्न हो लोक-मर्यादा को बहुत कुछ भुला देते हैं। यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमारी भारी भूल है। हमें चाहिए कि हम परमात्मा के ऐश्वर्य को समझें और अपने को संकीर्ण भाव-भूमि से उठाकर उसी ऐश्वर्य का पात्र बनावें, जिसके लिए हम सदा से प्रयत्नशील हैं। परमात्मा को अपने पास बुलाकर उसके साथ मनमाना खिलवाड़ करने से तो यह कहीं अच्छा है कि हम मर्यादा का पालन करते हुए एक आज्ञापालक सेवक की भाँति परमात्मा को कण-कण में देखें और उसकी सारी रचना को समेटकर अपने विशाल हृदय में रख लें। हमारे रोम-रोम से यही ध्वनि निकले कि हम परम प्रभु के दास हैं; उसके जीवों की सेवा में ही हमें उसका साक्षात्कार होता है, और हम परमानन्द में विभोर हो उठते हैं। यही हमारे जीवन का रहस्य है और यही हमारी वह सुलभ रहस्यविद्या है, जो हमें सहज में ही परमात्मा का साक्षात्कार करा देती है और हम वियोगी से स्वतः ही परम संयोगी बन जाते हैं।

माधुर्यभाव के प्रसंग में हम कह चुके हैं कि किसी लीलावतार के समय में ही उसका निर्वाह अच्छी तरह हो पाता है। उसके बाद के उपासक तो उसका उल्लेख भर करते रहते हैं, और सांप्रदायिक भक्त-विशेष को किसी तत्कालीन भक्त का अवतार कहकर ही उसकी उपासना को माधुर्यभाव के भीतर घसीट लाते हैं। इस कथन को स्पष्ट करने के लिए यह आवश्यक है कि हम सूरदास के भक्ति-भाव पर विचार करें। परंपरा में सूरदास उद्धव के अवतार कहे जाते हैं। अतएव उनकी उपासना सख्य भाव की मानी जाती है। परन्तु वास्तव में उनके विनय के पदों में कोई बात ऐसी नहीं दिखाई देती, जिससे यह सिद्ध कर दिया जाय कि सूरदास कृष्ण की उपासना एक सखा के रूप में करते थे। इसके विपरीत हम बराबर देखते हैं कि सूरदास कृष्ण के ऐश्वर्य के उपासक हैं, और उनके दरबार के 'ढाढ़ी' होने में अपने को धन्य समझते हैं। कृष्ण के जिस बाल-रूप की उपासना उनके संप्रदाय में प्रचलित है, उसका संबंध नंद-यशोदा के वात्सल्यभाव के साथ ही साथ गोपियों के कांतभाव से भी है। सच पूछिए तो सूरदास ने अपनी कविता में वात्सल्य और शृंगार का जितना विशद वर्णन किया है, उतना किसी अन्य भाव का नहीं। परन्तु इसके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि सूरदास की उपासना वात्सल्य अथवा कांत-भाव की थी। सूरदास ने कभी कृष्ण को अपना 'वत्स' अथवा 'कांत' नहीं माना। यशोदानन्दन और गोपी-वल्लभ का गुणगान सूरदास का कीर्त्तन था, कुछ भक्ति-भाव नहीं। लीला का गुणगान भक्ति-भावना से सर्वथा भिन्न होता ही है। दोनों को एक ही समझ लेना समझ का दुरुपयोग ही नहीं, भारी भूल भी है। हाँ, कांत-भाव की उपासना मीरा में अवश्य पाई जाती है। मीरा अपने को कृष्ण की कांता समझती थीं, और कृष्ण की उपासना कांतभाव से करती भी थीं। उधर वल्लभ-संप्रदाय में बालगोपाल का लालन-पालन एक बच्चे के रूप में किया जाता है। अतएव हम इस उपासना को वात्सल्यभाव की कह सकते हैं। किन्तु इसमें भी अड़चन यह सामने आ जाती है कि यहाँ भी राधिका कृष्ण के साथ लगी होती हैं, और भाव की अपेक्षा यहाँ क्रिया की ही प्रधानता रहती है। अब विचार करने की यह बात है कि नवधा भक्ति में भी दास्य एवं सख्य का उल्लेख तो किया गया है; पर वात्सल्य तथा कांत का नहीं। अस्तु, हमारी समझ में नवधा भक्ति के दास्य और सख्य का अर्थ सांप्रदायिक दास्य और सख्य के अर्थ से कुछ भिन्न है। उसमें सख्य का तात्पर्य है उपास्य के इतना निकट हो जाना कि उसके साथ मित्र का सा व्यवहार करना तथा अपने आपको उससे अभिन्न मान लेना। अर्थात् मित्र-बुद्धि से उसे देखना, कुछ मित्रभाव से नहीं।

कांतभाव से मिलता-जुलता एक दूसरा भाव भी है, जिसका उल्लेख निर्गुण-संत-संप्रदाय में प्रायः पाया जाता है। लोग भ्रमवश उसे भी माधुर्यभाव कर देते हैं; किन्तु उस भाव का नाम है 'सहजभाव'। सहज-भाव वास्तव में तांत्रिक बौद्धों का भाव है, जो स्त्री-पुरुष के सहज संबंध पर अवलंबित है, और उसी के अनुष्ठान में 'सहजानन्द' का संपादन करता है। तांत्रिक वैष्णवों ने सहजानन्द के समुचित उपार्जन के लिए स्त्री-पुरुष के सहज संबंध का क्रियारूप में परिणत होना बंद कर दिया और उसकी प्राप्ति के लिए समागम का स्थान सहस्रार को चुना। कबीर आदि के 'गगन-मंडल में सेज बिछाने' का यही रहस्य है। सहजभाव यद्यपि वस्तुतः कांतभाव का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लजनक है, तथापि वह कांतभाव से सर्वथा भिन्न है। ांतभाव का आलंबन परमात्मा होता है, और सहज-ाव का कोई व्यक्तिविशेष, अथवा सामान्य रमणीमात्र। बीर आदि निर्गुणिये संत जहाँ हठयोग अथवा तंत्र के र में पड़ते हैं, वहाँ तो शून्य में सेज का विधान कर ते हैं, नहीं तो प्रायः परमात्मा को प्रियतम मानकर हामिलन अथवा महासुख का स्वप्न देखते हैं और सुराल' जाने के लिए तड़पते रहते हैं। अतएव उनके स भाव की गणना कांतभाव के भीतर ही की जायगी, सके बाहर किसी अन्य भाव में नहीं। कारण प्रत्यक्ष । वे लोग जिस पुरुष को अपना प्रियतम मानते हैं, वह स्तव में परम-पुरुष ही है, कोई सामान्य पुरुष नहीं। यह त दूसरी है कि संप्रदाय के कठोर आग्रह के कारण वह ीलाकारी अवतारी नहीं, बल्कि निरंजन और निर्गुण है। भक्ति-भावों के संबंध में विचार करते समय यह द रखना होगा कि प्रेममार्गी सूफ़ी भी परमात्मा ी उपासना प्रियतम के रूप में ही करते हैं, और मधाम के साथ उसका विरह जगाते हैं। कहा ता है, उनकी उपासना भी माधुर्य अथवा कांतभाव होती है। परन्तु हम इस मत से सहमत नहीं हैं। मारी धारणा है कि सूफ़ियों की भक्ति-भावना कांत थवा सहजभाव से सर्वथा भिन्न है। उसमें न तो गवान् के लीलाविस्तारी रूप की चर्चा है, और न मान्य रति का सहज व्यापार ही। सूफ़ी परमात्मा की पासना प्रियतम के रूप में करते हैं सही, पर उनका यतम किसी भी रूप में सामने नहीं आता, बल्कि सी परदे की आड़ में आँखमिचौनी खेलता और बुतों अपना जलवा दिखाता रहता है। सूफ़ी सीधे तौर र तो उसे देखने से रहे। अतएव उसके दीदार के लिए किसी लौकिक माशूक़ को चुनते हैं, और उसी के वियोग में ख़ूब ज़ोरशोर से अलौकिक विरह जगाते हैं। इस प्रकार उनका प्रियतम प्रत्यक्ष न होकर परोक्ष अथवा अलक्ष्य ही रहता है। हाँ, उसकी आभा भर उसी लौकिक आलंबन में फूटती दिखाई पड़ती है। निदान, सूफ़ी उसी आभा के इशारे पर अपने परम प्रियतम का साक्षात्कार किसी इलहाम की दशा में करते हैं और होश सँभालने पर फिर उसी के लिए प्रमत्त हो उठते हैं। फलतः उनमें वह कोमलता और वह स्वाभाविक प्रेम भी नहीं होता, जो कांतभाव का प्राण है। अतएव उनके उक्त उन्मत्त भाव को देखकर हमारा जी चाहता है कि हम उनके भक्ति-भाव को अन्य भावों से अलग रक्खें, और समीक्षण में सुबीते के लिए उसे 'मादन भाव' का एक स्वतंत्र नाम दें। आशा है, हमारा यह नामकरण उपयुक्त एवं समीचीन होगा, और अपनी योग्यता के कारण पंडित-मंडली में भी मान्य होगा। इस तरह हम देखते हैं कि वास्तव में मादन, सहज, माधुर्य एवं ऐश्वर्य नामक चार स्वतंत्र भक्ति-भाव हैं, जिनमें माधुर्य और ऐश्वर्यभावों की हमारे यहाँ बराबर चर्चा होती रही है, और कभी-कभी उन्हीं के साथ सहजभाव का भी उल्लेख कर दिया गया है। पर मादन भाव सर्वथा एक नवीन भाव है, जिसके नामकरण की प्रेरणा तंत्र-साहित्य से हुई है। जो लोग शांतभाव की गणना भक्ति-भाव के भीतर करना चाहते हैं, उन्हें शांतभाव - नामक एक स्वतंत्र पाँचवाँ भाव मानना चाहिए, जिसका स्थायी भाव उक्त भावों के स्थायी भाव से सर्वथा भिन्न है, और अनुरक्ति की अपेक्षा अनुध्यान पर अधिक अवलंबित है। अतः उसका संबंध उक्त भावों के साथ कोई गहरा नहीं है। हाँ, चिंत्य अवश्य है।

पहले आराम, पीछे दाम

सफ़ेद कोढ़ (फुलवहटी) का शर्तिया इलाज करते हैं। टिकट -) का भेजकर पत्र-व्यवहार करें।

मैनेजर—ब्रह्म औषधालय, बावरा बाजार, रोहतक।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

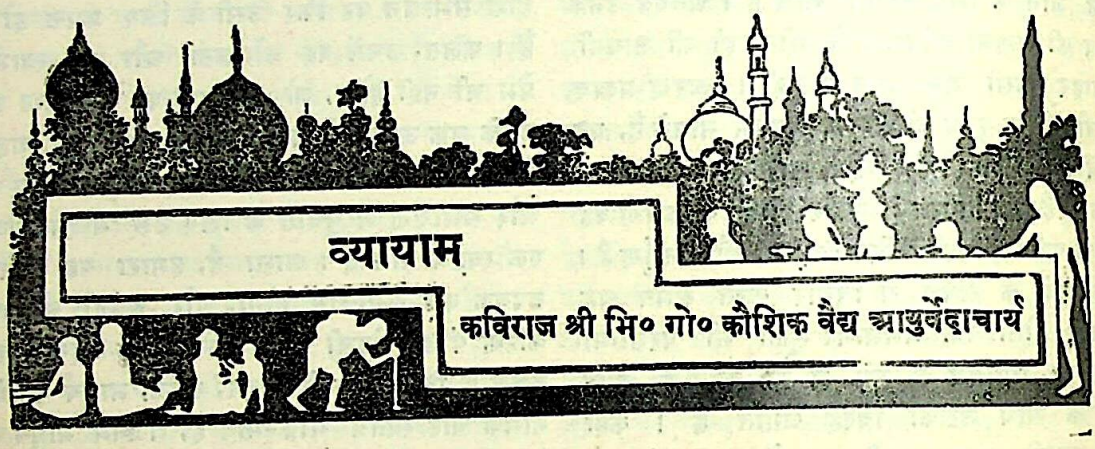

व्यायाम

कविराज श्री भि० गो० कौशिक वैद्य आयुर्वेदाचार्य

शरीर को स्वस्थ, सुन्दर और सुदृढ़ बनाने के लिए व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। शरीर की प्रत्येक क्रिया के यथावत् संचालन के लिए श्रम की आवश्यकता है; क्योंकि श्रम के बिना भोजन भी अच्छी तरह नहीं पचता, जिससे शरीर को पुष्ट करनेवाला रक्त काफ़ी मात्रा में नहीं बन पाता।

जो व्यक्ति दिन-रात आलस्य में पलँग, सोफ़े या गद्दियों पर पड़े-पड़े समय बिताते हैं, उनके शरीर बेहद मोटे, भद्दे, बेडौल, आकर्षणरहित, निकम्मे और बलहीन हो जाते हैं। इसके विपरीत श्रमशील किसान, मज़दूर तथा शहरों के अन्य व्यक्ति, जो पर्याप्त परिश्रम के काम करते हैं, स्वस्थ, हृष्टपुष्ट (अनियमित पुष्ट नहीं, शरीर सुडौल, मांस यथास्थान बढ़ा हुआ होता है), बलवान् और सहिष्णु होते हैं। दीर्घायु व्यक्ति भी शहरों की अपेक्षा देहात में ही अधिक पाये जाते हैं; क्योंकि वहाँ प्रत्येक व्यक्ति कुछ न कुछ व्यायाम करता है।

भारतवर्ष में पहले व्यायाम का प्रचार बहुत अधिक था। प्रत्येक गाँव में, क़स्बे में, शहर में वहाँ की जन-संख्या के अनुसार अखाड़े हुआ करते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन के प्रारम्भिक भाग में अर्थात् किशोर अवस्था में नियमित रूप से व्यायाम करता, कुश्ती लड़ता और कुश्ती लड़ने के लिए दंगलों में भाग लेता था। ये दंगल छोटे-छोटे गाँवों से लेकर बड़े-बड़े शहरों में सर्वत्र प्रायः होते रहते थे, जिनमें लड़नेवालों को हर तरह से प्रोत्साहन दिया जाता था। जनता और शासक, दोनों वर्गों के लोग इसमें भाग लेकर मल्लविद्या के अभ्यासी पहलवानों को प्रोत्साहित करते थे। उन्हें पुरस्कार मिलते थे। अच्छे-अच्छे पहलवानों को राज्य की ओर से मासिक वृत्ति भी मिलती थी। उस समय देश में हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, विशालकाय व्यक्ति ही नज़र आते थे। पर अब, जब कि व्यायाम की प्रथा बहुत गिर गई है, देश में दरिद्रता है, राज्य की ओर से मल्लविद्या को कोई प्रोत्साहन नहीं है, जनता में भी इसका आदर घट गया है, लोग मल्लविद्या पर कम ध्यान देते हैं और इसी से दुर्बल, क्षीणकाय, अशक्त, अस्वस्थ और बेडौल, चर्बीले, मोटे (जिन्हें 'फफ्फस' कहते हैं) नज़र आते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जो शारीरिक चेष्टाएँ शरीर की स्थिरता और दृढ़ता लिए शरीर के बल को बढ़ाने की इच्छा से की जाती उनको व्यायाम कहते हैं। एक प्रकार से व्यायाम की अधिक मात्रा को ही कहते हैं।

चरकाचार्य ने भी व्यायाम की यही परिभाषा है—

शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्धिनी।
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्॥

—चरकसंहिता सू० स्था० अ० ७

जो व्यक्ति परिस्थितिवश विधिपूर्वक व्यायाम नहीं ते, जैसे किसान, जिन्हें अपने घरेलू कामकाज कृषि-कार्य) से ही इतना अवकाश नहीं मिलता है, र आर्थिक दशा ठीक न होने के कारण घृत, दुग्ध दि पौष्टिक आहार का प्रबन्ध भी नहीं हो सकता व्यायाम के बाद स्निग्ध आहार परमावश्यक है); जदूर, जो दिन-भर परिश्रम करने के बाद सायंकाल इतना शिथिल हो जाता है कि किसी भी परिश्रम काम को करने में असमर्थ होता है, तथा जिसे ा भोजन भी कठिनता से प्राप्त होता है, उसके लिए ायाम के अनुकूल स्निग्ध पौष्टिक भोजन कहाँ से मल सकता है। उनके भोजन में अगर कुछ स्नेह की त्रा बढ़ाई जाय, तो वे बिना व्यायाम के ही पुष्ट, स्थ और बलवान् रह सकते हैं, क्योंकि श्रम की धिक और नियमित मात्रा ही तो व्यायाम है।

आप प्रश्न कर सकते हैं कि शहरी नागरिक, जो ाश्चात्य शिक्षा से शिक्षित हैं, नियमित रूप से ायाम करते ही हैं, उन्हें क्या व्यायाम का फल नहीं ाप्त होता? आपके विचार में अँगरेज़ी खेल, फुटबाल, ॉलीबाल, हाकी, क्रिकेट, बैडमिन्टन, टेनिस आदि, खेलना व्यायाम ही है। किन्तु उसे विशुद्ध व्यायाम हीं कह सकते। वह व्यायाम का विकृत रूप है। वास्तव में तो वह परिश्रम ही है, इसी से उसके द्वारा व्यायाम का पूरा-पूरा लाभ नहीं प्राप्त होता।

व्यायाम के लिए यह आवश्यक है कि शरीर पर सिवा लँगोट के कोई और वस्त्र न हो, जिससे शरीर को खुली हुई स्वच्छन्द वायु का, जो समीप में उगी हुई वनस्पतियों और सुगन्धित पौदों के संसर्ग से सुवासित होने के कारण प्राणप्रद हो रही है, पूर्ण और सुखद स्पर्श मिल सके, जिससे शरीर के रोम प्रफुल्ल, प्रसन्न और पुष्ट हो जायँ। इन रोमकूपों द्वारा गई हुई हवा रक्त को प्रसन्न, विमल (शुद्ध, स्वच्छ) करने में समर्थ होती है।

जब व्यायाम से शरीर के रोमछिद्र खुल जाते हैं, तब उनमें से शरीर का मल-स्वेद निकलने लग जाता है, जिससे रक्त (मेद-मांस भी) शुद्ध होता है, और वायु का प्रवेश होने से नवजीवन का संचार होता है। सूर्य की किरणें (विशेषतः प्रभात की प्राणदायिनी बेला में बाल सूर्य की अरुण तरुण किरणें) शरीर के भीतर अपनी शक्ति भरकर जीवनी शक्ति को बढ़ाती हैं। इससे शरीर की इन्द्रियाँ (ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ) विशेष प्रफुल्ल, सचेत और बलवान् हो जाती हैं। स्मरण-शक्ति तीव्र होती है, शरीर के स्नायु, मांसपेशी पुष्ट, दृढ़ और सहनशील बनते हैं। ज्ञानतन्तु जाग्रत् तथा अधिक क्रियाशील हो जाते हैं।

व्यायाम से सुख, आनन्द, कान्ति और परम आरोग्य मिलता है, एवं शरीर में समान विभागपूर्वक (अर्थात् प्रत्येक अंग अनुपात से पुष्ट, न कहीं अधिक मोटा न कहीं कम मोटा, जिससे भद्दापन न मालूम हो) वृद्धि होती है। व्यायाम द्वारा अग्नि की भी वृद्धि होती है, जिससे विरुद्ध भोजन भी (कच्चा अथवा पका) दोष-रहित होकर पच जाता है। शरीर में फ़ुर्ती, स्थिरता, हल्कापन और शुद्धि होती है। श्रम, क्लम, प्यास, गर्मी, सर्दी, चोट और भार सहने की शक्ति उत्पन्न होती है। मोटापन दूर करने के लिए तो व्यायाम से अच्छा कोई उपाय है ही नहीं।

पाश्चात्य शैली के व्यायाम प्रायः सायंकाल को ही होते हैं, और उस समय भी फ़ैशन के वशीभूत पाश्चात्य सभ्यतानुरागी नागरिक मोज़े, नेकर, कमीज़ आदि वस्त्र अवश्य पहने होते हैं, जिससे थोड़े श्रम से ही अधिक परिश्रम मालूम देता है, तथा स्वेद अधिक और शीघ्रता से आता है। फिर व्यायाम (जो भी कोई अँगरेज़ी खेल खेल रहे हों उनमें) भी पर्याप्त नहीं हो पाता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कपड़े पहनने से शरीर को स्वच्छ सुवासित वायु का लाभप्रद स्पर्श तथा सूर्यरश्मियों की शक्ति का प्रवेश, जो प्रकाश के सूक्ष्म प्रवाह द्वारा प्राप्त होता है (अर्थात् चाहे धूप न होकर छाया में ही खेल हो, तो भी लाभ मिल जाता है), नहीं मिल सकता। इसलिए ये खेल व्यायाम के समान नहीं हो सकते।

इस प्रकार के व्यायाम (अँगरेज़ी खेलों) में शरीर के प्रत्येक अवयव पर समान मात्रा में प्रभाव नहीं पड़ता। अर्थात् एकांगी श्रम ही होता है। स्वेद भी सर्वत्र समान रूप में नहीं आता। इससे सभी अवयव बलवान् नहीं हो पाते।

इसके विपरीत भारतीय व्यायाम से (जिसे पूर्ण रूप से व्यायाम कहा जा सकता है) अर्थात् डण्ड-बैठक से सम्पूर्ण अवयव समान रूप से थक जाते हैं, जिससे प्रत्येक अवयव का व्यायाम हो जाता है। सभी अवयव एक साथ पुष्ट, स्वस्थ और बलिष्ठ होते हैं।

यदि प्रतिद्वन्द्विता के भाव को लेकर ही तुलना करें, तो भी प्राचीन प्रणाली ही उत्कृष्ट प्रमाणित होती है। पाश्चात्य खेलों में भी सामूहिक प्रतिद्वन्द्विता होती है। इसका निर्णय एकमात्र दो व्यक्तियों की प्रतिद्वन्द्विता से ही नहीं हो पाता, अपितु कई-कई व्यक्ति एक साथ उतरते हैं, और अन्त में जाकर विजय का निश्चय होता है। इसलिए किसी व्यक्ति को अधिक श्रम करना पड़ता है, किसी को कम। पूरा पराक्रम प्रकट करने का अवसर भी प्रत्येक व्यक्ति को नहीं मिल पाता।

किन्तु भारतीय प्रतिद्वन्द्विता (व्यायाम अर्थात् कुश्ती) में समान बल, वय और शरीरवाले दो ही व्यक्ति अपने बलकौशल का निश्चय करने के लिए अखाड़े में उतरते हैं। वहाँ मसाले (तेल तथा सुगंधित द्रव्य), मिश्रित मिट्टी (चिकनी, साफ़, कंकड़-रहित) और जल से काफ़ी नरमी रहती है। वह मिट्टी शरीर की मांस-पेशियों को दृढ़ करती है। दोनों पक्ष अपने-अपने बल का प्रयोग करते हैं, साथ ही कौशल भी दिखाते हैं। अधिक बलवान् और कुशल पहलवान (मल्ल-विद्या में निपुण और दाँवपेचों का मर्मज्ञ) दूसरे प्रतिद्वन्द्वी को बिलकुल विवश—चित कर देता है, जिससे उसकी छाती दर्शकों को स्पष्ट दिखाई दे जाय एवं पीठ पर धूल लग जाय। तभी वह विजयी समझा जाता है।

कभी-कभी विजय का निश्चय आवश्यक न समझकर बल-प्रदर्शन और मल्लविद्या का अभ्यास करने के लिए ही आपस में कुश्ती लड़ते हैं, जिसे ज़ोर करना कहते हैं। इसमें विजयी और विजित का निर्णय नहीं किया जाता; प्रत्युत जब तक दोनों लड़नेवाले थक न जायँ, कुश्ती लड़ते रहते हैं।

इस प्रकार के व्यायाम से साहस, स्फूर्ति, शक्ति, निर्भीकता की वृद्धि के साथ ही युद्ध-चातुरी, आक्रमण रोकने की विधि, उछल, प्रहार सहने की शक्ति और शत्रु का सामना करने का अभ्यास उत्पन्न होता है, जो जीवन-संग्राम के लिए बहुत उपयोगी है।

इस युग में, जब कि आक्रमण करनेवाले दुष्ट गुण्डे हर घड़ी नागरिकों की प्रतिष्ठा और सम्पत्ति हरने के लिए तैयार रहते हैं, प्रत्येक व्यक्ति को अपना शरीर व्यायाम द्वारा स्वस्थ, सुदृढ़, पुष्ट और बलवान् बनाना चाहिए, तथा कुश्ती की कला में निपुण होकर अपनी तथा अपने आश्रितों की रक्षा में समर्थ बनना चाहिए।

व्यायाम से हड्डियाँ मज़बूत और पुष्ट होती हैं। हड्डियाँ शरीर का आधार हैं। अर्थात् शरीर के अवयव मांस, मेद, रक्त-आशय यंत्र आदि अस्थियों के सहारे ही स्थित हैं। जिस प्रकार मकान बनाने के लिए उसकी दीवार खड़ी करने को पत्थर, लोहा या लकड़ी का ढाँचा खड़ा कर लेते हैं, बाद में उसके सहारे सहारे ईंट चुनते हैं, उसी प्रकार अस्थियों से शरीर का ढाँचा बना है। यदि ढाँचा दृढ़ होगा और अधिक समय तक ठहर सकेगा तो मकान भी अधिक समय तक स्थायी रहेगा, और ढाँचे की कमज़ोरी से मकान भी ढाँचा टूटने के कारण जल्दी गिर जायगा। इसी प्रकार यदि अस्थियाँ दृढ़, पुष्ट और अधिक समय तक स्थित रहनेवाली होंगी तो शरीर भी अधिक समय तक स्थिर रहेगा, अर्थात् दीर्घायु होगी। व्यायाम दीर्घायु प्राप्त करने का एक अति उत्तम साधन है।

व्यायामशील व्यक्ति पर सहज ही वृद्धावस्था का आक्रमण नहीं हो पाता। इसका आशय यही है कि वृद्धावस्था आने पर भी शरीर का पौरुष—पराक्रम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ं थकता। व्यायाम के प्रभाव से बल-वीर्य और कार्य-ता इतनी नहीं घटती, जिससे वृद्धावस्था के लक्षण ट हो जायँ। व्यायामशील व्यक्ति इसी कारण अधिक क्रमी, दृढ़, साहसी, शक्तिशाली और दीर्घायु पाये जाते आजकल जितने दीर्घायुवाले व्यक्ति हैं (जिनकी यु ७० वर्ष से ऊपर है) सबके सब कसरती हैं, ात् किशोर अवस्था के प्रारम्भ से लेकर वृद्धावस्था के म्भ तक नियमित रूप से व्यायाम के अभ्यासी रहे हैं, र अब भी कुछ न कुछ हलका श्रम करते ही रहते (चाहे उन्हें विश्राम की पूरी अमीरी सुविधा ही क्यों न हो।)। कितने ही अमीर नियमित रूप से यायाम के उपासक हैं, अतः उनका स्वास्थ्य देहातियों अपेक्षा, जिनका स्वास्थ्य सामान्यतया श्रेष्ठ गिना ता है, कहीं अधिक उत्तम होता है। इससे यही प्रकट ता है कि अच्छे स्वास्थ्य के लिए स्वच्छन्द वायु और म जल के साथ ही व्यायाम भी अत्यन्त आवश्यक है। सब प्रकार की व्यायाम-विधियों में भारतीय व्यायाम-ति ही सर्वश्रेष्ठ है। इसमें पाश्चात्य व्यायाम-प्रणालियों तुलना में कुछ भी ख़र्च नहीं होता। जर्मनी के सर्वश्रेष्ठ स्कार-प्राप्त ख्यातनामा मि० हेरक्रेमर का कथन है—

"सब प्रकार के व्यायामों में कुश्ती ही सर्वश्रेष्ठ व्या-म है। इससे केवल शरीर में बल ही नहीं बढ़ता, ल्कि मन का बल और दम भी बढ़ता है। इसके थ ही आत्मरक्षा करने की शक्ति भी पैदा हो जाती तथा मस्तिष्क परिचालन करने की शक्ति भी पैदा जाती है।"

उपर्युक्त कथन का प्रमाण यही है कि बहुत दिनों से संसार के सर्वश्रेष्ठ पहलवान भारतवर्ष में ही होते आये हैं। इस विज्ञान-युग में, जब कि योरप और अमेरिका बहुत उन्नत अवस्था में हैं, आधुनिक भारतवर्ष की अपेक्षा प्रत्येक विषय में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं, और वहाँ के निवासियों के शरीर का आकार, शक्ति का परिमाण तथा जीवन की अवधि (आयु) आदि का अनुपात भी भारतवासियों की अपेक्षा अधिक है, ऐसे पहलवान न तैयार कर सके, जो भारतीय पहलवानों को पराजित कर सकें। अब तक जितने पाश्चात्य पहलवान भारतीय पहलवानों से लड़े हैं, सबके सब पराजित हुए हैं। यह स्थिति तो तब है, जब कि पाश्चात्य देशों को राष्ट्र (जनता) और गवर्नमेंट की ओर से सब प्रकार की सुविधाएँ पूरी तरह से प्राप्त हैं और भारत में इस तरह की कोई सुविधा नहीं है। यदि भारत में पश्चिम की सी सुविधाएँ मिलें, तो भारतीयों की यह कला और भी उन्नति करे। इससे प्रमाणित होता है कि भारतीय व्यायाम-पद्धति ही संसार की सर्वश्रेष्ठ और आदर्श व्यायाम-पद्धति है। अमेरिका के एक मासिक पत्र में इस सम्बन्ध में प्रकाशित हुआ था—

"पूर्णतया उपयोगी शक्ति देनेवाली विधि भारतीय व्यायाम-पद्धति ही है, जिससे शक्ति के मुख्य केन्द्र-अंगों का व्यायाम होता है।

डंड (भारतीय व्यायाम-पद्धति का मुख्य व्यायाम) से मध्य शरीर की मांसपेशियाँ, पीठ, रीढ़ (जहाँ नाड़ी-मण्डल (ज्ञानतन्तु) का केन्द्र है), पेट, बग़ल, कूले और

सितार-मार्ग (प्रथम भाग)

लेखक—श्रीपद वंद्योपाध्याय

इस पुस्तक में बहुत-से अच्छे-अच्छे उस्तादों की गतें तोड़े, झाले और आलाप के साथ दी गई हैं। संगीतशास्त्र की पारिभाषिक व्याख्या और सितार-सम्बन्धी सभी बातें विस्तारपूर्वक वर्णित हैं। मूल्य २) मात्र।

मिलने का पता—मैरिस म्यूज़िक कालिज, लखनऊ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाँघों की मांसपेशियाँ एवं शरीर के अन्य प्राण-केन्द्र अवयवों का व्यायाम होता है। इससे भुजा, कंधे और छाती ही पुष्ट और विशाल नहीं होते, प्रत्युत प्रत्येक अवयवों की जीवनी शक्ति को बल मिलता है। यह हिन्दुओं की (भारतीय) डण्ड करने की व्यायाम-विधि का चमत्कार है।

यदि कोई व्यक्ति अपने को दूसरों की अपेक्षा बलवान् बनाना चाहे तो उसे अपनी पीठ और जाँघों के अणुओं की भी वृद्धि करनी चाहिए, और यह डंड से ही संभव है।

डंड करने की भारतीय (व्यायाम) पद्धति हज़ारों वर्ष से प्रचलित रही है, जिसने भारतीय शरीरों के बहुत-से अवयवों की वृद्धि की है। संभवतः यही भारतीय (व्यायाम) पद्धति का गुप्त रहस्य है।

अँगरेज़ विद्वानों ने, जो भारतीय भाषा और सभ्यता के भी ज्ञाता थे, इस व्यायाम-पद्धति का अध्ययन किया और दूसरी योरप की (व्यायाम) पद्धतियों के साथ ही भारतीय व्यायाम-पद्धति को भी (व्यवहार में) ग्रहण कर लिया है।"

व्यायाम का प्रचार अब बढ़ चला है; किन्तु पाश्चात्य ढंग के व्यायाम ही स्कूल-कॉलेज, क्लब आदि में किये जाते हैं। किन्तु आवश्यकता है भारतीय व्यायाम डण्ड, बैठक और कुश्ती की। लकड़ी चलाना, मुद्गर घुमाना आदि युद्धविद्या के भी सीखने की ज़रूरत है। अस्तु, अब इस ओर जनता का ध्यान जाना चाहिए।

हमारे प्रान्त में काँग्रेसी सरकार है। उसे जनता की रुचि तथा लाभ का, साथ ही राष्ट्र की उन्नति का अधिक ध्यान है। इससे आशा की जा सकती है कि सरकार भारतीय व्यायाम-पद्धति को प्रोत्साहन देगी एवं स्कूल-कॉलेजों में उसका प्रचार करेगी।

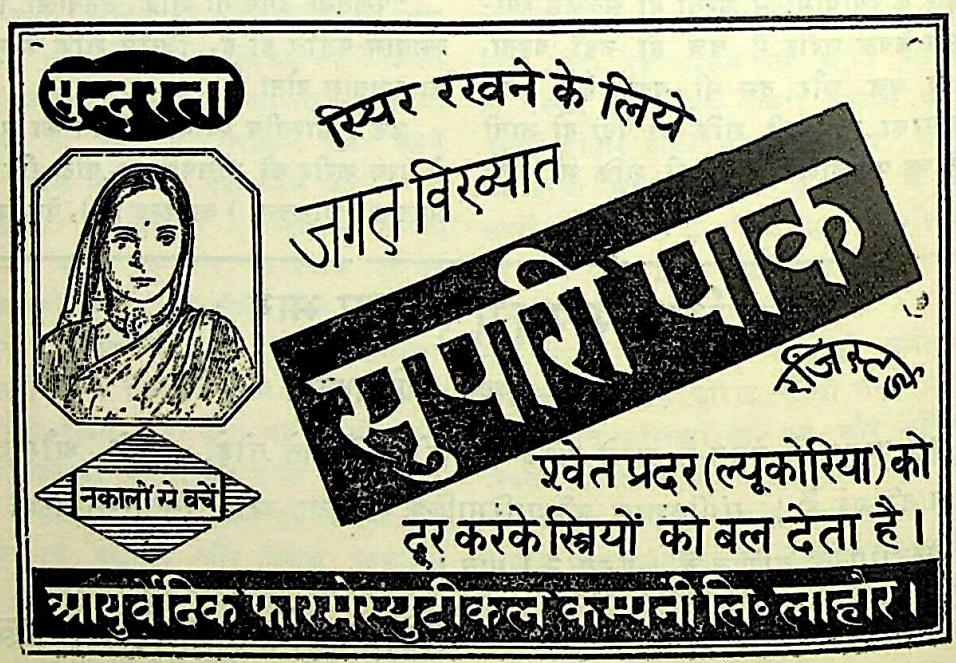

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'मिस्टर ४२०'

एकांकी नाटक

श्रीकुँअर मोहनसिंह सेंगर

पात्र

मिस्टर के० के० वर्मा—नायक
मिसेज़ प्रभा वर्मा—मि० वर्मा की धर्मपत्नी
जस्टिस तिवारी—हाईकोर्ट के जज
मिस सुशीला तिवारी—जस्टिस तिवारी की सुशिक्षिता लड़की
श्रीप्रबोधशंकर वाजपेयी—सिटी-मजिस्ट्रेट
श्रीविनोदशंकर वाजपेयी—सिटी-मजिस्ट्रेट का बी० ए० फ़ेल बेकार लड़का
मुंशी हरभगवान—हाईकोर्ट के एक रिटायर्ड मुहर्रिर

पहला दृश्य

(स्थान—सिविल-लाइन्स में एक छोटी-सी कोठी, जिसके चारों तरफ़ ख़ासा अच्छा बाग़ लगा है । कोठी के बाहर 'मॉडर्न फ़िल्म कार्पोरेशन लिमिटेड' का एक बहुत बड़ा साइनबोर्ड लगा है । उसके पास ही एक लेटरबक्स लगा है । फाटक पर एक स्टूल पड़ा है, जिस पर चपरासी कभी बैठ जाता है और कभी उठकर इधर-उधर टहलने लगता है । कोठी की सीढ़ियाँ चढ़ते ही दाहनी ओर एक कमरा है, जिसके बाहर पीतल के चमकीले अक्षरों में लिखा है 'के० के० वर्मा, मैनेजिंग डाइरेक्टर' । कमरे के दरवाज़े पर एक सुन्दर रंग-बिरंगी चिक लटक रही है । भीतर एक बड़ी मेज़ पड़ी है, जिसके पास रक्खी रिवाल्विंग-कुर्सी पर मि० वर्मा बैठे हैं । मेज़ पर इधर-उधर कई फ़ाइलें, काग़ज़, अख़बारों की कतरनें, सूचीपत्र, चिट्ठियाँ, पेपरवेट, क़लम-दावात, पिन-कुशन और बहुत-सी आवश्यक-अनावश्यक चीज़ें बिखरी पड़ी हैं । मेज़ के चारों ओर कई कुर्सियाँ और सोफ़ा-सेट रक्खे हैं । कमरे की दीवारों पर कई तरह के कलेण्डर, नेताओं तथा ऐक्टर-ऐक्ट्रेसों के चित्र लगे हैं । कमरा ख़ूब सजाया हुआ है । ऊपर बिजली का पंखा धीरे-धीरे घूम रहा है । समय—सुबह के कोई ८-८॥ बजे होंगे ।)

मि० वर्मा (स्वगत)—आज बड़ी देर से दाहनी आँख फड़क रही है । सुबह उठते ही मैंने एक मुर्दा भी गुज़रता हुआ देखा था । (अनायास कलेंडर की ओर देखकर) ओहो, है भी आज बुधवार न ! यह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिन मेरे जीवन में बड़ा शुभ साबित हुआ है। मैंने इस दिन जो-जो काम किये, सबमें बराबर सफलता मिली। आज ज़रूर कोई न कोई बड़ा शिकार फँसेगा। देखें....

(चपरासी का प्रवेश)

चपरासी—हुज़ूर, एक आदमी आया है। कहता है, बड़े साहब से मिलना है।

मि० वर्मा—कैसा आदमी है? क्या चाहता है? नाम-काम के बारे में भी तो कुछ पूछना था।

चपरासी—आदमी तो कोई शरीफ़ ही मालूम होता है। काम पूछा तो बोला, बस, साहब से मिलना ही है। उन्हीं से काम कहूँगा। और कुछ बताता नहीं।

मि० वर्मा—देखो, तुम्हें यहाँ काम करते एक सप्ताह हो गया, पर अभी तक ये मामूली-सी बातें भी तुम नहीं सीख सके। अच्छा, आइन्दा ख़याल रखना। बुलाओ, कौन है वह आदमी।

(चपरासी जाता है और भंगी को साथ लिये हुए लौटता है।)

मि० वर्मा (चिक में से आगंतुक को आता देखकर)—अक्खाह, आइए। तशरीफ़ रखि..... (अचानक भंगी को पहचानकर तेवर बदलते हुए) क्यों बे, ऐसी तुझ पर क्या गाज गिर रही थी, जो तड़के ही आ धमका। जानता नहीं, यह आफ़िस का क़ीमती वक़्त तुझ-जैसे पाजियों के लिए नहीं है। चल, निकल बाहर।

भंगी (गिड़गिड़ाकर)—इस ख़ता के लिए हुज़ूर माफ़ी बख़्शें। एक बड़ा ज़रूरी काम है, वर्ना मैं ख़ुद सरकार को इस वक़्त तकलीफ़ देने की जुरअत न करता।

मि० वर्मा (डाँटते हुए)—ऐसा क्या ज़रूरी काम है?

भंगी—सरकार, आपकी मेहतरानी के आज सुबह ही बच्चा हुआ है। मेरे पास एक भी पैसा नहीं कि ज़च्चा के लिए कुछ सामान ला सकूँ। घर में तो भूँजी भाँग भी नहीं है। इसी लिए सरकार.....

मि० वर्मा—नहीं है तो हम क्या करें। इसकी फ़िक्र तुझे पहले से करनी चाहिए थी। आज बैंक की छुट्टी है, इससे रुपया नहीं निकल सकता। फिर किसी दिन आना।

भंगी—सरकार का हुक्म सिर-आँखों पर। मगर आपकी मेहतरानी का क्या हाल होगा, मालिक? वह ग़रीबनी भूखी.....

मि० वर्मा (बात काटकर)—चपरासी, निकालो इस नामाक़ूल को बाहर। इस वक़्त हमें एक मिनट की भी फ़ुरसत नहीं है।

(चपरासी आगे बढ़ता है। भंगी उसके कहने से पहले ही जला-भुना बड़बड़ाता हुआ बाहर चला जाता है। घंटी बजती है। चपरासी बाहर जाने को होता है।)

मि० वर्मा (चपरासी को टोककर)—देखो, फिर किसी फ़ालतू आदमी को हमारे पास मत ले आना। अगर कोई ऐसा-वैसा आदमी हो तो कह देना, साहब बाहर गये हैं।

चपरासी—बहुत अच्छा हुज़ूर। (सलाम करके चला जाता है।)

मि० वर्मा (स्वगत)—बिज़नेस का बड़ा बुरा हाल है। जैसे-तैसे करके फ़िल्म-कंपनी खोली, तो यहाँ भी वही 'डिप्रैशन' (आर्थिक दुरवस्था) का भूत पीछा नहीं छोड़ता। (बाहर आगंतुक और चपरासी में तकरार होती सुनकर पुकारता है) चपरासी, चपरासी।

(चपरासी का प्रवेश)

चपरासी—जी हुज़ूर।

मि० वर्मा—यह क्या गड़बड़ मचा रक्खी है? कौन आया है बाहर?

चपरासी—सरकार एक लफ़ंगा-सा नौजवान है। कहता है मैं गाना, बजाना, नाचना सब कुछ जानता हूँ। सरकार के पास.....

मि० वर्मा—हाँ, हाँ, ठीक है, तुमने उससे कुछ कहा तो नहीं?

चपरासी—सरकार, हम बोल दिये कि साहब घर में नहीं हैं।

मि० वर्मा (मेज़ पर घूँसा मारकर)—अरे बेवक़ूफ़, आदमी देखकर बात किया कर। वह यहाँ के सिटी-मजिस्ट्रेट का लड़का है। अच्छा, उसे फ़ौरन् भीतर ला।

(चपरासी विनोद को लेकर लौटता है।)

मि० वर्मा (आगे बढ़कर हाथ मिलाते हुए)—माफ़ कीजिएगा मि० विनोद, यह हमारा नया चपरासी तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिलकुल गधा है। शरीफ़ आदमियों से पेश आना तो जानता ही नहीं। इतना बेवक़ूफ़ है कि.....

विनोद (मुस्कराकर सोफ़े पर बैठते हुए)—कोई बात नहीं मि० वर्मा, नये आदमी से ग़लती हो ही जाती है। मैंने इसलिए तकलीफ़ दी है कि शायद आपने मेरे बारे में अब कुछ सोच लिया हो।

मि० वर्मा (सिगरेट-केस विनोद के आगे बढ़ाते हुए)—लीजिए। भई, आपके बारे में सोचना क्या? मैंने आपके बारे में बड़ी तगड़ी सिफ़ारिश की थी। हमारे और-और डाइरेक्टरों ने भी आपको लेना मंज़ूर कर लिया है। अब तो जो कुछ देर है, आप ही की तरफ़ से है।

विनोद (सिगरेट का धुआँ छोड़ते हुए)—मेरी तरफ़ से देर कैसी? मैं तो सिर्फ़ आपकी स्वीकृति की प्रतीक्षा में ही था।

मि० वर्मा—लेकिन वह तो मिल चुकी। अब तो आप एग्रीमेंट (प्रतिज्ञापत्र) भर दें और ५ हज़ार रुपये सिक्यूरिटी के जमा करा दें। फिर हम जल्दी ही काम शुरू कर देंगे।

विनोद—पर सिक्यूरिटी के संबंध में मैं आपको अपनी दिक़्क़त बता चुका हूँ। पिताजी नक़द ५ हज़ार रुपये देने के लिए किसी भी हालत में तैयार नहीं हैं।

मि० वर्मा—मि० विनोद, आप मेरी स्थिति को भी ज़रा समझिए। देखिए, अगर मैं कंपनी का मालिक होता, तो आपसे एक फूटी कौड़ी भी नहीं माँगता। मैं जानता हूँ कि आप और आपके पिता किस हैसियत और प्रतिष्ठा के आदमी हैं। लेकिन चूँकि यह एक लिमिटेड कंपनी है, इसलिए मैं कंपनी के क़ानून-क़ायदों से बँधा हूँ। जो सब डाइरेक्टर कर देंगे, वह मेरे लिए पत्थर की लीक होगा।

विनोद—तो सब डाइरेक्टर यह तय कर चुके हैं कि हर अभिनेता और अभिनेत्री से सिक्यूरिटी ली जाय?

मि० वर्मा—जी हाँ, यह आपने विज्ञापन में भी पढ़ा होगा।

विनोद—पर आप ज़रा यह तो सोचिए कि अभिनेता-अभिनेत्रियों से सिक्यूरिटी लेने का अर्थ ही क्या? जब आप उनसे एग्रीमेंट भरवा रहे हैं, तो फिर सिक्यूरिटी की आवश्यकता ही क्या? सिक्यूरिटी तो आप और कर्मचारियों से लें।

मि० वर्मा—आप ठीक कहते हैं मि० विनोद, लेकिन कंपनी के नियम के आगे मैं मजबूर हूँ।

(टेलीफ़ोन की घंटी बजती है। मि० वर्मा चोंगा उठा लेते हैं और विनोद से 'एक मिनट के लिए माफ़ कीजिएगा' कहकर बात करने लगते हैं।)

मि० वर्मा—हलो, मैं वर्मा बोल रहा हूँ।

टेलीफ़ोन पर—मैं प्रभा हूँ। सिविल-अस्पताल से बोल रही हूँ। अभी दवा मिलने में यहाँ घंटे-आधघंटे की देर है। तब तक आप नौकर से सब्ज़ी वग़ैरह मँगवा लें। शायद मुझे अधिक देर हो जाय।

मि० वर्मा (विनोद को प्रभावित करने की भावना से)—हलो मिस सुशीला, आपने तो फिर दर्शन ही नहीं दिये। मुझे आपसे कुछ ज़रूरी बातें करनी थीं, क्योंकि हम दशहरे से नये फ़िल्म का शूटिंग शुरू कर देना चाहते हैं।

प्रभा (टेलीफ़ोन पर)—यह तुम क्या बक रहे हो? पागल तो नहीं हो गये कहीं? मैं मिस सुशीला नहीं, मिसेज़ प्रभा वर्मा हूँ, समझे! मैंने कहा कि यहाँ मुझे ज़रा देर लग.....

मि० वर्मा (टेलीफ़ोन पर)—अच्छा, आपने सिक्यूरिटी का इंतज़ाम कर लिया। ख़ैर अच्छा हुआ, वैसे कोई जल्दी तो थी नहीं।

प्रभा (टेलीफ़ोन पर)—अरे कुछ दिमाग़ भी ठिकाने है या नहीं?

मि० वर्मा (टेलीफ़ोन पर)—जी नहीं, गवर्नमेंट प्रामिसरी नोट लेना तो शायद कंपनी के डाइरेक्टर मंज़ूर न करें, आप कैश (नक़द) ही भिजवा दीजिए।

प्रभा (टेलीफ़ोन पर)—यह तुम कह क्या रहे हो? कहीं मैंने ग़लत नंबर पर तो टेलीफ़ोन नहीं कर.....

मि० वर्मा (टेलीफ़ोन पर)—अच्छा, सिक्यूरिटी के रुपये लेकर आप ख़ुद ही शाम को यहाँ तशरीफ़ लावेंगी। बड़ी मेहरबानी है आपकी। मैं तो समझता हूँ कि मैं ही आपके दौलतख़ाने पर हाज़िर हो जाता।

प्रभा (टेलीफ़ोन पर झल्लाकर)—तुम्हारा सिर! मालूम होता है, आज बहुत ज़्यादा नशे में हो। अच्छा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुम जानो तुम्हारा काम जाने, मैं तो १–१½ घंटे से पहले आने की नहीं।

मि० वर्मा (टेलीफ़ोन पर)—हाँ, हाँ, मैं घर पर ही मिलूँगा, आप ज़रूर दर्शन दें। सात बजे मुझे फ़ुरसत हो ही जाती है। अच्छा नमस्ते। (चोंगा रख देता है)

विनोद (उत्सुकतापूर्वक)—यह कौन मिस सुशीला थीं?

मि० वर्मा—जी हाँ, जस्टिस तिवारी की लड़की मिस सुशीला तिवारी बी० ए०।

विनोद—तो आपने इनसे भी सिक्यूरिटी ली है?

मि० वर्मा—वह तो मैं आपसे पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि कंपनी के नियम के आगे हमारा कोई वश नहीं। किसी के साथ रू-रियायत नहीं की जा सकती। अगर हम जस्टिस तिवारी के लिहाज़ से उनसे सिक्यूरिटी न लें, तो फिर दूसरों से किस मुँह से सिक्यूरिटी के लिए कहें?

(विनोद कुछ सोचने लगता है। मि० वर्मा मेज़ की बाईं दराज खोलकर मिस सुशीला की फ़ोटो निकालकर विनोद के सामने रखते हैं।)

मि० वर्मा—क्यों मि० विनोद, ज़रा देखिए, हिरोइन (नायिका) के पार्ट के लिए यह बुरी तो नहीं रहेंगी।

विनोद (फ़ोटो को स्थिर दृष्टि से देखते हुए)—आप बुरी कह रहे हैं! मैं तो कहता हूँ कि ऐसी हिरोइन आपको हज़ारों-लाखों में ढूँढने पर भी नहीं मिल सकती। एक तो रूप, चेहरे का नक़्श और फिर शिक्षा, कुलीनता। और चाहिए ही क्या?

मि० वर्मा—पर देखिए, हमने बाहरी सौंदर्य को अधिक महत्त्व नहीं दिया है। हम चाहते हैं कि कंपनी में सब काम भले घर के लड़के-लड़कियाँ करें, तभी जिस आदर्श को हम समाज के सामने रखना चाहते हैं, वह पूरा हो सकता है। वैसे सौंदर्य तो वेश्याओं में है और गाने-नाचने को गवैये और कत्थक मिल सकते हैं; लेकिन हम कंपनी को मीनाबाज़ार नहीं बनाना चाहते। हमारा उद्देश्य धन कमाना नहीं, समाज-सेवा है।

विनोद—पर क्या मैं यह भी जान सकता हूँ कि आपने हीरो (नायक) का पार्ट किसे देने का निश्चय किया है?

मि० वर्मा—अभी तो मेरी निगाह आप पर ही है, लेकिन अगर आप सिक्यूरिटी न दे सके, तो फिर किसी और को ढूँढना होगा। वैसे मि० विनोद, आदमियों की तो दुनिया में कमी नहीं है, पर ख़याल इस बात का रखना है कि आदमी शरीफ़ हो, क्योंकि मिस सुशीला ऐरे-ग़ैरे के साथ काम करना हरगिज़ पसंद नहीं करेंगी।

विनोद—अच्छा, तो सिक्यूरिटी मैं कब तक ले आऊँ?

मि० वर्मा—आज शाम तक ही। अगर न हो तो कल सुबह। पर देखिए, अगर आज लावें तो कृपया आठ बजे के बाद तशरीफ़ लावें; क्योंकि ७ से ८ बजे तक मेरा मिस सुशीला के साथ एपाइंटमेंट है।

विनोद—लेकिन अगर मैं उसी समय आ जाऊँ तो क्या हर्ज है?

मि० वर्मा (मुस्कराते हुए)—हर्ज की तो इसमें कोई बात नहीं मिस्टर विनोद, पर बात यह है कि हमारे देश में अभी पढ़ी-लिखी लड़कियाँ भी बहुत आज़ाद ख़याल की नहीं हैं। उनमें संकोच और झेंपूपना काफ़ी है। शायद मिस सुशीला आपके सामने सब बातें खोल-कर कहना पसंद न करें। वैसे मुझे तो कोई एतराज़ नहीं।

विनोद (कुर्सी पर से उठते हुए)—नहीं, नहीं, कोई बात नहीं। मैं आठ बजे के बाद ही आ जाऊँगा या फिर कल सुबह। (हाथ आगे बढ़ाते हुए) अच्छा, अब इजाज़त दीजिए।

मि० वर्मा (हाथ मिलाते हुए)—अच्छा, बहुत कष्ट हुआ आपको। तो मैं आज रात को ८ बजे के बाद या कल सुबह आपकी प्रतीक्षा करूँगा।

विनोद—ज़रूर। (बाहर चला जाता है। मि० वर्मा मुस्कराकर सामने दीवार पर टँगे कलेंडर की ओर देखने और सीटी बजाने लगते हैं।)

दूसरा दृश्य

(स्थान—जस्टिस तिवारी के बँगले के सामने का दूब लगा हुआ मैदान। समय—संध्या के ५-६ बजे। एक छोटी मेज़ पर चाय का सामान और कई प्यालियाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रखी हैं। उसके चारों ओर ७-८ कुर्सियाँ पड़ी हैं, जिन पर जस्टिस तिवारी, मिस सुशीला, पंडित प्रबोध-शंकर वाजपेयी, मि० विनोदशंकर वाजपेयी, मुन्शी हरभगवान आदि बैठे चाय पी रहे हैं। कई कुर्सियाँ खाली पड़ी हैं)

जस्टिस तिवारी (चाय की ख़ाली प्याली मेज़ पर रखते हुए)—लेकिन वाजपेयीजी, आपको मुझसे ज़रा पूछ तो लेना चाहिए था। मैं कहीं बाहर तो गया नहीं था। मैंने तो उस कमबख़्त बर्मा का नाम तक नहीं सुना और न कभी उसकी सूरत ही देखी। फिर आप जानते हैं कि जस्टिस होते हुए मैं फ़िल्म-कंपनी का डाइरेक्टर या पार्टनर (हिस्सेदार) कैसे बन सकता हूँ ?

प्रबोधशंकर—भई क्या बताऊँ, उस वक़्त मेरी अक़्ल पर पत्थर पड़ गये थे। ज्यों ही मैं सुबह कचहरी जाने लगा कि विनोद की मा सिर हो गई। आँखों में आँसू भरकर बोली कि विनोद ने रात से खाना नहीं खाया है। आख़िर जवान लड़का है, बेकार कब तक बैठा रहे ? पाँच हज़ार के लिए क्या तुम उसकी ज़िंदगी बरबाद कर दोगे। आख़िर कमाया किसके लिए जाता है। तुम्हें अपनी आल-औलाद की भी फ़िक्र नहीं। और तिवारीजी, न मालूम क्या-क्या बातें उसकी मा ने कहीं। आख़िर और कोई चारा न देखकर मैंने ५ हज़ार का चेक काट दिया। मुझे क्या मालूम था कि यह बात होगी ?

मुं० हरभगवान—जो कुछ भी हो वाजपेयी साहब, आपने सख़्त ग़लती। अगर तिवारी साहब से आप नहीं मिल सकते थे, तो ख़ादिम तो मर नहीं गया था। मैं तो आपका इशारा पाते ही आधी रात को भी हाज़िर हो सकता था। आजकल दुनिया भला विश्वास करने लायक़ है ? साहब, मैं तो गाँठ से एक पैसा निकालकर देने से पहले ही दस बार आगा-पीछा सोचता हूँ।

ज० तिवारी—तुम क्या मुन्शीजी, हर शख़्स को सोचना चाहिए। देखते नहीं, ज़माना कितना बुरा है। हाथ को हाथ खाया चाहता है। दीन-धरम दुनिया में रहा कहाँ ?

मिस सुशीला (ख़ाली प्याली में केटली से चाय डालते हुए)—और मिस्टर विनोद, आप तो वाक़ई हीरो बनने लायक़ हैं ! किस फ़ुर्ती से आपने ५ हज़ार का सफ़ाया किया ? (सब ठहाका मारकर हँस पड़ते हैं। विनोद का नीचे झुका हुआ सिर और नीचे झुक जाता है। वह पाँव के अँगूठे से ज़मीन कुरेदने लगता है।)

प्रबोधचंद्र—पर बेटी सुशीला, तेरे चित्र ने भी तो उसे भ्रम में डाल दिया। आख़िर, उसने.....

सुशीला—यह आपने ख़ूब कही चाचाजी। चित्र का मतलब स्वीकृति तो नहीं हो सकता। कहीं से उठा लाया होगा मेरा चित्र और विनोद भाई साहब भी आ गये उसके झाँसे में। और कुछ नहीं तो मुझसे टेलीफ़ोन पर ही पूछ लेते। मैंने उस मर्दुए को कभी देखा तक नहीं। फिर (जस्टिस तिवारी की ओर आँखों से इशारा करते हुए) आप दद्दा का स्वभाव नहीं जानते ? क्या वे मुझे सिनेमा में पार्ट करने देंगे ? आप हमारे घर से कोई नावाक़िफ़ तो हैं नहीं।

ज० तिवारी—पर बेटी, यह तो तुम्हारी चाची के रोब में आ गये। तू जाकर ज़रा उनके भी तो कान खींच।

सुशीला—आज ही लीजिए।

प्रबोधचंद्र—अरे वही तो इस सारी गड़बड़ की जड़ है। जब देखो मुँह फुलाकर आँखों में आँसू भर लेती है और मातम मनाने बैठ जाती है।

मुं० हरभगवान—लेकिन माफ़ कीजिएगा वाजपेयी साहब, औरतों की अक़्ल पर चलनेवाले इन्सान हमेशा इसी तरह धोखा खाते हैं। आपको भी तो कुछ सोचना चाहिए था।

सुशीला—मैं तो यही नहीं समझ पाई कि आख़िर चाचाजी अदालत में फ़ैसले कैसे देते होंगे ?

ज० तिवारी (मुस्कराकर)—दे देते हैं अटकलपच्चू ! बड़ी अदालत में जाकर कम से कम ७० फ़ीसदी फ़ैसले तो उलट ही जाते हैं। क्यों वाजपेयीजी ?

प्रबोधचंद्र—हाँ साहब, ५ हज़ार रुपये गये सो तो गये, अब आप लोग और बना लीजिए।

सुशीला—इसमें बनाने की क्या बात है चाचाजी, आप कह दीजिए कि तक़दीर में यही लिखा था। रुपया तो हाथ का मैल है। सदा आता-जाता रहता है। आप ५ हज़ार रुपया तो चाहें तो एक दिन में सिर्फ़ एक मुक़दमे में ही कमा सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रबोधशंकर—सुशीला, तेरी ज़बान को अब ताला या लगाम ज़रूर लगानी पड़ेगी। मैं अकेला थोड़े ही हूँ, न मालूम कितनों के पाँच-पाँच हज़ार गये होंगे? वे सब भी तो आख़िर यह घाटा बर्दाश्त करेंगे ही।

मुं० हरभगवान—आप पाँच हज़ार की क्या कहते हैं, मैं तो कहता हूँ कि इसने लाखों पर हाथ साफ़ किया होगा। पहले एक प्रोवीज़न स्टोर खोला, फिर इंपोर्ट-एक्स्पोर्ट ब्यूरो, फिर बीमा-कंपनी, फिर बैंक, फिर प्रकाशन-भवन, फिर ज़मीनों और मकानों का कारोबार किया। न मालूम इसने क्या-क्या किया और सबमें रुपया हज़म किया। कम से कम ५-६ बार तो यह भारतीय दंड-विधान की धारा ४२० के मातहत सज़ा काट चुका है। मैं तो इसकी एक-एक नस से वाक़िफ़ हूँ। यह तो 'मिस्टर ४२०' के नाम से मशहूर हो चुका है।

सुशीला—लेकिन मुन्शीजी, आख़िर भागकर वह गया कहाँ होगा? कुछ पता नहीं लग सकता?

मुं० हरभगवान—पर पता लगने पर भी उससे कोई क्या ले लेगा। उसे सज़ा भले ही करवा दी जाय, वसूल तो एक कौड़ी होने की नहीं। अभी परसों ही एक डिग्रीदार ने उसका घर कुर्क़ करवाया है। पता चला है कि वह मकान उसका अपना नहीं, किराये का है, और पिछले ६-७ महीने का किराया भी चढ़ गया है। उसमें जो फ़र्नीचर है, वह भी किराये का है। उसका मालिक भी किराये के लिए रो रहा है। और तो और, बिजली और टेलीफ़ोनवाले भी रो रहे हैं।

सुशीला—तब तो वह पक्का ४२० है।

प्रबोधशंकर (उठते हुए)—इसमें क्या शक है? (जस्टिस तिवारी की ओर मुख़ातिब होकर) अच्छा तिवारीजी, आज्ञा हो! रविवार को फिर दर्शन करूँगा।

(सब उठ खड़े होते हैं। परस्पर अभिवादन कर प्रबोधशंकर, विनोदशंकर और मुंशी हरभगवान बँगले के फाटक की ओर चल पड़ते हैं। सुशीला और जस्टिस तिवारी कुछ बातचीत करते हुए बँगले में चले जाते हैं।)

पर्दा गिरता है

गर्भ गिराना महापाप है
वन्ध्याकारक दवा

कमज़ोर तथा बीमार स्त्रियाँ, जो बच्चा होने के कष्ट से छुटकारा पाना चाहती हों, इस दवा को मँगाकर केवल ५ दिन सेवन करें। गर्भ न रहेगा। मूल्य मय डाकख़र्च ४॥)

औरतों के गुप्त रोग का इलाज कराना हो तो रोग का पूरा हाल हिन्दी में साफ़-साफ़ लिखें। रोग के अनुसार दवा तजवीज़ करके लिख भेजी जावेगी।

पता—श्रीचपलादेवी वैद्या
चपला भवन, गली रावलिया मथुरा.

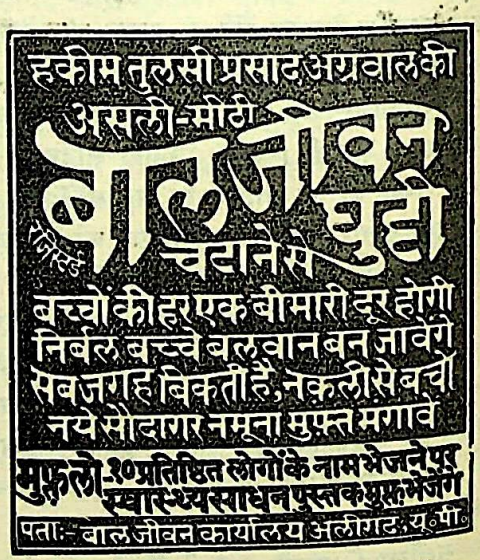

लखनऊ एजेंट—माताबदल पंसारी,
अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारत में इतिहास का निर्माण और उसका अध्ययन

श्रीयुत हरिमोहनलाल वर्मा बी० ए०

पूर्वजों की स्मृति को अक्षुण्ण बनाये रखने की लालसा मनुष्य में स्वाभाविक रूप से वर्तमान है। भूतकाल को फिर सजीव खड़ा कर देनेवाली बातों में उसे एक गहरे आनन्द की अनुभूति होती है। किन्तु मनोरंजन के अतिरिक्त पूर्वजों के गौरव की धरोहर कुछ और भी काम करती है। इस संचित निधि से घनिष्ठ परिचय प्राप्त हो जाने से मनुष्य में इस भाव का अनायास ही उद्रेक होता है कि वह अपने पूर्वजों की धवल कीर्ति को किसी प्रकार कलंकित न होने दे और यथाशक्ति उनसे बढ़कर निकले। इस प्रकार वह पूर्वजों के विगत जीवन से उत्साहित होकर वर्तमान में कार्य करते हुए अपनी भावी उन्नति के प्रयत्न में सन्नद्ध होता है। अतएव इतिहास, जो पूर्वापर घटनाओं को क्रमबद्ध रूप में ग्रथित करने का मूल्यवान् साधन है, प्रत्येक देश या जाति के लिए अपना विशेष महत्त्व रखता है।

इतिहास में विशाल साम्राज्यों के उत्कर्ष अथवा अपकर्ष, पारस्परिक युद्ध अथवा संधि का ब्योरेवार वर्णन होने से राजनीति का अंश उसमें अनिवार्य है। वर्तमान काल में जब अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ विश्व पर अपना व्यापक प्रभाव सिद्ध कर रही हैं, राजनीति के संस्पर्श में रहनेवाले इस लोकोपकारी साहित्य का अध्ययन अत्यावश्यक हो गया है। संसार में कहाँ क्या हो रहा है, अमुक घटना का किस देश पर क्या प्रभाव पड़ेगा, उस प्रभाव से कहाँ तक लाभ उठाया जा सकता है—इत्यादि बातें जिस सीमा तक राजनीति के अन्तर्गत आती हैं, उस सीमा तक इतिहास से भी उनका सम्बन्ध है। वस्तुतः इतिहास वह महान् शिक्षक है, जो अनुभव के आलोक से आधुनिक युग में सफलता-प्राप्ति के निमित्त जनगण में विवेक की जागृति करता है, और भावी संतान के समक्ष सुन्दर आदर्श उपस्थित करने के हेतु उन्हें निरन्तर उत्साहित करता है।

इतिहास का अभिप्राय केवल घटनाओं का वर्णन नहीं, अपितु उनका विश्लेषण तथा अनुशीलन भी उसका ध्येय होता है। अनुमान और कल्पना के सहारे व्यापक सिद्धान्तों और नियमों की उपलब्धि इतिहास के लिए एक परमावश्यक गुण है। प्राचीन समय के नेताओं ने किन परिस्थितियों में कैसा आचरण किया, उन्हें अपने उद्देश्य में कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई, उनकी सफलता अथवा असफलता के क्या कारण थे—इत्यादि बातों का प्रतिबिम्ब देकर इतिहास कुछ विशेष घटनाओं की पुनरावृत्ति में ही देश का सहायक होता है। यदि अमुक घटना अमुक रूप में न घटकर अमुक रूप में घटती तो उसका क्या परिणाम हुआ होता, यदि संसार की विचारधारा अमुक दिशा में न बहकर अमुक दिशा में बहे तो उसका कैसा प्रभाव पड़ेगा—इत्यादि कल्पनात्मक रहस्योद्घाटन के द्वारा ही इतिहास एक सच्चे पथ-प्रदर्शक का काम देता है। इस सम्बन्ध में एक प्रसिद्ध विद्वान् ने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहा है—"इसमें सन्देह नहीं कि घटना के उपरान्त हम सब बुद्धिमान् होंगे, परन्तु हम इतिहास का अध्ययन इसलिए करते हैं कि घटना के पहले ही बुद्धिमान् हों।"

ऐसी स्थिति में जब संसार के उन्नत देशों में भी ऐसे इतिहास थोड़े लिखे गये हैं, जिनमें उनके निर्माण-कर्ताओं ने इतिहासकार और राजनीतिज्ञ के साथ ही दार्शनिक और वैज्ञानिक के रूप में अपने को प्रकट किया है, तो दीन भारत से कैसे यह सिद्ध कर देने की आशा की जा सकती है कि इतिहास कोई महान् आविष्कार करने में भी समर्थ है! संसार के अन्य देशों की भाँति भारत के इतिहास-ग्रंथों में भी प्रायः व्यक्तिविशेष की हार-जीत का वर्णन रहता है; उनमें जातीय उत्थान-पतन का गूढ़ विवेचन नहीं मिलता। अतः यहाँ भी इतिहास कुछ थोड़ी-सी विभूतियों का एकांगी जीवन-चरित बना हुआ है। अब संसार का इतिहास नये सिरे से लिखा जाना चाहिए, जिसमें सम्राटों और राजनीतिज्ञों की कथा ही न हो, प्रत्युत किसानों और मज़दूरों की कहानी भी उसमें यथास्थान हो। मानव-जाति के विकास में साधारण जनता की स्थिति की उचित जानकारी करानेवाला इतिहास ही विश्व-प्रेम का पोषण करते हुए अपने उद्देश्य में सफलीभूत हो सकता है। वर्तमान स्वार्थपूर्ण वातावरण में तो इतिहास का उद्देश्य संकुचित देश-प्रेम रह गया है, जो उसके लिए एक बड़ा अभिशाप है; क्योंकि मिथ्या आडम्बर को आश्रय देकर वह अपने स्पष्ट रूप में नहीं देखा जा सकता।

देश-भक्ति अथवा जातीयता के मोह के कारण इतिहास के पक्षपातपूर्ण होने की संभावना बढ़ी हुई होती है। किन्तु जब वह सत्य की हत्या करने लगता है तो उसका महत्त्व घातक हो जाता है। इस हेतु किसी देश का सच्चा इतिहास जानने के विचार से यह उचित समझा जाता है कि पहले उस देश के लेखकों की पुस्तकों का अनुशीलन किया जाय। देशी लेखकों की पुस्तकें भले ही कुछ अत्युक्तिपूर्ण हों, उनमें साधारण पाठकों को यथार्थ का अंश सहज ही मिल जाता है, जब कि विदेशी पुस्तकें अधिकतर विपरीत मार्ग पर ले जाने की चेष्टा करती हैं। परन्तु विचारशील विद्यार्थियों के लिए देशी ग्रंथों के साथ ही विदेशी पुस्तकों का भी अध्ययन अपेक्षित है। इस प्रकार देशी और विदेशी लेखकों की सम्मतियों के बीच योग्य मान निर्धारित करते हुए वे उस अंश तक सच्चे इतिहास को समझ सकते हैं, और उससे यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं।

परन्तु भारत में इन दिनों विदेशी इतिहासकारों का ही अधिक आदर है। आमतौर से विदेशी लेखनी से प्रसूत होनेवाली इतिहास की पुस्तकों के द्वारा भारतीयों को एक दूसरे से पृथक् रखने की चेष्टा की जाती है, यद्यपि इतिहास में यह सिद्ध है कि किसी जाति को दूसरी जाति से एकदम अछूता नहीं रक्खा जा सकता। विचारपूर्वक मनन करने से विदित हो जाता है कि भारत की उपजातियों में भी विभिन्नता दिखाई देते हुए एक बड़ी समानता है—केवल विदेशी इतिहास-लेखकों को अनेकता में एकता ढूँढ निकालना अभीष्ट नहीं। विदेशी लेखक भारतीय सभ्यता को चार हज़ार वर्षों में आबद्ध करके कुछ अन्य देशों की सभ्यता को इससे पुरानी बताते हैं। परन्तु सौभाग्यवश पंजाब के हरप्पा और सिन्ध के मोहेंजोदारो की खोज ने भारत का सिर सब प्राचीन देशों से ऊँचा कर दिया है।

यह एक व्यापक सिद्धान्त है कि विजयी-सत्ता अपने आगमन के साथ ही देश के अधिवासियों को अपनी सभ्यता और संस्कृति से सब समय परिचित करानेवाले इस महत्त्वपूर्ण साधन पर शक्तिशाली प्रहार करने को कटिबद्ध होती है। देश-कल्याण और नागरिक-हित की भावना को भरनेवाले साहित्य के इस अंग की सच्ची बातों को छिपाकर उन्हें एक दूसरे ही रंग में दिखाना विजेता का अपना नियम होता है। फलतः इतिहास की सच्ची जानकारी के इस अभाव में विजित जाति में कितनी ही ऐसी धारणाएँ बन जाती हैं, जो राष्ट्रोन्नति के मार्ग में विषम बाधाएँ उपस्थित करती हैं। पराधीन भारत में इस नियम के अनुसार सच्चे इतिहास के निर्माण और अध्ययन को जिस प्रकार हतोत्साह किया गया है और किया जाता है, वह संसार के समक्ष एक ज्वलन्त उदाहरण है।

भारतवर्ष अपनी विचित्रता के कारण इतिहास-क्षेत्र में एक विशिष्ट स्थान रखता है। किन्तु अनेक उथल-पुथल के कारण उसकी बहुत कुछ सामग्री अलभ्य हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। भारतवर्ष का इतिहास क्रमशः पतन का इतिहास
। पतन के सभी कारणों की ओर ध्यान देना भारतीय
तिहास-वेत्ताओं का अनिवार्य कर्तव्य है। परन्तु किस
ार देश में इतनी अधिक उपजातियों का आविर्भाव
ा और पारस्परिक भेद-भाव बढ़ा तथा किस प्रकार
ी उद्योग-धन्धों का नाश हुआ और दरिद्रता ने डेरा
ाया—इत्यादि कारणों की योग्य गवेषणा में
तिहासकार केवल सरकारी नियंत्रण के कारण असमर्थ
जाते हैं।

भारतीय विद्यालयों में आज जो इतिहास की शिक्षा दी
ती है, वह इतिहास की सच्ची शिक्षा नहीं। सच्ची शिक्षा
इस अभाव में इतिहास की ओर विद्यार्थियों का विशेष
ाव नहीं दिखाई देता। अधिकांश विद्यार्थियों का
तिहास-प्रेम केवल विद्यालय तक सीमित रहता है। विदेशी
मँरँगे हुए इतिहास के द्वारा विद्यार्थी अपनी रीति और
ति से राग के स्थान पर विराग ही सीखते हैं। बात तो
है कि जब तक भारत की शिक्षा-प्रणाली उसके अपने
ों के हाथ में नहीं होती; तब तक क्या भूगोल और क्या
तिहास, कोई भी देश का हित-साधन नहीं कर सकता।
भारत का इतिहास संसार की पंचमांश जनता का
तिहास है। इसके विना संसार का इतिहास अपूर्ण है।
पि भारतीय इतिहास की बहुत-कुछ सामग्री एक
ल से अंधकार के गर्त में रहकर छिन्न-भिन्न हो गई है,
ापि भारत में देशी और विदेशी इतिहासकारों के
लिए गवेषणा और निर्माण का क्षेत्र बहुत विस्तृत पड़ा
है, केवल सच्चे उद्योग और निष्पक्ष अध्ययन की
आवश्यकता है। हर्ष का विषय है कि देश में ऐतिहासिक
अभिरुचि बढ़ रही है और परिश्रमशील पुरातत्त्वविद्
एवं विवेकशील इतिहास-वेत्ता प्राचीन इतिहास के पुन-
रुद्धार में संलग्न हैं, किन्तु इसके लिए अभीष्ट स्वतंत्रता
और अधिक प्रयत्न चाहिए।

इतिहास और इतिहासकार को कभी अपनी प्रगति
पर संतोष न होना चाहिए। कारण, प्रतिदिन नई
घटनाएँ घटित होती हैं, और विचारधारा नये ठिकाने
पर जा लगती है। यदि रोम में किसी नई मूर्त्ति का
पता लगता है, अथवा इँगलैंड में किसी प्राचीन क्रब्रि-
स्तान की खुदाई होती है तो संसार के इतिहास-वेत्ताओं
के प्रचलित मत पर उसका प्रभाव पड़े विना नहीं रह
सकता। अस्तु, प्रत्येक देश का यह आवश्यक कर्तव्य
ठहरता है कि वह सच्चे कर्मशील और महत्त्वाकांक्षी
इतिहासकार एवं पुरातत्त्व-वेत्ता तैयार करे, जिससे वे
जातीय पक्षपात और देश-प्रेम से ऊपर उठकर उस पूर्ण
इतिहास का निर्माण करें, जो किसी एक देश अथवा
जाति का ही कल्याण न करे, वरन् विराट् विश्व का
कल्याण करने में समर्थ हो। इस गौरवपूर्ण कार्य में
भारत से अपने उस मूल्यवान् सहयोग की आशा करना
व्यर्थ नहीं, जो वह अपने स्वत्वों की परिधि में रहकर
दे सकता है।

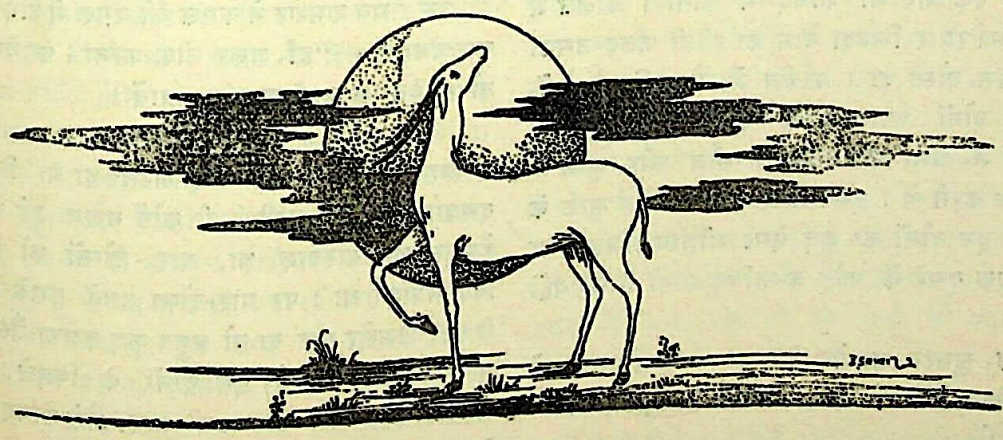

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

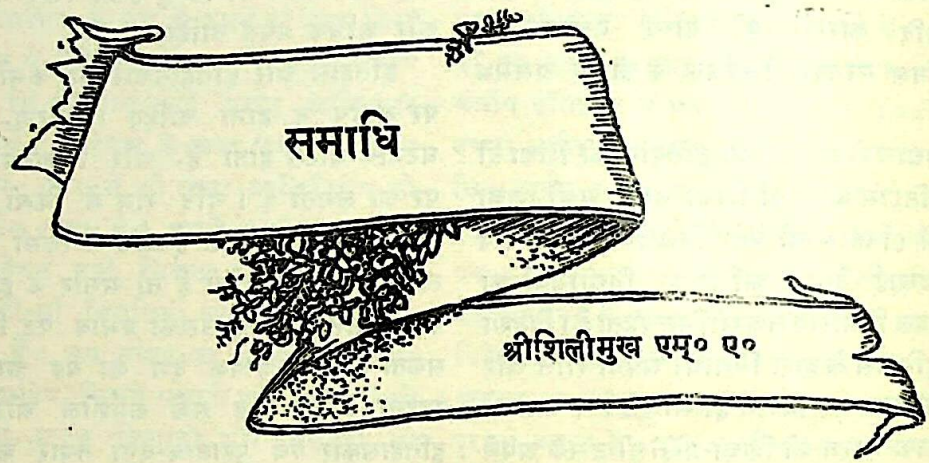

(१)

"क्यों बेटे, यह नया मर्ज़ कहाँ से लग गया तुम्हें ? मैं समझता हूँ, ज़रूर परदे के भीतर ही भीतर कुछ नया रसरंग जम रहा है।"

बात यह थी कि इस बार कालेज खुलने के तीन महीने के भीतर ही कमलमनोहर ने दो बार अपने घर का चक्कर लगा लिया। इससे पहले साल भर में एक बार भी वह मजबूरी से ही जा पाता था। उसका बस चलता तो एक बार भी शायद न जाता। कालेज में सुभान शमशेरयार सिनहा नाम का मौजी फक्कड़ उसका एक ख़ालिस दोस्त था। कालेज में जो छुट्टियाँ होतीं, उनमें ये दोनों आसपास के देहातों, या दूर के बड़े शहरों में, जैसा मौक़ा होता, मौज और लुत्फ़ के लिए जाया करते थे। इस संसार के मौज और लुत्फ़ के मामलों में इन दोनों का कुछ ऐसा मोज़ान मिला था कि यदि एक दूसरे के कोई वास्तविक साथी थे तो यही दोनों।

मसलन्, सुभान शमशेर ने कहा—"यार, पान खाने को जी चाहता है", तो कमल ने झट 'स्वाद' किया—"हाँ, चल।"

और सुभान ने कहा—"सरवती के यहाँ का पान खायँगे", तो कमल ने निष्कपट जिज्ञासा की—"मैं कौन सरवान् ससुरे के यहाँ को कहता हूँ।"

इसी प्रकार यदि फिर कभी कमलमनोहर जमना, गंगा या गोमतीपरसादों में से किसी से गुथ आया तो उसने हाँफते-हाँफते आकर शमशेर साहब को बतलाया, "अभी साले को और ठीक करूँगा। कहता था, तेरा यह नया फ़ाउन्टेनपेन ही चुराऊँगा! हूँ: उ! हूँ: उ!"

उस समय शमशेर ने कमल की बग़ल में हाथ डालकर सान्त्वना दी—"हाँ, ज़रूर ठीक करना। पर चल, अभी तो सरवती के यहाँ पान खा आवें।"

(२)

यह नहीं कि कमल कोई लठैत था या कि नम्बर दसवालों में ही उसकी कभी कोई गणना हुई थी। वह हँसमुख था, यारबाश था, यार-दोस्तों को खिलाने-पिलानेवाला था। पर यार-दोस्त उतने उसके-जैसे नहीं थे और शमशेर यार या तो बहुत कुछ उसका-जैसा ही था या, यदि नहीं था तो, इन दोनों के पिछले जनम के संस्कार करारे थे—ठीक उसी तरह, जैसे शायद सरवती के भी इन दोनों के साथ संस्कार करारे थे। दोनों एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रे को अपना अभिन्न समझते थे। एक का दूसरे से
छिपा नहीं था।
और सरवती के साथ संस्कारों की बात। सो दोनों
जब भी बाज़ार जाते तो सरवती के यहाँ अवश्य
वते। शायद सरवती के यहाँ पहुँचने के लिए ही
ार जाते। और, जिस प्रकार कालेज में किसी
म से प्रति सप्ताह कम से कम एक बार रविवार
श्य आता है, उसी प्रकार बाज़ार में किसी नियम
प्रति सप्ताह में कम से कम एक बार ये भी अवश्य
ते थे।
सरवती (पानवाली) बन-ठनकर एक साफ़-सुथरी
ढ़ी-सी धोती पहन इनकी प्रतीक्षा में बैठती थी।
के पहुँचते ही सरवती इन्हें अपने सबसे बढ़िया शरबत
दो गिलास—शरबते दीदार के भी दो प्याले—
ाती, जाड़ों में अँगीठी पर तत्काल चाय बना देती,
यपि चाय उसके यहाँ बिकती नहीं थी) पान
ाती, इतर की एक-एक फुरैरी दोनों को देती और प्रेम
हँसती-बोलती। और भी उनकी बाज़ारू आवश्यकता
बहुत-सी चीज़ें—जैसे चाकलेट, बिस्कुट, मिठाई,
कीन आदि उसके यहाँ इनकी प्रतीक्षा किया करती
। हाँ, कालेज में पढ़ाई जानेवाली साइंस की पुस्तकें
नहीं रहती थीं।
इससे मालूम होता है कि कालेज और रविवार और
ल-जोड़ी और बाज़ार के साथ-साथ पानवाली का भी
नियम था। वह प्रति रविवार को प्रातःकाल ताज़ी-
ी चीज़ें चुनकर लाने के लिए अपने पतिदेव को
भेज दिया करती थी। असल में हिलने-डुलने का
ा काम उसके पति का ही था—बाज़ार से बरफ़
ना, लेमन लाना, पान लाना, पान का मसाला लाना,
फिर पैसों के तक़ाज़े ले जाना। पानवाली का काम
महज़ दूकान पर बैठकर लोगों को पान खिलाना
र उन्हें रचाना, जो सचमुच कारीगरी का काम था।
ों में बहुमत से यह मन ही मन स्वीकार कर लिया
ा था कि पानवाला इस काम को शायद उतना
छा नहीं कर सकता, जितना कि पानवाली। बाद
दूकान के अनेक गाहकों ने भी ऐसा ही समझा,
कि एकाध बार ग़लती से पानवाला दूकान पर बैठ
गया था। परन्तु जब से सुभान शमशेर प्लस कमल-
मनोहर का उस दूकान पर आना आरम्भ हुआ, तब से
'गाहकों' शब्द व्याकरणाचार्यों के कोप में भले ही बहुवचन
रह गया हो, दूकान के रचाने के प्रकरण में तो वह एक
प्रकार से द्विवचन ही था।

तब, स्वाभाविक ही, जब कमल बार-बार घर जाने
लगा तो शमशेर का तो मज़ा बिगड़ गया। फिर
भी वह मज़े का इतना लती न था कि हर समय
उसके नशे में ही रहे। वह उन शराबियों में से था, जो
यदि मिल जाय तो चूकें नहीं और बैठे-बैठे पूरी बोतल
साफ़ कर दें; पर यदि न हो तो बहुत दिनों तक बेताब
नहीं होते। लेकिन जब कमल को घर जाने का मर्ज़ ही
लग गया तो अवश्य उसके इस हितैषी बन्धु को आशंका
हुई, और उसने पूछा—

"क्यों बे बेटे, यह नया मर्ज़ कहाँ से लग गया तुझे? मैं समझता हूँ, ज़रूर परदे के भीतर ही भीतर कुछ नया रस-रंग जम रहा है।"

(३)

सुभान शमशेर यार सिनहा का अनुमान सही था। कमलमनोहर एक नये रोग में फँस गया था। उसने सपने में कोई ऐलोपैथिक दवा खाई थी, जिससे एक रोग के लक्षण कुछ दबकर दूसरे रोग के लक्षण पैदा हो गये थे। पिछली गर्मियों में जब तीन महीने लगातार वह घर पर रहा तो उसने बरतन मलनेवाली बुढ़िया को एक नई दृष्टि से देखा। उसने देखा, वह कल तक की उस छोकरी लोढ़ा की मा है, जो इस एक साल में ही जवान हो गई है; साथ ही यह भी कि मा दिन भर उसके पिता के यहाँ रहती है और लड़की अधिकतर अपने घर पर अपने पति के साथ। जब रात में पति चौकीदारी पर चला जाता है तो बुढ़िया अपनी बेटी के पास सोने आ जाती है। कमल ने सोचा, बुढ़िया को इतना तकल्लुफ़ और तकलीफ़ करने की क्या ज़रूरत थी। वह उसी से कह देती तो क्या वह स्वयं उसकी ख़ातिर से न जा सोता।

पर ख़ैर, चौकीदारजी ज़्यादा खुलेदिल और दुनिया के ही आदमी थे। कमल ने उनकी जाँच-तौल करने के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाद उनसे दोस्ती कर ली और फिर सरबतिया या सैर-सपाटे की चाह गौण हो गई।

परन्तु सुभान ने जब तक ताड़ा नहीं तब तक तो कुछ नहीं, लेकिन ताड़े जाने पर छिपाना कमल के नैतिक आदर्शों के विरुद्ध था। यह भी क्या पता कि कमल छिपा ही रहा था, या केवल उसके खिलाड़ी हृदय ने बतलाने की आवश्यकता को अभी तक कोई प्रधानता ही नहीं दी थी। सुभान के प्रश्न का उसने उत्तर दिया, "अरे यार, क्या बताऊँ। सच तो कहते हो, एक नया मर्ज़ ही लगा है।"

"तो मुझे बता न।"

"एक बड़ी बढ़िया चीज़ हाथ आ गई है।"

"सरबतिया से भी अच्छी ?"

"अच्छी—हाँ—न—सरबतिया एक चीज़ है और वह दूसरी। पर इस वक़्त तो सरबतिया से अच्छी ही कहो। सरबती बीस बरस की और वह सोलह की।"

"अरे सच।" सुभान ने सहसा कमल की छाती से चिपटकर उसे ख़ूब हिलाया—"हः हः हः हः हः हः। पर हरामज़ादे, ये सब खेल हमसे छिप-छिपकर खेले जा रहे थे। साले के न दिया हो जो जूता सिर पर...."

"अरे तो वहाँ पर वह तेरा दादा जो रहता है, मेरा बाप। तुझे ले किस तरह चल सकता हूँ ?"

"और बताना भी नहीं क्या ? जानता है, वैसे भी चोर-चोर मौसेरे भाई हुआ करते हैं ?"

"बता—आ—ना तो—अरे वैसे ही कभी कोई ध्यान नहीं आया रे। पर सुभान, वह शिरकत की चीज़ नहीं है," कमल ने हँसकर कहा, "मेरा उससे जी लग गया है।"

"अच्छा जी—ई के ससुरे। मैं भी कहीं जी लगाऊँगा और वहाँ तेरे किसी दादा को बिठाऊँगा और तुम्हें बेटा, अलग ही अलग टिपाया करूँगा।"

पर इन दो पारस्परिक विश्वास के मित्रों में एक दूसरे का बुरा नहीं माना जाता था। दोनों दुनिया के रावरंग अथवा ग़रीबरंग के व्यवहारज्ञान में एकमत थे, जिसमें दुनिया के स्वभाव को दुनिया का स्वभाव ही समझा जाता है और नीतिधुरन्धरों के नीति तथा धर्म के वाक्यों को वाणी का आभूषणमात्र कहा जाता है। कमल और सुभान भी अपने छोटे भाइयों को, या किसी पब्लिक सभा के सदस्यों को, उस तरह के वाक्यों से सजा हुआ एक पुराना व्याख्यान सुना सकते थे; पर वे अपने को दुराचारी स्वीकार करने को कदापि तैयार न थे। उनका कहना था कि "असल में तो, यार, इन बातों पर सिर फोड़ने से क्या आता-जाता है। दुनिया तो जैसे हमेशा से चली आई है, वैसे ही हमेशा चलेगी भी।"

कमल ने शमशेर यार सिनहा की उत्सुकता को शान्त करने और बढ़ाने के लिए अपने ग्रीष्म-कालीन विजयकर्म का पूरा-पूरा ब्योरा अपने हृदय के रंगों से रंजित करके तबियत के साथ सुनाया। मित्रता के माने ही यह हैं कि छेड़छाड़ करते रहना—कभी छिपना, कभी प्रकट होना, कभी फिर छिपना। नाम बतलाने में उसने अपनी भाषातत्त्वज्ञता का भी परिचय दिया। बोला—"उसका नाम तो सलवणा है। पर वे लोग गँवार हैं, शुद्ध शब्द कहाँ से जानें। 'लोढ़ा' 'लोढ़ा' कहते हैं।"

इस पर मित्र ने उसे बधाइयाँ दीं और अब वह कोई भी चार रोज़ की छुट्टी आने पर कमल को स्वयं घर के लिए ढकेलने लगा। कहता—"और देख वे अकलखोरे, एक प्यार मेरी तरफ़ से भी करना।" कमल उत्तर देता, "सो बेटा उम्मेद मत रक्खो। हाँ, मैं मनाऊँगा कि अल्लामियाँ एक तुझे भी कहीं से भेजे।"

"भेजे न भेजे, त तो जा मौज कर पट्ठे; पर कभी-कभी मेरे साथ सरबतिया के यहाँ चलने का तो सलूक किया कर। मैं भी नहीं जा पाता तेरे बिना। उस पर भी कुछ दया करनी चाहिए कि नहीं ?"

"हाँ, हाँ, अच्छी बात है। अब की बार लौटकर ज़रूर।"

अब की बार लौटकर कमल ने अपना वादा पूरा किया। परन्तु शमशेर लुच्चे ने सुना दिया—"लो सरबती रानी, अब तुम्हारी एक सौत हो गई है। इसी से कमल बाबू का आना-जाना अब नहीं होता।"

"सो तो मैं भी समझती ही थी," सरबती ने कुछ मान, पर अधिक मात्रा में उत्सर्ग के भाव से कहा, "हमारा भी परमात्मा है बाबूजी। यह आपकी ही दी हुई धोती है। अब इसे इतवार के इतवार ही पहनता हूँ। क्या करूँ, आशा लगी ही रहती है।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुभान ने कमल को ठेस दी। पर उसके ग़ौर भी कमल को ठेस लगी। उसने शरमाकर कहा—"सरबती, अब की आऊँगा तो धोती लाऊँगा।"

सरबती ने केवल कहा—"बाबूजी धोती से ज़्यादा हमें आप प्यारे हैं।"

(४)

"अरे तो सचमुच ही क्या देखना चाहता है उसे तू?"

"क्या कहने हैं यार, अगर दिखला दे तो दोस्ती का नाम ही यह है। मैं कोई उसे छीन थोड़े ही लूँगा।"

"अच्छी बात है, दिखलाऊँगा। आना इन छुट्टियों में।"

"बरसात शुरू होने पर आऊँगा—या नहीं, कालेज लौटते वक़्त दो-चार रोज़ पहले। फिर यहाँ से साथ ही साथ दोनों कालेज चले चलेंगे।"

"ओ० के० माई सन्। चीयरिओ।"

"चीयरिओ।"

रेल सुभान शमशेर को आगे ले चली और कमल-मनोहर ने क़ुली को टाँगे पर सामान ले चलने की आज्ञा दी।

गर्मियों की छुट्टियाँ समाप्त होने के तीन-चार रोज़ पहले सुभान कमल का मेहमान बन गया। कमल तीसरे पहर का नाश्ता कराकर शमशेर को लोढ़ा के यहाँ ले गया।

"चौधरी साहब, आज मैं अपने एक मेहमान को अपने साथ ले आया हूँ। कोई हरज तो नहीं है?" कमल ने लोढ़ा के मकान पर पहुँचकर उसके पति से कहा, "यह मेरे जिगरी दोस्त हैं और मेरे साथ पढ़ते हैं।"

"वाह सरकार, आप भी कैसी बातें करते हैं। आप ही का तो घर है।"

"अच्छा तो लो, पहले मेहमान की ख़ातिरदारी का कुछ इन्तज़ाम करो।" यह कहकर कमल ने मुस्कराते हुए दो रुपये चौकीदारजी के हाथ में रख दिये, जिनमें से अधिकांश, चौकीदारजी की इच्छानुसार, उनके हिस्से का था।

चौकीदार के चले जाने पर उसने लोढ़ा से कहा, "और तुझे तो कुछ नाराज़ी नहीं है री, मेरी लुढ़िया-रानी, अपने इस दोस्त को तेरे यहाँ ले आया हूँ जो?"

लोढ़ा ने घूँघट के झरोखे को एक तरफ़ से ज़रा ऊँचा करके कमल को ग़ुस्सा मिली हँसी की आँखों का नाच दिखा दिया।

पर कमल को शऊर नहीं था। उजड्डपन से बोला, "चल-चल, बड़ी परदेवाली। एक दफ़े सुभान को देख लेगी तो सारा नख़रा भूल जायगी—और मुझे भी भूल जायगी। इस घूँघट-ऊँघट का ढकोसला दूर कर।"

जब लोढ़ा ने फिर भी लज्जा दिखाई तो कमल ने ख़ुद ही बलपूर्वक उसका घूँघट उलट दिया और अपने मित्र से कहा, "लो मिस्टर सुभानअल्ला, अच्छी तरह देख लो। बड़ा देखना चाहते थे। देखी थी ऐसी बद-शक्ल परी कभी। यही मेरी जानोमाल की गाहक है।"

"सुभानअल्ला। कमल, यार, तू तक़दीर का सिकंदर है। सलवणादेवी, मैं इसका बड़ा पुराना सखा हूँ। नमस्ते।"

लोढ़ा तो जैसे शरम के मारे दोहरी हो गई। पर कमल ने डाँटा, "इस माफ़िक मत बोल रे। इस माल में हिस्सेदारी नहीं है।"

अगले रोज़ कमल फिर दो घड़ी की चहलपहल के लिए सुभान को वहीं ले गया और बाद में दोनों मित्र शहर की चाट की दूकानें देखते हुए सिनेमा चले गये। रात को दोनों मित्रों में सलवणादेवी और सरबतीदेवी को लेकर बातें होती रहीं, जिनमें तुलनात्मक आलोचना की प्रतिभा ने अच्छे-अच्छे करतब दिखाये। फिर दोनों सो गये।

तीसरे रोज़ दोपहर के बाद सोकर जब कमल उठा तो सुभान घर पर नहीं था। पूछने पर उसे मालूम हुआ कि बाज़ार गये हैं। बाज़ार से लौटने में जब सुभान को देर हुई तो कमल अपने नियत समय पर चाय पीकर लोढ़ा के यहाँ पहुँचा। नौकर से कहता गया कि जब सुभान आवे तो उसे वहीं भेज दे, जहाँ कल गये थे।

लोढ़ा के घर में पैर रखते ही वह चुपचाप वहाँ से लौट आया। सुभान वहीं लोढ़ा के पास चटाई पर बैठा था।

सुभान भी बहुत जल्दी लोढ़ा के यहाँ से चला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आया। पर इधर-उधर घूमता हुआ रात होने पर मकान पहुँचा। उसने भी कमल को देख लिया था। दोनों मित्रों में कोई बात न हुई। बल्कि दोनों, जो दो-चार घंटे सुभान वहाँ ठहरा, एक दूसरे से बच-बचकर ही रहे। रात ही में कोई गाड़ी जाती थी। सुभान उसी से चला गया, कमल के लिए रुका न रह सका।

(५)

"कल मैंने चाय के लिए उसका इन्तज़ार न किया, इस पर नाराज़ होकर सुभान चला गया है।" इस प्रकार अपने पिता को समझाकर कमल भी अगली गाड़ी से ही रवाना हो गया।

कालेज पहुँचकर उसी रोज़ शाम को वह सुभान के कमरे में गया। सुभान बाहर जाने की तैयारी में था; पर मित्र को आया देखकर रुक गया, और बोला, "ओहो कमल, तुम भी आ गये?"

"हाँ, आज दोपहर को आया।"

"बैठो।"

दो-चार मिनट दोनों को कुछ न सूझा कि क्या बात करें। फिर सुभान ने पूछा, "चाय पी आये हो क्या?"

"नहीं।"

"तो मैं पिलाऊँ? थके होगे।"

"नहीं—हाँ—अच्छा, लाओ एक प्याला पी लूँगा। बना ओगे?"

"'बना ओगे' में कितनी देर लगती है?" सुभान ने स्टोव जलाया, पानी रख दिया, और स्टोव के पास ही खड़ा रहा। जब चाय उतार रहा था तो बोला, "ज़रा स्विच ऑन कर देना तो।"

बिजली की रोशनी में दोनों ने चाय पी। चाय पी चुकने पर सुभान ने बिजली बन्द कर अपनी टॉर्च उठाई और कमरा बन्द किया। दोनों मित्र टहलने के लिए निकले। सुभान ने पूछा, "किधर चलोगे?"

"किधर भी। चलो कहीं लम्बे चलें।"

दोनों मित्र मील, दो मील, तीन मील निकल गये और किसी गाँव के सिरे पर आ पहुँचे। कुछ बारिश के-से आसार थे, कुछ रात का आगम था। अच्छा अँधेरा हो गया था। जहाँ एकान्त, सुनसान-सा, मालूम पड़ा, वहाँ कमल ने सहसा सुभान का हाथ ज़ोर से पकड़कर झटका दिया और कहा, "सुभान!"

"क्या है, कमल?" सुभान ने तत्काल टॉर्च जलाई। उसे भय हुआ कि कमल को कोई साँप-वाँप का तो भ्रम नहीं हुआ है।

पर उसने देखा कि कमल के दूसरे हाथ में कटार है।

जब तक कमल का कटारवाला हाथ ऊपर उठकर प्रहारकर्म में किंचित् डगमगाया हो, तब तक सुभान ने बिजली की फ़ुर्ती के साथ टॉर्च का भारीवाला सिरा उसकी दूसरी कलाई में ऐसा मारा कि कमल अपने ही भार को स्थिर न रख सका और सुभान झट हाथ छुड़ाकर दूर जा खड़ा हुआ। उसी क्षण कमल सँभला और उसने निशाना साधकर कटार सुभान के ऊपर फेंकी। परन्तु उसके हाथ में से कटार छूटने से पहले ही सुभान बिजली बन्दकर एक ओर को बच गया। फिर तुरन्त बिजली खोलकर उसने झपटकर कटार उठा ली और लपकते-लपकते कमल की टाँग में अड़ंगा देकर उसे गिरा दिया। तत्काल ही वह उसकी छाती पर चढ़ बैठा और बोला, "अब कहो कमल!"

पर वह फ़ौरन् ही उठ बैठा और अपनी भरपूर ताक़त से कटार को दूर फेंककर उसने कहा, "कमल, तुम्हारी कटार तो न मालूम कहाँ गई। इस समय तो अब कुछ हो नहीं सकता....."

"मगर मैं...."

"हाँ, अगर तुम चाहो तो कल हम दोनों एक से औज़ार लेकर फिर इसी समय इसी जगह आ जावें।"

"मंज़ूर।"

"अच्छी बात है। एक आवारा औरत की इज़्ज़त के लिए यह भी सही। पर कमल चलो, अब आज तो सरबती के यहाँ का एक-एक पान और खा लें।"

(६)

सरबती की दूकान खुली थी, पर सरबती नहीं बैठी थी। भीतर की कोठरी में पति-पत्नी में झगड़ा हो रहा था—".....ज़रूर हरामज़ादी, तूने ही उन्हें नाराज़ कर दिया है। कोई ऐसी-वैसी बात कह बैठी होगी....."

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुभान और कमल ने ये शब्द सुने तो वे और सुनने के कुतूहल से दूकान के एक किनारे आड़ में खड़े हो गये। दूसरा समय होता तो वे शायद दूकान में ही घुस जाते; पर आज उन्होंने गम्भीरता और गवेषणाशीलता का एक महामूल्य नुस्ख़ा पा लिया था। यदि वे समझदार होते तो सोचते कि अब एक दिन की ज़िन्दगी में नये-नये नुस्ख़ों की कौन-सी बड़ी उपयोगिता उनके लिए धरी होगी। पर वे कालेज में विज्ञान के विद्यार्थी थे! यदि वे अपने जीवन की अन्तिम घड़ी तक भी जीवन-विज्ञान के किसी तथ्य को प्राप्त करने की इच्छा रक्खें तो कौन उनकी हँसी उड़ा सकता है?

भीतर पानवाला कह रहा था—"....कहीं से दे, उल्लू की पट्टी, क़सब करके दे....आज तो मैं अँगरेज़ी ही पिऊँगा....छः-छः रोज़ बीत जाते हैं बग़ैर पिये हुए...जब कमल और सुभान बाबू आते थे, तब यह हालत कभी नहीं हुई....तेरी ही किसी बात पर नाराज़ होके उन्होंने आना छोड़ दिया है....कोई और यार भी तो नहीं ढूँढा गया....उन्हें चाहती है तो मनाके क्यों नहीं ले आई....रात-दिन बस एक ही सड़ी धोती पहने बैठी रहती है....कौन आवेगा इन घिनौने हाथों का पान खाने के लिए.....तभी तो दूकान चौपट हो रही है....."

इसके साथ ही बीच-बीच में घूँसों और लातों और सरबती के कराहने की आवाज़ भी मित्रों को सुनाई दी। दोनों चुपचाप वहाँ से चल दिये।

(७)

अगले दिन तीसरे पहर को सुभान कमल के कमरे में गया और बोला, "कहो क्या इरादा है?"

"कहो, क्या इरादा है।"

"शाम को द्वन्द्वयुद्ध के बारे में?"

"जैसा तुम कहो। मैं मरने से नहीं डरता।"

"मैं भी नहीं डरता।"

"कटारें ख़रीदने चलें?"

"चलो।"

"चलो।"

कुछ दूर चले होंगे कि सुभान ने पूछा, "और सरबती?"

"हाँ?"

"चलो, अपने-अपने कमरे में चलें।"

दोनों ने अपने-अपने कमरे में वापस आकर जो कुछ रुपये-पैसे आदि वहाँ थे सो अपने साथ लिये और फिर बाज़ार को चल दिये।

बाज़ार में कहीं से उन्होंने ख़ूब तेज़ दो कटारें ख़रीदीं, फिर उन्हें छिपाकर बज़ाज़ के यहाँ पहुँचे। पाँच ज़नाने जोड़े कमल ने ख़रीदे और पाँच सुभान ने। अस्सी-नब्बे रुपये उनके पास बच रहे। अभी-अभी घरों से लौटे थे न। सो निश्चय किया कि यह नक़द सरबती को दे देंगे।

सरबती की दूकान पर पहुँचे तो सन्नाटा था। दूकान खुली थी, पर सजी नहीं थी। आवाज़ दी। पानवाला आया। सरबती कहाँ है? "सरबती कहीं गई है बाबूजी।" "अच्छा, ये धोतियाँ उसे दे देना, दया, और ये रुपये भी।"

दया की आँखों में आँसू भर आये। "यह क्या है रे?" "बाबूजी, सरबती भीतर है, आओ, देख लो" कोठरी के भीतर एक खोदकर भरे हुए स्थल को दया ने दिखा दिया और फूट-फूटकर रोने लगा।

"हैं! यह क्या किया रे तूने?...."

"बाबूजी, ग़रीबी की मार और मेरी बुरी टेव। मेरा अभाग, और क्या कहूँ। कोई लात उसकी कोख में नरम जगह पर लग गई।"

दोनों मित्रों ने क्षण भर एक दूसरे की ओर देखा और फिर हठात् एक दूसरे से लिपटकर रोने लगे।

"अच्छा दया, हम लोग जाते हैं।"

"और मैं क्या करूँ, बाबूजी?"

"जो तेरे जी में आवे।"

"और ये धोतियाँ?"

"जला देना।"

"बाबूजी!" वह और ज़ोर से रोने लगा। "अपने ये रुपये तो लेते जाइए....."

"इनकी अँगरेज़ी शराब पी डालना।"

कमल और सुभान फिर उसी जगह पहुँच गये, जहाँ कल आये थे। वही समय था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"अब ?"

"अब ?"

"ला अपनी कटार मुझे दे।"

"मेरी कटार का क्या करेगा ?" कमल ने ज़रा संदिग्ध भाव से पूछा।

"दोनों कटारों से जल्दी-जल्दी एक गड्ढा खोदूँगा, एक दूसरे के ज़ख़्म जिससे मिट्टी में ढक जायँ। या, हममें से जो जिसे मार दे, वह उसकी लाश को गड्ढे में दबा दे। दुनिया में मित्रता के नाम पर परीवाद क्यों फैले ?"

"मैं भी तेरे साथ-साथ खोदूँ न ?"

"सन्देह करता है। अच्छी बात है, तू भी खोद।"

दोनों मित्र जल्दी-जल्दी गड्ढा खोदने लगे। सुभान ने कहा, "बस।"

कमल ने प्रश्नसूचक दृष्टि से सुभान की तरफ़ देखा।

"अब मुझे अपनी कटार देगा ?"

कमल ने चुपचाप कटार दे दी।

सुभान ने उस छोटे-से गड्ढे में कमल की कटार को सुला दिया, उसके बराबर में ही अपनी कटार को भी। फिर गड्ढे को अच्छी तरह भर दिया। स्थान भली प्रकार समतल हो जाने के बाद उसने कमल से कहा, "यह हम दोनों के मनोमालिन्य की समाधि है।"

कमल ने भी धीरे-धीरे सोचते हुए कहा, "तो सुभान, यह हमारी शौक़ीनी की भी समाधि है। स्त्री का क़िस्सा शायद हमेशा से एक पहेली है। अपने जीवन को पहेलियों से भरकर अब हम झूठमूठ उसे अति जटिल नहीं बनावेंगे।"

अभ्युदय का मूल आरोग्य

आप पहले अपने आरोग्य की अभिलाषा करें।

आरोग्य से ही अभ्युदय की अभिलाषा सफल होगी। आरोग्य का लाभ लेने के लिये।

आतंकनिग्रह गोलियाँ

ही प्रशस्त साधन हैं।

क़ीमत—३२ गोलियों की डिब्बी का १) एक रुपया

आतंकनिग्रह औषधालय

जामनगर, काठियावाड़

लखनऊ एजेंट—इंदरचंद एण्ड कं०, चौक

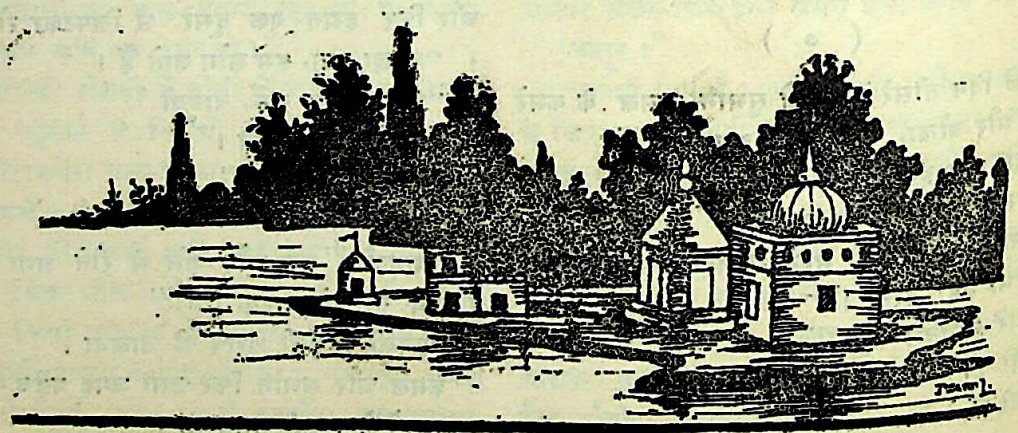

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

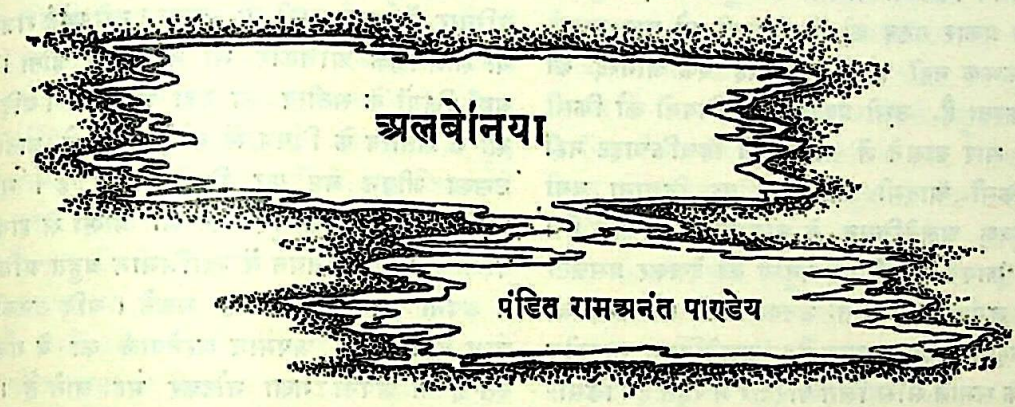

अलबेनिया

पंडित रामअनंत पाण्डेय

शुभ शुक्र (Good Friday) के दिन जब ईसाई-संसार शान्ति के उपासक, अहिंसा के जारी और दीन-दुखियों के सहायक महात्मा ईसा की ृति मना रहा था, तब ईसाई इटली के डिक्टेटर साई मुसोलिनी अपनी प्रचंड और शक्तिशाली सेना ोस के एक निर्बल राष्ट्र को निगलने के लिए लबेनिया में उतार रहे थे। शक्तिहीन अलबेनिया ली की सुसज्जित सेना का सामना न कर सका और गलवार के समाचारपत्रों में संसार ने पढ़ा कि लबेनिया-नरेश राजा जोग अपनी पत्नी, नवजात पुत्र र कुछ साथियों को लेकर अपनी प्यारी मातृ-भूमि छोड़ यूनान को भाग गये। १५ अप्रैल को लबेनिया के एक सरदार, कैप्टेन जान, ने अलबेनिया राज-मुकुट इटली-नरेश महाराजा इमैनुअल को र्पित किया और उसके साथ ही रोम से यह घोषणा ी उसी दिन निकली कि अब से महाराजा इमैनुअल टली और अलबेनिया के राजा और हब्श के सम्राट्' लावेंगे। इस प्रकार एक सप्ताह के अन्दर सारे सार के देखते-देखते एक और राष्ट्र को अपनी स्वतन्त्रता का बलिदान एक तानाशाह के चरणों पर करना पड़ा। इँगलैंड और फ्रांस को क्षण भर के लिए जोश आया था; लेकिन मानिनी की मुसकान की भाँति वह शीघ्र ही ग़ायब हो गया।

अलबेनिया एड्रियाटिक सागर के दक्षिणी-पूर्वी किनारे पर युगोस्लेविया और यूनान से घिरा हुआ एक छोटा-सा देश है। यह इटली की एड़ी के ठीक सामने है (योरप के मानचित्र में इटली की रूप-रेखा अँगरेज़ी जूते के समान है। यहाँ उसी जूते की एड़ी से तात्पर्य है)। इसका क्षेत्रफल १०,६२६ वर्गमील और जन-संख्या १०,०३१०४ है। कुल जन-संख्या में ⅔ मुसलमान और ⅓ ईसाई हैं। देश का अधिकतर भाग पहाड़ी है। यहाँ के निवासियों का मुख्य व्यवसाय खेती और भेड़ पालना है। इस देश की मुख्य उपज तम्बाकू, शहतीर, ऊन, चमड़ा, बाल, दूध-मक्खन, मछली और क्रूड आयल है। अलबेनियन बहुत निर्धन और पिछड़े हुए हैं। यहाँ कुल आठ क़स्बे हैं। तिराना राजधानी है। यहाँ की उच्चश्रेणी में कुल ३०० परिवार के ज़मींदार हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोगों की धारणा है कि अलबेनिया-निवासी भारत के पश्चिमोत्तर सीमान्त के निवासियों की सन्तान हैं। उनका स्वभाव एवं उनकी रहन-सहन इस बात का समर्थन करती है। फिर भी अभी तक यह निश्चित नहीं हो सका कि उनके मूल-पूर्वज किस जाति के थे। अलबेनियन अपने को 'गरुड़ की सन्तान' कहते हैं। उनका स्वभाव शिकारी पक्षियों से बहुत मिलता-जुलता है। जिस प्रकार गरुड़ को किसी पक्षी को मार डालने में कोई झिझक नहीं होती और वह एक आनन्द का अनुभव करता है, उसी प्रकार अलबेनियनों को किसी मनुष्य को मार डालने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती। किसी आदमी को गोली का निशाना बना डालना युवक अलबेनियन के बायें हाथ का खेल है। वह गोली खाकर तड़पते हुए मनुष्य को देखकर प्रसन्नता से नाचने लगता है। अतः उनका अपने को गरुड़ की सन्तान कहना सर्वथा उपयुक्त है। अलबेनियन भारतीय हिन्दुओं के समान सम्मिलित परिवार में रहते हैं। किसी-किसी परिवार में चालीस-पचास व्यक्ति तक रहते हैं। परिवार का मालिक घर का बूढ़ा होता है, और उसी की आज्ञा के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को चलना पड़ता है। प्रत्येक गाँव में एक पंचायत होती है, जिसमें हरएक परिवार का मालिक पंच होता है। सब पंच मिलकर एक सरपंच चुनते हैं। यही पंचायत गाँव का सब प्रबन्ध करती है। यही पंचायत संगीन मामलों का भी फ़ैसला करती है। एक गोत्र के सब परिवारों की खेती-बारी एकसाथ होती है। उनका वैर-विरोध और मित्रता सब संयुक्त होती है। गोत्र के एक व्यक्ति का शत्रु गोत्र के सब लोगों का शत्रु माना जाता है। अलबेनियनों में प्रतिशोध की मात्रा बहुत अधिक होती है। उनमें प्रतिशोध की भावना पीढ़ी-दरपीढ़ी चली जाती है। अपने शत्रु की हत्या करना आवश्यक माना जाता है। किन्हीं-किन्हीं गोत्रों में इस प्रतिशोध के लिए सैकड़ों हत्याएँ हो चुकी हैं। फिर भी वह बढ़ता ही जा रहा है। इस कारण किसी भी अलबेनियन का जीवन कभी ख़तरे से ख़ाली नहीं रहता। लेकिन प्रतिशोध की भावना पुरुषों ही में सीमित रहती है। स्त्रियाँ इस सीमा के बाहर मानी जाती हैं। ख़ून से फाग खेलनेवाला अलबेनियन अपने शत्रु की स्त्री की ओर आँख उठाकर नहीं देखता। उनके यहाँ स्त्रियों का बड़ा आदर है। अलबेनियनों में एक विवाह की प्रथा प्रचलित है। यद्यपि मुसलमान अलबेनियनों को धर्म से बहु-विवाह का अधिकार प्राप्त है, फिर भी कोई मुसलमान अलबेनियन एक से अधिक विवाह नहीं करता। साथ ही वहाँ कुँआरा रहना बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। अविवाहित युवक समाज या परिवार में आदर नहीं पा सकता। उसे कोई राजनीतिक या सामाजिक अधिकार भी नहीं प्राप्त होता। उनके यहाँ स्त्रियों के सतीत्व का बड़ा आदर है। यदि किसी स्त्री के सतीत्व के विषय में कोई शंका हो जाती है तो उसका जीवन नष्ट कर दिया जाता है। साथ ही व्यभिचार करनेवाले पुरुष को भी प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। अलबेनियन में स्वाभिमान बहुत अधिक है। वे अपना अपमान नहीं सह सकते। यदि उनकी शक्ति साथ देती है तो अपमान करनेवाले का वे गला घोट देते हैं या अपना गला घोटकर मर जाते हैं। इसके साथ ही उनमें दो और महान् गुण हैं, अतिथि-सत्कार और वचन-पालन। यदि अलबेनियन के यहाँ उसका शत्रु भी सन्ध्यासमय अतिथि बनकर आ जाय तो वह उसका सत्कार ईश्वर के समान करेगा। उसके भोजन के लिए अच्छे-अच्छे खाने पकावेगा। एक भेड़ उसके लिए ज़रूर मारी जायगी। जब तक उसका अतिथि रहेगा, उसका बाल भी बाँका नहीं होने पावेगा। हो सकता है, जब वह अतिथि उसके गाँव की सीमा के बाहर चला जाय तो उसकी छाती या मस्तक पर वह गोली का गहरा घाव कर दे; पर जब तक वह अतिथि है, तब तक अलबेनियन का देवता है। कहीं-कहीं पहाड़ियों में तो अतिथियों को कुँआरी कन्याएँ भी सौंप दी जाती हैं। (उत्तरी पहाड़ियों में विवाह के पहले कुँआरी कन्याओं का सतीत्व अक्षुण्ण माना जाता है)। एक बार अलबेनियन जो वचन आपको दे देगा, उसे पूरा करने में वह अपना सर्वस्व न्योछावर कर देगा। वचन के सामने उसका धन, उसकी स्त्री तथा सन्तान कोई मूल्य नहीं रखते। लेकिन वह दूसरों से भी इसी प्रकार की आशा रखता है। यदि किसी ने प्रतिज्ञा-भंग किया तो उसका दंड अलबेनियन के विधान में मृत्यु है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अलबेनियन साधारणतः लम्बे और पतले होते हैं। ी लंबी गर्दनें बड़ी सुन्दर मालूम होती हैं। अपने पर ज़ोर देता हुआ सफ़ेद खादी पहने नौजवान ेनियन दिन भर में चालीस मील तक जा सकता उसके खाद्य पदार्थ में प्याज़ का मुख्य स्थान है। ेट पीना उसका ख़ास व्यसन है। अतिथि के ने भी सबसे पहले वह सिगरेट ही रखता है। क दृष्टि से मुसलमान और ईसाई दो भागों में होने पर भी तमाम अलबेनियन एक हैं। उनके र धर्म के नाम पर कभी कोई झगड़ा नहीं होता। ही परिवार में कुछ लोग ईसाई भी हैं और कुछ मुसलमान। दो विभिन्न धर्मों में विभाजित होने भी उनके रीति-रिवाज, जो सहस्रों वर्ष से चले रहे हैं, एक ही हैं। कुछ धार्मिक भावनाएँ, जो ी परम्परा से अपने मूल-पुरुषों से धरोहर में ी हैं, अभी तक ज्यों की त्यों चली आती हैं। वे मा की अमरता में विश्वास रखते हैं तथा समझते के तितलियाँ मृत आत्माओं की परिचायिका हैं। ु के पश्चात् प्रत्येक अलबेनियन—चाहे वह मुसल- हो या ईसाई—की मृतक देह का मुण्डन किया ा है। मुण्डन के पश्चात् वह नहलाया जाता है तथा को उत्तमोत्तम सफ़ेद कपड़े पहनाकर उसे घर के ान में बिठा दिया जाता है।

अलबेनिया का कोई क्रमबद्ध राजनीतिक इतिहास है। कहा यह जाता है कि रोमन-साम्राज्य के ान के दिनों में एड्रियाटिक सागर के किनारे के और ं के साथ अलबेनिया भी उस महान् साम्राज्य का भाग था। ईसा की पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सवीं शताब्दी के प्रथम दशक तक अलबेनिया टर्की सम्राटों के साम्राज्य का एक भाग रहा है। ख़लीफ़ा एक गवर्नर यहाँ रहा करता था। लेकिन इतिहास लाता है कि इस्लाम के रक्षक को एक भी गवर्नर ुएल कुस्तुनतुनिया नहीं लौट सका। मनुष्य के रक्त क्रीड़ा करनेवाले अलबेनियनों ने किसी भी गवर्नर अपने प्रिय देश और पूज्य ख़लीफ़ा के पुनर्दर्शन सौभाग्य न दिया। बेचारों को अकाल काल की होना पड़ता था। इस परिस्थिति से घबराकर ख़लीफ़ा ने १९०५ में शासन में सुधार किया और अलबेनियनों की एक पंचायत गवर्नर की सहायता के लिए बनाई। परन्तु स्वतन्त्रता-प्रिय अलबेनियन अपनी ग्राम-पंचायत ही को इस पंचायत से अधिक महत्त्व देते रहे। सुधार की चाल सफल न हो सकी और टर्की-साम्राज्य को इस्लाम-धर्म के प्रचार के सिवा और कोई लाभ नहीं हुआ। सन् १९१४ ई० के बालकन-युद्ध के पश्चात् अलबेनिया ने अपने कंधे से पराधीनता का जुआ उतार फेंका। बहुत सोच-विचार के पश्चात् योरपियन राष्ट्रों के सूत्रधारों ने वेंद के प्रिंस विलियम को अलबेनिया का राजा स्वीकार किया। महासमर छिड़ने के कुछ ही दिनों बाद अल-बेनियनों ने उसे भी मार डाला और फिर देश में कोई भी राजा नहीं रहा। अलबेनियन अपनी पंचायतों के अनुशासन में रहकर अपना दैनिक कार्य करने लगे।

१९१५ में ब्रिटानिया, फ्रांस, रूस और इटली में एक संधि हुई, जो लंदन की संधि कहलाती है। इस संधि के अनुसार अलबेनिया इटली का रक्षित राज्य माना गया। लेकिन वार्सेई की संधि के समय इटली के तत्कालीन प्रधान मन्त्री डीलाडो की अयोग्यता से अलबेनिया पर से इटली की संरक्षता उठा दी गई और वह एक स्वतन्त्र राष्ट्र माना गया। साथ ही यह भी निश्चित हुआ कि राष्ट्र-संघ उसकी रक्षा दूसरे राष्ट्रों से करेगा।

सन् १९२१ में अलबेनिया के सब गोत्रों के सरदारों ने इकट्ठे होकर अपना एक प्रजातन्त्र स्थापित किया और बिशप फ़ान नोली को राष्ट्रपति बनाया गया। बिशप फ़ान नोली मिराडिटी गोत्र का प्रधान था। मिराडिटी और माटी गोत्रों में सैकड़ों वर्षों से शत्रुता चली आ रही है। उनके अन्दर एक दूसरे के प्रति प्रतिशोध का भाव बहुत दिनों से चला आ रहा है। कभी माटी गोत्रवाले मिराडिटी गोत्र के सरदारों की हत्या करते हैं तो कभी मिराडिटी माटी-सरदारों की। प्रजातन्त्र स्थापित होने के पश्चात् भी उनके प्रतिशोध की क्रिया ज्यों की त्यों प्रचलित रही। यह तो उनका स्वभावज गुण और पैतृक धरोहर है, यह उनके जीवन की रीढ़ है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अहमदबेग जोगू माटी गोत्र के प्रधान सरदार जलालबेग का पुत्र है। पिता के मरने के पश्चात् उसने अपने चचा की संरक्षकता में युद्ध-कला सीखी तथा दूसरी शिक्षाएँ प्राप्त कीं। सन् १९२३ में, २७ वर्ष की अवस्था में, फ़ान नोली को निकालकर वह स्वयं अलबेनिया का राष्ट्रपति बना। एक ही वर्ष के अन्दर-अन्दर, १९२४ के प्रारम्भिक महीनों ही में, नोली की शक्ति फिर बढ़ गई और उसने जोगू को परास्त कर अलबेनिया के शासन की बागडोर अपने हाथों में ली। जोगू को अपने प्राणों की रक्षा के लिए युगोस्लेविया में छिपना पड़ा। उस समय युगोस्लेविया की सरकार नोली की सहायता कर रही थी, अतः जोगू की गिरफ़्तारी के लिए वहाँ पुरस्कार की घोषणा की गई। एक बार तो वह गिरफ़्तार होते-होते बचा। धीरे-धीरे युगोस्लेविया की सरकार जोगू की सहायक हो गई। फिर १९२५ में एक साल के देशनिकाले के बाद जोगू युगोस्लेविया के धन तथा सेना के बल पर पुनः अलबेनिया का राष्ट्रपति बना। नोली देश छोड़कर भाग गया और दो वर्ष के बाद देशनिकाले ही में उसकी मृत्यु हो गई। १९२५ और २८ के बीच जोगू को अपने प्रतिद्वन्द्वी गोत्रों के लगभग ३०० सरदारों की हत्या करानी पड़ी। ३०० वीर अलबेनियनों की नृशंस हत्या के पश्चात् अहमदबेग जोगू का रास्ता साफ़ हो गया। अतः उसने १९२८ में अपने को अलबेनिया का राजा घोषित किया और अपना नाम राजा जोग रक्खा।

राजा जोग ने अपने दस वर्ष के शासन में अलबेनिया में कितने ही सुधार किये। उसने प्रयत्न किया कि अलबेनियनों के अन्दर से प्रतिशोध की भावना हटे या कम से कम ख़ून का मोआवज़ा रुपये में लिया जा सके। कितनी ही प्रतिशोध लेनेवाली जातियों में यह प्रथा प्रचलित है; पर अलबेनियनों ने इसे स्वीकार नहीं किया। ऐसी दशा में इन दस वर्षों के अन्दर राजा जोग अपने शत्रुओं के डर से कहीं बाहर नहीं गया। एक बार वह अपनी किसी प्रेमिका से मिलने आस्ट्रिया की राजधानी वियना गया था। जिस समय वह वियना के ओपेरा-हाउस से बाहर निकल रहा था, एक अलबेनियन युवक ने, जो अवश्य ही मिराडिटी गोत्र का था, उसके ऊपर गोली चलाई। सौभाग्य से जोग बच गया। वह सर्वदा सशंक रहा करता था। उसका भोजन पहले उसकी बहनें या मा चख लेती थीं, तब वह खाता था। यद्यपि जोग को अपने जीवन का इतना प्रबन्ध करना पड़ता था और वह सर्वदा इसके लिए सतर्क रहा करता था, फिर भी उसकी सब बहनें, जो संख्या में ६ थीं, अलबेनिया में निःशंक घूमा करती थीं। जोग ने कितनी ही युवतियों से प्रेम किया; लेकिन गत वर्ष तक उसने किसी भी युवती के साथ विवाह नहीं किया था। एक बार प्रश्न किये जाने पर उसने कहा था कि मेरे पास इतना धन नहीं है कि मैं विवाह करूँ। जोग संसार के राजाओं में बहुत ही सुन्दर समझा जाता था। गत वर्ष अप्रैल में उसने एक हंगेरियन राजकुमारी, काउंटेस 'अयाया', से विवाह किया। 'अयाया' ईसाइन है। अभी तीन अप्रैल को रानी के एक पुत्र पैदा हुआ था। तीन दिन के पुत्र को लेकर उसे यूनान भागना पड़ा।

कह चुके हैं कि जोग युगोस्लेविया की सहायता से अलबेनिया का शासक बना। युगोस्लेविया ने उसे धन और जन से सहायता की। इसमें उसका स्वार्थ था। अलबेनिया एक सामरिक महत्त्व का स्थान है। उसके सहायक होने पर युगोस्लेविया अपनी एक सीमा को सुरक्षित समझता। साथ ही उसकी खनिज सम्पत्ति भी दूसरे राष्ट्रों को ललचाने के लिए पर्याप्त हैं। जोग अपने देश की परिस्थिति से पूरा अभिज्ञ था। वह उससे पूरा-पूरा लाभ उठाना चाहता था। उसके एक ओर यदि युगोस्लेविया का दाँत था तो दूसरी ओर इटली की गिद्धदृष्टि थी। अलबेनिया को देखकर इटली एक आह भरता था। उसके एक प्रधान मन्त्री ने मूर्खता से जीती हुई बाज़ी खो दी थी। वह भी इस सामरिक महत्त्व के स्थान को भूल नहीं सकता था। एक साल तक युगोस्लेविया से मित्रता रखने के बाद जोग ने इटली से मित्रता करने के लिए हाथ बढ़ाया। इटली इसके लिए तैयार ही बैठा था। सन् १९२६ में इटली और अलबेनिया में एक समझौता हुआ, जो तिराना का समझौता कहलाता है। इस समझौते के अनुसार अलबेनिया का व्यापार

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ी के हाथों में चला गया। तेल निकालने का कार इटली को मिला। सन् १९२७ में समझौते पुनरावृत्ति की गई। इस समझौते के अनुसार ी ने अलबेनिया की स्वतंत्रता की रक्षा का भार ऊपर लिया और उसको सैनिक सहायता का वचन । सन् १९३० तक जोग को इटली से काफ़ी मिला। उस साल इटली ने समझौते को और अपने फ़ीक बनाना चाहा; लेकिन जोग तैयार नहीं हुआ। सर न देखकर मुसोलिनी चुप रह गया। फिर भी और खनिज पदार्थों को निकालने का स्वत्व मिल ही । कुछ अलबेनियन सरदार जोग पर अभियोग ते थे कि वह देश को रुपये के लिए इटली के हाथ रहा है। लेकिन यह बिलकुल ग़लत है। यह सच कि अपने देश के सुधार के लिए जोग को रुपये की श्यकता थी; साथ ही अपनी रक्षा की गारंटी भी चाहता था। उसकी दोनों इच्छाएँ इटली से पूरी रही थीं। इटली को भी तेल तथा अन्य आवश्यक निज पदार्थों की आवश्यकता थी। उसके लिए उसे क्षेत्र मिल गया। अतः दोनों की निभती चली गई। ल उठता है, फिर कौन-सी बात आ पड़ी कि मित्रता गई और इटली ने अचानक अलबेनिया को हड़प या? सुनिए—

जब से रोम-बर्लिन धुरी बनी, तभी से इन डिक्टेटरों लक्ष्य भूमध्यसागर पर अधिकार जमाने और लकन प्रायद्वीप को अपने क़ब्ज़े में करने का है। जैसा तलाया गया है, अलबेनिया बहुत बड़े सामरिक महत्त्व स्थान है। सेसेनिया द्वीप, जो अलबेनिया के दक्षिण-र्व में है, इटली का जिब्राल्टर माना जाता है। उसे सकी रक्षा तथा बालकन प्रायद्वीप एवम् भूमध्यसागर र अधिकार स्थापित करने के लिए एक बलवान् और ुसंगठित सैनिक अड्डे की आवश्यकता है। अलबेनिया ह अड्डा है। इधर युगोस्लेविया का रुख़ रोम-बर्लिन धुरी की ओर अच्छा नहीं था और जोग भी अपना मुँह श्चिम के स्थान पर उत्तर-पूर्व की ओर करता जा रहा था। मुसोलिनी उसकी भावभंगियों से सतर्क हो उठा। अलबेनिया को समुद्री और हवाई सैनिक अड्डा बनाना उसके लिए आवश्यक था ही, और इतना धन व्यय करने के पश्चात् भी जोग की इच्छाओं पर अवलम्बित रहना उसके लिए एक महान् राजनीतिक भूल मालूम हो रही थी। १९३० और ३९ की परिस्थिति में काफ़ी अन्तर भी हो गया है। अतः अपने को अधिकतर दृढ़ बनाने के लिए उसने अलबेनिया पर क़ब्ज़ा कर लिया। जर्मनी ने उसकी पीठ ठोंकी। पर क्या उसने सच्चे दिल से ऐसा किया? उसे भी तो भूमध्यसागर में एक बंदरगाह की आवश्यकता है? बड़े भाई के देखते-देखते छोटे भाई ने अलबेनिया को जीतकर भूमध्यसागर और एड्रियाटिक सागर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अब तो उसकी पीठ ठोकने के सिवा चारा ही क्या है? और ब्रिटानिया? चैम्बरलेन ने उस दिन कहा कि अलबेनिया से उनका कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है और न उसके साथ उनका कोई स्वार्थ ही है। पर भूमध्यसागर से तो है? अँगरेज़ी अख़बारों ने लिखा है कि अलबेनिया को हड़प कर इटली ने अपने पवित्र वचनों को तोड़ा है। क्या अँगरेज़-जाति अपने वचनों को पूरा करती है! दूसरों पर उँगली उठाने के पहले अपने को देख लेना चाहिए।

नोली के भतीजे कैप्टेन जान ने अलबेनिया का राज-मुकुट इटली-नरेश के चरणों में रखकर अलबेनिया की दासता पर मुहर लगा दी। पर क्या अलबेनियन ग़ुलाम होकर रहेंगे? अलबेनियन जन्मजात स्वतन्त्रता-प्रिय हैं। हत्या और ख़ून उनके लिए मनोरञ्जन है। वे अपमान से अधिक मृत्यु को पसन्द करते हैं। भेड़ चराते हुए, हल चलाते हुए उनकी बन्दूकें उनके कन्धे से लटकी रहती हैं। वचन-भंग उनके यहाँ सबसे बड़ा अपराध है। बदले की प्रवृत्ति मनुष्यता को पार कर गई है। फिर भला वे परतन्त्र रह सकेंगे? उनकी पंचायतें सहस्रों वर्षों से उनका प्रबन्ध करती चली आ रही हैं। जिस समय वे अपने देश तथा उसकी राष्ट्रीय सम्पत्ति का महत्त्व समझ जायँगे, उनको ग़ुलाम रखना टेढ़ी खीर हो जायगा। उस समय या तो अलबेनियनों की जाति नष्ट हो जायगी, या अलबेनिया स्वतन्त्र!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संपादक के नाम एक पत्र

प्रिय महाशय,

माधुरी के अप्रैल अंक में श्रीधन्नालालजी का जो लेख भारतीय कृषि के विषय में छपा है, उसमें जानने योग्य बहुत-सी बातें हैं। उनके लिए लेखक महोदय को मेरी ओर से भी बधाई दे दीजिए। प्रतिवाद नहीं, एक छोटी-सी टिप्पणी ही करना है।

धन्नालालजी लिखते हैं कि भारतीय किसानों के पास आधुनिक काल के खेती करने के यन्त्र बहुत ही कम देखने में आते हैं। प्रदर्शिनियों में बड़े-बड़े ट्रैक्टरों को देखकर खेती से अपरिचित लोग समझने लगे हैं कि इस व्यवसाय में भी बड़ी-बड़ी मशीनों और पावर (Power) की ज़रूरत है। है, परन्तु वहीं, जहाँ intensive farming की आवश्यकता हो, बड़े-बड़े खेत हों—जैसे कनाडा, आस्ट्रेलिया या यूनाइटेड स्टेट्स में। हमारे देश में intensive farming की ज़रूरत नहीं है। छोटे-छोटे खेत हैं। घनी आबादी है। हमारे लिए खेती के मामले में डेन्मार्क, जापान या फ्रांस का आदर्श होना चाहिए, न कि आस्ट्रेलिया-जैसे नवीन देशों का। जापान में मैंने देखा कि औज़ारों की कौन कहे, किसानों को एक गोई बैल तक नसीब नहीं है। यहाँ औज़ारों की उतनी आवश्यकता नहीं है, जितनी अच्छी खाद की। जापान के विषय में मैंने हिसाब लगाया है कि वहाँ घर पीछे ३ एकड़ से ज़्यादा ज़मीन खेती के लिए नहीं है और इस ज़मीन में, जो खाद किसान गाँव में ही तैयार कर सकता है उसके अतिरिक्त, क़रीब ४०) साल की खाद वह बाहर से ख़रीद कर लगाता है। किसान की आर्थिक दशा सुधारने के लिए इस देश में नीचे लिखी बातें आवश्यक हैं—

(१) खाद और सिंचाई

(२) पैदावार की बिक्री

खाद के लिए शिक्षा, सिंचाई के लिए Power, पैदावार की बिक्री के लिए सहयोग और माल को एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने की सुविधाएँ।

आशा है, लेखक महोदय आगे चलकर इस विषय पर प्रकाश डालेंगे।

कालिदास कपूर

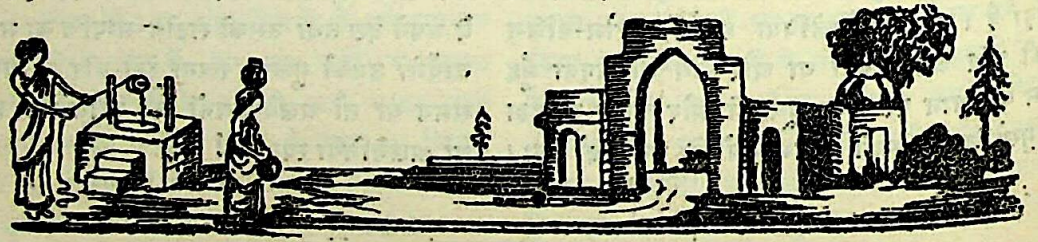

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१—चिरं जीव

माधुरी के पाठकों को यह सुसमाचार सुनकर हमारे
ही परम प्रसन्नता होगी कि ११ जून, रविवार के
सुप्रसिद्ध नवलकिशोर इस्टेट के अध्यक्ष और
वासी प्रातःस्मरणीय आदरणीय मुंशी नवलकिशोर
आई० ई० के सुयोग्य उत्तराधिकारी श्रीमान्
रामकुमारजी भार्गव की सौभाग्यवती धर्मपत्नी के
बालक उत्पन्न हुआ है। हम इस आनन्दमय उत्सव
अवसर पर श्रीमान् रामकुमारजी और उनकी श्रीमती
हार्दिक बधाई देते हैं और "चिरं जीव" कहकर
जात कुमार का भी अभिनन्दन करते हैं। आशा
माधुरी के पाठक भी इसमें हमारे साथ हार्दिक
योग करेंगे।

× × ×

२—जापान का शिल्प

जापान की चीज़ें आज भारत में गली-गली, हर
ार और हर दूकान में भरी पड़ी हैं। भारत ही
नहीं, प्रायः सर्वत्र उसके शिल्प और वाणिज्य का प्रचार और प्रसार हो रहा है। कपड़ा, चमड़े और रबर के जूते, नक़ली और असली रेशम, फ़ाउन्टेनपेन, चश्मा, कलक़ब्ज़ा, काग़ज़, मोटर, हवाई जहाज़, काग़ज़ की लालटैन, चीनी के बर्तन, टोपी, नक़ली मोती, लोहे का सामान, ग्रामोफ़ोन, शीशे की चीज़ें, मोज़ा, खिलौने, नक़ली फूल, चटाई, सुई तक बेशुमार जापान का बना सामान सब बाज़ारों में और देशों की बनी चीज़ों के मुक़ाबले में सस्ता बिक रहा है। जापान आज अन्यान्य रोज़गारी जातियों का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी होकर खड़ा है। किसी-किसी का ख़याल यह है कि और जातियों ने जैसे अस्त्र-बल से साम्राज्य बढ़ाया है, वैसे ही जापान अपने शिल्प-वाणिज्य के द्वारा दिग्विजय करेगा। लेकिन क्या Commercial penetration और Imperialistic penetration एक ही बात है? शायद एक ही बात नहीं है। किन्तु वास्तव में हम क्या देखते हैं? उपनिवेश क़ायम करना और राज्य को फैलाना अस्त्र-बल से राज्य जीतने का नामान्तर ही तो है। कोई-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई भविष्यवाणी करते हैं कि निकट भविष्य में सुदूरपूर्व ही आन्तर्जातिक प्रतियोगिता का (वाणिज्य का क्षेत्र होने के कारण ही राजनीति का क्षेत्र) लीलानिकेतन होगा। और, जापान इस प्रतियोगिता के केन्द्रस्थल में खड़ा होगा। वर्तमान चीन-जापान-युद्ध के फल पर ही इस कथन की सचाई और अनुमान निर्भर है। गत १९१४ के महायुद्ध के बाद से ही वाणिज्य और शिल्प की ओर जापान ने विशेष ध्यान दिया है। सन् १९२४ और सन् १९३२ के बीच जापान में खेती घट गई और साथ ही साथ शिल्प और वाणिज्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई है। सन् १९२८ में विभिन्न शिल्पप्रतिष्ठानों या फ़ैक्टरियों में जो मज़दूर काम करते थे, उनकी संख्या अब और भी बढ़ गई है। दुनिया भर के शिल्प-वाणिज्य के बाज़ार में आज लोग हाथ पर हाथ रक्खे बैठे हैं; लेकिन फिर भी जापान में कारख़ाने और मज़दूर बढ़ते ही चले जाते हैं। इसका क्या कारण है? इसका कारण यह है कि जापान की शिल्प-प्रचेष्टा अभी नई है; थोड़े ही दिनों से जापान नई शक्ति, नये उद्यम के साथ दुनिया को जीतने के लिए शिल्प-वाणिज्य के मैदान में उतरा है। "मेड इन जापान" संसार में सर्वत्र छा गया है। इससे ख़याल किया जा सकता है कि जापान केवल अपनी चीज़ें ही बाहर भेजता है, ख़ुद कहीं से कुछ नहीं मँगाता। किन्तु बात ऐसी नहीं है। जापान में जैसे निर्यात होता है, वैसे ही आयात का परिमाण भी कम नहीं है। व्यवसाय-वाणिज्य के क्षेत्र में जापान परस्पर की सहयोगिता, समझौता और नियन्त्रणमूलक स्वाधीन वाणिज्य पर विश्वास करता है। आज सभी जगह वाणिज्य के मैदान में एक भयानक संघर्ष और संग्राम चल रहा है—एक अन्धप्रतियोगिता का तूफ़ान उठा हुआ है। जो बलवान् है, वह दुर्बल को पीस डालना चाहता है। इस सर्वनाशी प्रतियोगितामूलक संघर्ष अथवा प्रतियोगिता को मज़बूत बनाने के लिए जापान "दो और लो" की नीति चलाने की चेष्टा कर रहा है। वह इसी नीति का पक्षपाती है। विदेशों से कच्चा माल मँगाये बिना वह अपने यहाँ के कारख़ानों को नहीं चला सकता और विदेशों में उसका माल अगर न खपे तो वह जीवित नहीं रह सकता। इसी से जापान यथासंभव विदेशियों से मित्रता बनाये रखकर लेन-देन की नीति की नींव पर अपने आन्तर्जातिक वाणिज्य की पक्की इमारत खड़ी करना चाहता है। १९३३-३४ में जापान के साथ भारत, इँगलैंड और डच पूर्व भारतीय द्वीपसमूह की वाणिज्य-सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये हैं। जापान और भारत की नई वाणिज्य-सन्धि के अनुसार जापान हर साल ५ लाख गाँठ कच्ची रुई अगर न ख़रीदे तो वह भारत में अपना कपड़ा न भेज सकेगा। और देशों के साथ भी जापान की इसी तरह की वाणिज्य-सन्धि हुई है। जापान के परराष्ट्र मन्त्री मि० हिरोता कहते हैं—"हम तुम्हारी (और देशों की) रुई, रबर, जस्ता, शीशा, लकड़ी वग़ैरह ख़रीदेंगे और तुम भी हमारे देश का माल ज़रूर ख़रीदो। जापान का माल जितना और देश ख़रीदेंगे, उतना ही जापान भी उनका माल ख़रीदेगा।" आन्तर्जातिक वाणिज्य की सफलता की यही तो मूलनीति है—यही तो कुञ्जी है। जापानी कारख़ाने केवल जापान में ही नहीं हैं? जापान के बाहर भी अनेक जापानी कम्पनियाँ, मिलें, रेल्वे-कम्पनियाँ, रबर और मछली बेचने के कारख़ाने हैं। दक्षिण मंचूरिया रेल्वे जापानी मूलधन से स्थापित है और जापानी ही उसका संचालन करते हैं। रूसो-जापानीज़ फ़िशिंग कम्पनी, मंचो टेलीग्राफ़ ऐण्ड टेलीफ़ोन कम्पनी तथा असंख्य रबर-कम्पनियाँ देश-विदेश में काम करके काफ़ी मुनाफ़ा उठा रही हैं। दक्षिण मंचूरिया रेल्वे की तुलना हमारे देश की ईस्ट इंडिया कम्पनी के साथ की जा सकती है। इसकी पूँजी सन् १९३५ में ८० करोड़ रुपये थी। यह एक अर्द्धसरकारी रेल-लाइन है। इसके सिवा विदेश में भिन्न-भिन्न कम्पनियाँ स्थापित करने और उन्हें पूँजी देने के लिए जापान में बड़ी अच्छी व्यवस्था है। ओरियन्टल कालोनिजेशन कम्पनी, साउथ अमेरिका कालोनिजेशन कम्पनी—ये दो कम्पनियाँ सबसे बड़ी हैं। पहली कम्पनी का धन ५ करोड़ येन है। एक येन ।।।) आने का होता है। विदेशों में कम्पनी खड़ी करके धन कमाने की चेष्टा के अलावा भी जापान के कर्णधारों ने अपने देश में छोटे-छोटे शिल्प के कारख़ानों या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यों को सहायता देने की व्यवस्था भी कर रक्खी
पये की कमी के कारण कोई उद्योगी पुरुष मन
र रह जाय, अपना कारख़ाना न खोल सके, ऐसा
में हो ही नहीं सकता। बड़े-बड़े कल-कारख़ानों
ही छोटे-मोटे कारख़ाने भी जापान में बहुत हैं।
ोटे किसान और छोटे-मोटे कारख़ानों के मालिक
पान के जातीय जीवन की बुनियाद हैं। जापान
धिकांश लोग इन्हीं दो श्रेणियों के अन्तर्गत हैं
जितना तैयार माल वहाँ उत्पन्न होता है, उसका
कांश ये ही लोग तैयार करते हैं। इन्हीं के छोटे-
कारख़ानों का बना माल सस्ती दर में बाहर
ा है। इनकी संख्या १०० में ७० के हिसाब से
सन् १९२६ में १०० में ९९ फ़ैक्टरियाँ इन्हीं
छोटे मालिकों की थीं। इन लोगों ने इस साल
रब ८२ करोड़ डालर क़ीमत का माल तैयार
था। बड़े-बड़े कारख़ानों में केवल १ अरब
करोड़ डालर का ही माल तैयार हुआ था।
न के शिल्प-वाणिज्य की इस आशातीत उन्नति
ूल वहाँ के स्वदेशी बैंक हैं। विशेष करके जापान
न ख़ानदानों ने जापान के शिल्प-वाणिज्य की
ा को बढ़ाया है—१ मित्सुईवंश, २ मित्सुबिशी-
और ३ सुमीटामोवंश। ये तीनों वंश धनकुबेर
इनके पास असंख्य धनराशि है। इनका बेशुमार
जापानी शिल्प-वाणिज्य के प्रचार और प्रसार में
है। जापान की अर्थनीति में इनकी क्षमता असीम
बहुत दूर तक है। ऐसा कोई भी शिल्प-वाणिज्य
है, जो इनके हाथ में न हो। इन वंशों के पास
धन कहाँ से आया, यह जानने का कौतूहल
पाठकों को अवश्य होगा। सुनिए, योरप या
रिका में जब करोड़ों रुपयों के मूलधन की सहायता
यवसाय-वाणिज्य शुरू किया गया था, उसके बहुत
बाद जापान में भी करोड़ों रुपयों की पूँजी लगा-
कल-कारख़ाने खोले गये और उनमें बने माल को
र बेचने का उद्योग शुरू किया गया। पाश्चात्य
म के अनुसार जब पूँजी लगाकर जापानियों ने
प-वाणिज्य की समृद्धि और वृद्धि की ओर मन
या, उस समय जापान में कुछ ही उत्साही लोगों
ने पूँजी सरवराह करने का अधिनायकत्व ग्रहण किया था। वहाँ की सर्वसाधारण जनता इसके लाभों को न जानने के कारण इस सुयोग से वंचित ही रही। इतनी जल्दी वहाँ मूलधन एकत्र किया गया कि लोगों को इस उद्योग के लाभ समझने का अवसर ही नहीं मिला। इसलिए दो ही चार धनकुबेरों ने अपने शिल्प-वाणिज्य की संस्थाएँ खोल दीं। जिन छोटे-मोटे अमीरों ने इस राह में आकर सिर उठाना चाहा, वे भी कुचल दिये गये। सन् १९२० में जापान का व्यवसाय-वाणिज्य काफ़ी बढ़ गया। इसी बीच में बाज़ार ढीला पड़ गया, दर भी सस्ती हो गई। फल यह हुआ कि सर्वत्र त्रास, सन्देह, शंका और निष्क्रियभाव छा गया। इसके बाद सन् १९२३ के भूकम्प में जापान की राजधानी टोकियो शहर एकदम नष्ट-भ्रष्ट हो गया। विपत्ति यहीं नहीं समाप्त हुई। सन् १९२७ में जापान भर में एक अर्थनैतिक त्रास फैल गया। इन सब कारणों से छोटे-मोटे कारख़ाने एकदम मिट गये। बस, कुछ धनकुबेरों का एकाधिपत्य रह गया। मित्सुई, मित्सुबिशी आदि धनकुबेर इस समय, इस दुर्दिन में भी तनिक भी विचलित नहीं हुए। छोटे-मोटे कारख़ानों के ध्वंस-स्तूप के ऊपर इनके व्यवसाय-वाणिज्य का ताजमहल खड़ा हो गया। सबसे बढ़कर धनी और शक्तिशाली तथा सर्वग्रासी मित्सुई-वंश है। बैरन हेकीरायेमन मित्सुई इसके डाइरेक्टर हैं। पुश्त-दरपुश्त (सन् १८७० से) ये लोग जापान की वाणिज्य-सम्पत्ति को बढ़ाते आ रहे हैं। सन् १९३१ में इनका मूलधन ६० करोड़ डालर था। जब अफ़ग़ान गवर्नमेंट ने अफ़ग़ानिस्तान के खनिज द्रव्य और अन्यान्य प्राकृतिक सम्पत्ति निकालने के लिए विदेशी कम्पनियों को निमन्त्रण दिया था, तब जापान के मित्सुई-वंश ने एक बहुत बड़ी अमेरिकन कम्पनी के मुक़ाबले में बोली बोली थी। मित्सुबिशी, सुमीटामो आदि और जो जापान के दो-तीन धनकुबेर-वंश हैं, उनका मूलधन सन् १९३१ में ५ करोड़ डालर था। जापान में पशम, गेहूँ आदि जितना मँगाया जाता है, उसका आधे से भी अधिक यह मित्सुईवंश ख़रीदता है। संसार के विभिन्न देशों में इनकी ४० शाखाएँ हैं। मित्सुबिशीवंश के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डिक्टेटर हैं बैरन वोसाकी। इनका सम्बन्ध गवर्नमेंट से अधिक है। ये सरकारी दफ़्तरों में और कामों में आनेवाली चीज़ों का ठेका लेते हैं और सरबराह करते हैं। इनके हाथ में कई बैंक हैं। कई बीमा-कम्पनियाँ भी ये चलाते हैं। सुमीटामोवंश १० करोड़ डालर से भी अधिक धन का मालिक है। बैंकिंग और खानों से खनिज पदार्थ निकालना ही इनका प्रधान काम है। यामूदावंश माल बेचने-ख़रीदने का काम अधिक नहीं करता। बैंकिंग और कम्पनियों के लिए पूँजी जुटाना, ये ही दो काम यह अधिकतर करता है। इसके अधीन ४४ कम्पनियाँ हैं, जिनमें १४ तो बैंक ही हैं। ये ६ बीमा-कम्पनियों के मालिक हैं। परलोकगत जेंजिरो यामूदा इस वंश के पूर्वपुरुष थे। पहले यह कच्चा माल ख़रीदने या तैयार माल बेचने का काम नहीं करते थे; केवल बैंकिंग का कारोबार ही किया करते थे। किन्तु अब वर्तमान युग की अर्थनीति के फेर में पड़कर इन्हें भी अपनी चिराचरित नीति बदलने को बाध्य होना पड़ा है। अब कुछ रेलवे कम्पनियाँ और काग़ज़ की मिलें इनके हाथ में हैं। जापान के सामाजिक और राजनीतिक जीवन में इन्हीं कई धन-कुबेरवंशों का प्रभाव बहुत अधिक है। जापान की अर्थनैतिक उन्नति, जापान के व्यवसाय-वाणिज्य की श्रीवृद्धि, कलकारख़ानों में करोड़ों रुपयों की पूँजी लगाना इनका कार्यक्षेत्र है। संक्षेप में कह सकते हैं कि जापान की शिल्प-सम्पत्ति के क्षेत्र में इन वंशों का एकाधिपत्य है और इन्होंने ही आज जापान को संसार के प्रथम श्रेणी के राष्ट्रों की पंक्ति में ला बिठाया है। जापान के शिल्प का प्रचार और प्रसार देखकर योरप और अमेरिका के राष्ट्र आज दाँतोंतले उँगली दबाते हैं। आज दुनिया के बाज़ार में, माल के सस्तेपन में, कोई जापान का मुक़ाबला करने का साहस नहीं कर सकता।

× × ×

३—रेडियो

रेडियो शब्द को आजकल सभी जान गये हैं। यह रेडियो की ही महिमा है कि हम घर बैठे ही इँगलैंड, जर्मनी, इटली, अमेरिका वग़ैरह दूर देशों की ख़बरें कुछ मिनटों में ही पा जाते हैं; कलकत्ता, मदरास, बम्बई, लाहौर अथवा लंदन, न्यूयार्क आदि से गाना, व्याख्यान, ख़बर, बातचीत आदि सुन लेते हैं। पर अभी सर्वसाधारण को यह नहीं मालूम कि रेडियो है क्या चीज़। यहाँ पर हम संक्षेप में यही बतलावेंगे। रेडियो एक प्रकार की बिजली की लहर है। जैसे जल में लहर पैदा होती है, वैसे ही हमारे बोलने से हवा में भी लहर पैदा होती है और इसी लहर या तरंग की सहायता से वह हमारी बात—हमारे मुख से निकले हुए शब्द—एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है। इस दृष्टान्त से यह स्पष्ट समझ में आता है कि रेडियो-तरंग के लिए भी हवा अथवा ऐसे ही किसी तत्त्व का होना ज़रूरी है, जिसके भीतर होकर रेडियो-तरंग प्रवाहित होगी। वैज्ञानिकों ने ईथर नाम के एक सर्व-व्यापी पदार्थ या तत्त्व की कल्पना की है। इसी ईथर के आधार पर रेडियो की लहरें प्रवाहित होती हैं। Steinmetz आदि किसी-किसी वैज्ञानिक का कहना है कि ईथर नाम की कोई वस्तु नहीं है। किन्तु आइन्स्टाइन ने "ईथर और सापेक्षवाद" नाम की अपनी वक्तृता में ईथर के अस्तित्व को अच्छी तरह प्रमाणित कर दिया है। साधारण बिजली की रोशनी या बिजली के पंखे के लिए तार की ज़रूरत होती है; लेकिन रेडियो की लहरें तार की सहायता के बिना ही एक जगह से दूसरी जगह जा सकती हैं। इसीलिए रेडियो को बेतार भी कहते हैं। बिजली का अस्तित्व पहले से होने पर भी सन् १८६१ में मैक्सवेल ने ही पहले-पहल बिजली की लहरों का अस्तित्व हमें बतलाया था। इसके बीस साल बाद हर्ट्ज़ ने एक थ्योरी निकाली और उसी थ्योरी से रेडियो द्वारा ख़बरें आदि भेजने के उपाय निकाले गये हैं।

सन् १८७९ में ह्यूएस ने को-हियरर नाम के यन्त्र के मूल तथ्य का आविष्कार किया था। इस यन्त्र की सहायता से बिजली की लहरों का अस्तित्व प्रमाणित किया गया। १८८५ में एडीसन ने रेलवे स्टेशन और चलती हुई ट्रेन के बीच बेतार से ख़बर भेजने का एक उपाय खोज निकाला। किन्तु १८९५ में मारकोनी ने ही सबसे पहले यह दिखाया कि बिजली की लहर के द्वारा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जी जा सकती है। सन् १८९६ में उन्होंने पहले
मील के फ़ासले से बिना तार के ख़बर भेजी।
अगले साल उन्होंने चार मील की दूरी पर बिना
ख़बर भेजने में सफलता पाई। १९०१ में १२
को मारकोनी ने १८०० मील की दूरी से 'एस'
को रेडियो के सहारे सुना। इस समय इतनी तेज़ी
यो की उन्नति हुई कि सन् १९०२ में अटलांटिक
पार के इस पार से उस पार रेडियो के द्वारा
भेजी गई। संक्षेप में यही रेडियो का इतिहास
पर्वोक्त कई वैज्ञानिकों के अलावा और भी कई
कों का नाम रेडियो के जन्म-वृत्तान्त के साथ
जाता है। सन् १९०६ में जनरल डानउडी
पेकार्ड ने यह आविष्कार किया कि कार्बोरेण्डम्
(crystal) और सिलीकान् से बने हुए
के बीच से alternating बिजली केवल एक
र प्रवाहित होती है। प्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक
सर जगदीशचन्द्र वसु ने भी इसी विषय का
कार स्वतन्त्र रूप से किया था। इन्हीं सब
कारों के द्वारा बिजली को शब्द के रूप में बदलना
हुआ है। रेडियो के मूल तथ्य को हम टेलीफ़ोन
न्त द्वारा सहज में समझ सकते हैं। टेलीफ़ोन
हिस्से होते हैं। एक माइक्रोफ़ोन, जिसे हम
सामने रखते हैं। इसी यन्त्र की सहायता से
अपने शब्द को बिजली के रूप में बदलकर तार
हायता से दूर भेजते हैं। दूसरा हिस्सा है टेली-
जिसे हम कान से लगाते हैं। यही यंत्र दूसरी
से बिजली के रूप में परिणत शब्दों को फिर
रूप में हम तक पहुँचाता है। संक्षेप में मतलब
कि टेलीफ़ोन के प्रयोग में हम एक बार शब्द को
ती के रूप में बदलते हैं और फिर वह बिजली
वन जाती है। इसी तरह रेडियो में एक ओर
को बिजली की लहरों का रूप दिया जाता है और
ओर बिजली की लहरें शब्द के रूप में परिणत
हैं। रेडियो और टेलीफ़ोन में अन्तर यही है कि
ोन में शब्द को बिजली के रूप में बदला जाता है,
ए उसमें तार की ज़रूरत है; लेकिन रेडियो में
को बिजली की लहरों का रूप दिया जाता है और
बिजली की लहरें ईथर के सहारे चलती हैं, इसलिए इसमें तार की कोई ज़रूरत नहीं है। इस जगह पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि बहुत दूर से रेडियो की जिन लहरों को हम यन्त्र की सहायता से पकड़ते हैं, वे साधारणतः आकाश में बादल वग़ैरह में प्रतिफलित होकर ही—टकराकर ही हमारे पास आती हैं। अतएव प्रधान रूप से रेडियो में दो चीज़ों की ही ज़रूरत है—एक ख़बर भेजनेवाली मशीन और दूसरी ख़बर लेनेवाली मशीन। पहली मशीन शब्द को रेडियो की लहरों के रूप में बदलकर चारो ओर फैला देती है और दूसरी मशीन उन लहरों को उसी शब्द के रूप में बदल देती है। जिस जगह से ख़बर भेजी जाती है, उस जगह एक हवा में स्थित तार (Aerial) में बहुकम्पनयुक्त दोलायमान बिजली (high frequency oscillatory current) पैदा की जाती है। इस बिजली की लहरें ईथर के सहारे चारो ओर दूर-दूर तक फैल जाती हैं। इन लहरों को वार्तावाहक (carrier) लहरें कहते हैं। रेडियो की ये लहरें जब इन लहरों को ग्रहण करने के लिए उपयुक्त सहध्वनित (tuned) वार्ताग्राहक यन्त्र के वायु में स्थित तार पर आकर पड़ती हैं, तब इस तार में भी वह बहुकम्पनयुक्त दोलायमान बिजली (high frequency oscillatory current) प्रवाहित होती है। आदमी जब माइक्रोफ़ोन के सामने बोलता है, तब उसकी बात बिजली के रूप में बदल जाती है। इस बिजली को प्रेरक यंत्र के हवा में स्थित तार की दोलायमान बिजली के ऊपर डाला जाता है। इससे दोलायमान बिजली का स्पन्दन-परिमाण (amplitude) उस शब्द या बात के रूप में परिवर्तित होता है। इस परिवर्तन के फलस्वरूप एक नई लहर उत्पन्न होती है। इसे वागाश्रित लहर (modulated waves) कहा जा सकता है। यह वागाश्रित लहर ग्राहक यंत्र के हवा में स्थित तार में वैसे ही कम्पन से युक्त दोलायमान बिजली उत्पन्न करती है। मतलब यह कि जिस शब्द के बोलने में जैसे और जितने कंपन होते हैं, वैसे ही और उतने ही कंपन वहाँ भी जाकर पैदा होते हैं और वैसा ही शब्द दूसरी जगह सुननेवाले को सुनाई देता है। अगर इस बिजली को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

टेलीफ़ोन के ज़रिये भेजा जाय तो यह बिजली शब्द के रूप में परिवर्तित नहीं होगी। कारण, कंपन की संख्या अगर फ़ी सेकिंड १५ से लेकर १५००० तक हो, तभी हम शब्द को सुन पाते हैं। रेडियो की बिजली के कम्पन का आवर्त्त १०००० से ३ करोड़ तक फ़ी सेकिंड हो सकता है। टेलीफ़ोन में एक पतला पर्दा (diaphragm) रहता है। यह काँपता है, इसी से हम शब्द को सुन पाते हैं। किन्तु रेडियो की बिजली alternating (द्विरभिमुखी) है, और उसकी कम्पन-संख्या (frequency) भी बहुत अधिक है। इसी लिए टेलीफ़ोन का पतला पर्दा रेडियो की बिजली में एक तरह से स्थिर ही रहेगा और कोई बात सुनाई न देगी। इसीलिए रेडियो की बिजली को टेलीफ़ोन में भेजने के पहले एकाभिमुखी कर लेना होता है। जिस यंत्र की सहायता से यह काम किया जाता है, उसे अँगरेज़ी में डिक्टेटर कहते हैं। किसी-किसी स्फटिक (crystal) का यह धर्म है कि उसके भीतर से बिजली केवल एक ही ओर प्रवाहित होती है। इसी तरह के एक स्फटिक का आविष्कार सर जगदीशचंद्र वसु ने किया था। कार्बोरेंडम् और एक स्फटिक है। इसका भी यही गुण है। डिक्टेटर यंत्र के द्वारा भेजने से बिजली दोनों ओर अर्थात् एक बार सामने, फिर पीछे, फिर सामने—इस तरह प्रवाहित न होकर केवल एक ही ओर प्रवाहित होगी। अब हम अगर इस बिजली को टेलीफ़ोन के द्वारा भेजें तो टेलीफ़ोन का पर्दा काँप उठेगा और जिस शब्द के कारण वागाश्रित लहर (modulated waves) की सृष्टि हुई थी, वही शब्द हम सुन पावेंगे। यहाँ पर यह बता देना ठीक होगा कि लाउड-स्पीकर भी एक तरह का टेलीफ़ोन है। अन्तर केवल इतना ही है कि टेलीफ़ोन से केवल एक ही आदमी बात सुन सकता है, लेकिन लाउडस्पीकर से एक साथ बहुत से आदमी उसे सुनते हैं।

× × ×

४—कितनी दूर से रेडियो की लहरें ग्रहण की जा सकती हैं?

रेडियो की लहरें कितनी दूर से ग्रहण की जा सकती हैं, इस प्रश्न का उत्तर यह है कि नीचे लिखी बातों पर यह निर्भर करता है कि रेडियो की लहरें कितनी दूर तक से ग्रहण की जा सकती हैं—१ ऋतु, २ दिन या रात, ३ आकाश की अवस्था, ४ हवा में जो लकड़ियों पर तार लगाया जाता है, उसकी अवस्थिति, ५ रेडियो की भेजनेवाली मशीन की ताक़त, ६ ग्रहण करनेवाली मशीन की सूक्ष्मग्राहिता (sensitiveness) और ७ परिचालक की निपुणता। गर्मियों में आकाश की अवस्था बेतार की ख़बर लेने के लिए बहुत अच्छी या उपयोगी नहीं होती। दिन की अपेक्षा रात को ही बेतार का शब्द अधिक स्पष्ट और बहुत दूर तक सुना जा सकता है। लेकिन यह भी ठीक है कि रात को भी रेडियो की शक्ति सर्वदा समान नहीं रहती। भेजनेवाली और ग्रहण करनेवाली मशीन के बीच के स्थान की प्रकृति (nature) के ऊपर भी रेडियो की आवाज़ साफ़ और दूर तक सुनाई देना बहुत कुछ निर्भर करता है। कारण, ऐसे भी स्थान हैं, जो प्रेरक-यंत्र के निकटवर्ती होने पर भी, वहाँ कोई रेडियो की लहर नहीं पहुँचती। ऐसा शायद भूगोल अथवा आकाश की अवस्था या ज़मीन की सतह के गठन के कारण ही होता है। रेडियो की लहर स्थल की अपेक्षा जल के ऊपर बहुत अच्छी तरह प्रवाहित होती है। यद्यपि यह निश्चित रूप से नहीं बतलाया जा सकता कि रेडियो की लहरें कितनी दूर तक पकड़ी जा सकती हैं, तथापि यह कहा जा सकता है कि सौ मील के अंदर सब समय बेतार की ख़बर प्राप्त की जा सकती है। मगर गर्मियों में मध्यभाग में दो-एक सप्ताह इसमें व्यतिक्रम भी हो सकता है। ५०० मील की दूरी के स्थान से साल के नव-दस महीनों में शाम को बेतार की ख़बर ज़रूर सुनाई पड़ेगी। २००० मील की दूरी के स्थान में सर्दियों के मध्यभाग में आधी रात को कुछ समय तक रेडियो की ख़बर अवश्य सुनाई देगी। २००० मील के ऊपर सर्दियों के मध्य-भाग में कई सप्ताह ऐसे होंगे, जब आधी रात को घंटे-दो घंटे के लिए रेडियो की ख़बर ज़रूर सुनाई देगी। लेकिन इस हिसाब में कभी-कभी गड़बड़ भी हो सकता है।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

५—रेडियो का व्यवहार

रेडियो का व्यवहार सबसे पहले जहाज़ पर किया
ा था। समुद्र-यात्रा में आब-हवा, दिशाओं का
र्णय, स्थान का निर्देश कितना ज़रूरी होता है, यह
ी जानते हैं। ये सब काम पहले भी रेडियो की
यता से होते थे और अब भी होते हैं। सन् १८९७ में
ोनी ने एक जहाज़ से १० मील की दूरी पर, किनारे
बेतार की ख़बर भेजी थी। क्रमशः रेडियो की मशीनों
उन्नति के साथ-साथ १०००० मील तक अब ख़बर
ी जाने लगी है। लेकिन इसमें भी विस्मय की कोई
त नहीं है। १९१० में एक जंगी जहाज़ (Principessa
afalda) ने दिन को ४००० मील और रात को
भग ७००० मील दूर के स्थान से रेडियो की
र प्राप्त की थी। १९१३ में Kolster साहब ने सबसे
ले गवर्नमेंट को यह सूचना दी थी कि लाइटहाउस,
ूटशिप और जीवन-रक्षक स्टेशनों में रेडियो का
हार हो सकता है। १९२१ में Firth of Forth
स्काटलैंड) के एक द्वीप में एक बेतार-युक्त लाइटहाउस
ला गया है। रेडियो की लहरें प्रतिफलक (reflector)
सहायता से एक किरण-समष्टि (beam) के रूप
बदलकर एक सौ मील तक भेजी जाती हैं। इनकी
ायता से जहाज़ों के कप्तान कोहरे में भी स्थान और
ा का निर्णय कर सकते हैं। जैसे समुद्र में जहाज़
, वैसे ही आकाश में एरोप्लेन पर भी रेडियो बहुत
म आता है। आजकल चलते हुए हवाई जहाज़ से
ि पृथ्वी पर के मनुष्य से बातचीत की जाती है।
त और आकाश के अलावा स्थल में भी जहाँ और सब
ायों से बातचीत करने की सुविधा नहीं है, वहाँ रेडियो
त काम में सुविधाजनक होता है। आजकल अमेरिका
राष्ट्र में ख़बरों का आदान-प्रदान रेडियो की सहायता
ही होता है। महासागर के एक किनारे से दूसरे किनारे
रेडियो की सहायता से ही ख़बरें भेजी जाती हैं. बात-
ीत की जाती है। रेडियो से बातचीत करने में प्रधान
सुविधा यह है कि उस बातचीत को हरएक स्थान के
ादमी अपने ग्राहकयंत्र से सुन सकते हैं, जिससे कोई बात
ुपी नहीं रह सकती। इस असुविधा को दूर करने
के लिए भी कई उपायों का आविष्कार किया गया है, जैसे गाइडेड् वेव टेलीफ़ोन, केरियर फ़्रीकोवेन्सी और ओवर रेडियो टेलीफ़ोनी। इन उपायों से तार की सहायता से दो स्थानों के बीच रेडियो की लहरें भेजी जाती हैं। कुछ ऐसे उपाय निकाले गये हैं, जिनसे एक ही समय में विभिन्न तारों के द्वारा विभिन्न ख़बरें भेजी जा सकती हैं। किन्तु यह तरीक़ा बहुत कुछ टेलीफ़ोन सिस्टम का ही रूपान्तर है। आजकल एक प्रकार के ऐसे प्रेरकयंत्र का आविष्कार हुआ है, जिसका उपयोग केवल एक ख़ास तौर के ग्राहक-यंत्र के साथ ही हो सकता है। इस उपाय से ख़बर या बातचीत को औरों से छिपा रखना बहुत कुछ आसान हो गया है।

× × ×

६—रेडियो के विविध उपयोग

और भी कई तरह से रेडियो का व्यवहार होता है। जैसे, जहाज़ और हवाई जहाज़ के विपत्ति में पड़ने पर उसकी सूचना देनेवाला प्रकाश भेजना और दूर से किसी वस्तु का नियन्त्रण या सञ्चालन करना। इसका व्यवहार एरोप्लेनों में, लड़ाई के टैंकों में और जंगी जहाज़ों में किया जाता है। रेडियो का व्यवहार प्रधानतः आनन्द-दान या मनोरंजन के लिए ही किया जाता है। इसके सिवा फ़ोटो, अँगूठे की छाप और हस्तलिपि भी आजकल रेडियो की सहायता से एक जगह से दूसरी जगह भेजी जाने लगी है। इसका मूल तथ्य यह है फ़ोटो के काले रंग की गहराई के अनुसार इसके द्वारा भेजे गये प्रकाश की शक्ति कम-बेश होगी। फ़ोटो इलेक्ट्रिक सेल की विशेषता यही है कि इसके भीतर जिस (कम या अधिक) शक्ति का प्रकाश पड़ेगा, वैसी ही शक्ति की बिजली इसमें तैयार होगी। इस सेल के भीतर से प्रकाश भेजकर इस तरह फ़ोटो के रंग की गहराई और प्रकार के भेद से उसी के अनुरूप शक्ति की बिजली उत्पन्न की जाती है। इस बिजली के द्वारा रेडियो की बिजली परिवर्तित (modulated) की जाती है। फ़ोटो-ग्राहक-यंत्र में इस बिजली को वैसी ही शक्ति से युक्त प्रकाश के रूप में बदलकर फ़ोटो के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फ़िल्म में उसे डालकर ठीक वैसा ही फ़ोटो खींच लिया जाता है। टेलीविज़न भी मूलतः बहुत कुछ ऐसा ही है। अन्तर केवल यही है कि टेलीविज़न में चित्र-ग्राहक-यंत्र में चित्र उसके पर्दे पर प्रतिफलित होता है।

शिक्षा के फैलाने में भी रेडियो का व्यवहार किया जाता है। रेडियो के द्वारा मौखिक शिक्षा देना ख़ूब सहज हो गया है। किन्तु इसमें मुख्य असुविधा यह है कि ख़र्च बहुत बैठता है। फिर भी किसी-किसी स्थल में यह अधिक व्यय भी अपव्यय नहीं कहा जा सकता। कारण, इस उपाय से बहुत थोड़े समय में केवल एक अभिज्ञ मनुष्य विभिन्न स्थानों के हज़ारों आदमियों को घर बैठे एक साथ शिक्षा दे सकता है। आधुनिक खोज ने रेडियो की मशीनों की बड़ी उन्नति की है और अब भी नये-नये सुधार होते जा रहे हैं। अब अनेक स्थानों में वायु में लगाया हुआ तार लम्बे आकार का नहीं, लूप-सा होता है। इस तरह के हवा में लगाये जानेवाले तार की सहायता से बहुत दूर की रेडियो की लहरें यद्यपि नहीं पकड़ी जा सकतीं, तथापि अनेक बातों में यह सुविधाजनक है। आजकल के वैज्ञानिकों ने रेडियो की लहरों के ऊपर आकाश के वैद्युतिक उपद्रव की संभावना भी बहुत कम कर दी है। उन्होंने यह भी खोज निकाला है कि रेडियो-लहरों की लम्बाई कम होने से ही वे बहुत दूर के ग्राहकयंत्र में बिजली पैदा कर सकती हैं और उन्हीं को दिन या रात को सभी समय बहुत दूर पर ग्रहण किया जा सकता है। आजकल भारतवर्ष के प्रायः सभी रेडियो-स्टेशनों से ये छोटी लहरें ही भेजी जाती हैं। vacuum tube नाम का एक विशेष यंत्र होता है, उसी की सहायता से रेडियो की लहरों की शक्ति बढ़ाई जाती है और उन्हें एकाभिमुख किया जाता है। रेडियो का रहस्य बहुत जटिल है। यह विज्ञान का चरम चमत्कार है।

भारतवासियों को उपहार

अरविंद सिल्क

अत्यन्त सुन्दर, कोमल, चमकीला तथा पायदार
सहस्रों थान बिक चुके हैं, आप स्वयं परीक्षा करें।

सिल्क पापलीन, सब रंग, थान १२ गज़ × १२ गिरह		५)
टसर सिल्क, सफ़ेद तथा ख़ाकी	,, ,,	७)
सिल्क टविल, सब रंग	,, ,,	६॥)
सिल्क चादर, ,, ३ गज़ × १½ गज़, फ़्री जोड़ा		४॥)
टसर सिल्क चादर सफ़ेद	,, ,, ,,	६॥)
अंडी चादर	,, ,, ,,	८)

सिल्क साड़ी ब्लाऊज़ सहित ६ गज़, बढ़िया फूलदार बार्डर पक्का छापा कलर डिस्चार्ज सब रंग प्रति सेट ५)

नोट—आर्डर देते समय रंग का नाम लिख दें अथवा उसके साथ छोटा सा नमूना भेज दें। डाकख़र्च माफ़। माल यदि रुचिकर न हो तो मूल्य लौटा दिया जावेगा।

एजंटों की आवश्यकता है

स्त्री या पुरुष जो हमारे रेशमी तथा ऊनी माल का आर्डर ले सकें, मासिक वेतन ६०)। एक आना का टिकट भेजकर नियम मँगाएँ।

अरविंद टैक्सटाईलज़ नं० २५, लुधियाना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेख-सूची

विषय	पृष्ठ
१. गीत (कविता)—[लेखक, श्रीसुबोध अदावाल	६४६
२. मानस की भाषा और हिन्दी-हिन्दुस्तानी—[लेखक, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी एम्० ए०	६५०
३ मेरे कालेज-जीवन के साथी (सचित्र)—[लेखक, हिन्दू-विश्वविद्यालय का एक विद्यार्थी	६५६
४. डॉ० जानसन—[लेखक, श्रीप्रेमनारायण टंडन "विशारद" ...	६६६
५. प्रतिहिंसा (कहानी)—[लेखक, श्रीसुरेंद्रप्रसादसिंह	६७५
६ अँगरेज़ी-नाट्य-साहित्य—[लेखक, श्रीमधुसूदनदास अनुबंदी एम्० ए०, विशारद	६८१

बवासीर का काल

क्या इस दवा के रहते भी आप ख़ूनी या बादी बवासीर से कष्ट उठाते ही रहेंगे ? कैसा ही पुराना हो २१ दिन में जड़ से आराम न हो तो दूना दाम वापस। मू० २) रु०।

स्वप्नदोष और सूजाक

सिर्फ़ १५ दिन इस अमोघ वनौषधि के सेवन करने से सदा के लिये दूर हो जाता है। मू० २) रु०।

महाबीर औषधालय,
नं० ५ दरभंगा।

अब कोई इन्सान नामर्द नहीं रह सकता

चाहे सत्तर साला बूढ़ा ही क्यों न हो

आला-ए-नामर्दी—का आविष्कारक एक जर्मन साइंसदान है।

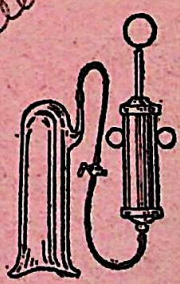

जिससे चन्द सैकिंड में ही वह ताकत हासिल होती है जिसके लिये हजारों अभागे लोगों की रातें हराम हुई पड़ी हैं। किसी दवाई की कोई जरूरत नहीं, कोई नामर्द से नामर्द भी क्यों न हो इसके सेवन करने से जवान मर्द, बल्कि इससे भी बढ़कर बन जायँगे और जिंदगी भर कभी भी शरमसार न होंगे। ताकत का एक असीम और कभी खतम न होनेवाला खजाना हाथ आ जायगा। थोरप में इसकी ही कृपा से हजारों और लाखों इन्सान जिनकी उमंगों पर पानी पड़ चुका था अपनी खोई हुई ताकत-जवानी को फिर से हासिल करके जीवन का सुख उठा रहे हैं। यदि आप बचपन की "ग़लतकारियों" या जवानी की "बहुतायत" के कारण खाली हाथ हो गये हैं और नीम हकीमों की जहरीली दवाइयां खा खाकर रही-सही ताकत से भी हाथ धो बैठे हैं तो आज ही इस अद्वितीय "आला-ए-नामर्दी" को मँगाइये। खूबी यह कि एक आले से कई-कई सज्जन लाभ उठा सकते हैं।

इस ख़्याल से कि इससे हर हैसियत के लोग लाभ उठा सकें इसकी रियायती कीमत केवल ७॥) रक्खी है। इसके अतिरिक्त इन्हीं खूबियों के साथ-साथ अधिक "मोटापा और लम्बाई" के लिये खास आला १०) डाक-खर्च १=) अलग। दो एक साथ मँगाने पर माफ। पत्र-व्यवहार गुप्त रक्खा जाता है।

मैनेजर दि रॉयल स्टोर्ज़ (M. L.) ब्राण्डरथ रोड, लाहौर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय		पृष्ठ
७.	प्रणयोन्मुख (कविता)—[लेखक, श्री-केदारनाथ मिश्र "प्रभात" एम्० ए०	६९२
८.	भारत में नाज़ी प्रोपेगैंडा—[लेखक, श्रीभगवतीप्रसाद श्रीवास्तव एम्० एस् सी०	६९३
९.	हिन्दू-समाज में क्रान्ति की आवश्यकता—[लेखक, श्रीरामनारायण 'यादवेन्दु' बी०ए०, एल्-एल्०बी० ...	६९८
१०.	जादूगर नर्तकी (उपन्यास)—[लेखक, श्रीसाधुशरण	७०८
११.	अछूत (कहानी)—[लेखक, श्रीपीयूष-बिन्दु घोस बी०ए०,एल्-एल्०बी० ...	७१८
१२.	उषा-किरन (कविता)—[लेखक, श्री-कामताप्रसाद शुक्ल बी० ए० ...	७२२
१३.	परस्पर (कविता)—[लेखक, कुँ० हरिश्चन्द्रदेव वर्मा "चातक" कविरत्न	७२२
१४.	नेस्टर का नगर और भारतीय इतिहास—[लेखक, श्रीफ़तेहसिंह एम्०ए०	७२३
१५.	सिनेमा और निरक्षरता-निवारण—[लेखक, श्रीबालगोविन्दप्रसाद ...	७२५

१०० रुपया इनाम

महात्मा की बताई हुई श्वेत कुष्ठ (सफ़ेदी) की दवा से तीन दिन में पूरा आराम। यदि आप सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों और विज्ञापनी दवाओं से निराश हो चुके हैं तो इसे लगाकर इस घृणित रोग से मुक्त होवें। विश्वास न हो ⁻) का टिकट भेज शर्त लिखा लें। मूल्य श्वेत कुष्ठ की दवा का १॥), गलित कुष्ठ (सुनबहरी) हाथ-पाँव में ज़ख्म होना, अंगुलियों का गल जाना इत्यादि एक माह में पूर्ण आराम ! मूल्य २) धातुपौष्टिक चूर्ण—इससे धातुविकार, स्वप्नदोष दूर होते हैं और वीर्य गाढ़ा हो जाता है। मूल्य १॥) प्रति शीशी।

पता—दर्शन सिन्हा मो० हलिपुर
पो० एकंगरसराय (पटना)

इसको रखने के लिये लाइसेंस की ज़रूरत नहीं।

नये साल का
नया मॉडल

अमेरिकन अलारम पिस्तौल

इस पिस्तौल की लम्बाई सात इंच और वज़न १५ औंस है। इसे देखते ही दुश्मन को जान के लाले पड़ जाते हैं चोर, डाकू, ख़ूनख़्वार जानवर, गरजती आवाज़ सुनकर एकदम भाग जाते हैं। घर, बाहर, जंगलों, पहाड़ों और यात्रा आदि में आपका बाडी गार्ड है। 'एक के बाद एक' करके लगातार ५० ज़बर्दस्त फ़ायर करता है। अभी-अभी अमेरिका से बनकर आये हैं। असली माल सिर्फ़ हमसे ही मिलेगा, क़ीमत मय ३०० शाट सिर्फ़ चार रुपये चार आने ४।), फाल्तू ५०० शाट २), पिस्तौल की पेटी व खोल १॥), पिस्तौल के लिये तेल की शीशी ।॥)। डाकख़र्च अलग। आज ही मँगा लें।

मँगाने का पता:—
दी. आनन्द, जनरल मैनेजर अमेरिकन पिस्तौल एजन्सी (M. L. 2)
पोस्ट बक्स नं० २३० लाहौर (M. L. 2).

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

	विषय	पृष्ठ
६.	नई बहुओं के लिए—[लेखिका, श्रीमती "रजनी"	७२७
७.	छाया—वर्तमान सिनेमा-पत्र—[लेखक, श्री-ज्योतीन्द्रनाथ	७३२
८.	'प्रसाद' की स्मृति में—[लेखक, श्री-सूर्यनारायण व्यास	७३५
९.	वसन्तोत्सव (कविता)—[लेखक, श्रीरामशंकर गुप्त "कमलेश" ...	७३९
१०.	गृह-स्वामी (एकांकी-नाटक)—[लेखक, श्रीकृष्णमनोहरसिंह साँडल ...	७४०
११.	रूम-सागर में इटली और ब्रिटेन का सम्बन्ध—[लेखक, श्रीगोविन्दप्रसाद हसबी एम्० ए०	७४७
१२.	"फिर आई कारी बादली !!" (कहानी)—[लेखिका, श्रीमती निर्मला मित्रा ...	७५०
१३.	असाढ़ के बादल (कविता)—[लेखक, श्रीनीलकंठ तिवारी, एम्० ए०, साहित्यरत्न	७५४
१४.	"तुलसीदास" (आलोचना)—[लेखक, श्रीइन्द्रदत्त शर्मा	७५६

५० रुपया इनाम सिद्ध कवच

जिस काम को आप लाखों रुपया ख़र्च कर नहीं कर सकते, उसे सिर्फ़ सिद्ध कवच को धारण करने ही से कर सकते हैं, जिसमें किसी तरह का कष्ट या साधन की आवश्यकता नहीं है। जिसे आप चाहते हैं वह चाहे कितना ही घमण्डी, कैसा ही पत्थरदिल, कैसा ही सख़्त कलाम क्यों न हो, आप पर मोहित होकर आपकी आज्ञानुसार कार्य करेगी। इस यन्त्र से भाग्य उदय होकर नौकरी मिलती है। मुक़दमे में जीत, परीक्षा में पास, रेस और लौटरी में जीत और इससे ग्रह शांत होते हैं। अगर आप मन्त्र और यन्त्र से बार-बार ठगे जा चुके हैं तो एक बार इसे अजमा कर इसके अद्भुत चमत्कार को अवश्य देखिये। बेफ़ायदा साबित करने पर ५०) इनाम। मूल्य तांबा का २), चांदी का ३), सोने का ९)।

पता—सर्वार्थ-सिद्धि-आश्रम
नं० १९५ पो० ओ० मिरचाइगंज, (पटना)

लूटो—एक मास के लिए विशेष रियायत दो रुपया

(असली)

करामाती दर्पण

[रजिस्टर्ड]

किसी भी आयु का मनुष्य इस 'करामाती' दर्पण में देख सकता है। चोरी गई वस्तु व गुमशुदा का पता, बीमार के स्वस्थ होने न होने का हाल, आनेवाले व गुजरे हुए हालात, भावी दुखों से बचने के उपाय, गड़े धन का पता, किसी मुश्किल का हल होना या न होना, प्रेम, नौकरी, अदालती केस, परीक्षा आदि में विजय पाना, स्वर्गवासी माता-पिता, मित्रों-शहीदों से मुलाक़ात, जिसे पाना हो पर देखा कभी न हो या जिसकी स्वप्न में भी आशा न हो उसे आप उसमें भले ही देख लेंगे। मूल्य मय पर्चा तरकीब २) महसूल डाक अलग। यदि ग़लत साबित हो तो दाम वापिस।

पता—मैनेजर, अमेरिकन मेजिक हाउस,
(M. L.) पारसन रोड, लाहौर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय		पृष्ठ
२५.	भारतवर्ष में डेरी-फ़ार्मिंग अर्थात् दूध के पशु पालने की आवश्यकता—[लेखक, श्रीयुत एम्० पी० केदार आई० डी० डी०	७६१
२६.	गुल-बकावली का देश—[लेखिका, श्रीमती सावित्रीदेवी शुक्ल ...	७६५
२७.	खँडहर (कविता)—[लेखक, श्रीभारत-भूषण अग्रवाल	७६७
२८.	हमारा दृष्टिकोण	७६९

बवासीर, काँच, भगन्दर

कष्टरहित, हानिरहित, स्थाई चिकित्सा

८ वर्ष में भारतवर्ष के सब स्थानों से सहस्रों रोगी ठीक हो चुके हैं, काँच तो ४८ घन्टे बाद निकलना बन्द हो जाती है। केवल देहली हस्पताल में मार्च १९३९तक ८३४ रोगी चिकित्सा कराकर लाभ उठा चुके हैं। आगरा और बनारस में भी स्थाई ब्रांच हस्पताल स्थापित कर दिये गये हैं। नियम मुफ्त।

पता—

डा० आर० आर० गुप्ता एन्ड सन्स,
नई सड़क, देहली

गारंटी के साथ अच्छा करते हैं—सूज़ाक, गर्मी व नामर्दी

हज़ारों लाभ उठा चुके; सैकड़ों डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों से निराश हुए रोगी दूर-दूर से यहाँ आकर पूर्ण फ़ायदा उठाते हैं। जो यहाँ नहीं आ सकते वे घर बैठे मेरी औषधि मँगा कर इन रोगों को जड़ से नष्ट करें। मूल्य औषधि सूज़ाक नया का २॥) पुराना ५) गर्मी नई २॥) पुरानी ५) नामर्दी थोड़े दिन की हो तो ५) अधिक दिन की हो तो ९) डाकख़र्च ॥-)

शुक्रा टानिक पिल्स—धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, नामर्दी और बीसों प्रमेहों को नाश कर स्तम्भनशक्ति को बढ़ाकर नई जवानी पैदा करती है। ४० गोलियों का मू० २)

लक्ष्मीविलास गोलियाँ—इससे इन्द्रियशिथिलता, थोड़ी उत्तेजना से धातु का गिरना, धातु का पतलापन, दिशा-पेशाब के साथ वीर्य का निकल जाना, दिमाग़ कमज़ोर, सिरदर्द कमर-दर्द, स्वप्नदोषादि बीसों प्रमेहों को आराम कर वृद्ध मनुष्य भी रक्त, मांस, धातु से परिपूर्ण; हृष्ट-पुष्ट; अपार वीर्यवाला तथा महाकामी होता है। स्तम्भनशक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है। मूल्य ६० गोलियों का ५), पोस्टख़र्च ॥-)

नपुंसकताहरण तिला कस्तूरीमिश्रित—यह कस्तूरी नामर्दी, ढीलापन, बाँकपन, को नाश कर असली ताक़त पैदा करता है, मूल्य ५) फ़ी शीशी डा० ख़र्च ।≡)

पता—पं० अयोध्याप्रसाद वैद्यशास्त्री, शुक्ला आयुर्वेदिक औषधालय,
निशातगंज, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. कुञ्ज-भवन में

२. कसीदा

सादे चित्र अनेक

बे रोज़गारों को रोज़गार

आप अपने खाली समय में रोज़ाना ४-५ घन्टे काम करके ५० रुपया से १०० रुपया माहवार तक कमा सकते हैं। आज ही एक पत्र लिखकर नियम मुफ़्त मँगायें।

मैनेजर—माधुरी, लखनऊ।

१२ घड़ियां सिर्फ़ २॥) में

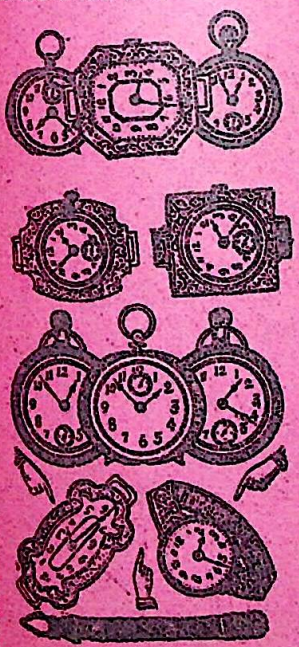

छे डमी रिस्टवाच, ५ डमी पाकेट वाच और एक अदद मज़बूत मशीनरी का सच्चा वक़्त देने वाला जर्मनी टाइमपीस चाबी ३६ घन्टा, गारन्टी २० साल, यह घड़ियाँ हमने ख़ास तौर पर विलायत से बड़ी भारी संख्या में मँगवाई हैं सिर्फ़ पांच हज़ार घड़ियां इस रिआयती क़ीमत पर बेचने का फ़ैसला किया है। इसलिये जल्दी करें वरना यह मौक़ा हाथ से निकल जावेगा। घड़ियों के साथ एक फ़ौन्टेन पेन मय १८ केरिट रोल्ड गोल्ड निब, एक नाम वाली सुनहरी अँगूठी, एक असली ठंडी ऐनक और एक खूबसूरत मोतियों का हार मुफ़्त दिया जावेगा। महसूल डाक व पैकिंग ॥=) अलग। नापसन्द होने पर क़ीमत वापिस।

मँगाने का पता:—

जर्मन ट्रेडिंग हाउस, पो० ब० नं० २३०,

(M. L.) लाहौर, LAHORE.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

❀ हिन्दी-संसार को ❀

अगस्त, ३९ में

नवलकिशोर-प्रेस लखनऊ

की

एक अनुपम भेंट

मूल्य १॥)

मैनेजर माधुरी, लखनऊ

AN IDEAL OFFER

TO

HINDI WORLD

FROM

NEWUL KISHORE PRESS

Price Rs. 1/8/-

Apply to :—

MANAGER, "MADHURI,"

Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAG[illegible] U VISHWARADHYA
JNANA SIM[illegible] MANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, VARANASI
Acc. No. 3603

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

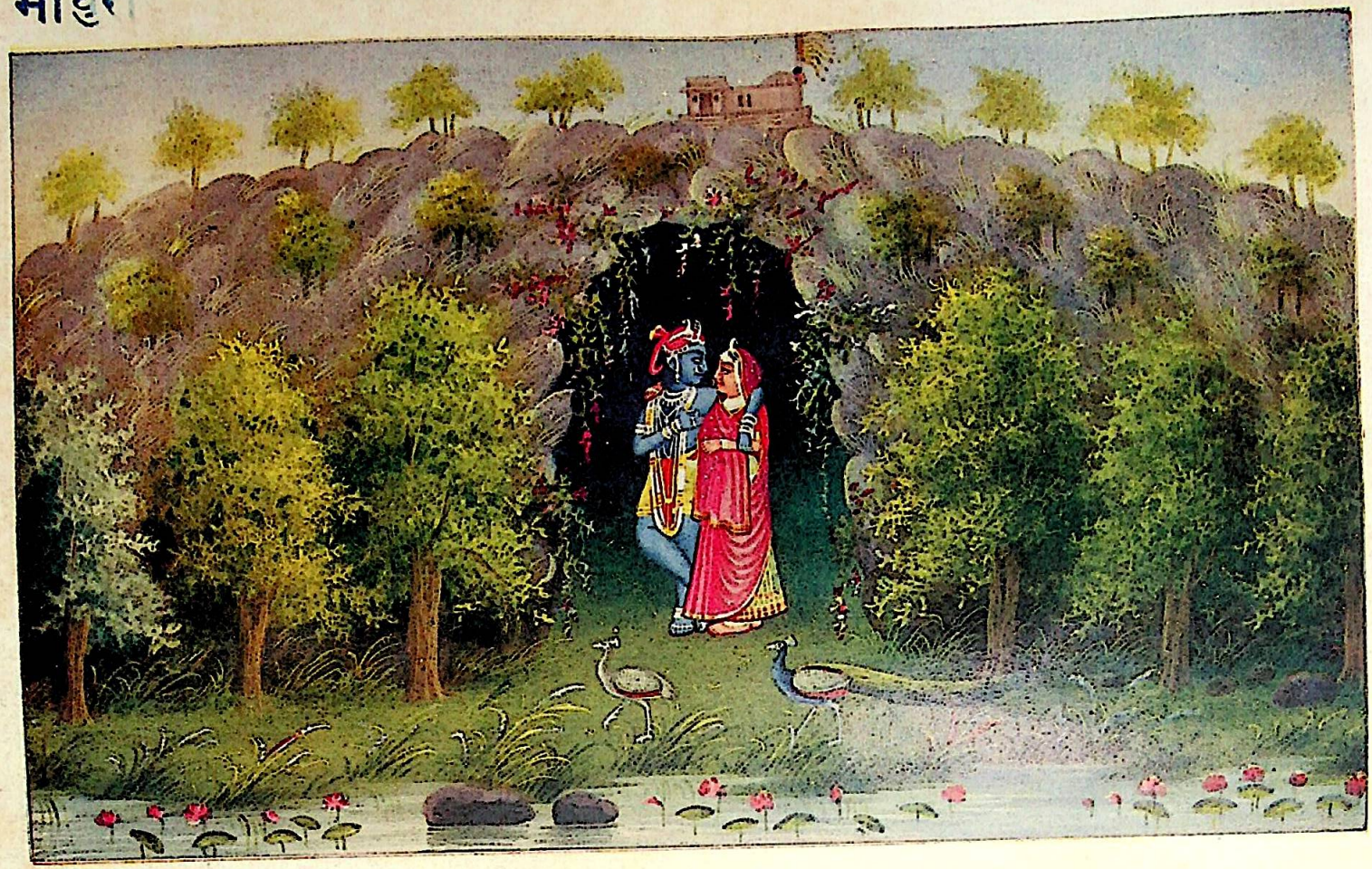

कुञ्ज-भवन में

[चित्रकार—श्रीगोविंदराम-उदयराम]

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

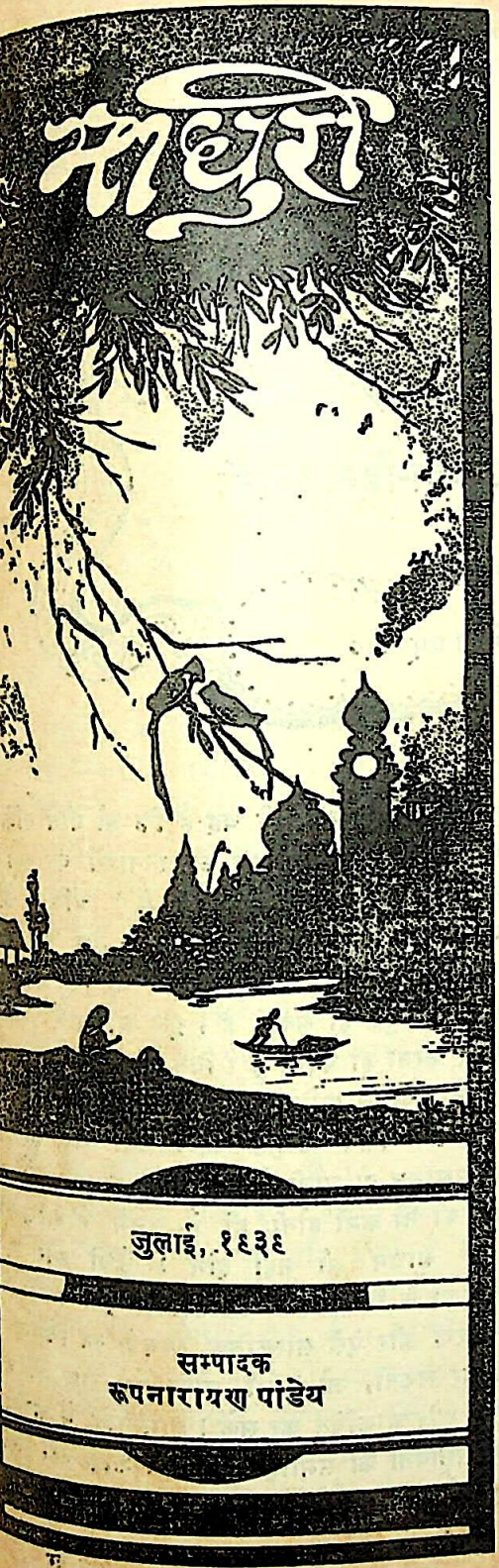

वर्ष १७] आषाढ़, सं० १९९६ [खंड २

गीत

श्रीसुबोध अदावाल

दूर होकर दूर होते !

दीप की मध्यम शिखा में प्राणि-वध का पाप छाया ;
शांति-युग के बीच पीड़ा-क्षण बड़े ही क्रूर होते ।
दूर होकर दूर होते !

आज खिल चम्पक-कली ने विश्व में यौवन पसारा,
दूर ही मँडरा रहे अलि, हाय ! वे कुछ शूर होते ।
दूर होकर दूर होते !

दीखते जब चूमते से दूर तरु तारक-पटल को,
दौड़ती, पर सत्य लख अरमान मेरे चूर होते ।
दूर होकर दूर होते !

मैं हिमाचल-सी बनी जब वे रहे निधि से पृथक्तर,
चरण-रज बन लोटती यदि माँग का सिंदूर होते ।
दूर होकर दूर होते !

संख्या ६] तुलसी-संवत् ३१५ [पूर्ण संख्या २०४

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मानस की भाषा और हिन्दी-हिन्दुस्तानी

पं० नन्ददुलारे वाजपेयी एम्० ए०

यह कहने में कोई आपत्ति नहीं कि रामचरित-मानस की भाषा ठेठ अवधी नहीं है, वरन् वह संस्कृत तथा अन्य प्रान्तीय शब्दों से बनी हुई, गढ़े हुए प्रयोगों से भरी हुई भाषा है। यदि इस कारण रामचरित-मानस की भाषा को कृत्रिम कहा जाय तो यह अनुचित न होगा। पर ऐसी अवस्था में ग्रामीण बोलचाल को ही आदर्श अकृत्रिम भाषा और ग्रामगीतों को ही आदर्श काव्य मानना पड़ेगा। सारा साहित्य अनोखे और अजनबी की श्रेणी में जा पड़ेगा। किन्तु कृत्रिम और अनोखा होते हुए भी साहित्य साहित्य ही है और ग्रामगीत ग्रामगीत ही। कहने का प्रयोजन यह नहीं है कि ग्रामगीतों में उच्च भाव नहीं भरे जा सकते अथवा साहित्य में निम्नकोटि के भाव नहीं आ सकते। आ सकते हैं और आते ही हैं, किन्तु इस कारण सारे साहित्य का तिरस्कार नहीं किया जा सकता और न ग्रामगीतों को साहित्य का स्थानापन्न बनाया जा सकता है। ग्रामीण काव्य की अधिक से अधिक प्रशंसा कर चुकने पर भी हमें उसकी सीमा स्वीकार करनी पड़ेगी। ग्रामगीत की परिभाषा ही यह है कि जो गीत गाँवों के सामान्य जीवन के सुख-दुःख की घटनाओं को वहीं की भाषा में (वहीं के सीमित शब्दों में) अंकित करें। न तो वे सामान्य जीवन की घटनाएँ उच्च काव्य का स्थान ले सकती हैं, न वे ग्रामीण भाषाएँ ही उन्नत काव्य के उपयुक्त हो सकती हैं। इस अनिवार्य कमी को स्वीकार करना ही पड़ता है। बिना विस्तृत शब्द-समूह के, बिना विस्तृत अभिज्ञता और व्यापक जीवन-विषयों का आधार लिये उत्कृष्ट काव्यरचना अव्यावहारिक और असम्भव हो जाती है। ग्रामीण भाषा में शब्द-समूहों की तो कमी होती ही है, उनमें भावाभिव्यक्ति के पूरे साधन भी नहीं होते। ऊँची और सूक्ष्म कल्पनाओं के लिए स्थान नहीं होता। ऐसी परिस्थिति, वातावरण और ऐसे सांस्कृतिक स्वरूपों का चित्रण वह नहीं कर सकती, जो सारी जाति या राष्ट्र की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित कर सकें। ग्रामगीतों में जातीयता और राष्ट्रीयता को समाहित करने की शक्ति नहीं होती। यह कार्य तो जातीय या राष्ट्रीय महाकाव्य ही कर सकते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह न समझना चाहिए कि हम यहाँ ग्रामगीतों निन्दा कर रहे हैं। अपनी सीमा में वे उच्च भावों का वेश कर सकते हैं; किन्तु वे किसी सम्पूर्ण राष्ट्र तिनिधि बनने योग्य नहीं हो सकते। इसके लिए वस्तु ही उपयुक्त नहीं है।

जिस प्रकार ग्रामीण समस्या ही सारे राष्ट्र की या नहीं है, उसी प्रकार ग्रामगीत राष्ट्रीय साहित्य थानापन्न नहीं हैं। मनुष्य में परिमार्जित भाषा और न्यास, सूक्ष्म और सुन्दर कल्पना, महत् और आक-वस्तु-व्यापार तथा भावाभिव्यक्ति की जो सुसभ्य रुचि सकी पूर्ति ग्रामगीतों से नहीं हो सकती। ग्राम-यदि स्थानीय संस्था (Local bodies) का कर सकते हैं, तो साहित्य सर्वोच्च धारासभा की ता रखता है। दोनों की अपने-अपने स्थान पर श्यकता है; किन्तु स्थानीय सभा या म्यूनिसि-राष्ट्र की व्यवस्थापिका परिषद् का पद नहीं कती।

जिस अकृत्रिम ग्रामभाषा की ऊपर चर्चा की गई है, की अकृत्रिमता भी तभी तक है, जब तक वह अपने के भीतर है। उस छोटे घेरे के बाहर आने पर यदि अकृत्रिम नहीं, तो क्रमशः अपरिचित अवश्य ाती है; क्योंकि उन स्थानीय शब्दों का प्रयोग दूर तक नहीं होता। उस सीमित वस्तु-व्यापार से ी दिलचस्पी नहीं होती। सीमित शब्द-समूह के ण उसमें एक दूसरे प्रकार की संकीर्णता भी मालूम लगती है। किसी गाँव के भीतर ही किसी य व्यक्ति को क़ैद रखना जैसा है, वैसा ही साहित्य ग्रामीण शब्दावली, ग्रामीण घटनाचक्र और ग्रामीण नाओं तक सीमित रखना भी है।

मनुष्य प्रसरणशील प्राणी है। उसकी इसी प्रकृति जातीयता और राष्ट्रीयता की सृष्टि होती है। इस ीयता और राष्ट्रीयता के आधार पर ही जातीय या य संस्कृति का निर्माण होता है। इसकी रक्षा पुष्टि के लिए व्यापक भाषा की आवश्यकता होती संस्कृति के निर्माणात्मक उपकरण उसी व्यापक ा में निविष्ट होकर स्थायी बनते हैं। निर्माणात्मक कृति का प्रवाह सदैव जारी रहता है। उसका यथेष्ट उपयोग करने में उक्त भाषा की सहायता लेनी पड़ती है। अंत में उसे ही राष्ट्रभाषा का पद प्राप्त होता है।

यह बात नहीं है कि संस्कृति की निर्माणात्मक धाराएँ राष्ट्रभाषा में ही बह सकती हैं। ग्रामीण भाषा में भी उनके लिए स्थान है; पर राष्ट्रीय भाषा में वे प्रवाह अधिक स्थिर और उपयुक्त माध्यम पा सकते हैं। कारण, राष्ट्रभाषा विस्तृत और व्यापक होती है।

यह बात भी नहीं है कि राष्ट्रभाषा के माध्यम से अनाकांक्षित, अनुपयोगी और हानिकारक वस्तुएँ भी हमें नहीं मिलतीं। ऐसी वस्तुएँ भी मिलती हैं, किन्तु इस कारण राष्ट्रभाषा अपने को अपदस्थ नहीं कर सकती। उसे जातीय संस्कृति के समीकरण (Coordination), रक्षा और विकास का अपना उत्तरदायित्व पालन करना ही होगा। यह सारा कार्य ग्रामगीत नहीं कर सकते।

परिवर्तनशील समय और परिस्थिति का परिचय तथा तद्विषयक शिक्षा राष्ट्रभाषा द्वारा ही दी जा सकती है, ग्रामों में वह परिवर्तन काफ़ी समय बाद पहुँच पाता है। इसलिए ग्रामवासी प्रायः प्राचीन परम्परा के प्रेमी बने रहते हैं, नई परिस्थिति से उत्पन्न शिक्षा उन तक नहीं पहुँच पाती। राष्ट्रीय संघटन, व्यवस्था आदि और नई बौद्धिक शक्तियाँ उन्हें बहुत पीछे प्राप्त होती हैं। ग्रामीण गीत प्रायः पुराना राग ही अलापा करते हैं।

कृत्रिमता के सम्बन्ध में एक बात और भी कहनी है। संस्कृति की निर्माणात्मक और प्रसरणात्मक जितनी भी चेष्टाएँ हैं, वे पहले कुछ न कुछ कृत्रिम जान ही पड़ती हैं। किन्तु साथ ही यदि उनमें वास्तविक उपादेयता या अनिवार्यता है तो उनका आकर्षण जाति और राष्ट्र के लिए बड़ा ही तीव्र और विवशकारी होता है। हम उसका त्याग नहीं कर सकते। उसकी कृत्रिमता भी आह्लादिनी होती है।

किन्तु ऐसे अवसर भी आ सकते हैं और आते हैं, जब कृत्रिमता स्वयं अपना साध्य बनकर आती है। अलंकृत पदरचना और शब्दाडम्बर ही उसके सम्बल होते हैं। वह हमारे सांस्कृतिक विकास में सहायक तो क्या होगी, उल्टा ह्रास में ही सहायक होती है। यह राष्ट्रभाषा का दुरुपयोग कहा जायगा और इसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुष्परिणाम भी (सत्परिणामों की तरह) अधिक व्यापक तथा विस्तृत क्षेत्र में होंगे। किन्तु इस कारण साहित्यिक भाषा या साहित्य की अनुपयोगिता नहीं सिद्ध होती। सच पूछिए तो कृत्रिम साहित्य वही है, जो या तो राष्ट्र की अस्थि-मज्जा में भली भाँति सन्निहित नहीं हो पाता या निहित होकर दूषित रक्त की सृष्टि करता है, और ऐसे साहित्य की वाहिका भाषा ही वास्तव में कृत्रिम भाषा है।

कृत्रिम भाषा की परिभाषा यह हुई कि जो भाषा शब्द-समूह की दृष्टि से अपने व्यवहार-क्षेत्र के अधिकांश जनसमाज की पहुँच के बाहर हो तथा जिसमें सांस्कृतिक उत्थान या निर्माण के कोई ऐसे अंग न हों, जिनसे वह अपनी ओर उक्त समाज को बरबस खींच सके और रूप (शब्दसंपत्ति) से दुरूह होती हुई भी वेशविन्यास (शैली) और गुणों (भावसंपत्ति) से उक्त समाज की अपनी बन सके।

ऐसी भाषा की सृष्टि करनेवाले कविगण या तो अपने पांडित्य के बोझ से उसे दुर्वह बना देते हैं, कठोर नियमों की ज़ंजीर में जकड़कर उसका चलना-फिरना असंभव कर देते हैं, या प्रयोगों की इतनी शिथिलता, रुक्षता और अपरस्पर संबद्धता बरतते हैं कि भाषा विघटित होकर आप ही आप विनष्ट हो जाती है। उसमें अपने पैरों खड़े होने का भी सामर्थ्य न होगा, दूसरों को (जनसमाज को) अपनी ओर समेटने की शक्ति तो दूर की बात है। ये दोनों ही अवस्थाएँ भाषा की कृत्रिमता की द्योतक हैं।

इस दृष्टि से देखने से 'मानस' की भाषा कृत्रिम नहीं कही जा सकती, वरन् वह अतिशय प्रशस्त और प्राणपूर्ण है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण इन तीन सौ वर्षों से निरंतर बढ़ती हुई उसकी लोकप्रियता है। इसकी सैकड़ों चौपाइयाँ और दोहे यहाँ के कई करोड़ निवासियों के कंठों में निवास करते हैं और न जाने कितने वाक्य, मुहावरों या सुभाषितों के रूप में प्रचलित हो गये हैं। इतना व्यापक प्रभाव क्या किसी कृत्रिम भाषा के ग्रंथ का हो सकता है?

संस्कृत के शब्दों का प्रचुर प्रयोग करके एक ओर तो गोस्वामीजी ने अपनी भाषा को शिष्ट स्वरूप दिया और उसे महत् और उन्नततम भावों का वाहक और प्रकाशक बनाया, दूसरी ओर उन्हें देशभाषा के संयत और अत्यन्त मनोरम साँचे में ढालकर चलनसार और टकसाली रूप दे दिया। उनकी यह (भाषानिर्माण की) कला एकदम अपूर्व है। जिस कारीगरी से उन्होंने संस्कृत-शब्दों को देशी रूप दिया, संस्कृत की ज़मीन पर पहले प्रचलित प्रान्तीय भाषा का रंग चढ़ाया और फिर हिन्दी प्रत्ययों और विभक्तियों के बूटे जड़कर हिन्दी धातुओं की गोट लगाई, वह सारी मोहक और प्रांजल छटा—वह अनुपम अलंकृति (Fabric) उन्हीं की निर्माण की हुई है। हमारी मातृभाषा ने उनका अर्पण किया यह परिधान बड़े गौरव के साथ धारण किया है।

इसकी सुषमा का अधिक परिचय देने के पहले इसके महत्त्व के एक और पहलू पर विचार किया जाय। साधारणतः यह नहीं समझा जाता कि हमारी आज की भाषा पर मानस की भाषा का कितना सुदृढ़ प्रभाव है। इन दोनों में कोई संबंध है भी या नहीं, इस विषय में भी पूरी जानकारी नहीं दिखाई देती। किन्तु जिन लोगों ने आधुनिक खड़ीबोली (गद्य और पद्य दोनों) की प्रगति पर कुछ ध्यान दिया है, वे इसके साक्षी होंगे कि अनेक अंशों में मानस की भाषा का आदर्श आधुनिक खड़ीबोली में ग्रहण किया गया है। यह किसी एक या दो-चार साहित्य-शिल्पियों की बात नहीं कही जा रही, वरन् सामान्य रूप से खड़ीबोली का प्रवाह ही 'मानस' का ऋणी है। एक तो सारे हिन्दी-प्रान्त में 'मानस' का ही विशेष प्रचार-प्रसार होने के कारण उसकी ओर सबकी नैसर्गिक दृष्टि थी, फिर जब खड़ीबोली में साहित्य-सृष्टि का प्रश्न आया, तब सबका उस ओर अधिक आकृष्ट होना और भी उचित था। विशेषकर हिन्दी गद्य की व्यवस्था विना संस्कृत-शब्द-समूहों के नहीं हो सकती थी। यह नहीं कि खड़ीबोली या ठेठ हिन्दी में रचना हो ही नहीं सकती थी; किन्तु वह रचना अपर्याप्त होती और बहुत कुछ कृत्रिम भी हो पड़ती। किसी भी प्रान्त में ठेठ या ग्रामीण शब्दों की एक सीमित संख्या होती है; किन्तु उन्हीं का ढूँढ-ढूँढकर प्रयोग करना नहीं बन सकता। खड़ीबोली की रचना खड़ीबोली के प्रान्त (मेरठ, देहली आदि के ज़िलों) तक ही परिमित नहीं थी, वरन् वह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाषा के पद पर आसीन होने जा रही थी। ऐसी
स्था में खड़ीबोली के ठेठ प्रान्तीय शब्दों का ही
ग करने में व्यावहारिक कठिनाई थी। वह कठिनाई
दूर हो सकती थी, जब खड़ीबोली को प्रान्तीयता
पर उठाकर राष्ट्रीयता का रूप दिया जाता। यही
य रूप ग्रहण करने में 'मानस' का आदर्श बहुत
योगी सिद्ध हुआ।

बहुत-से लोग यह समझने का भ्रम करते हैं कि
भाषा के प्रश्न में कहीं न कहीं जातीय वैमनस्य का
पैदा हुआ है। कुछ लोग यह भी समझते हैं कि
दी-साहित्य का वर्तमान विकास मज़हबी आधार पर
रहा है। विशेषकर उसमें संस्कृत के शब्दों का भरा
ना इस बात का अकाट्य प्रमाण ही माना जाता है।
तु ऊपर के उल्लेख से यह स्पष्ट है कि वर्तमान खड़ी-
ली का स्वरूप, स्वाभाविक विकास और राष्ट्र की
वहारिक आवश्यकता का परिणाम है। वह पुरखों की
नी रीति पर चल रही है। इसमें किसी के प्रति
सी प्रकार के वैमनस्य का कोई नया आयोजन नहीं
। अवश्य एक नई भाषा भी देश के कुछ हल्क़ों में
खी और बोली जाती है, जिसमें अरब और फ़ारस
शब्दों की प्रतिदिन अधिक से अधिक भरमार हो
ी है; किन्तु उसका नाम हिन्दी नहीं है। उसका
म उर्दू है। यह सच है कि उर्दू और हिन्दी आरंभ
एक ही थीं, उर्दू या उर्दू-हिन्दी बाज़ार की हिन्दी
नाम था; किन्तु अब वह समय नहीं रहा और
ज उर्दू भाषा हिंदी से बहुत कुछ अलग हो गई है।
अलगाव कुछ तो राजनीतिक कारणों से है (उर्दू
दालतों और सरकारी काग़ज़ातों में अब भी काम आ
ती थी) और कुछ मज़हबी कारणों से। यह मज़हबी
दरपन पिछले कुछ दिनों से अधिक प्रबल होता जा रहा
। इसमें भी राजनीतिक कारण है। किन्तु उर्दू और
न्दी का चाहे जितना अलगाव हो जाय, उर्दू एक जाति-
विशेष की भाषा या एक विशेष प्रकार के शिक्षितवर्ग की
भाषा के रूप में चाहे जितनी उन्नति करे, अथवा हम उसे
राजनीतिक कारणों से) देश भर की व्यापक भाषा ही क्यों
न मान लें; किन्तु वह राष्ट्रीय भाषा किसी हालत में नहीं
चला सकती। इसका सीधासादा कारण यही है कि
हमारी एक बहुत प्राचीन और संपन्न भारतीय भाषा है,
जिसकी संतान आज भी सारे देश में फूल-फल रही है।
हम इस फूलते-फलते बग़ीचे को नहीं उजाड़ सकते।
उसके हरेभरे पेड़ों की जड़ें इस देश की मिट्टी में बहुत
गहरी पैठी हुई हैं। अकेली हिन्दी ही इस उद्यान में नहीं
है; मराठी, गुजराती, बँगला आदि अन्य भी हैं, जिनसे
उसका घनिष्ठ संबंध है। इन्हें उखाड़ना न तो आसान
है और न वाजिब। यदि अँगरेज़ी भाषा विदेशी होने
के कारण इस देश की राष्ट्रीय भाषा नहीं हो सकती तो
उसी कारण अरबी-फ़ारसीभरी उर्दू भी राष्ट्रभाषा नहीं
बन सकती। इसमें मज़हबी वैमनस्य का तो कोई प्रश्न
ही नहीं है।

पाठक यह न समझें कि हम अपने विषय से दूर
चले गये हैं। हमारी आज की भाषा रामचरितमानस
की भाषा के ही आदर्श पर गढ़ी गई है और रामचरित-
मानस की भाषा का संघटन एक बड़ी हद तक राष्ट्रीय
कहा जा सकता है। कम-से-कम मानस की भाषा का
साँचा राष्ट्रीय भाषा के लिए बहुत ही उपयुक्त है।
यहाँ हम उसके साँचे की थोड़ी-सी चर्चा करेंगे।
सबसे पहले वह अत्यन्त सामयिक और विस्तीर्ण है।
हमारा आशय यह है कि वह एक प्रचलित माध्यम
(बोलचाल की भाषा) का उपयोग करती है और उस
माध्यम को ख़ूब सजाकर सामने रखती है। यान
नया है और चलते पुरज़े हैं। वह चुस्त-दुरुस्त है और
आवश्यकता पड़े तो अधिक बोझ रखने के लिए तैयार
है। उसमें न तो प्राचीनता के प्रति आसक्ति या
वैराग्य है, न नवीनता के प्रति उन्माद या घृणा।
समता और पूर्णता उसका आदर्श है, इसलिए सभी
पक्ष उससे संतुष्ट हैं। वह प्राकृतिक प्रेरणाओं का
परिणाम-सा है, इसी से उसमें ऐतिहासिक पूर्णता
को झलक है। इस पूर्णता में विकास का मार्ग न हो,
यह असम्भव है। गोस्वामीजी भाषा की प्रौढ़ पूर्णता
का उपयोग करके भविष्य के विस्तीर्ण विकास के संकेत
भी कर गये हैं। यदि हम उन संकेतों को पहचानें
और स्वीकार करें तो राष्ट्रभाषा की समस्या आप ही
आप हल हो जाय।

संक्षेप में उनका संकेत यह है कि प्राचीन भाषा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संपत्ति को हम उस हद तक अपनावें, जिस हद तक प्रचलित देशभाषा के साँचे में वह अस्वाभाविक न प्रतीत हो। इसके लिए देशभाषा और संस्कृत, दोनों को अपनी-अपनी सीमा से क्रमशः कुछ ऊपर उठना और कुछ नीचे उतरना पड़ा है। संस्कृत को अपने जटिल संधि-समासों को छोड़कर हिन्दी की संधियों के अनुकूल बनना पड़ा है और हिन्दी (अवधी) को अपनी ग्राम्य सीमा से ऊपर उठकर एक संयत और नियमित आकार ग्रहण करना पड़ा है। मानस की भाषा संस्कृत की संश्लिष्ट पदरचना को तोड़कर उसे सरल, सुगम और लघु बनाती है, साथ ही प्रचलित प्रान्तीय भाषा को, जो बहुत ही विश्लिष्ट और संधि-समास के प्रयोगों से अपरिचित-सी है, वह छोटी-छोटी संधियों से संयुक्त करती है। परिणाम में एक उन्नत मध्यवर्तिनी भाषा की सृष्टि हुई, जो अधिक से अधिक लोकप्रिय और सुरुचिपूर्ण बन गई। वह भाषा देशी है, एक देशी नहीं; नागरी (सभ्य) है, नागरिक (केवल नगरों की) नहीं, सांस्कृतिक है, संस्कृत नहीं।

जिस प्रकार संस्कृत को उन्होंने हिन्दी के संधि-समास के अनुकूल बनाकर और हिन्दी के ही विभक्ति-प्रत्यय जोड़कर अपनाया, उसी प्रकार उन्होंने बहुत-से अन्य प्रान्तीय शब्दों को—तथा अरबी, फ़ारसी के शब्दों को भी स्थान दिया। इससे स्पष्ट है कि उनकी भाषा-सम्बन्धी नीति अधिक से अधिक शब्दसमूहों को ग्रहण करने की थी, किन्तु वे उन समस्त शब्दों को देशभाषा की प्रकृति के अनुकूल बनाकर व्यवहार कर रहे थे। गोस्वामी तुलसीदासजी राष्ट्रभाषा के विकास का यही संदेश दे गये हैं।

आज जो राष्ट्रभाषा के निर्माण की नई पद्धति चलाई जा रही है, वह गोस्वामीजी की उक्त पद्धति से बहुत कुछ भिन्न है। 'हिन्दुस्तानी' के हिमायती जिस नई राष्ट्रभाषा का सृजन करना चाहते हैं, उसमें या तो संस्कृत और फ़ारसी के शब्दों के लिए स्थान नहीं है या दोनों की खिचड़ी तैयार करने का संदेश है। उसमें खड़ीबोली हिन्दी के स्वाभाविक विकास और उसकी प्रकृति का विचार नहीं है और न हिन्दी बोलने-वाली जनता की रुचि और सुविधा का ही विचार है। इस प्रकार राष्ट्रभाषा का प्रश्न केवल राजनीतिक आवश्यकता (और उसके संदिग्ध परिणाम) पर ही छोड़ दिया जा रहा है।

यदि खड़ीबोली हिन्दी से संस्कृत के शब्द निकाल लिये जायँगे तो वह न तो श्रेष्ठ साहित्य के उपयोग की रह जायगी और न उसका राष्ट्रीय रूप ही बना रह सकेगा (तब तो वह देहली के आसपास की प्रान्तीय भाषामात्र रह जायगी)। उसका राष्ट्रीय रूप तभी तक है, जब तक उसमें देश भर में फैले हुए संस्कृतशब्दों का व्यवहार हो रहा है। इन दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत के शब्दों का त्याग भाषा के लिए एक प्रतिगामी (Reactionary) नीति होगी। साहित्य की उन्नति के लिए संस्कृतशब्द खड़ीबोली में अनावश्यक हैं, यह कहनेवाले प्रायः कबीर का दृष्टान्त दिया करते हैं; किन्तु कबीर का सबसे दुर्बल अंग उनकी भाषा ही है। इस पर वे लोग ध्यान नहीं देते।

संस्कृत और फ़ारसी के शब्दों को मिला-जुलाकर लिखने की परिपाटी भी राजनीतिक अवसरवाद ही है। इसकी कृत्रिमता इतनी स्पष्ट है कि यह कभी भाषा-साहित्य के प्रयोगों में स्थान नहीं पा सकती। कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि संस्कृत और फ़ारसी के जो शब्द हिन्दी में नित्य के व्यवहार में आ रहे हैं, वे भी एक साथ मिलाकर नहीं लिखे जा सकते। वे तो लिखे ही जायँ, किन्तु नये अप्रचलित और क्लिष्ट संस्कृत और फ़ारसी के शब्दों को साथ जोड़कर किसी सुन्दर, स्वरभय अथवा स्थायी भाषा का निर्माण नहीं किया जा सकता। संस्कृत और फ़ारसी का भाषाविन्यास, संगीत (नाद-सौंदर्य) और उच्चारण एक दूसरे से बहुत दूर हैं।

ऐसी अवस्था में राष्ट्रभाषा की नियोजना का सबसे उत्तम उपाय क्या है? वही, जो गोस्वामी तुलसीदासजी सुझा गये हैं—आधार देशभाषा (इस अवसर पर खड़ीबोली) की प्रचलित शब्दावली का लेना (जिसे सब समझ सकें) और इसके अनन्तर जनता की रुचि और समझ के अनुसार उस सम्पूर्ण शब्दसमूह का उपयोग करना, जो उक्त देशभाषा की प्रकृति के अनुकूल हो और उसके नियमों से शासित हो सके। जब हम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ारूप से देशभाषा को स्वीकार करते हैं (संस्कृत
फ़ारसी दोनों के हिमायती उसे स्वीकार करते हैं)
उक्त भाषा की उन विशेषताओं का ध्यान भी रखना
, जिनसे उसका व्यक्तित्व बना है तथा उसके
ास की स्वाभाविक गति का प्रतिकार भी नहीं
ा होगा ।

गोस्वामीजी ने संस्कृत के शब्द अपनी भाषा में
ाये हैं और उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रान्तों के भी बहुत
शब्द और अरबी-फ़ारसी के भी प्रयोग बरते हैं;
न्तु कहीं भी वे काव्य के प्रवाह में बाधक या अजनबी
प्रतीत होते । ऐसा जान पड़ता है कि एक विस्तृत
ीय भाषा आप ही अपना निर्माण कर रही है ।
स की भाषा सच्चे अर्थ में राष्ट्रीय है, इसका सबसे
ा प्रमाण उसकी व्याप्ति है । प्रसन्नता की बात है कि
धुनिक साहित्य में हम उक्त भाषा का बहुत कुछ
करण करने की चेष्टा कर रहे हैं और समय के
ुसार देश में आये हुए और उसके द्वारा अपनाये गये
दों का प्रयोग बढ़ा रहे हैं । राष्ट्रीय भाषा का
भाविक निर्माण इसी प्रकार हो सकता है । राजनीतिक
रणों से जो भाषा गढ़ी जायगी, वह न तो सच्चे अर्थ
राष्ट्रीय होगी और न राष्ट्रीय साहित्य की श्रीवृद्धि
सकेगी ।

जो लोग ऊपर की भाषा को न समझकर केवल
ताओं की भाषा समझते हैं, उनसे हम यह प्रस्ताव
सकते हैं कि एक विशेषज्ञ कमेटी बनाई जाय, जो
ापक रूप से सारे देश की जनता में फैले हुए हिन्दी-
दू-शब्दों का संग्रह करे और उसमें संस्कृत तथा
रसी उत्पत्ति के शब्दों का प्रतिशत कितना अनुपात
यह निर्धारित कर दे । उसी प्रतिशत संख्या के
साब से उन्हीं शब्दों को एक हिन्दुस्तानी भाषा
ाई जाय, जो Basic (मूल भाषा) के रूप में
वहार की जाय । सरकारी काग़ज़ातों, प्रकाशन-
भागों, रेडियो के महकमों में उसी Basic भाषा का
सी अनुपात से प्रयोग किया जाय ।

साहित्य-निर्माण के लिए सरकारी नीति, चेष्टा और
ोत्साहन इसी सबकी समझ में आनेवाली भाषा के
धिक से अधिक प्रयोग के लिए हो; किन्तु इससे काम
न चलने पर सबको इच्छानुसार भाषारचना करने की
स्वतन्त्रता और सहूलियत रहे । अधिक से अधिक
जनता की समझ में आने योग्य, प्राकृतिक, और साथ
ही अधिक से अधिक विस्तीर्ण भाषा का विकास, जो
गोस्वामी तुलसीदासजी का लक्ष्य था और जिस लक्ष्य
को प्राप्त करने में उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हुई, इसी
उपाय से हो सकता है । राजनीतिक नियंत्रण नहीं,
वरन् सामाजिक सद्भाव से ही यह भाषा की समस्या
सुलझ सकेगी । यदि बँगला, मराठी अथवा गुजराती
साहित्यों की भाँति उर्दू का भी एक साहित्य इस देश
में तैयार हो (जिसमें अरब और फ़ारस की सांस्कृतिक
सुषमा दिखाई दे) तो यह कोई चिन्ताजनक बात
नहीं है । हम उसका स्वागत करते हैं । किन्तु भारतवर्ष
की राष्ट्रीय भाषा या साहित्य का स्थान वह (उर्दू)
किसी प्रकार नहीं ले सकती । वह स्थान इस देश की
परम्परागत भाषा और संस्कृति से स्वाभाविक विकास
पानेवाली हिन्दी को ही प्राप्त होगा । इस विषय में
शंका करने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है ।
गोस्वामीजी अपनी भाषा की राष्ट्रीय प्रसिद्धि द्वारा यह
सिद्ध कर गये हैं । आज तीन सौ वर्षों से वह प्रसिद्धि
अक्षुण्ण ही नहीं, निरन्तर उन्नतिशील भी है ।

कुछ लोग यह शंका कर सकते हैं कि रामचरित-
मानस एक महाकाव्य है और वह भी सर्वथा साहित्यिक
नहीं, पौराणिक महाकाव्य है । उसकी शब्दावली भी
पौराणिक काव्य के ही अनुकूल है, जो बोझीली और
गम्भीर तथा बहुत अंशों में अव्यवहार्य भी है और
आधुनिक साहित्य की नाना ऋजु कुटिल गतियों के
अनुरूप नहीं है । उसमें बहुत-से ऐसे गढ़े हुए प्रयोग
हैं, जिनका व्यवहार आधुनिक भाषा में नहीं किया जा
सकता अथवा किया जाने पर बहुत भद्दा प्रतीत होगा ।
मानस-जैसे पौराणिक महाकाव्य में वे प्रयोग खप जाते
हैं; क्योंकि वहाँ पाठक की दृष्टि भाषा की व्यावहारिकता
पर नहीं रहती, दृश्य की गुरुता पर रहती है । किन्तु
यह कथन उपयुक्त नहीं है । दृश्य को गुरुता भी तो
भाषा द्वारा ही उत्पन्न की गई है । फिर वह भाषा
अव्यावहारिक कैसे कही जाय, जो ऐसी गुरुता उत्पन्न
करने में सफल हुई है । हाँ, यह भले ही कहा जा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सकता है कि दृश्य या वातावरण की गुरुता या अलौकिकता की सृष्टि ही काव्य का लक्ष्य नहीं है, उसके अन्य लक्ष्य भी हैं। विशेषकर प्रत्यक्ष या सामयिक स्थिति का वस्तुमूलक चित्रण करने में अधिक अकृत्रिम नित्य व्यवहार में आनेवाली भाषा आवश्यक होती है। ऐसी भाषा का भी प्रयोग गोस्वामीजी ने आवश्यकतानुसार किया है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि जहाँ जैसा प्रभाव उत्पन्न करना चाहा है, वहाँ वैसी भाषा वे काम में लाये हैं। परिस्थिति की आवश्यकता के अनुसार भाषा बराबर बदली है और परिस्थितियाँ प्रत्येक प्रकार की उसमें आई हैं। जीवन अत्यन्त व्यापक रूप में बड़ी विभिन्नताओं के साथ चित्रित है, और चित्रों के अनुरूप कवि की क़लम भी चली है। कहीं शृंगार की सुकुमार दृश्यावली का अंकन मनोज्ञ कल्पनाओं से भरी कोमल भाषा में, कहीं पौराणिक काव्य का पूर्ण वीरोत्कर्ष और अलौकिक गांभीर्य वैसी ही प्रौढ़ और उदात्त शब्दावली में प्रदर्शित है। कहीं कथनोपकथन और संवाद नित्यप्रति की मनोरंजनभरी भाषा में और कहीं वे ही अतिशय प्रांजल पदावली में अंकित हैं। जहाँ जैसी आवश्यकता प्रसंगानुकूल और रसानुकूल प्रतीत हुई, वहाँ वैसा ही पदविन्यास दिखाई देता है। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि किसी विशेष प्रकार की भाषाशैली मानस में है ही नहीं। इस दृष्टि से तो वह भाषाओं की प्रदर्शिनी ही है।

ऊपर के कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि मानस की भाषा विशृंखल है और उसमें किसी नियम का पालन नहीं किया गया। किसी काव्य में भाषा की विविधता उसकी विशृंखलता नहीं सूचित करती, यदि वह विविधता प्रसंग से अनुमोदित हो। मानस की भाषा की भी यही विशेषता है। वह कहीं कल्पनाविशिष्ट, और कहीं पौराणिक तथा कहीं स्पष्ट और दैनिक भाषा का रूप धारण किये हुए है। इस व्यापकता के भीतर भी उसकी अपनी सरलता और सुबोधता सर्वत्र झलकती है।

कतिपय उदाहरण देकर हम इसे और भी स्पष्ट करना चाहते हैं—

मुदमंगलमय संत - समाजू।
जो जग जंगम तीरथराजू॥
रामभगति जहँ सुरसरि - धारा।
सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा॥
बिधिनिषेधमय कलिमलहरनी।
करमकथा रबिनंदिनि बरनी॥
हरिहर - कथा बिराजत बेनी।
सुनत सकल सुदमंगल देनी॥
बट बिस्वासु अचल निज धरमा।
तीरथराज समाज सुकरमा॥

यह रूपक पूर्णतः पौराणिक और इसकी भाषा भी तदनुरूप गम्भीर है। इसका शब्दविन्यास और पदरचना दैनिक व्यवहार से भिन्न हैं।

इसी प्रकार—

रामचरित चिन्तामनि चारू।
संत सुमति तिय सुभग सिंगारू॥
जगमंगल गुनग्राम राम के।
दानि मुकुति धन धरम धाम के॥
सद्गुरु ज्ञान बिराग जोग के।
बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जननि जनक सियराम प्रेम के।
बीज सकल ब्रत धरम नेम के॥
समन पाप संताप सोक के।
प्रिय पालक परलोक लोक के॥
सचिव सुभट भूपति बिचार के।
कुम्भज लोभ उदधि अपार के॥
काम कोह कलिमल करिगन के।
केहरिसावक जन मन बन के॥

ये सारी उत्प्रेक्षाएँ अतिशय प्रभावोत्पादक उदात्त पौराणिक शैली की हैं। इनकी भाषा भी उन्हीं के अनुरूप असाधारण और सामासिक है।

इनसे कुछ भिन्न विशिष्ट काव्यात्मक चित्रण और भाषा के नमूने—

आगे दीखि जरत रिसि भारी।
मनहुँ रोष तरवारि उघारी॥
मूरि कुबुद्धि धार निठुराई।
धरी कूबरी सान बनाई॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लखी महीप कराल कठोरा ।
सत्य कि जीवन लेइहि मोरा ॥
बोले राउ कठिन करि छाती ।
बानी सविनय तासु सोहाती ॥

अथवा—

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढ़ी ।
मानहु रोष-तरंगिनि बाढ़ी ॥
पाप-पहार प्रगट भइ सोई ।
भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥
दोउ बर कूल कठिन हठ धारा ।
भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहति भूप रूप तरु मूला ।
चली बिपति-बारिधि अनुकूला ॥

इन चित्रणों में उच्चकोटि की कविकल्पना है और भाषा भी तदनुरूप भावात्मक और अलंकृत है। शब्दों में भी भाव के अनुकूल चित्रात्मकता है। ठीक इसी प्रकार की, किन्तु प्रसंगानुकूल मधुर स्थिति की भाषा देखिए—

सोभासींव सुभग दोउ बीरा ।
नील पीत जलजात सरीरा ॥
मोरपंख सिर सोहत नीके ।
गुच्छा बिच-बिच कुसुमकली के ॥
भाल तिलक श्रमबिन्दु सुहाये ।
श्रवन सुभग भूषन छबि छाये ॥
बिकट भृकुटि कच घूँघरवारे ।
नव सरोज लोचन रतनारे ॥
चारु चिबुक नासिका कपोला ।
हास-बिलास लेत जनु मोला ॥

इनमें भी शब्दों की कोमल चित्रोपम ध्वनि प्रकट होती है। सीताजी के प्रसंग में यह ध्वन्यात्मकता और भी कल्पनाप्रधान और सौन्दर्यशालिनी हो गई है—

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता ।
कहँ गये नृपकिसोर मनचीता ॥
जहँ बिलोकि मृगसावकनयनी ।
जनु तहँ बरस कमल सित श्रेनी ॥
लताओट तब सखिन लखाये ।
स्यामल गौर किसोर सुहाये ॥
देखि रूप लोचन ललचाने ।
हरषे जनु निज निधि पहचाने ॥

इन सभी उदाहरणों में भाषा भाव से इतनी अभिन्न-सी हो गई है कि उसका स्वरूप भाव से पृथक् करके देखना कठिन हो जाता है। तो भी इन सबमें भाषा की बदलती हुई रूपरेखा देखने पर उसकी विविधता और स्थिति-अनुरूपता प्रकट होती है।

नीचे दो स्थल ऐसे चुने जाते हैं, जिनमें वीररस की प्रधानता है। किन्तु भाषा की भिन्नता से एक में पौराणिक काव्य का अनोखापन आ गया है और दूसरे में ऐसा हल्का विनोद है, जो आधुनिक सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक वार्तालाप में भी शोभा दे सकता है। पहला पौराणिक वर्णन यह है—

दिसि कुंजरहु कमठ अहि कोला ।
धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकरधनु तोरा ।
होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥
चाप समीप राम जब आये ।
नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाये ॥
सब कर संसय अरु अज्ञानू ।
मन्द महीपन्ह कर अभिमानू ॥
भृगुपति केरि गरब-गरुआई ।
सुर मुनिबरन्ह केरि कदराई ॥
सिय कर सोच जनक पछितावा ।
रानिन्ह कर दारुन दुख दावा ॥
संभुचाप बड़ बोहित पाई ।
चढ़े जाइ सब संग बनाई ॥

दूसरा वर्णन परशुराम-लक्ष्मण-संवाद का है। शैली अत्यन्त सरल और आधुनिक है—

मैं तुम्हार अनुचर मुनिराया ।
परिहरि कोप करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहिं जुरहि रिसाने ।
बैठिअ होइहहिं पायँ पिराने ॥

अथवा इससे भी गूढ़ और मार्मिक श्रीरामचन्द्रजी का यह कथन—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाथ करहु बालक पर छोहू ।
सूध दूधमुख करिअ न कोहू ॥
जो पै प्रभु प्रभाव कछु जाना ।
तौ कि बराबरि करै अयाना ॥
जौं लरिका कछु अचगरि करहीं ।
गुरु पितु मातु मोदु मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी ।
तुम सम सील धीर मुनि ज्ञानी ॥

पिछले दोनों उदाहरण चलती हुई, अलंकारहीन, ठेठ भाषा के हैं। ऊपर के पौराणिक वर्णनों से इनकी तुलना करने पर अन्तर आप ही दिखाई देता है। पहले उद्धरण के रेखांकित सब शब्द प्रचलित बोलचाल के बाहर हैं। 'मुनिबरन्ह', 'बोहित' आदि रूप तो केवल साहित्य में ही प्रयुक्त होते हैं। 'गरब-गरुआई', 'सुर सुकृत मनाये' आदि समास बोलचाल की भाषा में नहीं आ सकते। पिछले उदाहरणों की भाषा उससे भिन्न है। उनमें बहुत साफ़, नित्य के प्रयोग में आने-वाली, मुहावरेदार भाषा का व्यवहार है।

रामचरितमानस की भाषा के सारे विभेदों को दिखाना इस लेख का इष्ट नहीं है। केवल कुछ विशेष का आभास करा देना ही पर्याप्त है। यहाँ हमारे लिखने का प्रयोजन इतना ही है कि मानस की भाषा में प्रसंगानुकूल कई प्रकार की शैलियाँ पाई जाती हैं, जो गोस्वामीजी-जैसे महाकवि और महान् भाषाकार के उपयुक्त है। उन सब शैलियों के संग्रथन से ही किसी भाषा को राष्ट्रीय भाषा का स्वरूप प्राप्त हो सकता है। आधुनिक राष्ट्रभाषा (खड़ीबोली हिन्दी) को भी ऐसे ही संग्रथन की आवश्यकता है। इसलिए राष्ट्रभाषा-प्रेमियों को 'मानस' का अनुसरण करने में लाभ ही लाभ है। मानस की भाषा कितनी विस्तृत है और कैसी विभिन्न शैलियों से समन्वित है, यह हम देख सकते हैं। विस्तृत होती हुई भी वह कितनी व्यवस्थित है, उसके आधार (bases) कितने सुदृढ़ और सुसम्पन्न हैं, यह हम पहले ही देख चुके हैं। अब इतना ही कहना शेष रह गया है कि विस्तृत और व्यवस्थित होती हुई भी उसमें अभिव्यक्ति की एक नैसर्गिक सरलता और अकृत्रिमता है। जहाँ अपेक्षाकृत क्लिष्ट शब्द आये हैं, वहाँ भी अभिव्यक्ति स्पष्ट है और अर्थ में पेचीदगी नहीं है। रामचरितमानस का अन्वय इतना सरल है कि अनेक स्थानों पर तो केवल शब्द के स्थान पर शब्द रख देने से अर्थ आ जाता है। गोस्वामीजी ने इतना छोटा चौपाई छन्द अपने महा-काव्य के लिए चुना, यह बड़े आश्चर्य की बात है। इससे उनके अत्यन्त सरल भावविन्यास का पता चलता है और साथ ही भाषा पर अत्यन्त उच्चश्रेणी का अधिकार सिद्ध होता है। यदि कोई बड़ा छन्द लेकर काव्यरचना की जाती तो सम्भव था भावाभि-व्यक्ति उतनी सरल न हो पाती अथवा भाषा भी इतनी चुस्त तथा सुसज्जित न रह जाती। कम से कम स्थान में ऊँचे से ऊँचे भाव, सरल से सरल और सुन्दर से सुन्दर भाषा-विन्यास द्वारा व्यक्त किये जायँ—इस लक्ष्य की पूर्ति में गोस्वामीजी को अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। यह सफलता दो बातें सिद्ध करती है—गोस्वामीजी का महाकवि होना और उनका महात्मा होना। महाकवि के लिए सुन्दर भाषा और सुन्दर भावों की आवश्यकता है। सुन्दर भावों को सुन्दर भाषा द्वारा व्यक्त कर देने भर से कवि का काम पूरा हो जाता है। किन्तु वे सुन्दर भाव सबके लिए उपयोगी भी हों और वह सुन्दर भाषा सरल, सबके समझने योग्य भी हो, ये महापुरुष की प्रवृत्तियाँ हैं। इसका यह अर्थ नहीं कि भावों का उपयोगी या श्रेयस्कर होना उनके प्रेम या सुन्दर होने में बाधक है अथवा भाषा की सरलता उसकी सुन्दरता में विघ्न है। जिस श्रेय में प्रेय ही प्रेय भरा हो तथा जिस सरलता में सौन्दर्य का पल्ला कहीं न छोड़ा गया हो, असुन्दरता के लिए स्थान न हो, गोस्वामीजी के काव्य की वह विशेषता है। दूसरे शब्दों में प्रेय का सम्पूर्ण श्रेय अंश तथा सौन्दर्य का सारा सरल अंश लेकर गोस्वामीजी ने अपने 'मानस' का निर्माण किया है। इसकी पूरी झलक उनकी भाषा में दिखाई देती है, जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

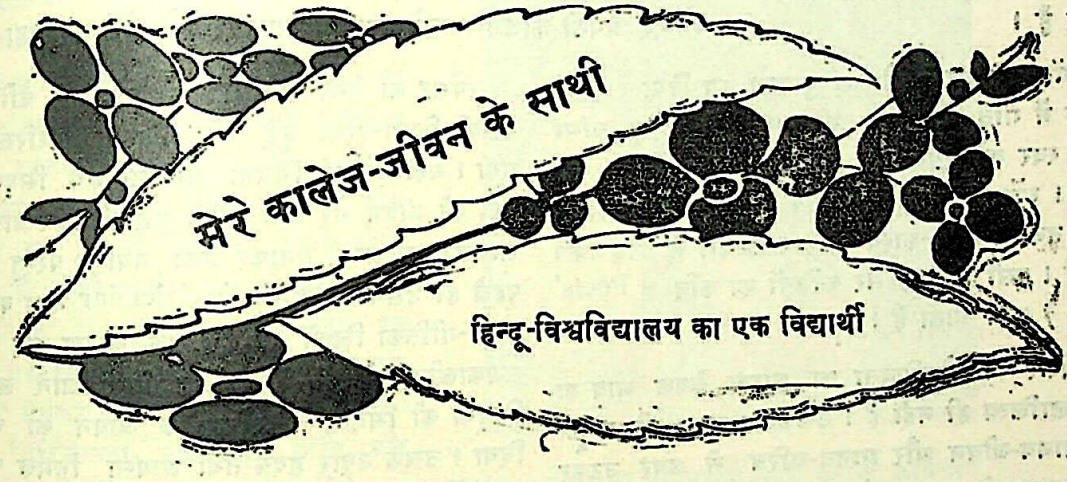

अभी हाल ही में 'लन्दन टाइम्स' के सम्पादक ने अपने पत्र में एक नोट लिखकर अपने लाखों पाठक-पाठिकाओं से एक प्रश्न पूछा था और चूँकि वह प्रश्न बहुत ही मनोरंजक है, अतएव मैं भी उसे पाठकों के सम्मुख रख रहा हूँ। प्रश्न यह था कि ग्रेट ब्रिटेन के लिए भारतवर्ष का साम्राज्य अधिक मूल्यवान् है या शेक्सपियर ? उस पत्र के प्रायः सभी पाठकों ने अपनी-अपनी राय भेजी और जब वोट गिने गये, तो शेक्सपियर की ही जीत हुई।

परन्तु एलिज़ाबेथ की मृत्यु के पाँच वर्ष पूर्व यदि यह प्रश्न किया जाता कि अँगरेज़ी-साहित्य का सबसे बड़ा कवि कौन है तो यह निश्चय था कि शेक्सपियर का कोई नाम नहीं लेता। शेक्सपियर के नाम से उस समय के लोग अपरिचित हों, ऐसी बात नहीं; परन्तु वह अत्यन्त निकृष्ट श्रेणी का कवि माना जाता था। उस समय तो सबसे प्रख्यात और सबसे अधिक लोकप्रिय कवि था एडमंड स्पेंसर।

स्पेंसर की ख्याति और लोकप्रियता का मुख्य कारण था उसकी कविता का सुमधुर पद-विन्यास। ब्लैंकवर्स अर्थात् अतुकान्त काव्य का रस जनता उस समय तक ग्रहण नहीं कर पाई थी; क्योंकि वह एकदम नवीन वस्तु थी। और चॉसर से लेकर राबर्ट ब्रीज़ तक जितने भी कवि अँगरेज़ी-साहित्य में हुए, उनमें भावों की सुन्दरता के साथ-साथ संगीत-माधुर्य का जितना अधिक विकास स्पेंसर की रचना में हुआ है, उतना और किसी की कृति में है ही नहीं।

चॉसर और शेक्सपियर के बीच लगभग दो सौ वर्षों का अन्तर है और इन दो सौ वर्षों के भीतर स्पेंसर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के समान कोई कवि हुआ ही नहीं। इतनी ही बात नहीं है। अब तक के कवियों में भी स्पेंसर के समान भाव-माधुर्य और शब्द-लालित्य नहीं आ पाया। यही कारण है कि स्पेंसर मेरे कालेज-जीवन का प्रमुख साथी था। उसकी 'फ़ेयरी क्वीन' (Faerie Queen) को न-जाने मैंने कितनी बार पढ़ा है और जीवन में रस लाने के लिए उसे प्रायः अब भी पढ़ता हूँ।

स्पेंसर अपनी कविता अपने मित्र सर वाल्टर रेले को सुना रहा है।

चॉसर ने भाषा को एक सुस्वस्थ रूप दिया। उसने काव्य में गीत की लहर भी चलाई। परन्तु चॉसर जिस स्वर को छेड़ता है, वह अन्त तक निभा नहीं पाता। स्पेंसर ने अँगरेज़ी-काव्य में वह रस बहाया, जो आज तक अँगरेज़ी-काव्य-साहित्य को रस से आर्द्र किये हुए है। इसी लिए स्पेंसर कवियों का कवि (Poets' Poet) कहा जाता है।

स्पेंसर की लोकप्रियता का कारण केवल भाव या शब्द-लालित्य ही नहीं है। उसकी कल्पना भी अनूठी है। मानव-जीवन और मानव-चरित्र से ऊपर उठकर केवल काव्य के कल्पनालोक के पात्रों से ही उसने काम लिया है। हृदय के कोमल तन्तुओं को ही उसने प्रेम के दर्द-भरे गीतों से आंदोलित किया है। यही कारण है कि वह हृदय को सीधे स्पर्श करता है। केवल स्पर्श ही नहीं करता, अपने रस में डुबो देता है।

शेक्सपियर स्पेंसर से १२ साल छोटा था। जिस समय स्पेंसर की ख्याति हो चुकी थी, उस समय शेक्सपियर की अवस्था १५ वर्ष की थी। शेक्सपियर के मरने के १३ वर्ष पूर्व स्पेंसर की मृत्यु हुई थी। शेक्सपियर ने उसकी स्मृति में लिखा था—

That same gentle spirit from whose pen,
Large streams of honey and sweet nectar flow.

अर्थ—"वह स्निग्ध आत्मा, जिसकी लेखनी से मधु और अमृत की धाराएँ बहा करती थीं।"

स्पेंसर का जन्म लंकाशायर में हुआ था, कैम्ब्रिज में उसकी शिक्षा-दीक्षा हुई और फिर वह बैरिस्टर हो गया। यहीं उसकी मित्रता सर फ़िलिप सिड्नी से हुई, जो जीवन भर बनी रही। कुछ ही दिन बाद वह आयर्लैंड का मन्त्री बनाकर भेजा गया; परन्तु इसके पहले ही उसने Shepherd's Calendar नाम की एक ग्राम्य-गीतिका लिखी थी, जिसके कारण वह अपने समकालीन कवियों में सर्वश्रेष्ठ गिना जाने लगा। सिड्नी की मित्रता ने स्पेंसर के जीवन को चमका दिया। उसके उदार हृदय तथा अत्यन्त निर्मल चरित्र का स्पेंसर पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, जिसे वह आजीवन भूल न सका। वाल्टर रेले उसका दूसरा मित्र था। इन तीनों की ख़ूब छनती थी।

आयर्लैंड में स्पेंसर का प्रवास-जीवन बहुत ही दुःख-पूर्ण रहा। वह सदा अपने को अकेला अनुभव करता और अपने भाग्य को कोसा करता था। वहीं एकान्त में उसने अपनी विश्व-विश्रुत काव्य-पुस्तक 'फ़ेयरी क्वीन' का प्लॉट बनाया और प्रथम छः सर्ग लिखे भी। भाषा और भाव की मिठास की दृष्टि से यह काव्यग्रन्थ संसार में "नैषध" के सिवा सबसे बढ़कर है।

स्पेंसर में सौन्दर्य था, माधुर्य था, परन्तु शक्ति का नितान्त अभाव था। उसकी कविता का आस्वादन करने के लिए 'फ़ेयरी क्वीन' पढ़ना आवश्यक है। उसमें का एक छन्द हम दे रहे हैं। पाठक देखें, कितना प्रगाढ़ रस है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

d more to lull him in his slumber soft
rickling stream from high rock tumb-
bling down;
d ever drizzling rain upon the loft
ked with murmuring wind, much like
the sound
swarming bees did cast him in a swoon.
other wise, nor people's troublous cries
still are wont t'annoy the walled town,
ght there be heard; but careless Quiet lies,
apt in eternal silence far from enemies.

र्थ—"मीठी-मीठी नींद की प्यारी गोद में उसे सुला
के लिए पहाड़ पर से मीठे जल का सोता कल-कल
ा हुआ बहा करता; रिमझिम-रिमझिम फुहियाँ
करतीं; शीतल, मन्द, सुगन्ध बयार के हलके झोंके
ा करते और इन सबको मिलाकर ऐसी ध्वनि
, जैसे भौंरे की टोली फूलों पर मँडराते समय
गुन गा रही हो। एक अजीब-सी तन्द्रा, एक
भुत श्लथ में वह बेसँभार हो जाता। जनकोलाहल
के प्राचीरों को बेधकर भीतर प्रवेश नहीं कर पाता।
अजीब-सी निश्चिन्तता, एक अटूट शांति और
शाश्वत मौन की गोद में वह बेसुध रहता।"

३२ वर्ष की अवस्था में उसने विवाह किया। उस
ात पर लिखी हुई उसकी Epithalamion कविता
ेज़ी-साहित्य में अपने ढंग की एक ही है। विवाह
इतनी सुन्दर कविता अब तक लिखी ही नहीं गई।
ी पत्नी के रूप और प्रेम पर मुग्ध होकर उसने
कविता लिखी थी।

आयर्लैंड का जीवन स्पेंसर के लिए घातक सिद्ध
। वह वहाँ इतना थक गया कि इँगलैंड लौटने
उसे मृत्यु की ही शरण लेनी पड़ी, उसका शव
मिनिस्टर अबे में गाड़ा गया और उसके समय के
कवियों ने उसके प्रेम तथा आदर में अपनी-अपनी
र कविताएँ तथा अपनी-अपनी क़लमें शव के साथ
दीं।

और यह शेक्सपियर! शेक्सपियर का नाम आज
र में कौन नहीं जानता? बाइबिल और गीता के

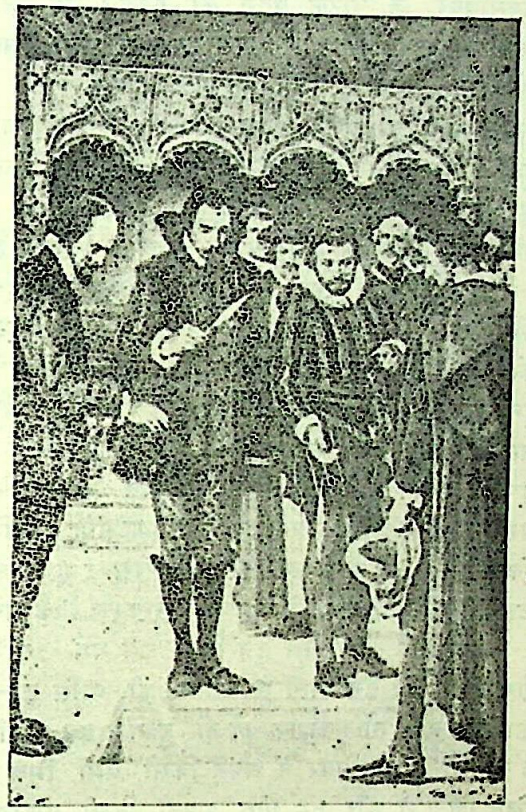

स्पेंसर की मृत्यु पर उसके मित्र अपनी कविताएँ और क़लमें क़ब्र में डाल रहे हैं।

बाद संसार में किसी का प्रभाव है तो शेक्सपियर की कृतियों का। जिस आदमी को शुरू में जूते के फ़ीते ख़रीदने के लिए पैसे नहीं मिलते थे, वही संसार का सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार हुआ। आज तो वह भारत के साम्राज्य से भी अधिक अँगरेज़ों के लिए प्रिय है। अँगरेज़-जाति हिन्दुस्तान छोड़ सकती है, परन्तु शेक्सपियर को नहीं छोड़ सकती। शेक्सपियर के सभी दुःखान्त और सुखान्त नाटक तथा सॉनेट मैंने पढ़े; परन्तु सुखान्त नाटकों की अपेक्षा दुःखान्त नाटक ही मुझे अधिक प्रिय हैं। जिसने हैमलेट, मैकबेथ और ऑथेलो नहीं पढ़ा, उसने पढ़ा क्या? एक बहुत बड़े अँगरेज़ी-विद्वान् ने कहा था कि यदि हमें आजन्म निर्वासन का दण्ड हो जाय और उसमें बाइबिल तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शेक्सपियर के नाटक पढ़ने को मिलते रहें तो मैं निर्वासन भूल जाऊँगा। शेक्सपियर पर आज जितना साहित्य है, संभवतः संसार के किसी एक व्यक्ति पर इतना नहीं लिखा गया होगा। एक भी दिन ख़ाली नहीं जाता, जिस दिन शेक्सपियर पर कोई किताब छपकर प्रकाशित न हो रही हो। शेक्सपियर की नायिकाएँ संसार में साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विभूति हैं।

और उसके सॉनेट्स (Sonnets)? प्रेम के ये दर्द-भरे गीत शेक्सपियर ने किसके लिए लिखे? क्या इटली की प्रथा की नक़ल में ही शेक्सपियर ने ये गीत रचे? इन सॉनेट्स में ही शेक्सपियर का हृदय उतरा है। नाटकों की अपेक्षा इन गीतों का ही अधिक आदर भी हुआ। १५९९ में ही अधिकांश गीत लिखे गये; परन्तु १६०९ में एक प्रकाशक ने उनका संग्रह प्रकाशित किया। १६१६ में शेक्सपियर का शरीरान्त हुआ और उसके पहले ही इन गीतों के दर्जनों संस्करण बिक गये।

कापीराइट का नियम उन दिनों नहीं था, इसलिए शेक्सपियर को इन गीतों से यश की ही प्राप्ति हुई—आर्थिक लाभ तो प्रकाशक को ही हुआ। इन गीतों में १२६ गीत शेक्सपियर ने अपने किसी प्रेमी मित्र के लिए लिखे थे और २८ गीत अपनी किसी प्रणयिनी के प्रेम में। इनमें स्पष्ट है कि उस प्रेयसी ने शेक्सपियर के प्रेम का बदला तिरस्कार से दिया। शेक्सपियर का प्रेमी और कोमल हृदय उस तिरस्कार को सह नहीं सका। कोई-कोई इस प्रणयिनी को "Dark Lady" समझते हैं। वह रूपवती नहीं थी, फिर भी शेक्सपियर का हृदय उस पर आसक्त हो गया था—ठीक जैसे मजनूँ का लैला पर।

"मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूँ कैसे कहूँ? मेरी हार्दिक लालसा है कि मेरे मरने पर तुम आँसू न बहाओ, अपना जी न दुखाओ"—इसी भाव का उसका एक सॉनेट हम यहाँ दे रहे हैं—

No longer mourn for me when I am dead,
Than you shall hear the surly sullen bell
Give warning to the world, that I am fled
From this vile world, with vilest worms to dwell:

शेक्सपियर अपनी कविता अपनी प्रेयसी को सुना रहा है।

Nay, if you read this line, remember not
The hand that writ it; for I love you so,
That I in your sweet thoughts would be forg
If thinking on me then should make you wo
O If I say, you look upon this verse,
When I perhaps compounded am with clay
Do not so much as my poor name rehearse,
But let your love even with my life decay;
Lest the wise world should look into your moan,
And mock you with me after I am gone.

अर्थ—"मैं इस संसार से बिदा लूँ तो तुम रोना मत मेरे लिए दुखी न होना। उस समय तुम सुनोगी मेरे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपलक्ष में घंटियाँ बज उठेंगी और सारा
जायगा कि इस मर्त्यलोक से मैं सदा के
जा रहा हूँ। ना, ना, यदि तुम मेरी इन
पढ़ो—तो इनके लिखनेवाले की सुध न
जाओ, भूल जाओ। मैं तुम्हें इतना प्यार
कि मैं तुम्हारे मधुर भाव में सदा के लिए
जाऊँगा, विस्मृत हो जाऊँगा। ये पंक्तियाँ
तुम्हारे चित्त में तनिक भी विषाद हुआ
मृति उमड़ आई तो मुझे उससे महान् दुःख
ग्लानि होगी। मैं तो तुमसे इतनी ही
ता हूँ कि जब मैं मरने के बाद मिट्टी में
और उस समय तुम मेरी इस कविता को
ा नाम तक न लेना। क्या ही अच्छा होता,
होने के साथ ही तुम्हारा प्रेम भी मुझमें
ता। दुनिया देखे तो सही कि तुम्हारे हृदय में
कितनी उपेक्षा है और तुम्हारी कृतघ्नता के
कोसे।"

पियर का सबसे सुन्दर सॉनेट, जिसमें उसने
ड़ी ही सुन्दर मीमांसा की है और जो संसार
विख्यात है, मैं नीचे दे रहा हूँ—

not to the marriage of true minds
mpediments. Love is not love
alters when it alteration finds,
ls with the remover to remove:
it is an ever fixed mark
oks on tempests and is never shaken;
e star to every wandering bark,
worth's unknown, although his height be taken.
not Time's fool though rosy lips and cheeks
his bending sickle's compass come;
lters not with his brief hours and weeks,
But bears it out even to the edge of doom.
If this be error, and upon me proved,
I never writ, nor no man ever loved.

अर्थ—"दो शुद्ध आत्माओं के प्रणय-परिणय में विघ्न-बाधा कैसी? समय के साथ जो बदलना जाने, वह प्रेम कैसा? बाधाओं और व्याघातों में झुक जाय, वह प्रीति कैसी? ना, ना, यह तो ऐसा अविचल और प्रशान्त है कि तूफ़ान में भी हिलता-डुलता नहीं। पथ-भ्रान्त प्रत्येक जहाज़ के लिए यह अचल उत्तरी ध्रुवतारा है। इसका मूल्य कोई आँक नहीं सकता, इसकी उँचाई का सभी अनुभव करते हैं। प्रेम काल का बन्दी नहीं है। गालों की गुलाबी और ओठों की अरुणाई को समय नष्ट-भ्रष्ट कर देता है, परन्तु प्रेम तो तब भी अखण्ड और स्थिर रहता है। प्रेम को घंटों-हफ़्तों में नहीं नापा जा सकता। वह प्रतिक्षण बढ़ता ही जाता है और प्रलय को लाँघते हुए अनन्त में मिल जाता है।

यदि यह मेरा भ्रम हो और इस भ्रम का मैं शिकार हूँ तो यही मान लो कि मैंने कभी भी कविता नहीं लिखी, न किसी ने कभी प्यार ही किया।"

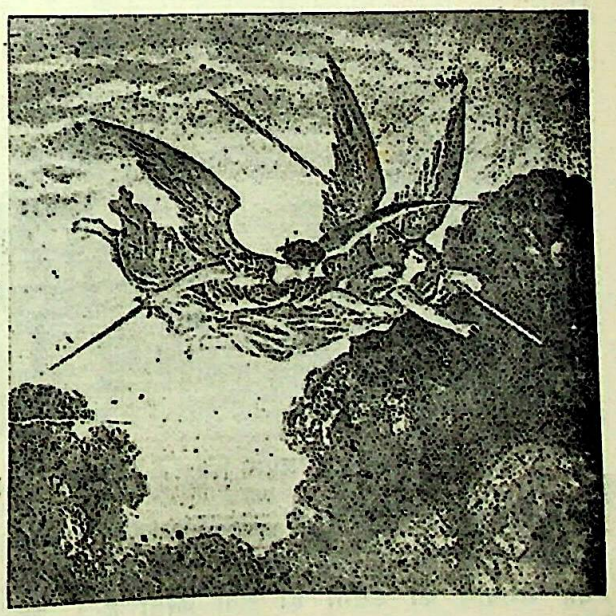

'पैरेडाइज़ लॉस्ट' का एक दृश्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

स्पेंसर और शेक्सपियर को तो मैं प्यार करता ही हूँ; पर मिल्टन भी मेरा बहुत ही प्रिय मित्र है और उसके "Paradise Lost" से मुझे बड़ी शान्ति मिलती है। जब-जब चित्त उचटता है तो मैं Paradise Lost पढ़ता हूँ और पढ़ते ही अपने भीतर एक अद्भुत शान्ति और समाश्वासन का बोध होता है। संसार में कुछ भी नष्ट नहीं होता, सब कुछ अपने-अपने स्थान पर शोभा दे रहा है। मिल्टन जब अंधा हो गया तो उसने अपने अंधेपन पर बड़ी ही मर्मस्पर्शी कविता लिखी थी, जो विश्व-साहित्य में अमर है। उसकी कुछ पंक्तियाँ यों हैं—

God doth not need
Either man's work or his own gifts.
Who best bear His mild yoke they serve Him best;
His state is kingly; thousands at his bidding speed,
And post over land and ocean without rest;
They also serve who only stand and wait.

अर्थ—"भगवान् मनुष्य के कर्म की अपेक्षा नहीं रखता,

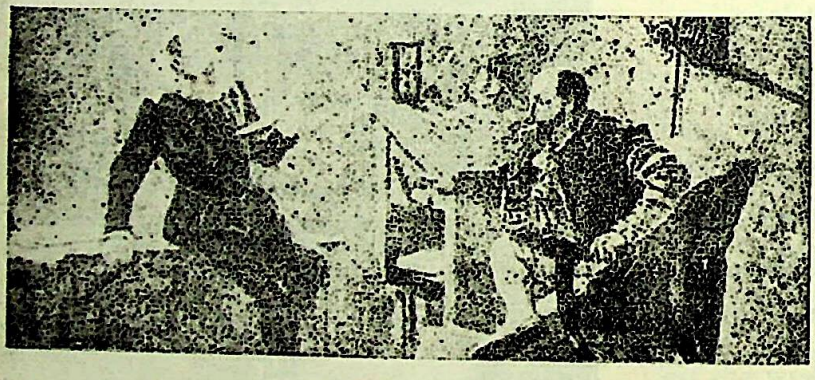

मिल्टन अपने मित्र से मिल रहा है।

न उसे मनुष्य के दान की ही आवश्यकता है। भगवान् के डाले हुए भार को जो जितने ही धैर्य से ढोता है, वह भगवान् की उतनी ही सेवा करता है। वह शहंशाह अपने दासों का मुँह नहीं जोहता, उसकी आज्ञा पर, एक इशारे पर निछावर हो जा और लोक-लोकान्तर को पार कर जाते हैं। भगवान् की सेवा वे भी करते हैं, जो चुपचाप स्थान पर खड़े प्रतीक्षा करते हैं, उसकी बाट जोहते हैं

'पैरेडाइज़ लॉस्ट' लिखने का संकल्प युवावस्था ही मिल्टन ने किया था; परन्तु अंधे हो जाने कारण उसे वह पूरा नहीं कर सका। पचास वर्ष अवस्था के अनन्तर वह फिर इसमें नये उत्साह साथ लगा। वह बोलता जाता था, उसके मित्र लि जाते थे। 'पैरेडाइज़ लॉस्ट' लिखने का उसका उद्दे था—भगवान् की भगवत्ता दिखलाना, भगवान् कुछ करता है, उसमें उसकी दया का हाथ देखना "Justify the ways of God to men."

पैरेडाइज़ लॉस्ट मिल्टन की कल्पना की सृष्टि बाइबिल में मनुष्य के पतन (Fall of Man) कहानी—आदम और ईव की कहानी सांकेतिक में आई है। उसी के आधार पर मिल्टन ने अपनी अमरकाव्य-पुस्तक लिखी है। इसमें १०,५६५ पंक्ति हैं और पूरा ग्रन्थ ब्लैंकवर्स में लिखा हुआ है 'पैरेडाइज़ लॉस्ट' मानव-जाति की सर्वोत्तम काव्य रचना है। उसका अँगरेज़ी-साहित्य में वही स्थान जो हिन्दी में 'कामायनी' का। मिल्ट की मृत्यु के १२८ साल बाद वर्ड्सवर्थ ने मिल्टन का आवाहन करते लिखा था—

Milton ! thou shouldst b
living at this hour
England hath need of the
She is a fen of stagnan
waters

× × ×

Oh ! raise us up, return to us again;
And give us manners, virtue, freedom, pow
Thy soul was like a star and dwelt apart;

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

hou hadst a voice whose sound was like
the sea;
re as the naked heavens, majestic, free.
didst thou travel on life's common way,
cheerful godliness, and yet thy heart
e lowliest duties on herself did lay.

अर्थ—"ओ मिल्टन ! काश तुम इस समय जीवित
ते ! आज इँगलैंड को तुम्हारी बड़ी आवश्यकता है।
ज वह गन्दे जल का सड़ता हुआ गड्ढा हो रहा है।

× × ×

आओ, आओ, पुनः लौट आओ और हम लोगों को इस कीचड़ से ऊपर उठाओ। हमें शील, साधना, स्वतन्त्रता, शक्ति प्रदान करो। तुम्हारी आत्मा एक नक्षत्र के समान थी और इस दुनिया के कोलाहल से सुदूर रहती थी। तुम्हारी वाणी में समुद्र की-सी गंभीरता थी। सुविस्तृत निर्मल आकाश की तरह उन्मुक्त पवित्र तुम्हारा हृदय ! महामहिम, विमुक्त जीवन ! तुम इस प्रकार जीवन-पथ पर अविश्रान्त चलते रहे—दिव्य आनन्द में रसमाते। फिर भी जीवन के छोटे कर्तव्यों की तुमने कभी अवहेलना नहीं की।"

स्त्रीपुरुष सबके लिये ताक़त ताज़गी से भरा हुआ

सुमधुर

झंडू द्राक्षासव

अवश्य सेवन कीजिए

चाँदनी जैसी शीतल

झंडू की (शिलाजीत युक्त)

चन्द्रप्रभा गुटी

मूत्ररोग और धातुविकार की

अद्वितीय औषधि है

झंडू फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बक्स नं० ५५१३ बंबई नं० १४।
यू० पी० एजेंट—कांतिलाल, आर० पारेख, चाँदनी चौक, दिल्ली।
लखनऊ एजेंट—माताबदल पन्सारी, अमीनाबाद।
लखनऊ स्टाकिस्ट—कौशिक आयुर्वेदिक स्टोर्स, श्रीराम रोड।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

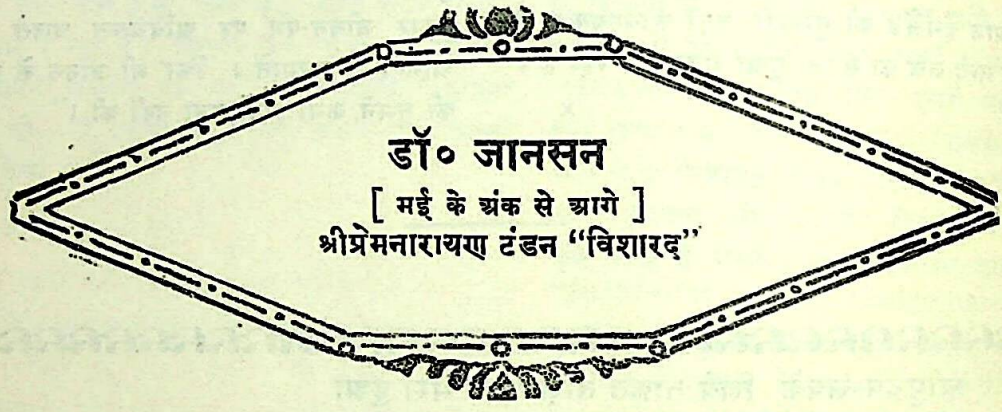

डॉ० जानसन

[मई के अंक से आगे]

श्रीप्रेमनारायण टंडन "विशारद"

(२४)

उसके मित्रों की संख्या इस समय बहुत थी।

उनमें से एक का नाम रेनाल्ड्स था। अपने प्रथम परिचय के विषय में एक बड़ी मनोरंजक बात रेनाल्ड्स ने लिखी है। जानसन उसके साथ एक धनी स्त्री से मिलने गया। उस समय भी जानसन की आर्थिक दशा अच्छी नहीं थी। उनके दुर्भाग्य से उस समय एक दूसरी स्त्री वहाँ आ गई। घर की मालकिन ने उस स्त्री के सामने इन दोनों से बात करने में अपना अपमान समझा—बड़े लोग प्रायः ऐसा किया ही करते हैं। जानसन को इससे बहुत बुरा लगा। उसने सोचा, यह स्त्री मुझे मज़दूर समझती है। इतना सोचते ही उस स्त्री का अपमान करने के विचार से जानसन ने यह दिखाने के लिए कि वे मज़दूर ही हैं, ज़ोर से कहा—क्यों भाई, यदि हम-तुम जी-जान से मेहनत करें तो एक सप्ताह में कितनी मजूरी कर सकते हैं ?

उसके दूसरे मित्र का नाम बेनेट लैंगटन (Bennet Langton) था। अपने प्रथम परिचय के सम्बन्ध में उसने भी कई बातें बड़े महत्त्व की लिखी हैं। जानसन की रचनाओं से लैंगटन बहुत प्रभावित हुआ था और उसका दर्शन करने की उसकी हार्दिक अभिलाषा था। बहुत दिन बाद उसकी इच्छा पूरी हुई और उसे जानसन के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जानसन की गूढ़ और गम्भीर रचनाओं का अध्ययन करने के पश्चात् उसके सामने डाक्टर का जो कल्पित चित्र खिंचा, वह बहुत विशाल और दीर्घकाय था। उसका विचार था कि जानसन सुन्दर वस्त्र पहने कोई अलौकिक दार्शनिक होगा, परन्तु मिलने पर उसने देखा कि उसके सामने एक दुबला-पतला साधारण मनुष्य अत्यन्त सादे और ढीले-ढाले वस्त्र पहने खड़ा है। लैंगटन * को उसकी वेश-भूषा देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु ज्यों ही बातचीत शुरू हुई, उसका ध्यान इन बातों से हट गया। सत्य ही जानसन

---

* पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी से जो लोग मिलने जाते थे, आरम्भ में वे भी ऐसी ही बातें सोचते थे, पर अंत में एक सीधे-सादे कर्मनिष्ठ ब्राह्मण को देखकर चकित हो जाते थे।—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बातचीत इतनी गूढ़ाशय, ओजपूर्ण और साथ ही य से भरी हुई होती थी कि जो व्यक्ति उससे ने जाते, वे चकित और मुग्ध होकर एकटक उसकी र निहारने लगते थे।

(२५)

एक बार लैंगटन अपने एक मित्र के साथ एक टल में ३ बजे रात तक खाने-पीने और नाच-रंग में त रहा। सहसा उन्होंने जानसन के घर जाकर उसे ाने का निश्चय किया। डाक्टर का मकान वहाँ थोड़ी ही दूर पर था। शीघ्र ही वे वहाँ पहुँच गये र दरवाज़ा खटखटाने लगे। जानसन ने सोचा कि र या कुछ गुण्डे उस पर आक्रमण करने आये हैं। कायर तो था नहीं; शीघ्र ही उसने एक लकड़ी और बाहर निकल आया। वहाँ अपने दोनों मित्रों देखकर वह खिलखिलाकर हँस पड़ा *। उसके मित्रों भी उसका साथ दिया और उसी समय घूमने चलने प्रस्ताव किया। जानसन ने सहर्ष उनकी बात न ली और शीघ्र ही कपड़े पहनकर वह उनके साथ हो लया। बोट पर सवार होकर वे थोड़ी देर में एक रकारी-मण्डी में पहुँचे। दूकानदार वहाँ अपनी दूकानें गा रहे थे। जानसन इतनी सरल प्रकृति का व्यक्ति ा कि उसकी इच्छा भी उनकी सहायता करने की ई। पर बेचारे दूकानदारों को उसकी सद्भावना का ता न था; वे शंका से उसकी ओर देखने लगे। ानसन अपने मित्रों के साथ तब एक होटल में गया और शराब पी, मस्त होकर गाने लगा।

डाक्टर को इस भ्रमण में बड़ा आनन्द आया। सवेरा होने पर वह टेम्स नदी में बोट पर सवार हुआ। परन्तु लैंगटन को अपने वादे के अनुसार कुछ नव-युवतियों से मिलने जाना था। जानसन ने किंचित् क्रोध से उसकी ओर देखते हुए कहा—उन लड़कियों के पीछे पागल होकर अपने मित्रों का साथ छोड़ रहा है?

कुछ दिन पीछे गैरिक को जानसन की इस प्रकार रात में घूमने की बात का पता लगा। उसने जानसन के एक मित्र से कहा—जानसन यदि यों ही रात-रात भर घूमेंगे तो मैं पत्रों में छपवा दूँगा। जानसन को जब इस बात का पता चला तो उसने मुस्कराकर कहा—गैरिक स्वयं ऐसा करना चाहता है, पर बेचारा विवश है। उसकी स्त्री इन बातों को पसन्द नहीं करती।

(२६)

जानसन ने जब कोष प्रकाशित करने का विचार पैंफ़लेट के रूप में प्रकाशित किया था, तब उसे इस बात की आशा थी कि लार्ड चेस्टरफ़ील्ड (Lord Chesterfield) उसे आर्थिक सहायता देंगे। यह बात उसने स्पष्ट लिख भी दी थी और उन्हें अपना संरक्षक बना लिया था। बाद में वह लार्ड चेस्टरफ़ील्ड से नाराज़ हो गया। बहुत दिनों तक इसका ठीक कारण अज्ञात रहा और लोग मनमानी बातें सोचते-कहते रहे। वे कहा करते थे—जानसन एक बार लार्ड चेस्टर-फ़ील्ड से मिलने गया। वहाँ उसे बहुत देर तक ठहरना पड़ा। बाद को उसे पता लगा कि लार्ड साहब किसी दूसरे नाटककार से बात कर रहे थे। इससे जानसन के आत्मसम्मान को बड़ी ठेस लगी। वह यह अपमान न सह सका और वहाँ से उलटे पैर लौट आया।

कुछ लोग इस कहानी को केवल कपोलकल्पित समझते थे। स्वयं जानसन ने इसको ग़लत बताया और कहा—मेरी आशा के विरुद्ध बार-बार जब उन्होंने मुझे टालना शुरू किया, मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया तब मैं रुष्ट होकर वहाँ से चला आया और फिर वहाँ जाने का नाम भी नहीं लिया *। जब मेरा कोष पूर्ण हो गया, तब लार्ड साहब ने मेरे प्रयत्न और कोष की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए दो पृष्ठ का एक लेख "संसार" (The World)-नामक पत्र में प्रकाशित कराया। उन्हें आशा थी कि कोष

* प्रेमचन्दजी की हँसी सुनने का जिनको सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे जानसन की हँसी का भी अनुमान कर सकते हैं।—लेखक

* आत्माभिमान के ऐसे उदाहरण द्विवेदीजी के चरित्र में भी बहुत मिलते हैं।—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन्हीं को समर्पित किया जायगा। वास्तव में अपनी प्रशंसा सुनकर या पढ़कर सभी प्रसन्न होते हैं, परन्तु मुझे तो उस पर बड़ा क्रोध आया कि पूरे सात वर्ष तक मेरी कठिनाइयों की ज़रा भी चिन्ता न करके भी उन्होंने मुझसे यह आशा की कि मैं उन्हें कोष समर्पित कर दूँगा। इसी से मैंने क्रोधित होकर उन्हें एक पत्र * लिखा जो इस प्रकार है—

श्रीमान् राइट् ऑनरेबुल अर्ल आव चेस्टरफ़ील्ड
की सेवा में,

७ फ़रवरी, १७५५

महोदय,

"संसार" के संचालक ने मुझे सूचना दी है कि श्रीमान् ने मेरे कोप की जनता से प्रशंसा करते हुए दो लेख लिखने की कृपा भी की है। बड़े आदमियों की दया-दृष्टि से मैं, किसी सीमा तक, वंचित ही रहा हूँ, अतः समझ में नहीं आता, आपकी इस असीम कृपा के लिए आपको किस प्रकार धन्यवाद दूँ।

जब प्रथम बार उत्साहित किये जाने पर मैं श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हुआ था, तब आपका कोमल और सभ्य सद्व्यवहार देखकर मैं फूला न समाता था; मुझे इस बात का अभिमान भी हो गया था कि संसार जिस संरक्षता के लिए पागल बना फिरता है, वह मुझे अनायास, बिना परिश्रम ही प्राप्त हो गई। परन्तु कालांतर में आपने जो उपेक्षा दिखाई और अवहेलना की, मेरी आत्मा और आत्मसम्मान की भावना उसे सहन न कर सकी। सर्वप्रथम जब मैंने आपसे प्रार्थना की थी, तब अपनी शक्ति भर आपको प्रसन्न करने का मैंने प्रयत्न किया था। परन्तु आपने सबको ठुकरा दिया। सम्भव है, मेरा सम्मान-प्रदर्शन आपके पद के अनुकूल न हुआ हो, परन्तु वह मेरा सर्वस्व था। और कोई भी व्यक्ति अपनी समस्त विभूति का—चाहे वह दूसरों की दृष्टि में बहुत ही थोड़ी क्यों न हो—निरादर नहीं सहन कर सकता।

श्रीमान्, आज उस बात को पूरे सात वर्ष हो गये, जब मैं पहली बार आपके द्वार पर गया था और आपने मुझे निकाल दिया था। इन सात वर्षों तक न-जाने कितनी कठिनाइयाँ—उन सबका उल्लेख करना अब व्यर्थ ही है—सहकर मैंने अपना काम किया और आज बिना किसी प्रकार की सहायता पाये, प्रोत्साहन-सम्बन्धी बिना एक शब्द भी सुने, सहानुभूति की एक मुस्कराहट भी बिना देखे, मैं कोष का काम पूरा कर सका हूँ। आपसे ऐसे व्यवहार की मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। इसके पहले मेरा किसी संरक्षक से पाला नहीं पड़ा था। फलतः, जिस प्रकार निराश प्रेमी * पहाड़ों से टकराता है उसी प्रकार मैंने भी कठिनाइयों का सामना करना ही उचित समझा।

महोदय, क्या उसे ही संरक्षक कहते हैं जो मनुष्य को डूबते देखकर तो चुपचाप, उपेक्षा करता, खड़ा रहे, पर जब वह अपने प्रयत्न और भाग्य से किनारे लगने लगे, तब उसे सहायता करने का प्रयत्न करे? आपने जो आज मेरी ओर ध्यान दिया है, वह यदि कुछ दिन पहले दिया होता—जब मुझे उसकी आवश्यकता थी—तो मैं अपने को धन्य समझता। परन्तु आपने बहुत देर कर दी और मैं उससे लाभ नहीं उठा सकता। आज मैं अकेला † हूँ, कोई मेरा सुख बटा नहीं सकता, और अब मैं प्रसिद्ध हो गया हूँ, अतः मैं उसकी अब परवा भी नहीं करता। आज मैं अपने को आपका ऋणी नहीं समझता। आशा है, आप इसे मेरी

* अँगरेज़ी-भाषा में लिखा हुआ जानसन का यह पत्र ओजपूर्ण शैली और चुटीले व्यंग्य का बहुत सुन्दर नमूना है। इसका सच्चा आनन्द वही उठा सकते हैं जो अँगरेज़ी के विद्यार्थी हैं; कारण, बाइबिल के रूपक समझने के लिए अँगरेज़ी-भाषा का ज्ञान आवश्यक है। इसी कारण अनुवाद करते समय स्थानाभाव के कारण हमने कुछ स्थल छोड़ दिये हैं। हाँ, पत्र के भावों की रक्षा अवश्य की गई है।

—लेखक

* The shepherd in Virgil grew at last acquainted with Love, and found him a native of the rocks का सीधा-सादा भावार्थ लेकर ही काम चलाया गया है।

† जानसन की स्त्री का देहांत हो चुका था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असभ्यता न समझेंगे; कारण, मैंने सत्य ही किसी प्रकार का लाभ आपसे नहीं उठाया। इसी से मैं जनता को भी यह जता देना चाहता हूँ कि मुझे आपसे किसी प्रकार की सहायता नहीं मिली है, ईश्वर की कृपा से ही मैं अपना कार्य पूरा कर सका हूँ।

आपका आज्ञाकारी सेवक
सैमुएल जानसन

(२७)

जानसन ने अपने कोष का प्रकाशन-अधिकार एक प्रकाशक को दे दिया था। जितना धन उसने तय किया था, वह सब उसने कोष तैयार होने के पहले * ही उससे माँगा। प्रकाशक को जानसन पर विश्वास था, अतः उसने इसमें आपत्ति न की। परन्तु जब बार-बार पत्र भेजने पर भी जानसन ने अपना काम ख़त्म न किया, तब प्रकाशक का धैर्य जाता रहा। अंत में, बहुत शीघ्रता करके, जानसन ने आख़िरी फ़ार्म प्रेस भेज दिया। उसे देकर जब आदमी लौटकर आया तब जानसन ने हँसकर पूछा—प्रकाशक ने क्या कहा?

नौकर ने उत्तर दिया—प्रकाशक बोला, ईश्वर को धन्यवाद है कि डाक्टर से छुटकारा तो मिला।

जानसन इस पर हँसकर कहने लगा—ख़ैर, उसने ईश्वर को धन्यवाद तो दिया।

(२८)

अन्त में, कई वर्ष के बाद, अँगरेज़ी-भाषा का इतिहास और व्याकरण के नियमों के साथ कोष दो भागों में प्रकाशित हुआ। संसार ने उस विशाल ग्रंथ को बड़े आश्चर्य से देखा। अँगरेज़ों ने बड़े गर्व से कहा—अन्य राष्ट्रों ने ऐसे ग्रंथ पूरी एकेडमी की सहायता से तैयार किये हैं।

इतने बड़े कोष में शीघ्रता और प्रान्तीय प्रयोगों के कारण कुछ भूलें हो जाना स्वाभाविक ही था। परन्तु जानसन ने कभी लोगों से बहस करके उन्हें अपनी विद्वत्ता से प्रभावित करने की चेष्टा नहीं की। एक बार एक स्त्री ने उनसे कहा—अमुक शब्द का अर्थ तो यह है, पर आपने कुछ और ही लिखा है। इसका क्या कारण है? कोई साधारण व्यक्ति होता तो अपनी विद्वत्ता की वकालत करने लगता, पर जानसन ने सरल भाव से उत्तर दिया—श्रीमतीजी, मेरी अज्ञता ही इस भूल का प्रधान कारण है।

(२९)

कोष जिस समय प्रकाशित हुआ था, उस समय जानसन की अवस्था केवल ४६ वर्ष की ही थी *। तब वह अपने जीवन से बड़ा दुखी था। इसके दो कारण थे, एक तो यह कि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था और दूसरे उसकी स्त्री, जिसे वह बहुत ही प्यार करता था, दो वर्ष पहले मर चुकी थी। उसके कई मित्रों ने कहा है कि ४६वाँ साल जानसन के लिए चरम निराशा और दुःख का वर्ष था। परन्तु इसके बाद भी जानसन लगभग ३० वर्ष जीवित रहा और, उसने स्वयं कई बार कहा है, बड़े सुख से रहा। यह ईश्वर की कृपा ही थी।

वास्तव में, यह बड़े दुःख की बात है कि जिन्हें वह दिल से चाहता था और प्रसन्न रखने की चेष्टा करता था, उन सबकी मृत्यु हो गई। इस समय उसके मित्रों की संख्या बहुत ही कम थी। इसी लिए बासवेल (जानसन का मित्र) का यह विचार है कि जब हम बहुत दिन तक जीवित रहना चाहते हैं, तब हमें अपने मित्रों की संख्या बढ़ाने का सदैव प्रयत्न करना चाहिए। कारण, यदि हमारे नये मित्र बढ़ते रहेंगे तो हमें अपने पुराने मित्रों के वियोग से बहुत दुःख न होगा। नये मित्र स्थानपूर्ति करते रहेंगे। यद्यपि यह सत्य है कि प्रौढ़ावस्था के मित्र हमारी युवावस्था के मित्रों की समता नहीं कर सकते; तथापि जिस प्रकार

* हिन्दी में पत्र-सम्पादक तो पारिश्रमिक के लिए महीनों टरकाते ही हैं, प्रकाशक भी पुस्तक पर अपना अधिकार करने के बाद कान में तेल डालकर बैठ जाते हैं।

* लगभग इसी उम्र में बाबू श्यामसुन्दरदासजी ने भी 'हिंदी-शब्द-सागर' और 'वैज्ञानिक कोष' का सम्पादन किया था।—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शराब बेचनेवाले नित्य नई शराब अपने यहाँ भरा करते हैं—पुरानी से ही उनका काम नहीं चलता—उसी प्रकार हमें अपने मित्रों की संख्या भी—जीवन के लिए मित्रता शराब से कहीं अधिक आवश्यक है—नित्यप्रति बढ़ाते रहना चाहिए। साथ ही, यदि हम सहृदय और मिलनसार होंगे तो हमें शीघ्र ही अनेक अच्छे मित्र मिल जायँगे।

बासवेल का यह विचार अपना नहीं है; एक बार यही बात जानसन ने भी अपने एक मित्र से कही थी कि ज्यों-ज्यों मनुष्य की अवस्था बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों यदि वह अपने मित्रों की संख्या नहीं बढ़ाता रहता तो एक दिन उसका कोई साथी न रह जायगा *।

(३०)

सन् १७५५ में उसने शेक्सपियर के ग्रन्थों का सम्पादन करने का निश्चय किया। यह बात उसने पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी करा दी कि मैं जानता हूँ, इस काम को पूरा करने के लिए किस प्रकार खोज करने की आवश्यकता है। जानसन में प्रतिभा तो थी। पर इस कार्य के सम्पादन करने के लिए केवल प्रतिभा से ही काम नहीं चल सकता था। यही कारण है कि जिस उत्साह से उसने यह काम करने का निश्चय किया था, उसी उत्साह, अध्यवसाय और लगन से न तो वह 'रिसर्च' का काम ही कर सका और न मसाला ही जमा कर सका। फल यह हुआ कि कहाँ तो वह सब ग्रन्थों का सम्पादन उसी वर्ष बड़े दिन की छुट्टियों से पहले ही कर देना चाहता था और कहाँ पूरे ९ वर्ष बाद वह उन्हें प्रकाशित कर सका। साधारण जनता और साहित्य-सेवी जानसन की योग्यता से प्रभावित हो चुके थे, उन्हें विश्वास था कि डाक्टर की सम्पादित की हुई ग्रन्थावली अमूल्य वस्तु होगी; पर जब वर्ष पर वर्ष बीतने लगे और ग्रन्थावली प्रकाशित न हुई तब सबका धैर्य समाप्त हो गया। अब जानसन पर तरह-तरह के आक्षेप किये जाने लगे। यहाँ तक कि एक महाशय ने कविता लिखकर उस पर आक्रमण किया। अन्त में जानसन ने शीघ्रता से अपना काम समाप्त कर दिया।

(३१)

इसी वर्ष चर्च में एक पादरी की जगह ख़ाली हुई। जानसन से उस पद को स्वीकार करने का प्रस्ताव किया गया। पर उसने इसे अस्वीकार कर दिया। इसके दो प्रधान कारण थे। एक तो यह कि पादरियों के उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य से वह परिचित था। अन्य व्यक्ति उस पद पर पहुँचकर तरह-तरह के अधर्म किया करते थे; पर जानसन की आत्मा यह सब सहन न कर सकती थी और सत्य ही उसे आडम्बर से घृणा थी। दूसरी बात यह थी कि जानसन लंदन छोड़कर किसी दूसरे शहर जाना ही न चाहता था।

(३२)

सन् १७५९ के जनवरी मास में उसकी माता का भी देहान्त हो गया। उसकी माता की अवस्था इस समय ९० वर्ष की थी। फिर भी उसकी मृत्यु से जानसन को बड़ा दुःख हुआ। कारण, अपनी माता * का वह बड़ा आदर करता था। अपनी वृद्धा माता की बीमारी का समाचार पाकर जो पत्र जानसन ने लिखा था, उससे हमें उसकी सुकुमार भावनाओं, सहृदयता और श्रद्धा का पता लगता है—

पूजनीया माताजी,

आपकी बीमारी का समाचार सुनकर मुझे बड़ा दुःख हुआ। ईश्वर से सविनय प्रार्थना है कि आपको शीघ्र ही स्वस्थ करे।

मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि इस समय आप बाइबिल पढ़वाकर सुना करें; विशेषकर वे स्थल, जहाँ लिखा है—चाहे तुम पापी हो, चाहे दुखी, मेरे पास आओ। मैं तुम्हें शान्ति दूँगा, विश्राम दूँगा।

मैंने इधर एक डाक्टरी की किताब पढ़ी है। मेरा

* मित्रता शब्द का प्रयोग जानसन ने यहाँ अत्यन्त व्यापक रूप में किया है। मित्र से जानसन का तात्पर्य ऐसे व्यक्तियों से है, जिनसे खुलकर बातें करके मन बहलाया जा सके।—लेखक

* आचार्य पंडित महावीरप्रसादजी द्विवेदी भी अपनी माता के बड़े भक्त थे।—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुमान है कि 'अमुक' दवा के सेवन से आपका स्वास्थ्य सुधर सकेगा।

मुझे आशीर्वाद दीजिए और मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए। जो कार्य करने की आपकी अभिलाषा हो, जिसका रुपया-पैसा आपको देना हो या और भी जो सेवा मेरे योग्य हो, कृपया लिखवा दें। मैं शक्ति भर आपकी आज्ञा का पालन करूँगा।

बारह गिन्नियाँ मैं आपके पास भेजूँगा; आज ही रात को या कल सवेरे।

मेरी सविनय प्रार्थना है कि जो बातें मैं यहाँ लिख रहा हूँ, कृपया उन पर अमल अवश्य करें। ईश्वर आपको शांति दें।

आपका आज्ञाकारी पुत्र,
सैमुएल जानसन

(३३)

इसके कुछ दिन बाद ही उसने "अबीसीनिया का राजकुमार, रेसल्स"-नामक पुस्तक लिखी। इस पुस्तक के लाभ से जानसन अपनी माता की "दाहक्रिया" करना चाहता था और जो ऋण उसने छोड़ा था, वह भी अदा कर देना चाहता था। जानसन ने पुस्तक एक ही सप्ताह * में, केवल शाम को कुछ घंटे काम करके ही, समाप्त कर दी थी और बिना दोहराये हुए ही प्रेस में छपने के लिए भेज दी थी। एक प्रकाशक ने वह पुस्तक १०० पौंड [लगभग १५००)] में ख़रीद ली। परन्तु जब पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित हुआ, तब प्रकाशकों ने स्वयं कृपा करके जानसन को २५ पौंड [लगभग ३७५)] और दे दिये †।

जानसन को अपनी सम्पादित पुस्तकों के लिए, जिनके लिए बहुत ही कम परिश्रम और प्रतिभा की आवश्यकता होती है, जितना धन मिला था, वह इससे कहीं अधिक था। यदि जानसन ने और कुछ न लिखा होता तो उसकी इस एक ही पुस्तक ने उसका नाम सदैव के लिए अमर कर दिया होता। अतः अपनी इस पुस्तक के लिए जानसन ने इतने थोड़े धन से ही सन्तोष कर लिया, यह बड़े आश्चर्य की बात है। उसकी समस्त रचनाओं में केवल यही पुस्तक ऐसी है, जिसका बहुत ही अधिक आदर योरप में हुआ है और आज संसार की प्रायः समस्त भाषाओं में* इसका अनुवाद हो चुका है। सुन्दर भाषा में, ओजपूर्ण शैली में, मानव-जीवन के प्रत्येक आवश्यक अंग पर इसमें प्रकाश डाला गया है तथा इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि हमारा आधुनिक जीवन दम्भ तथा अहंकारपूर्ण और सारहीन है। परन्तु जिन महाशयों के लिए यही लोक सब कुछ है, स्वर्ग-नरक पर जिनका विश्वास नहीं है तथा जिनका विचार है कि मनुष्य की प्रकृति आज भी वैसी ही है जैसी सृष्टि के आदि में थी—उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं हुआ—उनके लिए इस पुस्तक की समस्याएँ तथा शिक्षाएँ कोई महत्त्व नहीं रखती हैं। हाँ, जो सत्य के पक्षपाती हैं और जिनमें भावुक सहृदयता है, वे बड़े चाव और आदर से इस पुस्तक को अपनावेंगे तथा लेखक की सत्य और न्यायप्रियता की प्रशंसा अवश्य करेंगे।

(३४)

जानसन जहाज़ के मल्लाहों के जीवन को बड़ी हीन दृष्टि से देखता था। वह प्रायः कहा करता था—जिस व्यक्ति को जेल में रहने से घृणा है, वह कभी मल्लाह बनना स्वीकार न करेगा; क्योंकि जहाज़ में रहना जेल में रहने से किसी प्रकार कम नहीं है और डूब जाने की जो शंका रहती है वह घाते में। एक दूसरे अवसर पर उसने कहा था—जहाज़ के मल्लाह की

* भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'अंधेर नगरी' की रचना एक ही दिन में की थी और सुप्रसिद्ध "समस्या"-नाटककार श्रीलक्ष्मीनारायण मिश्र ने भी अपना "आधी रात"-नामक नाटक केवल कुछ घण्टों में ही लिख डाला था। मिश्रजी ने यह बात स्वयं मुझसे कही थी।—लेखक

† हिन्दी में ऐसे प्रकाशक आज भी नहीं हैं।
—लेखक

* हिन्दी में ऐसी पुस्तकों के अनुवाद प्रकाशित करने की आवश्यकता ही नहीं समझी जाती।
—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपेक्षा जेल में रहनेवालों को अधिक अच्छा स्थान, अच्छा भोजन और अच्छी संगत मिलती है *।

(३५)

सन् १७६३—यह बासवेल के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण साल था; क्योंकि इसी वर्ष वह उस अलौकिक महापुरुष (डाक्टर जानसन) के शुभ दर्शन कर सका था, जिसका जीवन-चरित उसने स्वयं लिखा है। बासवेल जीवन भर इस बात पर गर्व करता रहा और अपने को भाग्यवान् समझता रहा। उस समय उसकी अवस्था केवल २२ वर्ष की ही थी†, परन्तु वह कई वर्ष पहले से डाक्टर की रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ता, उनसे शिक्षा ग्रहण करता और उनके रचयिता को बड़े आदर की दृष्टि से देखता आ रहा था। कालांतर में, वह उनसे इतना प्रभावित हुआ कि जानसन के रूप की कल्पना किसी अलौकिक महापुरुष में करने लगा। उसके एक मित्र ने जानसन के साधारण विचारों और आकृति-प्रकृति से उसे थोड़ा-बहुत परिचित करा दिया था। सन् १७६० में बासवेल ३ महीने के लिए लन्दन गया। एक कवि महाशय ने जानसन से उसका परिचय करा देने का वादा किया, परन्तु कई कारणों से उन्हें अपना वचन पूरा करने का अवसर न मिला। बासवेल ने समझा, जानसन से यह स्वयं विशेष परिचित नहीं है और उसका साथ छोड़ दिया। बहुत दिन बाद उसने यह बात जानसन से कही। जानसन ने उत्तर दिया—वह कवि मुझसे बहुत अच्छी तरह परिचित था। मुझे उससे बड़ा स्नेह था। मुझे बड़ा दुःख है कि आज वह संसार में नहीं है।

(३६)

तब डेविस नाम के एक ऐक्टर ने उसे जानसन से मिला देने का वादा किया। बासवेल रोज़ उसके यहाँ जाने लगा। परन्तु उसके दुर्भाग्य से वहाँ भी जानसन ने कुछ दिन के लिए आना-जाना बन्द कर दिया।

अन्त में १६ मई को जब बासवेल डेविस और उसकी स्त्री के साथ चाय पीने के बाद बातें कर रहा था, जानसन अनायास वहाँ आ गया। डेविस ने दरवाज़े के शीशे से उसको देख लिया और बहुत घबराकर कहा—डाक्टर जानसन आते हैं।

बासवेल ने जानसन की एक तसवीर देखी थी। डाक्टर को सामने देखकर बासवेल उसी से उसका मिलान करने लगा। डेविस ने उन दोनों का परिचय कराया। यहाँ एक विकट समस्या उपस्थित हुई। जानसन स्काटलैंडवालों को बड़ी हीन दृष्टि से देखता था। बासवेल यह बात जानता था। वह स्वयं स्काटलैंड का निवासी था। इसलिए उसने डेविस से कहा—मेरा परिचय इन्हें मत देना। डेविस को इस पर मसखरापन सूझा। उसने हँसते हुए जानसन से कहा—ये स्काटलैंड के निवासी हैं।

बासवेल इस पर बहुत क्षुब्ध हुआ। पर अब क्या हो सकता था। विवश होकर उसने जानसन से कहा—जी हाँ! मैं स्काटलैंड में ही पैदा हुआ हूँ और वहीं से आ रहा हूँ। पर इसमें मेरा क्या वश है।

अपने वाक्य के, "पैदा-होने" आदि शब्दों के लिए बासवेल ने "Come from" का प्रयोग किया था। इसका दूसरा अर्थ "भाग आना" भी होता है। स्काटलैंड के बहुत-से निवासी अपना जन्मस्थान छोड़कर इँगलिस्तान में जीविका कमाने के लिए भाग आया करते थे। इसी बात की ओर व्यंग्यात्मक लक्ष्य या संकेत करके जानसन ने शीघ्र ही उत्तर दिया—मैं जानता हूँ, स्काटलैंड के बहुत-से निवासी वहाँ से भाग आने पर विवश होते हैं; यह कोई आज नई बात नहीं है।

बासवेल यह कटाक्ष समझ गया। उस पर जैसे वज्रपात हुआ। भौचक्का होकर वह बैठ गया और सोचने लगा—देखो, आगे क्या होता है?

* जानसन का यह कथन इँगलिस्तान के जेलों के लिए ही ठीक है। भारत में तो क़ैदियों को, सुनते हैं, गन्दी कोठरियों में रक्खा जाता है, धूल मिला आटा और आधे कंकड़ आधी दाल खाने को दी जाती है। हाँ, जेलर, शायद, चैन की वंसी बजाते हों।—लेखक

† द्विवेदीजी के भक्त भी ऐसे अनेक युवक थे, परन्तु दुःख की बात है कि उनका जीवनचरित अभी तक किसी ने नहीं लिखा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जानसन ने उसकी ओर विशेष ध्यान न दिया और डेविस से अपने शिष्य और मित्र गैरिक के बारे में बात करते हुए कहा—गैरिक के विषय में तुम्हारा क्या विचार है? आज उसने मुझे मेरे एक मित्र के लिए पास देने से साफ़ इनकार कर दिया और कहा—आज थियेटर हाल ख़ूब भरा हुआ होगा और एक 'सीट' लगभग २॥) की होगी।

बासवेल चुपचाप बैठा हुआ यह सब सुन रहा था। इस बातचीत में भाग लेने की उसकी बड़ी इच्छा थी। वह एक जज का लड़का था और पैसे को कुछ समझता न था। अतः जानसन की बात समाप्त होते ही उसने उत्साह से कहा—मेरा तो विचार है, गैरिक इतनी ज़रा-सी बात के लिए कभी इनकार नहीं कर सकता और फिर आपके लिए।

जानसन ने बासवेल का यह व्यवहार अशिष्टतापूर्ण समझा और क्रोध से उसकी ओर देखकर कहा—गैरिक को मैं बहुत दिनों से जानता हूँ और आपसे ज़्यादा अच्छी तरह जानता हूँ। इसलिए आपको इस विषय पर मुझसे बातचीत करने का कोई अधिकार नहीं है।

जानसन के इस व्यवहार से बासवेल बहुत ही दुखी हुआ, पर उसने यह समझकर संतोष किया कि सत्य ही इस विषय पर मेरा बोलना और अपनी सम्मति देना अनुचित था। वास्तव में, बासवेल के स्थान पर कोई भी दूसरा स्वाभिमानी युवक होता या जानसन से परिचित होने की उसमें ही इतनी उत्कट इच्छा न होती तथा वह इतना दृढ़प्रतिज्ञ न होता तो अवश्य ही ऐसे विचित्र 'स्वागत' ने उसे निराश कर दिया होता। पर बासवेल निराश नहीं हुआ और ध्यान देकर उन दोनों की बातें सुनने लगा। प्रश्नों पर तो उसने ध्यान नहीं दिया पर जानसन ने जो उत्तर दिये, वे इस प्रकार हैं—

(१) जिन लोगों का विचार है कि लेखकों का आंतरिक जीवन (चरित्र) साधारण मनुष्यों से अच्छा है, वे अवश्य धोखे में रहते हैं। वास्तव में, महापुरुषों की प्रतिभा का प्रदर्शन असामान्य अवसरों पर ही होता है।

(२) असभ्य देशों में ही प्रतिभा का सच्चा उपयोग किया जाता है। शारीरिक या मानसिक शक्ति मनुष्य के लिए तभी लाभदायक होती है, जब सर्वसाधारण पर उसका कुछ प्रभाव पड़ता है। लेकिन सभ्यसमाज में मनुष्य धन कमाना ही अपना सबसे बड़ा कर्तव्य समझता है। यहाँ शारीरिक और मानसिक शक्तियों के स्थान पर ऊँचे पद, ऊँची जाति में जन्म और धन का अधिक आदर होता है। ईश्वर के इस नियम से ही संसार में कुछ एकता रहती है।

(३) यह पुस्तक (समालोचना के सिद्धान्त) अच्छी है और इसका आदर होना चाहिए; परन्तु इसका बहुत-सा भाग व्यर्थ ही है।

(४) इसके पश्चात् एक ऐसे व्यक्ति के विषय में बात होने लगी जो सदैव जनता-सम्बन्धी कार्यों और राजपरिवार की कटु आलोचना किया करता था। जानसन ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—उस पर मुक़दमा चलाने की अपेक्षा मैं यह अच्छा समझता हूँ कि नौकरों से ऐसे आदमी की ख़ूब मरम्मत करा दी जाय।

(५) स्वतन्त्रता की भावना योरपवालों के हृदय में बहुत गहरी नहीं है। स्वतन्त्रता-सम्बन्धी विचार केवल उन्हें आलसी होने से बचाये रखते हैं। उदाहरण के लिए, जब हम किसी क़साई को यह कहते सुनते हैं कि मेरा हृदय देश के लिए रो रहा है, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि उसके हृदय में सच्चा देश-प्रेम है ही नहीं।

बासवेल जानसन की इन महत्त्वपूर्ण बातों को सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ, परन्तु कारणवश वह ज़्यादा देर तक वहाँ न रुक सका—किसी मित्र से मिलने के लिए वह वचन दे चुका था। डेविस उसे पहुँचाने के लिए दरवाज़े तक आया। विदा होते समय बासवेल ने कुछ निराश होकर कहा—मुझे तो आशा नहीं है कि मेरा मनोरथ पूर्ण होगा।

डेविस ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—तुम निश्चिंत रहो, मैं प्रयत्न करूँगा कि वे तुमसे प्रसन्न हो जायँ।

उसी दिन शाम को बासवेल बहुत देर तक अकेला जानसन से बातें करता रहा। जानसन की बातों पर उसने कभी-कभी टीका-टिप्पणी भी की; परन्तु जानसन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने मुसकराते हुए उन्हें सुना। बासवेल इससे सन्तुष्ट हो गया। अपने मन में वह सोचने लगा—यद्यपि उसके व्यवहार में कुछ उद्दंडता है, तथापि वह दिल का मैला नहीं है *।

कुछ दिन बाद बासवेल ने डेविस से कहा—मैं जानसन के घर जाकर उनके दर्शन करना चाहता हूँ। इससे वे रुष्ट तो नहीं होंगे?

डेविस ने उत्तर दिया—जानसन को इससे बड़ी प्रसन्नता होगी।

२४ मई को बासवेल जानसन के घर गया। उस समय वह ऐसा डर रहा था, मानो डाक्टर के एक मित्र के शब्दों में, किसी "दैत्य के घर" जा रहा हो। कुछ दिन बाद जब बासवेल ने यह उपवाक्य—दैत्य के घर जा रहा था—जानसन को सुनाया, तब वह बड़ी ज़ोर से हँसा।

जानसन बासवेल को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। यद्यपि उसके कमरे का सामान अस्तव्यस्त पड़ा था, उसके कपड़े भी गन्दे और भद्दे थे * तथापि ज्यों ही जानसन की बातचीत शुरू हुई, बासवेल का ध्यान इन ऊपर की बातों से खिंचकर उनकी ओर चला गया। कुछ लोग वहाँ बैठे हुए थे। जब वे जाने लगे तो बासवेल भी उठा, पर जानसन ने उसे रोक लिया। बासवेल ने कहा—मैं आपका समय तो नहीं नष्ट कर रहा हूँ?

जानसन उसकी इस बात से बड़ा प्रसन्न हुआ और मुस्कराता हुआ बोला—जो घर बैठे मुझे दर्शन देते हैं, उनका मैं बड़ा कृतज्ञ रहता हूँ।

(क्रमशः)

---

* द्विवेदीजी के विषय में भी बहुत दिनों तक लोगों के विचार ऐसे ही थे। हाँ, जो लोग बहुत दिनों तक साथ रहकर उनके स्वभाव से परिचित हो जाते थे, वे अवश्य द्विवेदीजी का भली भाँति आदर करते थे। बासवेल के विचारों में भी आगे चलकर यही परिवर्तन हुआ।—लेखक

* प्रतापनारायण मिश्र भी गन्दा और आलसी रहना पसन्द करते थे।—लेखक

प्रदर, प्रसूतिरोग, वंध्यत्व, रजदोष आदि स्त्रीरोग की अचूक औषधिः—

गर्भामृत चूर्ण

यह चूर्ण स्त्रियों के रज कम, अधिक या कष्ट से आने को नियमित करता है। रक्त या श्वेतप्रदर को मिटाता है और पेड़ू या कमर का दर्द, पेशाब में जलन, गर्भाशय की सूजन आदि स्त्रियों के सर्वरोग नष्ट करके शरीर सम्पूर्ण तन्दुरुस्त बनाता है। इस दवा को गर्भवती स्त्रियाँ भी चौथे मास से सेवन कर दीर्घायु और हृष्ट-पुष्ट सन्तान का मनोरथ सिद्ध कर सकती हैं। क़ीमत १० तोले के डिब्बा के २) रुपया।

राजवैद्य नारायणजी केशवजी हेडआफ़िस जामनगर (काठियावाड़)

लखनऊ—निगम मेडिकलहाल अमीनाबाद रोड फ़तेहगंज।

इलाहाबाद—बलभद्रदास के० जोन्स्टनगंज।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

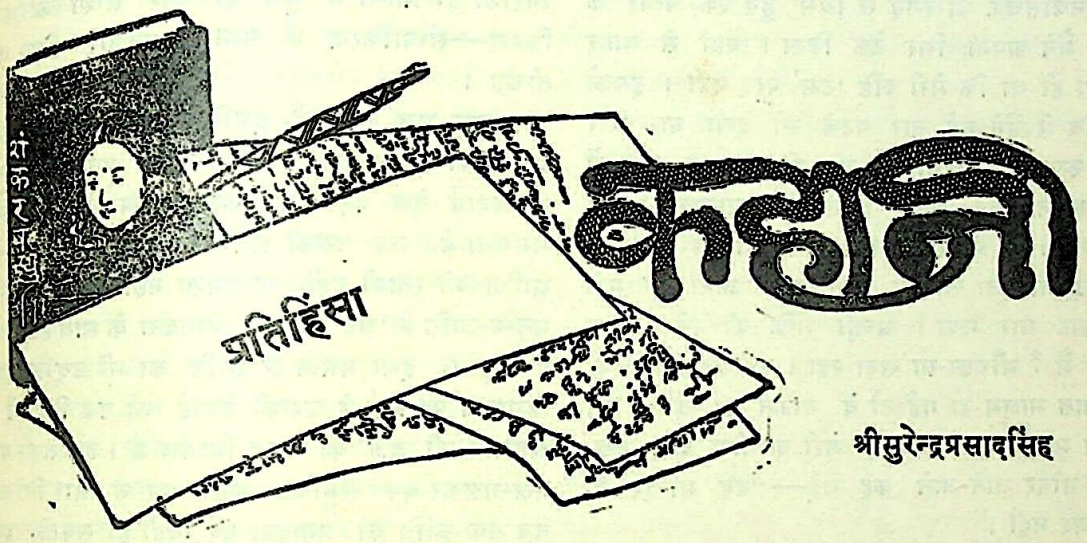

श्रीसुरेन्द्रप्रसादसिंह

(१)

कहाँ पटने की काली सड़कें—चलें तो धूल भी न लगे—और कहाँ देहात की ये गन्दी नालियाँ। टूटी हुई पगडण्डी, ऊपर से कीचड़ में चिपके हुए काँटे। मेरी तबियत बेतरह भिन्ना उठी। साल का ख़रीदा हुआ जूता तो ख़राब हो ही चुका था, धोती के किनारे में भी कीचड़ लग गया था। देहातियों की तरह धोती उठाकर चलते नहीं बनता था। यद्यपि वहाँ पर किसी को मेरी धोती निहारने की फ़ुर्सत न थी, फिर भी मैंने धोती ढीली कर दी। वह जगहँसाई हुई फिर से ज़मीन को चूमने लगी। इसी तरह की यन्त्रणा भोगते हुए मैं चला जा रहा था। मुझे स्वयं अपने ऊपर क्रोध आने लगा। क्यों आया मैं यहाँ ? मज़े में होस्टल में पड़ा रहता, चैन से छुट्टी कट जाती। पचीस दिन बीतते ही कितनी देर लगती है ! देहात में आकर ये कष्ट तो नहीं भुगतने पड़ते। पटने के गुलज़ार शहर में मनोरंजन के कितने सामान होते ! यार-दोस्त, सिनेमा-थियेटर, लॉन-चौक, मन लगाने की काफ़ी चीज़ें मौजूद थीं। दिन तो सोने के पंख पर उड़ जाते। इस देहात में मैं फिर क्यों आया ? पर मा ने जो बुलाया था। भला मा की बात कैसे टाली जा सकती है ! दशहरे की छुट्टी हो और मैं मा से न मिलूँ, भला यह सम्भव था ! इसी लिए तो इन सब तकलीफ़ों का कुछ भी ख़याल न कर मैं आज यहाँ आ पहुँचा हूँ—खीझते हुए मैं यह सब सोच गया। आज मुझे मा का आशीर्वाद मिलेगा। आशीर्वाद की लालसा से मेरा मन नाच उठा। आशीर्वाद ? क्या आशीर्वाद की लालसा ही मुझे यहाँ खींच लाई ? क्या मैं यह सच कह रहा हूँ ? मन गवाही क्यों नहीं देता ? मैं अपनी दुर्बलता छिपाना चाहता हूँ, पर वह छिपती नहीं। प्रयत्न करने से और भी प्रकट हो जाती है। नहीं तो मेरे मस्तिष्क में वह घटना क्यों चक्कर मारने लगती ? एकाएक मुझे वह शाम क्यों याद आ गई, जिसकी स्मृति मुझे विशेष रूप से प्रिय थी ? उस बार गर्मी की ही छुट्टियों में तो मैं यहाँ आया था। दिन ढल चुका था, लू शान्त हो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चली थी। मैं घर से निकला था घूमने-फिरने के इरादे से। सूर्य की किरणें बादल के टुकड़ों से उलझ पड़ी थीं। मन्दिर के ऊपर दृष्टि पड़ते ही मेरे भीतर भक्तिभाव जाग उठा। झट मन्दिर के भीतर घुसा, और नियतिचक्र की रगड़ से घिसे हुए एक पत्थर के सामने मैंने अपना सिर टेक दिया। वहाँ से बाहर निकला ही था कि मेरी दृष्टि 'उस' पर पड़ी। इसको तो गाँव में मैंने कई बार पहले भी देखा था, और इसके रूप की सराहना भी की थी। आज हाथ में फूल-चन्दन लेकर शायद देवता की आराधना करने आई थी। मेरे बाहर निकलते ही वह धीरे से बोली—"मन्दिर में जूता पहनकर नहीं जाया जाता।" मुझे तो काठ मार गया। अच्छी भक्ति की मैंने! क्या कहता मैं? भौचक्का-सा खड़ा रहा। कहीं गाँववालों को यह बात मालूम हो गई तो वे आफ़त ढा देंगे। वह सहसा मुस्किरा उठी, शायद मेरी दयनीय दशा देखकर। भीतर जाते-जाते कह गई—"यह मन्दिर है, गिर्जाघर नहीं।"

मैं वहाँ से चला तो कुछ परेशान होकर। उसके चेहरे पर क्षोभ के भाव तो अंकित नहीं थे, बल्कि किसी दूसरे भाव की ही झलक थी—तो क्या....?? छुट्टी के बाक़ी दिन कैसे बीते, यह ठीक याद नहीं। पर हाँ, इसके बाद से हमेशा कुछ ऐसी भावना उठती ही रही, जिससे प्रेरित होकर बिना किसी यन्त्रणा की परवा किये मैं कीचड़ रौंदता हुआ अन्धाधुन्ध बढ़ता जा रहा था।

(२)

एक छोटी-सी घटना को निचोड़कर हम लोग उससे तरह-तरह के सारांश निकालना चाहते हैं, उसका सम्बन्ध ऐसी भावनाओं से जोड़ देते हैं कि उन भावनाओं की एक जटिल शृंखला बँध जाती है। परिणाम यह होता है कि चित्त के अत्यन्त उद्वेलित हो जाने के कारण हम लोग वास्तविक अर्थ को समझ नहीं पाते। मानव-हृदय इतना दुर्बल है कि अपनी इस भ्रांति में उसे सुख का आभास मिलता है, और ज्यों-ज्यों दुर्बलता बढ़ती जाती है, भावनाएँ और भी प्रबल हो उठती हैं। मनुष्य उनका दमन करना नहीं चाहता; क्योंकि दुर्बलता में भी एक आनन्द है, और वह आनन्द इतना अस्थिर है कि हम लोगों का साहस नहीं होता कि भ्रान्ति से निकलकर वास्तविकता को समझने की कोशिश करें। वास्तविकता में दुःख और निराशा है, भ्रान्ति में सुख है, और आशा की एक किरण—संध्याकिरण के समान पतली, फिर भी तीक्ष्ण।

मनुष्य भूल करता है, इसलिए नहीं कि भूल करने की उसकी इच्छा रहती है। भ्रान्ति की अवस्था में भूलें भी यथार्थ देख पड़ती हैं, कठोर सत्य को वह तब समझता है, जब उसकी भ्रान्ति दूर हो जाती है—भ्रान्ति भी स्थायी नहीं, वह हमेशा नहीं टिक सकती। मनुष्य-जाति में 'अहं' का भाव मानवता के साथ ही साथ पैदा हुआ, इसी ममत्व से भ्रांति का भी उद्भव है। हिमालय की बर्फ़ ने उसकी उँचाई को ढक दिया है। अहंभाव भी बर्फ़ की तरह विशाल है। जब तक यह गल-गलकर एक समुचित स्थान पर न आ गिरेगा, तब तक भ्रांति की प्रगाढ़ता दूर नहीं हो सकती, हम अपनी महत्ता दुनिया को दिखा नहीं सकते।

मनुष्य कुछ नहीं करता, अवस्था ही सब कुछ करती है। इसी गाँव में मैंने शैशव के सुनहले दिन काटे थे। क़रीब दो वर्ष पहले यहीं गाँव छोड़ते हुए मैं देवदास की तरह उद्विग्न हो उठा था। उस समय यहाँ पर मेरी कोई 'पारू' न थी। मैंने तो अपनी इस छोटी-सी बस्ती को ही पारू के रूप में देखा था। लेकिन वही प्यारी बस्ती आज मुझे फीकी मालूम हो रही थी। देहात के सरल जीवन की वह सजीवता, जिसके लिए कुछ वर्ष पहले मेरी आँखें एक बार अश्रुपूर्ण हो उठी थीं, आज ढूँढे भी नहीं मिलती थी। मैं जानता था कि यह सब कुछ अवस्था ने ही किया है। उसी के कारण देहात की सभी चीज़ें शहर की ज़िन्दगी की उस अजीब ज़िन्दादिली के सामने नीरस मालूम हो रही थीं। यह भी भ्रांति का एक स्वरूप ही था। फिर भी जवानी के उफान के समय भ्रांति का यह तूफ़ान बड़ा सुखद मालूम हो रहा था। अभी तो उन्माद के बाज फूटे थे, पौदों की नन्हीं टहनियाँ तो इस समय आँधी के ही ज़ोर पर बढ़ती हैं, अभी तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नमें फूल लगने को बाक़ी थे, जवानी का मधुमास भी कुछ दूर ही था, जब कि मस्त समीर न्द होकर बहता है, उस समय आँधी नहीं उठा रती।

देहात की उस निष्प्रवाह शून्यता में मैंने अपने को ीन कर देना चाहा, पर हृदय में एक आन्दोलन उठा रता था, उसकी बाढ़ मुझे असन्तोष की लहरों के ीच फेंक देती। आख़िर, मेरे देहात में आने का भिप्राय क्या था? यहाँ आकर देहात की सजीवता हने के पहले मैंने उस सजीव मूर्ति की ही खोज की। ज़ सुबह-शाम अपने घर से निकलता, एक खेत से सरे खेत, एक बग़ीचे से दूसरे बग़ीचे में घूमा करता, ाँव के कोने-कोने की ख़ाक छानता, पर वह तो कहीं ख़ाई ही नहीं पड़ती थी। मैं परेशान हो गया था, रा क्रोध अपने ऊपर दिन-दिन बढ़ता जा रहा था, फिर भी उसके बारे में मैंने किसी से पूछताछ नहीं ी। बीच में कुछ रुकावटें थीं, संकोच तो था ही, र उससे ज़बरदस्त थी आत्मसम्मान की भावना— श्चर्य, फिर भी इसका बाह्य रूप निर्भेद्य और अकाट्य- ा ही था। हृदय में उद्विग्नता थी, ऊपर से ज़ब्त रने के सांघातिक प्रयत्न। पर यह संघर्ष कब तक ायम रह सकता है? अन्त में मैंने श्यामू से कुछ ूछने की ठानी। यह गोरा-चिट्टा छोकरा पहले मेरा ोकर था, अब सहचर बन गया था। उसने अपने ीवन में हरएक बात पर हँसने के सिवा कुछ जाना ी न था। उसकी हँसी की उपेक्षा करने की सामर्थ्य ायद चिन्ता में भी न थी। उसमें कुतूहल भरा था, र अपने कुतूहल में भी वह सचेष्ट था। प्रायः वह रह-तरह के प्रश्न पूछता, मुझे जवाब देने ही पड़ते। ह पूछता—"भैया, शहर में तो बड़े-बड़े मकान ोंगे?" मैं हँसकर उत्तर देता—"अगर झोपड़ी ही ही तो शहर कैसा?"

"वहाँ तो बहुत तरह की सवारियाँ होंगी?"

"हाँ, एक्का, फ़िटन, मोटर,....."

"मोटर? ओ! समझ गया, हवागाड़ी!"

"हाँ, हवागाड़ी को ही शहर में मोटर कहते हैं।"

"मोटर पर भी लोग चढ़ते होंगे?"

"क्यों नहीं, बड़े लोग तो मोटर पर ही चढ़ते हैं।"

"और लोग?"

"एक्का, फ़िटन पर। और भी दूसरी सवारियाँ हैं।"

"आप किस पर चढ़ते हैं?"

क्या उत्तर देता मैं? कुछ सोचकर कहा—"जैसा मौक़ा आ पड़ा, वैसा काम किया। कभी फ़िटन पर चढ़ा तो कभी मोटर पर।"

"अच्छा, तो वहाँ खेल-तमाशे भी ख़ूब होंगे?"

"मत पूछो, ताँता बँधा रहता है।"

"और क्या-क्या चीज़ें होती हैं?"

"क्या बताऊँ, वहाँ कौन-सी चीज़ नहीं होती?"

"भैया, मैंने शहर कभी नहीं देखा।"

"इस दफ़ा चलो मेरे साथ, मैं दिखला दूँगा।"

"ज़रूर, आप कब जाइएगा?"

"अरे, छुट्टी भी ख़तम होने दो।"

इसी तरह की कुछ बातें करते हुए हम एक दिन शाम को घर वापस आ रहे थे। इसी बीच में उसने कहा—"भैया, आपने मुझे आज बहुत-सी बातें सिखलाईं, चलिए, मैं उन्हें चम्पा को भी बता दूँ।"

मैंने अचकचाकर पूछा—"चम्पा कौन?"

"अरे, वह वहाँ पर नदी के किनारे घास छील रही होगी। वहीं पर तो, चलिए न। वह भी सुनकर ख़ुश होगी।"

मैं चल पड़ा, चम्पा को देखने। पहुँचकर श्यामू ने दूर से ही पुकारा—चम्पा। वह मुड़ी, प्रसन्नता से उसके दाँत चमक उठे। मुझ पर दृष्टि पड़ते ही वह कुछ सहमी, सारी सँभाली और सिमटकर एक ओर खड़ी हो गई। मैंने वह देखा, जिसकी उम्मीद मुझे इस समय क़तई न थी। चम्पा तो वही निकली, जिसको मैंने उस छुट्टी में मन्दिर के द्वार पर देखा था, जिसकी एक चितवन घसीटकर मुझे शहर से देहात में ले आई थी। इतने दिनों से जिसकी खोज में परेशान हो रहा था, उसको अकस्मात् इस तरह से देखकर मैं अप्रतिभ-सा हो गया। श्यामू ने तो यह सब कुछ देखा नहीं, तुरन्त ही पूछ बैठा—"चम्पा, तूने कभी शहर देखा है?"

उत्तर में सिर्फ़ उसकी बड़ी-बड़ी आँखें श्यामू की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओर उठ गई। श्यामू फिर बोला—"बड़ी गँवार है तू।"

वह तमककर बोली—"तुमने ही कब देखा है कि दूसरे को गँवार कहने चले हो?"

श्यामू ने धाक जमानी चाही—"देखा नहीं तो उसके बारे में सुना तो है।"

"आख़िर तुमने सुना ही कहाँ से?"

"भैया ने मुझे सब कुछ बतलाया है।"

"ओ! लेकिन सुनने से क्या देखना हो जाता है?"

"माना कि अब तक नहा देखा है, तो इससे क्या? जाकर देखूँगा तो।"

"अगर तुम्हारे-जैसे जाकर शहर देखने लगें तो देहात में रहेगा कौन?"

"तुम, और कौन!"

"ऊँह! बड़े चले हैं शहर घूमने, तुम जाओगे ही कैसे?"

इस दफ़ा मैंने बीच में कुछ बोल देने की ग़रज़ से कहा—"वह मुझसे आग्रह कर रहा है कि चलकर शहर दिखला दीजिए।"

वह बोली—"ना, इसको कहाँ ले जाइएगा? वहाँ पर इसके होश ठिकाने नहीं रहेंगे। इसको पड़े रहने दीजिए देहात में।"

श्यामू ने आँख मीचते हुए कहा—"अरे, बिगड़ती क्यों हो? चलकर तुम भी देख लेना।"

मैंने कहा—"और नहीं तो क्या? चलकर तुम भी क्यों नहीं देख लेतीं?"

"मैं क्या करूँगी शहर जाकर। देहात के सिवा मैं कहीं जाना नहीं चाहती।"

"तो शहर से तुमको नफ़रत है?" मैंने पूछा।

"हम देहात के हैं, देहात ही में अच्छे हैं। शहर आप-जैसे लोगों के लिए है। वहाँ श्यामू को मत ले जाइएगा।"

श्यामू ने बिगड़कर पूछा—"क्यों?"

"क्यों क्या? यों ही। देखती हूँ, तुम शहर कैसे जाते हो।" इतना कहकर वह तमककर एक ओर चली गई।

हम वहाँ से लौटे तो श्यामू कह रहा था—"बड़ी शरीर है। हमारे शहर जाने से न-जाने इसका क्या बिगड़ता है। ज़रा मैं भी देखूँगा, यह मुझे रोकती कैसे है।"

मैंने उसका क्रोध शांत करते हुए पूछा—"अजी, यह चम्पा कौन है?"

"आप नहीं जानते उसको?"

"नहीं तो।"

"मैं समझता था कि आप उसे जानते हैं।"

"देखा तो ज़रूर है।"

"वह आपके बारे में कई बातें पूछ रही थी।"

"हाँ?"

"हाँ, पूछ रही थी कि तुम्हारे भैया शहर से कब आये।"

"मेरे बारे में पूछ रही थी?" मेरे शब्द कुछ अविश्वास-सूचक थे।

"और यह भी पूछ रही थी कि कब तक रहेंगे।"

"आज भी उसने कुछ पूछा था?"

आज?—हाँ, आज पूछ रही थी, "तुम्हारे भैया आजकल मन्दिर में जाते हैं या नहीं।" मैं मन ही मन हँस पड़ा। मुझे वह दिन याद आ गया, जब मैं जूता पहनकर मन्दिर में घुस पड़ा था। उस दिन की मुलाक़ात और उसी दिन की मुस्किराहट ने मुझे एक उलझन में डाल दिया था। मैं अब तक न समझ पाया था कि वह उलझन भ्रांति की थी या प्रेम की फाँस थी। इसी फाँस में तो उलझा हुआ मैं अपनी छुट्टी देहात में काट रहा था। चाहा कि यह सब रहस्य खोलकर श्यामू से कह दूँ। चम्पा जब यह सुनेगी तो उसके अहंकार का ठिकाना न रहेगा, अपनी इस "आकर्षण-शक्ति" पर बेहद ख़ुश होगी। पर डर यह था कि मेरे यह सब कहने से कहीं श्याम के हृदय पर कोई आघात न पहुँचे, इसीलिए मैंने इसे छिपाकर रखना ही उचित समझा।

मैंने पूछा—"आख़िर ये सब बातें वह तुमसे पूछती है कब?"

"क्यों, वह रोज़ तो मकान पर आती है।"

"मैंने तो एक दिन भी नहीं देखा।"

"आप तो सुबह घर पर रहते ही नहीं। न-जाने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हां चले जाते हैं। आज चम्पा भी कह रही थी कि
ारे भैया को तो कभी मकान पर देखती ही
हीं हूँ।"
ख़ैर, दूसरे दिन से सुबह को मेरा घर से निकलना
न्द हो गया।

(३)

छुट्टी के दिन अब बीत चुके थे। घर से चलने की
यारी कर ही रहा था कि श्यामू आ धमका—"भैया,
रे चलने का सब कुछ ठीक हो गया है, मैं भी
लूँगा।" मैंने कहा—"चलो, वहाँ तुम्हारी ज़िन्दगी
धर जायगी।" समय हो जाने पर हम लोग घर से
निकले। श्यामू सिर पर एक गठरी रक्खे हुए मेरे
ीछे-पीछे आ रहा था। स्टेशन कुछ दूर पड़ता था।
म लोग खेत, बग़ीचे पार करते हुए चले जा रहे थे।
ब नदी के पासवाले बग़ीचे में पहुँचे तो देखा, चम्पा
ूखी लकड़ियों को चुनकर इकट्ठा कर रही है। श्यामू
ने उसे पुकारा। वह तत्काल हम लोगों के पास चली
आई। आते ही उसने मुझसे पूछा—"क्या आप
हर लौट रहे हैं?" मैंने सिर हिला दिया।

"तुम क्या स्टेशन पहुँचाने जा रहे हो?" यह प्रश्न
उसने श्यामू से किया।

"मैं?—मैं भी तो इनके साथ शहर जा रहा हूँ।"

"क्या सचमुच जा रहे हो?"

"देखती नहीं, मैंने अपना सामान ले लिया है?"

"श्यामू! यह तुम क्या कर रहे हो?"

"क्या?"

"इतना कहने पर भी तुम न रुके। आख़िर चले
ी जा रहे हो।"

"मैं यह पूछता हूँ, इसमें नुक़सान क्या है?"

"अगर तुम सिर्फ़ इतना ही समझ सकते तो शायद
ुद ही जाने से इनकार कर देते।"

"फिर भी तुम्हारे कहने का मतलब क्या है?"

"क्या बतलाऊँ..... पहले यह सोचो कि तुम शहर
में जाकर यही श्यामू बने रहोगे? उफ़! तुम कितना
बदल जाओगे!"

"लेकिन बदलने से होता क्या है? भैया भी तो
बदल....."

"तुम्हारे भैया के बदलने से यहाँ किसी का कुछ नहीं बिगड़ा, पर अगर तुम बदलोगे तो न-जाने यहाँ क्या बीतेगा।"

"क्या होगा?"

"तुम कुछ समझते ही नहीं। तुम मेरा कहना भी नहीं मानते। मैं फिर कहती हूँ रुक जाओ।"

"नहीं।"

"तुम नहीं मानोगे। जाओ, मगर वहाँ ज़्यादा दिन ठहरना नहीं।"

मैं अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अब तक चम्पा के मनोभावों को समझ रहा था। प्रतिहिंसा के भाव अभी तक हृदय में नहीं जगे थे। मैंने कुछ आश्वासन देना चाहा—बीच में बोल उठा—"घबराओ नहीं चम्पा, मैं इसे वहाँ से जल्दी ही भेज दूँगा।"

"हाँ भैया, यह वहाँ ज़्यादा दिन रहकर करेगा क्या? इसे तो जल्दी वापस चला ही आना चाहिए।"

श्यामू बोल उठा—"जल्दी कैसे चला आऊँगा? जब तक शहर अच्छी तरह से देख न लूँगा, तब तक वहाँ से चलूँगा कैसे? और तुम्हारे लिए.....सुनो, उधर कहाँ जा रही हो—तुम्हारे लिए बहुत-सी अच्छी चीज़ें लेता आऊँगा।"

"मुझे तुम्हारी चीज़ों की ज़रूरत नहीं, बस तुम जल्दी लौट आना।"

चम्पा के हृदय की उद्विग्नता वाणी के कम्पन से साफ़ ज़ाहिर होती थी। पर वह अपने को सँभालते हुए कहने लगी—"देखो, होली के पहले ज़रूर चले आना। होली के दिन सभी को घर पर रहना चाहिए। तुम अगर यहाँ न रहोगे तो कैसा उदास मालूम होगा.....ना, ना, गाँव के लोग क्या कहेंगे। होली के पहले आओगे न?"

मैंने विश्वास दिलाते हुए कहा—"निश्चय जानो, इसे मैं होली के पहले वहाँ से ज़बरदस्ती भेज दूँगा।"

रास्ते भर मैं इसी घटना पर विचार करता रहा। भ्रांति के अवसान का आरम्भ हो गया था, साथ-साथ प्रतिहिंसा के अंकुर भी हृदय में उगने लगे थे। होली के दिन क्या श्यामू का ही घर पर रहना नितान्त आवश्यक है, मेरे जाने या न जाने से कोई भी अंतर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं होता ? मुझसे इतनी उदासीनता क्यों ? क्या मैं शहर में रहता हूँ इसलिए ?

फागुन शुरू हो गया था। फाग के मस्त राग से शून्य रातें संगीतमय हो रही थीं। श्यामू के हृदय में भी अपने देहात की फाग-मण्डली में बैठकर मस्त हो जाने की लालसा जाग उठी। उसने मेरे पास आकर एक दिन कहा, जैसे शहर से उसकी तबियत ऊब गई हो—"भैया, मैं अब घर जाना चाहता हूँ।" यह सुनते ही मुझे चम्पा की बातें याद आ गईं। मैंने उसे विश्वास दिलाया था, यह भी याद आ गया। पर अब तक मेरे हृदय में प्रतिशोध की ज्वाला भीषण रूप से प्रज्वलित हो उठी थी। मैंने कहा—"क्या तुम शहर छोड़कर जाना चाहते हो ?"

"घर तो जाना ही होगा, होली नज़दीक आ रही है न ?"

"तो इससे क्या होता है ?"

"आपको तो याद ही होगा, चम्पा ने क्या कहा था।"

"ओ !—अरे, उस पगली की बातों का भी क्या ख़्याल करते हो। वैसे तो सभी कहते ही रहते हैं। तुमने यहाँ पर कितनी नई बातें जान ली हैं। घर जाओगे तो फिर वहाँ से आना मुश्किल हो जायगा। मैं चाहता हूँ कि घर जाने के पहले तुम कुछ पैसे कमा लो, तब वहाँ पर तुम्हारी तारीफ़ होगी और इज़्ज़त भी। होली के दिन घर जाना तो सिर्फ़ ढकोसला है, अभी जाओगे तो कोरे के कोरे रह जाओगे।"

"भैया, आप तो बिलकुल ठीक कह रहे हैं, पर चम्पा....."

"अरे, चम्पा भी क्या चाहती है कि तुम हमेशा बेवक़ूफ़ ही बने रहो ? धन-उपार्जन करोगे तो वह भी हर्ष और आश्चर्य से दाँतों उँगली दबायेगी। अगर रुपयेवाले बनकर घर लौटोगे तो चम्पा की ख़ुशी का ठिकाना न रहेगा। कुछ दिन लगेंगे तो इससे क्या होता है ? इस साल की होली नहीं तो परसाल की होली ही सही। ज़रा से मोह के लिए अपनी ज़िन्दगी तो तुमको नहीं ख़राब कर देनी चाहिए।"

मेरी इन बातों का उस भोले श्यामू पर बड़ा प्रभाव पड़ा। मैं जानता था कि इतने दिन शहर में रहकर ऐसी चिकनी-चुपड़ी बातें करना मैंने व्यर्थ ही नहीं सीखा है।

उसने धीरे से कहा—"अगर ऐसी बात है तो एक वर्ष मैं और ठहर सकता हूँ।"

"अगर तुम कुछ दूर जाने पर राज़ी हो तो बड़ी अच्छी नौकरी मिल सकती है। अगर तुम चाहो तो इसका प्रबन्ध मैं बड़ी आसानी से कर सकता हूँ।"

श्यामू ने शंकित होकर पूछा—"इतनी दूर तो नहीं, जहाँ से आना मुश्किल हो जाय।"

"दुत्, आजकल की दुनिया में क्या पास, क्या दूर। जब चाहो, उठकर चले आ सकते हो। फिर जितनी दूर जाओगे, उतनी नई-नई चीज़ें देखने में और नई-नई बातें सीखने में आवेंगी।"

इस लालच ने उसे बिलकुल निरुत्तर बना दिया। वह अन्त में राज़ी हो गया।

उसके चले जाने पर अपनी विजय पर मेरे मुँह से एक पैशाचिक हँसी फूट निकली।

× × ×

आज होली है। श्यामू आज रंगून में है, किसी मिल में कलेजा तोड़कर काम कर रहा होगा। आज उसके चित्त में क्या-क्या भावनाएँ उठ रही होंगी, इसका अनुमान मैं नहीं कर सकता। मैं सिर्फ़ इतना ही जानता हूँ कि वहाँ से उसे लौटकर चम्पा के पास जाना अगर असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है। चम्पा आज अपलक नेत्रों से प्रतीक्षा कर रही होगी। बाट जोहते-जोहते उसकी आँखें पथरा जायँगी, पर श्यामू क्या, उसकी परछाईं भी उसे देखने को न मिलेगी। श्यामू अब उसका नहीं, उस पर पैसे का जादू चल चुका है। और मैं—मैं चुपचाप लेटा हुआ अपनी प्रति-हिंसा की अग्नि को शान्त करने में व्यस्त हूँ—मुझे प्रतिशोध मिल चुका है। दो दिलों में मैंने आग लगाई है। दो हृदयों को अशान्त करके आज मैं एक भयंकर शान्ति का अनुभव कर रहा हूँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

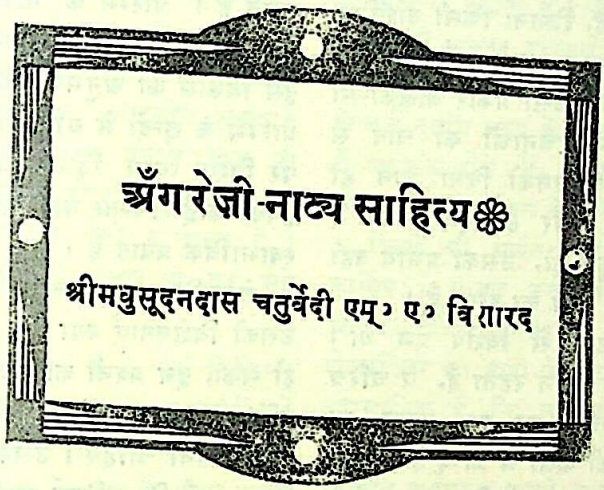

अँगरेज़ी-नाट्य साहित्य*

श्रीमधुसूदनदास चतुर्वेदी एम्० ए० विशारद

(४)

शेक्सपियर की कला

आलोचना अँगरेज़ी-साहित्य का एक विशद अंग है। विद्वानों की विद्वत्ता का सच्चा प्रमाण उनके द्वारा की गई आलोचनाओं में मिलता है। अँगरेज़ी-साहित्य के प्रकाश में आने का मुख्य कारण उसकी सत्समालोचना है। प्रत्येक बड़े लेखक, कवि अथवा नाटककार पर अनेकों विद्वानों ने अनेकों दृष्टि-कोणों से प्रकाश डाला है। शेक्सपियर सबसे बड़ा नाटककार था, अतएव उसकी कला के विषय में अगणित मर्मज्ञों ने अपने मत प्रकट किये हैं। कोई-कोई आलोचक तो इतने सफल हैं कि उनकी आलोचनाओं के पढ़ने में मूल पुस्तकों से भी अधिक आनंद प्राप्त होता है। शेक्सपियर की कला का सम्पूर्ण विवेचन इन कृतियों के अवलोकन के पश्चात् बड़ा सुगम हो जाता है। इस सम्बन्ध में ब्रेडले, डाउडन कोलरिज, स्विनबर्न इत्यादि की आलोचनाएँ पठनीय हैं।

कला की आलोचना करते समय हमें सर्वप्रथम उसके हेतु की खोज करनी पड़ती है। शेक्सपियर आदर्शवादी था या नहीं, यह कहना कठिन है। परन्तु सफल कलाकार होने के कारण उसकी कला सत्यता से कहीं भी भिन्न नहीं हुई है। उसकी कला में हास्य को स्थान मिला है, और स्थल-स्थल पर हम इसका प्रतिबिम्ब देख सकते हैं। उस समय, वस्तुओं का अवलोकन, उनमें सुख का अनुभव करना और उन्हीं को दर्शकों के निमित्त चित्रित करना—सफल कला समझी जाती थी। ये अनुभव जितने प्रकार के होते, उतना ही कलाकार अधिक सफल समझा जाता। ये अनुभव मानवीय आवेग, मानवीय कृत्य और मानवीय भावनाओं के होते थे और इनका चित्रण ही कलाकार का कार्य था। प्राचीन युग की भाँति धार्मिक उपदेश नाटक का हेतु न रह गया था। अतएव सौन्दर्य की सृष्टि ही शेक्सपियर की कला का मुख्य लक्ष्य है।

शेक्सपियर ने भी जीवन को उच्चतम बनाने के

* इस लेखमाला के प्रथम तीन लेख माधुरी मार्च १९३६, अप्रैल १९३७, दिसम्बर १९३८ में प्रकाशित हो चुके हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदर्श दिये हैं, लेकिन वे आदर्श दार्शनिकों की भाँति स्पष्ट नहीं किये गये। उसका दृष्टिकोण भिन्न था। वह मानवीय जीवन को प्रेम, कल्पना एवं विचारों की तुला में तौलता है। इसी कारण उसके नाटक पाठकों पर उतना ही प्रभाव डालते हैं, जितना किसी दार्शनिक के ग्रन्थ। जिस प्रकार शक्कर-चढ़ी कुनैन बालक सुगमतापूर्वक खा लेते हैं, ठीक उसी प्रकार बालकों-सी मनोवृत्तिवाले पाठकगण इन रचनाओं को चाव से पढ़ते हैं और इनका सत्प्रभाव उनको बिना जाने ही उच्चतम बना देता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कला का हेतु चाहे जो कुछ हो, उसका प्रभाव वही है, जो दूसरे कलाकारों की कला का होता है।

शेक्सपियर को सत्य-घटना से विशेष प्रेम था। नाटकों में जिन घटनाओं का वर्णन रहता है, वे चरित्र से सम्बन्ध रखती हैं, अतएव हर एक प्रकार का चरित्र-चित्रण शेक्सपियर की कला में प्राप्य है। फ्रेंच उपन्यास-लेखक ड्यूमाज़ का कथन है कि "ईश्वर के पश्चात् शेक्सपियर ने ही सबसे अधिक सृष्टि की है।" उसके नाटकों में सर्वश्रेष्ठ तथा अत्यन्त साधारण, साहसी तथा कायर, उपहासास्पद तथा प्रशंसनीय, भयानक तथा शोकप्रद, सभी प्रकार के चरित्रों का सुन्दर समन्वय है। उसके नाटकों के पात्र किसी विशेष आदर्श के प्रतिनिधि नहीं हैं। जो जैसा है, उसे वैसा ही सामने लाया गया है। प्रेम और घृणा, सुख और दुःख, जीवन और मृत्यु, सभी सत्य हैं। अतएव दुःखान्त-नाटकों की रचना स्वाभाविक है। साहसी मनुष्य दुःख भी उल्लास के साथ सहन करता है। जब दुखी को जीवन में उल्लास नहीं रहता, तो नाटक असफल हो जाता है। यह उल्लास उस मनुष्य के साथ उसकी मृत्यु तक ही रहता है, आगे नहीं। अतएव दुःखान्त नाटक भी वहीं समाप्त हो जाता है।

शेक्सपियर के नाटकों में संयम को विशेष स्थान प्राप्त है। वह मनुष्य और स्त्रियों के हृदयों का एक सफल शिक्षक था। उसकी कला में क्रमिक विकास सरलतापूर्वक देखा जा सकता है। इस विकास में उसकी विचारशक्ति, कल्पना, भावना और स्वानुभव, सभी सम्मिलित हैं। अन्तिम नाटकों में उसका ध्यान विश्व के जटिल प्रश्नों की ओर आकर्षित हुआ था, जिनको उसने मानवीय चरित्र और मनुष्य के भाग्य में देखा था। मार्लो, मिल्टन इत्यादि ने केवल आधे संसार को देख पाया था। शेक्सपियर का आधिपत्य सर्वत्र है। प्रारम्भ के नाटकों में कल्पना की उड़ान और भावना को अधिक स्थान है। छन्दों द्वारा भी इस विकास का अनुभव किया जा सकता है; क्योंकि प्रारम्भ के छन्दों में यति, गति, तुक, अनुप्रास इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया गया है। विकसित कला में इनकी कोई चिन्ता नहीं की गई। प्रत्येक पंक्ति में स्वाभाविक प्रवाह है।

शेक्सपियर की कला क्यों सफल समझी जाती है, उसकी विशेषताएँ क्या हैं, उसका अनुकरण क्यों न हो सका, इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए हमें पूर्व-वर्णित उसके नाटकों के तीनों अंगों पर पृथक्-पृथक् दृष्टि डालनी चाहिए। उसके सुखान्त-नाटकों में उसे विश्वास है कि क्षणिक आनन्द की सृष्टि करना अधिक उपयुक्त है। वे स्थितियाँ अथवा दृश्य, जिन्हें देखकर पाठक का मस्तिष्क उसे हँसा दे, निर्मित करना ही इन नाटकों का ध्येय रहा। हृदय पर कुछ प्रभाव डालना इनका आदर्श न था। ऐतिहासिक नाटकों में कवि यह दिखलाता है कि किन-किन साधनों से (बुरे अथवा भले) कोई मनुष्य सांसारिक सफलता प्राप्त कर लेता है। दुःखान्त-नाटकों में कवि गहन अध्ययन में संलग्न है। इनमें उसका लक्ष्य सांसारिक सफलता के कारणों की खोज नहीं है। वह एक उच्चातिउच्च सफलता की खोज में है, और वह अत्यन्त भयानक असफलताओं का दिग्दर्शन कराता है, जो आत्मा के उत्थान में बाधा डालकर उसे पतन की ओर ले चलती हैं।

सुखान्त-नाटकों में शेक्सपियर के उच्च कोटि के हास्य का दिग्दर्शन सर्वत्र सुलभ है। जिस शेक्सपियर ने संसार की गहनतम समस्याओं को समझा था, वह हँसना भी जानता था। पर साधारण भाँडों के प्रदर्शन से उसका हास्य बहुत भिन्न था। उसके हास्य में विभिन्न ढंगों का सुन्दर समन्वय है। एक समालोचक लिखता है—"यूनानी लेखक अरिस्टोफ़ेन्स की कृतियाँ अट्टहास को प्रोत्साहन देती हैं, जूवीनल की कृतियों में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्रोधमिश्रित हास्य का प्राधान्य है ; डा० जानसन के वेलाज़ में गाली-गलौज की प्रवृत्ति भयानक रूप में विद्यमान है ; सर्वेंटीज़ की रचनाओं में उदासी मिश्रित हास्य है ; फ्रेंच लेखक मोलियर में बुद्धिमत्तापूर्ण सुरुचि-उत्पादक हास्य है, जिसमें फ़ैशन, घमण्ड और पाखण्ड को भी स्थान नहीं मिला ; मिल्टन का हास्य भी गाली-गलौज पर अवलम्बित है ; वाल्टेयर का हास्य बुद्धिमत्तापूर्ण है ; एडीसन का हास्य मानवीय मुसकान का जन्मदाता है ; फ़ील्डिंग बिना प्रयास किये ही प्रसन्नता झलकाता है ; स्टर्न अद्भुत मूर्खताओं का सहारा लेता है और स्विफ़्ट की हँसी दुःखान्त है । परन्तु ये सब हास्य शेक्सपियर के हास्य से दूर खड़े रहते हैं।"

शेक्सपियर का हास्य सर्वाङ्गपूर्ण है । वह डिकिन्स की भाँति उपदेशक नहीं है। उसकी रचनाओं में विपन्न उपहास का बाहुल्य है । रोज़ालिण्ड की वाक्-चातुरी में उसे अनोखा आनन्द मिलता है । वह अपने कवूपकों की वैसी ही चिन्ता रखता है, जैसी कोई नर्स अपने नवजात शिशु की । जेक्स द्वारा वह संसार को कोस सकता है । टिमन द्वारा वह संसार पर स्विफ़्ट से भी अधिक भयानक रीति से क्रोध प्रकट कर सकता है । उसका हास्य नाटकीय है । केवल हँसना उसे रुचि-कर नहीं है । सौन्दर्य, करुणा अथवा विचारों के साथ वह हास्य का समन्वय करना जानता है । हास्यपूर्ण चरित्रों के चित्रण में वह पूर्ण पटु है ।

हास्य की प्रचुरता को छोड़कर उसका हास्य किसी से भीत होना नहीं जानता । अब तक के नाटकों में सुखान्त - नाटकों में ही हास्य को स्थान दिया जाता था ; परन्तु शेक्सपियर के दुःखान्त-नाटकों में सरस-हास्य और सुखान्त-नाटकों में उग्र-करुणा भली भाँति समन्वित है । वह जानता था कि प्रत्येक चरित्र में गम्भीरता और हास्य साथ-साथ रहते हैं । प्रत्येक महा-पुरुष में कुछ न कुछ त्रुटि तो अवश्य रहती ही है, और इसी लिए वह अपने पात्रों को ईश्वर अथवा देव-दूतों के स्वरूप में न देखकर, उन्हें केवल स्त्री-पुरुष के ही रूप में देखता है । किसी जर्मन कवि का कथन है कि शेक्सपियर ने अपने दुःखान्त-नाटकों में हास्य का टीका लगाकर उन्हें अस्वाभाविकता के दोष से बचा लिया ।

शेक्सपियर के पात्रों का मनन करने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है । वह यह कि किसी भी विचार, इच्छा एवम् वासना का असाधारण विस्तार दुःखान्त की ओर ले चलता है । ठीक इसके विपरीत विचारों, वासनाओं अथवा इच्छाओं की असाधारण संकीर्णता उपहास की जन्मदात्री है । इसी लिए रोमियो, हैमलेट, रिचार्ड तृतीय नाम के नाटक उच्च होते हुए भी जीवन में असफल होते हैं, और स्लैंडर और डागबेरी के जीवन का मनोरंजन के अतिरिक्त कुछ मूल्य नहीं ।

किसी की मूर्खता पर सहृदयों को क्यों हँसना चाहिए ? प्रत्युत उन्हें तो ऐसे जीव पर दया ही आवेगी, जिसे ईश्वर ने ऐसा बना दिया । परन्तु शेक्सपियर की कला में इन त्रुटियों का चित्रण ऐसा स्वाभाविक है कि सहृदय भी उसके प्रति अपनी सहानुभूति हँसकर ही दिखला सकता है । इन चित्रणों में कवि सर्वप्रथम अपने पात्र को भली भाँति परखता है । तदनन्तर जब सब प्रकार से उसका सांसारिक परिचय समाप्त हो जाता है, तब वह पूर्व-निश्चित कसौटियों पर इन पात्रों की परीक्षा करता है । वह मनुष्य की महत्ता पर मुसकिराता है, लेकिन उसके महत्त्व की प्रशंसा भी करता है । वह मानवीय प्रणय और मानवीय प्रसन्नता पर हँसता है, यद्यपि उनके लिए उसके हृदय में पर्याप्त स्थान है । वह मानवीय वेदना पर हँसता है, यद्यपि वह दुःखित आत्मा के अध्ययन में पूर्णतया तल्लीन है ।

शेक्सपियर के हास्य के विकास की चार सीढ़ियाँ हैं । The Two Gentlemen of Verona, Love's Labour Lost, The Comedy of Errors. नामक नाटक प्रथम पग के परिचायक हैं । इनमें भी शेक्सपियर ने अपने युग के फ़ैशन और मूर्खताओं का ही उपहास किया है, किसी व्यक्ति-विशेष के दुर्भाग्य अथवा त्रुटि का नहीं । Love's Labour Lost में सुचतुर नायक-नायिका का वाग्युद्ध, बातों का इधर से उधर घुमाना, शब्दों के विभिन्न अर्थों द्वारा बात का बढ़ाना इन्हीं में आनन्द है । इसमें नाटक के गम्भीर, कोमल एवं उपहासास्पद अंग एक दूसरे के साथ ही हैं । प्रत्येक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूसरे की आलोचना का कार्य करता है। पर साथ ही साथ दोनों प्रकार के भाव एक दूसरे को आच्छादित नहीं करते। पात्रों का एक समूह एक प्रकार का कार्य करता है, और दूसरा समूह दूसरे प्रकार का कार्य।

The Two Gentlemen of Verona का हास्य स्पीड और लॉन्स इन दो पात्रों पर अवलम्बित है। कवि के हास्य का विकास लॉन्स से टचस्टोन, हाटस्पर मर्क्यूशियो में, और यहाँ से फ़ाल्सटाफ़ में और अन्त में राजा लियर के विदूषक में देखा जा सकता है। Midsummer Night's Dream में सौन्दर्य-मिश्रित हास्य बॉटम के वार्त्तालाप में दर्शनीय है।

हास्य के विकास की दूसरी सीढ़ी का दिग्दर्शन ऐतिहासिक नाटकों में होता है। प्रारम्भ के ऐतिहासिक नाटकों में हास्य का अभाव है। रिचार्ड द्वितीय नाटक में कोई भी दृश्य हास्योत्पादक नहीं है। रिचार्ड तृतीय का हास्य बड़ा कटु है। रिचार्ड के एन पर विजय प्राप्त करने में जो हास्य है, उसमें स्त्री-जाति का घोर अपमान है। हेनरी षष्ठ में प्रहसन कहीं-कहीं गँवारू हो जाता है। राजा जोन में हास्य अपने पूर्ण सौन्दर्य के साथ प्रकट होता है, और ऐतिहासिक बंधनों को तोड़ देता है। हेनरी चतुर्थ के दो भागों में और भी उच्चतम हास्य विद्यमान है। फ़ाल्सटाफ़ का चित्रण हैमलेट की भाँति ही आकर्षक है। शेक्सपियर केवल उपहास की दृष्टि से ही हास्य को स्थान नहीं देता। हेनरी चतुर्थ के युग में देश में शान्ति थी, अतएव सराय के मख़ौल एवं उपहास का अस्तित्व सम्भव था। हेनरी पंचम के समय में फ़्रांस से लड़ाई छिड़ चुकी थी, अतएव उपहास को स्थान मिलना कठिन था।

इस द्वितीय युग की समाप्ति पर कतिपय सर्वश्रेष्ठ सुखान्त-नाटकों की सृष्टि हुई, जिनमें रोज़ालिण्ड, वायला, जेक्स, मैलवालियो, बीट्रिस और बेनीडिक के चरित्र हैं। अब कवि संसार के सच्चे जीवन से साक्षात् करता है। उसकी प्रसन्नता अभिनय के लिए पूर्णतया स्वतंत्र थी, और उसकी हँसी भी इसी कारण स्पष्ट, संगीतमय और स्वतंत्र है। The Merry Wives of Windsor में स्वाभिमानी प्रणयी के चित्रण के साथ दूसरे फ़ाल्सटाफ़ की सृष्टि सर्वथा रोचक है।

तृतीय युग में शेक्सपियर का हास्य करुणामय, दुःखान्त और भयानक है। इस युग में कवि का ध्यान मनुष्य के हृदय पर पड़े हुए पर्दे की ओर है। मनुष्य के अस्तित्व का क्या रहस्य है, संसार में बुराई की भलाई पर क्यों विजय सम्भव है, इन समस्याओं के सुलझाने में कवि संलग्न है। अब फड़कता हुआ, कोमल-कल्पना पर आधारित हास्य कहीं नहीं है। रोमियो और जूलियट में आधा खेल समाप्त होने के पूर्व ही मर्क्यूशियो छिप जाता है। हैमलेट में दरबारी विदूषक घृणित एवं भद्दे हैं। क़ब्र खोदनेवालों के कथनोपकथन में एक विचित्र सौन्दर्य है। मैकबेथ में धक्का देने के दृश्य में गम्भीर प्रयोजन है। किंग लियर में हास्य, करुणा और दुःख का अच्छा मिश्रण है। कवि इन रचनाओं में संसार से अलग होकर संसार को देखता है, इसी लिए उसे भयानक दृश्य हास्यप्रद प्रतीत होते हैं और हास्यप्रद भयानक। फ़ैशन और अभिमान के उपहास से बढ़ते-बढ़ते कवि संसार के विरुद्ध गम्भीर एवं भयानक विरोध प्रारम्भ करता है, जिसमें दुःखित आत्माओं का क्रन्दन है। जैसी-जैसी उसकी अवस्था बढ़ती है, यह विद्रोह भी बढ़ता जाता है।

चतुर्थ युग में शेक्सपियर की प्रसन्नता पुनः आभायुत और कोमल बन जाती है। The Winter's Tale, The Tempest उसके अन्तिम सुखान्त-नाटक हैं। अन्तिम खेलों में न तो अत्यधिक हास्य है, और न दुःख की पराकाष्ठा। प्रारम्भ में जो कुछ शेक्सपियर ने लिखा है, वह नवयुवकों और नवयुवतियों के विषय में है। उनके प्रणय, उनकी प्रसन्नता और उनके दुःख उसके नाटकों के विषय हैं। वह स्वयं उन्हीं में से एक बनकर परिचितों-जैसा व्यवहार करता है, और उनका उपहास कर उनको सन्मार्ग पर ले आता है। इन प्रारम्भिक खेलों में नवयुवकों के सम्बन्ध में, उनकी प्रसन्नता और दुःख के सम्बन्ध में, कोई अद्भुत बात नहीं है। अन्तिम नाटकों में सौन्दर्यमयी करुणा सर्वत्र सुलभ है। रानी कैथराइन प्रॉस्पेरो, इर्मीन-जैसे वृद्ध और अनुभवी दुःख उठाते हैं। इनके साथ-साथ प्रसन्नता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में निमग्न कुछ बालक हैं, जिनके उदाहरण पर्डीटा, मिरण्डा, फ़्लोरीजेल, फ़र्डिनण्ड और बेलारियस के बालक हैं। इन रचनाओं में सुख को प्रधानता दी गई है।

दुःखान्त-नाटकों में एक दूसरी ही विशेषता दृष्टिगोचर होती है। सबके सब नाटक एक विशेष ढंग पर रचे गये हैं। प्रो० ब्रैडले ने इनका अच्छा विश्लेषण किया है। उनके मतानुसार शेक्सपियर के दुःखान्त-नाटकों में बहुत-से पात्र सामने आते हैं; परन्तु विशेष रूप से वह केवल एक व्यक्ति की कथा होती है, जो कि नाटक का नायक होता है। नायिका का इतिहास भी आवश्यकतानुसार प्रदर्शित किया जाता है। कथा नायक की मृत्यु तक पहुँचकर समाप्त हो जाती है। नायक की आकस्मिक मृत्यु दुःखान्त-नाटक के कथानक के लिए पर्याप्त नहीं है। जो दुर्घटना अथवा वेदनाएँ नायक को झेलनी पड़ती हैं, वे अनोखी होती हैं। वे किसी महान् आत्मा को कष्ट देती हैं। प्रारम्भ में उनकी कोई आशंका नहीं होती, और प्रारम्भिक सुख अथवा आशंका से वे भिन्न होती हैं। दर्शक के हृदय में नायक के प्रति करुणा के भाव उत्पन्न होते हैं।

शेक्सपियर के पूर्व आकस्मिक भाग्य-परिवर्तन से ही दुःखान्त-नाटक की सृष्टि सम्भव थी। यद्यपि शेक्सपियर के दुःखान्त-नाटकों में पाँचवाँ अंक मृत्यु-शय्याओं से भरा हुआ रहता है, फिर भी इनमें केवल यही दिखलाया गया है कि बड़े से बड़ा मनुष्य भी अपने ऊपर आई हुई आपत्तियों का विरोध करने में असमर्थ रहता है। अतएव भाग्य का भाव इनमें भी उपस्थित है।

इन नाटकों में दुर्घटना अथवा विपत्ति मनुष्य के कार्यों से ही जन्म लेती है। नायक का भी इसके जन्म देने में पर्याप्त हाथ रहता है। मनुष्य स्पष्ट रूप से अपने दुःखों का जन्मदाता प्रकट होता है। नाटक में या तो चरित्र कार्य की सृष्टि करते हैं, या कार्य चरित्र की। विपत्ति यदि कार्यों से आती है, तो उन कार्यों का जन्मदाता चरित्र होता है। लेकिन फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि चरित्र ही भाग्य है।

कार्यों के अतिरिक्त शेक्सपियर ने मस्तिष्क के विकारों का भी चित्रण किया है। हैमलेट का पागलपन, मैकबेथ का सोते-सोते कार्य करना—भूतों में विश्वास, ये इसके उदाहरण हैं। अप्राकृतिक जीवों का भी, जैसे भूत, जादूगरनी इत्यादि का इन नाटकों में हाथ है, और अवसर भी विपरीत परिस्थितियाँ उपस्थित कर देता है। मनुष्य कोई कार्य आरम्भ तो कर देता है, परन्तु परिस्थितियों पर अधिकार कर लेना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। परन्तु ये तीनों बातें केवल गौण रूप से दुःखान्त-घटना में सहायता करती हैं। प्रधान श्रेय तो कार्य को ही है।

यदि इस नाटकीय कार्य को लड़ाई का रूप दिया जाय तो नाटकीय पात्रों में से अधिकांश बिना किसी कठिनाई के दो समूहों में बँट जाते हैं। इन समूहों के घात-प्रतिघात नायक के सत्यानाश के साथ समाप्त होते हैं। नायक के हृदय में भी एक संघर्ष जारी रहता है। आशंकाएँ, वासनाएँ, आदर्श और विचारों में संघर्ष भी इन नाटकों में विशेष स्थान रखते हैं, और नाटककार ऐसे स्थलों पर पाठकों को आश्चर्यान्वित कर देता है।

इन नाटकों के नायक असाधारण व्यक्ति होते हैं। कुछ में क्लियोपैट्रा और हैमलेट की भाँति प्रतिभा होती है और सभी में किसी एक गुण की अधिकता पाई जाती है। वह किसी कार्य में भूल करता या किसी कार्य को छोड़ देता है। यही भूल अन्य कारणों से मिलकर उसके नाश का कारण बनती है। अधिकांश नाटकों में दुःखदायक भूल में किसी आदर्श की हत्या नहीं होती। परन्तु रिचार्ड और मैकबेथ ऐसे नायक हैं, जो यह जानकर भी कि वे पाप कर रहे हैं, उसमें तत्पर रहते हैं। लेकिन ऐसी दशा में नायक के प्रति दया का प्रादुर्भाव किन्हीं अन्य कारणों से होता है। नायक के लिए भला होना आवश्यक नहीं है, फिर भी उसकी भूल में पाठक उसके प्रति समवेदना प्रकट किये बिना नहीं रह सकते।

ये दुःखान्त-नाटक किसी नैतिक आदर्श अथवा भाग्य पर नितान्त अवलम्बित नहीं हैं। अगर हम यह सोचने लगें कि नायकों का मरण अवश्यम्भावी है तो इन नाटकों को पूर्णतया समझने में असमर्थ हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह सत्य है कि मनुष्य जो कुछ चाहता है, उसे पूर्ण करने में कदाचित् ही सफल होता है। दुःखमय संसार में सर्वत्र ही मनुष्य के विचार जब कार्यरूप में परिणत किये जाते हैं तो वे बिलकुल विपरीत उतरते हैं। मनुष्य कुछ करने का प्रयास करता है और इस प्रयत्न में वह अपने नाश को आमंत्रित करता है। घटनाएँ कुछ लोगों को अभागा सिद्ध करती हैं। क्या कारण है कि मनुष्य की भलाई उसके विनाश का कारण बने? कारण चाहे कुछ भी हो, परन्तु इन नाटकों में भाग्य, ईश्वरीय कोप अथवा पारिवारिक एवं पूर्वजों के पाप के परिणामस्वरूप ये कष्ट नहीं झेलने पड़ते।

साथ ही साथ मानवीय कृत्य ही इस विनाश के कारण बनते हैं। कर्त्ता ही कष्ट झेलता है, और यह न्याय का एक नवीन आदर्श है। यह न्याय कवित्व-न्याय (Poeti gustive) से भिन्न है, जिसका आशय यह है कि सुख और दुःख कर्त्ता की भलाई और बुराई पर निर्भर हैं। यह नियम न तो नित्य-प्रति के जीवन में ही देखा जाता है और न शेक्सपियर के नाटकों में ही। यह तो सच है कि बदमाशी अन्त तक विजयी होकर नहीं फलती-फूलती; लेकिन न्याय भी उचित रीति से कभी नहीं किया जाता। हम केवल नैतिक भलाई और नैतिक बुराई पर ही दृष्टि डाल सकते हैं। वास्तव में भलाई से तो दुःख की सृष्टि नहीं होती, केवल बुराई ही इसकी सृष्टि करने में समर्थ है। रोमियो और जूलियट में उनके परिवारों का अहंकार और पारस्परिक घृणा कलह का कारण बनते हैं। कैसी भी हो, बुराई ही संसार की शान्ति में बाधा डालती है। नाटक का नायक दूसरों की तुलना में निरपराध होता है। फिर भी उसमें एक-न-एक अवगुण अवश्य पाया जाता है। विचारों की अस्थिरता, विचारशून्यता, घमंड, दूसरों में अत्यधिक विश्वास, अत्यधिक सरलता, कामुक प्रवृत्तियों में अत्यधिक अभिरुचि अथवा इन जैसा ही अन्य अवगुण इन नायकों के पतन का मुख्य कारण होता है।

बुराई केवल भलाई का ही नाश नहीं करती, स्वयं भी इसी प्रयत्न में नष्ट हो जाती है। जब बुराई किसी मनुष्य पर अधिकार कर लेती है, तो वह केवल दूसरे मनुष्यों का ही नाश नहीं करती, उस मनुष्य को भी ले डूबती है। इसलिए हम कह सकते हैं कि दुःखमय संसार का कारण कोई नैतिक शक्ति है। बुराई के विनाश में कोई दुःख की बात नहीं है; परन्तु दुःख तो यह है कि इस बुराई के हटाने में भलाई का बहुत भाग नष्ट हो जाता है।

वह नैतिक शक्ति, जिसके सामने व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है, विश्व को दोषरहित बनाना चाहती है और बुराई को दूर भगाने के लिए बुराई की सृष्टि करती है, उसी का रहस्यपूर्ण परिणाम ये दुःखान्त-नाटक हैं। उज्ज्वल भलाई के साथ-साथ संसार में बुराई की भी सृष्टि होती है, जिसका नाश करने के लिए भले मनुष्यों को भी कष्ट उठाने पड़ते हैं, अपना बलिदान भी करना पड़ता है। शेक्सपियर के गहन दुःखान्त-नाटकों का यही रहस्य है।

दुःखान्त-नाटकों में कथानक के विकास का भी एक विशेष क्रम दृष्टिगोचर होता है। दुःखान्त-नाटकों में संघर्ष का वर्णन रहता है, अतएव उसे तीन भागों में बाँट सकते हैं—परिचय, प्रारम्भ और अन्तिम आपत्ति।

परिचय में पात्र सम्मुख उपस्थित किये जाते हैं, और हम लोग उनके उत्थान एवं पतन की कथा जानने को उत्कंठित होते हैं। नाटक के प्रारम्भ से ही, जब कि संघर्ष शुरू नहीं होता, ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं, जो कुछ-न-कुछ आकर्षण रखती हैं। प्रारम्भ का दृश्य जीवन और हलचल से ओतप्रोत होता है। इससे लगा हुआ ही जो दृश्य होता है, उसमें लंबे-लंबे वार्तालापों द्वारा कथानक की सारी कहानी का सार समझा दिया जाता है। कुछ समय तक नायक पृथक् रहता है। यदि प्रारम्भ में ही वह स्टेज पर आ गया तो कोई असाधारण कार्य शीघ्र ही कर बैठता है। अगर कुछ गौण कथानक होते हैं, तो वे अन्य दृश्यों में समझाये जाते हैं। खेल के आरम्भ में जो कुछ भी बात कही जाती है, वह नायक के विनाश में सहयोग देने का कार्य करती है। पहलेपहल आनेवाला पात्र भी विपरीत दल का ही होता है। नायक स्वयं कार्य आरम्भ करने के पूर्व अपने भविष्य का वर्णन कर देते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नाटक की पूर्ण सफलता में सबसे अधिक महत्त्व-पूर्ण अंश संघर्ष है। कभी बाह्य संघर्ष के साथ-साथ नायक की आत्मा में आन्तरिक संघर्ष भी चलता रहता है। संघर्षों में नायक की प्रधानता रहती है। कहीं-कहीं परिस्थिति अत्यन्त भयावह हो जाती है। कवि ऐसी परिस्थितियों के पश्चात् कुछ ऐसे दृश्य उपस्थित करता है, जिनसे आतंक दूर हो सके। इन नाटकों में प्रथम और चतुर्थ अंक शान्तिमय होते हैं। तृतीय अंक अत्यधिक आतंकमय होता है। संघर्ष में दो दल बन जाते हैं। घटनाक्रम का विकास इस नीति से होता है कि दोनों दलों को सफलता साथ-साथ मिलती चलती है, अतएव दर्शक और पाठक सदैव आशा और अनिष्ट की आशंका के भँवर में चक्कर लगाते रहते हैं। इन सब नाटकों में एक दल की प्रगति किसी स्थान तक स्पष्ट प्रतीत होती है, फिर दूसरे दल के प्रभाव से उसका पतन प्रारम्भ होता है। इनका मर्म-स्थल नाटक के मध्य भाग में आता है। किन्हीं-किन्हीं नाटकों में पाँच भाग स्पष्ट दिखलाई देते हैं—(१) संघर्ष के पहले की दशा, (२) संघर्ष का विकास एवं उत्थान, (३) मर्म-स्थल, (४) प्रथम अथवा द्वितीय दल का पतन, (५) अन्तिम दुर्घटना। जूलियस सीज़र और मैकबेथ में ये भाग स्पष्ट हैं।

इस प्रकार के विकास से कुछ लाभ भी हैं। इससे संघर्ष की प्रगति भली भाँति स्पष्ट हो जाती है। दूसरे, इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि कर्ता का कार्य उसी के सिर पर पड़ता है। तीसरे, इससे प्रारम्भ का आधा भाग अत्यधिक रोचक हो जाता है। मार्मिक स्थल के पश्चात् कष्ट और कठिनाइयाँ प्रकट होती हैं। कार्य का विकास कुछ क्षण के लिए रुक जाता है। कुछ आलोचक इसे दोष मानते हैं, परन्तु इसमें भी कुछ कला है। मार्मिक स्थल तक एक समूह उन्नति की ओर अग्रसर होता है और इसके बाद उसकी प्रगति रुक जाती है और अवनति की ओर उन्हें चलना पड़ता है। इसलिए इस स्थल को कार्य का स्थगित होना नहीं कह सकते। हाँ, उसकी गति अवश्य उलट जाती है। यहीं हमें उस दशा का स्मरण कराया जाता है, जहाँ संघर्ष प्रारम्भ हुआ था। बाह्य सफलता अथवा असफलता के साथ आन्तरिक प्रति-क्रिया का दिग्दर्शन भी यहीं होता है। इसी स्थल पर शेक्सपियर किन्हीं नवीन भावनाओं को जगाकर हमारे हृदयों में नवीन कौतूहल एवं आनन्द का संचार करता है। हास्यप्रद वार्तालाप द्वारा भयानक वातावरण हलका बना दिया जाता है। युद्ध के दृश्य उपस्थित किये जाते हैं। कहीं-कहीं विनाश की अन्तिम घड़ियों में झूठी आशा का संचार आनन्दप्रद होता है; क्योंकि हमारी सहानुभूति सदैव ही नायक के साथ रहती है। अन्तिम दुर्घटना को विस्तार देकर भी कहीं-कहीं यही प्रभाव उत्पन्न किया जाता है।

शेक्सपियर सफल एवं प्रयत्नशील कलाकार था। वह अपनी रचनाओं को दुहरा भी लेता था। उसने प्राचीन परिपाटी का अनुकरण जान-बूझकर नहीं किया; क्योंकि उसे अपनी कला विशेष प्रिय थी। उसकी कला में जहाँ कहीं असम्भव घटनाओं का समावेश किया गया है, वहाँ उनका ध्येय एलिज़ाबेथ के समय की जनता के मनोरंजन के विचार से है। उस युग के स्टेज की अपूर्णता के कारण इन नाटकों में बहुत-से दृश्य, जिनमें कुछ बहुत ही छोटे हैं, साथ-साथ जोड़े गये हैं, जिनमें पात्र एक दूसरे से भिन्न हैं। इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं आवश्यकता से अधिक विस्तृत बातचीत, स्वगत कथन, जो सुन्दर होते हुए भी अस्वाभाविक हैं, परस्पर-विरोधी कथन, पाठकों की शंकाओं के समाधान का अभाव, प्राचीन और स्वाद-रहित भाषा का प्रयोग, सब गम्भीर पात्रों का एक ही ढंग से बातचीत करना, अश्लील कथनों का बाहुल्य, ये इन नाटकों के स्पष्ट दोष हैं। इनका कारण सम्भवतः नाटकों को समाप्त करने की शीघ्रता है।

प्रारम्भ के दुःखान्त-नाटकों और प्रौढ़ नाटकों में भी बड़ा भेद है। जूलियस सीज़र और हैमलेट का दुःखमय अन्त विचाराधिक्य के कारण है। प्रौढ़ नाटकों में नायक उग्र स्वभाव के हैं। उनकी उग्रता ही उनकी असफलता का कारण है, और इसी कारण नाटक अधिक भयावह बन जाते हैं। प्रारम्भिक खेलों में बुराई का सूक्ष्म विश्लेषण नहीं किया गया। जूलियस सीज़र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में प्रत्येक पात्र अच्छी नीयत का है। हैमलेट में एक छोटा-सा शैतान है। प्रौढ़ नाटकों में आयगो, मैकबेथ की पत्नी और मैकबेथ उदास ही नहीं बनाते, प्रत्युत भय और आकुलता से ओतप्रोत कर देते हैं। अन्तिम दो नाटकों में शैतान का अभाव है। कौरियोलेनस ने प्राण देकर आत्मा की रक्षा की है। पाठक क्लियोपैट्रा से उसकी मृत्यु पर समवेदना प्रकट करते हैं। शैली और छन्दों में भी दोनों समय के नाटकों में अन्तर है। प्रारम्भिक नाटकों की मधु-जैसी मिठास प्रौढ़ नाटकों में भी है; परन्तु वह अब अधिक प्रभावशाली हो जाता है। ओथेलो, किंग लीयर और मैकबेथ इस दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ हैं।

हैमलेट का कथानक मर्मस्पर्शी है। इसमें ८ मृत्युएँ, भूत और व्यभिचार भयानक रस का संचार करते हैं। हैमलेट का विचित्र चरित्र, प्रतिहिंसा में विलम्ब के कारण नाटक को रहस्यमय बना देता है। मनुष्यों में प्रधान गुणों के अतिरिक्त कुछ गौण गुण भी होते हैं। सुखान्त-नाटकों में नाट्यकार उन्हें प्रदर्शित करते हैं। हैमलेट की श्लेषात्मक-प्रयोग-प्रियता दिखलाकर शेक्सपियर ने दुःखान्त-नाटकों में भी उसे स्थान दिया है। हैमलेट ही केवल ऐसा दुःखान्त-नाटकों का नायक है, जिसे हास्य-प्रिय कहा जा सकता है। ओथेलो दूसरा उग्र दुःखान्त-नाटक है। इसका प्रभाव अत्यन्त आकर्षक और अत्यन्त भयानक है। बुराई एक पात्र के चरित्र को आत्मा बनाकर प्रदर्शित की गई है; उसके साथ तीव्र बुद्धि भी है और नायक आश्चर्यान्वित होकर उसका अग्रसर होना देखता रह जाता है। आकस्मिक घटनाएँ भी बुराई की सहायक होती हैं।

यह सर्वाङ्ग कलापूर्ण एवं सर्वश्रेष्ठ दुःखान्त-नाटक रचना में अन्य नाटकों से कुछ भिन्न है। संघर्ष विलम्ब से प्रारम्भ होता है और कहीं भी विश्राम नहीं है। आयगो का उपहास हमें हँसाता नहीं। वासनामय ईर्ष्या और भी उग्र है। ओथेलो की ईर्ष्या मानवीय स्वभाव को अनिश्चित बना देती है और मनुष्यों में पशु-प्रवृत्ति को जाग्रत् करती है। डेस्डेमोना को वेदनाएँ हृदय में दया उत्पन्न करती हैं। वह तो पूर्णतया अकर्मण्य है। मूक आलाप में भी तो वह विरोध नहीं कर सकती। अकारण ही मूक-जीवों की भाँति उसे कष्ट सहन करते देख हमारे हृदय में दया का स्रोत उमड़ पड़ता है। वह व्यक्तिगत जीवन का नाटक है, अतएव हमारे अत्यन्त अधिक निकट है। भाग्य भी इसमें बुराई के साथ है। इस दुःखान्त-नाटक में दुःख की मात्रा तब और भी अधिक बढ़ जाती है, जब सच्चरित्र नायक को दोषरहित नायिका पर प्रहार करते एवं उसे कुलटा कहते देखते हैं। इज़्ज़त की रक्षा के लिए ओथेलो अज्ञानवश डेस्डेमोना की हत्या करता है। आयगो का चित्रण सर्वथा अनुपम है। गेटे के मैफ़िस्टोफ़िलीज़ में इसी का प्रतिबिम्ब है। स्वयं सम्पत्तिशाली न होने के कारण उसे भलाई से चिढ़ है। शैतानी और बुद्धिमत्ता, दोनों की प्रचुरता एक साथ कम मिलती है; परन्तु मिलती अवश्य है। शेक्सपियर का आयगो उसी का एक उदाहरण है।

किंग लियर ने यद्यपि अन्य नाटकों की-सी ख्याति प्राप्त नहीं की है, फिर भी कवि का श्रेष्ठ प्रयत्न इसमें दृष्टिगोचर होता है। इसका एडमंड आयगो का छोटा भाई है। अन्य दृश्यों पर भी ओथेलो की छाप है। कतिपय सर्वश्रेष्ठ दृश्यों के होते हुए भी इसमें कुछ नाटकीय दोष हैं। ग्लौस्टर का स्टेज पर अंधा किया जाना सचमुच एक भद्दी भूल है। बहुत-से प्रधान पात्रों का समावेश पाठकों के लिए दूसरी कठिनाई उपस्थित कर देता है। कतिपय दृश्यों के स्थान भी अनाटकीय हैं। फिर भी इसमें कला का स्थान उतना ही उच्च है। बहुत-से पात्र विस्तृत संसार का परिचय देते हैं। गौण कथानक जोड़कर यह सिद्ध किया गया है कि संसार में ऐसी विपत्ति केवल लियर पर ही नहीं पड़ी। दूसरे लोग भी ऐसे दुःख झेलते हैं। प्रेम और घृणा का इसमें अच्छा संग्राम दिखलाया गया है। इस खेल में कई स्थलों पर पशुओं की पात्रों से तुलना कर आत्मा के चोला बदलने का-सा भाव प्रकट किया गया है। नाटक में सबसे अधिक कष्ट लियर को ही झेलने पड़े हैं। प्रारम्भ में ही उससे भूल हो जाती है, जिसे सभालना उसकी सामर्थ्य के बाहर हो जाता है। कवि, प्रणयी और पागल की समता इसी में स्पष्ट की गई है। इस नाटक का विदूषक अत्यन्त सफल है। इसको पढ़कर संसार स्वप्न-सा प्रतीत होता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, VARANASI
Acc. No.....

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रात्रि और उषा

[चित्रकर्त्री—श्रीमती शान्तिदेवी]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मैकबेथ में नायक हैमलेट की भाँति ही विचार-निमग्न है ; परन्तु कार्य की गति तीव्र है। नाटक के वायुमण्डल में अन्धकार, प्रकाश, रंग, तूफ़ान और भयानक प्रतिबिम्ब, सभी मिलकर उसे भयावह बना देते हैं। जादूगरनियों का भी इसमें पर्याप्त हाथ है। मैकबेथ और उसकी पत्नी, दोनों आकांक्षा के वश में हैं। दोनों की अभिलाषा पद और यश प्राप्त करने की है। मैकबेथ की पत्नी प्रारम्भ में बहुत कुछ कहती-सुनती है ; परन्तु आगे चलकर मैकबेथ स्वयं ही एक के पश्चात् दूसरी हत्या करता है, और उसको रोकने में सतत प्रयत्नशील आत्मा की कोई चिन्ता नहीं करता। इस नाटक का ध्येय यह दिखलाना है कि बुराई करनेवाला जान नहीं सकता कि उसके कार्य का अन्तिम परिणाम क्या होगा। कर्ता स्वयं नहीं जान पाता कि वह क्या कर रहा है। सिनैका और शेक्सपियर की सबसे अधिक समानता मैकबेथ में ही है।

आलोचक एलर्डायस निकल का कथन है कि शेक्सपियर का प्रत्येक नाटक एक नवीन प्रयोग है। इनका विषय हृदय में कम्प उत्पन्न करनेवाला है। यूनानी नाटककारों की भाँति प्रत्येक नाटक में शेक्सपियर ने भी किसी एक मानवीय वासना अथवा त्रुटि को भयानक रूप दिया है। प्रो० डाउडन ने भी प्रौढ़ दुःखान्त और प्रारम्भिक दुःखान्त-नाटकों में भेद माना है। जब शेक्सपियर ने दुःखान्त-नाटकों की रचना प्रारम्भ की थी, तब कुशल कलाकार मार्लो प्रसिद्ध हो रहा था, जो वासना का उग्र रूप प्रतिबिम्बित करने में सफल था। शेक्सपियर को इसी कारण किसी नवीन शैली का आविष्कार करना आवश्यक था। इन नाटकों के भाव और भाषा की सरसता इटली के ढंग की है। संगीतमय कवित्व वासना की प्रधानता, प्रवाहयुक्त सरसता, सुन्दर चित्र, सब इटली के प्रभाव का परिचय देते हैं। रोमियो और जूलियट इटली के पुरुष और स्त्री हैं। रोमियो मार्लो के बार्बस और शेक्सपियर के रिचार्ड तृतीय से भिन्न है।

शैली के विचार से हैमलेट प्रारम्भिक और प्रौढ़ नाटकों में मध्यस्थ है। हैमलेट में शेक्सपियर ने कतिपय मानवीय अस्तित्व के गहन रहस्यों की छाया का स्पर्श किया है ; परन्तु प्रौढ़ नाटकों की रचना के समय तक किसी तरह उसकी आत्मा का सम्बन्ध संसार की भयानक शक्तियों से हो गया। उसने अब तक संसार के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लिया था। हेनरी प्रेम के लिए मरने को प्रस्तुत न था ; परन्तु शेक्सपियर अब जान गया था कि किन्हीं विषम परिस्थितियों में जीवन में अत्यन्तावश्यक कार्य प्रेम के लिए मरना भी हो सकता है। रोमियो और जूलियट ने प्रेम के लिए प्राणों का त्याग किया। बुराई में भी कुछ भलाई की छाया रहती है। इसका प्रमाण गोनेरिल, रीगन, आयगो और जादूगरनी द्वारा मिलता है। शेक्सपियर ने बुराई की उत्पत्ति के कारणों की खोज नहीं की। वह जानता था कि संसार में आयगो और कार्डीलिया रहते हैं ; परन्तु वह इसका स्पष्ट उत्तर नहीं देता कि क्यों वे रहते हैं। प्रौढ़ दुःखान्त-नाटक इन्हीं जटिल समस्याओं में उलझे प्रतीत होते हैं।

शेक्सपियर के ऐतिहासिक नाटकों के अध्ययन से उसके राजनीतिक विचारों का पता चलता है और उसकी कला की दूसरे नाटककारों की कला से तुलना करने का अवसर मिलता है। शेक्सपियर के लिए कला पूजा की वस्तु न थी। उसे अपनी कला पर पूर्ण अधिकार था। वह स्वयं उसके नियंत्रण में न चलता था। ऐतिहासिक नाटक लिखने में शेक्सपियर ने एक शताब्दी से अधिक समय तक इँगलैंड के राष्ट्रीय जीवन का, उसकी विपत्तियों का, उसकी वीरता का सच्चा चित्र खींचा है। इन नाटकों में हम शेक्सपियर के महान् राजनीतिक-शक्तिसम्बन्धी ज्ञान का परिचय पाते हैं। यहाँ उसकी आनन्द एवं दुःख, दोनों को पहचानने की अद्भुत शक्ति, कोमलता, बुद्धि का विकास, अचूक न्याय, सत्य की निष्ठा, सब प्रदर्शित होते हैं। इन नाटकों के हास्य में वह शैतान और निर्बल, दोनों का निस्संकोच उपहास करता है।

ऐतिहासिक नाटकों में कार्यशील संसार का चित्र है। दुःखान्त-नाटकों में हम यह देखते हैं कि मनुष्य क्या है ; परन्तु यहाँ हमारे सामने यह स्पष्ट किया जाता है कि वह क्या करता है। मनुष्य की महत्ता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इनमें उसकी सफलता से नापी जाती है। इनको पढ़कर हृदय में करुणा के भाव जाग्रत् नहीं होते। सांसारिक सफलता अथवा असफलता के चित्रों को देखकर या तो हम भयान्वित होकर चकित रह जाते हैं या पूर्ण सन्तोष के साथ रचना को समाप्त करते हैं। इन नाटकों में बुराई केवल किसी दूसरे को हानि पहुँचाने में दिखलाई गई है, जिसका परिणाम दुःखद ही होता है। शेक्सपियर के समकालीन राले ने दिखलाया है कि ईश्वरीय न्याय का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इँगलैंड के राजाओं के जीवन हैं। शेक्सपियर ने भी राजाओं की भूलें, उनके अपराध और उनकी कमज़ोरी के परिणाम दिखलाये हैं। वह बतलाता है कि भलाई का परिणाम अत्यन्त सुखद है और बुराई प्रारम्भ में भले ही फले-फूले, पर उसका अन्त अत्यन्त दुःखद है।

राजा जोन, रिचार्ड द्वितीय और हेनरी षष्ठ में राजाओं की असावधानी दिखलाई गई है। हेनरी चतुर्थ, हेनरी पंचम और रिचार्ड तृतीय राजा की शक्ति के अध्ययन हैं। राजा जोन में इँगलैंड के राष्ट्रीय जीवन के अत्यधिक ह्रास और उसके कारणों की खोज की गई है। इसमें कदाचित् ही कोई अंश हृदय को प्रसन्न करता है। हेनरी षष्ठ का मुख्य उद्देश्य निरपराध रहना है। वह मारगरेट को अपने से अधिक शक्तिशाली समझता है। रिचार्ड तृतीय अनेक कारणों से अद्वितीय है। इसमें चरित्र-चित्रण का ढंग मार्लो के सर्वश्रेष्ठ ढंग के समान है। बहुत-से अंश संगीतमय नाटकीय गद्य में लिखे गये हैं। भय और सौन्दर्य का सम्मिश्रण उस दृश्य में देखा जा सकता है, जहाँ तीनों रानियाँ निराशा में निमग्न हैं। रिचार्ड का चरित्र ही सारे नाटक का कारण और मुख्य शक्ति है। प्रारम्भ से ही उसका चरित्र सम्पूर्ण है। बुद्धि का घमंड और महान् आत्म-विश्वास उसकी विशेषताएँ हैं। उसकी सबसे बड़ी आकांक्षा कुछ काम करने की है। नाटक में जो कुछ होता है, उसका कारण रिचार्ड ही है। संसार के उन नियमों द्वारा उसका सर्वनाश होता है, जिन्हें उसने बुरी तरह कुचल डाला था। हेनरी पंचम में शेक्सपियर के मनुष्यत्व के आदर्श का पता चलता है।

शेक्सपियर के रोमन नाटक प्लूटार्क की जीवनियों के आधार पर लिखे गये हैं। जूलियस सीज़र, कॉरियोलेनस, एंटनी और क्लियोपैट्रा और टिमन आफ़ एथेन्स, ये चारों नाटक एक ही शैली पर हैं। बेन जानसन ने भी रोमन नाटक लिखे हैं; लेकिन उसके पात्र सजीव नहीं हैं। शेक्सपियर के पात्र पहले मनुष्य हैं, बाद में रोमन। ये नाटक इतिहास नहीं हैं, दुःखान्त-नाटक हैं। मैकबेथ और एंटनी, दोनों ही अपनी पत्नी के परामर्श से पतन की ओर अग्रसर होते हैं।

एंटनी और क्लियोपैट्रा के चरित्र हृदय में बलात् पैठ जाते हैं, हृदय में कम्प उत्पन्न करते हैं, कल्पना-शक्ति पर जादू डालते हैं और संगीत अथवा सौन्दर्य की भाँति समस्त प्राणियों को प्रभावित करते हैं। जूलियस सीज़र में कर्तव्य का आदर्श प्रमुख है; परन्तु एंटनी और क्लियोपैट्रा में सुख और प्रमोद की प्रधानता है। पोर्शिया वीर रमणी के नैतिक सौन्दर्य का आदर्श है; परन्तु क्लियोपैट्रा में रमणी के बाह्य सौन्दर्य के आकर्षण का भाव है। क्लियोपैट्रा और मिल्टन की दलीलों में कुछ साम्य है; परन्तु शेक्सपियर ने चित्रण कुछ अनोखे ही ढंग से किया है। कॉरियोलेनस का विषय घमंड के पाप द्वारा एक श्रेष्ठ जीवन का सर्वनाश है। इसमें अहंभाव की प्रधानता है। हैज़लिट के मतानुसार कॉरियोलेनस का सार यह है कि जिनके पास थोड़ा है, उन्हें और भी कम मिलेगा और जिनके पास अधिक है, उनको दूसरों का भी मिल जायगा। कॉरियोलेनस का पतन उसके अहंकार के कारण है।

शेक्सपियर के स्वगत कथनों के सम्बन्ध में आलोचकों में कुछ मतभेद है। कुछ तो उन्हें अस्वाभाविक कह-कर उनकी निन्दा करते हैं और कुछ उन्हें आवश्यक मानकर उनका स्वागत करते हैं। शेक्सपियर के पूर्व के नाटककारों ने ऐसे कथनों द्वारा अपने नाटकों में अनेकानेक सूचनाएँ दी हैं, परन्तु शेक्सपियर के नाटकों में वे चरित्र का विन्यास बतलाते हैं। शैतान इनमें अपने शिकार की प्रशंसा करते हैं। सच तो यह है कि वे अस्वाभाविक होते हुए भी नाटक की कला का एक अंग बन चुके हैं। सम्प्रति मनोगत भावों के प्रदर्शित करने का कोई दूसरा साधन न होने के कारण

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इन स्वगत कथनों को नाटकों में आवश्यक बुराई की भाँति स्थान दिया जाता है; यद्यपि किसी पात्र का इतने ज़ोर से स्वगत बोलना कि सारे दर्शक सुन लें, कुछ बेतुका ही है।

शेक्सपियर के स्त्री-पात्रों का अध्ययन भी आकर्षक है। प्रारम्भ के नाटकों की स्त्रियाँ भावुक थीं। वे दूसरों को कष्ट देना अथवा उन पर शासन करना न जानती थीं। हृदय की कोमलता, स्वभाव, भाव और कामना की सरसता में भी, तुलनात्मक दृष्टि से, उनमें कुछ कमी थी। दूसरी श्रेणी में वे स्त्रियाँ हैं, जिनका मस्तिष्क विकसित है। इनमें कुछ चमत्कार है। वे चतुर हैं। अपने में आवश्यकता से अधिक विश्वास रखती हैं। प्रत्येक कार्य को आगे बढ़कर पूरा करती हैं और निर्भीक हैं। प्रारम्भ के ऐतिहासिक नाटकों में रानी मारगरेट की भाँति भयानक स्त्रियों का चित्रण है। उनकी अभिलाषाएँ नष्ट हो चुकी हैं, हृदय भग्न हो चुके हैं और उनमें महान् दुःख, भयानक क्रोध और प्रतिहिंसा की ज्वाला प्रज्वलित हो रही है।

ज्यों-ज्यों नवीन सुखान्त-नाटकों की रचना होती गई है, त्यों-त्यों स्त्रियों का चित्रण अधिक रहस्यपूर्ण एवं सौन्दर्यपूर्ण होता गया है। प्रारम्भ में जो रोज़लीन द्वारा बेराउन का उपहास था, वह अब रोज़ालिंड का ऑरलैंडो के साथ मृदु हास्य बन जाता है, और आगे चलकर इसे ही बीट्रिस-बेनीडिक के कौतूहलपूर्ण वाग्युद्ध का स्थान मिलता है। अन्तिम खेलों में अत्यंत सहनशील स्त्रियों का चित्रण है। वे शान्त हैं, सन्तोषी हैं; सब कुछ सहन कर सकती हैं; स्वयं को कुछ महत्त्व नहीं देतीं; अन्यायपूर्ण विरोध नहीं करतीं और प्रतिहिंसा के भावों से परे हैं। अब मारगरेट के स्थान में कैथराइन का चित्रण है। साथ ही साथ कतिपय आकर्षक बालिकाओं का भी उनमें चित्रण है, जो दुःख को नहीं जानतीं और जिनके सौन्दर्य में जादू है, कुछ अनुपम आभा है। मिरंडा इसका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है।

औरतों के सम्बन्ध में शेक्सपियर की धारणा यह है कि उनका स्वभाव मर्दों की तुलना में थोड़ी ही विशेषताओं से बनता है; परन्तु वे विशेषताएँ ख़ूब मिली-जुली होती हैं। इसी लिए औरतें तुरन्त ही उचित कार्य करने में सफल होती हैं। उसके मर्दों का तो उत्थान और पतन है; परन्तु स्त्रियाँ उसकी कल्पना में विकसित रूप में प्रकट होती हैं। उसकी दुष्ट औरतें गोनेरिल और रीगन की भाँति हैं; परन्तु आयगो की भाँति नहीं। स्त्रियों को बहुधा मर्दों से बढ़कर दिखलाया गया है। पोर्शिया शाइलाक से बहुत बढ़ी-चढ़ी है। All's Well That Ends Well में उच्च-वंशीय नवयुवक के लिए हेलेना विभूति बन जाती है। कॉरियोलेनस पर वौल्यूमिना का शासन है। मैकबेथ की पत्नी बुरी तरह सफल है। रोमियो के निर्वासन पर जूलियट फ़ायर के पास पहुँचती है।

शेक्सपियर के नाटकों में बालक करुणा के पात्र हैं। वे उच्च-वंशीय, प्रेम पहचाननेवाले, स्पष्टवक्ता, वीर, जोशीले और स्वतन्त्र स्वभाव के हैं। सभी मनोरंजक और आकर्षक हैं। उनकी अस्फुट बातें हास्यप्रद आनन्द का संचार करती हैं। उनके आत्मविश्वास में आकर्षण है। वे अपने बड़ों का आदर करते हैं। संसार में उनका विश्वास है। बड़ों के उपहास का समुचित उत्तर देकर वे अपने को गम्भीर सिद्ध करते हैं।

शेक्सपियर के पूर्व और बाद में भी नाटकों की सृष्टि हुई। उसके समकालीन नाटककारों ने भी कोई-कोई दृश्य इतने ही सजीव, इतने ही भयावह, इतने ही मनोरंजक और ऐसे ही कवित्वपूर्ण लिखे हैं। परन्तु जब हम उन व्यक्तियों की गणना करते हैं, जिन्हें शेक्सपियर ने अमरत्व प्रदान किया है तो यह प्रश्न उठता है कि इन समस्त नाटककारों के सब नाटकों से संकलित किये गये ऐसे व्यक्तियों की संख्या क्या शेक्सपियर के एक सफल नाटक के व्यक्तियों की संख्या के समान हो सकेगी? अलेग्ज़ैंडर ड्यूमाज़ का कथन वास्तविक है कि ईश्वर के पश्चात् शेक्सपियर ने ही सबसे अधिक सृष्टि रची है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

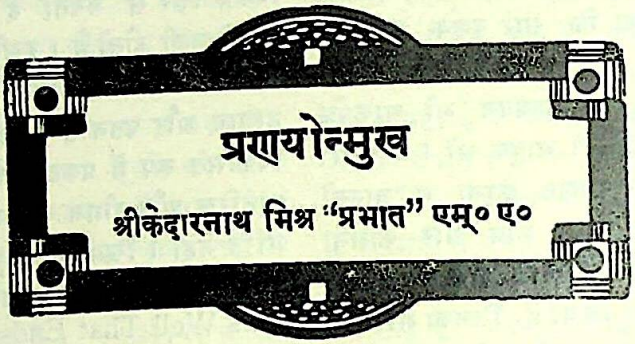

प्रणयोन्मुख

श्रीकेदारनाथ मिश्र "प्रभात" एम्० ए०

कहाँ बाँध दूँ उर का कम्पन ?
जल उठता वन-प्रांत, साँझ की
लोहित ज्वाला से पल-भर में,
छिप जाता आकाश उतरकर
मिटती-सी लहरों के स्वर में ।
क्षितिज डाल देता अनजाने
निर्झर के मुख पर अवगुंठन !
रजनी की गीली पलकों में
सपनों की छाया लिपटाये,
मदिरा-कण-सा तम सोया है
महाप्रलय को गले लगाये ।
बिखर-बिखर जाता ओसों में
वन-फूलों का सजल-स्पन्दन !

मेरे आँसू बन जाते हैं
मेरे ही गीतों का सावन,
जब मधुमास अपरिचित बनकर
सपनों में आता मन-भावन ।
बेसुध हो जाता तारों के
पथ का सुरभित एकाकीपन !
मैं असीम के मधुर स्वप्न से
भर-भरकर अपना लघु-जीवन,
उच्छ्वासों के इन्द्रधनुष से
नित रँगता सीमाओं के घन ।
मिलन-प्रदीप लिये हाथों में
उतरोगे क्या तुम न चिरंतन ?
कहाँ बाँध दूँ उर का कम्पन ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

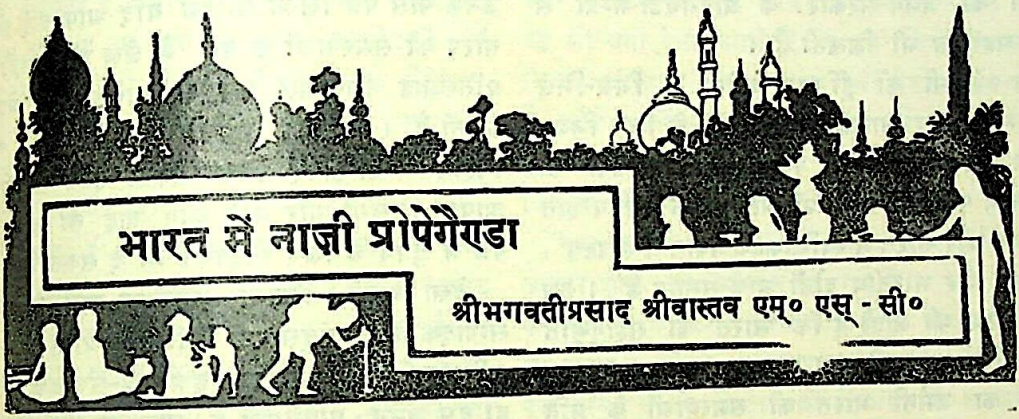

भारत में नाज़ी प्रोपेगैण्डा

श्रीभगवतीप्रसाद श्रीवास्तव एम्० एस्-सी०

कदाचित् ही कोई ऐसा देश होगा, जहाँ आज दिन नाज़ीवाद की काली छाया पहुँच न हो। हिटलर के गुप्तचरों ने स्पेन, आस्ट्रिया, ोस्लोवेकिया में तूफ़ान बरपा करके वहाँ फ़ैसिस्टवाद जड़ जमा दी है। दक्षिण अमेरिका, आफ़्रिका, ैण्ड और अमेरिका के यूनाइटेड स्टेट्स में भी लर के आदमी नाज़ीवाद का ज़ोरों में प्रचार कर हैं। ब्रेज़िल के स्थानीय नाज़ियों ने तो वहाँ की ता को उभाड़कर वहाँ के प्रजातन्त्र राज्य के ख़िलाफ़ ोह भी करा दिया था। इँगलैण्ड में भी आये दिन ज़ीदल के जुलूस निकलते रहते हैं।

हिटलर की गृद्धदृष्टि से भारत भी बच नहीं सका। शीदा ढंग पर यहाँ, हमारे देश में भी नाज़ीवाद का ज़ोरों में प्रचार किया जा रहा है। बम्बई में ी उद्देश्य को लेकर एक नाज़ी इनफ़ारमेशन-ब्यूरो स्थापना भी हुई है। इस ब्यूरो के संचालक डाक्टर र्च स्वयं एक जर्मन हैं। डाक्टर उर्च जर्मनी के एक मेदार शख़्स हैं। १९३७ में स्ट्रट-गार्ट (जर्मनी) होनेवाली नाज़ीपार्टी की अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेंस में पूर्वीय एशिया की नाज़ीपार्टी का प्रतिनिधित्व डाक्टर उर्च ने ही किया था। यह ब्यूरो भारत के भिन्न-भिन्न समाचार-पत्रों को मुफ़्त लेख तथा चित्र सप्लाई करता है। ये लेख प्रायः फ़ैसिज़्म की प्रशंसा में लिखे गये होते हैं।

भारतवर्ष में नाज़ी प्रोपेगैण्डा भिन्न-भिन्न दिशाओं में काम कर रहा है। स्वयं अलीगढ़-युनिवर्सिटी में आजकल एक जर्मन-सोसाइटी साल भर से नाज़ी-प्रचार का काम कर रही है। इस सोसाइटी का मुख्य काम जनता में सोवियट रूस के प्रति घृणा और अनादर का भाव उत्पन्न करना है। इस सोसाइटी की ओर से एक मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। इस मासिक पत्रिका में हिटलर की जर्मनी की प्रशंसा में पन्ने के पन्ने रँगे जाते हैं, और सोशलिज़्म को कोस-कोसकर गालियाँ सुनाई जाती हैं। इस सोसाइटी की अध्यक्षता में फ़ैसिस्टवाद-सम्बन्धी लेक्चरों का प्रबन्ध किया जाता है। इन लेक्चरों का विषय भी कम मनोरंजक नहीं रहता। उदाहरण के लिए एक लेक्चर का विषय था—"नाज़ीवाद और इस्लाम की समानता।" एक दूसरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेक्चर था—"अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संघ के कुछ काले कारनामे।" कहने की आवश्यकता नहीं कि इन लेक्चरों में सोशलिज़्म के ख़िलाफ़ बराबर ज़हर उगलने की कोशिश की जा रही है। इन लेक्चरों में सोवियट रूस की ख़ामियों का प्रदर्शन करने के लिए फ़िल्म और स्लाइड का भी प्रयोग किया जाता है। लेखक को विश्वस्त सूत्र से पता चला है कि अलीगढ़ की जर्मन-सोसाइटी को जर्मन-सरकार के प्रोपेगैण्डा-मन्त्री से आर्थिक सहायता भी मिलती है।

जर्मन-एकेडमी की इंडियन कमेटी ने भिन्न-भिन्न तरह के स्कालर्शिप भारतीय विद्यार्थियों के लिए नियत कर रक्खे हैं। स्कालर्शिप के लिए इन विद्यार्थियों को लेख लिखने पड़ते हैं। लेख-प्रतियोगिता के विषय होते हैं "जर्मनी और भारत में स्वस्तिका के प्रयोग में सादृश्य", या "जर्मन और भारतीय दोनों आर्य-सन्तान हैं"। इस प्रकार कोशिश की जाती है कि भारत की सहानुभूति जर्मनी के लिए प्राप्त की जाय।

आज का जर्मनी भारत की समस्याओं के प्रति गहरी दिलचस्पी दिखलाता है। अभी उस दिन कलकत्ता-स्थित जर्मन-राजदूत ने उद्योग-व्यवसाय-सम्बन्धी झगड़ों के सम्बन्ध में गवर्नमेंट को परामर्श दिया था, जिसमें नाज़ीवाद की बू आती थी।

हिटलर ने योजना बनाई है कि हिन्दुस्तान में जगह-जगह जर्मन-असोसियेशन क़ायम किये जायँ, जिनका ध्येय होगा कि वे नाज़ी जर्मनी के बारे में भारतीय जनता को सच्ची (?) बातें बतलावें, जर्मनी के सम्बन्ध में लेक्चर और बहस-मुबाहसे का इन्तज़ाम करें, जगह-जगह संग्रहालय खोलें। वहाँ पर नाज़ी-साहित्य, पोस्टर, फ़ोटोग्राफ़ आदि का प्रदर्शन किया जायगा। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर वियना में एक इण्डिया-हाउस बननें जा रहा है। आस्ट्रिया के सुप्रसिद्ध समाचार-पत्र 'वाल्केशर बोबाकर' ने लिखा है कि इस स्कीम का अनुमोदन प्रसिद्ध भारतीयों ने किया है। आग़ाख़ाँ भी इस स्कीम के प्रवर्तकों में हैं। पाठकों को मालूम होना चाहिए कि सर आग़ाख़ाँ हिटलर की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए नहीं अघाते।

स्वयं जर्मनी के अन्दर से भी भारत में नाज़ीवाद का विष फैलाने की निरन्तर कोशिश की जा रही है। कई एक अँगरेज़ी-समाचार-पत्रों के सम्पादकों से लेखक को इस विषय पर बात करने का अवसर मिला है। इन सम्पादकों के पास प्रचुर मात्रा में जर्मनी से छपे हुए तथा टाइप किये हुए लेख तथा चित्र पहुँचते रहते हैं—एकदम मुफ़्त। 'नेशनल फ़्रन्ट' के सम्पादक ने तो हमें बताया कि जर्मनी के "कान्टिनेन्टल-प्रेस-डियट" ने उनके पास पत्र लिखा था कि यदि आप चाहें तो सब योरप की समस्याओं के बारे में लेख और ताज़ी ख़बरें प्रतिसप्ताह नियमित रूप से आपके पास भेजी जा सकती हैं। ख़ासकर जर्मनी के बारे में तो आपको निहायत सच्ची ख़बरें मिल सकती हैं। तसवीरें भी आपको मिलेंगी और यदि आप चाहें तो हम आपके पत्र में छपने के लिए विज्ञापन भी दे सकते हैं!

देखा आपने। कितना ज़बरदस्त प्रलोभन एक नये सम्पादक के लिए इस पत्र में छिपा हुआ है! आर्थिक कठिनाइयों में गले तक डूबा हुआ पत्र-संचालक अनायास ही इस जर्मन-प्रोपेगैण्डा के जाल में फँस सकता है और इस तरह नाज़ीवाद के विष को स्वयं अपने हाथों भारत में वह फैला सकता है।

भारतवर्ष में जितने जर्मन हैं, वे सब स्थानीय जमाअतों के रूप में, नाज़ी-प्रचार के उद्देश्य से अपना संगठन कर रहे हैं। उनकी एक अखिलभारतीय मासिक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। दिसम्बर, १९३८ की एक प्रति मुझे भी देखने का अवसर मिला था। इसके प्रकाशक हैं एच्० पी० फ़ाम, २४, हुमार्ट-रो, बम्बई। कलकत्ते के जर्मन-असोसियेशन की कार्यवाही का इसमें उल्लेख है। कलकत्ते में नाज़ियों ने जर्मन-आर्ट की एक प्रदर्शिनी का आयोजन किया था। यह प्रदर्शिनी सर्वसाधारण के लिए खुली हुई थी। इसका विस्तृत उल्लेख इस पत्रिका में किया गया था। भिन्न-भिन्न जगहों के नाज़ीदल की समस्याओं को हल करने के लिए उचित सलाहें भी इस पत्रिका द्वारा दी गई हैं। इन भिन्न-भिन्न असोसियेशनों की देखरेख और उनकी रहनुमाई बम्बई-केन्द्र से होती है। शीघ्र ही इनका एक अखिलभारतीय संघ भी बनने जा रहा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नके अतिरिक्त भारतवर्ष की अनेक प्रतिक्रियावादी
ओं को भी जर्मनी के प्रोपेगैण्डा-विभाग से
हन मिलता है। ज़रूरत पड़ने पर प्रचुर मात्रा
ार्थिक सहायता भी मिल सकती है। ख़ाकसार-
के सम्बन्ध में प्रान्तीय असेम्बलियों में प्रश्न
गये थे कि इस दल को विदेश से आर्थिक
ता मिलती है, ख़ासकर जर्मनी की नाज़ीपार्टी
इस आर्थिक सहायता के पीछे नाज़ीपार्टी का
त्र उद्देश्य यही है कि ख़ाकसार दल फ़ैसिस्ट-
की छाया में फले-फूले। इन प्रश्नों के जवाब में
तक ख़ाकसारदल की ओर से कोई प्रतिवाद भी
शित नहीं हुआ है।

जर्मनी इतने ही से सन्तुष्ट नहीं है। उसने अभी
में हिन्दुस्तानी भाषा में बर्लिन से ब्राडकास्ट
है। इस ब्राडकास्ट में कहा गया है कि "ईश्वर
र्मनी को स्वतंत्र करना चाहा, इसलिए उसने
र-जैसे नेता को भेजा। जब भारत की स्वतंत्रता
समय आ जायगा तो यहाँ भी एक हिटलर पैदा हो
गा।" इस तरह जर्मनी के नाज़ी भारतवर्ष को हिटलर-
ी के स्वागत के लिए तैयार करने का स्वप्न देख रहे हैं।
भारतवर्ष में नाज़ीवाद कहाँ तक पनप सकता है,
बात की टोह लेने के लिए डाक्टर एच्० शात
र्मन रीश बैंक के भूतपूर्व सभापति और हिटलर
ार्थिक सलाहकार) १० एप्रिल को हमारे देश में
ीक लाये थे। आप यहाँ एक महत्त्वपूर्ण राजनीतिक
आर्थिक उद्देश्य को लेकर आये थे। बम्बई में
आप जहाज़ से उतरे तो पत्रकारों के पूछने पर
ने जवाब दिया कि वे केवल तफ़रीह और आबहवा
तबदीली के लिए इस देश में पधारे हैं। किन्तु
ों के सिलसिले में पत्रकारों ने फ़ौरन् भाँप लिया
यह हज़रत किसी ख़ास मक़सद को लेकर यहाँ
ये हैं। आजकल की लू और जलती हुई धूप में
ट्ज़रलैंड और जेनेवा को छोड़कर हिन्दुस्तान की
क यात्रा डाक्टर शात ने पसन्द किया! तनिक
बुद्धि रखनेवाला मनुष्य आसानी से यह समझ
ना है कि डाक्टर शात की इस यात्रा के पीछे कोई
ख मक़सद छिपा हुआ था।

बम्बई में आपके स्वागत के लिए वहाँ का स्थानीय नाज़ीदल इकट्ठा हुआ था। स्वागत करनेवालों में अहमदाबाद के एक मिल-मालिक का लड़का भी शामिल था।

यही कारण है कि शिमला, मसूरी और ऊटी आदि ठंडी जगहों में न जाकर डाक्टर शात बम्बई, दिल्ली और कलकत्ते की धूल फाँकते रहे। इस स्थान पर हम यह भी बता देना चाहते हैं कि इन दिनों हिटलर की निगाह आफ़्रिका तथा अन्य पूर्वी देशों पर लगी हुई है और उसके तीन बड़े-बड़े नेता पूर्व के तीन देशों में दौरा कर रहे थे। गोबेल्स कैरो गये थे और गोरिंग त्रिपोली में सैर कर रहे थे।

कुछ लोगों का यह भी कहना है कि हिटलर से डाक्टर शात की अनबन हो गई है। अतः हिटलर की ओर से वे किसी ख़ास उद्देश्य को लेकर नहीं भेजे जा सकते। किन्तु यह एक झूठा बहाना है; क्योंकि हम जानते हैं कि हिटलर की निगाहों में खटकनेवाला व्यक्ति फ़ौरन् फाँसी पर लटका दिया जाता है। यह असम्भव है कि वह इस तरह दूर देश में तफ़रीह करता फिरे।

डाक्टर शात की गणना जर्मनी के प्रमुख व्यक्तियों में होती है। आपने जर्मनी में एक नवीन आर्थिक योजना चलाई है। इस आर्थिक योजना में तमाम नाज़ी-सुलभ चालबाज़ियाँ निहित हैं। डाक्टर शात जर्मनी के आर्थिक जादूगर कहलाते हैं। डाक्टर शात की आर्थिक योजना ने तिजारत की एक विचित्र प्रणाली को जन्म दिया है।

मान लीजिए, हिन्दुस्तान में रुई, कोयला, चीना और जूट बहुतायत से पैदा होता है। स्थानीय बाज़ार में इनकी खपत बहुत कम है, और विदेशों में भी इन चीज़ों की माँग नहीं के बराबर है। अब दिल्ली की केन्द्रीय सरकार का अर्थमन्त्री एकाएक सोचता है कि भारतवर्ष को मोटरकार, पेट्रोल और मशीनों की सख़्त ज़रूरत है। किन्तु हमारे पास इतना पैसा नहीं है कि हम उनका मूल्य चुका सकें। हमारा यह मन्त्री भी आर्थिक जादूगर है। फ़ौरन् वह मार्क करता है कि अमेरिका से हम मोटर ख़रीद सकते हैं, मैक्सिको से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पेट्रोल, डेन्मार्क से अमुक वस्तु और स्वीडन से अमुक वस्तु। बस, वह इन विभिन्न देशों से बाक़ायदा सरकारी विभाग द्वारा लिखा-पढ़ी करता है। माल ख़रीदने की बातचीत तय होती है। अर्थमन्त्री के हस्ताक्षर का काग़ज़ भी इन देशों के व्यापारियों के पास पहुँच जाता है, और वे उस काग़ज़ के विश्वास पर जहाज़ों पर अपने ही ख़र्चे से माल लदाकर भारत को भेज देते हैं। निस्सन्देह ये विदेशी व्यापारी इस बात से बड़े ख़ुश हैं कि बात की बात में उन्होंने लाखों रुपये का सौदा बेच डाला। हिन्दुस्तान में माल ठिकाने से पहुँच जाता है और अर्थ-मन्त्री उन सबकी पहुँच की तसदीक़ भी कर देता है। किन्तु जब उसके सामने बिल पेश किया जाता है, तो भरी सभा में उठकर वह कहता है—"महाशयगण, मुझे बड़ा खेद है कि माल ख़रीदते समय मैं आपको यह बताना भूल गया था कि हमारे देश का यह क़ानून है कि कोई भी शख़्स यहाँ का सिक्का बाहर नहीं ले जा सकता। फिर भी हम आपका पावना एक-एक पाई चुका देने के लिए तैयार हैं।

हम आपको एक बहुत ही सहल तरकीब बताते हैं। हमारे पास बहुत ही बढ़िया क़िस्म की रुई, कोयला, चीनी और जूट मौजूद है। जितना रुपया आपका हमसे पावना है, उतने का आप इनमें से कोई माल ख़रीद लीजिए।"

अर्थ-मन्त्री की इस शरारत से विदेश के व्यापारी बड़े क्षुब्ध होते हैं। उनके देश के राजदूत इस मुश्किल को हल करने की जी-जान से कोशिश करते हैं; किन्तु क़ानून तो क़ानून ही है; वह भला कैसे तोड़ा जा सकता है? साल-दो साल कोशिश करने के बाद हताश होकर ये ही व्यापारी चीनी या कोयला भारत-सरकार से ख़रीदकर अपने देश को ले जाते हैं, और चूँकि उनके देश के बाज़ार में भी इन चीज़ों की माँग नहीं है, अतः वे मजबूरन् इन चीज़ों को घाटा सहकर बेच देते हैं। सम्भवतः इस लेन-देन में बेचारों को पचास फ़ीसदी का नुक़सान हो जाता है। किन्तु उसके लिए अन्य कोई चारा भी तो न था!

यह कोरी मनगढ़न्त कहानी नहीं है। पिछले तीन-चार साल के अन्दर बहुत कुछ इसी ढंग पर डाक्टर शात ने कई एक व्यापारियों को उल्लू बनाया है। १९३४ की घटना है। जर्मन-सरकार का एक एजेंट अमेरिका की टेक्साज़ रियासत में गया और वहाँ के व्यापारियों से दस लाख डालर की रुई ख़रीदी। उसने कहा कि ये दस लाख डालर जर्मनी के रीश बैंक में जमा हैं। जिस वक़्त आपका माल वहाँ पहुँच जायगा, आपका मूल्य भी फ़ौरन् चुकता कर दिया जायगा।

माल के पहुँच जाने पर टेक्साज़ फ़र्म ने दाम चुकता करने के लिए अपना बिल रीश बैंक के पास भेजा। किन्तु इसका उसे कोई जवाब न मिला। तदुपरान्त फ़र्म ने अपने बिल के बारे में रीश बैंक को कई बार लिखा; लेकिन रीश बैंक एकदम चुप रहा। अन्त में टेक्साज़ फ़र्म के एक प्रतिनिधि ने स्वयं जर्मनी में जाकर रीश बैंक के प्रेसीडेण्ट डाक्टर शात से मुलाक़ात की। तो उससे कहा गया कि टेक्साज़ फ़र्म के नाम से बाक़ी दस लाख डालर रीश बैंक में जमा हैं, किन्तु यह रक़म किसी भी सूरत से जर्मनी के बाहर नहीं ले जाई जा सकती। हाँ, अवश्य ही वह इस रक़म का इस्तेमाल जर्मनी में कर सकता है।

टेक्साज़ फ़र्म ने बड़ी दौड़धूप की। बर्लिन-स्थित अमेरिकन राजदूत ने भी इस मामले की पैरवी की। किन्तु कुछ भी नतीजा नहीं निकला।

टेक्साज़ फ़र्म ने अपने रुपयों के बदले में खिलौने, बाजे या पुरानी मशीनें लेना स्वीकार न किया, और अब तक इस फ़र्म के नाम दस लाख डालर रीश बैंक की तिजोरियों में बन्द हैं। इसी प्रकार जर्मनीवालों ने यूगोस्लाविया से तेलहन ख़रीदा, और उसकी क़ीमत के बदले में बाजे उनको दिये। रूमानिया से तेल और गेहूँ ख़रीदा और उन्हें सस्ते क़िस्म के टाइपराइटर बदले में दिये। हंगरी से ऊन ख़रीदा और क़ीमत अदा करने के सम्बन्ध में कहा कि देखो क़ीमत के बदले में हम तुम्हें आश्वासन देते हैं कि हम तुम्हारे देश पर कभी आक्रमण न करेंगे!

ऊपर की घटनाएँ डाक्टर शात की आर्थिक योजना पर प्रकाश डालने के लिए काफ़ी हैं। इसी प्रकार की आर्थिक योजना द्वारा डाक्टर शात जर्मनी की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारत के व्यापारियों के बीच एक घनिष्ठ संबंध स्थापित करना चाहते हैं।

मद्रास में २४ मई को एक भोज के अवसर पर डाक्टर शात ने पब्लिक के सामने पहली बार मुख खोला था। इस अवसर पर दी गई आपकी वक्तृता में हद दर्जे की कूट-नीतिज्ञता भरी हुई है। अपनी स्पीच में आपने फ़रमाया कि "जर्मनी को संसार के सभी पद्दलित राष्ट्रों से हमदर्दी है और भारतवर्ष के प्रति तो उसकी विशेष सहानुभूति है। जर्मनी की हार्दिक इच्छा है कि भारत भी अन्य देशों की भाँति एक उन्नतिशील राष्ट्र बन जाय। किन्तु इसके लिए हमें पहला काम यह करना होगा कि हम भारतवासियों को हर प्रकार से शिक्षित बनावें। उन्हें उद्योग-व्यवसाय की भी शिक्षा देनी होगी। औद्योगीकरण के लिए आपको मशीनों की ज़रूरत होगी। हम आपको हर तरह की मशीनें सस्ते दामों में दे सकते हैं। हम आपको विश्वास दिलाते हैं कि जहाँ तक मशीनों का सम्बन्ध है, जर्मनी ही आपकी सबसे ज़्यादा मदद कर सकता है। हम चाहते हैं कि आपके रहन-सहन का स्टैन्डर्ड ऊँचा हो, ताकि तरह-तरह की मशीनों से बनी हुई वस्तुओं की खपत हम आपके देश में कर सकें। उद्योग-व्यवसाय में जब आप तरक्की कर लेंगे, तो आप भी अन्य राष्ट्रों के सामने गर्व से अपना सिर ऊँचा उठा सकेंगे। जर्मनी आपके राष्ट्र को उसी ऊँचाई पर पहुँचाने के लिए उत्सुक है। इसमें आपका कल्याण निहित है, और साथ ही जर्मनी का भी फ़ायदा है।"

ध्यान देकर शात की इस स्पीच का निरीक्षण करने पर आप व्यापार की उसी अद्भुत प्रणाली का आभास इसमें पावेंगे, जिसका ज़िक्र ऊपर किया जा चुका है। किन्तु भारतवर्ष के व्यापारी इतने मूर्ख नहीं हैं कि वे शात के फंदे में आ जायँ। अमेरिका के व्यापारियों का उदाहरण उनके सामने है और उनको ग़लती से सबक़ हासिल करने भर को अक़्ल तो हमारे देशवासियों के पास है ही।

यदि जर्मनी के लोग हमारे यहाँ से चीनी या रुई ख़रीदते हैं, तो पहले ही माल भेजकर बाद में हम दाम वसूल करने के लिए चित्त न भेजेंगे। बल्कि हम साफ़ शब्दों में कह देंगे कि बाबा, हम तुम्हारा विश्वास नहीं करते। यहीं कलकत्ते के बाज़ार में नक़द रुपये हमारे हाथ पर पहले गिन दो, तब माल जहाज़ पर लदवाओ, अन्यथा अपना रास्ता नापो। हमें तुम्हारे-जैसे ठगों के हाथ माल बेचना क़बूल नहीं।

सितार-मार्ग (प्रथम भाग)

अपने ढंग की निराली, श्रीभातखंडेजी की पद्धति के अनुसार लिखी हुई तथा भारतवर्ष के मशहूर संगीतज्ञों द्वारा प्रशंसित है। बनारस यूनिवर्सिटी द्वारा एडमिशन परीक्षा के लिये तथा मैरिस म्यूज़िक कालेज लखनऊ द्वारा अपने प्रथम तथा द्वितीय वर्ष के लिये पाठ्य-पुस्तक रक्खी गई है। क़ीमत सिर्फ़ दो रुपये।

मिलने का पता:—

१. इंडियन बुक शाप, बनारस.
२. मैरिस म्यूज़िक कालेज, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हिन्दू-समाज में क्रान्ति की आवश्यकता

श्रीरामनारायण 'आदवेन्दु' बी० ए०, एल्-एल्० बी०

"जब तक हिन्दू-धर्म क्रियात्मक रूप में वैसा ही रहेगा जैसा कि इस समय है, तब तक वह अ-हिन्दुओं द्वारा अतीत की भाँति वर्तमान में भी ठुकराया जाता रहेगा और भविष्य में भी ठुकराया जायगा। संसार से हिन्दुत्व का सर्वनाश कर देने के प्रयत्न में अहिन्दू पूर्णतः न्याय-संगत हैं। ऐसे पतनोन्मुख धर्म को जीवित रहने का अधिकार ही क्या है? वह द्रुतता से सर्वनाश की ओर जा रहा है *!"

—डा० भगवान्दास डी० लिट्०, एम्०एल्०ए०

उपर्युक्त शब्द कितने मार्मिक हैं। इन शब्दों से डा० भगवान्दास के हृदय की आन्तरिक वेदना की एक स्पष्ट झलक दीख पड़ती है। ये गम्भीर शब्द किसी हिन्दुत्व-विरोधी अथवा साधारण हिन्दू के नहीं हैं। ये शब्द भारतवर्ष के विश्व-विख्यात दार्शनिक (Philosopher), हिन्दू-समाज के परम सुधारक, राष्ट्रीय नेता और विद्वान् डा० भगवान्दास के हैं, जो एक महान् वैज्ञानिक विचारक हैं। 'हिन्दुत्व का पतन' लेखमाला में एक दूसरे स्थल पर डा० भगवान्दास ने लिखा है—"मैं ७० वर्षों से हिन्दुत्व के आचरण (Practice) का अनुभव करता रहा हूँ और अनेक बार मैंने यह चाहा कि मैं अधिक सहानुभूतिपूर्ण तथा संगठनपूर्ण जातीय सामाजिक जीवन के लाभ प्राप्त करने के निमित्त किसी इतर धर्म की शरण में जाऊँ, परन्तु दुर्भाग्य से इतर महान् धर्मों में आध्यात्मिकता कम है और अन्धविश्वास एवं पाखण्ड का आधिक्य है।"

उपर्युक्त विचारों से यह भली भाँति स्पष्ट हो जाता है कि काशी का यह महान् विचारक हिन्दुत्व के पतन पर अति दुःखी है। ऐसा कौन हिन्दू-हृदय होगा, जो उपर्युक्त मर्मस्पर्शी शब्दों पर विचार न करे।

यह कितने आश्चर्य और दुःख की बात है कि इस नवयुग में, जब कि विश्व की सब संस्थाओं, रीति-नीति और विचारधारा में क्रान्तिकारी परिवर्तन होते जा रहे

---

* देखिए, "हिन्दुस्तान टाइम्स" में डा० भगवान्दास लिखित "हिन्दुत्व का पतन" लेखमाला १० सितम्बर, १९३८ ई०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

; परन्तु हिन्दू-समाज आज तक उसी पुराने रूढ़िवाद
पालन कर रहा है।

हिन्दू-समाज की समस्या न केवल राष्ट्रीय दृष्टिकोण
, प्रत्युत अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी अधिक महत्व-
ूर्ण है। यद्यपि हिन्दू-समाज भारतवर्ष तक ही सीमित
; परन्तु इसकी समस्या का प्रभाव विश्वव्यापी है।
५ करोड़ हिन्दुओं के जीवन-मरण की समस्या का
भाव संसार पर पड़े बिना नहीं रह सकता। विश्व-
स्कृति में आर्य-संस्कृति, वैदिक सभ्यता और आर्य-
ाहित्य का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऐसी दशा में
न्दू-समाज के पतन का प्रभाव केवलमात्र भारतवर्ष
ही सीमित नहीं रह सकता। तात्पर्य यह है कि
न्दू-समस्या केवल राष्ट्रीय समस्या ही नहीं है, प्रत्युत
ह अन्तर्राष्ट्रीय भी है।

वर्तमान हिन्दुत्व (Hinduism) की रचना इतनी
ोषपूर्ण है कि जब तक समाज के पुनःसंगठन
Reorganization) के लिए कोई क्रान्तिकारी उपाय
ुयोग में न लाया जाय, तब तक हिन्दुत्व की वर्तमान
चना में परिवर्तन नहीं हो सकता। हिन्दू-धर्म को
माज के रीति-रिवाजों का पर्याय मान लेने से बड़ी
व्यवस्था पैदा हो गई है। इस मिश्रण का प्रभाव
ह हुआ कि हिन्दू-समाज के रीति-रिवाजों ने धर्म
ा रूप ग्रहण कर लिया। हिन्दू-धर्म सनातन और
परिवर्तनशील है। सामाजिक प्रथाओं को 'धर्म'
स्वीकार कर लेने का अर्थ यह निकला कि धर्म के
संरक्षक रीति-रिवाजों की रक्षा के लिए सन्नद्ध हो गये।
रीति-रिवाज चाहे जितने असंगत और अन्यायपूर्ण
क्यों न हों, जब उन्हें 'धार्मिक' स्वरूप प्राप्त हो गया,
तब रीति-रिवाजों पर आक्रमण धर्म पर आक्रमण
माना जाने लगा। धर्म का सम्बन्ध पुरुष की आत्मा
और ईश्वर से है। यह आध्यात्मिक सम्बन्ध है।
समाज के रीति-रिवाजों का धर्म से कोई सम्पर्क नहीं।
परन्तु जब हिन्दू-धर्म के संरक्षकों ने यह अव्यवस्था
उत्पन्न कर दी, तब हिन्दू-समाज के लिए एक समस्या
पैदा हो गई।

जब-जब सुधारकों ने हिन्दू-समाज की सामाजिक
प्रथाओं में परिवर्तन करने का प्रयत्न किया अथवा
कुप्रथाओं एवं बुराइयों का अन्त करने का प्रयत्न किया, तब-तब कट्टरपंथियों—सनातनी हिन्दुओं की ओर से प्रतिक्रियात्मक आन्दोलन किया गया और वह इस आधार पर कि "हिन्दू-धर्म ख़तरे में है।" भारतवर्ष में जो-जो सुधार-आन्दोलन हुए, उनका सबका लक्ष्य हिन्दू-धर्म का शोधन करना रहा। आज महात्मा गांधी के सुधार-आन्दोलनों की प्रवृत्ति भी हिंदू-धर्म को पवित्र बनाने की ओर है।

आर्य-समाज, ब्राह्मो-समाज, प्रार्थना-समाज, राम-कृष्ण-मिशन आदि जितने भी सुधार-आंदोलन प्रादुर्भूत हुए, उन सबका उद्देश्य हिंदू-समाज में सुधार करना रहा। परन्तु उन्होंने अपने आन्दोलनों का आधार धर्म-सुधार (Reform of Religion) स्वीकार किया। इन महान् आंदोलनों के संस्थापकों ने धर्म-सुधार के आधार पर समाज में सुधार करने का बीड़ा उठाया। फलस्वरूप हिन्दू-समाज पर आन्तरिक और बाह्य आक्रमण होने लगे। ईसाई तथा इस्लाम के मिशनरी हिन्दू-समाज पर बाहर से आक्रमण करने लगे और समाज-सुधारक भीतर से आक्रमण करने लगे। श्री० के० यम्० पानीकर के शब्दों में इस द्वैध आक्रमण के कारण हिन्दुत्व का स्वरूप बदल गया। श्री० के० एम्० पानीकर लिखते हैं—

"The Hindu religion called forth all its powers to defend its institutions, right or wrong. Practices which had authority neither in religion nor in tradition came to be regarded as fundamental. Even the self-immolation of widows;.....began to find its defenders." *

"हिन्दू-धर्म ने अपनी सारी शक्ति अपनी संस्थाओं—चाहे वे उचित हों या अनुचित—की रक्षा में लगा दी। जो प्रथाएँ न धार्मिक थीं और न परम्परागत, वे बुनियादी मानी जाने लगीं। यहाँ तक कि विधवा का आत्मघात (सती होना) भी पवित्र और धार्मिक माना जाने लगा।"

* Vide K. M. Pannikar's "Hinduism and Modern World." (1938) p. 5.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब ईसाई और मुसलिम धर्म-प्रचारकों द्वारा हिंदू-धर्म पर आघात किये जाने लगे तो उनसे रक्षा पाने तथा हिन्दुत्व के गौरव की प्रतिष्ठा करने के निमित्त समाज-सुधारकों ने एक नया उपाय सोचा। भारत की प्राचीन सभ्यता को 'स्वर्ण-युग' कहकर उसके प्रति समाज का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की गई तथा पश्चिमी सभ्यता को 'भौतिकवादी' सभ्यता कहकर उसे भारतीयों के लिए अपर्याप्त घोषित किया गया। इस प्रचार का फल यह निकला कि हिन्दू-समाज में सनातन-संस्थाओं और रीति-रिवाजों के प्रति अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा पैदा हो गई और पश्चिम की नवीन संस्कृति के प्रति घृणा।

सत्य तो यह है कि जब किसी जाति, देश या समाज की अधोगति हो जाती है, तब उसके उत्थान के लिए सुधारक नेता उसके पूर्व-कालीन गौरव की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हैं। यदि किसी समाज का अतीत काल 'स्वर्ण-युग' रहा था तो यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि उसका वर्तमान भी वैसा ही है।

यह स्वीकार किया जा सकता है कि वैदिक युग में—रामयुग में ऋषि-मुनियों के समय में भारतवर्ष में आध्यात्मिक जीवन आदर्श रहा हो। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इस समय का हिन्दू-जीवन आध्यात्मिक है अथवा नहीं। वर्तमान युग का हिन्दू-जीवन न धार्मिक है और न आध्यात्मिक ही। एक साधारण हिन्दू से लेकर एक शिक्षित हिन्दू तक के जीवन में अन्धविश्वास और पाखण्ड की छाया मिलेगी। अधिकांश हिन्दू-जनता हिन्दुत्व के आदर्शों, सिद्धान्तों, वेदों व उपनिषदों के उपदेशों से अनभिज्ञ है। महन्तों, पंडों, पुजारियों और आचार्यों में अज्ञान और अन्धविश्वास तो है ही, परन्तु इसके साथ-साथ भौतिकवादी संस्कृति-जन्य भोग-विलास की मात्रा भी अत्यधिक है। इस आधुनिक भौतिकवादी हिन्दुत्व में कौन-सा आध्यात्मिक तत्त्व रह गया है?

निःसन्देह आर्य-संस्कृति, वैदिक धर्म-ग्रन्थ,—वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि में व्यक्ति और समाज के जीवनादर्शों की बड़ी उच्च व्याख्या की गई है। संसार के किसी भी दूसरे ग्रंथ में ऐसी व्याख्या मिलना सम्भव नहीं। परन्तु इन वैदिक आदर्शों के अनुसार कितने हिन्दू अपना जीवन बिताते हैं। शायद ऐसे आदर्श हिन्दुओं की संख्या उँगलियों पर गिनने योग्य होगी।

हिन्दू-समाज-सुधार के जो प्रयत्न अब तक हुए, वे विफल रहे। उनकी विफलता का एक बड़ा कारण है। वे चाहते थे समाज का सुधार, परन्तु उन्होंने सामाजिक व्यवस्था का आधार धर्म माना और फलतः धर्म-सुधार में लग पड़े। धर्म-सुधार की समस्या ने अनेक उलझनें उत्पन्न कर दीं, जिनके सुलझाने के प्रयत्न में धार्मिक सुधारकों को सामाजिक सुधार का आश्रय लेना पड़ा। जब सामाजिक सुधार का आश्रय लिया गया, तब समाज ने विरोध किया। हिन्दू-धर्म का पतन नहीं हुआ है, जैसा कि लेखक, विचारक और विद्वान् कहते हैं—लिखते हैं। धर्म का कभी पतन नहीं होता। धर्म सनातन है। हाँ, धर्मानुयायी, जब धर्मानुकूल आचरण नहीं करते, तब यह कहा जाता है कि अब धर्म का लोप हो गया।

धर्म सत्य है और सत्य अमर है। सत्य का क्षय नहीं होता। इस समय समस्या यह है कि हिंदू-समाज (हिन्दू-धर्म नहीं) का सुधार कैसे किया जाय। धर्म और समाज में मौलिक अन्तर है। एक का आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध है, दूसरे का भौतिक जीवन से।

हिन्दू-समाज की सामाजिक रचना

प्राचीन समय में वैदिक वर्ण-व्यवस्था के अनुसार समाज को गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुसार चार भागों में विभक्त किया गया था। समाज-विभाजन का आधार मानवीय गुण, कर्म और स्वभाव था। इसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार वर्ण प्रचलित थे। आज हमें कोई ऐसा ऐतिहासिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि किसी ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक युग में वैदिक वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी।

सम्भव है, किसी युग में वैदिक वर्ण-व्यवस्था का समाज में पालन किया जाता हो और राज की ओर से इसकी ठीक-ठीक व्यवस्था दी जाती हो। परन्तु कालांतर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस वर्ण-व्यवस्था का पतन शुरू हुआ और इसके परिणाम से जातियों और उपजातियों की सृष्टि हुई। इस समय २५०० जातियाँ और उपजातियाँ हिन्दू-समाज में पाई जाती हैं। इस युग में वैदिक वर्ण-व्यवस्था केवलमात्र एक सिद्धान्त है—एक सिद्धान्त, जो वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में व्यावहारिक रूप धारण नहीं कर सकता।

आज का हिन्दू-जीवन केवल दो विशेषताओं को स्वीकार करता है। एक जाति और दूसरी अस्पृश्यता। हिन्दू-जीवन पर जाति-संस्था का गहरा असर पड़ा है। जाति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. जन्म-परक अपरिवर्तनशील विषमता।

२. व्यवसाय का वर्ग-विभाजन और उनकी असमानता।

३. निज समुदाय से बाहर विवाह पर प्रतिबन्ध *।

जाति का सम्बन्ध जन्म से है। एक जाति का पुरुष दूसरी जाति को ग्रहण नहीं कर सकता। जाति-संस्था परिवर्तनशीलता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करती। परन्तु इसके साथ-साथ वह समाज में विषमता को भी जन्म देती है। एक व्यक्ति जिसका जन्म शूद्र पिता के गृह में हुआ है, वह आजन्म शूद्र ही बना रहेगा। वह शूद्र के निश्चित व्यवसाय को ग्रहण करेगा और शूद्र-कन्या से ही विवाह करेगा। वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि किसी भी धर्म-ग्रंथ में 'जाति' का विधान नहीं है और न जाति कोई धार्मिक संस्था (Religious institution) ही है। फिर भी हिन्दू-समाज में जाति ही एक सर्वोच्च विशिष्टता है। जाति-प्रथा (Caste system) हिन्दू-समाज का कलंक है। यह हिन्दू-जीवन के पूर्ण विकास में एक बड़ी बाधा है। जाति-प्रथा अनेक दृष्टियों से दोषपूर्ण है। परन्तु जाति के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दोष निम्न प्रकार हैं—

१. जाति ने हिन्दू-समाज को छिन्न-भिन्न कर उसे सहस्रों अंगों में विभाजित कर दिया है। इस विभाजन का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-समाज दुर्बल बन गया और पारस्परिक सामान्य भावना (Common feeling) का विकास अवरुद्ध हो गया।

२. जाति जन्म पर निर्भर होने के कारण समाज में जन्म-परक असमानता को जन्म देती है, जो समाज के उत्कर्ष के लिए बाधक है।

३. जाति समाज में उच्चता और निम्नता के भावों को जन्म देती है। एक जाति अपने को दूसरी जाति से भिन्न मानती हुई अपने को उच्च या निम्न समझती है। इस ऊँच-नीचपन की भावना के कारण समाज में कृत्रिम असमानता पैदा होती है।

४. जाति-प्रथा ही समाज में अस्पृश्यता (Untouchability) का मूल कारण है।

५. जाति-प्रथा शुद्धि-आन्दोलन (Conversion) के लिए घातक है। इस प्रथा के कारण हिन्दू-धर्म की मिशनरी भावना नष्ट हो गई है। जिन विधर्मियों को शुद्ध कर हिन्दू-धर्म में दीक्षित किया जाता है, उनके लिए जाति-वाद के कारण हिन्दू-समाज में कोई स्थान नहीं मिलता।

६. जाति-प्रथा हिन्दू-संगठन में भी बाधक है। जब तक हिन्दू-समाज विभिन्न समुदायों में बँटा रहेगा, तब तक हिन्दू-समाज में संगठन हो नहीं सकता।

७. जाति-प्रथा के कारण हिन्दुओं के आचार-शास्त्र (Ethics) पर भी बुरा असर पड़ा है। इसके कारण हिन्दू-जीवन के आदर्शों में ऐसा परिवर्तन हो गया है कि एक हिन्दू के लिए जाति ही सब कुछ है।

अस्पृश्यता का अभिशाप

अस्पृश्यता हिन्दू-समाज का कलंक है। उसके अधः-पतन का एक प्रमुख कारण हिन्दू-समाज में अस्पृश्यता का भीषण महारोग है। ६ करोड़ हिन्दुओं को अस्पृश्य (Untouchable) बनाकर समाज ने मानव-जाति के प्रति घोर अपराध किया है। हिन्दू-जाति में ऐसे वर्गों का अस्तित्व, जिनके सम्पर्क में आने से अथवा जिनके स्पर्श से द्विजाति के पुरुष अपवित्र हो जायँ, भ्रष्ट हो जायँ, वास्तव में, उसके सर्वनाश का प्रमुख लक्षण है।

समाज का एक विशाल भाग 'दलित', 'अस्पृश्य' तथा 'हरिजन' आदि घृणित नामों से पुकारा जाता

* Vide K. M. Pannikar, "Hinduism and Modern World." p. 22.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जब ईसाई और मुसलिम धर्म-प्रचारकों द्वारा हिंदू-धर्म पर आघात किये जाने लगे तो उनसे रक्षा पाने तथा हिन्दुत्व के गौरव की प्रतिष्ठा करने के निमित्त समाज-सुधारकों ने एक नया उपाय सोचा। भारत की प्राचीन सभ्यता को 'स्वर्ण-युग' कहकर उसके प्रति समाज का ध्यान आकर्षित करने की चेष्टा की गई तथा पश्चिमी सभ्यता को 'भौतिकवादी' सभ्यता कहकर उसे भारतीयों के लिए अपर्याप्त घोषित किया गया। इस प्रचार का फल यह निकला कि हिन्दू-समाज में सनातन-संस्थाओं और रीति-रिवाजों के प्रति अन्धविश्वास और अन्धश्रद्धा पैदा हो गई और पश्चिम की नवीन संस्कृति के प्रति घृणा।

सत्य तो यह है कि जब किसी जाति, देश या समाज की अधोगति हो जाती है, तब उसके उत्थान के लिए सुधारक नेता उसके पूर्व-कालीन गौरव की ओर उसका ध्यान आकर्षित करते हैं। यदि किसी समाज का अतीत काल 'स्वर्ण-युग' रहा था तो यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि उसका वर्तमान भी वैसा ही है।

यह स्वीकार किया जा सकता है कि वैदिक युग में—रामयुग में ऋषि-मुनियों के समय में भारतवर्ष में आध्यात्मिक जीवन आदर्श रहा हो। परन्तु प्रश्न तो यह है कि इस समय का हिन्दू-जीवन आध्यात्मिक है अथवा नहीं। वर्तमान युग का हिन्दू-जीवन न धार्मिक है और न आध्यात्मिक ही। एक साधारण हिन्दू से लेकर एक शिक्षित हिन्दू तक के जीवन में अन्धविश्वास और पाखण्ड की छाया मिलेगी। अधिकांश हिन्दू-जनता हिन्दुत्व के आदर्शों, सिद्धान्तों, वेदों व उपनिषदों के उपदेशों से अनभिज्ञ है। महन्तों, पंडों, पुजारियों और आचार्यों में अज्ञान और अन्धविश्वास तो है ही, परन्तु इसके साथ-साथ भौतिकवादी संस्कृति-जन्य भोग-विलास की मात्रा भी अत्यधिक है। इस आधुनिक भौतिकवादी हिन्दुत्व में कौन-सा आध्यात्मिक तत्त्व रह गया है?

निःसन्देह आर्य-संस्कृति, वैदिक धर्म-ग्रन्थ,—वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि में व्यक्ति और समाज के जीवनादर्शों की बड़ी उच्च व्याख्या की गई है। संसार के किसी भी दूसरे ग्रंथ में ऐसी व्याख्या मिलना सम्भव नहीं। परन्तु इन वैदिक आदर्शों के अनुसार कितने हिन्दू अपना जीवन बिताते हैं। शायद ऐसे आदर्श हिन्दुओं की संख्या उँगलियों पर गिनने योग्य होगी।

हिन्दू-समाज-सुधार के जो प्रयत्न अब तक हुए, वे विफल रहे। उनकी विफलता का एक बड़ा कारण है। वे चाहते थे समाज का सुधार, परन्तु उन्होंने सामाजिक व्यवस्था का आधार धर्म माना और फलतः धर्म-सुधार में लग पड़े। धर्म-सुधार की समस्या ने अनेक उलझनें उत्पन्न कर दीं, जिनके सुलझाने के प्रयत्न में धार्मिक सुधारकों को सामाजिक सुधार का आश्रय लेना पड़ा। जब सामाजिक सुधार का आश्रय लिया गया, तब समाज ने विरोध किया। हिन्दू-धर्म का पतन नहीं हुआ है, जैसा कि लेखक, विचारक और विद्वान् कहते हैं—लिखते हैं। धर्म का कभी पतन नहीं होता। धर्म सनातन है। हाँ, धर्मानुयायी, जब धर्मानुकूल आचरण नहीं करते, तब यह कहा जाता है कि अब धर्म का लोप हो गया।

धर्म सत्य है और सत्य अमर है। सत्य का क्षय नहीं होता। इस समय समस्या यह है कि हिंदू-समाज (हिन्दू-धर्म नहीं) का सुधार कैसे किया जाय। धर्म और समाज में मौलिक अन्तर है। एक का आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध है, दूसरे का भौतिक जीवन से।

हिन्दू-समाज की सामाजिक रचना

प्राचीन समय में वैदिक वर्ण-व्यवस्था के अनुसार समाज को गुण, कर्म तथा स्वभाव के अनुसार चार भागों में विभक्त किया गया था। समाज-विभाजन का आधार मानवीय गुण, कर्म और स्वभाव था। इसके अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये चार वर्ण प्रचलित थे। आज हमें कोई ऐसा ऐतिहासिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है, जिससे यह ज्ञात हो सके कि किसी ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक युग में वैदिक वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी।

सम्भव है, किसी युग में वैदिक वर्ण-व्यवस्था का समाज में पालन किया जाता हो और राज की ओर से इसकी ठीक-ठीक व्यवस्था दी जाती हो। परन्तु कालांतर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस वर्ण-व्यवस्था का पतन शुरू हुआ और इसके प्रभिचार से जातियों और उपजातियों की सृष्टि हुई। स समय २५०० जातियाँ और उपजातियाँ हिन्दू-माज में पाई जाती हैं। इस युग में वैदिक वर्ण-वस्था केवलमात्र एक सिद्धान्त है—एक सिद्धान्त, ो वर्तमान सामाजिक परिस्थितियों में व्यावहारिक प धारण नहीं कर सकता।

आज का हिन्दू-जीवन केवल दो विशेषताओं को वीकार करता है। एक जाति और दूसरी अस्पृश्यता। न्दू-जीवन पर जाति-संस्था का गहरा असर पड़ा है। जाति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

१. जन्म-परक अपरिवर्तनशील विषमता।

२. व्यवसाय का वर्ग-विभाजन और उनकी असमानता।

३. निज समुदाय से बाहर विवाह पर प्रतिबन्ध *।

जाति का सम्बन्ध जन्म से है। एक जाति का पुरुष दूसरी जाति को ग्रहण नहीं कर सकता। जाति-संस्था परिवर्तनशीलता के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करती। परन्तु इसके साथ-साथ वह समाज में विषमता को भी जन्म देती है। एक व्यक्ति जिसका जन्म शूद्र पिता के गृह में हुआ है, वह आजन्म शूद्र ही बना रहेगा। वह शूद्र के निश्चित व्यवसाय को ग्रहण करेगा और शूद्र-कन्या से ही विवाह करेगा। वेद, उपनिषद्, दर्शन, गीता आदि किसी भी धर्म-ग्रंथ में 'जाति' का विधान नहीं है और न जाति कोई धार्मिक संस्था (Religious institution) ही है। फिर भी हिन्दू-समाज में जाति ही एक सर्वोच्च विशिष्टता है। जाति-प्रथा (Caste system) हिन्दू-समाज का कलंक है। यह हिन्दू-जीवन के पूर्ण विकास में एक बड़ी बाधा है। जाति-प्रथा अनेक दृष्टियों से दोषपूर्ण है। परन्तु जाति के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण दोष निम्न प्रकार हैं—

१. जाति ने हिन्दू-समाज को छिन्न-भिन्न कर उसे सहस्रों अंगों में विभाजित कर दिया है। इस विभाजन का परिणाम यह हुआ कि हिन्दू-समाज दुर्बल बन गया और पारस्परिक सामान्य भावना (Common feeling) का विकास अवरुद्ध हो गया।

२. जाति जन्म पर निर्भर होने के कारण समाज में जन्म-परक असमानता को जन्म देती है, जो समाज के उत्कर्ष के लिए बाधक है।

३. जाति समाज में उच्चता और निम्नता के भावों को जन्म देती है। एक जाति अपने को दूसरी जाति से भिन्न मानती हुई अपने को उच्च या निम्न समझती है। इस ऊँच-नीचपन की भावना के कारण समाज में कृत्रिम असमानता पैदा होती है।

४. जाति-प्रथा ही समाज में अस्पृश्यता (Untouchability) का मूल कारण है।

५. जाति-प्रथा शुद्धि-आन्दोलन (Conversion) के लिए घातक है। इस प्रथा के कारण हिन्दू-धर्म की मिशनरी भावना नष्ट हो गई है। जिन विधर्मियों को शुद्ध कर हिन्दू-धर्म में दीक्षित किया जाता है, उनके लिए जाति-वाद के कारण हिन्दू-समाज में कोई स्थान नहीं मिलता।

६. जाति-प्रथा हिन्दू-संगठन में भी बाधक है। जब तक हिन्दू-समाज विभिन्न समुदायों में बँटा रहेगा, तब तक हिन्दू-समाज में संगठन हो नहीं सकता।

७. जाति-प्रथा के कारण हिन्दुओं के आचार-शास्त्र (Ethics) पर भी बुरा असर पड़ा है। इसके कारण हिन्दू-जीवन के आदर्शों में ऐसा परिवर्तन हो गया है कि एक हिन्दू के लिए जाति ही सब कुछ है।

अस्पृश्यता का अभिशाप

अस्पृश्यता हिन्दू-समाज का कलंक है। उसके अधः-पतन का एक प्रमुख कारण हिन्दू-समाज में अस्पृश्यता का भीषण महारोग है। ६ करोड़ हिन्दुओं को अस्पृश्य (Untouchable) बनाकर समाज ने मानव-जाति के प्रति घोर अपराध किया है। हिन्दू-जाति में ऐसे वर्गों का अस्तित्व, जिनके सम्पर्क में आने से अथवा जिनके स्पर्श से द्विजाति के पुरुष अपवित्र हो जायँ, भ्रष्ट हो जायँ, वास्तव में, उसके सर्वनाश का प्रमुख लक्षण है।

समाज का एक विशाल भाग 'दलित', 'अस्पृश्य' तथा 'हरिजन' आदि घृणित नामों से पुकारा जाता

* Vide K. M. Pannikar, "Hinduism and Modern World." p. 22.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। 'दलित' शब्द का प्रयोग शायद आर्य-समाज ने प्रारम्भ किया, अस्पृश्य या 'अछूत' शब्द का प्रयोग कट्टरपंथी सनातनी हिन्दुओं ने किया और महात्मा गांधी ने 'हरिजन' शब्द का प्रचार करके इस विशाल समुदाय को सर्वथा के लिए पृथक् बना दिया।

इस अत्याचार-पीड़ित-वर्ग के साथ सदियों से हिन्दू-समाज ने अन्याय किया है और इस युग में भी इस पर अमानुषिक अत्याचार किये जा रहे हैं। इनके बालकों को सामान्य पाठशालाओं में द्विजाति हिन्दुओं के साथ पढ़ने की आज्ञा नहीं है। एक ही कुएँ, नल या जलाशय से द्विजाति-हिन्दुओं के साथ जल नहीं ले सकते। अनेक स्थानों में इन्हें उन सड़कों पर जाने की आज्ञा नहीं है, जिन पर 'हिन्दू' चलते हैं। अविद्या और अज्ञान का अन्धकार इतना अधिक आच्छादित है कि इन्हें प्रकाश की एक किरण भी नहीं दीखती। ग्रामों में नगरों से भी अधिक नाज़ुक दशा है। ये लोग ग्राम के सबसे अपवित्र और दूषित भाग में एक ओर बसते हैं। 'सनातनी' हिंदू इनके सम्पर्क में बहुत कम आते हैं। इनसे वे बेगार लेते हैं। उत्तम भोजन, साफ़ वस्त्र, अलंकार आदि धारण तथा ग्रहण करने का इन्हें अधिकार नहीं।

ये लोग राजनीतिक, क़ानूनी तथा नागरिक अधिकारों से वंचित तो हैं ही, परन्तु सामाजिक अधिकारों के भोग से भी वंचित हैं। सबसे पूर्व आर्य-समाज ने इनके सुधार का बीड़ा उठाया। अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द संन्यासी ने इस दलित-पीड़ित-वर्ग को ऊँचा उठाने के लिए 'दलितोद्धार'-आन्दोलन शुरू किया। 'दलितोद्धार'-आन्दोलन से पूर्व भारत में ईसाई-मिशन ने इन्हें अपनाया। उन्होंने इन लोगों में प्रचार करना शुरू किया। विद्यालयों में इनके बालकों को शिक्षा देना आरम्भ किया और इनके प्रति क्रियात्मक सहानुभूति प्रकट की।

आर्य-समाज के इस प्रयत्न के फलस्वरूप दलितवर्ग की अवस्था में वांछनीय सुधार तो नहीं हुआ, परन्तु कुछेक सामाजिक प्रतिबन्धों के निवारण से उनमें जागृति उत्पन्न हो गई। उनमें असन्तोष की भावना व्याप्त हो गई। यह असन्तोष इतना अधिक बढ़ता गया कि दलितवर्ग में हिन्दू-समाज के प्रति विरोधी भावों का उदय होने लगा। मोन्टेग्यू - चेम्सफ़ोर्ड की शासन-सुधार-योजना के अनुसार निर्मित भारतीय शासन-विधान के अन्तर्गत इस वर्ग को राजनीतिक संस्थाओं में प्रतिनिधित्व भी मिलने लगा। यद्यपि यह प्रतिनिधित्व नाममात्र का था, परन्तु इससे इस वर्ग में राजनीतिक आकांक्षा का आविर्भाव हुआ।

सायमन-कमीशन के समक्ष दलितवर्ग की संस्थाओं, नेताओं तथा प्रतिनिधियों ने राजनीतिक संस्थाओं (Political institutions) के लिए पृथक् निर्वाचन (Separate Electorate) की माँग पेश की। लन्दन में गोलमेज़-परिषद् (Round Table Conferences) के अवसर पर दलितवर्ग के प्रतिनिधि डा० अम्बेदकर ने भी दलितवर्ग के लिए पृथक् निर्वाचन की माँग पेश की। कांग्रेस के प्रतिनिधि महात्मा गांधी ने, लन्दन-परिषद् में, उनकी इस माँग का प्रबल विरोध किया और यह प्रतिज्ञा की कि यदि 'दलितवर्ग' को हिन्दू-समाज से पृथक् किया गया, तो मैं अपने प्राणों की आहुति देकर भी पृथक्ता का विरोध करूँगा।

अगस्त, सन् १९३२ ई० में मि० रेमज़े मैकडानल्ड ने 'साम्प्रदायिक निर्णय' (Communal Award) द्वारा डा० अम्बेदकर की माँग को स्वीकार कर दलितवर्ग को पृथक् चुनाव दे दिया। महात्मा गांधी इस समय पूना के यरवदा-जेल में राजबन्दी थे। जब उन्होंने यह सुना तो यरवदा-जेल में आमरण व्रत रक्खा। उनके इस व्रत से भारतवर्ष में हलचल मच गई और समझौते के लिए प्रयत्न शुरू हो गये।

कोने-कोने से यह आवाज़ गूँजने लगी कि महात्मा गांधी के जीवन की रक्षा की जाय। पं० मदनमोहन मालवीय ने इस अवसर पर पथ-प्रदर्शन किया। बम्बई और पूना में समझौते के लिए सम्मेलन आमंत्रित किये गये और अन्त में हिन्दू तथा दलित-वर्ग के नेताओं में शान्तिपूर्वक समझौता हो गया। यह समझौता 'पूना-पैक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है।

इस 'पैक्ट' के पश्चात् महात्मा गांधी ने २ वर्ष तक अपना अधिकांश समय और शक्ति 'हरिजन'-आन्दोलन को शक्तिशाली बनाने में लगाई। इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न्दोलन को दृढ़ता एवं स्थायित्व प्रदान करने के दृश्य से अखिलभारतीय हरिजन-सेवक-संघ की स्थापना ी गई। समस्त भारतवर्ष में—ब्रिटिश और भारतीय ों में—हरिजन-सेवक-संघ स्थापित किये गये। इस ार महात्मा गांधी ने अपने प्रभाव से हरिजन-समस्या ो कांग्रेस के कार्यक्रम में एक महत्त्वपूर्ण स्थान देने में फलता प्राप्त की।

नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत दलितवर्ग को न्तीय व्यवस्थापिका सभाओं में, यथेष्ट प्रतिनिधित्व ला है। इस समय ६ प्रान्तों में, व्यवस्थापिका भाओं में, दलितवर्ग के १५१ प्रतिनिधि हैं। द्रास, बंगाल, आसाम और बिहार में मन्त्रिमण्डल Cabinet) में भी इनके सदस्य हैं। मद्रास और हार में एक-एक मंत्री (Minister) और बंगाल था आसाम में दो-दो मंत्री हैं। संयुक्त-प्रान्त में इस र्ग में से दो पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी हैं। उच्च सरकारी ौकरियों में भी इस वर्ग के सदस्यों का प्रवेश होने गा है *।

इस प्रकार राजनीतिक नवचेतना के उदय के फल-रूप दलितवर्ग की दशाओं में परिवर्तन होता जा हा है। इस समय आठ प्रान्तों † में कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डल शासन-संचालन कर रहे हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इन प्रान्तों में ही अस्पृश्यता भयंकर रूप में मौजूद है। यदि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल अपने-अपने प्रान्तों में दलितवर्ग की दशाओं में सुधार करने के लिए प्रभावकारी (Effective Legislation) सामा-जिक क़ानून निर्माण करने के लिए प्रयास करें तो अल्पकाल में ही वे सब सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक अयोग्यताएँ (Disabilities) निवारण की जा सकती हैं।

सन् १९३३ ई० में प्रोफ़ेसर रंगा अय्यर ने दो बिल केन्द्रीय असेम्बली में प्रस्तुत किये। प्रथम बिल का तात्पर्य यह था कि हिन्दू-समाज के सनातनी-दल द्वारा जो सामाजिक प्रथाएँ एवं रीति-रिवाजें अस्पृश्यता के सम्बन्ध में प्रचलित की गई हैं तथा न्यायालयों द्वारा जिन्हें क़ानूनी स्वीकृति (Legal recognition) दी गई है, उसका निवारण कर दिया जाय। इस बिल का नाम था Abolition of Untouchability Bill। द्वितीय बिल 'मन्दिर-प्रवेश' के सम्बन्ध में था। उस समय असेम्बली में कांग्रेस के प्रतिनिधि नहीं थे। प्रतिक्रियावादी-दल के शक्तिशाली होने के कारण प्रोफ़ेसर रंगा अय्यर के उपर्युक्त दोनों बिल क़ानून (Law) का रूप न धारण कर सके। इसके बाद रावबहादुर एम्० सी० राजा, एम्० एल्० ए० (केन्द्रीय) ने अपना नागरिक अयोग्यता-निवारण बिल (Removal of Civil Disabilities Bill) पेश किया। परन्तु कई कारणों से केन्द्रीय असेम्बली में यह बिल पास न हो सका।

रावबहादुर एम्० सी० राजा ने मद्रास की लेजिस्-लेटिव असेम्बली में यह बिल विगत वर्ष रक्खा। अब मद्रास-असेम्बली द्वारा यह बिल स्वीकार हो गया है। परन्तु मद्रास के प्रधान मंत्री श्रीराजगोपालाचार्य ने रावबहादुर एम्० सी० राजा से यह निवेदन किया है कि वह अपने मन्दिर-प्रवेश-बिल को वापस ले लें। कारण, सरकार आगामी अधिवेशन (नवम्बर, १९३८ ई० में) में मन्दिर-प्रवेश-बिल पेश करने जा रही है। सबसे पूर्व मलाबार-ज़िले में मन्दिर-प्रवेश-क़ानून प्रचलित किया जायगा और उसके पश्चात् शनैःशनैः समस्त मद्रास प्रान्त में इसका प्रचलन किया जायगा। श्रीराजगोपालाचार्य की यह नीति समझ में नहीं आती। सन् १९३३ ई० में श्रीराज-गोपालाचार्य यह प्रयत्न कर रहे थे कि श्रीरंगा अय्यर का मन्दिर-प्रवेश-बिल स्वीकार हो जाय और अखिल-भारत में वह क़ानून शीघ्र जारी हो जाय। परन्तु

* हाल में बंगाल के मन्त्रिमण्डल ने सरकारी नौकरियों में २० प्रतिशत स्थान परिगणित जातियों (Scheduled Castes) के लिए सुरक्षित कर दिये हैं।

† १. मद्रास, २. बम्बई, ३. संयुक्त-प्रान्त, ४. मध्य-प्रदेश, ५. बिहार, ६. उड़ीसा, ७. सं.मा प्रान्त, ८. आसाम।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अब वह श्री० राजाजी के बिल को वापस कराने के लिए प्रयत्न कर रहे हैं। इसमें क्या रहस्य है।

आज जब कि मद्रास, बम्बई, यू० पी०, सी० पी०, बिहार - उड़ीसा में कांग्रेस - दल का विशाल बहुमत है, तब इस सम्बन्ध में सामाजिक क़ानून-निर्माण में क्यों अनावश्यक विलम्ब किया जा रहा है? यदि कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल इस सम्बन्ध में समुचित बिल असेम्बली में पेश करे तो कोई कारण नहीं कि वह स्वीकार न हो सके।

श्रीफूलसिंह एम्० एल्० ए० ने, संयुक्त प्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेम्बली के विगत अधिवेशन में 'हरिजनों की अयोग्यता - निवारण - बिल' विगत अधिवेशन (अगस्त, १९३८ ई०) में पेश किया।

यह 'बिल' सर्वांगपूर्ण नहीं है। इस 'बिल' के द्वारा प्रत्येक हिन्दू-मात्र को मन्दिरों में प्रवेश और कुओं से जल-ग्रहण करने की स्वाधीनता तो मिल जायगी, परन्तु उनके अन्य सामाजिक नागरिक अधिकारों पर पहले-जैसे ही प्रतिबन्ध बने रहेंगे।

सरकार को चाहिए कि वह ऐसे क़ानून का निर्माण करे, जो क़ानूनी रूप से अस्पृश्यता (Untouchability) के रिवाज को अस्वीकार कर हिन्दूमात्र के लिए समान सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं नागरिक अधिकारों को स्वीकार करे।

महिला-आन्दोलन

इस समय भारतीय नारी-समाज में भी जागृति के लक्षण प्रतीत होने लगे हैं। नारी-समाज में उच्च शिक्षा के प्रचार व प्रसार एवं पाश्चात्य-संस्कृति के सम्पर्क के कारण नारी-समाज में समानाधिकार के लिए आकांक्षा जागृति हुई। आज का जाग्रत् नारी-समाज इसी का फल है। भारतवर्ष में नारियों, विशेषतः हिन्दू-नारियों की स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। स्त्रियों को शिक्षा से वंचित रक्खा गया; विधवाओं के लिए सदाचार के कठोर नियमों की सृष्टि की गई; पति की मृत्यु के पश्चात् उसकी चिता पर आत्म-समर्पण करने की प्रथा जारी की गई। सम्पत्ति पर स्त्री को कोई अधिकार नहीं दिया गया। इस कारण उसे पुरुष पर आश्रित रहने के सिवा और कोई आधार नहीं रहा। विवाहादि में स्त्रियों की कोई सम्मति नहीं ली जाती थी। पर्दे के रिवाज ने उन्हें ज्ञान-ज्योति के स्वास्थ्यप्रद प्रकाश से वंचित तो रक्खा ही, परन्तु इससे उनके स्वास्थ्य को भी बड़ी हानि पहुँची।

शिक्षिता और सुधार-प्रेमी महिलाओं का ध्यान नारी-जाति के इन कष्टों और दुःखों की ओर गया तो उन्होंने भारत में नारी-आन्दोलन शुरू किया। नारी-सुधार के लिए कई महिला - संस्थाएँ स्थापित की गईं। आज देश का नारी-समाज पुरुषों के समान ही अधिकार-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। राजनीतिक अधिकारों की प्राप्ति ने उनके सुधार-आन्दोलन को पहले से और भी शक्तिशाली बना दिया है। आज प्रत्येक प्रान्त में महिलाएँ यथेष्ट संख्या में धारा-सभा की सदस्या ही नहीं हैं, प्रत्युत वे प्रत्यक्ष रूप से शासन-संचालन में भी भाग ले रही हैं।

कई प्रान्तों में वे पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी के पद पर कार्य कर रही हैं। संयुक्तप्रान्त में श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित स्वास्थ्य - मन्त्रिणी पद पर हैं। उपाध्यक्ष (Deputy Speaker) के पद पर भी वे कार्य-संचालन कर रही हैं। नवीन शासन-विधान ने उन्हें मताधिकार प्रदान करके उनकी राजनीतिक प्रगति को और भी शक्ति प्रदान कर दी है *।

* नवीन शासन-विधान के अन्तर्गत १० प्रान्तों में धारा-सभाओं में महिलाओं को ४१ स्थान दिये गये हैं। परन्तु सन् १९३७ के सामान्य चुनाव में कांग्रेस-दल ने अनेक पुरुषों को सीटों पर महिलाओं को खड़ा किया था। इस कारण समस्त ब्रिटिश भारत के प्रान्तों में स्त्री-सदस्याओं की कुल संख्या ६० है। रूस की धारा-सभाओं में २३० और संयुक्त राज्य अमेरिका में १४८ सदस्या हैं। अमेरिका के बाद भारत ही ऐसा राष्ट्र है, जिसमें सबसे अधिक स्त्री-सदस्याएँ विविध धारा - सभाओं में हैं। ब्रिटिश-पार्लियामेंट में केवल ९ महिलाएँ सदस्या हैं। आस्ट्रेलिया में ४, स्वीडेन ११, डेनमार्क ७, जेकोस्लोवेकिया में १३, फ़िनलैण्ड में १६। फ़िनलैण्ड में संसार में सबसे पहली बार महिलाओं को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महिला-आंदोलन का लक्ष्य

भारतीय महिला-आन्दोलन का लक्ष्य है महिलाओं की सर्वतोमुखी उन्नति करना। उसके प्रमुख उद्देश निम्न प्रकार हैं—

१. स्त्रियों को बतलाना कि भारत की पुत्री होने के नाते उनका क्या उत्तरदायित्व है।

२. अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना द्वारा प्रत्येक लड़की व लड़के को उचित शिक्षा दिलाना, जिसमें धार्मिक शिक्षा भी सम्मिलित हो।

३. बाल-विवाह तथा अन्य सामाजिक कुरीतियों का अन्त करना।

४. स्त्रियों को म्यूनिसिपैलिटियों और लेजिस्लेटिव कौंसिलों के लिए मताधिकार उन्हीं शर्तों पर प्राप्त कराना, जिन शर्तों पर वह पुरुषों को दिया जाय।

५. म्यूनिसिपैलिटियों, ताल्लुक़ा और लोकल बोर्डों, लेजिस्लेटिव कौंसिलों और असेम्बली में पर्याप्त संख्या में महिला-प्रतिनिधि भेजने का अधिकार प्राप्त करना।

६. स्त्रियों को कौंसिल आफ़ स्टेट के लिए वोट देने का अधिकार प्राप्त करना।

७. स्त्रियों के लिए पुरुषों के समान अधिकार और सुविधाएँ प्राप्त करना।

८. स्त्रियों में यह विश्वास उत्पन्न करना कि भारत का भविष्य अधिकांश में उन्हीं के हाथों में है। पत्नी और मा की हैसियत से देश के भावी शासकों के शिक्षण और चरित्र-निर्माण का भार उन्हीं पर है।

९. अपनी उन्नति, शिक्षा-प्राप्त करने और दूसरों की सेवा के लिए स्त्रियों का संगठन करना।

अखिल-भारतवर्षीय महिला-परिषद् (All India Women's Conference) ने उपर्युक्त उद्देश्य निर्धारित किये हैं। परन्तु महिलाओं के लिए कौंसिल-कार्यक्रम भी निर्धारित किया है, जो निम्न प्रकार हैं—

१. स्त्रियों और पुरुषों के लिए एक-सा उच्च सदाचार का आदर्श। (High single standard of morality)

२. स्त्री-पुरुष के भेद-भाव के बिना समान कार्य के लिए समान वेतन।

३. यथेष्ट अखिलभारतीय मातृत्व-सेवा। (Maternity Service)

४. बालविवाह का सर्वनाश।

५. लड़कियों की शिक्षा के लिए विशेष सुविधाएँ, जिससे लड़के-लड़कियों की शिक्षितों की संख्या का अनुपात समान हो जाय।

६. प्रसूता-सहायक-क़ानून।

७. सामाजिक बीमा-क़ानून। (Social Insurance Act.)

भारतीय नारी-आन्दोलन के कार्यक्रम पर विचार करने के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय नारी और विशेषतः हिन्दू-नारी का लक्ष्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानाधिकार प्राप्त करना है। यदि नारी-समाज इन त्रिविधि अधिकारों की प्राप्ति में पूर्णतः सफल हो गया तो इससे हिन्दू-समाज के संगठन में विशाल मौलिक परिवर्तन हो जायगा।

भारतवर्ष में नारी-जीवन के आदर्शों में भी विशेष अन्तर होता जा रहा है। नवीन पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव तथा उच्च-शिक्षा के प्रसार के फलस्वरूप महिलाओं में प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रति भारी असन्तोष उत्पन्न होता जा रहा है। आज महिलाएँ धारा-सभाओं में अपनी माँगें पेश कर रही हैं। समानाधिकार (Equal Rights for Women) की ध्वनि से सारे देश का वायुमण्डल प्रतिध्वनित हो रहा है। इस समानाधिकार-प्राप्ति के आन्दोलन ने भारतीय नारी के दृष्टिकोण में परिवर्तन पैदा कर दिया है। बहु-विवाह (Polygamy) की प्रथा का सर्वनाश करने के लिए स्त्री-सदस्या धारा-सभा में बिल पेश कर

विशेषाधिकार मिला था। यह महान् आश्चर्य का विषय है कि फ्रांस, इटली, स्विट्ज़रलैण्ड, जर्मनी और जापान में धारा-सभाओं में एक भी सदस्या नहीं है। यही क्यों, इन देशों में एक भी स्त्री वोटर भी नहीं है। इन अंकों का अवलोकन करने के पश्चात् यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि भारतीय नारी-समाज ने इस दिशा में जो प्रगति की है, उसके द्वारा एक आदर्श उपस्थित कर दिया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रही हैं। तलाक़ का अधिकार प्राप्त करने के लिए भी धारा-सभा में बिल रक्खा गया है *। विगत वर्ष डा० खरे का आर्य-विवाह-क़ानून (Aryan Marriage Validating Act) केन्द्रीय असेम्बली द्वारा स्वीकृत हो चुका है। इस क़ानून के अनुसार आर्यसमाजी जात-पाँत तोड़कर वैदिक रीत्यनुसार विवाह कर सकते हैं। उन्हें अपने विवाह की रजिस्ट्री कराने की आवश्यकता नहीं है। सिविल विवाह-क़ानून तो बहुत पहले से प्रचलित है। इस क़ानून के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह उसी समय हो सकते हैं, जब कि विवाह करनेवाले वर-कन्या यह घोषणा कर दें कि वे हिन्दू-धर्म में विश्वास नहीं करते। सन् १९३६ में केन्द्रीय असेम्बली में डा० भगवानदास डी० लिट्०, एम्० एल्० ए० ने अन्तर्जातीय हिन्दू विवाह-क़ानून (Hindu Marriage Validation Bill) पेश किया। परन्तु सनातनियों, हिन्दू-सभा और सरकार के विरोध के कारण यह क़ानून स्वीकार न हो सका। यदि यह क़ानून स्वीकार हो जाता, तो इससे हिन्दू-जाति में जात-पाँत का महारोग एक सीमा तक दूर हो जाता। परन्तु सनातनी हिन्दू ऐसा क्यों चाहने लगे।

इस युग की यह माँग है कि हिन्दू-समाज को अपना पुनर्निर्माण करने के लिए अपने सामाजिक संगठन में नवयुग के अनुकूल आवश्यक परिवर्तन करने चाहिए।

---

* केन्द्रीय असेम्बली में विगत शिमला-अधिवेशन में (सितम्बर, सन् १९३८ ई० में) श्रीदेशमुख ने हिन्दू-नारी-तलाक़-क़ानून (Hindu Women's Right to Divorce Bill) पेश किया है। इस क़ानून के अनुसार निम्नलिखित ४ दशाओं में हिन्दू-स्त्री को तलाक़ का अधिकार प्राप्त हो जायगा—

१. विवाह के पश्चात् पति की नपुंसकता।
२. लगातार तीन वर्षों तक पत्नी का परित्याग।
३. पति का धर्म-परिवर्तन।
४. यदि पति एक पत्नी के रहते हुए भी द्वितीय विवाह करे।

मनुकालीन सामाजिक नियमों के लिए आधुनिक समाज-संगठन में स्थान देना उत्कर्ष की ओर अग्रसर होने के स्थान में प्रत्यागमन ही होगा। मनुस्मृति तथा इतर शास्त्र अपने-अपने युगों की आवश्यकतानुसार निर्माण किये गये थे। आज इन स्मृतियों में विशाल परिवर्तन की आवश्यकता है। इस युग की एक नवीन स्मृति बनानी पड़ेगी। इसके लिए समूचे हिन्दू-क़ानून (Hindu Law) में बुनियादी परिवर्तन करना होगा। भारतवर्ष में 'प्रान्तीय स्वराज्य' (Provincial Autonomy) की स्थापना हो जाने से आज चाहे राजनीतिक क्षेत्र में पूर्ण स्वराज्य न मिला हो, परन्तु भारतीयों को इतनी काफ़ी राजनीतिक शक्ति प्राप्त हो चुकी है कि वे अब आसानी से उन सामाजिक क़ानूनों का निर्माण कर सकते हैं, जिन्हें सरकार अपनी अहस्तक्षेप (Non-intervention) की नीति के कारण स्वीकार नहीं होने देती थी। श्री के० एम्० पानीकर ने अपने विचारपूर्ण मौलिक ग्रंथ "हिन्दुत्व और आधुनिक संसार" में लिखा है—

"The creation of an authority which could legislate on a rational basis for the Hindu community is therefore the first essential condition for the reorganisation of Hinduism. A principle of social obedience must first be established before the Hindus could be converted into a community. The underlying idea of Sangathan (integration) of which the Hindu leaders—speak—which however few of them understand—is the doctrine of obedience...Community involves common ideals and interests. The caste and the joint-family render any idea of community impossible in Hinduism. ...The Sangathan Movement was a deliberate attempt to create the feeling of common mindedness in Hinduism. The movement failed because no welding together was possible in Hinduism as a whole so long as

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

here was no principle of authority and consequently no principle of obedience."

"एक ऐसी व्यवस्थापिका की आवश्यकता है, जो तार्किक आधार पर हिन्दू-समाज के लिए क़ानून-निर्माण कर सके। हिन्दुत्व के पुनःसंगठन के लिए यह पहली आवश्यक शर्त है। हिन्दुओं को समाज के रूप में संगठित करने से पूर्व 'सामाजिक आज्ञा-पालन' (Social obedience) के सिद्धान्त की स्थापना हो जानी चाहिए। संगठन, जिसके विषय में हिन्दू-नेता कहते रहते हैं—परन्तु उसे समझते हैं बहुत कम—का आन्तरिक भाव है आज्ञा-पालन का सिद्धान्त। समाज में सामान्य आदर्शों और हितों की भावना होती है। जात-पाँत तथा संयुक्त परिवार की भावना हिन्दुत्व में 'समाज' के भाव को असम्भव कर देती है।....हिन्दू-संगठन-आन्दोलन का मन्तव्य हिन्दू-समाज में सामान्य-भावना पैदा कर देना था। परन्तु यह आन्दोलन विफल रहा। कारण, हिन्दू-समाज में ऐसी भावना का उदय उस समय तक नहीं हो सकता, जब तक अधिकारी (ऑथरिटी) के सिद्धान्त और फलतः आज्ञा-पालन के सिद्धान्त की स्थापना न हो जाय।"

माधुरी की प्रसन्नता

का ठिकाना न रहा जब कि उसकी सखी द्वारा बताई हुई दवा से उसके हाथ की जलन व पीड़ा तत्क्षण शांत हो गई, उसका हाथ आग से जल गया था और वह जलन व पीड़ा से रो रही थी। अपनी सखी से उसने इसका नाम पूछा। सखी ने कहा, "मैं तो इसे अपने यहाँ हमेशा रखती हूँ; क्योंकि जिन दुर्घटनाओं में इसकी आवश्यकता होती है, वह गृहस्थी में हुआ ही करती है। तुम भी इसे हमेशा अपने यहाँ रखा करो। देखो तुमको इसने किस तरह रोते से हँसा दिया। इसका नाम है—"

हील-एक मरहम (Regd.)

(चोट, कटे, जले आदि पर लगाने का विख्यात मरहम)

स्थानीय हमारे एजेंट से ख़रीदिये।

डाबर (इण्डिया) के बर्मन) लि:

विभाग नं० १३१ पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जादूगर नर्तकी

श्रीसाधुशरण

(गत अंक से आगे)

(४)

कृष्णगढ़ के राजनगर का वह उपवन कवि-लेखकों के विचारसंचय तथा जीवन और स्वास्थ्य की चिंता रखनेवालों के वायुसेवन का जैसा केन्द्रस्थल था, वैसा ही प्रेमियों और प्रेमिकाओं के प्रेम-मिलन का सुन्दर संकेतस्थल भी। थल-थल के सघन कुंजों को सूर्य की तरुण किरणें भी कठिनता से भेद पाती थीं। पहर भर रात रहते इस उपवन में युवक-युवतियों के जोड़े और मंडलियाँ दिखाई पड़ने लग जाती थीं और आधी-आधी रात तक वह अपनी इस शोभा से ख़ाली नहीं होता था। इसी उपवन में देवसेना अपनी एक परिचारिका के साथ टहल रही थी।

अभी पूरा-पूरा उजाला नहीं हुआ था। उपवन की वनस्पतियाँ धीरे-धीरे अंधकार से निकलकर दृष्टिपथ में आती जा रही थीं। वसन्त का मौसम। सुगंध से भरी ठंडी-ठंडी हवा के झोंके आकर रह-रहकर मन को मस्त कर देते थे। लेकिन देवसेना प्रसन्न नहीं थी। उसके हृदय में कल ही से एक भयंकर आन्दोलन उठा हुआ था और वह अब तक उसी में उलझी हुई थी। वह सोच रही थी—"मैं क्यों राजकुमार के साथ फुलवारी में गई ही? अगर न जाती, तो मेरा वह क्या कर लेता? मा क्या कर लेती? गई भी, तो मैंने क्यों उससे उतनी बातें ही कीं? क्यों मैंने उसको अपने हृदय की सच्ची बात बतलाई? अब तो वह मुझे धोखा दे सकता है। हर तरह का चालें चल सकता है। मैं क्यों उसके साथ उतनी देर बैठी? अगर इस तरह वह दस दिन भी घंटे-डेढ़ घंटे बैठकर मुझसे बातें करे, तब तो मेरे हृदय पर विजय ही प्राप्त कर लेगा! मेरे प्रेम पर अधिकार ही जमा लेगा! कल ही उसने....फिर कहाँ रह जायगी मेरे हृदय की तड़पन, मेरे प्राणों की प्यास, मेरे जीवन का उद्देश्य! उसके पास वैभव है, ताक़त है, रूप है! अगर इस तरह मैं उसकी बातों में आ जाऊँगी, तब तो वह इनके बल से मुझे....लात मारो उस वैभव पर, जला दो उस रूप को। अपने पथ से विचलित होकर—अपने उद्देश्य से गिरकर जीने से तो मर जाना भला।.... हाय! कहाँ चला गया मेरा वह! अब तो उसके दर्शन भी नहीं होते। अब तो मुझे जल्दी करनी पड़ेगी; नहीं राजकुमार मुझे अवश्य धोखा देगा—अवश्य पतित बना लेगा। कितना प्रेम दिखलाता है! क्या वास्तव में वह प्रेम है? ओफ़! प्रेम कैसा! वह तो प्यास है—मेरे रूप-यौवन की। हाय! उसने क्यों बंद कर दिया फेरी लगाना? क्या महाराज की अप्रसन्नता से डर गया? इसमें उसका कौन अपराध है? उसके डरने की कौन बात है? अपराधिनी तो मैं हूँ। फिर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लाई क्यों नहीं पड़ता ? एक बार उससे कुछ बातें के उसके हृदय का पता तो लेती....”

कुछ और उजाला हुआ और पूर्वाकाश में हलकी-की अरुणिमा फैल गई। देवसेना की दृष्टि उस पड़ी और एक नये उल्लास से उसका हृदय भर ा। उसने हाथ जोड़ लिये और प्राची को मस्तक ाकर अपनी प्रार्थना में मग्न हो गई—“आओ, ओ ची की नई दुलहिन, आओ। अपनी पवित्र अरुणिमा मेरी माँग भर दो। और मेरे अनजान प्रिय को ींचकर मेरे वक्षःस्थल से लिपटा दो। जन्म से पड़े ी शिक्षा और संगति के संस्कार दूर हों, तुम्हारी ुण्य अरुणिमा से उनका कलुषित प्रभाव धुल जाय ौर मैं सब तरह से योग्य एक सुलक्षण और साध्वी लवधू होने के योग्य बनूँ। आओ, मा! आओ! ुम्हारे पवित्र प्यारों से मेरा जीवन पवित्र हो, मेरे ाचार सात्त्विक हों और मेरा मस्तिष्क उन शुभ ल्पनाओं का आगार बने, जो हमें अंधकार से खींचकर काश की ओर ले जाती हैं। आओ, पुण्यमयी मा, सकिराती चली आओ। तुम्हारे आशीर्वादों से मेरे ाणों के धन निशिवासर प्रसन्न रहें, मैं उनकी बनूँ और मेरी अंतिम साँस तक वह एक-मात्र मेरे ने रहें।”

सोने के थाल-सा सूर्य सामने आ गया था। देवसेना की झीनी रेशमी साड़ी वायु के मंद-मंद झोंकों से ीहिर-फिहिर फहरा रही थी। उसके जगमग करते आभूषणों और चंद्रमा के-जैसे खिले मुखमण्डल पर किरणों की अरुण आभा लहरा रही थी। सहसा सितार की परिचित ध्वनि ने उसके कानों को चौंका दिया। उसने ध्यान दिया और उसका हृदय आनन्द से उछल पड़ा। उसने अपनी परिचारिका से कहा—“तुम फाटक पर चलकर मोटर में बैठो। मैं थोड़ी देर में आती हूँ।” वह चली गई। देवसेना चकित हिरनी-सी चारों ओर अपनी आँखें दौड़ाने लगी।

युवक-युवतियों के अनेक जोड़े और मंडलियाँ उपवन की पगडंडियों में इधर-उधर टहल रही थीं। देवसेना ने देखा, एक झाड़ी से होता हुआ वह युवक संन्यासी उसी की ओर बढ़ता चला आ रहा है। अब उसने सितार बजाना बंद कर दिया है। उसका हृदय आनंद से झूमने लगा। उसने उधर को फिर देखा और फिर-फिर। साथ ही संन्यासी ज्यों-ज्यों उसके पास बढ़ने लगा, वह लज्जा से दबने-सी लगी। उसका कलेजा धक-धक करने लगा। उसने गुलाब के एक फूल को अपने एक हाथ से पकड़ लिया और दूसरे हाथ से उसकी कोमल पंखड़ियों को सहलाने लगी। जब संन्यासी बिलकुल पास आ गया, तो देवसेना ने एक बार और घूमकर उसको देखा; उसका हृदय आनंद से भर उठा—वाह! कितना सुन्दर युवक है, कैसा देदीप्यमान मुखमण्डल है, देखकर आँखें निहाल हो उठती हैं। जी में आता है....। उसने एक बार और उसको देखा और लज्जा से उसका मुख लाल हो उठा। उसने फिर उसी फूल पर अपनी आँखें गड़ा दीं।

“कुमारीजी!”—संन्यासी ने आकर कहा—“मैं आपको आपके अपूर्व नृत्यकौशल के लिए धन्यवाद दे रहा हूँ। उस दिन नृत्यसभा में मेरा बोलना उचित नहीं था, इससे मैं धन्यवाद न दे सका—इसके लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ।”

देवसेना मौन—क्या बोले, क्या कहे! उसने एक बार युवक से आँखें मिलाईं और फिर उसी फूल पर गड़ा दीं।

“क्या मेरा धन्यवाद आपने स्वीकृत कर लिया?”

“मुझे क्यों धन्यवाद!”—देवसेना ने आँखें मिलाकर भीतर ही भीतर मुसकिराते हुए कहा—“धन्यवाद आप ईश्वर को दीजिए, जिसकी कृपा से मैं यह कला प्राप्त कर सकी हूँ।”

“ईश्वर को तो रोज़ ही धन्यवाद देता हूँ। इसके साथ आपको भी तो धन्यवाद देना मेरा कर्तव्य है।”

देवसेना निस्तब्ध; संन्यासी भी मौन। कुछ ठहरकर देवसेना ने फिर अपनी आँखें ऊपर उठाईं और फिर उसका मुख लज्जा से लाल हो उठा, लेकिन बोली—“आप मुझसे अप्रसन्न तो नहीं?”

“मैं! अप्रसन्न! मैं भला आपसे क्यों अप्रसन्न हूँगा?”

“फिर आप अब फेरी लगाने क्यों नहीं आते?”

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"उस दिन प्रदर्शन के बाद मेरी तबियत कुछ ख़राब हो गई थी, इसी से नहीं आता था।"

"अब तो प्रसन्न हैं ?"

"हाँ, आपकी कृपा से।"

कुछ देर के लिए फिर दोनों मौन ; देवसेना आँखें झुकाये फूल के दलों को सहलाते हुए—

"उस दिन"—देवसेना ने फिर आँखें मिलाकर कहा—"कृष्णघाट पर मेरी सहेलियों ने आपका कुछ अपमान कर दिया था ; उसके लिए मैं खेद प्रकट करती हूँ और आपसे क्षमा माँगती हूँ। क्या आप मुझे माफ़ी दे देंगे ?"

"देवि, मेरे-जैसे तुच्छ के सम्मुख आपका माफ़ी माँगना ! यह कैसी बात है ?"

"लेकिन मैं तो आपको बहुत बड़ा समझती हूँ। ईश्वर के-जैसा।"

फिर दोनों मौन। देवसेना लज्जा के बोझ से दबी-सी जा रही थी। वायु के झोंकों से उसकी साड़ी फहरा रही थी और वह बातें करते-करते सलज्ज भाव से उसे सँभालती जा रही थी। वह जब-जब अपनी आँखें ऊपर उठाती, उसका हृदय आनंद से भर उठता था, अंग-अंग से लाज टपक पड़ती थी और वह फ़ौरन् अपनी आँखें झुका लेती थी।

"क्या आपको मुझसे बातें करते घृणा नहीं होती ?"—देवसेना ने फिर आँखें मिलाकर पूछा।

"क्यों ? घृणा क्यों हो ?"

"मैं पतित वेश्याकुल की कन्या हूँ। लोग मुझसे घृणा करते हैं—मेरे पास बैठने में, मुझसे बोलने में, मेरी ओर देखने में अपना अपमान समझते हैं। मुझसे छुआ जाने पर अपने को अपवित्र समझने लगते हैं। मैं तो बहुत पतित, नीच, घृणित और अपवित्र जीव हूँ !"

"देवि, कोई पवित्र या अपवित्र कुल में जन्म लेने ही से पवित्र या अपवित्र नहीं हो जाता। मनुष्य पवित्र या अपवित्र, उच्च या नीच होता है अपने गुण-कर्म से, आचार-विचार से, रहन-सहन से। पवित्र कुल में पैदा हुआ मनुष्य भी अपवित्र हो सकता है और अपवित्र कुल में पैदा हुआ भी पवित्र। तुम्हारा तो गुण-कर्म, आचार-विचार और रहन-सहन ऐसा सुन्दर, पवित्र और सात्त्विक है कि तुम्हें देखकर ही हर कोई कह सकता है कि तुम साधारण कुल की कुलवधू ही नहीं, वरन् किसी राजकुल की सम्माननीय राजवधू बनने के योग्य हो।"

देवसेना का हृदय आनन्द से फूल उठा, गर्व से उसका मस्तक कुछ ऊँचा हो गया। फिर भी उसने कहा—"यह तो आप मेरी झूठी प्रशंसा कर रहे हैं। आप क्या जानते हैं, मैं अपने घर में कैसे रहती हूँ, क्या करती हूँ ? आप क्या जानते हैं, मैं हज़ारों पुरुषों से प्रेम करती हूँ या किसी से भी नहीं ?"

"देवसेना, सच्चा पारखी मनुष्य को एक झलक देखकर ही उसका सारा गुण-कर्म, आचार-विचार और रहन-सहन बतला देता है। मैंने तो तुम्हें बहुत बार देखा है, तुम्हारे सम्बन्ध में बहुत खोज-पूछ की है और तुमसे बहुत कुछ परिचित भी हो चुका हूँ।"

"तो क्या आपको मेरी पवित्रता पर विश्वास है ?"

"अगर विश्वास न होता, तो मैं ऐसा कहता ही किस बल पर ?"

"फिर भी संसार तो मुझे पतित वेश्यापुत्री ही समझता है। उसको आपके विश्वास और मेरे आचरण का क्या पता ? वह तो यही कहेगा—अमुक संन्यासी को मैंने अमुक वेश्या के साथ अमुक उपवन में बातें करते देखा था। अमुक संन्यासी ऐसा है, वैसा है। मुझसे बातें करते देखकर लोग आपके आचरण पर दोषारोपण तो ज़रूर ही करेंगे ? आपके नाम पर कलंक तो ज़रूर लगेगा ही ?"

"पवित्र देवसेना, अगर संसार किसी के सम्बन्ध में पूरी जानकारी रखे बिना ही ऐसा कहता है, तो यह उसी की भूल है। फिर भी अगर तुम संसार की ऐसी बातों की ओर ध्यान देती रहोगी, उसके ऐसा-वैसा कहने-सुनने से काँपती रहोगी, तो अपने कर्म-क्षेत्र में कितने दिन ठहर सकोगी—अपने लक्ष्य की ओर कितने पग आगे बढ़ सकोगी ? हमें स्वयं अपने को कलंक के योग्य न बनाना चाहिए ; कहने-सुनने के लिए जिसको जो कहना हो कहता रहे।"

देवसेना के होठों पर मुसकिराहट दौड़ गई। उसका

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

य आनन्द से फूल उठा—यह तो शरीर का ही दर नहीं, हृदय का भी सुन्दर मालूम होता है ; धु ही नहीं, काफ़ी विद्वान् भी है। वह फूल पर ें गड़ाकर फिर उसकी पंखड़ियों को सहलाने लगी। "देवि !"—कुछ ठहरकर संन्यासी ने कहा—आपको राजाश्रय न मिल सका, इसके लिए आपको ु क्षोभ तो नहीं ?"

"बिलकुल ही नहीं। मैं तो उसको चाहती ही ी। मुझे तो अपनी मा के मजबूर करने से वैसा ना पड़ा और पड़ता है ; नहीं, मैं तो अपने जीवन-ल का एक नई ही भूमि पर निर्माण कर रही हूँ, ां पवित्रता है, प्रेम है और है सच्ची सादगी।"

कुछ देर के लिए फिर दोनों मौन।

"तो क्या आपका वह महल बन गया ?"

"अभी कैसे बन जायगा ?"—देवसेना ने मुसकिरा- कहा।

"क्यों ?"

"वह ऐसी भूमि है—ऐसा देश है, जहाँ एक युवक एक युवती के साथ और एक युवती का एक युवक साथ आजीवन के लिए एक अजर-अमर प्रेमसूत्र में जाने का सुन्दर नियम है ; लेकिन मेरे-जैसी ायापुत्री के लिए उसमें आसानी से प्रवेश कहाँ !"

"तो क्या आपने उसमें प्रवेश पाने की कोई कोशिश ी की ?"

"बहुत कोशिश की और बहुत कोशिश कर रही ; लेकिन कोई घुसने भी तो दे !"

युवक ने मुसकिराकर कहा—"तो आप ज़बर्दस्ती ों नहीं घुस पड़तीं ?"

"वाह !"—देवसेना विस्फारित नेत्रों से उसका मुख देखने लगी।

"देवि, तुम्हें किस बात की कमी है कि तुम ऐसी राश हो रही हो ? तुम तो युवती हो, एक ही रूप-ती हो, साथ ही संगीतकला की एक ही विशारद। ी तो स्वयं ही संगीत से अधिक सरस, मधुर और कर्षक होती है। यदि वह रूपवती और युवती होने साथ-साथ संगीतकला में भी विशारद हो, फिर ना पूछना है ! तुम्हारे आगे तो लाखों सेठ-साहूकार, राजा-महाराजा हाथ जोड़ने के लिए तैयार होंगे। तुम्हें घुसने कौन नहीं देगा ?"

"हाँ, होंगे और हैं। ऐसे तो हज़ारों मेरे यहाँ आते हैं। एक आपके राजकुमार आनंदवर्द्धन ही मेरे ऊपर दख़ल जमाये बैठे हैं। लेकिन उनसे मुझे प्रयोजन ?"

"क्यों ?"

"ये तो रूप के प्यासे, यौवन के प्रेमी और इज़्ज़त के भूखे होते हैं। जब प्यास मिट जाती है, यौवन मुरझा जाता है और भूख शान्त हो जाती है, तब ठुकराकर चल देते हैं।"

युवक निस्तब्ध हो उठा और कुछ चकित।

"आपने इसी अवस्था में यह संन्यास क्यों ले लिया है ? यह तो बहुत कठोर व्रत है ? आपके सुकुमार शरीर और कोमल अवस्था को देखते तो यह किसी प्रकार भी आपके योग्य नहीं ?"—देवसेना ने आँखें मिलाकर पूछा।

"देवि, मैं संन्यासी तो नहीं। मैं तो एक भिखारी हूँ—बहुत दीन भिखारी।"

"लेकिन देवता !"—देवसेना ने उत्सुकता से भरे स्वर में कहा—"ऐसा रूप-गुण और ऐसी विद्या-बुद्धि पाकर आपका भिखारी होना भी तो नहीं शोभा देता ? इस समय तो आपको किसी कुल का उज्ज्वल दीपक और किसी किशोरी के हृदय-मंदिर का पूज्य देवता बने होना चाहिए ?"

"लेकिन मैं वह भिखारी भी तो नहीं, जो मुट्ठी-भर अन्न पाकर सन्तुष्ट हो जाता है। मैं तो प्रेम का भिखारी हूँ।"

"प्रेम का भिखारी !"—देवसेना ने विस्फारित नेत्रों से युवक को देखते हुए कहा।

"हाँ, प्रेम का भिखारी, हृदय का ग्राहक, भावों का सौदागर।"

"तो देवता !"—देवसेना ने फिर मुसकिराकर कहा—"प्रेम की भीख तो बहुत कड़वी होती है ? वह तो विष से आवेष्टित अमृत है ?"

"तो देवि, मैं भी उस विष को निगलने के लिए, उस कड़वापन में ही स्वाद लेने के लिए तैयार हूँ।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"कहीं वह विष प्राणलेवा साबित हो, तब ?"

"कुमारी, जिसको घुल-घुलकर अपना शरीर सुखाने की लालसा न हो, उछल-उछलकर काँटों पर चलने की आदत न हो और हँसते-हँसते आत्मबलिदान कर देने का साहस न हो, उसको तो इस पथ में पाँव ही न देना चाहिए, यह भीख ही न माँगनी चाहिए। मैं तो इन सबसे तैयार होकर चला हूँ।"

देवसेना का हृदय आनन्द से फूल उठा। उसने एक बार प्यारभरी दृष्टि से भिखारी को देखा, फिर मुसकिराकर पूछा—"तो क्या आपको प्रेम की भीख कहीं मिली ?"

"नहीं जानता।"—युवक ने उत्सुक-सा होकर कहा—"न-जाने कब से इस नगर में फेरी लगा रहा हूँ, हज़ारों आदमियों ने मुझे भिक्षा दी ; लेकिन अब तक यह नहीं जान सका कि मेरे मन की भीख—प्रेम की भीख भी किसी ने दी या नहीं ?"

"फिर आपके सिवा इस बात को और कौन जानेगा ?"

"वह जो दाता हो, जिसके आगे झोली फैलाई गई हो, जिसकी गलियों में फेरी लगाई गई हो।"

देवसेना मुसकिराने लगी—"यह तो अच्छा रहा !"

"हाँ, यही बात है।"

देवसेना ने वैसे ही मुसकिराते-मुसकिराते प्रेमगद्गद कंठ से कहा—"तो क्या आपने कभी अपनी झोली भी टटोली ? एक बार टटोलकर देखिए तो, उसमें कुछ है या नहीं ?"

भिखारी निस्तब्ध हो गया। उसका मुख खिल उठा, होठों पर मुसकिराहट दौड़ गई।

"मैं आपसे मिलने के लिए बहुत बेचैन थी, क्या मेरी इस बात पर आप विश्वास करेंगे ?"—देवसेना ने प्रसन्न स्वर में पूछा।

"देवसेना, विश्वास तो आँखें करा देती हैं !"

कुछ देर के लिए फिर दोनों मौन—प्रसन्नमुख।

"क्या मैं आपका परिचय जान सकती हूँ ?"—देवसेना ने आँखें मिलाकर पूछा।

"क्या अब भी परिचय बाक़ी है ?"—युवक भिखारी ने मुसकिराकर कहा।

देवसेना भी मुसकिराने लगी। कुछ ठहरकर उसने कहा—"बाक़ी नहीं है, लेकिन जो बाक़ी है, वह भी तो हो जाना चाहिए ?"

"बाक़ी क्या है ?"

"नाम-धाम, पता-ठिकाना आदि।"

"अगर मैं न बतलाऊँ ?"

"बतलावेंगे कैसे नहीं ? अब तो बतलाना ही पड़ेगा।"—देवसेना ने मुसकिराकर कहा।

"मेरा नाम 'राजलिखक' तो शायद आप जान चुकी हैं ?"

"हाँ, इतना जानती हूँ।"

"इसके अलावा जो कुछ आपके सामने है, वही मेरा परिचय है। मेरा कोई सगा-संबंधी, साज-सामान या गृह-ग्राम नहीं। बस, एकाकी आया हूँ, एकाकी हूँ और एकाकी ही इस संसार से चला जाऊँगा।"

"आप एकाकी हैं क्यों ? यह तो समाज है। यहाँ कोई भी एकाकी रहना पसंद नहीं करता ; कोई भी कभी पल-भर को भी, एकाकी रहने में अपने को सुखी नहीं पाता ?"

"कोई साथी ही नहीं मिला।"

"क्यों ? क्या आपने साथी की खोज की ?"

"खोज ! ओह !"—संन्यासी ने एक बार लंबी साँस खींचकर कहा—"खोज में तो एक लंबी तपस्या कर डाली ; सितार पर फेरी लगाते-लगाते उँगलियाँ घिस गईं। कौन जानता है, कब इस तपस्या का अंत होगा !"

"आप कैसा साथी चाहते हैं ?"

"जो स्वयं भी एक साथी की खोज में हो, जो मेरे ही-जैसा हृदय रखता हो, जो मेरे ही-जैसा सबसे तैयार होकर अपने घर से चला हो और जो मेरे ही-जैसी कठिन तपस्या करने के लिए तैयार हो।"

"क्या मुझे आप अपना साथी बनावेंगे ?"—देवसेना ने लाज से आँखें झुकाये-झुकाये मुसकिराकर कहा।

"क्या आप मेरे ही-जैसी तपस्या करने के लिए तैयार हैं ?"

"हाँ, मैं तो तैयार हूँ।"—देवसेना ने एक बार आँखें उठाकर गर्व के साथ कहा।

"तो मुझे भी मंज़ूर है।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

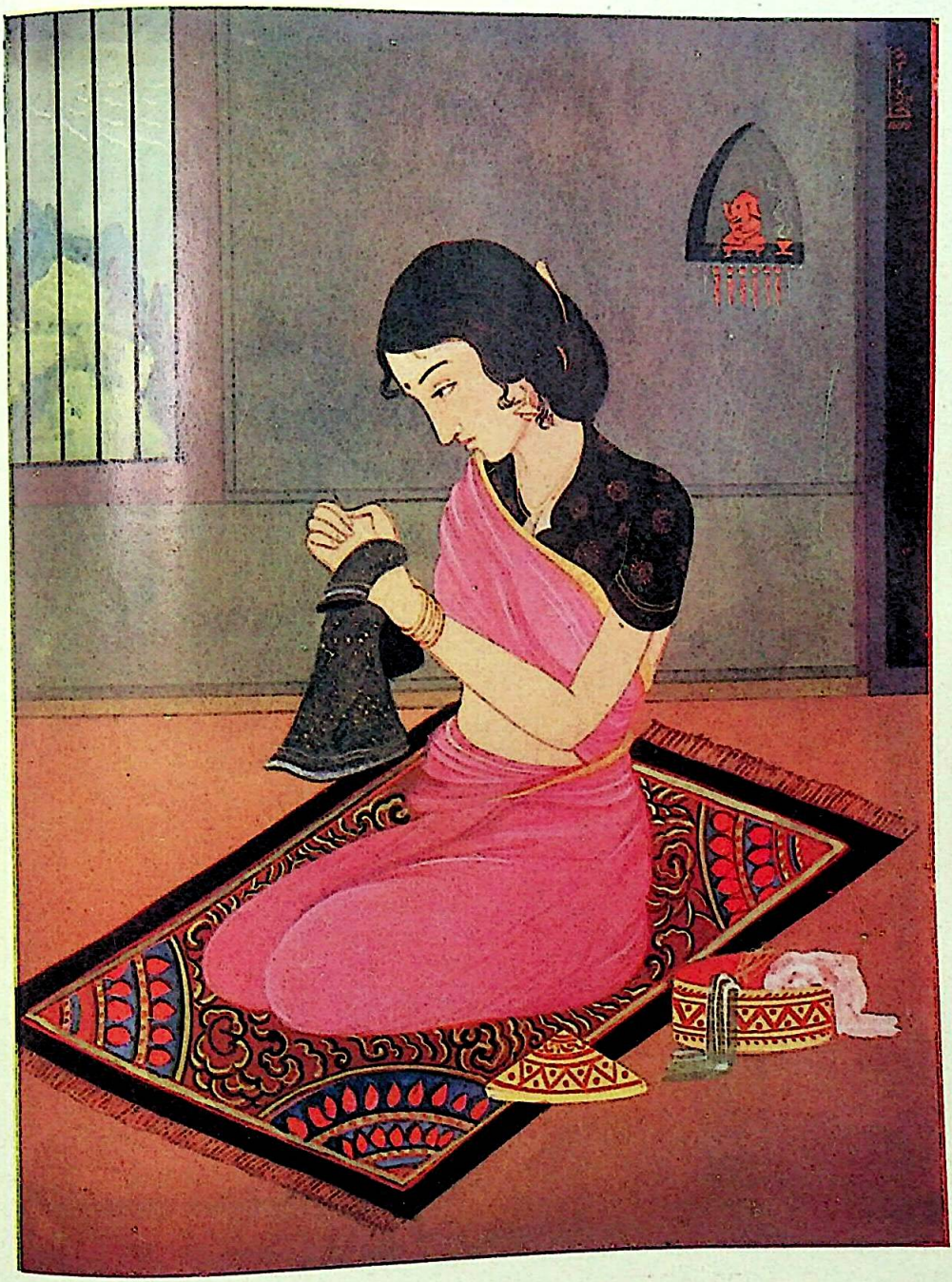

कसीदा

[चित्रकर्त्री—कुमारी ललिता चौधरी]

—आयु १६ वर्ष—

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"लेकिन आप रास्ते में मुझे कहीं धोखा तो नहीं ? जान लीजिए, मैं मरते दम तक आपका साथ ं छोड़ूँगी ।"—देवसेना ने फिर आँखें झुकाकर झिझकते हुए कहा ।

"कहीं आप ही मुझे धोखा दे दीजिए, तब ?"

"मैं तो धोखा नहीं दूँगी ।"

"तो मैं भी धोखा नहीं दूँगा ।"

"प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं ?"

"हाँ ।"

"फिर अपना कोई प्रेमचिह्न मुझे दीजिए ।"

राजतिलक ने सोने की एक अँगूठी अपनी झोली से निकालकर देवसेना के हाथों में दे दी । वह आनंद से उछल पड़ी । कुछ और पास बढ़कर वह राजतिलक से सटकर खड़ी हो गई और प्यार के साथ उसके दोनों कंधों पर अपने दोनों हाथ रखकर कहा—"अब तो आप मुझे रोज़ इसी उपवन में दर्शन देंगे ?"

"ज़रूर ।"

पास ही की झाड़ी में एक कोयल 'कुहू - कुहू' बोल उठी, जैसे इन्हें बधाई दे रही हो । देवसेना का रोम-रोम प्रेम, प्रसन्नता और आनंद से भर उठा था ।

(५)

"सरकार, वह भिखारी पकड़ लिया गया ।"

राजकुमार आनंदवर्द्धन अपने कई सेवकों के साथ अपने उद्यान में टहल रहे थे । इस सूचना को पाकर वह प्रसन्नता से इस तरह उछल पड़े, जैसे उन्हें कोई अलभ्य निधि मिल गई हो । उन्होंने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"क्या पकड़ लिया गया ?"

"हाँ, सरकार !"

"कहाँ पकड़ा गया ?"

"नगर से निकलकर देहात की ओर चला जा रहा था ।"

"अच्छा, उसको मेरे पास हाज़िर करो और जमादार को बुलाओ । मैं यहीं बैठता हूँ ।"

"बहुत अच्छा सरकार !"

रंग-बिरंगे पौधों और लताओं से मंडित सघन कुंजें, सुंदर पुष्पों से सुशोभित वृत्ताकार, त्रिभुजाकार और आयताकार क्यारियाँ, पत्थर की पिटी गोल, तिरछी और सीधी स्वच्छ सड़कें, थल-थल पर निर्मल जल के झीने छींटे उड़ाते फ़ौवारे और संगमरमर की सुन्दर परियाँ राजकुमार के उद्यान की शोभा बढ़ा रही थीं । यत्र-तत्र राजवैभव को प्रदर्शित करनेवाली जड़ाऊ और गद्दीदार कुरसियाँ और बेंचें पड़ी थीं । आनंदवर्द्धन एक कुंज के पास की एक बेंच पर प्रसन्नमुख आ बैठे । तुरत वह भिखारी चार अस्त्र-शस्त्रधारी सैनिकों के बीच में गिरफ़्तार हाज़िर किया गया, जैसे कोई बड़ा नामी डाकू या ख़ौफ़नाक जानवर हो । वह बहुत प्रसन्न और शांत था । उसके मुख पर भय का कोई भी चिह्न नहीं था । राजकुमार ने एक बार उसको बड़े ध्यान से देखा और कुछ चकित-से हो उठे—यह तो बहुत तेजवान् और किसी कुलीन कुल का युवक मालूम होता है । फिर उन्होंने उसकी दीन वेश-भूषा पर ध्यान दिया—एक ऐसे तुच्छ व्यक्ति के प्रति देवसेना का वैसा आकर्षण ! यह किस योग्य है !

भिखारी ने बड़ी नम्रता और आदर के साथ राजकुमार का अभिवादन किया और शांतभाव से उनके सम्मुख खड़ा हो गया । आनंदवर्द्धन कुछ पल को बिलकुल मौन भाव से उसका सौम्य, शांत और निर्भय मुख देखते रहे, फिर पूछा—"तुम कौन हो ?"

"मैं भिखारी हूँ ।"

"कौन काम करते हो ?"

"एक तुच्छ भिखारी का और काम ही क्या हो सकता है ! भिक्षाटन करता हूँ । आपको दो गाने सुना दिये, आपने ही दो-चार पैसे दे दिये ; उनको सुना दिया, उन्होंने ही कृपा की ।"

"तुम रहते कहाँ हो ?"

"जहाँ पाव-भर दाना मिल गया खा लिया, जहाँ संध्या हो गई टिक गया ।"

"तुम्हारा ख़ास घर कहाँ है ?"

"सारी पृथ्वी ही मेरा घर है ।"

"फिर भी कहीं जन्मस्थान तो होगा ?"

"जन्मस्थान का मुझे पता नहीं । मैं वृन्दावन के एक अनाथालय में पाला गया हूँ और वहीं शिक्षा भी पाई है ।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"इस नगर में तुम कब से हो ?"

"मैं अक्सर इस नगर में आता रहता हूँ। इधर डेढ़-दो वर्षों से बराबर यहीं और इसी के आसपास के देहातों में रहता चला आ रहा हूँ।"

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"राजतिलक।"

इसके बाद आनंदवर्द्धन कुछ देर मौन भाव से भिखारी का मुख देखते रहे, फिर जमादार से कहा—"ठाकुर साहब, तुम इससे पूछ-ताछ करो।" जमादार ने भिखारी की ओर मुख़ातिब होकर पूछा—"क्यों जी, कुमारी देवसेना से तुम्हारा कब से परिचय है ?"

"कैसे परिचय से आपका प्रयोजन है ?"

"जब पहलेपहल तुमने उनको और उन्होंने तुमको देखा हो ?"

"कोई दो-ढाई वर्ष हुए होंगे।"

"उनसे तुम्हारा कैसे परिचय हुआ और कैसा परिचय है ?"

भिखारी मौन। वह कौतूहलभरी दृष्टि से आनंदवर्द्धन का मुख देखने लगा।

"बोलते क्यों नहीं जी ?"—आनंदवर्द्धन ने तनिक रूखे स्वर में कहा।

"मेरे मान्य राजकुमार, मुझे क्षमा करें। इस संबंध में मैं आपसे कुछ भी कहना नहीं चाहता।"

"क्यों ?"—जमादार ने उग्र स्वर में पूछा।

"अपने जीवन के जिस रहस्य को मैं गोप्य रखना चाहता हूँ, उसके संबंध के किसी भी प्रश्न का आपको ही नहीं, मैं किसी को भी कोई उत्तर देना नहीं चाहता।"

"क्या तुम जानते नहीं हो, ये कौन हैं ?"—जमादार ने आनंदवर्द्धन की ओर संकेत करके क्रुद्ध स्वर में पूछा।

"हाँ, जानता हूँ। आप कृष्णगढ़ रियासत के राजकुमार हैं। आपके हाथों में सेना है, शक्ति है, अस्त्र-शस्त्र है और है प्रचुर वैभव। इसी से मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर नहीं देना चाहता; कौन जानता है, मेरा उत्तर महाराजकुमार को अप्रसन्न कर दे और उनकी अप्रसन्नता मेरे अनिष्ट का कारण बन जाय।"

"अगर उत्तर न देने ही से सरकार अप्रसन्न हो जायँ, तब ?"

"फिर जो भोगना होगा, भोग लूँगा।"

"लेकिन जो मैं पूछूँगा, वह बतलाने के लिए तुम तैयार नहीं हो ?"

"अगर बतलाने की बात होगी, ज़रूर बतलाऊँगा।"

"फिर बोलते क्यों नहीं, कुमारी देवसेना से तुम्हारा कैसे परिचय हुआ और कैसा परिचय है ?"

भिखारी मौन।

"क्या उससे तुम्हारा प्रेम है ?"—आनंदवर्द्धन ने पूछा।

भिखारी मौन।

"बोलो न जी ?"—जमादार ने गरजकर कहा।

भिखारी मौन।

"सरकार, यह तो बड़ा घुन्ना मालूम होता है।"—जमादार ने कहा—"क्यों जी, जो महाराजकुमार जानना चाहते हैं, वह तुम बतलाते क्यों नहीं ?"

भिखारी मौन।

"क्या नहीं बोलेगा ?"—जमादार ने भिखारी को बड़ी-बड़ी आँखें दिखाकर कहा—"क्या यह बात तुम नहीं जानते कि कुमारी देवसेना महाराजकुमार की प्रेमिका हैं ?"

"यह तो मैं नहीं जानता कि देवसेना महाराजकुमार की प्रेमिका हैं, लेकिन इतना अवश्य जानता हूँ कि देवसेना को महाराजकुमार अपनी प्रेमिका बनाना चाहते हैं, पर वह नहीं बनना चाहतीं।"

"उनके चाहने न चाहने से क्या होता है जी, जब उनकी मा ने उनको महाराजकुमार के हाथों में सौंप दिया है और सब बातें तय कर ली हैं ?"

भिखारी मौन।

"बोलो न जी, लड़की को उसका मा-बाप जिसके भी हाथों में सौंप देता है—जिसके साथ भी उसका विवाह कर देता है, वह उसी की हो जाती है, उसके ख़िलाफ़ चूँ भी नहीं करती; फिर जब कुमारी देवसेना की मा ने उनको महाराजकुमार के हाथों में सौंप दिया, तब वह सरकार की हो गई या नहीं ?"

भिखारी मौन।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"सरकार !"—जमादार साहब ने कहा—"इस बार ाने दीजिए, इससे अधिक पूछ-ताछ करने से कुछ ायदा नहीं। आप जो कुछ इसे दंड देना चाहें, जो छ डाँटना-दबाना या समझाना-बुझाना चाहें, इस बार सा करके इसे छोड़ दीजिए। अगर आपका हुक्म यह हीं मानेगा, फिर देखा जायगा।"

"नहीं, कम से कम इतना तो मालूम हो कि देव-ेना के साथ इसका कैसा परिचय है, कितना परिचय ; सिर्फ़ उसको देखने-जानने भर का परिचय है या धिक कुछ।"

"क्यों जी, सरकार जो कुछ पूछ रहे हैं, वह तुम तला क्यों नहीं देते ?"—ठाकुर साहब ने कहा।

भिखारी फिर भी मौन।

"क्यों जी, तुम क्या चाहते हो ?"—आनंदवर्द्धन ने पूछा।

"मैं क्या चाहूँगा भिखारी होकर ? आप जो कुछ चाहते हों या जिस लिए मुझे ख़ूनी की तरह पकड़वा मँगाया है, वह मुझे कहें, हुक्म दें ; मैं वैसा करने, मानने और सहने के लिए तैयार हूँ। मैं आपसे भागकर जाऊँगा ही कहाँ !"

"तो क्या मैं जो कहूँगा, वह करने और जो हुक्म दूँगा, वह मानने के लिए तुम तैयार हो ?"

"अगर करने और मानने के लायक़ बात होगी, तो ज़रूर करूँगा और मानूँगा।"

"अच्छा जमादार।"—आनंदवर्द्धन ने कुछ प्रसन्न होकर कहा—"इस बार इसको केवल समझाकर छोड़ दो। अगर बात न माने, तो फिर इसको मेरे पास हाज़िर करना।"

"देखो जी !"—जमादार ने कहा—"तुम्हारी तक़दीर अच्छी है, इससे इस बार सरकार की तुम्हारे ऊपर दया हो गई। आगे से समझ लो—अगर जानते न होओ, तो आज से जान लो कि कुमारी देवसेना महाराजकुमार की प्रेमिका हैं और हो सका तो शीघ्र रानी भी बन जायँगी। वह कोई बाज़ारू वेश्या या पेशा करनेवाली नर्तकी नहीं। इससे आज मैं तुम्हें सावधान किये देता हूँ कि अगर उनके संबंध की तुम्हारे बारे में कोई भी शिकायत आई, तो तुम्हारी जान की ख़ैर नहीं। अगर तुम अपना कल्याण चाहते हो, तो आज से उनकी ओर देखना, अगर बोलते हो तो बोलना, उनके सामने या उनके नज़दीक जाना, या उनके मोहल्ले में फेरी लगाना बिलकुल बंद कर देना। समझे ?"

भिखारी मौन। उसने सोचा, जो कुछ होना है, आज ही क्यों न हो जाय।

"बोलो जी, तुम्हें मंज़ूर है न ?"

"जमादार साहब, क्षमा करें। मैं इस आज्ञा के मानने में असमर्थ हूँ।"

"असमर्थ हूँ !"—जमादार ने गरजकर कहा—"इसका क्या मतलब ?"

भिखारी मौन।

"क्यों जी भिखारी, क्या बात है, असमर्थ क्यों हो ?"—राजकुमार ने पूछा।

"मेरे मान्य राजकुमार !"—भिखारी ने कहा—"आज के पहले अगर आपकी यह आज्ञा हुई होती, तो मैं सहर्ष मान लेता ; लेकिन अब मैं इसके मानने में बिलकुल असमर्थ हूँ।"

"क्यों ?"

"आज ही प्रातः मैं देवसेना से प्रतिज्ञाबद्ध हुआ हूँ कि आज से अब एक बार रोज़ मैं उससे भेंट करूँगा।"

"प्रतिज्ञाबद्ध हुआ हूँ !"—राजकुमार ने क्रोध से भ्रुकुटी चढ़ाकर कहा—"जमादार, क्या बात है ? तुम तो कहते हो, देवसेना से इसका कोई भी परिचय नहीं, उसने अपनी सरलता और भोलेपन के कारण उस दिन इसको नृत्य-सभा में देखकर मुसकिरा दिया था ! और यह क्या कहता है ?"

"सरकार, हम लोगों को तो कोई भी और बात नहीं मालूम हुई थी, और न ऐसी कोई बात है। यह दुष्ट व्यर्थ उनको बदनाम करना चाहता है।"

"क्यों जी भिखारी।"—राजकुमार ने पूछा—"प्रतिज्ञाबद्ध किस बात से हुए हो ? क्या देवसेना से तुम्हारा कोई संबंध है ?"

भिखारी मौन।

"बोलता क्यों नहीं जी ?"—जमादार ने गरजकर कहा।

भिखारी मौन।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"सरकार !"—जमादार ने कहा—"इसको छोड़ने से काम नहीं चलेगा। इसकी बातों से मालूम होता है, अवश्य इसमें कोई रहस्य है। अब इसको कोई न कोई दंड देना ही पड़ेगा।"

"क्यों जी भिखारी !"—राजकुमार ने पूछा—"क्या तुम दंड भोगने के लिए तैयार हो ?"

"अपने किस अपराध का ?"

आनंदवर्द्धन कुछ विस्मित-से होकर जमादार का मुख देखने लगे।

"क्यों जी !"—जमादार ने पूछा—"उस प्रदर्शन के दिन नृत्यसभा में कुमारी देवसेना को देखकर तुम मुसकिराये क्यों थे ?"

"अगर मुसकिराना कोई अपराध है, तो उसके लिए मैं दंड भोगने को तैयार हूँ।"

"सरकार, यह बड़ा उद्दंड मालूम होता है।"—जमादार ने कहा—"इसको अवश्य कोई दंड देना ही पड़ेगा।"

"इसकी बातों से तो स्पष्ट मालूम होता है कि इसका देवसेना पर और देवसेना का इस पर प्रेम है।"—आनंदवर्द्धन ने कहा।

"कुमारीजी का इसके ऊपर क्या प्रेम होगा।"—जमादार ने कहा—"उनके सामने यह किस गिनती में है। उनके चरण-रज के बराबर भी तो नहीं। इसके-जैसे तो उनके नौकर के भी नौकर हैं। यह तो जितना ज़िंदगी-भर में भीख माँगकर पैदा करेगा, उतना उनके ऊपर दस मिनटों में ख़र्च होता है। फिर वह क्या सोचकर और क्या देखकर इससे प्रेम करेंगी। हाँ, इनका दिमाग़ कुछ ख़राब मालूम होता है, मालूम होता है, यह उनके रूप पर आशिक़ हो गये हैं—इसलिए कि शायद इनका काल अब नज़दीक आ गया है।"

"क्यों जी।"—जमादार ने भिखारी की ओर मुड़कर कहा—"यह जान-बूझकर कि कुमारी देवसेना महाराजकुमार की प्रेमिका हैं, उन पर तुमने क्यों बुरी दृष्टि डाली ? क्यों उनसे प्रेम करने का साहस किया ?"

"हाय ! ये कैसे आदमी हैं। यह भी नहीं जानते कि प्रेम क्या वस्तु है !"—भिखारी ने सोचा, फिर कहा—"जमादार साहब, क्या प्रेम भी किसी के करने से होता है ? वह तो एक ऐसा दिव्य देन है—तन-मन, हृदय-प्राण और जीवन को पवित्र एवं पुलकित बनानेवाली एक ऐसी आत्मिक शक्ति है, जो दो हृदयों को बलपूर्वक दूर-दूर से खींचकर एक बना देती है; क्षण-भर में दो अनजानों को परिचित और दो परायों को अपने प्राणों का संबंधी बना देती है—इस तरह कि उनमें से एक अगर अपने को उस आकर्षण से रोकना भी चाहे, तो सफल न हो सके। फिर प्रेम किसी से किया कैसे जा सकता है ?"

"सरकार !"—जमादार ने कहा—"यह तो बड़ा उद्दंड मालूम होता है ! बिलकुल बढ़-बढ़कर बातें करता है। इसको बिना दंड दिये तो काम ही नहीं चल सकता। जल्दी कुछ हुक्म दीजिए।"

"कौन दंड दिया जाना चाहिए ?"—आनंदवर्द्धन ने पूछा।

"मेरी राय में तो इसको गोली मार देनी चाहिए। सरकार हुक्म दें, अभी मैं इनको साफ़ कर दूँ। और इनकी लाश सरिता में बहवा दूँ—इतनी सफ़ाई से कि किसी को कुछ पता भी न चले।"

"क्यों जी भिखारी !"—राजकुमार ने पूछा—"क्या तुम दंड ही भोगना चाहते हो ?"

"मेरे मान्य राजकुमारजी !"—भिखारी ने प्रसन्न स्वर में कहा—"अपने जानते मैंने कोई भी अपराध नहीं किया। अगर आप मुसकिराना, किसी की ओर दृष्टि उठाना या किसी से प्रेम करना अपराध समझते हों, तो आप बड़े हैं, राजा हैं, आपके हाथों में अस्त्र-शस्त्र हैं; मैं तुच्छ भिखारी हूँ, असहाय हूँ, निर्बल हूँ—आप जो चाहें मुझे दंड दे सकते हैं, मैं सब सहने के लिए तैयार हूँ।"

"तुम्हें अपने प्राण प्रिय हैं या प्रेम ?"

"अह-अह-अह-अह ! कितना मधुर प्रश्न है !"—भिखारी ने हह-हह हँसकर कहा—"प्रेम प्रिय है।"

"क्या यह पागल है ?"—राजकुमार ने विस्मित दृष्टि से जमादार को देखते हुए पूछा।

"मालूम तो ऐसा ही होता है।"

"राजकुमारजी।"—भिखारी ने कहा—"प्रेमी तो पागल होता ही है। जो अपने प्रिय के प्रेम में—हृदय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुख में, जीवन के आनंद में पागल नहीं हो गया, फिर प्रेमी ही कैसा !"

"जमादार।"—राजकुमार ने कहा—"तब तक तुम को महल की कालकोठरी में बंद करा दो; मैं के संबंध में विचार कर लूँ, फिर जो मुनासिब होगा, दिया जायगा।"

"सरकार का जो हुक्म !"—कहकर जमादार ने पाहियों को भिखारी को कालकोठरी में बंद करने आज्ञा दे दी। वे लेकर चले गये।

"जमादार !"—राजकुमार ने पूछा—"इसको कौन दिया जाना चाहिए ?"

"सरकार, मेरी राय में तो इसको गोली मार देना अच्छा है। एक ही बार में सारा झंझट तय हो यगा।"

"नहीं-नहीं, छोटी-सी बात के लिए एक दीन खारी की जान लेने से क्या फ़ायदा ! अगर देवसेना सी ही सच्ची बनी रहेगी, इस पर प्रेम नहीं करेगी, तो सके प्रेम करने ही से क्या ! लेकिन किसी प्रकार देव-ना से इसका संपर्क बिलकुल बंद करा देना चाहिए, समें यह देवसेना को कभी देख ही न सके। इसके लिए कोई ऐसा दंड तजवीज़ करो, जिससे यह सदा के लिए देवसेना से कहीं दूर हो जाय।"

"यह कौन बड़ी बात है सरकार !"—जमादार ने कहा—"आप कुमारीजी को हुक्म दे दीजिए कि वह अपने महल से बाहर न निकलें, उनके महल पर चौबीसो घंटे के लिए अपना पहरा बैठा दीजिए; और इसको—अगर इसको अधिक दिनों तक यहाँ महल में बंद रखा जायगा, तो भेद खुल जायगा और तब अनर्थ हो जायगा। इससे इसको मैं कल ही कोई जुर्म लगाकर राज्य के न्यायालय में भेज देता हूँ और काफ़ी गवाहियाँ दिलाकर इसको कोई लंबी सज़ा करवा देता हूँ। बच्चू कारागार में पड़े सड़ते रहेंगे। बस, सब झगड़ा ही तय हो जायगा।"

"हाँ, ठीक है, ऐसा ही करो; और इस संबंध में मुक्ताबाई को बुलाकर उससे भी राय-मशविरा कर लो।"

"बहुत अच्छा सरकार, मैं अभी बुलवाता हूँ।"—जमादार ने हाथ जोड़कर कहा।

आनंदवर्द्धन उठकर कुछ चिंतित-से उद्यान में टहलने लगे। जमादार लंबी सलाम बजाकर चले गये।

(क्रमशः)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अछूत

श्रीपीयूषबिन्दु घोष बी० ए०, एल्-एल्० बी०

बदलू चमार प्रायः तीस वर्ष पीछे अपने देस लौटा। अब उसकी आयु क़रीब पचपन साल की थी। उसने अपना सारा जीवन परदेस ही में बिताया। बड़े-बड़े शहरों में वह मेहनत-मजूरी करके अपना पेट पालता था। उसने अपने को शादी-ब्याह के झंझटों से सदा दूर रक्खा, इसलिए उसको पूरी आज़ादी थी और अपनी अकेली जान के लिए उसे कभी कोई फ़िक्र नहीं हुई। सारा जीवन मज़े उड़ाने के बाद बुढ़ापे में उसे होश आया कि अब वह किसके पास रहेगा। जीवन की सन्ध्या में जब मनुष्य सारी उम्र की मेहनत से थका-माँदा हो जाता है, तब उसे स्त्री-पुत्र-परिवार का सबसे अधिक प्रयोजन होता है, ताकि उसे सेवा और आराम मिले। ख़ैर, अब पश्चात्ताप से क्या फल होता? उसने आख़िर यह निश्चय किया कि अपने गाँव लौट जायँ। घर में भी कोई न था। उसकी मा उसकी बाल्यावस्था ही में मर गई थी। उसके बाप ने उसका पालन-पोषण करके उसको बड़ा किया था। उसके देहान्त के बाद ही बदलू गाँव छोड़कर परदेस चला गया। उसका घरद्वार भी बिना मरम्मत के आँधी-पानी के अत्याचार वर्षों सहन करते-करते बिलकुल गिर गया था और उसके पड़ोसियों ने लावारिस माल समझकर, घर के दरवाज़ों व धन्नियों का उचित उपयोग किया। गाँव के ज़मींदार रहमत मियाँ ने ज़मीन पर क़ब्ज़ा कर लेना उचित समझा। बदलू के गाँव पहुँचने पर रहमत मियाँ ने उससे कहा—"बदलू, तुझे रहने की क्या फ़िक्र है! तू मेरी कोठी के बाहर की कोठरी में पहरे पर रहा कर। तेरे खाने का ख़र्च भी मैं दूँगा। तेरे आगे-पीछे कौन है, जो तू घर बनवावेगा?" तब से बदलू वहीं रहने लगा। उसको कोई ख़ास काम नहीं करना पड़ता था। कभी-कभी रहमत मियाँ की चिलम भर देता था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनके फ़ुरसत के समय में अनेक शहरों की आप-
ी कहानियाँ सुनाता था। गाँव के कई आदमी
के पास आकर बड़े शहरों की ख़बरें बड़े आश्चर्य
ुनते थे।

गाँव में बदलू के बचपन के साथियों में सिवा ललतू
ार के और कोई न था। वह रोज़ ललतू की दूकान
उससे मिलने जाता था। ललतू भी अपने बाल्य-
ु को पाकर बड़ा प्रसन्न था। दोनों अपने दुःख-सुख
बातें घंटों किया करते थे। ललतू का भी, इस
ार में, उसके एक दस साल के पुत्र भरोसे के सिवा,
उसकी मा उसे क़रीब तीन वर्ष का छोड़कर मरी थी,
ई कोई न था। उसने अपने मातृहीन बालक को बड़े
ड़-प्यार से पाला था, जिससे वह बड़ा उपद्रवी हो
ा था, और इसी कारण अपने पड़ोसियों से उसकी
ा अनबन रहती थी। थोड़े दिनों में बदलू भी अपने
ल से उस बच्चे को चाहने लगा। उसके लिए प्रायः
ाई या और कोई चीज़, जो वह माँगता, बदलू ला
ा था। इस प्रकार दोनों मित्रों के दिन सुख से ही
तीत हो रहे थे। परन्तु ईश्वर की कुछ और इच्छा
। ललतू को कालरा हो गया, और बेचारा दो-चार
न के अन्दर ही इस संसार से चल बसा। मरने से पहले
लतू ने बदलू से कहा—"भैया! मेरे बाद भरोसे
इस दुनिया में कोई अपना नहीं रहेगा। उसे मैं
को सौंपे जाता हूँ।"

कुछ पड़ोसी हिन्दुओं ने ललतू के क्रिया-कर्म का प्रबन्ध
या। परन्तु बालक भरोसे के रहने का कुछ उपाय न
या। हरएक यही सोचता था कि कहीं वह अनाथ
लक उसके गले न पड़े। यह देखकर बदलू ने भरोसे
अपने पास रख लिया, और उसका पालन-पोषण
ने लगा।

ललतू की मृत्यु के चार महीने बाद पंडित रामनाथ
नपुर से अपने गाँव को लौटे। उन्होंने यह हाल
कर लोगों से कहा—"बड़ी लज्जा की बात है। एक
ोनार का बेटा एक चमार के घर में पलता है। गाँव
में क्या किसी भली जाति के घर में उसको स्थान नहीं
मिला?" सबने उनकी इस बात का समर्थन किया।
परन्तु न स्वयं पंडित रामनाथ और न कोई और ही
भरोसे को अपने घर में रखने को तैयार था। आख़िर
सब लोगों की राय यह हुई कि भरोसे को बुद्धू
सोनार के हवाले किया जाय। वह बुलाया गया। उससे
सबने कहा—"बुद्धू, ललतू के बेटे भरोसे को अब से
तुम अपने पास रक्खो। वह आजकल बदलू चमार के
पास रहमत मियाँ के घर में रहता है। यह भी हो
सकता है कि बाद में वह मुसलमान बना लिया जाय।
इसलिए तुम्हारा फ़र्ज़ है कि तुम उसे अपने पास रक्खो।"
यह सुनकर बुद्धू घबरा गया। उसने सोचा, यह बला
कहाँ से गले पड़ी। भरोसे अभी किसी काम करने
लायक़ नहीं। इसे कहाँ से खिलाऊँगा? उसने धीरे-
धीरे कहा—"आप लोगों में से कोई भरोसे को क्यों
नहीं रख लेता। अकेले मेरा ही नहीं, गाँव के सभी
हिन्दुओं का फ़र्ज़ है कि वह बेधरम न हो। हम ग़रीब
हैं, आप सब पैसेवाले हैं।" इसका उत्तर कोई क्या
देता। सब थोड़ी देर चुप रहे। फिर एक ने चिल्लाकर
कहा—"गाँव में अब अकेला तू ही सोनार है, इसलिए
तेरा फ़र्ज़ है उसको रखना।" सब लोगों ने हाँ
में हाँ मिला दी। भला गाँव भर के हुक्म के ख़िलाफ़
कौन बोल सकता है। वह बेचारा आख़िर राज़ी
हो गया।

दूसरे दिन सन्ध्या के समय जब रहमत मियाँ
अपनी कोठी के सामने आरामकुर्सी पर लेटे हुए हुक्का
पी रहे थे और सामने तख़्त पर उनका ज़िलेदार लाला
बाबूराम उनके कुछ असामियों से लगान ले-लेकर
रसीदें दे रहा था, गाँव के क़रीब-क़रीब सब हिन्दू
उनके पास पहुँचे। रहमत मियाँ ने उन सबको आदर
से बैठने को कहा, और हँसकर पूछा—"क्या मामला है
कि आज सारे पंचों का धावा मेरे मकान पर हुआ?"
उनमें से सबसे बूढ़े ने आगे बढ़कर कहा—"मियाँ
साहब, हम आपके पास इसलिए हाज़िर हुए हैं कि
आपके घर में बदलू चमार के साथ ललतू सोनार का
बेटा भरोसे रहता है। हम सबने यह ठीक किया है कि
भरोसे अब से बुद्धू सोनार के संग रहेगा; क्योंकि एक
चमार के पास उसका रहना ठीक नहीं।"

यह सुनकर रहमत मियाँ के प्रसन्नमुख पर गंभीरता
छा गई। उन्होंने कहा—आप लोगों की यह राय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अच्छी नहीं। इससे भरोसे और बदलू, दोनों को बड़ा दुःख होगा। परन्तु उन लोगों ने नहीं माना। रहमत मियाँ ने बदलू को पुकारा। वह लाठी टेकता हुआ आ पहुँचा। उन्होंने कहा—"बदलू, जानते हो, आज गाँव के लोग क्यों आये हैं? यह चाहते हैं कि तुम भरोसे को इनके हवाले कर दो। अब से वह बुद्धू सोनार के घर रहेगा; क्योंकि तुम अछूत हो।"

यह सुनते ही बदलू का सिर चकराने लगा, आँखों के सामने अँधेरा छा गया, उसके पैर लड़खड़ाने लगे, उसके मुख से एक करुण स्वर निकला और वह ज़मीन पर गिर पड़ा। इतने में भरोसे दौड़ता हुआ वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथ में एक टुकड़ा रोटी देखकर सब लोग 'राम-राम' करने लगे। भरोसे ने बदलू से पूछा—"चाचा, तुमका चोट तो नाहीं आई?" बदलू ने भरोसे को अपनी गोद में ले लिया। उसका सारा शरीर क्रोध व दुःख से काँप रहा था। उसने चिल्लाकर कहा—"हुज़ूर, इनसे पूछिए कि ललतू को मरे इतने दिन हो गये, अब भरोसे की फ़िक्र इनको क्यों हुई? इतने दिन ये सब क्या करते रहे? ललतू की लाश उठवाने की फ़िक्र तो इनको न हुई, उसके प्यारे बच्चे को अपने पास रखने को कोई तैयार न हुआ। तभी तो मैं इसे ले आया। हुज़ूर, आप इंसाफ़ करें, और इनकी बात न सुनें।"—यह कहकर उसने भरोसे को अपने हृदय से लगा लिया।

यह दृश्य रहमत मियाँ देर तक देखते रहे। फिर पंचों की ओर मुँह फेर के बोले—"हिन्दुओं की कमज़ोरियों को देखकर मुझको दुःख होता है और शर्म आती है। अगर ललतू के मरने के बाद मौक़ा पाकर कोई मुसलमान भरोसे की परवरिश करता और उसे मुसलमान बना लेता तो गाँव के किसी भी हिन्दू के कान में जूँ तक नहीं रेंगती। लेकिन चूँकि एक हिन्दू, जिसको तुम लोग अछूत कहते हो, भरोसे को इतनी मुहब्बत से अपने पास रक्खे हुए है, इसलिए तुम सब इतने नाराज़ हो। आज हिन्दुस्तान की आबादी जो एक तिहाई मुसलमान हैं, वे कहाँ से आये? याद रक्खो, ख़ुद हिन्दुओं ने ज़बरदस्ती उन्हें अपना मज़हब छोड़ने को मजबूर किया, वर्ना मुट्ठी भर मुसलमानों की क्या हिम्मत थी कि इतनी बड़ी तादाद को मुसलमान बनाते। लेकिन अब भी हिन्दुओं को अक़्ल न आई। ख़ैर! याद रक्खो, किसी के पास भी भरोसे रहे, अगर उसको ज़रा भी तकलीफ़ हुई तो उसकी ख़ैर नहीं।" फिर बदलू की ओर फिरकर कोमल स्वर से बोले—"भैया बदलू! बहुत प्यार कर चुके, अब भरोसे को इनके साथ जाने दो।" बदलू ने बड़ी कातरता और बेबसी से भरोसे की ओर देखा। उसके हृदय से एक ठंडी साँस निकली। उसने भरोसे को अपने हृदय से अलग कर दिया। एक आदमी ने उसका हाथ पकड़कर घसीटा, और वह चिल्लाकर रो उठा, "हम चाचा के पास से न जायँगे।" परन्तु हृदयहीन लोग उसको ले गये।

बदलू बड़ी देर तक दोनों घुटनों के बीच में सिर रक्खे रोता रहा। रहमत मियाँ ने कहा—"बेकार दुःख न करो, मेरे बच्चों को लेकर अपना दिल बहलाओ।" उस दिन से उनके बच्चे ज़्यादा समय बदलू के पास रहने लगे। परन्तु हृदय जिसके कारण व्याकुल होता, उसके बिना दूसरे को पाने से कहीं शान्ति मिल सकती है।

यह दुःख बदलू के बुढ़ापे के लिए बहुत था। वह इतना दुखी हुआ कि उसने खाना-पीना भी छोड़ दिया। थोड़े दिनों के बाद वह बीमार पड़ गया। एक दिन रहमत मियाँ उसको देखने के लिए उसकी कोठरी में गये। वह सो रहा था। सोते-सोते चिल्लाने लगा—"भरोसे, भरोसे।" यह सुनकर रहमत मियाँ को बड़ा दुःख और दया हुई। उन्होंने उसको जगाकर कहा—"भैया बदलू! तुम्हारी यह बीमारी सिर्फ़ भरोसे की याद से हुई है। तुम नींद में भी उसे नहीं भूलते। तुम्हारी इतनी मुहब्बत बिलकुल बेकार है; क्योंकि लोगों ने उसकी क़दर नहीं की। लिहाज़ा तुम इस तरह अपने को क्यों बरबाद करते हो? पागल न बनो। ठीक तरह दवा-पानी करो।" रहमत मियाँ की दृष्टि दूसरी ओर एक मिट्टी की हाँडी पर पड़ी, जिस पर एक टुकड़ा मैला कपड़ा ढका था और उस पर हज़ारों मक्खियाँ बैठी थीं। उन्होंने विरक्त भाव से पूछा—"इस हाँडी में क्या गन्दगी भर रक्खी है, जो इतनी मक्खियाँ भिनक रही हैं?"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बदलू को भूली हुई बात याद आई। उसने तुरंत कहा—"भरोसे के खातिर मैंने मिठाई रक्खी है। उसे मिठाई बड़ी रुचती है।" यह कहते-कहते उसके नेत्रों में आँसू भर आये। उसके स्वर में बड़ी करुणा थी। रहमत मियाँ वहाँ से धीरे-धीरे चले गये।

उसी रात को प्रायः बारह-एक बजे, जब सारे गाँव में सन्नाटा छाया हुआ था, केवल कभी-कभी सियारों की विकट चीत्कार सुनाई देती थी, बदलू सोता-सोता चौंककर उठ बैठा। उसकी कोठरी में एक बत्ती टिमटिमा रही थी। उसने बड़ी शीघ्रता से उस मिट्टी की हाँडी से मिठाई निकालकर एक मैले अँगोछे में बाँधी। उसकी तेज़ी देखकर यह जान पड़ता था कि उसे अपने जीवन का सबसे मुख्य काम आज ही समाप्त करना है। वह पोटली को लिये हुए कोठरी के बाहर आया और धीरे से फाटक खोलकर बाहर निकल गया। रात अँधेरी थी। आकाश बादलों से घिरा हुआ था। जाड़े के दिन थे। ठंडी हवा बहुत तेज़ चल रही थी। लोग अपनी झोपड़ियों में लिहाफ़ या कंबल लपेटे सो रहे थे। ऐसे समय बदलू अकेला बाहर घूम रहा था। उसको जाड़ा नहीं मालूम होता था; क्योंकि ज्वर से उसका शरीर बहुत गरम था। उसको किसी प्रकार का डर भी नहीं लगता था; क्योंकि हृदय में प्रेम रहने से कायर पुरुष भी शूरवीरों से बढ़ जाता है।

बदलू गिरता-पड़ता किसी तरह बुद्धू सोनार के घर की ओर जा रहा था। रास्ते में पानी बरसने लगा। उसकी भी उसे परवा न थी, बल्कि उससे सिर-दर्द में उसे आराम मिला। उसका केवल एक ही ध्यान, एक ही लक्ष्य था—भरोसे को कब मिठाई खिलावेगा।

ज्यों-त्यों करके वह बुद्धू के घर तक पहुँचा। दरवाज़े को धक्का देकर धीमे स्वर से 'भरोसे' कहकर पुकारने लगा। एक तो उसकी वृद्धावस्था थी, उस पर रोग और उपवास से वह बड़ा दुर्बल हो गया था, इसलिए ज़ोर से आवाज़ नहीं निकलती थी। उस पर आँधी-पानी का उत्पात। दरवाज़े पर धक्के की आवाज़ से बुद्धू जाग पड़ा। उसको किसी की नाक से बोलने की धीमी आवाज़ सुनाई पड़ी। वह डरा कि ऐसी अँधेरी रात और आँधी-पानी में कौन मनुष्य आ सकता है। भूत समझकर वह लिहाफ़ से और भी अच्छी तरह मुँह को लपेटकर लेट गया। भरोसे बेसुध सो रहा था।

बहुत देर तक पुकारने के बाद भी जब भरोसे नहीं निकला तो बदलू निराश होने लगा। अब उसको अपनी शारीरिक दुर्बलता और कष्ट का पता चलने लगा। बुख़ार की तकलीफ़ से वह बेचैन होने लगा। दुर्बलता के कारण अब उससे खड़ा नहीं रहा गया। वह दरवाज़े के सामने गिरकर मूर्च्छित हो गया।

सवेरे आते-जाते लोगों की दृष्टि बदलू पर पड़ी। गाँववाले उसे पहचानते थे। उन्होंने बुद्धू को पुकारा। इतने में बहुत से और आदमी भी जमा हो गये। रहमत मियाँ भी सवेरे घूमते हुए उधर ही निकले और इतने आदमियों को इकट्ठा देखकर वहीं आ गये। बदलू को उस प्रकार वहाँ पड़े देखकर वह सन्नाटे में आ गये। उन्होंने जल्दी से उसके शरीर पर हाथ लगाया तो उसे बिलकुल ठंडा और जकड़ा हुआ पाया। इतने में बाहर का कोलाहल सुनकर भरोसे भी दौड़ता बाहर आया। उसने जब बदलू का यह हाल देखा तो चिल्लाकर रो पड़ा—"चाचा! चाचा!!" वह दौड़कर उसकी छाती पर जा गिरा और बेहोश हो गया।

इस करुण दृश्य को देखकर सबकी आँखों में आँसू भर आये। सभी अपने दिलों में उनके साथ किये हुए अन्याय को स्वीकार करते थे। थोड़ी देर बाद रहमत मियाँ ने घर जाते हुए कहा—"जो होना था, हो गया। अब भरोसे के मुँह पर पानी के छींटे देकर उसे होश में लाओ, और बदलू की अच्छी तरह क्रियाकरम करो। सारा ख़र्चा मैं दूँगा।" उनके नेत्र सजल थे।

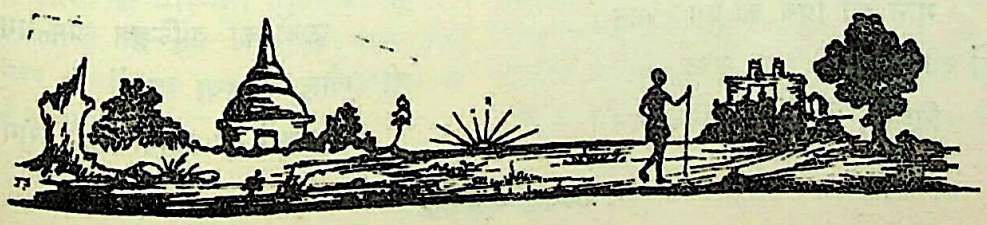

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीकामताप्रसाद शुक्ल बी० ए०

प्राची में झलकी उषा-किरन।
क्षितितल में बिखरा अरुण राग,
संसृति प्रसुप्त अब गई जाग।
गुञ्जरे भृङ्ग पी - पी पराग;
छहरे दूर्वा - दल पर हिम-कन।
प्राची में झलकी उषा-किरन।

बन अम्बर-मृग थे बिहर रहे;
ऊषा की अंचल कोर गहे।
घन लुप्त हुए वे रहे - सहे;
ले गई उड़ाकर प्रांत - पवन।
प्राची में झलकी उषा-किरन।

कमनीय कान्ति है पनघट की;
सुषमा अभिराम नदी - तट की।
भर नीर चलीं सिर धर मटकी;
मग करती क्रीड़ा युवती - गन।
प्राची में झलकी उषा-किरन।

उद्यान हँसे, विकसीं कलियाँ।
तज नीड़ उड़ीं बिहगावलियाँ।
कर उठी प्रकृति नव रँगरलियाँ;
हो रहे चराचर सकल मगन।
प्राची में झलकी उषा-किरन।

परस्पर

कुँ० हरिश्चन्द्रदेव वर्मा "चातक" कविरत्न

फूलों के कम्पित अधर खुले
गाने को प्रिय का प्रेम - गान।
भावों की घनता से न शब्द,
निकले, भ्रमरों ने लिया जान।

भन-भन कर गाने लगे भ्रमर
फूलों का वाञ्छित प्रेम-राग।
जी खोल लुटाया फूलों ने
भ्रमरों को अपना बहु पराग।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नेस्टर का नगर और भारतीय इतिहास

श्रीफ़तेहसिंह एम्० ए०

ग्रीस में, पेलोपोनीज़ पर्वत के निकट ही, नेवारिनो की सुप्रसिद्ध खाड़ी है, जिसका मुख एक वर्तुलाकार कँकरीले अन्तरीप से लगभग बन्द-सा हो गया है। इस अन्तरीप को प्राचीन काल में पायलस (Pylos) कहते थे। पायलस अपने प्राकृतिक दृश्य के लिए तो सदैव विख्यात रहा ही है; परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से भी यह स्थान बड़े महत्त्व का है। १२४ ई० पू० में, पारसी शाह ज़ेरेक्ज़ेस के जहाज़ी बेड़े की युगान्तरकारी दुर्घटना का स्थल यही था, और वर्तमान काल में भी ग्रीस को स्वतन्त्र करनेवाला जल-युद्ध एजियन सागर में यहीं लड़ा गया था। चार-पाँच सप्ताह पहले, ग्रीस के पुरातत्त्व-विभाग ने इस स्थान की खुदाई आरम्भ की है। उससे जो वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, उन्होंने पायलस का महत्त्व और बढ़ा दिया है।

ग्रीस के महाकवि होमर ने भी एक पायलस का ज़िक्र किया है। उसके राजा का नाम नेस्टर था, जो बड़ा ही बुद्धिमान् और अच्छी प्रकृति का व्यक्ति था। होमर ने उसका गुणगान और उसके नगर की प्रशंसा बड़े ही सुन्दर शब्दों में की है। उसको विद्या, कला और साहित्य का प्रेमी कहा गया है। उसकी प्रजा-वत्सलता और वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई है। अन्त में कहा गया है कि इस राजा का पतन हुआ और वह भव्य नगर एक भयानक अग्निकाण्ड में जलकर ख़ाक हो गया।

कुछ विद्वानों का मत था कि नेस्टर का पायलस और नेवारिनो पर का पायलस एक ही है। परन्तु यह मत केवल एक अनिश्चित अनुमान के रूप में ही था। इसको सिद्ध करने के लिए स्थान के नाम के अतिरिक्त और कोई भी सबूत न था। वहाँ पर माइसेनियन (Mycenaen) या होमरिक सभ्यता का कोई चिह्न भी प्राप्त न हुआ था। इसके विपरीत, नेवारिनो खाड़ी के उत्तर में बहुत-सी माइसेनियन क़ब्रें तथा अन्य चीज़ें मिली थीं। इसलिए विद्वानों ने सोचा कि होमर-युग की माइसेनियन सभ्यता तथा नेस्टर का पायलस संभवतः यहीं पर रहे होंगे, न कि नेवारिनो पर के पायलस में, जहाँ कि जगह के नाम के अतिरिक्त माइसेनियन सभ्यता का कोई चिह्न नहीं मिलता।

परन्तु हाल में प्रोफ़ेसर ब्लेगेन, डा० कौरोनिपोतिस तथा प्रो० हिल ने इस स्थान (Pylos) पर जो पुरातत्त्व की खोज की है, उससे यह सम्भव है कि नेस्टर के पायलस का भी इसी स्थान पर होना सिद्ध हो जाय। पहले कुछ क़ब्रों की खुदाई की गई। इतनी अधिक संख्या में क़ब्रों के होने से अनुमान किया गया कि पास ही कहीं आबादी भी रही होगी। काफ़ी जाँच-पड़ताल करने पर, एक ऊँची पहाड़ी पर आबादी के चिह्न दिखाई पड़े। खुदाई अभी शुरू ही हुई थी कि विद्वानों को विश्वास हो गया, यह स्थान अवश्य ही कोई माइसेनियन महल रहा होगा। चारों ओर चौड़ी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दीवारों की बनी हुई उस इमारत में एक 'मेगारो' ढंग का सुन्दर हाल निकला। नींव धरातल से मिली हुई होने के कारण यह स्पष्ट सिद्ध हो गया कि वहाँ पर कोई और इमारत बाद में नहीं बनी थी। अतः यह निश्चित हो गया कि वहाँ पर एक ही सभ्यता का प्रचार हुआ और इसलिए वहाँ की प्राप्त हुई वस्तुओं से उस सभ्यता का लगभग शुद्ध रूप ज्ञात होना सम्भव था।

यह सभ्यता होमरिक-युग की ही सभ्यता है, इसका भी पर्याप्त प्रमाण मिल चुका है। वहाँ जो मिट्टी के बर्तन आदि मिले हैं, उनसे यह सिद्ध होता है कि वह सभ्यता १२०० ई० पू० की है, जिस समय सभी माइसियन नगरों को नष्ट-भ्रष्ट एवं भस्मीभूत कर दिया गया था। तारीफ़ की बात तो यह है कि इमारत की नींव से भी पता चलता है कि वहाँ अवश्य ही कोई भयानक अग्निकाण्ड हुआ होगा। अतः होमर के वर्णन की पुष्टि हो जाने से, बहुत कुछ निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि नेस्टर का नगर यहीं था।

सबसे बड़े मार्के की चीज़ जो यहाँ मिली है, वह है मिनोअन-लिपि में लिखी हुई ईंटें। ऐसी लगभग तीन सौ ईंटें मिल चुकी हैं, और अधिक मिलने की आशा है। इनमें पाई जानेवाली लिपि मिनोअन का वह रूप है, जिसे 'लीनिअर स्क्रिप्ट बी' (Linear script B.) कहते हैं। यह लिपि पहले क्रीट आदि टापुओं में तो बहुतायत से मिल चुकी थी, परन्तु ग्रीस में इसका कहीं पता भी न था। इसलिए विद्वानों का अनुमान था कि कदाचित् मिनोअन सभ्यता का स्रोत विदेशी रहा होगा। अब इस खोज से होमरिक ग्रीस और मिनोअन क्रीट का सांस्कृतिक सम्बन्ध तो सिद्ध हो ही गया, साथ ही मिनोअन-लिपि के पढ़े जाने की सम्भावना भी प्रतीत हो रही है। किन्हीं-किन्हीं ईंटों पर दो लिपियों के पाये जाने से, प्राचीन मिसरी भाषा की भाँति इसका भी पढ़ा जाना सम्भव हो सकेगा। मिनोअन-लिपि के अक्षरों का वर्णिक मूल्य ज्ञात हो जाने पर क्रीट और एशिया माइनर के समीपवर्ती द्वीपसमूह के इतिहास पर भी कुछ प्रकाश पड़ने की सम्भावना है; क्योंकि वहाँ पर मिले हुए मिनियन-लिपि-बद्ध लेख अभी तक व्यर्थ ही पड़े हुए हैं।

इस ऐतिहासिक घटना से भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास पर भी बहुत कुछ प्रकाश पड़ने की आशा है। एशिया माइनर में बोघज़कोई के अभिलेख से पता चलता है कि पायलस के पड़ोसा इस देश में १४०० ई० पू० में आर्य-सभ्यता फैली हुई थी, और वहाँ पर नासत्य, वरुण आदि वैदिक देवताओं की पूजा की जाती थी। इसके अतिरिक्त भारत तथा ग्रीस के पुराण, (Mythology) भाषा, दर्शन आदि में बहुत कुछ सम्बन्ध सिद्ध हो चुका है। अतः बहुत सम्भव है कि १२०० ई० पू० के पायलस में ऐसी कोई वस्तु मिल जाय, जिससे बोघज़कोई की १४०० ई० पू० की वैदिक सभ्यता का रहस्य समझ में आ जाय; क्योंकि ये दोनों लगभग समकालीन ही हैं और इतने सन्निकट होने पर एक दूसरे के सम्पर्क में आना अवश्यम्भावी है। दूसरी तरह से भी इस खोज का प्रभाव भारत के इतिहास पर पड़ सकता है। यह तो निश्चित है कि क्रारिस के एलम की प्राचीन सभ्यता वैदिक सभ्यता के समकक्ष या सदृश थी। दूसरी ओर इसका लिपि का सम्बन्ध क्रीट तथा ग्रीस की मिनोअन-लिपि से भी स्पष्ट मालूम पड़ता है। एलमाइट-प्लेटों में वैदिक 'वृषाकपि' और ग्रीक 'प्साइडन' तथा अन्य देवताओं के चित्र मिलते हैं। अतः एलम, क्रीट, भारत और ग्रीस के बीच एक चतुष्कोण बन जाता है। इसलिए ग्रीस की इस खुदाई से, सम्भव है, इन सभ्यताओं के सम्बन्ध का उचित स्वरूप ज्ञात हो जाय। अस्तु, अभी तो खुदाई प्रारम्भ ही हुई है। हमें सतृष्ण नेत्रों से अभी वर्षों प्रतीक्षा करना पड़ेगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सिनेमा और निरक्षरता-निवारण

श्रीबालगोविन्दप्रसाद

इस समय देश के राष्ट्रीय नेताओं के आगे सबसे बड़ी समस्या केवल यही नहीं है कि लोगों की निरक्षरता को कैसे दूर किया जाय, बल्कि यह भी है कि राष्ट्रीय जागृति के व्यापक उद्देश्य से लोगों को वास्तविक दृष्टि से शिक्षित कैसे बनाया जाय। वास्तव में कठिनाई यह है कि नये ऐक्ट के अनुसार प्रान्तों में मताधिकार का जो विस्तार किया गया है, उसके महत्त्व को अभी तक हम पूरी तरह से समझ नहीं पाये हैं। आजकल हमारे प्रान्तों में जो सरकारें हैं, वे उस जनता की प्रतिनिधि हैं, जिसका बहुत छोटा भाग ही साक्षर कहा जा सकता है। इस दृष्टि से सर्व-साधारण को उनके नागरिक अधिकारों और ज़िम्मेदारियों का ज्ञान कराने के कार्य का महत्त्व दिन-दिन बढ़ते जाना स्वाभाविक है। अब यह प्रश्न उठता है कि अपने देश के करोड़ों व्यक्तियों के नीरस और कष्टमय जीवन में ज्ञान और आनन्द का प्रकाश पहुँचाना किस प्रकार सम्भव हो सकता है? कितने ही वर्षों से शिक्षा-सुधार के लिए कमेटियाँ और कान्फ्रेंसों द्वारा काम होता रहा है, फिर भी निरक्षरता की समस्या को हल करने में हमें अधिक सफलता नहीं मिली। बात यह है कि समस्या की कठिनाइयाँ इतनी अधिक हैं कि उन पर विजय प्राप्त करना आसान काम नहीं है।

हर्ष की बात है कि हमारे आगे रूस, जर्मनी, इटली, एशिया, चीन तथा जापान के उदाहरण मौजूद हैं, जिनसे समस्या के हल किये जाने के प्रश्न पर कुछ प्रकाश पड़ता है। इनमें से अधिकांश देशों में फ़िल्मों का निर्माण, वितरण और प्रदर्शन पर नियंत्रण रखने के लिए सरकारी तथा ग़ैरसरकारी संस्थाएँ हैं। अब प्रान्तीय सरकारों को भी इसी तरह अपने यहाँ फ़िल्म-सम्बन्धी विभाग खोलने चाहिए। भारत के ७०,००० गाँवों और नगरों में फैली हुई ३५ करोड़ जनता के निकट पहुँचने का सबसे सरल और प्रभाव-पूर्ण मार्ग चित्रपट ही है। कल्पना कीजिए कि देश के किसी कोने में रहनेवाला ग्रामीण मंत्री का भाषण सुन रहा है। आर्थिक सुधार के लिए कहे गये शब्दों से क्या उसके जीवन में आशा और प्रोत्साहन का संचार न हो सकेगा? ऐसे प्रचार का जनता पर आश्चर्य-पूर्ण मानसिक प्रभाव पड़ेगा। इससे उनमें नवजीवन का संचार होगा। ग्रामीण को इस बात का ज्ञान हो सकेगा कि जीवन-संग्राम में लड़ता हुआ वह किस प्रकार व्यक्तिगत और राष्ट्रीय कल्याण के कार्य में योग दे सकता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोकमत का कहना है कि प्रान्तीय सरकारों को फ़िल्म-सम्बन्धी एक-एक विभाग खोलना चाहिए। इस विभाग के दो उप-विभाग हों। इनमें से एक का सम्बन्ध अध्यापन-सम्बन्धी आवश्यकताओं से रहेगा, और दूसरे का शिक्षा और प्रचार-सम्बन्धी आवश्यकताओं से। पहले उप-विभाग के निरीक्षण में माध्यमिक, उच्च और पेशे-सम्बन्धी आवश्यकता के लिए चित्र बनाये जायँ, और दूसरे के निरीक्षण में गाँवों में प्रदर्शित किये जानेवाले चित्रों का निर्माण और प्रदर्शन रहे।

एक बात और है। सिनेमा हो या रेडियो, शिक्षा-सम्बन्धी कार्य में ये सब चीज़ें अध्यापक का स्थान नहीं ले सकतीं। अध्यापक फिर भी शिक्षा का मुख्य साधन रहेगा, और शिक्षा-प्रदान करते समय सिनेमा और रेडियो से वह केवल सहायता ही लेगा। फ़िल्मों की उपयोगिता केवल उन्हीं विषयों में हो सकती है, जिनमें विद्यार्थियों की जानकारी बढ़ने की आवश्यकता होती है।

इसके अतिरिक्त हम लोगों को अन्य देशों के उदाहरणों पर अत्यधिक निर्भर न रहना चाहिए। आवश्यकता इस बात की है कि देश में अनुसंधान करके नये उपाय निकाले जायँ। लंकाशायर की मिलों अथवा इँगलैण्ड की काउंटी-कौंसिलों के कार्य का प्रदर्शन करके ही सन्तुष्ट हो बैठना हमारे लिए काफ़ी न होगा। आवश्यकता इस बात की है कि भारतीय जनता जिस वातावरण में रहती है, उसे अच्छी तरह ध्यान में रखकर भारतीय समस्याओं को फ़िल्मों में सामने लाने का प्रयत्न किया जाय।

बृहद् बायोकैमिक चिकित्सा-निदान

यह पुस्तक एक नये ढंग के इलाज के बारे में लिखी गई है। जर्मनी के सुप्रसिद्ध डाक्टर वॉन डब्लू शुस्लर ने १२ क़िस्म के नमकों का आविष्कार किया है। उन्हीं १२ नमकों से सारी बीमारियों को अच्छा करने का तरीक़ा इस पुस्तक में लिखा गया है। इसके लेखक डाक्टर एन्० सी० भादुड़ी बी० ए०, बी० एल्० महाशय जर्मनी गये थे और वहाँ से इस चिकित्सापद्धति का ज्ञान प्राप्त कर आये हैं। इस पुस्तक को पढ़कर इसके सहज और सस्ते नमकों से लगभग ३५० रोगों का शर्तिया इलाज करके आप यथेष्ट धन और कीर्ति कमा सकते हैं। पुस्तक डाक्टरों और रोगियों, दोनों के बहुत काम की है। सुन्दर जिल्दबँधी, चिकने-मोटे काग़ज़ पर छपी लगभग ७७५ पृष्ठ की इस पुस्तक की क़ीमत केवल २) है। डाकव्यय अलग। नीचे लिखे पते पर आज ही अपना आर्डर भेजिए। पुस्तकें थोड़ी ही बची हैं।

मैनेजर—नवलकिशोर प्रेस बुकडिपो

लखनऊ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

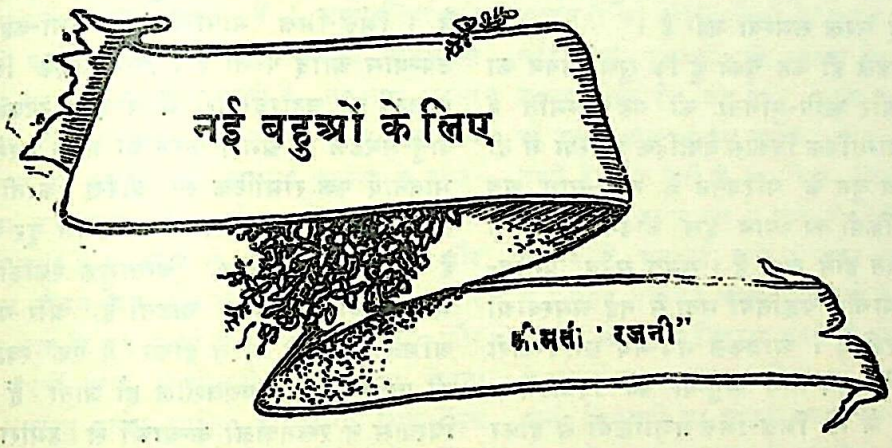

पुरुष, जीवन, स्त्री और पुरुष एक डोरे में पिरोये हुए हैं संसार को जीवन का रणक्षेत्र कहते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने जीवन को सुखपूर्ण बनाने के लिए घड़ी-घड़ी पर उपस्थित होने-वाली विघ्न-बाधाओं के साथ संग्राम करता है। दूसरे शब्दों में यों कहिए कि सुख जीवन का चरम लक्ष्य है। जीवन एक सम्बन्धवाचक शब्द है। आज, जब कि विश्व के एक-एक अणु में पारस्परिक संघर्ष चल रहा है, हम उस युग की कल्पना तक नहीं कर सकते, जब पुरुष अथवा नारी ने एक दूसरे से पृथक् रहकर जीवन बिताया हो। आज तो जीवन को जीवन बनाने के लिए ये दोनों एक अभिन्न सूत्र में बँधे हुए हैं। पुरुष को स्त्री से या स्त्री को पुरुष से विलग कर दीजिए, समाज का ढाँचा गिरे बिना नहीं रह सकता।

अतएव, समाज के डोरे में पुरुष और स्त्री, दो सुगंधि-पूर्ण पुष्पों की भाँति पिरोये हुए हैं। समाज ने ही नहीं, स्वयं प्रकृति ने उन्हें एक अटूट सम्बन्ध में बाँध रक्खा है। किसी भी सुदूर वनस्थली में चले जाइए, समाज और सांसारिक आडम्बरों से दूर,—आपको मृग और मृगी, मयूर और मयूरी, चकवा और चकई एक दूसरे के साथ सुखपूर्वक विहरते हुए देख पड़ेंगे। क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि स्त्री-पुरुष का प्राकृतिक सम्बन्ध है?

विवाह एक प्राकृतिक सम्बन्ध है

स्त्री-पुरुष के इस प्राकृतिक सम्बन्ध के अनेक रूप हैं। उनमें से विवाह भी एक है। कहने का तात्पर्य यह नहीं कि विवाह स्त्री-पुरुष के सुखमय जीवन के लिए अनिवार्य है। कम से कम आधुनिक नवयुवतियाँ तो ऐसा नहीं समझतीं। वे तो "नवयुग आया जाग सजनिया जाग" का राग अलापती हुई अपने लिए एक स्वतन्त्र बन्धन-मुक्त जीवन का निर्माण करना चाहती हैं। इस ध्येय में उन्हें कहाँ तक सफलता मिलती है और वे अपने निर्णय पर किस हद तक जमी रहती हैं, यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर मैं यहाँ विचार करना नहीं चाहती। सत्य तो यह है कि निन्नानवे प्रतिशत स्त्रियाँ वैवाहिक जीवन बिताती हैं या, जैसा कि कुछ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोग कहना पसन्द करते हैं, निन्नानवे प्रतिशत स्त्रियों को वैवाहिक जीवन बिताना पड़ता है, चाहे स्वेच्छा से, चाहे माता-पिता की आज्ञा से, और चाहे समाज के भय से। जब कि अधिकांश महिला-समाज इस जीवन से मुक्त नहीं रह पाता और जब कि इतने ही पुरुषों को भी इस जीवन को अनिवार्यतः ग्रहण करना पड़ता है, तब तो यह स्पष्ट है कि इस जीवन को सुखमय बनाने की समस्या कोई सरल समस्या नहीं है।

यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि सुख जीवन का चरम लक्ष्य है और ऋषि-मुनियों की यह सम्मति है कि जीवन का वास्तविक विकास वैवाहिक अवस्था में ही होता है। अतएव युग के परिवर्तन के साथ-साथ अब विचारशील व्यक्तियों का ध्यान इस जीवन के प्रश्नों की ओर आकर्षित होने लगा है। समय सदैव प्रगतिशील रहा है। प्राचीन पद्धतियाँ सदा से नई समस्याओं को स्थान देती रही हैं। आजकल नये-नये आविष्कारों और अन्वेषणों के साथ-साथ मनुष्यों की विचारधारा अपने घरेलू क्षेत्र में भी भिन्न-भिन्न प्रणालियों से होकर बहने लगी है। अब केवल देशोन्नति और धर्मोद्धार का प्रश्न ही मुख्य नहीं रह गया। अब इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठ रहा है स्त्री-पुरुष के विवाहित जीवन को उन्नत बनाने का। युगों से स्त्री-पुरुष के वैवाहिक जीवन की शान्ति का लोप होता जा रहा है। जब घर में ही शान्ति न होगी, तो अशान्त हृदय से देश, धर्म अथवा जाति की उन्नति में कैसे क्रियाशील हो सकेगा? यही कारण है कि होनहार युवक-युवतियाँ, जो अपनी बुद्धि एवं सेवा से देश और जाति को बहुत कुछ लाभ पहुँचा सकती हैं, अपना सम्पूर्ण जीवन वैवाहिक जीवन की गुत्थी को सुलझाने में नष्ट करने लगी हैं। सत्कार्य के लिए क्या-क्या त्याग नहीं करने पड़ते?

वैवाहिक जीवन के सुख का उत्तरदायित्व स्त्रियों पर है

विवाहित जीवन को सफल बनाने का अधिक उत्तरदायित्व उन कन्याओं पर डाला जाता है, जो विवाहोपहार रूप में अपने साथ सुशिक्षा और सुसंस्कृति का प्रकाश लेकर आती हैं। परन्तु दुःख है कि नवीन युग की पढ़ी-लिखी कन्याओं को इस जीवन को सफल बनाने की महती आकांक्षा होते हुए भी पग-पग पर असफलता की ठोकरें खानी पड़ती हैं। इसका मुख्य कारण है पूर्वीय और पश्चिमीय सभ्यता का अपरिपक्व सम्मिश्रण।

आधुनिक शिक्षा के फलस्वरूप कन्याओं की विचारधारा ने दो पृथक्-पृथक् मार्ग ग्रहण किये हैं। पढ़ी-लिखी लड़कियाँ स्वतन्त्रतापूर्वक सिनेमा-थियेटर देखती हैं। भिन्न-भिन्न भाषाओं की कथा-कहानियाँ और उपन्यास आदि पढ़ती हैं। इनसे उनके विचार प्राचीन आदर्शों की चहारदीवारी में बन्द न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय वायु-मण्डल में भ्रमण करने का प्रयत्न करते हैं। उनकी भावनाएँ एक रोमांटिक रूप धारण करती हैं। वे या तो विवाह को बन्धन समझकर उससे दूर रहना चाहती हैं और एक स्वतन्त्र, चिन्तामुक्त एकाकी जीवन का आदर्श स्थापित करना चाहती हैं, और या बड़ी-बड़ी अभिलाषाओं से प्रेरित होकर वे एक स्वप्नमय जीवन की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाती हैं। विवाह में विश्वास न रखनेवाली कन्याओं से हमारा यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं। दूसरी श्रेणी की कन्याएँ पहले ही से अपने कल्पित स्वप्न को सामने रखकर विवाहित जीवन में प्रवेश करती हैं। उनके हृदय में बड़ी-बड़ी उमंगें और ऊँची-ऊँची आकांक्षाएँ होती हैं। अपने भविष्य जीवन में वे क्या-क्या करेंगी, उनके पति तथा पति के परिवारवालों का उसके साथ क्या व्यवहार होगा, उनका छोटा-सा संसार कितनी शान्ति और सुख का केन्द्र होगा, वे इन सब सुखों की मधुर कल्पना विवाह से पूर्व ही कर लेती हैं। रक्त में स्वास्थ्य और यौवन होने के कारण उनमें एक स्वाभाविक उत्तेजना, एक तीव्र उग्रता होती है। यही उत्तेजना, यही उग्रता उनकी असफलता का कारण बनती है।

वैवाहिक सुख शान्ति और धैर्य से प्राप्त होता है

विवाहित जीवन व्यग्रता और उत्तेजना के लिए नहीं बना है। यह तो एक बड़ा ही शान्त, गम्भीर, चिरस्थायी जीवन है। इसकी कुञ्जी सहनशीलता है, न कि उतावलापन; धीरज है, न कि अधैर्य। इसलिए चतुर कन्याओं को यह सदैव ध्यान में रखना चाहिए कि जिन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मधुर कल्पनाओं को लेकर वे अपने जीवन-पथ पर अग्रसर होना चाहती हैं, कहीं वे ही उनकी अशान्ति का कारण तो नहीं बन रही हैं । जीवन में सुख-स्वप्न का देखना जितना सरल है, उतना ही उसे व्यवहार में पूर्ण होते देखना कठिन भी है ।

वस्तुतः होता क्या है ? बात यह है कि वैवाहिक जीवन में प्रवेश करते ही लड़कियों को एक नये वातावरण का सामना करना पड़ता है । माता-पिता की प्रेमछाया में पली हुई कन्याएँ जब स्वच्छन्द वायुमंडल को छोड़कर सुसराल में प्रवेश करती हैं, तो उन्हें सहसा ज्ञात होता है कि वहाँ वे अपने माता-पिता की दुलारी कन्या न रहकर एक सम्पूर्ण कुटुम्ब के उत्तरदायित्व का भार ग्रहण करने योग्य गृहिणी के रूप में देखी जाने लगी हैं । विवाह से पूर्व का स्वतन्त्र और चिन्तारहित जीवन अब गृहस्थी की नई चिंताओं और कर्तव्यों के भार से दब जाता है । सास, ससुर और पति उसे अपनी परख में सोलहो आना खरा देखना चाहते हैं । परन्तु प्रत्येक व्यक्ति का स्वभाव भिन्न-भिन्न होता है । यह आवश्यक नहीं कि पितृगृह के जिस वातावरण में लड़की का स्वभाव और जीवन ढला हुआ होता है, वही वातावरण सास-ससुर के घर में भी हो । कभी-कभी तो यह वातावरण उसकी आशा के बिलकुल प्रतिकूल होता है । बहुधा पतिगृह के कुटुम्बियों का स्वभाव उसके अपने माता-पिता के स्वभाव के विपरीत होता है, और इस प्रकार उसे जाते ही एक नये क्षेत्र में कार्य करना पड़ता है । अक्सर स्वयं सास, ससुर, पतिदेव और उनके कुटुम्बियों के ही स्वभाव पृथक्-पृथक् होते हैं । इन सभी व्यक्तियों को पूर्णतः संतुष्ट रखने का प्रश्न नई विवाहिता कन्या के सम्मुख एक जटिल समस्या लेकर उपस्थित होता है । इन उलझनों में पड़कर उसके विवाह के पूर्व के सुनहले स्वप्नों में एक बवंडर उठने लगता है । प्रारम्भ से ही उसे निराशा और दुराशा के साथ खेलना पड़ता है और उसके रोमांटिक ध्येय किताबी दुनिया के धुँधले चित्र भर रह जाते हैं ।

इससे भी अधिक विषम परिस्थिति उस समय उपस्थित होती है, जब पतिदेव तो आधुनिक आदर्शों के पक्षपाती होते हैं, परन्तु उनके माता-पिता, भाई-बहन, घर में आई हुई नववधू को सेवा, शुश्रूषा और गृहकार्य की प्रतिमूर्ति समझते हैं । बहुधा पति सुशिक्षित होते हैं, वे अपनी पत्नियों को स्वतन्त्र वातावरण में रखना चाहते हैं, और उनके आधुनिक आदर्शों का आदर भी करते हैं । परन्तु अन्य कुटुम्बियों से मतभेद होने के कारण यह कार्य कठिन हो जाता है । या तो नवयुवकों को परिस्थितियों के कारण अपने माता-पिता और अन्य गुरुजनों की आज्ञा का अक्षरशः पालन करना पड़ता है, या यदि उनमें इतना साहस हुआ तो उनके साथ संग्राम छेड़ना पड़ता है । यदि पतिदेव दबते हैं और पत्नी के मानसिक विकास में योग नहीं दे पाते तो परतन्त्रता के पाश में बँधी हुई लड़कियों की हृदयकली अनुकूल वायु न पाकर स्वतः कुम्हला जाती है । यदि पतिदेव अपने कुटुम्बियों के पुराने विचारों का विरोध करने का निश्चय करते हैं तो उनकी सहधर्मिणी के सामने यह समस्या उपस्थित हो जाती है कि वह अन्य सभी प्रियजनों का कोपभाजन बनकर पति का साथ दें या नहीं । यही अवसर है जब पढ़ी-लिखी और चतुर लड़कियों की बुद्धि परखी जाती है, और यही अवसर है जब अधिकांश कन्याएँ अपनी उतावली, भावावेश और स्वतन्त्रताकांक्षा के कारण अपने संताप की जड़ जमा लेती हैं । इसी समय उस सहनशक्ति, उस गाम्भीर्य और उस समझ की आवश्यकता पड़ती है, जिसकी चर्चा मैं पहले कर चुकी हूँ । अधिकतर होता यही है कि लड़कियाँ अपने पति को पूर्णतः संतुष्ट रखने की लगन में सास-ससुर की इच्छाओं की अवहेलना करती हैं । पतिदेव की आज्ञा के अनुसार वे उनके साथ सिनेमा में, पार्टियों में जाती हैं और अपना समय घरेलू कामों में लगाने की अपेक्षा पति के ड्राइंगरूम की सजावट का सामान तैयार करने में तथा पति के मित्रों की आवभगत में व्यतीत करती हैं । फलस्वरूप कुछ ही दिनों बाद उन्हें बड़े-बूढ़ों की झिड़कियाँ सुननी पड़ती हैं, लांछना सहनी पड़ती है । "नई रोशनी" के नाम पर उन्हें घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है ।

इसके विपरीत यदि लड़कियाँ अपने वयोवृद्ध सास-ससुर से सहानुभूति रखती हुई उनकी कुछ सेवा करना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अपना धर्म समझती हैं, घरेलू कामों की देखभाल में अधिक समय लगाती हैं और पतिदेव के नये विचारों के अनुकूल अपने को अप-टू-डेट बनाये रखने में सफल नहीं हो पातीं, तो उन्हें पति के मृदुल प्रेम से हाथ धोना पड़ता है। इससे भी अधिक कठिनाई उस समय पड़ती है, जब सास-ससुर और पतिदेव की भी विचार-धारा उनकी विचारधारा के प्रतिकूल होती है। उस समय उन्हें या तो अपने हृदय पर पत्थर रखना पड़ता है, या उनमें असन्तोष और विद्रोह की एक भीषण अग्नि जाग्रत् हो उठती है। बहुधा उन्हें अपना जीवन निरर्थक प्रतीत होता है, और वे हर घड़ी मृत्यु की कामना करने लगती हैं।

पहले और अब की परिस्थितियों में अन्तर

कुछ लोग कह सकते हैं कि "आख़िर पहले भी तो लड़कियों को व्यक्तिगत स्वभावों की भिन्नता और प्रतिकूल वातावरण का सामना करना पड़ता था; परन्तु उस समय तो इतनी अशान्ति और गार्हस्थ्य जीवन की कटुता का अनुभव नहीं होता था।" पर प्राचीन समय और नवीन युग की परिस्थितियों में बड़ा अन्तर है। पहले कन्याओं को विवाह से पूर्व माता-पिता द्वारा यह शिक्षा दी जाती थी कि वे सास-ससुर और पति की सदा सेवा करें, और उनको प्रसन्न रखने की चेष्टा करें। इसी एक ध्येय की पूर्ति में उनके जीवन की सार्थकता समझी जाती थी। उन दिनों लड़कियों को इस काम में अधिक कठिनाई भी नहीं पड़ती थी। पति महोदय स्वयं माता-पिता के आज्ञाकारी पुत्र होते थे। उनकी पत्नी उनके माता-पिता की आज्ञा के अनुकूल काम और उनकी सेवा करती है, यही उनके लिए सबसे बड़े सन्तोष की बात थी। यही एक ऐसा गुण था, जो पत्नी को सफल गृहिणी बनाने के लिए पर्याप्त माना जाता था। प्रौढ़ अवस्था आने पर जब पति-पत्नी को, अपने बड़ों की मृत्यु के उपरान्त, एक दूसरे के बिलकुल समीप रहने का अवसर मिलता था, तब तक वे पारस्परिक स्वभाव से पूर्णतः परिचित हो चुकते थे और एक दूसरे की संतुष्टि के लिए उन्हें विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता था। परन्तु नये युग ने जीवन की समस्याओं को बड़ा जटिल बना दिया है। अब तो कन्या का, कन्या के माता-पिता का, कन्या के सास-ससुर का और कन्या के पति का, सबका स्वभाव, सबका दृष्टिकोण, सबका ध्येय पृथक्-पृथक् होता है। इस विभिन्नता में सामंजस्य स्थापित करना कोई हँसी-खेल नहीं है।

परख और अध्ययन की शक्ति वैवाहिक सुख की कुंजी है

तो आख़िर विवाहित जीवन को सुखी बनाने के लिए स्त्रियाँ करें क्या? मैं तो समझती हूँ कि यदि लड़कियाँ विवाह को केवल अपनी आशाओं और आकांक्षाओं के पूर्ण होने का साधनमात्र न समझकर एक ऐसा महान् यज्ञ समझें, जिसके द्वारा दो प्राण एक सूत्र में बँधकर कुटुम्ब भर के लिए सुख और शान्ति के कारण बन जाते हैं, तो निस्सन्देह उन्हें निराशा का मुख न देखना पड़े। अफ़सोस तो यह है कि माता-पिता अपनी कन्याओं को एन्ट्रेंस, एफ़० ए०, बी० ए० पढ़ाने में या उन्हें नाच-गाना आदि की निपुण शिक्षा देने में वर्षों और सैकड़ों रुपये लगा देते हैं, परन्तु उन्हें जीवन को सुखी बनाने की वास्तविक कुंजी नहीं बताते। ये सभी बाहरी उपकरण उस समय उपयोगी सिद्ध होते हैं, जब पति और पत्नी के जीवन में अन्य रूप से पूर्ण सादृश्य होता है। परन्तु ऐसा होता बहुत कम है। इसलिए विवाहित क्षेत्र में अवतरित होनेवाली सुशिक्षित कन्या को एक बहुत बड़े गुण की आवश्यकता है। वह है अपने पति, सास-ससुर तथा अन्य निकट सम्बन्धियों की प्रवृत्ति और इच्छाओं को पहचानने तथा परखने की शक्ति। जो बहन जितनी ही शीघ्रता और सुगमता से यह परख कर सकेगी, वह उतनी ही जल्दी अपने को सफल गृहिणी बना सकेगी।

परन्तु ध्यान रहे, परख की यह शक्ति अधीर होने से नहीं मिलेगी। इसके लिए तो कन्याओं को कुछ दिनों के लिए अपने जीवन को सुसराल के सम्बन्धियों के जीवन के साथ मिला देना होगा, और इस प्रकार घुल-मिलकर उनके स्वभाव तथा अभिलाषाओं का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अध्ययन करना होगा। जब वे एक बार वास्तविक स्थिति से परिचित हो जायँगी, जब वे एक बार सबकी रुचियों - अभिरुचियों का ज्ञान प्राप्त कर लेंगी, और इसी बीच में अपनी नम्रता, शील और सहनशीलता से उनके हृदय पर विजय प्राप्त कर लेंगी, तो, विश्वास रखिए, कुछ ही दिनों की तपस्या के बाद वे अपने जीवन को एक ऐसे सरल सुखमय मार्ग पर अग्रसर होते देखेंगी, जिसकी उन्होंने अपने जीवन में कल्पना भी न की होगी। सबसे पहली बात तो यह होगी कि इतने दिनों के अनुभव से वे समझ जायँगी कि किस अवसर पर क्या करना उचित है, किस काम से किसके प्रसन्न होने की सम्भावना है, तथा किस प्रकार बड़ों के स्वभाव में सरल प्रेम के बल से परिवर्तन किया जा सकता है। व्यग्रता अथवा उत्तेजना से प्रतिकूल परिस्थिति वश में नहीं आती। आते ही अपनी इच्छाओं या आदर्शों का विरोध होते देख घबराइए मत। संग्राम छेड़ दीजिए, परन्तु धीरे-धीरे, भीतर ही भीतर विजय के अवसरों पर ताक लगाये रखिए। एकबारगी ही बुलबुले की तरह उबल उठने से अपनी ही क्षति होती है।

माधुरी का नव-वर्षांक

अगस्त (श्रावण) में बड़ी सजधज से निकलेगा। इस अंक में हिन्दी के सुप्रसिद्ध प्रवीण और नवीन लेखकों की अनूठी और श्रेष्ठ रचनाएँ पढ़कर आपके मुख से बरबस प्रशंसा के शब्द निकल पड़ेंगे। माननीय मिश्रबन्धु, शिलीमुख, हरिऔधजी, सनेहीजी, पं० नन्ददुलारे वाजपेयी एम्० ए०, पं० सद्गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०, पं० विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, इतिहास के विद्वान् पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ, श्रीयुत धर्मवीर एम्० ए०, हिन्दू-सम्पादक, श्रीपहाड़ी आदि-आदि के लेख, कविता, कहानी, एकांकी नाटक इसमें रहेंगे।

पृष्ठ-संख्या २५० के लगभग, चार तिरंगे चित्र और दर्जनों सादे व इकरंगे चित्र।

इस अंक का फुटकर मूल्य १॥) होगा। पर इसी संख्या से ग्राहक बन जानेवाले साधारण वार्षिक मूल्य में ही इसे भी प्राप्त कर सकेंगे।

मैनेजर—माधुरी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

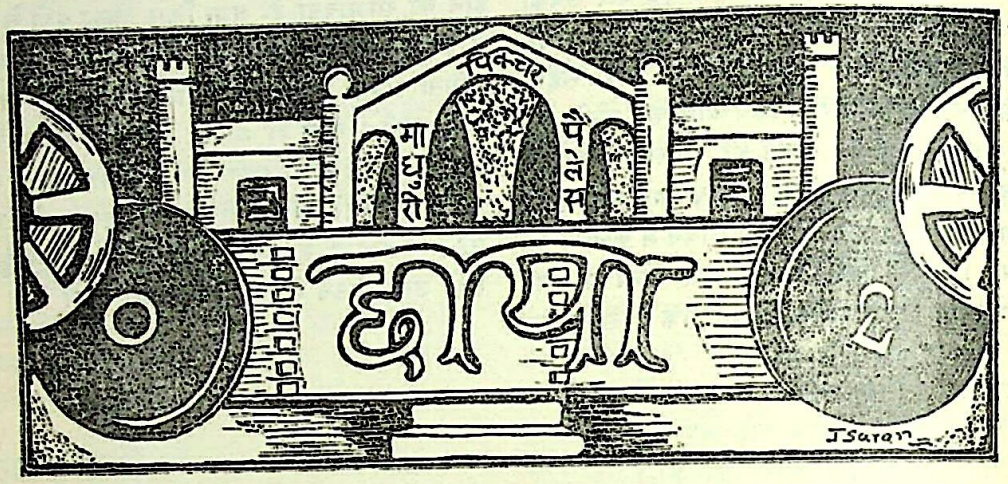

वर्तमान सिनेमा-पत्र

श्रीज्योतीन्द्रनाथ

आप किसी सिनेमा-पत्र को उठाइए। आरम्भ से अंत तक उलट जाइए। आप उसे अर्द्धनग्न अश्लील चित्रों से पूर्ण पाइएगा। निर्लज्ज अभिनेत्रियों के तिरङ्गे चित्रों से आप उसे पूर्ण पाइएगा। चित्र के नीचे सुन्दर अक्षरों में लिखा होगा—"भावराज्य की रानी मिस....", "विदेशों में भी भारतीय कला का संचार करनेवाली सुन्दरी....", आदि। पत्र के पृष्ठों पर दृष्टि डालिए, उनकी प्रशंसा के पुल बाँधे गये होंगे। उर्वर मस्तिष्कवाले उन्हें अनेकों उपमाओं से विभूषित करेंगे, उन पर कविता रचेंगे, उनकी जीवनियाँ लिखेंगे।

वेश्याओं के (क्योंकि सिनेमा-लाइन में सदाचारिणी कुल-कामिनियाँ बहुत ही कम हैं। अधिकतर वेश्या ही हैं) अश्लील चित्रों का प्रभाव हमारे नवयुवकों पर बहुत बुरा पड़ता है। उन वेश्याओं के—जो अभिनेत्री का उच्च (?) पद प्राप्त कर कलाकार और Cinema Star की पदवी पा लेती हैं—प्रति वे ख़ूब आकर्षित होते हैं। उनकी कृत्रिम सुन्दरता पर वे अपने को न्योछावर कर देते हैं, और अन्त में अपने को पतन के कूप में गिरा देते हैं।

परन्तु सिनेमा-पत्रों को तो इसकी कोई चिन्ता नहीं है। उनका पाठकों पर कैसा ही प्रभाव पड़े, इसकी चिन्ता उन्हें क्या? उनके संचालक, सम्पादक तो बस मिस के धन्यवादसूचक पत्रों और सिनेमा का फ़्री पास पाकर ही अपने को धन्य मानते हैं। फ़िल्म-निर्माताओं का उन पर कृपाभाव है, इसी पर वे मस्त हैं। मिस की प्रशंसा वे अपने पत्र में छापते हैं, इसके बदले में वह उनके साथ भेंट तो कर लेती है। यही क्या कम है?

परन्तु जिनके चित्र एवं प्रशंसा से उनके पत्र पूर्ण रहते हैं, वे हैं किस योग्य? सिनेमा-पत्रवाले उनके सम्मान में जो कुछ लिखते हैं, क्या वे सचमुच उसके योग्य हैं? वे देश के उत्थान में किस भाँति की सहायता करती हैं? हमारे युवकों को सुधारने में उनका क्या हाथ है? उनमें ऐसा क्या गुण है, जिसके कारण उन्हें इतना सम्मानित किया जाय? ऐसे पत्र निकालकर ये संचालक या सम्पादक किसे, किस भाँति की सहायता देते हैं? उनकी पत्र-पत्रिकाओं से किसे, किस भाँति का लाभ होता है?

आख़िर इन अभिनेता-अभिनेत्रियों में तथा चरित्र-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

युवक-युवतियों और वेश्याओं में क्या अन्तर है ? इन पत्र-पत्रिकाओं में उनके जिस भाँति के चित्र शित होते हैं, उन्हें क्या हम किसी दशा में भी वती का चित्र कह सकते हैं ? प्रायः प्रत्येक चित्र में श्लील या कम से कम उत्तेजक भाव दिखाती ख पड़ती हैं। ये पत्र-पत्रिकाएँ उनके इसी गुण कृदा हो, उनकी प्रशंसा में पृष्ठ के पृष्ठ रँग डालती वे अश्लील भाव दिखा सकती हैं, हज़ारों दर्शकों के ख अर्द्धनग्नावस्था में उपस्थित हो सकती हैं और ील भाव जगा सकती हैं। वे निःसङ्कोच हो ील शब्दों का उच्चारण कर सकती हैं और ील गीत गा सकती हैं। यही उनके गुण हैं, उनके इन्हीं गुणों पर ये पत्र-पत्रिकाएँ उन्हें इतना ानित करती हैं और उनकी प्रशंसा में पृष्ठ के पृष्ठ देती हैं, उनकी जीवनियाँ प्रकाशित करती हैं और के तिरङ्गे सुन्दर चित्रों से अपने कलेवर को सुशोभित ी हैं।

परन्तु मेरे विचार में तो अभिनेत्रियों को उत्साहित ना, वेश्याओं को प्रोत्साहित करना और उनके लील कार्यों का समर्थन करना है। उनके चित्र से, वनियों से और प्रशंसा से पूर्ण जो पत्र-पत्रिकाएँ हैं, का प्रभाव भी जनता पर बहुत बुरा ही पड़ता है। के अश्लील चित्रों को देख पाठकों के मस्तिष्क दे भाव से पूर्ण होंगे ही, परन्तु उनकी जीवनियों पाठकों को कैसी शिक्षा मिलेगी ?

हने का तात्पर्य है कि सिनेमा-सम्बन्धी इन पत्र-त्रिकाओं का अस्तित्व ही बहुत बुरा है और जिस कार वेश्या समाज का दूषित अंग है, उसी प्रकार ये त्र-पत्रिकाएँ भी साहित्य का दूषित अंग हैं। इनका न्त जितना शीघ्र हो, उतना ही अच्छा।

ये सम्पादक तो समझते हैं कि हम अपने पत्रों द्वारा ल एवं साहित्य की बड़ी सेवा कर रहे हैं, परन्तु वे ो केवल गन्दे साहित्य का प्रचार करते हैं। समाज के क दूषित अंग के वे समर्थक हैं और अपने पत्र द्वारा न्हीं की प्रशंसा कर उन्हें उत्साहित करते हैं। इस ा तमाशा यह कि उन रद्दी पत्रों के सम्पादक अपने ो साहित्य के सबसे बड़ा हितैषी और सेवक समझते हैं।

कुछ दिन पहले हिन्दी-संसार की सुपरिचिता श्री-महादेवी वर्मा ने 'चाँद' में अपने सम्पादकीय विचार में सिनेमा-पत्रों के विषय पर कुछ लिखा था। इस पर दिल्ली के एक सिनेमा-पत्र के सम्पादक ने, जो अपने को हिन्दी के श्रेष्ठ लेखक कहाने का दावा रखते हैं और अश्लील पुस्तकें लिखने में सानी नहीं रखते, बड़े तपाक के साथ इसका विरोध किया था। उनका लिखना था कि सिनेमा-पत्र कम अवस्थावालों के लिए नहीं है और युवकों, युवतियों पर इन अश्लील दृश्यों का उतना प्रभाव नहीं पड़ेगा।

यही बात सभी सिनेमा-पत्रवाले कहते हैं। यही उनकी सफ़ाई है। परन्तु अश्लील चित्रों का कुप्रभाव सभी पर पड़ता है। पाठकों को, चाहे वे युवक ही क्यों न हों, उससे हानि के सिवा कोई लाभ नहीं होता। आख़िर ऐसे गन्दे साहित्य से लाभ ही क्या ?

लोग कहते हैं कि देश के विद्वान् लोग सिनेमा की ओर से उदासीन हैं। इसके विषय में अपना महत्त्वपूर्ण विचार नहीं देते। परन्तु यह भी सोचने की बात है कि भला कौन विद्वान् और समझदार लेखक गन्दे साहित्य और चित्रों से पूर्ण सिनेमा-पत्रों में अपना लेख भेजने की इच्छा करेगा।

फिर भी हम देखते हैं कि यदा-कदा अन्य प्रतिष्ठित पत्रों में विद्वान् लोग इस विषय पर कुछ लिखते हैं; परन्तु यह तो निश्चय है कि विद्वान् लोग अश्लील सिनेमा-पत्रों और उनके चित्रों का समर्थन न कर उनके विरुद्ध लिखकर सुधार की ही इच्छा करेंगे और इसके फलस्वरूप सिनेमा-पत्रवाले उन पर बेतरह बिगड़ेंगे, उनका तर्कहीन विरोध करेंगे। फिर विद्वानों को इसकी चर्चा करने की क्या पड़ी है ?

मैं मानता हूँ कि सिनेमा-पत्रों की आवश्यकता है। परन्तु उनका प्रधान ध्येय होना चाहिए उस क्षेत्र का सुधार करना, उसकी बुराइयों से जनता को परिचित कराना और अश्लील चित्रों से उन्हें बचाना, सच्चे कलाकारों को उत्साहित करना और अश्लील चित्रों की कड़ी समालोचना करना।

परन्तु सिनेमा-पत्रों की दशा इसके विपरीत है। उनका तो जन्म ही विज्ञापन द्वारा पैसा कमाने के लिए

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुआ है। वे तो उसकी प्रशंसा छापेंगे ही, जिससे उन्हें धन की प्राप्ति हो और धन वे ही देंगे, जिनकी फ़िल्में रद्दी होंगी और बिना पत्रों की सहायता के न चलेंगी। अतः उन पत्रों में अश्लील विज्ञापन होता है और अश्लील चित्रों का प्रचार वे करते हैं। ऐसे पत्रों से क्या लाभ ?

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए

एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सूज़ाक (गनोरिया) की हुकमी दवा

डा० जसानी का जगत-विख्यात **'गोनोकिलर'** रजिस्टर्ड

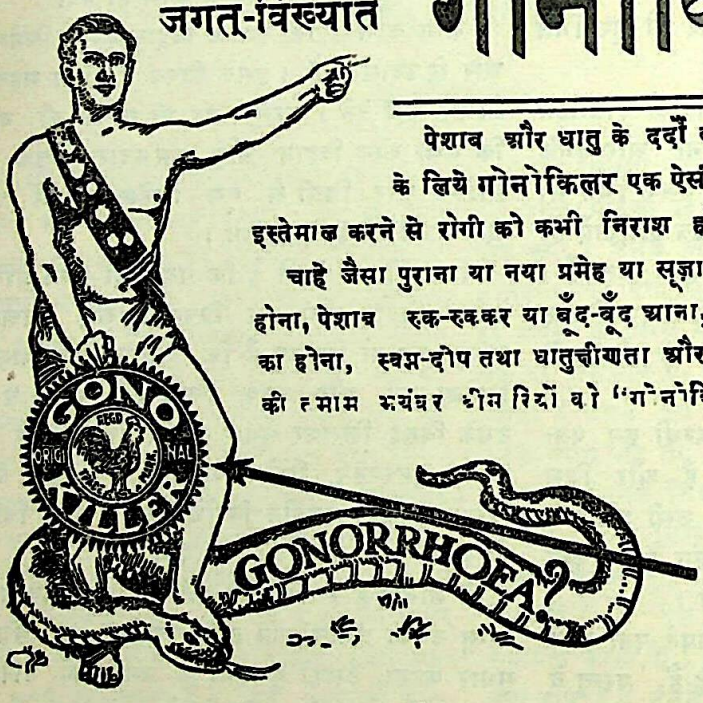

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने व निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर एक ऐसी ही आश्चर्यजनक दवा है जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता।

चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को "गोनोकिलर" जड़ से नष्ट कर देता है।

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
दवा का नाम गोनोकिलर
और मुर्ग़ा छाप सीलबंद
पैकेट देख लीजिये

मूल्य ५० गोलियों की शीशी का दाम ३) रु० वी० पी० डाक व्यय आठ आना अलग

एकमात्र बनानेवाले—डॉ० डी० एन० जसानी M. L. गिरगाँव बैंक रोड, बंबई नं० ४

लखनऊ स्टाकिस्ट—किंग मेडिकल हाल अमीनाबाद पार्क।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

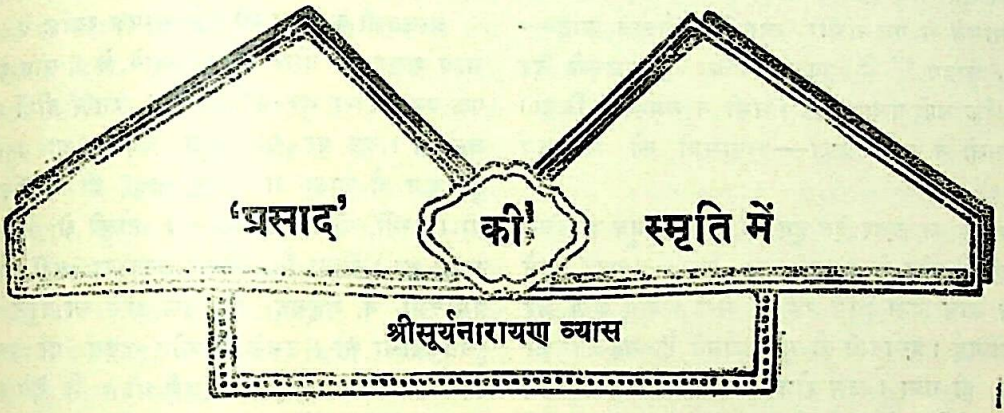

मेरी जीवन-संगिनी का अवसान हो गया था, और ठीक ६ महीने के बाद ही छोटे भाई की भी एकाएक चल बसी। लगातार इन दो घटनाओं ने व्यथित कर डाला। मेरी आत्मा में एक विद्रोह-सा उठ हुआ। घर पर जी नहीं लगता था। इधर कलकत्ता-प्रेस के अधिवेशन में एक मास की देर थी। जी ता था कि अविलंब घर छोड़ कहीं चल दिया जाय। भाई बनारस में पढ़ता था। सोचा, यही ठीक है। प्रेस का अधिवेशन आरंभ होने के पूर्व बनारस में हूँ, और वहीं से कलकत्ता चला जाऊँ। दूसरे रोज़ रात की गाड़ी से बनारस रवाना हो गया। अपने यन-काल के स्वल्पावसर से ही बनारस के लिए हृदय में एक निजत्व का भाव रहने लगा है। अक्सर चाहता है, बनारस में चलकर कुछ समय रहूँ। पर मनचाही कहाँ हो जाया करती है। हाँ, तो मैं पास पहुँचकर दो-एक दिनों बाद मालव-निवासी वासीलाल वर्माजी से मिला। वहीं सरस्वती-प्रेस में ी के तपस्वी उन्नतमना श्रीबाबू शिवपूजनसहायजी से भी भेंट हुई। श्रीशिवपूजनजी की सरलता, साधुता, और सर्वोपरि साहित्यिक अध्यवसाय का मुझ पर बहुत प्रभाव पड़ा। ऐसा सुन्दर साहित्यिक इतना सरल, सीधा-सादा-निरभिमान होना, इसकी मैंने कल्पना भी नहीं की थी। परंतु शिवपूजन में 'शिव' है, इस एक बात से मेरे हृदय में उनके प्रति सहज आदर होने लगा। अब रोज़ाना वहीं सरस्वती-प्रेस में भेंट होती, और साहित्यिक चर्चा चलती। बीच-बीच में पान का व्यवहार भी। शिवपूजनजी प्रसादजी के बहुत भक्त रहे हैं। अतएव मुझे पता न रहते हुए भी वह प्रसादजी से मेरे आने की चर्चा कर आये थे। बात-बात में मुझसे कहने लगे—"आपको प्रसादजी भी स्मरण करते हैं।" मैं वैसे ही डरता था, और अब तो बड़ी मुसीबत हुई! किसे पता था कि प्रसादजी-जैसे विद्वान् ख्याति-प्राप्त पुरुष मुझसे कैसे मिलेंगे, किस तरह बातें करेंगे? मैंने "हाँ, चलूँगा" कहकर भी दो रोज़ टाल-टूल की। एक रोज़ मुझे थोड़ी देर हो गई थी। प्रवासीजी और शिवपूजनजी प्रेस से लौटकर विश्वेश्वरगंज में पान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की दूकान पर खड़े हुए थे। इधर मैं भी पहुँचा। शिव-पूजनजी ने कहा—"आइए, आज सभी प्रसादजी के यहाँ चलेंगे।" मैंने स्वीकृति सूचना दी। पान दबाया, और मित्रों के साथ हो लिया। रास्ते में मनोरंजन होता जा रहा था, पर मेरा दिल धड़क रहा था कि कहाँ जा रहा हूँ। वे कैसे होंगे? किस तरह बातें करेंगे, किस तरह मिलेंगे? अनेक शंकाएँ, सन्देह, भावनाएँ मन में उठती जा रही थीं। कल्पना में डूबा मैं चला जा रहा था। सहसा सामने से एक गंभीर स्वर में आवाज़ आई—"आइए, आइए!" मैं एकदम चौंका। समझते देर न लगी कि यही प्रसादजी हैं। सभी ने नमस्कार किया। शिवपूजनजी ने तुरंत कहा—"व्यासजी को भी साथ लाये हैं।"

नमस्कार का उत्तर देते हुए प्रसादजी ने पूर्व परिचित की तरह बड़े स्नेह से मिलते हुए कहा—"यहाँ इतने दिनों से आप कैसे छिपे रहे?" मेरी शंकाएँ क्षण भर में दूर हो गईं। प्रसादजी तो मुझे जानते हैं, यह जानकर निश्चिन्त हो गया। उस रोज़ तो थोड़े संकोच के साथ बातें कीं। लेकिन फिर तो रोज़ाना शाम के समय उनकी बैठक पर बाबू शिवपूजनजी के साथ पहुँच जाता था। यह क्रम १५-२० रोज़ तक लगातार जारी रहा। बहुत-सी बातें होतीं। एक रोज़ बात-बात में मुझे पता चला कि प्रसादजी उज्जैन भी गये थे।

वे सं० १९५६ में अपने पिताजी के साथ यात्रा करते हुए उज्जैन आये थे। उस समय के संस्मरणों को सुनकर उनकी आश्चर्यजनक स्मृति-शक्ति का पता चलता था। उज्जैन के भिन्न-भिन्न मार्गों का घुमाव और उनकी विशेषता, नदी-तट का मार्ग, महाकाल मन्दिर के कुण्ड, गुफा आदि का तद्रूप वर्णन उन्होंने ज्यों का त्यों सुना दिया था।

सं० १९५६ में मारवाड़ में घोर अकाल पड़ा था। उस समय मारवाड़ के हज़ारों प्राणी मालवे में आश्रय की खोज में आ गये थे। उनके आ जाने से इधर भी वह महँगी आ गई थी कि लोग अपने बच्चों तक को बेच देते थे। पत्तों को कूटकर खाते थे। चींटियों के बिलों से अन्न खोज-खोजकर उदर-दरी की पूर्ति करने का यत्न करते थे। उस पर भी वे छीनाझपटी कर पेट-पूर्ति में समर्थ नहीं होते थे। इसका वर्णन प्रसादजी ने बहुत हृदय-स्पर्शी ढंग से किया। आपने कहा—

"शिप्रा-ब्रिज-स्टेशन से लगभग दो-दो मील तक रेलवे लाइन के दोनों ओर भुखमरों का ताँता लगा रहता था। रेलवे को भी बैलगाड़ी की चाल से चलना पड़ता था। भुखमरे हर डिब्बे में चढ़ने लगते थे। पटरी पर चढ़कर प्राणों की परवा किये बिना रोटी की भीख माँगते थे।"

प्रसादजी के पिता भी बड़े सम्पन्न व्यक्ति थे। वे अपने साथ शक्कर का बोरा भरकर लाये थे। साथ के आदमी एक-एक कटोरा भर-भरकर वह शक्कर दीनों को बाँटते जाते थे। एक पर एक टूटा पड़ता था। सँभालना मुश्किल हो जाता था। वह बड़ा ही कारुणिक दृश्य था। नग्नों और अर्धनग्नों की टोली से रेलपथ व्याप्त रहता था। बिना दिये-लिये छुटकारा नहीं होता था। प्रसादजी ने गद्‌गद हो उस दृश्य का बहुत भावपूर्ण चित्र खींचा था। उनके किशोर हृदय पर इस करुण दृश्य की अमिट छाप लग गई थी। मैं देख रहा था, उनकी दोनों आँखें सजल हो गई थीं। 'करुणा' का 'कंकाल' उनके सामने मानों खड़ा था।

प्रसादजी ने उन्हीं दिनों 'स्कन्दगुप्त' पूरा किया था। उसकी एक प्रति उन्होंने मुझे भी दी। रात ही में मैं उसे बहुत कुछ देख गया। दूसरे रोज़ जब मिला तो प्रसादजी का प्रश्न था—

'नाटक' आपने देखा?

मैंने कहा—"जी, कुछ-कुछ देख गया हूँ।"

"आपको कुछ पसन्द आया?"—प्रसादजी बोले।

मैंने कहा—"आपकी प्रौढ़ लेखनी पर मुझ-जैसा साधारण व्यक्ति राय देने का क्या अधिकार रख सकता है? परन्तु यह जानने की उत्सुकता है कि 'स्कन्दगुप्त' को आपने 'विक्रमादित्य' पदाधिकारी कैसे बनाया है? सिक्के के अतिरिक्त भी कोई आधार मिलता है?"

उस रोज़ की स्मृति को मैं कभी नहीं भुला सकता। प्रसादजी ने अपनी गम्भीर पाण्डित्यपूर्ण भाषा में अपनी आधार-भित्ति बतलाते हुए प्रमाणों की भरमार से 'विक्रमादित्य'-पद की सार्थकता और संगति बतलाई। मैं चित्रलिखित-सा सुनता रहा। मैं दंग रह गया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होंने उस क्षण भर में अनेक शिलाखंडों, ताम्रपत्रों कंठ ही कह डाला। कथासरित्सागर, रघुवंश आदि ग्यों के आवश्यक अंशों को वे 'कोड' करते चले रहे थे।

प्रसादजी की वर्णन-शैली भी लेखन-शैली की तरह पनी ही थी। धीर-गम्भीर वृत्ति से वे बड़ी प्रांजल ीर परिमार्जित भाषा में विषय का तात्त्विक विवेचन रते जाते थे। उनका एक-एक शब्द अपने पीछे आधार-ल रखता हो, यही ज्ञात होता। वे केवल कवि, ाटककार या कहानी-लेखक और औपन्यासिक ही नहीं , संस्कृत-साहित्य, इतिहास, वेद, उपनिषद् आदि ें भी उच्च कोटि के मार्मिक विद्वान् थे। मैं दूर से न्हें बहुत गम्भीर, अभिमानी और न जाने क्या-क्या ोचकर मिलने में हिचकता था। पर निकट से उन्हें त्यन्त सहृदय, कुसुम-कोमल, सरलतम तथा निरभि-मान पाया। धीरे-धीरे मैं साहसपूर्वक उनसे बहस करने लग जाता था। एक रोज़ प्रसादजी ने मुझे अपने घर जन्मपत्री देखने को आमन्त्रित किया। उनकी इस कृपा को मैंने साभार स्वीकार किया।

दूसरे रोज़ शाम को मैं उनके मकान पर जा रहा था, राह में एक और स्नेही मिल गये। उनके कारण देर हो गई। आगे चला तो लाला भगवानदीनजी सामने आ रहे थे। उन्होंने बा० शिवपूजनजी को देखा तो कहने लगे—"भई, अच्छा हुआ आप मिल गये। मुझे आपसे काम था।"

शिवपूजनजी सहज विनम्र भाव से बोले—"आज्ञा कीजिए!"

लालाजी—"आज्ञा क्या! हमने सूरदास की कुछ कविताएँ संगृहीत कर टिप्पणी की है। आप उस पर भूमिका लिख दें, बस।"

"अरे महाराज! मैं तो 'सूर'-साहित्य का इतना जानकार ही नहीं हूँ। मुझे आप इसका कैसे अधिकारी मानते हैं!"—शिवपूजनजी ने निर्मल हृदय से सरसता-पूर्वक उत्तर दिया।

लालाजी कहने लगे—"भाई, आप हमारे पक्ष में कुछ कह सकोगे, इसलिए आप ही को लिखना होगा।"

विनम्रतापूर्वक फिर शिवपूजनजी ने कहा—"मैं आप-की आज्ञा नहीं टालता, पर यह लिखने की इजाज़त दे दीजिए कि इस पुस्तक को पढ़कर ही उतने अंश पर सम्मति प्रकट कर रहा हूँ। मैं 'सूर' के विषय में विशेष नहीं जानता।"

दीनजी ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया। दोनों ने नमस्कार किया और चलते हो गये। रास्ते में फिर इतनी देर हो ही गई।

प्रसादजी ने मेरी प्रतीक्षा की और कुछ देर के बाद वे बैठक पर आने के लिए चल पड़े। कुछ दूर निकले होंगे कि राह में मैं दिखाई दिया। मैंने सामने आते ही विलंब के लिए क्षमा चाही, और रास्ते का क़िस्सा कह सुनाया। वे भी 'दीनजी' की बात पर मुसका दिये। विलंब होने पर भी पुनः मुझे साथ लेकर वे अपने मकान पर लौट आये। अपनी छोटी-सी बगिया दिख-लाई। फिर अंदर एक तख़्त पर, जिस पर गद्दी-तकिये साहूकारी ढंग के लगे हुए थे, मुझे ले जाकर बिठलाया। सामने जन्मपत्री लाकर रख दी। कहने लगे—"व्यासजी, आप पत्रिका देखें। पर आगे होनेवाली कोई बुरी बात अभी से न बतला दीजिएगा। बहुत पहले से चिन्ता लेकर मैं दुखी नहीं बनना चाहता। जो उत्साहवर्धक बातें हों वही कहें।" इस सूचना से मैंने प्रसादजी के हृदय की कोमलता-मार्दव को स्पष्ट समझा। वे सच्चे शब्दों में कविहृदय थे। कितने सुकुमार थे!

वे व्यक्तिगत ईर्षा-द्वेष और अपनी भलाई-बुराई से बहुत ऊपर उठे हुए थे। वे साधारण मानव से उन्नत कोटि के व्यक्ति थे। उन्हें ये सहज कलुष भावनाएँ नहीं छू सकती थीं। राय कृष्णदासजी के घर से लौटकर बा० शिवपूजनजी, प्रवासीजी तथा एक और सज्जन, सभी प्रसादजी की बैठक को जा रहे थे। जानबूझकर प्रसादजी ने 'स्कन्दगुप्त' की भाषा पर आलोचना कर दी। उन्हीं दिनों माधुरी में तत्कालीन सम्पादक प्रेमचंदजी ने 'स्कन्दगुप्त' की भाषा पर टिप्पणी की थी। उसी का समर्थन करते हुए, प्रवासीजी ने उन साथी सज्जन को छेड़ दिया। वे इस तरह की बात को सह न सके, राह ही में हमको छोड़ा और तुरंत प्रसादजी के निकट जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने हमारी शिकायत कर दी। प्रवासीजी यह सब जानते थे। वे कहने लगे—'ये भलेमानस वहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गये होंगे। अपनी शिकायत पहुँच गई होगी'। जब हमारी 'त्रिकुटी' प्रसादजी के द्वार पर पहुँची तो प्रसादजी ने निर्मल हास्य का फ़व्वारा छोड़ते हुए उसी निर्विकार भावना से कहा—

"उन्हें क्यों छेड़ दिया? कह गये हैं कि ये लोग भी आपके विरोधी हैं।"

हमने भी उत्तर में ठहाका लगाया, और प्रवासीजी ने कहा—"यह तो जानकर ही कहा गया था कि आपके पास कितनी जल्दी शिकायत आती है।"

प्रसादजी ने फिर एक ठहाका लगाया, और कहने लगे—"वह तो ऐसा ही अजीब प्राणी है।" उन्होंने भी उनका एक क़िस्सा सुनाया। वह सुनकर सभी ऐसे हँसे कि पेट में बल पड़ने लगे।

मैं रोज़, जब तक वहाँ रहा, उस मण्डली में आनंद लेने पहुँच जाता था। प्रसादजी की वह बैठक 'हँसी' के फ़व्वारे का ही केन्द्र थी। श्रीविनोदशंकरजी व्यास, पंडितप्रवर श्रीकेशवप्रसादजी मिश्र आदि शाम को वहाँ पहुँच जाते। लगातार पान की गिलौरियाँ, निर्दोष हास्य, साहित्यिक चुटकियाँ, मनोरंजन के विविध प्रकार आज भी मेरे सामने चित्रपट की तरह घूम रहे हैं। कौन जानता था कि वह महान् विभूति इतनी ज़ल्दी उठ जायगी। आज भी उनका वह निर्मल हास्य उस बैठक की गली में गूँज रहा होगा; पर हाय, वह मस्त-गंभीर-हृष्टपुष्ट विद्वान् आज वहाँ नहीं होगा। विनोदमूर्ति प्रतिभापुंज, हिन्दी का वह ईश्वरीय 'प्रसाद' आज हमें निर्धन कर अमरपद को प्राप्त हो गया। हृदय दहल जाता है। विश्वास नहीं होता कि सहसा वह इतनी जल्दी हम में से उठ जायगा। पर विश्वासहीन हमारा मन चाहे रोया करे, माने या न माने वह तो जहाँ जाकर कोई नहीं लौटता, वहाँ पहुँच गया। हिन्दी-साहित्याकाश का वह सर्वोन्नत प्रकाशपुंज बीच ही में अस्त हो गया। साहित्य-गगन को तिमिरावृत कर गया। उसके अस्तित्व में हमारा गौरव था, उसकी 'कला' का पुनीत 'प्रसाद' अब हमें नहीं मिलेगा। हम कितने अभागे हैं!

स्वर्गीय श्रीप्रसादजी का जन्म-काल सं० १९४६ माघ-शुक्ल १० गुरुवार इष्ट ४। ५ रोहिणी नक्षत्र सूर्य ९।१८ ल० १०। १८

० जन्मकुण्डली

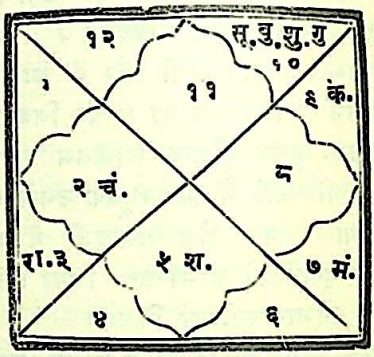

प्रसादजी की रुग्णावस्था के आरंभ में मैंने पत्रिका द्वारा श्री 'नवीन'जी को ख़तरे का समाचार सूचित किया था। वह राय कृष्णजी के पास उन्होंने भिजवा दिया था। दीप-मालिका के बाद पत्रिका से मैंने जीवन का ख़तरा स्पष्ट देखा था। इस बीच मैं योरप चला गया था। मुझे यह भ्रम सदा ही बना रहा कि कहीं अशुभ संवाद न सुनना पड़े। फिर भारत आ गया। अन्ततः वही समय सामने आया। उनकी पत्रिका ठीक मिलती थी। उनका मारक-समय निश्चित रूप से मिलने की सम्भावना थी। वही होकर रहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

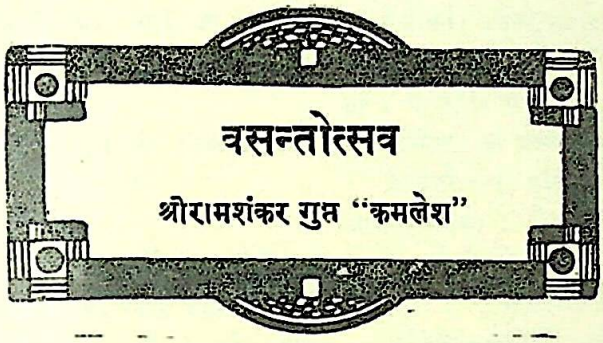

वसन्तोत्सव

श्रीरामशंकर गुप्त "कमलेश"

लगीं नाचने हर्ष से वल्लरियाँ, उनको हरे चीर निराले मिले ;
मुसकाने लगीं सुमनावलियाँ, उनको अलि चाहनेवाले मिले।
मिली रूठी हुई प्रिया पीतम को, मधुपावली को मधुप्याले मिले ;
ऋतुराज के आगम में वनों को उपहार में पीले दुशाले मिले ॥ १ ॥
पहने हुए सारी हरी तन में, अवनी नया साज सजा रही है ;
फल-फूल की डाली लिये करों में, विटपावली मोद मना रही है।
ऋतुराज का आगम है, इसी से, नव राग से कोकिला गा रही है ;
निज रूप में रंग में भूली हुई, सरसों नहीं फूली समा रही है ॥ २ ॥
भगने लगी शीत की सेना सभी, मन में कुछ शंक-सी माने हुए ;
खड़े हैं बने बन्दी पलाश लखो, किस भाँति ये रक्त में साने हुए।
सुमनायुध सेनापती मन में जग जीतने की हठ ठाने हुए ;
फिरता है प्रिये, मन बेधने को सुमनों का शरासन ताने हुए ॥ ३ ॥
परिहास में रूठी नवेलियों से रत ज्यों ही समीर हठीला हुआ ;
उर में मिलने की उमंग उठी, कुछ मान का बंधन ढीला हुआ।
यहाँ मोद से बौरे रसाल हुए, रस से वनप्रांत है गीला हुआ ;
इतनी घनी पीतिमा छाई प्रिये, विरही जनों का तन पीला हुआ ॥ ४ ॥
लगती है समीर के अंक लता, करती है नहीं अवहेला प्रिये ;
कलियों का सुआनन चूमने को अलियों ने मचा दिया रेला प्रिये।
कितनी कटु हो, तुम्हीं सोचो ज़रा, है नहीं यह मान की बेला प्रिये ;
ऋतुराज के आगम में लगा है अवनी में मिलाप का मेला प्रिये ॥ ५ ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गृह-स्वामी

(एकांकी-नाटक)

श्रीकृष्णमनोहरसिंह साँडल

पात्र

वृद्ध—गृह-स्वामी
उपेन्द्र—उसका पुत्र
प्रमीला—वृद्ध की द्वितीय पत्नी
उर्मिला—प्रमीला की बहन
वर्मा—एक वकील
शर्मा—एक डाक्टर

[एक कमरा, एक ओर एक आरामकुर्सी पड़ी है। बीच में एक गोल मेज़, उसके तीन ओर तीन कुर्सियाँ। आरामकुर्सी की पीठ दर्शकों की ओर है। उस पर एक वृद्ध लेटा है। उसके सिर के सफ़ेद बाल दृष्टि-गोचर हो रहे हैं। प्रमीला और उर्मिला एक दूसरे के आमने-सामने बड़ी गोल मेज़ पर बैठी खाना खा रही हैं। प्रमीला की अवस्था पचीस वर्ष की है। उर्मिला की लगभग बीस। समय—संध्या।]

उर्मिला—क्या वे खाना नहीं खायेंगे ? (वृद्ध की ओर इंगित करती है)

प्रमीला—वे ? (गर्दन हिलाती है) वे चार बजे दूध और रोटी खा चुके। सोने के पहले अब उनको कुछ नहीं मिलेगा।

उर्मिला—(दीवार पर टँगी घड़ी की ओर देखती है) अभी तो साढ़े छः बजे हैं।

प्रमीला—वे कुछ अधिक नहीं खाते। मैं उन्हें एक बच्चे की भाँति खिलाती-पिलाती हूँ। नहीं तो वे अपने कपड़े बिगाड़ लें। क्या तुम काफ़ी पियोगी ? यह केवल एक ही भर की है।

उर्मिला—नहीं काफ़ी मुझे कुछ अधिक पसन्द नहीं है।

प्रमीला—तो मैं ही पी लूँगी। आज मेरा प्याज़ खाने को मन चाहता था, किन्तु आज श्रीयुक्त वर्मा उनसे मिलने आ रहे हैं और प्याज़ से साँस में बदबू आने लगती है।

उर्मिला—श्रीयुक्त वर्मा ? वे तो वकील हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमीला—हाँ, उनके वकील वे ही हैं ; क्योंकि वे बीमार हैं और स्वयं वकील के यहाँ नहीं जा सकते। इसीलिए उनके पुत्र नवयुवक श्री वर्मा ने आज रात को आने को कहा है।

उर्मिला—जीजाजी श्रीयुक्त वर्मा से मिलना क्यों चाहते हैं ?

प्रमीला—(मुस्कराकर) आह !

उर्मिला—क्या जीजाजी हमारी बातें सुन रहे हैं ?

प्रमीला—डरो मत। वे तो बिलकुल बहरे हैं।

उर्मिला—(अनुनय के स्वर में) तो मुझे बता दो।

प्रमीला—वे अपनी वसीयत में परिवर्तन करने को राज़ी हो गये हैं।

उर्मिला—क्या उपेन्द्र को एक पाई नहीं देंगे ?

प्रमीला—(होठ काटकर) यह मैं कैसे कह सकती हूँ ?

उर्मिला—क्या वे सब कुछ तुम्हीं को दे जायेंगे ?

प्रमीला—यह मैं कैसे कहूँ। किन्तु क्या मैं इस योग्य नहीं हूँ कि वे सब कुछ मुझको ही दे जायँ ?

उर्मिला—हाँ, उनके कारण गत पाँच वर्ष से तुम बहुत कष्ट उठा रही हो।

प्रमीला—तुम्हारा कहना ठीक है। बहुतेरे युवक मुझसे विवाह करने को लालायित थे और मैंने इस वृद्ध से विवाह किया।

उर्मिला—उनके पुत्र की अवस्था तो तुमसे अधिक है।

प्रमीला—मेरे विवाह के समय वे छियासठ वर्ष के थे, अब इकहत्तर वर्ष के हैं। उनका अन्त समय निकट है और मैं अभी पचीस ही वर्ष की हूँ।

उर्मिला—मुझको आशा नहीं थी कि वे इतने दिन भी जीवित रह सकेंगे।

प्रमीला—हाँ, जितनी जल्दी उनका अन्त हो जाय, उतना ही अच्छा उनके लिए।

उर्मिला—और तुम्हारे लिए भी।

प्रमीला—तुम नहीं जानतीं कि मुझे उनके साथ कितनी मेहनत करनी पड़ती है। कपड़े पहनाना, कपड़े उतारना, उनको आरामकुर्सी पर बैठने का आग्रह।

(किवाड़ पर धक्का)

प्रमीला—देखो तो उर्मिला, कौन है ? श्रीयुक्त वर्मा तो इतनी जल्दी आ नहीं सकते। शायद डाक्टर साहब हों। वे आज अभी तक आये भी नहीं।

(उर्मिला का प्रस्थान, प्रमीला खड़ी हो जाती है)

प्रमीला—(पति से) वर्मा के आने पर तुम्हें जागना पड़ेगा। बिस्तर पर क्यों नहीं पड़े रहते ? कुर्सी पर भी तो सोते ही रहते हो।

(भयभीत उर्मिला का प्रवेश)

उर्मिला—जीजी, उपेन्द्र आया है।

प्रमीला—उपेन्द्र ?

उर्मिला—हाँ।

प्रमीला—वह क्यों आया है ?

(उपेन्द्र का प्रवेश, कपड़े फटे-पुराने देहाती, गले में मफ़लर)

उपेन्द्र—घर आने पर क्या मधुर स्वागत !

प्रमीला—यह तुम्हारा घर नहीं है।

उपेन्द्र—प्रमीला मेरी एक बात सुन लो। मैं तुम्हारा नाम लेता हूँ। मुझे क्षमा करना। मा मैं तुमको नहीं कह पाता।

प्रमीला—मुझे जो चाहे सो कहो। यहाँ से दूर हो।

उपेन्द्र—(वृद्ध को देखकर) अच्छा, आप यहाँ हैं !

प्रमीला—वे तुम्हारी सूरत देखना नहीं चाहते।

उपेन्द्र—मेरी भी यही इच्छा है। पिछली बार जब मैं यहाँ आया था, उन्होंने मेरे सामने ही दरवाज़ा बन्द कर लिया था।

प्रमीला—ठीक है। तुम सीधे जेल से छूटकर आये थे। उन्होंने तुमसे कह दिया था, यहाँ कभी मत आना।

उपेन्द्र—मेरे प्रति तुम्हारा प्रेम अभी लेशमात्र भी कम नहीं हुआ है।

प्रमीला—देखो उपेन्द्र। मैं गृह-स्वामिनी हूँ। यदि तुम दो मिनट के अन्दर घर के बाहर नहीं हो जाओगे तो मुझे उर्मिला को भेजकर पुलिस बुलानी पड़ेगी।

उपेन्द्र—कुछ खाने को दो।

प्रमीला—मैं नहीं दूँगी।

उपेन्द्र—मैं भूखों मर रहा हूँ। कल से कुछ नहीं खाया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमीला—मुझे क्या ?

उर्मिला—जीजी, खाने को दे दो।

प्रमीला—नहीं।

उर्मिला—वह खाकर चुपचाप चला जायगा। अभी तो खाना है।

प्रमीला—(उपेन्द्र से) अच्छा, तुम्हें खाना मिल जायगा।

उपेन्द्र—मैं आपका कृतज्ञ हूँ।

उर्मिला—थोड़ी-सी शराब भी ला दूँ ?

प्रमीला—(रुष्ट होकर) जैसा चाहो।

उपेन्द्र—उर्मिला, तुम बहुत अच्छी हो। पिताजी ने प्रमीला से विवाह करने में ग़लत बहन को चुना।

(उर्मिला का शराब के लिए प्रस्थान। उपेन्द्र दाईं ओर कुर्सी पर बैठ जाता है।)

प्रमीला—(दूसरी ओर बैठती हुई) खाना खाकर फ़ौरन् चले जाओ।

उपेन्द्र—(खाते-खाते) तुम्हें पिताजी की तरह बात करते देखकर मेरा मन होता है कि मा कहकर पुकारूँ।

प्रमीला—धृष्टता मत करो। चुपचाप खाओ, अन्यथा तुम्हारे पिता जाग जायँगे और फिर झगड़ा होगा। तुम्हें अन्दर देखकर वे मुझे कदापि क्षमा नहीं करेंगे।

(उर्मिला शराब लेकर आती है)

उपेन्द्र—धन्यवाद ! शायद पिताजी का स्वास्थ्य आजकल ठीक नहीं है ?

प्रमीला—जब तुमने उन्हें अपने जेल हो आने का समाचार दिया और उन्होंने तुम्हें निकाल दिया, तब से वे बिस्तर पर पड़े हैं।

उपेन्द्र—ओह !

प्रमीला—हम समझे कि वे विक्षिप्त हो गये। न काम कर पाते थे और न ठीक से बोल पाते थे। अब उनकी दशा कुछ सुधर चली है।

उपेन्द्र—उनका सौभाग्य है कि ऐसी दयालु और सुशील पत्नी उन्हें सेवा करने के लिए मिल गई।

प्रमीला—जल्दी-जल्दी खाओ और भागो।

(खड़ी हो जाती है)

उपेन्द्र—मेरी तुमसे एक और प्रार्थना है।

प्रमीला—वह क्या ? तुम्हें अब और कुछ नहीं मिलेगा।

उपेन्द्र—मुझे कुछ रुपये चाहिए।

प्रमीला—एक पैसा नहीं मिलेगा।

उपेन्द्र—मान जाओ मा।

प्रमीला—मैंने कह दिया, एक पैसा नहीं मिलेगा।

उपेन्द्र—उधार दे दो।

प्रमीला—उधार ?

उपेन्द्र—मैं लौटा दूँगा।

प्रमीला—तुम कभी लौटा नहीं सकोगे।

उपेन्द्र—थोड़े दिन बाद जब उनका देहान्त हो जायगा।

(पिता की ओर देखता है)

प्रमीला—(मुस्कराकर) मुझे ऐसी आशा नहीं है।

(उपेन्द्र निर्वाक् होकर थाली खिसका देता है)

उपेन्द्र—क्या उन्होंने वसीयत में से मेरा नाम काट दिया ?

प्रमीला—और तुम हो किस योग्य।

उपेन्द्र—क्या वे मुझे कुछ नहीं देंगे ?

प्रमीला—मुझे क्या मालूम।

उपेन्द्र—(क्रोधित होकर) क्या उन्होंने वसीयत बदल दी ?

(खड़ा हो जाता है)

प्रमीला—(डरकर) नहीं, उन्होंने वसीयत नहीं नहीं बदली है, बैठ जाओ।

उपेन्द्र—(बैठकर) अभी आशा है। उन्होंने रुपये और मकान मुझे तुम्हें बराबर-बराबर बाँट दिये हैं।

प्रमीला—शायद।

उपेन्द्र—देखो (ख़ाली जेब दिखाता है) मेरे पास कुछ नहीं है, मुझे दस रुपये उधार दे दो। फिर मैं तुमको तंग नहीं करूँगा।

प्रमीला—तुम कुछ काम क्यों नहीं करते ?

उपेन्द्र—मैंने कोशिश की थी।

प्रमीला—कोशिश की थी ! तुम काम करना ही नहीं चाहते।

उपेन्द्र—काम मिलना सहल नहीं है।

प्रमीला—तुमने कहाँ कोशिश की थी ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उपेन्द्र—शहर में।

प्रमीला—तुम बेकार-सभा में भी सम्मिलित हो ?

उपेन्द्र—हाँ, मैंने कुछ भाषण भी दिये थे।

प्रमीला—और तुम कर ही क्या सकते हो ? ा चुके ?

उपेन्द्र—खा चुका।

प्रमीला—अब चले जाओ।

उपेन्द्र—तुम्हारी जीभ बहुत तेज़ है मा। यदि मैं ा जाऊँ तो ?

प्रमीला—मैं तुम्हें ज़बरदस्ती निकाल दूँगी। मैं गृह-स्वामिनी हूँ।

उपेन्द्र—(पिता की ओर इंगित करता है) उनके विषय में तुमको क्या कहना है ? मैं तो उनको गृह-स्वामी समझता था।

प्रमीला—यह तुम्हारा भ्रम है। उन्हें जगाकर पूछ लो।

उपेन्द्र—मुझे मालूम है, वे क्या कहेंगे ? (पिता की ओर जाता है) तुम मेरे बड़े अच्छे बाप हो।

प्रमीला—और तुम उनके बड़े अच्छे पुत्र हो।

उपेन्द्र—मुझे तुम्हारी सहायता की आवश्यकता थी और तुमने मुझे घर से निकाल दिया। तुम मुझसे घृणा करते हो, मैं भी तुम्हें प्यार नहीं करता।

प्रमीला—जाते हो या नहीं ?

उपेन्द्र—जाता हूँ। (द्वार की ओर बढ़ता है) कुछ खाने को दो।

प्रमीला—एक पैसा भी नहीं दूँगी।

(द्वार पर धक्का। उर्मिला का प्रस्थान)

प्रमीला—श्रीयुत वर्मा आ गये, और मैं उनके लिए प्रस्तुत नहीं। यह तुम्हारा ही दोष है।

उपेन्द्र—अच्छा, मैं जाता हूँ। यह कौन आया ?

प्रमीला—एक व्यक्ति को तुम्हारे पिता से कुछ काम है।

(उर्मिला का प्रवेश)

उर्मिला—श्रीयुत वर्मा आ गये, जीजी।

(अप-टू-डेट जेंटिलमैन श्रीयुत वर्मा का प्रवेश)

वर्मा—नमस्कार।

प्रमीला—नमस्कार।

वर्मा—मेरे पिताजी न आ सके। उन्होंने मुझे भेजा है। मेरे योग्य काम बताइए।

प्रमीला—बैठिए।

(वर्मा बैठ जाता है)

वर्मा—वे तो सो रहे हैं। उन्हें जगाना पड़ेगा।

प्रमीला—जगाने में हानि क्या। वे तो दिन भर ऊँघा करते हैं। (द्वार पर खड़े उपेन्द्र से) तुम किस प्रतीक्षा में हो ?

वर्मा—(मुड़कर) अच्छा, तुम हो उपेन्द्र।

उपेन्द्र—जी हाँ।

वर्मा—बहुत दिनों से तुम्हें देखा नहीं। कहीं चले गये थे क्या ?

उपेन्द्र—जी हाँ।

वर्मा—आजकल तुम क्या कर रहे हो ?

उपेन्द्र—कुछ नहीं।

वर्मा—बेकार हो ?

उपेन्द्र—क्या आप यहाँ वसीयत में से मेरा नाम काटने आये हैं ?

वर्मा—मैं यहाँ....अरे भाई तुम क्या कहते हो ?

उपेन्द्र—आप वसीयत में परिवर्तन करने आये हैं ?

वर्मा—(प्रमीला से) क्या आपके पति मुझसे अकेले में मिलना चाहते हैं ?

प्रमीला—जी हाँ (उपेन्द्र से) हाँ, ये इसी लिए आये हैं।

वर्मा—सचमुच।

उपेन्द्र—क्या ये मेरा नाम काट देंगे ? (वर्मा से) क्या आप मेरा नाम काट दीजिएगा ?

वर्मा—मूर्खता की बातें मत करो। मुझे नई वसीयत लिखने के लिए बुलाया गया है। सम्भव है, तुम्हारा नाम काट दिया जाय अथवा सब सम्पत्ति तुम्हीं को मिले। यह भी सम्भव है कि वे सब धर्मार्थ लिख दें। मुझे उनकी इच्छा विदित नहीं और यदि विदित होती तो भी मैं तुम्हें नहीं बताता।

उपेन्द्र—(पिता से) तुम मेरा नाम काट दोगे ? (घूँसा दिखाता है) तुम्हारा नाश हो।

प्रमीला—(धक्का देकर) उनसे मत बोलो।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्मा—(खड़ा होता है) यदि इस समय आपके पति मुझसे अकेले में नहीं मिल सकते तो यहाँ समय नष्ट करना व्यर्थ है।

(जेब में कुछ काग़ज़-पत्र रखता है। द्वार पर धक्का, उर्मिला का प्रस्थान)

उपेन्द्र—(वर्मा से) आप मत जाइए। मैं ही जा रहा हूँ।

वर्मा—मैं तुम्हारी बुद्धिमानी की प्रशंसा करता हूँ। तुम मेरे यहाँ आना। मैं तुम्हारी सहायता करने की चेष्टा करूँगा।

उपेन्द्र—धन्यवाद। आपकी इस कृपा का कारण ?

वर्मा—तुम हमारे मुवक्किल के पुत्र हो और शायद किसी दिन हमारे मुवक्किल बनो।

(उर्मिला और डाक्टर का प्रवेश, जो स्थूलकाय और अधेड़ है)

शर्मा—(प्रमीला से) नमस्कार। (उपेन्द्र की उपेक्षा करता है वर्मा से) अच्छा, आप यहाँ क्या कर रहे हैं ? मुझे बहुत विलम्ब हो गया। रायबहादुर के यहाँ चला गया था। आवश्यक काम था। अब सब ठीक है। एक नन्हा-सा सुन्दर पुत्र। कभी-कभी सुशिक्षित और सुनियंत्रित परिवारों में भी यह घटना हो जाती है। (प्रमीला से) रोगी की क्या हालत है ?

प्रमीला—आज दशा सन्तोषजनक नहीं है।

शर्मा—अच्छा, सो रहे हैं। मैं अभी उनकी परीक्षा करता हूँ। वर्मा ज़रा एक मिनट मेरी प्रतीक्षा करना।

वर्मा—मेरे कारण आप जल्दी न कीजिएगा।

(शर्मा आरामकुर्सी की ओर बढ़ता है)

शर्मा—(ज़ोर से) नमस्कार (कन्धा हिलाकर) ज़रा उठ तो बैठिए। (अवाक् हो जाता है और घूरकर देखता है, फिर गम्भीर मुद्रा से पीछे हटता है) इनकी यह दशा कितनी देर से है ?

(सब विस्मित हो जाते हैं)

प्रमीला—कैसी दशा डाक्टर साहब ?

(डाक्टर नाड़ी देखता है और छाती पर हाथ रखता है)

प्रमीला—क्या बात है डाक्टर साहब ?

शर्मा—(शान्त स्वर में) उनकी मृत्यु हो गई।

(सब स्तम्भित होकर डाक्टर की ओर देखते हैं)

उपेन्द्र—मर गये !

वर्मा—हे ईश्वर !

(प्रमीला रोती-रोती कुरसी पर बैठ जाती है। उपेन्द्र भी धप् से बैठ जाता है। उर्मिला सान्त्वना देने की चेष्टा करती है)

वर्मा—बड़ी भयंकर घटना हो गई डाक्टर।

शर्मा—वे दो-तीन घंटे पहले यह संसार छोड़ चुके।

वर्मा—इसकी बिलकुल सम्भावना नहीं थी।

शर्मा—नहीं मुझे तो यह भय था। वर्मा, तुम्हें तो अब यहाँ कुछ करना नहीं है।

वर्मा—नहीं, अभी यहाँ कुछ देर मैं ठहरूँगा। शायद मेरे करने योग्य कुछ काम हो।

शर्मा—अच्छा, मेरे यहाँ आज तुम्हारा निमंत्रण रहा। भोजन के बाद ताश खेलेंगे।

वर्मा—धन्यवाद।

(बैठकर कुछ काग़ज़-पत्र देखता है)

शर्मा—(प्रमीला से) आप दुःख न करें। ऐसा तो हुआ ही करता है।

प्रमीला—जी हाँ।

शर्मा—नमस्कार। अब मैं जाता हूँ वर्मा, देर मत लगाना।

(डाक्टर का प्रस्थान)

प्रमीला—एक चादर ले आओ उर्मिला, और उनको उढ़ा दो।

वर्मा—पुरानी वसीयत जो वे रद करना चाहते थे, पर क़ायम रही उपेन्द्र (प्रमीला ध्यान से बातचीत सुनती है) और आप दोनों को वह मालूम है।

उपेन्द्र—जी हाँ, उन्होंने संपत्ति बराबर-बराबर बाँट दी थी।

वर्मा—हाँ, लगभग ऐसा ही है, और मेरी राय में उचित भी है।

(उर्मिला चादर लाकर उढ़ा देती है)

यह घर और इसके बराबर का घर आपका है और हरीपुरा के दोनों घर श्रीमतीजी, आपके हैं। रुपया आधा-आधा मिलेगा। आपका रुपया जीवन पर्यन्त आपका है। अथवा जब तक आप दूसरा विवाह न करें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमीला—हाँ !

वर्मा—मैं वसीयत को कापी लाया था कि शायद आवश्यकता पड़े (जेब में रखता है) अब मैं जाता हूँ। मुझे बड़ा दुःख है। आप मेरे यहाँ आइएगा उपेन्द्रजी।

उपेन्द्र—मैं अवश्य आऊँगा।

(वर्मा और उर्मिला का प्रस्थान)

प्रमीला—अब तुम जाओ और मुझे दुःख के समय तंग मत करो।

उपेन्द्र—मैं यहाँ से नहीं जाऊँगा।

प्रमीला—उनकी इच्छा थी कि तुम इस घर में क़दम भी न रख सको और मैं उनकी इच्छा पूरी करने की कोशिश करूँगी।

उपेन्द्र—तुम एक बात भूल रही हो मा।

प्रमीला—क्या ?

(उर्मिला का प्रवेश)

उपेन्द्र—अब यह मेरा घर है। मुझे वसीयत में मिला है। (प्रमीला घूरकर देखती है) अब तुम गृह-स्वामिनी नहीं हो, और न वे हैं। अब मैं गृह-स्वामी हूँ। मैं घर के बाहर नहीं जाऊँगा। (प्रमीला खड़ी हो जाती है) तुम घर के बाहर जाओगी।

प्रमीला—मैं ?

उर्मिला—उपेन्द्र, तुम इस रात में तो जीजी को घर से बाहर नहीं निकालोगे ?

उपेन्द्र—अवश्य निकालूँगा।

प्रमीला—मैं नहीं जाऊँगी।

उपेन्द्र—मुझे बल का प्रयोग करना पड़ेगा।

प्रमीला—तुममें इतना साहस नहीं है।

उपेन्द्र—देख लेना।

(प्रमीला रो देती है)

प्रमीला—ओह ! मैं नहीं जा सकती उपेन्द्र।

उपेन्द्र—अभी निकल जाओ।

उर्मिला—यदि उपेन्द्र की यही इच्छा है तो हमारे यहाँ चलो।

उपेन्द्र—हाँ, मेरी यही इच्छा है।

(प्रमीला आँसू पोंछकर खड़ी हो जाती है)

प्रमीला—तुम्हें उनकी मृत्यु से हर्ष है ? (प्रस्थान)

उपेन्द्र—नहीं, मुझे हर्ष नहीं है। मुझे अनुताप है। मैंने कटु शब्द कहकर घूँसा दिखाया था।

उर्मिला—उपेन्द्र, तुम्हें लज्जित होना चाहिए। यह बड़ी भद्दी बात है। पति के घर से स्त्री को इस तरह निकालना।

उपेन्द्र—वह मुझको निकालना चाहती थी।

उर्मिला—तुम्हें क्या जीजी का स्वभाव मालूम नहीं ? मुझे तुमसे ऐसी आशा नहीं थी। कोई भला आदमी यह नहीं कर सकता था।

(प्रमीला का प्रवेश)

उर्मिला—उपेन्द्र, उनको आज रात को ठहर जाने दो। वे तुम्हारे पिता की स्त्री हैं।

उपेन्द्र—इसीलिए मैं उन्हें निकाल रहा हूँ। (पिता की ओर मुँह करके) अब आपको मालूम हो जायगा कि कौन गृह-स्वामी है।

बाजे की पेटी बजाने को सिखलानेवाली पुस्तक, ४१ रागों के आरोह, अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तार, १०८ प्रसिद्ध गायनों के स्वर-तालयुक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी सहित, तृतीय आवृत्ति, पृष्ठसंख्या २२२, क़ीमत १॥) रुपया, डाक-ख़र्च ॥), विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइये।

लेखक—कै. गुरुजी भास्कर गणेश भिडे इन्दौरकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रमीला—बहन, उससे कुछ कहना-सुनना व्यर्थ है। वह अब यदि मेरी ख़ुशामद भी करे तो भी नहीं ठहरूँगी। (उर्मिला का प्रस्थान) उपेन्द्र, नमस्कार। जिस मृत व्यक्ति को तुमने कोसा था, उसके साथ सुख से रहो, अब तुम गृह-स्वामी हो। (प्रमीला का प्रस्थान)

उपेन्द्र—सुख से रहूँगा। क्यों नहीं (पिता से) तुम अब मुझको नहीं टोक सकते। मैं तुमसे नहीं डरता। क्यों डरूँ। अब तुम मुझे घर से नहीं निकाल सकते; मैं गृह-स्वामी हूँ। (डरकर काँप उठता है) मैं ज़रा मित्रों में घूम-फिर आऊँ। शीघ्र लौट आऊँगा। तुम मुझे निकाल नहीं सकते। (लैम्प बुझाता है) रुपया तो मेरे पास है ही नहीं। उस बक्स में रुपया रहा करता था। (लैम्प जला देता है) एक घूँट शराब के लिए तो रुपया अवश्य चाहिए, (बक्स उठाता है और पिता की ओर देखकर डर जाता है) तुम मुझे डरा नहीं सकते। तुम मुझे निकाल नहीं सकते। कहे देता हूँ। मैं गृह-स्वामी हूँ। (मेज़ के कोने पर बैठ जाता है) मेरी ओर इस तरह मत देखो। जब मैंने कोसा था, मुझे पता नहीं था कि तुम मर गये हो (काँपता है और हाथों से मुँह ढक लेता है) हे ईश्वर, यह नहीं सहा जाता।

(उपेन्द्र चुपचाप चला जाता है। वृद्ध गृह-स्वामी श्वेत चादर में लिपटा हुआ चुपचाप कुरसी पर बैठा रहता है। किवाड़ बन्द होने का शब्द)*

(धीरे-धीरे यवनिका पतन)

* अँगरेज़ी के एक नाटक के आधार पर।

गर्भ गिराना महापाप है

वन्ध्याकारक दवा

कमज़ोर तथा बीमार स्त्रियाँ, जो बच्चा होने के कष्ट से छुटकारा पाना चाहती हों, इस दवा को मँगाकर केवल ५ दिन सेवन करें। गर्भ न रहेगा। मूल्य मय डाकख़र्च ४॥)

औरतों के गुप्त रोग का इलाज कराना हो तो रोग का पूरा हाल हिन्दी में साफ़ साफ़ लिखें। रोग के अनुसार दवा तजवीज़ करके लिख भेजी जावेगी।

पता—श्रीचपलादेवी वैद्या

चपला भवन, गली रावलिया, मथुरा.

हकीम तुलसी प्रसाद अग्रवाल की असली-मीठी

बाल जीवन घुट्टी

चटाने से

बच्चों की हर एक बीमारी दूर होगी

निर्बल बच्चे बलवान बन जावेंगे

सब जगह बिकती है, नकली से बचो

नये सौदागर नमूना मुफ़्त मंगावें

मुफ़्त लो—१० प्रतिष्ठित लोगों के नाम भेजने पर स्वास्थ्य साधन पुस्तक मुफ़्त भेजेंगे

पता: बाल जीवन कार्यालय अलीगढ़, यू. पी.

लखनऊ एजेंट—माताबदल पंसारी, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१९१४ ई० के महायुद्ध में इटली मित्रराष्ट्रों के साथ था; परन्तु जब जर्मनी और टर्की से छीने हुए प्रदेश बाँटे जाने लगे, तो इटली को उसकी इच्छा के अनुसार भाग नहीं मिला। इटली को एक ओर तो लड़ाई में बहुत अधिक क्षति उठानी पड़ी, दूसरी ओर ब्रिटेन और फ़्रांस ने अपने वादे भी पूरे नहीं किये। इटली के रहनेवालों में इससे बहुत क्रोध तथा क्षोभ उत्पन्न हुआ। उनके स्वाभिमान को धक्का लगा। आर्थिक सङ्कट ने बेचैनी पैदा की। उसका परिणाम यह हुआ, जो आज हम फ़ैसिज़्म के रूप में देख रहे हैं। फ़ैसिज़्म का आदर्श ही लड़ाई को दावत देना है। इटली ने ऐसी परिस्थिति में, १९३५ ई० में, अबीसीनिया को जीत लिया। अब इटली के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने इस साम्राज्य की रक्षा करे और उससे आर्थिक लाभ भी प्राप्त करे। इसी कारण पूर्वी रूम-सागर की ओर इसका ध्यान केन्द्रित है।

प्रश्न यह है कि इटली का मंशा क्या है? पहली चीज़ जिसकी उसको आवश्यकता है, वह यह है कि रूम-सागर का जल-मार्ग उसके लिए खुला रहे, और वह स्वेज़ नहर द्वारा अबीसीनिया के उन बन्दरगाहों तक पहुँच सके, जो रूम-सागर पर स्थित हैं।

इटली की यह इच्छा नहीं कि वह इस रास्ते को बिलकुल अपने क़ाबू में कर ले; परन्तु वह यहाँ शक्ति-संतुलन (Balance of Power) रखना चाहता है और अपनी स्थिति को ऐसी मज़बूत बनाना चाहता है कि उसके इस जल-मार्ग से गुज़रने के अधिकार को कोई क्षति न पहुँचा सके।

इटली और ब्रिटेन में अविश्वास होने पर भी अब तक जो मिलाप दिखाई देता है, उसका कारण यही है कि इटली अपने इस सिद्धान्त पर क़ायम रहना चाहता है।

इधर रूम-सागर, स्वेज़ नहर और लाल-सागर का मार्ग ब्रिटिश-साम्राज्य का प्राण है। ब्रिटेन का सब व्यापार, जो पूर्वी देशों से होता है, इसी मार्ग से होता है। उसको अपने पूर्वी प्रदेशों, विशेषकर भारत पर क़ब्ज़ा रखने के लिए इस जल-मार्ग की बहुत आवश्यकता है। परन्तु यदि ब्रिटेन के लिए आफ़्रिका का चक्कर लगाकर यहाँ तक पहुँचने का रास्ता और भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है तो इटली के लिए इसका कोई दूसरा रास्ता (Alternative) नहीं है।

जिस समय इटली ने अबीसीनिया पर चढ़ाई की थी और राष्ट्र-संघ ने इटली का २४१ दिन का आर्थिक बहिष्कार किया था, उस समय स्वेज़ नहर के इस रास्ते के बन्द हो जाने का भय इटली के मन में बहुत अधिक हो गया था।

फिर जब राष्ट्र-संघ का प्रयत्न निःशस्त्रीकरण (Disarmament) के सम्बन्ध में असफल रहा तो युगोस्लाविया, यूनान और टर्की ने ब्रिटेन को यह मंज़ूरी दे दी कि वह आवश्यकता के समय इन देशों के बन्दरगाहों का उपयोग करे, और इसके बदले में सङ्कट के समय ब्रिटेन इन देशों की सहायता करे। इससे इटली को यह भय हुआ कि कहीं वह तेल, जो उसे इन देशों से मिलता है, मिलना बन्द न हो जाय। अगर ऐसा हुआ तो वह कोई भी लड़ाई अधिक दिनों तक जारी न रख सकेगा।

इस तमाम बहस से यह मतलब न निकालना चाहिए कि इटली के हाथ-पाँव रूम-सागर में बिलकुल कटे हुए हैं, और वह दूसरों पर आश्रित है। उसकी पोज़ीशन ऐसी है कि वह उससे बहुत कुछ लाभ भी उठा सकता है। आर्थिक बहिष्कार के समय इटली को यह ज्ञात हुआ कि वह ब्रिटेन के रूम-सागर के रास्ते को दो भागों में विभाजित कर सकता है। इटली, सिसली और आफ़्रिका के बीच में समुद्र की केवल एक तंग पट्टी है, जिसको इटली ने अपने जहाज़ी अड्डे (Naval fair bases) से घेर रक्खा है।

जैसा कि ऊपर बयान किया जा चुका, इटली को अनातोलिया नहीं मिला, और सन् १९२० में अपने घर के अलावा उसके पास सिर्फ़ लीबिया और डाडेकनीज़ थे। लेकिन ब्रिटेन ने फ़िलिस्तीन वग़ैरह लेकर निकट-पूर्व में अपनी पोज़ीशन बहुत शक्तिशाली बना ली। यद्यपि अब इटली ने रूम-सागर में बहुत-से जहाज़ी अड्डे बना लिये हैं, इससे ब्रिटेन की पोज़ीशन बहुत कुछ बदल गई है, तथापि उसे अब भी अपनी शक्ति और राजनीतिक प्रबन्ध में (जो उसने मार्गों की रक्षा के लिए किया है) पूरा विश्वास है।

अब इटली की सामुद्रिक शक्ति पर दृष्टिपात कीजिए। उसका सबसे मशहूर जहाज़ी अड्डा टारंटो में है, जहाँ उसका अस्त्रागार भी है। इसके सिवा उसके जहाज़ी अड्डे सिसली, लीबिया और एजियन द्वीपसमूह में भी हैं।

इटली ने बहुत अच्छी तरह अपने जहाज़ी अड्डों का ऐसा जाल बिछा दिया है कि वह मध्य रूम-सागर को पूरे तौर पर अपने क़ाबू में रख सके। अब ब्रिटेन का माल्टा द्वीपवाला जहाज़ी अड्डा बेकार-सा हो गया है। यह इटली के हवाई जहाज़ों के अड्डे से सिर्फ़ ५० मील के फ़ासले पर है, और किसी समय उस पर चढ़ाई हो सकती है।

इसी कारण ब्रिटेन इस चिन्ता में है कि हैफ़ा, सिकन्दरिया या साइप्रस में जहाज़ी अड्डा बनावे; परन्तु इस सम्बन्ध में कई दिक़्क़तें हैं। हैफ़ा मैण्डेट में शामिल है, और उससे यह काम लेने की आज्ञा नहीं। सिकंदरिया मिसर का शहर है, और वहाँ पर फ़ौज या बेड़ा रखना केवल मिसर की आज्ञा से हो सकता है। साइप्रस बेस (अड्डा) बनाने के लिए उपयुक्त नहीं।

इसमें शक नहीं कि ब्रिटेन की शक्ति कैपिटल और क्रूज़र जहाज़ों में अधिक है, परन्तु इटली सबमैरीनों (पनडुब्बों) में उससे बाज़ी ले गया है। इटली के पास १०० सबमैरीन हैं, पर ब्रिटेन के पास केवल ५६ हैं। इटली को रूम-सागर में हवाई जहाज़ ले जानेवाले जहाज़ों की आवश्यकता नहीं; क्योंकि तमाम रूम-सागर में उसके हवाई बेड़े स्थित हैं।

इटली की शक्ति को यों भी कम न समझना चाहिए; क्योंकि ब्रिटिश साम्राज्य बहुत बड़ा है, और उसका सामुद्रिक बेड़ा तमाम दुनिया में फैला हुआ है। इसलिए वह अन्तर, जो जहाज़ों के वज़न या तादाद से मालूम होता है, अधिक ध्यान देने योग्य नहीं। फिर अबीसीनिया की विजय के उपरान्त मसावा और असाब पर जो अड्डे इटली ने क़ायम किये हैं, उनकी सहायता से वह लाल-सागर के द्वार को बिलकुल बन्द कर सकता है।

इससे परिणाम यह निकला कि इटली और ब्रिटेन, दोनों को यह मालूम हो गया कि रूम-सागर में उन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ों के स्वार्थ रूम तथा लाल-सागर का मार्ग खुला
ने में समान हैं।
दूसरे यह कि उनमें से हरएक ऐसी पोज़ीशन में है
वह दूसरे का कुछ विशेष हल्क़ों में, जो इस
र्ग में पड़ते हैं, दाख़िला आसानी से बन्द कर
कता है।
तीसरे यह कि यदि ऐसी लड़ाई हो, जिसमें एक
सरे को हराने की कोशिश करे तो उन दोनों को बहुत,
ल्कि ऐसी क्षति पहुँच सकती है, जिससे फिर वह पनप
सकें। इसी लिए १९३६ ई० से दोनों समझौते
ी फ़िक्र में थे। अप्रैल, १९३८ ई० की सन्धि इसी
ा फल थी।

मुसोलिनी ने कहा था कि "रूम-सागर में इटली
और ब्रिटेन के स्वार्थों में परस्पर विरोध नहीं। बल्कि वे
एक दूसरे के पूरक हैं; और इन दो देशों में से कोई
दूसरे की शत्रुता का आनन्द उठाने का दुस्साहस नहीं
कर सकता।"

इसके पहले, १९३७ में, एक सन्धि हुई थी, जिसमें
दोनों शक्तियों ने यह स्वीकार किया था कि दोनों के
स्वार्थ साथ-साथ चल सकते हैं, और दोनों ने यह भी
ख़याल ज़ाहिर किया था कि वे रूम-सागर में
Status quo में कोई परिवर्तन नहीं चाहते। लेकिन
अप्रैल, सन् १९३८ से अप्रैल, १९३९ ई० तक एक
साल बीत चुका है, और इसमें बहुत काफ़ी तबदीली
हो चुकी है।

स्पेन में जो गृह-युद्ध चल रहा था, उसके बीच में
इटली और ब्रिटेन में मनमुटाव हो गया था, और
अप्रैल, १९३८ ई० का समझौता उसका परिणाम था।
परन्तु जब १९३९ ई० के प्रारम्भ में स्पेन का गृह-युद्ध
समाप्त हुआ और जेनरल फ़्रैंको ने स्पेन में यहाँ तक
अपना अधिकार कर लिया कि ब्रिटेन, फ़्रांस और अमे-
रिका, सभी को उसकी विजय स्वीकार करनी पड़ी, तो
स्थिति फिर बदली। जेनरल फ़्रैंको भी फ़ैसिस्ट है, और
अब स्पेन भी फ़ैसिस्ट राज्य है। इटली और जर्मनी ने
छिपे-छिपे जो उसकी सहायता दी थी, उसका उद्देश्य
सब तरह से अपनी (फ़ैसिस्ट) शक्ति को बढ़ाना था।

अब जेनरल फ़्रैंको इटली के इशारे से जिब्राल्टर पर
चढ़ाई कर सकता है। इससे अँगरेज़ों का भय बढ़ गया
है। जिब्राल्टर पर चढ़ाई हुई तो मानों रूम-सागर में
प्रवेश का द्वार ही बिलकुल बन्द हो जायगा। इसलिए
ब्रिटेन ने जिब्राल्टर को दुर्भेद्य बनाने का प्रयत्न किया
है। वहाँ फ़ौजें बड़ी संख्या में भेजी गई हैं।

पर स्पेन गृह-युद्ध में तबाह हो चुका है। जेनरल
फ़्रैंको को, जिसने ख़ुद स्पेन को तबाह किया है, उसके
पुनर्निर्माण और क़र्ज़ अदा करने के लिए इतने रुपयों की
आवश्यकता है कि उतनी रक़म इटली नहीं दे सकता;
केवल ब्रिटेन और फ़्रांस ही दे सकते हैं।

यदि वह इन देशों से क़र्ज़ लेता है तो जो कुछ ये
कहें, वह उसे मानना होगा, और मुसोलिनी की दाल
नहीं गलेगी। परन्तु अभी इसके लक्षण दिखाई नहीं देते।

इधर मुसोलिनी ने एक बहाने से अल्बानिया पर
क़ब्ज़ा कर लिया है। इस विजय से उसे फ़ौजी दृष्टि-कोण
से अवश्य लाभ हुआ है, परन्तु सामुद्रिक दृष्टि-कोण से
कोई विशेष लाभ नहीं हुआ; क्योंकि यदि लड़ाई भी
छिड़े तो कोई मुल्क एड्रियाटिक-सागर में घुसकर इटली
पर चढ़ाई नहीं करेगा।

रूम-सागर एक तंग समुद्र है; लेकिन यहाँ जो कुछ
होता है, वह अपना एक विशेष महत्व रखता है।
कारण, यहाँ पर भिन्न-भिन्न नीतियों की मुठभेड़ है।
ब्रिटेन और फ़्रांस एक ही ओर रहेंगे; क्योंकि फ़्रांस
फ़ैसिस्ट राष्ट्रों अर्थात् इटली, जर्मनी और स्पेन से घिरा
हुआ है। और इटली ट्यूनिस की माँग भी उपस्थित कर
चुका है। रहा रूस और टर्की का सवाल। सो फ़ैसिस्ट
और प्रजातंत्र, दोनों तरह के राज्य उन पर डोरे डाल रहे
हैं। इधर ब्रिटेन और टर्की में बातचीत हुई है, और
उन्होंने एक दूसरे की सहायता का वादा किया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"घिर आई कारी बादरी!!"

श्रीमती निर्मला मित्रा

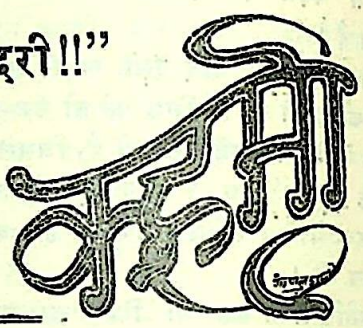

कोई माने चाहे न माने, लेकिन मेरा मत है कि वर्षा के सजल आभास में, उसके बादलों की गड़गड़ाहट में हृदय को आकृष्ट करनेवाली एक अत्यन्त कातर वेदना-ध्वनि रहती है। और उसी वेदना की अननुभूत प्रेरणा पर आज मैं चाह रही थी कि कुछ विदग्ध मार्मिक कहानियाँ लिख डालूँ। पानी रिमझिम बरस रहा था, और हवा के मन्द झकोरे, प्रकृति के इस अश्रु-विलास पर मानों रह-रहकर समवेदना प्रकट कर रहे थे। मैंने भी एकान्त उन्मन हृदय से अपनी गृहस्थी का कामकाज सँभाला। फिर ऊपर कमरे में पहुँची। यहाँ भी पवित्र भावों के अनुकूल दृश्य था। निर्जन कमरा मेरी कल्पना की सहायता के लिए ही जैसे एकाकी बन उन्मुख बैठा था। इस समय उसने गोद पसार कर मेरा स्वागत किया!

धूपदानी से धूप की गन्ध अपने धूमायित लीलाछन्दों में ऊपर को उठकर फिर कमरे में फैल रही थी, और शुभ्र मर्मर टेबिल के ऊपर अभी का तोड़ा हुआ पत्ती समेत एक कदम के फूलों का गुच्छा अपने खिले हुए सौन्दर्य से मेरे दिमाग़ को ताज़ा कर गया!

कमरे की यह पवित्र परिस्थिति मुझे इतनी अच्छी लगी कि मुझे विश्वास-सा हो गया कि मैं आज अवश्य ही कोई बढ़िया कहानी लिख सकूँगी।

सामने की खुली खिड़की से मैंने दिगन्त-विस्तृत करुण प्रकृति को देखा। हाँ, ऐसे मौसम में कल्पना मस्तिष्क में क्यों न आवे? जिसकी आँखों के सामने "तमालतालीवनराजिनीला" की उन्मुक्त शोभा फैली हो, जिसके माथे पर 'उत्तरमेघ' मृदु मन्द गरज रहा हो, जिसके सामने विंध्याचल की ऊँची-ऊँची चोटियाँ वर्षा-स्नात होकर दिग्गज-सी प्रतीत हों, और उसके पाददेश में 'शिप्रा'-सी आवर्त संकुल चंचल नर्मदा का उद्दाम कल-कल हास हो, उसके मस्तिष्क में 'मेघदूत' न सही, उसका एक कण एक छन्दांश आना क्या आश्चर्य की बात है?

किन्तु मेरे ध्यान को भंग कर चार-छः छोटी कंकड़ियाँ मेरे कमरे की दक्षिण की खिड़की की काँच पर पड़ीं। मैंने अपनी पड़ोसिन वधू के सकरुण आह्वान को जान लिया। बहुत कुछ खीझ से हृदय तो भर गया, परन्तु उसके आह्वान की एकाएक उपेक्षा भी न कर सकी।

कई दिनों से यह मेरे बाजू के एक तल्ले मकान में रहती है। जब-तब मैं अपनी ऊपर की खिड़की से देखा करती हूँ——दो चमकीली काली आँखें काजल की कोर में जड़ी हुई जैसे निकष-नील अथाह सागर बन गई हैं। मैं नहीं कह सकती, कितना गम्भीर रहस्य, व्यथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कितना निविड़ आलोड़न उन आँखों में भरा था।

इस नील कमल-सी चमकीली मणिमय आँखोंवाली की कीं, उसके मकान में कोई क़द्र, कोई मूल्य नहीं न जाने कब की ब्याही आई यह निर्वाक् वधू वा-सी बनकर अपने सास-ससुर के पास रहती है। इसका विदेश में वास करता है। कभी आने का नाम नहीं लेता। सास इसे धिक्कार देकर ा कहती है—"ऐसी कुलच्छनी घर में आई कि ा लड़का वनवासी हो गया।" ससुर तुक में तुक लाकर कहता है— 'देख, गोकुल की मा, एक बात मेरे न में आई है। इसे विदा कर गोकुल को दूसरी शादी र दें तो गोकुल ज़रूर घरवासी हो जायगा।"

किन्तु सास इस बात पर राज़ी नहीं होती; हो भी से? इस बुढ़ापे में फिर क्या घर का सारा काम वह द करेगी?

मुझे इस बहू की बुरी हालत पर बड़ा तरस आया ाता था। एक दिन मैंने उससे पूछा भी—"क्यों री, ोकुल भी क्या तुझे नहीं चाहता?"

बीस-बाईस वर्ष की यह तरुणी वधू लज्जा-विकम्पित ांची नज़रों से बोली—"धत्, जीजी भी ख़ूब पूछती हैं। भला, ब्याहता पति भी कभी अपनी जोरू को बिना चाहे रह सकता है?"

"फिर तेरे सास-ससुर क्यों गोकुल की दूसरी शादी ी बात करते हैं?"

"अरे जीजी, तुम इनकी कोई बात सच न मानो। ये सब इनकी चालाकियाँ हैं। अभी चाहूँ तो मैं उनके पास चली जा सकती हूँ; लेकिन ये मुई जब मुझे वहाँ जाने दें। मैं चली जाऊँगी तो फिर इनकी दिन-रात सेवा-ख़ुशामद कौन करेगा? इनके हाथ-पैरों में तो कीड़े पड़ गये हैं।"

इसी से इस दुखिया वधू की उपेक्षा मैं कभी नहीं कर सकती थी। मुझे बुलाने का एक अच्छा उपाय भी उसने निकाल लिया था। चार-छः छोटी कंकड़ियाँ वह अपने आँगन में खड़ी हो मेरी ऊपर की खिड़की में मार दिया करती थी। इस समय कंकड़ी मारकर प्रतीक्षा में खड़ी थी। मैंने झाँककर देखा, तो हँसकर बोली—"जीजी, मैं तुम्हारे पास ज़रा आना चाहती हूँ।"

अच्छा-सा कुछ लिखने के लिए मेरा हृदय उद्यत था। अब हताश हो बैठ गया, यह तो मैं उससे कहने से रही।

लेकिन वह मेरी स्तब्धता की कोई परवा न कर वैसे ही कौतुक से खिली खिलाई अपने आँचल के तले से एक फटा रसीद का टुकड़ा निकाल मुझे दिखाकर बोली—"इसमें पता होगा। मैं तुम्हें दिखाना चाहती हूँ।"

किन्तु केवल पते से वधू की क्या सान्त्वना होगी, यह मैं नहीं समझ पाई। फिर भी मैंने उसे बुला लिया।

एक मिनिट में वह रास्ते से घूमकर मेरे कमरे में आई। बोली—"देखो जीजी, कब से तुम्हारे पास आने को करती हूँ, लेकिन निगोड़ी सास के मारे तो साँस तक नहीं ले पाती। आज मरे हैं दोनों। उनका दोहता गुज़र गया है, वहीं दोनों गये हैं।"

आह! बेचारी के बन्दी जीवन में आज कैसी मुक्ति मिल गई! आज यह पेट भर दो रोटी खायगी, और नींद भर सोवेगी!!

बोली—"देखना जीजी, इस रसीद में उनका पता है या नहीं। आज डेढ़ साल से उनका पता ढूँढ़ रही हूँ, लेकिन बूढ़ा छिपाये रहता है।"

मैंने कहा—'पता लेकर तू क्या करेगी? गोकुल के पास जाना चाहती है?"

वधू 'ऊँहूँ' कहकर मुसकिरा दी।

"अच्छा समझी, चिट्ठी लिखेगी, क्यों?"

वधू एकदम करुणा से टूट पड़ी। बोली—"जीजी, तुम लिख दोगी?"—उसकी वे ही दो छलछलाई हुई करुण आँखें मेरे सामने थीं।

'नहीं' कहने के लिए मुझमें शक्ति नहीं रही। जैसे एक सम्मोहन शक्ति से मैं अभिभूत हो गई!

हाय रे अभागे गोकुल! जिसकी पत्नी की चितवन में विश्व-वश कर लेने की क्षमता भरी पड़ी है, वह क्यों कर इसे भूल विदेश में पड़ा हुआ है! पत्नी की ऐसी आँखों से आँखें चार करने की जिसकी इच्छा नहीं होती, वह कैसा युवक है? वह कैसा जितेन्द्रिय है? मैं अपने मन में घबरा उठी!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वधू बोली—"ज़रा देखो तो जीजी।"

मैंने तटस्थता से रसीद उलट-फेरकर देखी—"सात नम्बर बाँसतल्ला लेन से भेजनेवाला मिस्री गोकुल तिवारी।"

"अच्छा तो यह कलकत्ते में रहता है?"—मैंने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा।

"और नहीं तो क्या। कोई बड़े समुन्दर पार थोड़े चले गये हैं। लेकिन चिट्ठी तुम अभी लिख दो जीजी। तुम्हारे पाँव पड़ूँ। नहीं तो कल ही हत्यारी आ जायगी।"

लाचार मैंने दावात-क़लम उतारी। यद्यपि मैं जानती थी, मेरी भाषा कारख़ाने के मिस्री गोकुल के समझने योग्य हरगिज़ न बन सकेगी, परन्तु करती भी क्या? सामने ही व्याकुल वधू आतुर दो नैन बिछाये बैठी है।

मैंने कहा—"तुम कहती चलो, मैं लिखती जाती हूँ।"

बड़े उत्साह से भरकर वह जमकर बैठी, और कुछ सोचने लगी। उसकी घन-पक्ष्मल आँखें वाष्पोच्छ्वासों से भर-भर आईं। आँचल में उन्हें पोंछकर उसने जो कुछ कहा, साधु भाषा में उसका अर्थ यों होता है—"बार-बार सावन आता है और स्त्रियाँ सोलह शृंगार किये झूले में बैठकर कजरी गाया करती हैं। मेरा दिल चाहता है, उसी प्रकार साजशृंगार कर मैं भी उनके साथ झूला झूलूँ, और कजरी गाऊँ, लेकिन साज-बाज दूर रहा। मुझसे गाते तक नहीं बनता। गला बार-बार रुँध जाता है, आँखों में पानी भर आता है। रूठे विदेशी, मैं वे विरह की व्यथाएँ गाकर किसे सुनाऊँ, कहीं एक बार भी सावन के दिनों में तुम आ जाते तो मैं जी-भर पहन-ओढ़कर कजरी गा लेती।"

और भी बहुत-सी व्याकुलतापूर्ण वेदना वह कह गई! किन्तु मैंने बहुत काट-छाँटकर पत्र उसे लिख दिया। लिफ़ाफ़ा निकालकर पता भी लिख दिया और अपने ही नौकर के हाथ उसकी वह चिट्ठी डाक में डलवा दी।

पति के लिए वधू का दुर्निवार आग्रह देख मैंने भी कलकत्ते में अपने जेठ के लड़के को गोकुल तिवारी का पता देकर लिखा, जहाँ तक हो सके, शीघ्र पता लेकर मुझे उसका हाल देना।

कई दिन बीत गये। वधू वर्षा की भरी साँझ-सी धुँधली म्लान बनकर ऊपर को आँख उठाये पूछती थी—"जीजी, जवाब तो आज तक न आया?"

यह आतुर उद्वेग तो मुझे भी था। मैंने भी तो अपने जेठ के लड़के को तिवारी का हाल और पता देने को लिखा है।

आख़िर मेरे जेठ के लड़के की चिट्ठी मुझे मिली। लिखा था,

"चाची, तुम्हारे बतलाये गोकुल तिवारी के पास मैं ख़ुद तो न जा सका, परन्तु मेरा कम्पाउण्डर सुबोध गया था। वह देख आया, गोकुल अच्छा है, और ख़ुश है। वीरभूम ज़िले से वह एक स्त्री ले आया है। सुबोध के पूछने पर वह नाराज़ हो उठा। बोला—"ऐसी-वैसी बातें न किया करो। देख रहे हो, मैं घरगिरस्त आदमी हूँ। अन्दर मेरी जोरू मौजूद है।"

सुबोध ने जब इस मेरी पड़ोसिन वधू का ज़िक्र किया तो बोला, "जब तक मा-बाप ज़िन्दा हैं, तब तक उनकी सेवा-टहल किया करे। बस।"

सुबोध ने पूछा—"फिर?"

"फिर अपने नैहर चली जायगी।"

"और वहाँ भी उसका कोई न हुआ तो?"

"तो ज़माना पड़ा है। जहाँ चाहे, चली जाय।"

इसके बाद सुबोध ने लिखा था—"असल बात तो चाची यह है कि ब्याही से बढ़कर उसके पास उसकी वीरभूम की स्त्री है। उस स्त्री के पास गोकुल के दो बच्चे हैं, जो उस स्त्री का हक़ साबित करने के लिए काफ़ी हैं। परन्तु मैं सोचता हूँ, तुम अब उस प्रतीक्षा कर रही पतिव्रता वधू को क्या कहकर सान्त्वना दोगी?"

"हाँ, मैं अब इसे क्या कहकर सान्त्वना दूँगी! जब कातर दो आँखें उठाकर वह पूछेगी—"जीजी, चिट्ठी तो आज की डाक से भी नहीं आई!" .....

मैंने पत्र टेबुल पर रख दिया और चुपचाप बैठ गई!

× × ×

आज भी मेरी उत्तर की खिड़की खुली है, आज भी घन-वर्षा पृथ्वी के श्याम आँचल में मोती-सी बूँद-बूँद होकर रिमझिम बरस रही है। विन्ध्याचल की नगश्री

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन्नतिशील किसान

[चित्रकार—श्रीमोहम्मद हकीम]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वारि-स्नात होकर दिग्गज-सी प्रतीत हो रही है। उसके पाद-देश को प्लावित कर फेन-किरीटिनी नर्मदा कल-कल हास से बहती जा रही है। हवा के मन्द झकोरे और मेघों की गरज, सब कुछ उस दिन के अनुरूप हैं; लेकिन मेरी क़लम में तनिक भी क्या शक्ति बाक़ी है, जो महाकवि कालिदास की तरह इस विरहिणी यक्षवधू-सी इस दुखिया के मर्माङ्कित इतिहास को छन्दोबद्ध भाषा में बाँधकर विश्व के सामने रक्खूँ ?

और उस समय वह वधू क्या कर रही थी ?

वर्षा की मलिन वेला में चक्की में गेहूँ डालकर वह उस समय बहुत ही करुणस्वर से गा रही थी—

"उमड़-घुमड़ आकास सजनि, धिर आई कारी बादरी !!"

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण ! औरों की भाँति मैं प्रशंसा करना नहीं चाहता। यदि इसके तीन बार के लेप से इस रोग की सफेदी जड़ से आराम न हो, तो दूना मूल्य वापस दूँगा। जो चाहें -) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)

वैद्यराज—पं० महावीर पाठक, नं० ५, दरभंगा

C. B. 15.

स्नान का आनन्द ?

कई गुणा बढ़ जाता है

देहली क्लाथ एण्ड जनरल क्लाथ मिल्स लि०

के सुन्दर टर्किश बाथ तौलिये

बरतने से !

आज ही उनकी परीक्षा कीजिये !!

हमारी यू० पी०, बिहार और राजपूताने की एजेन्सियाँ—

लखनऊ—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, गूँगा नवाब का महल।

कानपुर—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, काहू की कोठी।

आगरा—देहली क्लाथ एण्ड मिल्स रिटेल शाप, जौहरी बाज़ार।

गया—मेसर्स रा० ब० रामचन्दराम हरिप्रसाद।

जयपुर—मेसर्स कन्हैयालाल मोज़ाराम, खांडा हवा महल।

अजमेर—मेसर्स कन्हैयालाल बृजमोहनलाल कैसरगंज।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असाढ़ के बादल

श्रीनीलकण्ठ तिवारी, एम्० ए०,
साहित्यरत्न

ये आषाढ़ी बादल प्यारे,
ये कजरारे अति गदरारे
उमड़ रहे हैं, घुमड़ रहे हैं,
आत्मा की शुचि प्यास पसारे
ऊपर गगन - भरी ये सजला,
खुलीं प्रथम आषाढ़ी आँखें
नीचे खुले दृगों पर मेरे,
मुँदीं आर्द्र पलकों की पाँखें
हिय के सूने मन्दिर में क्यों,
शत-शत आरतियाँ हैं जागी ?
मेघों का जल उठा गगन में,
हिय में सुलगी तब क्यों आगी ?
सहसा विह्वल-विकल हुआ मैं,
वह सौन्दर्य-सोहागिन जागी
आत्मा की शुचि प्यास जागकर,
आज स्वयं के पीछे भागी
एक प्यास-सी जगी हृदय में,
एक लगन-सी लगी हृदय में
नहीं जानता किसकी सुध है,
एक कसक पर उठी हृदय में
यह अंगों की नहीं वासना,
अन्तर की चिर-तृषा जगी है
प्राणों की मीना में स्वर्गिक,
सुरा - परी साकार उठी है
पैरों की धरती भी मानों,
सजल मेघ-सी उमड़ी आती
बनी दरारें सौ - सौ देखो,
फटती भरे प्राण की छाती
मदिर उदासी सहसा छाई,
उभरा यौवन का सूनापन
ऊपर सजल मेघ एकाकी,
सूने दूर - दूर वे तरु - वन
वह सूनापन मेरा जिसमें,
झींगुर की झंकार नहीं
पीड़ा का वह बाल-रुदन है,
जिसको मिली पुचकार नहीं
आषाढ़ी नवमेघ - महल में,
शत सौंदर्य - गवाक्ष खुले हैं
आषाढ़ी नवमेघ - पटल में,
शत मीनाक्ष - कटाक्ष डुले हैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कण-कण की भी साँस-साँस में,
होम-धूम्र की गन्ध पगी है
दूर मजारों की मिट्टी भी,
बनकर ज्वलित कपूर जगी है
दिशा-दिशा की सजल भुजाएँ,
फड़क-फड़ककर मुझे बुलातीं
गिरि-शृङ्गों के पीछे मानों,
धूमिल बाँहें उठ-उठ जातीं
इस आषाढ़ी आकुलता में,
याद आ रही एक कहानी
मेघों के महलों में बन्दी,
याद आ रही मेरी रानी
मेघ-पार ओ रहनेवाली,
ओ अज्ञात सुन्दरी मेरी !
दर्शन-सी बस निराकार हो,
तू बरसाती मणि की ढेरी
कहूँ तुझे क्या ? समझ न पाता,
लप-झप ज्वालामयि चकफेरी !
तुझे कहूँ क्या जनम-जनम की,
गुँथी चाँदनी और अँधेरी ?
भींगे दर्पण में मेघों के,
प्यास आज प्रतिबिम्ब बनाती
भींगे पत्तों से मेघों के,
अश्रुमुखी वह शीर्ष उठाती
पुत्तलियों की काराओं में,
अनुभव करता, छिपी हुई तू
सजल बदलियों में आँखों की,
अरी चाँदनी ! झाँपी हुई त
युग-युग के कपोल पर मेरे,
अश्रु-रेख बन खिंची हुई तू
युग-युग की समाधि पर मेरी,
कुसुम-डाल-सी लची हुई तू
किस गुलाब की पंखुरियों पर,
ओ मदमाती साँस बिधी है ?

किस संगीत-मुखर मधुवन में,
यौवन की ओ आँख लगी है ?
भारी-भारी पलकों में अब,
राज-हंस के फड़क रहे पर
भींगी स्वप्निल आँखों में अब,
तैर रहा है मानसरोवर
आज तिहारे विगत प्रेम की,
अदृश्य कुहरिल-सी अंगुलियाँ—
अपने तरल स्पर्श से पुलकित,
करतीं पलकों की पंखुरियाँ
देख न सकता, बस सुनता हूँ,
मानों क्षितिज तले तू कोई
सुरभित आम्र-कुञ्ज में गाती,
कोकिल-स्वर से धोई-धोई
मैं बेहोश हुआ जाता हूँ,
इस आषाढ़ी नभ के नीचे
कितनी प्यारी है बेहोशी,
पड़ा हुआ हूँ आँखें मीचे
इस आषाढ़ी नवल क्षितिज से,
अहे ! पुरातन और नवेली !
मानों मेरी ओर बढ़ाती,
अपनी मेंहदी-रँगी हथेली
थपकी देती हौले-हौले,
मेरे मूर्च्छित वक्षःस्थल पर
अपने में ही डूब रहा हूँ,
हैं पाताल दृगों के तल पर
थपकी देती रह तू छाती,
यह समाधि ही बन जाये
तेरे करतल की मेंहदी में,
दीप-शिखा की "लौ" लग जाये
युग-युग के आषाढ़ों से मैं,
निज अलका की आग बुझाऊँ
थपकी देती रह तू रानी !
मैं सुख-पीड़ा में मर जाऊँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

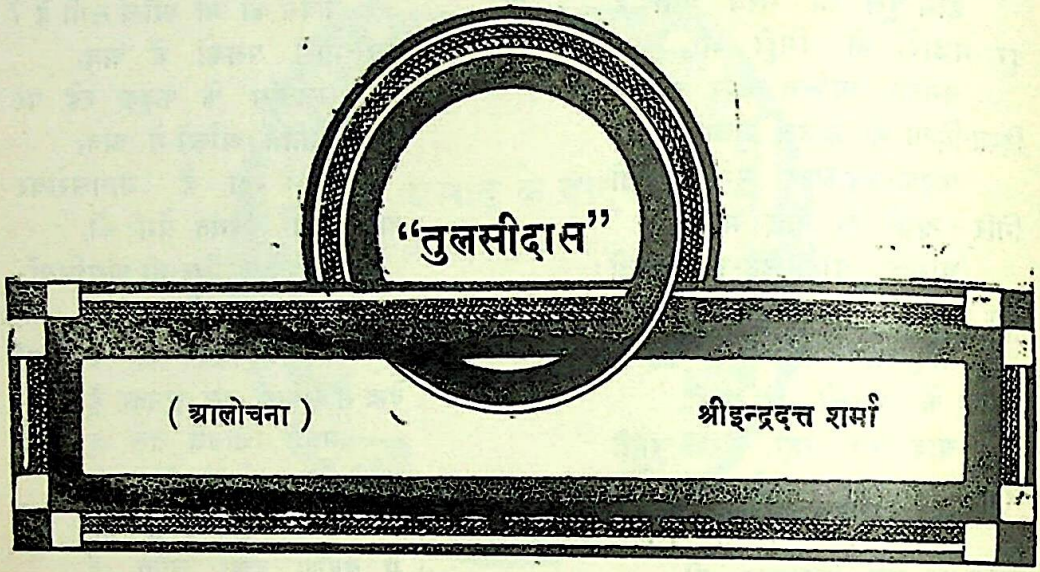

आर्य-संस्कृति के प्रतिभू तुलसीदासजी के प्रति यदि ऐसे कुछ सुन मिलता जैसे उन्होंने अपने को प्रकाश में पाया, इस जिज्ञासा के पूरी न उठने के पहले ही, बिलकुल उसी तरह 'निरालाजी' ने उसे सुना दिया। पदार्थ-शब्द गम्य ज्ञान को 'सत्' मानने में भारतीय दर्शन को आपत्ति कभी नहीं रही। अड़चन यही पड़ती रही कि ज्ञान का बोध कराकर ज्ञेय ज्ञाता को लेकर सदैव तद्रूप हो जाता रहा, और सदैव ही वह कवि-शब्द-सम्बोध्य मनीषी चेष्टा करता रहा कि जैसे भी हो सके, अब जिसे ज्ञान हो, वह ज्ञानरूप न होने पावे, यानी एक संघर्ष चलता रहा। फलस्वरूप विजय हुई उसी 'कविः स्वयम्भूः' की और साहित्य ने जन्म लिया। कला की व्याख्या यही हो सकता है। अपने को स्वतन्त्र न रखकर निश्चय ही कला 'सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय' न हो सकेगी। यह भी निश्चय है कि 'सर्वजन'वाली भावना को कला का नामकरण अप्रिय लगेगा, क्योंकि कला की स्वतन्त्रता जो छिनी जाती है न? यही हेतु, सौन्दर्य का कारण, प्रतीक का मूलाधार और 'भ्रम' शब्द का पर्याय है। भ्रम की गोद में बैठकर सत्य सुन्दर और शिव हो पाता है। नहीं तो अद्वैत-सत्य की व्याख्या में शिव और सुन्दर क्यों जुड़ेंगे? भ्रम और सत्य की मैत्री कला है, यह भी ठीक है। अब यों कहें कि सत्य का आवरण भ्रम है, यानी स्वरूप-शून्य, स्मृति का भास्वर भाव तथा ऊर्ध्व की गति। जैसे—

बंध के विना कहाँ प्रगति ?
गतिहीन जीव को कहाँ सुरति ?
रतिरहित कहाँ सुख ? केवल क्षति, केवल क्षति;
यह क्रम विनाश; इससे चलकर
आता सस्वर मन निम्न उतर;
छूटता अन्त में चेतन स्तर, जाती मति।
(तु० दा० प० ५२)

मतलब भ्रम है। आत्मा चैतन्य न होने से ही तो बँधी है। बँधी न हो, तो उसमें चेतना का प्रसार मुक्ति कैसे हो सके। पर पद्य में सौन्दर्य सीमित-सा देख लेना है। भ्रम में गति है, किरणें हैं और यही लपकती हैं, बढ़कर प्रकाश बनती हैं। फिर—

चल मन्द चरण आये बाहर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाश्रय महिमा धर, फिर देखा—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संकुचित, खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुखजल,
प्राची दिगन्त उर में पुष्कल रविरेखा।
(१००)

निरावरण देखने को उत्सुक करना भी मानों भ्रम-सा सुन्दर है, वह (भ्रम) हटता है। अवश्य ही वियोग नुभूति का केन्द्र एवं सत्य का प्रतीक है।

दुनिया की आँखों से देखने पर भी 'तुलसीदास' च्छा लगता है। महाकाव्य का लोभ इसे नहीं। इति-सु ही कुछ ऐसी है कि कथा ने अपने को किसी से ट न करना चाहा। राजापुर से चित्रकूट और वहाँ से फिर राजापुर। फिर रत्नावली का घर। खण्ड-काव्य की राह इसकी भावना अपने उठान में ही नहीं समा गई ं, लक्ष्य पा लिया है। यह 'काव्य' है।

काव्य ऐन्द्रिय होता है। काव्य में ज्योतिस्तत्त्व प्रतीक बनकर दिखाई देना चाहिए। और उसके नाम, रूप, गुण प्रकारादि भी पूरे-पूरे हों। सो इसमें हैं।

तुलसी के आसपास का चित्रित वातावरण आदि ही में भारतीय ममत्व है, जिसे परिवर्तन स्मृतिपथ से दूर नहीं ले जा सकते।

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य।'
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मण्डल;
उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान
है ऊर्मिल जल; निश्चलत्प्राण पर शतदल।

"यह भारतीय संस्कृति की संध्या है। जिसे आत्मा की प्रभा सदैव भरा की, वह प्रभापूर्य संस्कारों का सूर्य संध्या के कारण अपना प्रकाश उष्ण न रख सका और तब दिङ्मण्डल स्वयं अन्धकारध्वान हो गया।"

प्रभा जिसे पूर्ण करती रहे, वह वस्तु 'सूर्य' है। प्रतीक का सुन्दर विरोध है। वेद भी यही कहते हैं "अथ य एषोन्तरादित्ये हिरण्मयः पुरुषो दृश्यते हिरण्य-श्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः, तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी तस्योदिति नाम स एव सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदित, उदेति ह वै सर्वेभ्यः पाप्मभ्यो य एवं वेद।" (छान्दोग्योपनिषत् १—६—६. ७. ८.)

मर्यादा, आधार और रूप को लेकर प्रतीक चलता है। 'जो यह आदित्य में स्वर्णिम पुरुष देख पड़ता है, जिसके केश, नख सब स्वर्णिम हैं, कपि के पृष्ठभाग-सदृश पुण्डरीक लोचन हैं, वह सब पापों से ऊँचा उठता है। जो उसे इस तरह जान ले, तो ऊँचे अवश्य उठे।'

उपदेश-वाक्य है। जानने के बाद मर्यादा, आधार और रूप नहीं रह सकते। शायद इसीलिए कहा है और अपना बना करके,

'भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य।'

कविता के शेष अवयव (शब्दार्थ-चमत्कृतियाँ) इतनी हैं कि बोलने का साहस नहीं।

एक और ऐन्द्रिय उदाहरण कहना है। कभी-कभी थोड़े में बहुत भरना पड़ता है। पर 'बहुत' और 'थोड़े' की मर्यादा और सुन्दर हो जाती है। जैसे कवित्व कला या अनुभूति को गुदगुदाया जा रहा हो, जैसे वह अपने संकुचित पतले होठों में स्फीतालोक जैसा स्मित बटोरे हो। वह ऐन्द्रिय रूप की चरमावस्था होगी। तुलसीदासजी रत्नावली के घर 'डगर मैली होने के पहले ही' जा पहुँचे। यहाँ की कविता रुक-रुक-कर पढ़नी चाहिए।

"पहुँचे रत्नघर।
रमा के पुर।
बैठाला देकर मान,
पान,
कुछ जन बतलाए—कान-कान।

(लोग परिचय तो प्राप्त नहीं कर रहे। शायद मतलब है 'लो, आ गये' और घर के भीतर—)

सुन, बोली।
भाभी।
यह पहचान रतन की।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह पद्य ७६ संख्या का है, यह काव्य अन्त तक उत्तरोत्तर उत्कृष्ट बनता गया है।

मानी हुई बात है कि ऊँचे चढ़कर कोई नीचे देख भले ही ले, पर नीचे की चीज़ें छू कतई नहीं सकता। और यदि छू ले तो ? तो आश्चर्य होगा। 'तुलसीदास' काव्य, कवि, कविता और पाठक को भी लिये ऊपर उठता है। पर, बड़ा आश्चर्य है कि वह कितनी सुन्दर 'गिरह' लेता है। तुलसीदास प्रिया के रूपज मोह में डूबे घर लौटे। यहाँ पर उन्हें विश्व प्रियामय देख पड़ता है। घर की भी उन्होंने प्रिया-रूप कल्पना दृढ़ता-पूर्वक की थी। लेकिन रत्नावली नैहर जा चुकी है। गृह का शव उन्हें मिला। अच्छा रूपक है।

देखा, वह नहीं प्रिया, जीवन ;
नत-नयन भवन, विषण्ण आँगन ;
आवरणशून्य वे विना वरण मधुरा के
अपहृतश्री, सुखस्नेह का सद्म,
निःसुरभि, हंत, हेमन्त पद्म !
नैतिक नीरस निष्प्रीति-छद्म, ज्यों पाते।

(७१)

आख़िरी बात ख़ूब रही। नैतिकों के पास है ही क्या, नीरस और निष्प्रीतिपूर्ण छद्म के सिवा।

यह तो इस तरह दिग्दर्शनमात्र हुआ। जितना जी चाहे, घूमो फिरो, पर वह चीज़ जो कटु हो, अप्रीतिकर हो, इसमें शायद है ही नहीं। इसीलिए संसार के वर्तमान काव्यों का नियम यदि यह तोड़ डाले, तो बुरा नहीं। मतलब यह कि आज की बनी वस्तु कल की बनी वस्तु से कुछ लेकर आवे, ऐसा विश्व की प्रगति का प्रवाह है। पर इसने वैसा नहीं किया। और, विश्वास है, नियमानुकूल यह भविष्य-काव्यों का उपजीवक बन जाय।

एक बात और कह दूँ। सम्भावित शंका-समाधान भी इसमें है। तुलसीदास के मन का परिवर्तन समझ में आ सकता है। वह 'समधीतशास्त्रकाव्यालोचन' हैं। प्रकृति पर्यवेक्षण-काल में ही प्रतीति होती है, यह अलंयकर तड़िद्गुणबद्ध वारिदव्यूह अब रत्नावली के मानस में न समा सकेगा। वह 'विश्वम्भर' होने जा रहा है। पर, रत्नावली ने, जिसे, पुष्प ने जैसे गन्ध को, पवन ने जैसे स्पर्श को पाला है, वैसे ही जो पाली गई, जो सतत मोहधारा में बहा की या बहाई जाती रही, कैसे भड़ से बोल उठी। तड़ित्प्रपात से अभ्रपटल कैसे जल गये ? यह तो विचार करने पर आत्महत्या ठहरती है। इन सब प्रश्नों का उत्तर एक पंक्ति में है।

"राम के नहीं, काम के सूत कहलाये।"

ठीक है। राम तो वही है, जिसमें केवल 'रमण' ही हो। काम तो उस 'पाथेयं यन्मुक्तेः सपदि परपदप्राप्तये प्रस्थितस्य' का मार्गमात्र है। तुलसीदास का विश्राम अवश्य अनुचित था। इस प्रसंग की अवशिष्ट पंक्तियाँ यद्यपि प्रिय हैं, पर हमें तो पिष्टपेषण-सी लगती हैं। पर छोड़ भी नहीं सकते।

जल गये व्यंग्य से सकल अंग,
चमकी चलदृग ज्वाला तरंग,
पर रही मौन धर अप्रसंग वह बाला।

मोह और ममत्व का कितना दुर्धर्ष समर हो रहा है।

पति की इस मति - गति से मरकर,
उर की उर में ज्यों, ताप - क्षार,
रह गई सुरभि की म्लान अधर वरमाला।

(७७)

'रतन' की भाभी ने तो वह बात कही थी, जिसके लिए, यह भाभी और ननद का 'केवल' उपभोग है। यह अवस्था तो नारियों के लिए प्रायः किसी भी रम्य पूर्ति से कम नहीं। पर भाववैषम्य खुरचने लगा। वर्तमान साहित्य की प्रगति बुरा न माने, तो 'पताका' बड़ा सुन्दर है। कथानक के वैचित्र्यपूर्ण घटना-संघटन में इसका उपयोग भारतीय आचार्यों ने माना है। यदि मधुर परिहास को भावी जीवन का परिवर्तनसूचक न मानें तो उसे रत्नावली व्यंग्य कैसे समझ बैठी ? प्रसंग तो बतला रहा है, 'रतन' बहुत दिनों बाद भाभी से मिली है। और इस मिलन में 'तुलसी' का आगमन बिलकुल वही है, जो वैष्णवों के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

य पदार्थ में तुलसीदल का। फिर यह 'व्यंग्य' कैसा? गविज्ञान तो कहता है, पिता के घर में, भाभी के च जहाँ माता की स्नेह-मन्दाकिनी है, पति-संग एक निर्वाच्य वस्तु बनता है। वात्सल्य, स्नेह, परिहास, ज्ञा इत्यादि से घिरकर दाम्पत्य सूत्र-निस्यूत दो आत्म-खियाँ, मानों सान पर चढ़कर प्रकाश पाकर कंठस्थल प्रलम्बित उर को परिधि बन जाती हैं। वह असम्बर-य पदार्थ मानों मुट्ठी में समा जाता है। हमें तो इसके न्दर्य की रक्षा के लिए इसे 'पताका' मानना ही देगा।

भारतीय दर्शन की कसौटी पर 'तुलसीदास' के सन्देश को कसा जाय तो 'अद्वैत' ही है। यहाँ पर कोई भी न्देह इस तरह नहीं उठता कि तुलसी को पत्नी से म था। वह प्रकृति-दर्शन से बढ़कर प्राकृतिक हुआ। फिर प्रकृति के रूप में पत्नी आई। फिर प्रकृति हटी, त्नी बनी। और, अन्त में पत्नी ही ज्योति, कमला या सरस्वती देख पड़ी। यह मायायुक्त ईश्वर है।

यहाँ पर अभी तुलसी के मन में प्रतीक का नाश नहीं है, यह स्पष्ट है।

चल मन्द चरण आये बाहर,
उर में परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विश्वाश्रय महिमा धर, फिर देखा—
संकुचित, खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुखजल,
प्राची दिगन्त उर में पुष्कल रविरेखा।

उन्हें किरण के दर्शनमात्र हो रहे हैं, और यही मुक्ति का क्रम भी है। यहाँ तक व्यवहारकाण्ड प्राणी का है ही। अभी कुछ और भी श्रवण की आवश्यकता यद्यपि तुलसी को नहीं है, पर मनन निदिध्यासन यदि न होगा तो प्रकाश देखते रहेंगे, वह मिलेगा नहीं। देर करके वह निरूपण भले कर दें, पर उन्हें प्राप्ति न होगी, यह यहाँ पर 'काव्य' ने स्पष्ट कर दिया। यह मूर्तिदर्शन ही अवशिष्ट दर्शन का पर्याय है। तुलसीदासजी ने स्वयं स्वीकार किया है—

"सो जानै जेहि देहु जनाई,
जानत तुम्हहि तुम्हहि ह्वै जाई।"

बड़ी बेइन्साफ़ी की है, तुलसी ने अपने को दास मानते हुए दासता के साथ। और फिर मुक्त आत्मा का सारूप्य तो तुरीय प्रलय के काल में कार्य-ब्रह्म के विनाश पर ही होता है। तब तक सालोक्य है और वहाँ पर भी माया का साम्राज्य है। पर हाँ, वह स्वामिनी नहीं, वहाँ दासी बनी रहती है।

केवल तुलसीदास ही नहीं, निरालाजी की प्रत्येक पंक्ति निर्बाध मुक्त होती है। उनके छोटे से छोटे चित्र किरणों से बनते हैं।

'प्रिय यामिनो जागी।'

यामिनी में जगना प्रियता का हेतु है। अब 'कवि' प्रियता का निरूपण करने लगता है। कितनी सुन्दर आसक्ति-शून्य ऐन्द्रिकता है। और सौन्दर्य की सीमा।

'अलस पंकज दृग, अरुण मुख, तरुण अनुरागी।'

मुख अरुण है, पंकज दृग उसके (मुख के) सालस हैं, और वह (मुख) तरुण अनुराग से पूर्ण है। दोनों हाथों छवि लूटकर मुख प्रमुख बन गया। तन्वी के—

'खुले केश, अशेष शोभा भर रहे'

अशेष—कवि सुन्दरता को सत्य देख स्वयं लोभ बना जा रहा है। है भी तो वह 'सत्यं शिवं' के साथ ही 'सुन्दरम्' भी। चलो, जल्दी चलें।

'पृष्ठ ग्रीवा बाहु मुख पर तर रहे'
'बादलों में घिर अपर दिनकर रहे'
'ज्योति की तन्वी तड़ित-द्युति ने क्षमा माँगी'

तन्वी, जैसे दिनकर को कराक्रान्त करके तड़ित् की द्युति को तर्जनी से कँपा रही है

यह तो है तन्वी का स्वरूप। अब नंबर आया क्रिया का—

'हेर, उर, पट, फेर मुख के बाल,
लख चतुर्दिक् चली मन्द मराल,
गेह में प्रिय स्नेह की जयमाल—
वासना की मुक्ति-मुक्ता, त्याग में तागी।

व्यतिरेक, रूपक, उपमा स्वभावोक्ति का सुन्दर युद्ध हो रहा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अच्छा यह तो सब हुआ, पर तुलसीदास में जो नोट्स दिये गये हैं, वे निरालाजी को स्वयं लिखने चाहिए। कारण, वे, अलग जा रहे हैं।

'भारत के नभ का प्रभापूर्य'
'शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य।'
'अस्तमित आज रे—तमस्तूय दिङ्मण्डल';

कवि कह रहा है—

'भारत के आकाश का सूर्य, शीतलच्छाय है। संध्याकाल में तापशून्यता स्वाभाविक है। शब्दध्वनि है—भा—कान्ति—रत—जो है—उसके आकाश-सदृश सुविस्तृत प्राङ्गण का। प्रभा जिसे भरा करती है, वह 'स्कारों का सूर्य=तेजःपुञ्ज=शीतल छायावाला है (वह नहीं, उसकी छाया से तात्पर्य है।) और दिङ्मण्डल अस्तमित होकर अन्धकार की ध्वनि से भरा है। (प्रसारण से तम और ध्वनि का साम्य मिलता है)

टीकाकार कह रहे हैं—

"प्रभापूर्य—प्रकाश भरनेवाला।" (किस व्याकरण के अनुसार पूर्य का मतलब भरनेवाला होगा? प्रत्यय योग्यार्थ में है।)

इसी तरह नोटों में अनेक स्थानों में मूल ग्रन्थ का विरोध पर्याप्त मात्रा में है। दूसरे यह कौन-सा 'ग्रंथ' है कि कवि तो समझा जा सके, पर टीकाकार को समझने के लिए बावन सीढ़ियाँ ढूँढें।

यह पुस्तक लीडर प्रेस में छपी है, और वहीं से मिलती है।

भारतवासियों को उपहार

अरविंद सिल्क

अत्यन्त सुन्दर, कोमल, चमकीला तथा पायदार
सहस्रों थान बिक चुके हैं, आप स्वयं परीक्षा करें।

सिल्क पापलीन, सब रंग, थान	१२ गज़ × १२ गिरह	५)
टसर सिल्क, सफ़ेद तथा ख़ाकी	,, ,,	७)
सिल्क टविल, सब रंग	,, ,,	६॥)
सिल्क चादर, ,,	३ गज़ × १½ गज़, फ़ी जोड़ा	४॥)
टसर सिल्क चादर सफ़ेद ,,	,, ,,	६॥)
अंडी चादर	,, ,, ,,	८)

सिल्क साड़ी ब्लाऊज़ सहित ६ गज़, बढ़िया फूलदार बार्डर पक्का छापा कलर डिस्चार्ज सब रंग प्रति सेट ५)

नोट—आर्डर देते समय रंग का नाम लिख दें अथवा उसके साथ छोटा सा नमूना भेज दें। डाकख़र्च माफ़। माल यदि रुचिकर न हो तो मूल्य लौटा दिया जावेगा।

एजंटों की आवश्यकता है

स्त्री या पुरुष जो हमारे रेशमी तथा ऊनी माल का आर्डर ले सकें, मासिक वेतन ६०)। एक आना का टिकट भेजकर नियम मँगाएँ।

अरविंद टैक्स्टाईलज़ नं० २५, लुधियाना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भारतवर्ष में डेरी-फ़ार्मिंग

अर्थात्

दूध के पशु पालने की आवश्यकता

श्रीयुत एम्० पी० केदार आई० डी० डी०

यों तो सभ्यता के प्रारंभ से मनुष्य अपने लाभ और हित के लिए अनेक पशुओं को पालता चला आया है, परन्तु गाय के बहु-गुण-सम्पन्न होने के कारण उसकी देख-रेख के लिए वह विशेष रूप से प्रयत्नशील रहा है। भारतवर्ष के लिए तो गाय का अस्तित्व और भी महत्त्वपूर्ण माना गया है। कृषि-प्रधान देश होने के कारण यहाँ की लगभग अस्सी प्रतिशत जन-संख्या का निर्वाह प्रायः खेती के कार्य से होता है। डेरी-फ़ार्मिंग अर्थात् दूध देनेवाले पशु पालना इस कृषि-कार्य का एक प्रकार से आधार है। खेती के काम के लिए साधारणतः चार चीज़ों की आवश्यकता रहती है—भूमि, बैल, पानी और बीज। यदि न हों, तो अन्य तीन चीज़ें भी कोई लाभ पहुँचाने में समर्थ नहीं होतीं। दूसरे देशों में बैलों के स्थान पर घोड़े आदि अथवा मशीनरी का उपयोग किया जाता है। परन्तु इस देश में बैलों द्वारा ही खेती के सब काम होता है। भूमि जोतने से लेकर मंडी में अनाज पहुँचाने तक के लिए किसान अपने बैलों पर ही निर्भर रहता है। घोड़े आदि या मशीनरी के उपयोग का प्रश्न सामूहिक रूप से इस देश के लिए एक प्रकार से निर्मूल-सा है। भारतीय किसान के लिए बैल वास्तव में एक ऐसी बड़ी शक्ति है, जिसकी सहायता से वह अन्न, फल, तरकारी और रुई आदि के रूप में अपने और दूसरों के लिए जीवन-निर्वाह की सामग्री और धन-दौलत पैदा करता है।

यह प्रकट है कि उत्तम और उन्नत खेती के लिए अच्छे और काफ़ी बैलों की आवश्यकता रहती है। दुर्भाग्य से इस देश में एक ओर जहाँ बैलों की संख्या नाकाफ़ी है, वहाँ दूसरी ओर उनकी अवस्था भी अत्यन्त शोचनीय है। अधिक दुःख की बात यह है कि वर्तमान संख्या और स्थिति में भी दिन-प्रतिदिन उनका ह्रास हो रहा है। इस सम्बन्ध में मैं अपने दो लेखों द्वारा 'अर्जुन' देहली के कालमों में अच्छी तरह प्रकाश डाल चुका हूँ।

दूध के पशु पालने की ओर विशेष रूप से ध्यान देने का पहला बड़ा कारण यही है कि यहाँ की खेती को उन्नत और लाभदायक बनाने के लिए उत्तम बैलों की प्राप्ति होती है।

यह काम एक और महत्त्व रखता है। वह है पशुओं से गोबर के रूप में बढ़िया खाद का मिलना। यह बात अब खोज के द्वारा सिद्ध हो चुकी है कि भूमि की उपजाऊ शक्ति को स्थिर रखने या गई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करने के लिए गाय आदि के गोबर और मूत्र से उत्तम दूसरी कोई खाद नहीं है। योरप और अमेरिका के देशों में अनेक स्थानों पर सैकड़ों पशु केवल खाद के लिए पाले जाते हैं। काफ़ी खाद न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मिलने से यहाँ की भूमि की शक्ति दिन-दिन कम हो रही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि डेरी-फ़ार्मिङ्ग से दूसरा बड़ा लाभ भूमि की उर्वरता-शक्ति को बनाये रखना है।

पशु-पालन के सम्बन्ध में तीसरी बात और भी है। संसार के आदि से अब तक दूध मनुष्य का आदर्श भोजन माना गया है। विज्ञान की खोज ने भी इसका खुले रूप में समर्थन किया है कि दूध मानव-शरीर की पुष्टि और वृद्धि के लिए सर्वोत्तम पदार्थ है। आज भी जिन देशों के निवासी दूध आदि का अधिक सेवन करते हैं, वे अधिक शक्तिशाली, स्वस्थ और दीर्घजीवी देखने में आते हैं। भारतवर्ष में दूध का प्रश्न और भी आवश्यक है। इस देश के अधिकतर लोग साधारणतः मांसाहारी नहीं हैं। वैसे भी यहाँ के जल-वायु में दूध और दूध के पदार्थ ही यहाँ के निवासियों के लिए अधिक अनुकूल और हितकारी हो सकते हैं। दूध, दही, मक्खन, घी या छाँछ आदि का महत्त्व प्राचीन काल से यहाँ के रहनेवाले भली भाँति जानते आये हैं। परन्तु यह खेद का विषय है कि अब इन वस्तुओं का व्यवहार धीरे-धीरे छूटता जा रहा है। अवश्य ही इससे यहाँ के निवासी प्रायः क्षीणकाय, निर्बल और रोगी रहने लगे हैं।

दूध की इस समस्या का हल भी एकमात्र डेरी फ़ार्मिंग अर्थात् दूध के पशु पालना है। यथार्थ में गाय को सर्वोच्च स्थान दिये जाने का कारण उसका अमृत-रूपी दूध ही है। दूध की अधिक उत्पत्ति और व्यवहार के लिए आज संसार के सब देश आगे बढ़ रहे हैं। भारतवर्ष को निस्संदेह इसकी सबसे अधिक आवश्यकता है। यह आवश्यकता तभी पूरी हो सकती है, जब पशु-पालन के कार्य की ओर समुचित रूप से ध्यान दिया जाय।

ये बड़े-बड़े लाभ ही वास्तव में गाय के भारतवर्ष का अमूल्य धन समझे जाने का कारण थे। आज यह धन बहुत कुछ लुट चुका है और लुटता जा रहा है। उसके साथ ही यहाँ के निवासी भी अपना स्वास्थ्य, शक्ति, सुख और शान्ति सब कुछ खो बैठे हैं। पशु-पालन के कार्य से विमुख होने के कारण कृषक-समुदाय की अवस्था तो विशेष रूप से ख़राब हो रही है। और इसके और भी कितने ही कारण हों, परन्तु इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि पशुओं की अवनत दशा और अपर्याप्त संख्या निश्चित रूप से उनकी उन्नति के मार्ग में बड़ी भारी बाधा है। यदि विचारपूर्वक और ठीक ढंग से पशु-पालन की ओर ध्यान दिया जाय तो कृषकों को अपरिमित लाभ पहुँच सकता है। इन लोगों के पास बहुत-सा ख़ाली समय बचता है, वह पशुओं की देख-भाल के लिए काफ़ी हो सकता है। ऐसे काम में उन्हें अपने स्त्री-बच्चों से सहायता लेने का भी सुअवसर मिलता रहता है। उनके खेतों का तृण-भूसा दूध-घी के रूप में उनके लिए उत्तम पदार्थ प्रस्तुत करता है। कृषकों की निर्धनता की समस्या को हल करने के लिए ग्रामों में कई प्रकार के उद्योग-धन्धों और छोटी-मोटी घरेलू कलाओं को जारी करने का प्रयत्न किया जा रहा है। हमारी समझ में दूध के पशु पालने से अच्छा और अधिक उपयोगी दूसरा कोई धंधा उनके लिए नहीं हो सकता।

परन्तु यह काम केवल कृषकों के लिए ही तो लाभदायक नहीं है। आजकल भारतवर्ष में चारों तरफ़ बेकारी के कारण हाहाकार मचा है। हमारा तो विश्वास है कि डेरी-फ़ार्मिंग का व्यवसाय ही अनेक व्यक्तियों के जीवन-निर्वाह का हेतु बन सकता है।

दुर्भाग्यवश इस देश में पुरानी रूढ़ियों का अनुकरण करने और लकीरपंथी बने रहने में ही मुक्ति समझी जाती है। प्रथम तो हम किसी नई वस्तु को ग्रहण करने के लिए आकर्षित ही नहीं होते, और यदि आकर्षित हो भी जायँ तो उसे क्रियात्मक रूप में लाने का साहस नहीं कर पाते। हमारे पुरखा जिस खेत में जब जितना गेहूँ, बाजरा या मक्का बोते थे, हम आज तक उसमें बराबर उसी समय उतना गेहूँ, बाजरा या मक्का बोये जा रहे हैं। हमारी भूमि में चाहे वह वस्तु पैदा करने की सामर्थ्य न रही हो और मंडी में उस वस्तु के भले ही कुछ दाम न उठते हों, परन्तु हम अपने कार्य-क्रम में कोई परिवर्तन लाने को कभी तैयार नहीं होते। इसी कारण हम समय की गति से बहुत पिछड़े हुए हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह बात दूसरे देशों में नहीं है। पशु-पालन के महत्त्व को वहाँ के लोगों ने अच्छी तरह समझा है, और इसी कारण डेरी-फ़ार्मिंग के काम में वे अच्छी तरह प्रवीण हो गये हैं। यह काम आज योरप और अमेरिका में निश्चित व्यवसाय का रूप धारण कर चुका है। यहाँ तक कि निम्नलिखित शब्दों के अनुसार अमेरिका में काम करनेवालों की संख्या, ख़र्च हुए धन और पदार्थों की उपज की दृष्टि से यह व्यवसाय वहाँ की एक बड़ी भारी इन्डस्ट्री गिनी जाने लगी है—

"It is America's greatest industry today when measured by volume of products, capital invested or number of persons employed."

अमेरिका-जैसे धनाढ्य देश में कृषकों की आय का सबसे बड़ा साधन डेरी-फ़ार्मिंग है। वहाँ एक वर्ष में पचास करोड़ डालर अर्थात् दो अरब रुपये का दूध-मक्खन केवल किसानों के यहाँ से बिक जाता है। गेहूँ, मक्का आदि किसी जिंस की बिक्री इसके बराबर नहीं बैठती। यही नहीं, वहाँ की व्यापारिक रिपोर्ट यों है—

"During the past years of financial depression, dairy products have held up better in prices than any other products of the farm and have been relatively more profitable. Dairy farmers have made more money and communities where cows are kept are more prosperous."

अर्थात् पिछले आर्थिक संकट के समय दूध के पदार्थों का मूल्य खेती की अन्य उपज की अपेक्षा अच्छा और लाभदायक रहा है। डेरी का काम करनेवाले कृषकों ने अधिक धन कमाया और जिन गाँवों में गायें पाली जाती हैं, उनकी दशा बहुत उन्नत रही।

आज से दो-ढाई सौ वर्ष पहले अमेरिका के पशुओं की अवस्था भी हमारे यहाँ के पशुओं की वर्तमान अवस्था से भी ख़राब थी। परन्तु आज अमेरिका का गो-धन सर्वोत्तम और सर्वोत्कृष्ट माना जाता है। वहाँ मन-मन भर प्रतिदिन दूध देनेवाली गायें मौजूद हैं। एक गाय ने वर्ष भर में ३७,३८१ पौंड अर्थात् प्रतिदिन सवा मन की औसत से दूध दिया। इसी तरह दूसरी एक गाय ने एक दिन में १२२½ पौंड अर्थात् एक मन बीस सेर दूध दिया। इस प्रकार संसार में मक्खन का रिकार्ड भी वहीं की एक गाय ने एक दिन में तीन सेर सवा तीन छटाँक मक्खन पैदा करके जीत लिया है। एक और गाय ने वर्ष भर में अठारह सौ पौंड अर्थात् प्रतिदिन ढाई सेर के हिसाब से मक्खन दिया। भारतवर्ष में आज साधारणतः गाय के रोज़ाना दूध की औसत भी इतनी नहीं बैठती, मक्खन की तो बात ही क्या! हमारे शास्त्रों में "शतोधोनः" गौओं का वर्णन आया है, जो इच्छानुकूल सौ-सौ व्यक्तियों तक के लिए एक समय में दूध दिया करती थीं। आज तो वे कामधेनुएँ एक प्रकार से रूठकर अमेरिका और योरप में निवास करने चली गई हैं।

आस्ट्रेलिया, कनाडा, जर्मनी, फ़्रांस, इँगलैंड, डेन्मार्क आदि सभी देशों में डेरीफ़ार्म के व्यवसाय की उन्नति हो रही है। परन्तु हालैंड-जैसे छोटे से देश ने तो इस सम्बन्ध में संसार को आश्चर्यचकित कर दिया है। आज से पचास-साठ वर्ष पहले हालैंड भी भारत की तरह कृषि-प्रधान देश था। परन्तु जब वहाँ के लोगों ने देखा कि अन्न की उपज से उन्हें विशेष लाभ नहीं होता, तो उन्होंने डेरी-फ़ार्मिंग के काम को हाथ में लिया। १८७८ ई० में वहाँ पर सबसे पहला डेरीफ़ार्म स्थापित हुआ। १८८६ ई० में दूध के काम के लिए एक कारख़ाना भी जारी किया गया। वह काम कुछ ही वर्षों में इतना बढ़ गया कि १९२१ ई० में इन कारख़ानों की संख्या हालैंड-जैसे छोटे से देश में एक सौ से ऊपर पहुँच गई। उनमें Berllkum and Briltil नाम के दो कारख़ानों में ही आज वर्ष भर में अट्ठाईस लाख मन जमा हुआ (Condensed) दूध डब्बों में तैयार किया जाता है।

भारतवर्ष में डेरी-फ़ार्मिंग के लिए आवश्यक किसी वस्तु की कमी नहीं है, वरन् कई प्रकार से यह देश इस कार्य के लिए अधिक उपयुक्त है। यहाँ पर बहुत-सी भूमि अब भी बिना काश्त के व्यर्थ पड़ी है। बड़े-बड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जंगल चराई के लिए मौजूद हैं। किसान लोग वर्तमान खेती आदि से कुछ विशेष लाभ भी नहीं उठा रहे हैं। शुद्ध दूध-मक्खन की माँग प्रतिदिन बढ़ रही है। अब भी लाखों रुपये का दूध-मक्खन विदेशों से आकर यहाँ बिकता है। काम न मिलने से असंख्य व्यक्ति वैसे भी बेकार हो रहे हैं। धन आदि का भी बिलकुल अभाव नहीं है। मेरा विश्वास है कि डेरी-फ़ार्मिंग का काम इस देश की बहुत-सी कठिनाइयों को दूर करने और इस देश के रहनेवालों की आर्थिक, शारीरिक और मानसिक दशा सुधारने में सब प्रकार से समर्थ हो सकता है। सरकार, नेता और भारतीय नवयुवकों को इस ओर ध्यान देना चाहिए।

स्वप्नदोष निवारक

इसके सेवन से सुपने में वीर्य निकल जाना अथवा जाग्रतावस्था में मैथुन करते ही वीर्य का जल्दी स्खलित हो जाना, सब प्रकार के प्रमेह, स्वप्नदोष, धातुविकार, मूत्रदोष, वीर्य का पतलापन आदि रोग नष्ट होकर शरीर हृष्टपुष्ट हो जाता है। मूल्य ३० खुराक १) रु० डाकव्यय ।=)

पता—गंगेरवाल आफ़िस (म) अलीगढ़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

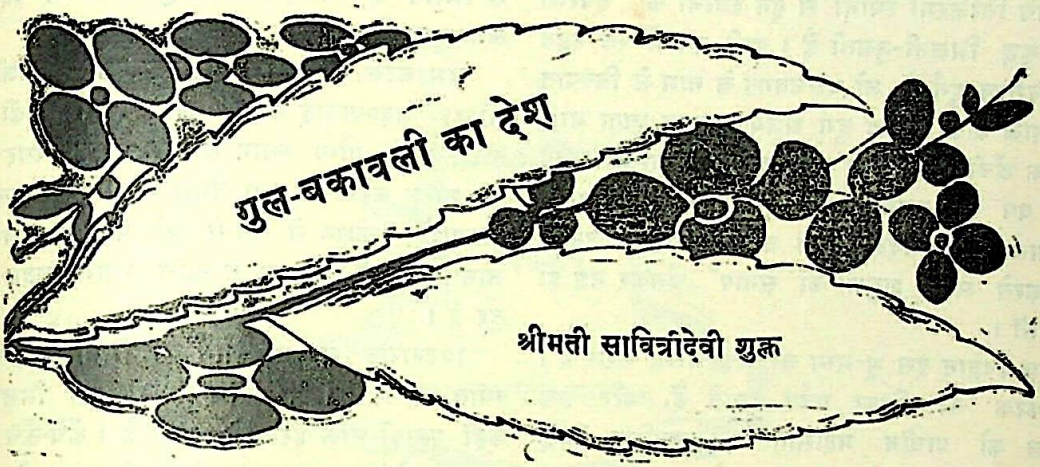

साधारण तथा अधकचरी शिक्षा पाये हुए, विशेषतः देहात में रहनेवाले व्यक्ति गुल-बकावली का 'क़िस्सा' बड़े चाव से पढ़ते हैं। हिन्दी के आरम्भिक (आधुनिक काल के आरम्भिक समय से यहाँ मतलब है) काल में गुल-बकावली, सारंगा-सदावृक्ष, तोता-मैना तथा छबीली भटियारिन आदि उपन्यासों का—जिनमें तिलिस्मी बातों के ही आधार पर घटना-चक्र बाँधा गया है—विशेष प्रचार था। इन पुस्तकों में गुल-बकावली का क़िस्सा बड़ा भावोत्पादक तथा मनोहर है। मैं उस क़िस्से को यहाँ दुहराना नहीं चाहती। मेरा अभिप्राय कुछ दूसरा ही है।

गुल कहते हैं फूल को। इसी बकावली के फूल से इस क़िस्से का सम्बन्ध है। कहते हैं, एक राजा ने अन्धे हो जाने के बाद किसी वैद्य से सुना कि यदि बकावली का फूल मिले तो उसका अन्धापन दूर हो सकता है। इसी बिना पर राजा ने अपने पुत्रों को बकावली के फूल की खोज में बाहर भेजा। सबसे छोटा लड़का बड़ी कठिनाइयों को झेलने के बाद उस फूल को पाता है। उस फूल के साथ-साथ उसे एक अपूर्व सुन्दरी युवती, जिसे क़िस्से में 'परी' कहा गया है, मिलती है।

क़िस्से में फूल के देश का जो वर्णन किया गया है, उस वर्णन से मिलता-जुलता एक स्थान मध्य-भारत के सुप्रसिद्ध देशी राज्य रीवाँ में है। उस स्थान में आज भी बकावली के फूल मिलते हैं। यही नहीं, उस स्थान से लाकर वे फूल महाराजा के उपवन में भी लगाये गये हैं। किन्तु खेद इस बात का है कि अन्धी आँखों में किस प्रकार से उन फूलों का उपयोग किया जाना चाहिए, ताकि उनमें ज्योति आवे, यह प्रयोग शायद ही किसी को मालूम हो।

बकावली के फूल का वृक्ष हल्दी के पेड़ की तरह होता है। यह डेढ़ फ़ुट से ढाई फ़ुट तक ऊँचा होता है। फूल का रंग स्वच्छ, दूध-सा सफ़ेद होता है।

यह अमरकंटक पर्वत पर प्रचुरता से मिलता है। अमरकंटक पर्वत का विशेष भाग रीवाँ राज्य में है। पहले वहाँ का मार्ग बड़ा दुस्तर था; परन्तु अब राज्य की ओर से नई-नई सड़कें बन रही हैं। प्रधान सड़क के आसपास बहुत-से मन्दिर हैं, जिनमें कुछ प्राचीन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तथा सुन्दर हैं, आसपास बड़ा घोर जङ्गल है। उसमें काली-कलूटी जातिवाले मनुष्य रहते हैं। जङ्गली मार्ग बड़ा ही बीहड़ है। 'गुल-बकावली' में वर्णन किये गये तिलिस्मी स्थानों से इन स्थानों की रूपरेखा बहुत कुछ मिलती-जुलती है। इसी वन में एक बहुत बड़ा विशाल दुर्ग है, जो बान्धवगढ़ के नाम से विख्यात है। मुग़ल-काल में यह दुर्ग अजेय समझा जाता था। यह एक ऊँची पहाड़ी पर घोर जङ्गल में बना है। कोई ८०० वर्ष का पुराना होगा। कुछ दिनों पहले इसके आसपास घोर दलदल मीलों तक फैला था, जिसको पार करते समय शत्रुओं की सेनाएँ धँसकर नष्ट हो जाती थीं।

कुछ विद्वान् इस भू-भाग को लङ्का सिद्ध करते हैं। अमरकंटक को त्रिकूट पर्वत बताते हैं, और इस दलदल को प्राचीन महासागर का अवशिष्ट सिद्ध करते हैं।

जो कुछ हो, यह स्थान कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अमरकंटक से ही नर्मदा नदी का निकास हुआ है, जिसे शैव-मतानुयायी गङ्गा के समकक्ष मानते हैं। नर्मदा-कुण्ड के पास शिव के कई एक मन्दिर हैं। यह भी भारत के महत्त्वपूर्ण तीर्थ-स्थानों में गिना जाता है। अमरकंटक में महारानी अहल्याबाई का भी एक मन्दिर है। इसी पहाड़ से सोनभद्र नदी भी निकली है। इसी सोनभद्र के आसपास एक जङ्गली उद्यान है, जहाँ बकावली फूल के वृक्ष प्रचुरता से मिलते हैं। नर्मदाजी की फुलवारी में यह फूल लगा हुआ है।

अमरकंटक, भेड़ाघाट, ब्रह्माणघाट, नर्मदाजी का मन्दिर, अहल्याबाई का मन्दिर, नर्मदाजी की फुलवारी, देखने योग्य स्थान हैं। बी० एन्० आर० की एक शाखा कटनी से उस जंगल में प्रवेश करती है। पिंडरारोड स्टेशन से यात्री को पैदल या लारी से जाना पड़ता है। पिंडरा से ख़ास स्थान पन्द्रह मील दूर है।

पिंडरारोड से भी मार्ग पहाड़ी ही मिलता है। स्थान जङ्गली है। बीच-बीच में खेत भी मिलते हैं। कहीं पहाड़ी नाले हरहराते रहते हैं। ऊँचे-ऊँचे स्थलों पर लहराते हुए वृक्ष पर्वत-श्रेणी के मुकुट-से प्रतीत होते हैं।

बान्धवगढ़ का दुर्ग ही, मालूम होता है, 'गुल-बकावली' के लेखक के सामने आधार रहा होगा। वह स्थान सचमुच ऐसा मालूम होता है, जैसे मानो 'देवों' का निवास-स्थल हो। अपरिचित मनुष्य का वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन है।

हिन्दुस्तान का नया आविष्कार

हिन्द टानिक क़ब्ज़ को दूर कर बदहज़मी को हटा देगा, आँख की रोशनी तेज़ कर बाल का पकना रोक देगा, पका बाल खूँटी से काला पैदा कर स्थायी काला रखेगा, नई ज़िन्दगी, नई ताक़त पैदा कर जवानी को फिर लौटा देगा, कमज़ोरी तथा झुर्रियाँ नष्ट कर बूढ़े को जवान-सा बना देगा। फ़ी शीशी ५) रु०। झूठा साबित करनेवाले को १००) रु० इनाम।

जड़ीबूटी दवाख़ाना पो० बिहार नरसरी (दरभंगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यह जगती के अविचल नियमों की धुँधली, विच्छिन्न निशानी;
यह सिरजन की अन्तिम रेखा, यह विनाश की करुण-कहानी।
कुटिल काल की क्रूर दृष्टि यह, निठुर नियति की यह नादानी;
इसमें आकर ही सूखा है जीवन की ममता का पानी।

ओ जगती के कलाकार! लो देख, यही क्या कला तुम्हारी;
किस अदृश्य में लीन हुई है वह अनुपम सुन्दरता सारी।
तुमने अपने कुशल करों से एक रम्य प्रासाद बनाया;
किन्तु काल को उसे चूर कर भग्न-शेष ही करना भाया।

कभी रेशमी अंचल इसकी छाया में लहराये होंगे;
कभी यहाँ वीणा के स्वर ने मीठे गाने गाये होंगे।
कभी यहाँ आँगन में अनगिन नूपुर रुन-झुन करते होंगे;
उन गानों की कड़ियों को इसके कन-कन में भरते होंगे।

कभी किसी के मृदुल पदों की ध्वनि से यह जग उठता होगा;
कभी यहाँ का कोना-कोना सुषमा से रँग उठता होगा।
कभी झरोखों पर अम्बर की दमक उठी होंगी दामिनियाँ;
कभी कक्ष में छलक-छलककर बरस पड़ी होंगी कामिनियाँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ज्योत्स्ना के मिस इस पर शशि ने अपना प्यार लुटाया होगा;
सन्ध्या ने मुसकाकर इसको हीरक-हार पिन्हाया होगा।
कभी यहाँ पर उल्लासों का स्रोत फूटकर बहता होगा;
राजकुमारी की किलकन से जो इठलाता रहता होगा।

आज सभी वह किन्तु स्वप्न बन गया सत्य के इन रजकन में;
सिर धुनती है सुषमा अपने बाल बिखेरे इस निर्जन में।
इसके शव में रक्त भर चुकी है रंगिनि ऊषा की रोली;
बना चुकी है राख इसे उस महाकाल की भीषण होली।

आज धतूरे का यह पौदा इधर मुस्कराता है, देखो;
उधर चील का एक घोंसला झाँकी दिखलाता है, देखो।
चली गई जाने कब उड़कर मधु की रानी कोयल भोली;
आज यहाँ सुन पड़ती केवल उस विसखपरे की ही बोली।

कितना कटु इतिहास बनातीं इसकी ये फूटी दीवारें;
सर्वनाश का अट्टहास-सा करती हैं ये भग्न दरारें।
इसकी ईंट-ईंट से लिपटी मानों कोई व्यथा छिपी है;
इसके अणु-अणु में जगती के आदि-अन्त की कथा लिखी है।

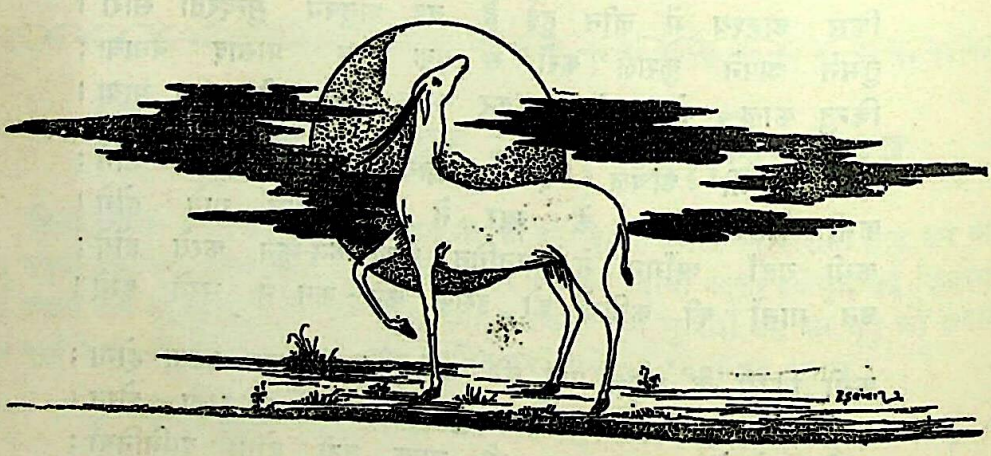

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

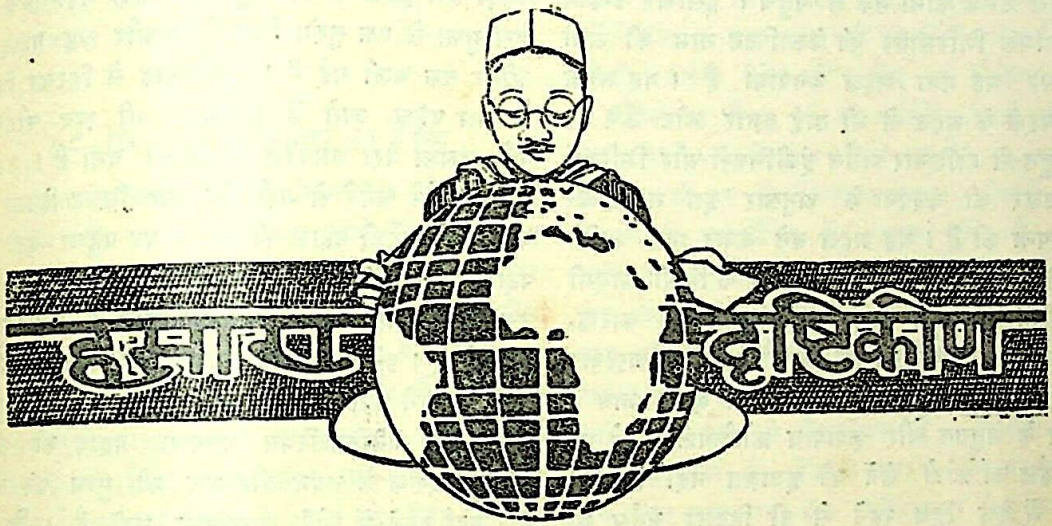

१—हिटलर का नया महल

योरप का कोई महापराक्रमी ऐश्वर्यशाली सम्राट् भी अब तक जिस अद्भुत ख़याल और उत्कट रुचि का परिचय नहीं दे सका, उसका परिचय अभी हाल में जर्मनी के बेताज के बादशाह और सर्वशक्तिमान् डिक्टेटर एडोल्फ़ हिटलर ने दिया है। यह उनकी कल्पना की मौलिकता का भी नमूना है। जो लोग कहते हैं कि हिटलर अपने सुख और भोग के लिए सरकारी ख़ज़ाने का एक पैसा भी ख़र्च नहीं करते, उनका भ्रम भी इससे दूर हो जायगा। हर हिटलर अब तक जिस महल में रहते थे, उसका नाम बर्गाफ़् है। इस महल को हाउस वाचेनफ़ील्ड भी कहते हैं। यह भवन एक एकान्त स्थान में बना हुआ है। किन्तु इससे भी निर्जन और एकान्त स्थान में रहने के लिए अभी कुछ दिन पहले आस्ट्रिया और जर्मनी की सरहद पर दुर्गम केलास्टिन पहाड़ की चोटी पर काँच और लोहे का एक भवन हिटलर ने बनवाया है। इस महल पर लिफ़्ट के ज़रिए चढ़ा जाता है। लिफ़्ट को परिचालित करने के लिए पहाड़ को काटकर पहाड़ के निचले हिस्से से चोटी तक एक खड़ी सुरंग खोदी गई है। नीचे लिफ़्ट पर चढ़ने के लिए जो कोठरी बनाई गई है, वह बैंक आफ़् इँगलैंड के ख़ज़ाने से भी अधिक सावधानी के साथ सुरक्षित है। हर हिटलर का यह शीशमहल समुद्रतल से ५५०० फ़ीट ऊँचा है। नगर में रहना हिटलर को हमेशा से नापसंद है। जब उन्होंने बवेरिया के म्यूनिक शहर में अपने द्वारा परिचालित नाज़ीदल का अड्डा स्थापित किया था, तब भी ओवर-साल्ज़बर्ग पहाड़ की चोटी पर एक छोटा-सा अपने रहने का घर बनवाया था। यह बवेरिया आल्प्स पर्वत के निचले भाग में स्थित बर्चेसगाडेन से १५०० फ़ीट ऊँचा था। जब से वह जर्मनी के चांसलर हुए, तब उन्होंने इस महल को और भी बड़ा बनवाया। इसी महल का नाम बर्गाफ़् है। किन्तु बर्गाफ़् में रहकर हिटलर को शान्ति नहीं मिली। कारण, यहाँ जर्मनी के लोग दूर-दूर से उनके दर्शन को आने और फाटक पर खड़े होकर "हम अपने 'फुहरर' को देखने आये हैं; उनके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दर्शन करेंगे" यह कहकर चिल्लाने लगे। अपने दर्शनार्थी नाज़ी भक्तों की भीड़ से परेशान होकर हर हिटलर ने गत वर्ष यह इरादा किया कि वह आल्प्स पहाड़ की ऐसी ऊँची चोटी पर जाकर रहेंगे, जहाँ नाज़ी भक्तों का कोलाहल उनके कानों तक न पहुँचे। इसलिए उन्होंने होहेनगोयल गिरिमाला की केलास्टिन नाम की ऊँची चोटी पर यह नया महल बनवाया है। यह महल उनके पहले के महल से भी ढाई हज़ार फ़ीट ऊँचे पर है। बहुत-से होशियार जर्मन इंजीनियरों और मिस्त्रियों ने हिटलर की कल्पना के अनुसार इस महल की परिकल्पना की है। यह महल बने केवल आठ महीने हुए, लेकिन अब तक जर्मनी के बाहर के किसी आदमी को इसकी कानोकान ख़बर नहीं हुई थी। कारण, हर हिटलर का हुक्म था कि किसी जर्मनी के अख़बार में इस महल के बारे में कोई ख़बर न छापी जाय। हिटलर के अनुगत और कृपापात्र फ़ोटोग्राफ़रों को भी इस महल का फ़ोटो लेने की इजाज़त नहीं मिली। बर्लिन में कुछ दिन रहने से ही हिटलर नर्वस या विचलित हो उठते हैं। इसी लिए वह मौक़ा मिलते ही अपने पहाड़ी भवन में रहने के लिए भाग जाते हैं। गर्मियों में वह म्यूनिक में रहते हैं और जाड़े में वह अपनी ख़ास ट्रेन में घूमते फिरते हैं। साल्ज़बर्ग तक उनकी अपनी मोटरकार चलाने के लिए पत्थर और सीमेंट की जो सड़क बनाई गई है, उसी सड़क पर वह अपनी सुप्रसिद्ध मार्शेडिस मोटर पर बैठकर म्यूनिक से निकलते हैं। वहाँ से वह नवनिर्मित जर्मन-अल्पाइन रोड होकर बर्चेसगाडेन में प्रवेश करते हैं। आल्प्स पर्वत को काटकर भीतर ही भीतर यह सड़क ख़ास उन्हीं के लिए बनाई गई है। बर्गाफ़ तक उनकी मोटरकार पहाड़ के ऊपर-ऊपर घूम-फिरकर ऊपर चढ़ती जाती है। इसके बाद पाँच मील और भी दुर्गम चक्करदार रास्ता तय करके उनके पूर्वोक्त नये महल तक जाती है। इस पहाड़ की चोटी के ऊपर ब्रोंज धातु का बना एक विशाल फाटक है। हिटलर की मोटर इस फाटक के सामने जब जाकर खड़ी होती है, तब धीरे-धीरे यह फाटक खुल जाता है। उनकी कार केलास्टिन चोटी के नीचे बनी हुई एक लम्बी-चौड़ी गुफा में प्रवेश करती है। यह गुफा बहुत दिनों में बड़े परिश्रम से खोदी गई है। यह एक विशाल हाल के समान है। खुरदरे संगमरमर की पाटियाँ इसमें चारों ओर जड़ी हुई हैं। यह गुफा १३० गज़ लम्बी और २० गज़ चौड़ी है। इसके भीतर बहुत-से मोटर-गैरेज बने हैं। इस गुफा से एक सुरंग निकली है और वह पहाड़ के भीतर तक चली गई है। इसी राह से हिटलर लिफ़्ट के पास पहुँच जाते हैं। लिफ़्ट भी ख़ूब चौड़ी है और उसका घेरा चमकीले पीतल का बना है। उसकी गद्दियाँ मोटे चमड़े से मढ़ी हैं। यह लिफ़्ट हिटलर को ४०० फ़ीट ऊँची पहाड़ की चोटी पर पहुँचा देती है। पहाड़ की चोटी पर जिस महल में हिटलर रहते हैं, उसमें १८ आदमी आराम से रह सकते हैं। यह सफ़ेद रंग की है। इस भवन की खिड़की से नीचे झाँकने से सिर चकराने लगता है। चारों ओर बर्फ़ का मुकुट पहने हुए बवेरियास्थित आल्प्स पहाड़ की ऊँची चोटियाँ दर्शक के नयन और मन को मुग्ध कर लेती हैं। यहाँ रहने में कोई असुविधा नहीं है। बिजली के पम्प से यहाँ पानी पहुँचाया जाता है, और बिजली से ही सारा घर गरम रहता है। यहाँ जो रसोईघर है, उसमें हिटलर के लिए भोजन बनता है; उसमें मांस की कोई चीज़ नहीं होती। वह भोजन बहुत ही साधारण और आडम्बररहित होता है। यहाँ कोई सिगरेट-चुरट नहीं पी सकता। हिटलर इसे नापसन्द करते हैं। जब कोई राजनीति की गुत्थी सुलझानी होती है, तब हिटलर इसी महल में रहते हैं। आकाश-मार्ग से शत्रु का कोई हवाई जहाज़ न आकर इस भवन को नुक़सान पहुँचावे, इस आशंका से बर्चेसगाडेन में चारों ओर हवाई जहाज़ पर गोलाबारी करनेवाली तोपें लगी हुई हैं। जर्मनी के और किसी हिस्से में यह व्यवस्था नहीं है। फिर भी एक और विपत्ति की आशंका है। हिटलर की लिफ़्ट ४०० फ़ीट ऊपर उठने और उतरने के समय अगर उस पत्थर की कालकोठरी में कहीं अटक गई तो? हिटलर अपने किसी अँगरेज़ मित्र को लेकर इस महल में गये थे। लिफ़्ट पर बैठने के समय उस अँगरेज़ ने हिटलर से यही प्रश्न किया था। उसने पूछा—"अगर आपकी लिफ़्ट नीचे उतरते-उतरते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अगर एकाएक अचल हो जाय तो क्या होगा ?" हिटलर ने हँसकर जवाब दिया—"तो पृथ्वी का इतिहास शायद दो घंटे के लिए अचल हो जायगा।" सचमुच इस समय हिटलर ही संसार के इतिहास की रचना कर रहे हैं। यह दम्भ से भरा उत्तर उनके ही मुख से निकल सकता है।

× × ×

२—ब्रिटेन में देश-रक्षा का टैक्स

देश-रक्षा के लिए ब्रिटेन में टैक्स बढ़ा दिया गया है। मोटर और तमाखू के ऊपर सबसे अधिक टैक्स लगाया गया है। युद्ध का ख़र्च चलाने के लिए चांसलर सर जान साइमन ने इस टैक्स से दो करोड़ पैंतालीस लाख पौंड आमदनी का अन्दाज़ लगाया है। ब्रिटेन में हर साल १ लाख १२ हज़ार टन तमाखू मँगाई जाती है। तमाखू के कारख़ानेवालों को पहले फ़ी पौंड ९ पेंस के हिसाब से टैक्स देना पड़ता था। लेकिन अब चांसलर ने युद्ध की तैयारी के ख़र्च के लिए तमाखू पर फ़ी पौंड २ शिलिंग और बढ़ा दिये हैं। इससे सिगरेट के कारख़ानेवाले सिर पर हाथ रखकर बैठ गये हैं। ब्रिटेन में विभिन्न अंशों में सिगरेट तैयार करने के लिए ५ लाख कलें हैं। इन कलों में जो सिगरेटें तैयार होती हैं, उनके फ़ी दर्जन पैकेटों के लिए ६ पेनी और १ शिलिंग टैक्स देना पड़ता है। सिगरेट बनाने की मशीन बनानेवाले कारख़ानों में क्रायडन की हार्पर आटोमेटिक मशीन मैन्यूफ़ैक्चरिंग कम्पनी सबसे बड़ी और प्रधान है। इसके मैनेजिंग डाइरेक्टर पर्सी हार्पर ने ज़ाहिर करते हुए कहा है—बहुत हफ़्तों के लिए हमारा काम बन्द हो जायगा। हार्पर साहब बारह वर्ष पहले एक कारख़ाने में झाड़ू लगाने का काम करते थे। अब वह सिगरेट बनाने की मशीनें बेचकर १५ लाख रुपये साल कमाते हैं। तमाखू पर टैक्स बढ़ने का फल यह हुआ है कि इसी बीच में इम्पीरियल टुबैको कम्पनी के मालिक डालडार्टन और कारेबस लिमिटेड के मालिक एडवर्ड एस० बैरन ने घोषणा की है कि १ पेंस क़ीमत की सिगरेट का पैकेट ६½ पेंस का और एक शिलिंग क़ीमत का पैकेट १३ पेंस का बिकेगा। पाइप में पीने की तम्बाखू का मूल्य फ़ी औंस १½ पेनी के हिसाब से बढ़ गया है। भविष्य में "बजट-सिगरेट" बाज़ार में जारी की जायगी। उसमें १० की जगह ९ सिगरेटें रहेंगी और क़ीमत वही ६ पेंस रहेगी। १८ सिगरेटवाला डबल पैकेट एक शिलिंग का बिकेगा। एक प्रकार की पतली सिगरेट एक और बनेगी। उसका पैकेट भी ६ पेंस का बिकेगा।

मोटर का टैक्स भी बढ़ गया है। पहले फ़ी हार्स-पावर पर १५ शिलिंग टैक्स था। वह अब २५ शिलिंग की दर से लिया जायगा। फ़ीसदी ६६ के हिसाब से इस टैक्स में इज़ाफ़ा हुआ है। लार्ड आस्टिन ने इस टैक्स को अत्यन्त निराशजनक कहा है। चार सीटवाली मोटर का टैक्स दस पौंड और आठ सीटवाली मोटर का टैक्स १२ पौंड लिया जायगा। विदेश से आनेवाली चीनी पर फ़ी पौंड ½ पेनी के हिसाब से टैक्स बढ़ा है। फ़िल्मों पर भी टैक्स बढ़ गया है, जिसके कारण फ़िल्म-कम्पनियाँ हाय-तोबा मचा रही हैं। ब्रिटिशन्यूज़ रील कम्पनियों ने खेद के साथ यह घोषणा की है कि अगर टैक्स का परिमाण कम न किया गया तो यह व्यापार बन्द कर देना पड़ेगा। एक हफ़्ते में तैयार किये गये १० लाख फ़ीट फ़िल्म के लिए उन्हें २ हज़ार ८३ पौंड साप्ताहिक टैक्स देना पड़ेगा। उनको साल भर में जो आमदनी होगी, उससे भी अधिक यह टैक्स होगा। ऐसी दशा में वे कैसे अपना कारोबार चला सकती हैं ? इँगलैंड में इनकमटैक्स का "सरटैक्स" २ हज़ार पौंड की सालाना आमदनी से शुरू होता है। जिनकी आमदनी सालाना ८००० पौंड से कम है, उनकी आमदनी पर टैक्स फ़ीसदी ५ पौंड के हिसाब से बढ़ाया गया है। ८००० पौंड से अधिक सालाना आमदनी पर फ़ीसदी १० पौंड के हिसाब से और ५०००० पौंड से अधिक सालाना आमदनी पर फ़ीसदी २० पौंड के हिसाब से इज़ाफ़ा हुआ है। यह अतिरिक्त टैक्स सब रोज़गारियों को अखर रहा है, फिर भी ब्रिटिश-जाति का देशप्रेम इतना बढ़ा-चढ़ा है कि देश की रक्षा के लिए वे सब तरह का त्याग स्वीकार करने के लिए तैयार हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

३—मसजिद के सामने बाजा

इधर कई वर्षों से मसजिद के सामने हिन्दुओं के बाजा बजाने से अनेक उपद्रव हो चुके हैं। असहिष्णु मुसलमान भाइयों ने भ्रम या हठ के कारण हिन्दुओं पर इसीलिए हमले किये। दंगा हुआ, दोनों ओर के अपराधी तो एक ही दो, निरपराध अनेक लोग मारे गये, घायल हुए और दूकानें लुटीं, घर जलाये गये। कानपूर तो इन्हीं उपद्रवों के कारण उजड़ ही चला है। काशी और प्रयाग के दंगों का मूल कारण भी—प्रत्यक्षतः—यही बाजा था, भीतर की बात राम जानें। हिन्दुओं में से अधिकांश का ख़याल यह है कि हिन्दू लोग गो-हत्या का जो विरोध करते हैं, उसी का जवाब यह बाजे की समस्या खड़ी की गई है। हमारा अपना मत यह है कि अगर हिन्दू भाई यह जान लेते कि सचमुच मसजिद के सामने बाजा बजाने से इस्लाम की तौहीन होती है या मुसलिम-धर्मशास्त्र के विरुद्ध है, तो वे कभी मसजिद के सामने बाजा बजाने का हठ न करते। हिन्दुओं की प्रकृति ही कुछ ऐसी है कि वे दूसरे धर्मों के प्रति असहिष्णु नहीं होते। वे सब धर्मों का सम्मान करके अपने धर्म का सम्मान और अधिकारों की रक्षा करना चाहते हैं। अभी हाल में मुरादाबाद में जमैयतुलउलेमा का एक अधिवेशन हुआ था। उसमें अनेकानेक मौलवी-मौलाना आये थे। इस अधिवेशन के सभापति थे मौलवी अब्दुलमन्नान। उन्होंने अपने अभिभाषण में स्पष्ट रूप से कह दिया है कि "मसजिद के सामने बाजा बजाने में नमाज़ में कुछ भी ख़लल नहीं पड़ता। मुसलमानों के धर्मशास्त्र क़ुरान में कहीं पर मसजिद के सामने बाजा बजाने की मनाही नहीं है।" हम तो इस बात को पहले ही से जानते थे। मुसलमानी शासन के समय में भी मसजिदों के सामने सड़क पर बाजा बजाने की रोक नहीं थी। इतिहास में भी कहीं इसका उल्लेख नहीं मिलता। मालूम नहीं, उक्त मौलाना साहब के इस स्पष्ट कथन का साम्प्रदायिकता-भक्त मुसलमानों पर कुछ असर होगा या नहीं। हम मौलाना अब्दुलमन्नान साहब की इस स्पष्ट विवेचन और कथन के लिए प्रशंसा करते हैं और हिन्दू-समाज की ओर से उन्हें धन्यवाद देते हैं।

× × ×

४—फ़ारवर्ड ब्लाक या अग्रगामी-दल

राष्ट्रपति के पद से इस्तीफ़ा देने के साथ ही श्रीयुत सुभाषचंद्र वसु महाशय कांग्रेस के भीतर रहकर ही फ़ारवर्ड ब्लाक नाम के एक नये दल का संगठन करने में लग गये हैं। फ़ारवर्ड ब्लाक का अर्थ अग्रगामी-दल अथवा प्रगतिशील संघ होता है। इस दल के मेम्बर सभी बातों में एकमत हों, यह कोई ज़रूरी नहीं है। इसीलिए सुभाष बाबू ने इसका नाम फ़ारवर्ड ब्लाक रक्खा है। ब्लाक शब्द दो-तीन संप्रदायों के मिलन का बोध कराता है। ब्लाक और पार्टी का अर्थ एक नहीं है। इस दल का संगठन जब से शुरू हुआ है, तभी से गांधीभक्त-दल इसका विरोध कर रहा है। सुभाष बाबू इधर जैसी बातें कहने लगे हैं, मद्यनिषेध तक का उन्होंने विरोध किया है, उससे गांधीभक्त-दल का उनकी कड़ी आलोचना करना अनुचित भी नहीं कहा जा सकता। साधारणतः अगर सुभाष बाबू पटेल-दल का विरोध करने की धुन में ऐसी बातें न कहें तो इस नवीन दल के गठन में कोई आपत्ति करने का युक्तियुक्त कारण नहीं है; क्योंकि कांग्रेस में जब स्वराजी, परिवर्तन-विरोधी, समाजवादी, वामपंथी, दक्षिणपंथी आदि अनेक भिन्न-भिन्न मनोवृत्ति के दल मौजूद हैं, तब यह दल भी एक सही। सेर भर न लादा, सवा सेर लादा। लेकिन सुभाष बाबू ने इस अग्रगामी-दल की जो कार्य-पद्धति बतलाई है, उसकी सभी बातों से हम सहमत नहीं हैं। उन्होंने अवश्य ही यह भी कहा है कि अवस्था देखकर व्यवस्था की जायगी। उन्होंने कानपुर में जो भाषण दिया था, उसमें कहा है कि सिविल डिसओबिडियन्स या सिविल नाफ़र्मानी का जो आन्दोलन पहले चलाया गया था, वैसा ही सरकार से संग्राम करना होगा। इस क़ानून न मानने के आन्दोलन में किसान कार्यकर्ता और देशी राज्यों की प्रजा संघबद्ध होकर शामिल होगी। लेकिन प्रश्न यह होता है कि महात्माजी के नेतृत्व में यह अहिंसा-आन्दोलन व्यर्थ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होने के बाद यह परिकल्पना सार्थक होने की संभावना क्या हो सकती है ? देश की जनता क्या अब इतनी तैयार हो चुकी है कि अभी यह क़ानून तोड़ने का आन्दोलन चलाया जा सकता है ? सुभाष बाबू ने कहा है कि कांग्रेस में अल्पसंख्यक संप्रदायों के मिलाने का प्रस्ताव पास होने पर भी हिन्दुओं और मुसलमानों का मिलन संभव नहीं हुआ। इधर प्रगतिशील-संघ का संगठन शुरू होने से मुसलमान आदि अल्पसंख्यक संप्रदाय ख़ुशी ज़ाहिर कर रहे हैं। इसलिए सुभाष बाबू आशा करते हैं कि वह प्रगतिशील-संघ बनाकर सांप्रदायिक एकता स्थापित कर सकेंगे। लेकिन हम कहते हैं, उनकी यह आशा वृथा है। वह अवश्य ही जानते होंगे कि शर्तों या समझौतों के द्वारा इस समस्या का समाधान कभी नहीं हो सकता—हृदय-परिवर्तन और परस्पर विश्वास के बिना यह मसला हल नहीं हो सकता। लखनऊ-पैक्ट की हानियाँ अब स्पष्ट समझ में आ गई हैं। पूना-पैक्ट का फल भी किसी से छिपा नहीं है। फिर सुभाष बाबू किस उपाय से इस गुत्थी को सुलझावेंगे, जिसे महात्माजी के समान बहुदर्शी नेता भी अब तक नहीं सुलझा सका ! भारत में अल्पसंख्यक सम्प्रदायों में मुसलमान ही मुख्य हैं और उन्हीं को मिलाना सबसे अधिक कठिन हो रहा है। कारण, वे सब कुछ समझकर भी अपने दुराग्रह पर डटे हुए हैं। बंगाल और पंजाब में हिन्दू लोग संख्या में थोड़े हैं। इन दोनों प्रान्तों में जो विशेष विषम समस्या मुसलमान प्रधान मंत्रियों ने खड़ी कर दी है, उसके समाधान का क्या उपाय सुभाष बाबू ने सोचा है। उन्होंने कहा है कि कांग्रेस ने जब से सरकारी पद ग्रहण किये हैं, तब से उसमें विप्लव-साधक मनोभाव (Revolutionary mentality) घर कर गई है। यह विप्लवात्मक मनोभाव क्या है, इस प्रश्न के उत्तर में सुभाष बाबू कहते हैं कि इस मनोभाव के दो पहलू हैं। एक ध्वंस, दूसरा गठन। उन्होंने कहा है कि "रूस में कम्यूनिज़्म और आयरलैंड में समाजतन्त्रवाद ने संगठन का बहुत कुछ काम कर दिखाया है। विप्लव का अर्थ रक्तपात ही करना ठीक नहीं है। इँगलैंड में बहुत-से रक्तपातहीन विप्लव हुए हैं और उन्होंने उस देश को प्रगति के मार्ग में बहुत आगे बढ़ाया है।" रक्तपातहीन विप्लव होता ही नहीं, यह हम नहीं कहते; किन्तु सभी देशों के सभी विप्लव क्या रक्तपातहीन और हिंसाशून्य हुए हैं ? जिस विप्लव के फल से प्रथम चार्ल्स के मनमाने शासन का अन्त किया गया, वह क्या रक्तपात और हिंसा से रहित था ? रूस के जिस विप्लव ने ज़ार के सिंहासन को नष्ट-भ्रष्ट करके वहाँ कम्यूनिज़्म की स्थापना की, वह क्या हिंसा से शून्य था ? फिर क्या भारत की अर्ध-शिक्षित-अशिक्षित जनता विप्लव की शिक्षा पाकर हिंसा से रहित रह सकती है ? विप्लव को अहिंसा के मार्ग में चलाने के लिए बड़े धैर्य और संयम की आवश्यकता है। इसके लिए जनता के मन में पूर्ण अहिंसा की जड़ जमाने की ज़रूरत है। फल मिलने में विलंब हो तो अधीर होने से काम नहीं चलेगा। सुभाष बाबू क्या समझते हैं कि देश के लोग नैतिक मार्ग में इतने अग्रसर हो गये हैं कि वे विप्लववाद की शिक्षा पाने पर अहिंसक और अविचलित बने रहेंगे ? हम तो ऐसा नहीं समझते। इसीलिए हम उनके इस वक्तव्य का समर्थन नहीं कर सकते। आशा है, सुभाष बाबू क़ानून तोड़ने का आन्दोलन चलाने के पहले—विप्लववाद का प्रचार करने के पहले ख़ूब अच्छी तरह सब पहलुओं पर विचार कर लेंगे। इसी में उनका और उनके देश का कल्याण है। वह उच्चकोटि के देशभक्त और विद्वान् हैं। हम उन्हें श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। हमारी यही प्रार्थना है कि जोश में आकर वह अपने को न भूल जायँ !

× × ×

५—ब्रिटिश-राजनीति और ख़िलाफ़त

लगभग दो साल पहले ६ फ़ुट लंबा, गठीले और पुष्ट शरीरवाला जो युवक मिसर के सिंहासन और अपने पिता राजा फ़ुआद के जमा किये हुए एक करोड़ पौंड धन का उत्तराधिकारी हुआ था, और जिसने इन दो वर्षों में ही मिसर की प्रजा के हृदय में घर कर लिया है, उस राजा फ़ारुक की अवस्था इस समय केवल १९ वर्ष की है। मिसर के राजा फ़ारुक इस समय शासक राजाओं में सबसे छोटे हैं। किन्तु इतनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही अवस्था में उन्होंने एक नवजाग्रत् स्वाधीन जाति के परिचालक होकर राजनीति के इतिहास में अपना यथेष्ट प्रभाव डाला है। पृथ्वी पर उनसे कम अवस्था के भी राजा हैं; पर वे नाममात्र के राजा हैं, अभी राजकाज कुछ भी नहीं करते। ईराक के राजा की अवस्था केवल तीन वर्ष की है, जुगोस्लाविया के राजा पीटर की अवस्था ग्यारह वर्ष की है, श्याम के राजा आनन्द-महीदल की अवस्था तेरह वर्ष की है। ये सब राजा फ़ारुक से कम उम्र के अवश्य हैं, लेकिन इनमें से किसी ने राज्य-शासन का भार नहीं ग्रहण किया। राजा फ़ारुक ने मिसर की रीढ़ कृषक-समाज के हृदय को जीत लिया है और अलेकज़ेंड्रिया तथा कैरो के दोनों राजनीतिक-दल भी उनके पक्ष में हैं। राजा फ़ारुक ने इस थोड़ी-सी अवस्था में, इस थोड़े-से समय में ही भूतपूर्व प्रधान मंत्री नहसपाशा को परास्त करके मंत्रिमण्डली के ऊपर अपना प्रभाव स्थापित कर लिया है। कैरो के प्रवीण राजनीतिक आशा करते हैं कि राजा फ़ारुक भविष्य में इस्लाम के ख़लीफ़ा होंगे। राजा फ़ारुक को संसार के सब मुसलमान अगर अपना ख़लीफ़ा स्वीकार कर लेंगे तो वह पृथ्वीमण्डल के बीस करोड़ से अधिक मुसलमानों के धर्मगुरु बन जायँगे। एशिया के सोलह करोड़, आफ़्रिका के चार करोड़ चालीस लाख और योरप के पचास लाख से अधिक मुसलमान उनको अपने धर्म का एकमात्र नेता मान लेंगे। गत अप्रैल महीने के मध्य भाग में ब्रिटेन के कर्णधारों ने जैसी कार्यप्रणाली का अनुमोदन किया था, उससे राजा फ़ारुक के ख़लीफ़ा का पद प्राप्त करने की राह बहुत कुछ साफ़ हो गई है। ब्रिटेन के कर्णधारों ने पैलेस्टाइन का कर्तृत्व बेसरकारी तौर से राजा फ़ारुक के कंधों पर डालकर निश्चिंत होने की चेष्टा की है। ब्रिटिश प्रधान मंत्री नेविल चेंबरलैन के अनुगत मिसर के प्रधान मंत्री महमूदपाशा ने कैरो में सलाह करके एक नई और Informal (विधिबहिर्भूत) पैलेस्टाइन-कान्फ़रेंस का आयोजन किया था। गत मार्च महीने में पैलेस्टाइन के मसले को हल करने के लिए लंदन के सेंट जेम्स महल में एक कान्फ़रेंस की गई थी। उसके व्यर्थ अधिवेशन में जो प्रतिनिधि बाहर से आकर शामिल हुए थे, वे ही लौटकर मिसर की राजधानी में विश्राम के समय उक्त कान्फ़रेंस में सम्मिलित हुए थे। लंदन में रहनेवाले मिसर के राजदूत डाक्टर हसन नसतपाशा मिसर के प्रधान मंत्री महमूदपाशा के साथ टेलीफ़ोन और समुद्री तार के ज़रिये लंबे अर्से तक सलाह मशविरा करके गत ईस्टर मंडे को लंदन से हवाई जहाज़ पर बैठकर मिसर की राजधानी में वापस आये थे। पैलेस्टाइन में अरब और यहूदी लोग जिस झगड़े से परेशान हैं, उसका अन्त करने के लिए वह ब्रिटिश सरकार की ओर से कुछ नये प्रस्ताव लेकर आये थे। मिसर के राजदूत नसतपाशा कंज़र्वेटिव-दल के राजनीतिक हैं। वह भूतपूर्व राजा कुआद के विश्वस्त अनुचर और सलाहकार थे। इस समय भी वह राजमाता के विश्वासपात्र हैं। साम्राज्यवादी लार्ड लायड जब मिसर के हाई कमिश्नर थे, तब नसतपाशा मिसर के राजदूत होकर बर्लिन भेजे गये थे। उस समय उन्हें नाज़ी-दल के अन्यतम नेता हरमैन गोअरिंग की मित्रता का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। इसके बाद राजा फ़ारुक जब राजसिंहासन पर बैठे, तब उन्होंने स्वदेश में लौटकर शासन-विभाग का कार्य-भार ग्रहण किया। उनकी २४ वर्ष की अवस्थावाली पत्नी ज़ुल्फ़िकार-वंश की कन्या हैं। वर्तमान मिसर की रानी फ़रीदा भी इसी वंश में उत्पन्न हुई हैं। रानी फ़रीदा नसतपाशा की स्त्री की नज़दीकी रिश्तेदार हैं। नसतपाशा की चेष्टा से पैलेस्टाइन के अरबों और यहूदियों के विरोध की मीमांसा के लिए कैरो में जिस समिति का अधिवेशन हुआ था, उसके सफल होने की उनकी पूर्ण आशा थी। किन्तु उस कमेटी की बैठक में जिन प्रस्तावों की आलोचना हुई, जो प्रस्ताव पेश किये गये, उनका समर्थन न तो यहूदियों ने किया और न अरबों ने। लेकिन यह आशा अवश्य है कि राजा फ़ारुक के नेतृत्व में दोनों पक्षों को ईमानदारी के साथ स्वाधीनता देना अंगीकार करने से भविष्य में अरबों और यहूदियों में समझौता हो सकता है। असल बात यह है कि राजा फ़ारुक के सलाहकारों ने उनको ख़लीफ़ा के सम्मानित पद पर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बिठाने के उद्देश्य से ही पैलेस्टाइन की अरब-यहूदी-समस्या के समाधान का काम अपने सिर लेने का अनुरोध किया था। कहना न होगा कि योरप के भूतपूर्व महायुद्ध के पहले टर्की सुल्तान ख़लीफ़ा अर्थात् मुसलिम-जगत् के धर्मगुरु थे। सन् १९२२ में टर्की में राजतन्त्र शासन का अन्त होने पर ख़लीफ़ा सुल्तान वहीदुद्दीन अंकारा से भाग खड़े हुए। उनके चचाज़ाद भाई अब्दुलमजीद एफ़ेंदी उनकी जगह पर ख़लीफ़ा चुने गये, लेकिन उन्हें ख़लीफ़ा का काम किसी दिन नहीं करने दिया गया। दो वर्ष के भीतर ही वह पदच्युत और निर्वासित कर दिये गये। इसके बाद हेजाज़ के राजा हुसेन हाशिमी ने अपने को ख़लीफ़ा घोषित किया। किन्तु उन्होंने तरह-तरह से परेशान होकर अपनी इच्छा से राजसिंहासन छोड़ दिया, उनके ख़लीफ़ा-पद का भी उसके साथ ही अन्त हो गया। तब से ख़लीफ़ा का स्थान ख़ाली पड़ा है। टर्की के डिक्टेटर स्व० कमालअतातुर्क ख़िलाफ़त के पूर्ण रूप से ख़िलाफ़ थे। और किसी स्वाधीन राज्य के मुसलमान राजा ने यह सम्मान प्राप्त करने की चेष्टा फिर नहीं की। राजा फ़ारुक ख़लीफ़ा हो जाने पर जेहाद (धर्म-युद्ध) की घोषणा कर सकेंगे, संसार का हरएक धर्मनिष्ठ मुसलमान उनके झंडे के नीचे आने के लिए बाध्य होगा। उनके ख़लीफ़ा होने पर सभी मुसलमान राजा धर्म के अनुसार उनकी प्रधानता स्वीकार करने के लिए बाध्य होंगे। अतएव ईराक, ट्रान्स-जार्डिनिया, सऊदी, अरब आदि अरब राज्यों को उनका नेतृत्व स्वीकार करना होगा। सबसे बड़ी बात यह है कि पैलेस्टाइन के अरब-यहूदी-विरोध का जो फ़ैसला वह कर देंगे, उसे सिर झुकाकर अरबों को मानना ही पड़ेगा। जब एक पक्ष विरोध छोड़कर शान्त हो जायगा तो दूसरे पक्ष को भी शान्त करना कुछ कठिन न होगा। पर यह सब भविष्य की आशा है। गत जनवरी में राजा फ़ारुक ने एलकूसिम की प्रसिद्ध मसजिद में जब इमाम का काम किया था, तब सबने समझ लिया था कि वह ख़लीफ़ा होने की उच्च आकांक्षा रखते हैं। उस दिन जुमा की नमाज़ ख़तम होने पर उनके भक्तों ने एक-स्वर से ख़लीफ़ा फ़ारुक कहकर उनका अभिनन्दन किया था। किन्तु मुसलमानी धर्म के विभिन्न संप्रदायों ने जब इस घोषणा पर अपनी नाराज़ी ज़ाहिर की, तब उनको शान्त करने के लिए मिसर-सरकार के परराष्ट्र-विभाग से यह प्रचार किया गया कि राजा फ़ारुक ख़लीफ़ा बनने के लिए उत्सुक नहीं हैं। तीन दिन के बाद फिर इस प्रकार की घोषणा प्रकाश्य रूप से की गई। लेकिन इस घोषणा का असली मंशा सभी ने समझ लिया। तीन महीने पहले राजा फ़ारुक की उन्नीसवीं सालगिरह के उत्सव में उन्होंने अपनी प्रजा को स्पष्ट रूप से समझा दिया था कि उनका विश्वास है कि वह ख़लीफ़ा के पद के पूर्ण अधिकारी हैं। फ़ारुक के ख़लीफ़ा बन जाने से ब्रिटेन को यथेष्ट सुविधा होगी। इस बात को ब्रिटेन के राजनीतिक बहुत अच्छी तरह जानते हैं। बेनिटो मुसोलिनी ने अबीसीनिया को हड़प जाने के बाद अपने को इस्लाम का रक्षक कहा था और उनकी कृपा चाहनेवाले अनेक जीहुज़ूर मुसलमानों ने "ठीक है—ठीक है" कह-

अभ्युदय का मूल आरोग्य

आप पहले अपने आरोग्य की अभिलाषा करें।

आरोग्य से ही अभ्युदय की अभिलाषा सफल होगी। आरोग्य का लाभ लेने के लिये

आतंकनिग्रह गोलियाँ

ही प्रशस्त साधन हैं।

क़ीमत—३२ गोलियों की डिब्बी का १) एक रुपया

आतंकनिग्रह औषधालय

जामनगर, काठियावाड़

लखनऊ एजेंट—इंदरचंद एण्ड कं०, चौक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर मुसोलिनी के दावे का समर्थन किया था। किन्तु उन्होंने मुसलमानी राज्य अलबानिया पर जब हाथ सफ़ा किया, तब उनके कथन की पोल खुल गई और अब उनका जादू मुसलमानों पर नहीं चल सकता। इस सुयोग में ब्रिटेन के स्वार्थ-साधन में सहायक ख़लीफ़ा का चुनाव करने के लिए बहुत-से लोग दिमाग़ लड़ा रहे हैं और उनकी दृष्टि राजा फ़ारुक पर ही है। इन राजनीतिकों का उद्योग सफल होने पर अरबों को ब्रिटेन अपने पक्ष में कर सकेगा; पूर्व भूमध्य-सागर में रहनेवाली ब्रिटिश जल-सेना के लिए हैफ़ा तक फैली हुई ईराक के तेल-पाइप की लाइन निरापद रहेगी; इसके सिवा अरबों की मित्रता हासिल होने पर, जो ब्रिटिश-सेना अभी पैलेस्टाइन में फँसी हुई है, उसे हटाकर और जगह भेजना सहज होगा। इन्हीं सब कारणों से कैरो में रहनेवाले ब्रिटिश-राजदूत कूटनीतिक सर माइल्स वेडरबर्न लैंपसन राजा फ़ारुक को ख़लीफ़ा का पद दिलाने के लिए भरपूर कोशिश कर रहे हैं। सर माइल्स की अवस्था इस समय ५८ वर्ष की है, तथापि वह एक नौजवान से बढ़कर बलवान् और काम करनेवाले हैं। पाँच साल पहले वह मिसर के हाई कमिश्नर बनाये गये थे। इस पद में काफ़ी योग्यता का परिचय उन्होंने दिया। अब वह ब्रिटेन के राजदूत की हैसियत से वहाँ काम करते हैं। उन्होंने और उनकी शौक़ीन पत्नी ने राजा फ़ारुक की श्रद्धा, विश्वास और प्रसन्नता प्राप्त कर ली है। उनकी चेष्टा से—और विशेषकर फ़ारस के साथ राजा फ़ारुक का नया मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो जाने से राजा फ़ारुक के ख़लीफ़ा बनने की संभावना दिन-दिन प्रबल होती जा रही है। देखें, ऊँट किस करवट बैठता है।

हिन्दी-संसार को

नवलकिशोर प्रेस की ओर से

अनुपम भेंट

माधुरी अगस्त मास का विशेषाङ्क

मूल्य १॥)

इसी मास से ग्राहक बननेवालों को

मुफ़्त

मैनेजर—माधुरी लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेख-सूची

विषय	पृष्ठ
१. विनय (कविता)—[लेखक, श्री-लोचनप्रसाद पांडेय	१
२. सावन (कविता)—[लेखक, श्रीबजरंग-लाल सुल्तानिया	२
३. रामचरितमानस की प्राचीन प्रतियाँ और उनके पाठ—[लेखक, श्रीनन्द-दुलारे वाजपेयी एम्० ए० ...	३
४. आलोचकनामा—[लेखक, प्रो० रामकृष्ण शुक्ल एम्० ए० 'शिलीमुख'	११
५. महाकवि भारवि की उन्नत मनोवृत्ति—[लेखक, श्रीरामनिवास शर्मा भू० पू० 'सौरभ'-सम्पादक	२०
६. आनन्द उद्‌बोध (कविता)—[लेखक, श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'	३२
७. काली बाबू (कहानी)—[लेखक, श्रीपहाड़ी	३३
८. वे दोनों ? (एकांकी-नाटक)—[लेखक, प्रो० सद्‌गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०	३८
९. बुद्ध-पूर्व का भारतीय इतिहास—[लेखक, श्रीमिश्रबन्धु	४८
१०. स्व० लालाजी (संस्मरण)—[लेखक, श्रीभुवनेश्वरप्रसाद मिश्र 'माधव' बी०ए०	५६
११. मनुहार (कविता)—[लेखक, श्रीसूर्य-नारायण व्यास साहित्याचार्य	६१

बे रोज़गारों को रोज़गार

आप अपने खाली समय में रोज़ाना ४-५ घन्टे काम करके ५० रुपया से १०० रुपया माह-वार तक कमा सकते हैं। आज ही एक पत्र लिखकर नियम मुफ़्त मँगायें।

मैनेजर—माधुरी, लखनऊ।

बवासीर का काल

क्या इस दवा के रहते भी आप ख़ूनी या बादी बवासीर से कष्ट उठाते ही रहेंगे ? कैसा ही पुराना हो २१ दिन में जड़ से आराम न हो तो दूना दाम वापस। मू० २) रु०।

स्वप्नदोष और सूजाक

सिर्फ़ १५ दिन इस अमोघ वनौषधि के सेवन करने से सदा के लिये दूर हो जाता है। म० २) रु०।

महाबीर औषधालय,

नं० ५ दरभंगा।

बवासीर, काँच, भगन्दर

कष्टरहित, हानिरहित, स्थाई चिकित्सा

८ वर्ष में भारतवर्ष के सब स्थानों से सहस्रों रोगी ठीक हो चुके हैं, काँच तो ४८ घन्टे बाद निकलना बन्द हो जाती है। केवल देहली हस्पताल में मार्च १९३९तक ८३४ रोगी चिकित्सा कराकर लाभ उठा चुके हैं। आगरा और बनारस में भी स्थाई ब्रांच हस्पताल स्थापित कर दिये गये हैं। नियम मुफ़्त।

पता—

डा० आर० आर० गुप्ता एन्ड सन्स,

नई सड़क, देहली

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
१२. यह पूँछ ! (सचित्र)—[लेखक, श्रीधर्म-वीर एम्० ए०	६२
१३. बंगाली वैष्णव (कहानी)—[लेखक, श्रीअमृतलाल नागर	६६
१४. कबीर-काल की हिन्दी—[लेखक, श्रीजगनलाल गुप्त मुख्तार ...	७०
१५. सरदार हरिसिंह नलवा (सचित्र)—[लेखक, श्रीसंतराम बी० ए० ...	७५
१६. जननेन्द्रिय-विकार और प्रेम—[लेखक, श्रीयुत 'स्मृति'	६२
१७. फाँसी के तख्ते पर (कहानी)—[लेखक, श्रीविजयबहादुर श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी० ...	६६
१८. संसार (कविता)—[लेखक, श्रीरामाधार त्रिपाठी 'जीवन'	१०१

डाकला का स्त्रियों के सौभाग्य !! Regd.

अलेट्रोसोका कार्डीयल

(एक नवीन आविष्कार)

इसके सेवन से हर प्रकार के प्रदर, प्रसूत, मासिक की गड़बड़ी, पेट या पेड़ू में दर्द, हाथ पाँव कलेजे में लहर, सफ़ेद आत गिरना, गर्भपात या गर्भ न ठहरना, बाँझपन इत्यादि सभी स्त्रीरोग जड़ से आराम होकर शरीर में बल पैदा करता है। मूल्य २)

एजेन्टों की आवश्यकता है।

डा० के० एल केमिकल वर्क्स लार्ज बिल्डिंग
दानापुर कैन्ट (बिहार)

५० रुपया इनाम सिद्ध कवच

जिस काम को आप लाखों रुपया ख़र्च कर नहीं कर सकते, उसे सिर्फ़ सिद्ध कवच को धारण करने ही से कर सकते हैं, जिसमें किसी तरह का कष्ट या साधन की आवश्यकता नहीं है। जिसे आप चाहते हैं वह चाहे कितना ही घमण्डी, कैसा ही पत्थरदिल, कैसा ही सख़्त कलाम क्यों न हो, आप पर मोहित होकर आपकी आज्ञानुसार कार्य करेगी। इस यन्त्र से भाग्य उदय होकर नौकरी मिलती है। मुक़द्दमे में जीत, परीक्षा में पास, रेस और लौटरी में जीत और इससे ग्रह शांत होते हैं। अगर आप मन्त्र और यन्त्र से बार-बार ठगे जा चुके हैं तो एक बार इसे अजमा कर इसके अद्भुत चमत्कार को अवश्य देखिये। बेफ़ायदा साबित करने पर ५०) इनाम। मूल्य तांबा का २), चांदी का ३), सोने का ६)।

पता—सर्वार्थ-सिद्धि-आश्रम
नं० १६५ पो० ओ० भिरचाइगंज, (पटना)

१०० रुपया इनाम

महात्मा की बताई हुई श्वेत कुष्ठ (सफ़ेदी) की दवा से तीन दिन में पूरा आराम। यदि आप सैकड़ों हकीमों, डाक्टरों, वैद्यों और विज्ञापनी दवाओं से निराश हो चुके हैं तो इसे लगाकर इस घृणित रोग से मुक्त होवें। विश्वास न हो) का टिकट भेज शर्त लिखा लें। मूल्य श्वेत कुष्ठ की दवा का १॥), गलित कुष्ठ (सुनबहरी), हाथ-पाँव में ज़ख़म होना, अंगुलियों का गल जाना इत्यादि एक माह में पूर्ण आराम। मूल्य ४) धातुपौष्टिक चूर्ण—इससे धातुविकार, स्वप्नदोष दूर होते हैं और वीर्य गाढ़ा हो जाता है। मूल्य १॥) प्रति शीशी।

पता—दर्शन सिन्हा मो० हलिपुर
पो० एकंगरसराय (पटना)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
१९. 'नज़र' लखनवी—[लेखक, श्रीकैलाश-बर्मा 'शायक़' बी० ए०	१०३
२०. भवाली-सेनेटोरियम और उसके निरीक्षक डाक्टर वाई० जी० श्रीखंडे (सचित्र)—[लेखक, श्री 'कृष्ण' एम्० ए०	११०
२१. बना हुआ गवाह (प्रहसन)—[लेखक, श्रीविद्याधर कुलश्रेष्ठ	१२८
२२. साहित्य किस ओर ?—[लेखक, श्रीप्रतापनारायणसिंह साहित्य-भूषण	१३३
२३. भारतवर्ष के विरुद्ध प्रचार—[लेखक, श्रीपन्नालाल श्रीवास्तव एम्० ए०...	१३७
२४. प्रसादजी के नाटक—[लेखक, श्री-दीनानाथ व्यास विशारद ...	१४१

हिन्दी-साहित्य के विद्यार्थी

जो प्रथमा, विशारद और साहित्यरत्न में बैठते हैं, उन्हें "साहित्य-संदेश" (आलोचना-साहित्य का एकमात्र मासिक) बहुत ही लाभप्रद सिद्ध हुआ है। क्योंकि इसका ध्येय आलोचनात्मक है और साहित्य के अध्ययन के लिए समीक्षात्मक दृष्टिकोण आवश्यक है। नवीन से नवीन साहित्यिक विषय पर इसके प्रति अंक में प्रभाव डाला जाता है और इसी लिए

विशेष योग्यता

के लगभग सभी विद्यार्थी इसके ग्राहक बनकर लाभ उठाते हैं। विद्यार्थियों से वार्षिक मूल्य १) नमूना मुफ़्त।

पता—साहित्य-संदेश, ५३ ए० सिविल लाइन्स,
आगरा.

सूचना

ग्राम-सुधार के हल्कों में प्रौढ़ लड़कों और लड़कियों की शिक्षा के लिए प्रान्तीय सरकार ने सन् १९३८–३९ के लिए १,६०,००० रुपया स्वीकार किया है। इस समय २,४६४ पाठशालाएँ चल रही हैं, जिनमें—

(१) प्रौढ़ पाठशालाएँ १८०१, (२) लड़कों की पाठशालाएँ ९९, (३) बालिकाओं की पाठशालाएँ २३०, (४) छात्र और छात्राओं के सहशिक्षणालय ५, और (५) प्रौढ़ और छात्रों की सम्मिलित पाठशालाएँ ३२९ हैं। इन पाठशालाओं में पढ़नेवालों की सम्मिलित उपस्थिति ७१ हज़ार से कुछ अधिक है। प्रत्येक पाठशाला पर प्रति मास औसत व्यय ८ रुपये के लगभग होता है, जिसमें अध्यापक का औसत मासिक वेतन ६ रुपये सम्मिलित है। प्रत्येक पाठशाला में औसत उपस्थिति लगभग ३० है। ग्राम-सुधार-विभाग की ये पाठशालाएँ बहुत ही लोकोपयोगी सिद्ध हो रही हैं, और अधिक से अधिक पाठशालाएँ खोलने के लिए ग्रामीण जनता की माँग बढ़ रही है।

लखनऊ.
१८ जुलाई, १९३९

अब्दुल हई अब्बासी
पब्लिसिटी आफ़िसर, ग्राम-सुधार-विभाग, यू० पी०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
२५. महाराजा मानसिंह के नाम महाराजा रणजीतसिंह का पत्र—[लेखक, इतिहासाचार्य पं० विश्वेश्वरनाथ रेउ ...	१४६
२६. मराठों का पुर्तगालियों से धर्मयुद्ध—[लेखक, श्रीयुत भास्कर रामचन्द्र भालेराव बी० ए०	१४६
२७. असफल (कविता)—[लेखक, श्रीसत्यव्रत शर्मा 'सुजन' एम्० ए०, साहित्याचार्य	१५६
२८. हमारी वे प्राचीन विद्याएँ—[लेखक, श्रीव्रजकिशोर वर्मा 'श्याम' ...	१५७
२९. छाया— 'गोपालकृष्ण' पर एक आलोचनात्मक दृष्टि—[लेखक, श्रीचन्द्रशङ्कर नागर	१६६
३०. साम्यवाद की रूपरेखा—[लेखक, श्रीशिवरत्नलाल	१६६
३१. डिक्टेटरों का बचपन—[लेखक, श्रीयुत 'विजन'	१७७
३२. साहित्यिक भिखारी—[लेखक, श्रीविष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी'	१८७
३३. साहित्य ही राजनीति का जनक है—[लेखक, श्रीरामअवधेश त्रिपाठी 'विशारद'	१६१
३४. हिमाद्रिजा (कहानी)—[लेखक, श्रीलक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी 'चन्द्र' ...	१६५
३५. सावन के बहन-भाइयों के ग्राम्य गीत—[लेखक, श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज बी० ए०, सी० टी०	२००

इसको रखने के लिये लाइसेंस की ज़रूरत नहीं।

नये साल का नया मॉडल

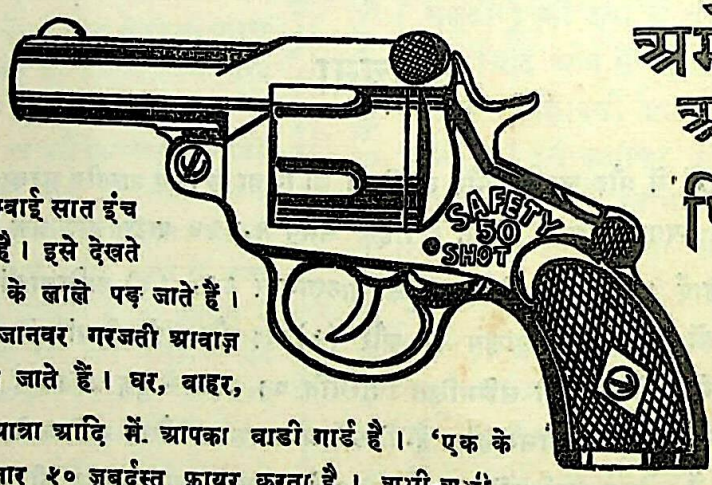

अमेरिकन अलारम पिस्तौल

मानिंद असली केवल हम ही से मिलेगा।

इस पिस्तौल की लम्बाई सात इंच और वज़न १५ औंस है। इसे देखते ही दुश्मन को जान के लाले पड़ जाते हैं। चोर, डाकू, ख़ूनख़्वार जानवर गरजती आवाज़ सुनकर एकदम भाग जाते हैं। घर, बाहर, जंगलों, पहाड़ों और यात्रा आदि में आपका बाडी गार्ड है। 'एक के बाद एक' करके लगातार ५० ज़बर्दस्त फ़ायर करता है। अभी-अभी अमेरिका से बनकर आये हैं। असली माल सिर्फ़ हमसे ही मिलेगा, क़ीमत मय ३०० शाट सिर्फ़ चार रुपये चार आने ४।), फ़ालतू ५०० शाट २), पिस्तौल की पेटी व खोल १॥), पिस्तौल के लिये तेल की शीशी ॥) डाकख़र्च अलग। आज ही मँगा लें।

मँगाने का पता:—
दी. आनन्द, जनरल मैनेजर अमेरिकन पिस्तौल एजन्सी (M. L. 2)
पोस्ट बक्स नं० २२० लाहौर (M. L. 39).

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय		पृष्ठ
३६.	पढ़ी-लिखी स्त्रियों के बढ़ते हुए उत्तर-दायित्व—[लेखिका, श्रीमती रजनी	२०५
३७.	बाल-मनोरंजन—	
	जादूगर (कविता)—[लेखक, कुमार बुद्धिभद्र	२११
	बुद्धि का चमत्कार—[लेखिका, मिसेज़ सी० रानी भटनागर	२१२
	देखो, हँसना मत—[लेखक, श्रीराजेन्द्रमोहन भटनागर	२१३
३८.	विनोद-वार्ता—[लेखक, मनोरंजन मुकर्जी	२१६
३९.	हमारा दृष्टिकोण	२१८

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. रासलीला

२. जापानी मुर्ग़

३. पनिहारिन

४. सुखद कल्पना में विभोर

व्यंग्य चित्र और सादे चित्र अनेक

गारंटी के साथ अच्छा करते हैं—सूज़ाक, गर्मी व नामर्दी

हज़ारों लाभ उठा चुके; सैकड़ों डाक्टरों, हकीमों, वैद्यों से निराश हुए रोगी दूर-दूर से यहाँ आकर पूर्ण फ़ायदा उठाते हैं। जो यहाँ नहीं आ सकते वे घर बैठे मेरी औषधि मँगा कर इन रोगों को जड़ से नष्ट करें। मूल्य औषधि सूज़ाक नया का २॥) पुराना ५) गर्मी नई २॥) पुरानी ५) नामर्दी थोड़े दिन की हो तो ५) अधिक दिन की हो तो ६) डाकख़र्च ॥-)

शुक्रा टानिक पिल्स—धातुक्षीणता, स्वप्नदोष, नामर्दी और बीसों प्रमेहों को नाश कर स्तम्भनशक्ति को बढ़ाकर नई जवानी पैदा करती है। ४० गोलियों का मू० २)

लक्ष्मीविलास गोलियाँ—इससे इन्द्रियशिथिलता, थोड़ी उत्तेजना से धातु का गिरना, धातु का पतलापन, दिशा-पेशाब के साथ वीर्य का निकल जाना, दिमाग़ कमज़ोर, सिरदर्द कमर-दर्द, स्वप्नदोषादि बीसों प्रमेहों को आराम कर वृद्ध मनुष्य भी रक्त, मांस, धातु से परिपूर्ण; हृष्ट-पुष्ट; अपार वीर्यवाला तथा महाकामी होता है। स्तम्भनशक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है। मूल्य ६० गोलियों का ५), पोस्टख़र्च ॥-)

नपुंसकताहरण तिला कस्तूरीमिश्रित—यह कस्तूरी नामर्दी, ढीलापन, बाँकपन को नाश कर असली ताक़त पैदा करता है, मूल्य ५) फ़ी शीशी डा० ख़० ।=)

पता—पं० अयोध्याप्रसाद वैद्यशास्त्री, शुक्ला आयुर्वेदिक औषधालय, निशातगंज, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बअदालत स्पेशल जज दर्जा दोयम जौनपुर

ता० मुकर्रह ५—९—१९३९

मु० नं० ९७ सन् १९३६

फ़ार्म इत्तिलानामा हस्ब दफ़ा ११ ऐक्ट जायदाद हाय मक़रूज़ा संयुक्त प्रान्त

हरगाह रामसुरतसिंह व रामकरनसिंह पिसरान अमरदेवसिंह ३—मु० जगप्यारी कुवँरि जौजा सीतारामसिंह व भगवतीसिंह व विक्रमासिंह पिसरान नाबालिग़ान रामसुरतसिंह बवलायत पिदरख़ुद सा० वीरी पर० केराकट ज़ि० जौनपुर ने एक दरख्वास्त हस्ब दफ़ा ४ ऐक्ट जायदाद हाय मकरूजा पेश की है।

लिहाजा इस तहरीर की रू से हस्ब दफ़ा जिन्नी १ दफ़ा ११ ऐक्ट मजकूर इत्तिला दी जाती है कि उस जायदाद को जिसका ब्योरा नत्थी किये हुए जमीमों में दर्ज है दरख्वास्त देनेवाले ने हस्ब दफ़ा ८ या हकदारों ने हस्ब दफ़ा ८ सायलान मजकूर की जायदाद बताया है।

अगर कोई शख्स जायदाद मजकूर पर कोई दावा रखता हो तो से जो इस इश्तिहार के संयुक्त प्रान्त के गजट में छपने की तारीख है तीन मास के भीतर अपने हक़ों के सम्बन्ध में उस हाकिम के आगे अपनी अर्जी पेश करे जिसके हस्ताक्षर नीचे दिये हुए हैं।

जमीमा (क)

कर्जदार के हक मालिकाना आराजी के मुतालिक़

नम्बर सिलसिलेवार	जिला	नाम जायदाद	मौजा मय नम्बर बन्दोबस्त व मुहाल	दरख्वास्त देनेवाले की मुस्तक़िल व क़ाबिल विरासत और क़ाबिल इन्तक़ाल हक़ियत का ब्योरा	दरख्वास्त देनेवाले की हक़ियत का विस्तार जो रजिस्टर दफ़्तर साहब कलक्टर में दर्ज है	दरख्वास्त देनेवाले की हक़ियत पर मौजूदा तश-ख़ीस मालगुजारी
१	जौनपुर परगना केराकट	जमीदारी	१ आना ८ पाई मौ० बलुआ में ११/१२ हिस्सा सायलान	मय सीर व सायर कुलहुमहक़ूक जमीदारी	११/१२ हिस्सा	१३।)६
२	,,	,,	३ आना १० पाई मौ० वीरी में ११/१२ हिस्सा	,,	,,	२०।।।=)११
३	,,	,,	२ पाई मौ० खाखी में ११/१२ हिस्सा सायलान	,,	,,	≡)३
४	,,	,,	२ पाई मौ० फरीदपुर में ११/१२ हिस्सा सायलान	,,	,,	≡)३

जमीमा (ख)

कर्जदार की जायदाद जो भूमि सम्बन्धी मालिकाना हक़ों को छोड़कर हस्ब दफ़ा ६० जाब्ता दीवानी सन् १९०८ ई० कुर्क और नीलाम हो सकती है।

सिलसिले का नम्बर	जायदाद की किस्म	दरख्वास्त देनेवाले को हक़ियत की वसअत (विस्तार)			
१	मौजा वीरी टप्पा चन्दवक पर० केराकट जि० जौनपुर हिस्सा सायलान ११/१२ तालाब पर के दरख़्तान मौजा चन्दवक पर० केराकट जि० जौनपुर बाग के पूरब व उत्तर के कोने पर हि० सायलान ११/१२	४७६ / —४३	५०४ / १—३९	६८१ / —१९	९९३ / २—४१
		९८८ / —१७	१०७१ / —४७	१०७३ / —७०	

बहुक्म अदालत (हस्ताक्षर) मुन्सरिम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रासलीला

[[illegible]]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

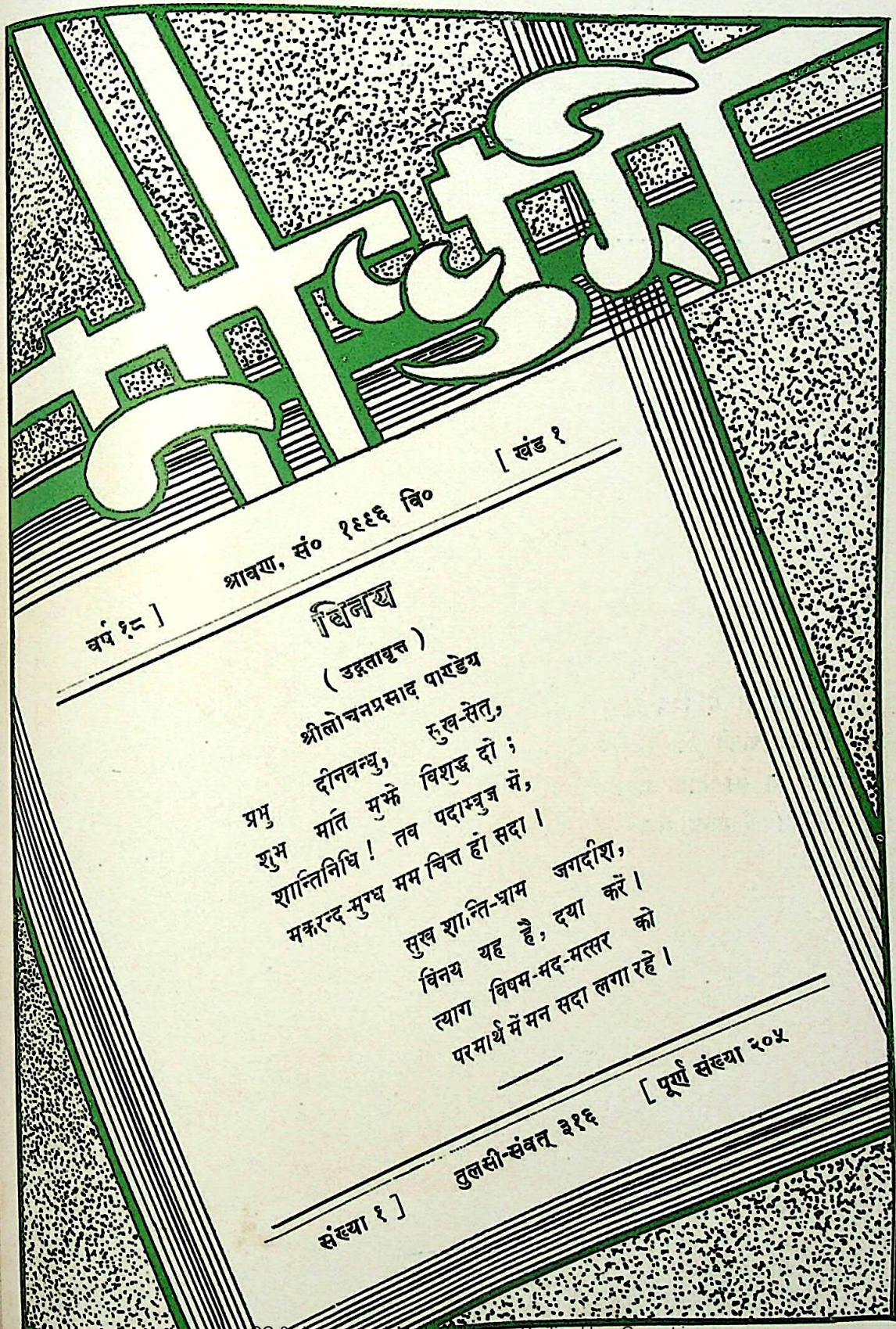

वर्ष १८] श्रावण, सं० १९९६ वि० [खंड १

विनय

(उद्गताक्षर)

श्रीलोचनप्रसाद पाण्डेय

प्रभु दीनबन्धु, सुख-सेतु,
शुभ मति मुझे विशुद्ध दो ;
शान्तिनिधि ! तव पदाम्बुज में,
मकरन्द-मुग्ध मम चित्त हो सदा ।

सुख शान्ति-धाम जगदीश,
विनय यह है, दया करें ।
त्याग विषम-मद-मत्सर को
परमार्थ में मन सदा लगा रहे ।

संख्या १] तुलसी-संवत् ३१६ [पूर्ण संख्या २०५

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सावन

श्रीबजरंगलाल सुल्तानिया

सखि, निर्दय आज पयोधर ने,
बरसाईं घनी मुकुता-लड़ियाँ;
प्रिय दूर हैं, कैसे कटेंगी, बता,
निशा की ये विषाद-भरी घड़ियाँ?

लगता जब तीर-सा एक ही बूँद तो
क्या न करेंगी, अरी झड़ियाँ?
मृदु-मन्द समीर भी सालता है
मनो मारता मार लिये छड़ियाँ।

निशि ने परिधान है काला लिया,
ये नई बधू-सी सकुचा रही है;
शशि आना चहे इसके ढिग जो
करके पट बन्द दुरा रही है।

नहीं जानती है प्रिय के गुण ये,
तभी तो अपने को बचा रही हैं।
फल प्रेम का हाय, गँवा रही है,
रसहीना नितान्त गँवार ही है।

मनभावन होते कहीं घर में,
अनुराग की लालिमा छाती यहाँ;
भर मोद मयूर फिरा करते.
विहगावली तान सुनाती यहाँ।

रस ही रस होता रसा में, सुधा
बरसाती हवा बरसाती यहाँ;
नित प्रेम की माला बना सजनी!
अपने उन पे मैं चढ़ाती यहाँ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रामचरितमानस की प्राचीन प्रतियाँ और उनके पाठ

श्रीनन्ददुलारे वाजपेयी एम० ए०

रामचरितमानस का सम्पादन करते हुए हमने जिन प्राचीन प्रतियों की सहायता ली है, उनके सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें जानने की आकांक्षा पाठकों को अवश्य होगी। उन प्रतियों के लेखक अथवा सम्पादक कौन थे, उन्होंने किस सन्-संवत् में उन प्रतियों को लिखा अथवा सम्पादित किया, उनके पाठ कैसे हैं और उनका आधार क्या है, वहाँ तक वे गोस्वामीजी की प्रकृत रचना के निकट अथवा दूर हैं, इन सब प्रश्नों की जिज्ञासा स्वभावतः पाठकों को होती है। गोस्वामीजी-जैसे सुप्रसिद्ध और लोकप्रिय कवि की इस सर्वश्रेष्ठ रचना के सम्बन्ध में ऐसी जिज्ञासा का होना और भी स्वाभाविक है। प्रायः गोस्वामीजी के हाथ की लिखी 'मानस' की पूरी पोथी अब तक कहीं नहीं मिली, इसलिए लोग यह जानना चाहते हैं कि जो पुस्तकें तुलसीकृत रामायण के नाम से उनके सामने रक्खी गई हैं और अब भी रक्खी जा रही हैं, वे कहाँ तक प्रामाणिक हैं, उनके सम्पादन और प्रकाशन में प्राचीन पाठ की रक्षा का क्या प्रयास किया गया है और शुद्ध संस्करण उपस्थित करने की कितनी चेष्टा की गई है। 'मानस' का सम्पादन करते हुए हमने जिन प्राचीन प्रतियों का आधार लिया है, उन्हें देख-सुनकर और उनका अध्ययन करने पर हमारी जो कुछ धारणा उनके विषय में हुई है, उसे लिख देने में हमें कोई आपत्ति नहीं दिखाई देती।

यहाँ आगे बढ़ने के पहले यह समझ लेना चाहिए कि गोस्वामीजी का निधन हुए तीन सौ से ऊपर वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस बीच में उनके ग्रन्थों के प्रति-लिपिकार और सम्पादक भिन्न-भिन्न प्रान्तों के निवासी हुए हैं, जिनमें स्वभावतः भाषा-सम्बन्धी थोड़ा-बहुत अन्तर पाया जाता है। जिस किसी ने ग्रन्थ को अपने हाथ से लिखा, उसने अपनी बोलचाल के अनुसार शब्दों के उच्चारण और विन्यास में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर दिया। यह परिवर्तन स्वाभाविक तो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है ही, बहुत अंशों में क्षम्य भी है। 'यह, येह, एह' : 'दोउ, द्वौ' आदि में जो अन्तर दिखाई देता है, वह इसी प्रकार का है, और उससे मूलपाठ में कोई विशेष बाधा नहीं आती।

एक प्रकार का और परिवर्तन कुछ प्रतियों में किया गया है—उन्होंने 'भाषा' को संस्कृत का जामा पहनाने की चेष्टा की है। ऐसा करने में दो हेतु प्रधान जान पड़ते हैं। एक तो ठेठ शब्दों का अर्थ न समझ सकना और दूसरा अपना पाण्डित्य दिखाना—गोस्वामीजी को गँवारू भाषा लिखनेवालों की श्रेणी से ऊपर उठाकर पंडितों की श्रेणी में रखना। इस दृष्टि से जो पाठ-परिवर्तन किये गये हैं, उनमें से कुछ तो केवल लिपि या उच्चारण का परिवर्तन होने के कारण कुछ अंशों में क्षम्य हैं; क्योंकि उनसे गोस्वामीजी के मूलपाठ का पता लग जाता है। किन्तु जहाँ किसी शब्द को बदला गया है अथवा जहाँ शब्द को बदलने से मात्रा की घट-बढ़ हो गई है और छन्द को ठीक रखने के लिए अन्य शब्दों को बदलने—नई गढ़न्त करने—की आवश्यकता आ गई है, वहाँ मूलपाठ कम या अधिक मात्रा में भ्रष्ट हो गया है। इस प्रकार के परिवर्तन मुख्यतः काशिराज के संस्करण में अधिक हैं, जिससे स्पष्ट है कि पंडितों ने उस पर अपनी कृपा विशेष रूप से प्रदर्शित की है। आधुनिक संस्करणों में श्रीज्वालाप्रसादजी विद्यावारिधि तथा श्रीरामेश्वर भट्ट ने उक्त पद्धति का पूर्ण प्रयोग करके 'मानस' की ऐसी कायापलट कर दी है कि उसके मूलरूप का पता लगाना भी कठिन हो गया है।

छन्द को ठीक रखने के लिए जो भर्ती की गई है, उस सिलसिले में दो-एक बातें और कह देनी हैं। कुछ तो वैसी भर्ती है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया। कुछ भर्ती दूसरे प्रकार की है। यह विशेषकर 'मानस' के दोहों में तथा उन कुछ चौपाइयों में पाई जाती है, जिनमें एकाध मात्रा न्यून या अधिक रही है। संशोधकों ने यह नहीं समझा कि गोस्वामीजी के छन्द किन्हीं कठोर नियमों के साँचे में जकड़े हुए नहीं हैं। उनके दोहे सब जगह चौबीस मात्रा के और चौपाइयाँ सोलह मात्रा की नहीं हैं। कहीं एक मात्रा कम और कहीं एक अधिक है। कई स्थानों पर ऐसे भी प्रयोग हैं, जिनमें छन्द के अनुरोध से दीर्घ का ह्रस्व अथवा ह्रस्व का दीर्घ उच्चारण करना पड़ता है। 'पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते' में 'तरनिहुँ ते' के 'ते' को ह्रस्व पढ़ना चाहिए। किन्तु ऐसा न कर कुछ ने पाठ बदलकर 'पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते' रख दिया है। ऐसे स्थलों में भाषा का प्रवाह ही मुख्य देखने की वस्तु है। प्रवाह से ही छन्द की विषमता भी दूर हो जाती है। किन्तु गोस्वामीजी की शब्द-प्रवाह-शक्ति को न समझकर कई प्रतिलिपिकारों ने मनमाने परिवर्तन कर डाले हैं। विशेषकर अरण्य से उत्तरकाण्ड तक के दोहों में अनेकों स्थानों पर ऐसे परिवर्तन किये गये हैं, जिनमें एक मात्रा की पूर्ति के लिए कई शब्द घटाने-बढ़ाने पड़ गये हैं। इन काण्डों के लिए हमने मुख्यतः भागवतदासजी को प्रमाण माना है। उनके बहुत-से दोहे तेईस मात्रा के और कहीं-कहीं प्रथम पंक्ति तेईस की और दूसरी चौबीस की है तथा कहीं-कहीं इसका उल्टा क्रम है। किन्तु कई सम्पादकों ने—मुख्यतः काशिराज और कोदोरामजी ने—इन्हें सुधारने की चेष्टा की है, और प्रायः सर्वत्र चौबीस मात्राएँ रक्खी हैं। इस कारण पाठ-भेद बहुत बढ़ गये हैं।

जिस प्रकार कुछ लोगों ने भाषा और छन्द को सुधारने की नीयत से पाठ बदले हैं, उसी प्रकार कुछ ने शब्दों का अर्थ न समझकर अथवा उन्हें अपनी रुचि का न पाकर मनमाना पाठ रक्खा है। कुछ ने भाषा-व्याकरण के लिंग-वचन आदि अपनी दृष्टि से ठीक करने के लिए पाठ बदले हैं। (गोस्वामीजी ने कई शब्दों का, जो पुंलिंग प्रतीत होते हैं, स्त्रीलिंग में व्यवहार किया है, तथा कई स्थलों पर बहुवचन या आदरास्पद कर्ता के साथ एकवचन क्रिया का प्रयोग किया है) अर्थ समझने की गड़बड़ी अधिक तो क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों के सम्बन्ध में हुई है, किन्तु कहीं-कहीं प्राचीन लिपि के कारण भी भ्रान्ति हो गई है। पुरानी प्रतियों में प्रायः पूरी पंक्ति के अक्षर मिला-कर लिखे गये हैं, शब्दों के बीच में जगह नहीं छोड़ी गई। उन्हें ठीक-ठीक न पढ़ सकने के कारण भी कुछ ग़लतियाँ हो गई हैं—'सीतल निसित बहसि बर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धारा' का 'सीतल निसि तव असि वर धारा' पाठ ऐसी ही ग़लती है।

इस समस्त पाठभेद के सम्बन्ध में विचारकर देखने पर प्रकट होता है कि जो कुछ अच्छा समझकर नया पाठ रक्खा गया है, वह प्रायः पुराने पाठ से निकृष्ट है। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं; क्योंकि गोस्वामीजी-जैसे उत्कृष्ट कवि के लिखे पर हड़ताल फेरना और उनके टक्कर का पाठ रच पाना साधारण व्यक्ति के बूते का काम नहीं। फिर जिन्होंने गोस्वामीजी के मूल प्रयोगों का अर्थ अथवा उनका व्याकरण-संमत रूप न समझकर रद्दोबदल किया है, उनका तो कहना ही क्या! आवउ (वह आवे), आवहुँ (वे आवें), आवहु (तुम आओ) आदि सरल रूपों को समझने में भी जब त्रुटियाँ की गई हैं, तब पाइअ (पाया जाय), पाइअहिं (पाये जायँ) और पाइबि (पाई जायगी) आदि क्लिष्टतर प्रयोगों को वे न समझ सके हों—यह आश्चर्य नहीं। फलतः एक ही अर्थ में वे दो-दो, तीन-तीन ऐसे क्रियारूप रखने लगे, जिनसे अर्थ का अनर्थ होना अवश्यम्भावी था। इस प्रकार के स्खलन कोदोरामजी की प्रति में अन्यों से अधिक हैं। कोदोरामजी पूर्वी प्रदेश के मूल-निवासी थे। उन्हें अवध की भाषा का पूरा परिज्ञान न हो, यह असंभव नहीं। सम्भव यह भी है कि जिस मूलप्रति के आधार पर कोदोरामजी का संस्करण बम्बई से छपा है, उसी में प्रतिलिपिकारों की कृपा से ये त्रुटियाँ आ गई हों। तथापि कोदोरामजी की यह विशेषता भुलाई नहीं जा सकती कि उन्होंने बहुत पहले क्षेपकरहित विशुद्ध प्रति प्रकाशित कराई, जिसमें उन्होंने अनुष्ठान आदि की नियोजना करके पाठप्रक्षेप रोकने की सफल चेष्टा की थी। बम्बई के संस्करण में जो अनेक अशुद्धियाँ हैं, उनमें प्रूफ़ देखने की असावधानी के अतिरिक्त प्रकाशक की मनमानी का भी कम अंश नहीं है।

जैसा कि स्वाभाविक ही था, 'मानस' के संशोधन, सुधार या उद्धार का कार्य सबसे अधिक राजकीय छत्रछाया में हुआ। विशिष्ट पंडितों की मण्डली वहीं मिल सकती थी और पंडितों का एक मुख्य काम दूसरों के दोषों का निराकरण प्रसिद्ध ही है। विशेषकर जिनके ज़िम्मे यही काम सौंप दिया गया हो, उनके लिए तो दोष-दर्शन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हो जाता है। परिणाम यह हुआ कि काशिराज का संस्करण कई दृष्टियों से उपादेय होता हुआ भी दोषों की प्रदर्शिनी-सा बन गया है। विशेषकर उसके अरण्य और लंकाकाण्ड इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं। सबसे अधिक शोचनीय बात यह हुई कि काशिराज का संस्करण (राजकीय सम्पर्क और पंडितों के सहयोग के कारण) बड़ा गौरवास्पद माना गया और अनेक परवर्ती संस्करणों में उसका अनुकरण किया गया।

हमारे कहने का यह प्रयोजन नहीं कि काशिराज के संस्करण में नये पाठों और क्षेपकों की ही भरमार है। ऐसा कहना संगत न होगा। अनुमान यह होता है कि काशिराज की प्रति संवत् १७०४ की जिस प्रति के आधार पर संशोधित हुई, उसमें प्रक्षिप्त पाठों का प्रवेश हो गया था। उन क्षेपकों को निकालकर बिलकुल शुद्ध पाठ प्रस्तुत करना कठिन कार्य था। इसलिए इस सम्बन्ध में जो कुछ चेष्टा की गई, वह स्तुत्य थी। किन्तु इसी सिलसिले में प्राचीन पाठ को बदलकर जो नई गढ़न्त पंडितों ने की, वह गोस्वामीजी के 'मानस' के लिए व्यर्थ का वाणीविलास ही नहीं, बहुत कुछ अनर्थकारी भी सिद्ध हुआ।

पहले हमारा अनुमान था कि बालकाण्ड में अयोध्या (श्रावणकुंज) की प्रति से भिन्न, अयोध्याकाण्ड में राजापुर की प्रति से भिन्न तथा शेष काण्डों में भागवतदासजी की प्रति से भिन्न काशिराज की प्रति में जो परिवर्तित पाठ हैं, वे सब-के-सब उक्त पंडितों की ही प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम हैं; किन्तु हाल में जब हमें दुलही के सुन्दर-काण्ड की प्रति प्राप्त हुई और हमने उसके पाठों को देखा, तब उक्त अनुमान बदलना पड़ा। दुलही की प्रति में (जो संवत् १६७२ की लिखी हुई है और जिसे हमने उक्त काण्ड के लिए प्रामाणिक माना है) कतिपय ऐसे पाठ हैं, जो भागवतदासजी की प्रति में नहीं मिलते; किन्तु काशिराज के संस्करण में ज्यों-के-त्यों पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए 'नाम पाहरू दिवस निसि' पाठ दुलही और काशिराज की प्रतियों में है; किन्तु भागवतदासजी की प्रति में 'नाम पाहरू

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है ही, बहुत अंशों में क्षम्य भी है। 'यह, येह, एह' : 'दोउ, द्वौ' आदि में जो अन्तर दिखाई देता है, वह इसी प्रकार का है, और उससे मूलपाठ में कोई विशेष बाधा नहीं आती।

एक प्रकार का और परिवर्तन कुछ प्रतियों में किया गया है—उन्होंने 'भाषा' को संस्कृत का जामा पहनाने की चेष्टा की है। ऐसा करने में दो हेतु प्रधान जान पड़ते हैं। एक तो ठेठ शब्दों का अर्थ न समझ सकना और दूसरा अपना पाण्डित्य दिखाना—गोस्वामीजी को गँवारू भाषा लिखनेवालों की श्रेणी से ऊपर उठाकर पंडितों की श्रेणी में रखना। इस दृष्टि से जो पाठ-परिवर्तन किये गये हैं, उनमें से कुछ तो केवल लिपि या उच्चारण का परिवर्तन होने के कारण कुछ अंशों में क्षम्य हैं; क्योंकि उनसे गोस्वामीजी के मूलपाठ का पता लग जाता है। किन्तु जहाँ किसी शब्द को बदला गया है अथवा जहाँ शब्द को बदलने से मात्रा की घट-बढ़ हो गई है और छन्द को ठीक रखने के लिए अन्य शब्दों को बदलने—नई गढ़न्त करने—की आवश्यकता आ गई है, वहाँ मूलपाठ कम या अधिक मात्रा में भ्रष्ट हो गया है। इस प्रकार के परिवर्तन मुख्यतः काशिराज के संस्करण में अधिक हैं, जिससे स्पष्ट है कि पंडितों ने उस पर अपनी कृपा विशेष रूप से प्रदर्शित की है। आधुनिक संस्करणों में श्रीज्वालाप्रसादजी विद्यावारिधि तथा श्रीरामेश्वर भट्ट ने उक्त पद्धति का पूर्ण प्रयोग करके 'मानस' की ऐसी कायापलट कर दी है कि उसके मूलरूप का पता लगाना भी कठिन हो गया है।

छन्द को ठीक रखने के लिए जो भर्ती की गई है, उस सिलसिले में दो-एक बातें और कह देनी हैं। कुछ तो वैसी भर्ती है, जिसका उल्लेख ऊपर किया गया। कुछ भर्ती दूसरे प्रकार की है। यह विशेषकर 'मानस' के दोहों में तथा उन कुछ चौपाइयों में पाई जाती है, जिनमें एकाध मात्रा न्यून या अधिक रही है। संशोधकों ने यह नहीं समझा कि गोस्वामीजी के छन्द किन्हीं कठोर नियमों के साँचे में जकड़े हुए नहीं हैं। उनके दोहे सब जगह चौबीस मात्रा के और चौपाइयाँ सोलह मात्रा की नहीं हैं। कहीं एक मात्रा कम और कहीं एक अधिक है। कई स्थानों पर ऐसे भी प्रयोग हैं, जिनमें छन्द के अनुरोध से दीर्घ का ह्रस्व अथवा ह्रस्व का दीर्घ उच्चारण करना पड़ता है। 'पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते' में 'तरनिहुँ तें' के 'तें' को ह्रस्व पढ़ना चाहिए। किन्तु ऐसा न कर कुछ ने पाठ बदलकर 'पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते' रख दिया है। ऐसे स्थलों में भाषा का प्रवाह ही मुख्य देखने की वस्तु है। प्रवाह से ही छन्द की विषमता भी दूर हो जाती है। किन्तु गोस्वामीजी की शब्द-प्रवाह-शक्ति को न समझकर कई प्रतिलिपिकारों ने मनमाने परिवर्तन कर डाले हैं। विशेषकर अरण्य से उत्तरकाण्ड तक के दोहों में अनेकों स्थानों पर ऐसे परिवर्तन किये गये हैं, जिनमें एक मात्रा की पूर्ति के लिए कई शब्द घटाने-बढ़ाने पड़ गये हैं। इन काण्डों के लिए हमने मुख्यतः भागवतदासजी को प्रमाण माना है। उनके बहुत-से दोहे तेईस मात्रा के और कहीं-कहीं प्रथम पंक्ति तेईस की और दूसरी चौबीस की है तथा कहीं-कहीं इसका उल्टा क्रम है। किन्तु कई सम्पादकों ने—मुख्यतः काशिराज और कोदोरामजी ने—इन्हें सुधारने की चेष्टा की है, और प्रायः सर्वत्र चौबीस मात्राएँ रक्खी हैं। इस कारण पाठ-भेद बहुत बढ़ गये हैं।

जिस प्रकार कुछ लोगों ने भाषा और छन्द को सुधारने की नीयत से पाठ बदले हैं, उसी प्रकार कुछ ने शब्दों का अर्थ न समझकर अथवा उन्हें अपनी रुचि का न पाकर मनमाना पाठ रक्खा है। कुछ ने भाषा-व्याकरण के लिंग-वचन आदि अपनी दृष्टि से ठीक करने के लिए पाठ बदले हैं। (गोस्वामीजी ने कई शब्दों का, जो पुंलिंग प्रतीत होते हैं, स्त्रीलिंग में व्यवहार किया है, तथा कई स्थलों पर बहुवचन या आदरास्पद कर्ता के साथ एकवचन क्रिया का प्रयोग किया है) अर्थ समझने की गड़बड़ी अधिक तो क्लिष्ट और अप्रचलित शब्दों के सम्बन्ध में हुई है, किन्तु कहीं-कहीं प्राचीन लिपि के कारण भी भ्रान्ति हो गई है। पुरानी प्रतियों में प्रायः पूरी पंक्ति के अक्षर मिला-कर लिखे गये हैं, शब्दों के बीच में जगह नहीं छोड़ी गई। उन्हें ठीक-ठीक न पढ़ सकने के कारण भी कुछ ग़लतियाँ हो गई हैं—'सीतल निसित बहसि बर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धारा' का 'सीतल निसि तव असि वर धारा' पाठ ऐसी ही ग़लती है।

इस समस्त पाठभेद के सम्बन्ध में विचारकर देखने पर प्रकट होता है कि जो कुछ अच्छा समझकर नया पाठ रक्खा गया है, वह प्रायः पुराने पाठ से निकृष्ट है। इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं; क्योंकि गोस्वामीजी-जैसे उत्कृष्ट कवि के लिखे पर हड़ताल फेरना और उनके टक्कर का पाठ रच पाना साधारण व्यक्ति के बूते का काम नहीं। फिर जिन्होंने गोस्वामीजी के मूल प्रयोगों का अर्थ अथवा उनका व्याकरण-संमत रूप न समझकर रदोबदल किया है, उनका तो कहना ही क्या! आवउ (वह आवे), आवहुँ (वे आवें), आवहु (तुम आओ) आदि सरल रूपों को समझने में भी जब त्रुटियाँ की गई हैं, तब पाइअ (पाया जाय), पाइअहिं (पाये जायँ) और पाइहि (पाई जायगी) आदि क्लिष्टतर प्रयोगों को वे न समझ सके हों—यह आश्चर्य नहीं। फलतः एक ही अर्थ में वे दो-दो, तीन-तीन ऐसे क्रियारूप रखने लगे, जिनसे अर्थ का अनर्थ होना अवश्यम्भावी था। इस प्रकार के स्खलन कोदोरामजी की प्रति में अन्यों से अधिक हैं। कोदोरामजी पूर्वी प्रदेश के मूल-निवासी थे। उन्हें अवध की भाषा का पूरा परिज्ञान न हो, यह असंभव नहीं। सम्भव यह भी है कि जिस मूलप्रति के आधार पर कोदोरामजी का संस्करण बम्बई से छपा है, उसी में प्रतिलिपिकारों की कृपा से ये त्रुटियाँ आ गई हों। तथापि कोदोरामजी की यह विशेषता भुलाई नहीं जा सकती कि उन्होंने बहुत पहले क्षेपकरहित विशुद्ध प्रति प्रकाशित कराई, जिसमें उन्होंने अनुष्ठान आदि की नियोजना करके पाठप्रक्षेप रोकने की सफल चेष्टा की थी। बम्बई के संस्करण में जो अनेक अशुद्धियाँ हैं, उनमें प्रूफ़ देखने की असावधानी के अतिरिक्त प्रकाशक की मनमानी का भी कम अंश नहीं है।

जैसा कि स्वाभाविक ही था, 'मानस' के संशोधन, सुधार या उद्धार का कार्य सबसे अधिक राजकीय छत्रछाया में हुआ। विशिष्ट पंडितों की मण्डली वहीं मिल सकती थी और पंडितों का एक मुख्य काम दूसरों के दोषों का निराकरण प्रसिद्ध ही है। विशेषकर जिनके ज़िम्मे यही काम सौंप दिया गया हो, उनके लिए तो दोष-दर्शन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी हो जाता है। परिणाम यह हुआ कि काशिराज का संस्करण कई दृष्टियों से उपादेय होता हुआ भी दोषों की प्रदर्शिनी-सा बन गया है। विशेषकर उसके अरण्य और लंकाकाण्ड इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं। सबसे अधिक शोचनीय बात यह हुई कि काशिराज का संस्करण (राजकीय सम्पर्क और पंडितों के सहयोग के कारण) बड़ा गौरवास्पद माना गया और अनेक परवर्ती संस्करणों में उसका अनुकरण किया गया।

हमारे कहने का यह प्रयोजन नहीं कि काशिराज के संस्करण में नये पाठों और क्षेपकों की ही भरमार है। ऐसा कहना संगत न होगा। अनुमान यह होता है कि काशिराज की प्रति संवत् १७०४ की जिस प्रति के आधार पर संशोधित हुई, उसमें प्रक्षिप्त पाठों का प्रवेश हो गया था। उन क्षेपकों को निकालकर बिलकुल शुद्ध पाठ प्रस्तुत करना कठिन कार्य था। इसलिए इस सम्बन्ध में जो कुछ चेष्टा की गई, वह स्तुत्य थी। किन्तु इसी सिलसिले में प्राचीन पाठ को बदलकर जो नई गढ़न्त पंडितों ने की, वह गोस्वामीजी के 'मानस' के लिए व्यर्थ का वाणीविलास ही नहीं, बहुत कुछ अनर्थकारी भी सिद्ध हुआ।

पहले हमारा अनुमान था कि बालकाण्ड में अयोध्या (श्रावणकुंज) की प्रति से भिन्न, अयोध्याकाण्ड में राजापुर की प्रति से भिन्न तथा शेष काण्डों में भागवतदासजी की प्रति से भिन्न काशिराज की प्रति में जो परिवर्तित पाठ हैं, वे सब-के-सब उक्त पंडितों की ही प्रतिस्पर्द्धा का परिणाम हैं; किन्तु हाल में जब हमें दुलही के सुन्दर-काण्ड की प्रति प्राप्त हुई और हमने उसके पाठों को देखा, तब उक्त अनुमान बदलना पड़ा। दुलही की प्रति में (जो संवत् १६७२ की लिखी हुई है और जिसे हमने उक्त काण्ड के लिए प्रामाणिक माना है) कतिपय ऐसे पाठ हैं, जो भागवतदासजी की प्रति में नहीं मिलते; किन्तु काशिराज के संस्करण में ज्यों-के-त्यों पाये जाते हैं। उदाहरण के लिए 'नाम पाहरू दिवस निसि' पाठ दुलही और काशिराज की प्रतियों में है; किन्तु भागवतदासजी की प्रति में 'नाम पाहरू

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राति दिन' पाठ है। ऐसे अन्य अनेक स्थल हैं। अब इनमें से कौन प्रामाणिक और कौन अप्रामाणिक माना जाय! समाधान यह करना पड़ता है कि स्वयं गोस्वामीजी ने ही अपने जीवनकाल में पाठ-परिवर्तन किये हों, और वे ही उन-उन प्राचीन प्रतियों में पाये जाते हों, ऐसा मानना अनुचित नहीं; क्योंकि आज भी बड़े-बड़े कवि तक अपनी रचनाओं के नये संस्करणों में पुराने पाठों को बदलते देखे जाते हैं। 'मानस' में कहीं-कहीं तो एक ही पाठ के जो दो-तीन पाठ-भेद प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं, वे एक-से ही सुन्दर, सटीक और सार्थक प्रतीत होते हैं। उनमें चुनाव करना बड़ा कठिन हो जाता है। आश्चर्य नहीं, यदि वे दोनों-तीनों पाठ गोस्वामीजी ने स्वयं समय-समय पर रचे हों। किन्तु ऐसे स्थलों के होते हुए भी अधिकांश स्थलों में काशिराज के संस्करण में पंडितों के बदले हुए पाठ स्पष्ट दिखाई देते हैं।

तथापि काशिराज की प्रति की यह विशेषता है कि जहाँ कहीं श्रावणकुंज और राजापुर आदि की प्रतियों में लिपिकार की असावधानता से छूटें रह गई हैं, वहाँ हमें काशिराज की पोथी से अमूल्य सहायता मिलती है। ऐसे स्थलों को देखने से हठात् यह परिचय भी होता है कि मूलतः काशिराज का पाठ गोस्वामीजी के समकालीन किसी अतिशय प्रामाणिक प्रति से लिया गया है, यद्यपि उस पाठ के साथ क्षेपक भी मिला दिये गये हैं। सारांश यह कि काशिराज की प्रति का उपयोग सतर्कता और सावधानता से किया जाय तो वह अतिशय उपादेय सिद्ध हो सकती है। समस्त काण्डों के पाठों की तुलना या मिलान के लिए यह प्रति अत्यावश्यक है।

भाषा के संबंध में यदि पूर्वीपन का दोष कोदोरामजी के संस्करण पर रक्खा जा सकता है, तो भागवतदासजी की प्रति, जिसे हम अरण्य, किष्किंधा, लंका और उत्तर-काण्डों के लिए आधारभूत मानते हैं, पछाहींपन के दोष से बरी नहीं है। किन्तु, जैसा कि हम कह चुके हैं, भाषा-संबंधी ये प्रवृत्तियाँ भौगोलिक कारणों से हैं और मानस की भाषा या व्याकरण पर इनसे कोई विशेष व्याघात नहीं पड़ता। तथापि 'दोउ' को 'द्वौ', 'सिय' को 'श्री', 'रामु, भरतु' आदि को 'राम, भरत' आदि लिखने की प्रवृत्ति तथा साधारणतः अवधी के उच्चारणों की अपेक्षा व्रज के दीर्घ उच्चारणों की ओर झुकाव भागवतदासजी में अवश्य दिखाई देता है। भागवतदासजी काशी-वासी थे। उनमें ये पश्चिमी प्रवृत्तियाँ कहाँ से आईं, यह प्रश्न पेचीदा है। संभव है, यह भागवतदासजी के किन्हीं गुरुदेव का प्रसाद हो अथवा वे स्वयं व्रज-भाषा-साहित्य से विशेष रुचि रखते हों।

यहाँ यह प्रश्न भी है कि यदि कोदोरामजी की प्रति में पूर्वी प्रयोग मिले हुए हैं, और भागवतदासजी की प्रति में पश्चिमी, तो 'मानस' की वह प्रकृत भाषा कौन-सी है, जिसे हम उसकी आदर्श या प्रतिनिधि भाषा मानें। हमारी सम्मति में राजापुर के अयोध्या-काण्ड की भाषा को ही 'मानस' की प्रतिनिधि भाषा मानना चाहिए। इसका कारण यह है कि इस काण्ड में भाषा के प्रायः सब प्रयोग निश्चित और व्याकृत हैं, तथा प्रान्त-विशेष की बोलचाल को सुव्यवस्थित साहित्यिक रूप देते हैं। यही नहीं, यह भाषा अपनी एक सुस्पष्ट परम्परा भी रखती है, और पूर्ण रूप से मानस-जैसे महाकाव्य की प्रतिनिधि भाषा कहलाने का गौरव धारण कर सकती है। राजापुर की प्रति को अयोध्याकाण्ड के लिए प्रामाणिक मानने का एक कारण यह भी है कि उसकी भाषा नियमित तथा प्रशस्त है और गोस्वामीजी की प्रतियों के पूर्णतः अनुकूल है।

इसी प्रतिनिधि भाषा से बहुत कुछ साम्य रखती हुई श्रावणकुंज के बालकाण्ड की प्रति है, जिसे हमने उक्त काण्ड के लिए प्रामाणिक माना और जिसका आश्रय लिया है। राजापुर की प्रति की ही भाँति यह प्रति भी गोस्वामीजी के समकालीन है, यद्यपि इसका पता लगे बहुत दिन नहीं हुए हैं।

ऊपर रामचरितमानस की प्राचीन प्रतियों और पाठों पर एक सामान्य विहंगम दृष्टि डालने के पश्चात् अब हम एक-एक प्रति को लेकर उसकी संक्षिप्त चर्चा करेंगे, जिससे पाठकों को उनके विषय में आवश्यक जानकारी हो जाय।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रावणकुंज का बालकाण्ड

यह संवत् १६६१ की गोस्वामीजी के जीवनकाल की लिखी प्रति है। इसका महत्व 'मानस' के बालकाण्ड के लिए प्राप्त प्रतियों में सबसे अधिक है। यह प्रति काशिराज (ईश्वरीप्रसादनारायणसिंह) का संस्करण प्रकाशित होने तक प्रकाश में नहीं आई थी, इसलिए उसमें इसका उपयोग नहीं किया जा सका। नागरी-प्रचारिणी सभा (प्रथम संस्करण), रामदासजी गौड़, महात्मा सरयूदासजी आदि ने इसका सर्वप्रथम उपयोग किया, जिनमें सभा की प्रति सबसे पहले प्रकाशित हुई। इसका पाठ हाल के प्रायः सभी संस्करणों में गृहीत है; किन्तु या तो उसकी शुद्ध प्रतिलिपि संपादकों को नहीं प्राप्त हुई, अथवा इसका पाठ पूरा-पूरा लिया ही नहीं गया। सभा तथा गौड़जी के संस्करणों में भी इसका एकान्ततः अनुसरण नहीं किया गया है, भागवतदासजी तथा काशिराज की प्रतियों का भी अनुगमन किया गया है। हमने इस प्रति के पाठों को सर्वत्र ग्रहण किया है, केवल उन्हीं स्थलों पर विवश होकर हमें छोड़ना पड़ा है, जिनमें अर्थ की संगति किसी प्रकार नहीं बैठ सकी। ऐसे स्थल संख्या में इतने कम हैं कि उनकी सूची नीचे दी जा रही है—'प्रौढ़ सुजन जन जानहिं जन की' के स्थान पर 'प्रौढ़ि सुजन जनि जानहिं जनकीं' पाठ रक्खा गया। इसी प्रकार 'जग प्रिय हरि हर हर प्रिय आपू' के बदले 'जग प्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू', 'उपमा बीच बिलास मनोरम' का 'उपमा बीचि बिलास मनोरम', 'प्रस्तुति सुरन्ह कीन्ह' का 'अस्तुति सुरन्ह कीन्ह', 'प्रस्न उमा के सहज सुहाई' का 'प्रस्न उमा कै सहज सुहाई', 'सुनावहु कबहूँ' का 'सुनाएहु कबहूँ' (१२६·४); 'मिलेउ' का 'मिले' (१२७·३); 'जप तप कछु न होइ तेहि काला, हैं बिधि मिलै कवन बिधि बाला' का 'जप तप कछु न होइ एहि काला, हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला' (१३०·४); 'भगति हित' का 'भगत हित' (१४६·३); 'मिति' का 'तिमि' (१५०·३); 'नहि तव आदि अंत अवसाना' का 'नहिं तव आदि मध्य अवसाना' (२३४·४); 'साँवरे रावरे' का 'साँवरो रावरो' (२३५ छंद की पंक्ति १।२); 'मनमोदकन्हि कि भूख बताई' का 'मनमोदकन्हि कि भूख बुताई' (२४५·१); 'उठे न चलहिं लजाइ' का 'उठइ न चलहिं लजाइ' (२५०); 'नाचहिं गावहिं बिबिध बधूटी' का 'बिबुध बधूटी' (२६४·२); 'सिंघकिसोरहुँ चोप' का 'सिंघकिसोरहि चोप' (२६७); 'मुनिहि हरिअरे सूझ' का 'मुनिहि हरि अरइ सूझ' (२७५); 'जौं पै कृपाँ जरिहि मुनि गाता' का 'जरहिं मुनि गाता' (२७६·३); 'सकइ उठाइ सुरासुर मेरू' का 'सरासुर मेरू' (२६१·४); 'महा भीरु भूपति के द्वारें' का 'महा भीर' (३००·२); 'नाना भाँति नहिं जाहिं बखानें' का 'नाना भाँति न जाहिं बखानें' (३०४·१); 'उठेउ हरषि सुखसिंधु महुँ' का 'उठे हरषि सुखसिंधु महुँ' (३०७); 'कुल व्यवहारू' का 'कुल आचारू' (३१८·१); 'सबु सादर कि ये' का 'सबु सादरु कियो' और 'सिंहासनु दये' का 'सिंहासनु दयो' (३२२ का छंद); 'हरषि उठी रनिवासु' का 'हरषि उठा रनिवासु' (३३५) तथा 'करिहिं कलप कोटिक भरि लेखा' का 'करहिं कलप कोटिक भरि लेखा' (३४१·१) पाठ बदल दिया गया है। इन स्थलों पर हमें अन्य प्रतियों के पाठ रखने पड़े हैं। इनके अतिरिक्त पाँच-सात लिखने की स्पष्ट ग़लतियाँ भी रही हैं, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया गया।

'श्रावणकुंज' की प्रति में यह विशेषता देखने में आती है कि इसमें बहुत-से शब्दों की ह्रस्व मात्राएँ लुप्त कर दी गई हैं। संज्ञाशब्दों में ऐसी मात्राओं का न रहना तो विशेष आपत्तिजनक नहीं है, जैसे—'सत-संगत (ति) मुद मंगल मूला', 'पारस परस कुधात (तु) सुहाई', 'जम कर धार (धारि) किधौं बरि-आता', 'जे परभनित (ति) सुनत हरषाहीं' आदि। किन्तु क्रियापदों में इनका छूटना उचित नहीं जान पड़ता। जैसे—'सिर धुनि गिरा लगत (ति) पछिताना', 'राम सीय सुन्दर प्रतिछाहीं, जगमगात (ति) मनि खंभन्ह माहीं'। बहुवचनान्त क्रियापदों में अनुस्वार छोड़ देने की प्रवृत्ति भी इस प्रति में पाई जाती है। ये दोनों ही प्रवृत्तियाँ अवधी भाषा की प्रकृति की ही झलक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। 'बिहसि', 'मागि', 'छाड़ि' आदि के अनुस्वार भी इस प्रति में लुप्त हैं। इन पिछले स्थलों पर हमने भी अनुस्वार छोड़ दिये हैं।

श्रावणकुंज की प्रति में हाशिये पर और कहीं-कहीं उसी स्थान पर हड़ताल देकर कुछ महत्त्वपूर्ण पाठ-भेद दिये गये हैं। किम्वदन्ती यह है कि ये हाशिये-वाले पाठ स्वयं गोस्वामीजी के बदले हुए हैं। यदि ये स्वयं ग्रन्थकार के हों तो यह प्रश्न अवश्य उठता है कि ये हाशिये पर क्यों लिखे गये और पहले का अशुद्ध पाठ मिटा क्यों नहीं दिया गया। इससे अनुमान यही होता है कि उक्त हाशिये पर के पाठ गोस्वामीजी महाराज के बनाये हुए तो सम्भवतः नहीं हैं; किन्तु वे किसी चतुर और विचक्षण व्यक्ति द्वारा अवश्य बनाये गये हैं। हमने उक्त पाठों को यथेष्ट महत्त्व देने की चेष्टा की है; किन्तु उन्हें गोस्वामीजी-कृत मानने में हम सहमत नहीं हो सके।

कई स्थानों पर अन्य प्रतियों के पाठ अधिक प्रचलित होने के कारण इस प्रति के पाठ असंगत-से प्रतीत हुए; किन्तु ध्यानपूर्वक देखने पर सर्वत्र यह बात ठीक नहीं जान पड़ी, वरन् इसके विपरीत बात ही सत्य मालूम पड़ी। कुछ ऐसे प्रतिस्पर्द्धी पाठों का उद्धरण नीचे दिया जा रहा है—

'साधु चरित सुभ सरिस कपासू' और 'साधु चरित सुभ चरित कपासू' (१०२)
'जाइ न बरनि बिचित्र बनावा' और 'जाइ न बरनि बिरंचि बनावा' (१०३·४)
'कोउ न बुझाइ कहइ नृप पाहीं' और 'कोउ न बुझाइ कहइ गुर पाहीं' (२५५·१)
'प्रभु तन चितइ प्रेम पनु ठाना' और 'प्रभु तन चितइ प्रेम तन ठाना' (२५६·४)
'लोभी लोलुप की रति चहई' और 'लोभी लोलुप कल कीरति चहई' (२६१·२)
'टेढ़ जानि संका सब काहू' और 'टेढ़ जानि सब बन्दै काहू' (२८०·३)

इनमें पहला पाठ दूसरी प्रतियों का तथा दूसरा श्रावणकुंज की प्रति का है। सम्भव है, पाठक इनमें से पहले पाठ को ही अधिक उपयुक्त समझें; किन्तु हमने प्राचीन पाठ को प्रमुखता देने के लिए इन सब स्थानों में 'श्रावणकुंज' का ही अनुवर्तन किया है। इनमें तुलना की दृष्टि से भी आधे से अधिक स्थल 'श्रावणकुंज' के ही हमें अधिक समीचीन जान पड़े।

राजापुर का अयोध्याकाण्ड

अयोध्याकाण्ड की जो प्रति राजापुर में मिली है और अब भी वहाँ सुरक्षित है, वह 'मानस' की प्राचीन प्रतियों में सबसे बढ़कर प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा-प्राप्त है। वास्तव में यह प्रति बड़ी मूल्यवान् और प्रामाणिक है। कहा जाता है, यह गोस्वामीजी के हाथ की लिखी हुई है। इसकी कतिपय छूटें और लिपि की अशुद्धियाँ देखकर हम यह तो नहीं कह सकते कि यह अयोध्या-काण्ड की गोस्वामीजी की प्रथम पांडुलिपि है; किन्तु यह उक्त प्रथम पांडुलिपि की दूसरी, तीसरी या परवर्ती नक़ल हो सकती है। यह स्वयं गोस्वामीजी की हस्तलिपि हो तो भी कोई आश्चर्य नहीं; क्योंकि नक़ल करते हुए अशुद्धियों का होना सर्वथा सम्भव है, चाहे नक़ल करनेवाले स्वयं ग्रन्थकर्ता ही क्यों न हों। इसलिए केवल कुछ थोड़ी छूटों और त्रुटियों के आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि इसके प्रतिलिपिकार गोस्वामीजी नहीं हैं। किन्तु यदि प्रतिलिपिकार गोस्वामीजी न भी हों, तो भी इसके महत्त्व में कमी नहीं आती। इसकी प्रतिलिपि प्रायः ध्यानपूर्वक और योग्यता के साथ की गई है। छोटे-छोटे भाषा-नियमों का पालन भी बड़ी सतर्कता और अस्खलित दृष्टि से किया गया है।

श्रावणकुंज की ही भाँति इस प्रति का अनुसरण भी हमने सम्पूर्ण काण्ड में अनुद्विग्नचित्त से किया है। कुछ ऐसे स्थल, जहाँ अगत्या पाठ घटाना-बढ़ाना या बदलना पड़ा है, इस काण्ड में भी आये हैं; किन्तु उनकी संख्या काण्ड के विस्तार को देखते हुए बहुत कम है। नीचे हम उन सम्पूर्ण स्थलों के उद्धरण दे देना चाहते हैं, जिनमें हमें राजापुर की प्रति का साथ छोड़ना पड़ा है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'सकल सुकृत मूरति नरनाहू, राम सुजसु सुनि अतिहि उछाहू' यह अर्द्धाली जो छूटी हुई थी बढ़ानी पड़ी (१०१ ·) ; 'चली बिचारि बिबिध मति पोची' का 'बिधुध मति पोची' (११·३) ; 'बिनु जर जारि करइ सोइ छारा' का 'बिनु जल जारि करइ सोइ छारा' (१६·४) ; 'दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने' का 'दिन प्रति देखउँ राति कुसपने' (१९·३) ; 'सुकृत सनेह अवध रघुराई' का 'सुकृत सनेह अवधि रघुराई' (२७·४) ; 'तेउ न पाइअ समय चुकाहीं' का 'तेउ न पाइ अस समय चुकाहीं' (४१·२) ; 'चले जनक जननी सिरु नाई' का 'चले जनक जननिहि सिरु नाई' (७८·४) ; 'होत बिलंब उतारिहि पारू' का 'उतारहि पारू' (१००·१) ; 'गहबरि हृदयँ कहइ बरबानी' का 'कहहिं बरबानी' (१२०·१) ; 'काम कोह मद मान न मोहा' का 'काम कोह मद मान न मोहा' (१२९·१) ; 'करहुँ कतहुँ अब ठाहर ठाटू' का 'करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू' (१३२·१) ; 'मनहुँ बिबिध बन परिहरि आये' का 'मनहुँ बिबुध बन परिहरि आये' (१३६·४) ; 'कौसल्या गृहँ गईं लवाईं' का 'लेवाईं' (१४७·२) ; 'तात सुनाएउ बिनती मोरी' का 'तात सुनायहु बिनती मोरी' (१५१·१) ; 'सो तनु राखि करबि मैं काहा' का 'सो तनु राखि करब मैं काहा' (१५४·३) ; 'पाँवन प्रान अघाइ अभागे' का 'पाँवर प्रान अघाइ अभागे' (१७९·१) ; 'कोउ न कहहि मोर मत नाहीं' का 'कोउ न कहिहि मोर मत नाहीं' (१८१·२) और 'डरु न मोहि जग कहहि कि पोचू' का 'डरु न मोहि जग कहिहि कि पोचू' (१८१·३) पाठ बदलना पड़ा, तथा 'जोग बियोग बिषम बिष दागे, मंत्र सबीज सुनत जनु जागे' (१८३·१) जोड़ना पड़ा । पुनः 'बसहिं कलप सत नरक निकेता' का 'बसिहि कलप सत' (१८३·४) ; 'चलत प्रात उर आतुर भारी' का 'चहत प्रात उर आतुर भारी' (१८६·१) ; 'स्वामिकाज करिहहु रन रारी, जस धवलिहहु भुवन दस चारी' का 'करिहउँ और धवलिहउँ' (१८९·२) ; 'रामु कहत पाँवँर परम' का 'रामु कहत पावन परम' (१९४) ; 'जनु धनु धरें बिनय अनुरागू' का 'जनु तनु धरें बिनय अनुरागू' (१९६·१) ; 'पति तें कठिन बिसेषि' का 'पबि तें कठिन बिसेषि' (१९९) ; 'सादर कोटि कोटि सत सेषा' का 'सारद कोटि कोटि सत सेषा' (१९९·४) ; 'कीरति बिधु तुम्ह कीन्हि अनूपा' का 'कीन्ह अनूपा' (२०९·१) ; 'अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना' का 'अस कहि रचे रुचिर गृह नाना' (२१३·२) तथा 'जो कछु कहहिं सो थोर' का 'जो कछु करहिं सो थोर' (२३३) करना पड़ा । 'अरध तजहिं बुध सरबस जाता । तुम्ह कानन गवनहुँ दोउ भाई । फेरिअहिं लखन सीय रघुराई ॥ सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता ।'—ये छूटे हुए चरण जोड़े गये (२५५·½) । 'सपनेहुँ दोष कलेसु' का 'सपनेहुँ दोष क लेसु' (२६०·३) ; 'तापस तीछी' का 'तामस तीछी' (२६१·४) ; 'सोच समुद्र' का 'सोक समुद्र' (२७५ छंद) करना पड़ा तथा 'जनु महि करति जनक पहुनाई । तब सब लोग नहाइ नहाई ।'—ये दो चरण बढ़ाने पड़े (२७८·३) ; 'सिय समेत बटु बाढ़त जोहा' का 'सिय सनेह बटु बाढ़त जोहा' (२८५·३) ; 'मोह मगन अति' का 'मोह मगन मति' (२८५·४) तथा 'बर नहिं लखनु भरतु बन जाहीं' का 'बहुरहिं लखनु भरतु बन जाहीं' (२८८·२) बदलना पड़ा और 'रिषि धरि धीर जनक पहिं आये । राम बचन गुर नृपहि सुनाये' ये चरण बढ़ाने पड़े (२९०·३ । ४) ; 'कटु कठोर कुबस्तु दुराई' का 'कटुक कठोर कुबस्तु दुराई' करना पड़ा (३१०·३) । इनके अतिरिक्त लिपि-सम्बन्धी कतिपय साधारण परिवर्तन (जैसे 'गए' को 'गये' ; 'येह' या 'एह' को 'यह' ; 'भये' को 'भय'—'भय उचाट बस मन थिर नाहीं'—३१०·३) कर लिया गया । इनकी संख्या उँगलियों पर गिनने योग्य है ।

ऐसे कितने ही स्थल हैं, जहाँ राजापुर की प्रति के पाठ से भिन्न किन्तु उसी के टक्कर के अन्य प्रतियों के पाठ हैं । कहीं-कहीं ये पाठ अधिक उपयुक्त भी प्रतीत होते हैं तथा अधिक प्रचलित भी हैं । किन्तु जहाँ तक हमारा काम इस प्रति के पाठों से चल सका, हमने चलाने की चेष्टा की है । नीचे कुछ ऐसे पाठ दिये जाते हैं, जो दूसरी प्रतियों में मिलते हैं और राजापुर की प्रति के पाठों की होड़ करते हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'राम बिमुख सुत ते हित हानी' और 'राम बिमुख सुत ते हित जानी' (७५·१)
'अति लालसा सबहिं मन माहीं' और 'अति लालसा बसहिं मन माहीं' (१०९·२)
'मुख प्रसन्नमन राग न रोषू' और 'मुख प्रसन्न मन रंग न रोषू' (१६५·१)
'रहीं राम दरसन अभिलाषी' और 'रहीं रानि दरसन अभिलाषी' (१६९·१)
'सनमुख होत जो रामपद करइ न सहज सहाइ' और 'सहस सहाइ' (१८५)
'गुरु सेवा करि आयसु पाई' और 'सुर सेवा करि आयसु पाई' (१९७·१)
'जथा अवध नर नारि मलीना' और 'अवध नर नारि बिलीना' (१९८·३)
'तेऊ आज राज पदु पाई' और 'तेऊ आज राम पदु पाई' (२२७·२)
'राम अनुज जग जान' और 'राम अनुग जग जान' (२२९)
'दलि दुख सृजइ सकल कल्याना' और 'सजइ सकल कल्याना' (२५४·४)
'मुकुता प्रसव कि संबुक ताली' और 'संबुक काली' (२६०·२)
'साधु सराहि सुमन बहु बरषे' और 'साधु सराहि सुमन सुर बरषे' (२६९·१)
'साधन एक सकल सिधि देनी' और 'साधक एक सकल सिधि देनी' (३०५·२) *

इनमें पिछले पाठ राजापुर की प्रति के हैं और पहले अन्य प्रतियों के। संभव है, इनमें राजापुर के कुछ पाठ हीन प्रतीत हों, अथवा यह भी असंभव नहीं कि स्वयं गोस्वामीजी ने ही दो संस्करणों में ये दो पाठ रक्खे हों, किन्तु जब तक उन अपर प्रतियों की प्रामाणिकता राजापुर की प्रति के समान या समकक्ष सिद्ध नहीं होती (जब तक गोस्वामीजी की हस्तलिखित कोई प्रति नहीं मिलती, तब तक इसके सिद्ध होने की संभावना बहुत कम है।), तब तक हम राजापुर की प्राचीन और प्रतिष्ठित प्रति की अवहेलना करके उन अपर पाठों को उसका-सा प्रामाणिक स्थान नहीं दे सकते। अगली संख्या में इस विषय पर और भी लिखा जायगा।

———

* इस लेख में जो संख्याएँ दी गई हैं, वे गीता-प्रेस के 'मानसांक' की हैं। बिन्दु के पहले की संख्या दोहों की तथा पीछे की संख्या चौपाई की सूचना देती है।

बे-रोज़गारों को रोज़गार

आप अपने खाली समय में रोज़ाना ४–५ घंटे काम करके ५० से १०० रुपया माहवार तक कमा सकते हैं। आज ही नियम मुफ़्त मँगायें।

मैनेजर—माधुरी, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

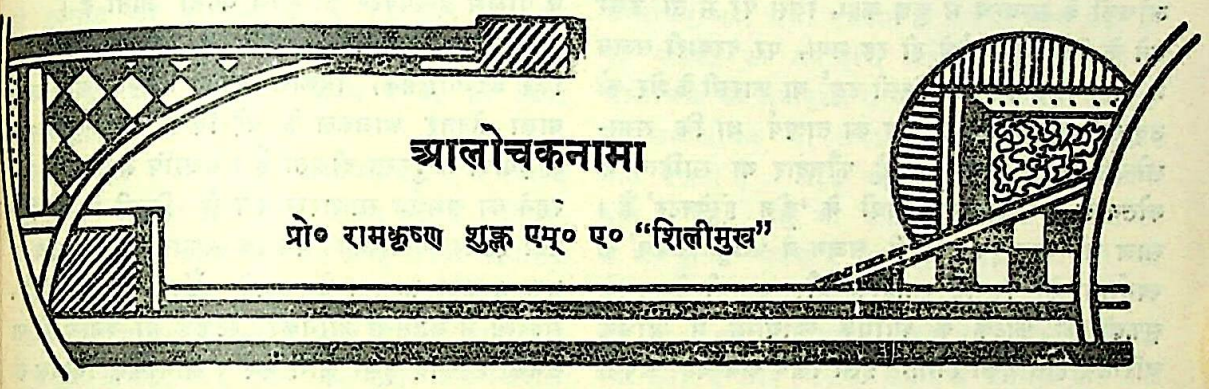

आलोचकनामा

प्रो० रामकृष्ण शुक्ल एम्० ए० "शिलीमुख"

(१) समालोचक, थू !

आज से सात-आठ वर्ष पहले जब मैंने 'सरस्वती' में कुछ आलोचनात्मक लेख छपवाये थे, कतिपय सतर्क व्यक्तियों को पता लगा कि मैंने अपना नाम 'शिलीमुख' रक्खा है। सम्भवतः मेरे पूरे लेख या लेखों से उन्हें यही एक बात मालूम हुई। एक सज्जन ने मेरे उपनाम पर आक्षेप किया। उन्हें मेरे साथ शील का व्यवहार करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, इसलिए उन्होंने साफ़ ही कह डाला—"क्या आपने अपना नाम 'शिलीमुख' इसीलिए रक्खा है कि आप डंक मारते हैं ?" "आप बाण का कर्म करते हैं" अथवा "आप स्वयं बाण ही हैं" कहने से व्यंग्य का उद्देश्य पूरा नहीं होता था, इसी लिए उन्होंने डंक मारने के मुहावरे का प्रयोग किया। मुँह पर तो आया कि "मुझसे बड़े शिलीमुख शायद आप स्वयं हैं" पर ज़बान इस तरह खुल न सकी। वह संस्कृत जानते थे, या शायद नहीं जानते थे ; मैंने उन्हें बतलाया कि 'शिलीमुख' शब्द का एक और भी अर्थ है। मैं रस के लिए भटकता हूँ ; और अनेक जगह व्यर्थ, जहाँ सिवा चटक के और कुछ नहीं पाता। उस समय, यदि आप चाहें तो, अपनी शब्दावली में कह सकते हैं कि मैं भिनभिनाने लगता हूँ।

तब एक दिन एक महोदय ने उन दिनों के 'अभ्युदय' में मेरे चाबुक लगा दिये और फिर कुछ समय बाद—(या शायद कुछ समय पहले, मुझे ठीक याद नहीं)—वही महाशय एक प्रसिद्ध पत्रिका के सम्पादक के दफ़्तर में मुझे फटकारने लगे। कारण, मैंने किसी पत्रिका के लिए दी हुई उनकी कहानी को, सम्पादक के पूछने पर, ठीक नहीं बताया था और वह छपने से रुक गई थी। फटकार खाकर मैंने कहा—"साहब, आप बिलकुल ठीक कहते हैं कि मैं न समालोचना जानता हूँ, न साहित्य और न कहानी-तत्त्व। तथापि एक मूर्ख से मूर्ख व्यक्ति को भी अपनी सम्मति बताने का अधिकार है और जब उससे उसकी सम्मति पूछी जाय तो वह उसे, चाहे तो, प्रकट भी कर सकता है।"

प्रसंगवश एक और भी कहानी याद आ गई। आठ वर्ष हुए, एक धनी व्यक्ति इंटरमीजिएट की प्राइवेट परीक्षा देना चाहते थे और उन्होंने कुछ दिनों के लिए मुझसे हिन्दी तथा संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

था। इनके यहाँ एक अल्प परम्परा से मेरे एक परिचित सज्जन भी आया करते थे, जो किसी समय हिन्दी के कहानी-लेखक थे और जिन्हें अनेक साहित्यों का अच्छा दरबारी ज्ञान था।

इन्हीं दिनों मैंने एक दिन अपनी 'प्रसाद की नाट्यकला' ले जाकर अपने विद्यार्थी-नियोजक को भेंट की। वयस्क नियोजक ने विनोदभाव से समालोचकों के सम्बन्ध में कुछ कहा, जिस पर मैं तो उत्तर देने के लिए मुँह खोले ही रह गया, पर दरबारी सज्जन ने दाढ़ी हिलाकर झट किसी उर्दू या फ़ारसी के शेर को उद्धृत कर दिया। उद्धरण का तात्पर्य था कि समालोचक लोग स्वयंभू ख़ुदाई फ़ौजदार या साहित्य के कोतवाल या महात्मा गांधी के 'डूेन इंस्पेक्टर' हैं। साल भर बाद इन दरबारी सज्जन ने 'साहु साहब' के स्वर्गमन के पश्चात् साहित्य और कहानी-लेखन के सुफलों को फाटके के आर्थिक व्यायामों में अधिक चरितार्थ होते देखा होगा, इसी लिए अब वह अपना वतन छोड़कर किसी फाटकानगर में रहने लगे हैं।

ये अनुभव यदि व्यक्तिगत अर्थ के ही होते तो यहाँ इन्हें लिखने की आवश्यकता न थी। यदि ख़ूब दूर तक सोचा जाय, तो मेरी समझ में इनका लगाव हिन्दी, या किसी भी, साहित्य के प्राणों से ही है। कहने को तो हिन्दी 'साढ़े तीन यार' के क़िस्से में भी जीवित रह सकती है, पर अपने विकसित जीवन में वह 'साढ़े तीन यार' में मरी हुई है और प्रेमचन्द के उपन्यासों में जीवित। पर फिर, विश्वसाहित्य की स्पर्धा में उसे और भी अधिक जीवन की ज़रूरत है, नहीं तो प्रेमचन्द, या आजकल के कोई भी उसे जीवित नहीं रख सकेंगे। यह मोटा तर्क है, जिसको जातीयता का आवरण दे देने से सब कोई स्वीकार कर लेंगे।

लोग सड़ी गलियों में घूरों और आबचकों के सामने मच्छड़ों के स्वापगीतों से विश्राम पाकर बड़ी मधुर निद्रा में सो जाते हैं, उनसे साफ़ चौड़ी सड़कों पर मकान बनाकर भी रहते हैं, और सिविल लाइनों के हवा-महलों और फूल-बँगलों में भी मौज करते हैं। सभी जगह डूेन इन्सपेक्टर की आवश्यकता होती है। कोतवाल की भी ज़रूरत होती है। कुछ लोग तो मानते हैं कि अनेक अवसरों पर डूेन इन्सपेक्टर और कोतवाल आदि ही उन बुराइयों के कारण होते हैं, जिनको रोकने के लिए उनका अस्तित्व है। और, हम देखते चले जाते हैं कि जहाँ गन्दगी या चोरी-बेईमानी का सबसे कम निवास है, वहीं, सिविल लाइनों या भारत के राम-राज्य में, सफ़ाई तथा सदाचार के ऊपर सब से अधिक ज़ोर दिया जाता है और डूेन इन्सपेक्टर व पुलिस इन्स्पेक्टर की माँग बढ़ती जाती है।

यह प्रश्न मानसिक, और उसके दर्जे से बढ़कर फिर आध्यात्मिक, विकास का है। गन्दा कर्म करनेवाला मेहतर आजकल के पढ़े-लिखे साफ़-सुथरे बाबू से ज़्यादा तन्दुरुस्त दीखता है। तथापि मेहतर की तरह रहने का समर्थन साधारण रूप से किसी के भी लिए नहीं किया जा सकता; क्योंकि सफ़ाई और सुरुचि को गुण मानकर सभ्यता ने उनके स्टैंडर्ड बना दिये हैं। सभ्यता ने बहुत-से हानिकर स्टैंडर्ड भी बनाये हैं; पर उनका शास्त्रार्थ दूसरे लोग करें। मानसिक विकास की दृष्टि से मनुष्य को परिवर्तन की आवश्यकता है, हमेशा बढ़ते रहने की ज़रूरत है, और उस बढ़ते रहने का स्टैंडर्ड अपनी दूसरों से तुलना करने पर, या कभी-कभी अपने से ही अपनी तुलना करने पर, प्राप्त हुआ करता है।

हिन्दी को भारतीयों की जातीय भाषा बनाने के प्रयास में भारतीयों की भारतीयता का विकास, तथा उसको आजकल की विश्व-परिस्थितियों में समंजस रूप से बिठाना, उद्देश्य बन जाता है। साहित्य मानसिक तथा जातीयता के विकास का दर्पण ही नहीं, उसका एकमात्र उपाय भी है। प्रारम्भ से मध्य तक की अवस्थाओं में वह व्यक्ति की आध्यात्मिक उन्नति का भी रूप और उपाय है। 'साढ़े तीन यार' से हम सन्तुष्ट नहीं रह सकते और न प्रेमचन्द या प्रसाद, गुप्त या पन्त, या रवीन्द्र से ही। असन्तोष का अभ्यास करने की हमें ज़रूरत नहीं, निसर्ग अपना काम करता है। निसर्ग से ही कोतवाल आदि भी पैदा हो जाते हैं, जिन्हें साहित्य में समालोचक कहते हैं। और मानसिक तथा साहित्यिक विकास के साथ समालोचना तथा समालोचकों का भी विकास होता है। इसका उदाहरण यह है कि खड़ी बोली के प्रथम प्रतिष्ठित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

समालोचक पंडित पद्मसिंह शर्मा के ढंग की समालोचना लिखने का अब कोई साहस नहीं करता।

जब बरसात होना स्वाभाविक है तो घास-फूस का पैदा होना भी स्वाभाविक है। समालोचक को घास-फूस ही समझ लीजिए। ये ख़ुद ही पैदा हो जाते हैं। और इसके साथ यह भी समझ लीजिए कि घास-फूस की तरह इनका चर्वण भी किया जाता है। मैं हिंदी की बरसात की बात को ही ले रहा हूँ। घास का चर्वण करके बहुत-सी गाय-भैंसें अच्छा और अधिक दूध देती हैं और बहुत-सी केवल गोबर ही किया करती हैं।

हमारे यहाँ घास-फूस को कूड़ा समझते हैं; क्योंकि सफ़ाई और मर्यादा की हमारी आदत नहीं है। विलायतों में घास-फूस की अच्छी मर्यादा है। उसे वैज्ञानिक रीति से सुथरा करके, साफ़-सुथरे घर में भविष्य के दूध के लिए गाय-भैंसों की ही तरह सँभाला जाता है। बुरे से बुरा लेखक यदि अपने को बाण या कालिदास समझे तो बर्दाश्त कर लिया जायगा; पर 'समालोचक' नामधारी के जीवन की ख़ैर नहीं। क्या आपने नहीं सुना कि हिन्दी के एक प्रसिद्ध वर्तमान कुकड़ साहब का मत है—"इस अनादि सृष्टि में अब तक केवल तीन ही कवि हुए हैं या तो वाल्मीकि, या तुलसीदास, और या फिर रा—या ख़ुदा!—मैं।" उनके इस मत से लोग भले ही सहमत न हों, पर साहित्य-गोष्ठियों में उनको निमन्त्रण दिये जाते हैं, उनको 'कविरत्नजी' कहकर लोग बिठाते हैं—और समालोचक! उसकी ओर सबकी उँगली उठ जाती है, कानाफूसी होती है और आँखों-आँखों में कहा जाता है—"लो, आ मरा" उस पर फ़ब्तियाँ कसी जाती हैं और कभी-कभी अपनी सफ़ाई देने के लिए उसका आह्वान किया जाता है।

एकाध अपवाद को छोड़कर सचमुच हिन्दी-समालोचक लेखकों-पाठकों की आँख का काँटा है। यह बात उस समालोचक पर विशेषतः लागू होती है, जो आधुनिक लेखकों या कवियों के ऊपर सम्मति प्रकट करने का साहस करता है। ऐसे आलोचक का कर्म बड़ा कटु है। उसके अपने लिए भी और दूसरों के लिए भी। यदि वह अप्रशंसा करता है तो हरएक की दृष्टि में डंक मारनेवाला बनता है और यदि प्रशंसा करता है तो पक्षपात का दोषी ठहराया जाता है। जहाँ गुण और दोष, दोनों का विवेचन होता है, वहाँ तत्पर लोग दोनों के अनुपात का हिसाब लगाकर उसमें एक या दूसरी बात ढूँढ ही लेते हैं।

यह मानने में कोई हुज्जत नहीं है कि हिन्दी में आलोचना-कर्म अभी पक्षपात से सर्वथा शून्य नहीं है। पर पाठकों की मनोवृत्ति कई-एक अवस्थाओं में आलोचकों की मनोवृत्ति से भी गई-बीती है। पक्षपात-युक्त समालोचक भी जनता के सामने कोई निर्दिष्ट बात रखता है। यदि वह समझदार है तो अपनी बात के लिए तर्क भी उपस्थित करता है। जनता में भी इतनी समझ है कि वह उसके निश्चयों को अपने तथा उसके तर्क के मिलान द्वारा स्वीकार करे या न करे। ऐसा न करके वह उसको गालियाँ क्यों देती है और उसके संबंध में अनर्गल बातें क्यों कहती है?

हलवाई की दूकान पर गुलाबजामुन के स्वाद की आलोचना करने के लिए किसी-किसी ग्राहक को यह कहने का साहस हो सकता है कि यह खट्टी है, बासी है, पर जब हलवाई या उसका हिमायती पूछता है कि कभी पहले भी गुलाबजामुन खाई थी, तो एक मिनट के लिए ग्राहक हैरान हो ही जाता है। यही कदाचित् हलवाई के हिमायती का उद्देश्य भी है। और समालोचक भी तो एक ग्राहक ही है। वह चोखी चीज़ चाहता है और दुर्भाग्य से 'खट्टी' 'बासी' कह देने का साहस कर लेता है। यदि उसे पागल न बनाया जाय तो बड़ी अच्छी बात हो।

समालोचना यदि पाठकों के विचारों को उत्तेजित कर जिज्ञासा और विचार-परिवर्तन की चेष्टा को जन्म नहीं दे पाती तो वह अपने एक अकेले उद्देश्य को ही पूरा नहीं करती। यह या तो तभी होता है, जब आलोचना परम निर्जीव होती है और इस कारण लोगों की दृष्टि तक उस पर नहीं पड़ती, या फिर तब, जब कि आलोचना का देश संवेदनाशून्य या दुराग्रही हो जाय। दूसरी परिस्थिति होने पर जनता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को एकस्वर से कह देना चाहिए कि हमें अपने मस्तिष्क को ज़ोर देने की फ़ुर्सत नहीं है, हम विचार-परिवर्तन नहीं चाहते, हममें जिज्ञासा नहीं है, हमें समालोचना क़तई नहीं चाहिए। और ऐसा कहने का भी अगर उसमें साहस नहीं है तब तो वह फ़क़त तमाशा देखे। समझदारी इसी में है; क्योंकि समालोचक तो पैदा होगा ही। वह साहित्य की ग्रहागत व्याधि है, जो साहित्य के मानव-शरीर को उसके कर्मों का फल देने आती है और बाद में आधिभौतिक रूप ग्रहण कर उस शरीर की गन्दगी को जैसे-तैसे निकालने का प्रयत्न करती है।

(२) समालोचक की उत्पत्ति

बरसात की उपमा से यह 'खुदरौ खुदाई फ़ौजदार' अथवा मानव-शरीर की उपमा से यह ग्रहजात व्याधि हरियाली और विरेचन के रूप में बरसात और मानव-शरीर के स्वास्थ्य के वास्ते उनका जीवन-तत्त्व है। एक में वह फलरूप में और दूसरे में वह कारणरूप में प्रकट होता है। परन्तु खुदरौ होने के कारण फल और कारण का भेद यहाँ तिरोहित हो जाता है। चेतनामूल जीवनतत्त्व का वह प्रकाश है, उसका ही वह स्वरूप है। साहित्य भी तो अपने मूल और यथार्थ रूप में खुदरौ ही है। 'मा निषाद' आदि कहनेवाले ने कहाँ कभी साहित्य या साहित्य-सिद्धान्तों का नाम सुना होगा। 'मा निषाद' ही तो प्रथम साहित्य है, प्रथम काव्य है, काव्य और साहित्य की नित्य प्रेरणा है। मेरे और तुम्हारे भीतर भी तो 'मा निषाद' की चीत्कार रोज़ उठा करती है। मेरी चीत्कार को तुम सुनते हो, तुम्हारी को मैं सुनता हूँ। तब आदि-कवि के साथ ही आदि-समालोचक की भी सृष्टि हो गई। आदि-कवि ने कहा, 'मा निषाद', सुननेवाले ने कहा, 'ओह! वाणी में भी ऐसा दर्द!' यह सुननेवाला ही प्रथम समालोचक था। 'मा निषाद' वाले को आदि-कवि कह देना, 'मा निषाद' का वर्ग बनाकर उसे कविता का नाम दे देना, सबसे प्रथम और सबसे बड़ी समालोचना नहीं है क्या?

(३) समालोचक का वेष

वाणी के दर्द या वाणी की मिठास या वाणी के और कुछ से प्रभावित होने पर वाणी की शक्ति के ऊपर ध्यान जाता है। वाणी की शक्ति की अपेक्षा का भी पता चलता है। अपेक्षा के भाव में तुलना आती है और समालोचना का प्रकट रूप दिखाई देता है। सिद्धान्तों की खोज होती है, लक्षण बनते हैं और शास्त्र का आधार तथा स्वरूप निश्चित होता है। इससे अगली अवस्था में शास्त्र का प्रयोग। इस प्रकार समालोचना में जिज्ञासा और प्रयोग के भेद से समालोचकों के भी दो स्वरूप हो जाते हैं—'जिज्ञासु या शास्त्रकार और प्रयोजक। परन्तु चिरन्तन प्रेरणा सजीव रहती है—हृदय और वाणी का योग तो तब टूटे, जब मनुष्य ही न रहे। एक समय का शास्त्र दूसरे समय में निर्जीव हो जाता है। तब समालोचना का रूप विकृत हो जाता है। साहित्यशास्त्र के पंडित केवल इस बात को जानते हैं कि वे शास्त्र के पंडित हैं। वे साहित्य में शास्त्र को ढूँढते हैं, 'मा निषाद' को नहीं, जिसने उनके शास्त्र को बनाया है। साहित्यकृत भी विकार से नहीं बचता; क्योंकि उसने भी सिद्धान्तों की कुछ बात सुनी है, कुछ बात दूसरे श्रेष्ठ कवियों की सुनी है। उसके भीतर शास्त्रकार और दूसरे कवि रहते हैं, वह स्वयं नहीं रहता। 'मा निषाद' कहाँ से निकले?

बड़ी मुश्किल तो यह हो जाती है कि उसमें एक 'निज इच्छा निर्मित तनु' के आकारों का समालोचक भी विद्यमान रहता है और कृतिकार का केवल एक आभासमात्र ही रहता है। स्वाधीन जिज्ञासा समालोचक का गुण है, अतः यदि वह समालोचक बनता तो अधिक अच्छा होता; परन्तु वह तो कृतिकार ही बनना चाहता है। उसे अपनी कृति के बारे में स्वयं सन्देह है, इसलिए अपनी कृति के द्वारा वह दूसरों का शासन करना चाहता है, उसके समर्थन के लिए स्वयं सिद्धान्त बनाने की चेष्टा करता है और समालोचक का मुँह बन्द करता है। भारत का बर्नार्ड शा बनने की उत्तुङ्ग महत्त्वाकांक्षा में वह द्विजेन्द्र की कला पर 'सस्ती भावुकता' की कीचड़ उछालता है और कविता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में बुद्धिवाद तथा विदग्धता का फटा हुआ ढोल बजाता है।

ऐसे कृतिकार को लेकर समालोचकों में युद्ध ठनता है। शास्त्रज्ञान का अहंकारी शास्त्र के ठप्पे को उसके उत्कीर्ण चिह्न में बिठाकर देखता है और जो शास्त्र नहीं जानता, या जानता भी हो तो उसका अहंकार नहीं रखता, वह 'मा निषाद' को ढूँढता है। भवभूति को ऐसे आलोचकों के झमेले में पड़ने का अनुभव हुआ था। इनके अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का समालोचक वह भी होता है, जो 'मा निषाद' की संवेदना से शून्य है और किसी शास्त्र का ज्ञानी भी नहीं, पर कुछ ग्रन्थों की आलोचना करने की भावनामात्र से अपने सिद्धान्त बनाता है।

इन तीनों में पहले दो से साहित्य का पृथक्-पृथक् कुछ न कुछ उपकार हो सकता है। परन्तु तीसरे प्रकार में से अधिकतर अनुरोधी और विरोधी पक्षपात को ही जन्म मिलता है। इनमें सर्वश्रेष्ठ तो शायद दूसरा है। पर उससे भी श्रेष्ठ वह चौथा है, जो पहले दोनों तथा तीसरे के द्वितीयांश का संयोग है। एक पाँचवाँ समालोचक भी प्रायः मिल जाता है, जो पहले और दूसरे के युद्ध से पैदा होता है, पर न पहला होता है न दूसरा। यह समालोचक का समालोचक है। साहित्य के स्वास्थ्य के लिए कभी-कभी वह भी ज़रूरी है, युद्ध की अमर्यादा और निरंकुशता को रोकने के लिए, यदि उसमें विवेक से तौलने की योग्यता है तो।

(४) पक्षपात का स्वरूप

लोकनीति से जीवन के हरएक व्यापार में पक्षपात को एकदम ही हमेशा के लिए बुरा मान लिया गया है। पर साहित्य में इस मोटी-सी बात का रात-दिन ही ढिंढोरा पीटा जाता है कि समालोचक को पक्षपात-शून्य होना चाहिए। क्या ज़रूरत है इस बात को हमेशा दुहराने की, यह मैं नहीं समझ सका। सूर्य को सदा चमकना चाहिए, या अन्धे को नहीं देखना चाहिए, यह भी कोई कहता है? फिर, मालूम होता है, हृदय और मन का प्रत्येक वृत्ति की भाँति पक्षपात के भी विभेद किये जा सकते हैं। कुछ प्रकार के पक्षपात किसी दूसरे प्रकार के पक्षपात की अपेक्षा निर्दोष भी कहे जा सकते हैं।

इन निर्दोष प्रकारों में शास्त्रीय अथवा जातीय कारणों से उत्पन्न हुए पक्षपातों को समालोचक में क्षम्य कहना होगा। जो व्यक्ति शास्त्र के आग्रह से ही किसी वस्तु को प्रशस्य या निन्द्य ठहराता है, वह यथार्थ में पक्षपाती नहीं, केवल समय के परिवर्तन की दृष्टि से संकीर्ण दृष्टिवाला है। पुराने कठमुल्ला जब जूता पहने-पहने मेरे भोजन करने पर आक्षेप करते हैं तो मैं उन्हें सिर्फ़ आउट-आफ़-डेट ही कहता हूँ। जातीय भावनाओं से प्रेरित होकर 'मदर इंडिया' की भारत के प्रत्येक विद्वान् ने बुराई की; या समस्त मारवाड़ी जाति को विगर्हित करनेवाले, साहित्य-पथ के एक अठारहवें सवार की किसी मारवाड़ी युवक ने कलकत्ते के भरे बाज़ार में पूजा कर दी, यह विरोधी समालोचना की क्रियात्मक पराकाष्ठा थी। पर किसी ने उन विद्वानों या इस युवक को पक्षपाती नहीं कहा।

यदि देखो तो ये दोनों प्रकार वस्तुतः पक्षपात की श्रेणी में नहीं आने चाहिए। इन्हें पक्षपात इसीलिए कहना पड़ता है कि इनमें कहीं किसी अंश में समालोचक के दुराग्रही हो जाने का संशय हो सकता है। शास्त्रीय या जातीय आग्रह की तीव्रता में यह हो जाना संभव है कि कदाचित् उसकी दृष्टि आलोच्य वस्तु के गुणों पर न पड़े या वह गुणों को भी अवगुणों के ही रूप में देखने लगे। तथापि वह उन कतिपय या अनेक अवगुणों को तो जनसमाज के सामने रखता ही है, जिन्हें शायद जनसमाज भी अवगुण ही कहेगा; और यदि वह दूसरी बातों को भी तर्क के साथ पेश करता है तो समझदार लोग उन्हें अपनी समझदारी की कसौटी पर कसकर देख सकते हैं।

जिसे वास्तविक पक्षपात कह सकते हैं और जो हमेशा निन्द्य है, वह केवल एक ही है। वह लेखक और आलोचक के व्यक्तिगत सम्बन्ध से प्रकट होता है। ऐसे समालोचक की आलोचना में कृति और कृतिकार की समालोचना नहीं होती, बल्कि होता है प्रच्छन्न या प्रकट रूप से व्यक्ति का अनुरोधी या विरोधी विज्ञापन, और उसका उद्देश्य होता है व्यक्तिगत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्ध की पुष्टि । पहले प्रकार की आलोचना का उद्देश्य पूर्ण साहित्यिक है, और इसी प्रकार दूसरी का भी; क्योंकि साहित्य को देश या जाति और उसके प्रत्येक अंग का दर्पण कहा है । पर तीसरे प्रकार की आलोचना का साहित्य से कोई दूर का भी नाता नहीं है, वह अपने रूप और उद्देश्य को छिपा भी नहीं सकती । किसी ने 'हरिऔध का बुद्धभस' लिखा और किसी ने 'प्रेमचन्द की करतूत' । दोनों के नामों में ही उनके चुग़लख़ोर को पहचान लीजिए ।

(५) अधिकारी ज्ञान

... पक्षपात की बात के अलावा समालोचक के बारे में एक बात और भी कही जाती है । आलोचक को अपने आलोच्य विषय का अधिकारी ज्ञान होना चाहिए । पर अधिकारी ज्ञान क्या है ? शास्त्रीजी ने तो 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' आदि की पूँछ पकड़कर कह दिया—'आशीर्नमस्क्रिया करके मुख है जिसका सो ऐसा सुचतुरोदात्त नायक जो है विससे जुक्त नगरार्णव-शैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनानि अपिच विप्रलम्भविवाहमन्त्र-दूतप्रयाणानि तेषां अतिसुमधुरवर्णनानि करके समन्वित ये सदलंकृति और श्रव्यवृत्त महाकाव्य पूरे पिछत्तर सर्गों मध्ये समाप्त भया सो परम सुमनोहर है एवं सर्वत्र ररें और सस्से के भाव से सुनिरन्तर अनुप्रासित है इति शुभम्' * अथवा—'आशीर्नमस्क्रिया करके मुख है जिसका ऐसा चतुरोदात्त नायक जो है विससे भी जुक्त अपिच नगरार्णवादीनां वर्णन करके समन्वित होता भया भी ये काव्य अलंकृतिशून्य और ररें एवं सस्से के अनुप्रास से विहीन अधमाधम काव्याभास है इत्यशुभम्' । यदि शास्त्र का लाक्षणिक ज्ञान अधिकारी ज्ञान है तो सचमुच शास्त्रीजी ने एक बड़ी भारी मुश्किल को ज़रा से में आसान बनाकर पौने पाँच पंक्तियों में महाकाव्य की महालोचना कर दी । पर आजकल अपने पुराने शास्त्र की इतनी पूछ नहीं—हम लोग उसे जानते नहीं हैं । इसीलिए तो पाश्चात्य कसौटी को समयानुकूल मान लेने में कोई भी हर्ज नहीं है । उसमें इतनी पारिभाषिकता भी नहीं है । वह एक व्यावहारिक बुद्धि की चीज़ है और आजकल हमारा सब साहित्य अँगरेज़ी के प्रभाव से काफ़ी अनुरंजित भी हो चुका है । पर देखो, तर्जनी उठाकर वह कौन क्या कह रहे हैं—"दो-चार अँगरेज़ी किताबों के नाम सुनकर या इधर-उधर के कुछ प्रसिद्ध उद्धरण उठाकर ही आजकल के अनुभवशून्य नवयुवक आलोचना करने बैठ जाते हैं....।" सन्देह होता है शायद वह ठीक ही कह रहे हैं; क्योंकि भारत आध्यात्मिक देश है और तर्जक महोदय को भारतीय आध्यात्मिकता का अबोध, पर दूसरों को रोआब में डाल देनेवाला थोड़ा-सा ज्ञान है ।

शास्त्रीजी दंडी की ढाल लेकर मैदान में उतरे हैं और अनुभवशून्य युवक शेक्सपियर-परम्परा के रिवाल्वर से हमला करता है—और आध्यात्मिक सज्जन, जो अँगरेज़ी भी पढ़े हैं, दोनों को फटकारते हुए, ढाल में रिवाल्वर जड़वाकर एक नये हथियार का आविष्कार करने बैठे हैं । ख़याल बुरा नहीं है । एक ही में रक्षा और प्रहार का काम चल जायगा ।

पर ढालमय रिवाल्वर से गिनीगोल्ड या दूसरे प्रकार के कोई सस्ते मिश्र धातु भले ही बना लिये जायँ जो सिक्के का ठप्पा पाकर सम्भवतः बाज़ार में चालू भी हो जायँ, पर उससे पूर्वी पश्चिम या पश्चिमी पूर्व नहीं बन सकता । पक्षपात तथा अधिकार का इतना विश्लेषण न करके, अथवा इनके विवाद में न पड़कर, सब लोग जैसा कहते हैं वैसा ही मान लेने पर भी समालोचक की आत्मा का निर्णय नहीं होता । पक्षपातहीन होने या अधिकारी ज्ञानवाला होने से ही यथार्थ, सही शब्दों में पूरा, समालोचक नहीं बनता, चाहे वह शिलीमुख हो, या बिच्छू का डंक हो और या—या—मैं नहीं कह सकता । नामकरण करनेवाले साहित्य के पाधा कोई नाम ढूँढकर मेरी सहायता कर सकते हैं ।

(६) सच्चा दृष्टिकोण

स्वयं 'आलोचक' शब्द से बढ़कर और 'आलोचक' शब्द की व्याख्या क्या होगी ? आलोचक तो वही है, जो 'आ-लोचक' है । आ समन्तात् लोचते पश्यति

* रसभावनिरन्तरम् । काव्यादर्श, १, १७.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धातु आलोचकः । जो समन्तात्, सब तरफ़, देखे, वह आलोचक है। इस दृष्टि से कवि सबसे पहला आलोचक है। आर्नल्ड के समय से हमें कवि को जीवन का आलोचक मानते रहने का अभ्यास भी हो गया है। कवि के बाद हमारे तथाकथित 'समालोचक' को इस नाम से पुकारे जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। पर कवि पर हम आलोचना का भार नहीं रखते। क्या कारण है ?

कारण यह है कि आलोचना का अर्थ हम शास्त्रीय अभियोग के वाक्यसमूह को ही समझते हैं, और उस अवस्था में यह आवश्यक नहीं माना जाता कि कवि शास्त्रीय रुचि या ज्ञान को अपनावे ही। हमारे ऐसा समझने के कारण ही सारी भूलें होती हैं। समन्तात् लोचन की दृष्टि से जो कवि है, वही समालोचक भी है। बल्कि कहा जा सकता है कि यदि कवि आलोचक है, तो उसके समालोचक को भी अपनी आलोचना की सार्थकता प्राप्त हो सकेगी। यदि कवि आलोचक नहीं है और समालोचक आलोचक है तो समालोचक का काम अवश्य कटु हो जायगा, जो उसे, कवि को तथा दूसरों को दुःख देगा।

'समन्तात् आलोचन' का अर्थ क्या हो सकता है ? यदि बिलकुल भौतिक आधारों से ही अर्थ करें तो यह असम्भव है कि कोई भी सब तरफ़, सब तरफ़ की सब चीज़ों और अवस्थाओं आदि को देख सके। देश से भी बड़ा संसार है, और संसार से भी बड़ा विश्व। परन्तु अपने घर में ही मुझे नहीं मालूम कि कल मैंने अपनी छड़ी बिल्ली को मारने के लिए जाकर ऊपर छत पर छोड़ दी थी, और आज मैं अपने लड़के को झूठमूठ डाँटता हूँ कि उसे बैठक के कमरे में रक्खी हुई वस्तु भी नहीं दीखती। केवल पिता ही पिता बना रहकर मैं पिता के ही अधिकार को देखता हूँ और डाँटता हूँ। मैं पुत्र, या नहीं तो मनुष्य ही, की दृष्टि को न देख सकने के कारण यह नहीं समझता कि ग़लती दोनों से हो सकती है और यदि वह मुझसे ही हुई हो तो एक व्यक्ति अपने पिता तक से डाँटे जाने पर क्या अनुभव करेगा। फिर कोई हिन्दू या असहयोगी या धर्माचार्य केवल अपनी संकुचित दृष्टि से देखता हुआ ईसाई-मुसलमानों, सरकारी नौकरों या अधर्मियों के वास्तविक रूप को कैसे देख सकता है ? जो कवि इस तरह करता है, वह आलोचक हुए बिना ही एक असम्भव उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है और चौपट गिरता है। उसका 'समालोचक' उसके इस गिरने की वीरता की सराहना कर सकता है। ऊपर के असम्भव भौतिक अर्थ में वह भी आ-लोचक नहीं है।

'आलोचक' के साथ एक 'सम्' और लगा देने से कहना पड़ेगा 'सम्यक् आलोचत इति समालोचकः'—जो ठीक-ठीक देखे वही समालोचक है। 'सम्यक्' या 'ठीक-ठीक' से अर्थ कुछ दुरूह, परन्तु अभिप्राय ज़रा सरल हो जाता है। 'समन्तात्' के साथ 'सम्यक्' का बिठान तभी हो सकता है, जब आलोचक की दृष्टि ऐसी हो कि वह हरएक व्यक्ति, वस्तु या दशा को उसके यथार्थ रूप में देख सके। ऐसी दृष्टि केवल मानवता की दृष्टि हो सकती है, जिसमें स्वयं विशाल मानव होते हुए दूसरों को भी मानव ही समझकर देखा जायगा। यह मानवता की दृष्टि आगे बढ़कर भूतमात्र की दृष्टि है और सहानुभूति की दृष्टि है और पूर्व या पश्चिम में, भूत या भविष्य में, इसकी कहीं भी रोक-टोक नहीं है। मनुष्य के कर्म, रीति-रिवाज, सोच-विचार में चाहे देश, धर्म, जाति और समय की भिन्नता से कितना ही भेद पड़ गया हो—वे सर्वत्र मानवीय ही हैं, मानवहृदय के रंग से अनुरंजित हैं। यदि तुम भी मानवहृदय रखते हो तो क्या उनको ज़रा भी न समझ सकोगे ? और मानवहृदय रखकर ही तुम उन अमानवों को ताड़ लेने का कर्म भी ज़्यादा अच्छा कर सकते हो, जो मनुष्य न होकर या तो एक ओर केवल धर्मव्याख्याता, असहयोगी, अनपढ़, देहाती, मज़लूम या अब्राह्मण ही रह गये हैं या फिर, दूसरी ओर, अधर्मी, सहयोगी, पढ़े-लिखे, शहरी, ज़ालिम या ब्राह्मणमात्र ही हैं। पर ध्यान रखना होगा, इनमें से किसी भी वर्ग के अमानव को देखते हुए तुम्हें स्वयं मानव ही रहना है; क्योंकि भलाइयाँ और बुराइयाँ, दोनों ही संसार के एक सौ एक फ़ीसदी मनुष्यों में हैं—तुममें भी, मुझमें भी, मानवों में भी, 'अमानवों' में भी। अखिल विश्वमंडल के साथ सहानुभूति की दृष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्बन्ध की पुष्टि । पहले प्रकार की आलोचना का उद्देश्य पूर्ण साहित्यिक है, और इसी प्रकार दूसरी का भी; क्योंकि साहित्य को देश या जाति और उसके प्रत्येक अंग का दर्पण कहा है । पर तीसरे प्रकार की आलोचना का साहित्य से कोई दूर का भी नाता नहीं है, वह अपने रूप और उद्देश्य को छिपा भी नहीं सकती । किसी ने 'हरिऔध का बुढ़भस' लिखा और किसी ने 'प्रेमचन्द की करतूत' । दोनों के नामों में ही उनके चुग़लख़ोर को पहचान लीजिए ।

(५) अधिकारी ज्ञान

पक्षपात की बात के अलावा समालोचक के बारे में एक बात और भी कही जाती है । आलोचक को अपने आलोच्य विषय का अधिकारी ज्ञान होना चाहिए । पर अधिकारी ज्ञान क्या है ? शास्त्रीजी ने तो 'सर्गबन्धो महाकाव्यम्' आदि की पूँछ पकड़कर कह दिया—'आशीर्नमस्क्रिया करके मुख है जिसका सो ऐसा सुचतुरोदात्त नायक जो है बिससे जुक्त नगरार्णव-शैलर्तुचन्द्रार्कोदयवर्णनानि अपिच विप्रलम्भविवाहमन्त्र-दूतप्रयाणानि तेषां अतिसुमधुरवर्णनानि करके समन्वित ये सदलंकृति और श्रव्यवृत्त महाकाव्य पूरे पिछत्तर सर्गों मध्ये समाप्त भया सो परम सुमनोहर है एवं सर्वत्र ररें और सस्से के भाव से सुनिरन्तर अनुप्रासित है इति शुभम्' * अथवा—'आशीर्नमस्क्रिया करके मुख है जिसका ऐसा चतुरोदात्त नायक जो है बिससे भी जुक्त अपिच नगरार्णवादीनां वर्णन करके समन्वित होता भया भी ये काव्य अलंकृतिशून्य और ररें एवं सस्से के अनुप्रास से विहीन अधमाधम काव्याभास है इत्यशुभम्' । यदि शास्त्र का लाक्षणिक ज्ञान अधिकारी ज्ञान है तो सचमुच शास्त्रीजी ने एक बड़ी भारी मुश्किल को ज़रा से में आसान बनाकर पौने पाँच पंक्तियों में महाकाव्य की महालोचना कर दी । पर आजकल अपने पुराने शास्त्र की इतनी पूछ नहीं—हम लोग उसे जानते नहीं हैं । इसीलिए तो पाश्चात्य कसौटी को समयानुकूल मान लेने में कोई भी हर्ज नहीं है । उसमें इतनी पारिभाषिकता भी नहीं है । वह एक व्यावहारिक बुद्धि की चीज़ है और आजकल हमारा सब साहित्य अँगरेज़ी के प्रभाव से काफ़ी अनुरंजित भी हो चुका है । पर देखो, तर्जनी उठाकर वह कौन क्या कह रहे हैं—"दो-चार अँगरेज़ी किताबों के नाम सुनकर या इधर-उधर के कुछ प्रसिद्ध उद्धरण उठाकर ही आजकल के अनुभवशून्य नवयुवक आलोचना करने बैठ जाते हैं....।" सन्देह होता है शायद वह ठीक ही कह रहे हैं; क्योंकि भारत आध्यात्मिक देश है और तर्जक महोदय को भारतीय आध्यात्मिकता का अबोध, पर दूसरों को रोआब में डाल देनेवाला थोड़ा-सा ज्ञान है ।

शास्त्रीजी दंडी की ढाल लेकर मैदान में उतरे हैं और अनुभवशून्य युवक शेक्सपियर-परम्परा के रिवाल्वर से हमला करता है—और आध्यात्मिक सज्जन, जो अँगरेज़ी भी पढ़े हैं, दोनों को फटकारते हुए, ढाल में रिवाल्वर जड़वाकर एक नये हथियार का आविष्कार करने बैठे हैं । ख़याल बुरा नहीं है । एक ही में रक्षा और प्रहार का काम चल जायगा ।

पर ढालमय रिवाल्वर से गिनीगोल्ड या दूसरे प्रकार के कोई सस्ते मिश्र धातु भले ही बना लिये जायँ जो सिक्के का ठप्पा पाकर सम्भवतः बाज़ार में चालू भी हो जायँ, पर उससे पूर्वी पश्चिम या पश्चिमी पूर्व नहीं बन सकता । पक्षपात तथा अधिकार का इतना विश्लेषण न करके, अथवा इनके विवाद में न पड़कर, सब लोग जैसा कहते हैं वैसा ही मान लेने पर भी समालोचक की आत्मा का निर्णय नहीं होता । पक्षपातहीन होने या अधिकारी ज्ञानवाला होने से ही यथार्थ, सही शब्दों में पूरा, समालोचक नहीं बनता, चाहे वह शिलीमुख हो, या बिच्छू का डंक हो और या—या—मैं नहीं कह सकता । नामकरण करनेवाले साहित्य के पाधा कोई नाम ढूँढकर मेरी सहायता कर सकते हैं ।

(६) सच्चा दृष्टिकोण

स्वयं 'आलोचक' शब्द से बढ़कर और 'आलोचक' शब्द की व्याख्या क्या होगी ? आलोचक तो वही है, जो 'आ-लोचक' है । आ समन्तात् लोचते पश्यति

* रसभावनिरन्तरम् । काव्यादर्श, १, १७.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इति आलोचकः । जो समन्तात्, सब तरफ़, देखे, वह आलोचक है। इस दृष्टि से कवि सबसे पहला आलोचक है। आर्नल्ड के समय से हमें कवि को जीवन का आलोचक मानते रहने का अभ्यास भी हो गया है। कवि के बाद हमारे तथाकथित 'समालोचक' को इस नाम से पुकारे जाने का सौभाग्य प्राप्त होता है। पर कवि पर हम आलोचना का भार नहीं रखते। क्या कारण है ?

कारण यह है कि आलोचना का अर्थ हम शास्त्रीय अभियोग के वाक्यसमूह को ही समझते हैं, और उस अवस्था में यह आवश्यक नहीं माना जाता कि कवि शास्त्रीय रुचि या ज्ञान को अपनावे ही। हमारे ऐसा समझने के कारण ही सारी भूलें होती हैं। समन्तात् लोचन की दृष्टि से जो कवि है, वही समालोचक भी है। बल्कि कहा जा सकता है कि यदि कवि आलोचक है, तो उसके समालोचक को भी अपनी आलोचना की सार्थकता प्राप्त हो सकेगी। यदि कवि आलोचक नहीं है और समालोचक आलोचक है तो समालोचक का काम अवश्य कटु हो जायगा, जो उसे, कवि को तथा दूसरों को दुःख देगा।

'समन्तात् आलोचन' का अर्थ क्या हो सकता है ? यदि बिलकुल भौतिक आधारों से ही अर्थ करें तो यह असम्भव है कि कोई भी सब तरफ़, सब तरफ़ की सब चीज़ों और अवस्थाओं आदि को देख सके। देश से भी बड़ा संसार है, और संसार से भी बड़ा विश्व। परन्तु अपने घर में ही मुझे नहीं मालूम कि कल मैंने अपनी छड़ी बिल्ली को मारने के लिए जाकर ऊपर छत पर छोड़ दी थी, और आज मैं अपने लड़के को झूठमूठ डाँटता हूँ कि उसे बैठक के कमरे में रक्खी हुई वस्तु भी नहीं दीखती। केवल पिता ही पिता बना रहकर मैं पिता के ही अधिकार को देखता हूँ और डाँटता हूँ। मैं पुत्र, या नहीं तो मनुष्य ही, की दृष्टि को न देख सकने के कारण यह नहीं समझता कि ग़लती दोनों से हो सकती है और यदि वह मुझसे ही हुई हो तो एक व्यक्ति अपने पिता तक से डाँटे जाने पर क्या अनुभव करेगा। फिर कोई हिन्दू या असहयोगी या धर्माचार्य केवल अपनी संकुचित दृष्टि से देखता हुआ ईसाई-मुसलमानों, सरकारी नौकरों या अधर्मियों के वास्तविक रूप को कैसे देख सकता है ? जो कवि इस तरह करता है, वह आलोचक हुए बिना ही एक असम्भव उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है और चौपट गिरता है। उसका 'समालोचक' उसके इस गिरने की वीरता की सराहना कर सकता है। ऊपर के असम्भव भौतिक अर्थ में वह भी आ-लोचक नहीं है।

'आलोचक' के साथ एक 'सम्' और लगा देने से कहना पड़ेगा 'सम्यक् आलोचत इति समालोचकः'—जो ठीक-ठीक देखे वही समालोचक है। 'सम्यक्' या 'ठीक-ठीक' से अर्थ कुछ दुरूह, परन्तु अभिप्राय ज़रा सरल हो जाता है। 'समन्तात्' के साथ 'सम्यक्' का बिठान तभी हो सकता है, जब आलोचक की दृष्टि ऐसी हो कि वह हरएक व्यक्ति, वस्तु या दशा को उसके यथार्थ रूप में देख सके। ऐसी दृष्टि केवल मानवता की दृष्टि हो सकती है, जिसमें स्वयं विशाल मानव होते हुए दूसरों को भी मानव ही समझकर देखा जायगा। यह मानवता की दृष्टि आगे बढ़कर भूतमात्र की दृष्टि है और सहानुभूति की दृष्टि है और पूर्व या पश्चिम में, भूत या भविष्य में, इसकी कहीं भी रोक-टोक नहीं है। मनुष्य के कर्म, रीति-रिवाज, सोच-विचार में चाहे देश, धर्म, जाति और समय की भिन्नता से कितना ही भेद पड़ गया हो—वे सर्वत्र मानवीय ही हैं, मानवहृदय के रंग से अनुरंजित हैं। यदि तुम भी मानवहृदय रखते हो तो क्या उनको ज़रा भी न समझ सकोगे ? और मानवहृदय रखकर ही तुम उन अमानवों को ताड़ लेने का कर्म भी ज़्यादा अच्छा कर सकते हो, जो मनुष्य न होकर या तो एक ओर केवल धर्मव्याख्याता, असहयोगी, अनपढ़, देहाती, मज़लूम या अब्राह्मण ही रह गये हैं या फिर, दूसरी ओर, अधर्मी, सहयोगी, पढ़े-लिखे, शहरी, ज़ालिम या ब्राह्मणमात्र ही हैं। पर ध्यान रखना होगा, इनमें से किसी भी वर्ग के अमानव को देखते हुए तुम्हें स्वयं मानव ही रहना है; क्योंकि भलाइयाँ और बुराइयाँ, दोनों ही संसार के एक सौ एक फ़ीसदी मनुष्यों में हैं—तुममें भी, मुझमें भी, मानवों में भी, 'अमानवों' में भी। अखिल विश्वमंडल के साथ सहानुभूति की दृष्टि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रक्खो, सर्वभूतहित की भावना को लेकर—बुख़ार दूर करने के लिए कुनैन को चीनी में लपेटकर दो—ख़ुद भले ही एक बार चीनी में लपेटे बिना ही खा लो। सुधारो, पर यह समझते हुए कि हम में भी सुधार की गुंजाइश है। तुम्हारे सुधार में संहार न हो। दूसरों की आलोचना हो तो विष के बाणों से नहीं, अपनों की चुमकार हो तो शहद की जीभ से नहीं। तब तो, हे मेरे कवि, तुम बुद्धिमान् हो, कवि हो, आलोचक हो, समालोचक हो। और तभी, हे समालोचक, तुम भी यथार्थ समालोचक हो, तभी तुम उस उत्तरदायित्व को प्राप्त होगे, जो जज के भी जज का है।

समालोचक को, कम से कम समालोचना के समय तो पूर्ण मनुष्य-हृदयवाला हो ही जाना चाहिए। तभी वह कवि के मानव-हृदय की परख कर सकेगा। पर इसके साथ इसी सिद्धान्त के उपलक्ष्य रूप में, उसे नट भी होना चाहिए। मनुष्य-हृदय होकर वह अपने आलोच्य कवि-मानव के हृदय में भी प्रवेश कर सकता है। उसकी भावनाओं में घुसकर—और यदि वे भावनाएँ लोकविरोधी नहीं हैं तो—कवि की स्थिति के साथ अपने को समायुक्त करके लोकसंग्रह के कार्य में सहायक हो सकता है—साधारण जनता तक कवि को अच्छी तरह पहुँचा सकता है। जितने भिन्न-भिन्न स्थितियों के कवियों की वह आलोचना करता है, उतने ही भिन्न-भिन्न रूपों में उसे अपना समायोग करना होगा—राजा, राव, रंक, शहरी, देहाती, सहयोगी, असहयोगी, ब्राह्मण, अब्राह्मण, सभी कुछ समय-समय पर बनना होगा, और प्रत्येक के मानव-हृदय को लोकाशा की भावना से देखना होगा। मैं ब्राह्मण नहीं तो क्या हुआ, कवि के साथ मुझे ब्राह्मण बनकर देखना ही होगा कि मानव-हृदय के साथ ब्राह्मण-हृदय का कैसा सामंजस्य या असामंजस्य है।

यदि ऐसा न होता तो अस्वभाव-सम्बन्धों में विश्वास रखनेवाले असंख्य संस्कृतकवि अथवा परम वैष्णव, साकार मूर्तिपूजा के उपासक, राम को परब्रह्म माननेवाले तुलसीदास आधुनिक निरीश्वरता, विज्ञानवाद और वैदग्ध्यवाद की इतनी बड़ी दुनिया में और शताब्दियों की रफ़्तार से चलनेवाले इस समय-दानव की कोख में कब के हज़म हो गये होते। मूर्तिपूजा और साकार भक्ति पर प्रहार हुए हों, राम को केवल एक महापुरुष या कपोलकल्पित अस्वाभाविकता मान लिया गया हो, पशु-पक्षियों और मनुष्यों में बातचीत करानेवालों, अथवा देवताओं और मनुष्यों में अलीक सम्बन्ध स्थापित करानेवालों को असभ्य जंगली कहकर दिल के फफोले फोड़े गये हों; पर तुलसीदास और कालिदास आज तक अतुलसीदास या अकालिदास नहीं हुए। ईसाई या मुसलमान या आर्यसमाजी, बौद्ध या जैन, किसी ने भी इन पर प्रहार नहीं किया और प्रत्येक देश के आलोचकों की दृष्टि में आज तक इनके महाकवित्व का स्थान अक्षुण्ण है। इसी प्रकार बहुरूप का पेशेवर शेक्सपियर और लोकायतिक बर्नार्ड शा, पापियों का सहचर विक्टर ह्यूगो और अद्भुत ईसाई टाल्स्टाय हमारे इस 'आध्यात्मिक' हिन्दू-देश में पूजित हैं। इसीलिए कि कहीं का कोई भी समालोचक इनके मानव-मय-व्यक्ति-हृदय के साथ अपने मानवहृदय के असंयोग की कल्पना नहीं कर सका। असंयोग की संभावना तभी रहती है, जब कवि या आलोचक, दोनों में से कोई भी, या प्रत्येक ही, केवल व्यक्ति ही व्यक्ति रह जाय और मनुष्य ज़रा न हो।

यही सारांश है। समालोचक के दृष्टिकोण में यही दो-तीन बातें परम आवश्यक हैं। उसका पहला दृष्टिकोण विशाल मानवता का है। इसके उपसिद्धान्त के रूप में उसमें यह योग्यता होनी चाहिए कि अपनी मानवता को सँभाले रहकर वह कवि के साथ अपने को मिला सके, उसकी परिस्थिति में सहानुभूतिपूर्वक अपने को रखकर उसकी रचित मानवता पर दृष्टिपात करे। उसकी दृष्टि के इस कोण तथा उपकोण का फल या उद्देश्य होना चाहिए कवि के मानवहृदय को लोक-हित के लिए साधारण जनता तक पहुँचाना। अथवा फिर, यदि कवि में मानवता कम या बिलकुल नहीं है तो, उसके कोरे व्यक्ति-हृदय से उस जनता को सतर्क रखना।

यदि समालोचक में यह है तो उसका शास्त्र या शास्त्रों का ज्ञान, सार्थक क्यों, सोने में सुगंध है। शास्त्र भी मनुष्य को लेकर ही बना है, स्याही के अक्षरों को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेकर नहीं ; और मानव-समालोचक के लिए शास्त्र की सारी पंक्तियाँ विशाल मानवता की व्याख्या के रूप में ही उद्भासित होती हैं । पर यदि समालोचक का दृष्टिकोण ऊपर के दोनों-तीनों तत्त्वों से शून्य है तो शास्त्रज्ञान उसके लिए निरर्थक ही नहीं, कभी-कभी अनर्थकारी कलंकस्वरूप है । रही तीसरे दर्जे के पक्षपात की बात, सो, वह तो शायद मानव-द्रष्टा समालोचक के विषय में उठती ही नहीं ।

स्त्रीपुरुष सबके लिये ताक़त ताज़गी से भरा हुआ

सुमधुर

झंडू द्राक्षासव

अवश्य सेवन कीजिए

चाँदनी जैसी शीतल

झंडू की (शिलाजीत युक्त)

चन्द्रप्रभा गुटी

मूत्ररोग और धातुविकार की अद्वितीय औषधि है

झंडू फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बक्स नं० ५५१३ बंबई नं० १४ ।
यू० पी० एजेंट—कांतिलाल, आर० पारेख, चाँदनी चौक, दिल्ली ।
लखनऊ एजेंट—माताबदल पन्सारी, अमीनाबाद ।
लखनऊ स्टाकिस्ट—कौशिक आयुर्वेदिक स्टोर्स, श्रीराम रोड ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

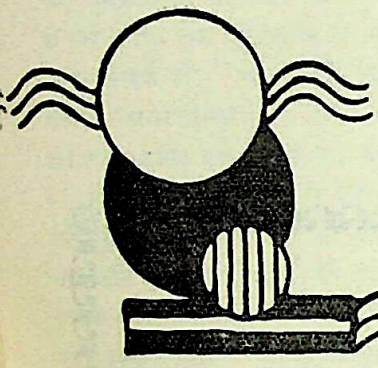

महाकवि भारवि की उन्नत मनोवृत्ति

श्रीरामनिवास शर्मा भू० पू० "सौरभ"-सम्पादक

'प्रकर्षतन्त्रा हि रणे जयश्रीः।'

संस्कृत मृत-भाषा है *। अब इसकी संसार को आवश्यकता नहीं। इसमें न विज्ञान है, न इतिहास और न अर्थ-शास्त्र। भला इसको पढ़कर हम क्या करेंगे? इससे तो भलाई के स्थान में बुराई ही होगी, देश तबाह हो जायगा, देश के नौनिहाल बच्चों का हृदय झुलस जायगा, मस्तिष्क बिगड़ जायगा और आधुनिक जीवन-संग्राम में सफलता प्राप्त करना तो सर्वथा असंभव हो जायगा। साथ ही बच्चों का उत्साह-शक्ति मारी जायगी, उमंगें बेकार हो जायँगी और दीनता घर कर लेगी। फिर ऐसी दशा में गया हुआ साम्राज्य प्राप्त करना और दूषित मनोवृत्ति और परंपरा से पीछा छुड़ाना तो एक कल्पना की बात हो जायगी और सामयिक विचारों से तो वे शताब्दियों के लिए भटक जायँगे।

यह है हमारी आधुनिक विचार-परंपरा, जिससे हम नित्य ही संस्कृत-भाषा, उसके साहित्य और कवियों पर कीचड़ फेंका करते हैं और इस तरह अपने को सत्साहित्य-हीन और अधूरा सिद्ध करने के प्रयत्न में दत्त-चित्त रहते हैं।

इस लेख में हम महाकवि भारवि की उन्नत मनोवृत्ति पर विचार करेंगे और उसके द्वारा ही यह दिखलाने का प्रयत्न करेंगे कि असल में बात क्या है और संस्कृत-भाषा-विषयक दूषित, असंस्कृत और ग्रामीण इस उक्ति-परंपरा का क्या अर्थ है? साथ ही इस बात पर भी प्रकाश डालेंगे कि इस कठिन परिस्थिति में भी हम उससे क्योंकर लाभ उठा सकते हैं?

यहाँ सबसे पहले हम यह बात बता देना चाहते हैं कि संसार में असल में उत्साह ही उन्नति और उत्थान का मूल-तत्त्व है। उत्साह से ही सब कुछ हो सकता है। उत्साह-शक्ति ही व्यक्तियों और जातियों के उत्थान का कारण है। अधिक क्या, उत्साह-युक्त जीवन ही जीवन है और उत्साह-हीन जीवन मरण।

अब आप देखेंगे कि इस जीवन-तत्त्व अर्थात् उत्साह को किरातार्जुनीय काव्य में कितना प्रश्रय मिला, वह इससे कितना अनुप्राणित और अतिरंजित हुआ, और इस समय भी हम इससे कितना लाभ उठा सकते हैं।

इस विषय में एम० एस्० वी० के शब्दों में हम कह सकते हैं कि भारवि ने उत्साह-जैसे वीरोचित तत्त्व को संसार के सामने रखकर उसे एक ऐसी वस्तु दी है, जो

* पुरानी कही जा सकती है, न कि मृत।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सफलता और उन्नति का मूलाधार है। इसके विषय में किसी का यह कथन भी अक्षरशः सत्य है—

"शक्ति और साधना सफलता का शरीरमात्र है। उसकी अन्तरात्मा तो असल में हृदय का वह उत्साह है, जो कि सफलता के लिए हम में पतंगे की तरह मर मिटने का साहस फूँकता है।"

उत्साह वस्तुतः ऐसा ही है। यह सफलता की कुञ्जी है, जीवन का जीवन है, उन्नति का मूल है, उत्थान का कारण है, साथ ही आन्तरिक और बाह्य जीवन की प्रेरिका शक्ति भी है। अधिक क्या, यह वीररस का स्थायी भाव और पोषक तत्त्व है।

जीवन और वीरता के प्राण-स्वरूप इस उत्साह-सदुत्साह से भारवि ने किरात में "कितना काम लिया है? कैसा काम लिया है? इसके द्वारा पतित, पीड़ित और मार्ग-च्युत जाति और व्यक्ति को उठाने का कितना प्रयत्न किया है? और खोये हुए साम्राज्य के उद्धार के लिए कितने उग्र और उत्साह-पूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है।" इन बातों को विज्ञ लोग ही ठीक तरह समझ सकते हैं।

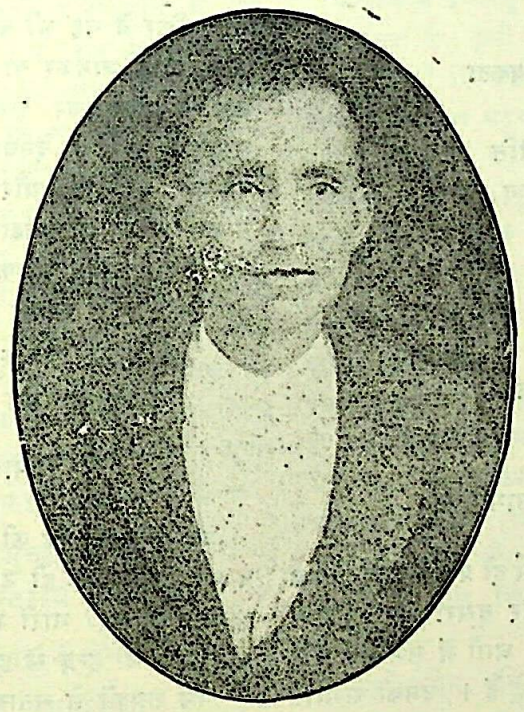

लेखक

भारवि की किरात-विषयक इन विशेषताओं को ठीक तरह समझने-समझाने के लिए यह लेख निम्न-लिखित भागों में विभक्त किया गया है—

(अ) कर्तव्य-विषयक विवेचना
(ब) सफलता-विषयक विवेचना
(स) कवि-व्यक्तित्व-विषयक विवेचना

(अ) कर्तव्य-विषयक विवेचना

किरात की कर्तव्य-विषयक-विवेचना का प्रसंग इस प्रकार शुरू होता है—

महावीर अर्जुन शत्रुओं से सताया जाकर व्यासदेव के उपदेश से वीरोचित वेष में जब तप के लिए इन्द्र कील पर्वत पर जाता है, तब देवराज इन्द्र ब्राह्मण के वेष में उसके पास आकर उसकी दृढ़ता की परीक्षा के लिए उससे इस प्रकार कहने लगते हैं—

"अरे भैया यह क्या है? क्यों तुम व्यर्थ ही क्षणिक सुखों के उद्योग में अपने प्राणों की आहुति देने को उद्यत हो रहे हो? क्या तुम समझते हो कि साम्राज्य का उद्धार कर तुम अनन्त सुखों के भागी बनोगे? परन्तु ऐसा कदापि नहीं हो सकता; क्योंकि दुःख का अत्यन्ताभाव तो मुनि-धर्म और मोक्ष-धर्म में ही हो सकता है। यही कारण है कि ज्ञानी लोग संसार को त्यागकर मोक्ष-धर्म का अवलम्बन करते हैं। फिर कदाचित् तुम मानव-समाज का संहारकर कुछ पा भी सके तो ऐसा पाना न पाने के बराबर होगा। और, यह इसलिए कि इस जन-संहार से अहिंसा-धर्म कुचला जायगा और मानव-समाज-घातिनी हिंसा बद्ध-मूल होकर तुमको, तुम्हारे कुटुम्ब को, साम्राज्य और संसार को स्वाहा कर देगी। कदाचित् ऐसा न हुआ तो भी तुम्हें जो वस्तु मिलेगी, वह भी क्या सदा स्थिर रह सकेगी, और फिर क्या वह संयम-नियममय मुनि-धर्म की साधना के बिना मिल भी सकेगी?"

संसार को मार्ग-भ्रष्ट करने, अज्ञानियों और भावुकों को अज्ञानान्धकार में ढकेलनेवाले इन्द्र के उपदेश को समझदार अर्जुन तत्काल ही ताड़ गया और यह भी उसकी समझ में आ गया कि अवश्य ही यह धोखा है, षड्यन्त्र है, विघ्न है, बुद्धि-नाशक परीक्षण है या कुछ और है। परन्तु आश्चर्य है कि इस धोखे का प्रसारक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनके चरित्र को अनुकरणीय समझकर उनके अनुगामी बन जाते हैं।' इस विषय में भारवि के अपने शब्द इस प्रकार हैं—

उदाहरणमाशीःषु प्रथमे ते मनस्विनाम् ।
शुष्केऽशनिरिवामर्षो यैररातिषु पात्यते ॥

६. जन्म की सार्थकता

मनुष्य-जन्म की सार्थकता पर भी भारवि से हमें कितने उच्च विचार मिलते हैं। देखिए, वे कहते हैं—

"नहीं वह 'पुरुष' पुरुष नहीं। यही नहीं, अपितु वह अजन्मा है अर्थात् उसका जन्म लेना ही निरर्थक है। समझ लो कि उसने जन्म ही नहीं लिया; क्योंकि जिसे जन्म लेने का फल ही प्राप्त नहीं हुआ, वह तो अजन्मा ही है।" कौन मनुष्य अजन्मा है, भारवि इसको इस तरह स्पष्ट करते हैं—

"जन्म की सार्थकता इसी में है कि मनुष्य अपनी उस कीर्ति का शस्त्रास्त्रों द्वारा प्रत्याहरण करे, जो कि शत्रुओं से हरी गई है?"

यह पतितों का प्रश्रय, दीनों का स्वावलंबन और दलितों का परम मंत्र है। इसी में महापुरुष भारवि ने जन्म का साफल्य बताया है। उनके अपने शब्द इस प्रकार हैं—

अजन्मा पुरुषस्तावद्गतासुस्तृणमेव वा।
यावन्नेषुभिरादत्ते विलुप्तमरिभिर्यशः ॥

७. सफलता और मृत्यु

"कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन।"

जीवन के इस मूल मंत्र की व्याख्या करते हुए महाकवि भारवि लिखते हैं—

मनस्वी पुरुष के दो ही कार्य हैं या तो वह अयश-कण्टक को नष्ट करने के प्रयत्न में मर जाय या सफलता प्राप्त करे। बस, यही तो उसका कर्तव्य है: परन्तु सफलता उसके हाथ की वस्तु नहीं, इसलिए प्रयत्न में ही अन्तिम क्षण तक लगे रहना उसका ध्येय है।

जीवनोद्धार का कैसा अच्छा मन्त्र है। मन्त्र ही नहीं, अपितु महामंत्र है। इसी को कवि ने अर्जुन के मुख से कितने अच्छे ढंग से स्पष्ट कराया है—

विच्छिन्नाभ्रविलायं वा विलीये नगमूर्द्धनि।
आराध्य वा सहस्राक्षमयशः शल्यमुद्धरे॥

८. पौरुष

कवि संसार की अनन्त कामनाओं पर सफलता को विशेषता देता हुआ कहता है कि सफलता ही सब कुछ है। परन्तु वह यह भी कहता है कि पुरुष-जाति में जन्म लेने से ही कोई पुरुष नहीं हो सकता, यदि किसी को पुरुष (Man) कहलाना है तो उसे सफलता प्राप्त करने के उद्योग में मर मिटना चाहिए। बस, यही कर्तव्य-तत्परता उसे उदाहरणीय, प्रशंसनीय और आश्चर्य-जनक बना देगी। सारांश यह कि ऐसे पौरुष से ही पुरुष 'पुरुष' हो सकता है, न कि जन्म से।

९. क्रोध और स्वावलंबन

महाकवि भारवि क्रोध की अन्यतम विशेषता और तज्जन्य-स्वावलंबन पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—

"असह्य-भाव से क्रोध के द्वारा संशोधन के प्रयत्न में लगे रहना ही सच्चे वीर का स्वावलंबन है। वीर असल में इस अमर्ष-जन्य प्रयत्न से ही जीवित रहता है। यदि ऐसा न हो तो उसके हृदय का विदीर्ण हो जाना एक स्वाभाविक घटना है।" इसी बात को भारवि का अर्जुन इस तरह कहता है—

ध्वंसेत हृदयं सद्यः परिभूतस्य मे परैः।
यद्यमर्षः प्रतीकारं भुजालम्बं न लम्भयेत्॥

१०. सत्प्रेरणा

उक्त वार्तालाप पर किसी के ये उद्गार कितने सच्चे और मर्म-स्पर्शी हैं—

"कैसा क्षोभ और क्रोध है? कैसी कर्मठता है, जिसमें ठीक तरह साँस लेने को भी कहीं अवकाश नहीं है? आत्म-सम्मान और आत्मप्रतिष्ठा का कैसा सुन्दर और दुर्धर्ष चित्रण है? वंश-लक्ष्मी, राज्य-लक्ष्मी और स्वराज्य की प्राप्ति के दुःख-दर्द का कैसा विकट वर्णन है? जन्म, पुरुषत्व, उदाहरणीयता आदि की भी कितनी मनोरम अभिव्यंजना है? समयोचित भावों और बातों की कैसी क्षत्रियोचित झाँकी है? वंश-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रतिष्ठा, कुलीनता और क्षत्रिय-प्रकृति का कितना उद्भट वर्णन है ? जीवन-संग्राम की विजयोन्मुख कर्तव्यपरायणता का कैसा उदात्त निर्देश है ?

मनुष्यता, मनस्विता और सफलता की कैसी सुन्दर व्याख्या है ? जय-पराजय के सुख-दुःख का कैसा व्याख्यान है ? वीरोचित स्वावलंबन और सुखद जीवन का कैसा सुन्दर दृश्य है और समय की नब्ज़ को न पहचानकर नेतृत्व करनेवाले व्यक्ति के लिए कैसी फटकार है ? अथवा सच्चे वीर पुरुष की अन्तःपरीक्षा का कैसा सुन्दर काव्य है ? पिता और पुत्र के अपरिचयावस्था के भी कैसे प्रभावोत्पादक प्रश्नोत्तर हैं ? साथ ही उद्योग, सफलता, क्षत्रियोचित कर्म-अकर्म-जन्य उपासनात्मक पागलपन का कितना सुन्दर वर्णन है ? आर्य-जाति के उदयकालीन स्वातन्त्र्य और स्वाधीनता की भाव-भावना की भी कितनी विलक्षण अभिव्यंजना है, पृथा-पुत्र, पाण्डु-सुत और आग्नेय चरित्र-चित्रण का कितना सुन्दर अभिनय है ? और है कवि की उन्नत मनोवृत्ति का आख्यान।

(ब) सफलता-विषयक विवेचना

संसार में सफलता एक सर्वोत्तम वस्तु है, तत्त्व है, लाभ है, उद्देश्य है, आदर्श है या यों कहिए कि सब कुछ है। एम० एस्० वी० के शब्दों में सफलता-देवी जिस व्यक्ति का प्रेम-पूर्वक पाणि-ग्रहण करती है, वही असल में सच्चा भाग्यशाली है। यहाँ यह कहना भी अनुचित न होगा कि सफलता के विश्लेषण और उसकी प्राप्ति के उपायों से भारवि का काव्य भरा पड़ा है। स्थान-स्थान पर उसमें सफलता-विषयक उपदेश और संकेत पढ़ने को मिलते हैं; परन्तु फिर भी उनकी सफलता-विषयक विवेचना का पृथक् महत्त्व और निर्देश है। इस सफलता-विषयक विभिन्न विवेचना का सार निम्नलिखित शीर्षकों में विभक्त है—

१. प्रवचन-विश्लेषण
२. अन्यतम तत्त्व
३. सफलता का सच्चा उपाय
४. सफलता और अनुपात-ज्ञान
५. गुण-प्रधान राजनीति

१. प्रवचन-विश्लेषण

किरातार्जुनीय शक्ति, संवाद, विवेक, विवेचन, राजनीति, सबलता, गाम्भीर्य, दूरदर्शिता, उत्तरदायित्व, प्रभावोत्पादन, मन्त्र-शक्ति, बुद्धि-बल, ज्ञान-विज्ञान, विचार-पद्धति, प्रेम-विज्ञापन, अनुभव-शक्ति, परिणाम-व्याख्या, स्थिति-स्थापकता, आत्मदशा-परीक्षण, सामयिक सावधानता, तारतम्य-विवेचन, बलाबल-निरीक्षण, कार्य-संपादन-पद्धति, समन्वय-सामंजस्य * विवेक, देश-दशा-परिस्थिति का निरीक्षण आदि सुन्दर गंभीर और मानव-नीति के सैकड़ों परिचायक ऐसे प्रवचनों से भरा पड़ा है, जो कि सार्वभौम, सार्वजनीन, सर्वाङ्गीण और सर्व-समयोपयोगी नीति-तत्त्व के द्योतक हैं, जिनमें अनुभूति, जीवन-संग्राम और विशेषतः उन्नत जीवन की बहुमूल्य बातें सन्निहित हैं। कुछ वाक्य ऐसे भी हैं, जो व्यवहार-शास्त्र, न्याय-शास्त्र और नीति-शास्त्र के साम्मुख्य में मार्ग-दर्शकता का काम देते हैं; राजनीतिक, सामाजिक, नैतिक आदि सम्पूर्ण क्षेत्रों में मनुष्य के सहायक हो सकते हैं; मानव-नीति के प्रचारक, उन्नत जीवन के द्योतक और चाणक्य-नीति के धुरंधरों के भी कान काटनेवाले हैं। साथ ही कूट-नीति के मर्म, आक्रमण और रक्षण आदि तत्त्वों के सार के भी सार हैं। सच तो यह है कि भारवि की अपनी नीति है और वह समधिक उन्नत जीवन और सफलता की विवेचना की विवेचना है।

भारवि ने सुधार-उद्धार और कार्य-सिद्धि की विवेचना पर बड़े ही सुन्दर विचार प्रकट किये हैं। उनसे उन्होंने दीनों को उठाने, मूर्खों को सन्मार्ग पर लाने और मानव-वातावरण को सफलता-सौरभ से भरने का सफल प्रयत्न किया है।

२. अन्यतम तत्त्व

एक विद्वान् के कथनानुसार भारवि की सफलता-विषयक विवेचना के कुछ अन्यतम तत्त्व इस प्रकार हैं—

१. दुःख का सफलता-विषयक स्वरूप
२. वास्तविक सफलता के साधन
३. सफलता का क्रियात्मक प्रयोग

* न बाधतेऽस्य त्रिगणः परस्परम्।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१. मानव-स्वभाव के ज्ञाता, प्रकृति के मर्मज्ञ और मनोविज्ञान के अद्वितीय पण्डित भारवि ने दीनता और दुःख से छुटकारा पाने के लिए मानव-समाज को स्वर्ग का रास्ता नहीं बताया, मोक्ष की साधना का उपदेश नहीं दिया, अपितु स्वयं दुःख को ही दुःख की दवा बताई है*। वे कहते हैं, दीनता अथवा दुःख जहाँ स्वयं एक दुःख है, वहाँ उसी में उसके निराकरण की ओषधि भी छिपी पड़ी है। वे "विषस्य विषमौषधम्" के पक्षपाती हैं। वे कहते हैं—

"दीनता और अपमानजनक बातें पैने काँटे की तरह चुभती हैं और वे क्रोध को उत्पन्न करती हैं। कौन नहीं जानता, आत्मीय जनों के क्लेश, पुत्र-कलत्र के दुःख भी किसी दीन आदमी के हृदय को व्यथित कर उसे 'सफलता प्राप्त करूँगा या प्राण ही खोकर रहूँगा' के मार्ग पर अग्रसर कर देते हैं। फिर पुराने सुखों का स्मरण भी वर्तमान दुःखों का उन्मूलन करने के लिए ओषधि का काम देता है। साथ ही दुःख में प्रतिदिन की मानहानि किसे दुःख-नाश में अग्रसर नहीं करती ?" वे तो यहाँ तक कहते हैं कि दुःख-माला ही दुःखों की चिकित्सा है। वही सब कुछ करने-धरने के लिए मनुष्य को मजबूर कर देती है। देखिए, उनके अपने वचन इस प्रकार हैं—

तथापि वक्तुं व्यवसाययन्ति मां,
निरस्तनारीसमया दुराधयः।
द्विषन्निमित्ता यदियं दशा ततः,
समूलमुन्मूलयतीव मे मनः॥

यही कारण है कि उन्होंने द्रौपदी के मुँह से सब-कुछ कहलाकर यह सिद्ध कर दिया है कि दुःख स्वयं दुःख की ओषधि है ; क्योंकि वह मनुष्य को उसके स्टैंडर्ड के अनुसार सब कुछ सोचने और करने-धरने को उत्तेजित कर देता है।

क्या भारवि के ये अमूल्य उपदेश यथासमय आनेवाले दुःख-दर्द की सच्ची चिकित्सा नहीं हैं ? क्या दीन और पतित जातियों के लिए सदुपदेश नहीं हैं ? क्या दुःख की समाधानात्मक सुन्दर व्याख्या नहीं हैं ? साथ ही जिस दुखी हृदय में मान का नाम-मात्र भी अस्तित्व है, उसके लिए क्या ये वाक्य महोत्सव का काम नहीं देते ?

२. भारवि के शब्दों में निःसन्देह दीनता और दुःख एक मानी की दृष्टि में युद्धोद्योग के लिए महोत्सव है ; परन्तु वे यह भी कहते हैं कि युद्धोद्योग में सफलता के भी कुछ विशेष उपाय हैं। उनके मतानुसार वे ये हैं—

अ. उपेक्षा का सर्वथा अभाव
ब. उत्साह
स. स्व-पौरुष (स्वावलम्बन)

किन्तु वे इन्हें केवल शरीर और हृदय की वस्तु समझते हैं। इसलिए इनके साथ वे मस्तिष्क, चरित्र और अनुभव का योग देखना पसन्द करते हैं। इसीलिए वे निम्नांकित तत्त्वों पर ज़ोर देते हैं—

क. १. विचार-विवेक
२. संयम
३. नीति
ख. १. धैर्य
२. क्षमा
३. साहस
ग. १. संगठन
२. संचालन
३. उत्पादन

बस, उक्त हृदय-सम्बन्धी तत्त्वों के साथ मस्तिष्क चरित्र और अनुभव-सम्बन्धी तत्त्व ही मनुष्य को सफलता की ओर ले जानेवाले हैं। हम देखते हैं, जो जातियाँ इनकी परवा नहीं करतीं और केवल शारीरिक बल और हृदय की भावनाओं से ही उत्तेजित होकर अनिश्चित सिद्धि के पीछे पड़ती हैं, वे अपना सर्वनाश कर बैठती हैं। देखिए, डिक्टेटरों के डिक्टेटर भारवि अपने अपार पाण्डित्य और अनुभव का परिचय कितने अच्छे शब्दों में देते हैं—

---

* इसका प्रसंगोपात्त आंशिक उल्लेख पहले भी हुआ है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मतिमान्विनयप्रमाथिनः [1]मुपेक्षेत समुन्नतिं द्विषः।
सुजयः खलु तादृगन्तरे विपदन्ता ह्यविनीतसम्पदः॥

अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष विनय-हीन शत्रु की वृद्धि की उपेक्षा करे; क्योंकि दुर्विनीत शत्रु समय पाकर अनायास ही जीत सकने योग्य हो जाता है। परन्तु वे यह भी कहते हैं कि ऐसे सुनिश्चित समय को विवेकशील, नीतिज्ञ, संयमी, उत्साही और पराक्रमशील मनुष्य ही ठीक तरह समझ सकता और वही उससे लाभ भी उठा सकता है।

३. भारवि ने राजनीतिक बुद्धिमत्ता-विषयक सम्राट् सुयोधन का एक क्रियात्मक प्रयोग संसार के सामने रक्खा है। यह निम्नलिखित दो भागों में विभक्त है—

१. राजनीति-प्रधान

२. व्यक्तित्व-प्रधान

इन दोनों का विश्लेषण क्रमशः इस प्रकार है—

१. क. सुयोधन की दृष्टि में पृथ्वी को जीतने का एकमात्र उपाय राजनीति ही है, इसीलिए वह इसी से संसार पर विजय चाहता है।

ख. सुयोधन के विचार में उद्योग ही सब कुछ है।

ग. वह धर्म, अर्थ और काम में समन्वय और सामंजस्य की स्थापना का पक्षपाती है।

घ. उसकी राजनीति में सफलता का मुख्य कारण सदुपाय है।

ङ. उसका वशीकरण मन्त्र प्रधानतः युद्ध नहीं, अपितु सशस्त्र प्रभाव है।

२. क. सुयोधन भृत्यों के साथ मैत्री, मित्रों के साथ बन्धु-भाव और बन्धुओं के साथ आत्म-भाव चाहता है और इसी पर चलता भी है।

ख. वह दुष्ट की मैत्री की अपेक्षा महात्मा की शत्रुता को पसंद करता है; क्योंकि इसमें उसका स्टैंडर्ड कुछ ऊँचा ही रहता है।

ग. उसकी नीति में प्रिय-भाषण, दान और सत्कार का एक दूसरे के साथ सम्बन्ध है।

घ. उसकी कृतज्ञता की सीमा प्रिय-वचन नहीं, अपितु प्रीति-दान है।

ङ. उसकी इच्छा केवल कार्य-सिद्धि ही है।

३. सफलता का सच्चा उपाय

महाभारत-कालीन इतिहास हमें बताता है कि सुयोधन अपने इस क्रियात्मक राजनीतिक उद्योग में असफल रहा है, और इसका कारण भारवि और अन्यान्य इतिहासकारों के शब्दों में उसकी दुर्नीति-परायणता ही है। सारांश यह कि उसकी राजनीति तमःप्रधान और रजःप्रधान थी, न कि सत्त्व-गुणप्रधान, जब कि मुख्यतः राजनीतिक विजय में भी केवल सत्त्व-बल प्रधान नीति की ही आवश्यकता रहती है। कम से कम वह शुद्ध रजःप्रधान तो हो। यही कारण है कि सुयोधन किसी दृष्टि से अद्वितीय राजनीतिक और अनन्त वैयक्तिक शक्तियों का स्वामी होता हुआ भी अपनी सफलता का अधिक उपभोग न कर सका। इसका एक कारण यह भी था कि वह अपनी दुर्वृत्ति के कारण ईश्वरदत्त उच्च व्यक्तित्व और राजनीतिक सिद्धान्तों का सफल और निर्दोष-पूर्ण पूर्ण परीक्षण भी न कर सका और यह इसलिए भी कि वह प्रायः उत्तरोत्तर अपने सिद्धान्तों का दुरुपयोग ही करता रहा। इस तरह दुर्योधन के उदाहरण के सहारे भारवि ने भूले-भटके संसार को बता दिया कि—

१. राजनीतिक उच्च आदर्श क्या है?

२. उनके लिए कैसे उच्च व्यक्तित्व और व्यवहार की आवश्यकता है।

३. साथ ही उनके सदुपयोग के लिए सत्त्व-प्रधान वातावरण भी अनिवार्य आवश्यक वस्तु है, विशेषतः सत्त्व-प्रधान अन्तःकरण।

४. सफलता और अनुपात-ज्ञान

यहाँ यह कह देना भी उचित प्रतीत होता है कि भारवि की दृष्टि में जय-पराजय का कारण बलाबल का अनुपात-ज्ञान (Sense of proportion) ही है। इस दृष्टि से जिसमें बल-जन्य और सफलता-उत्पादक उपादान अधिक होते हैं, अन्त में वही विजयी भी होता है, विशेषतः यह प्रकरण तो इस बात का समधिक स्पष्टीकरण है; क्योंकि इसमें भौतिक साधनों के कम

---

१. इसमें "मतिमान्" शब्द की ओर ही मुख्यतः कवि का संकेत है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहते हुए भी श्रीकृष्ण की नीतिज्ञता के कारण युधिष्ठिर का ही पलड़ा भारी रहा है। इसका प्रमाण श्रीकृष्ण के निम्नलिखित शब्द हैं—

"नीतिरस्मि जिगीषताम्"

अर्थात् हे अर्जुन, जीतने की इच्छा रखनेवालों की नीति मेरा स्वरूप है। मैं स्वयं नीति हूँ। भारवि ने भी उच्च शब्दों में इसी की क्रियात्मकता पर ज़ोर दिया है। इन सब बातों के साथ ही किरात का सम्पूर्ण पाठ जय-विजय के इन प्रश्नों पर ज़ोर देता है—

१. राजनीतिक क्रिया-कलाप में शत्रु-मित्र के सफलता-उत्पादक बलाबल को समझकर उद्योग करना।

२. उद्योग की प्रक्रिया का सफलता-पूर्वक संचालन करना।

३. असफलता के विघ्नों के निवारण की शक्ति रखना।

४. सफलता के साधनों का पूर्ण जुटाव होना।

५. फल की सन्तति की रक्षा करना।

इसके सिवा संधि-सम्बन्धी तत्त्वों का आवश्यक और समयानुकूल सफल क्रियात्मक प्रयत्न भी युद्ध और विजय का प्रधान कारण है। इस पर भी भारवि ने पूरा ज़ोर दिया है। उन्होंने कहा है—

विषमोपि विगाह्यते नयः कृततीर्थः पयसामिवाशयः।
स तु तत्र विशेषदुर्ल्लभः सदुपन्यस्यति कृत्यवर्त्म यः॥

५. गुण-प्रधान राजनीति

भारवि के किरातार्जुनीय में तमःप्रधान, रजःप्रधान और सत्त्व-प्रधान राजनीति के ऐसे असंख्य तत्त्व भरे पड़े हैं, जिनसे व्यष्टि-समष्टि हितकारी अनेक गुणात्मक राजनीतिक सारणियाँ बनाई जा सकती हैं। निदर्शन के लिए यहाँ तीन गुण-प्रधान सारणियाँ दी जाती हैं—

१—तमःप्रधान

१. कृतज्ञता-जन्य प्रीति के स्थान में हिंसा।

२. महत्त्व-संघर्ष में महत्त्व की आशा के स्थान में आत्म-घातकता।

३. सूक्ष्म निरीक्षण के स्थान में बल-प्रयोग।

४. सात्त्विक बल के स्थान में तामसिक बल।

५. हृदय और मस्तिष्क के उपयोग के स्थान में दोनों का दुरुपयोग।

२—रजःप्रधान

१. कृतज्ञता-जन्य प्रीति के स्थान में घोर कृतघ्नता।

२. महत्त्व के संघर्ष में महत्त्व की आशा के स्थान में सत्तत्त्व का नाश।

३. सूक्ष्म निरीक्षण के स्थान में स्थूल दृष्टि।

४. सत्त्व-बल के स्थान में राजसिक बल की महिमा।

५. हृदय और मस्तिष्क के स्थान में केवल हृदय का दुरुपयोग।

३—सत्त्व-प्रधान

१. कृतज्ञता-जन्य प्रीति के स्थान में आत्म-बलिदान।

२. महत्त्व के संघर्ष में सत्त्व की प्राप्ति के स्थान में सत्त्व की वृद्धि।

३. सूक्ष्म परीक्षण के स्थान में आत्म-निरीक्षण।

४. सात्त्विक बल के स्थान में आत्म-बल।

५. हृदय और मस्तिष्क के स्थान में विकासोन्मुख अहिंसात्मक सत्य-बल।

उल्लिखित तीनों सारणियाँ समधिक स्पष्ट हैं। उन पर कुछ भी लिखना व्यर्थ है।

(स) कवि-व्यक्तित्व-विषयक विवेचना

प्रत्येक ग्रन्थ की वास्तविकता का पूरा पता उसके कर्त्ता के व्यक्तित्व से मालूम होता है, इसीलिए यहाँ हम महाकवि भारवि के व्यक्तित्व के विषय में नीचे लिखे शीर्षकों के सहारे कुछ विचार करेंगे—

१. व्यक्तित्व
२. राज-गुरुत्व
३. स्त्री-समाज
४. कृष्ण और गीता
५. नीति-तत्त्व
६. पात्रता
७. अर्जुन की पात्रता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१. व्यक्तित्व

भारवि के किरात में हमें उनकी व्यक्तित्व-विषयक निम्नलिखित उपयोगी बातें मिलती हैं—

भारवि की मनोवृत्ति में उठने के लिए तड़प है। कुचले जाने की तकलीफ़ है। दीनता और पराधीनता को न सह सकने की एक प्रबल प्रतिक्रिया है। अपने विरोधी वातावरण को नष्ट-भ्रष्ट करने की सदिच्छा है। अन्याय-जन्य दीन मनोवृत्ति के उन्मूलन की प्रवृत्ति है। न मिटनेवाली आह है, कसक है, जो कुछ से कुछ बन जाने और सफलता पाने के लिए मनुष्य को उत्तेजित करती है।

साथ ही उसमें अदम्य उत्साह है। राज्य और राजनीति का गम्भीर ज्ञान है। बलाबल के परीक्षण की सच्ची कसौटी है। शौर्य और पराक्रम की धुआँधार आँधी है। वीरोचित अन्तःकरण की आग है, जो शत्रु-संसार को बिना जलाये बुझनेवाली नहीं। परन्तु फिर भी दूरदर्शिता, विवेक, सहिष्णुता आदि तत्त्व भी हैं, जो सफलता की सफलता के भी सार हैं।

किन्तु उसमें इनसे भी बढ़कर कुछ और है, और वह है हृदय का प्रबल वेग, मस्तिष्क का अद्भुत चमत्कार और चरित्र का लोकोत्तर स्वरूप, जो गिरी हुई जाति को उठाने, कर्म-भूमि के मुख को उज्ज्वल करने, भोग-भूमि को नष्ट करने, पाशविक और पैशाचिक वृत्ति का उन्मूलन करने और धर्म-राज्य का स्थापित करनेवाला है।

किरात में एक ऐसे शासक की कल्पना भी है, जो परिस्थिति से पूर्ण अभिज्ञ है, जिसके पास सच्चा क्रियात्मक हृदय और मस्तिष्क है, जो समय से पहले उबलनेवाला है, न कि समय के पीछे रोनेवाला, और जिसका व्यक्तित्व सफलता की गारंटी, विजय की प्रतिज्ञा और मनोकामना का सदर्थ है, जिसमें अपूर्व निर्माण की शक्ति है, उत्तेजना की आँधी है, जिसमें अनेक दुःख-दर्द अपने विराट् रूप में दिखाई देता है, जो कि स्वयं अपनी औषधि है।

साथ ही इसमें प्रफुल्लित करनेवाला गुरुजनों का आशीर्वाद भी है। परन्तु इसमें परस्पर-विरोधी तत्त्व भी हैं, किन्तु वे सबके सब आवश्यक और एक दूसरे के साधक हैं, न कि बाधक। इन सब बातों के सिवा इसमें मूल को दृढ़ करनेवाला ऐक्य है, संगठन है, और इनमें यदि कहीं विरोध है, तो वह जीवन की क्रिया-प्रतिक्रिया है, न कि कुछ और।

२. राज-गुरुत्व

महाकवि भारवि वस्तुतः स्वभाव से ही राजनीतिज्ञ और शासक अपितु राज-गुरु मालूम होते हैं। समस्त किरात में नृपोचित और शासकोचित असंख्य उपदेश भरे पड़े हैं। उनमें से कुछ राजोचित, साधारण, किंतु आवश्यक निम्नलिखित हैं—

१. नीति-धर्म-पुरस्सर राजा को राज-लक्ष्मी कभी नहीं छोड़ती।

२. जो राजा न्याय-मार्ग में सुत और शत्रु की परवा नहीं करता, वही राज्य का अधिकारी हो सकता है।

३. कृतज्ञता भी राजा का एक आवश्यक गुण है।

४. प्रजा-सेवा-तत्पर राजा को राज्य-लक्ष्मी बिना यत्न के अपने आप प्राप्त होती है।

५. राजा को अनर्थ की प्राप्ति अपने ही दोषों से होती है।

६. सद्विचार बालक से भी ग्रहण करने चाहिए।

७. राज्य-लाभ से यशोलाभ बड़ी वस्तु है।

८. मान-हानि प्राण-त्याग से बढ़कर है।

९. राजा को पूर्ण विचार के बाद ही किसी कार्य में प्रवृत्त होना चाहिए।

१०. राजा को क्रोध का नाश विवेक से करना चाहिए।

११. दुर्विनीत राजा की सम्पदा अन्त में विपदा ही हो जाती है।

३. स्त्री-समाज

भारवि के व्यक्तित्व में एक विचित्र बात यह भी है कि वे पुरुष के साथ स्त्री-समाज को भी रखते हैं। वे एक पहिए के शकट को चलाना नहीं चाहते। वे स्त्रियों को अबला देखना पसन्द नहीं करते। देखिए, उनकी द्रौपदी शौर्य, उत्साह, साहस और समयोचित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आनन्द उद्बोध

श्रीअयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध"

चौपदे

जलधि के नील कलेवर को
सुनहला बसन पिन्हाता है।
दिवाकर का कर जब उसमें
जागती ज्योति जगाता है। १।

छलकती बूँद जब उसकी
मंजु मोती बन जाती हैं।
जब सुधा धवल बनाने को
चाँदनी रातें आती हैं। २।

सरस धाराएँ सरिता की
सुनातीं अपना कल-कल रव।
मनाती हैं जब राका में
दीपमाला - जैसा उत्सव। ४।

शरद में जब सर शोभित हो
मानसरवर बन जाता है।
कमलमाला जब अलिमाला
हंस मालाएँ पाता है। ६।

उड़ा छींटे क्षिति-अंचल में
कान्त मुक्तावलि भरता है।
किसी उत्साहित जन - जैसा
उत्स जब उत्सव करता है। ८।

ललकते दृगवालों को तब
कौन उल्लसित बनाता है।
कौन उमँगे जन मानस को
बहु-तरंगित कर पाता है। ३।

नाचने लगती हैं लहरें
चन्द्र-प्रतिबिम्बों को जब ले।
कौन तब उर-मन्दिर में आ
बजाता है मंजुल मुरली। ५।

सलिल जब ले इनकी छाया
ललित लीलामय बनता है।
कौन तब आ वितान अपना
मुग्ध जन मन में तनता है। ७।

मुकुर मंजुल गिरते जल में
दिव्य दृश्यों को दर्शित कर।
उस समय दर्शक के दृग में
कौन ललकें देता है भर। ९।

मिले सौंदर्य मलय - मारुत
कुसुम कोरक-सा है खिलता।
कौन-सा है वह रम्य स्थल
जहाँ आनन्द नहीं मिलता। १०।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

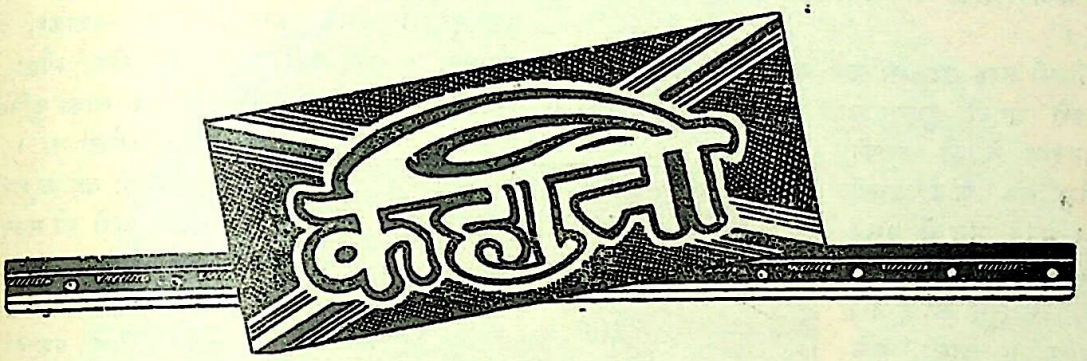

काली बाबू

श्री० 'पहाड़ी'

काली को अब दुनिया की परवा नहीं है। वह कहीं भी टिक और रह सकता है। आदमी के दुतकारने पर उसे लाज नहीं लगती है, न उसे अपना ही कोई ख़ास ख़्याल है। पहले जिन बातों को सुनकर, आत्म-सम्मान की भावना से उसकी आँखों में ग़ुस्सा भर जाता था, अब वह सब कुछ भुला चुका है। उसे कोई गाली दे दे, अपने में ही गुनगुनाता खिसियाकर चला जायगा और दस-पन्द्रह क़दम आगे बढ़ चुपके से कहेगा—"सुअर कहीं का।" फिर एक बार सोच-समझ, अपराधी की तरह, वह अपने चारों ओर देख लेगा कि कोई सुन तो नहीं रहा है। इतना वह भी अभी नहीं भूला।

आजकल वह स्कूली लड़कों के एक लॉज में बेकार पड़ा है। कुछ काम नहीं। एक बीड़ी का बंडल और माचिस की डिबिया चाहिए। बस, दिन भर बीड़ी फूँका करता है। लॉज से बाहर कभी नहीं निकलता। वे सब लड़के एक ढाबे में खाना खाते हैं। काली भी वहीं उधार-खाते पर खाता है। आजकल तो उसे वहाँ जाने की हिम्मत नहीं पड़ती कि कहीं वह ढाबेवाला अपने पैसे का तक़ाज़ा न कर बैठे। और उससे भी ज़्यादा डर है, पास की सिगरेट-पान की दूकानवाले का। उसने काली को एक दिन ढाबे से लौटते वक़्त पकड़ लिया था। लुच्चों की तरह उसका हाथ पकड़, बोला था—"बाबूजी, पैसे दे दीजिए, नहीं तो....."

"कल मिल जायँगे"—काली ने चुपके से समझाया।

"तीसरा महीना चल रहा है। अब कल-वल नहीं होगा बाबू! समझे?"

काली ने बनावटी ग़ुस्से में कहा—"अबे हम शरीफ़ आदमी हैं। कुछ समझता भी है?"

लेकिन दूकानदार माननेवाला थोड़े ही था। क़मीज़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पकड़े रहा, हल्ला मचाया—"बड़े शरीफ़ज़ादे हैं। पैसा न देना पड़े, सड़क कतरा-कतरा कर चलते हैं। ऐसी अकड़ है तो हिसाब साफ़ कर दो।"

एक बड़ी भीड़ जमा हो गई थी। मामला बढ़ते देख, काली ने शान्ति-पूर्वक, धीरज दिलाते कहा—"आज—कल में मनीऑर्डर आनेवाला है, सब हिसाब चुकता कर दूँगा।"

किसी तरह छुटकारा पा, काली जब 'लॉज' पहुँचा तो उसे अपनी दुर्दशा पर बहुत अफ़सोस हुआ। दूकानदार ने तो उसकी क़मीज़ तक फाड़ डाली थी। अपने मन में उसने सोचा—"हरामज़ादे का एक दिन ख़ून कर दूँगा। क्या होगा, फाँसी! मुझे अब कोई भी डर नहीं है। साला, सरेआम पैसे माँगता था, जैसे मैं उसकी रक़म मार ही लूँगा। मुझे बेईमान समझता है। अक़्ल ठिकाने कर दूँगा, करता फिरेगा चीं-चपड़!"

लेखक

ईमानदार बनने की हवस कैसे पूरी हो! पैसा होता तो वह मुँह पर पटक, हज़ारों गालियाँ और धमकियाँ जाकर सुनाता। वह रास्ता अब हमेशा के लिए बन्द हो चुका था। साथ ही ढाबे में भी खाना खाने वह नहीं जा सकता। भूखा पड़ा रहना उसे मंज़ूर है। अपनी तौहीन अधिक नहीं देखी जाती। बस, वह लौटकर पड़ रहा। जब स्कूल से लड़के चले आये तो वह एक से बोला—"मिस्टर, एक बीड़ी होगी!"

बीड़ी मिल गई, उसने सुलगा ली। मन में ही तमाम आदमियों को मारने की बात सोचता रहा। सब एक-से हैं, कोई किसी का भी एतबार नहीं करता। नहीं जानते, काली को आज न सही, कल तो नौकरी मिल ही जायगी, तब अपनी तनख़्वाह से वह सबका हिसाब चुका देगा। काली कोई साधारण दर्जे का मज़दूर थोड़े ही है। वह मैट्रिक पास है। उसने प्रथम-श्रेणी में मैट्रिक पास किया था। उससे भी नालायक़ लड़के आज अच्छे-अच्छे ओहदों पर हैं। उसे किसी ने नहीं पूछा। उसके आगे ढोल बजा-बजाकर, रास्ता बतानेवाला कोई नहीं था। उसे ठीक मौक़ा और अवसर नहीं मिला। उसने ठोकरें खा-खाकर दुनिया का रास्ता टटोला था। छोटी उम्र से ही वह ट्यूशनों पर गुज़ारा करने को मजबूर हो गया था।

लड़कों के इम्तहान हो गये। सब एक-एक कर जा रहे हैं। वे थोड़ा पैसा जेब-ख़र्च के लिए उसे देते थे। दो महीने अब वह भी नहीं मिलेगा। लेकिन वह कहीं नहीं जायगा। यहीं पड़ा रहेगा। एक खुला ग़ुसलख़ाना है और एक कोठरी। बहुत जगह है। दिन को ग़ुसलख़ाना ठंडा रहता है। रात को वह कोठरी में ही पड़ रहा करेगा। किसी तरह दिन तो काटने ही हैं। कहीं नहीं जायगा। नहीं, नहीं जायगा। दुनिया भर के आदमियों से उसे नफ़रत हो गई है। वह किसी का मुँह देखना नहीं चाहता, सब एक ही से हैं। किसी को उसकी फ़िक्र नहीं है। वह भी किसी का मुँह देखना पसन्द नहीं करता। न किसी के आगे अब वह हाथ पसारेगा। वह उन बदमाशों को ख़ूब फटकारना भी चाहता है। वे दुनिया को लूट रहे हैं। सब सभ्य हैं, और असभ्य है केवल काली—वह बेकार जो है!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अर्चना

[चित्रकर्त्री—श्रीमती शान्तिदेवी]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसके पास पैसा नहीं, रहने को घर नहीं, खाना भी नसीब नहीं होता। वह पानी पी-पीकर अपना गुज़ारा करेगा और लॉज से बाहर जाने का कभी नाम भी न लेगा।

लड़कों ने जाने से पहले काली को कुछ पैसे दिये थे। तीन दिन तक काली उन पैसों को गिनता रहा। भारी आलस्य और अपमान की वजह से उसे लॉज से बाहर जाने का उत्साह नहीं रहा। भूखा वहीं का वहीं पड़ा रहा। वह उन पैसों से ऐसी तदबीर निकालना चाहता था कि एक बड़ा आदमी बन सके। काली को याद आया कि बचपन में एक सेठजी ने उसे बड़ी-बड़ी उम्मीदें बँधाई थीं। फिर वहाँ ही क्यों नहीं चला जाय? शायद वे कहीं काली को ठिकाने से लगा दें। सेठजी बड़े दयालु थे। उनके कई प्याऊ थे, धर्मशालाएँ थीं। रोज़ उनके दरवाज़े पर हज़ारों फ़क़ीर जीमते थे। स्कूल के एक जल्से में वे आये थे। हेडमास्टर साहब ने काली की तारीफ़ की थी। सेठजी ने उससे हाथ मिलाकर समय पर सहायता देने का वचन दिया था। सेठजी के कई मिलें हैं, कारख़ाने हैं। भारी धीरज उसे हुआ। उसने पैसे गिने, लॉरी के किराये के लिए पूरे थे। फिर गिने, बीड़ी और माचिस के लिए तीन पैसे बच जाते थे। चौथे दिन वह ग्यारह बजे 'लॉरी स्टैण्ड' पर पहुँचा। मई की दुपहरिया, काली ने तीन रोज़ से खाना नहीं खाया था। लू, गरम हवा के झोंके, बीच-बीच में धूल उड़ा, लॉरी को ढक लेते थे। वह बार-बार गरदन के पीछे-वाली हड्डी को हाथ से टटोलता जाता था कि कहीं वह पिघल तो नहीं गई है। नाक, मुँह, आँख, सब गरम हवा से झुलस चुके थे। अब काली ने समझा कि हिन्दुस्तान बहुत गरम देश है। फिर भी वहाँ किसान काम करते हैं। अपनी कोई हिफ़ाज़त की चाह भी उसे नहीं थी। समझ लिया कि लू लग जायगी। वह मरेगा।

लॉरी से चालीस मील का सफ़र तय कर, वह सेठजी के बँगले पर पहुँचा। एक नैपाली सिपाही बन्दूक़ लिये पहरा दे रहा था। चारों ओर ख़स की टट्टियाँ लगी थीं। नौकर उन पर पानी छिड़क रहे थे। वह बाहर बैठा रहा। भूख लगी थी, प्यास भी। उसने नल से ख़ूब पानी पिया और बाहर चबूतरे पर नीम के पेड़ के नीचे बैठ गया।

लेकिन काली को नौकरी नहीं मिली। सेठजी को वह पुरानी बात याद नहीं रह गई थी। वह उसे पहचान नहीं सके। उसने बेकार बहुत याद दिलाने की कोशिश की। उनके पास रोज़ हज़ारों आदमी आते हैं। उसने फिर कहा कि वह अपने सब पैसे ख़तम कर, एक आख़िरी आशा से आया है। सेठजी नहीं पिघले। मुनीमजी ने चार आने पैसे फेंकते हुए कहा—"भाग जाओ बाबू।"

काली कैसे समझ लेता कि नौकरी नहीं है। नहीं है, तो क्या वह ज़िन्दगी भर, इसी तरह मारा-मारा फिरेगा? नहीं! नहीं!! सेठजी नौकरी दे सकते हैं। उनको देनी चाहिए। वे चार आने पैसे वहीं फ़र्श पर पड़े रहे। उसने एक बार उनको देखकर भारी शब्दों में कहा—"सेठजी।"

तब सेठजी अपने नये 'मिलिटरी' के ठेके की बातें कर रहे थे। वह चुपचाप सुनता रहा। फिर सेठजी ने अपने नये ठेके की भीतरी छिपी करतूतों का बखान किया। उनके कहने के ढंग के भीतर एक भारी व्यंग था। हज़ारों रुपयों का वह ठेका सेठजी ने लिया है। शायद उसी के लिए चार आने पैसे दान करते उनको कुछ भी हिचक नहीं हुई। सेठजी सुना रहे थे, चर्चा चालू थी—कितना रुपया साहब को भेंट करना पड़ा, कितना बाबू लोगों को। काम निकालने के लिए कितना झूठ बोलना पड़ता है और कितना धोखा देना ज़रूरी है। सब कुछ सुनाते-सुनाते बीच-बीच में वह हँसते थे।

सुन्दर रेशमी अँगोछा पहने एक साधु ताँगे से उतरे। हाथ में भीख माँगने का काला कमण्डलु था। उसकी मूठ सफ़ेद हाथीदाँत की बनी हुई थी। ख़ूब मोटे, ताज़े और तगड़े थे। सेठजी उनको देखकर उठे, चरणों की धूल लेते हुए बोले—आइए महाराज। बहुत दिनों में दर्शन दिये।

स्वामीजी बैठ गये। काली ने महात्माजी पर एक निगाह डाली। एक बड़ा हवन होनेवाला था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेठजी ने मुनीम से पचास रुपये देने को कहा। मुनीमजी ने दस-दस रुपये के पाँच नोट दे दिये।

काली ने सोचा, एक आदमी भूखों मर रहा है। उसका कोई सहारा नहीं। और दूसरा.....। सारा धर्म-कर्म व्यर्थ लगा। फिर उसने निश्चय किया कि वह भी फ़क़ीर बनेगा। यह तरकीब ठीक है। फिर स्वामी और महात्मा बनते देर नहीं लगेगी। दुनिया उसकी पूजा करेगी। वह भी भण्डारा खोलेगा और दुनिया भर के रईसों को इसी तरह लूटेगा। उसने सेठजी की ओर एक क्रूर दृष्टि डाली, चला आया। रास्ते में कहा—धोखेबाज़! पाजी!!

अब काली क्या करेगा। पढ़-लिखकर उसने क्या पाया? वह एक दल स्थापित कर, लूट-मार मचा, सब रुपया इन अर्थपिशाचों से छीन लेगा। अपने-जैसे बेकारों को जमा करेगा। यह आख़िरी ज़रिया है। जेल होगी, जेल जायगा। वहाँ भोजन-वस्त्र तो कम से कम बँधा हुआ मिलता है। उसका वह दल देश भर में फैल, काम करेगा। सबको रोटी मिलेगी और उनके रोज़गार का इन्तज़ाम किया जायगा। यह मौजूदा सरकार तो कुछ भी नहीं कर पा रही है। वह स्वस्थ वातावरण फैलाकर, सारे इस विद्रोह को अलग हटाने की कोशिश करेगा। तब किसी को भी इतनी कठिनाइयाँ नहीं रह जायँगी। फिर सोचा, पागल कहीं का! एक पैसा पास नहीं, सोने का ठिकाना नहीं, खाना तीन रोज़ से नसीब नहीं, और मैं बनूँगा दल का नेता! बिना खाये-पिये उस दल का संचालन होगा! हा-हा-हा! वह ठहाका मारकर हँस पड़ा। अपनी इस बेवक़ूफ़ी पर उसे ख़ूब हँसी आई।

इतने में पीछे से किसी ने कहा—'बाबू, अन्धे हो क्या?'

एक इक्का पास से गुज़रकर आगे बढ़ गया। काली ने आँखें फ़ाड़-फ़ाड़ चारों ओर देखा। सब कुछ साफ़-साफ़ वह देख रहा था। वह अंधा तो नहीं है। यह एक झूठा सन्देह इक्केवाले ने उसके मन में पैदा कर दिया था। नहीं, वह अन्धा है, अपाहिज है, पंगु है। कारण, उसके पास पैसा नहीं, वह ज़रूर अंधा है। आँखवालों के पास बड़ा मकान, बैंक में हिसाब और मोटर होती है। उसके पास तो कानी कौड़ी भी नहीं है। अच्छा, तो भूख फिर क्यों लगती है? कितना ही पेट को वह समझाता है कि फ़िलहाल कोई भी ठीक-सा इन्तज़ाम नहीं होने का। पर वह लाइलाज मर्ज़ है। कितना ही समाधान क्यों न कर ले, भूख बढ़ती ही जाती है। पास पानी का नल था। सोचा, पेट इसी से भरा जाय। और नल के पास कुछ खाना भी तो पड़ा है। पर जूठन वह नहीं खायगा। पानी पी सकता है। पानी उसने ख़ूब पी लिया। पेट को हिला-हिलाकर अन्दाज़ लगाया कि मशक की तरह वह कितना भर गया है।

चारों ओर कोठियाँ ही कोठियाँ थीं। वह चला जा रहा था। कोठियों में किसी के बाहर लिखा था 'वाटिका', किसी के बाहर 'कुञ्ज' और किसी-किसी के बाहर अफ़सरान के नामों की तख़्तियाँ लटकी हुई थीं। एक पर उसकी आँखें अटकीं। पढ़ा—काशीनाथ अग्रवाल।

तो यह वही मैट्रिक में उसके साथ पढ़नेवाला खुर्जेवाला काशीनाथ तो नहीं है। बहुत बड़ी उम्मेद हो आई। वह दौड़ा-दौड़ा भीतर पहुँचा। तपाक से एक लड़के से पूछा—'खुर्जावाला काशीनाथ यहीं रहता है?'

उसकी बड़ी दाढ़ी, अजीब सूरत और पहनावा देखकर, लड़का भागा-भागा बैडमिंटन कोर्ट में पहुँचा। हाँफता हुआ बोला—'ममी, फाटक के भीतर एक पागल घुस गया है।'

काली ने देखा, दो युवतियाँ और एक मर्द खेल रहे थे। वह आदमी वही स्कूलवाला काशीनाथ था। ठीक उसने पहचान लिया था। तपाक से आगे बढ़कर वह बोला—'अबे काशी, क्या ठाठ हो रहे हैं?'

इतने में माली ने उसकी गरदन पकड़ ली और फाटक के बाहर निकाल दिया। दूर ढकेलता हुआ बोला—'बदमाश, चोरी करने आया था।'

काली ने सोचा, वह इसका भी एक दिन ख़ून करेगा। क्या होगा, फाँसी। वह मरने को तैयार है। सबका एक साथ ख़ून करेगा। वह बदमाश है और सारी दुनिया शरीफ़। वह सब शरीफ़ों को नेस्तनाबूद कर देगा। उसकी आँखों के आगे अँधेरा छाने लगा। एक नीम के पेड़ के सहारे वह खड़ा हुआ आप ही आप बड़बड़ाता

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहा—सब साले 'ईडियट' हैं। मुझे नहीं पहचानते।

ख़याल आया कि उसे अपने शहर पहुँचना है। बीड़ी की तलब उठी। एक ओर 'फुटपाथ' पर पड़ी बीड़ी उसने उठा ली। सुलगावे कैसे। सामने एक साहब साइकिल पर जा रहे थे। वह ज़ोर से बोला—'ओ मिस्टर, माचिस होगी ?'

वे भले आदमी काली बाबू के लिए दियासलाई की डिबिया फेंक, अपना पीछा छुड़ा कर भागे। अब उसने इतमीनान से बीड़ी सुलगा ली। फूँकता हुआ बोला—'हम क्या लाट साहब से कम हैं।' सीना खोलकर, अकड़-अकड़कर चलने लगा।

आगे उसने देखा—बहुत-से भिखारी भीख माँग रहे थे। कोई एक टाँग उठाये, किसी ने आँखें मूँद ली थीं। कोई भगवान् के नाम पर आशीर्वाद देता पैसे के लिए हाथ पसारे था। अजीब-अजीब स्वाँग देखकर काली बाबू को बड़ी हँसी आई। उसने सोचा—ये सब साले अभागे हैं। ग़रीब हैं। इसी तरह गुज़ारा करते हैं। भले आदमी भीख नहीं माँगते। ये सब हैं—लुच्चे! डाकू !! दुनिया को ठग रहे हैं। इनसे क्या मज़दूरी नहीं हो सकती ?

आगे बढ़ वह लारी में चढ़ा। अपने शहर पहुँचना ज़रूरी है। दूसरों अनजानों का यह शहर उसे अच्छा नहीं लगा। यहाँ काली बाबू को कोई नहीं जानता। उसके शहर के बच्चे-बच्चे उसे पहचानते हैं। लारी चल रही थी। शाम हो गई। वह सो गया था।

'मिस्टर।'

काली ने आँखें खोलीं।

'किराया।'

'हमारे पास एक पैसा भी नहीं है।'—झुँझलाकर वह बोला।

'तब चढ़े क्यों थे ?'

'हमारे मन की बात थी। ले अब उतरे जाते हैं तू भले आदमियों की इज़्ज़त करना तक नहीं जानता।' काली बाबू उतर पड़े।

लारीवाले ने हाथ पकड़कर कहा—'पुलीस देखी है ?'

काली को चढ़ा ग़ुस्सा। कहा—'साले तेरे बाप की लारी है, जो इतना इतरा रहा है।'

कुछ भी वसूल होने की उम्मेद न होने पर, चार धौल काली बाबू के रसीदकर वह चला गया। काली आगे बढ़ा। चुङ्गी के पास वह उतारा गया था। शहर एक मील दूर था। वह तेज़ चाल से आगे बढ़ने लगा। फिर दौड़ता-दौड़ता शहर पहुँचा। अपने पान-वाले की दूकान पर आकर बोला—'एक 'पार्सिंग शो' सिगरेट देना।'

दूकान पर नौकर बैठा हुआ था। उसने सिगरेट दी। इतमीनान से उसे सुलगाकर वह बोला—'काली बाबू के हिसाब में लिखवा देना।'

धीरे-धीरे सिगरेट फूँकता-फूँकता वह ढाबे में पहुँचा। नौकर ने पूछा—'आज बहुत दिनों में आये ?'

'अरे बाहर नौकरी की तलाश में गया था।'

'मिल गई ?'

'खाना लाओ। बातें फिर करना।'

सितार-मार्ग (प्रथम भाग)

अपने ढंग की निराली, श्रीभातखंडेजी की पद्धति के अनुसार लिखी हुई तथा भारतवर्ष के मशहूर संगीतज्ञों द्वारा प्रशंसित है। बनारस यूनिवर्सिटी द्वारा एडमिशन परीक्षा के लिये तथा मैरिस म्यूज़िक कालेज लखनऊ द्वारा अपने प्रथम तथा द्वितीय वर्ष के लिये पाठ्य-पुस्तक रक्खी गई है। क़ीमत सिर्फ़ दो रुपये।

मिलने का पता:—१. इंडियन बुक शाप, बनारस.
२. मैरिस म्यूज़िक कालेज, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

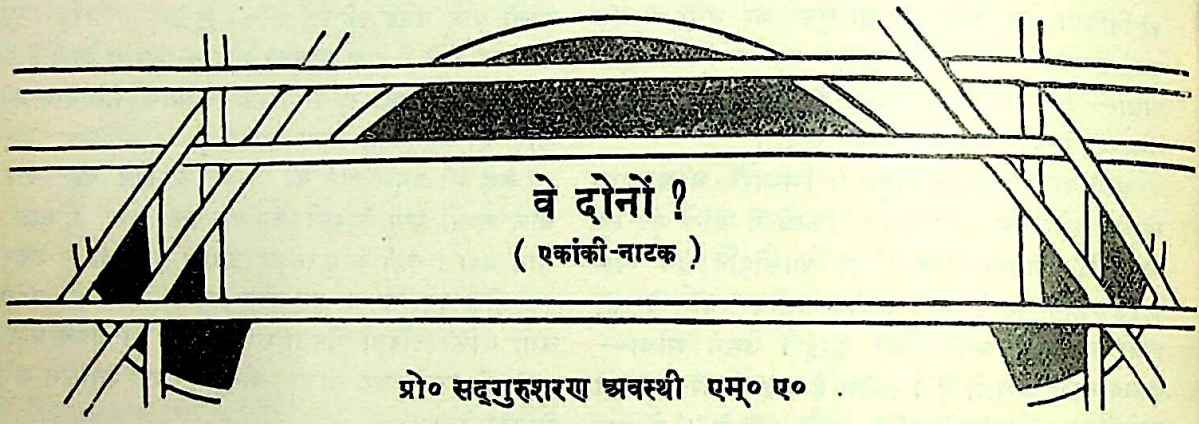

वे दोनों ?

(एकांकी-नाटक)

प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी एम्० ए०

पहला दृश्य

[चाँदनी चौक, दिल्ली के एक ओर का चौराहा। एक मोटर एक ओर से सहसा निकलकर दूसरी ओर की मोड़ से निकलते हुए, ताँगे से भिड़ जाती है। मोटर का कुशल संचालक अपने वाहन को तुरंत रोककर ताँगे-वाले पर टूट पड़ता है। मोटर का स्वामी ही उसका वाहक है। चूड़ीदार स्वच्छ पायजामे और रेशमी अचकन के ऊपर उसी कपड़े की किश्तीनुमा टोपी पहने हुए। इस व्यक्ति की वेशभूषा से प्रकट है कि यह कोई धनी सेठ है। मोटर के पीछे के स्थान पर एक सेवक लाल पगड़ी बाँधे बैठा है। स्वामी के क्रोध को वह कभी उत्तेजित करता है और कभी स्वयं आगे बढ़कर अधिक क्रोध प्रदर्शित करने लगता है।]

सेठजी—(क्रोध से लाल होकर, मोटर से उतरकर, ताँगेवाले को मारते हुए) अंधे के बच्चे ! ऐसे ही ताँगा चलाता है ? बदमाश कहीं का !

(ताँगेवाले के सिर पर बँधा हुआ वस्त्र गिर जाता है)

ताँगेवाला—(सिटपिटाकर) सरकार ने हार्न ही कब बजाया ? मुझे तो जमादार ने हाथ दे दिया था।

सेवक—(गरम होकर, गाड़ी से नीचे उतरकर) कान के छेदों को कुछ बड़ा करके दिल्ली की सड़कों पर निकलाकर।

(इतनी देर में एक छोटी-सी भीड़ जमा हो जाती है। सिपाही भी वहीं आ जाता है। स्वामी और सेवक धीरे से मोटर पर बैठ जाते हैं।)

सिपाही—(ताँगेवाले पर बिगड़कर) यह बड़ा बेहूदा है, बाबूजी ! उस दिन भी इसने यही किया था।

सेठजी—इसे अभी ले जाकर बंद कर दो। ठीक हो जायगा।

ताँगेवाला—(भय प्रदर्शित करते हुए) मालिक, मेरा कोई क़सूर नहीं है। अब की बार जाने दीजिए।

(सेवक भीतर बैठा-बैठा अपने स्वामी की ओर देखता है और फिर ताँगेवाले की ओर देखता है।)

दूसरा सिपाही—(प्रवेश करके सेठजी के प्रति) हुज़ूर क्या हुक्म है ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(पहले सेठजी की ओर और फिर ताँगेवाले की ओर देखता है)

सेठजी—इसका चालान कर दो।

(उत्तर की प्रतीक्षा न करते हुए सेठजी मोटर चला देते हैं)

दूसरा सिपाही—(पहले सिपाही से) ताँगेवाले और सेठजी की सूरत में ग़ज़ब की मुशाबेहत है।

पहला सिपाही—मैं भी यही देख रहा था।

दूसरा सिपाही—क्यों बे ताँगेवाले ! सेठजी की और तेरी सूरत इतनी क्यों मिलती है ?

भीड़ का एक व्यक्ति—(विनोद-भाव से) छोटा भाई है, तभी तो मार सह ली।

पहला सिपाही—नहीं तो क्या करता ?

ताँगेवाला—मैं क्या कर सकता था ? ये लोग मेरा मज़हका उड़ा रहे हैं। सेठजी का मुझे भाई बनाते हैं। कहाँ राजा भोज, कहाँ गँगुवा तेली।

भीड़ का एक दूसरा व्यक्ति—जिस समय इस ताँगे-वाले के सिर से वस्त्र गिरा, बिलकुल वैसी ही सूरत निकल आई ! अश्विनीकुमारों की जोड़ी मालूम होती है।

दूसरा सिपाही—(ताँगेवाले से) जा, बे भाग जा! ऐसे, सेठ-वेठ कहा ही करते हैं।

(ताँगेवाला ताँगे को भगा देता है)

पहला सिपाही—कहीं यह सेठ सरदार साहब से न कह दें।

दूसरा सिपाही—देखा जायगा। ख़ुद ग़लती करें और दूसरे पर रोब जमावें।

भीड़ के दो-तीन व्यक्ति—न हुए हम लोग, नहीं तो देखते, बेचारे ग़रीब पर कैसे कोई हाथ चलाता। सेठजी को भी आटा-दाल का भाव मालूम हो जाता।

पहला सिपाही—अरे भाई ! जाले के भरोसे मकड़ी मक्खी पर टूटती है।

(धीरे-धीरे सब लोग तितर-बितर हो जाते हैं)

पटक्षेप

दूसरा दृश्य

[मकनपुर ग्राम का भारत-प्रसिद्ध पशु-मेला लगा है। नाना प्रकार के पशुओं के शब्द और उनके संरक्षकों के कोलाहल ने एक विचित्र हलचल पैदा कर रक्खी है। लद्दू और तेज़ चालवाले दोनों प्रकार के पशु बिक रहे हैं। इसी पैंठ के अश्वविभाग में एक धनी अपने दो सहचरों के साथ इधर से उधर और उधर से इधर घूम रहा है। धनिक ढीला-ढाला रेशमी कुर्ता पहने है। केशों से बिलकुल विरल सिर अनावृत है। उसके ठीक पीछे का व्यक्ति वैसे ही आकार-प्रकार का है और उसी ढंग का महीन मल-मल का कुरता पहने है। सबके पीछे लाल पगड़ी बाँधे लाठी लिये संरक्षक मंद-मंद गति से चल रहा है। सेठ एक जगह पर रुक जाता है। उसके अनुचर कुछ आगे बढ़ जाते हैं।]

अश्वविक्रेता—(धनिक को रोककर) लालाजी ! मैंने जो आपके छोटे भाई को इस जानवर के दाम बतला दिये हैं, वे अधिक नहीं हैं।

लालाजी—(आश्चर्य से) कौन भाई ?

अश्वविक्रेता—वही जो आगे निकल गये हैं। अभी आपके पीछे-पीछे चल रहे थे।

(ऐसा कहकर उँगली से इशारा करता है)

लालाजी—वह तो अश्वविशेषज्ञ है। घोड़ों की पहचान के लिए मैं उसे साथ लाया हूँ। तुमको भ्रम हो गया है।

अश्वविक्रेता—तो क्षमा कीजिएगा।

लालाजी—तुमने उसे मेरा भाई कैसे समझ लिया ?

अश्वविक्रेता—सरकार ! अपराध क्षमा हो। आपकी और उनकी सूरत बिलकुल मिलती है। (घोड़े मलने-वाले अपने पास के व्यक्ति की ओर मुड़कर) ओ रे मुलुवा ! ठीक है न ?

लालाजी—तू नहीं जानता कि वह मुसलमान है और मैं हिन्दू ?

मुलुवा—का भवा, हिन्दू औ तुरुक वही भगवान् क बेटवा अहैं। नाराजी काहे बरे ? कपड़वा म फरक जरूर अहै, मुलौ सूरत वैसने अहै।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(इतने में अश्व-विशेषज्ञ और लकुटधारी सेवक भी आ जाते हैं। अश्वविक्रेता, मुलुवा तथा आसपास के व्यक्ति कभी लालाजी की ओर, कभी अश्व-विशेषज्ञ की ओर देखते हैं। सबके हृदय में साम्य की भावना जागरित हो जाती है।)

अश्वविक्रेता—सरकार देखिए.....

लालाजी—(उत्तेजना के साथ बात काटकर) मैं इतना मूल्य कभी नहीं दे सकता। (अश्व-विशेषज्ञ की ओर मुड़कर) क्यों जी, तुम क्या तीन सौ रुपये इस घोड़े के ठीक समझते हो ?

अश्वविक्रेता—(बड़ी नम्रता से) बाबूजी.....

लालाजी—(झिड़ककर) ठहरो जी, इन्हें कहने दो।

अश्वविशेषज्ञ—नहीं ! मेरी राय में यह क़ीमत ज़्यादा है। ज़्यादा से ज़्यादा दो सौ रुपये दिये जा सकते हैं।

(पास का एक व्यक्ति निकट खड़े हुए अपने एक दूसरे साथी का हाथ पकड़कर कुछ दूर ले जाता है)

पहला व्यक्ति—और बोल भी एक-सा है। सुना न ?

दूसरा व्यक्ति—और दोनों की आयु भी एक ही दिखाई देती है।

पहला व्यक्ति—क़द भी एक-सा ही है।

अश्वविक्रेता—अच्छा तो एक बात कहे देता हूँ। सरकार को अगर लेना हो तो ढाई सौ में मिल जायगा। इससे कम न होगा।

लालाजी—(अश्वविशेषज्ञ को अलग ले जाकर कुछ परामर्श करता है, और फिर आकर कहता है) अच्छा, तो इसे हमारे सेवकों के साथ हमारे ख़ीमें में तुरन्त भेज देना।

(इतना कहकर धनिक चला जाता है)

मुलुवा—(अश्वविशेषज्ञ से) तौ का हमहूँ का लाला के डेरवा माँ जाये का अहै ?

अश्वविशेषज्ञ—नहीं तो क्या घोड़े को मैं ले चलूँगा ?

अश्वविक्रेता—अभी लालाजी हम लोगों से ख़फ़ा हो गये।

सेवक—क्यों ?

अश्वविक्रेता—इनकी और लालाजी की सूरत एक-सी देखकर मैंने धोखे से इनको उनका छोटा भाई कह दिया।

अश्वविशेषज्ञ—तुम बिलकुल नासमझ हो। कोई ऐसी बात कहता है ? मैं उनकी जूती की ख़ाक नहीं हूँ।

मुलुवा—(घोड़े का मलना छोड़कर) मुलौ रौंड़ की तैसी ही चितवन, तैसे बोलु, तैसी ही चालु। भाइन, भाइन माँ न मिली।

सेवक—हाँ यह ठीक है। पर सामने कहने की बात नहीं है।

(घोड़ा खोलकर मुलुवा चल देता है। अश्वविशेषज्ञ उसकी चाल देखता हुआ पीछे-पीछे चल देता है। सेवक सबसे आगे है।)

पटक्षेप

तीसरा दृश्य

[लखनऊ का विशाल नगर। एक बड़े विश्रामगृह के सबसे ऊँचे सुसज्जित भवन के बन्द द्वार पर चूड़ीदार स्वच्छ पायजामा और कुरता पहने हुए सुसंगठित शरीर-वाला एक नवयुवक बैठा है। इसके हाथों में एक रेशमी कुरता है। पास की छोटी गठरी में उसी प्रकार के कपड़े के ग्यारह और रेशमी कुरते हैं। अपनी कला के प्रदर्शन और नाप की यथार्थता की परीक्षा के लिए एक कुरता बाहर है। यह व्यक्ति कभी ठहरता और कभी टहलता है। भवन के भीतर की धीमी से धीमी आहट पाकर बाहर प्रतीक्षा करनेवाले सेवक सजग हो जाते हैं और बड़ी शांति और विनय के साथ द्वार पर आकर खड़े हो जाते हैं। ऐसा भ्रम दो बार हो चुका है। जब नौ बज चुके तो दरज़ी कुछ अधीरता के साथ पास खड़े हुए कहार से कहता है।]

दरज़ी—बाबूजी को तो दस बजे कौंसिल पहुँचना होगा ?

कहार—ज़रूर।

दरज़ी—क्या आज नहीं जायँगे ?

कहार—क्या आज कोई नई बात है, जायँगे क्यों नहीं ?

दरज़ी—देर से पहुँचते होंगे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहार—कभी नहीं। जागने के पौन घंटे बाद, सब काम से निपटकर, खा-पीकर, मोटर पर बैठ जाते हैं।

दरज़ी—बड़ी जल्दी करते हैं। मगर इतनी देर तक सोते क्यों हैं?

कहार—तीन बजे तक की रात की सैर कहाँ जाय?

दरज़ी—क्या रोज़ का यही हाल है?

कहार—मैं तो चार साल से यही देख रहा हूँ।

(इतने में बन्द भवन के भीतर किसी के वेग से चलने की आहट होती है और द्वार एक झटके के साथ खुल जाता है। एक नवयुवक रेशमी बनयायन और महीन धोती पहने दिखाई देता है। उसकी आकृति सुन्दर होते हुए भी बड़ी रूखी दिखाई देती है।)

(कहार धीरे से भीतर चला जाता है।)

बाबूजी—(द्वार तक आकर, दरज़ी के प्रति) क्यों मियाँ, तुम्हें और कोई समय नहीं मिला?

दरज़ी—(सिर झुका लेता है।)

बाबूजी—अच्छा, तुरन्त भीतर आओ।

(बाबूजी भीतर जाते हैं और दरज़ी भी धीरे-धीरे भीतर जाता है)

(सुसज्जित भवन में सामने जड़े हुए चार हाथ लम्बे दर्पण के सामने दोनों खड़े हो जाते हैं)

बाबूजी—(चिढ़कर) जल्दी करो; मेरे पास समय नहीं है।

दरज़ी—(धीरे से गठरी रखकर रेशमी कुरता निकालने लगता है।) बाबूजी....

(सामने दर्पण में दोनों के प्रतिबिम्ब बराबर दिखाई देते हैं। बाबूजी के विश्वस्त और निजी मन्त्री राजाराम और उनका टाइपिस्ट गौरीनाथ भवन में इधर, एक ओर आकर खड़े हो जाते हैं। दर्पण में कुरता पहनानेवाले दरज़ी और कुरता पहननेवाले बाबू के प्रतिबिम्ब एक साथ देखकर दोनों आश्चर्य-चकित रह जाते हैं।)

राजाराम—(धीमे स्वर में गौरीनाथ से) स्रष्टा की निर्माण-कुशलता देखना चाहते हो?

गौरीनाथ—आपका क्या अभिप्राय है?

राजाराम—दर्पण के प्रतिबिम्बों में कैसा साम्य है!

गौरीनाथ—मैं भी यही ध्यान से देख रहा हूँ।

राजाराम—इस दरज़ी की मुखमुद्रा बाबूजी से बिलकुल मिलती है।

गौरीनाथ—वैसा ही गोल-गोल मुँह, ठीक वैसी ही लम्बी गरदन।

राजाराम—और नेत्रों की काली गोट और उनके दोनों ओर की पलकों की धूमिल श्यामल आभा, बिलकुल एक-सी।

गौरीनाथ—और चितवन?

राजाराम—हाँ, हाँ वैसी ही है। शरीर के प्रसार और प्रस्तार में भी कैसा साम्य है!

गौरीनाथ—अगर एक तरह के कपड़े पहना दिये जायँ तो पहचानना कठिन हो जायगा।

राजाराम—दरज़ी कुछ दुबला और निर्धन है न?

गौरीनाथ—परन्तु सूखे पत्ते की उभरी हुई नसों की भाँति बड़े बाबू की आकृति की झुर्रियाँ उसकी आकृति में कहाँ हैं?

राजाराम—विलास की मलिन छाया है।

गौरीनाथ—आप साम्य में स्रष्टा की कला क्यों मानते हैं? विषमता में क्या कोई चातुरी नहीं होती?

राजाराम—होती क्यों नहीं। कला तो अखिल का प्रतिरूप और इयत्ता के परे की वस्तु है। विभेद व्याख्या की सन्तति है। विभेद में ही सापेक्ष के दर्शन होते हैं और तब समीक्षा और मीमांसा का विस्तार बुद्धि करने लगती है।

(इतने में दरज़ी के मुँह पर बाबूजी का ज़ोर के साथ एक तमाचा पड़ता है। वह तिलमिला जाता है। इस आवाज़ ने गौरीनाथ और राजाराम की दार्शनिक चिंतना को तुरंत समाप्त करके उनके विवाद का सहसा अंत कर दिया। सब सेवक चुप हो जाते हैं। कहार भवन के बाहर चुपके से निकल जाता है।)

बाबूजी—नालायक़ कहीं का! इतनी कसी बग़ल कर दी। (दरज़ी काँपते हुए हाथ से गले का बटन बंद करता है) और गला भी छोटा कर दिया।

दरज़ी—(कंपित स्वर में) हुज़ूर, सहूलियत से मुझे पहना लेने दीजिए। ठीक उतरेगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बाबूजी—हुज़ूर का बच्चा ! कपड़ा बरबाद करके रख दिया । निकल फ़ौरन् यहाँ से ।

(इतना कहते हुए बाबूजी कुरता उतारकर फेंक देते और चले जाते हैं)

राजाराम—(निकट आकर, दरज़ी से) इस समय तुम चले जाओ । और वक़्त आना ।

दरज़ी—जैसा हुक्म ।

(कुरता समेटकर तह करता हुआ गठरी में रखता है)

कहार—मैंने पहले ही कहा था कि सबेरे किसी न किसी पर बीतती है ! भैया, आज मैं तो बच गया ।

गौरीनाथ—तुझे इस बेचारे को सब समझाकर पहले ही से सावधान कर देना था ।

राजाराम—शराब का आख़िरी ख़ुमार था ।

(दरज़ी गठरी उठाकर धीरे-धीरे जाता है)

पटक्षेप

चौथा दृश्य

[एक बहुत पुराना और गंदा इक्का धीरे-धीरे चल रहा है । उसकी उधड़े सीवनवाली गद्दी के दो ओर दो अधेड़ आयुवाले व्यक्ति बैठे हैं । बीच में एक वृद्ध पीठ के सहारे टिककर बैठा है । उसकी गर्दन आगे की ओर झुकी है । इक्केवाला घोड़े के पास, बिलकुल फटे और मैले वस्त्र पहने सटकर बैठा है । घोड़ा धीरे-धीरे रेंग रहा है । अपनी इच्छा से रुक-रुक भी जाता है । संचालक की लगातार मार की लाज रखने के लिए वह फिर चलने लगता है । दाहनी ओर का व्यक्ति मैली धोती, मैला मलमल का कुरता और दुपल्ली मैली टोपी लगाये है । बाईं ओर का व्यक्ति खद्दर का स्वच्छ कुरता, ऊँची दीवार की गाँधी-टोपी और खद्दर का पायजामा पहने है । बीच में बैठा हुआ वृद्ध काला टोपी और बंद गले का कोट पहने है ।]

दाहनी ओर का व्यक्ति—(बाईं ओर के व्यक्ति से) तो इलाहाबाद होगा !

बाईं ओर का व्यक्ति—मुझे इलाहाबाद जाने का कभी इत्तफ़ाक़ नहीं हुआ ।

दाहनी ओर का व्यक्ति—मुझे धोखा हुआ । कोई दूसरा व्यक्ति आप ही की सूरत का रहा होगा । बड़ी धुँधली-सी स्मृति है ।

बाईं ओर का व्यक्ति—इंसानी मोहब्बत ख़ुद-ब-ख़ुद अपने जज़बात से मजबूर होकर मुशाबेहत की दुनिया पैदा करती है । मुझे भी आपकी शक्ल याद-सी आती है, मगर वह शानोशौकत कुछ और ही थी ।

दाहनी ओर का व्यक्ति—चित पड़े हुए पाँसे का सौंदर्य कुछ और ही होता है और पट का कुछ और ही । अंतर संभव है । आपका नाम ?

बाईं ओर का व्यक्ति—इस नाचीज़ को नूर इलाही कहते हैं ।

(इक्केवाला कुछ आश्चर्य में आकर पीछे देखने लगता है)

इक्केवाला—मैंने समझा था कि आप भी हिंदू हैं, आप दोनों.....

(घोड़ा रुक जाता है । इक्केवाला उसे मारने लगता है । वह अपने पिछले पैरों को ऊपर दो बार फेंकता है, परन्तु इक्के के अगले हिस्से से टकराकर वह चुप हो जाता है ।)

वृद्ध यात्री—(नूर इलाही के प्रति) अच्छा, आप मुसलमान भाई हैं !

(वृद्ध यात्री, झुक-झुककर कभी दाहने और कभी बायें बैठे हुए यात्री की ओर देखता है)

नूर इलाही—मैं हिंदुस्तानी हूँ । देश का अदना ख़ादिम । मैं कहीं बाहर से थोड़े ही आया हूँ । यहीं आपके ही बीच रहता हूँ । हिन्द की ख़ाक से उठा हूँ, उसी की आबोहवा में पला हूँ ।

दाहनी ओर का व्यक्ति—आप कहाँ के रहनेवाले हैं ? आपके माता-पिता कहाँ रहते हैं ?

नूर इलाही—मैं सिर्फ़ यही कह सकता हूँ कि मैं इस ज़मीन का बाशिंदा हूँ । मैं कहाँ पैदा हुआ, मेरे वालदैन कहाँ हैं, यह मैं बिलकुल नहीं जानता ।

(वृद्ध व्यक्ति घूरकर उसे देखता है)

दाहनी ओर का व्यक्ति—यह कैसी बात ?

नूर इलाही—मेरी ज़िंदगी एक दिलचस्प अफ़साना है । यतीमख़ाने के लड़के के बारे में आप इससे ज़्यादा और क्या जान सकते हैं ?

दाहनी ओर का व्यक्ति—भाई, मा-बाप किसी को बड़ा नहीं बना सकते ।

नूर इलाही—आठ साल की उम्र तक ही मैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यतीमख़ाने का अहसान गवारा किया। नवें साल चुपके से खिसक आया। तब से अपने ही हाथों की कमाई खाता हूँ।

(वृद्ध फिर उसकी ओर ध्यान से देखता है)

दाहनी ओर का व्यक्ति—आप अब क्या काम करते हैं?

नूर इलाही—सिले हुए कपड़ों का रोज़गार करता हूँ।

दाहनी ओर का व्यक्ति—यह काम आप कब से करते हैं?

नूर इलाही—इसकी भी एक दास्तान है। मेरी ज़िंदगी के सफ़े बड़ी जल्दी-जल्दी उलट चुके हैं।

दाहनी ओर का व्यक्ति—फिर भी कुछ तो कहिए।

नूर इलाही—दिल्ली की गलियों में भटकते-भटकते एक भठियारे के यहाँ पनाह मिली। उसके बूढ़े घोड़े को घास देता और मलता रहा। कुछ सालों के बाद उसका ताँगा चलाने लगा।

इक्केवाला—(मुड़कर) अच्छा आप ताँगा भी हाँकते थे!

नूर इलाही—बाद में मुझे जानवरों का कुछ ऐसा इल्म हो गया कि उन्हीं की ख़रीद-फ़रोख़्त करने लगा।

दाहनी ओर का व्यक्ति—अच्छा तो दरज़ी का काम क्यों करने लगे?

नूर इलाही—मुझे यतीमख़ाने में ही कपड़े सीने का काम सिखलाया गया था। एक घोड़े को फेर रहा था कि उसने ऐसी लात मारी कि मैं मौत के मुँह में जाते-जाते बचा। आज तक उसी चोट से दिल धड़का करता है। (वृद्ध सम्हलकर बैठ जाता है और दोनों यात्रियों की ओर उचक-उचककर देखता है) तभी से जानवरों का रोज़गार छोड़ना पड़ा। इधर कुछ सरमाया इकट्ठा हो गया था। मगर सौराज की लड़ाई में दो बार जेल जाना पड़ा। सारी पूँजी खो बैठा। अब तो शाम तक नमक-रोटी मिल जाती है।

दाहनी ओर का व्यक्ति—जिस काम में चार पैसे मिलें, वही ठीक है। आपके कै बच्चे हैं?

नूर इलाही—मैंने शादी ही नहीं की। अब सरकार अपना हाल तो कहें?

दाहनी ओर का व्यक्ति—आपकी तरह मैं भी कभी एक अनाथालय की बस्ती का सौन्दर्य था। परन्तु बाद की कथा एक उल्का की कहानी है।

(वृद्ध उचककर इसकी ओर देखने लगता है। फिर नूर इलाही की ओर देखता है)

नूर इलाही—तो मेरी ही तरह आपको भी अपने वालदैन का पता नहीं।

(वृद्ध फिर दोनों को देखता है)

दाहनी ओर का व्यक्ति—सेठ हरविलास ने दो हज़ार रुपयों में मुझे ख़रीदा और गोद लिया। (सब लोग उसकी ओर आश्चर्य से देखते हैं) आप लोगों ने सेठ शिवविलास का समाचार तो सुना होगा?

इक्केवाला—इतने बड़े आदमी को कौन नहीं जानता।

नूर इलाही—उनकी अय्याशी के तो बड़े-बड़े क़िस्से हैं। इधर कुछ दिनों से उनका कोई शोर नहीं सुनाई दिया।

दाहनी ओर का व्यक्ति—वही सेठ शिवविलास सब फूँक-तापकर आपके सामने बैठा है। (आँसू भर आते हैं)

(सब लोग आश्चर्य से देखते हैं। वृद्ध देर तक आँखें फाड़कर देखता है)

नूर इलाही—दुख न कीजिए। परमेसुर फिर देगा। बच्चे कै हैं?

शिवविलास—बच्चे और स्त्री सभी मुझे त्याग गये। नौकर, घोड़ा, गाड़ी, मोटर, महल, सभी दरिद्रनारायण की एक फूँक में उड़ गये।

(वृद्ध की मुद्रा विषादापन्न दिखाई देती है)

नूर इलाही—बीबी, बच्चे चाँद और सूरज की तरह तुलू और ग़ुरूब होते रहते हैं। धन-दौलत गरम और ठंडी हवा के झोंके की तरह आते-जाते हैं। इनके लिए अफ़सोस क्यों किया जाय?

शिवविलास—ठीक है। पर अपने को सँभाले रखने-वाला व्यक्ति ही इनका स्वागत कर सकता है। यहाँ तो मन और शरीर, दोनों जर्जर हैं।

नूर इलाही—लालाजी, हम दोनों की क़िस्मतें एक ही वक़्त गढ़ी गई थीं। बिना वालदैन के आये और बिना औलाद के जायँगे। ऐसा तो सगे भाइयों में भी मिलना मुश्किल है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इक्केवाला—सरकार, आप लोगों की सूरतें भी मिलती हैं।

(वृद्ध उचककर फिर दोनों की ओर देखता और नेत्र बन्द कर लेता है)

शिवविलास—हो सकता है। (नूर इलाही से) पर आप ग़रीब होकर अमीर हो गये और मैं अमीर होकर ग़रीब ही रह गया।

नूर इलाही—मैं अमीर नहीं, मगर मुझे ग़रीबी कभी महसूस नहीं हुई।

शिवविलास—मेरी अमीरी तो नशे में ही बीती।

नूर इलाही—नशा वह जोश है, जो किसी भी क़िस्म के बहाव में पड़े हुए इन्सान को उससे झगड़ना या उसके साथ बहना सिखाता है। अमीरी आकर चली जाती है, और ग़रीबी भी जाकर चली आती है।

(इक्का एक चतुष्पथ पर रुक जाता है। तीनों यात्री उतर पड़ते हैं। नूर इलाही और शिवविलास इक्केवाले को पैसे देकर परस्पर अभिवादन करके जुदे-जुदे मार्ग से चल देते हैं। वृद्ध उनकी ओर देखता रहता है और पैसा देना भूल जाता है। वह बोलता नहीं, पर उसके नेत्र मानो चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें लौट आने के लिए पुकारते हैं।)

इक्केवाला—बुड्ढ़ू बाबा, पैसे दीजिए। क्या सोच रहे हैं?

वृद्ध—कुछ नहीं, इन्हीं की बातें सोच रहा था।

इक्केवाला—(पैसे लेते हुए) बहुत सालों से चलते हुए रुपये और उसी बादशाह के थोड़े वक़्त के निकले हुए रुपये में जो फ़र्क़ होता है, वही लाला शिवविलास में और आपमें फ़र्क़ है।

वृद्ध—(झुँझलाकर) तुम अपने रास्ते जाओ।

(इतना कहकर वृद्ध एक छोटे कूचे में मुड़ जाता है। इक्का टिक-टिक करता हुआ आगे बढ़ता है।)

पटक्षेप

पाँचवाँ दृश्य

[धवल वस्त्रावरण-विभूषित एक पलँग पड़ा हुआ है। उस पर एक वृद्ध लेटा हुआ करवटें बदल रहा है। पास ही चटाई पर उसकी वृद्धा पत्नी बैठी है। वह पति के मुख पर पंखा झल रही है। भवन में पवन के स्वच्छंद विहार के लिए पर्याप्त अवकाश है। ऊपरी भाग के द्वार से सटाकर यह पलँग पड़ा है। इस दम्पति की आयु ६५ वर्ष के लगभग प्रतीत होती है।]

वृद्धा—आज आप कुछ अनमने से दिखाई देते हैं।

वृद्ध—न....हीं तो।

वृद्धा—बतलाइए भी, क्या बात है?

वृद्ध—तुम्हें आज से पचास वर्ष पहले की कोई घटना याद है?

वृद्धा—किस घटना की ओर आपका इशारा है?

वृद्ध—जब मेरे पाप के प्रायश्चित्त में तुम्हें तिरस्कार सहना पड़ा था।

वृद्धा—उस घटना को पाप कहकर मुझे उत्तेजित न कीजिए। पाप समाज का था, जिसने गुलाब-सरीखे मेरे दो लालों को प्रकाश के दर्शन करते ही गोद से छीनकर काल के गाल में झोंक दिया।

वृद्ध—तुम्हारी मर्यादा और मेरी रक्षा के लिए यह बहुत ज़रूरी था।

वृद्धा—पर समाज ने आपके ही हाथों तो मुझे सौंपा? क्या यह पहले से अनुमान नहीं किया जा सकता था?

वृद्ध—फिर भी कौमार्य की उच्छृङ्खलता पर समाज का स्वीकृति हस्ताक्षर कर देना विश्व के लिए अवांछनीय था।

वृद्धा—मैं तो विवाह-विधि को कौमार्य के स्नेह-प्रवाह की केंद्राभिमुखी गति समझती हूँ। प्रेम की नैसर्गिक वृत्ति को विवाह-परंपरा के ग्रन्थि-बन्धन के अभाव की आड़ में दबा देना वैसा ही मूर्खता का प्रयास है, जैसा कि पावस का प्रखर प्रवाह रोकने के लिए घरघराती हुई नदी के किनारे मंत्र पढ़ना।

वृद्ध—तो क्या नासमझ कन्याओं को जिस तिससे प्रेम करने के लिए कौमार्य में ही स्वतंत्र छोड़ दिया जाय?

वृद्धा—कन्याओं में नासमझी का दोष भी समाज का है। नासमझ को समझदार बनाने के लिए आपको कोई मना नहीं करता। परन्तु प्रेम का कोमल स्रोत,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विवाह के पहले कन्याओं में प्रस्फुटित न होने पावे, इसका बलवान् प्रयास विवाह के ध्येय को ही नष्ट कर देता है। अलौकिक मस्ती लिये हुए इस वृत्त की मधुर सिहरन के अनुभव की क्षमता आ जाने पर ही विवाह के पालने में झूलने का आनन्द आता है।

वृद्ध—तुमने अपनी शिक्षा का कोई पाठ्य-क्रम बनाया है क्या? तुम यही कहती हो न कि अविवाहिता कन्याएँ कौंरेपने में ही पुरुषों से मिला करें?

वृद्धा—मैं यह कहूँगी कि पुरुषों की दृष्टि से लुका-छिपी खेलने का स्वभाव कन्याओं में न डालना चाहिए। क्या वे अपने पिता, भाई, सम्बन्धी से बेधड़क नहीं मिलतीं? फिर उन्हें और पुरुषों से क्यों छिपाया जाय?

वृद्ध—इसलिए कि तरुणों की आकांक्षाएँ विवेक का परामर्श बहुधा सरलता से नहीं सुनतीं।

वृद्धा—यदि वर्षा की बाढ़ में पवित्र नदी अपने उपकूलों के दो-चार वृक्ष ढहा देती है तो इससे उसकी शरद्-कालीन शुभ्र धारा की महिमा कम नहीं होती। प्रवाह की घरघराहट के भय से नदी को सूखी ही रखना प्रकृति भी पसन्द नहीं करती।

वृद्ध—मुझे तो इसमें भारी अस्तव्यस्तता दिखाई देती है।

वृद्धा—सशंक प्राणी के लिए रूढ़ि का ध्वंस करना असम्भव है। क्या आपको मानवता की नैसर्गिक-ऊर्ध्वगति में विश्वास नहीं?

वृद्ध—परन्तु उसकी अधोगति को भुला देना भी कहाँ तक ठीक है?

वृद्धा—नाद की नैसर्गिक वृत्ति आकाश में भ्रमण करनेवाली शब्द-तरंगों के साथ रमण करना है। यदि निकट के कूप में वह धोखे से कूद जाती है तो प्रति-ध्वनि की भारी चीख़ के साथ निकल भी पड़ती है। यह सजीव धर्म का अधार्मिक अपवाद है। इससे क्षुब्ध न होना चाहिए।

वृद्ध—तुम कौंरियों के लिए कैसी स्वतंत्रता चाहती हो?

वृद्धा—कौंरी और कौंरे विश्व की अभिव्यक्ति के लिए मात्राएँ और व्यंजन हैं। उनकी समष्टि ही सृष्टि का आधार और कल्याण की नींव है। उन्हें अच्छी तरह शिक्षित करने के लिए भी परस्पर-ज्ञान की अपेक्षा होती है।

वृद्ध—क्या तुम्हें अपने कौंरेपने के कृत्य पर कभी पश्चात्ताप नहीं हुआ?

वृद्धा—हाँ हुआ, पर वह मेरी कमज़ोरी थी। संसार की वक्र रेखा पर लिखने के प्रयास में मेरी पंक्तियाँ भी वक्र हो गईं। पर आप ही कहिए, यदि शकुंतला को कण्व के सामने लज्जा नहीं आई तो मुझे भी विश्व के सामने परिताप क्यों करना चाहिए?

वृद्ध—तुम्हारा ध्यान तो उस क्षण की गरिमा की ओर अधिक है।

वृद्धा—अवश्य। मुझे तो वे सुन्दरतम अतीत क्षण कभी नहीं भूलते, जब मैंने ख़ुशी-ख़ुशी अपने कौंरेपने के दृश्य पर अपने हाथों यवनिका खींच दी थी। यह जो मेरा पाणिग्रहण-संस्कार विश्व ने बाद में किया, उसे मैं केवल परिपाटी का अनुलेख समझती हूँ। मंत्र उच्चारण करते समय मेरी अंतरात्मा उपहास कर रही थी।

वृद्ध—यदि मेरे स्थान पर विवाह के लिए कोई दूसरा व्यक्ति होता?

वृद्धा—दुनिया से मैं तब तक सहयोग कर सकती थी, जब तक वह मेरी गति से पग मिलाये थी। अन्यथा हमारे मार्ग भिन्न थे।

वृद्ध—बड़ी परीक्षा की घड़ी थी!

वृद्धा—पर इस विवाद-प्रवाह में आपकी बात तो रह ही गई।

वृद्ध—हाँ, यह बतलाओ कि प्रसव-घड़ी कैसी बीती थी।

वृद्धा—पहली बार की प्रसव-पीड़ा का मर्मांतक क्लेश मुझे बेहोश किये था। इस मूर्च्छा की परिस्थिति में भी सावधानी का झटका कभी-कभी लग जाता था। यह उत्पन्न पुत्र का मोह था। पहला लाल उत्पन्न होते ही छिपाकर कहीं फेंक दिया गया। सम्हलते-सम्हलते मैंने अपना आँचल और बिस्तर सूना पाया। शारीरिक पीड़ा पर मानसिक ठेस लगी। मैं तिलमिला गई। लतिका ने अपर कोपल के प्रस्फुटन का अनुभव किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

क्षति-पूर्ति का यह प्रयास व्यर्थ हुआ। मेरे हाथ फैले रह गये। नेत्र ललक रहे थे। रोने की आज्ञा न थी। घर का उजाला करनेवाला यह रत्न भी दूसरी ओर के मार्ग में फेंक दिया गया।

(वृद्धा इतना कहती-कहती रोने लगी)

वृद्ध—(उठकर बैठ जाता है) ऐं! रोती क्यों हो?

वृद्धा—तब खुलकर रो भी न सकती थी। अब कौन रोकनेवाला है? उन कोमल नवनीत गुल्मों को प्रखर आतप में पिघलकर मिट्टी में मिल जाने के लिए उस पापिनी मौन-स्वीकृति ने ही आज हम लोगों को शाप दे रक्खा है और हम निःसन्तान हैं।

वृद्ध—(निःश्वास लेकर) परन्तु आज मैंने तुम्हारे दोनों पुत्रों को एक साथ देखा है।

वृद्धा—आप भी मेरा उपहास करते हैं। क्रूर झंझानिल के झोंके से धराशायी कलिकाएँ कहीं खिल सकती हैं?

वृद्ध—मेरा कंठ रुँधा-सा है। उनके मुख से ही मैंने उनकी कहानी सुनी है।

वृद्धा—मेरा धैर्य अब हाथ से जाने ही वाला है। यदि आपकी बात मज़ाक़ ही हो तो भी कह डालिए।

वृद्ध—बात कुछ ऐसी जान पड़ती है कि पहले पुत्र के विसर्जन स्थान के निकट मुसलिम यतीमख़ाना था। वहाँ के अधिकारी उसे उठा ले गये और उसे पाल-पोस कर बड़ा किया।

वृद्धा—तो क्या मेरे पुत्र का धर्म-परिवर्तन भी हो गया?

वृद्ध—मूर्खता की बातें करती हो। नाना आकारचुम जल का कोई निजी रूप होता है? वह तो आधार की रूपरेखा से स्वरूप ग्रहण करता है। दुधमुहे बच्चे का कौन धर्म? परिस्थितियों ने विश्व के जिस विचार-विभाग में उसे ला रक्खा, वहीं का अभिधान उसके विज्ञापन में अंकित होता है।

वृद्धा—(उत्सुकता से) और दूसरे का क्या हुआ?

वृद्ध—वह कदाचित् उसके विपरीत हिन्दू-अनाथालय के निकट छोड़ा गया था। वहीं वह पाला गया।

वृद्धा—ईश्वर उनका कल्याण करें। अब वे कहाँ हैं?

वृद्ध—मुसलमानी यतीमख़ाने का बच्चा आठ वर्ष की आयु में ही अपने आश्रयालय की यातनाओं से झगड़ते-झगड़ते ऊबकर भाग खड़ा हुआ।

वृद्धा—मेरे पुत्र.....

वृद्ध—वह दिल्ली की गलियों में माँगते-खाते एक ताँगेवाले के यहाँ घोड़ा मलने और फिर घोड़ा हाँकने का काम करने लगा।

वृद्धा—बड़ी यातनाएँ सहीं। मेरे लाल ने हमें ख़बर नहीं दी!

वृद्ध—मूर्ख रमणी, गेहूँ पिसते समय वाली की सुध कब लेता है? बेचारे को अपने जननी-जनक का क्या पता था?

वृद्धा—वह अब क्या करता है और कहाँ है?

वृद्ध—धीरे-धीरे वह अश्वविशेषज्ञ हो गया; परन्तु एक घोड़े ने एक बार उसके मर्मस्थल पर लात मार दी।

वृद्धा—(अवरुद्ध कंठ से) हाय भगवान्!

वृद्ध—तभी से उसने यह व्यवसाय छोड़ दिया। आजकल सिले हुए वस्त्रों का व्यापार करता है।

वृद्धा—विवाह हुआ है? बच्चे कै हैं?

वृद्ध—नहीं, उसने विवाह नहीं किया। देश-सेवा में कई बार उसे जेल हो चुकी है।

वृद्धा—(निःश्वास खींचती है)

वृद्ध—तुम्हारी दूसरी संतान का चरित्र और भी विचित्र है।

वृद्धा—वह कहाँ है और क्या करता है?

वृद्ध—तुमने लाला शिवविलास का नाम तो सुना होगा?

वृद्धा—चार-पाँच वर्ष हुए, इनकी बड़ी धूम थी। सुनते हैं, नोट बाँधकर पतंग उड़ाते थे। हज़ारों रुपये रोज़ ख़र्च कर देते थे। क्या वह इन्हीं के यहाँ नौकर है?

वृद्ध—यही शिवविलास तुम्हारा दूसरा पुत्र है।

वृद्धा—विश्वास नहीं होता। इस चूड़ांत विलासी में भी विश्व को चकाचौंध कर देने की शक्ति थी। मैं धन्य हुई। परन्तु यह घटना कैसे घटी?

वृद्ध—शिवविलास का औरस पिता हरविलास संतानहीन था। चुपके से अनाथालय के कर्णधारों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को काफ़ी रक़म देकर उसने बच्चे को ख़रीद लिया था।

वृद्धा—वह धन्य है।

वृद्ध—परन्तु उत्तराधिकार की करोड़ों की सम्पत्ति सैकड़ों हिस्से होकर निकल भागी। सेठ शिवविलास अब साधारण शिवविलास रह गया है। जिसकी पंखड़ियाँ झड़ रही हैं, ऐसा अधोमुख वृंतविलंबित सुगंध से ख़ाली फूल अब वायु के अंतिम झोंकों की राह देख रहा है। ऐश्वर्य, पुत्र, पुत्री, पत्नी सभी से वह वंचित है।

वृद्धा—(सिसकती हुई) हाय भगवान्! हमारे ही दुर्भाग्य की मलिन छाया हमारी संतान को भी घेरे है।

वृद्ध—एक अत्यंत प्राचीन टूटे इक्के पर दोनों, दोनों छोर पर बैठे थे। प्रसंगवश उन्होंने अपनी-अपनी रामकहानी कही। पीछे टुबका मैं बैठा-बैठा सब सुन रहा था।

वृद्धा—अपने माता-पिता की कुछ चर्चा नहीं की?

वृद्ध—संदर्भ में जब यह प्रसंग आया तो दोनों ही ने कुछ संकोच के साथ यह स्वीकार किया कि उनके माता-पिता का कुछ पता नहीं है।

वृद्धा—क्या मुड़कर किसी ने तुम्हारी ओर नहीं देखा?

वृद्ध—(आँसू भरकर) अपनी-अपनी कहानी के झोंक में उन्हें यह ध्यान कहाँ था कि पीछे एक बूढ़ा सिकुड़ा हुआ बैठा है।

वृद्धा—(दर्द-भरी वाणी में) अरे तुमने उन्हें ध्यान से देखा था?

वृद्ध—एक बार नहीं, अनेक बार। आकृति और मनुहार में ऐसा अनुपम सादृश्य था कि देखते ही बनता था। नेत्र तो बिलकुल तुम्हारे जैसे, बिना काजल के काली गोट धारण किये थे।

वृद्धा—(अधीर भावना से) और वे उतरकर चले गये? तुमने उन्हें पकड़ क्यों नहीं लिया? अपने साथ क्यों नहीं लाये?

वृद्ध—मन मूढ़ था। इन्द्रियाँ भाव-विभोर थीं। वात्सल्य ने समस्त शरीर की नस-नस को झकझोर रक्खा था। जिह्वा जड़ीभूत थी। नेत्र निर्निमेष, भौचक्के और विषय-शून्य थे। कर्त्तव्य—उसका संचालक विवेक कहीं क्षितिज के उस पार खड़ा था।

वृद्धा—(रोती हुई) हाय, उन्हें कैसे देखूँ?

वृद्ध—(निःश्वास लेकर) पिता-माता के अपार वात्सल्य के प्रति संतति की उपेक्षा विधि-विधान का चिरंतन रूप है।

वृद्धा—(कुछ सम्हलकर) परन्तु उन बेचारों पर असावधानी का यह आरोप भी नहीं लगाया जा सकता।

वृद्ध—(वेग से निःश्वास खींचकर) हाय, यदि कहीं वे समक्ष की आकृति के साथ-साथ अपनी भी आकृति देखकर मिलान कर सकते।

वृद्धा—और मैं तुम तीनों को एक साथ खड़ा देखकर अतीन्द्रिय जगत् की मेड़ नाँघ जाती और फिर बिछुड़न से अभिशापित इस संसार की ओर मुड़कर भी न देखती।

(वृद्धा पलँग पर माथा रखकर सिसक-सिसककर रोने लगती है। वृद्ध धीरे से लेट जाता है और वृद्धा के सिर पर हाथ रख लेता है।)

पटक्षेप

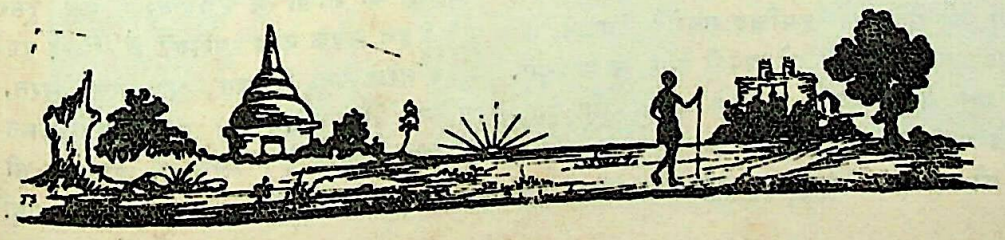

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्ध-पूर्व का भारतीय इतिहास

रावराजा डाक्टर श्यामविहारी मिश्र
रायबहादुर पंडित शुकदेवविहारी मिश्र

गौतमबुद्ध से पहले के अपने इतिहास पर वेद, पुराण आदि में तो बहुत कुछ कथन हैं, किन्तु वर्तमान ऐतिहासिकों ने इसे छोड़-सा रक्खा है। हैं इस विषय पर भी थोड़े-से उत्कृष्ट ग्रन्थ, किन्तु उनकी संख्या तथा विषय की व्यापकता में बहुत कुछ कमी है। इसी लिए आजकल हम लोगों ने ४२४ पृष्ठों का एक ग्रन्थ इस विषय पर लिखा है, जिसे हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ने प्रकाशित किया है। आशा है, एक ही आध महीने में वह पाठकों की सेवा में उपस्थित हो जायगा। आज इसी गौरवपूर्ण विषय का एक संक्षिप्त विवरण हम प्रिय पाठकों की भेंट कर रहे हैं।

महात्मा गौतमबुद्ध का जन्म ५६३ ई० पूर्व में हुआ था। इसे थोड़े में बी० सी० कहते हैं। अपने यहाँ का इतिहास स्वायम्भुव मनु के समय से चलता है। इन मनु से बुद्ध के जन्मकाल तक के समय को पुराणों ने चार भागों में बाँटा है; अर्थात् सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और आदिम कलिकाल। अपने यहाँ का कौन राजा किस युग में हुआ, इस प्रश्न पर पुराणों में भी भेद दिखलाया जा सकेगा। इसलिए मतभेद मिटाने को हमने पहले छः मन्वन्तरों को अपनी ओर से सत्ययुग, वैवस्वत मनु से रामचन्द्र तक के समय को त्रेता, लवकुश से महाभारतीय युद्ध तक को द्वापर तथा पीछे के समय को आदिम कलिकाल कहा है। हमारा यह कथन नहीं है कि हमारे ये समय-विभाग पुराणों के अनुसार हैं। है ऐसा अवश्य, किन्तु कहीं-कहीं शायद कोई अन्तर भी निकले। इसलिए इस काल-विभाग को पौराणिक न कहकर हम अपना ही कहते हैं, जिसमें किसी को मतभेद निकालने की आवश्यकता न प्रतीत हो।

सत्ययुग

मनु वैवस्वत के समय से अब तक वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। इसलिए हम वैवस्वत-काल से त्रेतायुग कहते हैं और इनसे पहले के छहों मनुओं के समय को मन्वन्तर-काल या सत्ययुग मानते हैं। पुराणों की गणना के अनुसार एक-एक मन्वन्तर लाखों वर्षों का होता है; किन्तु ऐसे कथन ऐतिहासिक नहीं माने जाते। हम अपने एक-एक मन्वन्तर को एक-एक राजघराने का समय कहते हैं। स्वायम्भुव मनु के दो पुत्र, प्रियव्रत और उत्तानपाद थे। मनु को भी मिलाकर प्रियव्रत की शाखा में २७ नरेश एक दूसरे के पीछे हुए। इन सबके नाम पुराणों में लिखे हुए हैं। इनमें मुख्य नरेश मनु, प्रियव्रत, ऋषभदेव, भरत, गय और अन्तिम विपश्चित्ज्योति थे। ऋषभदेव जैनमत के पहले तीर्थंकर कहलाते हैं। भरत को जड़भरत भी कहते हैं। ये बड़े ज्ञानी थे। हिन्दूमत का प्रचार यहाँ स्वायम्भुव

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पं० श्यामाविहारी मिश्र और पं० शुकदेवविहारी मिश्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मन्वन्तर से ही समझना चाहिए। इसका प्रारम्भ २८वीं शताब्दी बी० सी० से समझा जा सकता है। सन् १९२२ से २७ तक सिन्ध और पंजाब में जो खुदाई मोहंजोदड़ो और हड़प्पा में हुई थी, उससे पुरातत्त्व-वेत्ताओं के अनुसार २८वीं शताब्दी बी० सी० की द्रविड़-सभ्यता की प्रचुर सामग्री प्राप्त हुई है। इसमें शालिंगि, सिंहवाहिनी देवी, पशुपति शिव आदि की मूर्तियाँ निकली हैं तथा ध्यानमग्न मूर्तियाँ भी हैं। और बहुत-सी वस्तुएँ निकली हैं, जिनसे यह सभ्यता बहुत ऊँची मानी गई है। समझा गया है कि हिन्दूमत के बहुतेरे धार्मिक विचार इसी सभ्यता से समय के साथ उन्नत हुए हैं। इस सामग्री में बड़ी कारीगरी की भी वस्तुएँ मिली हैं।

स्वायम्भुव मनु के पीछे स्वारोचिष, उत्तम, तामस और रैवत नाम के चार मन्वन्तर एक दूसरे के पीछे हुए। इस समय के कोई वंशवृत्त नहीं प्राप्त हैं, केवल विष्णु-पुराण के अनुसार इतना ज्ञात है कि ये चारों मनु भी प्रियव्रत के वंशधर थे। दुर्गासप्तशती की कथाएँ स्वारोचिष मन्वन्तर की हैं। उनमें से कुछ उससे पूर्व की भी हो सकती हैं। ये प्रत्येक मन्वन्तर एक-एक राजघराने के समय समझ पड़ते हैं, जिससे इन चारों में मिलाकर कम से कम आठ नरेश अवश्य हुए होंगे। दूसरा चाक्षुष मन्वन्तर स्वायम्भुव के दूसरे पुत्र उत्तानपाद के वंश का था। भारतीय आर्य-नरेशों में चाक्षुष के पूर्ववाले पाँचों मन्वन्तरों में ऊपर के कथन के अनुसार कम से कम ३५ नरेश अवश्य हुए होंगे, जिससे चाक्षुष का ३६वाँ नम्बर पड़ता है। पुराणों में उत्तानपाद से चाक्षुष तक जो वंशवृत्त कथित है, उसमें प्रायः ३० नाम आ गये हैं। चाक्षुष को मिलाकर पुराणों में इस मन्वन्तर में एक दूसरे के पीछे दस राजा लिखे हैं, जिनमें वेन, पृथु, प्रचेतस और दक्ष की प्रधानता है। दक्ष ही अन्तिम राजा थे। शायद शैव कोप से मरनेवाले सती के पिता दक्ष यही नरेश हों। चाक्षुष के पूर्वजों में ध्रुव की मुख्यता है। ऋग्वेद का गान इसी समय से प्रारम्भ हुआ। सबसे पुराने वेदर्षि चाक्षुष मनु ही थे। ध्रुव भी एक वेदर्षि थे; किन्तु यह निश्चय नहीं कि वेदर्षि ध्रुव भी चाक्षुष के पूर्व पुरुष थे। हिरण्यकशिपु, समुद्र-मन्थन और बलि-बन्धन की कथाएँ इसी मन्वन्तर की हैं। कुल मिलाकर मन्वन्तर-काल अर्थात् सत्ययुग में एक दूसरे के पीछे कम से कम ४५ राजा हुए। ऐतिहासिकों का कथन है कि प्रत्येक शताब्दी में छः राजा होने का पड़ता बैठता है। इस प्रकार सत्ययुग कम से कम ७५० वर्षों का था।

त्रेता

ऐतिहासिकों का विचार है कि भारत में आर्यों का आगमन दो धाराओं में हुआ। उधर विष्णुपुराण का कहना है कि ब्रह्मा ने दो बार करके सृष्टि रची। सत्य-युग के साथ प्रथम आर्यधारा का इतिहास समाप्त होता है। इसमें ऋषभदेव और वेन ने नवीन मत चलाने के प्रयत्न किये, तथा चाक्षुष मनु ने ऋग्वेद का गान आरंभ किया। कुछ पंडितों का विचार है कि बलि-बन्धन और समुद्र-मन्थन की कथाएँ भारतीय न होकर ईरानी आर्यों से सम्बद्ध थीं। बलि-बन्धन के पीछे उनके पितामह प्रह्लाद को पुराणों और योगवासिष्ठ के अनुसार इन्द्रत्व प्राप्त हुआ तथा देवों और दैत्यों में विष्णु के द्वारा स्थायी सन्धि हुई। इसके पीछे इन्द्र अफ़ग़ानिस्तान या उससे उत्तर किसी और स्थान पर राज्य करने लगे, और ईरान (फ़ारस) देश दैत्यों को मिल गया। पाश्चात्य पंडितों का विचार है कि पार्सियों से फ़ारस में हारकर ही आर्य लोग भारत में आये।

पुराणों में लिखा है कि एक बार चन्द्रमा गुरुपत्नी तारा को भगा ले गये, जिससे चन्द्रपुत्र बुध उत्पन्न हुआ। इन्द्र ने चन्द्र के ऊपर चढ़ाई तक की, किन्तु दैत्यों की सहायता लेकर चन्द्र ने उन्हें हरा दिया। फिर भी सन्धि हो गई और तारा बृहस्पति को प्राप्त हुई। बुध का विवाह वैवस्वत मनु की पुत्री इला से हुआ। मनु के पुत्रों में इक्ष्वाकु और सुद्युम्न भी थे। शायद इन्द्र से चन्द्र की मनमैली के ही कारण समय पर वैवस्वत मनु और बुध भारत को चले आये। मनु अयोध्या में स्थापित हुए और बुध प्रतिष्ठानपुर (झूसी) में। सुद्युम्न के तीन पुत्र पूर्वी भारत में स्थापित हुए, किन्तु वे स्वयं इलाव्रत को वापस चले गये। इलाव्रत देश या पत्नी इला के कारण बुध के सारे वंशधर चन्द्रवंशी और ऐल कहलाये,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और मनु के वंशधर उनके पिता सूर्य के कारण सूर्य-वंशी। सूर्य और चन्द्र दोनों वंश चले मनु से ही, पहला उनके पुत्रों से और दूसरा पुत्री इला से। मनु से रामचन्द्र तक सूर्य और चन्द्रवंशियों में एक दूसरे से पीछे विविध वंशों में प्रायः ३८ से ४३ तक राजा हुए। इस काल के १२ वंश-वृक्ष पुराणों में कथित हैं, जिनमें आठ पूरे मिलते हैं और चार में कुछ-कुछ नाम छूट भी गये हैं। केवल रामचन्द्रवाला वंश-वृक्ष पीछेवाले सम्पादकों के ज्ञान की कमी से बहुत कुछ बढ़ गया है, अर्थात् जहाँ इतर सात वंशों में ३८ से ४३ ही नाम हैं, वहाँ रामवाले में ६६ हो गये हैं। उधर मैथिल जनक मनु से २४वीं ही पीढ़ी पर पड़ते हैं, यद्यपि वे ६६वीं पीढ़ीवाले राम के समकालीन ही कहे गये हैं। बात यह है कि मैथिल वंश से १३ या १४ नाम छूट गये हैं, तथा राम के वंश-वृक्ष में २६ नाम बढ़ गये हैं। ये २६ नरेश उन तीन वंशों के थे, जो थे तो सूर्यवंशी ही, किन्तु न तो अयोध्या-नरेश थे, न राम के पूर्व पुरुष। ये तीनों वंश हरिश्चंद्र, सगर और कल्मापपाद (दक्षिण कोशल-नरेश) के थे, जो वंश-वृक्षों में राम से ३२, २० तथा ११ पीढ़ी ऊपर के पूर्व पुरुष लिखे हैं। किन्तु वास्तव में हरिश्चन्द्र राम से केवल २० या २५ वर्ष पूर्व के थे, सगर राम से प्रायः ५० वर्ष पीछे के तथा कल्मापपाद राम के समकालीन। ये निष्कर्ष कई पौराणिक तथा वैदिक घटनाओं के मिलाने से निकलते हैं। ऐसी आठ-दस घटनाएँ हैं; किन्तु यहाँ केवल दो-तीन लिखी जाती हैं। वाल्मीकीय रामायण से प्रकट है कि राम ने वैदिक विजयी सुदास की फूफी तथा दिवोदास की बहन अहल्या को पुनीत किया। कौशिक विश्वामित्र सुदास के पुरोहित थे तथा इससे पूर्व हरिश्चन्द्र के यज्ञ में इन्हीं ने अपने भानजे शुनःशेफ को बचाया। यही राम के अस्त्र-गुरु थे। अतः हरिश्चन्द्र राम से बहुत पहले न थे। उधर भरद्वाज ऋषि ऋग्वेद के छठे मंडल में दिवोदास से अपना दान पाना लिखते हैं और इधर वन-यात्रा के समय राम और भरत की पहुनई करते हैं। इस प्रकार हरिश्चन्द्र, राम, दिवोदास और सुदास एक ही समय के बैठते हैं। काशिराज प्रतर्दन राम के अभिषेक में आते हैं। इन्हीं ने हैहय-नरेश तालजंघ के पुत्र वीतिहव्य को हराया, जिससे वह भरद्वाज के यहाँ रहने लगे। अतः वीतिहव्य भी राम के समय के निकट थे। उधर सगर ने युद्ध में इन्हीं वीतिहव्य के पौत्र तथा प्रपौत्र को पराजित किया, जिससे वे राम के पीछे के पड़ जाते हैं। अब कल्मापपाद का समय कहा जाता है। एक तो विश्वामित्र और वशिष्ठ इनके यहाँ थे, और वे ही राम के यहाँ भी थे। फिर कल्मापपाद के प्रपितामह ऋतुपर्ण नैषध-नरेश नल के मित्र थे। इधर नल की पुत्री इन्द्रसेना वैदर्भि नरेश मुद्गल को ब्याही थी। इन्हीं मुद्गल के पौत्र और पौत्री दिवोदास तथा अहल्या थीं। इस प्रकार कल्मापपाद और अहल्या दोनों के प्रपितामह ऋतुपर्ण और नल एक दूसरे के समकालीन थे। अतः अहल्या, कल्मापपाद और राम का समय एक ही हो जाता है। कम से कम इनके समय एक दूसरे से बहुत निकट थे। अतएव स्पष्ट है कि ये तीनों वंश राम के पूर्व पुरुषों के न होकर बिरादरीवालों के थे। अतएव राम मनु वैवस्वत से ६६ पीढ़ी नीचे न होकर केवल ३९ पुश्त नीचे थे।

यह त्रेतायुग इस प्रकार राजाओं की ३९ पुश्तों का निकलता है, अर्थात् प्रायः ६५० वर्षों का। इसमें सूर्यवंशियों की उत्तर-कोशल (अयोध्या) शर्याति, हरिश्चन्द्र, सगर, दक्षिण-कोशल, विशाला तथा मिथिलावाली सात रियासतें स्थापित हुईं। इनमें मुख्य नरेश मनु वैवस्वत, इक्ष्वाकु, पुरंजय, मान्धाता, त्रसदस्यु, अंबरीष, रघु, दशरथ, राम, शर्याति, हरिश्चन्द्र, सगर, भगीरथ, कल्मापपाद, निमि, मिथि, और सीरध्वज जनक हुए। इसी काल में चन्द्रवंशियों की भी कई शाखाएँ स्थापित हुईं, जिनमें पौरव और यादव प्रधान थे। पौरवों में हस्तिनापुर, विदर्भ, उत्तर-पांचाल, दक्षिण-पांचाल, मागध, चेदि, काशी और कान्यकुब्ज के राज्य स्थापित हुए। इनमें मुख्य नरेश थे पुरूरवस, नहुष, ययाति, पुरु, दुष्यन्त, भरत, हस्तिन्, अजमाढ़, संवरण, कुरु, उग्रायुध, मुद्गल, दिवोदास, सुदास, चायमान, नीप, बृहद्रथ, जरासन्ध, चेदि शिशुपाल, धन्वन्तरि, प्रतर्दन, जह्नु, कुशिक, गाधि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और विश्वामित्र । यदुवंश में माथुर और हैहय की प्रधान शाखाएँ थीं । इनमें शशबिन्दु, विदर्भ, अंधक, हैहय, दुर्दम, कृतवीर्य, सहस्रार्जुन और तालजंघ प्रधान थे । तुर्वसुवंश में मरुत्त सम्राट् थे, जिन्होंने पौरव दुष्यन्त को गोद लिया, जिससे यह राज्य पौरवों में मिल गया । द्रुह्युवंशी पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान में राज्य करते रहे तथा इनमें से कुछ वंश म्लेच्छों में भी मिल गये । आनववंशी अंगदेश तथा उत्तर-पश्चिम में जमे । इनकी आंग शाखा में दशरथ के मित्र लोमपाद नरेश थे । उत्तर-पश्चिमी आनवशाखा में उशीनर, शिवि और केकयी के पिता केकय प्रधान थे । पीछे से यह राज्य केकयी के पुत्र भरत ने पाकर अपने दोनों पुत्रों पुष्कल और तक्ष में बाँट दिया । इन वंशों के महापुरुषों के नाम जो ऊपर लिखे गये हैं, वे केवल त्रेता के हैं । द्वापरवालों के कथन आगे आवेंगे । इस वर्णन में नामों के आगे जहाँ नम्बर आवें या आये हों, वहाँ नम्बर से उस नाम का मनु वैवस्वत से उतनी ही पीढ़ी नीचे होना समझना चाहिए ।

चन्द्रवंशियों में पुरूरवस (३) और नहुष (५) बड़े नरेश थे, किन्तु इन्होंने ब्राह्मणों, ऋषियों तक से कर वसूल किया । इस काल में इन्द्र ने वृत्र-नामक एक ब्राह्मण-कुमार का धोखे से वध किया, जिससे इन्हें राज्य छोड़कर भागना पड़ा तथा भारत से बुलाये जाकर नहुष इन्द्र बनाये गये । इन्होंने इन्द्रालय में भी ऋषियों का अपमान किया, जिससे इनका वहीं विनाश हुआ और सूर्यवंशी पुरंजय (नं० ४) की सहायता से इन्द्र ने फिर से अपना पद प्राप्त किया । सूर्यवंश में पुरंजय के पीछे युवनाश्व (२०) तक किसी राजा ने प्रधानता न प्राप्त की । चन्द्रवंश में नहुष के पुत्र ययाति (६) भारी सम्राट् हुए । अहंकार के कारण इनका राज्य एक बार जा रहा था, किन्तु इनके पाँच दौहित्रों ने बचाया । ये लोग अष्टक कहलाते थे, जिनमें शिवि प्रधान थे । अपने चार जेठे पुत्रों यदु, तुर्वसु, अनु और द्रुह्यु द्वारा आज्ञाभंग होते देख आपने छोटे पुत्र पुरु को उत्तराधिकारी सम्राट् बनाया, तथा इतर चार पुत्रों को एक-एक प्रान्त दिये । ययाति के पीछे (२२) दुष्यन्त तक कोई भारी राजा पुरुवंश में नहीं हुआ, न इतर चारों शाखाओं में कोई निकलता हुआ नरेश हुआ । यदुवंशी माथुर शाखा में (२०) शशबिन्दु सम्राट् हुए । इन्होंने पुरुवंश को पराजित किया, किन्तु इनके उत्तराधिकारी अयोग्य हुए । तथापि इनके दामाद सूर्यवंशी (२१) मान्धाता भारी सम्राट् हुए । इन्होंने पुरुवंश को राज्यच्युत किया । इनके पुत्र (२२) पुरुकुत्स ने उत्तर-पश्चिम पर धावा करने के विचार से तौर्वसु सम्राट् (२२) मरुत्त के दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी (२२) दुष्यन्त पौरव को उनका पैतृक राज्य भी फेर दिया । इनके पुत्र (२३) भरत ने ऐन्द्र महाभिषेक पाया । सूर्यवंश में पुरुकुत्स के पीछे (३६) रघु, (३८) दशरथ और (३९) राम भारी नरेश हुए । मुख्य पुरुवंश में (३७) संवरण और (३८) कुरु प्रधान हुए । उत्तर-पांचालों में (३८) दिवोदास ने सूर्यवंशी (३८) दशरथ की सहायता से रावण के साढ़ू वैजयन्त नरेश तिमिध्वज शम्बर को मारा । अनन्तर इनके पुत्र (३९) सुदास ने पौरव संवरण (३७) को राज्यच्युत किया तथा रावी के प्रसिद्ध वैदिक युद्ध में दश नरेशों को पराजित किया । इनमें यादव तौर्वसु, आनव और द्रुह्युवंशी सम्मिलित थे तथा अनार्य-नरेश वर्चिन् के एक लाख सैनिक हारे तथा स्वयं वर्चिन् मरा । अनार्य-नरेश भेद भी पराजित होकर सुदास की प्रजा बना । अनन्तर संवरण ने सुदास को पराजित किया, जिससे उत्तर-पांचाल राज्य गिर गया और शायद सुदास मारे गये । काशी-नरेशों में (३४) दिवोदास हैहय-नरेश (३२) दुर्दम द्वारा पराजित हुए । हैहय-नरेश सहस्रार्जुन (३४) जगद्विजयी हुआ, किन्तु पीछे भार्गव परशुराम द्वारा मारा गया । अनन्तर इसका पौत्र तालजंघ (३६) भी भारी सम्राट् और विजयी हुआ । इसके पुत्र (३७) वीतिहोत्र को काशी-नरेश (३८) प्रतर्दन ने राज्यच्युत किया । कान्यकुब्ज-नरेश (और ब्रह्मर्षि) विश्वामित्र (३५) परशुराम की पितामही के भाई थे । इस नाते से परशुराम को कान्यकुब्ज-नरेश ने सहायता दी होगी, जिससे तालजंघ द्वारा कान्यकुब्ज-वंश राज्यच्युत हुआ । पीछे से सूर्यवंशी (३९) सगर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ने हैहयवंश को राज्यच्युत कर दिया। हैहयवंश के उत्कर्ष से माथुर यादव (२४) विदर्भ या उनके पिता अपना पैतृक राज्य खोकर विदर्भ (बरार) में स्थापित हुए। अनन्तर (३९) मधु ने आनर्त तथा मथुरा में राज्य स्थापित किया। इन्होंने माथुर-राज्य अपने पुत्र को दिया तथा आनर्त वाला दामाद हर्यश्व को।

अमुख्य सूर्यवंशी शाखाओं में (२) शर्याति आनर्त के सम्राट् हुए तथा इन्होंने ऐन्द्र महाभिषेक पाया। हरिश्चन्द्रवंश का राज्य कान्यकुब्ज के निकट था। हरिश्चन्द्र (३७) बड़े दानी और विजयी थे। मैथिल-राज्य को या तो निमि (१५) या मिथि (१६) ने स्थापित किया, या माधव द्वारा स्थापित इस राज्य को उनके वंशधरों से पाया। रामचन्द्र सूर्यवंशी (३९) ने रावण को मारकर दक्षिण में आर्यों के प्रभाव को फैलाया। इस प्रकार प्रकट होता है कि मनु और बुध द्वारा दूसरी आर्यधारा भारत में स्थापित होकर सुदास और रामचन्द्र के समय में पूर्ण प्रभाव के साथ सारे देश में स्थापित हुई। दक्षिण में आर्य-प्रभाव की वृद्धि दशरथ और दिवोदास द्वारा शम्बर-पराजय से प्रारम्भ हुई। प्रायः इसी समय परशुराम के उसी ओर बसने से वह और भी बढ़ी। अनन्तर महर्षि वीर अगस्त्य ने विन्ध्याचल और महाकान्तार पार करके तथा आतापी और वातापी को मारकर जनस्थान में प्रसिद्ध आर्ष उपनिवेश बसाया। अनन्तर जल-सेना प्रस्तुत करके आपने अरब के समुद्री लुटेरों को ध्वस्त किया, जिससे अरब समुद्र पर भारतीयों का व्यापार निर्विघ्न रूप से चलने लगा। उस समय दण्डकारण्य में माल्यवान् और खर की अध्यक्षता में अन्तपाल के रूप में रावण की १४००० सेना रहती थी, जिसके द्वारा चित्रकूट तक आर्यों पर उपद्रव होता था। इसी राक्षसी दल का सामना करने को, समझ पड़ता है, रामचन्द्र ने अगस्त्य की जलसेना को स्थलसेना के रूप में भी सुसज्जित किया, जिससे इन्होंने रावण की उपर्युक्त सेना को ध्वस्त करके यह राक्षसी उपनिवेश नष्ट कर दिया। अनन्तर रावण के जीतने में अगस्त्य ने भी शस्त्रास्त्रों द्वारा राम की सहायता की। इस प्रकार इस समय दक्षिण में आर्य-प्रभाव बहुत बढ़ा। वेद में अगस्त्य वीर कहे गये हैं। रामचन्द्र के समय में ऋग्वेद का गान करनेवाले ऋषिगण प्रचुरता से हुए, विशेषतया दूसरे, तीसरे, छठे और सातवें मण्डलों के प्रायः सब ऋषि इसी समय के थे।

द्वापर

इस युग में १३ रियासतों के वंश-वृक्ष पुराणों में दिये हुए हैं, जिनमें इस समय १३ से १६ तक पीढ़ियाँ विविध वंशों में पड़ती हैं। त्रेता के वंश-विवरण में सब जगह पीढ़ियाँ नहीं हैं, वरन् प्रायः केवल राजाओं के अनुसार उत्तराधिकार पुराणों में कथित हैं। द्वापर के वंश-वृक्षों पर अधिक परिश्रम हुआ है और इसमें ठीक-ठीक पीढ़ियाँ निकाली गई हैं। ऐतिहासिकों का विचार है कि एक शताब्दी में छः राज्यों एवं पाँच पुश्तों का पड़ता बैठता है। द्वापर में १४ पुश्तों का पड़ता पड़ने से यह समय प्रायः २८० वर्षों का होता है।

इस समय उत्तर-कोशल में लव और कुश के वंशों का राज्य चला। ये रामचन्द्र के पुत्र थे। कुशात्मज अतिथि प्रतापी कहे गये हैं। नं० ४९ पारियात्र के छोटे भाई सहस्राश्व ने दूसरा राज्य स्थापित किया, जो ६ पीढ़ियों तक चला। कुशवंशी अन्तिम राजा श्रुतायुस् (५४) का विनाश महाभारत-युद्ध में हुआ। इनके पीछे राज्य नहीं चला। शायद यह राज्य भी लववंश के अधिकार में चला गया। लव (नं० ४०) का वंश नं० ८० तक राज्य पर प्रतिष्ठित रहा। लववंशी सुदर्शन (४३) ने बहुत नीतिपूर्वक राज्य किया। इसका पुत्र काम-वश था, किन्तु उसके पीछे उसकी रानी ने राज्य सँभाल लिया। महाभारत के युद्ध में लववंशी बृहद्बल (५३) मारा गया। सगर (३९) का वंश (४३) भगीरथ तक चला। दक्षिण-कोशलनरेश कल्माषपाद राम के समकालीन थे। इनके पीछे इस वंश में दो राज्य हो गये। महाभारत-युद्ध के पीछे इस वंश का प्रभाव बढ़ा। बौद्ध-साहित्य में भी इसका विवरण है। विदेह के सूर्यवंश में दो शाखाएँ हो गईं। द्वापर में यह वंश स्थापित तो रहा, किन्तु प्रभावशाली न हुआ। परन्तु आगे चलकर इसने साम्राज्य प्राप्त किया। इसका कथन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कलियुग में आवेगा। द्वापर में चन्द्रवंशियों की प्रधानता रही और सूर्यकुल दबा रहा।

मुख्य पौरवकुल, हस्तिनापुर, में कुरु के पीछे (२०) शन्तनु प्रतापी सम्राट् हुए। इनके पुत्र भीष्म भारी योद्धा और वचन पालनेवाले महात्मा हुए। इनके अनुज विचित्रवीर्य के पुत्र धृतराष्ट्र और पाण्डु थे। धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन आदि थे। पाण्डव पाँच थे, जिनमें युधिष्ठिर और अर्जुन की मुख्यता थी। कौरव-पाण्डवों के अस्त्रगुरु द्रोणाचार्य और उनके पुत्र अश्वत्थामा भी प्रधान पुरुष थे। दुर्योधन के मित्र अंगराज कर्ण की भी महाभारत में महत्ता थी। कौरवों तथा पाण्डवों में महाभारतीय युद्ध हुआ, जिसमें श्रीकृष्ण की सहायता से पाण्डव विजयी हुए। इस वंश का राज्य आगे भी चला। द्विमीढ़वंश में (२१) उग्रायुध की महत्ता थी। ये विदर्भ के नरेश थे और लड़कर भीष्म द्वारा मारे गये। राज्य (२६) बहुरथ तक चला। उत्तर-पांचाल का सुदासवंश त्रेता में तो बहुत प्रधान था, किन्तु उनके पीछे सात-आठ पीढ़ियों तक शायद अराजक रहा; क्योंकि उन पुश्तों के नाम पुराणों में नहीं हैं। महाभारतीय युद्ध में (२०) द्रुपद पांचाल-नरेश थे। इनकी पुत्री द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की भार्या थी। दक्षिण-पांचाल वंश (२३) जनमेजय पर समाप्त होकर अराजक हो गया। मागध पौरवों में (४३) उपरिचर वसु, (४४) बृहद्रथ और उनके पुत्र (४५) जरासन्ध प्रधान हुए। अन्तिम नरेश सम्राट् था, किन्तु पाण्डवों से पराजित होकर यह वंश मांडलिक नरेश-मात्र रह गया। जरासन्ध का पुत्र सहदेव महाभारत-युद्ध में मरा और उसका पुत्र सोमाधि मागध-नरेश हुआ। यह राज्य पीछे भी चलता रहा। चेदि पौरवों में (४४) वसुचैद्य, (५१) दमघोष और (५२) शिशुपाल प्रधान थे। इनका पुत्र धृष्टकेतु महाभारत-युद्ध में मरा और उसका राज्य भी समाप्त हो गया। काशी-नरेश पौरवों में इस समय कोई महत्तायुक्त नहीं हुआ। (५५) दिवोदास पर इस वंश का राज्य समाप्त हो गया। कान्यकुब्ज का पौरववंश त्रेता में ही राज्यहीन हो गया था। यही दशा यादव हैहयवंश की हुई थी। माथुर यादवकुल में मधु (३९) के पीछे (५४) कंस प्रतापी हुआ; किन्तु अन्याय के कारण अपने भांजे कृष्ण के हाथों मारा गया। अनन्तर कृष्ण और उनके नाना उग्रसेन संघ-मुख्य हुए; क्योंकि यादवों का संघ-राज्य था। श्रीकृष्ण प्राचीन भारत में सबसे बड़े महात्मा थे! आप सोलहो कला के अवतार माने जाते हैं। इनकी कथा सब छोटे-बड़ों को ज्ञात है। आपके प्रभाव से यदुवंश का प्रताप बहुत बढ़ा तथा पाण्डवों ने भी विजय पाई; किन्तु यादवों का भोजों से ऐसा बिगाड़ हुआ कि श्रीकृष्ण के सामने ही दोनों नष्टप्राय हो गये। आंग आनवों में महाभारतीय युद्ध में (५२) कर्ण प्रधान थे। क्रथकैशिक की वैदर्भी चेदि-शाखा का कुछ कथन रुक्मिणी के विवाह के सम्बन्ध में आया है। रुक्मिणी के पिता भीष्मक भी विदर्भ के यादव-नरेश थे। इन दोनों के वंश-वृत्त अकथित हैं। मत्स्यपति विराट् भी पौरव थे। कुछ तुर्वसुवंशी यवन हो गये। द्रुह्युवंशी कुछ भोज कहलाये और कुछ म्लेच्छ। पाश्चात्य आनव-शाखा ने कई राज्य पंजाब, सिन्ध, राजपूताना आदि में स्थापित किये। इनमें कुछ द्रुह्युवंशी भी होंगे, किन्तु मध्यदेश से इतर राज्यों के वंश-वृत्त पुराणों में रक्षित नहीं हैं और यों भी वर्णन बहुत थोड़े हैं। पूर्व में नरकासुर-नामक एक ब्राह्मण ने प्राग्ज्योतिष राज्य स्थापित किया। इसका पुत्र भगदत्त महाभारत में मारा गया। राज्य कई पुश्तों तक चला। शोणितपुर में बाणासुर का राज्य चिरस्थायी न हुआ। श्रीकृष्ण के पीछे उनका प्रपौत्र वज्र इन्द्रप्रस्थ और फिर मथुरा का शासक हुआ। राज्य कई पुश्तों तक चला, किन्तु वंश-वृत्त अकथित है। पाण्डवों के राजसूय-सम्बन्धी दिग्विजय में बहुतेरे राज्य कथित हैं, तथा श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में भी कई राज्यों के कथन हुए हैं। इस काल तक वेद का गायन समाप्त हो चुका था। अन्तिम वेदर्षि खाण्डव-दाह से बचे हुए मन्दपाल से शूद्रा में उत्पन्न सारीस्रक, स्तम्बमित्र, जरितर और द्रोण थे तथा पुरुष-सूक्त के रचयिता नारायण ऋषि। यजुर्वेद और अथर्ववेद भी बहुत काल से बनते चले आते थे, किन्तु अभी समाप्त नहीं हुए थे। सामवेद बहुत करके ऋग्वेद से संगृहीत हुआ था।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आदिम कलिकाल

कलिकाल का आरम्भ महाभारत के युद्ध के निकट से समझना चाहिए। कोई-कोई इसे परीक्षित के राज्य अथवा श्रीकृष्ण के स्वर्ग-प्रयाण से भी मानते हैं। महाभारतीय युद्ध पार्जिटर महोदय ९५० बी० सी० के लगभग मानते हैं और डाक्टर प्रधान ११५२ बी० सी० के निकट। डाक्टर जायसवाल इसी समय को १४२५ बी० सी० कहते हैं। वायु-पुराण में लिखा है कि महाभारतीय युद्ध महापद्मनन्द से १००० वर्ष पूर्व हुआ। पुराणों के समय-सम्बन्धी कथन बहुधा अत्युक्ति-पूर्ण होते हैं। इससे अन्तिम गणना सन्दिग्ध है। शेष दोनों में से दसवीं शताब्दी-वाली गणना निकट की होने से विशेष मान्य है; क्योंकि इतिहास-कथन में समय को पीछे घसीटने की इच्छा गर्हित समझी जाती है। यदि यह समय दसवीं शताब्दी बी० सी० का मानें, तो त्रेतायुग १३वीं से बीसवीं तक जायगा, और सत्ययुग बीसवीं से २८वीं तक; क्योंकि ऊपर हम देख आये हैं कि द्वापर २८० वर्षों का था, त्रेता ६५० का और सत्ययुग ७५० का। आदिम कलिकाल महाभारतीय युद्ध के ३६ वर्ष पीछे ९१४ बी० सी० से चलकर गौतमबुद्ध के जन्म-काल ५६३ बी० सी० तक माना जाता है। इस समय पाण्डवों, मागधों और लववंशियों के ही केवल तीन वंश-वृक्ष पुराणों में कथित हैं और शेष की केवल पीढ़ियाँ गिनाई हुई हैं। लववंश नं० ८० तक चला है, मागध नं० ७५ और पाण्डव नं० ८१ तक।

महाभारतीय युद्ध के पीछे ३६ वर्षों तक युधिष्ठिर राजा रहे। अनन्तर मौशल उत्पात से यदुवंश का नाश हो गया और तब अर्जुन के पौत्र परीक्षित को हस्तिनापुर में और श्रीकृष्ण के प्रपौत्र वज्रनाभि को इन्द्रप्रस्थ में स्थापित करके युधिष्ठिर ने द्रौपदी और भाइयों समेत महाप्रस्थान किया। महाभारतीय युद्ध के कारण आर्यों के बलहीन हो जाने से पंजाब में नागवंश का प्रभाव बढ़ा और उसका सामना करने में परीक्षित तक्षक नाग द्वारा मारे गये। पीछे इनके पुत्र जनमेजय प्रतापी सम्राट् हुए। आपने नागों को ध्वस्त करके तीन यज्ञ भी किये। इन्हीं के समय में कृष्णद्वैपायन व्यास ने चार वेदों का सम्पादन किया तथा जय नाम का एक पुराण भी बनाया। आपने एक-एक वेद एक-एक शिष्य को बाँट दिया और पुराण का विषय लोमहर्षण सूत को दिया। पाण्डवों के वंश में डेढ़-दो सौ वर्ष तक साम्राज्य स्थापित रहा और तब निचक्षु को मट्ची (टीड़ी या वर्षा के पत्थरों) के उपद्रव से पांचालों से मिलकर कौशाम्बी जाना पड़ा, जहाँ ये दोनों राज्य एक हो गये। इन्द्रप्रस्थ में परीक्षित का दूसरा वंश शासक रहा। इस समय उनमें रथप्रत्स नरेश था। निचक्षु के कौशाम्बी जाने पर ये दोनों पाण्डव-राज्य मांडलिक मात्र रह गये तथा पृथक् रूप में पांचाल-राज्य अस्तित्व से उठ गया। केवल मट्ची के कारण निचक्षु का साम्राज्य खोना तथा हस्तिनापुर से सैकड़ों मील दूर कौशाम्बी में जा बसना कुछ आश्चर्य की घटनाएँ अवश्य समझ पड़ती हैं। फिर भी इस समय बृहदारण्यकोपनिषत् में विदेह जनक सम्राट् कहे गये हैं, और उनके यहाँ पाण्डवों के अभ्युदय तथा पतन, दोनों के कथन हुए हैं। यह पतन जनक के कारण नहीं हुआ। आधारों में पतन का कारण केवल मट्ची लिखित है। सम्भव है, किन्हीं और नरेशों से युद्ध या अन्य कारणों से भी मिलकर इस साम्राज्य का पतन हुआ हो।

पाण्डव-साम्राज्य के पीछे याज्ञवल्क्य के शिष्य मैथिल जनक का साम्राज्य जमा। जनक बड़े विद्या-प्रेमी और दर्शन-शास्त्र का मनन करनेवाले थे। इनके दरबार में पंडितों का जमघट लगा रहता था। इस समय उपनिषदों के साथ हमारे दर्शन-शास्त्र की ख़ासी उन्नति हुई। व्यास के द्वारा वेद-सम्पादन के बाद से ही हमारे पंडितों ने ब्राह्मण-ग्रन्थों और उपनिषदों पर अच्छा ध्यान दिया, जिससे निर्गुण ब्रह्म के विचारों की वृद्धि हुई। विदेहों का साम्राज्य भी सौ-डेढ़ सौ वर्षों तक चला होगा। फिर भी पुराणों में इसका वंश-वृक्ष नहीं दिया हुआ है। तथापि वैदिक और बौद्ध साहित्य से इस वंश के पाँच सम्राटों के नाम मिलते हैं, अर्थात् जनक, रेणु, नमिसाध्य, निमि और कराल जनक। संभव है, इस वंश के कुछ और भी सम्राट् हों। कराल जनक के एक ब्राह्मण-बालिका से व्यभिचार करने से काशी-नरेश की सहायता द्वारा मैथिल प्रजा ने इस वंश को

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राज्यच्युत करके एक संघ-राज्य स्थापित किया। जनक के समय में ६ और राज्यों तथा नरेशों का पता चलता है, अर्थात् गान्धार, केकय, मद्र, उशीनर, कुरु, पांचाल, काशी, कोशल और मत्स्य का। गान्धारराज द्रुह्युवंशी थे और विदेह निमि के समय में यहाँ नग्नजित् राजा थे। गांधार की विद्वत्ता प्रसिद्ध थी। चाणक्य यहीं के विद्यार्थी हुए हैं। केकय-नरेश अश्वपति ने कई ब्राह्मणों को ज्ञान सिखलाया। प्रवाहण और चूलनिब्रह्मदत्त पांचाल-नरेश थे। अजातशत्रु और धृतराष्ट्र काशी-नरेश थे। पीछे यहाँ के नरेशों की उपाधि ब्रह्मदत्त हुई। जैन-तीर्थंकर पार्श्वनाथ ७७७ बी० सी० में मृत हुए। इनके पिता काशिराज अश्वसेन थे। काशी भारत के भारी शहरों में था। मुक्त विजयी काशीनरेश था। विष्वक्सेन, उदकसेन और भल्लाट समय-समय पर काशिराज हुए। काशी ने ७१३ बी० सी० के निकट कोशल को जीता। ६७५ बी० सी० तक काशी का अच्छा प्रभाव रहा।

कोशल बहुत करके वर्तमान अवध-प्रान्त था। कोशलराज कुरु पांचाल के पीछे, किन्तु विदेह के पूर्व महत्तायुक्त हुए। हिरण्यनाभ श्रेष्ठ कोशलराज थे। ये तथा प्रसेनजित् और शुद्धोदन कोशल के अंशों के शासक थे। अयोध्या, साकेत और श्रावस्ती क्रमशः कोशल की राजधानियाँ हुईं। बौद्धकाल में अयोध्या गिर चुकी थी, किन्तु अन्तिम दोनों भारत के प्रसिद्ध छः नगरों में थे। दिवाकर, कालसेन, बंक, महाकोशल, विदूरथ आदि प्रसिद्ध कोशलेश थे। इस राज्य के और भी कई नरेशों के इस समय में नाम मिलते हैं। बुद्ध शुद्धोदन के पुत्र थे। मत्स्यराज ध्वसन द्वैतवन ने असफल अश्वमेध किया। यह ब्रह्मर्षि देश था। रामायण में वीर मत्स्य कथित हैं। दक्षिण में इस समय अस्सक, भोज, दंडक, आन्ध्र, शबर, पुलिन्द, मूतिब, पुलिक, माहिष्मती, भरोच (भृगुकच्छ), शूर्पारक, मूलक, कलिंग और उकल (उत्कल, उड़ीसा) की शक्तियाँ थीं। गौतमबुद्ध के कुछ पूर्व तथा विदेहों के पीछे बौद्ध-साहित्य में सोलह भारतीय राज्यों के कथन हैं—काशी, कोशल, अंग, मगध, वज्जी, मल्ल, चेतिय (चेदि), वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अस्सक, अवन्ति, गान्धार और काम्बोज। इन राज्यों तथा इस समय के भारत का बहुत कुछ हाल मालूम है। किन्तु स्थानाभाव से यहाँ लिखा नहीं जाता।

आदिम कलिकाल में प्रायः ८वीं शताब्दी बी० सी० में चारों वेद प्रस्तुत हो चुके थे। प्रायः चौथी शताब्दी बी० सी० तक ब्राह्मण और उपनिषत्काल रहा। छठी शताब्दी बी० सी० से वेदों का वर्तमान रूप दृढ़ हो गया, तथा सातवीं शताब्दी बी० सी० से सूत्रकाल भी चला, जो छः सौ वर्षों तक चलता रहा। प्राचीन उपनिषत् बुद्ध-पूर्व के थे। वाल्मीकीय रामायण के प्राचीन भाग (अयोध्या से लंकाकाण्ड तक) छठी-सातवीं शताब्दी बी० सी० के समझे जाते हैं। इससे पूर्व का जय-ग्रन्थ वर्तमान महाभारत में ऐसा मिला दिया गया है कि पृथक् नहीं हो सकता। कृष्ण-द्वैपायन व्यास-कृत प्राचीन पुराणों को भी इसी प्रकार वर्तमान पुराणों ने ग्रस लिया है। बादरायण व्यास-कृत श्रीभगवद्गीता का प्राचीन भाग प्रायः पाँचवीं शताब्दी बी० सी० का है। पाँचवीं-छठी शताब्दी बी० सी० के गौतमबुद्ध और बादरायण व्यास बहुत बड़े धार्मिक उपदेशक थे।

यों तो विशेषतः पुराणों के अत्युक्तिपूर्ण आधार पर हिन्दुओं का भारी जन-समुदाय अपने इतिहास को लाखों वर्षों का कहकर एक-एक राज्यकाल को दस-दस हज़ार वर्षों तक का मानता है, फिर भी खोज से इतना सिद्ध हो गया है कि हमारा इतिहास प्रायः ४७००-४८०० वर्षों का अवश्य है, जिसका सूत्रपात कम से कम २८वीं शताब्दी बी० सी० में निश्चयपूर्वक हुआ। उसमें चारों युगों के परिमाण ७२०, ६२०, २८० और ३००० वर्षों के हैं। यह इतिहास मुख्यतया वेदों, पुराणों और बौद्ध-साहित्य से मान्य रूप में सिद्ध हुआ है। पुराणों में कुछ 'पोप'-लीला है अवश्य, किन्तु उनके मूलभागों से बहुत उत्कृष्ट एवं सच्चा इतिहास प्राप्य है। इस इतिहास की मान्यता वर्तमान ऐतिहासिकों ने भी स्वीकार की है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

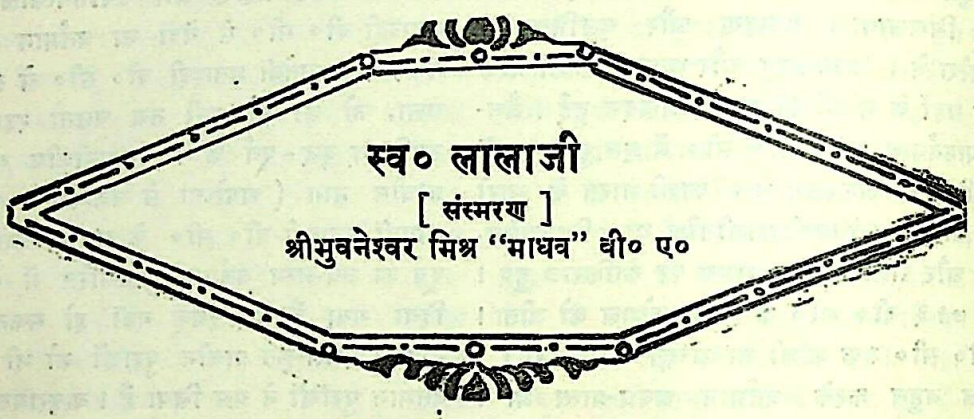

स्व० लालाजी

[संस्मरण]

श्रीभुवनेश्वर मिश्र "माधव" बी० ए०

"एँ ! यही लालाजी हैं ?"—मैंने निराशा और आश्चर्य-भरे शब्दों में एक मित्र से पूछा।

× × ×

जुलाई सन् २४ की बात है। हिन्दी के महारथियों का नाम सुनकर ही मैंने हिन्दू-विश्वविद्यालय में नाम लिखाया था—कालेज में पढ़ने और बड़े-बड़े लोगों के संग में रहने का उल्लास था और सबसे अधिक उल्लास था एक ही स्थान पर हिन्दी के इतने बड़े-बड़े विद्वानों के पुण्य दर्शन का। सबसे प्रथम मैंने आचार्य ध्रुव के दर्शन किये, उनके चरण छूकर आशीर्वाद माँगा। देहात से आये हुए एक श्रद्धालु शिष्य की ओर उन्होंने एक बार स्निग्ध दृष्टि से देखा और मुसकराये। फिर सामने रक्खे हुए काग़ज़ों में डूब गये। आचार्य के दर्शन कर मैंने अपने को धन्य माना! भारतीय संस्कृति, भारतीय वेश-भूषा की वह सौम्य मूर्त्ति!

आचार्य के कमरे के बाद रजिस्ट्रार का आफ़िस और फिर कालेज के क्लर्कों का आफ़िस;—टाइपराइटरों की खटखटाहट, नाम लिखानेवाले झुंड के झुंड विद्यार्थियों की रेलपेल! दम घुटने लगता था इस भीड़ को पार करने में। वहाँ से निकलकर आगे बढ़ने पर हिन्दी-विभाग के प्रोफ़ेसरों का कमरा है। बाहर से मैंने झाँका, डरते हुए, सकुचाते हुए, भय खाते हुए। प्रोफ़ेसर हैं प्रोफ़ेसर, न मालूम मुझसे कहीं कोई अशिष्टता हो जाय और वे बिगड़ उठें। फिर भी मन में उन विभूतियों के दर्शन की तीव्र लालसा थी। बरामदे में खड़ा-खड़ा मैं प्रतीक्षा करता रहा।

फिर क्या था! अमल धवल पगड़ी बाँधे, काली शेरवानी और सफ़ेद पाजामा पहने श्रीहरिऔधजी, अँग्रेज़ी और भारतीय वेश-भूषा का सुरुचिपूर्ण समन्वय करते हुए श्रीशुक्लजी, पूरे अँग्रेज़ी लिबास में बाबू साहब (श्यामसुन्दरदास) सबके एक-एक कर दर्शन हुए। उस समय हृदय में कैसी लहरें उठ रही थीं, आज पंद्रह वर्ष बाद उन्हें अङ्कित करना कठिन है। परन्तु यह स्मरण है कि मैं उन्हें उसी भाव से देख रहा था, जैसे गँवई का आया हुआ किसान यकायक गांधीजी को देखे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

"एं! यही लालाजी हैं!"—मैंने निराशा और विस्मय के साथ अपने एक मित्र से पूछा। क्या देखता हूँ कि एक दुबला-पतला छोटे क़द का आदमी, जिसके चेहरे की हड्डियाँ उभर आई हैं, आँखें धँस गई हैं और उन धँसी हुई आँखों पर निकेल के फ़्रेम का मोटा चश्मा लगा हुआ है, हाथ में रजिस्टर लिये कमरे से बाहर निकलकर क्लास लेने जा रहा है। फिर मैंने ज़रा ग़ौर से देखा इस जीर्ण-सी काया को। महाआकर्षण-हीन व्यक्तित्व! कपड़े-लत्ते में भी कोई सलीक़ा नहीं, कोई ढंग नहीं, कोई च्वायस नहीं, जो मिला, जैसे मिला, पहन लिया है शरीर ढकने भर के लिए। बहुत मामूली सफ़ेद गाढ़े का मुहरीदार पाजामा, वैसा ही मामूली बंद गले का कोट, पैर में कैनवस का फ़ुल शू, जिसकी हफ़्तों से सफ़ेदी नहीं हुई है, फ़ीते अस्त-व्यस्त, ढीले-ढाले, सिर पर पुराने ढंग की फ़ेल्ट कैप! चाल में एक अजीब तरह की मंदता।

यही लालाजी हैं! 'वीरपञ्चरत्न' का यही कवि है! स्कूल में पढ़ते समय जिस व्यक्ति को मैं इतने भक्ति-भाव से देखता था, वह व्यक्ति यही है? क्या सचमुच इन्हीं की लेखनी का वह प्रसाद था—

सब वीर किया करते हैं सम्मान क़लम का,
वीरों का सुयश गान है अभिमान क़लम का।

× × ×

'लालाजी' के नाम से भारतवर्ष में एक ही साथ दो व्यक्ति प्रख्यात हुए—एक साहित्य के क्षेत्र में, दूसरे राजनीति के क्षेत्र में—एक लाला भगवानदीन, दूसरे लाला लाजपतराय। छोटे मुँह बड़ी बात है, परन्तु मुझे ऐसा ही लगता है कि राजनीति के क्षेत्र में जो स्थान लाला लाजपतराय का था, साहित्य के क्षेत्र में वही स्थान लाला भगवानदीन का था; एक राष्ट्र-केसरी थे, दूसरे साहित्य-केसरी। दोनों की दहाड़ आज भी अपने-अपने क्षेत्र में गूँज रही है।

हिन्दी के प्रति मोह और आकर्षण होने के कारण ही मैं हिन्दू-विश्वविद्यालय में आया और यहाँ अपने ऐच्छिक विषयों में हिन्दी लेने पर मुझे अपने अध्यापकों के अधिकाधिक निकट सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। शुक्लजी की गंभीर-मुद्रा से भय मालूम पड़ता था, इस कारण कई वर्ष तक उनसे व्यक्तिगत परिचय करने का साहस नहीं हुआ। स्वभाव का मैं था भी झेंपू, और इस कारण भी बहुत परिचय से जी भागता-सा था। क्या पूछूँगा, क्या कहूँगा, वे कुछ पूछ बैठे तो क्या उत्तर दूँगा आदि ऐसे बहाने बना-कर मैं अपने मन को चुपचाप समझा लेता था। एफ़्० ए० के लड़के प्रायः 'fools' (मूर्ख) नाम से सम्बोधित किये जाते हैं और हर बात में उनकी अभद्रता की ओर उँगली उठा करती है। जमात बाँधकर, हल्ला करते हुए, जूते बजाते हुए एक रूम से दूसरे रूम में जाना, आगे की सीटों के लिए बुरी तरह दौड़ना और फिर स्कूली आदत के मुताबिक़ प्रोफ़ेसरों को बीच-बीच में छेड़ना! बेचारे प्रोफ़ेसर एक बार नाक-भौं सिकोड़ते—"कैसे गधों से पाला पड़ा है", फिर स्वयं सोचते—आख़िर ये हैं भी तो First year Fools, इसलिए ज़रा-सी मुसकान के साथ अपनी कही हुई बात को दोहराते।

ऐसी ही विषम अवस्था में मैंने पहले दिन लालाजी को क्लास में पाया। लालाजी हमें हरिऔध-संकलित "कबीर-वचनावली" पढ़ा रहे थे। आरंभ में था सृष्टि-प्रकरण। यह सृष्टि कैसे हुई, कहाँ से हुई और कहाँ जा रही है, यह सवाल यों ही इतना पेचीदा है कि बड़े-बड़े दार्शनिकों के छक्के छूटने लगते हैं और ललाट पर पसीना आने लगता है। फिर उस सृष्टि-क्रम की कोई व्यवस्था हो, कोई शास्त्रीय विवरण हो तो कुछ समझा-समझाया भी जाय। कबीर का सृष्टि-क्रम कबीर की वाणी की तरह ही अटपटा है। वहाँ तो एक-अनेक की अजीब आँख-मिचौनी है। लालाजी पढ़ा रहे थे—लगे इसी सिलसिले में सांख्य का सृष्टि-क्रम समझाने और फिर उसका और कबीर के मत का मिलान करने। कहीं किसी बात में भी मेल नहीं! इस प्रकार कबीर का सृष्टि-क्रम तो उलझ ही गया, सांख्य-वांख्य भी यों का यों ही धरा रह गया। एक साथ ही क्लास में हल्ला हो गया—"लालाजी, लालाजी, आप क्या समझा गये? ख़ाक भी समझ में नहीं आया।" लालाजी अपनी ओर से उत्तर के लिए तैयार थे;

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परन्तु उस दिन कुछ ऐसी गड़बड़ मची कि वे समझा नहीं सके। कुछ खिन्न, कुछ विपण्ण, कुछ क्षुब्ध वे क्लास से बाहर निकले।

दूसरे दिन क्या देखते हैं कि लालाजी की जगह पर हरिऔधजी कबीर का सृष्टि-क्रम पढ़ाने क्लास में आ गये हैं। वह हरिऔधजी का ही संकलन था और उन्होंने कुछ विस्तार से संतमत का निरूपण तथा संतमत के अनुसार सृष्टि-क्रम का विवेचन किया। फ़र्स्ट इयर के मूर्खों को सृष्टि का क्रम तो क्या समझ में आता, हाँ, उन्हें इस बात से तसल्ली हो गई कि लालाजी ने अपनी हार स्वीकार कर ली।

लालाजी की इस हार को मैंने उनकी सबसे बड़ी जीत समझा। कितनी सचाई, कितनी ईमानदारी, अपने सम्बन्ध में कितनी सरलता और कितनी सादगी! लालाजी ने उसके बाद स्वयं स्वीकार कर लिया कि भाई, सन्तों की सारी बातें कुछ उनकी अपनी होती हैं और उन्हें समझना-समझाना आसान नहीं है। इसलिए मैंने यही ठीक समझा कि हरिऔधजी ही आप लोगों को समझा दें।

इसके बाद लालाजी के क्लास में ऐसी घटना की पुनरावृत्ति नहीं होने पाई। लालाजी ख़ूब तैयार होकर आते थे और वे संस्कृत की कमी फ़ारसी से पूरी कर लेते थे। 'टीचर' के रूप में लालाजी एक ही थे। क्लास में वे कभी कुर्सी पर नहीं बैठते थे, या तो खड़े रहेंगे या टेबुल पर बैठेंगे। वृद्धावस्था के कारण खड़े-खड़े जब वे थक जाते तो टेबुल पर बैठ जाते थे। ख़ूब ज़ोर से और बहुत स्पष्ट बोलते थे, जिसमें एफ़्० ए० के हम ढाई-तीन सौ विद्यार्थी ख़ूब मज़े में सुनते जाते और नोट करते जाते थे।

लालाजी की सादगी और बेतकल्लुफ़ी को देखकर मैं मुग्ध हो गया। उन्हें आजकल के प्रोफ़ेसरों की तरह अपनी 'सर्वज्ञता' अथवा 'बहुज्ञता' का अभिमान नहीं था। वे इस 'बहुज्ञता' को बहुत अच्छी बात भी नहीं मानते थे। वे लेक्चर देने की अपेक्षा ग्रंथ का अध्यापन तथा प्रासंगिक विषयों की चर्चा बहुत पसंद करते थे। ग्रंथों के संबंध में आजकल कालेजों में एक भ्रम काम कर रहा है। अधिकांश प्रोफ़ेसरों ने लेक्चर दे देना ही अपना परम कर्त्तव्य समझ रक्खा है, उस विषय की किताबों से उन्हें ग़र्ज़ नहीं। पंत की काव्य-सुषमा पर व्याख्यान सुन लेना और बात है और पंत के गुंजन, पल्लव, वीणा आदि का मर्म जानना और। प्रायः प्रोफ़ेसर व्याख्यानों के द्वारा ही, जो देने और सुनने दोनों में ही सुखकर है, अपने को संतुष्ट कर लेते हैं तथा विद्यार्थी भी व्याख्यान को ही कालेज की शिक्षा का परम प्रसाद मानते हैं। परिणाम यह होता है कि प्रायः अध्यापक तथा विद्यार्थी, दोनों में ही ग्रंथों की ओर से गहरा अज्ञान बना रहता है। विश्वविद्यालयों से निकले हुए विद्यार्थियों से आप छायावाद, रहस्यवाद, (Mysticism, Reflectionism, Expressionism) आदि वाद और ism पर चाहे जितना सुन लीजिए, परन्तु उनसे पूछिए कि इन विषयों के मौलिक ग्रंथ आपने कौन-कौन से पढ़े हैं तो उनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगती हैं। प्रायः विद्यार्थी आजकल दूसरों की लिखी हुई तद्विषयक आलोचनाओं (criticism) से ही काम चला लेते हैं। हर विषय की यही बात है—ग्रंथ आले में ही पड़े रह जाते हैं—यहाँ-वहाँ की थर्ड क्लास आलोचनाएँ पढ़ लीं और काम चला लिया। इस 'काम चलाऊ' शिक्षा का छकड़ा कब तक चलता रहेगा? अध्यापक और विद्यार्थी कब तक अपने को धोखे में रक्खे रहेंगे?

लालाजी की पढ़ाने की शैली अपनी ख़ास थी। एक-एक शब्द पर पूरा-पूरा विचार, उसकी उत्पत्ति और गति आदि का पूरा-पूरा ऊहापोह। फ़ारसी और अरबी के शब्दों की जहाँ व्युत्पत्ति आती अथवा ग्रंथ में आये हुए किसी पद का फ़ारसी की किसी कविता से मुक़ाबला करना होता, वहाँ लालाजी का हृदय नाच उठता। अब तक लालाजी से पढ़े हुए मेरे अनेक काव्य-ग्रंथों में फ़ारसी-अरबी के कितने ही शेर लिखे हुए हैं, और उन्हें आज पढ़ता हूँ तो लालाजी की स्मृति सजीव हो उठती है।

हर बात में लालाजी की अपनी ही कार्य-शैली थी। वे बँधी-बँधाई परिपाटी पर चलने के हामी नहीं थे। हमारे क्लास के रजिस्टरों में विद्यार्थियों के नाम अँग्रेज़ी में छपे होने के कारण अँग्रेज़ी वर्णमाला के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अनुसार जमाये हुए थे। लालाजी को यह क़तई पसन्द नहीं था। वे हर महीने उन अँग्रेज़ी में छपे हुए नामों को काटकर हिंदी के सुपुष्ट सुन्दर अक्षरों में अकारादि क्रम से जमाते। ऐसा करने में उनका बहुत समय लगता, परन्तु किये बिना उनसे रहा नहीं जाता। इस कारण आफ़िस के क्लर्कों को परसेंटेज़ जोड़ने में काफ़ी दिक़्क़त और परेशानी होती, परन्तु वे करते क्या? लालाजी के अक्षर बहुत ही पुष्ट, सुन्दर और सुघर थे—वह बड़ी सफ़ाई के साथ जमा कर लिखते। कई बार हम लोगों ने आग्रह किया कि दीजिए, हम लोग लिख दें। परन्तु वे हम लोगों के अक्षरों से संतुष्ट नहीं होते। उनको इस काम में बहुत सुख मिलता और इसे वे बहुत उत्साह एवं उल्लास के साथ करते।

लालाजी जीवन तथा जगत् में रस लेनेवाले एक बहुत ही ज़िन्दादिल तरुण वृद्ध हैं, यह मैंने तब जाना जब लालाजी हमें बिहारी के दोहे पढ़ाने लगे। बिहारी के दोहों में ही लालाजी खुले और इतने खुले कि कुछ पूछिए नहीं। शृंगार की तो वह मूर्ति ही थे। उसमें भी विप्रलंभ की अपेक्षा संयोग शृंगार की बहुत सूक्ष्म बातों की ओर, जहाँ किसी सहृदय व्यक्ति की ही पैठ हो सकती है, लालाजी बड़े ढंग से समूचे क्लास का ध्यान खींच ले जाते। अलंकार तथा नायिकाभेद लालाजी के सर्वथा अपने विषय थे और हिन्दी में इस विषय का उनकी जोड़ का और भी कोई मर्मज्ञ हुआ, यह कहना कठिन है। बिहारी-सतसई पढ़ाते समय लालाजी इतना रस बरसाते कि क्लास-का-क्लास उस आनन्द-धारा में डूब जाता। वे रूप खड़ा कर देते। कभी-कभी विनोद और चुहल में कह उठते, "भाई, विज्ञान के सभी विषयों में Practical Experiments के लिए Laboratories बनी हुई हैं, परन्तु आर्ट्स-सेक्शन में नायिकाभेद के ज्ञान के लिए कोई भी प्रबन्ध नहीं है। कोरे किताबी-ज्ञान से कोई नायिकाभेद ख़ाक सीख सकता है? नायिकाभेद के व्यावहारिक ज्ञान के लिए तो बहुत ख़ाक छाननी पड़ती है।"

लालाजी के कुछ ख़ास favourite authors थे। केशव और बिहारी पर लालाजी का अपूर्व अधिकार था। इस क्षेत्र में मिश्रबंधुओं के साथ उनका जो साहित्यिक दंगल हुआ, वह हिन्दी-साहित्य में चिर-संस्मरणीय घटना है। 'मनस्थिरता' को लेकर उन्होंने स्वर्गीय श्रीआचार्य द्विवेदीजी तक पर रहम नहीं किया। वे किसी की भी ग़लती को मुआफ़ नहीं कर सकते थे। ग़लती करनेवाले चाहे आचार्य द्विवेदीजी हों या बाबू श्यामसुन्दरदास या मिश्रबंधु। वे व्यक्तित्व के आतंक में आनेवाले जीव नहीं थे। लालाजी जब तक रहे, बड़ी शानोशौकत से रहे। योग्यता और विद्वत्ता का वे हृदय से आदर करते थे, परन्तु किसी के झूठे रोब में आना उन्होंने सीखा ही नहीं था। शुक्लजी को वे हिन्दी-साहित्य का मुकुट-मणि मानते थे और उनकी विद्वत्ता के सामने श्रद्धा और आदर से सिर झुकाते थे।

लालाजी का एक और भी रूप था, और वही उनका सही और सच्चा रूप था। प्रायः प्रातःकाल मैं उन्हें बग़ल में धोती और कुशासन दाबे नंगे सिर, नंगे पैर, हाथ में जल-पात्र लिये स्नानार्थ दशाश्वमेध-घाट जाते देखा करता था। घाट से लौटते हुए लालाजी के ललाट पर केसर-मिश्रित चंदन तथा कुंकुम की बिंदी बहुत ही शोभा देती थी। क्लास में भी प्रायः उनके चंदनचर्चित मुखमंडल के दर्शन होते। कितना भव्य था वह वेश! क्लास में प्रवेश करते ही वे एक बार प्रेमपूर्वक सबका मौन नमस्कार स्वीकार करते और 'जयशंकर' कहते। लालाजी औढरदानी भगवान् विश्वनाथ के अनन्य उपासक थे। यही उनके जीवन का वास्तविक और आन्तरिक रूप था। कितना प्रिय, कितना मधुर!

लालाजी ने ग़रीबी में ही अपना जीवन बिता दिया। विश्वविद्यालय में भी उन्हें बरायनाम वेतन मिलता था। उन्हें इस बात का बड़ा क्षोभ था कि हिन्दी के इतने बड़े हिमायती पूज्य मालवीयजी महाराज की छत्रछाया में भी हिन्दी के अध्यापकों की यह दुर्दशा है। वे इसे हिन्दी के प्रति अन्याय तथा अपमान समझते थे और कभी-कभी असह्य वेदना के कारण क्लास में भी वे अपने इस भाव को छिपा नहीं सकते थे। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे ज्वालामुखी फट पड़ा है और लावा निकल रहा है।

छायावाद के प्रति लालाजी के भाव उदार नहीं थे। वे इसे 'छोकरावाद' कहा करते थे, और छायावादी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कवियों को 'तुकड़' कहकर अपने जी की जलन मिटाने की चेष्टा करते थे। उन दिनों कलकत्ते के 'मतवाला' में लालाजी के किसी ग्रंथ के विरोध में भूदेव शर्मा ने काफ़ी लम्बी लेख-माला लिखी थी; परन्तु लालाजी पर उन लेखों का कोई भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपने विश्वास में अडिग रहे। अन्त समय तक लालाजी छायावाद के विरोधी ही रहे।

लालाजी का कविता सुनाने का ढंग भी मुन्शियाना था। उर्दू की बहर में तो आप लिखते ही थे, भाषा भी बड़ी चुहल-भरी, फड़कती हुई। बीच-बीच में 'मुकर्रर इरशाद', 'वाह-वाह', 'बलिहारी है' की ध्वनियों से इनका हौसला ख़ूब बढ़ता। लालाजी थे बड़े ही रंगीन तबियत के और इसीलिए प्रायः कवि-सम्मेलनों में 'रमा कि मोटरकार' सुनाने का उन्हें बड़ा उत्साह रहता था। उक्त कविता में कुछ ऐसी पंक्तियाँ हैं, जिन्हें सुनने, समझने तथा रस लेने के लिए बहुत सूक्ष्म ज्ञान की आवश्यकता नहीं। लालाजी की कविताओं का संग्रह 'नदीमे दीन' छपा है। एक दिन क्लास में लालाजी पर ख़ूब विनोद हुआ। लालाजी का पीरियड था, यह देख हम लोगों ने mock show शुरू किया। कोई कह रहा है—'नदीमे दीन' के माने हैं नदी में दीन कवि बहे जा रहे हैं, कोई कह रहा है दीन कवि नदी में नहा रहे हैं, कोई कह रहा है नदी में स्नान करती हुई किसी नायिका को देखकर बिहारी की तरह दीन कवि अपनी आँखों को, हृदय को जुड़ा रहे हैं। यह शास्त्रार्थ चल ही रहा था कि लालाजी ने क्लास में 'जयशंकर' कहते हुए प्रवेश किया और शास्त्रार्थ का कारण पूछा। जब उन्हें मालूम हुआ कि 'नदीमे दीन' पर ही यह सारा तूमार बँध रहा है तो बहुत ही सकुचाये। पीछे उन्होंने कहा, टाइप की भूल है, चाहिए था नदीम-ए-दीन।

गर्मी की छुट्टियाँ हो रही थीं—हम सभी घर जाने को व्यग्र थे। अन्तिम दिन अस्तव्यस्तता की दशा में ही लालाजी के क्लास में हम लोग मिले। लालाजी हममें से प्रत्येक का ज़िला और प्रांत पूछ रहे थे, और पूछ रहे थे कि तुम्हारे यहाँ क्या ख़ास चीज़ होती है। कोई कह रहा था पत्थर की मूरत, कोई कह रहा था केवड़े का इत्र, कोई कह रहा था काँच के बर्त्तन, कोई कह रहा था मिट्टी की सुराहियाँ, कोई कह रहा था नीबू, कोई बेल, कोई नारियल, कोई मक्का के भुट्टे, कोई लस्सी। कोई अपने यहाँ की शीतलपाटियों की तारीफ़ कर रहा था तो कोई अपने यहाँ की जंगली छड़ियों की। लालाजी यह कह रहे थे कि जिसके यहाँ की जो ख़ास चीज़ हो, उसका एक-एक नमूना ज़रूर साथ लेते आना। मेरे घर के एक कमरे में उनकी प्रदर्शनी होगी और यही मानूँगा, तुम लोगों की गुरु-दक्षिणा।

परन्तु गुरु-दक्षिणा की बारी नहीं आई। छुट्टियाँ कुछ ही दिन बीत पाई थीं कि अख़बारों ने लालाजी के निधन का दुःखद समाचार छापा। इसी को कहते हैं हरि-इच्छा!

अभ्युदय का मूल आरोग्य

आप पहले अपने आरोग्य की अभिलाषा करें।

आरोग्य से ही अभ्युदय की अभिलाषा सफल होगी। आरोग्य का लाभ लेने के लिये

आतंकनिग्रह गोलियाँ

ही प्रशस्त साधन हैं।

क़ीमत—३२ गोलियों की डिब्बी का १) एक रुपया

आतंकनिग्रह औषधालय

जामनगर, काठियावाड़

लखनऊ एजेंट—इंदरचंद एण्ड कं०, चौक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मनुहार

श्रीसूर्यनारायण व्यास साहित्याचार्य

१

मुझको कहो न 'वीर', वीरता पिघल बन गई 'पीर' !
जब से पुतली में खिंच आई प्रियतम की तसवीर !
'धीर और गम्भीर' कभी था, अब तो हुआ अधीर !
बढ़ती ही जाती हिय-पीड़ा 'द्रुपद-सुता का चीर' !

२

'मौन रहूँ ?' मनुहार करो हो, दूर-दूर से हाय !
इतनी निर्दयता-प्रिय, मेरे, बना रहे असहाय !
कसक वेदना-मयी उठे है, पल-पल में हिय-शूल !
दरसन को भी तरस रही हैं अँखियाँ ये सुख-भूल !

३

'भूलूँ ?' मैं तो भुला चुका था, तेरी मीठी याद,
फिर चक्कर देकर आई है, वही पुरानी याद !
आज 'भुलाया स्वयं' सुन रहा तेरा अनहद-नाद !
स्मृति-मंदिर की रानी ! कैसे रोकूँ यह उन्माद !

४

आज जगत् को तेरे बिन मैं देख रहा हूँ सूना,
मेरी हिय-नगरी में लगता तेरे बिना अलूना,
मैं एकान्त अनोखा सेवक, तेरे हित दीवाना,
दूर-दूर हिय चूर करो हो नचा रहे मन-माना !

५

मैंने यों निज-'नेह' डालकर चाही थी, 'दीवाली' !
यह तो मम-अस्तित्व-'होलिका' बनती है री आली !
आज 'शीतला' कर दो इसको नेह-मेह बरसा दो !
बादल-सी स्मृति में छा जाओ, नवजीवन सरसा दो !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

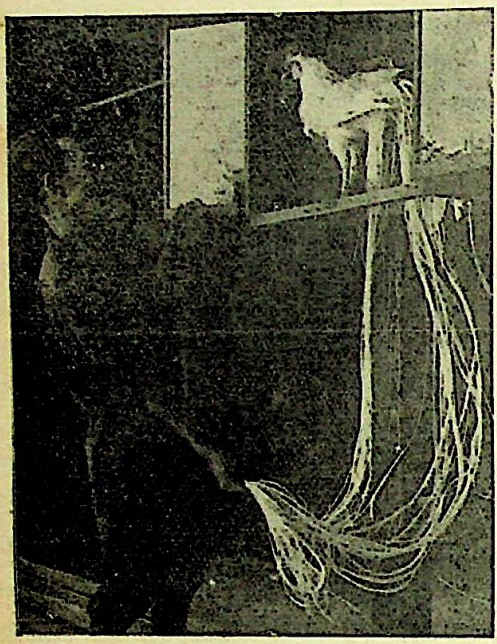

इस मुरग़े के लिए यह जगह ख़ास तौर पर
ऊँची बनाई गई है, ताकि पूँछ
के बढ़ने में कोई दिक़्क़त न हो

य ह पूँ छ !

श्रीधर्मवीर एम्० ए०

पहले कोबे, फिर ओसाका और अंत में तोकियो, सब कहीं चिड़ियाघर देखा ; पर प्रकृति की सृष्टि का वह सदस्य कहीं न नज़र आया, जिसको देखने की इतनी इच्छा थी। श्रीइसोया इन दिनों ख़ाली थे। मैंने उनसे इसका ज़िक्र किया। उन्होंने कहा—"दुमदार मुरग़े को देखा तो मैंने भी नहीं ; उसके बारे में सुन ही रक्खा है।"

"तब तो यह ठीक ही हुआ न कि दूर के ढोल सुहावने होते हैं।"

श्रीइसोया ने मेरी बात का समर्थन किया। उन्होंने कहा—"अच्छा, तो इस ढोल को हम एक साथ जाकर सुनेंगे। कहिए, है सलाह ?"

अंधे को क्या चाहिए, दो आँखें ? मैंने पूछा—"कब जा सकेंगे आप ? तारीख़ और समय निश्चित कर लीजिए।"

"रविवार की सुबह के संबंध में आपकी क्या राय है ?" उन्होंने पूछा—"उस दिन आपके प्रोग्राम में क्या दर्ज है ?"

"प्रोग्राम की आपने भली पूछी।" मैंने जवाब दिया—"यहाँ तो हमने सारी दुनिया को देखने के मंसूबे बाँध रक्खे हैं। भला यह भी कभी हो सकता है ? आप फ़ैसला कीजिए। मैं उस दिन के प्रोग्राम को उठाकर डायरी के किसी सफ़े पर लिख देता हूँ। आपने रविवार को बाबत पूछा है। मेरे लिए रविवार ठीक है। मेरा ख़याल है, मेरे दूसरे साथी भी इस नये कार्य-क्रम को पसंद करेंगे।"

"सफ़र को जल्दी तै करने के उद्देश से हमने इलेक्ट्रिक ट्रेन पकड़ी। पर यह कोचीप्रदेश से गुज़रती नहीं, इसलिए गाड़ी बदलनी पड़ी। अब ब्रांच लाइन पर आये, दस बज चुके थे, जब हम निश्चित गाँव में पहुँचे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जापानी मुर्ग़

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रातः जल्दी ही होटल से चल दिये थे। ख़याल था कि खाना गाड़ी में ही खा लेंगे। लेकिन डाइनिंगकार में योरपीय भोजन का बहुत अच्छा प्रबंध न था, इसलिए मेज़ पर से जल्दी ही उठ बैठा। स्वभावतया इस समय भूख लग रही थी। श्रीइसोया इस बात को जानते थे। इसी कारण हम सबसे पहले एक रेस्तराँ में गये। उन्होंने मालकिन से उबली हुई सब्ज़ियों और कुछ फलों के लिए कहा। उसने ये चीज़ें हाज़िर कर दीं। मक्खन भी बंद डिब्बे का मिल गया। परन्तु जब दूध के बारे में पूछा तो वह आश्चर्य-चकित रह गई—"दूध को क्या कीजिएगा? कॉफ़ी लीजिएगा? या कहें तो हरी चाय बनाये देती हूँ।"

श्रीइसोया ने समझाया—"ख़ुद मेरा काम तो कॉफ़ी या चाय, किसी भी चीज़ से चल जायगा। परन्तु मेरे हिन्दुस्तानी साथी को इनमें से किसी की भी आदत नहीं है। वे बच्चों की तरह दूध पीना ही जानते हैं।"

मालकिन हँस पड़ी—"तब तो इनको किसी दूध देनेवाली मा के पास भेजना चाहिए। या कहें तो मैं अपने गाँव में इसके विषय में पूछूँ।"

अब तो श्रीइसोया भी ख़ूब हँसे। दूध और मा—जापानी भाषा के इन शब्दों को तो मैं समझ गया था, परन्तु भाषा न आने के कारण सूक्ष्म हास्य का समझना मेरे लिए कठिन था। इसलिए मैं उनके मुँह की तरफ़ देखता रहा।

जब उनकी हँसी थमी तो श्रीइसोया ने मुझे यह बात अँगरेज़ी में बताई। अब मेरी बारी थी। मैंने अपनी जगह से उठकर रेस्तराँ की मालकिन को बाक़ायदा धन्यवाद दिया। इससे उसको कुछ शरम-सी आई। उसने मेरे साथी से कहा—"आपके मित्र ने अगर इस बात का बुरा माना हो तो मैं क्षमा माँगती हूँ।" मैंने उत्तर दिया—"नहीं, मैं तो इसकी क़द्र करता हूँ।"

इस महिला से हमको दुमदार मुरग़ों का पता मालूम हुआ। यों तो इस गाँव में इन पक्षियों की चर्चा हर जगह पाई जाती थी, क्योंकि अक्सर विदेशी यात्री इनको देखने के लिए आते-जाते रहते हैं; परन्तु रेस्तराँ की मालकिन ने बताया—"अगर आप आध घंटे बाद वहाँ जायँगे तो मुरग़ों को खाते पावेंगे। वह इन पक्षियों के खाने का टाइम होता है। तब सभी मुरग़ों को एकत्र कर दिया जाता है और उनको देखने में आसानी रहती है। कहा जाता है कि प्राचीन काल में इस जोड़े के कुछ एक नमूने कोरिया से लाये गये। तब कई जापानियों ने इस नस्ल को बढ़ाने का प्रयत्न किया। कई वर्ष के बाद कुछ सफलता प्राप्त हुई। कोरिया में आजकल यह पक्षी नहीं मिलता; वहाँ पर यह अप्राप्य है। संसार में मिलता है तो जापान में ही। आमतौर पर इनकी पूँछें १६ और साढ़े १७ फ़ुट के दर्मियान लंबी होती हैं। कभी-कभी २१ फ़ुट लंबी पूँछ भी देखी गई है; चूँकि जापान में भी ये पक्षी संख्या में कम हो रहे हैं, इसलिए गवर्नमेंट ने इनकी रक्षा का विशेष प्रबंध किया है।"

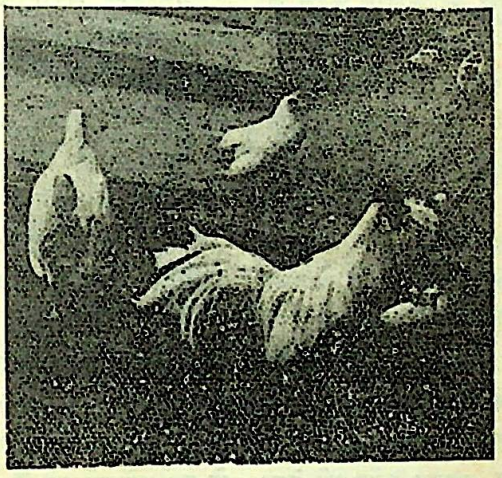

एक जोड़ा अपनी सुखी सन्तान के साथ

इन मुरग़ों के मालिक का नाम भी हमको बता दिया गया। 'कुमामोतो' देखने में बूढ़ा नहीं मालूम देता। होगा इकतालीस-बयालीस के दर्मियान। बहुत सादा जीवन है। जिस समय हमने उसे देखा, उस समय वह एक मामूली किमोनो और जाँघिया पहने हुए था। उसने हमको अपने साथ ले जाकर मुरग़े दिखलाये। एक जगह बड़े-से पिंजरे में मुरग़े-मुरग़ी का एक जोड़ा था। इनके कई एक बच्चे थे। चूज़े इधर-उधर फिर रहे थे। इस मुरग़े की दुम तैयार की जा रही थी। आठ-नौ इंच लंबे पर तो निकल भी आये थे। दूसरे पिंजरे में एक और जोड़ा था। इनके चूज़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नहीं थे। मालिक का ख़याल था कि "इस मुरग़े की दुम भी लंबी हो जायगी। लेकिन अभी यह बिलकुल नौजवान है, इसलिए इस मतलब के लिए कुछ दिन लेगा।"

कुमामोतो की सबसे बड़ी संपत्ति तो वह मुरग़ा था, जिसके रहने के लिए उसने ख़ास इंतज़ाम कर रक्खा था। इसकी पूँछ बहुत ही लंबी थी। अगर ज़्यादा नहीं तो पंद्रह फ़ुट ज़रूर होगी। इस विषय में श्रीइसोया इन पक्षियों के मालिक से प्रश्न करने को थे कि इतने में उधर दूसरे पिंजरे में मुरग़ों की आपस में लड़ाई होने लगी। कुमामोतो इन मुरग़ों को परस्पर लड़ने नहीं देते। उन्हें डर रहता है कि कहीं ये एक दूसरे के पर न नोच डालें। इस प्रकार दुम की उन्नति करने में रुकावट पैदा हो जायगी। इस झगड़े का फल हमको भुगतना पड़ा। हमारा सवाल बग़ैर जवाब दिये ज्यों का त्यों रह गया। मेरे मन में आया कि अपना रूमाल निकालकर मैं इस मुरग़े की दुम की माप ले लूँ। परन्तु मुरग़ा इस समय ऊँचे-से मचान पर बैठा था। इसलिए ख़याल आया कि सिंहासन पर डटे होने के कारण वह रूमाल से पूँछ को मापने में अपनी मान-हानि न समझे। रूमाल फिर जेब में डाल लिया। इस मुरग़े का रंग सफ़ेद ही है। लाल कलग़ी आम मुरग़ों-जैसी है। मतलब यह कि सिवा दुम के इसमें और दूसरे मुरग़ों में कोई अंतर नहीं। मैं जानना चाहता था कि यह पक्षी सुबह उठकर बाँग भी देता है या नहीं। परन्तु मालिक पास न था, इसलिए यह प्रश्न भी उस समय ज्यों का त्यों बना रहा। बाद में एक नौकर ने बताया—"हाँ, यह भी दूसरों के साथ सुबह उठकर संसार को अपना संगीत सुनाता है। इसकी आवाज़ लगभग सभी गाँववाले पहचानते हैं। हमने इसके संगीत का फ़ोनोग्राफ़िक रेकार्ड भी भरवाया है, जो २३ सेकेंड तक बजता है।"

हम इस पिंजरे से हटकर दूसरी तरफ़ जानेवाले थे कि एक युवती इस प्रतिष्ठित पक्षी के लिए खान-पान की सामग्री ले आई। कुछ थोड़े-से सोयाबीन (मोटा लोबिया) थे, कुछ आटा और साथ ही किसी सब्ज़ी के पत्ते। पत्ते शायद मूली के थे।

श्रीइसोया ने प्रश्न किया—"क्या आप जानते हैं कि इनको सब्ज़ी के पत्ते क्यों दिये जाते हैं?"

"उसी मतलब के लिए, जिसके लिए मनुष्य इनको खाता है", मैंने कहा—"संभवतः यही ख़याल होगा कि इनके मेदे ठीक रहें और अँतड़ियों वग़ैरह की सफ़ाई होती रहे। इसके सिवा पत्तों में विभिन्न प्रकार के नमक भी तो होते हैं।"

"ऐसा मालूम होता है कि आप भी मुरग़े पालने की विद्या जानते हैं", श्रीइसोया बोले—"क्या कभी पोलट्री तो नहीं रक्खी आपने?"

"परमेश्वर इससे बचावे"—मने कहा।

"क्यों?"—उन्होंने पूछा।

मैंने उन्हें अपने पड़ोसी साहबज़ादा के मुरग़ों की बात सुनाई कि किस तरह वह और उनकी धर्मपत्नी अपने पालतू मुरग़ों को बादाम खिला-खिलाकर पहलवान बनाना चाहते थे और गली-मुहल्ले के लड़के-लड़कियाँ उनके अंडे उड़ा ले जाया करते थे।

मेरी बात ख़तम न हो पाई थी कि उधर से कुमामोतो आ गये। मैंने पूछा—"आप इनको कोई ख़ास चीज़ तो नहीं खिलाते? खाने की ख़ूराक या दवाई?"

"नहीं-नहीं, किसी प्रकार की कोई चीज़ नहीं।"

"तब आप इसकी पूँछ या दुम किस तरह बढ़ा लेते हैं?"

"इस बात का ध्यान रक्खा जाता है कि कौन-कौन से पर बड़े हो रहे हैं। उनको छोड़कर बाक़ियों को क़ैंची से कतर दिया जाता है। इससे उन लंबे परों को ख़ून के द्वारा ज़्यादा ख़ूराक मिलती रहती है और वे और भी ज़्यादा बड़े होते चले जाते हैं। बस।"

"नुस्ख़ा तो आपका बड़ा आसान है। लेकिन किसी और ने क्यों नहीं इसको ट्राई किया?"

कुमामोतो हँस पड़ा—"इसका जवाब मैं क्या दूँ। मुझ पर तो आप यह इल्ज़ाम लगा नहीं सकते; क्योंकि मैं तो इस तरीक़े पर आचरण कर रहा हूँ।"

अब हमको भी हँसी आ गई।

जब हँसी का चक्र ख़तम हो गया, तब कुमामोतो ने एक और बात कही—"संसार में जब कोई नई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बात शुरू की जाती है, तब उसके शुरू करनेवाले को इसका क्रेडिट ज़रूर मिलता है। परन्तु मैं समझता कि यह श्रेय उसे नहीं, बल्कि प्रकृति को मिलना चाहिए।"

मैंने अपने मन में कहा—यह मनुष्य एक नई बात निकालकर भी उसका श्रेय अपने आपको नहीं देना चाहता। सचमुच इस दृष्टि से यह महा-पुरुष है *।

* चित्रों के लिए असाही के श्रीकालुमाता को धन्यवाद।—लेखक

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए

एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सूज़ाक (गनोरिया) की हुकमी दवा

डा० जसानी का जगत-विख्यात 'गोनोकिलर' रजिस्टर्ड

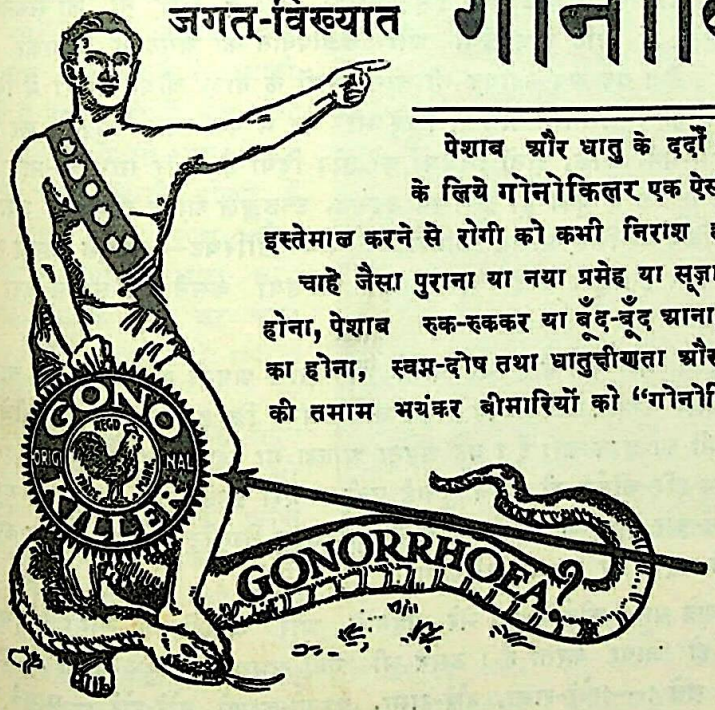

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने व निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर एक ऐसी ही आश्चर्यजनक दवा है जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता।

चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को "गोनोकिलर" जड़ से नष्ट कर देता है।

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
दवा का नाम गोनोकिलर
और मुर्ग़ा छाप सीलबंद
पैकेट देख लीजिये

मूल्य ५० गोलियों की शीशी का दाम ३) रु० वी० पी० डाक व्यय आठ आना अलग

एकमात्र बनानेवाले—डॉ० डी० एन० जसानी M. L. गिरगाँव बैंक रोड, बंबई नं० ४

लखनऊ स्टाकिस्ट—किंग मेडिकल हाल अमीनाबाद पार्क।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बंगाली वैष्णव

अमृतलाल नागर

सिगरेट खुले-आम पीने की अपनी बुरी कही जानेवाली आदत पर एक गुरुजन का महत्त्वपूर्ण आदेश सुन रहा था। गुजराती-ब्राह्मण-समाज के वयोवृद्ध भद्र-पुरुष चूँकि बहुत-सी बातों की प्रगति को नहीं रोक सकते, लिहाज़ा उनका आदेश है कि परदे में छिपाकर उन्हें किया जाय। मिसाल के तौर पर, बाज़ार की चाट अब इस बीसवीं सदी में खाई तो जा सकती है, परन्तु उस समय चोटी में गाँठ बाँध लेना और यज्ञोपवीत को अँगूठे में फँसाकर दोना पकड़ना बहुत ज़रूरी है। यह सब क़वायद भी तीन कमरों के बाद, चौथी कोठरी में किवाड़ बन्द कर, करनी चाहिए। सिगरेट पीने के लिए भी घर में एक स्थान मुक़र्रर कर दिया गया है—पाख़ाना। मैंने, चूँकि, दोनों नियमों को तोड़ दिया है, और साथ-ही-साथ चोटी और जनेऊ को भी तलाक़ दे चुका हूँ, इसलिए उद्दण्ड, उच्छृङ्खल आदि गौरवपूर्ण उपाधियों से विभूषित हूँ। लेकिन मेरे सिद्ध-प्रसिद्ध 'कविराज'—पोयेट-लॉरियट—होने के कारण हरएक को मेरे ही सामने मेरी इन बुरी आदतों पर टीका-टिप्पणियाँ कसने का साहस ज़रा कम होता है।

लेकिन उन्हें तो मैं, एक बार 'भरी-सभा' में, ख़ास अपनी ही ज़बान से चाचाजी कह चुका था, इसलिए उन्होंने अपना यह परम धर्म समझा कि इस धर्म-च्युत भतीजे को सामाजिक उपनियमों का ज्ञान करा दें। वह अपना आल्हा गा रहे थे, तभी अचानक दरवाज़े के पास मजीरे के साथ-साथ हरि-कीर्तन की ध्वनि सुनाई पड़ी। मेरी इच्छा उस समय यह थी कि अपने पज्यपाद चचा को तीन-चार 'शुद्ध शास्त्रोक्त' प्रमाण दे खुले-आम सिगरेट पीने पर क़ायल कर दूँ। कीर्तन ने अनायास ही मेरी महत्ता पर आघात पहुँचाया।

वह एक बंगाली वैष्णव था—कीर्तनिया। मेरे पहनावे और आकृति से लोगों को अक्सर मेरे बंगाली होने का भ्रम हो जाया करता है। उसने भी यही समझा। मुझे देखते ही उसके 'अकार' 'ओकार' में बदल गये।—'होरे-रामा, होरे-रामा, कृष्णो-कृष्णो, होरे-होरे'—सामने आने के प्रायः दो मिनट बाद ही उसकी गर्दन हिलना बन्द हो गई। मजीरेवाले हाथ क्रमशः शिथिल होते-होते एकदम रुक गये। थोड़ी देर पहले के साश्रु-निमीलित नयन और गद्गद-कण्ठ सहसा पुलकित हो खुल गये। अपनी बत्तीसी बाहर निकाल, गिड़गिड़ाते हुए हाथ पसारकर उसने कहा—'एक्टू पॉयशा देबेन्, गोशाई?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जेब से एक पैसा निकालकर मैंने उसे दे दिया।

परदेश में मुझे ख़ालिस स्वदेशी जानकर उसने अपनी मातृ-भाषा में ही बातचीत करना शुरू कर दिया। पैसा पाने के बाद अपनी कनपटी खुजलाकर गिड़गिड़ाते हुए उसने कहा—'अज्ञे-अज्ञे, हें :- हें :-बाबू इस जगह तो सब गुजराती लोग ही बसते हैं, आपके दर्शन तो मुझे आज ही हुए।'

मैंने उसके देश की बोली में ही उत्तर दिया—'भाई, मैं भी तो गुजराती ही हूँ, तुम्हारे देश का नहीं।'

वह अचकचाकर मेरी ओर देखने लगा। एक क्षण बाद अविश्वास की हँसी-सी हँसते हुए उसने कहा—'यह सब कुछ भी हो, लेकिन बँगला तो आप बड़ी परिष्कृत बोलते हैं।'

मैं चुप रहा। थोड़ी देर बाद वह फिर आवेग में आ कहने लगा—'आहा, आज अनेक दिन बाद अपने देश की बोली सुनकर मेरे कान तृप्त हो गये—मानो किसी ने मेरे कानों में मधु घोल दिया हो। मैं आपसे सत्य ही कह रहा हूँ बाबू, हिन्दी बोलने में मुझे बहुत कष्ट होता है। भगवान आपका भला करें, गोशाईं; आपके दर्शन कर आज तो चित्त प्रसन्न हो गया। आहा!'

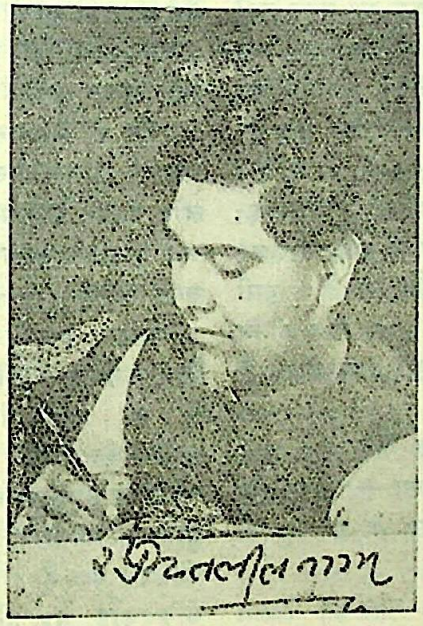

अन्तिम वाक्य उसने गद्गद कण्ठ से कहा। उसके बाद ही एकदम गर्दन पलट गई, आँखें बन्द, पुचके-पिचके गालों पर दो गोल-गोल मोती के-से दाने ढुलक आये।

मैं चुपचाप उसकी भाव-भंगी पर ग़ौर कर रहा था। भावावेश के दौरे से सहसा जागकर उसने फिर कहना शुरू किया—'कॅलिकाता में आपकी बाड़ी कौन-सी स्ट्रीट पर है? मैं भी कलकत्ते में ही रहता हूँ—हावड़ा ज़िला में।.....क्या बताऊँ बाबू, भाग्यवश आज अनेक वर्षों से यहीं 'वृन्दावन' में श्रीश्रीराधागोपाल के चरणों में अपना जीवन बिता रहा हूँ।....और ....आर आपनी की ब्राह्मोन, गोशाईं?'

मैंने छोटा-सा उत्तर दे दिया—'हाँ'।

बङ्गाली-बोष्टम (वैष्णव) ब्राह्मण-देवता के सामने पट-से लेट गया। साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम के बाद उसने कहा—'आहा, वही तो, इतनी देर से मैं खड़ा यही सोच रहा था कि यह स्वरूप, यह तेज, ब्राह्मन के बेटे के सिवा और किसमें हो सकता है? मैं भी तो कायस्थ हूँ—पानीत्राश का मित्र-वंशीय। भाग्यवश आज अनेक वर्षों से यहीं वृन्दावन में श्रीराधागोपाल—'

उसके इस लम्बे-चौड़े तकिया-कलाम का क़ता-कलाम कर मैंने कहा—'तुम पानी-त्राश शरत बाबू को जानते हो—शरत चाटुज्जी?'

ज़रा देर कनपटी खुजलाकर उसने कहा—'शेई नभेल-नाटोक लेखा-पोड़ा शोरत बाबू ना? उन्हें तो मैं ख़ूब जानता हूँ। वे मेरे ऊपर बड़ी दया रखते हैं। आहा, क्या बताऊँ बाबू, भाग्यवश आज अनेक वर्षों से यहीं वृन्दावन में अपना जीवन बिता रहा हूँ, नहीं तो मेरी भी गृहस्थी थी। मेरे एक लड़का था—मेट्रिक पास—एकदम फ़र्स्ट। क्या बताऊँ बाबू, मेरे किसी पाप के कारण भगवान् ने मुझसे उसे छीन लिया।.... ऐसा होनहार लड़का था क्या कहूँ?....आहा, मुझे यह दारुण दुख भोगने के लिए अकेला छोड़कर गोलोकवासी हो गया! गिन्नी (गृहिणी) पहले ही मर चुकी थी।....उसके बाद ही समस्त मायाजाल तोड़कर श्रीराधाकृष्ण के—'

वैष्णव अधिक कुछ न कह सका। उसका कण्ठ अवरुद्ध हो गया। सजल नेत्र ऊपर की ओर उठा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसने दोनों हाथ जोड़कर अपने श्रीश्रीराधाकृष्ण को प्रणाम किया।

मैंने बात पलटते हुए प्रश्न किया—'तुम्हें चण्डीदास के पद याद हैं ?'

आँसू पोछकर उसने उत्तर दिया—'चण्डीदास ? उनके पद तो मुझे याद नहीं। मैं तो ख़ाली हरिनाम-कीर्तन करना ही जानता हूँ।'

कहकर उसने एक बार फिर अपने मजीरे सम्भाले।

सम्भव है, आप मुझे नास्तिक समझें; परन्तु इस घोर कलिकाल में भी मैं इतना सत्य बोलने से हरगिज़ न चूकूँगा कि मुझे 'नाम-कीर्तन' नाम की चीज़ से सख़्त नफ़रत है। कीर्तनियों का आँखें बन्द कर ताली, झाँझ या मजीरे बजा-बजाकर नाचना, सम्भव है बहुत-से भावुक हृदयों को मुग्ध कर ले, परन्तु मुझे तो वह केवल शुद्ध पाखण्ड के सिवा और कुछ भी नज़र नहीं आता। यह भी सुना है कि इस घोर 'कलजुग' में नाम-कीर्तन ही भगवान् के पास पहुँचने का सर्वोत्तम और सुलभ साधन है। कीर्तन करनेवाले को, सुना है, ढाई मिनट के बाद स्वर्ग का फाटक सूझने लगता है; और उसके बाद एकदम फाटक खुलते ही श्रीश्रीकृष्ण-जी महाराज श्रीश्रीराधारानी के गले में बाँहें डालकर बंशी बजाते हुए अपने भक्त को दर्शन देते हैं। इसी लालसा से मैंने बहुत दिन हुए, एक बार नाम-कीर्तन किया था—पर कुछ मज़ा न आया। तभी से तो मैं हवन करने का क़ायल हूँ।

बहरहाल, क़िस्सा-कोतः यह कि जैसे ही उसने 'होरे-होरे' पुकारा, मैंने चट से कहा—'यह कीर्तन रहने दो। मैं तो सिर्फ़ चण्डीदास के पद सुनना चाहता था।'

उसने खिसियाकर मजीरे बजाना बन्द कर दिया, कहा—'मैंने चण्डीदास के पद नहीं सीखे। भाग्यवश आज अनेक वर्षों से यहीं वृन्दावन में श्रीराधागोपाल के चरणों में पड़ा हूँ, इसी से चण्डीदास के पद सीखने का अवसर नहीं मिला। मैं तो यही राधाकृष्ण नाम जानता हूँ। इस नाम में बड़ी शक्ति है, बाबू। इसी कृष्ण नाम का कीर्तन करने से आजकल मुक्ति होती है। महाप्रभु यह कह गये हैं।'

मैंने मुस्कराकर कहा—'और महाप्रभु यह भी तो कह गये हैं कि नाम-कीर्तन 'एकान्ते, नदीतीरे, अथवा शून्य-मन्दिर' में ही करना चाहिए।'

उसने मजीरे रगड़ते हुए, बत्तीसी बाहर निकालकर कहा—'हें !—हें !'

मेरे गुजराती चचा अभी तक बैठे हुए मेरी और उस बङ्गाली वैष्णव की बातचीत सुन रहे थे। हमारी बातचीत उनके लिए वेद की उन ऋचाओं से कम कठिन न थी, जिसे हिन्दुस्तानी बाँभनों के बजाय जर्मनी के पंडित ज़्यादा समझते हैं। वह बीच-बीच में चकित-चितवन से कभी बङ्गाली वैष्णव की ओर निहार लेते थे, और कभी इस अपने गुजराती भतीजे की ओर देख लेते थे। मैंने भी उनकी तरफ़ देखकर सिगरेट उठाई। उन्होंने नाक-भौं सिकोड़ना शुरू किया। मैंने ज़रा-सा मुस्कराकर, वैष्णव की ओर मुँह फेरकर उससे कहा—'तो तुम्हें अचानक यहाँ आगरे आने की क्या ज़रूरत पड़ी ?'

'ऐसे ही भगवान् का नाम लेता हुआ यहाँ चला आया। लेकिन देखता हूँ, यहाँ के साले हिन्दुस्तानी लोग ईश्वर के नाम पर दान करना भी नहीं जानते। अब वृन्दावन चला जाऊँगा। वृन्दावन बहुत अच्छी जगह है बाबू।—भगवान् का धाम ! आहा !'

कहकर उसने वृन्दावन के प्रति झुककर प्रणाम किया। फिर थोड़ी देर तक 'विमोहित से, विकाने से' की मुद्रा में खड़े रहने के बाद हठात् उसने कहा—चॅलून ना, एके बारे शेई पॅरम-पॅवित्र-धामे ! बड़ा रमणीक स्थान है। वहाँ जाने से मनुष्य की मुक्ति हो जाती है।····आहा, मेरा मन तो इस समय वहीं रम रहा है। क्या बताऊँ बाबू, मेरे रेल-भाड़े का यदि कोई भक्त प्रबन्ध कर दे तो मैं इसी समय यह नरक-समान जगह छोड़कर चला जाऊँ। यहाँ तो माँगे भीख भी नहीं मिलती।'

अपनी बात ख़त्म कर वह मेरी ओर देखने लगा। मैं उसके मन की बात उसी समय समझ गया था, जब उसने मुझे वृन्दावन चलने का निमन्त्रण दिया। सोचने लगा, जिस बात का ख़याल था, आख़िर वही हुई भी। पहले तो बङ्गाली, फिर वैष्णव और मुख

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बात यह कि कायस्थ था ; इसीलिए इन तमाम छछेदार बातों के बाद कितने सुन्दर ढंग से वह मुझसे रेल का किराया माँग रहा था—मैं मन-ही-मन इस पर ही ग़ौर कर रहा था।

मुझसे किसी प्रकार का उत्तर न पाकर उसने फिर गिड़गिड़ाते हुए अपनी बात कहना शुरू कर दी—'आपको हज़ार गौदान करने का पुण्य प्राप्त होगा, बाबू। राधारानी आपके बच्चों को सुखी रक्खें। मैं बड़े कष्ट में हूँ।····क्या बताऊँ, श्रीवृन्दावन-धाम छोड़कर मैंने बड़ी ग़लती की। उसका फल भी पा गया। यह देखिए, आज तीन रोज़ से भरपेट खाना भी नहीं मिला।'

कहकर उसने अपना पेट खोलकर मुझे दिखा दिया। आँखों से आँसू फिर बहने लगे।

मैं सोच रहा था, अगर ज़रा भी बोला, तो यह मित्रवंश का भक्त-शिरोमणि फ़ौरन् ही मेरी 'पर्स' का शत्रु हो जायगा। इसीलिए एकदम चुप्पी साध गया।

लगभग दो मिनट तक चुप खड़ा रहने के बाद उसने फिर मजीरे ठनकाना शुरू कर दिये।

मैंने झुँझलाकर उसकी तरफ़ देखा, कहा—'अच्छा, इस वक़्त अब तुम जाओ। मैं ज़रा इन बाबू के साथ ज़रूरी बात कर रहा था।'

कहकर मैंने अपने पूज्यपाद धर्मप्राण चचाजी की तरफ़ इशारा किया।

वैष्णव बोला—'हाँ बाबू, मैंने आपका बहुत समय नष्ट किया।····लेकिन ऐसा मालूम पड़ता है कि श्रीराधा-गोपाल ने जैसे मेरा कष्ट हरने के लिए ही आपको यहाँ भेज दिया है। भगवान् अपने भक्तों के द्वारा ही साधु-सन्तों का कष्ट हरण करते हैं। मैं बड़े कष्ट में हूँ बाबू, भगवान् साक्षी हैं। आपको मुझ पर दया करनी ही होगी। आप शरत बाबू के आत्मीय हैं। वे बेचारे मेरे ऊपर बड़ी दया रखते हैं। मुझे उन्होंने कई बार सहायता दी है। इसलिए आप भी मेरे ऊपर कृपा करें। भगवान् आपका भला करें।'

वैष्णव ने शरत बाबू के नाम का लाभ उठाना चाहा। मैंने सोचा, मैं ही इस समय इसे उनके स्वर्गवास का समाचार सुनाकर, वाग्धारा को दूसरी ओर प्रवाहित कर दूँ।

शरत बाबू की मृत्यु का समाचार सुन उसने एक बार फिर आँसू ढुलकाने शुरू कर दिये—'आहा, मर गये बेचारे! बड़े सज्जन थे—एकदम देवता-समान। एक बार मेरा लड़का जब बीमार पड़ा था तो उन्होंने मुझसे कहा, "दीनबन्धु! तुम किसी बात की चिन्ता न करो। तुम्हारे लड़के की दवा-दारू का सब ख़र्चा मैं तुम्हें दूँगा।" वे उसे बहुत चाहते थे।····शरत बाबू बेचारे बड़े भले आदमी थे। और उनके सम्बन्धी होकर इस समय आप मुझे वृन्दावन का रेल-भाड़ा तो देंगे ही। शरत बाबू तो बेचारे सबके लिए बड़े दयालु थे; और ख़ासकर मेरे ऊपर तो उनकी बड़ी कृपा थी। अब जैसे इसी समय था, वे यदि जीवित होते और उन्हें मालूम हो जाता कि पानीग्राश का दीनबन्धु मित्र इस समय बड़े कष्ट में है तो चट से मेरी ख़बर लेते। और आप भी, मुझे विश्वास है, मेरे ऊपर अवश्य ही दया करेंगे।····क्यों न बाबू?'

मैं अपने चचा से बात करने की कोशिश करने लगा। कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहने के बाद उसने फिर अपने मजीरे खटखटाना शुरू कर दिये।

इस बार मैं बुरी तरह से झुँझला उठा। मैंने ज्यों ही उसकी तरफ़ घूरकर देखा और चाहा कि एक फटकार बताऊँ; वह मेरे पैरों पर लोट गया। कहने लगा—'मुझे तो स्वयं श्रीकृष्ण महाराज ने ही आपके पास भेजा है, इसलिए आपकी शरण छोड़कर मैं और कहीं भी न जाऊँगा। आप ही मेरे कष्ट हरेंगे।'

सच कहता हूँ, कृष्ण महाराज के ऊपर मुझे उस समय निहायत ग़ुस्सा आ रहा था। न-मालूम उन्होंने मुझसे कब की पुरानी अदावत निकाली। बैठक के बाहर, सड़क पर कई आदमी खड़े-खड़े यह तमाशा देख रहे थे। जेब में कुल जमा दो ही रुपये थे। अपने लखनऊ शहर में होता तो उसे एक फटकार बताकर बाहर निकाल देता, मगर यहाँ—ससुराल में—तो यह उचित ही न था; इसीलिए चुपचाप निकालकर दे दिये। और यह सबक़ लिया कि आइन्दा से किसी भी वैष्णव से कभी बँगला में बातें न करूँगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(पश्चिमी बंगाल और बिहार की), गुजराती (गुजरात प्रान्त की), तिलंगी (त्रिकलिंग प्रान्त की), माबरी (कर्नाटक प्रान्त की), धूर समन्दी (द्वार समुद्र या कारोमण्डल तट की), अवधी (अवध प्रान्त की) और देहलवी (देहली प्रान्त की) भाषा। इनमें देहलवी शब्द पर आगे प्रकाश डाला गया है।

अमीर ख़ुसरू ने अपने एक और ग्रंथ में 'हिन्दवी' की यह भी एक विशेषता बताई है कि उसमें और किसी भाषा के शब्दों का मेल नहीं हो सकता, वह बिलकुल शुद्ध है। इससे भी यह स्पष्ट है कि अमीर ख़ुसरू की हिन्दवी हिन्द की असली और प्राचीन भाषा है, जो संस्कृत से भिन्न और कुछ नहीं है। ऊपर के कथन से यह स्पष्ट है कि भाषा के प्रश्न को वह दो भिन्न-भिन्न, किन्तु व्यवहारोपयोगी दृष्टियों से विचारता था—देश की सर्वव्यापी या सार्वभौम भाषा (जिसे आजकल Lingua Franca या शुद्ध अर्थों में Lingua Indiea कहना ठीक होगा) के नाते से वह इस देश की भाषा को हिन्दवी स्वीकार करता है, और हम फिर कहना चाहते हैं कि अँगरेज़ी-भाषा के प्रचार से पहले तो एकान्त रूप से, और अब अँगरेज़ी न जाननेवाले विद्वानों के लिए भी संस्कृत ही एक ऐसी भाषा है, जिसे हिन्दी या देश की सार्वभौम भाषा कहा जा सकता है। अतः यह कहना उचित ही है कि हिन्दवी शब्द से ख़ुसरू का अभिप्राय संस्कृत-भाषा से है। देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भाषाएँ ही आजकल की प्रान्तीय बोलियों के प्राचीन रूप थे। इन्हीं प्रान्तीय भाषाओं में एक भाषा देहलवी थी। 'रेख़्ता' का जन्म उस समय तक नहीं हुआ होगा, अर्थात् फ़ारस के मानदंड से भ्रष्ट फ़ारसी-अरबी बोलने-वाली जनता या गोराशाही अँगरेज़ी का व्यवहार करनेवाला जन-समूह उस समय महत्त्व नहीं प्राप्त कर सका होगा।

किन्तु एक समय आया कि भारतवर्ष में भी फ़ारसी-संस्कृति के अनुकरण पर साहित्य तैयार किया जाने लगा, और भ्रष्ट फ़ारसी-भाषा या गोराशाही फ़ारसी व्यवहार में आने लगी। ज्यों-ज्यों फ़ारसी या इस भाषा की संस्कृति से जीवन लेनेवाले देशों और राष्ट्रों की प्रजा यहाँ आकर अधिकाधिक बसने लगी, त्यों-त्यों यहाँ फ़ारसी-संस्कृति का अनुकरण होने लगा। ऐसे आनेवालों में यों तो विद्वान्, पंडित, वैद्य, कवि, व्यापारी आदि सभी थे; किन्तु अधिक संख्या होती थी अपढ़ और अधपढ़ फ़ौजियों की, क़ुलियों की, निर्धन और निर्जन नवयुवकों की और आश्रयहीन भिक्षुओं की। आजकल भी तो विदेशों में जाकर जीविका चलानेवालों की संख्या का अनुपात इसी तरह का है। ऐसे लोग फ़ारसी-संस्कृति को शुद्ध रूप में कभी नहीं रख और बढ़ा सकते थे। फिर जिन विद्वानों और कवियों ने भारतवर्ष में आकर आश्रय ग्रहण कर लिया था, उनका घनिष्ट सम्बन्ध भी फ़ारस के विद्वत्समाज से छूट गया था, और वे अनुकरण करते थे उसी फ़ारसी-संस्कृति का। उनके शिष्य और पुत्र-पौत्र आदि तो फ़ारस की संस्कृति से प्रत्यक्ष रूप में शायद ही कभी परिचित होने का अवसर प्राप्त करते या कर सकते थे। परिणामतः फ़ारसी-संस्कृति का भारतीय रूप ईरानी रूप की अपेक्षा भद्दा और घटिया हो चला। यह अपभ्रंश रूप था। जो काव्य भारतवर्ष में फ़ारस के काव्य के अनुकरण में रचा गया, जो फ़ारसी-भाषा का ग्रंथ लिखा गया, उसे ईरान के ग्रंथों की अपेक्षा घटिया ही नहीं ठहराया गया; किन्तु हेय दृष्टि से देखा गया। इसीलिए 'भ्रष्ट' या अपभ्रंश अर्थात् रेख़्ता भी कह दिया। मीर ने स्पष्ट लिखा है—

रेख़्ता कि शेरस्त बतौर शेरे फ़ारसी बज़बाने उर्दूए मुअल्ला बादशाहे हिन्दोस्तान (ज़िक्रे मीर सफ़ा ६३)

अर्थात् रेख़्ता उस काव्य को कहते हैं, जो फ़ारसी-काव्य के अनुसरण में हिन्दुस्तान के बादशाहों की सैनिकों की भाषा में रचा जाता था। ये बादशाही लश्कर के सैनिक कौन होते थे एवं उनकी भाषा क्या थी, इसे फिर विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं।

अब 'देहलवी' या देहली प्रान्त की भाषा पर ध्यान दीजिए। अबुलफ़ज़ल ने भी प्रान्तीय भाषा के रूप में देहलवी भाषा का उल्लेख किया है (आईन अकबरी, भाग ३, पृष्ठ ४५, नवलकिशोर-प्रेस का फ़ारसी-संस्करण)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उस समय भी इस 'उर्दू' शब्द का जन्म भाषा-वाचक अर्थ में नहीं हुआ था। दरबार में राजकीय भाषा फ़ारसी मानी जाती थी, और रेख़्ता का कोई महत्व-पूर्ण स्थान नहीं था। हाँ, 'हिन्दवी' जान पड़ता है, मुसलमान विद्वानों की दृष्टि में अपना स्थान छोड़ चुकी थी; क्योंकि अबुलफ़ज़्ल-जैसा लेखक भी सार्वदेशिक भाषा का विवरण देने के प्रसंग में इसका नामोल्लेख नहीं करता। प्रत्युत वह यही कहता है कि हिन्दुस्तान के सूबों की भिन्न-भिन्न भाषाएँ अलग-अलग होने पर भी परस्पर और अधिकता से इतनी मिलती-जुलती हैं कि साधारणतः वे समझ ली जाती हैं। किन्तु सच बात तो यह है कि देहली प्रान्त की 'देहलवी ज़बान' ही वह भाषा थी, जो इस समय खड़ी बोली या हिन्दी का पूर्व रूप थी, एवं जो विदेशी राजकर्मचारियों के प्रभाव के कारण उस वास्तविक हिन्दी से दूर होती जा रही थी, जिसमें विदेशी भाषा का मेल, ख़ुसरू के कथनानुसार असम्भव था एवं जिसका उच्चारण भी विदेशियों के लिए एक कठिन समस्या थी। यह स्वीकार किया जाना उचित है कि 'हिन्दवी' में ये परिवर्तन विदेशियों, विशेषकर मुसलमानों के प्रभाव और संसर्ग के कारण नहीं हुए थे, किन्तु भाषा-विकास के सिद्धांतों के अनुसार, बोली सरल और सुगम बनाई जाने के कारण भी हुए थे। अराजकता के समय में शुद्ध 'हिन्दवी' के पठनपाठन की व्यवस्था इतनी दृढ़ और सर्वव्यापी न रह सकी कि संस्कृत-भाषा का प्रचार सार्वभौम रूप से देश भर में रहता। फलतः अपभ्रंश शब्दों की वृद्धि और भी अधिक शीघ्रता से होने के कारण एक ऐसी भाषा तैयार होने लगी, जो पुरानी प्राकृत, अपभ्रंश और शौरसेनी से कई बातों में भिन्न थी। मुसलमानी जनता के संसर्ग के कारण पुरानी शास्त्रीय अपभ्रंश और शौरसेनी आदि भाषाएँ तो केवल पुस्तक की भाषाएँ रह गईं और यह नई अपभ्रंश भाषा अपने दो सूबों में स्वतंत्र रूप से 'देहलवी' एवं रेख़्ता के नाम से बढ़ने लगी। दोनों ही मूलतः अपभ्रंश थीं; किन्तु उनमें एक संस्कृत का अपभ्रंश थी और दूसरी फ़ारसी का। एक पर संस्कृत की और प्राचीन भारतीय संस्कृति की छाप थी और दूसरी पर फ़ारसी की; किन्तु प्राचीन ईरानी संस्कृति से इस छाप का कुछ सम्बन्ध नहीं था। यद्यपि 'शाहनामा' आदि ग्रंथ ईरान के प्राचीन इतिहास की प्रतिष्ठा में रचे गये थे, किन्तु उनमें आत्मा बोलती थी 'बग़दाद' और 'अरब' की संस्कृति की। अरब-विजय के पीछे ईरान वस्तुतः अपना सब कुछ खो चुका था। वह मानसिक और आत्मिक रूप से ग़ुलाम बन गया था।

वर्तमान हिन्दी या खड़ी बोली ही उस देहलवी भाषा का वह विकसित रूप है, जिसे लेकर आज हिन्दी-उर्दू का झगड़ा खड़ा किया गया है। यह तो ठीक ही है कि मुसलमानी शासन के दीर्घस्थायी होने एवं अँगरेज़ों द्वारा फ़ारसी को अदालत की भाषा स्वीकार कर लेने के कारण इस देहलवी में फ़ारसी, अरबी और तुर्की आदि भाषाओं के शब्द भी अधिकता से मिलने लगे। सच तो यह है कि जब हिन्दुओं ने अँगरेज़ों के आगमन से ठीक पहले अपने पुनरुत्थान का प्रयत्न किया था तो राष्ट्रीय तथा राजनीतिक दृष्टि से भी उन्होंने मुसलमान विद्वानों का सहयोग प्राप्त करने के लिए धार्मिक कठोरता को कम किया, असहयोग की नीति शिथिल की, उनके अनेक धार्मिक, राजनीतिक, व्यापार और युद्ध-विज्ञान-सम्बन्धी शब्दों को स्वीकार किया और उन्हें अपनी भाषा में स्थान दिया। एक तरह से यह होना अनिवार्य भी था। आजकल हम देख रहे हैं कि इस शान्ति के समय में भी हमारी बोलचाल की भाषा में अदालतों, डाकख़ानों, डाक्टरी, रेल-तार और मेले-तमाशों के द्वारा योरपियन भाषाओं के अनेक शब्द इस प्रकार स्थान पाते जा रहे हैं कि वे ग्रामों तक में जा पहुँचे हैं। जहाँगीर, शाहजहाँ और औरंगज़ेब के लम्बे-लम्बे शासनों का भी ऐसा ही परिणाम हुआ होगा।

इस वर्तमान खड़ी बोली या हिन्दी का एक छोटा-सा लेख अभी हाल में एक फ़ारसी पुस्तक द्वारा प्राप्त हुआ है, जिससे हमारे उक्त कथन की सिद्धि होगी। श्री सैयद सुलेमान नदवी ने अपने मित्र हकीम श्री० अब्दुलअज़ीज़ 'मश्रिकी' (जालन्धर) के हस्त-लिखित पुस्तक-भण्डार के सूफ़ी-साहित्य-संग्रह में से अभी हाल में जवाहर-उल्-असरार (रहस्य-रत्न)- नामक फ़ारसी भाषा का एक ग्रंथ प्राप्त किया है। यह कहना कठिन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है कि इसकी रचना कब हुई थी, किन्तु ग्रंथ प्राचीन कहा जाता है। इस ग्रंथ में प्रसंगतः कबीर और कुछ बैरागियों की बातचीत लेखक ने फ़ारसी-भाषा में लिखी है, किन्तु कबीर के कथन को नहीं के शब्दों में उद्धृत कर दिया है। वस्तुतः यदि ये शब्द कबीर के ही हैं (और न होने का कोई कारण नहीं) तो एक भाषा-शास्त्री की दृष्टि में तो यह उद्धरण-भाग ही इस ग्रंथ का सबसे मूल्यवान् अंश अवश्य है। बातचीत का सम्पर्ण अंश यहाँ उद्धृत करने के लिए हम 'हिन्दुस्तान टाइम्स', देहली के कृतज्ञ हैं। उक्त उद्धरण यह है—

"हुजूमे[1] अतीतान व वैरागियान् पेश कबीर आमदन्द व गुफ़्तन्द कि अय कबीर तू अतीत व वैरागी है। तू वास्ते तीरथ के और अस्थान के क्यों नहीं चलता। उठ तीरथ कूं और अस्थान को चल। कबीर[2] गुफ़्त कि बाबा तुम अतीत और बड़ी वैरागी हो और मैं अनारी हूँ। तुमीं जाओ मैं पारिया हूँ। वैरागी[3] हा गुफ़्तन्द कि न, तू चल हमारे साथ व वैराग छोड़। कबीर[4] हीला कर्द व गुफ़्त वैरागियो छोड़ दो। बैरागिहा[5] बगुज़ाश्तन्द बाज़ कबीर गुफ़्त कि पहल अब की मुझे छोड़ दो। ऐंहू तोंबरा मेरा ले जाओ इसे तीरथ और अशनान कराओ दूसरी बार मैं चलूँगा। बहज़ार[6] मिन्नत मानद व तोंबरा हमराह-दाद। वैरागियान् तोंबा गिरफ़्ता रफ़्तन्द हमा जा तीरथ व अशनान करदन्द। तोंबारा हम कुनानीदन्द। बाद अज़ मुद्दत आमदन्द पेश कबीर। कबीर पुरसीद कि तोंबरा कहाँ है। वैरागियान्[7] गुफ़्तन्द कि है। तोंबरा[8] पेश कबीर गुज़ाश्तन्द। कबीर गुफ़्त कि तोंबरा को तोड़ो। वैरागियान्[9] तोंबरा शिकस्तन्द। बाज़[10] कबीर गुफ़्त कि किधी है। वैरागियान्[11] गुफ़्तन्द कड़वा है। कबीर[12] गुफ़्त कि अय बैरागियो तीरथ और अशनान किये क्या होता है जब तुराताइन मीठा न होवे। वह जो कड़वा था तो तीर्थ और अशनान सों मीठा न हुआ जायगा। असल मीठा न होती उसके तईं संगत कड़वी वेल की थी तो वे मीठा क्योंकर होय। जो मीठी संगत होती तो मीठा होता।"

इस उद्धरण में बीच-बीच में आई हुई फ़ारसी का अनुवाद भी पाठकों की सुविधा के लिए यहाँ दिया जाता है।

१. अतिथियों (संन्यासियों) और बैरागियों का समूह कबीर के सामने आया और बोला कि—

२. कबीर ने कहा कि—

३. बैरागी बोले कि—

४. कबीर ने बहाना किया और बोला कि—

५. बैरागियों ने छोड़ दिया। फिर कबीर ने कहा—

६. हज़ारों ख़ुशामद की और तोंबा उनके साथ दे दिया, बैरागी तोंबा लेकर चल दिये। उन्होंने सब जगह तीर्थ और स्नान किये और तोंबे को भी कराये। बहुत समय पीछे कबीर के सामने आये। कबीर ने पूछा कि—

७. बैरागियों ने कहा कि—

८. तोंबे को कबीर के सामने रक्खा। कबीर ने कहा कि—

९. बैरागियों ने तोंबे को तोड़ डाला—

१०. फिर कबीर ने पूछा—

११. बैरागियों ने कहा कि—

१२. कबीर बोला कि—

इस उद्धरण में ये बातें भी ध्यान में रखने योग्य हैं कि संस्कृत का 'अतिथि' (संन्यासी के अर्थ में) फ़ारसी में 'अतीत' केवल उच्चारण की दुरूहता के कारण हो गया है। इसी प्रकार स्नान भी अस्नान और कहीं अशनान बन गया है। कबीर ने जिस भाषा में उत्तर दिया है, वह स्पष्ट ही वर्तमान खड़ी बोली या हिन्दी की तरफ़ आती जा रही है। कबीर का और भी जो आध्यात्मिक काव्य उपलब्ध होता है, वह उस समय की 'हिन्दवी' या सार्वजनिक राष्ट्रीय भाषा में है, एवं उसका उक्त उद्धृत कथनोपकथन भी तत्कालीन राष्ट्रभाषा में है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

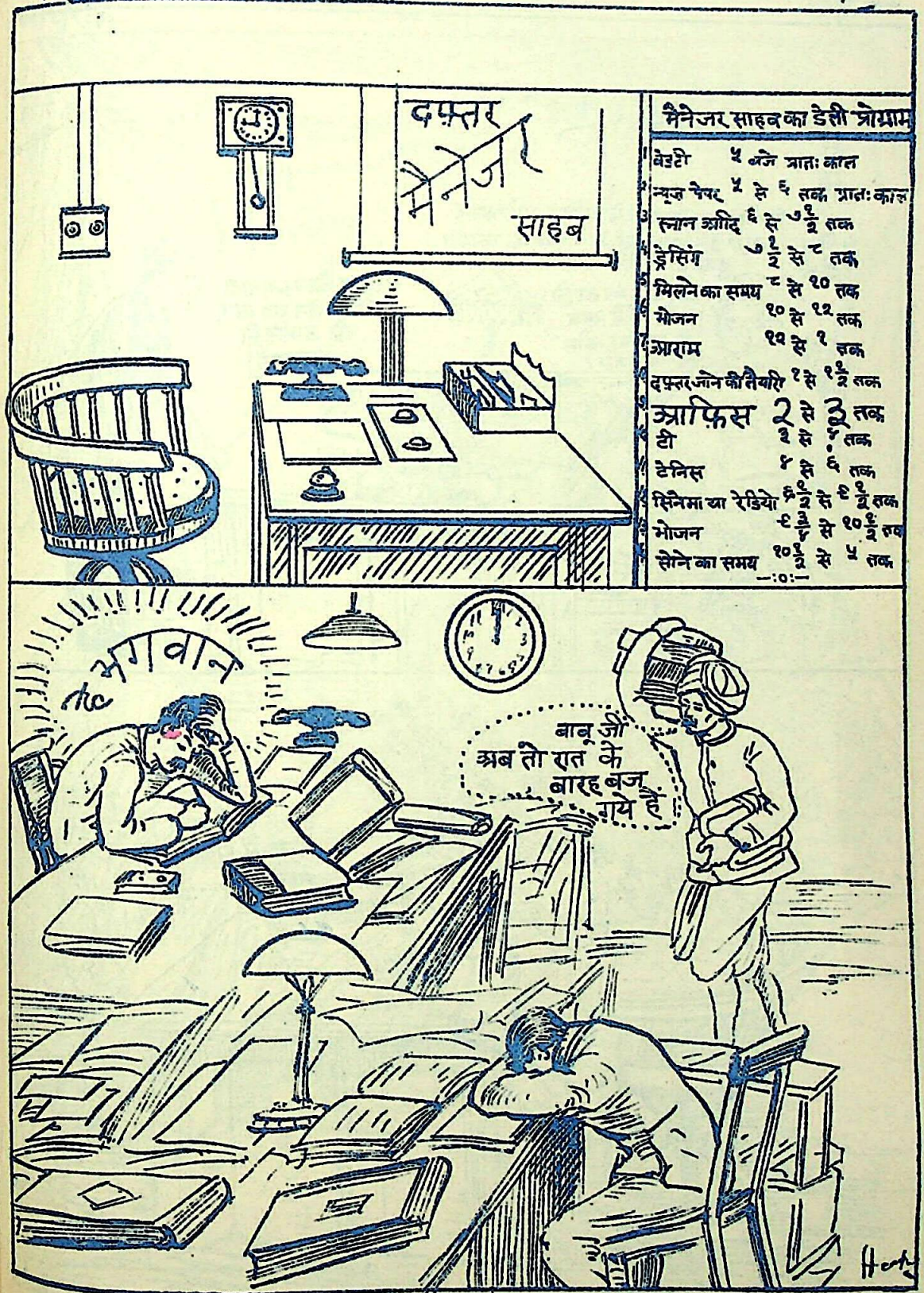

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

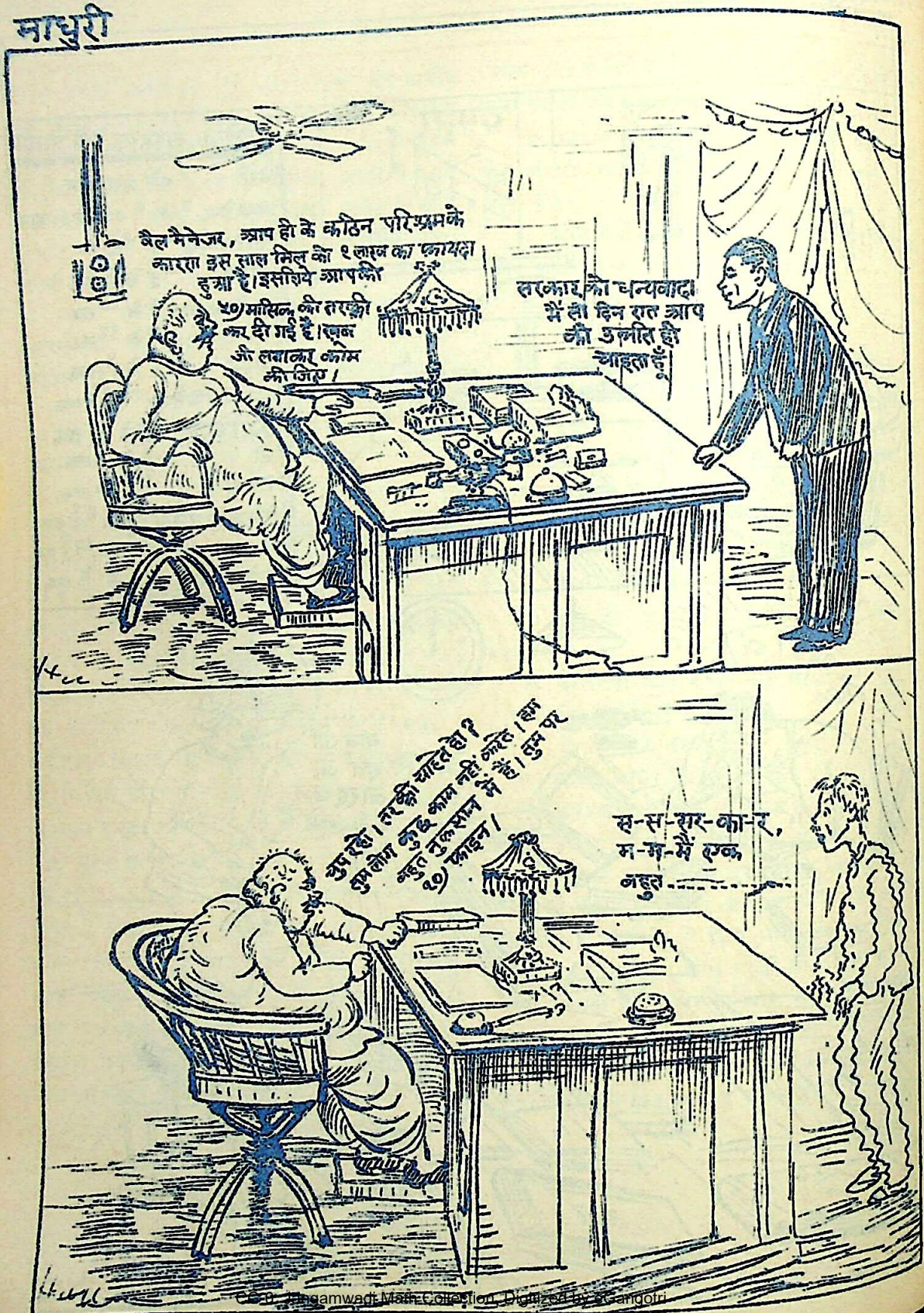

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माधुरी

देखते थे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखते हैं

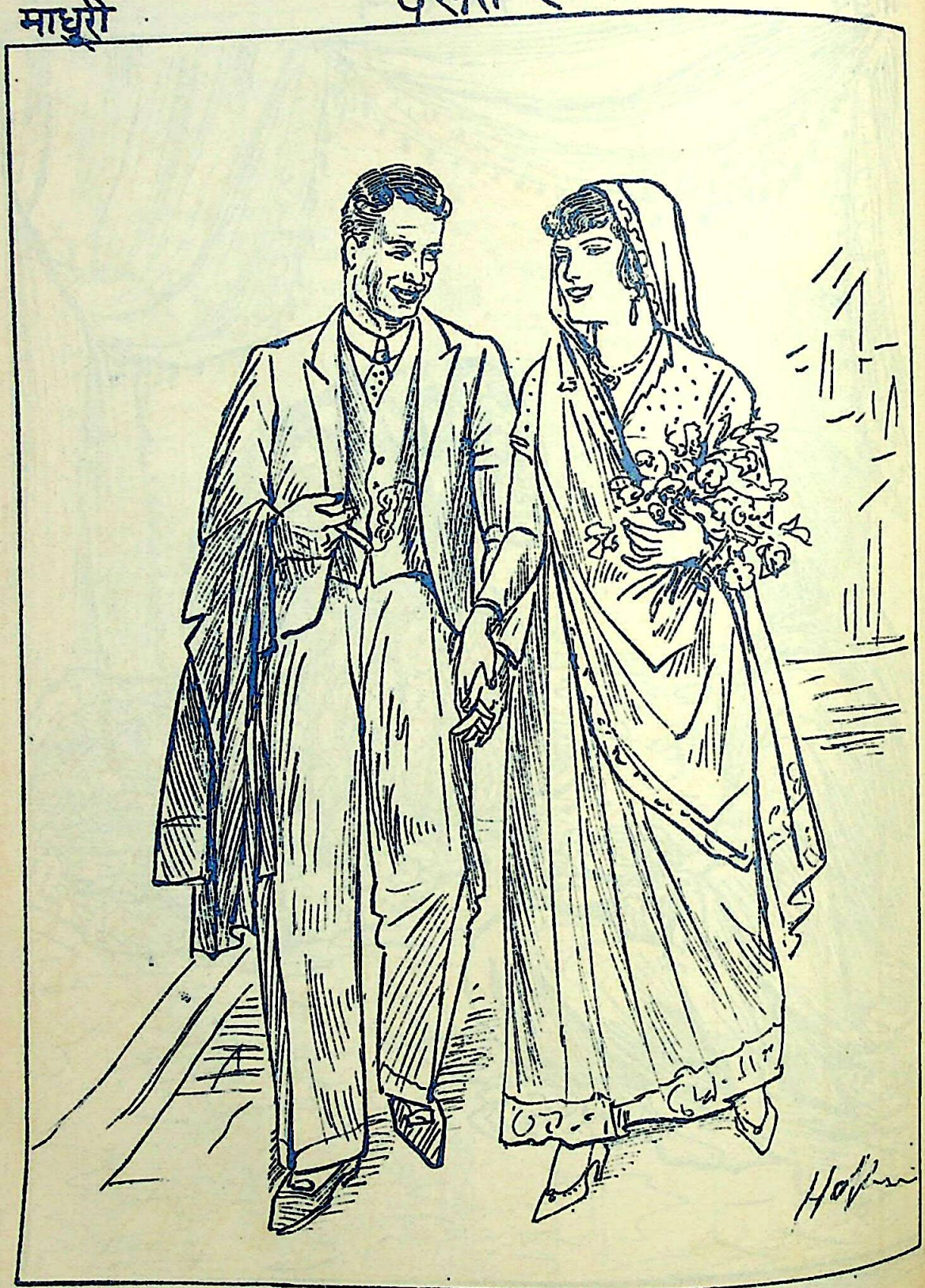

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

माधुरी देखते हैं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

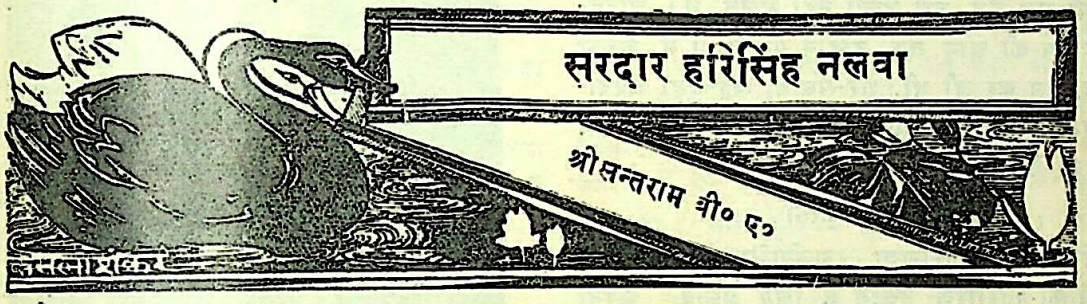

इस समय सीमान्त की यायावर अफ़ग़ान जातियाँ भारत के हिन्दुओं के लिए हौआ-सी-बन रही हैं। कोई दिन ऐसा नहीं जाता, जिस दिन बन्नू, डेराग़ाज़ीख़ाँ, डेराईसमाईलख़ाँ या लकी पर्वत से किसी हिन्दू के अपहरण या किसी गाँव के लुटने का समाचार न सुनने को मिलता हो। अपहरण एवं लुटने की दुर्घटनाएँ इतनी अधिक हो गई हैं कि ऐसा प्रतीत होने लगा है, मानो भारत-सरकार सीमान्त के उन दस्युओं का दमन करने में सर्वथा असमर्थ हो गई है। कांग्रेसी लोग इसका कारण भारत-सरकार की पुरोगामी नीति और हिन्दुओं की कायरता बताते हैं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। इतिहास बताता है कि भारत में कोई भी सरकार हो, जब तक वह पुरोगामी अथवा इन असभ्य जातियों को दबाकर रखने की नीति का अवलंब न करेगी, तब तक भारत के सीमा-प्रान्त में कभी शान्ति नहीं रह सकती। साथ ही इतिहास से यह भी पता लगता है कि हिन्दू स्वभावतः कायर नहीं। इन्हीं हिन्दुओं में से एक ने—पंजाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंह के जनरल सरदार हरिसिंह ने—आज से एक सौ वर्ष पूर्व सीमान्त की इन्हीं असभ्य यायावर जातियों को ऐसा सीधा किया था कि पठान-माताएँ आज तक अपने बच्चों को "हरिया आया" कहकर डराती हैं *। आज मैं उसी वीरवर हरिसिंह नलवा का संक्षिप्त परिचय पाठकों को देना चाहता हूँ। इससे उन्हें पता लग जायगा कि हिन्दू कायर नहीं हैं. कुछ काल से उनको कायर और दब्बू बनाया जा रहा है। सामाजिक सुधार द्वारा इनकी मनोवृत्ति को बदल देने से ये फिर पूर्ववत् महापराक्रमी और शत्रुओं के लिए भीषण आतङ्क बन सकते हैं।

सरदार हरिसिंह नलवा का जन्म पंजाब के गुजराँवाला नगर में संवत् १८४९ विक्रमी तदनुसार सन् १७९१ ईसवी में हुआ था। उनके पिता सरदार गुरुदयालसिंह सिक्खों की प्रसिद्ध सुकरचकिया मिसल में कुमेदान थे। हरिसिंह को बचपन में गुरुमुखी

* अफ़ग़ान उससे इतना डरते थे कि पेशावर और उसके अड़ोस-पड़ोस में आज भी पठान-माताएँ अपने बच्चों को डराने के लिए "हरिया आया" कहती हैं।—सैयद मुहम्मद लतीफ़-रचित "पंजाब का इतिहास", पृष्ठ ४८३.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(पंजाबी) और फ़ारसी भाषा की शिक्षा दी गई थी। परन्तु उनकी आयु अभी सात वर्ष की भी न हुई थी कि उनके पिता का देहान्त हो गया। तब इनकी माता श्रीमती धर्मकौर इनको लेकर अपने मायके में रहने लगीं।

हरिसिंह को परमेश्वर ने विलक्षण बुद्धि और अद्भुत धारणा-शक्ति दी थी। वे एक बार जिस वस्तु को देख या सुन लेते, उसे जल्दी नहीं भूलते थे। चौदह-पन्द्रह वर्ष की आयु तक उन्होंने युद्ध-विद्या में अच्छी दक्षता प्राप्त कर ली थी। शर-संधान, खड्ग-युद्ध, अश्वा-रोहण, नेज़ा-बाज़ी आदि में वह अपनी उपमा आप ही थे।

बाघ से कुश्ती

पंजाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंह देश के नव-युवकों की शारीरिक उन्नति के लिए प्रतिवर्ष अपनी राजधानी लाहौर में एक बड़ा दरबार लगाया करते थे। यह दरबार वसंतपंचमी के दिन से आरम्भ होकर दस दिन तक रहता था। इसमें समूचे पंजाब

सरदार हरिसिंह नलवा

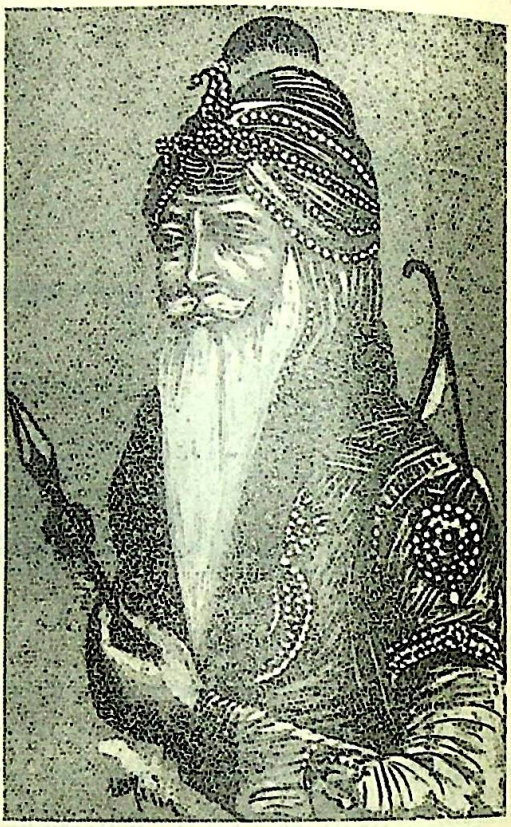

महाराजा रणजीतसिंह

के नवयुवक आकर अपने शारीरिक बल का प्रदर्शन किया करते थे। महाराजा इनको पारितोषिक देते और उनमें से योग्य युवकों को अपनी सेना के लिए चुन लेते थे।

संवत् १८६२ विक्रमी के वासन्ती दरबार में एक अलौकिक डीलडौल वाला नवयुवक आया। उसके सैनिक करतब देखकर सभी दर्शक आश्चर्य-चकित रह गये। महाराज उससे इतने प्रसन्न हुए कि तुरन्त उसे अपने "हुज़ूरी ख़िदमतगार" अर्थात् एडीकांग का पद प्रदान किया। यह नवयुवक हरिसिंह नलवा था।

सरदार हरिसिंह को राजसभा में आये अभी कुछ ही मास हुए थे कि एक दिन महाराज आखेट के लिए वन में गये। साथ नवयुवक सरदार हरिसिंह भी थे। अभी वन में प्रवेश ही किया था कि एक बाघ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सामने देख पड़ा। वह एकदम हरिसिंह की ओर झपटा और पूरे बल से उनको नीचे गिराने का यत्न करने लगा। बाघ का यह आक्रमण इतने झपाटे से हुआ कि सरदार हरिसिंह को म्यान से कृपाण निकालने का भी समय न मिला। परन्तु सरदार साहब का हृदय बड़ा सुदृढ़ था। उन्होंने दोनों हाथों से बाघ के जबड़े पकड़कर उसे ऐसे ज़ोर से घुमाया कि उसकी साँस बन्द हो गई। और वह तत्काल भूमि पर गिर पड़ा। इतने में उन्होंने शीघ्रता से कृपाण निकालकर बाघ की गर्दन पर ऐसा प्रबल प्रहार किया कि उसका मुण्ड रुण्ड से पृथक् होकर दूर जा पड़ा।

जिस समय यह घटना हो रही थी, महाराजा रणजीतसिंह कुछ दूर पर थे। वे घोड़ा दौड़ाकर उनकी सहायता के लिए पहुँचे और ललकारकर बोले—"घबराओ नहीं; हम पहुँच गये हैं।" परन्तु सरदार हरिसिंह नलवा ने शान्त भाव से उत्तर दिया—"महाराज, आप कष्ट न कीजिए; आपकी कृपा से बाघ ठंडा हो चुका है।"

इस समय विहारी-नामक दरबारी चित्रकार भी साथ था। महाराज ने उसे आदेश किया कि ठीक इसी दशा में बाघ के साथ सरदार हरिसिंह के युद्ध का चित्र तैयार किया जाय।

विहारी ने वैसा ही चित्र तैयार कर दिया। महाराज ने उसकी दो प्रतियाँ सरदार हरिसिंह को प्रदान कीं। इनमें से एक चित्र हरिसिंह ने बैरन हूगल नाम के प्रसिद्ध पर्यटक को ८ जनवरी, सन् १८३६ को दिया था।

महाराज साहब सरदार हरिसिंह की इस अद्भुत वीरता से इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने सरदार साहब को अपनी "सिंहहृदय"-नामक सेना का सेनानायक बना दिया। अब वे अङ्ग-रक्षक के पद से उन्नति करके आठ सौ सवार एवं पैदल सेना के अफ़सर हो गये। . . . .

यहाँ से सरदार हरिसिंह का सैनिक जीवन आरम्भ होता है। वे अपनी अनुपम योग्यता के प्रताप से न केवल सिक्ख-सेना के प्रधान सेनापति ही बने, वरन् काश्मीर, हज़ारा, पेशावर आदि सीमा प्रदेशों के सफल शासक भी। यहाँ तक कि उनके नाम का सिक्का भी चला।

मुलतान की लड़ाई

महाराजा रणजीतसिंह ने जितनी बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ीं प्रायः उन सबमें सरदार हरिसिंह नलवा थे। मुलतान का नवाब मुज़फ़्फ़रखाँ महाराजा रणजीतसिंह को कर दिया करता था। सन् १८०६ में उसने कर देने से इनकार कर दिया। इसलिए १५ फ़रवरी, सन् १८१० को महाराजा ने एक बड़ी सेना और भारी तोपख़ाने के साथ मुलतान की ओर प्रस्थान किया। जाते ही सिक्ख-सेना ने काली घटा की भाँति नगर को घेर लिया। नवाब आक्रमण की ताब न ला सका। नगर छोड़कर दुर्ग में जा छिपा। ख़ालसा का नगर पर अधिकार हो गया। महाराज ने आज्ञा दे दी कि दुर्ग को इस प्रकार घेर लिया जाय कि भीतर से कोई बाहर और बाहर से कोई भीतर न जा सके।

कई मास तक घेरा डाल रखने पर भी नवाब पर कुछ असर न हुआ। लड़ाई को लम्बा होते देख, महाराज ने प्रस्ताव किया कि हमारी सेना में से कुछ ऐसे आत्म-त्यागी वीर निकलें जो दुर्ग के नीचे जाकर उसकी प्राचीर में सुरङ्गें लगा दें, ताकि उनमें बारूद भरकर दीवार को उड़ा दिया जाय। तभी ख़ालसा फ़ौज दुर्ग में प्रवेश कर सकेगी। परन्तु सुरङ्गें लगाने का काम सरल न था। वहाँ से जीते बचकर निकलने की आशा न थी। महाराजा ने सेना को सामने खड़ा करके कहा—मेरे वीर बन्धुओ, मैं इस युद्ध को शीघ्र ही और सफलतापूर्वक समाप्त करना चाहता हूँ। प्रति-दिन के धावों से सैकड़ों मनुष्यों की प्राणहानि हो रही है। अब केवल एक ही विधि है, जिससे एक ही दिन में सफलता हो सकती है। परन्तु इसके लिए पूर्ण आत्म-बलिदान की आवश्यकता है। मैं आपसे एक दान माँगता हूँ। इस महान् कार्य की सिद्धि के लिए मुझे कुछ ऐसे निर्भीक योद्धाओं की आवश्यकता है, जो अपने प्राणों की ममता छोड़कर मेरे एवं राष्ट्र के निमित्त अपना शीश बलिदान देने को तैयार हों। . . . .

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाराज के शब्द सुनते ही कई योद्धाओं ने अपने को उनके सामने पेश किया। उनमें सबसे पहले जो वीर छलाँग मारकर आगे आया, वह सरदार हरिसिंह नलवा था। इनके उत्साह को देखकर महाराज को भी जोश आ गया। वे दौड़कर इन वीरों की पंक्ति में जा खड़े हुए और बोले—जिसकी सेना में आप ऐसे शूर हों, उसको कितना बड़ा गर्व होना चाहिए। मुझे यह उचित प्रतीत नहीं होता कि मैं आप तो पीछे रहूँ और राष्ट्र के इन शूरों को मृत्यु के मुँह में ढकेल दूँ। मैं स्वयं आपके साथ सुरङ्गें लगाने जाऊँगा और इस प्रकार अपना कर्तव्य पालन करूँगा।

इस समय सरदार हरिसिंह ने बड़े विनीत भाव से कहा—महाराज, हम जो आपके सेवक बैठे हैं। यदि यह सेवा करते हुए हम कहीं वीरगति को प्राप्त हो गये तो हमारे-जैसे और सैकड़ों उत्पन्न हो जायँगे। परन्तु परमेश्वर न करे, यदि कहीं सरकार का एक बाल भी बाँका हो गया, तो पंजाब-केसरी संसार में फिर जन्म नहीं लेगा। इसलिए यह प्रतिष्ठा हमें ही प्रदान कीजिए। सब सरदारों के मिलकर बाध्य करने पर ही वे कहीं रोके जा सके।

महाराज के इस प्रकार लड़ाई में कूद पड़ने से सारी सेना में उत्साह का सागर ठाठें मारने लगा। सरदार हरिसिंह नलवा, सरदार निहालसिंह और सरदार अतरसिंह की अध्यक्षता में पछत्तर मनचले सूरमे तैयार होकर बाहर निकले। देश-प्रेम से मतवाले वीरों का यह जत्था मस्त हाथियों की भाँति दुर्ग की ओर बढ़ा। दुर्ग पर से जब नवाब की सेना ने इनको आते देखा तो उसने गोलियों की वर्षा आरम्भ कर दी। परन्तु इन वीरों ने न आव देखा और न ताव, विद्युत्-गति से दौड़कर ये झट दुर्ग के नीचे पहुँच गये। परन्तु वहाँ पहुँचते-पहुँचते इनमें से अनेक वीर हताहत हो गये। दुर्ग पर से दनादन गोलियों की वर्षा हो रही थी, परन्तु ये सिंह-हृदय योद्धा अविचल-भाव से फ़सील में सुरङ्गें लगा रहे थे। क्या मजाल, जो एक क्षण के लिए भी इनके हृदय में मृत्यु का भय स्थान पा सका हो। सुरङ्गों में बारूद भरकर आग लगा दी गई। निमेषमात्र में फ़सील ऊपर को उड़ती दिखाई दी। ये लोग शौर्य के मद में कुछ ऐसे सराबोर थे कि पलीते को आग लगाते समय इन्हें फ़सील से जितनी दूर परे हट जाना चाहिए था, ये उतनी दूर नहीं हटे। ये मन में निश्चय किये बैठे थे कि दीवार के गिरते ही सबसे पहले हम ही दुर्ग में प्रवेश करके अपनी कृपाणों को शत्रु-शोणित से तृप्त करेंगे।

परन्तु हुआ क्या? आग के लगते ही एक भारी विस्फोट के साथ दीवार का बहुत-सा मलबा जत्थे के तीनों नेताओं—सरदार हरिसिंह नलवा, सरदार निहाल-सिंह और सरदार अतरसिंह—पर आ गिरा। तीनों बहुत बुरी तरह से आहत होकर भूमि पर गिर पड़े। इस समय राल की जलती हुई हाँडियाँ दुर्ग पर से इन घायलों पर फेंकी गईं। एक जलती हुई हाँडी सरदार हरिसिंह के ऊपर भी आ गिरी। इससे उनकी वर्दी को आग लग गई, और उनकी देह झुलस कर कबाब बन गई। इतने में उनके रिसाले के एक युवक की दृष्टि उन पर पड़ी। वह चट दौड़कर उनके पास पहुँचा। उनकी वर्दी फाड़कर उसने आग बुझा दी। फिर उनके आहत शरीर को अपनी पीठ पर लादकर बरसती गोली में वह बाहर निकाल ले गया। इसी प्रकार सरदार निहालसिंह और सरदार अतरसिंह को भी उठाकर सैनिकों ने छावनी में पहुँचा दिया। परन्तु खेद है कि छावनी में पहुँचने के पूर्व ही रास्ते में सरदार अतरसिंह की आत्मा उनके पंचभौतिक शरीर को छोड़ गई।

महाराजा रणजीतसिंह अपनी अश्वारोही सेना लिये तैयार खड़े थे। फ़सील के गिरते ही उन्होंने धावे की आज्ञा दे दी। योद्धा लोग तत्काल दुर्ग की ओर दौड़ पड़े। ख़ालसा फ़ौज क़िले में जा घुसी। नवाब का सारा साहस भङ्ग हो गया। उसने सफ़ेद झंडी दिखा-कर अधीनता स्वीकार कर ली। उसे पकड़कर महाराज के सम्मुख उपस्थित किया गया। उसने गिड़गिड़ाकर प्राणों की भिक्षा माँगी। महाराजा ने उसे क्षमा कर दिया। नवाब ने ढाई लाख रुपया राजस्व और २५ घोड़े प्रतिवर्ष महाराजा को देना स्वीकार किया और भविष्य में कभी विद्रोह न करने का वचन देकर अपने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अबूबकरख़ाँ को प्रतिभू के रूप में लाहौर रखने को कहा।

शिविर में लौटकर महाराज ने सरदार निहालसिंह और सरदार हरिसिंह की चिकित्सा के लिए अपने विशेष चिकित्सक हकीम अज़ीज़ुद्दीन को नियुक्त कर दिया। कुछ दिन बाद उन्हें लाहौर के चिकित्सालय में भेज दिया। वहाँ जाकर वे थोड़े ही दिनों में स्वस्थ हो गये। सरदार हरिसिंह की वीरता से प्रसन्न होकर महाराज ने उन्हें २०,००० रुपये वार्षिक की जागीर प्रदान की।

उच्च के सैयद

बहावलपुर-प्रदेश के अन्तर्गत उच्च-नामक स्थान के गिलानी और बुख़ारी सैयद हिन्दू-प्रजा पर बड़े अत्याचार किया करते थे। ये मुग़ल-काल से स्वाधीन चले आ रहे थे। ये बड़े धर्मान्ध और पक्षपाती थे। इनको हिन्दुओं से इतनी घृणा थी कि रास्ते में यदि कोई हिन्दू सामने आ जाय, तो ये अपने मुँह पर कपड़ा डाल लेते थे या उस हिन्दू के मुँह पर थूक देते थे। ये चाहे जैसा भी अत्याचार कर लें किसी को इनके विरोध का साहस न होता था। इसलिए ये दिन-दहाड़े लूट-मार करते थे।

महाराजा रणजीतसिंह ने सरदार हरिसिंह नलवा और सरदार दलसिंह को इनको सन्मार्ग पर लाने के लिए भेजा। सैयद लोग भी तैयार होकर लड़ाई के लिए आ गये। परन्तु सरदार हरिसिंह ने वह धुआँधार गोला-वृष्टि की कि बुख़ारियों का सुदृढ़ दुर्ग टूटकर विनाशायी हो गया। अब ये पीर बहुत घबराये। जो आँखें घृणा और अहंकार के कारण किसी हिन्दू को देखती तक नहीं थीं, वे सिक्ख-सेना के तेज के सामने चौंधियाकर ऐसी नीची हुईं कि फिर कभी ऊँची न हो सकीं। उनका अहंकार सदा के लिए चूर हो गया। प्राण-रक्षा का और कोई उपाय न देख ये मुँह में तृण लेकर विनीत भाव से ख़ालसा के दरबार में उपस्थित हुए और ख़ालसा की आज्ञा में शान्तिपूर्वक रहने का वचन दिया।

पठानों पर विजय

भारत का उत्तर-पश्चिम कोण सदा से विदेशी आक्रमणकारियों के आने का मार्ग बना रहा है। यह आज भी भारत के लिए अशान्ति का कारण बना हुआ है। महाराजा रणजीतसिंह को भी विदेशी आक्रमणकारियों को रोकने के लिए सीमान्त-प्रदेश पर ध्यान देना पड़ा। अटक का इतिहास-प्रसिद्ध दुर्ग सिन्धु नदी के ठीक ऊपर स्थित है। यह सीमान्त का द्वार है। इस समय यह दुर्ग अफ़ग़ानी राज्य की ओर से जहाँदादख़ाँ के अधिकार में था। महाराजा रणजीतसिंह की इच्छा चिरकाल से इसे ख़ालसा-राज्य में मिला लेने की थी। कारण यह कि वे जानते थे कि इस दुर्ग पर जब तक अफ़ग़ानों का अधिकार रहेगा, तब तक पंजाब में शान्ति संभव नहीं।

इस उद्देश्य को दृष्टि में रखकर उन्होंने दीवान मुहकमचंद और सरदार हरिसिंह नलवा को अटक की ओर जाने की आज्ञा दी। इनकी सेना ने अभी झेलम नदी को पार किया ही था कि काबुल के फ़तहख़ाँ वज़ीर को ख़ालसा फ़ौज के उधर आने का पता लग गया। उसने १५,००० स्थायी और बहुत-सी अस्थायी सेना अपने भाई दोस्तमुहम्मदख़ाँ के साथ भेजकर, हज़रो के निकट शम्साबाद में ख़ालसे का रास्ता रोक लिया।

अफ़ग़ानी सेना में से सिक्खों के गुप्तचर प्रतिदिन समाचार भेज रहे थे। खालसा फ़ौज ने पंजासाहब से कूच करके वुरहान के मैदान में डेरा लगा दिया। वहाँ कुछ दिन विश्राम किया। इतने में पीछे से बड़ी तोपें आ गईं। तब १२ जुलाई को अफ़ग़ानों पर धावा बोल दिया गया। उधर अफ़ग़ानों के जोश की भी कोई सीमा न थी। दोनों ओर से तोपें आग बरसाने लगीं। कृपाण से कृपाण और भाले से भाला टकरा रहा था। दिन भर लोहे से लोहा बजता रहा। जब रात्रि के अंधकार ने आकर अपनी कृष्ण यवनिका फैला दी, तो शत्रु-शोणित से सनी हुई योद्धाओं की कृपाणें म्यानों में विश्राम करने चली गईं।

दूसरे दिन अरुणोदय के पूर्व ही सरदार हरिसिंह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की अध्यक्षता में अश्वारोहियों के चार दस्ते चारों ओर से वैरी पर टूट पड़े और साथ ही तोपख़ाने ने अग्नि-वर्षा आरम्भ कर दी। उधर से अफ़ग़ान भी तुरन्त सँभलकर मुक़ाबले के लिए डट गये। उन्होंने बड़ी वीरता के साथ सिक्खों के आक्रमण को रोका। वह घमासान युद्ध हुआ कि उसके सामने महाभारत का युद्ध भी फीका जान पड़ता था। जहाद की भावना से एकत्र हुए गाज़ी लोग नंगी तलवारें हाथ में लिये, आग उगलती हुई तोपों के सामने दौड़कर आते और मकई के दानों की भाँति एकदम भुँजकर उड़ जाते। रणभूमि में लोथों के ढेर लग गये। गीदड़, कुत्ते, चील और गिद्ध प्रसन्नता से चीत्कार करते हुए इस भयानक युद्ध को और भी भयानक बना रहे थे। कौओं की काएँ-काएँ, तलवारों की कट-कट, बंदूक़ों की तड़-तड़, तोपों का विस्फोटन मेदिनी को कँपा रहा था। एक ओर "अल्ली, अल्ली" और दूसरी ओर "अकाल, अकाल" का घोष उठ रहा था। कुछ ऐसा भयानक समय उपस्थित हो रहा था कि कान पड़ा शब्द सुनाई न देता था। दोपहर तक ऐसा ही दृश्य रहा।

इधर सरदार हरिसिंह अपने युवकों का हृदय बढ़ा रहे थे, उधर वीरवर दोस्तमुहम्मदख़ाँ और फ़तहख़ाँ गाज़ियों—इस्लाम के नाम पर लड़नेवाले योद्धाओं—को उत्तेजित कर रहे थे। दोनों ओर से भीषण संग्राम चल रहा था। दोनों पक्षों को अपना-अपना बाहु-बल प्रदर्शित करने का अपूर्व अवसर मिला था। प्रत्येक दल यही समझ रहा था कि आज की जय सदा की जय और आज की पराजय सदा की पराजय होगी। परन्तु भाग्य के कड़छे बाँटना विधाता ने अपने हाथ में रक्खा है। नियति चाहती थी कि भविष्य में सिक्खों का सिक्का सदा के लिए अफ़ग़ानों के हृदयों पर जम जाय। सो वैसा होकर ही रहा।

निर्भीक दोस्तमुहम्मदख़ाँ सरदार जीवन्तसिंह मोकल के साथ हाथ-पलटे के दाँव कर रहा था। सरदार ने सहसा एक ऐसा प्रहार किया कि ख़ाँ घोड़े पर से नीचे भूमि पर आ गिरा। अफ़ग़ान-सेना में अफ़वाह फैल गई कि दोस्तमुहम्मदख़ाँ मारा गया। इससे पठान-सेना में बड़ी गड़बड़ मच गई। सरदार हरिसिंह सिक्ख-सेना को आगे बढ़ा ले गये। दिन ढलते ही पठान-साहस-भंग हो गया और वे समर-भूमि से अन्तर्धान हो गये। सिक्खों ने सिंधु-नदी के तीर तक उनका पीछा किया। सहस्रों अफ़ग़ान ख़ालसा-कृपाणों की धार के पार हो गये। अटक के दुर्ग पर सिक्खों का पूर्ण अधिकार हो गया।

एक द्रुतगामी साँडनी सवार के हाथ हज़ूर में अटक-विजय का सुखद समाचार महाराजा रणजीतसिंह के पास लाहौर भेज दिया गया। पंजाब-केसरी यह समाचार सुन बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सन्देश-वाहक को दो स्वर्ण-कङ्कण प्रदान किये और उसका मुँह शक्कर से भर दिया। लाहौर, अमृतसर, बटाला आदि नगरों में कई दिन तक दीपमाला होती रही। उस दिन से पठानों पर सिक्खों की वीरता का ऐसा सिक्का बैठा कि वह भविष्य में दिन पर दिन बढ़ता ही गया। इस युद्ध में सहस्रों घोड़े, ख़ीमें, तोपें और बहुत-सा अन्न सिक्खों के हाथ आया।

काश्मीर-विजय

काश्मीर की देव-भूमि विदेशी अफ़ग़ान शासकों के अत्याचार से श्मशान-भूमि बन रही थी। पठान लोग केवल हिन्दुओं पर ही अत्याचार नहीं करते थे, बल्कि शीआ और झेलम उपत्यका के "बब्बे" और "खत्ते" मुसलमानों का भी सर्ववध किया जाता था। इस प्रजा-पीड़कों में असदख़ाँ विशेष रूप से प्रसिद्ध है। यह काश्मीरियों की पीठें जोड़कर और मज़बूत रस्सों से बँधवाकर डल-नामक सरोवर के गहरे जल में फेंक देता था। जब वे डूबते हुए अपने हाथ ज़ोर-ज़ोर से पानी पर मारते, तो यह निर्दय किनारे पर बैठा हुआ खिलखिलाकर हँसता और कहता कि क्या ख़ूब तमाशा है। इसके राजत्वकाल में हिन्दुओं को सिर पर पगड़ी और पाँव में जूता पहनने की आज्ञा नहीं थी।

इन अत्याचारियों में से एक अतामुहम्मदख़ाँ भी था। यह इतना दुराचारी और लंपट था कि इसकी छोड़ी हुई कई कुटनियाँ लोगों के घरों में फिरती रहती थीं। जिस बहू-बेटी को ये रूपवती देखतीं, झट उसे राजभवन में पहुँचा देतीं। उसके संबंधी फूट-फूटकर रोते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रह जाते। कोई भी उनकी फ़र्याद न सुनता। इन दुष्टियों में से एक का नाम कोशव था। इससे सारा कश्मीर थरथर काँपता था।

इन दिनों यदि किसी मुसलमान के सामने कोई कश्मीरी पण्डित आ जाता तो वह छलाँग मारकर पण्डित की पीठ पर सवार हो जाता।

काश्मीर में जब इस प्रकार के भयानक एवं अमानुषी अत्याचार हो रहे थे, तो वहाँ का एक प्रतिष्ठित एवं धनाढ्य पंडित, वीरवर, अपने पुत्र, राजकाक समेत भेस बदलकर किसी प्रकार वहाँ से भाग आया। उसने लाहौर पहुँचकर महाराजा रणजीतसिंह को काश्मीर की प्रजा पर होनेवाले अत्याचारों का ऐसा हृदयद्रावक वर्णन सुनाया कि सभी सुननेवाले त्राहि-त्राहि कर उठे। महाराज ने अपने सरदारों के साथ परामर्श किया और अन्त को निश्चय हुआ कि काश्मीर को निर्दय अफ़ग़ानों के चंगुल से छुड़ाकर वहाँ सुख-शान्ति स्थापित करनी चाहिए।

इधर जब काश्मीर के शासक मुहम्मदअज़ीमख़ाँ को पता लगा कि वीरवर पण्डित महाराजा रणजीतसिंह के पास लाहौर गया है, तो उसने अपने आदमी भेजकर वीरवर का घर-बार लूट लिया, उसके परिवार की स्त्रियाँ पकड़ लीं, और उनको भाँति-भाँति के कष्ट देने लगा, ताकि वे अपना धर्म छोड़कर मुसलमान बन जायँ। वीरवर की धर्मपत्नी ने धर्म छोड़ने की अपेक्षा शरीर छोड़ना अच्छा समझा। उसने आत्महत्या करके स्वधर्म की रक्षा की। परन्तु उसकी नवयुवती बहू इन दुःसह्य वेदनाओं को सहन न कर सकी और मुसलमान हो गई। उसे काबुल भेजवा दिया गया। वह वहीं रहती रही।

काश्मीरियों का कष्ट निवारण करने के लिए पंजाब-केसरी ने २० फ़रवरी, सन् १८१९ को ३०,००० सेना के साथ काश्मीर की ओर कूच कर दिया। ३ जुलाई, सन् १८१९ को सोपियाँ के मैदान में मुहम्मद जब्बारख़ाँ के साथ ख़ालसा फ़ौज का मुक़ाबला हुआ। सरदार हरिसिंह नलवा ने अपनी सेना को आगे बढ़ाकर अफ़ग़ानी सेना को घेर लिया। दोनों ओर से संगीनों और तलवारों से लड़ाई होने लगी।

काश्मीर का शासक नवाब जब्बारख़ाँ एकाएक सरदार हरिसिंह नलवा के सम्मुख आ निकला। वह बड़े आवेग के साथ अपनी लपलपाती हुई तलवार का प्रहार नलवा सरदार पर करना चाहता था। परन्तु उसने अभी अपना दायाँ हाथ ऊपर उठाया ही था कि सरदार हरिसिंह ने उससे एक क्षण पहले ही उस पर कृपाण का प्रहार करके न केवल आत्म-रक्षा की, वरन् उसका तलवारवाला हाथ भी काट डाला। इस पर जब्बारख़ाँ बड़ी कठिनाई से प्राण लेकर भाग गया और लुकता-छिपता मुज़फ़्फ़राबाद के रास्ते किसी प्रकार अफ़ग़ानिस्तान जा पहुँचा। अपने सेनापति के भाग जाने से अफ़ग़ान-सेना भी मैदान में खड़ी न रह सकी। ख़ालसा की पूरी विजय हुई। इस प्रकार आज इस्लामी शासन की आठ पीढ़ियों और पाँच सौ वर्ष के बाद (सन् १३२५ से सन् १८१९ तक) काश्मीर में पुनः आर्य-राज्य स्थापित हो गया।

काश्मीर-विजय के बाद जब सरदार हरिसिंह लाहौर वापस आये तो महाराजा रणजीतसिंह ने बड़ी धूम-धाम से उनका स्वागत किया। लाहौर में उनका जुलूस निकाला गया।

काश्मीर की गवर्नरी

काश्मीर-विजय के बाद दीवान मोतीराम को वहाँ का गवर्नर बनाया गया। परन्तु दीवान साहब की प्रकृति बहुत मृदु थी। वे वहाँ शान्ति स्थापित न कर सके। उनके लिए राजस्व प्राप्त करना कठिन हो गया। इसलिए महाराज ने उनको वापस बुलाकर उनके स्थान में सरदार हरिसिंह नलवा को गवर्नर बनाकर भेजा। सरदार साहब के सुप्रबंध से वहाँ शान्ति हो गई और राजस्व भी अपने आप ठीक समय पर मिलने लगा।

एक दिन सरदार हरिसिंह अपने बहुत-से कर्मचारियों और प्रतिष्ठित नगर-निवासियों को साथ लिये श्रीनगर में फिर रहे थे। आप जहाँ भी कोई रमणीक स्थान देखते वहाँ पता लगता कि यहाँ पर पहले कोई हिन्दू-मन्दिर या देव-स्थान था, परन्तु मुसलमानी राजत्व-काल में उसके स्थान में मसजिद अथवा ज़ियारत बना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दी गई थी। नगर के तीसरे पुल पर पहुँचकर सरदार हरिसिंह की दृष्टि नरेन्द्र स्वामी के मन्दिर पर पड़ी, जिसे महाराज नरेन्द्र द्वितीय ने सन् १७९–१८१ में बनवाया था। इसे मुसलमानों ने नरपीर की ज़ियारतगाह के रूप में परिणत कर दिया था। इसी प्रकार नदी के चौथे पुल के निकट, झेलम नदी के दायें तट पर पाँच गुम्बदवाला मन्दिर महाश्रीमन्दिर के नाम से प्रसिद्ध था। इसे महाराजा परिवार सेन द्वितीय ने बहुत-सा रुपया लगाकर बनवाया था। काश्मीर के शासक, शाह सिकन्दर की बेगम की मृत्यु के समय, सन् १४०४ में, इस मन्दिर को बहुत सुरम्य देखकर, बलात् इस मन्दिर के आँगन में दफ़ना दिया गया और उस पर पक्की क़ब्र बना दी गई। उस दिन से यह अनुपम सुन्दर मन्दिर मक़बरे में परिणत हो गया। काश्मीर का प्रसिद्ध शासक ज़ैनुल-आबदीन भी इसी हाते में दफ़नाया गया था। यह स्थान "मक़बरा शाही" के नाम से प्रसिद्ध था।

इसके उपरान्त, नगर के छठे पुल के निकट, नदी के दाईं ओर एक और मन्दिर देख पड़ा, जिसे महाराजा युधिष्ठिर के प्रसिद्ध मंत्री स्कंदगुप्त ने बनवाया था। इसे अब पीर मुहम्मद वाशू की ज़ियारत का रूप दे दिया गया था। इसके निकट ही एक प्राचीन देव-स्थान, त्रिभुवन स्वामी के नाम से प्रसिद्ध था। इसे सन् ६८४-६९३ में महाराजा चन्द्रापीड ने बनवाया था। इस पर एक मुसलमान पीर ने अत्याचारपूर्वक अधिकार करके अपना स्मारक बना दिया था। इसे टाँगा बाबा कहते थे। मरण के उपरान्त वह यहीं दफ़नाया गया था।

सन् १४७४ में श्रीनगर की जामा मसजिद बनवाते समय मूर्तिभंजक सिकन्दर ने महाराजा तारापदी के सन् ६९३ से सन् ६९७ में बनवाये हुए एक प्रसिद्ध मन्दिर को तोड़कर उसकी सारी सामग्री इस मसजिद में लगा ली थी।

सुलेमान पर्वत की ऊँची चोटी पर महाराजा सिद्धिमान का बनवाया हुआ शंकराचार्य का एक बड़ा ही सुन्दर मन्दिर था। इसकी चौड़ी-चौड़ी पैड़ियाँ पर्वत की चोटी से आरम्भ होकर नीचे बहती हुई झेलम नदी के तट तक पहुँचती थीं। इनमें बड़े बढ़िया पत्थर गढ़कर लगाया गया था। सन् १६१९ में जब नूरजहाँ बेगम बादशाह जहाँगीर के साथ श्रीनगर आई तो उसने ये बहुमूल्य पत्थर मन्दिर की सीढ़ियों से उखड़वाकर श्रीनगर में अपनी स्मृति में "पत्थरवाली मसजिद" बनवा दी। यदि इसी प्रकार खोज की जाय तो काश्मीर की कोई मसजिद, कोई ज़ियारत, कोई मक़बरा और कोई तकिया ऐसा न निकलेगा, जो मन्दिर को बदलकर अथवा मन्दिर की सामग्री से न बनवाया गया हो।

इस हृदय-द्रावक दृश्य को देखकर सरदार हरिसिंह के मन में विचार आया कि जब तक मन्दिरों को तोड़कर बनाई हुई ये मसजिदें आदि वर्तमान रूप में रहेंगी, तब तक हिन्दू-मुसलमान का सच्चा प्रेम कभी नहीं हो सकेगा। हिन्दू जब भी इनको इस रूप में देखेंगे, उनके हृदय में अपने पड़ोसी मुसलमान भाइयों के लिए घृणा उत्पन्न होती रहेगी और नित्य फ़साद होते रहेंगे। दोनों जातियों का आपस में प्रेम और सच्ची शान्ति तभी हो सकेगी, जब प्रत्येक जाति के अपने-अपने पूजा-स्थान उनके अपने-अपने अधिकार में होंगे। इस पर विचार करने के लिए सरदार साहब ने प्रतिष्ठित पण्डितों और मुखिया मौलवियों की एक सभा बुलाई। परन्तु बड़े आश्चर्य के साथ लिखना पड़ता है कि अपने बलात् छीने हुए धर्म-स्थानों को पुनः प्राप्त करके सन्तुष्ट होने के बदले पण्डितों ने उलटा सरदार साहब से हाथ जोड़कर विनती की कि इन मन्दिरों से बनाई गई मसजिदों को इसी प्रकार रहने दिया जाय; इनको पुनः अपने अधिकार में लेने से मुसलमान हमारे शत्रु बन जायँगे और हमारा यहाँ रहना कठिन हो जायगा।

सरदार साहब ने उनको बहुतेरा समझाया कि यह सब वैर-विरोध को सदा के लिए निकाल देने के लिए ही किया जा रहा है। परन्तु काश्मीरी हिन्दू बिलकुल न माने। सरदार साहब ने स्पष्ट शब्दों में यहाँ तक कह दिया कि तुम्हारे धर्म-स्थानों की रक्षा करना राज्य का कर्तव्य है। परन्तु ये किसी प्रकार भी न माने।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पठानों के शासन-काल का एक बड़ा लज्जाजनक स्मारक काश्मीर में चला आ रहा था। वह यह कि हिन्दुओं को सिर पर पगड़ी बाँधने और पाँवों में जूता पहनने का घोर निषेध कर दिया गया था। जब कोई विद्वान् पण्डित नंगे पाँव और नंगे सिर सरदार साहब से मिलने आता तो सरदार साहब को उसे देख बड़ा दुःख होता। इसलिए उन्होंने घोषणा कर दी कि ख़ालसा के राज्य में जो जैसा चाहे वस्त्र पहन सकता है; घोड़े पर सवार हो सकता है, किसी को किसी प्रकार की मनाही नहीं। इस घोषणा के उपरान्त हिन्दू पगड़ी बाँधने, जूते पहनने और घोड़े की सवारी करने लगे।

इस समय काश्मीर में ९३ प्रतिशत मुसलमान और केवल ७ प्रति सैकड़ा हिन्दू हैं। परन्तु प्राचीन इतिहास से पता लगता है कि सन् १४०० से पहले सारा काश्मीर हिन्दू था। वहाँ के हिन्दू और मुसलमानों के पारिवारिक नाम एक हैं, जैसा कि सप्रू, किचलू, पण्डित और बट्ट हिन्दुओं में भी हैं और मुसलमानों में भी। इनको मुसलमान कैसे बनाया गया, इसका रोमांचकारी वर्णन श्रीयुत हरगोपाल कौल-रचित "तवारीख़े-काश्मीर" में मिल सकता है।

सरदार हरिसिंह को कुछ ऐसे प्रतिष्ठित हिंदू परिवारों का पता लगा, जो मुसलमानों के शासनकाल में बलात् मुसलमान बनाये गये थे। वे हृदय से कभी मुसलमान नहीं बने थे। अब ख़ालसा का सुख-शान्तिपूर्ण राज्य पाकर वे पुनः हिन्दू-धर्म में आना चाहते थे। परन्तु उनकी बिरादरी मुसलमानों के डर से उनको अपने में मिलाने को तैयार न थी। यह समाचार सुन सरदार हरिसिंह ने तुरन्त ढिंढोरा पिटवा दिया। उसमें स्पष्ट कहा गया कि जो कोई पतित पुनः अपने धर्म में आना चाहे, उसके लिए कोई रुकावट न उत्पन्न की जाय। यदि किसी बिरादरी ने इस कार्य में हृदय की संकीर्णता प्रकट की तो वह दण्ड की भागी होगी।

इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि जो पण्डित सहस्रों की संख्या में मुसलमान हो गये थे, वे पुनः हिन्दू-धर्म में मिला लिये गये। सरदार हरिसिंह के शासन-काल में अनुमानतः ४०,००० नवीन मुसलिम पुनः शुद्ध होकर हिन्दू-धर्म में लौट आये।

कूटनी मिट्टी

जब काश्मीर का प्रबन्ध ठीक हो गया और महाराजा रणजीतसिंह को विश्वास हो गया कि अब कोई साधारण व्यक्ति भी जाकर काश्मीर का शासन कर सकता है, तो उन्होंने सरदार हरिसिंह को वहाँ से बुला लिया। सरदार साहब ७००० सेना के साथ काश्मीर से लौट रहे थे। जब वे पखली के क्षेत्र में पहुँचे तो पता लगा कि हज़ारा-प्रांत के जदून और तनावली पठान ३०,००० सेना इकट्ठी करके सिक्ख-सेना को रोकने के लिए माँगली की प्रसिद्ध घाटी में युद्ध के लिए तैयार बैठे हैं। सरदार हरिसिंह व्यर्थ रक्तपात नहीं करना चाहते थे। उन्होंने पठानों को समझाने का यत्न किया कि हमारी इच्छा तुम पर आक्रमण करने की नहीं, हम तो केवल यहाँ से लाँघ जाना चाहते हैं, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। तब सरदार साहब ने भी अपनी सेना को लड़ाई के लिए तैयार हो जाने का आदेश कर दिया।

वे भेष बदलकर माँगली की ओर निकल पड़े और शत्रु के मोरचों और नाकाबन्दियों को देखने लगे। उस समय एक विचित्र घटना घटी। नील निर्मल आकाश एकदम मेघाच्छन्न हो गया। पल के पल में मूसलाधार वर्षा होने लगी। थोड़ी देर बरसने के बाद आकाश फिर निर्मल हो गया और धूप निकल आई। इतने में सरदार साहब क्या देखते हैं कि माँगली के सभी निवासी मोगरियाँ लेकर अपने-अपने कोठों पर चढ़े हुए छतें कूट रहे हैं। सरदार साहब ने एक जदून से पूछा कि क्या यहाँ की सभी छतें टपकती हैं? क्या ये लोग छतों को लीपते-पोतते नहीं? इस पर उस मनुष्य ने उत्तर दिया कि लीपते तो हैं, परन्तु यहाँ की मिट्टी ही ऐसी है कि जब तक उसे कूटा न जाय, वह अपनी जगह पर टिकती नहीं। इसलिए यहाँ की मिट्टी 'कूटनी मिट्टी' कहलाती है।

यह सुन सरदार साहब अपने शिविर को लौट आये और सब सरदारों को इकट्ठा करके बोले—मैंने आपकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विजय के लिए एक गुप्त रहस्य मालूम किया है। उसके अनुसार कार्य करने से आप अवश्य विजयी होंगे। सरदार साहब ने कहा कि यहाँ की मिट्टी का नाम 'कूटनी मिट्टी' है। यह कूटने से ही ठीक होती है, सो यदि आप आज ही विजय पाना चाहते हैं तो अभी कमर बाँधकर धावा बोल दो और उनको कूट-कूटकर ठीक मार्ग पर ले आओ।

बस, फिर क्या था। शत्रु के मोरचों पर तीन ओर से हल्ला बोल दिया गया। बड़ा तुमुल युद्ध हुआ। दोनों ओर के वीर प्राणों की ममता छोड़कर लड़े। पहर डेढ़ पहर में ख़ालसा की तलवार ने दो हज़ार ग़ाज़ी यमपुर पहुँचा दिये। सरदार साहब की सेना में से १५० जवान वीरगति को प्राप्त और ३५० घायल हुए। पठानों में भगदड़ मच गई। माँगली पर सिक्खों का अधिकार हो गया। यह घटना १० नवम्बर, सन् १८२१ की है।

पुरोगामी नीति या फ़ार्वर्ड पालिसी

आजकल की तरह महाराजा रणजीतसिंह के राजत्व-काल में भी सीमान्त की असभ्य और युयुत्सु जातियाँ पंजाब में आकर उत्पात किया करती थीं। इनका यथोचित प्रबंध किये बिना पंजाब में शान्ति नहीं रह सकती थी। सरदार हरिसिंह नलवा की राय थी कि जब तक सिन्धु नदी के पार के प्रदेश को ख़ालसा-राज्य में नहीं मिला लिया जायगा, तब तक ये जातियाँ चैन से न बैठेंगी। रणजीतसिंह पहले तो इस नीति के विरुद्ध थे, परन्तु पीछे से वे भी सहमत हो गये।

इसका कारण क्या था? यदि सिन्धु नदी के पार के प्रदेश को छोड़कर हरिसिंह सिंधु के बायें किनारे तक ही ख़ालसा-राज्य को सीमित कर देता तो हज़ारा के उत्तर से लेकर शिकारपुर सिंध तक फैले हुए कोई ६५० मील के सीमा-प्रदेश की रक्षा के लिए उसे प्रत्येक समय कमर बाँधे खड़े रहना पड़ता। सिंधु की दाईं ओर लड़ाकू, बलवान् और शत्रु जातियाँ बसती थीं। अटक नदी अनेक स्थानों पर छिछली थी, जिससे ये लोग उसमें से लाँघकर पंजाब में लूट-मार कर सकते थे। इन लुटेरों को इतनी लम्बी-चौड़ी सीमा पर रोके रखने के लिए एक बहुत बड़ा सैन्य दल चाहिए। दूसरे, सिंधु के बायें तट पर बसनेवाले लोग भी अधिकतर मुसलमान ही थे। वे भी दायें तट पर बसनेवाली अफ़ग़ान जातियों से सिक्खों के कुछ कम शत्रु न थे। वे झट उनसे मिल जाते थे। सरदार हरिसिंह-जैसे निर्भीक, साहसी और बलवान् सेनानायक के लिए भी सीमान्त पर शान्ति स्थापित करना सुगम न था। वह अफ़ग़ानों को हरा सकता था, परन्तु वहाँ से लौट आने पर वहाँ शान्ति रखना कठिन था। जब तक उस देश पर पूर्ण अधिकार न हो जाय, तब तक सीमान्त पर आठ-दस सहस्र सेना रखना भी व्यर्थ था; क्योंकि तब काबुल की ओर से कोई भी जहाँदार सेनानायक उठकर इस सिक्ख-सेना को नष्ट कर सकता था। फिर इस सेना के भरण-पोषण का सारा व्यय पंजाब को वहन करना पड़ता।

इसलिए ख़ालसा-राज्य को केवल अटक नदी तक सीमित रखना असंभव था। राज्य की रक्षा के लिए यह आवश्यक था कि सिंधु के पार पहुँचकर उन घाटियों पर अधिकार कर लिया जाय, जिनके रास्ते से सीमान्त की जातियाँ पंजाब में आती हैं। पश्चिम से होनेवाले किसी भी आक्रमण को मैदान में लड़कर रोकना कठिन है। इसे रोकने के लिए आवश्यक है कि दरी के मुँह पर ही शत्रु को रोक दिया जाय। ये सीमान्त के आक्रमणकारी लोग दरियों के मुँह से बाहर निकल-कर जब मैदान में आ जाते थे तो इनके साथ पंजाब-सरकार के शत्रु भी मिल जाते थे। तब इनको मार भगाना बड़ा कठिन हो जाता था। पानीपत की लड़ाई में ऐसा ही हुआ था। इसके विपरीत सुलेमान पर्वत की इन बारह घाटियों के नाके बन्द करना अपेक्षाकृत बहुत सरल था। थोड़ी-सी सेना भी इन दरियों की रक्षा कर सकती थी।

इसके अतिरिक्त पेशावर प्रभृति सीमा-प्रदेश पर अधिकार कर लेने से सेना के भरण-पोषण के लिए राजस्व भी पर्याप्त मिल सकता था। इससे स्पष्ट है कि सीमांत-प्रदेश को ख़ालसा-राज्य में सम्मिलित कर लेना, राजनीति की दृष्टि से, बहुत लाभदायक था। इससे जहाँ ख़ालसा का गौरव और कोष बढ़ता था, वहाँ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पंजाब में भी शान्ति रह सकती थी। इसलिए महाराजा रणजीतसिंह की अनुमति से सरदार हरिसिंह ने सीमांत-प्रदेश को ख़ालसा-राज्य में मिला लेने का निश्चय किया।

हज़ारा-प्रान्त की गवर्नरी

काश्मीर से वापस आ जाने पर सरदार हरिसिंह को हज़ारे का गवर्नर बनाया गया। उन्होंने वहाँ हरिपुर नाम का एक सुन्दर नगर बसाया और विद्रोहियों को दबाकर सारे प्रदेश में सुख-शान्ति स्थापित की। एक दिन उन्हें महाराजा रणजीतसिंह का आदेश आया कि डेराग़ाज़ीख़ाँ और डेराइस्माइलख़ाँ की ओर तुरन्त जाकर राजस्व प्राप्त किया जाय। सरदार हरिसिंह ने अपने पुत्र गुरुदत्तसिंह को क़िलेदार और हर्षसिंह को उसका सहायक बनाकर दुर्ग उनके सिपुर्द कर दिया और आप सेना लेकर राजकर प्राप्त करने के लिए चल दिये। उनके जाते ही मुहम्मदख़ाँ-नामक पठान ने विद्रोह कर दिया। उसके साथ और बहुत से ग़ाज़ी भी आ मिले। उन्होंने दुर्ग को घेर लिया।

हर्षसिंह को भाँग पीने की टेव थी। वह बूटी पीकर मस्त पड़ा रहता था। परन्तु इस समय उसने अपनी वीरता से शत्रु को दुर्ग के निकट तक न आने दिया। सरदार हरिसिंह के चले जाने से इर्द-गिर्द का सारा पठानी प्रदेश बिगड़ बैठा। इधर-उधर जहाँ-जहाँ हिन्दू बसते थे, अफ़ग़ान उनको लूटने लगे। वे उनके बाल-बच्चे पकड़कर ले गये। उनमें से वृद्धा स्त्रियों और नन्ही बालिकाओं को तो उन्होंने रुपया लेकर छोड़ दिया; परन्तु जवान स्त्रियों को नहीं छोड़ा। यह घटना विशेष रूप से शनकियारी-नामक नगर में हुई। ख़ालसा के कई छोटे-छोटे क़िले छिन गये।

यह समाचार सुनते ही सरदार हरिसिंह द्रुतगति से हज़ारा आ पहुँचे। उन्होंने हरसासिंह अकाली और बुधसिंह संधाँवालिया को तोपें और सेना देकर शत्रु-दल का दलन करने के लिए भेजा। वे दोनों बिजली की भाँति शत्रु पर टूट पड़े। कई सहस्र मारे गये और कई सहस्र भागकर एक मसजिद में जा छिपे। सिक्खों ने मसजिद में आग लगा दी और उन्हें बीच में ही भून डाला। जो बचकर भागने लगे, वे तलवार से काट डाले गये।

इसका एक बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ा। ग़ाज़ी लोग समझते थे कि जहाद करते हुए मरने से हमें बहिश्त अर्थात् स्वर्ग मिलेगा और दोज़ख़ अर्थात् नरक की आग में नहीं जलना पड़ा। परन्तु जब उन्होंने देखा कि हमें तो यहीं जलना पड़ता है, और इस प्रकार दफ़नाये जाने के बजाय जलाये जाने से हमें बहिश्त नसीब नहीं होगा तो उनका जोश ठंडा पड़ गया और वे भविष्य में विद्रोह करने से बंद हो गये।

यहाँ सरदार हरिसिंह को बताया गया कि पठानों ने जो हिन्दू स्त्रियाँ पकड़ ली थीं वे अभी तक जीवित हैं। उनके नेत्र क्रोध से लाल हो गये। वे उनको छुड़ाने का उपाय सोचने लगे। उन्हें साथ ही यह भी पता लगा कि पखली था अँगरोर के अड़ोस-पड़ोस में बहुत-से पठान इकट्ठे हो रहे हैं। तब उन्होंने चुपचाप ही सवेरे जाकर अँगरोर को घेर लिया। छोटा-सा संग्राम हुआ। पठान सामने ठहर न सके। सरदार साहब ने उनकी एक सहस्र स्त्रियाँ और बच्चे पकड़ लिये। फिर शनकियारी में आकर घोषणा की कि यदि तुम एक हिन्दू स्त्री को छोड़ोगे तो हम उसके बदले में दो पठानियाँ छोड़ेंगे। तब पठानों ने सभी हिन्दू स्त्रियाँ छोड़ दीं। सरदार हरिसिंह ने प्रत्येक को उसके घर पहुँचा दिया।

एक हिन्दू स्त्री का छुटकारा

एक दिन सरदार हरिसिंह नगर से दूर जंगल में डेरा डाले पड़े थे। साँझ का समय था। हरि-कीर्तन हो रहा था। इतने में एक हिन्दू ने रोते हुए आकर फ़रयाद की—

महाराज, मेरा दादा इस प्रदेश का एक प्रतिष्ठित सेठ था। यहाँ से १५ कोस के अन्तर पर एक गाँव में मेरा विवाह हुआ था। मेरी ससुरालवाले अच्छे सम्भ्रान्त हैं। मेरी स्त्री बहुत सुन्दरी थी। बड़ी धूम-धाम से मेरा विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ। कल हम डोला लिये ख़ुशी-ख़ुशी घर लौट रहे थे कि मिचनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के ख़ान को किसी ने समाचार दिया कि एक हिन्दू एक सुन्दर स्त्री और बहुत-सा रुपया-पैसा लिये जा रहा है। उसने उसी समय एक सवार दौड़ा दिया। सवार ने हमें आकर घेर लिया और धमकाया कि इस नव-वधू को, जिसे तुम लिये जा रहे हो, मिचनी के ख़ान के महलों में दाख़िल करो; क्योंकि यह सुन्दरी उस पाँच सहस्र सेना के स्वामी की बेगम बनने के योग्य है। भला तुम कंगालों के यहाँ इसकी क्या क़दर होगी। वहाँ तो यह सदा के लिए स्वर्ग भोगेगी। इसलिए तुमको भी कोई इनकार नहीं होना चाहिए, वरन् तुम भी इस्लाम में आकर सुख से दिन बिताओ और पठानों के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार करो।

उसकी बातें सुनकर मेरा दादा काँपने लगा और भूमि पर गिर पड़ा। उस सवार ने डोले में हाथ डालकर नई दुलहिन को बाहर खींच लिया और अपने आगे घोड़े पर बैठाकर दौड़ा ले गया। हम भी बुड्ढे को साथ लेकर रोते-धोते ख़ान साहब के पास पहुँचे और हाथ बाँधकर उससे विनती की कि ख़ाँ साहब, आप मालिक हैं, हमारी स्त्री हमें दे दीजिए।

स्त्री का रूप देखकर ख़ान तो पागल हो रहा था। वह हमें घुड़कने लगा और बोला—मूर्खो, मैं इस देश का स्वामी हूँ। क्या हुआ जो भेड़ों के गल्ले में से एक भेड़ मैंने ले ली। इससे कोई घाटा तो नहीं हो जायगा। मैं इसे मारने नहीं जा रहा हूँ। मैं तो इसे अपनी प्यारी बेगम बनाऊँगा। इसमें तुम्हारी भी प्रतिष्ठा है।

इस पर मेरे दादा ने हाथ जोड़कर नबी पाक की दुहाई दी और कहा कि यदि हमसे कोई अपराध बन पड़ा हो, तो हमें क्षमा कर दीजिए। हमें हमारी बहू दे दीजिए। यदि आपको कुछ पैसे की आवश्यकता हो तो भी इसके बराबर धन तोलकर हम देने को तैयार हैं। प्रजा की पुत्रियाँ आपकी पुत्रियाँ हैं। उन पर इस प्रकार बलात्कार करना अच्छा नहीं।

मेरे दादा की यह बात सुन ख़ान ने समझा कि ये बड़े धनी हैं। उसने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी कि इनको लूट लो और बंदी कर लो। तत्काल हमें लूट लिया गया। मेरे दादा ने अपनी छड़ी में कुछ स्वर्ण-मुद्राएँ बंदकर रक्खी थीं। उन्होंने उसमें से कुछ निकालकर पहरेदार को घूस दी। घूस लेकर उसने हमें छोड़ दिया। बाक़ी सब तो घर चले गये, परन्तु मैं आपकी सेवा में फ़रयाद करने आया हूँ।

अब जिस पहरेदार ने घूस ली थी, वह भेस बदलकर उस हिन्दू के साथ-साथ ही सरदार हरिसिंह के दरबार में आया था। सरदारजी उसे भाँप गये थे। उन्होंने नीतिवश उस हिन्दू को डाँटना आरम्भ किया कि बस-बस, इस प्रकार बक-बक मत करो। मैं तुम्हारे जैसे नगण्य मनुष्य के लिए उस पाँच हज़ारी के साथ क्या लड़ाई करूँ? जाओ, जिधर से आये हो, उधर ही चले जाओ। हाँ, तुम भूखे जान पड़ते हो। जाओ भोजनालय में जाकर भोजन कर लो।

इस बात का परिणाम यह हुआ कि उस भेस बदले हुए पठान ने सारी बात जाकर मिचनी के ख़ान से कह दी कि आपसे तो सरदार हरिसिंह-जैसे वीर भी डरते हैं। धन्य आपका प्रताप है! यह सुन ख़ान निश्चिन्त हो गया और लगा रंगरेलियाँ करने। परन्तु वास्तव में इस दुःख-भरी पुकार को सुनकर हरिसिंह के तन-मन में आग लग गई थी। वह चाहते थे कि किसी प्रकार शीघ्र से शीघ्र जाकर ख़ान की गर्दन तोड़ दें और उस दीन की स्त्री दिलाकर उसके संतप्त हृदय को शीतल करें।

जब सेना रात्रि का भोजन कर चुकी तो सरदार हरिसिंह ने सरदार महासिंह को आदेश किया कि समूची सेना अभी तैयार हो जाय और सबेरे वापस आकर यहीं भोजन करे। सारांश यह कि रातोंरात जाकर मिचनी के गिर्द घेरा डाल दिया गया। अभी कोई एक पहर रात शेष थी। इस समय यद्यपि हरिसिंह नलवा के साथ एक सौ से अधिक सवार न थे, तो भी उस जैसे ख़ान के लिए उतने ही बहुत थे। वे चाहते तो सोते हुए पठानों को ही जला डालते। परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। उन्होंने ख़ान के पास आदमी भेजकर कहा कि इस दीन व्यक्ति की स्त्री दे दीजिए; क्योंकि आप शासक हैं और यह आपकी प्रजा है। इस पर दया करना आपका कर्तव्य है।

जब ख़ान को पता लगा कि स्वयं सरदार हरिसिंह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुख पर चढ़ आया है, तो उसके होश उड़ गये, कँप-कँपी लग गई। परन्तु पठानपन की हेकड़ी ने स्मरण कराया कि ली हुई स्त्री काफ़िरों को वापस देना बहुत बुरी बात है। इसलिए पाँच सौ सवार लेकर वह दुर्ग से बाहर निकल आया। लड़ाई का बिगुल बज गया। घोर संग्राम होने लगा। दोनों ओर से बढ़-बढ़कर हाथ मारे जाने लगे। दो घंटे तक ख़ूब गुत्थमगुत्था युद्ध हुआ। अन्त को ख़ालसा की कृपाण ने पठानों के उत्साह-भंग कर दिये। वे पीठ दिखाकर भागने लगे। तब ख़ान फिर गरजकर स्वयं मैदान में आ डटा और ललकारकर नलवे सरदार से बोला—दो सहायक अपने और बुला लो, क्योंकि हमारी शरअ—धर्म-नीति—हमें यह कहती है कि एक मोमिन तीन काफ़िरों से लड़े। इसलिए अकेले से लड़ते हमें लज्जा होती है।

उत्तर में सरदार हरिसिंह ने कहा—तगड़े हो जाओ, तुम्हारी शरअ तो तीन के साथ एक मोमिन को लड़ने को कहती है, परन्तु हमारी शरअ कहती है कि एक सिंह (सिक्ख) सवा लाख के साथ लड़कर विजय प्राप्त करेगा। इसलिए सामने आओ, गीदी मत बनो।

इस वीरतापूर्ण ललकार को सुन ख़ान तलवार निकालकर सामने आ गया। तब नलवे ने कहा—सावधान हो जाओ, पहला वार करो, ताकि तुम्हारे मन में कोई साध न रह जाय। तब ख़ान ने एड़ियों के बल ऊँचा होकर प्रहार किया। सरदार ने उसे अपनी ढाल पर रोक लिया। नलवे सरदार ने फिर कहा—दूसरा वार भी तुम्हारा है। इस पर उसने दूसरा प्रहार किया। सरदार ने उसे भी उसी प्रकार रोक लिया। अब सरदार की बारी आई। उसने पहले ही प्रहार से ख़ान को काटकर दो टुकड़े कर डाला। ख़ान को मरा देख उसके साथियों में भगदड़ मच गई। वह स्त्री उसके पति के सिपुर्द कर दी गई। ख़ान का क़िला गिरा दिया गया। उस स्त्री और पुरुष, दोनों ने ख़ालसा की सेवा के लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया। पुरुष का नाम बदलकर दुष्टदमनसिंह कर दिया गया; क्योंकि नामकरण के समय जब "ग्रन्थ साहब" खोला गया तो उसका पहला शब्द निकला—

दुःख विनशे संशय गया शरण गही हरिराय।
मन चिन्हे फल पाइया नानक हरि-गुण गाय॥

जमरोद की लड़ाई

काबुली अफ़ग़ानों के आक्रमणों को रोकने के लिए सरदार हरिसिंह नलवा ने ख़ैबर की दरी के निकट जमरोद-नामक स्थान पर २७ अक्तूबर, सन् १८३६ को एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाना आरम्भ किया। यह एक मास और २५ दिन में बनकर तैयार हो गया। इसमें ८०० पदचर, २०० घुड़सवार, ८० तोपें और बहुत-सी युद्ध-सामग्री रक्खी गई। इस दुर्ग में पानी ख़ैबर की ओर से आनेवाली एक नहर से लिया जाता था। ख़ैबर के अफ़रीदियों को १२०० रुपया वार्षिक की जागीर दी गई थी, ताकि वे इस नहर को बंद न होने दें। तो भी दुर्ग में एक बड़ा कुआँ खुदवा लिया गया। जमरोद और पेशावर के मध्य मार्ग पर बुर्ज हरिसिंह नाम का एक छोटा-सा दुर्ग भी बनवा लिया गया। इसी प्रकार और भी कई छोटे-छोटे दुर्ग पठानों को क़ाबू में रखने के लिए पहाड़ी मार्गों पर बनवाये गये।

इन क़िलों और नाकाबन्दियों को देखकर काबुल का शासक बहुत घबराहट में पड़ गया। वह समझा, ये सब तैयारियाँ जलालाबाद और कंधार पर चढ़ाई करने के लिए ही हैं। इसलिए उसने एक बड़ा दरबार करके, इस्लाम के नाम पर काफ़िरों से युद्ध करने के लिए पठानों को भड़काया और सबसे पहले अपने पाँच पुत्र जहाद—धर्म-युद्ध—के लिए राष्ट्र को अर्पण किये। अमीर के उदाहरण से समूचे अफ़ग़ानिस्तान में बड़ा जोश फैल गया। वहाँ एक भी घर ऐसा न रहा, जिसने इस धर्म-युद्ध के लिए सिपाही न दिये हों। इस प्रकार इस्लाम के रक्षार्थ, सिक्खों से युद्ध करने के लिए, ग़ाज़ियों का एक बड़ा टिड्डी-दल इकट्ठा हो गया।

इस बहुसंख्यक सेना का प्रबंध अमीर दोस्त

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुहम्मदख़ाँ ने अपने विश्वास्य नायब, मिर्ज़ा समीख़ाँ, के सिपुर्द किया। यह सेना १५ एप्रिल, सन् १८३७ को चलकर २४ एप्रिल को लंडीखाने पहुँच गई। यहाँ समीख़ाँ ने अफ़रीदियों के सभी वंशों को बुलाया और उनको बहुत-सा रुपया पारितोषिक के रूप में बाँटा। इससे वे सब उसके साथ हो गये। अब जमरोद पर आक्रमण की तैयारी होने लगी।

इधर सरदार हरिसिंह कार्याधिक्य के कारण बहुत अधिक थक गये थे। उन्हें कुछ दिन से ज्वर भी आ रहा था। चिकित्सक उन्हें लंबा विश्राम करने को कह रहे थे। पेशावर की सिक्ख-सेना भी लाहौर गई थी, क्योंकि वहाँ कुँअर नौनिहालसिंह का विवाह था। उसमें कई राजों और नवाबों के अतिरिक्त अँगरेज़ों का प्रधान सेनापति भी आया था। महाराजा रणजीतसिंह उनको अपना वैभव दिखलाना चाहते थे। इसलिए चारों ओर से सेना इकट्ठी कर ली गई थी। परन्तु सरदार हरिसिंह ने जब सुना कि अमीर दोस्त मुहम्मद सिक्खों पर चढ़ाई की तैयारी कर रहा है तो उन्होंने एक द्रुतगामी साँडनी सवार के हाथ महाराज के पास पत्र भेजकर पेशावर की सेना को तुरन्त लौटा देने की प्रार्थना की। परन्तु ३० एप्रिल तक उनको कोई उत्तर नहीं मिला।

इधर अफ़ग़ानी लश्कर लंडीखाने से कूच करके जमरोद पहुँच गया। २८ एप्रिल को उन्होंने तोपों के साथ दुर्ग पर गोला-वृष्टि आरम्भ कर दी। क़िलेदार महासिंह भी तोपों का उत्तर तोपों से देने लगा। दोनों ओर से ख़ूब आग बरसाई गई। हताहत सैनिकों से रणभूमि पट गई। दिन भर के घोर संग्राम के उपरान्त अफ़ग़ान वहीं के वहीं थे, जहाँ वे सवेरे थे। वे एक इंच भी आगे न बढ़ सके। रात्रि के अंधकार में दोनों दल विश्राम करने लगे।

दूसरे दिन अभी भगवान् भास्कर उदय भी नहीं हुए थे कि युद्ध-क्षेत्र गरम हो गया। अफ़ग़ान बार-बार दुर्ग पर हल्ला करने लगे। सिक्खों की तोपें उन्हें हर बार मारकर पीछे हटा देती थीं। परन्तु मुक़ाबला देर तक न हो सकता था। सिक्ख-सेना केवल एक सहस्र थी और अफ़ग़ान तीस सहस्र से भी अधिक। अन्त को अफ़ग़ानों ने दुर्ग के गिर्द घेरा डाल लिया। अब बाहर के संसार से दुर्ग का संबंध टूट गया। क़िले में आनेवाली पानी की नहर को भी अफ़ग़ानों ने अपने क़ाबू में कर लिया। दुर्ग की एक भुजा तोपों की मार से धराशायी हो गई। परंतु अफ़ग़ानों को दुर्ग में घुसने का साहस नहीं हुआ। कारण यह कि वे सिक्खों के साथ हाथोंहाथ लड़ने से डरते थे। कहते हैं, एक बार मुहम्मद अफ़ज़लख़ाँ क़िले में घुसने की चेष्टा करने भी लगा था। परन्तु मिर्ज़ा समीख़ाँ ने उसे यह कहकर रोक दिया कि क़िले में जाकर क्यों अपनी मौत मोल लेते हो; सिक्खों को घेरे में बंद रखकर भूखों मारना ही बुद्धिमत्ता है। अस्तु, लड़ाई का दूसरा दिन भी बीत गया।

रात को क़िलेदार महासिंह ने अपने सारे सरदारों की सभा बुलाई और कहा कि आप जानते हैं, हम लोग बहुत बुरी तरह से घिर गये हैं। बाहर के संसार से हमारा संबंध टूट चुका है। अब सद्गुरु की यही इच्छा जान पड़ती है कि हम सब प्यारे पंथ और देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देकर अपने नाम को अमर कर जायँ। प्रभु ने हमें बलिदान का अपूर्व अवसर प्रदान किया है। अपने पूर्वजों के शौर्य का स्मरण करके अब अफ़ग़ानों को वह हाथ दिखाओ कि वे कभी न भूलें। इस समय दो काम बड़े आवश्यक हैं। एक तो दुर्ग की दीवार में जहाँ छेद हो गया है, वहाँ रेत की बोरियाँ भरकर उसे रातोरात बंद कर दिया जाय। दूसरे कोई ऐसा वीर युवक चाहिए, जो क़िले से निकलकर यहाँ का सारा वृत्तान्त पेशावर में सरदार हरिसिंह के पास पहुँचा दे।

क़िलेदार के ये शब्द सुनकर सेना में एक बिजली-सा दौड़ गई। बहुत-से जवान क़िले की मरम्मत में लग गये और पहर-डेढ़ पहर में ही उसे पूर्ववत् ठीक कर दिया। तब सरदार महासिंह ने इस प्रकार एक पत्र सरदार हरिसिंह के नाम लिखा—

श्रीमान् परम कृपालुजी,

सविनय फ़तह स्वीकार कीजिए। असंख्य तुर्क-दल दुर्ग पर घेरा डाले पड़ा है। आज सारा दिन उनकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ओर से क़िला लेने के लिए वीरतापूर्वक हल्ले होते रहे। और भयानक युद्ध हुआ। परन्तु वे क़िला न ले सके। यह सब आपका प्रताप है। अब सवेरे यदि सिक्ख-सेना को कुमक न पहुँची और पानी का कोई प्रबंध न हुआ तो क़िले की एवं क़िलेवालों की कोई आशा न रखना। बस।

२२ वैशाख
सं० १८६४

आपका सेवक
महासिंह

अब यह चिट्ठी लिखी तो गई, पर इसे पेशावर कौन ले जाय। क़िले के गिर्द तो चन्द्रमा के गिर्द हाले की भाँति ग़ाज़ी लोग घेरा डाले पड़े हैं। कहीं तिल धरने को जगह नहीं। किसका साहस है कि दुर्ग के बाहर पाँव रक्खे। बहुतेरा पूछा और दिलेरी दी गई, परन्तु किसी को साहस न हुआ। जब घोर निराशा हो गई तो रसोई-घर में सेवा करनेवाली एक स्त्री हाथ जोड़कर बोली—

हरिशरण कौर—प्यारे भाइयो, आपके प्रयत्नों को देखकर कौन ऐसा गुरु का सिक्ख या सिक्खनी है जो आपके साथ होकर हाथ न बटाये। मेरे दुर्भाग्य से मुझे स्त्री-जन्म मिला है। मैं कुछ कर नहीं सकती। आपकी दशा देखकर मेरा कलेजा मुँह को आ रहा है। इसलिए यदि मेरी विनती स्वीकार हो, तो मैं भी कुछ सेवा करके अपना जन्म सफल कर लूँ। इस समय केवल भाइयों की अनुमति चाहिए।

सरदारगण—बहन, कहो क्या कहना चाहती हो और कौन सेवा करने के लिए अनुमति चाहती हो?

हरिशरण कौर—यदि यह चिट्ठी पहुँचाने का काम मुझे सौंपा जाय, तो मैं करने को तैयार हूँ। इतनी भीड़ को चीरकर ठिकाने पर पहुँचना तो भगवान् के हाथ है, पर इस सेवा के लिए मेरा शरीर उपस्थित है।

सिक्ख-सरदार पहले भी इस बहन के कई काम देख चुके थे। इसलिए किसी को भी किसी प्रकार का संदेह नहीं हुआ। सभी बोल उठे—बहन, तू धन्य है! भगवान् तेरी सेवा स्वीकार करें! परन्तु तुम्हारे पेशावर पहुँच जाने का निश्चय हमें कैसे होगा?

हरिशरण कौर—जब मैं यहाँ से पत्र लेकर चलूँ तो आप ध्यान रखना कि यदि चार बजे तड़के पेशावर से तोप की आवाज़ आ जाय, तो समझ लेना कि मैं पहुँच गई हूँ और थोड़ी देर में सहायता भी पहुँच जायगी। और यदि तोप का शब्द न सुनाई दे, तो समझ लेना मैं मर गई हूँ।

इस प्रकार का पक्का निश्चय करके चिट्ठी उस देवी को दे दी गई। उसने वह कमर से बाँध ली। परमात्मा की आराधना करके उसने एक पोस्तीन उलटाकर पहन ली, जिससे बाल ऊपर की ओर रहें। फिर हाथों और पैरों के बल, कुत्ते की भाँति, चल पड़ी। धीरे से द्वार खोलकर बाहर निकली। यद्यपि द्वार बहुत धीरे से खोला गया था, फिर भी उसकी आहट से पाँच-सात पठान दौड़कर उधर आ गये। इधर भी हरिशरण कौर थी! वह कुत्ते की भाँति झाड़ियों को सूँघती और दौड़ती-भागती निकल गई। इसलिए किसी को सन्देह तक न हुआ। वे सचमुच कुत्ता समझकर बैठ गये। इस समय केवल पहर भर रात गई थी।

जब सवेरे कोई तीन बजे का समय हुआ, पेशावर की ओर से तोप के चलने का शब्द सुनाई दिया। इसने क़िले के सिपाहियों का उत्साह दुगना कर दिया। वे लगे मुँह उठा-उठाकर सहायता के लिए पेशावर की ओर देखने।

यह वीर रमणी, एक प्रकार से आग का समुद्र चीरकर, पेशावर जा पहुँची। उस समय कोई ढाई बजे थे। सरदार हरिसिंह ज्वर से पीड़ित होकर लेट रहे थे, तो भी पत्र पढ़ते ही उन्होंने पेशावर की दस सहस्र सेना को जमरोद के लिए कूच की आज्ञा दे दी। महासिंह का पत्र उन्होंने अपनी टिप्पणी सहित लाहौर महाराजा के पास भेज दिया और शीघ्र ही कुमक भेजने को लिखा।

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था कि सरदार हरिसिंह नलवा जमरोद जा पहुँचे। अफ़ग़ान-सेना अभी लड़ाई की तैयारी ही कर रही थी कि ख़ालसा के तोपख़ाने ने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उन पर गोला-वृष्टि आरम्भ कर दी। जैसे गरुड़ गौरैया पर झपटता है, वैसे ही नलवा सरदार पठानों पर टूट पड़ा।

नलवा की सेना के सामने अख़ूनज़ादा मुहम्मदख़ाँ और नायब सलतनत की सेना आ पड़ी। बड़ा घोर संग्राम हुआ। पठान सरदार हरिसिंह के हल्ले की ताव न ला सके। उनके पाँव उखड़ गये। जिसका जिधर मुँह था वह उधर ही भाग गया। नायब सलतनत और अख़ूनज़ादा मुहम्मदख़ाँ बुरी तरह से घायल हो गये। सरदार हरिसिंह के दूसरे साथियों ने भी बड़ी वीरता दिखाई। उन्होंने पठानों की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। सरदार हरिसिंह का नाम पठानों के लिए एक हौआ था। पठानों में जब यह बात प्रसिद्ध हो गई कि इस संग्राम में सरदार हरिसिंह स्वयं लड़ रहा है, तो वे रणभूमि से इस प्रकार लोप हो गये, जैसे सूर्य के ताप से ओस-बिन्दु अन्तर्धान हो जाते हैं। इस लड़ाई में पठानों की १४ तोपें सिक्खों के हाथ आईं।

परलोक-यात्रा

सरदार हरिसिंह नहीं चाहते थे कि भागते हुए पठानों का दूर तक पीछा किया जाय, क्योंकि सिक्ख-सेना रात भर चलने और सारा दिन लड़ते रहने से थक गई थी। परन्तु उनका साथी सरदार निधानसिंह मारता-काटता भगोड़ों के पीछे ख़ैबर की दरी में दूर तक चला गया। यह देख उसकी सहायता के लिए सरदार हरिसिंह को भी जाना पड़ा। अफ़ग़ान ख़ैबर दरी में से भागे जा रहे थे कि शमसदीनख़ाँ-नामक पठान २००० ताज़ी फ़ौज लेकर दरी में आ पहुँचा। आते ही उसने निधान-सिंह के साथ नये सिरे से लड़ना आरम्भ कर दिया। इस समय सरदार हरिसिंह एक गुफा के निकट खड़े लड़ाई का रंग देख रहे थे। इतने में गुफा में छिपे हुए पठानों में से एक ने इन पर गोली चला दी। वह इनकी अंगरक्षक सेना के कुमेदान सरदार अजायबसिंह के लगी और वह वहीं ठंडा हो गया। यह देख सरदार हरिसिंह उस गुफा की ओर बढ़े। इतने में उन छिपे हुए पठानों ने उन पर भी गोलियों की बौछार की। एक गोली उनके पेट में और दूसरी उनके पार्श्व में लगी। इस पर उनके सैनिकों ने उस गुफा को घेरकर उन छिपे हुए पठानों को टुकड़े-टुकड़े कर डाला।

गोलियों के लगने से सरदार हरिसिंह प्राणघातक रूप से घायल हुआ था। परन्तु वह धैर्य का धनी तुरन्त घोड़े को दौड़ाकर जमरोद के क़िले में पहुँच गया। जब दो मनुष्यों ने उसे पकड़कर घोड़े पर से उतारा तो उसके घावों में से रक्त के फ़व्वारे छूट रहे थे। यह देख सभी के हृदय काँप गये। परन्तु बाहर किसी को भी उनके इस प्रकार घायल होने का पता नहीं लगा। यह समाचार सब प्रकार से गुप्त रक्खा गया।

उधर सरदार निधानसिंह की सहायता के लिए सरदार अमरसिंह जा पहुँचा। इसलिए दिन भर ख़ूब घमासान युद्ध हुआ। रात होते ही पठान अपनी लोथें और युद्धोपकरण छोड़कर भाग गये। तब सिक्ख-सेना जमरोद के दुर्ग में लौट आई। पठानों की सब आशाओं पर पानी फिर गया। वे इतने भयभीत हुए कि उन्होंने फिर जमरोद या पेशावर की ओर मुँह नहीं किया।

इधर दुर्ग में पहुँचने के बाद सरदार हरिसिंह की दशा क्षण-क्षण में अधिक बिगड़ने लगी। अत्यधिक रक्त बह जाने से दुर्बलता इतनी बढ़ गई कि वे आप करवट भी न बदल सकते थे। साथ-साथ घावों में असह्य पीड़ा भी होने लगी। उनकी यह दशा देख सभी सरदार उनके पलँग के निकट एकत्र हो गये। इस समय सरदार हरिसिंह ने सबको संबोधन करके कहा—प्रिय बंधुओ, ऐसा जान पड़ता है, आज इस नश्वर देह का आत्मा से वियोग हो जायगा। आपने जिस वीरता और साहस के साथ युद्ध करके इस दुर्ग की और साथ ही ख़ालसा-राज्य की प्रतिष्ठा की रक्षा की है, उसके लिए मैं आप सबको बधाई देता हूँ। मेरी आपसे एक विनती है। जब तक पंजाब-केसरी की सेना इस दुर्ग की रक्षा के लिए यहाँ न पहुँच जाय, आप ख़ालसा की विजय-पताका इस दुर्ग पर फहराती रक्खें। आठ सौ वर्ष के उपरान्त आज आपने उस भूमिखंड को पठानों से पुनः छीन लिया है, जो महाराजा जयपाल के समय में भारत से छिन गया था।

सरदार साहब कुछ और भी कहना चाहते थे कि असह्य वेदना के कारण वे अचेत हो गये। दुर्ग में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहुँचने के आध ही घंटा उपरान्त उनकी आत्मा पंच-भौतिक देह को छोड़कर अमरपुर सिधार गई। जिस नर-केसरी की दहाड़ से सारा अफ़ग़ानिस्तान काँपता था, जिसका नाम लेकर पठान-माताएँ अपने बच्चों को डराया करती थीं, जिसने ख़ालसा की शक्ति और वैभव में चार चाँद लगा दिये थे, वह आज सदा के लिए महानिद्रा में सो गया।

सरदार महासिंह ने दूसरे सेनानायकों की सम्मति से सरदार हरिसिंह का अन्त्येष्टि-संस्कार उसी दिन—३० एप्रिल, सन् १८३७ को—रात के समय चुपचाप दुर्ग के भीतर ही कर दिया। परन्तु जब तक लाहौर से कुमक नहीं आई, उनकी मृत्यु का समाचार बाहर प्रकट नहीं होने दिया। इसके बाद उनके कुछ 'फूल' तो उनके संबंधियों को दे दिये और कुछ अस्थियाँ और भस्म भूमि में गाड़कर उस पर एक समाधि-मन्दिर बनवा दिया। यह समाधि-मन्दिर अब तक जमरोद के दुर्ग में विद्यमान है। सरदार हरिसिंह की स्त्री, श्रीमती देसाँ ने जमरोद से लाये हुए 'फूलों' पर उनका एक दूसरा समाधि-मन्दिर गुजराँवाला में भी बनवा दिया।

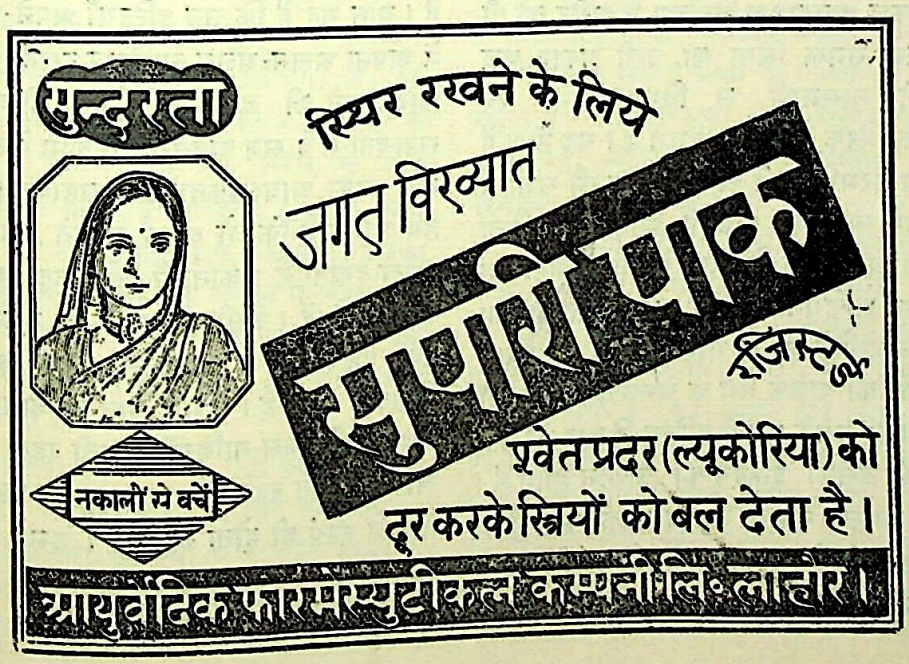

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

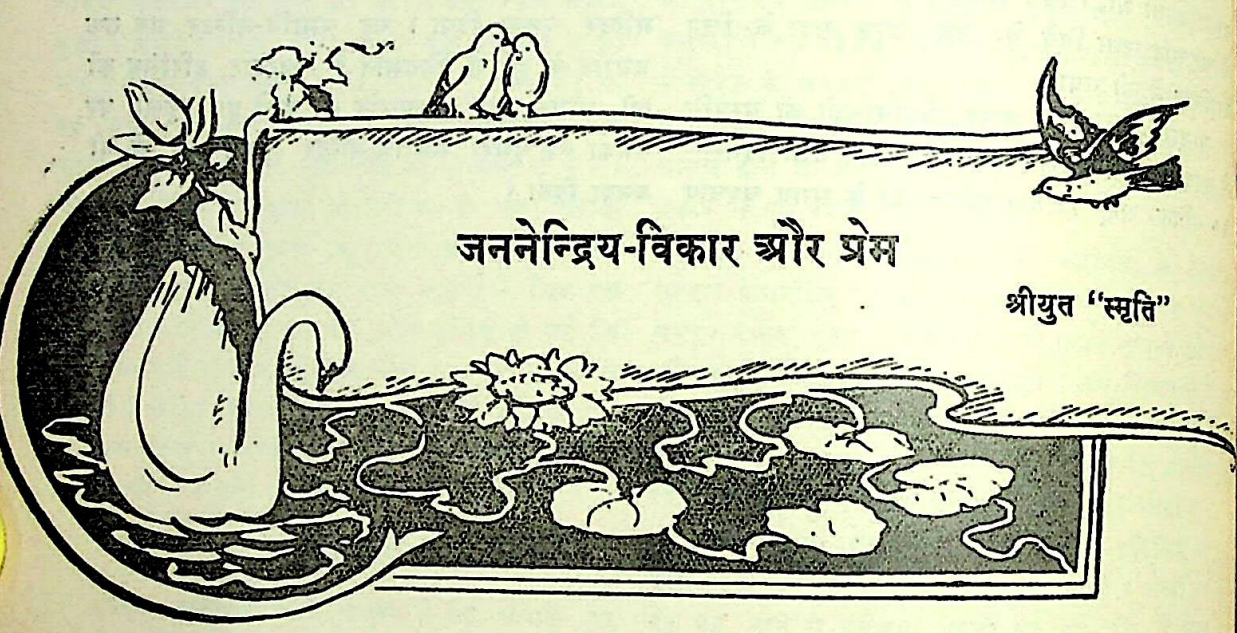

जननेन्द्रिय-विकार और प्रेम

श्रीयुत "स्मृति"

जिस प्रकार अज्ञानवश विरोचन ने शरीर को ही आत्मा समझ लिया था, उसी प्रकार कुछ लोग अपनी नासमझी से विषय-कामना एवं जननक्रिया का प्रेरक प्रेम को समझते हैं। यह ठीक है कि प्रेमस्वरूप परमात्मा की अनन्त शक्ति की सत्ता में समस्त क्रियाएँ संचालित होती हैं, और उसके बिना कोई वस्तु या ख़याल अपने वजूद में क़ायम नहीं रह सकता; परन्तु इन्द्रियगत विकार एवं उसकी वासना को प्रेम में आरोपित करना भारी भूल है। देखिए, चार-पाँच वर्ष का बालक प्रेम के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं जानता और उसके मन में इन्द्रिय-विकार भी नहीं होता, फिर भी उसकी इन्द्रिय का उत्थान होता है। अब बताइए कि उस समय उसका प्रेरक कौन हुआ करता है? यह भी देखा जाता है कि कभी-कभी मनुष्य की मूत्र-इन्द्रिय का उत्थान स्वयं हो जाता है। बात यह है कि सब इन्द्रियाँ अपने-अपने आधार में अपना अलग-अलग व्यक्तित्व रखती हैं और उनमें काम करने की जो शक्ति केन्द्रित की गई है, उसकी सहायता से वे सब अपने-अपने काम में लगी रहती हैं। मन उनका आवश्यकतानुसार सहायक हो जाता है। हम जानते हैं कि जो वस्तुएँ सामने आती हैं, उन्हें आँखें देखती हैं; कानों में जो शब्द पड़ते हैं, उन्हें कान सुनते हैं। जैसी भी सुगंध या दुर्गन्ध हो, नाक तक पहुँचती है। भूख-प्यास लगती और मल-मूत्र विसर्जन होता है। हमारे ज्ञान या अज्ञान में भोजन पचता और नस-नाड़ियाँ चलती रहती हैं और हम साँस भी लेते रहते हैं। यह सब तो प्रकृति की देख-रेख में स्वयं ही होता रहता है। इसमें प्रेम की क्या बात है?

ध्यान रहे, प्रत्येक इन्द्रिय के विषय अलग-अलग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं और अपने-अपने विषयों की ओर उनकी प्रवृत्ति स्वाभाविक है। इस प्रवृत्ति को प्रेम समझना भूल है।

कहना न होगा कि मनुष्य में गतियाँ दो प्रकार की होती हैं। एक तो इन्द्रिय-प्रेरित, दूसरी मन-प्रेरित। प्रकृति के कार्यों में इन्द्रियाँ मन की प्रेरक होती हैं, जैसे मल-मूत्र-त्याग की आवश्यकता और निद्रा आना तथा भूख लगना आदि। इन गतियों में मन द्वारा विरोध होने में भी इन्द्रियाँ ही मन पर हावी होती हैं। इनके अलावा जो अन्य गतियाँ शरीर में हुआ करती हैं, उनमें मन इन्द्रियों का प्रेरक हुआ करता है, जैसे पढ़ना-लिखना, कसरत करना, सिनेमा तथा थियेटर देखना आदि। इस प्रकार इन गतियों में इन्द्रिय और मन एक दूसरे के सहायक और प्रेरक होते रहते हैं, और मन की वृत्तियाँ मनुष्य के पिछले संस्कारों द्वारा प्रेरित हुआ करती हैं।

ध्यान रहे कि प्रकृति में गति होना उसका स्वाभाविक धर्म है और यही कारण उसके परिवर्तनशील होने का है। प्रत्येक स्थूल या सूक्ष्म वस्तु में जो शक्ति विद्यमान है, वही उसका देवता कहलाती है। ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय, प्राण और मन के अलग-अलग कार्य और उनकी अलग-अलग शक्तियाँ हैं, जो देवता-रूप होकर पिछले कर्मों का भोग देने के लिए शरीर में बसाये गये हैं। शरीर के भोग समाप्त हो जाने पर सब इन्द्रियाँ मन में और मन प्राणों में लय होकर मनुष्य के कर्मानुसार उसका सूक्ष्म शरीर अपने कर्मफलों के बन्धन में स्वयं आ जाता और नये शरीर से सम्बन्ध पाता है। यही प्रकृति का नियम है, जो कर्म-बन्धन या आवागमन का चक्र कहलाता है।

प्रकृति की क्रिया और उसकी गति को न जानकर अनेक लोग उसे चेतन-आत्मा की गति बतलाते हैं। इसी तरह से कुछ लोग इन्द्रियों और अन्तःकरण के धर्मों को जीवात्मा में आरोपित करते हैं। जैसे जल में पड़े हुए चन्द्रमा के प्रतिबिम्ब में जल के चलनादि धर्म कल्पित किये जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह कि गति होना प्रकृति की स्वाभाविक क्रिया है, जो उसमें बराबर होती रहती है और मनुष्य के कर्मों का भोग देने के लिए इन्द्रिय और मन में भी होती है। प्रेम का इससे कोई सम्बन्ध नहीं।

अब रही जनन-कार्य में प्रेम की प्रेरणा की बात, सो जनन में वीर्य मुख्य कारण होता है। मूत्र-इन्द्रिय तो उसे यथास्थान पहुँचा देने में केवल निमित्त कारण हो जाती है। कहना न होगा कि वीर्य रक्त से बनता है और रक्त अन्न से और अन्न पृथ्वी से उत्पन्न होता है। इसलिए यह कहना अनुचित न होगा कि मनुष्य का जीवन किसी समय में पृथ्वी के गर्भ में था। सृष्टिक्रम और उसके विकास का सिद्धान्त यह बतलाता है कि आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न है और ये पाँचों तत्त्व त्रिगुणात्मक माया से आविर्भूत हुए हैं। सत, रज और तम इन तीन गुणों के समूह को माया कहते हैं। सम्पूर्ण सृष्टि इन तीन गुणों से ही निर्मित हुई है। अतः ऐसी दशा में यह मानना होगा कि मनुष्य का व्यक्तित्व उसके पिछले कर्मों के रूप में किसी समय माया में गर्भित था और दैवी प्रकृति द्वारा रूप बदलता हुआ मनुष्य बन गया। ध्यान रहे, माया या प्रकृति छायारूप से सदैव परमात्मा के साथ रहती है।

जिस प्रकार बिन्दुओं से रेखा बनती है, उसी प्रकार निराकार से साकार जगत् उत्पन्न है। संसार का प्रादुर्भूत होना एकता में भिन्नता है और विलीन होना भिन्नता में एकता। संसार में जो कुछ भिन्नता दिखाई देती है, वह नाम, रूप और गुण में है, जिनके विकास और विलय में परमात्मा अपने स्वरूप में सर्वदा स्वतः स्थित रहता है और अपने अस्तित्व में कभी किसी दूसरे के अधीन नहीं होता। मतलब यह कि सबका आधार एवं आदि-कारण वही प्रेमस्वरूप परमात्मा है। प्रेम उसकी अनन्त-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

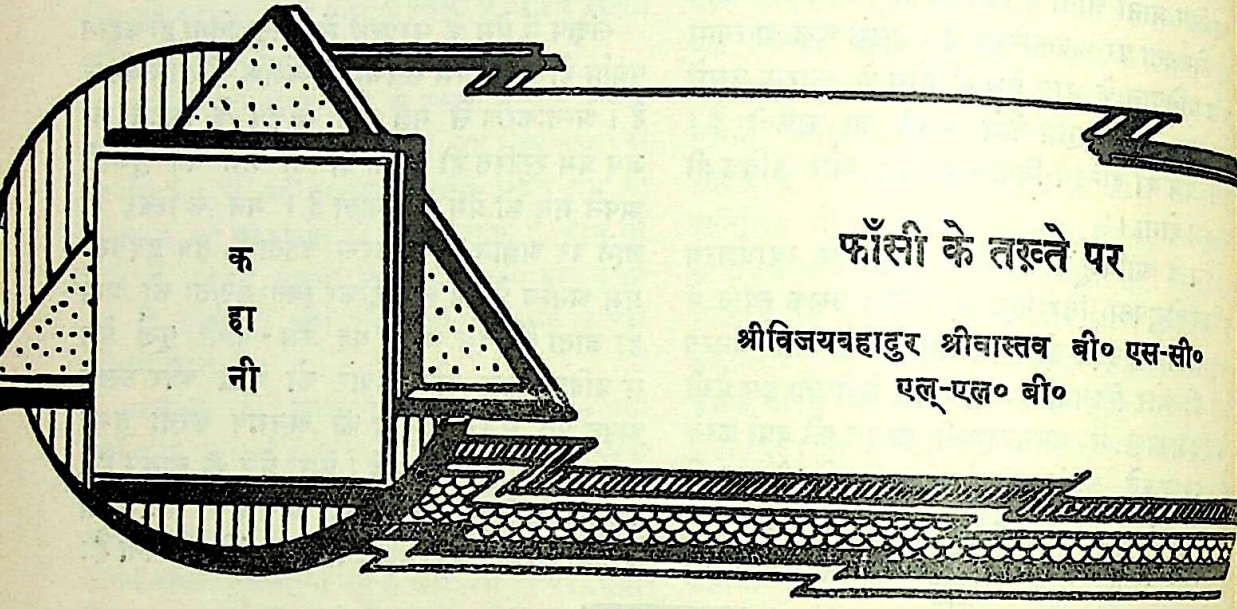

फाँसी के तख़्ते पर

श्रीविजयबहादुर श्रीवास्तव बी० एस-सी०
एल्-एल० बी०

(१)

सन् १८५७ के अन्त की बात है। हमारे ज़िले में गोंड़ों का क़त्लेआम जारी था। जो कोई भी व्यक्ति "चावल" को "चाँमर" और "घी" की "घीं" कहता पाया जाता था, निकटतम पेड़ से लटका दिया जाता था। बहुत-सी दूसरी जातियाँ इस प्रकार का उच्चारण करने के कारण अत्याचार की चक्की में पीस डाली जाती थीं। गाँव के गाँव उजाड़ हो गये थे। लोगों का बाहर निकलना, चलना-फिरना कठिन हो रहा था। बड़ी मुश्किल से चमगीदड़ों की तरह रात को निकल पाते थे। चारों ओर आतंक का साम्राज्य था।

इतना होने पर भी विद्रोह की आग बुझी नहीं थी। प्रतिदिन अँगरेज़ी पल्टन पर धावे होते थे। अँगरेज़ों के तरफ़दारों के गाँव जला दिये जाते थे। हज़ारों की तादाद में गोंड़ मारे जा चुके थे, तो भी उनका बल नहीं घटा था। इसका एकमात्र कारण था उनका मुखिया "देल्हनसा"। एक-एक करके उसके सारे साथी मारे जा चुके थे। सहायकों ने संग छोड़ दिया था। परिवार के लोग बिछुड़ गये थे। किन्तु वह अपने मार्ग पर अविचलित था। अकेले दम से अँगरेज़ों के छक्के छुड़ा रहा था। सरकारी पल्टन परेशान थी। दिन में दो-दो चार-चार बार हमले होते थे, सिपाही मारे जाते थे, किन्तु यह कोई नहीं देख पाता था कि दुश्मन कहाँ से आया और कहाँ गया। जब कभी विद्रोही-सरदार दिखता था तो सौ-पचास आदमी उसके पीछे दौड़ पड़ते थे। गोलियों की बौछारें छूटने लगती थीं, लेकिन हासिल कुछ नहीं होता था। बड़ी दिक़्क़त थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आख़िर को तंग आकर एलान किया गया कि जो कोई शख़्स देल्हनसा को ज़िन्दा लाकर हाज़िर करेगा, एक हज़ार रुपये पावेगा, और जो उसका सिर काटकर लावेगा, पाँच सौ रुपये का इनाम उसे मिलेगा। बहुत-से आदमी तलाश में निकले, लेकिन सब नाकामयाब हुए। जिन-जिनका पता देल्हनसा को लग गया, उनकी उसने नाक काट ली और बेइज़्ज़त करके वापस भेज दिया। इससे पल्टन के आफ़िसर कर्नल टेण्डन को और भी क्रोध आया। वह देल्हनसा की गिरफ़्तारी की तरकीब सोचने लगे।

उसी दिन शाम को सब अफ़सरों की कौंसिल बैठी, और इस विषय पर विचार किया गया। सबने मिलकर यह निश्चय किया कि देल्हनसा के भाई निजामसा और उसके समस्त परिवार को गिरफ़्तार कर लिया जाय। उन्हें एक दिन का समय दिया जाय, वे देल्हनसा को पेश करें, नहीं तो सबके सब तोप से उड़ा दिये जायँगे।

यह खबर बहुत जल्दी चारों ओर फैल गई। निजामसा और उसके परिवार के लोग ढूँढ़ ढूँढ़ कर पकड़े गये। सबको लाकर जमा किया गया।

(२)

एक दिन प्रातःकाल पल्टन के पड़ाव पर खासी भीड़ थी। दर्शकों की टोलियाँ उस ओर जा रही थीं। ताँता टूटता ही नहीं था। किसी को कोई भय नहीं था। सरकार ने खुद मुनादी करवा के लोगों को बुलाया था। आज कुछ विशेष समारोह होनेवाला था। सम्भवतः गोरी पल्टन की परेड थी, साथ ही कुछ बाग़ियों को दण्ड दिया जानेवाला था।

पल्टन के मैदान में दो तोपों की बैटरी तैयार थी। आदमी गोला-बारूद भर रहे थे। उनके सामने इक्कीस आदमी एक क़तार में बैठे थे। तीन बुढ़िया थीं और ग्यारह बच्चे। शेष सात में एक पुरुष तथा अन्य स्त्रियाँ थीं। निजामसा का समस्त परिवार पकड़ लिया गया था। कुछ निकट सम्बन्धी भी आ गये थे। देल्हनसा का परिवार पहले ही खतम कर दिया गया था। उसकी एक छोटी-सी लड़की बच रही थी। वह लापता थी।

धीरे-धीरे भीड़ बहुत जमा हो गई। सिपाहियों को उसे पीछे हटाने में कठिनाई हो रही थी। लोगों में कोलाहल बढ़ रहा था। वे शीघ्र ही कुछ और देखना चाहते थे। उन्हें आगे आनेवाले भयानक दृश्य का अनुमान तक नहीं था।

एक के बाद एक पल्टन की कम्पनियाँ आने लगीं। वे व्यूह बनाकर खड़ी होती जाती थीं। जब सब आ गईं, तब उनका कमांडर कर्नल टेंडन आया। वह एक बड़े भारी काले घोड़े पर सवार था। चेहरे से रोब टपक रहा था। लोग उसके नाम से थर्राते थे।

उसके आते ही लोगों में हलचल मच गई। बैटरी के सामने बैठे हुए लोगों में से कुछ स्त्रियाँ चिल्ला पड़ीं। बच्चे भी एकदम रो पड़े। कुछ सयानों ने उन्हें चुप करने का प्रयत्न किया। कुछ एक दूसरे से गले मिलने लगे। समस्त जन-समुदाय में खलबली मच रही थी। बिना मरे ही वे मृत्यु का कष्ट भोग रहे थे।

कर्नल उन लोगों के समीप आकर घोड़े से उतर पड़ा। निजामसा की ओर लक्ष्य करके बोला—अगर तुम अभी भी डेलनसा का पटा बटा डेगा टो हम सबको रिहा कर डेगा।

निजामसा—हुज़ूर, मुझे बिलकुल नहीं मालूम कि वह कहाँ छिपा है। मैं तो सरकार का ग़ुलाम हूँ। वह मुझसे नाराज़ है। मुझे अपने ख़िलाफ़ समझता है।

कर्नल—नहीं, तुम ज़रूर जानटा है।

निजामसा—नहीं हुज़ूर, मैं आपसे सच कहता हूँ, मुझे उसका पता नहीं मालूम।

कर्नल—अच्छा टो हम तुमको टोप से उड़ा डेगा।

निजामसा—हुज़ूर जो चाहें करें, लेकिन हम सब बेगुनाह हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्नल—तुम सब बदमाश है। शैटान का भाई बिराडर है।

निजामसा—हुजूर का यह खयाल है तो ऐसा ही सही; लेकिन हम सब बेगुनाह और सरकार के खैर-ख्वाह हैं।

कर्नल—चुप रहो। मरने को टैयार हो जाओ। गोलंडाज.....

गोलन्दाजों ने तोपों को सँभाला। उनमें बारूद भरी। जलते हुए तोड़े उठाये और आग लगाने को प्रस्तुत हुए। कर्नल ने ज़ोर से कहा—ज़रा ठहरो।

फिर निजामसा की ओर देखकर बोला—निजामसा, मरने को टैयार हो?

निजामसा—हुजूर जल्दी कीजिए।

इसी समय कुछ दूर पर बन्दूक़ की आवाज़ सुनाई पड़ी। कर्नल टेंडन का हैट उड़कर दूर गिरा। वह ज़मीन पर लेट गया। पल्टन को अटेंशन का हुक्म मिला। लोग घबराकर इधर-उधर भागने लगे। कुछ दूर पर एक सवार देख पड़ा। वह बेतहाशा दौड़ता हुआ चला आ रहा था। उस पर निगाह पड़ते ही कलेक्टिव-फ़ायर का आर्डर हुआ। गोलियों की बौछारें छूटीं। मैदान धुएँ से ढँक गया। समझ में नहीं आता था कि क्या हो रहा है।

एकाएक एक गोलन्दाज़ चीख़ मारकर गिर पड़ा। एक गोली उसके सिर के आरपार हो गई थी। दूसरा उस सवार की तलवार का शिकार बन चुका था। तोपें ज्यों की त्यों खड़ी थीं। जलते हुए तोड़े गोलन्दाज़ों के ख़ून में बुझ रहे थे।

इसी समय आगन्तुक का घोड़ा मरकर गिर गया। उसकी देह गोलियों से छिन्न-भिन्न हो रही थी। सवार भी ज़ख्मी होकर भूमि पर पड़ा था। कर्नल साहब की जान में जान आई। स्वयं जाकर उन्होंने उसकी मुश्कें बाँध लीं।

देल्हनसा गिरफ़्तार हो गया। कर्नल टेंडन की ख़ुशी का ठिकाना नहीं था। आनन्द से बैंड बजाया जा रहा था। लोग आश्चर्य-चकित हो रहे थे। निजामसा के परिवार को रिहाई मिल गई थी। सब ओर ख़ुशियाँ ही ख़ुशियाँ थीं। देल्हनसा को देखने झुण्ड के झुण्ड आते थे। बहुत-से उसका मज़ाक़ उड़ाते थे; बहुत-से आँसू बहाते थे।

(३)

दूसरे दिन सन्ध्या समय उसी मैदान में फिर लोगों की बड़ी भारी भीड़ उपस्थित थी। आज पल्टन का बहुत कड़ा इंतिज़ाम था। कोई भी शख़्स पास नहीं आ सकता था। दूर से ही तमाशा देखने की आज्ञा थी।

बड़े भारी पीपल की ऊँची डाल से एक मज़बूत रस्सी लटक रही थी। उसके नीचे लकड़ी की एक तिपाई रक्खी थी। इसी पर देल्हनसा को फाँसी दी जानेवाली थी। साढ़े पाँच बजे शाम का समय निश्चित था। लोग दूर-दूर से तमाशा देखने आ रहे थे।

ठीक सवा पाँच बजे सोलह सिपाहियों के बीच में घिरा हुआ बन्दी देल्हनसा आया। तिपाई से सीढ़ी टिकाई गई। वह चुपचाप तख़्ते पर चढ़ गया। उसके केश खुले थे। वे कन्धों पर बिखर रहे थे। दाढ़ी हवा में फहरा रही थी। आधे से अधिक बाल सफ़ेद थे। मूछें तनी थीं। शरीर में ऐंठ थी। आँखों में चमक थी।

उसे देखकर बहुतों ने सिर झुका लिये, बहुतों ने मन ही मन प्रणाम किया। बहुत-से उजागर गालियाँ देने लगे। जिसके मन में जो आता था, कहता था। कोई छेड़छाड़ नहीं थी।

कुछ लोग कह रहे थे—व्यर्थ ही सरकार फाँसी का ढोंग रचती है। देल्हनसा को देवी का इष्ट है। फाँसी से उसका क्या होनेवाला है? वह गोलियों की बौछार में बच जाता है। हमने हज़ार बार उसे देखा है।

दूसरे कहते थे—नहीं। उसकी जाँघ में एक तावीज़ भरा है। जब तक वह चीरकर न निकाला

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जायगा, देल्हनसा मर नहीं सकता, चाहे सात दिन तक फाँसी पर लटका रहे।

सब देखने को उत्सुक थे कि फाँसी का अन्त क्या होता है? किस प्रकार ऐसा महाबली मरता है?

(४)

ठीक साढ़े पाँच बजे जल्लाद आया। देल्हनसा के हाथ उसके पीछे मज़बूती से कस दिये गये। गले में फन्दा डाल दिया गया। सीढ़ी हटा ली गई। तिपाई को झटके से खींच लिया। लोग अवाक् रह गये।

देल्हनसा को प्रतीत हुआ, उसके गले का फन्दा ढीला पड़ रहा है। हाथों की रस्सी खुल गई है। वह भूमि पर सुरक्षित खड़ा है। उसने आसपास फिर-कर देखा। पास ही एक सिपाही खड़ा है। दौड़कर

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करानेवाली पुस्तकें.

"इस पत्र के पढ़नेवाले हैं" ऐसा लिखनेवालों को

२५) रु० सैकड़ा कमीशन मिलेगा।

डाक्टरी चिकित्सा

डाक्टरी रीति से रोग का निदान लक्षण चिकित्सा ६)

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका

डाक्टरी औषधों का पूरा वर्णन बनाने की विधि मात्रा विरोधी दवाओं के नाम ६)

कम्पौंडरी शिक्षा—१॥)

इंजैक्शन-चिकित्सा सचित्र

(सुई द्वारा इलाज) १)

डाक्टरी नुसखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित १)

चिकित्सक के कर्तव्य—१॥)

प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँगरेज़ी डाक्टर द्वारा परीक्षित प्रयोग। क़ीमत १)

भारतीय वनस्पतियों पर

विलायती डाक्टरों के अनुभव

क़ीमत २)

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इसकी बातें याद रखो। क़ीमत ।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधें। क़ीमत ।)

जच्चा बच्चा—संतान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन-पोषण की विधि। क़ीमत ।)

संतति-निग्रह—जो लोग संतान पैदा होना पसंद नहीं करते उसकी निर्दोष विधियाँ तथा विना दवा के उपाय बताये हैं। क़ीमत ।)

पुस्तकों का पैकिंग माफ़ डाकख़र्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा।

मँगाने का पता—सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसको एक लात मारी। उसकी तलवार छीन ली। झपटकर एक सवार पर हमला किया। उसे घोड़े के नीचे फेंक दिया। आप स्वयं सवार हो गया। सिपाहियों में खलबल मच गई। मारो, काटो, पकड़ो का तूफ़ान आ गया। बहुत-से उसके पीछे दौड़े। पर वह भागता जाता है। सिपाही पीछा नहीं छोड़ते; किन्तु वे बहुत दूर रह गये हैं। अब वह नदी-किनारे आ गया। पानी गहरा है। उसने घोड़ा छोड़ दिया। कूदकर जल में डुबकी मारी। दूसरी ओर निकल गया। किनारे पर चढ़कर देखता है, पीछा करनेवालों का पता नहीं। मन ही मन प्रसन्न हो रहा है। कोमल-कोमल दूब पर धीरे-धीरे चल रहा है। शीतल वायु उसके श्रम को दूर कर रही है। कुछ ही देर में एक सघन वन में घुस जाता है। उसके दूसरे किनारे पर एक पहाड़ी है। एक नाले के किनारे-किनारे उस पर चढ़ता है। घने वन के बीच झाड़ियों से घिरी हुई एक चट्टान है। उसे हटाता है। आस-पास देखकर एक कन्दरा में प्रविष्ट होता है। चट्टान बन्द कर लेता है। छोटी-सी एक बालिका दौड़ती हुई आती है।

बच्ची को देखकर वह दौड़ पड़ता है। उठाकर अपने गले से लगा लेता है। लड़की रोती है। सिसक-सिसककर कहती है—दादा, तुम कहाँ गये थे?

"बेटी, शिकार को गया था।"

"इतनी देर में क्यों आये? मैं कल से भूखी हूँ।"

"तनिक ठहर जा, मैं अभी खाना लाता हूँ।"

"नहीं। अब मत जाओ। तुम फिर रात भर नहीं आओगे!"

"नहीं, अब नहीं जाऊँगा। तुझे छोड़कर अब नहीं जाऊँगा।"

लड़की रोती है और गले से लग जाती है। देल्हनसा भी रोता है। उसकी आँखों से आँसू बहते हैं। कहता है, "बेटी, तेरे लिए मातृभूमि को तिलाञ्जलि है।"

"हाँ दादा अब मत जाना।"

"नहीं जाऊँगा बेटी।"

देल्हनसा लड़की को गले लगा लेता है। उसकी आँखों से आँसू बहते हैं।

(५)

आधे घण्टे बाद—छः बजे—पीपल की डाल से देल्हनसा की लाश लटक रही थी। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। लोग कहते थे, देवी का इष्ट झूठा पड़ गया।

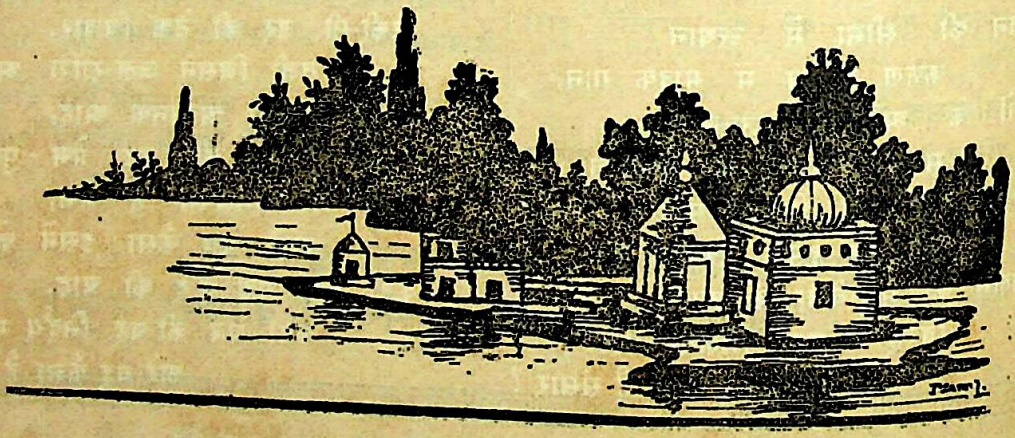

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNAN MANDIR
LIBRARY
Jangamwadi Math, VARANASI.
Acc. No.....

संसार

श्रीरामाधार त्रिपाठी 'जीवन'

अरे यह कैसा है संसार ?

(१)

ग्रीष्म की झंझा में मधु वात,
अमा में प्रिय राका की रात;
घृणा में प्रेम, रुदन में हास्य,
सान्ध्य में सुन्दर स्वर्णिम प्रात।
विधाता का यह कौन विधान ?
न हो पाता जिसका अनुमान,
निराली निष्ठुरता में नित्य,
सिसकता उर-अन्तर का प्यार।
अरे यह कैसा है संसार ?

(२)

पतन की सीमा में उत्थान
करुण क्रन्दन में मादक गान,
दृगों के आँसू में लय-लीन,
मनोरम अधरों की मुसकान।
मुरझने ही को खिलते फूल
कहें हम इसको किसकी भूल ?
मिलन की मधु-बेला को आह,
विरह का क्यों मिलता उपहार ?
अरे यह कैसा है संसार ?

(३)

विकच वासंती का मृदु हास,
मलिन्दों का मोहक उल्लास,
मदिर मुकुलों का मधुर मरन्द,
लिये जब जाता हो मधुमास।
न होगा क्यों उपवन श्री-हीन,
बजे कैसे अन्तर की बीन,
हूक से भरी मूक-सी मौन,
सो चुकी हो जिसकी झनकार।
अरे यह कैसा है संसार ?

(४)

टिकी-सी उर की टेक विचार,
तजी जिसने जल-राशि अपार,
विफल हो चली अचानक आह,
पपीहे की वह प्रेम-पुकार,
विश्व में पागलपन है प्रेम,
कहाँ कब कैसा इसमें क्षेम ?
कहाँ वह एक बूँद की चाह,
कहाँ घन की यह निर्दय मार!
अरे यह कैसा है संसार ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(५)

सरसता का वह सुन्दर मेल,
लजीली लघु लहरों का खेल
हुई जिससे सिंचित-सी चारु,
हमारे मधुर प्रेम की बेल,
उठाकर अपनी लोल हिलोर
उमड़ यों चली कहाँ, किस ओर
कलित कोमलता की कमनीय
कला-सी उर की सुन्दर धार ?
अरे यह कैसा है संसार ?

(६)

स्वयं अपना ही अन्तर-नाद,
उठाता है क्यों वाद-विवाद,
विरह के लघु क्षय में है लीन,
मिलन के युगों-युगों की याद।
कि जिसमें हो करके तल्लीन,
अरे यह मृदु मानस का मीन
डूबता तिरता फिरता नित्य,
उमंगों से उल्लसित अपार।
अरे यह कैसा है संसार ?

(७)

यहाँ दुख ही है सुख का मोल,
मृत्यु में जीवन रहा कलोल,
भूलती है आशा अभिराम
निराशा का रचकर हिंडोल।
मिलन का है अस्तित्व विछोह
यही तो मानव-मन का मोह,
जहाँ जाकर बन जाते पंगु
चेतना-शून्य विवेक-विचार।
अरे यह कैसा है संसार ?

(८)

उठा आहों का प्रबल समीर,
नयन-घन बरसाते हैं नीर,
घिरा तम-तोम कूल भी दूर,
करे क्या नाविक विपथ अधीर।
भरा है भीषणता का भाव,
डोलती डगमग डगमग नाव,
छूट सी चली टूट पतवार,
मिले कैसे दुख-सागर-पार ?
अरे यह कैसा है संसार ?

(९)

ध्येय की धवलित धृतियाँ आज,
तुम्हारी कोमल कृतियाँ आज,
थिरकती हैं किस गति से मंजु
विगत जीवन की स्मृतियाँ आज
तुम्हें तब हम न सके पहचान,
कि हो तुम कैसे सुहृद महान
हृदय पर लद जाता है भूरि,
वेदना का व्रीड़ा का भार।
अरे यह कैसा है संसार ?

(१०)

अगर जाना ही है तो जाव,
करें हम कौन विरोध-दुराव,
हमारा यह तुमसे अनुरोध,
भूल मत जाना पिछले भाव,
आज हम दुखी अकिंचन दीन
समर्पित करते कपट-विहीन,
सफल हों, स्वीकृत हों हे देव,
प्रेम के ये आँसू दो-चार।
अरे यह कैसा है संसार ?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

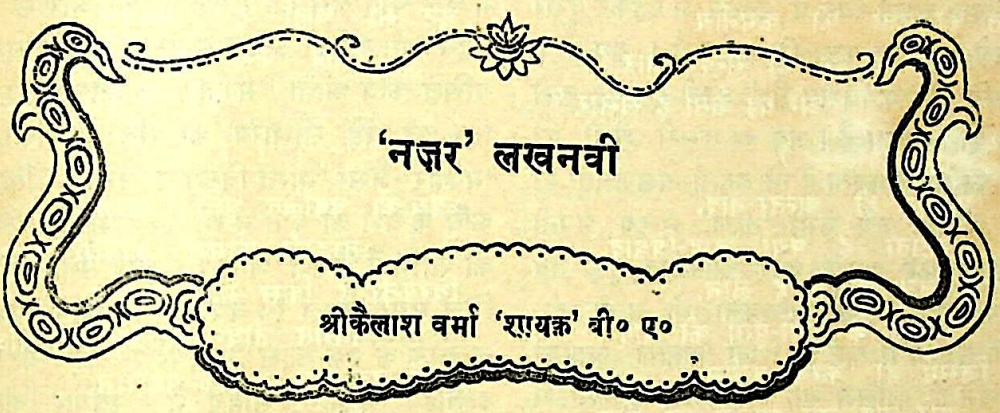

'नज़र' लखनवी

श्रीकैलाश वर्मा 'शायक' बी० ए०

(१)

जब मैंने 'नज़र' लखनवी पर लिखने का विचार किया, मेरा दिल दर्द से भर आया, चित्त को दुःख हुआ। लेखनी उठती ही न थी। मालूम नहीं इस कवि में कौन-सी ऐसी विचित्र बात थी, जिसने मेरे हृदय पर इतना गहरा प्रभाव डाला। यही कारण है कि इस लेख में मेरा आवश्यकता से अधिक समय व्यतीत हुआ। 'नज़र' साहब के प्रति मेरी बड़ी श्रद्धा है। मैं आपको गुरु से भी अधिक समझता हूँ। आप अपने समय के एक कुशल कलाकार थे। इनकी जोड़ का उस समय कोई कवि न था, यह कहना भी अनुचित न होगा। आप सुकवि ही न थे, सुलेखक, सुयोग्य सम्पादक और समालोचक भी थे। आपके लेखों तथा समालोचनाओं को जब पढ़ता हूँ तो तबियत ख़ुश हो जाती है। हृदय में अनुपम विचारों की धाराएँ बहने लगती हैं। उर्दू-साहित्य में ऐसा समालोचक पैदा होना असम्भव-सा प्रतीत होता है। आपने उर्दू-साहित्य की जो बहुमूल्य सेवाएँ की हैं, उनकी तुलना नहीं हो सकती। आपकी मृत्यु से उर्दू-साहित्य में जो स्थान ख़ाली हुआ, उसकी पूर्ति मेरी समझ में अब होती नहीं देख पड़ती। जिस मनुष्य ने साहित्य के लिए अपना सब कुछ अर्पण कर दिया हो, इस काम में अपने स्वास्थ्य तक की परवा न की हो, उस महान् पुरुष का कहना ही क्या! जहाँ कहीं कभी आपका बुलावा साहित्य के नाते आया, आप तुरन्त पहुँचे। आपका जीवन एक निराश जीवन था। आपका हृदय वास्तव में कवि का हृदय था, जिसमें वेदना भरी हुई थी। आप साहित्यिक कार्य करने के लिए इंडियन-प्रेस, इलाहाबाद, 'ज़माना'-प्रेस, कानपूर और नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ में रहे, और क्रमशः 'अदीब', 'ज़माना' और 'अवध-अख़बार' का सम्पादन करते रहे। आप सदा सम्पादकीय विभाग में सर्वश्रेष्ठ रहे। आपने 'अदीब' को यू० पी० की सबसे सुन्दर और रोचक पत्रिका बना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिया था। जिस योग्यता से आप 'अदीब' का सम्पादन करते रहे, वह केवल 'अदीब' देखने से ही मालूम पड़ सकती है। 'नज़र' साहब कविता के क्षेत्र में अधिकतर ग़ज़लें लिखने के ही आदी थे। आपने नज़्में भी लिखी हैं; किन्तु बहुत कम। किन्तु उनमें भी ग़ज़ल की झलक देख पड़ती है। लेकिन जिस नज़्म में आप अपने ध्येय में क़ायम न रहकर दूसरे रंग में चले गये, वह कुछ फीकी हो गई। यथार्थ में प्रत्येक कवि की एक विशेष शैली होती है। वह उसी में सफल हो सकता है। जब वह दूसरी शैली को अपनाने का प्रयत्न करता है तो बहुधा असफलता ही होती है। अतः जब कभी 'नज़र' साहब अपनी शैली को छोड़कर दूसरी ओर आकर्षित हुए, तब आप सफल नहीं हुए और रोचकता भी जाती रही, जो उनके कलाम से स्पष्ट है। जो कमाल आपको पद्य लिखने में हासिल था, वही गद्य लिखने में भी। गद्य की भाषा रोचक, मधुर तथा सरल है। मुहावरों का प्रयोग बड़ी ख़ूबी के साथ किया गया है, जो अपने-अपने स्थान पर चुस्त बैठे हैं। 'फ़िसाः-नए-आज़ाद' के रचयिता 'सरशार' और 'आबे-हयात' के लेखक 'आज़ाद' के बाद गद्य की कला केवल 'नज़र' साहब के ही गद्य में देख पड़ती है। कविता के लिहाज़ से 'नज़र' साहब पर मेरे हृदय में उतनी ही श्रद्धा है, जितनी 'सुरूर' साहब की। अन्तर केवल इतना ही है कि 'नज़र' साहब ने अधिकतर ग़ज़लें ही लिखी हैं, और 'सुरूर' साहब ने नज़्में। 'नज़र' साहब की नज़्मों में वह बात नहीं देख पड़ती जो उनकी ग़ज़लों में पाई जाती है। इसी प्रकार 'सुरूर' साहब की नज़्मों में जो ख़ूबी है, वह उनकी ग़ज़लों में नहीं।

'नज़र' साहब का पूरा नाम मुन्शी नौबतराय है, 'नज़र' उपनाम है। सन् १८६६ ई० में पैदा हुए थे। आपका जन्म-स्थान लखनऊ-जैसा प्रसिद्ध शहर है, जहाँ की भूमि कविता के विचार से बहुत उपजाऊ है। इसी भूमि में 'आतश', 'नासिख़', 'दबीर', 'अनीस', 'अमीर'-जैसे प्रसिद्ध कवि हो चुके हैं। 'नज़र' साहब का सम्बन्ध एक शरीफ़ सकसेना क़ायस्थ-कुटुम्ब से है। इस ख़ानदान के लोग शाही समय में अच्छे-अच्छे पदों पर नियुक्त रह चुके हैं। 'नज़र' साहब का पालन-पोषण लखनऊ के वायु-मण्डल में हुआ। यही कारण है कि इनकी कविता में चार चाँद लग गये। प्रकृति की ओर से आपका हृदय प्रभावशाली उत्पन्न हुआ था। आप लखनऊ के प्रसिद्ध कवि आग़ा 'मज़हर' के शिष्य हैं। आपके लिए यह बड़े सौभाग्य की बात थी कि आपको 'मज़हर'-जैसा भारत-विख्यात उस्ताद मिला। हर कवि के वश की बात न थी कि 'मज़हर'-जैसे कवि की शागिर्दी में आ जाय। 'नज़र' साहब की आयु जिस समय केवल १७ वर्ष की थी, आपने एक ग़ज़ल लखनऊ के एक ख़ास मुशायरे में पढ़ी थी। इसकी इस्लाह 'मज़हर' साहब ने स्वयम् की थी। 'मज़हर' साहब ने उसी समय इस होनहार नव-युवक कवि को अपनी शागिर्दी में ले लिया। 'मज़हर' साहब को भली भाँति प्रतीत हो गया था कि किसी दिन यह कवि उनकी प्रसिद्धि में वृद्धि करेगा। धीरे-धीरे 'नज़र' साहब स्वयम् ही एक सफल उस्ताद बन गये, और आपकी गणना लखनऊ के प्रसिद्ध उस्तादों में होने लगी।

आपने प्रारम्भ में एक मासिक पत्रिका 'ख़ुदंग-नज़र' निकाली। इसका सम्पादन वह स्वयम् ही करते रहे। यह पत्रिका सितम्बर, सन् १८९७ ई० में लखनऊ से प्रकाशित हुई थी। 'ज़माना'-प्रेस, कानपूर में मुझे 'ख़ुदंग-नज़र' की एक फ़ाइल मेरे मित्र ठाकुर चन्द्रभूषणसिंह द्वारा देखने को मिली थी। देखने से पता चलता है कि यह पत्रिका केवल ग़ज़लों का संग्रह हुआ करती थी। तत्पश्चात् पता लगा कि इसमें लेख भी प्रकाशित होते थे। 'मज़हर' साहब ने इस पत्रिका को एक सफल पत्रिका बनाने में काफ़ी सहायता दी। इसमें अधिकतर मुशायरों की ग़ज़लें प्रकाशित हुआ करती थीं। उस समय के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लगभग सभी चोटी के कवियों की कविताएँ इसमें प्रकाशित हुआ करती थीं। यह पत्रिका अपने समय की एक अद्वितीय पत्रिका थी, किन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इतना प्रयत्न करने पर भी यह पत्रिका अधिक काल तक जीवित न रह सकी। इस पत्रिका के बन्द हो जाने पर 'नज़र' साहब सन् १६०४ ई० में कानपूर गये, और उर्दू मासिक पत्रिका 'ज़माना' के सहायक सम्पादक हुए। इसके बाद जनवरी, सन् १६१० ई० में आप इलाहाबाद की प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'अदीब' के सम्पादक हुए। इसकी लिखाई, छपाई बहुत ही सुन्दर थी। यह कई रंगीन और सादे चित्रों से सुसज्जित होती थी। साहित्यिक लेख तथा कविताएँ अनुपम होती थीं। पत्रिका क्या थी, एक गुलदस्ता थी। किन्तु शोक! ऐसी लाजवाब पत्रिका केवल साढ़े तीन ही वर्ष तक जीवित रही। स्वर्गीय 'नज़र' साहब केवल डेढ़ वर्ष ही सम्पादन का कार्य करके इससे अलग हो गये। जिस विद्वत्ता से आपने इसके सम्पादन-भार को सँभाला था, उसकी सर्वत्र सराहना हुई। इसे आकर्षक बनाने में आप भली भाँति सफल हुए। 'नज़र' साहब इससे अलग होकर कुछ समय बाद सन् १६१२ ई० में फिर 'ज़माना' में आ गये। आप लगभग दो वर्ष तक वहाँ रहे। आपने इस पत्रिका में एक विशेष बात पैदा कर दी। पत्रिका में दो-तीन नये कालम बढ़ा दिये गये थे। सन् १६१४ ई०में आप नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ चले गये, और वहाँ से दैनिक समाचारपत्र 'अवध-अख़बार' के सम्पादन का भार ग्रहण किया। इस पत्र से आपका सम्बन्ध सन् १६२३ ई० तक रहा। धीरे-धीरे आपकी प्रसिद्धि बढ़ने लगी। अन्त में आप एक प्रसिद्ध कवि, लेखक तथा समालोचक की हैसियत से चमके। कार्य की अधिकता तथा आपके रिश्तेदारों और कुटुम्बियों की असमय मृत्यु का बहुत गहरा प्रभाव आपके स्वास्थ्य पर पड़ा। परिणाम यह हुआ कि आपको दमे की बीमारी हो गई। १० अप्रैल, सन् १६२३ ई० को ८ बजे सवेरे केवल ५६ वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हो गया। जनाब 'महशर' लखनवी ने निम्नलिखित पद से आपकी मृत्यु की तारीख़ निकाली है—

किल्क महशर ने लिखा साले वफ़ात;
शायरे कामिल नज़र से छुप गया।
(१६२३ ई०)

जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं कि आपने अधिकतर ग़ज़लें ही लिखी हैं। आपकी ग़ज़लों के कुछ पद तो शृङ्गाररस से सम्बन्ध रखते हैं, और कुछ रहस्यवाद और दार्शनिक विचारों से। ग़ज़लों में करुणा है, वेदना है, दर्द है और वास्तव में एक ग़ज़ल कहनेवाले के लिए इन्हीं बातों की आवश्यकता है; क्योंकि यही चीज़ें उसको कुशल कलाकार बनाने में सहायता देती हैं। यथार्थ में आप ग़ज़ल ही कहने के लिए इस संसार में आये थे। आप प्राकृतिक दृश्यों को लेकर जब नेचुरल रंग की कविता की ओर झुके, तब इसमें आपको सफलता नहीं मिली।

आपने एक नौहा अपने नवासे की मृत्यु के अवसर पर कहा था। इसकी मृत्यु से आपके हृदय को बड़ा कड़ा धक्का पहुँचा था। इनके कोई संतान नहीं थी। नवासा ही उनका सब कुछ था। जब तक इसका शव आपकी नज़रों के सामने पड़ा रहा, आप लिखते ही रहे। इस विषय का वर्णन इससे अधिक और क्या प्रभावशाली हो सकता है—

हुआ तमाम उमीदों[2] का ख़ात्मा[1] तुम पर;
किसी से अब न तवक़्क़ा[2] है, न है किसी पे नज़र।
जहाँ[3] में अपना हो अंजाम[4] क्या, नहीं है ख़बर;
मरे पे देखिए मिलता है अब कफ़न क्योंकर।
कहाँ गये मेरी बिगड़ी सँवारनेवाले;
पुकार लो मुझे लाला पुकारनेवाले।

(१) अन्त, (२) आशा, (३) संसार (४) परिणाम।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

थमो-थमो कि इस उजड़े मकाँ का था यह चिराग़;
बहार पर था इसी नौनेहाल[1] से यह बाग़।
न होगा अब मुझे हासिल[2] जहाँ में फ़राग़[3];
तमाम उम्र दिले नातवाँ[4] है और यह दाग़[5]।
फ़ुग़ाँ[6] बुलबुले जाँ दिल के पार होती है;
'नज़र' के बाग़ से रुख़्सत[7] बहार होती है।

× × ×

हज़ार नाज़ से उस लख़्त-दिल[8] को पाला था;
कभी न धूप में बाहर उसे निकाला था।
उसी से ख़ानए तारीक[9] में उजाला था;
यह था क़मर[10] तो 'नज़र' उस क़मर का हाला[11] था।
मुझे भी दफ़्न[12] करो इसके साथ तुरबत[13] में;
यह किस तरह से अकेला रहेगा ग़ुरबत[14] में।

आपने एक कविता अपनी मा की मृत्यु के अवसर पर लिखी थी। कविता क्या है, दर्द की तसवीर है। मा के मरने से कवि के हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अन्दाज़ा निम्नलिखित पदों से लगेगा। मा का प्रेम अमर प्रेम कहलाता है। जो मनुष्य इस साये से अलग हो चुका है, उसके दिल की वेदना को कौन समझ सकता है। यह कविता 'वफ़ात-मादर'-शीर्षक से प्रकाशित हुई थी। देखिए, आप क्या कहते हैं—

दर्द उट्ठा था न ऐसा क़ल्ब शैदा में कभी;
यह हुजूमे ग़म हुआ हम पर न दुनिया में कभी।
अश्क ख़ूनी बारहा टपके थे आँखों से मगर;
इस क़दर सुर्ख़ी न थी ख़ूने तमन्ना में कभी।
ख़ुश्क होता है वह दर्याये-मोहब्बत आह-आह;
जिसकी तुग़ियानी रुकी दम भर न दुनिया में कभी।
हो गया आग़ोश मादर भी जुदा आज ऐ 'नज़र';
अब मिलेगी ऐसी उल्फ़त फिर न दुनिया में कभी।

आपने एक कविता 'मज़ालिम जुनूबी अफ़रीक़ा'-शीर्षक लिखी थी। आपने यह कविता दक्षिणी अफ़रीक़ा के सत्याग्रह के अवसर पर, जो सन् १६३६ ई० में हुआ था, लिखी थी—

बिरादराने वतन का पयामे-ग़म सुन लो;
हिकायते सितमो क़िस्सये अलम सुन लो।
सुने न हों जो ज़माने में वह सितम सुन लो;
ग़रीब क़ौम का अहवाल बेशो कम सुन लो।
जहाँ से रुख़सत बीमार है ख़ुदा हाफ़िज़;
जनाज़ा क़ौम का तैयार है ख़ुदा हाफ़िज़।
यह तेरे नाम का है पास इनको ऐ भारत;
कि जान जाये न जाये मगर तेरी इज़्ज़त।
है तेरी अज़्मते देरीना की उन्हें ग़ैरत;
वतन से दूर हैं, लेकिन है उनमें वह हिम्मत।
मिटेंगे आन पे बिगड़ी बना के उट्ठेंगे;
मिटानेवालों को अपने मिटा के उट्ठेंगे।

कविता सरल एवम् कठिन शब्दों से वंचित है। प्रथम बन्द में कवि कहता है कि देश के भाइयों ने जो दुःख से भरा हुआ संदेश दिया है, उसे ध्यानपूर्वक सुनो। साथ-साथ अत्याचारों और दुखों की कहानी भी सुनो। जिन अत्याचारों के सम्बन्ध में आपने इस संसार में कुछ भी न सुना होगा, उन्हें भी सुनो। इस क़ौम का थोड़ा बहुत हाल सुनो। संसार से बीमार उठता है, ईश्वर रक्षा करे। क़ौम का शव तैयार है, ईश्वर रक्षा करे।

दूसरा बन्द देखिए। ऐ भारतवर्ष, उन मनुष्यों को, जो यहाँ से दूर पड़े हुए हैं, तेरे नाम का लिहाज़ है। चाहे जान चली जाय, किन्तु तेरी इज़्ज़त न जाने पावे। तेरे प्राचीन गौरव का उन्हें अब भी ख़याल है। यद्यपि वे देश से दूर हैं, किन्तु उनमें अब भी वही साहस है। वे अपनी आन-बान पर मिट जायँगे, और जो बिगड़ गया है, उसे फिर बनाकर उठेंगे।

(१) नया उगा हुआ पौदा, तात्पर्य नवासे से है, (२) मिलना, (३) इतमीनान, (४) कमज़ोर हृदय, (५) दुःख, (६) रोना-पीटना, (७) जाती है, बहार का अन्त होता है, (८) हृदय का टुकड़ा, (९) पालन-पोषण करना, (१०) अँधेरा घर, (११) चाँद, (१२) वह घेरा, जो चाँद के चारों ओर रहता है, (१३) ज़मीन में गाड़ना, (१४) क़ब्र, (१५) परदेश।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिन लोगों ने उन्हें मिटा दिया है, वे स्वयम् उन्हें मिटायेंगे।

जब हम इस कविता की तुलना उस कविता से करते हैं, जो आपने अपने नवासे के मरने पर लिखी है, तो बड़ा अन्तर देख पड़ता है। पदों के पढ़ने से उनके दुःखमय हृदय के विचारों का स्वयम् अनुमान हो जाता है। उस कविता का एक-एक शब्द प्रभावशाली है; किन्तु दूसरी कविता में यह बात नहीं पाई जाती। इस कविता के पढ़ने से ज्ञात होता है कि कवि अपने ध्येय से अलग होकर आगे बढ़ना चाहता है, अतः कविता में उतना प्रभाव नहीं रह गया।

अब 'बहार' (बरसात)-शीर्षक कविता के कुछ पद दिये जाते हैं। इस विषय पर आपकी दो भिन्न-भिन्न कविताओं के कुछ पदों का देना उचित मालूम होता है। देखिए—

(१)

ग़ज़ब है शोला फ़िशाँ गर्मियें अदाये बहार ;
जिधर से आग लगी, ले उड़ी हवाये बहार।
वह एक तुम कि सरापा बहारो नाज़िशे गुल ;
वह एक मैं कि नहीं सूरत-आशनाये बहार।
बला से पीते ही पीते चमन में मर जाऊँ ;
किसे उमीद कि फिर आये या न आये बहार।
ज़मीं पे लालओ-गुल बनके आशकार हुआ ;
छिपा न ख़ाक में जब हुस्न ख़ुदनुमाये बहार।
वह एक दिल जो खिला और खिलके मुरझाया ;
है इब्तदाये बहार और इन्तहाये बहार।
जहाँ में किसलिए खिलते हैं अब यह लालओ-गुल ;
'नज़र' का दिल नहीं मुद्दत से आशनाये बहार।

(२)

वह झूम-झूम के चारों तरफ़ घटा छाई ;
हवा ने खोल दी वह ज़ुल्फ़ मुश्कसाये बहार।
वह शोर राद से सारा जहान गूँज उठा ;
हुई वह धूम से फिर आज इब्तदाये बहार।
कड़क रही है वह बिजली, गरज रहा है वह अब्र ;
बजा रही है वह साज़े तरब हवाये बहार।
चमक रही है यह अब्रे-सियाह में बिजली ;
चढ़ा हुआ है कसौटी पे या तिलाये बहार।
रहे न तन पे किसी के लिबास बोसीदा ;
नये लिबास दरख़्तों को फिर पिन्हाये बहार।
चमन में अब्र के छींटे करें मसीहाई ;
ख़िज़ाँ के क़त्ल के कुश्तों को फिर जिलाये बहार।

पहली कविता के प्रथम पद में कवि कहता है कि बहार के अंदर की गर्मी ग़ज़ब की आग बरसाने-वाली है, जिसका परिणाम यह होता है कि जिस ओर से आग लगती है, उसको बहार की वायु ले उड़ती है और जुदे-जुदे स्थानों में फैलाती फिरती है, जिसे देखने से प्रतीत होता है कि हर ओर लाली ही लाली छाई हुई है। बहार का क्या ही विचित्र चित्र कवि ने खींचा है। द्वितीय पद में कवि प्रेमिका (माशूक़) को सम्बोधित करके कहता है कि वह क्या है, मानो वह स्वयम् सिर से पैर तक बहार बना हुआ है। पुष्प भी उसे देखकर घमंड करते हैं। किन्तु जब वह अपने माशूक़ की तुलना अपने से करता है तो उसे ज्ञात होता है कि वह तो बहार की सूरत (रूप) से भी परिचित नहीं। तीसरे पद में कवि कहता है कि उसकी आन्तरिक इच्छा है कि वह वाटिका के अन्दर अधिकता से मदिरा का सेवन करता रहे, चाहे उसकी जान भले ही चली जाय, कुछ परवा नहीं; क्योंकि कौन जानता है, फिर बहार आवे या न आवे। चौथे पद में कवि प्रकट करता है कि जब बहार का सौन्दर्य मिट्टी के अन्दर न छिप सका तो वह पृथ्वी के ऊपर लाला और गुलाब के फूल के रूप में प्रकट हो गया। पाँचवाँ पद ग़ज़ब का है, हृदय का खिलना और खिलकर मुरझा जाना बहार का प्रारम्भिक और अन्तिम जीवन प्रकट करता है। छठे पद में 'नज़र' साहब फ़रमाते हैं कि मुद्दत हो चुकी और कवि का दिल बहार से परिचित न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो सका, जब यह दशा है तो संसार में फिर लाला और गुलाब किसलिए खिलते हैं, इनको भी क्षण-भंगुरता देखकर न खिलना चाहिए।

दूसरी कविता देखिए। इस पूरी कविता में बहार का पूरा-पूरा चित्र खींचा गया है। इस कविता में कवि ने प्रकृति की सारी बातों का चित्र पूर्ण सफलता के साथ खींचा है, यानी Picture in poetry का आभास है। किन्तु प्रथम कविता में इस कविता की अपेक्षा कहीं अधिक ज़ोर है। कारण, उसमें कहीं अधिक तग़ज़्ज़ुल की शान पाई जाती है, जिस कला में कवि निपुण है। बन्दिश ग़ज़ब की है। यद्यपि यह बात स्पष्ट है कि दूसरी कविता किसी भी प्रकार से ख़राब नहीं कही जा सकती, फिर भी जब हम दोनों कविताओं की तुलना करते हैं तो पहली कविता कहीं अधिक बढ़ी-चढ़ी देख पड़ती है। देखिए, प्रथम पद में कवि क्या कहता है। चारों ओर घटाएँ घूम-घूम कर छा गईं। ऐसा ज्ञात होता है, मानो वायु ने बहार के सुगंधित केश हर तरफ़ बिखेर दिये हैं। बिजली की कड़क से सारा संसार गूँज उठा। आज धूम के साथ फिर बहार का प्रारम्भ हुआ। बिजली चमक रही है, बादल गरज रहा है और वायु प्रसन्नता तथा आनन्द का बाजा बजा रही है। काले मेघों के अन्दर जब बिजली चमकती है, उस समय कवि को सन्देह होता है कि यह बिजली चमक रही है या कसौटी पर बहार का स्वर्ण चढ़ाया गया है। कितनी अच्छी उपमा है। काले बादलों को कवि ने कसौटी की उपमा दी है और बिजली की चमक को सोने की। पाँचवें पद में कवि कहता है कि बहार ने वृक्षों को फिर नये वस्त्र पहना दिये हैं, ताकि किसी के शरीर के ऊपर फटे वस्त्र न रहें। छठे पद में कवि कहता है कि वाटिका के अन्दर बादल की छींटें हज़रत मसीहा का काम कर रही हैं, और बहार फिर से उनको जिला रही है, जिन्हें गर्मी ने क़त्ल कर दिया था। हज़रत मसीहा का काम ही मुर्दों को जिन्दा करना है। अतः कवि कहता है कि ज्यों ही फुलवाड़ी के अन्दर बादल ने पानी के छींटे दिये, सारी सूखी हुई चीज़ों में जान आ गई। जो चीज़ें पतझड़ के कारण सूख गई थीं, वे फिर हरी हो गईं।

'नज़र' साहब ने नेचुरल कविता के अलावा; इँगलिश कविता का भी उर्दू-पद्यानुवाद किया है। मुझे केवल एक ही कविता अनुवाद की हुई मिली, जिसे देखने से काफ़ी पता चलता है कि कवि इस कला में भी सफल हुआ है। यह कविता लार्ड 'टेनीसन' की कविता का अनुवाद है। मेरे पास आपकी कविताओं का कोई संग्रह नहीं है, नहीं तो मैं आपके अनुवादों के और भी उदाहरण देता। शोक है कि ऐसे महाकवि की रचनाओं का संग्रह आज तक प्रकाशित न हो सका। इसकी उर्दू-साहित्य में बड़ी ज़रूरत है।

टेनीसन की इँगलिश कविता का अनुवाद देखिए। कविता का शीर्षक है 'इश्क़ व मौत'।

इक सुहानी रात को छिटकी हुई थी चाँदनी;
माह कामिल दे रहा था अपनी पूरी रोशनी।
ख़ुल्द के सेहने मोअत्तर में ख़ेरामाँ इश्क़ था;
देखता था हर तरफ़ पड़ती थीं नज़रें जा-बजा।
सामने ही सहन में था यक दरख़्ते पुर बहार;
जिसके नीचे फिर रही थी मौत तनहा बेक़रार।
और यह कहती थी हरदम इश्क़ से करके ख़िताब;
जा यहाँ से, याँ तेरा क्या काम ओ ख़ाना-ख़राब।
यह जगह है दो घड़ी मेरे टहलने के लिए;
लुत्फ़ उठाने के लिए है, जी बहलने के लिए।

× × ×

इश्क़ ने फैलाये पर उड़ने को, और रोकर कहा;
अब तो है तेरा ज़माना जो कहे तू, है बजा।
तेरी हस्ती इस तरह है, जिस तरह से यक शजर;
डालता है धूप के वक़्त अपना साया ख़ाक पर।
बस यों ही इस ग़ैर फ़ानी रोशनी में उम्र भी;
यक शजर है और तू है उसका साया बाक़ई।
लेकिन इस साये को कब मुमकिन है आलम में बक़ा;
जब शजर गिरता है हो जाता है साया भी फ़ना।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

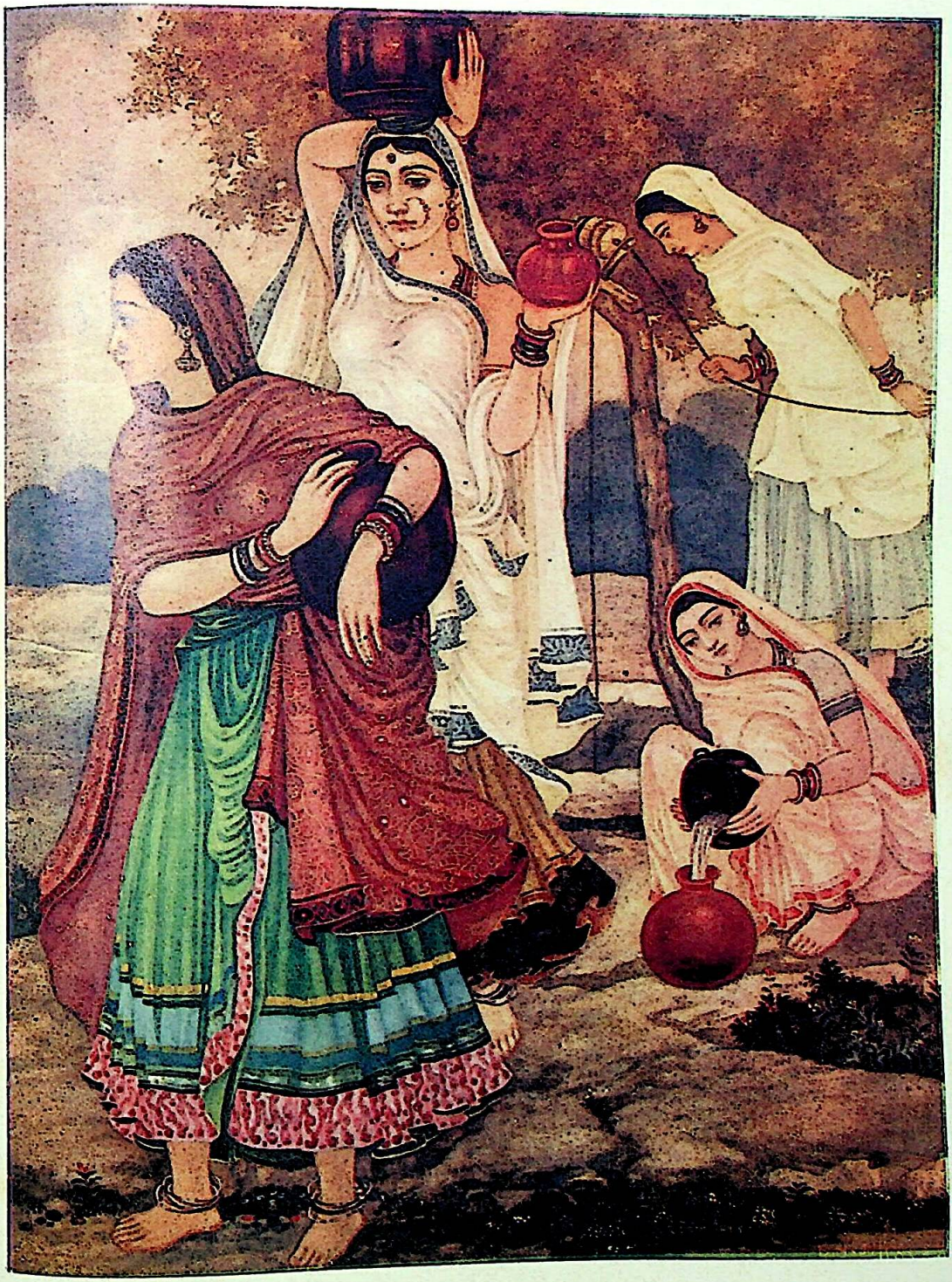

पनिहारिन

[चित्रकार—श्री बी० एन० जिज्जा]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तू फ़ना हो जायगी मुझको बक़ा है बेगुमाँ ;
ताअबद हर चीज़ पर यों ही रहूँगा हुक्मराँ ।

'Love is immortal' वास्तव में प्रेम अमर है। अँगरेज़ी के कई प्रसिद्ध कवियों (जैसे 'शेक्सपियर', 'टेनीसन', 'इस्टीवेन्सन' इत्यादि) ने इस बात का प्रमाण भी दिया है। कुछ हिन्दी और उर्दू-कवियों की भी यही राय है। ऊपर की कविता में प्रेम और मृत्यु के वार्तालाप का वर्णन है। कवि कहता है कि एक सुन्दर रात्रि में, जिस समय चाँदनी छिटकी हुई थी और पूर्णिमा का चाँद अपना पूरा-पूरा प्रकाश दे रहा था, स्वर्गीय सुगन्ध से भरे हुए आँगन में 'प्रेम' धीरे-धीरे टहल रहा था। वह हर ओर देख रहा था और उसकी दृष्टि प्रत्येक स्थान पर पड़ रही थी। सामने ही आँगन में एक वृक्ष बहार से भरा हुआ खड़ा था और उसी के नीचे मृत्यु अकेले और बेचैनी की दशा में इधर-उधर फिर रही थी। वह बार-बार प्रेम को सम्बोधित करके कहती थी कि तू यहाँ से चला जा। तेरा यहाँ क्या काम है, यह स्थान थोड़ी देर टहलने के लिए है, ताकि मैं यहाँ पर अपना जी बहलाऊँ एवम् आनन्द उठाऊँ।

यह सुनकर प्रेम ने उड़ने के लिए अपने पर फैलाये और रोकर कहा कि अब तेरा ज़माना है, जो भी तू कहे ठीक है। तेरा जीवन एक वृक्ष की तरह है, जैसे वृक्ष धूप के समय अपना साया मिट्टी पर डालता है, बस इसी प्रकार इस न मिटनेवाले प्रकाश में आयु भी एक वृक्ष है और तू उसका वास्तविक साया है। किन्तु यह साया संसार में सदा रहनेवाला नहीं होता, जिस प्रकार कि पेड़ के गिरने से उसकी छाया का भी अन्त हो जाता है, उसी प्रकार ऐ मौत, तू मिट जायगी और मैं यथार्थ में बना रहूँगा। जब तक संसार क़ायम रहेगा, मैं प्रत्येक वस्तु पर हुकूमत करता रहूँगा।

कितने रोचक पद हैं; कितना सरल और सफल अनुवाद है! इस अनुवाद का महत्त्व केवल हम उसी समय समझ सकते हैं, जब 'टेनीसन' की कविता और इस अनुवाद का साथ-साथ अध्ययन करें।

बस, इस बार इतना ही। अगली संख्या में फिर लिखूँगा।

ज़रा समझ से काम लो
सभी विज्ञापन और विज्ञापनदाता झूठे नहीं होते

महारानी पाक

संतान को तरसनेवाली बहिनो, विश्वास करो, सभी को झूठा मत समझो। महारानी पाक मँगाकर केवल १५ दिन सेवन करो, शर्तिया संतान होगी। मूल्य मय डाक-ख़र्च ५॥) .

स चा ई

इस पाक से बाँझ को भी संतान शर्तिया होगी, पर कोई गुप्तरोग स्त्री को न हो। अगर मासिक धर्म की ख़राबी, गुप्त जगह से लाल, पीला, सफ़ेद पानी-सा गिरना रोग है तो रोग का पूरा हाल मुझे लिखकर इलाज करा लें। गुप्तरोग आराम हो जाने पर महारानी पाक सेवन करें, शर्तिया संतान होगी।

पता—श्रीमती चपलादेवी वैद्या
चपला भवन, गली रावलिया, मथुरा.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भवाली-सेनेटोरियम और उसके निरीक्षक डाक्टर वाई. जी. श्रीखण्डे

श्री० 'कृष्ण' एम्० ए०

जन-कोलाहल से दूर ; ज़िला नैनीताल के प्रशान्त पार्वतीय प्रदेश में क्षय-रोगियों की सम्यक् चिकित्सा के लिए एक स्वास्थ्य-आश्रम बना हुआ है, जहाँ असंख्य रोगी हृदय में निराशा की पीड़ा छिपाये प्रतिवर्ष जाते हैं और अन्ततः काल के कराल गाल से बचकर एक नये जीवन, एक नई स्फूर्ति का अनुभव करते हुए अपने-अपने घर लौट आते हैं। यह आश्रम समुद्र-तल से ६००० फ़ीट की उँचाई पर भवाली नगर से केवल एक मील की दूरी पर है। सम्राट् एडवर्ड सप्तम की स्मृति में बनाये जाने के कारण इसका वास्तविक नाम 'किंग एडवर्ड सेविन्थ सेनेटोरियम' है। यद्यपि सभी व्यावहारिक कार्यों के लिए इसे संक्षेप में भवाली-सेनेटोरियम ही कहते हैं।

स्थापना

भवाली-सेनेटोरियम की स्थापना सन् १९१२ ई० में हुई, जब संयुक्त-प्रान्त के प्रमुख निवासियों ने अभागे क्षय-पीड़ितों के करुण क्रन्दन से दुःखी होकर एक स्वास्थ्य-आश्रम की अनिवार्यता का अनुभव किया और रामपुर के स्वर्गीय नवाब साहब ने भवाली के निकट अपनी २२५ एकड़ भूमि इस पुण्य-कार्य के लिए अर्पित की। उस समय जार्ज पंचम भारतवर्ष के सम्राट् बन चुके थे। उनके पिता स्वर्गीय सम्राट् एडवर्ड ने अपने जीवन-काल में क्षय-रोग के निवारण के लिए बड़ा अदम्य उत्साह दिखाया था। इसीलिए भवाली-सेनेटोरियम उनका स्मारक माना गया।

प्राकृतिक वातावरण

लम्बे-लम्बे, गगन को छूने की स्पर्धा रखनेवाले चीड़ की सघन छाया में बसा हुआ सेनेटोरियम स्वास्थ्य और दृश्य के विचार से बड़ा ही प्रिय प्रतीत होता है। आसपास अनेक पहाड़ी झरने छोटे-छोटे उपल-अंशों से खेलते हुए निरंतर मर्मर स्वर से बहते रहते हैं। स्वच्छ-शीतल समीरण दिन-रात हँस-हँसकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति से अठखेलियाँ खेलता रहता है। धूल और धुएँ का नाम नहीं होता। गर्मी चेरी की भाँति हाथ जोड़े खड़ी रहती है। बीच-बीच में, रह-रहकर हल्की-हल्की फुहारें चारों ओर फैली हुई हरियाली को सजीव बनाती रहती हैं। आँखों पर, हृदय पर, आत्मा पर इस सुखपूर्ण वातावरण का बड़ा ही कल्याणप्रद प्रभाव

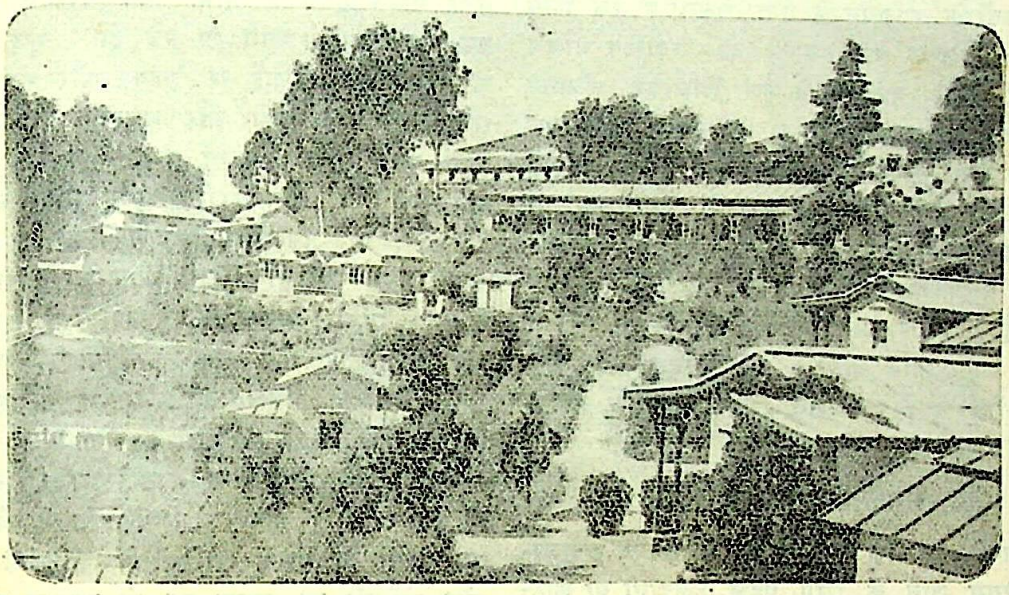

उत्तर दिशा से लिया गया सेनेटोरियम का चित्र

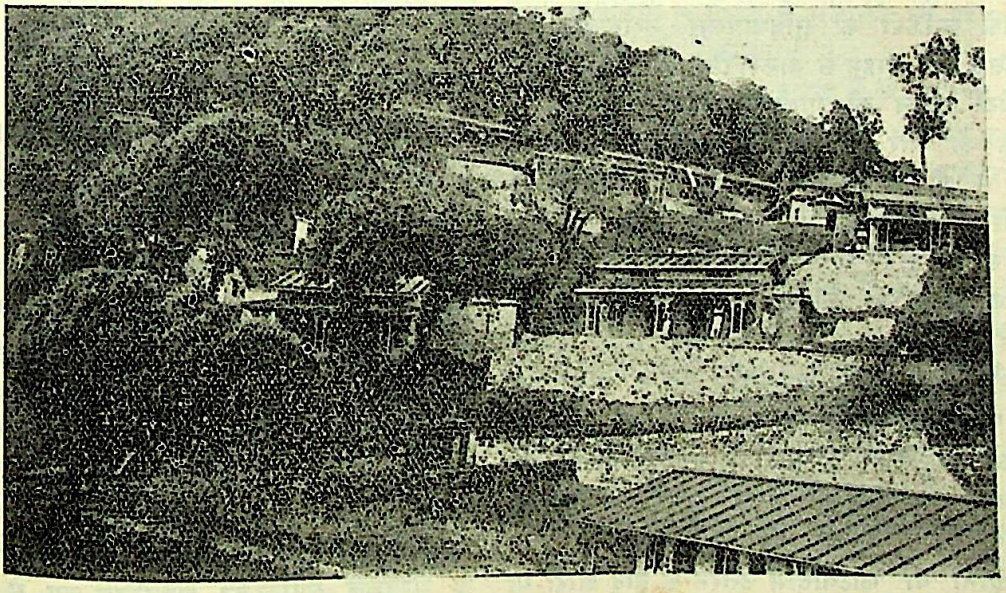

दक्षिण दिशा से लिया गया सेनेटोरियम का चित्र

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

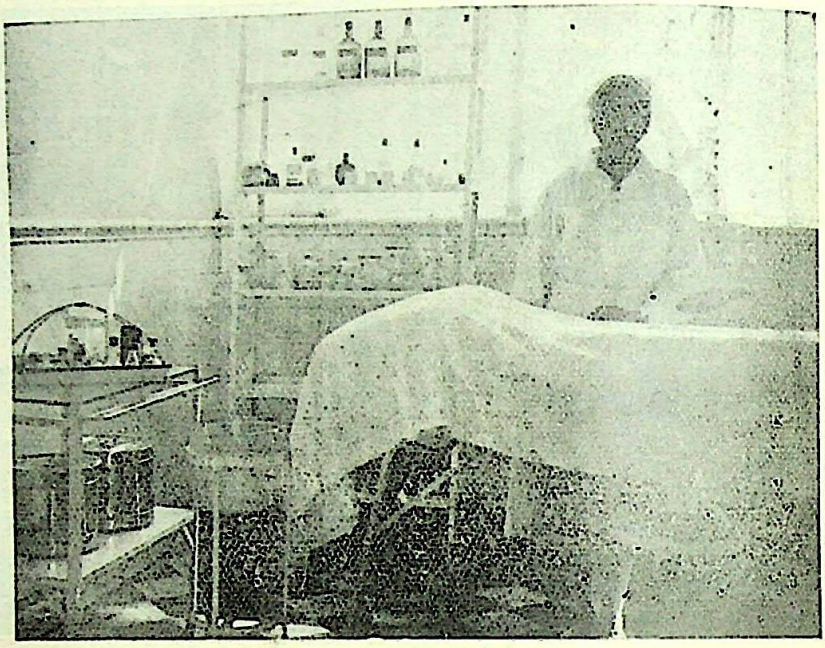

आपरेशन रूम

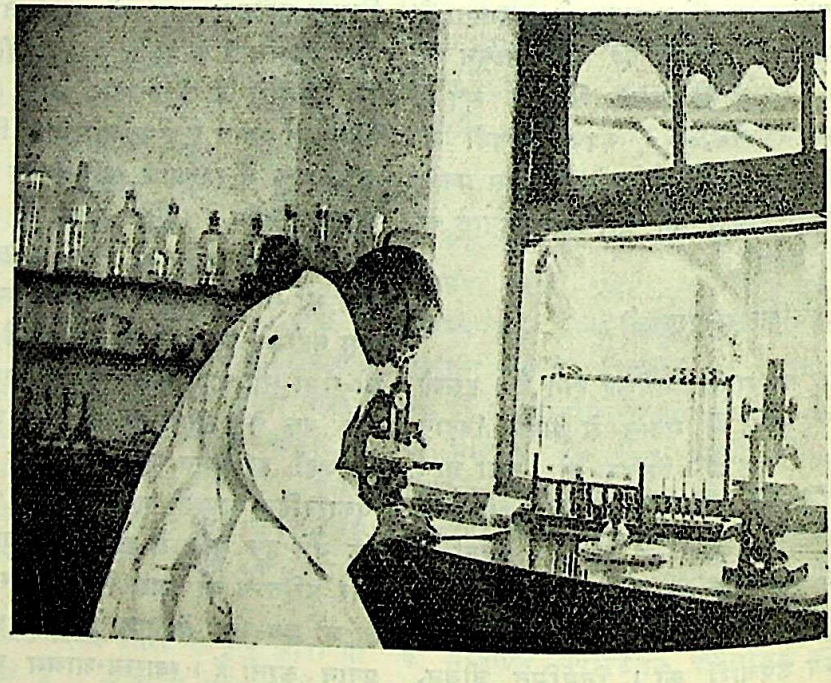

लैबोरेटरी रूम

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बहुत बड़े शत्रु पर विजय प्राप्त करना सरल हो जाता है।

भवाली-सेनेटोरियम भी एक ऐसा ही स्थान है, जहाँ से क्षय-रोग के महान् दुर्ग पर आक्रमण करना अधिक सरल और सुविधा-जनक है। विश्राम और स्वच्छ वायु-सेवन का ही सिद्धान्त यहाँ भी सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यहाँ की वायु तो मानों एक ईश्वरीय वरदान है। जाड़ा हो, चाहे गर्मी, चाहे बरसात; दिन हो, रात हो, दोपहर हो, हर स्थिति में, हर दशा में निर्मल विकारहीन वायु शरीर के रोम-रोम में स्वास्थ्य की लहर पहुँचाती रहती है। इस बात की तो क्षणमात्र को भी आशंका नहीं होने पाती कि प्रकृति के इस स्वतंत्र उपहार द्वारा रोगी के शरीर में कोई प्राणघातक जन्तु अथवा पदार्थ अदृश्य रूप से प्रवेश कर रहा है।

रोगियों को पूर्ण रूप से शारीरिक और मानसिक विश्राम पहुँचाना सेनेटोरियम का एक मुख्य कार्यक्रम है। आश्रम का हरएक व्यक्ति इस बात का निरन्तर प्रयत्न करता रहता है कि रोगी के हृदय पर चिन्ता की छाया तक न पड़ने पावे। निश्चित समय पर सादा, स्वस्थकर और पुष्टिदायक भोजन करने का उपदेश दिया जाता है, निश्चित समय पर सोने, जागने, टहलने और खेलने की आज्ञा मिलती है। समष्टि में, निश्चित समय पर ही समस्त दिनचर्या पूरी करनी पड़ती है। सुयोग्य डाक्टर दिन-रात रोगी की अवस्था का अध्ययन करते रहते हैं, नर्सें उनकी सेवा में ही अपने जीवन की सार्थकता समझती हैं।

एक मरीज़ का वज़न लिया जा रहा है

रोगियों के स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी उपचारों में काफ़ी सतर्कता बर्ती जाती है। प्रत्येक सेवक-सेविका तथा डाक्टर के हृदय में सदा यही लगन लगी रहती है कि रोगी शीघ्र से शीघ्र अपनी प्राण-घातक व्याधि से मुक्त होकर सुख और चैन के साथ पारिवारिक जीवन व्यतीत करने के योग्य बने। वहाँ का वातावरण रोगियों के लिए वस्तुतः कितना उत्साहजनक होगा उपर्युक्त बातों से यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

उपर्युक्त आवश्यक उपचारों के साथ-साथ सेनेटोरियम में रोगी की अवस्था के अनुसार ओषधियों का भी प्रयोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किया जाता है। क्षय की परीक्षा और चिकित्सा के लिए वहाँ आधुनिक से आधुनिक वैज्ञानिक यंत्रों का प्रबन्ध किया गया है। 'एक्सरे' इत्यादि द्वारा विस्तृत रूप से परीक्षा करने के उपरान्त रोगियों को प्रयोजनीय उत्तम से उत्तम और बहुमूल्य से बहुमूल्य औषधियाँ दी जाती हैं। सारांश यह है कि वहाँ क्षय-जैसे सांघातिक रोग को दमन करने के लिए जो भी उपचार संभव है, किया जाता है।

मनोरंजन

अनुभवी चिकित्सकों का कहना है कि रोगी के मस्तिष्क पर उसकी अवस्था का अनिवार्य मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। रोग जितनी ही अपने रोग की भयंकरता पर विचार करता है, जितना ही वह अपने दिन-प्रतिदिन के बढ़ते हुए कष्ट की चिन्ता में घुलता है, उतनी ही उसकी व्याकुलता बढ़ती है, उसके हृदय में नैराश्य की जड़ जमती है और उतना ही उसके स्वास्थ्य का ह्रास होता जाता है। इसके विपरीत रोगी के चित्त को रोग की ओर से हटा दीजिए, उसकी आधी पीड़ा उसी समय दूर हो जायगी। इसलिए चिकित्सा को सफल बनाने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि रोगी को अपने रोग का अनुभव न होने दिया जाय। भवाली-सेनेटोरियम में इस बात पर विशेष रूप से ध्यान दिया जाता है। चिकित्सक-वर्ग सदैव इस बात की चेष्टा करते रहते हैं कि रोगियों के हृदय में आशा की झलक पहुँचती रहे और भाँति-भाँति के खेल-कूद में उनका जी बहला रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सेनेटोरियम में एक छोटा-सा पुस्तकालय बना हुआ है, जिसमें अँग्रेज़ी, हिन्दी, उर्दू और बँगला की पुस्तकों का बड़ा ही सुन्दर संग्रह है और जहाँ देश-विदेश के अनेकानेक ज्ञानवर्द्धक एवं मनोरंजक पत्र-पत्रिकादि मँगाये जाते हैं। 'स्टेट्समेन', 'पायनियर', 'इलस्ट्रेटेड वीकली', 'हिन्दुस्तान टाइम्स' और 'नेशनल हेराल्ड'-जैसे पत्रों के सम्पादक तो अपने-अपने पत्रों की एक-एक प्रति मुफ़्त भेजने की कृपा करते हैं। इनके अतिरिक्त होरलिक्स कम्पनी की ओर से 'स्फ़ीयर', 'स्ट्रैण्ड' और 'टिटबिट्स' नाम के विदेशी पत्र भी अमूल्य ही प्राप्त होते हैं। सेनेटोरियम

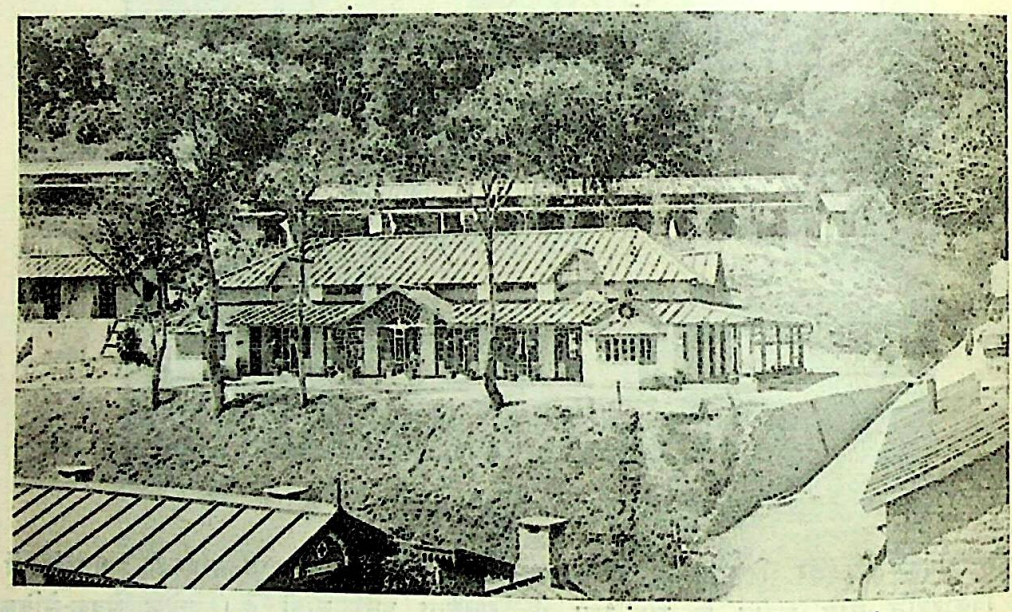

मनोरंजन-गृह (पुरुषों के लिए)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

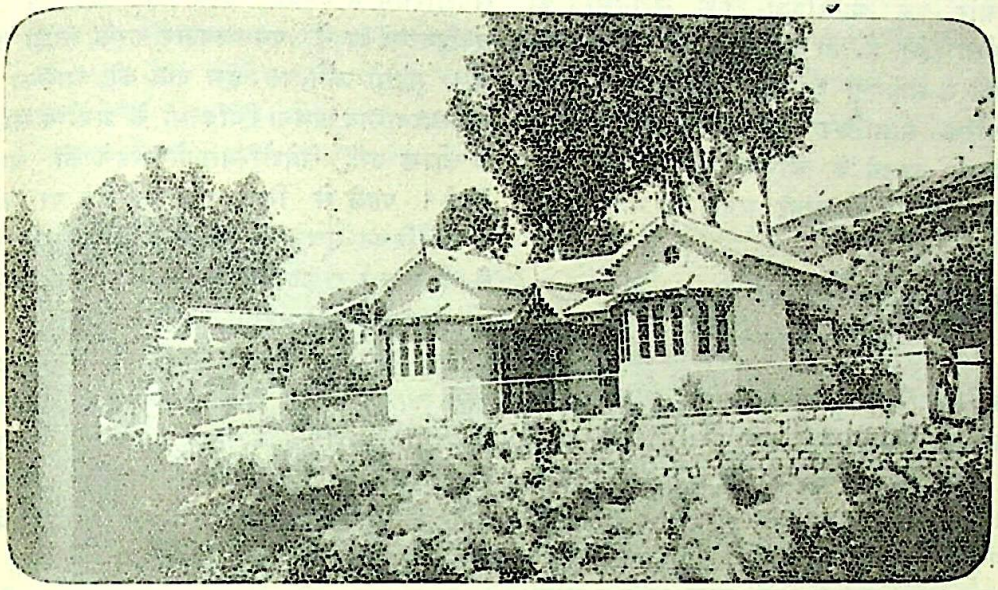

मनोरंजन-गृह (स्त्रियों के लिए)

की ओर से हिन्दी में 'अर्जुन', 'माधुरी', 'चाँद' और 'कल्याण'; उर्दू में 'मदीना', 'निगार' और 'हुमायूँ' तथा अँग्रेज़ी में 'लीडर' (दैनिक) 'माडर्न रिव्यू' इत्यादि मँगाये जाते हैं। पत्र-पत्रिकाओं का चुनाव भिन्न-भिन्न रुचि की दृष्टि से किया जाता है, ताकि सभी रोगियों को अपनी इच्छा के अनुसार पाठ्य-सामग्री मिल सके।

पुस्तकालय के अतिरिक्त रोगियों के मन-बहलाव के लिए कई और साधन भी हैं। रोगियों की अवस्था के अनुसार उनसे कई प्रकार के खेल-कूद कराये जाते हैं; जैसे कैरम, क्रोके इत्यादि। एक छोटी-सी सिनेमा की मशीन है, जिससे सुन्दर-सुन्दर, उपयोगी और शिक्षाप्रद चल-चित्र दिखाये जाते हैं। रेडियो और ग्रामोफ़ोन से रोगियों का विशेष रूप से मनोरंजन होता है। समय-समय पर प्रतियोगिताओं और धार्मिक उत्सवों इत्यादि का भी प्रबन्ध किया जाता है। सन् १९२८ ई० में जन्माष्टमी और दिवाली के शुभ अवसरों पर बड़ा समारोह मनाया गया और २३ अक्टूबर को मुसलमान रोगियों ने भी पीर-दिवस मनाया, जिसमें हिन्दू रोगियों ने समान उत्साह और उमंग के साथ भाग लिया। इसी प्रकार समय-समय पर नाटक खेले गये, फ़ैंसी ड्रेस इत्यादि की प्रतियोगिताएँ की गईं और मुशायरा तथा कवि-सम्मेलन का भी आयोजन किया गया। इन बातों से यह स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि भवाली-सेनेटोरियम में रोगियों को प्रसन्न तथा चिन्तामुक्त रखने के लिए तथा वहाँ के वातावरण को जीवन और उमंग से परिपूर्ण बनाये

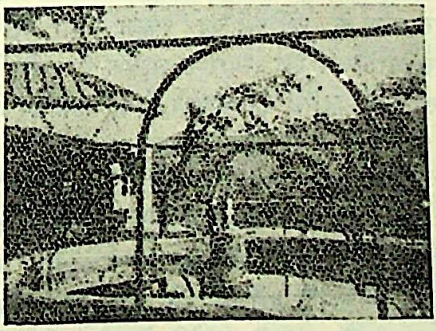

दफ़्तर के सामने का फ़व्वारा

रखने के हेतु अधिकारी-वर्ग निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। अपने सम्बन्धियों से दूर रहते हुए भी रोगियों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को हर ओर एक आत्मीयता, एक सहानुभूति का अनुभव होता रहता है, जो उन्हें सुखी और क्रियाशील बनाये रखने में सहायता देती है। स्त्रियों और पुरुषों की पारस्परिक सामाजिक स्वतंत्रता में किसी प्रकार की बाधा न डालने के अभिप्राय से उनके लिए अलग-अलग दो बड़े ही सुन्दर मनोरंजक भवन बनाये गये हैं।

सेनेटोरियम में कैसे और कितने रोगी रक्खे जा सकते हैं

भवाली-सेनेटोरियम विशेष रूप से संयुक्त-प्रांत के क्षय-रोगियों के लिए बनाया गया है। फिर भी स्थान बचने पर दूसरे प्रांतों के रोगियों को भी आश्रय दिया जाता है। ऐसा करते समय प्रार्थनापत्रों के प्राप्ति-क्रम का ही विशेष रूप से ध्यान रक्खा जाता है। जिन रोगियों के प्रार्थनापत्र पहले आते हैं, उन्हें पहले स्थान मिलता है और जिनके बाद में आते हैं, उन्हें बाद में। रोगियों की जाति अथवा धर्म इत्यादि में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाता। रोगी स्त्री हो या पुरुष, हिन्दू हो या मुसलमान, या किसी और धर्म का अवलम्बी, उसे उसके क्रम के अनुसार स्थान दिया जाता है।

इस बात का कोई निश्चित नियम नहीं है कि सेनेटोरियम में प्रवेश करनेवाले रोगियों की अवस्था पूर्णतः निराशाजनक न हो। फिर भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि सेनेटोरियम कोई अस्पताल नहीं है, जहाँ हर तरह के रोगियों का रक्खा जाना अनिवार्य हो। सेनेटोरियम एक स्वास्थ्य-आश्रम है और वहाँ अधिकतः उन्हीं लोगों को आश्रय दिया जाता है, जिनके नीरोग होने की थोड़ी-बहुत सम्भावना होती है। जिन रोगियों की अवस्था अत्यधिक हीन हो जाती है और जिनके स्वस्थ होने की लेशमात्र भी आशा नहीं होती, उन्हें आश्रम में रखना लाभप्रद नहीं होता, अपितु इससे अन्य साधारण रोगियों को क्षति पहुँचने की ही आशंका रहती है। इसलिए रोगियों को चाहिए कि वे अपने रोग की प्रारंभिक दशा में ही सेनेटोरियम चले जावें। इसमें उनकी भलाई भी अधिक है।

रोगियों के लिए यह भी नितांत आवश्यक है कि सेनेटोरियम में प्रवेश करने से पहले वे मेडिकल सुपरिण्टेण्डेण्ट से पत्र-व्यवहार करके आज्ञा प्राप्त कर लें। सहसा जाने पर इस बात की आशंका रहती है कि स्थानाभाव अथवा चिकित्सा के अयोग्य समझे जाने के कारण उन्हें सेनेटोरियम में रहने की अनुमति न मिले। पहले से लिखा-पढ़ी कर लेने पर और जाने की निश्चित सूचना दे देने से डाँडी इत्यादि का पहले से ही प्रबन्ध हो जाता है और रोगियों को किसी प्रकार की असुविधा नहीं उठानी पड़ती।

इस समय सेनेटोरियम में कुल मिलाकर १५० रोगी रक्खे जा सकते हैं। सन् १९३८ ई० से पहले वहाँ केवल १४२ रोगियों के लिए स्थान था। परन्तु पिछले साल सर जे० पी० श्रीवास्तव महोदय ने अपनी बड़ी कन्या के विवाहोपलक्ष में छः स्त्री रोगियों के लिए कमरे अपने ख़र्चे से बनवा दिये हैं। दो अन्य रोगियों के रहने का यथोचित प्रबन्ध किया गया है। इस प्रकार अब सेनेटोरियम में १५० रोगी साथ-साथ रहकर चिकित्सा करा सकते हैं।

रोगियों के क्वार्टर और उनका किराया इत्यादि

रोगियों के ठहरने के लिए सेनेटोरियम में चार श्रेणी के क्वार्टर हैं। प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के क्वार्टरों में रहनेवाले रोगियों को प्रतिमास एक निश्चित किराया देना पड़ता है और अपने भोजन का स्वयं प्रबन्ध करना पड़ता है। भोजन की सभी आवश्यक सामग्री सेनेटोरियम में ही मिल जाती है। दूध इत्यादि के लिए दुकानें खुली हुई हैं। रोगियों के लिए यह अनिवार्य है कि वे ये सभी वस्तुएँ इन्हीं दुकानों से ख़रीदें।

चतुर्थ श्रेणी के क्वार्टरों में रहनेवाले रोगियों से किराया नहीं लिया जाता। किन्तु उनके लिए यह आवश्यक है कि वे अपनी सामर्थ्य के अनुसार सेनेटोरियम की श्रीवृद्धि के लिए कुछ आर्थिक सहायता दें। उनके भोजन का प्रबन्ध भी सेनेटोरियम की ओर से ही होता है। लेकिन उन्हें अपनी आर्थिक अयोग्यता के लिए किसी उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्ति का प्रमाण-पत्र देना पड़ता है। क्वार्टरों के सम्बन्ध में शेष बातें नीचे दी जाती हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(क) प्रथम श्रेणी के निवास-स्थान

प्रथम श्रेणी के निवास-स्थान पृथक्-पृथक् कुटियों के रूप में बने हुए हैं। प्रत्येक कुटी में दो कमरे, एक भोजनालय, एक स्नानगृह और एक पाख़ाना होता है। इनका किराया संयुक्त-प्रान्त के निवासियों के लिए ८०) रुपया प्रति मास और दूसरे प्रान्त के निवासियों के लिए १२०) रुपया प्रति मास है। रोगियों की देखभाल के लिए दो व्यक्ति रह सकते हैं—चाहे वे स्त्री हों या पुरुष। साथ में दो नौकर भी रक्खे जा सकते हैं।

(ख) द्वितीय श्रेणी के निवास-स्थान

द्वितीय श्रेणी के निवास-स्थान दो प्रकार के होते हैं—एक तो पृथक्-पृथक् कुटियों के रूप में, दूसरे क्वार्टरों के रूप में। कुटियों का किराया संयुक्त-प्रान्त के निवासियों के लिए ४५) रुपया प्रति मास और दूसरे प्रान्त के निवासियों के लिए ६५) रुपया प्रति मास है। क्वार्टरों का किराया क्रमशः ४०) और ६०) रुपया प्रति मास है। प्रत्येक कुटी या क्वार्टर में एक कमरा, एक स्नानगृह, एक भोजनालय और एक पाख़ाना होता है। साथ में रोगी की देखभाल करने के लिए एक पुरुष या एक स्त्री रह सकती है। एक नौकर भी रह सकता है।

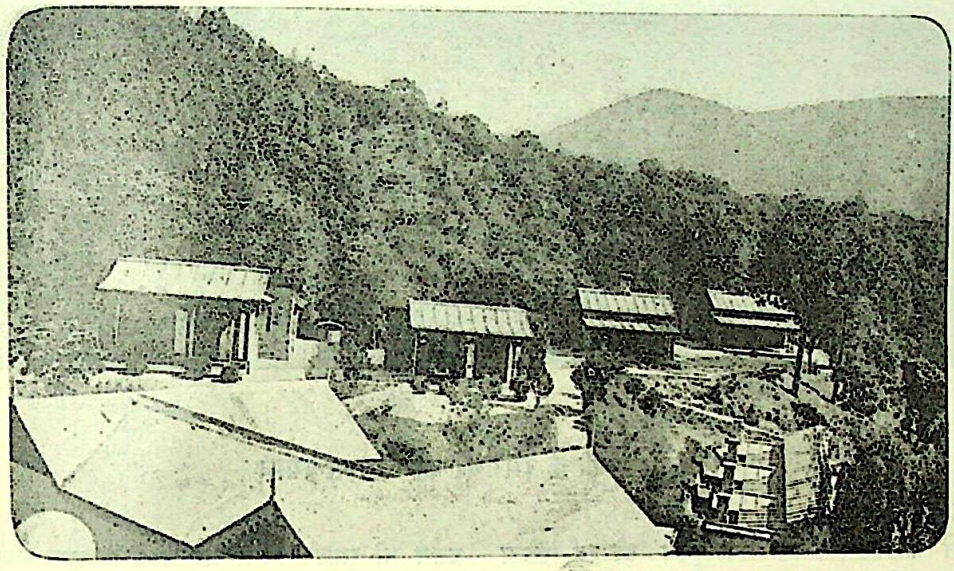

प्रथम और द्वितीय श्रेणी के रोगियों का निवास-स्थान

(ग) तृतीय श्रेणी के निवास-स्थान

तृतीय श्रेणी के निवास-स्थान एक साथ मिले हुए हैं; अलग-अलग कुटियों के रूप में नहीं हैं। उनमें पुरुषों और स्त्रियों के रहने का प्रबन्ध पृथक्-पृथक् है। स्त्रियों के विभाग में प्रत्येक स्त्री के लिए एक कमरा, एक भोजनालय, एक स्नानगृह और एक पाख़ाना मिलता है। पुरुषों के विभाग में कमरा तो प्रत्येक पुरुष के लिए अलग होता है, परन्तु पाख़ाना, स्नानगृह और भोजनालय दो रोगियों के लिए एक-एक होता है। किराया दोनों विभागों का समान है। यू० पी० निवासियों के लिए २०) रुपया प्रति मास और दूसरे प्रान्तों के व्यक्तियों के लिए ३०) रुपया प्रति मास। स्त्रियों की देखभाल करने के लिए एक स्त्री या एक पुरुष रह सकता है, लेकिन पुरुषों की देख-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

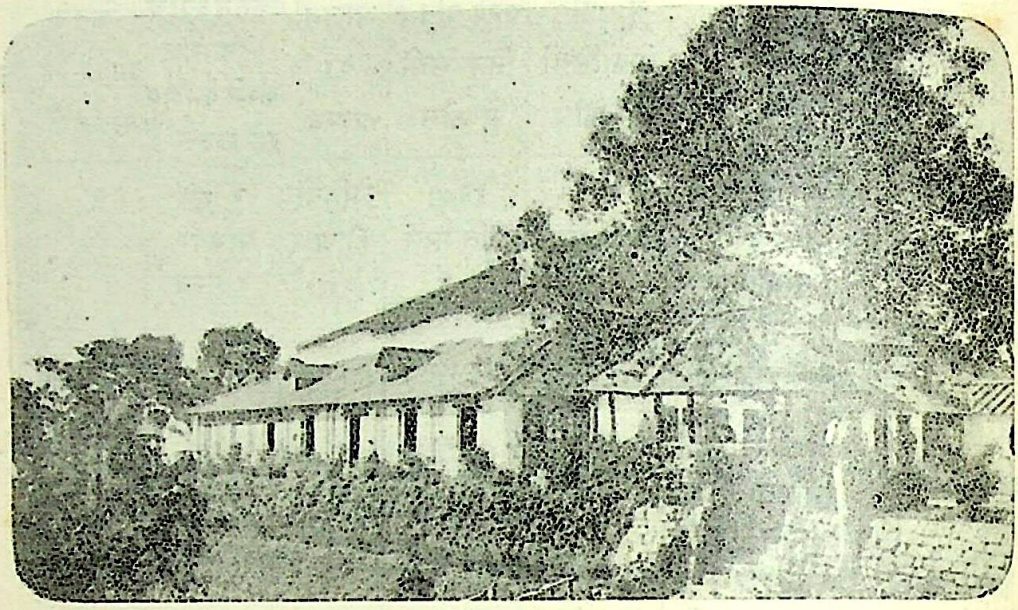

विशेष श्रेणी के रोगियों का निवास-स्थान

अफ़सरों और सिपाहियों के लिए रेडक्रास की ओर से अलग व्यवस्था है। इन क्वार्टरों के लिए किराया नहीं देना पड़ता। अफ़सरों को भोजन का प्रबन्ध स्वयं करना पड़ता है; परन्तु सिपाहियों को सेनेटोरियम की ओर से भोजन मिलता है। दूसरे प्रान्त के रोगी इस श्रेणी के क्वार्टरों में नहीं रक्खे जाते।

विशेष श्रेणी और रेडक्रास के निवास-स्थानों में क्रमशः १६ और १० रोगियों के लिए व्यवस्था है।

अकस्मात् आनेवाले रोगियों के ठहरने की जगह

बहुधा ऐसा होता है कि अनेकानेक रोगी सेनेटोरियम के अधिकारियों से पत्रव्यवहार किये बग़ैर ही स्वास्थ्य-आश्रम में स्थान पाने की आशा से अकस्मात् चले जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों को सेनेटोरियम के क्वार्टरों में स्थान नहीं मिल सकता। इसलिए उनकी सुविधा के लिए सेनेटोरियम की ही भूमि में एक विश्राम-भवन बना हुआ है, जहाँ इस प्रकार जानेवाले रोगी एक सप्ताह तक आठ आना प्रति दिवस किराया देकर ठहर सकते हैं। साथ रहनेवाले व्यक्तियों को भी चार आना प्रति दिवस देना पड़ता है। यहाँ ठहरनेवाले रोगियों के लिए यह आवश्यक है कि वे एक सप्ताह के भीतर ही भीतर अपने रहने के लिए कहीं और प्रबन्ध कर लें, ताकि उन्हीं की तरह अकस्मात् जानेवाले दूसरे रोगियों को स्थानाभाव के कारण कष्ट न उठाना पड़े। ऐसे रोगियों के लिए भवाली शहर में भी एक विश्राम-भवन है, जहाँ सेनेटोरियम की तरह से सब आवश्यक व्यवस्थाएँ की जाती हैं। रोगियों के लिए अधिक सुविधाजनक यही है कि वे पहले उपर्युक्त दो विश्राम-भवनों में जाकर टिकें और फिर ठीक से देखभाल करके कहीं और प्रबन्ध कर लें।

नौकरों इत्यादि के लिए कुछ आवश्यक नियम

(अ) देखभाल करनेवाले व्यक्ति

क्षय एक संक्रामक रोग है। अतएव यह नितान्त आवश्यक है कि यथासम्भव रोगी और स्वस्थ व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में न आने पावें। रोगियों को चाहिए कि वे अपनी देखभाल के लिए अपने साथ उतने ही व्यक्ति ले जावें जितने अनिवार्य हों, या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

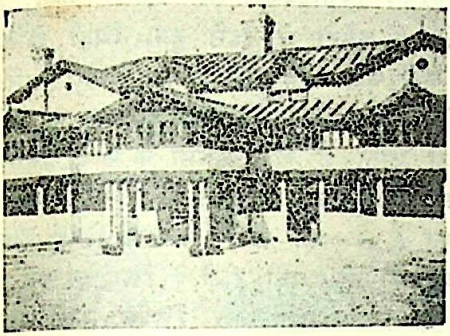

एड्मिन्सट्रेटिव बिल्डिंग

जितने सेनेटोरियम के नियमानुसार ले जाये जा सकते हैं। जो रोगी अपने साथ अधिक व्यक्ति ले जाते हैं या जिनके पास बाल-बच्चे होते हैं, उन्हें सेनेटोरियम में स्थान नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त वहाँ के सुपरिंटेंडेंट को यह निर्णय करने का अधिकार है कि किस रोगी के साथ देखभाल करनेवाले व्यक्ति की आवश्यकता है और किसके साथ नहीं। प्रथम श्रेणी के क्वार्टरों में रहनेवाले रोगियों को तो इस बात की पूर्ण स्वतंत्रता है कि वे चाहें तो अपनी देखभाल के लिए दो स्त्री या पुरुष रख लें। परन्तु अन्य श्रेणी के क्वार्टरों में रहनेवाले रोगियों के सम्बन्ध में सुपरिंटेंडेंट को अधिकार है कि यदि वह देखभाल करनेवाले व्यक्ति की आवश्यकता न समझे, तो उन्हें रहने की अनुमति न दे। सच तो यह है कि एक ही कमरे में, रोगी और उसके देखभाल करनेवाले व्यक्ति, दोनों का रहना अच्छा नहीं। यह भी आवश्यक है कि देखभाल करनेवाले व्यक्तियों की आयु १६ वर्ष से कम न हो।

(आ) नौकर

सेनेटोरियम की ओर से कुछ विशेष व्यक्तियों को सेनेटोरियम में नौकरी करने का लाइसेंस मिलता है। रोगी चाहें तो इन्हें नौकर रख सकते हैं, परन्तु सेनेटोरियम पर इन नौकरों की ईमानदारी का कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। इसलिए ज़्यादा अच्छा यही होता है कि रोगी अपने नौकर अपने साथ लेकर जायँ। सेनेटोरियम के लाइसेंसदार नौकर साधारणतः १२ से १४ रुपया प्रति मास तक वेतन लेते हैं।

(इ) सम्बन्धी इत्यादि

रोगियों से मिलने जानेवाले सम्बन्धियों तथा अन्य व्यक्तियों की सुविधा के लिए भी सेनेटोरियम में अनेक छोटे-छोटे स्थान बने हुए हैं। वहाँ ठहरने के लिए बारह आना प्रति दिवस, प्रति व्यक्ति देना पड़ता है। इसके अतिरिक्त एक बड़ा ही सुन्दर और आरामदेह अतिथि-भवन भी बना हुआ है, जहाँ आगन्तुक डेढ़ रुपया प्रति दिवस देकर पूर्ण सुविधा के साथ रह सकते हैं। मूल्य देने पर सेनेटोरियम की ओर से भोजन का भी प्रबन्ध हो जाता है।

सेनेटोरियम में कितने दिन तक रहना आवश्यक है

यथेष्ट चिकित्सा और स्थायी लाभ के लिए सेनेटोरियम में कम से कम तीन मास तक रहना आवश्यक है। वहाँ कोई जादू तो होता नहीं, जो रोगी जायँ और मंत्र का फूँका हुआ डंडा सिर पर घुमवाकर वापस चले आवें। वहाँ तो एक नियमित कार्य-क्रम के अनुसार चिकित्सा होती है और उस कार्य-क्रम के पूरा होने में पर्याप्त समय लगता है। क्षय-जैसे विकट रोग को रोकने के लिए तीन महीने की अवधि होती ही कितनी है? फिर भी सेनेटोरियम के अनुकूल वातावरण के कारण रोगियों को इतने समय में भी पर्याप्त लाभ हो जाता है, और इसके उपरान्त वे चाहें तो सेनेटोरियम छोड़ सकते हैं। परन्तु जो लोग इस नियमित कार्य-क्रम के पूर्ण होने से पहले ही चिकित्सक की अनुमति के विरुद्ध वापस चले आते हैं, उन्हें स्थायी लाभ नहीं होने पाता और उनका सेनेटोरियम में जाना न जाना बराबर हो जाता है। तीन महीने का पूरा किराया तो उन्हें देना ही पड़ता है। इसलिए सेनेटोरियम में प्रवेश करने से पहले वहाँ कम से कम तीन महीने तक रहने का दृढ़ निश्चय कर लेना चाहिए।

कुछ विचारणीय आँकड़े

सेनेटोरियम की सन् १९३८ ई० की मेडिकल रिपोर्ट को देखने से पता चलता है कि इस वर्ष

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेनेटोरियम में २४२ रोगी दाखिल किये गये। ३२ रोगी पिछले साल से रहे थे। इस प्रकार १९३८ ई० में, सेनेटोरियम में, कुल मिलाकर २७४ रोगियों की चिकित्सा की गई। उनमें से २०३ रोगियों को वर्ष के अन्त तक समतल लौटने की आज्ञा मिली। इन रोगियों का प्रान्तीय विवरण इस प्रकार है—

आसाम	....	....	४
बिहार	....	....	५
बंगाल	....	....	१६
बर्मा	....	....	१
मध्यभारत	....	....	१
मध्यप्रांत	....	....	१०
दिल्ली	....	....	२
नैपाल	....	....	१
उड़ीसा	....	....	२
पंजाब	....	....	४
राजपूताना	....	....	५
सिंध	....	....	१
संयुक्त-प्रांत	....	....	१५१
		कुल	२०३

इन आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि भवाली-सेनेटोरियम में केवल संयुक्त-प्रांत से ही नहीं, प्रत्युत भारतवर्ष के अन्यान्य प्रांतों से भी पर्याप्त संख्या में रोगी जाते हैं। यू० पी० के १५१ रोगियों में से सबसे अधिक प्रयाग, कानपुर, गढ़वाल और लखनऊ के रोगी थे।

रोगियों को उनके पेशों के अनुसार विभाजित करने से पता चलता है कि अधिकतः विद्यार्थी, गृहिणियाँ और क्लर्क ही इस रोग के शिकार बनते हैं। जहाँ अन्य श्रेणियों के व्यक्तियों की संख्या बहुत ही कम है, वहाँ क्लर्कों की संख्या १७, छात्रों की ३२ और गृहिणियों की ३६ है। अपने कई वर्षों के अनुभव के आधार पर सेनेटोरियम के सुपरिंटेंडेंट ने भी अपनी रिपोर्ट में इसी सत्य का समर्थन किया है। कारण स्पष्ट है। भारतवर्ष एक निर्धन देश है। यहाँ के छात्रों को इतनी आर्थिक सुविधा नहीं मिलती कि वे सुख-पूर्वक रहकर विद्याध्ययन कर सकें। गन्दे, टूटे-फूटे मकानों या कमरों में रहते हुए, मिट्टी के तेल की दुर्गन्ध और धुआँ देनेवाली लालटेनों के आगे गर्दन नीचे किये हुए पढ़ते-पढ़ते उनके स्वास्थ्य का शीघ्र ही ह्रास हो जाता है और यक्ष्मा के कीड़े अनायास ही उन पर आधिपत्य जमा लेते हैं। यही हाल बेचारे क्लर्कों का है। जब ऊँची से ऊँची शिक्षा प्राप्त किये हुए नवयुवकों को अपनी रोटी के लिए दर-दर भटकना पड़ता है, तब अर्द्धशिक्षित निर्धन क्लर्कों की क्या गिनती? बेचारे पेट पालने की धुन में दिन-रात मेहनत करते हैं, नौकरी के छूटने के भय से रात-दिन एक कर देते हैं, घर तक बड़े-बड़े बस्ते बाँधकर लाते हैं। फिर भला उनके स्वस्थ रहने की आशा ही कैसे की जा सकती है?

गृहिणियों के सम्बन्ध में तो कुछ कहना ही व्यर्थ है। तंग गलियों में बने हुए गंदे मकानों का अस्वस्थ-कर वातावरण ही उनके स्वास्थ्य का ह्रास करने के लिए पर्याप्त है। ऊपर से दिन-रात की चिन्ता में, पर्दा-प्रथा, अपरिमित सन्तानोत्पत्ति, घर के कठोर कार्य, चूल्हे और धुएँ के सामने सुबह-शाम जलना-भुनना। क्षय-रोग यदि इतनी उपजाऊ भूमि पाकर भी अंकुरित न हो तो हो कब?

क्या सभी रोगी स्वस्थ हो जाते हैं?

कुछ लोग समझते हैं कि सेनेटोरियम एक ईश्वरीय भवन है, जहाँ जानेमात्र से भयंकर से भयंकर रोग नष्ट हो जाते हैं। यह एक बहुत ही बड़ा भ्रम है। सेनेटोरियम में रोग और स्वास्थ्य का क्रय-विक्रय नहीं होता है। संसार के बड़े से बड़े वैज्ञानिक भी अभी तक मृत्यु को जीतने की युक्ति नहीं निकाल सके। अभी तो मानवी साधनों का ही सहारा लेना पड़ता है और सेनेटोरियम में भी इन्हीं साधनों का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, सन् १९३८ ई० में भवाली-सेनेटोरियम से २०३ रोगी निकले थे। इनमें से ३३ रोगी तो ऐसे थे, जो वहाँ एक महीने से भी कम ठहरे थे या जिनमें क्षय-रोग

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

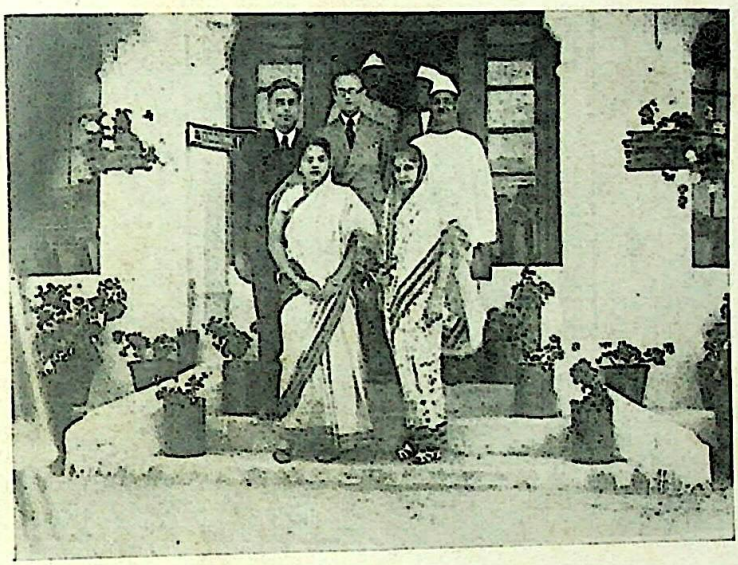

पहली पंक्ति (बाईं ओर से) श्रीमती श्रीखंडे और माननीया श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित, मिनिस्टर लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट

दूसरी पंक्ति (बाईं ओर से) डाक्टर वाई० जी० श्रीखंडे, मिस्टर जी० एल० वीवियन डिप्टी कमिश्नर कमाऊँ डिवीज़न और मिस्टर ए० जी० खेर पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी, युक्तप्रान्तीय लोकल सेल्फ़ गवर्नमेंट

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

डाक्टर वाई० जी० श्रीखंडे,
बी० एस-सी०, एम० बी०, बी० एस०, टी० डी० डी० (वेल्स)
मेडिकल सुपरिंटेंडेंट, भवाली

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के कीड़े सक्रिय हुए ही नहीं थे। शेष ११७ रोगियों के स्वस्थ होने, न होने का ब्योरा इस प्रकार है—

५३ रोगियों का रोग क़ाबू में आ गया।
१० रोगियों को अत्यधिक लाभ हुआ।
४५ रोगियों को लाभ हुआ।
३१ रोगियों की दशा स्थायी रही।
२५ रोगियों की दशा बिगड़ गई।
६ रोगियों की मृत्यु हो गई।

लाख प्रयत्न करने पर भी सेनेटोरियम के अधिकारी १०० में से ६ रोगियों को मौत के पंजे से न बचा सके, और २५ की अवस्था बिगड़ी भी। मृत्यु को अब तक जीत ही कौन सका है? फिर भी क्षय-रोग पर विजय प्राप्त करने के लिए अब तक जो उत्तम से उत्तम साधन उपलब्ध हो सके हैं, उनका सेनेटोरियम में निस्संदेह पूर्ण रूप से प्रयोग किया जाता है। इससे अधिक किया भी क्या जा सकता है?

सुयोग्य डाक्टर श्रीखण्डे

लेख को समाप्त करने से पहले सेनेटोरियम के प्रधान चिकित्सक और सुयोग्य निरीक्षक वाई० जी० श्रीखण्डे के सम्बन्ध में दो-चार शब्द लिखना आवश्यक प्रतीत होता है। सच तो यह है कि जिस तत्परता और तन्मयता के साथ भवाली-सेनेटोरियम में दुःखी क्षय-पीड़ितों की निःस्वार्थ सेवा की जाती है, उसका अधिक श्रेय डाक्टर श्रीखण्डे को ही है। रोगी के दृष्टिकोण से वही चिकित्सक सर्वप्रिय होता है, जो उसके पास बैठकर उसके अस्तित्व में अपना अस्तित्व मिलाकर उससे मीठी-मीठी, आशाजनक और सहानुभूतिपूर्ण बातें करता है। डाक्टर श्रीखण्डे की महानता इन्हीं गुणों के कारण ही है। उनके हृदय में यह भावना उठती ही नहीं कि वे एक बड़ी संस्था के मुख्य अधिकारी हैं और छोटे-छोटे क्षय-रोगियों से मिलना-जुलना उनके पद के अनुकूल नहीं। डाक्टर श्रीखण्डे एक सच्चे चिकित्सक की परिभाषा जानते हैं। उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि चिकित्सक का वास्तविक महत्त्व केवल औषधि देने में नहीं, बल्कि इस बात में है कि वह कितनी लगन और अपनेपन से रोगी के स्वास्थ्य-लाभ की कामना करता है और उसे नीरोग बनाने में अपना तन-मन लगा देता है। डाक्टर श्रीखण्डे ने अपने विस्तृत अनुभव के फलस्वरूप रोगियों के हृदय और मस्तिष्क की परिवर्तनशील भावनाओं को पहचानने की अन्यर्थ दक्षता प्राप्त कर ली है। इन्हीं भावनाओं को समझने और उनके अनुसार आवश्यक उपचार करने में डाक्टर श्रीखण्डे की सफलता का रहस्य छिपा हुआ है।

डाक्टर श्रीखण्डे का जन्म सन् १८९७ ई० में मध्यप्रान्त के एक प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय परिवार में हुआ था। आपके पिता का नाम गोपाललक्ष्मण श्रीखण्डे है। आप सागर (सी० पी०) के एक प्रसिद्ध वकील थे; और इस समय वृद्धावस्था के कारण पूर्ण विश्राम का जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

डाक्टर श्रीखण्डे की बुद्धि बचपन से ही अत्यंत कुशाग्र थी, जिसका जीता-जागता प्रमाण इस बात से मिलता है कि २१ वर्ष की अवस्था में ही आपने प्रयाग-विश्वविद्यालय से बी० एस्०-सी० की परीक्षा पास कर ली। चिकित्सा की ओर प्राकृतिक झुकाव होने के कारण आप लखनऊ के मेडिकल-कॉलेज में भर्ती हो गये और वहाँ से सन् १९२४ ई० में एम्० बी०, बी० एस्० की डिग्री प्राप्त करके दो वर्ष के भीतर ही भीतर सेनेटोरियम के चिकित्सक नियुक्त हो गये।

डाक्टर श्रीखण्डे के हृदय में उत्तरोत्तर वृद्धि की कामना सदैव से तीक्ष्ण रही थी। वह अपने प्राप्त ज्ञान से ही संतुष्ट होकर बैठे रहनेवाले जीव नहीं थे। सन् १९३० ई० में आपने योरप और अमेरिका में विस्तृत रूप से भ्रमण किया और वेल्स-यूनिवर्सिटी से टी० डी० डी० की डिग्री ग्रहण कर पुनः भारतवर्ष लौटे। इसी बीच आपको अनेकानेक और उत्तमोत्तम स्वास्थ्य-संस्थाओं का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ, जिससे आपके अनुभव-कोष में अत्यधिक वृद्धि हुई। सन् १९३७ ई० में आप सेनेटोरियम के निरीक्षक (मेडिकल सुपरिंटेंडेंट) नियुक्त हुए और अब भी उसी पद पर बड़ी योग्यता तथा दक्षता के साथ कार्य कर रहे हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

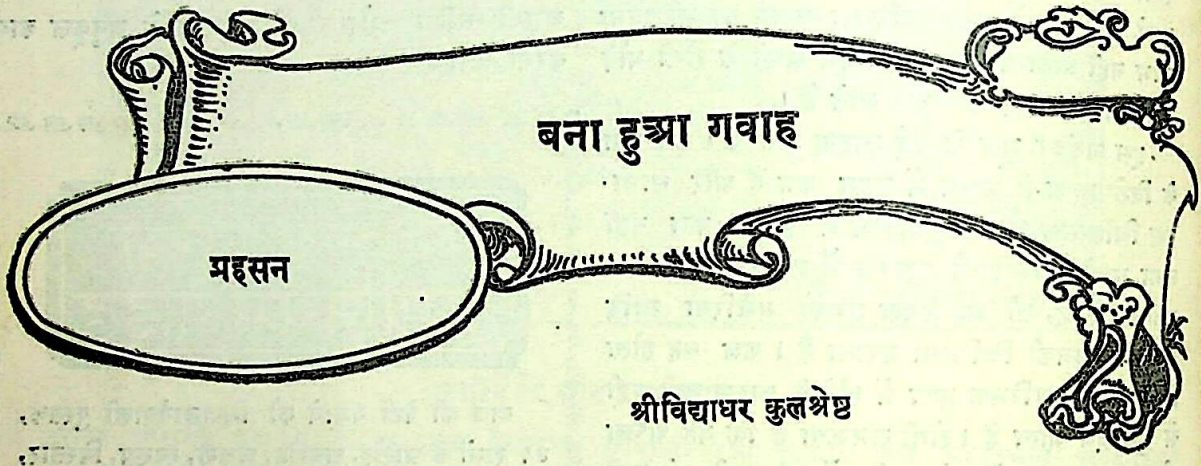

बना हुआ गवाह

प्रहसन

श्रीविद्याधर कुलश्रेष्ठ

प्रथम दृश्य

(मुंशी मूलचन्द सड़क पर बेंत लिये हुए घूमते हैं।)

मूलचंद—ओह, मैं चलते-चलते यहाँ तक आ गया, किन्तु अभी तक कोई ऐसा आदमी मिला ही नहीं, जिससे अपना काम सिद्ध होता। लोगों को बातों में फुसलाना तो मैं ख़ूब जानता हूँ, लेकिन कोई मनुष्य मिले भी तो। सुबह से फिरते-फिरते तबीयत घबरा गई; परन्तु अब तक कोई चंडूल फँसा ही नहीं। अब तो वकील साहब की मुंशीगिरी से जी उकता गया है। लेकिन नौकरी छोड़ी भी तो नहीं जाती। वे लाख उल्टी-सीधी सुनाते हैं, तलब देने के समय मुँह बनाते हैं, परन्तु चुपचाप मुँह फेरकर सुन लेता हूँ। आज इतना घूमे, कई उल्लू के पट्ठों की ख़ुशामद की; लेकिन कोई सीधा ही नहीं होता। अब उनके लिए कहाँ से बना लाऊँ गवाह। चलते हैं, कह देंगे, कोई गवाह नहीं बनता। ज़्यादा क्या होगा, बस एक फटकार.....। (किसी के पैरों की आहट सुनकर) मालूम होता है, कोई आ रहा है। देखें, शायद इसी से काम बन जाय।

(डंडा लिये हुए घोंटादीन पाँडे का प्रवेश। वह मुंशीजी को देख जेब से माला निकालकर 'शिव-शिव' करता हुआ आगे बढ़ता है।)

मुंशीजी—पंडितजी, प्रणाम।

घोंटादीन—ठीक है, शिव-शिव।

मुंशीजी—ठीक क्या है महाराज?

घोंटा०—तुम्हारे प्रश्न का उत्तर, शिव-शिव।

मुंशी०—क्या मेरे प्रणाम का यही उत्तर है?

घोंटा०—क्या तुममें इतनी भी बुद्धि नहीं है, शिव-शिव?

मुंशी०—ख़ैर, इन सब बातों को जाने दीजिए।

घोंटा०—अच्छा, तो काम की बातें आने दीजिए, शिव-शिव।

मुंशी०—आपका क्या नाम है?

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घोंटा०—कहकर बतलाऊँ या समझाकर, शिव-शिव।

मुंशी०—दोनों तरह से।

(घोंटादीन पहले डंडे की ओर संकेत करता है, फिर मार बैठता है।)

मुंशी०—यह क्या है रे नालायक़ ?

घोंटा०—हूँ, परिश्रम व्यर्थ हुआ। अभी नहीं समझे ? (फिर डंडा दिखाता है)

मुंशी०—हमें नहीं समझना ; अगर ज़्यादा बदमाशी की तो, तो अब मैं भी हाथ उठाता हूँ।

घोंटा०—अरे, जब तुम्हें नहीं समझना, तो मुझे कोई समझाने का शौक़ थोड़े ही है।

मुंशी०—लेकिन तूने मारा क्यों ?

घोंटा०—भला मुझमें इतना साहस कहाँ, जो एक रईस आदमी को मारूँ। मैं तो आपको सिर्फ़ समझा रहा था। देखिए, (डंडा दिखाता है) यह है घोंटा और (मारता है) यह है दीन।

मुंशी०—बस, अब समझ गये।

घोंटा०—मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, जो आप समझ गये। अब अगर आप पूछें कि मारा क्यों ; तो इसके लिए क्षमा माँगता हूँ।

मुंशी०—अच्छा, यह बताओ महाराज कि तुम कौन हो ?

घोंटा०—एक नर-पंजरधारी जीव।

मुंशी०—लेकिन यह तो बताओ, तुम कहाँ रहते हो ? क्या करते हो ? कौन जाति हो ?

घोंटा०—दुर्भाग्यवश मैं एक बार में एक ही उत्तर दे सकता हूँ।

मुंशी०—अच्छा, इन सब बातों की मुझे आवश्यकता नहीं। बताओ, तुम गवाह बनना चाहते हो ?

घोंटा०—ईश्वर ने मुझे मनुष्य बनाया है। अब तुम मुझे गवाह बनाओगे ?

मुंशी०—क्यों, क्या हुआ ? मनुष्य ही तो गवाह बनते हैं।

घोंटा०—हैं ! मेरे गुरूजी तो कहा करते थे कि चौरासी लाख योनियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ माना गया है। उन्होंने गवाह-योनि के विषय में तो कुछ भी नहीं कहा। क्या आप मुझे एक गवाह दिखाने की कृपा करेंगे ?

मुंशी०—गवाह हमारी-तुम्हारी ही तरह होते हैं। उनके सींग थोड़े ही लगे होते हैं।

घोंटा०—अच्छा, गवाह बनने के लिए क्या करना पड़ता है ?

मुंशी०—गवाही देनी पड़ती है, और क्या।

घोंटा०—किन्तु यहाँ तो भंग के लिए भी पैसा नहीं ; गवाही कहाँ से दूँ।

मुंशी०—गवाही सभी आदमी दे सकते हैं।

घोंटा०—तो क्या वह सबके पास रहती है ?

मुंशी०—(चिढ़कर) हाँ रहती है।

घोंटा०—ज़रा आप ही दिखाइए।

मुंशी०—हम व्यर्थ की बातें नहीं करना चाहते। बोलो, तुम्हें गवाह बनना है या नहीं ?

घोंटा०—देखिए, अगर गवाह कोई अच्छी चीज़ हो, तब तो बनने में कोई हर्ज नहीं। लेकिन आप यह तो बतावें कि आप मनुष्य हैं या गवाह ?

मुंशी०—हम कुछ भी हों, लेकिन गवाह बनना अच्छी चीज़ है। इसके अलावा अगर तुम गवाह बनोगे तो कुछ प्राप्ति भी करा देंगे।

घोंटा०—क्या तुम भंग दिला दोगे ?

मुंशी०—हाँ, जितनी कहोगे, दिला दूँगा।

घोंटा०—(कपड़े उतारता हुआ) अच्छा तो बनाओ गवाह।

मुंशी०—अरे तो कपड़े क्यों उतारते हो ?

घोंटा०—गवाह बनाओगे न ?

मुंशी०—हमारे साथ वकील साहब के पास चलो। वे ही तुम्हें गवाह बना लेंगे तथा भंग के लिए रुपये देंगे।

घोंटा०—अच्छा चलो। (दोनों जाते हैं)

(यवनिका पतन)

× × ×

द्वितीय दृश्य

(वकील सुरेन्द्रनाथ अपने ऑफ़िस में कुर्सी पर मेज़

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के सामने बैठे हुए हैं। मेज़ पर कुछ फ़ाइलें, एक किताब और एक क़लम रक्खा हुआ है।)

सुरेन्द्रनाथ—(बड़ी उदासी से डेस्क के अन्दर से काग़ज़ निकालते हुए) कुछ समझ नहीं पड़ता, क्या किया जाय। बाप-दादों की सारी सम्पत्ति पढ़ने में समाप्त हो गई, बड़ी मुश्किल से तीन-चार वर्ष बाद परीक्षाओं के बड़े मार्ग को तय किया, आख़िर गिरते-पड़ते यहाँ तक पहुँचे। अब समझे थे कि आनन्द की कुञ्जी हाथ आ गई ; लेकिन जब भाग्य में बदा ही नहीं, तो सुख कैसे मिले। आज महीने की बाईसवीं तारीख़ है, मिलना-जुलना कहीं से कुछ हुआ ही नहीं। क्या करूँ, कुछ समझ में ही नहीं आता।

(एक नौकर का प्रवेश)

सुरेन्द्र०—क्यों रहमतउल्ला, क्या है ?

नौकर—(सलाम करके) हुज़ूर, यह मैनेजर साहब ने दिया है। (एक लिफ़ाफ़ा देता है।)

सुरेन्द्र०—अच्छा जाओ, उनसे कह देना कि वकील साहब नहीं मिले। तुमको इनाम मिलेगा।

नौकर—हुज़ूर ने कई बार इनाम देने को कहा, लेकिन अभी तक ग़ुलाम को कुछ मिला नहीं। इस वक़्त मिल जाता, ईद का मौक़ा है।

सुरेन्द्र०—मिलेगा, हमने कह दिया।

नौकर—अच्छा हुज़ूर। (सलाम करके जाता है।)

सुरेन्द्र०—इनसे पीछा नहीं छूटता। महीना ख़तम हुआ कि बिलों की दौड़ लगी। किन्तु इन बेचारों का क्या अपराध है। मेरा ही दुर्भाग्य है कि मैं वकील बना। सालों में एकआध मुक़दमा आया, उनमें भी मुझे झूठे गवाह पेश करने पड़ते हैं। हे ईश्वर, तूने हमें क्यों पैदा किया ? क्यों वकील बनाया ? अब रुपया क्यों नहीं भेजता ?

(मुंशी मूलचन्द और घोंटादीन पाँडे का प्रवेश। उनको देखकर वकील साहब कुछ अकड़कर काग़ज़ देखने लगते हैं।)

घोंटा०—(मुंशीजी से) क्या यही वकील हैं ?

मुंशीजी—हाँ, ज़रा शराफ़त से पेश आओ।

घोंटा०—(बढ़कर) हे गवाह-सृष्टि के निर्माण-कर्त्ता ! हे भंगदाता देव ! हे घर-फूक तमाशे के बाज़ीगर ! हे धनियों के हथियार ! हे वकीलदेव ! आपको सत्रह बार नमस्कार करता हूँ।

मुंशी०—आप उस मुक़दमे के गवाह होंगे। हार में आपको कुछ भंग दिला देनी होगी।

वकील—अभी तक ये क्या कह रहे थे ?

मुंशी०—इससे क्या मतलब ? आप इनको समझा दीजिए कि इनको क्या कहना होगा।

वकील—मेरी समझ में इनका इतना कहना काफ़ी होगा कि गद्दू, वल्द सद्दू, उर्फ़ अजगरअली ने हमारे सामने नज़रअली से कई बार तक़ाज़ा किया।

मुंशी०—देखो जी समझ गये ?

घोंटा०—हाँ, जो कुछ कहा सो तो समझ गये, किन्तु भंग का तो कहिए।

वकील—तुम एक बार में कितनी भंग पीते हो ?

घोंटा०—पीता तो नहीं, लेकिन पाव भर का गोला आसानी से गले के नीचे उतार जाता हूँ।

वकील—(मुंशी से) जाओ, हमारे पास फ़िज़ूल वक़्त नहीं है। इन्हें भंग दिला दो और कह दो कि गवाही गुज़रने के बाद रुपया भी मिलेगा।

(दोनों जाते हैं)

वकील—कैसे-कैसे बदमाशों से काम पड़ा है। अगर मेरा इनसे मतलब न निकलता होता, तो इनको यहाँ से कान पकड़कर निकलवा देता। (भीतर से घंटी की आवाज़ सुनकर) भोजन का समय हो गया। चलूँ, देखूँ, आगे कैसी गुज़रती है।

(जाता है)

× × ×

तृतीय दृश्य

(न्यायालय में इजलास पर एक देसी जज बैठे हैं। पास ही क्लर्क और वकील हैं।)

जज—मिस्टर सुरेन्द्रनाथ, अब आपको यह साबित करना चाहिए कि अजगरअली ने कई बार तक़ाज़ा किया।

सुरेन्द्र०—हुज़ूर, इसके लिए गवाह मौजूद है।

जज—अच्छा, वह बुलाया जाय।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(घोंटादीन को एक चपरासी कटहरे में लाकर बन्द कर देता है।)

घोंटा०—क्योंजी, न्यायालय में क्यों नहीं ले चलते ?

चपरासी—और कहाँ हो ?

घोंटा०—(अपने चारों ओर देखकर) कटहरे में।

चपरासी—(ग़ुस्से से) कटहरे में भी हो और न्यायालय में भी हो। होश में आकर बात करो।

घोंटा०—(हँसता हुआ) मुझे अच्छी तरह याद है, जब मैं स्कूल में था, तब मेरे गुरूजी ने बतलाया था कि एक पदार्थ एक ही समय में दो स्थानों में नहीं रहता। अब तुम्हारे कहने को सच मानूँ या गुरू के कहने को ?

सुरेन्द्र०—देखो जी, यह दिल्लगी की जगह नहीं है। टाइम बरबाद मत करो। हलफ़ पढ़ो।

घोंटा०—ख़ूब रही। यहाँ पढ़ाई भी होती है ?

सुरेन्द्र०—(ग़ुस्से से) ज़्यादा बदमाशी मत करो। जानते नहीं, तुम इस समय न्यायाधीश के सामने खड़े हो।

घोंटा०—(हँसकर) वाह अब तो सर्वव्यापी बना जाता हूँ। (उँगलियाँ गिनता हुआ) मैं न्यायालय में हूँ, कटहरे में हूँ। मैं मदरसे में हूँ और न्यायाधीश के सामने भी हूँ। हाँ वकील साहब, और ?

जज—(मुस्कराता हुआ) मिस्टर सुरेन्द्रनाथ, आप बड़ा मज़ेदार गवाह लाये हैं।

सुरेन्द्र०—देखो जी, चुपचाप हलफ़ पढ़ो।

घोंटा०—पढ़ाओ बाबा, हलफ़ पढ़ाओ।

जज—(वकील से) पहले नाम वग़ैरह।

सुरेन्द्र०—तुम्हारा नाम ?

घोंटा०—वकील साहब आपकी वकालत को धिक्कार है, जिसने स्मरण-शक्ति को इतना कमज़ोर बना दिया। कल ही मेरा नाम सुना था और आज भूल गये।

सुरेन्द्र०—अदालत इस आदमी के बर्ताव को देखे।

जज—पाँडेजी, आपसे जो कुछ पूछा जाय, उसी का उत्तर दीजिए।

घोंटा०—बहुत ख़ूब धर्मावतार।

सुरेन्द्र०—तुम्हारा नाम क्या है ?

घोंटा०—मेरा नाम श्रीघोंटादीन पाँडे।

सुरेन्द्र०—और तुम्हारे बाप का नाम ?

घोंटा०—मेरे बाप का नाम पूछते हैं। क्या कहीं मेरी शादी की बातचीत है ?

सुरेन्द्र०—(चिढ़कर) बाप का नाम बताओ जी।

घोंटा०—अच्छा, मेरे बाप का नाम सोंटादीन पाँडे।

सुरेन्द्र०—तुम कौन जाति हो ?

घोंटा०—हिन्दू।

सुरेन्द्र०—(गर्म होकर) मैं पूछता हूँ कि तुम कौन वर्ण हो ?

घोंटा०—(अपने बदन को देखकर) देखते नहीं, श्वेत वर्ण हूँ।

जज—हिन्दुओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, तेली, धोबी आदि होते हैं। उनमें से तुम कौन हो ?

घोंटा०—धर्मावतार, मैं ब्राह्मण हूँ। पाँडे सुनकर हा वकील साहब जान सकते थे।

सुरेन्द्र०—तुम्हारी अवस्था क्या है ?

घोंटा०—महाराज, मेरी अवस्था बड़ी बुरी है। मैं बेचारा ग़रीब पंडा इस कटहरे में लाकर ठूँस दिया गया हूँ।

जज—तुम्हें इस संसार में रहते कितने वर्ष हुए ?

घोंटा०—यह तो मुझे नहीं मालूम।

जज—हम लिखे लेते हैं अंदाज़न् ५० साल।

सुरेन्द्र०—तुम कहाँ रहते हो ?

घोंटा०—क्यों ? इसी संसार में।

सुरेन्द्र०—हम यह नहीं पूछते जी। तुम्हारा घर कहाँ..... ?

घोंटा०—(बीच में बात काटकर) अरे हमारे मुंशीजी कहाँ हैं ? ज़रा उनसे कह दीजिए, मेरे घर ख़बर भिजवा दें कि मैं यहाँ गवाह बना.....।

सुरेन्द्र०—अरे तो आख़िर तुम्हारी स्त्री किस घर में है ?

घोंटा०—वहीं जहाँ से उस दिन मुझे मुंशीजी गवाह बना लाये थे।

(इतने में प्रतिवादी का वकील बोलता है।)

वकील—हुज़ूर, यह बना हुआ गवाह मालूम पड़ता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घोंटा०—क्यों भैया, वकील हो क्या ?

वकील—हाँ, मैं प्रतिवादी का वकील हूँ। तुमने कैसे जाना ?

घोंटा०—(हँसकर) पाँडेजी ऐसी स्थूल बुद्धि नहीं रखते, जो इतनी मोटी बात भी न समझ सकें। आपका पुराना और मैला सूट चिल्ला-चिल्लाकर कह रहा है कि दुर्भाग्यवश आपके गले में भी वकालत की फाँसी पड़ी है।

वकील—अदालत इन अपमानों से मेरी रक्षा करे।

जज—देखो जी, तुमसे जो कुछ पूछा जाय, उसका उत्तर सीधी और सरल भाषा में दो।

घोंटा०—अच्छा न्याय-मूर्त्ति।

वकील—इसके अलावा हमारे पास फ़िज़ूल समय नहीं है। तुम्हारे इज़हार के बाद अभी हमें तुमको क्रॉस करना है।

घोंटा०—क्यों भैया, हम कोई नदी या पुल हैं, जो हमको क्रॉस करोगे। अगर तुम्हारे चश्में में मैं ऐसा ही कुछ दिखाई देता होऊँ तो अच्छा हो कि पुल बाँधो, नाव में बैठो या खड़े-खड़े ही हनुमान्‌जी की तरह उछलो-कूदो।

(वकील चुपचाप बैठ जाता है।)

जज—तो तुम्हारे रहने का कोई ठिकाना नहीं है ?

घोंटा०—क्यों, इतनी भारी दुनिया तो पड़ी है।

जज—अच्छा हम लिखे देते हैं कि रहने की कोई ख़ास जगह नहीं है।

सुरेन्द्र०—अच्छा तुम क्या काम करते हो ?

घोंटा०—मैं कटहरे में खड़ा तुमसे बातें करता हूँ।

सुरेन्द्र—मैं पूछता हूँ कि तुम खाते-पीते कैसे हो ?

घोंटा०—भात में दाल डालकर दाहने हाथ से।

सुरेन्द्र—अरे कुछ पैदा भी करते हो ?

घोंटा०—जी हाँ, दो लड़के मर गये और एक लड़की ज़िंदा है।

जज—पाँडेजी, वकील साहब को क्यों तंग करते हो ? यह बतलाते क्यों नहीं कि तुम्हारा क्या पेशा है, जिससे तुम्हारे परिवार का उदर-पोषण होता है।

घोंटा०—मैं लोगों को आशीर्वाद देता हूँ, उसके बदले में लोग मुझे रुपया देते हैं।

सुरेन्द्र०—ऐसा पहले ही क्यों नहीं कहा था ?

घोंटा०—क्या आपने पहले ऐसा पूछा था जो मैं कहता ? और यह तो बतलाइए कि आपने कल ही क्यों नहीं कह दिया कि इतने बहुत-से प्रश्न वहाँ पूछे जायँगे। थोड़ी-सी तो लेन-देन और प्रश्न बहुत सारे। अब मालूम हुआ गवाह बनना.....

सुरेन्द्र०—(घबराकर) हुज़ूर, हम इस गवाह का इज़हार नहीं लेना चाहते।

जज—यदि तुम चाहो तो इसे भेज दो।

सुरेन्द्र०—पाँडेजी, अब आप जाइए।

घोंटा०—लेकिन आपने तो वह पूछा ही नहीं, जो.....

सुरेन्द्र०—नहीं, अब नहीं पूछना है, आप जाइए।

घोंटा०—अच्छा मत पूछो, लेकिन देने को ?

सुरेन्द्र०—(बात बिगड़ती देखकर) अच्छा आओ।

(बाहर जाते हैं)

(सुरेन्द्र कुछ रुपये मनीबेग से निकालकर देता है।)

घोंटा०—कम क्यों ?

सुरेन्द्र०—तुम्हारी गवाही कहाँ हुई ?

घोंटा०—तो चलिए, और गवाही लीजिए।

सुरेन्द्र०—(और रुपये निकालता हुआ) लीजिए।

घोंटा०—(सिर हिलाता हुआ) हाँ, अब पूरे हुए। वकील साहब इसी तरह इस ग़रीब ब्राह्मण पर अपनी कृपा बनाये रखिएगा।

सुरेन्द्र०—(हाथ जोड़कर) कृपा करके आप जाइए।

घोंटा०—आशीर्वाद वकील साहब, आशीर्वाद।

(जाता है और वकील भीतर आते हैं।)

सुरेन्द्र०—हुज़ूर, इसके लिए मैं दूसरा गवाह पेश करूँगा।

जज—(मिसल बन्द करता हुआ) आज बहुत सा फ़िज़ूल वक़्त लग गया। (क्लर्क से) इस मुक़द्दमे की पेशी अब दो महीने बाद रक्खो।

(यवनिका पतन)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

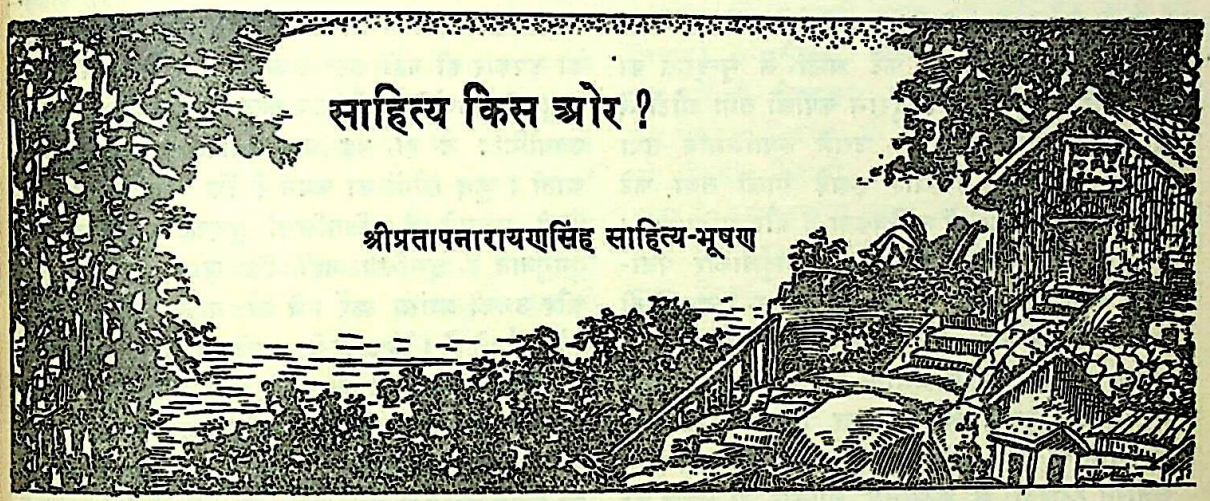

साहित्य किस ओर ?

श्रीप्रतापनारायणसिंह साहित्य-भूषण

साहित्य मानव-जीवन की समीक्षा है। संसार के सभी साहित्य में मानव-जीवन के चित्रों का अंकण होता है। जिस काल में मानव-समुदाय की जैसी अवस्था रहती है, उसी के अनुकूल साहित्य का निर्माण होता है। जगत् में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा, जिसके बच्चे 'भूख ! भूख !' 'रोटी ! रोटी !' कहकर चीत्कार कर रहे हों और वह सुख की नींद सोवे ! मस्तिष्क की विकृति के कारण ही ऐसा कोई मिल सकता है। आज भारत की कैसी दयनीय तथा करुणाजनक अवस्था है ! जो उसे भुलाकर 'प्रेमगान' में मस्त हैं, उनसे क्या कहा जाय ! ऐसे मनुष्यों की परिगणना सहृदयों की श्रेणी में नहीं हो सकती। जो मानव-समाज के करुणतम चीत्कार तथा उसकी गुहार पर ध्यान नहीं देता, उसे सहृदय कहना समीचीन नहीं जान पड़ता। यह ठीक है कि प्रेम के विरोध से जीवन में संचालन-शक्ति नहीं रह जायगी, वह नीरस तथा शुष्क हो जायगा, किन्तु प्रेम में ही संसार की सारी वस्तुओं को भुला देना अनुचित है। हिन्दी-साहित्य-संसार में ऐसे कवियों का अभाव नहीं है, जो जगत् को अपनी बंद आँखों से नहीं देखते। आँखें खोलकर जगत् को देखने पर ही मानव-जीवन का सजीव तथा वास्तविक चित्रण हो सकता है।

साहित्य में जीवन की अनेकरूपता का होना परमावश्यक है। जिस साहित्य में जीवन को व्यापक रूप में चित्रित किया जाता है, वह पूर्ण समझा जाता है। हिन्दी-साहित्य में एकरूपता का प्राचुर्य है, तथा विविधता का पूर्ण अभाव। हिन्दी के साहित्यिक विषय की विभिन्नता से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। अन्य देशों के साहित्य में मानव-जीवन का पूर्ण चित्र देखने को मिलता है। हिन्दी-साहित्य में विविधता की कमी का एकमात्र कारण है साहित्यकारों में अनुभूति का अभाव। इसीलिए हमें नाटक, उपन्यास, कहानी,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कविता आदि की वस्तुओं में—आधार में—एकरूपता दिखलाई पड़ती है। अब तक का हमारा साहित्य पूँजीपतियों के सुख-दुख, आशा-निराशा, हर्ष-विषाद, उत्थान-पतन के चित्रों से परिपूर्ण है। यदि साहित्यकार ऐसा नहीं करते तो उन्हें फिर सोने के टुकड़े कैसे मिलते? वे सिर्फ़ गुलाबी गालों में ही सौंदर्य का अवलोकन करते थे, उनके मस्तिष्क में यह बात नहीं आई थी कि कृषक-बालिका के रूखे-सूखे उलझे बालों में तथा पछुवा हवा से फटे ओठों में सुन्दरता का आवास है। युवती के सिंदुराभ कपोलों तथा ओठों में जो सौंदर्य दीख पड़ता है, उसमें रूपाभिमान तथा निर्ममता सन्निहित है और रूखड़े गालों तथा फटे ओठों की सुन्दरता में सात्त्विकता है और सहिष्णुता। जो दुग्ध-सदृश वारि-समूह के हरित वर्तुलाकार पत्रावेष्टित अरुण पंकज की प्रफुल्लता को देखकर, कलवादिनी श्यामा कोयल की मनोमुग्धकारी मधुर काकली को श्रवण कर तथा संध्याकालीन लालिमा-रंजित मेघ-मण्डल की सुषमा को निहारकर विह्वल हो जाता है और जिसका हृदय दरिद्रताक्रांत निर्धनों की रक्तविहीन जर्जरित ठठरियों के करुणतम चीत्कार को श्रवण कर मोम-सदृश पिघल नहीं जाता है, उसके पास कवि-हृदय नाम की कोई वस्तु है ही नहीं। उनका दावा कि वे कवि हैं, बिलकुल झूठा है। अर्वाचीन काल के कवि अपनी कोमल श्रवणेन्द्रियों से पत्थर का रोना, लहरों का संगीत, पवन की हँसी इत्यादि कितनी सूक्ष्म बातें सुन लेते हैं और उसकी पुकार में दत्तचित्त हो जाते हैं, करुणा से पुलकित हो जाते हैं। किन्तु क्या कभी दुखी हृदय के नीरव क्रंदन को भी अन्तरात्मा की श्रवणेन्द्रिय द्वारा सुनते हैं, जो करुणा का काल्पनिक नहीं, वास्तविक रूप है। अब तक साहित्यकारों की दृष्टि नगर की गलियों में ही विचरण करती थी, इधर देहातों की ओर भी झाँकने लगी है। प्राचीन काल से ही इसका प्रयत्न हो रहा है कि साहित्य में जनता के जीवन का चित्रण पूर्ण रूप में हो। जिस साहित्य में नीची श्रेणी की जनता के जीवन को स्थान नहीं दिया जाता है, वह पूर्ण नहीं कहा जा सकता।

संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसकी उपयोगिता न हो। छोटी वस्तु से लेकर बड़ी वस्तु तक में यह बात पाई जाती है। अधिक लोग क्रोध को ख़राब मानते हैं, पर उसमें भी उपयोगिता है। एक समय आता है, जब क्रोध की आवश्यकता मालूम पड़ती है। यदि किसी पर अत्याचार किया जा रहा है, किसी दूसरे मनुष्य के हृदय में उसके प्रति करुणा का उद्रेक होगा, तो उसकी रक्षा के लिए क्रोध की ही आवश्यकता होगी। बिना क्रोध के वह उस आदमी का उपकार ही नहीं कर सकता। जब छोटी से छोटी वस्तु को उपयोगिता है, तब कला-जैसी उत्कृष्ट वस्तु की उपयोगिता न हो, यह बात हमारी समझ में नहीं आती। कुछ लोगों का कथन है कि "कोयल गाती है, झरने मचलते हैं, तितलियाँ फुदकती हैं एवं भौंरे गुनगुनाते हैं, इसलिए नहीं कि लोग उन्हें देखें-सुनें और उनकी प्रशंसा करें। वे तो बाध्य होकर उनकी ओर दौड़ते हैं। ठीक इसी प्रकार कवि अपनी मस्ती में कविता-रमणी का शृंगार करता है और लोग बरबस उस पर मुग्ध हो जाते हैं।" कविता का निर्माण सिर्फ़ अपने लिए ही नहीं किया जाता है। कविता की रचना का लक्ष्य पाठक से संबद्ध रहता है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो वे अपनी कविताओं को प्रकाशित कराने की, दूसरे को सुनाने की कोशिश नहीं करते। वे चुपचाप अँधेरी कोठरी में काव्य-रचना करते और उसे गुनगुनाकर आनन्द-प्राप्ति करते। मानव-हृदय के अंतर्गत एक ऐसी प्रवृत्ति है, जो अपने भावों को अधिकाधिक लोगों में प्रसारित करना चाहती है। हम किसी के पास उन्हीं भावों को सुना सकते हैं, जिन भावों के प्रति उसके हृदय में भी कुछ सहानुभूति हो तथा जिनके द्वारा उसे (सुननेवाले को) भी आनन्द की उपलब्धि हो। यदि ऐसी बात नहीं होगी, तो कोई किसी के भावों को सुनने के लिए प्रस्तुत नहीं होगा। सभी मनुष्यों में स्वार्थ का भाव सन्निहित है। ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है, जिसके हृदय में स्वार्थ-भावना वर्तमान न हो। कोई किसी का उपकार क्यों करता है?—अपने लिए, केवल अपने लिए। इसको अच्छी तरह से स्पष्ट कर देना होगा। किसी की शोचनीय अवस्था को देखकर मनुष्य के हृदय में दया का प्रादुर्भाव होता है और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उसकी भलाई के लिए वह सन्नद्ध हो जाता है। दूसरे के दुख को देखकर हमको दुख होता है और हम अपने दुख के निवारण के लिए ही दूसरे का उपकार करते हैं, दूसरे पर दया करते हैं। जब हम दूसरे को दुख से छुटकारा दिला देते हैं, जब दुखी हमारे प्रयत्न के कारण अपने दुख को कुछ कम समझने लगता है, तब हमारे हृदय में शांति का बोध होता है, आनन्द की सृष्टि होती है। जीवन से निरपेक्ष रहकर कविता अपना अस्तित्व सुरक्षित नहीं रख सकती। अपनी प्रवृत्ति के अनुकूल वह (कलाकार) विषय का निर्वाचन तथा प्रतिपादन कर सकता है। जीवन-तत्त्व की उपेक्षा करने से कला निःसार हो जाती है। कला का उद्देश्य हमारी सौंदर्य-भावना को पुष्ट करना तथा आनन्द की सृष्टि करना है। आनन्द की भी उपयोगिता है। उपयोगिता की दृष्टि से विचार करने पर एक ही वस्तु से सुख की उपलब्धि होती है और दुख की प्राप्ति भी। गरमी के महीने में जब मनुष्य ताप से व्याकुल हो जाता है, तब वह हवा की कामना करता है। यदि हवा ख़ूब ज़ोर से भी बहने लगे, तो उसे सुख के बजाय दुख नहीं हो सकता। उसी हवा की उपयोगिता उस समय कुछ भी नहीं रह जाती है, जब किसी के घर में आग लग जाती है। उस समय दुखानुभव के अतिरिक्त सुखानुभव नहीं हो सकता।

आज मानव इसको भूल गया है कि मानवता क्या है? वह मंत्र के समान परिचालित होता है और उसी को वास्तविक जीवन मान बैठता है। जब कि जगत् क्षुधा का तांडव-नर्तन का स्थल बना हुआ है, संसार का जीवन निर्जीवता तथा विपण्णता आवेष्टित है, जीवित मनुष्य नग्न तथा गृह-विहीन है और दाने-दाने को लाले पड़े हुए हैं। ऐसी अवस्था में शव का शृंगार करना गर्हित नहीं तो क्या है? निर्जीव शरीर का मानव के सदृश सत्कार करना और जीवित जन को कंकाल बना देना राक्षसता—शोषकता—का परिज्ञापक है। ताजमहल को देखकर कवि के हृदय से मर्मांतक उद्गार बहिर्गत हुआ है—

हाय! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन?
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन।
संग-सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वास-विहीन रहें जीवित जन?

× × ×

शव को दें हम रूप, रंग, आदर मानव का?
मानव को हम कुत्सित चित्र बना दें शव का।

—पंत

भूख की धधकती ज्वाला में पड़े हुए बच्चों की चिल्लाहट को सुनकर किसका हृदय नहीं पिघलेगा। उस बच्चे की चिल्लाहट, जो अपनी मा का सूखा स्तन चूस-चूसकर निराश हो जाता है, पर ध्यान न देकर जो 'किसी किशोरी का चुम्बन' अंग-अंग में भर-वाता है, क्या सचमुच उसके पास कवि-हृदय है? उस बच्चे का करुणा-क्रन्दन, जिसे न मा का अमृतोपम दूध मिला और न गाय का ही, कवि-हृदय को पिघलाकर मोम बना देता है—

क़त्र-क़त्र में अबुध बालकों
की भूखी हड्डी रोती है,
"दूध-दूध!" की क़दम-क़दम पर
सारी रात सदा होती है।
"दूध-दूध!" ओ वत्स! मन्दिरों
में बहरे पाषाण यहाँ हैं!
"दूध-दूध!"—तारे, बोलो, इन
बच्चों के भगवान कहाँ हैं?

—दिनकर

भारत की कैसी दयनीय अवस्था है, यह किसी से छिपी नहीं है। पर आज के सभी कवि 'अनंत की ओर' झाँकते हैं, 'उस पार' जाने का प्रयत्न करते हैं, अपने 'हृत्तंत्री के तार' तोड़ते हैं तथा 'प्रियतम' का आह्वान करते हैं—यह कहाँ समुचित है? किन्तु आज बहुत-से ऐसे कवि हैं, जिन्हें अनंत के गीत पसंद नहीं हैं, वे वास्तविक जगत् के करुणतम चित्रों को ही अपनाते हैं। इसीलिए तो कवि कहता है—

बच्चे बिलख पुकार रहे हैं—
'क्यों न हमें खाने देते हो?'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तुम कहते हो, 'अपने को'
'उसपार न क्यों जाने देते हो ?'

और—

तुम अनन्त का गीत सुनाते,
पर मेरा तो अन्त हुआ रे !
पतझड़ की चिर सत्ता में
जाना न कभी कि वसंत हुआ रे !

—कैरव

जहाँ नाबदान में कीड़े बिलबिलाते हैं और जिससे भयंकर बदबू निकलती है, वहीं माँद-सी तंग, गीली और मैली कोठरी में मज़दूरों के बच्चों को रहना पड़ता है। वैसी कोठरी में कुत्ते भी क्षणभर नहीं ठहर सकते। वहाँ 'दुनिया के नागरिक', 'मानवता के मृदु छौने' पलते हैं—

गन्दी बदबू में पलते हैं
दुनिया के नागरिक सलोने,
चिथड़ों में लिपटे, बढ़ते हैं
मानवता के ये मृदु छौने !

—नवीन

भारत—भूख की ज्वाला के तांडव-स्थल—को देखकर कोई कब तक चुप्पी साधे बैठ सकता है ! इसीलिए हम देखते हैं कि हिंदी-साहित्य-संसार के कुछ कवि अपने वास्तविक कवि से अनुरोध करते हैं—

भूख-भूख चिल्लानेवालों—
की कराह को आज भगा दे,
फूँक प्राण उनकी नस-नस में
महाक्रांति की आग लगा दे !

—जयेन्द्र

परिस्थिति का प्रभाव सभी कलाओं पर पड़ता है। जिस युग की सामाजिक, नैतिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि स्थिति जैसी रहेगी, उसका प्रभाव साहित्य पर पड़े बिना नहीं रह सकता। यही कारण है कि हम देखते हैं, जो कवि मानिनी को मना रहा था, जो सुन्दरियों की चोखी चितवन से बिंधना पसन्द करता था, आज वह भी किसानों की झोंपड़ियों की ओर एक बार अपनी निगाह से देख लेता है। यह युग जनता का है। आज जब कि सभी सांसारिक शक्तियाँ नगरों से विमुख होकर देहातों की ओर उन्मुख हो रही हैं, ऐसी हालत में कोई कहाँ तक युग की अवहेलना कर सकता है !

हिन्दी-साहित्य पुरानी लीक को छोड़कर अब प्रगतिशील बन रहा है।

केवल ५० दिन में अँगरेज़ी बोलना सीखो

यह हमारा दावा है, जिसे आज तक कोई झूठा साबित नहीं कर सका। जिस प्रकार अँगरेज़ माता अपने बालकों को अँगरेज़ी बोलना सिखाती हैं और चार वर्ष का बालक अँगरेज़ी में भली प्रकार बातें करने लगता है (हालाँकि उसने अँगरेज़ी का एक शब्द भी स्कूल में जाकर नहीं सीखा) ठीक उसी प्राकृतिक नियमानुसार हम यह ३५० पृष्ठ की पुस्तक तैयार करने में सफल हो सके हैं। पुस्तक ऐसे ढंग से लिखी गई है कि ५० दिन में भली प्रकार याद हो जाती है, इस पुस्तक की सहायता से अनेक स्त्री-पुरुष तथा लड़के-लड़कियाँ केवल ५० दिन में ही अँगरेज़ी में धड़ाधड़ धाराप्रवाह रूप से वार्तालाप करने के योग्य हो गये हैं। राजपूताना के हेडमास्टरों और स्कूल इन्सपेक्टरों ने जनरल नोलेज के लिए इस पुस्तक को सर्वोत्तम माना है। मूल्य १॥) पोस्टेज ।=)

पता—रसायन फ़ार्मेसी (मा) पोस्ट बाक्स :: १२५ देहली।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

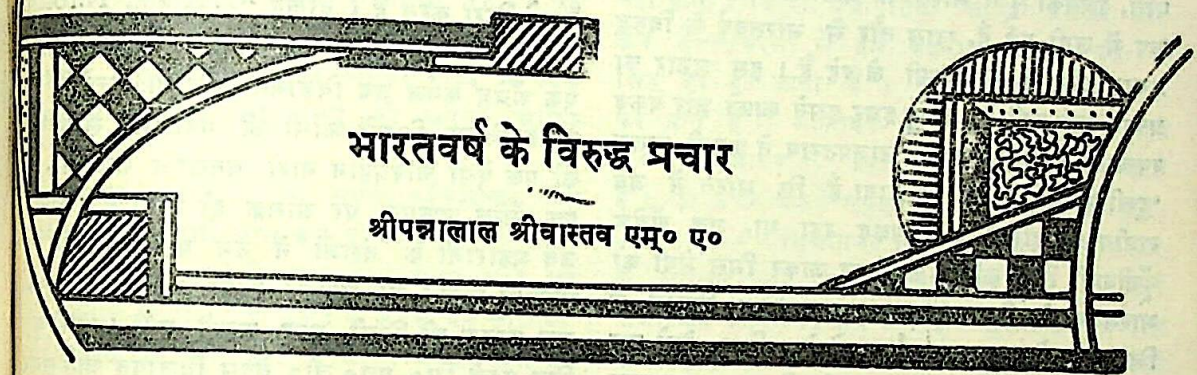

भारतवर्ष के विरुद्ध प्रचार

श्रीपन्नालाल श्रीवास्तव एम्० ए०

आजकल प्रोपेगेंडा अर्थात् प्रचार-कार्य राजनीति का एक महान् अस्त्र माना जाता है। संसार के बहुत-से देशों में तो प्रचार का एक विभाग ही अलग रहता है, जिसका अधिकारी कोई बड़ा प्रभावशाली मंत्री होता है। इटली और जर्मनी में आजकल यह कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई है।

इन दोनों देशों ने, विशेषकर जर्मनी ने, प्रोपेगेंडा के ही द्वारा अपनी आधी सफलता पाई है। हर हिटलर ने जिन-जिन देशों का अपहरण किया है, उनमें उन्होंने पहले खूब प्रचार किया था। हिटलर ने अपनी अमर पुस्तक 'मीन केम्फ़' में प्रोपेगेंडा का महत्त्व अच्छी तरह समझाया है। जो लोग गत महायुद्ध के इतिहास से परिचित हैं, उन्हें मालूम होगा कि फ़्रांस और ब्रिटेन ने, अमेरिका को अपने पक्ष में लाने के लिए अमेरिका में जर्मनी के विरुद्ध कितना प्रचार किया था। जर्मन सिपाहियों के स्त्रियों और बच्चों के प्रति अत्याचारों की भयानक से भयानक तसवीरें खींची जाती थीं, कहा जाता था कि यदि जर्मनी जीत गया तो संसार से सभ्यता का नाम उठ जायगा। ब्रिटेन और फ़्रांस अपने प्रोपेगेंडा में सफल हुए और अमेरिका को अपने पक्ष में ले आये। इसका रहस्य भावुक अमेरिकावासियों को बाद में मालूम हुआ। प्रेसीडेंट विल्सन ने, सन् १९२३ में अपने एक पत्र में, लिखा था—

"I should like to see Germany clean up France." (देखिए, H. E Barne's. "World Politics In Modern Civilisation.")

अभी हाल में योरप की फ़ासिस्ट और प्रजातन्त्र शक्तियों के बीच में बड़े ज़ोर की हवाई लड़ाई चली थी। इटली से ब्रिटेन के विरुद्ध एशिया की कई भाषाओं में रेडियो द्वारा प्रचार किया जाता था। इटली ने उत्तरी आफ़्रिका में कई रेडियो-स्टेशन बनवाये हैं। वहाँ से प्रचार किया जाता है। इसी काम के लिए इटली ने पैलेस्टाइन और अरब में हज़ारों रेडियो सेट मुफ़्त बाँटे थे। पिछले मार्च में इटली और ब्रिटेन के बीच में जो समझौता हुआ था, उसकी एक शर्त यह भी थी कि उनमें से कोई दूसरे देश के विरुद्ध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रचार न करेगा। यदि आप कभी लगभग ७ बजे सवेरे अपने रेडियो की सुई बर्लिन पर लगावें, तो सुनिए, साफ़ हिन्दुस्तानी में किस प्रकार की ख़बरें आती हैं।

इधर जब से भारतवर्ष के राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति बढ़ने लगी है, तब से भारतवर्ष के विरुद्ध विदेशों में प्रोपेगेंडा भी ज़ोरों से बढ़ रहा है। विदेशी पूँजीपति, जिनकी पूँजी भारत में कल-कारख़ानों या अन्य रूप में लगी हुई है, ख़ास तौर से भारतवर्ष के विरुद्ध प्रचार करने में दिलचस्पी ले रहे हैं। इस प्रकार का प्रचार नया नहीं है; परन्तु इधर इसने काफ़ी ज़ोर पकड़ रक्खा है। स्वर्गीय लाला लाजपतराय ने अपनी पुस्तक 'दुखी भारत' में यह बतलाया है कि भारत में जब राष्ट्रीय आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था, तब अँग्रेज़ पूँजीवादी मि० कर्टिस अमेरिका जाकर मिस मेयो को भारतवर्ष के विरुद्ध प्रचारात्मक साहित्य लिखने के लिए किराये पर भारतवर्ष लाये थे। मिस मेयो इस प्रकार के काम में फ़िलीपाइन के विरुद्ध प्रचारात्मक साहित्य लिखने में पहले से ही दक्षता प्राप्त कर चुकी थीं। वह भारत में आईं और ६ महीने के भीतर ही भारतवर्ष के बारे में ऐसी पुस्तक लिखकर तैयार कर दी, जिसके लिए वर्षों के परिश्रम की आवश्यकता थी। कहना न होगा कि इस काम के लिए अँग्रेज़ पूँजीपतियों से उनको मनमाना पैसा ख़र्च करने को मिला था और चुपचाप भारत-सरकार से भी पुस्तक के लिए मसाला दिया गया था। ये सब बातें लालाजी अपनी पुस्तक में सुन्दर रूप से प्रमाणित कर गये हैं। जब अँग्रेज़ पूँजीपतियों को इससे भी सन्तोष नहीं हुआ और उन्होंने सोचा कि इस पुस्तक से भारतवर्ष की उतनी बदनामी नहीं हुई, जितनी होनी चाहिए थी, तब उन्होंने मिस मेयो से दूसरी पुस्तक लिखवाई, जिसका नाम 'देवताओं के ग़ुलाम' है। इन दोनों पुस्तकों को विदेशों में नाममात्र के मूल्य पर बाँटा गया था।

भारतवर्ष के विषय में इस प्रकार का प्रचार काफ़ी हुआ है और हो रहा है। जब कोई 'बड़ा साहब' पेंशन लेकर विलायत लौटता है, तब प्रायः अपनी गपशप में ऐसी ही कहानियाँ और चुटकुले सुनाता है, जिनसे लोग हमारे देश को एक निपट गँवार और पिछड़ा हुआ समझते हैं। जॉन ड्रिंगवाटर इँगलैंड के एक नामी नाटककार और लेखक हो गये हैं। उनका देहान्त हुए अभी ज़्यादा समय नहीं हुआ। वे भारतवर्ष की सैर करने किसलिए नहीं आये? इसलिए कि वे समझते थे, इस देश के अच्छे से अच्छे शहरों की सड़कों में साँप और बिच्छू भारी तादाद में दिनदहाड़े फिरा करते हैं (देखिए "England Through Indian Eyes.")। भारत की सेना से पेंशन पाकर एक अँग्रेज़ कर्नल जब विलायत लौटे तो उन्होंने एक नाटक लिखा, जिसमें झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई को एक ऐसी चरित्रहीन नारी बतलाया गया था, जो एक अँग्रेज़ अफ़सर पर आसक्त हो जाती है। बाद में जब महारानी के वंशजों ने उन पर मानहानि का मुक़दमा चलाने का नोटिस दिया तो उक्त कर्नल को उस पुस्तक की बिक्री बन्द करनी पड़ी। अभी कुछ दिन पहले मि० एच्० जी० वेल्स विलायत जाते समय कराची में कुछ घंटे ठहरे थे। कुछ पत्र-प्रतिनिधियों से कहा था कि भारतवासी फ़ासिज़्म या डिमॉक्रेसी के बारे में समझते क्या हैं?

इस प्रकार की हरकतों से हमें भारत के प्रति इन विदेशियों की मनोवृत्ति का पता लगता है। इसके भीतर जो गहरी चाल छिपी हुई है, उसका अर्थ शायद हम अच्छी तरह से अभी नहीं समझ पाये हैं। दुनिया की नज़रों में ये पूँजीपति यह सिद्ध कर देना चाहते हैं कि भारत एक बिलकुल जंगली और असभ्य देश है, और यदि आज अँग्रेज़ी राज्य यहाँ से उठ जाय तो जर्मनी, जापान या अन्य कोई देश यहाँ आकर अपना राज्य स्थापित कर लेगा। इसका सबसे बुरा परिणाम यह होता है कि विदेशों में जो प्रगतिशील और उदार लोग—नेता, लेखक और सुधारक चिन्तक—हैं, वे भी हमारी प्रगति को पूर्ण रूप से नहीं समझ पाते। हमारे किसान और मज़दूर-आन्दोलन ने इधर जो उन्नति की है, उसे संसार के कितने लोग जानते हैं? हमारे पास इतने साधन नहीं हैं कि हम इन स्वार्थी विदेशी पूँजीपतियों के झूठे प्रचार का भण्डा-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोड़ करके अपनी सच्ची स्थिति संसार के सामने रख सकें। दुनिया को हम ऐसे जंगली बतलाये जाते हैं, जो स्वतंत्र होने के योग्य ही नहीं हैं, और जिनकी भलाई अँग्रेज़ों के अधीन रहने में ही है। भारतवर्ष के सम्बन्ध में, विदेशी पत्रों में, जो लेख निकलते हैं, उनमें प्रायः यही बतलाया जाता है कि भारत में ९० फ़ीसदी से ज़्यादा लोग निरक्षर हैं। वे भला प्रजातन्त्र चलाने का दावा किस प्रकार कर सकते हैं? हमारे पास ऐसे साधन नहीं हैं कि हम संसार को बतला सकें कि यह निरक्षरता हमें अँग्रेज़ी राज्य ने ही दी है। स्वर्गीय लालाजी बतला गये हैं कि अँग्रेज़ी राज्य के पहले भारत में साक्षरता इस समय की अपेक्षा अधिक थी।

आजकल प्रोपेगेंडा का सबसे शक्तिशाली अस्त्र सिनेमा है। विदेशी लोग इस हथियार को भी भारत के विरुद्ध प्रचार करने के काम में लाने से नहीं चूके हैं। रुडयार्ड किपलिंग इँगलैण्ड के सबसे बड़े साम्राज्यवादी कवि हो गये हैं। वे भारत के ही अन्न-जल से पले थे और यहीं उन्होंने लिखना सीखा था। परन्तु भारतवासियों को वे बड़ी हीन दृष्टि से देखते थे। उन्होंने कई उपन्यास और कहानियाँ लिखी हैं, जिनमें भारतवासियों को चरित्रहीन दिखलाया है। अमेरिका की फ़िल्म-कम्पनियों ने उनके इन उपन्यासों के सवाक् चित्र बनाये हैं, जो संसार भर में दिखलाये जाते हैं। इन अमेरिकन कम्पनियों द्वारा भारत-सम्बन्धी जितने चित्र बनाये जाते हैं, वे प्रायः सभी भारत को बदनाम करनेवाले होते हैं। 'दी डम', 'स्टार्म ओवर बंगाल', 'सीज़ आफ़् लखनऊ' और 'गंगादीन' ऐसे चित्रों में से कुछ हैं। इनसे हमारे राष्ट्रीय नाम पर कितना धब्बा लगता है, हमारी स्वतंत्रता की लड़ाई को कितना नुक़सान पहुँचता है, इसे शायद हम पूरी तौर से महसूस नहीं कर पाते। पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में यह मानी हुई बात है कि भारत की स्वतन्त्रता की लड़ाई संसार की स्वतंत्रता की लड़ाई है। जिस दिन भारत स्वतंत्र होगा, उस दिन संसार से साम्राज्यवाद उठ जायगा। विशेषकर एशिया की स्वतन्त्रता की कुंजी तो भारत की स्वतन्त्रता है। इसलिए प्रयत्न यह किया जाता है कि संसार यह न जाने कि हम स्वतन्त्रता की लड़ाई में किस तेज़ी के साथ अग्रसर हो रहे हैं। आम दुनिया तो हमें उसी प्रकार जानती है, जिस प्रकार हम 'दी डम' और 'गंगादीन'—जैसे चित्रों में दिखाये जाते हैं।

जब 'लखनऊ का घेरा' और 'गंगादीन'-जैसे सिनेमा-चित्र भारत में आते हैं, तो प्रान्तीय सरकारें उन्हें प्रदर्शित होने से रोक देती हैं। पर इससे विशेष लाभ नहीं होता। विदेशी पूँजीपतियों का जो असली मतलब है—विदेशों में हमें बदनाम करना—वह तो सिद्ध हो ही जाता है। इसके लिए हम क्या कर पाते हैं? भारतवर्ष में ज़्यादा से ज़्यादा ऐसे ३०० सिनेमाघर हैं, जहाँ विदेशी चित्र दिखाये जाते हैं। पर उधर अकेले संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में ही लगभग २०,००० सिनेमाघर हैं। इसके सिवा संसार भर में लगभग २५ हज़ार सिनेमाघर ऐसे हैं, जहाँ अमेरिकन फ़िल्म दिखाये जाते हैं। इससे हम अन्दाज़ लगा सकते हैं कि संसार के कितने लोगों की आँखों में हम गिरे हुए दिखाये जाते हैं।

श्रीसुभाषचन्द्र बोस ने, जो भारतवर्ष के लिए विदेशों में प्रचार-कार्य का महत्त्व पूर्ण रूप से समझते हैं, इस बदमाशी की तरफ़ हमारा ध्यान आकृष्ट करने का प्रयत्न किया है। उन्होंने अपनी पुस्तक 'कांग्रेस की नज़र' में यह बतलाया है कि सिनेमा द्वारा विदेशों में हम लोगों की मानहानि किस हद तक की जाती है। उन्होंने एक चित्र का उदाहरण दिया है। हालीवुड में एक चित्र बना है, जिसका नाम है—'Everybody Loves Music', अर्थात् 'सङ्गीत सबको भाता है'। उसमें महात्मा गांधी को एक अँग्रेज़ लड़की के साथ गंदे तरीक़े से नाचते हुए दिखलाया है। इसी प्रकार 'गंगादीन'-नामक चित्र में भी ठग को गाँधीजी के रूप में दिखलाया है। इस चित्र को सारे अमेरिका में सफलता मिली है। हरिजी गोविल अमेरिका में एक प्रसिद्ध भारतीय व्यापारी हैं। वे इस समय यहाँ आये हुए हैं। उनके पास ख़बर आई है कि अब हालीवुड में 'गंगादीन' के ही ढंग का एक दूसरा चित्र बन रहा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुभाष बाबू कहते हैं कि इस प्रकार के गन्दे प्रचार को रोकने के लिए हम जो कुछ कर सकते हैं, वह हमें करना चाहिए। उन्होंने बतलाया है कि भारतवर्ष हालीवुड की आमदनी का पाँचवाँ हिस्सा देता है। क्या हम लोग अपने राष्ट्रीय अभिमान की रक्षा के लिए यह रुपया एक विदेशी कम्पनी को देना बन्द नहीं कर सकते? ये विदेशी कम्पनियाँ हमारे पैसे से हमीं को उल्लू बना रही हैं। विदेशों में कितनी ऐसी कम्पनियाँ हैं, जिन्होंने असहयोग-आन्दोलन के दिनों में निहत्थी जनता पर गोरे सिपाहियों द्वारा लाठी और गोली चलाने के चित्र दिखाये हों?

भारतवर्ष के विरुद्ध इस प्रकार के गन्दे प्रचार को रोकने के दो मार्ग हैं। एक तो हमें इन विदेशी कम्पनियों के चित्रों का पूर्ण बहिष्कार करना चाहिए—चाहे अच्छे चित्र हों चाहे बुरे, हम उन्हें देखेंगे ही नहीं। सच्ची कला का हम अवश्य आदर करेंगे, पर दूध पिलाकर साँप नहीं पालेंगे। इस बहिष्कार में कांग्रेस को सबसे ज़्यादा दिलचस्पी लेनी चाहिए। इस वर्ष कांग्रेस ने दिखा दिया है कि वह महात्मा गांधी के लिए क्या कर सकती है। आशा है, विदेशों में भी उनका व्यक्तित्व महत् बनाये रखने के लिए कांग्रेस इन विदेशी कम्पनियों को उचित उत्तर देगी।

दूसरे, विदेशों में हमारे प्रचार-केन्द्र खुलने चाहिए, जहाँ चित्रों और पत्रों द्वारा हमारी स्वतन्त्रता की लड़ाई की वास्तविक प्रगति समझाई जाय, हमारे किसान और मज़दूर-आन्दोलन कितने आगे बढ़ गये हैं—यह बतलाया जाय। श्रीराहुल सांकृत्यायन के समान अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त किसान और मज़दूर-नेताओं को शुभकामी प्रतिनिधि-मंडल लेकर विदेशों में जाना चाहिए और हमारी लड़ाई की प्रगति को समझाना चाहिए।

विदेशों में प्रचार-कार्य के महत्त्व को बार-बार दुहराने की आवश्यकता नहीं। लगभग ४ वर्ष पहले अमेरिका से भारत में हबशियों का एक डेलीगेशन (प्रतिनिधि-मंडल) आया था। उन्होंने बतलाया था कि अब भी अपने हक़ों के लिए वे गोरों के विरुद्ध किस प्रकार लड़ रहे हैं। इस प्रकार के परिभ्रमण से जितना लाभ हो सकता है—विशेषकर परतंत्र देशों को—उतना और किसी बात से नहीं होगा। पिछले वर्ष पं० जवाहरलालजी ने योरप-भ्रमण कर भारतवर्ष की वास्तविक स्थिति का जो प्रचार किया था, उसकी सराहना सभी ने की थी। अभी श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय भी इसी प्रकार के परिभ्रमण के लिए विलायत गई हैं। बम्बई में पिछली ए० आई० सी० सी० की बैठक के अवसर पर यह प्रश्न उठाया गया था। परन्तु कांग्रेस के सभापति बाबू राजेन्द्रप्रसाद ने इस विषय पर विशेष ध्यान न देकर अपनी विवशता-सी ज़ाहिर की थी। आशा है, कांग्रेस इस विषय पर ध्यान देगी। हमारी लड़ाई का यह एक महत्त्वपूर्ण अंग है।

स्त्री-जाति की सुन्दरता का घोर शत्रु

प्रदर रोग

स्त्रियों के गुप्त स्थान से लाल, पीला, सफ़ेद, बदबूदार पानी-सा जाने से भूख कम लगती, सिर में चक्कर आते, कमर में दर्द रहता, सुन्दरता मारी जाती, रंग पीला हो जाता है, और कमज़ोरी के कारण संतान नहीं होती है।

इस रोग और रोग के उपद्रवों से छुटकारा पाने की शर्तिया दवा

श्रीसुखकर चूर्ण

केवल २१ दिन सेवन करने से प्रदर रोग शर्तिया आराम हो जाता है। मूल्य मय डाकख़र्च २)

औरतों के किसी भी गुप्तरोग का इलाज कराना हो तो रोग का पूरा हाल हिन्दी में साफ़-साफ़ लिखें।

पता—श्रीमती चपलादेवी वैद्या
चपला भवन, गली रावलिया, मथुरा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

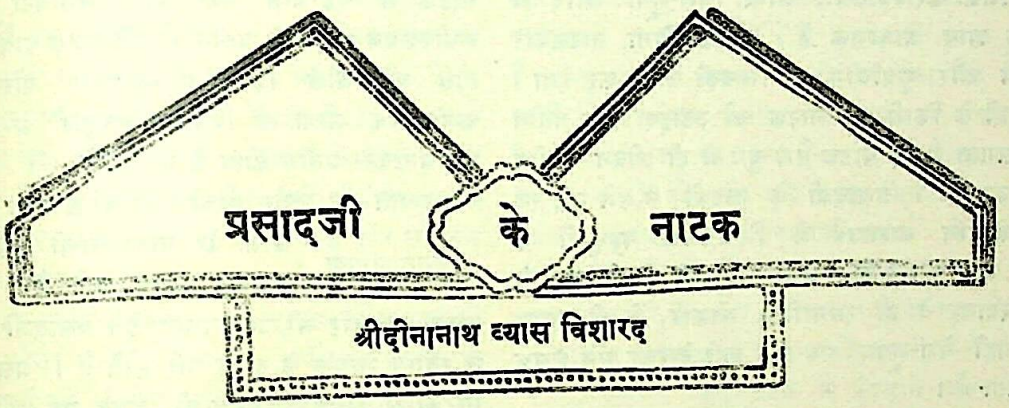

श्रीदीनानाथ व्यास विशारद

जयशंकर "प्रसाद"जी अपने आदर्शों के निर्माता थे। उन्होंने अन्य लेखकों एवं कवियों के भावों को नहीं अपनाया। जो लिखा, मौलिक ही लिखा। प्रसादजी ने प्राच्य और पाश्चात्य नाटकों के अध्ययन से एक स्वतंत्र ही शैली को जन्म दिया। प्रसादजी की शैली में न तो नीरसता ही है, और न प्राचीन रूढ़ियों का अन्ध अनुकरण। यद्यपि अपने प्रथम रूपक 'सज्जन' में आपने नान्दी पाठ दिया है, किन्तु इसके बाद के नाटकों में नान्दी पाठ नहीं मिलता। प्रसादजी के नाटक प्रथम दृश्य से ही आरंभ हो जाते हैं। यदि योजना-वस्तु का परिचय कराने की आवश्यकता पड़ी, तभी वह की जाती है, वरना नहीं। अलबत्ता नाटकों के अन्त में जिस तरह भरत-वाक्य रहता है, उसी तरह का अन्तिम एक पद इनके नाटकों में मिलता है। "जनमेजय का नागयज्ञ" तथा "राज्यश्री" में भरत-वाक्य-जैसे अन्तिम पद हैं।

प्रसादजी का पौराणिक अध्ययन नवीन वैज्ञानिक दृष्टि से हुआ है। आपने गुप्त एवं मौर्यकाल का बहुत ही सूक्ष्म एवं विस्तृत अध्ययन किया है। इसी कारण आपके नाटकों में वस्तु ऐतिहासिक अथवा पौराणिक ही रहती है। अभी तक नागों को सर्प ही माना जाता था, किन्तु प्रसादजी ने "जनमेजय का नागयज्ञ" में पुराणों के आधार पर उनका मनुष्य तथा भारत के प्राचीन निवासी होना प्रमाणित कर दिया है। प्रसादजी की यह विशेषता है कि प्रचलित ऐतिहासिक तथ्यों पर से ही नाटकीय वस्तु ग्रहण नहीं करते, वरन् अपनी मौलिक खोजों के आधार पर नवीन सामग्री एकत्रित करके फिर वस्तु का निर्माण करते हैं। इसीलिए प्रसादजी के नाटकों में ऐतिहासिक नवीन तथ्य भी मिलते हैं। चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त, अजातशत्रु आदि नाटकों में टूटी ऐतिहासिक शृंखलाओं को मिलाया गया है, पर कला के साथ। कवि को कला समाविष्ट करने के लिए प्रस्तुत वस्तु में थोड़े बहुत परिवर्तन करने ही पड़ते हैं। अतएव प्रसादजी ने भी साधारण-से परिवर्तन अवश्य किये हैं; किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों पर आघात करनेवाली

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उच्छृङ्खल कल्पनाओं का समावेश नहीं किया। प्रसादजी ने जिस काल की वस्तु ली है, उसकी परिस्थिति के साथ उसका समन्वय बड़ी ही कुशलता से किया है। देश, काल एवं तत्कालीन सामाजिक वातावरण का ध्यान रखने में प्रसादजी अद्वितीय थे। ऐतिहासिक नाटक लिख लेना साधारण बात नहीं है। ऐतिहासिक नाटकों के रचयिता को उस काल की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों, भाषा, वेश-भूषा आदि का सम्यक् ज्ञान आवश्यक है। इसके बिना नाटककार प्राचीन और अर्वाचीन की खिचड़ी तैयार कर देगा। प्रसादजी के किसी भी नाटक को उठाइए; ऐसा प्रतीत होने लगता है कि पाठक उस युग में ही जीवन व्यतीत कर रहा है। प्रसादजी के नाटकों ने हमें गुप्त एवं मौर्य-कालीन भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न पहलुओं के सुन्दर दर्शन कराये हैं। वे ही नगर, वे ही रीतियाँ, वे ही रिवाज, वे ही सामाजिक संस्कार, वे ही मनुष्य और वही वेश-भूषा, सब कुछ वही देखकर मन प्रसन्न हो जाता है।

कथोपकथन

प्रसादजी के नाटकों में कथोपकथन स्वाभाविक ही हुए हैं। परन्तु कहीं-कहीं साधारण पात्रों से दार्शनिक ढंग की बातें करा-कर प्रसादजी ने अस्वाभाविकता ला दी है। दार्शनिक सिद्धांतों का निरूपण और लम्बे-लम्बे व्याख्यान-सदृश कथोपकथन दो दृष्टियों से हानिकारक होते हैं। पहले तो व्याख्याता के सामने खड़ा हुआ पात्र उतनी देर तक अपने अभिनय को दिखाने में प्रायः असमर्थ-सा हो जाता है, जब तक दूसरा पात्र अपना लम्बा कथोपकथन कहता रहता है। दूसरे, श्रोताओं को भी लम्बे कथोप-कथन रुचिकर प्रतीत नहीं होते। उनका मन ऊब जाता है, और चित्त में नीरसता और नाटक के प्रति उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। प्रसादजी के समस्त नाटकों के अध्ययन के उपरान्त यह देखा जा सकता है कि कुछ हा स्थल ऐसे हैं, जहाँ ये बातें मिलती हैं। गंभीर परिस्थितियों में ऐसा कहीं नहीं हुआ। जहाँ कहीं प्रसादजी के कथोपकथनों में अस्वाभाविकता आ गई है, वहाँ कथावस्तु की भी शिथिलता रही है। वस्तु की शिथिलता में कथोपकथनों का लम्बा होना विशेष खटकने योग्य नहीं। दूसरी बात यह है कि प्रसादजी की भाषा नाटकों के उपयुक्त नहीं है। यहाँ हमारा तात्पर्य कथोपकथन की भाषा से है। दुरूह भाषा से वस्तु के प्रवाह को बड़ी ठेस पहुँचती है। स्वाभाविकता का गला घुटा-सा प्रतीत होता है। यह बात विशेषतया इनके आरंभ के नाटकों में पाई जाती है; पर ज्यों-ज्यों इनकी कला विकसित होती गई, त्यों-त्यों आगे के नाटकों में यह बात नहीं रही। बनावटी भाषा के कथोपकथन कुछ ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे पात्र रटे-रटाये तोते बने बोल रहे हैं। साधारण बोलचाल में अलंकारिक भाषा का प्रयोग बिलकुल अस्वाभाविक एवं बनावटी प्रतीत होता है।

स्वगत भाषण

'स्वगत' का प्रयोग प्राचीन नाटकों में पाया जाता है। आज के नाट्य-शास्त्री इसे अस्वा-भाविक मानने लगे हैं। इसलिए इसका व्यवहार भी उठ-सा गया है। प्रसादजी के नाटकों में स्वगत भाषण के दर्शन भी होते हैं। प्रसादजी के नाटकों में कथावस्तु बहुत ही दुरूह एवं जटिल रहती है, अतएव स्वगत भाषण की आवश्यकता अवश्य ही है। स्वगत भाषण बहुत ही संक्षिप्त होना चाहिए; परन्तु प्रसादजी की कृतियों में 'स्वगत' बहुत ही लम्बे हो गये हैं। 'स्वगत' मन में कह लेने तथा उसका साधारण-सा अभिनय दिखा देने भर की वस्तु है। परन्तु प्रसादजी हृदय के भावों को पात्रों से काफ़ी समय तक बड़बड़ा कर कहलवाना चाहते हैं; यह अस्वाभाविक एवं नाट्य-शास्त्र के नियमों के विरुद्ध है; परन्तु प्रसादजी के पात्रों का यह दोष इसलिए एकदम छिप जाता है कि उनके स्वगत बहुत ही भावपूर्ण एवं मधुर होते हैं। उनकी मधुरता ही अस्वाभाविकता की ओर दृष्टिपात नहीं करने देती।

अभिनयशीलता

ऐसा तो कहना कठिन है कि प्रसादजी के नाटक अभिनीत नहीं हो सकते। अक्सर विद्वानों की यह शिकायत है, जिनमें रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास बी० ए० भी शामिल हैं। उन्होंने चन्द्रगुप्त नाटक की आलोचना करते हुए काशी-नागरी-प्रचारिणी पत्रिका में दिखाया था कि चन्द्रगुप्त अभिनय के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमारी राय में किसी हद तक ही यह सही हो सकता है। इसका कारण यह है कि प्रसादजी के नाटकों की कथा-वस्तु अत्यन्त ही जटिल होती है, अतएव अभिनय करने में थोड़ी अड़चन अवश्य होती है। वस्तु में थोड़ा या परिवर्तन करने भर से यह कठिनाई दूर की जा सकती है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि वे अभिनीत हो ही नहीं सकते। पत्रों में बहुत समय पूर्व पढ़ने में आया था कि काशी में प्रसादजी का चन्द्रगुप्त कुछ साहित्यिकों द्वारा खेला गया था। इसके लिए प्रसादजी स्वयं बुलवाये गये थे। नाटक में अभिनय के लिए साधारण-सा परिवर्तन प्रसादजी ने ही किया था। वह खेला गया था और अच्छी सफलता के साथ। यह ज़रूर था कि युद्ध के दृश्य ठीक नहीं रहे, पर इसमें प्रसादजी और नाटक का क्या दोष? यह दोष तो उन दृश्यों के तैयार करनेवाले या अभिनय करानेवाले निर्देशक का माना जायगा। हाँ, इतना तो अवश्य ही मानना पड़ेगा कि प्रसादजी अभिनय-शाला के अन्तर्विभागों की विशेष जानकारी नहीं रखते थे, अतएव कौन-से स्थल अभिनीत होने में असंभव होते हैं, इसका उन्हें पता नहीं था। फिर भी उनके नाटक मामूली से परिवर्तन से अभिनीत हो सकते हैं।

हास्य-आयोजन

प्रसादजी की कृतियों को देखने पर यह तो निश्चय ही है कि वे गंभीर प्रकृति के लेखक और मनुष्य थे। वे भावुक थे, पर गंभीरता लिये हुए। वे हँसते थे, पर हृदय से नहीं। हास्य में वेदना का मिश्रण रहता था। वर्तमान नाटकों में मनोरंजन की दृष्टि से हास्य आवश्यक-सा मान लिया गया है, अतएव प्रसादजी ने भी अपने कतिपय नाटकों में हास्य को थोड़ा-बहुत स्थान अवश्य ही दिया है। अन्य नाटककारों की तरह प्रसादजी ने कथा-वस्तु से भिन्न हास्य की योजना नहीं की, वरन् उनका हास्य कथा-वस्तु से सम्बद्ध है। यह अवश्य है कि कुछ स्थल ऐसे भी आये हैं, जहाँ लेखक ने ज़बरदस्ती हास्य का पुट दिया है। वहाँ वह कुछ अस्वाभाविक-सा अवश्य प्रतीत होता है; परन्तु वस्तु से असम्बद्ध नहीं। शायद ऐसा प्रसादजी ने इसीलिए नियोजित किया है कि उनका पाठक गंभीर घटनाओं से घबराकर उदासीन न हो जाय। उसके उदासीन होने के पहले ही बीच में प्रसादजी हास्य आरंभ कर देते हैं, जिससे उनके पाठक को मानसिक विश्राम मिल जाय। इसलिए प्रसादजी के हास्य की योजना को अनावश्यक नहीं कहा जा सकता। "जनमेजय का नागयज्ञ" में जिस समय कश्यप दक्षिणा लेने आता है, उस समय वहाँ कुछ हास्य की सामग्री मिल जाती है। "अजातशत्रु" में राजवैद्य वसंतक का हास्य भी पठनीय है। "स्कन्दगुप्त" में मुद्गल ने हास्य किया है। मुद्गल को केवल अपनी पेट-पूजा की चिन्ता रहती थी, इसलिए गंभीर समस्याओं पर कथोपकथन के समय भी वह कह देता है—"देव! पाकशाला पर चढ़ाई करनी हो, तो मुझे आज्ञा मिले।" मुद्गल की सृष्टि प्रसादजी ने "शकुन्तला-नाटक" के विदूषक माढव्य के समान ही की है। इसी तरह प्रायः उनके समस्त नाटकों में हास्य को स्थान दिया गया है।

वर्जित दृश्य

प्राचीन नाट्याचार्यों ने नाट्य-सिद्धान्तों में रंगमंच पर कुछ दृश्य न दिखाने योग्य बताये हैं। यह निषेध इसलिए किया गया है कि कोमल हृदय दर्शकों को उन दृश्यों के देखने से कहीं मानसिक क्लेश या हार्दिक क्षोभ न हो जाय। इसीलिए मरण, हत्या आदि रंगमंच पर दिखाने का निषेध है। किन्तु प्रसादजी प्राचीन नाटकों की इस प्रणाली को ग्राह्य नहीं मानते। यह तो मानी हुई बात है कि जहाँ युद्ध होंगे, वहाँ अवश्य ही हत्याएँ तथा रक्तपात होगा। घोर युद्ध के दृश्य नाटकों में अभिनीत भी नहीं किये जा सकते। ये काम सिनेमा में हो सकते हैं। प्रसादजी का मत है कि जब युद्ध में हत्याएँ होंगी, तब उनका दृश्य में समावेश क्यों नहीं होना चाहिए। इसी सिद्धान्त पर उन्होंने "चन्द्रगुप्त" में सेल्यूकस तथा पर्वतेश्वर के युद्ध, "अजातशत्रु" में कहरूर के घोर युद्ध एवं "जनमेजय का नागयज्ञ" में नागों और आर्यों के युद्ध-दृश्यों को स्थान दिया है।

प्रसादजी का सन्देश

प्रसादजी के नाटक देश-प्रेम का सन्देश देते हैं। प्रसादजी ने चन्द्रगुप्त, स्कन्दगुप्त एवं जनमेजय का नाग-यज्ञ में अनेक ऐसे देश-भक्त पात्रों की सृष्टि की है, जो मातृ-भूमि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की बलि-वेदी पर सहर्ष चढ़ जाने को उद्यत प्रतीत होते हैं। स्कन्दगुप्त में स्कन्दगुप्त का प्रयत्न ही यह दिखाया गया है कि वह देश की विदेशियों से रक्षा करे। इसी तरह चन्द्रगुप्त में चाणक्य और स्वयं चन्द्रगुप्त के भी ऐसे ही प्रयत्न दिखाये गये हैं। मानवी संसार के लिए प्रसादजी कौन-सा संदेश देते हैं, इसके जानने के लिए हम स्कन्दगुप्त नाटक का एक अवतरण देते हैं—

'कौन कहता है तुम अकेले हो? समग्र संसार तुम्हारे साथ है। स्वानुभूति को जाग्रत् करो। यदि भविष्यत् से डरते हो कि तुम्हारा पतन ही समीप है, तो तुम इस अनिवार्य स्रोत से लड़ जाओ। तुम्हारे प्रचण्ड और विश्वास-पूर्ण पदाघात से विंध्य के समान कोई शैल उठ खड़ा होगा, जो उस विघ्न-स्रोत को लौटा देगा। राम और कृष्ण के समान क्या तुम अवतार नहीं हो सकते? समझ लो! जो अपने कर्मों को ईश्वर का कर्म समझकर करता है, वही ईश्वर का अवतार है। उसमें पुरुषार्थ का समुद्र पूर्ण हो जाता है। उठो स्कंद! आसुरी वृत्तियों का नाश करो, सोनेवालों को जगाओ और रोनेवालों को हँसाओ।'

उपर्युक्त अवतरण में प्रसादजी ने विश्वप्रेम, आशा, स्वाभिमान और क्षमा का दिव्य सन्देश दिया है। यही प्रसादजी के प्रत्येक नाटक में दिखाई देता है।

चरित्र-चित्रण और पात्र-योजना

प्रसादजी के नाटकों में अनेक प्रकार के पात्रों का समावेश हुआ है। प्रसादजी को मानवीय प्रकृति का बहुत ही मार्मिक परिचय है, अतएव उनके पात्रों की कल्पना एवं चरित्र-चित्रण भी भिन्न-भिन्न प्रकार से ही हुआ है। प्रसादजी के नाटकों में दो तरह के पात्र देखे जाते हैं। एक तो वे, जो मानवी सीमा में रहकर काम करते हैं; दूसरे वे, जो मानवेतर हो जाते हैं। प्रसादजी दोनों तरह के पात्रों के चित्रण में सफल हुए हैं। इतना अवश्य है कि साधारण पात्रों के प्रति उपेक्षा का भाव अवश्य जगह-जगह लक्षित होता है। कला-प्रदर्शन के लिए मानवेतर पात्रों की सृष्टि आवश्यक हो जाती है। साधारण पात्रों में नाटककार वैसा कम कर पाता है। किन्तु अन्य नाटककारों की अपेक्षा प्रसादजी के पात्रों में एक ख़ास विशेषता पाई जाती है। वह यह कि वे पात्र अपने व्यक्तित्व के साथ ही साथ नाटककार की सृष्टि का व्यक्तित्व भी रखते हैं। कृत्रिम व्यक्तित्व हटा देने पर पात्रों की असलियत का पता शीघ्र ही लग जाता है।

प्रसादजी भाग्यवादी हैं, अतएव उनके पात्रों में भी जगह-जगह वही झलक स्पष्ट दिखाई दे जाती है। प्रायः प्रत्येक नाटक में उन्होंने भाग्यवाद की दुहाई दी है। स्कन्दगुप्त, चन्द्रगुप्त आदि नाटकों में जगह-जगह नियति की पुकार है। और तो और, अपने ऊपर विश्वास रखनेवाला चाणक्य भी प्रसादजी के हाथों नियति को मानने लगा है। परन्तु प्रसादजी ने इतनी कृपा अवश्य की है कि भाग्यवादियों को अकर्मण्य नहीं बनाया। उनसे ऐसे-ऐसे काम कराये हैं कि हमें चकित रह जाना पड़ता है। उनके इन विकट कार्यों को देखकर ही पता लग जाता है कि ये पात्र किसी के बहकाने से नियति-नियति चिल्लाने लगे थे। पर वास्तव में वे बड़े ही साहसी वीर थे।

प्रसादजी गंभीर दार्शनिक हैं। अतएव उनके पात्रों में दार्शनिकता के भी दर्शन होते हैं। और तो और, साधारण पात्र भी दार्शनिक उक्तियाँ कह उठते हैं। भगवान् कृष्ण, बुद्ध आदि की दार्शनिक उक्तियाँ तो शोभनीय हैं; पर साधारण पात्रों की उक्तियाँ अवश्य कुछ अस्वाभाविक प्रतीत होती हैं।

प्रसादजी बहुत गंभीर भाषा का प्रयोग करते हैं। यही बात नाटकों में विद्यमान है। साधारण से लेकर मानवेतर पात्रों तक की भाषा गंभीर और एक-सी है। जिस प्रकार साधारण पात्रों के मुँह से गंभीर दार्शनिक चर्चा खटकती है, उसी तरह उनके मुँह से गंभीर भाषा का प्रयोग भी बुरा मालूम होता है। इससे पता नहीं चलता कि साधारण पात्र गंभीर पात्र हैं, या क्या! प्रसादजी ने साधारण पात्रों के साथ ऐसी उपेक्षा अवश्य की है। जब मालव-राष्ट्रपति का पुत्र सिंहरण गंभीर एवं सजीली भाषा में बोलता है, तो हमें नहीं खटकता; क्योंकि सिंहरण की वह भाषा उच्च कुल एवं उच्च शिक्षा के योग्य ही है। परन्तु साधारण-सा प्रतिहारी जब संसार को मिथ्या बताकर गंभीर भाषा में अनन्त गान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गाने लगता है, तब महान् आश्चर्य होता है। प्रसादजी ने कुछ पात्रों की सृष्टि नाटकीय नहीं, वरन् अपने व्यक्तित्व से की है। वहाँ उन्होंने अपने भावुक हृदय को आगे बढ़ाया है। इसके उदाहरण के लिए कल्याणी को लीजिए। चन्द्रगुप्त नाटक की कल्याणी वास्तव में स्त्रियेतर आदर्श की कल्पना है। प्रेम में प्राण गँवाना तो एक मान्य सिद्धान्त है; परन्तु दो परस्पर विरोधी प्रेमों को रक्षित रखना हँसी-खेल नहीं। जिस प्रेमी की प्राप्ति के लिए उस कुमारी ने इतना कष्ट झेला था, वह उसे पाकर भी न पा सकी; क्योंकि उसका प्रेमी उसके पिता का शत्रु था। उसका प्रेम कितना पवित्र और कितना सीमित था, यह उसी के शब्दों में देखिए—

"परन्तु मुझे आशा थी कि तुम मुझे न भूले होगे! चन्द्रगुप्त!"

परन्तु उसके पिता की हत्या हो जाती है। उस समय कल्याणी के ये उद्गार कितने मर्म-भेदी हैं—

"मगध के राजमंदिर उसी तरह खड़े हैं, गंगा शोण से उसी तरह मिल रही है, नगर का कोलाहल पूर्ववत् है। परन्तु न रहेगा एक नन्द-वंश। फिर क्या करूँ? आत्महत्या करूँ? नहीं! जीवन इतना सस्ता नहीं है। अहा देखो! यह मधुर आलोकवाला चन्द्र उसी प्रकार नित्य की तरह एकटक इस पृथ्वी को देख रहा है। कुमुदबन्धु! तुम मेरे भी बन्धु बन जाओ। इस छाती की जलन मिटा दो।"

चन्द्रगुप्त जब उससे प्रेम के विषय में पूछता है, तब मन मारकर कल्याणी उत्तर देती है—

"हाँ यह सच है! (कि मैं तुम्हें प्रेम करती थी) परन्तु तुम मेरे पिता के विरोधी हुए, इसलिए उस प्रणय को—उस प्रेम-पीड़ा को, मैं पैरों से कुचलकर—दबाकर—खड़ी रही। अब मेरे लिए कुछ भी अवशिष्ट नहीं रहा, पिताजी! लो मैं आती हूँ!"

छुरी मारकर कल्याणी आत्महत्या कर लेती है। जिस प्रेम की उसने आजीवन तपस्या की, प्राप्ति के समय उस प्रेम का त्याग कर देती है। वास्तव में प्रसादजी की यह कवि-कल्पना अनोखी है। ऐसे पात्रों की सृष्टि के उदाहरण प्रसादजी को छोड़कर शायद ही कहीं मिलें।

प्रसादजी के पात्रों में क्षमा करने की शक्ति अधिक पाई जाती है। "राज्यश्री" जब विकट घोष को क्षमा प्रदान करती है, तब उतना आश्चर्य नहीं होता, क्योंकि यह तो राज्यश्री के चरित्र की एक विशेषता ही थी; परन्तु जब 'स्कंदगुप्त' में दुराचारी हूण देवसेना का पीछा करता है और पर्णदत्त देवसेना की रक्षा कर लेता है और उस हूण को पकड़ लेता है, तब देवसेना उसके अत्याचारी होने के बाद भी उसे क्षमादान देती है। यही सच्ची क्षमा है।

प्रसादजी कोमल स्वभाव के हैं, इसीलिए प्रसादजी के नाटकों में जब कोई किसी का वध करने को तैयार हो जाता है तो तुरंत ही बचानेवाला भी प्रकट हो ही जाता है। स्कंदगुप्त में हूण-सेनापति प्रख्यात कीर्ति की हत्या को तैयार है, और प्रसादजी ने धातुसेन को बचाने के लिए खड़ा कर दिया। चन्द्रगुप्त में मौर्य छुरी से चाणक्य को मारना चाहता है कि सुवासिनी दौड़कर पीछे से उसका हाथ पकड़ लेती है। प्रसादजी भयंकर दृश्यों तक तो अवश्य पहुँच जाते हैं, परन्तु कोमल हृदय होने के कारण उनसे हत्या आदि के दृश्य दिखाये नहीं जा सकते। प्रसादजी अपने समस्त नाटकों में केवल एक ही जगह 'नागयज्ञ' में पत्थर का कलेजा करके भीषण काण्ड दिखा सके हैं।

आधुनिक प्रभाव

प्रसादजी के नाटकों पर आधुनिक युग का प्रभाव स्पष्ट देख पड़ता है। 'जनमेजय का नागयज्ञ' में कश्यप के सहयोगी ब्राह्मण आजकल के ब्राह्मणों से मिलते-जुलते हैं। परन्तु इतनी पतित अवस्था शायद उस युग के ब्राह्मणों की नहीं रही होगी। स्कंदगुप्त में वर्णित बौद्धों और ब्राह्मणों का विवाद वर्तमान हिन्दू-मुस्लिम वाद-विवाद से ख़ूब मेल खाता है। 'नागयज्ञ' की मनसा वर्तमान आंग्ल रंग में रँगी हुई स्त्रियों-जैसी ही है।

प्रसादजी के नाटक हिन्दी-साहित्य की अमर कृतियों में से हैं। उनका विशेष साहित्यिक महत्त्व है, और हमारी भाषा उनके द्वारा गौरवान्वित भी हुई है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाराजा मानसिंह के नाम
महाराजा रणजीतसिंह का पत्र *

इतिहासाचार्य पण्डित विश्वेश्वरनाथ रेउ

यह पत्र पंजाब के प्रसिद्ध सिख-नरेश महाराजा रणजीतसिंहजी ने मारवाड़-नरेश महाराजा मानसिंहजी के नाम लिखा था।

यद्यपि जिस समय यह पत्र लिखा गया था, उस समय महाराजा रणजीतसिंहजी का प्रताप-सूर्य बराबर ऊपर उठ रहा था, तथापि साथ ही हिंदुस्तान के अन्य प्रदेशों में 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' भी धीरे-धीरे जड़ जमा रही थी। उस कम्पनी ने ई० सन् १८१८ में बाजीराव द्वितीय को पेशवा की गद्दी से हटा दिया था और कुछ काल बाद वह भरतपुर पर आक्रमण करने की धमकी भी देने लगी थी। इसी से पेशवा और भरतपुर-नरेश, दोनों ने ही पंजाब-केसरी महाराजा रणजीतसिंहजी से सहायता की प्रार्थना की। परन्तु पंजाब-नरेश ने उनकी प्रार्थना स्वीकार करने के पूर्व मारवाड़-नरेश महाराजा मानसिंहजी से, जिनको वह उस समय के सारे ही नरेशों में श्रेष्ठ और धर्मिष्ठ समझते थे, परामर्श और सहायता ले लेना उचित समझा। इसी से यह पत्र लिखा गया था।

उपर्युक्त पत्र बहुत-सी ऐतिहासिक बातों के साथ ही उस समय के देशी नरेशों की दशा को भी प्रकट करता है।

इस पत्र में के नामों आदि पर पाठकों की सुविधा के लिए टिप्पणियाँ लगा दी हैं, जिनसे सारी बातों के समझने में सुविधा होगी।

---

* महाराजा मानसिंहजी के कृपापात्र कचरदास द्वारा लिखी हुई इस पत्र के मारवाड़ी अनुवाद की कापी जोधपुर-राज्य के 'दस्तरी' आफ़िस में विद्यमान है। उसकी नक़ल करवाकर भेजने के लिए मिस्टर पी० पी० कोठावाला लेखक के धन्यवाद के पात्र हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पत्र का अनुवाद

बहुत दिनों से श्रीमान् ने अपनी कुशल और विचारों से अवगत करने की कृपा नहीं की। फिर भी श्रीमान् के, अपने महाराज-कुमार[1] के असमय स्वर्गवास से, अतिशय चिन्तित होने का समाचार मिला। इस घटना से वास्तव में हमें भी बहुत दुःख हुआ है और उसे हम लिखकर प्रकट करने में असमर्थ हैं। हमको ऐसी बातें ईश्वर पर ही छोड़ देनी पड़ती हैं। परन्तु हम उससे दया की प्रार्थना करते हैं, जिससे वह आपके प्रसिद्ध घराने को फिर से पुत्र प्रदान कर अनुगृहीत करे।

यहाँ के समाचार इस प्रकार हैं—

मुल्तान[2], काश्मीर का सूबा, भक्खर और मानकेरा[4] का घेरा तो ख़ालसाजी (सिख-राज्य) के अधिकार में आ चुके हैं।

इस वर्ष ख़ालसा-सेना का विचार काबुल के सूबे पर क़ब्ज़ा करने का था और इसी के अनुसार जिस समय वह पेशावर के निकट पहुँची, उस समय वज़ीर फ़तेख़ाँ के भाई नवाब अज़ीमख़ाँ का छोटा भाई समदख़ाँ ख़ालसाजी के दरबार में हाज़िर हुआ और उसने भेंट नज़र करने के बाद निवेदन किया कि—"नवाब अज़ीमख़ाँ सरकार की बन्दगी करने को तैयार है और श्रीमान् उसके तीस हज़ार बहादुर सवारों से सेवा ले सकते हैं।

हमारे और बादशाह कामराँ[5] के बीच भाई फ़तेख़ाँ के वध के कारण दुश्मनी चली आती है, और शुजाउल्मुल्क[6] और शाहज़माँ[7] हमें सज़ा दिलवाने के लिए अँगरेज़ों[8] के पास जा बैठे हैं। ऐसी हालत में हम अपने को ख़ालसाजी की शरण में सौंपते हैं और उसकी नौकरी में सिर कटवाने तक को तैयार हैं।

---

(१) महाराज-कुमार छत्रसिंहजी का स्वर्गवास वि० सं० १८७४ की चैत्र वदि ४ (ई० सन् १८१८ की २६ मार्च) को हुआ था।

(२) मुल्तान ई० सन् १८१८ में लिया गया था।

(३) काश्मीर-प्रांत पर ई० सन् १८१६ में अधिकार हुआ था।

(४) मानकेरा का नगर, जो एक ग़ैर-आबाद भू-भाग में स्थित है, और जिसके इर्द-गिर्द क़रीब एक दर्जन क़िलों का घेरा-सा बना है, ई० सन् १८२१ में जीता गया था।

(५) काबुल के बादशाहों को अपनी इच्छा के अनुसार बनाने और बिगाड़नेवाला यह फ़तेख़ाँ बरकज़ई कबीले के सरदार पायंदाख़ाँ का पुत्र और महमूदशाह का मंत्री था, जिसको इसने ई० सन् १८०० में काबुल पर अधिकार करने में सहायता दी थी। परन्तु ई० सन् १८१८ में महमूदशाह के पुत्र कामराँशाह ने इसे (फ़तेख़ाँ को) अंधा कर मार डाला।

(१) मुहम्मदअज़ीम को उसके भाई फ़तेख़ाँ ने पहले काश्मीर का गवर्नर नियत किया था। जिस समय महाराजा रणजीतसिंहजी की सेना पेशावर के पास पहुँची थी, उस समय यही (मुहम्मदअज़ीम) काबुल का शासक था।

(२) यह काबुल के बादशाह महमूदशाह का पुत्र था।

(३) यह शुजाउल्मुल्क काबुल के ज़मनशाह (शाहज़माँ) का भाई था और उसके द्वारा पहले पेशावर का शासक नियत किया गया था। इसने ई० सन् १८०० में अपनी स्वाधीनता घोषित की और ई० सन् १८०३ में अफ़ग़ानिस्तान पर अधिकार किया। ई० सन् १८०६ में गन्दुमक के पास निमुला में यह हराया गया और इसके कुछ काल बाद मदद की तलाश में हिन्दुस्तान आया।

(४) यह शाहज़माँ तिमूर का पाँचवाँ पुत्र था और पायंदाख़ाँ की सहायता से अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर बैठा। इसी ने पहले-पहल ई० सन् १७६६ में रणजीतसिंहजी को राजा की उपाधि और लाहौर नगर का अधिकार दिया था। परन्तु अन्त में यह पायंदाख़ाँ के पुत्र फ़तेख़ाँ की प्रेरणा से अंधा कर दिया गया और इसके बाद इसे बहुत समय तक हिन्दुस्तान में रहना पड़ा।

(५) ईस्ट इण्डिया कम्पनी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसलिए उम्मीद है कि काबुल का सूबा फ़ौज-खच के लिए हमारे अधिकार में ही छोड़ दिया जायगा।"

इसी बीच पेशवा और भरतपुर-नरेश[2] के वकील वहाँ पहुँचे और उन्होंने निवेदन किया कि यदि सरकार की फ़ौज का कूच दिल्ली की तरफ़ करवाया जाय, तो वे दोनों एक-एक लाख रुपये देने को तैयार हैं।

आप अच्छी तरह से जानते हैं कि हिन्दुस्तान की यह हीन दशा उसके राजाओं की आपस की फूट के कारण ही है। उनके आपस में एकता नहीं है।

हम हिन्दुस्तान में आपके सिवा और किसी को भी धर्म और वचन पर दृढ़ रहनेवाला नहीं समझते। इसी से यह खास चोबदार इस पत्र के साथ भेजा है। अतः हिन्दुस्तान की रक्षार्थ जो कुछ भी नेक सलाह आप उचित समझें, लिखें, ताकि उसका अनुसरण किया जाय। अपना कोई विश्वस्त और समझदार कर्मचारी भी यहाँ भेजें; क्योंकि बहुत-सी बातें आपस में लिखकर नहीं भेजी जा सकतीं और भेंट की वस्तुओं के भेजने में भी कठिनता होती है। इसलिए आपका वह कर्मचारी यहीं रहे। चोबदार की जबानी अर्ज़ भी अंगीकार करें।

पेश हुआ—वि० सं० १८७६ की मँगसिर सुदि १२ (ता० २५ दिसम्बर १८२२) को।

हस्ताक्षर—कचरदास

(१) बाजीराव द्वितीय।

(२) उस समय रणजीतसिंह का पुत्र रणधीरसिंह भरतपुर का राजा था।

हिन्दुस्तान का नया आविष्कार

हिन्द टानिक क़ब्ज़ को दूर कर बदहज़मी को हटा देगा, आँख की रोशनी तेज़ कर बाल का पकना रोक देगा, पका बाल खूँटी से काला पैदा कर स्थायी काला रखेगा, नई ज़िन्दगी, नई ताक़त पैदा कर जवानी को फिर लौटा देगा, कमज़ोरी तथा झुर्रियाँ नष्ट कर बूढ़े को जवान-सा बना देगा। फ़ी शीशी ५) रु०। झूठा साबित करनेवाले को १००) रु० इनाम।

जड़ीबूटी दवाख़ाना पो० बिहार नरसरी (दरभंगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मराठों का पुर्तगालियों से धर्मयुद्ध

(ख़ास माधुरी के लिए)

[१७३९ ई०]

श्रीयुत भास्कर रामचंद्र भालेराव बी० ए०

संभवतः पाठकों ने समाचारपत्रों द्वारा पढ़ा होगा कि इसी वर्ष ता० १३ मई को बम्बई के निकटस्थ वसई स्थान पर उक्त धर्मयुद्ध का द्विशताब्दि-विजयोत्सव-दिवस, महाराष्ट्र में, बड़े पैमाने पर मनाया गया था। उक्त वसई ग्राम को ही अँग्रेज़ों ने बसीन बना दिया है। वह स्थान दो प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटनाओं के कारण केवल महाराष्ट्र के ही नहीं, वरन् भारत के इतिहास में अमर है। पुर्तगालियों ने हिन्दू-धर्म पर घोर अत्याचार किये और हिन्दुओं को ज़बरदस्ती ईसाई बनाना शुरू किया। अतएव मराठों ने पुर्तगालियों को नीचा दिखाकर वसई का क़िला उनसे छीन लिया और बम्बई के आसपास के प्रदेश में फिर धर्मराज्य स्थापित किया। महाराष्ट्र का वह प्रथम पानीपत का युद्ध कहा जा सकता है। उस युद्ध में मराठों को बड़े कष्ट उठाने पड़े, क्षति भी उनकी ख़ासी हुई; किन्तु उन्होंने स्वदेश-बन्धुओं को विदेशियों के चंगुल से छुड़ाने के लिए सब कुछ सहा। कहना न होगा, उस धर्मयुद्ध से पुर्तगाली ही हतबल नहीं हुए, वरन् धर्मरक्षक के नाते मराठों की देश में बड़ी कीर्ति फैली। बसई के संग्राम से ही मराठों की विजयिष्णु राजसत्ता फैलने लगी। जहाँ बसई को मराठों के इतिहास में इतना महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वहाँ एक दूसरी घटना के कारण वह काफ़ी बदनाम भी है। सन् १८०१ तक मराठे ही भारत के सार्वभौम सत्ताधारी थे; किन्तु उसी साल अन्तिम पेशवा बाजीराव की मूर्खता के कारण वह जलचर अँग्रेज़ों के चंगुल में बसई स्थान पर ही जा फँसा और कुप्रसिद्ध बसीन की संधि की गई, जो मराठा-साम्राज्य की छाती में छुरी भोंकने के समान सिद्ध हुई। मराठा-साम्राज्य के सूत्रधार बाजीराव के बसई स्थान पर अँग्रेज़ों की शरण जाने के दिन से ही, बस, मराठों का वैभव-सूर्य अस्ताचल की ओर जाने लगा। हाँ, उस समय के बाद भी १८०३ ई० का अँग्रेज़-मराठों का क्रांतिकारी युद्ध, १८०५ ई० का मराठा मित्र-मण्डल का संघटन, १८१७ ई० में बाजीराव का राज्य-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्याग, १८४८ ई० में सितारा, नागपुर, झाँसी आदि मराठा-राज्यों की समाप्ति तथा १८५७ ई० के महान् क्रांतिकारी युद्ध में भी मराठों का नाम काफ़ी चमका। किन्तु बसीन की संधि द्वारा जिस दिन अँग्रेज़ मराठों के घर में घुसे, उसी दिन मराठा-राज्य का अन्त होने के बीज बोये गये। ओह! स्थान-माहात्म्य में भी कितना उलटफेर दिखाई देता है। जिस बसई ने मराठों का नाम पुर्तगालियों के ध्वंसक के नाते आसेतु हिमालय तक फैलाया, वहीं स्थान उन्हीं विजयशाली मराठों के सर्वस्व पतन का भी कारण सिद्ध हुआ।

मराठों के प्रतिस्पर्धी मुग़ल, राजपत तथा अँग्रेज़ और उन्हीं का अंधानुकरण करनेवाले सर यदुनाथ सरकार, डॉ० राजकुमार रघुराजसिंहजी या ग्रेंडफ, किंकेड प्रभृति आधुनिक इतिहासकार मराठा-राज्य-स्थापना के ध्येय के विषय में चाहे कुछ भी कहें; किन्तु यह बात निर्विवाद है कि स्वधर्म-रक्षा के लिए ही स्वराज्य-स्थापना का ध्येय सामने रखकर महाराष्ट्र के यादव-राजा या विजयनगर के साम्राज्य-सत्ताधारियों ने ही नहीं, किन्तु गो-ब्राह्मण-प्रतिपालक, हिन्दू-स्वराज्य-संस्थापक छत्रपति शिवाजी के पूज्य पिता शाहजी महाराज ने भी भरसक प्रयत्न किये। इस विषय में शाहजी के दरबारी कवि जयराम या छत्रपति शिवाजी के आश्रित भूषण के उद्गार ही पर्याप्त हैं।

यथा—

उत्तर दच्छिन रच्छन को,
इत साहजू हैं उत साहिजहाँ।
(जयराम)

हिन्दुन की हद तेगबल राखी सिवराज,
देव राखे देवल, स्वधर्म राख्यो घर में।
(भूषण)

छत्रपति शिवाजी-सम्बन्धी उक्त यथार्थ उद्गारों से मराठा-साम्राज्य के ध्येय का पता चल सकता है। धर्म-रक्षा के लिए आत्मसमर्पण करनेवाले संभाजी, छत्रपति राजाराम, मालवा नीमाड़ को मुग़लों के चंगुल से छुड़ानेवाले बाजीराव पेशवा, क्षयरोग से ग्रस्त होते हुए भी मृत्युशय्या से हिन्दू-तीर्थ-स्थानों को परधर्मियों से छीनकर अपने अधिकार में लेने की इच्छा करनेवाले प्रथम माधवराव पेशवा एवम् मथुरा-वृन्दावन की सनदें हस्तगत करके भारत भर में गोवध-बंदी का फ़रमान जारी करानेवाले महादजी सेंधिया आदि महाराष्ट्रीय राष्ट्र-नायकों की कर्तव्यगाथा के देखते निःसंकोच कहा जा सकता है कि भारतीय आदर्शों के पालन और रक्षा में मराठों ने कोई बात उठा नहीं रक्खी। विदेशी वलन्दीज़, पुर्तगाली, फ़्रेंच और अँग्रेज़ यद्यपि क्रमानुसार तराज़ू, तलवार तथा तख़्त के धनी बनने की चेष्टा करते रहे; किन्तु उसके साथ ही मुसलमानों के कट्टरपन से प्रभावित होकर उन्होंने भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों में अत्याचार, निरंकुशता एवम् विश्वास-घातकता से ईसाई-धर्म का प्रचार करने और हिन्दुओं को ईसाई बनाने में भी कोई कोर-कसर नहीं रक्खी। चलते-पुर्ज़े मिशनरी लोग रात में जूठी रोटियों के टुकड़े, बिस्कुट आदि कुओं में डाल देते थे। दूसरे दिन बस्ती के लोग उन्हीं कुओं से जब पानी पीते, तब संध्या को यह घोषणा कर दी जाती कि उन कुओं में जूठी रोटियों के टुकड़े डाले गये थे, अतएव सभी धर्म-भ्रष्ट हो गये! समय के अनुसार धार्मिक कल्पनाएँ भी बदलती रहती हैं। वह अंधश्रद्धा, जो अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दि में भारतवर्ष में विद्यमान थी, इस बीसवीं शताब्दि में अब कहाँ है? उन कुओं का पानी पीकर ईसाई बने हुए हज़ारों कुटुम्ब अब भी हिन्दू-धर्म पर पूर्ण श्रद्धा रखते हुए गोआ-प्रांत तथा बम्बई के निकटस्थ उक्त बसई के आसपास पाये जाते हैं। समय के पलटने से अब वे नाम-मात्र के ईसाई फिर अपने पूर्व-धर्म को ग्रहण भी कर रहे हैं।

अपने उक्त विवेचन के संदर्भ-स्वरूप बसई के धर्म-युद्ध का ही हम पाठकों को परिचय देते हैं, जिसका द्विशताब्दि-उत्सव हाल ही में, महाराष्ट्र में मनाया गया था। अठारहवीं शताब्दि के पूर्वार्ध में बम्बई के आसपास का देश पुर्तगालियों के क़ब्ज़े में हो गया था। गोआ, डामन, ड्यू अब भी प्रजा-सत्तात्मक पुर्तगाल देश के अधीन हैं। मुसलमानों की उपजाति पठानों की तरह योरप की जातियों में पुर्तगाली बड़े

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कट्टर थे। उन पुर्तगालियों ने क़ुरान और तलवार के भय की तरह क्रिश्चियन धर्म का अखंड ज्योति बताकर आतंक से हिन्दुओं पर जो अत्याचार किये, वे कभी भुलाये नहीं जा सकते। वसई के निकट ही कल्याण-प्रांत मराठों के अधीन था, जहाँ स्व-धर्म-रक्षा के साथ ही पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता भी थी। पड़ोसी प्रांत बसीन, चेऊल आदि में हिन्दुओं को अपना धन-धरती बचाना कठिन हो रहा था। पाठकों को मालवा नीमाड़ के इतिहास की वह अकाल की प्रसिद्ध घटना मालूम होगी। सन् १७२२ में, उन प्रांतों में भीषण अकाल पड़ा था। किन्तु मुग़ल-सूबेदार प्रजा के साथ लगान-वसूली में बिलकुल रियायत करने को तैयार न हुए। बादशाह तक शिकायतें गईं। किन्तु दिल्ली उन दिनों अंधेरनगरी हो रही थी। राजपूत-राजा मुग़लों के टुकड़ों से पल रहे थे; अतएव वे तटस्थ बने बैठे थे। अंत में मालवावालों ने भिर्ज़ा राजा जयसिंह से भी विनय-अनुनय की; किन्तु कोई परिणाम न निकला। तब मालवे की प्रजा इन्दौर के ज़मींदार राव नंदलाल मंडलोई के नेतृत्व में पेशवा-दरबार में पहुँची और मालवा नीमाड़ को यवनशाही से उबारकर धर्म-रक्षा करने पर ज़ोर दिया। तदनुसार पेशवा ने मालवा नीमाड़ अपने अधिकार में लेकर वहाँ से मुग़लों का शासन हटा दिया। इसी तरह बसीन के लोगों ने भी पुर्तगालियों के धर्म-छल से तंग आकर पूना के पेशवा-दरबार में गुहार की। तब धर्म-स्थापना और धर्म-रक्षा के उद्देश्य से पेशवा सदल-बल वसई पहुँचे। घनघोर संग्राम हुआ। अंत में १३ मई, १७३६ को मराठों को विजय प्राप्त हुई। पुर्तगाली सदा के लिए हतबल हो गये। मराठों को भी अत्यन्त कष्ट उठाने पड़े। एक तत्कालीन कवि ने तो यहाँ तक कहा है कि—"वसई में आहत-वीरों के शवों पर नौ लाख चूड़ियाँ फूटीं!" उत्तरीय भारत के अमर-युद्ध पानीपत की तरह यह दक्षिण-भारत का बसई-युद्ध भी कभी भुलाया नहीं जा सकता। वीर सावरकरजी अपने "हिन्दू-पद पातशाही" में लिखते हैं—"जिन दिनों इस पृथ्वी पर प्रत्यक्ष देवता आकर वास करते थे, उसी समय ऐसे पराक्रम और विजय दिखाई दे सकते थे। जिन्होंने अपने जीवन में वह विजय-दिन अपनी आँखों से देखा, वे महाभाग्यशाली थे और जिन्होंने उस विजय को प्राप्त करने के लिए उस रण-क्षेत्र में अपना देहदान किया, उनका भाग्य तो उनसे भी श्रेष्ठ है।"

वीरवर बाजीराव पेशवा की प्रायः सभी हलचलें राजनीतिक प्रभाव स्थापित करने तथा राज-विस्तार के ही लिए थीं। हाँ, कोंकण के सिद्दियों पर की हुई चढ़ाई तथा वसई के संग्राम का उद्देश्य अवश्य ही धर्मरक्षा था। बाजीराव के गुरु ब्रह्मेन्द्र स्वामी ने जब कोंकण-प्रांत पर सिद्दियों का आतंक देखा, तब उनको परास्त करने का आग्रह किया। "सादा सिद्दी दैत्य था। रावण के ही समान। उसे मारकर आपने सिद्दियों को मार भगाया है। आपका कीर्तिपरिमल चारों ओर फैले—" ऐसे खुले शब्दों में छत्रपति शाहू ने पेशवा का अभिनन्दन किया था। पुर्तगालियों ने जब कोंकण का हिस्सा अधिकार में किया, तब लोगों का धर्मभ्रष्ट किया जाने लगा। जो अपना धर्म छोड़ने को तैयार न थे, उनको कष्ट दिया जाता था। जो लोग धर्मभ्रष्ट हो चुके थे, किन्तु हिन्दूधर्म के आचारों का पूर्ववत् पालन करते थे, उन्हें इन्क्विज़ेशन के तौर पर ज़िन्दा जलाने की सज़ा दी जाती थी। सोलहवीं सदी में पुर्तगालियों ने बड़े-बड़े अत्याचार किये। किन्तु छत्रपति शिवाजी के उदय के समय से उनकी हलचलों में कुछ शिथिलता आ गई। संभाजी के समय में भी पुर्तगालियों ने फिर से सिर उठाया। किन्तु संभाजी ने गोआ पर चढ़ाई करके फोंडा स्थान पर संधि करने के लिए उन्हें विवश किया। तदनुसार बसई ग्राम तथा बसई ज़िले के प्रत्येक ग्राम के पीछे बीस मन अनाज और डामन ज़िले में चौथ वसूल करना तै पाया। छत्रपति राजाराम के समय में पुर्तगालियों ने फिर से सिर उठाया, जो बाजीराव पेशवा के पेशवा-पद पाने तक चलता रहा। जब बाजीराव ने कल्याण और भिवंडी जीतकर वहाँ पर अपना अधिकार स्थापित किया, तभी से बसई की जनता को पेशवा से धर्म-रक्षा का आग्रह करने की इच्छा बलवती हो उठी। बसई ज़िले में विशेष रूप से यजुर्वेदी मराठे ब्राह्मणों और कोली, भंडारी आदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जातियों की बस्ती थी। ब्राह्मण तो युगों से समाज के नेता रहे हैं, अतएव अंताजी नाइक कावले अंजूरकर नामक उदारचेता ब्राह्मण ने अपने अन्य सहकारियों के परामर्श से बाजीराव पेशवा को यह पत्र लिखा—

"फिरंगियों ने बसई-प्रांत में देवस्थान, तीर्थ तथा महाराष्ट्र-धर्म का लोप कर दिया है। हिन्दू लोग भ्रष्ट किये गये हैं। अतएव आपको इस प्रांत पर क़ब्ज़ा करके देवस्थापना तथा स्वधर्मस्थापना करनी चाहिए।" सन् १७३४ में पुर्तगाली थाना ग्राम के आसपास कोट बनाने लगे। उन्होंने प्रायः सभी हिन्दुओं को ईसाई बनाने का निश्चय किया। बसई के हिन्दुओं ने पेशवा को उक्त घटना की भी सूचना दी और पेशवा ने फिरंगी को भी पत्र लिखा। तब बाजीराव ने सन् १७३७ के अप्रैल में अपने भतीजे चिमाजी आप्पा को सदल-बल बसई पर चढ़ाई करने के लिए भेजा। चिमाजी आप्पा के साथ राणोजी शिंदे, मल्हारराव होल्कर, ऊदाजी पँवार, पिलाजी गायकवाड़ आदि सभी प्रमुख मराठा वीर अपनी-अपनी सेना सहित उपस्थित थे। दो वर्ष तक बसई स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। बसई का क़िला अभेद्य था। उसके तीन ओर समुद्र तथा एक ओर रेती की दलदल थी, और इसी ओर मुख्य मार्ग पर पुर्तगालियों की सारी शक्ति एकत्रित की गई थी। ज़मीन खोदकर लुके-छिपे क़िले के द्वार तक पहुँचना असंभव था; क्योंकि रेतीली ज़मीन में सुरंग तैयार नहीं हो सकती थी। मराठों की असंख्य जन-हानि हुई। इसी से वह दक्षिण का पानीपत कहलाया। मुख्य सेनापति चिमाजी एक दिन तो अत्यंत निराश हो गये। उन्होंने सभी प्रमुख सेनापतियों को एकत्रित कर कहा—"मैं इतने दिनों से बसई लेने की कोशिश कर रहा हूँ, फिर भी सफलता के चिह्न दिखाई नहीं देते। बसई के क़िले में दाख़िल हुए बिना आत्महत्या करने पर भी मेरी आत्मा को संतोष न होगा। अतएव मैं तोप के सामने खड़ा रहता हूँ। तुम तोप दागकर कम से कम मेरा सिर ही क़िले के अंदर पहुँचा दो तो मेरी दिवंगत आत्मा इच्छित फल प्राप्त कर संतुष्ट हो। कम से कम मेरा सिर तो तोप के द्वारा क़िले के अंदर प्रविष्ट हो ही जाना चाहिए।" सेनापति की यह वीर-वाणी सैनिकों पर बिजली का-सा असर कर गई। जिस प्रकार मालवा और नीमाड़ पर मराठों की चढ़ाई के समय मालवा-निवासियों ने मुग़लों के चंगुल से छुटने के उद्देश्य से मराठों को मालवा में स्थापित करने का प्रण कर, नालछा-घाट पर मुग़लों के द्वारा सुरंग फैलाये हुए प्रदेश से ख़ुद आकर आत्मसमर्पण किया और मराठों के लिए भैरव-घाट से आने का मार्ग निष्कंटक कर दिया, उसी प्रकार बसई-प्रांत-निवासी सहायकों ने भी आत्मसमर्पण के उद्देश्य से वेरोक-टोक क़िले के मुख्य मार्ग पर आक्रमण कर ही दिया, जिससे पुर्तगालियों के पैर उखड़ गये और पेशवा का धर्मरक्षा का उद्देश्य सफल हो गया।

इसके बाद पुर्तगालियों के क़िले में हिन्दू-परम्परानुसार यज्ञ-याग आदि करके मराठों ने हिन्दुओं को निर्भय किया तथा पुर्तगालियों को वहाँ से चल देने की आज्ञा दे दी। पुर्तगालियों ने यद्यपि हिन्दू-धर्म पर घोर अत्याचार किये थे, किन्तु फिर भी शरणागत की रक्षा के ध्येय को सामने रखकर चिमाजी ने पुर्तगालियों की स्त्रियों, बच्चों तथा उन्हें संपत्ति सहित वहाँ से जाने में कोई बाधा नहीं डाली। यदि पेशवा बाजीराव अधिक दिनों तक जीते रहते, तो संभव था कि वे गोआ-प्रांत को भी पुर्तगालियों के चंगुल से अवश्य ही छुड़ाते। इस प्रकार बसई के युद्ध से पुर्तगाली सदा के लिए हतबल हो गये, तथा मराठे भी धर्मरक्षक के नाते यशस्वी हुए। महाराष्ट्र के प्रमुख इतिहासकार सर देसाई लिखते हैं कि 'मराठाशाही के राजकारण में शौर्य, स्वराष्ट्र-प्रेम, संघ-शक्ति आदि उदात्त गुणों का प्रदर्शन करनेवाली जो अनेक घटनाएँ हुईं, उनमें बसई का संग्राम प्रमुख कहा जा सकता है।' अतएव पाठकों के परिचय के लिए उस युद्ध का कुछ विस्तारपूर्वक वर्णन करेंगे।

उन्नीसवीं शताब्दि के पूर्वार्ध में पुर्तगालियों का आधिपत्य केप ऑफ गुड होप के नुक्कड़ से लगाकर पीत समुद्र तक फैल चुका था। सन् १७३२ से १७४१ तक पिड्रोभास्करीना कॉटेड सांडोमिल भारतवर्ष में पुर्तगालियों का प्रमुख प्रतिनिधि था। पिड्रोडिमेलो सन् १७३८ में बसई का क़िलेदार था, जो थाने की लड़ाई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में मारा गया। अनन्तर सिलवेरा मेरोडिज़ क़िलेदार बनाया गया। किन्तु वह भी बसई के युद्ध में घायल हुआ। अंत में डिसोज़ापेरिरा ने मई, सन् १७३६ में चिमाजी आप्पा की शरण में जाकर सुलह की। यों तो १७३१ से १७४१ तक उक्त युद्ध होता रहा; किन्तु १७३७ में उस युद्ध ने उग्र रूप धारण किया। उसी वर्ष मार्च में मराठों ने थाने का क़िला हस्तगत कर लिया। इस प्रकार सन् १७३७ और १७३६ में ज़ोरदार युद्ध हुए। बसई, थाना आदि स्थानों की परिस्थिति, आसपास समुद्री खाड़ियाँ होने के कारण, द्वीपों की तरह है। थाना, महिम, तारापुर और बसई, इन स्थानों पर घनघोर संग्राम हुए। अंतिम संग्राम में बड़े-बड़े सरदार भी शामिल हुए थे। उन्होंने तथा उनके सिपाहियों ने जो वीरता दिखाई, उससे मराठों की सैनिक योग्यता का भली भाँति पता चलता है। अंजूरकर गंगाजी नाइक ने साष्टी-प्रांत के नेता तथा जनता से मराठों के साथ मिलने के लिए अनुरोध किया। अनन्तर अंताजी कावले और मालाडकर सर देसाई उस षड्यंत्र में सम्मिलित हुए। इन लोगों ने पुर्तगालियों के क़िलों के गुप्त मार्ग भी मराठों को बता दिये। मुख्य उद्देश्य पुर्तगालियों के धार्मिक अत्याचारों से हिन्दू-समाज की रक्षा करना ही था; अतएव बाजीराव पेशवा ने छत्रपति शाहू महाराज की आज्ञा प्राप्त करके पिलाजी जाधव तथा कृष्णराव महादेव को भेजकर पुर्तगालियों से युद्ध किया। पुर्तगालियों का हिन्दुओं पर रोष बढ़ गया। अब उन्होंने बड़े-बड़े अत्याचार शुरू कर दिये। बंबई के गवर्नर जॉन हॉर्न को भी बाजीराव ने पत्र लिखे; किन्तु उसने तटस्थ रहना ही ठीक समझा। तब पेशवा ने पुर्तगालियों को सदा के लिए उस प्रांत से दूर कर देना ही ठीक समझकर सबसे पहले अरनाले का क़िला जीत लिया। इसी समय आंग्रेकुल में कौटुम्बिक झगड़ा खड़ा हो गया, जिसमें मानाजी को पेशवा ने सहायता की और संभाजी को पुर्तगालियों ने। थाना द्वीप के आसपास पुर्तगाली पक्का कोट बना रहे थे। वह पूरा होने के पूर्व ही सन् १७३७ में वह क़िला मराठों ने जीत लिया। थाने के आसपास के भी कई छोटे-छोटे द्वीप मराठों ने छीन लिये। किन्तु उनका मुख्य क़िला बसई अभी हाथ न आया था। वर्षा शुरू हो चुकी थी तथा भोपाल के पास निज़ाम से युद्ध आदि और भी ज़रूरी राज-काज सामने थे। अतएव एक-डेढ़ वर्ष तक मराठों को बसई की ओर दृष्टि डालने का मौक़ा न मिला। किन्तु उस अवसर में पुर्तगालियों ने तैयारी करके मराठों को साष्टी-प्रांत से खदेड़ देना चाहा। तब पेशवा ने राम-चन्द्र पटवर्धन को उनके मुक़ाबले के लिए भेजा। सन् १७३८ के नवम्बर से चिमाजी आप्पा बसई की चढ़ाई के मुख्य सेनापति बनाये गये। उन्होंने छः मास तक अविराम परिश्रम करके बड़ी बहादुरी से वह संग्राम जीता। इसी समय पुर्तगालियों को शह देने के लिए गोआ पर व्यंकटराव घोरपड़े के द्वारा चढ़ाई की गई। सबसे पहले बसई की ओर महिम का संग्राम हुआ। उसी समय होलकर, शिंदे आदि सब बड़े-बड़े सरदार अपनी सेना सहित बसई की ओर जा पहुँचे। दिसंबर में जनरल पेड्रोमेलो ने मल्हारराव होलकर पर थाने के निकट धावा किया; किन्तु उसके मारे जाते ही पुर्तगाली-सेना बसई की ओर चल दी। जनवरी में तारापुर पर चढ़ाई की गई। उस युद्ध में मल्हारराव होलकर, यशवंतराव पँवार, राणोजी सेंधिया आदि ने बड़ा पराक्रम दिखाया। पेशवा के तोपख़ाने के प्रमुख बाजी भीमराव भी मारे गये; किन्तु मराठों को ही विजय मिली। अनंतर माघ सुदी १० को मराठों के प्रमुख सेनापति चिमाजी ने स्वयम् ही पुर्तगालियों के मुख्य स्थान बसई पर चढ़ाई कर दी। तीन मास तक उस स्थान पर घमासान युद्ध हुआ। अंत में मराठों ने क़िला जीत लिया (१३ मई, सन् १७३६)। उस युद्ध से संबंध रखनेवाले चिमाजी आप्पा सेनापति के असली पत्र उपलब्ध हो चुके हैं। युद्धभूमि से पेशवा के गुरू ब्रह्मेन्द्र स्वामी को भेजे हुए एक पत्र के कुछ अवतरण पठनीय हैं—"फिरंगी-जैसे अदम्य लड़ाकुओं का सामना होते हुए भी हमने बड़ी तैयारी करके सुरंगें लगाईं। स्वामी के पुण्य और पराक्रम के बल पर हा फिरंगियों पर प्रभाव स्थापित होकर भगवान् ने हमारी बात रक्खी। दक्षिण की फ़ौज नर्मी देखते ही पीछे फिरती है और कठिनता देखते ही पीछे नहीं हटती।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यही हमारे राज्य की परम्परा है। सरदारों ने ऐसे अपूर्व कर्म न तो अब तक किये थे, और न आइन्दा कर ही सकते हैं। स्वामी तो ईश्वर के अवतार हैं, इसी से हमारी फ़ौज की हिम्मत बढ़ी। जिस प्रकार बंदरों से लंका जीती गई, उसी प्रकार यह भी घटना हुई। दक्षिणी फ़ौज को भूखों रहकर छाती का कोट बनाकर लड़ना पड़ा। यह हिम्मत पहले किसी ने सुनी भी न होगी। जो लोग वह पराक्रम देखेंगे, उनके जन्म धन्य हैं। जो आहत हुए, उन्होंने लोक और परलोक दोनों साधे। इतनी तैयारी, ऐसे पराक्रम तथा ऐसे समय इतनी हिम्मत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यह कार्य तो ईश्वर के समान है।" तदनुसार बसई का क़िला ख़ाली कर देने की शर्त पर पुर्तगालियों का वकील सफ़ेद झंडा लेकर १० मई, १७३९ को चिमाजी से मिला। संधि निश्चित होने पर १२ मई को क़िला ख़ाली कर दिया गया। १३ मई को मराठे उसमें प्रविष्ट हुए। संधि की शर्तों में मुख्य शर्तें पुर्तगालियों तथा मिशनरियों को उनकी संपत्ति सहित सुरक्षित पहुँचा देने, क्रिस्तानों के धर्माचरणों में बाधा न पहुँचाने तथा उनके देवालयों और मूर्तियों को यथावत् रहने देने की बातें थीं। इस युद्ध के कारण पचहत्तर मील लंबा प्रदेश मराठों को मिला। यहाँ पर ३४० ग्राम, ८ शहर, २० क़िले, २ पहाड़ तथा बसई और थाना ये दो प्रमुख स्थान मराठों ने हस्तगत किये। पचीस लाख की क़ीमत का गोला-बारूद और जहाज़ आदि सामग्री तथा ५९३ तोपें नष्ट हुईं। साथ ही तेईस लाख रुपये, युद्ध का ख़र्च, पुर्तगालियों को देना पड़ा।

साष्टी-प्रदेश संपन्न है। अनेक खाड़ियों के कारण जहाज़ के आने-जाने का सुबीता है। अनन्तर अँग्रेज़ों ने भी पेशवा-कुल के जयचंद रघुनाथराव से उसे प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। बसई के युद्ध में सहायता देने के लिए पुर्तगालियों ने अँग्रेज़ों से बड़ी मिन्नत की। किन्तु उस समय उनका व्यापार गिर चुका था। मराठों के जल-सेनापति आंग्रे के उत्पातों के कारण तथा मराठों की सैनिक तैयारी और विजय से वे चौंक उठे और बम्बई की रक्षा करना ही उन्हें कठिन मालूम होने लगा। इसी से अँग्रेज़ पुर्तगालियों को खुली मदद देने की हिम्मत नहीं कर सके। पुर्तगालियों ने अँग्रेज़ों को ताना भी कि "मराठे तो यूरोपियनों के शत्रु हैं, फिर भी तुम उन्हें गोला-बारूद दे रहे हो। योरप में तो हम-तुम दोस्त हैं, किन्तु हिन्दुस्तान में तुम्हारा इस प्रकार का बर्ताव लांछनास्पद है। आज उन्होंने हमारी साष्टी ले ली, कल तुम्हारी बंबई भी छीन लेंगे।" पुर्तगालियों ने दस लाख रुपया क़र्ज़ भी माँगा। अँग्रेज़ों ने कुछ कारीगर, गोला-बारूद और पन्द्रह हज़ार रुपये उन्हें उधार दिये। बसई का क़िला जीत लेने पर मराठों ने संधि की शर्तों का अक्षरशः पालन किया और शत्रुओं का भी बड़ा सम्मान किया, यह तत्कालीन पुर्तगालियों के कथन से प्रमाणित है। कठिन से कठिन संकटों की परवा न करके अगर ध्येय की प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया जाय तो सफलता प्राप्त होने में कठिनता नहीं होती। इस सिद्धांत का ज्वलंत प्रमाण उक्त बसई का युद्ध है। अँग्रेज़ों में भी उक्त गुण की मात्रा अधिक होने के कारण वे भारत के स्वामी बन सके। आरंभ में तो पुर्तगालियों और अँग्रेज़ों को विश्वास था कि मराठे उक्त गुणों की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते, किन्तु चिमाजी-जैसे रणवीर सेनापति ने मराठों का वह सद्गुण बड़ी उज्ज्वलता से प्रकट किया। बसई के विजय से अँग्रेज़ों के भी छक्के छूट गये। उन्होंने कप्तान जेम्स को चिमाजी की ओर तथा कप्तान गोर्डन को सिताराम की ओर सन्धि करने के लिए रवाना किया, जिनका मुख्य उद्देश्य उनके व्यापार की वृद्धि तथा बम्बई-बंदर की मराठों से रक्षा करना था। साथ ही मराठा-दरबार की भीतरी बातें जानकर उनसे लाभ उठाने का भी यह षड्यंत्र था। इस प्रकार मराठों ने बाहुबल के भरोसे पुर्तगालियों पर विजय प्राप्त करके अँग्रेज़ों पर भी रोब जमा लिया, जिससे उत्तरीय भारत पर चढ़ाई करके विदेशी मुग़ल-सत्ता को भी मात देने में सरलता हुई। अतएव इस दृष्टि से बसई का युद्ध अठारहवीं शताब्दि के भारतीय इतिहास में चिरस्मरणीय है। धर्म-रक्षक के नाते उस समय मराठों की जो कीर्ति हुई, उससे भारतीय राजनीति में मराठों का सिक्का स्थायी रूप से अंकित हो गया। मराठों का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सांस्कृतिक इतिहास भी इसी बात का साक्षी है कि उन्होंने आरंभ से अंत तक जो राजनीतिक हलचलें कीं, उनका उद्देश्य हिन्दू-धर्म की रक्षा करना ही था। इस दृष्टि से भारत की अन्यान्य वीर जातियों—राजपूत, सिख आदि—की तुलना में मराठों का इतिहास अत्यन्त उज्ज्वल और आदर्श है। आशा है, वसई के धार्मिक युद्ध के वर्णन से पाठकों का मनोरंजन होगा।

इस युद्ध के विषय की दो महत्त्व-पूर्ण बातों का भी यहाँ उल्लेख करना उचित होगा। एक तो वसीन या वसई के प्रमुख चर्च का विशाल घंटा मराठा-सेनापति ने नासिक के श्रीराम-मन्दिर पर चढ़ाया, जो अब भी वहाँ मौजूद है। दूसरे, वसई के सेनापति वीर चिमाजी आप्पा को यदि 'भूषण-विमर्श'-कार श्रीभागीरथप्रसादजी दीक्षित की बात सच हो तो महाकवि भूषणजी ने भी देखा था। चिमाजी का महान् पराक्रम सबसे पहले वसई के पुर्तगालियों के युद्ध में ही दिखाई दिया था, जिसका यथार्थ वर्णन निम्न पंक्तियों में किया गया है—

बाज ज्यों विहंग पर,
सिंह ज्यों मतंग पर।
मलेच्छ चतुरंग पर,
'चिमनाजा' देखिए ॥

उक्त पंक्ति भूषण-कृत होने, चिमनाजी और चिमाजी आप्पा एक ही होने, भूषण का समय-निर्णय आदि बातों के विषय में मेरा दीक्षितजी से मत-भेद है, जिसकी चर्चा उनसे अ० भा० हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन (ग्वालियर) के इतिहास-परिषद् के खुले अधिवेशन में तथा विभिन्न मराठी-हिन्दी-पत्रों द्वारा कर चुका हूँ। संदर्भ के अनुरोध से यहाँ केवल तत्संबंधी उल्लेख ही कर दिया गया है।

भारतीय कला-कौशल को उन्नत करने का साधन

देहली क्लाथ मिल्स के बनाये हुए

टेपस्ट्री और परदों के कपड़े

खरीद कीजिए

नये डिज़ाइन उचित दाम

हिन्दुस्तानी कारीगरों, रुई और रुपया से तैयार होते हैं

देहली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स लि० देहली

यू० पी०, बिहार और राजपूताने में हमारी एजेन्सियाँ—

लखनऊ—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, गूँगा नवाब का महल।

कानपुर—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, काहू की कोठी।

आगरा—देहली क्लाथ एण्ड मिल्स रिटेल शाप, जौहरी बाजार।

गया—मेसर्स रा० ब० रामचन्दराम हरिप्रसाद।

जयपुर—मेसर्स कन्हैयालाल मोलाराम, खांडा हवा महल।

अजमेर—मेसर्स कन्हैयालाल बृजमोहनलाल कैसरगंज।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

असफल प्यार

श्रीसत्यव्रत शर्मा 'सुजन' एम्० ए०, साहित्याचार्य

दलित शतदल-सा पड़ा है, हाय ! असफल प्यार मेरा।
आज सब धो लाज कह
पाया किसी विधि 'प्राण' केवल,
फेर लीं आँखें घृणा से,
औ' उबलते वह दिये चल।
कंठ रुक-रुक खुल सका था आज पहली बार मेरा !
दलित शतदल-सा पड़ा है, हाय ! असफल प्यार मेरा !!
अन्त पीड़ा का न कोई,
लाज अग-जग की समाई,
याचना अवमानना पा
हृदयतल में सिमट आई।
हो गया पाषाण मेरे ही लिए सुकुमार मेरा !
दलित शतदल-सा पड़ा है, हाय ! असफल प्यार मेरा !!
क्यों नहीं मैं रोक पाता,
किन्तु जब वह निकट होते ?
दीख पड़ते क्यों मधुरतर,
जब कभी वह निकट होते ?
रह गया मुझ पर नहीं जैसे तनिक अधिकार मेरा,
दलित शतदल-सा पड़ा है, हाय ! असफल प्यार मेरा !
अश्रुसिंचित उर-पँखुड़ियों
में सजाकर प्रेम अपना,
मैं लिये कम्पित करों में,
चल रहा-सा एक सपना ;
कर लिया है देवता ने, बन्द मन्दिर-द्वार मेरा।
दलित शतदल-सा पड़ा है, हाय ! असफल प्यार मेरा !!
सिर उठावे प्रेम कैसे,
मैं रहा हूँ ग्लानि से मर,
खूब रोऊँ, और रोता
ही रहूँ, उच्छ्वसित अन्तर ;
प्राण के हों चरण दृढ़तर, अमर हो उपहार मेरा !
दलित शतदल-सा पड़ा है, हाय ! असफल प्यार मेरा !!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

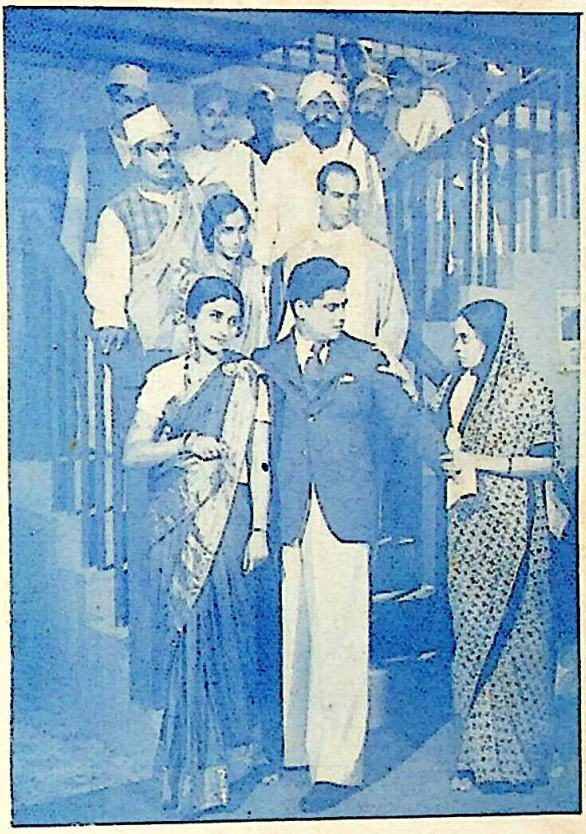

"मेरा हक़" नामक चित्रपट का एक दृश्य

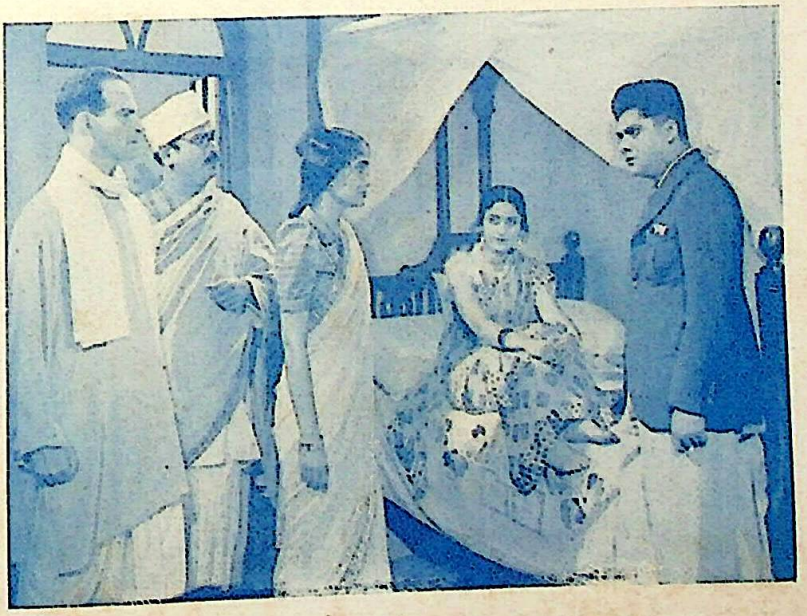

"मेरा हक़" नामक चित्रपट का एक दूसरा दृश्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

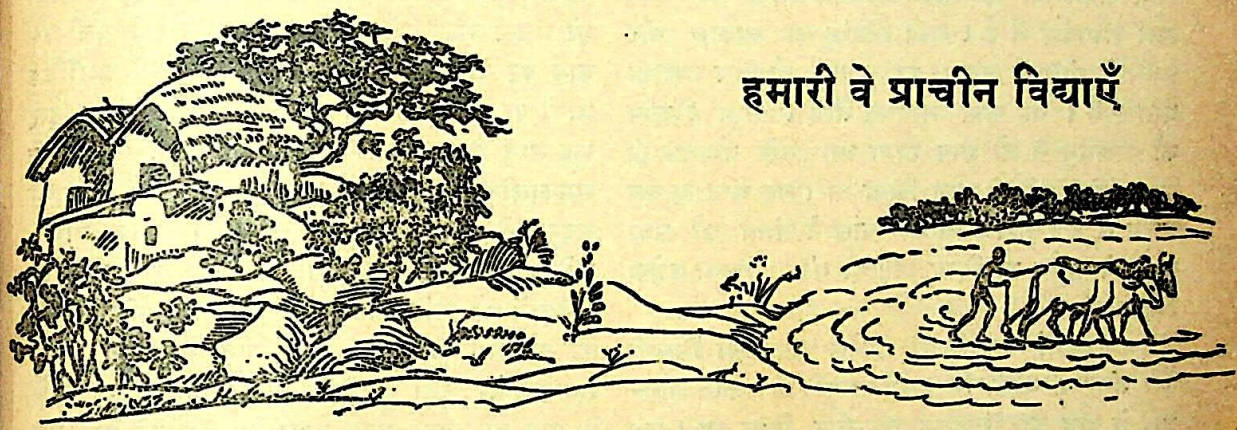

हमारी वे प्राचीन विद्याएँ

श्रीव्रजकिशोर वर्मा 'श्याम'

इससे इनकार कौन करेगा कि आधुनिक सभ्यता बड़ी ही गौरवशालिनी है। आज के मनुष्य की ज्ञान-परिधि में काफ़ी विस्तार हुआ है। उसने विभिन्न विद्याओं में कुशलता प्राप्त की है। पर कुछ ऐसी भी विद्याएँ हैं, जो इस नवीन सभ्यता के युग में विलुप्त हो गई हैं अथवा होती जा रही हैं। यहाँ हम कुछ ऐसी ही विद्याओं की चर्चा करेंगे।

योगविद्या

किसी समय योगविद्या के ही बल पर समस्त भौतिक और आध्यात्मिक साधनाओं की पूर्ति की जाती थी। मनुष्य इस विद्या के प्रभाव से अनेक आश्चर्यजनक करामातें दिखा सकता था। वह दूर से दूर की बातें सुन सकता था—देख सकता था। दूसरे की आन्तरिक बातों को जान सकता था, अपने सूक्ष्म शरीर द्वारा वायु-लहरियों के साथ खेल सकता था, चन्द्रलोक, सूर्यलोक में एक बार नहीं, सैकड़ों बार बेरोक-टोक आ-जा सकता था। तीनों काल का ज्ञान रखना, पूर्व जन्म का हाल जानना, अदृश्य हो जाना, क्षुधा-पिपासा आदि पर नियंत्रण रखना, एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में चले जाना, सर्वदर्शी हो जाना आदि सब इसी विद्या के करिश्मे हैं, जिसे जान-सुनकर आज हम आश्चर्य-चकित हो जाते हैं।

रामायण में एक कथा है। एक समय विश्वामित्र प्रभावशाली राजा थे। संयोगवश एक समय वह अपनी अगणित सेना लेकर वशिष्ठ मुनि के आश्रम से गुज़रे। वशिष्ठ ने उन्हें भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। विश्वामित्र ने दुःख प्रकट करते हुए कहा—"भगवन्, मैं अकेला नहीं हूँ। मेरे साथ काफ़ी सेना भी है। सबको भोजन कराये बिना तो मैं भोजन कर नहीं सकता।" वशिष्ठ मुनि ने सब सेनाओं के साथ भोजन कराने का वादा किया। राजा ने स्वीकार किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किन्तु मठाधीश राज़ी न हुआ। अन्त में एक रात को उसे चुराकर चंपत हो गया। मठाधीश माथा ठोककर रह गया।

टेवर्नियर उसे ले तो गया, किन्तु उसकी मनोकामना सफल न हुई। वह उस रत्न को अपने पास ही रखना चाहता था। लेकिन मंत्र ने अपना प्रभाव दिखलाना शुरू कर दिया। उसके हृदय में एक अज्ञात वेदना तथा भय का संचार हुआ। आख़िर को उसने उसे फ़्रांस के सम्राट् के हाथ एक लाख रुपये तथा राजसी उपाधि लेकर बेच दिया। इतने पर भी उसके ऊपर मंत्रों का प्रभाव बना ही रहा। उसका व्यापार दिन-दिन गिरता ही गया। उसकी विभूति, उसका वैभव आप ही आप विनष्ट होने लगा। अन्त में उसका सर्वनाश हो गया। वह स्वयं भी एक जंगली कुत्ते का शिकार हुआ। इधर यह हुआ और उधर फ़्रांस के राजघराने पर महाकाल के बादल अचानक मँडराने लगे। फ़्रांस में क्रांति का ज्वालामुखी फूटा। राजसत्ता धाँय-धाँय करके जलने लगी। सम्राट् का सिंहासन हिल उठा। उसकी पैतृक सत्ता, जन्म-सिद्ध अधिकार, सब कुछ लुट गया। अन्त में क्या हुआ, यह फ़्रांस के ख़ूनी इतिहास में, आगभरे अक्षरों में लिखा हुआ है। इस रत्न की कहानी बड़ी ही विचित्र और चमत्कारपूर्ण है। वह जिस किसी के पास पहुँचा, वहीं मन्त्र का अद्भुत चमत्कार उसने दिखाया। इस एक रत्न के पीछे कितनों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा, कितनों ही को अपनी प्रेमिका के प्रेम से वंचित होना पड़ा, और कितनों ही को भयंकर विपत्तियों का सामना करना पड़ा।

इसी प्रकार मिश्र की एक घटना है। तूतनख़ामन की क़ब्र खोदने की बात चली। वहाँ के लोगों ने इसका विरोध करते हुए कहा—क़ब्र के भीतर की शान्ति नष्ट करनेवालों का घोर अनिष्ट होगा। नई सभ्यता के उन्माद में लोगों ने इस बात को कपोल-कल्पित कहकर ठुकरा दिया। काम शुरू हो गया। तूतनख़ामन की समाधि खोदी गई। खोदने के साथ ही, उससे संबंधित सभी पर एक-एक करके विपत्तियों का पहाड़ टूटा। तन्त्रों-मन्त्रों की हँसी उड़ानेवालों के रोंगटे खड़े हो गये, उनका धैर्य छूट गया। अन्त में उन्हें मानना पड़ा कि मन्त्र भी कोई विद्या है—ऐसी विद्या, जो युगों के बाद भी अपनी शक्ति का चमत्कार दिखा सकती है। इस प्रकार की अनेकों आश्चर्यजनक घटनाएँ, इतिहास के पन्नों में अंकित हैं। किन्तु सभ्यता की उन्नति के साथ-साथ इस विद्या का रूप भी क्रमशः विकराल और विकृत होता गया। अब वह बाजीगरों के इन्द्रजाल के सिवा और कुछ नहीं रह गया।

भूत-विद्या

मंत्र-तंत्र तथा भूत-विद्या में बहुत थोड़ा अंतर है। ये भी एक प्रकार के मंत्र ही हैं, जो भूत-प्रेतों को वश में लाने के लिए प्रयोग में लाये जाते थे। इस विद्या द्वारा प्राचीन कालीन मनुष्यों ने भूत-प्रेतादि से सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। सभी प्राचीन सभ्यताओं में भूत-प्रेतादि के सम्बन्ध की कथाएँ पाई जाती हैं। ईरान, चीन, अरब और भारतवर्ष का इतिहास तो इन कथाओं से भरा पड़ा है। भागवत में लिखा है कि दुर्वासा ऋषि ने अम्बरीष राजा पर कृत्या का प्रयोग किया था। इसी प्रकार राजा सुदक्षिण ने कृष्ण पर कृत्या चलाई थी। सहस्ररजनीचरित्र में वर्णित अलाद्दीन और उसके दीपक की कथा भी भूत-विद्या की करामातों से ओतप्रोत है। उस दीपक के द्वारा किस प्रकार कई जिन अलाद्दीन के क़ाबू में हुए और उनके द्वारा उसने कैसे-कैसे विस्मयजनक कार्य किये, यह किसे नहीं मालूम। अँग्रेज़ी साहित्य में भी भूत-प्रेतों का ज़िक्र पाया जाता है। हेमलेट के पिता का भूत के रूप में हेमलेट से बातचीत करना और मैकबेथ की भूतात्मा का दिखाई देना लिखा हुआ है। वाल्टर स्काट के उपन्यासों में भूत, प्रेत, जिन, परी आदि का अनेक स्थलों पर वर्णन आया है। यह इस बात का प्रमाण है कि भूत-प्रेत कोई चीज़ अवश्य है। Spiritualism अर्थात् भूत-विद्या इस बात का प्रमाण है कि मरने पर आत्मा का नाश नहीं होता। भूत-प्रेत भी पापिष्ठ आत्माएँ ही हैं।

अनेकों असभ्य तथा अर्ध-असभ्य जातियों में इस विद्या का अस्तित्व अब भी पाया जाता है, किन्तु

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विकृत और बीभत्स रूप में। उन्हें भूत-प्रेत का भय प्रायः सर्वदा ही बना रहता है। मलाया-द्वीप में कोई भी ऐसा स्थान नहीं, जहाँ भूत-प्रेत का वासस्थान न हो। वहाँ के लोगों का यह विश्वास है कि भूत-प्रेत प्रायः सभी पुराने वृक्षों में रहते हैं। रात के समय जब वहाँ के निवासी बाहर निकलते हैं, तो हाथ में मशालें लेकर मंत्रोच्चारण करते हुए निकलते हैं। उनका यह विश्वास है कि मनुष्य मरने पर भयंकर भूत होते हैं। उनमें कुछ तो मिथ्यावादियों को सताते हैं, कुछ जंगल में अपना प्रभाव दिखाते हैं। इन भूतों को क़ाबू में करने के लिए वे कई प्रकार के तंत्र-मंत्रों का प्रयोग करते हैं।

प्रेतात्मा को बुलाने के लिए सन्ध्या का समय सबसे अधिक उपयुक्त माना जाता है। जिस स्थान पर प्रेत-मंत्रणा की जाती है, वहाँ मशालें जलाई जाती हैं। यदि स्त्री के ऊपर प्रेतात्मा बुलाना हुआ, तो वह खुले मैदान में बैठा दी जाती है। साथ ही दूसरे प्रकार के ढोल और बाजे बजने लगते हैं। उस समय स्त्री का शरीर काँपने लगता है। जैसे-जैसे बाजे ज़ोरों से बजते हैं, वैसे-वैसे उसके शरीर का कम्पन भी बढ़ता जाता है। मिनटों में शरीर इस प्रकार आन्दोलित होने लगता है, जैसे भूकम्प में पृथ्वी। अन्त में वह बिलकुल प्रेतरूप हो जाती है। उससे प्रश्न किये जाते हैं और वह उनका उत्तर देती है। इसी प्रकार प्रेतात्माओं के बुलाने की प्रथा हमारे यहाँ भी प्रचलित है। प्रत्येक गाँव में भूत-विद्या के विशेषज्ञ रहते हैं। किन्तु फिर भी यह कहना पड़ता है कि इस विद्या का असली स्वरूप बिलुप्त हो गया है।

इन्द्रजाल

एक समय था, जब समूचा संसार इन्द्रजाल-विद्या के चमत्कार से चमत्कृत हो रहा था। भारत, मिश्र, असीरिया, बाबुल, एशिया माइनर आदि देशों में इस विद्या ने काफ़ी उन्नति की थी। रामायण में लिखा है कि रावण ने अपनी ऐन्द्रजालिक विद्या के बल से सीता को एक भयानक दृश्य दिखाया। उसमें सीताजी देखती क्या हैं कि रावण ने रामचन्द्र का मस्तक काट लिया है। उधर रामचन्द्र को भी दिखाई पड़ा कि रावण ने सीताजी का सिर काट लिया है। भागवत में राजा शाल्व ने श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का सिर काटने का दृश्य माया से दिखाया था।

इस विद्या की कई एक शाखाएँ थीं। अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी तक हिन्दुस्तानी बाजीगर बड़े ही आश्चर्यजनक खेल दिखाते रहे हैं। आकाश में रस्सी के सहारे चढ़ जाना, सूखी गुठली से आम का पेड़ उत्पन्न कर देना, तरह-तरह के फल मँगा देना, मन-मानी चीज़ों को उपस्थित कर देना आदि उनके लिए साधारण-सी बात थी। अथर्ववेद में इस बात के अनेकों प्रमाण मिलते हैं कि उस समय के किसान टिड्डियों तथा अन्य कीड़ों से अपनी फ़सल की रक्षा करने के लिए ऐन्द्रजालिकों की सहायता लिया करते थे। इस सम्बन्ध में कुछ मंत्र अथर्ववेद में मिलते हैं। बाजीगरों द्वारा आम के वृक्ष में फल लगाने की क्रिया का उल्लेख तत्कालीन अनेक योरपियन यात्रियों ने अपने यात्रा-वर्णन में अनेक स्थानों पर किया है। टेवर्नियर-नामक एक फ्रांसीसी यात्री ने, जो सत्रहवीं शताब्दी में भारत आया था, इस प्रकार की घटना का बृहत् वर्णन किया है। उसने लिखा है, मेरी आँखों के सामने ही एक बाजीगर ने लकड़ी के एक छोटे टुकड़े को ज़मीन में गाड़ दिया और फिर उसे चादर से ढक दिया। फिर उसने एक छुरे से अपनी कोख के नीचे काट लिया और उसके ख़ून से लकड़ी के टुकड़े को ख़ूब अच्छी तरह नहला दिया। इसके बाद ज्यों-ज्यों वह चादर के नीचे से अपना मुँह बाहर निकालता था, त्यों-त्यों लकड़ी बढ़ती जाती थी। इस प्रकार धीरे-धीरे उसमें कलियाँ लग गईं, शाखाएँ फूट आईं, पत्तियाँ निकल आईं, यहाँ तक कि मंजरियाँ तक लग गईं!

इन्द्रजाल-विद्या की थोड़ी-बहुत छाया अब भी कहीं-कहीं देखने को मिलती है; किन्तु अब इसके जानकार वही मूर्ख और असभ्य जातियाँ हैं, जिनके पेट पालने का केवल यही विद्या एकमात्र साधन है। पूर्व दिशा में कामरूप देश की यह ख्याति अभी तक है कि वहाँ के सभी लोग जादू जानते हैं। कहा नहीं जा सकता, यह बात कहाँ तक सत्य है। कहते हैं,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस विद्या के प्रभाव से, नर-नारी बकरा, भैंस आदि बन जाते हैं।

इसके सिवा मनोरंजन के लिए भी इन्द्रजाल एक अद्भुत वस्तु है। प्राचीन काल में, शत्रुओं को भयभीत करने के लिए, इस विद्या की बहुत बड़ी आवश्यकता पड़ती थी। राम-रावण के अथवा कौरव-पांडवों के युद्ध में इस मायाविनी-विद्या का बहुत प्रयोग हुआ था। श्रीकृष्ण ने गोपियों के साथ शरत्-पूर्णिमा की रात्रि को रास किया। उस समय उन्होंने इसी विद्या के सहारे अपने अनेकों रूप दिखाये थे। जितनी गोपियाँ थीं, उतने ही कृष्ण हो गये थे। ऐसे-ऐसे अंजन बनाना, जिनको लगाने से मनुष्य स्वयं तो अदृश्य हो जाय, परन्तु दूसरों को देखता रहे, अथवा स्त्रियों को मोहित कर ले—काम-सम्बन्धी साधन कर ले, ये सब ऐन्द्रजालिक विद्या के ही अंग हैं। ऐन्द्रजालिक भ्रम दूर करने के लिए योगी और वैद्य बहुत से यत्न किया करते थे। प्राचीन रोम-वासियों का यह विश्वास था कि कुछ ऐसे मनुष्य होते हैं, जो भेड़िये का रूप धारण कर सकते हैं। मध्य युग में, योरप में कितने ही निरपराध जादूगर इसलिए फाँसी पर लटका दिये गये कि उन पर मनुष्य की खाल का कमरबन्द बनाकर धारण करने तथा भेड़िया बन जाने का संदेह किया गया था। इँगलैंड और आयर्लैंड के कुछ भागों में यह विश्वास अब भी पाया जाता है। मद्रास-प्रान्त की पिनियन जाति के लोगों का यह ख़याल है कि उन लोगों में से कुछ लोग पशुओं का रूप धारण कर सकते हैं। यदि इस प्रकार के जादूगरों में किसी की यह इच्छा हुई कि वह किसी स्त्री के साथ रमण करे तो वह एक खोखला बाँस लेकर रात को उस स्त्री के घर के पास जाता है और तीन बार घर की प्रदक्षिणा करता है। इस क्रिया से स्त्री मोहित होकर घर के बाहर निकल आती है, और जादूगर साँड़ या कुत्ते का रूप धारण करके उस स्त्री के साथ अपनी कामवासना पूरी करता है। छोटा नागपुर, राँची और चाईबासा ज़िले की फ़ौजदारी अदालतों में इस प्रकार के कई मुक़द्दमे हो चुके हैं।

चाहे जो भी हो, किन्तु यह तो मानना ही पड़ेगा कि आज यह अद्भुत विद्या पतन के गह्वर में विलीन हो रही है। नई रोशनी के लोग इसकी उपयोगिता और चमत्कारों को अंधविश्वास के नाम से पुकार रहे हैं। उनका कहना तो यहाँ तक है कि यह सब मानव-बुद्धि के विकास के लिए बाधक हैं। भगवान् जाने क्या है!

रूपान्तर-विद्या

रूपान्तर-विद्या की भी कभी विजय-वैजयन्ती फहरा रही थी, यह बात अनेक इतिहासों तथा पुराणों की कथाओं से ज्ञात होता है। इस विद्या में निपुण मनुष्य अपनी इच्छा के अनुकूल किसी समय, किसी रूप में अपने को बदल सकता था। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर में चला जाना, आदमी या पशु-पक्षी का चोला बदल लेना, इस विद्या के जाननेवालों के लिए बायें हाथ का खेल था। रावण साधुका वेश धारण करके सीता को हर ले जाता है; राक्षस मारीच सोने का मृग बनकर राम और लक्ष्मण को मुग्ध कर लेता है—उन्हें उनकी कुटी से दूर ले जाता है। सूर्पणखा लक्ष्मण को मोहित करने के लिए एक रूपवती युवती के वेश में आती है; हनुमान् सीता का समाचार लाने के लिए मच्छड़ का रूप धारण करते हैं। रामायण में ये सब उदाहरण रूपान्तरविद्या के प्रमाणस्वरूप आज भी मौजूद हैं। महादेव का किरात के रूप में अर्जुन से युद्ध करना किरातार्जुनीय-नामक काव्य में लिखा हुआ है। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके असुरों से अमृत ले लिया, यह हाल भागवत में है। भगवान् कृष्ण का अनेकों रूपों में गोपियों के साथ विहार करने की कहानियाँ जगत्-प्रसिद्ध हैं। राजा विक्रमादित्य और भोज के समय में भी रूपान्तर के कई दृष्टान्त मिलते हैं। पातञ्जल योगशास्त्र में भी इसका उल्लेख है। ये कथाएँ इस विद्या के प्राचीन काल में प्रचलित होने के प्रमाण हैं।

इस विद्या की सिद्धि योगाभ्यास से प्राप्त हो सकती थी। इस समय इसका सर्वथा लोप हो गया है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

संजीविनी-विद्या

बड़े-बड़े धुरन्धर वैज्ञानिक पुनर्जीवन के रहस्य की टोह में पागल हैं; किन्तु अभी तक उसका पता नहीं लग सका। किन्तु पौराणिक इतिहास से पता चलता है कि उस समय के लोगों ने इस रहस्य को अच्छी तरह हल कर लिया था। रामायण और पुराणों में अनेक स्थानों पर उल्लेख है कि दैत्य अपने मरे हुए आदमियों में फिर से जान डाल देते थे। राक्षसों के गुरु शुक्राचार्य संजीविनी-विद्या के पारंगत थे। किन्तु वह यह विद्या केवल दैत्यों को ही सिखाते थे। देवताओं ने इसे जानने की बड़ी चेष्टा की; किन्तु सब बे-सूद! एक समय की बात है। बृहस्पति ने अपने लड़के कच को वेश बदलकर शुक्राचार्य से यह विद्या सीखने के लिए भेजा, किन्तु भेद खुल गया। दैत्यों को यह मालूम हो गया कि यह देवयोनि है। बस, तुरन्त ही दैत्यों ने उसे मारकर शुक्राचार्य को खिला दिया। संयोग की बात। कच को शुक्राचार्य की लड़की प्रेम करती थी। लड़की ने अपने पिता से उसे पुनर्जीवित कर देने की प्रार्थना की। शुक्राचार्य ने अपनी लड़की की अधीरता पर विवश होकर उसे जीवित कर दिया। यह कथा महाभारत में है। इसी प्रकार की अनेकों कथाएँ हैं, जिनके आधार पर यह अन्दाज़ लगाया जा सकता है कि यह विद्या कितनी प्रभावशालिनी थी।

पशु-पक्षियों की विद्या

अति प्राचीन काल के प्रायः प्रत्येक सभ्य देश के इतिहास में इस विद्या का उल्लेख मिलता है। पौराणिक काल के इतिहास के अध्ययन से मालूम होता है कि भारत में किसी समय इस विद्या की काफ़ी उन्नति हुई थी। रावण जानकी का हरण करता है, तो इसकी ख़बर जटायु पक्षी देता है। राम और जटायु के बीच काफ़ी वार्तालाप भी होता है। भागवतपुराण में श्रीकृष्ण और जाम्बवान् का कथनोपकथन है। महाभारत में राजा युधिष्ठिर का हिमालय पर कुत्ते के साथ बातचीत करना लिखा हुआ है। द्रविड़ेश्वर और मत्स्य का संवाद भी महाभारत में है। कादम्बरी नाम की पुस्तक में राजा शूद्रक और वैशम्पायन-नामक एक तोते का संभाषण है। गरुड़ और काकभुशुण्डि का नाम किसे नहीं मालूम। गरुड़ विष्णुभगवान् के वाहन थे। काकभुशुण्डि ऋषित्व को पहुँच गये थे।

अन्य देशों के इतिहास में भी इसी प्रकार की अनेकों कहानियाँ हैं। महमूद ग़ज़नवी के समय तक इस विद्या के प्रचलित रहने का प्रमाण मिलता है। उसके सम्बन्ध में एक कहानी है। एक बार महमूद शिकार खेलने गया। शिकार करते-करते वह थककर एक पेड़ की छाया में बैठ गया। उस पेड़ पर एक उलूक और एक उलूकिनी बैठी थी। उलूकिनी ने अपनी लड़की का विवाह उलूक के लड़के के साथ करने की इच्छा प्रकट की। उलूक ने कहा—यदि तुम मुझे एक उजाड़ गाँव दो, तो मैं अपने लड़के की शादी तुम्हारी लड़की के साथ करना स्वीकार कर लूँ। उलूकिनी ने कहा—यदि बादशाह महमूद सलामत हैं, तो एक नहीं, दस-बीस उजाड़ ग्राम दे सकती हूँ। यह बातचीत बादशाह सुन रहा था। इस पर उसे बड़ी लज्जा आई। उस दिन से वह अपने राज्य का अच्छा प्रबन्ध करने लगा।

आज चाहे यह कहानी केवल कपोल-कल्पित ही मानी जाय, किन्तु यह निश्चय है कि महमूद इस विद्या का जानकार था। यदि मनुष्य पक्षियों की बोली-भाषा समझ ले, तो उसका बहुत उपकार हो। प्राचीन काल के विद्वानों ने इस रहस्य का भेद जान लिया था। किन्तु नवीन सभ्यतावाले तो अपनी विद्या पर इतरा-इतराकर झूम रहे हैं। उन्हें यह सब झूठी कहानी जान पड़ती है। जिस वस्तु को वे आसानी से प्राप्त नहीं कर सकते, उसे झूठ और कपोल-कल्पित बताते हैं। जीव-जन्तु-विद्या (Zoology) पर इस समय विद्वानों ने काफ़ी खोज की है। उसकी उन्नति भी काफ़ी हुई है। परन्तु यह विद्या तब तक अधूरी रहेगी, जब तक पशु-पक्षियों की बोली की विद्या का इसमें समावेश नहीं होगा।

इस विषय के प्राचीन ग्रन्थ तो बिलकुल ही लुप्त हो गये हैं, फिर भी थोड़ी-बहुत सहायता कोकशास्त्र तथा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पातञ्जल योगसूत्रों से मिल सकती है। इसके साधन का उपाय योगशास्त्र में भी लिखा है।

स्वप्नार्थ-निरूपण-विद्या

अति प्राचीन काल में इस विद्या का काफ़ी प्रचार था। लोगों का विश्वास था कि स्वप्न की प्रत्येक घटना और पदार्थ हमारे भविष्य जीवन में होनेवाली घटनाओं और प्राप्त होनेवाली वस्तुओं के गूढ़ संकेत हैं। इन संकेतों द्वारा लोग तुरन्त ही, स्वप्न सुनकर यह बतला देते थे कि इसका फल क्या होगा। प्राचीन और मध्यकाल के इतिहास देखने से पता चलता है कि उस समय राज-दरबारों में स्वप्न-फल बतलाने के लिए स्वप्नज्ञ नियुक्त रहते थे, जिनको बुलाकर राजा लोग अपने स्वप्न सुनाकर, उसके आधार पर भविष्य में होनेवाली घटनाओं को पूछा करते थे।

मिश्र देश के बादशाह फ़रोहा को स्वप्न में सात मोटी और सात पतली गायें दिखाई दीं। उसने अपने स्वप्नज्ञों से उसका फल पूछा। स्वप्नज्ञों ने कहा—सात मोटी गायों का अर्थ सात बड़े फूले-फले संवतों से है। और सात पतली गायों का अभिप्राय सात दुर्भिक्षों से है। कहने का मतलब यह कि पहले सात संवत् तो बहुत सुख और आनन्द से व्यतीत होंगे, किन्तु उसके बाद सात भीषण दुर्भिक्ष पड़ेंगे। प्रजा कष्ट और पीड़ाओं का अनुभव करेगी। इस कथन के अनुसार ही घटना भी हुई। यह कथा बाइबिल में लिखी है।

प्राचीन लोगों का स्वप्नों में कितना अधिक विश्वास था, यह बात आगे की कथा से बिलकुल ही स्पष्ट हो जाती है—

किसी समय फ़ारस देश में केम्बाइसेस-नामक राजा राज्य करता था। एक रात को उसने स्वप्न में देखा कि उसका छोटा भाई बादशाही ताज पहने बैठा है। बस, उसे विश्वास हो गया कि निश्चय ही भविष्य में ऐसा ही होनेवाला है। फ़ौरन् ही उसने अपने भाई को तलवार के घाट उतार दिया।

हिन्दू-पुराण - इतिहासों में स्वप्नसम्बन्धी अनेकों कथाएँ हैं। भरत को अपने मामा के घर एक बड़ा ही अशुभ स्वप्न दिखाई पड़ा। उसका अर्थ था, उनके पिता की मृत्यु और रामचन्द्र को वनवास। रावण ने स्वप्न देखा कि एक वानर लंका जला रहा है। इसके कुछ ही दिनों बाद हनुमान् ने लंका-दहन किया। ये कथाएँ रामायण में लिखी हैं।

भागवतपुराण में लिखा है कि श्रीकृष्ण के जन्म लेने के पूर्व कंस ने स्वप्न में देखा कि वह गर्दभ पर सवार है। इसका फल कंस के वधरूप में प्रकट हुआ। कादम्बरी में एक स्थान पर वर्णन है कि राजा तारापीड़ को स्वप्न में चन्द्र-मण्डल अपनी गोद में बैठा दिखाई दिया। कुछ काल पीछे उसके एक तेजस्वी पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम चन्द्रापीड़ रक्खा गया।

इस प्रकार की कहानियों से संसार का इतिहास भरा पड़ा है। हिन्दुस्तान में अब भी स्वप्नों की सत्यता का विश्वास थोड़ा-बहुत चला आ रहा है। यह विश्वास अधिकांश वृद्ध और पुराने ढंग के मनुष्यों में है। ऐसे लोग अब भी बहुत-से स्वप्नों का अर्थ बताते हैं। किन्तु इस विद्या का पूरा ज्ञान न रखने के कारण बहुत-सी भूलें कर देते हैं। स्वप्नों का अर्थ ठीक-ठीक वही समझ सकता है, जिसे इस विद्या का ज्ञान हो। स्वप्न-संबंधी कितने ही ग्रन्थ हैं, जिनको देखने और पढ़ने से इस सम्बन्ध में काफ़ी अनुभव हो सकता है। कुछ पुस्तकें हिन्दी-भाषा में भी हैं; किन्तु इस विषय के प्रामाणिक ग्रन्थ संस्कृत-भाषा में ही हैं। यह सब केवल ढकोसला नहीं, हज़ारों वर्षों के अध्ययन और अनुभव का फल था।

इस प्रकार की और भी अनेकों उपयोगी विद्याएँ हैं, जिनका इस समय प्रायः लोप-सा हो गया है। एक समय था, जब पशु-पक्षियों की बोली और चेष्टाओं से शुभाशुभ घटनाएँ मालूम कर ली जाती थीं। पृथ्वी के भीतर की वस्तुओं का ज्ञान, पृथ्वी से जल निकालना, सामुद्रिक, स्वरोदय, रसायन, पारस आदि विद्याएँ ऐसी थीं, जिनके चमत्कार के बूते पर ही भारतवर्ष संसार का मुकुटशिरोमणि बना था। किन्तु दुर्भाग्य! आँधी आई—भयंकर आँधी! जिसे सभ्यता की आँधी कह सकते हैं। उस आँधी में सदियों से सँजोई हुई हमारी ये विभूतियाँ विलीन हो गईं! उन पर धूल की इतनी तहें बैठ गईं कि हम उन

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहचान नहीं सकते। यदि किसी ने एकाध टुकड़ा पहचानने की भी चेष्टा की, तो सब लोग उस पर अट्टहास करके हँस देते हैं—और वह शर्म से आँखें मीचकर भौचक्का-सा खड़ा रह जाता है!

चाहे जो हो। हमें भी भौचक्का ही-सा क्यों न होना पड़े, किन्तु हम अपने उदार विद्वानों तथा खोज के विद्यार्थियों से प्रार्थना करेंगे कि वे इनकी खोज करें। खोज के लिए उन्हें पर्याप्त सामग्री मिलेगी। इन विद्याओं के सम्बन्ध के आज भी अनेकों ग्रन्थ मौजूद हैं। यदि उचित परिश्रम और प्रयत्न हुआ, तो इनमें कई विद्याएँ पुनर्जीवित हो सकती हैं, और उनसे संसार का बहुत बड़ा कल्याण हो सकता है।

मेरे जीवन की रक्षा

"माधुरी! तुम्हीं ने की" उसकी सखी ने कहा, "यह मैं कभी न भूलूँगी। मुझे अपने वह दिन अब भी याद आ जाते हैं जब मैं स्त्री-सम्बन्धी कई रोगों से पीड़ित हो जीवन से हताश हो गई थी। मैं इस दवा को भी कभी न भूलूँगी जिसे तुमने बताया था और जिसकी बदौलत मैंने अपना खोया हुआ स्वास्थ्य फिर पाया है।" सचमुच—

डाबर अशोकारिष्ट (Regd.)

(ऋतु व प्रदर के दोषों को मिटाने की प्रसिद्ध आयुर्वेदीय दवा है)

स्थानीय हमारे एजेंट से खरीदिये।

डाबर (डा: एस. के. बर्मन) लि:

विभाग नं० १३१ पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

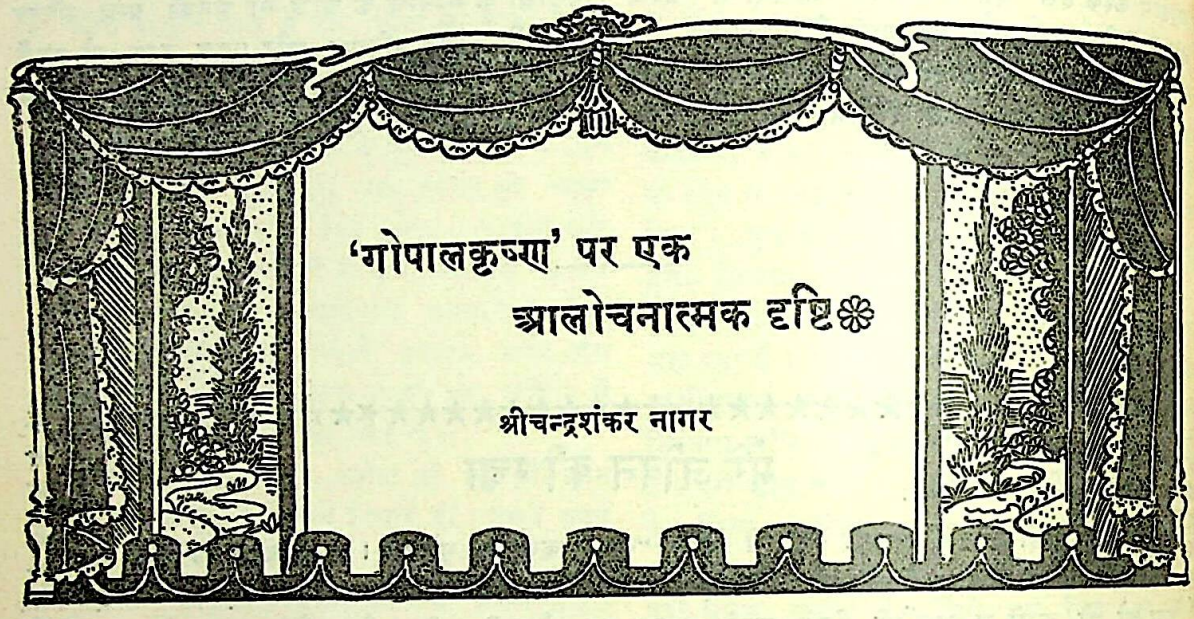

'गोपालकृष्ण' पर एक आलोचनात्मक दृष्टि*

श्रीचन्द्रशंकर नागर

यों तो कृष्ण-संबंधी कई फ़िल्म निकल चुके और निकल रहे हैं, लेकिन उन दिनों कई महीनों से प्रभात के 'गोपालकृष्ण' का विज्ञापन देखने में आ रहा था। प्रभात सदा एक नई चीज़ देता है। उसकी प्रत्येक फ़िल्म में अपनेपन की छाप रहती है। प्रभात की एक-एक फ़िल्म अमर है। उसके विशाल सेटिंग्स, अद्भुत सीनेरियो तथा कलापूर्ण गायन होते हैं। यह तो सर्वविदित है। 'गोपालकृष्ण' भी उक्त कम्पनी का एक महान् चित्र है। चित्र का कथानक कृष्ण के बचपन की लीलाओं के आधार पर है। कंस गोकुलवासियों से पाँच सौ गायें माँगता है। गोकुलवासी अपनी इस प्रिय वस्तु को देना अस्वीकार कर देते हैं। कंस क्रोधित होकर अपने सेनापति केशी को बलपूर्वक गायें ले आने की आज्ञा देता है। कृष्ण गोकुलवासियों की तरफ़ से प्रतिनिधि बनकर जाते हैं, तथा उनकी गायें उन्हें वापस दिला देते हैं। संक्षेप में यही इस चित्र का कथानक है। इसी को बड़ा रूप देकर जनता के समक्ष रक्खा गया है। इसमें सन्देह नहीं कि कथानक सुन्दर और एक अच्छे कलाकार की सूझ है। प्रभातवालों ने इसमें

* 'गोपालकृष्ण' के सम्बन्ध में मेरे अच्छे या बुरे निजी क्या विचार हैं, यह तो पाठकगण लेख पढ़कर ही जान सकेंगे। फ़िल्म देखकर संभव है, उनके मेरे प्रति विचार बदल जायँ और वे यह महसूस करने लगें कि लेखक ने केवल चित्र की अप्रशंसा ही की है। लेकिन वास्तव में मैंने यह लेख किसी ख़ास उद्देश्य (या यही सोचकर कि प्रभातवालों की कुछ बुराई करूँ) को लेकर नहीं लिखा है। प्रभात को मैं सदा आदर की दृष्टि से देखता आया हूँ। उसकी एक-एक फ़िल्म मेरी नज़रों में अद्वितीय एवं कलापूर्ण है। वह सदा एक नई चीज़ देता है। मेरी प्रभात के प्रति पूर्ण सहानुभूति है। मुझे आशा है, प्रभात के आगामी चित्रों में हिन्दी के संवादों की यह कमज़ोरी न आने पावेगी, जिसका निर्णय आप लोग चित्र देखने पर ही कर सकेंगे।—लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यथेष्ट धन व्यय करके इसका निर्माण किया है। लेकिन जिस प्रकार के संवाद अभिनेताओं द्वारा बोले गये हैं, उनसे तो यही प्रकट होता है कि प्रभात-वाले हिन्दी-चित्र केवल धन ही के लिए प्रोड्यूस (produce) करते हैं। प्रभातवालों में प्रांतीयता कितनी भरी है, इसका तो उन्हीं लोगों को भली भाँति अनुभव हुआ होगा, जिन्होंने प्रभात में प्रवेश करने के लिए तनिक भी प्रयत्न किया है। खैर, उन लोगों की बात तो दूर रही, मेरे अभियोग का प्रमाण तो प्रभात के हिन्दी-चित्रों से ही मिल जा सकता है। प्रभात के संचालकों की राय में मराठे ही कलाकार होते हैं, इसलिए मराठों को ही चांस दिया जाता है। जिन हिन्दी-भाषा-भाषियों को, सौभाग्य से कहिए या दुर्भाग्य से, उन्होंने चांस दिये भी हैं, उनके नाम उँगलियों पर ही गिने जा सकते हैं। वे हैं श्रीनरोत्तम व्यास तथा श्रीचन्द्रमोहन। सो प्रभात के दुर्भाग्य से ये दोनों ही सज्जन अपना सम्बन्ध तोड़ चुके हैं। तीसरे एक और श्रीवास्तव महोदय प्रभात में आये हैं। देखें, ये कब तक टिक सकते हैं।

प्रभात की अब तक जितनी हिन्दी-फ़िल्में आई हैं, उन सभी में प्रायः मराठों ने ही प्रधान भूमिका में काम किया है, चाहे वे हिन्दी बोल सके हैं या नहीं। उदाहरण के लिए शान्ता आप्टे को ही लीजिए। वे लगभग आधे दर्जन चित्रों में प्रधान अभिनेत्री के रूप में हमारे सामने आई हैं। लेकिन अभी तक उनकी हिन्दी में लेशमात्र भी सुधार नहीं हुआ, जब कि दुर्गा खोटे, उमाशशि, देविकारानी, माधुरी, सविता इत्यादि धाराप्रवाह रूप से हिन्दी बोल लेती हैं।

इधर प्रह्लाद और उल्हास, ये दो नये अभिनेता प्रभात में आये हैं। इन दोनों ने 'वहाँ' फ़िल्म में अत्यन्त उच्चकोटि का अभिनय किया है; तथा हिन्दी के संवाद भी 'गोपालकृष्ण' के समान अशुद्ध और जल्दी-जल्दी नहीं बोले हैं।

कृष्ण की भूमिका राम मराठे को दी गई है, और वह इसे निबाह भी ले गया है। यह बालक पहले सागर मूवीटोन के कई चित्रों में काम कर चुका है। इसका भविष्य उज्ज्वल मालूम पड़ता है। अभिनय की दृष्टि से उसका कार्य सराहनीय हुआ है, हालाँकि संवाद बोलने में कहीं-कहीं वह ज़रा कठिनाई में पड़ गया है। कई दृश्यों में उसे असाधारण सफलता मिली है। विशेषकर उस दृश्य में, जब वह 'गुजरिया दे दधिदान' वाला गायन गाता हुआ गोपियों से माखन लेकर खाता है। एक और दृश्य में, जब वह अपनी मामी के हाथ से ही भोजन करने का आग्रह करता है, गायन भी उसके संतोषपूर्ण हैं।

अब हमारे सामने आता है मनसुख, कृष्ण के बालसखा के रूप में। समस्त चित्र में उसका ही अभिनय स्वाभाविक हुआ है। संवाद का दोष उसके अभिनय में भी खटकता है। वह कहीं तो ज़ोर से तथा कहीं इतना धीरे और हँस-हँसकर बोलता है कि दर्शकों को कुछ खटकता है। एक दृश्य में जब वह केशी के सामने गोकुलवासियों की तरफ़ से सेनापति बनकर जाता है, और वहाँ जाकर उसे 'अबे गधे के बच्चे' कहकर संबोधित करता है, और फिर तत्काल ही अपने बचाव के लिए उपर्युक्त शब्द अपने साथियों पर डाल देता है, तब बहुत खटकता है। यह बहुत ही दोषपूर्ण है। एक और दृश्य में वह अपने मामा से कहता है—"मामा, मैं तुम्हारी जोरू नहीं, जो चाहा सो किया।" यहाँ तो अश्लीलता की सीमा पार हो जाती है। क्या उस समय के बालक इतने उद्दंड थे? क्या उन्हें अपने से छोटे या बड़े का तनिक भी विचार नहीं रहता था? इस चित्र में जिस प्रकार मनसुख का चरित्र-चित्रण किया गया है, उससे केवल प्रभातवाले ही सहमत हो सकते हैं, दूसरे नहीं। अब मुझे कुछ शान्ता आप्टे के विषय में कहना है, जो कि इस चित्र में राधा की भूमिका में हैं। उनका अभिनय साधारणतः पूर्ववत् रहा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कोई विशेष बात दृष्टिगोचर नहीं हुई। हाँ, हिन्दी के संवादों के विषय में मुझे इनसे शिकायत है। इस पर इन्हें विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। अभिनय इनका भी कहीं-कहीं दोषपूर्ण है; लेकिन इसका दायित्व डाइरेक्टर के ऊपर है। इसमें ये निर्दोष हैं। एक दृश्य में जब वे गाय की पूजा इत्यादि कर घर के भीतर चली जाती हैं, उसी समय उनके पति अनय क्रोध में आकर गाय के गले की माला इत्यादि सब नोचकर फेंक देते हैं। वे इसे सहन नहीं कर सकतीं। उनके हृदय को इससे करारी ठेस पहुँचती है, और तत्काल ही वे बेसुध होकर पति के हाथ को झटक देती हैं। इस भगदड़ में एक तो प्रथम ही उनकी सारी का यथेष्ट भाग अपने स्थान से अलग हो गया था, उस पर झटका देने में वह और भी अलग हो जाता है, लेकिन वे इसे शीघ्र ही सँभाल लेती हैं। गायन सभी पूर्ववत्, कोई विशेष प्रशंसा करने योग्य नहीं।

समस्त चित्र में फ़ोटोग्राफ़ी अत्यन्त सराहनीय है। प्रभात की फ़ोटोग्राफ़ी आज भी हमारे हृदयों में अंकित है, और इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं—'अमृत-मन्थन' तथा 'चन्द्रसेना'। 'गोपालकृष्ण' की भी अंतिम दृश्य की फ़ोटोग्राफ़ी, जिसमें तूफ़ान, तथा गोकुलवासियों और उनके पशुओं का जल में बहना, गोवर्धन पर्वत का उठाया जाना फ़िल्म-इतिहास में अभूतपूर्व है। वास्तव में प्रभातवाले इस सुन्दर फ़ोटोग्राफ़ी के लिए बधाई के पात्र हैं।

रिकार्डिङ्ग साधारणतया अच्छी ही कही जा सकती है। संवाद सुन्दर लिखे गये हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं। संवाद प्रायः और सभी अभिनेताओं ने ठीक बोले हैं; केवल 'अनय' के रोल में काम करनेवाले नये सज्जन ने जल्दी-जल्दी तथा अशुद्ध संवाद बोलकर फ़िल्म को त्रुटि तथा दोषपूर्ण बनाया है। उनका एक भी संवाद भली भाँति दर्शकों की समझ में नहीं आता। उनका बार-बार 'क्यों' शब्द को 'क्यौं' बोलना बहुत ही दोषपूर्ण है। इसका उत्तरदायित्व चित्र के हिंदी-रूपांतरकार मि० श्रीवास्तव के ऊपर है। उन्हें इस पर ध्यान देना चाहिए था।

गायन सभी ठीक हैं, प्रभात स्टैंडर्ड के। सभी मराठी ट्यून में हैं, जिनमें तनिक भी माधुर्य नहीं है। मेरी राय में तो प्रभातवालों को अपने हिंदी-चित्रों के लिए कोई बंगाली या पंजाबी म्यूज़िक डाइरेक्टर रखना चाहिए, जिससे हिंदी-गानों में मराठी ट्यूनों का टच (Touch) न आ सके। अंत में यह अवश्य कहना पड़ेगा कि यदि चित्र के ऊपर से संवाद का दोष हटा लिया जाय तो यह चित्र अन्य सभी कंपनियों के कृष्ण-संबंधी चित्रों से श्रेष्ठ है।

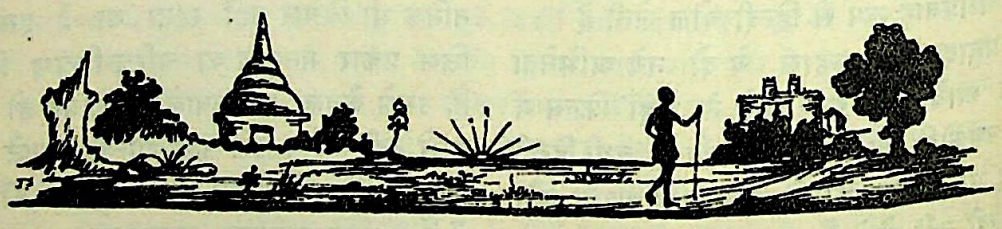

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

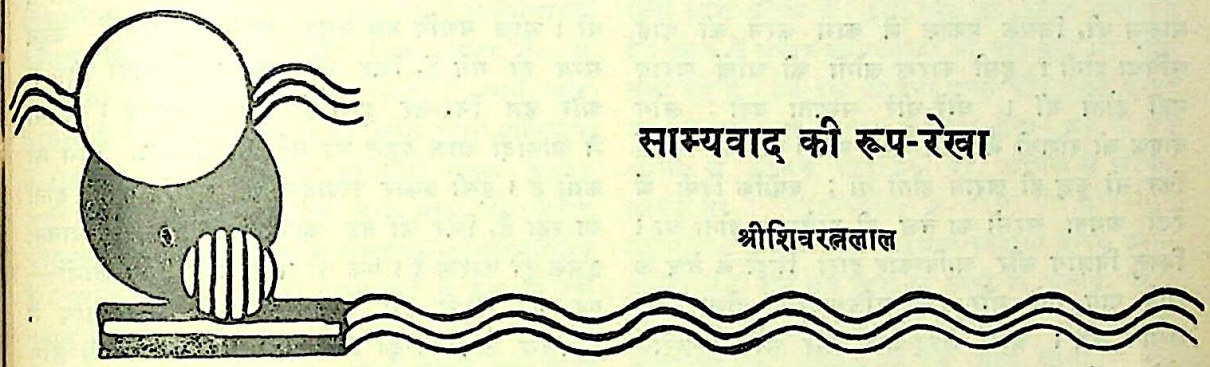

साम्यवाद की रूप-रेखा

श्रीशिवरत्नलाल

आज हम मानव-समाज की उस व्यवस्था पर विचार करना चाहते हैं, जिसमें मनुष्य सबसे अधिक सुखी और संतुष्ट रह सकता है। स्वभावतः मनुष्य सुख, कीर्ति, ऐश्वर्य तथा प्रभुत्व चाहता है। सृष्टि के आदि से लेकर आज तक मानव-समाज ने निरंतर इन्हीं बातों की खोज में अनेकों युग बिता दिये हैं। एक समय था, जब मनुष्य नंगे रहते थे और प्रकृति से कन्द, मूल, फल, यहाँ तक कि वृक्षों की पत्तियाँ, जो भी मिल जाता था, उसी पर अपनी ज़िन्दगी बसर करते थे। धीरे-धीरे वे केले के पत्ते अथवा ऐसी ही कोई चीज़ पहनने लगे और पत्थर के छोटे-मोटे बरतन और औज़ार भी बनाने लगे। इसी प्रकार वह युग भी आया, जब हम इस अवस्था को भी हेय समझने लगे और हमारे रहन-सहन के तौर-तरीक़ों में धीरे-धीरे परिष्कार होने लगा। आज तो हम अपने समाज को अत्यन्त सभ्य घोषित करते हैं। आज हम कृषि के नये-नये तरीक़े जान चुके हैं, जिनसे पैदावार सरल और अधिक हो सकती है। थोड़ी मिहनत से अधिक उत्पादन हो सकता है। व्यवसाय में ऐसे-ऐसे आश्चर्यजनक आविष्कार हो चुके हैं, जिनसे उत्पत्ति बहुत अधिक हो सकती है। ऐसी-ऐसी मशीनें बन चुकी हैं, जिनसे हम हज़ारों-लाखों मनुष्यों का काम थोड़े समय में ले सकते हैं। आज हम स्थल की तो बात ही क्या, जल पर चल सकते हैं, आसमान में उड़ सकते हैं। हमने क़रीब-क़रीब प्रकृति पर भी नियंत्रण स्थापित कर लिया है। जड़ पदार्थ अथवा जीवों की क्या बात, हवा, बिजली, भाप, रोशनी, सभी पर हमारा अधिकार होता जा रहा है। दिन-दिन संसार में सम्पत्ति की वृद्धि होती जा रही है। ऐश्वर्य की भी कमी नहीं है। फिर भी हम सुख और संतोष से बराबर दूर होते जा रहे हैं। इसका मूल कारण क्या है ?

बात यह है कि हम आज तक यह समझ ही नहीं पाये कि मानव-समाज को कैसी व्यवस्था की ज़रूरत है, और हम उसे किस प्रकार ऐसा बना सकते हैं, जिससे हमारा सुख और शान्ति स्थायी बनी रहे। हमने जितना ही ज़्यादा सभ्य बनने की कोशिश की, उतना ही हम मानव-प्रकृति और समाज के आदर्श

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को दूर हटाते गये। हमने कृत्रिमता (तथाकथित सभ्यता) को वास्तविक सभ्यता का नाम दिया, और इस प्रकार आत्म-वंचना के साथ-साथ अपना नैतिक पतन भी कर डाला। आप एक मामूली उदाहरण लीजिए। जब हम पूर्ण असभ्य कहे जाते थे, अर्थात् आधुनिक सभ्यता हम में नहीं आई थी, तब रात में काम करने की कोई व्यवस्था न थी। कारण, कृत्रिम प्रकाश की—दीपक आदि जलाने की कोई विधि नहीं मालूम थी, जिसके प्रकाश में काम करने की कोई सुविधा होती। इसी कारण लोगों की आँखें ख़राब नहीं होती थीं। धीरे-धीरे सभ्यता बढ़ी; लोग दीपक की रोशनी में काम करने लगे। उनकी आँखें फिर भी कुछ ही ख़राब होती थीं; क्योंकि दियों में रेंडी अथवा सरसों का तेल ही इस्तेमाल होता था। किन्तु विज्ञान और आविष्कार द्वारा मिट्टी के तेल के सोते पाये गये और हम अधिक सभ्य होकर उसे जलाने लगे। आँखें जल्द-जल्द और अधिक ख़राब होने लगीं। परन्तु जब हम पूर्ण सभ्य बनकर बिजली की रोशनी में काम करने लगे, तब तो चश्मा लगानेवालों की संख्या इतनी बढ़ गई और लोगों की आँखें इतनी अधिक ख़राब होने लगीं कि लोग अस्सी फ़ीसदी चक्षु-रोग से पीड़ित होने लगे। दिन-प्रतिदिन नये-नये रोगों की संख्या बढ़ती ही जाती है। इसका कारण यही है कि हम अधिकाधिक सभ्य होते जा रहे हैं। हमारी सभ्यता ने ऐसे-ऐसे आविष्कार कर डाले हैं, जिन पर हम आज गर्व करते हैं। कृत्रिम गर्भ-निरोध के उपाय, कृत्रिम हवा, कृत्रिम रोशनी, सभी का उपयोग हम करते हैं, और इस प्रकार मनुष्यों की आयु को कम करते जा रहे हैं। हमको प्रकृति ने जितनी ज़रूरत के मुताबिक़ प्राकृतिक चीज़ों के उपयोग की सामर्थ्य (सहनशक्ति) दी है, उससे कहीं अधिक हम उसका उपयोग करते हैं और वह हमारे लिए हानिकर ही होती जाती है। हमारी सभ्यता की वृद्धि के साथ-साथ हमारा नैतिक पतन भी होता जा रहा है। पहले के मनुष्य जितना संयम कर सकते थे, आज हम उतना नहीं कर सकते। हम इतिहास में पढ़ते हैं कि अशोक के राज्य में लोगों को घरों में ताले लगाने की ज़रूरत नहीं पड़ती थी, लोग झूठ नहीं बोलते थे, अपराधों की संख्या नहीं के बराबर थी। और भी दूसरी तरह की बुराइयाँ उस समय नहीं थीं। फिर आज क्यों हमारा चरित्र वैसा आदर्श नहीं रहा और हम क्यों पतनोन्मुख होते जा रहे हैं? इसका कारण केवल यही है कि उस समय का मानव-समाज आज से ज़्यादा सुखी और समृद्ध था। प्रचुर सामग्री (खाद्य और वस्त्र) पैदा होती थी; आबादी कम थी और ज़मीन की कमी न थी। आज यद्यपि हम बहुत आगे बढ़ गये हैं, बहुत सभ्य हो गये हैं, फिर भी हमारा सुख नहीं बढ़ा है, और हम निरन्तर दुखी ही होते जा रहे हैं। दुनिया में आबादी आज बहुत बढ़ गई है, उपजाऊ भूमि की कमी है। इसी प्रकार उत्पादन भी यद्यपि काफ़ी होता जा रहा है, फिर भी वह काफ़ी नहीं होता। प्रधानतः इसके दो कारण हैं। एक तो यह कि थोड़े से लोगों—एक गुट, जिसे हम पूँजीपति कहते हैं—के हाथ में ही उस उत्पादन का नियंत्रण रहता है और वे लोग अपने ही फ़ायदे के लिए भिन्न-भिन्न पदार्थों का अपनी सुविधा के अनुसार अधिक या कम उत्पादन करते हैं। ये चीज़ें भी सर्वसाधारण के हित और उपयोग की दृष्टि से नहीं, बल्कि उन्हीं चन्द लोगों के हित की दृष्टि से पैदा की जाती हैं। दूसरा यह कि हमारे समाज की व्यवस्था ऐसी है कि बहुत-से आदमियों का परिश्रम कुछ के लिए ही होता है और उत्पादित सम्पत्ति का सबसे ज़्यादा अंश थोड़े से आदमियों को ही मिलता है, जो उसका दुरुपयोग करते हैं। और कम, बहुत ही कम अधिकांश व्यक्तियों अथवा साधारण जन-समूह को मिलता है, जो लोगों के खाने भर को भी नहीं अँटता। यह बात नहीं है कि खाने-पीने और पहनने की तकलीफ़ दुनिया में आज इसलिए है कि खाने के लिए ग़ल्ला और पहनने के लिए वस्त्र नहीं हैं, बल्कि यह तकलीफ़ इसलिए है कि ग़ल्ला पैदा करनेवाले किसानों का कोई अधिकार ग़ल्ले पर नहीं है। ग़ल्ला उन्हीं पूँजीपतियों के हाथ में जाता है और गोदामों में इकट्ठा रहता है। इस तरह उसके भाव का चढ़ाव-उतार उन चन्द आदमियों के द्वारा अपने ही फ़ायदे के लिए होता है, जिससे बेचारे ग़रीब किसान भूखों मरते हैं और वे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चन्द लोग ऐशोइशरत की ज़िन्दगी बसर करते हैं। इस भाव के चढ़ाव-उतार के लिए लाखों टन ग़ल्ला जला दिया जाता है। इसी प्रकार अन्य आवश्यक सामान, जो बेचारे ग़रीब जन-समूह के खाने और आराम से रहने के काम आ सकता, नष्ट कर दिया जाता है। इनके बजाय ऐसे अनावश्यक सामानों की उत्पत्ति की जाती है, जिनसे सर्वसाधारण का कोई लाभ नहीं है, बल्कि उससे इन्हीं चन्द मनुष्यों की विलासिता की तृप्ति होती है। इस प्रकार सर्वसाधारण के श्रम का, शक्ति का दुरुपयोग किया जाता है, जो बेमसरफ़ (अनावश्यक) है। मिलों में खाने और पहनने के सामानों को भी वे ही लोग अपने अधिकार में रखते हैं, और असल पैदा करनेवाले बेचारे मज़दूर भूखों मरते हैं। इसके अलावा कच्चे माल की ख़रीद और उत्पादन भी ये पूँजीपति आवश्यकतानुसार करवाते हैं; परन्तु जनसाधारण को इसके बारे में कुछ भी नहीं बताते कि वह कच्चा माल अब ज़्यादा पैदा होने से बेज़रूरत होगा। इस प्रकार हज़ारों-लाखों आदमियों (बेचारे किसान और मज़दूरों) की तो मिहनत बरबाद होती है, और ये मनमाने—सस्ते से सस्ता—दाम देकर उसे ख़रीदते हैं अथवा मुफ़्त ही हथियाने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार इन पूँजीपतियों को तो अपने मुनाफ़े से ही मतलब होता है, चाहे इसके पीछे सर्व-साधारण तबाह ही क्यों न हो जायँ। अभी हाल की ही बात है, युक्तप्रान्त और बिहार की अनेकों जगहों पर, ख़ास तौर से गोरखपुर ज़िले में गन्ने की खड़ी फ़सलें करोड़ों मन जला दी गईं। इसी तरह अमेरिका में भी किसी समय बनावटी आर्थिक तुला का सामञ्जस्य करने के लिए खड़ी की खड़ी गेहूँ की फ़सलें नष्ट कर दी गईं। एक तरफ़ तो बेचारे मज़दूर और किसान भूखों मरते हैं और दूसरी तरफ़ चीज़ें पड़ी-पड़ी सड़ा करती हैं। इन (पूँजीपतियों) का स्वभाव भी इसी तरह बेढंगा होता है। आप देखिए तो सही, शहरों में रहने-वाले अनेक धनवानों के बखारों में अनाज पड़ा-पड़ा सड़ जाता है और फेंक दिया जाता है, जिससे अनेकों उपवास करनेवाले नर-नारियों और बच्चों की भूख मिटती। उनके घरों में टोकरे के टोकरे आम या अन्य चीज़ें सड़ जाती हैं, जो फेंक दी जाती हैं; परन्तु उन्हीं के नौकर उनके लिए तरसा करते हैं। सारे मानवीय परिश्रम के फल पर इन्हीं चन्द धनवानों का क़ब्ज़ा है। मानो पूँजी लगाना, Investment करना ही केवल उत्पादन बढ़ाता है। उन्हें पता ही नहीं कि अगर किसान और मज़दूर काम करना बन्द कर दें तो उनकी लाखों और करोड़ों की पूँजी का कोई अर्थ ही नहीं है। बस, वे तो समझते हैं कि केवल रुपये से ही दुनिया का सारा काम चलता है। इसी तरह की इनकी मनोवृत्ति है। आज के समाज की व्यवस्था भी यही मुट्ठी भर लोग चला रहे हैं। हमें इसे बदलना होगा और इनसे छीन-कर उसे जन-समूह के हाथ में लाना होगा। अब तो हमें अधिक से अधिक आदमियों का 'अधिक से अधिक फ़ायदा हो' (The greatest good of the greatest number.) के आधार पर समाज-व्यवस्था क़ायम करनी होगी। तभी हम सब सुखी हो सकते हैं, अन्यथा नहीं। समाज से उन कुरीतियों और बदमाशियों को निकाल बाहर कर देना होगा, जो इन चन्द लोगों ने पैदा कर दी हैं।

किन्तु अब प्रश्न यह है कि आज की दुर्व्यवस्था को ठीक कैसे किया जाय। हम अपनी समाज-व्यवस्था का संगठन किस प्रकार करें कि सब सुखी हों और व्यक्ति के सुख के लिए समष्टि के सुख का सर्वनाश न हो। समाज पर इन मुट्ठी भर लोगों का जो एकाधिपत्य है, वह मिटे, ताकि सर्वसाधारण का शोषण बन्द हो। यह काम इतना आसान नहीं है। अनेक बड़े-बड़े लोगों ने इसके अनेकों उपाय बताये हैं। हर तरह की समाज-व्यवस्था का रूप अनेकों वादों के नाम से हमारे सामने है। समाजवाद, पूँजीवाद (साम्राज्यवाद), राष्ट्रीय समाजवाद (अधि-नायक-तंत्रवाद), लोक-तंत्रवाद, अराजकवाद आदि नाना प्रकार की समाज-व्यवस्थाएँ ही तो हैं। मैंने ऊपर केवल साम्यवाद तथा पूँजीवाद का ही ज़िक्र किया है। बाक़ी सब इन्हीं दो में से किसी न किसी से मिलते-जुलते हैं। ऊपर यह भी बताया जा चुका है कि साम्यवाद का ही सिद्धान्त श्रेयस्कर है और हमें समाज-व्यवस्था मूलतः इसी सिद्धान्त के आधार पर चलानी होगी। किन्तु इस साम्यवाद का रूप क्या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हो, जिससे हमारा समाज (मानव-समाज) सुखी हो। इसी का हल हमें ढूँढ निकालना है। उत्पादन किस प्रकार किया जाय और उसका नियंत्रण किस प्रकार हो, हम इसी पर इस लेख में विचार करेंगे।

अनेक विद्वानों का मत है कि मशीनों के अस्तित्व को अब ख़तम करना मुश्किल ही नहीं, असम्भव है। ऐसा करने से कोई लाभ भी नहीं है। इसलिए हमें इन्हीं मशीनों द्वारा उत्पादन करना होगा। हाँ, यह अवश्य है कि वह उत्पादन अनावश्यक वस्तुओं का और ऐसा न होगा, जो कि एक गुट या चन्द लोगों के लिए ही फ़ायदेमन्द हो। उस पर अधिकार भी State का अथवा जनसाधारण का होगा। बड़ी-बड़ी मशीनें ज़्यादा-ज़्यादा सामान पैदा करेंगी। वैज्ञानिक यंत्रों द्वारा ज़मीन जोत डाली जायगी। पैदावार दुगनी, चौगुनी, अठगुनी या इससे भी ज़्यादा हो जायगी। ऐसे-ऐसे यंत्रों का आविष्कार होगा, जो आवश्यक मालों से दुनिया को पाट देंगे। इसके अलावा वे मशीनें ऐसी होंगी, जिनके चलाने में कम से कम आदमियों की ज़रूरत होगी। यहाँ तक कि छोटे-छोटे काम करने के लिए—जैसे माल को एक जगह से उठाकर दूसरी जगह हटाने के लिए भी मशीनों से ही काम लिया जायगा। उन मशीनों की देखभाल के लिए केवल बहुत थोड़े से आदमियों की ही ज़रूरत होगी। इस प्रकार मनुष्यों के लिए अधिकतर खाने, पहनने और घूमने के सिवा और कोई काम ही न रहेगा। 'प्रिंस क्रोपाटकिन'-जैसे महान् विद्वान् ने भी अपने 'Conquest of Bread' नाम की पुस्तक में यही मत प्रकट किया है। उनका कहना है कि बड़ी-बड़ी मशीनों द्वारा हम थोड़े ही समय में इतने उपयोगी सामान पैदा कर लेंगे कि शीघ्र ही एक ऐसा समय आ जायगा, जब हमें यह कहना पड़ेगा कि हमारे पास रोटी-कपड़ा और दूसरे सामान इतने (काफ़ी) हैं कि हमें अब इनकी चिन्ता नहीं। अब तो हमें यह सोचने की ज़रूरत है कि हम अपने समय और शक्ति का सुन्दरतम उपयोग किस प्रकार करें। दुनिया में सम्पत्ति की उत्पत्ति बराबर बढ़ती ही जा रही है। फिर भी बढ़ती हुई आबादी के हिसाब से हम कमी ही महसूस कर रहे हैं। ज़रूरत है कि हम बंजर ज़मीन को उपजाऊ बनावें, दलदलों को सुखा डालें और जंगलों को काट डालें, ताकि उन्हें आधुनिक वैज्ञानिक ढंग पर जोत-बोकर अधिक से अधिक पैदावार करें; मशीनों को और बड़ी बनावें, ताकि उनसे ज़्यादा चीज़ें पैदा हो सकें, और ऐसी तरकीबें निकालीं जायँ कि अनाज उस खेत में और ज़्यादा पैदा हो। लेकिन इस तरह हम क्या दुनिया में सुखी हो सकेंगे? यह बात कुछ ठीक समझ में नहीं आती। इसके मूल में ही कुछ ऐसी त्रुटि है, जिसके कारण हमारे समाज (मानव-समाज) अथवा समष्टि का सुख, जो हमारा ध्येय है, हमसे बहुत दूर होता जाता है। शायद हमने इन मशीनों से होनेवाले अन्तिम परिणाम—जो बाद में हमारे सामने आवेगा—की ओर ध्यान ही नहीं दिया है। क्या हम मानवीय श्रम के स्थान में सम्पूर्ण रूप से मशीनों से ही काम लेकर सुखी और समृद्ध हो सकते हैं? शारीरिक श्रम का अन्त होने पर क्या हम सुख पा सकते हैं?

हो सकता है कि थोड़े समय तक, घोर परिश्रम करनेवाला और कष्ट सहकर अपने दिन काटनेवाला बेचारा मज़दूर, जिसे पेट भर खाने को नसीब न होता था और अनेकों उपवास करने पड़ते थे, काम (शारीरिक श्रम) से छुट्टी पाकर थोड़ा-सा सुख का अनुभव करे। परन्तु उन्हें इसमें वास्तविक सुख स्थायी रूप से नहीं मिल सकता। यह अवश्य है कि शारीरिक श्रम का मूल्य इन पूँजीपतियों ने इतना गिरा दिया है कि वे उसका बड़ा ही दुरुपयोग करते हैं। उनकी क्रय-शक्ति इस कारण इतनी गिर गई है कि वे अपनी ज़रूरत के सामान भी नहीं ख़रीद पाते। ऐसा होने देना कभी वाञ्छनीय नहीं है। परन्तु इसके लिए मानवीय श्रम का अन्त कर देना तो मानव-समाज के लिए बहुत ही हानिकर है। ज़रा सोचिए तो, अगर हम सारे जंगलों को काट डालेंगे और उन वृक्षों को हटाकर फ़सलें तैयार करेंगे, तो क्या हम मनुष्य की आयु को ही कम नहीं कर देंगे? विज्ञान कहता है कि मनुष्यों के जीवन के आधार ये वृक्ष हैं, और इन वृक्षों के जीवन का आधार मनुष्य।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हमको उनसे Oxyzen और हमसे उनको Nitrozen मिलता है, जो कि दोनों के जीवन के मुख्य तत्त्व हैं, जिनके विना दोनों का जीवन रह ही नहीं सकता। दूसरी बात यह है कि इन जंगलों की बदौलत उपयोगी प्रवेशी भी जीते हैं, जो हमारे जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक हैं। हमने बहुत-से जंगल काट डाले हैं और भरसक कोशिश की है कि उनसे हम खाद्यवस्तु पैदा करें। परन्तु इससे पैदावार में ऐसी वृद्धि नहीं हो पाई है, जो आबादी को भरपेट भोजन पहुँचाने को काफ़ी हो। इसके लिए दलील यह दी जाती है कि हमने वैज्ञानिक ढंग से खेती नहीं की है। परन्तु यदि यह मान भी लिया जाय कि हम वैज्ञानिक ढंग से पैदावार में चमत्कारिक वृद्धि कर देंगे तो क्या वह पैदावार हम निरंतर कर सकते हैं? हमारा ख़्याल है कि ऐसा नहीं हो सकता। हम मामूली खेती में ही देखते हैं कि जिस खेत को लगातार कुछ वर्षों से बराबर जोतते आ रहे हैं, उसमें पैदावार निरंतर कम होती जाती है, और यदि उसे हम एक साल परती छोड़ देते हैं तो उसमें फिर अच्छी फ़सल होती है, वरना नहीं। तो फिर हम लगातार वैज्ञानिक यंत्रों से एक ज़मीन को जोतकर अच्छी फ़सल नहीं पैदा कर सकते; क्योंकि पृथ्वी की शक्ति भी परिमित है और उसकी उत्पादन-शक्ति दिन-बदिन लगातार पैदावार करने से क्षीण होती जाती है। यदि यह कहा जाय कि विद्युत्-शक्ति आदि के ज़रिये फिर हम उस पृथ्वी में ताक़त ला सकते हैं और पैदावार भी वैसे ही कर सकते हैं, जैसे शुरू में। परन्तु इस भौतिक शक्ति का ह्रास तो होगा ही। दूसरी बात यह है कि इस प्रकार कृत्रिम रीति से उत्पादन शायद हम अधिक कर भी लें, परन्तु उत्पादित अनाज हमें कदापि उतनी जीवनी-शक्ति नहीं दे सकता, जो प्राकृतिक रूप में की गई पैदावार दे सकती है। इस प्रकार यदि हमने कृत्रिम ढंग से उत्पादन बढ़ाया भी, तो मनुष्यों की आयु को कम करके। देखिए, ज़रा बड़े-बड़े शहरों की ओर नज़र डालिए। यदि आप कलकत्ते जाइए तो वहाँ आपको क्या मिलेगा? क्या आपको जीवनोपयोगी कोई तत्त्व मिलेगा? कभी नहीं। हर चीज़ कृत्रिम, स्वाभाविकता से दूर, अतएव निःसत्त्व। बड़े-बड़े मकान (छः मंजिले, आठ मंजिले) सटकर खड़े हैं। उनमें सूर्य का प्रकाश प्रवेश नहीं कर पाता। मुक्त वायु भी कदाचित् ही प्रवेश कर पाती हो। असली प्राकृतिक रूप में जल भी अपने स्वाभाविक गुणों के साथ नहीं मिलता। उबाला हुआ पानी नलों द्वारा घरों में पहुँचता है। इसी तरह रोशनी की ज़रूरत होने पर बिजली की और हवा भी बिजली के पंखे की ही मिलती है। हम प्रकृति की स्वास्थ्यप्रद चीज़ों का उपभोग नहीं कर पाते। बात यहीं तक नहीं है। बिजली से चलनेवाले मोटरोंवाली मशीनों से ही वहाँ चावल भी कूटा जाता है, जिस पर पालिश भी हुआ रहता है। यही हाल आटे का भी है। इस प्रकार के मशीनों के कुटे हुए चावल और पिसे हुए आटे में तत्त्व की कोई चीज़ नहीं रह जाती। और वह हमारे जीवन के लिए कभी स्वास्थ्यप्रद और उपयोगी नहीं हो सकती। इसके ख़िलाफ़ हाथ के कुटे हुए चावल और हाथ के पिसे हुए आटे में काफ़ी जीवनदायिनी शक्ति होती है। यदि आप उस पालिश किये हुए चावल को विना पसाये (विना माँड निकाले) खायँ तो आपको मतली मालूम होगी और वे बड़ी-बड़ी मशीनों के कुटे हुए चावल सीठी के माफ़िक मालूम होंगे। वहाँ की खाद्य-सामग्री में जीवनदायक तत्त्वों की इतनी कमी है कि उनसे अनेक बीमारियाँ होती हैं। बेरी-बेरी तथा अन्य नाना प्रकार के रोग लोगों को केवल इसी कारण होते हैं कि उनको उन्मुक्त प्राकृतिक जलवायु और खाद्य-सामग्री सेवन को नहीं मिलती। इस प्रकार हमारा खान-पान और रहन-सहन इतना बनावटी हो चला है कि हम संयम से बहुत दूर चले गये हैं। हममें इतनी ताक़त भी नहीं रह गई है कि हम अपने को नियंत्रित रख सकें। हमारी सभ्यता हमें इसी तरह ऐसी दिशा में ले जा रही है, जब हमारे जीवन की औसत आयु बहुत ही कम हो जायगी। हमारे मनोरञ्जन की सामग्रियाँ भी इसी तरह दूषित हैं। नाचघर और सिनेमा इनमें आधुनिक और मुख्य हैं। अब तो इस सिनेमा के द्वारा बच्चों को तालीम भी दी जाने लगी है। लेकिन क्या उन्मुक्त वायु में प्राकृतिक सौंदर्य के नीचे बच्चे जैसी स्वास्थ्यकर शिक्षा ग्रहण कर सकते थे, वैसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही इन सिनेमाघरों से ग्रहण कर सकेंगे ? उन्हें तो वहाँ इन्हीं मशीनों पर काम करने की तालीम दी जाती है। बड़े-बड़े पुतलीघरों में सूत को ठीक रखने के लिए ताकि वे टूट न जायँ, Artificial Humidity क़ायम रखनी पड़ती है। लेकिन यह भी मालूम होना चाहिए कि यह नक़ली Humidity मनुष्य के जीवन के लिए कितनी ख़तरनाक है। क्या कभी इसका भी अन्दाज़ लगाया गया है कि इसमें काम करनेवालों का स्वास्थ्य कितनी जल्द ख़राब हो जाता है। इसी प्रकार इसके अनेक उदाहरण पेश किये जा सकते हैं कि इन मशीनों द्वारा मानव-समाज की कितनी हानि है। परन्तु इस छोटे-से लेख में यह सम्भव नहीं। इस तरह जब हम देखते हैं कि मशीनों से कुटे हुए चावल और पिसे हुए आटे तक में जीवन-तत्त्व नहीं रहता, तो फिर जब हम विद्युत्-शक्ति के बल पर ही खाद्य-सामग्री का उत्पादन करना आरम्भ करेंगे, तब तो उसमें और भी जीवन-तत्त्व की कमी हो जायगी। तो अब यह स्पष्ट हो गया कि हम अपने दैनिक जीवन और नित्य-प्रति के व्यवहार की सामग्रियों में जितना ही ज़्यादा वैज्ञानिक मशीनों का उपयोग करते जायँगे तथा मानवीय श्रम का अन्त कर देंगे, उतना ही स्वास्थ्य (जो सुख का मूल कारण है) से दूर होते जायँगे। इसका यह मतलब नहीं कि हम वैज्ञानिक आविष्कार ही न करें। यह बड़ी ख़ुशी की बात है कि हमने इतने आश्चर्यजनक आविष्कार कर डाले हैं। किन्तु यदि इन्हें हम दैनिक जीवन में नित्यप्रति व्यवहार की चीज़ बना डालेंगे तो इससे मानव-समाज की बड़ी भारी क्षति होगी। हमें तो उन्हें केवल एक वैज्ञानिक उन्नति की दृष्टि से ही करना चाहिए। दूसरी बात यह है कि साम्यवाद तो पूँजीवाद और साम्राज्यवाद को प्रोत्साहन नहीं देता। इस कारण हम इतना अधिक सामान पैदा करके ही क्या करेंगे ? दुनिया में आवश्यकता से अधिक सामान पैदा करना भी तो अभीष्ट नहीं है। क्या हम भी बाज़ारों के लिए दौड़ेंगे और दूसरे राष्ट्रों पर क़ब्ज़ा जमाने की कोशिश करेंगे ? नहीं। तो क्या हम बेकार माल पैदा करके उसे रखकर सड़ावेंगे और मनुष्य बेकार बैठे-बैठे गप्पें लड़ाया करेंगे ? इससे मानव-समाज की कोई भलाई न होगी। उल्टे हमारे समाज में नाना प्रकार के दोष उत्पन्न हो जायँगे। काम न करने पर (बेकारी में) जो बुराइयाँ स्वभावतः हममें पैदा हो जाती हैं, वे सब बढ़ जायँगी और लोग विलासिता के ग़ुलाम बनकर ख़ुराफ़ात वाहियात काम करने लग जायँगे। जो दोष आज चन्द लोगों में है, वही सारे समाज में फैल जायगा। निठल्लापन, छोटी-छोटी बातों पर तकरार, मिथ्या तर्क, झूठा दम्भ आदि इसी प्रकार के और बहुत-से दोष मानव-समाज में पैदा हो जायँगे, जिनसे समाज की शृंखला टूट जायगी और महान् अनर्थ शुरू हो जायगा। इसकी कल्पना ही इतनी भयंकर है कि हम सोच ही नहीं सकते। इसके साथ ही हमारा पूर्ण नैतिक पतन हो जायगा। मेरा मतलब यह नहीं है कि सुखपूर्वक भरपेट भोजन भी हमें न मिले, उत्पत्ति इतनी कम हो कि सबको न अँटे और अनेक आवश्यक चीज़ें इसलिए नष्ट कर दी जायँ कि उससे चन्द लोगों का (व्यक्तियों का) फ़ायदा हो, तथा हम कष्टपूर्वक अपने दिन बितावें। हम तो यह चाहते हैं कि समाज का हरएक प्राणी आनन्दपूर्वक रहे। परन्तु हम इसके लिए विलासिता में डूब जाना और निठल्ले बन बैठना पसन्द नहीं करते। हमें इतनी बड़ी-बड़ी मशीनों की ज़रूरत नहीं है, जिनके कारण हमारा वास्तविक सुख और स्वास्थ्य नष्ट हो जाय और हम अपनी मानवता खोकर जड़ पदार्थ मशीन की तरह ही बन जायँ, तथा हमारा जीवन भारस्वरूप हो जाय (Life should become a curse)। सुख और शांति को स्थायी बनाने के लिए आवश्यक है कि हम घरेलू धन्धों ही को प्रोत्साहन दें। सामाजिक या गृह-उपयोग के घरेलू कार्यों के लिए हम ऐसे छोटे-छोटे यंत्र भले ही बना लें, जिनसे एक आदमी अपने घर में बैठकर उत्पादन अथवा दस्तकारी करे और निज के उपयोग के या सामाजिक उपयोग के आवश्यक सामान ख़ुद बना लें। छोटे-छोटे व्यवसायों की भी हमें ज़रूरत है, जिसमें मज़दूरी-प्रथा की कोई ज़रूरत न हो। मालिक और नौकर के रिश्तों को भी आवश्यकता न रहे। बड़ी-बड़ी फ़ैक्टरियों का होना बुराइयों से ख़ाली नहीं है। न हम किसी के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ग़ुलाम रहें, न किसी को ग़ुलाम बनावें। हम तो यह भी नहीं चाहते कि अपनी कमाई का कोई अंश कर-रूप में हमें किसी मालिक को देना पड़े, जो उस ज़मीन या व्यवसाय की पैदावार में कोई मिहनत नहीं करता। अब मालिक और नौकर के रिश्ते से काम न हो, बल्कि प्राणिमात्र सहयोगी के रूप में परस्पर के सहयोग से काम करें। बस, यही हमारी कामना है और इसी ध्येय पर पहुँच पाने से ही हम सुखी हो सकते हैं। साम्यवाद का सच्चा रूप यही होगा। दुनिया में न युद्ध हो, न कोई राष्ट्र किसी को ग़ुलाम बनावे। यही शान्ति का बीज-मंत्र है। हमें हिंसा की प्रवृत्ति को मिटाना होगा। साम्यवाद को हम किसी एक देश या एक जगह में ही नहीं सीमित करना चाहते। उसे तो हम सारे विश्व में फैलाना चाहते हैं। वह साम्यवाद परस्पर के सहयोग पर स्थिर होगा, न कि विरोध और युद्ध पर। एक देश दूसरे पर चढ़ाई नहीं करेगा, न उसे हड़पने की कोशिश करेगा। परन्तु अनेक अवसरों पर, दुष्काल अथवा अन्य विपत्तियों के आ पड़ने पर एक दूसरे की मदद करेंगे। जहाँ लोहे की अधिकता होगी, वहाँ से दूसरे देशों को लोहा मिलेगा और यदि दूसरे देश में सोना अधिक होगा तो अन्य देशों को सोना मिलेगा। इसी प्रकार जहाँ वस्त्र की उत्पत्ति के साधन होंगे, वहाँ से दुनिया में वस्त्र भेजा जायगा और जहाँ अनाज अधिक पैदा होगा, वहाँ से अनाज दुनिया के अन्य भागों में जायगा। यही पारस्परिक सहयोग न होने से हम आज मनुष्य से नरपिशाच बन गये हैं और हमें दिन-रात साम्राज्य-विस्तार और युद्ध के स्वप्न दिखाई देते हैं। दुनिया में हाहाकार आज केवल इसी कारण मचा हुआ है कि हमने साम्यवाद के असली रूप को नहीं पहचाना है, और न उसके आधार पर समाज-व्यवस्था का संचालन ही किया है। आज तक नाना प्रकार की समाज-व्यवस्थाएँ हुईं, और उनमें आये दिन परिवर्तन और रूपान्तर होता रहा है। इस समय तो उपर्युक्त व्यवस्था ही समाज के लिए सबसे उत्तम और कल्याणदायक है; परन्तु परिस्थितियों के अनुसार आगे क्या होगा, यह कहना कठिन है।

बस, तो सच्चे साम्यवाद का स्वरूप यही होगा कि हर आदमी समाज में एकसा (बराबर) समझा जायगा। साम्राज्य और उपनिवेश नहीं होंगे। हर मुल्क स्वतन्त्र होगा। किसी देश का आधिपत्य दूसरे पर न होगा। न कोई दूसरे देश की तिजारत और उन्नति में अपने फ़ायदे के लिए बाधक होगा। यदि किसी प्रदेश को ढूँढ निकाला जायगा, तो वहाँ पर कोई अपना अधिकार जमाने की कोशिश न करेगा, बल्कि वहाँ के लोगों के साथ मित्रता स्थापित की जायगी। सारी दुनिया में गृह-उद्योग-धन्धों का प्रसार होगा। प्राकृतिक ढंग पर खेती का विकास होगा। दुनिया में जो सम्पत्ति का उत्पादन होगा, उस पर सारे मानव-समाज का अधिकार होगा। चन्द लोग उसे हथियाकर अपने फ़ायदे के लिए उसका इस्तेमाल नहीं करेंगे। व्यक्तिगत सम्पत्ति न बढ़ाई जायगी। लोगों में इस प्रकार की भावना का उदय होगा कि वह जो काम करता है, जो उत्पादन वह करता है, जो सम्पत्ति वह दुनिया में बढ़ावेगा, उस पर केवल उसी का अधिकार नहीं, बल्कि उस पर सारे समाज का अधिकार है। वह समाज का एक प्राणी है और बिना समाज के सहयोग के उसका कोई काम नहीं होता, इस कारण उसमें समाज का भी भाग है और उससे समाज को फ़ायदा उठाने का पूरा हक़ है। इस तरह पूँजी का केन्द्रीकरण और सम्पत्ति का एकाधिकार न होगा। यह तभी होगा, जब हम गृह-उद्योग को बढ़ावेंगे और परस्पर के द्वेष को दूर हटाकर सहयोग की भावना का ही प्रतिपादन करेंगे। ऊँच-नीच का भेद न होगा और मालिक-महकूम (master & servant) का ख़्याल दिल से निकल जायगा। दुनिया के देश परस्पर इस बात का ख़्याल रक्खेंगे कि दुनिया में उतनी सामग्री (सम्पत्ति) रोज़ पैदा हुआ करे, जो आबादी के लिए आनन्दपूर्वक दिन काटने को काफ़ी हो तथा प्रत्येक व्यक्ति को भरपेट भोजन, पहनने को वस्त्र और रहने को स्थान काफ़ी हो। यह तभी होगा, जब हम सब पारस्परिक सहयोग द्वारा गृह-उद्योग तथा घरेलू धन्धों की उन्नति करेंगे। मशीनों द्वारा यह कार्य नहीं हो सकता; क्योंकि उसमें कुछ ऐसी त्रुटियाँ हैं, जो सम्पत्ति के, पूँजी के, केन्द्रीकरण को रोकने में असमर्थ हैं। यह मुमकिन है कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक देश में बसनेवाले लोग चाहे इस केन्द्रीकरण के शिकार न हों; पर विभिन्न देशों पर तो इसका असर होगा ही। उनका स्वार्थ आपस में टकरा जायगा और संघर्ष पैदा कर देगा ही। यह तो तभी बच सकता है, जब संहारकारी साधनों का निर्माण बिलकुल बन्द हो जाय और हिंसा का नामोनिशान मिट जाय। हिंसात्मक उपाय जब तक इसलिए काम में लाये जायँगे कि हम अपनी महत्ता अथवा प्रभुत्व (Supremacy) दूसरों के ऊपर बनाये रक्खें, तब तक साम्यवाद का सुखद स्वप्न आकाश के तारों की भाँति हमसे दूर ही रहेगा। इस प्रकार के समाज का आदर्श तभी चल सकता है, जब घरेलू धन्धों को प्रोत्साहन मिले। मानव-समाज का कल्याण इसी में है। इसके सिवा हमें बड़े-बड़े नगरों का महत्त्व धीरे-धीरे कम करना होगा, तथा देहातों की उन्नति की ओर अधिक ध्यान देना होगा। शहरों में जो आबादी बढ़ रही है, उसे कम करना होगा और देहात में बसना होगा। हमारे गाँव शहरों से ज़्यादा आबाद हों और फलें-फूलें, तभी हमारा कल्याण होगा। हमें संयम सीखना होगा। इस प्रकार उत्पादन तथा उसका नियंत्रण उपर्युक्त रीति से होने से तथा समाज-व्यवस्था परस्पर के सहयोग पर निर्धारित होने से ही हम सच्ची साम्यवादी समाज-व्यवस्था का प्रतिपादन कर सकेंगे। हम साम्यवाद का भारतीयकरण चाहते हैं। आज तक पूर्व ने ही नाना प्रकार की राजनीतिक, सामाजिक तथा धार्मिक व्यवस्थाओं का आदर्श रूप रक्खा है, अतएव पश्चिमी साम्यवाद पूर्ण नहीं है। इसका आदर्श रूप पूर्वी देशों से ही होगा, और वह होगा भारत से।

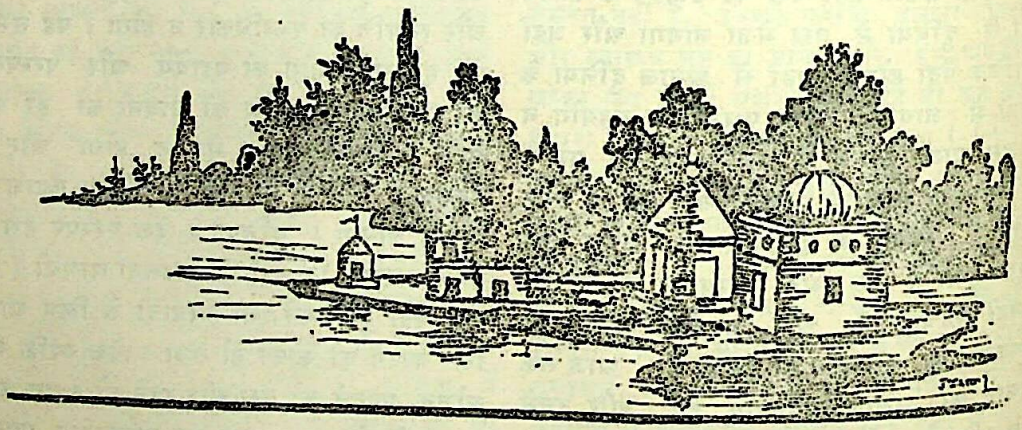

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

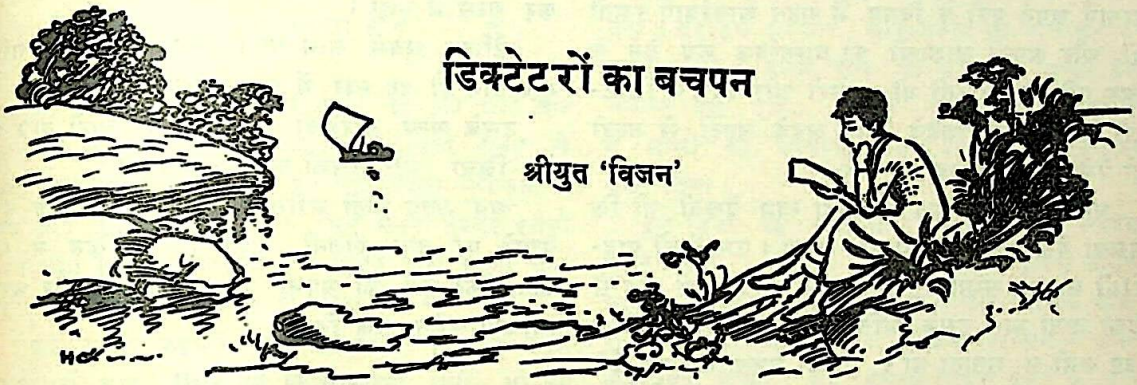

डिक्टेटरों का बचपन

श्रीयुत 'विजन'

१—स्टैलिन

सत्तर वर्ष की बूढ़ी मा एकेटेरिना डुजुगेश अपने एकमात्र जीवित पुत्र स्टैलिन के बारे में कहती है—'सोसो (Soso) बचपन में सुशील था। वह कोई ऐसा काम नहीं करता था, जिससे मुझे सज़ा देने की ज़रूरत पड़े। अपना पाठ वह मन लगाकर याद करता और कोई भी नई चीज़ सीखने के लिए हमेशा तैयार रहता था।'

स्टैलिन की मा अब बहुत वृद्ध हो गई है। उसके बाल बर्फ़-जैसे सफ़ेद हैं। जार्जियन देश की पोशाक के अलावा वह और कोई दूसरी पोशाक नहीं पहनती। इस बुढ़ापे में भी उसका चेहरा बड़ा भला प्रतीत होता है, और इस बात का द्योतक है कि जवानी में वह कितनी सुन्दर होगी। आजकल वह टिफ़लिस में, दो कमरों में, अपना गुज़र करती है। उसके पुत्र स्टैलिन के बारे में समय-समय पर प्रकाशित होनेवाले लेख, कविता, कहानी, चित्र इत्यादि इन कमरों में ऊपर से नीचे तक भरे हुए हैं। उसे गुज़री हुई बातें करने में बड़ा मज़ा आता है। किस माता को अपने पुत्र पर अभिमान नहीं होता ?

'सोसो गोरी (Gori) में पैदा हुआ था'—वह कहती है। स्टैलिन को वह बचपन से 'सोसो' के नाम से पुकारती है। 'मैं तुम्हें आज भी वह मकान दिखा सकती हूँ। पुराने कलैंडर के मुताबिक़ क्रिसमस ईव के आठ दिन बाद सोसो पैदा हुआ था। आजकल नये कलैंडर के अनुसार दिन कैसे गिने जाते हैं, यह मैं नहीं जानती। मेरी समझ में नया कलैंडर नहीं आता। मैं तो बस, यही जानती हूँ कि उस वक़्त मैं बीस साल की थी और सोसो मेरा चौथा लड़का था।'

पादरी बनने के स्वप्न

'लेकिन उसके पैदा होने के पहले वे सब मर चुके थे। अतः यह स्वाभाविक है कि मैं उसे बहुत ज़्यादा प्यार करती थी।'

स्टैलिन का पिता Vissarion Djugashvili एक मोची था। स्टैलिन के दादा और परदादा भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जूता गाँठने का काम करते थे। स्टैलिन का पिता स्वयं एक चतुर मोची बनना चाहता था।

लेकिन सोसो जब ग्यारह साल का था, तभी उसके पिता की मृत्यु हो गई। बाप चाहता था कि स्टैलिन मोची बने और मा उसे कुछ और ही बनाने का इरादा रखती थी।

यह एक मज़ेदार बात है कि सब डिक्टेटरों की माताएँ अपने पुत्रों के विषय में महत् आकांक्षाएँ रखती थीं, और अपनी आशाओं को वास्तविक रूप देने के लिए पति से झगड़ती थीं। दूसरी ओर आज के डिक्टेटरों के पिता यह चाहते थे कि लड़के जल्दी से जल्दी दो पैसे कमाने लायक़ हो जायँ।

एकेटेरिना इसी बात का सदा स्वप्न देखती थी कि उसका बेटा एक दिन पादरी बनेगा। उन दिनों पादरियों को बड़े सम्मान, भक्ति और आदर्श की दृष्टि से देखा जाता था। इसके अतिरिक्त पादरियों को आर्थिक कष्ट कभी न सताता था। उनको जनता से ख़ूब पैसे मिलते थे और जीवन सरलतापूर्वक व्यतीत होता चला जाता था। माता की प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए भी यह ज़रूरी था कि सोसो पादरी बने।

मा की प्रतिज्ञा

एकेटेरिना के तीन बच्चे हुए, और वे तीनों ही जन्म के थोड़े दिनों बाद मर गये। जब स्टैलिन पेट में था, तब उसने गिरजे में प्रतिज्ञा की थी कि 'यदि यह लड़का जीवित रहेगा तो मैं इसे पादरी बनाऊँगी।' अतः जब सोसो पंद्रह साल का हुआ, तब वह गोरी से टिफ़लिस आई और सोसो को एक कट्टर धार्मिक कालेज में भर्ती करा दिया।

कालेज के वक़्त की बहुत-सी घटनाएँ स्टैलिन के चरित्र पर प्रकाश डालती हैं। वह कालेज में शान्त, चालाक और तेज़ था। बचपन से ही वह न्याय का प्रेमी था।

उसके पड़ोस में ऐन्ड्रूस्टेपानोविच नाम का एक अव्वल दर्जे का शराबी रहता था। वह नशे में झूमता हुआ रात को बड़ी देर से घर लौटता और अपने कुत्ते को इस बेरहमी के साथ पीटना शुरू करता कि जब तक वह थक न जाता, तब तक बराबर कुत्ते पर मार पड़ा करती। कुत्ता चीख़ता, चिल्लाता और तड़पता था, लेकिन उस राक्षस के दिल पर ज़रा भी असर न होता था। स्टैलिन को इस राक्षसी दृश्य से बड़ी चिढ़ थी। एक दिन उसने अपने साथियों को एकत्रित किया और शराबी के घर में घुस गया।

'तुम लोग क्या चाहते हो?'—शराबी ने चिल्लाकर ग़ुस्से में पूछा।

स्टैलिन सबसे आगे था। उसने शराबी की तरफ़ मुख़ातिब हो दृढ़ स्वर में कहा—'न्याय'

उसके अन्य साथियों ने शराबी को चारों तरफ़ से घेर लिया और उसकी ख़ूब मरम्मत की।

'अब आप भली भाँति समझ सकते हैं कि कुत्ते बेचारे पर क्या बीतती होगी।'—स्टैलिन ने यह कहा, फिर कुत्ते को अपनी गोद में उठाया और अपने साथियों समेत चल दिया।

शुरू से ही नेता

आसपास के गाँवों के लड़कों ने उसे अपना नेता बना लिया। वह आर्डर देता था और दूसरे लड़के उसी के अनुसार काम करते थे। सब लड़के उससे ख़ुश रहते थे; क्योंकि वह उनके साथ सदा रहता था।

स्टैलिन का एक मित्र ऐन्ड्रूज़ेव था। वह स्टैलिन से उम्र में बड़ा और टिफ़लिस के धनी किसान का लड़का था। यह लड़का हमेशा कहानियों की नई-नई सचित्र किताबें ख़रीदता था।

सोसो को पुस्तकों से प्रेम था। अपनी ठोड़ी पर हाथ रक्खे हुए वह ऐन्ड्रूज़ेव से कहानियाँ सुना करता। जब कहानी ख़त्म हो जाती, तब वह प्रश्नों की झड़ी लगा देता।

उसके प्रश्नों के ठीक-ठीक उत्तर देने की क्षमता ऐन्ड्रूज़ेव में न थी। एक बार सोसो ने प्रश्न किया—'पेड़ की पत्तियाँ कौन बनाता है?'

ऐन्ड्रूज़ेव ने उत्तर दिया, 'ईश्वर ने बनाई हैं।'

'हरएक पत्ती को उसी ने बनाया है।'—सोसो ने पूछा।

'निःसन्देह।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'तो क्या टिफ़लिस के सब पेड़ों की पत्तियाँ ईश्वर ने ही बनाई हैं ?'

'हाँ, सिर्फ़ टिफ़लिस के पेड़ों की पत्तियाँ ही नहीं, बल्कि दुनिया के तमाम पेड़ और उनकी पत्तियाँ ईश्वर ने ही बनाई हैं।'

'और क्या ईश्वर नदियाँ भी बनाता है ?'

'हाँ'

'और आदमी भी वही बनाता है ?'

'हाँ'

यह सोसो के लिए काफ़ी था। वह उठा और ज़ोर से कहने लगा—'तुम झूठे हो। मेरे पिता सुबह से रात तक काम करते हैं, तब कहीं जाकर मुश्किल से एक जोड़े जूते बना पाते हैं। फिर भला, ईश्वर इतनी सब चीज़ें कैसे बना सकता है ? उसके पास इतनी चीज़ें बनाने के लिए वक़्त कहाँ से आता है ?'

एक दूसरी कहानी हमें बताती है कि जब उसने सर्वप्रथम ज़ार के ज़ुल्मों की कहानी सुनी, तो वह कितना उत्तेजित हो उठा था।

'उसे अपनी रियाया के साथ ऐसा बर्त्ताव करने का कोई अधिकार नहीं है', सोसो ने कहा, 'चाहे वह ज़ार हो या और कोई, है तो आख़िरकार वह इन्सान ही। और किसी भी इन्सान को दूसरे आदमियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं करना चाहिए—अगर वह ऐसा करता है, तो उसे ख़त्म कर देना चाहिए।'

क़त्लेआम के बाद

हम पहले कह चुके हैं कि सोसो को उसके साथी बहुत प्यार करते थे। वह अपने साथियों की हर काम में मदद करता था, और कभी किसी को धोखा नहीं देता था। जब किसी से कोई अपराध हो जाता, तो वह फ़ौरन् सारा दोष अपने ऊपर ले लेता।

एक बार उसके एक साथी ने किसी दूकान से एक चाकलेट चुरा ली। सोसो ने यह अपराध अपने ऊपर ले लिया; क्योंकि 'मैं तुमसे ज़्यादा मज़बूत हूँ और दंड भुगत सकता हूँ।'

स्कूल के मास्टर भी उसे बहुत चाहते थे; क्योंकि वह पढ़ने में तेज़ था और उसका ज़्यादातर वक़्त किताबों के साथ ही व्यतीत होता था। उसकी 'अच्छे लड़कों' में गिनती होती थी।

किशोरावस्था में आरमेनियनों के क़त्लेआम का असर उस पर बहुत पड़ा। हज़ारों मनुष्यों को बिना किसी अपराध के क़त्ल कर दिया गया था। सोसो यह ख़बर सुनकर 'कुछ करने' के लिए बेचैन हो उठा। वह इस अन्याय और क्रूरता का नाश कर देना चाहता था। इसने रूस की सीमा पर जाकर उनके भयंकर कष्ट देखे। उनकी दुख-दर्दभरी कहानियों ने सोसो को अत्याचार के ख़िलाफ़ लड़नेवाला बना दिया।

इन दिनों वह सोशलिस्ट साहित्य का अध्ययन करने लगा। उसके कमरे में कार्ल मार्क्स की एक पुस्तक मिली। इसी अपराध में उसे धार्मिक कालेज से निकाल दिया गया। लेकिन स्टैलिन ने इसकी क़तई पर्वा न की। अब उसकी पादरी बनने की इच्छा बिलकुल न थी। अब उसका रास्ता साफ़ था। उसने अपने सिद्धान्तों के अनुसार काम शुरू कर दिया।

× × ×

२—हिटलर

एडोल्फ़ हिटलर का पिता एक ग़रीब किसान-कन्या का पुत्र है, और illegitimate रूप से पैदा हुआ है। उसका नाम Alois Schicklgruber था। लेकिन चालीस वर्ष बाद एक legacy की वजह से उसने हिटलर का नाम अपनाया था। एडोल्फ़ के चरित्र में अपने पिता के विचित्र व्यक्तित्व के बहुत-से गुण हैं।

तेरह वर्ष की उम्र में एडोल्फ़ के पिता ने घर त्याग दिया और वियेना में काम की तलाश में मारा-मारा घूमने लगा। उसकी आकांक्षाएँ महत् थीं और वह बड़ा आदमी बनने की कल्पनाएँ किया करता था।

तेईस वर्ष की अवस्था में, उसे चुंगी के दफ़्तर में एक नौकरी मिल गई। पैंतालीस वर्ष की उम्र में उसने शादी की। उसकी पत्नी Anna Glast-Horer उससे चौदह साल बड़ी थी। शादी के बाद ही दोनों में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

परस्पर झगड़ा शुरू हुआ और थोड़े दिनों बाद संबंधविच्छेद हो गया। तलाक़ के कुछ दिनों बाद उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई।

शुरू से नेता

एक महीने बाद उसने फिर शादी की। एक वर्ष व्यतीत हुआ और दूसरी पत्नी का भी देहान्त हो गया। द्वितीय पत्नी की मृत्यु के दस महीने बाद उसने फिर तीसरी शादी की। पत्नी का नाम Klara Polzl था। वह अपने पति से तेईस वर्ष छोटी थी। जब उसके प्रथम बच्चा २० एप्रिल, १८८९ में पैदा हुआ, उस वक़्त उसका पति ५२ वर्ष का था।

चार साल बाद वह रिटायर्ड हो गया। उसे पेंशन मिलने लगी। उसने आस्ट्रिया के लिंज़-नामक शहर में एक मकान ख़रीदा और वहीं रहने लगा।

एडोल्फ़ का पिता घमंडी और नीच प्रकृति का था। वह चाहता था कि गाँववाले उसे "Herr" कहकर पुकारें। वह हरएक से झगड़ता था और बहुत जल्दी ही पड़ोसी उससे घृणा करने लगे।

हिटलर का पिता सामाजिक जीवन से कोसों दूर था। उसका एक भी मित्र न था। अतः यह स्वाभाविक था कि वह अपनी सारी शक्ति घर के शासन में लगाता। उसने घरेलू डिक्टेटरशिप क़ायम कर रक्खी थी। यदि वह हिटलर को बुलाना चाहता, तो अपने मुँह में उँगली डालकर सीटी बजाता।

हिटलर चाहे कहीं भी क्यों न हो, उसे पिता की सीटी सुनकर उनके सामने हाज़िर होना पड़ता। वह पिता के सामने 'एटेनशन' करके खड़ा हो जाता और आर्डर की प्रतीक्षा करता।

'मैं अपने पिता का आदर करता था, लेकिन मा को प्यार करता था'—हिटलर अपनी आत्मकथा में लिखता है, और वास्तव में वह अपनी मा पर ही निर्भर करता था।

उसकी मा ग़रीब, सीधी-सादी और अशिक्षित थी। वह एक मामूली किसान की लड़की थी। वह कड़ा परिश्रम करती थी, बच्चों की देखभाल करती और सारे घर के लिए खाना पकाती थी। उसको काम में सहायता देनेवाला कोई नहीं था। मा-बाप की आदत तथा चरित्र का प्रभाव हिटलर के प्रारम्भिक जीवन में बहुत पड़ा। उसे एक दूर के गाँव के स्कूल में जाना पड़ता था। हिटलर कहता है—'मुक्त वायु में मेरा स्वच्छंद जीवन, स्कूल का लंबा रास्ता और हट्टे-कट्टे लड़कों की संगति (जिसके लिए मेरी मा हमेशा चिंतित रहती थी) ने मुझे किताबी कीड़ा और हमेशा घर में घुसे रहनेवाला लड़का होने से बचा दिया।'

'उस वक़्त शायद ही कभी मैंने गंभीरतापूर्वक इस बात पर विचार किया हो कि भविष्य में मुझे कौन-सा पेशा अख़्तियार करना है। लेकिन शुरू से ही यह तो साफ़ था कि मुझे अपने पिता के जीवन से तनिक सहानुभूति न थी।

'मेरा विश्वास है, उसी वक़्त मैंने सहपाठियों के साथ तर्क-वितर्क करके अपनी वक्तृता देने की शक्ति का विकास ख़ूब कर लिया था। मैं एक छोटा-सा 'सरदार' बन गया था—ऐसा सरदार, जो अपने स्कूल का काम थोड़े से समय में कर लेता था, लेकिन दूसरी बातों में जिससे पार पाना मुश्किल था।'

घर में विद्रोह

'मैदान और जंगल हमारे युद्ध-स्थल थे, जहाँ स्कूल के साथियों के झगड़े का निपटारा होता था।'

हिटलर को इस बात का गर्व था, वह एक छोटा-मोटा सरदार है। वह भी लड़ाई-झगड़े में हिस्सा लेता था और स्कूल की ज़्यादा फ़िक्र नहीं करता था। इसके शिक्षक की रिपोर्ट थी, 'एडोल्फ़ बहुत दुष्ट है। वह पढ़ना-लिखना नहीं चाहता और पढ़ाई के वक़्त दूसरी बातों के स्वप्न देखा करता है। इसमें शक नहीं कि वह बुद्धिमान् है और चाहे तो बड़ी आसानी से अपना सबक़ याद कर सकता है। लेकिन पढ़ाई की तरफ़ वह ज़रा भी ध्यान नहीं देता और आलसी है।'

वह स्कूल की अपेक्षा कुछ अच्छा काम ढूँढने लगा। वह एक पड़ोस के गिर्जे की 'कोरस' में शामिल हो गया और गाना शुरू कर दिया। गिर्जे की तड़क-भड़क देखकर वह मुग्ध हो गया। 'मुझे 'एबोट' बनना ही उस वक़्त सबसे उच्च आदर्श प्रतीत होता था।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सुखद कल्पना में विभोर

[चित्रकार—श्रीमोहम्मद हकीम]

N. K. Press, Lucknow

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उस वक़्त हिटलर की एक ही इच्छा थी, किस प्रकार एक Abbot बना जाय ! लेकिन थोड़े दिनों बाद उसका यह नशा उतर गया। वह कहता है, 'The hankering after the church as a profession proved to be only a phase that soon gave way to hopes more suited to my temperament.'

उसके दृष्टिकोण में अचानक परिवर्तन हुआ। एक दिन वह अपने पिता की पुरानी पुस्तकें उलट रहा था। उनमें उसे सन् १८७० की फ़्रांस-जर्मनी लड़ाई के दो सचित्र ग्रंथ मिले। इन दो किताबों ने ही उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन ला दिया।

'It was not long before this great historic conflict became my greatest inward experience. From then on I became more and more enthusiastic about everything that in any way had to do with war or with soldiering.'

हिटलर अब सैनिक-जीवन के स्वप्न देखने लगा। वह सदा लड़ाई के स्वप्न देखता और स्कूल के प्रति दिन-दिन उदासीन होता जाता।

अब उसका माता-पिता से झगड़ा होने लगा। पिता चाहता था कि हिटलर अध्ययन करे और उसकी तरह एक सिविल सर्वेन्ट बने। लेकिन हिटलर पढ़ना नहीं चाहता था।—'मेरी सिविल सर्वेन्ट बनने की इच्छा नहीं थी, बिलकुल नहीं। यह सोच-सोचकर कि मुझे दिन भर एक आफ़िस में बैठे रहना होगा, मुझे घृणा होती जाती थी। मेरे लिए यह असहनीय था कि मेरी स्वाधीनता का अपहरण हो, मैं अपना मालिक ख़ुद न रहूँ, बल्कि किसी दूसरे के आदेशानुसार मुझे काम करना पड़े।'

लेकिन इससे कुछ फ़ायदा नहीं हुआ; क्योंकि बाप के सामने उसकी एक न चलती थी। हिटलर को लिंज़ के एक सेकेंडरी स्कूल में भर्ती होना पड़ा। इससे उसे बड़ा सदमा पहुँचा। वह अपने भविष्य के बारे में चिन्ता किया करता। अन्त में उसने आर्टिस्ट बनने का निश्चय किया।

वह बड़ी प्रसन्नता के साथ पिता के पास पहुँचा और बड़े गर्व के साथ उसने अपना विचार बताया। पिता ने बेटे का यह विचार सुना तो चिढ़कर बोला—'क्या कहा ? एक आर्टिस्ट ! नहीं, जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक इसकी कोई ज़रूरत नहीं।'

बेटे के इस इरादे से बाप चिढ़ गया। बेटे ने भी अपने इरादे पर दृढ़ रहने का निश्चय किया। बेटे ने साफ़-साफ़ कह दिया—'यदि उसे आर्टिस्ट बनने से रोका जायगा, तो वह बिलकुल नहीं पढ़ेगा।' वह अपनी बात का पक्का निकला। स्कूल में वह पढ़ता-लिखता नहीं था। दो बार फ़ेल हुआ। सिर्फ़ इतिहास और भूगोल में उसके नंबर अच्छे आये थे। लेकिन दूसरे विषयों में वह बुरी तरह फ़ेल था।

हिटलर को इतिहास से विशेष प्रेम था। इतिहास के अध्यापक Dr. Leopold Polsch कट्टर राष्ट्रीय विचारों के थे। डा० लिओपोल्ड हैब्सबर्ग के राजघराने के प्रति सिर्फ़ कटु उक्तियों का ही प्रयोग न करते थे, बल्कि बिस्मार्क और हौहेनजोल्मर्स की प्रशंसा में घंटों लेक्चर दिया करते।

साम्राज्य का स्वप्न

प्रत्येक राष्ट्रीय विचारों का आस्ट्रियन जर्मनी के साथ रहना चाहता था। वे जर्मनों की अच्छी आर्थिक स्थिति देखकर ईर्ष्या करते थे। वे चाहते थे, ऑस्ट्रो-हंगेरियन साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो जाय और आस्ट्रिया के जर्मन-निवासी जर्मनी में मिला लिये जायँ।

ऐसे ही विचार डा० लिओपोल्ड अपने विद्यार्थियों के दिमाग़ में सदा भरा करते थे। उस वक़्त के विचारों का ही यह असर था कि हिटलर ने आस्ट्रिया की स्वाधीनता हर ली। ये सब बातें सुनकर हिटलर, जैसा कि वह स्वयं कहता है—एक 'क्रांतिकारी' बन गया।

हिटलर ने तेरहवें वर्ष में पैर रक्खा और इधर उसके पिता का देहान्त हो गया। लेकिन उसकी मा ने उसे सेकेंडरी स्कूल नहीं छोड़ने दिया।

बीमारी ने हिटलर का रास्ता साफ़ कर दिया। उसके फेफड़ों में कुछ ख़राबी पैदा हो गई। डाक्टर के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कथनानुसार थोड़े दिनों के लिए हिटलर को स्कूल भेजना बन्द कर दिया गया। इस तरह हिटलर को स्कूल से छुट्टी मिली।

हिटलर पूरे एक साल तक घर में रहा। लेकिन एक साल बाद उसकी मा ने उसे फिर ज़बरदस्ती स्कूल में भर्ती करा दिया। इस बार उसने 'स्टीर' के स्कूल में नाम लिखाया; क्योंकि लिंज़ के स्कूल में उसका रिकार्ड बड़ा ख़राब था।

वह पढ़ता-लिखता नहीं था। मा ने जब यह हाल देखा तो स्कूल से नाम कटवा दिया। हिटलर की मुराद पूरी हुई।

अब वह घर पर ही रहता। दिन भर नाना प्रकार की कल्पनाओं में मग्न रहता। घर के काम-काज में मदद करता। इस तरह उसने साढ़े चार साल बिता दिये। यदि उसकी मा की मृत्यु न हुई होती, तो पता नहीं, कब तक वह यों ही ठाला बैठा रहता।

हिटलर के सामने अब जीविका-उपार्जन का प्रश्न था। वह लगभग बीस वर्ष का था। वह 'वियेना' गया—'कुछ' बनने के लिए। जैसा कि वह स्वयं कहता है—बचपन के दिन बीत चुके थे और अब मुझे जीवन-संग्राम में उतरना पड़ा।

× × ×

३—मुसोलिनी

फ़ोरली उस स्टेशन का नाम है, जिस जगह रिमनी और बोलगाना की ट्रेनें मिलती हैं। इस स्टेशन के बाईं ओर दो या तीन मील दूर डोविया नाम का गाँव है। इस गाँव के घर एक क़तार में हैं, जिनमें कुछ दुतल्ले और अधिकांश एकतल्ले हैं। ऊपर पहुँचने का रास्ता भीतर न होकर बाहर की तरफ़, पत्थर की सीढ़ियों का है। नीचे प्रायः दूकानें हैं और ऊपर गृहस्थी। ऐसे ही एक घर Verono Dicoasta में मुसोलिनी २९ जुलाई, सन् १८८३ को पैदा हुआ था। पिता का नाम अलेक्ज़ेंडर था। जिस समय मुसोलिनी पैदा हुआ था, उस समय पिता की उम्र २९ वर्ष की थी। माता का नाम डोनारोसा मालटोनी था। यही सबसे बड़ा लड़का था। जिस घर में मुसोलिनी पैदा हुआ था, उसे गाँववालों ने १२,००० लायर में ख़रीदा और मुसोलिनी को भेंट कर दिया। कुछ वर्षों पहले वहाँ एक नाई की दूकान थी।

माता-पिता में मतभेद

बहुत-सी बातों में मुसोलिनी के माता-पिता में मतभेद रहता था। लेकिन दोनों सज्जन थे। मुसोलिनी अपने पिता के बारे में कहता है—'वे पढ़े-लिखे न थे, कभी स्कूल न गये थे। वे अपने गाँव प्रेडाफ़िओ के विषय में हमेशा सोचा करते थे, जिसमें वे नवम्बर, १८५४ में पैदा हुए थे। मुसोलिनी के पिता ने डेवाडोला में लोहार का काम सीखा था। जब वह २६ वर्ष के हुए, तब वे डोविया आये और अपना काम शुरू किया। वे दयालु स्वभाव के थे और पीछे साम्यवादी हो गये थे। मुसोलिनी के शब्दों में 'वे इंटरनेशनलिस्ट थे'। उसके पिता साम्यवादी कैसे हुए, यह वह ख़ुद नहीं जानता। अपने विचारों के कारण, बहुत शीघ्र ही वे विपत्ति में पड़ गये। कुछ महीनों के लिए रोकाडी फ़ोरली में रक्खे गये। फिर छूटने के बाद साढ़े तीन साल तक पुलिस की रखवाली में रहना पड़ा। यह उस समय की बात है, जब मुसोलिनी पैदा हुआ था।

बाद में दिन बदले और सोशलिस्टों के हाथ में शक्ति आई। मुसोलिनी का पिता प्रेडाफ़िओ का मेम्बर चुना गया।

अपनी मा के सम्बन्ध में मुसोलिनी कहता है—'वह पढ़ी-लिखी थी और फ़ोरली के स्कूल से उसे मास्टरनी की उपाधि मिली थी। शादी से पहले और बाद में भी वह अपने घर में छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाया करती थी।'

मुसोलिनी अपने पिता को प्यार और मा की पूजा करता था। उसकी मा धार्मिक कृत्यों में बहुत भाग लेती थी। अपने साथ वह मुसोलिनी को गिर्जे ले जाती।—'मैं अपनी मा के आग्रह से गिर्जे चला जाता था। लेकिन मेरा मन वहाँ न लगता था, इसलिए थोड़ी देर बाद मैं वहाँ से भाग आता।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दुस्साहस

मुसोलिनी को उसकी मा ही पढ़ाती थी। जब वह पाँच साल का था, मा ने उसे पढ़ना-लिखना सिखा दिया था। उसी साल (क्योंकि ६ वर्ष की उम्र में सब इटालियन लड़के 'राष्ट्रीय विद्यालय' में भेज दिये जाते हैं) इसे भी प्रेडाफिओ के स्कूल में भेज दिया गया। मुसोलिनी कहता है, उसका मन पढ़ने में नहीं लगता था। वह दिनभर हरे-भरे खेतों में दौड़ता। फलों का वह प्रेमी था। अपनी आत्मकथा में वह लिखता है—'छुटपन में मैं चोर था। फल तो चुराता ही था, लेकिन मौक़ा मिलने पर चिड़ियों पर भी हाथ साफ़ कर देता।' इटली के पहाड़ी प्रदेशों में लोग चिड़िया अधिक पालते हैं, और उनका पिंजड़ा दोपहर को दरवाज़े पर रख देते हैं। मुसोलिनी उन्हीं को चुरा लाता था।

मुसोलिनी कहता है—एक बार उसने बहुत-सी चिड़ियाँ चुराईं। मालिक देख रहा था। मुसोलिनी दौड़ा, मालिक भी पीछे-पीछे दौड़ा। सामने एक छोटी-सी नदी थी। मुसोलिनी उसमें कूद पड़ा और पार हो गया। लेकिन मालिक का साहस न हुआ और वह नदी के किनारे किंकर्त्तव्यविमूढ़ खड़ा रहा। मुसोलिनी बड़े गर्व से कहता है—'मैंने अपनी जान तो बचाई ही, साथ-साथ चिड़ियों की भी।'

मुसोलिनी के बारे में एक दूसरी कहानी और है। एक बार वह लड़कों के साथ सेब चुराने गया। जो सबसे छोटा लड़का था, उसे पेड़ पर चढ़ा दिया। वह डाली हिला ही रहा था कि अचानक उस बग़ीचे का मालिक हाथ में मोटा डंडा लिये हुए आया। जो लड़का ऊपर था, वह डर के मारे पेड़ से कूद पड़ा और उसकी टाँग टूट गई। सब लड़के भागे। मुसोलिनी उस लड़के को अपनी पीठ पर लादकर भागा।

मुसोलिनी कहता है—'मैं हमेशा लड़ने के लिए तत्पर रहता था और प्रायः जब घर आता, तो मेरा सिर फटा रहता था। लेकिन मैं यह भली भाँति जानता था कि बदला किससे और किस प्रकार लिया जाता है।'

मुसोलिनी प्रेडाफ़िओ के स्कूल में तीन वर्ष रहा। उसका पिता उसको लोहार का काम सिखाना चाहता था। लेकिन उसकी मा इस बात से सहमत न थी। वह यह जानती थी कि मुसोलिनी मेज़ पर खड़ा होकर अकेले कमरे में भाषण दिया करता है। कभी-कभी मा कमरे में घुस जाती और पूछती—'बेनिटो, क्या तुम पागल हो?'

वह कहता—'नहीं मा, मैं बोलने का अभ्यास कर रहा हूँ। शायद मुझे कभी बोलने का मौक़ा मिले।'

मुसोलिनी के घर से ६ मील दूर पर एक स्कूल था। पास में कोई अच्छा स्कूल न था, अतः उन्होंने उसे यहीं भेजने का इरादा किया।

स्कूल से चिढ़

अक्टूबर, १८६२ में मुसोलिनी को स्कूल भेजने का प्रबन्ध किया गया। मुसोलिनी स्कूल को एक प्रकार का क़ैदख़ाना समझता था। वह लिखता है—'जिस सप्ताह मैं स्कूल जानेवाला था, उन दिनों मैं कुछ ज़्यादा उद्दंड हो गया था। मैं दिनभर घर से बाहर रहता, हरे-भरे खेतों में घूमा करता और ख़ूब अंगूर खाता। स्कूल जाने के एक दिन पहले मेरी एक मित्र से लड़ाई हो गई। मैंने निशाना बाँधा और उसके सिर में घूँसा मारना चाहा। वह हट गया और मेरा हाथ दीवार से टकरा गया। जब मैं स्कूल के लिए रवाना हुआ, तब मेरे हाथ में पट्टी बँधी हुई थी।

१५ अक्टूबर को प्रातःकाल वह अपने पिता के साथ फेंज़ा के लिए रवाना हुआ। दो पहिये की गाड़ी थी, जिसे गधे खींच रहे थे। गाड़ी थोड़ी ही दूर चली थी कि एक गधा गिर गया और मुसोलिनी उसके सिर पर गिरा। "बेनिटो" उसका पिता चिल्लाया। थोड़ी देर में गधा ठीक हो गया और इन लोगों ने अपनी यात्रा शुरू की। दोपहर को दोनों स्कूल पहुँचे और मुसोलिनी को स्कूल में भर्ती करा दिया गया। स्कूल के हेडमास्टर ने मुसोलिनी को सिर से पैर तक बड़े ग़ौर से देखा, और फिर उसके पिता से बोला—'यह लड़का चालाक और शरारती मालूम पड़ता है।' पिता ने बेटे का चुम्बन किया और उसे आशीर्वाद दिया। जब स्कूल का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दरवाज़ा बन्द हो गया और पिता चलने लगा, तो मुसोलिनी रो पड़ा।

इस जगह की पढ़ाई से भी मुसोलिनी का स्वभाव नहीं बदला। वही पुरानी आदतें थीं। अपने क्लास के विद्यार्थियों से वह हमेशा लड़ता-झगड़ता और इसके लिए मास्टर उसे बड़ा कठिन दंड देते। एक बार एक लड़के से मुसोलिनी का झगड़ा हुआ। मुसोलिनी ने पेंसिल बनाने का चाक़ू निकाला और लड़के को घायल कर दिया। इस अपराध का उसे यह दण्ड मिला कि स्कूल से निकाल दिया गया।

जिस कालेज में मुसोलिनी अब दाख़िल हुआ था, वहाँ मास्टरों को ट्रेनिंग दी जाती थी। यह कालेज फोरलिमपोली में था। यहाँ भी इसका वही स्वभाव था। एक बार किसी बात पर झगड़ा हो जाने पर इसने अपने तीन सहपाठियों की ख़ूब मरम्मत की। उस वक़्त इसकी ट्रेनिंग पूरी हो चुकी थी। कालेज के डाइरेक्टर अल्फ्रेड कारडुसाई ने इसके पिता को चिट्ठी भेजी। पिता आया और इसे ले गया। इस वक़्त इसकी उम्र १५ साल की थी। सन् १८६२ से १८६८ तक इसने शिक्षा प्राप्त की।

मुसोलिनी अपने घर डोविया आया। उसकी मा बहुत ख़ुश हुई, क्योंकि उसने न जाने कितनी बार ईश्वर से प्रार्थना की थी कि मुसोलिनी सकुशल घर लौट आये।

चार साल तक वह अपने घर रहा। इसकी इच्छा अधिक दिनों तक घर पर रहने की थी। इसने प्रेडाफ़िओ के मंत्रि-पद के लिए दरख़्वास्त दी, किन्तु वह नामंज़ूर हो गई। मुसोलिनी बहुत निराश हुआ, लेकिन पिता हताश न हुआ। वह चाहता था, मेरे लड़के का भविष्य उज्ज्वल हो। इसकी माता ने कहा—'मेरे बेटे, अगर इस जगह तुम्हें कोई काम नहीं मिलता, तो दूसरी जगह कोशिश करो। तुम्हें काम करने से मतलब है, चाहे वह कहीं भी हो।' इस बात का मुसोलिनी पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने राजनीति का अध्ययन शुरू किया।

इसकी माता ने कहा था—'आज या कल तुम 'क्रीपसी' होगे।' क्रीपसी इटली का श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ था।

सन् १६०२ में एमिला के एक छोटे-से स्कूल में इसे नौकरी मिल गई। क्लास में छोटे-छोटे ४० लड़के थे। उन्हीं को यह दिनभर में चार घंटे पढ़ाता था—सुबह नौ बजे से दोपहर को एक बजे तक। इसकी तनख़्वाह ५६ लीरा थी। इसे समय बहुत मिलता था। पहले यह नहीं जानता था कि समय का विभाग कैसे किया जाय। बाद में वह अध्ययन करने में अपना समय व्यतीत करने लगा। उसने नाचना, गाना और रँगना सीखा। थोड़े दिनों बाद मतभेद हो जाने पर इसने नौकरी छोड़ दी और बिना किसी के कहे-सुने चला गया।

इस प्रकार उसने अपना बचपन बिताकर यौवन में प्रवेश किया।

× × ×

४—प्रेसिडेंट रूज़वेल्ट

(रूज़वेल्ट डिक्टेटर नहीं हैं। लेकिन इसमें शक नहीं कि वे एक autocratic शासक हैं। वे गणतंत्र के पक्के समर्थक हैं। अतः उनके बचपन का हाल इन डिक्टेटरों के बाल्य-जीवन के साथ लिखना अच्छा होगा। यही सोचकर यहाँ उनके बाल्यकाल का जीवन दिया गया है।)

दूसरे डिक्टेटरों की भाँति रूज़वेल्ट का जन्म किसी ग़रीब घराने में नहीं हुआ था। इनके पिता स्टॉक ब्रोकर थे, और न्यूयार्क स्टेट की डचेज़ काउंटी में उनकी बहुत बड़ी इस्टेट थी। यहीं ३० जनवरी, सन् १८८२ में फ्रैंकलिन रूज़वेल्ट का जन्म हुआ। आज भी इस जगह रूज़वेल्ट की वृद्धा माता रहती हैं, जो हँसमुख और चालाक हैं। इनकी माता बड़ी सुन्दर और धनी परिवार की कन्या थीं। रूज़वेल्ट के नाना की गिनती अमेरिका के बड़े व्यापारियों में होती थी।

सुखी बालक

अमेरिका के प्रेसिडेंट को बचपन में ग़रीबी का सामना नहीं करना पड़ा था, बल्कि उनका बचपन आराम और मौज से कटा था। बालक जिस बात की इच्छा करता, वही होता। उसके पास एक छोटा-सा टट्टू

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

था। वह उस पर सवार होकर घूमने जाता। बचपन में ही वह अपने माता-पिता के साथ योरप की सैर कर आया। उसकी अपनी एक नाव भी थी और चिड़ियों के शिकार के लिए एक बन्दूक़ भी। उसके पास हर तरह के खिलौने थे।

रूज़वेल्ट के माता-पिता अपनी इस्टेट के एक गाँव में रहते थे। यहाँ उसका दैनिक कार्य-क्रम नियमित था। फ्रैंकलिन सुबह सात बजे उठता था, आठ बजे वह जलपान करता और नौ से बारह तक पढ़ाई चलती। बारह बजे के बाद लंच के वक़्त वह प्रायः खेला करता था। लंच के बाद उसे दो-ढाई घंटे फिर पढ़ने बैठना पड़ता था।

रूज़वेल्ट की मा अपने बेटे के बचपन की कहानियाँ आज भी बड़े चाव से दूसरों को सुनाती है। वह एक कहानी सुनाती है, जो अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति के चरित्र पर विशेष रूप से प्रकाश डालती है। एक दिन प्रातःकाल (फ्रैंकलिन उस वक़्त सिर्फ़ पाँच साल का था) वह ब्रेकफ़ास्ट-टेबिल पर बहुत ही उदास और सुस्त बैठा हुआ था। वह चुप था।

स्वाधीनता के लिए इच्छुक

'तुम्हें क्या हुआ?'—उसकी मा ने पूछा, 'क्या तुम्हारी तबियत अच्छी नहीं है?'

'हाँ, मैं दुखी हूँ।'—फ्रैंकलिन ने गंभीरतापूर्वक उत्तर दिया।

'क्यों, क्या बात है?'

'ओह....' उसने एक लंबी साँस ली और कहा—'स्वाधीनता के लिए।'

इस कथोपकथन के बाद माता-पिता ने उसे उसकी इच्छा के अनुसार काम करने की आज्ञा दे दी।

दूसरे दिन सुबह से ही फ्रैंकलिन ग़ायब हो गया। शाम के वक़्त वह थका-माँदा और भूखा वापस आया। प्रश्न करने पर उसने उत्तर दिया—'मैं जंगलों में था।'

'तुम वहाँ क्या कर रहे थे?'

'पेड़ों पर चढ़ने का अभ्यास कर रहा था।'

लेकिन दूसरे दिन वह नहीं गया। उसने यह अनुभव किया कि जंगलों में घूमा जाय; यह स्वाधीनता का अर्थ नहीं है।

खुली हवा और मुक्त आकाश के नीचे वह बड़ा प्रसन्न रहता था। बचपन में उसे मल्लाह बनने का बड़ा शौक़ था, और कल्पना में न मालूम जहाज़ों पर वह कितनी यात्राएँ कर चुका था। उसने अपने साथियों की मदद से एक नाव तैयार की। इसमें वह अपने मित्रों सहित बैठा रहता और बड़ा ख़ुश होता।

सातवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में उसके पिता ने उसे एक छोटा-सा टट्टू उपहार में दिया। कई हफ़्ते तक तो ऐसा हुआ कि जब देखो तभी वह टट्टू पर सवार रहता। एक बार वह अकेला शिकार करने गया, और मरते-मरते बचा।

'मैं यह जानना चाहता था कि लोमड़ी का शिकार कैसे किया जाता है। इसीलिए मैं चुपचाप शिकारियों के पीछे धीरे-धीरे चला गया था।'—मा को अपने शिकार के अनुभव सुनाते हुए उसने कहा।

फ्रैंकलिन हमेशा ख़ुश रहता था। उसके मित्र उसे घेरकर खड़े हो जाते, और उसके हुक्म के मुताबिक़ काम करते। एक बार उसकी मा ने कहा—'तुम हमेशा सबको आर्डर क्यों देते हो? दूसरे लड़कों को भी आर्डर देने दिया करो।'

'मा', फ्रैंकलिन ने उत्तर दिया—'यदि मैं इन लोगों को आर्डर न दूँ, तो फिर ये कुछ नहीं कर सकते।'

फ्रैंकलिन के माता-पिता के शिक्षा-विषयक विचार अन्य लोगों से भिन्न थे। वे पढ़ने-लिखने के लिए न तो उसके साथ कभी ज़बरदस्ती करते और न उसकी इच्छा के विरुद्ध ही कोई काम करते।

गुप्त इच्छा

उसकी मा कहती है—'हम अपनी इच्छाओं का दबाव उस पर नहीं डालते थे। हम फ्रैंकलिन के लिए पुस्तकें कभी नहीं चुनते थे। हम चाहते थे और उसे इस बात का पूरा मौक़ा देते थे कि वह स्वयं ही हमारे पुस्तकालय से पुस्तकें चुने। यदि हम अपनी इच्छा के अनुसार पुस्तकें उसे देते, तो शायद इतना अच्छा संग्रह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न हो पाता, जितना कि उसने अपनी पसन्द के अनुसार किया। वह इतिहास की पुस्तकों का प्रेमी था और Admiral Mahan की History of Sea-Power उसकी प्रिय पुस्तकों में से थी।'

उसकी दूसरी रुचि Ornithology की तरफ़ थी। वह खेतों में घंटों घूमा करता और चिड़ियों की आदतों का विशेष रूप से अध्ययन करता। जो कुछ वह ग़ौर करता, उसे घर आकर अपनी नोट-बुक में लिखता था। उसने बहुत-सी चिड़ियाँ इकट्ठी कर रक्खी थीं। वह चाहता था कि हडसन नदी के किनारे जितनी तरह की चिड़ियाँ हैं, उनका शिकार वह स्वयं ही अपनी बन्दूक़ से (जो उसे आठवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष में मिली थी) करे और घर में लाकर रक्खे।

वह अपनी पढ़ाई भी ठीक तौर से करता था। वह चार भाषाएँ सीखता था—जर्मन, फ़्रेंच, स्पेनिश और इटैलियन। वह पियानो भी अच्छा बजाता था। लेकिन उसकी असली प्रतिभा का विकास आगे चलकर हुआ। जब वह बच्चा था, तब इस बात की किसी ने कल्पना भी नहीं की थी कि यही बालक आगे चलकर अमेरिका के राष्ट्रपति-पद को गौरवान्वित करेगा।

फ़्रैंकलिन के बारे में उसकी मा की इच्छा जानने लायक़ है। प्रत्येक अमेरिकन माता की यह गुप्त इच्छा रहती है कि उसका बेटा प्रेसिडेंट बने। लेकिन फ़्रैंकलिन की मा कहती है—

'मैंने इस बात की कभी कल्पना भी नहीं की थी कि वह कभी सामाजिक जीवन में नाम कमावे या इसी ढंग के दूसरे काम करे। मैं अपने बेटे के सामने जो सबसे बड़ा आदर्श रखती थी, वह था उसके पिता का। मैं चाहती थी कि यह भी अपने पिता की तरह अच्छा, दयालु और न्यायप्रिय बने।'

मा

फ़्रैंकलिन अपनी मा के प्रति बहुत कृतज्ञ है। उसकी मा उसके हरएक काम में मदद देती थी, और उसके मानसिक व शारीरिक विकास का बड़ा ख़्याल रखती थी। जब वह छोटा था, तो उसे एक शिक्षक के साथ भ्रमण करने भेजा था।

फ़्रैंकलिन की मा को इसका शीघ्र ही पता चल गया कि उसे समुद्र से बड़ा प्रेम है। वह मल्लाह बनकर नेवी में भर्ती होना चाहता था।

उसका पिता इस विषय में उससे बातचीत करता। बाप-बेटे भविष्य के बारे में दो मित्रों की तरह हँसी-मज़ाक़ किया करते थे—एक था ६७ वर्ष का बूढ़ा और दूसरा था चौदह वर्ष का बालक। पिता ने बेटे को समझाया कि मल्लाह का जीवन उसके लिए ठीक नहीं है, क्योंकि बड़े होने पर उसे अपने पिता की तरह व्यवसाय में लगना पड़ेगा। पिता ने उसे हारवर्ड जाकर पढ़ने की सलाह दी।

बचपन से विदाई

फ़्रैंकलिन ने अपने पिता का कहना मान लिया। लेकिन उसे पहले ग्रीटोन के स्कूल में भर्ती होना पड़ा। उसके मित्र उसे काफ़ी दूर तक पहुँचाने आये। और, अब यहाँ से कर्त्तव्य का जीवन शुरू हुआ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

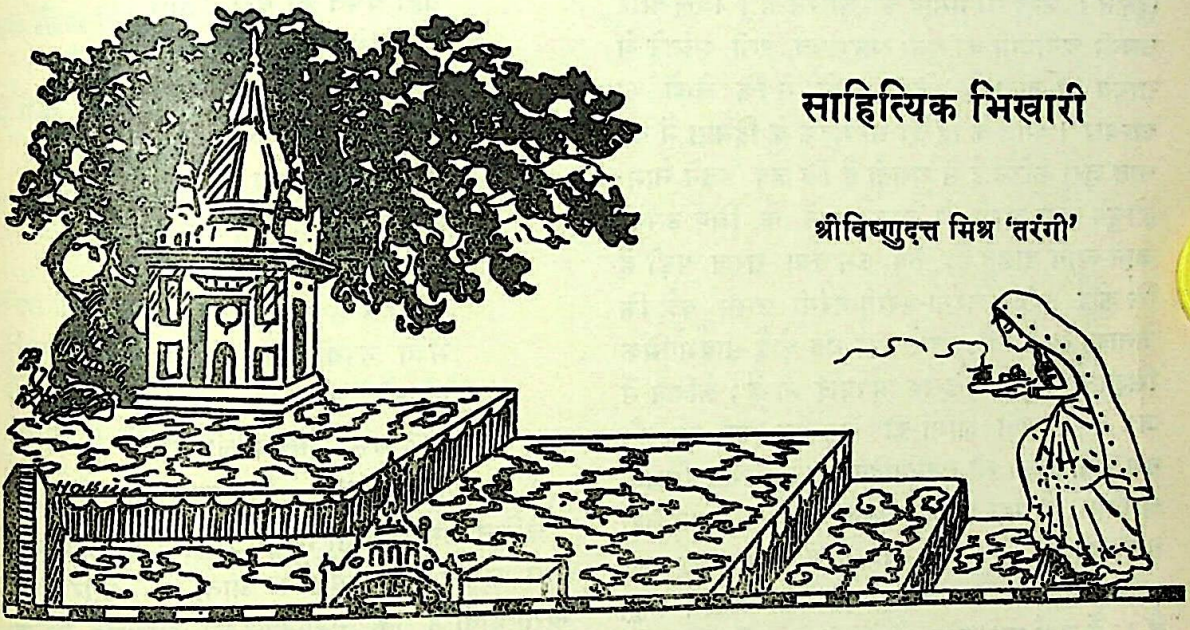

साहित्यिक भिखारी

श्रीविष्णुदत्त मिश्र 'तरंगी'

इसी पहली जुलाई को हिन्दी-समाचार-समिति की स्थापना हुए पूरे चार वर्ष हो गये। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि साहित्यिक भिखारी का यह पाँचवाँ वर्ष शुरू हो गया है, और कोई आश्चर्य नहीं कि भिखारी की यह चौथी वर्ष-गाँठ बिना किसी धूमधाम के गुज़र गई। इतना अवश्य रहा कि जब चार वर्ष के बाद भिखारी ने अपने बैंक की बचत में देखा, तो केवल पाँच रुपये ग्यारह आने और भीख में उधार ३७६) बक़ाया पड़े थे। मैं कह सकता हूँ कि मुझे व्यावहारिक पत्रकार-कर्म से मुक़ाबला करना पड़ा है और चार वर्ष के बाद अगर मैं अपने मित्र सेठ गोविन्ददास के शब्दों में अपने को 'साहित्यिक भिक्षु' पाता हूँ, तो मुझे केवल इतना ही संतोष है कि भिखारी को चाहे भीख न मिली हो; लेकिन उसे भीख माँगने के उपायों में थोड़ा-सा अनुभव तो हुआ।

इन चार वर्षों के अनुभव में मैंने भीख प्राप्त करने के नये-नये प्रयोग किये; जब मैंने देखा कि आजकल के साधारण तरीक़े कारगर नहीं होते। जैसा देवता वैसी पूजा का सिद्धान्त व्यावहारिक पत्रकार के लिए लागू नहीं होता; क्योंकि साहित्यिक भिक्षु को यह सदैव ध्यान में रखना पड़ता है कि उसके पुराने पैसे भी वसूल हो जायँ और आगे को नाता भी न टूटे! आख़िर उसे इन्हीं लोगों से तो दिन-रात काम पड़ा करता है और उसकी व्यावसायिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धि इस बात को स्वीकार नहीं कर सकती कि वह अपने ढीठ से ढीठ ग्राहकों से मुँह मोड़ ले। उसका तो अजर-अमर सिद्धान्त है कि—"कबहुँ कि दीनदयाल के भनक पड़ैगी कान।" लेकिन साहित्यिक भिक्षु को यह भी जानना पड़ता है कि इन दीनदयाल के कान साधारण आवाज़ों से नहीं खुलते। उन्हें तो नगाड़े की ज़रूरत है। बिल और उसकी अदायगी का पुनः स्मरणपत्र उसी सन्नाटे से ग़ायब हो जाता है, जिस सन्नाटे से कि लेखों का अम्बार। आज के हिन्दी-सम्पादक के दिमाग़ में यह बात ज़रा कठिनाई से घुसती है कि जब इतने नाम-लोलुप लोग लेखों को मुफ़्त छपाने के लिए उसकी जान खाये डालते हैं, तब उसे क्या ग़रज़ पड़ी है कि कोई तरंगी-फिरंगी-सरंगी-नरंगी उससे कहे कि जनाब, रक़म दिलवाइए। पर यह कोई सार्वभौमिक सिद्धान्त नहीं है, इसके अपवाद भी हैं; लेकिन मैं जब ६० फ़ीसदी लोगों की बातचीत कर रहा हूँ, तब मुझे इतनी सी स्पष्टवादिता का अधिकार मिलना चाहिए। मैं यहाँ पर उन प्रमुख पत्रों की बात नहीं कर रहा हूँ, जो भले या बुरे में निर्णय का पूर्ण अधिकार रखते हैं; जिनके प्रति मेरी असीम श्रद्धा है। मैं यहाँ अधिकांश लोगों की मनोवृत्ति का वर्णन कर रहा हूँ।

तो इस साहित्यिक भिखारीपन की अपनी नई टेकनिक को मैं यहाँ उपस्थित कर रहा हूँ। स्वर्गीय पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने ही पहले यह परंपरा चलाई थी कि—

आठ मास बीते जजमान;
अब तो करो दक्षिणा दान।

मैंने अनुभव किया कि पंडित प्रतापनारायण मिश्र के काल से अब तक तो व्यंग्य और हास्य की काफ़ी उन्नति हुई है। इस कारण मैंने पहलेपहल इस अमोघ शस्त्र का उपयोग किया, और एक सज्जन-सम्पादक को लिखा—

रामराम या सीताराम;
पंडितजी महराज प्रणाम।
ज़रा-ज़रा सोचें भी आप;
धन बिन हैं छाते त्रयताप।
छोड़ दिया है खाना पान;
छोड़ दिया है करना स्नान—
यही वचत का मेरा प्लान;
आप सो रहे चादर तान।
बड़े अजब अख़बारी खेल;
वीर बने, लेकिन हैं बैल।
मैं न समझता था यह फैल;
पत्थर से क्या निकले तेल।
मुहलत-फ़ुहलत झूठी बात;
मुश्किल से कटते दिन-रात।
भेजो रुपयों की बरसात;
हरे-हरे हों आशा-पात।
बात सभी लिख डाली सत्त;
कृपाकांक्षी विष्णुदत्त।

लेकिन सम्पादक तो निठुर प्राणी होता है। कहीं आग लगती या भूकम्प आता है और उसे ख़ुशी होती है कि चटपटेपन का मसाला तो आ गया। इसलिए परवा की बात तो उठती नहीं। इसलिए फिर लिखा—

सम्पादक कुछ बोलो?
'नहीं' 'नहीं' रस बहुत सुन चुका,
अब 'हाँ' शशि रस घोलो।
ओह तुम्हारे शब्द-कोष में,
एक शब्द बस 'नहीं' नहीं है;
आदि 'नहीं' है, अन्त 'नहीं' है,
और सब ओर 'नहीं' है;
'नहीं-नहीं' घन काफ़ी बरसे,
अब 'हाँ' चातक बोलो!
सम्पादक कुछ बोलो?

पंडित हृदयनारायण 'हृदयेश' मुझे अवश्य कोस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहे होंगे कि इस भले आदमी ने कविता की क्या मिट्टी पलीद की है। इसलिए ज़ोर देने के लिए यह लिखना पड़ा—

रुपया अब भेजो पण्डितजी !
कहो कौन-सी ख़ता हुई,
जो मुझे किया यों दण्डित जी ।
हम लिख-लिख चिट्ठियाँ भेजते,
तुमने चुप्पी चादर तानी ;
मैं मना रहा, तुम रूठ रहे,
ढब यह सब देखा लासानी,
अब तो प्रण कर दो खण्डित जी,
रुपया अब भेजो पण्डितजी !

लेकिन हिन्दी के इन स्तोत्रों का प्रभाव आज-कल के युग में कम पड़ता है। इसलिए अन्तिम शस्त्र अँग्रेज़ी को हाथ में लेना ही पड़ा और इसलिए अँग्रेज़ी में यह गीत लिखा—

Pandit worderful Silence
(पंडित वण्डरफ़ुल साइलेंस !)

It does look you don't care my letter
oh tuppence
(इट डज लुक यू डोण्ट केयर माई लैटर ओह टपेंस !)

Wonderful is life garden flower many
make
Silencer in thy mouth hydrocklic break
(वण्डरफ़ुल इज़ लाइफ़ गार्डन फ़्लावर मेनी मेक ;
साइलेंसर इन दाई माऊथ, हाइड्रोक्लोरिक ब्रेक ;)

Silver eggs must lay now thine pretty
hens
(सिल्वर एग्ज़ मस्ट ले नाऊ दाइन प्रेटी हेंस !
पंडित वण्डरफ़ुल साइलेंस !!)

दोहा

No letter silence this heart oh aggricve
Rama wish found this loylist Sugrive
(नो लैटर, साइलेंस, दिस, हार्ट ओह अग्रीव ।
रामा विश फाऊंड दिस, लायलिस्ट सुग्रीव ॥)

तो नुस्ख़ा ठीक बैठा। पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने जो प्रथा चलाई थी, वह बहुत सोच-समझकर चलाई थी। इस कारण मुझे आश्चर्य नहीं हुआ कि पड़ाव मार दिया—खनाखन कलदार आ गये।

एक स्त्री से दूसरी स्त्री की चाह मनुष्यमात्र में होती है, यद्यपि यह संभव है कि बहुत-से लोग इस ज़िन्दगी को एक ही के बालम रहकर गुज़ार देते हों। केवल थोड़े से राजा-महाराजा ही इस नियम के अपवाद बन सकते हैं! बहरहाल, इस सर्वमान्य सिद्धान्त के विरुद्ध भी परीक्षण पर इस साहित्यिक भिखारी ने आगे भी कई सफलताएँ पाईं। एक हज़रत सम्पादक ने वादा किया था कि रुपये भेज देंगे। वादा बुरा नहीं था, इसलिए लिखना पड़ा—

भूल गये क्या अपना वादा ?
सम्पादकजी इस गर्मी में,
चुप्पी का क्या ख़ूब लबादा !
वादा करके अगर न मिलते,
कभी नहीं जो आदम हौआ ;
तो यह सृष्टि न पैदा होती,
होते ब्राह्मण और न नौआ।
नौ मन धन का तेल मिले,
तो नाचे यह जीवन की राधा !
सम्पादकजी इस गर्मी में,
चुप्पी का क्या ख़ूब लबादा !
याद आज आती हैं मुझको,
उसी सुघड़ वादे की बातें ;
जिनमें आना मालटाल था,
ख़ाली आईं वही परातें।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दयानिधान भेज दो रुपये,
भर करके मनिआर्डर सादा।
भूल गये क्या अपना वादा?
सम्पादकजी इस गर्मी में,
चुप्पी का क्या खूब लबादा!

इस तरह एक सफलता दूसरी सफलता को ढकेलती गई और साहित्यिक भिखारी को अपनी नई प्रणाली को और प्रशस्त करने का अवसर मिला। ग़ज़ल, टप्पे, सोरठा, दोहा, सवैया, कवित्त, छायावाद, मायावाद, कुण्डलिया सभी का आश्रय इस भीखबाज़ी में लिया गया। नवीन और प्राचीन कवियों की कौशल की पैवन्दें इस कवितामयी भीख के आचरण में प्राप्त की गईं। एक सज्जन कृपादृष्टि की वर्षा नहीं कर रहे थे। आखिर ब्रह्मास्त्र का सहारा लेकर लिख ही तो दिया—

किस मिस से हम हो गये, आप स्वयं श्रीमान।
नाम विष्णु लक्ष्मी नहीं, विधि का अजब विधान॥
विधि का अजब विधान, खूब यह जीवन-मेला।
दयादृष्टि कुछ करो, चले जीवन का ठेला॥
सुकवि 'तरंगी' विकल हुए कहते हैं इससे।
धन के बिन हम सूख हुए वाजिब किसमिस से॥

लेकिन कभी-कभी उदाहरणों की एक कड़ी सिद्धांत तक पहुँचा देती है, इस कारण आश्चर्य नहीं कि अब दो नुस्खे ऐसे हो गये हैं कि तीर की तरह असर करते हैं। अनुभव तो यह बताता है कि भुलक्कड़ नादिहन्द को पहले यह नुस्खा भेज दिया जाय—

भेज दो रुपया महोदय!
आपकी हो हिन्द में कलकण्ठ से बस सुयश की जय॥
इश्क़ लैला-सी चढ़ी है, इश्क़-रुपया की खुमारी,
क्यों बनाकर रहो मजनूँ, चीर अब दे दो मुरारी,
जब मिले रुपये का दाना, भाग उट्ठे यह क़लम हय!
भेज दो रुपया महोदय॥
खोल दो मुँह थैलियों का, भेज दो या चैक प्यारे,
बाये मुँह बैठे तरंगी एक बस तेरे सहारे,
जब मिले रुपये का दाना, भाग उट्ठे यह क़लम हय!
भेज दो रुपया महोदय॥

और इस रामबाण का असर होते ही फ़ौरन् यह नुस्खा भेज दिया जा रहा है—

अब जी में हलकापन आया।
मिल गई रक़म, आनन्द हुआ;
पतझड़ में अब सावन आया।
स्तोत्रों से डिगनेवाले,
कैसे कविता-प्रिय कुशल आप;
मुझ-सी अखबारनवीसी है,
खालिस हड्डी का मटन चॉप;
गिर-गिरकर चलने बढ़ने को,
यह पत्रकार-जीवन पाया।
अब जी में हलकापन आया॥

और थोड़ा-सा जी हलका इस लेख को लिखकर कर भी लिया, लेकिन क्या भरोसा कि इसी पत्र के सम्पादकजी पर भी कोई नुस्खा आज़माना पड़े। काँच की सड़क-सी चिकनी यह अखबार-नवीसी है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

साहित्य ही राजनीति का जनक है

श्रीरामअवधेश त्रिपाठी विशारद

मनुष्य, प्राचीन—सुदूर पूर्व-काल में लिखने की शक्ति न रखता था, न तो कोई साधन ही उपलब्ध थे। इस कारण वे पुरानी तथा तत्कालीन विशेष बातें अपने पुत्र-पौत्रों को रटा दिया करते थे। इसी प्रकार उनके वंशज अपने पुत्र-पौत्रों को। कहने का भाव यह कि वे अपनी प्रसिद्ध, शिक्षाप्रद एवं सुरुचि-पूर्ण स्मृतियों को इसी प्रकार अपने साथ रखते तथा हृदय में इन्हीं पूर्व एवं सामयिक घटनाओं का ताना-बाना करके अपने दैनिक, व्यावहारिक से लेकर सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन तक सुधारते थे। जीवन की उलझी हुई गुत्थियों को सुलझाने में इन साधनों द्वारा, इस रटन्त-विद्या के आधार पर उन्हें पर्याप्त सहायता भी मिलती थी। वे दूसरे के अनुभूत विचारों एवं कार्यों को जानकर अपनी बुद्धि की तुला पर तौलते, तत्पश्चात् उसके कुछ आगे सोचने की धुन में जुट जाते। इस प्रकार उनको पिष्टपेषण से छुट्टी मिल जाती और वे जीवनोद्देश्य के नये-नये महल बनाते थे। इसी समीक्षा से प्रकट हो जाता है कि यह पूर्व-रक्षित सामग्री अपने गर्भ में किस प्रकार उन्नति का बीज छिपाये थी।

'आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है' इस सिद्धान्त के अनुसार उन लोगों को, अपनी एक कमी बराबर खटका करती। वह थी अपने विचारों का जन-समूह में भली प्रकार गुम्फन न होना। इसलिए वे इस कार्य का साधन जुटाने में लग गये। कालान्तर में काग़ज़, क़लम का जन्म हुआ। मनुष्य अब अपने और अपने पूर्वजों द्वारा पाये हुए ज्ञान को लेख-बद्ध करने और भविष्य के लिए रख जाने में लग गया। इस प्रकार जो एक गद्य-पद्यवाला भाण्डार उपस्थित हुआ, हमारी राय में उसे ही साहित्य कहते हैं। साहित्य ही किसी देश का अमर सैनिक और अक्षय रत्नकोष है। कवि के शब्दों में——

अन्धकार है वहाँ, जहाँ आदित्य नहीं है;
है वह मुर्दा देश, जहाँ साहित्य नहीं है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रोग, निदान और ओषधि

साहित्य-ज्ञान से ही हम अपने बलाबल का ठीक अनुमान कर पाते हैं। इसी के द्वारा हम देखते हैं कि हमारा भवन पूर्व-काल में कितना सजा या भग्न था, उसी के अनुसार हम अपने को सँवारने, नया और समुन्नत बनाने में जुट जाते हैं। साहित्यरूपी एक्स-रे से हम अपने देश, जाति, समाज तथा स्वयं की ठीक परीक्षा कर सकते हैं, आन्तरिक कमज़ोरियों का ठीक निदान कर सकते हैं। इसी के द्वारा सर्वोत्तम ओषधि एवं रोग-शमन करनेवाला परमोच्च पेय भी ढूँढ सकते हैं। ज्ञान-पिपासुओं के लिए, हर प्रकार की आवश्यकता पूरी करनेवाला, शान्ति-प्रदायक केवल साहित्य ही है। यों तो हम साहित्य के कई भाग कर सकते हैं; किन्तु तारीफ़ यह कि हर भाग मानव-समाज की सेवा करने, उसे ऊपर उठाने में ही तल्लीन दिखाई देगा। हमारे हरएक काम को दूर से देखनेवाला, हमारी कमियों पर प्रकाश दिखलानेवाला, हमको निद्रा से जगानेवाला केवल साहित्य ही है। यह वह वसन्त है, जो ठूँठे वृक्षों में कोपल लगा दे, पत्तों में फूल और फूल फल के रूप में दिखला दे। साहित्य हमारा देवता है, सुधारक है, उद्धारक है और है हमारे ज्ञान का मूर्त स्वरूप भी। हमें पूर्ण बनाने के लिए यही एकमात्र गुरु है। संक्षेप में, साहित्य ही हमारे रोग को जाननेवाला, निदान करनेवाला और ओषधि-प्रदाता है।

राजनीति क्या है?

हमारी राय में राजनीति वह महान् अस्त्र है, जिसे धारण कर तात्कालिक समाज, देश और जाति, नागरिक स्वत्व प्राप्त करे, अपने विचारों एवं कार्यों द्वारा स्पष्ट क्षेत्र तैयार करे। सच्चा एवं विश्वासपात्र बनने के लिए, राज्य की समृद्धि के लिए जिस नीति का अवलंबन किया जाता है, वही राजनीति है। हाँ, इसमें व्यष्टि न होकर समष्टि की शुभ-कामना प्रधान होती है, एक का न होकर अनेक का लाभ अपेक्षित है। यह नीति उस काल की घटनाओं का (जिसमें बरती जाती है) प्रतीक होती है। किसी काल का विशेष परिचय प्राप्त करने के लिए हमें उस समय की राजनीति से ज़्यादा सहायता मिलती है। किन्तु साहित्य भिन्न प्रकार की राजनीतियों का केन्द्र है। या यों कहें कि यह समुद्र है, जिसमें राजनीतिरूपी नदियाँ अपने आप आकर मिला करती हैं और जो मर्यादा से वेष्टित है। अगर साहित्य आधार है तो राजनीति आधेय। राजनीतिक बनने के लिए हमें साहित्य का दरवाज़ा खटखटाना पड़ेगा। केवल सामयिक नीति जानकर सन्तोष करना न्यूनतासूचक है—नीम हकीमी है।

साहित्य-द्वारा भिन्न-भिन्न राजनीतियों का अध्ययन कर, मनन एवं आलोचन कर जिस ज्ञान की भित्ति उठाई जायगी. वह दृढ़ ही नहीं, अटल भी होगी। साहित्य यदि पहाड़ है, तो राजनीति झरना। साहित्य अनन्त आकाश है, तो राजनीति कण। अगर एक को हम मनोहर उद्यान मानें, तो दूसरे को केवल एक सुगन्धित फूल मानना पड़ेगा। दोनों का सम्बन्ध अन्योन्याश्रय होते हुए भी अन्तर रखता है। साहित्य का विद्यार्थी जानता है कि राजनीति के सिवा भी कोई एक ऐसा आनंद है, जो स्वर्गीय सुख का पर्याय है, जहाँ पर बैठकर दीनता भुलाई जा सकती है, धनहीनता की धज्जी उड़ाई जा सकती है। पर केवल राजनीति-विशारद अपने जीवन में नीरसता का स्वप्न देखता रहता है, उन अलौकिक साधनों से वंचित ही नहीं रहता, प्रत्युत छुट भी जाता है। साहित्यरूपी भवन में यद्यपि कालरूपी सीमेंट लगाकर राजनीति की ईंटें जड़ी हैं, फिर भी साहित्य-सदन और भी कितनी वस्तुओं और कारीगरियों से सजाया हुआ है। साहित्य सर्वाङ्गी है। इसमें देश के साथ समाज, जाति, यहाँ तक कि व्यक्ति-विशेष भी भूला नहीं जा सकता। सबके लिए, सारी ज़रूरतों के लिए यह फाटक खुला रहता है। किन्तु राजनीति को इसके सामने एकांगी कहा जा सकता है। उसमें सन्देश ज़रूर होता है, पर वह जाति और समाज के कोई बहुत काम का नहीं। यद्यपि अवसर-विशेष पर इस बात का अपवाद भी हो जाया करता है, फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि राजनीति में जाति और समाज का स्थान गौण होता है। राजनीतिक अपनी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धार्मिक एवं वैयक्तिक बातों में सुधार की आवश्यकता हो सकता है ; पर एक साहित्यिक के लिए यह कदापि सम्भव नहीं। राजनीति को घरेलू और कौटुम्बिक जीवन में पग-पग पर ठोकरें खानी पड़ी हैं, पर साहित्य का आदर्शवाद, मानववाद और सौजन्यवाद कहीं भी रुख से नहीं जाने पाता।

निष्कर्ष यह कि बिना साहित्य-ज्ञान के राजनीति के पथ पर पग रखना, पेड़ काटकर पल्लव सींचने के बराबर है। इतना ही नहीं, जिस राजनीति में पड़कर साहित्य को कोई संग्रहणीय वस्तु न मिले, वह कूड़ी की तीन है। राजनीति हमारी उन्नति को लेकर चलनेवाली मोटर है, तो साहित्य वायुयान। इसलिए साहित्य-संरक्षा हमारा प्रथम कर्तव्य है।

हमारे कहने का भाव यह नहीं कि राजनीति त्याज्य है। उसकी भी उतनी ही आवश्यकता है, जितनी खेती के लिए पानी की। हमें कवियों और लेखकों, समाज एवं सुसभ्यों से प्रार्थना केवल यही करनी है कि वे साहित्योद्यान को भी सजाने में उतनी ही दिलचस्पी दिखलावें, जितनी और विषयों में। न तो हर देश कवि हो सकता है, न लेखक या साहित्यिक ही। किन्तु ऐसे लोगों की ओर तो साहित्य भी हाथ बढ़ाकर कुछ चाहता है, जो दे सकते हैं। केवल अपना ऋण समझकर साहित्य को कुछ देना ही किसी देश के शिक्षितवासियों का प्रधान कर्त्तव्य है। अतः हमारा अनुरोध तो हर विद्वानों से यही है कि वे जैसे देश, राजनीति, समाज के क्षेत्र में अपना कर्त्तव्य पालन कर रहे हैं, वैसी ही उदारता साहित्य में भी दिखाना आवश्यक समझें। इसकी तरफ़ से आँख मूँद लेना अक्षम्य अपराध होगा। आजकल हमारी रचना का प्रवाह बिलकुल ही व्यक्ति पर अवलम्बित है। वह कृषकों के क्रन्दन, अमीरों के अमानुषिक बर्ताव आदि सामयिक बातों से ओत-प्रोत रहती है। किन्तु कितना क्षुद्र दृष्टिकोण है यह, इसे तो एक साहित्य-सपूत ही जानेगा। मैंने माना कि समय-विशेष में घटना-विशेष का ही प्राधान्य होता है; पर दुर्दशा यह है कि ऐसे समय में किसी अन्य विषय पर लेखनी उठाना हास्यास्पद-सा हो गया है, यह कहाँ का न्याय है। क्या दुनिया में एक ही विषय है, साहित्य के और अंग पिष्टपेषण-मात्र हैं ?

सबसे बड़ी उदासीनता दिखलानेवाला वर्ग, सम्पादक-वर्ग है। वर्तमान युग में पत्र-पत्रिकाएँ ही प्रतिनिधि का काम करती हैं। उनके द्वारा किया गया कर्त्तव्या-कर्तव्य का निर्णय मान्य हो नहीं, बल्कि ब्रह्मवाक्य भी समझा जाता है। किन्तु अपने अध्ययन के बल पर, हम तो यह डंके की चोट पर कहेंगे कि हमारे स्वयंभू सम्पादक हमारा ध्यान इस ओर कभी न तो बँटाते, न इसे आवश्यक ही समझते हैं। मैं तो समझता हूँ, इस प्रकार एक अभाव का भंडा न फोड़ना, सम्पादकीय उत्तरदायित्व की अवहेलना करना है। हमें देश में रहना, खाना-पीना और मरना है ; किन्तु हमारा कर्त्तव्य इतना ही तो नहीं ; और भी तो हम पर ऋण हैं। हम किसी पर आक्षेप नहीं करते ; पर हमारी न्याय-बुद्धि हमें जिस मार्ग की ओर प्रेरित करती है, उस पर कुछ कहना अपना धर्म समझते हैं। साथ ही यदि हमारा पक्ष समर्थन योग्य है, तो दूसरे से भी यही आशा रखते हैं, निवेदन करते हैं कि इस बात को अधिक प्रकाश में लावें।

खेद

सबसे बड़ी शंका तो हमें तब होती है, जब हमारे राजनीतिक अधिकारियों द्वारा हृदय पर चोट पहुँचाई जाती है। जब वे भाषा का ही जनाज़ा निकालने पर तैयार हैं, तो हमें कोई ऐसी बात नहीं दिखाई देती, जिसके बल पर कह सकें कि वे साहित्य का हित करेंगे। राजनीतिज्ञ देश-कार्य में ही सिर खपाना श्रेष्ठ कार्य समझता है। वह राजनीति का व्रत ग्रहण करने के बाद साहित्यिक कटोरे में एक झंझी कौड़ी भी छोड़ना नियम-विरुद्ध समझने लगता है। आश्चर्य तो यह है कि भिन्न-भिन्न रूपों में खड़ा होकर अपने ही मार्ग की सार्वभौमिकता प्रमाणित करने में वह अपने को लगा देता है। उसके सामने साहित्य तो क्या, परमात्मा भी कुछ नहीं रह जाता। कितने ही राजनीतिज्ञ साहित्य-सदन से निकलकर 'तोताचश्म' बन गये। शायद उनके साहित्यिक गौरव की भूख ही समाप्त हो गई। श्री० वेंकटेशनारायण तिवारी, सेठ गोविन्ददासजी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रभृति राजनीति-विशारदों को देख, जहाँ एक आँख में हर्ष के आँसू आते हैं, वहाँ दूसरे में दुःख के। क्या साहित्य, अब उन श्रीमानों का कोई नहीं, या अब वे इस नीति के पोषक बन गये कि "बन गई खिचड़ी सलाम भाई चूल्हा"। क्या यह दुरवस्था नहीं? हमारा साहित्य इनसे बड़ी-बड़ी आशाएँ रखता था। अब अवश्य ही सारी आशाओं पर पानी फिरने की संभावना है। क्या साहित्य का केवल यही काम है कि वह राजनीतिक कौवे को पाले और बड़ा होने पर राजनीतिक ठेंगा दिखा दे?

केवल एक माह तक! अद्भुत अपूर्व पुस्तकें!!

१॥) में १० पुस्तकें

१ घड़ीसाज़ी—टूटी-फूटी बिगड़ी हुई घड़ियों की मरम्मत करना। मूल्य ।)
२ साबुनसाज़ी—अनेक प्रकार के साबुन देशी व विलायती तरीके से बनाना १)
३ हारमोनियम टी०—थोड़े दिनों में हारमोनियम पर राग-रागिनी बजाना ॥)
४ कोकशास्त्र—प्राचीन ८४ आसन चित्र स्त्री-पुरुषों के भेद यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र १)
५ वशीकरण यन्त्र—केवल दृष्टिमात्र से, चाहे जिसे वश में कर लो ॥)
६ गुप्तविद्या—मृतक मित्रों से मुलाक़ात व त्रिकाल का हाल जान लो ।)
७ आरोग्य-जीवन—नामर्दों को मर्द बनानेवाले नुस्ख़े गुप्तरोग-चिकित्सा ।)
८ इँगलिशटीचर—घर बैठे स्वयं अँगरेज़ी में लिखना-पढ़ना सीख लो १)
९ कालपरीक्षा—मौत का समाचार पहिले से ही मालूम कर लो ॥)
१० तिलिस्मी जादूगर—हाथ की सफ़ाई गंजफा आदि के जादू के खेल करना सीखो १)

उपरोक्त १० पुस्तकें केवल १ माह तक १॥) में देंगे डाकख़र्च ॥)

पता—सत्यसागर कार्यालय, नं० १४, अलीगढ़ सिटी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

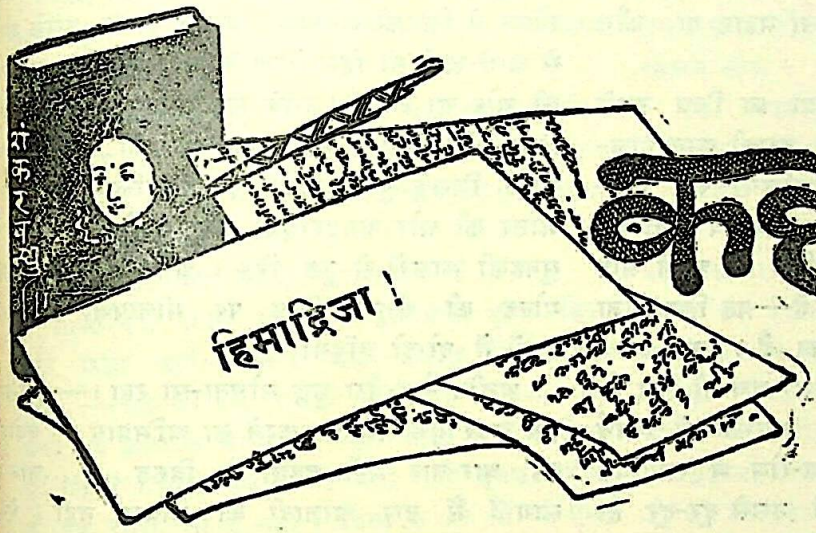

कङ्कजा

श्रीलक्ष्मीचन्द्र वाजपेयी
'चन्द्र'

[१]

'मरुस्थल-सा शुष्क जीवन नहीं चाहिए उसे'—

अतीन उपन्यास पढ़ते-पढ़ते एकाएक बड़बड़ा उठा। भाल की रेखाएँ तन गईं, धमनियों का प्रत्येक कण जैसे खौलने लगा हो। 'ईज़ी-चेयर' से उठकर वह अपने शयन-कक्ष में, जाकर कुछ सोचता हुआ-सा टहलने लगा।—"जहाँ परस्पर प्रेमालाप करने की ऐसी सुविधा हो, वहाँ भी वह शून्यता और एकान्तता का अनुभव करे? इससे बढ़कर उसकी अवहेलना और क्या हो सकती है?"

विवाह के पूर्व उसने कल्पना की थी—उसकी पत्नी पद्म-सी आकर्षक, तीर्थरेणु-सी पवित्र और चित्र-सी नित-नूतन-मनोरम होगी। उसके मदिर-कमल-नयनों में यौवन का पराग फूट रहा होगा, मुख पर धवल चन्द्रिका केलि-क्रीड़ा कर रही होगी तथा उसे देखकर उसके अन्तरंग मित्र उससे ईर्ष्या करेंगे, उसके भाग्य को सराहेंगे। और इन सब बातों के अतिरिक्त उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था—उसकी रानी, एकमात्र उसकी प्रशान्त आत्मा के एकान्त क्रोड़ में, प्रसन्नचित्त, सुख से रहेगी। स्पर्श करना तो दूर रहा, उसे देखने—दृष्टि क्षेप करने—की किसी की सामर्थ्य नहीं होगी। भले ही वह उसे चुराकर, छिपाकर रक्खे अथवा सौंदर्य-प्रतिमा मान उसकी आराधना ही करता रहे। वह उसी में अनुप्राणित रहेगा। किन्तु आज, जीवन के इस मनहूस क्षण में, उसे यह भी स्वीकार करना पड़ रहा है—उसकी कल्पना निरी मृग-तृष्णा थी—मृग-मरीचिका! उसका चिर अभिलषित स्वप्न कभी मूर्तित भी होगा, अब यही उसकी शंका का संकुल विषय बन गया है। उसका सोचना भी कैसा अर्थ-हीन था?

अतीन, प्रियदर्शन और स्वास्थ्य-सम्पन्न युवक, जब बी० ए० की डिग्री लेकर कॉलेज से निकला था, तब उसके रोम-रोम में नवल उत्साह की

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

त्रिवेणी, अबाध गति से, प्रवाहित थी। उसके लिए मरुस्थल भी नन्दन-वन-विनिन्दित उद्यान बन गया था। कैसी उमंग के साथ, कैसी आशा और अभिलाषा को लेकर उसने इस हिमाद्रिजा-जैसी नारी का आवाहन किया था; इस नारी को पाकर उसे संसार में और कुछ भी पाने को शेष नहीं रह गया था। उसके जीवन-प्रभात का वह चित्र कैसा शोभन था, कैसा शुचि-शुभ्र था और कैसा महान् था, कौन जान सकता है?

तब दूसरे ही क्षण हिमाद्रिजा का चित्र उसके समक्ष मयूर-नर्तन करने लगा। उसकी कमलनाल-सी अतिशय लचकीली कोमल उँगलियाँ जब क्षण-मात्र में, देखते ही देखते, उसका सजीव रेखाचित्र खींच देती हैं, तब कुछ समय के लिए वह अपने आप में ही उलझ जाता है। सोचता है—वह हिमाद्रिजा को अभी तक समझ नहीं सका है। वह उसके अध्ययन की वस्तु है। और क्या, सच तो यह है, अतीन उसे समझ भी सकेगा? समझने में समर्थ भी हो सकेगा? जो उसके रोम-रोम में समाविष्ट होकर भी, अनुप्राणित होकर भी उससे दूर-दूर है, उस नारी को आज तक अतीन समझ ही नहीं सका है, यह भी कम आश्चर्य का विषय नहीं है! आख़िर अतीन समझ लेता है—उसकी हिमाद्रिजा एक सफल चित्रकर्त्री है। चित्रकर्त्री नहीं, तितली—हाँ, तितली ही! इधर-उधर डोलते रहना उसके मन्थर पद-चालन की गति जो है। तब अतीन के हृदय में क्रोध के स्थान पर करुणा आ विराजी। सूख रहे होठों पर प्रसन्नता की एक मन्द-रेखा प्रस्फुटित होकर रह गई। क्रोध न जाने कहाँ प्रस्थान कर गया!

'किन्तु क्यों?' तरङ्ग-मालिकाएँ उत्थित-विनष्ट होने लगीं।

ज्ञान के समक्ष उसका—हिमाद्रिजा का—मदिर खिलखिल उसे बिलकुल नहीं भाता! और क्यों भाये? कैसे भाये; आवश्यकता? वह उसका सब कुछ होकर, कुछ भी नहीं हो सकता? कुछ भी नहीं हो सकेगा? होने के लायक़ नहीं? तभी उसकी ऐसी उपेक्षा—निरादर? क्योंकर बने वह हिमाद्रिजा की उपेक्षा का पात्र—ज्ञान की उपस्थिति में? वह इस व्यवहार को सहन करने में अपने आपको सर्वथा असमर्थ पा रहा है!

उसी समय—

एक चिर परिचित रोल्सरायस कार का 'इन्स्ट्रूमेण्टल हार्न' अतीन के कर्णरन्ध्रों को छूता हुआ उसकी क्लान्त-कृश आत्मा में जा अटका। ध्यान टूटा। मुड़कर देखा—एक सुन्दर कार उसके बँगले के बराण्डे से आ लगी है। शोफ़र ने खिड़की खोली। ज्ञान के साथ, उसके शरीर से लगी-लगी-सी हिमाद्रिजा अपने स्वामी के वातायन की ओर आ रही है। उसके ललाम ललाट पर सौभाग्य-सिन्दूर-बिन्दी है। शरीर पर खादी की एक ख़ुशनुमा साड़ी, जिसके सुन्दर बार्डर पर तितलियों की दौड़! भीतर की ओर अण्डरवियर और पुलोवर! कानों में सुनहली झालरों से युक्त रिङ्ग। अनामिका में रोल्ड-गोल्ड की अँगूठी, जिस पर मीनापच्ची का काम; हाथों में दो-दो चूड़ियाँ!

अतीन बैठा-बैठा कुछ सोचता-सा रहा।—आख़िर, इस क़दर मुझे परेशान करने का अभिप्राय? क्योंकर वह बार-बार मेरी इच्छा के विरुद्ध....?....ज्ञान के साथ? मैं इस आज़ादी का क़ायल नहीं; ऐसी हरकतों को बरदाश्त नहीं कर सकता!

वह इस समय अपने आपको अवश-अक्षम पा रहा है।

वे दोनों—ज्ञान और हिमाद्रिजा—निकट आ पहुँचे।

अतीन ने मित्र के लिए कुर्सी आगे बढ़ा दी। वह उसी के निकट बैठ गया। हिमाद्रिजा अन्दर चली गई।

ज्ञान, अतीन की ओर देख सोचता है, इसका जीवन कैसा पवित्र है! और फिर जीवन की गाड़ी को खींचने के लिए इसे मिली तो हिमाद्रिजा! कितना सुखी है यह, कितना शान्त है यह? जगत् का कोलाहल इसे पराभूत कैसे कर सकता है?

अतीन यद्यपि ज्ञान का घनिष्ठ मित्र और सहपाठी रह चुका है, सदैव ही खुलकर वार्तालाप करता आया है; उसके जीवन का कोई भी प्रकरण अतीन से छिपा नहीं; किन्तु न जाने क्यों आज वह ज्ञान से

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहले की भाँति आत्मीयता से नहीं बोलता। और बोलता भी है, तो प्रतीत होता है—बड़ी प्रयत्नशीलता से, एक-एक शब्द सँभाल-सँभालकर कहता है। मानों उसे शुष्कता महसूस हो रही हो।

ज्ञान धूम्रपान करने लगा। अतीन इसे घृणित कार्य समझता है।

ज्ञान 'मार्क' कर रहा है, आज मित्र का 'मूड' ठीक नहीं है। उसके मुँह पर अगम्य-गाम्भीर्य अवश्य वर्तमान है।

दस मिनट पश्चात् हिमाद्रिजा चाय लेकर लौटी।

इस सत्कार को स्वीकार कर ज्ञान अपने आपको....

चाय का टेबिल सभी के सामने था। ज्ञान ने देखा, चाय का रङ्ग गहरा बादामी है।

अतीन अतिशय गम्भीर हो गया है।

हिमाद्रिजा अपने स्वामी का मलिन, शुष्क चेहरा देख झल्ला उठी—मन ही मन—किन्तु बोली नहीं कुछ!—'यह भी एक अजीब मनुष्य हैं! बस, जब देखो तब क्रोध के आवेश में! इस जीवन से मैं आजिज़ आ गई हूँ। ऐसा रूठना भी क्या? मैं इनकी मोल ली हुई दासी तो हूँ नहीं। पिता के घर में भी ऐसा कठोर नियन्त्रण नहीं था। किसी से बातें करने में बस, छूत समा गई! वाह! स्वतन्त्रता के इस युग में, बीसवीं शताब्दी में भी औरतें गृह-जालों से जकड़ी रहेंगी? यह कदापि नहीं हो सकता! बहुत अत्याचार किया जा चुका है भारतीय महिलाओं के साथ!'—वह मन ही मन सोच रही थी।

और तब ज्ञान ने आत्मीयता के साथ कहा—'अती, चाय ठंडी हो रही है। पियो न!'

उसने चाय की ओर देखा, तब हिमाद्रिजा के लक़-दक़ वेश-विन्यास की ओर; बोला—'आप पीजिए न?'

'हाँ, हाँ, और तुम?' ज्ञान ने प्रश्न किया।

'मैं?—मैं नहीं पिऊँगा। चार रोज़ से ज़ुकाम है और कुछ 'टेम्परेचर' भी! भय है, चाय पीने से....' उत्तर मिला।

इस पर हिमाद्रिजा क्या प्रश्नोत्तर करे? बात क्या है, वह समझ गई। ये अक्सर ऐसा ही किया करते हैं। ज़ुकाम है तो चाय पीने की कोई ज़रूरत नहीं। वह दुबारा नहीं कहेगी—नहीं कहेगी! आग्रह करने की ज़रूरत?

इसी समय अतीन, उद्भ्रान्त हो, कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। मित्र की ओर देख, निष्प्रभ हो बोला—'अच्छा! आप बैठिए। इतमीनान से चाय पीजिए। मैं अभी-अभी आता हूँ। सिर में दर्द हो रहा है, ज़रा हवा में टहल लूँ।'—कहकर वह अपने 'गार्डन' में लगे हुए पलाश और मौलसिरी की सघन शीतल छाया में टहलने लगा।

पत्नी अन्दर ही अन्दर आग-बबूला हो रही थी।—इन्हें बनना भी ख़ूब आता है?

टहलते हुए वह सोचता जाता था—हिमाद्रिजा! संसार का अमित वैभव प्राप्त कर भी तुम सुखी नहीं रह सकतीं। माना, तुम एक सौभाग्यशालिनी नारी हो, किन्तु क्या किसी ताप-दग्ध, अनुताप-गलित पथिक को अपने रूप के हाट में डालकर इस प्रकार पथ-भ्रष्ट करोगी—अपमान करोगी? और यह भी माना, तुम सौंदर्य की सजीव प्रतिमा हो। तुम्हारा चरित्र दुग्धफेन-सा द्रष्टव्य, गंगाजल-सा पावन और धर्म-ग्रन्थ-सा महान् है, तो भी क्या यह उचित है कि भावोद्रेक में आकर तुम अपने स्वामी का इस प्रकार निरादर करो—उसकी इच्छा के विरुद्ध आचरण करो? उसे लगा, दिग्-दिगन्त के विराट् शून्य से वह आवृत्त है।

हिमाद्रिजा ने ज्ञान से कहा—'मि० ज्ञान, मुझे खेद है, कल मैं आपके प्रोग्राम में नहीं सम्मिलित हो सकती। आशा है, आप क्षमा करेंगे।'

हँसकर ज्ञान ने कहा—'ख़ैर, कोई बात नहीं। किन्तु आप लोगों के बग़ैर....'

और तब वह इस वाक्य को पूरा सुने बिना ही, कृतज्ञता-ज्ञापन कर घर के अन्दर हो रही।

ज्ञान अपनी कार लेकर वहाँ से घर लौट आया।

[२]

बैरिस्टर हेमन्तकुमार हाईकोर्ट जा चुके हैं। ये अतीन के पिता हैं। अतिशय स्नेहशीला बुआ रसोई-घर में कुछ भोजन पका रही है। देखा—अतीन, रसोई-घर के दरवाज़े पर खड़ा कुछ कहना चाहता है। उसके

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शरीर पर श्वेत-शुभ्र खादी का 'सूट' है। घुँघराले बालों से 'जवाकुसुम' की भीनी-भीनी सुगन्ध आ रही है। हाथ में एक छड़ी है। प्रतीत होता है, वह कहीं बाहर जाने को तैयार है।

हिमाद्रिजा रसोईघर से सटे अपने पृथक् वातायन में लेटी—स्थिरगति से—कुछ विचार-विनिमय कर रही है। अभी कोई पुस्तक पढ़ रही थी; किन्तु जब कल की घटना, उसके न चाहने पर भी, उसकी आँखों के सामने आ गई, तब उसका दिल उखड़ गया।

तभी उसका ध्यान बुआ की बातों की ओर आकर्षित हो गया। वह कह रही थी—'बेटा, कल रक्षाबन्धन है! आज शाम तक अवश्य लौट आना।'

'देखा जायगा बुआ, अगर समय मिला तो लौटने की अवश्य कोशिश करूँगा।'

'बात क्या है अती, जो तू इस तरह उखड़ा-उखड़ा-सा बोलता है। जो कुछ जी में आता है, उत्तर देता है?'

'बुआ, यहाँ रहते-रहते उकता गया हूँ।—वही बग़ीचा, वही कार और वही घर! कई बार सुरेश बुला चुका है लेकिन....। आज मैं चाहता हूँ—समय भी है—कि दस-पाँच रोज़ के लिए नन्दपुर ही होता आऊँ। देहाती हवा, लहलहाते हुए धान के हरे-हरे खेत और ग्रामीण बालिकाओं की भोली-भोली बातें मुझे बहुत अच्छी लगती हैं।'

'हेमा की बातों से अभी तक तेरा जी नहीं भरा है, अती? बड़ी वाचाल है! बोलती है, तो बोलती ही चलती है। लगता है; बस, अब उसे बोलते ही रहना है—कुछ सोचना नहीं!'

'उहुँ! वह बात उसमें नहीं आ सकती बुआ, जो ग्रामीण बालिकाओं की सारल्य मिश्रित वाणी में.... और कुछ ठहरकर बोला—'अच्छा बुआ, अब आज नहीं जाऊँगा। तुम्हारी आज्ञा का उल्लंघन ही क्यों किया जाय?'

बुआ हँस पड़ी। अतीन अपने 'रीडिङ्ग रूम' की ओर चला गया।

हिमाद्रिजा के मन में अनेक संकल्प-विकल्प उठ रहे थे—

उसका जीवन भी कितना विचित्र है? आज अपने आपको वह निरा अस्तित्वहीन पा रही है। उनके हृदय में उसके लिए तनिक भी स्थान नहीं! उसके जीवन का एक-एक क्षण उन्हीं की मुट्ठी में चला गया है? दाम्पत्य-जीवन का उसने जैसा चित्र अपने अन्दर खींचा था, क्या वह इन्द्रजाल के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है? उसकी हृद्-वीणा का एक-एक तार, क्रम-क्रम से, टुन्-टुन् कर झनझना उठा।

किन्तु नहीं, अब हिमाद्रिजा दस वर्ष की भोली बालिका नहीं है। अब वह अपने अखिल अर्थ में नारी है। और उसका स्वामी एकमात्र उसकी मृदुल आशा-वल्लरी! वह उससे पृथक् कैसे हो सकती है? वह उसकी इच्छा के विरुद्ध टहलने कैसे जा सकती है? यह तो उनकी उपेक्षा करना है न? अर्थात्, इसका मतलब यह हुआ, उसे उनकी अपेक्षा नहीं—यत्किञ्चित्!

तब वह अस्थिर हो उठी। उसे लगा, कहीं भी उसकी गति नहीं है।

[३]

रात्रि को प्रायः नौ बजे जब अतीन घूम-घामकर लौटा, तो पत्नी द्वारा भेजे गये नौकर से विदित हुआ—कल, रविवार को 'पिकनिक' में शामिल होना है। निमंत्रण आ चुका है, और जाना अवश्यम्भावी है।

उसने सब कुछ सुन, सिर हिला दिया। किसी प्रकार का उत्तर नहीं दिया। फलतः नौकर बाहर चला गया। हिमाद्रिजा उत्तर की प्रतीक्षा में थी, परन्तु जब एक दीर्घ समय तक नौकर न लौटा, तब वह समझ गई—वे नहीं जायँगे! वह पहले से ही जानती थी—वे हठी हैं; ऐन मौक़े पर ग़ायब हो जाते हैं। इसका मतलब यही न हुआ कि वे मुझे प्रतिहत करना चाहते हैं, मेरी खिल्ली उड़ाना चाहते हैं? तो मैं भी एक स्वतंत्र नारी हूँ। यदि उन्हें मेरी अपेक्षा नहीं तो मैं ही फिर क्योंकर उनकी चरण-रज चूमती फिरूँ? जैसा मन भाए, करें! और कल मेरा 'पिकनिक' में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सम्मिलित होना नितान्त आवश्यक है।....मि० ज्ञान की बहन ने, अविनाश ने मुझसे कितनी आरज़ू-मिन्नत की—'आप कल अवश्य-अवश्य पधारें!' मैं इनकी तरह....। मैं तो जाऊँगी और जाऊँगी।

और अतीन?

उसके कुछ अपने विचार हैं। यद्यपि वह एक प्रतिभाशाली ग्रेजुएट है, पश्चिमीय कला का अनन्य पुजारी; परन्तु पश्चिमीय सभ्यता—रीति-नीति—का क़ायल नहीं! 'स्त्री-स्वतन्त्रता' की आवाज़ को बुलन्द करना वह अपना नैतिक पतन समझता है। उसका कहना है—संस्कृति का सदैव आदान-प्रदान होता रहता है, लेकिन अन्धानुकरण तो भारतीयों की मानसिक दुर्बलता का ही लक्षण है।....इससे संसार मरुस्थल हो जायगा।.... स्त्रियों का अधिकार हिंसा और विध्वंस में नहीं, सृष्टि और पालन में है।

सोचता है—यदि कल 'पिकनिक' में हिमाद्रिजा जायगी तो वह नहीं जायगा। हाँ, और क्या, कल, वहाँ उसकी उपस्थिति नितान्त आवश्यक जो है।....ज्ञान कहेगा—'हाँ, हेमा कोई सुन्दर चीज़ सुनाइए न।' और बस, उसके कोकिल-कण्ठ से भैरवी का राग फूट पड़ेगा। ज्ञान सुनेगा, वह गायगी।....मेरी ज़रूरत?

और कल भी आया—

अतीन ने देखा—हेमा के नेत्र अरुण हैं, नीचे का भाग कुछ सूजा हुआ-सा प्रतीत होता है। मानों, सारी रात वह फूट-फूटकर रोई हो।—अतीन ने यह भी देखा—हेमा, उसके चित्र को बड़ी आत्मीयता के साथ अपने पुलओवर की पॉकेट में रक्खे हुए है। बार-बार, अपने वातायन के अन्दर, उसे निकाल-निकालकर देखती है।

और तब अतीन ने, अपने 'रीडिङ्ग-रूम' से, दरवाज़ों में लगे शीशों द्वारा देखा—इस बार हेमा उसके पुराने चित्र को, जिस पर धूल जम गई है, अपने रूमाल से साफ़ करती जाती है और फफक-फफककर रोती जाती है।

अतीन विस्मय और कौतूहल से भर गया। निर्वाक् हो सोचने लगा—वह जीतकर भी हार गया है। उसकी विजय होकर भी पराजय हो चुकी है।

अन्यमनस्कता के साथ हेमा ने अपने सामने लटक रही घड़ी की ओर देखा—'पिकनिक' का समय हो गया है। किन्तु क्या आज वह उनके बिना....?....नहीं जा सकती, नहीं जा सकती!

अतीन बच्चा नहीं है। संसार को समझता है। उसका हृदय दीन-दुखियों के करुण-क्रन्दन से द्रवीभूत हो उठता है। अपनी पत्नी को ऐसी असहायावस्था में पाकर उसका हृदय—कोमल हृदय—पसीज उठा।

खटपट करता उसके निकट जा पहुँचा।

स्वप्नातुर-सी उसने देखा—स्वामी उसके पाणि-पल्लव के निकट हैं।

सर्वग्राही लज्जा से उसका मुख नत हो गया। अतीन ने कहा—'सबके सामने मुझे अपमानित करने की क्या ज़रूरत थी, हेमा?'

टप्-टप्-टप्—हेमा के नेत्रों से अश्रु गिरने लगे। आँचल से आँसू दबाती वह बोली—'मैं हृदय से तुम्हारी पूजा करती हूँ।'

हेमा को अपने बाहुपाश में लेकर उसने कहा—'अच्छा, चलो 'पिकनिक' में मैं भी चलूँगा।....शोफ़र से कहो गाड़ी तैयार करे!'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

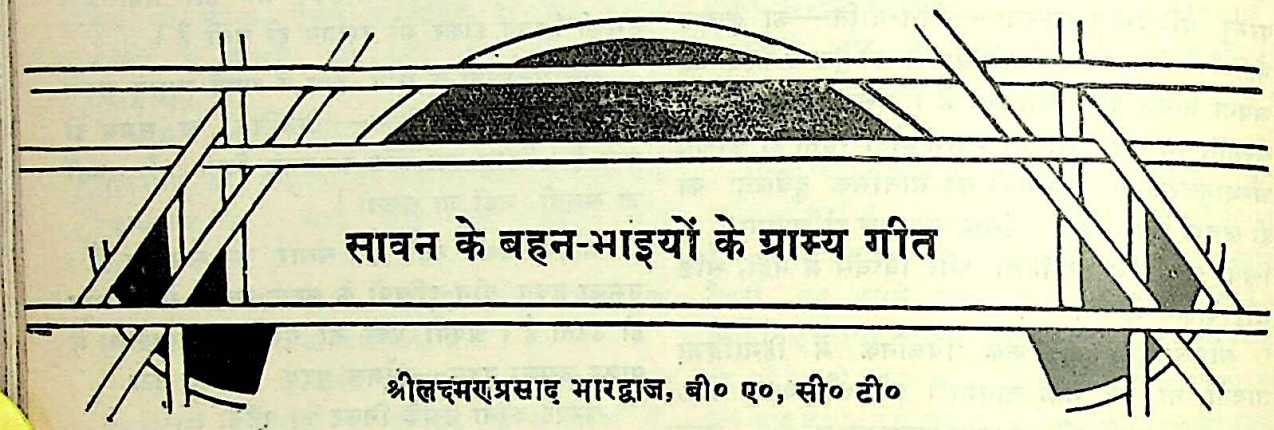

सावन के बहन-भाइयों के ग्राम्य गीत

श्रीलक्ष्मणप्रसाद भारद्वाज, बी० ए०, सी० टी०

परम सुहावन मनभावन सावन का महीना आते ही सारी प्रकृति संगीतमय हो जाती है। प्रकृति-देवी की सजावट भी इस अवसर पर सर्वथा अनुकूल ही होती है। नीचे धरा पर हरी मख़मली चादर बिछ जाती है और ऊपर आकाश में सितासित वितान तन जाता है। वन, उपवन, वृक्ष और लताएँ—सब नवल परिधान धारण किये परम परितुष्ट प्रतीत होते हैं। ऐसा विदित होता है मानो आततायिनी ग्रीष्म-ऋतु के विरुद्ध भीषण युद्ध करने में वर्षाऋतु को जो सफलता मिली है, उसी के उपलक्ष में विजयोत्सव-स्वरूप एक विशाल संगीत-सम्मेलन का उपक्रम किया जा रहा है। नर-नारी, पशु-पक्षी, सर - सरिता, नाला - निर्झर सभी इस सम्मेलन को सफल बनाने का प्रबल प्रयास कर रहे हैं। पाठक! आइए कुछ देर दत्तचित्त होकर इस सम्मेलन में पधारनेवाले गायनाचार्यों का गायन भी सुनें।

पेड़ पर बैठी कोयल 'कुहू-कुहू' की कूक लगा रही है और नदी-किनारे से पपीहे पीहू-पीहू के मधुर स्वर में निमंत्रित सज्जनों के गुणों की प्रशंसा करके बन्दीजनों के कार्य का कुशलता से सम्पादन कर रहे हैं। झिल्ली की झनकार से मजीरों की ध्वनि का आभास होता है और मोर की 'आओ' की पुकार मानो सबको इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए बुलाती है। जलाशयों में बोलते हुए दादुर सत्य ही—

"वेद पढ़ें जनु बटु-समुदाई"

की याद दिलाते हैं। कमल के पुष्पों पर गूँजते हुए भौंरे 'भेरि-सहनाई' का कार्य कर रहे हैं। उधर आकाश में सारसों के जोड़े उड़ते हुए अपने मधुर गान द्वारा संसार को इस विजयोत्सव की सूचना देते चले जाते हैं। सरिता कल-कल स्वर में गाती हुई अपने प्रियतम समुद्र को इस महान् सम्मेलन का संदेश सुनाने को वेग से बही जा रही है। लहलहाते ताल अपनी लोल लहरों द्वारा सम्मेलन के स्वर में स्वर मिला रहे हैं। नाला अपने प्रबल प्रवाह की ध्वनि से अपने गायन का परिचय दे रहा है और सुदूर हिमाचल के आँचल में स्थित निर्झर अपने मृदुल मर्मर गान द्वारा दर्शकों के मन को मोहित कर रहे हैं। गगन-मण्डल में घन-समूह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

का गर्जन सुनकर मोरों के नाच से नृत्य के अभाव की पूर्ति होती है और ऐसा मालूम होता है मानो विजयोल्लास में नगाड़े बज रहे हों। देवतागण भी बूँदों की झड़ी के रूप में अपना गायन सुना देते हैं और सुरलोक के गन्धर्व इन्द्रधनुष का पुल बनाकर इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए पृथ्वी पर उतरने की तैयारी कर रहे हैं। सर-सर करके बहनेवाली पुरवैया पेड़ों की पत्तियों और डालों को अपने गान का साधन बना रही है।

और नर-नारी? वे ही इस सुअवसर को क्यों जाने दें। प्रकृति के इस विशाल संगीत-भवन के निवासी होकर उनसे इस सुयोग की उपेक्षा कैसे की जा सकती है? घर-घर और बाग़-बाग़ में झूला पड़ा है, जहाँ दस-दस, बीस-बीस, हमजोलियों का समूह मिलकर परस्पर रँगरेलियाँ कर रहा है। कुछ झूल रही हैं, कुछ गा रही हैं, और कुछ परस्पर विविध विषयों की चर्चा कर रही हैं। संगीत, वाद्य तथा गायन से प्रत्येक घर, गली, मुहल्ला प्रतिध्वनित हो रहा है। कहीं कुछ हो रहा है, कहीं कुछ; पर है सर्वत्र आनन्द का साम्राज्य। हर्ष के इस अपार सागर में आबाल वृद्ध-वनिता सभी स्नान कर रहे हैं और प्रफुल्लित हैं।

पाठक! क्या आप पशु-पक्षियों के इस कुंज से निकलकर मेरे साथ संयुक्त-प्रान्त के पश्चिमी ज़िलों के एक ग्राम की ओर चलने का कष्ट उठायेंगे?

× × ×

गाँव के निकट की एक बग़ीची में झूला पड़ा है। यहाँ कुछ बालिकाएँ झूल रही हैं। मन्दगति से पुरवैया बह रही है। कभी-कभी हल्की फुहारें आकर उनका चीर भिगो जाती हैं। ग्राम की—नगर के विषैले वातावरण से दूर रहनेवाली—ये बालिकाएँ कोमल स्वर में क्या गाती हैं? सुनिए—

नन्हीं-नन्हीं बुँदियाँ मेहा बरसे, यह पानी कहाँ जाय जी।
आधा पानी नदी-किनारे, आधे में बीरन न्हाय जी॥
बीरन छोटे बहू बड़ी, कोई बड़े घरों की बेटी जी।
पहनने को बिछुआ माँगे, घूँघरुन की जोड़ी जी॥

कैसे विशुद्ध भाव हैं! कितनी भोली कल्पना है!! मेघ के जल के विषय में कहती हैं—'आधा पानी नदी-किनारे, आधे में बीरन न्हाय जी।' अर्थात्, आधा पानी तो बहकर नदी में चला जाता है और आधे में मेरा भाई न्हाता है। मेघ का जल किन-किन मार्गों में होकर कहाँ-कहाँ जाता है, इसका उन बेचारियों को क्या ज्ञान? व्यर्थ ही इधर-उधर की लगाकर ज्ञानी होने का दावा भी नहीं किया। जितना समझती थीं उतना ही अकृत्रिम रूप से कह डाला। तीसरी पंक्ति में 'बहू' (भावी) को बड़ी बताकर उस पर एक व्यंग्योक्ति भी कसी है, पर आगे चलकर "बड़े घरों की बेटी" बताकर उसका मन रख दिया है। ननँद-भावज में ऐसी चुहलबाज़ी हुआ ही करती है। आगे बहन भाई का वर्णन करती हुई गाती है—

चढ़ने को ले दूँ नीला-सा घोड़ा, हाथ में तीर-कमान जी।
आधी दुनिया थर-थर काँपे, भैया मुग़ल-पठान जी॥

इस देश में, विशेषकर हिन्दू-जाति में, बहनों के हृदय में भाइयों के लिए अगाध स्वाभाविक स्नेह है। इन पंक्तियों में भाई को कैसा बढ़ावा दिया है। बहन कहती है—"मैं अपने भाई को सवारी के लिए नीला घोड़ा ले दूँगी और उसके हाथ में तीर-कमान पकड़ा दूँगी। तब मेरा भाई मुग़ल-पठान-जैसी शानवाला बन जायगा, जिसके भय के मारे आधी दुनिया थर-थर काँपेगी।" अन्तिम पंक्ति में मुग़लों और पठानों के शासन का आतंक भी दर्शाया गया है। अबोध कन्याएँ ही तो ठहरीं।

गीत समाप्त होने पर कन्याओं की मण्डली थोड़ी देर के लिए ठहर गई और लगा यह निर्णय होने कि अगला गीत कौन गायेगी। कुछ देर तक इसी प्रसंग को लेकर तू-तू-मैं-मैं होती रहती है। निदान एक जनी गा उठती है—

आयो-आयो घटा घनघोर लहरिया भीजेगो।
भीजे-भीजे सहर को लोग,
लहरिया भीजेगो॥ आयो-आयो घटा...
बीरन की टोपी में किशमिश री,
बहू बरनी के लम्बे-लम्बे केश,
लहरिया भीजेगो॥ आयो-आयो घटा...

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पहली पंक्ति में साहित्यिक सौन्दर्य है और दूसरी में 'सहर' (नगर) के निवासी का लहरिया भीजने का वर्णन है। यह कदाचित् इसलिए कि ग्रामीण पुरुष आतप-वर्षा को सहने के अभ्यस्त हो जाते हैं और नागरिक को गर्मी का लगना या मेंह में भीग जाना कष्टकर होता है। इसके सिवा ग्रामीणों के कपड़े भी इतने सोफ़ियाने नहीं होते कि उनके भीग जाने की चिन्ता करनी पड़े। नगरवालों पर कैसा व्यंग्य है। 'बीरन' के स्थान में प्रत्येक बालिका बारी-बारी से अपने भाई का नाम लेती जाती है और सब उसके स्वर में स्वर मिलाकर उसका साथ देती हैं। इस प्रकार छोटा-सा गीत भी काफ़ी देर में समाप्त होता है। एक अगला गीत सुनिए—

बाग में पपीहा बोले मैं जानूँ कोई आवे है।
आवे है मेरा.....सा बीरा क्या-क्या सौदा लावे है॥
आप कूँ घोड़ा बाप कूँ घोड़ा माँ कूँ तीहर लावे है।
बहन की चुँदरी भल आये तो सौ-सौ नाम धरावे है॥
बाग में पपीहा बोले मैं जानूँ कोई आवे है॥
आवे है मेरा.....

भाई परदेश में नौकरी के लिए गया हुआ है। श्रावण के आगमन पर उसके घर आने की आशा की जाती है। बहन को भाई के दर्शन की बड़ी उत्कण्ठा है। अधीरतापूर्वक भाई के आने की प्रतीक्षा कर रही है। बाग़ में पपीहा जो बोला, बहन समझ गई कि उसका भाई आ गया। भाई परदेश से क्या-क्या लाया है? यह जानने की सबके मन में लगी हुई है। प्यारी बहन भी भाई की कमाई में से एक चुँदरी की आशा रखती है। दुर्भाग्यवश भाई घर चलते समय बहन के लिए चुँदरी लेना भूल गया। अपने लिए घोड़ा लाया, पिता के लिए घोड़ा लाया और मा के लिए तीहर आ गई; पर बहन बेचारी के लिए कुछ नहीं। बहन की आशाओं पर पानी फिर गया, लगी नाम रखने। निराश बहन और करती ही क्या? कैसा मीठा ताना है! कैसी खिसियाई हुई शिकायत!!

सावन के महीने में सभी बहनें अपने भाई के साथ पीहर जाना चाहती हैं। जिन बहनों के भाई होते हैं, वे अपने साथ कुछ न कुछ सौग़ात या मिठाई आदि लेकर इस महीने के शुरू में ही अपनी-अपनी बहनों की ससुराल पहुँच जाते हैं। उधर घर पर उसकी मा, भावी, बहन, बाबा, पिता, दादी आदि सब उससे मिलने को बड़े लालायित रहते हैं। नीचे के गीत में भाई की नासमझी के कारण बहन और मा के हृदय पर क्या गुज़री, उसी का वर्णन है—

सावन में कुस-काँस जामे
भादों दुबिया हरेरि।
माया निठूरिन नींद कैसे आवे
बीरन को न पठइया रे॥१॥

बीरन आये कुछऊ न लाये
सासु-ननँद घर रूठि रे।
द्यौर-जिठानी ताने मारे
बीरन चले घर आपने॥२॥

उँचवा चढ़ि-चढ़ि मातु निहारें
मोरि धीया कित्ती दूर रे।
रूठे पुतवा भूखे हैं घोड़वा
छूँछे हैं चरिउ कहार रे॥३॥

आओ न पुतवा मेरे बैठो अँगनवा
कहेउ बहन का हाल रे।
का कहों माता तेरे आगे
कहत-सुनत दुख लागि रे॥४॥

पूत हो तुम भयउ कपूते
रोवत बहन आय छाँड़ि रे।
जो मेरी बिटिया के बाबुल होते
हँसत-खेलत लइ अवतें रे॥५॥

ससुराल में बहन चिंता करती है—
सावन में कुश-काँस जम आये। भादों में दूब हरी-हरी हो आई। निर्दयी मा को कैसे नींद आती है? जो उसने भाई को नहीं भेजा॥ १॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाई आये तो, पर लाये कुछ नहीं। सास और ननँद घर में रूठ गईं। बैरिन जेठानी व्यंग बोली, जिससे मेरा भाई नाराज़ होकर घर लौट गया ॥ २ ॥

ऊँचे स्थान पर खड़ी हो-होकर मा देखती है कि मेरी बेटी कितनी दूर है ? पर पुत्र तो रूठा हुआ आया है, उसका घोड़ा भी भूखा है और चारों कहार ख़ाली हैं ॥ ३ ॥

मा बेटे को बुलाकर कहती है—बेटा ! आओ, आँगन में बैठो और अपनी बहन का हाल बतलाओ न ? बेटा कहता है—मा ! तुम्हारे आगे क्या कहूँ ? बहन का हाल कहते-सुनते दुख लगता है ॥ ४ ॥

मा कहती है—ऐ पुत्र ! तुम कपूत हो, जो रोती हुई बहन को छोड़ आये। जो मेरी बेटी के पिता होते, तो उसे हँसते-खेलते घर ले आते ॥ ५ ॥

भाई बहन को विदा कराने के लिए उसकी ससुराल गया। चूक यह हो गई कि साथ में बहन की ससुरालवालों के लिए मिठाई वग़ैरह कुछ न ले गया। सावन में घेवर ले जाने का रिवाज बहुत जगह पाया जाता है। जब बहन की सास-ननँद-जेठानी और द्यौरानी आदि को यह बात मालूम हुई तो सब मुँह फुलाने लगीं और उसके भाई को ताने मारने लगीं। भाई होगा नौजवान जोशीला, शीघ्र ही ग़ुस्सा ले आया और बहन की ससुरालवालों से लड़-झगड़कर—कहा-सुनी करके—बहन को बिना साथ लिये हुए ही—वापस चला आया। मा, जो बेटी की प्रतीक्षा में आँखें बिछाये बैठी थी, बड़ी दुखी हुई और अपने हृदय के भावों को आख़िर व्यक्त कर ही बैठी—

पूत हो तुम भयउ कपूते
रोवत बहन आये छाँड़ि रे।
जो मेरी बिटिया के बाबुल होते
हँसत-खेलत लइ अवतें रे ॥

× × ×

जब भाई किसी बहन के यहाँ पहुँचता है, तो उसके आनन्द की सीमा नहीं रहती। उसका पैर ज़मीन पर नहीं टिकता। आज मेरा भाई आया है, चाहती है कहाँ धरूँ, कहाँ उठाऊँ। हाथों से छाया करना चाहती है। घर में जो बढ़िया से बढ़िया खाद्य पदार्थ हों, उन्हें बनाकर भाई के आगे परोसना चाहती है। एक बहन अपनी सास से प्रश्न करती है—

सासु मेरी सात जने री असवार,
इनमें हमारे बीरा कौन-से ?

सात सवार चले आ रहे हैं। बहन सास से पूछती है कि हमारे भाई इनमें से कौन-से हैं ? सास उत्तर देती है—

बहू मेरी, औरन सुई पीली पाग,
तुम्हरे बिरन पै दुपट्टा रेशमी।

ऐ मेरी प्यारी बहू, औरों पर तो पीले रंग की पगड़ियाँ हैं ; पर तुम्हारे भाई के सिर पर रेशमी दुपट्टा बँधा है।

यहाँ पाठकों के हृदय में एक प्रश्न का होना स्वाभाविक है। भाई को सात सवारों में आता देखकर बहन ने ही उसको क्यों नहीं पहचान लिया ? सास से पूछने की क्या ज़रूरत थी। मेरे एक मित्र ने भी, जिनको मैंने यह गाना पढ़कर सुनाया था, यही शंका की थी। यदि थोड़ा भी गहराई के साथ देखा जाय, तो इसका उत्तर स्वयं ही मिल जाता है। बहन तो अपने भाई में औरों से कुछ विशेषता दिखलाना चाहती है। स्वयं देखकर पहचान लेने में यह कब सम्भव था ? इसीलिए उसने सास से प्रश्न किया। ख़ैर, जो हो ! अब हम पुनः अपने गीत पर आते हैं। बहन फिर अपनी सास से पूछती है—

सासु मेरी कहा तो करूँगी महमानि,
बीरा तो आये पाहुने।

भाई की मेहमानी के लिए क्या-क्या खाद्य पदार्थ—पूरी पकवान—तैयार किये जायँ। इस प्रश्न का उत्तर अपनी रुचि के विरुद्ध मिलने पर बहन सास से निवेदन करती है—

सासु मेरी राँधूँगी रस भर खीर,
दही तो जमाऊँ भूरी भेंस की।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सास घर-घर में ऐसी ही हुआ करती हैं। कह दिया होगा कि यही साधारण दाल-रोटी बना डालो। भाई आया है, तो विशेष तैयारी की क्या ज़रूरत है? बहन ने सास की इच्छा की अवहेलना की और अपना मत दावत के विषय में प्रकट कर ही डाला—

राँधूँगी रस भर खीर दही तो जमाऊँ भूरी भैंस की।

रस को खीर राँधूँगी और भूरी भैंस का दही जमाकर भाई को खिलाऊँगी।

बहन के यहाँ कुछ दिन ठहरकर भाई अपने घर को विदा हुआ। मार्ग में—

बीरा मेरे पहुँचे हैं कोस पचास,
दुपटा तो उरझ्यो वैरी झार में।

पचास कोस चले जाने पर भाई का दुपट्टा—वही रेशमवाला—झाड़ में उलझ गया। बहन को इसका पता लग गया। पचास कोस से? हाँ, इसी का नाम तो बहन-भाई का स्नेह है। प्रेम में दूरी तो रहती ही नहीं। बहन संदेशा भेजती है—

बीरा मेरे उल्टे पलट घर आउ,
दुपटा तो ले दूँगी रेशमी।

देखा, बहन भाई को वापस बुलाती है। कहती है, नया रेशमी दुपट्टा ले दूँगी।

यह है बहन का हृदय! हिन्दू-समाज और हिन्दू-सभ्यता में पली बहन के हृदयस्थल में भाई के लिए प्रेम, श्रद्धा तथा सम्मान! धन्य!!

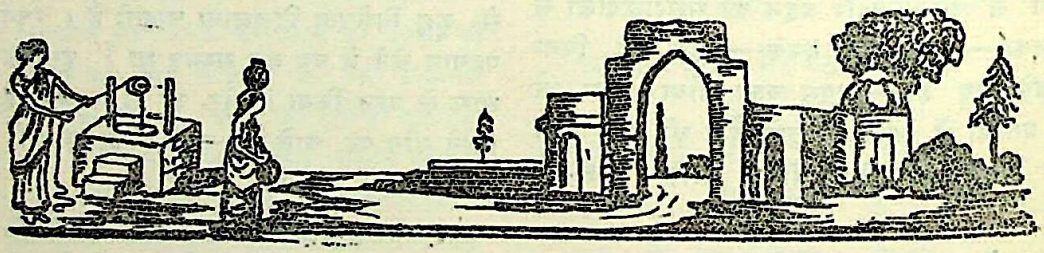

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पढ़ी-लिखी स्त्रियों के बढ़ते हुए उत्तरदायित्व

श्रीमती रजनी

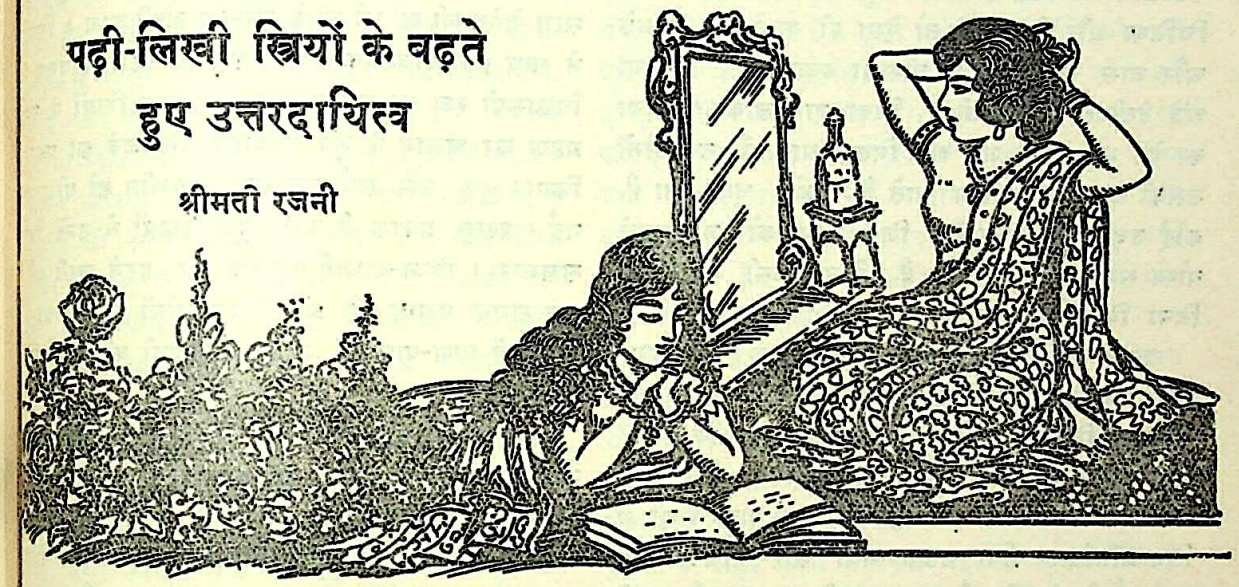

प्रकृति ने स्त्री और पुरुष को दो अलग-अलग साँचों में ढाला है। एक में बल और साहस का आधिक्य है, दूसरे में शील और सुकुमारता का। यही कारण है कि सृष्टि के आदि काल से ही दोनों के कार्य-क्षेत्र पृथक्-पृथक् रहे हैं। मैं उस समय की चर्चा नहीं करती, जब स्त्री और पुरुष प्रकृति की गोद में दो स्वतंत्र जीवों की भाँति जीवन-यापन करते थे। मेरा अभिप्राय उस समय से है, जब दोनों एक दूसरे को जान चुके थे, जब दोनों पारस्परिक सहयोग की अनिवार्यता का अनुभव कर चुके थे और जब दोनों अपने सम्मिलित जीवन को सुखी बनाने के लिए अपने-अपने स्वभाव, शारीरिक गठन और सामर्थ्य के अनुसार अपना-अपना उत्तरदायित्व भी बाँट चुके थे। तब से अब तक के इतिहास को उलट जाइए, आपको इस बात के पद-पद पर प्रमाण मिलेगा कि एक ही नौका के दो यात्रिक होते हुए भी स्त्री और पुरुष की प्रकृति और क्रिया सदैव भिन्न-भिन्न रही है।

सबसे पहले पुरातन काल को लीजिए; जब स्त्री-पुरुष ने एक दूसरे की आवश्यकता समझकर साथ-साथ रहना आरम्भ किया। स्वभावतः उस समय पुरुष ने अपने कन्धों पर उन कठोर कार्यों का भार वहन किया, जिन्हें उसने अपने शरीर की बलिष्ठता और पौरुष को देखते हुए अपने योग्य समझा; उदाहरणार्थ भयानक पशुओं का आखेट करना, ऊँचे-ऊँचे वृक्षों से जंगली फल तोड़ना इत्यादि। इसी प्रकार स्त्रियों को उनके शरीर के अनुकूल कार्य सौंपे गये। मध्यकाल में भी शत्रुओं से लड़ना, कठिन तपस्या करके ब्रह्म की खोज करना, सुदूर देशों में धन की खोज में जाना इत्यादि जैसे कार्यों को पुरुषों ने अपनाया और स्त्रियों पर सन्तान का पालन-पोषण, गृहस्थी की देखभाल तथा अतिथियों का सत्कार प्रभृति कार्यों का उत्तरदायित्व डाला। अब से पचास वर्ष पूर्व भी स्त्री-पुरुष के जीवन का क्षेत्र बिलकुल अलग-अलग था। पुरुष शिक्षा-प्राप्त करके नौकरी करते थे, ज़मींदारी का काम देखते थे, दूकान पर बैठते थे या यजमानों के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

घर जाकर श्लोक पढ़ते और उनका विवाहादि कराते थे। स्त्रियाँ घर में बर्तन साफ़ करती थीं, रोटी पकाती थीं, कपड़े सीती थीं और बच्चों तथा पति इत्यादि की सेवा-शुश्रूषा करती थीं। दोनों के जीवन सरलतापूर्वक कट जाते थे, वैसे ही जैसे पशु-पक्षियों के कटते हैं। चिड़िया और चिड़ा भी तो ऐसा ही करते हैं। तिनके और घास ला-लाकर वे घोंसला बनाते हैं; चिड़िया अंडे देती है, उन्हें सेती है, चिड़ा दाने लाकर चिड़िया का पेट भरता है। जब बच्चा निकल आता है, तब दोनों उसकी देखभाल में लग जाते हैं; कोई चुगा देता है, कोई उड़ना सिखाता है; जिस काम को जो अपने योग्य समझता है, करता है, बिना किसी झगड़े के, बिना किसी शिकायत के।

परन्तु ऐसा जीवन कब तक चल सकता है? परम-पिता परमेश्वर ने मनुष्य नामधारी दो पैर के पशु को मस्तिष्क दिया है और यह मस्तिष्क उसे सदैव प्रगति और उन्नति की ओर प्रेरित करता रहता है। अतः मानसिक विकास के साथ-साथ मनुष्य पशु-श्रेणी से दिन-प्रतिदिन ऊँचा उठता गया और आज उसकी एक अपनी संस्कृति है, एक अपनी सभ्यता है; यही सभ्यता मनुष्य की सबसे बड़ी सफलता है और यही उसे विश्व के अन्य सभी जीव-जन्तुओं से पृथक् रखती है।

सभ्यता का प्रकाश सबसे पहले पुरुष-जीवन में फैला अथवा नारी-जीवन में, यह कहना कठिन है। फिर भी पुरुषों की जीवन-चर्या को दृष्टि में रखते हुए यह कहना पड़ता है कि ज्ञान का विस्तार सबसे पहले और सबसे अधिक पुरुषों में ही हुआ। यही स्वाभाविक भी था। जहाँ स्त्रियों का जीवन प्रारम्भ से ही गार्हस्थ्य की सीमा में परिमित रहा है, वहाँ पुरुषों के उत्तरदायित्व उन्हें निरन्तर बाह्य जगत् के सम्पर्क में लाते रहे हैं और इसी सम्पर्क के कारण उनके मस्तिष्क, बुद्धि और विचार का शीघ्रतर विकास होता रहा है।

परन्तु स्त्री तो पुरुष की सहचरी है। इसलिए यह सम्भव नहीं था कि जब पुरुष बढ़ते हुए प्रकाश की ओर तीव्र गति से अग्रसर हो रहे थे, तो स्त्रियाँ पूर्ववत् अज्ञान के अंधकार में पड़ी-पड़ी सड़ती रहतीं। सच पूछिए तो पुरुष स्वयं अपनी सहचरी को इतना पीछे रखकर सुखी अथवा संतुष्ट नहीं रह सकते थे। इसलिए वे जितना ही दिन पर दिन शिक्षा और संस्कृति पर अधिकार प्राप्त करते गये, उतनी ही उनकी यह लालसा भी तीव्रतर होती गई कि उनके जीवन के सुख-दुःख में साथ देनेवाली स्त्री भी उनके समकक्ष होती जाय। स्त्रियों ने स्वयं इस आवश्यकता का अनुभव किया। पुरुष ने विद्यारूपी रज्जु का सहारा बढ़ाया। कुछ स्त्रियों ने उसे ग्रहण कर अज्ञान के कूप से बाहर निकलने का प्रयास किया; कुछ उसे सर्प समझकर भयभीत हो पीछे हट गईं। परन्तु प्रकाश में आई हुई स्त्रियों ने उन्हें फिर ललकारा। विघ्न-बाधाएँ एक-एक कर हटने लगीं और कुछ समय पश्चात् स्त्री और पुरुष दोनों ही शिक्षा के मंदिर में पास-पास खड़े होकर सरस्वती की आराधना करने लगे।

इस प्रकार स्त्री-जीवन में विद्याध्ययन का एक नया कार्य प्रारम्भ हुआ। जब तक भारतवर्ष में आर्य-संस्कृति का प्रभुत्व रहा, तब तक इस नये कार्य की समस्या अधिक जटिल न हो पाई। विद्याध्ययन स्त्रियों के लिए एक बहुमूल्य अलंकार समझा जाता रहा और उसकी प्राप्ति के लिए केवल वे ही महिलाएँ प्रयत्नशील होती रहीं, जिनके हृदय में सरस्वती के प्रति अतिशय प्रीति होती थी। परन्तु जैसे-जैसे भारतवर्ष में पाश्चात्य सभ्यता की लहर फैलती गई, वैसे-वैसे स्त्री और पुरुषों की लालसाओं का क्षेत्र विस्तृत होता गया। विशेषता साधारणता का रूप ग्रहण करती गई। जो वस्तु पहले केवल गिने-चुने व्यक्तियों के सौभाग्य की सामग्री समझी जाती थी, उसे सभी लिप्सा की दृष्टि से देखने लगे। उधर नई सभ्यता ने शिक्षा की प्रणाली को भी जटिल बना दिया। पहले संस्कृत, ज्योतिष और गणित इत्यादि में निपुणता प्राप्त कर लेना पूर्ण विद्वत्ता का प्रमाण माना जाता था। अब तो स्त्रियों को पुरुषों की भाँति प्रारम्भिक कक्षा से ही अँगरेज़ी, हिन्दी, उर्दू, गणित, इतिहास, भूगोल इत्यादि अनेकानेक विषयों का अध्ययन प्रारम्भ करना पड़ता है। अब लड़कियों और लड़कों की शिक्षा में कुछ अन्तर ही नहीं रह गया है। वही दिन के दस बजे से चार बजे तक का स्कूल;

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से पहले या बाद में प्राइवेट अध्यापक से पढ़ना और
-बचे समय में स्कूल तथा मास्टर के बताये हुए
र्स को पूरा करना। वर्ष के १०-१०½ महीने इसी
र बीत जाते हैं। प्रथम और द्वितीय श्रेणी प्राप्त
ने की लगन में लड़कियाँ अपने स्वास्थ्य तक की
न्ता छोड़ देती हैं, घर - गृहस्थी के छोटे-छोटे कामों
ओर से ध्यान हटा लेती हैं, यहाँ तक कि एन्ट्रेंस,
ए० ए० या बी० ए० पास कहलाने की धुन में उन्हें
ार की किसी भी और वस्तु में रुचि नहीं रह जाती।

परन्तु सोचना तो यह है कि क्या पढ़-लिख जाने से
ी-जाति की समस्या हल हो जाती है? क्या शिक्षा
प्त कर लेने से स्त्रियों की कमियाँ पूरी हो जाती हैं?
नके उत्तरदायित्व समाप्त हो जाते हैं? सम्भव है, शिक्षा
स्त्रियों की कुछ आत्म-सन्तुष्टि होती हो। सम्भव है,
हें यह सोच-सोचकर हर्ष होता हो कि सुशिक्षिता
ने के कारण कोई उन्हें घर की दासी अथवा पैर की
ती न समझ सकेगा। सम्भव है, इससे उनके माता-
ता को उनके लिए सुयोग्य वर ढूँढने में कुछ सहायता
लती हो। लेकिन सच तो यह है कि शिक्षित बन
ने से ही स्त्रियों का जीवन सुखपूर्ण नहीं बन सकता,
इससे उनके उत्तरदायित्वों का ही अन्त हो सकता।
तो यहाँ तक कहने की धृष्टता करूँगी कि जिस
क्षा को कन्याएँ इतने परिश्रम और स्नेह के साथ
प्त करती हैं, वही आगे चलकर उनके जीवन के सुख
र शान्ति में बाधक बनती है। जब तक विवाह नहीं
ोता, तब तक तो चारों ओर उत्साह ही उत्साह दिखाई
ेता है। किन्तु विवाह होते ही लड़कियों के सामने
क विषम समस्या आ खड़ी होती है। ब्याह से पहले
ो वे अपना सारा समय लिखने-पढ़ने में बिताती हैं।
न्हें रोटी सेंकने, शाक-भाजी बनाने, या ऐसे-ऐसे
ूसरे कार्यों के लिए समय ही कब मिलता है? बहुतों
ो तो आटा गूँधना और नमक-मिर्च का अन्दाज़ा तक
रना नहीं आता। पुरुषों की ही भाँति उन्हें भी कुर्सी
र बैठे-बैठे या पलँग पर लेटे-लेटे नौकरों पर हुक्म
लाने की आदत होती है। मा-बाप के घर तो ये
ादतें निभ भी जाती हैं। लेकिन पति के घर जाने
र ये बातें कब तक चल सकती हैं? महारज के
बीमार पड़ने या छुट्टी जाने पर खाना तो बनाना
ही पड़ता है। ऐसी दशा में या तो पड़ोसिनों के हाथ-
पैर जोड़ने पड़ते हैं या स्वयं कच्ची-पक्की रोटियाँ सेंकनी
पड़ती हैं। कभी उँगली जल जाती है, कभी दाल की
डेगची उलट जाती है, कभी आँखों में जलन और सिर
में दर्द होने लगता है। इसी प्रकार छोटे-छोटे और भी
ऐसे कार्य करने पड़ते हैं, जिन्हें करने की न तो उनमें
इच्छा होती है, न बुद्धि ही। सभ्यता के नाम पर
पतिदेव कुछ कहते तो नहीं, परन्तु भीतर ही भीतर
उन्हें अपनी सहचरी की अयोग्यता पर क्षोभ होने
लगता है। धीरे-धीरे उनके हृदय में असंतोष की लपटें
उठने लगती हैं, जो अन्ततः भीतर ही भीतर उन्हें और
उनकी सहचरी दोनों को ख़ाक कर डालती हैं।

स्त्रियाँ इस संकट से अपरिचित हैं, सो बात
नहीं। इस प्रगतिशील संसार में पिछड़े रहना शोक
और संताप का कारण होता है। इसीलिए जब
स्त्रियों ने देखा कि केवल शिक्षा प्राप्त कर लेने से ही
उनका जीवन सुख-पूर्ण नहीं बन सकता और वे उन
पुरुषों को संतुष्ट करने में सफल नहीं हो सकतीं, जिनके
साथ उन्हें अपना अधिकांश जीवन बिताना है और
जो दिन पर दिन नवीनता की ओर आकर्षित होते
रहते हैं, तो उन्होंने शिक्षा के साथ-साथ गार्हस्थ्य
सम्बन्धी आवश्यक बातें सीखनी प्रारम्भ कीं। उन्होंने
खाना बनाना सीखा, सीना-पिरोना सीखा और बाल-
बच्चों की देखभाल करना भी सीखा। इस बार उन्हें
आशा हुई कि उनमें जिन-जिन गुणों की कमी थी,
उनके पूर्ण हो जाने से उनका जीवन हर तरह से सुखी
बन जायगा। निस्संदेह उनकी आशा की बहुत कुछ
पूर्ति भी हुई। पति के घर पहुँचकर वे वहाँ के
सम्बन्धियों को अधिक संतुष्ट कर सकीं। समय-
कुसमय वे खाना बनाने लगीं, चाहे अँग्रेज़ी स्टोव पर
ही सही। आवश्यकता पड़ने पर वे अपने या बच्चों के
दो-चार जम्पर और फ़्राक भी सीने लगीं। बालकों
की देखभाल करने में भी उन्हें अधिक कठिनाई न
पड़ी। इस बार उन्हें किसी ने "पढ़ी-लिखी मेम" के
नाम से विभूषित करने का साहस न किया।

इतने पर भी स्त्रियों की समस्याओं का अन्त न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हुआ। द्रौपदी के चीर की भाँति आज भी उनके उत्तर-दायित्व बढ़ते ही जा रहे हैं। समय बड़ी तीव्र गति से अग्रसर हो रहा है। विदेशीय सभ्यता के साथ-साथ भारतवर्ष में दिन-रात बदलते रहनेवाले फ़ैशनों की एक बाढ़-सी आ गई है। गाना, बजाना, नाचना, एम्ब्रॉयडरी और क्रूशिया का काम करना, नये-नये फ़ैंसी डिज़ाइनों का कपड़ा सीना, भाँति-भाँति के पंजाबी, बंगाली, अँग्रेज़ी खाने बनाना, प्रत्येक कार्य में एक नई बात, एक नई विभिन्नता आ रही है। पुरुषों का दृष्टिकोण अब और भी अधिक विस्तीर्ण होता जा रहा है। अमेरिका, इँगलैंड और फ्रांस की रोचक घटनाएँ उनकी लालसाओं की लगाम को ढीला कर रही हैं, उनका मस्तिष्क बड़े-बड़े स्वप्नों से भरने लगा है। वे अपनी पत्नियों को सोलहों कलाओं में प्रवीण देखना चाहते हैं। स्त्रियों को भी उनका साथ देना पड़ रहा है। फलतः उनके उत्तरदायित्वों की सीमा अपरिमित होती जा रही है।

लिखने का यह अभिप्राय नहीं है कि पहले की स्त्रियों के उत्तरदायित्व अल्प या नगण्य थे। फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि तब की स्त्रियों का जीवन इतना जटिल और समस्यापूर्ण नहीं था, जितना कि आजकल की स्त्रियों का है और होता जा रहा है। वैसे तो शिक्षा और ललित कलाएँ सदैव से स्त्रीत्व की विशेष शोभाएँ मानी जाती रही हैं। परन्तु पहले अहितकर स्पर्धा का बोलबाला नहीं था। स्त्रियों को इस बात की चिन्ता नहीं थी कि वे किसी न किसी प्रकार पुरुष के समानान्तर खड़ी हो सकें। तब वे गृहिणियाँ थीं और गृहिणियों के रूप में ही पुरुष उनका समुचित आदर करते थे। सरल और सात्विक भोजन बनाना, प्रेम तथा पवित्रता के साथ स्वच्छ चमचमाते हुए बर्तनों में परिवार के व्यक्तियों को जिमाना, समय-समय पर दो-चार कपड़े सी लेना, बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना और गार्हस्थ्य-सम्बन्धी अन्य छोटे-छोटे कार्य करना, यही उनकी दिनचर्या थी। इतना करते हुए यदि वे अपने कपड़ों पर बेलबूटे निकाल लेती थीं; कुछ पुस्तकों का अध्ययन कर लेती थीं; संगीत तथा अन्य ललित कलाओं का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं, तो फिर उनकी प्रशंसा का ठिकाना ही न रहता था। आज-कल की स्त्रियों को भी गृहस्थी के वे ही कार्य करने पड़ते हैं, कपड़े सीने पड़ते हैं, संगीत इत्यादि का भी ज्ञान प्राप्त करना पड़ता है। परन्तु तब में और अब में महान् अन्तर है। पहले की कार्य-प्रणाली सरल थी, अब की नितान्त जटिल है। अब भोजन बनेगा तो दाल के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न रुचि और स्वाद की तरकारियाँ बनेंगी। रोटियाँ सेंकी जायँगी तो काग़ज़ की तरह पतली, एक-एक आदमी बीस-बीस खा जाय। सवेरे और सन्ध्या के लिए जलपान बनेगा तो कभी नमकीन, कभी पकौड़ियाँ, कभी आलू की टिकियाँ तैयार होंगी। इसी प्रकार जब सिलाई होगी तो अप-टू-डेट फ़ैशन की—कहीं झालर, कहीं बेल, कहीं कटाव, कहीं घुमाव। मेज़ों के लिए मेज़पोश काढ़े जायँगे, कुर्सियों के लिए गद्दियाँ बनाई जायँगी, दरवाज़ों के लिए पर्दे तैयार किये जायँगे—कोई नई नफ़ासत लिये, कोई ख़ास ख़ूबी लिये। इनके अलावा एफ़० ए०, बी० ए० तक की शिक्षा होनी चाहिए, मित्रों के साथ अँगरेज़ी में फ़र्राटे के साथ बोलने की क्षमता होनी चाहिए, चाय बनाने और आगन्तुकों का नये ढंग से सत्कार करने का कौशल होना चाहिए, हारमोनियम, तबला, सितार, वायलिन-जैसे वाद्यों के बजाने की योग्यता होनी चाहिए, नाचना-गाना सभी कुछ आना चाहिए। सारांश यह है कि पहले की स्त्रियाँ केवल गृहिणियाँ रहकर अपने जीवन को सुखी बना सकती थीं, परन्तु अब की स्त्रियों को पुरुषों की भाँति उच्च डिग्रियाँ प्राप्त करनी पड़ती हैं, सिनेमा-ऐक्ट्रेसों की भाँति नाचना-गाना पड़ता है, मेमों की तरह भाँति-भाँति के नये-नये एम्ब्रॉयडरी इत्यादि के काम करने पड़ते हैं। रोटी पकाना, कपड़ा सीना और बाल-बच्चों का पालन-पोषण करना तो उनका जन्म-सिद्ध अधिकार है ही। समाज की सेवा में, देश के उत्थान में और साहित्य इत्यादि के निर्माण में भी यदि वे हाथ बटा सकें, तो फिर पूछना ही क्या? हो तो सब कुछ। कौन नहीं चाहता कि भारतवर्ष की एक-एक कन्या विश्व की सारी विशेषताओं से परिपूर्ण न हो। किसी भी माता-पिता के हृदय से पूछिए। उनकी आन्तरिक इच्छा यही होगी कि उनकी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

असीम गुणों की खान बनकर अपना और अपने
का जीवन सुखी बना सके तथा साथ ही साथ
स-ससुर, जनक-जननी और सभी श्रेष्ठ जनों का सिर
ा उठा सके। प्रत्येक पति भी अपनी पत्नी को इसी
ार गुणवती देखना चाहता है और, सच कहिए तो
ं प्रत्येक स्त्री अपने को सभी कलाओं से अलंकृत
ना चाहती है।

परन्तु एक उद्भ्रांत व्यक्ति की भाँति फ़ैशन के
ंडर में चारों तरफ़ उड़ते हुए काग़ज़ों के पीछे-पीछे
ाना बुद्धिमानी का काम नहीं है। शिक्षा का तो
भिप्राय ही यह है कि वह मनुष्य की बिखरी हुई
वसिक शक्तियों को एकत्रित करके उन्हें एक विशेष
य पर केन्द्रित करे। यदि अनपढ़ या अर्द्धशिक्षित
क्ति अपनी चित्तवृत्ति को निश्चित मार्ग पर न डाल
े तो उसका अपराध क्षम्य है। परन्तु यदि पढ़े-
ले और सभ्य स्त्री-पुरुष अपनी क्षमता का समुचित
ोग न करें तो यह हमारा दुर्भाग्य नहीं तो और
या? Jack of all trades and master of none
ुरुष तो सब कामों में, लेकिन निपुणता एक में भी
ों) वाली कहावत चरितार्थ करने से कोई लाभ
ीं। इससे समाज और देश की सामूहिक शक्ति का
ास होता है। सुशिक्षित स्त्रियों और पुरुषों को
हिए कि वे अपनी आर्थिक और सामाजिक स्थिति
ो ध्यान में रखते हुए अपनी आकांक्षाओं और
रूरतों पर उचित प्रतिबन्ध लगावें। सभी सुशिक्षित
क्तियों के पास इतना धन नहीं होता कि वे घर के
भी साधारण कार्यों के लिए योग्य से योग्य नौकर
ख सकें और अपनी स्त्रियों को स्वतंत्र रूप से कला
ी पुजारिन बनने की अनुमति दे सकें। वास्तविकता
यह है कि लड़कियों को छोटी अवस्था से ही
र-गृहस्थी के कामों में हाथ बटाना पड़ता है। माता-
ता या भाई-बहन की बीमारी के समय, उत्सव
और विवाहादि के अवसर पर, जब देखो तभी भोजन
ाना पड़ता है, सेवा-शुश्रूषा करनी पड़ती है, दवा-
रू की चिन्ता रखनी पड़ती है और आवश्यकता
ने पर चौका-बर्तन तथा झाड़-बुहारी तक लगानी
ी जाती है। ऐसा ही जीवन उन्हें विवाह के बाद
भी बिताना पड़ता है। उस समय तो उनका पारिवारिक क्षेत्र और भी विस्तृत हो जाता है और उसी के अनुसार उनकी चिन्ताएँ तथा ज़िम्मेदारियाँ भी बढ़ जाती हैं। पति और सास-ससुर की सेवा में तो उन्हें माता-पिता और भाई-बहन की तुलना में कहीं अधिक सतर्क होना पड़ता है। दो-चार बाल-बच्चों के हो जाने पर तो उनका जीवन अत्यंत भारग्रस्त हो ही जाता है।

ऐसी दशा में यदि लड़कियाँ एक आवश्यक सीमा तक शिक्षा प्राप्त कर सकें और घर-गृहस्थी के साधारण कार्यों के अतिरिक्त (जो वे अनायास सीख ही जाती हैं) थोड़ी-बहुत ललित कलाओं में भी दक्षता प्राप्त कर लें, तो यही उनके लिए बड़े श्रेय की बात है। इसलिए नवयुवकों को चाहिए कि वे अपनी जीवन-सहचरी का निर्वाचन करते समय इन सभी परिस्थितियों को पूरी तरह से ध्यान में रक्खें और ऐसा करने के बाद ही जो कुछ उत्तम से उत्तम कार्य किये जा सकते हों, करें और करावें। स्त्रियों को स्वयं अपने जीवन के बहुमुखी उत्तरदायित्वों को दृष्टि में रखना चाहिए, न कि अपरिमित लालसाओं के पीछे व्यर्थ ही अपना समय नष्ट करना चाहिए।

मैं यह नहीं कहती कि स्त्रियाँ अच्छे-अच्छे गुणों को न सीखें। जितनी भी अधिक से अधिक कलाओं में वे निपुणता प्राप्त कर सकें, उतना ही अच्छा। परन्तु प्रत्येक स्त्री के जीवन का एक निश्चित ध्येय होना चाहिए, उसके सामने अपने जीवन का एक पूर्ण कार्य-क्रम होना चाहिए। घर-गृहस्थी की छोटी-छोटी बातों का सीखना तो प्रत्येक स्त्री के लिए अनिवार्य है ही। इनके बिना तो जीवन की गाड़ी चल ही नहीं सकती। लेकिन जहाँ तक अन्य विशेषताओं का प्रश्न है, उनके पीछे अललटप नहीं भागना चाहिए। प्राकृतिक प्रवृत्ति और झुकाव को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है। जिन्हें देश-सेवा और समाजोद्धार के कार्यों में रुचि है, वे अपने को उधर ही एकाग्र करें। इसी प्रकार जो साहित्य या चित्रकारी या शिल्प इत्यादि को अपने जीवन का ध्येय बनाना चाहती हैं, वे उन्हें ही हृदय से अपनावें। यदि समय हो, तो शेष अन्य गुण भी सहायतामात्र के लिए सीखे जा सकते हैं। नवयुवकों को भी चाहिए कि वे स्त्रियों की शक्ति का ह्रास न

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होने दें, निश्चित आवश्यकताओं और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए वे उनके लिए कुछ विशेष लक्ष्य निर्णीत कर दें और उन्हें प्राप्त करने में स्त्रियों को सच्ची लगन तथा तत्परता से सहयोग दें। ऐसा करने से स्त्रियों के तीव्र गति से बढ़ते हुए बहुमुखी उत्तर-दायित्वों का बोझ कम हो जायगा, वे अपनी प्रवृत्ति, आवश्यकता तथा स्थिति के अनुसार चुने हुए विशेष गुणों की प्राप्ति में अपना तन-मन लगा सकेंगी और उनमें दक्षता प्राप्त कर देश की सामूहिक शक्ति को पुष्ट बना सकेंगी। निर्लक्ष्य अनिश्चित जीवन स्वयं एक भार है, उसके रहते हुए दूसरे उत्तरदायित्व सम्हाले ही कैसे जा सकते हैं?

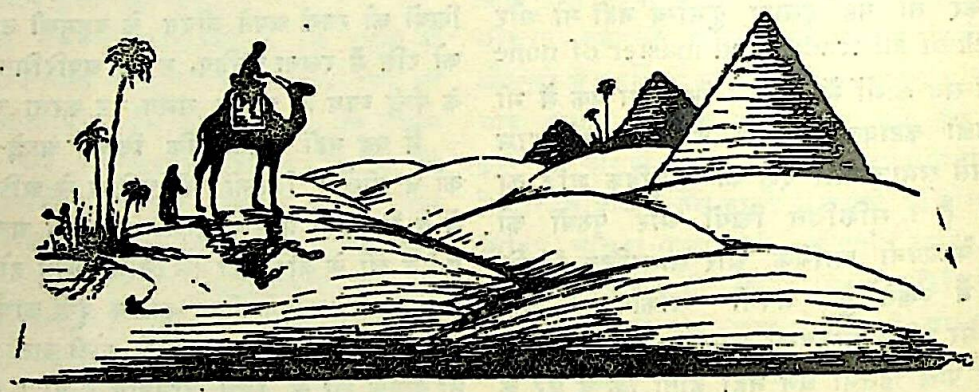

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जादूगर

कुमार बुद्धिभद्र

[कुमार बुद्धिभद्र बच्चों के अपने कवि हैं। उनकी भावनाएँ, उनकी सूझ-बूझ, उनका भोलापन सब कुछ वह ठीक उसी तरह व्यक्त कर देने में काफ़ी तौर पर सफल हुए हैं। यहाँ पर उनकी 'जादूगर' कविता प्रकाशित की जा रही है जिसे, आशा है, किशोर बहुत पसन्द करेंगे।—संपादक]

यदि मैं जादूगर हो जाता।
एक रात में जन्म-भूमि आज़ाद बनाता।

वीर धीर हो, ज्ञानी बनकर,
धनुष-बाण ले रथ पर चढ़कर,
लड़कर घोर लड़ाई दुश्मन मार भगाता।

रोग-दोख सारे हर लेता,
बुद्धि सभी को छिन में देता,
सुख के बादल बन घर-घर पानी बरसाता।

चाँदी के बन सोने के घर,
उड़नखटोले में मोती भर,
उड़ता, दुनिया में भर-भर मूठी बिखराता।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुद्धि का चमत्कार

मिसेज़ सी० रानी भटनागर

बम्बई के किसी दियासलाई के कारख़ाने में एक क्लार्क की जगह ख़ाली हुई। उस जगह के लिए विज्ञापन निकलवाया गया। बस, अब क्या था, अर्ज़ियों पर अर्ज़ियाँ आने लगीं और अनेक सिफ़ारिशें होने लगीं। इन अर्ज़ियों और सिफ़ारिशों से मैनेजर ऊब गया और दरवाज़े पर एक नोटिस लगवा दिया कि कम से कम तनख़्वाह चाहनेवाले को नौकरी मिल सकेगी। फिर क्या था, लगा आपस में मुक़ाबला होने। कोई ४० के लिए प्रार्थना करता, तो कोई ३० ही पर राज़ी बैठा है और कोई-कोई तो १५ और २० लेने को राज़ी हो गये।

मदनमोहनसरन माथुर बी० ए० में फ़ेल हो गये थे और घर से भागकर बम्बई चले गये। वह वहाँ रोज़ी की तलाश में परेशान-हाल गली-गली की ख़ाक छानते फिर रहे थे कि एकाएक उनकी निगाह दियासलाई के कारख़ाने के फाटक के ऊपर लगे नोटिस पर पड़ी। देखते ही वह खिल उठे और कुछ देर सोचने के बाद चट एक अर्ज़ी लिख डाली। तनख़्वाह में उन्होंने पहले दिन दियासलाई की एक तीली और दूसरे दिन पहले दिन की दूनी तीलियाँ, तीसरे दिन दूसरे दिन की दुगनी, चौथे दिन तीसरे दिन की दुगनी। इसी प्रकार .....तीसवें दिन उनतीसवें दिन की दुगनी तीलियाँ लेने के लिए प्रार्थना की, और यही काफ़ी समझा।

मैनेजर ने अर्ज़ी पढ़ी और ख़ूब हँसा। उसने अपने मन में कहा—मूर्ख तो अच्छा फँसा है। बम्बई-जैसे बड़े शहर में रहकर और रात-दिन कारख़ाने में काम करके वह लेगा केवल एक तीली। चट उसने घंटी बजाई और स्टेनो को बुलाकर मिस्टर माथुर के नाम एक माह की नौकरी के वास्ते स्वीकृति-पत्र लिखवा दिया।

माथुर बाबू मैनेजर के पत्र को पाकर फूले न समाये और मैनेजर की मूर्खता पर ख़ूब हँसे। फ़ौरन् कारख़ाने पहुँचे और काम शुरू कर दिया। दिनभर ख़ून-पसीना एक किया और शाम को मिला क्या? केवल एक तीली।

दूसरे दिन माथुर साहब ख़ूब शान से दफ़्तर पहुँचे और दिनभर काम करने के बाद शाम को दो तीली लेकर घर लौट आये। कारख़ाने के और दूसरे लोग इनको तनख़्वाह

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में दियासलाई लेते देखकर ख़ूब मज़ाक़ बनाया करते। लेकिन इतने पर भी यह बेचारे पिछले दिन की दुगनी दियासलाइयाँ लेकर चुपचाप घर लौट जाते थे।

बारह दिन तक तो वेतन बाँटनेवाले को कुछ मालूम न पड़ा। जब तेरहवें दिन मिस्टर माथुर को वेतन दिया गया तो ख़ज़ानची की आँखें खुलीं और मैनेजर साहब से सब हाल बताया। मैनेजर सुनकर घबरा गया और हिसाब लगाया तो मालूम हुआ कि केवल तीसवें ही दिन का वेतन २६८४३५४५६ तीलियाँ होती हैं यानी जिनका मूल्य लगभग ८७३८१ रुपये होते हैं। मैनेजर साहब का सिर चक्कर खाने लगा और कहने लगे कि जल्दबाज़ी का नतीजा हमेशा ख़राब होता है और माथुर साहब की बुद्धि की सराहना करने लगे। उन्होंने माथुर साहब को फ़ौरन् बुलाया और किसी प्रकार कारख़ाने का आधा मालिक बनने को राज़ी कर लिया।

जो माथुर साहब पर पहले हँसते थे, वही अब उनको झुक-झुककर सलाम करने लगे, क्योंकि उन्होंने अक़्ल से काम लिया और आधे मिल के मालिक बन बैठे।

× × ×

देखो, हँसना मत

श्रीराजेन्द्रमोहन भटनागर

एक छोटा बच्चा अपनी मा से कहता है, अम्मा हमाले घल में एक थोता था भइया आनेवाला है।

मा—बेटा, तुम्हें कैसे मालूम ?

बच्चा—अम्मा उथ बाल दब तुम बीमाल थीं तो तान्ती आई औल इथ बाल पिता दी बीमाल हैं तो भइया के आने की बाली है। है न माता दी।

× × ×

एक अँग्रेज़ अपने मित्र से—कहो भई तुम्हारे मकान में कौन किरायेदार आया ?

मित्र—एक जर्मन।

अँग्रेज़—चुप रहो, नहीं तो हिटलर मकान पर भी क़ब्ज़ा कर लेगा।

× × ×

एक दिन बब्बन के पिताजी ने बब्बन से कहा—बेटा, तुम बराबर ३ साल से फ़ेल हो रहे हो। इस बार तो मन लगाकर पढ़ो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और पास हो जाओ ! पास हो जाने पर मैं तुमको एक बढ़िया साइकिल और हाथ-घड़ी मोल ले दूँगा।

बब्बन—मैं रिश्वत लेकर हरगिज़ पास न होऊँगा। अगर पन्तजी को मालूम हो गया तो मेरी और आपकी खैर नहीं।

× × ×

एक प्रोफ़ेसर साहब रेल में सफ़र कर रहे थे।

टिकट-कलक्टर—बाबूजी आपका टिकट।

प्रोफ़ेसर साहब ने अपनी जेबें बहुत तलाश कीं, लेकिन टिकट न मिला।

टिकट-कलक्टर—इतमीनान से तलाश कर लीजिए। मैं अगले स्टेशन पर ले लूँगा।

प्रोफ़ेसर साहब—टिकट खो जाने का इतना सोच नहीं, मगर अब मुझे यह भी याद नहीं कि मुझे उतरना कहाँ है।

× × ×

मास्टर (लड़के से)—सोहन, जवाब दो कि आज भी तुमने सबक़ याद क्यों नहीं किया।

(लड़का चुप)

मास्टर (क्रोध में)—तुम फिर भी चुप हो ? जवाब फ़ौरन् दो।

सोहन—मास्टर साहब, कल आप ही ने तो मना किया था कि अपने से बड़ों को जवाब नहीं देते हैं।

× × ×

मास्टर (लड़के से)—अच्छा बताओ ओस क्या है।

लड़का—मास्टर साहब पृथ्वी बेचारी बड़ी तेज़ी से सूरज का चक्कर लगाने के लिए घूमती है। ज़ोर से दौड़ लगाने के कारण उसके माथे पर पसीना आने लगता है और टप-टप गिरने लगता है। उसको हम ओस कहते हैं।

× × ×

राजाजी विलायत से डाक्टरी पास करके घर वापस आये। एक दिन उन्होंने अपनी मूर्ख बीवी से चेस्टर की तह करने को कहा। बीवी बेचारी चेस्टर की तह करना क्या जाने ? वह लगी उलटी-सुलटी तह करने। इतने ही में पति महाशय ने झुँझलाकर कहा, बस रहने दो। देखो, तह इस प्रकार होती है और यह कहकर वह तह करने लगे। उनकी स्त्री ने मुसकराते हुए कहा, मालूम होता है कि विलायत में पढ़ाई के साथ-साथ कपड़ों की तह करना और धोना भी सिखाया जाता है।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

एक अपढ़ मनुष्य की शादी एक पढ़ी-लिखी औरत के साथ हो गई। उस बेचारी को यह मालूम न था कि उसका पति अपढ़ है। उसने अपने पति के पास एक प्रेम-पत्र भेजा। वह पत्र को पाकर बहुत खुश हुआ और भागता हुआ अपने मित्र के पास गया और कहने लगा, भइया, यह कागद हमरे दादी के हियाँ ते आवा है, तनिक कान बन्द करके बाँचि देउ जौने यहिमा अगर गारी लिखी होय तौ तुम का न सुनि पड़ै।

ईश्वर और स्त्री

जिस प्रकार ईश्वर के प्रत्येक कार्य से ईश्वर की शान और महत्ता प्रकट होती है, उसी प्रकार स्त्री के प्रत्येक कार्य से उसकी शान और महत्ता प्रकट होनी चाहिए।

यदि आप अपनी पत्नी में यह गुण, यह ज्ञान और महत्ता पैदा करना चाहते हैं, तो उसे 'पत्नी-पथ-प्रदर्शक' पढ़ने को दें। अवश्य ही आप दोनों प्रसन्न होंगे। मूल्य हिन्दी, उर्दू, गुरुमुखी ।।।)

सब पुस्तक-विक्रेता और रेलवे बुकस्टाल बेचते हैं।

लेखक: कविराज हरनामदास बी. ए. लाहौर।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विनोद-वार्ता

मनोरञ्जन मुकर्जी

जुलाई के 'विशाल भारत' में श्रीहरिशंकर शर्मा ने नये कवियों की शिकायत की है। "जो उठता है, वही दार्शनिकता का दुपट्टा ओढ़ अध्यात्मवाद-वारिधि में डुबकी लगाकर पाठकों को परमात्मा तक पहुँचाने की चेष्टा करता है, या उसके हृदय में प्रियतमा अथवा प्रियतम से मिलने की आग भड़का देता है।" सचमुच जब महात्मा गांधी ब्रह्मचर्य का उपदेश देते-देते बुढ़ा गये हों, तब भी प्रियतम या प्रियतमा से मिलने की आग भड़काते चले जाना अक्षम्य है। और उस पर 'विशाल भारत' के संपादकों को देखिए कि उसी अंक में छाप रहे हैं—

"मैं अपने मन का राजा हूँ,
तुम हो अपने मन की रानी।"

जले पर नमक छिड़कने के लिए कवि श्रीनिरंकारदेव स्पष्ट कर देते हैं—

"मैं तुम्हें भुजा में भर लूँ तब
बन जाना तुम राधा मानी।"

ख़ैर, यह भी ग़नीमत थी। लेकिन आपका दुःसाहस तो देखिए कि आप चाहते हैं कि यह गोप्य बात—

"छोटी - सी एक कहानी बन
पहुँचे ग्रह-पतियों के घर-घर।"

शर्माजी को चाहिए कि संपादकों के नाम एक विरोध-पत्र भेजें। आख़िर मिलन की आग भड़काने का कुछ उत्तरदायित्व इन संपादकों पर भी है या नहीं? दिलजले कवि को और जलाने से क्या फ़ायदा?

× × ×

प्रेस के भूत भी कमाल करते हैं। ऐसा कमाल कि आप समझें कि ग़लती सरासर लेखक की ही है। शर्माजी के लेख से, ऊपर दिये गये, उद्धरण में आपने देखा, कैसा 'उनके हृदय में' की जगह 'उसके हृदय में' छाप दिया है। इस सर्वनाम की संज्ञा पहले आया हुआ 'पाठकों' शब्द है, लेकिन मिलन की आग भड़कने से जैसे पाठक सब जल गये हों और केवल लेखक प्रियतम या प्रियतमा-रूप में रह गया हो। अगर श्रीहरिशंकर शर्मा विशाल भारत के संपादक होते तो उनके लेखों में कम से कम ऐसी अशुद्धियाँ तो न छपतीं। अब वह अकेले बेचारे पत्र के वर्तमान संपादकों से कौन-कौन सी शिकायत करें।

× × ×

वास्तव में शर्माजी की भाषा के हम क़ायल हैं; उनसे इस शैली में बाज़ी मारने का नहीं, तो कम से कम बराबरी करने का, दावा सिर्फ़ दो आदमी कर सकते थे, बाणभट्ट जो संस्कृत में लिखते थे और पं० चंडीप्रसाद हृदयेश जो समझते थे कि वह हिंदी में लिखते हैं! ऐसी सरस, सुबोध, सानुप्रास, पदविन्यास-वाली भाषा आपको अन्यत्र कहाँ सुलभ होगी। देखिए, "जिस देश में दरिद्रता-दानवी अपने दारुण दौरात्म्य द्वारा असंख्य नर - संहार कर रही हो, जहाँ पराधीनता-पिशाचिनी ने अपना पाप-पूर्ण प्रपंच-पाश प्रसार कर सारे देश में भीरु-भावना भर दी हो, जहाँ सदाचार और विशुद्धाचरण के दुर्दमनीय दुर्भिक्ष के कारण त्राहि-त्राहि मच रही हो, जहाँ सामाजिक दूषणों की दावाग्नि में नर-नारी पकड़-पकड़कर निर्दयतापूर्वक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

झाँके जा रहे हों....” मतलब यह कि वहाँ मिलन की आग भड़कानेवाले कवियों की खोपड़ी पर पं० हरिशंकर शर्मा का शाप वज्र बनकर क्यों न टूटे ? अफ़सोस कि दरिद्रता-दानवी और पराधीनता-पिशाचिनी में हमारे कवि-गण कोई आकर्षण नहीं देखते, जब कि इन देवियों के स्मरणमात्र से शर्माजी का गद्य तक पद्यमय हो गया है !

× × ×

यह संतोष की बात है कि यद्यपि शर्माजी अपने ढंग का गद्य लिखने में एकता हैं, फिर भी उनके पद-चिह्नों का किसी न किसी रूप में अनुसरण करनेवालों की कमी नहीं है। हिंदी गीत लिखनेवालों को उपदेश देते हुए अध्यापक रामखेलावन लिखते हैं---“हिंदी के कुछ कवि गीति-काव्य में पदार्थनिष्ठता और अधिकरण-निष्ठता का भेद मिटाते जा रहे हैं। ऐसी दशा में गीति-काव्य मनुष्य की रागात्मिका वृत्ति में व्यक्त प्रभाव नहीं डालता। इस अवस्था में आकर दोनों प्रकार के गीति-काव्य अपनी सीमाएँ त्यागकर सन्धि-स्थल में प्रवेश करते हैं, फिर तो इनका भेद करना आसान नहीं होता। इस विचार-धारा के प्रवेश से गीति-काव्य प्रगतिशील नहीं हो सकेगा।” मानिए चाहे न मानिए, रामखेलावनजी ने बनारस-युनिवर्सिटी में अवश्य शिक्षा पाई है, नहीं तो इस लेख में सौ बार रागात्मिका वृत्ति की पुनरावृत्ति हमें न मिलती। और, उसके साथ ‘संगीतात्मक परिक्षीणता’, ‘अन्तस्तालैक्यता’, ‘अन्तःक्षोभशीलता’ आदि सुन्दर सुमधुर प्रयोग हैं, जो पुकारकर यह कह रहे हैं कि हमारा जन्म सोमरस और गंगाजल के सम्पर्क से हुआ है। पाठकों को चाहिए कि इन नये आगन्तुकों से रागात्मक संबंध स्थापित करें।

× × ×

श्रीहरिशंकर शर्मा ने तो संपादकों को छोड़ दिया था, परन्तु रामखेलावनजी ने आधुनिक गीति-काव्य के लिए उन्हें भी उत्तरदायी ठहराया है। आप कहते हैं, “गीति-काव्य की विशेषताओं से अपरिचित लेखक शाब्दिक विडंबनाओं को गीति-काव्य की संज्ञा दे अनाप-शनाप बकते हैं और पत्र-पत्रिकाओं के संपादक वैसे साहित्य को प्रोत्साहन दे देते हैं।” हमारा नम्र निवेदन है कि गद्य-लेखकों के सम्बन्ध में भी यदि रामखेलावनजी संपादकों को इसी भाँति सचेत कर देते, तो पाठकों पर बड़ी ही कृपा होती !

× × ×

‘विशाल भारत’ के माननीय सम्पादक ‘टके-सेर भाजी और टके-सेर खाजा’ वाली कहावत को याद करते हुए फ़रमाते हैं कि यू० पी० सरकार सब पत्र-पत्रिकाओं का केवल तीन ही रुपया वार्षिक मूल्य देती है। हम भी मानते हैं, यह ज़्यादती है। कम से कम भैया ‘विशाल भारत’ को तो ‘टका’ श्रेणी में न रखते। कुछ तो उनका ख़याल रखना चाहिए था। एक बात और भी है, इस टिप्पणी को पढ़कर हमारी धारणा यही हुई कि भैया ‘विशाल भारत’ अभी नक़ू ही बने हैं, परन्तु यह जानकर हमें और भी दुःख हुआ कि भैयाजी ने भी थोड़ी ना-नू के बाद अपनी नाक तीन ही रुपये पर कटाई है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

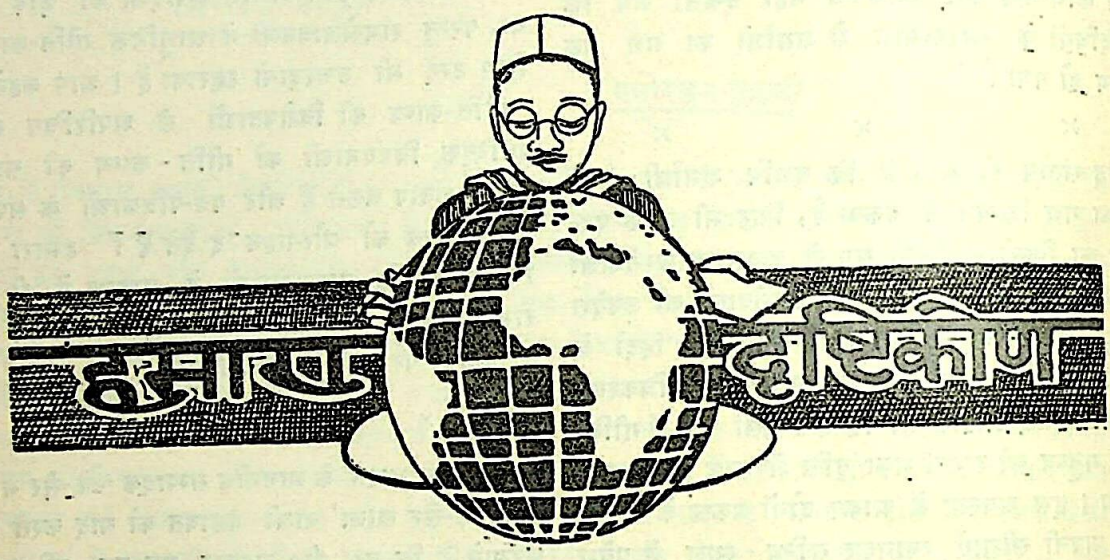

१—दुनिया किस ओर ?

भारतीय फ़ौजों को बाहर भेजने के विरोध में कांग्रेस-वर्किंग-कमिटी की वर्धा-मीटिंग में जो प्रस्ताव पास हुआ है, उससे जनता को शीघ्र ही आनेवाले एक राजनैतिक तूफ़ान का सामना करने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।

सेंट्रल लेजिस्लेटिव एसेम्बली की कांग्रेस-पार्टी को आगामी सेशन में शामिल न होने की आज्ञा मिली है। कांग्रेसी मिनिस्टरों को भी यह आदेश दिया गया है कि वे लोग मौक़ा आने पर इस्तीफ़ा देने के लिए तैयार रहें। 'हाई-कमाण्ड' के इस निश्चय को कोरी धमकी ही समझने का साहस हम नहीं कर सकते।

इतना विरोध होने पर भी फ़ौजें अभी तक बाहर भेजी जा रही हैं; यद्यपि कुछ इस क़िस्म का आश्वासन दिया गया था कि फ़ौजें अब बाहर नहीं भेजी जायँगी। वैसे तो भारत-सरकार यदि किसी समय अपना मत बदल दे, तो हमें ज़रा भी आश्चर्य न होगा, क्योंकि वह भी तो उसी चेम्बरलेन की सरकार के इशारे पर ही काम करती है, जिसकी संधि की पॉलिसी समय-समय पर अपना रंग-रूप बदल दिया करती है, परन्तु उसका दृष्टिकोण हमेशा एक ही रहता है। कभी हम यह देखते हैं कि फ़ॉरेन-मिनिस्टर लार्ड हेलीफ़ैक्स ब्रिटेन की इज़्ज़त का ख़याल कर घोषणा करते हैं कि लड़ाई का जवाब लड़ाई से ही दिया जायगा; लेकिन दूसरे ही क्षण जब जापानियों द्वारा अँग्रेज़-स्त्रियों का अपमान और 'टिन्सटिन' की मोर्चा-बन्दी की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है, उस समय यह सोचने लगते हैं कि इतनी उत्तेजना और परेशानी के बाद ज़रा देर के लिए आराम करने की भावना से ही शायद चेम्बरलेन की सरकार यह अपमान बरदाश्त कर रही है।

एक बार फिर जोश उबलता है और पोलैण्ड को उसकी रक्षा करने का वचन दिया जाता है। लेकिन इसके बाद ही हम यह अफ़वाह भी सुनते हैं कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हडसन साहब स्पेन और जर्मनी को एक-एक अरब स्टर्लिङ्ग क़र्ज़ देने के लिए तैयार हैं।

सिनेमा के सीन की तरह मिनट-मिनट पर बदल जानेवाली अँग्रेज़ी सरकार की इस नीति को देखते हुए हमें म्यूनिच की संधि का ध्यान हो आता है। और यह बड़ी आसानी के साथ ख़याल किया जा सकता है कि पोलैण्ड को भी आस्ट्रिया और चेको-स्लोवाकिया की तरह मिस्टर चेम्बरलेन की छतरी पर 'क्रूसीफ़ाई' होना पड़ेगा। एक अरसे से पार्लियामेण्ट का मौनावलम्बन और ऐंग्लो-रशियन-पैक्ट के पूरा होने में विलम्ब होते देखकर हमारी यह धारणा दिन पर दिन दृढ़ होती जा रही है।

लेकिन सवाल यह है कि क्या पोलैण्ड के बलिदान से योरप में महायुद्ध की सम्भावना कम हो जायगी?—कम-से-कम हम तो ऐसा ख़याल नहीं करते। हमारी समझ में तो यह समस्या उस समय तक हल होती दिखाई नहीं पड़ती, जब तक कि स्कैंडिनेवियन-प्रदेश और बालकन-स्टेट्स जर्मनी के अधिकार में न आ जायँ। जर्मनी के लिए इन दोनों का राजनैतिक महत्त्व यथेष्ट है। नाज़ी-प्रोपेगैण्डा ज़ोरों पर है। जर्मनी और इटली दोनों ही अपना-अपना साम्राज्य बढ़ाने की फ़िक्र में हैं। लेकिन फ़िलहाल तो ब्रिटिश-सरकार इनकी इन बढ़ती हुई आकांक्षाओं को दबाने के 'मूड' में दिखाई नहीं देती। फ़्रांस का भय और रूस का रोना भी अभी उसी तरह चल रहा है।

चीन-जापान की लड़ाई का बदला हुआ रुख़ भी डिक्टेटरों की सुदूर-पूर्वीय-नीति का परिचय दे रहा है। जापानी फ़ौजें चीन के मध्य-भाग से हटकर बड़ी तेज़ी के साथ मंगोलियन-सीमा की ओर बढ़ रही हैं। वहाँ शायद बहुत ही जल्द रूस-जापान-युद्ध का कुरुक्षेत्र बननेवाला है। हॉपकिन्स-न्यूज़-एजेन्सी ने यह भविष्यवाणी की है कि इस युद्ध में जापान हारेगा। परन्तु इसके साथ ही साथ उसका यह भी कहना है कि इससे ब्रिटेन का दर्दे-सिर और भी काफ़ी बढ़ जायगा। जापान की सहायता से डिक्टेटर लोग एक नया साम्राज्य बनाने की फ़िक्र में हैं। लेकिन यह अभी दूर की बात है।

ब्रिटिश-उपनिवेशों को भी कुछ कम धमकियाँ नहीं सुननी पड़ रहीं; परन्तु ख़तरा सबसे अधिक भारतवर्ष को ही है। जापान की गिद्ध-दृष्टि तो इस पर जमी हुई है ही, साथ ही हिटलर और मुसोलिनी ने भी अपने भाषणों में कई बार इसका ज़िक्र किया है।

भारतवर्ष की दशा सचमुच ही बहुत नाज़ुक है। हमारे देश का भाग्य इस समय त्रिशंकु की तरह ज़मीन और आसमान के बीच में लटका हुआ है। दुनिया के परदे पर केवल हमारा ही देश एक ऐसा है, जिसके पास चरख़े के सिवा और कोई भी हथियार नहीं; और वह भी केवल अँग्रेज़ों की ग़ुलामी से आज़ाद होने में ही हमारी सहायता कर सकता है। भारतवर्ष का इस ख़तरे से बचना हमारी सरकार की नीति पर ही निर्भर है।

महायुद्ध में भारतवर्ष का सहयोग, इण्डिया-ऐक्ट के अनुसार, हमारी इच्छा पर निर्भर नहीं—वाइसराय की मर्ज़ी पर है। और उसका प्रमाण यही है कि हमारे देश की फ़ौजें बाहर भेजी जा रही हैं। कांग्रेस-वर्किङ्ग-कमिटी ने इसी का विरोध करने के लिए प्रस्ताव पास किया था।

ऐसी दशा में बरबस ही यह ख़याल मन में उठता है कि हमारे देश का भविष्य क्या होगा? लेकिन अभी भारतवर्ष के विषय में कहा ही क्या जा सकता है जब कि सारी दुनिया बड़ी बे-तरतीबी के साथ न जाने किस ओर बढ़ रही है।

× × ×

२—सुभास बाबू पर अनुशासन की कार्यवाही

अख़बारी दुनिया में एक महीने तक हलचल मचाने के बाद 'हाई-कमाण्ड' को वर्धा-मीटिंग में सुभास बाबू की तक़दीर का फ़ैसला हो गया। यद्यपि जनता इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि कांग्रेस-वर्किंग-कमिटी सुभास बाबू की राजनैतिक उच्छृङ्खलता पर कोई न कोई प्रतिबन्ध अवश्य ही लगाएगी; फिर भी तीन वर्ष के लिए उनके कांग्रेस से निकाले जाने की ख़बर सुनकर लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। इसका असर और चाहे जो कुछ भी हो, मगर यह बात तो तय है कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इससे लोगों में एक प्रकार का मतभेद अवश्य फैल सकता है। इसमें तो कोई शक नहीं कि 'हाई-कमाण्ड' ने सुभास बाबू के प्रति यह 'डिसिप्लनरी-एक्शन' लेकर कांग्रेस के क़ानून की पूरी-पूरी रक्षा की है; फिर भी देश की मौजूदा हालत और फ़ौजों को बाहर भेजने के सम्बन्ध में भारत-सरकार की हठधर्मी को देखते हुए उनका यह निर्णय कहाँ तक उचित रहा, यह हम नहीं कह सकते। हमारा ख़याल तो ऐसा है कि इस समय कांग्रेस को अपने घरेलू झगड़ों को बालाएताक़ रखकर अपनी संगठित शक्ति के साथ काम करना चाहिए।

× × ×

३—हैदराबाद का आर्य-सत्याग्रह

हैदराबाद के आर्य-सत्याग्रह के अत्यन्त सफलता-पूर्वक समाप्त हो जाने का समाचार हिन्दूमात्र में बड़ी ही प्रसन्नता के साथ सुना गया है। हमें इस बात का गौरव है कि चारों ओर से भयङ्कर विरोध पाने पर भी निज़ाम-राज्य में अपनी धार्मिक स्वतंत्रता पाने के लिए हिन्दू लोग बराबर अड़े रहे, और अन्त में अत्यन्त गौरवपूर्ण विजय प्राप्त की। हम आर्य-समाज को उसके इस ऐतिहासिक विजय पाने के शुभ अवसर पर हार्दिक बधाई देते हैं। हम आशा करते हैं कि भविष्य में निज़ाम-सरकार अपनी हिन्दू प्रजा की धार्मिक स्वतंत्रता को आघात पहुँचाने का प्रयत्न कभी नहीं करेगी।

× × ×

४—राजनैतिक बन्दियों का अनशन

दूसरी ख़ुशी की बात यह है कि बंगाल के राजनैतिक बन्दियों ने अपना अनशन-व्रत समाप्त कर दिया है। हमें विश्वास है कि बंगाल-गवर्नमेंट इन तमाम क़ैदियों को दो महीने के अन्दर ही छोड़ देगी। हम शरत बाबू के इस प्रस्ताव से पूर्णतया सहमत हैं कि बंगाल-कांग्रेस-पार्टी हक़-मंत्रिमण्डल को (जिसे यूरोपियनों के सहयोग का बड़ा सहारा है) अपने पूर्ण सहयोग का आश्वासन दे।

× × ×

५—'माधुरी' का नया वर्ष

ईश्वर की दया से 'माधुरी' अठारहवें वर्ष में प्रवेश कर रही है। अब तक लेखकों, पाठकों, और विज्ञापन-दाताओं ने जिस संलग्नता के साथ हमें अपना सहयोग प्रदान करने की उदारता दिखलाई है, वह वास्तव में हमारे लिए बहुत ही उत्साह-प्रद है। इस वर्ष से हमने 'माधुरी' को और भी अधिक ठोस तथा सुरुचिपूर्ण बनाने का निश्चय किया है। हमें पूरा विश्वास है कि हमारे अनुग्राहक हमें सदैव की भाँति अपना पूरा सहयोग प्रदान कर अनुगृहीत करेंगे।

× × ×

६—इन्दौर-सरकार की महत्त्वपूर्ण योजनाएँ

अभी हाल ही में इन्दौर-रियासत के प्रधान-मंत्री, ऐतमातुद्दौला रायबहादुर कर्नल दीवान दीनानाथ साहब ने क्षत्रिय धनगर सेवा-संघ के मानपत्र का उत्तर देते हुए कई एक महत्त्वपूर्ण घोषणाएँ की हैं, जिनमें खेती करने के लिए मुफ़्त ज़मीन और रुपया देने का वचन, तथा रियासत के नौजवानों को देहरादून में फ़ौजी शिक्षा देने की योजना विशेष उल्लेखनीय हैं। अपने भाषण में आपने यह भी बतलाया कि महारानी अहिल्याबाई की स्मृति में चलाई जानेवाली संस्थाओं को बन्द करने अथवा बेच डालने के सम्बन्ध में जो अफ़वाह फैली हुई है, वह एकदम निराधार और सरासर झूठ है।

इन्दौर में पानी का कष्ट दूर करने के लिए इन्दौर के महाराजा साहब ने कई लाख रुपये की लागत से यशवन्त-सागर-टैंक तथा वाटर-वर्क्स बनवा दिया है।

इन्दौर के महाराज की इन सराहनीय योजनाओं से हम बड़े संतुष्ट हैं तथा उन्हें बधाई देते हैं, और आशा करते हैं कि अन्य रियासतें भी इसी प्रकार अपनी प्रजा की भलाई करने में तत्परता दिखलायेंगी।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

७—रेडियो और हिन्दी

एक अरसे से ऑल-इंडिया-रेडियो की पक्षपात-वाली नीति का विरोध हिन्दी के पत्रों में बराबर हो रहा है। लेकिन फिर भी हम देखते हैं कि रेडियो का 'माइक्रोफ़ोन' हिन्दी और हिन्दी के साहित्यिकों को अभी तक 'हरिजन' ही समझ रहा है। यह माना कि कभी-कभी शौक़िया सुधारवादियों की तरह वह हिन्दी से दूर की दो बातें अवश्य कर लेता है। परन्तु हम रेडियो की इस नीति से ज़रा भी संतुष्ट नहीं। हम बराबर इस बात पर ग़ौर कर रहे हैं कि ऑल-इंडिया-रेडियो के लखनऊ-स्टेशन से सुनाये जानेवाले 'अफ़साने, तक़रीरें और डिरामें' आदि अधिकतर उर्दू में ही होते हैं। रेडियो 'टॉक' देनेवाले एक हिन्दी के लेखक से हमें मालूम हुआ कि उनकी बातचीत में आया हुआ हिन्दी का 'सम्पादक' शब्द भी माइक्रोफ़ोन को कठिन मालूम हुआ, जब कि उर्दू की तक़रीर के क्लिष्ट से क्लिष्ट शब्द ब्राडकास्ट करने में उसे हिचक नहीं मालूम देती। हमारे कहने का यह मतलब नहीं कि हम उर्दू के विरोधी हैं, बल्कि हम तो यह चाहते हैं कि रेडियो में हिन्दी को भी आदर का स्थान मिले।

एक बात हमें और भी मालूम हुई है। ब्राडकास्ट करने के लिए केवल वे ही सज्जन आमंत्रित किये जाते हैं, जिनका नाम हिन्दुस्तान भर में मशहूर होता है। रेडियोवालों को शायद यह मालूम नहीं, लेकिन हम निवेदन करते हैं कि बहुत-से ऐसे सम्मानित लेखक और कवि हैं, जिन्हें भारतवर्ष के कोने-कोने में लोग जानते और मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रायबहादुर श्यामसुन्दरदास, डा० धीरेन्द्र वर्मा, डा० रसाल, डा० बड़थ्वाल, प्रोफ़ेसर हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, प्रोफ़ेसर 'शिलीमुख', महाकवि हरिऔध, मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त, निराला, सुमित्रानन्दन पन्त, रामकुमार वर्मा, महादेवी वर्मा, विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, जैनेन्द्रकुमार, विनोदशङ्कर व्यास, भगवतीप्रसाद वाजपेयी, पहाड़ी, भुवनेश्वरप्रसाद, रामविलास शर्मा, ज्ञानचंद जैन आदि अनेकों ऐसे विद्वान् हैं, जिन्हें आमंत्रित कर 'रेडियो-माइक' अपने को गौरवान्वित कर सकता है।

× × ×

८—क़ुरान-बिल

यू० पी० की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सामने यह प्रस्ताव पेश किया जा रहा है कि एक नया क़ानून बनाकर हिन्दू प्रकाशकों को क़ुरान-शरीफ़ छापने और बेचने से रोक दिया जाय। हमारी समझ में तो ऐसे प्रस्तावों को पेश करना भी गुनाह है, क्योंकि इससे दोनों जातियों में पारस्परिक विरोध बढ़ सकता है। हम तो यह उचित समझते हैं कि जिन मुसलमान भाइयों को हिन्दू प्रकाशकों और बुकसेलरों से क़ुरान-शरीफ़ ख़रीदने में आपत्ति हो, वे न ख़रीदें। रही पवित्रता की बात, वह तो इस धर्म-ग्रंथ के अमूल्य विचारों में है। महज़ हिन्दुओं के छापने या बेचने से वह कभी नष्ट नहीं हो सकती।

× × ×

९—भानु-अभिनन्दन-ग्रन्थ

रायगढ़ के श्रीबन्देअली फ़ातमी ने हमारे पास यह प्रस्ताव भेजा है कि हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्य-वाचस्पति रायबहादुर जगन्नाथप्रसादजी 'भानु' को उनकी अमूल्य साहित्य-सेवा के लिए एक अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित किया जाय। हम श्रीबन्देअली के इस प्रस्ताव से पूर्णतया सहमत हैं। 'भानु' जी ने काव्य-शास्त्र पर अनेकों सुन्दर ग्रन्थ लिखकर हिन्दी-साहित्य की अनमोल सेवा की है, और यह उचित ही है कि हम उनकी सेवा में अभिनन्दन-ग्रन्थ समर्पित करें।

× × ×

१०—पुस्तक-प्रकाशन की एक नई योजना

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्रीनरोत्तमप्रसाद नागर ने पुस्तक-प्रकाशन की एक नई प्रयोगात्मक योजना निकाली है, जो हिन्दी-प्रेमी पाठकों के अपनाने पर ही चल सकती है। साल भर में डेढ़ हज़ार से ऊपर पृष्ठों तथा १५० के लगभग चित्रों से सुसज्जित १२

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुस्तकें प्रकाशित होंगी। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य एक रुपया होगा ; लेकिन एक रुपया जमा कर सदस्य बननेवालों को पुस्तक आठ आने में ही मिलेगी, तथा पाँच रुपये जमा करने पर पोस्टेज माफ़ कर दिया जायगा। इस साल निम्न-लिखित बारह किताबों का सेट प्रकाशित हो रहा है—एक माताव्रत, मजूर महाजन, किराये की बीवी, नाबालिग़, सराय, भाभी-अंक, बापू का रोमांस, घासलेटी हीरोइन, शुतुरमुर्ग-पुराण, आरामगृह के आगबगूले, वेश्या-जीवन और आसनों की दुनिया। पत्र-व्यवहार का पता है—उच्छृङ्खल प्रकाशन, ज़ीरो रोड, प्रयाग।

मुंशी नवजादिकलालजी का स्वर्गवास

अभी थोड़े ही दिन हुए मतवाला, सरोज और चाँद के भूतपूर्व ख्यातनामा सम्पादक तथा हास्य-रस के प्रसिद्ध लेखक मुंशी नवजादिकलाल श्रीवास्तव का कलकत्ते में स्वर्गवास हो गया। मुंशीजी इन दिनों कलकत्ते से निकलनेवाली साप्ताहिक पत्रिका 'जागृति' का सम्पादन कर रहे थे। आपके निधन से हिन्दी को बहुत भारी क्षति हुई। हम परमात्मा से आपकी आत्मा को शान्ति एवं आपके दुखी परिवार को धैर्य-प्रदान करने की प्रार्थना करते हैं।

मियादी बुख़ार के बाद !

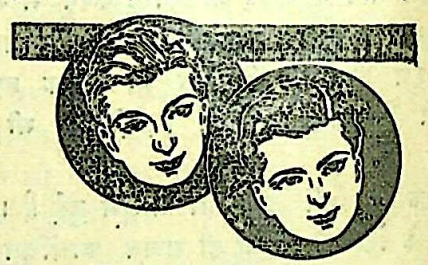

आपके सिर के बाल तेज़ी के साथ गिरने लगेंगे। और यह बात केवल मियादी बुख़ार के साथ ही नहीं, हर क़िस्म की बीमारी के बाद ऐसा होने लगता है। ऐसी दशा में यह ज़रूरी है कि आप 'केशवर्धिनी' का इस्तेमाल कर अपने बालों की रक्षा करें।

पुरुषों के लिए केशवर्धिनी क्रीम लाभदायक है।

बालों में चमक पैदा करने के लिए 'केशवर्धिनी शैम्पू' इस्तेमाल करें।

आज ही से केशवर्धिनी इस्तेमाल करें।

केशवर्धिनी.....॥)

केशवर्धिनी शैम्पू.....।॥)

केशवर्धिनी क्रीम.....१)

डाक ख़र्च अलग।

साउथ इन्डिया कमिकल्स, मेलापुर, मदरास

एजेन्ट : एस० मंज़ूरहसन, चौक, प्रयाग ; कलाधरप्रसाद एंड संस, नीचीबाग़, बनारस ; गाँधी ब्रजलाल मणीलाल, बाँकीपुर, पो० ओ० पटना ; टण्डन स्टोर्स, लश्कर, ग्वालियर ; छिद्दामीलाल एंड को०, किनारी बाज़ार, आगरा ; मणीलाल-वल्लभभाई, एल्गिन रोड, पी० ओ० कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेख-सूची

विषय	पृष्ठ
१. गीत (कविता)—[लेखक, कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह	२२३
२. अमर तुलसी (कविता)—[लेखक, श्रीगोपालाल सिंघई "पुरन्दर" ...	२२४
३. शब्दार्थ-साम्य अथवा शब्दार्थ-अपहरण—[लेखक, सेठ श्रीकन्हैयालाल पोद्दार	२२५
४. संयुक्तान्त में स्थानीय स्वायत्त-शासन—[लेखक, श्रीरामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल् एल्० बी०	२३१

बे-रोज़गारों को रोज़गार

आप अपने ख़ाली समय में रोज़ाना ४-५ घंटे काम करके ५० रुपया से १०० रुपया माहवार तक कमा सकते हैं। आज ही एक पत्र लिखकर नियम मुफ़्त मँगायें।

मैनेजर—माधुरी, लखनऊ।

आयुर्वेदीय साहित्य का नवीन और उपयोगी ग्रन्थ "मन्थरज्वर-चिकित्सा" पर सुप्रसिद्ध भारतीय वैद्यों की सम्मतियाँ—

निखिलभारतवर्षीय २४वें आयुर्वेद-महासम्मेलन शिकारपुर-सिंध के सभापति प्राणाचार्य कविराज श्री० प्रतापसिंहजी रसायनाचार्य, भिषङ्मणि, सुपरेन्टेन्डेन्ट-आयुर्वेदिक फार्मेसी, हिन्दू यूनीवर्सिटी—बनारस, लिखते हैं—

.....नवयुवक प्रारम्भिक वैद्यों के लिये यह पुस्तक पथ-प्रदर्शक का काम करेगी। संकलन पूर्ण योग्यता, परिश्रम और मनन व अनुभव के साथ किया गया है। पुस्तक अधिक उपादेय है।

× × × ×

वैद्य-सम्मेलन-पत्रिका के भूतपूर्व सम्पादक—आयुर्वेदाचार्य पं० जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी एम्० ए०, एम्० एस्-सी०, प्रोफ़ेसर—आयुर्वेदिक कालेज, हिन्दू-विश्वविद्यालय, काशी, मेम्बर—इण्डियन मेडिसिन बोर्ड ऑफ़ यू० पी०, बनारस, लिखते हैं—

.....शास्त्रीजी ने इस ग्रन्थ को सरल हिन्दी में लिखकर बड़े उपकार का कार्य किया है। इसके द्वारा वैद्य, आयुर्वेद के विद्यार्थी तथा साधारण हिन्दी पढ़े-लिखे लोग भी लाभ उठा सकते हैं।

× × × ×

श्रीयुत चन्द्रशेखर रावजी हर्डीकर साहब, सी० पी० ए० एम्० एस्०; भिषगाचार्य—धन्वन्तरि (देहली), सुयोग्य संचालक—आर्य-चिकित्सालय, सागर, लिखते हैं—

.....आपने इस पुस्तक को लिखकर आयुर्वेद-जगत् की समयानुसार उत्तम सेवा की है। उत्साही तथा कर्मण्य वैद्य इससे मन्थरज्वर के विषय में पूरा लाभ उठा सकते हैं।

पुस्तक मिलने का पता—नवलकिशोर प्रेस, बुकडिपो, हज़रतगंज लखनऊ.

CC-0. Digamber Jain Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
५. महाजनी सभ्यता—[लेखक, श्रीराम-विलास शर्मा एम्० ए०	२४१
६. गीत (कविता)—[लेखक, श्रीगोविन्द-राव मराठे	२४७
७. बिहार की सर्वश्रेष्ठ गोशाला (सचित्र)—[लेखक, श्रीशिवपूजनसहाय हिन्दी-भूषण	२४८
८. श्रीहर्ष—[लेखक, श्रीरमेशचन्द्र अवस्थी	२५३
९. प्रारब्ध (कहानी)—[लेखक, श्री-विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ...	२६०
१०. जर्मनी की 'अछूत' यहूदी-जाति—[लेखक, श्रीएकान्तविहारी शर्मा, एम्० ए०, डी० फिल्०	२६७

श्वेतकुष्ठ की अद्भुत जड़ी

प्रिय पाठकगण, मैं औरों की भाँति झूठी प्रशंसा नहीं करता। यदि इस जड़ी के तीन ही बार के लेप से श्वेतकुष्ठ जड़ से दूर न हो, तो दूना दाम वापस दूँगा। जो चाहें -) का टिकट भेजकर प्रतिज्ञापत्र लिखा लें। मूल्य ३)

पता—महावीर-औषधालय,
नं० २ मिश्रटोला, दरभंगा।

कैलाश पर्वत पर

महादेव शङ्कर

की

दिव्य छवि का दर्शन !

मिस्टर एफ़्० डब्ल्यू० वेन का हृदय-ग्राही वर्णन !

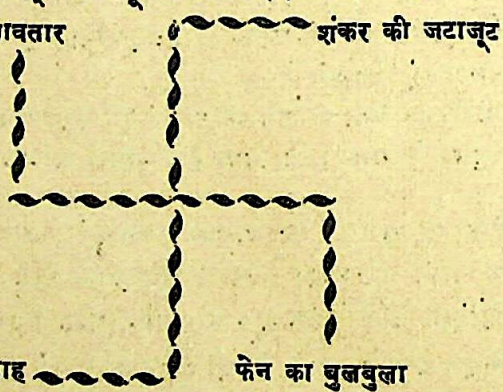

कैलाशवासी भगवान् शङ्कर के पारिवारिक जीवन

की

अनोखी झाँकी

इन्हें पढ़कर

आपका जीवन सफल होगा ! आपकी आत्मा तृप्त होगी !!

मैनेजर—नवलकिशोर-प्रेस (बुकडिपो), हजरतगंज, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
११. धार्मिक उच्छृङ्खलता—[लेखक, श्री-सर्वचन्द्रराय विशारद	२७०
१२. लकड़हारा (कविता)—[लेखक, श्री-अमीरचन्द्र धर्मा साहित्याचार्य ...	२७३
१३. "प्रसाद" की राष्ट्रीयता—[लेखक, श्रीदिलीप एम्० ए०	२७५
१४. गीत (कविता)—[लेखकत्रय, श्रीजानकी-वल्लभ शास्त्री साहित्याचार्य; शिवेन्द्र-कुमार शर्मा; कमलकुमार... ...२८२-८३	
१५. नूरजहाँ (कविता)—[लेखक, श्रीअवध-किशोरशरण श्रीवास्तव	२८४
१६. मलका (कहानी)—[लेखक, श्रीगंगा-प्रसाद मिश्र	२९१
१७. व्रजभाषा की एक नवीन कृति—'तरंगिणी'—[लेखक, श्रीमुकुल ...	२९६
१८. विदेशी पत्रों तथा लेखकों की आम-दनी—[लेखक, प्रिंसिपल श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"	३०३
१९. आंध्र-भाषा के अमर कवि वम्मेर पोतन्ना—[लेखक, श्रीयलमंचिलि वेंकटेश्वरराव 'अरविन्द'	३०७
२०. हिन्दी ख़तरे में—[लेखक, श्रीव्रज-वासीलाल	३१४
२१. हमारी काश्मीर-यात्रा—[लेखक, श्री-मधुसूदनदास चतुर्वेदी एम्० ए०, बी० एस्-सी०, विशारद	३१८
२२. पशु-जीवन और मनुष्य-समाज—[लेखक, श्रीशचीन्द्रनाथ सान्याल ...	३२५
२३. बाल-मनोरंजन—	
बालकों से (कविता)—[श्रीजगदीश भट्ट-नागर 'मतवाला'	३३३
तोते की बदहज़मी (कहानी)—[लेखक, कुमार बुद्धिभद्र	३३४
२४. पुस्तक-परिचय—[लेखक, श्रीसूर्य-कांत त्रिपाठी 'निराला और श्री-इंद्रदत्त शर्मा साहित्य-शास्त्री ...	३३७

केवल एक माह तक ! अद्भुत अपूर्व पुस्तकें !!

१॥) में १० पुस्तकें

१ घड़ीसाज़ी—टूटी-फूटी बिगड़ी हुई घड़ियों की मरम्मत करना। मूल्य ।)
२ साबुनसाज़ी—अनेक प्रकार के साबुन देशी व विलायती तरीके से बनाना १)
३ हारमोनियम टी०—थोड़े दिनों में हारमोनियम पर राग-रागिनी बजाना ॥)
४ कोकशास्त्र—प्राचीन ८४ आसन चित्र स्त्री-पुरुषों के भेद यन्त्र, मन्त्र, तन्त्र १)
५ वशीकरण यन्त्र—केवल दृष्टिमात्र से चाहे जिसे वश में कर लो ॥)
६ गुप्तविद्या—मृतक मित्रों से मुलाक़ात व त्रिकाल का हाल जान लो ।)
७ आरोग्य-जीवन—नामर्दों को मर्द बनानेवाले नुस्ख़े गुप्तरोग-चिकित्सा ।)
८ इँगलिशटीचर—घर बैठे स्वयं अँगरेज़ी में लिखना-पढ़ना सीख लो १)
९ कालपरीक्षा—मौत का समाचार पहिले से ही मालूम कर लो ॥)
१० तिलिस्मी जादूगर—हाथ की सफ़ाई गंजफा आदि के जादू के खेल करना सीखो १)

उपरोक्त १० पुस्तकें केवल १ माह तक १॥) में देंगे डाकख़र्च ॥)

पता—सत्यसागर कार्यालय, नं० १४, अलीगढ़ सिटी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

विषय	पृष्ठ
२५. परिवर्तन (कहानी)—[लेखक, श्री-आनंदलाल साह गंगोला	३४०
२६. आत्मा की पुकार (कविता)—[लेखक, श्रीनीलकण्ठ तिवारी एम्० ए०, साहित्यरत्न	३४५
२७. हमारा दृष्टिकोण	३४६

चित्र-सूची

(रंगीन)

१. बूढ़े का स्वर्ग
२. सरस्वती और नारद
३. देविकारानी

सादे चित्र अनेक

मारवाड़ी गीत

मारवाड़ी भाषा के सुन्दर-सुन्दर प्रत्येक वार, त्योहार, विवाहादि मंगल-समारोहों के अवसरों पर स्त्रियों, कन्याओं एवं वृद्धाओं द्वारा गाये जानेवाले मनोहर गीतों का अपूर्व संग्रह बिलकुल नये ग्लेज़ कागज़ पर शुद्ध और बड़े अक्षरों से छापकर इसी कमी को अब पूरा करने का मौक़ा मिला है। जिल्द, आकार-प्रकार—गेट-अप ऐसा मोहक है कि पुस्तक देखते ही बनती है। मूल्य ६ भाग का १॥|) और ८ भाग का २|) मात्र।

विशेषता यह है कि 'माधुरी' के विशेषांक के उपलक्ष्य में इन पर कमीशन भी २५% देना निश्चित हुआ है। हाँ, आर्डर के साथ 'माधुरी' को इस संख्या का हवाला देने से न भूलिए।

मैनेजर—नवलकिशोर-प्रेस, बुकडिपो,
हज़रतगंज, लखनऊ

सितार-मार्ग (प्रथम भाग)

अपने ढंग की निराली, श्रीभातखंडेजी की पद्धति के अनुसार लिखी हुई तथा भारतवर्ष के मशहूर संगीतज्ञों द्वारा प्रशंसित है। बनारस यूनिवर्सिटी द्वारा एडमिशन परीक्षा के लिये तथा मैरिस म्यूज़िक कालेज लखनऊ द्वारा अपने प्रथम तथा द्वितीय वर्ष के लिये पाठ्य-पुस्तक रक्खी गई है। क़ीमत सिर्फ़ दो रुपये।

मिलने का पता:—१. इंडियन बुक शाप, बनारस.
२. मैरिस म्यूज़िक कालेज, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

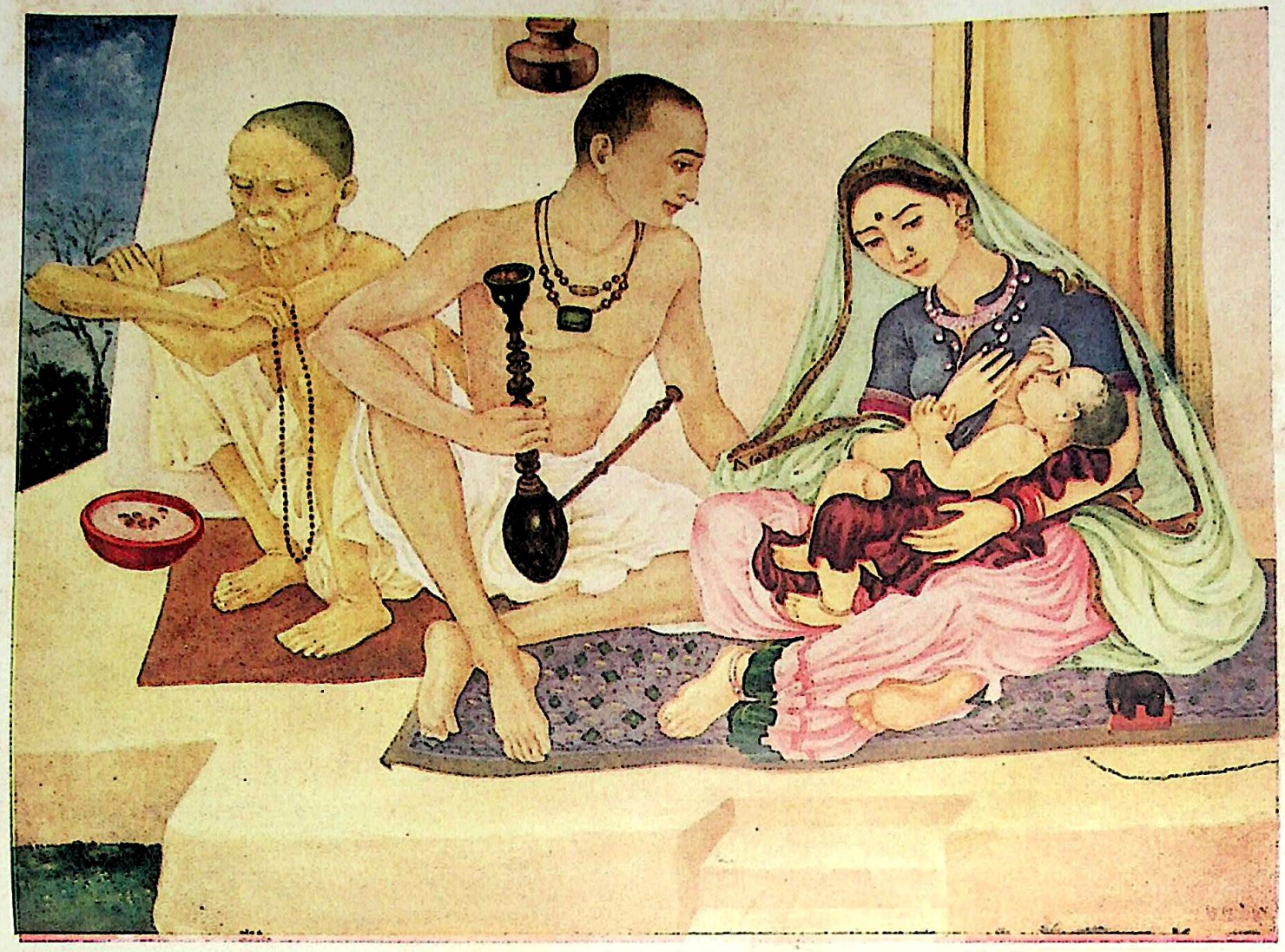

बूढ़े का स्वर्ग

[चित्रकार—श्रीबी० एन्० जिज्जा]

N. K. Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वर्ष १८] भाद्रपद, सं० १९९६ वि० [खंड १

गीत

कुँअर चन्द्रप्रकाशसिंह

किसी के नयन ये !
झरे फिर झरे,
दाह दुःख के अयन ये !
कहो, किस विरह की कठिन पीर पाली,
दुसह वेदना जो न जाती सम्हाली,
उमड़ता विकल मन, घिरे घन सघन ये !
किसी के नयन ये !
मिलनमय धरा साज धानी सँवारे,
लता-कुंज, तरु-पुंज, मृदु-गुंज धारे—
व्यथित कौन, किसके निठुर प्राणधन ये ?
किसी के नयन ये !

संख्या २] तुलसी संवत् ३१६ [पूर्ण संख्या २०६

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अमर तुलसी

हुआ सौभाग्य-सूर्य घन-लीन,
जाति में फैला विपुल विलास ;
प्रकट करके निज प्रबल प्रताप,
कराया दृढ़ प्रभु पर विश्वास ।

सहा आजीवन व्रत का भार,
तपाई थी तप से निज देह ;
ज्ञान का आराधन कर पूर्ण,
बनाया था निज को गुण-गेह ।

बहा दी राम-भक्ति की धार,
नहाकर पावन हो संसार ;
गूँजने लगा आर्य-जयनाद,
हुआ घर-घर में पुण्य-प्रचार ।

तुम्हारी स्मृतियों का आधार,
पुण्य-सलिला गङ्गा का तीर ;
नीर करता है कलकल गान,
उड़ाता है यश-सुरभि समीर ।

काव्य का अनुपम हुआ प्रवाह,
मग्न हो नाचे हृदय-मयूर ;
सुधा से हुई सिक्त नर-देह,
मिला सुख जीवन का भरपूर ।

शिराओं में जब तक है रक्त,
रक्त में हिन्दूपन का तेज ;
चिरंतन है तव ग्रंथ-रसाल,
धर्म के स्तम्भ, सुखों की सेज ।

जगत्-हित-साधन में निष्काम,
किया निज स्वार्थों का बलिदान ;
हटाया प्राण-प्रिया से मोह,
प्रेम वह किया विश्व को दान ।

वरद ऐसे वीरों से नित्य,
देश का ऊंचा होता भाल ;
रहे युग-युग तक गौरव-गाथ,
अमर तुलसी हुलसी के लाल ।

श्रीचम्पालाल सिंघई "पुरन्दर"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दार्थ-साम्य अथवा शब्दार्थ-अपहरण

सेठ श्रीकन्हैयालाल पोद्दार

पूर्ववर्ती किसी कवि के काव्य में प्रयुक्त किसी चमत्कारक शब्द अथवा अर्थ का परवर्ती कवि के द्वारा अपने काव्य में प्रयोग किया जाना परकीय शब्दार्थ-हरण है। पर साधारण कवियों की तो बात ही क्या; प्राचीन महाकवियों के काव्यों पर भी ध्यानपूर्वक दृष्टिपात किया जाय तो प्रायः अनेक परवर्ती महाकवियों के काव्य में उनके पूर्ववर्ती महाकवियों के शब्दों अथवा अर्थों का प्रयोग दृष्टिगत होता है। एक कवि द्वारा प्रयुक्त शब्दार्थ का दूसरे कवि द्वारा प्रयोग दो प्रकार से हो सकता है। एक तो स्वतः प्राप्त शब्दार्थ का स्वाभाविक प्रयोग करना और एक समझ-बूझकर अन्य कवि द्वारा प्रयुक्त चमत्कारक शब्दार्थ का अपहरण करना। इनमें स्वतः प्राप्त शब्दार्थ का स्वाभाविक प्रयोग किया जाना निन्दनीय नहीं माना गया है। जैसे—

'इत्युक्तवानुक्तिविशेषरम्यं
मनः समाधाय जयोपपत्तौ।
उदारचेता गिरमत्युदारं
द्वैपायनेनाभिदधे नरेन्द्रः।' (किरातार्जुनीय ३।१०)

महाकवि भारवि के इस पद्य में—

'स वेगवान् वेगसमाहितात्मा
हरिप्रवीरः परवीरहन्ता।
मनः समाधाय जयोपपत्तौ
जगाम लङ्कां मनसा हनूमान्।' (वाल्मीकीयरामायण)

महर्षि वाल्मीकि के इस पद्य के तृतीय पद का यथावत् सादृश्य है। पर यह स्वतः प्राप्त है और न यह पद कुछ चमत्कारक ही है। इसी प्रकार—

इत्युक्तवानुक्तिविशेषरम्यं रामानुजन्मा विरराम मानी।
संक्षिप्तमाप्तावसरं च वाक्यं सेवाविधिज्ञैः पुरतः प्रभूणाम्॥

इस पद्य में ऊपर के भारवि के पद्य का प्रथम पाद भी स्वतः प्राप्त है। अच्छा अब ऐसे पद्यों का उल्लेख किया जाता है, जिनमें संभवतः स्वतः प्राप्त नहीं; किन्तु समझ-बूझकर परकीय शब्दार्थ का ग्रहण किया गया है।

Acc. No. 3606
Jangamwadi Math, VARANASI.
LIBRARY
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
R. JAGADGURU SHWARADHYA

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देखिए—

'सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः,
सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणाम्,
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ।'

(मेघदूत ७)

इसका भाव श्रीहर्ष ने—

'सितदाप्तमणिप्रकल्पिते यदगारे हसदङ्करोदसि,
निखिलान्निशि पूर्णिमातिथीनुपतस्थेऽतिथिरेकिकातिथिः।'

(नैषधीयचरित २।७६)

इस पद्य में लिया है। महाकवि कालिदास ने अलकापुरी के उपवन में विराजमान श्रीशिवजी के मस्तक पर स्थित चन्द्रमा की चाँदनी से वहाँ के (अलका के) महलों का सर्वदा अर्थात् कृष्णपक्ष में भी शुभ्र कान्ति-युक्त रहना वर्णन किया है ; और श्रीहर्ष ने कुण्डिनपुर के श्वेत-मणिमय भवनों के प्रकाश द्वारा वहाँ सर्वदा पूर्णिमा तिथि की स्थिति रहना वर्णन किया है। कालिदास के पद्य के अनुकरण पर ही श्रीहर्ष की रचना है।

और—

'तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ।'

(मेघदूत ९०)

(यक्ष मेघ से कहता है—मेरे विरह में बड़ी कठिनता से शाप की अवधि के दिन गिनती हुई तेरी भाभी को, अर्थात् मेरी पत्नी को तू अवश्य ही जीवित देखेगा—वह मेरे मिलन की आशा से ही अभी तक जी रही होगी ; क्योंकि स्त्रियों का कुसुम-सदृश अत्यन्त सुकुमार प्रेमी-हृदय कुछ ही आघात से मुरझाकर गिर जाता है, उनको प्रिय-विरह में आशारूपी बन्धन ही जीवन का एकमात्र आधार होता है।)

इसी भाव को महाकवि भवभूति ने—

'आशातन्तुर्न च कथयतात्यन्तमुच्छेदनीयः,
प्राणत्राणं कथमपि करोत्यायताक्ष्याः स एकः ।'

(मालती-माधव नाटक ९-२६)

इस पद्य में लिया है।

और—

'रत्नाच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णोः ।'

(मेघदूत १५)

इस पद्य में कालिदास ने श्याम मेघ पर निकले हुए इन्द्र-धनुष के दृश्य को मयूरपिच्छ धारण किये हुए गोपवेशी भगवान् श्रीकृष्ण की उपमा दी है। इसी भाव का कविवर श्रीजयदेवजी ने—

'चन्द्रकचारुमयूरशिखण्डकमण्डलवलयितकेशम् ।
प्रचुरपुरन्दरधनुरनुरञ्जितमेदुरमुदितसुवेषम् ॥'

(गीतगोविन्द)

इस द्विपदी में अनुकरण किया है। भेद केवल इतना ही है कि कालिदास ने मेघ को गोपरूप से सुशोभित श्रीकृष्ण की उपमा दी है, और जयदेवजी ने इसके विपरीत गोपवेशी भगवान् श्रीकृष्ण को इन्द्र-धनुष से विभूषित मेघ की उपमा दी है। बात एक ही है। कालिदास के इसी पद्य के भाव का महाकवि माघ ने भी—

'अनुययौ विविधोपलकुण्डल-
द्युतिवितानकसंवलितांशुकम् ।
धृतधनुर्वलयस्य पयोमुचः
शवलिमावलिमानमुषो वपुः ।'

(शिशुपाल-वध ६-२७)

इस पद्य में अनुसरण किया है। इसमें इन्द्र-धनुष-युक्त श्याम मेघ को महाराजा बलि के समीप गये हुए वामन रूप में—अनेक रंगों की मणियों के कुण्डलों से विभूषित भगवान् विष्णु की उपमा दी गई है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और—

'अम्भोविन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान् वीक्ष्यमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ।'

(मेघदूत २२)

इसी भाव का माघ ने—

'प्रणयकोपभृतोऽपि पराङ्मुखाः
सपदि वारिधरारवभीरवः ।
प्रणयिनः परिरब्धुमथाङ्गना
बबलिरे बलिरेचितमध्यमाः ।'

(शिशुपाल-वध ६-३८)

इस पद्य में अनुसरण किया है । कालिदास ने मेघ-गर्जना से भयभीत कम्पायमान होकर आकाश-गामी देवांगनाओं द्वारा अपने आप प्रियतमों का आलिंगन किया जाना वर्णन किया है ; और माघ ने प्रणय-कोपवती मानिनी नायिकाओं का मेघ-गर्जना के कारण स्वयं मान छूट जाने पर उनके द्वारा अपने प्रणयीजनों का आलिंगन किया जाना कहा गया है ।

और—

दीर्घीकुर्वन् पटुमदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
सिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥'

(मेघदूत ३२)

कालिदास के इस पद्य का सुप्रसिद्ध अमरुशतक के प्रणेता अमरुक ने—

'रामाणां रमणीयवक्त्रशशिनः स्वेदादविन्दुप्लुतो
व्यालोलालकवल्लरीं प्रचलयन् धुन्वन् नितम्बाम्बरम्
प्रातर्वाति मधौ प्रकामविकसिद्राजीवराजीरजो
जालामोदमनोहरो रतिरसग्लानिं हरन्मारुतः ।'

(अमरुशतक-५८)

इस पद्य में सर्वथा अनुसरण किया है । कालिदास ने उज्जयिनी के वर्णन में सिप्रा नदी के प्रातःकालीन शीतल, मन्द, सुगन्धित पवन द्वारा—प्रियतमों की भाँति प्रार्थना में चातुरी दिखाते हुए—पौरांगनाओं का रति-श्रम-जनित खेद दूर किया जाना कहा है और अमरुक ने भी तादृश पवन द्वारा वही कार्य किया जाना कहा है । कालिदास के पद्य में पवन के 'प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः' इस विशेषण द्वारा जो व्यञ्जना का चमत्कार है, उसे अमरुक ने अपने पद्य के पूर्वार्ध में स्पष्ट कर दिया है । लेखक के विचार में कालिदास के पद्य की समकोटि को अमरुक का पद्य नहीं पहुँच सका ।

और—

'हारांस्तारांस्तरलगुटिकान् कोटिशः शंखशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचितान्विद्रुमाणां च भङ्गान्
संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ।'

(मेघदूत ३३)

इस पद्य के भाव का सुप्रसिद्ध कादम्बरी-प्रणेता श्रीबाण भट्ट ने—

'प्रकटशंखशुक्तिमुक्ताप्रवालमरकतमणिरार्शिभिश्चा-
मीकरचूर्णसिकतानिकरनिचितैरायामभिरगस्त्यपरि -
पीतसलिलैः सागरैरिव महाविपणिपथैरुपशोभिता ।'

(कादम्बरी)

इस गद्य में और नैषधीयचरित महाकाव्य के रचयिता सुप्रसिद्ध श्रीहर्ष ने—

बहुकम्बुमणिर्वराटिकागणनाटत्करकर्कटोत्करः
हिमबालुकयाच्छबालुकः पटुदध्वानयदापणार्णवः ।'

(नैषधीयचरित २।८८)

इस पद्य में और शिशुपालवध महाकाव्य में श्रीमाघ ने—

'वणिक्पथे पूगकृतानि यत्र भ्रमागतैरम्बुभिरम्बुराशिः ।
लोलैरलोलद्युतिभाञ्जिमुष्णन् रत्नानि रत्नाकरतामवाप ।'

(शिशुपालवध)

इस पद्य में अनुकरण किया है । कालिदास ने समुद्र में से निकालकर लाये गये सभी प्रकार के रत्न-पुञ्ज अत्यन्त अधिकता से समृद्धिशाली उज्जयिनी के बाज़ार में आ जाने के कारण से ही समुद्रों में केवल जल-मात्र शेष रह जाने की उत्प्रेक्षा की है ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

श्रीबाण भट्ट ने सभी प्रकार के रत्न-पुञ्जों की अत्यन्ताधिक स्थित रखनेवाले उज्जयिनी के बाज़ार में ही समुद्र की—ऐसे समुद्र की, जिसमें अगस्त्यजी द्वारा सारा जल पिये जा चुकने पर केवल रत्न-मात्र ही अवशेष रह गये हैं—उत्प्रेक्षा की है।

श्रीहर्ष ने अनेक रत्नों के आधिक्यवाले कुण्डिनपुर के बाज़ार में समुद्र का रूपक किया है—बाज़ार को समुद्र-रूप वर्णन किया है। श्रीहर्ष ने कालिदास के अतिरिक्त श्रीबाण भट्ट के गद्य में का—'चामीकरचूर्ण' पद का भी—'हिमबालुकयाच्छबालुकः' इस रूप में परिवर्तन कर दिया है।

श्रीमाघ ने द्वारका के बाज़ारों के रत्न-पुञ्जों में से जल-मार्ग द्वारा बहकर समुद्र-तट पर आकर बिखरे हुए रत्न-पुञ्जों के दृश्य द्वारा समुद्र का वहीं पर यथार्थ रत्नाकर (रत्नों का आकर) होना बतलाया है, अर्थात् अन्यत्र तो समुद्र केवल कहने-मात्र को ही रत्नाकर हैं—प्रत्यक्ष नहीं, किन्तु द्वारकापुरी का समुद्र ही वस्तुतः रत्नाकर प्रत्यक्ष है।

यद्यपि श्रीबाण आदि महाकवियों की कल्पनाओं का मूल आधार कालिदास की कल्पना ही है। फिर भी उक्ति-वैचित्र्य भिन्न-भिन्न होने के कारण सभी कल्पनाएँ चमत्कारक हैं।

इसी प्रकार—

'पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः।
नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या।'

(मेघदूत २६)

इस पद्य के भाव को सुप्रसिद्ध किरातार्जुनीय महाकाव्य में श्रीभारवि ने—

'तपनमण्डलदीपितमेकतः
सततनैशतमोवृतमन्यतः।
हसितभिन्नतमिस्रचयं पुरः
शिवमिवानुगतं गजचर्मणा।'

(किरातार्जुनीय ५-२)

इस पद्य में अनुसरण किया है। कालिदास ने सायंकालीन सन्ध्या की अरुणिमा के प्रतिबिम्ब से रञ्जित गज-चर्म के सदृश हो जानेवाले नील मेघ को श्रीमहाकालेश्वर की भुजाओं को—ताण्डव-नृत्य के समय—आच्छादन करने के लिए यक्ष द्वारा कहलाया है, और भारवि ने सन्ध्या की अरुणिमायुक्त हिमालय को गज-चर्म से आच्छादित श्रीशंकर की उपमा दी है। भेद केवल यही है कि कालिदास के वर्णन में गज-चर्म का उपमेय मेघ है और भारवि के वर्णन में हिमालय। अन्य सब बातें समान हैं।

और देखिए—

'तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।
संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसि च्छाययासौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा।'

(मेघदूत ५४)

इस पद्य का अनुकरण महाकवि माघ ने—

'एकत्र स्फटिकतटांशुभिन्ननीरा
नीलास्मद्युतिभिदुराम्भसोऽपरत्र।
कालिन्दीजलजनितश्रियः श्रयन्ते
वैदग्धीमिह सरितः सुरापगायाः।'

(शिशुपालवध ४।२६)

इस पद्य में किया है। कालिदास ने श्रीभागीरथी के जल का ग्रहण करते हुए नील मेघ का प्रतिबिम्ब गंगाजी की धारा में गिरने के दृश्य में गंगा-यमुना के संगम की उत्प्रेक्षा की है, और माघ ने रैवतक पर्वत की तलहटी में बहनेवाली नदी में एक ओर स्फटिक (श्वेतमणि) के बने हुए श्वेत तट की प्रभा से श्वेत प्रतीत होनेवाले और दूसरी ओर नील पाषाणमय तट की नीली प्रभा से नील प्रतीत होनेवाले प्रवाह को गंगा-यमुना के संगम की शोभा धारण करनेवाला कहकर निदर्शना अलङ्कार रक्खा है। भेद केवल विषय-मात्र में है। कालिदास की उत्प्रेक्षा का विषय मेघ की छाया है, और माघ की कल्पना का विषय नदी के दोनों ओर के श्वेत-नील तटों की छाया। शेष सब बात

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही है। इसी भाव को लेकर आचार्य श्रीमम्मट के परवर्ती आचार्य रुय्यक के शिष्य महाकवि मंखक ने भी—

'यस्या सकृत्प्रणमतो धृतमन्तुतन्तु-
र्नम्रानना गिरिसुताश्रुभिरञ्जनांकैः ।
मौलौ नवं लिखति शीतरुचेः कलङ्कं
पुष्णात्यकाण्डयमुनाप्रणयं च गङ्गाम् ।'
(श्रीकंठ-चरित ४-३६)

इस पद्य में मानवती पार्वतीजी को प्रसन्न करने के लिए बारंबार प्रणाम करते हुए चन्द्रमौलि श्रीशंकर के मस्तक पर स्थित गंगा पर गिरते हुए पार्वतीजी के अंजन-मिश्रित अश्रुपातों के दृश्य में श्रीगंगा-यमुना के संगम की कल्पना की है, और महाकवि मंखक ने गंगा-यमुना के संगम के अतिरिक्त शिवजी के ललाट पर स्थित चन्द्रमा के ऊपर पार्वतीजी के अश्रुपात गिरने में चन्द्रमा के कलंक का बारंबार उल्लेख करने की एक नवीन कल्पना भी की है, जो कि कालिदास के पद्य में नहीं है। किन्तु मंखक के पद्य में संगम की कल्पना का विषय औचित्य-प्रदर्शक नहीं—उपमेय और उपमान के परिमाण पर ध्यान देने पर सहृदयों को उद्वेगजनक प्रतीत होता है—कहाँ अल्प अश्रुधार और कहाँ गंगा-यमुना का मिश्रित महान् प्रवाह ?

और देखिए—

'उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यः कृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ।'
(मेघदूत ६२

इस पद्य का अनुकरण महाकवि भारवि ने इस पद्य में किया है—

तमतनुवनराजिश्यामितोपत्यकान्तं
नगमुपरि हिमानीगौरमासाद्य जिष्णुः ।
व्यपगतमदरागस्यानुसंस्मार लक्ष्मी-
मसितमधरवासो बिभ्रतः सीरपाणेः ।'
(किरातार्जुनीय ४-३८)

कालिदास ने तुरत के कटे हुए हाथी के दाँत के समान अत्यंत श्वेतवर्ण कैलाशगिरि के शिखर पर स्थित पिसे हुए काजल के समान अत्यंत श्यामवर्णवाले मेघ को काले रंग का वस्त्र ओढ़े हुए हलधर (श्रीकृष्ण भगवान् के बड़े भ्राता) की उपमा दी है, और भारवि ने श्यामवर्ण की वनराजि (पर्वतीय तरु-लताओं) से सुशोभित गौरवर्ण के हिमालय को देखकर अर्जुन को नीलाम्बरधारी हलधर का स्मरण हो आना कहा है। इन दोनों में भेद केवल यही है कि कालिदास के वर्णन में उपमा और भारवि के वर्णन में स्मरण-अलंकार है। भारवि के पद्य में और सब कालिदास का ही भाव है।

बस, विस्तार-भय से यहाँ केवल कवि-शेखर कालिदास के मेघदूत के पूर्वार्द्ध के कुछ पद्यों का अन्य महाकवियों के काव्य में साम्य दिखलाया गया है। इस प्रकार का शब्दार्थ-साम्य केवल कालिदास के काव्यों का ही नहीं, अन्य भी अनेक पूर्ववर्ती महाकवियों के काव्यों का उनके परवर्ती महाकवियों के काव्य में शब्दार्थ-साम्य दृष्टिगत होता है। यहाँ तक कि महाकवि कालिदास स्वयं इस कार्य से निर्लिप्त नहीं रह सके हैं। मेघदूत के ही अनेक पद्यों में श्रीवाल्मीकीय रामायण के अनेक पद्यों का शब्दार्थ-साम्य देखा जाता है! यही नहीं, उनके पूर्ववर्ती महाकवि भास के नाटकों के गद्य-पद्यों का कालिदास के नाटकों में साम्य पाया जाता है। साहित्याचार्यों ने शब्दार्थ-हरण के विषय में जो विवेचन किया है, उसके अनुसार कुछ सीमा तक परकीय पद्यों के शब्दार्थ का स्वीकार किया जाना ग्राह्य भी बताया गया है। ऊपर दिखाये गये कालिदास के पद्यों का जो अन्य महाकवियों के पद्यों में शब्दार्थ-साम्य है, उसे अपहरण कहना इन पंक्तियों के लेखक के विचार में उपयुक्त नहीं। श्रीबाण, भवभूति, माघ, भारवि और श्रीहर्ष आदि सर्वांश में नहीं, तो भी बहुत अंशों में कालिदास के समान ही महान् प्रतिभाशाली महाकवि थे। साहित्य में उनका स्थान भी महत्त्वपूर्ण है। उनके महाकाव्यों की सूक्तियाँ भी अभूतपूर्व और अत्यन्त चित्ताकर्षक हैं। अतएव इनके काव्यों में जो किसी पूर्ववर्ती कवि के शब्दार्थ का कहीं-कहीं साम्य देखा जाता है, उसे अपहरण न कहके यह कहना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उचित होगा कि उन्होंने अपने पूर्ववर्ती किसी कवि की कतिपय कल्पनाओं को प्रकारान्तर से वर्णन करके यह प्रदर्शित करने की चेष्टा की है कि परकीय कल्पना का हम प्रकारान्तर से भी सफलतापूर्वक वर्णन कर सकते हैं। अर्थात् उनके द्वारा यह कार्य संभवतः प्रतियोगिता रूप में किया गया है। हाँ, इस कार्य में परवर्ती कौन कवि कहाँ-कहाँ सफलीभूत हो सके हैं, यह काव्य-मर्मज्ञों के लिए विचारणीय अवश्य है।

स्त्री-पुरुष सबके लिये ताक़त ताज़गी से भरा हुआ

सुमधुर

झंडु द्राक्षासव

अवश्य सेवन कीजिए

(जूड़ी ज्वर) मलेरिया का महान् शत्रु

झंडु

मलेरिया मिक्श्चर

सेवन करके मलेरिया को जड़ को

नाबूद कर दीजिए

झंडु फ़ार्मास्युटिकल वर्क्स लि०, पो० बक्स नं० ५५१३ बंबई नं० १४।
यू० पी० एजेंट—कांतिलाल, आर० पारेख, चाँदनी चौक, दिल्ली।
लखनऊ एजेंट—माताबदल पन्सारी, अमीनाबाद।
लखनऊ स्टाकिस्ट—कौशिक आयुर्वेदिक स्टोर्स, श्रीराम रोड।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

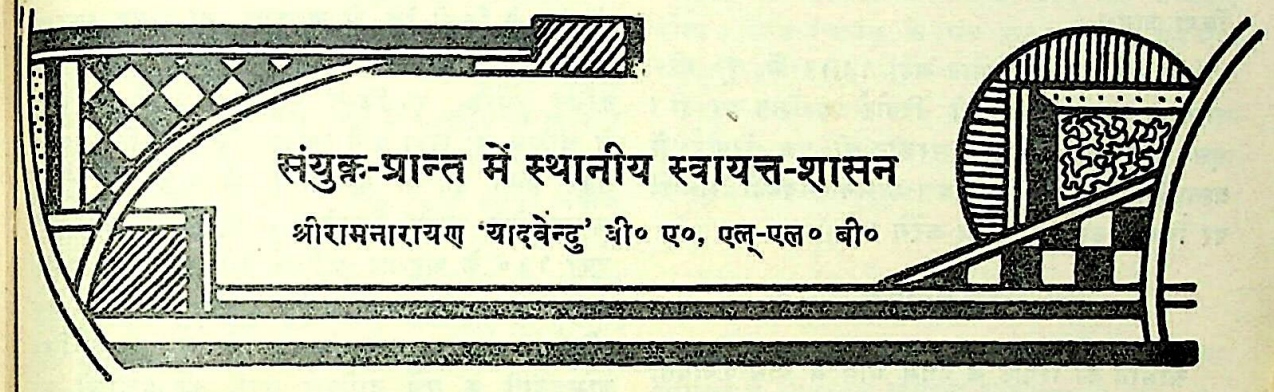

संयुक्त-प्रान्त में स्थानीय स्वायत्त-शासन

श्रीरामनारायण 'यादवेन्दु' बी० ए०, एल्-एल० बी०

(१)

शासन-सुधार-योजना में स्थानीय स्वायत्त-शासन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतवर्ष में स्थानीय स्वायत्त-शासन-संस्थाओं में सुधार की बड़ी आवश्यकता है—इस पर दो मत नहीं हो सकते। नवीन-शासन-विधान के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों ने ग्राम-संस्था-सुधार के साथ-साथ ग्राम-पंचायतों और नगर तथा ज़िला स्वायत्त-संस्थाओं में क्रान्तिकारी सुधार के लिए योजनाएँ तैयार की हैं। विगत २४ मार्च, १९३८ को संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने स्थानीय स्वायत्त-शासन-समिति की नियुक्ति की। इस समिति में २४ सदस्य * नियुक्त किये गये और यू० पी० की स्वायत्त-शासन-मंत्रिणी के पार्लिमेंटरी सेक्रेटरी श्री ए० जे० खेर एम्० एल्० ए० इस समिति के अध्यक्ष नियुक्त किये गये।

यह समिति संयुक्त-प्रान्त में स्थानीय स्वायत्त-शासन (Local self-Government) की आधुनिक स्थिति

---

* समिति के सदस्य निम्नलिखित हैं—

१. श्री ए० जी० खेर एम्० एल्० ए० (अध्यक्ष), २. श्रीवेंकटेशनारायण तिवारी एम्० एल्० ए०. ३. श्रीचन्द्रभानु गुप्त एम्० एल्० ए०, ४. श्री आर० एस्० पंडित एम्० एल्० ए०, ५. चौधरी खलीकुज्ज़मा एम्० एल्० ए०, ६. श्रीहरिश्चन्द्र वाजपेयी एम्० एल्० ए०, ७. श्रीमती उमा नेहरू एम्० एल्० ए०, ८. श्रीकेशवदेव मालवीय एम्० एल्० ए०, ९. रायबहादुर एन्० के० मुकर्जी एम्० एल्० सी०, १०. श्रीज़हूरअहमद एम्० एल्० ए०, ११. श्रीचन्द्रभाल एम्० एल० सी०, १२. श्रीद्वारिकाप्रसाद एम्० एल्० ए०, १३. श्रीभगवन्-नारायण भार्गव एम्० एल्० ए०, १४. प्रोफ़ेसर कृष्णचन्द्र एम्० एल्० ए०, १५. श्रीअब्दुल हकीम एम्० एल्० ए०, १६. श्री एस्० सी० चटर्जी एम्० एल्० ए०, १७. श्रीदयालदास एम्० एल्० ए०, १८. नवाब जमशेदअलीख़ाँ एम्० एल्० ए०, १९. श्रीइज़हर अहमद फ़रुर्ख़ी, २०. श्रीएजाज़रसूल एम्० एल्० ए०, २१. श्रीजीवालाल द्विवेदी एम्० एल्० ए०, २२. श्रीदेवनारायण 'भारतीय' एम्० एल्० ए०, २३. लेफ़्टिनेंट सुल्तानआलमख़ाँ, २४. श्री एस० एन्० सप्रू (मंत्री)।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

और क़ानून की जाँच करने तथा तत्सम्बन्धी सिफ़ारिशें करने के लिए नियुक्त की गई। इसके कार्य-क्षेत्र में म्यूनिसिपैलिटी, डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड, नगर-सुधार-ट्रस्ट, टाउनएरिया और ग्राम-पंचायतें हैं; और यह समिति यह विचार करने के लिए नियुक्त की गई थी कि प्रान्त में स्थानीय स्वायत्त-संस्थाओं का विस्तार कहाँ तक किया जाय।

एक वर्ष के बाद विगत मई, १६३६ में यू० पी० सरकार ने इस समिति की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। इस 'लेखमाला' में हम सरकार की इस रिपोर्ट में प्रस्तावित स्थानीय स्वायत्त-शासन-सम्बन्धी सुधारों पर विचार करने का प्रयत्न करेंगे।

ग्राम-पंचायत

समिति की रिपोर्ट के प्रथम भाग में ग्राम-पंचायतों के संगठन, विधान, कार्य और अधिकारों पर विचार किया गया है। समिति की ग्राम-पंचायत-योजना के अनुसार प्रत्येक गाँव में, जिसकी जनसंख्या १००० से ८००० तक होगी, एक ग्राम-पंचायत होगी। परन्तु पंचायत की आनुमानिक आय ३५०) से कम न होनी चाहिए। जिन गाँवों की जन-संख्या १००० से कम हो, वे कई गाँवों को मिलाकर एक पंचायत बना सकेंगे। एक ग्राम-पंचायत में ६ से कम और १५ से अधिक सदस्य नहीं होंगे; ये सब सदस्य निर्वाचित होंगे। कई छोटे गाँवों को मिलाकर एक पंचायत होगी, उसमें सदस्य प्रत्येक गाँव से सरकार द्वारा निर्धारित संख्या में लिये जायँगे। पंचायत के इलाक़े में रहनेवाले प्रत्येक बालिग़ व्यक्ति (स्त्री-पुरुष, जिनकी आयु २१ या इससे अधिक होगी) को ग्राम-पंचायत के चुनाव में राय देने का अधिकार होगा। एक व्यक्ति एक से अधिक ग्राम-पंचायत में राय न दे सकेगा। पागल व्यक्ति को उस समय तक राय देने का अधिकार न होगा, जब तक कि वह किसी रजिस्टर्ड डॉक्टर का इस आशय का प्रमाण-पत्र पेश न करे कि वह अब पागल नहीं है। ग्राम-पंचायत के इलाक़े के प्रत्येक योग्य मतदाता को उसके चुनाव में खड़े होने का अधिकार होगा। परन्तु ग्राम-पंचायत में निम्नलिखित व्यक्ति सदस्य नहीं चुने जायँगे—

१. पागल, २. कुष्ठरोगी, ३. दिवालिया, ४. वैतनिक सरकारी कर्मचारी या स्थानीय संस्थाओं के कर्मचारी, ५. अवैतनिक मजिस्ट्रेट, ६. गाँव-पंचायत की नौकरी के कर्मचारियों के सम्बन्धी * या ग्राम-पंचायत के किसी ठेके से अप्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्ति, ७. चुनाव-सम्बन्धी अपराधों में दंडित व्यक्ति, ८. किसी ऐसे अपराध में एक साल से अधिक की सज़ा पाये व्यक्ति, जिससे नैतिक पतन प्रकट होता हो या कालेपानी की सज़ा से दंडित अथवा ऐसे व्यक्ति जिनके विरुद्ध ज़ाब्ता फ़ौजदारी दफ़ा ११० के अनुसार कार्रवाई की गई हो। प्रत्येक ग्राम-पंचायत के इलाक़े के लिए मतदाताओं का एक रजिस्टर होगा। ग्राम-पंचायत के चुनाव के लिए नामज़दगी के पर्चे दाख़िल करने की प्रणाली भी सुगम बना दी जायगी, जिससे पर्चे पर प्रस्तावक या अनुमोदक के हस्ताक्षरों की आवश्यकता न होगी।

ग्राम-पंचायतों का प्रति तीसरे वर्ष चुनाव होगा। चुनाव बैलट द्वारा होगा। ग्राम-पंचायतों के प्रथम चुनाव ज़िलाधीश द्वारा किये जायँगे और इनके बाद जो चुनाव होंगे, उनकी व्यवस्था ज़िला-बोर्ड द्वारा होगी। ग्राम-पंचायत-क़ानून के प्रतिकूल किसी भी न्यायालय को ग्राम-पंचायत के सदस्य के चुनाव में बाधा डालने का अधिकार न होगा। कोई भी न्यायालय ग्राम-पंचायत के चुनाव को स्थगित करने, किसी समुचित रीति से निर्वाचित सदस्य को ग्राम-पंचायत की कार्रवाई में भाग लेने और गाँव-पंचायत में उचित रीति से चुने गये सदस्यों को अपना कार्य करने से रोकने के लिए आज्ञा जारी न कर सकेगा। किसी सदस्य के

* घनिष्ठ सम्बन्धियों में निम्नलिखित सम्मिलित हैं—

पिता, पितामह, ससुर, मामा, चाचा, पुत्र, पौत्र, दामाद, भाई, भतीजा, चचाज़ाद भाई, साला, बहनोई, पत्नी, पति, पुत्री, बहन व माता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चुने जाने के बाद चुनाव की दरख़्वास्त द्वारा निम्नलिखित आधारों पर, चुनाव पर आपत्ति की जा सकेगी—

१. निर्वाचित सदस्य ने चुनाव में अथवा चुनाव के संबंध में अनुचित अभ्यासों का प्रयोग किया हो ;

२. निर्वाचित सदस्य एक या अधिक मतों की अनुचित स्वीकृति या अस्वीकृति से चुना गया हो ;

३. निर्वाचित सदस्य जो अयोग्य हो ।

चुनाव-संबंधी विवादों का निर्णय सरकार द्वारा नियुक्त पंचायती अदालत (Tribunal) द्वारा होगा, जिसमें तीन सदस्य होंगे । चुनाव के संबंध में आपत्ति उठानेवाले को पहले २५) रुपये जमा करने होंगे । इस पंचायत का निर्णय अन्तिम होगा और उसकी अपील किसी भी न्यायालय में न हो सकेगी । चुनाव-संबंधी इन विवादों के समय पंचायती अदालत के सामने वकीलों को वकालत करने का अधिकार न होगा । अनुचित उपायों का प्रयोग करनेवाले को 'पंचायत' (Tribunal) पाँच साल तक के लिए अयोग्य घोषित कर सकती है । परन्तु सरकारी आज्ञा द्वारा ऐसी अयोग्यता का निवारण किया जा सकेगा ।

ग्राम-पंचायत के सदस्यों को कोई वेतन नहीं दिया जायगा । ग्राम-पंचायत के सदस्यों को निम्नलिखित अधिकार होंगे—

१. पंचायत का कोई भी सदस्य पंचायत के किसी कार्य में ग़फ़लत, उसकी सम्मति की किसी के द्वारा अवहेलना, या इलाक़े की किसी आवश्यकता के संबंध में पंचायत का ध्यान आकर्षित कर सकेगा और इस संबंध में वांछनीय सुधारों का निर्देश भी कर सकेगा ।

२. नियमानुसार प्रत्येक सदस्य को पंचायत के प्रबन्ध के संबंध में प्रस्ताव रखने और अध्यक्ष से प्रश्न करने का अधिकार होगा ।

३. पंचायत की ओर से किये गये किसी कार्य या बनाई गई किसी संस्था के निरीक्षण का प्रत्येक सदस्य को अधिकार होगा ।

४. प्रत्येक सदस्य को पंचायत के रजिस्टरों का निरीक्षण करने का अधिकार होगा । जो सदस्य पंचायत की सदस्यता से त्याग-पत्र देना चाहे, उसे लिखित त्यागपत्र गाँव-पंचोयत के अध्यक्ष की मारफ़त ज़िला-बोर्ड के अध्यक्ष के पास भेजना चाहिए ।

ज़िला-बोर्ड के अध्यक्ष को यह अधिकार होगा कि वह निर्धारित नियमानुसार, परगना-समिति की रिपोर्ट के बाद, गाँव-पंचायत के अध्यक्ष और सदस्यों को पद-च्युत कर दे । इस प्रकार अपने पदों से हटाये गये सदस्यों को सरकार से अपील करने का अधिकार होगा । गाँव-पंचायत के सब सदस्य और कर्मचारी सरकारी कर्मचारी (Public Servant) माने जायँगे ।

ग्राम-पंचायत के कार्य व अधिकार दो प्रकार के होंगे । कुछ कार्य ऐसे हैं, जो पंचायत को अनिवार्य रूप से करने होंगे और दूसरे कार्य ऐसे हैं, जो वह स्वेच्छा-पूर्वक कर सकेगी ।

पंचायत के अनिवार्य कार्य

प्रत्येक ग्राम-पंचायत अपने इलाक़े में निम्नलिखित मामलों में आवश्यक व्यवस्था करेगी—

(१) सड़कें बनाना और उनकी रक्षा ।
(२) गाँव की सड़कों पर रोशनी की व्यवस्था ।
(३) चिकित्सा ।
(४) सड़कों की सफ़ाई ।
(५) स्वास्थ्य ।
(६) रोगों का अवरोध ।
(७) पंचायत की इमारतों की देखरेख ।
(८) जन्म-मरण और विवाहों का लेखा ।
(९) सार्वजनिक सड़कों और स्थानों पर आघातों का निवारण ।
(१०) सुप्रबन्ध की देखभाल (watch and ward)
(११) चौकीदारों की नियुक्ति ।
(१२) गाँव-पंचायत के इलाक़े में मेलों और बाज़ारों की व्यवस्था ।
(१३) गाँव-पंचायत-क़ानून के अनुसार प्राइमरी शिक्षा के लिए स्कूल खोलना और उनकी व्यवस्था ।
(१४) गाँव में गोचर-भूमि की रक्षा आदि ।
(१५) श्मशान-भूमि की व्यवस्था ।
(१६) सार्वजनिक कुओं, तालाओं की मरम्मत तथा रक्षा ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(१७) पीने के लिए जल की सुव्यवस्था।

(१८) भवन-निर्माण-संबंधी व्यवस्था।

(१९) कृषि, उद्योग और व्यापार का विकास और सहायता।

(२०) जब कोई अग्निकांड हो जाय तो उससे जन तथा सम्पत्ति की रक्षा।

(२१) गाँव-पंचायत-एक्ट के अन्तर्गत दीवानी और फ़ौजदारी न्याय-प्रबंध की व्यवस्था।

(२२) क़ानून द्वारा गाँव-पंचायत के लिए निर्धारित दायित्व का पालन।

ग्राम-पंचायत के स्वेच्छापूर्ण कार्य

गाँव-पंचायत निम्नलिखित कार्यों की भी व्यवस्था कर सकती है—

१. सार्वजनिक स्थानों और सड़कों के किनारे वृक्ष लगाना और वृक्षों की रक्षा।

२. पशु-पालन।

३. पशु-रोगों का उपचार और चिकित्सा।

४. कुएँ खुदवाना।

५. ज़मीन खुदवाना।

६. नागरिक रक्षा (Civic Guard) की व्यवस्था।

७. किसानों को सरकारी सहायता या क़र्ज़ के वितरण की व्यवस्था में सहायता देना; पुराने क़र्ज़ों के चुकाने में सहायता देना; पंचायती इलाक़े में क़र्ज़ा देने की सुव्यवस्था।

८. सहकारिता को प्रोत्साहन और सहकारी ढंग पर बीज तथा कृषि-संबंधी औज़ारों के स्टोरों की स्थापना।

९. अकाल के ज़माने में सहायता।

१०. ज़िला-बोर्ड या परगना-कमेटी में ऐसे कार्यों की व्यवस्था के लिए प्रतिनिधित्व करना, जो गाँव-पंचायत की सीमा के बाहर हों।

११. गाँव की भूमि में विस्तार।

१२. गाँवों में पुस्तकालयों एवं वाचनालयों की स्थापना।

१३. मातृत्व और शिशु-केन्द्रों की स्थापना।

१४. मनोरंजन व क्रीड़ा के लिए अखाड़े तथा क्लब आदि खोलना।

१५. खाद के लिए स्थान नियत करना।

१६. भारत के बने हुए ग्रामोफ़ोन तथा रेडियो-सेट की व्यवस्था।

१७. ग्रामीणों की भौतिक और नैतिक उन्नति के लिए अन्य आवश्यक कार्य।

१८. परगना-कमेटी या ज़िला-बोर्ड की पूर्व स्वीकृति से गाँव-निवासियों के हित के लिए ऐसे कार्य करना, जो परगना-कमेटी या ज़िला-बोर्ड के कार्यों के अन्तर्गत हों।

ग्राम-पंचायत के अधिकार

१. नियमानुसार गाँव-पंचायत को अपनी सम्पत्ति विक्री, रेहन, पट्टा, दान, या विनिमय द्वारा हस्तान्तर (Transfers) करने का अधिकार होगा।

२. दान में प्राप्त चल-अचल सम्पत्ति पर गाँव-पंचायत का पूरा अधिकार होगा।

३. गाँव-पंचायत को यह अधिकार है कि वह अध्यक्ष से पंचायत के प्रबंध के संबंध में कोई वक्तव्य, मानचित्र, अनुमान-पत्र, अंक या दूसरी सूचना प्रस्तुत करने के लिए कहे, किसी मामले में रिपोर्ट अथवा किसी रिकार्ड की प्रतिलिपि, पत्र-व्यवहार या योजना, जो अध्यक्ष के पास हो, पेश करने के लिए कहे। अध्यक्ष को बिना किसी अनावश्यक विलम्ब के पंचायत की इस माँग को पूरा करना चाहिए।

४. ग्राम-पंचायत किसी सार्वजनिक कार्य के लिए Land Acquisition Act. के अन्तर्गत भूमि प्राप्त कर सकती है।

५. गाँव-पंचायत को यह भी अधिकार होगा कि ग्राम के हित-संबंधी मामलों में उपयुक्त अधिकारियों के पास अपना आवेदन-पत्र भेजे और पटवारियों की नियुक्ति तथा हस्तान्तर, मुखियाओं की नियुक्ति तथा पद-च्युति और आबपाशी-विभाग के पतरोलों (patrols) के हस्तान्तर के संबंध में सिफ़ारिशें करे।

६. किसी व्यक्ति के द्वारा इस आशय की शिकायत करने पर कि किसी चपरासी, अमीन, कान्स्टेबिल,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पटवारी, नहर के पतरोल, अमीन या टीका लगानेवाले (vaccinator) ने सरकारी हैसियत से दुराचरण किया है, गाँव - पंचायत ऐसी शिकायत की सचाई की जाँच कर सकेगी। वह सम्बन्धित उच्चाधिकारी के पास अपनी रिपोर्ट भेज देगी और ऐसा उच्चाधिकारी जाँच करने के बाद उचित कार्रवाई करेगा।

ग्राम-पंचायत-फ़ंड और सम्पत्ति

प्रत्येक ग्राम-पंचायत का अपना एक फ़ंड होगा। पंचायत की आय निम्न प्रकार से प्राप्त की जायगी—

१. टैक्स निम्न प्रकार लगाये जायँगे—

(१) प्रत्येक काश्तकार को अपने लगान का ५ प्रतिशत भाग देना होगा।

(२) प्रत्येक ज़मींदार को, जो ५००) रुपये या इससे कम मालगुज़ारी देता है, अपनी मालगुज़ारी पर ५% देना होगा। मालगुज़ारी का जो भाग सरकार के ख़ज़ाने में जायगा, उसे काटकर ही ५% देना होगा।

(३) २५००) तक मालगुज़ारी देनेवाले ज़मींदारों को ६¼% टैक्स देना होगा।

(४) २५००) से अधिक मालगुज़ारी देनेवाले ज़मींदार को ७½% टैक्स देना होगा।

२. मालगुज़ारी की माँग का ५% भाग सरकार पंचायत को देगी।

३. व्यवसाय, व्यापार, धन्धे तथा वेतन पर कर। (किसान की पैदावार की बिक्री पर टैक्स नहीं लगाया जायगा)

४. ज़िला-बोर्ड द्वारा प्राप्त सहायता।

५. दीवानी व फ़ौजदारी के मुक़दमों की फ़ीस।

६. फ़ौजदारी के मुक़दमों में जुर्माने।

७. सार्वजनिक भूमि से तहबाज़ारी आय।

८. सरकार द्वारा ग्रान्ट, चन्दा, तथा अन्य संस्थाओं द्वारा सहायता।

९. अन्य टैक्स, जो सरकार द्वारा प्रान्तीय सूची से हस्तान्तरित किये गये हों।

यदि कोई काश्तकार टैक्स का नक़द रुपया अदा करने में असमर्थ हो तो गाँव-पंचायत की सम्मति से उसे उसके बराबर शारीरिक परिश्रम द्वारा अदा करने के लिए आज्ञा दी जाय।

सरकारी नियमानुसार पंचायती इलाक़े में समस्त वयस्क पुरुषों (adult males) को प्रत्येक वर्ष कुछ नियत दिनों के लिए अनिवार्य मज़दूरी करनी पड़ेगी। शारीरिक परिश्रम के एवज़ में नक़द रुपया भी दिया जायगा।

प्रति मास दिसम्बर के महीने में प्रत्येक ग्राम-पंचायत को अपना सालाना बजट बनाना चाहिए।

ग्राम-पंचायतों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है न्याय-व्यवस्था। यू० पी० स्थानीय स्वायत्त-शासन-समिति ने अपनी रिपोर्ट में अदालती पंचायतों की भी व्यवस्था की है।

अदालती पंचायत

गाँव-पंचायतों के एक समूह के लिए एक अदालती पंचायत (Judicial Panchayat) होगी। यह पंचायत अपने इलाक़े के छोटे-छोटे मुक़दमों के फ़ैसले करेगी। इसका चुनाव तीन वर्ष के लिए होगा। इस अदालती पंचायत में पाँच सदस्य होंगे; चार पंच और एक सरपंच होगा। गाँव-पंचायतों के समूह के सदस्य मिलकर पंचायत में से या बाहर से १० सदस्यों का एक 'पेनल' चुनेंगे। इन १० सदस्यों में से अदालती पंचायत के पाँच पंच चुने जायँगे। परन्तु उनका चुनाव एक समिति द्वारा होगा, जिसमें (१) ज़िला मजिस्ट्रेट, (२) ज़िला-बोर्ड का अध्यक्ष और (३) परगना-कमेटी का अध्यक्ष होंगे। सरपंच का चुनाव पंच करेंगे। सरपंच वही व्यक्ति होगा जिसे लिखने-पढ़ने का यथेष्ट ज्ञान हो। यदि 'पेनल' में कोई शिक्षित व्यक्ति न हो, तो बाहर का व्यक्ति, जो शिक्षित हो, सरपंच चुना जायगा। अदालती पंचायत की बैठक का सरपंच सभापति होगा और तीन पंचों का 'कोरम' होगा।

अदालती पंचायत के फ़ौजदारी अधिकार

निम्नलिखित अपराधों, उनमें सहायता, अथवा उनके करने के प्रयत्न-सम्बन्धी मामले पंचायत के सामने फ़ैसले के लिए पेश किये जा सकेंगे—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१. भारतीय दण्ड-विधान की निम्नलिखित धाराओं के अन्तर्गत अपराध—१४० (सैनिक या वायुयान-चालक की पोशाक पहनकर धोखा देना). १४३ (ग़ैरक़ानूनी मजमे का सदस्य होना), १४५ (किसी ग़ैरक़ानूनी सभा में उस समय शामिल होना, जब कि यह ज्ञान हो गया हो कि उसके हटा देने की आज्ञा मिल गई है), १४७ (बलवा), १५१ (पाँच या पाँच से अधिक लोगों की ग़ैरक़ानूनी सभा में मौजूद रहना, जब कि उसके हटा देने का हुक्म दे दिया गया हो), १५३ (उपद्रव के लिए उत्तेजना देना), १६० (आम रास्ते में दो या अधिक व्यक्तियों का शान्तिभंग करना), १७२ (समन आदि लेने से इन्कार करना), १७४ (किसी नियत स्थान पर उपस्थित होने के क़ानूनी हुक्म की अवज्ञा), १७६ (क़ानूनी रूप से सत्य भाषण के लिए बाध्य होने पर भी प्रश्नों का जवाब देने से इन्कार करना), २७७ (सार्वजनिक जलाशय को भ्रष्ट करना), २७६ (सार्वजनिक सड़क पर ख़तरनाक ढंग से सवारी चलाना), २८३ (सार्वजनिक सड़क, नहर आदि को हानि पहुँचाना), २८५ (अग्निकांड), २८६ (किसी अन्य विस्फोटक द्रव्य का ख़तरनाक प्रयोग), २८६ (अपने ऐसे पालतू जानवरों को सुरक्षित न रखना, जिससे मनुष्य-जीवन को ख़तरा रहे), २६० (सार्वजनिक हानि के लिए काम करना), २६४ (अश्लील गायन), ३२३ (साधारण चोट), ३३४ (उत्तेजना प्राप्त होने पर किसी पर आक्रमण करना), ३३६ (कोई ऐसा काम करना, जिससे मानव-जीवन ख़तरे में पड़ जाय), ३४१ (किसी व्यक्ति को ग़ैरक़ानूनी ढंग से क़ैद करना), ३५२ (बलपूर्वक आक्रमण करना), ३५६ (किसी व्यक्ति से कोई चीज़ अपहरण करने के लिए बल का प्रयोग), ३५७ (किसी व्यक्ति को ग़ैरक़ानूनी ढंग से क़ैद करने के लिए बल-प्रयोग), ३५८ (उत्तेजना प्राप्त होने पर बल-प्रयोग और आघात). ३७४ (बेगार लेना), ३७६ (चोरी), ४०३ (किसी प्राप्त वस्तु का बेईमानी से दुरुपयोग), ४११ (चोरी की चीज़ प्राप्त करना, जब कि उसका मूल्य ५०) से ज़्यादा न हो), ४२६ (हानि पहुँचाना), ४२८ (१०) या इससे अधिक मूल्य के किसी जानवर को मारना, ज़हर देना या अंग-भंग करना), ४३० (कृषि के लिए उपयोग में आनेवाले जल-प्रवाह को हानि पहुँचाना), ४४७ (किसी की भूमि या मकान में ग़ैरक़ानूना ढंग से प्रवेश), ४४८ (मकान में ग़ैरक़ानूनी ढंग से प्रवेश), ५०४ (गाली-गलौज से अपमान), ५०६ (किसी प्रकार की हानि पहुँचाने की धमकी), ५०६ (स्त्री के सामने या उसके निकट कोई ऐसा संकेत करना या शब्द कहना जो अश्लील हो), ५१० (शराब पीकर सार्वजनिक शान्तिभंग करना) ।

२. मवेशी-क़ानून (Cattle Trespass Act) की धारा २४ के अधीन ।

३. संयुक्तप्रान्तीय डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड प्राइमरी शिक्षा क़ानून १६२६ की धारा ६ के अन्तर्गत आज्ञा की अवज्ञा ।

४. गाँव-पंचायत-क़ानून या उसके नियमों व उप-नियमों के ऐसे उल्लंघन जो अपराध घोषित कर दिये गये हों ।

पंचायतों को सज़ा देने का अधिकार न होगा । वे केवल ५०) रुपये तक जुर्माना ही कर सकेंगी । जुर्माना वसूल करने के लिए अभियुक्त की जायदाद क़ुर्क और नीलाम की जा सकेगी । ज़ाब्ता फ़ौजदारी की दफ़ा २०२ के अन्तर्गत मजिस्ट्रेट द्वारा भेजे गये किसी भी मामले की जाँच अदालती पंचायत कर सकेगी ।

अदालत के दीवानी अधिकार

अदालती पंचायत १००) रुपये तक के अचल-सम्पत्ति, क़र्ज़ा, क्षति-पूर्ति, हर्जाना आदि के मामलों के फ़ैसले कर सकेगी । यदि दोनों पक्ष अपनी लिखित सम्मति दे दें तो पंचायत उपर्युक्त प्रकार के मामलों के फ़ैसले दे सकती है, चाहे उनका मूल्य १००) से अधिक हो । दीवानी की नालिश मौखिक या लेखबद्ध होगी । पंचायत के किसी निर्णय की किसी भी अदालत में अपील न हो सकेगी । परन्तु फ़ौजदारी मामलों में हाकिम परगना और दीवानी मामलों में मुन्सिफ़ को यह अधिकार होगा कि वह किसी भी समय स्वयं या

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

किसी के अरज़ी देने पर पंचायत के किसी मामले के सम्बन्ध में उसकी अधिकार-सीमा (Jurisdiction) को रद्द कर देंगे ; किसी भी दशा में पंचायत की किसी भी कार्रवाई को रद्द कर देंगे अथवा पंचायत द्वारा किये गये किसी आर्डर या डिग्री को रद्द कर देंगे ।

पंचायत को अभियुक्त के लिए ज़मानती वारंट जारी करने का भी अधिकार होगा । ज़मानत २५) से अधिक की नहीं ली जायगी । यदि कोई व्यक्ति पंचायत के लिखित 'आर्डर' (उपस्थित होने या साक्ष्य देने के निमित्त) की अवज्ञा करेगा, तो वह मजिस्ट्रेट के सामने पेश किया जायगा और इस अपराध के लिए उस पर २५) रुपये तक जुर्माना किया जा सकेगा ।

कोई भी स्त्री उसकी इच्छा के विरुद्ध अभियुक्त या साक्षी की हैसियत से पंचायत के सामने उपस्थित होने के लिए बाध्य नहीं की जायगी ।

गाँव-पंचायतों पर बाह्य नियन्त्रण

गाँव-पंचायतों पर प्रान्तीय सरकार, ज़िला-बोर्ड और परगना-कमेटी का नियन्त्रण रहेगा । प्रान्तीय सरकार को विशेष परिस्थितियों में गाँव-पंचायतों को भंग करने का अधिकार होगा । जब गाँव-पंचायत भंग हो जायगी तो उसका पुनर्निर्वाचन होगा । ज़िला-बोर्ड के अध्यक्ष को यह अधिकार होगा कि वह परगना-कमेटी की सिफ़ारिश पर गाँव-पंचायत को यह आदेश देगा कि वह उल्लिखित प्रस्ताव या आज्ञा (order) को कार्यान्वित न करे ।

आलोचना

ग्राम-पंचायत भारतवर्ष की अतीव प्राचीन संस्था है । भारत में अँगरेज़ी राज्य की स्थापना तक भारतवर्ष में स्थानीय स्वायत्त-संस्थाओं का जाल-सा बिछा हुआ था । भारत की ग्राम-संस्था में केवलमात्र ग्रामाधिकारियों की एक बड़ी संख्या ही सम्मिलित न थी, जो स्वास्थ्य, पुलिस और शिक्षा के सम्बन्ध में व्यवस्था करती थी और न्याय-व्यवस्था उसका प्रमुख कार्य था, प्रत्युत सारे देश में वयोवृद्ध अनुभवी ग्रामवासियों द्वारा चुनी हुई पंचायतें भी होती थीं, जो गाँव के सब मामलों पर विचार करती थीं * ।

भारतवर्ष के गाँवों में लोकतंत्री स्वायत्त-शासन-प्रणाली का प्रचलन था । योरप के आधुनिक और प्राचीन इतिहास में इस प्रकार के वैज्ञानिक और पूर्ण लोकतंत्री स्वायत्त-शासन के प्रमाण मिलना कठिन हैं † ।

"भारतवर्ष में विदेशी आक्रमणकारियों के आक्रमण बराबर होते रहे, परन्तु भारतीयों ने अपनी इस लोकप्रिय संस्था को विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रक्खा । ग्राम-पंचायतें दीवानी और फ़ौजदारी के मुक़दमों के फ़ैसले करती थीं । वे ग्राम-निवासियों पर कर लगाती थीं । सार्वजनिक भूमि पर उनका स्वाम्य था । शासन का नहीं । ग्राम-पंचायतों में निर्वाचित सदस्य होते थे ; प्राचीन ग्रन्थों से हमें यह स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं कि पंचायतों के चुनावों के विस्तृत योग्यता और अयोग्यता - संबंधी नियम होते थे । परन्तु उनका अँगरेज़ी शासन की मालगुज़ारी-प्रणाली और दीवानी तथा फ़ौजदारी न्याय-व्यवस्था से सामंजस्य नहीं था । हमारी सरकार ने पुराने ग्रामाधिकारियों को सरकारी कर्मचारियों के रूप में परवर्तित कर दिया । ग्राम - संस्था को स्वीकार नहीं किया गया और कुछ प्रान्तों में क़ानून द्वारा उसका नाश किया गया । सार्वजनिक भूमि सरकारी भूमि बना दी गई । अँगरेज़ी धारासभा या शासन ने जिन नामधारी ग्राम-पंचायतों की पुष्टि की है, उनका पुरातन ग्राम-संस्था से बिलकुल साम्य नहीं है ‡ ।"

यद्यपि संयुक्त-प्रान्त तथा अन्य प्रान्तों के गाँवों में ग्राम-पंचायतें आज भी मौजूद हैं ; परन्तु उनका कार्य केवल न्याय-प्रबंध ही है ! इसलिए इन ग्राम-पंचायतों

---

*Vide Edward Jenks' The Government of British Empire (1918) p. 388

† Vide E. B. Hovell's History of Aryan Rule in India.

‡ Vide Note of Dissent to First Dispatch of the Government of India on Montague Chelmsford Reforms.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को स्थानीय स्वायत्त-शासन-संस्थाएँ कहना तो सर्वथा अनुचित होगा।

संयुक्त-प्रान्तीय स्थानीय स्वायत्त-शासन-समिति (U. P. Local Self-Government Committee) ने भारत की इस प्राचीन संस्था के पुनर्जीवन के लिए जो यह योजना तैयार की है, वह वास्तव में ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

समिति ने ग्राम-पंचायत के सदस्यों की चुनाव-प्रणाली का आधार वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) स्वीकार किया है। प्रत्येक ग्राम-निवासी, जिसकी आयु २१ वर्ष या इससे अधिक होगी, ग्राम-पंचायत के चुनाव का मतदाता हो सकेगा और वह सदस्यता के लिए भी उम्मीदवार खड़ा हो सकेगा।

परन्तु संयुक्तप्रान्त के ग्रामसुधार-विभाग के मन्त्री माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने ग्रामों में स्थानीय स्वायत्त-संस्था की जो योजना बनाई है, उसमें ग्राम-पंचायत में प्रतिनिधित्व का आधार परिवार माना गया है। प्रत्येक ग्राम में, जिसकी जन-संख्या १२०० से १५०० तक होगी, एक ग्राम-पंचायत होगी। प्रत्येक परिवार को ग्राम-पंचायत में एक अथवा दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। यह प्रतिनिधि परिवार का प्रमुख होगा। इस पंचायत में कई विभाग होंगे और प्रत्येक विभाग एक कार्य को अपने हाथ में लेकर उसका प्रबन्ध करेगा। पंचायत प्रति मास अथवा इससे पूर्व या बाद में अपना अधिवेशन करेगी। अपने निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए पंचायत की एक कार्य-समिति (Working Committee) होगी। प्रति वर्ष इसका चुनाव होगा और इसमें प्रत्येक जाति और धर्म के प्रतिनिधि होंगे। पंचायत के सदस्य को नियत चन्दा देना होगा। इसके अतिरिक्त सदस्य दान भी दे सकेंगे। यदि सदस्य पंचायत के नियमों का पालन न करेंगे तो उन पर जुर्माना किया जायगा। कई गाँवों को मिलाकर उनकी एक अदालती पंचायत होगी। प्रत्येक ऐसे गाँव से अदालती पंचायत के लिए २ या ३ सदस्य नामज़द किये जायँगे। पंचायत की कार्य-समिति के सदस्य अदालती पंचायत के लिए नामज़द नहीं किये जायँगे।

डा० काटजू ग्रामों में बहुकार्य करनेवाली सहकारी समितियों के समान ग्राम-पंचायतें क़ायम करना चाहते हैं, और इसके लिए उन्होंने ग्राम में प्रत्येक परिवार को आधार माना है। परिवार के प्रमुख इन समितियों के सदस्य हो सकेंगे। यह प्रणाली ग्रामसुधार के लिए उपयोगी सिद्ध न हो सकेगी। इसके कई कारण हैं—

प्रथम तो पारिवारिक प्रतिनिधित्व के कारण पंचायत बहुत बड़ी हो जायगी, जिसमें १०० से २५० तक सदस्य होंगे। ग्रामों में अभी शिक्षा का अभाव है। इसलिए यह संभव नहीं कि ग्रामवासी वर्तमान समय में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (Direct Democracy) का सदुपयोग कर सकेंगे। फिर स्थानीय स्वायत्त-शासन-संस्थाएँ प्रतिनिधि होती हैं। प्रत्येक देश में ऐसा ही पाया जाता है।

दूसरा कारण यह है कि ग्राम-पंचायत के सदस्यों पर ही नियम-उपनियम लागू होंगे। इसलिए ग्राम के ग़ैर-सदस्य पंचायत के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य न होंगे। उन्हें जुर्माने का भी भय न होगा; क्योंकि जुर्माना तो पंचायत के सदस्य पर ही हो सकेगा! सहकारी समितियाँ अपने नियमों और उपनियमों को अपने सदस्यों पर ही लागू कर सकती हैं। ऐसी दशा में ग्राम-पंचायतें (जो बहुकार्य करनेवाली सहकारी समितियाँ होंगी) समस्त ग्रामवासियों पर अपना कोई नियन्त्रण नहीं रख सकेंगी।

तीसरा कारण यह है कि गाँवों में शिक्षा का अत्यन्त अभाव है। शिक्षा का जो कुछ भी प्रचार है और उससे जो लाभ उठा रहे हैं, वे गाँवों के नवयुवक ही हैं। वयोवृद्ध, जो परिवार के प्रमुख हैं, भारत तथा संसार के नवीन विचारों और आदर्शों के विरोधी होते हैं। उनकी विचारधारा रूढ़िवाद से प्रभावित होती है; इसलिए यह सर्वथा असम्भव है कि वे ग्राम-पंचायत में सदस्य बनकर ग्राम की सामाजिक, आर्थिक और प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्याओं का हल उदार दृष्टिकोण से कर सकेंगे।

चौथा कारण यह है कि डा० काटजू की योजना ग्रामवासियों में नागरिक भावना का उदय करने में असमर्थ रहेगी। प्रत्येक नागरिक को अपने देश के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शासन में भाग लेने का अधिकार है और इस अधिकार का प्रयोग निर्वाचन-प्रणाली पर निर्भर है। परन्तु डा० काटजू की योजना प्रत्येक ग्रामवासी को वालिग़ मताधिकार नहीं देती। इसलिए गाँवों का अधिकांश शिक्षितवर्ग स्वायत्त-शासन-संस्थाओं में भाग लेने से वंचित हो जायगा।

श्रीचरनसिंह एम्० एल्० ए० ने डा० काटजू की योजना का समर्थन करते हुए अपने लेख में महात्मा गांधी और डा० भगवान्दास के विचारों को विकृत रूप में प्रस्तुत कर अपने कथन की पुष्टि करने की चेष्टा की है। श्रीचरनसिंह लिखते हैं कि महात्मा गांधी ने औंध राज्य के शासन-सुधारों के सम्बन्ध में अपना जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि वयस्क मताधिकार (Adult franchise) पर कोई प्रतिबंध लगाना आवश्यक है और वह प्रतिबंध साक्षरता का हो अर्थात् मतदाता साक्षर हो। परन्तु इससे यह कैसे सिद्ध होता है कि गांधीजी वयस्क मताधिकार के विरोधी हैं। त्रिपुरी में और इससे पूर्व हरिपुरा तथा फ़ैज़पुर में नवीन शासन-विधान का अन्त करने के सम्बन्ध में कांग्रेस ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है, उसमें विधान-निर्मात्री-परिषद् (Constituent Assembly) के चुनाव का आधार वयस्क मताधिकार स्वीकार किया है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि गांधीजी इसके विरुद्ध हैं। फिर कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही महान् हो, किसी सिद्धान्त के विरुद्ध हो, तो इससे उस सिद्धान्त की उपयुक्तता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जब तक कि सिद्धान्त में कोई दोष न हो।

श्रीचरनसिंह ने डा० भगवान्दास के सम्बन्ध में यह उल्लेख किया है कि वह बीस वर्ष से यह कहते आ रहे हैं कि धारा-सभा में ऐसे अनुभवी वयोवृद्ध, शिक्षित युवक नहीं, व्यक्तियों को चुनकर भेजा जाय जिन्हें संसार का ज्ञान और अनुभव हो *। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि डा० भगवान्दास एक निरक्षर, रूढ़िवादी, अज्ञान, संसार की विचारधारा और प्रगति से अनभिज्ञ वयोवृद्ध को एक शिक्षित, ज्ञानवान् और संसार तथा देश की प्रगति से परिचित युवक के मुक़ाबिले धारासभा या अन्य किसी प्रतिनिधि-संस्था के लिए चुने जाने की बात नहीं कहेंगे। वह धारा-सभाओं में सुयोग्य, विद्वान्, अनुभवी और लोकसंग्रही व्यक्तियों के चुनाव को उपयुक्त मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा० काटजू की ग्राम-पंचायत-योजना व्यावहारिक नहीं है और वह अत्यन्त दोषपूर्ण है।

समिति ने ग्राम-पंचायतों को ग्राम-समस्याओं के हल करने के लिए जो कार्य सौंपे हैं, वे ग्रामोपयोगी प्रत्येक कार्य से सम्बन्ध रखते हैं, यथा—शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई, रोग-चिकित्सा, पशु-चिकित्सा, सड़क, जल-प्रबंध, कृषि, ग्राम-सुधार, न्याय-प्रबंध इत्यादि। ग्रामों में यह परीक्षण बिलकुल नवीन है और इस बात का पूरा प्रयत्न किया जाय कि ग्राम-पंचायतें इन कार्यों को कुशलता से कर सकें। इसीलिए समिति ने ग्राम-पंचायत के कार्यों को दो भागों में विभाजित कर दिया है। कुछ आवश्यक कार्यों को (Obligatory functions) अनिवार्य कार्यों की श्रेणी में रक्खा है और शेष कार्यों को स्वेच्छापूर्ण कार्यों (Discretionary functions) के अन्तर्गत। प्रत्येक ग्राम-पंचायत को अनिवार्य कार्य करने होंगे और स्वेच्छापूर्वक कार्य वह अपनी सुविधा के अनुसार ही कर सकेगी।

समिति के सदस्य ख़ाँबहादुर सुल्तानआलमख़ाँ एम्० एल्० सी० 'गाँव-पंचायत और टाउन एरिया' में संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली के पक्ष में हैं। उनका यह कथन है कि संयुक्त-निर्वाचन की प्रणाली १० साल के लिए निर्धारित की जाय और मुसलमानों के लिए मौलाना मुहम्मदअली की योजना के अनुसार विशेषाधिकार के आधार पर स्थान सुरक्षित किये जायँ।

शिक्षा को ग्राम-पंचायतों के अधीन कर दिया गया है। यह सभी जानते हैं कि नागरिकों के लिए शिक्षा की सबसे अधिक आवश्यकता है। स्थानीय स्वायत्त-संस्थाओं (चुंगियों और ज़िलाबोर्डों) ने शिक्षा की

* Vide Mr. Charan Singh, M. L. A.'s article.
Village Panchayats in the Hindustan Times 13 July, 1938.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

को स्थानीय स्वायत्त-शासन-संस्थाएँ कहना तो सर्वथा अनुचित होगा।

संयुक्त-प्रान्तीय स्थानीय स्वायत्त-शासन-समिति (U. P. Local Self-Government Committee) ने भारत की इस प्राचीन संस्था के पुनर्जीवन के लिए जो यह योजना तैयार की है, वह वास्तव में ग्राम-संगठन और ग्राम-सुधार के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

समिति ने ग्राम-पंचायत के सदस्यों की चुनाव-प्रणाली का आधार वयस्क मताधिकार (Adult Franchise) स्वीकार किया है। प्रत्येक ग्राम-निवासी, जिसकी आयु २१ वर्ष या इससे अधिक होगी, ग्राम-पंचायत के चुनाव का मतदाता हो सकेगा और वह सदस्यता के लिए भी उम्मीदवार खड़ा हो सकेगा।

परन्तु संयुक्तप्रान्त के ग्रामसुधार-विभाग के मन्त्री माननीय डा० कैलाशनाथ काटजू एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ने ग्रामों में स्थानीय स्वायत्त-संस्था की जो योजना बनाई है, उसमें ग्राम-पंचायत में प्रतिनिधित्व का आधार परिवार माना गया है। प्रत्येक ग्राम में, जिसकी जन-संख्या १२०० से १५०० तक होगी, एक ग्राम-पंचायत होगी। प्रत्येक परिवार को ग्राम-पंचायत में एक अथवा दो प्रतिनिधि भेजने का अधिकार होगा। यह प्रतिनिधि परिवार का प्रमुख होगा। इस पंचायत में कई विभाग होंगे और प्रत्येक विभाग एक कार्य को अपने हाथ में लेकर उसका प्रबन्ध करेगा। पंचायत प्रति मास अथवा इससे पूर्व या बाद में अपना अधिवेशन करेगी। अपने निर्णयों को कार्यान्वित करने के लिए पंचायत की एक कार्य-समिति (Working Committee) होगी। प्रति वर्ष इसका चुनाव होगा और इसमें प्रत्येक जाति और धर्म के प्रतिनिधि होंगे। पंचायत के सदस्य को नियत चन्दा देना होगा। इसके अतिरिक्त सदस्य दान भी दे सकेंगे। यदि सदस्य पंचायत के नियमों का पालन न करेंगे तो उन पर जुर्माना किया जायगा। कई गाँवों को मिलाकर उनकी एक अदालती पंचायत होगी। प्रत्येक ऐसे गाँव से अदालती पंचायत के लिए २ या ३ सदस्य नामज़द किये जायँगे। पंचायत की कार्य-समिति के सदस्य अदालती पंचायत के लिए नामज़द नहीं किये जायँगे।

डा० काटजू ग्रामों में बहुकार्य करनेवाली सहकारी समितियों के समान ग्राम-पंचायतें क़ायम करना चाहते हैं, और इसके लिए उन्होंने ग्राम में प्रत्येक परिवार को आधार माना है। परिवार के प्रमुख इन समितियों के सदस्य हो सकेंगे। यह प्रणाली ग्रामसुधार के लिए उपयोगी सिद्ध न हो सकेगी। इसके कई कारण हैं—

प्रथम तो पारिवारिक प्रतिनिधित्व के कारण पंचायत बहुत बड़ी हो जायगी, जिसमें १०० से २५० तक सदस्य होंगे। ग्रामों में अभी शिक्षा का अभाव है। इसलिए यह संभव नहीं कि ग्रामवासी वर्तमान समय में प्रत्यक्ष प्रजातन्त्र (Direct Democracy) का सदुपयोग कर सकेंगे। फिर स्थानीय स्वायत्त-शासन-संस्थाएँ प्रतिनिधि होती हैं। प्रत्येक देश में ऐसा ही पाया जाता है।

दूसरा कारण यह है कि ग्राम-पंचायत के सदस्यों पर ही नियम-उपनियम लागू होंगे। इसलिए ग्राम के ग़ैर-सदस्य पंचायत के नियमों का पालन करने के लिए बाध्य न होंगे। उन्हें जुर्माने का भी भय न होगा; क्योंकि जुर्माना तो पंचायत के सदस्य पर ही हो सकेगा! सहकारी समितियाँ अपने नियमों और उपनियमों को अपने सदस्यों पर ही लागू कर सकती हैं। ऐसी दशा में ग्राम-पंचायतें (जो बहुकार्य करनेवाली सहकारी समितियाँ होंगी) समस्त ग्रामवासियों पर अपना कोई नियन्त्रण नहीं रख सकेंगी।

तीसरा कारण यह है कि गाँवों में शिक्षा का अत्यन्त अभाव है। शिक्षा का जो कुछ भी प्रचार है और उससे जो लाभ उठा रहे हैं, वे गाँवों के नवयुवक ही हैं। वयोवृद्ध, जो परिवार के प्रमुख हैं, भारत तथा संसार के नवीन विचारों और आदर्शों के विरोधी होते हैं। उनकी विचारधारा रूढ़िवाद से प्रभावित होती है; इसलिए यह सर्वथा असम्भव है कि वे ग्राम-पंचायत में सदस्य बनकर ग्राम की सामाजिक, आर्थिक और प्रबन्ध-सम्बन्धी समस्याओं का हल उदार दृष्टिकोण से कर सकेंगे।

चौथा कारण यह है कि डा० काटजू की योजना ग्रामवासियों में नागरिक भावना का उदय करने में असमर्थ रहेगी। प्रत्येक नागरिक को अपने देश के

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शासन में भाग लेने का अधिकार है और इस अधिकार का प्रयोग निर्वाचन-प्रणाली पर निर्भर है। परन्तु डा० काटजू की योजना प्रत्येक ग्रामवासी को बालिग़ मताधिकार नहीं देती। इसलिए गाँवों का अधिकांश शिक्षितवर्ग स्वायत्त-शासन-संस्थाओं में भाग लेने से वंचित हो जायगा।

श्रीचरनसिंह एम्० एल्० ए० ने डा० काटजू की योजना का समर्थन करते हुए अपने लेख में महात्मा गांधी और डा० भगवान्दास के विचारों को विकृत रूप में प्रस्तुत कर अपने कथन की पुष्टि करने की चेष्टा की है। श्रीचरनसिंह लिखते हैं कि महात्मा गांधी ने औंध राज्य के शासन-सुधारों के सम्बन्ध में अपना जो वक्तव्य प्रकाशित किया है, उसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से यह स्वीकार किया है कि वयस्क मताधिकार (Adult franchise) पर कोई प्रतिबंध लगाना आवश्यक है और वह प्रतिबंध साक्षरता का हो अर्थात् मतदाता साक्षर हो। परन्तु इससे यह कैसे सिद्ध होता है कि गांधीजी वयस्क मताधिकार के विरोधी हैं। त्रिपुरी में और इससे पूर्व हरिपुरा तथा फ़ैज़पुर में नवीन शासन-विधान का अन्त करने के सम्बन्ध में कांग्रेस ने जो प्रस्ताव स्वीकार किया है, उसमें विधान-निर्मात्री-परिषद् (Constituent Assembly) के चुनाव का आधार वयस्क मताधिकार स्वीकार किया है। तब यह कैसे कहा जा सकता है कि गांधीजी इसके विरुद्ध हैं। फिर कोई व्यक्ति, चाहे वह कितना ही महान् हो, किसी सिद्धान्त के विरुद्ध हो, तो इससे उस सिद्धान्त की उपयुक्तता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जब तक कि सिद्धान्त में कोई दोष न हो।

श्रीचरनसिंह ने डा० भगवान्दास के सम्बन्ध में यह उल्लेख किया है कि वह बीस वर्ष से यह कहते आ रहे हैं कि धारा-सभा में ऐसे अनुभवी वयोवृद्ध, शिक्षित युवक नहीं, व्यक्तियों को चुनकर भेजा जाय जिन्हें संसार का ज्ञान और अनुभव हो *। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि डा० भगवान्दास एक निरक्षर, रूढ़िवादी, अज्ञान, संसार की विचारधारा और प्रगति से अनभिज्ञ वयोवृद्ध को एक शिक्षित, ज्ञानवान् और संसार तथा देश की प्रगति से परिचित युवक के मुक़ाबिले धारासभा या अन्य किसी प्रतिनिधि-संस्था के लिए चुने जाने की बात नहीं कहेंगे। वह धारा-सभाओं में सुयोग्य, विद्वान्, अनुभवी और लोकसंग्रही व्यक्तियों के चुनाव को उपयुक्त मानते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि डा० काटजू की ग्राम-पंचायत-योजना व्यावहारिक नहीं है और वह अत्यन्त दोषपूर्ण है।

समिति ने ग्राम-पंचायतों को ग्राम-समस्याओं के हल करने के लिए जो कार्य सौंपे हैं, वे ग्रामोपयोगी प्रत्येक कार्य से सम्बन्ध रखते हैं, यथा—शिक्षा, स्वास्थ्य, सफ़ाई, रोग-चिकित्सा, पशु-चिकित्सा, सड़क, जल-प्रबंध, कृषि, ग्राम-सुधार, न्याय-प्रबंध इत्यादि। ग्रामों में यह परीक्षण बिलकुल नवीन है और इस बात का पूरा प्रयत्न किया जाय कि ग्राम-पंचायतें इन कार्यों को कुशलता से कर सकें। इसीलिए समिति ने ग्राम-पंचायत के कार्यों को दो भागों में विभाजित कर दिया है। कुछ आवश्यक कार्यों को (Obligatory functions) अनिवार्य कार्यों की श्रेणी में रक्खा है और शेष कार्यों को स्वेच्छापूर्ण कार्यों (Discretionary functions) के अन्तर्गत। प्रत्येक ग्राम-पंचायत को अनिवार्य कार्य करने होंगे और स्वेच्छापूर्वक कार्य वह अपनी सुविधा के अनुसार ही कर सकेगी।

समिति के सदस्य ख़ाँबहादुर सुल्तानआलमख़ाँ एम्० एल्० सी० 'गाँव-पंचायत और टाउन एरिया' में संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली के पक्ष में हैं। उनका यह कथन है कि संयुक्त-निर्वाचन की प्रणाली १० साल के लिए निर्धारित की जाय और मुसलमानों के लिए मौलाना मुहम्मदअली की योजना के अनुसार विशेषाधिकार के आधार पर स्थान सुरक्षित किये जायँ।

शिक्षा को ग्राम-पंचायतों के अधीन कर दिया गया है। यह सभी जानते हैं कि नागरिकों के लिए शिक्षा की सबसे अधिक आवश्यकता है। स्थानीय स्वायत्त-संस्थाओं (चुंगियों और ज़िलाबोर्डों) ने शिक्षा की

* Vide Mr. Charan Singh, M. L. A.'s article.
Village Panchayats in the Hindustan Times 13 July, 1938.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जैसी व्यवस्था की है, उससे यह प्रकट होता है कि उनका शिक्षा-सम्बन्धी परीक्षण सर्वथा विफल रहा है। ग्रामों में ज़िलाबोर्डों द्वारा शिक्षा का प्रबन्ध होता है और शहरों में नगर-बोर्डों (Municipal Boards) द्वारा प्राथमिक शिक्षा का प्रबन्ध है। बोर्डों की दूषित और विषैली राजनीति ने शिक्षा को भी दूषित बना दिया है। संयुक्तप्रान्त में शिक्षा के पुनर्निर्माण के लिए आचार्य नरेन्द्रदेव की अध्यक्षता में एक समिति विचार कर रही है। उसके निश्चयों का अभी हमें ठीक ज्ञान नहीं है; परन्तु देश के शिक्षा-विशारद और अनुभवी शिक्षकों का यह मत है कि शिक्षा ग्राम-पंचायतों व बोर्डों के अधीन न रक्खी जाय। प्रान्तीय सरकार द्वारा ही इसकी व्यवस्था की जाय। ग्राम-पंचायतों को इतने अधिक कार्य सौंपे गये हैं कि वे उत्तम रीति से शिक्षा की सुव्यवस्था कर सकेंगी, इसमें पूरा सन्देह है।

संयुक्तप्रान्त में ग्राम-पंचायतें क़ायम हैं, जो छोटे-छोटे दीवानी और फ़ौजदारी के मुक़दमों के फ़ैसले करती हैं। इन पंचायतों के पंच हाकिम परगना द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। अधिकांश पंच निरक्षर होते हैं। इन पंचायतों द्वारा विशुद्ध रूप से न्याय-प्रबन्ध नहीं हो सकता। स्वायत्त-शासन-समिति के सदस्य श्रीद्वारका-प्रसाद एम्० एल्० ए० ने अपने एक नोट में यह लिखा है—

"देश में एक ऐसा लोकमत है, जो अदालती पंचायतों की स्थापना की उपयुक्तता के सम्बन्ध में बड़ी गम्भीर आपत्तियाँ पेश करता है। इन पंचायतों के कार्यों का मुझे बड़ा कटु अनुभव है। मैं ऐसी अनेक पंचायतों को जानता हूँ, जिनमें रिश्वतख़ोरी, पक्षपात और झूठी मुक़द्दमेबाज़ी, जिसके द्वारा गाँव के निवासियों से रुपया ठगा जाता है, बुरी तरह प्रचलित हैं।"

न्याय-पंचायतों को जो अधिकार दिये गये हैं, वे अत्यधिक हैं और इसकी पूरी सम्भावना है कि ये पंचायतें अधिकांश में इनका दुरुपयोग करेंगी।

अब तक पंचायतों के पंच हाकिम परगना द्वारा नियुक्त किये जाते रहे हैं। परन्तु इस नई योजना के अनुसार कई ग्राम-पंचायतें मिलकर १० पंचों का चुनाव करेंगी और इन दस पंचों में से ज़िलाधीश, ज़िलाबोर्ड-अध्यक्ष व परगना-कमेटी-अध्यक्ष ५ पंचों को चुनेंगे। सरपंच साक्षर होगा। परन्तु पंचों के लिए साक्षरता का नियम नहीं है।

हमारी सम्मति में न्याय-पंचायतों (Judicial Panchayats) को इतने अधिक अधिकार न देने चाहिए। इससे वर्ग-संघर्ष, साम्प्रदायिक विद्वेष और रिश्वतख़ोरी तथा अन्य बुराइयों को अधिक प्रोत्साहन मिलेगा। यह नियम रखना चाहिए कि न्याय-पंचायत का प्रत्येक पंच कम से कम मिडिल-परीक्षा पास हो और उसकी आयु ३० से अधिक हो। इन पंचायतों की कार्य-प्रणाली और न्याय-व्यवस्था पर न्यायालयों (Courts) का अधिक प्रभावकारी नियन्त्रण भी होना चाहिए। पंचायतों को मुचलके की कार्रवाई का अधिकार न होना चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

महाजनी सभ्यता

श्रीरामविलास शर्मा एम्० ए०

'हंस' के एक लेख में आज की सभ्यता का विश्लेषण करते हुए प्रेमचन्द ने उसे 'महाजनी सभ्यता' कहा था। इस युग के पहले जागीरदारी सभ्यता थी, जिसमें अनेक दोष होते हुए काफ़ी गुण भी थे। बलवान् भुजाएँ और मज़बूत कलेजा तब जीवन की आवश्यकताओं में थे। "राजा और सम्राट् जनसाधारण को अपने स्वार्थ-साधन और धनशोषण की भट्ठी का ईंधन न समझते थे। लेकिन नई सभ्यता में पैसे का स्थान सर्वोपरि है। साम्राज्य-वाद के आवश्यक गुण मज़बूत कलेजा और बलवान् भुजाएँ नहीं हैं; उसके लिए, बुद्धि का धन-संचय के लिए उपयोग तथा मौन आज्ञा-पालन आवश्यक हैं। इस सभ्यता ने समाज को दो अंगों में बाँट दिया है, जिनमें एक हड़पनेवाला है, दूसरा हड़पा जानेवाला। इस महाजनी सभ्यता का अन्त हुआ है केवल रूस देश में और जो समाज-व्यवस्था उस देश के लिए हितकर हुई है, वह हिन्दुस्तान के लिए भी हो सकती है।"

> "बड़े-बड़े खानदानों में जो अपनी इज़्ज़त का ख़याल लोगों को नंगा नाचने से रोके रहता था, वह अब मिट गया है।....लोग कोशिश करते हैं, इज़्ज़त रहे चाहे जाय, लेकिन...."

इस लेख से साफ़ मालूम होता है कि जागीरदारी सभ्यता के प्रति प्रेमचन्द के हृदय में थोड़ा-बहुत स्नेह बाक़ी है; वह स्नेह उस पुरानी सभ्यता के ध्वंस के वर्णन में, उसके रहे-सहे स्मारक कुछ उदार ज़मींदारों, ताल्लुक़दारों और बिगड़े रईसों के चित्रण में हमें देखने को मिलते हैं। यहाँ पर उनका दृष्टिकोण एक ठेठ किसान का है, जो स्वभावतः नये युग के शोषण से व्याकुल होकर पिछले युग के सुख-स्वप्न देखता है। और, यह केवल कल्पना नहीं। प्रेमचन्द ने गाँवों में रहकर देखा था कि पुरानी सभ्यता में पला ज़मींदार उतना भयंकर नहीं होता, जितना कि वर्तमान सभ्यता के सम्पर्क में आया हुआ उसी का दूसरा जातिभाई। 'प्रेमाश्रम' में प्रभाशंकर और उनके स्वर्गीय भाई इसी पुरानी जागीरदारी सभ्यता के ज़मींदार थे; राय कमलानन्द और ज्ञान-शंकर नई सभ्यता के सम्पर्क में आये हुए नई श्रेणी के ज़मींदार हैं। वर्ग-संघर्ष तो पहले भी था; परन्तु तब देवता के आसन पर पैसे को न प्रतिष्ठित किया गया था, इसलिए शोषण इतना कटु न था। आज सामाजिक व्यवस्था बदल गई है; जागीरदारी सभ्यता का प्रायः अन्त हो चुका है। नई सभ्यता ने व्यापार को अपना ध्येय बनाया है; प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी रूप में आगे बढ़कर दूसरों का सरताज बनना चाहता है। इसीलिए बड़े-बड़े ख़ानदानों में जो अपनी इज़्ज़त का एक विचार लोगों को नंगा नाचने से रोके रहता था,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वह अब मिट गया है, उसकी जगह धोखेबाज़ी ने ले ली है। लोग कोशिश यह करते हैं कि इज़्ज़त रहे, चाहे जाय, जेब किसी तरह पैसों से भर जाय। नई सभ्यता के नये बड़े आदमियों से कहीं ज़्यादा इज़्ज़त-आबरू का ख़याल गाँव में ग़रीब किसानों को है, जो अपनी काल्पनिक आन के लिए सूद पर रुपये लेते-लेते आख़िरकार मिट जाते हैं। परन्तु यही बात जागीरदारी सभ्यता के ध्वंसावशेषों अर्थात् पुराने राजों-रईसों के प्रति हमारे हृदय में सहानुभूति उत्पन्न करती है, ग़रीब किसानों में अन्धविश्वास बन जाती है और हमें उनकी मूर्खता पर दया आने लगती है।

प्रेमचन्द ने आधुनिक सभ्यता को महाजनी सभ्यता के नाम से कुछ रूस या समाजवाद पर दो-चार पुस्तकें पढ़कर न पुकारा था। उन्होंने बहुत पहले अनुभव किया था कि किसी समाज की सभ्यता उसकी भीतरी व्यवस्था पर निर्भर रहती है। यह सन्तोष की बात है कि उन्होंने जिन सामाजिक कुरीतियों की आलोचना की है, उनकी जड़ भी उन्होंने सामाजिक व्यवस्था में ही खोज निकाली है। इसी लिए प्रेमचन्द का विश्लेषण छिछला और सुधारवादी न होकर क्रांतिकारी और सामाजिक व्यवस्था की जड़ पर ही आघात करनेवाला हो जाता है। उन्होंने बहुत पहले 'सेवासदन' में वेश्याओं के बारे में लिखते हुए इस महाजनी सभ्यता पर, जिसके कारण आज का पतित वेश्या-जीवन संभव हुआ है, चोटें की थीं। उन्होंने कुँअर अनिरुद्धसिंह के मुँह से कहलाया था—"हमें वेश्याओं को पतित समझने का कोई अधिकार नहीं। यह हमारी परम धृष्टता है। हम रात-दिन जो रिश्वतें लेते हैं, सूद खाते हैं, दीनों का रक्त चूसते हैं, असहायों का गला काटते हैं, कदापि इस योग्य नहीं हैं कि समाज के किसी अंग को नीच या तुच्छ समझें। सबसे नीच हम हैं, सबसे बड़े पापी, दुराचारी, अन्यायी हम हैं, जो अपने को शिक्षित, सभ्य, उदार और उच्च समझते हैं। हमारे शिक्षित भाइयों ही की बदौलत दालमण्डी आबाद है, चौक में चहल-पहल है, चकलों में रौनक़ है। यह मीनाबाज़ार हम लोगों ने ही सजाया है, ये चिड़ियाँ हम लोगों ने ही फँसाई हैं, ये कठपुतलियाँ हमने ही बनाई हैं। जिस समाज में अत्याचारी ज़मींदार, रिश्वती राजकर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बन्धु, आदर और सम्मान के पात्र हों, वहाँ दालमण्डी क्यों न आबाद हो? हराम का धन हरामकारी के सिवा और कहाँ जा सकता है? जिस दिन नज़राना, रिश्वत और सूद दर-सूद का अंत होगा, उसी दिन दालमण्डी उजड़ जायगी, ये चिड़ियाँ उड़ जायँगी—पहले नहीं।"

यही महाजनी सभ्यता है, ज़मींदार अत्याचारी हैं, राज-कर्मचारी रिश्वतख़ोर, महाजन अन्यायी हैं और भाई भाई का गला काटने के लिए तैयार है। प्रेमचन्द ने महाजनी सभ्यता के इन स्तम्भों को, ज़मींदारों, राज-कर्मचारियों और महाजनों को उधेड़-उधेड़कर हमारे सामने उनकी वीभत्सता में खड़ा कर दिया है, ताकि हम अपनी सभ्यता की इमारत ढाकर उसकी जगह एक नई इमारत बनाने के लिए बाध्य हों।

'कर्मभूमि' में अमरकांत सलीम से जलसे में आने और पश्चिमी सभ्यता पर बोलने को कहता है। सलीम कहता है कि उसे पश्चिमी सभ्यता की बुराइयाँ नहीं मालूम, जिन पर वह बोले। अमरकांत कहता है—"एक तो यह तालीम ही है। जहाँ देखो, वहीं दूकानदारी। अदालत की दूकान, इल्म की दूकान, सेहत की दूकान। इस एक पाइंट पर बहुत कुछ कहा जा सकता है।"

सलीम ने चाहे न कहा हो, पर प्रेमचन्द ने कहने में कोई कसर नहीं रक्खी। स्वाभाविक था कि उनका रोष पश्चिमी शिक्षा पर प्रकट होता। 'कर्मभूमि' के आरम्भ में ही उन्होंने लिखा था—"कचहरियों में पैसे का राज है, हमारे स्कूलों में भी पैसे का राज है, उससे कहीं कठोर, कहीं निर्दय।....ऐसे कठोर नियमों का उद्देश्य इसके सिवा और क्या हो सकता था कि ग़रीबों के लड़के स्कूल छोड़कर भाग जायँ। वही हृदयहीन दफ़्तरी शासन, जो अन्य विभागों में है, हमारे शिक्षा-लयों में भी है।....अध्यापकों की मेज़ों पर रुपयों के ढेर लगे हैं। चारों तरफ़ खनाखन की आवाज़ें आ रही हैं। सराफ़े में भी रुपये की ऐसी झंकार कम सुनाई देती है। हरएक मास्टर तहसील का चपरासी बना बैठा हुआ है।....यदि ऐसे शिक्षालयों से पैसे पर जान

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

देनेवाले, पैसे के लिए ग़रीबों का गला काटनेवाले, पैसे के लिए अपनी आत्मा को बेच देनेवाले छात्र निकलते हैं, तो आश्चर्य ही क्या है ?"

महाजनी सभ्यता को जीवित रखनेवाली यह इस युग की शिक्षा है। यद्यपि प्रेमचन्द ने पश्चिमी सभ्यता और शिक्षा को बहुधा खरी-खोटी ही सुनाई हैं, फिर भी उनका विरोध उसी शिक्षा से था, जो महाजनी सभ्यता की पोषक है। पश्चिमी शिक्षा का एक रूप हमें प्रेमशंकर में भी देखने को मिलता है, जो 'प्रेमाश्रम' में उनके आदर्श नायक हैं।

यह शिक्षा जब जागीरदारी सभ्यता के वारिसों को मिलती है तो ज्ञानशंकर-से व्यक्तियों का जन्म होता है, जो प्रजा से पैसा खींचने में किसी प्रकार की भी रियायत नहीं कर सकते। ज्ञानशंकर का जन्म उस कुल में हुआ था, जिसने अपने को मर्यादा के पीछे मिटा दिया था। नई शिक्षा ने उन्हें सिखाया था कि जीवन एक संग्राम है और इसमें जो दूसरों पर दया दिखावेगा, वह मिट जायगा। जीवन का अर्थ है दूसरों को मार-कर स्वयं जीवित रहना ; ऐसे संघर्ष में आत्मत्याग और दया के लिए गुञ्जाइश कहाँ ?

धनीवर्ग के लड़के जब यही शिक्षा पाते हैं तो उनमें 'कर्मभूमि' के सलीम और 'प्रेमाश्रम' के ज्वालासिंह-से हुक्काम निकलते हैं। जो हाकिम नहीं बनते, वे डाक्टरी, वकालत वग़ैरह करते हैं और ये सभी महाजनी सभ्यता के स्तंभ हैं। मध्यवर्ग के लोग अँगरेज़ी पढ़कर दफ़्तरों में ग़ुलामी करते हैं। 'सेवासदन' में सदनसिंह जब नौकरी खोजने निकलता है, तब उसे अपनी शिक्षा का अभाव खटकता है ; साथ ही वह उस शिक्षा का मूल्य भी आँक लेता है—"मेरा चरित्र उच्च न सही, पर बहुतों से अच्छा है। मेरे विचार उच्च न हों, पर ऐसे नीच नहीं। लेकिन मेरे लिए सब दरवाज़े बन्द हैं। मैं या तो कहीं चपरासी हो सकता हूँ या बहुत होगा तो कान्सटेबिल हो जाऊँगा। बस, यही मेरी सामर्थ्य है। यह हमारे साथ कितना बड़ा अन्याय है। हम कैसे ही चरित्रवान् हों, कितने ही बुद्धिमान् हों, कितने ही विचारशील हों, पर अँगरेज़ी भाषा का ज्ञान न होने से उसका कुछ मूल्य नहीं। हमसे अधम और कौन होगा, जो इस अन्याय को चुपचाप सहते ही नहीं, बल्कि उस पर गर्व करते हैं।"

इस तरह विदेशी सभ्यता ने महाजनी सभ्यता की जड़ें हमारे समाज में मज़बूती से जमा दी हैं और इसीलिए प्रेमचन्द उसका विरोध करते हैं ; इसलिए नहीं कि वह विदेशी है। पुरानी सभ्यता अपनी पुरानी सामाजिक सभ्यता के साथ मिट गई है—उसमें कुछ दम नहीं है, बहुत से बहुत उसके लिए सहानुभूति के चार आँसू गिराये जा सकते हैं ; परन्तु नई सामाजिक परिस्थितियों के लिए वह बेकार है। नई शिक्षा एक नई सभ्यता को पोषित कर रही है और इस सभ्यता की भित्ति स्वार्थ पर है।

अँगरेज़ों ने आकर हिन्दुस्तान में एक नई शिक्षा फैलाई और उससे महाजनी सभ्यता की जड़ जमी। साथ ही वे अपने साथ नये उद्योग-धंधे भी लाये, जिन्होंने देशी उत्पादन के साधनों में क्रांति कर दी। महाजनी सभ्यता का आधार ही वास्तव में आधुनिक व्यापार है और इस व्यापार का स्वभावतः नये उद्योग-धंधों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। 'रंगभूमि' में प्रेमचन्द ने यही संघर्ष चित्रित किया है। एक ओर नया व्यापार और नया धंधा है ; दूसरी ओर पुरानी सभ्यता और पुराना सामाजिक आदान-प्रदान। इन दोनों के संघर्ष में पड़कर पुराना जीवन छिन्न-भिन्न हो जाता है और एक गाँव का गाँव तबाह हो जाता है, उसके साथ ही शहर के और बहुत-से लोग भी। 'रंगभूमि' में नये व्यापार का विरोध वह उन्हीं कारणों से करते हैं, जिनसे उन्होंने पश्चिमी शिक्षा का विरोध किया था। नया उद्योग और नया व्यापार पुरानी सभ्यता के दोनों अंगों को, किसान और ज़मींदार को, निकम्मा बना देता है। एक मज़दूरी करता है, अपने पुराने बंधनों से अलग होकर पतन के समुद्र में बह चलता है ; दूसरा अपनी ख़ानदानी बातें भूलकर कारख़ानों में हिस्से ख़रीदता है और पहले से भी अधिक भयंकर शोषक बन जाता है।

जॉन सेवक सूरदास की ज़मीन पर कारख़ाना बनवाना चाहते हैं। सूरदास उन्हें ज़मीन नहीं देना चाहता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

न देने के उसके पास बहुत-से कारण हैं। ज़मीन से कुछ पैतृक प्रेम है ; उससे बाप-दादों का नाम चलता है ; कुछ अपनी यादगार में वहाँ बनवाकर छोड़ भी जाना चाहता है, लेकिन व्यक्तिगत कारणों के होते हुए भी ज़मीन को न बेचने में वह सामाजिक लाभ भी देखता है। एक तो जब तक वह यों ही परती पड़ी है, उसमें गाँव के गोरू चरते हैं, इसके सिवा जब वहाँ कारख़ाना बन जायगा, और वह भी सिगरेट का, तो गाँव में अनाचार का ठिकाना न रहेगा। लेकिन जॉन सेवक, जो एक नये व्यापारी, देश के नये पूँजीपतियों के प्रतीक हैं, इन सब दलीलों को कोरी भावुकता समझते हैं। अपने कारख़ाने की सामाजिक उपयोगिता सिद्ध करने के लिए उनके पास कम तर्क नहीं हैं।—"हमारी जाति का उद्धार कला-कौशल और उद्योग की उन्नति में है। इस सिगरेट के कारख़ाने से कम से कम एक हज़ार आदमियों के जीवन की समस्या हल हो जायगी, और खेती के सिर से उनका बोझ टल जायगा। जितनी ज़मीन को एक आदमी अच्छी तरह जोत-बो सकता है, उसमें घरभर का लगा रहना व्यर्थ है। मेरा कारख़ाना ऐसे बेकारों को अपनी रोटी कमाने का अवसर देगा।"

कुँअर भरतसिंह को संदेह होता है कि तम्बाकू की खेती से अनाज महँगा हो जायगा और लोगों के स्वास्थ्य पर भी उसका बुरा प्रभाव पड़ेगा। जॉन सेवक इसका सीधा उत्तर देते हैं—"व्यवसायी लोग इन गोरखधंधों में नहीं पड़ते ; उनका लक्ष्य केवल वर्तमान परिस्थितियों पर रहता है। हम देखते हैं कि इस देश में विदेश से करोड़ों रुपये के सिगरेट और सिगार आते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि इस धन-प्रवाह को विदेश जाने से रोकें। इसके बग़ैर हमारा आर्थिक जीवन कभी पनप नहीं सकता।"

आर्थिक जीवन के पनपने का सही-सही मतलब क्या है ? जॉन सेवक कुँअर को कारख़ाने से फ़ायदे का एक सब्ज़ बाग़ दिखाते हैं ; पहले ही साल २५) प्रति सैकड़ा मुनाफ़ा होगा। अगर कोई दैवी बाधाएँ पड़ भी गईं तो २०) सैकड़ा तो कहीं गया नहीं है। नतीजा यह होता है कि वही कुँअर साहब, जो तंबाकू से देश को नुक़सान होने की बात सोच रहे थे, अब एकदम ५०० हिस्से लेने को तैयार हो जाते हैं।

आज के व्यवसाय का यही रूप है ; व्यक्तिगत स्वार्थ के आगे मनुष्य समाज के हानि-लाभ की चिंता नहीं करता। जॉन सेवक की आत्मा भी उन्हें धिक्कारती है, "तुमने देश की व्यावसायिक उन्नति के लिए नहीं, अपने स्वार्थ के लिए यह प्रयत्न किया है।"

जॉन सेवक का उद्देश्य है, नफ़े का बड़ा भाग किसी न किसी हीले से अपनी जेब के हवाले करना। लेकिन अपने कार्य की उपयोगिता सिद्ध करने के लिए और विरोधियों के तर्क को खंडित करने के लिए उनके पास भाँति-भाँति के अस्त्र हैं। नायकराम पंडा को समझाते हैं कि उनके यात्रियों के लिए सड़क के किनारे खपरैल के मकान बनवा दिये जायँगे। बजरंगी अहीर से कहते हैं कि वह अहाते में अपनी गायें-भैंसे चरा लिया करेगा। इसके अलावा अभी सारा दूध लेकर उसे शहर जाना पड़ता है ; उस दूध से हलवाई दही, मलाई बनाता है और फ़ायदा उठाता है। कारख़ाना खुल जाने से उसका दूध अलग बिकेगा, मलाई अलग। उपले घर बैठे बिक जायँगे। ठाकुरदीन पानवाले की बिक्री चौगुनी हो जायगी। खोंचेवालों और ताड़ीवालों की आमदनी का तो कहना ही क्या ? लड़कों के लिए मदरसा भी खुल जायगा। इस तरह गाँववाले भी ज़मीन देने के लिए राज़ी हो जाते हैं। राजा महेंद्रप्रतापसिंह के आगे जॉन सेवक राष्ट्रीयता का स्वाँग भरते हैं। जब एक बार असफल होते हैं तो दूसरी बार अपने गुमाश्ता ताहिर-अली के घर में घुसकर स्त्रियों पर गाँववालों द्वारा अत्याचार किये जाने की कथा गढ़ते हैं। आदि झूठ, अंत झूठ ; आज की सभ्यता का आधार यही झूठ का व्यापार है।

इस व्यापार में समाज के सभी उच्चवर्गों का स्वार्थ है। वहाँ ग़रीब की सुनवाई नहीं है ; जिनके हाथ में न्याय है, वे भी व्यापारी हैं, वे अपने भाई-बंदों के विरुद्ध फ़ैसला नहीं कर सकते। जॉन सेवक सूरदास को यथार्थ का बोध कराते हुए कहते हैं—"अब व्यापार का राज्य है, और जो इस राज्य को स्वीकार न करे, उसके लिए तारों को निशाना मारनेवाली तोपें हैं।"

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नतीजा यह होता है कि सूरदास की ज़मीन उससे ले ली जाती है। कारख़ाना बनना शुरू होता है और पांडेपुर की शांत बस्ती में मज़दूरों के नये वर्ग की सृष्टि होती है। सूरदास इनके बारे में शिकायत करता है—"वे सारी बस्ती में फैले हुए हैं, और रोज़ ऊधम मचाते रहते हैं। हमारे मुहल्ले में किसी ने औरतों को नहीं छेड़ा था, न कभी इतनी चोरियाँ हुईं, न कभी इतने धड़ल्ले से जुआ हुआ, न शराबियों का हुल्लड़ रहा। जब तक मजूर लोग यहाँ काम पर नहीं आ जाते, औरतें घरों से पानी भरने नहीं निकलतीं। रात को इतना हुल्लड़ होता है कि नींद नहीं आती।"

धीरे-धीरे एक दिन वह आता है कि इस शिकायत की गुंजाइश ही नहीं रक्खी जाती। मजूरों के लिए मकानों की ज़रूरत है। पांडेपुर के किसानों से उनके मकान ख़ाली कराये जाते हैं। कहाँ उन्हें मुनाफ़े का स्वप्न दिखाकर लुभाया गया था, कहाँ जॉन सेवक मकान ख़ाली कराने का परवाना लिये पुलिस के साथ उनके सिर पर आ धमकते हैं। लोग मकानों से निकलना नहीं चाहते; सरकारी मुआवज़ा उनके बाप-दादों के बनाये घरों की क़ीमत से कहीं कम है। और उस मुआवज़े के रुपये का भी फ़िलहाल कहीं ठिकाना नहीं। सिपाहियों ने मकानों में घुस-घुसकर लोगों का सामान इधर-उधर फेकना शुरू किया "मानो दिनदहाड़े डाका पड़ रहा हो।"

और लोग तो मकान ख़ाली कर देते हैं, लेकिन सूरदास अपनी झोपड़ी से अलग नहीं होता। जनता उसके चारों ओर इकट्ठी हो जाती है और पुलिस को गोलियाँ चलानी पड़ती हैं, जिसमें कई आदमी शहीद हो जाते हैं। रात में जब सोफी वहाँ पहुँचती है, तब उसे बरसते पानी में रह-रहकर दीवालों के धम-धम गिरने की आवाज़ सुनाई देती है। और इस तरह पुरानी सभ्यता, पुराना रहन-सहन, और गाँवों में रहनेवाले किसानों के पुराने जीवन को भूमिसात् करती हुई नये व्यापार की यह महाजनी सभ्यता हिन्दुस्तान में अपना प्रसार करती है। जॉन सेवक ने झूठ नहीं कहा था—"व्यवसाय कुछ नहीं है, अगर नर-हत्या नहीं है। आदि से अंत तक मनुष्यों को पशु समझना और उनसे पशुवत् व्यवहार करना इसका मूल सिद्धांत है। जो यह नहीं कर सकता, वह सफल व्यवसायी नहीं हो सकता।"

जॉन सेवक के भाईबन्द 'गोदान' के चन्द्रप्रकाश खन्ना हैं। उन्होंने शक्कर की मिल खोली है। तम्बाकू न सही, शक्कर सही, व्यवसाय व्यवसाय है और उसमें मनुष्यता की हत्या होना अवश्यंभावी है। "आप नहीं जानते मिस्टर मेहता", खन्ना कहते हैं—"मैंने अपने सिद्धान्तों की कितनी हत्या की है। कितनी रिश्वतें दी हैं, कितनी रिश्वतें ली हैं। किसानों की ऊख तौलने के लिए कैसे आदमी रक्खे, कैसे नक़ली बाँट रक्खे।"

और तब समाज में लखपती बने। बजट में शक्कर पर ड्यूटी लग गई। मालिकों ने देखा कि मजूरों की मजूरी घटाने का अच्छा मौक़ा है। "ड्यूटी से अगर पाँच की हानि थी, तो मजूरी घटा देने से दस का लाभ था।"

बेकारी में आदमियों की कमी है नहीं; आधी मजूरी पर तमाम मजूर मिल जायँगे, तब मजूरी में कटती का ऐलान क्यों न कर दिया जाय। गोदाम में इतना माल है कि छः महीने तक न खपे। उधर मजूरी में कमी का ऐलान हुआ, इधर मजूरों ने हड़ताल कर दी। नतीजा यह हुआ कि नये मजूरों की भर्ती हुई और उनसे पुराने मजूरों से लड़ाई हुई, जिसमें पुरानों की ही हार हुई।

खन्ना अपने को मजूरों का नेता और प्रतिनिधि मानते थे। पिछले राष्ट्रीय आन्दोलन में उन्होंने भाग लिया था, दो बार जेल तक हो आये थे। हमेशा वह मजूरों की शिकायतें सुनने के लिए तैयार रहते थे, "लेकिन यह तो नहीं हो सकता कि वह शक्कर - मिल के हिस्सेदारों के हित का विचार न करें।"

हिस्सेदारों को लम्बे मुनाफ़े का लालच देकर हिस्से ख़रिदवाये गये थे; अगर उन्हें मुनाफ़ा न हुआ तो वे खन्ना को धोखेबाज़ समझेंगे। खन्ना ख़ुद तनख़्वाह कम लेते हैं, सिर्फ़ १०००) महीना। फिर डायरेक्टर और मजूर का कोई मुक़ाबला है! डायरेक्टर बुद्धि से काम लेता है, मजूर अपने हाथों से। मजूरों में भी बुद्धि होती तो समझते कि मन्दी के समय बेकारी बढ़ गई है और अब एक की जगह पौन से भी संतुष्ट रहना चाहिए।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेकिन मेहता से उन्हें एक दूसरा ही तर्क सुनने को मिलता है—"क्या आपका विचार है कि मजूरों को इतनी मजूरी दी जाती है कि उसमें चौथाई कम कर देने से मजूरों को कष्ट न होगा ? आपके मजूर बिलों में रहते हैं—गन्दे, बदबूदार बिलों में—जहाँ आप एक मिनट भी रह जायँ तो आपको क़ै हो जाय। कपड़े जो वह पहनते हैं, उनसे आप अपने जूते भी न पोछेंगे। खाना जो वह खाते हैं, वह आपका कुत्ता भी न खायगा। मैंने उनके जीवन में भाग लिया है। आप उनकी रोटियाँ छीनकर अपने हिस्सेदारों का पेट भरना चाहते हैं।"

महाजनी सभ्यता ने इस नये वर्ग की सृष्टि की है। थोड़ी देर में खन्ना देखते हैं कि मिल में आग लग गई है। 'रंगभूमि' में किसानों के मकान धमाधम पानी में गिर रहे थे; यहाँ ईंटें जल रही थीं, लोहे के गर्डर जल रहे थे और पिघली हुई शक्कर के परनाले चारों तरफ़ बह रहे थे।

मिल के जलने से एक फ़ायदा हुआ कि खन्ना और उनकी बीवी में समझौता हो गया।

नये व्यवसाय ने इस वर्ग-संघर्ष को जन्म दिया है। वर्ग-संघर्ष का मूलकारण धन है और धन के लिए वर्ग के भीतर ही व्यक्तियों के बीच संघर्ष मचा हुआ है। वास्तव में वर्ग की सीमा बना-बिगड़ा करती है और धन को देवता बनाकर पूजने की सभ्यता दोनों ही वर्गों की नसों में व्याप गई है। 'गोदान' में गोबर शहर में मजूरी करने जाता है। पहले महीने मजूरी कर, आधे पेट खाकर थोड़े-से रुपये बचा लेता है। फिर खोंचा लगाता है। गर्मियों में शर्बत और बरफ़ की दूकान खोलता है; जाड़े में चाय बेचता है। घर को एक भी पैसा नहीं भेजता और एक्केवालों, गाड़ीवानों और धोबियों को सूद पर रुपये देता है। महाजनी संगठन में उसने अपने लिए एक छोटा-सा स्थान बना लिया है। समाज की व्यवस्था ही ऐसी है कि उसमें या तो महाजन बनो, नहीं तो क़र्ज़दार। ईमानदार के लिए उसमें जगह नहीं; या तो यन्त्र से सहयोग करो या उसकी अनिवार्य गति के नीचे पिसने के लिए तैयार हो जाओ।

"जिस समाज में दौलत पुजती है, जहाँ मनुष्य का मोल उसके बैंक एकाउण्ट और टीमटाम से आँका जाता है, जहाँ पग-पग पर प्रलोभनों का जाल बिछा हुआ है और समाज की कुव्यवस्था आदमी में ईर्षा-द्वेष, अपहरण और नीचता के भावों को उकसाती और उभारती रहती है, गुरुसेवक और रामदुलारी उस जाल में फँस जायँ, उस प्रवाह में बह जायँ तो कोई अचरज नहीं।"

आगे हम इस प्रवाह में बहते हुए समाज के भिन्न वर्गों का विशेष विवेचन करेंगे।

[लेखक की शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाली पुस्तक 'प्रेमचन्द और उनकी कला' का एक परिच्छेद]

सिद्ध योगेन्द्र कवच

१००) रु० इनाम (शास्त्रोक्त)

कवच की आश्चर्यजनक शक्ति से कोई भी स्त्री या पुरुष आपके वश में हो जायगी। चाहे वह कितनी ही कठोर हृदय क्यों न हो, आपसे शादी (प्रेम) के लिए इच्छा प्रकट करेगी। यह सिद्ध वशीकरण कवच है। इस कवच के अलौकिक प्रभाव से नौकरी, संतान, धन की प्राप्ति, व्यापार में लाभ और नौकरीवालों को तरक्की, परीक्षा में पास, मुक़दमे, लाटरी, कुश्ती इत्यादि में विजय, कठिन से कठिन रोग, क़र्ज़ और बुरे से बुरे ग्रहों से छुटकारा होकर भाग्योदय होता है। बेफ़ायदा साबित करने पर १००) रु० इनाम। मूल्य ताँबे का २) चाँदी का ३।) सोने का ६) रु०

पता—श्रीमहाशक्ति आश्रम

नं० ५५, पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

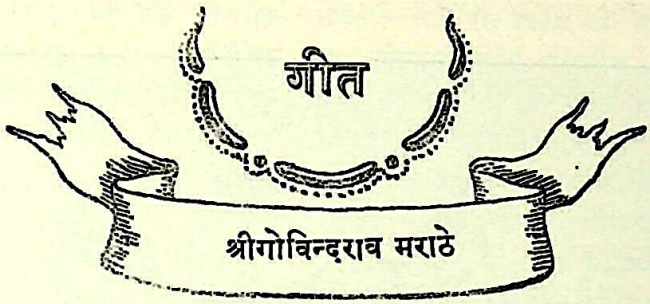

विकच संध्या - तारिका
एक ही पल में हुई
सीमन्तिनी अभिसारिका !

स्वर-सरित-फेनिल-अतल तल
चढ़ लहर की तरणि पर
भागन्ध-तट की ओर प्रतिपल
बढ़ रही तृष्णाकुलित
कलहंसिनी नीहारिका !

नैश के मुकुलित मुकुल - दल
से सजाई श्याम कवरी
कर रही शृङ्गार अविकल
दामिनी - मधुरस्मिता
स्मर-नंदिनी सुकुमारिका !

हँस रहा मन्दाकिनी में
इन्द्रधनुषी कुमुद - कानन
लीन अलि मधु - कामिनी में
बह रही मलयज - लहर
स्मर - यामिनी - परिचारिका !

कर परस्पर अधर - चुम्बन
प्रिय - हृदय से हृदय - मेलन
कुछ पहर भी कर न पाई
प्रणय - अभिनय का प्रदर्शन
जग पड़ी प्राची दिशा में
शिंजिनी शर - धारिका !

इन्द्रवन की सारिका
मुरलिका की बन न पाई रागिनी
उन्मादिनी—हृत् - हारिका !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

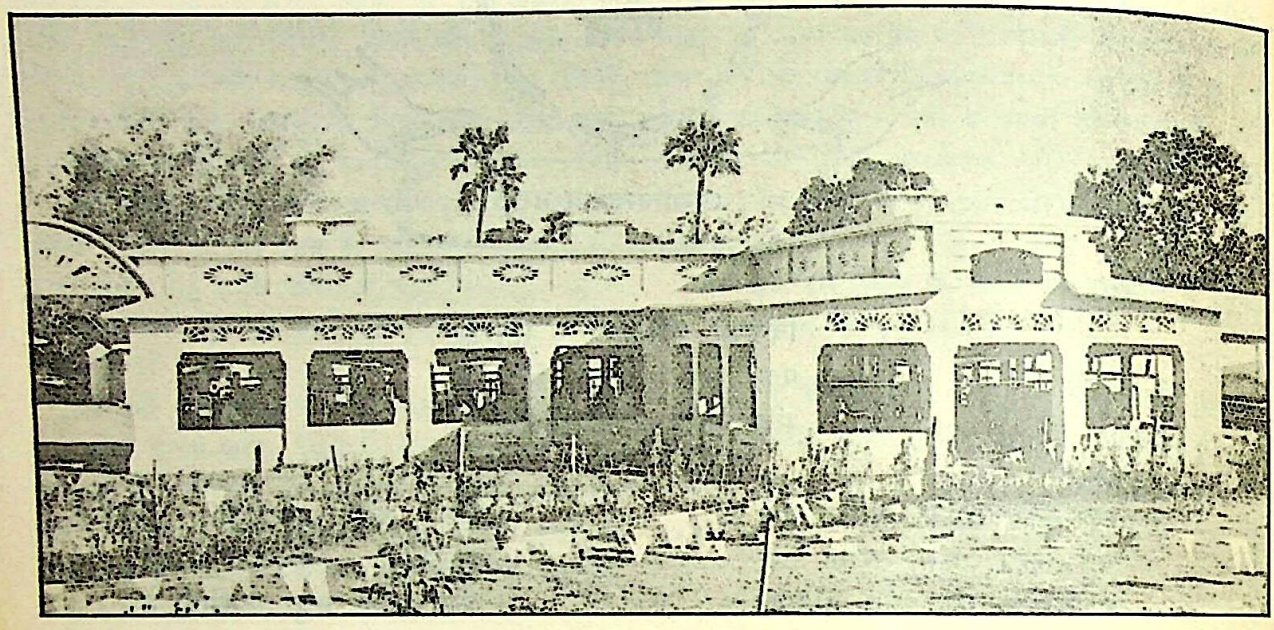

बिहार की सर्वश्रेष्ठ गोशाला

श्रीशिवपूजनसहाय हिन्दीभूषण

भारत में गोरक्षिणी संस्थाओं की जो दयनीय दशा है, वह सर्व-विदित है। किन्तु उनकी दुरवस्था का मुख्य कारण जहाँ अव्यवस्था और द्रव्याभाव है, वहाँ जनता की उदासीनता भी है। मारवाड़ी, गुजराती आदि व्यापार-प्रधान जातियों के अतिरिक्त भारत की कोई जाति गोरक्षा में श्रद्धा और सुरुचि के साथ तत्पर नहीं है। राजा-रईसों को गोरक्षिणी संस्थाओं की सहायता का कुछ ध्यान ही नहीं है। व्यवसायी वैश्यों के घर में विवाहादि शुभ अवसरों पर गोरक्षा के निमित्त यथाशक्ति दान देने की भी प्रथा है; पर राजा-रईसों के यहाँ वह भी नहीं है। सरकारी संरक्षण तो है ही नहीं। ज़िला-बोर्ड या लोकल-बोर्ड और म्युनिसिपैलिटी की सहायता भी नाम-मात्र की होती है। ऐसी स्थिति में गोरक्षिणी संस्थाओं का अव्यवस्थित एवं दुर्दशाग्रस्त होना स्वाभाविक ही है। जब कृषि-प्रधान देश होने पर भी भारत में गोचर-भूमि का सर्वथा अभाव है, तब गोभक्त-नामधारी इस देश के गो-धन की दुर्गति आश्चर्यजनक कैसे कही जा सकती है।

हिन्दू-जाति भी गोरक्षा से विमुख हो गई है, यह सबसे बढ़कर दुःख की बात है। गो-धन के ह्रास का सबसे बड़ा कारण हिन्दुओं की अश्रद्धा ही है। प्राचीन काल में घर-घर गो-ग्रास की जो प्रथा थी, वह भी अब न रही। किसान बड़े गो-पालक कहे जाते हैं, पर वे भी स्वार्थी बन गये हैं। बूढ़ी, लाचार और निकम्मी गौओं को निर्वासित करने में किसान भी नहीं हिचकते। जिस गाय-बैल की कमाई बरसों खाते हैं, उसके असमर्थ हो जाने पर उसे गोरक्षिणी संस्था में भी नहीं पहुँचाते। वृद्ध माता-पिता का तो घर में आदर हो नहीं, गाय-बैल की बात कौन पूछे। यह देश-दुर्दशा की चरम सीमा है।

विदेशों में गोरक्षा की जो व्यवस्था है, उसकी चर्चा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करना अनावश्यक है। विदेशियों को हम गोभक्षक कहते हैं; पर उनकी गोपालन-प्रणाली से जो परिचित हैं, वे उन्हें गोपालक ही कहेंगे। स्वनामधन्य पंडित रामनारायण मिश्र (काशी) ने अपने योरप-यात्रा-विवरण में स्पष्ट लिखा है कि योरप के देशों में जैसा शुद्ध और मधुर गो-दुग्ध सुलभ है, वैसा भारत में शायद ही कहीं मिल सके। राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू जब इँगलैंड गये थे, तब वहाँ की सुरक्षित गोचरभूमि और हृष्टपुष्ट गौओं की प्रशंसा अपने यात्रा-वर्णन में लिखकर उन्होंने खुले शब्दों में कह दिया था कि भारत का गोरक्षक होने का गर्व निराधार है। यह ठीक है कि भारत दरिद्र है, योरप और अमेरिका धन-सम्पन्न हैं। किन्तु भारत केवल गोरक्षा करने में दरिद्र है, विवाह और श्राद्ध में अपव्यय करने में दरिद्र नहीं है। प्रचुर धनव्यय करके सैकड़ों निरर्थक कार्य हिन्दू-समाज में होते हैं; पर गोरक्षा का महत्त्व किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं करता!

इस देश में गोरक्षा को अपने उद्देश्यों में सम्मिलित करनेवाली अनेक महासभाएँ भी हैं; पर आज तक वर्तमान युग की उन्नत एवं वैज्ञानिक गोपालन-पद्धति का अध्ययन करने के लिए कोई गोभक्त-दल विदेशों में नहीं भेजा गया। कुछ लोग जो इस उद्देश्य से वहाँ गये भी, यहाँ लौटकर संगठित रूप से कुछ न कर सके—सामूहिक रूप से देश की गोरक्षिणी संस्थाओं का वास्तविक हित-साधन न हो सका। हमारी गोरक्षा-भिमानिनी महासभाएँ गोधन-साहित्य भी तैयार न करा सकीं—गोपालन-विधि और गोबर का उपयोग बतानेवाली एक-एक पैसे की पुस्तिकाएँ भी भारत के घर-घर में न पहुँचा सकीं।

राष्ट्रभाषा हिन्दी में गोधन-साहित्य की जो अवस्था है, वह हिन्दीप्रेमियों से छिपी नहीं। गोलोकवासी पंडित गंगाप्रसादजी अग्निहोत्री का जीवन गो-साहित्य-रचना में ही बीत गया; पर उनका उत्तराधिकार ग्रहण करनेवाला कोई न निकला। उन्हीं के प्रान्त के लखनादौन-निवासी श्रीशोभारामजी धेनुसेवक अब भी लगन लगाये हुए हैं; पर प्रचार-कार्य के साथ ही साहित्य-रचना का कार्य विधिवत् सम्पन्न नहीं हो सकता—यह एक व्यक्ति की शक्ति से परे का काम है। साधु-संन्यासी और मठाधीश भी इस देश में असंख्य हैं; पर कैलासवासी आत्माराम संन्यासी का उत्तराधिकारी कोई नहीं—अपनी ही मुक्ति के पीछे सब विह्वल हैं, गोमाता की मुक्ति किसी को अभीष्ट नहीं।

इन सारी बातों का परिणाम प्रत्यक्ष है। भारत-सन्तान विशुद्ध गो-दुग्ध के अभाव से अल्पायु और रोगी होती जा रही है। गोबर की खाद को महात्मा गांधी भले ही सर्वश्रेष्ठ खाद बतलावें, पर सरल और सस्ती रीति से भूमि की उर्वरा-शक्ति बढ़ाना भी किसी को पसन्द नहीं—ऐसा घोर आलस्य और जड़ता है इस देश में!

एक तो यहाँ गोरक्षिणी संस्थाओं की संख्या ही बहुत कम है, दूसरे—जो इनी-गिनी संस्थाएँ हैं भी, उनकी प्रबन्ध-शैली अत्यन्त शोचनीय है। जिन लोगों ने बम्बई की गोवर्द्धन-संस्था, सैदपुर (कलकत्ता) का पिंजरापोल, काशी और कानपुर की गोशालाएँ देखी हैं, वे ही समझ सकते हैं कि अन्यान्य स्थानों की गोशालाओं में कौन-सी त्रुटियाँ हैं। यह कहा जा सकता है कि जहाँ धनी व्यवसायियों की संख्या अधिक है, वहाँ की गोशाला का उन्नत एवं सुव्यवस्थित होना कोई बड़ी बात नहीं; पर यह नहीं कहा जा सकता कि जहाँ सुसम्पन्न सद्गृहस्थ हिन्दुओं का जत्था है, वहाँ की गोशाला का कुप्रबन्ध दयनीय नहीं है। आर्थिक दृष्टि से तो भारत की सभी जातियों का कर्तव्य है गोरक्षण; पर गोरक्षा के नाम पर पड़ोसी जातियों से बैर बिसाहने-वाली हिन्दू-जाति का कर्तव्य सर्वोपरि है। गोरक्षा की आड़ में जो विद्वेष और वैमनस्य इस देश में फैल रहा है और उससे जो सर्वनाशकारी अशान्ति बढ़ रही है, वह देशोद्धार के मार्ग में बड़ी भारी चट्टान है, जिसे टालने का दायित्व सबसे पहले हिन्दुओं पर ही आता है।

यहाँ मैं एक ऐसी गोरक्षिणी संस्था का सचित्र परिचय दे रहा हूँ, जो केवल बिहार में ही नहीं, अन्य प्रान्तों की ऐसी संस्थाओं में भी अत्युच्च स्थान की अधिकारिणी होने योग्य है। बिहार में तो ऐसी गोशाला दूसरी नहीं है; पर अन्य प्रान्तों में भी एकाध

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ही कोई है। इस संस्था का नाम 'दरभंगा-गोशाला-सोसाइटी' है।

सन् १८८१ ई० में श्रीमान् मिथिलेश महाराज सर लक्ष्मीश्वरसिंह बहादुर ने इसकी स्थापना की थी। सन् १८८१ ई० से सन् १६२५ ई० तक इस गोशाला ने १,२३,६५० अनाथ एवं वृद्ध गौओं का भरण-पोषण किया। सन् १६२६ ई० से, जब से वर्तमान दरभंगा-नरेश महाराजाधिराज सर कामेश्वरसिंह बहादुर मिथिला

श्रीमान् दरभंगा-नरेश सर कामेश्वरसिंह बहादुर, के० सी० आई० ई०, एल्-एल्० डी० (गोशाला-सोसाइटी के आजीवन सभापति)

का गद्दी पर बैठे हैं, इस संस्था की आशातीत उन्नति हुई है और इसका कार्य-क्षेत्र भी बहुत विस्तृत हो गया है। सन् १६३० ई० में, सन् १८६० ई० के सोसाइटीज़-रेजिस्ट्रेशन-ऐक्ट के अनुसार, इस संस्था की रजिस्टरी हुई। और, उसी वर्ष, नैपाल-सरकार ने, 'नीगौल'-नामक गाँव में, इस संस्था को चार सौ एकड़ गोचर-भूमि दान दी। यह गाँव नैपाल-राज्य के 'म्होतरी' ज़िले में है, जो मिथिला की सीमा के पास ही है।

इस संस्था का प्रचार-कार्य बड़ा प्रशंसनीय है। इसके कई प्रचारक मैजिक लालटेन पर भाषण देते फिरते हैं। प्रचार से प्रभावान्वित होकर मुसलमान भाइयों ने अब तक सवा सात सौ बूढ़ी गायें इस संस्था को दी हैं। पाली हुई गाय के बेचने की प्रथा भी कम होती जा रही है। ज़िलाभर के मवेशीख़ानों (cattle-pounds) को इस संस्था ने अपने संचालकत्व में ले लिया है। बम्बई की जीव-दया-प्रचारिणी मंडली (Humanitarian League) की ओर से समस्त बिहार में प्रचार-कार्य इसी संस्था की देखरेख में होता है। हाईस्कूलों के छात्रों के लिए गोरक्षा-सम्बन्धी लेख-प्रतियोगिता और पुरस्कार-योजना का प्रबन्ध भी 'मण्डली' की ओर से यही संस्था करती है।

सोसाइटी के प्रधान मंत्री श्रीबुधूलाल केजड़ीवाल

इस संस्था की चार मुख्य शाखाएँ हैं—नीगौल (नैपाल-राज्य), निरमली (भागलपुर ज़िला), रखवारी और गंगवारा (दरभंगा ज़िला)। इसके पास बड़े-बड़े चरागाह भी हैं, जिनमें आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली से नई-नई घास उपजाई जाती है। ज़िले के कई गाँवों में भी इसकी छोटी-मोटी शाखाएँ खुल गई हैं। इसने किसानों को पालने के लिए कितने ही गाय-बैल दिये हैं, जिन्हें वे बेच नहीं सकते। इस तरह के गाय-बैल दरभंगा ज़िले में २५० और नैपाल-राज्य में ४०० वितरित हुए हैं। ऐसे पशुओं के कान पर नवीन यंत्र द्वारा नम्बर दिया हुआ है। संस्था के इंस्पेक्टर इन पशुओं की बराबर जाँच-पड़ताल किया करते हैं।

घर-घर में गोग्रास-पात्र रखवाकर उसमें भोजन के पूर्व गो-ग्रास निकालने की प्रथा भी इस संस्था ने चलाई है। उत्कृष्ट वंश के साँड़ों द्वारा गो-वंश के विकास एवं वृद्धि का प्रबंध भी इसने बड़े अच्छे ढंग से किया है। नागरिकों को शुद्ध दूध पहुँचाने के लिए इसके दुग्धालय में बहुत सुन्दर प्रबन्ध है। स्वच्छ बोतलों में मुहरबन्द करके ख़ास तरह की साइकिलों पर नगर में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

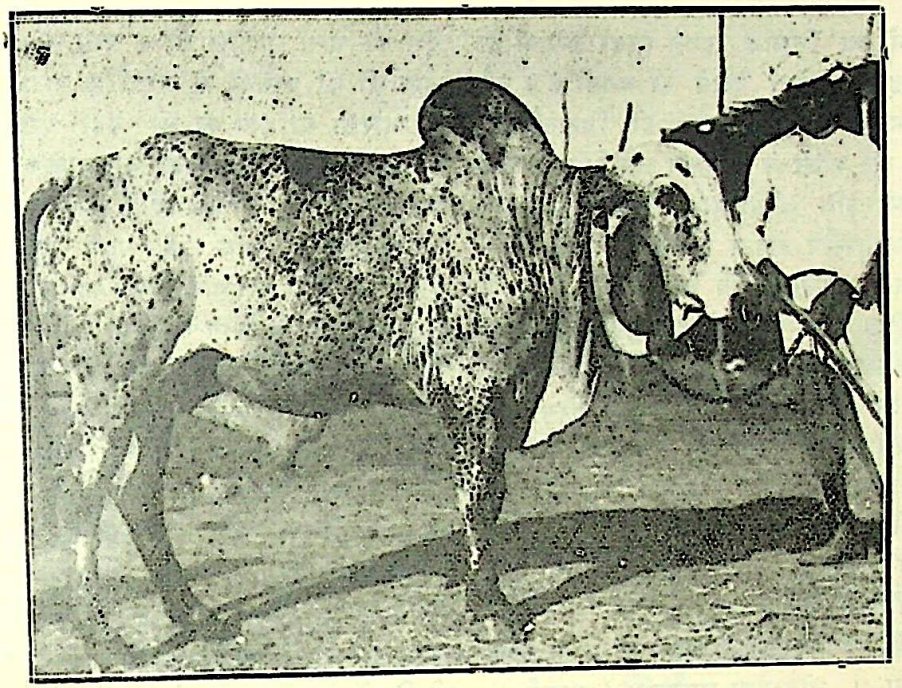

गीड़ जाति का एक साँड़

दूध वितरित होता है, जिसके साथ छपे हुए मूल्यांकित टिकट भी रहते हैं। मक्खन आदि का भी ऐसा ही प्रबंध है। संस्था की इस सुव्यवस्था को देखकर ही दरभंगा-म्युनिसिपैलिटी ने दूध बढ़ाने के लिए इसे दो हज़ार रुपये दिये हैं और ज़िला-बोर्ड ने गाँवों में उत्तम साँड़ रखने के लिए चार हज़ार रुपये देकर भविष्य में भी इसकी यथोचित सहायता करते रहने का आश्वासन दिया है।

इसके पशु-चिकित्सालय में सुयोग्य डाक्टर नियुक्त हैं, जो संस्था के पशुओं के अतिरिक्त बाहर के पशुओं के लिए भी निःशुल्क औषध-वितरण करते हैं। इस पशु-सेवा से यह संस्था दिन-दिन लोकप्रिय होती जा रही है और ज़िले में गोरक्षा-संबंधी जागृति भी फैल रही है। जनता में गोरक्षण का भाव जगाये रखने के लिए समय-समय पर नाना प्रकार के उत्सव-समारोह आदि भी होते रहते हैं। बंग-बिहार-गोशाला-सम्मेलन का दूसरा अधिवेशन जगद्गुरु शंकराचार्य के सभापतित्व में और बिहार-प्रान्तीय गोरक्षा-सम्मेलन का प्रथम अधिवेशन महामना मालवीयजी की अध्यक्षता में इसी संस्था के प्रयत्न से यहाँ हुआ था। एक बार महाकवि हरिऔधजी के सभापतित्व में गोरक्षा-कवि-सम्मेलन भी हो चुका है। उस अवसर पर कविवर का जो भाषण हुआ था, वह पुस्तकाकार में मुद्रित है और गोभक्तों के पढ़ने योग्य एक अच्छी चीज़ भी है। इस संस्था ने गोरक्षा-संबंधी साहित्य के प्रकाशन का भी श्रीगणेश किया है। अभी हाल ही में हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक पंडित गणेशदत्त शर्मा गौड़ 'इन्द्र' विद्यावाचस्पति की लिखी हुई 'गोरक्षा'-नामक एक उपयोगी पुस्तक यहाँ से प्रकाशित हुई है। और भी कई पुस्तकें छप रही हैं। यहाँ से 'गोपालन'-नामक एक सचित्र मासिक पत्र भी निकलता था; पर अब उसके स्थान पर पुस्तक-प्रकाशन की ही व्यवस्था की गई है।

सन् १६३२ ई० में इस संस्था की स्वर्ण-जयन्ती मनाई गई थी। उस समय एक विराट् प्रदर्शनी का भी आयोजन किया गया था, जिसमें प्रान्तीय कृषि-विभाग, ज़िला-बोर्ड, म्युनिसिपैलिटी आदि का पूर्ण सहयोग होने से बड़ी सफलता मिली थी। सन् १६३४ ई० के भीषण भूकम्प में इस संस्था के सभी भवन चूर्ण हो गये थे; परन्तु दरभंगा-नरेश की वदान्यता से पुनः

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इसके सारे भवनों का निर्माण इतने सुन्दर रूप में हो गया कि आज इसकी शोभा देखते ही बनती है। नई शैली के सुदृढ़ भवनों से इसकी छटा ही निराली हो गई है। विगत वर्ष काशी के यशोधन कलाविद् श्रीराय कृष्णदासजी, महाकवि श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त और भारतेन्दुजी के भ्रातुष्पौत्र डाक्टर मोतीचन्दजी पी-एच० डी० एक बारात में दरभंगा आये थे, तो मैं उन लोगों को यह संस्था दिखाने ले गया था। इसे देखकर वे परम सन्तुष्ट हुए और यहाँ तक कहा कि उत्तर भारत में यह गोशाला अपने ढंग की अकेली और आदर्श संस्था है। इससे पहले भारतीय भीम प्रोफ़ेसर राममूर्ति, डॉक्टर मुंजे, कुमार गंगानन्दसिंह आदि प्रसिद्ध पुरुषों ने भी इसे देखकर यही सम्मति प्रकट की थी।

गोलोकवासी रायसाहब नथमलजी बैरोलिया इस नगर के एक प्रतिष्ठित धनाढ्य मारवाड़ी थे। उन्होंने भी इस संस्था के नये भवनों के निर्माण में प्रचुर द्रव्य व्यय किया था। जीव-दया-मण्डली (बम्बई), मारवाड़ी-रिलीफ़-सोसाइटी (कलकत्ता), मारवाड़ी-पंचायत (कलकत्ता), विहार-भूकम्प-कोष आदि से भी सामयिक सहायता प्राप्त हुई थी। इससे भी इस संस्था का महत्व स्पष्ट विदित होता है। जो कोई एक बार इसे देख लेता है, उसकी सहानुभूति आकृष्ट हुए विना नहीं रहती।

इस संस्था ने आजीवन सभ्यों का एक खाता खोला है। इस कोष में पाँच सौ रुपये से अधिक दान देनेवाले सभ्यों के तैलचित्र इसके कार्यालय की दीवारों पर जड़े गये हैं। प्रतिवर्ष जो तिरंगा गोशाला-तिथिपत्र (कलेंडर) निकलता है, उसमें इन सभी सभ्यों के चित्र छपे रहते हैं। सभ्यों के चित्रों की गैलरी में नगर के अधिकांश धनी-मानी व्यक्तियों के तैलचित्र लगे हुए हैं, जिन्हें पुस्तक-भंडार (लहेरियासराय) के सिद्धहस्त चित्रकार श्रीउपेन्द्र महारथी ने बनाया है। सभ्यों से जो द्रव्य प्राप्त होता है, वह गोशाला के स्थायी कोष में जमा हो जाता है, उसका ब्याजमात्र ही गोरक्षा में व्यय होता है। यह संस्था की उन्नति का एक प्रधान साधन है।

इसके पुस्तकालय में गोरक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों का बृहत् संग्रह है। कदाचित् ऐसा गोरक्षा-साहित्य-संग्रह देश की अन्य गोशालाओं के पास न होगा। भारतीय भाषाओं की पुस्तकों के अतिरिक्त योरप और अमेरिका के गोरक्षा-साहित्य का भी यहाँ दर्शनीय संग्रह है। पुस्तकालय के साथ एक वाचनालय भी है, जिसमें अनेक हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं के सिवा अन्य भाषाओं के गोरक्षा-सम्बन्धी पत्र भी पढ़ने को मिलते हैं। पुस्तकालय और वाचनालय तथा कार्यालय में नाना प्रकार के मानचित्र, गो-जाति-सम्बन्धी आँकड़े, उपदेश-वाक्य आदि टँगे हुए हैं, जिन्हें देखने और पढ़ने से गो-जाति की सच्ची दशा का ज्ञान होने के साथ-ही-साथ गोपालन-विधि और गो-सेवा-महिमा भी मालूम हो जाती है।

वाचनालय के मुख्य द्वार पर दोनों ओर दानदाताओं की नामावली संगमरमर पर खुदी हुई लगी है। वहीं नवागन्तुक के हस्ताक्षर और सम्मति-प्रकाशन के लिए एक रजिस्टर, पेंसिल तथा 'यथाशक्ति दान' का डिब्बा रक्खा रहता है—ऐसे डिब्बे नागरिकों के यहाँ और चीनी की मिलों में भी रक्खे गये हैं, जिनसे सैकड़ों रुपये की सालाना आमदनी है। सबसे बड़ी बात यह है कि श्रीमान् मिथिलेश की छत्रच्छाया सदा घनी बनी रहती है, फिर इसके अभ्युदय की क्या बात! राजाश्रित संस्था की उन्नति में क्या बाधा? ऐसी-ऐसी संस्थाओं को तो राजाश्रय का ही अवलम्ब होना चाहिए। यदि इस देश की सभी रियासतों में ऐसी सार्वजनिक गोशालाएँ हो जायँ तो भी गोरक्षा का बहुत बड़ा काम हो सकता है।

इस संस्था को धनी मारवाड़ियों और दरभंगा-राज्य का तो सहारा है ही, पर इसकी सर्वतोमुखी उन्नति का अधिकांश श्रेय इसके सुदक्ष व्यवस्थापक श्रीधर्मलालसिंह को है। आप गोपालन-विद्या में पारंगत हैं और दिन-रात इस संस्था की सेवा में तत्पर रहते हैं। भारत की प्रमुख गोशालाओं का निरीक्षण और देशी तथा विदेशी गोधन-साहित्य का अवलोकन करने से आपका अनुभव बहुत बढ़ गया है, जिसका लाभ यह संस्था उठा रही है। ऐसे लगनवाले परिश्रमी व्यवस्थापक से कोई भी संस्था अमर हो सकती है। गोभक्तों और गोशाला-संचालकों को इस संस्था का परिदर्शन करना चाहिए।

इस समय यह संस्था १६०० पशुओं का पालन कर रही है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

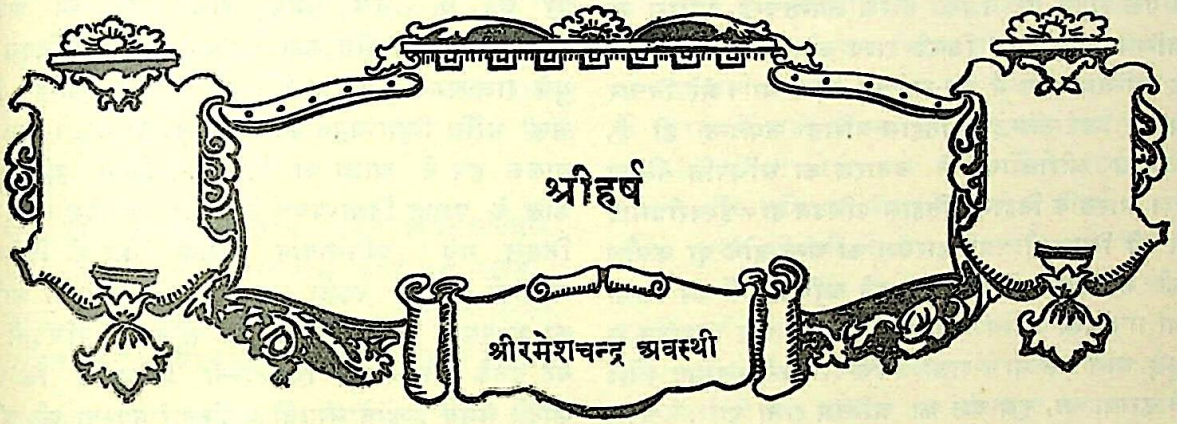

संस्कृत-साहित्याकाश के श्रीहर्ष भी एक उज्ज्वल नक्षत्र हैं। किन्तु इनकी प्रसिद्धि महाकवि कालिदास की भाँति संसारव्यापी एवं संस्कृत न जाननेवालों में नहीं है। केवल संस्कृत-साहित्य-प्रेमी ही इनसे परिचित हैं; क्योंकि इनकी कविता एक उच्चकोटि की शैली में है और श्लेषात्मक है। थोड़ी संस्कृत जाननेवालों के लिए उसका समझना अत्यन्त कठिन है। अतएव इनका विरचित ग्रंथ 'नैषधीय चरितम्' थोड़े से ही संस्कृत-प्रेमियों में सीमित है।

संस्कृत के कविगण प्रायः अपने विषय में कुछ भी नहीं लिखते थे, जिसके कारण आधुनिक ऐतिहासिकों और साहित्य-समालोचकों को अत्यन्त कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं। वैसे ही महाकवि हर्ष भी अपने विषय में मौन रहे। किन्तु प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर एक श्लोक लिखा है, जिसमें इन्होंने अपने माता-पिता का नाम और सर्ग-समाप्ति की सूचना दी है। अपने पिता का नाम श्रीहीर पण्डित तथा माता का नाम मामल्लदेवी लिखा है। श्रीहर्ष के पिता कान्यकुब्जेश्वर श्रीजयन्तचन्द्र के आश्रित थे। श्रीजयन्तचन्द्र के पिता का नाम विजयचन्द्र और उनके पिता का नाम गोविन्दचन्द्र था, जो कि पहले काशी के राजा थे और बाद में कान्यकुब्ज में आकर रहने लगे थे। संवत् १३४८ वि० के विरचित 'प्रबन्ध-कोष' में श्रीराजशेखरजी ने गोविन्दचन्द्र, विजयचन्द्र और जयन्तचन्द्र की प्रशंसा में दो-दो, तीन-तीन श्लोक लिखे हैं, जिससे कि उनके पराक्रम तथा सुन्दर राज्य-शासन का पता चलता है। तथा 'प्राचीन लेख-माला' (Indian Antiquary) के २२वें लेख में संवत् १२२५ वि० (११६९ A. D.) में जयन्तचन्द्र का समय स्वीकार किया गया है। श्रीराजशेखरजी ने अपने 'प्रबन्ध-कोष' में श्रीहर्ष का समय बारहवीं शताब्दि का अन्तिम भाग स्वीकार किया है[1]। और यह भी लिखा है कि श्रीहर्ष महाराजा जयन्तचन्द्र की सभा

१. 'श्रीहर्षः खिष्टद्वादशशताब्द्यन्तिमभागे बभूव'। राजशेखरः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के सभासद् भी थे[1]। किन्तु उसमें उन्होंने जयन्तचन्द्र को बनारस का नृपति लिखा है[2]। सम्भव है कि जयन्तचन्द्र का राज्य कन्नौज से लेकर बनारस तक फैला हो तथा वही समय मुहम्मद ग़ोरी के भारत के आक्रमण का भी है। सन् ११८७ ई० में उसने पंजाब पर अपना प्रथम आक्रमण किया था और फिर धीरे-धीरे कन्नौज और बनारस तक पहुँच गया था। श्रीराजशेखर ने एक स्थान पर लिखा है कि जयन्तचन्द्र बनारस का अन्तिम राजा था, जिसके राज्य को यवनों ने शताब्दि के अन्तिम भाग में नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। मेरे विचार से यह जयन्तचन्द्र इतिहास-प्रसिद्ध जयचन्द ही है, जिसको श्रीराजशेखर ने बनारस का अधिपति लिखा है। भारत के विद्वान् इतिहास-पण्डित डा० ईश्वरीप्रसाद ने भी लिखा है "प्रतिहारवंश का अन्त होने पर कन्नौज को गहरवार क्षत्रियों ने अपने अधिकार में कर लिया था। इनका राज्य आगरा, इटावा और बनारस के कुछ आगे तक था। राजा जयचन्द, जिसे मुहम्मद ग़ोरी ने हराया था, इस वंश का अन्तिम राजा था[3]।" चूँकि बनारस भी इनके अधिकार में था, इसलिए संभव है कि राजशेखर ने इन्हें 'वाराणस्यधिपति' कहा है। इससे यह निश्चय है कि जिसे आधुनिक इतिहास के विद्यार्थी जयचन्द कहते हैं, उसे ही पहले जयन्तचन्द्र कहते थे। इस विषय में और भी विचार किया जा सकता है; किन्तु निबन्ध बढ़ जाने के भय से इस विवाद को मैं यहीं पर समाप्त करता हूँ। किन्तु यह निश्चय है कि श्रीहर्ष का समय १२वीं शताब्दि का अन्तिम भाग था।

श्रीहर्ष के जीवन के विषय में कुछ अधिक नहीं लिखा जा सकता। यह गौड़ ब्राह्मण थे, किन्तु कुछ लोग इन्हें गुजराती भी मानते हैं। परन्तु यह निश्चयात्मक गौड़ ही थे; क्योंकि राजशेखर ने इन्हें 'गौड़' लिखा है[1]। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, इनके पिता का नाम श्रीहीर पण्डित था, जो कि संस्कृत के प्रकांड विद्वान् थे। इनकी माता मामल्लदेवी भी एक विदुषी महिला थीं और श्रीहर्ष ने बचपन में इन्हीं से शिक्षा भी पाई थी। इनके पिता हीर पण्डित का देहान्त इनके शैशव में ही हो गया था। जिस समय इनके पिता मृत्यु-शय्या पर पड़े थे, उस समय बालक हर्ष को अपने निकट बुलाकर उन्होंने कहा—"वत्स, अमुक पण्डित ने मुझे राज-सभा में हराया है। इसलिए तुम्हें चाहिए कि भली भाँति विद्याध्ययन करके मेरा बदला उससे लो।" बालक हर्ष ने आज्ञा को शिरोधार्य किया और कुछ काल के पश्चात् विद्याध्ययन के लिए देशदेशान्तरों में निकल गये। प्रतिभावान् बालक शीघ्र ही विभिन्न आचार्यों के पास रहकर सब विद्याओं, कलाओं आदि का अध्ययन करके कन्नौज आ पहुँचा। पण्डितों में यह इनके विषय की किम्वदन्ती प्रसिद्ध है कि घर लौटते समय इन्होंने गंगाजी के किनारे तपस्या की और सरस्वती से लोकोत्तर पाण्डित्य का वरदान माँगा। सरस्वती ने इनको "चिन्तामणि-मन्त्र" दिया। इससे इनको इतना अलौकिक ज्ञान प्राप्त हुआ और यह ऐसी क्लिष्ट भाषा बोलने लगे कि अन्य पण्डितों तथा विद्वानों को इनकी भाषा समझना कठिन हो गया। अब इनको कष्ट होने लगा। तब इन्होंने फिर वाग्देवी सरस्वती की उपासना की और "चिन्तामणि-मन्त्र" का प्रभाव दूर होने की प्रार्थना की। सरस्वती ने आदेश किया कि तुम प्रति अर्द्धरात्रि में स्नान करके दधि का सेवन करो। ऐसा करने से इनकी बुद्धि कुछ मन्द पड़ी। जब यह राजधानी के निकट पहुँचे तो राजा जयन्तचन्द्र को अपने आगमन की सूचना भेजी। राजा विद्वानों को लेकर इनके स्वागत के लिए गया। श्रीहर्ष ने राज-सभा में प्रवेश करते ही राजा को लक्ष्य करते हुए यह श्लोक पढ़ा—

गोविन्दनन्दनतया च वपुःश्रिया च,
मास्मिन्नृपे कुरुत कामधियं तरुण्यः।

१. 'श्रीहर्षो वाराणस्यधिपतिजयन्तचन्द्रसभायाः सभ्योऽभूत्'। राजशेखरः।

२. 'उमावल्लभशङ्करत्रिशूलोपरिनिवासिनीकाशी-नगर्याः नृपतिर्बभूव जयन्तचन्द्रः' राजशेखरः।

३. Dr. Ishwari Pd. "Elementary History of India Part I."

१. 'गौडदेशीयः' राजशेखरः।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अस्त्रीकरोति जगतां विजये स्मरः स्त्री-
रस्त्रीजनः पुनरनेन विधीयते स्त्री ॥

हे तरुणियो ! इस सुन्दर शरीरवाले गोविन्दनन्दन (जयन्तचन्द्र) से कभी काम की अभिलाषा मत करना। अर्थात् यह राजा कामी नहीं है। कामदेव संसार के विजय के समय स्त्रियों को अस्त्री (वीर) बनाता है, किन्तु यह नरेश अस्त्री जनों को (वीर पुरुषों को) स्त्री बना देता है। (श्लोक का उत्तरार्ध ध्यान देने योग्य है) समस्त राज-सभा इस सुन्दर श्लोक को सुनकर मुग्ध हो गई। इसी बीच श्रीहर्ष ने शास्त्रार्थ में विजेता (पिता को जीतनेवाले) पण्डित की ओर लक्ष्य करते हुए कहा--

साहित्ये सुकुमारवस्तुनि दृढन्यायग्रहग्रन्थिले,
तर्के वा मयि संविधातरि समं लीलायते भारती।
शय्या वास्तु मृदूत्तरच्छदवती दर्भाङ्कुरैरास्तृता,
भूमिर्वा हृदयङ्गमो यदि पतिस्तुल्यारतिर्योषिताम् ॥

सुकुमार सरस साहित्य में, न्याय की जटिल ग्रंथियों में तथा तर्कशास्त्र में मेरी भारती (वाणी) एक ही प्रकार से लीला करती है। जैसे, चाहे सुन्दर मृदु शय्या हो अथवा कुशाओं से आच्छादित भूमि हो, यदि स्त्री का हृदयहारी पति है तो दोनों स्थानों पर रमणी को एक-सा ही रति का आनन्द होगा।

देखिए श्रीहर्ष की सरस उक्ति। कितनी चुभनेवाली उपमा देते हैं। पितृविजेता पण्डित के होश उड़ गये! उसने स्वयं अपनी हार मान ली। राजा ने श्रीहर्ष को प्रधान कवि का स्थान दिया। बहुत काल तक आप राज-सभा में रहे। फिर देश के भौगोलिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए देशाटन को निकल पड़े। आपने पाँच वर्ष में सम्पूर्ण भारत की यात्रा की। किसी-किसी मनोरम स्थान पर कुछ काल तक ठहरे भी। पुनः कन्नौज लौट आये। यहाँ पर आपने सर्वोत्तम काव्य 'नैषधीय चरितम्' की रचना की। राजा ने काव्य की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की और इनसे अनुरोध किया कि इस काव्य को ये काश्मीर-नरेश के पास ले जायँ। वह काव्य का पारखी है और उसकी सभा में बहुत से पण्डित हैं, जो ग्रन्थ की ख्याति करेंगे। श्रीहर्ष ने काश्मीर को प्रस्थान किया। वहाँ की राज-सभा में इनका बहुत आदर-सत्कार हुआ तथा इनका काव्य सर्वश्रेष्ठ घोषित किया गया। काश्मीर-नरेश ने इन्हें बहुत-सा पुरस्कार दिया। किन्तु कहते हैं, कान्य-कुब्जेश्वर का अपमान समझकर इन्होंने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। काश्मीर के पण्डितों के मुख से एक किम्वदन्ती और सुनी जाती है, जो कि बहुत रोचक है। कहते हैं, काश्मीर में उस समय सरस्वती का एक विशाल मन्दिर था। विद्वान् लोग अपनी रचनाओं को यहाँ लाते थे और प्रतिमा का पूजन करके पुस्तक को प्रतिमा के हाथों में रख देते थे। यदि निर्दोष तथा शुद्ध होती थी तो देवी उसे ग्रहण किये रहती थी, अन्यथा नीचे भूमि पर गिरा देती थी। श्रीहर्ष ने जब अपनी पुस्तक को देवी के हाथ पर रक्खा तो देवी ने इनकी पुस्तक को भूमि पर गिरा दिया। श्रीहर्ष के क्रोध का ठिकाना न रहा। पूछने पर देवी ने उत्तर दिया कि तुमने एक स्थान पर मुझे विष्णु की पत्नी लिखा है। इस प्रकार से मेरे कौमार्य पर लाञ्छन लगाया है। श्रीहर्ष ने क्रोध में उत्तर दिया कि क्या पुराणों में स्वीकार नहीं किया गया है कि एक जन्म में सरस्वती ने विष्णु के साथ सहवास किया? क्या तुम मेरी पुस्तक को ज़मीन में पटक इस बड़े भारी कलंक से छूट जाओगी? कहते हैं, देवी ने फिर स्वयं पुस्तक को अपने हाथों से उठाकर घोषित किया कि "नैषधचरितम् काव्येषु प्रथममेव।"

दूसरी और किम्वदन्ती है कि जब पण्डितों ने देखा कि देवी ने स्वयं पुस्तक की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लिया है तो उन्हें ईर्षा हुई और श्रीहर्ष जिस पण्डित से कहते कि मेरा राज-सभा में प्रवेश करा दो, वही अस्वीकार कर देता। कहते हैं, एक दिन ये नगर के बाहर एक उद्यान में घूमने के लिए गये। उसी समय वहाँ दो राजवनिताएँ भी गईं। किन्तु उन दोनों में किसी कारणवश विवाद हो गया और अधिक बढ़ गया। दोनों ने जाकर नरेश के सामने मामला पेश किया। नरेश ने साक्षी माँगा। स्त्रियों ने कहा—'महाराज, उस समय उद्यान में एक दरिद्र ब्राह्मण-युवक बैठा था।' राजाज्ञा से यह राजा के सामने लाये गये। श्रीहर्ष ने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहा—'श्रीमन्! मैं एक विदेशी हूँ। यहाँ की प्राकृत भाषा से अपरिचित हूँ। किन्तु जो कुछ बातचीत इन लोगों में हुई है, उसको मैं अक्षरशः कह सकता हूँ।' इन्होंने सम्पूर्ण वाद-विवाद को कह सुनाया। नरेश को इनकी स्मरण-शक्ति पर आश्चर्य हुआ। परिचय पूछा। अपनी सभा के पण्डितों का हाल सुनकर उन सबको राज्य से बाहर निकाल देने का आदेश दिया। किन्तु श्रीहर्ष ने इस आज्ञा को वापस करवाया। उन दोनों स्त्रियों ने, जो कि कुमारी थीं और दूसरे राजा की राजपुत्रियाँ थीं, जिनको काश्मीर-नरेश ने पाला-पोसा था, इन्हीं के साथ विद्वत्ता पर मुग्ध होकर विवाह भी कर लिया। श्रीहर्ष का काश्मीर में फिर ख़ूब स्वागत हुआ और जब यह कन्नौज को लौटने लगे तो काश्मीर-नरेश ने स्वर्ण हौदेवाले १०१ हाथी अशरफ़ियों से भरवाकर इन्हें भेंट में दिये।

खेद का विषय है कि इनके और शेष जीवन का कोई पता नहीं चलता, न अन्य किसी फुटकर काव्य का। केवल इनका विरचित 'नैषध काव्य' ही लब्ध है। पण्डितों का कथन है कि इस काव्य के १०१ सर्ग थे, किन्तु अब केवल २२ सर्ग ही मिलते हैं। किन्तु मेरे विचार से इसके इतने ही सर्ग रचे गये। कुछ विद्वानों का मत है कि २२ सर्ग तक कथा असमाप्त रहती है। किन्तु मैं इससे सहमत नहीं हूँ। २२ सर्ग तक में इन्होंने दमयन्ती का विवाह इत्यादि समाप्त कर दिया है और ग्रन्थ के समाप्त की सूचना तथा मंगल लिख दिया है। दूसरी बात यह है कि इतने ही सर्गों के अन्दर इन्होंने महाकाव्य के सब लक्षणों को भी घटित कर दिया है। यदि इन्होंने अधिक लिखा होता तो ये सब बातें २२ सर्ग के अन्दर ही क्यों पूरी कर देते। इससे यह निराधार है कि इस ग्रन्थ के और भी सर्ग हैं।

वास्तव में संस्कृत-साहित्य में नैषध एक अद्वितीय महाकाव्य है। एक प्राचीन श्लोक है—

भारवेर्भारती भाति, यावन्माघस्य नोदयः।
उदिते नैषधे चैव, क्व माघः क्व भारविः॥

अर्थात् भारवि कवि की कविता तभी तक शोभा देती है, जब तक माघ की कविता को लोग नहीं पढ़ते। किन्तु नैषध के सम्मुख आने पर माघ और भारवि कहाँ हैं, इसका किसी को ख़याल तक नहीं रहता। श्रीहर्ष ने नल-दमयन्ती का विवाह तथा स्वयंवर-वर्णन बड़ी उत्तमता के साथ किया है। श्रीहर्ष में धारा-प्रवाह काव्य करने की शक्ति थी। यह कालिदास की भाँति सरल कविता नहीं करते थे। इनके शब्द कठिन तथा समास बड़े होते हैं। तथापि इनकी भाषा की क्लिष्टता और कवियों की भाँति काव्य-सौंदर्यनाशिनी नहीं है। यह श्लेषात्मक कविता लिखने में बहुत सिद्धहस्त थे। विशेष करके नैषध के १३वें सर्ग में इन्होंने सूचित कर दिया है कि इनमें बहुअर्थक काव्य लिखने की कितनी क्षमता थी। राज-सभा लगी है। कुमारी दमयन्ती माला लेकर पति-निर्वाचन के लिए आती है। वह पहले से ही नल को अपना पति वरण करना चाहती है। किन्तु इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण देवता प्रत्येक स्वयं दमयन्ती के साथ प्रणयेच्छुक हैं। देवताओं को विश्वास है कि कुमारी नलाभिलाषिणी है। इस विचार से चारों नल का रूप एवं वेश धारण करके बैठ गये, जिससे कुमारी धोखा खाकर हम लोगों को वरण कर ले। उन्हीं के बीच में राजा नल भी विराजमान हैं। सरस्वती कुमारी को लेकर आती है। यहाँ पर श्रीहर्ष ने ऐसी बहुअर्थक रचना की है, जिससे सरस्वती जो प्रशंसा का श्लोक बोलती है, उसे प्रत्येक देवता अपनी-अपनी प्रशंसा समझता है। किन्तु स्वयंवरा नल-विषयक अर्थ निकाल लेती हैं। ऐसे एक श्लोक का उदाहरण मैं अन्त में लिखूँगा। ऐसा चमत्कारी गुण प्रत्येक कवि में नहीं होता। वैसे दो-चार श्लोक अन्य कवियों ने लिखे हैं, किन्तु सर्ग का सर्ग लिखना अत्यन्त कठिन होता है। साथ में कहीं शिथिलता-दोष का भी न आना। अलंकारों से काव्य का प्रत्येक श्लोक भरा पड़ा है। ऋतुओं का वर्णन इतनी ख़ूबी के साथ इन्होंने किया है कि पढ़कर चित्त मुग्ध हो जाता है। वर्णन क्या होता है, जैसे उसी का जीता-जागता चित्र सम्मुख उपस्थित हो जाता है। देखिए, श्रीहर्ष ने प्रथम सर्ग के दूसरे श्लोक के प्रथम चरण में कितने अर्थ भर दिये हैं—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'रसैः कथा यस्य सुधावधीरणी'

इस छोटे-से चरण के पाँच अर्थ हैं—(१) जिस नल की कथा नव रसों से युक्त होकर अमृत का भी तिरस्कार करती है। (२) अथवा सुधा की सीमा (अवधि) बाँधकर स्वयं आगे निकल जाती है। (३) सुधा का अर्थ अमृत के स्थान पर यदि यह कर दिया जाय कि "शोभनं धवतीति सुधा व पुण्य-सञ्चारिणी" तो नल की कथा पुण्य का संचार करने-वाली है। (४) अन्तिम 'रणी' को पृथक् कर देने से उत्साहयुक्त कथा है, ऐसा अर्थ होता है। (५) 'रसैः' इस पद को अलग करने से 'रसः' 'एः' ऐसा बनेगा। जिसका अर्थ होगा 'ए' अर्थात् कामदेव 'रसः' अर्थात् उत्पत्ति-स्थान। कथा कामदेव का उत्पत्ति-स्थान है। यानी प्रेम तथा शृङ्गार से पूरित है। ऐसे सैकड़ों स्थल काव्य के अन्दर भरे पड़े हैं। अपनी काव्य की क्लिष्टता के विषय में श्रीहर्ष स्वयं कहते हैं—

ग्रंथग्रंथिरिह क्वचित्क्वचिदपि न्यासि प्रयत्नान्मया,
प्राज्ञंमन्यमना हठेन पठिती मास्मिन्खलः खेलतु।
श्रद्धाराद्धगुरुश्लथीकृतगुरुग्रन्थिः समासादय-
त्वेतत्काव्यरसोर्मिमज्जनसुखव्यासज्जनं सज्जनः॥

अपने को विद्वान् समझनेवाले मूर्ख लोग कहीं इस ग्रन्थ को हठ से पढ़कर आलोचना न करने लगें, इस-लिए मैंने प्रयत्नपूर्वक जान-बूझकर जगह-जगह पर इसे जटिल तथा क्लिष्ट बना दिया है, ताकि ऐसे पुरुषों की कुछ समझ में ही न आवे और वे पुस्तक के साथ खिलवाड़ न करें। सज्जन गुरु के पास श्रद्धापूर्वक इस ग्रन्थ का अध्ययन करें, काव्यरस की तरंगों में स्नान करें और सुखी हों। वास्तव में ऐसा है भी। नैषध का पढ़ना और समझना प्रत्येक के मान की बात भी नहीं है। धन्य है ऐसे अमर कवि को।

'नैषधचरित' का ऐसा कोई श्लोक नहीं है, जो सरस तथा आनन्ददायी न हो। तथापि पाठकों के मनोरंजनार्थ उदाहरण के दो-चार ही श्लोक लिख 'इत्यलम्' करता हूँ; क्योंकि लेख बढ़ जाने के भय से अधिक नहीं लिख सकता। तथापि यदि कभी अवकाश मिला तो भविष्य में प्रत्येक सर्ग के सुन्दर श्लोक प्रत्येक लेख में विद्वान् पाठकों की सेवा में उपस्थित करूँगा। अब ज़रा उदाहरणों को पढ़िए। चन्द्र की मलिनता के विषय में श्रीहर्ष की कितनी विचित्र कल्पना है—

यदस्य यात्रासु बलोद्धतं रजः,
स्फुरत्प्रतापानलधूममञ्जितम्।
तदेव गत्वा पतितं सुधाम्बुधौ,
दधाति पङ्कीभवदङ्कतां विधौ॥

महाराज नल की सैन्य यात्रा से उठी हुई धूलि (जो कि उनके प्रतापानलधूम की भाँति सुन्दर है) सुधा-सागर में जाकर गिरी, और वही धूलि कीचड़ (पङ्क) बन चन्द्रमा के शरीर में लग गई, जो कि मलिनता मालूम पड़ती है। (क्योंकि चन्द्रमा का जन्म सुधा-सागर से माना जाता है) देखिए, श्रीहर्ष का सैन्य-वैभव-वर्णन और अद्भुत कल्पनाशक्ति।

× × ×

निषधेश्वर नल का सौंदर्य-वर्णन करने में कवि की दरिद्रता का वर्णन श्रीहर्ष कितनी ख़ूबी के साथ करते हैं—

सरोरुहं तस्य दृशैव निर्जितं,
जितः स्मितेनैव विधोरपि श्रियः।
कुतः परं भव्यमहो महीयसी,
तदाननस्योपमितौ दरिद्रता॥

राजा नल के नेत्रों ने कमलों की और मधुर मुसकान ने चन्द्रमा की शोभा को पहले से ही मात कर दिया है। अतएव अब कौन-सी दूसरी उपमाएँ रह जाती हैं, जिनसे नल के मुख की समता की जाय। अतः कविगण दरिद्रता का अनुभव करते हैं।

× × ×

ज़रा इस श्लोक का आनन्द लीजिए—

न का निशि स्वप्नगतं ददर्श तं,
जगाद गोत्रस्खलिते च का न तम्।
तदात्मताध्यातधवा रते च का,
चकार वा न स्वमनोभवोद्भवम्॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऐसी कौन-सी रमणी है, जो रात्रि में नल को स्वप्न में न देखती हो ? ऐसी कितनी नायिकाएँ हैं, जो नल का नाम न लेती हों ? यहाँ तक कि पतिव्रताएँ भी अपने पति में ही नल का भाव करके रमण करती हैं। (पतिव्रताएँ परपुरुष का विचार तक नहीं कर सकती हैं, और कवि कह चुका है कि प्रत्येक बाला नलाभिलाषिणी है, इसलिए पतिव्रताओं का पातिव्रत्य नष्ट होता है। अतः अपने पति में नल का भाव आरोप करके धर्म को बचा लिया और अभिलाषा की भी पूर्ति हुई) कितनी सुन्दर रीति से श्रीहर्ष ने स्त्रियों का पतिव्रत भी बचा दिया और ज़ाहिर भी कर दिया कि नल के सौंदर्य पर सब मोहित भी थीं।

× × ×

कोकिला पर एक उक्ति सुनिए—

दिने दिने त्वं तनुरेधिरेधिकं,
पुनः पुनर्मूर्च्छ च तापमृच्छ च।
इतीव पन्थान्शपतः पिकान्द्विजा-
न्सखेदमैच्छिष्ट सलोहितेक्षणम् ॥

वसन्त-काल है। पथिक को कोकिला की कूक क्रोधित ब्राह्मण की भाँति शाप दे रही है। 'रे पथिक! तुम दिन पर दिन कृश हो, मूर्च्छा को प्राप्त हो, ताप (विरहाग्नि) से तुम्हारा शरीर जल जाय।' (क्रोधी ब्राह्मण का शाप अटल होता है, उसी प्रकार वसन्त में कोकिला की कूक विरहीजनों के हृदय को विना वेधे नहीं रहती) इस प्रकार से घुमाकर वर्णन करना श्रीहर्ष की ही प्रतिभा का काम है।

× × ×

महाराज नल का चिन्तन करते - करते कुमारी दमयन्ती मूर्च्छित होकर गिर पड़ती है। उस समय दमयन्ती के अन्तःपुर से सखियों की क्या-क्या आवाज़ें बाहर आती हैं। ज़रा सुनिए—

अथ कले कलय श्वसिति स्फुटं
चलति पद्म चले परिभावय।
अधरकम्पनमुन्नय मेनके,
किमपि जल्पति कल्पलते शृणु ॥

रचय चारुमते स्तनयोर्वृतिं,
कलय केशिनि कैश्यमसंयतम्।
अवगृहाण तरंगिणि नेत्रयोः
जलकणाविति शुश्रुविरे गिरः ॥

हे कले सखि! दमयन्ती को देखो कि भली भाँति श्वास लेती है कि नहीं। हे चले! इसके नेत्रों के फड़कने पर भी ज़रा ग़ौर करो। अरी मेनके! देख कि ओंठ फड़कते हैं कि नहीं। हे कल्पलते! सुन कि क्या बकती है? ओ चारुमते! स्तनों को ढक दे। सखी केशिनि, बिखरे हुए बालों को सम्हाल। रे तरंगिणि! नेत्रों से बहते हुए अश्रुओं को पोंछ।

मूर्च्छा-वर्णन और सखियों के नाम लिखने में कमाल है।

× × ×

यद्यपि दमयन्ती का सौन्दर्य-वर्णन श्रीहर्ष ने १०९ श्लोकों में लिखा है; किन्तु हम केवल दो श्लोक उनमें से लिखते हैं। भौंहों पर देखिए—

पौष्पं धनुः किं मदनस्य दाहे,
श्यामीभवत्केसरशेषमासीत्।
व्याधाद्विधेशस्तदपि क्रुधा किं,
भैमिभ्रुवौ येन विधिर्व्यधत्त ॥

कामदेव का पुष्प-धनुष भी उसके भस्म होने के साथ जल गया, और फूलों का पराग भी ऊष्मा के कारण श्याम हो गया। तथापि शङ्कर ने क्रोधवशात् दग्ध धनुष को तोड़कर दो टुकड़े कर दिये। ब्रह्मा ने उन्हीं टुकड़ों से इसकी दोनों भौंहों को बना दिया है।

× × ×

भौंहों की उत्पत्ति सुन चुके। अब ज़रा मुख की शोभा का मुलाहिज़ा फ़रमाइए—

दिवारजन्यो रविसोमभीते
चन्द्राम्बुजे निक्षिपतः स्वलक्ष्मीम्।
अस्यै यदास्या न तदा तयोः श्री-
रेकश्रियेदं तु कदा न कान्तम् ॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सूर्योदय पर चन्द्र अपनी शोभा को नष्ट हो जाने के भय से दमयन्ती के पास धरोहर के रूप में रख आता है और कमल रात्रि में श्रीह्रास होने के भय से दमयन्ती की शरण में अपनी श्री (कान्ति) को धरोहर के रूप में रख आता है। इसलिए कुमारी को दोनों शोभाएँ प्राप्त हैं।

× × ×

राजा नल दूत का वेष धारण करके देवताओं की ओर से दमयन्ती के पास सन्देश ले जाते हैं और उसको प्रेरणा करते हैं कि वह इन्द्र, वरुण, यम और अग्नि में से किसी एक के साथ रुचि के अनुसार विवाह कर ले। दमयन्ती के चित्त में नल को छोड़कर कोई दूसरा समाता ही न था। इसलिए जब वह दूत के समझाने से बहुत परेशान हो गई और कोई उसकी दलील न चल सकी तो वह नल का चिन्तन करके रोने लगी। नल यद्यपि दूत के वेष में थे और अपने को छिपाये थे, तथापि सुन्दरी के कपोल पर ढुलकते हुए अश्रु-बिन्दुओं को देखकर प्रभावित हो उठे और सहसा बोल उठे—

अयि प्रिये कस्य कृते विलप्यते
विलिप्यते हा मुखमश्रुबिन्दुभिः ।
पुरस्त्वयालोकि नमन्नयं न किं
तिरश्चलल्लोचनलीलया नलः ॥

"अयि प्राणेश्वरी ! वृथा क्यों रोती हो और रो-रोकर अश्रु-बिन्दुओं से मुख को भिगोती हो। क्या इन तिरछे नेत्रों से अपने सम्मुख शरण में आये हुए नल को नहीं देखती हो ?"

साहित्य-मर्मज्ञ लोग देखें, मानव-स्वभाव का चरित्र-चित्रण श्रीहर्ष ने कितनी योग्यता के साथ किया है। पाषाण-हृदय भी सुन्दरियों की आँखों से ढुलकते हुए मोतियों को देखकर पसीज उठता है। इतनी करामात इन मोतियों में होती है। नल भी अपने को न सम्हाल सके।

× × ×

आप लोग श्रीहर्ष के दो-चार नमूने देख चुके हैं। मेरा विचार है कि एक ऐसा नमूना आप लोगों के सामने रक्खूँ, जो कि, जैसा ऊपर कह चुका हूँ, देवता तथा नल दोनों में घटे। सरस्वती दमयन्ती से कहती है—

देवः पतिर्विदुषि नैष धरा जगत्या,
निर्णीयते किमु न वै त्रियते भवत्या ।
नायं नलः खलु तवातिमहानलाभो
यद्येनमुज्झसि वरः कतरः परस्ते ॥

इन्द्रपक्ष—हे विदुषि दमयन्ती ! यह संसार का पालन करनेवाला देवताओं का पति इन्द्र है, यह महान् पराक्रमवाला है, इसके वरण करने से तुमको अमरता एवं नन्दनकानन में क्रीड़ा करने का अवसर प्राप्त होगा। इसके वरण करने का तुम क्यों नहीं निश्चय करती हो ? इससे बढ़कर तुम्हारे योग्य कौन दूसरा वर होगा ?

अग्निपक्ष—हे विदुषि, यह मेष पर आरूढ़ होनेवाला, अन्न इत्यादि पकाकर संसार की रक्षा करनेवाला, द्युतिमान् अग्नि देवता है। इसे वरण करो। इससे बढ़ कर दूसरा कोई नहीं है।

यमपक्ष—यह चलने से पृथ्वी को कुरेदनेवाले भैंसे पर सवार होनेवाला यम देवता है। इसके अधीन सबके प्राण रहते हैं। इससे तुमको अपने प्राणों के नाश का भय न रहेगा ; क्योंकि तुम इसकी वल्लभा होगी। ऐसे श्रेष्ठ पति को वरण करो। दूसरा और कोई इससे श्रेष्ठ नहीं है।

वरुणपक्ष—विदुषि, इस सागर तथा पाताल-लोक के स्वामी वरुण देवता को तुम क्यों नहीं वरण करती हो ? यह संसार का प्राणरक्षक है। संसार में इसकी सर्वत्र पूजा होती है। तुम भी विश्ववन्दनीया होओगी।

नलपक्ष—हे विदुषि (गूढ़ अर्थों को समझनेवाली), यह संसार का स्वामी राजा नल है। बहुत पराक्रमी है और इसे पृथ्वी का 'विष्णु' कहते हैं। निषध देश की रम्य वाटिकाओं में विहार करने का सुख तुम्हें इस युवा को वरण करने से मिलेगा। भू तथा स्वः दोनों लोकों में कोई इससे श्रेष्ठ नहीं है।

देखिए श्रीहर्ष की ख़ूबी। प्रत्येक अपनी प्रशंसा समझता है और दमयन्ती नल की प्रशंसा समझती है।

ऐसे निपुण कवि को शतशः प्रणाम है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

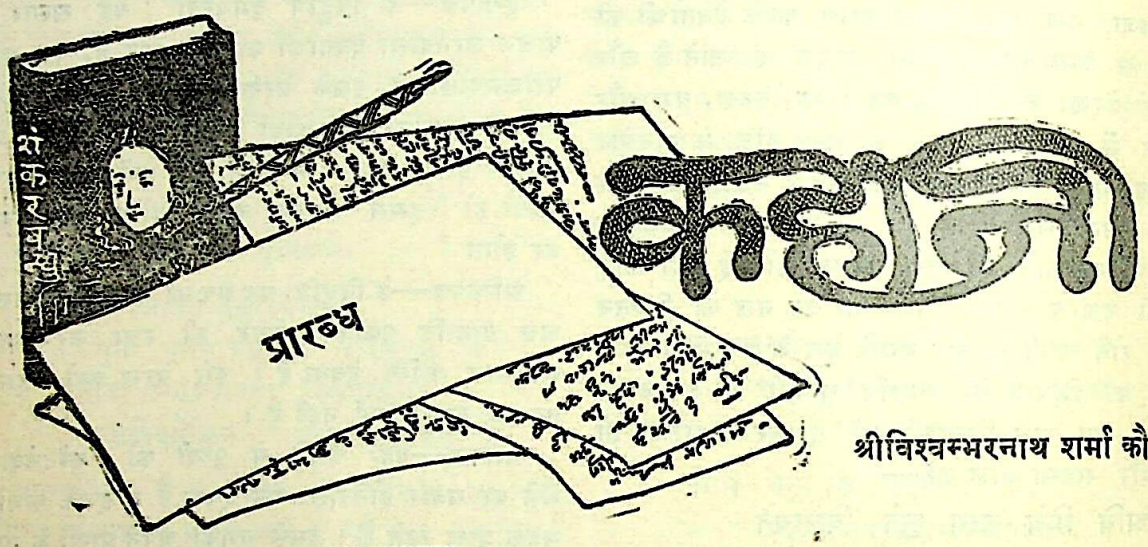

श्रीविश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

(१)

रात को ८ बजे आनेवाला एक्सप्रेस ८ बजकर १० मिनट पर आया और मुसाफ़िरों की धका-पेल आरम्भ हो गई। कोलाहल के कारण सेकेण्ड क्लास में लेटे हुए एक हिन्दुस्तानी महाशय जम्हाई लेकर उठ बैठे। उन्होंने एक बार ख़ाली बर्थों पर दृष्टि डाली और यह देखकर कि उस कम्पार्टमेण्ट में उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है, उनके मुख पर परम सन्तोष का भाव उदय हुआ। वह बड़े इतमीनान के साथ उठकर खड़े हुए और एक अँगड़ाई लेकर द्वार पर आये और उसकी खिड़की से बाहर सिर निकालकर दोनों कोहनियों के सहारे खड़े हो गये। जम्हाई लेते हुए उन्होंने एक क़ुली से पूछा—'क्यों भई, यह कौन स्टेशन है?'

क़ुली उनकी ओर आश्चर्य से देखकर बोला—'यह कानपुर है।'

'ओहो! तभी इतनी भीड़-भाड़ है।'

कुछ क्षणों तक वैसे ही खड़े रहने के पश्चात् उन्होंने द्वार खोला और प्लेटफ़ार्म पर उतर गये। द्वार को पुनः बन्द करके उन्होंने प्लेटफ़ार्म पर लगी हुई घड़ी को देखा, तत्पश्चात् अपनी रिस्टवाच पर दृष्टि डाली। इसी समय एक टिकिट-चेकर उधर से निकला। उससे उन्होंने पूछा—'क्यों साहब, यहाँ कितनी देर गाड़ी ठहरती है?'

'बीस मिनिट! पाँच मिनिट हो चुके हैं।'

यह कहता हुआ चेकर चला गया। वह महाशय लपककर हिन्दू रीफ़्रेशमेन्ट-रूम में घुस गये। उनके जाने के दो मिनिट पश्चात् एक युवती नीले रंग की रेशमी साड़ी तथा जम्पर शरीर पर धारण किये, पैरों में ऊँची एड़ी का जूता पहने, आँखों पर सुनहरा चश्मा, बायें हाथ में एक छोटा-सा बेग लटकाये और दाहने में एक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पुस्तक दाबे लपकती हुई आई। उसके साथ में एक कुली होल्डाल में लिपटा बिस्तर तथा एक चमड़े का सूटकेस लिये हुए था। उपर्युक्त कम्पार्टमेन्ट के सम्मुख आते ही कुली बोला—'इसमें चलिए।'

महिला ने झाँककर देखा, केवल एक बर्थ पर बिस्तर लगा था, शेष दो ख़ाली थे। वह तुरंत द्वार खोलकर चढ़ गई और प्लेटफ़ार्म की ओरवाले बर्थ पर उसने अपनी पुस्तक रख दी। कुली ने सूटकेस ऊपरवाले बर्थ पर रख दिया और उस पर बिस्तर रखने लगा। इसी समय महिला बोल उठी—'बिस्तर खोलकर बिछा दो।' यह कहकर उसने बर्थ पर पड़ी हुई पुस्तक उठा ली। कुली कुछ मुँह बनाकर बिस्तर खोलने लगा।

बिस्तर लग जाने पर महिला ने कुली को विदा किया। बिस्तर पर बैठकर उसने पुस्तक खोली और बड़े ध्यान से पढ़ने लगी। कुछ क्षणों पश्चात् गार्ड ने सीटी दी। इसी समय वह महाशय लपकते हुए आये और द्वार खोलकर अन्दर चढ़ आये। उन्होंने एक बार ज़रा ध्यानपूर्वक महिला को देखा। तत्पश्चात् खिड़की से सिर निकालकर खड़े हो गये। गाड़ी चल दी। कुछ देर तक वह खड़े बाहर की ओर ताकते रहे। तत्पश्चात् महिला की ओर देखते हुए अपनी जगह पर आ बैठे। महिला की दृष्टि पुस्तक पर थी।

कुछ देर तक वह बैठे बाहर की ओर ताकते रहे, बीच-बीच में कनखियों से महिला की ओर भी देख लेते थे। परन्तु उसकी दृष्टि पुस्तक पर ही लगी थी। कुछ क्षणों पश्चात् उन महाशय को जैसे कुछ याद सा आ गया और उन्होंने किञ्चित् मुस्कराकर सिगरेट निकाली और महिला से अँग्रेज़ी में कहा—'यदि मैं सिगरेट पियूँ तो आपको कोई आपत्ति तो न होगी?'

महिला ने पुस्तक पर दृष्टि जमाये हुए ही उत्तर दिया—'नहीं!'

'धन्यवाद' कहकर उन्होंने सिगरेट सुलगाई। कुछ देर तक सिगरेट पीने के पश्चात् उन्होंने सिगरेट बाहर फेंक दी और अपने आप ही बोले—'अब सोना चाहिए, रातभर का सफ़र है।' महिला ने कोई उत्तर न दिया—वह चुपचाप पुस्तक पर दृष्टि जमाये रही।

बिस्तर पर लेटते हुए उन्होंने महिला से पूछा—'आप कहाँ तक जायँगी?'

'कलकत्ता!' महिला ने पुस्तक पर दृष्टि जमाये हुए ही उत्तर दिया।

'मैं भी कलकत्ते जा रहा हूँ। बड़ा लम्बा सफ़र है। मेरी समझ में आप भी आराम कीजिए और किसी बात की चिन्ता न कीजिएगा। जब तक मैं आपके साथ हूँ तब तक आप अपने को बिलकुल सुरक्षित समझें।'

'धन्यवाद!' महिला ने एक क्षण के लिए पुस्तक पर से दृष्टि हटाकर उनकी ओर देखते हुए कहा और पुनः पुस्तक देखने लगी।

वह महाशय कुछ देर तक चुपचाप पड़े कुछ सोचते रहे। तत्पश्चात् महिला की ओर करवट लेकर बोले—'यह कोई उपन्यास है?'

'हाँ' महिला ने कहा।

कुछ क्षणों तक चुप रहकर वह फिर बोले—'जासूसी उपन्यास आजकल बहुत पढ़े जाते हैं। होते भी बड़े रोचक हैं। इधर बहुत दिनों से कोई अच्छी जासूसी कहानी पढ़ने को नहीं मिली। इस पुस्तक का क्या नाम है?'

महिला ने नाम बता दिया।

'यह पुस्तक मैंने अभी नहीं पढ़ी—शायद हाल ही में आई है।'

'मैं समाप्त कर लूँ, फिर आप भी पढ़ लीजिएगा।'

'अवश्य पढ़ूँगा! आख़िर इतना लम्बा सफ़र कटेगा कैसे। मेरा इरादा कानपुर स्टेशन से कोई पुस्तक लेने का था, लेकिन रीफ़्रेशमेंट रूम में इतनी देर हो गई कि समय ही न मिला। जासूसी उपन्यास पढ़ने से एक यह फ़ायदा तो अवश्य ही होता है कि फिर कोई ठग नहीं सकता। मैंने इतने जासूसी उपन्यास पढ़े हैं कि अब मैं आदमी की शकल देखकर बता सकता हूँ कि कैसा आदमी है। और, मुझे ठग तो कोई सकता ही नहीं। कई बार बदमाशों ने प्रयत्न किया; पर मुझसे पार नहीं पा सके। अपने शहर में तो लोग मुझे इतना जान गये हैं कि कई बार पुलिस ने चोरी-डकैती के मामले में मुझसे सलाह ली और

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरी सलाह के अनुसार काम करने पर उन्हें सफलता भी मिली।'

महिला पुस्तक पर से दृष्टि हटाकर उनकी बात सुनने लगी।

वह महाशय कहते गये—'एक बार एक ख़ून के मामले में पुलिस बड़ी परेशान थी। कुछ समझ में ही नहीं आता था कि किस तरह पता लगाया जावे। क्योंकि कोई सूत्र नहीं मिल रहा था। इन मामलों में सूत्र का ही महत्त्व है। आख़िर जब ज़िच हो गये तो मुझसे सलाह ली। अब मज़ा यह देखिए कि उसमें सूत्र मौजूद था, लेकिन पुलिस की समझ में नहीं आ रहा था। आप जानिए यहाँ की पुलिस तो बस माशा-अल्लाह है। मैंने उनको बहुत फटकारा कि आप लोग क्या अन्धे हैं—इतना बड़ा सूत्र मौजूद है और फिर भी आप कहते हैं सूत्र नहीं मिलता। तब उनकी समझ में आया। उसी सूत्र को लेकर ख़ूनी का पता लगा। उस दिन से पुलिसवाले मान गये। अब तो मेरे बड़े दोस्त हैं। ख़ुफ़िया पुलिस के एक इंस्पेक्टर तो यहाँ तक बोले कि 'आप चाहें तो आपको पुलिस में बड़ी अच्छी 'पोस्ट' मिल सकती है। लेकिन मैंने स्वीकार नहीं किया। कौन झमेले में पड़े। और नौकरी मुझसे हो भी नहीं सकती। मैं ठहरा स्वतंत्रता-प्रेमी। मैं जो काम करता हूँ, उससे मुझे चार-पाँच सौ रुपये महीने की आमदनी हो जाती है। मुझे नौकरी करने की क्या ज़रूरत है। नौकरी में भला स्वतंत्रता कहाँ?'

महिला ने पूछा—'आप क्या करते हैं?'

(२)

वह महाशय उठकर तकिये के सहारे बैठते हुए बोले—'मैं जवाहरात का काम करता हूँ। जवाहरात ख़रीदता और बेचता हूँ। यही मेरा व्यवसाय है। कलकत्ते के कई जौहरी मुझसे जवाहरात लेते हैं।'

महिला को अब उत्सुकता हुई। उसने पुस्तक बंद करके रख दी और मुस्कराकर बोली—'अच्छा! जवाहरात से मुझे भी बड़ा प्रेम है।'

'जवाहरात की क्या बात है।'

'जवाहरात में सबसे क़ीमती कौन होता है?'

'यह कोई हिसाब नहीं। जैसी चीज़ हो। आमतौर से हीरा और पन्ना अधिक क़ीमती होता है।'

'मुझे हीरा बड़ा अच्छा लगता है। मैं एक हीरा ख़रीदने का विचार भी कर रही हूँ। परन्तु अधिक दाम का न हो।'

'अँगूठी के लिए चाहिए?'

'हाँ।'

'अँगूठी के लिए औसत दर्जे का हीरा डेढ़-दो सौ से कम का नहीं मिलेगा।'

'मैं सौ रुपये तक का चाहती हूँ।'

'अच्छा कल दिन में मैं अपना स्टाक देखूँगा। मेरे पास एक हीरा है, जो यदि मैं आपसे मुनाफ़ा न लेकर दाम के दाम में दे दूँ तो शायद सवा सौ का पड़ेगा। अच्छी चीज़ है।'

'सवा सौ!—सौ का नहीं है?'

'अच्छा कल देखूँगा। हीरा मैं कल आपको दूँगा, चाहे मुझे सवा सौ वाला सौ में ही देना पड़े।'

महिला प्रसन्नमुख होकर बोली—'धन्यवाद! परन्तु आपको नुक़सान होगा।'

'ऊँह! व्यापार में नफ़ा-नुक़सान लगा ही रहता है। एक चीज़ में नुक़सान होता है, तो दूसरी में इतना मुनाफ़ा हो जाता है कि वह नुक़सान भी पूरा हो जाता है। जवाहरात का रोज़गार ऐसा ही है। अभी छः महीने की बात है। मैंने एक पन्ना पचास रुपये घटा खाकर बेचा। एक ऐसा ही मामला आ पड़ा। एक मित्र ने पन्ना ले लिया और बोले कि हम तो पाँच सौ ही देंगे। और वह मैंने साढ़े पाँच सौ में ख़रीदा था। मित्र का मामला था, मैं कुछ कह न सका। मित्रता में सौ-पचास के लिए झगड़ा करना मुझे अच्छा नहीं लगता। अपनी-अपनी प्रकृति है। मैंने पन्ना उन्हें पाँच सौ में ही दे दिया। इसके एक महीने बाद ही मैंने एक रईस के हाथ एक हीरा बेचा, जिसमें मुझे सौ रुपये मुनाफ़ा हुआ। इस तरह पिछले का नुक़सान भी निकल आया।'

महिला हँसकर बोली—'यह आपकी उदारता का फल था।'

'उदार-वुदार तो ख़ैर क्या, परन्तु मेरी कुछ ऐसी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति है कि मित्रता में मैं सब कुछ करने को तैयार रहता हूँ। हालाँकि इसके कारण लोग मुझे बेवक़ूफ़ भी समझते हैं, लेकिन समझा करें। मुझे इसी में आनन्द आता है।'

'तो कल आप मुझे हीरा देंगे ?'

'अवश्य !'

'बड़ी कृपा होगी। मेरा बड़ा सौभाग्य था, जो आपसे भेंट हो गई। हीरा लेने की मेरी बहुत दिनों से इच्छा है, पर कोई मिल ही नहीं रहा था।'

'आप कलकत्ते में रहती हैं ?'

'जी हाँ।'

'कानपुर कैसे आना हुआ था ?'

'यहाँ मेरी बुआ रहती हैं, उन्हीं से मिलने आई थी।'

'आपके पति क्या करते हैं ?'

'मेरा विवाह नहीं हुआ', महिला ने कुछ लजाकर कहा।

'विवाह क्यों नहीं हुआ ?'

'मैंने स्वयं नहीं किया। विवाह करने के पश्चात् स्त्री की स्वतंत्रता जाती रहती है। मैं स्वतंत्र रहना पसंद करती हूँ।'

'यह बात ठीक है। आपके यहाँ क्या व्यवसाय होता है ?'

'मैं एक गर्ल्स हाई स्कूल की अध्यापिका हूँ।'

'तब तो आप ग्रेजुएट होंगी।'

'जी हाँ, बी० ए० पास किया है।'

'बहुत सुन्दर ! तब आपको विवाह करने की कोई ख़ास आवश्यकता नहीं। वास्तव में स्वाधीनता में जो आनन्द है, वह पराधीनता में कहाँ ?'

'जी हाँ ! पुरुष चाहे जितने सुशिक्षित और अप-टू-डेट हों, परन्तु स्त्रियों को वे अपने अधीन ही करके रखना चाहते हैं।'

'आपके घर में और कौन है ?'

'मेरी वृद्धा माता हैं बस !'

'तब तो शायद मैं आपके घर पर आपसे मिल सकूँगा। बात यह है कि आजकल इतनी सुशिक्षा और स्वतन्त्रता होते हुए भी लोग किसी स्त्री-पुरुष की मित्रता को नहीं देख सकते।'

'जी हाँ ! अभी हम लोग बहुत पिछड़े हुए हैं।'

'मुझे आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई। मैंने तो आज से आपको अपना मित्र समझ लिया।'

'यह आपकी कृपा है—मैं किस योग्य हूँ।'

'आप बड़ी योग्य हैं। आप-जैसी मित्र पाकर मैं आज परम सुखी हुआ।'

'यह तो आप मेरी ही भावना प्रकट कर रहे हैं।'

'तब तो मेरा बड़ा सौभाग्य है, जो आप भी मुझे अपना मित्र समझती हैं।'

इसके पश्चात् दोनों कुछ देर तक मौन रहे। सहसा महिला ने पूछा—'आप तो प्रायः कलकत्ते जाया करते होंगे ?'

'हाँ, महीने में एक-दो चक्कर तो लग ही जाते हैं।'

'और जब आप जाते हैं तो वहाँ कितने दिनों ठहरते हैं ?'

'कम से कम एक सप्ताह।'

'एक सप्ताह में आपका काम हो जाता है ?'

'हाँ, हो जाता है। कभी-कभी नहीं भी होता; परन्तु ऐसा बहुत कम होता है।'

'वहाँ आप ठहरते कहाँ हैं ?'

'होटल में। बहुधा.....होटल में ठहरता हूँ।'

'अच्छा ! यह होटल तो मेरे मकान के बिलकुल निकट है। मैं बड़ाबाज़ार के पास ही रहती हूँ। ज़करिया स्ट्रीट में।'

'ज़करिया स्ट्रीट ! वहाँ तो मुसलमानों की बस्ती अधिक है।'

'जी हाँ।'

'आजकल के समय में आपको ऐसी जगह न रहना चाहिए।'

'हाँ, रहना तो न चाहिए, पर आप जानिए कलकत्ते में मन का मकान मिलना भी तो बड़ा कठिन है।'

'तलाश करने से मिल सकता है।'

'यह भी तो देखना पड़ता है कि स्कूल से बहुत दूर न हो।'

'हाँ बहुत दूर तो न होना चाहिए। पर कलकत्ते में दूरी से डरने की कोई बात नहीं। वहाँ ट्राम का किराया बहुत कम है।'

'हाँ, यह बात ठीक है। अब वहाँ से हट जाऊँगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मुझे भी इस बात का कभी-कभी ध्यान आता है कि कभी दंगा-वंगा हुआ तो बड़ा ख़तरा है।'

'सोलह आने ख़तरा है।'

इसी समय ट्रेन के पहिये ब्रेक लगने से घर्राने लगे। पुरुष बोल उठा—'कोई स्टेशन आया। मेरी समझ में खिड़कियाँ बन्द करके दरवाज़ा भी अन्दर से बन्द कर लेना चाहिए, जिससे रात में कोई तंग न करे।'

'हाँ ! हाँ ! क्या हर्ज है।'

महिला ने अपनी ओर की खिड़कियाँ चढ़ा लीं, शेष पुरुष ने चढ़ाकर दोनों द्वारों की अन्दर की ओर की चिटकनी बन्द कर लीं और अपने स्थान पर बैठकर बोला—'अब ठीक रहा। अब आराम से सोते हुए चले चलेंगे।'

'मुझे रेल में नींद ही नहीं आती।' महिला ने कहा।

'अच्छा ! हाँ कुछ लोगों को नींद नहीं आती। मुझे तो आती है। बात यह है कि मुझे तो बहुधा सफ़र में ही रहना पड़ता है, इसलिए यदि नींद न आवे तो मैं तो मर जाऊँ।'

'हाँ ! यह तो ठीक है। तो आप सोइए। अभी तो मैं यह पुस्तक समाप्त करती हूँ—नींद आयगी तो सो जाऊँगी।'

यह कहकर महिला ने पुस्तक उठा ली।

इसी समय एक झटके के साथ ट्रेन खड़ी हो गई।

(३)

'कौन स्टेशन आया ?' महिला ने कहा।

'कोई छोटा स्टेशन है। अच्छा ! आप पुस्तक समाप्त कर लें। मैं तब तक एक नींद ले लूँ।' इतना कहकर वह सज्जन लेट गये।

तीन मिनिट पश्चात् ट्रेन फिर चली।

महिला पुस्तक पढ़ती रही। कभी-कभी बीच-बीच में कनखियों से पुरुष की ओर देखती जाती थी।

आध घंटे पश्चात् ट्रेन पुनः रुकी। ट्रेन रुकने के एक मिनिट पश्चात् जिस खिड़की के पास महिला बैठी थी उस खिड़की को किसी ने बाहर की ओर से बहुत ही धीमे स्वर में खटखटाया। महिला ने सोते हुए पुरुष को देखा, वह ख़र्राटे भर रहा था। स्त्री ने बहुत ही सँभालकर, जिससे कि ज़रा भी शब्द न होने पाये, शीशा तथा जाली उतारी। बाहर एक पुरुष खड़ा था। उसने धीमे स्वर में पूछा—'कहो, क्या हाल है ?'.

स्त्री ने धीमे ही स्वर में कहा—'हाल सब अच्छा है। तुम निश्चिन्त रहो।'

'होशियारी से काम करना। क्लोरोफ़ार्म करते समय ख़ास होशियारी की आवश्यकता है—ऐसा न हो कि क्लोरोफ़ार्म करने के समय जाग पड़े। कहो तो मैं इसी डब्बे में आ जाऊँ।'

'नहीं ! ऐसा मत करो। वह तुम्हें देखकर फिर नहीं सोयेगा। बड़ा होशियार आदमी है।'

'अच्छा तो तुम जानो।'

'हाँ ! तुम बेखटके रहो। मैं उसी स्टेशन पर उतरूँगी।'

'अच्छा तो मैं आ जाऊँगा—गेट के पास मिलूँगा। अपना सूटकेस और बिस्तर छोड़ देना।'

इतना कहकर वह पुरुष चला गया।

स्त्री ने पुनः खिड़कियाँ चढ़ा लीं। उसने एक बार ध्यानपूर्वक सोते हुए पुरुष को देखा—वह गहरी निद्रा में था।

इस प्रकार समय व्यतीत हुआ। इस बीच में पुरुष ने एक बार करवट ली और आँखें खोलकर देखा। स्त्री को पढ़ते देखकर वह बोला—'आप सोईं नहीं।'

'मैंने कहा ही था कि मुझे नींद न आयेगी। आप बेखटके सोइए।'

'बस एक नींद और ले लूँ—फिर मैं भी जाग जाऊँगा। तब आप सोने का प्रयत्न कीजिएगा। लेट जाइएगा तो नींद आ ही जायगी।'

इतना कहकर वह चुप हो गया और दस मिनिट में पुनः सो गया।

पन्द्रह मिनिट व्यतीत होने पर स्त्री ने अपनी रिस्ट-वाच देखी—साढ़े बारह बज चुका था। स्त्री ने पुस्तक बंद करके रख दी और निश्शब्दतापूर्वक उठी। उसी प्रकार चुपचाप उसने सूटकेस खोला। सूटकेस से एक छोटी-सी शीशी और एक रूमाल निकाला। तत्पश्चात् उसने सूटकेस पुनः बंद कर दिया। रूमाल के कोने में कुछ बँधा हुआ था। स्त्री ने गाँठ खोली तो थोड़ी रुई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

निकली। रुई लेकर उसने एक गद्दी-सी बनाई, गद्दी को रूमाल के बीचोबीच में रक्खा। तत्पश्चात् वह उठी और उस आदमी की ओर चली। वह आधी दूर तक पहुँची थी कि सहसा एक बड़े ज़ोर का झटका लगा—स्त्री को मालूम हुआ कि उसके सिर पर आसमान फट पड़ा, वह तड़ाक से डब्बे की दीवार पर पीठ के बल जाकर टकराई। इधर पुरुष अपने बर्थ पर से उछल-कर नीचे गिरा। उसके सिर में हल्की-सी चोट आई, जिसके कारण वह कुछ क्षणों के लिए ज्ञानशून्य-सा हो गया। परन्तु शीघ्र ही सँभलकर उठा और स्त्री की ओर लपका। स्त्री डब्बे की दीवार के सहारे टिकी हुई डब्बे के फ़र्श पर बैठी हुई थी। उसका सिर एक ओर ढलका हुआ था और वह बेहोश थी। पुरुष ने उसे उठाकर बर्थ पर लिटा दिया। अब उसको मालूम हुआ कि गाड़ी खड़ी है और बाहर से कोलाहल का शब्द आ रहा है। उसने शीघ्रतापूर्वक खिड़की खोली। बाहर झाँककर देखा—कुछ व्यक्ति इधर से उधर दौड़ रहे थे और साथ ही रोने-चिल्लाने तथा चीत्कारों की आवाज़ें आ रही थीं। उसने एक भागते हुए व्यक्ति से पूछा—'क्या हुआ भई।'

'रेल लड़ गई।' इतना कहकर वह भागता हुआ चला गया।

× × ×

तीसरे दिन कलकत्ते के एक होटल में वह स्त्री पलँग पर लेटी हुई थी और उसके पास ही कुर्सी पर वही जौहरी बैठा हुआ था। पुरुष पूछ रहा था—'अब छाती और पीठ का दर्द कैसा है?'

'साँस लेने में कुछ दर्द मालूम होता है, वैसे दर्द नहीं होता।'

'हड्डी-वड्डी नहीं टूटी यही ख़ैरियत हुई। अच्छा, अब तो तुम अपना हाल बताओ। तुमने कहा था कलकत्ते पहुँचकर बताऊँगी।'

स्त्री ने कहना आरम्भ किया—'मैं अध्यापिका-वध्यापिका कुछ नहीं हूँ और न ग्रेजुएट हूँ। मैं केवल इण्ट्रेन्स तक पढ़ी हूँ। मेरा भाई ग्रेजुएट था। वह बहुत दिनों तक बेकार फिरता रहा। अन्त में उसने रेल में मुसाफ़िरों को लूटने का काम करना निश्चय किया और मुझे भी उसमें सम्मिलित होने के लिए कहा। पहले तो मैंने इनकार किया; परन्तु जब उसने बहुत अनुनय-विनय की और डराया-धमकाया, यहाँ तक कि मार डालने तक की धमकी दी, तब मैं राज़ी हो गई। हम लोगों ने तीन बार रेल में ही मुसाफ़िरों को लूटा और हमें अच्छी रक़म मिली। तब से मुझे भी कुछ चस्का-सा पड़ने लगा। यद्यपि मेरी आत्मा को इस कार्य से ग्लानि होती थी। तुम्हारे पीछे हम लोग दिल्ली से लगे। मेरे भाई को किसी तरह मालूम हो गया कि तुम जवाहरात लेकर कलकत्ते जा रहे हो। बस, हम लोग तुम्हारे पीछे लग गये। कानपुर में जब रात हुई तो मैं तुम्हारे डब्बे में आ गई। उसके बाद तुम जब सो गये तब मैं क्लोरोफ़ार्म लेकर तुम्हें बेहोश करने के लिए उठी, वैसे ही रेल लड़ गई। बस, यह मेरी कहानी है। मेरा भाई मर गया और मैं जीती रही, यही मुझे पश्चात्ताप है, मैं भी मर जाती तो अच्छा था।'

इतना कहकर वह रोने लगी।

पुरुष कुछ देर तक स्तब्ध बैठा रहा। तत्पश्चात् बोला—'रोने से क्या मिलेगा। तुमने तो क़रीब-क़रीब अपना काम कर ही लिया था; परन्तु ईश्वर ने मुझे बचाया। लेकिन किस प्रकार! ओफ़ वह दृश्य क्या इस जन्म में भुलाया जा सकता है! ईश्वर की लीला विचित्र है। न जाने कितने आदमी हताहत हो गये, कितनों के प्राणप्यारे सदैव के लिए उनसे बिछुड़ गये। परन्तु परमात्मा ने मेरी रक्षा की—हर तरह से रक्षा की। जो दूसरों के लिए विष प्रमाणित हुआ, वह मेरे लिए अमृत हो गया। जो घटना दूसरों के लिए मृत्यु थी, वही मेरी रक्षिका बन गई। वाह रे ईश्वर!'

दोनों कुछ क्षणों तक मौन रहे। स्त्री ने रोना बंद कर दिया था और आँसू पोंछ रही थी। जौहरी ने कहा—'तो अब तुम कहाँ जाओगी? जहाँ कहो वहाँ पहुँचा दूँ।'

'मेरा संसार में अब कोई नहीं है। बस, केवल वही भाई था।'

'कोई नाते-रिश्तेदार?'

'कोई नहीं।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'तो फिर कहाँ जाओगी ?'

'क्या बताऊँ ? आत्महत्या कर लेने को जी चाहता है।'

'आत्महत्या करना पाप है।'

'तो आख़िर क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ?'

पुरुष कुछ क्षणों तक बैठा सोचता रहा।

'तो क्या तुम मेरे साथ रहना पसंद करोगी ?'

'तुम्हारे साथ ! क्या तुम मुझ पापिनी को अपने साथ रख सकोगे ?'

'हाँ, यदि तुम अपने पुराने आचरणों को भूल जाओ।'

'मुझे तो पहले ही से उस कार्य से ग्लानि थी। भाई के डराने-धमकाने से मैंने वह कार्य स्वीकार किया था। फिर जब ख़ूब रुपया मिला तो कुछ रुचि उत्पन्न हुई थी, परन्तु अन्तःकरण में ग्लानि तब भी थी। और अब तो....ओह ! वह कार्य करने से भीख माँगना—भूखों तक मर जाना, आत्महत्या कर लेना अच्छा समझती हूँ।'

'तो सुनो। दो वर्ष हुए मेरी पत्नी का देहान्त हो चुका है। यदि तुम मेरी पत्नी बनकर रहना स्वीकार करो तो....।'

'मुझे तुम अपनी पत्नी बना सकोगे ?'

'हाँ बना सकूँगा। क्योंकि जब से मैंने तुम्हें देखा था, मेरा हृदय तुम्हारी ओर आकर्षित हो गया था। तुम्हारा पिछला जीवन तुम्हारे भाई की मृत्यु के साथ समाप्त हो चुका। अब नया जीवन मेरे साथ आरम्भ होगा।'

स्त्री उठकर बैठ गई। उसने पुरुष के गले में हाथ डाल दिये और बोली—'और तुम देखोगे कि मैं कितनी अच्छी पत्नी हूँ।'

पुरुष ने स्त्री को हृदय से लगा लिया। कुछ देर पश्चात् स्त्री पुनः लेट गई और मुस्कराकर बोली—'तुममें आदमी पहचानने की शक्ति सचमुच है।'

'उसका ज़िक्र मत करो। मैं अपने घमण्ड में चूर था। मैं समझता था कि मैं बड़ा चतुर हूँ, मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता ; परन्तु अब मालूम हुआ कि वह मेरी भ्रांति थी। तुम्हारे भोले मुख ने मेरी बुद्धि पर पर्दा डाल दिया था। मनुष्य को कभी किसी बात पर घमण्ड नहीं करना चाहिए।'

प्रदर, प्रसूतिरोग, वंध्यत्व, रजदोष आदि स्त्रीरोगों की अचूक औषधिः—

गर्भामृत चूर्ण

यह चूर्ण स्त्रियों के रज कम, अधिक या कष्ट से आने को नियमित करता है। रक्त या श्वेतप्रदर को मिटाता है और पेड़ू या कमर का दर्द, पेशाब में जलन, गर्भाशय की सूजन आदि स्त्रियों के सर्वरोगों को नष्ट करके शरीर सम्पूर्ण तन्दुरुस्त बनाता है। इस दवा को गर्भवती स्त्रियाँ भी चौथे मास से सेवन कर दीर्घायु और हृष्ट-पुष्ट सन्तान का मनोरथ सिद्ध कर सकती हैं। क़ीमत १० तोले के डिब्बा के २) रुपया।

राजवैद्य नारायणजी केशवजी हेडआफ़िस जामनगर (काठियावाड़)

लखनऊ—निगम मेडिकलहाल अमीनाबाद रोड फ़तेहगंज।

देहली—जमनादास कं० चाँदनी चौक।

इलाहाबाद—बलभद्रदास के० जोन्स्टनगंज। बनारस—राधेलाल एण्ड सन्स, चौक।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यक्ष-जाति प्रायः मानव-समाज से दूर रहती थी। उनकी टोलियों का वर्णन भी हम ऐसा ही पढ़ते हैं कि वे एक स्थल से दूसरे स्थल तक उठते-बसते रहे हैं। उनकी विशेषताओं से पौराणिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। यह प्राचीन काल के यक्ष ही मिश्र वग़ैरह में जाकर 'यहूदी' कहलाये, और.....

श्रीएकान्तबिहारी शर्मा, एम्० ए०, डी० फिल्०

जर्मनी की 'अछूत' यहूदी-जाति

(संक्षिप्त परिचय)

आज समस्त संसार का ध्यान यहूदियों के प्रश्न की तरफ़ आकर्षित हो रहा है। नाज़ी-पक्ष के हाथ में शासन की बागडोर आ जाने के बाद से जर्मनी में यहूदियों के प्रति होनेवाले अत्याचारों ने उन्हें विश्व के सामने ख़ास तौर पर लाकर उपस्थित कर दिया है। बहुत-से लोगों को अवश्य ही यह जानने की इच्छा होगी कि पृथ्वी के अनेक विभागों में यहूदियों के प्रति इतना तिरस्कार क्यों है? भारत में अस्पृश्यों की जैसी दशा है, नाज़ियों और अरबों के समूह में यहूदियों की उससे भी कहीं अधिक दुर्दशा होती है। मध्य-युग में भी उनके प्रति बहुत भीषण अत्याचार किये गये हैं। जर्मनी और फ़िलस्तीन के व्यवहारों के वृत्तांत सुनकर रोमांच हो जाता है।

यहूदियों के प्रति किये जानेवाले अत्याचार-पूर्ण व्यवहारों के विषय में कई तरह से सफ़ाई पेश की जाती है। पुराने ज़माने में भी ज़मीन, जायदाद और जलाशयों को लेकर यहूदियों को त्रास भोगना पड़ता था, जब कि उनके अपराध सभ्य कही जानेवाली अन्य जातियों के मनुष्यों से भिन्न नहीं होते थे। किन्तु दुर्भागी धनकुबेर यहूदी-जाति ही सदियों से अत्याचार सहन करती चली आ रही है।

आज सबसे बड़ा अपराध यहूदियों का यह माना जाता है कि वे अपना कोई राष्ट्र नहीं रखते। उनकी अपनी निजी कही जानेवाली कोई भूमि नहीं है, जैसे जर्मनों का जर्मनी, अँगरेज़ों का इङ्गलैण्ड, हिन्दुओं का हिन्दुस्तान, इस तरह यहूदियों का अपना कोई भी देश नहीं। या यह कहा जाय कि यहूदी अपनी जन्म-भूमि के विषय में सब कुछ भूल गये हैं।

यदि धार्मिक मत-मतान्तरों के झगड़े को छोड़ दिया जाय तो भी प्रत्यक्ष रूप से इसका कोई कारण समझ में नहीं आता कि अरब (जिनके रीति-रिवाज भी प्रायः यहूदियों से मिलते-जुलते हैं, तथा जो एक ही विधान से एक ही देवता का आदर करते हैं) इन बेचारे यहूदियों से इतनी घृणा क्यों करते हैं? लेकिन इस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

रहस्य को जानने के लिए हमें ५-६ हज़ार साल पहले के इतिहास पर दृष्टि डालना होगी।

६ हज़ार साल पूर्व यहूदी लोग मध्य-एशिया के पामीर - प्रदेश में अपने पशुधन के साथ घूमते हुए मैसोपोटामिया में जाकर बसे थे *।

उन दिनों अधिकांशतः लोग सूर्य को ईश्वर मानकर पूजा करते थे। सूर्य-पूजा हिम-युग के पश्चात् होनेवाली प्रलय से उद्भूत हुई थी। उस समय दक्षिण-अमेरिका के आज़टेक, मायान तथा इन्कोनी समूह के साथ-साथ यहूदी भी 'शेम' नाम से परिचित हुए। 'शेम' शब्द का अर्थ अरबी और हिब्रू-भाषा में 'सूर्य' होता है, इसलिए यहूदियों को 'सूर्य-पूजक' माना गया।

उस समय यूफ्रेटिस की भूमि अन्नमयी मानी जाती थी; उसी की उपत्यका में ये लोग बस गये थे। सदियों तक ये वहीं रहे, परन्तु आधुनिक 'कुर्द-स्थान' की रहने-वाली पार्थिया - नामक जंगली जाति ने लोभवश इन यहूदियों पर प्रथम आक्रमण किया और इन्हें वहाँ से भागना पड़ा। पार्थियन लोगों ने केवल यहूदियों के साथ ही यह लूट-खसोट की हो, सो नहीं, पिछले युग में यह लोग आर्मीनियन ग्रामों और खेतों में भी इसी प्रकार अत्याचार करते रहे हैं। यहूदी लोग वहाँ से भागकर सीरिया, जॉर्डन और सकाला तथा यमन तक जाकर फैल गये।

बाइबिल के तथा अन्य मतानुसार मालूम होता है कि उस समय फ़िलस्तीन में भयंकर ज्वालामुखी का विस्फोट हुआ था, उससे सोगेम और गोमोरॉट भी भूसात् हो गये थे। ज़मीन के धस जाने से लाल-सागर (रेड-सी) का जो जल अकाबा-बादी के रास्ते में घुस आया था, उसी से आज का 'मृत समुद्र' बना।

इस दैवी कोप से त्रस्त हो यहूदियों को वहाँ से भी भागना पड़ा। वहाँ से वे मिश्र के भू-भाग में आकर बसे और सदियों तक वहीं रहे। उन्हें कृषि का आश्रय ग्रहण करना पड़ा। वे 'शेख़' के शासन में रहने को विवश हुए। मिश्र में बसने के पहले वे 'सूर्य' के ही भक्त थे, बाद में वह एक ईश्वर-वादी हो गये। मिश्र में रहने से इस कृषि-प्रेमी यहूदी-जाति ने बड़ी उन्नति की। यहाँ उन्होंने विज्ञान और विभिन्न कलाओं को भी सीखा।

सिताब के ज्वालामुखी से आगे घुमाड़ा होकर लाल-सागर के रास्ते से वे फ़िलस्तीन पहुँचे। उस समय वहाँ मूर्तिपूजक और बहेमी आदि अनेक जातियों के लोग रहते थे। यहूदियों ने उन पर अपना अधिकार जमा लिया। जोशुआ के नेतृत्व में ज़ोरा के तथा अन्य नगरों के दुर्गों को भी उन्होंने जीत लिया।

वास्तव में इन प्रान्तों पर अपना आधिपत्य जमाने

---

* उज्जैन के इतिहास के अध्ययनशील पण्डित सूर्यनारायण व्यास ने कुछ समय पूर्व 'टाइम्स' तथा य रप के पत्रों में यहूदियों के लिए एक सर्वथा नवीन 'थ्योरी' प्रकाशित की है। उन्होंने अपना 'यहूदी' विषय का निबंध उज्जैन की 'हिस्टारिकल रिसर्च सोसाइटी' में पढ़ते हुए सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि यहूदियों का प्राचीन उद्भव-स्थल भारतवर्ष ही है। वे यहाँ के पुराण-प्रसिद्ध 'यक्ष-जाति' के हैं। यक्ष-जाति भी प्रायः साधारण मानव-समाज से दूर रहती थी। उनकी टोलियों का वर्णन भी हम ऐसा ही पढ़ते हैं कि वे एक स्थल से दूसरे स्थल तक बसते-उठते रहे हैं। यक्ष अत्यन्त सम्पन्न-सुसंस्कृत, और सुन्दर होते थे। उनकी विशेषताओं से अनेक पौराणिक ग्रन्थ भरे पड़े हैं। महाकवि कालिदास द्वारा वर्णित 'मेघदूत' की अलकापुरी वास्तव में यक्षों का अत्यंत सुन्दर कुबेर-नगर ही है। ये यक्ष लोग धीरे-धीरे भारत से बाहर जाकर मैसोपोटामिया और मिश्र के प्रदेशों तक जाकर फैल गये। इनकी अनेक सामाजिक विशेषताएँ समानत्व को लिये हुए हैं। यह प्राचीन काल के यक्ष ही मिश्र वग़ैरह में जाकर 'यहूदी' कहलाये, और 'शेख़' संस्कार में, निरंतर संघर्ष में रहकर, अनेकों परिवर्तन करने के लिए विवश होते गये। आज भी जर्मनी में उनके नाम, उनका वेष, सभी परिवर्तित किये जा रहे हैं। तथापि वे किसी प्रकार अपनी संस्कृति को क़ायम बनाये हुए ही हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

से उनका उद्देश्य यह हरगिज़ न था कि वे अपना एक साम्राज्य क़ायम करें, वरन् बात यह थी कि अरब और मिश्र के मैदानों में बालू फाँकते-फाँकते वे थक गये थे। ओरीसीस, आइसिस, बालिस और आस्टारॉथ आदि से वे घिर गये थे। राजनैतिक चातुर्य के अनुभव के बल पर उन्होंने अन्ततः नवीन राज्य की स्थापना कर ली; किन्तु इस नवीन राष्ट्रनिर्माण की रचना में ही उन्होंने प्रारम्भिक भीषण भूल की। भूगोल के नक़शे पर दृष्टि डालने से ज्ञात होगा कि उसके पश्चिम में समुद्र है। पूर्व में रेगिस्तान है, और उसके बीच में सीरिया से स्वेज़ तक फ़िलस्तीन का लम्बा-सकरा और हरा-भरा एक पट्टा-सा है। वह हमेशा से एशिया और आफ़्रिका के मध्य का एक स्वाभाविक मिलान करता है। उस पर हर वक़्त जल तथा स्थल-मार्ग से आक्रमण का भय बना रहता है। असीरियन, क्रोनोसियन, ग्रीक-रोमन, सारासेन तथा तुर्क इन सभी ने आफ़्रिका में जाने के लिए इस प्रदेश पर हमले किये हैं और उसके बीच से रास्ता बनाया है। भला ऐसे आक्रमण - स्थल पर वे कैसे निरापद रह सकते थे।

यहूदियों ने एक भूल और की—जब उनके समकालीन ग्रीक लोगों ने समुद्र पर अधिकार जमाना आरम्भ किया था, तब यहूदी मौन बने रहे। ग्रीक, क्रेट, रोम आदि की नौकाओं के क़ाफ़िले सागर पर फैलते रहे, तब भी केवल 'ज़मीन' के अतिरिक्त समुद्र-प्रवास का ख़्याल भी यहूदियों ने नहीं किया।

ग्रीस के साथ यहूदियों की मैत्री थी। जेरूसलम के बाज़ार में मेसोकोर्निया की वस्तुओं का विक्रय भी होता था। सिकन्दर की यहूदियों के ऊपर ख़ास मेहरबानी भी थी; किन्तु रोम के उदय-काल में यहूदियों का सौभाग्य-सूर्य अस्त हो गया। जेरूसलम का नाश हो गया। बेचारे यहूदी फिर वहाँ से भी निकाले गये।

ईसाई-धर्म का प्रचार करनेवाले ईशू का जन्म भी इसी जाति में हुआ था। ईशू का प्रचारित धर्म यहूदी-धर्माध्यक्षों को पसन्द न आया, और ईशू को 'क्रॉस' पर लटका दिया गया। यह 'क्रॉस' तभी से ईसाई-धर्मावलम्बियों का पुनीत चिह्न बना हुआ है।

आगे चलकर असीरिया, बेबीलोनिया, ग्रीक और रोमन-साम्राज्य भी धूल में मिल गये, परन्तु यहूदियों ने अनेक संघर्षों और आपत्तियों से गुज़र कर भी अपनी संस्कृति अद्यावधि सुरक्षित रक्खी। इनमें यह एक आश्चर्यजनक विशेषता अवश्य है। तथापि हम ऊपर यह देख चुके हैं कि इस सम्पन्न किन्तु अभागी यहूदी-जाति को अनेक स्थलों से बार-बार भागना पड़ा है, अनेक जातियों ने, राष्ट्रों ने इनके अस्तित्व को सहन नहीं किया है। यही कारण है कि बार-बार इधर-उधर भटकते रहने से ये लोग अपना एक राष्ट्र स्थापित न कर सके। आज तक उनकी यही दशा है। इसी कारण इन्हें पद-पद पर विपत्तियाँ भोगनी पड़ी हैं और इस समय तो जर्मन-साम्राज्य के अधिवासी होकर वे जिस प्रकार की विपत्ति के शिकार हो रहे हैं, यह सारे जगत् को विदित ही है।

महात्मा की बख़्शिश

इनाम ५००) रुपया

भयानक से भयानक और पुराना से पुराना श्वेतकुष्ठ (सफ़ेदी) को केवल १५ दिन में जड़ से आराम करनेवाली एक सिद्ध महात्मा प्रदत्त बूटी मँगवाकर आरोग्य होवें। विश्वास नहीं हो तो एक आने का टिकट भेजकर शर्त लिखा लें। बेफ़ायदा साबित करने से ५००) रु० इनाम। मूल्य ७ दिन का २) रु० १५ दिन का ३)

पता—श्वेतकुष्ठ-चिकित्सालय,
पो० कतरीसराय (गया)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

धार्मिक उच्छृङ्खलता

श्रीसर्वचन्द्र राय, विशारद

जब हम संसार के भिन्न-भिन्न धर्मों का अध्ययन करते हैं तो हमारी विचार-धारा गति-हीन हो जाती है। उनकी पारस्परिक विभिन्नता, बाह्याडम्बर तथा स्वार्थांधता घृणा उत्पन्न करती है। यद्यपि सभी धर्मों का अन्तिम उद्देश्य एक ही है, फिर भी अनेक देशों और प्रान्तों के अनुसार ही उसका रूप-रंग भी बदल गया है। इसी से अलग-अलग धर्मों के माननेवालों में कलह के बीज अंकुरित होते और फूलते-फलते देखे गये हैं।

> पुरुषोत्तम रामचन्द्र, जिन्हें हिन्दू-जनता ईश्वर मानकर पग-पग पर उनका महत्त्व स्वीकार कर अपने को धन्य समझती है,...धर्म ने उनकी आँखों पर भी अंध-विश्वास की पट्टी बाँध रक्खी थी। इसका पता—

किसी भी धर्म का मुख्य उद्देश्य पारलौकिक सुख की कामना है। उस सुख की व्याख्या विभिन्न धर्मवाले अपने-अपने ढंग से करते हैं। इसके साथ-साथ धर्म का उद्देश्य ऐहिक शान्ति एवम् आध्यात्मिक शक्ति का विकास है। निस्सन्देह यह शक्तियाँ बहुत ही आवश्यक एवम् सदुपयोगी हैं। उनका जीवन में सर्वोच्च स्थान है। बिना उनकी प्राप्ति के मनुष्य का धार्मिक जीवन निष्फल है। किन्तु हमें विचार करना है कि इन शक्तियों के साथ धर्म का कैसा सम्बन्ध है। धर्म उन्हें उन्नत बनाने में कहाँ तक सहयोग देता है।

प्रत्येक मनुष्य शान्ति चाहता है, किन्तु इसकी प्राप्ति किसी धर्म-विशेष से सम्भव नहीं। महात्मा बुद्ध ने इसे सिद्ध कर दिया है—संसार की दशावलोकन-मात्र से उनके मस्तिष्क में ज्ञान की तीव्र धारा प्रवाहित हो चली। उनके हृदय में वैराग्य-जागृति हुई जिससे वे शान्ति तथा आध्यात्मिक शक्ति की खोज में निकले। उन्होंने अनेकों सम्प्रदायों की शरण ली। बहुतेरे महात्माओं के समक्ष अपनी आकांक्षा प्रकट की, किन्तु उन्हें कहीं भी संतुष्टि न मिली। उन्हें किसी धर्म ने नहीं बतलाया कि शान्ति तथा आध्यात्मिक शक्ति कैसे प्राप्त की जा सकती है। सब ओर से निराश होकर उन्हें स्वावलम्बन की शरण लेनी पड़ी। उन्होंने अनुभव किया कि शान्ति एवम् आध्यात्मिक शक्ति की उन्नति अधिकतर मनुष्य के सदाचारी होने पर निर्भर है। बुद्ध में शान्ति-जागरण चरित्र की शुद्धि के कारण हुआ, किसी धर्म की शरण लेने से नहीं। सच्ची शान्ति धार्मिक अनुष्ठानों, नियमों, पूजा तथा व्रत आदि रखने से नहीं, बल्कि चरित्र-शुद्धि से मिलती है।

संसार में प्रचलित किसी भी धर्म के दायरे में रहकर, आदमी के लिए अपना चरित्र दृढ़ रखना कितना दुस्तर है, मैं यही बतलाना चाहता हूँ। ईश्वर के अनुयायी मसजिदों को नष्ट करना तथा ख़ुदा के अनुयायी मन्दिरों को नष्ट करना अपना परम धर्म समझते हैं। औरंगज़ेब-जैसे बादशाह के व्यवहारों को देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। वह अपने धर्म का कट्टर अनुयायी था। उसका विधर्मियों के ऊपर अत्याचार क्या हृदय-विदारक नहीं?

एक कितना भी सच्चरित्र हिन्दू क्यों न हो, उसको धार्मिक मुसलमान काफ़िर कहे बिना नहीं रह सकते। दूर जाने की आवश्यकता नहीं, थोड़े ही दिन हुए स्व० मौलाना मुहम्मद-अली ने कहा था कि एक साधारण से साधारण मुसलमान महात्मा गांधी से लाख गुना अच्छा है। बहुत-से हिन्दुओं का भी ऐसा ही विश्वास है। उनका कहना है कि एक दुश्चरित्र हिन्दू भी एक बहुत

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बड़े योग्य और सच्चरित्र यवन या म्लेच्छ से उत्तम है।

हमारे यहाँ महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी की भक्ति तथा धार्मिकता पर हिन्दू-मात्र को पूर्णरूपेण विश्वास है। वे आज भी हिन्दू-समाज के लिए आदर्श हैं। उन्होंने 'आदर्श' सामाजिक नियमों को आबद्ध किया है। वे कहते हैं—

'पूजिय बिप्र सकल गुन-हीना;
शूद्र न गुन-गन ज्ञान प्रबीना।'

ऐसे बड़े महात्मा की वाणी से ऐसे शब्दों का निकलना कम दुःख की बात नहीं है। हम नहीं सोच पाते कि इन लोगों ने मनुष्यों की उत्तमता तथा पोचता की क्या परख रक्खी है। पता नहीं वे मनुष्यत्व को कैसे स्वार्थपूर्ण शिकंजे में कसते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि धर्म सच्चरित्रता का सत्कार करने तथा उसकी प्राप्ति में बाधक बनता है। सच्चरित्रता मनुष्य के जीवन में अमूल्य हीरक रत्न है। उसके बिना मनुष्य निर्जीव है, उसमें आध्यात्मिकता का वास असम्भव है और जब मनुष्य सच्चरित्र नहीं तो वह मनुष्य-योनि में गण्य नहीं। उसकी गणना राक्षसों में होती है।

बुद्ध ऐसे आदर्श महापुरुष को यदि कोई अन्य धर्म-वाला नीच और काफ़िर बताता है तब कितना बुरा मालूम होता है। सच्चरित्रता का रूप तो सभी स्थानों में एक ही है! फिर एक समाज का आदर्श व्यक्ति दूसरे समाज के लिए निन्दनीय क्यों होता है? धर्म ही इसके लिए दोषी ठहराया जायगा।

ब्रह्माण्ड को रचनेवाली एक विराट् शक्ति को सभी मानते हैं। किन्तु भिन्न-भिन्न धर्मावलम्बी उसको अपने ढंग से देखते हैं। कोई 'सत्तर हूर', 'बहत्तर गिलमं' का स्वप्न देखता है तो कोई दूध, घी के तालाबों, फल से लदे पेड़ों तथा अकर्मण्यता का स्वप्न देखता है। इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि स्वर्ग और कोई वस्तु नहीं, बल्कि प्रलोभनों की मधुर कल्पना-मात्र है।

धर्म के नाम पर जो अत्याचार हो चुके हैं या होते आ रहे हैं, वे बड़े ही दुःख-पूर्ण हैं। उनका स्मरण-मात्र हमारी आत्मा को कम्पित कर देता है। ईसा तथा सुकरात की मृत्यु-कथा पर ध्यान दीजिए। क्या उनके वध में अनर्थ की पराकाष्ठा नहीं हो चुकी थी? धर्म ही ने तो उनका वध कराया था। धर्म में जो अन्ध-विश्वास ने वास पा लिया है, उसका फल शताब्दियों से मनुष्य-जाति को भोगना पड़ रहा है।

धर्म ने मनुष्यों को लकीर का फ़क़ीर बनाने में कोई कसर नहीं उठा रक्खी है। आज जिस विज्ञान के कारण मनुष्य-समाज को अपूर्व सुख-साधन प्राप्त हैं, उसके मार्ग में धर्म ने ख़ूब कंटक बिखेरे हैं। वैज्ञानिक आविष्कार-कर्त्ताओं के साथ जो अत्याचार किये गये हैं, उनके श्रवण-मात्र से हृदय के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं।

'गैलीलियो' ने प्रचार किया कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है, किन्तु वे अपने आविष्कार को पूर्णतया व्यक्त करने से डरते थे। क्योंकि कुछ दिन पहले ही 'ब्रूनो'-नामक योरपीय ज्योतिषी ऐसा कहने के कारण धर्म-याचकों के विचार से अपराधी प्रमाणित होने पर आग में जीवित ही जला दिया गया था। यह सिद्धान्त 'बाइबिल' के प्रतिकूल था, अतः उसे ऐसी सज़ा भुगतनी पड़ी।

उस समय इटली तथा सारे योरप में धर्म-याचकों का बहुत ही अधिक प्रभाव था। रोमन-कैथलिक पादरियों का प्रधान अध्यक्ष 'पोप' कहलाता है। उन दिनों, एक तरह से पोप ही संसार के समस्त ईसाई-राज्यों का सम्राट् था। बाइबिल के विरुद्ध एक शब्द भी मुँह से निकालने पर कड़ा दण्ड मिलता था। बाइबिल में लिखा है कि सूर्य पृथ्वी के चारों ओर घूमता है। गैलीलियो ने दूरवीक्षण-यन्त्र से ग्रहों की चाल देखकर ही यह आविष्कार किया था। अपने समस्त जीवन की साधना तथा ज्ञान के कारण वे जिस सत्य का आविष्कार कर सके थे, उसे जनसाधारण में प्रकाशित करने पर वे पोप के दरबार से अभियुक्त क़रार दिये गये।

उन्हें अपराधी की पोशाक पहनकर पोप तथा उसके पदाधिकारियों के समक्ष घुटनों के बल बैठने और यह शपथ खाने के लिए विवश किया गया कि उन्होंने जो

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कुछ मत प्रकट किया है, वह भ्रमपूर्ण है। अन्त में प्राण-रक्षा-निमित्त उनको शपथ खानी पड़ी। लेकिन वे अपना विश्वास न बदल सके। ज्यों ही वे क्षमा माँगकर उठे, उन्होंने धीरे से कहा, 'Still it moves' (वह अब भी घूमती है) दमन से यह सम्भव है कि आदमी की ज़बान में ताला पड़ जाय, मगर यह मुमकिन नहीं कि वह अपने हृदय के सच्चे उद्‌गारों को भुला सके।

गैलीलियो को कारागार में वास करना पड़ा। कुछ दिनों के बाद वे कारागार में अन्धे हो गये और इस अन्यायी संसार से चल बसे। मृत्यु के कुछ ही पूर्व उन्होंने कहा था—

'This heaven, this earth, which I by my marvellous discoveries have enlarged a hundred-thousand times beyond the belief of the wise men of by-gone ages, hence-forward, for me is shrunk into such a small space as it is filled by my own bodily sensation.'

इस प्रकार वैज्ञानिकों के साथ बहुत-से अत्याचार हुए हैं। यदि उनके साथ ऐसे अत्याचार न हुए होते तथा उन्हें उत्साह प्रदान किया गया होता तो आज विज्ञान शायद इससे भी कहीं अधिक उन्नत हो चुका होता।

पुरुषोत्तम रामचन्द्र भी, जिन्हें हिन्दू-जनता ईश्वर मानकर पग-पग पर उनका महत्त्व स्वीकार करने में अपने को धन्य समझती है, इस दोष से वंचित न रह सके। धर्म ने उनकी आँखों पर भी अंधविश्वास की पट्टी बाँध रक्खी थी। 'अध्यात्म रामायण' के अध्ययन से इसका पता लगता है। ब्राह्मण के जीवित रहते ही उसके जवान पुत्र की मृत्यु का कारण एक क्षुद्र तपस्वी की राज्य में विद्यमानता समझी गई है। उसके निवारणार्थ तपस्वी का वध कराया गया। एक न्यायशील राजा के लिए, जो ईश्वर का अवतार समझा जाता है, इससे बड़ी भूल और कौन-सी हो सकती है? धर्म के ठेकेदारों ने राजाओं के यहाँ आदरणीय स्थान पाकर जनता के ऊपर मनमाना अत्याचार किया है। राजा भी 'धर्मराज' बनने के लिए हमेशा इस पाप के भागीदार रहे हैं।

सभी जातियों की सामाजिक भूलों ने उसकी उन्नति में बाधा डाली है, किन्तु यथासम्भव उनका सुधार होता रहा है। मार्टिन लूथर का नाम योरपीय इतिहास में प्रसिद्ध है। उन्होंने 'प्रोटेस्टेंट' मत चलाकर 'रोमन-कैथलिक' सम्प्रदाय के पादरियों का प्रभाव कम कर दिया। भूलों ने सबसे अधिक प्रभाव हिन्दू-जनता पर डाला है, जिसका नतीजा भारतीय जनता शताब्दियों से भुगत रही है। हमारे देश में धर्म के ठेकेदार, ब्राह्मण, ही हमारे पतन का कारण हुए। धर्म का मर्म भूलकर जब से उन्होंने केवल धर्म की चोटी ही अपनी मुट्ठी में दबाना शुरू किया तब से बराबर हमारा नाश ही हुआ है। बाबा आदम के ज़माने के बने हुए सामाजिक नियम (जो अब धर्म में शामिल हैं) आज भी हमारे ऊपर लागू होते हैं। आज भी उनकी आड़ में हमें उन्नति के पथ पर बढ़ने से रोका जाता है।

भारत में हिन्दू-मुस्लिम-झगड़े सदा प्रचण्ड रूप धारण करते रहे, जिसमें सैकड़ों व्यक्तियों को पतिंगों की भाँति प्राणों से हाथ धोने पड़े। जो शक्ति इन धार्मिक संघों वा झगड़ों को उपजाने में नष्ट की जाती है, वह यदि चरित्र सुधारने और ऐक्य भाव-स्थापन में लगाई जाती तो हमारा बहुत कल्याण होता। 'हिन्दू-महासभा' तथा 'मुस्लिम-लीग' में जो शक्ति लगाई जाती है, वह यदि स्वराज्य-प्राप्ति में लगाई जाती तो आज शायद हम बहुत आगे बढ़ गये होते।

शुरू-शुरू में ईसाई पादरियों ने पुर्तगालियों की शह पर, बंगालियों पर कितना ज़ुल्म ढाया! ईसा के प्रेम-भाववाले उपदेश से शायद वे लोगों को जीत भी लेते, मगर आज उनके हृदयों में, उन अत्याचारों की याद कर, ईसाइयों के प्रति घृणा का भाव जाग्रत् होता है।

संसार का प्रत्येक राष्ट्र धार्मिक विभिन्नता के कारण एक दूसरे से कुछ भिन्न-सा प्रतीत होता है। उसमें ऐक्य स्थापन की कोई आशा नहीं। हाँ, यदि धार्मिक बाह्याडम्बरों का बहिष्कार किया जाय तथा साम्यवाद का स्थापन किया जाय तो निस्सन्देह संसार एक सूत्र में बाँधा जा सकता है तथा सभी समानाधिकारी बन सकते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लकड़हारा

श्रीअमीरचन्द्र वर्मा साहित्याचार्य

(१)

श्रमजीवि जीव से जग का,
समुचित व्यवहार न लखकर,
अति तीव्र प्रभाकर को भी,
निर्वेद हुआ जन-जन पर ।
वह छोड़ उन्हें अन्धन्तम-
नामक भयजनक निरय में—
थे उद्यत आत्म-निलय को,
निपतित हो वरुणालय में ।

(२)

तब तक जीवन का दुःखी,
विख्यात सखा दुर्गति का,
संकटमय - विकट - कटाक्षों
से विद्ध, विपत् का पति-सा ।
जाता आँखों ने देखा,
झुकता - सा कृशतर, जर्जर
अतिवृद्ध, दीन, निज सिर पर,
गुरु काष्ठनिचय धारण कर ।

(३)

यदि विश्व ! तुम्हारे उर में,
कोई भी सहृदय होता,
तो इस दयनीय दशा पर,
दो-दो आँसू वह रोता ।
कुछ मूल्य न समझा तुमने,
जिसको श्रमस्वेद समझकर,
वह तो उस जर्जर के ही,
थे रोम रो रहे झरझर ।

(४)

हे हृदयहीन ! तुम जिसको,
हो जान रहे बलि-श्रेणी,
वह इसके बल-विक्रम की,
है अनुपम - सी निःश्रेणी ।
इसके कुबड़े - से तन का,
भ्रम से उपहास न करना,
यह दशा-चित्र है उनका,
जो जानें पर-हित मरना ।

(५)

इसके अतिमलिन वदन से,
मन में क्यों कुछ भय आया,
यह तो निर्मल दर्पण में,
जग के मन की है छाया ।
यह वृद्ध नहीं है, यह तो
है सिद्ध महात्मा - जैसा,
यह तरुण रहेगा, जब तक
वह अरुण रहेगा ऐसा ।

(६)

यह एक परशु के आश्रय,
वन - वन में विहरण करके,
वह धन लाता है जिससे
चूल्हे जलते घर-घर के ।
यह भी भिक्षुक बनकर, था
बन सकता पूज्य तुम्हारा,
पर कौन तुम्हारा साथी,
बनता फिर "लकड़हारा" ।

(७)

शङ्कर का परशु विदित है,
पर 'खण्ड'-उपाधि विभूषित,
है परशुराम का विश्रुत,
पर निरपराध-वध-दूषित ।
फिर क्या भव-भविक-विभावन !
निर्दोष परशुधर ! निर्जर !
संसार करेगा तेरा,
सत्कार न उनसे बढ़कर ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

(८)

अपनी जठराग्नि बुझाते,
जग की पाकाग्नि जलाते,
तुम हो प्रस्वेद बहाते,
संसृति का खेद मिटाते ।
हो सूर्य उदय से प्रविलय-
पर्यन्त परिश्रम करते,
पर काष्ठहरण का तुम ही,
हो कष्ट विश्व का हरते ।

(९)

तुम मूर्त परिश्रम हो क्या,
साकार कर्म या तुम हो,
चेतन उद्योग तुम्हीं हो,
या सक्रिय उद्यम तुम हो ।
तुम जो कुछ हो, वह ही हो,
पर हो अति मात्र अनूठे,
बलिहारी हम इस श्रम पर,
निर्दय जग रूठे, रूठे ।

(१०)

यदि काष्ठ-काष्ठ में तेरे,
तन की हड्डी देखेगा,
तो विश्व काष्ठ का तेरे
क्या मूल्य भला दे देगा ।
क्या वज्र-मूल्य हो सकता,
यह प्रस्तर चिन्तामणि है,
उस एक दधीचि महामुनि
का ही यह लोक ऋणी है ।

(११)

कहने को जग ही तुमको,
ठगता है, तुम हो भोले,
पर पाप-पुञ्ज से वह भी,
निर्मल मुख अपना धो ले ।
तुम संचय करते जाओ,
यह जग व्यय करता जावे,
तुम उन्नत होते जाओ,
वह अवनत होता जावे ।

(१२)

पर तुमको जग की अवनति,
जग का अपकर्ष न प्यारा,
तुम तो उसके ही हित को,
बन आये "लक्कड़हारा" ।
तुम अपनी सन्तति जैसे,
संसृति का सुख ही चाहो,
वह भी निष्ठुर बन कर ले,
जो कुछ उसकी इच्छा हो ।

(१३)

वह समय शीघ्र आवेगा,
जानेगा जग श्रम तेरा,
तू हृदय-हृदय में उसके,
पावेगा प्रथम बसेरा ।
"कृषिकर" तेरा अग्रज है,
"मजदूर" अनुज है तेरा,
उनके ही संग मिलेगा,
तुझको आदर बहुतेरा ।

(१४)

उपकार-परायण तुझ-सा
क्या है कोई जल-थल में,
है कर्मयोग का योगी,
तू ही तीनों भूतल में ।
तुम इसी भाँति नित अपना,
कर्तव्य निभाते जाओ
यह विश्व करेगा स्वागत,
"आओ श्रमजीवी ! आओ" !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

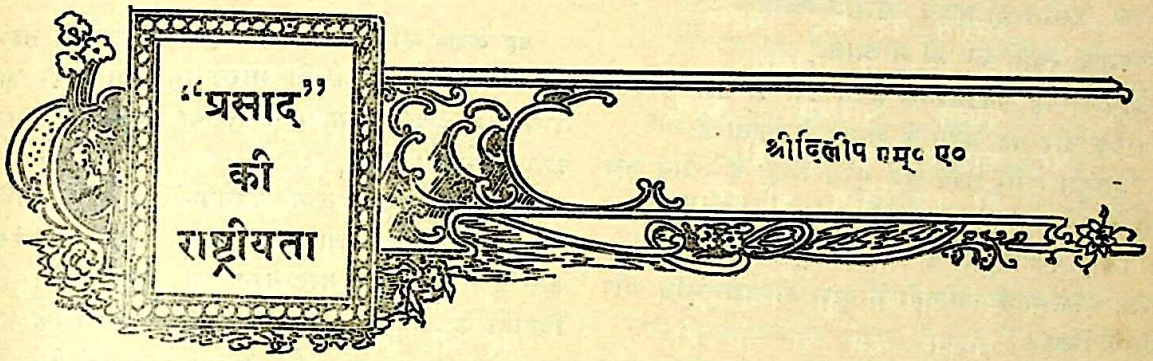

श्रीदिलीप एम्० ए०

"स्मरण होता है वह दार्शनिकों का देश ! वह महिमा की प्रतिमा !" (बुद्धगुप्त)

"बुद्धगुप्त ! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी हैं ; सब जल तरल हैं ; सब पवन शीतल हैं। कोई विशेष आकांक्षा हृदय में अग्नि के समान प्रज्वलित नहीं। सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है। प्रिय नाविक ! तुम स्वदेश लौट जाओ विभवों का सुख भोगने के लिए, और मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।" (चम्पा)

—'आकाशदीप'

प्रसादजी मानवता के कवि हैं। उनके प्रधान विषय मनुष्य तथा उसकी मनोवृत्तियों की व्यंजना में भी हम एक बात मुख्य रूप से पाते हैं। वह है अतीत। उसकी स्मृति कवि के हृदय में भावनाओं का सृजन करती है। वह अतीत भी वास्तव में उस काल की ओर संकेत करता है, जब मानव-जीवन हरा-भरा रहता है। वसंत उसमें गुनगुनाता है, कोयल कूकती है, वल्लरियाँ मादकता से झूम पड़ती हैं। मधु की सरिता से उफनने और अकुला उठनेवाला वह काल है यौवन ! परंतु एक समय आता है, जब वह उपवन उजड़ जाता है, पतझर के तूर्यनाद से सब फूल-पत्तियाँ बिखर जाती हैं। कवि ने इसकी भी उपेक्षा नहीं की। उसने मनुष्य को उसके पूर्ण रूप में देखा। उसने देखा मानवता में बुद्धि तथा हृदय का संघर्ष। एतदर्थ इन दोनों के प्रभाव में पलकर मानवता के विकास का वह शाश्वत गान गा उठा। यही उसका अंतिम गीत था। वह थी विश्व-साहित्य की अमूल्य निधि कामायनी।

परन्तु महाकवि, विशेषकर विश्वकवि किसी सीमा तथा वाद से शृङ्खलित नहीं रहता। वह आकाश-सा उन्मुक्त रहता है, अचल हिमाचल-सा सिर उठाये खड़ा रहता है। उसके अंतः-प्रदेश से भिन्न-भिन्न धाराएँ निकलकर मानव-तृषा को उत्सिक्त करती रहती हैं।

प्रसादजी भी विश्वकवि हैं। उनका हृदय भी विश्व की भिन्न-भिन्न समस्याओं से उलझ चुका है। कभी उन्होंने मनुष्य को किसी अव्यक्त, अदृष्ट, अनंत शक्ति से पीड़ित देखा। उस समय उनकी कविताएँ रहस्यवाद से भीनी रहती हैं। अगर प्रकृति उनके सामने अपना हृदय खोल-कर आई, तो वे सब कुछ भूलकर उसी का चित्रण करने लगे। उन्होंने रात्रि की नीरवता में विश्व को पड़े हुए देखकर लिखा—

'अपलक हो जगती एक रात !
सब सोये हों इस भूतल में,
अपनी निरीहता सम्बल में,
चलती हो कोई भी न बात !'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यहीं पर न रुककर पीड़ित हृदयों के अन्तर में पैठकर कवि कामना करता है—

'वक्षःस्थल में जो छिपे हुए—
सोते हों हृदय अभाव लिये—
उनके स्वप्नों का हो न प्रात!'

कवि का यह संवेदनशील हृदय उसे दो ओर खींचता था। एक बार वह चम्पा के शब्दों में कहता है—

"बुद्धगुप्त! मेरे लिए सब भूमि मिट्टी है; सब जल तरल है; सब पवन शीतल है।.....सब मिलाकर मेरे लिए एक शून्य है.....मुझे छोड़ दो इन निरीह भोले-भाले प्राणियों के दुःख की सहानुभूति और सेवा के लिए।"

परंतु सब कुछ होते हुए भी कवि मनुष्य है। उसके हृदय है, हृदय में स्पंदन है और है स्पंदन के कारण प्रवाहित होता हुआ रक्त। जिस भूमि की शोणित-सिंचित मिट्टी से उसने मानव-देह पाया, उबलता हुआ रक्त पाया, उसे वह भुला नहीं सका। उसके लिए उसका देश साकार है, भरापुरा है—

'अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।'

जिस देश के लिए पक्षियों तक में अपनापन हो—

'उड़ते खग जिस ओर मुँह किये—
समझ नीड़ निज प्यारा।'

भला उसी देश को दीनहीन देखकर उसकी आँखें भर न आवेंगी!

कवि का वह देश सदा दीनहीन नहीं रहा है। कभी यहाँ भी वह प्रकाश था, जिससे सारा विश्व आलोकित हो उठा था, जो धन-धान्य तथा सुवर्ण से ओत-प्रोत था, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने कर्म के अनुसार चलते थे। उसी देश के मस्तक-प्रदेश पर जो गौरव से शीश ऊँचा किये हुए खड़ा है, उसी—

'हिमालय के आँगन में उसे
प्रथम किरणों का दे उपहार
उषा ने हँस अभिनन्दन किया
और पहनाया हीरक-हार
जगे हम, लगे जगाने विश्व,
लोक में फैला फिर आलोक
व्योम-तम-पुंज हुआ तब नष्ट,
अखिल संसृति हो उठी अशोक।'

यह केवल कवि की देश के विषय में गर्वोक्ति नहीं। प्रत्येक विद्वान् जानता है कि भारत उन देशों में है, जहाँ सभ्यता ने प्रथम जन्म ग्रहण किया और फिर अन्य देशों में फैलती गई।

भारत का मस्तक ऊँचा करनेवाले आर्यों के आदि-ग्रंथ वेद विश्व के प्राचीनतम ग्रंथों में परिगणित किये जाते हैं। उनमें हम तरह-तरह की कथाएँ पाते हैं। विद्वानों के अनुसार यह आर्य-जाति के प्रारंभिक काल का इतिहास है। उसमें स्थान-स्थान पर प्रलय का वर्णन आया है। उस प्रलय को झेलकर प्रजापति मनु ने सृष्टि को सुरक्षित रक्खा। कवि के अनुसार—

'बचाकर बीजरूप से सृष्टि,
नाव पर झेल प्रलय का शीत
अरुण केतन लेकर निज हाथ
वरुण-पथ में हम बढ़े अभीत।'

उस सुवर्ण-काल में भारत ने विश्व के कोने-कोने में अपना संदेश फैलाया। परंतु वह अलक्षेन्द्र, मंगोल इत्यादि अन्य आततायियों के समान बर्बरतापूर्वक नहीं। हमारा ढंग दूसरा था, हमारी संस्कृति दूसरी थी—

'विजय केवल लोहे की नहीं,
धर्म की रही धरा पर धूम;
भिक्षु होकर रहते सम्राट,
दया दिखलाते घर-घर घूम।
यवन को दिया दया का दान,
चीन को मिली धर्म की दृष्टि;
मिला था स्वर्णभूमि को रत्न,
शील की सिंहल को भी सृष्टि।'

जिस शांति के लिए आज विश्व कट-मर रहा है, उसी की राह भारतवर्ष ने, आर्यों ने शत-शत वर्ष पूर्व बताई।

विश्व में भारत का संदेश पहुँचानेवाली आर्य-जाति

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की ओर संसार के विद्वान् मुग्ध-विस्मित होकर देख रहे हैं। उन लोगों के लिए आर्य-जाति का इतिहास एक रहस्य है। उन लोगों के अनुसार आर्यगण बाहर से आकर भारत में बसे। परंतु विद्वान् कवि को यह मान्य नहीं। वह दृढ़तापूर्वक विरोध करता है—

'किसी का हमने छीना नहीं,
प्रकृति का रहा पालना यहीं;
हमारी जन्मभूमि थी यहीं,
कहीं से हम आये थे नहीं।'

आज पुरातत्त्व-विद्वान् कवि के द्वारा निर्दिष्ट पथ पर चलने के लिए उन्मुख देख पड़ते हैं। संभव है, कवि की यह धारणा लोगों का विश्वास हो जाय!

भारत-देश के गौरव उसी आर्य-जाति का रक्त कवि की धमनियों में भी प्रवाहित होता रहा है। अगर उनके सिद्धांतों तथा कार्यों को स्मरण करके कवि गर्व-पूर्वक कहे—

'चरित थे पूत, भुजा में शक्ति,
नम्रता रही सदा सम्पन्न;
हृदय के गौरव में था गर्व,
किसी को देख न सके विपन्न;
हमारे संचय में था दान,
अतिथि थे सदा हमारे देव;
वचन में सत्य, हृदय में तेज,
प्रतिज्ञा में रहती थी टेव।'

तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। वह यहीं कहकर चुप नहीं हो जाता। वह हमारी ओर देखता है, हमसे कहता है, याद करो—

'वही है रक्त, वही है देश,
वही साहस है, वैसा ज्ञान;
वही है शान्ति, वही है शक्ति,
वही हम दिव्य आर्य-संतान।'

सब कुछ हममें वही है। फिर क्या बात है हम मूक बधिर बैठे हैं? आज वह गौरव एक विभव-स्वप्न बना है!!

प्रसादजी इस प्रश्न पर मूक हैं। वे कवि हैं। वे जैसा देखते हैं, वैसा ही चित्रित करते हैं। हमारे हृदय में सुप्त गौरव-भावना को जाग्रत् करना उनका काम है। कैसे यह बात हुई और किस प्रकार हम उसे पुनः प्राप्त कर सकते हैं, यह देशभक्तों का काम है। उन्होंने हमें स्वर्ग की एक झाँकी दिखला दी। वह स्वर्ग की झाँकी ही नहीं, उसमें कवि की टीस भी सन्निहित है। वह जैसे और कुछ कहना चाहते हैं। परंतु उनकी कलाकारवाली भावना लेखनी रोक देती है। वे केवल एक संकेत भर कर देते हैं—'वही हम दिव्य आर्य-संतान!'

इसका तात्पर्य क्या है? इसका तात्पर्य यह है कि हम उसी दिव्य स्वर्ग के खँडहर में रहते हैं। हममें वही रक्त प्रवाहित हो रहा है, परंतु हम अपनी दशा पर ध्यान नहीं देते। हममें वही रक्त है, वही देश है, वही साहस है, वैसा ही ज्ञान है, वही शक्ति है, सब कुछ वही है। परंतु हम अभी जगे नहीं। कवि मानों हमसे कहना चाहता है कि हम पुनः अपने को तथा अपने देश को वैसा ही बना सकते हैं।

कवि देखता है कि यह सब याद दिलाने पर भी देशवासियों के हृदय में एक ज्वाला नहीं जाग्रत् हो जाती। यह देखकर उसका कंठ भर आता है, मार्ग नहीं सूझता। परंतु विपन्नों के सहायक भगवान् जो हैं। कवि को स्मरण होता है कि एक दिन कुरुक्षेत्र के सैनिक को अपने कर्त्तव्य का ध्यान दिलाने के लिए उन्हीं भगवान् ने युद्ध-स्थल पर उपदेश दिया था और यह भी कहा था—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

परंतु मालूम होता है, भगवान् अपनी इस अमर वाणी को भूल गये। अगर भूल न गये होते तो एक बार अपना प्रलयकारी पाञ्चजन्य शंख फूँक न दिया होता!

वह घबराकर पुकार उठता है। उन्हें स्मरण कराता है, उलाहना देता है—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'उतारोगे अब कब भूभार
बार-बार क्यों कह रक्खा था लूँगा मैं अवतार।'

अगर इस समय नहीं आओगे, तब कब आओगे ? एक बार देखो, यह देश किस अवस्था में है—

'प्रलय पयोधर बरस रहे हैं रक्त-अश्रु की धार
मानवता में राक्षसत्व का अब है पूर्ण प्रचार।'

इतने पर भी—

'पड़ा नहीं कानों में अब तक क्या यह हाहाकार
सावधान हो अब तुम जानो मैं तो चुका पुकार।'

यह सब कहकर कवि आशापूर्ण होकर भगवान् की ओर देखता है। वह समझता है कि उसने अपना कर्त्तव्य पूरा कर लिया, अब शेष उन पर है। परन्तु देश के लिए कवि में धैर्य नहीं हो सकता, संतोष नहीं हो सकता। वह फिर उठकर देशवासियों में हलचल पैदा कर देना चाहता है।

इस बार भी कवि अपने पुरातन पथ का ही अनुसरण करना चाहता है। वह लोगों को दिखला चुका है कि आर्यों को यह पुण्य भूमि यवन (ग्रीक), शक, बर्बर हूणगणों द्वारा बार-बार प्रताड़ित होकर भी अपनी सत्ता बनाये रख सकी है। मध्यकालीन भारत मुसलमानों के द्वारा आक्रांत हुआ, पददलित हुआ, फिर भी वे हमारी सत्ता मिटा नहीं सके।

धार्मिक उन्माद से ग्रस्त मुसलमान शासकों का प्रतिरोध एक जाति ने किया। वे थे राजपूत। उसी समय के राजपूतों की गाथा हमारी जाति के अमर गीत हैं। उस समय के नरककुंड में स्वर्ग का भी अस्तित्व था।

राजपूतों की वीरता, त्याग, महत्ता इत्यादि की अनेकानेक कहानियाँ हम सुनते हैं। परन्तु उन गुणों की पराकाष्ठा एक व्यक्ति में मिलती है। कवि के लिए वह व्यक्ति—प्रताप, जातीय गुणों का साकार प्रतीक है। उसने उस महाराणा के महत्त्व का गीत हमें सुनाया। परन्तु कवि की भावनाओं को आघात तो उस समय मिला, जब उसने पेशोला को देखा। पेशोला ने कवि के हृदय में स्मृतियों का एक प्रभञ्जन उद्वेलित कर दिया। उसने गौरव की छाया में सोते हुए पेशोला का एक अल्पकालीन चित्र हमें भी दिखलाया।

उसके तट पर जाते ही लहरें उठ-गिरकर, गूँजकर हमसे कुछ प्रश्न पूछती हैं। उस प्रश्न में एक संकेत है। वे हमें अपनी दयनीय अवस्था दिखलाती हुई पूछती हैं—

'कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
दुर्बलता इस अस्थिमांस की—
ठोंककर लोहे से, परखकर वज्र से,
प्रलयोल्काखंड के निकष पर कसकर
चूर्ण अस्थिपुञ्ज-सा हँसेगा अट्टहास कौन ?
साधना पिशाचों की बिखर चूर-चूर होके
धूलि-सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से।
कौन लेगा भार यह ?
जीवित है कौन ?
साँस चलती है किसकी
कहता है कौन ऊँची छाती कर, मैं हूँ—
—मैं हूँ—मेवाड़ में।
अरावली-शृंग-सा समुन्नत सिर किसका
बोलो, कोई बोलो—अरे क्या तुम सब मृत हो ?'

ये ध्वनियाँ न जाने कब से उठ रही हैं, आज भी मूक नहीं हुईं—

'आज भी पेशोला के—
तरल जल-मंडलों में
वही शब्द घूमता-सा—
गूँजता विकल है।'

सब बातें वे ही हैं। वे ही सूर्य, जल, पवन हैं, फिर भी कुछ अभाव-सा है—अत्यन्त अधिक। हमारा हृदय विकल होकर उसकी प्रतीति करता है। हम उसकी ध्वनि को सुनकर धरती में गड़ जाते हैं। हममें उसका उत्तर देने की शक्ति नहीं। जिसने एक बार छाती ठोंककर कहा था—'मैं हूँ—मेवाड़ में' उसी—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'गौरव की छाया पड़ी माया है प्रताप की
वही मेवाड़।
किन्तु आज प्रतिध्वनि कहाँ ?'

इतिहास में अपना स्थान बना जानेवाले उस प्रताप की जाति की महिलाएँ तक अपनी वीरता तथा कृतियों से भारत का मस्तक ऊँचा कर गईं। उन्हीं राजपूतनियों में पद्मिनी की कहानी आज भी घर-घर सुनी जाती है। कवि भी हमें उस काल की घटना बताता है, जब पद्मिनी ने अग्नि में प्रवेश करके महिला-जाति का मस्तक ऊँचा कर दिया—

'पावक-सरोवर में अवभृथ स्नान था
आत्मसम्मान यज्ञ की पूर्णाहुति
सुना—जिस दिन पद्मिनी का जल मरना
सती के पवित्र आत्म-गौरव की पुण्य-गाथा
गूँज उठी भारत के कोने-कोने जिस दिन
उन्नत हुआ था भाल
महिला-महत्त्व का।
द्रुत मेवाड़ के पवित्र बलिदान का
ऊर्जित आलोक
आँख खोलता था सबकी।'

उस जाति की न जाने कितनी नारियों ने पद्मिनी के समान पावक-सरोवर में स्नान किया, अपने देह की राख से इतिहास लिखा!

भारतवर्ष आघात के पश्चात् आघात सहता गया। शासकों में भिन्नता आई, फूट फैली, पतन हुआ, दासता की भावना रक्त-रक्त में फैल गई। शासकवर्ग मुसलमानों के हाथ की क्रीड़ा-वस्तु हो गया। परन्तु यह भूमि सर्वदा उर्वरा रही है। जिस देश में आर्यों के पश्चात् राजपूतगण गौरव-रक्षा में समर्थ रहे, उसी देश ने उनके पतन पर एक अन्य सम्प्रदाय की सृष्टि की। हिन्दुत्व की रक्षा के लिए प्रबुद्ध, आगे बढ़नेवाले, वे थे सिख।

सिख लोग अंतिम समय मुसलमानों से मोर्चा लेते रहे। परन्तु विलासिता इत्यादि के कारण मुसलमान-जाति का भी पतन हुआ। अब गौरांग विजेताओं का आगमन हुआ। देश धीरे-धीरे उनके अधिकार में जाने लगा। राजपूतों की शक्ति एकदम से क्षीण हो गई थी। अतएव अँगरेज़ों का सामना केवल दो ओर से हुआ। एक तो थे महाराष्ट्र, दूसरे ये ही सिख। महाराष्ट्र सैनिकों के युद्ध का ढंग अपना था। वीरता की अपेक्षा वे धूर्तता से अधिक काम लेते। परन्तु सिख शूरता, वीरता इत्यादि में राजपूतों के समान थे। यही कारण है कि कवि विशेष रूप से उन्हीं की ओर आकर्षित हुआ—

'सिक्ख थे सजीव
स्वत्व रक्षा में प्रबुद्ध थे।
जीना जानते थे,
मरने को मानते थे सिक्ख।'

और—

'ऊर्जस्वित रक्त औ' उमंगभरा मन था
जिन युवकों के मणिबंधों में अबन्ध बल
इतना भरा था
जो उज्झटता शतघ्नियों को।
गोले जिनके थे गेंद
अग्निमयी क्रीड़ा थी
रक्त की नदी में सिर ऊँचा छाती सीधी कर
तैरते थे।'

उन्हीं सिखों ने अप्रतिम वीरता से अँगरेज़ों का सामना किया। बार-बार उन्होंने अँगरेज़ों को पीछे हटाया। अंत में अपनी विजय में संदेह पाकर अँगरेज़ों ने प्रवञ्चना की। प्रतारणा के द्वारा पुल का तोड़ा जाना इतिहास-प्रसिद्ध घटना है।

अंतिम सिख-युद्ध को सिख-वीरता की पराकाष्ठा मानकर कवि उनकी शूरता का गान गाता है। जिस तलवार को अंत में उन्होंने समर्पित किया, उसने युद्ध में क्या-क्या जौहर दिखाये, शेरसिंह के शब्दों में—

'अरी रण-रंगिनी!
सिक्खों के शौर्यभरे जीवन की संगिनी!
कपिशा हुई थी लाल तेरा पानी पानकर!
दुर्मद दुरंत धर्मदस्युओं की भासिनी—
निकल चली जा तू प्रतारणा के कर से।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

वही—

'जन्मभूमि दलित विकल अपमान से
त्रस्त हो कराहती थी
कैसे फिर रुकती ?'

सिखों की वीरता कैसी थी, उनका क्या आदर्श था, उन्होंने किस प्रकार युद्ध किया—

'वीरभूमि पञ्चनद वीरता से रिक्त नहीं।
काठ के हों गोले जहाँ
आटा बारूद हो
और पीठ पर दुरंत दंशनों का त्रास
छाती लड़ती हो भरी आग, बाहुबल से
उस युद्ध में तो बस मृत्यु ही विजय है।'

उनके पराजय की बात कवि कितने करुण ढंग से बतलाता है—

'वीर पंचनद के सपूत मातृभूमि के
सो गये प्रतारणा की थपकी लगी उन्हें
छल-बलिवेदी पर आज सब सो गये।
रूपभरी, आशाभरी, यौवन अधीरभरी
पुतली प्रणयिनी का बाहुपाश खोलकर,
दूधभरी दूध-सी दुलारभरी मा की गोद
सूनी कर सो गये।'

सिखों की वह पराजय क्या थी, भारतवर्ष की विरोध करने की शक्ति एक बार के लिए दब-सी गई। देश दिन पर दिन दासता की शृंखला में अधिकाधिक आबद्ध होता गया। कवि के जीवन में वही परतंत्रता पराकाष्ठा पर पहुँच गई।

लोगों के लिए यह आश्चर्य का विषय हो सकता है कि भारतवर्ष ने दो-दो बार स्वतंत्रता के लिए युद्ध किया और कवि ने अपने जीवन-काल में उन्हें देखा, फिर भी उसके विषय में वे मौन-से रहे। भारत का स्वातंत्र्य-संग्राम का संचालन करनेवाली संस्था, कांग्रेस के हाथ में अधिकार आते देखा, परंतु प्रकट रूप से उनके विषय में एक शब्द भी उच्चरित नहीं किया। सबसे अधिक आश्चर्य तो उन लोगों को हुआ होगा, जिन्हें कवि को निकट से जानने का सौभाग्य प्राप्त हो चुका होगा। उनका व्यक्तित्व ही जातीयता में निमज्जित था। पिछले जीवन में वे सर्वदा खद्दर धारण करते रहे, कांग्रेस में तथा उसके कार्यकर्त्ताओं में उनकी श्रद्धा थी, उनका विश्वास था; देश-भक्ति की भावना से वे ओत-प्रोत थे। फिर भी उन्होंने समकालीन-स्वातंत्र्य-संघर्ष के विषय में क्यों नहीं लिखा ?

भले ही लोगों को इस पर आश्चर्य हो, वे तरह-तरह की बातें सोचें; परंतु अगर विचारपूर्वक देखा जाय तो कुछ बातें शंका का समाधान कर दे सकती हैं।

वे कवि थे और इसका उन्होंने सदा जीवन में अनुभव भी किया। उनके हृदय में वह विशालता थी, जो विश्व-प्रेम को आलिंगित कर चुकी थी। जैसा कि पहले ही कहा गया है, मानवता उनका विषय थी। फिर भी वे अपने को देश-प्रेम की भावना से उन्मुक्त नहीं कर सके; क्योंकि वे प्राचीन भारतीय संस्कृति, आदर्शों तथा विचारों के ज्ञाता थे, पंडित थे, पाठक थे। उनका कवि देश के प्राचीन काल के प्रकाश से आलोकित होकर हृदय में प्रशंसा तथा अभिमान की भावनाएँ संचित कर चुका था। उनका हृदय गर्व से भर गया कि वे भी उन्हीं आर्यों के वंशज हैं, जिन्होंने देश को उत्कर्ष की पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया।

यह पहले ही कहा गया है कि कविता में उनका विशेष ढंग है। वे अतीत की स्मृति से अधिक प्रभावित होते थे। अगर भारत के अतीत काल का उन्होंने उसी ढंग से वर्णन किया तो कोई आश्चर्य का विषय नहीं। उन्होंने समझा कि प्राचीन गौरव का दर्शन कर देश-वासी उसे पुनः प्राप्त करने के लिए ललक उठेंगे।

वे कुछ हद तक प्रतिक्रियावादी थे। उनका विश्वास था कि भारत का कल्याण इसी में निहित है कि हम अपनी प्राचीन संस्कृति की भित्ति पर आधुनिक समय की अच्छी बातें ले नवयुग का निर्माण करें। यही कारण है कि उन्होंने प्राचीन समय का उज्ज्वल चित्र अधिक ज्वलंत रूप से दिखलाया है। अतीत के उन चित्रों में केवल रेखाएँ ही नहीं हैं, उनका रंग आग, ओज, उत्साह, ग्लानि, कसक, टीस, दीनता इत्यादि से अवसर के अनुकूल भर दिया गया है।

उनके हृदय की ये ही सब भावनाएँ थीं, जिन्होंने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उनकी देश-प्रेमवाली कविताओं में ओजभरा, प्राणदान किया। उनके दो अमर ग्रन्थों के कुछ भाग तथा देश के सम्बन्ध की सम्पूर्ण कविताएँ इसका साक्षी हैं। वे ग्रन्थ हैं विश्व-साहित्य की अमूल्य निधियाँ चन्द्रगुप्त तथा स्कन्दगुप्त। इनके प्रणयन के समय हमें एक आभ्यंतरिक धारा मिलती है। वह है देश की दुर्दशा से पीड़ित कवि का करुणा में विनिमज्जित हो जाना। स्थान-स्थान पर प्रत्याघात के थपेड़ों से व्याकुल होकर कवि के हृदय में एक तिलमिलाहट उठती है। प्रतीत होता है कि कवि उन घटनाओं को अंकित करते समय किसी आघात से व्याकुल हो उठता है। सूक्ष्म रूप से देखने पर ज्ञात होगा कि वे स्थल आधुनिक भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम की प्रतिध्वनि हैं। यही कारण है कि उन अवसरों के कार्यकलाप, कविताएँ विलक्षण रूप से आधुनिक समय के संग्राम के विषय में घटती हैं। 'मोहन कब उतारोगे भूभार', 'हिमालय के आँगन में', 'अरुण यह मधुमय देश हमारा', प्रभृति गीत क्या इस बात की पुष्टि नहीं करते? चन्द्रगुप्त का यह गीत क्या आज भी हमारा 'मार्चिङ्ग-गीत' नहीं हो सकता?

'हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती—
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती—
"अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो बढ़े चलो।"
असंख्य कीर्तिरश्मियाँ, विकीर्ण दिव्य दाह सी
सपूत मातृभूमि के—रुकी न सूर साहसी।
अराति सैन्य सिंधु में—सुवाडवाग्नि से जलो,
प्रवीर हो जयी बनो—बढ़े चलो बढ़े चलो।'

अगर यह न बतलाया जाय कि यह 'चन्द्रगुप्त' का एक गीत है तो क्या पाठकों को यह भ्रम नहीं हो जायगा कि यह आधुनिक आन्दोलन को लक्ष्य करके लिखा गया है? यही तो प्रसादजी की कला है!

निबंध शेष करने के पूर्व अगर एक बात न कही जायगी तो यह अधूरा ही रह जायगा। हिन्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् ने अपने एक भाषण में बड़ी मज़ेदार बात कही। उन्होंने कहा कि श्रीमैथिलीशरण गुप्त ने मुसलमानों पर कविताएँ नहीं लिखीं, इसलिए वे राष्ट्रीय कवि नहीं हैं। वास्तव में उक्त सज्जन की सूझ की सराहना किये बिना कोई रह नहीं सकता।

अगर हम थोड़ी देर के लिए उक्त सज्जन का कथन स्वीकार भी कर लें तो भी प्रसादजी पर यह कथन लागू नहीं हो सकता। इस बात के होते हुए भी कि प्रसादजी भारतीयता तथा आर्यत्व के प्रतिनिधि हैं, वे एक सत्य को पूर्ण रूप से समझ गये थे। वे समझ गये थे कि मुसलमान अब भारत में एक अंग होकर ही रहेंगे। उनका जो भी दृष्टिकोण रहा हो, परन्तु उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम-समस्या बहुत ऊँचे उठकर देखी है। उनके लिए—

'मनुष्यता का एक पक्ष वह भी है जहाँ वर्ण, धर्म और देश को भूलकर मनुष्य मनुष्य के लिए प्यार करता है।' (सलीम)

अपनी कहानी 'सलीम' में उन्होंने वह दृश्य खींचा है, जो आदर्श है, स्वर्ग है। उसमें सीमा-प्रान्त का नन्दराम, कट्टर मुसलमान और हिज़रती सलीम का, एक हिन्दू कहकर परिचय देता है। सलीम के बिगड़ने पर उसे समझाता है—

'ओहो, हिन्दुस्तानी भाई! हम लोग हिन्दुस्तान के रहनेवालों को हिन्दू-सा ही देखते हैं।'

कवि इसके बहाने मुसलमानों को यह समझा देना चाहता है कि भारतीय मुसलमान भारतीय हैं, अरबी नहीं। उनका हित अपने पड़ोसियों, भाइयों के संग हिल-मिलकर रहने में है—युद्ध करने में नहीं। भारत की मिट्टी उनके लिए सुवर्ण है, अरब का रेत नहीं। हिज़रती सलीम ने यही देखा, यही अनुभव किया।

अमीर ने अपनी पड़ोसिन प्रेमा के अपमान के लिए सलीम के प्राण लेने चाहे। नन्दराम के बीचबचाव करने के कारण केवल उसकी कलाई भर तोड़कर तथा उसे ग्राम के बाहर करके छोड़ दिया। भारत के लिए भी वह स्वर्गीय दिन होगा, जिस दिन भारत के मुसलमान अमीर के समान होंगे और हिन्दू नन्दराम की तरह, और जब यहाँ का रहन-सहन 'सलीम' कहानी में चित्रित ग्राम की तरह हो जायगा।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सावन की नीरभरी बदरी !

पिच्छल पथ पर डगमग-डगमग
हो जाते मृदु-मृदु लघु-लघु पग
वह पवन - पंख से उड़ आई

सुकुमार, सुन्दरी श्याम - परी !

पावस का रस - सागर अनन्त
उमड़ा, डूबे सब दिग - दिगन्त
निस्पन्द, मन्द, मन्थर - मन्थर

तिरती नीलम की नील - तरी !

झुलसे मरु में झंझा - झकोर,
ज्यों मूक-हृदय में स्वर-हिलोर,
उजड़े जड़ नभ में तरल-चपल

लहराई नव - जीवन - लहरी !

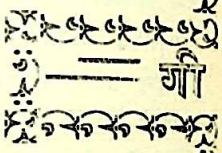

उमड़ - घुमड़ घन घेर - घेर
अम्बर भर छाये री !

पहन वसन सुरधनुषी, धानी,
बनी अहा अब अवनी रानी,

परदेशी घन - श्याम आज
आँगन में आये री !

ढाल कुसुम के मधु के प्याले,
डाल - डाल में झूला डाले—

भौंरों ने सावन के गाने
गुन - गुन गाये री !

अश्रु नयन, मुसकान अधर धर,
जलधर ने सुख-दुख के, घर-घर

स्वर्ग-देश से उतर, सजल
सन्देश सुनाये री !

—जानकीवल्लभ शास्त्री, साहित्याचार्य

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जाग री उठ प्रात आया।
स्वर्ण - थाली में गगन ये,
ज्योति का उपहार लाया!
आ रही है 'विश्व-जागृति',
अरुण-पथ पर गीत गाती।
अंक में भर अमित सौरभ;
विश्व - वातायन तले से;
विहँसता मधु वात आया!
क्यों बता तू आज तन्द्रिल,
खो रही अपना अमित धन?
सुप्ति से तुझको जगाने;
मौन जीवन के शिखर पर
बोलता खग - व्रात आया!
जाग री उठ प्रात आया।

—शिवेन्द्रकुमार शर्मा

बादलों का हास।
घूमता उद्भ्रान्त प्रेमी - सा सरल बातास।
तृषित जग की साधना का,
यह सजल परिणाम।
छा गया आकाश में बन-
कर जलद अभिराम।
चित्त में उल्लास भरता चंचला का लास॥
प्रकृति ने पाई मनोरम,
छविमयी नव - शक्ति।
विश्व पुलकित हो रहा है,
बढ़ रही अनुरक्ति।
चक्षुओं में झूलता जल - बिन्दु का विन्यास॥
चिर वियोगी हृदय की,
आधार - हीना पीर।
रुक गई रसमय क्षणों में,
पा स्वपरिचित तीर।
तृप्त प्राणों में उमड़ती चिर अपरिचित प्यास॥
बादलों का हास।

करुणकुमार—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जहाँगीर

नूरजहाँ

नूरजहाँ

श्रीअवधकिशोरशरण श्रीवास्तव

जैसा कि सबको मालूम है, नूरजहाँ का जन्म विचित्र अवस्थाओं में हुआ था। उसके जन्म और विवाह की कहानी, जो कि क़रीब-क़रीब सभी को मालूम होगी, करुण विचित्रताओं से पूर्ण है। मनोरञ्जक, करुण एवं प्रचलित होते हुए भी, यह कहानी ऐतिहासिक कसौटी पर पूर्ण रूप से खरी नहीं उतरती, यद्यपि कुछ इतिहास-लेखकों ने भी इसको अपनी पुस्तकों में स्थान दिया है। ऐतिहासिक खोज के प्रकाश में देखने से नूरजहाँ के जन्म और विवाह की कथा इस रूप में हमारे सामने आती है—

नूरजहाँ का प्रपितामह फ़ारस के एक उच्चकुल का पुरुष था। वह वहाँ का वज़ीर भी था। उसके मरने के बाद इस वंश से विधाता वाम हो गये, और नूरजहाँ के पिता मिर्ज़ा ग़यासुद्दीन मुहम्मद ने जीविका की खोज में भारत आना निश्चित किया। संयोग से एक कारवाँ इनको मिल गया, जिसका मालिक मलिक मसूद था। क़न्धार के पास नूरजहाँ का जन्म हुआ। मलिक मसूद को मिर्ज़ा की दशा पर बहुत दया आई। उसने इस कठिन अवसर पर इनको हर तरह की मदद दी। भारत पहुँचने पर मसूद ने इनको अकबर से मिलाया। मिर्ज़ा योग्य और विद्वान् तो थे ही, फलतः गुण-ग्राहक अकबर की छत्रछाया में इन्होंने बहुत शीघ्र उन्नति कर ली।

नूरजहाँ आरम्भ से ही होनहार थी। १७ वर्ष की अवस्था में उसकी शादी एक नवयुवक ईरानी—अली-क़ुली इस्ताजलू—से हुई।

अलीक़ुली पहले फ़ारस में शाह इस्मास्प द्वितीय के यहाँ साफ़रची था। परन्तु अपने तत्कालीन अवस्था से असन्तुष्ट होकर किसी प्रकार वह मुल्तान पहुँचा और अब्दुर्रहीम ख़ानख़ाना—जो कि इस समय एक बड़ी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सेना के अध्यक्ष होकर यट्टा जीतने जा रहे थे—की सेना में भरती हो गया। शीघ्र ही उसने अपनी युद्ध-निपुणता और वीरता से ख़ानख़ाना को मोहित कर लिया। और युद्ध की समाप्ति पर रहीम ख़ानख़ाना की सिफ़ारिश से उसको मनसब मिला। सन् १५९४ ई० के लगभग उसका विवाह मिर्ज़ा ग़यास की लड़की मेहरुन्निसा—नूरजहाँ का वास्तविक नाम—से हुआ। सन् १५९९ में वह शाहज़ादा सलीम की सेवा में रक्खा गया। सलीम के विद्रोह के समय वह अकबर से मिल गया था; परन्तु बादशाह होने पर सलीम ने उसको माफ़ कर दिया और बर्दवान की जागीर दी।

सन् १६०६ में उस पर राजद्रोह का संदेह हुआ। सलीम (जहाँगीर) ने बंगाल के हाकिम क़ुतुबुद्दीन को उसे दरबार में भेजने का हुक्म दिया। क़ुतुबुद्दीन की एक ग़लती से दोनों में लड़ाई हो गई और क़ुतुबुद्दीन तथा अलीक़ुली दोनों मर गये। शेर मारने में वीरता और चतुरता दिखाने के लिए उसको "शेर-अफ़गन" की उपाधि मिली थी।

इस दुःखद घटना के बाद अलीक़ुली की विधवा (नूरजहाँ) और उसकी लड़की लाडली बेगम दरबार में बुला ली गईं। दरबार में नूरजहाँ का पिता, जिसको एतमादुद्दौला की उपाधि मिली थी, ऊँचे पद पर काम कर रहा था। नूरजहाँ सलीमा बेगम की सेवा में नियुक्त हुई। एक दिन मीना-बाज़ार में जहाँगीर ने उसे देखा; उस पर मोहित हो गया और अंत में, मई, सन् १६१० में, उससे विवाह कर लिया।

अत्यन्त संक्षेप में यही नूरजहाँ का पहले का इतिहास है। आमतौर से यह प्रसिद्ध है कि जहाँगीर ने, जो कि नूरजहाँ के ऊपर पहले ही से मोहित था, जान-बूझकर शेरअफ़गन को मरवा डाला, और उसके बाद नूरजहाँ से विवाह कर लिया। लेकिन यह बात नहीं है। प्रो० वेणीप्रसाद ने अपनी पुस्तक 'जहाँगीर' में इस संवाद को ग़लत साबित करते हुए कई ज़बर्दस्त कारण दिये हैं। उनका कहना है कि अगर जहाँगीर ने सिर्फ़ नूरजहाँ से शादी करने के लिए ही राजद्रोह का बहाना लेकर शेरअफ़गन की हत्या करवा डाली होती तो यह बात बहुत जल्द फैल जाती। परंतु किसी भी तात्कालिक लेखक ने इस बात का ज़िक्र अपनी पुस्तक में नहीं किया है। मोतामदख़ाँ और कामग़ारख़ाँ ने अपनी पुस्तकें शाहजहाँ के समय में पूरी कीं। ये दोनों इतिहासकार नूरजहाँ के विरुद्ध थे; क्योंकि वह उनके आश्रयदाता शाहजहाँ के रास्ते में रोड़ा थी। परन्तु इन लोगों ने कोई भी ऐसी बात नहीं लिखी है, जिससे इसका कुछ भी अनुमान हो सके। जहाँगीर ने अपनी "तुज़ुक जहाँगीरी" में शेरअफ़गन की मृत्यु का वर्णन किया है, अपने अपराध का कोई ज़िक्र नहीं किया है। यह सच है कि वह ऐसे गर्हित कर्म को करना स्वीकार न करता; परन्तु ऐसी बात यदि होती तो वह सम्भवतः शेरअफ़गन की मृत्यु का कोई ज़िक्र ही न करता। इसमें भी कोई सन्देह नहीं कि दरबारी इतिहासकारों से उनके आश्रयदाता के ऐसे गर्हित और क्षमा न करने योग्य कर्म के उल्लेख की आशा व्यर्थ है; परन्तु जहाँगार के समय में बहुत-से विदेशी यात्री आये हैं। उन लोगों ने भी ऐसी कोई बात नहीं लिखी, जिससे जहाँगीर के विषय में इस प्रकार के सन्देह की पुष्टि हो। विदेशी यात्री बड़े आदमियों के दोषों की खोज में रहते थे, और इस प्रकार की बातों को बहुत जल्दी मान लेते थे। यह बात उनके किये हुए कई मिथ्या दोषारोपणों से प्रमाणित होती है, परन्तु उनमें से किसी ने इस बात की तरफ़ संकेत भी नहीं किया। इससे साफ़ ज़ाहिर है कि जहाँगीर के समय में यह प्रवाद प्रचलित भी यहीं हुआ था। वास्तव में यह प्रवाद उसके शासनकाल के काफ़ी दिनों बाद जन-साधारण में प्रचलित हुआ। कोई भी सामयिक लेखक इस बात तक को स्वीकार नहीं करता कि नूरजहाँ और जहाँगीर में पहले से प्रेम-सम्बन्ध था। विदेशी यात्रियों ने नूरजहाँ और जहाँगीर के सम्बन्ध में कई और तरह के दोषारोपण किये हैं; परन्तु किसी ने भी जहाँगीर को शेरअफ़गन का हत्यारा नहीं बतलाया।

प्रो० वेणीप्रसाद ने जहाँगीर को शेरअफ़गन की हत्या के दोष से मुक्त करते हुए कई और कारण दिये हैं। पहले तो इसी बात का कोई कारण नहीं समझ पड़ता कि यदि शाहज़ादा सलीम और मेहरुन्निसा में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम-सम्बन्ध था तो अकबर ने उनको विवाह-सम्बन्ध करने की आज्ञा क्यों नहीं दी। मेहरुन्निसा उच्चकुल की कन्या थी और उसका पिता उस समय शाही दरबार में उच्चपद पर था। अतएव विवाह के मार्ग में कोई राजनीतिक अथवा ख़ानदानी अड़चन नहीं थी। फिर, अगर, किसी भी कारण से, अकबर ने नूरजहाँ की शादी सलीम से न होने देकर शेरअफ़गन से करवा दी, तो शेरअफ़गन को सलीम की सेवा में नियुक्त करना बहुत मूर्खता का काम था, जिसकी आशा कम से कम अकबर से नहीं की जा सकती। अगर मान लें कि अकबर ने ऐसा किया, तो भी इसका तो कोई कारण नहीं कि सलीम उसको इतना सम्मान दे (बर्दवान की जागीर इत्यादि)। फिर नूरजहाँ अपने पति के हत्यारे को इतना प्यार करेगी, यह बात भी, उसके चरित्र को दृष्टिगत रखते हुए, असम्भव ही प्रतीत होती है।

इस प्रकार, इतना तो प्रमाणित है कि नूरजहाँ के पति की हत्या में सलीम का कोई हाथ नहीं था; परन्तु इससे अनिवार्यतः यह नहीं प्रमाणित होता कि नूरजहाँ और सलीम में पहले से प्रेम नहीं था। यह बात आवश्यक नहीं कि मेहरुन्निसा से निराश होने के बाद जहाँगीर उसको प्राप्त करने के लिए घृणित व्यापारों की शरण लेता। फिर इस सम्बन्ध में शेरअफ़गन की हत्या की जो कथा इतनी प्रचलित हो गई है, उसके लिए कोई आधार तो अवश्य होना चाहिए। सम्भवतः वह कारण यही पूर्व-प्रेम है, जिसके आधार पर इस प्रवाद की रचना हुई है। हो सकता है, यह प्रेम ऐसा न रहा हो कि उसको उचितानुचित का विचार छोड़कर ऐसे अक्षम्य अपराध करने के लिए प्रेरित करता। और अधिक ऐतिहासिक खोज करने से असली बातों पर प्रकाश पड़ सकता है। जहाँ तक मेरा व्यक्तिगत विचार है, सलीम और मेहरुन्निसा में पहले से प्रेम अवश्य था; परन्तु उस प्रेम ने ऐसा रूप नहीं धारण किया था कि उसे एक निरपराध की हत्या के लिए बाध्य करता। सलीम और अनारकली के प्रेम की भी एक कथा प्रचलित है। इन कथाओं के अन्तस्तल में कुछ थोड़ा-बहुत ऐतिहासिक तथ्य अवश्य है। सूक्ष्म ऐतिहासिक खोज ही इस विषय पर कुछ प्रकाश डाल सकता है।

ख़ैर, विवाह हो जाने के बाद हमको नूरजहाँ और जहाँगीर एक अत्यन्त घनिष्ठ प्रेमी के रूप में दिखलाई देते हैं। जहाँगीर का यह वाक्य प्रसिद्ध ही है कि "मैं यह जानता हूँ कि नूरजहाँ शासन के लिए सुयोग्य है। मुझे तो केवल एक प्याला शराब और मांस चाहिए, बस।" नूरजहाँ की शादी १६११ ई० में हुई। लगभग इसी समय से राजकाज में उसका प्रभाव बढ़ना शुरू हुआ। इस विषय में वह एकमात्र उदाहरण है। मध्यकालीन भारत में कहीं भी हम किसी स्त्री को राज-प्रबन्ध करते नहीं पाते। नूरजहाँ के पहले रज़िया ने शासन-दण्ड ग्रहण किया था; परन्तु इसके लिए उसको भारी मूल्य चुकाना पड़ा। अकबर, बाबर अथवा हुमायूँ की बेगमों के नाम तो केवल इतिहास की ही वस्तु हैं—दुनिया उनके बारे में कुछ भी नहीं जानती। उसके बाद शाहजहाँ की बेगम मुमताज़महल ताजमहल के नाते साधारण जनता में प्रसिद्ध अवश्य है; परन्तु नूरजहाँ की तरह नहीं। अतः यह कहने में अत्युक्ति नहीं कि नूरजहाँ मध्यकालीन भारत के इतिहास का सबसे आकर्षक चरित्र है।

नूरजहाँ के प्रभाव का समय दो कालों में बाँटा जा सकता है—(१) विवाह से सन् १६२२ तक और (२) १६२२ से जहाँगीर की मृत्यु [१६२७] तक। प्रथम भाग में नूरजहाँ का प्रभाव अधिक नहीं था। इस काल में वह जहाँगीर के ही बनाये हुए सिद्धान्तों पर प्रबन्ध करती थी और इस समय तक जहाँगीर की सारी शक्ति नूरजहाँ के हाथ में नहीं आई थी। इस समय नूरजहाँ के प्रभाव ने देश की सुख-शान्ति एवं समृद्धि के बढ़ाने में सहायता पहुँचाई।

शासन-कार्य में हाथ बँटाने के लिए स्वभावतः उसकी दृष्टि अपने सम्बन्धियों की तरफ़ गई। उसकी मा असमत बेगम बहुत बुद्धिमती, चतुर एवं अनुभवी स्त्री थी। उसने उस पर काफ़ी प्रभाव डाला और शासन-कार्य में योग्यतापूर्वक सहायता की। उसके वृद्ध पिता का भी नूरजहाँ की प्रसिद्धि में कम हाथ नहीं है। एक तरह से तो नूरजहाँ उसी का भरोसा ही करती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

थी। नूरजहाँ ने उसको हर तरह से सम्मानित किया; और बहुत ऊँचे मनसब पर नियुक्त किया। एतमादुद्दौला (नूरजहाँ का पिता) किसी भी दशा में होता, वह यशस्वी अवश्य होता। उसकी व्यवहार-कुशलता, योग्यता, नीतिमत्ता और उसके अनुभव बहुत ऊँचे दर्जे के थे। नूरजहाँ ने उसका उचित सम्मान करके और शासन-कार्य में उसका सहयोग प्राप्त करके अपनी निर्वाचन-कुशलता का परिचय दिया है। अपने भाई आसफ़ख़ाँ का भी नूरजहाँ ने उचित सहयोग प्राप्त किया।

अप्रैल, सन् १६१२ में आसफ़ख़ाँ की लड़की अर्ज़मन्द बानू से शाहज़ादा ख़ुर्रम (नूरजहाँ का लड़का) की शादी हुई। यह घटना बड़े महत्त्व की है। दस बरस तक ये ही चारों योग्य आदमी (नूरजहाँ, एतमादुद्दौला, आसफ़ख़ाँ और ख़ुर्रम) साम्राज्य का शासन करते रहे।

इस समय नूरजहाँ की शक्ति काफ़ी बढ़ गई थी। राज्य के लगभग सारे काम वही करती थी। फ़रमानों पर भी उसके दस्तख़त रहते थे और सिक्कों पर भी उसका नाम रहता था। इस समय उसने राज्य का प्रबन्ध बहुत सुन्दरता एवं निपुणता से किया, लेकिन यह समझना भूल होगी कि जहाँगीर बिलकुल नपुंसक ही हो गया था। उसकी चलाई हुई घर की अथवा बाहर की नीति में या शासन-प्रणाली में कोई भी महत्त्वपूर्ण अथवा स्थायी परिवर्तन नहीं हुआ।

नूरजहाँ की शक्ति और प्रभाव का दूसरा अध्याय सन् १६२२ के बाद से शुरू होता है। इस समय जहाँगीर की शारीरिक शक्ति का बहुत ह्रास हो गया था। यह समय देश के लिए अच्छा न था। इस समय उसने अपने सम्बन्धियों से राज्य के सारे पदों को भरना आरम्भ किया, जिसके फलस्वरूप दरबारियों में ईर्ष्या की अग्नि प्रज्वलित हो उठी, और महाबतख़ाँ ने खुले तौर से विरोध करना शुरू किया।

सन् १६२० में जहाँगीर की शारीरिक शक्ति अत्यधिक सुरासेवन के कारण क्षीण होने लगी और राजकाज पूरी तौर से नूरजहाँ के हाथ में आ गया। लेकिन यह समय ऐसा न था कि नूरजहाँ सुख की साँस ले सकती। जहाँगीर किसी क्षण भी मर सकता और नूरजहाँ जानती थी कि उसकी शक्ति उसके पति के जीवन-काल तक ही है; क्योंकि राजकुमार ख़ुर्रम (शाहजहाँ), जिसके सिंहासनाधिकारी होने की बहुत कुछ आशा एवं सम्भावना थी, ऐसा शख़्स नहीं था, जिसके राजत्व काल में नूरजहाँ अपना सर्वोपरि प्रभुत्व स्थापित कर सके। नूरजहाँ और ख़ुर्रम में द्वेष था, इसलिए वह नूरजहाँ के हस्तक्षेप को कभी पसन्द न करता। अतएव नूरजहाँ के लिए अब केवल दो ही रास्ते थे—या तो वह प्रभुता की अभिलाषा त्याग दे, या ख़ुर्रम को बादशाह न बनने दे।

उच्च अभिलाषाओं की पुतली नूरजहाँ अपनी प्रभुता का ह्रास इतनी आसानी से न देख सकती। उसने दूसरा मार्ग श्रेयस्कर समझा और शहरयार (ख़ुर्रम का भाई) को सिंहासनाधिकारी बनाना चाहा। इस रास्ते में एक से एक बढ़कर रोड़े थे; परन्तु नूरजहाँ को लक्ष्य-भ्रष्ट करने के लिए वे सब काफ़ी न थे। उसने एक एक करके बहुत-सी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की। उसने अपनी लड़की (लाडली बेगम) की शादी शहरयार से कर दी; परन्तु इसी समय उसके माता-पिता का देहान्त हो गया, जिससे उसके दो बहुत बड़े सहायक छिन गये।

लगभग इसी समय शाहजहाँ ने ख़ुसरो को मरवा डाला। नूरजहाँ ने इस संयोग से लाभ उठाकर ख़ुर्रम (शाहजहाँ) के विरुद्ध जहाँगीर के कान भरने शुरू किये। परन्तु इससे विशेष लाभ न देखकर उसने एक नई ही युक्ति सोची। यहीं से उसकी कूटनीति प्रारंभ होती है। क़न्धार को फ़ारसवालों ने ले लिया था। उसने सोचा, अगर शाहजहाँ को वहाँ पर भेजा जाय तो वह राज्य से कट-सा जायगा और मैं इसी बीच में उसके प्रभाव को नष्ट कर सकूँगी। अगर वह इनकार करेगा तो उस पर विद्रोह का अपराध मढ़ा जा सकेगा। फिर एक विद्रोह होगा, जिसमें उसकी शक्ति सदा के लिए कुचली जा सकेगी। निदान यही हुआ। ख़ुर्रम ने नूरजहाँ की चाल समझकर जाने से इनकार किया। परिणाम-स्वरूप उसकी जागीरें आदि छीन ली गईं और लाचार होकर उसने विद्रोह का झंडा खड़ा किया।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

ऐसे अवसर पर नूरजहाँ ने महाबतख़ाँ को विनय-पूर्वक बुलाकर ख़ुर्रम का सामना करने को नियुक्त किया। यह कार्य निःसन्देह उसकी असीम व्यवहार-पटुता का द्योतक है। विद्रोह तीन साल तक चलता रहा; परन्तु महाबतख़ाँ की अथाह रणकुशलता और कूटनीतिज्ञता के सम्मुख ख़ुर्रम की एक न चली। उसकी सारी चालें पट पड़ीं और विवश होकर वह संधि एवं क्षमा के लिए प्रयत्न करने लगा।

इसी बीच में नूरजहाँ महाबतख़ाँ की दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति तथा परवेज़ (जहाँगीर का लड़का) से घनिष्ठ सम्बन्ध देखकर चौकन्नी हो गई। उसने ख़ुर्रम को बहुत सरल शर्तों पर क्षमा दिलवा दी।

शाहजहाँ की शक्ति उसने अवश्य तोड़ दी, परन्तु महाबतख़ाँ से नई शत्रुता मोल ले ली, जो उसके लिए हितकर नहीं हुई।

लेकिन महाबतख़ाँ से शत्रुता अनिवार्य थी। महाबतख़ाँ जानता था कि शहरयार के राज्य में उसकी हानि है। अतएव वह परवेज़ को राज्य दिलवाना चाहता था। परन्तु परवेज़ के बादशाह होने से नूरजहाँ की प्रभुता स्वप्न हो जाती। इसलिए शाहजहाँ की शक्ति को मिटाकर अब उसने महाबतख़ाँ की शक्ति तोड़ने पर कमर कसी। इसके लिए पहले उसने चतुरतापूर्वक परवेज़ और महाबत को अलग कर दिया। इसके बाद नूरजहाँ ने महाबतख़ाँ के पास कुछ ऐसे हुक्म भेजे, जो साफ़ तौर से उसका अपमान करते थे। महाबतख़ाँ इस चाल को समझ गया और उसने, जब जहाँगीर लाहौर जा रहा था, छल करके उसे गिरफ़्तार कर लिया।

नूरजहाँ ने पहले युद्ध किया, परन्तु जब सफलता नहीं प्राप्त हुई तो उसने महाबतख़ाँ को आत्मसमर्पण कर दिया और जहाँगीर के पास रहने लगी।

अब उसने कूटनीति का सहारा लिया और जहाँगीर को यह सिखाया कि वह महाबतख़ाँ के मन में बैठा दे कि सचमुच नूरजहाँ के प्रभाव से उसकी नाक में दम आ गया था और महाबत ने उससे मुक्त करके उसके साथ उपकार किया है।

कूटनीति का पारदर्शी होते हुए भी महाबत इस दमपट्टी में आ गया। उसने बादशाह की देखभाल कम कर दी। इधर नूरजहाँ ने अपनी व्यवहारपटुता से अमीरों और दरबारियों को अपनी तरफ़ मिलाना शुरू किया। इन्तिज़ाम हो जाने पर एक दिन जहाँगीर सेना-निरीक्षण के बहाने महाबतख़ाँ के चंगुल से मुक्त हो गया और महाबत ने परिस्थिति को समझकर कुछ आदमियों के साथ भाग जाना ही उचित समझा।

सब कुछ हुआ, परन्तु नूरजहाँ का ध्येय नहीं पूरा हुआ। वह शहरयार को सिंहासन नहीं दिला सकी। महाबतख़ाँ शाहजहाँ (जो इस समय दक्षिण में था) से मिल गया और उसको बादशाह बनाने की फ़िक्र करने लगा। नूरजहाँ ने ख़ाँजहाँ को उनको दबाने के लिए भेजा, पर कुछ विशेष फल न हुआ।

सन् १६२७ में जहाँगीर की मृत्यु हो गई। नूरजहाँ का भाई आसफ़ख़ाँ भी शाहजहाँ को बादशाह बनाना चाहता था। उसने इस मौक़े पर नूरजहाँ को एक प्रकार से नज़रबन्द-सा कर दिया और फिर अनेक प्रकार की कूटनीति चलकर ख़ुर्रम को बादशाह बना दिया। अमीर लोग भी उसी के पक्ष में थे। इस प्रकार नूरजहाँ की शक्ति और प्रभुता का अन्त हुआ। उसको तीन लाख की सालाना पेंशन दी गई।

नूरजहाँ की इस जीवनी को पढ़ने के पश्चात् स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि उसने जहाँगीर पर इतना अद्भुत अधिकार कैसे प्राप्त कर लिया। इसके उत्तर के लिए हमें उसके चरित्र पर दृष्टि डालनी होगी।

नूरजहाँ का जहाँगीर से अथाह प्रेम था। प्रेम के अंकुरित होने के बारे में ऐतिहासिक एकमत नहीं हैं। लेकिन अफ़गन की मृत्यु के बाद तो प्रेम का प्रमाण हम पद-पद पर पाते हैं। अब इस प्रेम का स्वरूप स्थिर करना चाहिए।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि उसका हृदय प्रेम से लबालब भरा हुआ था। शेरअफ़गन की मृत्यु के पश्चात् जहाँगीर से विवाह कर लेना कुछ लोगों को खटकेगा अवश्य, परन्तु विचार करने से मालूम होगा कि हमारे भावों पर हमारे रीति-रिवाज, वायुमंडल, वातावरण (Environments) एवं बाह्य बन्धनों का भी बहुत कुछ असर पड़ता है। यह बात ठीक है कि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रेम-जैसी वस्तु के मूलतत्त्व सार्वभौम हैं और देश-काल का प्रभाव उन पर नहीं होता ; परन्तु देश-काल का किसी न किसी रूप में थोड़ा-बहुत असर उस पर पड़ना अनिवार्य है। मुसलमानों के यहाँ दूसरा विवाह करना किसी प्रकार भी मना नहीं। न वह नीची दृष्टि से ही देखा जाता है। इसलिए नूरजहाँ को अपने प्रेम-स्रोत को दूसरी तरफ़ मोड़ते समय प्रेम-शास्त्र-सम्बन्धी कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई और उसके प्रेम का स्रोत दूसरी तरफ़ भी पूरे वेग से बह निकला।

अधिकार का रहस्य आत्मसमर्पण अथवा सेवा है। ऐतिहासिक दृष्टि से नूरजहाँ के प्रभुत्व के कई कारण हो सकते हैं—उसकी नीतिमत्ता, जहाँगीर की ऐश्वर्यलोलुपता, उसके सम्बन्धी इत्यादि। परन्तु मानव-पक्ष से देखने से उसके प्रभुत्व का रहस्य आत्म-समर्पण अथवा सेवा ही था। इन शब्दों में आपको ग़ुलामी की गंध आवे तो जो शब्द चाहिए, वह कहिए, परन्तु इनके गर्भ में छिपी हुई भावनाओं को आप नहीं बदल सकते। नूरजहाँ के चरित्र का अध्ययन करने से हमको उसकी सफलता के मूल में यही तत्त्व मिलते हैं।

उसने जहाँगीर के ऊपर शासन करने का विचार कभी नहीं किया, वरन् उसने जहाँगीर की मनोवृत्ति, मस्तिष्क, हृदय और चरित्र का गहरा और सूक्ष्म अध्ययन किया था और उन्हीं के अनुसार अपना जीवन बनाया था। जहाँगीर के शासन और सिद्धान्तों के अनुसार ही उसने सब काम किया और उसको शासन-चिन्ताओं और राज्य-भार से मुक्त किया। वास्तव में उसने जहाँगीर को उत्तरदायित्व-रहित प्रभुता प्रदान की। उसने जहाँगीर के जीवन में—उसकी इच्छा और सुख में—अपना जीवन मिला दिया और इसीलिए उसने जहाँगीर पर ग़ज़ब का अधिकार प्राप्त कर लिया था। जिस समय सन् १६२२ में जहाँगीर बीमार था, और बड़े-बड़े वैद्यों और हकीमों की दवाओं एवं सेवाओं से उसको नाममात्र को भी लाभ न होता था, उस समय नूरजहाँ ही की प्रेमपूर्ण सेवाओं से उसको शान्ति मिली थी। उसका पति-प्रेम अथाह था।

राजनीतिक दृष्टि से भी उसका महत्त्व कुछ कम नहीं है। अखण्ड आत्म-विश्वास, अदम्य साहस और चाणक्य की कोटि की कूटनीतिज्ञता उसकी ख़ास ख़ूबियाँ थीं। उसकी सफलता में इन गुणों का भी बहुत अंश है। उसका धैर्य ग़ज़ब का था। जिस समय महाबतख़ाँ से लड़ाई हुई थी, उस समय मतवाले हाथी पर तेज़ धारों से बहनेवाली नदी के बीच और चारों ओर से तीरों का निशाना बनी रहने पर भी उसने अत्यन्त दृढ़ता और धैर्य के साथ काम किया। महाबत-जैसे कूटनीति के पंडित के हाथ में पड़कर भी वह ज़रा भी न घबराई और अन्त में उसको नीचा ही दिखलाया।

वह महत्-अभिलाषाओं की तो प्रतिमा ही थी। जिस बात का एक बार निश्चय कर लिया, उससे कभी विचलित न हुई। जिस समय वह ख़ुर्रम से प्रसन्न थी, उसको सम्मान के सातवें आसमान पर बिठा दिया ; जिस समय नाराज़ हुई धूल में मिला दिया। उसके जीवन का मन्त्र अविरत कर्म था ; वह प्रत्येक बात में अपना सर्वोपरि प्रभुत्व स्थापित करने की इच्छुक रहती थी और इसमें वह सफल भी हुई।

इनके सिवा नूरजहाँ में और भी गुण थे। उसकी कूटनीति का परिचय पाठकों को मिल गया होगा। वह बहुत पढ़ी-लिखी और विदुषी स्त्री थी। उसका दिमाग़ बहुत तेज़ था। वह प्रत्येक प्रश्न की तह तक बहुत शीघ्र पहुँच जाती थी। वह फ़ारसी में कविता भी करती थी। उसकी सौन्दर्य-पर्यवेक्षण की शक्ति भी बढ़ी-चढ़ी थी। उसको किसी भी समस्या की सूक्ष्मातिसूक्ष्म बातों को भी समझते देर नहीं लगती थी। किसी काम को हाथ में लेने पर वह उसमें अपनी सारी शक्ति लगा देती थी। उसकी असाधारण संचालन-शक्ति, संगठन-कुशलता और परिश्रम ने इन गुणों को और भी चमका दिया था।

नूरजहाँ वाक्पटु एवं व्युत्पन्न-मति-सम्पन्न भी थी। उसकी वाक्पटुता के बहुत-से उदाहरण प्रसिद्ध हैं। नमूने के तौर पर केवल एक पेश करते हैं। एक मरतबा बाग़ीचे में टहलते हुए जहाँगीर ने नूरजहाँ से कहा—'बुढ़ापे में सदा क्या जाने क्यों झुक जाते हैं बुड्ढे।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इस पर नूरजहाँ ने तत्काल उत्तर दिया—'जवानी के दिनों को ढूँढ़ते मिट्टी में हैं बुड्ढे *।'

उसका दान-दाक्षिण्य भी अनुकरणीय था। न मालूम कितने अनाथ उसके निजी व्यय से पलते थे। उसने बहुत-सी लड़कियों की शादी में भी मदद दी थी।

उसके सम्बन्ध में एक ख़ास बात और है। उसमें सृजनात्मक प्रतिभा भी थी। उसने नये प्रकार के कपड़े और गहने चलाये। उसके चलाये हुए 'दादमी पंचतौलिया' बदाह, किनारी, और फ़र्शे चाँदनी अभी तक प्रसिद्ध है। उसने दावत के प्रबंध और गृह सजाने के लिए भी नये-नये तरीक़ों का आविष्कार किया था। प्रसिद्ध है कि नूरजहाँ ने गुलाब के इत्र का आविष्कार किया है। परन्तु वास्तव में इसका श्रेय उसकी मा असमत बेगम को मिलना चाहिए।

नूरजहाँ सुन्दरता में तो अद्वितीय थी ही। उसका स्वास्थ्य भी सदैव बहुत अच्छा रहा। वह घोड़े पर चढ़ती थी और शिकार भी करती थी।

अपने अन्तिम दिनों में वह बहुत सादा जीवन व्यतीत करने लगी थी। जहाँगीर के १८ बरस बाद तक वह जीवित रही। सन् १६४५ में उसकी मृत्यु हुई, और वह जहाँगीर के पास ही एक क़ब्र में दफ़नाई गई, जिसको उसने स्वयं बनवाया था *।

* मुहमद बिरिध जो नइ चले, काह चलै भुइँ टोइ।
जोबन रतन हेरान है, मकु धरती पर होइ॥
—जायसी

* इस लेख के लिखने में प्रो० बेणीप्रसादजी के 'जहाँगीर' से काफ़ी सहायता ली गई है। इसके लिए लेखक उनका कृतज्ञ है।

दाँतों के सौंदर्य पर विचार!

"माधुरी! तुम्हारे दाँत आज बहुत ही साफ़ व चमकदार मालूम होते हैं। क्या तुम कोई दूसरा मञ्जन व्यवहार कर रही हो?" सुधा ने पूछा। "हाँ बहिन सुधा! कई दिनों से मैं एक दूसरा मञ्जन लगा रही हूँ। क्या सचमुच मेरे दाँत पहले से ज़्यादा सफ़ेद और चमकदार मालूम होते हैं?" माधुरी ने अपने दाँतों को आइने में देखते हुए बताया, "मैं अब व्यवहार करती हूँ—"

दन्त-मुक्ता (Regd.)

(दन्त-रोगनाशक सुगन्धित मञ्जन)

स्थानीय हमारे एजेंट से खरीदिये।

डाबर (इण्डिया) लिमिटेड

विभाग नं० १३१ पोष्ट बक्स नं० ५५४, कलकत्ता।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सरस्वती और नारद

[चित्रकार—श्रीमोहम्मद हकीम]

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

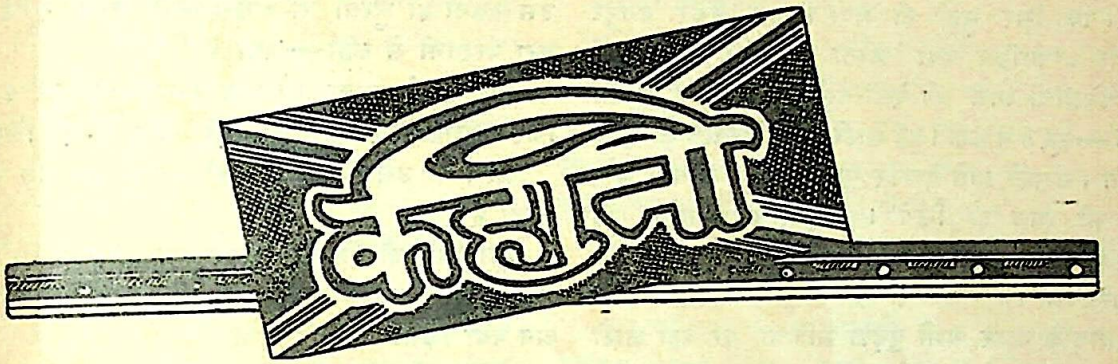

मलका

श्रीगंगाप्रसाद मिश्र

हच्च-से एक लाठी बसावन के सिर पर पड़ी। सारा कुर्ता ख़ून से शराबोर हो गया। मारनेवाला अभी दूसरा हाथ साध ही रहा था कि वह उलटे पैर भागा और गनेशगंज में आकर ही दम लिया। 'मार डाला रे'—कहकर पान की दूकान के सामने पड़ी हुई खाट पर वह गिर पड़ा।

सूरज पास ही खड़ा हुआ सुब्बा से अपनी एक पुरानी भिड़न्त का वाक़या बयान कर रहा था; दौड़ा हुआ आया और बोला—'यह क्या हुआ दादा?'

बसावन ने आँखें बन्द किये हुए ही कहा—'हुआ क्या, भाई तुम लोग तो आपस के शेर हो। अभी कोई तुम्हें ज़रा-सा कुछ कह दे तो ज़बान निकाल लेने को तैयार हो जाओगे, लेकिन तुम्हारे किसी हितू-व्योहारी या पास-पड़ोसी को जुतिया भी जाय, तो तुम्हारे कान पर जूँ तक न रेंगेगी।'

बसावन की हालत देख और यह सुनते ही सूरज की आँखें लाल हो गईं। सीना फुलाकर बोला—'किसके डेढ़ हाथ का जिगरा है दादा, जो तुम्हारी तरफ़ नज़र उठाकर भी देखे? मुझे बताओ तो यह किससे झगड़ा हुआ है? तुम्हारे चरन छूकर कहता हूँ दादा, उस साले की हड्डी-पसली चूर न कर दूँ तो आज से सूरज न कहना।'

बसावन दर्द से व्याकुल था। आँखों के सामने अँधेरा छा रहा था और ख़ून बराबर बहता जाता था। कराहकर बोला—'भैया मेरे, वह बिशोचिन आती है न, चक्कू बेचनेवाली, मैंने उससे कहा कि हमें चार फलवाला चक्कू चाहिए, मारपीट के लायक़। बोली कि डेरे पर चलकर ले लो। वहाँ उसने उसके साढ़े चार रुपये सुनाये। अपने पास इतने दाम थे नहीं, कहा—'इतना महँगा नहीं लेंगे।' बोली—'लेना होगा।' हमने कहा—'कोई ज़बरदस्ती है; इतने दाम का नहीं

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लेंगे।' बस भैया, इतने में तम्बू से एक लम्ब-तड़ंग बुड्ढा निकल आया। बोला—'बिना लिये नहीं जाने देगा।' हमने कहा—जाते हैं, देखें क्या किये लेते हो। और जैसे ही मैंने पीठ फेरी, उसने वह तानकर लाठी मारी कि सिर भुर्ता हो गया। जान लेकर बगटुट भागा। आख़िर क्या करता? तुम्हीं बताओ।'

'बिल्लोची साले की ऐसी-तैसी अभी जाकर देखता हूँ।'—सूरज ने कहा। वह लाठी लेकर ऐशबाग़ की तरफ़ भागा। उसको जाते देखकर सुब्बा, छैलू, मनिया और टुई भी साथ हो लिये। पीछे-पीछे बसावन भी घर से एक लाठी निकालकर कराहते हुए, उसके सहारे चला।

तम्बू के बाहर अभी बुड्ढा मचिया पर बैठा लाठी पर हाथ फेर रहा था। सूरज ने आव न देखा ताव, जाते ही उस पर लाठी तान दी। बुड्ढा बहादुर तो ज़रूर था, पर वैसा ही, जो लाठी लेकर ही आधी दुनिया को हारी हुई समझ लेते हैं। इधर सूरज खेले-खाये हुए था। जब बुड्ढे के सिर को ताककर सूरज ने वार किया तो वह दोनों हाथ से लाठी पकड़-कर सिर बचाने लगा। सूरज ने एक हाथ उसके सिर पर मारा और फिर उल्टा घुमाकर ज़न्नाटे से जो उसकी लाठी में नीचे से मारा तो लाठी बड़ी दूर उछलकर गिरी। सूरज ने तब उसके सिर में एक लाठी हच-से मारी, बुड्ढा लड़खड़ाया। पीछे बसावन ने कहा—'एक और दे साले के; बड़ा लठैत बना है।' ख़ाली हाथ बुड्ढा चिल्लाया और सूरज के एक टाँग पर पड़े वार ने उसे चित फेंक दिया।

बुड्ढे की आवाज़ सुनते ही छः-सात बिल्लोची लाठी लेकर निकल आये। अब छैलू, सुब्बा, मनिया और टुई भी पिल पड़े; और दस मिनट के अन्दर ही किसी का मत्था फूटा और कोई कंधे की हड्डी सुहलाने लगा।

सूरज हाथ रोककर बसावन की तरफ़ देखने ही वाला था कि अब क्या राय है कि किसी ने पीछे से आकर उसकी कमर थाम ली। 'लेना'—कहकर उसके सब साथी हँस पड़े। ज़रा कंधा झुका सूरज ने पीछे हाथ कर, कमर पकड़नेवाले की गर्दन पकड़कर ज़ोर से दाँक मारी। लेकिन उसका सिर सामने आते ही सूरज ने देखा कि वह एक तरुणी है और फ़ौरन् लाठी नीचे छोड़, उसे पंजों से दबाते हुए उसने हाथ फैलाकर उस तरुणी को हाथों पर ही रोक लिया। उसे उतनी ही फ़ुरती से अलग खड़ी करके सूरज ने ज़रा परेशानी से कहा—'क्या है?'

'तुम हमारे बाबा को काहे मारा'—कहकर उसने फिर किटकिटाकर सूरज के दोनों हाथ पकड़ लिये।

सूरज ने उसे झिटककर कहा—'दूर से बात नहीं करती है?'

बूढ़ा बिल्लोची बोला—'इधर आ मलका····। अरे बाबा अब तुम लोग जाता क्यों नहीं? इतना तो मारा, अब क्या किसी की जान लेगा?'

बसावन ने कहा—'तुमने पहले झगड़ा करके मेरे चोट मारी है, दवा का रुपया लिये बिना नहीं जायँगे।'

एक अधेड़ बिल्लोची, जिसकी नीली मख़मली जाकेट मत्थे की चोट के कारण ख़ून से लथपथ हो रही थी, जेब में हाथ डालकर बोला—'रूपी भी लो बाबा, तुम शहज़ोर है। तुम मारा, उसका तो कोई बात ही नहीं।'

बसावन हाथ फैलाने ही वाला था कि सूरज ने कहा—'यह नहीं होगा। चलो दादा, मार का जवाब मार से दे दिया, रुपये-पैसे का क्या सवाल है?'

× × ×

भैरों पानवाला बैठा गुनगुना रहा था—'राजा ने मारी कटारी, हो राम!' और सामने पड़ी हुई कुर्सी पर बैठा सूरज बीड़ी के धुएँ में ब्राह्मणों के आडम्बर को फूँकता हुआ सोच रहा था, सवेरे के उसी गोल और लाल-लाल चेहरे के बारे में। क्रोध से उसकी खिंची हुई भौंहें, तमतमाया हुआ मुँह और उसका कहना—'तुम हमारे बाबा को काहे मारा', उसके सामने उस अविनश्वर कलात्मक चित्रपट की भाँति बार-बार आता जो देखने-सुनने में सदा मोहक है।

इसी समय सामने की तरफ़ देखा तो सिर में पट्टी बाँधे वही बुड्ढा अपनी लड़की के साथ चला आ रहा है। सूरज ने ग़ौर से देखा, मिठाईवाले की दूकान की बिजली की रोशनी उसके मुँह पर पड़ी और चेहरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जैसे दुगनी द्युति से कौंध उठा। सूरज ने जैसे उस छवि का एक आकार-सा अपने मस्तिष्क में बना लेना चाहा। उसका मन हुआ कि एक बार बुड्ढे से जाकर सवेरे की मारपीट पर अफ़सोस ज़ाहिर करे; लेकिन फिर कुछ सोचकर चुप बैठ रहा। इतने में सुना, 'बाबू।' सिर उठाकर देखा, थोड़ी ही दूर पर खड़ा वही बुड्ढा बुला रहा था।

उसने जेब में हाथ डालकर करौली के हैन्डिल पर हाथ रखकर कहा—'क्या है?'

बुड्ढे ने कहा—'ज़रा बाज़ू को आओ।'

भैरों ने ज़रा खाँसकर कहा—'अब जाते क्यों नहीं? वह बुलाने आई है।'

सूरज ने आँखें निकालकर कहा—'क्यों बे साले, रोटियाँ लग गई हैं क्या? दिन भर शोहदई सूझती है।'

भैरों की सिट्टी-पिट्टी भूल गई। चुपचाप सिर नीचा कर पान लगाने लगा। सूरज ने बुड्ढे की तरफ़ देखकर कहा—'क्या बात है?'

बुड्ढे ने कहा—'इधर चले आओ, धोखा नहीं करेगा। बिल्लोची धोखा नहीं करता। कुछ आपस का बात है।'

एक एकान्त जगह में खड़े होकर बुड्ढे ने कहा—'बाबू, तुम बड़ा बहादुर है, तुमसे हमारा तबियत बहुत खुश हुआ। हम लोग बहादुर का बड़ा इज़्ज़त करता है।'

'मतलब की बात कहो।'—सूरज ने लापरवाही दिखाते हुए कहा।

बूढ़े की आँखों में स्निग्ध-छाया झलक रही थी, सूरज की पीठ पर धीरे से हाथ रखकर बोला—'मतलब कुछ नहीं बाबू। हम बहादुर, तुम भी बहादुर—बहादुर बहादुर की क़दर करता है।'

बुड्ढा मुसकराया। सूरज चुपचाप खड़ा रहा। बीच में, दो-एक बार उसने कनखियों से मलका की तरफ़ देखा भी।

बूढ़े ने नज़र घुमाकर एक बार मलका की ओर देखा, मुसकराया, फिर बोला—'हमारा लड़की भी बड़ा बहादुर है। उसने सवेरे तुम्हें हरा दिया बाबू।'

सूरज ने कुछ अकड़ के साथ हँसकर जवाब दिया—'हाँ, लपेट तो मार ही दी थी।'

फिर मलका को मदभरी आँखों से इस तरह देखने लगा, जैसे कोई ख़ास बात कह दी हो।

मलका लज्जित-सी खड़ी थी।

बूढ़े बिल्लोची के रूखे झुर्रीदार चेहरे पर एक क्षण के लिए जवानी की रवानी झलकी। बड़े प्रेम से एक बार अपनी लड़की की तरफ़ देख, फिर सूरज की बाँह पकड़कर बोला—'तुम मुसलमान होता, बाबू, तो हम अपनी मलका को तुम्हें शादी में दे देता।'

सूरज ने मज़ाक़ में ही कहा—'और अब क्या न ब्याहोगे?'

बूढ़ा यह सुन चौंका, आश्चर्य के साथ उसकी ओर देखकर बोला—'तुम शादी करेगा? बोलो, मरद का ज़बान एक!'

बिल्लोची का यह उत्साह देख, सूरज चौंका। सहसा उसे अपने तीन दफ़ा संध्या-पूजा करनेवाले कर्मकाण्डी पिता की याद आई।

बूढ़ा बोला—'राज़ी है?'

सूरज ने मलका की ओर स्निग्ध-दृष्टि से ताक, जैसे अपनी आन्तरिक और बाह्य सब शक्तियों के विरुद्ध ज़ोर लगाकर कहा—'कल बताऊँगा।'

× × ×

किसी की आवाज़ से सूरज की नींद खुली। बाहर आकर देखा मोटर में मदन बैठा है—'सुनिए, पंडितजी ने आपको बुलाया है। अभी मोटर से आपको बारावंकी के आगे छेदापसारी-पोलिंग बूथ पर उनका एजेन्ट बनकर जाना है। वहाँ रानी साहिबा के आदमी झगड़ा-फ़साद करनेवाले हैं।'

सूरज सोचने लगा—'किसी का काम एक दफ़ा कर दो, बस, फिर जब देखो तब सिर पर सवार हैं। बड़े आदमी वैसे तो हमें गुण्डा कहकर अपने पास बिठाते भी घिनाते हैं, लेकिन वक़्त पर हमारी ही सरन में दौड़ते हैं। आज मुझे बुड्ढे को जवाब देना था। काम भी मौक़ा देखकर नहीं आता है। अच्छा, चलो भाई।'

मोटर चल दी।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दूकान के अन्दर दूध की बाल्टी में पानी मिलाता हुआ टुई गुनगुनाता जाता था—'राधा रानी श्याम से गोदाने लागीं गोदना।' तभी बल्लम का कोना उसकी पीठ में लगाते हुए सूरज ने कहा—'क्यों बे, वे बिल्लोची कहाँ गये ?'

टुई ने हाथ जोड़कर गिड़गिड़ाते हुए कहा—'मैंने कुछ नहीं किया है भैया, वे बसावन और भैरों वहाँ जा-जाकर आवाज़ें कसते थे, इसी लिए वे लोग भाग गये।'

उस दिन बसावन और भैरों को बेहद मारने के बाद सूरज अमीनाबाद से एक गोदनेवाले को बुला लाया और ठीक अपने दिल के ऊपर बढ़िया हरफ़ों में गुदवाया—'मलका'। उसे दाम देकर विदा किया और खाट पर अनमना-सा पड़ रहा।

× × ×

सूरज के विषय में अगर पूछा जाय कि वह कौन है तो इसका ठीक जवाब यह है कि चार रोज़ पहले उससे मुलाक़ात या दोस्ती करनेवालों से पुलीसवाले भी दोस्ती पैदा करने की कोशिश करने लगते थे। उसके बाप की घी की दूकान और बिस्कुट-फ़ैक्टरी की सारी कमाई कभी पिस्तौल पकड़े जाने में, कभी मार-पीट के मुक़दमों में ही नष्ट हो गई। अब जब से कांग्रेस गवर्नमेन्ट हो गई है, ज़रा चैन है, पर अब पैसे-पैसे की तंगी है।

इस वक़्त बुड्ढा बाप आख़िरी रोटी सेंक रहा था और सूरज बटुई से दाल परस रहा था। बुड्ढे ने घी न होने की बात सोचते हुए ज़रा नर्मी से कहा—'सूरज बेटा, अब तो तू कहीं नौकरी कर ले। इस तरह तो काम नहीं चलता दिखाई देता।'

सदा से विपरीत पिता के स्वर में कोमलता देखकर सूरज बोला—'कहीं मिले तब ना।'

'नौकरी तो है, पर तू करना ही नहीं चाहता।'

'कहाँ ?'

'फ़ौज में आजकल कितनी भर्ती हो रही है। तू मेजर के नाम रफ़ी साहब से चिट्ठी लिखवा ले तो सीधा नायक रैंक में भर्ती हो जायगा।'

'फ़ौज में नौकरी !'—सूरज ने ज़रा धीमे स्वर से कहा।

'क्यों फ़ौज में नौकरी करने में क्या हुआ ? अब तो अपनी सरकार हो गई है, अपने हक़-हक़ूक़ बढ़ रहे हैं, अब तो सभी जगह पैठ करना चाहिए। चार दिन में सब हमीं लोगों को तो सम्हालना है।'

सूरज ने गम्भीरतापूर्वक इस बात पर ग़ौर कर कहा—'अच्छा !'

× × ×

ख़ैबर दर्रे में मिचनीकाण्डो और तुरख़ाम के बीच फ़ौजी सिपाहियों की एक टुकड़ी रेल की पटरी निकालने के कुछ सामान की रखवाली कर रही थी। एक सिपाही कह रहा था—'मैं तो कहता हूँ सूरज, कि एक बार, पचास हज़ार सिपाही सरहद में छोड़ दिया जाय, और इन सरहदियों को ढूँढ़-ढूँढ़कर मारा जाय। जब देखो तभी एक न एक आफ़त जोते रहते हैं, साले।'

सूरज ज़रा टहलते हुए कुछ आगे निकल गया था, बोला—'कहते ठीक हो, मगर—'

इसी वक़्त सनसनाता हुआ कुछ आकर उसकी बन्दूक़ में खट-से लगा। सूरज ने झुककर देखा। काग़ज़ में लिपटा हुआ एक पत्थर था। काग़ज़ उर्दू में लिखा हुआ था—'रात को नौ बजे सामनेवाले टीले पर मिलो'—मलका। सूरज का जैसे घाव ताज़ा हो गया। मलका यहाँ कैसे आ गई—घण्टों यही सोचता रहा। फिर बोला—ख़ैर, मलका के नाम पर ही सही।

ड्यूटी से 'ऑफ़' हो गया था। नौ बजते-बजते अपना ओवरकोट ठीक से ओढ़कर टीले की तरफ़ चला। हवा जैसे बदन को छेदे डालती थी, और बरफ़ का भूसा-सा उड़-उड़कर कोट पर जम रहा था। फिर भी घोर अँधेरे में टार्च के सहारे सूरज बढ़ता चला जा रहा था। तम्बू से तो टीला बहुत पास मालूम होता था, पर चलते-चलते पैर भर आये। कहीं किसी झाड़ी या पेड़ का नाम नहीं। दूर-दूर तक पथरीली ऊँची-नीची ज़मीन—परिन्दे और जानवर तो कहीं ढूँढ़े न मिलें। . . .

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

राम-राम करके सूरज ने देखा—पत्थर के ऊँचे से टीहे पर कोई बैठा है । टार्च जलाकर देखा वाक़ई मलका थी ।

'मलका तुम यहाँ कैसे ?'—सूरज ने उसके दोनों हाथ पकड़कर कहा ।

'अफ़रीदियों का एक झुण्ड एक रोज़ रात को हमारे गाँव में घुस आया था। वही मुझे ज़बर्दस्ती उठा लाया। अब मैं यहाँ के एक सरदार की बीवी हूँ ।'

'तो तुम्हारी शादी हो गई और अब बिल्लोचिन नहीं, अफ़रीदिन हो ?'—सूरज ने उतरे मन से कहा ।

'अफ़रीदिन ही नहीं, एक अफ़रीदी बच्चे की मा भी ।'—मलका बोली, 'क्यों जी तुम लोग लौट क्यों नहीं जाते ? बेकार पड़े हो ।'

'जब तक पूरी रेल नहीं निकल जाती, कैसे लौट जायँ ?'

'ये तो हमारे लोग दो घंटे में खोदकर फेंक देंगे, इसकी तुम कब तक रखवाली करोगे ?'

सूरज ने कहा—'क्या यही कहने को बुलाया था ?'

'नहीं कहना तो बहुत कुछ था ।'

'तो वही कहो ।'

'तुम बड़े धोखेबाज़ निकले ।'—मलका ने तेवर बदलकर कहा ।

'मैं ?—धोखेबाज़ !'

'हाँ तुम, वादा करके ग़ायब हो गये । मेरा कितने दिन दिल जलता रहा है और आज आये भी तो मेरे मुल्क की तरफ़ बन्दूक़ तानकर । धोखेबाज़, काफ़िर ।'

सूरज ने कहा—'तुम स्त्री हो मलका वरना—।' और तम्बू की तरफ़ चल दिया । चलते हुए बोला—'इतना जाने रहो कि मैंने तुम्हें धोखा नहीं दिया और यहाँ आने की जो कहा तो यह तो अपना फ़र्ज़ है । मुल्क के लिए सब कुछ करना जायज़ होता है ।'

'मुल्क के लिए सब कुछ करना जायज़ होता है ?'—मलका ने तेज़ आवाज़ में पूछा ।

सूरज ने पलटकर कहा—'हाँ ।'

'तो लो'—और एक चमचमाता हुआ छुरा सन-से आकर सूरज के ठीक उसी स्थान पर घुस गया, जहाँ गुदा था—मलका ।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'कैसे समझावौं अरी, उमगति आई रेल !'...

प्राकरणिक अर्थ के अनन्तर रेल की डाकगाड़ी का अर्थ ध्वनित होता है। डाकगाड़ी भी धकापेल आती है। यह अर्थ उपमान है ; यानी मेल-ट्रेन की तरह ज़ोर का प्रवाह आया और...

व्रजभाषा की एक नवीन कृति--'तरंगिणी'

श्रीमुकुल

इधर पन्द्रह-बीस वर्ष के अर्से में व्रजभाषा-कविताओं के कोई बीस संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, नवीन कविताओं के। परन्तु इन 'नवीन' कविताओं में नवीनता नाम को भी नहीं, सबमें वही पुराना पिष्ट-पेषण है और उसी पुराने ढर्रे पर ! 'नवीन' इसलिए इन्हें कह देते हैं कि ये नवीन कवियों की रचनाएँ हैं। परन्तु इन्हीं नवीन कविता-ग्रन्थों में एक 'तरंगिणी' भी है, जो पं० किशोरीदासजी वाजपेयी की कविताओं का संग्रह है। इसे प्रकाशित हुए कोई तीन वर्ष हुए। इससे पहले किसी को पता नहीं था कि वाजपेयीजी कविता भी कर लेते हैं। उन्हें अब भी साहित्य-संसार में 'कवि' नहीं माना जाता--कवियों में उनकी गिनती नहीं की जाती। वाजपेयीजी को स्वयं 'कवि' कहलाने में झिझक और संकोच है। 'तरंगिणी' के अन्त में एक दोहा है—

आलोचक कविता करै, तौ यह समुझौ भूल।
माली में हैं कब लगे, कहु गुलाब के फूल ?

इससे स्पष्ट है कि वाजपेयीजी भी अपने आपको 'आलोचक' ही समझते हैं, 'कवि' नहीं। तो भी, 'तरंगिणी' में कवित्व है और एक नया रंग है, नया ढंग। जो कविता की चीज़ें 'तरंगिणी' में हैं, वे किसी भी नवीन व्रजभाषा-कवि की किसी भी कृति में नहीं, यह दावे के साथ कहा जा सकता है। वाजपेयीजी गर्व के साथ कह सकते हैं कि 'तरंगिणी' में 'न परस्य किंचित्', उनकी अपनी चीज़ें हैं, और अपना मार्ग। इतना होने पर भी यदि वे 'कवि' नहीं, तो फिर बड़े ही आश्चर्य की बात है !

नीचे कुछ ऐसी सूक्तियों के नमूने दिये जायँगे, जो 'तरंगिणी' की 'अपनी' विशेष चीज़ें हैं।

शब्द-शक्ति-मूलक ध्वनि

कविता में 'शब्द-शक्ति-मूलक ध्वनि' का विशेष महत्त्व है। नये कवियों की कविताओं में यह 'ध्वनि' कहीं नज़र नहीं आती। यही क्यों, पुराने कवियों ने भी जहाँ इस 'ध्वनि' की उद्भावना की है, वहाँ कोई नवीनता नहीं। पूर्ववर्ती कवियों ने संस्कृत के आधार पर जो कुछ कहा है, गिने-चुने 'घनस्याम' आदि

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

शब्दों के द्वारा उसी का बार-बार पिष्ट-पेषण किया गया है। परन्तु 'तरंगिणी' की सूक्तियों में यह 'ध्वनि' ख़ूब है, नये रंग-ढंग से है और कवि की 'अपनी' चीज़ है। शब्द भी अपने और भाव भी अपना। इसे ही अनूठापन कहते हैं। दोहा है—

गरमी मैं सीतल सुखद, गरम सीत रितु माँह।
सो स्यामा रस-दायिनी, धनि लिपटन की चाह।

दोहे में शृंगार-रस है और एक उत्तम नायिका की बात कही गई है। 'श्यामा' षोड़शी और वटच्छाया के लिए कहा गया है—'शीतकाले भवेदुष्णा' और 'उष्णकाले च शीतला'। जब यह बात है, तो रस-दायित्व है ही! तब फिर क्यों न 'लिपटन की चाह' हो। यह चाह भी धन्य है, फिर प्राप्ति का तो कहना ही क्या! और, वह 'श्यामा' तो धन्य है ही। उसके समान संसार में सौभाग्य और है किसका?

यह तो हुआ वाक्य का वाच्यार्थ या मुख्यार्थ। परन्तु कवि ने शब्द कुछ ऐसे रक्खे हैं, जिनसे एक दूसरा अर्थ भी झलक मारता है—दूसरे अर्थ की एक ध्वनि निकलती है। वह यह है कि—गरमी में लिपटन की चाह (चाय) ठंडक पहुँचाती है और ठंड के दिनों में गरमी। यह चाह 'स्याम' यानी काले रंग की होती है और 'रस' भी देती है। सो, यह चाह धन्य है, जिसका सेवन बड़े-बड़े साहित्य-महारथी भी करते हैं!

इस प्रकार दोहे से दो अर्थ निकले। एक तो वह पहला 'श्यामा' नायिकावाला अभिधेय, जो मुख्य है; क्योंकि वही वर्णनीय विषय है। शृंगार का वर्णन है। यह जो दूसरा अर्थ झलकता है, इसका क्या उपयोग? शृंगार में इसका क्या प्रयोजन? सुनिए।

'उपमा' के अनन्त रूप हैं और उसके सबसे श्रेष्ठ रूप का नाम है 'शब्द-शक्ति-मूलक ध्वनि'। अपनी बात को चमत्कारपूर्ण तथा सामने थिरकती हुई-सी बनाने के लिए 'उपमा' का या उसके—रूपक, दृष्टान्त, समासोक्ति, अतिशयोक्ति आदि—रूपान्तरों का सहारा लिया जाता है। इसके सब रूपों में उक्त 'ध्वनि' का विशेष महत्त्व है। औपम्य को एक चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रकट करने के लिए ही कवि इस 'ध्वनि' का मार्ग ग्रहण करता है, जो सबके बस की बात नहीं है।

जब किसी वाक्य से दो अर्थ निकलें और उनमें से एक प्राकरणिक हो, दूसरा अप्राकरणिक तो उन दोनों अर्थों का उपमेय-उपमानभाव विवक्षित होता है। इस प्रकार सूक्ष्मता से औपम्य-प्रदर्शन कवि की विशेष शक्ति प्रकट करता है।

प्रकृत दोहे में शृंगार-वर्णन है और 'श्यामा' नायिका की बात है। यही वाच्य अथवा मुख्य अर्थ है, जो प्रकरणवश पहले सामने आता है। इसके बाद, शब्दों की विशेष-योजना के कारण, वह दूसरा 'लिपटन की चाय' वाला अर्थ भी झलक मारता है। पहला अर्थ उपमेय है और यह दूसरा 'प्रतीयमान' अर्थ उपमान। मतलब यह हुआ कि 'श्यामा' प्रणयिनी, लिपटन की चाय की तरह, जाड़े में गरमी और गरमी में ठंडक पहुँचाती है। इस प्रकार, ऐसे स्थल में दूसरे—व्यंग्य या प्रतीयमान—अर्थ का उपयोग उपमान-रूप से होता है। इसी लिए वैसी शब्द-योजना की जाती है।

आप देखेंगे कि वाजपेयीजी ने कहीं भी किसी भी अंश में दूसरे की चीज़ नहीं ली है। अपनी नई वस्तु है, नया रंग है।

इसी तरह का एक दूसरा दोहा है—

दैकै दावति चाह की, करी अदावति बात!
आगि लगी-सी उर रही, परी नींद नहिं रात!

पूर्वानुराग का वर्णन है। कहीं कोई किसी को दिखाई दे गई है और एक 'चाह' पैदा कर गई है! चाह की दावत दे गई है! परन्तु जिसे यह दावत दी गई, उसका हाल तो सुनिए—आगि लगी-सी उर रही, परी नींद नहिं रात! ऐसे समय में रात ही विशेष दुःखद होती है और किरात बनकर शिकार मारती है! छाती में आग-सी लगी रही! छाती जलती रही! तब नींद कहाँ? तब उसने अदावत न की?

यह तो हुआ शृंगार-रस के प्रकरण का मुख्य या अभिधेय अर्थ। इसके साथ ही दूसरा अर्थ भी शब्द-शक्ति से ध्वनित होता है—यदि कोई किसी को चाय

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

की दावत दे, तो जान लो कि पूरी अदावत की, विशेषतः जब कि उसका 'चाय' से पहला ही मौक़ा पड़ा हो! जिनकी आदत पड़ गई, वे बर्दाश्त भी कर लेते हैं। मरना तो प्रथम-प्रणय में है! जिसे चाय की दावत दे दो, कम्बख़्त की छाती जलती रहेगी और रात में नींद हराम हो जायगी! यहा 'चाय' की दावत उपर्युक्त दोहे में ध्वन्यमान है।

पहला अर्थ उपमेय और दूसरा उपमान है। मतलब यह कि 'चाह', चाय की तरह, छाती जलाती रहती है और रात में नींद नहीं आने देती। नायक स्वयं कह रहा है—

आगि लगी-सी उर रही, परी नींद नहिं रात!

एक दोहे में सौभाग्य-वर्णन है—

कैसे समुझावौं अरी, उमगति आई रेल!
दली-मली हौं अति गई, सखि वा दिन वा मेल!

कोई किसी अन्तरंग सखी से प्रणय-केलि का वर्णन कर रही है—अरी, उस सुख का वर्णन कैसे करूँ और तुझे कैसे समझाऊँ! बस, इतना समझ ले कि एक रेला-सा आया और मैं एकदम दली-मली गई! इससे ज़्यादा उस मेल की, उस समागम की, और क्या बात बतलाऊँ?

'रेल' शब्द व्रजभाषा में स्त्री-लिङ्ग प्रयुक्त होता है और ज़ोर के प्रवाह के अर्थ में आता है—'केते नदी-नारन की रेल उतरति है।'

इस प्राकरणिक अर्थ के अनन्तर रेल की डाकगाड़ी का अर्थ ध्वनित होता है। डाकगाड़ी भी धकापेल आती है। 'मेल ट्रेन' में जिन्होंने कभी सफ़र किया है, साधारण दर्जे में, वे जानते हैं कि वहाँ धक्का-मुक्की में शरीर की नस-नस किस तरह ढीली हो जाती है! यह दूसरा अर्थ उपमान है। यानी मेल ट्रेन की तरह ज़ोर का प्रवाह आया और उसमें शरीर की नस-नस ढीली हो गई। बस, इसी से तू समझ ले सखी, और क्या कहूँ।

इसी प्रकार की पचासों सूक्तियाँ 'तरंगिणी' में हैं, पहचाननेवाला चाहिए। स्व० आचार्य द्विवेदीजी ने इस पर सम्मति देते हुए ठीक ही लिखा है—

विना न साहित्यविदा परत्र
गुणः कथञ्चित्प्रथते कवीनाम्।
आलम्बते तत्क्षणमम्भसीव
विस्तारमन्यत्र न तैलबिन्दुः।

कवि-सम्राट् 'हरिऔध'जी ने भी लिखा है कि 'समझनेवालों में इसका आदर होगा।' ठीक भी है। परन्तु हिन्दी में कविता समझनेवाले साहित्य-विद् भी तो इने-गिने ही निकलेंगे।

कुछ रूपक आदि

वाजपेयीजी ने रूपक भी ख़ूब बाँधे हैं। कुछ नमूने इसके भी लीजिए।

कहते हैं, शिवाजी ने छत्रसाल को उपदेश दिया था और स्वराज्य-संग्राम के लिए प्रेरणा की थी। वैज्ञानिक लोग कहते हैं कि सूर्य से प्रकाश चन्द्रमा में आता है। इसी सादृश्य से कवि ने रूपक बाँधा है, श्लिष्ट शब्दों के सहारे—

लै प्रकास सिव सूर सों, छत्रसाल राकेस।
भयो सुधाकर जगत कौं, प्रगटी कला विसेस!

शिवाजी शूर और सूर्य शिव है ही, कल्याणप्रद। कला=युद्ध-कला और अंश-परिमाण। 'राकेस' और 'सुधाकर' में 'पुनरुक्तवदाभास' भी दर्शनीय है।

सारांश यह कि जैसे सूर्य से प्रकाश चन्द्र में आता है और उसे वह अपनाकर अपनी विशेष कला प्रकट करता है, उसी तरह शिवाजी के प्रकाश—उपदेश—से महाराज छत्रसाल प्रभावित हुए।

सूर्य-चन्द्र के इसी सम्बन्ध को लेकर वाजपेयीजी की विभिन्न-विषयक बीसों सुन्दर सूक्तियाँ हैं। एक जगह कवियों के 'छायापहरण' पर आपने लिखा है—

कलावन्त पर-बस्तु लै, देत रुचिर निज रंग।
करत चाँदनी चन्द है, रबि-आतप लै अंग!

कलावन्त—कलाकार—लोग पर-वस्तु लेकर भी उसे ऐसा 'अपना' रंग दे देते हैं कि चीज़ ही और बन जाती है! चन्द्रमा सूर्य का प्रचण्ड आतप लेकर उसे अपनी 'कला' से शीतल चाँदनी बना देता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कितना अन्तर। यही तो कला है! तभी तो चन्द्रमा 'कलानिधि' है, 'कलावन्त' है! सहसा किसी को विश्वास नहीं हो सकता कि राका की शीतल ज्योत्स्ना भास्कर का प्रखर आतप है! जो जानते हैं, उन्हें और भी आनन्दवर्द्धक कुतूहल है!

जहाँ तक मुझे पता है, छायापहरण के सम्बन्ध में यह अनूठी उक्ति है और औपम्य बहुत चुस्त है।

एक उत्प्रेक्षा है—

सेत स्याम रति-काम रँग, ते चख पुनि रतनार।
चित्रित चीनी-चसक जनु, चाह-भरे गुलजार!

आँखों में स्वभावतः या प्रारम्भिक दो ही रंग हैं, श्वेत और श्याम। ये दोनों रति और काम के रंग हैं। रति का गौर और काम का श्याम रंग प्रसिद्ध है। सो, रति तथा काम का रंग तो नेत्रों पर चढ़ा ही हुआ है; जब मौक़ा आया, अपनी ओर कर लिया! नेत्र ही काम और रति के सर्वस्व हैं। जब इनमें किसी की 'चाह' आकर छलकती है, तब रंग गुलाबी आ जाता है। 'रतनारे नैना बाँके' हो जाते हैं। सो, वे श्वेत-श्याम रंग के नेत्र 'पुनि'—समय पाकर—रतनार हो गये हैं; क्योंकि उनमें 'चाह' जो भर गई है! ऐसा जान पड़ता है कि सफ़ेद चीनी के दो प्याले हैं। उनमें, बीच में, काले रंग से कुछ चित्रकारी है और वे गरम स्ट्रांग चाय से लबालब भरे हैं! तभी तो 'रतनार' हैं! ख़ूब गुलज़ार हैं!

अवश्य ही यह दोहा—

अमी-हलाहल-मद-भरे, सेत स्याम रतनार।
जियत, मरत, झुकि-झुकि परत, जे चितवत इक बार।

इस प्राचीन दोहे की छाया पर है; परन्तु छाया-ग्रहण ठीक उसी तरह है, जिस तरह—करत चाँदनी चन्द है, रबि-आतप लै अंग। चीज़ ही दूसरी बन गई। वहाँ अमी, हलाहल और मद भरा है, यहाँ सिर्फ़ 'चाह' भरी है, बड़ी तेज़! शेष तुलना भावों की विद्वज्जन स्वयं करें!

राष्ट्रीय कविताएँ और लोगों ने भी की हैं; पर वाजपेयीजी की चीज़ें यहाँ भी अपनी विशेषता रखती हैं, हज़ार में अलग पहचान ली जायँगी। दो-चार इस तरह के भी नमूने लीजिए।

देश की किसी समय दशा देखकर कवि हताश हो गया है। वह रोता है और उसे धरती-आसमान सब रोते नज़र आते हैं। हिमालय से अनन्त जल-राशि निकल रही है। कवि ख़याल करता है कि यह गिरि-गुरु भारत के उस वैभव का साक्षी है और उन दिनों की याद करके यह फूट-फूटकर रो रहा है—अपनी अश्रु-धाराएँ अनवरत बहा रहा है, अनेक नद-नदियों के रूप में। दुखी ही दूसरे दुखी को धीरज बँधाता है—

क्यों रोवत हिमगिरि इते, वृथा बहावत नीर!
भारत के वै दिन गये, गये बाँकुरे बीर!

वह समय ही कुछ और था।

इसे आप चाहे निराशावाद कह लें, पर 'कविता-वाद' ज़रूर है और चोटी का है।

फिर कवि कहता है—

गरम कहत या हिन्द कौं, जग के लोग हमेस।
पै न गरम अब नेक हू, रह्यो हाय यह देस!

'गरम' शब्द कितने महत्त्व का है। इस देश को सब लोग 'गरम देश' बतलाते हैं। परन्तु कवि कहता है कि हाय, इस देश की गरमी अब न जाने कहाँ चली गई। बिलकुल ठंडा अब तो नज़र आता है!

दूसरे ही क्षण अपने सेना-नायकों पर जब कवि की दृष्टि जाती है, तो निराशा से हटकर वह कुछ और गाने लगता है, कुछ-कुछ गर्व-सा करता हुआ—

दिल्ली! लखे अनन्त हैं, राजनीति के खेल।
कहु साँची, केते मिले, तोकौं बीर पटेल?

दिल्ली सचमुच राजनीति की नाट्यशाला रही है। इसने अनन्त राजनीति-विशारदों को अपनी गोद में खिलाया है। कवि इसी से प्रश्न करता है कि हे दिल्ली, तू यह तो बतला कि तुझे वीर पटेल—प्रेज़ीडेंट विट्ठलभाई पटेल—कितने मिले?

वस्तुतः स्वर्गीय पटेल-जैसा राजनीतिज्ञ दुर्लभ है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

जिसकी नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा उस समय भी तत्कालीन वायसराय को कँपकपी चढ़ाये रहती थी।

इसी तरह मालवीय, गांधी, नेहरू आदि बीसों नेताओं का स्मरण है, कवित्वपूर्ण। वाजपेयीजी ने अपने मित्र पं० श्रीकृष्णदत्तजी पालीवाल का भी वर्णन एक दोहे में किया है। जो लोग पालीवालजी को नज़दीक से जानते हैं, वे देखेंगे कि इस दोहे में कैसा सही चित्र उतरा है—

देखी तोमैं गजब की, बिजुरी पालीवाल!
होत गरम अति छनक मैं, जासों नैनीताल!

दरअसल पालीवालजी में ग़ज़ब की बिजली है। आप ही ने सन् १९३० में यू० पी० में लगान-बन्दी को व्यावहारिक रूप देकर तत्कालीन सरकार के छक्के छुड़ा दिये थे। पालीवालजी का 'सैनिक' आग उगलता है और प्रान्त में सबसे ज़्यादा ख़तरनाक अख़बार है, यह उस समय की सरकारी रिपोर्ट है। तभी तो कहा है—होत गरम अति छनक मैं, जासों नैनीताल।

बिजली से कमरा आदि गरम कर लिया जाता है। परन्तु वह बिजली ग़ज़ब की ही समझिए, जिससे इतना ठंडा नैनीताल भी गरमा उठे और सो भी 'अति' गरम हो जाय! फिर 'छनक' में! ज़रा-सी देर में, पल मारते! ऐसी बिजली!

यू० पी० सरकार गरमी के दिनों में अभी तक ठंडे नैनीताल चली जाया करती थी! परन्तु पालीवालजी की बिजली नैनीताल को भी गरम कर देती है! चैन कहाँ?

सारांश यह कि पालीवालजी के जोश-भरे कामों से उस समय की सरकार बेतरह गरमा उठती थी!

'तरंगिणी' में सामाजिक दोहे भी ख़ूब हैं। एक दोहे में रँगीले साधुओं का ख़ाका है—

सब ते चोखे जगत मैं, साधू और बिजार!
खुले चरैं, पूजा लहैं, सरस सुछन्द बिहार!

व्रज में साँड़ को 'बिजार' कहते हैं। दोनों में—साधु और साँड़ में—अनन्य साम्य है। 'खुले चरैं, पूजा लहैं सरस सुछन्द बिहार।' 'खुले चरैं' का मुहावरा तो देखिए; दोनों की पूजा भी होती है और 'सरस बिहार' जो है सो पूर्ण स्वच्छन्द! फिर क्या चाहिए?

इसी प्रकार आधुनिक 'मिस', सम्पादक, कवि, लेखक आदि सभी पर चुभती चुटकियाँ हैं। 'कवि' भी नहीं बचे हैं। एक दोहे में छायावादी कवियों का यह चित्र है—

करत अटपटी बेतुकी, बातैं अरथ-बिहीन!
लखत अनन्त न तन्त कछु, हाला-कला-प्रबीन!

शुरू-शुरू में छायावादी कवियों ने ही 'हाला' के प्रवाह में 'वीणा' झनकाई थी! 'अनन्त'-द्रष्टा उन्हीं कवियों को 'हाला-कला-प्रवीन' कहा गया है। अटपटी बातें, बेसिर-पैर की, जो सहज ही किसी की समझ में न आवें! समझ में क्या आवें, जब अर्थ-विहीन हों, बेमानी हों! न तन्त कछु, व्यर्थ! 'बेतुकी' तो चलती ही है!

यह हुआ प्राकरणिक मुख्य अर्थ। परन्तु शब्दशक्ति से शराबी का अर्थ भी ध्वनित होता है। हाला पीने की कला में प्रवीण वैसा पुरुष—करत अटपटी बेतुकी, बातैं अरथ-बिहीन! और जब कहीं नाली आदि में गिर पड़ता है, तो ऊपर मुँह किये अनन्त—आकाश—देखता रहता है, भले ही कुत्ते मुँह में पेशाब कर जायँ!

यह ध्वन्यमान अर्थ उपमान है। अर्थात् उस प्रकार के कवियों की बातें शराबियों की बड़बड़ाहट की तरह व्यर्थ होती हैं!

यही नहीं, व्रजभाषा तथा 'खड़ी बोली' के कन्था-कवियों पर भी ख़ासी फ़ब्तियाँ हैं—

बीनि चीथरे घूर ते, कथरी करी तयार।
कहत 'दुसालो लेउ कोउ', निधरक बैठि बजार!

हौसला ही तो ठहरा! फिर, जब दलाल अच्छा मिल जाय, तब तो कहना ही क्या?

वाजपेयीजी ने कुछ नये ढंग की नायिकाओं का भी वर्णन किया है। अभी तक महल की परियों तक ही साहित्य प्रायः सीमित है। परन्तु 'तरंगिणी' में गाँव की इस मदमाती का खिला हुआ सौन्दर्य तो देखिए—

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

पीसति गावति झूमि कछु, घरनी सुघर रसाल !
चन्दबदन अरु नित कछुक, कछु स्रम-सीकर भाल !

गोरा बदन है। 'घरनी' है, गृहिणी, स्वकीया। सुघड़ है, व्यायाम से सुगठित हैं सब अंग। कुछ गाती हुई झूम-झूमकर पीस रही है। हलके मधुर व्यायाम से कुछ पसीने की बूँदें छहरा आई हैं और गोरे 'चन्द्र-बदन' में ज़रा-सी अरुणिमा दौड़ गई है, गुलाबीपन। अहा, क्या छटा है! पाउडर मसलकर नक़ली गुलाबी लाने से भी क्या यह सौन्दर्य प्राप्त हो सकता है?

इसी तरह की एक दूसरी नायिका का चित्र है—

छरति छरहरी छविभरी, धान छबीली बाम!
मनु व्याधिन के सीस पै, देति मुसल अभिराम!

छरहरा बदन है, व्यायाम का प्रभाव! थल-थल 'महिषी' इसे पा सकती है? छरहरेपन में छविभरी है—स्वास्थ्ये वसति सौन्दर्यम्! ऐसा जान पड़ता है कि व्याधियों के सिर कुचल रही है मूसल से। लगातार चोट दे रही है! कैसी उत्प्रेक्षा है? है न नई और बाँकी? मैंने जो कहा कि यहाँ सब कुछ 'अपना' है।

अब कुछ अन्योक्तियाँ लीजिए—

फूलि रह्यो फुटबाल तू, बृथा न नीच लजात!
ठोकर दैवे काज ही, उदर भर्‌यो तुव जात!

'फ़ुटबाल' के फूलने को किस ख़ूबी से कहा है—ठोकर दैवे काज हो, उदर भर्‌यो तुव जात! पर समझे, तब न?

मौज करनेवाले 'कुत्तों' से कवि कहता है—

स्वान, मौज सब बिधि करौ, रहि मालिक के सँग!
पै कैसे मिलिहै कहौ, केहरि-मान अभंग?

मौज करो, पर 'मान' तो और बात है! तुम मोटर में बैठे घूमो, सोने का पट्टा गले में बाँधो, सो सब ठीक; परन्तु वह सम्मान कैसे पा सकते हो, जो केसरी को प्राप्त है? पींजड़े में पड़े हुए केसरी का भी वही सम्मान है और मोटर में बैठने पर भी तेरी वही दशा है!

'तरंगिणी' में आजकल कन्वेंसिंग के बल पर स्थित 'बहुमत' की भी आलोचना है—

छन मैं गज कौं खर करै, खर कौं गज सुख-भौन!
सो है 'बहुमत' अमित-बल, ब्रह्म बापुरो कौन?

ऐसा है यह 'बहुमत' ब्रह्म शक्तिशाली! चाहे जो कर दे! इस 'बहुमत' देवता को प्रसन्न करने का उपाय—

पत्रं पुष्पं भेंट धरि, परि चरननि ह्वै दीन।
खुस करि 'बहुमत' देवता, कहा न फल जग लीन?

जो चाहे, आज़माकर देख ले।

वाजपेयीजी ने वियोग-वर्णन भी अनठा किया है।—वियोग में सुखकर वस्तुएँ भी दुःखदायी हो जाती हैं! किसी प्रोषितपतिका से उसकी सखी ने कहा—अरी, आ जा, ज़रा शतरंज खेलकर ही दिल बहला ले! इस पर नायिका उत्तर देती है—

सत-सत जन रंजन करति, जो प्यारी सतरंज!
सोई अरी बियोग मैं, करति सौगुनो रंज!

वस्तुतः यह 'शतरंज' है, सैकड़ों जनों का मनोरंजन करती है; परन्तु अरी सखी, मेरे लिए तो इस समय यह 'शतरंज' सैकड़ों तरह से रंज बढ़ानेवाली है और सौगुना रंज बढ़ानेवाली है! तब क्या करूँ, दवा खाकर रोग बढ़ा लूँ?

कृष्ण-वियोग में उक्ति है—

लखहु आइ कैसी भई, जमुना दुसह-वियोग!
अति कृसतन, अति ही मलिन, गति नहिं बरनन जोग!

महाराज, हम भारत-वासियों को भूल गये, तो भूल गये; पर अपनी प्रेयसी यमुना की दशा तो देख जाइए! तुम्हारे वियोग में क्या दशा हो गई है, तन कृश, मलिन वेश और गति लड़खड़ाती हुई!

जिन्होंने गरमी में सूखी और जाड़े में सिकुड़ी हुई यमुना की 'गति' वृन्दावन में देखी है, वे अनुभव करें। 'प्रोषितपतिका' जो ठहरी!

वियोग-जन्य व्यथा बढ़ जाने पर यही मन में आता है कि इस शरीर को नष्ट करके पिंड छुड़ाया जाय। इसी उद्देश्य से नदी, नहर या कुएँ आदि में गिरकर प्राण दे दिये जाते हैं! यमुना ने भी यही किया—

नहरि त्यागि जीवन दियो, तऊ बची कछु साँस!
जमुना आइ बिलोकु हरि, जमु ना डारत पास!

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

यमुना ने नहर में 'जीवन' छोड़ दिया। जीवन पानी को भी कहते हैं और प्राणों को भी। लेकिन 'तऊ बची कछु साँस।' वियोगियों को मौत भी तो नहीं आती! नहर में 'जीवन' दे देने पर भी यमुना की ज़रा-सी साँस रह जाती है, एक क्षीण धारा बच रहती है!

जो मरने पर तुला है, उसे रोक कौन सकता है? तीर्थ पर मरने का महत्त्व भी है और स्त्रियों की तीर्थों पर श्रद्धा भी अधिक है। सो, यमुनाजी भी—

अगम पंथ अति दूरि चलि, जमुना पहुँचि प्रयाग।
गंगा मैं निज तनु तज्यो, स्याम-बिरह की आग!

श्याम-विरह की 'आग' में जलती हुई यमुना, गंगा में कूद पड़ीं और वहीं समाप्त हो गईं। आग का जला पानी में कूदता ही है!

भगवन्, यहाँ यह सब हो रहा है और आप कानों में तेल डाले पड़े हैं? अपने 'घर' से भी इतने बेख़बर! हद हो गई!

ख़ैर, हुआ सो हुआ, अपने 'वर्ण' वाले हम लोगों की तनिक तो ख़बर लेते? परन्तु क्या कहें—

अपने-अपने बरन कौ, पच्छ करत सब लोग!
स्याम, लखत तुम हम भये, कारे नींदन जोग!

× × ×

जानि परत गोरेन ने, कछु बढ़ि रिसवति दीन!
नहिं तौ सारे जगत मैं, कत कारें ही छीन?

इस तरह अनेक उपालम्भोक्तियाँ हैं। एक दोहे में आधुनिक 'समाजवाद' भी है।

हलधर सँग गोपाल ने, कियो कंस-मद चूर।
मनौं कह्यो सासक जगत, हैं किसान मजदूर!

कुछ समय पहले की बात है, महात्मा गान्धीजी ने शृंगार-रस का एकान्त विरोध किया था। इस पर कवि कहता है—

जे चाहत सिंगाररस, जाय जगत ते भागि।
ते कर गहिकै चन्द कौं, चहत जरावन आगि!

हृदय को शीतलता पहुँचानेवाले सुधाकर को पकड़कर आग में जला देना क्या उचित है? परन्तु यह अत्यन्त असम्भव भी है—चन्द्रमा को पकड़कर आग में जला देना, उसका अस्तित्व मिटा देना!

परन्तु हाँ, यह भी—

जद्पि मधुर सिंगाररस, तदपि न अति कौ नीक।
अधिक मधुरई परत हैं, कीरे असुचि-प्रतीक!

अति किसी बात की अच्छी नहीं लगती। कवि के ही शब्दों में—

अति की भली न बात कोउ, कैसी ही संसार!
होत तुरत आचार हू, 'अति' सों 'अत्याचार'!

अच्छी से अच्छी चीज़ 'अति' से बिगड़ जाती है। 'आचार' भी 'अति' के जुड़ने से 'अत्याचार' हो जाता है। इसलिए शृंगार की भी 'अति' बुरी और त्याज्य है।

इसी तरह वाजपेयीजी ने 'तरंगिणी' में अपने विचार, अपने सिद्धान्त कविता के रूप में रक्खे हैं और कोई भी विषय छूटने नहीं पाया है। इसी लिए आचार्य पं० रामचन्द्रजी शुक्ल ने लिखा है—'सबसे बड़ी बात यह कि 'तरंगिणी' के दोहा का विषय-क्षेत्र परिमित नहीं है, किसी एक ही विषय से इनका सम्बन्ध नहीं है; अपितु जीवन की छोटी-बड़ी सभी बातों से लेकर इस युग की प्रायः सभी व्यापक प्रवृत्तियों तक की इनमें बड़ी सुन्दर व्यञ्जना है।'

इस छोटे-से लेख में कितने उदाहरण दिये जायँ और किस-किस विषय के दिये जायँ?

'तरंगिणी' ऐसी है और यह सब है; परन्तु अब फिर कभी वह 'इस युग' में छपकर प्रकाशित हो सकेगी, इसकी आशा नहीं है। आजकल के लोगों के लायक़ यह चीज़ ही नहीं है। जान पड़ता है, यही सोचकर, इसका अस्तित्व बनाये रखने के ख़याल से वाजपेयीजी ने एक-एक प्रति बड़े-बड़े पुस्तकालयों को भेंट-स्वरूप भेजकर सुरक्षित करा दी है। इस प्रकार इसका अस्तित्व शायद बना रहे।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

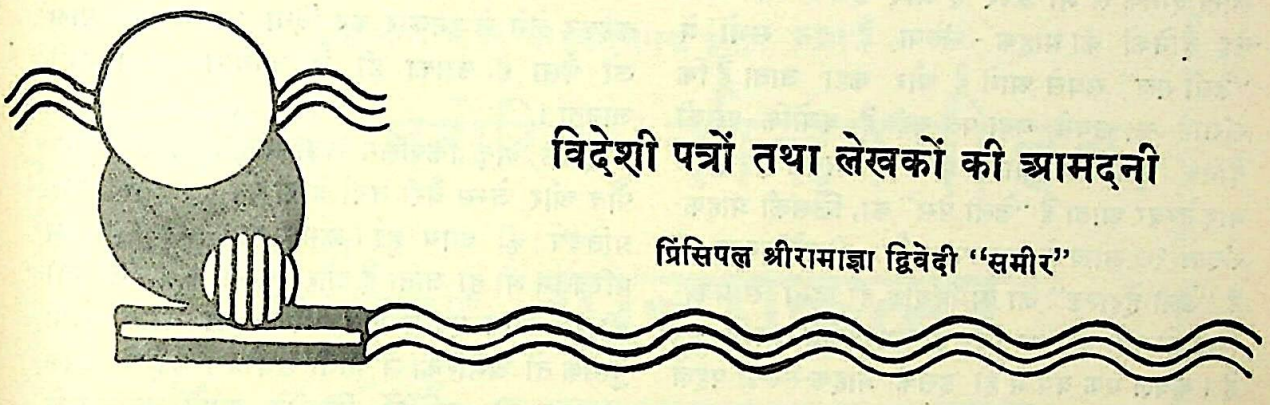

विदेशी पत्रों तथा लेखकों की आमदनी

प्रिंसिपल श्रीरामाज्ञा द्विवेदी "समीर"

भारत के कितने ही पत्र तो नहीं के बराबर हैं और कितने ही रोज़ जीते - मरते रहते हैं। ठीक यही हाल हमारे लेखकों तथा प्रकाशकों का है, जिसका थोड़ा - सा अनुभव नाथूरामजी प्रेमी ने कुछ दिन पूर्व "विशाल भारत" में प्रकाशित कराया था। आज हम पाठकों के मनोरंजनार्थ यहाँ कुछ विदेशी पत्रों तथा लेखकों की आय के संबंध में थोड़े से आँकड़े देंगे, जिससे हमें स्पष्ट ज्ञात हो जायगा कि भारतवर्ष में लेखकों की कैसी मट्टी पलीद है और अन्य देशीय लेखक कितना नाम तथा दाम, दोनों कमाते हैं।

दूर न जाकर पहले जापानी पत्रों को ही देखिए। वहाँ ५० लाख से अधिक प्रतियाँ दैनिक पत्रों की खपती हैं, जिसका अर्थ यह हुआ कि उस देश के प्रत्येक १० मनुष्य पीछे एक दैनिक पत्र लगता है। वहाँ के दो सर्वोत्कृष्ट दैनिक "ओसाका असाही" तथा "ओसाका मनीची" हैं, जिनकी ग्राहक - संख्या मिलाकर १५ लाख दैनिक से अधिक है। इतना होते हुए भी जापान में कुल ७०० के क़रीब साप्ताहिक तथा १२०० से ऊपर दैनिक पत्र प्रकाशित हो रहे हैं।

हिंदी-पत्रों में तो कहते हैं "कल्याण" की ग्राहक-संख्या सबसे ऊँची है, पर वह भी आधे लाख से बहुत कम है। भारतवर्ष के सभी पत्रों में मिलाकर भी उतना काग़ज़ नहीं खपता, जितना इँगलैण्ड के एक दैनिक में प्रतिदिन लग जाता है। वहाँ के तीन-चार साप्ताहिकों में से प्रत्येक की ग्राहक-संख्या १०लाख से ऊपर है। इनमें से "न्यूज़ ऑव दी वर्ल्ड" तो प्रति सप्ताह ३० लाख प्रतियाँ छापता है। एक बार इस पत्र ने लिखा था कि सप्ताह भर में ३००० मन से अधिक धातु इसकी छपाई में प्रयुक्त होती है, जिसके लिए ३००० से अधिक लेटें काम में आती हैं और ८० बड़ी रौटरी मशीनें लगातार काम करती हैं। इसका अर्थ यह है, इसमें इतना काग़ज़ प्रति सप्ताह लगता है, जिसके बनाने में १० हज़ार से ऊपर पेड़ों को काटना पड़ता है और जिसकी लम्बाई लगभग ६००० मील होगी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लंदन के "टाइम्स" की दैनिक औसत बिक्री सात वर्ष पहले पौने दो लाख से ऊपर थी। पर इस प्रसिद्ध पत्र से कहीं ऊँची ग्राहक-संख्या अन्यान्य दैनिकों की है, जिसकी भारतीय पाठकगण कल्पना भी नहीं कर सकते। "न्यूज़ क्रानिकल" की बिक्री १३ लाख दैनिक से भी ऊपर है और इसके भी ऊपर कई दैनिकों की ग्राहक - संख्या है। इन सभों में "डेली मेल" सबसे आगे है और कहा जाता है कि संसार का सबसे बड़ा पत्र यही है, क्योंकि इसकी दैनिक खपत २० लाख प्रति के लगभग है। इसके बाद नम्बर आता है "डेली प्रेस" का, जिसकी ग्राहक-संख्या १७ लाख के आसपास है। तीसरे नम्बर पर है "डेली हेराल्ड" जो अभी थोड़े ही दिनों से प्रकाशित हो रहा है। पर जिसकी आशातीत उन्नति हुई है। केवल एक वर्ष में ही इसकी ग्राहक-संख्या पहले से ढाई लाख बढ़ गई और आश्चर्य क्या है कि कुछ दिनों में यह सबसे बाज़ी मार ले जाय।

पाठक विलायती पत्रों की इन संख्याओं पर आश्चर्य करते होंगे, पर और भी आश्चर्य होगा उन्हें अंग्रेज़ी लेखकों की आय पर, जिनके सम्बन्ध में कुछ संख्याएँ हम नीचे दे रहे हैं।

३२ वर्ष की अवस्था में ही नोयल कावर्ड की आय ५० हज़ार पौंड वार्षिक हो गई थी, जिसका अर्थ यह हुआ कि लगभग २०००) प्रतिदिन वे अपनी लेखनी से प्राप्त करते हैं और इतनी ही आय का ठेका प्रकाशकों की ओर से उन्हें आगामी कई वर्षों तक के लिए मिल गया है। कावर्ड के बाद बर्नर्ड शॉ का नम्बर आता है, जिनकी आय कुछ दिन पूर्व सभी लेखकों से अधिक थी। शॉ को ३५००० पौंड की वार्षिक आय थी और इस सम्बन्ध में एक दंत-कथा है कि किसी पाठक ने हिसाब लगाकर परिश्रम से पता लगाया कि इन्हें प्रतिशब्द एक शिलिंग पुरस्कार के औसत से आय हुई है। यह हिसाब लगाकर उसने शॉ के पास एक शिलिंग भेजा और प्रार्थना की कि मुझे एक शब्द भेजने की कृपा करें। शॉ ने तुरंत ही उसे तार से "Thanks" शब्द लिखकर भेज दिया, जिससे पुरस्कार का हिसाब भी नहीं बिगड़ा और एक शब्द भेजने में ही वह शिलिंग भी खर्च हो गया। शॉ की आय का पता इसी से लग सकता है कि नोबेल-पुरस्कार भी उन्होंने पहले यह कहकर लेने से इनकार कर दिया था कि मेरे पास जो पैसा है, उसका ही मैं उपयोग करना नहीं जानता।

इसके बाद किपलिंग तथा मिलन को ३० हज़ार पौंड और जेम्स बैरी तथा वेल्स को २५ हज़ार पौंड प्रतिवर्ष की आय हुई। क्रमानुसार इस सूची में परिवर्तन भी हो जाता है और किसी समय तो शॉ की ही आय सर्वोच्च थी। मिलन की बालोपयोगी पुस्तकें तो अमेरिका में इतनी सर्वप्रिय हुईं कि उनके सम्बन्ध की गुड़ियाँ, खिलौने आदि बनानेवाले दूकानदारों को भी सहस्रों पौंड वार्षिक की आय हो जाती है।

इन लेखकों के अतिरिक्त ओपेनहीम तथा वुडहाउस-जैसे कितने ही साहित्यिक हैं, जिन्हें १५ से २० हज़ार पौंड वार्षिक तक की आय हो जाती है और जो अपनी लेखन - कला छोड़कर मंत्रित्व का उच्च पद भी स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं। हाँ, यह बात अवश्य है कि सर्वोत्कृष्ट कलाकार सर्वदा सर्वोच्च आय नहीं कर पाता, जैसे गाल्सवर्थी को १० और १५ हज़ार पौंड वार्षिक के बीच की ही आमदनी सदा हुई—वे इससे आगे नहीं बढ़ सके, यद्यपि शेरिफ़-जैसे लेखक को उसकी एक पुस्तक Journey's End से ही ५० हज़ार पौंड तक की आय हो गई थी। इसी प्रकार नोयल कावर्ड की Bitter Sweet नामक नाटिका से उन्हें पहले ही अभिनय में ३० हज़ार पौंड की आय हुई थी और कुल मिलाकर तो इस पुस्तक से उन्हें एक लाख तक की प्राप्ति हुई थी। हाँ, इस एक लाख पौंड में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधिकांश सिनेमा की आमदनी थी, जो इस नाटिका के फ़िल्म से अमेरिका आदि देशों में हुई थी। यह पाठकों की रुचि-वैचित्र्य का द्योतक है।

इससे यह नहीं समझना चाहिए कि विदेशों में निर्धन लेखक हैं ही नहीं, क्योंकि इँगलैंड में ही फ्रैंसिस टॉमसन-जैसे प्रतिभाशाली कवि का जीवन

पेशाब के भयंकर दर्दों के लिए

एक नयी और आश्चर्यजनक ईजाद ! याने—

सूज़ाक (गनोरिया) की हुक्मी दवा

डा० जसानी का जगत्-विख्यात **'गोनोकिलर'** रजिस्टर्ड

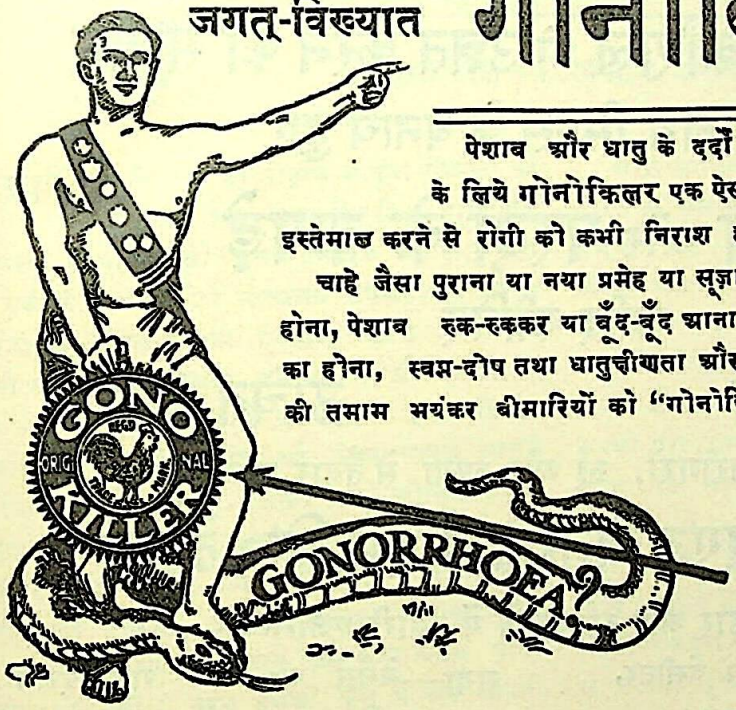

पेशाब और धातु के दर्दों को मार हटाने व निर्मूल करने के लिये गोनोकिलर एक ऐसी ही आश्चर्यजनक दवा है जिसका इस्तेमाल करने से रोगी को कभी निराश होना ही नहीं पड़ता।

चाहे जैसा पुराना या नया प्रमेह या सूज़ाक, पेशाब में मवाद आना, जलन होना, पेशाब रुक-रुककर या बूँद-बूँद आना, मूत्राशय के अंदर घाव या सूजन का होना, स्वप्न-दोष तथा धातुक्षीणता और औरतों तथा मर्दों की इस क़िस्म की तमाम भयंकर बीमारियों को "गोनोकिलर" जड़ से नष्ट कर देता है।

नक़ली से सावधान
ख़रीदने से पहले
दवा का नाम गोनोकिलर
और मुर्ग़ा छाप सीलबंध
पैकेट देख लीजिये

मूल्य ५० गोलियों की शीशी का दाम ३) रु० वी० पी० डाक व्यय आठ आना अलग

एकमात्र बनानेवाले—डॉ० डी० एन० जसानी M. L. गिरगाँव बैंक रोड, बंबई नं० ४

लखनऊ स्टाकिस्ट—किंग मेडिकलहाल अमीनाबाद पार्क।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कितने कष्ट में बीता था, यह संसार को विदित ही है। वहाँ भी प्रकाशकों को नवीन लेखकों के प्रथम प्रयासों पर पैसे बरबाद करना पड़ता है। पर हमारा तात्पर्य इस लेख में यही दिखलाने का है कि भारतवर्ष का अथवा हिंदी का सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक भी उस आय की स्वप्न में भी कल्पना नहीं कर सकता, जो इँगलैंड अथवा अमेरिका के साधारण लेखक के लिए भी सर्वथा सुलभ है।

यह सब देश की परतंत्रता का ही फल है और भगवान् ही जानता है कि हमारे साहित्यकारों के लिए कब ऐसा युग आवेगा, जब उन्हें दूसरों का मुहताज न होना पड़ेगा। मैं तो समझता हूँ कि जब तक हमारे धनिकों में दूसरों से उधार लेकर पढ़ने की आदत का अंत न होगा, तब तक यह दुर्दशा ऐसी ही रहेगी। और कितने ही तो ऐसे हैं, जो सैकड़ों रुपये शराब-कबाब में फूँक देते हैं, पर पुस्तकों के नाम पर उनकी नानी ही मर जाती है। ऐसी स्थिति में परमात्मा ही हमारे साहित्यकारों की रक्षा करें।

भारतीय कला-कौशल को उन्नत करने का साधन

देहली क्लाथ मिल्स के बनाये हुए

टेपस्टरी और परदों के कपड़े

खरीद कीजिए

नये डिज़ाइन उचित दाम

हिन्दुस्तानी कारीगरों, रुई और रुपया से तैयार होते हैं

देहली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स लि० देहली

यू० पी०, बिहार और राजपूताने में हमारी एजेन्सियाँ—

लखनऊ—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, गूँगा नवाब का महल।

कानपुर—मेसर्स सूरजप्रकाश बंसीधर, काहू की कोठी।

आगरा—देहली क्लाथ एण्ड मिल्स रिटेल शाप, जौहरी बाजार।

गया—मेसर्स रा० ब० रामचन्दराम हरिप्रसाद।

जयपुर—मेसर्स कन्हैयालाल मोलाराम, खांडा हवा महल।

अजमेर—मेसर्स कन्हैयालाल बृजमोहनलाल कैसरगंज।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

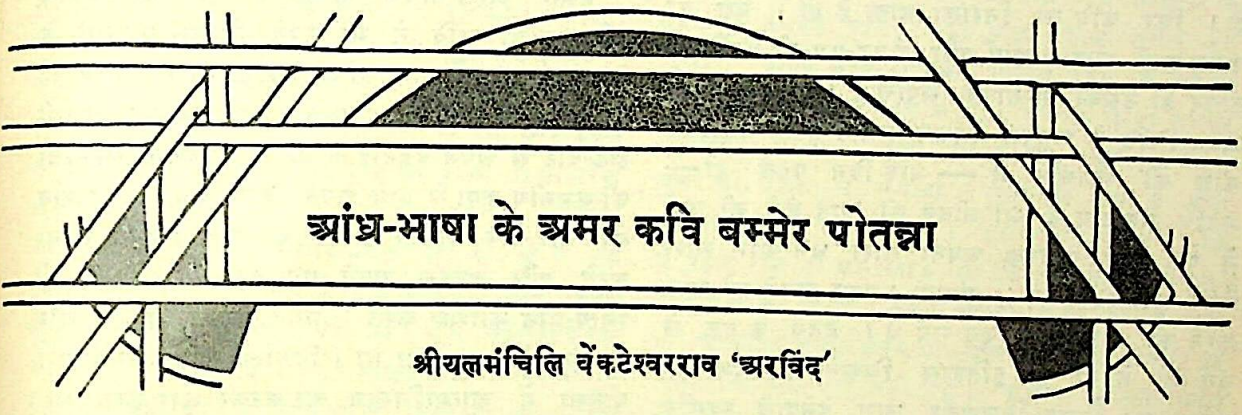

आंध्र-भाषा के अमर कवि बम्मेर पोतन्ना

श्रीयलमंचिलि वेंकटेश्वरराव 'अरविंद'

आज जब कि देश की राष्ट्रीय भावना विशाल हो उठी है और राष्ट्र-भाषा हिन्दी के द्वारा राष्ट्र की महान् विभूतियों को सुसम्पन्न करने की आराधना ज़ोर पकड़ने लगी है, ऐसे मंगलमय अवसर पर, हिन्दी के जिज्ञासु पाठक इसकी जिज्ञासा करेंगे कि उनके तुलसी और सूर के समान अनन्य भक्त और महाकवि अन्य भाषाओं में भी हुए हैं या नहीं ? इसी विचार से आज मैं एक ऐसे कवि को लेकर आपके सामने उपस्थित होना चाहता हूँ, जिसने अपने भौतिक जीवन में सुख का नाम नहीं जाना और ग़रीबी को ललकारकर आजीवन डटा रहा। पोतन्ना का कृषक - जीवन और उनकी प्रखर प्रतिभा, ये दोनों मिलकर महात्मा गांधी की इन बातों की कि लेखक का काम केवल पोथी लिखना ही नहीं ; वरन् उसको कम से कम अपनी रोटी के लिए ही सही, कुछ परिश्रम करना ज़रूरी है, पूरी दाद देते हैं। पोतन्ना सच्चे कृषक थे ; फिर भी उनके उदात्त भावों और उनकी कोमल कल्पना में कोई अड़चन नहीं पड़ी। वे किसान होकर भी कवियों के सिरताज हो गये।

भक्ति-साहित्य पर ग़ौर करने से पता चलता है कि भारत के समस्त प्रान्तों में भक्ति-साहित्य का आविर्भाव लगभग एक ही समय हुआ। आंध्रवाणी के वरपुत्र प्रसिद्ध भागवतकार बम्मेर पोतन्नाजी का जन्म लगभग सन् १४०० में आंध्र-प्रदेश के ओंटिमिट्टा गाँव, ज़िला कड़पा में हुआ। वे नियोगी ब्राह्मण थे। वे इस संसार में आये थे ग़रीबी को साथ लिये। निर्धनता उनकी परम्परागत संपत्ति थी। दिन-भर हल चलाकर आधा पेट खाकर पड़े रहना उनके बाप-दादाओं की वसीयत थी। घुटनों तक धोती और फटे-पुराने गमछे, यही उनकी वेष-भूषा थी। उस अकिंचन-परिवार में आप धूलभरे हीरे थे। कहा जाता है, उनका अध्ययन किसी गुरुकुल में नहीं हुआ। घर पर ही स्वाध्याय से शास्त्रों, पुराणों तथा वेदों का सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया। पठन-पाठन की अपेक्षा पेट की चिन्ता अधिक थी। हल जोतना अनिवार्य था। कभी भैंस चरानी पड़ती। ज़मीन भी उपजाऊ न थी ; पानी पड़ा तो खेती हुई, नहीं तो आकाशवृत्ति ही आधार थी।

यही ग़रीबी पोतन्ना को अमर कर गई। इसी ने

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकृति की बारीकी में घुसने का मार्ग साफ़ किया। जब तक चंचला लक्ष्मी का परित्याग न हो, तब तक भावुकता के गहरे महासागर में पैठने का अवकाश कहाँ? लक्ष्मी और सरस्वती इन दोनों में कब निभी है? एक की गति अधोगामिनी है तो दूसरी की ऊर्ध्वगामिनी। ग़रीबी ही मनुष्य को देवता बनाती है। फिर कवि तो निराला होता है ही। युग की उत्तप्त आहें, भग्न आशाएँ और जीवन-पथ की अनगिनत ठोकरें ही उसकी वास्तविक संपत्ति हैं। वह इन्हीं को लक्ष्य-सिद्धि के अनुपम साधन बनाता है। आधुनिक काल की चकाचौंध में — थोड़े दिन पहले ही— महर्षि टाल्स्टाय ने भी जीवन की थाह लेने की चाह में एक दिन एकाएक अपना सारा धन और सारा वैभव लुटा दिया था; कंगाल बनकर अपने को व्यङ्क करने की साधना में डूब गये थे। हृदय के रक्त से युग की वेदना का इतिहास लिखनेवाले, देश की दुर्दशा पर बिलख-बिलखकर जान देनेवाले स्वर्गीय प्रेमचंदजी भी इसी कोटि के हुए। संसार में सौ में निन्यानवे लोग ऐसे हैं, जो ग़रीबी को जीवन की सबसे बड़ी विपत्ति मानते हैं और आँसू बहाया करते हैं। अगर उनकी राय ली जाय तो वे पोतन्ना को मूर्ख कहेंगे। पोतन्ना अपनी प्रतिभा के बल पर सब कुछ पा सकते थे, लक्ष्मी को अपने पैरों पर लोटते देख सकते थे; परन्तु नहीं, अपनी प्रतिभा-पुत्री के साथ व्यभिचार कराकर पेट का पालना! यह उन्हें सह्य नहीं था। उनके विषय में कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। किसी दिन वे जंगल में भैंस चरा रहे थे कि एक वैरागी का साक्षात्कार हुआ। उनसे कुछ उपदेश पाकर उन्होंने उसको अपना गुरु बना लिया, और उसी दिन से सरस्वती की भी उन पर कृपा हुई। पोतन्ना निश्छल भक्त, सच्चे गृहस्थ वैरागी थे। वह उदारचेता कृषक थे। उनमें सहज प्रतिभा थी। उनकी प्रतिभा ने काल और परिस्थितियों पर विजय पाने का सफल प्रयत्न किया था। उनके समकालीन सभी कवि किसी न किसी राजा के दरबारी कवि थे। आश्रित व्यक्ति को कुछ न कुछ जी-हुज़ूरी करनी ही पड़ती है। चाहे आश्रयदाता कितना ही लंपट या मूर्ख हो, उसे बहादुर और विवेक का पुतला बनाना ही पड़ता है। पर पोतन्ना 'स्वांतःसुखाय' लिखते थे। तुलसीदास की तरह उनका भी यही अटल सिद्धान्त था कि—

"कीन्हें प्राकृत जन गुन गाना।
सिर धुनि गिरा लागि पछिताना॥"

हमारे चरित्र-नायक पोतन्ना के साले श्रीनाथ-जैसे प्रतिभाशाली कवि ने भी अपने विलास की तुष्टि के लिए राजाश्रय में जाना उचित समझा था। श्रीनाथ को हम तेलुगू का बिहारी कह सकते हैं। श्रीनाथ सदा राजसी ठाट-बाट से अपने बहनोई के घर आया करते, सरस्वती की कमनीय कृपा से प्राप्त अपने विपुल वैभव का प्रदर्शन कर बार-बार पोतन्ना के मन को पीड़ा देने की सोचा करते और बरबस अपने पथ पर घसीटने की भी नित्य-प्रति कोशिश करते; मगर पोतन्ना का मन और ही धातु से बना हुआ था। विचलित करते भी कैसे? पोतन्ना में आत्माभिमान कूट-कूटकर भरा हुआ था, सिद्धांत पर अड़ जाने का अखंड बल था और था अपनी प्राणप्यारी कल्पना-कन्या की लाज रखने का प्रण। एक दिन अपने साले की दिल्लगी पर झुँझलाकर पोतन्ना हुंकार के साथ कह उठे—

"बाल रसाल साल नवपल्लव कोमल काव्यकन्यकन्
कूलुलकिञ्चि यप्पडुपुकूडु भुजिंचुटकंटे सत्कवुल
हालिकुलैननेमि गहनांतर सीमल कंदमूल गो—
हालिकुलैननेमि निजदार सुतोदर पोषणार्थं मैं॥

भावार्थ—बाल रसाल के सुकोमल रंगीन पल्लवों के समान मृदुल अपनी काव्य-कन्या को दुष्ट-दुरात्मा उन कर्नाटक राजाओं के हाथ में सौंपकर, बदले में मुट्ठी भर जूठे टुकड़ों को पाने की आशा रखने की अपेक्षा अगर सत्कवि अपनी स्त्री और संतान के उदर-पोषण के लिए चाहे कृषक बनकर रहे, अथवा घने जंगलों में कंदमूल-फल खोदकर खानेवाला कोल-भील बनकर ही रहे तो इसमें क्या हानि है? अपनी कल्पना-कन्या के सतीत्व की रक्षा उस जार-वृत्ति से कई गुना श्रेष्ठ है।"

परिस्थितियाँ बार-बार पछाड़ी जाकर भी अपने शिकार को परास्त करने की ज़िद नहीं छोड़तीं;

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बल्कि चोट खाये हुए सर्प की तरह डस लेने की ताक में लगी रहती हैं। सुना जाता है, पोतन्ना के जीवन में भी ऐसी विकट घड़ियाँ आई थीं, जब कि वे स्वाभिमान के भव्य पथ से खिसकने लगे थे। दबी हुई भौतिक जीवन की उमंगें एक बार उमड़ चलीं। पोतन्ना भी श्रीनाथ की भाँति अपनी रमणीय कृति-कन्या को हाथ में लिये राजाश्रय की ओर बढ़े। पर आत्माभिमान बग़ावत कर बैठा। पैर आगे बढ़ नहीं सके। हृदय-सागर द्वंद्व के बड़वानल से विक्षुब्ध हो उठा। पत्नी की झिड़कियाँ और संतान की दुर्दशा से एक ओर हृदय में टीस उठी थी तो दूसरी ओर तपस्विनी वीणापाणि सरस्वती की आर्तध्वनि कानों में गूँज उठी। "दैवेच्छा बलीयसी," आख़िर मानव-हृदय ही तो था। एक दिन स्वतंत्रता पर सौ जान से फ़िदा होनेवाले हिन्दू-कुल-सूर्य महाराणा प्रताप को भी इन परिस्थितियों का लोहा मानना पड़ा था। पोतन्ना की आत्मा ने—जिसने थोड़ी देर के लिए आँखें मींच ली थीं—फिर से अँगड़ाई ली और उन दुष्ट घड़ियों को परास्त करके वाग्देवी को सांत्वना देते हुए उन्होंने कहा—"मेरी मा भारती, व्याकुल न हो, रो नहीं। कैटभ दैत्य का मर्दन करनेवाले ईश्वर की लाड़ली बहू, हे हिरण्यगर्भ ब्रह्मा की रानी, तुझको मैं अपने विलास के लिए उन नराधम, अत्याचारी राजाओं के कलुषित हाथों में नहीं बेचूँगा, नहीं बेचूँगा, नहीं बेचूँगा। विश्वास कर। इन कज्जल लगे नेत्रों की अश्रुधारा से क्यों अपना वक्षःस्थल भिगो रही है? तू अपने दास का यह अपराध क्षमा कर *।"

"ख़ैर, जो कुछ हो, उन्होंने भक्त के नाते सरल जीवन को ही अपना लिया था। कठिनाइयों से झगड़ते रहे, अपना अस्तित्व मिटा दिया।

पोतन्ना के अमर काव्य महाभागवत का परिचय

उस समय सारे भारत में मुसलमानों का बोलबाला था। उनकी लूट-खसोट से जनता बेचैन थी। सन् १४०० तक इधर आंध्र-राजाओं का भी प्रताप-सूर्य अस्त हो चला था। अराजकता चारों ओर फैल रही थी। उधर उत्तर में रामानन्द और कबीर की अमृत-मयी जगानेवाली ज्ञान-गर्भवाणी जनता के उत्तप्त हृदयों को शीतल कर रही थी, और इधर उसी समय आंध्रों के गत वैभव की याद करके पोतन्ना का सुप्त हृदय जाग पड़ा। समय के आघात ने आलस्य में डूबी हुई उनकी प्रतिभा को धक्का देकर सचेत कर दिया। उनके भक्ति-भावभरे विमल हृदय में यद्यपि शैव और वैष्णव का भेद न था, बचपन से ही उनकी उपासना-शक्ति 'एकमेवाऽद्वितीयं ब्रह्म' का पाठ सीख चुकी थी, फिर भी मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के प्रति उनका अधिक अनुराग था। इसी लिए कहते हैं कि वे पहले राम ही की खोज में निकले थे। संस्कृत-रामायण का अनुवाद करके अपना जीवन सार्थक करने की आकांक्षा उनके हृदय में तीव्र हो उठी थी। पर उनकी कामना पूरी नहीं हुई। कारण, भास्कर कवि उससे पहले ही आंध्र-भाषा में रामायण का रूपान्तर कर चुके थे (किन्तु यह रामायण आंध्र-जनता में उतनी प्रसिद्ध नहीं हुई, जितनी पोतन्ना की भागवत हुई। तुलसीकृत रामायण की तरह आंध्रों को निरंतर आनन्द में लीन करनेवाली यही भागवत है।) अब किया क्या जाय? हृदय को टटोलते-टटोलते एक दिन सहसा कृष्णचन्द्र के अलौकिक उत्कृष्ट चरित्र की ओर उनका ध्यान गया। कवि का हृदय आनन्द से विभोर हो उठा। श्रीकृष्ण का दिव्य मोहनरूप आँखों के सामने नाच उठा। बस, फिर क्या था, भक्ति की अजस्र धारा बह चली। कारण, उनके हृदय में कृष्ण की भी उतनी ही भक्ति थी, जितनी राम की—उनके लिए राम-कृष्ण, शिव और विष्णु सब समान थे। भेदभाव मिट चुका था।

अब हम पोतन्ना की रचना-प्रणाली और उनके भागवत पर एक विहंगम दृष्टि डालेंगे। उनके तीन ग्रन्थ माने जाते हैं—नारायणशतक, वीरभद्र-विजय और भागवत। नारायणशतक में तो समय-समय पर रचे हुए भक्ति के उद्गारमात्र हैं—जैसे तुलसीदास की दोहावली और कवितावली आदि; पर ये सब गौण ही हैं। उनका मुख्य ग्रन्थ भागवत ही है, जिससे

* विस्तार के भय से यहाँ पर केवल पद्यों का भावार्थ-मात्र दिया जाता है। —लेखक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कवि का अखण्ड यश युग-युगान्तर तक अक्षय अमर बना रहेगा।

महाकवियों की कृतियों में एक तरह की गम्भीरता, मनोहारिता और चिरन्तन सत्य की अनुपमेयता अपने आप प्रतिबिंबित होती है। उनकी भावनाएँ चिरंतन सत्य को लेकर चलती हैं। वे सामयिकता की धुन में चिरंतन सत्य को भूल नहीं जाते ; जीवन के सत्य को पीछे ढकेलकर उनकी रचनाएँ अपनी क्षणिक चकमक में नहीं नाचतीं। इसका मतलब यह नहीं कि सामयिकता उनके ऊपर अपना असर ही नहीं डालती, और वे सदा अलौकिक जीवन के ही पचड़े गाया करते हैं। कहने का मतलब यह कि सामयिकता महाकवि की विशालता में लुप्त होकर चिरंतन सत्य का रूप धारण करती है। महाकवि में मानव-जीवन के दोनों अंगों (पाप और पुण्य, वेदना और उल्लास, क्रन्दन और आनन्द) पर समान रूप से दृष्टि डालने और सोचने का पक्का संकल्प रहता है। वह दोनों पहलुओं पर अत्यन्त गम्भीरता के साथ—थोड़ी देर के लिए अपनी घृणात्मक वृत्तियों पर परदा डालकर भी—विचार-कर अन्त में दोनों का फ़ैसला सुनाता है। वह राक्षसों पर देवतों की विजय की ही कामना करता है। उस समय उसकी कल्पना किसी समय-विशेष में बँधी न रहकर तीनों कालों की अवरुद्ध भावनाओं को जन्म देती है। इसी लिए विज्ञजनों का कहना है कि महा-कवि का महाकाव्य समय की वाहवाही का साथ न देकर "कालोह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी" पर निर्भर रहता है। उसकी कल्पना काल के साथ अपना अस्तित्व न खोकर नित नई बनी रहती है। उसका काव्य जीवन का एक अंग न होकर सम्पूर्ण का उत्तरा-धिकारी बन जाता है। मानवता की परिपूर्ण अनुभूति उसके काव्य में व्यक्त होती है। हमारे पोतन्ना भी इसी कोटि के महाकवि थे। उनकी भागवत का बाह्य रूप वेदव्यास की ही भागवत का बना रहा ; परन्तु कवि की प्रखर प्रतिभा ने उसे निजी बना लिया, उसे अपने साँचे में ढाल लिया। भक्ति का आवेग मूल की सीमाओं को बहा ले गया। अठारह हज़ार श्लोकों की भित्ति पर तीस हज़ार पद्यों का अम्बरचुम्बी महा-विशाल रमणीय प्रासाद बन गया। पारलौकिक तत्व-जैसे दार्शनिक विषय भी कवि का रस-सिक्त हृदय पाकर अत्यन्त हृदयस्पर्शी हो गये हैं। भक्ति की मन्दाकिनी जगत् की नाना विषम समस्याओं को परिप्लावित करती और उन्हें उज्ज्वल बनाती वह चली है। रस के परि-पाक में कहीं भी छिछलापन नहीं आने पाया। अब संक्षेप में उसकी प्रसिद्ध घटनाओं की बानगी लीजिए—

प्रथम स्कन्ध में अश्वत्थामा और कलि के चरित्र-चित्रण में भयानक और बीभत्स-रसों की धारा बहाई गई है। कृष्ण की स्तुति और शुक-दर्शन में शान्तरस तथा कृष्ण का परमधाम-गमन दिखाकर करुणरस का स्रोत उमड़ाया गया है। द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थ स्कन्धों में मैत्रेय और विदुर का सरस संवाद, ध्रुव आदि की आख्यायिकाओं तथा कपिल-जन्म आदि कथाओं की घटनाओं से भक्ति का उज्ज्वल विवेचन हुआ है ; अद्वैत-सिद्धान्तों का अत्यन्त कमनीयता के साथ प्रतिपादन किया गया है। पोतन्ना पहुँचे हुए भक्त थे, इसका सुन्दर परिचय सप्तम स्कन्ध में मिलता है। उसका एक-एक शब्द इसी का द्योतक है कि भक्त अपनी इच्छा को भगवान् की इच्छा में मिला दे, और भगवान् के दिये हुए हाथ-पैरों की सफलता इसी में है कि वह उनको भगवान् की चरण-पूजा में लगा दे। सप्तम स्कन्ध में प्रह्लाद की कथा नव रसों से ओत-प्रोत है। मेरी समझ में कवि की मौलिक प्रतिभा, भक्ति-सम्बन्धी तल्लीनता और रसाभिज्ञता इसी में अधिक प्रस्फुटित हुई है। अष्टम स्कन्ध में कवि की सौन्दर्य-प्रियता, रस-लोलुपता तथा शब्द-शिल्प की अतुल चातुरी सहज चंचल गति से नाट्य करती है। ग्राह-ग्रस्त गजेन्द्र का करुण-विलाप पाठक के हृदय को आर्द्र कर देता है। स्वर्ग के प्रासादों के वर्णन के साथ-साथ गजेन्द्र की असह्य वेदना का मार्मिक चित्र खींचा गया है। ऐसा मालूम होता है कि कवि ने ज़बरदस्ती अपनी तपस्या के बल पर स्वर्ग को मर्त्य पर खींच लाने का प्रयत्न किया है। जीव की करुणामयी दशा की सम्पूर्ण व्यथा मानों गजेन्द्र को आहों में भर दी है। विविध राजों और रामायण की मंजुल गाथाओं तथा गंगावतरण आदि के प्रसंगों के अनेक वाग्वैदग्ध्यपूर्ण कोमल सुरभित

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

भाव-पुष्पों से नवम स्कन्ध महक उठा है। दशम स्कन्ध में कवि की शास्त्र-सम्बन्धी बहुज्ञता, मनोविज्ञान की जानकारी और प्रकृति की पर्यवेक्षणशीलता का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। कृष्ण के तो वे अनन्य भक्त थे ही, उनकी बाल-लीला का वर्णन वे अवश्य करते ही। उसे तो उन्होंने स्वाभाविकता की चरम सीमा पर पहुँचा दिया है। भ्रमर-गीत, गोपिका-विलाप, रुक्मिणी-कल्याण आदि और भी कई विषय हैं, जिनका परिचय देना अत्यन्त आवश्यक है; पर इस छोटे-से निबन्ध में सबका चित्रण नहीं हो सकता। अतः उनकी काव्य-सम्बन्धी कुछ और बातें लिखकर इसे समाप्त करना ठीक जान पड़ता है।

शैली और अलंकारों का विधान

पोतन्ना महाकवि थे, महाकवियों की शैली—कहने की रीति—अपने ढंग पर चलती है। उनकी अपनी-अपनी निराली गति होती है। इसलिए पोतन्ना की भी शैली अपनी गति से चली। पोतन्ना का अनुवाद विशुद्ध अनुवाद है, कहीं भी अंधानुकरण नहीं। पदरचना में पाठक को उलझा रखनेवाले दूरान्वय की कहीं भी गुंजाइश नहीं है। विचार बिलकुल साफ़ और सुलझे हुए। शैली शरत्काल की नदी की भाँति ऐसी निर्मल और गंभीर गति से चलती है कि उसके गर्भ में स्थित भाव-रत्न अपने सहज रूप में झलकने लगते हैं। शब्दों का इतना चुस्त और श्लिष्ट गठन है कि एक को हटाकर दूसरा शब्द बिठाया ही नहीं जा सकता। भाषा की मिठास प्रशंसनीय है। दुरूहता कहीं नाम-मात्र को नहीं। हरएक पद्य में ऐसा संगीत, ऐसा माधुर्य है कि पढ़कर पाठक की हृत्तंत्री बज उठती है, रागात्मिका-वृत्तियाँ रसलीन हो जाती हैं। वह संगीत मानों पाठक के मन को अपने स्वर-पंखों पर बिठाकर माधुर्यलोक में ले जाकर बिठा देता है। भाषा के तो वे सम्राट् थे। उनकी पद-रचना देखकर सहसा उन संस्कृत-कवियों की याद आ जाती है, जिनकी रचनाओं में अर्थ और भाव की अपेक्षा वाक्यावली ही अपने कोमल-स्निग्ध स्वरों के कारण बहादुरी लूटती है। यहाँ पर कुछ लोगों की यही शिकायत है कि पोतन्ना ने अर्थ-गांभीर्य की ओर ध्यान नहीं दिया। यह कुछ अंशों में सत्य है, किन्तु उन्होंने शैली को अधिक उपादेय, बोधगम्य तथा सरस बनाने ही के लिए वैसा किया है, न कि अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिए। उनकी शैली ठीक तुलसी की शैली की तरह है, जो अपनी सरलता से लोगों को ज़बरदस्ती आकृष्ट कर लेती है। कृत्रिमता का नाम नहीं। हाँ, यह सच है कि देव-स्तुति आदि में शैली कुछ गंभीर हो गई है। उनकी उद्गारात्मक शैली भी पढ़ने लायक़ है। रस और भावों के आवेश में शब्दों की कंजूसी नहीं की गई है। यह गुण सभी महाकवियों में देख पड़ता है। वे शब्दों की पुनरावृत्ति पर ध्यान न देकर दृश्य की पूर्ण अवतारणा करने में लगे रहते हैं। उस समय शब्दों को समाहार की कसौटी पर चढ़ाने का यत्न वे नहीं करते।

अप्रस्तुत-विधान में भी कवि ने कमाल हासिल किया है। अलंकार तो उनके एक-एक पद्य में बीसों आ गये हैं; लेकिन उनके निकट अलंकारों का उतना ही प्रयोजन था, जितने से उनके उद्गारों की अभिव्यक्ति हो, उनकी भावनाएँ मूर्त-रूप धारण कर सकें। वे जन्म-सिद्ध—बने-बनाये कवि थे, अतएव अलंकार अनजान में आप ही आप सुन्दर बन पड़े हैं। कितने ही नये-नये अलंकारों और छंदों को उन्होंने विषय के अनुकूल ईजाद किया है। दृश्य के बिंब-प्रतिबिंबभाव के चित्रण में वे कुशल कलाकार थे। ललित पदविन्यास में वे अपना सानी ही नहीं रखते।

रस-परिपाक की दृष्टि से वे अद्वितीय ठहरते हैं। भक्ति को ही उन्होंने अधिक प्रधानता दी है। जहाँ-जहाँ भक्ति-संबंधी प्रसंग आये हैं, वहाँ-वहाँ वह भावुकता में अधिक बह गये हैं। मूल से कई क़दम आगे बढ़ चले हैं। कवि का विरह-वर्णन भी अंतर्द्वंद्वों के साथ रोचक बन पड़ा है। जैसे सूर की प्रेम-विह्वल गोपिकाएँ उद्धव के सामने बिलखती हैं—"ऊधो मन नहीं हाथ हमारे। रथ चढ़ाय हरि संग गये लै मथुरा जबै सिधारे॥" वैसे ही रुक्मिणी भी कृष्ण को पाने के लिए छटपटाती हैं। उधर शिशुपाल के साथ उनका ब्याह निश्चित हो जाता है। शादी की तैयारियाँ होने लगती हैं। रुक्मिणी इधर श्रीकृष्ण के पास एक ब्राह्मण को भेजती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं तो उसके लौट आने में विलंब हो जाता है। तब वह वेदना के स्वर में जो चिंतन करती हैं, वह पढ़ते ही बनता है। श्रीकृष्ण के गुण-कीर्तन में मन वे-हाथ था, परिस्थितियाँ जकड़े हुई थीं। उस समय रुक्मिणी के हृदय के भावों के उत्थान-पतन का जो हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

"एकोरसः करुण एव" कहकर भवभूति ने उसकी जो प्राण-प्रतिष्ठा की, उसका समर्थन और पोषण यथार्थ में पोतन्ना ने किया है। उनका गजेंद्रमोक्ष इसी का प्रमाण है। गजेंद्र के स्वर में करुणरस की जो निष्पत्ति हुई है; उसे पढ़-सुनकर सचमुच पाषाणहृदयों में भी रस का संचार होने लगता है। गजेंद्र तो रूपकमात्र था; उन्होंने माया के फंदे में फँसे हुए जीवों की दुर्दशा पर देवतों तक को रुला दिया है। गजेंद्र के दर्दभरे करुण चीत्कार भक्तवत्सल भगवान् को बेचैन कर देते हैं। "भगवान् नंगे पैर, ख़ाली हाथ दौड़ते हैं। केलि-विलास में भगवान् मग्न थे, लक्ष्मी का अंचल हाथ में था; वेदना में उसको भी छोड़ना भूल गये। गरुड़ वाहन की भी याद नहीं पड़ती, मुँह पर छितराये हुए बाल भी सँवारने का अवकाश नहीं मिलता। भक्त की रक्षा में तत्पर भगवान् को सहसा इस रूप में देखा तो सारा देवलोक एक-एक करके पीछे हो लिया। पहले लक्ष्मी निकलीं, लक्ष्मी के पीछे रनिवास का समस्त परिवार, उसके पीछे पक्षींद्र गरुड़ और उसके साथ समूचा इंद्रलोक बेतहाशा दौड़ पड़ा।" कहते हैं, इस प्रसंग को पोतन्ना के साले श्रीनाथ ने जो सुना तो उनकी हँसी उड़ाई। कहा—"वाह जी! क्या ही अनुपमेय कल्पना है तुम्हारी! कहीं दुनिया में ऐसा होता है? तुम्हारे भगवान् भी कितने बहादुर हैं कि साथ एक लकड़ी भी नहीं ले गये। हाथ में अगर सुदर्शनचक्र भी नहीं रहा तो जाकर शत्रु की प्रदक्षिणा करेंगे? कहीं अच्छा होता यदि भगवान् के हाथ में कोई साधन रख देते। उस समय भावुक पोतन्ना लहू का घूँट पीकर रह गये। पर थे समय की ताक में। एक दिन पोतन्ना के घर पर श्रीनाथ आदि सब लोग एक साथ बैठे भोजन कर रहे थे। श्रीनाथ का लड़का कहीं बाहर खेल रहा था। मौक़ा पाकर पोतन्ना किसी बहाने बाहर चले आये और सामनेवाले कुएँ में एक बड़ा-सा पत्थर डालकर पुकारा—"श्रीनाथ! दौड़ो, दौड़ो, लड़का कुएँ में गिर गया।" सुनते ही श्रीनाथ का हृदय धक्-से रह गया। हत-बुद्धि हो जूठे ही हाथों वह कुएँ की तरफ़ दौड़े और उसके चारों ओर चक्कर काटने लगे। बस! पोतन्ना को मौक़ा मिल गया। लगे लथेड़ने—"अरे भाई! मामूली मनुष्य के ही हृदय में जब अपने बच्चे के ऊपर इतनी ममता है कि बिना रस्सी या किसी उपकरण के तुम इस प्रकार उसके उद्धार के लिए इतना व्याकुल हो रहे हो, तब सर्वशक्तिमान् और सबके पिता भगवान् के हृदय में अपने पीड़ित भक्तों के प्रति कितना अनुराग और कितनी वेदना होगी? अब भी तुम इसका अनुमान नहीं कर सकते?" अब श्रीनाथ के पास कोई जवाब न था। मन मसोसकर रह गये।

अब हिन्दी-साहित्य के महाकवियों के साथ थोड़े में पोतन्ना का साम्य दिखाना अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है, जिससे पाठक आसानी से जान जायँ कि पोतन्ना और उसी कोटि के हिन्दी-कवियों में कहाँ-कहाँ अंतर और कहाँ-कहाँ साम्य है। अगर हम कहें कि भक्त-शिरोमणि पोतन्ना तेलुगू के सूर हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी। दोनों कवि सच्चे उपासक थे। उनका उपासना-क्षेत्र भी एक था। भक्ति की तन्मयता भी बराबर थी। फिर भी—इतना साम्य होते हुए भी—दोनों का अपना-अपना मार्ग था। दोनों की दृष्टि भिन्न-भिन्न थी। यहाँ पर किसी को बड़ा या छोटा मानना अभीष्ट नहीं; प्रत्युत दोनों की विशेषताएँ दिखाना है। सूरदास गायक थे, गाना उन्हें प्रिय था। इसी गान-प्रियता ने उन्हें कवि बनाया था। यद्यपि उनमें प्रबंध-पटुता नहीं थी—या वे भावों के सहज आवेग को कथा की कृत्रिम शृंखला से बाँधना नहीं चाहते थे—फिर भी उनमें प्रतिभा इतनी अधिक थी कि एक ही भाव को कितने ही प्रकार से, कितनी ही रीतियों से वे कह गये थे। उनकी भावुकता भी अधिकतर दो ही तीन रसों को परिपुष्ट और समृद्ध कर गई। इन्हीं दो-तीन—शृंगार, शांत और वात्सल्य-रसों पर उनके हज़ारों-लाखों पद बन गये। पर पोतन्ना में प्रबंध-पटुता थी, उनकी भागवत में नवो रसों का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बढ़िया परिपाक हुआ है। पोतन्ना की रचना में विक्षेप शैली नहीं के बराबर है, या नहीं ही है, जो सूर के पदों में अक्सर पाई जाती है। इसका कारण मेरी समझ में सूर की विपुल वेदना थी, जो वर्णन-क्रम के बीच में ही उमड़ पड़ती थी। उनमें अपने आराध्यदेव के दर्शन की अनाहूत लगन थी, जो मना करने पर भी मचल पड़ती थी। सूर की शैली में कहीं-कहीं जो दुरूहता देख पड़ती है, वह पोतन्ना की शैली में नाम-मात्र को भी नहीं है।

इन दोनों महाकवियों के चरित्र-नायक श्रीकृष्ण जुदे-जुदे रूप में ही हमारे सामने आते हैं। सूर के श्रीकृष्ण सिर से पैर तक रस-लोलुप हैं, राधारमण हैं, गोपिकावल्लभ हैं और हैं वृन्दावनविहारी और मुरली बजानेवाले ग्वाल-बाल। पर पोतन्ना के श्रीकृष्ण लीला-धर और लोक-संग्रहकार दोनों हैं। उनके श्रीकृष्ण तुलसी के मर्यादापुरुषोत्तम राम के समान मानव-जीवन के प्रतिनिधि और लोक-संग्रहकार हैं। उनके श्रीकृष्ण राधारमण नहीं; बल्कि विवाह-सूत्र में बँधे हुए रुक्मिणीनाथ हैं। सूर के मुरलीधर की तरह पोतन्ना के भी श्रीकृष्ण मुरली बजानेवाले, साथ ही कर्तव्यपरायण भी हैं। हिन्दी के विज्ञ पाठकों के लिए अधिक ध्यान देने की बात यह है कि पोतन्ना ने श्रीकृष्ण को लोक-कल्याण करनेवाले तुलसी के राम बनाने का प्रयास किया है। पर खेद की बात है कि हिन्दी के किसी भी कवि ने कृष्ण को उस रूप में देखने की इच्छा ही न की। बंधनों से मुक्त होकर पहले भले ही सूर की कविता अध्यात्मवाद पर ही चली हो, किन्तु पीछे के कवि—बिहारी, देव आदि किसी भी कवि में यह बात नहीं देख पड़ती कि उसने कृष्ण को राधा के साथ न बाँधकर रुक्मिणी के साथ घूमते देखने का प्रयास किया हो।

पोतन्ना गृहस्थ होकर भी निर्लिप्त थे। भक्ति के आवेश में उन्होंने अपने हृदय के एक-एक रक्त-कण से भागवत का निर्माण कर अपनी मातृभाषा का मस्तक ऊँचा कर दिया। पोतन्ना की भागवत ने अपनी सुधा-वृष्टि से तेलुगू-जनता को जितना अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है, उतना और किसी ग्रंथ ने नहीं। उत्तर भारत में तुलसी की रामायण जीवन की प्रत्येक दशा में साथी बनकर आती है और लोगों में स्फूर्ति भरती रहती है। वही काम आंध्र लोगों में पोतन्ना की भागवत करती है। रामायण के दोहे-चौपाई जिस प्रकार लोगों की जिह्वा पर अनायास ही चढ़ जाते हैं, वैसे ही पोतन्ना के भी पद्य यहाँ लोगों को याद हैं। संक्षेप में सारांश यह कि जब तक आंध्रों का अस्तित्व क़ायम रहेगा, तब तक पोतन्ना और उनकी भागवत अमर रहेगी।

हिन्दुस्तान का नया आविष्कार

हिन्द टानिक क़ब्ज़ को दूर कर बदहज़मी को हटा देगा, आँख की रोशनी तेज़ कर बाल का पकना रोक देगा, पका बाल खूँटी से काला पैदा कर स्थायी काला रखेगा, नई ज़िन्दगी, नई ताक़त पैदा कर जवानी को फिर लौटा देगा, कमज़ोरी तथा झुर्रियाँ नष्ट कर बूढ़े को जवान-सा बना देगा। फ़ी शीशी ५) रु०। झूठा साबित करनेवाले को १००) रु० इनाम।

जड़ीबूटी दवाख़ाना पो० बिहार नरसरी (दरभंगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं तो उसके लौट आने में विलंब हो जाता है। तब वह वेदना के स्वर में जो चिंतन करती हैं, वह पढ़ते ही बनता है। श्रीकृष्ण के गुण-कीर्तन में मन बे-हाथ था, परिस्थितियाँ जकड़े हुई थीं। उस समय रुक्मिणी के हृदय के भावों के उत्थान-पतन का जो हृदयस्पर्शी वर्णन हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

"एकोरसः करुण एव" कहकर भवभूति ने उसकी जो प्राण-प्रतिष्ठा की, उसका समर्थन और पोषण यथार्थ में पोतन्ना ने किया है। उनका गजेंद्रमोक्ष इसी का प्रमाण है। गजेंद्र के स्वर में करुणरस की जो निष्पत्ति हुई है; उसे पढ़-सुनकर सचमुच पाषाणहृदयों में भी रस का संचार होने लगता है। गजेंद्र तो रूपकमात्र था; उन्होंने माया के फंदे में फँसे हुए जीवों की दुर्दशा पर देवतों तक को रुला दिया है। गजेंद्र के दर्दभरे करुण चीत्कार भक्तवत्सल भगवान् को बेचैन कर देते हैं। "भगवान् नंगे पैर, ख़ाली हाथ दौड़ते हैं। केलि-विलास में भगवान् मग्न थे, लक्ष्मी का अंचल हाथ में था; वेदना में उसको भी छोड़ना भूल गये। गरुड़ वाहन की भी याद नहीं पड़ती, मुँह पर छितराये हुए बाल भी सँवारने का अवकाश नहीं मिलता। भक्त की रक्षा में तत्पर भगवान् को सहसा इस रूप में देखा तो सारा देवलोक एक-एक करके पीछे हो लिया। पहले लक्ष्मी निकलीं, लक्ष्मी के पीछे रनिवास का समस्त परिवार, उसके पीछे पक्षींद्र गरुड़ और उसके साथ समूचा इंद्रलोक बेतहाशा दौड़ पड़ा।" कहते हैं, इस प्रसंग को पोतन्ना के साले श्रीनाथ ने जो सुना तो उनकी हँसी उड़ाई। कहा—"वाह जी! क्या ही अनुपमेय कल्पना है तुम्हारी! कहीं दुनिया में ऐसा होता है? तुम्हारे भगवान् भी कितने बहादुर हैं कि साथ एक लकड़ी भी नहीं ले गये। हाथ में अगर सुदर्शनचक्र भी नहीं रहा तो जाकर शत्रु की प्रदक्षिणा करेंगे? कहीं अच्छा होता यदि भगवान् के हाथ में कोई साधन रख देते। उस समय भावुक पोतन्ना लहू का घूँट पीकर रह गये। पर थे समय की ताक में। एक दिन पोतन्ना के घर पर श्रीनाथ आदि सब लोग एक साथ बैठे भोजन कर रहे थे। श्रीनाथ का लड़का कहीं बाहर खेल रहा था। मौक़ा पाकर पोतन्ना किसी बहाने बाहर चले आये और सामनेवाले कुएँ में एक बड़ा-सा पत्थर डालकर पुकारा—"श्रीनाथ! दौड़ो, दौड़ो, लड़का कुएँ में गिर गया।" सुनते ही श्रीनाथ का हृदय धक्-से रह गया। हत-बुद्धि हो जूठे ही हाथों वह कुएँ की तरफ़ दौड़े और उसके चारों ओर चक्कर काटने लगे। बस! पोतन्ना को मौक़ा मिल गया! लगे लथेड़ने—"अरे भाई! मामूली मनुष्य के ही हृदय में जब अपने बच्चे के ऊपर इतनी ममता है कि बिना रस्सी या किसी उपकरण के तुम इस प्रकार उसके उद्धार के लिए इतना व्याकुल हो रहे हो, तब सर्वशक्तिमान् और सबके पिता भगवान् के हृदय में अपने पीड़ित भक्तों के प्रति कितना अनुराग और कितनी वेदना होगी? अब भी तुम इसका अनुमान नहीं कर सकते?" अब श्रीनाथ के पास कोई जवाब न था। मन मसोसकर रह गये।

अब हिन्दी-साहित्य के महाकवियों के साथ थोड़े में पोतन्ना का साम्य दिखाना अत्यन्त आवश्यक जान पड़ता है, जिससे पाठक आसानी से जान जायँ कि पोतन्ना और उसी कोटि के हिन्दी-कवियों में कहाँ-कहाँ अंतर और कहाँ-कहाँ साम्य है। अगर हम कहें कि भक्त-शिरोमणि पोतन्ना तेलुगू के सूर हैं तो कोई अत्युक्ति न होगी। दोनों कवि सच्चे उपासक थे। उनका उपासना-क्षेत्र भी एक था। भक्ति की तन्मयता भी बराबर थी। फिर भी—इतना साम्य होते हुए भी—दोनों का अपना-अपना मार्ग था। दोनों की दृष्टि भिन्न-भिन्न थी। यहाँ पर किसी को बड़ा या छोटा मानना अभीष्ट नहीं; प्रत्युत दोनों की विशेषताएँ दिखाना है। सूरदास गायक थे, गाना उन्हें प्रिय था। इसी गान-प्रियता ने उन्हें कवि बनाया था। यद्यपि उनमें प्रबंध-पटुता नहीं थी—या वे भावों के सहज आवेग को कथा की कृत्रिम शृंखला से बाँधना नहीं चाहते थे—फिर भी उनमें प्रतिभा इतनी अधिक थी कि एक ही भाव को कितने ही प्रकार से, कितनी ही रीतियों से वे कह गये थे। उनकी भावुकता भी अधिकतर दो ही तीन रसों को परिपुष्ट और समृद्ध कर गई। इन्हीं दो-तीन—शृंगार, शांत और वात्सल्य-रसों पर उनके हज़ारों-लाखों पद बन गये। पर पोतन्ना में प्रबंध-पटुता थी, उनकी भागवत में नवो रसों का

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बढ़िया परिपाक हुआ है। पोतन्ना की रचना में विक्षेप शैली नहीं के बराबर है, या नहीं ही है, जो सूर के पदों में अक्सर पाई जाती है। इसका कारण मेरी समझ में सूर की विपुल वेदना थी, जो वर्णन-क्रम के बीच में ही उमड़ पड़ती थी। उनमें अपने आराध्यदेव के दर्शन की अनाहूत लगन थी, जो मना करने पर भी मचल पड़ती थी। सूर की शैली में कहीं-कहीं जो दुरूहता देख पड़ती है, वह पोतन्ना की शैली में नाम-मात्र को भी नहीं है।

इन दोनों महाकवियों के चरित्र-नायक श्रीकृष्ण जुदे-जुदे रूप में ही हमारे सामने आते हैं। सूर के श्रीकृष्ण सिर से पैर तक रस-लोलुप हैं, राधारमण हैं, गोपिकावल्लभ हैं और हैं वृन्दावनविहारी और मुरली बजानेवाले ग्वाल-बाल। पर पोतन्ना के श्रीकृष्ण लीला-धर और लोक-संग्रहकार दोनों हैं। उनके श्रीकृष्ण तुलसी के मर्यादापुरुषोत्तम राम के समान मानव-जीवन के प्रतिनिधि और लोक-संग्रहकार हैं। उनके श्रीकृष्ण राधारमण नहीं; बल्कि विवाह-सूत्र में बँधे हुए रुक्मिणीनाथ हैं। सूर के मुरलीधर की तरह पोतन्ना के भी श्रीकृष्ण मुरली बजानेवाले, साथ ही कर्तव्यपरायण भी हैं। हिन्दी के विज्ञ पाठकों के लिए अधिक ध्यान देने की बात यह है कि पोतन्ना ने श्रीकृष्ण को लोक-कल्याण करनेवाले तुलसी के राम बनाने का प्रयास किया है। पर खेद की बात है कि हिन्दी के किसी भी कवि ने कृष्ण को उस रूप में देखने की इच्छा ही न की। बंधनों से मुक्त होकर पहले भले ही सूर की कविता अध्यात्मवाद पर ही चली हो, किन्तु पीछे के कवि—बिहारी, देव आदि किसी भी कवि में यह बात नहीं देख पड़ती कि उसने कृष्ण को राधा के साथ न बाँधकर रुक्मिणी के साथ घूमते देखने का प्रयास किया हो।

पोतन्ना गृहस्थ होकर भी निर्लिप्त थे। भक्ति के आवेश में उन्होंने अपने हृदय के एक-एक रक्त-कण से भागवत का निर्माण कर अपनी मातृभाषा का मस्तक ऊँचा कर दिया। पोतन्ना की भागवत ने अपनी सुधा-वृष्टि से तेलुगू-जनता को जितना अपनी ओर आकृष्ट कर लिया है, उतना और किसी ग्रंथ ने नहीं। उत्तर भारत में तुलसी की रामायण जीवन की प्रत्येक दशा में साथी बनकर आती है और लोगों में स्फूर्ति भरती रहती है। वही काम आंध्र लोगों में पोतन्ना की भागवत करती है। रामायण के दोहे-चौपाई जिस प्रकार लोगों की जिह्वा पर अनायास ही चढ़ जाते हैं, वैसे ही पोतन्ना के भी पद्य यहाँ लोगों को याद हैं। संक्षेप में सारांश यह कि जब तक आंध्रों का अस्तित्व क़ायम रहेगा, तब तक पोतन्ना और उनकी भागवत अमर रहेगी।

हिन्दुस्तान का नया आविष्कार

हिन्द टानिक क़ब्ज़ को दूर कर बदहज़मी को हटा देगा, आँख की रोशनी तेज़ कर बाल का पकना रोक देगा, पका बाल खूँटी से काला पैदा कर स्थायी काला रखेगा, नई ज़िन्दगी, नई ताक़त पैदा कर जवानी को फिर लौटा देगा, कमज़ोरी तथा झुर्रियाँ नष्ट कर बूढ़े को जवान-सा बना देगा। फ़ी शीशी ५) रु०। झूठा साबित करनेवाले को १००) रु० इनाम।

जड़ीबूटी दवाख़ाना पो० बिहार नरसरी (दरभंगा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

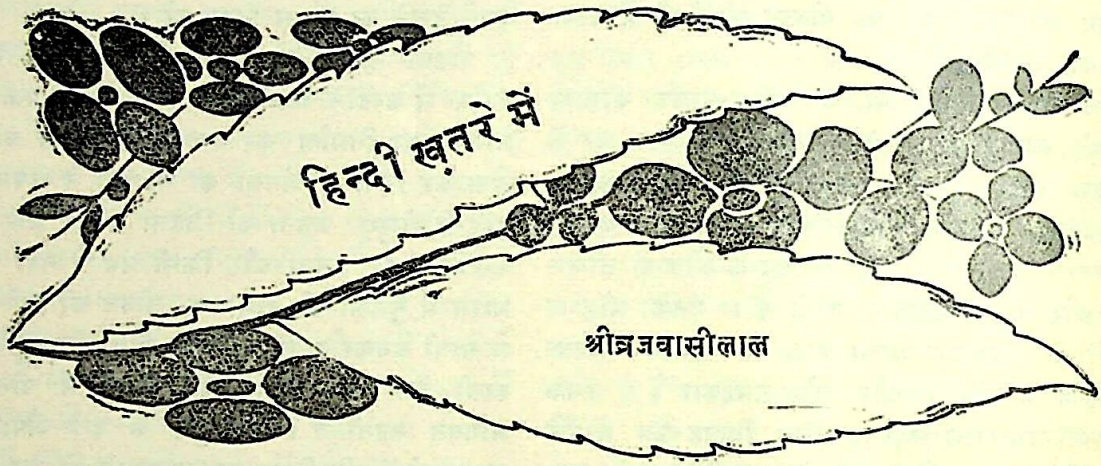

[यह लेख सन् १९३७ के अन्त में लिखा गया था। कारणवशात् यह आज तक छपाया जा न सका।]

सन् १९३७ की गर्मियों के किसी महीने की 'सरस्वती' में डा० धीरेन्द्र वर्मा का एक लेख छपा था, जिसका आशय था कि 'आजकल की राष्ट्रीयता आदि भावनाएँ और प्रवृत्तियाँ हिन्दी को धीरे-धीरे उर्दू की ओर ले जा रही हैं।' उन्हें भय है कि वह राष्ट्रीयता और सारल्य के फेर में पड़कर अपने जन्मजात गुण और स्वरूप को बदलते हुए कुछ की कुछ न हो जाय। डाक्टर साहब के इस कथन से मैं भी सहमत हूँ और यही भय मुझे भी सालता* रहता है। पर, जो कुछ हो, हमारी भाषा पूर्ण समृद्ध नहीं हुई, उसमें शब्दों की अत्यधिक कमी है। सो हमें बाहर से अभी बहुत कुछ अपनाना पड़ेगा—हाँ, डाक्टर साहब के और मेरे कथन को ध्यान में रखते हुए—राष्ट्रभाषा को उक्त भयों से बचाते हुए।

इसका उपाय क्या है? इसके जितने भी अन्य उपाय हों—उनसे मुझे यहाँ ग़रज़ नहीं—पर एक सरल तरीक़ा हिन्दी को उर्दूपन के प्रभाव से बचाने का यह है कि उसमें ग्रामीण शब्दों और भावों की भी भरमार की जाय। हमें दूसरों का मुँह ताकने की तभी ज़रूरत पड़ती है, जब हम निर्धन होते हैं। हिन्दी-भाषा अभी निर्धन है—बहुत निर्धन। सो यह होगा ही कि वह लुक-छिपकर दूसरी भाषाओं के शब्द और भाव अपने में मिलाती जायगी। उसे ऐसा करना ही पड़ेगा। इसके बिना उसका काम न चलेगा। तो फिर क्यों न कोई ऐसा उपाय किया जाय कि उसका भण्डार भी भरे और वह उर्दूपन अथवा संस्कृतता का जामा भी न पहने।

* कष्ट पाना। (व्रजभाषा)

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

इनमें से एक काम तो हम कर चुके । वह है उसे (हिन्दी को) संस्कृतता के पंजे से छुड़ाने का काम । इससे हम मुश्किल से या सरलतापूर्वक, जो कुछ भी हो, हाल में ही निबटे । किंतु अब देखते हैं कि हिन्दी बड़ी तीव्र गति से उर्दू की ओर बढ़ रही है—इसे भी रोकना पड़ेगा । राष्ट्रीयता, सारल्य और भाषा-भाषियों के साथ समझौते का मैं विरोधी नहीं; किंतु जिस राष्ट्रीयता, सारल्य और समझौते के फल-स्वरूप किसी दिन हमारा अस्तित्व मिट जाय, उसका मैं क़ायल नहीं । संस्कृत से तो हमने लिया ही—इतना लिया कि हिन्दी का लगभग आधा अंश उसी से बना है—परन्तु उर्दू से भी हमने अब काफ़ी ले लिया । संस्कृत-भाषा से जितना लिया, उतना हम उर्दू से ले नहीं सकते । लेना नहीं चाहिए । संस्कृत हिन्दी की जननी है, उर्दू आदि अन्य भाषाएँ उसकी सहेलियाँ । उनका काम सहायक का है । सो उर्दू से हमें जितनी मदद लेनी चाहिए थी, हम ले चुके ; अब आगे लेने में ख़तरा है—धीरे-धीरे अपने अस्तित्व को मिटाना है ।

मैंने कहा है कि संस्कृत से लेने का कार्य हमने किया, और अब बन्द कर दिया । अँगरेज़ी से भी हमने काफ़ी लिया और एक तरह से अभी और लेना है । वह भाषा समृद्ध है, उसका कोष बड़ा है, उसका साहित्य बहुमुखी है । उससे हमें अभी बहुत से विज्ञान-शास्त्र और कलाओं के शब्द लेने हैं—कुछ मूलरूप में और अधिकतर अनुवादरूप में । पर उर्दू से हमें अब कोई वास्ता नहीं ; बल्कि, मैं कह चुका हूँ कि उसकी ओर और अधिक बढ़ने में ख़तरा है । उर्दूवालों से हम इससे अधिक समझौता नहीं कर सकते, जितना हमने आज तक किया । हम अब असमर्थ हैं, लाचार हैं । फिर हिन्दीवाले ही क्यों समझौते की हानि उठावें ? उर्दूवाले क्यों नहीं ? हिन्दीवालों ने बहुत-कुछ किया ; अब उर्दू-वाले ही समझौते के बाक़ी अंश को पूरा कर दें । उर्दू अभी जैसी-की-तैसी बनी है । वह अपने यथा-रूप में है । हम उर्दूवालों की ओर बढ़े ; अब उर्दू-वाले हमारी ओर बढ़ें । बस, कुछ दिनों में हिन्दी राष्ट्रभाषा बन जायगी । राष्ट्रभाषा के लिए लिपि तो हिन्दी की (देवनागरी) रहेगी ही । उसकी सुविधा और सर्वाङ्गता की चर्चा करना व्यर्थ है । हमने हिन्दी से संस्कृत तत्समों की बहुलता, समास-जाल, आलंकारिकता, वाक्यों की क्लिष्टता आदि को दूर किया, तब, उसके बाद, कुछ दूर तक उर्दू की ओर झुके ; अब उन्हें चाहिए कि वे अपनी उर्दू से अरबीपन और फ़ारसीपन निकालें तथा किसी हद तक हिन्दी की ओर आवें । समझौते, सारल्य और राष्ट्रीयता के सारे प्रश्न हल हो जायँगे ।

जो हो, मैं इस विषय पर अधिक न लिखकर यह जतलाना चाहता हूँ कि आज हमें उर्दू और अँगरेज़ी के बाद ग्राम्य भाषाओं की ओर झुकना पड़ेगा—विशेषतः, फ़िलहाल, संयुक्तप्रांत की ग्राम्य भाषाओं की ओर । हिन्दी के निर्माण में पहले इनका भी ज़बरदस्त हाथ रहा है ; और सच पूछिए तो इन्हीं से निस्सृत होकर हिन्दी आज अपने संस्कृत (संस्कार किये हुए) रूप में आई । हम भारतवासी अधिकतर ग्रामीण हैं ; गाँवों से हमारा घनिष्ठ सम्बन्ध है : हमें भावी ग्रामीण संतान को शिक्षित एवं संस्कारयुक्त करना है । फिर, थोड़ा-बहुत शिक्षित बनाकर, उसके अंदर हमें स्वतंत्रता की बिजली प्रविष्ट करानी है, उसे आज़ादी का संदेश सुनाना है । इस आज़ादी के संदेश को हम तभी सुना सकते हैं, जब गाँवों के लोग हमारी बोली समझें—हमारे शब्दों से वे अभिज्ञ हों । इसके लिए भी हमें ग्रामीण बोलियों की ओर जाना पड़ेगा । हिन्दी के अंदर ग्रामीण शब्दों को भरना पड़ेगा । हिन्दीवालों की ऐसी मनोवृत्ति रही है, और अभी है, कि यदि किसी लेखक ने अपने लेख या पुस्तक में, भूल से, या किसी ख़ास उद्देश्य को लेकर, कोई ग्रामीण शब्द रख दिया, तो उसे अनभिज्ञ या अल्पज्ञ समझकर उसे हिकारत की नज़र से देखते

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

हैं। अब यह न होना चाहिए। हम इसी नज़र से कुछ वर्षों पहले, उर्दू के शब्दों का इस्तेमाल करनेवालों को भी तो देखते थे। किन्तु समय ने किसी के देखने की परवा न की और आज हिन्दी का मँजा हुआ रूप उर्दू-शब्दों से जितना भरा है, उसे सभी विज्ञ जानते हैं। ग्रामीण शब्दों के बारे में भी आख़िर यही होगा। काम न चलने पर एक दिन ग्रामीण शब्दों की बाढ़ आवेगी, और इच्छा करते हुए भी कोई उसे रोकने में समर्थ नहीं होगा। सो उन्हें हिन्दी-भाषा में आज से ही आने दो। यह तो मैं कह चुका हूँ कि मेरा मतलब विशेषतः व्रज, अवधी, बुन्देलखंडी आदि भाषाओं के शब्दों से है, जो अधिकतर संयुक्त-प्रान्त की भाषाएँ हैं और जिनसे हिन्दी का वर्तमान रूप बना तथा जिनके शब्द हिन्दी में घनेरे हैं।

मेरे उक्त कथन का तात्पर्य यह कदापि नहीं कि हमें हिन्दी को उर्दू बनाने के बजाय गाँवों की बोली बना डालना चाहिए। यह भी मेरे कहने का मतलब नहीं कि हिन्दी के अंदर हमें जैसे कुछ भी हों, गँवारू शब्द भर देने चाहिए, और वे भी अत्यधिक मात्रा में। नहीं, इसकी भी सीमा होगी। हिन्दी को ग्रामीणता की ओर ले जाना कहाँ तक उचित है, अर्थात् कहाँ तक ले जाकर उसे रोक देना होगा—इसका निर्धारण भविष्य करेगा। गँवारू, अनुपयुक्त (Inappropriate) और अनावश्यक शब्दों से मेरा मतलब क़तई नहीं है। मैं तो यही चाहता हूँ कि लेखक को, हिन्दी-भाषा में शब्दों की कमी के कारण, या अपनी ही कमज़ोरी के सबब से, कहीं पर हिन्दी में प्रचलित उपयुक्त शब्द न मिल रहा हो, और उसके पास एक अच्छा-सा, उपयुक्त और अभिव्यंजक, ग्रामीण सुबोध शब्द हो, तो क्यों न वह उसे, और उसे ही काम में लावे? प्रचलित-अप्रचलित का विचार कम-से-कम अभी नहीं करना चाहिए। हिन्दी जवान होकर भी कई दृष्टियों से अभी अपने शिशु या बाल-रूप में है; उसके भरण-पोषण का अधिकार अभी सबको होना चाहिए। हाँ, धाँधली-बाज़ी का मैं भी पक्षपाती नहीं हूँ; उसको किसी हद तक रोकना चाहिए। इसके लिए कोई सभा या संस्था स्थापित हो, जो लेखकों और कवियों द्वारा प्रयुक्त अनुपयुक्त, अनड्वान् शब्दों का बहिष्कार करे तथा लेखकों और संपादकों को उनकी अनुपयुक्तता, अनड्वानता के बारे में समझावे या उससे उन्हें सूचित करे।

सारांश यह कि हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने की ग़रज़ से इतना सरल और सुबोध अथवा ग्रामीण न बनाया जाय कि उसका अस्तित्व ही मिट जाय और न उर्दू के पक्षपातियों से समझौते के नाम पर उसे उर्दू की ओर इतना ले जाया जाय कि वह कुछ दिनों में बिलकुल उर्दू ही बन जाय। इस समय पिछली बात की ही सबसे अधिक आशंका है; क्योंकि हिन्दी और उर्दू का व्याकरण एक ही है। सो जहाँ हिन्दी से संस्कृत के बचे हुए तत्सम शब्दों का, एक-एक करके लोप होता गया, और उर्दू शब्दों तथा मुहावरों को प्रसन्नतापूर्वक आमंत्रित किया गया, वहाँ हिन्दी को एक-न-एक दिन लुप्त हुई समझो। हाँ, कदाचित् वह लिपि-मात्र के रूप में रह जाय तो रह जाय। इसलिए हमें यह चाहिए कि जैसे हम नाम को, और किसी हद तक कर्म से भी, मुसलमान ही क्यों न हो जायँ, पर अपने वैदिक संस्कृति, प्राचीन अध्यात्म की ओर अपनी अभिरुचि, प्रवृत्ति तथा भारतीयता को तो हमें लुप्त नहीं होने देना चाहिए—उस महत्त्वपूर्ण उपयोगी चीज़ से औरों का तो फ़ायदा होगा ही, हमारे अस्तित्व का चिह्न भी उससे क़ायम रहेगा—ठीक वैसे ही, हमें उर्दू से सहयोगिनी का काम लेते हुए, या ले चुकने के बाद, हिन्दी के अस्तित्व की रक्षा करनी चाहिए। उसे ख़तरे में न डालना या श्मशान-भूमि में न दफ़नाना चाहिए।

गढ़वाली की सिफ़ारिश

हिन्दी का भण्डार भरने के लिए अवधी, व्रज,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुन्देलखंडी आदि भाषाओं की सिफ़ारिश करते हुए गढ़वाली होने के कारण गढ़वाली के प्रति मेरा पक्षपात होना स्वाभाविक है। लेकिन, मैं समझता हूँ, मैं कोरा पक्षपात भी नहीं कर रहा हूँ। उसके कारण हैं। हिन्दी की पूर्वकालीन कविताओं में गढ़वाली शब्दों का भी काफ़ी स्थान है, जो आधुनिक हिन्दी-गद्य में नहीं है। शुद्ध गढ़वाली शब्दों का तो रहा ही, साथ ही उनके बिगड़े हुए अथवा पूर्व रूप के भी शब्दों का रहा है। पूर्वकालीन कविता से मेरा मतलब ब्रजभाषा की कविता से है। ख़ैर, इसकी भी बात नहीं। असली बात यह है कि एक तो मेरी उपर्युक्त सिफ़ारिश में ग्रामीण भाषाओं के अंदर गढ़वाली भाषा भी आ गई, दूसरे, गढ़वाली भाषा में कितने ही ऐसे सुन्दर, भावव्यंजक और उपयुक्त शब्द हैं, जिनकी जोड़ के शब्द हिन्दी में नहीं हैं, और न बनाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, ऊपर मैंने एक जगह जो 'अनड्वान्' * शब्द प्रयुक्त किया, वह गढ़वाली है और उसके जोड़ का, उसी के समान भाव प्रकट करनेवाला शब्द, मुझे विश्वास है, हिन्दी में नहीं है। 'गँवारू' और 'अक्खड़' शब्द उससे पीछे और उसकी तरह के नहीं हैं (Not of its kind or class)। 'अक्खड़' शब्द 'अनड्वान्' का पर्यायवाची बहुत-कुछ हो सकता है, किंतु मनुष्य के विशेषण के रूप में, शब्द के नहीं। इसी तरह ख़ुद (दुखमयी स्मृति), 'कलकली' (दया), 'रौत्याली' आदि शब्द भी हैं। ख़ैर, मेरा कहने का आशय इतना ही है कि गढ़वाली भी ग्रामीण भाषाओं में एक ऐसी भाषा है, जिसका अपना साहित्य हो या न हो, इससे हमें कोई ग़रज़ नहीं, पर जिसके पास हिन्दी को देने और उसका गुण या महत्त्व बढ़ाने के लायक़ अत्यधिक शब्द हैं। उसकी उपमाएँ, मुहाविरे आदि भी हिन्दीवालों के काम की वस्तु सिद्ध होंगे। अतः हमें (हिन्दी के शुभचिन्तकों को) चाहिए कि गढ़वाली भाषा से परिचय बढ़ाकर उसक द्वारा भी हिन्दी का उपकार करें। परिचय बढ़ाने का एकमात्र साधन यह हो सकता है कि गढ़वाली नवयुवक ही गढ़वाली से अनभिज्ञ हिन्दी-जनता को गढ़वाली से परिचित करावें। इसके लिए वे गढ़वाली-भाषा के सम्बन्ध में लेख और पुस्तकें लिख सकते हैं। हिन्दी-जनता को भी चाहिए कि वह गढ़वाली का आदर करे, कम-से-कम एक ग्रामीण भाषा के नाते, और हिंदी में अन्यान्य ग्रामीण भाषाओं के शब्दों की तरह उसके भी शब्दों का उपयोग कर उसके द्वारा हिंदी को लाभ पहुँचावे।

* 'अनड्वान्' शब्द संस्कृत भी है। अर्थ होता है बैल। कदाचित् बैल की सींग मारने की वृत्ति के कारण ही अक्खड़, उजड्ड मनुष्य का गढ़वाली विशेषण 'अनड्वान्' हुआ।

बे-रोज़गारों को रोज़गार

आप अपने ख़ाली समय में रोज़ाना ४-५ घंटे काम करके ५० से १०० रुपया माहवार तक कमा सकते हैं। आज ही नियम मुफ़्त मँगायें।

मैनेजर—माधुरी, लखनऊ.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

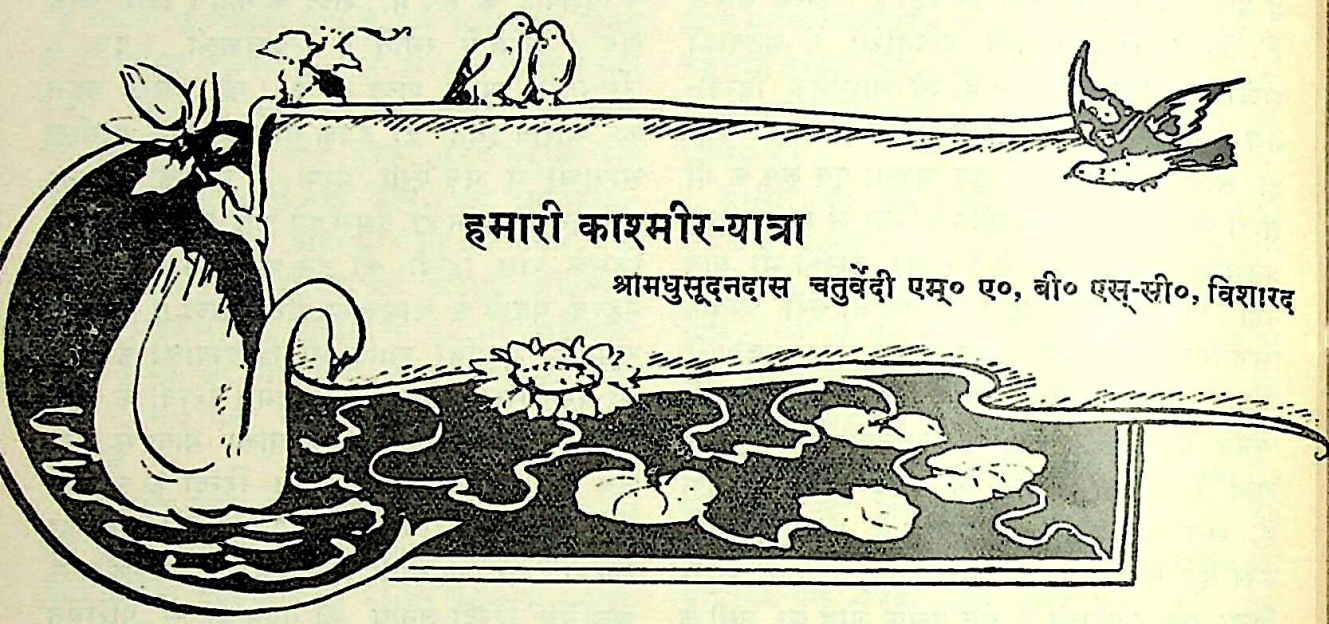

हमारी काश्मीर-यात्रा

श्रीमधुसूदनदास चतुर्वेदी एम्० ए०, बी० एस्-सी०, विशारद

न कोई दृढ़ विचार था और न कोई विस्तृत आयोजन। साथ अच्छा मिल गया और ता० ४ जून के मध्याह्न में हम लोग चल पड़े। उस समय की उमस और गर्मी को याद करना यहाँ बैठकर संभव नहीं। पाठक उससे भली भाँति परिचित हैं। कविवर कौशलेन्द्रजी के शब्दों में—

"तपता धरातल था तथा गिरिशृंग जाते थे जले;
छाया छिपी थी कन्दरों में, और वृक्षों के तले—
थे तृषित जीव समस्त होकर त्रस्त आतप दाह में;
किरणें उतर आईं धरा पर थीं सलिल की चाह में।"

का दृश्य भली भाँति उपस्थित था। केवल एक आशा इस कठिन दोपहरी में हमारी सहायता दे रही थी। हम जानते थे कि केवल ४८ घंटों तक ही इसका राज्य रह सकेगा।

हमारी गाड़ी हिंडौन से ढाई बजे छूटकर शाम के साढ़े आठ बजे मथुरा आई। प्लेटफ़ार्म पर हमें रावलपिण्डी के लिए सीधी गाड़ी की प्रतीक्षा में ७½ घंटे बिताने पड़े। यहीं से हमने श्रीनगर के वापसी टिकट ख़रीद लिये। सवेरे ३ बजे हमारी एक्सप्रेस मथुरा से चली। दिल्ली, पानीपत, अम्बाला, जालन्धर, अमृतसर, लाहौर एक के बाद एक आते रहे। इस वर्ष की पहली वर्षा से भी हमारा साक्षात् इसी बीच में हो गया और राजपूताने की गर्मी विस्मृत-सी होने लगी। सवेरे ४ बजे एक्सप्रेस ने हमें रावलपिंडी उतार दिया।

रेलवे की सूचना के अनुसार रावलपिंडी से श्रीनगर तक की हमारी यात्रा में दो दिन लगने चाहिए थे। परन्तु यहाँ आकर पता चला कि यह यात्रा एक दिन में भी समाप्त हो सकती है। लारी साढ़े छः बजे छूटती थी, अतएव वेटिंग रूम में शीघ्रता से स्नान इत्यादि से निबटकर अपना सामान तुलवाया। इन मोटरों में केवल १० सेर सामान ही बिना किराये जाता है। इस तोल में बिस्तरों को भी शामिल कर लेते हैं।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

७ बजे मोटर अपनी २०० मील की लम्बी यात्रा के लिए चल दी।

सड़क अच्छी थी, अतएव मोटर को अच्छी चाल से जाने में कोई कठिनाई न थी। पंजाब की सीमा लाँघकर हम पश्चिमोत्तर-प्रदेश में आ गये। यहाँ से चक्करदार रास्ता शुरू हुआ और हिमालय की चढ़ाई का भी श्रीगणेश हुआ। सड़क के दोनों ओर पहाड़ियों पर अभी केवल कँटीली झाड़ियों का झुरमुट था। परंतु ज्यों-ज्यों हम ऊँचे चढ़ते जाते थे, झाड़ियों का स्थान पेड़ लेते चलते थे। उनकी ऊँचाई और प्राकृतिक काट-छाँट कुछ आकर्षक अवश्य थी। कहीं-कहीं सड़क के एक ओर ऊँची पर्वतमाला थी तो दूसरी ओर अत्यन्त नीचे खड्ड थे। कुछ स्थानों से वही सड़क, जहाँ से हम आ रहे थे, सैकड़ों फ़ीट नीची दिखलाई दे जाती थी और उस पर दौड़ती हुई मोटरें बहुत ही छोटी जान पड़ती थीं।

दो घंटे की यात्रा के बाद मोटर मरी में पहुँची। यहाँ हवा काफ़ी ठंडी थी। सड़क के दोनों ओर पेड़ों और पौदों में फूलों की प्रचुरता थी। सफ़ेद फूलों की सुगन्ध अत्यन्त सुखद थी। तितलियाँ उसके लोभ में एक जगह से दूसरी जगह तेज़ी से उड़कर पहुँच रही थीं। बाज़ार की सड़क काफ़ी चौड़ी है। मकान अलग-अलग लाइनों पर बने हुए हैं, जिनमें पहुँचने के लिए छोटे-छोटे रास्ते हैं। कई कुटीर, जो सड़क से भली भाँति दिखलाई दे रहे थे, अपनी स्थिति और बाह्य सौन्दर्य के कारण अत्यन्त रमणीय प्रतीत हुए। यहाँ से पिंडीपोइंट भी दिखलाई दे रहा था। मरी के सौन्दर्य में उसका निजी आकर्षण है। भीड़भाड़ से घृणा करनेवाले शान्ति-प्रिय, प्रकृति-प्रेमी अपना ग्रीष्मावकाश यहाँ बिताकर अपने जीवन को धन्य मानते हैं।

मरी से मोटर चली तो उतराई शुरू हो गई। हम लोग फिर गर्मी का अनुभव करने लगे। यद्यपि यह गर्मी राजपूताने की गर्मी की तुलना में नगण्य थी, परन्तु मरी के सुखद वायुमण्डल को छोड़ने पर वह असह्य ही हो उठी। ड्राइवर से बार-बार प्रश्न किये जाते थे—"ऐसा रास्ता कब तक रहेगा ?", "क्या यहाँ ऐसी ही गर्मी रहती है ?" वह भी मनमाना उत्तर दे देता था; क्योंकि उसका ध्यान हमारे प्रश्नों की ओर उतना न था, जितना मोटर चलाने की ओर। उस विकट मार्ग में मोटर चलाना सचमुच एक कला है। जब तक सञ्चालक इस कला में तल्लीन न हो, तब तक यात्रियों का जीवन संकट से मुक्त नहीं समझा जा सकता। मार्ग की विषमता देखकर हमने प्रश्नों का ताँता समाप्त कर दिया और जो कुछ हम समझ सकते थे, उसी से सन्तोष करने लगे। यदि कोई विशेष महत्त्व की बात होती तो ड्राइवर स्वयं उसकी सूचना दे देता था।

सड़क अब भी चक्कर लगाती हुई चल रही थी। कभी हम लोग हज़ार-पाँच सौ फ़ीट ऊँचे चढ़ जाते थे, कभी उतने ही नीचे उतर आते थे। पहाड़ियों पर अब चीड़ के वनों के समूह दृष्टिगोचर हो रहे थे। दूर की पर्वत-श्रेणियों पर बर्फ़ भी चमक जाती थी। हम लोग अब सचमुच काश्मीर में थे। यहाँ के सीढ़ीदार खेतों का हाल अब तक पुस्तकों में पढ़ा था। आज उन्हें हम बिना किसी प्रयास के देख सकते थे। मनुष्य अपने बाहु-बल से प्रकृति से क्या-क्या सेवाएँ ले सकता है, इसके कुछ प्रमाण यहाँ थे। अभी तक हम समझते थे कि चौरस-भूमि में ही खेती हो सकती है; परन्तु यहाँ के खेतों ने हमारी धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया। तीन-तीन फ़ीट चौड़ी सीढ़ियाँ-सी काटकर किसी प्राकृतिक झरने से उनमें जल लाकर काश्मीरी अपने भोजन के लिए पर्याप्त मात्रा में धान इन्हीं पहाड़ियों में उगा लेते हैं।

अपने चारों ओर सुहावने दृश्यों में उलझे हुए हम लोग अच्छी चाल से आगे बढ़ रहे थे। सड़क के एक ओर ऊँची पहाड़ियाँ थीं, दूसरी ओर गहरा खड्ड। इसी गहरे खड्ड में पानी की एक पतली धारा कभी-कभी दिखलाई दे जाती थी। ड्राइवर ने बतलाया कि यह झेलम नदी है। रात्रि को हम झेलम नदी का एक मील लंबा पुल पारकर चुके थे, इसलिए सहसा विश्वास न होता था। जब हम आगे बढ़े तो हमारी सड़क झेलम से बहुत ऊँची नहीं रही। अब झेलम काफ़ी चौड़ी समझ में आ रही थी और उसका प्रवाह भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

अधिक वेगवान् था। लकड़ी के बड़े-बड़े लट्ठे अपने साथियों को न-जाने कितने मील पीछे किसी पहाड़ी वन में छोड़कर मैदानों की सेवा के लिए पानी को टक्करें झेलते हुए चले जा रहे थे।

अब अगर मार्ग में कोई आकर्षण था तो बस झेलम नदी का। हर मील में दस-बारह जगह पानी पत्थरों से टकराकर अथवा उँचाई से गिरकर दुग्ध-धवल फेन की प्रचुरता के दृश्य उपस्थित करता था। हम लोग मंत्र-मुग्ध बने यह छवि निहार रहे थे। कभी-कभी आह्लाद इतना बढ़ जाता था कि सहसा हम एक-दूसरे से कह उठते—'देखिए, क्या अनुपम शोभा है।' २०० मील लंबी यात्रा झेलम के इन सुन्दर दृश्यों के कारण बिलकुल न खल रही थी। लगभग १ बजे हम डोमल में आ गये। यहाँ झेलम के किनारे होटल में शीतल लकड़ी के मकान में जल का कल-कल शब्द सुनते हुए कुछ देर विश्राम किया। तब तक मोटर के माल-असबाब की जाँच हुई। हम लोगों के नाम व पते रियासत के अफ़सर ने अपने फ़ार्मों में लिखे। यहाँ इस सँभार में लगभग दो घंटे व्यतीत हो गये। श्रीनगर अब भी १०० मील दूर था, अतएव मोटर ने अपनी गति बहुत बढ़ा दी। सन्ध्या के ५ बजे एक नैसर्गिक झरने के पास हम रुके। एक ओर झेलम का प्रपात था। दूसरी ओर ऊँची पर्वत-श्रेणी से बर्फ़-सा शीतल जल आ रहा था। सड़क पर एक टोकरी में एक बालक गिलास (Cherry), एक छोटा फल, जो हम लोगों के लिए नई वस्तु था, बेच रहा था। अतएव जल-पान द्वारा अपने को नवजीवन देकर आकर्षक दृश्यों का आनन्द लेते हुए हम पुनः चल दिये।

श्रीनगर जब २० मील रह गया तो मार्ग झेलम से अलग हो गया। अब हमारे लिए दूसरे दृश्यों में आकर्षण था। गुलमर्ग की हिमाच्छादित पर्वतमालाएँ सन्ध्या-कालीन सूर्य-रश्मियों की आभा से पल-पल पर रंग बदल रही थीं। सड़क के दोनों ओर सफ़ेद तनोंवाले विशाल वृक्ष अपनी शोभा के गर्व से मस्तक ऊँचा किये खड़े थे और स्विट्ज़रलैंड के दृश्यों को चुनौती दे रहे थे। यद्यपि हम सब ८०० मील की लंबी यात्रा के पश्चात् कुछ थके हुए-से थे; परन्तु इन दृश्यों को देखकर सारी थकन भूल जाते थे। हवा अब काफ़ी ठंडी थी; परन्तु हमारे ठंडे कपड़ों में भी हमें कोई कष्ट न हो रहा था।

जब मोटर ने श्रीनगर में प्रवेश किया तो दीपक जल चुके थे। अपने स्टेशन पर मोटर खड़ी हुई तो कुलियों के एक बड़े समूह ने हमें घेर लिया। सामान भी काफ़ी था, अतएव एक लकड़ी का बड़ा ठेला कुली ले आये और हम लोग ख़ालसा-होटल के तीन कमरों में टिक गये। ठहरने से पहले जो प्रबन्धक ने आश्वासन दिये थे, उनकी पूर्ति न होते देख तीसरे दिन हम सबने मानसरोवर-होटल की शरण ली।

हम ता० ६ की शाम को श्रीनगर पहुँच गये थे; परन्तु उस दिन विलम्ब हो जाने के कारण श्रीनगर का कुछ विशेष ज्ञान प्राप्त न हो सका। सवेरे हम लोग घूमने निकले। श्रीनगर का अत्यधिक घना भाग अमीराँ कदल है। यहाँ झेलम नदी पर पहला पुल बनाया गया है। नगर नदी के दोनों किनारों पर बसा हुआ है। अधिकांश प्रख्यात इमारतें और दूकानें नदी के किनारे बाँध पर हैं। इससे नावों से या सड़क से कोई भी यात्री यहाँ पहुँच सकता है। काश्मीर में जल की कितनी प्रचुरता है, इसका अनुमान बिना यहाँ आये नहीं लगाया जा सकता। समुद्र के किनारे बसनेवाले लोगों का अच्छा मल्लाह होना स्वाभाविक है। परन्तु काश्मीर-घाटी में झेलम नदी के समतल भूमि में बहने के कारण और झीलों तथा नहरों की अधिकता ने काश्मीरियों को अच्छा नाविक बना दिया है। श्रीनगर में ताँगे जितनी संख्या में दिखलाई देते हैं, उनसे अधिक संख्या में शिकारा और नावें दिखलाई देती हैं। झेलम नदी के किनारे बाँध पर सुबह और शाम घूमना काफ़ी आनन्ददायक होता है। सन्ध्या समय किसी शिकारे में बैठकर चिनार बाग़, डाल गेट होते हुए फिर पहले पुल पर उतर जाना बहुतों का 'मनोरंजन' होता है।

श्रीनगर के बाज़ार में सभी चीज़ें मिलती हैं। इन दिनों गिलास फल का बाहुल्य था। कच्चे बादाम और कच्चे अख़रोट भी हमारे लिए नये थे। करम का साग भी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

नया ही था। और भी कई शकलों के फल बाज़ार में दिखलाई देते थे, जिनकी पूरी जानकारी इतने थोड़े समय में प्राप्त करना कठिन था। नदी के बायें किनारे, बाज़ार के दूसरे सिरे पर नगर का प्रसिद्ध बाग़ गोल बाग़ है। इसमें 'ज़ीनिया' के बहुरंगी फूल सहृदयों के मन में अतीव आनन्द का संचार करते हैं। यह विस्तृत और वायु-सेवन के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। इससे मिला हुआ रानी-बाग़ है, जहाँ स्त्रियों के टहलने की ही आज्ञा है। शहर में अस्पताल भी है। सर प्रतापसिंह कालेज, सी० एस्० एस्० हाईस्कूल और दो गर्ल्स हाईस्कूल यहाँ की शिक्षण-संस्थाओं में प्रमुख हैं। डालगेट से कई बाँध चिनार बाग़ होते हुए झेलम तक आते हैं, जिन पर घूमने से बड़ा आनन्द आता है।

श्रीनगर की शोभा का सार झेलम नदी है। इसके दोनों किनारों पर बहुमूल्य एवं सुसज्जित नौका-भवन (House-boats) खड़े हैं, जिनका किराया २) प्रतिदिन से लेकर १५) या २०) प्रतिदिन तक है। इनमें शयनागार, भोजनालय, स्नानघर सभी कुछ होता है, और सोफ़ा, कुर्सी, मेज़, गुलदस्ते इत्यादि स्थिति के अनुसार सजे रहते हैं। इनको किसी सुन्दर स्थान में लगवाकर धनी यात्री अपने वैभव द्वारा एक नये ढंग का जीवन बिताकर सुख का अनुभव करते हैं। इतना सब होते हुए भी श्रीनगर का आकर्षण एक सप्ताह में समाप्त हो जाता है।

श्रीनगर से कुछ ही दूरी पर कई स्थल दर्शनीय हैं। यहाँ भी स्थल और जल दोनों मार्गों से पहुँचा जा सकता है। ता० ६ जून को लगभग १० बजे हम लोग शिकारा लेकर इन्हें देखने चले। प्रथम पुल से चिनार बाग़ होते हुए डालगेट पर पहुँचे। यहाँ पर बहुधा शिकारा को ½ घंटा लग जाता है। डाल झील की सतह इस नहर से तीन या चार फ़ीट ऊँची है। नावों को पहले एक फाटक के अन्दर लाकर फाटक बंद कर देते हैं, तब डाल झीलवाला फाटक खोला जाता है। पानी की सतह दोनों में बराबर हो जाने से नावें सुगमतापूर्वक डाल झील में पहुँच जाती हैं। इसी समय उतार की ओर जानेवाली नावें यहाँ जमा हो जाती हैं। अब दूसरा फाटक बन्द कर नहरवाला फाटक खोल दिया जाता है। यही कार्यक्रम दिनभर चलता रहता है; क्योंकि नावों का ताँता यहाँ कभी टूटता ही नहीं।

डाल झील में आकर दृश्य और भी मनोरम प्रतीत हुए। एक ओर शंकराचार्य पहाड़ी की छटा थी। दूसरी ओर मीलों तक पानी ही पानी दिखलाई देता था। इसके बीच में मार्ग बतलाने के लिए पेड़ों की क़तारें भी लगी हुई थीं। हमारा शिकारा भी इन्हीं क़तारों में होकर आगे चलता गया। हमें नसीम बाग़ पहुँचना था। मार्ग में डाल झील में लगे हुए तरकारियों के खेतों को, यत्रतत्र नयनाभिराम फूलों को, सुदूर स्थित मनोहर वृक्ष-समूहों को और एकाकी जीवन व्यतीत करने के निमित्त यहाँ लाये गये नौका-भवनों को देखते हुए हम लोग लगभग १ बजे नसीम बाग़ पहुँचे।

नसीम बाग़ में विशाल वृक्षों की कमी न थी। शीतल छाया सर्वत्र थी। एक किनारे तम्बुओं की क़तार भी थी; परन्तु पुष्पों का सर्वथा अभाव था। वृक्षों की शीतल छाया में भोजन और विश्राम के उपरान्त वहाँ अधिक ठहरना रुचिकर प्रतीत न हुआ। शिकारा हमें अब नगीना बाग़ ले आया। यहाँ कोई बाग़ नहीं है। एक किनारे अँग्रेज़ों का क्लब है। जल बहुत स्वच्छ है, अतएव तैराक अथवा तैरना सीखनेवाले साहब यहाँ रहना विशेष पसन्द करते हैं। किसी स्थूल साहब को मोटे मोटर के टायर से बँधा देखकर आप यह न समझें कि कोई मोटर-दुर्घटना क़रीब में हो गई है। तैरना सीखने के लिए टायर से बँधना भी बुरा नहीं समझा जाता।

नगीना बाग़ से डालगेट तक आने में तैरते हुए उद्यान दिखलाई दिये। इनकी लंबी लाइन के दोनों सिरों पर लंबी लकड़ी ज़मीन में गड़ी रहती है। कहा जाता है, इनकी चोरी भी हो जाती है। लकड़ी हटाते ही इनको नाव की भाँति चाहे जहाँ ले जाया जा सकता है। चतुर चोर रातोरात इन्हें जल-मार्ग से चार-छः मील दूर ले जाकर अपने गाँव में लगा लेते हैं, जहाँ उनको पहचानना कठिन हो जाता है।

हमारा विचार कुछ दिनों नौका-भवन में रहने का था; परन्तु अभी तक श्रीनगर के आसपास के प्रसिद्ध स्थान न देख पाये थे। अतएव सर्वसम्मति से आठ

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

दिनों के लिए एक डोंगा लिया गया। डोंगा भी नौका-भवन का छोटा भाई है। इसमें सभी सुविधाएँ हैं। सस्ता भी है और अचल नहीं है। नौका-भवन तो किसी अच्छे घाट पर लगा दिया जाता है; परन्तु डोंगा आपको मनचाही सैर करा सकता है।

११ जून को साढ़े बारह बजे हमारा दल डोंगे में सवार हुआ। प्रथम पुल से चलकर हम लोग झेलम पर बने हुए श्रीनगर के अन्दर ही सातों पुलों के नीचे से निकले। किनारे पर कहीं-कहीं विशाल इमारतें अथवा सुमन-लताएँ अपनी ओर ध्यान खींच लेती थीं। जल-यात्रा विशेष आनन्द दे रही थी। सन्ध्या समय डोंगा शादीपुर में लगा दिया गया। शादीपुर केन्द्र-स्थान है। यहाँ कई जल-मार्ग मिलते हैं और छिछला पानी विस्तृत क्षेत्रफल में होने के कारण मछली के शिकार की भी सुविधा है। शिकार-प्रेमी अपने नौका-भवन यहीं जमाते हैं।

दूसरे दिन सवेरे हम वूलर झील के लिए चल पड़े। मार्ग में अशम का फलों से लदा हुआ बग़ीचा देखा। हजम का देहाती स्कूल भी दिखलाई दिया। किनारे पर वृक्ष-समूह कहीं-कहीं अत्यन्त आकर्षक दृश्य उपस्थित कर रहे थे। इन स्थानों पर हमें डोंगे से उतर-कर शीतल छाया में चलना अधिक रुचिकर प्रतीत हुआ। झेलम नदी को छोड़कर हम मुकदम नहर में आये। सन्ध्या के ४ बजे पवन का वेग बहुत अधिक हो गया और डोंगे को वूलर झील से कुछ दूर रुकना पड़ा। तीसरे दिन सवेरे नाविक हमें पैदल वूलर झील दिखलाने ले गये। झील के एक ओर पहाड़ था और दूसरी ओर, जहाँ तक दृष्टि जाती थी, पानी ही पानी दिखलाई देता था। आज शाम से पहले मानसबल पहुँचना था, अतएव वूलर झील की यह छवि निहार-कर हम लौट पड़े। राह में माँझी ने बतलाया कि इस पहाड़ की दूसरी ओर गिलगिट है। वहाँ मुर्ग़े ३ फ़ीट ऊँचे होते हैं। उसकी कल्पना की उड़ान देख समझ में आ गया कि स्विफ़्ट ने ब्रोबडिंगनैग का और बटलर ने अपने Erewhon का भाव ऐसे ही किसी स्थान से लिया होगा।

मानसबल में जल की अधिकता के कारण मार्ग ८ दिन के लिए बन्द था, अतएव हमें गन्दरबल का मार्ग लेना पड़ा और सन्ध्या को शादीपुर के पास ही डोंगा रोका गया। चौथे दिन सूर्योदय से पहले ही डोंगा शादीपुर आ गया, जहाँ से झेलम की सहायक सिन्धु नदी द्वारा गन्दरबल पहुँचा जाता है। आज माँझियों को कठिन परिश्रम करना था; क्योंकि धारा के विरुद्ध नाव जाने को थी। वे चाय पीकर मुस्तैद हो गये। हमारा डोंगा पहले एक झील में आया, जहाँ श्वेत और पीत कमलों का बाहुल्य था। सिन्धु नदी के दोनों ओर सुहावने वृक्षों के सघन जंगल हैं। संध्या के ४ बजे हमारा डोंगा गन्दरबल के विस्तृत लौन के सहारे लग गया। हम लोग घूमने को निकल पड़े। चारों ओर धान के खेत दिखलाई दे रहे थे। आबादी की ओर जाने पर सर्वप्रथम सौ से अधिक विभिन्न आकार एवं स्वरूपवाले कुत्तों पर दृष्टि पड़ी। एक महाराजा के साथ इन्हें भी काश्मीर आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इनके लिए विशेष प्रकार से बनाया गया नौका-भवन वहाँ लगा हुआ था। भोजन का समय होने के कारण प्रत्येक अपनी क्षुधा की उग्रता दिखलाने के निमित्त भरसक प्रयत्न के साथ भौंक रहा था और शान्तिपूर्ण वातावरण कोलाहलमय बन गया था।

गन्दरबल छोटा-सा गाँव है, परन्तु विस्तृत घास के मैदान और एकान्त एवं ठंडा होने के कारण निवास-योग्य है। यहाँ प्रत्येक वस्तु काफ़ी सस्ती मिलती है। यहाँ से हमारा दल ताँगों में खीरभवानी और वायला ब्रिज देखने गया। खीरभवानी पानी से घिरा हुआ तीन मील की दूरी पर एक छोटा-सा मन्दिर है। वायला ब्रिज एकान्त में बने होने के कारण मछली के शिकारियों को विशेष प्रिय है। गन्दरबल से एक मील पर पहाड़ों की चोटियाँ हैं। इनसे पिघली हुई बर्फ़ का पानी नीचे बहकर आता है, जो पीने में अत्यन्त शीतल और स्वादिष्ट है। इन पहाड़ियों पर चढ़ने में अद्भुत आनन्द का अनुभव किया। जब लगभग ३०० फ़ीट ऊँचे पहुँचे तो वहाँ पूरी गति से बहती हुई नहर देखकर आश्चर्य हुआ। जैसे-तैसे खोजकर उस पर एक तख़्ते का पुल निकाला। परन्तु १०० फ़ीट अधिक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

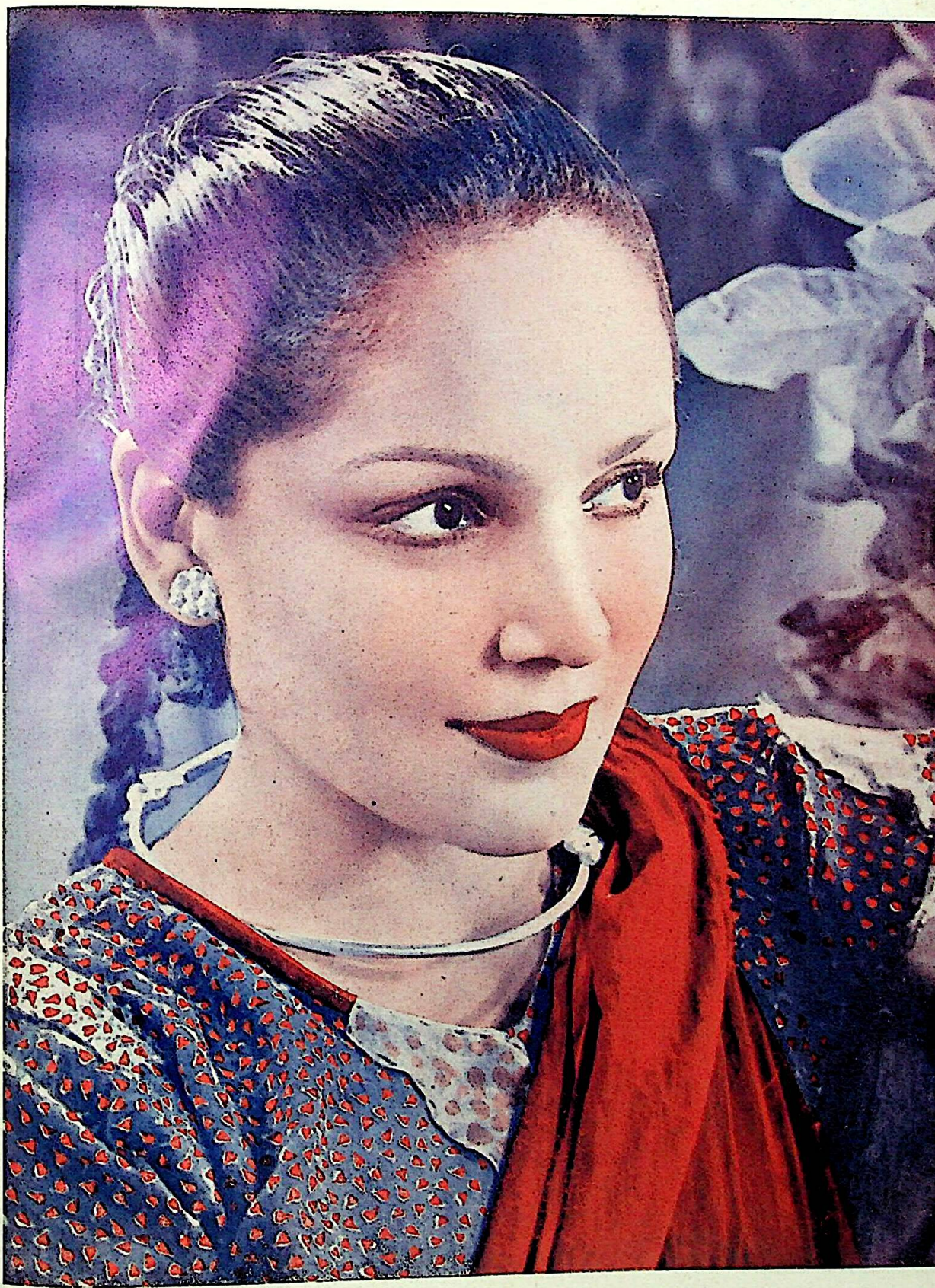

बाम्बे-टॉकीज लिमिटेड के नवीन बोलपट 'दुर्गा' में श्रीमती देविकारानी

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चढ़ने पर एक दूसरी नहर वैसी ही दिखलाई दी और अधिक ऊँचे पर चढ़ना असम्भव हो गया।

काश्मीर-राज्य आजकल अपने पर्वतों पर पड़ी हुई बर्फ़ का सदुपयोग करने में पूर्णतया प्रयत्नशील है। पिघली हुई बर्फ़ को नहरों में बहाने के लिए प्रतिवर्ष लाखों रुपया ख़र्च किया जाता है। इसी से यहाँ के सीढ़ीदार खेतों की सिंचाई होती है और धान की इतनी अधिक पैदावार सम्भव हो गई है। गन्दरबल से मानसबल भी दूर नहीं है। अतएव ताँगा लेकर हम वहाँ भी पहुँच गये। यहाँ एक गोलाकार झील का दृश्य अपने नीले जल के कारण अत्यन्त मनोहर है। मानसबल से लौटकर हमें फिर श्रीनगर की ओर चलना पड़ा; क्योंकि हम रविवार को चश्माशाही, निशात बाग़ और शालीमार बाग़ देखना चाहते थे।

ता० १६ जून की सन्ध्या फिर शादीपुर में व्यतीत हुई। दूसरे दिन श्रीनगर होते हुए डाल झील में पहुँच गये और उसके किनारे के भव्य दृश्यों को देखते हुए संध्या तक चश्माशाही के नीचे जा पहुँचे। यहाँ अच्छा किनारा न था, इसलिए घंटे-दो घंटे मैदानों में घूमकर ९ बजे तक पुनः डोंगे की शरण लेनी पड़ी। रातभर किनारे से दूर खुली हवा में झील में डोंगे को ठहराया गया, सवेरा होते ही चश्माशाही की चढ़ाई प्रारम्भ कर दी। किनारे से यह एक मील दूर है। सड़क अच्छी बनी हुई है। पहुँचते-पहुँचते धूप काफ़ी निकल चुकी थी; परन्तु सुमन-समूह ने चित्त प्रफुल्लित कर दिया। दूसरी सतह के सुमन और भी मनोमोहक थे। चश्मे तक पहुँचने के लिए दोनों ओर सुमनों की क्यारियों से घिरी हुई काफ़ी चौड़ी रौसें बनी हुई हैं। चश्मा एक फ़व्वारे की भाँति है। उसका मुख मुग़लकालीन नक़्क़ाशी की यादगार है। पानी इतना ठंडा और स्वादिष्ट काश्मीर में अन्यत्र नहीं है। किन्हीं महाराजा की मोटर केवल चश्माशाही का एक घड़ा जल लेने के लिए यहाँ आई हुई थी।

चश्माशाही के पड़ोस में काश्मीर के महाराज का अतिथि-आश्रम है। इसमें खड़े होकर डाल झील का अनुपम सौन्दर्य और परीमहल के खँडहर भली भाँति दिखलाई दे जाते हैं। चश्माशाही का जल यथेष्ट मात्रा में पीकर हम निशात बाग़ की ओर चले। डोंगा बाग़ के फाटक के पास ही लगा था, अतएव बिना किसी कठिनाई के हम सब बाग़ में पहुँच गये। शोभा में यह बाग़ काश्मीर में अद्वितीय है। इसके सात खण्ड हैं और प्रत्येक खण्ड में होती हुई पानी की चौड़ी धारा बहती है, जिसके बीच में फ़व्वारे लगे हुए हैं। आज रविवार था, अतएव फ़व्वारे नैसर्गिक शोभा को अपनी फुहारों से सींचकर अगणित बना रहे थे। लगभग दो घंटे हम लोगों ने यहाँ बिताये और फिर कभी यहाँ आने का निश्चय कर यहाँ से चल दिये।

शालामार बाग़ के लिए जाते हुए शिकारों की संख्या से स्पष्ट हो रहा था कि श्रीनगर इस समय ख़ाली-सा हो गया होगा। हमारा डोंगा बाग़ के फाटक से कई फ़र्लांग दूर लगा; क्योंकि नावों का ताँता वहाँ तक चला गया था। शालामार बाग़ निशात बाग़ से बहुत बड़ा है। फ़व्वारों के दृश्य भी विस्तृत हैं; परन्तु निशात-जैसा सुसंगठित नहीं है। सुमनों की इसमें कमी नहीं है; परन्तु विस्तार को देखते हुए उनकी संख्या निशात से कम है। इसकी शोभा गम्भीरता लिये हुए है। शालामार में भी हमारा २-३ घंटे तक अच्छा मनोरंजन रहा। यहाँ से ताँगों से हरवाँ झील देखने जा सकते थे; परन्तु इन बाग़ों का सौन्दर्य देख कुछ ऐसी तृप्ति का अनुभव किया कि हरवाँ झील में कोई आकर्षण न दिखलाई दिया। शालामार से डोंगा श्रीनगर की ओर चला। सन्ध्या के ७ बजे अपने पूर्व-परिचित मानसरोवर-होटल में आकर हमने सन्तोष और शांति की साँस ली।

अब एक सप्ताह तक श्रीनगर में ही रहने में आनन्द प्रतीत हुआ; परन्तु यहाँ किसी-किसी दिन गर्मी काफ़ी हो जाती थी, अतएव गुलमर्ग और पहलगाँव देखकर दोनों में से किसी एक को अपने निवास के लिए चुन लेने का निश्चय हुआ। २० ता० को हमारा दल दोपहर में गुलमर्ग को रवाना हुआ। लारी ने हमें टोनोम में छोड़ दिया। फिर घोड़ों पर चढ़कर हम गुलमर्ग पहुँचे। यहाँ शीत अधिक था। होटल में खिड़की और दरवाज़ों को बन्दकर अपने सभी गरम कपड़ों से उसका मुक़ाबला करना पड़ा। दूसरे दिन सवेरे गुलमर्ग की सैर की गई। जगह-जगह विस्तृत लानों पर साहब

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

लोग गोल्फ़ खेल रहे थे। गुलमर्ग वास्तव में इन्हीं लोगों के लिए अधिक उपयुक्त है। दोपहर में खिलनमर्ग की चढ़ाई की। यहाँ बर्फ़ पर चलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ता० २३ की सन्ध्या तक हम फिर श्रीनगर आ गये।

दल के दो महानुभावों ने पहलगाँव आकर लिदर नदी के किनारे चीड़-वृक्षों के नीचे, समुन्नत चौरस स्थान पर, अपने तम्बू लगवा दिये! अतएव २७ जून की सन्ध्या तक हम लोग भी उनमें आकर जम गये और अभी तक उनमें स्थित हैं। पहलगाँव एक छोटा-सा गाँव है। यहाँ से अमरनाथ ३ पड़ावों में पहुँचा जा सकता है। प्राकृतिक दृश्य यहाँ अत्यन्त मनोहर है। लिदर नदी की पतली धारा पत्थरों को तोड़ती हुई बड़े वेग से बहती है। प्रतिदिन किसी न किसी अनुपम दृश्य को देख पाना यहाँ अत्यन्त सुगम है। अमरनाथ की ओर पहला पड़ाव चन्दनवाड़ी है। यहाँ तक घोड़ों पर बैठकर हम लोग घूम आये हैं। चन्दनवाड़ी में दो पहाड़ियाँ बर्फ़ की चट्टान से मिली हुई हैं, बीच से लिदर नदी निकलती है।

आज काश्मीर आये एक महीना व्यतीत हो गया। अब तक प्रतिदिन नये-नये दृश्य निहारकर हम लोग नेत्रों का सच्चा लाभ उठा रहे हैं। कभी-कभी जब यह स्मरण आता है कि इस वायुमण्डल में केवल दो मास ही और व्यतीत किये जाने को हैं तो कुछ व्याकुलता प्रतीत होती है। ऐसा विश्वास होता है कि विधाता ने विश्व में सौन्दर्य बखेरने के लिए सारा सौन्दर्य पहले यहाँ एकत्रित किया था; परन्तु बाद में उसे यह पहाड़ों से घिरा स्थान भूल गया और सारा का सारा यहीं पड़ा रह गया। इसके निरीक्षण के लिए एक-दो मास क्या, दस-बीस पूर्ण जीवन भी काफ़ी नहीं हैं। शेष दो मास में जो कुछ दृश्य रुचिकर प्रतीत होंगे, उन्हें पाठकों के सम्मुख उपस्थित करने का पुनः प्रयास किया जायगा।

बाजे की पेटी बजाने को सिखानेवाली पुस्तक, ४१ रोगों के आरोह, अवरोह, लक्षण, स्वरूप, विस्तर, १०८ प्रसिद्ध गायनों के स्वर-तालयुक्त नोटेशन, सुरावर्त, तिल्लाने इत्यादि पूरी जानकारी सहित, तृतीय आवृत्ति, पृष्ठसंख्या २२२, क़ीमत १॥) रुपया, डाक-ख़र्च ॥), विषयों का और गायनों का सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइये।

लेखक—कै. गुरुजी भास्कर गणेश भिडे इन्दौरकर

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

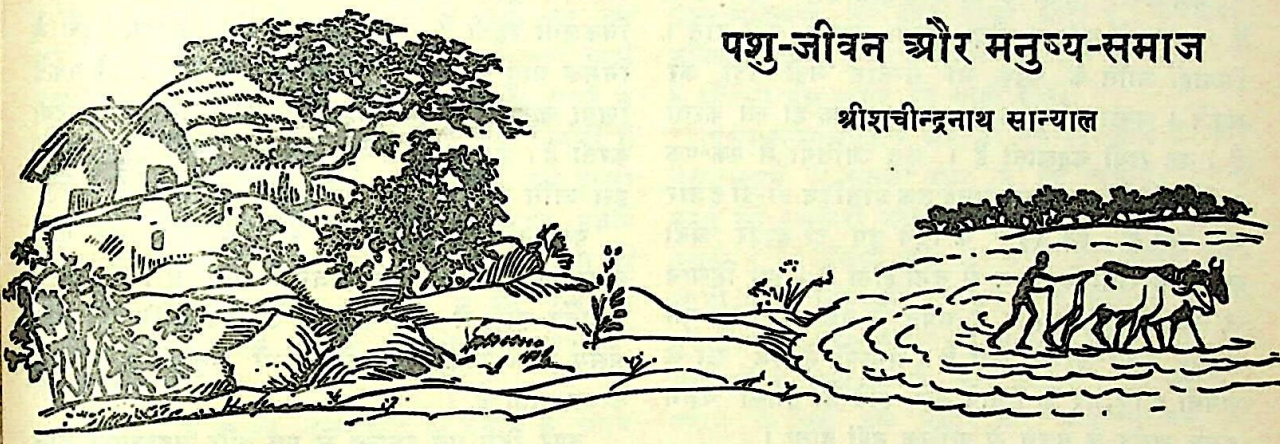

पशु-जीवन और मनुष्य-समाज

श्रीशचीन्द्रनाथ सान्याल

(मई, १९३९ से आगे)

(५)

चींटी, मक्खी और दीमकों के अद्भुत व्यवहार

पाश्चात्य देश के अभिज्ञ एवम् निपुण प्रचारकों के प्रभाव से तथा ततोधिक कम्यूनिस्टों के प्रचार के परिणाम से बहुतों के हृदय में यह भावना बद्धमूल होने लगी है कि सामाजिक रीति-नीति एवं वर्ण-व्यवस्था आदि व्यक्ति-विशेषों की स्वार्थ-सिद्धि के प्रयोजन से प्रवर्तित हुई हैं। परन्तु अति आधुनिक काल के समाज-विज्ञान के विशेषज्ञों का यह सिद्धान्त है कि उपर्युक्त धारणा नितान्त भ्रमात्मक है। दृष्टान्तस्वरूप Carveth Read, W. H. R. Rivers Alverdes इत्यादि का उल्लेख कर सकता हूँ। इसके अतिरिक्त चींटी, दीमक आदि के व्यवहारों को पर्यालोचना करने पर बहुत-सी ऐसी आश्चर्यजनक बातों का पता चलेगा, जो कि आज बीसवीं शताब्दी के अति प्रवीण वैज्ञानिकों के निकट भी विस्मयकर एवम् रहस्यपूर्ण हैं। चींटी, दीमक एवम् ममाखियों की समाज-व्यवस्था राष्ट्र-व्यवस्था के सदृश है। पारिवारिक जीवन से ही इन सब समाजों की उत्पत्ति हुई है।

इन समाजों में तीन-चार प्रकार के श्रेणी-विभाग अथवा वर्ण-विभाग पाये जाते हैं। यथा पुरुष, स्त्री एवम् कर्मचारीवृन्द ; चींटी और दीमकों में सिपाहियों की श्रेणी भी पाई जाती है। फिर कर्मचारी और सिपाहियों में भी कुछ भेद होते हैं। जैसे कुछ बड़े आकार के होते हैं, कुछ मध्यम आकार के एवम् कुछ छोटे आकार के ; अर्थात् पुरुष और स्त्रियों के अतिरिक्त तीन प्रकार के कर्मचारी भी होते हैं। लेकिन मुख्यतया इनमें चार ही श्रेणियाँ पाई जाती हैं। इनमें आश्चर्य की बात एक और यह है कि एक ही स्त्री से ये चारों प्रकार की श्रेणियाँ उत्पन्न होती हैं। किस अंडे से कौन उत्पन्न होगा, यह उन अंडों से उत्पन्न बच्चों के आहार पर निर्भर रहता है।

चींटियों के एक-एक समाज या समूह में एक लाख या इससे भी अधिक चींटियाँ रहती हैं। दीमकों के एक-एक समाज में तीस लाख से भी अधिक दीमकें रहती हैं। इन चींटियों और दीमकों के समाज में चींटियों और दीमकों के अलावा कुछ दास की क़िस्म

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

के, कुछ गाय की क़िस्म के, जिनसे दूध अथवा पीने का एक प्रकार का रस प्राप्त किया जाता है, और कुछ भंगी जाति के कीड़े पाये जाते हैं। ये चींटियों अथवा दीमकों से भिन्न प्रकार के कीड़े हैं।

कर्मचारी - श्रेणी के जो कीड़े होते हैं, वे मादा होते हैं : परन्तु ये सन्तान पैदा करने लायक़ नहीं होते। सिपाही जाति के कीड़े भी सन्तान नहीं पैदा कर सकते। सन्तान पैदा करने का काम एक ही स्त्री करती है। यह रानी कहलाती है। कुछ जातियों में एक-एक रानी छः से लेकर आठ सप्ताह तक प्रतिदिन दो-दो हज़ार अंडे देती है। एक दिन के दिये हुए दो हज़ार अंडों का वज़न रानी के वज़न से दूना होता है। इस हिसाब से एक स्त्री आठ सप्ताह में अपने से एक सौ बारह गुने अधिक वज़न के अंडे देती है। मनुष्यों में एक स्त्री के अपनी आयु भर के जितने बच्चे होते हैं, उनका वज़न उसके शरीर के वज़न से अधिक नहीं होता।

एक जाति की मक्खियों में स्त्री-कर्मचारियों में भी श्रेणी-विभाग होते हैं। कुछ तो अंडों की देखभाल में रहती हैं, कुछ वास - स्थान बनाने के लिए एवम् कुछ आहार-संग्रह के लिए।

एक छोटी ममाखी की जाति होती है, जिसका समाज-जीवन केवल एक वर्ष में ही समाप्त हो जाता है। इस जाति में गर्भवती होकर रानी जाड़े भर अकेली रहती है और वसन्त-ऋतु में अकेली ही एक वास-स्थान बना लेती है। मोम से बने हुए इस छत्ते के अलग - अलग ख़ानों में अंडे रख देती है; बाद को वे ख़ाने बन्द कर देती है। कुछ दिनों के बाद बन्द ख़ानों को खोल-खोलकर बच्चों को खाना देती है। एक रानी के लिए सब बच्चों को उपयुक्त आहार पहुँचाना सम्भव नहीं, इसलिए ये बच्चे छोटी-छोटी स्त्री-कर्मचारियों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। बिना पुरुष के संसर्ग के ही इन स्त्री-कर्मचारियों के अंडों से फिर बच्चे पैदा होते हैं। इन बच्चों के पैदा हो जाने के बाद इन स्त्री-कर्मचारियों की स्थिति ठीक वैसी ही हो जाती है, जैसी कि बड़ी ममाखियों, चींटियों और दीमकों में स्त्री-कर्मचारियों की होती है। आगे चलकर आहार-सामग्री पहुँचाने का अच्छा प्रबन्ध होने के कारण बच्चों में से शक्तिशाली बड़ी-बड़ी स्त्रियाँ और पुरुष निकलते हैं। स्त्री-कर्मचारी और रानी पुरुषों के संसर्ग में न आकर जो अंडे देती है, उन्हीं में नर-बच्चे निकलते हैं। इस जाति में मैथुन खुली हवा में होता है। हर रोज़ सवेरे छत्ते के सामने आकर एक मक्खी ज़ोर से पंख हिलाती है, जिससे एक प्रकार की गुञ्जन-ध्वनि निकलती रहती है। इसका एकमात्र उद्देश्य छत्ते में निर्मल वायु पहुँचाना है। यदि इस मक्खी को पकड़ लिया जाय तो दूसरी आकर उसके स्थान को ग्रहण करती है। शरद्-ऋतु में कुछ गर्भवती स्त्रियों को छोड़कर इस जाति की अन्य सब मक्खियाँ मर जाती हैं।

पुरुष-संसर्ग के बिना ही अंडों से बच्चों का पैदा होना एक अत्यन्त आश्चर्यजनक बात है। भारतीय आयुर्वेद-शास्त्र में इस बात का उल्लेख है कि पुरुष के संसर्ग में न आकर भी कभी-कभी मनुष्यों में संतान उत्पन्न होती है।

ऊपर दिये गये दृष्टान्त से एक और महत्त्वपूर्ण बात का पता चलता है। चींटी, दीमक अथवा बड़ी-बड़ी ममाखियों में स्त्री-कर्मचारियों के संतान नहीं उत्पन्न होती। ये नपुंसक भी नहीं होतीं। परन्तु ऊपर दिये गये दृष्टान्त में प्रथम अवस्था में तो स्त्री-कर्मचारियों के संतान होती है, फिर नहीं होती और तब उनके आचरण दीमक आदि कीड़ों की तरह हो जाते हैं। ऐसा मालूम होता है कि किसी विशेष उद्देश्य से ही प्रकृति का यह नियन्त्रण होता है एवम् मानो क्रमोन्नति के नियम भी प्रकृति की सब घटनाओं को एक विशेष लक्ष्य की ओर ले जाने के लिए ही काम करते हैं।

बड़ी ममाखी

ममाखियों के एक समूह में एक ही रानी रहती है। रानी का एकमात्र काम संतान पैदा करना है। यदि एक समूह में संतान पैदा करने लायक़ एक से अधिक स्त्रियाँ होती हैं तो उनमें से एक ही जीवित रह पाती है, दूसरी सब मार डाली जाती हैं। पुरानी रानी नई रानी को मार डालना चाहती है, लेकिन कर्मचारी-श्रेणी की ममाखियाँ नई रानी की रक्षा करती हैं। तब पुरानी रानी दस-पन्द्रह हज़ार मक्खियों को साथ लेकर पुराने छत्ते को छोड़कर दूसरे स्थान को उड़ जाती

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

है। यह स्थान दो-तीन दिन पहले से ही ढूँढ़ निकाला जाता है। दो-चार मक्खियाँ इस काम को पहले ही से कर रखती हैं। इन सब कामों का नियंत्रण कैसे होता है, यह एक बिलकुल ही रहस्यपूर्ण बात है। जो नई रानी छत्ते में रह जाती है, वह छत्ते के जिन ख़ानों में रानियाँ उत्पन्न होती हैं, उन ख़ानों के बच्चों को नष्ट कर देती है। यदि उस छत्ते में काफ़ी मक्खियाँ नहीं रहतीं, तो कर्मचारी स्त्रियाँ रानी को ऐसा करने से रोकती हैं, और उसे ऐसा नहीं करने देतीं। छत्तों में जब मक्खियों की संख्या बहुत बढ़ जाती है, तब दूसरी रानी पैदा होने पाती है, और फिर दस-पन्द्रह हज़ार मक्खियों को साथ लेकर पुरानी रानी दूसरे स्थान को उड़ जाती है। इस प्रकार एक छत्ते से कई छत्ते बन जाते हैं। हर हालत में एक छत्ते में एक ही रानी रहती है।

एक छत्ते से उड़कर दूसरे छत्ते के बनाने के समय यदि रानी मक्खियों के साथ उड़कर नहीं जाती तो वे मक्खियाँ फिर उड़कर पहले छत्ते में लौट आती हैं। यदि दूसरे छत्ते के बनाते समय एक पुरानी रानी के साथ कुछ नई रानियाँ भी उड़ आती हैं तो उनमें से एक के सिवा और सब मार डाली जाती हैं। अगर नये छत्ते में दूसरे स्त्री बच्चे उत्पन्न होने के पहले रानी मर जाती है तो भी तमाम मक्खियाँ पहले छत्ते में लौट आती हैं। यदि किसी छत्ते की रानी को हटा लिया जाता है अथवा किसी कारण से वह मर जाती है तो उस छत्ते में एक क्रांति-सी मच जाती है, और छत्ते की प्रत्येक मक्खी एक विशेष प्रकार की शोक-व्यंजक ध्वनि निकालती है और सारे छत्ते में यह बात फैल जाती है कि रानी की मृत्यु हो गई है। यदि एक रानी के स्थान पर दूसरी को बिठा दिया जाय तो एक या डेढ़ दिन के लिए अन्य मक्खियाँ उस रानी के साथ शत्रु का-सा व्यवहार करती हैं, परन्तु उसके बाद उसे स्वीकार कर लेती हैं। यदि किसी छत्ते में अधिक दिन तक कोई रानी नहीं रहती तो कर्मचारी-स्त्रियाँ पुरुषों के संसर्ग में न आकर ही अंडे देती हैं, और किसी अन्य रानी को वे स्वीकार नहीं करतीं। इस प्रकार यह नया छत्ता नष्ट हो जाता है।

एक प्रकार की मधुमक्खियाँ होती हैं, जिनके डंक नहीं होते। इन मक्खियों में पुरानी रानियों के बजाय नई रानियाँ उड़कर नये छत्ते बनाती हैं।

नई रानी के साथ केवल एक बार ही पुरुष-मक्खी का संयोग होता है। ऐसे एक संयोग के बाद और सब पुरुष-मक्खियों को मार डाला जाता है। कर्मचारी-मक्खियाँ सभी पुरुष-मक्खियों को छत्ते से भगा देती हैं और वे इस प्रकार मर जाती हैं।

पुरुष-संसर्ग-विहीन अंडों से नर पैदा होते हैं, और पुरुष-संसर्ग से उत्पन्न अंडा से स्त्री अर्थात् रानियाँ एवम् स्त्री-कर्मचारी उत्पन्न होते हैं। स्त्री-कर्मचारा यह देखती है कि किस अंडे से रानी पैदा होगी, किन ख़ानों में ये अंडे रक्खे जाते हैं एवम् अंडों से निकले हुए बच्चों को किस प्रकार का आहार दिया जाता है। स्त्री-बच्चों के लिए विशेष ख़ाने होते हैं। स्त्री-कर्मचारी बनाने के लिए एक प्रकार की आहार-सामग्री दी जाती है। जो बच्चे आगे चलकर रानी बनेंगे, उन्हें दूसरी प्रकार की भोजन-सामग्री दी जाती है। स्त्री-कर्मचारी अपनी इच्छा के अनुसार किसी स्त्री-बच्चे को भी रानी अथवा स्त्री-कर्मचारी बना सकते हैं। रानी अथवा पुरुष-मक्खी तथा बच्चों के भोजन और इनके पर्यवेक्षण के सब काम स्त्री-कर्मचारी करते हैं। ये स्त्री-कर्मचारी एक विशेष प्रकार की भोजन-सामग्री पहले अपने आप खाते हैं और थोड़ा-सा पचाने के बाद उसे सब स्त्री, पुरुष और बच्चों को खिलाते हैं।

भोजन-सामग्री जमा करना, उसे सुरक्षित रखना इत्यादि काम स्त्री-कर्मचारी करते हैं। स्त्री-कर्मचारी मक्खियों से छत्ते को ख़ूब साफ़ रखते हैं और अपने आपको भी स्वच्छ रखते हैं। इस काम में ये एक दूसरे की सहायता किया करते हैं। छोटे कर्मचारी छत्ते में रहकर काम करते हैं, और बड़े कर्मचारी भोजन-सामग्री आदि के संग्रह के लिए बाहर जाया करते हैं। बाहर से जो सामग्री आती है, उसके कुछ अंश को थोड़ा-सा पचाकर एक विशेष प्रकार की खाद्य-सामग्री तैयार की जाती है; कुछ अंश को दूसरे कर्मचारियों को खाने को दिया जाता है और शेष भाग वे स्वयम्

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

खाते हैं। आधे पचे हुए भोजन को रानी, पुरुष-मक्खी तथा बच्चों को दिया जाता है। बच्चे पैदा करने के सिवा रानी का और कोई काम नहीं होता।

फूलों से रस जमा करके कर्मचारी अपने शरीर में उसे शहद के रूप में परिणत करते हैं। इस शहद को ख़ास-ख़ास ख़ानों में रक्खा जाता है। ये ख़ाने कुछ समय तक खुले रहते हैं और उस समय कर्मचारी अपने पंखों को हिला-हिलाकर उसमें हवा पहुँचाते हैं। इसके बाद वे ख़ाने बन्द कर दिये जाते हैं। इस शहद का कुछ हिस्सा व्यवहार में लाया जाता है और कुछ जमा रक्खा जाता है। और एक विशेष प्रकार की भोजन-सामग्री इस प्रकार बनाई जाती है—पुष्प-रेणु अर्थात् पराग जमा करके ख़ानों में लाया जाता है और जो कर्मचारी छत्तों में रहकर काम करते हैं, वे उसे मज़बूती से बाँध-बूँधकर ख़ानों में बंद कर देते हैं। इसी पराग को आधा पचाकर बच्चों आदि को दिया जाता है।

प्रतिवर्ष एक-एक छत्ते में दो से लेकर छः तक रानियाँ तैयार की जाती हैं। ज्यों ही एक रानी अपनी पूर्ण अवस्था को प्राप्त हो जाती है, वह बाँसुरी की सी एक प्रकार की ध्वनि निकालती है। यह ध्वनि सुनते ही सारे छत्ते में एक भीषण उत्तेजना फैल जाती है। और यदि यह पुरानी रानी नई रानी को मार नहीं पाती तो हज़ारों मक्खियों को साथ लेकर नई रानी दूसरे स्थान को उड़ जाती है। पुरानी रानी नई रानियों को मारने की कोशिश करती है, लेकिन कर्मचारी उसे ऐसा नहीं करने देते।

आधुनिक विज्ञान की विस्मयकर उन्नति के बाद मानव को आज भी इसका ज्ञान नहीं हुआ कि कैसे भ्रूण अथवा मानव-शिशु को अपनी इच्छा के अनुसार लड़के से लड़की अथवा लड़की से लड़का अथवा किसी प्रकार के विशेष गुण-सम्पन्न अन्य जीव के रूप में परिणत किया जा सकता है। सैकड़ों वर्ष की उन्नति के बाद भी मानव-समाज की व्यवस्था वैसी सुन्दर एवम् सर्वांग रूप में परिपूर्ण नहीं है, जैसी कि मक्खी अथवा चींटियों की। चींटी एवम् दीमकों के समाज के बारे में अपने वक्तव्य को समाप्त करने के बाद समाज-व्यवस्था के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।

चींटियों के समाज

चींटियों के एक ही समाज में कई रानियाँ रहती हैं। ऐसा भी होता है कि अलग-अलग समूह की रानियाँ एक समूह में आ जाती हैं। गर्भवती होने के बाद ही दूसरे स्थानों से ये रानियाँ आती हैं। सयानी पुरुष-चींटियाँ अपने समूह में थोड़े ही दिनों के लिए रहती हैं। संतान पैदा करने योग्य होने के दो-चार दिन के अन्दर ही ये अपने समूह को छोड़ देती हैं और बाहर जाकर संभोग के बाद नष्ट हो जाती हैं। प्रकृति के कैसे रहस्यपूर्ण नियम हैं कि संख्या का नियंत्रण करने के लिए इनके साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार होता है। सयानी होने के पहले भी पुरुष-चींटियाँ कोई सामाजिक काम नहीं करतीं, सिवा इसके कि एक वास-स्थान से दूसरे वास-स्थान में जाते समय अर्थात् अपना वास-स्थान परित्याग करते समय ये अंडों को वहन करती हैं; लेकिन स्त्री-चींटियाँ ऐसे अंडे भी ले जाती हैं और आवश्यकता पड़ने पर वास-स्थान बनाने में भी सहायता करती हैं। एक-एक समूह में कई लाख कार्यकर्ता रहते हैं। ये कार्यकर्ता स्त्री तो होते हैं, परन्तु संतान उत्पन्न करने योग्य नहीं होते। चींटियों में पुरुषों के पंख होते हैं। लेकिन स्त्री-कर्मचारियों के पंख नहीं होते। छोटे कर्मचारी वास-स्थान में रहकर ही काम करते हैं। इनमें कई प्रकार की श्रेणियाँ हैं। किसी का काम है बच्चों को खाना देना और उन्हें साफ़ रखना, किसी का काम है वास-स्थान का निर्माण करना, किसी का काम है बाहर से खाद्य-सामग्री लाना। कुछ चींटियाँ केवल सिपाहियों का काम करती हैं। एक विशेष प्रकार की चींटियाँ होती हैं, जिनमें और तीन प्रकार की श्रेणियाँ पाई जाती हैं। इनमें जो बड़ी आकार की होती हैं, वे पत्तियाँ चूर्ण किया करती हैं। उससे छोटी चींटियाँ पत्तियाँ तोड़ने का काम करती हैं। सबसे छोटी जो होती हैं, उनका काम चींटी-समाज के बच्चों की देखभाल करना है।

पाठकों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि कई

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

प्रकार की चींटियाँ अपने वास-स्थान में एक प्रकार के पौदे की परवरिश किया करती हैं। इन पौदों में "अलबूमेन" की मात्रा बहुत पाई जाती है। इन पौदों के लिए भूमि विशेष प्रकार से तैयार की जाती है। जो कीड़े लकड़ी खाया करते हैं, उनके मल-मूत्र एवम् लकड़ी का बुरादा, ये दोनों चीज़ें मिलाकर भूमि तैयार की जाती है।

चींटियों में दूध देनेवाले कीड़े भी पाले जाते हैं। ये कीड़े चींटियों से भिन्न जाति के होते हैं। दूध दुहने की आवश्यकता होने पर चींटी अपने मुँह के पास के दो सूँड़ के से सूक्ष्म बालों से उन कीड़ों के पीछे के भाग में धीरे-धीरे आघात करती है। तब वे कीड़े अपने पीछे के भाग को ऊँचा करके एक प्रकार का पीला-सा रस निकालते हैं। यह बहुत मीठा होता है। चींटियाँ इन दूध देनेवाले कीड़ों को बड़ी सावधानी से पालती और उनका रक्षणावेक्षण करती हैं। कोई आक्रमण करके इन्हें ले न जा सके, इसकी विशेष व्यवस्था करती हैं। जाड़ों में इनके अंडों को लेकर एक विशेष सुरक्षित स्थान में रखती हैं और वसंत-ऋतु में इनके बच्चों को पौदों के ऊपर रखती हैं। शिशु-चींटियाँ भी मा-बाप से बिना सीखे ही इन अंडों को वैसे ही सेती हैं, जैसे बड़ी चींटियाँ। इस बात से यह भी पता चलता है कि चींटियों में भी वंशानुक्रम का विशेष प्रभाव होता है। चिड़ियों से भी वंशानुक्रम के नियम की सत्यता प्रमाणित होती है। एक प्रकार के गाय की श्रेणी के कीड़े, जो चींटियों के वास-स्थान में पाये जाते हैं, पौदों की जड़ें खाया करते हैं। चींटियों की कुछ जातियाँ हैं, जो इन गाय जाति के कीड़ों का मल खाकर ही रहती हैं। ये कीड़े भी चींटियों के समाज से अलग होकर जीवन नहीं बिता पाते। ये दूध देनेवाले कीड़े पौदों की पत्तियाँ और जड़ें खाया करते हैं। इनके लिए चींटियाँ अपने वास-स्थान में पौदों की विशेष व्यवस्था किये रहती हैं। एक अन्य प्रकार की चींटियाँ तितलियों के बच्चों का मल खाया करती हैं। इन बच्चों को चींटियाँ अपने वास-स्थान में घसीट लाती हैं। यहाँ वे बढ़ते हैं। कालोरेडो-नामक स्थान में एक प्रकार की चींटियाँ पाई जाती हैं, जिनका आहार-सामग्री पेड़ों से संग्रह की जाती है। विदेशी ओक-नामक वृक्ष पर एक प्रकार के कीड़े रहते हैं। इनके मल से उन वृक्षों पर एक प्रकार की गोंद-सी वस्तु बन जाती है। इससे एक प्रकार का मीठा रस निकलता है। चींटियाँ इस रस का संग्रह करती हैं। ये चींटियाँ शहद की चींटियाँ कहलाती हैं। इस रस का कुछ अंश तो व्यवहार में लाया जाता है, और बाक़ी जमा रहता है। जमा रखने की एक अद्भुत रीति इनमें प्रचलित है। इस चींटी की जाति में एक विशेष श्रेणी होती है। इस श्रेणी की चींटियों को "मधु-वाहक" कहते हैं। प्रारम्भ में तो ये "वाहक" साधारण कर्मचारी-श्रेणी के बच्चे होते हैं। इन्हें यह शहद-सा रस ख़ूब खिलाया-पिलाया जाता है। इन बच्चों में यह रस इतना भर दिया जाता है कि इनके पीछे के भाग असाधारण रूप से फूल जाते हैं। ऐसी अवस्था में ये बेचारे विशेष कमरों में छत से आयुभर लटके रहते हैं, मानो ये जीवित जीव नहीं हैं। जब कभी किसी कारण बाहर से आहार-संग्रह न हो सका, तब ये लटके हुए मधु-वाहकगण चींटियों को जमा किया हुआ शहद खिलाते हैं। उनमें कोई कम्यूनिस्ट पैदा नहीं हुए, नहीं तो इन मधु-वाहकों को वे अवश्य उभारते, हरतालें होतीं, और इन चींटियों के समाज में युगांतरकारी परिवर्तन होते, श्रेणी-विभाग मिट जाता और फिर न जाने कैसे नवीन समाज का उद्भव होता। संभव है, उस युगान्तरकारी उथल-पथल के बाद फिर उनके समाज में क्रम-विकास के नियमानुसार एक नवीन श्रेणी-विभाग की व्यवस्था होती। कारण यह कि क्रम-विकास के परिपूर्ण होने पर ही श्रेणी-विभाग की उत्पत्ति होती है। आधुनिक पाश्चात्य समाज के कुछ बड़े-बड़े दार्शनिक एवम् वैज्ञानिकगण ऐसा कहने लगे हैं कि योरप में भी दो-ढाई सौ वर्ष के अन्दर भारतीय समाज अथवा चींटी-समाज के से श्रेणी-विभाग उत्पन्न होंगे *।

* देखिए—Inequality of Man by J. B. S. Haldane; Health, Wealth and Happiness of Mankind by H. D. Wells; Keyseling; Nietzsche. इत्यादि।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

मेरी समझ में श्रेणी-विभाग सामाजिक उत्कर्ष का निदर्शन है। गर्म देशों में जो चींटियाँ पाई जाती हैं, वे आहार के लिए धान्य-संग्रह करती हैं। ये सब दल बनाकर खुली जगह से दाने संग्रह करती हैं, अथवा मनुष्यों या अन्य चींटियों की खत्तियों पर धावा करती हैं। धान्य संगृहीत होने के बाद अन्य श्रेणी की चींटियाँ इसे साफ़ करती हैं और खत्तों में रखने की व्यवस्था करती हैं। चींटियों की खत्तियाँ सूखी रक्खी जाती हैं, इसलिए इस धान्य से पौदे नहीं उत्पन्न होते। ऐसा अनुमान किया जाता है कि व्यवहार में लाने के पहले इस धान्य में कुछ नमी पहुँचाई जाती है, जिससे उस धान्य से पौदे निकलने को हो जाते हैं।

जो चींटियाँ पत्ते काटा करती हैं, उन्हें कृषि-श्रेणी का कह सकते हैं। ये अपने वास-स्थान में एक विशेष प्रकार के पौदे लगाती हैं। ये ठीक-ठीक पौदे नहीं होते; इन्हें अँगरेज़ी में "Fungus" कहते हैं। कर्मचारी-चींटियाँ "Fungus" के बाग़ लगाती और उनकी परिवरिश करती हैं। इन बाग़ों के लिए विशेष प्रकार की भूमि तैयार की जाती है। कर्मचारीगण बाहर जाकर पत्ते काटते हैं और फिर उन्हें गूँधकर एक प्रकार का नर्म गूदा तैयार करते हैं। इस गूदे से चींटियों के बाग़ों की भूमि तैयार की जाती है। इस मिट्टी को बार-बार बदला जाता है और इसकी निराई होती है, जिससे इसमें दूसरे क़िस्म के पौदे "फुंगी" अथवा जीवाणु पैदा न हो सकें।

इस प्रकार की चींटियों के वास-स्थान में "Fungus" अवश्य पाये जायँगे; और इस स्थान की रानी जब अपना स्थान-परिवर्तन करती है तो इन पौदों में से एक को वह अपने मुँह में अवश्य ले जाती है—जैसे प्राचीन काल में भारतवर्ष में गृहस्थगण एक मकान से दूसरे मकान को यज्ञाग्नि ले जाते थे।

कर्मचारी-चींटियाँ अपनी एवम् एक दूसरे की देह को चाटा करती हैं और इस प्रकार रानी एवम् बच्चों को भी वे चाट-चाटकर साफ़ रखती हैं; लेकिन केवल साफ़ करने की ही ग़रज़ से ये चाटा नहीं करतीं, वरन् इनकी देह से एक प्रकार का रस निकला करता है, जिसे ये चाटती हैं। वास-स्थान का मल, कूड़ा आदि बाहर ले जाकर फेंका जाता है। कभी-कभी उसे वास-स्थान में ही बहुत दूरी पर किसी स्थान पर जमा किया जाता है और उस पर मिट्टी चढ़ा दी जाती है। मृत चींटियों को भी इसी प्रकार भूमि में तोप दिया जाता है।

यदि इनके वास-स्थान पर किसी का आक्रमण होता है तो बच्चों और औरतों को ये बिलकुल भीतरी हिस्से में निरापद रखने की चेष्टा करती हैं, अथवा इन बच्चों और औरतों को साथ लेकर वास-स्थान से निकल भागने की चेष्टा करते हैं। यदि इनके वास-स्थान पानी से भर जाते हैं तो बच्चों और औरतों को बीच में रखकर उनके चारों ओर जमा होकर एक गेंद-सा बना लेती हैं। भय का कारण उत्पन्न होने पर ये एक दूसरे की सूँड़ पर आघात करती हैं अथवा धक्का देने की-सी आवाज़ करती हैं, और कभी-कभी एक विशेष इन्द्रिय द्वारा भी आवाज़ किया करती हैं।

जिस समय इनके पुरुष और स्त्रियाँ संभोग के लिए निकलने की तैयारी करते हैं, उस समय इनके वास-स्थान में भीषण उत्तेजना फैल जाती है। जैसे पुरुषों और स्त्रियों में उत्तेजना फैलती है, वैसी ही कर्मचारी-चींटियों में भी यह उत्तेजना फैल जाती है और उस समय सब काम बन्द हो जाते हैं। पुरुष और स्त्रियाँ सब एक ही साथ नहीं निकल जातीं। ऐसे अवसरों पर विभिन्न आवास-स्थानों की चींटियाँ बहुत बड़ी संख्या में खुली हवा में जमा होती हैं और इस समय उनकी आपस की शत्रुता मिट जाती है। गर्भवती होने के पश्चात् इनके पंख गिर जाते हैं। और ये नवीन आवास-स्थान बनाती हैं। कभी-कभी अन्य स्त्रियों की सहायता से ही ऐसे नवीन स्थान बनते हैं। इन अवसरों पर ऐसा भी होता है कि एक रानी कई पुरुषों द्वारा गर्भवती होती है।

इनमें एक अत्यन्त विचित्र बात यह पाई जाती है कि ये अपने अंडों से ही अपना और अपने बच्चों का पालन करती हैं, अर्थात् कुछ अंडों से बच्चे पैदा होते हैं और बचे हुए अंडों को खाने के काम में लाया जाता है। इसके बाद जब बच्चे बड़े हो जाते हैं तो वे कर्मचारियों के रूप में अपने-अपने विभिन्न कामों में लग जाते हैं। जब कई रानियाँ मिलकर एक समाज बनाती हैं तो पहले तो वे बड़ी शान्ति से जीवन व्यतीत करती हैं; परन्तु ज्यों-ज्यों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कर्मचारियों का जन्म होता है, त्यों-त्यों उनमें आपस में लड़ाई होने लगती है, एवम् अन्त तक एक को छोड़कर सब रानियाँ आपस में लड़कर मर जाती हैं। ऐसा भी होता है कि जब बाहर की परिस्थिति अनुकूल नहीं मालूम पड़ती, तब कर्मचारीगण एक रानी के सिवा सबको मार डालते हैं।

एक जाति की चींटियों में ऐसी स्त्रियाँ भी होती हैं, जो अपने बच्चों का पालन नहीं कर पातीं। ऐसी असहाय रानियाँ दूसरी जाति की रानियों के पास अपने बच्चों को पालने के लिए रख देती हैं। कभी-कभी जब अपने समाज की रानी मर जाती है तो कर्मचारीगण ऐसी असहाय रानियों को अपने समाज में ले आते हैं और इस प्रकार एक नवीन समाज का संगठन होता है। कुछ रानियाँ ऐसी भी होती हैं, जो दूसरों के आवास-स्थान में घुस पड़ती हैं, उनके सब पूर्ण वयस्क निवासियों को मार डालती हैं, और बच्चों का पालन करके उनको कर्मचारी बना लेती हैं। विशेष परिस्थितियों में कर्मचारी-चींटियाँ भी अंडे देती हैं।

एक प्रकार की चींटियाँ होती हैं, जो पत्तों के दोने बनाकर उनमें रहा करती हैं। ऐसे दोने बनाने के समय ये चींटियाँ अपने बच्चो को भी पत्तों के जोड़ने में लगा देती हैं, मानो ये बच्चे उनके एक प्रकार के दोने बनाने के सामान हैं। यदि दो पत्तों के बीच का अन्तर बहुत अधिक हुआ और एक चींटी उन दो पत्तों को न पा सकी तो कभी-कभी आठ-आठ चींटियाँ एक दूसरी की कमर को मुँह से पकड़ लेती हैं और इस प्रकार की एक ज़ंजीर-सी बनाकर उन दोनों पत्तों को मिलाती हैं।

कुछ चींटियाँ तो अकेले अन्न-संग्रह के लिए घूमा करती हैं, और कुछ समूह बनाकर भोजन-सामग्री का संग्रह करती हैं। इस समूह में घूमनेवाली जाति की चींटियाँ कभी-कभी तो छोटे और बड़े चूहों को भी मार डालती हैं, और उनके टुकड़े-टुकड़े करके मांस अपने वास-स्थान में ले जाती हैं। इस जाति की चींटियों में एक ही वास-स्थान की रहनेवाली एक दूसरे को भोजन-सामग्री से सहायता करती हैं। यह भोजन-सामग्री चींटियाँ अपने मुख द्वारा एक से दूसरी को पहुँचाती हैं। इनके दो प्रकार के पेट होते हैं। पहले पेट से ये दूसरे को आहार पहुँचा सकती हैं, मानो यह पूँजी रखने की थैली है। दूसरे पेट की थैली में आहार पहुँच जाने पर ये उसे बाहर नहीं निकाल सकतीं। मानो यह थैली उनकी व्यक्तिगत है। कोई चींटी भूखी होने पर, अपने साथी से, जो पूर्ण रूप से तृप्त है, अर्थात् जिसके पास काफ़ी परिमाण में खाद्य-सामग्री है, उससे भोजन माँगती हैं, और इस प्रकार माँगने पर वह चींटी तत्क्षण ही अपने साथी को भोजन दे देती है। माँगते समय वह चींटी अपने साथी के शरीर पर एवम् उसके मस्तक के पार्श्व पर अपने सामने के पैरों एवम् अपनी सूँड़ से आघात करती है और मुँह से मुँह चाटती है। एक पूर्ण तृप्त चींटी कई बार कई चींटियों को आहार दे सकती है।

चींटियों की कुछ जातियाँ हैं, जो दासों से काम लेती हैं। ये जातियाँ भोजन-सामग्री के लिए अपने दासों पर ही पूर्णतया निर्भर करती हैं। बच्चों को खिलाते समय तरल भोजन पदार्थ मुँह से उगलती हैं और यह बच्चों के मुँह में जाकर गिरता है। जिस जाति के बच्चों के जबड़े होते हैं, उन्हें मृतक कीड़े आदि भी भोजन को दिये जाते हैं।

विभिन्न आवास-स्थानों की चींटियों में प्रायः शत्रुता रहती है। एक जाति की चींटियाँ होने पर भी, आवास-स्थान भिन्न होने के कारण इनमें भी परस्पर शत्रुता रहती है। एक स्थान की चींटियाँ दूसरे स्थान की चींटियों की आहार-सामग्री, बच्चे एवम् उनकी गायें चुरा लेती हैं। कभी-कभी बाक़ायदा संगठित रूप से बलपूर्वक उन्हें लूट लेती हैं। ऐसे अवसरों पर चींटियाँ चोरी से, आक्रमण के ठीक अवसर को समझने के लिए, अपने साथियों को पहले से भेजती हैं।

दूसरे आवास-स्थानों से जो अंडे एवम् बच्चे उठा लाये जाते हैं, उनमें से कुछ तो खा लिये जाते हैं और कुछ दास बनाये जाते हैं। लेकिन चींटियों के दास मनुष्यों के दासों की तरह नहीं होते। चींटियों के दासों के काम तो भिन्न होते हैं; परन्तु और बातों

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

में इनमें तथा अन्य चींटियों में कोई अन्तर नहीं होता।

एक ही वास-स्थान की रहनेवाली चींटियों में एक विशेष प्रकार की गंध होती है। इसी गंध से एक वास-स्थान की चींटियाँ एक दूसरी को पहचान लेती हैं। यदि एक वास-स्थान की चींटी किसी दूसरे स्थान में चली जाय तो वहाँ की चींटियाँ गंध से यह पहचान लेती हैं कि वह चींटी उनके दल की नहीं है, तब वे उसे या तो मार डालती हैं या भगा देती हैं। चींटियों के प्रत्येक आवास-स्थान के प्रवेश-द्वार में पहरेदार रहते हैं; ये पहरेदार अन्य दलों की चींटियों को अपने यहाँ नहीं आने देते। यदि किसी आवास-स्थान की चींटी महीनों अथवा वर्षों की अनुपस्थिति के बाद वापस आती है तो भी उसके साथी उसे पहचान लेते हैं। यदि कदाचित् वे इसे नहीं पहचान पाते तो यह समझना उचित होगा कि उसके शरीर में वह विशेष गंध नहीं रह गई।

एक वास-स्थान की चींटियाँ दूसरे स्थान पर जाकर एक नवीन साम्राज्य अथवा राष्ट्र का संगठन करती हैं। बहुत खोज करने के बाद यह ज्ञात हुआ है कि एक वास-स्थान से निकलकर आसपास सोलह सौ अलग-अलग वास-स्थान अर्थात् अलग-अलग राष्ट्र पाये गये हैं और ये सब एक दूसरे के साथ सम्बन्धित थे। इस प्रकार कई लाख अथवा करोड़ चींटियाँ एक दूसरे के पड़ोस अपने-अपने राष्ट्र अथवा दल में रहती हैं। इन पड़ोस के दलों में प्रायः मित्रता रहती है; परन्तु यह मित्रता थोड़े ही दिनों में शत्रुता के रूप में बदल सकती है। चींटियों का एक दल अथवा राष्ट्र दूसरे दल के आवास-स्थान पर बलपूर्वक अपना दख़ल कर लेता है। इस प्रकार कभी-कभी बहुत दिनों की शत्रुता भी मित्रता में परिवर्तित हो जाती है। यदि दो दलों में महीनों तक युद्ध चलता रहा और एक दूसरे को परास्त न कर पाया तो इन दलों में शत्रुता का अन्त हो जाता है और कभी-कभी मित्रता भी हो जाती है।

एक वास-स्थान से दूसरे वास-स्थान को जाते समय चींटियाँ अपने अंडों-बच्चों को लिये हुए एक जलूस की तरह निकल पड़ती हैं।

जैसे चींटियों के दल एक दूसरे से लड़ा करते हैं, वैसे ही ये एक दूसरे से खेला भी करते हैं। ऐसा मालूम पड़ता है, मानो एक दल दूसरे के साथ युद्ध कर रहा है; परन्तु यह युद्ध नहीं, वरन् उनका एक प्रकार का खेल है। (क्रमशः)

अभ्युदय का मूल आरोग्य

आप पहले अपने आरोग्य की अभिलाषा करें।

आरोग्य से ही अभ्युदय की अभिलाषा सफल होगी। आरोग्य का लाभ लेने के लिये

आतंकनिग्रह गोलियाँ

ही प्रशस्त साधन हैं।

क़ीमत—३२ गोलियों की डिब्बी का १) एक रुपया

आतंकनिग्रह औषधालय

जामनगर, काठियावाड़

लखनऊ एजेंट—इंदरचंद एण्ड कं०, चौक

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बालकों से

श्रीजगदीश भटनागर 'मतवाला'

दुखी देश की आन बालक तुम्हीं हो,
गिरे वक्त की शान बालक तुम्हीं हो,
ग़रीबी के अरमान भी तो तुम्हीं हो,
अहो राष्ट्र के प्राण बालक तुम्हीं हो,
तुम्हीं पर नज़र देश भर की लगी है।

बनो वीर बालक शिवा वीर ऐसे,
बनो शेर-नर 'शेर - पंजाब' जैसे,
'तिलक' देवता से पढ़ो ज्ञान - गीता,
गहो दास 'मोहन' से शिक्षा पुनीता.
हमारी तो तक़दीर सोकर जगी है।

×

न भूलो कभी भूलकर भूमि भारत,
अकर्मण्यता से न होने दो ग़ारत,
फटकने न दो पास अपने निराशा,
जयति हिन्द; हिन्दी कहो सब स - आशा,
इसी नीति में जीत सम्मुख खड़ी है।

सिखो राज्यभाषा, पै हिन्दी न भूलो,
कभी सभ्यता पश्चिमी पै न फूलो,
सदाचार का जो सहारा रहेगा,
तो दूना चमकता सितारा रहेगा,
भई आत्मा सत्य-रँग में रँगी है।
तुम्हीं पर नज़र देश भर की लगी है॥

×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तोते की बदहज़मी

कुमार बुद्धिभद्र

(१)

बात यह है कि पहलेपहल बिट्टी ने तोता पाला। तीसरी मंज़िल से चिड़ीमार को आवाज़ देते-देते गला बैठ गया। उतने ढेर के ढेर बिल-बिलाते पींजड़े में से एक तोता छाँटने के लिए कम से कम आध दर्जन आदमियों ने अपने दिमाग़ ख़र्च कर डाले और राम की दुआ से तोता मिला भी एक ही।

फ़रमाइश हुई, पींजड़े की! एक मर्तबे नौकर जाकर बटेर का कावुक ले आया और दुबारा तीतर का पींजड़ा। मालूम नहीं, बेचारा तोते के नाम से घबरा गया था या बिट्टी के हुक्म से। पर आख़िर में मार खा चुकने के बाद ही वह सुन्दर-सा लोहे का पींजड़ा ला सका।

बस जनाब, अब होने लगी तोतेराम की ख़ातिरदारी। जो ज़रा ख़याल हुआ कि लोहे का पींजड़ा सख़्त है तो रात को बिट्टी ने चुपके से अम्मा की नई रज़ाई फाड़ दी। उन्होंने जो धूप में डालते वक़्त देखा, तो रज़ाई में सेंध लगी हुई। अब क्या कहने हैं, सुन्दर-सुन्दर नामों से हम लोग पुकारे जाने लगे। जब पींजड़े पर नज़र पड़ी, तो अम्मा ने देखा कि ठाट से रज़ाई पर पंख फुलाये बैठे हैं तोतेराम।

तोता तो था ज़्यादा से ज़्यादा एक महीने का, यानी अभी पूरे तौर से पंख भी नहीं ठीक हुए थे, पर बिट्टी को तोता पालने का फल तत्काल मिलना चाहिए। तोता तो वह है जो ख़ूब पढ़े, पैरों में पैंजनिया पहनकर ठुमुक-ठुमुक नाचे और बिट्टी को देखकर सलाम करे; अगर ऐसा न करे तो वह तोता ही क्या? बला से वह एक महीने का है, बला से वह चारा नहीं खा पाता।

तो भाई, सब लोगों ने अपनी-अपनी राय ज़ाहिर की।

महाशय मुन्नू बोले—'तोते को हरा मिर्चा खिलाया जाय, तो वह ख़ूब बोले और मैं उसे संस्कृत पढ़ाऊँ।'

लेकिन बिट्टी की राय इसके ख़िलाफ़ थी। ज़माना अब आगे बढ़ चुका है, तोता क्यों न अप-टू-डेट हो अँगरेज़ी पढ़े।

और सबसे बड़ी बात तो मेरी थी कि तोता संगीतज्ञ हो। आज ही से 'सा-रे-ग-म' शुरू करा दिया जाय।

दूसरे दिन दौरे पर से दाऊजी लौटे। सुबह खाट पर बैठे चाय पी रहे थे कि बस उनके सामने तोता पेश हुआ।

'भई वाह, रानी बेटी तूने यह तोता तो बड़ा सुन्दर लिया है।'

और तभी, उचकते हुए जो मुन्नू आये तो कहने लगे, दाऊजी इसे संस्कृत पढ़ायेंगे।

'हिश' नाक सिकोड़कर बिट्टी ने कहा। यह क्या तुम्हारी तरह लम्बी चुटियावाला विद्यार्थी होगा। मैं इसे अँगरेज़ी पढ़ाऊँगी।

और अब दाऊजी पुच-पुच करके चुटकी बजाकर तोते से वार्तालाप कर रहे थे। तोता एक ही था, जो इस भीड़-भड़क्के में, एकाएक चीख़ उठा।

'ओहो' इसे भूख लगी होगी। सहसा बिट्टी को याद आई—अरे जा रे भगतुआ कोई फल तो ले आ।

'हाँ हाँ, एक सेब ले आओ।'—दाऊजी ने कहा और अपनी डिबिया से नास निकालकर सड़ाक-सड़ाक सूँघने लगे।

भगतू दौड़े सेब लाने। इधर हम लोगों की बातें

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

चलने लगीं। जब सेब आ गया तो पींजड़े में तोतेरामजी लगे उससे गेंद की तरह खेलने।

'दाऊजी चाकू से काट दिया जाय, आपने बेचारे के आगे समूचा ही छोड़ दिया।'—बिट्टी ने कहा।

मुन्नू बोल उठे—'वाह, इस तरह उसकी कुछ कसरत ही हो जायगी क्यों दाऊजी? आप ही तो कहते थे, थोड़ा व्यायाम सबके लिए आवश्यक है।'

मैंने भी बात ठीक समझी। कह दिया, हाँ और क्या। फिर इन्हें जंगल में कौन फल काटकर देता है।

बिट्टी ने बात काट दी—'तो यह जंगली है क्या?'

'ओहो भूल गया, अब तो सभ्य हो गया है।' मैंने अपनी गलती मंजूर कर ली।

अब दाऊजी ने पूछा—'क्यों रे भगतुआ, कितने का मिला सेब?'

'एक आने का दाऊजी'—बड़े सभ्य ढंग से सबको ठेलकर सामने आकर भगतू ने कहा।

एक बार और सूँघनी सूँघकर, खड़े होकर दाऊजी अब कह रहे थे—'इसे रोज एक सेब दिया करो रानी बेटी।'

(२)

इस बीच में बिट्टी का तोता काफ़ी मशहूर हो गया था। जो कोई भी बाहर से आता-जाता, उसके लिए अनिवार्य था कि तोते का मुआयना करे।

अब तोता बोलने भी लगा था और पढ़ने भी। संस्कृत, अँगरेजी और संगीत को एक कोने में रखकर वही 'सत्त गुरुदत्त शिवदत्त दाता', 'पढ़ो पट्टे सीताराम'।

तोते के लिए रोज एक सेब आता था। दूध, मिर्चे, चावल, दाल, अंगूर, याने चाट तक। बिट्टी तो जो कुछ पाती, उसमें से पहले तोते का हिस्सा लगाती।

लेकिन एक रोज जैसे विपत्ति का पहाड़ फट पड़ा। एकाएक तोतेराम गुमशुम होकर बैठ रहे, न खाना, न बोलना, न हिलना।

बिट्टी की तो आँखें डबडबा आईं। मुन्नू फ़ौरन् दाऊजी के पास दौड़ गये। 'तोता बीमार है!' सारे मकान, टोले - मुहल्ले में ख़बर फैल गई 'तोता बीमार है!'

बिट्टी कहती आख़िर बीमार क्यों न हो; क्योंकि बरसात का ज़माना है। आदमियों की तरह तोते की भी तो खाना पचानेवाली आग धीमी पड़ जाती है।

मुन्नू कहते—बार-बार मना किया इतना ज्यादा खाना न दो। आजकल हैज़े का रवइया कहीं कुछ हो जाय तो?

और तब भगतू अपनी राय ज़ाहिर करते कि 'बिट्टी महावीर का प्रसाद मान दो, तोता अच्छा हो जाय।'

एक और बिट्टी की सहेली आई थी। नाक में रूमाल लगाकर कहने लगी—'इसे पीने के लिए पोटाश का पानी दो।'

मेरे भी दिल में एक बात उठी। सोचा—अपनी राय ज़ाहिर करूँ। मैंने कहा—मेरे ख़याल में इसे हैज़े का टीका लगवा दिया जाय।

अब सबसे बड़ी बात थी अम्मा की। तोते ने उनकी रज़ाई फड़वाई, घर में हरदम भीड़ लगी रहती है, खाना बनाने में बिट्टी मदद नहीं देती। ग़ुस्सा बर्दाश्त के बाहर हुआ। उठाकर हाथ में चैला ले गर्जती हुई चलीं। वह कहो कि रास्ते में दाऊजी से हो गई मुठभेड़, इससे हम लोग बच गये।

उन्होंने कहा—बस, तुमने इन लड़कों को सिर चढ़ा रक्खा है। जब देखो तब तोता-तोता।

'ओ होगा भी! बच्चे हैं' कहकर बड़ी देर में दाऊजी उन्हें समझाकर शान्त कर सके।

शाम हो गई थी। तोता अभी अच्छी तरह से खाना-पीना नहीं खा रहा था। मालूम नहीं क्या बात हो गई थी।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

उधर अम्मा के ख़फ़ा होने से हम लोग डर-डरकर तीमारदारी में लगे हुए थे।

पोटाश का पानी और संजीवन चूर्ण दिया जा चुका था, आधी बूँद अमृत-धारा भी।

अब शाम को उसे कुछ पथ्य देना था। बिट्टी ने भगतू को भेजा कि दो पैसे का पपीता ले आओ। पथ्य के साथ-साथ वह पेट की सफ़ाई भी करेगा।

'वाक़ई पपीते की तारीफ़ तो हमने भी सुनी है। वह पेट साफ़ करने की तो अक्सीर दवा है।' मैंने कहा।

बहरहाल पपीता आया। सुग्गे को दिया गया, पर उसने मुँह से छुआ तक नहीं। मुन्नू की राय हुई कि बच्चों और जानवरों की बुद्धि एक-सी होती है। दवा कहीं राज़ी से खिलाने की राह देखनी चाहिए।

तब बिट्टी ने तोते को पींजड़े से निकालकर उसके मुँह में पपीता ठूँसना शुरू किया।

तोते का दिल धड़क रहा था, बदन काँप रहा था डरके मारे। बिट्टी ने उसके पेट के पास अपना कान लगाकर आवाज़ सुनी। फिर कहा—'ओहो, इसके तो बड़ी ज़बरदस्त बदहज़्मी हो गई है। कुछ-कुछ बुख़ार भी है।'

मैंने कहा—'अब इसे चुपचाप लिटा दो। बोलो नहीं।'

तब मुन्नू से मालूम हुआ कि बिट्टी बड़ी रात तक आग पर रुई के फाहे रखकर तोते का पेट सेंकती रहीं।

(३)

दूसरे दिन सुबह जब हम गये तो मालूम हुआ कि तोतेराम इस असार संसार से कूच कर गये। मुन्नू और बिट्टी खूब रोये-चिल्लाये। फ़ोटोग्राफ़र को बुलाकर तोते की एक तसवीर ली गई। अब दाऊजी के साथ मोटर में बैठकर उसे गोमती में प्रवाह करने ले जाया गया है।

भाई मुझे भी बड़ा दुःख हुआ, क्या किया जाय। धीरे-धीरे ऊपर गया, देखा, पींजड़ा सूना पड़ा है।

पास के कमरे में कुछ खटक हुई। मैं समझा, बिल्ली है। चुपके से दरवाज़ा खोलकर अन्दर गया तो भगतू महाशय थे। जल्दी-जल्दी तोते के लिए मँगाये हुए सेब और पपीते पर बड़ी तेज़ी से मुँह चलाते हुए, मुझे देखकर चौंके और डरे।

मैंने कहा—'शाबाश' और पास के ऊँचे आले पर रक्खा दूध का ग्लास भी उठाकर भगतू को दे दिया।

भगतूराम दूध पीकर, अपनी फटी क़मीज़ से मुँह पोछते हुए बोले—'अम्मा क्या कहेंगी?'

मोटर का हार्न सुनकर मैंने कहा—बिल्ली। तब नीचे दौड़कर मुन्नू तथा बिट्टी के पास पहुँचा। हमदर्दी भी तो आख़िर दिखानी थी!

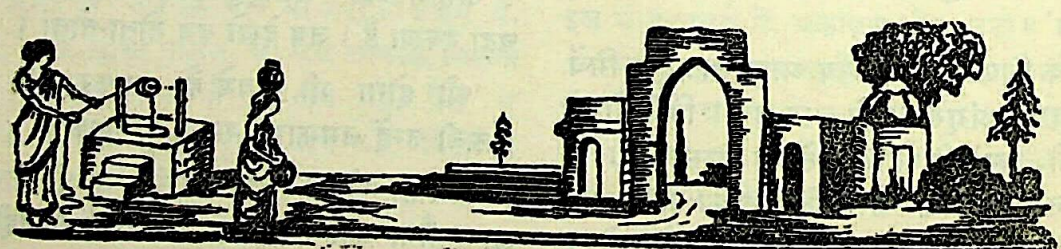

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

होमियोपैथिक चारुचिकित्सा (स्त्री व बाल-रोग)—लेखक और प्रकाशक डा० बाबा सी० सी० सरकार एम्० एम्० बी०, प्रोफ़ेसर, होमियोपैथिक मेडिकल कालेज, लखनऊ। साधारण संस्करण २॥), सजिल्द ३); पृष्ठ-संख्या प्रायः ४५०। छपाई-सफ़ाई साधारण अच्छी। डा० सी० सी० सरकार, होमियोपैथिक-चारुचिकित्सा-कार्यालय, यदुनाथ सान्याल रोड, लखनऊ को लिखने पर मिलेगी।

आज होमियोपैथिक चिकित्सा का संसार भर में प्रचलन है। घरेलू चिकित्सा के रूप से इसी का घर-घर प्रवेश है. यों बाज़ार में भी इसने अन्य चिकित्साओं की तरह अपनी जड़ जमा ली है। इसके बड़े-बड़े डाक्टर हो रहे हैं। उनकी संघशक्ति सुप्रतिष्ठित मानी जाती है। उनकी सभा-समितियाँ होती हैं और आपस में वे अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। यह चिकित्सा संसार के अपर भागों में ही नहीं. भारत में भी पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित हो गई है। यहाँ की प्रादेशिक भाषाओं में इसके अनेकानेक अनुवाद निकल चुके हैं। हिन्दी में भी कुछ प्रकाशित - अप्रकाशित अनुवाद हैं, जिनका मुझे अच्छा ज्ञान है। अनुवादकों में मेरे मित्र भी हैं।

डा० सरकार से, लखनऊ रहते समय, इस विषय पर मेरी बातचीत हुई। उनके एतद्विषयक सूक्ष्म बोध से खिंचकर उनका अनुवाद-कार्य देखने के लिए मैं उनके यहाँ गया, और उनके परिश्रम और मनन का निरीक्षण कर प्रभावित हुआ। उन्होंने अन्यान्य अनुवादों में जो ग़लतियाँ दिखाईं, वे सही मालूम दीं। पुनः हिन्दी - भाषी प्रान्तों में होमियोपैथिक चिकित्सा की कमी पर उनकी आवेशभरी बातचीत मेरी आँखों में उनकी दक्षता, लगन, प्रेम और शक्ति का चित्र खींच रही थी। निःसन्देह उन्हें अपने विषय का ऊँचा अध्ययन और अनुभव है।

इस चिकित्सा पर डा० सरकार की यह दूसरी पुस्तक है। पहली पुस्तक. इस चिकित्सा का पहला भाग ज्वर पर है। उसकी हिन्दी और अँगरेज़ी के पत्रों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। आपकी दूसरी पुस्तक भी यथेष्ट प्रशंसित हुई है। इस पुस्तक के पाँच भाग आप निकालेंगे। एक यह प्रकाशित है, दूसरा छप रहा है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आपकी पुस्तक केवल अनुवाद नहीं। इसमें आपका अपना वैज्ञानिक निरूपण है, जिससे साधारण से साधारण पढ़े-लिखे लोग और देवियाँ अच्छी तरह अपने रोग को समझकर इलाज कर सकें, उनका ज्ञान भी वृद्धि प्राप्त करे। केवल रोग और लक्षण ही नहीं लिखे गये, उनके स्वरूप का वैज्ञानिक निर्णय भी किया गया है, और उसी उपाय से विधान बतलाया गया है। इसमें डा० सरकार का अनुभव और मननशीलता ही प्रधान है। मैंने डा० सरकार के पास पुस्तक के खरीदारों के पत्र भी देखे, जिनमें प्रेषकों ने आपकी भूरि-भूरि प्रशंसा की है और लिखा है कि ऐसी पुस्तक के लिए वे आपके कृतज्ञ हैं। उन्होंने हिन्दी की इस विषय की पुस्तकों की निन्दा भी की है। मैं समझता हूँ, जहाँ अधिक व्यय करके भी लोग अधूरा इलाज पाते हैं, वहाँ डा० सरकार के विधान अवश्य ही आदृत होने चाहिए। इससे अर्थ और स्वास्थ्य दोनों का कल्याण है। डा० सरकार की किताब उनके सूक्ष्म विवेचन और निरूपणों से कितने अधिक महत्त्व की है, यह मैं इतने से शब्दों में नहीं कह सकता। हिन्दी-भाषी सर्वसाधारण इसे मँगाकर, सत्य की परीक्षा कर अत्यधिक उपकृत होंगे, यह मेरा दृढ़ विश्वास है। उनकी आधुनिक संस्कृति, शिक्षा, ज्ञान, स्वास्थ्य और अर्थ वृद्धि प्राप्त करे, मैं हृदय के हृदय से चाहता हूँ। देवियाँ अवश्य इस पुस्तक से लाभ उठायें।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

× × ×

ला-मज़हब—देहाती-भाषा में विख्यात कविता-संग्रह 'चकल्लस' के कवि पं० बलभद्र दीक्षित 'पढ़ीस' यों तो क़रीब छः साल से हिन्दी-साहित्यिकों से कहानी-कार के रूप में परिचित हैं, पर इस बार 'पटना पब्लिशर्स रामचन्द्र त्रिवेदी' ने उक्त कहानी-संग्रह से उन्हें और पास ला दिया। इसमें पढ़ीसजी की सात कहानियाँ हैं। ला-मज़हब, सन्निपात, पाँखी, क ख ग घ, ढाई अच्छर, चिन्तादास की गोली और साथी।

'कहानी' शब्द से जिस काव्य-साहित्य का ज्ञान होता है, वह उलझे और सुलझे मस्तिष्क की परवा न करके सुगन्ध की तरह उसमें सीधे उतर जानेवाली चीज़ है। कहानी की पोशाक पहनाकर चाहे जो आप पेश करें, वह कहानी न हो जायगा, उसे पहचानने में देर न लगेगी। कहानी का आधार इतिवस्तु, प्राण, अभिव्यञ्जना और प्राकृतिकता शरीर एवं सुरुचि स्फूर्ति है। किसी भी संदेश को ज़ोर देकर कहने से वह फूट जाती है। मेरे इसी लक्ष्य से १, ३, ४ और ७ वीं कहानी, कहानी की लाशें भर हैं। अब यह दूसरी बात है कि उनकी गठन, लम्बाई, चौड़ाई या भाषा भर लेकर लड़ाई की जाय। 'ला-मज़हब' को कहानी मानने पर व्यंग्य, कटाक्ष, धरपकड़, प्रधान आलोचना-शास्त्र का अन्त हो जायगा। 'पाँखी' और 'साथी' दूर तक घसीटे गये हैं। 'ढाई अच्छर' में उठते हुए मनोविज्ञानपूर्ण कहानी-सौष्ठव को परिस्थितिवश विकसित न कर मिला। हाँ, यह छोटी-सी 'थीसिस' बन गई है। 'क ख ग घ' में दो तिहाई पार्श्व-चित्र सजाये गये हैं, जिन्हें ठेलकर कहानी ढूँढ निकालना काफ़ी मुश्किल काम है। पार्श्व-चित्रण थोड़ा और आवश्यकता भर को चाहिए। कमरे में तर-ऊपर जैसे मेज़ें ही गरी हों, वैसे ही इसमें तमाम पार्श्व-चित्र भर दिये गये हैं।

यह सब देखकर अन्दाज़ा लगाया जा सकता है कि अगर पढ़ीसजी चाहें तो वे ज़रूर कहानी बहुत अच्छी लिख सकते हैं। उदाहरण में मैं 'सन्निपात' और 'चिन्तादास की गोली' को पेश कर सकता हूँ। 'सन्निपात' में कहानी का प्राण, जिसे मैंने अभि-

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

व्यञ्जना माना है, जो कौतूहल के रूप में मिलता है, भरा पड़ा है। कितनी बड़ी कथा डेढ़ पन्ने में लेखक भर सका है! ऊपर से 'भाषा' और 'प्रवाह' की बरसात कहानी को अवश्य कहानी-कला के गुणों का सन्निपात (सम्मिश्रण) बना रही है। बिलकुल ठीक तरीक़े से दूसरी कहानी 'चिन्तादास की गोली' भी बैठती है।

कवि बनकर जिसने विश्व-प्राङ्गण के सड़े-गले कोने देखे हैं, जिसे उनमें अपने-बिराने को भुला देनेवाली सत्य अनुभूति प्राप्त हो सकी है, वह लेखक बनकर उसे इतनी सफलता से व्यक्त कर पाता है कि प्रकृत सत्य खड़ा मुँह ताका करे। देखिए—

पन्नू बीमार है, पागल हो गया है, उसकी स्त्री मुरग़ी का चित्रण।

"—लेकिन उसका यौवन उस फूल की तरह हो रहा था, जिसके दरख्त पर खाद-पानी की कमी से अधिक तुषार की मार पड़ी होती है। वह गदराई नहीं थी, बल्कि प्राकृतिक धक्कों से फूल पटक और ठिठराकर रह गई थी। ×× अब बच्चों के धक्के-मुक्कों से अलहदा रहना ज़रूरी था।"

—ला-मज़हब, पृष्ठ १५

पन्नू बक रहे हैं—

"जब मरना बिलकुल आदमी के बस की बात है तो वह अभी क्यों मरे? मेरी मा की चक्की पीसने में मदद क्यों न करे।"

"ज़िन्दगी काम करते-करते मर जाने को मिलती है। हाँ, मैं अपनी मुरग़ी से प्रसन्न नहीं हूँ, लेकिन सन्तुष्ट तो हूँ ही।"

—ला-मज़हब, पृष्ठ १४

जैसे पन्नू का सन्निपात है, वैसे ही चिन्तादास की चिन्ता और गोली की ख़ूब गोल कल्पना। उपहसित और पदपीड़ित समाज के जीवों की कल्पना का प्रतीक भी मिट जाता है। चिन्तादास प्रेमिका को सोचते-सोचते उसका स्थान शून्य में मिला लेते हैं। पढ़ीस ने लिखा है—

"ब्रह्मचारी चिन्तादास का स्त्री-प्रेम भलेमानसों का सा—जहाँ एक आदमी किसी स्त्री के लिए मरा-जिया करता है—न था, उन्हें एक ऐसी चीज़ चाहिए थी, जिसे वे अपनी बीवी (गोली) समझकर प्यार करते।"

अभाव का कितना सुन्दर चित्रण है, मानो अब कल्पना भी थक गई। इस कहानी में, जैसा कि पढ़ीसजी ने लिखा है, वस्तुतः उनका मनोविज्ञान एक ख़ास उनकी चीज़ है।

कहीं-कहीं का वाक्य-विन्यास बहुत सुन्दर है। चिन्तादास को बहकाकर एक ठाकुर अपनी प्रेमिका के लिए, उसे उनकी प्रेमिका बनाकर, उपहार में फल ले जाया करता है। लेखक ने लिखा है—

"मैंने ज़रूरत से ज़्यादा समझदार बनकर उत्तर दिया—"मुझसे यह भी तो छिपा नहीं कि तुम्हीं ने इस भोले जीव से अपना उल्लू सीधा करना चाहा है। तुम्हीं ने तो इसे इस तरह फाँसा है, अपने को किसी और जगह फँसाने के लिए।"

ठाकुर झेंपा।

मैंने फिर कहा—"ये खिरनी, फालसे, आम, ख़रबूज़े कहाँ से आते हैं? और मैं यह भी जानता हूँ कि कौन किसे क्या देता है, और फिर कौन किसे (कैसे)।"

कहने का मतलब यह कि इन कहानियों की ज़्यादा ख़ूबसूरती पुस्तक देखने पर ही मालूम होगी।

इन्द्रदत्त शर्मा साहित्य-शास्त्री

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

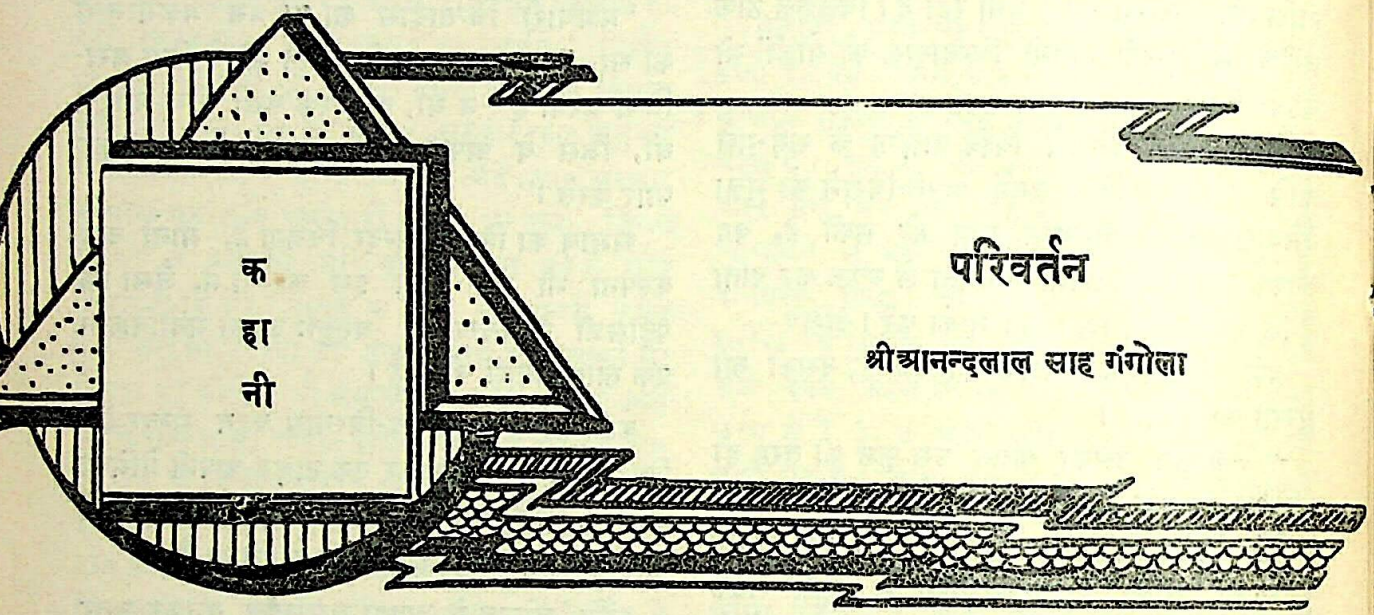

परिवर्तन

श्रीआनन्दलाल साह गंगोला

'आ....हाँ, आहाँ, आ....हाँ।'

विपिन ने सुना और ग़ौर से सुना।

'आहाँ, आहाँ, आहाँ, आ....हाँ, आ....हाँ, आ....'

प्रत्येक खाँसी की ध्वनि उसके हृदय में घन की-सी चोट मारने लगी। पास-पल्ले जो कुछ था सब बेकारी की भेंट हो चुका था। किसी तरह वर्तन वग़ैरह बेचकर डाक्टर की फ़ीस चुकाई, पर अब पूर्णतः शारीरिक जाँच व दवादारू के लिए रुपया कहाँ से आवे? बिना जाँच के रोग का निदान कैसे होगा? उसने बहुत सोचा, पर उसे रुपया मिलने का कोई उपाय न सूझा। अन्त में वह अशान्त हो बड़बड़ा उठा—'प्रेमा! दुःख की साथिन, तुझे इस बीमारी से न बचा सकूँगा।'

रुपया-पैसा चाहे न था, पर एक सच्चा साथी तो था, जिससे वह अपना दुःख-सुख कह लेता था। जिस दिन से यह उसके पल्ले पड़ी, वह उसे कभी सुख न दे सका। खाना पकाना, कपड़े धोना, बर्तन मलना, झाड़ू देना, यही उसका आज तक का जीवन रहा। अपनी हमजोलियों के ठाटबाट देख क्या उसका मन रागरंग और पहनने-ओढ़ने को न होता होगा? न मालूम बेचारी अपने नन्हें से हृदय में क्या-क्या साध, क्या-क्या इच्छाएँ दबाये रहती होगी। पर उसने कभी अपना दिल न खोला। उसके सामने वह सदा हँसती रहती और हँसाने की कोशिश करती। जब वह निराश रहता तो वह उसे उत्साहित करती। आह! जब वे एक दूसरे को पहचानने लग गये थे, अचानक यह विपत्ति कहाँ से टूट पड़ी? उसे एक के बाद एक सारी बीती बातें याद हो आईं। उसका मन विकल हो उठा। इतने में किसी ने पुकारा—'बिपिन बाबू हैं?'

'कौन?' बिपिन ने बाहर निकलकर कहा—'ओहो, सेठजी! आइए, आइए....'

'क्या करें आकर?' सेठ ने तमतमाकर कहा—'आज का वादा था, लाओ किराया।'

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

'जी ! मैं इधर बड़ी मुसीबत में हूँ। मेरी स्त्री बीमार है। इसके अलावा मिल में हड़ताल हो जाने से तीन-चार महीने से सिलसिला भी छूट गया है। थोड़े दिन और सब्र....'

'सब्र की भी कोई हद होती है। तीन महीने का किराया रुका पड़ा है; रोज़ टालमटोल किया करते हो।'

'अगर मेरे पास रुपया होता तो भला मैं आपको क्यों परेशान करता ?'

'तो मेरा मकान कोई लावारिसख़ाना तो है नहीं।' सेठ ने चिढ़कर कहा—'उठाओ अपना बोरा-बिस्तरा, नहीं तो अभी बाहर फिकवा दूँगा।'

'सेठजी !' बिपिन गिड़गिड़ाकर बोला—'दया कर ज़ोर से न बोलिए मेरी स्त्री बीमार है। उसके कानों में आवाज़ जाने से....'

सेठ से अब ज़ब्त न हो सका। वह झल्लाकर बोला—'अबे ! मुझे क़ायदा सिखाता है। पाजी कहीं का....'

'बस ! ज़बान सँभालकर बोलिए।'—बिपिन उभरते हुए क्रोध को रोककर बोला—'ग़रीब भी आदमी होते हैं।'

'एक तो चोरी, उस पर सीनाज़ोरी।' सेठ ग़ुस्से से काँपने लगा। कुछ सोचने के बाद बिपिन ने दृढ़ता से कहा—'एक हफ़्ते के अन्दर आपका मकान ख़ाली हो जायगा और हिसाब भी चुकता कर दूँगा।'

बिपिन के उग्र रूप को देख सेठ को और कुछ कहने का साहस न हुआ और वह भुनभुनाते हुए चल दिया। बिपिन कमरे में आ थोड़ी देर मशीन की तरह टहलता रहा। फिर दबे-पाँव प्रेमा के कमरे की ओर चल दिया। प्रेमा आँख बन्द किये पड़ी थी। कल रात से उसे इस समय नींद आई थी। उसका मन प्रफुल्लित हो उठा। वह निर्निमेष दृष्टि से उसे देखता रहा। एकाएक उसे शंका हुई—क्या यह सो रही है ? या....। उसका कलेजा ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा। उस दिन उसकी मा भी तो इसी तरह हमेशा के लिए सो गई थी। तब क्या सब समाप्त हो चुका। उसने हृदय को मज़बूत कर धीरे से उसकी नाक के सूराख़ों तक अपनी उँगली ले जाकर देखा। साँस चल रही थी। उसे धीरज बँधा और अपनी दशा पर हँसी आने लगी। वह आहिस्ते से किवाड़े बन्द कर अपने कमरे में आ खिड़की से बाहर की ओर झाँकने लगा। मरना-जीना तो लगा हुआ है। जो पैदा हुआ है, उसका नाश होगा ही। किसी का चार दिन पहले, किसी का चार दिन पीछे। लेकिन दवादारू बिना मौत—आह ! कितने दुःख की बात है। दवादारू मौत को तो नहीं टाल सकती, फिर भी मन का भ्रम है। यह कहने को तो न रह जाय कि वह कुछ न कर पाया। यदि ऐसा हुआ तो यह बात उसके दिल में दर्द होकर रहेगी। उसे कुछ सूना—सूना-सा प्रतीत होने लगा और उसका हृदय ऐंठने-सा लगा। यदि एक सौ रुपया कहीं से मिल जाय तो सेठ का हिसाब भी चुकता हो और दवा-पानी का प्रबन्ध भी। पर उसका कौन अपना है, जो उसे इतनी रक़म दे। उसने बहुत-से उपाय सोचे, पर आशाजनक कोई न जंचा। सोचते-सोचते उसकी आँखें चढ़ गईं और सिर भन्ना उठा। घर से बाहर हो दरवाज़ा बंदकर वह सामने पार्क में जा एक बेंच पर बैठ गया। शहर बिजली की बत्तियों से जगमगा उठा था। नित्य की तरह सुन्दर साफ़-सुथरे कपड़ों से सुसज्जित नर-नारियों के झुण्ड आ-जा रहे थे। वह चुपचाप उन्हें देखने लगा। उस स्त्री की साड़ी कितनी क़ीमती होगी ? उस आदमी के हाथ में अँगूठी का नग बिजली के प्रकाश में कैसा चमक रहा है ? उस दूकान की आलमारी का एक कोना कितनी क़ीमती चीज़ों से भरा होगा ? इनमें से किसी की क़ीमत से उसका उद्धार हो सकता है। वह इसी सोच-विचार में था कि इतने में एक चमचमाती हुई कार पार्क के समीप आकर रुकी और उसमें से एक अप-टू-डेट युवक एक सुन्दरी के साथ पार्क के अन्दर दाख़िल हुआ। बिपिन की आँखें चौंधिया गईं। कितने सुखी और जीवन से ओतप्रोत हैं ये दोनों ?....उसकी प्रेमा क्या सुन्दरता में उस युवती से कम है ? उसे यदि इतना ही सुख मिले और इसी वेष-भूषा में रक्खी जाय तो वह इससे हज़ार दर्जे अच्छी जँचेगी। इसके अलावा शायद उसे भले-बुरे का ज्ञान तथा जीवन की बारीकियों का इससे

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहीं ज़्यादा अनुभव होगा। ये अपने में मस्त रहने-वाले लोग क्या जानें दुनिया के दुःख-दर्द को। वह मन ही मन प्रेमा को सजाकर देखने लगा कि वह कैसी दिखाई देगी, यदि उसे उस युवती की तरह सजाया जाय। प्रेमा का उस अवस्था का पूरा चित्र खींच लेने के बाद उसने एक ठंडी साँस ली और सोचने लगा—इस पृथ्वी में सभी चीज़ें तो भरी पड़ी हैं। उनको भोगने का सबको बराबर हक़ है। फिर यह अंधेर क्यों? ऐसा बेहूदा बटवारा क्यों? कुछ लोगों को खा-खाकर अजीर्ण हो और करोड़ों को खाने के भी लाले पड़ें। किसी के लिए ज़रा-सा नुक़्स हो जाने पर कपड़े पहनने के लायक़ न रह जायँ और किसी को माघ-पूस की सर्दी में ठिठुर-ठिठुरकर प्राण देने पड़ें। किसी के ज़रा-सा छींकने पर वैद्य, हकीम और डाक्टरों की भीड़ लग जाय और किसी को बिना दवा-पानी के तड़प-तड़पकर मरना पड़े। कोई बैठे-बैठे खाय, किसी का मेहनत करते-करते दम निकले; पर उसे रूखा-सूखा भी न मिल सके। यह तीतर-बटेर का हिसाब क्यों? क्यों नहीं लोग इस अन्याय को जड़ से उखाड़ फेंकने की कोशिश करते? इतने में वह युवक और युवती उसके पास से होकर गुज़रे। उनसे निकलती हुई सेंट की सुगंध से वह स्थान महक उठा। उसने विचारा, यदि सभी इस जोड़े की तरह सुखी और जीवन से पूर्ण हो जाते, तो यह दुनिया स्वर्ग हो जाती। पर, हो किस तरह? यदि यह बात किसी से कही जाय तो वह फ़ौरन् जवाब देगा—अपने-अपने पूर्वजनित संस्कारों का फल है। हम कुढ़ें क्यों? ऐसी परिस्थिति में भला क्रान्ति की भावना उत्पन्न हो कैसे? उन्हें किस तरह समझाया जाय कि यह कर्म-भोग का मामला क़तई नहीं, बल्कि आर्थिक, राजनातिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का दोष है। जिसकी वजह से कुछ आदमी सुख-सम्पत्ति से पूर्ण हैं, बाक़ी दुःख और ग़रीबी से घुल-घुलकर किसी तरह जीवन के दिन बिता रहे हैं। यदि इसे बदलकर ऐसी व्यवस्था क़ायम की जाय, जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपनी-अपनी योग्यता के विकास का अवसर मिले तो सबकी हालत ऐसी ही हो सकती है, जैसी उन थोड़े-से अमीरों की। वह एकाएक बेंच से उठकर हरी-हरी दूब में बिल्लियों की तरह घूमने लगा।....आख़िर उसे यह सब क्यों भोगना पड़ रहा है? उसकी मामूली आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पातीं। क्या वह पढ़ा-लिखा नहीं है? क्या उसमें काम करने की शक्ति नहीं है? क्या वह सब तरह उस युवा की बराबरी नहीं कर सकता? क्या कमी है उसमें?.... लेकिन, वह बड़बड़ाया, 'यह दुनिया अमीरों के लिए है।' क़ानून, न्याय, प्रेस सब उनके हाथ के खिलौने हैं। रात-दिन दावतों की भरमार, थोड़ी-बहुत लेक्चर-बाज़ी—बस दुनिया दानवीर, कर्मवीर और महात्मा आदि नामों से सम्बोधन करने लग जायगी। यदि कभी कोई कुछ कह बैठे तो लोग फ़ौरन् जवाब देंगे—हमें किसी के प्राइवेट-जीवन से मतलब, गड़े-मुर्दे उखाड़ने से क्या प्रयोजन?—आदमी की कोई क़ीमत ही न रही। क़ीमत है उस सम्पदा की जो उसके पास है। नहीं तो वह पशु से भी गया-बीता है। तब.... वही क्यों पीछे रहे और इस दुःख-दारिद्र्य में दिन बिताये। अत्याचार की पुकार के पीछे बहुत दिन बीत चुके। रोमांस व ऊँचे-ऊँचे आदर्श केवल विचारों ही तक परिमित हैं। दुनियावी स्पर्शमात्र ही से दुष्ट ओस-कणों की तरह विलीन हो जाते हैं। बुरा हो उनका, जिन्होंने ऐसी झूठी बातों की बुनियाद डाली।

उसकी राय में दुनिया भर के लेखकों, कवियों और दार्शनिकों को क़ैद कर देना चाहिए।....आज से उसके जीवन का नया अध्याय शुरू होगा। उसे कुछ ताक़त-सी मालूम होने लगी। वह रुपया पाने की सैकड़ों तरकीबें सोचते-सोचते घर लौट आया। प्रेमा अब भी सो रही थी। फिर फ़िक्रों का ताँता—एक के बाद एक—प्रेमा के लिए कितनी ही चीज़ें ख़रीदनी हैं। एक से एक ज़रूरी। और तो बाद की बातें हैं कल सुबह चूल्हा कैसे सुलगेगा। आज तो वह प्रेमा के लिए किसी तरह थोड़ा-सा दूध ले आया था—कल क्या होगा?....अब मकान-मालिक भी हीलाहवाला न सुनेगा। ज़रूर निकाल बाहर कर देगा। फिर बीमार पत्नी को लेकर वह कहाँ जायगा? और किस तरह—उफ़! क्या यही नरक है—किस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तरह इससे पीछा छूटे ?—इतने में टन-टन करके सामने मिल में दस का घंटा बजा। उसने खिड़की से झुककर देखा। दूकानें बन्द हो चुकी थीं। केवल सामने सेठ के कमरे की खिड़की से रोज़ की तरह प्रकाश आ रहा था। सेठ सामने नोटों और रुपयों का ढेर लगाये हिसाब में मस्त था। इतने रुपये !—यदि इसमें से केवल सौ रुपये भी वह पा जाता—सहसा उसकी मुद्रा गंभीर हो उठी। आजकल इसके घरवाले भी तो सब पहाड़ पर हैं। दो नौकर हैं—एक रसोई में व्यस्त होगा, दूसरा तो अँगेड़ी है। दस मिनट का तो काम ही है। कौन इस खूसट के लिए रोनेवाला है ? घर-भर चाहता है कि यह किसी तरह खिसके और उन्हें आज़ादी मिले। इसके अलावा दुनिया के मज़े भी तो यह सारे लूट चुका। अब इस पुरानी चीज़ की ज़रूरत ही क्या है ? घर और बाहर दोनों के लिए भार-स्वरूप। इन रुपयों से, जो इसकी सेफ़ में पड़े सड़ रहे हैं, कितने अच्छे-अच्छे काम वह कर सकता है ? बस, पन्द्रह मिनटों में मामला तय। किसी को पता भी न चलेगा। यही ठीक मौक़ा है। उसने चुपचाप छूरा निकालकर खिड़की से आते हुए प्रकाश में उसकी धार को परखा। उसकी ताक़त का पूरा भरोसा हो जाने पर उसने उसे कोट के अन्दर बग़ल में छिपा लिया। और उद्देश्य-सिद्धि के निमित्त चल पड़ा। सड़क पर आ उसने चारों ओर देखा। दो-तीन एक्के-ताँगे तथा दूर पर कुछ आदमी चले जा रहे थे। उसने सशंकित हो सेठ के दरवाज़े की ओर देखा। वह बरामदे पर चढ़ गया, पर उसे दरवाज़ा खुलवाने का साहस न हुआ। वह पुनः सड़क पर उतर आया। और परेशानी से चहलक़दमी करने लगा।....यदि कोई देख ले। शायद सामने चिक के पीछे कोई उसकी गतिविधि को लक्ष्य कर रहा हो। उसे प्रतीत होने लगा कि ज़रूर उसे कोई देख रहा है। उसके दिमाग़ से सारे विचार विलीन हो गये। वह लड़खड़ाता हुआ एक गली के अन्दर घुस गया। थोड़ी दूर जाकर जब उसका मन शान्त हुआ तो उसने सोचा, ज़रा पानी पी और दिमाग़ को शान्त करके जाना ठीक होगा। सामने नल था। उसके सामने हलवाई की दूकान। हलवाई उसे देखेगा और कल पूछताछ के समय उसका यहाँ होना साबित हो जायगा। नहीं, उसे इस समय किसी के सामने होना ठीक नहीं। वह रुक गया। पर, इस तरह समय नष्ट करने से भी तो सारा काम बिगड़ जायगा। यदि बुड्ढा रुपये बटोरकर सेफ़ में रख लेगा तो फिर कुछ न हो सकेगा। वह साहस बटोर, विचारों की बेड़ियों को तोड़, दृढ़ता से सेठ के दरवाज़े पर जा खड़ा हो गया और कान लगा अन्दर की आहट सुनने लगा।

'खाना तैयार है सरकार।'—किसी ने कहा।

'अभी मुझे क़रीब एक घंटे की देर है। इतनी देर तक यहाँ कोई न आना। समझे। जाओ।'

नौकर के जाने की पदध्वनि सुनाई दी। बस यही उपयुक्त समय है। उसने दरवाज़ा खटखटाया। अन्दर से आवाज़ आई—'कौन ?'

'मैं हूँ। आपका किराया लाया हूँ।'

'अच्छा ! बिपिन बाबू।' कहकर बुड्ढे ने दरवाज़ा खोल दिया और बिपिन से बैठने का इशारा कर बोला, 'ज़रा देर ठहरिए। इसे ख़त्म करके आपसे निबटूँगा।'

बिपिन धड़कते हुए कलेजे से बैठ गया। पसीने से उसका सारा बदन तरबतर था। माथे का पसीना पोंछ बिपिन चारों ओर विस्फारित दृष्टि से देखने लगा। दीवार पर जवाहरलालजी का चित्र टँगा था। अन्याय-अत्याचार के प्रति इन्होंने भी आवाज़ उठाई है और उसी अन्याय-अत्याचार से पीड़ित लोग ही चोरी, डाकेज़नी और ख़ून करते हैं। दोनों में आख़िर अन्तर क्या है ? क्या दोनों एक ही श्रेणी के नहीं हुए ? तब दुनिया एक को महान् और दूसरे को नीच घृणित क्यों समझती है।....उसकी हिम्मत टूटने-सी लगी और उसे शिथिलता-सी मालूम पड़ने लगी। उसने उस तसवीर से दृष्टि हटा ली। पर, उसे अपने अन्दर से कोई कहता-सा जान पड़ा—'तुम ग़लती कर रहे हो।'

मन में दो तरह के विचार उठने लगे।—अन्याय का बदला क्या अन्याय से ही लिया जा सकता है ? क्या यह ज़रूरी है कि अपनी आवश्यकताओं को पूरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

कहीं ज़्यादा अनुभव होगा। ये अपने में मस्त रहने-वाले लोग क्या जानें दुनिया के दुःख-दर्द को। वह मन ही मन प्रेमा को सजाकर देखने लगा कि वह कैसी दिखाई देगी, यदि उसे उस युवती की तरह सजाया जाय। प्रेमा का उस अवस्था का पूरा चित्र खींच लेने के बाद उसने एक ठंडी साँस ली और सोचने लगा—इस पृथ्वी में सभी चीज़ें तो भरी पड़ी हैं। उनको भोगने का सबको बराबर हक़ है। फिर यह अंधेर क्यों? ऐसा बेहूदा बटवारा क्यों? कुछ लोगों को खा-खाकर अजीर्ण हो और करोड़ों को खाने के भी लाले पड़ें। किसी के लिए ज़रा-सा नुक़्स हो जाने पर कपड़े पहनने के लायक़ न रह जायँ और किसी को माघ-पूस की सर्दी में ठिठुर-ठिठुरकर प्राण देने पड़ें। किसी के ज़रा-सा छींकने पर वैद्य, हकीम और डाक्टरों की भीड़ लग जाय और किसी को बिना दवा-पानी के तड़प-तड़पकर मरना पड़े। कोई बैठे-बैठे खाय, किसी का मेहनत करते-करते दम निकले; पर उसे रूखा-सूखा भी न मिल सके। यह तीतर-बटेर का हिसाब क्यों? क्यों नहीं लोग इस अन्याय को जड़ से उखाड़ फेंकने की कोशिश करते? इतने में वह युवक और युवती उसके पास से होकर गुज़रे। उनसे निकलती हुई सेंट की सुगंध से वह स्थान महक उठा। उसने विचारा, यदि सभी इस जोड़े की तरह सुखी और जीवन से पूर्ण हो जाते, तो यह दुनिया स्वर्ग हो जाती। पर, हो किस तरह? यदि यह बात किसी से कही जाय तो वह फ़ौरन् जवाब देगा—अपने-अपने पूर्वजनित संस्कारों का फल है। हम कुढ़ें क्यों? ऐसी परिस्थिति में भला क्रान्ति की भावना उत्पन्न हो कैसे? उन्हें किस तरह समझाया जाय कि यह कर्म-भोग का मामला क़तई नहीं, बल्कि आर्थिक, राजनातिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का दोष है। जिसकी वजह से कुछ आदमी सुख-सम्पत्ति से पूर्ण हैं, बाक़ी दुःख और ग़रीबी से घुल-घुलकर किसी तरह जीवन के दिन बिता रहे हैं। यदि इसे बदलकर ऐसी व्यवस्था क़ायम की जाय, जिसमें प्रत्येक स्त्री-पुरुष को अपनी-अपनी योग्यता के विकास का अवसर मिले तो सबकी हालत ऐसी ही हो सकती है, जैसी उन थोड़े-से अमीरों की। वह एकाएक बेंच से उठकर हरी-हरी दूब में बिल्लियों की तरह घूमने लगा।....आख़िर उसे यह सब क्यों भोगना पड़ रहा है? उसकी मामूली आवश्यकताएँ भी पूरी नहीं हो पातीं। क्या वह पढ़ा-लिखा नहीं है? क्या उसमें काम करने की शक्ति नहीं है? क्या वह सब तरह उस युवा की बराबरी नहीं कर सकता? क्या कमी है उसमें?.... लेकिन, वह बड़बड़ाया, 'यह दुनिया अमीरों के लिए है।' क़ानून, न्याय, प्रेस सब उनके हाथ के खिलौने हैं। रात-दिन दावतों की भरमार, थोड़ी-बहुत लेक्चर-बाज़ी—बस दुनिया दानवीर, कर्मवीर और महात्मा आदि नामों से सम्बोधन करने लग जायगी। यदि कभी कोई कुछ कह बैठे तो लोग फ़ौरन् जवाब देंगे—हमें किसी के प्राइवेट-जीवन से मतलब, गड़े-मुर्दे उखाड़ने से क्या प्रयोजन?—आदमी की कोई क़ीमत ही न रही। क़ीमत है उस सम्पदा की जो उसके पास है। नहीं तो वह पशु से भी गया-बीता है। तब.... वही क्यों पीछे रहे और इस दुःख-दारिद्र्य में दिन बिताये। अत्याचार की पुकार के पीछे बहुत दिन बीत चुके। रोमांस व ऊँचे-ऊँचे आदर्श केवल विचारों ही तक परिमित हैं। दुनियावी स्पर्शमात्र ही से दुष्ट ओस-कणों की तरह विलीन हो जाते हैं। बुरा हो उनका, जिन्होंने ऐसी झूठी बातों की बुनियाद डाली।

उसकी राय में दुनिया भर के लेखकों, कवियों और दार्शनिकों को क़ैद कर देना चाहिए।....आज से उसके जीवन का नया अध्याय शुरू होगा। उसे कुछ ताक़त-सी मालूम होने लगी। वह रुपया पाने की सैकड़ों तरकीबें सोचते-सोचते घर लौट आया। प्रेमा अब भी सो रही थी। फिर फ़िक्रों का ताँता—एक के बाद एक—प्रेमा के लिए कितनी ही चीज़ें ख़रीदनी हैं। एक से एक ज़रूरी। और तो बाद की बातें हैं कल सुबह चूल्हा कैसे सुलगेगा। आज तो वह प्रेमा के लिए किसी तरह थोड़ा-सा दूध ले आया था—कल क्या होगा?....अब मकान-मालिक भी हीलाहवाला न सुनेगा। ज़रूर निकाल बाहर कर देगा। फिर बीमार पत्नी को लेकर वह कहाँ जायगा? और किस तरह—उफ़! क्या यही नरक है—किस

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

तरह इससे पीछा छूटे ?—इतने में टन-टन करके सामने मिल में दस का घंटा बजा। उसने खिड़की से झुककर देखा। दूकानें बन्द हो चुकी थीं। केवल सामने सेठ के कमरे की खिड़की से रोज़ की तरह प्रकाश आ रहा था। सेठ सामने नोटों और रुपयों का ढेर लगाये हिसाब में मस्त था। इतने रुपये !—यदि इसमें से केवल सौ रुपये भी वह पा जाता—सहसा उसकी मुद्रा गंभीर हो उठी। आजकल इसके घरवाले भी तो सब पहाड़ पर हैं। दो नौकर हैं—एक रसोई में व्यस्त होगा, दूसरा तो भँगेड़ी है। दस मिनट का तो काम ही है। कौन इस खूसट के लिए रोनेवाला है ? घर-भर चाहता है कि यह किसी तरह खिसके और उन्हें आज़ादी मिले। इसके अलावा दुनिया के मज़े भी तो यह सारे लूट चुका। अब इस पुरानी चीज़ की ज़रूरत ही क्या है ? घर और बाहर दोनों के लिए भार-स्वरूप। इन रुपयों से, जो इसकी सेफ़ में पड़े सड़ रहे हैं, कितने अच्छे-अच्छे काम वह कर सकता है ? बस, पन्द्रह मिनटों में मामला तय। किसी को पता भी न चलेगा। यही ठीक मौक़ा है। उसने चुपचाप छूरा निकालकर खिड़की से आते हुए प्रकाश में उसकी धार को परखा। उसकी ताक़त का पूरा भरोसा हो जाने पर उसने उसे कोट के अन्दर बग़ल में छिपा लिया। और उद्देश्य-सिद्धि के निमित्त चल पड़ा। सड़क पर आ उसने चारों ओर देखा। दो-तीन एक्के-ताँगे तथा दूर पर कुछ आदमी चले जा रहे थे। उसने सशंकित हो सेठ के दरवाज़े की ओर देखा। वह बरामदे पर चढ़ गया, पर उसे दरवाज़ा खुलवाने का साहस न हुआ। वह पुनः सड़क पर उतर आया। और परेशानी से चहलक़दमी करने लगा।....यदि कोई देख ले। शायद सामने चिक के पीछे कोई उसकी गतिविधि को लक्ष्य कर रहा हो। उसे प्रतीत होने लगा कि ज़रूर उसे कोई देख रहा है। उसके दिमाग़ से सारे विचार विलीन हो गये। वह लड़खड़ाता हुआ एक गली के अन्दर घुस गया। थोड़ी दूर जाकर जब उसका मन शान्त हुआ तो उसने सोचा, ज़रा पानी पी और दिमाग़ को शान्त करके जाना ठीक होगा। सामने नल था। उसके सामने हलवाई की दूकान। हलवाई उसे देखेगा और कल पूछताछ के समय उसका यहाँ होना साबित हो जायगा। नहीं, उसे इस समय किसी के सामने होना ठीक नहीं। वह रुक गया। पर, इस तरह समय नष्ट करने से भी तो सारा काम बिगड़ जायगा। यदि बुड्ढा रुपये बटोरकर सेफ़ में रख लेगा तो फिर कुछ न हो सकेगा। वह साहस बटोर, विचारों की बेड़ियों को तोड़, दृढ़ता से सेठ के दरवाज़े पर जा खड़ा हो गया और कान लगा अन्दर की आहट सुनने लगा।

'खाना तैयार है सरकार।'—किसी ने कहा।

'अभी मुझे क़रीब एक घंटे की देर है। इतनी देर तक यहाँ कोई न आना। समझे। जाओ।'

नौकर के जाने की पदध्वनि सुनाई दी। बस यही उपयुक्त समय है। उसने दरवाज़ा खटखटाया। अन्दर से आवाज़ आई—'कौन ?'

'मैं हूँ। आपका किराया लाया हूँ।'

'अच्छा ! बिपिन बाबू।' कहकर बुड्ढे ने दरवाज़ा खोल दिया और बिपिन से बैठने का इशारा कर बोला, 'ज़रा देर ठहरिए। इसे ख़त्म करके आपसे निबटूँगा।'

बिपिन धड़कते हुए कलेजे से बैठ गया। पसीने से उसका सारा बदन तरबतर था। माथे का पसीना पोंछ बिपिन चारों ओर विस्फारित दृष्टि से देखने लगा। दीवार पर जवाहरलालजी का चित्र टँगा था। अन्याय-अत्याचार के प्रति इन्होंने भी आवाज़ उठाई है और उसी अन्याय-अत्याचार से पीड़ित लोग ही चोरी, डाकेज़नी और ख़ून करते हैं। दोनों में आख़िर अन्तर क्या है ? क्या दोनों एक ही श्रेणी के नहीं हुए ? तब दुनिया एक को महान् और दूसरे को नीच घृणित क्यों समझती है।....उसकी हिम्मत टूटने-सी लगी और उसे शिथिलता-सी मालूम पड़ने लगी। उसने उस तसवीर से दृष्टि हटा ली। पर, उसे अपने अन्दर से कोई कहता-सा जान पड़ा—'तुम ग़लती कर रहे हो।'

मन में दो तरह के विचार उठने लगे।—अन्याय का बदला क्या अन्याय से ही लिया जा सकता है ? क्या यह ज़रूरी है कि अपनी आवश्यकताओं को पूरा

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

करने के लिए वह किसी का ख़ून करे ?....तभी उसे ख़याल आया, रुपये-पैसे की कमी के कारण ही तो उसकी पत्नी बिना दवा-दारू के सिसक-सिसककर मर रही है।

....लेकिन यह लचर दलील है। एक की जान बचाने की ग़रज़ से उसे दूसरे की जान लेने का क्या हक़ हासिल है ?

सोचते-सोचते उसका सिर चकरा गया। वह एका-एक उठकर जाने के लिए उद्यत हुआ। सेठ ने चश्मे के ऊपर से उसे जाते हुए देखकर कहा—'कहाँ चले ?'

'घर।'

'अरे ! लाओ पहले तुम्हीं से निबट लूँ। निकालो रुपये।'

कुछ सोचने के बाद बिपिन छूरा निकाल बिजली के प्रकाश में उसे चमकाते हुए बोला—'मैं तुम्हें मारकर इन रुपयों को लेने आया था।'

'अरे बाप रे—बाप, ख़ू....न !' सेठ घबराकर उठने लगा।

'घबराइए नहीं, अब मैं यह न करूँगा।'

'क....यों ?' सेठ सूखे कंठ से बोला।

'क्योंकि इससे कुछ फ़ायदा नहीं होगा। तुम्हारी जगह मैं धनी हो जाऊँगा, लेकिन इससे लोगों की दुर्दशा में कोई अन्तर न होगा।'

कहकर बिपिन तेज़ी से चल दिया। सेठ हक्का-बक्का हो उसे देखते रह गया।

घर बैठे डाक्टरी का पूरा ज्ञान करानेवाली पुस्तकें

"इस पत्र के पढ़नेवाले हैं" ऐसा लिखनेवालों को २५) रु० सैकड़ा कमीशन मिलेगा।

डाक्टरी चिकित्सा

डाक्टरी रीति से रोग का निदान लक्षण चिकित्सा ६)

एलोपैथिक मेटेरिया मेडिका

डाक्टरी औषधों का पूरा वर्णन बनाने की विधि मात्रा विरोधी दवाओं के नाम ६)

कम्पौंडरी शिक्षा—१॥)

इंजैक्शन-चिकित्सा सचित्र

(सुई द्वारा इलाज) १।)

डाक्टरी नुसखे—बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा परीक्षित १।)

चिकित्सक के कर्तव्य—१॥)

प्रसिद्ध देशीय औषधियों के अँगरेज़ी डाक्टर द्वारा परीक्षित प्रयोग। क़ीमत १)

भारतीय वनस्पतियों पर

विलायती डाक्टरों के अनुभव

क़ीमत २)

याद रखो—अगर आपको तन्दुरुस्त रहना है तो इसकी बातें याद रखो। क़ीमत ।)

कायाकल्प—घर बैठे कायाकल्प करने की विधि व औषधें। क़ीमत ।)

जच्चा बच्चा—संतान पैदा होने से लेकर बच्चे के पालन-पोषण की विधि। क़ीमत ।)

संतति-निग्रह—जो लोग संतान पैदा होना पसंद नहीं करते उसकी निर्दोष विधियाँ तथा बिना दवा के उपाय बताये हैं। क़ीमत ।)

पुस्तकों का पैकिंग माफ़ डाकख़र्च मनीआर्डर जुदा पड़ेगा।

मँगाने का पता—सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

आत्मा की पुकार

श्रीनीलकण्ठ तिवारी एम्० ए०, साहित्यरत्न

स्वप्न के साजन सुनहरे, कुछ रुको तो !
प्रेम के मेहमान मेरे
सत्यमय सौंदर्य के ये निष्कलुष अभिमान मेरे
मैं झुका आराधना-सा, तुम वरद कुसुमित करों-से, उठ झुको तो !
स्वप्न के साजन सुनहरे, कुछ रुको तो !

(१)

प्राण के ये नेह-लोचन, कुछ ढरो तो !
तुम पलक की लघु निशा के पार, नवध्रुव-से चमकते
प्राण-सागर के किसी लघु द्वीप में खग-से चहकते
मैं अमर, तुम पंखुरी को छाँह छहराते विहरते
दूर हो - हो आँसुओं में और गहराते उतरते
करुण रागों में सिसकते, मींड़-स्वर-संधान मेरे
गीत-अञ्जलि से छलकते, प्रेम के मधु - दान मेरे, कुछ झरो तो !
प्राण के ये नेह-लोचन, कुछ ढरो तो !

(२)

ओ प्रणय के अधर - पाटल, कुछ खिलो तो !
शत युगों की सब परिधियाँ, लाँघक चलता रहा हूँ
मैं पपीता, पंख पर नभ - भूमि ले उड़ता रहा हूँ
खोज में, पथ - धूल से भी, फूल मैं चुनता रहा हूँ
पत्थरों के मौन से भी, चरण-ध्वनि सुनता रहा हूँ
शुष्क जीवन-कूल के कलकल सरित-गति-गान मेरे,
काव्य की मधु-छाँह में सोये सपन-वरदान मेरे, अब मिलो तो !
ओ प्रणय के अधर - पाटल, कुछ खिलो तो !

(३)

मूक वाणी में घृणित पग, यदि धरो तो !
नयन-यमुना में भिगोकर, आह के स्वर अमर कर दूँ
रोटियों के मानवों की, मुक्ति देकर अजर कर दूँ
कील उलटी जो लगाते, प्रेम के युग-हीन पथ पर
पंख-गति आरूढ़ कर दूँ, मैं उन्हीं के क्षीण रथ पर
प्रार्थना निःस्वार्थ मेरी, साधना के मान मेरे
मरण-जीवन-पंथ के गति-प्राण ओ गतिमान मेरे, डग भरो तो !
मूक वाणी में रणित गति, अब भरो तो !

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

१—वही हुआ

बहुत दिनों से जो आशंका की जा रही थी, जो भय था, वही हुआ। पोलैंड पर जर्मनी के आक्रमण करने से महायुद्ध का सूत्रपात हो गया। ११ नवम्बर, सन् १९१८ ई० को जब महायुद्ध के बाद सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये, तभी इस महायुद्ध का भी बीजारोपण कर दिया गया था। तभी यह भी समझ लिया गया था कि आगामी महायुद्ध हवाई होगा। केवल प्राणघातक अस्त्र-शस्त्रों की सहायता ही नहीं, बल्कि 'एकनामिक्स' की समस्या भी उसे बढ़ाने में पूरी सहायता देगी। योरप के राजनीतिक इस बात को ख़ूब अच्छी तरह अपने मन में समझते थे कि होनेवाला महायुद्ध हर हालत में बहुत ही भयंकर तथा नुक़सानदेह साबित होगा। विगत बीस वर्षों से योरप दुरंगी ज़िन्दगी बिता रहा था। प्रत्येक राष्ट्र बाहरी तौर पर शान्ति का समर्थक था; लेकिन मन ही मन एक दूसरे को शंका और घृणा की दृष्टि से देखता था।

इन बीस वर्षों में कितनी ही घटनाएँ एक के बाद दूसरी घटती रहीं, जो कि शायद क़ायदे से चलने पर पूरी एक शताब्दी लेतीं। लेकिन पिछले वर्ष से —जब से जर्मनी ने आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर क़ब्ज़ा कर लिया और हिटलर बड़ी तेज़ी के साथ युद्ध-नीति का समर्थन करने लगा—ये सब घटनाएँ एक बड़ी दुर्घटना के रूप में परिणत हो गईं। अन्त को रविवार, ता० ३ सितम्बर, सन् १९३९ ई० को दिन के ११ बजे ब्रिटेन और फ़्रांस ने जर्मनी को अल्टीमेटम देने के बाद युद्ध की घोषणा कर दी।

हम चेम्बरलेन की 'अपीज़मेंट-पॉलिसी' का कितना ही विरोध क्यों न करें, लेकिन यह कहना ही पड़ेगा कि इस महायुद्ध के लिए ब्रिटेन को कभी क़सूरवार नहीं ठहराया जा सकता। यद्यपि हम इस बात पर विश्वास नहीं करते कि 'डिमाक्रेसी' की रक्षा के लिए ही ब्रिटेन पोलैंड का साथ दे रहा है; बल्कि हम यह समझते हैं कि योरप की शक्ति-संतुलन-नीति को अपने हाथ में रखना ही ब्रिटेन के इस सहयोग का कारण है,

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

फिर भी ब्रिटेन के साथ हमारी पूरी हमदर्दी है। इस वक़्त यह ज़रूरी था कि हिटलर की इस बढ़ती हुई डकैती को रोका जाय।

यद्यपि यह युद्ध फ़िलहाल पोलैंड और जर्मनी के ही बीच हो रहा है, तथा ब्रिटेन और फ़्रांस पोलैंड की मदद में हैं; लेकिन यह निश्चित है कि दूसरे राष्ट्र भी बहुत दिनों तक तटस्थ न रह सकेंगे। ना-ना करते हुए भी परिस्थिति से विवश होकर उन्हें युद्ध-क्षेत्र में आना ही पड़ेगा।

× × ×

२—आगे क्या होगा ?

इस समय किसी की जीत या संधि के विषय में भविष्यवाणी करना ठीक नहीं। लेकिन यह बात तो तय है कि थोड़े ही दिनों बाद यह जोश और वलवले ज़रा ठंडे पड़ेंगे और संधि की शरण लेना योरप के लिए अनिवार्य हो जायगा। इस युद्ध में अभी तक जर्मनी केवल पोलैण्ड से ही लड़ रहा है। ब्रिटेन और फ़्रांस के हमलों से तो वह अपनी रक्षा के लिए ही लड़ रहा है। दूसरी बात यह है कि हिटलर ने अभी तक इटली और स्पेन को अपनी सहायता के लिए नहीं बुलाया। इसका यह मतलब नहीं कि फ़्रांस और ब्रिटेन से लोहा लेने के लिए जर्मनी अपनी शक्ति को ही बहुत काफ़ी समझता हो। इसका कारण यह है कि जर्मनी केवल पोलैण्ड से ही लड़ना चाहता है। और, यह तै है तीन तरफ़ से शत्रु-सेना द्वारा घिरा हुआ पोलैण्ड बहुत दिनों तक अपनी रक्षा नहीं कर सकता। भौगोलिक परिस्थिति को देखते हुए ब्रिटेन और फ़्रांस के लिए जर्मनी को पार किये बग़ैर पोलैंड तक पहुँचना बहुत कठिन है। भूमध्यसागर और ब्लैक-सी से होकर जाना भी, इटली के कारण, सहज नहीं। इससे यह मालूम होता है कि हिटलर अपनी घोषणा के अनुसार पोलैंड को महीने-दो महीने के अन्दर ही जीत लेगा। उसके बाद ही वह युद्ध को बढ़ाना न चाहेगा; क्योंकि उसका मंशा पूरा हो जायगा। तब मुसोलिनी साहब संधि का पैग़ाम लेकर मैदान में आवेंगे, और शायद यू० एस्० ए० (अमेरिका), रूस और स्पेन भी उसका समर्थन करने के लिए आगे बढ़ें। ब्रिटेन से संधि के लिए अपील की जायगी। हिटलर शायद ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी, रूस और इटली की एक राउण्ड-टेबिल-कान्फ्रेंस में समझौता करने के लिए राज़ी हों। यदि चेम्बरलेन की सरकार राज़ी हो जायगी, जैसा कि ख़याल किया जाता है, तो संधि हो जायगी।

लेकिन यहाँ पर यह सवाल पैदा होता है कि क्या यह काम आसान है ? ख़याल तो यह किया जाता है कि उस वक़्त, जब कि ब्रिटेन युद्ध में पूरे जोश के साथ जूझ रहा होगा, वह संधि की कोई बात सुनना पसन्द न करेगा। दूसरा 'युद्ध-मन्त्रिमण्डल' बनाया जायगा और चेम्बरलेन को हटना ही पड़ेगा। इतिहास भी यही बतलाता है कि जो मन्त्रिमण्डल युद्ध छेड़ता है, उसे उसका अन्त देखना नहीं नसीब होता।

परन्तु किस तरह अंत होगा ? यह एक समस्या है। इसे तो प्रायः सभी मानते हैं कि यह युद्ध वर्षों तक जारी रह सकता है। उस ज़माने में योरप की हालत शायद कुछ दूसरी ही नज़र आने लगे। तब योरप के प्रायः सभी राष्ट्र इस महायुद्ध में भाग ले रहे होंगे। लड़ाई से अलग रहनेवाली यह नीति बहुत दिनों तक नहीं चल सकती। लेकिन इन तमाम बातों की केवल कल्पना ही की जा सकती है। निश्चित रूप से क्या होगा, यह तो समय आप ही बतावेगा। पिछले इतिहास को ध्यान में रखते हुए हमें इटली की इस तटस्थ नीति पर सन्देह है। मुसोलिनी मौक़ेबाज़ है। साथ ही अंदरूनी तौर पर जर्मनी और इटली में मनमैली है। स्वार्थवश दोनों मिल गये हैं, पर अपने से अधिक अपने मित्र का अभ्युदय और शक्तिशाली होना दोनों में से कोई नहीं चाहता। इसे ध्यान में रखते हुए हमारा ख़याल तो यह है कि इटली चिमगादड़ की तरह जीतनेवालों का साथ देगा। रूस के विषय में भी सन्देह है। हिटलर और स्टैलिन की यह मुहब्बत भी 'हालीवुड-रोमांस' की तरह किसी भी समय समाप्त हो सकती है। इसमें तो कोई शक नहीं कि ये दोनों ही एक दूसरे के जानी दुश्मन हैं। यूक्रेन के लिए हिटलर की गरज आज भी योरप के वायुमण्डल में

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

गूँज रही है। साथ ही शक्ति-संतुलन का भी तो बड़ा भारी प्रश्न है, जो जर्मनी के जीत जाने पर गड़बड़ हो जायगा। रूस की शांति के लिए यह परमावश्यक है कि जर्मनी, इटली और जापान की शक्ति को बहुत अधिक न बढ़ने दिया जाय। लेकिन इसका दूसरा पहलू यह भी तो हो सकता है कि शत्रु के तौर पर रूस की जर्मनी के ऊपर जीत बोल्शेविक सत्ता को और भी मज़बूत बना दे।

इन सब बातों पर ग़ौर करने के बाद समझ में तो यही आता है कि अमेरिका युद्धराष्ट्र के मैदान में आये बग़ैर निबटारा न होगा। मौजूदा हालत देखते हुए यह ख़याल हरगिज़ नहीं किया जा सकता कि अमेरिका 'एक्सिस-पावर्स' का साथ देगा। यदि कभी वह युद्ध-क्षेत्र में आवेगा तो केवल ब्रिटेन की तरफ़ से ही। ब्रिटेन की 'एकनामिक' शक्ति बहुत काफ़ी है। इससे यह ख़याल किया जाता है कि इस महायुद्ध में विजय-लक्ष्मी ब्रिटेन के हाथ ही लगेगी।

× × ×

३—महायुद्ध और भारत

गत ५ सितम्बर को रेडियो द्वारा भाषण देते हुए भारतवर्ष के कमांडर-इन-चीफ़ सर राबर्ट कैसिल्स ने बतलाया है कि इस युद्ध से हमारे देश पर क्या प्रभाव पड़ सकता है। उन्होंने कहा—"पूर्व की ओर ग़ौर करते हुए मैं सोचता हूँ कि यदि मलाया और विशेषतया सिंगापुर शत्रुओं के हाथ में पहुँच गये तो हिन्दुस्तान की क्या हालत होगी। इससे ब्रिटेन पूर्व में अपना एक बहुत बड़ा रक्षा-केन्द्र खो देगा। कलकत्ते से लेकर मद्रास तक पूरा समुद्री किनारा समुद्री और हवाई हमलों का शिकार हो सकता है। शत्रुओं द्वारा मलाया ले लिये जाने से बर्मा के लिए भी ख़तरा बहुत बढ़ जायगा।....पश्चिम की तरफ़ जब तक मिसर स्वतंत्र रहेगा और बिना किसी की सहायता के ही वह शत्रुओं का सामना कर सकेगा, भारतवर्ष के लिए, उधर से, डरने की कोई बात नहीं।" कमांडर-इन-चीफ़ ने अपना यह मत प्रकट किया है कि शत्रुओं का सामना करने के लिए एक भारतीय फ़ौज का होना आवश्यक है। साथ ही साथ उन्होंने हिन्दुस्तान में हथियारों का बनना अति आवश्यक बतलाया है।

इस सम्बन्ध में चैटफ़ील्ड-कमेटी की सिफ़ारिश ध्यान देने योग्य है। कमेटी का कहना है कि भारत की अपनी हवाई और समुद्री फ़ौज होना बहुत ज़रूरी हम सर कैसिल्स और लार्ड चैटफ़ील्ड के प्रस्तावों पूर्ण रूप से अनुमोदन करते हैं। सचमुच इस स हमें अपने बचाव की तैयारी करने में ज़रा भी ग़फ़ से काम न लेना चाहिए। फ़ौजी-शिक्षा भारतवर्ष अधिकतर दी ही नहीं जाती। कांग्रेस ने कई बार कमज़ोरी को दूर करने के लिए आवाज़ उठाई अभी बिहार-सरकार ने यह बिल गवर्नर-जनरल सामने रक्खा था कि स्कूलों में भारतीय लड़कों फ़ौजी-शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाय। परन्तु उन्हों उसे अस्वीकृत कर दिया। क्या हम आशा करें भारत-सरकार फ़ौजी-शिक्षा की आवश्यकता को समझ कर इसे प्रोत्साहन देने की चेष्टा करेगी?

× × ×

४—नाज़ी निज़ाम

निज़ाम साहब एक शर्त पर फ़ेडरेशन स्वीकार कर को तैयार हैं। वे चाहते हैं कि उन्हें मलाबार-समु तट पर एक बन्दरगाह दिया जाय और साथ ही स्टे से वहाँ तक पहुँचने के लिए मार्ग भी। निज़ाम महोद की इस भावना-धारा के उद्गम के विषय में संदे करने की गुंजाइश नहीं, नाज़ियों 'द्वारा डैंज़िग कोरी डोर' माँगे जाने से ही निज़ाम ने यह सबक़ सीखा है। परन्तु हमें आशा है, निज़ाम साहब अब 'कोरीडोर' नहीं माँगेंगे। योरप में तो उन्होंने देख ही लिया, 'कोरीडोर' शैतान के सेब की तरह है। जिसने खाया, वही स्वर्ग से निकाला गया।

× × ×

५—शिया-सुन्नी-समझौता

अरसे से लखनऊ शिया-सुन्नी-झगड़े का केन्द्र बना हुआ है। इस झगड़े से सरकार और जनता, दोनों ही, अब विशेष रूप से चिन्तित हो उठी थी। हम मौलाना

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

बुलकलाम आज़ाद को, दोनों सम्प्रदायों में समझौता
ाने के लिए हार्दिक बधाई देते हैं। पूरी तरह से
यह समझौता शिया-सुन्नी-कान्फ्रेंस में होगा।
र भी हमें पूर्ण विश्वास है कि अब यह झगड़ा
र नहीं उठेगा; क्योंकि इस बार इसके बीच में
मनुष्य हैं, जो मनसा, वाचा, कर्मणा शान्ति के
समर्थक हैं।

× × ×

६—संत तुलसीदास

रणजीत फ़िल्म-कम्पनी ने हाल ही में महाकवि स्वामी तुलसीदास के जीवनचरित्र के आधार पर क चित्र बनाया है। जहाँ तक ऐसे महापुरुषों की वनी को लेकर चित्रपट बनाने की बात है, हम संतुष्ट । पाश्चात्य देशों में तो यह रिवाज बहुत दिनों से है। रीब एक वर्ष पहले फ्रांस के सुप्रसिद्ध यथार्थवादी लेखक मिली-ज़ोला' का जीवन रजतपट पर अंकित किया या था, और उस फ़िल्म की सभी देशों में सराहना ी गई। भारतवर्ष में भी कलकत्ते की न्यू थिएटर्स म्पनी ने बंगाली कवि चंडीदास और विद्यापति की वनी के आधार पर फ़िल्म बनाये। दो-एक कमज़ोरियों और भद्दी भूलों को छोड़कर उक्त बंगाली कम्पनी ने विद्यापति को काफ़ी सफलतापूर्वक 'स्क्रीन' पर लाने ी कोशिश की। पूना की प्रभात फ़िल्म-कम्पनी ने राठी कवि संत तुकाराम को फ़िल्म में यथेष्ट सफलता साथ चित्रित किया। मालूम होता है, रणजीत फ़िल्म-म्पनी इन्हीं तमाम चित्रपटों की सफलता को देखकर हाकवि तुलसीदास की छीछालेदर करने पर उतारू ई है।

'संत तुलसीदास' का ट्रेलर अभी हाल ही में लखनऊ दिखाया गया था। चित्र का एक दृश्य है, देवभाषा संस्कृत के महापंडितों की सभा में हिन्दी के कवि तुलसीदास को काफ़ी तौर से फटकारा जा रहा है। हमारी समझ में ही नहीं आता, चित्र के निर्माताओं को महाकवि के जीवन में यह घटना कहाँ से दिखलाई पड़ गई!—या कहीं ऐसा तो नहीं है कि संत तुकाराम के जीवन की इस घटना को रणजीत फ़िल्म-कम्पनी ने संत तुलसीदास के जीवन में न पाकर, उसे भी जोड़, हिन्दी संत कवि को मराठी संत कवि के बराबर ही बैठाने का प्रयत्न किया है! चित्र में भगवान् शङ्कर भी अपना त्रिशूल और डमरू वग़ैरह लेकर बड़े जोश के साथ अवतीर्ण हुए हैं।

'ट्रेलर' में एक दृश्य और उल्लेखनीय है। दो अल्प-वयस्क भाई-बहन तुलसीदास के रामचरित-मानस से प्रभावित होकर राम के अनन्य-भक्त बन जाते हैं, उनके अभिभावक संस्कृत के एक महापंडित उन्हें राम का नाम लेने पर ही बहुत मारते-पीटते हैं। इस दृश्य को देखकर सिनेमा हाल में बैठे हुए अनेकों ने सहसा अपने आसपासवालों से व्यंग्य के साथ यह प्रश्न किया था, 'क्या तुलसीदास के पहले राम-नाम का प्रचार नहीं था? लोग राम को भगवान् मानकर उनकी पूजा नहीं करते थे?' एवं जिज्ञासु के रूप में हम भी यही प्रश्न 'संत तुलसीदास' के कथानक-लेखक से पूछना चाहते हैं।

उक्त फ़िल्म-कम्पनीवालों ने अपने इस चित्र के विज्ञापन में, इसके प्रशंसकों में महामना मालवीयजी का भी निहायत गर्मजोशी के साथ उल्लेख कर जनता को बरग़लाना चाहा था, मगर अब इसको क्या कीजिए कि मालवीयजी महाराज ने वक्तव्य प्रकाशित कर उक्त कम्पनी को अपने शुभ नाम का दुरुपयोग करने से रोक दिया।

अभी हाल ही में राय कृष्णदासजी ने 'भारत' में इस चित्र की बुराइयों पर प्रकाश डाला था। वास्तव में इस चित्र के प्रदर्शन से लोगों में, हिन्दी के विश्व-वंद्य महाकवि के सम्बन्ध में बहुत-सी भ्रांतियाँ फैल सकती हैं। हम हिन्दी के सभी पत्रों के माननीय सम्पादकों से अपील करते हैं कि वे अपने पत्रों में ऐसे चित्रों का घोर विरोध करें। यह हिन्दी और हिन्दी के महाकवि की प्रतिष्ठा का सवाल है। साथ ही हम समस्त प्रान्तीय सरकारों से यह अनुरोध करते हैं कि वे अपने-अपने प्रान्तों में इस चित्र का प्रदर्शन बन्द करा दें।

× × ×

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

७—साधु-हिन्दी

काशी से प्रकाशित होनेवाले मासिक पत्र 'गृहस्थ' के अगस्त के अंक में श्रीनरसिंहराम शुक्ल का एक लेख 'साधु-हिन्दी के प्रचार की आवश्यकता' प्रकाशित हुआ है। लेखक का मत है कि साहित्यिक-हिन्दी का ही घरेलू भाषा भी बनाया जाय। एक ओर जब कि घरेलू भाषा को साहित्यिक-भाषा बनाने का उद्योग किया जा रहा है, लेखक का यह दृष्टिकोण सर्वथा नवीन है। हम यह मानते हैं हमारी देवियों में शिक्षा का प्रचार होने से ही हमारे साहित्य का भी अन्य प्रान्तों या देशों की तरह घर-घर में प्रचार हो सकता है; मगर हम लेखक की इस बात से सहमत नहीं कि घर में भी 'गद्य-काव्य' में ही बोला जाय। हरएक जगह भाषा के दो रूप देखे जाते हैं। एक वह जिसे साहित्य-निर्माण के लिए व्यवहार में लाया जाता है, और दूसरा साधारण बोलचाल में। जहाँ तक कहानी, उपन्यास या नाटक लिखने का सवाल है, हम यह मानते हैं कि कथनोपकथन उसी भाषा में लिखे जाने चाहिए, जिसे हम सब अपने दैनिक जीवन में बोलते हैं। लेकिन उसे इस्तेमाल करते समय हमें थोड़ा सतर्क रहने की ज़रूरत है। प्रान्तों की बात तो छोड़ दीजिए, प्रत्येक नगर की बोलचाल की भाषा एक दूसरे से थोड़ी बहुत भिन्न होती है। साहित्य में उसका प्रयोग करते समय यह आवश्यक है कि उसका वह संशोधित रूप ग्रहण किया जाय, जो सर्वत्र ही समान रूप से समझा जा सके।

× × ×

८—हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के निर्वाचित सभापति

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि इस वर्ष काशी में होनेवाले सम्मेलन के अध्यक्ष-पद पर साहित्य-पुरुष ही प्रतिष्ठित किया गया। स्वनामधन्य श्रीपं० अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी ने "स्वतन्त्र" के सम्पादक की हैसियत से हिन्दी-साहित्य की जो अमूल्य सेवा की है, उसका यहाँ पर उल्लेख करना श्रीमान् वाजपेयीजी के प्रति धृष्टता करना होगा। वास्तव में, ऐसे समय, जब कि हिन्दी की लिपि और भाषा आदि को लेकर इतनी छीछालेदर की जा रही है, श्रीमान् वाजपेयीजी-जैसे साहित्य-महारथी का सम्मेलन के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित होना बहुत आवश्यक था। कम से कम हमें यह तो विश्वास है कि उनकी अध्यक्षता में निर्दयता के साथ हिन्दी का गला न घोटा जायगा। हम सम्मेलन के निर्णायकों को उनके इस सुरुचिपूर्ण निर्वाचन के लिए हार्दिक बधाई देते हैं। साथ ही श्रीमान् वाजपेयीजी के प्रति भी अपनी श्रद्धाञ्जलि प्रकट करते हैं, जिनकी अकथनीय सेवाओं को देखते हुए हिन्दी के इस सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित करना हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का कर्तव्य था।

× × ×

९—मंगलाप्रसाद-पारितोषिक

इस वर्ष मंगलाप्रसाद-पारितोषिक के निर्णायकों ने आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को उनकी 'चिन्तामणि'-नामक पुस्तक पर १२००) रु० का पुरस्कार देना निश्चित किया है। हम आचार्य शुक्लजी को बधाई देते हैं। हिन्दी-साहित्य की उन्होंने जो अमूल्य सेवा आज तक की है, वह इतिहास में, स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है।

× × ×

१०—श्रीपं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी का स्वर्गवास

धीरे-धीरे हिन्दी के प्रतिष्ठित महापुरुष इस असार-संसार से अपना नाता तोड़ते चले जा रहे हैं। हास्यरसावतार श्रीमान् चतुर्वेदीजी हिन्दी-साहित्य के एक स्तम्भ थे। आपने हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति-पद को सुशोभित किया था। हम श्रीमान् चतुर्वेदीजी के निधन से दुखी हैं, तथा परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को स्वर्ग में शान्ति एवं उनके दुखी परिवार को धैर्य प्रदान करने की शक्ति दें।

SRI JAGADGURU VISHWARADHYA
JNANA SIMHASAN JNANAMANDIR
LIBRARY
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

सौ वर्ष के अनुभव का

रहस्य

जो सन् १८३९ से सन् १९३९ तक पहुँचकर

कारख़ाना

असग़रअली मुहम्मदअली

ताजिर इत्र

लखनऊ ने प्राप्त की

माल की उम्दगी, सच्चाई और

सद्व्यवहार के साथ

माधुरी

हिंदी-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ मासिक पत्रिका है। यह १७ वर्ष से बराबर ठोस काम कर रही है और इसकी लोकप्रियता बराबर बढ़ती ही जा रही है। इसके सम्पादक हिन्दी-संसार के सुपरिचित पं० रूपनारायण पांडेय हैं। जब से आपने फिर से माधुरी का सम्पादन-भार ग्रहण किया है, तब से इसकी ग्राहकसंख्या बढ़ रही है और इँगलैंड, अमेरिका, जापान आदि विदेशों में भी इसके यथेष्ट ग्राहक हैं।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ होता है। आप अगर व्यापारी हैं तो इस पत्रिका में कम से कम एक बार विज्ञापन छपाकर ज़रूर आज़माइश कीजिए।

मैनेजर, माधुरी

नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ

[ई० सन् १९०१ में स्थापित]

च्यवनप्राश-३) सेर अध्यक्ष मथुरा बाबू का मकरध्वज-४) भरी

शक्ति औषधालय-ढाका

आयुर्वेदिक संसार में युगांतर उपस्थित कर दिया है।

कारखाना और हेड आफ़िस ढाका, बंगाल। तार का पता "शक्ति" ढाका।

कलकत्ता हेड आफ़िस—५२। १, बीडन स्ट्रीट। चौरंगी

बंगाल से बाहर की शाखाएँ:—देहली, कानपूर, इलाहाबाद, पटना, भागलपूर, गया, बनारस, गोरखपूर, बुलानाला, जमशेदपूर, गौहाटी, तिनसुकिया (आसाम), मद्रास, कटक, रंगून, बेसिन, मांडले (बरमा), बम्बई, लखनऊ ब्रांच:—२, शीरामरोड लखनऊ इत्यादि।

ब्रांच भारतवर्ष में सर्वत्र और बरमा में

मृतसंजीवनी सुरा (गवर्नमेन्ट से लाइसेन्सशुदा) भारतवर्ष और बरमा में हमारी सभी ब्रांचों में मिलती है

अध्यक्षगण—श्रीमथुरामोहन, बाबूमोहन, कार्त्तिकमोहन मुखोपाध्याय चक्रवर्ती।

प्रोप्राइटर्स—श्रीमथुरामोहन मुखोपाध्याय, चक्रवर्त्ती बी० ए०

हिन्दू केमिष्ट और फिजिसियन।

पत्र और मनीआर्डर आदि मथुरा बाबू मैनेजिङ्ग प्रोप्राइटर के नाम भेजिए। (एम्)

आयुर्वेदीय चिकित्सा-प्रणाली संबंधित सूचीपत्र मुफ़्त मिलता है।

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Regd. No. A. 1127

कामिनिया स्वास्थ्यवर्द्धक और पूर्ण सुन्दरता का देनेवाला है।

अपने रुपयों का ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाइये।

कामिनिया आइल (रजिस्टर्ड)

मुलायम और चमकीले बालों के लिये कामिनिया आयल इस्तेमाल कीजिये। यह दिमाग़ को हमेशा ठंडा रखता है और बालों में आकर्षक चमक पैदा करता है। दाम एक बोतल का १); तीन बोतलों का २॥=); वी० पी० का ख़र्च अलग।

ख़ुशबू का राजा ओटो दिलबहार (रजिस्टर्ड)

यह रूमाल पर लगाने के लिये एक बहुत ही प्यारा इत्र है। इस बढ़िया इत्र की दो-चार बूँदें ही आपके इर्द-गिर्द स्वर्ग पैदा करने में काफ़ी होंगी। ½ औंस की शीशी की क़ीमत १।) १ ड्राम की शीशी ॥।) वी० पी० ख़र्च अलग।

कामिनिया स्नो (रजिस्टर्ड)

ख़ूबसूरती चेहरे के रंग के लिये बहुत ज़रूरी है। इससे मुँहासे और चेहरे की दूसरी ख़राबियाँ दूर हो जाती हैं और चेहरे पर एक बहुत ही अजीब आकर्षण आ जाता है। एक बोतल की क़ीमत ॥।) वी० पी० ख़र्च अलग।

सब जगह मिल सकते हैं। मुफ़्त में लीजिये।

इस कूपन को इस्तेमाल कीजिये।

कूपन

मेहरबानी करके अपनी सारी चीज़ों के मुफ़्त नमूने भेजिये। डाकख़र्च के लिये) के टिकट भेज रहा हूँ।

नाम .....

पता .....

कामिनिया ह्वाइट रोज़ सोप (रजिस्टर्ड)

बाज़ार में बिकनेवाले रोज़ाना नहाने के सभी साबुनों से अच्छा है। दूसरे क़िस्म के साबुन को भी आज़मा कर देखिये। जैसे सन्दल, दिलबहार, लवैन्डर वग़ैरह। एक बक्स का दाम ॥।=) वी० पी० ख़र्च अलग।

सोल एजेंट—दी ऐंग्लो इंडियन ड्रग ऐंड केमिकल कंपनी, २८५, जुमा मसजिद, बंबई नं०

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

Printed & Published by K. D. Seth, at the Newal Kishore Press, Lucknow.

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

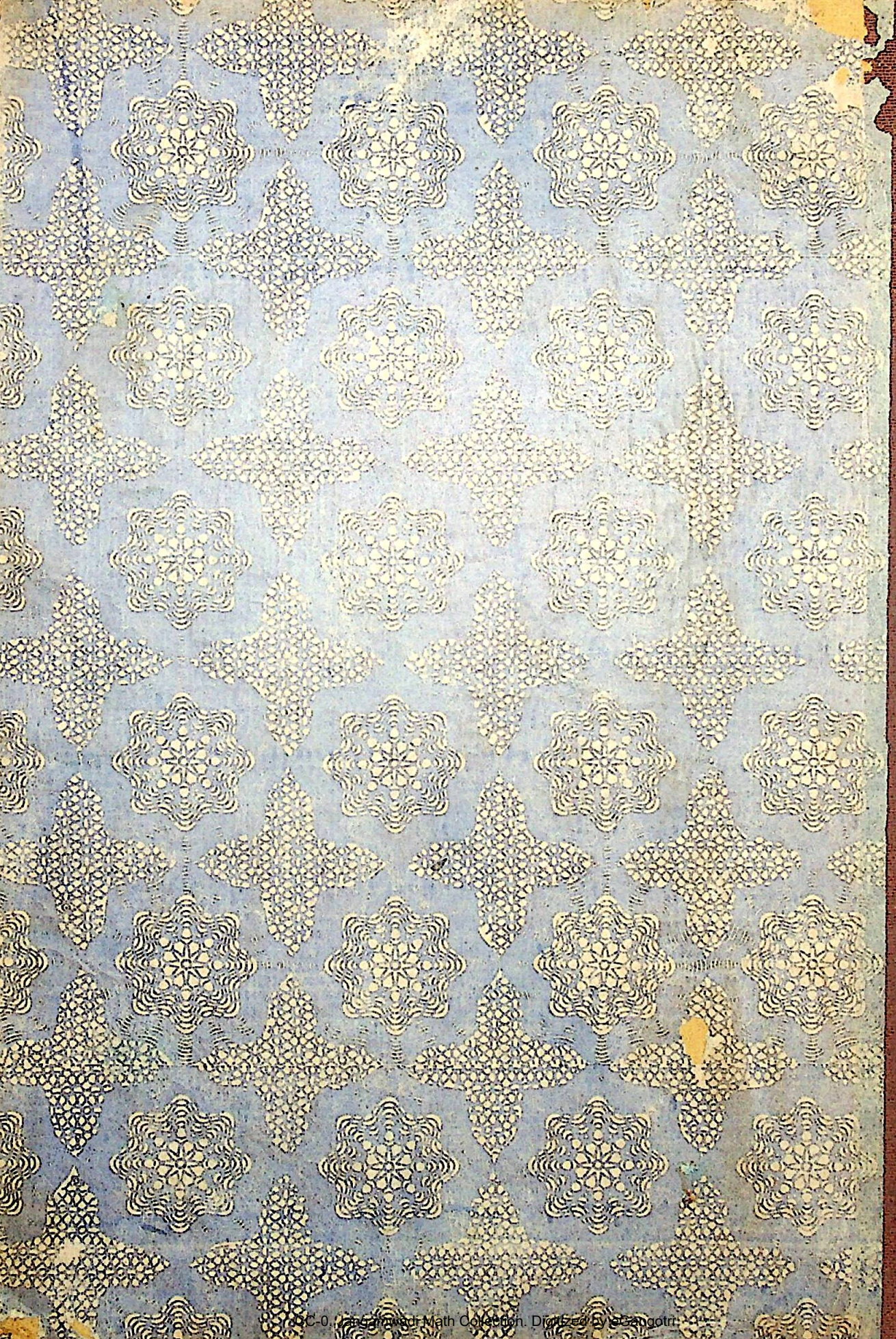
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri